Matsya-Puran

(Hindi)

विषय-सूची

ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्वेदव्यासप्रणीत

मत्स्यमहापुराण

पहला अध्याय

मङ्गलाचरण, शौनक आदि मुनियोंका सूतजीसे पुराणविषयक प्रश्न, सूतद्वारा मत्स्यपुराणका वर्णनारम्भ, भगवान् विष्णुका मत्स्यरूपसे सूर्यनन्दन मनुको मोहित करना, तत्पश्चात् उन्हें आगामी प्रलयकालकी सूचना देना

प्रचण्डताण्डवाटोपे प्रक्षिप्ता येन दिग्गजाः।
भवन्तु विघ्नभङ्गाय भवस्य चरणाम्बुजाः॥ १

पातालादुत्पतिष्णोर्मकरवसतयो यस्य पुच्छाभिघाता-
दूर्ध्वं ब्रह्माण्डखण्डव्यतिकरविहितव्यत्ययेनापतन्ति।
विष्णोर्मत्स्यावतारे सकलवसुमतीमण्डलं व्यश्नुवाना-
स्तस्यास्योदीरितानां ध्वनिरपहरतादश्रियं वः श्रुतीनाम्॥ २[1]

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥ ३

अजोऽपि यः क्रियायोगान्नारायण इति स्मृतः।
त्रिगुणाय त्रिवेदाय नमस्तस्मै स्वयम्भुवे॥ ४

सूतमेकाग्रमासीनं नैमिषारण्यवासिनः।
मुनयो दीर्घसत्रान्ते पप्रच्छुर्दीर्घसंहिताम्॥ ५

प्रचण्ड वेगसे प्रवृत्त हुए ताण्डव नृत्यके आवेशमें जिनके द्वारा दिग्गजगण दूर फेंक दिये जाते हैं, उन भगवान् शंकरके चरणकमल (हम सभीके) विघ्नोंका विनाश करें। मत्स्यावतारके समय पाताललोकसे ऊपरको उछलते हुए जिन भगवान् विष्णुकी पूँछके आघातसे समुद्र ऊपरको उछल पड़ते हैं तथा ब्रह्माण्ड-खण्डोंके सम्पर्कसे उत्पन्न हुई अस्त-व्यस्तताके कारण सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डलको व्याप्त करके पुनः नीचे गिरते हैं, उन भगवान्के मुखसे उच्चरित हुई श्रुतियोंकी ध्वनि आपलोगोंके अमङ्गलका विनाश करे। नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा सरस्वतीदेवीको नमस्कार कर तत्पश्चात् जय[2] (महाभारत, पुराण आदि)-का पाठ करना चाहिये। जो अजन्मा होनेपर भी क्रियाके सम्पर्कसे 'नारायण' नामसे स्मरण किये जाते हैं, त्रिगुण (सत्त्व, रजस्, तमस्) रूप हैं एवं त्रिवेद (ऋक्, यजुः, साम) जिनका स्वरूप है, उन स्वयम्भू भगवान्को नमस्कार है॥ १—४॥

एक बार दीर्घकालिक यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर नैमिषारण्यनिवासी शौनक आदि मुनियोंने एकाग्रचित्तसे बैठे हुए सूतजीका बारंबार अभिनन्दन करके उनसे

---

१. ग्रन्थकारके दो मङ्गल-श्लोकोंमें शिव-विष्णुकी वन्दनासे ग्रन्थकी गम्भीरता एवं शिव-विष्णु-उभयपरकता सिद्ध होती है। ४। २८ आदिमें भी शिवसे ही सृष्टि निर्दिष्ट है।

२. महाभारतकी नीलकण्ठी व्याख्या एवं भविष्यपुराण १। ४। ८६—८८ के 'अष्टादश पुराणानि रामस्य चरितं तथा। विष्णुधर्मादयो धर्माः शिवधर्माश्च भारत॥ कार्ष्णं वेदं पञ्चमं च यन्महाभारतं विदुः।''''जयेति नाम चैतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः॥'—इस वचनके अनुसार रामायण, महाभारत तथा सभी पुराण, विष्णुधर्म, शिवधर्म आदि 'जय' कहे जाते हैं।

प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्म्यासु ललितासु च।
कथासु शौनकाद्यास्तु अभिनन्द्य मुहुर्मुहुः॥ ६
कथितानि पुराणानि यान्यस्माकं त्वयानघ।
तान्येवामृतकल्पानि श्रोतुमिच्छामहे पुनः॥ ७
कथं ससर्ज भगवाँल्लोकनाथश्चराचरम्।
कस्माच्च भगवान् विष्णुर्मत्स्यरूपत्वमाश्रितः॥ ८
भैरवत्वं भवस्यापि पुरारित्वं च केन हि।
कस्य हेतोः कपालित्वं जगाम वृषभध्वजः॥ ९
सर्वमेतत् समाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्।
त्वद्वाक्येनामृतस्येव न तृप्तिरिह जायते॥ १०

पुराणसम्बन्धिनी धार्मिक एवं सुन्दर कथाओंके प्रसङ्गमें इस दीर्घसंहिता (अर्थात् मत्स्यपुराण)-के विषयमें इस प्रकारकी जिज्ञासा प्रकट की—'निष्पाप सूतजी! आपने हमलोगोंके प्रति जिन पुराणोंका वर्णन किया है, उन्हीं अमृततुल्य पुराणोंको पुनः श्रवण करनेकी हमलोगोंकी अभिलाषा है। मुने! ऐश्वर्यशाली जगदीश्वरने कैसे इस चराचर विश्वकी सृष्टि की तथा उन भगवान् विष्णुको किस कारण मत्स्यरूप धारण करना पड़ा? साथ ही शंकरजीको भी भैरवत्व एवं पुरारित्वकी पदवी किस निमित्तसे प्राप्त हुई? तथा वे वृषभध्वज कपालमालाधारी कैसे हो गये? सूतजी! इन सबका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि इस विषयमें आपके अमृत-सदृश वचनोंको सुननेसे तृप्ति नहीं हो रही है॥५—१०॥

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्यमिदानीं शृणुत द्विजाः।
मात्स्यं पुराणमखिलं यज्जगाद गदाधरः॥ ११
पुरा राजा मनुर्नाम चीर्णवान् विपुलं तपः।
पुत्रे राज्यं समारोप्य क्षमावान् रविनन्दनः॥ १२
मलयस्यैकदेशे तु सर्वात्मगुणसंयुतः।
समदुःखसुखो वीरः प्राप्तवान् योगमुत्तमम्॥ १३
बभूव वरदश्चास्य वर्षायुतशते गते।
वरं वृणीष्व प्रोवाच प्रीतः स कमलासनः॥ १४
एवमुक्तोऽब्रवीद् राजा प्रणम्य स पितामहम्।
एकमेवाहमिच्छामि त्वत्तो वरमनुत्तमम्॥ १५
भूतग्रामस्य सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।
भवेयं रक्षणायालं प्रलये समुपस्थिते॥ १६
एवमस्त्विति विश्वात्मा तत्रैवान्तरधीयत।
पुष्पवृष्टिः सुमहती खात् पपात सुरार्पिता॥ १७

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! पूर्वकालमें भगवान् गदाधरने जिस मत्स्यपुराणका वर्णन किया था, इस समय उसीका विवरण (आपलोग) सुनें। यह पुण्यप्रद, परम पवित्र और आयुवर्धक है। प्राचीनकालमें सूर्यपुत्र महाराज (वैवस्वत) मनुने*, जो क्षमाशील, सम्पूर्ण आत्मगुणोंसे सम्पन्न, सुख-दुःखको समान समझनेवाले एवं उत्कृष्ट वीर थे, पुत्रको राज्य-भार सौंपकर मलयाचलके एक भागमें जाकर घोर तपका अनुष्ठान किया था। वहाँ उन्हें उत्तम योगकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार उनके तप करते हुए करोड़ों वर्ष व्यतीत होनेपर कमलासन ब्रह्मा प्रसन्न होकर वरदातारूपमें प्रकट हुए और राजासे बोले—'वर माँगो।' इस प्रकार प्रेरित किये जानेपर वे महाराज मनु पितामह ब्रह्माको प्रणाम करके बोले—'भगवन्! मैं आपसे केवल एक सर्वश्रेष्ठ वर माँगना चाहता हूँ। (वह यह है कि) प्रलयके उपस्थित होनेपर मैं सम्पूर्ण स्थावर-जङ्गमरूप जीवसमूहकी रक्षा करनेमें समर्थ हो सकूँ।' तब विश्वात्मा ब्रह्मा 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर वहीं अन्तर्धान हो गये। उस समय आकाशसे देवताओंद्वारा की गयी महती पुष्पवृष्टि होने लगी॥११—१७॥

*भागवतादिके अनुसार ये सत्यव्रत राजा हैं, जो आगे वैवस्वत मनु हुए हैं।

कदाचिदाश्रमे तस्य कुर्वतः पितृतर्पणम्।
पपात पाण्योरुपरि शफरी जलसंयुता॥ १८

दृष्ट्वा तच्छफरीरूपं स दयालुर्महीपतिः।
रक्षणायाकरोद् यत्नं स तस्मिन् करकोदरे॥ १९

अहोरात्रेण चैकेन षोडशाङ्गुलविस्तृतः।
सोऽभवन्मत्स्यरूपेण पाहि पाहीति चाब्रवीत्॥ २०

स तमादाय मणिके प्राक्षिपज्जलचारिणम्।
तत्रापि चैकरात्रेण हस्तत्रयमवर्धत॥ २१

पुनः प्राहार्तनादेन सहस्रकिरणात्मजम्।
स मत्स्यः पाहि पाहीति त्वामहं शरणं गतः॥ २२

ततः स कूपे तं मत्स्यं प्राहिणोद् रविनन्दनः।
यदा न माति तत्रापि कूपे मत्स्यः सरोवरे॥ २३

क्षिप्तोऽसौ पृथुतामागात् पुनर्योजनसम्मिताम्।
तत्राप्याह पुनर्दीनः पाहि पाहि नृपोत्तम॥ २४

ततः स मनुना क्षिप्तो गङ्गायामप्यवर्धत।
यदा तदा समुद्रे तं प्राक्षिपन्मेदिनीपतिः॥ २५

यदा समुद्रमखिलं व्याप्यासौ समुपस्थितः।
तदा प्राह मनुर्भीतः कोऽपि त्वमसुरेश्वरः॥ २६

अथवा वासुदेवस्त्वमन्य ईदृक् कथं भवेत्।
योजनायुतविंशत्या कस्य तुल्यं भवेद् वपुः॥ २७

ज्ञातस्त्वं मत्स्यरूपेण मां खेदयसि केशव।
हृषीकेश जगन्नाथ जगद्धाम नमोऽस्तु ते॥ २८

एवमुक्तः स भगवान् मत्स्यरूपी जनार्दनः।
साधु साध्विति चोवाच सम्यग्ज्ञातस्त्वयानघ॥ २९

अचिरेणैव कालेन मेदिनी मेदिनीपते।
भविष्यति जले मग्ना सशैलवनकानना॥ ३०

नौरियं सर्वदेवानां निकायेन विनिर्मिता।
महाजीवनिकायस्य रक्षणार्थं महीपते॥ ३१

स्वेदाण्डजोद्भिदो ये वै ये च जीवा जरायुजाः।
अस्यां निधाय सर्वांस्ताननाथान् पाहि सुव्रत॥ ३२

युगान्तवाताभिहता यदा भवति नौर्नृप।
शृङ्गेऽस्मिन् मम राजेन्द्र तदेमां संयमिष्यसि॥ ३३

एक समयकी बात है, आश्रममें पितृ-तर्पण करते हुए महाराज मनुकी हथेलीपर जलके साथ ही एक मछली आ गिरी। उस मछलीके रूपको देखकर वे नरेश दयार्द्र हो गये तथा उसे उस कमण्डलुमें डालकर उसकी रक्षाका प्रयत्न करने लगे। एक ही दिन-रातमें वह (वहाँ) मत्स्यरूपसे सोलह अङ्गुल बड़ा हो गया और 'रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' यों कहने लगा। तब राजाने उस जलचारी जीवको मिट्टीके एक बड़े घड़ेमें डाल दिया। वहाँ भी वह एक (ही) रातमें तीन हाथ बढ़ गया। पुनः उस मत्स्यने सूर्यपुत्र मनुसे आर्तवाणीमें कहा—'राजन्! मैं आपकी शरणमें हूँ; मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तदनन्तर उन सूर्य-नन्दन (वैवस्वत मनु)-ने उस मत्स्यको कुएँमें रख दिया, परंतु जब वह मत्स्य उस कुएँमें भी न अँट सका, तब राजाने उसे सरोवरमें डाल दिया। वहाँ वह पुनः एक योजन बड़े आकारका हो गया और दीन होकर कहने लगा—'नृपश्रेष्ठ! मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये।' तत्पश्चात् मनुने उसे गङ्गामें छोड़ दिया। जब उसने वहाँ और भी विशाल रूप धारण कर लिया, तब भूपालने उसे समुद्रमें डाल दिया। जब उस मत्स्यने सम्पूर्ण समुद्रको आच्छादित कर लिया, तब मनुने भयभीत होकर उससे पूछा—'आप कोई असुरराज तो नहीं हैं? अथवा वासुदेव भगवान् हैं, अन्यथा दूसरा कोई ऐसा कैसे हो सकता है? भला, इस प्रकार कई करोड़ योजनोंके समान विस्तारवाला शरीर किसका हो सकता है? केशव! मुझे ज्ञात हो गया कि 'आप मत्स्यका रूप धारण करके मुझे खिन्न कर रहे हैं। हृषीकेश! आप जगदीश्वर एवं जगत्के निवासस्थान हैं, आपको नमस्कार है।' तब मत्स्यरूपधारी वे भगवान् जनार्दन यों कहे जानेपर बोले—'निष्पाप! ठीक है, ठीक है, तुमने मुझे भलीभाँति पहचान लिया है। भूपाल! थोड़े ही समयमें पर्वत, वन और काननोंके सहित यह पृथ्वी जलमें निमग्न हो जायगी। इस कारण पृथ्वीपते! सम्पूर्ण जीव-समूहोंकी रक्षा करनेके लिये समस्त देवगणोंद्वारा इस नौकाका निर्माण किया गया है। सुव्रत! जितने स्वेदज, अण्डज और उद्भिज्ज जीव हैं तथा जितने जरायुज जीव हैं, उन सभी अनाथोंको इस नौकामें चढ़ाकर तुम उन सबकी रक्षा करना। राजन्! जब युगान्तकी वायुसे आहत होकर यह नौका डगमगाने लगेगी, उस समय राजेन्द्र! तुम उसे मेरे इस सींगमें बाँध देना।

ततो लयान्ते सर्वस्य स्थावरस्य चरस्य च।
प्रजापतिस्त्वं भविता जगतः पृथिवीपते॥ ३४

एवं कृतयुगस्यादौ सर्वज्ञो धृतिमान् नृपः।
मन्वन्तराधिपश्चापि देवपूज्यो भविष्यसि॥ ३५

तदनन्तर पृथ्वीपते! प्रलयकी समाप्तिमें तुम जगत्के समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणियोंके प्रजापति होओगे। इस प्रकार कृतयुगके प्रारम्भमें सर्वज्ञ एवं धैर्यशाली नरेशके रूपमें तुम मन्वन्तरके भी अधिपति होओगे, उस समय देवगण तुम्हारी पूजा करेंगे॥ १८—३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादे प्रथमोऽध्यायः॥ १॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके मनु-विष्णु-संवादमें प्रथम अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १॥

दूसरा अध्याय

मनुका मत्स्यभगवान्से युगान्तविषयक प्रश्न, मत्स्यका प्रलयके स्वरूपका वर्णन करके अन्तर्धान हो जाना, प्रलयकाल उपस्थित होनेपर मनुका जीवोंको नौकापर चढ़ाकर उसे महामत्स्यके सींगमें शेषनागकी रस्सीसे बाँधना एवं उनसे सृष्टि आदिके विषयमें विविध प्रश्न करना और मत्स्यभगवान्का उत्तर देना

सूत उवाच

एवमुक्तो मनुस्तेन पप्रच्छ मधुसूदनम्।
भगवन् कियद्भिर्वर्षैर्भविष्यत्यन्तरक्षयः॥ १
सत्त्वानि च कथं नाथ रक्षिष्ये मधुसूदन।
त्वया सह पुनर्योगः कथं वा भविता मम॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् मत्स्यद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर मनुने उन मधुसूदनसे प्रश्न किया—'भगवन्! यह युगान्त-प्रलय कितने वर्षों बाद आयेगा? नाथ! मैं सम्पूर्ण जीवोंकी रक्षा किस प्रकार कर सकूँगा? तथा मधुसूदन! आपके साथ मेरा पुनः सम्मिलन कैसे हो सकेगा?'॥ १-२॥

मत्स्य उवाच

अद्यप्रभृत्यनावृष्टिर्भविष्यति महीतले।
यावद् वर्षशतं साग्रं दुर्भिक्षमशुभावहम्॥ ३
ततोऽल्पसत्त्वक्षयदा रश्मयः सप्त दारुणाः।
सप्तसप्तेर्भविष्यन्ति प्रतप्ताङ्गारवर्षिणः॥ ४
और्वानलोऽपि विकृतिं गमिष्यति युगक्षये।
विषाग्निश्चापि पातालात् संकर्षणमुखाच्च्युतः।
भवस्यापि ललाटोत्थतृतीयनयनानलः॥ ५
त्रिजगन्निर्दहन् क्षोभं समेष्यति महामुने।
एवं दग्धा मही सर्वा यदा स्याद् भस्मसंनिभा॥ ६
आकाशमूष्मणा तप्तं भविष्यति परंतप।
ततः सदेवनक्षत्रं जगद् यास्यति संक्षयम्॥ ७
संवर्तो भीमनादश्च द्रोणश्चण्डो बलाहकः।
विद्युत्पताकः शोणस्तु सप्तैते लयवारिदाः॥ ८

मत्स्यभगवान् कहने लगे—'महामुने! आजसे लेकर सौ वर्षतक इस भूतलपर वृष्टि नहीं होगी, जिसके फलस्वरूप परम अमाङ्गलिक एवं अत्यन्त भयंकर दुर्भिक्ष आ पड़ेगा। तदनन्तर युगान्त प्रलयके उपस्थित होनेपर तपे हुए अंगारकी वर्षा करनेवाली सूर्यकी सात भयंकर किरणें छोटे-मोटे जीवोंका संहार करनेमें प्रवृत्त हो जायँगी। बडवानल भी अत्यन्त भयानक रूप धारण कर लेगा। पाताललोकसे ऊपर उठकर संकर्षणके मुखसे निकली हुई विषाग्नि तथा भगवान् रुद्रके ललाटसे उत्पन्न तीसरे नेत्रकी अग्नि भी तीनों लोकोंको भस्म करती हुई भभक उठेगी। परंतप! इस प्रकार जब सारी पृथ्वी जलकर राखकी ढेर बन जायगी और गगन-मण्डल ऊष्मासे संतप्त हो उठेगा, तब देवताओं और नक्षत्रोंसहित सारा जगत् नष्ट हो जायगा। उस समय संवर्त, भीमनाद, द्रोण, चण्ड, बलाहक, विद्युत्पताक और शोण नामक जो ये सात प्रलयकारक मेघ हैं, ये सभी

अग्निप्रस्वेदसम्भूतां प्लावयिष्यन्ति मेदिनीम्।
समुद्राः क्षोभमागत्य चैकत्वेन व्यवस्थिताः॥ ९

एतदेकार्णवं सर्वं करिष्यन्ति जगत्त्रयम्।
वेदनावमिमां गृह्य सत्त्वबीजानि सर्वशः॥ १०

आरोप्य रज्जुयोगेन मत्प्रदत्तेन सुव्रत।
संयम्य नावं मच्छृङ्गे मत्प्रभावाभिरक्षितः॥ ११

एकः स्थास्यसि देवेषु दग्धेष्वपि परंतप।
सोमसूर्यावहं ब्रह्मा चतुर्लोकसमन्वितः॥ १२

नर्मदा च नदी पुण्या मार्कण्डेयो महानृषिः।
भवो वेदाः पुराणानि विद्याभिः सर्वतोवृतम्॥ १३

त्वया सार्धमिदं विश्वं स्थास्यत्यन्तरसंक्षये।
एवमेकार्णवे जाते चाक्षुषान्तरसंक्षये॥ १४

वेदान् प्रवर्तयिष्यामि त्वत्सर्गादौ महीपते।
एवमुक्त्वा स भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १५

मनुरप्यास्थितो योगं वासुदेवप्रसादजम्।
अभ्यसन् यावदाभूतसम्प्लवं पूर्वसूचितम्॥ १६

अग्निके प्रस्वेदसे उत्पन्न हुए जलकी घोर वृष्टि करके सारी पृथ्वीको आप्लावित कर देंगे। तब सातों समुद्र क्षुब्ध होकर एकमेक हो जायँगे और इन तीनों लोकोंको पूर्णरूपसे एकार्णवके आकारमें परिणत कर देंगे। सुव्रत! उस समय तुम इस वेदरूपी नौकाको ग्रहण करके इसपर समस्त जीवों और बीजोंको लाद देना तथा मेरे द्वारा प्रदान की गयी रस्सीके बन्धनसे इस नावको मेरे सींगमें बाँध देना। परंतप! (ऐसे भीषण कालमें जब कि) सारा देव-समूह जलकर भस्म हो जायगा तो भी मेरे प्रभावसे सुरक्षित होनेके कारण एकमात्र तुम्हीं अवशेष रह जाओगे। इस आन्तर-प्रलयमें सोम, सूर्य, मैं, चारों लोकोंसहित ब्रह्मा, पुण्यतोया नर्मदा नदी, महर्षि मार्कण्डेय, शंकर, चारों वेद, विद्याओंद्वारा सब ओरसे घिरे हुए पुराण और तुम्हारे साथ यह (नौका-स्थित) विश्व—ये ही बचेंगे। महीपते! चाक्षुष-मन्वन्तरके प्रलयकालमें जब इसी प्रकार सारी पृथ्वी एकार्णवमें निमग्न हो जायगी और तुम्हारे द्वारा सृष्टिका प्रारम्भ होगा, तब मैं वेदोंका (पुनः) प्रवर्तन करूँगा।' ऐसा कहकर भगवान् मत्स्य वहीं अन्तर्धान हो गये तथा मनु भी वहीं स्थित रहकर भगवान् वासुदेवकी कृपासे प्राप्त हुए योगका तबतक अभ्यास करते रहे, जबतक पूर्वसूचित प्रलयका समय उपस्थित न हुआ॥ ३—१६॥

काले यथोक्ते सञ्जाते वासुदेवमुखोद्गते।
शृङ्गी प्रादुर्बभूवाथ मत्स्यरूपी जनार्दनः॥ १७

भुजङ्गो रज्जुरूपेण मनोः पार्श्वमुपागमत्।
भूतान् सर्वान् समाकृष्य योगेनारोप्य धर्मवित्॥ १८

भुजङ्गरज्ज्वा मत्स्यस्य शृङ्गे नावमयोजयत्।
उपर्युपस्थितस्तस्याः प्रणिपत्य जनार्दनम्॥ १९

आभूतसम्प्लवे तस्मिन्नतीते योगशायिना।
पृष्टेन मनुना प्रोक्तं पुराणं मत्स्यरूपिणा।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥ २०

यद् भवद्भिः पुरा पृष्टः सृष्ट्यादिकमहं द्विजाः।
तदेवैकार्णवे तस्मिन् मनुः पप्रच्छ केशवम्॥ २१

तदनन्तर भगवान् वासुदेवके मुखसे कहे गये पूर्वोक्त प्रलयकालके उपस्थित होनेपर भगवान् जनार्दन एक सींगवाले मत्स्यके रूपमें प्रादुर्भूत हुए। उसी समय एक सर्प भी रज्जु-रूपसे बहता हुआ मनुके पार्श्वभागमें आ पहुँचा। तब धर्मज्ञ मनुने अपने योगबलसे समस्त जीवोंको खींचकर नौकापर लाद लिया और उसे सर्परूपी रस्सीसे मत्स्यके सींगमें बाँध दिया। तत्पश्चात् भगवान् जनार्दनको प्रणाम करके वे स्वयं भी उस नौकापर बैठ गये। श्रेष्ठ ऋषियो! इस प्रकार उस अतीत प्रलयके अवसरपर योगाभ्यासी मनुद्वारा पूछे जानेपर मत्स्यरूपी भगवान्‌ने जिस पुराणका वर्णन किया था, उसीका मैं इस समय आपलोगोंके समक्ष प्रवचन करूँगा, सावधान होकर श्रवण कीजिये। द्विजवरो! पहले आपलोगोंने मुझसे जिस सृष्टि आदिके विषयमें प्रश्न किया है, उन्हीं विषयोंको उस एकार्णवके समय मनुने भी भगवान् केशवसे पूछा था॥ १७—२१॥

मनुरुवाच

उत्पत्तिं प्रलयं चैव वंशान् मन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चैव भुवनस्य च विस्तरम्॥ २२
दानधर्मविधिं चैव श्राद्धकल्पं च शाश्वतम्।
वर्णाश्रमविभागं च तथेष्टापूर्तसंज्ञितम्॥ २३
देवतानां प्रतिष्ठादि यच्चान्यद् विद्यते भुवि।
तत्सर्वं विस्तरेण त्वं धर्मं व्याख्यातुमर्हसि॥ २४

मनुने पूछा—भगवन्! सृष्टिकी उत्पत्ति और उसका संहार, मानव-वंश, मन्वन्तर, मानव-वंशमें उत्पन्न हुए लोगोंके चरित्र, भुवनका विस्तार, दान और धर्मकी विधि, सनातन श्राद्धकल्प, वर्ण और आश्रमका विभाग, इष्टापूर्त (वापी, कूप, तड़ाग आदि)-के निर्माणकी विधि और देवताओंकी प्रतिष्ठा आदि तथा और भी जो कोई धार्मिक विषय भूतलपर विद्यमान हैं, उन सभीका आप मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ २२—२४॥

मत्स्य उवाच

महाप्रलयकालान्त एतदासीत् तमोमयम्।
प्रसुप्तमिव चातर्क्यमप्रज्ञातमलक्षणम्॥ २५
अविज्ञेयमविज्ञातं जगत् स्थास्नु चरिष्णु च।
ततः स्वयम्भूरव्यक्तः प्रभवः पुण्यकर्मणाम्॥ २६
व्यञ्जयन्नेतदखिलं प्रादुरासीत् तमोनुदः।
योऽतीन्द्रियः परो व्यक्तादणुर्ज्यायान् सनातनः।
नारायण इति ख्यातः स एकः स्वयमुद्बभौ॥ २७
यः शरीरादभिध्याय सिसृक्षुर्विविधं जगत्।
अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्॥ २८
तदेवाण्डं समभवद्धेमरूप्यमयं महत्।
संवत्सरसहस्रेण सूर्यायुतसमप्रभम्॥ २९
प्रविश्यान्तर्महातेजाः स्वयमेवात्मसम्भवः।
प्रभावादपि तद्व्याप्त्या विष्णुत्वमगमत् पुनः॥ ३०
तदन्तर्भगवानेष सूर्यः समभवत् पुरा।
आदित्यश्चादिभूतत्वाद् ब्रह्मा ब्रह्म पठन्नभूत्॥ ३१
दिवं भूमिं समकरोत् तदण्डशकलद्वयम्।
स चाकरोद्दिशः सर्वा मध्ये व्योम च शाश्वतम्॥ ३२
जरायुर्मेरुमुख्याश्च शैलास्तस्याभवंस्तदा।
यदुल्बं तदभून्मेघस्तडित्सङ्घातमण्डलम्॥ ३३
नद्योऽण्डनाम्नः सम्भूताः पितरो मनवस्तथा।
सप्त येऽमी समुद्राश्च तेऽपि चान्तर्जलोद्भवाः।
लवणेक्षुसुराद्याश्च नानारत्नसमन्विताः॥ ३४

मत्स्यभगवान् कहने लगे—महाप्रलयके समयका अवसान होनेपर यह सारा स्थावर-जङ्गमरूप जगत् सोये हुएकी भाँति अन्धकारसे आच्छन्न था। न तो इसके विषयमें कोई कल्पना ही की जा सकती थी, न कोई वस्तु जानी ही जा सकती थी, न किसी वस्तुका कोई चिह्न ही अवशेष था। सभी वस्तुएँ विस्मृत हो चुकी थीं। कोई ज्ञातव्य वस्तु रह ही नहीं गयी थी। तदनन्तर जो पुण्यकर्मोंके उत्पत्ति-स्थान तथा निराकार हैं, वे स्वयम्भूभगवान् इस समस्त जगत्को प्रकट करनेके अभिप्रायसे अन्धकारका भेदन करके प्रादुर्भूत हुए। उस समय जो इन्द्रियोंसे परे, परात्पर, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, महान्से भी महान्, अविनाशी और नारायण नामसे विख्यात हैं, वे स्वयं अकेले ही आविर्भूत हुए। उन्होंने अपने शरीरसे अनेक प्रकारके जगत्की सृष्टि करनेकी इच्छासे (पूर्वसृष्टिका) भलीभाँति ध्यान करके प्रथमतः जलकी ही रचना की और उसमें (अपने वीर्यस्वरूप) बीजका निक्षेप किया। वही बीज एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सुवर्ण एवं रजतमय अण्डेके रूपमें परिणत हो गया, उसकी कान्ति दस सहस्र सूर्योंके सदृश थी। तत्पश्चात् महातेजस्वी स्वयम्भू स्वयं ही उस अण्डेके भीतर प्रविष्ट हो गये तथा अपने प्रभावसे एवं उस अण्डेमें सर्वत्र व्याप्त होनेके कारण वे पुनः विष्णुभावको प्राप्त हो गये। तदनन्तर उस अण्डेके भीतर सर्वप्रथम ये भगवान् सूर्य उत्पन्न हुए, जो आदिसे प्रकट होनेके कारण 'आदित्य' और वेदोंका पाठ करनेसे 'ब्रह्मा' नामसे विख्यात हुए। उन्होंने ही उस अण्डेको दो भागोंमें विभक्त कर स्वर्गलोक और भूतलकी रचना की तथा उन दोनोंके मध्यमें सम्पूर्ण दिशाओं और अविनाशी आकाशका निर्माण किया। उस समय उस अण्डेके जरायु-भागसे मेरु आदि सातों पर्वत प्रकट हुए और जो उल्ब (गर्भाशय) था, वह विद्युत्समूहसहित मेघमण्डलके रूपमें परिणत हुआ तथा उसी अण्डेसे नदियाँ, पितृगण और मनुसमुदाय उत्पन्न हुए। नाना रत्नोंसे परिपूर्ण जो ये लवण, इक्षु, सुरा आदि सातों समुद्र हैं, वे भी उस अण्डेके अन्तःस्थित जलसे प्रकट हुए।

स सिसृक्षुरभूद् देवः प्रजापतिररिंदम।
तत्तेजसश्च तत्रैष मार्तण्डः समजायत॥ ३५
मृतेऽण्डे जायते यस्मान्मार्तण्डस्तेन संस्मृतः।
रजोगुणमयं यत्तद्रूपं तस्य महात्मनः।
चतुर्मुखः स भगवानभूल्लोकपितामहः॥ ३६
येन सृष्टं जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम्।
तमवेहि रजोरूपं महत्सत्त्वमुदाहृतम्॥ ३७

शत्रुदमन! जब उन प्रजापति देवको सृष्टि रचनेकी इच्छा हुई, तब वहाँ उनके तेजसे ये मार्तण्ड (सूर्य) प्रादुर्भूत हुए। चूँकि ये अण्डेके मृत हो जानेके पश्चात् उत्पन्न हुए थे, इसलिये 'मार्तण्ड' नामसे प्रसिद्ध हुए। उन महात्माका जो रजोगुणमय रूप था, वह लोकपितामह चतुर्मुख भगवान् ब्रह्माके रूपमें प्रकट हुआ। जिन्होंने देवता, असुर और मानवसहित समस्त जगत्‌की रचना की, उन्हें तुम रजोगुणरूप सुप्रसिद्ध महान् सत्त्व समझो॥ ३५—३७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मनुमत्स्यसंवादवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥ २॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मनुमत्स्यसंवादवर्णन नामक दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २॥

तीसरा अध्याय

मनुका मत्स्यभगवान्‌से ब्रह्माके चतुर्मुख होने तथा लोकोंकी सृष्टि करनेके विषयमें प्रश्न एवं मत्स्यभगवान्‌द्वारा उत्तररूपमें ब्रह्मासे वेद, सरस्वती, पाँचवें मुख और मनु आदिकी उत्पत्तिका कथन

मनुरुवाच

चतुर्मुखत्वमगमत् कस्माल्लोकपितामहः।
कथं तु लोकानसृजद् ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः॥ १

मत्स्य उवाच

तपश्चचार प्रथमममराणां पितामहः।
आविर्भूतास्ततो वेदाः साङ्गोपाङ्गपदक्रमाः॥ २
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ ३
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।
मीमांसान्यायविद्याश्च प्रमाणाष्टकसंयुताः॥ ४
वेदाभ्यासरतस्यास्य प्रजाकामस्य मानसाः।
मनसः पूर्वसृष्टा वै जाता यत् तेन मानसाः॥ ५
मरीचिरभवत् पूर्वं ततोऽत्रिर्भगवानृषिः।
अङ्गिराश्चाभवत् पश्चात् पुलस्त्यस्तदनन्तरम्॥ ६

मनुने पूछा—भगवन्! ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ लोक-पितामह ब्रह्मा चतुर्मुख कैसे हुए तथा उन्होंने (सभी) लोकोंकी रचना किस प्रकार की?॥ १॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे! देवताओंके पितामह ब्रह्माने पहले बड़ा ही कठोर तप किया था, जिसके प्रभावसे अङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छन्द), उपाङ्ग (पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र), पद (वैदिक मन्त्रोंका पद-पाठ निर्धारित करना) और क्रम (वेद-पाठकी एक विशेष प्रणाली)-सहित वेदोंका प्रादुर्भाव हुआ। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी उत्पत्तिके पूर्व ब्रह्माने उस पुराणका स्मरण किया, जो अविनाशी, शब्दमय, पुण्यशाली एवं सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत है। तदनन्तर ब्रह्माके मुखोंसे वेद, आठ प्रमाणोंसहित* मीमांसा और न्यायशास्त्रका आविर्भाव हुआ। तत्पश्चात् वेदाभ्यासमें निरत रहनेवाले ब्रह्माने पुत्र उत्पन्न करनेकी कामनासे युक्त होकर पूर्वनिर्धारित दस मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया। मानसिक संकल्पसे उत्पन्न होनेके कारण वे सभी मानस पुत्रके नामसे प्रख्यात हुए। उन पुत्रोंमें सर्वप्रथम मरीचि, तदनन्तर ऐश्वर्यशाली महर्षि अत्रि हुए। पुनः अङ्गिरा और उनके बाद पुलस्त्य हुए।

* पौराणिकोंके आठ प्रमाण ये हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द (आप्तवचन), अनुपलब्धि, अर्थापत्ति, ऐतिह्य और स्वभाव। (सर्वदर्शनसंग्रह)

ततः पुलहनामा वै ततः क्रतुरजायत।
प्रचेताश्च ततः पुत्रो वसिष्ठश्चाभवत् पुनः॥ ७
पुत्रो भृगुरभूत् तद्वन्नारदोऽप्यचिरादभूत्।
दशेमान् मानसान् ब्रह्मा मुनीन् पुत्रानजीजनत्॥ ८
शारीरानथ वक्ष्यामि मातृहीनान् प्रजापतेः।
अङ्गुष्ठाद् दक्षिणाद् दक्षः प्रजापतिरजायत॥ ९
धर्मः स्तनान्तादभवद्धृदयात् कुसुमायुधः।
भ्रूमध्यादभवत् क्रोधो लोभश्चाधरसम्भवः॥ १०
बुद्धेर्मोहः समभवदहंकारादभून्मदः।
प्रमोदश्चाभवत् कण्ठान्मृत्युर्लोचनतो नृप॥ ११
भरतः करमध्यात्तु ब्रह्मसूनुरभूत्ततः।
एते नव सुता राजन् कन्या च दशमी पुनः।
अङ्गजा इति विख्याता दशमी ब्रह्मणः सुता॥ १२

तदनन्तर पुलह और तत्पश्चात् क्रतु उत्पन्न हुए। उसके बाद प्रचेता नामक पुत्र हुए। पुनः वसिष्ठजीका जन्म हुआ। तत्पश्चात् भृगु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए तथा शीघ्र ही नारदका भी आविर्भाव हुआ। इन्हीं दस पुत्रोंको ब्रह्माने अपने मनसे उत्पन्न किया, जो सभी मुनि-रूपसे विख्यात हुए। राजन्! अब मैं ब्रह्माके शरीरसे उत्पन्न हुए मातृ-विहीन पुत्रोंका वर्णन करता हूँ। प्रजापति ब्रह्माके दाहिने अँगूठेसे दक्ष प्रजापति प्रकट हुए। उनके स्तनान्तभागसे धर्म और हृदयसे कुसुमायुध (कामदेव)-का जन्म हुआ। भ्रूमध्यसे क्रोध और होंठसे लोभकी उत्पत्ति हुई। बुद्धिसे मोहका तथा अहंकारसे मदका जन्म हुआ। कण्ठसे प्रमोद और नेत्रोंसे मृत्युकी उत्पत्ति हुई। तत्पश्चात् हथेलीसे ब्रह्मपुत्र भरत* प्रकट हुए। राजन्! ये नौ पुत्र ब्रह्माके शरीरसे प्रकट हुए हैं। ब्रह्माकी दसवीं संतान (एक) कन्या है, जो अङ्गजा नामसे विख्यात हुई॥ २—१२॥

मनुरुवाच

बुद्धेर्मोहः समभवदिति यत् परिकीर्तितम्।
अहंकारः स्मृतः क्रोधो बुद्धिर्नाम किमुच्यते॥ १३

मनुने पूछा—भगवन्! आपने जो यह बतलाया कि बुद्धिसे मोहकी उत्पत्ति हुई और (इसी प्रसङ्गमें) अहंकार, क्रोध एवं बुद्धिका भी नाम लिया, सो ये सब क्या हैं? (इनपर प्रकाश डालिये)॥ १३॥

मत्स्य उवाच

सत्त्वं रजस्तमश्चैव गुणत्रयमुदाहृतम्।
साम्यावस्थितिरेतेषां प्रकृतिः परिकीर्तिता॥ १४
केचित् प्रधानमित्याहुरव्यक्तमपरे जगुः।
एतदेव प्रजासृष्टिं करोति विकरोति च॥ १५
गुणेभ्यः क्षोभमाणेभ्यस्त्रयो देवा विजज्ञिरे।
एका मूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥ १६
सविकारात् प्रधानात्तु महत्तत्त्वं प्रजायते।
महानिति यतः ख्यातिर्लोकानां जायते सदा॥ १७
अहंकारश्च महतो जायते मानवर्धनः।
इन्द्रियाणि ततः पञ्च वक्ष्ये बुद्धिवशानि तु।
प्रादुर्भवन्ति चान्यानि तथा कर्मवशानि तु॥ १८

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे! सत्त्व, रजस् और तमस्—जो ये तीनों गुण बतलाये गये हैं, इनकी साम्यावस्थाको प्रकृति कहा जाता है। कुछ लोग इसे प्रधान कहते हैं। दूसरे लोग इसे अव्यक्त नामसे भी निर्देश करते हैं। यही प्रकृति प्रजाकी सृष्टि करती है और (यही सृष्टिको) बिगाड़ती भी है। इन्हीं तीनों गुणोंके क्षुब्ध होनेपर इनसे तीन देवता उत्पन्न होते हैं। इन (तीनों देवों)-की मूर्ति तो एक ही है, परंतु वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—इन तीन देवताओंके रूपमें विभक्त हो जाती है। तदनन्तर प्रधानके विकृत होनेपर उससे महत्तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, जिससे लोकोंके मध्यमें उसकी सदा 'महान्' रूपसे ख्याति होती है। उस महत्तत्त्वसे मानको बढ़ानेवाला अहंकार प्रकट होता है। उस अहंकारसे दस इन्द्रियाँ आविर्भूत होती हैं, जिनमें पाँच बुद्धि (ज्ञान)-के वशीभूत रहती हैं और दूसरी पाँच कर्मके अधीन रहती हैं।

* भारतमें भरत नामके कई प्रसिद्ध व्यक्ति हुए हैं। ये भरतमुनि हैं, जो 'नाट्यवेद' या 'भरतनाट्यम्' के प्रवर्तक माने जाते हैं।

…चक्षुषी जिह्वा नासिका च यथाक्रमम्।
… हस्तपादं वाक् चेतीन्द्रियसंग्रहः॥ १९
…र्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
…न्दनादानगत्यालापाश्च तत्क्रियाः॥ २०
…ादशं तेषां कर्मबुद्धिगुणान्वितम्।
…यवाः सूक्ष्मास्तस्य मूर्तिं मनीषिणः॥ २१
…यस्मात् तन्मात्राः शरीरं तेन संस्मृतम्।
…गाज्जीवोऽपि शरीरी गद्यते बुधैः॥ २२
…ष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया।
… शब्दतन्मात्रादभूच्छब्दगुणात्मकम्॥ २३
विकृतेर्वायुः शब्दस्पर्शगुणोऽभवत्।
स्पर्शतन्मात्रात्तेजश्चाविरभूत्ततः॥ २४
तद्विकारेण तच्छब्दस्पर्शरूपवत्।
…ारादभवद् वारि राजंश्चतुर्गुणम्॥ २५
…त्रसम्भूतं प्रायो रसगुणात्मकम्।
गन्धतन्मात्रादभूत् पञ्चगुणान्विता॥ २६
…न्धगुणा सा तु बुद्धिरेषा गरीयसी।
…म्पादितं भुङ्क्ते पुरुषः पञ्चविंशकः॥ २७
…वशः सोऽपि जीवात्मा कथ्यते बुधैः।
…ड्विंशकं प्रोक्तं शरीरमिह मानवैः॥ २८
…संख्यात्मकत्वाच्च कपिलादिभिरुच्यते।
…ात्मकं कृत्वा जगद् वेधा अजीजनत्॥ २९
…लोकसृष्ट्यर्थं हृदि कृत्वा समास्थितः।
…जपतस्तस्य भित्त्वा देहमकल्मषम्॥ ३०
…र्धमकरोदर्धं पुरुषरूपवत्।
… च सा ख्याता सावित्री च निगद्यते॥ ३१

इस इन्द्रिय-समुदायमें क्रमशः श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और नासिका— ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं तथा पायु (गुदा), उपस्थ (मूत्रेन्द्रिय), हस्त, पाद और वाणी— ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। इन दसों इन्द्रियोंके क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, उत्सर्ग (मल एवं अपानवायु आदिका त्याग), आनन्दन (आनन्दप्रदान), आदान (ग्रहण करना), गमन और आलाप— ये दस कार्य हैं। इन दसों इन्द्रियोंके अतिरिक्त मननामक ग्यारहवीं इन्द्रिय है, जिसमें कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियोंके समस्त गुण वर्तमान हैं। इन इन्द्रियोंके जो सूक्ष्म अवयव उस मनीषीके शरीरका आश्रय लेते हैं, वे तन्मात्र कहलाते हैं और जिसके सम्पर्कसे तन्मात्रकी उत्पत्ति होती है, उसे शरीर कहा जाता है। उस शरीरका सम्बन्ध होनेके कारण विद्वान्‌लोग जीवको भी 'शरीरी' कहते हैं। जब सृष्टि करनेकी इच्छासे मनको प्रेरित किया जाता है, तब वही सृष्टिकी रचना करता है। उस समय शब्दतन्मात्रसे शब्दरूप गुणवाला आकाश प्रकट होता है। इसी आकाशके विकृत होनेपर वायुकी उत्पत्ति होती है, जो शब्द और स्पर्श— दो गुणोंवाली है। तत्पश्चात् वायु और स्पर्शतन्मात्रसे तेजका आविर्भाव होता है, जो शब्द, स्पर्श और रूपनामक तीन विकारोंसे युक्त होनेके कारण त्रिगुणात्मक हुआ। राजन्! इस त्रिगुणात्मक तेजमें विकार उत्पन्न होनेसे चार गुणोंवाले जलका प्राकट्य होता है, जो रस-तन्मात्रसे उद्भूत होनेके कारण प्रायः रसगुणप्रधान ही होता है। तत्पश्चात् पाँच गुणोंसे सम्पन्न पृथ्वीका प्रादुर्भाव होता है। वह प्रायः गन्ध-गुणसे ही युक्त रहती है। यही (इन सबका यथार्थ ज्ञान रखना ही) श्रेष्ठ बुद्धि है। इन्हीं चौबीस (पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच महाभूत, पाँच तन्मात्र, एक मन, एक बुद्धि, एक अव्यक्त, अहंकार) तत्त्वोंद्वारा सम्पादित सुख-दुःखात्मक कर्मका पचीसवाँ पुरुषनामक तत्त्व भोग करता है। वह भी ईश्वरकी इच्छाके वशीभूत रहता है, इसीलिये विद्वान्‌लोग उसे जीवात्मा कहते हैं। इस प्रकार इस मानव-योनिमें यह शरीर छब्बीस तत्त्वोंसे संयुक्त बतलाया जाता है। कपिल आदि महर्षियोंने संख्यात्मक होनेके कारण इसे 'सांख्य' (ज्ञान) नामसे अभिहित किया है तथा इन्हीं तत्त्वोंका आश्रय लेकर ब्रह्माने जगत्‌की रचना की है॥ १४—२९॥

जब ब्रह्माने जगत्‌की सृष्टि करनेकी इच्छासे हृदयमें सावित्रीका ध्यान करके तपश्चरण प्रारम्भ किया। उस समय जप करते हुए उनका निष्पाप शरीर दो भागोंमें विभक्त हो गया। उनमें आधा भाग स्त्रीरूप और आधा पुरुषरूप हो गया।

सरस्वत्यथ गायत्री ब्रह्माणी च परंतप।
ततः स्वदेहसम्भूतामात्मजामित्यकल्पयत्॥ ३२
दृष्ट्वा तां व्यथितस्तावत् कामबाणार्दितो विभुः।
अहो रूपमहो रूपमिति चाह प्रजापतिः॥ ३३
ततो वसिष्ठप्रमुखा भगिनीमिति चुक्रुशुः।
ब्रह्मा न किंचिद् ददृशे तन्मुखालोकनादृते॥ ३४
अहो रूपमहो रूपमिति प्राह पुनः पुनः।
ततः प्रणामनम्रां तां पुनरेवाभ्यलोकयत्॥ ३५
अथ प्रदक्षिणं चक्रे सा पितुर्वरवर्णिनी।
पुत्रेभ्यो लज्जितस्यास्य तद्रूपालोकनेच्छया॥ ३६
आविर्भूतं ततो वक्त्रं दक्षिणं पाण्डुगण्डवत्।
विस्मयस्फुरदोष्ठं च पाश्चात्यमुदगात्ततः॥ ३७
चतुर्थमभवत् पश्चाद् वामं कामशरातुरम्।
ततोऽन्यदभवत्तस्य कामातुरतया तथा॥ ३८
उत्पतन्त्यास्तदाकारा आलोकनकुतूहलात्।
सृष्ट्यर्थं यत् कृतं तेन तपः परमदारुणम्॥ ३९
तत् सर्वं नाशमगमत् स्वसुतोपगमेच्छया।
तेनोर्ध्वं वक्त्रमभवत् पञ्चमं तस्य धीमतः।
आविर्भवज्जटाभिश्च तद् वक्त्रं चावृणोत् प्रभुः॥ ४०
ततस्तानब्रवीद् ब्रह्मा पुत्रानात्मसमुद्भवान्।
प्रजाः सृजध्वमभितः सदेवासुरमानुषीः॥ ४१
एवमुक्तास्ततः सर्वे ससृजुर्विविधाः प्रजाः।
गतेषु तेषु सृष्ट्यर्थं प्रणामावनतामिमाम्॥ ४२
उपयेमे स विश्वात्मा शतरूपामनिन्दिताम्।
सम्बभूव तया सार्धमतिकामातुरो विभुः।
सलज्जां चकमे देवः कमलोदरमन्दिरे॥ ४३
यावदब्दशतं दिव्यं यथान्यः प्राकृतो जनः।
ततः कालेन महता तस्याः पुत्रोऽभवन्मनुः॥ ४४
स्वायम्भुव इति ख्यातः स विराडिति नः श्रुतम्।
तद्रूपगुणसामान्यादधिपूरुष उच्यते॥ ४५

परंतप! वह स्त्री सरस्वती, 'शतरूपा' नामसे विख्यात हुई। वही सावित्री, गायत्री और ब्रह्माणी भी कही जाती है। इस प्रकार ब्रह्माने अपने शरीरसे उत्पन्न होनेवाली सावित्रीको अपनी पुत्रीके रूपमें स्वीकार किया; परंतु तत्काल ही उस सावित्रीको देखकर वे सर्वश्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्मा मुग्ध हो उठे और यों कहने लगे—'कैसा मनोहर रूप है! कैसा सौन्दर्यशाली रूप है।' ब्रह्माको सावित्रीके मुखकी ओर अवलोकन करनेके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं दीखता था। वे बारंबार यही कह रहे थे—'कैसा अद्भुत रूप है! कैसी अनोखी सुन्दरता है!' तत्पश्चात् जब सावित्री झुककर उन्हें प्रणाम करने लगी, तब ब्रह्मा पुनः उसे देखने लगे। तदनन्तर सुन्दरी सावित्रीने अपने पिता ब्रह्माकी प्रदक्षिणा की। इसी समय सावित्रीके रूपका अवलोकन करनेकी इच्छा होनेके कारण ब्रह्माके मुखके दाहिने पार्श्वमें पीले गण्डस्थलोंवाला (एक दूसरा) नूतन मुख प्रकट हो गया! पुनः विस्मययुक्त एवं फड़कते हुए होंठोंवाला दूसरा (तीसरा) मुख पीछेकी ओर उद्भूत हुआ तथा उनकी बायीं ओर कामदेवके बाणोंसे व्यथित-से दीखनेवाले एक अन्य (चौथे) मुखका आविर्भाव हुआ। सावित्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेके कारण ब्रह्माद्वारा सृष्टि-रचनाके लिये जो अत्यन्त उग्र तप किया गया था, उसका सारा फल नष्ट हो गया तथा उसी पापके परिणामस्वरूप बुद्धिमान् ब्रह्माके मुखके ऊपर एक पाँचवाँ मुख आविर्भूत हुआ, जो जटाओंसे व्याप्त था। ऐश्वर्यशाली ब्रह्माने उस मुखको भी वरण (स्वीकार) कर लिया॥ ३०—४०॥

तदनन्तर ब्रह्माने अपने उन मरीचि आदि मानस पुत्रोंको आज्ञा दी कि तुमलोग भूतलपर चारों ओर देवता, असुर और मानवरूप प्रजाओंकी सृष्टि करो। पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उन पुत्रोंने अनेकों प्रकारकी प्रजाओंकी रचना की। सृष्टि-कार्यके लिये अपने उन पुत्रोंके चले जानेपर विश्वात्मा ब्रह्माने प्रणाम करनेके लिये चरणोंमें पड़ी हुई उस अनिन्दिता शतरूपा*का पाणिग्रहण किया। तदनन्तर अधिक समय व्यतीत होनेके उपरान्त शतरूपाके गर्भसे मनु नामका पुत्र उत्पन्न हुआ, जो स्वायम्भुव नामसे विख्यात हुआ। उसे विराट् भी कहा जाता है तथा अपने पिता ब्रह्माके रूप और गुणकी समानताके कारण उसे

* इसमें तथा अगले अध्यायमें शतरूपाका वर्णन है। शतरूपाका यहाँ अर्थ शतेन्द्रिया माया (मत्स्यपुराण ४। २४) या मूल प्रकृति है। क्योंकि इसे तथा हरिवंश १। २। ९ को छोड़ अन्यत्र सर्वत्र शतरूपा स्वायम्भुव मनुकी पत्नी कही गयी है। यहाँ ४। ३३ में उनकी पत्नी 'अनन्ती' कही गयी है।

वैराजा यत्र ते जाता बहवः शंसितव्रताः।
स्वायम्भुवा महाभागाः सप्त सप्त तथापरे॥ ४६

स्वारोचिषाद्याः सर्वे ते ब्रह्मतुल्यस्वरूपिणः।
औत्तमिप्रमुखास्तद्वद् येषां त्वं सप्तमोऽधुना॥ ४७

लोग अधिपुरुष भी कहते हैं—ऐसा हमने सुना है। उस ब्रह्म-वंशमें सात-सातके विभागसे जो बहुत-से महाभाग्यशाली एवं नियमोंका पालन करनेवाले स्वारोचिष आदि तथा उसी प्रकार औत्तमि आदि स्वायम्भुव मनु हुए हैं, वे सभी ब्रह्माके समान ही स्वरूपवाले थे। उन्हींमें इस समय तुम सातवें मनु हो॥ ४१—४७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मुखोत्पत्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मुखोत्पत्तिनामक तीसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३॥

चौथा अध्याय

पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन करनेसे ब्रह्मा दोषी क्यों नहीं हुए—एतद्विषयक मनुका प्रश्न, मत्स्यभगवान्‌का उत्तर तथा इसी प्रसङ्गमें आदिसृष्टिका वर्णन

मनुरुवाच

अहो कष्टतरं चैतदङ्गजागमनं विभो।
कथं न दोषमगमत् कर्मणानेन पद्मभूः॥ १
परस्परं च सम्बन्धः सगोत्राणामभूत् कथम्।
वैवाहिकस्तत्सुतानां छिन्धि मे संशयं विभो॥ २

मनुने पूछा—सर्वव्यापी भगवन्! अहो! पुत्रीकी ओर बार-बार अवलोकन तो अत्यन्त कष्टका विषय है, परंतु ऐसा कर्म करनेपर भी कमलयोनि ब्रह्मा दोषभागी क्यों नहीं हुए? तथा उनके सगोत्र पुत्रोंका परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध कैसे हुआ? विभो! मेरे इस संशयको दूर कीजिये॥ १-२॥

मत्स्य उवाच

दिव्येयमादिसृष्टिस्तु रजोगुणसमुद्भवा।
अतीन्द्रियेन्द्रिया तद्वदतीन्द्रियशरीरिका॥ ३

दिव्यतेजोमयी भूप दिव्यज्ञानसमुद्भवा।
न मर्त्यैरभितः शक्या वक्तुं वै मांसचक्षुभिः॥ ४

यथा भुजङ्गाः सर्पाणामाकाशं विश्वपक्षिणाम्।
विदन्ति मार्गं दिव्यानां दिव्या एव न मानवाः॥ ५

कार्याकार्ये न देवानां शुभाशुभफलप्रदे।
यस्मात्तस्मान्न राजेन्द्र तद्विचारो नृणां शुभः॥ ६

अन्यच्च सर्ववेदानामधिष्ठाता चतुर्मुखः।
गायत्री ब्रह्मणस्तद्वदङ्गभूता निगद्यते॥ ७

अमूर्तं मूर्तिमद् वापि मिथुनं तत् प्रचक्षते।
विरिञ्चिर्यत्र भगवांस्तत्र देवी सरस्वती।
भारती यत्र यत्रैव तत्र तत्र प्रजापतिः॥ ८

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजन्! रजोगुणसे उत्पन्न हुई यह शतरूपारूपी* आदिसृष्टि दिव्य है। जिस प्रकार इस (मूल प्रकृति)की इन्द्रियाँ इन्द्रियोंके विषयोंसे अतीत हैं, उसी प्रकार इस (शतरूपा, सहस्ररूपा नारी)-का शरीर भी इन्द्रियातीत है। यह दिव्य तेजसे सम्पन्न एवं दिव्य ज्ञानसे समुद्भूत है, अतः मांस-पिण्डरूप नेत्रधारी मानवोंद्वारा इसका भलीभाँति वर्णन नहीं किया जा सकता। जैसे सर्पोंके मार्गको सर्प तथा सम्पूर्ण पक्षियोंके मार्गको आकाशचारी पक्षी ही जान सकते हैं, वैसे ही (शतरूपा आदि) दिव्य जीवोंके (अचिन्त्य) मार्गको दिव्य जीव ही समझ सकते हैं, मानव कदापि नहीं जान सकते। राजेन्द्र! चूँकि देवताओंके कार्य (करनेयोग्य अर्थात् उचित) तथा अकार्य (न करनेयोग्य अर्थात् अनुचित) शुभ एवं अशुभ फल देनेवाले नहीं होते, इसलिये उनके विषयमें विचार करना मानवोंके लिये श्रेयस्कर नहीं है।* दूसरा कारण यह है कि जिस प्रकार ब्रह्मा सारे वेदोंके अधिष्ठाता हैं, उसी प्रकार (शतरूपारूपी) गायत्री ब्रह्माके अङ्गसे उत्पन्न हुई बतलायी जाती है। इसलिये यह मिथुनरूप (जोड़ा) अमूर्त (अव्यक्त) या मूर्तिमान् (व्यक्त) दोनों ही रूपोंमें कहा जाता है। यहाँतक कि जहाँ-जहाँ भगवान् ब्रह्मा हैं, वहाँ-वहाँ (गायत्रीरूपी) सरस्वती देवी भी हैं और जहाँ-जहाँ सरस्वती देवी हैं, वहीं-वहीं ब्रह्मा

* इसीलिये 'न देवचरितं चरेत्', 'अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्' की चेतावनी—उपदेश प्रसिद्ध है।

यथाऽऽतपो न रहितश्छायया दृश्यते क्वचित्।
गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वं तथैव न विमुञ्चति॥ ९

वेदराशिः स्मृतो ब्रह्मा सावित्री तदधिष्ठिता।
तस्मान्न कश्चिद्दोषः स्यात् सावित्रीगमने विभोः॥ १०

तथापि लज्जावनतः प्रजापतिरभूत् पुरा।
स्वसुतोपगमाद् ब्रह्मा शशाप कुसुमायुधम्॥ ११

यस्मान्ममापि भवता मनः संक्षोभितं शरैः।
तस्मात्त्वद्देहमचिराद् रुद्रो भस्मीकरिष्यति॥ १२

ततः प्रसादयामास कामदेवश्चतुर्मुखम्।
न मामकारणे शप्तुं त्वमिहार्हसि मानद॥ १३

अहमेवंविधः सृष्टस्त्वयैव चतुरानन।
इन्द्रियक्षोभजनकः सर्वेषामेव देहिनाम्॥ १४

स्त्रीपुंसोरविचारेण मया सर्वत्र सर्वदा।
क्षोभ्यं मनः प्रयत्नेन त्वयैवोक्तं पुरा विभो॥ १५

तस्मादनपराधोऽहं त्वया शप्तस्तथा विभो।
कुरु प्रसादं भगवन् स्वशरीराप्तये पुनः॥ १६

ब्रह्मोवाच

वैवस्वतेऽन्तरे प्राप्ते यादवान्वयसम्भवः।
रामो नाम यदा मर्त्यो मत्सत्त्वबलमाश्रितः॥ १७

अवतीर्यासुरध्वंसी द्वारकामधिवत्स्यति।
तद्भ्रातुस्तत्समस्य त्वं तदा पुत्रत्वमेष्यसि॥ १८

एवं शरीरमासाद्य भुक्त्वा भोगानशेषतः।
ततो भरतवंशान्ते भूत्वा वत्सनृपात्मजः॥ १९

विद्याधराधिपत्यं च यावदाभूतसम्प्लवम्।
सुखानि धर्मतः प्राप्य मत्समीपं गमिष्यसि॥ २०

एवं शापप्रसादाभ्यामुपेतः कुसुमायुधः।
शोकप्रमोदाभियुतो जगाम स यथागतम्॥ २१

भी हैं। जिस प्रकार धूप (सूर्य) छायासे विलग होकर कहीं भी दिखायी नहीं पड़ते, उसी प्रकार गायत्री भी ब्रह्माके सामीप्यको नहीं छोड़ती हैं। यद्यपि ब्रह्मा वेदसमूहरूप हैं और सावित्री (या सरस्वती) उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं, इसलिये ब्रह्माको सावित्रीपर कुदृष्टि डालनेसे कोई दोष नहीं लगा, तथापि उस समय अपने उस कुकर्मसे प्रजापति ब्रह्मा लज्जासे अभिभूत हो गये और कामदेवको शाप देते हुए यों बोले—'चूँकि तुमने अपने बाणोंद्वारा मेरे भी मनको भलीभाँति क्षुब्ध कर दिया है, इसलिये भगवान् रुद्र शीघ्र ही तुम्हारे शरीरको भस्म कर डालेंगे।' तदनन्तर कामदेवने बड़ी अनुनय-विनयसे ब्रह्माको प्रसन्न किया। वह बोला—'मानद! इस विषयमें आपका मुझे निष्कारण ही शाप देना उचित नहीं है। चतुरानन! आपने ही तो मुझे इस प्रकार सम्पूर्ण देहधारियोंकी इन्द्रियोंको क्षुब्ध करनेके लिये पैदा किया है। विभो! आपने ही पहले मुझे ऐसी आज्ञा दी है कि स्त्री-पुरुषका कोई विचार न करके तुम प्रयत्नपूर्वक सर्वत्र सर्वदा उनके मनको क्षुब्ध किया करो। इसलिये विभो! मैं निरपराध हूँ, तथापि आपने मुझे वैसा शाप दे डाला है; अतः भगवन्! मुझपर कृपा कीजिये, जिससे मैं पुनः अपने पूर्वशरीरको प्राप्त कर सकूँ'॥ ३—१६॥

ब्रह्माने कहा—कामदेव! वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर असुरोंके विनाशक श्रीराम जब मेरे बल-पराक्रमसे सम्पन्न होकर मानव-रूपमें यदुवंशमें (बलरामरूपसे) अवतीर्ण होंगे और द्वारकाको अपना निवासस्थान बनायेंगे, उस समय तुम उन्हींके समान बल-पराक्रमशाली उनके भ्राता (श्रीकृष्ण)-के पुत्ररूपमें उत्पन्न होगे। इस प्रकार शरीरको प्राप्तकर (द्वारकामें) सम्पूर्ण भोगोंका भोग करनेके उपरान्त तुम भरत-वंशमें महाराज वत्सके पुत्र होगे। तत्पश्चात् विद्याधरोंके अधिपति होकर महाप्रलयपर्यन्त धर्मपूर्वक सुखोंका उपभोग करके मेरे समीप वापस आ जाओगे। इस प्रकार शाप और कृपासे संयुक्त कामदेव शोक और आनन्दसे अभिभूत होकर जैसे आया था, वैसे ही चला गया॥ १७—२१॥

मनुरुवाच

कोऽसौ यदुरिति प्रोक्तो यद्वंशे कामसम्भवः।
कथं च दग्धो रुद्रेण किमर्थं कुसुमायुधः॥ २२
भरतस्यान्वये कस्य का च सृष्टिः पुराभवत्।
एतत् सर्वं समाचक्ष्व मूलतः संशयो हि मे॥ २३

मनुने पूछा—भगवन्! आपने जिनके वंशमें कामदेवकी उत्पत्ति बतलायी है, वे यदु कौन हैं? भगवान् रुद्रने कामदेवको किसलिये और कैसे जलाया तथा भरतवंशमें पहले किसकी और कौन-सी सृष्टि हुई थी? (इन बातोंको सुनकर) मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है; अतः आप प्रारम्भसे ही इन सबका वर्णन कीजिये॥ २२-२३॥

मत्स्य उवाच

या सा देहार्धसम्भूता गायत्री ब्रह्मवादिनी।
जननी या मनोर्देवी शतरूपा शतेन्द्रिया॥ २४
रतिर्मनस्तपोबुद्धिर्महान्दिक्सम्भ्रमस्तथा।
ततः स शतरूपायां सप्तापत्यान्यजीजनत्॥ २५
ये मरीच्यादयः पुत्रा मानसास्तस्य धीमतः।
तेषामयमभूल्लोकः सर्वज्ञानात्मकः पुरा॥ २६
ततोऽसृजद् वामदेवं त्रिशूलवरधारिणम्।
सनत्कुमारं च विभुं पूर्वेषामपि पूर्वजम्॥ २७
वामदेवस्तु भगवानसृजन्मुखतो द्विजान्।
राजन्यानसृजद् बाह्वोर्विट् शूद्रानूरुपादयोः॥ २८
विद्युतोऽशनिमेघांश्च रोहितेन्द्रधनूंषि च।
छन्दांसि च ससर्जादौ पर्जन्यं च ततः परम्॥ २९
ततः साध्यगणानीशस्त्रिनेत्रानसृजत् पुनः।
कोटीश्च चतुराशीतिर्जरामरणवर्जिताः॥ ३०
वामोऽसृजन्मर्त्यांस्तान् ब्रह्मणा विनिवारितः।
नैवंविधा भवेत् सृष्टिर्जरामरणवर्जिता॥ ३१
शुभाशुभात्मिका या तु सैव सृष्टिः प्रशस्यते।
एवं स्थितः स तेनादौ सृष्टेः स्थाणुरतोऽभवत्॥ ३२

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजन्! ब्रह्माके शरीरके आधे भागसे जो ब्रह्मवादिनी गायत्री उत्पन्न हुई थी और जो मनुकी माता थी तथा जिसे शतरूपा और शतेन्द्रिया नामसे भी जाना जाता था, उसी शतरूपाके गर्भसे ब्रह्माजीने रति, मन, तप, बुद्धि, महान्, दिक् तथा सम्भ्रम—इन सात संतानोंको जन्म दिया। तथा उन बुद्धिमान् ब्रह्माके पहले जो मरीचि आदि दस मानस-पुत्र हुए थे, उन्हींके द्वारा इस सम्पूर्ण ज्ञानात्मक संसारकी रचना हुई। तदनन्तर ब्रह्माने श्रेष्ठ त्रिशूलधारी वामदेवकी और पुनः पूर्वजोंके भी पूर्वज शक्तिशाली सनत्कुमारकी रचना की। भगवान् वामदेव (शिव)-ने अपने मुखसे ब्राह्मणोंकी, बाहुओंसे क्षत्रियोंकी, ऊरुओंसे वैश्योंकी और पैरोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति की। तदुपरान्त उन्होंने क्रमशः बिजली, वज्र, मेघ, रंग-बिरंगा इन्द्रधनुष और छन्दकी रचना की। उसके बाद मेघकी सृष्टि की। तत्पश्चात् उन शक्तिशाली वामदेवने जरा-मरणरहित एवं त्रिनेत्रधारी चौरासी करोड़ साध्यगणोंको उत्पन्न किया। चूँकि वामदेवने उन्हें जरा-मरणरहित रचा था, इसलिये ब्रह्माने उन्हें सृष्टि रचनेसे मना कर दिया (और कहा कि) इस प्रकार जरा-मरणसे विवर्जित सृष्टि नहीं होती, अपितु जो सृष्टि शुभ और अशुभसे युक्त होती है, वही प्रशंसनीय है। ब्रह्माके ऐसा कहनेपर वामदेव सृष्टिकार्यसे निवृत्त होकर स्थाणुकी भाँति स्थित हो गये॥ २४—३२॥

स्वायम्भुवो मनुर्धीमांस्तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम्।
पत्नीमवाप रूपाढ्यामनन्तीं नाम नामतः॥ ३३
प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुस्तस्यामजीजनत्।
धर्मस्य कन्या चतुरा सूनृता नाम भामिनी॥ ३४
उत्तानपादात्तनयान् प्राप मन्थरगामिनी।
अपस्यंतिमपस्यन्तं कीर्तिमन्तं ध्रुवं तथा॥ ३५

(अब मैथुनी सृष्टिका वर्णन करते हैं—) परम बुद्धिमान् स्वायम्भुव मनुने कठोर तपस्या करके अनन्ती नामवाली एक सुन्दरी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। मनुने उसके गर्भसे प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र उत्पन्न किये। पुनः धर्मकी कन्या सूनृताने, जो परम सुन्दरी, मन्थरगतिसे चलनेवाली और चतुर थी, उत्तानपादके सम्पर्कसे पुत्रोंको प्राप्त किया। उस समय प्रजापति उत्तानपादने सूनृताके गर्भसे अपस्यति, अपस्यन्त, कीर्तिमान् तथा ध्रुव (इन चार पुत्रों)*-को उत्पन्न किया।

* यहाँ कल्पभेद-व्यवस्था है। अन्यत्र उत्तानपादके ध्रुव और उत्तम ये दो ही पुत्र कहे गये हैं और सूनृताका नाम भी सुनीति आया है।

उत्तानपादोऽजनयत् सूनृतायां प्रजापतिः।
ध्रुवो वर्षसहस्राणि त्रीणि कृत्वा तपः पुरा॥ ३६
दिव्यमाप ततः स्थानमचलं ब्रह्मणो वरात्।
तमेव पुरतः कृत्वा ध्रुवं सप्तर्षयः स्थिताः॥ ३७
धन्या नाम मनोः कन्या ध्रुवाच्छिष्टमजीजनत्।
अग्निकन्या तु सुच्छाया शिष्टात्मा सुषुवे सुतान्॥ ३८
कृपं रिपुञ्जयं वृत्तं वृकं च वृकतेजसम्।
चक्षुषं ब्रह्मदौहित्र्यां वीरिण्यां स रिपुञ्जयः॥ ३९
वीरणस्यात्मजायां तु चक्षुर्मनुमजीजनत्।
मनुर्वै राजकन्यायां नड्वलायां स चाक्षुषः॥ ४०
जनयामास तनयान् दश शूरानकल्मषान्।
ऊरुः पूरुः शतद्युम्नस्तपस्वी सत्यवाग्घविः॥ ४१
अग्निष्टुदतिरात्रश्च सुद्युम्नश्चापराजितः।
अभिमन्युस्तु दशमो नड्वलायामजायत॥ ४२
ऊरोरजनयत् पुत्रान् षडाग्नेयी तु सुप्रभान्।
अग्निं सुमनसं ख्यातिं क्रतुमङ्गिरसं गयम्॥ ४३
पितृकन्या सुनीथा तु वेनमङ्गादजीजनत्।
वेनमन्यायिनं विप्रा ममन्थुस्तत्करादभूत्।
पृथुर्नाम महातेजाः स पुत्रौ द्वावजीजनत्॥ ४४
अन्तर्धानस्तु मारीचं शिखण्डिन्यामजीजनत्।
हविर्धानात् षडाग्नेयी धिषणाजनयत् सुतान्।
प्राचीनबर्हिषं साङ्गं यमं शुक्रं बलं शुभम्॥ ४५
प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः।
हविर्धानाः प्रजास्तेन बहवः सम्प्रवर्तिताः॥ ४६
सवर्णायां तु सामुद्र्यां दशाधत्त सुतान् प्रभुः।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः॥ ४७
तत्तपोरक्षिता वृक्षा बभुर्लोके समन्ततः।
देवादेशाच्च तानग्निरदहद् रविनन्दन॥ ४८
सोमकन्याभवत् पत्नी मारीषा नाम विश्रुता।
तेभ्यस्तु दक्षमेकं सा पुत्रमग्र्यमजीजनत्॥ ४९

उनमें ध्रुवने पूर्वकालमें तीन सहस्र वर्षोंतक तप करके ब्रह्माके वरदानसे दिव्य एवं अटल स्थानको प्राप्त किया। आज भी उन्हीं ध्रुवको आगे करके सप्तर्षिमण्डल स्थित है। उन्हीं ध्रुवके संयोगसे मनुकी कन्या धन्याने शिष्टको जन्म दिया। शिष्टके सम्पर्कसे अग्नि-कन्या सुच्छायाने कृप, रिपुञ्जय, वृत्त, वृक, वृकतेजस् और चक्षुष् नामक पुत्रोंको पैदा किया। उनमें रिपुञ्जयने ब्रह्माकी दौहित्री एवं वीरणकी कन्या वीरणीके गर्भसे चाक्षुष मनुको उत्पन्न किया। चाक्षुष मनुने राजपुत्री नड्वलाके गर्भसे ऊरु, पूरु, तपस्वी शतद्युम्न, सत्यवाक्, हवि, अग्निष्टुत्, अतिरात्र, सुद्युम्न, अपराजित और दसवाँ अभिमन्यु—इन दस निष्पाप एवं शूरवीर पुत्रोंको पैदा किया। आग्नेयीने ऊरुके संयोगसे अग्नि, सुमनस्, ख्याति, क्रतु, अङ्गिरस् और गय—इन छः परम कान्तिमान् पुत्रोंको जन्म दिया। पितरोंकी कन्या सुनीथाने अङ्गके सम्पर्कसे वेनको उत्पन्न किया। (वेन अत्यन्त अन्यायी था। जब वह विप्रशापसे मृत्युको प्राप्त हो गया, तब) ब्राह्मणोंने उस अन्यायी वेनके हाथका मन्थन किया। उससे महातेजस्वी पृथु नामका पुत्र प्रकट हुआ। उनके (अन्तर्धान और हविर्धान नामक) दो पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें अन्तर्धानने शिखण्डिनीके गर्भसे मारीच नामक पुत्र पैदा किया॥ ३३—४४ $\frac{1}{2}$॥

अग्नि-कन्या धिषणाने हविर्धानके संयोगसे प्राचीनबर्हिष, साङ्ग, यम, शुक्र, बल और शुभ—इन छः पुत्रोंको जन्म दिया। इनमें महान् ऐश्वर्यशाली प्राचीनबर्हि प्रजापति थे। उन्होंने हविर्धान नामसे विख्यात बहुत-सी प्रजाओंका विस्तार किया तथा समुद्र-कन्या सवर्णाके गर्भसे दस पुत्रोंको जन्म दिया। वे सभी धनुर्वेदके पारगामी विद्वान् थे तथा प्रचेता नामसे विख्यात हुए। रविनन्दन! इन्हीं प्रचेताओंके तपसे सुरक्षित रहकर वृक्षजगत्में चारों ओर शोभा पा रहे थे, परंतु इन्द्रदेवके आदेशसे अग्निने उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। तत्पश्चात् चन्द्रमाकी कन्या, जो मारिषा नामसे विख्यात थी, उन प्रचेताओंकी पत्नी हुई। उसने उनके संयोगसे एक दक्ष नामक श्रेष्ठ पुत्रको जन्म दिया।

दक्षादनन्तरं वृक्षानौषधानि च सर्वशः।
अजीजनत् सोमकन्या नदीं चन्द्रवतीं तथा॥ ५०
सोमांशस्य च तस्यापि दक्षस्याशीतिकोटयः।
तासां तु विस्तरं वक्ष्ये लोके यः सुप्रतिष्ठितः॥ ५१
द्विपदश्चाभवन् केचित् केचिद् बहुपदा नराः।
वलीमुखाः शङ्कुकर्णाः कर्णप्रावरणास्तथा॥ ५२
अश्वऋक्षमुखाः केचित् केचित् सिंहाननास्तथा।
श्वसूकरमुखाः केचित् केचिदुष्ट्रमुखास्तथा॥ ५३
जनयामास धर्मात्मा म्लेच्छान् सर्वाननेकशः।
स सृष्ट्वा मनसा दक्षः स्त्रियः पश्चादजीजनत्॥ ५४
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय ददौ नक्षत्रसंज्ञिताः।
देवासुरमनुष्यादि ताभ्यः सर्वमभूज्जगत्॥ ५५

दक्षकी उत्पत्तिके पश्चात् उस सोमकन्याने समस्त वृक्षों और ओषधियोंको तथा चन्द्रवती नामकी नदीको उत्पन्न किया। चन्द्रमाके अंशसे उत्पन्न हुए उस दक्ष प्रजापतिको अस्सी करोड़ संतानें हुईं, जो इस समय लोकमें सर्वत्र फैली हुई हैं और जिनका विस्तार मैं आगे वर्णन करूँगा। उनमेंसे किन्हींके दो पैर थे तो किन्हींके अनेकों पैर थे। किन्हींके मुख टेढ़े-मेढ़े थे तो किन्हींके कान खूँटे-जैसे थे तथा किन्हींके कान (बालोंसे) आच्छादित थे। किन्हींके मुख घोड़े और रीछके सदृश थे तथा कोई सिंहके समान मुखवाले थे। कुछ लोग कुत्ते और सूअरके सदृश मुखवाले थे तो किन्हींका मुख ऊँटके समान था। इस प्रकार धर्मात्मा दक्षने अपने मनसे अनेकों प्रकारके सभी म्लेच्छोंकी सृष्टि की, तत्पश्चात् स्त्रियोंको उत्पन्न किया। उनमेंसे उन्होंने दस धर्मको, तेरह कश्यपको तथा नक्षत्र नामवाली सत्ताईस स्त्रियोंको चन्द्रमाको प्रदान किया। उन्हीं कन्याओंसे देवता, असुर और मानव आदिसे परिपूर्ण यह सारा जगत् प्रादुर्भूत हुआ है॥ ४५—५५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें चौथा अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४॥

पाँचवाँ अध्याय

दक्ष-कन्याओंकी उत्पत्ति, कुमार कार्त्तिकेयका जन्म तथा दक्ष-कन्याओंद्वारा देवयोनियोंका प्रादुर्भाव

ऋषय ऊचुः

देवानां दानवानां च गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
उत्पत्तिं विस्तरेणैव सूत ब्रूहि यथातथम्॥ १

(शौनक आदि) ऋषियोंने पूछा—सूतजी! देवता, दानव, गन्धर्व, नाग और राक्षस—इन सबकी उत्पत्ति कैसे हुई? इसका यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

संकल्पाद् दर्शनात् स्पर्शात् पूर्वेषां सृष्टिरुच्यते।
दक्षात् प्राचेतसादूर्ध्वं सृष्टिर्मैथुनसम्भवा॥ २
प्रजाः सृजेति व्यादिष्टः पूर्वं दक्षः स्वयम्भुवा।
यथा ससर्ज चैवादौ तथैव शृणुत द्विजाः॥ ३
यदा तु सृजतस्तस्य देवर्षिगणपन्नगान्।
न वृद्धिमगमल्लोकस्तदा मैथुनयोगतः।
दक्षः पुत्रसहस्राणि पाञ्चजन्यामजीजनत्॥ ४

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! प्रचेता-पुत्र दक्षसे पूर्व उत्पन्न हुए लोगोंकी सृष्टि संकल्प, दर्शन और स्पर्शमात्रसे हुई है, ऐसा कहा जाता है; किंतु दक्षके पश्चात् स्त्री-पुरुषके संयोगद्वारा सृष्टि प्रचलित हुई है। पूर्वकालमें जब ब्रह्माने दक्षको आज्ञा दी कि तुम प्रजाओंकी सृष्टि करो, तब दक्षने पहले-पहल जैसी सृष्टि-रचना की, उसे (मैं) उसी प्रकार (वर्णन करता हूँ, आपलोग) श्रवण करें। जब (संकल्प, दर्शन और स्पर्शद्वारा) देव, ऋषि और नागोंकी सृष्टि करनेपर जीव-लोकका विस्तार नहीं हुआ, तब दक्षने पाञ्चजनीके गर्भसे एक हजार पुत्रोंको पैदा किया, जो 'हर्यश्व' नामसे विख्यात हुए।

तांस्तु दृष्ट्वा महाभागः सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
नारदः प्राह ह्यर्यश्वान् दक्षपुत्रान् समागतान्॥ ५
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वोर्ध्वमध एव च।
ततः सृष्टिं विशेषेण कुरुध्वमृषिसत्तमाः॥ ६
ते तु तद्वचनं श्रुत्वा प्रयाताः सर्वतो दिशम्।
अद्यापि न निवर्तन्ते समुद्रादिव सिन्धवः॥ ७
हर्यश्वेषु प्रणष्टेषु पुनर्दक्षः प्रजापतिः।
वीरिण्यामेव पुत्राणां सहस्रमसृजत् प्रभुः॥ ८
शबला नाम ते विप्राः समेताः सृष्टिहेतवः।
नारदोऽनुगतान् प्राह पुनस्तान् पूर्ववत् स तान्॥ ९
भुवः प्रमाणं सर्वत्र ज्ञात्वा भ्रातॄनथो पुनः।
आगत्य चाथ सृष्टिं च करिष्यथ विशेषतः॥ १०
तेऽपि तेनैव मार्गेण जग्मुर्भ्रातृपथा तदा।
ततः प्रभृति न भ्रातुः कनीयान् मार्गमिच्छति।
अन्विष्यन् दुःखमाप्नोति तेन तत् परिवर्जयेत्॥ ११
ततस्तेषु विनष्टेषु षष्टिं कन्याः प्रजापतिः।
वीरिण्यां जनयामास दक्षः प्राचेतसस्तथा॥ १२
प्रादात् स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये॥ १३
द्वे चैव भृगुपुत्राय द्वे कृशाश्वाय धीमते।
द्वे चैवाङ्गिरसे तद्वत्तासां नामानि विस्तरात्॥ १४
शृणुध्वं देवमातॄणां प्रजाविस्तरमादितः।
मरुत्वती वसुर्यामी लम्बा भानुररुंधती॥ १५
संकल्पा च मुहूर्ता च साध्या विश्वा च भामिनी।
धर्मपत्न्यः समाख्यातास्तासां पुत्रान् निबोधत॥ १६
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यानजीजनत्।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा॥ १७
भानोस्तु भानवस्तद्वन्मुहूर्तायां मुहूर्तकाः।
लम्बायां घोषनामानो नागवीथी तु यामिजा॥ १८

उन हर्यश्वनामक दक्ष-पुत्रोंको नाना प्रकारके जीवोंकी सृष्टि करनेके लिये उत्सुक देखकर महाभाग नारदने निकट आये हुए उन लोगोंसे कहा—'श्रेष्ठ ऋषियो! पहले आपलोग सर्वत्र घूमकर पृथ्वीके विस्तार तथा उसके ऊपर और नीचेके भागको जान लें, तब विशेषरूपसे सृष्टि-रचना कीजिये।' नारदजीकी बात सुनकर वे लोग विभिन्न दिशाओंकी ओर चले गये और आजतक भी वे उसी प्रकार नहीं लौटे, जैसे नदियाँ समुद्रमें मिलकर पुनः वापस नहीं आतीं। इस प्रकार हर्यश्व नामक पुत्रोंके नष्ट हो जानेपर प्रभावशाली प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे पुनः एक हजार पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो शबल नामसे प्रसिद्ध हुए। जब ये द्विजवर सृष्टि-रचनाके लिये एकत्र होकर नारदजीके निकट पहुँचे, तब उन्होंने उन अनुगतोंसे भी पुनः वही पूर्ववत् बात कही—'ऋषियो! आपलोग पहले सब ओर घूमकर पृथ्वीके विस्तारको समझिये और अपने भाइयोंका पता लगाकर लौटिये, तत्पश्चात् विशेषरूपसे सृष्टि-रचना कीजिये।' तब जिस मार्गसे भाई लोग गये थे, उसी मार्गसे वे लोग भी चले, उसी मार्गसे चले गये (और पुनः वापस नहीं आये)। तभीसे छोटा भाई बड़े भाईको ढूँढ़ने नहीं जाता। यदि जाता है तो वह दुःखभागी होता है। इसलिये ऐसा कार्य नहीं करना चाहिये॥ २—११॥*

तदनन्तर उन पुत्रोंके भी विनष्ट हो जानेपर प्रचेतानन्दन प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न कीं। उनमेंसे दक्षने दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो भृगुनन्दन शुक्रको, दो बुद्धिमान् कृशाश्वको और दो कन्याएँ अङ्गिराको प्रदान कर दीं। अब आपलोग इन देवमाताओंके नाम तथा जिस प्रकार इनकी संतानोंका विस्तार हुआ, वह सब आदिसे ही विस्तारपूर्वक सुनिये। इनमेंसे मरुत्वती, वसु, यामी, लम्बा, भानु, अरुंधती, संकल्पा, मुहूर्ता, साध्या और सुन्दरी विश्वा—ये दस धर्मकी पत्नियाँ बतलायी गयी हैं। अब इनके पुत्रोंके भी नाम सुनिये—विश्वाने (दस) विश्वेदेवोंको, साध्याने (बारह) साध्योंको, मरुत्वतीने (उनचास) मरुतोंको, वसुने आठ वसुओंको, भानुने (बारह) सूर्योंको, मुहूर्ताने मुहूर्तकको, लम्बाने घोषको, यामीने नागवीथीको

* विष्णुपुराण १। १५। १०१, ब्रह्म० २। ८०, वायु० ६५ आदिमें ऐसा ही है, पर भागवत० ६। ५ में इसके विपरीत सम्मति है।

पृथिवीतलसम्भूतमरुन्धत्यामजायत ।
संकल्पायास्तु संकल्पो वसुसृष्टिं निबोधत ॥ १९

ज्योतिष्मन्तस्तु ये देवा व्यापकाः सर्वतो दिशम् ।
वसवस्ते समाख्यातास्तेषां सर्गं निबोधत ॥ २०

आपो ध्रुवश्च सोमश्च धरश्चैवानिलोऽनलः ।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः ॥ २१

आपस्य पुत्राश्चत्वारः शान्तो वै दण्ड एव च ।
शाम्बोऽथ मणिवक्त्रश्च यज्ञरक्षाधिकारिणः ॥ २२

ध्रुवस्य कालः पुत्रस्तु वर्चाः सोमादजायत ।
द्रविणो हव्यवाहश्च धरपुत्रावुभौ स्मृतौ ॥ २३

कल्याणिन्यां ततः प्राणो रमणः शिशिरोऽपि च ।
मनोहरा धरात् पुत्रानवापाथ हरेः सुता ॥ २४

शिवा मनोजवं पुत्रमविज्ञातगतिं तथा ।
अवाप चानलात् पुत्रावग्निप्रायगुणौ पुनः ॥ २५

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत ।
तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठजाः ॥ २६

अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्त्तिकेयस्ततः स्मृतः ।
प्रत्यूषस्य ऋषेः पुत्रो विभुर्नाम्नाथ देवलः ।
विश्वकर्मा प्रभासस्य पुत्रः शिल्पी प्रजापतिः ॥ २७

प्रासादभवनोद्यानप्रतिमाभूषणादिषु ।
तडागारामकूपेषु स्मृतः सोऽमरवर्धकिः ॥ २८

और संकल्पाने संकल्पको जन्म दिया। अरुन्धतीके गर्भसे भूतलपर होनेवाले समस्त जीव-जन्तुओंकी उत्पत्ति हुई। अब वसुओंकी सृष्टिके विषयमें सुनिये—ये जो प्रभाशाली देवता सम्पूर्ण दिशाओंमें व्याप्त हैं, वे सभी 'वसु' नामसे विख्यात हैं। अब इनके सृष्टि-विस्तारका वर्णन सुनिये। आप, ध्रुव, सोम, धर, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। इनमें आप नामक वसुके शान्त, दण्ड, शाम्ब और मणिवक्त्र नामक चार पुत्र हुए, जो सब-के-सब यज्ञ-रक्षाके अधिकारी हैं। (शेष वसुओंमें) ध्रुवका पुत्र काल हुआ। सोमसे वर्चाकी उत्पत्ति हुई। धरके कल्याणिनीके गर्भसे द्रविण और हव्यवाह नामके दो पुत्र बतलाये जाते हैं तथा हरिकी कन्या मनोहराने उन्हीं धरके संयोगसे प्राण, रमण और शिशिर नामक तीन पुत्र प्राप्त किये। शिवाने अनलसे मनोजव तथा अविज्ञातगति नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया, जो प्रायः अग्निके सदृश ही गुणवाले थे। अग्निपुत्र कुमार (कार्त्तिकेय) सरकंडेके झुरमुटमें पैदा हुए थे। इनके अनुज शाख, विशाख और नैगमेय नामसे प्रसिद्ध हैं। कृत्तिकाकी संतति होनेके कारण ये कार्त्तिकेय नामसे भी विख्यात हैं। प्रत्यूष वसुके विभु तथा देवल* नामके दो पुत्र हुए, जो आगे चलकर महान् ऋषि हुए। प्रभासका पुत्र विश्वकर्मा हुआ, जो शिल्पविद्यामें निपुण और प्रजापति हुआ। वह प्रासाद (अट्टालिका) भवन, उद्यान, प्रतिमा, आभूषण, वापी, सरोवर, बगीचा और कुएँ आदिके निर्माणकार्यमें देवताओंके बढ़ईरूपसे विख्यात हुआ ॥ १२—२८ ॥

अजैकपादहिर्बुध्न्यो विरूपाक्षोऽथ रैवतः ।
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्च सुरेश्वरः ॥ २९

सावित्रश्च जयन्तश्च पिनाकी चापराजितः ।
एते रुद्राः समाख्याता एकादश गणेश्वराः ॥ ३०

एतेषां मानसानां तु त्रिशूलवरधारिणाम् ।
कोटयश्चतुराशीतिस्तत्पुत्राश्चाक्षया मताः ॥ ३१

दिक्षु सर्वासु ये रक्षां प्रकुर्वन्ति गणेश्वराः ।
पुत्रपौत्रसुताश्चैते सुरभीगर्भसम्भवाः ॥ ३२

अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, विरूपाक्ष, रैवत, हर, बहुरूप, सुरराज त्र्यम्बक, सावित्र, जयन्त, पिनाकी और अपराजित—ये एकादश रुद्र गणेश्वर नामसे प्रख्यात हैं। श्रेष्ठ त्रिशूल धारण करनेवाले इन ब्रह्माके मानस पुत्ररूप गणेश्वरोंके चौरासी करोड़ पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब अक्षय माने गये हैं। सुरभीके गर्भसे उद्भूत ये एकादश रुद्रोंके पुत्र-पौत्र आदि, जो गणेश्वर कहे जाते हैं, सभी दिशाओंमें (चराचर जगत्‌की) रक्षा करते हैं ॥ २९—३२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे वसुरुद्रान्ववायो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें वसुओं और रुद्रोंके वंशका वर्णन नामक पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ५ ॥

* असिता और एकपर्णाके पुत्र महर्षि देवल, जो 'देवलस्मृति'के रचयिता हैं, इनसे भिन्न हैं।

छठा अध्याय

कश्यप-वंशका विस्तृत वर्णन

सूत उवाच

कश्यपस्य प्रवक्ष्यामि पत्नीभ्यः पुत्रपौत्रकान्।
अदितिर्दितिर्दनुश्चैव अरिष्टा सुरसा तथा॥ १
सुरभिर्विनता तद्वत्ताम्रा क्रोधवशा इरा।
कद्रूर्विश्वा मुनिस्तद्वत्तासां पुत्रान् निबोधत॥ २
तुषिता नाम ये देवाश्चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
वैवस्वतेऽन्तरे चैते ह्यादित्या द्वादश स्मृताः॥ ३
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणो यमः।
विवस्वान् सविता पूषा अंशुमान् विष्णुरेव च॥ ४
एते सहस्रकिरणा आदित्या द्वादश स्मृताः।
मारीचात् कश्यपादाप पुत्रानदितिरुत्तमान्॥ ५
कृशाश्वस्य ऋषेः पुत्रा देवप्रहरणाः स्मृताः।
एते देवगणा विप्राः प्रतिमन्वन्तरेषु च॥ ६
उत्पद्यन्ते प्रलीयन्ते कल्पे कल्पे तथैव च।
दितिः पुत्रद्वयं लेभे कश्यपादिति नः श्रुतम्॥ ७
हिरण्यकशिपुं चैव हिरण्याक्षं तथैव च।
हिरण्यकशिपोस्तद्वज्जातं पुत्रचतुष्टयम्॥ ८
प्रह्लादश्चानुह्लादश्च संह्लादो ह्लाद एव च।
प्रह्लादपुत्र आयुष्माञ्शिबिर्बाष्कल एव च॥ ९
विरोचनश्चतुर्थश्च स बलिं पुत्रमाप्तवान्।
बलेः पुत्रशतं त्वासीद् बाणज्येष्ठं ततो द्विजाः॥ १०
धृतराष्ट्रस्तथा सूर्यश्चन्द्रश्चन्द्रांशुतापनः।
निकुम्भनाभो गुर्वक्षः कुक्षिभीमो विभीषणः॥ ११
एवमाद्यास्तु बहवो बाणज्येष्ठा गुणाधिकाः।
बाणः सहस्रबाहुश्च सर्वास्त्रगणसंयुतः॥ १२
तपसा तोषितो यस्य पुरे वसति शूलभृत्।
महाकालत्वमगमत् साम्यं यश्च पिनाकिनः॥ १३
हिरण्याक्षस्य पुत्रोऽभूदुलूकः शकुनिस्तथा।
भूतसंतापनश्चैव महानाभस्तथैव च॥ १४
एतेभ्यः पुत्रपौत्राणां कोटयः सप्तसप्ततिः।
महाबला महाकाया नानारूपा महौजसः॥ १५

सूतजी कहते हैं—(शौनकादि ऋषियो!) अब मैं कश्यपकी पत्नियोंसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंका वर्णन करता हूँ। अदिति, दिति, दनु, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू, विश्वा और मुनि—ये तेरह कश्यपकी पत्नियाँ थीं। अब इनके पुत्रोंका वर्णन सुनिये। चाक्षुष मनुके कार्यकालमें जो तुषित नामके देवगण थे, वे ही वैवस्वत मन्वन्तरमें द्वादश आदित्यके नामसे प्रख्यात हुए। इनके नाम हैं—इन्द्र, धाता, भग, त्वष्टा, मित्र, वरुण, यम, विवस्वान्, सविता, पूषा, अंशुमान् और विष्णु। ये सभी सहस्र किरणोंसे सम्पन्न हैं और द्वादश आदित्य कहे जाते हैं। अदितिने मरीचि-नन्दन कश्यपके संयोगसे इन श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्त किया था। महर्षि कृशाश्वके पुत्र देवप्रहरण नामसे विख्यात हुए। द्विजवरो! ये देवगण प्रत्येक मन्वन्तर तथा प्रत्येक कल्पमें उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं। हमने सुना है कि दितिने महर्षि कश्यपके सम्पर्कसे हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्रोंको प्राप्त किया था। हिरण्यकशिपुके उसीके समान पराक्रमी प्रह्लाद, अनुह्लाद, संह्लाद और ह्लाद नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। उनमेंसे प्रह्लादके चार पुत्र हुए—आयुष्मान्, शिबि, बाष्कल और चौथा विरोचन। उस विरोचनने बलिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। विप्रवरो! बलिके सौ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनमें बाण ज्येष्ठ था। इसके अतिरिक्त, धृतराष्ट्र, सूर्य, चन्द्र, चन्द्रांशुतापन, निकुम्भनाभ, गुर्वक्ष, कुक्षिभीम, विभीषण तथा इसी प्रकारके और भी बहुत-से पुत्र थे, जो बाणसे छोटे, परंतु सभी श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न थे। उनमें बाणके सहस्र भुजाएँ थीं और वह समस्त अस्त्रसमूहोंका ज्ञाता था। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर त्रिशूलधारी भगवान् शंकर उसके नगरमें निवास करते थे। उसने (अपनी तपस्याके प्रभावसे) पिनाकधारी शंकरजीकी समतावाले महाकालपदको प्राप्त कर लिया था। (दितिके द्वितीय पुत्र) हिरण्याक्षके उलूक, शकुनि, भूतसंतापन और महानाभनामक पुत्र हुए। इनसे उत्पन्न हुए पुत्र-पौत्रोंकी संख्या सतहत्तर करोड़ थी। वे सभी महान् बलशाली, विशाल शरीरवाले, नाना प्रकारका रूप धारण करनेमें समर्थ और महान् ओजस्वी थे॥१—१५॥

दनुः पुत्रशतं लेभे कश्यपाद् बलदर्पितम्।
विप्रचित्तिः प्रधानोऽभूद् येषां मध्ये महाबलः॥ १६
द्विमूर्धा शकुनिश्चैव तथा शङ्कुशिरोधरः।
अयोमुखः शम्बरश्च कपिशो वामनस्तथा॥ १७
मारीचिर्मेघवांश्चैव इरागर्भशिरास्तथा।
विद्रावणश्च केतुश्च केतुवीर्यः शतह्रदः॥ १८
इन्द्रजित् सप्तजिच्चैव वज्रनाभस्तथैव च।
एकचक्रो महाबाहुर्वज्राक्षस्तारकस्तथा॥ १९
असिलोमा पुलोमा च बिन्दुर्बाणो महासुरः।
स्वर्भानुर्वृषपर्वा च एवमाद्या दनोः सुताः॥ २०
स्वर्भानोस्तु प्रभा कन्या शची चैव पुलोमजा।
उपदानवी मयस्यासीत्तथा मन्दोदरी कुहूः॥ २१
शर्मिष्ठा सुन्दरी चैव चन्द्रा च वृषपर्वणः।
पुलोमा कालका चैव वैश्वानरसुते हि ते॥ २२
बह्वपत्ये महासत्त्वे मारीचस्य परिग्रहे।
तयोः षष्टिसहस्राणि दानवानामभूत् पुरा॥ २३
पौलोमान् कालकेयांश्च मारीचोऽजनयत् पुरा।
अवध्या येऽमराणां वै हिरण्यपुरवासिनः॥ २४
चतुर्मुखाल्लब्धवरास्ते हता विजयेन तु।
विप्रचित्तिः सैंहिकेयान् सिंहिकायामजीजनत्॥ २५
हिरण्यकशिपोर्ये वै भागिनेयास्त्रयोदश।
व्यंसः कल्पश्च राजेन्द्र नलो वातापिरेव च॥ २६
इल्वलो नमुचिश्चैव श्वसृपश्चाजनस्तथा।
नरकः कालनाभश्च सरमाणस्तथैव च॥ २७
कालवीर्यश्च विख्यातो दनुवंशविवर्धनाः।
संह्रादस्य तु दैत्यस्य निवातकवचाः स्मृताः॥ २८
अवध्याः सर्वदेवानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्।
ये हता भर्गमाश्रित्य त्वर्जुनेन रणाजिरे॥ २९
षड् कन्या जनयामास ताम्रा मारीचबीजतः।
शुकीं श्येनी च भासी च सुग्रीवी गृध्रिका शुचिः॥ ३०

इसी प्रकार दनुने भी कश्यपके संयोगसे सौ बलशाली पुत्रोंको प्राप्त किया, जिनमें महाबली विप्रचित्ति प्रधान था। इसके अतिरिक्त द्विमूर्धा, शकुनि, शंकुशिरोधर, अयोमुख, शम्बर, कपिश, वामन, मारीचि, मेघवान्, इरागर्भशिरा, विद्रावण, केतु, केतुवीर्य, शतह्रद, इन्द्रजित्, सप्तजित्, वज्रनाभ, एकचक्र, महाबाहु, वज्राक्ष, तारक, असिलोमा, पुलोमा, बिन्दु, महासुर बाण, स्वर्भानु और वृषपर्वा—ये तथा इसी प्रकारके और भी दनुके पुत्र थे। इनमें स्वर्भानुकी प्रभा, पुलोमाकी शची, मयकी उपदानवी, मन्दोदरी और कुहू, वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा, सुन्दरी और चन्द्रा तथा वैश्वानरकी पुलोमा और कालका नामकी कन्याएँ थीं। इनमें महान् बलशालिनी एवं बहुत-सी संतानोंवाली पुलोमा और कालका मरीचि-पुत्र कश्यपकी पत्नियाँ थीं। इन दोनोंसे पूर्वकालमें साठ हजार दानवोंकी उत्पत्ति हुई थी। पूर्वकालमें मरीचिनन्दन कश्यपने* (इन्हीं पुलोमा और कालकाके गर्भसे) पौलोम और कालकेय संज्ञक दानवोंको पैदा किया था, जो हिरण्यपुरमें निवास करते थे तथा ब्रह्मासे वरदान प्राप्त होनेके कारण वे देवताओंके लिये भी अवध्य थे; परंतु विजय (अर्जुन)-ने उनका संहार कर डाला। विप्रचित्तिने सिंहिकाके गर्भसे सैंहिकेय-संज्ञक पुत्रोंको जन्म दिया, जिनकी संख्या तेरह थी। ये हिरण्यकशिपुके भानजे थे। उनके नाम ये हैं—व्यंस, कल्प, राजेन्द्र, नल, वातापि, इल्वल, नमुचि, श्वसृप, अजन, नरक, कालनाभ, सरमाण तथा प्रसिद्ध कालवीर्य। ये सभी दनु-वंशको बढ़ानेवाले थे। दैत्य संह्रादके पुत्र निवातकवचके नामसे विख्यात हुए। वे सम्पूर्ण देवताओं, गन्धर्वों, नागों और राक्षसोंद्वारा अवध्य थे; किंतु अर्जुनने शिवजीका आश्रय ग्रहण करके रणभूमिमें उन्हें यमलोकका पथिक बना दिया। ताम्राने कश्यपसे शुकी, श्येनी, भासी, सुग्रीवी, गृध्रिका और शुचि नामक छः कन्याओंको जन्म दिया।

* वाल्मी० रामा० १। १। ७० आदि, भागवत० ६। ६। ३१, ३। १२। २२, ४। १। १३, ९। १। १०, विष्णुपुराण १। १५। १३२, २१। १, मत्स्य० ३। ६, ४। २६, १९५। ९, वायु० ५०। १६८, ५२। २५, १०१। ३५, ४९, ब्रह्माण्ड० २। ३२। ९६, २। २१। ४३-४४ आदिके अनुसार मरीचि ऋषिके एकमात्र पुत्र कश्यप ही हैं। किसी-किसी पुराणमें उनका एक दूसरा पुत्र 'पौर्णमास' भी निर्दिष्ट है।

शुकी शुकानुलूकांश्च जनयामास धर्मतः।
श्येनी श्येनांस्तथा भासी कुररानप्यजीजनत्॥ ३१
गृध्री गृध्रान् कपोतांश्च पारावतविहङ्गमान्।
हंससारसक्रौञ्चांश्च प्लवाञ्छुचिरजीजनत्॥ ३२
अजाश्वमेषोष्ट्रखरान् सुग्रीवी चाप्यजीजनत्।
एष ताम्रान्वयः प्रोक्तो विनतायां निबोधत॥ ३३

इनमें शुकीने धर्मके संयोगसे शुक और उलूकोंको उत्पन्न किया। श्येनीसे श्येन (बाज) तथा भासीसे कुरर(चकवा)-की उत्पत्ति हुई। गृध्रीने गीधों, पँडुकियों और कबूतरोंको पैदा किया। शुचिके गर्भसे हंस, सारस, क्रौञ्च और प्लव (कारण्डव या विशेष जलपक्षी) प्रादुर्भूत हुए। सुग्रीवीने बकरा, घोड़ा, भेंड़ा, ऊँट और गधोंको जन्म दिया। इस प्रकार यह ताम्राके वंशका वर्णन किया, अब विनताकी वंश-परम्पराके विषयमें सुनिये॥ २६—३३॥

गरुडः पततां नाथो अरुणश्च पतत्रिणाम्।
सौदामिनी तथा कन्या येयं नभसि विश्रुता॥ ३४
सम्पातिश्च जटायुश्च अरुणस्य सुतावुभौ।
सम्पातिपुत्रो बभ्रुश्च शीघ्रगश्चापि विश्रुतः॥ ३५
जटायुषः कर्णिकारः शतगामी च विश्रुतौ।
सारसो रज्जुबालश्च भेरुण्डश्चापि तत्सुताः॥ ३६
तेषामनन्तमभवत् पक्षिणां पुत्रपौत्रकम्।
सुरसायाः सहस्रं तु सर्पाणामभवत् पुरा॥ ३७
सहस्रशिरसां कद्रूः सहस्रं चापि सुव्रत।
प्रधानास्तेषु विख्याताः षड्विंशतिररिंदम॥ ३८
शेषवासुकिकर्कोटशङ्खैरावतकम्बलाः।
धनञ्जयमहानीलपद्माश्वतरतक्षकाः॥ ३९
एलापत्रमहापद्मधृतराष्ट्रबलाहकाः।
शङ्खपालमहाशङ्खपुष्पदंष्ट्रशुभाननाः॥ ४०
शङ्कुरोमा च बहुलो वामनः पाणिनस्तथा।
कपिलो दुर्मुखश्चापि पतञ्जलिरिति स्मृताः॥ ४१
एषामनन्तमभवत् सर्वेषां पुत्रपौत्रकम्।
प्रायशो यत् पुरा दग्धं जनमेजयमन्दिरे॥ ४२
रक्षोगणं क्रोधवशा स्वनामानमजीजनत्।
दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनादगात् क्षयम्॥ ४३
रुद्राणां च गणं तद्वद् गोमहिष्यो वराङ्गनाः।
सुरभिर्जनयामास कश्यपात् संयतव्रता॥ ४४
मुनिर्मुनीनां च गणं गणमप्सरसां तथा।
तथा किन्नरगन्धर्वानरिष्टाजनयद् बहून्॥ ४५
तृणवृक्षलतागुल्ममिरा सर्वमजीजनत्।
विश्वा तु यक्षरक्षांसि जनयामास कोटिशः॥ ४६
तत एकोनपञ्चाशन्मरुतः कश्यपाद् दितिः।
जनयामास धर्मज्ञान् सर्वानमरवल्लभान्॥ ४७

(विनताके दो पुत्र) गरुड़ और अरुण आकाशचारी छोटे-बड़े समस्त पक्षियोंके स्वामी हैं। (उसकी तीसरी संतान) सौदामिनी नामकी कन्या है, जो गगन-मण्डलमें विख्यात है। अरुणके सम्पाति और जटायु नामके दो पुत्र हुए। उनमें सम्पातिके पुत्र बभ्रु और शीघ्रग नामसे विख्यात हुए। जटायुके दो पुत्र कर्णिकार और शतगामी नामसे प्रसिद्ध हुए। इनके अतिरिक्त जटायुके सारस, रज्जुबाल और भेरुण्डनामक पुत्र भी थे। इन पक्षियोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अनन्त है। सुव्रत! सुरसा तथा कद्रूके गर्भसे सहस्र फणोंवाले एक-एक हजार सर्पोंकी उत्पत्ति हुई। परन्तप! उनमें छब्बीस प्रधान हैं। उनके नाम ये हैं—शेष, वासुकि, कर्कोटक, शङ्ख, ऐरावत, कम्बल, धनञ्जय, महानील, पद्म, अश्वतर, तक्षक, एलापत्र, महापद्म, धृतराष्ट्र, बलाहक, शंखपाल, महाशंख, पुष्पदंष्ट्र, शुभानन, शंकुरोमा, बहुल, वामन, पाणिन, कपिल, दुर्मुख और पतञ्जलि। इन सभी सर्पोंके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या अगणित थी, परंतु प्राचीनकालमें जनमेजयके सर्पयज्ञमें (इनमेंसे) प्रायः अधिकांश जला दिये गये। क्रोधवशाने अपने ही नामवाले (क्रोधवश नामक) दंष्ट्रधारी एक लाख राक्षसोंको जन्म दिया, जो भीमसेनद्वारा नष्ट कर दिये गये। संयत व्रतवाली सुरभिने महर्षि कश्यपके संयोगसे रुद्रगणों तथा सुन्दर अङ्गोंवाली गायों और भैंसोंको उत्पन्न किया। मुनिने मुनि-समुदाय तथा अप्सरा-समूहको पैदा किया, उसी प्रकार अरिष्टाने बहुत से किन्नर और गन्धर्वोंको जन्म दिया। इरासे समस्त तृण, वृक्ष, लता और झाड़ी आदिकी उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार विश्वाने करोड़ों यक्षों और राक्षसोंको पैदा किया तथा दितिने कश्यपके सम्पर्कसे उनचास मरुतोंको उत्पन्न किया, जो सभी धर्मज्ञ और देवप्रिय थे॥ ३४—४७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे कश्यपान्वयो नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें कश्यप-वंश-वर्णन नामक छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६॥

सातवाँ अध्याय

मरुतोंकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें दितिकी तपस्या, मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन, कश्यपद्वारा दितिको वरदान, गर्भिणी स्त्रियोंके लिये नियम तथा मरुतोंकी उत्पत्ति

ऋषय ऊचुः

दितेः पुत्राः कथं जाता मरुतो देववल्लभाः।
देवैर्जग्मुश्च सापत्नैः कस्मात्ते सख्यमुत्तमम्॥ १

सूत उवाच

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु हरिणा सुरैः।
पुत्रपौत्रेषु शोकार्ता गत्वा भूर्लोकमुत्तमम्॥ २
स्यमन्तपञ्चके क्षेत्रे सरस्वत्यास्तटे शुभे।
भर्तुराराधनपरा तप उग्रं चचार ह॥ ३
तदा दितिर्दैत्यमाता ऋषिरूपेण सुव्रत।
फलाहारा तपस्तेपे कृच्छ्रं चान्द्रायणादिकम्॥ ४
यावद् वर्षशतं साग्रं जराशोकसमाकुला।
ततः सा तपसा तप्ता वसिष्ठादीनपृच्छत॥ ५
कथयन्तु भवन्तो मे पुत्रशोकविनाशनम्।
व्रतं सौभाग्यफलदमिह लोके परत्र च॥ ६
ऊचुर्वसिष्ठप्रमुखा मदनद्वादशीव्रतम्।
यस्याः प्रभावादभवत् सुतशोकविवर्जिता॥ ७

ऋषय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत मदनद्वादशीव्रतम्।
सुतानेकोनपञ्चाशद् येन लेभे दितिः पुनः॥ ८

सूत उवाच

यद् वसिष्ठादिभिः पूर्वं दितेः कथितमुत्तमम्।
विस्तरेण तदेवेदं मत्सकाशान्निबोधत॥ ९
चैत्रे मासि सिते पक्षे द्वादश्यां नियतव्रतः।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सिततण्डुलपूरितम्॥ १०
नानाफलयुतं तद्वदिक्षुदण्डसमन्वितम्।
सितवस्त्रयुगच्छन्नं सितचन्दनचर्चितम्॥ ११
नानाभक्ष्यसमोपेतं सहिरण्यं तु शक्तितः।
ताम्रपात्रं गुडोपेतं तस्योपरि निवेशयेत्॥ १२

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! (दैत्योंकी जननी) दितिके पुत्र उनचास मरुत देवताओंके प्रिय कैसे बन गये? तथा अपने सौतेले भाई देवताओंके साथ उनकी प्रगाढ़ मैत्री कैसे हो गयी?॥ १॥

सूतजी कहते हैं—सुव्रत मुनियो! प्राचीनकालकी बात है, देवासुर-संग्राममें भगवान् विष्णु तथा देवगणोंद्वारा अपने पुत्र-पौत्रोंका संहार हो जानेपर दैत्यमाता दिति शोकसे विह्वल हो गयी। वह उत्तम भूलोकमें जाकर स्यमन्तपञ्चकक्षेत्रमें सरस्वतीके मङ्गलमय तटपर अपने पतिदेव महर्षि कश्यपकी आराधनामें तत्पर रहती हुई घोर तपमें निरत हो गयी। उस समय उसने ऋषियोंके समान फलाहारपर निर्भर रहकर कृच्छ्र-चान्द्रायण आदि व्रतोंका पालन किया। इस प्रकार बुढ़ापा और शोकसे अत्यन्त आकुल हुई दिति सौ वर्षोंतक उस कठोर तपका अनुष्ठान करती रही। तदनन्तर उस तपस्यासे सन्तप्त हुई दितिने वसिष्ठ आदि महर्षियोंसे पूछा—'ऋषियो! आप लोग मुझे ऐसा व्रत बतलाइये, जो पुत्र-शोकका विनाशक तथा इहलोक एवं परलोकमें सौभाग्यरूपी फलका प्रदाता हो।' तब वसिष्ठ आदि ऋषियोंने उसे मदनद्वादशी-व्रतका विधान बतलाया, जिसके प्रभावसे वह पुत्रशोकसे उन्मुक्त हो गयी॥ २—७॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! जिसका अनुष्ठान करनेसे दितिको पुनः उनचास पुत्रोंकी प्राप्ति हुई, उस मदन-द्वादशीव्रतके विषयमें हमलोग भी सुनना चाहते हैं॥ ८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें वसिष्ठ आदि महर्षियोंने दितिके प्रति जिस उत्तम मदनद्वादशी-व्रतका वर्णन किया था, उसीको आपलोग मुझसे विस्तारपूर्वक सुनिये। व्रतधारीको चाहिये कि वह चैत्रमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिको श्वेत चावलोंसे परिपूर्ण एवं छिद्ररहित एक घट स्थापित करे। उसपर श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा हो तथा वह श्वेत वस्त्रके दो टुकड़ोंसे आच्छादित हो। उसके निकट विभिन्न प्रकारके ऋतुफल और गन्नेके टुकड़े रखे जायँ। वह विविध प्रकारकी खाद्य-सामग्रीसे युक्त हो तथा उसमें यथाशक्ति सुवर्ण-खण्ड भी डाला जाय। तत्पश्चात् उसके ऊपर गुड़से भरा हुआ ताँबेका पात्र स्थापित करना चाहिये।

तस्मादुपरि कामं तु कदलीदलसंस्थितम्।
कुर्याच्छर्करयोपेतां रतिं तस्य च वामतः॥ १३
गन्धं धूपं ततो दद्याद् गीतं वाद्यं च कारयेत्।
तदभावे कथां कुर्यात् कामकेशवयोर्नरः॥ १४
कामनाम्नो हरेरर्चां स्नापयेद् गन्धवारिणा।
शुक्लपुष्पाक्षततिलैरर्चयेन्मधुसूदनम्॥ १५
कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे सौभाग्यदाय च।
ऊरू स्मरायेति पुनर्मन्मथायेति वै कटिम्॥ १६
स्वच्छोदरायेत्युदरमनङ्गायेत्युरो हरेः।
मुखं पद्ममुखायेति बाहू पञ्चशराय वै॥ १७
नमः सर्वात्मने मौलिमर्चयेदिति केशवम्।
ततः प्रभाते तं कुम्भं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १८
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या स्वयं च लवणादृते।
भुक्त्वा तु दक्षिणां दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ १९
प्रीयतामत्र भगवान् कामरूपी जनार्दनः।
हृदये सर्वभूतानां य आनन्दोऽभिधीयते॥ २०

उसके ऊपर केलेके पत्तेपर काम तथा उसके वाम भागमें शकरसमन्वित रतिकी स्थापना करे। फिर गन्ध, धूप आदि उपचारोंसे उनकी पूजा करे और गीत, वाद्य आदिका भी प्रबन्ध करे। (अर्थाभावके कारण) गीत-वाद्य आदिका प्रबन्ध न हो सकनेपर मनुष्यको कामदेव और भगवान् विष्णुकी कथाका आयोजन करना चाहिये। पुनः कामदेव नामक भगवान् विष्णुकी अर्चना करते समय उन्हें सुगन्धित जलसे स्नान कराना चाहिये। श्वेत पुष्प, अक्षत और तिलोंद्वारा उन मधुसूदनकी विधिवत् पूजा करे। उस समय उन 'विष्णुके पैरोंमें कामदेव, जङ्घाओंमें सौभाग्यदाता, ऊरुओंमें स्मर, कटिभागमें मन्मथ, उदरमें स्वच्छोदर, वक्षःस्थलमें अनङ्ग, मुखमें पद्ममुख, बाहुओंमें पञ्चशर और मस्तकमें सर्वात्माको नमस्कार है'—यों कहकर भगवान् केशवका साङ्गोपाङ्ग पूजन करे। तदनन्तर प्रातःकाल वह घट ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको भोजन कराकर स्वयं भी नमकरहित भोजन करे और ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहकर आनन्द नामसे कहे जाते हैं, वे कामरूपी भगवान् जनार्दन मेरे इस अनुष्ठानसे प्रसन्न हों।'॥ ९—२०॥

अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्।
उपवासी त्रयोदश्यामर्चयेद् विष्णुमव्ययम्॥ २१
फलमेकं च सम्प्राश्य द्वादश्यां भूतले स्वपेत्।
ततस्त्रयोदशे मासि घृतधेनुसमन्विताम्॥ २२
शय्यां दद्यादनङ्गाय सर्वोपस्करसंयुताम्।
काञ्चनं कामदेवं च शुक्लां गां च पयस्विनीम्॥ २३
वासोभिर्द्विजदाम्पत्यं पूज्यं शक्त्या विभूषणैः।
शय्यागन्धादिकं दद्यात् प्रीयतामित्युदीरयेत्॥ २४
होमः शुक्लतिलैः कार्यः कामनामानि कीर्तयेत्।
गव्येन हविषा तद्वत् पायसेन च धर्मवित्॥ २५
विप्रेभ्यो भोजनं दद्याद् वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्।
इक्षुदण्डानथो दद्यात् पुष्पमालाश्च शक्तितः॥ २६

इसी विधिसे प्रत्येक मासमें मदनद्वादशीव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह द्वादशीके दिन एक फल खाकर भूतलपर शयन करे और त्रयोदशीके दिन अविनाशी भगवान् विष्णुका पूजन करे। तेरहवाँ महीना आनेपर घृतधेनुसहित एवं समस्त सामग्रियोंसे सम्पन्न शय्या, कामदेवकी स्वर्ण-निर्मित प्रतिमा और श्वेत रंगकी दुधारू गौ अनङ्ग (कामदेव)-को समर्पित करे (अर्थात् अनङ्गके उद्देश्यसे ब्राह्मणको दान दे)। उस समय शक्तिके अनुसार वस्त्र एवं आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उन्हें शय्या और सुगन्ध आदि प्रदान करते हुए ऐसा कहना चाहिये कि 'आप प्रसन्न हों।' तत्पश्चात् उस धर्मज्ञ व्रतीको गोदुग्धसे बनी हुई हवि, खीर और श्वेत तिलोंसे कामदेवके नामोंका कीर्तन करते हुए हवन करना चाहिये। पुनः कृपणता छोड़कर ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये और उन्हें यथाशक्ति गन्ना और पुष्पमाला प्रदानकर संतुष्ट करना चाहिये।

य: कुर्याद् विधिनानेन मदनद्वादशीमिमाम्।
स सर्वपापनिर्मुक्तः प्राप्नोति हरिसाम्यताम्॥ २७
इह लोके वरान् पुत्रान् सौभाग्यफलमश्नुते।
यः स्मरः संस्मृतो विष्णुरानन्दात्मा महेश्वरः॥ २८
सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्।
एतच्छ्रुत्वा चकारासौ दितिः सर्वमशेषतः॥ २९
कश्यपो व्रतमाहात्म्यादागत्य परया मुदा।
चकार कर्कशां भूयो रूपयौवनशालिनीम्॥ ३०
वरेणच्छन्दयामास सा तु वव्रे ततो वरम्।
पुत्रं शक्रवधार्थाय समर्थममितौजसम्॥ ३१
वरयामि महात्मानं सर्वामरनिषूदनम्।
उवाच कश्यपो वाक्यमिन्द्रहन्तारमूर्जितम्॥ ३२
प्रदास्याम्यहमेवेह किंत्वेतत् क्रियतां शुभे।
आपस्तम्बः करोत्विष्टिं पुत्रीयामद्य सुव्रते॥ ३३
विधास्यामि ततो गर्भमिन्द्रशत्रुनिषूदनम्।
आपस्तम्बस्ततश्चक्रे पुत्रेष्टिं द्रविणाधिकाम्॥ ३४
इन्द्रशत्रुर्भवस्वेति जुहाव च सविस्तरम्।
देवा मुमुदिरे दैत्या विमुखाः स्युश्च दानवाः॥ ३५
दित्यां गर्भमथाधत्त कश्यपः प्राह तां पुनः।
त्वया यत्नो विधातव्यो ह्यस्मिन् गर्भे वरानने॥ ३६
संवत्सरशतं त्वेकमस्मिन्नेव तपोवने।
संध्यायां नैव भोक्तव्यं गर्भिण्या वरवर्णिनि॥ ३७
न स्थातव्यं न गन्तव्यं वृक्षमूलेषु सर्वदा।
नोपस्करेषूपविशेन्मुसलोलूखलादिषु ॥ ३८
जले च नावगाहेत शून्यागारं च वर्जयेत्।
वल्मीकायां न तिष्ठेत न चोद्विग्नमना भवेत्॥ ३९
विलिखेन्न नखैर्भूमिं नाङ्गारेण न भस्मना।
न शयालुः सदा तिष्ठेद् व्यायामं च विवर्जयेत्॥ ४०
न तुषाङ्गारभस्मास्थिकपालेषु समाविशेत्।
वर्जयेत् कलहं लोकैर्गात्रभङ्गं तथैव च॥ ४१

जो इस विधिके अनुसार इस मदनद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुकी समताको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें श्रेष्ठ पुत्रोंको प्राप्तकर सौभाग्य-फलका उपभोग करता है। जो स्मर, आनन्दात्मा, विष्णु और महेश्वरनामसे कहे गये हैं, उन्हीं अङ्गज भगवान् विष्णुका सुखार्थीको स्मरण करना चाहिये। यह सुनकर दितिने सारा कार्य यथावत्-रूपसे सम्पन्न किया (अर्थात् मदनद्वादशीव्रतका अनुष्ठान किया)॥ २१—२९॥

दितिके उस व्रतानुष्ठानके प्रभावसे प्रभावित होकर महर्षि कश्यप उसके निकट पधारे और परम प्रसन्नता-पूर्वक उन्होंने उसे पुनः रूप-यौवनसे सम्पन्न नवयुवती बना दिया तथा वर माँगनेको कहा। तब वर माँगनेके लिये उद्यत हुई दितिने कहा—'पतिदेव! मैं आपसे एक ऐसे पुत्रका वरदान चाहती हूँ, जो इन्द्रका वध करनेमें समर्थ, अमित पराक्रमी, महान् आत्मबलसे सम्पन्न और समस्त देवताओंका विनाशक हो।' यह सुनकर महर्षि कश्यपने उससे ऐसी बात कही—'शुभे! मैं तुम्हें अत्यन्त ऊर्जस्वी एवं इन्द्रका वध करनेवाला पुत्र प्रदान करूँगा, किंतु इस विषयमें तुम यह काम करो कि आपस्तम्ब ऋषिसे प्रार्थना करके उनके द्वारा आज ही पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान कराओ। सुव्रते! यज्ञकी समाप्ति होनेपर मैं (तुम्हारे उदरमें) इन्द्ररूपी शत्रुके विनाशक पुत्रका गर्भाधान करूँगा।' तत्पश्चात् महर्षि आपस्तम्बने उस अत्यन्त खर्चीले पुत्रेष्टि-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस समय उन्होंने 'इन्द्रशत्रुर्भवस्व—इन्द्रका शत्रु उत्पन्न हो'—इस मन्त्रसे विस्तारपूर्वक अग्निमें आहुति दी। (इस यज्ञसे देवताओंको रुष्ट होना चाहता था, परंतु) वे यह जानकर प्रसन्न हुए कि दैत्यों और दानवोंको इस यज्ञफलसे विमुख होना पड़ेगा॥ ३०—३५॥

(यज्ञकी समाप्तिके बाद) कश्यपने दितिके उदरमें गर्भाधान किया और पुनः उससे कहा—'वरानने! एक सौ वर्षोंतक तुम्हें इसी तपोवनमें रहना है और इस गर्भकी रक्षाके लिये प्रयत्न करना है। वरवर्णिनि! गर्भिणी स्त्रीको संध्याकालमें भोजन नहीं करना चाहिये। उसे न तो कभी वृक्षके मूलपर बैठना चाहिये, न उसके निकट ही जाना चाहिये। वह घरकी सामग्री मूसल, ओखली आदिपर न बैठे, जलमें घुसकर स्नान न करे, सुनसान घरमें न जाय, बिमवटपर न बैठे, मनको उद्विग्न न करे, नखसे, लुआठीसे अथवा राखसे पृथ्वीपर रेखा न खींचे, सदा नींदमें अलसायी हुई न रहे, कठिन परिश्रमका काम न करे, भूसी, लुआठी, भस्म, हड्डी और खोपड़ीपर न बैठे, लोगोंके साथ वाद-विवाद न करे

न मुक्तकेशा तिष्ठेत नाशुचिः स्यात् कदाचन।
न शयीतोत्तरशिरा न चापरेशिराः क्वचित्॥ ४२

न वस्त्रहीना नोद्विग्ना न चार्द्रचरणा सती।
नामङ्गल्यां वदेद् वाचं न च हास्याधिका भवेत्॥ ४३

कुर्यात्तु गुरुशुश्रूषां नित्यं माङ्गल्यतत्परा।
सर्वौषधीभिः कोष्णेन वारिणा स्नानमाचरेत्॥ ४४

कृतरक्षा सुभूषा च वास्तुपूजनतत्परा।
तिष्ठेत् प्रसन्नवदना भर्त्तुः प्रियहिते रता॥ ४५

दानशीला तृतीयायां पार्वण्यं नक्तमाचरेत्।
इतिवृत्ता भवेन्नारी विशेषेण तु गर्भिणी॥ ४६

यस्तु तस्या भवेत् पुत्रः शीलायुर्वृद्धिसंयुतः।
अन्यथा गर्भपतनमवाप्नोति न संशयः॥ ४७

तस्मात्त्वमनया वृत्त्या गर्भेऽस्मिन् यत्नमाचर।
स्वस्त्यस्तु ते गमिष्यामि तथेत्युक्तस्तया पुनः॥ ४८

पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत।
ततः सा कश्यपोक्तेन विधिना समतिष्ठत॥ ४९

अथ भीतस्तथेन्द्रोऽपि दितेः पार्श्वमुपागतः।
विहाय देवसदनं तच्छुश्रूषुरवस्थितः॥ ५०

दितिच्छिद्रान्तरप्रेप्सुरभवत् पाकशासनः।
विनीतोऽभवदव्यग्रः प्रशान्तवदनो बहिः॥ ५१

अजानन् किल तत्कार्यमात्मनः शुभमाचरन्।
ततो वर्षशतान्ते सा न्यूने तु दिवसैस्त्रिभिः॥ ५२

मेने कृतार्थमात्मानं प्रीत्या विस्मितमानसा।
अकृत्वा पादयोः शौचं प्रसुप्ता मुक्तमूर्धजा॥ ५३

निद्राभरसमाक्रान्ता दिवापरशिराः क्वचित्।
ततस्तदन्तरं लब्ध्वा प्रविष्टस्तु शचीपतिः॥ ५४

वज्रेण सप्तधा चक्रे तं गर्भं त्रिदशाधिपः।
ततः सप्तैव ते जाताः कुमाराः सूर्यवर्चसः॥ ५५

रुदन्तः सप्त ते बाला निषिद्धा गिरिदारिणा।
भूयोऽपि रुदतश्चैतानेकैकं सप्तधा हरिः॥ ५६

और शरीरको तोड़-मरोड़े नहीं। वह बाल खोलकर न बैठे, कभी अपवित्र न रहे, उत्तर दिशामें सिरहाना करके एवं कहीं भी नीचे सिर करके न सोये, न नंगी होकर, न उद्विग्नचित्त होकर एवं न भीगे चरणोंसे ही कभी शयन करे, अमङ्गलसूचक वाणी न बोले, अधिक जोरसे हँसे नहीं, नित्य माङ्गलिक कार्योंमें तत्पर रहकर गुरुजनोंकी सेवा करे और (आयुर्वेदद्वारा गर्भिणीके स्वास्थ्यके लिये उपयुक्त बतलायी गयी) सम्पूर्ण ओषधियोंसे युक्त गुनगुने गरम जलसे स्नान करे। वह अपनी रक्षाका ध्यान रखे, स्वच्छ वेष-भूषासे युक्त रहे, वास्तु-पूजनमें तत्पर रहे, प्रसन्नमुखी होकर सदा पतिके हितमें संलग्न रहे, तृतीया तिथिको दान करे, पर्व-सम्बन्धी व्रत एवं नक्तव्रतका पालन करे। जो गर्भिणी स्त्री विशेषरूपसे इन नियमोंका पालन करती है, उसका उस गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह शीलवान् एवं दीर्घायु होता है। इन नियमोंका पालन न करनेपर निस्संदेह गर्भपातकी आशङ्का बनी रहती है। प्रिये! इसलिये तुम इन नियमोंका पालन करके इस गर्भकी रक्षाका प्रयत्न करो। तुम्हारा कल्याण हो, अब मैं जा रहा हूँ।' दितिके द्वारा पतिकी आज्ञा स्वीकार कर लेनेपर महर्षि कश्यप वहीं सभी जीवोंके देखते-देखते अन्तर्धान हो गये। तब दिति महर्षि कश्यपद्वारा बताये गये नियमोंका पालन करती हुई समय व्यतीत करने लगी॥ ३६—४९॥

(इस कार्यकलापकी सूचना पानेपर) इन्द्र भयभीत हो उठे और तुरन्त देवलोकको छोड़कर दितिके निकट आ पहुँचे। वे दितिकी सेवा करनेकी इच्छासे उसके समीप ही रहने लगे। इन्द्र सदा दितिके छिद्रान्वेषणमें ही लगे रहे। ऊपरसे तो वे विनम्र, प्रशान्त और प्रसन्न मुखवाले दीखते थे, परंतु भीतरसे वे दितिके कार्योंकी कुछ परवाह न करके सदा अपने ही हित-साधनमें दत्तचित्त रहते थे। इस प्रकार सौ वर्षोंकी समाप्तिमें जब तीन दिन शेष रह गये, तब दिति प्रसन्नतापूर्वक अपनेको सफलमनोरथ मानने लगी। उस समय आश्चर्यसे युक्त मनवाली दिति नींदके आलस्यसे आक्रान्त होकर पैरोंको बिना धोये बाल खोलकर सिरको नीचे किये कहीं दिनमें ही सो गयी। तब दितिकी उस त्रुटिको पाकर शचीके प्राणपति देवराज इन्द्र उसके उदरमें प्रवेश कर गये और अपने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये। उन टुकड़ोंसे सूर्यके समान तेजस्वी सात शिशु उत्पन्न हो गये। वे रोने लगे। रोते हुए उन सातों शिशुओंको

चिच्छेद वृत्रहन्ता वै पुनस्तदुदरे स्थितः।
एवमेकोनपञ्चाशद् भूत्वा ते रुरुदुर्भृशम्॥ ५७

इन्द्रो निवारयामास मा रोदिष्टः पुनः पुनः।
ततः स चिन्तयामास किमेतदिति वृत्रहा॥ ५८

धर्मस्य कस्य माहात्म्यात् पुनः सञ्जीवितास्त्वमी।
विदित्वा ध्यानयोगेन मदनद्वादशीफलम्॥ ५९

नूनमेतत् परिणतमधुना कृष्णपूजनात्।
वज्रेणापि हताः सन्तो न विनाशमवाप्नुयुः॥ ६०

एकोऽप्यनेकतामाप यस्मादुदरगोऽप्यलम्।
अवध्या नूनमेते वै तस्माद् देवा भवन्त्विति॥ ६१

यस्मान्मा रुदतेत्युक्ता रुदन्तो गर्भसंस्थिताः।
मरुतो नाम ते नाम्ना भवन्तु मखभागिनः॥ ६२

ततः प्रसाद्य देवेशः क्षमस्वेति दितिं पुनः।
अर्थशास्त्रं समास्थाय मयैतद् दुष्कृतं कृतम्॥ ६३

कृत्वा मरुद्गणं देवैः समानममराधिपः।
दितिं विमानमारोप्य ससुतामनयद् दिवम्॥ ६४

यज्ञभागभुजो जाता मरुतस्ते ततो द्विजाः।
न जग्मुरैक्यमसुरैरतस्ते सुरवल्लभाः॥ ६५

इन्द्रने मना किया, (परंतु जब वे चुप नहीं हुए, तब) इन्द्रने पुनः उन रोते हुए शिशुओंमें प्रत्येकके सात-सात टुकड़े कर दिये। उस समय भी इन्द्र दितिके उदरमें ही स्थित थे। इस प्रकार वे टुकड़े उनचास शिशुओंके रूपमें परिवर्तित होकर जोर-जोरसे रुदन करने लगे। इन्द्र उन्हें बारम्बार मना करते हुए कह रहे थे कि 'मत रोओ।' (परंतु वे जब चुप नहीं हुए, तब) इन्द्रने मनमें विचार किया कि इसका क्या रहस्य है? किस धर्मके माहात्म्यसे ये सभी (मेरे वज्रद्वारा काटे जानेपर भी) पुनः जीवित हैं? तत्पश्चात् ध्यानयोगके द्वारा इन्द्रको ज्ञात हो गया कि यह मदनद्वादशीव्रतका फल है। अवश्य ही श्रीकृष्णके पूजनके प्रभावसे इस समय यह घटना घटी है, जो वज्रद्वारा मारे जानेपर भी ये शिशु विनाशको नहीं प्राप्त हुए। इसी कारण उदरमें स्थित रहते हुए एकसे अनेक (उनचास) हो गये। इसलिये अवश्य ही ये अवध्य हैं और (मेरी इच्छा है कि ये) देवता हो जायँ। चूँकि गर्भमें स्थित रहकर रोते हुए इनको मैंने 'मा रुदत'—मत रोओ—ऐसा कहा है, इसलिये ये 'मरुत्' नामसे प्रसिद्ध होंगे और इन्हें भी यज्ञोंमें भाग मिलेगा। ऐसा कहकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये और दितिको प्रसन्न करके उससे क्षमा-याचना करने लगे—'देवि! अर्थशास्त्रका आश्रय लेकर मैंने यह दुष्कर्म कर डाला है, मुझे क्षमा करो।' इस प्रकार देवराजने मरुद्गणको देवताओंके समान बनाया और पुत्रोंसमेत दितिको विमानमें बैठाकर वे अपने साथ स्वर्गलोकको ले गये। विप्रवरो! इसी कारण मरुद्गण यज्ञोंमें भाग पानेके अधिकारी हुए। उन्होंने असुरोंके साथ एकता नहीं की; इसीलिये वे देवताओंके प्रेमपात्र हो गये॥ ५०—६५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदिसर्गे मरुदुत्पत्तौ मदनद्वादशीव्रतं नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें मरुद्गणकी उत्पत्तिके प्रसङ्गमें मदनद्वादशीव्रत-वर्णन नामक सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७॥

आठवाँ अध्याय

प्रत्येक सर्गके अधिपतियोंका अभिषेचन तथा पृथुका राज्याभिषेक

ऋषय ऊचुः

आदिसर्गश्च यः सूत कथितो विस्तरेण तु।
प्रतिसर्गाश्च ये येषामधिपास्तान् वदस्व नः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने हम लोगोंके प्रति जिस आदिसर्ग और प्रतिसर्गका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, उन सर्गोंमें जो जिस वर्गके अधिपति हुए, उनके विषयमें अब हमें बतलाइये॥ १॥

सूत उवाच

यदाभिषिक्तः सकलाधिराज्ये
पृथुर्धरित्र्यामधिपो बभूव।
तदौषधीनामधिपं चकार
यज्ञव्रतानां तपसां च चन्द्रम्॥ २
नक्षत्रताराद्विजवृक्षगुल्म-
लतावितानस्य च रुक्मगर्भः।
अपामधीशं वरुणं धनानां
राज्ञां प्रभुं वैश्रवणं च तद्वत्॥ ३
विष्णुं रवीणामधिपं वसूना-
मग्निं च लोकाधिपतिश्चकार।
प्रजापतीनामधिपं च दक्षं
चकार शक्रं मरुतामधीशम्॥ ४
दैत्याधिपानामथ दानवानां
प्रह्लादमीशं च यमं पितॄणाम्।
पिशाचरक्षःपशुभूतयक्ष-
वेतालराजं त्वथ शूलपाणिम्॥ ५
प्रालेयशैलं च पतिं गिरिणा-
मीशं समुद्रं ससरिन्नदानाम्।
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणा-
मीशं पुनश्चित्ररथं चकार॥ ६
नागाधिपं वासुकिमुग्रवीर्यं
सर्पाधिपं तक्षकमादिदेश।
दिशां गजानामधिपं चकार
गजेन्द्रमैरावतं[1] नामधेयम्॥ ७
सुपर्णमीशं पततामथाश्व-
राजानमुच्चैःश्रवसं चकार।
सिंहं मृगाणां वृषभं गवां च
प्लक्षं पुनः सर्ववनस्पतीनाम्॥ ८
पितामहः पूर्वमथाभ्यषिञ्च-
च्चैतान् पुनःसर्वदिशाधिनाथान्।
पूर्वेण दिक्पालमथाभ्यषिञ्च-
न्नाम्नासुधर्माणमरातिकेतुम्॥ ९
ततोऽधिपं दक्षिणतश्चकार
सर्वेश्वरं शङ्खपदाभिधानम्।
सुकेतुमन्तं दिशि पश्चिमायां
चकार पश्चाद् भुवनाण्डगर्भः॥ १०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! जब महाराज पृथु समस्त भूमण्डलके अधिनायक-पदपर अभिषिक्त होकर सबके अधिपति हुए, उस समय उन हिरण्यगर्भ ब्रह्माने चन्द्रमाको ओषधि, यज्ञ, व्रत, तप, नक्षत्र, तारा, द्विज, वृक्ष, गुल्म और लतासमूहका अध्यक्ष बनाया। उन्होंने वरुणको जलका, कुबेरको धन और राजाओंका,[2] विष्णुको आदित्योंका, अग्निको वसुओंका अधिपति बनाया। दक्षको प्रजापतियोंका, इन्द्रको मरुतोंका, प्रह्लादको दैत्यों और दानवोंका, यमराजको पितरोंका, शूलपाणि शिवको पिशाच, राक्षस, पशु, भूत, यक्ष और वेतालोंका, हिमालयको पर्वतोंका, समुद्रको छोटी-बड़ी नदियोंका, चित्ररथको गन्धर्व, विद्याधर और किन्नरोंका, प्रबल पराक्रमी वासुकिको नागोंका, तक्षकको, सर्पोंका, ऐरावत नामक गजेन्द्रको दिग्गजोंका, गरुड़को पक्षियोंका, उच्चैःश्रवाको घोड़ोंका, सिंहको वन्य जीवोंका, वृषभको गौओंका और पाकड़को समस्त वनस्पतियोंका अधिनायक नियुक्त किया। फिर ब्रह्माने सर्गारम्भके समय सम्पूर्ण दिशाओंके अधिनायकोंको भी अभिषिक्त किया। उन्होंने शत्रुओंके संहारक सुधर्माको पूर्व दिशाके दिक्पाल-पदपर स्थापित किया। इसके बाद सर्वेश्वर शङ्खपदको दक्षिण दिशाका स्वामी बनाया। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको अपनेमें अन्तर्भूत करनेवाले ब्रह्माने सुकेतुमान्‌को पश्चिम दिशाका अध्यक्ष बनाया॥ २—१०॥

१. पाठान्तर— ऐरावण। २. इसीलिये वेदादिमें कुबेरको 'राजाधिराज वैश्रवण' कहा गया है।

हिरण्यरोमाणमुदग्दिगीशं
प्रजापतिर्देवसुतं चकार।
अद्यापि कुर्वन्ति दिशामधीशाः
शत्रून् दहन्तस्तु भुवोऽभिरक्षाम्॥ ११॥
चतुर्भिरेभिः पृथुनामधेयो
नृपोऽभिषिक्तः प्रथमं पृथिव्याम्।
गतेऽन्तरे चाक्षुषनामधेये
वैवस्वताख्ये च पुनः प्रवृत्ते।
प्रजापतिः सोऽस्य चराचरस्य
बभूव सूर्यान्वयवंशचिह्नः॥ १२॥

प्रजापति ब्रह्माने देवपुत्र हिरण्यरोमाको उत्तर दिशाका स्वामित्व प्रदान किया। ये दिक्पालगण आज भी शत्रुओंको सन्तप्त करते हुए पृथ्वीकी सब ओरसे रक्षा करते हैं। इन्हीं चारों दिक्पालोंद्वारा पहले-पहल भूतलपर पृथु नामके नरेश अभिषिक्त हुए थे। चाक्षुष-मन्वन्तरकी समाप्तिके बाद पुनः वैवस्वतमन्वन्तरके प्रारम्भ होनेपर सूर्यवंशके चिह्नस्वरूप ये राजा पृथु इस चराचर जगत्‌के प्रजापति हुए थे॥ ११-१२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिपत्याभिषेचनं नामाष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें आधिपत्याभिषेचन नामक आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८॥

नवाँ अध्याय

मन्वन्तरोंके चौदह देवताओं और सप्तर्षियोंका विवरण

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा मनुः प्राह पुनरेव जनार्दनम्।
पूर्वेषां चरितं ब्रूहि मनूनां मधुसूदन॥ १

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार सृष्टि-सम्बन्धी वर्णन सुनकर मनुने भगवान् जनार्दनसे पुनः निवेदन किया—मधुसूदन! अब पूर्वमें उत्पन्न हुए मनुओंके चरित्रका वर्णन कीजिये॥ १॥

मत्स्य उवाच

मन्वन्तराणि राजेन्द्र मनूनां चरितं च यत्।
प्रमाणं चैव कालस्य तां सृष्टिं च समासतः॥ २
एकचित्तः प्रशान्तात्मा शृणु मार्तण्डनन्दन।
यामा नाम पुरा देवा आसन् स्वायम्भुवान्तरे॥ ३
सप्तैव ऋषयः पूर्वे ये मरीच्यादयः स्मृताः।
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च सहः सवन एव च॥ ४
ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्यो मेधा मेधातिथिर्वसुः।
स्वायम्भुवस्यास्य मनोर्दशैते वंशवर्धनाः॥ ५
प्रतिसर्गमिमे कृत्वा जग्मुर्यत् परमं पदम्।
एतत् स्वायम्भुवं प्रोक्तं स्वारोचिषमतः परम्॥ ६
स्वारोचिषस्य तनयाश्चत्वारो देववर्चसः।
नभोनभस्यप्रसृतिभानवः कीर्तिवर्धनाः॥ ७

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजेन्द्र! अब मैं मन्वन्तरोंको, मनुओंके सम्पूर्ण चरित्रको, उनमें प्रत्येकके शासनकालको और उनके समयकी सृष्टिके वृत्तान्तको संक्षेपमें वर्णन कर रहा हूँ; तुम उसे एकाग्रचित्त एवं प्रशान्त मनसे श्रवण करो। मार्तण्डनन्दन! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें याम नामक देवगण थे। मरीचि (अत्रि) आदि मुनि ही सप्तर्षि थे। इन स्वायम्भुव मनुके आग्नीध्र, अग्निबाहु, सह, सवन, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, हव्य, मेधा, मेधातिथि और वसु नामके दस पुत्र थे, जिनसे वंशका विस्तार हुआ। ये सभी प्रतिसर्गकी रचना करके परमपदको प्राप्त हुए। यह स्वायम्भुव-मन्वन्तरका वर्णन हुआ। अब इसके पश्चात् स्वारोचिष मनुका वृत्तान्त सुनो। स्वारोचिष मनुके नभ, नभस्य, प्रसृति और भानु—ये चार पुत्र थे, जो सभी देवताओंके सदृश वर्चस्वी और कीर्तिका विस्तार करनेवाले थे।

दत्तो निश्च्यवनः स्तम्बः प्राणः कश्यप एव च।
और्वो बृहस्पतिश्चैव सप्तैते ऋषयः स्मृताः॥ ८
देवाश्च तुषिता नाम स्मृताः स्वारोचिषेऽन्तरे।
हस्तीन्द्रः सुकृतो मूर्तिरापो ज्योतिरयः स्मयः॥ ९
वसिष्ठस्य सुताः सप्त ये प्रजापतयः स्मृताः।
द्वितीयमेतत् कथितं मन्वन्तरमतः परम्॥ १०
औत्तमीयं प्रवक्ष्यामि तथा मन्वन्तरं शुभम्।
मनुर्नामौत्तमिर्यत्र दश पुत्रानजीजनत्॥ ११
ईष ऊर्जश्च तर्जश्च शुचिः शुक्रस्तथैव च।
मधुश्च माधवश्चैव नभस्योऽथ नभास्तथा॥ १२
सहः कनीयानेतेषामुदारः कीर्तिवर्धनः।
भावनास्तत्र देवाः स्युरूर्जाः सप्तर्षयः स्मृताः॥ १३
कौकुरुण्डिश्च दाल्भ्यश्च शङ्खः प्रवहणः शिवः।
सितश्च सम्मितश्चैव सप्तैते योगवर्धनाः॥ १४
मन्वन्तरं चतुर्थं तु तामसं नाम विश्रुतम्।
कविः पृथुस्तथैवाग्निरकपिः कपिरेव च॥ १५
तथैव जल्पधीमानौ मुनयः सप्त तामसे।
साध्या देवगणा यत्र कथितास्तामसेऽन्तरे॥ १६
अकल्मषस्तथा धन्वी तपोमूलस्तपोधनः।
तपोरतिस्तपस्यश्च तपोद्युतिपरंतपौ॥ १७
तपोभोगी तपोयोगी धर्माचाररताः सदा।
तामसस्य सुताः सर्वे दश वंशविवर्धनाः॥ १८
पञ्चमस्य मनोस्तद्वद् रैवतस्यान्तरं शृणु।
देवबाहुः सुबाहुश्च पर्जन्यः सोमपो मुनिः॥ १९
हिरण्यरोमा सप्ताश्वः सप्तैते ऋषयः स्मृताः।
देवाश्चामूर्तरजसस्तथा प्रकृतयः शुभाः॥ २०
अरुणस्तत्त्वदर्शी च वित्तवान् हव्यपः कपिः।
युक्तो निरुत्सुकः सत्त्वो निर्मोहोऽथ प्रकाशकः॥ २१
धर्मवीर्यबलोपेता दशैते रैवतात्मजाः।
भृगुः सुधामा विरजाः सहिष्णुर्नाद एव च॥ २२
विवस्वानतिनामा च षष्ठे सप्तर्षयोऽपरे।
चाक्षुषस्यान्तरे देवा लेखा नाम परिश्रुताः॥ २३

इस मन्वन्तरमें दत्त, निश्च्यवन, स्तम्ब, प्राण, कश्यप, और्व और बृहस्पति—ये सप्तर्षि बतलाये गये हैं। इस स्वारोचिष-मन्वन्तरमें होनेवाले देवगण तुषित नामसे प्रसिद्ध हैं तथा महर्षि वसिष्ठके हस्तीन्द्र, सुकृत, मूर्ति, आप, ज्योति, अय और स्मय नामक सात पुत्र प्रजापति कहे गये हैं। यह द्वितीय मन्वन्तरका वर्णन हुआ। इसके अनन्तर औत्तमि नामक (तीसरे) शुभकारक मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें औत्तमि नामक मनु हुए थे, जिन्होंने दस पुत्रोंको जन्म दिया। उनके नाम हैं—ईष, ऊर्ज, तर्ज, शुचि, शुक्र, मधु, माधव, नभस्य, नभस तथा सह। इनमें सबसे कनिष्ठ सह परम उदार एवं कीर्तिका विस्तारक था। इस मन्वन्तरमें भावना नामक देवगण हुए तथा कौकुरुण्डि, दाल्भ्य, शङ्ख, प्रवहण, शिव, सित और सम्मित—ये सप्तर्षि कहलाये। ये सातों अत्यन्त ऊर्जस्वी और योगके प्रवर्धक थे॥२—१४॥

चौथा मन्वन्तर तामस नामसे विख्यात है। इस तामस-मन्वन्तरमें कवि, पृथु, अग्नि, अकपि, कपि, जल्प और धीमान्—ये सात मुनि हुए तथा देवगण साध्य नामसे कहे गये। तामस मनुके अकल्मष, धन्वी, तपोमूल, तपोधन, तपोरति, तपस्य, तपोद्युति, परंतप, तपोभोगी और तपोयोगी नामक दस पुत्र थे। ये सभी सदा सदाचारमें निरत रहनेवाले एवं वंशविस्तारक थे। अब पाँचवें रैवत-मन्वन्तरका वृत्तान्त सुनो। इस मन्वन्तरमें देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा और सप्ताश्व—ये सप्तर्षि बतलाये गये हैं। देवगण अमूर्तरजा नामसे विख्यात थे और (सभी छः) प्रकृतियाँ (प्रजाएँ) सत्कर्ममें निरत रहती थीं। अरुण, तत्त्वदर्शी, वित्तवान्, हव्यप, कपि, युक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्मोह और प्रकाशक—ये दस रैवत मनुके पुत्र थे, जो सभी धर्म, पराक्रम और बलसे सम्पन्न थे। इसके पश्चात् छठे चाक्षुष-मन्वन्तरमें भृगु, सुधामा, विरजा, सहिष्णु, नाद, विवस्वान् और अतिनामा— ये सप्तर्षि थे तथा देवगण लेखानामसे प्रख्यात थे॥१५—२३॥

ऋभवोऽथ ऋभाद्याश्च वारिमूला दिवौकसः।
चाक्षुषस्यान्तरे प्रोक्ता देवानां पञ्चयोनयः॥ २४
रुरुप्रभृतयस्तद्वच्चाक्षुषस्य सुता दश।
प्रोक्ताः स्वायम्भुवे वंशे ये मया पूर्वमेव तु॥ २५
अन्तरं चाक्षुषं चैतन्मया ते परिकीर्तितम्।
सप्तमं तत् प्रवक्ष्यामि यद् वैवस्वतमुच्यते॥ २६
अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च कश्यपो गौतमस्तथा।
भरद्वाजस्तथा योगी विश्वामित्रः प्रतापवान्॥ २७
जमदग्निश्च सप्तैते साम्प्रतं ये महर्षयः।
कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्॥ २८
साध्या विश्वे च रुद्राश्च मरुतो वसवोऽश्विनौ।
आदित्याश्च सुरास्तद्वत् सप्त देवगणाः स्मृताः॥ २९
इक्ष्वाकुप्रमुखाश्चास्य दश पुत्राः स्मृता भुवि।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु सप्त सप्त महर्षयः॥ ३०
कृत्वा धर्मव्यवस्थानं प्रयान्ति परमं पदम्।

इसी प्रकार उस मन्वन्तरमें लेखा, ऋभव, ऋभाद्य, वारिमूल और दिवौकस नामसे देवताओंकी पाँच योनियाँ बतलायी गयी हैं। पहले स्वायम्भुव मनुके वंश-वर्णनमें मैंने जैसा तुमसे कहा है, (कि स्वायम्भुव मनुके दस पुत्र थे) वैसे ही चाक्षुष मनुके भी रुरु आदि दस पुत्र थे। इस प्रकार मैंने तुम्हें चाक्षुष-मन्वन्तरका परिचय दे दिया। अब उस सातवें मन्वन्तरका वर्णन करता हूँ, जो (वर्तमानमें) वैवस्वत नामसे विख्यात है। इस मन्वन्तरमें अत्रि, वसिष्ठ, कश्यप, गौतम, योगी, भरद्वाज, प्रतापी, विश्वामित्र और जमदग्नि—ये सात महर्षि इस समय भी वर्तमान हैं। ये सप्तर्षि धर्मकी व्यवस्था करके अन्तमें परमपदको प्राप्त करते हैं। वैवस्वत-मन्वन्तरमें साध्य, विश्वेदेव, रुद्र, मरुत्, वसु, अश्विनीकुमार और आदित्य—ये सात देवगण कहे जाते हैं। वैवस्वत मनुके भी इक्ष्वाकु आदि दस पुत्र हुए, जो भूमण्डलमें प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार सभी मन्वन्तरोंमें सात-सात महर्षि होते हैं, जो धर्मकी व्यवस्था करके अन्तमें परमपदको चले जाते हैं॥ २४—३० $\frac{1}{2}$॥

सावर्ण्यस्य प्रवक्ष्यामि मनोर्भावि तथान्तरम्॥ ३१
अश्वत्थामा शरद्वांश्च कौशिको गालवस्तथा।
शतानन्दः काश्यपश्च रामश्च ऋषयः स्मृताः॥ ३२
धृतिर्वरीयान् यवसः सुवर्णो वृष्टिरेव च।
चरिष्णुरीड्यः सुमतिर्वसुः शुक्रश्च वीर्यवान्॥ ३३
भविष्या दश सावर्णेर्मनोः पुत्राः प्रकीर्तिताः।
रौच्यादयस्तथान्येऽपि मनवः सम्प्रकीर्तिताः॥ ३४
रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नाम भविष्यति।
मनुर्भूतिसुतस्तद्वद् भौत्यो नाम भविष्यति॥ ३५
ततस्तु मेरुसावर्णिर्ब्रह्मसूनुर्मनुः स्मृतः।
ऋतश्च ऋतधामा च विष्वक्सेनो मनुस्तथा॥ ३६
अतीतानागताश्चैते मनवः परिकीर्तिताः।
यदूनं युगसाहस्रमेभिर्व्याप्तं नराधिप॥ ३७
स्वे स्वेऽन्तरे सर्वमिदमुत्पाद्य सचराचरम्।
कल्पक्षये विनिर्वृत्ते मुच्यन्ते ब्रह्मणा सह॥ ३८
एते युगसहस्रान्ते विनश्यन्ति पुनः पुनः।
ब्रह्माद्या विष्णुसायुज्यं याता यास्यन्ति वै द्विजाः॥ ३९

राजर्षे! अब मैं भावी सावर्णि-मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। इस मन्वन्तरमें अश्वत्थामा, शरद्वान्, कौशिक, गालव, शतानन्द, काश्यप और राम (परशुराम)—ये सात ऋषि बतलाये गये हैं। सावर्णि मनुके धृति, वरीयान्, यवस, सुवर्ण, वृष्टि, चरिष्णु, ईड्य, सुमति, वसु और पराक्रमी शुक्र—ये दस पुत्र होंगे, ऐसा कहा गया है। इसी प्रकार भविष्यमें होनेवाले रौच्य आदि अन्यान्य मन्वन्तरोंका भी वर्णन किया गया है। उस समय प्रजापति रुचिका पुत्र रौच्य मनुके नामसे विख्यात होगा तथा उसी तरह भूतिका पुत्र भौत्य मनुके नामसे पुकारा जायगा। उसके बाद ब्रह्माके पुत्र मेरुसावर्णि मनु नामसे प्रसिद्ध होंगे। इनके अतिरिक्त ऋत, ऋतधामा* और विष्वक्सेन नामक तीन मनु और उत्पन्न होंगे। नरेश्वर! इस प्रकार मैंने तुम्हें अतीत तथा भविष्यमें होनेवाले मनुओंका वृत्तान्त बतला दिया। यह भूमण्डल नौ सौ चौरानवे (९९४) (प्रायः एक सहस्र युगोंतक इन मनुओंसे व्याप्त रहता है (अर्थात् इन १४ मनुओंमें प्रत्येक मनुका कार्यकाल ७१ दिव्य (चतुर्) युगोंतक रहता है)। इस प्रकार वे सभी अपने-अपने कार्यकालमें इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को उत्पन्न करके कल्पान्तके समय ब्रह्माके साथ मुक्त हो जाते हैं। द्विजवरो! इस तरह ये सभी मनु एक सहस्र युगके अन्तमें बारम्बार उत्पन्न होकर विनष्ट होते रहते हैं और ब्रह्मा आदि देवगण विष्णु-सायुज्यको प्राप्त हो जाते हैं तथा भविष्यमें भी इसी प्रकार प्राप्त करते रहेंगे॥ ३१—३९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तनं नाम नवमोऽध्यायः॥ ९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके आदिसर्गमें मन्वन्तरानुकीर्तन नामक नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९॥

* पद्मादिपुराणोंमें ये ऋभु और वीतधामा नामसे निर्दिष्ट हैं।

दसवाँ अध्याय

महाराज पृथुका चरित्र और पृथ्वी-दोहनका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

बहुभिर्धरणी भुक्ता भूपालैः श्रूयते पुरा।
पार्थिवाः पृथिवीयोगात् पृथिवी कस्य योगतः॥ १

किमर्थं च कृता संज्ञा भूमेः किं पारिभाषिकी।
गौरितीयं च विख्याता सूत कस्माद् ब्रवीहि नः॥ २

सूत उवाच

वंशे स्वायम्भुवस्यासीदङ्गो नाम प्रजापतिः।
मृत्योस्तु दुहिता तेन परिणीता सुदुर्मुखा॥ ३

सुनीथा नाम तस्यास्तु वेनो नाम सुतः पुरा।
अधर्मनिरतश्चासीद् बलवान् वसुधाधिपः॥ ४

लोकेऽप्यधर्मकृज्जातः परभार्यापहारकः।
धर्माचारस्य सिद्ध्यर्थं जगतोऽथ महर्षिभिः॥ ५

अनुनीतोऽपि न ददावनुज्ञां स यदा ततः।
शापेन मारयित्वैनमराजकभयार्दिताः॥ ६

ममन्थुर्ब्राह्मणास्तस्य बलाद् देहमकल्मषाः।
तत्कायान्मथ्यमानात्तु निपेतुर्म्लेच्छजातयः॥ ७

शरीरे मातुरंशेन कृष्णाञ्जनसमप्रभाः।
पितुरंशस्य चांशेन धार्मिको धर्मचारिणः॥ ८

उत्पन्नो दक्षिणाद्धस्तात् सधनुः सशरो गदी।
दिव्यतेजोमयवपुः सरत्नकवचाङ्गदः॥ ९

पृथोरेवाभवद् यत्नात् ततः पृथुरजायत।
स विप्रैरभिषिक्तोऽपि तपः कृत्वा सुदारुणम्॥ १०

विष्णोर्वरेण सर्वस्य प्रभुत्वमगमत् पुनः।
निःस्वाध्यायवषट्कारं निर्धर्मं वीक्ष्य भूतलम्॥ ११

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सुना जाता है कि पूर्वकालमें बहुत-से भूपाल इस पृथ्वीका उपभोग कर चुके हैं। पृथ्वीके सम्बन्धसे ही वे 'पार्थिव' या पृथ्वीपति कहे गये हैं, परंतु भूमिका 'पृथ्वी' यह पारिभाषिक नाम किस सम्बन्धसे तथा किस कारण पड़ा एवं यह 'गौ' नामसे क्यों विख्यात हुई? इनका रहस्य हमें बतलाइये॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीनकालमें स्वायम्भुव मनुके वंशमें अङ्ग नामक एक प्रजापति हुए थे। उन्होंने मृत्युकी कन्या सुनीथाके साथ विवाह किया। सुनीथाका मुख बड़ा कुरूप था। उसके गर्भसे वेन नामक एक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ, जो आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ; किंतु वह सदा अधर्ममें ही निरत रहता था। परायी स्त्रियोंका अपहरण उसका नित्यका काम था। इस प्रकार वह लोकमें भी अधर्मका ही प्रचार करने लगा। तब महर्षियोंने जागतिक धर्माचरणकी सिद्धिके लिये उससे (बड़ी) अनुनय-विनय की; परंतु अन्तःकरण अशुद्ध होनेके कारण जब उसने उनकी बात न मानी (प्रजाको अभय नहीं किया), तब महर्षियोंने उसे शाप देकर मार डाला। तत्पश्चात् (शासकहीन राज्यमें) अराजकताके भयसे भीत होकर उन निष्पाप ब्राह्मणोंने बलपूर्वक वेनके शरीरका मन्थन किया। मन्थन करनेपर उसके शरीरसे शरीरस्थित माताके अंशसे म्लेच्छ जातियाँ प्रकट हुई, जिनका रंग काले अञ्जनका-सा था। (फिर) उसके शरीरस्थित धर्मपरायण पिता (अङ्ग)-के अंशभूत दाहिने हाथसे एक धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका शरीर दिव्य तेजसे सम्पन्न था। वह रत्नजटित कवच और बाजूबंदसे विभूषित था, उसके हाथोंमें धनुष-बाण और गदा शोभा पा रहे थे। महान् प्रयत्नसे मथे जानेपर वह वेनकी पृथु (मोटी) भुजासे प्रकट हुआ था, अतः पृथु नामसे प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि ब्राह्मणोंने उसे (पिताके राज्यपर) अभिषिक्त कर दिया था, तथापि उसने परम दारुण तपस्या करके विष्णु-भगवान्‌को प्रसन्न किया और उनके वरदानके प्रभावसे (चराचर लोकको जीतकर) पुनः स्वयं भी समस्त भूमण्डलकी अध्यक्षता प्राप्त की। तदनन्तर अमित पराक्रमी पृथु भूतलको स्वाध्याय, वषट्कार और धर्मसे विहीन देखकर

दग्धुमेवोद्यतः कोपाच्छरेणामितविक्रमः।
ततो गोरूपमास्थाय भूः पलायितुमुद्यता॥ १२

पृष्ठतोऽनुगतस्तस्याः पृथुर्दीप्तशरासनः।
ततः स्थित्वैकदेशे तु किं करोमीति चाब्रवीत्॥ १३

पृथुरप्यवदद् वाक्यमीप्सितं देहि सुव्रते।
सर्वस्य जगतः शीघ्रं स्थावरस्य चरस्य च॥ १४

तथैव साब्रवीद् भूमिर्दुदोह स नराधिपः।
स्वके पाणौ पृथुर्वत्सं कृत्वा स्वायम्भुवं मनुम्॥ १५

तदन्नमभवच्छुद्धं प्रजा जीवन्ति येन वै।
ततस्तु ऋषिभिर्दुग्धा वत्सः सोमस्तदाभवत्॥ १६
दोग्धा बृहस्पतिरभूत् पात्रं वेदस्तपो रसः।
देवैश्च वसुधा दुग्धा दोग्धा मित्रस्तदाभवत्॥ १७
इन्द्रो वत्सः समभवत् क्षीरमूर्जस्करं बलम्।
देवानां काञ्चनं पात्रं पितॄणां राजतं तथा॥ १८
अन्तकश्चाभवद् दोग्धा यमो वत्सः स्वधा रसः।
अलाबुपात्रं नागानां तक्षको वत्सकोऽभवत्॥ १९
विषं क्षीरं ततो दोग्धा धृतराष्ट्रोऽभवत् पुनः।
असुरैरपि दुग्धेयमायसे शक्रपीडिनीम्॥ २०
पात्रे मायामभूद् वत्सः प्राह्लादिस्तु विरोचनः।
दोग्धा द्विमूर्धा तत्रासीन्माया येन प्रवर्तिता॥ २१
यक्षैश्च वसुधा दुग्धा पुरान्तर्धानमीप्सुभिः।
कृत्वा वैश्रवणं वत्समामपात्रे महीपते॥ २२
प्रेतरक्षोगणैर्दुग्धा धारारुधिरमुल्बणम्।
रौप्यनाभोऽभवद् दोग्धा सुमाली वत्स एव तु॥ २३
गन्धर्वैश्च पुरा दुग्धा वसुधा साप्सरोगणैः।
वत्सं चैत्ररथं कृत्वा गन्धान् पद्मदले तथा॥ २४

क्रुद्ध हो उठे और धनुषपर बाण चढ़ाकर उसे भस्म कर देनेके लिये उद्यत हो गये। यह देखकर भूमि (भयभीत होकर) गौका रूप धारणकर भाग चली। इधर प्रचण्ड धनुर्धर पृथु भी उसके पीछे दौड़ पड़े। (इस प्रकार पृथुको पीछा करते देख वह गौरूपा भूमि हताश होकर) एक स्थानपर खड़ी हो गयी और बोली '(नाथ! आपकी प्रसन्नताके लिये) मैं क्या करूँ?' तब पृथुने ऐसी बात कही—'सुव्रते! तुम शीघ्र ही इस सम्पूर्ण चराचर जगत्को मनोवाञ्छित वस्तुएँ प्रदान करो।' यह सुनकर पृथ्वी बोली—'अच्छा, ऐसा ही होगा।' (इस प्रकार पृथ्वीकी अनुमति जानकर) उन नरेश्वर पृथुने स्वायम्भुव मनुको बछड़ा बनाकर अपनी हथेलीमें गौरूपा पृथ्वीका दोहन किया। वह दुहा हुआ पदार्थ शुद्ध अन्न हुआ, जिससे प्रजाका जीवन-निर्वाह होता है॥ ३—१५ १-२॥

(फिर क्या था? अब तो दोहनकी शृङ्खला ही चल पड़ी) पुनः ऋषियोंने भी उस पृथ्वीको दुहा। उस समय चन्द्रमा बछड़ा, दुहनेवाले महर्षि बृहस्पति, पात्र वेद और दुहा गया पदार्थ तप हुआ। देवताओंने भी पृथ्वीका दोहन किया। उस समय दुहनेवाले मित्र (देवता), इन्द्र बछड़ा तथा क्षीर (दुहा गया रस) ऊर्जस्वी बल हुआ। उस दोहनमें देवताओंका पात्र स्वर्णमय था। अन्तकने भी पृथ्वीका दोहन किया, उसमें यमराज बछड़ा बने और स्वधा रस था। पितरोंका पात्र रजतमय था। नागोंके दोहनमें नागराज धृतराष्ट्र दुहनेवाले, नागराज तक्षक बछड़ा, पात्र तुम्बी और क्षीर—दुहा हुआ पदार्थ—विष था। असुरोंद्वारा भी इस पृथ्वीका दोहन किया गया था। उन्होंने लौहमय पात्रमें इन्द्रको पीड़ित करनेवाली मायाको दुहा। उस कार्यमें प्रह्लाद-पुत्र विरोचन बछड़ा और मायाका प्रवर्तक द्विमूर्धा दुहनेवाला था। महीपते! यक्षोंको अन्तर्धान-विद्याकी अभिलाषा थी, अतः उन्होंने कुबेरको बछड़ा बनाकर कच्चे पात्रमें पृथ्वीका दोहन किया था। प्रेतों और राक्षसोंने पृथ्वीसे भयंकर रुधिरकी धाराका दोहन किया। उसमें रौप्यनाभ नामक प्रेत दुहनेवाला और सुमाली नामक प्रेत बछड़ा बना था। अप्सराओंके साथ गन्धर्वोंने भी पूर्वकालमें चैत्ररथको बछड़ा बनाकर कमलके पत्तेमें पृथ्वीसे सुगन्धोंका दोहन किया था;

दोग्धा वररुचिर्नाम नाट्यवेदह्यस्य पारगः।
गिरिभिर्वसुधा दुग्धा रत्नानि विविधानि च॥ २५
औषधानि च दिव्यानि दोग्धा मेरुर्महाचलः।
वत्सोऽभूद्धिमवांस्तत्र पात्रं शैलमयं पुनः॥ २६
वृक्षैश्च वसुधा दुग्धा क्षीरं छिन्नप्ररोहणम्।
पालाशपात्रे दोग्धा तु शालः पुष्पलताकुलः॥ २७
प्लक्षोऽभवत्ततो वत्सः सर्ववृक्षधनाधिपः।
एवमन्यैश्च वसुधा तदा दुग्धा यथेप्सितम्॥ २८

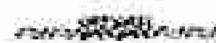
उस कार्यमें नाट्य-वेदका पारगामी विद्वान् वररुचि नामक गन्धर्व दुहनेवाला था। पर्वतोंने पृथ्वीसे अनेक प्रकारके रत्नों और दिव्य ओषधियोंका दोहन किया। उसमें महाचल सुमेरु दुहनेवाला, हिमवान् बछड़ा और पात्र शैलमय था। वृक्षोंने पृथ्वीसे पलाशपत्रके पात्रमें (टहनी आदिके) कटनेके बाद पुनः उगनेवाला दूध दुहा। उस समय पुष्प और लताओंसे लदा हुआ शालवृक्ष दुहनेवाला था और समृद्धिशाली एवं सर्ववृक्षमय पाकड़का वृक्ष बछड़ा बना था। इसी प्रकार अन्यान्य वर्गके प्राणियोंने भी उस समय अपने-अपने इच्छानुसार पृथ्वीका दोहन किया था॥ १६—२८॥

आयुर्धनानि सौख्यं च पृथौ राज्यं प्रशासति।
न दरिद्रस्तदा कश्चिन्न रोगी न च पापकृत्॥ २९
नोपसर्गभयं किञ्चित् पृथौ राजनि शासति।
नित्यं प्रमुदिता लोका दुःखशोकविवर्जिताः॥ ३०
धनुष्कोट्या च शैलेन्द्रानुत्सार्य स महाबलः।
भुवस्तलं समं चक्रे लोकानां हितकाम्यया॥ ३१
न पुरग्रामदुर्गाणि न चायुधधरा नराः।
क्षयातिशयदुःखं च नार्थशास्त्रस्य चादरः॥ ३२
धर्मैकवासना लोकाः पृथौ राज्यं प्रशासति।
कथितानि च पात्राणि यत् क्षीरं च मया तव॥ ३३
येषां यत्र रुचिस्तत्तद् देयं तेभ्यो विजानता।
यज्ञश्राद्धेषु सर्वेषु मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ३४
दुहितृत्वं गता यस्मात् पृथोर्धर्मवतो मही।
तदानुरागयोगाच्च पृथिवी विश्रुता बुधैः॥ ३५

महाराज पृथुके राज्यमें प्रजा दीर्घायु, धन-धान्य एवं सुख-समृद्धिसे सम्पन्न थी। उस समय न कोई दरिद्र था, न रोगी और न कोई पाप-कर्म ही करता था। महाराज पृथुके शासनकालमें किसी उपसर्ग (आधिदैविक एवं आधिभौतिक उपद्रव)-का भय नहीं था। लोग दुःख-शोकसे रहित होकर सदा सुखमय जीवन-यापन करते थे। उन महाबली पृथुने प्रजाओंकी हितकामनासे प्रेरित होकर अपने धनुषकी कोटिसे बड़े-बड़े पर्वतोंको उखाड़कर पृथ्वीके धरातलको समतल कर दिया था। पृथुके राज्यकालमें न तो पुर, ग्राम और दुर्ग थे, न मनुष्य अस्त्र-शस्त्र धारण करते थे। (उस समय आत्मरक्षाके लिये इनकी कोई आवश्यकता न थी।) रोगोंका सर्वथा अभाव था। क्षय-विनाश एवं सातिशयता— परस्परको विषमताका दुःख* उन्हें नहीं देखना पड़ता था। प्रजाओंमें अर्थशास्त्रके प्रति आदर नहीं था, अर्थात् लोभका चिह्नमात्र भी नहीं था। उनमें एकमात्र धर्मकी ही वासना थी। ऋषियो! इस प्रकार मैंने आपसे पृथ्वीके दोहनपात्रोंका तथा जैसा-जैसा दूध दुहा गया था, उसका भी वर्णन किया। उनमें जिस वर्णके प्राणियोंकी जिस पदार्थकी प्राप्तिकी रुचि हो, उसे वही पदार्थ यज्ञों और श्राद्धोंमें अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार यह पृथ्वी-दोहनका प्रसङ्ग मैंने तुम्हें सुना दिया। यतः पृथ्वी धर्मात्मा पृथुकी कन्या बन चुकी थी, अतः पृथुके अतिशय अनुरागके कारण विद्वानोंद्वारा 'पृथ्वी' नामसे कही जाने लगी॥ २९—३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वैन्याभिवर्णनो नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वैन्याभिवर्णन नामक दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०॥



* इसे विस्तारसे समझनेके लिये योगवासिष्ठ १। १। ३०—४० देखना चाहिये।

ग्यारहवाँ अध्याय

सूर्यवंश और चन्द्रवंशका वर्णन तथा इलाका वृत्तान्त

ऋषय ऊचुः

आदित्यवंशमखिलं वद सूत यथाक्रमम्।
सोमवंशं च तत्त्वज्ञ यथावद् वक्तुमर्हसि॥ १

सूत उवाच

विवस्वान् कश्यपात् पूर्वमदित्यामभवत् सुतः।
तस्य पत्नीत्रयं तद्वत् संज्ञा राज्ञी प्रभा तथा॥ २

रेवतस्य सुता राज्ञी रैवतं सुषुवे सुतम्।
प्रभा प्रभातं सुषुवे त्वाष्ट्री संज्ञा तथा मनुम्॥ ३

यमश्च यमुना चैव यमलौ तु बभूवतुः।
ततस्तेजोमयं रूपमसहन्ती विवस्वतः॥ ४

नारीमुत्पादयामास स्वशरीरादनिन्दिताम्।
त्वाष्ट्री स्वरूपरूपेण नाम्ना छायेति भामिनी॥ ५

पुरतः संस्थितां दृष्ट्वा संज्ञा तां प्रत्यभाषत।
छाये त्वं भज भर्तारमस्मदीयं वरानने॥ ६

अपत्यानि मदीयानि मातृस्नेहेन पालय।
तथेत्युक्त्वा च सा देवमगात् कामाय सुव्रता॥ ७

कामयामास देवोऽपि संज्ञेयमिति चादरात्।
जनयामास तस्यां तु पुत्रं च मनुरूपिणम्॥ ८

सवर्णत्वाच्च सावर्णिर्मनोर्वैवस्वतस्य च।
ततः शनिं च तपतीं विष्टिं चैव क्रमेण तु॥ ९

छायायां जनयामास संज्ञेयमिति भास्करः।
छाया स्वपुत्रेऽभ्यधिकं स्नेहं चक्रे मनौ तथा॥ १०

पूर्वो मनुस्तु चक्षाम न यमः क्रोधमूर्छितः।
संतर्जयामास तदा पादमुद्यम्य दक्षिणम्॥ ११

शशाप च यमं छाया भक्षितः कृमिसंयुतः।
पादोऽयमेको भविता पूयशोणितविस्रवः॥ १२

ऋषियोंने पूछा—तत्त्वज्ञ सूतजी! अब आप हम लोगोंसे सम्पूर्ण सूर्यवंश तथा चन्द्रवंशका क्रमशः यथार्थ-रूपसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें महर्षि कश्यपसे अदितिको विवस्वान् (सूर्य) पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे। उनकी संज्ञा, राज्ञी तथा प्रभा नामकी तीन पत्नियाँ थीं। इनमें रेवतकी कन्या राज्ञीने रैवत नामक पुत्रको तथा प्रभाने प्रभात नामक पुत्रको उत्पन्न किया। संज्ञा त्वाष्ट्र (विश्वकर्मा)-की पुत्री थी। उसने वैवस्वत मनु और यम नामक दो पुत्र एवं यमुना नामकी एक कन्याको उत्पन्न किया। इनमें यम और यमुना जुड़वे पैदा हुए थे।* कुछ समयके पश्चात् जब सुन्दरी त्वाष्ट्री (संज्ञा) विवस्वान्के तेजोमय रूपको सहन न कर सकी, तब उसने अपने शरीरसे अपने ही रूपके समान एक अनिन्द्यसुन्दरी नारीको उत्पन्न किया। वह 'छाया' नामसे प्रसिद्ध हुई। उस छायाको अपने सामने खड़ी देखकर संज्ञाने उससे कहा—'वरानने छाये! तुम हमारे पतिदेवकी सेवा करना, साथ ही मेरी संतानोंका माताके समान स्नेहसे पालन-पोषण करना।' तब 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—कहकर वह सुव्रता पतिकी सेवाभावनासे विवस्वान्देवके निकट गयी। इधर विवस्वान्देव भी 'यह संज्ञा ही है'—ऐसा समझकर छायाके साथ आदरपूर्वक पूर्ववत् व्यवहार करते रहे। यथासमय उन्होंने उसके गर्भसे मनुके समान रूपवाले एक पुत्रको उत्पन्न किया। ये वैवस्वत मनुके सवर्ण (रूप-रंगवाला) होनेके कारण 'सावर्णि' नामसे प्रसिद्ध हुए। तदुपरान्त सूर्यने 'यह संज्ञा ही है'—ऐसा मानकर छायाके गर्भसे क्रमशः एक शनि नामका पुत्र और तपती एवं विष्टि नामकी दो कन्याओंको भी उत्पन्न किया। छाया अपने पुत्र मनुके प्रति अन्य संतानोंसे अधिक स्नेह रखती थी। उसके इस व्यवहारको संज्ञा-नन्दन मनु तो सहन कर लेते थे, परंतु यम (एक दिन सहन न होनेके कारण) क्रुद्ध हो उठे और अपने दाहिने पैरको उठाकर छायाको मारनेकी धमकी देने लगे। तब छायाने यमको शाप देते हुए कहा—'तुम्हारे इस एक पैरको कीड़े काट खायेंगे और इससे पीब एवं

* इसका मूल ऋक्० १०। १७। १-२ में 'त्वष्टा दुहित्रे .... यमस्य माता .... कृत्वी सवर्णां' आदिमें है।

निवेदयामास पितुर्यमः शापादमर्षितः।
निष्कारणमहं शप्तो मात्रा देव सकोपया॥ १३

बालभावान्मया किंचिदुद्यतश्चरणः सकृत्।
मनुना वार्यमाणापि मम शापमदाद् विभो॥ १४

प्रायो न माता सास्माकं शापेनाहं यतो हतः।
देवोऽप्याह यमं भूयः किं करोमि महामते॥ १५

मौर्ख्यात् कस्य न दुःखं स्यादथवा कर्मसंततिः।
अनिवार्या भवस्यापि का कथान्येषु जन्तुषु॥ १६

कृकवाकुर्मया दत्तो यः कृमीन् भक्षयिष्यति।
क्लेदं च रुधिरं चैव वत्सायमपनेष्यति॥ १७

एवमुक्तस्तपस्तेपे यमस्तीव्रं महायशाः।
गोकर्णतीर्थे वैराग्यात् फलपत्रानिलाशनः॥ १८

आराधयन् महादेवं यावद् वर्षायुतायुतम्।
वरं प्रादान्महादेवः संतुष्टः शूलभृत् तदा॥ १९

वव्रे स लोकपालत्वं पितृलोके नृपालयम्।
धर्माधर्मात्मकस्यापि जगतस्तु परीक्षणम्॥ २०

एवं स लोकपालत्वमगमच्छूलपाणिनः।
पितॄणां चाधिपत्यं च धर्माधर्मस्य चानघ॥ २१

विवस्वानथ तज्ज्ञात्वा संज्ञायाः कर्मचेष्टितम्।
त्वष्टुः समीपमगमदाचचक्षे च रोषवान्॥ २२

तमुवाच ततस्त्वष्टा सांत्वपूर्वं द्विजोत्तमाः।
तवासहन्ती भगवन् महस्तीव्रं तमोनुदम्॥ २३

वडवारूपमास्थाय मत्सकाशमिहागता।
निवारिता मया सा तु त्वया चैव दिवाकर॥ २४

यस्मादविज्ञाततया मत्सकाशमिहागता।
तस्मान्मदीयं भवनं प्रवेष्टुं न त्वमर्हसि॥ २५

एवमुक्ता जगामाथ मरुदेशमनिन्दिता।
वडवारूपमास्थाय भूतले सम्प्रतिष्ठिता॥ २६

रुधिर टपकता रहेगा।' इस शापको सुनकर अमर्षसे भरे हुए यम पिताके पास जाकर निवेदन करते हुए बोले—'देव! क्रुद्ध हुई माताने मुझे अकारण ही शाप दे दिया है। विभो! बालचापल्यके कारण मैंने एक बार अपना दाहिना पैर कुछ ऊपर उठा दिया था, (इस तुच्छ अपराधपर) भाई मनुके मना करनेपर भी उसने मुझे ऐसा शाप दे दिया है। चूँकि इसने हमपर शापद्वारा प्रहार किया है, इसलिये यह हम लोगोंकी माता नहीं प्रतीत होती (अपितु बनावटी माता है)।' यह सुनकर विवस्वान्‌देवने पुनः यमसे कहा—'महाबुद्धे! मैं क्या करूँ? अपनी मूर्खताके कारण किसको दुःख नहीं भोगना पड़ता। अथवा (जन्मान्तरीय शुभाशुभ) कर्मपरम्पराका फलभोग अनिवार्य है। यह नियम तो शिवजीपर भी लागू है, फिर अन्य प्राणियोंके लिये तो कहना ही क्या है। इसलिये बेटा! मैं तुम्हें यह एक मुर्गा (या मोर) दे रहा हूँ, जो पैरमें पड़े हुए कीड़ोंको खा जायगा और उससे निकलते हुए मज्जा (पीब) एवं खूनको भी दूर कर देगा'॥ २—१७॥

पिताद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर महायशस्वी यमके मनमें विराग उत्पन्न हो गया। वे गोकर्णतीर्थमें जाकर फल, पत्ता और वायुका आहार करते हुए कठोर तपस्यामें संलग्न हो गये। इस प्रकार वे बीस हजार वर्षोंतक महादेवजीकी आराधना करते रहे। कुछ समयके पश्चात् त्रिशूलधारी महादेव उनकी तपस्यासे सन्तुष्ट होकर प्रकट हुए। तब यमने उनसे वररूपमें लोकपालत्व, पितरोंका आधिपत्य और जगत्‌के धर्म-अधर्मका निर्णायक-पद प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। महादेवजीने उन्हें सभी वरदान दे दिये। निष्पाप शौनक! इस प्रकार यमको शूलपाणि भगवान् शंकरसे लोकपालत्व, पितरोंका आधिपत्य और धर्माधर्मके निर्णायक-पदकी प्राप्ति हुई है। इधर विवस्वान् संज्ञाकी उस कर्मचेष्टाको जानकर त्वष्टा (विश्वकर्मा)-के निकट गये और क्रुद्ध होकर उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाये। द्विजवरो! तब त्वष्टाने सान्त्वनापूर्वक विवस्वान्‌से कहा—'भगवन्! अन्धकारका विनाश करनेवाले आपके प्रचण्ड तेजको न सहन करनेके कारण संज्ञा घोड़ीका रूप धारण करके यहाँ मेरे समीप अवश्य आयी थी, परंतु दिवाकर! मैंने उसे यह कहते हुए (घरमें घुसनेसे) मना कर दिया—'चूँकि तू अपने पतिदेवकी जानकारीके बिना छिपकर यहाँ मेरे पास आयी है, इसलिये मेरे भवनमें प्रवेश नहीं कर सकती।' इस प्रकार मेरे निषेध करनेपर आपके और मेरे—दोनों स्थानोंसे निराश होकर वह अनिन्दिता संज्ञा मरुदेशको चली गयी और वहाँ उसी घोड़ी-रूपसे ही भूतलपर स्थित है।

तस्मात् प्रसादं कुरु मे यद्यनुग्रहभागहम्।
अपनेष्यामि ते तेजो यन्त्रे कृत्वा दिवाकर॥ २७

रूपं तव करिष्यामि लोकानन्दकरं प्रभो।
तथेत्युक्तः स रविणा भ्रमौ कृत्वा दिवाकरम्॥ २८

पृथक् चकार तत्तेजश्चक्रं विष्णोरकल्पयत्।
त्रिशूलं चापि रुद्रस्य वज्रमिन्द्रस्य चाधिकम्॥ २९

दैत्यदानवसंहर्तुः सहस्रकिरणात्मकम्।
रूपं चाप्रतिमं चक्रे त्वष्टा पद्भ्यामृते महत्॥ ३०

न शशाकाथ तद् द्रष्टुं पादरूपं रवेः पुनः।
अर्चास्वपि ततः पादौ न कश्चित् कारयेत् क्वचित्॥ ३१

यः करोति स पापिष्ठां गतिमाप्नोति निन्दिताम्।
कुष्ठरोगमवाप्नोति लोकेऽस्मिन् दुःखसंयुतः॥ ३२

तस्माच्च धर्मकामार्थी चित्रेष्वायतनेषु च।
न क्वचित् कारयेत् पादौ देवदेवस्य धीमतः॥ ३३

इसलिये 'दिवाकर! यदि मैं आपका अनुग्रह-भाजन हूँ तो आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये (और मेरी एक प्रार्थना स्वीकार कीजिये)। प्रभो! मैं आपके इस असह्य तेजको (खरादनेवाले) यन्त्रपर चढ़ाकर कुछ कम कर दूँगा। इस प्रकार आपके रूपको लोगोंके लिये आनन्ददायक बना दूँगा।' सूर्यद्वारा उनकी प्रार्थना स्वीकार कर लिये जानेपर त्वष्टाने सूर्यको अपने (खराद) यन्त्रपर बैठाकर उनके कुछ तेजको छाँटकर अलग कर दिया। उस छाँटे हुए तेजसे उन्होंने विष्णुके सुदर्शनचक्रका, भगवान् रुद्रके त्रिशूलका और दैत्यों एवं दानवोंका संहार करनेवाले इन्द्रके वज्रका निर्माण किया। इस प्रकार त्वष्टाने पैरोंके अतिरिक्त सूर्यके सहस्र किरणोंवाले रूपको अनुपम सौन्दर्यशाली बना दिया। उस समय वे सूर्यके पैरोंके तेजको देखनेमें समर्थ न हो सके (इसलिये वह तेज ज्यों-का-त्यों बना ही रह गया)। अतः अर्चा-विग्रहोंमें भी कोई सूर्यके चरणोंका निर्माण नहीं (करता-) कराता। यदि कोई वैसा करता है तो उसे (मरनेपर) अत्यन्त निन्दित पापिष्ठ गति प्राप्त होती है तथा इस लोकमें वह दुःख भोगता हुआ कुष्ठरोगी हो जाता है। इसलिये धर्मात्मा मनुष्यको चित्रों एवं मन्दिरोंमें कहीं भी बुद्धिमान् देवदेवेश्वर सूर्यके पैरोंको नहीं (बनाना-) बनवाना चाहिये॥ १८—३३॥

ततः स भगवान् गत्वा भूर्लोकममराधिपः।
कामयामास कामार्तो मुख एव दिवाकरः॥ ३४
अश्वरूपेण महता तेजसा च समावृतः।
संज्ञा च मनसा क्षोभमगमद् भयविह्वला॥ ३५
नासापुटाभ्यामुत्सृष्टं परोऽयमिति शङ्कया।
तद्रेतसस्ततो जातावश्विनाविति निश्चितम्॥ ३६
दस्रौ सुतत्वात् संजातौ नासत्यौ नासिकाग्रतः।
ज्ञात्वा चिराच्च तं देवं संतोषमगमत् परम्।
विमानेनागमत् स्वर्गं पत्या सह मुदान्विता॥ ३७
सावर्णोऽपि मनुर्मेरावद्याप्यास्ते तपोधनः।
शनिस्तपोबलादाप ग्रहसाम्यं ततः पुनः॥ ३८
यमुना तपती चैव पुनर्नद्यौ बभूवतुः।
विष्टिर्घोरात्मिका तद्वत् कालत्वेन व्यवस्थिता॥ ३९
मनोर्वैवस्वतस्यासन् दश पुत्रा महाबलाः।
इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्ट्यां समजायत॥ ४०

त्वष्टाद्वारा संज्ञाका पता बतला दिये जानेपर वे देवेश्वर भगवान् सूर्य भूलोकमें जा पहुँचे। वहाँ उनके द्वारा संज्ञासे अश्विनीकुमारोंकी उत्पत्ति हुई—यह एकदम तथ्य बात है। संज्ञाकी नासिकाके अग्रभागसे उत्पन्न होनेके कारण वे दोनों नासत्य और दस्र नामसे भी विख्यात हुए। कुछ दिनोंके पश्चात् अश्वरूपधारी सूर्यदेवको पहचानकर त्वाष्ट्री (संज्ञा) परम सन्तुष्ट हुई और हर्षपूर्ण चित्तसे पतिके साथ विमानपर बैठकर स्वर्गलोक (आकाश)-को चली गयी। (छायाकी संतानोंमें) तपोधन सावर्णि मनु आज भी सुमेरुगिरिपर विराजमान हैं। शनिने अपनी तपस्याके प्रभावसे ग्रहोंकी समता प्राप्त की। बहुत दिनोंके बाद यमुना और तपती—ये दोनों कन्याएँ नदीरूपमें परिणत हो गयीं। उसी प्रकार भयंकर रूपवाली तीसरी कन्या विष्टि (भद्रा) काल (करण)-रूपमें अवस्थित हुई। वैवस्वत मनुके दस महाबली पुत्र उत्पन्न हुए थे। उनमें इल ज्येष्ठ थे, जो पुत्रेष्टि-यज्ञके फलस्वरूप पैदा हुए थे।

इक्ष्वाकुः कुशनाभश्च अरिष्टो धृष्ट एव च।
नरिष्यन्तः करूषश्च शर्यातिश्च महाबलः।
पृषध्रश्चाथ नाभागः सर्वे ते दिव्यमानुषाः॥ ४१
अभिषिच्य मनुः पुत्रमिलं ज्येष्ठं स धार्मिकः।
जगाम तपसे भूयः स महेन्द्रवनालयम्॥ ४२
अथ दिग्जयसिद्ध्यर्थमिलः प्रायान्महीमिमाम्।
भ्रमन् द्वीपानि सर्वाणि क्ष्माभृतः सम्प्रधर्षयन्॥ ४३
जगामोपवनं शम्भोरश्वाकृष्टः प्रतापवान्।
कल्पद्रुमलताकीर्णं नाम्ना शरवणं महत्॥ ४४
रमते यत्र देवेशः शम्भुः सोमार्धशेखरः।
उमया समयस्तत्र पुरा शरवणे कृतः॥ ४५
पुन्नाम सत्त्वं यत्किञ्चिदागमिष्यति ते वने।
स्त्रीत्वमेष्यति तत् सर्वं दशयोजनमण्डले॥ ४६
अज्ञातसमयो राजा इलः शरवणे पुरा।
स्त्रीत्वमाप विशन्नेव वडवात्वं हयस्तदा॥ ४७
पुरुषत्वं हृतं सर्वं स्त्रीरूपे विस्मितो नृपः।
इलेति साभवन्नारी पीनोन्नतघनस्तनी॥ ४८
उन्नतश्रोणिजघना पद्मपत्रायतेक्षणा।
पूर्णेन्दुवदना तन्वी विलासोल्लासितेक्षणा॥ ४९
मूलोन्नतायतभुजा नीलकुञ्चितमूर्धजा।
तनुलोमा सुदशना मृदुगम्भीरभाषिणी॥ ५०
श्यामगौरेण वर्णेन हंसवारणगामिनी।
कार्मुकभ्रूयुगोपेता तनुताम्रनखाङ्कुरा॥ ५१
भ्रमन्ती च वने तस्मिंश्चिन्तयामास भामिनी।
को मे पिताथवा भ्राता का मे माता भवेदिह॥ ५२
कस्य भर्तुरहं दत्ता कियद् वत्स्यामि भूतले।
चिन्तयन्तीति ददृशे सोमपुत्रेण साङ्गना॥ ५३
इलारूपसमाक्षिप्तमनसा वरवर्णिनीम्।
बुधस्तदाप्तये यत्नमकरोत् कामपीडितः॥ ५४

शेष नौ पुत्रोंके नाम हैं—इक्ष्वाकु, कुशनाभ, अरिष्ट, धृष्ट नरिष्यन्त, करूष, शर्याति, पृषध्र और नाभाग। ये सब-के-सब महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं दिव्य पुरुष थे। वृद्धावस्था आनेपर परम धर्मात्मा महाराज मनु अपने ज्येष्ठ पुत्र इलको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं तपस्या करनेके लिये महेन्द्रपर्वतके वनमें चले गये। तदनन्तर नये भूपाल इल दिग्विजय करनेकी इच्छासे इस पृथ्वीपर विचरण करने लगे। वे भूपालोंको पराजित करते हुए सभी द्वीपोंमें घूम रहे थे। इसी बीच प्रतापी इल घोड़ा दौड़ाते हुए शिवजीके उपवनके निकट जा पहुँचे। यह महान् उपवन कल्पद्रुम और लताओंसे भरा हुआ 'शरवण' नामसे प्रसिद्ध था। उस उपवनमें चन्द्रार्धको ललाटमें धारण करनेवाले देवेश्वर शम्भु उमाके साथ क्रीडा करते हैं। उन्होंने इस शरवणके विषयमें पहले ही उमाके साथ यह समय (शर्त) निर्धारित कर दिया था कि 'तुम्हारे इस दस योजन विस्तारवाले वनमें जो कोई भी पुरुषवाचक जीव प्रवेश करेगा, वह स्त्रीत्वको प्राप्त हो जायगा।' राजा इलको पहलेसे इस 'समय' (शर्त)के विषयमें जानकारी नहीं थी, अतः वे स्वच्छन्दगतिसे शरवणमें प्रविष्ट हुए। प्रवेश करते ही वे स्त्रीत्वको प्राप्त हो गये। उसी समय वह घोड़ा भी घोड़ीके रूपमें परिवर्तित हो गया। इलके शरीरसे सारा पुरुषत्व नष्ट हो गया। इस प्रकार स्त्री-रूप हो जानेपर राजाको परम विस्मय हुआ॥ ३४—४७ $\frac{1}{2}$॥

वह नारी इला नामसे प्रख्यात हुई। उसका रूप बड़ा सुन्दर था। उसके नेत्र कमलदलके समान बड़े-बड़े थे। उसके मुखकी कान्ति पूर्णिमाके चन्द्रमाके सदृश थी। उसका शरीर हलका था। उसके नेत्र चकित-से दीख रहे थे। उसके बाहुमूल उन्नत और भुजाएँ लम्बी थीं तथा बाल नीले एवं घुँघराले थे। उसके शरीरके रोएँ सूक्ष्म और दाँत अत्यन्त मनोहर थे। वह मृदु और गम्भीर स्वरसे बोलनेवाली थी। उसके शरीरका रंग श्याम-गौरमिश्रित था। वह हंस और हस्तीकी-सी चालसे चल रही थी। उसकी दोनों भौंहें धनुषके आकारके सदृश थीं। वह छोटे एवं ताँबेके समान लाल नखाङ्कुरोंसे विभूषित थी। इस प्रकार वह सुन्दरी 'नारी' उस वनमें भ्रमण करती हुई सोचने लगी कि 'इस घोर वनमें कौन मेरा पिता अथवा भाई है तथा कौन मेरी माता है। मैं किस पतिके हाथमें समर्पित की गयी हूँ अर्थात् कौन मेरा पति है! इस भूतलपर मुझे कितने दिनोंतक रहना पड़ेगा।' इस प्रकार वह चिन्तन कर ही रही थी कि इसी बीच सोम-पुत्र बुधने उसे देख लिया और वे उसे प्राप्त करनेके लिये प्रयत्न करने लगे।

विशिष्टाकारवान् दण्डी सकमण्डलुपुस्तकः।
वेणुदण्डकृतावेशः पवित्रकखनित्रकः॥ ५५
द्विजरूपः शिखी ब्रह्म निगदन् कर्णकुण्डलः।
वटुभिश्चान्वितो युक्तैः समित्पुष्पकुशोदकैः॥ ५६
किलान्विषन् वने तस्मिन्नाजुहाव स तामिलाम्।
बहिर्वनस्यान्तरितः किल पादपमण्डले॥ ५७
ससम्भ्रममकस्मात् तां सोपालम्भमिवावदत्।
त्यक्त्वाग्निहोत्रशुश्रूषां क्व गता मन्दिरान्मम॥ ५८
इयं विहारवेला ते ह्यतिक्रामति साम्प्रतम्।
एह्येहि पृथुसुश्रूणि सम्भ्रान्ता केन हेतुना॥ ५९
इयं सायंतनी वेला विहारस्येह वर्तते।
कृत्वोपलेपनं पुष्पैरलङ्कुरु गृहं मम॥ ६०
सा त्वब्रवीद् विस्मृताहं सर्वमेतत् तपोधन।
आत्मानं त्वां च भर्तारं कुलं च वद मेऽनघ॥ ६१
बुधः प्रोवाच तां तन्वीमिला त्वं वरवर्णिनि।
अहं च कामुको नाम बहुविद्यो बुधः स्मृतः॥ ६२
तेजस्विनः कुले जातः पिता मे ब्राह्मणाधिपः।
इति सा तस्य वचनात् प्रविष्टा बुधमन्दिरम्॥ ६३
रत्नस्तम्भसमायुक्तं दिव्यमायाविनिर्मितम्।
इला कृतार्थमात्मानं मेने तद्भवनस्थिता॥ ६४
अहो वृत्तमहो रूपमहो धनमहो कुलम्।
मम चास्य च मे भर्तुरहो लावण्यमुत्तमम्॥ ६५
रेमे च सा तेन सममतिकालमिला ततः।
सर्वभोगमये गेहे यथेन्द्रभवने तथा॥ ६६

उस समय बुधने एक विशिष्ट वेष-भूषावाले दण्डीका रूप धारण कर लिया। उनके हाथोंमें कमण्डलु और पुस्तक शोभा पा रहे थे। उन्होंने बाँसके डंडेमें अनेकों पवित्र वस्तुओंको बाँध रखा था। वे ब्रह्मचारी-वेषमें लम्बी-मोटी शिखा धारण किये हुए थे। समिधा, पुष्प, कुश और जल लिये हुए वटुकोंके साथ वे वेदका पाठ कर रहे थे। वे अपनेको ऐसा प्रकट कर रहे थे मानो उस वनमें किसी वस्तुकी खोज कर रहे हों। इस प्रकार उस वनके बहिर्भागमें वृक्षसमूहोंके झुरमुटमें बैठकर वे उस इलाको बुलाने लगे। इलाके निकट आनेपर वे अकस्मात् चकपकाये हुएकी भाँति उलाहना देते हुए उससे बोले—'सुन्दरि! अग्निहोत्र आदि सेवा-शुश्रूषाका परित्याग करके तुम मेरे घरसे कहाँ चली आयी हो?' यह सुनकर इलाने कहा—'तपोधन! मैं अपनेको, आपको, पतिको और कुलको—इन सभीको भूल गयी हूँ, अतः निष्पाप! आप अपने और मेरे कुलका परिचय दीजिये।' इलाके इस प्रकार पूछनेपर बुधने उस सुन्दरीसे कहा—'वरवर्णिनि! तुम इला हो और मैं बहुत-सी विद्याओंका ज्ञाता बुध नामसे प्रसिद्ध हूँ। मैं तेजस्वी कुलमें उत्पन्न हुआ हूँ और मेरे पिता ब्राह्मणोंके अधिपति हैं।' बुधके इस कथनपर विश्वास करके इला बुधके उस भवनमें प्रविष्ट हुई, जिसमें रत्नोंके खम्भे लगे थे तथा जिसका निर्माण दिव्य मायाके द्वारा हुआ था। उस भवनमें पहुँचकर इला अपनेको कृतार्थ मानने लगी। (वह कहने लगी—) 'कैसा सुन्दर चरित्र है। कैसा अद्भुत रूप है! कितना प्रचुर धन है! कैसा ऊँचा कुल है तथा मेरा और मेरे पतिदेवका कैसा अनुपम सौन्दर्य है!' तदनन्तर वह इला बुधके साथ बहुत समयतक उस सम्पूर्ण भोग-सामग्रियोंसे सम्पन्न घरमें उसी प्रकार सुखसे रहने लगी, जैसे इन्द्रभवनमें हो॥ ४८—६६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे इलाबुधसङ्गमो नामैकादशोऽध्यायः॥ ११॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें इला-बुध-सम्बन्ध नामक ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११॥

बारहवाँ अध्याय

इलाका वृत्तान्त तथा इक्ष्वाकु-वंशका वर्णन

सूत उवाच

अथान्विषन्तो राजानं भ्रातरस्तस्य मानवा:।
इक्ष्वाकुप्रमुखा जग्मुस्तदा शरवणान्तिकम्॥ १

ततस्ते ददृशुः सर्वे वडवामग्रतः स्थिताम्।
रत्नपर्याणकिरणदीप्तकायामनुत्तमाम् ॥ २

पर्याणप्रत्यभिज्ञानात् सर्वे विस्मयमागता:।
अयं चन्द्रप्रभो नाम वाजी तस्य महात्मन:॥ ३

अगमद् वडवारूपमुत्तमं केन हेतुना।
ततस्तु मैत्रावरुणिं पप्रच्छुस्ते पुरोधसम्॥ ४

किमित्येतदभूच्चित्रं वद योगविदां वर।
वसिष्ठश्चाब्रवीत् सर्वं दृष्ट्वा तद् ध्यानचक्षुषा॥ ५

समयः शम्भुदयिताकृतः शरवणे पुरा।
यः पुमान् प्रविशेदत्र स नारीत्वमवाप्स्यति॥ ६

अयमश्वोऽपि नारीत्वमगाद् राज्ञा सहैव तु।
पुनः पुरुषतामेति यथासौ धनदोपमः॥ ७

तथैव यत्नः कर्त्तव्यश्चाराध्यैव पिनाकिनम्।
ततस्ते मानवा जग्मुर्यत्र देवो महेश्वरः॥ ८

तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः पार्वतीपरमेश्वरौ।
तावूचतुरलङ्घ्योऽयं समयः किंतु साम्प्रतम्॥ ९

इक्ष्वाकोरश्वमेधेन यत् फलं स्यात् तदावयोः।
दत्त्वा किम्पुरुषो वीरः स भविष्यत्यसंशयम्॥ १०

तथेत्युक्तास्ततस्ते तु जग्मुर्वैवस्वतात्मजा:।
इक्ष्वाकोश्चाश्वमेधेन चेलः किम्पुरुषोऽभवत्॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (बहुत दिनोंतक राजा इलके राजधानी न लौटनेपर सशङ्कित होकर) उनके छोटे भाई मनु-पुत्र इक्ष्वाकु आदि राजा इल (सुद्युम्न)-का अन्वेषण करते हुए उसी शरवणके निकट जा पहुँचे। वहाँ उन सभीने मार्गके अग्रभागमें खड़ी हुई एक अनुपम घोड़ीको देखा, जिसका शरीर रत्ननिर्मित जीनकी किरणोंसे उद्दीप्त हो रहा था। तत्पश्चात् जीनको पहचानकर वे सभी बन्धु आश्चर्यचकित हो गये (और परस्पर कहने लगे—) 'अरे! यह तो हमारे भाई महात्मा राजा इलका चन्द्रप्रभ नामक घोड़ा है! किस कारण यह सुन्दर घोड़ीके रूपमें परिणत हो गया!' तब वे सभी लौटकर अपने कुल-पुरोहित महर्षि वसिष्ठके पास जाकर पूछने लगे—'योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! ऐसी आश्चर्यजनक घटना क्यों घटित हुई? इसका रहस्य हमें बतलाइये।' तब महर्षि वसिष्ठ ध्यानदृष्टिद्वारा सारा वृत्तान्त जानकर इक्ष्वाकु आदिसे बोले—'राजपुत्रो! पूर्वकालमें शम्भु-पत्नी उमाने इस शरवणके विषयमें ऐसा समय (शर्त) निर्धारित कर रखा है कि 'जो पुरुष इस शरवणमें प्रवेश करेगा, वह स्त्री-रूपमें परिवर्तित हो जायगा।' इसी कारण राजा इलके साथ-ही-साथ यह घोड़ा भी स्त्रीत्वको प्राप्त हो गया है। अब जिस प्रकार राजा इल कुबेरकी भाँति पुनः पुरुषत्वको प्राप्त कर सकें, तुमलोगोंको पिनाकधारी शंकरकी आराधना करके वैसा ही प्रयत्न करना चाहिये।' महर्षि वसिष्ठकी आज्ञा पाकर वे सभी मनु-पुत्र वहाँ गये, जहाँ देवाधिदेव महेश्वर विराजमान थे। वहाँ उन्होंने विभिन्न स्तोत्रोंद्वारा पार्वती और परमेश्वरका स्तवन किया। (उस स्तवनसे प्रसन्न होकर) पार्वती और परमेश्वरने कहा—'राजकुमारो! यद्यपि मेरे इस नियम (शर्त)-का उल्लङ्घन नहीं किया जा सकता, तथापि इस समय उसके निवारणके लिये मैं एक उपाय बतला रहा हूँ। यदि इक्ष्वाकुद्वारा किये गये अश्वमेध-यज्ञका जो कुछ फल हो, वह सारा-का-सारा हम दोनोंको समर्पित कर दिया जाय तो राजा इल निःसंदेह किम्पुरुष (किन्नर) हो जायँगे।' यह सुनकर 'बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा'—यों कहकर वैवस्वत मनुके वे सभी पुत्र राजधानीको लौट आये। घर आकर इक्ष्वाकुने अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किया और उसका पुण्य-फल पार्वती-परमेश्वरको अर्पित कर दिया, जिसके परिणामस्वरूप इल किम्पुरुष हो गये।

मासमेकं पुमान् वीरः स्त्री च मासमभूत् पुनः।
बुधस्य भवने तिष्ठन्निलो गर्भधरोऽभवत्॥ १२
अजीजनत् पुत्रमेकमनेकगुणसंयुतम्।
बुधश्चोत्पाद्य तं पुत्रं स्वर्लोकमगमत् ततः॥ १३

वहाँ वे वीरवर एक मास पुरुषरूपमें रहकर पुनः एक मास स्त्री हो जाते थे। बुधके भवनमें स्त्रीरूपसे रहते समय इलने गर्भ धारण कर लिया था। उस गर्भसे अनेक गुणोंसे सम्पन्न एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रको उत्पन्नकर बुध भूलोकसे पुनः स्वर्गलोकको चले गये॥ १—१३॥

इलस्य नाम्ना तद् वर्षमिलावृतमभूत्तदा।
सोमार्कवंशयोरादाविलोऽभून्मनुनन्दनः॥ १४
एवं पुरूरवाः पुंसोरभवद् वंशवर्धनः।
इक्ष्वाकुरर्कवंशस्य तथैवोक्तस्तपोधनाः॥ १५
इलः किम्पुरुषत्वे च सुद्युम्न इति चोच्यते।
पुनः पुत्रत्रयमभूत् सुद्युम्नस्यापराजितम्॥ १६
उत्कलो वै गयस्तद्वद्धरिताश्वश्च वीर्यवान्।
उत्कलस्योत्कला नाम गयस्य तु गया मता॥ १७
हरिताश्वस्य दिक्पूर्वा विश्रुता कुरुभिः सह।
प्रतिष्ठानेऽभिषिच्याथ स पुरूरवसं सुतम्॥ १८
जगामेलावृतं भोक्तुं वर्षं दिव्यफलाशनम्।
इक्ष्वाकुर्ज्येष्ठदायादो मध्यदेशमवाप्तवान्॥ १९
नरिष्यन्तस्य पुत्रोऽभूच्छुचो नाम महाबलः।
नाभागस्याम्बरीषस्तु धृष्टस्य च सुतत्रयम्॥ २०
धृष्टकेतुश्चित्रनाथो रणधृष्टश्च वीर्यवान्।
आनर्त्तो नाम शर्यातेः सुकन्या चैव दारिका॥ २१
आनर्तस्याभवत् पुत्रो रोचमानः प्रतापवान्।
आनर्तो नाम देशोऽभून्नगरी च कुशस्थली॥ २२
रोचमानस्य पुत्रोऽभूद् रेवो रैवत एव च।
ककुद्मी चापरं नाम ज्येष्ठः पुत्रशतस्य च॥ २३
रेवती तस्य सा कन्या भार्या रामस्य विश्रुता।
करूषस्य तु कारूषा बहवः प्रथिता भुवि॥ २४
पृषध्रो गोवधाच्छूद्रो गुरुशापादजायत।

तभीसे इलके नामपर उस वर्षका नाम इलावृत पड़ गया। इस प्रकार चन्द्रवंश और सूर्यवंशके आदिमें सर्वप्रथम मनु-नन्दन इल ही राजा हुए थे। तपोधन ऋषियो! जैसे इलकी पुरुषावस्थामें उत्पन्न हुए राजा पुरूरवा चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले थे, वैसे ही महाराज इक्ष्वाकु सूर्य-वंशके विस्तारक कहे गये हैं। किम्पुरुषयोनिमें रहते समय इल सुद्युम्न नामसे कहे जाते थे। उन सुद्युम्नके पुनः उत्कल, गय और पराक्रमी हरिताश्व नामक तीन अपराजेय पुत्र उत्पन्न हुए थे। इलने (अपने इन चारों पुत्रोंमेंसे) उत्कलको उत्कल (उड़िसा), गयको गयाप्रदेश और हरिताश्वको कुरुप्रदेशकी सीमावर्तिनी पूर्व दिशाका प्रदेश (राज्य) समर्पित किया। तत्पश्चात् अपने ज्येष्ठ पुत्र पुरूरवाका प्रतिष्ठानपुरमें अभिषेक करके वे स्वयं दिव्य फलाहारका उपभोग करनेके लिये इलावृतवर्षमें चले गये। (सुद्युम्नके बाद) मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु मध्यदेशके अधिकारी हुए। (मनुके अन्य पुत्रोंमें) नरिष्यन्तके शुच नामक महाबली पुत्र हुआ। नाभागके अम्बरीष और धृष्टके धृष्टकेतु, चित्रनाथ और रणधृष्ट नामक तीन पराक्रमी पुत्र हुए। शर्यातिके आनर्त नामक एक पुत्र तथा सुकन्या नाम्नी एक पुत्री हुई। आनर्तके रोचमान नामका एक प्रतापी पुत्र हुआ। आनर्तद्वारा शासित देशका नाम आनर्त (गुजरात) पड़ा और कुशस्थली (द्वारका) नगरी उसकी राजधानी हुई। रोचमानका पुत्र रेव हुआ, जो रैवत और ककुद्मी नामसे भी पुकारा जाता था। वह रोचमानके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ था। उसके रेवती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई, जो बलरामजीकी भार्यारूपसे विख्यात है। करूषके बहुत-से पुत्र थे, जो भूतलपर कारूष नामसे विख्यात हुए। पृषध्र गौकी हत्या कर देनेके कारण गुरुके शापसे शूद्र हो गया॥ १४—२४ $\frac{1}{2}$॥

इक्ष्वाकुवंशं वक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥ २५
इक्ष्वाकोः पुत्रतामाप विकुक्षिर्नाम देवराट्।
ज्येष्ठः पुत्रशतस्यासीद् दश पञ्च च तत्सुताः॥ २६
मेरोरुत्तरतस्ते तु जाताः पार्थिवसत्तमाः।
चतुर्दशोत्तरं चान्यच्छतमस्य तथाभवत्॥ २७
मेरोर्दक्षिणतो ये वै राजानः सम्प्रकीर्तिताः।
ज्येष्ठः ककुत्स्थो नाम्नाभूत्तत्सुतस्तु सुयोधनः॥ २८
तस्य पुत्रः पृथुर्नाम विश्वगश्च पृथोः सुतः।
इन्दुस्तस्य च पुत्रोऽभूद् युवनाश्वस्ततोऽभवत्॥ २९
श्रावस्तश्च महातेजा वत्सकस्तत्सुतोऽभवत्।
निर्मिता येन श्रावस्ती गौडदेशे द्विजोत्तमाः॥ ३०
श्रावस्ताद् बृहदश्वोऽभूत् कुवलाश्वस्ततोऽभवत्।
धुन्धुमारत्वमगमद् धुन्धुनाम्ना हतः पुरा॥ ३१
तस्य पुत्रास्त्रयो जाता दृढाश्वो दण्ड एव च।
कपिलाश्वश्च विख्यातो धौन्धुमारिः प्रतापवान्॥ ३२
दृढाश्वस्य प्रमोदश्च हर्यश्वस्तस्य चात्मजः।
हर्यश्वस्य निकुम्भोऽभूत् संहताश्वस्ततोऽभवत्॥ ३३
अकृताश्वो रणाश्वश्च संहताश्वसुतावुभौ।
युवनाश्वो रणाश्वस्य मान्धाता च ततोऽभवत्॥ ३४
मान्धातुः पुरुकुत्सोऽभूद् धर्मसेनश्च पार्थिवः।
मुचुकुन्दश्च विख्यातः शत्रुजिच्च प्रतापवान्॥ ३५
पुरुकुत्सस्य पुत्रोऽभूद वसुदो नर्मदापतिः।
सम्भूतिस्तस्य पुत्रोऽभूत् त्रिधन्वा च ततोऽभवत्॥ ३६
त्रिधन्वनः सुतो जातस्त्रय्यारुण इति स्मृतः।
तस्मात् सत्यव्रतो नाम तस्मात् सत्यरथःस्मृतः॥ ३७
तस्य पुत्रो हरिश्चन्द्रो हरिश्चन्द्राच्च रोहितः।
रोहिताच्च वृको जातो वृकाद् बाहुरजायत॥ ३८
सगरस्तस्य पुत्रोऽभूद् राजा परमधार्मिकः।
द्वे भार्ये सगरस्यापि प्रभा भानुमती तथा॥ ३९
ताभ्यामाराधितः पूर्वमौर्वोऽग्निः पुत्रकाम्यया।
और्वस्तुष्टस्तयोः प्रादाद् यथेष्टं वरमुत्तमम्॥ ४०
एका षष्टिसहस्राणि सुतमेकं तथापरा।
गृह्णातु वंशकर्तारं प्रभागृह्णाद् बहूंस्तदा॥ ४१
एकं भानुमती पुत्रमगृह्णादसमञ्जसम्।
ततः षष्टिसहस्राणि सुषुवे यादवी प्रभा॥ ४२
खनन्तः पृथिवीं दग्धा विष्णुना येऽश्वमार्गणे।

श्रेष्ठ ऋषियो! अब मैं इक्ष्वाकु-वंशका वर्णन करने जा रहा हूँ आपलोग ध्यानपूर्वक सुनिये। देवराज विकुक्षि इक्ष्वाकुके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। वे इक्ष्वाकुके सौ पुत्रोंमें ज्येष्ठ थे। उन (विकुक्षि)-के पंद्रह पुत्र थे, जो सुमेरुगिरिकी उत्तर दिशामें श्रेष्ठ राजा हुए। विकुक्षिके एक सौ चौदह पुत्र और हुए थे, जो सुमेरुगिरिकी दक्षिण दिशाके शासक कहे गये हैं। विकुक्षिका ज्येष्ठ पुत्र ककुत्स्थ नामसे विख्यात था। उसका पुत्र सुयोधन हुआ। सुयोधनका पुत्र पृथु, पृथुका पुत्र विश्वग, विश्वगका पुत्र इन्दु और इन्दुका पुत्र युवनाश्व हुआ। युवनाश्वका पुत्र श्रावस्त हुआ, जिसे वत्सक भी कहा जाता था। द्विजवरो! उसीने गौडदेशमें श्रावस्ती नामकी नगरी बसायी थी। श्रावस्तसे बृहदश्व और उससे कुवलाश्वका जन्म हुआ, जो पूर्वकालमें धुन्धुद्वारा मारे जानेके कारण धुन्धुमार नामसे विख्यात था। धुन्धुमारके दृढाश्व, दण्ड और कपिलाश्व नामक तीन पुत्र हुए थे, जिनमें प्रतापी कपिलाश्व धौन्धुमारि नामसे भी प्रसिद्ध था। दृढाश्वका पुत्र प्रमोद और उसका पुत्र हर्यश्व हुआ। हर्यश्वका पुत्र निकुम्भ तथा उससे संहताश्वका जन्म हुआ। संहताश्वके अकृताश्व और रणाश्व नामक दो पुत्र हुए। उनमें रणाश्वका पुत्र युवनाश्व हुआ तथा उससे मान्धाताकी उत्पत्ति हुई। मान्धाताके पुरुकुत्स, राजा धर्मसेन और शत्रुओंको पराजित करनेवाले सुप्रसिद्ध प्रतापी मुचुकुन्द—ये तीन पुत्र हुए। इनमें पुरुकुत्सका पुत्र नर्मदापति वसुद हुआ। उसका पुत्र सम्भूति हुआ और सम्भूतिसे त्रिधन्वाका जन्म हुआ। त्रिधन्वासे उत्पन्न हुआ पुत्र त्रय्यारुण नामसे प्रसिद्ध हुआ। उससे सत्यव्रत और सत्यव्रतसे सत्यरथका जन्म हुआ। सत्यरथसे हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्रसे रोहित, रोहितसे वृक और वृकसे बाहुकी उत्पत्ति हुई। बाहुके पुत्र राजा सगर हुए, जो परम धर्मात्मा थे। उन सगरके प्रभा और भानुमती नामवाली दो पत्नियाँ थीं। उन दोनोंने पूर्वकालमें पुत्रकी कामनासे और्वाग्निकी आराधना की थी। उनकी आराधनासे संतुष्ट होकर उन्हें यथेष्ट उत्तम वर प्रदान करते हुए और्वने कहा—'तुम दोनोंमेंसे एकको साठ हजार पुत्र होंगे और दूसरीको केवल एक वंशप्रवर्तक पुत्र होगा। (तुम दोनोंमें जिसकी जैसी इच्छा हो, वह वैसा वरदान ग्रहण करे।)' तब प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको स्वीकार किया और भानुमतीने एक ही पुत्र माँगा। कुछ दिनोंके पश्चात् भानुमतीने असमञ्जसको पैदा किया तथा यदुवंशकी कन्या प्रभाने साठ हजार पुत्रोंको जन्म दिया, जो अश्वमेध-यज्ञके अश्वकी खोजमें जिस समय पृथ्वीको खोद रहे थे, उसी समय उन्हें विष्णु (भगवदवतार कपिल)-ने जलाकर भस्म कर दिया॥ २५—४२ $\frac{1}{2}$॥

अस्मञ्जसस्तु तनयो योंऽशुमान् नाम विश्रुतः॥ ४३
तस्य पुत्रो दिलीपस्तु दिलीपात्तु भगीरथः।
येन भागीरथी गङ्गा तपः कृत्वावतारिता॥ ४४
भगीरथस्य तनयो नाभाग इति विश्रुतः।
नाभागस्याम्बरीषोऽभूत् सिन्धुद्वीपस्ततोऽभवत्॥ ४५
तस्यायुतायुः पुत्रोऽभूद् ऋतुपर्णस्ततोऽभवत्।
तस्य कल्माषपादस्तु सर्वकर्मा ततः स्मृतः॥ ४६
तस्यानरण्यः पुत्रोऽभून्निघ्नस्तस्य सुतोऽभवत्।
निघ्नपुत्रावुभौ जातावनमित्ररघू नृपौ॥ ४७
अनमित्रो वनमगाद् भविता स कृते नृपः।
रघोरभूद् दिलीपस्तु दिलीपादजकस्तथा॥ ४८
दीर्घबाहुरजाज्जातश्चाजपालस्ततो नृपः।
तस्माद् दशरथो जातस्तस्य पुत्रचतुष्टयम्॥ ४९
नारायणात्मकाः सर्वे रामस्तेष्वग्रजोऽभवत्।
रावणान्तकरस्तद्वद् रघूणां वंशवर्धनः॥ ५०
वाल्मीकिस्तस्य चरितं चक्रे भार्गवसत्तमः।
तस्य पुत्रौ कुशलवाविक्ष्वाकुकुलवर्धनौ॥ ५१
अतिथिस्तु कुशाज्जज्ञे निषधस्तस्य चात्मजः।
नलस्तु नैषधस्तस्मान्नभास्तस्मादजायत॥ ५२
नभसः पुण्डरीकोऽभूत् क्षेमधन्वा ततः स्मृतः।
तस्य पुत्रोऽभवद् वीरो देवानीकः प्रतापवान्॥ ५३
अहीनगुस्तस्य सुतः सहस्राश्वस्ततः परः।
ततश्चन्द्रावलोकस्तु तारापीडस्ततोऽभवत्॥ ५४
तस्यात्मजश्चन्द्रगिरिर्भानुश्चन्द्रस्ततोऽभवत्।
श्रुतायुरभवत्तस्माद् भारते यो निपातितः॥ ५५
नलौ द्वावेव विख्यातौ वंशे कश्यपसम्भवे।
वीरसेनसुतस्तद्वन्नैषधश्च नराधिपः॥ ५६
एते वैवस्वते वंशे राजानो भूरिदक्षिणाः।
इक्ष्वाकुवंशप्रभवाः प्राधान्येन प्रकीर्तिताः॥ ५७

असमञ्जसका पुत्र अंशुमान् नामसे विख्यात हुआ। उसके पुत्र दिलीप और दिलीपसे भगीरथ हुए, जो तपस्या करके भागीरथी गङ्गाको स्वर्गसे भूतलपर ले आये। भगीरथके पुत्र नाभाग नामसे प्रसिद्ध हुए। नाभागके पुत्र अम्बरीष और उनसे सिन्धुद्वीपका जन्म हुआ। सिन्धुद्वीपका पुत्र अयुतायु हुआ तथा उससे ऋतुपर्णकी उत्पत्ति हुई। ऋतुपर्णका पुत्र कल्माषपाद और उससे सर्वकर्मा पैदा हुआ। उसका पुत्र अनरण्य और अनरण्यका पुत्र निघ्न हुआ। निघ्नके अनमित्र और राजा रघु नामके दो पुत्र हुए, जिनमें अनमित्र वनमें चला गया, जो कृतयुगमें राजा होगा। रघुसे दिलीप तथा दिलीपसे अज हुए। अजसे दीर्घबाहु और उससे राजा अजपाल हुए। अजपालसे दशरथ पैदा हुए, जिनके चार पुत्र थे। वे सब-के-सब नारायणके अंशसे प्रादुर्भूत हुए थे। उनमें श्रीराम सबसे ज्येष्ठ थे, जो रावणका अन्त करनेवाले तथा रघुवंशके प्रवर्धक थे। भृगुवंशप्रवर महर्षि वाल्मीकिने श्रीरामके चरित्रका (रामायणरूपमें विस्तारपूर्वक) वर्णन किया है। श्रीरामके कुश और लव नामक दो पुत्र हुए, जो इक्ष्वाकु-कुलके विस्तारक थे। कुशसे अतिथि और उससे निषधका जन्म हुआ। निषधका पुत्र नल हुआ और उससे नभकी उत्पत्ति हुई। नभसे पुण्डरीकका तथा उससे क्षेमधन्वाका जन्म हुआ। क्षेमधन्वाका पुत्र प्रतापी वीरवर देवानीक हुआ। उसका पुत्र अहीनगु तथा उससे सहस्राश्वका जन्म हुआ। सहस्राश्वसे चन्द्रावलोक और उससे तारापीडकी उत्पत्ति हुई। तारापीडसे चन्द्रागिरि और उससे भानुचन्द्र पैदा हुआ। भानुचन्द्रका पुत्र श्रुतायु हुआ, जो महाभारत-युद्धमें मारा गया था। महर्षि कश्यपद्वारा उत्पन्न हुए इस वंशमें नल नामसे दो राजा विख्यात हुए हैं, उनमें एक वीरसेनका पुत्र तथा दूसरा राजा निषधका पुत्र था। इस प्रकार वैवस्वतवंशीय महाराज इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न होनेवाले ये सभी राजा अतिशय दानशील थे। मैंने इनका मुख्यरूपसे वर्णन कर दिया॥ ४३—५७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सूर्यवंशानुकीर्तनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सूर्यवंशानुकीर्तन नामक बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२॥

तेरहवाँ अध्याय

पितृ-वंश-वर्णन तथा सतीके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें देवीके एक सौ आठ नामोंका विवरण

मनुरुवाच

भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि पितॄणां वंशमुत्तमम्।
रवेश्च श्राद्धदेवत्वं सोमस्य च विशेषतः॥ १

मत्स्य उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि पितॄणां वंशमुत्तमम्।
स्वर्गे पितृगणा सप्त त्रयस्तेषाममूर्त्तयः॥ २
मूर्त्तिमन्तोऽथ चत्वारः सर्वेषाममितौजसः।
अमूर्त्तयः पितृगणा वैराजस्य प्रजापतेः॥ ३
यजन्ति यान् देवगणा वैराजा इति विश्रुताः।
ये चैते योगविभ्रष्टाः प्राप्य लोकान् सनातनान्॥ ४
पुनर्ब्रह्मदिनान्ते तु जायन्ते ब्रह्मवादिनः।
सम्प्राप्य तां स्मृतिं भूयो योगं सांख्यमनुत्तमम्॥ ५
सिद्धिं प्रयान्ति योगेन पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।
योगिनामेव देयानि तस्माच्छ्राद्धानि दातृभिः॥ ६
एतेषां मानसी कन्या पत्नी हिमवतो मता।
मैनाकस्तस्य दायादः क्रौञ्चस्तस्याग्रजोऽभवत्।
क्रौञ्चद्वीपः स्मृतो येन चतुर्थो घृतसंवृतः॥ ७
मेना च सुषुवे तिस्रः कन्या योगवतीस्ततः।
उमैकपर्णा पर्णा च तीव्रव्रतपरायणाः॥ ८
रुद्रस्यैका सितस्यैका जैगीषव्यस्य चापरा।
दत्ता हिमवता बालाः सर्वा लोके तपोऽधिकाः॥ ९

ऋषय ऊचुः

कस्माद् दाक्षायणी पूर्वं ददाहात्मानमात्मना।
हिमवद्दुहिता तद्वत् कथं जाता महीतले॥ १०
संहरन्ती किमुक्तासौ सुता वा ब्रह्मसूनुना।
दक्षेण लोकजननी सूत विस्तरतो वद॥ ११

मनुने पूछा—भगवन्! अब मैं पितरोंके उत्तम वंशका वर्णन सुनना चाहता हूँ। उसमें भी विशेषरूपसे यह जाननेकी अभिलाषा है कि सूर्य और चन्द्रमा श्राद्धके देवता कैसे हो गये?॥ १॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे! बड़े आनन्दकी बात है, अब मैं तुमसे पितरोंके श्रेष्ठ वंशका वर्णन कर रहा हूँ; सुनो। स्वर्गमें पितरोंके सात गण हैं। उनमें तीन मूर्तिरहित और चार मूर्तिमान् हैं। वे सब-के-सब अमित तेजस्वी हैं। अमूर्त पितृगण वैराजनामक प्रजापतिकी संतान हैं, इसीलिये वैराज नामसे प्रसिद्ध हैं। देवगण उनकी पूजा करते हैं। ये सभी सनातन लोकोंको प्राप्त करनेके पश्चात् योगमार्गसे च्युत हो जाते हैं तथा ब्रह्माके दिनके अन्तमें पुनः ब्रह्मवादीरूपमें उत्पन्न होते हैं। उस समय ये पूर्वजन्मकी स्मृति हो जानेसे पुनः सर्वोत्तम सांख्ययोगका आश्रय लेकर योगाभ्यासद्वारा आवागमनके चक्रसे मुक्त करनेवाली सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं। इस कारण दाताओंद्वारा योगियोंको ही श्राद्धीय वस्तुएँ प्रदान करनी चाहिये। इन उपर्युक्त पितरोंकी मानसी कन्या मेना हिमवान्की पत्नी मानी गयी है। मैनाक उसका पुत्र है। क्रौञ्च उससे भी पहले पैदा हुआ था। इसी क्रौञ्चके नामपर घृतसे परिवेष्टित चतुर्थ द्वीप क्रौञ्चद्वीप नामसे विख्यात है। तत्पश्चात् मेनाने उमा, एकपर्णा और अपर्णा नामकी तीन कन्याओंको जन्म दिया, जो सब-की-सब योगाभ्यासमें निरत, कठोर व्रतमें तत्पर तथा लोकमें सर्वश्रेष्ठ तपस्विनी थीं। हिमवान्ने इनमेंसे एक कन्या रुद्रको, एक सितको तथा एक जैगीषव्यको प्रदान कर दी॥ २—९॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! पूर्वकालमें दक्ष-पुत्री सतीने अपने शरीरको अपने-आप ही क्यों जला डाला? तथा पुनः उसी प्रकारका शरीर धारणकर वे भूतलपर हिमवान्की कन्याके रूपमें कैसे प्रकट हुईं? उस समय ब्रह्माके पुत्र दक्षने लोकजननी सतीको, जो उन्हींकी पुत्री थीं, कौन-सी ऐसी बात कह दी थी, जिससे वे स्वयं ही जल मरीं? ये सभी बातें हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ १०—११॥

सूत उवाच

दक्षस्य यज्ञे वितते प्रभूतवरदक्षिणे।
समाहूतेषु देवेषु प्रोवाच पितरं सती॥ १२

किमर्थं तात भर्ता मे यज्ञेऽस्मिन्नाभिमन्त्रितः।
अयोग्य इति तामाह दक्षो यज्ञेषु शूलभृत्॥ १३

उपसंहारकृद् रुद्रस्तेनामङ्गलभागयम्।
चुकोपाथ सती देहं त्यक्ष्यामीति त्वदुद्भवम्॥ १४

दशानां त्वं च भविता पितॄणामेकपुत्रकः।
क्षत्रियत्वेऽश्वमेधे च रुद्रात् त्वं नाशमेष्यसि॥ १५

इत्युक्त्वा योगमास्थाय स्वदेहोद्भवतेजसा।
निर्दहन्ती तदात्मानं सदेवासुरकिन्नरैः॥ १६

किं किमेतदिति प्रोक्ता गन्धर्वगणगुह्यकैः।
उपगम्याब्रवीद् दक्षः प्रणिपत्याथ दुःखितः॥ १७

त्वमस्य जगतो माता जगत्सौभाग्यदेवता।
दुहितृत्वं गता देवि ममानुग्रहकाम्यया॥ १८

न त्वया रहितं किंचिद् ब्रह्माण्डे सचराचरम्।
प्रसादं कुरु धर्मज्ञे न मां त्यक्तुमिहार्हसि॥ १९

प्राह देवी यदारब्धं तत् कार्यं मे न संशयः।
किंत्ववश्यं त्वया मर्त्ये हतयज्ञेन शूलिना॥ २०

प्रसादे लोकसृष्ट्यर्थं तपः कार्यं ममान्तिके।
प्रजापतिस्त्वं भविता दशानामङ्गजोऽप्यलम्॥ २१

मदंशेनाङ्गनाषष्टिर्भविष्यन्त्यङ्गजास्तव।
मत्संनिधौ तपः कुर्वन् प्राप्स्यसे योगमुत्तमम्॥ २२

एवमुक्तोऽब्रवीद् दक्षः केषु केषु मयानघे।
तीर्थेषु च त्वं द्रष्टव्या स्तोतव्या कैश्च नामभिः॥ २३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीनकालमें दक्षने एक विशाल यज्ञका अनुष्ठान किया था; उसमें प्रचुर धनराशि दक्षिणाके रूपमें बाँटी गयी थी तथा सभी देवता (अपना-अपना भाग ग्रहण करनेके लिये) आमन्त्रित किये गये थे। (परंतु द्वेषवश शिवजीको निमन्त्रण नहीं भेजा गया था। तब वहाँ अपने पतिका भाग न देखकर) सतीने पिता दक्षसे पूछा—'पिताजी! अपने इस विशाल यज्ञमें आपने मेरे पतिदेवको क्यों नहीं आमन्त्रित किया?' तब दक्षने सतीसे कहा—'बेटी! तुम्हारा पति त्रिशूल धारण कर रुद्ररूपसे जगत्का उपसंहार करता है, जिससे वह अमङ्गल-भागी है, इस कारण वह यज्ञोंमें भाग पानेके लिये अयोग्य है।' यह सुनकर सती क्रोधसे तमतमा उठीं और बोलीं—'तात! अब मैं तुम्हारे पापी शरीरसे उत्पन्न हुए अपनी देहका परित्याग कर दूँगी। तुम दस पितरोंके एकमात्र पुत्र होगे और क्षत्रिय-योनिमें जन्म लेनेपर अश्वमेध-यज्ञके अवसरपर रुद्रद्वारा तुम्हारा विनाश हो जायगा।' ऐसा कहकर सतीने योगबलका आश्रय लिया और स्वतः शरीरसे प्रकट हुए तेजसे अपने शरीरको जलाना प्रारम्भ कर दिया। तब देवता, असुर और किन्नरोंके साथ गन्धर्व एवं गुह्यकगण 'अरे! यह क्या हो रहा है? यह क्या हो रहा है?' इस प्रकार हो-हल्ला मचाने लगे। यह देखकर दक्ष भी दुःखी हो सतीके निकट गये और प्रणाम करके बोले—'देवि! तुम इस जगत्की जननी तथा जगत्को सौभाग्य प्रदान करनेवाली देवता हो। तुम मुझपर अनुग्रह करनेकी कामनासे ही मेरी पुत्री होकर अवतीर्ण हुई हो। धर्मज्ञे! इस निखिल ब्रह्माण्डमें—समस्त चराचर वस्तुओंमें कुछ भी तुमसे रहित नहीं है अर्थात् सबमें तुम्हारी सत्ता व्याप्त है। मुझपर कृपा करो। इस अवसरपर तुम्हें मेरा परित्याग नहीं करना चाहिये।' (दक्षके इस प्रकार प्रार्थना करनेपर) देवीने कहा—'दक्ष! मैंने जिस कार्यका आरम्भ कर दिया है, उसे तो निःसंदेह अवश्य ही पूर्ण करूँगी, किंतु त्रिशूलधारी शिवजीद्वारा यज्ञ-विध्वंस हो जानेपर उनको प्रसन्न करनेके लिये तुम मृत्युलोकमें लोक-सृष्टिकी इच्छासे मेरे निकट तपस्या करना। उसके प्रभावसे तुम प्रचेता नामके दस पिताओंके एकमात्र पुत्र होनेपर भी प्रजापति हो जाओगे। उस समय मेरे अंशसे तुम्हें साठ कन्याएँ उत्पन्न होंगी तथा मेरे समीप तपस्या करते हुए तुम्हें उत्तम योगकी प्राप्ति हो जायगी।' ऐसा कहे जानेपर दक्षने पूछा—'पाप-रहित देवि! इस कार्यके निमित्त मुझे किन-किन तीर्थस्थानोंमें जाकर तुम्हारा दर्शन करना चाहिये तथा किन-किन नामोंद्वारा तुम्हारा स्तवन करना चाहिये'॥ १२—२३॥

देव्युवाच

सर्वदा सर्वभूतेषु द्रष्टव्या सर्वतो भुवि।
सर्वलोकेषु यत् किंचिद् रहितं न मया विना॥ २४
तथापि येषु स्थानेषु द्रष्टव्या सिद्धिमीप्सुभिः।
स्मर्तव्या भूतिकामैर्वा तानि वक्ष्यामि तत्त्वतः॥ २५
वाराणस्यां विशालाक्षी नैमिषे लिङ्गधारिणी।
प्रयागे ललिता देवी कामाक्षी गन्धमादने॥ २६
मानसे कुमुदा नाम विश्वकाया तथाम्बरे॥ २७
गोमन्ते गोमती नाम मन्दरे कामचारिणी।
मदोत्कटा चैत्ररथे जयन्ती हस्तिनापुरे॥ २८
कान्यकुब्जे तथा गौरी रम्भा मलयपर्वते।
एकाम्रके कीर्तिमती विश्वा विश्वेश्वरे विदुः॥ २९
पुष्करे पुरुहूतेति केदारे मार्गदायिनी।
नन्दा हिमवतः पृष्ठे गोकर्णे भद्रकर्णिका॥ ३०
स्थाण्वीश्वरे भवानी तु बिल्वके बिल्वपत्रिका।
श्रीशैले माधवी नाम भद्रा भद्रेश्वरे तथा॥ ३१
जया वराहशैले तु कमला कमलालये।
रुद्रकोट्यां च रुद्राणी काली कालंजरे गिरौ॥ ३२
महालिङ्गे तु कपिला मर्कोटे मुकुटेश्वरी।
शालग्रामे महादेवी शिवलिङ्गे जलप्रिया॥ ३३
मायापुर्यां कुमारी तु संताने ललिता तथा।
उत्पलाक्षी सहस्राक्षे कमलाक्षे महोत्पला॥ ३४
गङ्गायां मङ्गला नाम विमला पुरुषोत्तमे।
विपाशायाममोघाक्षी पाटला पुण्ड्रवर्धने॥ ३५
नारायणी सुपार्श्वे तु त्रिकूटे भद्रसुन्दरी।
विपुले विपुला नाम कल्याणी मलयाचले॥ ३६
कोटवी कोटितीर्थे तु सुगन्धा माधवे वने।
गोदाश्रमे त्रिसंध्या तु गङ्गाद्वारे रतिप्रिया॥ ३७
शिवकुण्डे शिवानन्दा नन्दिनी देविकातटे।
रुक्मिणी द्वारवत्यां तु राधा वृन्दावने वने॥ ३८

देवीने कहा—दक्ष! यद्यपि भूतलपर समस्त प्राणियोंमें सब ओर सर्वदा मेरा ही दर्शन करना चाहिये; क्योंकि सम्पूर्ण लोकोंमें जो कुछ पदार्थ है, वह सब मुझसे रहित नहीं है, अर्थात् सभी पदार्थोंमें मेरी सत्ता विद्यमान है, तथापि सिद्धिकी कामनावाले अथवा ऐश्वर्याभिलाषी जनोंद्वारा जिन-जिन तीर्थस्थानोंमें मेरा दर्शन और स्मरण करना चाहिये, उनका मैं यथार्थरूपसे वर्णन कर रही हूँ। मैं वाराणसीमें विशालाक्षी, नैमिषारण्यमें लिङ्गधारिणी, प्रयागमें ललितादेवी, गन्धमादन पर्वतपर कामाक्षी, मानसरोवरतीर्थमें कुमुदा, अम्बरमें विश्वकाया, गोमन्त (गोआ)-में गोमती, मन्दराचलपर कामचारिणी, चैत्ररथवनमें मदोत्कटा, हस्तिनापुरमें जयन्ती, कान्यकुब्जमें गौरी, मलयपर्वतपर रम्भा, एकाम्रक (भुवनेश्वर)-तीर्थमें कीर्तिमती, विश्वेश्वरमें विश्वा, पुष्करमें पुरुहूता, केदारतीर्थमें मार्गदायिनी, हिमवान्‌के पृष्ठभागमें नन्दा, गोकर्णतीर्थमें भद्रकर्णिका, स्थानेश्वर (थानेश्वर)-में भवानी, बिल्वतीर्थमें बिल्वपत्रिका, श्रीशैलपर माधवी, भद्रेश्वरतीर्थमें भद्रा, वराहशैलपर जया, कमलालयतीर्थमें कमला, रुद्रकोटिमें रुद्राणी, कालञ्जर गिरिपर काली, महालिङ्गतीर्थमें कपिला, मर्कोटमें मुकुटेश्वरी, शालग्रामतीर्थमें महादेवी, शिवलिङ्गमें जलप्रिया, मायापुरी (ऋषिकेश)-में कुमारी, संतानतीर्थमें ललिता, सहस्राक्षतीर्थमें उत्पलाक्षी, कमलाक्षतीर्थमें महोत्पला, गङ्गामें मङ्गला, पुरुषोत्तमतीर्थ (जगन्नाथपुरी)-में विमला, विपाशामें अमोघाक्षी, पुण्ड्रवर्धनमें पाटला, सुपार्श्वतीर्थमें नारायणी, त्रिकूटमें भद्रसुन्दरी, विपुलमें विपुला, मलयाचलपर कल्याणी, कोटितीर्थमें कोटवी, माधव-वनमें सुगन्धा, गोदाश्रममें त्रिसंध्या, गङ्गाद्वार (हरिद्वार)-में रतिप्रिया, शिवकुण्डतीर्थमें शिवानन्दा, देविका (पंजाबकी देवनदी)-के तटपर नन्दिनी, द्वारकापुरीमें रुक्मिणी और वृन्दावनमें राधा हूँ॥ २४—३८॥

देवकी मथुरायां तु पाताले परमेश्वरी।
चित्रकूटे तथा सीता विन्ध्ये विन्ध्याधिवासिनी॥ ३९
सह्याद्रावेकवीरा तु हरिश्चन्द्रे तु चन्द्रिका।
रमणा रामतीर्थे तु यमुनायां मृगावती॥ ४०
करवीरे महालक्ष्मीरुमादेवी विनायके।
अरोगा वैद्यनाथे तु महाकाले महेश्वरी॥ ४१
अभयेत्युष्णतीर्थेषु चामृता विन्ध्यकन्दरे।
माण्डव्ये माण्डवी नाम स्वाहा माहेश्वरे पुरे॥ ४२

मैं मथुरापुरीमें देवकी, पातालमें परमेश्वरी, चित्रकूटमें सीता, विन्ध्यपर्वतपर विन्ध्याधिवासिनी, सह्याद्रिपर एकवीरा, हरिश्चन्द्रतीर्थमें चन्द्रिका, रामतीर्थमें रमणा, यमुनामें मृगावती, करवीर (कोल्हापुर)-में महालक्ष्मी, विनायकतीर्थमें उमादेवी, वैद्यनाथमें अरोगा, महाकालमें महेश्वरी, उष्णतीर्थोंमें अभया, विन्ध्यकन्दरमें अमृता, माण्डव्यतीर्थमें माण्डवी, माहेश्वरपुरमें स्वाहा,

छागलाण्डे प्रचण्डा तु चण्डिका मकरन्दके।
सोमेश्वरे वरारोहा प्रभासे पुष्करावती॥ ४३
देवमाता सरस्वत्यां पारावारतटे मता।
महालये महाभागा पयोष्ण्यां पिङ्गलेश्वरी॥ ४४
सिंहिका कृतशौचे तु कार्त्तिकेये यशस्करी।
उत्पलावर्तके लोला सुभद्रा शोणसंगमे॥ ४५
माता सिद्धपुरे लक्ष्मीरङ्गना भरताश्रमे।
जालंधरे विश्वमुखी तारा किष्किन्धपर्वते॥ ४६
देवदारुवने पुष्टिर्मेधा काश्मीरमण्डले।
भीमा देवी हिमाद्रौ तु पुष्टिर्विश्वेश्वरे तथा॥ ४७
कपालमोचने शुद्धिर्माता कायावरोहणे।
शङ्खोद्धारे ध्वनिर्नाम धृतिः पिण्डारके तथा॥ ४८
काला तु चन्द्रभागायामच्छोदे शिवकारिणी।
वेणायाममृता नाम बदर्यामुर्वशी तथा॥ ४९
औषधी चोत्तरकुरौ कुशद्वीपे कुशोदका।
मन्मथा हेमकूटे तु मुकुटे सत्यवादिनी॥ ५०
अश्वत्थे वन्दनीया तु निधिर्वैश्रवणालये।
गायत्री वेदवदने पार्वती शिवसंनिधौ॥ ५१
देवलोके तथेन्द्राणी ब्रह्मास्येषु सरस्वती।
सूर्यबिम्बे प्रभा नाम मातॄणां वैष्णवी मता॥ ५२
अरुंधती सतीनां तु रामासु च तिलोत्तमा।
चित्ते ब्रह्मकला नाम शक्तिः सर्वशरीरिणाम्॥ ५३

छागलाण्डमें प्रचण्डा, मकरन्दमें चण्डिका, सोमेश्वरतीर्थमें वरारोहा, प्रभासमें पुष्करावती, सरस्वतीमें देवमाता, समुद्रतटवर्ती महालयतीर्थमें महाभागा, पयोष्णी-(पैनगङ्गा)-में पिङ्गलेश्वरी, कृतशौचतीर्थमें सिंहिका, कार्त्तिकेयमें यशस्करी, उत्पलावर्तकमें लोला, शोणसंगममें सुभद्रा, सिद्धपुरमें लक्ष्मी माता, भरताश्रममें अङ्गना, जालन्धरपर्वतपर विश्वमुखी, किष्किन्धापर्वतपर तारा, देवदारुवनमें पुष्टि, काश्मीरमण्डलमें मेधा, हिमगिरिपर भीमादेवी, निश्वेश्वरमें पुष्टि, कपालमोचनमें शुद्धि, कायावरोहण (कारावन, गुजरात)-में माता, शङ्खोद्धारमें ध्वनि, पिण्डारक-क्षेत्रमें धृति, चन्द्रभागा (चनाब)-में काला, अच्छोदमें शिवकारिणी, वेणामें अमृता, बदरीतीर्थमें उर्वशी, उत्तरकुरुमें औषधी, कुशद्वीपमें कुशोदका, हेमकूटपर्वतपर मन्मथा, मुकुटमें सत्यवादिनी, अश्वत्थतीर्थमें वन्दनीया, वैश्रवणालयमें निधि, वेदवदनमें गायत्री, शिव-सन्निधिमें पार्वती, देवलोकमें इन्द्राणी, ब्रह्माके मुखोंमें सरस्वती, सूर्य-बिम्बमें प्रभा, माताओंमें वैष्णवी, सतियोंमें अरुन्धती, सुन्दरी स्त्रियोंमें तिलोत्तमा, चित्तमें ब्रह्मकला और अखिल शरीरधारियोंमें शक्ति-नामसे निवास करती हूँ।* ॥ ३९—५३ ॥

एतदुद्देशतः प्रोक्तं नामाष्टशतमुत्तमम्।
अष्टोत्तरं च तीर्थानां शतमेतदुदाहृतम्॥ ५४
यः स्मरेच्छृणुयाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते।
एषु तीर्थेषु यः कृत्वा स्नानं पश्यति मां नरः॥ ५५
सर्वपापविनिर्मुक्तः कल्पं शिवपुरे वसेत्।
यस्तु मत्परमं कालं करोत्येतेषु मानवः॥ ५६
स भित्त्वा ब्रह्मसदनं पदमभ्येति शांकरम्।
नाम्नामष्टशतं यस्तु श्रावयेच्छिवसन्निधौ॥ ५७
तृतीयायामथाष्टम्यां बहुपुत्रो भवेन्नरः।
गोदाने श्राद्धदाने वा अहन्यहनि वा बुधः॥ ५८
देवार्चनविधौ विद्वान् पठन् ब्रह्माधिगच्छति।
एवं वदन्ती सा तत्र ददाहात्मानमात्मना॥ ५९

इस प्रकार मैंने अपने एक सौ आठ श्रेष्ठ नामोंका वर्णन कर दिया। इसीके साथ एक सौ आठ तीर्थोंका भी नामोल्लेख हो गया। जो मनुष्य मेरे इन नामोंका स्मरण करेगा अथवा दूसरेके मुखसे श्रवणमात्र कर लेगा, वह अपने निखिल पापोंसे मुक्त हो जायगा। इसी प्रकार जो मनुष्य इन उपर्युक्त तीर्थोंमें स्नान करके मेरा दर्शन करेगा, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर कल्पपर्यन्त शिवपुरमें निवास करेगा तथा जो मानव इन तीर्थोंमें मेरे इस परम अन्तिम समयका स्मरण करेगा, वह ब्रह्माण्डका भेदन करके शङ्करजीके परम पद (शिवलोक)-को प्राप्त हो जायगा। जो मनुष्य तृतीया अथवा अष्टमी तिथिके दिन शिवजीके संनिकट जाकर मेरे इन एक सौ आठ नामोंका पाठ करके उन्हें सुनायेगा, वह बहुत-से पुत्रोंवाला हो जायगा। जो विद्वान् गोदान, श्राद्धदान अथवा प्रतिदिन देवार्चनके समय इन नामोंका पाठ करेगा, वह परब्रह्म-पदको प्राप्त हो जायगा। इस प्रकारकी बातें कहती हुई सतीने दक्षके उस यज्ञमण्डपमें अपने-आप ही अपने शरीरको जलाकर भस्म

*यह शक्तिपीठ-वर्णन पद्म, देवीभागवत एवं स्कन्दादि अन्य ४ पुराणोंमें भी यों ही है। इनकी पाठशुद्धि तथा स्थानोंके परिचयपर डॉ० सी० सरकार तथा नरपति मिश्रके शोधप्रबन्ध श्रेष्ठ हैं।

स्वायम्भुवोऽपि कालेन दक्षः प्राचेतसोऽभवत्।
पार्वती साभवद् देवी शिवदेहार्धधारिणी॥ ६०
मेनागर्भसमुत्पन्ना भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
अरुन्धती जपन्त्येतत् प्राप योगमनुत्तमम्॥ ६१
पुरूरवाश्च राजर्षिर्लोके व्यजेयतामगात्।
ययातिः पुत्रलाभं च धनलाभं च भार्गवः॥ ६२
तथान्ये देवदैत्याश्च ब्राह्मणाः क्षत्रियास्तथा।
वैश्याः शूद्राश्च बहवः सिद्धिमीयुर्यथेप्सिताम्॥ ६३
यत्रैतल्लिखितं तिष्ठेत् पूज्यते देवसंनिधौ।
न तत्र शोको दौर्गत्यं कदाचिदपि जायते॥ ६४

कर दिया। पुनः यथोक्त समय आनेपर ब्रह्माके पुत्र दक्ष प्रचेताओंके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए तथा सतीदेवी शिवजीके अर्धाङ्गमें विराजमान होनेवाली पार्वतीरूपसे मेनाके गर्भसे प्रादुर्भूत हुईं, जो भुक्ति (भोग) और मुक्तिरूप फल प्रदान करनेवाली हैं। इन्हीं पूर्वोक्त एक सौ आठ नामोंका जप करनेसे अरुन्धतीने सर्वोत्तम योगसिद्धि प्राप्त की, राजर्षि पुरूरवा लोकमें अजेय हो गये, ययातिने पुत्र-लाभ किया और भृगुनन्दनको धन-सम्पत्तिकी प्राप्ति हुई। इसी प्रकार अन्यान्य बहुत-से देवता, दैत्य, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंने भी (इन नामोंके जपसे) मनोवाञ्छित सिद्धियाँ प्राप्त कीं। जहाँ यह नामावली लिखकर रखी रहती है अथवा किसी देवताके संनिकट रखकर इसकी पूजा होती है, वहाँ कभी शोक और दुर्गतिका प्रवेश नहीं होता॥ ५४—६४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुवर्णने गौरीनामाष्टोत्तरशतकथनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः॥ १३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितरोंके वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें गौरीनामाष्टोत्तरशतकथन नामक तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३॥

चौदहवाँ अध्याय

अच्छोदाका पितृलोकसे पतन तथा उसकी प्रार्थनापर पितरोंद्वारा उसका पुनरुद्धार

सूत उवाच

लोकाः सोमपथा नाम यत्र मारीचनन्दनाः।
वर्तन्ते देवपितरो देवा यान् भावयन्त्यलम्॥ १
अग्निष्वात्ता इति ख्याता यज्वानो यत्र संस्थिताः।
अच्छोदा नाम तेषां तु मानसी कन्यका नदी॥ २
अच्छोदं नाम च सरः पितृभिर्निर्मितं पुरा।
अच्छोदा तु तपश्चक्रे दिव्यं वर्षसहस्रकम्॥ ३
आजग्मुः पितरस्तुष्टाः किल दातुं च तां वरम्।
दिव्यरूपधराः सर्वे दिव्यमाल्यानुलेपनाः॥ ४
सर्वे युवानो बलिनः कुसुमायुधसंनिभाः।
तन्मध्येऽमावसुं नाम पितरं वीक्ष्य साङ्गना॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! मरीचिके वंशज देवताओंके पितृगण जहाँ निवास करते हैं, वे लोक सोमपथके नामसे विख्यात हैं। देवतालोग उन पितरोंका ध्यान किया करते हैं। वे यज्ञपरायण पितृगण अग्निष्वात्त नामसे प्रसिद्ध हैं। जहाँ वे रहते हैं, वहीं अच्छोदा* नामकी एक नदी प्रवाहित होती है, जो उन्हीं पितरोंकी मानसी कन्या है। प्राचीनकालमें पितरोंने वहीं एक अच्छोद नामक सरोवरका भी निर्माण किया था। पूर्वकालमें अच्छोदाने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्या की। उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर पितृगण उसे वर प्रदान करनेके लिये उसके समीप पधारे। वे सब-के-सब पितर दिव्य रूपधारी थे। उनके शरीरपर दिव्य सुगन्धका अनुलेप लगा हुआ था तथा गलेमें दिव्य पुष्पमाला लटक रही थी। वे सभी नवयुवक, बलसम्पन्न एवं कामदेवके सदृश सौन्दर्यशाली थे। उन पितरोंमें अमावसु नामक पितरको

* इस अध्यायके अन्तमें वर्णित अच्छोद सरोवर और अच्छोदा नदी—दोनों कश्मीरमें हैं तथा परम प्रसिद्ध हैं। सरोवरको आजकल वहाँके लोग 'अच्छावत' कहते हैं।

वव्रे वरार्थिनी सङ्गं कुसुमायुधपीडिता।
योगाद् भ्रष्टा तु सा तेन व्यभिचारेण भामिनी॥ ६

धरां तु नास्पृशत् पूर्वं पपाताथ भुवस्तले।
तिथावमावसुर्यस्यामिच्छां चक्रे न तां प्रति॥ ७

धैर्येण तस्य सा लोकैरमावास्येति विश्रुता।
पितृणां वल्लभा तस्मात्तस्यामक्षयकारकम्॥ ८

देखकर वरकी अभिलाषावाली सुन्दरी अच्छोदा व्यग्र हो उठी और उनके साथ रहनेकी याचना करने लगी। इस मानसिक कदाचारके कारण सुन्दरी अच्छोदा योगसे भ्रष्ट हो गयी और (उसके परिणामस्वरूप वह स्वर्गलोकसे) भूतलपर गिर पड़ी। उसने पहले कभी पृथ्वीका स्पर्श नहीं किया था। जिस तिथिको अमावसुने अच्छोदाके साथ निवास करनेकी अनिच्छा प्रकट की, वह तिथि उनके धैर्यके प्रभावसे लोगोंद्वारा अमावस्या नामसे प्रसिद्ध हुई। इसी कारण यह तिथि पितरोंको परम प्रिय है। इस तिथिमें किया हुआ श्राद्धादि कार्य अक्षय फलदायक होता है॥ १—८॥

अच्छोदाधोमुखी दीना लज्जिता तपसः क्षयात्।
सा पितॄन् प्रार्थयामास पुरे चात्मप्रसिद्धये॥ ९
विलप्यमाना पितृभिरिदमुक्ता तपस्विनी।
भविष्यमर्थमालोक्य देवकार्यं च ते तदा॥ १०
इदमूचुर्महाभागाः प्रसादशुभया गिरा।
दिवि दिव्यशरीरेण यत्किञ्चित् क्रियते बुधैः॥ ११
तेनैव तत्कर्मफलं भुज्यते वरवर्णिनि।
सद्यः फलन्ति कर्माणि देवत्वे प्रेत्य मानुषे॥ १२
तस्मात् त्वं पुत्रि तपसः प्राप्स्यसे प्रेत्य तत्फलम्।
अष्टाविंशे भवित्री त्वं द्वापरे मत्स्ययोनिजा॥ १३
व्यतिक्रमात् पितृणां त्वं कष्टं कुलमवाप्स्यसि।
तस्माद् राज्ञो वसोः कन्या त्वमवश्यं भविष्यसि॥ १४
कन्या भूत्वा च लोकान् स्वान् पुनराप्स्यसि दुर्लभान्।
पराशरस्य वीर्येण पुत्रमेकमवाप्स्यसि॥ १५
द्वीपे तु बदरीप्राये बादरायणमच्युतम्।
स वेदमेकं बहुधा विभजिष्यति ते सुतः॥ १६
पौरवस्यात्मजौ द्वौ तु समुद्रांशस्य शंतनोः।
विचित्रवीर्यस्तनयस्तथा चित्राङ्गदो नृपः॥ १७
इमावुत्पाद्य तनयौ क्षेत्रजावस्य धीमतः।
प्रौष्ठपद्यष्टकारूपा पितृलोके भविष्यसि॥ १८

इस प्रकार (बहुकालार्जित) तपस्याके नष्ट हो जानेसे अच्छोदा लज्जित हो गयी। वह अत्यन्त दीन होकर नीचे मुख किये हुए देवपुरमें पुनः अपनी प्रसिद्धिके लिये पितरोंसे प्रार्थना करने लगी। तब रोती हुई उस तपस्विनीको पितरोंने सान्त्वना दी। वे महाभाग पितर भावी देव-कार्यका विचार कर प्रसन्नता एवं मङ्गलसे परिपूर्ण वाणीद्वारा उससे इस प्रकार बोले—'वरवर्णिनि! बुद्धिमान् लोग स्वर्गलोकमें दिव्य शरीरद्वारा जो कुछ शुभाशुभ कर्म करते हैं, वे उसी शरीरसे उन कर्मोंके फलका उपभोग करते हैं; क्योंकि देव-योनिमें कर्म तुरन्त फलदायक हो जाते हैं। उसके विपरीत मानव-योनिमें मृत्युके पश्चात् (जन्मान्तरमें) कर्मफल भोगना पड़ता है। इसलिये पुत्रि! तुम मृत्युके पश्चात् जन्मान्तरमें अपनी तपस्याका पूर्ण फल प्राप्त करोगी। अट्ठाईसवें द्वापरमें तुम मत्स्य-योनिमें उत्पन्न होओगी। पितृकुलका व्यतिक्रमण करनेके कारण तुम्हें उस कष्टदायक योनिकी प्राप्ति होगी। पुनः उस योनिसे मुक्त होकर तुम राजा (उपरिचर) वसुकी कन्या होओगी। कन्या होनेपर तुम अपने दुर्लभ लोकोंको अवश्य प्राप्त करोगी। उस कन्यावस्थामें तुम्हें बदरी (बेर)-के वृक्षोंसे व्याप्त द्वीपमें महर्षि पराशरसे एक ऐसे पुत्रकी प्राप्ति होगी, जो बादरायण नामसे प्रसिद्ध होगा और कभी अपने कर्मसे च्युत न होनेवाले नारायणका अवतार होगा। तुम्हारा वह पुत्र एक ही वेदको अनेक (चार) भागोंमें विभक्त करेगा। तदनन्तर समुद्रके अंशसे उत्पन्न हुए पुरुवंशी राजा शंतनुके संयोगसे तुम्हें विचित्रवीर्य एवं महाराज चित्राङ्गद नामक दो पुत्र प्राप्त होंगे। बुद्धिमान् विचित्रवीर्यके दो क्षेत्रज धृतराष्ट्र और पाण्डु-पुत्रोंको उत्पन्न कराकर तुम प्रौष्ठपदी (भाद्रपदकी पूर्णिमा और पौषकृष्णाष्टमी आदि)-में अष्टकारूपसे पितृलोकमें जन्म ग्रहण करोगी।

नाम्ना सत्यवती लोके पितृलोके तथाष्टका।
आयुरारोग्यदा नित्यं सर्वकामफलप्रदा॥ १९
भविष्यसि परे काले नदीत्वं च गमिष्यसि।
पुण्यतोया सरिच्छ्रेष्ठा लोके ह्यच्छोदनामिका॥ २०
इत्युक्त्वा स गणस्तेषां तत्रैवान्तरधीयत।
साप्यवाप च तत् सर्वं फलं यदुदितं पुरा॥ २१

इस प्रकार मनुष्य-लोकमें सत्यवती और पितृलोकमें आयु एवं आरोग्य प्रदान करनेवाली तथा नित्य सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंकी प्रदात्री अष्टका नामसे तुम्हारी ख्याति होगी। कालान्तरमें तुम मनुष्यलोकमें नदियोंमें श्रेष्ठ पुण्यसलिला अच्छोदा नामसे नदीरूपमें जन्म धारण करोगी।' ऐसा कहकर पितरोंका वह समुदाय वहीं अन्तर्हित हो गया तथा अच्छोदाको अपने उन समस्त कर्मफलोंकी प्राप्ति हुई, जो पहले कहे जा चुके हैं॥ ९—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥ १४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितृवंशानुकीर्तन नामक चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४॥

पन्द्रहवाँ अध्याय

पितृ-वंशका वर्णन, पीवरीका वृत्तान्त तथा श्राद्ध-विधिका कथन

सूत उवाच

विभ्राजा नाम चान्ये तु दिवि सन्ति सुवर्चसः।
लोका बर्हिषदो यत्र पितरः सन्ति सुव्रताः॥ १
यत्र बर्हिणयुक्तानि विमानानि सहस्रशः।
सङ्कल्प्या बर्हिषो यत्र तिष्ठन्ति फलदायिनः॥ २
यत्राभ्युदयशालासु मोदन्ते श्राद्धदायिनः।
यांश्च देवासुरगणा गन्धर्वाप्सरसां गणाः॥ ३
यक्षरक्षोगणाश्चैव यजन्ति दिवि देवताः।
पुलस्त्यपुत्राः शतशस्तपोयोगसमन्विताः॥ ४
महात्मानो महाभागा भक्तानामभयप्रदाः।
एतेषां पीवरी कन्या मानसी दिवि विश्रुता॥ ५
योगिनी योगमाता च तपश्चक्रे सुदारुणम्।
प्रसन्नो भगवांस्तस्या वरं वव्रे तु सा हरेः॥ ६
योगवन्तं सुरूपं च भर्तारं विजितेन्द्रियम्।
देहि देव प्रसन्नस्त्वं पतिं मे वदतां वरम्॥ ७
उवाच देवो भविता व्यासपुत्रो यदा शुकः।
भविता तस्य भार्या त्वं योगाचार्यस्य सुव्रते॥ ८
भविष्यति च ते कन्या कृत्वी नाम च योगिनी।
पाञ्चालाधिपतेर्देया मानुषस्य त्वया तदा॥ ९
जननी ब्रह्मदत्तस्य योगसिद्धा च गौः स्मृता।
कृष्णो गौरः प्रभुः शम्भुर्भविष्यन्ति च ते सुताः॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! स्वर्गमें विभ्राज नामक अन्य तेजस्वी लोक भी हैं, जहाँ परम श्रेष्ठ उत्तम व्रतपरायण बर्हिषद् नामक पितर निवास करते हैं। जहाँ मयूरोंसे युक्त हजारों विमान विद्यमान रहते हैं। जहाँ संकल्पके लिये प्रयुक्त हुए बर्हि (कुश) फल देनेके लिये उन्मुख होकर उपस्थित रहते हैं एवं जहाँकी अभ्युदयशालाओंमें पितरोंको श्राद्ध प्रदान करनेवाले लोग आनन्द मनाते रहते हैं। देवताओं और असुरोंके गण, गन्धर्वों और अप्सराओंके समूह तथा यक्षों और राक्षसोंके समुदाय स्वर्गमें उन पितरोंके निमित्त यज्ञका विधान करते रहते हैं। महर्षि पुलस्त्यके सैकड़ों पुत्र, जो तपस्या और योगसे परिपूर्ण, महान् आत्मबलसे सम्पन्न, महान् भाग्यशाली एवं अपने भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले हैं, वहाँ निवास करते हैं। इन पितरोंकी एक मानसी कन्या थी, जो पीवरी नामसे विख्यात थी। उस योगिनी एवं योगमाता पीवरीने अत्यन्त कठोर तप किया। उसकी तपस्यासे भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गये (और उसके समक्ष प्रकट हुए)। तब पीवरीने श्रीहरिसे यह वरदान माँगा—'देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मुझे योगाभ्यासी, अत्यन्त सौन्दर्यशाली, जितेन्द्रिय, वक्ताओंमें श्रेष्ठ एवं पालन-पोषण करनेवाला पति प्रदान कीजिये।' यह सुनकर भगवान् विष्णुने कहा—'सुव्रते! जब महर्षि व्यासके पुत्र शुक जन्म धारण करेंगे, उस समय तुम उन योगाचार्यकी पत्नी होओगी। उनके संयोगसे तुम्हें एक योगाभ्यासपरायणा कृत्वी नामकी कन्या उत्पन्न होगी। तब तुम उसे मानव-योनिमें उत्पन्न हुए पञ्चाल-नरेश (नीप मतान्तरसे अणुह)-को समर्पित कर देना। तुम्हारी वह योगसिद्धा कन्या (कृत्वी) ब्रह्मदत्तकी माता होकर 'गौ' नामसे भी प्रसिद्ध होगी। तदनन्तर कृष्ण, गौर, प्रभु और शम्भु नामक तुम्हारे चार पुत्र होंगे,

महात्मानो महाभागा गमिष्यन्ति परं पदम्।
तानुत्पाद्य पुनर्योगात् सवरा मोक्षमेष्यसि॥ ११

सुमूर्तिमन्तः पितरो वसिष्ठस्य सुताः स्मृताः।
नाम्ना तु मानसाः सर्वे सर्वे ते धर्ममूर्तयः॥ १२

ज्योतिर्भासिषु लोकेषु ये वसन्ति दिवः परम्।
विराजमानाः क्रीडन्ति यत्र ते श्राद्धदायिनः॥ १३

सर्वकामसमृद्धेषु विमानेष्वपि पादजाः।
किं पुनः श्राद्धदा विप्रा भक्तिमन्तः क्रियान्विताः॥ १४

गौर्नाम कन्या येषां तु मानसी दिवि राजते।
शुक्रस्य दयिता पत्नी साध्यानां कीर्तिवर्धिनी॥ १५

जो महान् आत्मबलसे सम्पन्न एवं महान् भाग्यशाली होंगे और अन्तमें परमपदको प्राप्त करेंगे। उन पुत्रोंको पैदा करनेके पश्चात् तुम पुनः अपने योगबलसे वर प्राप्त करोगी और अन्तमें मोक्ष प्राप्त कर लोगी।[1] महर्षि वसिष्ठके पुत्ररूप (सुकाली नामक) पितर, जो सब-के-सब मानस नामसे विख्यात हैं, अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवाले तथा धर्मकी मूर्ति हैं। वे सभी स्वर्गलोकसे परे ज्योतिर्भासी लोकोंमें निवास करते हैं। जहाँ श्राद्धकर्ता शूद्र भी सम्पूर्ण कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले विमानोंमें विराजमान होकर क्रीड़ा करते रहते हैं, वहाँ क्रियानिष्ठ एवं भक्तिमान् श्राद्धदाता ब्राह्मणोंकी तो बात ही क्या है। इन पितरोंकी 'गौ' नामकी मानसी कन्या स्वर्गलोकमें विराजमान है, जो शुक्रकी प्रिय पत्नी और साध्योंकी कीर्तिका विस्तार करनेवाली है॥ १—१५॥

मरीचिगर्भा नाम्ना तु लोका मार्तण्डमण्डले।
पितरो यत्र तिष्ठन्ति हविष्मन्तोऽङ्गिरःसुताः॥ १६

तीर्थश्राद्धप्रदा यान्ति ये च क्षत्रियसत्तमाः।
राज्ञां तु पितरस्ते वै स्वर्गमोक्षफलप्रदाः॥ १७

एतेषां मानसी कन्या यशोदा लोकविश्रुता।
पत्नी ह्यंशुमतः श्रेष्ठा स्नुषा पञ्चजनस्य च॥ १८

जनन्यथ दिलीपस्य भगीरथपितामही।
लोकाः कामदुघा नाम कामभोगफलप्रदाः॥ १९

सुस्वधा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति सुव्रताः।
आज्यपा नाम लोकेषु कर्दमस्य प्रजापतेः॥ २०

पुलहाङ्गजदायादा वैश्यास्तान् भावयन्ति च।
यत्र श्राद्धकृतः सर्वे पश्यन्ति युगपद्गताः॥ २१

मातृभ्रातृपितृस्वसृसखिसम्बन्धिबान्धवान्।
अपि जन्मायुतैर्दृष्टाननुभूतान् सहस्रशः॥ २२

एतेषां मानसी कन्या विरजा नाम विश्रुता।
या पत्नी नहुषस्यासीद् ययातेर्जननी तथा॥ २३

इसी प्रकार सूर्यमण्डलमें मरीचिगर्भ नामसे प्रसिद्ध अन्य लोक भी हैं, जहाँ अङ्गिराके पुत्र हविष्मान् नामक पितरके रूपमें निवास करते हैं। ये राजाओं (क्षत्रियों)-के पितर हैं, जो स्वर्ग एवं मोक्षरूप फलके प्रदाता हैं। जो श्रेष्ठ क्षत्रिय तीर्थोंमें श्राद्ध प्रदान करते हैं, वे इन लोकोंमें जाते हैं। इन पितरोंकी एक यशोदा नामकी लोक-प्रसिद्ध मानसी कन्या थी, जो पञ्चजनकी श्रेष्ठ पुत्रवधू, अंशुमान्‌की पत्नी, (महाराज) दिलीपकी माता और भगीरथकी पितामही थी।[2] अभीष्ट कामनाओं एवं भोगोंका फल प्रदान करनेवाले कामदुघ नामक अन्य पितृलोक भी हैं, जहाँ उत्तम व्रतपरायण सुस्वधा नामवाले पितर निवास करते हैं। वे ही पितर प्रजापति कर्दमके लोकोंमें आज्यप नामसे प्रख्यात हैं। महर्षि पुलहके अङ्गसे उत्पन्न हुए वैश्यगण उनकी भावना (पूजा) करते हैं। श्राद्धकर्ता सभी वैश्यगण इन लोकोंमें पहुँचकर दस हजार जन्मान्तरोंमें देखे और अनुभव किये हुए भी अपने हजारों माता, भाई, पिता, बहन, मित्र, सम्बन्धी और बान्धवोंको एक साथ देखते हैं। इन पितरोंकी मानसी कन्या विरजा नामसे विख्यात थी, जो राजा नहुषकी पत्नी और ययातिकी माता थी।

१. शुकदेवजीका यह वृत्त ठीक इसी प्रकार वायुपुराण ७३। २६—३१; ७०। ८५-८६; पद्मपुराण १। ९। ३०—४०; हरिवंश० १। १८। ५०—५३ आदिमें भी प्राप्त होता है। पर मत्स्यपुराणमें 'कृत्वी'का 'गौ' नाम देखकर शङ्का होती है; क्योंकि १५वें श्लोकमें तुरंत 'गौ'को शुकदेवकी दूसरी पत्नी कहा है। पर शङ्का ठीक नहीं; क्योंकि एक ही नाम कइयोंके होते हैं। पुराणोंमें वायुपुराण अध्याय ९। ३, १४ आदिमें 'यति' राजाकी स्त्री तथा वाल्मीकिरामायण ७। ६०।, महाभारत आदिमें पुलस्त्य-पत्नीका भी नाम 'गौ' आता है।

२. यह विवरण वायुपुराण ७२, ब्रह्माण्ड० ३। १०, हरिवंश० १। ६, ब्रह्मपुराण ३४, पद्म० १। ९, लिङ्गपुराण १। ६ में भी है। यहाँ सूर्यवंशी दिलीप प्रथम इष्ट हैं। पुराणानुसार सूर्यवंशमें दो दिलीप हुए हैं। एकके पुत्र थे भगीरथ और दूसरेके रघुवंशप्रसिद्ध रघु हुए हैं।

एकाष्टकाभवत् पश्चाद् ब्रह्मलोके गता सती।
त्रय एते गणाः प्रोक्ताश्चतुर्थं तु वदाम्यतः॥ २४
लोकास्तु मानसा नाम ब्रह्माण्डोपरि संस्थिताः।
येषां तु मानसी कन्या नर्मदानामविश्रुता॥ २५
सोमपा नाम पितरो यत्र तिष्ठन्ति शाश्वताः।
धर्ममूर्तिधराः सर्वे परतो ब्रह्मणः स्मृताः॥ २६
उत्पन्नाः स्वधया ते तु ब्रह्मत्वं प्राप्य योगिनः।
कृत्वा सृष्ट्यादिकं सर्वं मानसे साम्प्रतं स्थिताः॥ २७
नर्मदा नाम तेषां तु कन्या तोयवहा सरित्।
भूतानि या पावयति दक्षिणापथगामिनी॥ २८
तेभ्यः सर्वे तु मनवः प्रजाः सर्गेषु निर्मिताः।
ज्ञात्वा श्राद्धानि कुर्वन्ति धर्माभावेऽपि सर्वदा॥ २९
तेभ्य एव पुनः प्राप्तुं प्रसादाद् योगसंततिम्।
पितॄणामादिसर्गे तु श्राद्धमेव विनिर्मितम्॥ ३०
सर्वेषां राजतं पात्रमथवा रजतान्वितम्।
दत्तं स्वधा पुरोधाय पितॄन् प्रीणाति सर्वदा॥ ३१
अग्नीषोमयमानां तु कार्यमाप्यायनं बुधः।
अग्न्यभावेऽपि विप्रस्य पाणावपि जलेऽथवा॥ ३२
अजाकर्णेऽश्वकर्णे वा गोष्ठे वा सलिलान्तिके।
पितॄणामम्बरं स्थानं दक्षिणा दिक् प्रशस्यते॥ ३३
प्राचीनावीतमुदकं तिलाः सव्याङ्गमेव च।
दर्भा मांसं च पाठीनं गोक्षीरं मधुरा रसाः॥ ३४
खड्गलोहामिषमधुकुशश्यामाकशालयः।
यवनीवारमुद्गेक्षुशुक्लपुष्पघृतानि च॥ ३५
वल्लभानि प्रशस्तानि पितॄणामिह सर्वदा।
द्वेष्याणि सम्प्रवक्ष्यामि श्राद्धे वर्ज्यानि यानि तु॥ ३६

बादमें वह पतिपरायणा विरजा ब्रह्मलोकको चली गयी और वहाँ एकाष्टका नामसे प्रसिद्ध हुई। इस प्रकार मैंने तीन पितृगणोंका वर्णन कर दिया। अब इसके बाद चौथे गणका वर्णन कर रहा हूँ। ब्रह्माण्डके ऊपर मानस नामक लोक विद्यमान हैं, उनमें अविनाशी 'सोमप' नामक पितर निवास करते हैं (ये ब्राह्मणोंके पितर हैं)। उनकी मानसी कन्या नर्मदा-नामसे प्रसिद्ध है। वे सभी पितर धर्मकी-सी मूर्ति धारण करनेवाले तथा ब्रह्मासे भी परे बतलाये गये हैं। स्वधासे उनकी उत्पत्ति हुई है। वे सभी योगाभ्यासी पितर ब्रह्मत्वको प्राप्त करके सृष्टि आदि समस्त कार्योंसे निवृत्त हो इस समय मानस लोकमें विद्यमान हैं। उनकी वह नर्मदा नाम्नी कन्या (भारतके) दक्षिणापथमें आकर जल प्रवाहित करनेवाली नदी हुई है, जो समस्त प्राणियोंको पवित्र कर रही है। इन्हीं पितरोंकी परम्परासे मनुगण (अपने-अपने कार्यकालमें) सृष्टिके प्रारम्भमें प्रजाओंका निर्माण करते हैं। इस रहस्यको जानकर लोग धर्मका अभाव हो जानेपर भी सर्वदा श्राद्ध करते रहते हैं। इन्हीं पितरोंकी कृपासे पुनः इन्हींके द्वारा योग-परम्पराको प्राप्त करनेके लिये सृष्टिके प्रारम्भमें पितरोंके लिये श्राद्धका ही निर्माण किया गया था॥ १६—३०॥

इन सभी पितरोंके निमित्त चाँदीका अथवा चाँदीमिश्रित अन्य धातुका भी पात्र आदि स्वधाका उच्चारण करके (ब्राह्मणको) दान कर दिया जाय तो वह सर्वदा पितरोंको प्रसन्न करता है। विद्वान् (श्राद्धकर्ता)-को चाहिये कि (श्राद्धकालमें प्रथमतः) अग्नि, सोम और यमका तर्पण करके उन्हें तृप्त करे (और पितरोंके उद्देश्यसे दिया गया अन्न आदि अग्निमें छोड़ दे)। अग्निके अभावमें ब्राह्मणके हाथपर, जलमें, अजाकर्णपर, अश्वकर्णपर, गोशालामें अथवा जलके निकट डाल दे। पितरोंका स्थान आकाश बतलाया जाता है। उनके लिये दक्षिण दिशा विशेषरूपसे प्रशस्त मानी गयी है। प्राचीनावीत (अपसव्य) होकर दिया गया जल, तिल, सव्याङ्ग (शरीरका दाहिना भाग), डाभ, फलका गूदा, गो-दुग्ध, मधुर रस, खड्ग, लौह, मधु, कुश, सावाँ, अगहनीका चावल, यव, तिन्नीका चावल, मूँग, गन्ना, श्वेत पुष्प और घृत—ये पदार्थ पितरोंके लिये सर्वदा प्रिय और प्रशस्त कहे गये हैं। अब जो श्राद्धकार्यमें वर्जित तथा पितरोंके लिये अप्रिय हैं, उन पदार्थोंका वर्णन कर रहा हूँ—

मसूरशणनिष्पावराजमाषकुसुम्भिकाः ।
पद्मबिल्वार्कधत्तूरपारिभद्राटरूषकाः ॥ ३७
न देयाः पितृकार्येषु पयश्चाजाविकं तथा।
कोद्रवोदारचणकाः कपित्थं मधुकातसी॥ ३८
एतान्यपि न देयानि पितृभ्यः प्रियमिच्छता।
पितॄन् प्रीणाति यो भक्त्या ते पुनः प्रीणयन्ति तम्॥ ३९
यच्छन्ति पितरः पुष्टिं स्वर्गारोग्यं प्रजाफलम्।
देवकार्यादपि पुनः पितृकार्यं विशिष्यते॥ ४०
देवतानां च पितरः पूर्वमाप्यायनं स्मृतम्।
शीघ्रप्रसादास्त्वक्रोधा निःशस्त्राः स्थिरसौहृदाः॥ ४१
शान्तात्मानः शौचपराः सततं प्रियवादिनः।
भक्तानुरक्ताः सुखदाः पितरः पूर्वदेवताः॥ ४२
हविष्मतामाधिपत्ये श्राद्धदेवः स्मृतो रविः।
एतद् वः सर्वमाख्यातं पितृवंशानुकीर्तनम्।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं कीर्तनीयं सदा नृभिः॥ ४३

मसूर, शण (पेटुआका बीज), सेम, काला उड़द, कुसुमका पुष्प, कमल, बेल या बिल्वपत्र, मदार, धतूरा, पारिभद्र (नीम, देवदारुका पुष्प या पत्ता), अड़ूसेका फूल तथा भेंड़ और बकरीका दूध। इन्हें पितृ-कार्योंमें नहीं देना चाहिये। पितरोंसे कल्याणप्राप्तिकी इच्छावाले पुरुषको श्राद्धकार्यमें कोदो, उदार (गुलूके वृक्षका पुष्प अथवा पत्ता), चना, कैथ, महुआ और अलसी (तीसी)—इन पदार्थोंका भी उपयोग नहीं करना चाहिये। जो भक्तिपूर्वक (श्राद्धादिद्वारा) पितरोंको प्रसन्न करता है, उसे पितर भी बदलेमें हर्षित कर देते हैं। वे पितृगण प्रसन्न होकर समृद्धि, स्वर्ग, आरोग्य और संतानरूपी फल प्रदान करते हैं। इसीलिये देवकार्यसे भी बढ़कर पितृकार्यकी विशेषता मानी जाती है तथा देवताओंसे पूर्व ही पितरोंके तर्पणकी विधि बतलायी गयी है। ये पितर शीघ्र ही कृपा करनेवाले, क्रोधरहित, शस्त्रविहीन, दृढ़ मैत्रीयुक्त, शान्तात्मा पवित्रतापरायण, सदा प्रियवादी, भक्तोंके प्रति अनुरक्त और सुखदायक (गृहस्थोंके) प्रथम देवता हैं। हविष्यान्नका भक्षण करनेवाले इन पितरोंके अधिनायक-पदपर श्राद्धके देवतारूपमें सूर्य अधिष्ठित माने गये हैं। इस प्रकार यह पितृ-वंशका वर्णन मैंने तुम लोगोंको पूर्णरूपसे बतला दिया। यह पुण्य-प्रदाता, परम पवित्र और आयुकी वृद्धि करनेवाला है, मनुष्योंको सदा इसका पठन-पाठन करना चाहिये॥ ३१—४३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितृवंशानुकीर्तन नामक पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५॥

सोलहवाँ अध्याय

श्राद्धोंके विविध भेद, उनके करनेका समय तथा श्राद्धमें निमन्त्रित करनेयोग्य ब्राह्मणके लक्षण

सूत उवाच

श्रुत्वैतत् सर्वमखिलं मनुः पप्रच्छ केशवम्।
श्राद्धे कालं च विविधं श्राद्धभेदं तथैव च॥ १
श्राद्धेषु भोजनीया ये ये च वर्ज्या द्विजातयः।
कस्मिन् वासरभागे वा पितृभ्यः श्राद्धमाचरेत्॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! यह सारा वृत्तान्त पूर्णरूपसे सुनकर मनुने मत्स्यभगवान्से पूछा—'मधुसूदन! श्राद्धके लिये कौन-सा काल उत्तम है? श्राद्धके विभिन्न भेद कौन-से हैं? श्राद्धोंमें कैसे ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये? तथा कैसे ब्राह्मण वर्जित हैं? दिनके किस भागमें पितरोंके लिये श्राद्ध करना उचित है?

कस्मिन् दत्तं कथं याति श्राद्धं तु मधुसूदन।
विधिना केन कर्तव्यं कथं प्रीणाति तत् पितॄन्॥ ३

मत्स्य उवाच

कुर्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन्॥ ४

नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं श्राद्धमुच्यते।
नित्यं तावत् प्रवक्ष्यामि अर्घ्यावाहनवर्जितम्॥ ५

अदैवं तद् विजानीयात् पार्वणं पर्वसु स्मृतम्।
पार्वणं त्रिविधं प्रोक्तं शृणु तावन्महीपते॥ ६

पार्वणे ये नियोज्यास्तु ताञ्शृणुष्व नराधिप।
पञ्चाग्निः स्नातकश्चैव त्रसुपर्णः षडङ्गवित्॥ ७

श्रोत्रियः श्रोत्रियसुतो विधिवाक्यविशारदः।
सर्वज्ञो वेदविन्मन्त्री ज्ञातवंशः कुलान्वितः॥ ८

पुराणवेत्ता धर्मज्ञः स्वाध्यायजपतत्परः।
शिवभक्तः पितृपरः सूर्यभक्तोऽथ वैष्णवः॥ ९

ब्रह्मण्यो योगविच्छान्तो विजितात्मा च शीलवान्।
भोजयेच्चापि दौहित्रं यत्नतः स्वसुहृद् गुरून्॥ १०

विट्पतिं मातुलं बन्धुमृत्विगाचार्यसोमपान्।
यश्च व्याकुरुते वाक्यं यश्च मीमांसतेऽध्वरम्॥ ११

सामस्वरविधिज्ञश्च पङ्क्तिपावनपावनः।
सामगो ब्रह्मचारी च वेदयुक्तोऽथ ब्रह्मवित्॥ १२

यत्र ते भुञ्जते श्राद्धे तदेव परमार्थवत्।
एते भोज्याः प्रयत्नेन वर्जनीयान् निबोध मे॥ १३

कैसे पात्रको श्राद्धीय वस्तु प्रदान करनी चाहिये? तथा उसका फल पितरोंको कैसे प्राप्त होता है? श्राद्ध किस विधिसे करना उपयुक्त है? तथा वह श्राद्ध किस प्रकार पितरोंको प्रसन्न करता है? (ये सारी बातें मुझे बतलानेकी कृपा करें)॥ १—३॥

मत्स्यभगवान् कहने लगे—राजर्षे! प्रतिदिन पितरोंके प्रति श्रद्धा रखते हुए अन्न आदिसे या केवल जलसे अथवा दूध या फल-मूलसे भी श्राद्धकर्म करना चाहिये। श्राद्ध नित्य, नैमित्तिक और काम्यरूपसे तीन प्रकारका बतलाया गया है। इनमें मैं पहले नित्यश्राद्धका वर्णन कर रहा हूँ, जो अर्घ्य और आवाहनसे रहित होता है। इसे 'अदैव' मानना चाहिये। पर्वोंपर सम्पन्न होनेवाले (त्रिपुरुष) श्राद्धको 'पार्वण' कहते हैं। महीपते! यह पार्वण श्राद्ध तीन प्रकारका बतलाया जाता है, उन्हें सुनो। नरेश्वर! पार्वण श्राद्धमें जिन्हें नियुक्त करना चाहिये, उन्हें बतलाता हूँ, सुनो। जो पञ्चाग्नि विद्याका ज्ञाता अथवा गार्हपत्य आदि पाँच अग्नियोंका उपासक, स्नातक, त्रिसुपर्ण (ऋग्वेदके एक अंशका अध्येता[1]), वेदके छहों अङ्गोंका ज्ञाता, श्रोत्रिय, श्रोत्रियका पुत्र, धर्मशास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, सर्वज्ञ, वेदवेत्ता, उचित मन्त्रणा करनेवाला, जाने हुए वंशमें उत्पन्न, कुलीन, पुराणोंका ज्ञाता, धर्मज्ञ, स्वाध्याय एवं जपमें तत्पर रहनेवाला, शिवभक्त, पितृपरायण, सूर्यभक्त, वैष्णव, ब्राह्मणभक्त, योगवेत्ता, शान्त, आत्माको वशीभूत कर लेनेवाला एवं शीलवान् हो (ऐसे ब्राह्मणको श्राद्धकर्ममें नियुक्त करना चाहिये)। (अब इस पुनीत श्राद्धमें जिन्हें भोजन कराना चाहिये, उनके विषयमें बतला रहा हूँ, सुनो।) पुत्रीका पुत्र (नाती), अपना मित्र, गुरु (अथवा गुरुजन), कुलपति (आचार्य), मामा, भाई-बन्धु, ऋत्विक्, आचार्य (विद्यागुरु) और सोमपायी—इन्हें प्रयत्नपूर्वक बुलाकर श्राद्धमें भोजन कराना चाहिये। साथ ही जो विधि-वाक्योंके व्याख्याता, यज्ञके मीमांसक, सामवेदके स्वर और (उसके उच्चारणकी) विधिके ज्ञाता, पङ्क्तिपावनोंमें[2] भी परम पवित्र, सामवेदके पारगामी विद्वान्, ब्रह्मचारी, वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञानी हैं—ये सभी श्राद्धमें चेष्टापूर्वक भोजन कराने योग्य हैं। ऐसे ब्राह्मण जिस श्राद्धमें भोजन करते हैं, वही श्राद्ध परमार्थसम्पन्न माना जाता है। अब जो ब्राह्मण श्राद्धमें वर्जित हैं, उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनो।

१. ऋग्वेद १०। ११४ की ३—५ ऋचाएँ 'त्रिसुपर्ण' संज्ञक हैं। उसके विशेषज्ञको भी 'त्रिसुपर्ण' कहा जाता है। वहाँ वही इष्ट है।
२. विद्या, तप आदिसे विशिष्ट ब्राह्मण, जिससे श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंकी पङ्क्ति पवित्र हो जाती है।

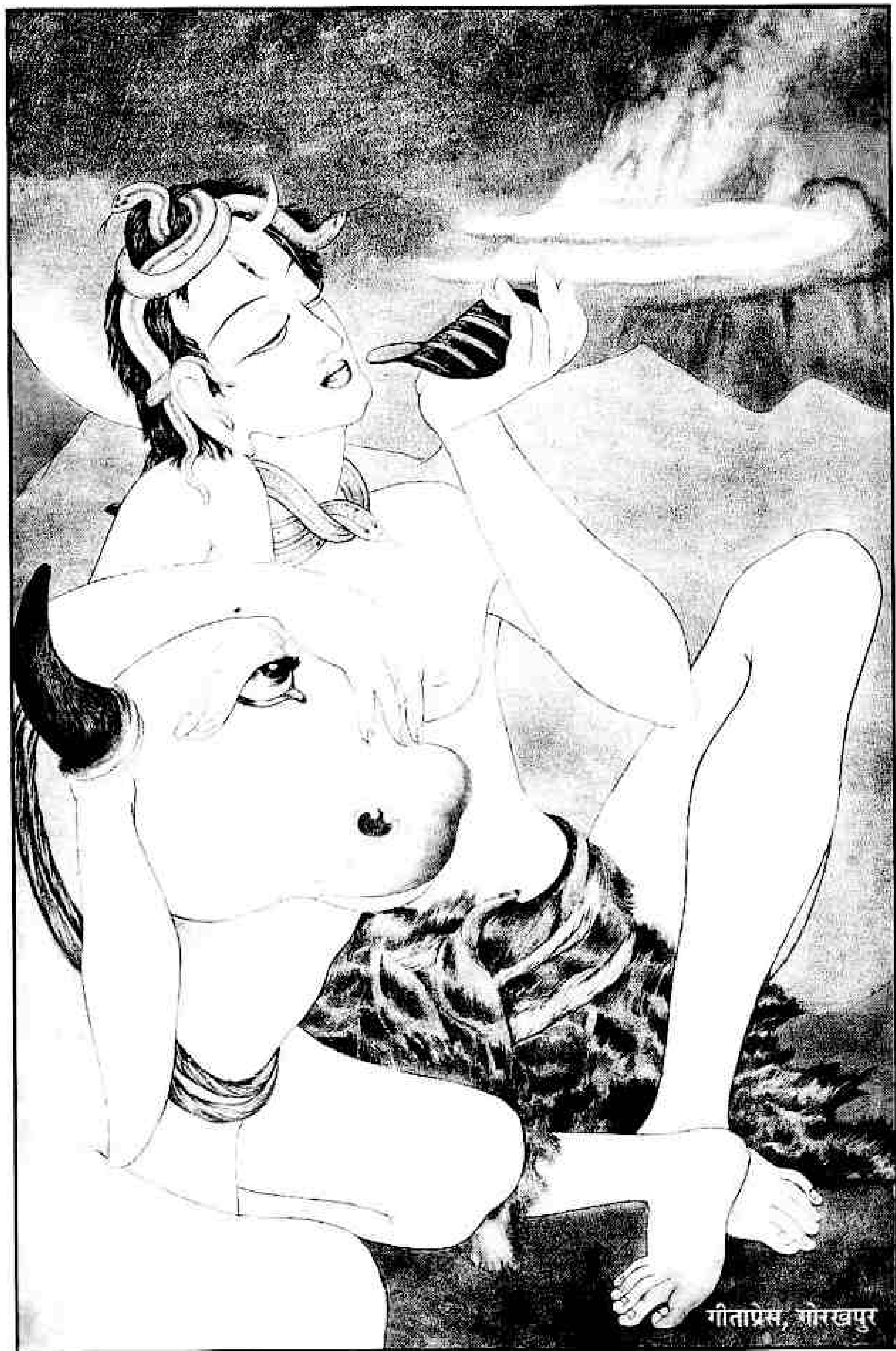


भगवान् मत्स्यरूपमें

भगवान् वराह



भगवान् नृसिंह



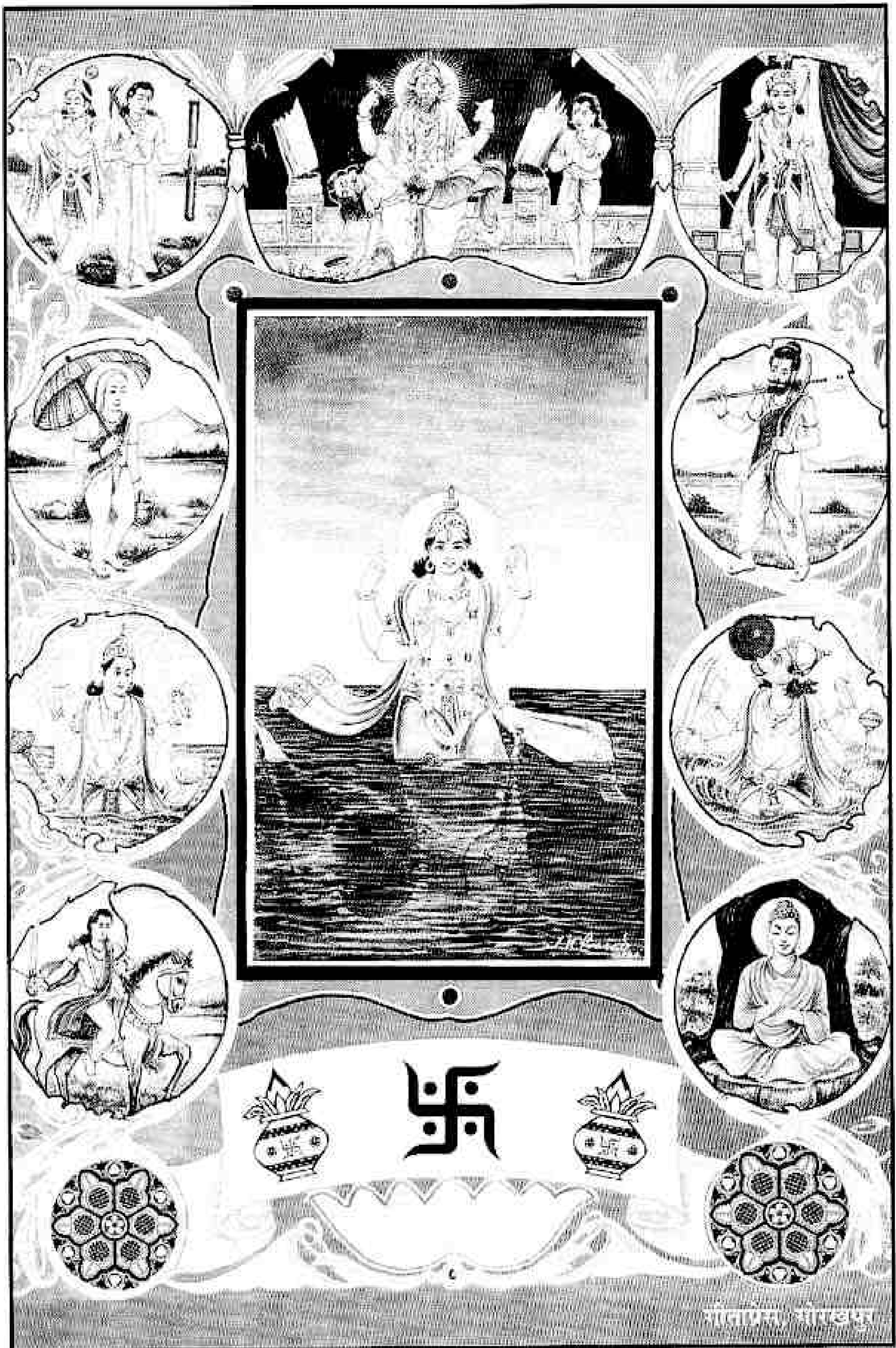
हलाहल विषका पान



भगवान् शंकरद्वारा पार्वतीको उपदेश



वज्राङ्गको ब्रह्माजीद्वारा वरप्रदान



दशावतार

पार्वतीजीकी कठोर तपस्या

सप्तर्षिगण और पार्वतीजी



भगवान् मत्स्य

पतितोऽभिशस्तः क्लीबः पिशुनव्यङ्गरोगिणः।
कुनखी श्यावदन्तश्च कुण्डगोलाश्वपालकाः॥ १४

परिवित्तिर्नियुक्तात्मा प्रमत्तोन्मत्तदारुणाः।
बैडालो बकवृत्तिश्च दम्भी देवलकादयः॥ १५

कृतघ्नान् नास्तिकांस्तद्वन्म्लेच्छदेशनिवासिनः।
त्रिशङ्कुर्बर्बरद्राववीतद्रविडकोङ्कणान् ॥ १६

वर्जयेल्लिङ्गिनः सर्वाञ्श्राद्धकाले विशेषतः।
पूर्वेद्युरपरेद्युर्वा विनीतात्मा निमन्त्रयेत्॥ १७

निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान्।
वायुभूतानुगच्छन्ति तथासीनानुपासते॥ १८

दक्षिणं जानुमालभ्य त्वं मया तु निमन्त्रितः।
एवं निमन्त्र्य नियमं श्रावयेत् पितृबान्धवान्॥ १९

अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः।
भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकारिणा॥ २०

पितृयज्ञं विनिर्वर्त्य तर्पणाख्यं तु योऽग्निमान्।
पिण्डान्वाहार्यकं कुर्याच्छ्राद्धमिन्दुक्षये सदा॥ २१

गोमयेनोपलिप्ते तु दक्षिणप्रवणे स्थले।
श्राद्धं समाचरेद् भक्त्या गोष्ठे वा जलसंनिधौ॥ २२

अग्निमान् निर्वपेत् पित्र्यं चरुं च सममुष्टिभिः।
पितृभ्यो निर्वपामीति सर्वं दक्षिणतो न्यसेत्॥ २३

अभिघार्य ततः कुर्यान्निर्वापत्रयमग्रतः।
तेऽपि तस्यायताः कार्याश्चतुरङ्गुलविस्तृताः॥ २४

दर्वीत्रयं तु कुर्वीत खादिरं रजतान्वितम्।
रत्निमात्रं परिश्लक्ष्णं हस्ताकाराग्रमुत्तमम्॥ २५

पतित (जो अपने वर्णाश्रम-धर्मसे च्युत हो गया हो), अभिशस्त (कलङ्कित, बदनाम), नपुंसक, चुगलखोर, विकृत अङ्गोंवाला, रोगी, बुरे नखोंवाला, काले दाँतोंसे युक्त, कुण्ड (सधवाका जारज पुत्र), गोलक (विधवाका जारज पुत्र), कुत्तोंका पालक, परिवित्ति*, नौकर अथवा जिसका मन किसी अन्य श्राद्धमें लगा हो, पागल, उन्मादी, क्रूर, बिडाल एवं बगुलेकी तरह चोरीसे जीविकोपार्जन करनेवाला, दम्भी तथा मन्दिरमें देव-पूजा करके वेतनभोगी (पुजारी)—ये सभी श्राद्धभोजमें निषिद्ध माने गये हैं। इसी प्रकार कृतघ्न (किये हुए उपकारको न माननेवाला), नास्तिक (परलोकपर विश्वास न करनेवाला), त्रिशङ्कु (कीकटसे दक्षिण और महानदीसे उत्तरका भाग), बर्बर (भारतकी पश्चिम सीमापरका प्रदेश), द्राव, वीत, द्रविड और कोंकण आदि देशोंके निवासी तथा संन्यासी—इन सभीका विशेषरूपसे श्राद्धकार्यमें परित्याग कर देना चाहिये। श्राद्ध-दिवसके एक या दो दिन पहले ही श्राद्धकर्ता विनीतभावसे ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे; क्योंकि पितरलोग आकर उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंके निकट उपस्थित होते हैं। वे वायुरूप होकर उन ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे चलते हैं तथा उनके बैठ जानेपर पितर भी उन्हींके समीप बैठ जाते हैं॥ ४—१८॥

उस समय श्राद्धकर्ता ब्राह्मणके दाहिने घुटनेको स्पर्शकर (उससे) इस प्रकार प्रार्थना करे—'मैं आपको निमन्त्रित कर रहा हूँ।' इस प्रकार निमन्त्रण देकर अपने पिताके भाई-बन्धुओंको श्राद्ध-नियम बतलाते हुए यों कहे—'(मैं अमुक दिन पितृ-श्राद्ध करूँगा, अतः उस दिन) आपलोगोंको निरन्तर क्रोधरहित, शौचाचारपरायण तथा ब्रह्मचर्य-व्रतमें स्थित रहना चाहिये। मुझ श्राद्धकर्ताद्वारा भी इन नियमोंका पालन किया जायगा।' इस प्रकार पितृ-यज्ञसे निवृत्त होकर तर्पण-कर्म करना चाहिये। श्राद्धकर्ताको 'पिण्डान्वाहार्यक' नामक श्राद्ध सदा अमावास्या तिथिमें करना चाहिये। गोशालामें या किसी जलाशयके निकट दक्षिण दिशाकी ओर ढालू स्थानको गोबरसे लीपकर वहीं भक्तिपूर्वक श्राद्धकर्म करना चाहिये। श्राद्धकर्ता पितरोंके निमित्त बनी हुई चरुको समसंख्यक (२, ४, ६) मुट्ठियोंद्वारा 'मैं पितरोंको चरु प्रदान कर रहा हूँ'—यों कहकर पितरोंको चरु प्रदान करे और शेष सबको अपनी दाहिनी ओर रख ले। तत्पश्चात् अग्निमें घीकी धारा छोड़कर चरुको तीन भागोंमें विभक्त करके आगेकी ओर रखे। उन भागोंको भी चार अङ्गुलके विस्तारका लम्बा बना देना चाहिये। पुनः तीन दर्वी (करछुलें, जिनसे हवनीय पदार्थ अग्निमें छोड़े जाते हैं) रखनी चाहिये, जो खैर या चाँदीमिश्रित अन्य धातुकी बनी हों, जिनका परिमाण मुट्ठी बँधे हुए हाथके बराबर हो, जो अत्यन्त चिकनी, उत्तम एवं हथेलीकी-सी बनी हुई सुडौल हों।

* बड़े भाईके अविवाहित रहते हुए जो छोटा भाई अपना विवाह कर लेता है, उसे 'परिवित्ति' कहा जाता है।

उदपात्रं च कांस्यं च मेक्षणं च समित् कुशान्।
तिलाः पात्राणि सद्वासो गन्धधूपानुलेपनम्॥ २६

आहरेदपसव्यं तु सर्वं दक्षिणतः शनैः।
एवमासाद्य तत् सर्वं भवनस्याग्रतो भुवि॥ २७

गोमयेनोपलिप्तायां गोमूत्रेण तु मण्डलम्।
अक्षताभिः सपुष्पाभिस्तदभ्यर्च्यापसव्यवत्॥ २८

विप्राणां क्षालयेत् पादावभिनन्द्य पुनः पुनः।
आसनेषूपक्लृप्तेषु दर्भवत्सु विधानवत्॥ २९
उपस्पृष्टोदकान् विप्रानुपवेश्यानुमन्त्रयेत्।
द्वौ दैवे पितृकृत्ये त्रीनेकैकमुभयत्र च॥ ३०

भोजयेदीश्वरोऽपीह न कुर्याद् विस्तरं बुधः।
दैवपूर्वं नियोज्याथ विप्रानर्घ्यादिना बुधः॥ ३१

अग्नौ कुर्यादनुज्ञातो विप्रैर्विप्रो यथाविधि।
स्वगृह्योक्तविधानेन कांस्ये कृत्वा चरुं ततः॥ ३२

अग्नीषोमयमानां तु कुर्यादाप्यायनं बुधः।
दक्षिणाग्नौ प्रतीते वा य एकाग्निर्द्विजोत्तमः॥ ३३

यज्ञोपवीती निर्वर्त्य ततः पर्युक्षणादिकम्।
प्राचीनावीतिना कार्यमतः सर्वं विजानता॥ ३४

षट् च तस्माद्धविःशेषात् पिण्डान् कृत्वा ततोदकम्।
दद्यादुदकपात्रैस्तु सतिलं सव्यपाणिना॥ ३५

जान्वाच्य सव्यं यत्नेन दर्भयुक्तो विमत्सरः।
विधाय लेखां यत्नेन निर्वापेष्ववनेजनम्॥ ३६

दक्षिणाभिमुखः कुर्यात् करे दर्वीं निधाय वै।
निधाय पिण्डमेकैकं सर्वदर्भेष्वनुक्रमात्॥ ३७

इसी प्रकार अपसव्य होकर (जनेऊको बाँयें कंधेसे दाहिने कंधेपर रखकर) पीतलका जलपात्र, मेक्षण (प्रणीतापात्र), समिधा, कुश, तिल, अन्यान्य पात्र, शुद्ध नवीन वस्त्र, गन्ध, धूप, चन्दन आदिको लाकर सबको धीरेसे अपनी दाहिनी ओर रख ले। इस प्रकार सभी आवश्यक सामग्रियोंको एकत्र करके घरके दरवाजेपर गोबरसे लिपी हुई भूमिपर अपसव्य होकर गोमूत्रसे मण्डलकी रचना करे और पुष्पसहित अक्षतोंद्वारा उसकी भी पूजा करे। तत्पश्चात् बारम्बार ब्राह्मणोंका अभिनन्दन करते हुए उनका पाद-प्रक्षालन करे। पुनः उन ब्राह्मणोंको कुशनिर्मित आसनोंपर बैठाकर विधिपूर्वक उन्हें आचमन या जलपान करावे। तदनन्तर उनसे श्राद्धके लिये सम्मति ले॥ १९—२९½॥

बुद्धिमान् पुरुषको देवकार्यमें दो एवं पितृकार्यमें तीन अथवा दोनों कार्योंमें एक-एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न होनेपर भी पार्वण श्राद्धमें विस्तार करना उचित नहीं है। पहले विश्वेदेवको अर्घ्य आदि समर्पित करके तत्पश्चात् ब्राह्मणोंकी अर्घ्य आदि द्वारा पूजा करे। पुनः श्राद्धकर्ता ब्राह्मणको चाहिये कि वह उन ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर चरुको काँसेके बर्तनमें रखकर अपने गृह्योक्तके विधानानुसार विधिपूर्वक अग्निमें हवन करे, फिर बुद्धिमान् पुरुषको अग्नि, सोम और यमका तर्पण करना चाहिये। इस प्रकार एक अग्निका उपासक यज्ञोपवीतधारी श्रेष्ठ ब्राह्मण 'दक्षिण' नामक अग्निके प्रज्वलित हो जानेपर श्राद्धकर्म सम्पन्न करे। तदनन्तर पर्युक्षण आदिसे निवृत्त होकर उपर्युक्त सारी विधियोंको समझ ले और प्राचीनावीती (अपसव्य) होकर सारा कार्य सम्पन्न करे। फिर उस बचे हुए हविसे छः पिण्ड बनाकर उनपर बायें हाथसे अपने जलपात्रद्वारा तिलसहित जल गिराये और ईर्ष्या-द्वेषरहित होकर हाथमें कुश लेकर बायाँ घुटना मोड़कर प्रयत्नपूर्वक (वेदीपर) रेखा बनाये (एवं रेखाओंपर कुश बिछाये।) तथा दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पिण्ड रखनेके लिये बिछाये गये कुशोंपर अवनेजन (श्राद्ध-वेदीपर बिछे हुए कुशोंपर जल सींचनेका संस्कार) करे। फिर हाथमें करछुल लेकर

निनयेदथ दर्भेषु नामगोत्रानुकीर्तनैः।
तेषु दर्भेषु तं हस्तं विमृज्याल्लेपभागिनाम्॥ ३८

तथैव च ततः कुर्यात् पुनः प्रत्यवनेजनम्।
षडप्यृतून् नमस्कृत्य गन्धधूपार्हणादिभिः॥ ३९

एवमावाह्य तत् सर्वं वेदमन्त्रैर्यथोदितैः।
एकाग्नेरेक एव स्यान्निर्वापो दर्विका तथा॥ ४०

ततः कृत्वान्तरे दद्यात् पत्नीभ्योऽन्नं कुशेषु सः।
तद्वत् पिण्डादिके कुर्यादावाहनविसर्जनम्॥ ४१

ततो गृहीत्वा पिण्डेभ्यो मात्राः सर्वाः क्रमेण तु।
तानेव विप्रान् प्रथमं प्राशयेद् यत्नतो नरः॥ ४२

यस्मादन्नाद्धृता मात्रा भक्षयन्ति द्विजातयः।
अन्वाहार्यकमित्युक्तं तस्मात् तच्चन्द्रसंक्षये॥ ४३

पूर्वं दत्त्वा तु तद्धस्ते सपवित्रं तिलोदकम्।
तत्पिण्डाग्रं प्रयच्छेत स्वधैषामस्त्विति ब्रुवन्॥ ४४

वर्णयन् भोजयेदन्नं मिष्टं पूतं च सर्वदा।
वर्जयेत् क्रोधपरतां स्मरन् नारायणं हरिम्॥ ४५

तृप्ता ज्ञात्वा ततः कुर्याद् विकिरन् सार्ववर्णिकम्।
सोदकं चान्नमुद्धृत्य सलिलं प्रक्षिपेद् भुवि॥ ४६

आचान्तेषु पुनर्दद्याज्जलपुष्पाक्षतोदकम्।
स्वस्तिवाचनकं सर्वं पिण्डोपरि समाहरेत्॥ ४७

देवाद्यन्तं प्रकुर्वीत श्राद्धनाशोऽन्यथा भवेत्।
विसृज्य ब्राह्मणांस्तद्वत् तेषां कृत्वा प्रदक्षिणम्॥ ४८

दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् पितॄन् याचेत मानवः।
दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः संततिरेव च॥ ४९

श्रद्धा च नो मा व्यगमद् बहु देयं च नोऽस्त्विति।
अन्नं च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि॥ ५०

तथा क्रमशः एक-एक पिण्ड उठाकर पितरोंके गोत्र एवं नामोंका उच्चारण करके उन सभी बिछाये गये कुशोंपर एक-एक करके रख दे और लेपभागी पितरोंकी तृप्तिके लिये उन कुशोंके मूलभागमें अपने उस हाथको पोंछ दे। तत्पश्चात् पुनः पूर्ववत् उन पिण्डोंपर प्रत्यवनेजन जल छोड़े। तदुपरान्त गन्ध, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा उन छहों पितरोंका पूजन करके उन्हें नमस्कार करे और फिर यथोक्त वेद-मन्त्रोंद्वारा उनका आवाहन करे। एकाग्निक ब्राह्मणके लिये एक ही निर्वाप और एक ही करछुलका विधान है। यह सब सम्पन्न कर लेनेके पश्चात् श्राद्धकर्ता कुशोंपर पितरोंकी पत्नियोंके लिये अन्न प्रदान करे और पिण्डोंपर आवाहन एवं विसर्जन आदि क्रिया पूर्ववत् करे। तत्पश्चात् श्राद्धकर्ता उन सभी पिण्डोंमेंसे थोड़ा-थोड़ा अंश लेकर उन्हें सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक उन निमन्त्रित ब्राह्मणोंको खिलावे॥ ३०—४२॥

चूँकि पिण्डान्नसे निकाले गये अंशको अमावास्याके दिन ब्राह्मणलोग खाते हैं, इसीलिये इस श्राद्धको 'अन्वाहार्यक' कहा जाता है। श्राद्धकर्ता पहले पवित्रकसहित तिल और जलको उस ब्राह्मणके हाथमें देकर तत्पश्चात् पिण्डांशको समर्पित करे और 'यह हमारे पितरोंके लिये स्वधा हो' यों कहते हुए भोजन कराये। उस ब्राह्मणको चाहिये कि वह क्रोधका परित्याग करके भगवान् नारायणका स्मरण करते हुए 'यह बहुत मीठा है', 'यह परम पवित्र है'—यों कहते हुए भोजन करे। उन ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर तत्पश्चात् सभी वर्णोंके लिये विकिराकी क्रिया करनी चाहिये। उस समय जलसहित अन्न लेकर पृथ्वीपर जल गिरा दे। पुनः उन ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर जल, पुष्प, अक्षत आदि सभी सामग्री स्वस्तिवाचनपूर्वक पिण्डोंके ऊपर डाल दे। फिर इस श्राद्धफलको भगवान्को अर्पित कर दे, अन्यथा श्राद्ध नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार उन ब्राह्मणोंकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा करे। उस समय श्राद्धकर्ता दक्षिण दिशाकी ओर मुख करके पितरोंसे अभिलाषापूर्तिके निमित्त याचना करते हुए यों कहे— 'पितृगण! हमारे दाताओं, वेदों (वेदज्ञान) और संतानोंकी वृद्धि हो, हमारी श्रद्धा कभी न घटे, देनेके लिये हमारे पास प्रचुर सम्पत्ति हो, हमारे अधिक-से-अधिक अन्न उत्पन्न हों, हमारे घरपर अतिथियोंका जमघट लगा रहे।

याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन।
एतदस्त्विति तत्प्रोक्तमन्वाहार्यं तु पार्वणम्॥ ५१
यथेन्दुसंक्षये तद्वदन्यत्रापि निगद्यते।
पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा॥ ५२
विप्राग्रतो वा विकिरेद् वयोभिरभिवाशयेत्।
पत्नी तु मध्यमं पिण्डं प्राशयेद् विनयान्विता॥ ५३
आधत्त पितरो गर्भमत्र संतानवर्धनम्।
तावदुच्छेषणं तिष्ठेद् यावद् विप्रा विसर्जिताः॥ ५४
वैश्वदेवं ततः कुर्यान्निवृत्ते पितृकर्मणि।
इष्टैः सह ततः शान्तो भुञ्जीत पितृसेवितम्॥ ५५
पुनर्भोजनमध्वानं यानमायासमैथुनम्।
श्राद्धकृच्छ्राद्धभुक्चैव सर्वमेतद् विवर्जयेत्॥ ५६
स्वाध्यायं कलहं चैव दिवास्वप्नं च सर्वदा।
अनेन विधिना श्राद्धं निरुद्वास्येह निर्वपेत्॥ ५७
कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्वदा।
यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डीकरणात् परम्।
तत्रानेन विधानेन देयमग्निमता सदा॥ ५८

हमसे माँगनेवाले बहुत हों, परंतु हम किसीसे याचना न करें।' उस समय ब्राह्मणलोग कहें—'ऐसा ही हो।' इस प्रकार अन्वाहार्यक नामक पार्वण श्राद्ध जिस प्रकार अमावास्या तिथिको बतलाया गया है, उसी प्रकार अन्य तिथियोंमें भी किया जा सकता है। श्राद्ध-समाप्तिके पश्चात् उन पिण्डोंको गौ, बकरी या ब्राह्मणको दे दे अथवा अग्नि या जलमें भी डाल दे अथवा ब्राह्मणके सामने ही पक्षियोंके लिये छींट दे। उनमें मझले पिण्डको (श्राद्धकर्ताकी) पत्नी 'पितृगण मेरे उदरमें संतानकी वृद्धि करनेवाले गर्भकी स्थापना करायें' यों याचना करती हुई विनयपूर्वक स्वयं खा जाय। यह पिण्ड तबतक उच्छिष्ट बना रहता है, जबतक ब्राह्मण विदा नहीं कर दिये जाते। इस प्रकार पितृकर्मके समाप्त हो जानेपर वैश्वदेवका पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् अपने इष्ट-मित्रोंसहित शान्तिपूर्वक उस पितृसेवित अन्नका स्वयं भोजन करना चाहिये॥ ४३—५५॥

श्राद्धकर्ता और श्राद्धभोक्ता—दोनोंको श्राद्धमें भोजन करनेके पश्चात् पुनः भोजन करना, मार्गगमन, सवारीपर चढ़ना, परिश्रमका काम करना, मैथुन, स्वाध्याय, कलह और दिनमें शयन—इन सबका उस दिन परित्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे जमुहाई आदि न लेकर श्राद्ध-कर्म सम्पन्न करना चाहिये। सपिण्डीकरणके पश्चात् कन्या, कुम्भ और वृष राशिपर सूर्यके स्थित रहनेपर कृष्णपक्षमें जहाँ-जहाँ पिण्डदान करे, वहाँ-वहाँ अग्निहोत्री श्राद्धकर्ताको सदा इसी विधिसे पिण्डदान करना चाहिये॥५६—५८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निमच्छ्राद्धे श्राद्धकल्पो नाम षोडशोऽध्यायः॥ १६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अग्निमच्छ्राद्धविषयक श्राद्धकल्प नामक सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६॥

सत्रहवाँ अध्याय

साधारण एवं आभ्युदयिक श्राद्धकी विधिका विवरण

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि विष्णुना यदुदीरितम्।
श्राद्धं साधारणं नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १
अयने विषुवे युग्मे सामान्ये चार्कसंक्रमे।
अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षे पञ्चदशीषु च॥ २
आर्द्रामघारोहिणीषु द्रव्यब्राह्मणसङ्गमे।
गजच्छायाव्यतीपाते विष्टिवैधृतिवासरे॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके पश्चात् अब मैं उस साधारण श्राद्धके विषयमें बतला रहा हूँ, जो भोग एवं मोक्षरूपी फल प्रदान करनेवाला है तथा जिसका स्वयं भगवान् विष्णुने वर्णन किया है। सूर्यके उत्तरायण एवं दक्षिणायनके समय, विषुवयोग (सूर्यके तुला और मेष राशिपर संक्रमण करते समय), कृष्णपक्षकी अष्टका (मार्गशीर्ष, पौष, फाल्गुन कृष्णपक्षकी सप्तमी, अष्टमी, नवमी—इन तीन तिथियोंका समुदाय), अमावास्या और पूर्णिमा तिथियोंमें, आर्द्रा मघा और रोहिणी नक्षत्रोंमें, द्रव्य और ब्राह्मणके मिलनेपर, गजच्छाया, व्यतिपात और वैधृति योगोंमें तथा विष्टि (भद्रा) करणमें पूर्वोक्त साधारण श्राद्ध किया जाता है।

वैशाखस्य तृतीया या नवमी कार्त्तिकस्य च।
पञ्चदशी च माघस्य नभस्ये च त्रयोदशी॥ ४

युगादयः स्मृता ह्येता दत्तस्याक्षयकारिकाः।
तथा मन्वन्तरादौ च देयं श्राद्धं विजानता॥ ५

वैशाखमासकी शुक्लतृतीया (अक्षयतृतीया), कार्तिकमासकी शुक्लनवमी (अक्षयनवमी), माघमासकी पूर्णिमा और भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी—ये युगादि तिथियोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। इनमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलदायक होता है। इसी प्रकार विद्वान् श्राद्धकर्ताको मन्वन्तरोंकी आदि तिथियोंमें भी श्राद्ध-कर्म करना चाहिये॥ १—५॥

अश्वयुक्छुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिके तथा।
तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च॥ ६

फाल्गुनस्य ह्यमावास्या पौषस्यैकादशी तथा।
आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी॥ ७

श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा।
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठपञ्चदशी सिता।
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारिकाः॥ ८

यस्यां मन्वन्तरस्यादौ रथमास्ते दिवाकरः।
माघमासस्य सप्तम्यां सा तु स्याद् रथसप्तमी॥ ९

पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं
दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः।
श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं
रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति॥ १०

वैशाख्यामुपरागेषु तथोत्सवमहालये।
तीर्थायतनगोष्ठेषु दीपोद्यानगृहेषु च॥ ११

विविक्तेषूपलिप्तेषु श्राद्धं देयं विजानता।
विप्रान् पूर्वे परे चाह्नि विनीतात्मा निमन्त्रयेत्॥ १२

शीलवृत्तगुणोपेतान् वयोरूपसमन्वितान्।
द्वौ दैवे त्रींस्तथा पित्र्ये एकैकमुभयत्र वा॥ १३

भोजयेत् सुसमृद्धोऽपि न प्रसज्जेत विस्तरे।
विश्वान् देवान् यवैः पुष्पैरभ्यर्च्यासनपूर्वकम्॥ १४

पूरयेत् पात्रयुग्मं तु स्थाप्य दर्भपवित्रकम्।
शंनो देवीत्यपः कुर्याद् यवोऽसीति यवानपि॥ १५

आश्विनमासकी शुक्लनवमी, कार्तिकमासकी शुक्लद्वादशी, चैत्रमासकी शुक्लतृतीया, भाद्रपदमासकी शुक्लतृतीया, फाल्गुनमासकी अमावास्या, पौषमासकी शुक्ल-एकादशी, आषाढ़मासकी शुक्लदशमी, माघमासकी शुक्लसप्तमी, श्रावणमासकी कृष्णाष्टमी, आषाढ़मासकी पूर्णिमा तथा कार्तिक, फाल्गुन, चैत्र और ज्येष्ठकी पूर्णिमा—ये चौदह तिथियाँ चौदह मन्वन्तरोंकी आदि तिथियाँ हैं; इनमें किया गया श्राद्ध अक्षय फलकारक होता है। जिस मन्वन्तरकी आदि तिथि माघमासकी शुक्लसप्तमीमें भगवान् सूर्य रथपर आरूढ़ होते हैं, वह सप्तमी रथसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है। इस तिथिमें यदि मनुष्य प्रयत्नपूर्वक अपने पितरोंको तिलमिश्रित जलमात्र प्रदान करता है अर्थात् तर्पण कर लेता है तो वह सहस्रों वर्षोंतक किये गये श्राद्धके समान फलदायक होता है। इसका रहस्य पितृगण स्वयं बतलाते हैं। विद्वान् श्राद्धकर्ताको चाहिये कि वह वैशाखी पूर्णिमामें, सूर्य एवं चन्द्रग्रहणमें, विशेष उत्सवके अवसरपर, पितृपक्षमें,* तीर्थस्थान, देव-मन्दिर एवं गोशालामें, दीपगृह और वाटिकामें एकान्तमें लिपी-पुती हुई भूमिपर श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करे। वह श्राद्धके एक या दो दिन पूर्व ही विनम्रभावसे शीलवान्, सदाचारी, गुणी, रूपवान् एवं अधिक अवस्थावाले ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करे। देवकार्यमें दो और पितृ-कार्यमें तीन अथवा दोनोंमें एक-एक ही ब्राह्मणको भोजन कराना चाहिये। अतिशय समृद्धिशाली होनेपर भी विस्तारमें नहीं लगना चाहिये। उस समय विश्वेदेवोंको आसन प्रदान करके यव और पुष्पोंद्वारा उनकी अर्चना करे। फिर दो मिट्टीके पात्र (कोसा) रखकर उनमें कुशनिर्मित पवित्रक डाल दे और **'शं नो देवीरभीष्टये०'** (वाज० सं० ३६। १२) इस मन्त्रको पढ़कर उन्हें जलसे भर दे और **'यवोऽसि०'** (नारायणोपनिषद्) यह मन्त्र उच्चारणकर उनमें यव डाल दे।

* इस प्रकार श्राद्धके ९६ अवसर प्रसिद्ध हैं और ये ही वचन हेमाद्रि आदिके श्राद्धकाण्डों तथा श्राद्धतत्त्व, श्राद्धविवेक, श्राद्धप्रकाश, श्राद्धकल्पलता, पितृदयिता आदि सभी श्राद्ध-निबन्धोंमें प्राप्त होते हैं।

गन्धपुष्पैश्च सम्पूज्य वैश्वदेवं प्रति न्यसेत्।
विश्वेदेवास इत्याभ्यामावाह्य विकिरेद् यवान्॥ १६

गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य या दिव्येत्यर्घ्यमुत्सृजेत्।
अभ्यर्च्य ताभ्यामुत्सृष्टिं पितृकार्यं समारभेत्॥ १७

फिर गन्ध, पुष्प आदिसे पूजा करके उन्हें विश्वेदेवोंके उद्देश्यसे (उनके निकट) रख दे। फिर **'विश्वेदेवास०'** (शु० यजु० ७। ३४) इत्यादि दो मन्त्रोंद्वारा विश्वेदेवोंका आवाहन करके (वेदीपर) जौ बिखेर दे। तत्पश्चात् गन्ध-पुष्प आदिसे अलंकृत करके **'या दिव्या आप:०'** (तै० सं०) इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। इस प्रकार उनकी पूजा करके और उनसे निवृत्त होकर पितृ-कार्य आरम्भ करे॥ १६—१७॥

दर्भासनं तु दत्त्वादौ त्रीणि पात्राणि पूरयेत्।
सपवित्राणि कृत्वादौ शन्नो देवीत्यपः क्षिपेत्॥ १८
तिलोऽसीति तिलान् कुर्याद् गन्धपुष्पादिकं पुनः।
पात्रं वनस्पतिमयं तथा पर्णमयं पुनः॥ १९
जलजं वाथ कुर्वीत तथा सागरसम्भवम्।
सौवर्णं राजतं वापि पितृणां पात्रमुच्यते॥ २०
रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव वा।
राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः॥ २१
वार्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते।
तथार्घ्यपिण्डभोज्यादौ पितृणां राजतं मतम्॥ २२
शिवनेत्रोद्भवं यस्मात् तस्मात् पितृवल्लभम्।
अमङ्गलं तद् यत्नेन देवकार्येषु वर्जयेत्॥ २३
एवं पात्राणि सङ्कल्प्य यथालाभं विमत्सरः।
या दिव्येति पितुर्नाम गोत्रैर्दर्भकरो न्यसेत्॥ २४
पितॄनावाहयिष्यामि कुर्वित्युक्तस्तु तैः पुनः।
उशन्तस्त्वा तथायान्तु ऋग्भ्यामावाहयेत् पितॄन्॥ २५
या दिव्येत्यर्घ्यमुत्सृज्य दद्याद् गन्धादिकांस्ततः।
हस्तात् तदुदकं पूर्वं दत्त्वा संस्रवमादितः॥ २६
पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्।
पितृभ्यः स्थानमसीति निधाय परिषेचयेत्॥ २७
तत्रापि पूर्ववत् कुर्यादग्निकार्यं विमत्सरः।
उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेषयेत्॥ २८
प्रशान्तचित्तः सततं दर्भपाणिरशेषतः।
गुणाढ्यैः सूपशाकैस्तु नानाभक्ष्यैर्विशेषतः॥ २९

(पितृ-श्राद्धमें) पहले कुशोंका आसन प्रदान करके तीन अर्घ्यपात्रोंको तैयार करना चाहिये। उनमें प्रथमतः कुशनिर्मित पवित्रक डालकर **'शं नो' देवी०'** (शु० यजु० ३६। १२)—' इस मन्त्रसे उन्हें जलसे भर दे, पुनः **'तिलोऽसि०'**- इस मन्त्रसे उनमें तिल डालकर उन्हें (अमन्त्रक ही) गन्ध, पुष्प आदिसे पूरा कर दे। पितरोंके निमित्त प्रयुक्त किये गये ये पात्र काष्ठके या वृक्षके पत्तेके या जल एवं सागरसे उत्पन्न हुए पत्तेके अथवा सुवर्णमय या रजतमय होने चाहिये। (यदि चाँदीका पात्र देनेकी सामर्थ्य न हो तो) चाँदीके विषयमें कथनोपकथन, दर्शन अथवा दानसे ही कार्य सम्पन्न हो सकता है। पितरोंके निमित्त यदि चाँदीके बने हुए या चाँदीसे मढ़े हुए पात्रोंद्वारा श्रद्धापूर्वक जलमात्र भी प्रदान कर दिया जाय तो वह अक्षय तृप्तिकारक होता है। इसी प्रकार पितरोंके लिये अर्घ्य, पिण्ड और भोजनके पात्र भी चाँदीके ही प्रशस्त माने गये हैं। चूँकि चाँदी शिवजीके नेत्रसे उद्भूत हुई है, इसलिये यह पितरोंको परम प्रिय है; किन्तु देवकार्यमें इसे अशुभ माना गया है, इसलिये देवकार्यमें चाँदीको दूर रखना चाहिये। इस प्रकार यथाशक्ति पात्रोंकी व्यवस्था करके मत्सररहित हो कुश हाथमें लेकर **'या दिव्या०'** (तै० सं०)—इस मन्त्रद्वारा अपने पिताके नाम और गोत्रका उच्चारण करते हुए (उन अर्घ्यपात्रोंको) रख दे। (फिर ब्राह्मणोंकी ओर देखकर यों कहे कि) 'मैं अपने पितरोंका आवाहन करूँगा।' इसके उत्तरमें ब्राह्मणलोग कहें—'करो'। ऐसा कहे जानेपर **'उशन्तस्त्वा०'**—एवं **'आयान्तु नः०'**—इन दोनों ऋचाओंद्वारा पितरोंका आवाहन करे। तत्पश्चात् **'या दिव्या०'**— इस मन्त्रसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करके गन्ध, पुष्प आदिसे उनकी पूजा करे। फिर पिण्डदानसे पूर्व उस जलको हाथमें लेकर उसे पितृ-पात्रमें रखकर वेदीके अग्रभागमें उलटकर रख दे और **'पितृभ्यः स्थानमसि'**—यह पितरोंके लिये स्थान है'—ऐसा कहकर उसे जलसे सींच दे। इस कार्यमें भी पूर्ववत् सावधानीपूर्वक अग्निकार्य सम्पन्न करे। तदुपरान्त हाथमें कुश लिये हुए प्रशान्तचित्तसे गुणकारी दाल, शाक आदिसे युक्त विविध प्रकारके खाद्य पदार्थोंको अपने दोनों

अन्नं तु सदधिक्षीरं गोघृतं शर्करान्वितम्।
मांसं प्रीणाति वै सर्वान् पितृनित्याह केशवः॥ ३०
द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन् मासान् हारिणेन तु।
औरभ्रेणाथ चतुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै॥ ३१
षण्मासं छागमांसेन तृप्यन्ति पितरस्तथा।
सप्त पार्षतमांसेन तथाष्टावेणजेन तु॥ ३२
दश मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहिषामिषैः।
शशकूर्मजमांसेन मासानेकादशैव तु॥ ३३
संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च।
रौरवेण च तृप्यन्ति मासान् पञ्चदशैव तु॥ ३४
वार्ध्रीणसस्य मांसेन तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी।
कालशाकेन चानन्ता खड्गमांसेन चैव हि॥ ३५
यत् किञ्चिन्मधुसंमिश्रं गोक्षीरं घृतपायसम्।
दत्तमक्षयमित्याहुः पितरः पूर्वदेवताः॥ ३६
स्वाध्यायं श्रावयेत् पित्र्यं पुराणान्यखिलानि च।
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां सूक्तानि विविधानि च॥ ३७
इन्द्राग्निसोमसूक्तानि पावनानि स्वशक्तितः।
बृहद्रथन्तरं तद्वज्ज्येष्ठसाम सरौहिणम्॥ ३८
तथैव शान्तिकाध्यायं मधुब्राह्मणमेव च।
मण्डलं ब्राह्मणं तद्वत् प्रीतिकारि तु यत् पुनः॥ ३९
विप्राणामात्मनश्चैव तत् सर्वं समुदीरयेत्।
भुक्तवत्सु ततस्तेषु भोजनोपान्तिके नृप॥ ४०
सार्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा।
समुत्सृजेद् भुक्तवतामग्रतो विकिरेद् भुवि॥ ४१
अग्निदग्धास्तु ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम।
भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु प्रयान्तु परमां गतिम्॥ ४२
येषां न माता न पिता न बन्धु-
र्न गोत्रशुद्धिर्न तथान्नमस्ति।
तत्तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत्
प्रयान्तु लोकेषु सुखाय तद्वत्॥ ४३
असंस्कृतप्रमीतानां त्यक्तानां कुलयोषिताम्।
उच्छिष्टभागधेयः स्याद् दर्भे विकिरयोश्च यः॥ ४४
तृप्ता ज्ञात्वोदकं दद्यात् सकृद् विप्रकरे तथा।
उपलिप्ते महीपृष्ठे गोशकृन्मूत्रवारिणा॥ ४५

हाथोंसे लाकर 'पूर्णरूपसे परिवेषण करे (परोसे)। पदार्थोंमें दही, दूध और शक्करमिश्रित अन्न तथा गोघृत, गोदुग्ध और खीर आदि जो कुछ पितरोंके निमित्त दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। पितरलोग गृहस्थोंके प्रथम देवता हैं, इसलिये श्राद्धके अवसरपर पितृसम्बन्धी सूक्तोंका स्वाध्याय (पाठ), सम्पूर्ण पुराण, ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके विभिन्न प्रकारके सूक्त, इन्द्र, अग्नि और सोमके पवित्र सूक्त, बृहद्रथन्तर, रौहिणसहित ज्येष्ठ साम, शान्तिकाध्याय, मधुब्राह्मण और मण्डलब्राह्मण आदि तथा इसी प्रकारके अन्यान्य प्रीतिवर्धक सूक्तों या स्तोत्रोंका स्वयं अथवा ब्राह्मणोंद्वारा पाठ करना-करवाना चाहिये॥ १८—३९ $\frac{१}{२}$॥

राजन्! उन ब्राह्मणोंके भोजन कर चुकनेपर उनके भोजनके संनिकट ही सभी वर्णोंके लिये नियत किये हुए अन्न आदि पदार्थोंको लाकर उन्हें जलसे परिपूर्ण कर भोजन करनेवालोंके समक्ष ही यह कहते हुए पृथ्वीपर बिखेर दे—'मेरे कुलमें (मृत्युके पश्चात्) जिन जीवोंका अग्नि-संस्कार हुआ हो अथवा जिनका अग्नि-संस्कार नहीं भी हुआ हो, वे सभी पृथ्वीपर बिखेरे हुए इस अन्नसे तृप्त हों और परम गतिको प्राप्त हों। जिनकी न माता है, न जिनके पिता या भाई-बन्धु हैं, न तो जिनकी गोत्र-शुद्धि हुई है तथा जिनके पास अन्न भी नहीं है, उनकी तृप्तिके निमित्त मैंने भूतलपर यह अन्न छींट दिया है, अतः वे भी (मेरे पितरोंकी भाँति) सुखभोगके लिये उत्तम लोकोंमें जायँ। इसी प्रकार जो कुलवधुएँ बिना संस्कृत हुए ही मृत्युको प्राप्त हो गयी हैं अथवा जिनका परिवारवालोंने परित्याग कर दिया है, उनके लिये कुश-मूलमें लगा हुआ तथा विकिरका बचा हुआ उच्छिष्ट भाग ही हिस्सा है।' तदनन्तर ब्राह्मणोंको तृप्त जानकर एक बार उनके हाथोंपर जल डाल दे। फिर गोबर, गोमूत्र और जलसे लिपी हुई भूमिपर

निधाय दर्भान् विधिवद् दक्षिणाग्रान् प्रयत्नतः।
सर्ववर्णेन चान्नेन पिण्डांस्तु पितृयज्ञवत्॥ ४६
अवनेजनपूर्वं तु नामगोत्रेण मानवः।
गन्धधूपादिकं दद्यात् कृत्वा प्रत्यवनेजनम्॥ ४७
जान्वाच्य सव्यं सव्येन पाणिनाथ प्रदक्षिणम्।
पित्र्यमानीय तत् कार्यं विधिवद् दर्भपाणिना॥ ४८
दीपप्रज्वालनं तद्वत् कुर्यात् पुष्पार्चनं बुधः।
अथाचान्तेषु चाचम्य वारि दद्यात् सकृत् सकृत्॥ ४९
अथ पुष्पाक्षतान् पश्चादक्षय्योदकमेव च।
सतिलं नामगोत्रेण दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्॥ ५०
गोभूहिरण्यवासांसि भव्यानि शयनानि च।
दद्याद् यदिष्टं विप्राणामात्मनः पितुरेव च॥ ५१
वित्तशाठ्येन रहितः पितृभ्यः प्रीतिमावहन्।
ततः स्वधावाचनकं विश्वेदेवेषु चोदकम्॥ ५२
दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयाद् विश्वेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः।
अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः॥ ५३
गोत्रं तथा वर्धतां नस्तथेत्युक्तश्च तैः पुनः।
दातारो नोऽभिवर्धन्तामिति चैवमुदीरयेत्॥ ५४
एताः सत्याशिषः सन्तु सन्त्वित्युक्तश्च तैः पुनः।
स्वस्तिवाचनकं कुर्यात् पिण्डानुद्धृत्य भक्तितः॥ ५५
उच्छेषणं तु तत् तिष्ठेद् यावद् विप्रा विसर्जिताः।
ततो ग्रहबलिं कुर्यादिति धर्मव्यवस्थितिः॥ ५६
उच्छेषणं भूमिगतमजिह्मस्यास्तिकस्य च।
दासवर्गस्य तत् पित्र्यं भागधेयं प्रचक्षते॥ ५७
पितृभिर्निर्मितं पूर्वमेतदाप्यायनं सदा।
अपुत्राणां सपुत्राणां स्त्रीणामपि नराधिप॥ ५८
ततस्तानग्रतः स्थित्वा परिगृह्योदपात्रकम्।
वाजे वाज इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत्॥ ५९
बहिः प्रदक्षिणां कुर्यात् पदान्यष्टावनुव्रजन्।
बन्धुवर्गेण सहितः पुत्रभार्यासमन्वितः॥ ६०

कुशोंको विधिपूर्वक दक्षिणाभिमुख बिछा दे। तब श्राद्धकर्ता पिताके नाम और गोत्रका उच्चारण करके पहले (कुशोंपर) अवनेजन दे (पिण्डकी वेदीपर कुशसे जल छिड़के), फिर पितृ-यज्ञकी भाँति सभी प्रकारके अन्नोंसे बने हुए पिण्डोंको उन कुशोंपर रख दे। पुनः गन्ध, पुष्प आदिसे पिण्ड-पूजा करके उनपर प्रत्यवनेजनका जल छोड़े और बायाँ घुटना टेककर बायें हाथसे प्रदक्षिणा करे; फिर कुश हाथमें लेकर विधिपूर्वक पितृकार्य सम्पन्न करे। बुद्धिमान् श्राद्धकर्ताको पूर्वोक्त विधिके अनुसार दीप जलाना एवं पुष्पोंद्वारा पूजन करना चाहिये। तत्पश्चात् ब्राह्मणोंके आचमन कर लेनेपर स्वयं भी आचमन करके उनके हाथोंपर एक-एक बार जल, पुष्प, अक्षत और तिलसहित अक्षय्योदक डालकर यथाशक्ति उन्हें दक्षिणा दे। पुनः कंजूसी छोड़कर पितरोंको प्रसन्न करते हुए गौ, पृथ्वी, सोना, वस्त्र, सुन्दर शय्याएँ तथा जो वस्तु अपने तथा पिताको अभीष्ट रही हो, वह सब ब्राह्मणोंको दान करना चाहिये। तदुपरान्त स्वधाका उच्चारण करके विद्वान् श्राद्धकर्ता पूर्वाभिमुख हो विश्वेदेवोंको जल प्रदान करके उनसे आशीर्वाद ग्रहण करे। उस समय ब्राह्मणोंसे कहे—'हमारे पितर सौम्य हों।' पुनः ब्राह्मण लोग कहें—'सन्तु—हों'॥ ४०—५३॥

(पुनः यजमान कहे) 'हमारे गोत्रकी वृद्धि हो तथा हमारे दाताओंकी अभिवृद्धि हो।' यों कहे जानेपर पुनः वे ब्राह्मण कहें—'वैसा ही हो।' पुनः प्रार्थना करे—'ये आशीर्वाद सत्य हों।' ब्राह्मणलोग कहें—'सन्तु—(सत्य) हों'। पुनः उन ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराये और पिण्डोंको उठाकर भक्तिपूर्वक ग्रहबलि करे—यही धर्मकी मर्यादा है। जबतक निमन्त्रित ब्राह्मण विसर्जित किये जाते हैं, तबतक सभी वस्तुएँ उच्छिष्ट रहती हैं। कपटरहित एवं आस्तिक ब्राह्मणोंका जूठन और पितृकार्यमें भूमिपर बिखरे हुए अन्न नौकरोंके भाग हैं—ऐसा कहा जाता है। नरेश्वर! पितरोंद्वारा व्यवस्थित यह तर्पणरूप कार्य पुत्रहीनों, पुत्रवानों तथा स्त्रियोंके लिये भी है। तदनन्तर ब्राह्मणोंको आगे खड़ा करके जलपात्रको हाथमें लेकर 'वाजे वाजे'—यों कहते हुए कुशोंके अग्रभागसे पितरोंका विसर्जन करे तथा बाहर जाकर पुत्र, स्त्री और भाई-बन्धुओंको साथ लेकर आठ पगतक उन ब्राह्मणोंके पीछे-पीछे चलकर उनकी प्रदक्षिणा करे।

निवृत्य प्राणिपत्याथ पर्युक्ष्याग्निं समन्त्रवत्।
वैश्वदेवं प्रकुर्वीत नैत्यकं बलिमेव च॥ ६१
ततस्तु वैश्वदेवान्ते सभृत्यसुतबान्धवः।
भुञ्जीतातिथिसंयुक्तः सर्वं पितृनिषेवितम्॥ ६२
एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्यात् सर्वेषु पर्वसु।
श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्॥ ६३
भार्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि भक्तिमान्।
शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्यादनेन विधिना बुधः॥ ६४
तृतीयमाभ्युदयिकं वृद्धिश्राद्धं तदुच्यते।
उत्सवानन्दसम्भारे यज्ञोद्वाहादिमङ्गले॥ ६५
मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम्।
ततो मातामहा राजन् विश्वेदेवास्तथैव च॥ ६६
प्रदक्षिणोपचारेण दध्यक्षतफलोदकैः।
प्राङ्मुखो निर्वपेत् पिण्डान् दूर्वया च कुशैर्युतान्॥ ६७
सम्पन्नमित्यभ्युदये दद्यादर्घ्यं द्वयोर्द्वयोः।
युग्मा द्विजातयः पूज्या वस्त्रकार्तस्वरादिभिः॥ ६८
तिलार्थस्तु यवैः कार्यो नान्दीशब्दानुपूर्वकः।
माङ्गल्यानि च सर्वाणि वाचयेद् द्विजपुङ्गवैः॥ ६९
एवं शूद्रोऽपि सामान्यवृद्धिश्राद्धेऽपि सर्वदा।
नमस्कारेण मन्त्रेण कुर्यादामान्नतः सदा॥ ७०
दानप्रधानः शूद्रः स्यादित्याह भगवान् प्रभुः।
दानेन सर्वकामाप्तिरस्य संजायते यतः॥ ७१

वहाँसे लौटकर अग्निको प्रणाम करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसका पर्युक्षण करे तथा वैश्वदेव और नित्य बलि प्रदान करे। वैश्वदेवबलि समाप्त कर लेनेके बाद अपने नौकर-चाकर, पुत्र, भाई-बन्धु और अतिथियोंके साथ सभी प्रकारके पितृ-सेवित (जिन्हें पहले पितरोंको समर्पित किया जा चुका है) पदार्थोंका भोजन करे। इस सामान्य पार्वण नामक श्राद्धको, जो सभी प्रकारके मनोवाञ्छित फलोंका प्रदाता है, उपनयन-संस्कारसे रहित व्यक्ति भी सभी पर्वोंके अवसरपर कर सकता है। बुद्धिमान् पितृ-भक्त पुरुष पत्नीरहित अवस्थामें तथा परदेशमें स्थित रहनेपर भी इस श्राद्धका विधान कर सकता है। शूद्रको भी पूर्वोक्त विधिके अनुसार मन्त्ररहित ही इस श्राद्धको करनेका अधिकार है। ऋषियो! अब तीसरे प्रकारके पार्वण श्राद्धको, जो आभ्युदयिक वृद्धिश्राद्धके नामसे कहा जाता है, बतला रहा हूँ। यह श्राद्ध किसी उत्सव, हर्ष-संयोग, यज्ञ, विवाह आदिके शुभ अवसरपर किया जाता है॥ ५४—६५॥

राजन्! इस श्राद्धमें प्रथमतः माताओंकी पूजा करके तत्पश्चात् पितरोंकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर मातामह (नाना) और विश्वेदेवोंके पूजनका विधान है। श्राद्धकर्ता पूर्वाभिमुख हो प्रदक्षिणा करके दही, अक्षत, फल और जल आदि सामग्री-समेत दूर्वा और कुशोंसे संयुक्त पिण्डोंको समर्पित करे। इस आभ्युदयिक श्राद्धमें '**सम्पन्नम्**' इस मन्त्रका उच्चारण करके दोनों प्रकारके पितरोंको अर्घ्य प्रदान करे। उस समय वस्त्र, सुवर्ण आदि सामग्रियोंसे दो ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। तिलके स्थानपर '**नान्दी**' शब्दके उच्चारणपूर्वक यवसे ही कार्य सम्पन्न करे और श्रेष्ठ विद्वान् ब्राह्मणोंद्वारा सभी प्रकारके माङ्गलिक सूक्तों अथवा स्तोत्रोंका पाठ कराये। इसी प्रकार इस सामान्य वृद्धिश्राद्धमें शूद्र भी सदा-सर्वदा नमस्काररूपी मन्त्रके उच्चारणसे तथा आमान्न-दानसे (बिना पके हुए कच्चे अन्नके दानसे) कार्य सम्पन्न कर सकता है। शूद्रको विशेषरूपसे दानप्रधान (दानमें तत्पर, दानशील) होना चाहिये; क्योंकि दानसे उसके सभी मनोरथोंकी पूर्ति हो जाती है—ऐसा सर्वसमर्थ भगवान्‌ने कहा है॥ ६६—७१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे साधारणाभ्युदयकीर्तनं नाम सप्तदशोऽध्यायः॥ १७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें साधारणाभ्युदयश्राद्ध-वर्णन नामक सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७॥

अठारहवाँ अध्याय

एकोद्दिष्ट और सपिण्डीकरण श्राद्धकी विधि

सूत उवाच

एकोद्दिष्टमतो वक्ष्ये यदुक्तं चक्रपाणिना।
मृते पुत्रैर्यथा कार्यमाशौचं च पितर्यपि॥ १

दशाहं शावमाशौचं ब्राह्मणेषु विधीयते।
क्षत्रियेषु दश द्वे च पक्षं वैश्येषु चैव हि॥ २

शूद्रेषु मासमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते।
नैशं वाकृतचूडस्य त्रिरात्रं परतः स्मृतम्॥ ३

जननेऽप्येवमेव स्यात् सर्ववर्णेषु सर्वदा।
तथास्थिसञ्चयनादूर्ध्वमङ्गस्पर्शो विधीयते॥ ४

प्रेताय पिण्डदानं तु द्वादशाहं समाचरेत्।
पाथेयं तस्य तत् प्रोक्तं यतः प्रीतिकरं महत्॥ ५

तस्मात् प्रेतपुरं प्रेतो द्वादशाहं[1] न नीयते।
गृहं पुत्रं कलत्रं च द्वादशाहं प्रपश्यति॥ ६

तस्मान्निधेयमाकाशे दशरात्रं पयस्तथा।
सर्वदाहोपशान्त्यर्थमध्वश्रमविनाशनम्॥ ७

तत एकादशाहे तु द्विजानेकादशैव तु।
क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुतो द्विजान्॥ ८

द्वितीयेऽह्नि पुनस्तद्वदेकोद्दिष्टं समाचरेत्।
आवाहनाग्नौकरणं दैवहीनं विधानतः॥ ९

एकं पवित्रमेकोऽर्घ एकः पिण्डो विधीयते।
उपतिष्ठतामित्येतद् देयं पश्चात्तिलोदकम्॥ १०

स्वदितं विकिरेद् ब्रूयाद् विसर्गे चाभिरम्यताम्।
शेषं पूर्ववदत्रापि कार्यं वेदविदा पितुः॥ ११

अनेन विधिना सर्वमनुमासं समाचरेत्।
सूतकान्ताद् द्वितीयेऽह्नि शय्यां दद्याद् विलक्षणाम्॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके उपरान्त अब मैं उस 'एकोद्दिष्ट'[2] श्राद्धकी विधि बतला रहा हूँ, जिसका वर्णन स्वयं भगवान् चक्रपाणि विष्णुने किया है। पिताकी मृत्यु हो जानेपर पुत्रोंको शौचपर्यन्त जैसा कार्य करना चाहिये, उसे सुनिये॥ १॥

ब्राह्मणोंमें दस दिनके अशौचका विधान है। इसी प्रकार क्षत्रियोंमें बारह दिनका, वैश्योंमें पन्द्रह दिनका और शूद्रोंमें एक मासका अशौच लगता है। इस अशौचका विधान सगोत्रमें ही किया गया है। जिसका मुण्डन-संस्कार नहीं हुआ हो, ऐसे बच्चेका मरणाशौच एक राततक तथा इससे बड़ी अवस्थावालेका तीन राततक बतलाया गया है। इसी प्रकार जननाशौच भी सर्वदा सभी वर्णोंके लिये होता है। मरणाशौचमें अस्थिसंचयनके उपरान्त (परिवारवालोंका) अङ्गस्पर्श करनेका विधान है। प्रेतात्माके लिये बारह दिनोंतक पिण्डदान करना चाहिये; क्योंकि वे पिण्ड उस प्रेतके लिये पाथेय (मार्गका कलेवा) बतलाये गये हैं, अतः अतिशय सुखदायी होते हैं। इसी कारण वह प्रेतात्मा बारह दिनोंतक प्रेतपुर (यमपुरी)-को नहीं ले जाया जाता। वह बारह दिनोंतक अपने गृह, पुत्र और पत्नीको देखता रहता है। इसलिये उसके समस्त दाहोंकी शान्ति तथा मार्गकी थकावटका विनाश करनेके निमित्त दस राततक आकाशमें (पीपलके वृक्षमें बँधा हुआ) जलघट रखना चाहिये। तत्पश्चात् ग्यारहवें दिन ग्यारह ब्राह्मणोंको भोजन करावे। इसी प्रकार क्षत्रिय आदि अन्य वर्णवालोंको भी अपने-अपने सूतककी समाप्तिपर (विषम-संख्यक) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। पुनः दूसरे अर्थात् बारहवें दिन पूर्ववत् विधिपूर्वक एकोद्दिष्ट श्राद्धका समारम्भ करे। इसमें आवाहन, अग्निमें पिण्डदान तथा विश्वेदेवोंका पूजन निषिद्ध है। इस श्राद्धमें एक ही पवित्रक, एक ही अर्घ्य और एक ही पिण्डका विधान है। इसके पश्चात् **'उपतिष्ठताम्'** इस शब्दका उच्चारण करके तिलसहित जल प्रदान करे और **'स्वदितम्०'** इस सम्पूर्ण मन्त्रको बोलकर अन्नको पृथ्वीपर बिखेर दे तथा विसर्जनके समय **'अभिरम्यताम्'** ऐसा कहे। इस प्रकार वेदज्ञ पुत्रको अपने पिताका शेष श्राद्ध-कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। इसी विधिसे प्रतिमास (पिताकी मृत्यु-तिथिपर) सारा कार्य सम्पादित करना चाहिये। सूतक समाप्त होनेके पश्चात् दूसरे दिन

१. 'कहीं-कहीं द्वादशाहेन नीयते' पाठ भी है। वहाँ १२ दिनोंमें यमपुरी या पितृपुर ले जाया जाता है, ऐसा अर्थ समझना चाहिये।
२. पिता आदि केवल एक व्यक्तिके उद्देश्यसे किये जानेवाला श्राद्ध 'एकोद्दिष्ट' है।

काञ्चनं पुरुषं तद्वत् फलवस्त्रसमन्वितम्।
सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं नानाभरणभूषणैः॥ १३

वृषोत्सर्गं प्रकुर्वीत देया च कपिला शुभा।
उदकुम्भश्च दातव्यो भक्ष्यभोज्यसमन्वितः॥ १४

यावदब्दं नरश्रेष्ठ सतिलोदकपूर्वकम्।
ततः संवत्सरे पूर्णे सपिण्डीकरणं भवेत्॥ १५

सपिण्डीकरणादूर्ध्वं प्रेतः पार्वणभाग् भवेत्।
वृद्धिपूर्वेषु योग्यश्च गृहस्थश्च भवेत्ततः॥ १६

काञ्चनपुरुष (सोनेकी प्रतिमा) और फल-वस्त्रसे समन्वित विलक्षण शय्याका दान करना चाहिये। उसी समय अनेकविध वस्त्राभूषणोंसे द्विज-दम्पतीका पूजन करे। तत्पश्चात् वृषोत्सर्ग (साँड़ छोड़ने)-का काम सम्पन्न करे। उस समय एक सुन्दर कपिला गौका दान करे। नरश्रेष्ठ! पुनः अनेक प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे युक्त एक जलपात्र, जो तिल और जलसे परिपूर्ण हो, दान करे। इस प्रकारके जलपात्रका दान वर्षपर्यन्त करना चाहिये। इस तरह एक वर्ष पूर्ण होनेपर सपिण्डीकरण श्राद्ध किया जाता है। सपिण्डीकरण श्राद्धके पश्चात् प्रेतात्मा पार्वणश्राद्धका भागी हो जाता है तथा पूर्वकथित आभ्युदयिक आदि वृद्धि श्राद्धोंमें भाग पानेके योग्य एवं गृहस्थ हो जाता है॥ २—१६॥

सपिण्डीकरणे श्राद्धे देवपूर्वं नियोजयेत्।
पितॄनेवासयेत् तत्र पृथक् प्रेतं विनिर्दिशेत्॥ १७

गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्यात् पात्रचतुष्टयम्।
अर्घार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्॥ १८

तद्वत् संकल्प्य चतुरः पिण्डान् पिण्डप्रदस्तथा।
ये समाना इति द्वाभ्यामन्त्यं तु विभजेत् तथा॥ १९

चतुर्थस्य पुनः कार्यं न कदाचिदतो भवेत्।
ततः पितृत्वमापन्नः सर्वतस्तुष्टिमागतः॥ २०

अग्निष्वात्तादिमध्यत्वं प्राप्नोत्यमृतमुत्तमम्।
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं तस्मै तस्मान्न दीयते॥ २१

पितृष्वेव तु दातव्यं तत्पिण्डो येषु संस्थितः।
ततः प्रभृति संक्रान्तावुपरागादिपर्वसु॥ २२

त्रिपिण्डमाचरेच्छ्राद्धमेकोद्दिष्टे मृतेऽहनि।
एकोद्दिष्टं परित्यज्य मृताहे यः समाचरेत्॥ २३

सदैव पितृहा स स्यान्मातृभ्रातृविनाशकः।
मृताहे पार्वणं कुर्वन्नधोऽधो याति मानवः॥ २४

सम्पृक्तेष्वाकुलीभावः प्रेतेषु तु यतो भवेत्।
प्रतिसंवत्सरं तस्मादेकोद्दिष्टं समाचरेत्॥ २५

सपिण्डीकरण श्राद्धमें सर्वप्रथम विश्वेदेवोंको नियुक्त करे। तत्पश्चात् पितरोंको स्थान दे और प्रेतका स्थान उनसे अलग निश्चित करे। फिर अर्घ्य देनेके लिये चन्दन, जल और तिलसे युक्त चार पात्र तैयार करे और प्रेतपात्रके जलसे पितृपात्रोंको सिक्त कर दे। (अर्थात् प्रेतपात्रके जलको तीन भागमें विभक्त करके उन्हें पितृपात्रोंमें डाल दे।) इसी प्रकार पिण्डदाता चार पिण्डोंका निर्माण करके उन्हें संकल्पपूर्वक (पितरों और प्रेतके स्थानोंपर पृथक्-पृथक्) रख दे। फिर **'ये समानाः०'** (वाजस० १९। ४५-४६)—इन दो मन्त्रोंद्वारा अन्तके (चौथे प्रेतके) पिण्डको (स्वर्णशलाका या कुशसे) तीन भागोंमें विभक्त कर दे (और एक-एक भागको क्रमशः पितरोंके पिण्डोंमें मिला दे)। इसके पश्चात् उस चौथे पिण्डका कहीं भी कोई उपयोग नहीं रह जाता। इसके बाद वह प्रेतात्मा सब ओरसे संतुष्ट होकर पितृरूपमें परिवर्तित हो जाता है और 'अग्निष्वात्त' आदि देवपितरोंके मध्य उत्तम एवं अविनाशी पद प्राप्त कर लेता है। इसी कारण सपिण्डीकरणके पश्चात् उसे कुछ नहीं दिया जाता। वह प्रेतात्मा जिन पितरोंके बीच स्थित है, उसके पिण्डके तीनों भागोंको उन्हीं पितरोंके पिण्डोंमें मिला देना चाहिये। तत्पश्चात् संक्रान्ति अथवा ग्रहण आदि पर्वोंके समय त्रिपिण्ड श्राद्ध ही करना चाहिये। एकोद्दिष्ट श्राद्धको प्रेतात्माकी मृत्युके दिन करनेका विधान है। जो श्राद्धकर्ता पिताकी मृत्युतिथिपर एकोद्दिष्ट श्राद्धका परित्याग कर (केवल) अन्य श्राद्धोंको करता है, वह सदैव पितृघाती तथा माता और भाईका विनाशक हो जाता है। पिताकी क्षयाहतिथिपर पार्वण श्राद्ध करनेवाला मानव अधम-से-अधम गतिको प्राप्त होता है। चूँकि प्रेतोंसे सम्बन्धित हो जानेसे पितृगण व्याकुल हो जाते हैं, इसलिये प्रतिवर्ष एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये।

यावदब्दं तु यो दद्यादुदकुम्भं विमत्सरः।
प्रेतायान्नसमायुक्तं सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ २६

जो मनुष्य मत्सररहित होकर वर्षपर्यन्त प्रेतके निमित्त अन्न आदि पदार्थोंसे युक्त जलपात्र दान करता रहता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है।

आमश्राद्धं यदा कुर्याद् विधिज्ञः श्राद्धदस्तदा।
तेनाग्नौकरणं कुर्यात् पिण्डांस्तेनैव निर्वपेत्॥ २७

विधियोंका ज्ञाता श्राद्धकर्ता जब आमश्राद्ध (जिसमें ब्राह्मणोंको भोजन न कराकर कच्चा अन्न दिया जाता है) करे तो विधिपूर्वक अग्निकरण करे और उसी समय पिण्डदान भी करे।

त्रिभिः सपिण्डीकरणे अशेषत्रितये पिता।
यदा प्राप्स्यति कालेन तदा मुच्येत बन्धनात्॥ २८

मुक्तोऽपि लेपभागित्वं प्राप्नोति कुशमार्जनात्।

लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः।
पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्॥ २९

जब पिता सपिण्डीकरण श्राद्धमें अपने पिता, पितामह, प्रपितामहके साथ सम्बन्ध प्राप्त कर लेता है, तब वह बन्धनसे मुक्त हो जाता है। मुक्त होनेपर भी वह कुशके मार्जनसे लेपभागी हो जाता है। इस प्रकार चतुर्थ और पञ्चमसहित तीन पितर लेपभागी और पिता आदि तीन पिण्डभागी हैं। उनमें पिण्डदाता सातवीं संतान है। इस प्रकार सात पीढ़ीतक सपिण्डता मानी जाती है॥ १७—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सपिण्डीकरणकल्पो नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सपिण्डीकरण नामक अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८॥



उन्नीसवाँ अध्याय

श्राद्धोंमें पितरोंके लिये प्रदान किये गये हव्य-कव्यकी प्राप्तिका विवरण

ऋषय ऊचुः

कथं कव्यानि देयानि हव्यानि च जनैरिह।
गच्छन्ति पितृलोकस्थान् प्रापकः कोऽत्र गद्यते॥ १

यदि मर्त्यो द्विजो भुङ्क्ते हूयते यदि वानले।
शुभाशुभात्मकैः प्रेतैर्दत्तं तद् भुज्यते कथम्॥ २

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! मनुष्योंको (पितरोंके निमित्त) हव्य और कव्य किस प्रकार देना चाहिये? इस मृत्युलोकमें पितरोंके लिये प्रदान किये गये हव्य-कव्य पितृलोकमें स्थित पितरोंके पास कैसे पहुँच जाते हैं? यहाँ उनको पहुँचानेवाला कौन कहा गया है? यदि मृत्युलोकवासी ब्राह्मण उन्हें खा जाता है अथवा अग्निमें उनकी आहुति दे दी जाती है तो अपने कर्मानुसार शुभ एवं अशुभ योनियोंमें गये हुए प्रेतोंद्वारा उस पदार्थका उपभोग कैसे किया जाता है?॥ १-२॥

सूत उवाच

वसून् वदन्ति च पितॄन् रुद्रांश्चैव पितामहान्।
प्रपितामहांस्तथादित्यानित्येवं वैदिकी श्रुतिः॥ ३

नाम गोत्रं पितॄणां तु प्रापकं हव्यकव्ययोः।
श्राद्धस्य मन्त्राः श्रद्धा च उपयोज्यातिभक्तितः॥ ४

अग्निष्वात्तादयस्तेषामाधिपत्ये व्यवस्थिताः।
नामगोत्रकालदेशा भवान्तरगतानपि॥ ५

प्राणिनः प्रीणयन्त्येते तदाहारत्वमागतान्।
देवो यदि पिता जातः शुभकर्मानुयोगतः॥ ६

तस्यान्नममृतं भूत्वा दिव्यत्वेऽप्यनुगच्छति।
दैत्यत्वे भोगरूपेण पशुत्वे च तृणं भवेत्॥ ७

श्राद्धान्नं वायुरूपेण सर्पत्वेऽप्युपतिष्ठति।
पानं भवति यक्षत्वे राक्षसत्वे तथामिषम्॥ ८

दनुजत्वे तथा माया प्रेतत्वे रुधिरोदकम्।
मनुष्यत्वेऽन्नपानानि नानाभोगरसं भवेत्॥ ९

रतिशक्तिः स्त्रियः कान्ता भोज्यं भोजनशक्तिता।
दानशक्तिः सविभवा रूपमारोग्यमेव च॥ १०

श्रद्धापुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः।
आयुः पुत्रान् धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च॥ ११

राज्यं चैव प्रयच्छन्ति प्रीताः पितृगणा नृणाम्।
श्रूयते च पुरा मोक्षं प्राप्ताः कौशिकसूनवः।
पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैर्गता विष्णोः परं पदम्॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पितरोंको वसुगण, पितामहोंको रुद्रगण तथा प्रपितामहोंको आदित्यगण कहा जाता है—ऐसी वैदिकी श्रुति है। पितरोंके नाम और गोत्र (उनके निमित्त प्रदान किये गये) हव्य-कव्यको उनके पास पहुँचानेवाले हैं। अतिशय भक्तिपूर्वक उच्चरित श्राद्धके मन्त्र भी कारण हैं एवं श्रद्धाके उपयोग भी हेतु है। अग्निष्वात्त आदि पितरोंके आधिपत्य-पदपर स्थित हैं। उन देव-पितरोंके समक्ष जो खाद्य पदार्थ पितरोंका नाम, गोत्र, काल और देशका उच्चारण करके श्रद्धासे अर्पित किया जाता है, वह पितृगणोंको यदि वे जन्मान्तरमें भी गये हुए हों तो भी उन्हें तृप्त कर देता है। वह उस समय उस योनिके लिये उपयुक्त आहारके रूपमें परिणत हो जाता है। यदि शुभ कर्मोंके प्रभावसे पिता देवयोनिमें उत्पन्न हो गये हैं तो उनके उद्देश्यसे दिया गया अन्न अमृत होकर देवयोनिमें भी उन्हें प्राप्त होता है। वह श्राद्धान्न दैत्ययोनिमें भोगरूपमें और पशुयोनिमें तृणरूपमें बदल जाता है। सर्पयोनिमें वह वायुरूपसे सर्पके निकट पहुँचता है। यक्ष-योनिमें वह पीनेवाला पदार्थ तथा राक्षसयोनिमें मांस हो जाता है। दानवयोनिमें मायारूपमें, प्रेतयोनिमें रुधिर और जलके रूपमें तथा मानवयोनिमें नाना प्रकारके भोग-रसोंसे युक्त अन्न-पानादिके रूपमें परिवर्तित हो जाता है। रमण करनेकी शक्ति, सुन्दरी स्त्रियाँ, भोजन करनेके पदार्थ, भोजन पचानेकी शक्ति, प्रचुर सम्पत्तिके साथ-साथ दान देनेकी निष्ठा, सुन्दर रूप और स्वास्थ्य—ये सभी श्रद्धारूपी वृक्षके पुष्प बतलाये गये हैं और ब्रह्मप्राप्ति उसका फल है। पितृगण प्रसन्न होनेपर मनुष्योंको आयु, अनेक पुत्र, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं। सुना जाता है कि कौशिकके पुत्र पूर्वकालमें (श्राद्धके प्रभावसे व्याध, मृग, चक्रवाक आदि योनियोंमें) पाँच बार जन्म लेनेके पश्चात् मुक्त होकर भगवान् विष्णुके परमपद वैकुण्ठलोकको चले गये थे॥ ३—१२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे फलानुगमनं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें फलानुगमन नामक उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९॥

बीसवाँ अध्याय

महर्षि कौशिकके पुत्रोंका वृत्तान्त तथा पिपीलिकाकी कथा

ऋषय ऊचुः

कथं कौशिकदायादाः प्राप्तास्ते योगमुत्तमम्।
पञ्चभिर्जन्मसम्बन्धैः कथं कर्मक्षयो भवेत्॥ १

सूत उवाच

कौशिको नाम धर्मात्मा कुरुक्षेत्रे महानृषिः।
नामतः कर्मतस्तस्य सुतान् सप्त निबोधत॥ २
स्वसृपः क्रोधनो हिंस्रः पिशुनः कविरेव च।
वाग्दुष्टः पितृवर्ती च गर्गशिष्यास्तदाभवन्॥ ३
पितर्युपरते तेषामभूद् दुर्भिक्षमुल्बणम्।
अनावृष्टिश्च महती सर्वलोकभयंकरी॥ ४
गर्गादेशाद् वने दोग्ध्रीं रक्षन्तस्ते तपोधनाः।
खादामः कपिलामेतां वयं क्षुत्पीडिता भृशम्॥ ५
इति चिन्तयतां पापं लघुः प्राह तदानुजः।
यद्यवश्यमियं वध्या श्राद्धरूपेण योज्यताम्॥ ६
श्राद्धे नियोज्यमानेयं पापात् त्रास्यति नो ध्रुवम्।
एवं कुर्वित्यनुज्ञातः पितृवर्ती तदाग्रजैः॥ ७
चक्रे समाहितः श्राद्धमुपयुज्य च तां पुनः।
द्वौ दैवे भ्रातरौ कृत्वा पित्र्ये त्रीनप्यनुक्रमात्॥ ८
तथैकमतिथिं कृत्वा श्राद्धदः स्वयमेव तु।
चकार मन्त्रवच्छ्राद्धं स्मरन् पितृपरायणः॥ ९
विना गवा वत्सकोऽपि गुरवे विनिवेदितः।
व्याघ्रेण निहता धेनुर्वत्सोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ १०
एवं सा भक्षिता धेनुः सप्तभिस्तैस्तपोधनैः।
वैदिकं बलमाश्रित्य क्रूरे कर्मणि निर्भयाः॥ ११
ततः कालावकृष्टास्ते व्याधा दाशपुरेऽभवन्।
जातिस्मरत्वं प्राप्तास्ते पितृभावेन भाविताः॥ १२
यत् कृतं क्रूरकर्माणि श्राद्धरूपेण तैस्तदा।
तेन ते भवने जाता व्याधानां क्रूरकर्मिणाम्॥ १३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! महर्षि कौशिकके* वे पुत्र किस प्रकार उत्तम योगको प्राप्त हुए तथा पाँच ही बार जन्म ग्रहण करनेसे उनके अशुभ कर्मोंका विनाश कैसे हुआ?॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! कुरुक्षेत्रमें कौशिक नामक एक धर्मात्मा महर्षि थे। उनके सात पुत्र थे। (उन पुत्रोंके वृत्तान्त) नाम एवं कर्मानुसार बतला रहा हूँ, सुनिये। उनके स्वसृप, क्रोधन, हिंस्र, पिशुन, कवि, वाग्दुष्ट और पितृवर्ती—ये नाम थे। पिताकी मृत्युके पश्चात् वे सभी महर्षि गर्गके शिष्य हुए। उस समय समस्त लोकोंको भयभीत करनेवाली महती अनावृष्टि हुई, जिसके कारण भीषण अकाल पड़ गया। इसी बीच वे सभी तपस्वी अपने गुरु गर्गाचार्यकी आज्ञासे उनकी सेवामें लग गये। वहाँ वनमें वे सभी भूखसे अत्यन्त पीड़ित हो गये। जब क्षुधा-शान्तिका कोई अन्य उपाय न सूझा, तब छोटे भाई पितृवर्तीने श्राद्ध-कर्म करनेकी सम्मति दी। बड़े भाइयोंद्वारा 'अच्छा, ऐसा ही करो'—ऐसी आज्ञा पाकर पितृवर्तीने समाहित-चित्त होकर श्राद्धका उपक्रम आरम्भ किया। उस समय उसने छोटे-बड़ेके क्रमसे दो भाइयोंको देव-कार्यमें, तीनको पितृकार्यमें और एकको अतिथिरूपमें नियुक्त किया तथा स्वयं श्राद्धकर्ता बन गया। इस प्रकार पितृपरायण पितृवर्तीने पितरोंका स्मरण करते हुए मन्त्रोच्चारणपूर्वक श्राद्धकार्य सम्पन्न किया। कालक्रमानुसार मृत्युके उपरान्त श्राद्धवैगुण्यरूप कर्मदोषसे वे सभी दाशपुर (मन्दसौर) नामक नगरमें बहेलिया होकर उत्पन्न हुए, किंतु पितृ-स्नेह (श्राद्धकृत्य)-से भावित होनेके कारण उन्हें पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंका स्मरण बना रहा। पूर्वजन्मके कर्मोंके परिणाम-स्वरूप वे क्रूरकर्मी बहेलियोंके घरमें पैदा तो हुए,

* कौशिक नामके प्राचीन समयमें १०—१२ व्यक्ति हुए हैं, जिनमें विश्वामित्र सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। पर ये उनसे भिन्न हैं। विश्वामित्रका सम्बन्ध बिहारसे लेकर कन्नौजतक रहा है, पर ये कुरुक्षेत्रवासी हैं। यह कथा पद्मपुराण १। १०, हरिवंश १। २१—२७ आदिमें भी है। और इसका संकेत गरुडपु० १। २१०। २०-२१ आदि बीसों स्थलोंपर है।

पितॄणां चैव माहात्म्याज्जाता जातिस्मरास्तु ते।
ते तु वैराग्ययोगेन आस्थायानशनं पुनः॥ १४
जातिस्मराः सप्त जाता मृगाः कालञ्जरे गिरौ।
नीलकण्ठस्य पुरतः पितृभावानुभाविताः॥ १५
तत्रापि ज्ञानवैराग्यात् प्राणानुत्सृज्य धर्मतः।
लोकैरवेक्ष्यमाणास्ते तीर्थान्तेऽनशनेन तु॥ १६
मानसे चक्रवाकास्ते सञ्जाताः सप्त योगिनः।
नामतः कर्मतः सर्वाञ्छृणुध्वं द्विजसत्तमाः॥ १७
सुमनाः कुमुदः शुद्धश्छिद्रदर्शी सुनेत्रकः।
सुनेत्रश्चांशुमांश्चैव सप्तैते योगपारगाः॥ १८
योगभ्रष्टास्त्रयस्तेषां बभ्रमुश्चाल्पचेतनाः।
दृष्ट्वा विभ्राजमानं तमुद्याने स्त्रीभिरन्वितम्॥ १९
क्रीडन्तं विविधैर्भावैर्महाबलपराक्रमम्।
पाञ्चालान्वयसम्भूतं प्रभूतबलवाहनम्॥ २०
राज्यकामोऽभवच्चैकस्तेषां मध्ये जलौकसाम्।
पितृवर्ती च यो विप्रः श्राद्धकृत् पितृवत्सलः॥ २१
अपरौ मन्त्रिणौ दृष्ट्वा प्रभूतबलवाहनौ।
मन्त्रित्वे चक्रतुश्चेच्छामस्मिन् मर्त्ये द्विजोत्तमाः॥ २२
तन्मध्ये ये तु निष्कामास्ते बभूवुर्द्विजोत्तमाः।
विभ्राजपुत्रस्त्वेकोऽभूद् ब्रह्मदत्त इति स्मृतः॥ २३
मन्त्रिपुत्रौ तथा चोभौ कण्डरीकसुबालकौ।
ब्रह्मदत्तोऽभिषिक्तः सन् पुरोहितविपश्चिता॥ २४
पाञ्चालराजो विक्रान्तः सर्वशास्त्रविशारदः।
योगिवत् सर्वजन्तूनां रुतवेत्ताभवत् तदा॥ २५
तस्य राज्ञोऽभवद् भार्या देवलस्यात्मजा शुभा।
संनतिर्नाम विख्याता कपिला याभवत् पुरा॥ २६
पितृकार्ये नियुक्तत्वादभवद् ब्रह्मवादिनी।
तया चकार सहितः स राज्यं राजनन्दनः॥ २७
कदाचिदुद्यानगतस्तया सह स पार्थिवः।
ददर्श कीटमिथुनमनङ्गकलहाकुलम्॥ २८
पिपीलिकामनुनयन् परितः कीटकामुकः।
पञ्चबाणाभितप्ताङ्गः सगद्गदमुवाच ह॥ २९

परंतु पितरोंके ही माहात्म्यसे वे सभी जातिस्मर (पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंके ज्ञाता) बने ही रहे। पुनः श्राद्ध-कर्मके फलसे वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण उन सभीने अनशन करके अपने-अपने उस शरीरका त्याग कर दिया। तदनन्तर वे सातों कालञ्जर पर्वतपर भगवान् नीलकण्ठके समक्ष मृग-योनिमें उत्पन्न हुए। वहाँ भी पितरोंके स्नेहसे अनुभावित होनेके कारण वे जातिस्मर बने ही रहे। उस योनिमें भी ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो जानेके कारण उन लोगोंने तीर्थ-स्थानमें अनशन करके लोगोंके देखते-देखते धर्मपूर्वक प्राणोंका उत्सर्ग कर दिया। तत्पश्चात् उन सातों योगाभ्यासी जनोंने मानसरोवरमें चक्रवाककी योनिमें जन्म धारण किया। द्विजवरो! अब आपलोग नाम एवं कर्मानुसार उन सभीका वृत्तान्त श्रवण कीजिये। इस योनिमें उनके नाम हैं—सुमना, कुमुद, शुद्ध, छिद्रदर्शी, सुनेत्रक, सुनेत्र और अंशुमान्। ये सातों योगके पारदर्शी थे। इनमेंसे अल्पबुद्धिवाले तीन तो योगसे भ्रष्ट हो गये और इधर-उधर भ्रमण करने लगे। उसी समय एक पाञ्चालवंशी नरेश, जो महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न था तथा जिसके पास अधिक-से-अधिक सेना और वाहन थे, अपने क्रीडोद्यानमें स्त्रियोंके साथ अनेकविध हाव-भावोंसे क्रीडा कर रहा था। उस शोभाशाली राजाको देखकर उन जलपक्षियोंमेंसे एकको, जो पितृभक्त श्राद्धकर्ता पितृवर्ती नामक ब्राह्मण था, राज्य-प्राप्तिकी आकाङ्क्षा उत्पन्न हो गयी। इसी प्रकार दूसरे दोनोंने राजाके दो मन्त्रियोंको प्रचुर सेना और वाहनोंसे युक्त देखकर इस मृत्युलोकमें मन्त्रि-पद प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। द्विजवरो! उनमें जो चार निष्काम थे, वे सभी श्रेष्ठ ब्राह्मणकुलमें पैदा हुए। उन तीनोंमेंसे पहला राजा विभ्राजके* पुत्ररूपमें ब्रह्मदत्त नामसे विख्यात हुआ तथा अन्य दो कण्डरीक और सुबालक नामसे मन्त्रीके पुत्र हुए। (राजा विभ्राजकी मृत्युके उपरान्त) विद्वान् पुरोहितने ब्रह्मदत्तको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। वह पाञ्चाल-नरेश ब्रह्मदत्त प्रबल पराक्रमी, सभी शास्त्रोंमें प्रवीण, योगज्ञ और सभी जन्तुओंकी बोलीका ज्ञाता था। देवलकी सुन्दरी कन्या, जो संनति नामसे विख्यात थी, राजा ब्रह्मदत्तकी पत्नी हुई। वह ब्रह्मवादिनी थी। उस पत्नीके साथ रहकर राजकुमार ब्रह्मदत्त राज्य-भार सँभालने लगा॥ २—२७॥

एक बार राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी संनतिके साथ भ्रमण करनेके लिये उद्यानमें गया। वहाँ उसने काम-कलहसे व्याकुल एक कीट-दम्पति (चींटा-चींटी) को देखा। वह कीट, जिसका शरीर कामदेवके बाणोंसे संतप्त हो उठा था, चारों ओरसे चींटीसे अनुनय-विनय करता हुआ गद्गद वाणीमें बोला—

* इसका कहीं अणुह तथा कहीं नीप नाम भी आया है।

न त्वया सदृशी लोके कामिनी विद्यते क्वचित्।
मध्यक्षामातिजघना बृहद्वक्षोऽभिगामिनी॥ ३०
सुवर्णवर्णा सुश्रोणी मञ्जूक्ता चारुहासिनी।
सुलक्ष्यनेत्ररसना गुडशर्करवत्सला॥ ३१
भोक्ष्यसे मयि भुङ्क्ते त्वं स्नासि स्नाते तथा मयि।
प्रोषिते सति दीना त्वं क्रुद्धेऽपि भयचञ्चला॥ ३२
किमर्थं वद कल्याणि सरोषवदना स्थिता।
सा तमाह सकोपा तु किमालपसि मां शठ॥ ३३
त्वया मोदकचूर्णं तु मां विहाय विनेष्यता।
प्रदत्तं समतिक्रान्ते दिनेऽन्यस्याः समन्मथ॥ ३४

पिपीलिक उवाच

त्वत्सादृश्यान्मया दत्तमन्यस्यै वरवर्णिनि।
तदेकमपराधं मे क्षन्तुमर्हसि भामिनि॥ ३५
नैतदेवं करिष्यामि पुनः क्वापीह सुव्रते।
स्पृशामि पादौ सत्येन प्रसीद प्रणतस्य मे॥ ३६

सूत उवाच

इति तद्वचनं श्रुत्वा सा प्रसन्नाभवत् ततः।
आत्मानमर्पयामास मोहनाय पिपीलिका॥ ३७
ब्रह्मदत्तोऽप्यशेषं तं ज्ञात्वा विस्मयमागमत्।
सर्वसत्त्वरुतज्ञत्वात् प्रसादाच्चक्रपाणिनः॥ ३८

'प्रिये! इस जगत्में तुम्हारे समान सुन्दरी स्त्री कहीं कोई भी नहीं है। तुम्हारा कटिप्रदेश पतला और जंघे मोटे हैं, तुम स्तनोंके भारी भारसे विनम्र होकर चलनेवाली, स्वर्णके समान गौरवर्णा, सुन्दर कमरवाली, मृदुभाषिणी, मनोहर हास्यसे युक्त, भलीभाँति लक्ष्यको भेदन करनेवाले नेत्रों और जीभसे समन्वित तथा गुड़ और शक्करकी प्रेमी हो। तुम मेरे भोजन कर लेनेके पश्चात् भोजन करती हो तथा मेरे स्नान कर लेनेपर स्नान करती हो। इसी प्रकार मेरे परदेश चले जानेपर तुम दीन हो जाती हो और क्रुद्ध होनेपर भयभीत हो उठती हो। कल्याणि! बतलाओ तो सही, तुम किस कारण क्रोधसे मुँह फुलाये बैठी हो।' तब क्रोधसे भरी हुई चींटी उस कीटसे बोली—'शठ! तुम क्या मुझसे व्यर्थ बकवाद कर रहे हो? अरे धूर्त! अभी कल ही तुमने मेरा परित्याग करके लड्डूका चूर्ण ले जाकर दूसरी चींटीको नहीं दिया है?'॥ २८—३४॥

चींटा बोला—वरवर्णिनि! तुम्हारे सदृश रूप-रंगवाली होनेके कारण मैंने भूलसे दूसरी चींटीको लड्डू दे दिया है, अतः भामिनि! तुम मेरे इस एक अपराधको क्षमा कर दो। सुव्रते! मैं पुनः कभी भी इस प्रकारका कार्य नहीं करूँगा। मैं सत्यकी दुहाई देकर तुम्हारे चरण छूता हूँ, तुम मुझ विनीतपर प्रसन्न हो जाओ॥ ३५-३६॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार उस चींटेका कथन सुनकर वह चींटी प्रसन्न हो गयी। इधर, चक्रपाणि भगवान् विष्णुकी कृपासे समस्त प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता होनेके कारण ब्रह्मदत्त भी उस सारे वृत्तान्तको जानकर विस्मयविमुग्ध हो गये॥ ३७—३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे श्राद्धमाहात्म्ये पिपीलिकावहासो नाम विंशोऽध्यायः॥ २०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पके श्राद्धमाहात्म्यमें पिपीलिकावहास नामक बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०॥

इक्कीसवाँ अध्याय

ब्रह्मदत्तका वृत्तान्त तथा चार चक्रवाकोंकी गतिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं सत्त्वरुतज्ञोऽभूद् ब्रह्मदत्तो धरातले।
तच्चाभवत् कस्य कुले चक्रवाकचतुष्टयम्॥ १

सूत उवाच

तस्मिन्नेव पुरे जातास्ते च चक्राह्वयास्तदा।
वृद्धद्विजस्य दायादा विप्रा जातिस्मराः पुरा॥ २

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! ब्रह्मदत्त इस भूतलपर जन्म लेकर समस्त प्राणियोंकी बोलीके ज्ञाता कैसे हो गये? तथा वे चारों चक्रवाक किसके कुलमें उत्पन्न हुए?॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! वे चारों चक्रवाक उसी ब्रह्मदत्तके नगरमें एक वृद्ध ब्राह्मणके पुत्ररूपसे उत्पन्न हुए थे। उस जन्ममें भी वे ब्राह्मण पूर्ववत् जातिस्मर बने रहे।

धृतिमांस्तत्त्वदर्शी च विद्याचण्डस्तपोत्सुकः।
नामतः कर्मतश्चैते सुदरिद्रस्य ते सुताः॥ ३
तपसे बुद्धिरभवत् तदा तेषां द्विजन्मनाम्।
यास्यामः परमां सिद्धिमित्यूचुस्ते द्विजोत्तमाः॥ ४
ततस्तद्वचनं श्रुत्वा सुदरिद्रो महातपाः।
उवाच दीनया वाचा किमेतदिति पुत्रकाः॥ ५
अधर्म एष इति वः पिता तानभ्यवारयत्।
वृद्धं पितरमुत्सृज्य दरिद्रं वनवासिनः॥ ६
को नु धर्मोऽत्र भविता मत्त्यागाद् गतिरेव वा।
ऊचुस्ते कल्पिता वृत्तिस्तव तात वदस्व तत्॥ ७
वित्तमेतत् पुरो राज्ञः स ते दास्यति पुष्कलम्।
धनं ग्रामसहस्राणि प्रभाते पठतस्तव॥ ८
ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु
दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।
कालंजरे सप्त च चक्रवाका
ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः॥ ९
इत्युक्त्वा पितरं जग्मुस्ते वनं तपसे पुनः।
वृद्धोऽपि राजभवनं जगामात्मार्थसिद्धये॥ १०

(उस समय उनके) धृतिमान्, तत्त्वदर्शी, विद्याचण्ड और तपोत्सुक—ये चार नाम थे। वे कर्मानुसार एक अत्यन्त सुदरिद्र (उस ब्राह्मणका नाम भी सुदरिद्र था) ब्राह्मणके पुत्र थे। बचपनमें ही इन ब्राह्मणोंकी बुद्धि तपस्याकी ओर प्रवृत्त हो गयी। तब ये द्विजश्रेष्ठ पितासे प्रार्थना करते हुए बोले—'पिताजी! हमलोग तपस्या करके परम सिद्धि प्राप्त करना चाहते हैं।' उनके इस कथनको सुनकर महातपस्वी सुदरिद्र दीन वाणीमें बोले—'पुत्रो! यह कैसी बात कह रहे हो? मुझ दरिद्र बूढ़े पिताको छोड़कर तुमलोग वनवासी होना चाहते हो, भला मेरा परित्याग कर देनेसे तुमलोगोंको कौन-सा धर्म प्राप्त होगा तथा तुम्हारी क्या गति होगी? यह तो महान् अधर्म है।' ऐसा कहकर पिताने उन्हें मना कर दिया। यह सुनकर उन पुत्रोंने कहा—'तात! हमलोगोंने आपके जीविकोपार्जनका प्रबन्ध कर लिया है। इसके अतिरिक्त आपको और क्या चाहिये, सो बतलाइये। यदि आप प्रातःकाल राजा ब्रह्मदत्तके समक्ष जाकर (आगे बताये जानेवाले श्लोकका) पाठ कीजियेगा तो वे आपको प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं सहस्रों ग्राम प्रदान करेंगे। (उस श्लोकका अर्थ यों है—)'जो कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मण, दाशपुर (मंदसौर)-में व्याध, कालञ्जर पर्वतपर मृग और मानसरोवरमें सात चक्रवाक थे, वे सिद्ध (होकर) यहाँ निवास करते हैं।' पितासे ऐसा कहकर वे सभी तपस्या करनेके लिये वनमें चले गये। इधर वृद्ध सुदरिद्र भी अपनी स्वार्थ-सिद्धिके लिये राजभवनकी ओर चल पड़े॥ २—१०॥

अणुहो नाम वैभ्राजः पाञ्चालाधिपतिः पुरा।
पुत्रार्थी देवदेवेशं हरिं नारायणं प्रभुम्॥ ११
आराधयामास विभुं तीव्रव्रतपरायणः।
ततः कालेन महता तुष्टस्तस्य जनार्दनः॥ १२
वरं वृणीष्व भद्रं ते हृदयेनेप्सितं नृप।
एवमुक्तस्तु देवेन वव्रे स वरमुत्तमम्॥ १३
पुत्रं मे देहि देवेश महाबलपराक्रमम्।
पारगं सर्वशास्त्राणां धार्मिकं योगिनां परम्॥ १४
सर्वसत्त्वरुतज्ञं मे देहि योगिनमात्मजम्।
एवमस्त्विति विश्वात्मा तमाह परमेश्वरः॥ १५
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत।
ततः स तस्य पुत्रोऽभूद् ब्रह्मदत्तः प्रतापवान्॥ १६

(अब ब्रह्मदत्तकी उत्पत्ति-कथा बतलाते हैं—) पूर्वकालमें पञ्चाल देशके एक अणुह नामक नरेश हो गये हैं, जो विभ्राट्के पुत्र थे। वे पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे कठोर व्रतमें तत्पर होकर सामर्थ्यशाली एवं सर्वव्यापक देवदेवेश्वर नारायण श्रीहरिकी आराधना करने लगे। तत्पश्चात् अधिक काल व्यतीत होनेपर भगवान् जनार्दन उनकी आराधनासे प्रसन्न हुए (और उनके समक्ष प्रकट होकर बोले—) 'राजन्! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम अपना मनोऽभिलषित वरदान माँग लो।' भगवान् विष्णुके ऐसा कहनेपर राजाने उत्तम वरकी याचना करते हुए कहा—'देवेश! मुझे ऐसा पुत्र प्रदान कीजिये,जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, सम्पूर्ण शास्त्रोंका पारगामी विद्वान्, धार्मिक, श्रेष्ठ योगी, सम्पूर्ण प्राणियोंकी बोलीका ज्ञाता और योगाभ्यासी हो। भगवन्! मुझे ऐसा ही औरस पुत्र दीजिये।' यह सुनकर विश्वात्मा परमेश्वर राजासे 'ऐसा ही हो'—यों कहकर समस्त देवताओंके देखते-देखते वहीं अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर समयानुसार वही प्रतापी ब्रह्मदत्त उस राजा अणुहका पुत्र हुआ, जो आगे चलकर

सर्वसत्त्वानुकम्पी च सर्वसत्त्वबलाधिकः।
सर्वसत्त्वरुतज्ञश्च सर्वसत्त्वेश्वरेश्वरः॥ १७

सम्पूर्ण जीवोंपर दयालु, समस्त प्राणियोंमें अमित बलसम्पन्न, सम्पूर्ण प्राणियोंकी भाषाका ज्ञाता और समस्त प्राणियोंके राजाधिराज-सम्राट् हुआ॥ ११—१७॥

अहसत् तेन योगात्मा स पिपीलिकरागतः।
यत्र तत्कीटमिथुनं रममाणमवस्थितम्॥ १८
ततः सा संनतिर्दृष्ट्वा तं हसन्तं सुविस्मिता।
किमप्याशङ्क्य मनसा तमपृच्छन्नरेश्वरम्॥ १९

तत्पश्चात् जहाँ वे कीट-दम्पति (चींटे-चींटी) बातें करते हुए स्थित थे, वहाँ पहुँचनेपर चींटेकी कामचेष्टाको देखकर योगात्मा ब्रह्मदत्तको हँसी आ गयी। राजाको हँसते देखकर महारानी संनति आश्चर्यचकित हो उठी और मनमें किसी भावी अनर्थकी आशङ्का करके नरेश्वर ब्रह्मदत्तसे प्रश्न कर बैठी॥ १८-१९॥

संनतिरुवाच

अकस्माद्तिहासस्ते किमर्थमभवन्नृप।
हास्यहेतुं न जानामि यदकाले कृतं त्वया॥ २०

संनतिने पूछा—राजन्! अकस्मात् आपका यह अट्टहास किसलिये हुआ है? असमयमें आपको जो यह हँसी आयी है, इस हास्यका कारण मैं नहीं समझ पा रही हूँ॥ २०॥

सूत उवाच

अवदद् राजपुत्रोऽपि स पिपीलिकभाषितम्।
रागवाग्भिः समुत्पन्नमेतद्धास्यं वरानने॥ २१
न चान्यत्कारणं किंचिद्धास्यहेतौ शुचिस्मिते।
न सामन्यत् तदा देवी प्राहालीकमिदं वचः॥ २२
अहमेवाद्य हसिता न जीविष्ये त्वयाधुना।
कथं पिपीलिकालापं मर्त्यो वेत्ति विना सुरान्॥ २३
तस्मात् त्वयाहमेवेह हसिता किमतः परम्।
ततो निरुत्तरो राजा जिज्ञासुस्तत्पुरो हरेः॥ २४
आस्थाय नियमं तस्थौ सप्तरात्रमकल्मषः।
स्वप्ने प्राह हृषीकेशः प्रभाते पर्यटन् पुरम्॥ २५
वृद्धद्विजो यस्तद्वाक्यात् सर्वं ज्ञास्यस्यशेषतः।
इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुः प्रभातेऽथ नृपःपुरात्॥ २६
निर्गच्छन्मन्त्रिसहितः सभार्यो वृद्धमग्रतः।
गदन्तं विप्रमायान्तं तं वृद्धं संददर्श ह॥ २७

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तब राजकुमार ब्रह्मदत्तने (महारानी संनतिसे) चींटे-चींटीके उस सारे वार्तालापको सुनाते हुए कहा—'वरानने! इनके प्रेमालापपूर्ण वचनोंको सुननेसे मुझे ऐसी हँसी आ गयी है। शुचिस्मिते! मेरी हँसीके विषयमें कोई अन्य कारण नहीं है।' परंतु रानी संनतिने (राजाके उस कथनपर) विश्वास नहीं किया और कहा—'राजन्! आपका यह कथन सरासर असत्य है। अभी-अभी आपने मेरे ही किसी विषयको लेकर हास्य किया है, अतः अब मैं जीवन धारण नहीं करूँगी। भला, देवताओंके अतिरिक्त मृत्युलोकनिवासी प्राणी चींटे-चींटीके वार्तालापको कैसे जान सकता है! इसलिये यहाँ आपने मेरी ही हँसी उड़ायी है। इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है?' रानीकी बात सुनकर निष्पाप राजा ब्रह्मदत्त कुछ उत्तर न दे सके। फिर इस रहस्यको जाननेकी इच्छासे वे श्रीहरिके समक्ष नियमपूर्वक आराधना करते हुए सात राततक बैठे रहे। अन्तमें भगवान् हृषीकेशने स्वप्नमें राजासे कहा—'राजन्! प्रातःकाल तुम्हारे नगरमें घूमता हुआ एक वृद्ध ब्राह्मण जो कुछ कहेगा, उसके उन वचनोंसे तुम्हें सारा रहस्य ज्ञात हो जायगा।' यों कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान हो गये। तदनन्तर प्रातःकाल जब राजा ब्रह्मदत्त अपनी पत्नी और दोनों मन्त्रियोंके साथ नगरसे निकल रहे थे, उसी समय उन्होंने अपने समक्ष आते हुए उस वृद्ध ब्राह्मणको देखा, जो इस प्रकार कह रहा था॥ २१—२७॥

ब्राह्मण उवाच

ये विप्रमुख्याः कुरुजाङ्गलेषु
दाशास्तथा दाशपुरे मृगाश्च।

ब्राह्मण कह रहा था—'जो (पहले) कुरुक्षेत्रमें श्रेष्ठ ब्राह्मणके रूपमें, दाशपुर (मंदसौर)-में व्याधके रूपमें,

कालञ्जरे सप्त च चक्रवाका
ये मानसे तेऽत्र वसन्ति सिद्धाः॥ २८

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य वचस्ताभ्यां स पपात शुचा ततः।
जातिस्मरत्वमगमत् तौ च मन्त्रिवरावुभौ॥ २९
कामशास्त्रप्रणेता च बाभ्रव्यस्तु सुबालकः।
पाञ्चाल इति लोकेषु विश्रुतः सर्वशास्त्रवित्॥ ३०
कण्डरीकोऽपि धर्मात्मा वेदशास्त्रप्रवर्तकः।
भूत्वा जातिस्मरौ शोकात् पतितावग्रतस्तदा॥ ३१
हा वयं योगविभ्रष्टाः कामतः कर्मबन्धनाः।
एवं विलप्य बहुशस्त्रयस्ते योगपारगाः॥ ३२
विस्मयाच्छ्राद्धमाहात्म्यमभिनन्द्य पुनः पुनः।
ततस्तस्मै धनं दत्त्वा प्रभूतग्रामसंयुतम्॥ ३३
विसृज्य ब्राह्मणं तं च वृद्धं धनमुदान्वितम्।
आत्मीयं नृपतिः पुत्रं नृपलक्षणसंयुतम्॥ ३४
विष्वक्सेनाभिधानं तु राजा राज्येऽभ्यषेचयत्।
मानसे मिलिताः सर्वे ततस्ते योगिनो वराः॥ ३५
ब्रह्मदत्तादयस्तस्मिन् पितृसक्ता विमत्सराः।
संनतिश्चाभवद् भ्रष्टा मयैतत् किल दर्शितम्॥ ३६
राज्यत्यागफलं सर्वं यदेतदभिलक्ष्यते।
तथेति प्राह राजा तु पुनस्तामभिनन्दयन्॥ ३७
त्वत्प्रसादादिदं सर्वं मयैतत् प्राप्यते फलम्।
ततस्ते योगमास्थाय सर्व एव वनौकसः॥ ३८
ब्रह्मरन्ध्रेण परमं पदमापुस्तपोबलात्।
एवमायुर्धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च॥ ३९
प्रयच्छन्ति सुतान् राज्यं नृणां प्रीताः पितामहाः।
य इदं पितृमाहात्म्यं ब्रह्मदत्तस्य च द्विजाः॥ ४०
द्विजेभ्यः श्रावयेद् यो वा शृणोत्यथ पठेत्तु वा।
कल्पकोटिशतं साग्रं ब्रह्मलोके महीयते॥ ४१

कालञ्जर—पर्वतपर मृग-योनिमें और मानसरोवरमें सात चक्रवाकके रूपमें उत्पन्न हुए थे, वे ही (व्यक्ति अब) सिद्ध (होकर) यहाँ निवास कर रहे हैं'॥ २८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ब्राह्मणकी ऐसी बात सुनकर राजा शोकाकुल हो अपने दोनों मन्त्रियोंके साथ भूतलपर गिर पड़े। उस समय उन्हें जातिस्मरत्व (पूर्वजन्मके वृत्तान्तोंके ज्ञातृत्व)-की प्राप्ति हो गयी। उन दोनों श्रेष्ठ मन्त्रियोंमें एक बाभ्रव्य सुबालक कामशास्त्रका प्रणेता और सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञाता था। वह संसारमें पाञ्चाल नामसे विख्यात था। दूसरा कण्डरीक भी धर्मात्मा और वेद-शास्त्रका प्रवर्तक था। वे दोनों भी उस समय राजाके अग्रभागमें शोकाविष्ट हो धराशायी हो गये और उन्हें भी जातिस्मरत्वकी प्राप्ति हुई। (उस समय वे विलाप करते हुए कहने लगे—) 'हाय! हमलोग लोलुप हो कर्मबन्धनमें फँसकर योगसे पूर्णतया भ्रष्ट हो गये।' इस तरह अनेकविध विलाप करके वे तीनों योगके पारदर्शी विद्वान् विस्मयाविष्ट हो बारंबार श्राद्धके माहात्म्यका अभिनन्दन करने लगे। तत्पश्चात् राजाने उस ब्राह्मणको अनेक गाँवोंसहित प्रचुर धन-सम्पत्ति प्रदान की। इस प्रकार धनकी प्राप्तिसे हर्षित हुए उस वृद्ध ब्राह्मणको विदाकर राजा ब्रह्मदत्तने राजलक्षणोंसे युक्त अपने विष्वक्सेन नामक औरस पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया (और स्वयं जंगलकी राह ली)। तदनन्तर ब्रह्मदत्त आदि वे सभी श्रेष्ठ योगी मत्सररहित एवं पितृभक्त होकर उस मानसरोवरमें परस्पर आ मिले। संनतिका अमर्ष गल गया और वह राजासे कहने लगी—'राजन्! आप जो यह अभिलाषा कर रहे हैं, वह सब राज्य-त्यागका ही परिणाम है और निश्चय ही मेरे द्वारा घटित हुआ है।' राजाने 'तथेति'—ऐसा ही है कहकर उसकी बातको स्वीकार किया और पुनः उसका अभिनन्दन करते हुए कहा—'यह तुम्हारी ही कृपा है, जो मुझे यह सारा फल प्राप्त हो रहा है।' तदनन्तर वे सभी वनवासी योगका आश्रय लेकर अपने तपोबलके प्रभावसे ब्रह्मरन्ध्रद्वारा प्राणत्याग करके परमपदको प्राप्त हो गये। इस प्रकार प्रसन्न हुए पितामह—पितरलोग मनुष्योंको, आयु, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख, पुत्र और राज्य प्रदान करते हैं। द्विजवरो! जो मनुष्य ब्रह्मदत्तके इस पितृमाहात्म्यको ब्राह्मणोंको सुनाता है या स्वयं श्रवण करता है अथवा पढ़ता है, वह सौ करोड़ कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें प्रशंसित होता है॥ २९—४१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे पितृमाहात्म्यं नामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें पितृमाहात्म्य नामक इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१॥

बाईसवाँ अध्याय

श्राद्धके योग्य समय, स्थान (तीर्थ) तथा कुछ विशेष नियमोंका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कस्मिन् काले च तच्छ्राद्धमनन्तफलदं भवेत्।
कस्मिन् वासरभोगे तु श्राद्धकृच्छ्राद्धमाचरेत्।
तीर्थेषु केषु च कृतं श्राद्धं बहुफलं भवेत्॥ १

सूत उवाच

अपराह्णे तु सम्प्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये।
यत्किञ्चिद् दीयते तत्र तदक्षयमुदाहृतम्॥ २
तीर्थानि यानि सर्वाणि पितॄणां वल्लभानि च।
नामतस्तानि वक्ष्यामि संक्षेपेण द्विजोत्तमाः॥ ३
पितृतीर्थं गयानाम सर्वतीर्थवरं शुभम्।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव पितामहः॥ ४
तत्रैषा पितृभिर्गीता गाथा भागमभीप्सुभिः॥ ५
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
यजेत वाश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ ६
तथा वाराणसी पुण्या पितॄणां वल्लभा सदा।
यत्राविमुक्तसांनिध्यं भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ७
पितॄणां वल्लभं तद्वत् पुण्यं च विमलेश्वरम्।
पितृतीर्थं प्रयागं तु सर्वकामफलप्रदम्॥ ८
वटेश्वरस्तु भगवान् माधवेन समन्वितः।
योगनिद्राशयस्तद्वत् सदा वसति केशवः॥ ९
दशाश्वमेधिकं पुण्यं गङ्गाद्वारं तथैव च।
नन्दाथ ललिता तद्वत्तीर्थं मायापुरी शुभा॥ १०
तथा मित्रपदं नाम ततः केदारमुत्तमम्।
गङ्गासागरमित्याहुः सर्वतीर्थमयं शुभम्॥ ११
तीर्थं ब्रह्मसरस्तद्वच्छतद्रुसलिले ह्रदे।
तीर्थं तु नैमिषं नाम सर्वतीर्थफलप्रदम्॥ १२

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! श्राद्धकर्ताको दिनके किस भागमें श्राद्ध करना चाहिये? किस कालमें किया गया वह श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है? तथा किन-किन तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अधिक-से-अधिक फल प्रदान करता है?॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अपराह्न-काल (दिनके तीसरे पहरमें प्राप्त होनेवाले) अभिजित् मुहूर्तमें तथा रोहिणीके उदयकालमें (पितरोंके निमित्त) जो कुछ दिया जाता है, वह अक्षय बतलाया गया है। द्विजवरो! अब जो-जो तीर्थ पितरोंको परम प्रिय हैं, उन सबका नाम-निर्देशपूर्वक संक्षेपसे वर्णन कर रहा हूँ। गया नामक पितृतीर्थ सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ एवं मङ्गलदायक है, वहाँ देवदेवेश्वर भगवान् पितामह स्वयं ही विराजमान हैं। वहाँ श्राद्धमें भाग पानेकी कामनावाले पितरोंद्वारा यह गाथा गायी गयी है—'मनुष्योंको अनेक पुत्रोंकी अभिलाषा करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे यदि एक भी पुत्र गयाकी यात्रा करेगा अथवा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान कर देगा या नील वृष (साँड़)-का उत्सर्ग कर देगा (तो हमारा उद्धार हो जायगा)।' उसी प्रकार पुण्यप्रदा वाराणसी नगरी सदा पितरोंको प्रिय है, जहाँ अविमुक्तके निकट किया गया श्राद्ध भुक्ति (भोग) एवं मुक्ति (मोक्ष)-रूप फल प्रदान करता है। उसी प्रकार पुण्यप्रद विमलेश्वर तीर्थ भी पितरोंके लिये परम प्रिय है। पितृतीर्थ प्रयाग सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंका प्रदाता है। वहाँ माधवसमेत भगवान् वटेश्वर तथा उसी प्रकार योगनिद्रामें शयन करते हुए भगवान् केशव सदा निवास करते हैं॥ २—९॥

पुण्यमय दशाश्वमेधिक तीर्थ, गङ्गाद्वार (हरिद्वार), नन्दा, ललिता तथा मङ्गलमयी मायापुरी (ऋषिकेश)—ये सभी तीर्थ भी उसी प्रकार पितरोंको प्रिय हैं। मित्रपद (तीर्थ) भी श्रेष्ठ है। उत्तम केदारतीर्थ और सर्वतीर्थमय एवं मङ्गलप्रद गङ्गासागरतीर्थको भी पितृप्रिय कहा गया है। उसी तरह शतद्रु (सतलज) नदीके जलके अन्तर्गत कुण्डमें स्थित ब्रह्मसर तीर्थ भी श्रेष्ठ है। नैमिषारण्य सम्पूर्ण तीर्थोंका एकत्र फल प्रदान करनेवाला है। यह

गङ्गोद्भेदस्तु गोमत्यां यत्रोद्भूतः सनातनः।
तथा यज्ञवराहस्तु देवदेवश्च शूलभृत्॥ १३
यत्र तत्काञ्चनं द्वारमष्टादशभुजो हरः।
नेमिस्तु हरिचक्रस्य शीर्णा यत्राभवत् पुरा॥ १४
तदेतन्नैमिषारण्यं सर्वतीर्थनिषेवितम्।
देवदेवस्य तत्रापि वाराहस्य तु दर्शनम्॥ १५
यः प्रयाति स पूतात्मा नारायणपदं व्रजेत्।
कृतशौचं महापुण्यं सर्वपापनिषूदनम्॥ १६
यत्रास्ते नारसिंहस्तु स्वयमेव जनार्दनः।
तीर्थमिक्षुमती नाम पितॄणां वल्लभं सदा॥ १७
सङ्गमे यत्र तिष्ठन्ति गङ्गायाः पितरः सदा।
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं सर्वतीर्थसमन्वितम्॥ १८
तथा च सरयूः पुण्या सर्वदेवनमस्कृता।
इरावती नदी तद्वत् पितृतीर्थाधिवासिनी॥ १९
यमुना देविका काली चन्द्रभागा दृषद्वती।
नदी वेणुमती पुण्या परा वेत्रवती तथा॥ २०
पितॄणां वल्लभा ह्येताः श्राद्धे कोटिगुणा मताः।
जम्बूमार्गं महापुण्यं यत्र मार्गो हि लक्ष्यते॥ २१
अद्यापि पितृतीर्थं तत् सर्वकामफलप्रदम्।
नीलकुण्डमिति ख्यातं पितृतीर्थं द्विजोत्तमाः॥ २२
तथा रुद्रसरः पुण्यं सरो मानसमेव च।
मन्दाकिनी तथाच्छोदा विपाशाथ सरस्वती॥ २३
पूर्वमित्रपदं तद्वद् वैद्यनाथं महाफलम्।
क्षिप्रा नदी महाकालस्तथा कालञ्जरं शुभम्॥ २४
वंशोद्भेदं हरोद्भेदं गङ्गोद्भेदं महाफलम्।
भद्रेश्वरं विष्णुपदं नर्मदाद्वारमेव च॥ २५
गयापिण्डप्रदानेन समान्याहुर्महर्षयः।
एतानि पितृतीर्थानि सर्वपापहराणि च॥ २६
स्मरणादपि लोकानां किमु श्राद्धकृतां नृणाम्।
ओंकारं पितृतीर्थं च कावेरी कपिलोदकम्॥ २७

पितरोंको (बहुत) प्रिय है। यहीं गोमती नदीमें गङ्गाका सनातन स्रोत प्रकट हुआ है। यहाँ त्रिशूलधारी महादेव और सनातन यज्ञवराह विराजते हैं। यहाँ अष्टादश भुजाधारी शंकरकी प्रतिमा है। यहाँका काञ्चनद्वार प्रसिद्ध है। यहाँ पूर्वकालमें भगवान् विष्णुद्वारा दिये गये धर्मचक्रकी नेमि शीर्ण होकर गिरी थी। यह सम्पूर्ण तीर्थोंद्वारा निषेवित नैमिषारण्य नामक तीर्थ है। यहाँ देवाधिदेव भगवान् वाराहका भी दर्शन होता है। जो वहाँकी यात्रा करता है, वह पवित्रात्मा होकर नारायणपदको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण पापोंका विनाशक एवं महान् पुण्यशाली कृतशौच नामक तीर्थ है, जहाँ भगवान् जनार्दन नृसिंहरूपसे विराजमान रहते हैं। तीर्थभूता इक्षुमती (काली नदी) पितरोंको सदा प्रिय है। (कन्नौजके पास इस इक्षुमतीके साथ) गङ्गाजीके संगमपर पितरलोग सदा निवास करते हैं। सम्पूर्ण तीर्थोंसे युक्त कुरुक्षेत्र नामक महान् पुण्यप्रद तीर्थ है। इसी प्रकार समस्त देवताओंद्वारा नमस्कृत पुण्यसलिला सरयू, पितृ-तीर्थोंकी अधिवासिनीरूपा इरावती नदी, यमुना, देविका (देग), काली (कालीसिंध), चन्द्रभागा (चनाब), दृषद्वती (गग्गर), पुण्यतोया वेणुमती (वेण्वा) नदी तथा सर्वश्रेष्ठा वेत्रवती (बेतवा)—ये नदियाँ पितरोंको परम प्रिय हैं। इसलिये श्राद्धके विषयमें करोड़ों गुना फलदायिनी मानी गयी हैं। द्विजवरो! जम्बूमार्ग (भड़ोंच) नामक तीर्थ महान् पुण्यदायक एवं सम्पूर्ण मनोऽभिलषित फलोंका प्रदाता है, यह पितरोंका प्रिय तीर्थ है। वहाँसे पितृलोक जानेका मार्ग अभी भी दिखायी पड़ता है। नीलकुण्ड तीर्थ भी पितृतीर्थरूपसे विख्यात है॥ १०—२२॥

इसी प्रकार पुण्यप्रद रुद्रसर, मानससर, मन्दाकिनी, अच्छोदा (अच्छावत), विपाशा (व्यास नदी), सरस्वती, पूर्वमित्रपद, महान् फलदायक वैद्यनाथ, शिप्रा नदी, महाकाल, मङ्गलमय कालञ्जर, वंशोद्भेद, हरोद्भेद, महान् फलप्रद गङ्गोद्भेद, भद्रेश्वर, विष्णुपद और नर्मदाद्वार—ये सभी पितृप्रिय तीर्थ हैं। इन तीर्थोंमें श्राद्ध करनेसे गया तीर्थमें पिण्ड-प्रदानके तुल्य ही फल प्राप्त होता है—ऐसा महर्षियोंने कहा है। ये सभी पितृतीर्थ जब स्मरणमात्र कर लेनेसे लोगोंके सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करते हैं, तब (वहाँ जाकर) श्राद्ध करनेवाले मनुष्योंके पापनाशकी तो बात ही क्या है। इसी तरह ओंकार पितृतीर्थ है। कावेरी, कपिलोदका,

सम्भेदश्चण्डवेगायास्तथैवामरकण्टकम्।
कुरुक्षेत्राच्छतगुणं तस्मिन् स्नानादिकं भवेत्॥ २८
शुक्रतीर्थं च विख्यातं तीर्थं सोमेश्वरं परम्।
सर्वव्याधिहरं पुण्यं शतकोटिफलाधिकम्॥ २९
श्राद्धे दाने तथा होमे स्वाध्याये जलसंनिधौ।
कायावरोहणं नाम तथा चर्मण्वती नदी॥ ३०
गोमती वरुणा तद्वत्तीर्थमौशनसं परम्।
भैरवं भृगुतुङ्गं च गौरीतीर्थमनुत्तमम्॥ ३१
तीर्थं वैनायकं नाम भद्रेश्वरमतः परम्।
तथा पापहरं नाम पुण्याथ तपती नदी॥ ३२
मूलतापी पयोष्णी च पयोष्णीसङ्गमस्तथा।
महाबोधिः पाटला च नागतीर्थमवन्तिका॥ ३३
तथा वेणा नदी पुण्या महाशालं तथैव च।
महारुद्रं महालिङ्गं दशार्णा च नदी शुभा॥ ३४
शतरुद्रा शताह्वा च तथा विश्वपदं परम्।
अङ्गारवाहिका तद्वन्नदौ तौ शोणघर्घरौ॥ ३५
कालिका च नदी पुण्या वितस्ता च नदी तथा।
एतानि पितृतीर्थानि शस्यन्ते स्नानदानयोः॥ ३६
श्राद्धमेतेषु यद् दत्तं तदनन्तफलं स्मृतम्।
द्रोणी वाटनदी धारासरित् क्षीरनदी तथा॥ ३७
गोकर्णं गजकर्णं च तथा च पुरुषोत्तमः।
द्वारका कृष्णतीर्थं च तथार्बुदसरस्वती॥ ३८
नदी मणिमती नाम तथा च गिरिकर्णिका।
धूतपापं तथा तीर्थं समुद्रो दक्षिणस्तथा॥ ३९
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते।
तीर्थं मेघंकरं नाम स्वयमेव जनार्दनः॥ ४०
यत्र शार्ङ्गधरो विष्णुर्मेखलायामवस्थितः।
तथा मन्दोदरीतीर्थं तीर्थं चम्पा नदी शुभा॥ ४१
तथा सामलनाथश्च महाशालनदी तथा।
चक्रवाकं चर्मकोटं तथा जन्मेश्वरं महत्॥ ४२
अर्जुनं त्रिपुरं चैव सिद्धेश्वरमतः परम्।
श्रीशैलं शांकरं तीर्थं नारसिंहमतः परम्॥ ४३
महेन्द्रं च तथा पुण्यमथ श्रीरङ्गसंज्ञितम्।
एतेष्वपि सदा श्राद्धमनन्तफलदं स्मृतम्॥ ४४
दर्शनादपि चैतानि सद्यः पापहराणि वै।
तुङ्गभद्रा नदी पुण्या तथा भीमरथी सरित्॥ ४५

चण्डवेगा और नर्मदाका संगम तथा अमरकण्टक—इन पितृतीर्थोंमें स्नान आदि करनेसे कुरुक्षेत्रसे सौगुने अधिक फलकी प्राप्ति होती है। शुक्रतीर्थ भी पितृतीर्थरूपसे विख्यात है तथा सर्वोत्तम सोमेश्वरतीर्थ स्नान, श्राद्ध, दान, हवन तथा स्वाध्याय करनेपर समस्त व्याधियोंका विनाशक, पुण्यप्रदाता और सौ करोड़ गुना फलसे भी अधिक फलदायी है। कायावरोहण (गुजरातका कारावन) नामक तीर्थ, चर्मण्वती (चम्बल) नदी, गोमती, वरुणा (वरणा), उसी प्रकार औशनस नामक उत्तम तीर्थ, भैरव, (केदारनाथके पास) भृगुतुङ्ग, सर्वश्रेष्ठ गौरीतीर्थ, वैनायक नामक तीर्थ, उसके बाद भद्रेश्वरतीर्थ तथा पापहर नामक तीर्थ, पुण्यसलिला तपती नदी, मूलतापी, पयोष्णी तथा पयोष्णी-संगम, महाबोधि, पाटला, नागतीर्थ, अवन्तिका (उज्जैनी) तथा पुण्यतोया वेणानदी, महाशाल, महारुद्र, महालिङ्ग और मङ्गलमयी दशार्णा (धसान) नदी तो अत्यन्त ही शुभ हैं॥ २३—३४॥

शतरुद्रा, शताह्वा तथा श्रेष्ठ विश्वपद, अङ्गारवाहिका, उसी प्रकार शोण और घर्घर (घाघरा) नामक दो नद, पुण्यजला कालिका नदी तथा वितस्ता (झेलम) नदी—ये पितृतीर्थ स्नान और दानके लिये प्रशस्त माने गये हैं। इनमें जो श्राद्ध आदि कर्म किया जाता है, वह अनन्त फलदायक कहा गया है। द्रोणी, वाटनदी, धारानदी, क्षीरनदी, गोकर्ण, गजकर्ण, पुरुषोत्तम-क्षेत्र, द्वारका, कृष्णतीर्थ तथा अर्बुदगिरि (आबू), सरस्वती, मणिमती नदी गिरिकर्णिका, धूतपापतीर्थ तथा दक्षिण समुद्र—इन पितृतीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है। इसके पश्चात् मेघंकर नामक तीर्थ (गुजरातमें) है, जिसकी मेखलामें शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले स्वयं जनार्दन भगवान् विष्णु स्थित हैं। इसी प्रकार मन्दोदरीतीर्थ तथा मङ्गलमयी चम्पा नदी, सामलनाथ, महाशाल नदी, चक्रवाक, चर्मकोट, महान् तीर्थ जन्मेश्वर, अर्जुन, त्रिपुर इसके बाद सिद्धेश्वर, श्रीशैल (मल्लिकार्जुन), शाङ्करतीर्थ, इसके पश्चात् नारसिंहतीर्थ, महेन्द्र तथा पुण्यप्रद श्रीरङ्ग नामक तीर्थ हैं। इनमें भी किया गया श्राद्ध सदा अनन्त फलदाता माना गया है तथा ये दर्शनमात्रसे ही तुरंत पापोंको हर लेते हैं। पुण्यसलिला तुङ्गभद्रा नदी तथा भीमरथी नदी,

भीमेश्वरं कृष्णवेणा कावेरी कुड्मला नदी।
नदी गोदावरी नाम त्रिसंध्या तीर्थमुत्तमम्॥ ४६
तीर्थं त्रैयम्बकं नाम सर्वतीर्थनमस्कृतम्।
यत्रास्ते भगवानीशः स्वयमेव त्रिलोचनः॥ ४७
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु कोटिकोटिगुणं भवेत्।
स्मरणादपि पापानि नश्यन्ति शतधा द्विजाः॥ ४८
श्रीपर्णी ताम्रपर्णी च जयातीर्थमनुत्तमम्।
तथा मत्स्यनदी पुण्या शिवधारं तथैव च॥ ४९
भद्रतीर्थं च विख्यातं पम्पातीर्थं च शाश्वतम्।
पुण्यं रामेश्वरं तद्वदेलापुरमलंपुरम्॥ ५०
अङ्गारकं च विख्यातमामर्दकमलम्बुषम्।
आम्रातकेश्वरं तद्वदेकाम्रकमतः परम्॥ ५१
गोवर्धनं हरिश्चन्द्रं कृपुचन्द्रं पृथूदकम्।
सहस्राक्षं हिरण्याक्षं तथा च कदली नदी॥ ५२
रामाधिवासस्तत्रापि तथा सौमित्रिसङ्गमः।
इन्द्रकीलं महानादं तथा च प्रियमेलकम्॥ ५३
एतान्यपि सदा श्राद्धे प्रशस्तान्यधिकानि तु।
एतेषु सर्वदेवानां सांनिध्यं दृश्यते यतः॥ ५४
दानमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशताधिकम्।
बाहुदा च नदी पुण्या तथा सिद्धवनं शुभम्॥ ५५
तीर्थं पाशुपतं नाम नदी पार्वतिका शुभा।
श्राद्धमेतेषु सर्वेषु दत्तं कोटिशतोत्तरम्॥ ५६
तथैव पितृतीर्थं तु यत्र गोदावरी नदी।
युता लिङ्गसहस्रेण सर्वान्तरजलावहा॥ ५७
जामदग्न्यस्य तत् तीर्थं क्रमादायातमुत्तमम्।
प्रतीकस्य भयाद् भिन्नं यत्र गोदावरी नदी॥ ५८
तत् तीर्थं हव्यकव्यानामप्सरोयुगसंज्ञितम्।
श्राद्धाग्निकार्यदानेषु तथा कोटिशताधिकम्॥ ५९
तथा सहस्रलिङ्गं च राघवेश्वरमुत्तमम्।
सेन्द्रफेना नदी पुण्या यत्रेन्द्रः पतितः पुरा॥ ६०
निहत्य नमुचिं शक्रस्तपसा स्वर्गमाप्तवान्।
तत्र दत्तं नरैः श्राद्धमनन्तफलदं भवेत्॥ ६१
तीर्थं तु पुष्करं नाम शालग्रामं तथैव च।
सोमपानं च विख्यातं यत्र वैश्वानरालयम्॥ ६२

भीमेश्वर, कृष्णवेणा, कावेरी, कुड्मला नदी, गोदावरी नदी, त्रिसंध्या नामक उत्तम तीर्थ तथा समस्त तीर्थोंद्वारा नमस्कृत त्रैयम्बक नामक तीर्थ, जहाँ त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर स्वयं ही निवास करते हैं—इन सभी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध करोड़ों-करोड़ों गुना फलदायक होता है। ब्राह्मणो! इन तीर्थोंका स्मरणमात्र करनेसे पापसमूह सैकड़ों टुकड़ोंमें चूर-चूर होकर नष्ट हो जाते हैं॥ ३५—४८॥

इसी प्रकार श्रीपर्णी, ताम्रपर्णी, सर्वश्रेष्ठ जयातीर्थ, पुण्यतोया मत्स्य नदी, शिवधार, सुप्रसिद्ध भद्रतीर्थ, सनातन पम्पातीर्थ, पुण्यमय रामेश्वर, एलापुर, अलम्पुर, अङ्गारक, प्रख्यात आमर्दक, अलम्बुष, (अलम्बुषा देवीका स्थान) आम्रातकेश्वर एवं एकाम्रक (भुवनेश्वर) हैं। इसके बाद गोवर्धन, हरिश्चन्द्र, कृपुचन्द्र, पृथूदक, सहस्राक्ष, हिरण्याक्ष, कदली नदी, रामाधिवास, उसमें भी सौमित्रिसंगम, इन्द्रकील, महानाद तथा प्रियमेलक—ये सभी श्राद्धमें सदा सर्वाधिक प्रशस्त माने गये हैं। चूँकि इन तीर्थोंमें सम्पूर्ण देवताओंका सांनिध्य देखा जाता है, इसलिये इन सभीमें दिया गया दान सैकड़ों कोटि गुनासे भी अधिक फलदायी होता है। पुण्यजला बाहुदा (धवला) नदी, मङ्गलमय सिद्धवन, पाशुपत नामक तीर्थ तथा शुभदायिनी पार्वतिका नदी—इन सभी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध सौ करोड़ गुनासे भी अधिक फलदाता होता है। उसी प्रकार यह भी एक पितृतीर्थ है, जहाँ सहस्रों शिवलिङ्गोंसे युक्त एवं अन्तरमें सभी नदियोंका जल प्रवाहित करनेवाली गोदावरी नदी बहती है। वहींपर जामदग्न्यका वह उत्तम तीर्थ क्रमशः आकर सम्मिलित हुआ है, जो प्रतीकके भयसे पृथक् हो गया था। गोदावरी नदीमें स्थित हव्य-कव्य-भोजी पितरोंका वह परम प्रियतीर्थ अप्सरोयुग नामसे प्रसिद्ध है। यह भी श्राद्ध, हवन और दान आदि कार्योंमें सैकड़ों कोटि गुनेसे अधिक फल देनेवाला है तथा सहस्रलिङ्ग, उत्तम राघवेश्वर और पुण्यतोया इन्द्रफेना नदी नामक तीर्थ है, जहाँ पूर्वकालमें इन्द्रका पतन हो गया था तथा पुनः उन्होंने अपने तपोबलसे नमुचिका वध करके स्वर्गलोकको प्राप्त किया था। वहाँ मनुष्योंद्वारा किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है। पुष्कर नामक तीर्थ, शालग्राम और जहाँ वैश्वानरका निवासस्थान है, वह सुप्रसिद्ध सोमपानतीर्थ,

तीर्थं सारस्वतं नाम स्वामितीर्थं तथैव च।
मलन्दरा नदी पुण्या कौशिकी चन्द्रिका तथा॥ ६३
वैदर्भी चाथ वेणा च पयोष्णी प्राङ्मुखा परा।
कावेरी चोत्तरा पुण्या तथा जालंधरो गिरिः॥ ६४
एतेषु श्राद्धतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते।

सारस्वततीर्थ, स्वामितीर्थ, मलन्दरा नदी, कौशिकी और चन्द्रिका—ये पुण्यजला नदियाँ हैं। वैदर्भा, वैणा, पूर्वमुख बहनेवाली श्रेष्ठा पयोष्णी, उत्तरमुख बहनेवाली पुण्यसलिला कावेरी तथा जालंधर गिरि—इन श्राद्धसम्बन्धी तीर्थोंमें किया गया श्राद्ध अनन्त फलदायक होता है॥ ४९—६४ $\frac{1}{2}$॥

लोहदण्डं तथा तीर्थं चित्रकूटस्तथैव च॥ ६५
विन्ध्ययोगश्च गङ्गायास्तथा नदीतटं शुभम्।
कुब्जाम्रं तु तथा तीर्थमुर्वशीपुलिनं तथा॥ ६६
संसारमोचनं तीर्थं तथैव ऋणमोचनम्।
एतेषु पितृतीर्थेषु श्राद्धमानन्त्यमश्नुते॥ ६७
अट्टहासं तथा तीर्थं गौतमेश्वरमेव च।
तथा वसिष्ठं तीर्थं तु हारीतं तु ततः परम्॥ ६८
ब्रह्मावर्तं कुशावर्तं हयतीर्थं तथैव च।
पिण्डारकं च विख्यातं शङ्खोद्धारं तथैव च॥ ६९
घण्टेश्वरं बिल्वकं च नीलपर्वतमेव च।
तथा च धरणीतीर्थं रामतीर्थं तथैव च॥ ७०
अश्वतीर्थं च विख्यातमनन्तं श्राद्धदानयोः।

उसी प्रकार लोहदण्डतीर्थ, चित्रकूट, विन्ध्ययोग, गङ्गा नदीका मङ्गलमय तट, कुब्जाम्र (ऋषिकेश) तीर्थ, उर्वशीपुलिन, संसारमोचनतीर्थ तथा ऋणमोचन—इन पितृतीर्थोंमें श्राद्धका फल अनन्त हो जाता है। अट्टहासतीर्थ, गौतमेश्वर, वसिष्ठतीर्थ, उसके बाद हारीततीर्थ, ब्रह्मावर्त, कुशावर्त, हयतीर्थ, (द्वारकाके पास) प्रख्यात पिण्डारक, शङ्खोद्धार, घण्टेश्वर, बिल्वक, नीलपर्वत, धरणीतीर्थ, रामतीर्थ तथा अश्वतीर्थ (कन्नौज)—ये सब भी श्राद्ध एवं दानके लिये अनन्त फलदायक-रूपसे विख्यात हैं॥ ६५—७० $\frac{1}{2}$॥

तीर्थं वेदशिरो नाम तथैवौघवती नदी॥ ७१
तीर्थं वसुप्रदं नामच्छागलाण्डं तथैव च।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमं पदम्॥ ७२
तथा च बदरीतीर्थं गणतीर्थं तथैव च।
जयन्तं विजयं चैव शक्रतीर्थं तथैव च॥ ७३
श्रीपतेश्च तथा तीर्थं तीर्थं रैवतकं तथा।
तथैव शारदातीर्थं भद्रकालेश्वरं तथा॥ ७४
वैकुण्ठतीर्थं च परं भीमेश्वरमथापि वा।
एतेषु श्राद्धदातारः प्रयान्ति परमां गतिम्॥ ७५
तीर्थं मातृगृहं नाम करवीरपुरं तथा।
कुशेशयं च विख्यातं गौरीशिखरमेव च॥ ७६
नकुलेशस्य तीर्थं च कर्दमालं तथैव च।
दिण्डिपुण्यकरं तद्वत् पुण्डरीकपुरं तथा॥ ७७
सप्तगोदावरी तीर्थं सर्वतीर्थेश्वरेश्वरम्।
तत्र श्राद्धं प्रदातव्यमनन्तफलमीप्सुभिः॥ ७८

वेदशिर नामक तीर्थ, उसी तरह ओघवती नदी, वसुप्रद नामक तीर्थ एवं छागलाण्डतीर्थ—इन तीर्थोंमें श्राद्ध प्रदान करनेवाले लोग परमपदको प्राप्त हो जाते हैं। बदरीतीर्थ, गणतीर्थ, जयन्त, विजय, शक्रतीर्थ, श्रीपतितीर्थ, रैवतकतीर्थ, शारदातीर्थ, भद्रकालेश्वर, वैकुण्ठतीर्थ, श्रेष्ठ भीमेश्वरतीर्थ—इन तीर्थोंमें श्राद्ध करनेवाले लोग परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं। मातृगृह नामक तीर्थ, करवीरपुर, कुशेशय, सुप्रसिद्ध गौरी-शिखर, नकुलेशतीर्थ, कर्दमाल, दिण्डिपुण्यकर, उसी तरह पुण्डरीकपुर तथा समस्त तीर्थेश्वरोंका भी अधीश्वर सप्तगोदावरीतीर्थ—इन तीर्थोंमें अनन्त फलप्राप्तिके इच्छुकोंको श्राद्ध प्रदान करना चाहिये॥ ७१—७८॥

एष तूद्देशतः प्रोक्तस्तीर्थानां संग्रहो मया।
वागीशोऽपि न शक्नोति विस्तरात् किमु मानुषः॥ ७९

इस प्रकार मैंने तीर्थोंके इस संग्रहका संक्षेपमें वर्णन किया; वैसे इनका विस्तृत वर्णन करनेमें तो बृहस्पति भी समर्थ नहीं हैं, फिर मनुष्यकी तो गणना ही क्या है?

सत्यं तीर्थं दया तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
वर्णाश्रमाणां गेहेऽपि तीर्थं तु समुदाहृतम्॥ ८०

सत्यतीर्थ, दयातीर्थ तथा इन्द्रियनिग्रहतीर्थ—ये सभी वर्णाश्रम-धर्म माननेवालोंके घरमें भी तीर्थरूपसे बतलाये गये हैं।

एतत्तीर्थेषु यच्छ्राद्धं तत् कोटिगुणमिष्यते।
यस्मात्तस्मात् प्रयत्नेन तीर्थे श्राद्धं समाचरेत्॥ ८१
प्रातःकालो मुहूर्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्॥ ८२
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्।
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु॥ ८३
अह्नो मुहूर्ता विख्याता दश पञ्च च सर्वदा।
तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः॥ ८४
मध्याह्ने सर्वदा यस्मान्मन्दो भवति भास्करः।
तस्मादनन्तफलदस्तदारम्भो भविष्यति॥ ८५
मध्याह्नखड्गपात्रं च तथा नेपालकम्बलः।
रूप्यं दर्भास्तिला गावो दौहित्रश्चाष्टमः स्मृतः॥ ८६
पापं कुत्सितमित्याहुस्तस्य संतापकारिणः।
अष्टावेते यतस्तस्मात् कुतपा इति विश्रुताः॥ ८७
ऊर्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपाद्यन्मुहूर्तचतुष्टयम्।
मुहूर्तपञ्चकं चैतत् स्वधाभवनमिष्यते॥ ८८
विष्णोर्देहसमुद्भूताः कुशाः कृष्णास्तिलास्तथा।
श्राद्धस्य रक्षणायालमेतत्प्राहुर्दिवौकसः॥ ८९
तिलोदकाञ्जलिर्देयो जलस्थैस्तीर्थवासिभिः।
सदर्भहस्तेनैकेन श्राद्धमेवं विशिष्यते॥ ९०
श्राद्धसाधनकाले तु पाणिनैकेन दीयते।
तर्पणं तूभयेनैव विधिरेष सदा स्मृतः॥ ९१

चूँकि इन तीर्थोंमें जो श्राद्ध किया जाता है, वह कोटिगुना फलदायक होता है, अतः प्रयत्नपूर्वक तीर्थोंमें श्राद्ध-कार्य सम्पन्न करना चाहिये। प्रातःकाल तीन मुहूर्ततकका काल संगव कहलाता है। उसके बाद तीन मुहूर्ततकका काल मध्याह्न और उसके बाद उतने ही समयतक अपराह्न है। फिर तीन मुहूर्ततक सायंकाल होता है, उसमें श्राद्ध नहीं करना चाहिये। सायंकालका समय राक्षसी वेला नामसे प्रसिद्ध है। यह सभी कार्योंमें निन्दित है। एक दिनमें पन्द्रह मुहूर्त होते हैं, यह तो सदासे विख्यात है। उनमें जो आठवाँ मुहूर्त है, वह कुतप नामसे प्रसिद्ध है। चूँकि मध्याह्नके समय सूर्य सदा मन्द हो जाते हैं, इसलिये उस समय अनन्त फलदायक उस (कुतप)-का आरम्भ होता है। मध्याह्नकाल, खड्गपात्र, नेपालकम्बल, चाँदी, कुश, तिल, गौ और आठवाँ दौहित्र (कन्याका पुत्र)—ये आठों चूँकि पापको, जिसे कुत्सित कहा जाता है, संतप्त करनेवाले हैं, इसलिये 'कुतप' नामसे विख्यात हैं। इस कुतप मुहूर्तके उपरान्त चार मुहूर्त अर्थात् कुल पाँच मुहूर्त स्वधावाचनके लिये उत्तम काल हैं। कुश तथा काला तिल—ये दोनों भगवान् विष्णुके शरीरसे प्रादुर्भूत हुए हैं, अतः ये श्राद्धकी रक्षा करनेमें सर्वसमर्थ हैं—ऐसा देवगण कहते हैं। तीर्थवासियोंको जलमें प्रवेश करके एक हाथमें कुश लेकर तिलसहित जलाञ्जलि देनी चाहिये। ऐसा करनेसे श्राद्धकी विशेषता बढ़ जाती है। श्राद्ध करते समय (पिण्ड आदि तो) एक ही हाथसे दिया जाता है, परंतु तर्पण दोनों हाथोंसे किया जाता है—यह विधि सदासे प्रचलित है॥ ७९—९१॥

सूत उवाच

पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापविनाशनम्।
पुरा मत्स्येन कथितं तीर्थश्राद्धानुकीर्तनम्।
शृणोति यः पठेद् वापि श्रीमान् संजायते नरः॥ ९२
श्राद्धकाले च वक्तव्यं तथा तीर्थनिवासिभिः।
सर्वपापोपशान्त्यर्थमलक्ष्मीनाशनं परम्॥ ९३
इदं पवित्रं यशसो निधान-
मिदं महापापहरं च पुंसाम्।
ब्रह्मार्करुद्रैरपि पूजितं च
श्राद्धस्य माहात्म्यमुशन्ति तज्ज्ञाः॥ ९४

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें मत्स्यभगवान्‌ने इस तीर्थ-श्राद्धका वर्णन किया था। यह पुण्यप्रद, परम पवित्र, आयुवर्धक तथा सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है। जो मनुष्य इसे सुनता है अथवा स्वयं इसका पाठ करता है, वह श्रीसम्पन्न हो जाता है। तीर्थनिवासियोंद्वारा समस्त पापोंकी शान्तिके निमित्त श्राद्धके समय इस परम श्रेष्ठ दरिद्रताविनाशक (श्राद्ध-माहात्म्यरूप) प्रसङ्गका पाठ करना चाहिये। यह श्राद्ध-माहात्म्य परम पवित्र, यशका आश्रयस्थान, पुरुषोंके महान्-से-महान् पापोंका विनाशक तथा ब्रह्मा, सूर्य और रुद्रद्वारा भी पूजित (सम्मानित) है॥ ९२—९४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे श्राद्धकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके श्राद्धकल्पमें बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२॥

तेईसवाँ अध्याय

चन्द्रमाकी उत्पत्ति, उनका दक्ष प्रजापतिकी कन्याओंके साथ विवाह, चन्द्रमाद्वारा राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान, उनकी तारापर आसक्ति, उनका भगवान् शङ्करके साथ युद्ध तथा ब्रह्माजीका बीच-बचाव करके युद्ध शान्त करना[1]

ऋषय ऊचुः

सोमः पितॄणामधिपः कथं शास्त्रविशारद।
तद्वंश्या ये च राजानो बभूवुः कीर्तिवर्धनाः॥ १

सूत उवाच

आदिष्टो ब्रह्मणा पूर्वमत्रिः सर्गविधौ पुरा।
अनुत्तरं नाम तपः सृष्ट्यर्थं तप्तवान् प्रभुः॥ २
यदानन्दकरं ब्रह्म जगत्क्लेशविनाशनम्।
ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणामभ्यन्तरमतीन्द्रियम्॥ ३
शान्तिकृच्छान्तमनसस्तदन्तर्नयने स्थितम्।
माहात्म्यात्तपसा विप्राः परमानन्दकारकम्॥ ४
यस्मादुमापतिः सार्धमुमया तमधिष्ठितः।
तं दृष्ट्वा चाष्टमांशेन तस्मात् सोमोऽभवच्छिशुः॥ ५
अधः सुस्राव नेत्राभ्यां धाम तच्चाम्बुसम्भवम्।
दीपयद् विश्वमखिलं ज्योत्स्नया सचराचरम्॥ ६
तद्दिशो जगृहुर्धाम स्त्रीरूपेण सुतेच्छया।
गर्भोऽभूत् त्वदुदरे तासामास्थितोऽब्दशतत्रयम्॥ ७
आशास्तं मुमुचुर्गर्भमशक्ता धारणे ततः।
समादायाथ तं गर्भमेकीकृत्य चतुर्मुखः॥ ८
युवानमकरोद् ब्रह्मा सर्वायुधधरं नरम्।
स्यन्दनेऽथ सहस्राश्वे वेदशक्तिमये प्रभुः॥ ९
आरोप्य लोकमनयदात्मीयं स पितामहः।
तत्र ब्रह्मर्षिभिः प्रोक्तमस्मत् स्वामी भवत्वयम्॥ १०

ऋषियोंने पूछा—शास्त्रविशारद सूतजी! पितरोंके अधिपति चन्द्रमाकी उत्पत्ति कैसे हुई? आप यह सब हमें बतलाइये तथा चन्द्रवंशमें जो कीर्तिवर्धक राजा हो गये हैं, उनके विषयमें भी हमलोग सुनना चाहते हैं, कृपया वह सब भी विस्तारसे बतलायें॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें ब्रह्माने अपने मानसपुत्र अत्रिको सृष्टि-रचनाके लिये आज्ञा दी। उन सामर्थ्यशाली महर्षिने सृष्टि-रचनाके निमित्त अनुत्तर[2] नामक (भीषण) तप किया। उस तपके प्रभावसे जगत्‌के कष्टोंका विनाशक, शान्तिकर्ता, इन्द्रियोंसे परे जो परमानन्द है तथा जो ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके अन्तःप्रदेशमें निवास करनेवाला है, वही ब्रह्म उन प्रशान्त मनवाले[3] महर्षिके (मन एवं) नेत्रोंके भीतर स्थित हो गया। चूँकि उस समय उमासहित उमापति शंकरने भी अत्रिके मन-नेत्रोंको अधिगम बनाया था, अतः उन्हें देखकर शिवके या उनके अष्टमांशसे शिशु (ललाटस्थ चन्द्रके) रूपमें चन्द्रमा प्रकट हो गये। उस समय महर्षि अत्रिके नेत्रोंसे जलसम्भूत धाम (तेज) नीचेकी ओर बह चला। उसने अपने प्रकाशसे अखिल चराचर विश्वको उद्दीप्त कर दिया। दिशाओंने उस तेजको स्त्री-रूपसे धारणकर पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे ग्रहण कर लिया। वह उनके उदरमें गर्भरूप होकर तीन सौ वर्षोंतक स्थित रहा। जब दिशाएँ उस गर्भको धारण करनेमें असमर्थ हो गयीं, तब उन्होंने उसका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् चतुर्मुख ब्रह्माने उस गर्भको उठाकर उसे एकत्र कर सर्वायुधधारी तरुण पुरुषके रूपमें परिणत कर दिया तथा वे शक्तिशाली पितामह सहस्र घोड़ोंसे जुते हुए वेदशक्तिमय रथपर उसे बैठाकर अपने लोकको ले गये। वहाँ (उस पुरुषको देखकर) ब्रह्मर्षियोंने कहा—'ये हम लोगोंके स्वामी हों।'

१. यह अध्याय पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, १२ में भी यों ही है।
२. जिसके बाद किसीने वैसा या उससे कोई दूसरा बड़ा तप न किया हो, वह तपस्या ही 'अनुत्तर' तप है।
३. इसमें 'चन्द्रमा मनसो जातः' (पुरुषसूक्त १३०)-का उपबृंहण है।

पितृभिर्देवगन्धर्वैरोषधीभिस्तथैव च।
तुष्टुवुः सोमदेवत्यैर्ब्रह्माद्यैर्मन्त्रसंग्रहैः॥ ११
स्तूयमानस्य तस्याभूदधिको धामसम्भवः।
तेजोवितानादभवद् भुवि दिव्यौषधीगणः॥ १२
तद्दीप्तिरधिका तस्माद् रात्रौ भवति सर्वदा।
तेनौषधीशः सोमोऽभूद् द्विजेशश्चापि गद्यते॥ १३
वेदधामरसं चापि यदिदं चन्द्रमण्डलम्।
क्षीयते वर्धते चैव शुक्ले कृष्णे च सर्वदा॥ १४

उसी समय पितर, ब्रह्मादि देवता, गन्धर्व और ओषधियोंने 'सोमदैवत्य'* नामक वैदिक मन्त्रसमूहोंसे उनकी स्तुति की। इस प्रकार स्तुति किये जानेपर चन्द्रमाका तेज और अधिक बढ़ गया। तब उस तेजसमूहसे भूतलपर दिव्य ओषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ। इसी कारण रात्रिमें उन ओषधियोंकी कान्ति सर्वदा अधिक हो जाती है। इसी हेतु चन्द्रमा ओषधीश कहलाये तथा उन्हें द्विजेश भी कहा जाता है। वेदोंके तेजरूप रससे उत्पन्न हुआ जो यह चन्द्रमण्डल है, वह सर्वदा शुक्लपक्षमें बढ़ता है और कृष्णपक्षमें क्षीण होता रहता है॥ २—१४॥

विंशतिं च तथा सप्त दक्षः प्राचेतसो ददौ।
रूपलावण्यसंयुक्तास्तस्मै कन्याः सुवर्चसः॥ १५
ततः समासहस्राणां सहस्राणि दशैव तु।
तपश्चचार शीतांशुर्विष्णुध्यानैकतत्परः॥ १६
ततस्तुष्टस्तु भगवांस्तस्मै नारायणो हरिः।
वरं वृणीष्व प्रोवाच परमात्मा जनार्दनः॥ १७
ततो वव्रे वरान् सोमः शक्रलोकं जयाम्यहम्।
प्रत्यक्षमेव भोक्तारो भवन्तु मम मन्दिरे॥ १८
राजसूये सुरगणा ब्रह्माद्याः सन्तु मे द्विजाः।
रक्षःपालः शिवोऽस्माकमास्तां शूलधरो हरः॥ १९
तथेत्युक्तः स आजह्रे राजसूयं तु विष्णुना।
होतात्रिर्भृगुरध्वर्युरुद्गाताभूच्चतुर्मुखः॥ २०
ब्रह्मत्वमगमत् तस्य उपद्रष्टा हरिः स्वयम्।
सदस्याः सनकाद्यास्तु राजसूयविधौ स्मृताः॥ २१
चमसाध्वर्यवस्तत्र विश्वेदेवा दशैव तु।
त्रैलोक्यं दक्षिणा तेन ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादितम्॥ २२
ततः समाप्तेऽवभृथे तद्रूपालोकनेच्छवः।
कामबाणाभितप्ताङ्ग्यो नव देव्यः सिषेविरे॥ २३
लक्ष्मीर्नारायणं त्यक्त्वा सिनीवाली च कर्दमम्।
द्युतिर्विभावसुं तद्वत् तुष्टिर्धातारमव्ययम्॥ २४
प्रभा प्रभाकरं त्यक्त्वा हविष्मन्तं कुहूः स्वयम्।
कीर्तिर्जयन्तं भर्तारं वसुर्मारीचकश्यपम्॥ २५

तदनन्तर प्रचेता-नन्दन दक्षने चन्द्रमाको अपनी सत्ताईस कन्याएँ—जो रूप-लावण्यसे सम्पन्न तथा परम तेजस्विनी थीं, पत्नीरूपमें प्रदान कीं। तब शीत किरणोंवाले चन्द्रमाने एकमात्र भगवान् विष्णुके ध्यानमें तत्पर होकर १० लाख वर्षोंतक तपस्या की। उससे प्रभावित होकर भगवान् (ऐश्वर्यशाली) जनार्दन (दुष्टविनाशक), परमात्मा (परम आत्मबलसे सम्पन्न), नारायण (जलशायी) हैं, वे श्रीहरि चन्द्रमापर प्रसन्न हो गये और (उनके समक्ष प्रकट होकर) बोले—'वर माँगो!' इस प्रकार कहे जानेपर चन्द्रमाने वर माँगते हुए कहा—'भगवन्! मैं इन्द्रलोकको जीत लेना चाहता हूँ, जिससे देवतालोग प्रत्यक्षरूपसे मेरे भवनमें आकर अपना-अपना भाग ग्रहण करें। मेरे राजसूय-यज्ञमें ब्रह्मा आदि देवगण ब्राह्मण हों तथा त्रिशूलधारी मङ्गलमय भगवान् शंकर हम सभीके दिव्य रक्षःपाल (राक्षसोंसे रक्षा करनेवाले या सभी प्रकारके रक्षक) रूपमें उपस्थित रहें।' भगवान् विष्णुके 'तथेति'—'ऐसा ही हो'—यों कहकर स्वीकार कर लेनेपर चन्द्रमाने राजसूय-यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें महर्षि अत्रि होता (ऋग्वेदके पाठक), भृगु अध्वर्यु (यजुर्वेदके पाठक) और चतुर्मुख ब्रह्मा उद्गाता (सामवेदके गायक) थे। स्वयं श्रीहरिने उस यज्ञका उपद्रष्टा होकर ब्रह्म (अथर्ववेदका पाठक)-का पद ग्रहण किया। उस राजसूय-यज्ञमें सनक आदि सदस्य और दसों विश्वेदेव चमसाध्वर्यु (यज्ञमें सोमरस पीनेवाले) बने—ऐसा सुना जाता है। उस समय चन्द्रमाने ऋत्विजोंको तीनों लोक दक्षिणारूपमें प्रदान कर दिये थे। तत्पश्चात् अवभृथस्नान (यज्ञान्तमें होनेवाला स्नान)-की समाप्तिपर (चन्द्रमाके रूपपर मुग्ध होकर) उसके सौन्दर्यका अवलोकन करनेकी इच्छासे युक्त सिनीवाली आदि नौ देवियाँ उनकी सेवामें उपस्थित हुईं। लक्ष्मी नारायणको, सिनीवाली कर्दमको, द्युति विभावसुको, तुष्टि अविनाशी ब्रह्माको, प्रभा प्रभाकरको, कुहू स्वयं हविष्मान्‌को, कीर्ति जयन्तको, वसु मरीचिनन्दन कश्यपको

* ऋग्वेदके १।९१ (मुख्यतम), ९।१—११४, १०।८५ (जिसे विवाहसूक्त भी कहते हैं) आदि सूक्त सोमदैवत्य हैं।

धृतिस्त्यक्त्वा पतिं नन्दिं सोममेवाभजंस्तदा।
स्वकीया इव सोमोऽपि कामयामास तास्तदा॥ २६
एवं कृतापचारस्य तासां भर्तृगणस्तदा।
न शशाकापचाराय शापैः शस्त्रादिभिः पुनः॥ २७
तथाप्यराजत विधुर्दशधा भावयन् दिशः।
सोमः प्राप्याथ दुष्प्राप्यमैश्वर्यं सृष्टिसंस्कृतम्।
सप्तलोकैकनाथत्वमवाप तपसा तदा॥ २८
कदाचिदुद्यानगतामपश्य-
दनेकपुष्पाभरणैश्च शोभिताम्।
बृहन्नितम्बस्तनभारखेदात्-
पुष्पस्य भङ्गेऽप्यतिदुर्बलाङ्गीम्॥ २९
भार्यां च तां देवगुरोरनङ्ग-
बाणाभिरामायतचारुनेत्राम्।
तारां स ताराधिपतिः स्मरार्तः
केशेषु जग्राह विविक्तभूमौ॥ ३०
सापि स्मरार्ता सह तेन रेमे
तद्रूपकान्त्या हृतमानसेन।
चिरं विहृत्याथ जगाम तारां
विधुर्गृहीत्वा स्वगृहं ततोऽपि॥ ३१
न तृप्तिरासीच्च गृहेऽपि तस्य
तारानुरक्तस्य सुखागमेषु।
बृहस्पतिस्तद्विरहाग्निदग्ध-
स्तद्ध्याननिष्ठैकमना बभूव॥ ३२
शशाक शापं न च दातुमस्मै
न मन्त्रशस्त्राग्निविषैरशेषैः।
तस्यापकर्तुं विविधैरुपायै-
र्नैवाभिचारैरपि वागधीशः॥ ३३
स याचयामास ततस्तु दैन्यात्
सोमं स्वभार्यार्थमनङ्गतप्तः।
स याच्यमानोऽपि ददौ न तारां
बृहस्पतेस्तत्सुखपाशबद्धः॥ ३४
महेश्वरेणाथ चतुर्मुखेण
साध्यैर्मरुद्भिः सह लोकपालैः।
ददौ यदा तां न कथंचिदिन्दु-
स्तदा शिवः क्रोधपरो बभूव॥ ३५
यो वामदेवः प्रथितः पृथिव्या-
मनेकरुद्रार्चितपादपद्मः।
ततः सशिष्यो गिरिशः पिनाकी
बृहस्पतिस्नेहवशानुबद्धः॥ ३६

और धृति अपने पति नन्दिको छोड़कर उस समय चन्द्रमाकी सेवामें नियुक्त हुईं। चन्द्रमा उस समय दसों दिशाओंको उद्भासित करते हुए सुशोभित हो रहे थे तथा उन्होंने समस्त सृष्टिमें संस्कृत एवं दुर्लभ ऐश्वर्यको प्राप्तकर सातों लोकोंका एकच्छत्र आधिपत्य प्राप्त किया'॥ १५—२८॥

इसके कुछ दिन बाद चन्द्रमा एक बार कभी तारको साथ लेकर अपने घर चले गये। बृहस्पतिके कहनेपर भी उन्होंने ताराको उन्हें समर्पित नहीं किया। तत्पश्चात् महेश्वर, ब्रह्मा, साध्यगण तथा लोकपालोंसहित मरुद्गणके समझानेपर भी जब चन्द्रमाने ताराको किसी प्रकार नहीं लौटाया, तब भगवान् शिव, जो भूतलपर वामदेव नामसे विख्यात हैं तथा अनेकों रुद्र जिनके चरणकमलोंकी अर्चना किया करते हैं, क्रुद्ध हो उठे। तदनन्तर त्रिपुरासुरके शत्रु एवं पिनाक धारण करनेवाले भगवान् शंकर बृहस्पतिके प्रति स्नेहके वशीभूत हो शिष्योंके

धनुर्गृहीत्वाजगवं पुरारि-
र्जगाम भूतेश्वरसिद्धजुष्टः।
युद्धाय सोमेन विशेषदीप्त-
तृतीयनेत्रानलभीमवक्त्रः ॥ ३७

सहैव जग्मुश्च गणेशकाद्या
विंशच्चतुःषष्टिगणास्त्रयुक्ताः।
यक्षेश्वरः कोटिशतैरनेकै-
र्युतोऽन्वगात् स्यन्दनसंस्थितानाम् ॥ ३८

वेतालयक्षोरगकिंनराणां
पद्मेन चैकेन तथार्बुदेन।
लक्षैस्त्रिभिर्द्वादशभी रथानां
सोमोऽप्यगात् तत्र विवृद्धमन्युः ॥ ३९

नक्षत्रदैत्यासुरसैन्ययुक्तः
शनैश्चराङ्गारकवृद्धतेजाः।
जग्मुर्भयं सप्त तथैव लोका-
श्चचाल भूर्द्वीपसमुद्रगर्भा ॥ ४०

स सोममेवाभ्यगमत् पिनाकी
गृहीतदीप्तास्त्रविशालवह्निः।
अथाभवद् भीषणभीमसेन-
सैन्यद्वयस्यापि महाहवोऽसौ ॥ ४१

अशेषसत्त्वक्षयकृत्प्रवृद्ध-
स्तीक्ष्णायुधास्त्रज्वलनैकरूपः।
शस्त्रैरथान्योऽन्यमशेषसैन्यं
द्वयोर्जगाम क्षयमुग्रतीक्ष्णैः ॥ ४२

पतन्ति शस्त्राणि तथोज्ज्वलानि
स्वर्भूमिपातालमथो दहन्ति।
रुद्रः कोपाद् ब्रह्मशीर्षं मुमोच
सोमोऽपि सोमास्त्रममोघवीर्यम् ॥ ४३

तयोर्निपातेन समुद्रभूम्यो-
रथान्तरिक्षस्य च भीतिरासीत्।
तदस्त्रयुग्मं जगतां क्षयाय
प्रवृद्धमालोक्य पितामहोऽपि ॥ ४४

अन्तःप्रविश्याथ कथं कथंचि-
न्निवारयामास सुरैः सहैव।
अकारणं किं क्षयकृज्जनानां
सोम त्वयापीत्थमकारि कार्यम् ॥ ४५

साथ 'आजगव' नामक धनुष लेकर चन्द्रमाके साथ युद्ध करनेके लिये प्रस्थित हुए। उस समय उनका मुख विशेषरूपसे उद्दीप्त हुए तृतीय नेत्रकी अग्निसे बड़ा भयानक दीख रहा था॥ २९—३७॥

उनके साथ भूतेश्वरों और सिद्धोंका समुदाय भी था तथा शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित गणेश आदि चौरासी गण भी साथ ही रवाना हुए। उसी प्रकार यक्षराज कुबेरने भी अनेकों शतकोटि सेनाओंके साथ-साथ रथारूढ़ एक पद्म वेताल, एक अरब यक्ष, तीन लाख नाग और बारह लाख किन्नरोंको साथ लेकर शिवजीका अनुसरण किया। उधर चन्द्रमा भी क्रोधाविष्ट हो नक्षत्रों, दैत्यों और असुरोंकी सेनाओंके साथ शनैश्चर और मंगलके सहयोगके कारण उद्दीप्त तेजसे सम्पन्न हो रणभूमिमें आ डटे। उस समाहारको देखकर सातों लोक भयभीत हो उठे तथा द्वीपों एवं समुद्रोंसहित पृथ्वी काँपने लगी। शिवजीने प्रकाशमान एवं विशाल आग्नेयास्त्रको लेकर चन्द्रमापर आक्रमण किया। फिर तो दोनों सेनाओंमें अत्यन्त भीषण युद्ध छिड़ गया। धीरे-धीरे उस युद्धने उग्ररूप धारण कर लिया। उसमें सम्पूर्ण जीवोंका संहार हो रहा था तथा अग्निके समान प्रज्वलित हथियार चमक रहे थे। इस प्रकार एक-दूसरेके प्रति अत्यन्त तीखे शस्त्रोंके प्रहारसे दोनों सेनाएँ समग्ररूपसे नष्ट होने लगीं। उस समय ऐसे जाज्वल्यमान शस्त्रोंकी वर्षा हो रही थी, जो स्वर्गलोक, भूतल और पातालको भस्म कर डालते थे। यह देख रुद्रने क्रुद्ध होकर ब्रह्मशीर्ष नामक अस्त्र चलाया, तब चन्द्रमाने भी अपने अचूक लक्ष्यवाले सोमास्त्रका प्रयोग किया। उन दोनों अस्त्रोंके टकरानेसे समुद्र, भूमि और अन्तरिक्ष आदि सभी भयसे काँप उठे। इस प्रकार उन दोनों अस्त्रोंको जगत्‌का विनाश करनेके लिये बढ़ता हुआ देखकर देवताओंके साथ ब्रह्माने उनके भीतर प्रवेश करके किसी-किसी प्रकारसे उनका निवारण किया (और कहा—) 'सोम! तुमने अकारण ही ऐसा कार्य क्यों किया, यह तो लोगोंका विनाशक है। सोम! चूँकि तुमने

यस्मात् परस्त्रीहरणाय सोम
त्वया कृतं युद्धमतीव भीमम्।
पापग्रहस्त्वं भविता जनेषु
शान्तोऽप्यलं नूनमथो सितान्ते॥
भार्यामिमामर्पय वाक्पतेस्त्वं
न चावमानोऽस्ति परस्वहारे॥ ४६

दूसरेकी स्त्रीका अपहरण करनेके लिये इतना भयंकर युद्ध किया है, इसलिये शान्तस्वरूप होनेपर भी तुम शुक्लपक्षके अन्तमें अर्थात् कृष्णपक्षमें निश्चय ही जनतामें पापग्रहके रूपसे प्रसिद्ध होओगे। तुम बृहस्पतिकी इस भार्याको उन्हें समर्पित कर दो। दूसरेका धन लेकर उसे लौटा देनेमें अपमान नहीं होता'॥ ३८—४६॥

सूत उवाच

तथेति चोवाच हिमांशुमाली
युद्धादपाक्रामदतः प्रशान्तः।
बृहस्पतिः स्वामपगृह्य तारां
हृष्टो जगाम स्वगृहं सरुद्रः॥ ४७

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तब चन्द्रमाने 'तथेति—ऐसा ही हो' यों कहकर ब्रह्माकी आज्ञा स्वीकार कर ली और वे शान्त होकर युद्धसे हट गये। इधर बृहस्पति भी अपनी पत्नी ताराको ग्रहण करके शिवजीके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको चले गये॥ ४७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशाख्याने सोमापचारो नाम त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंशाख्यानमें सोमापचार नामक तेईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३॥

चौबीसवाँ अध्याय

ताराके गर्भसे बुधकी उत्पत्ति, पुरूरवाका जन्म, पुरूरवा और उर्वशीकी कथा, नहुष-पुत्रोंके वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिका वृत्तान्त

सूत उवाच

ततः संवत्सरस्यान्ते द्वादशादित्यसंनिभः।
दिव्यपीताम्बरधरो दिव्याभरणभूषितः॥ १
तारोदराद् विनिष्क्रान्तः कुमारश्चन्द्रसंनिभः।
सर्वार्थशास्त्रविद् धीमान् हस्तिशास्त्रप्रवर्तकः॥ २
नाम यद्राजपुत्रीयं विश्रुतं गजवैद्यकम्।
राज्ञः सोमस्य पुत्रत्वाद् राजपुत्रो बुधः स्मृतः॥ ३
जातमात्रः स तेजांसि सर्वाण्येवाजयद् बली।
ब्रह्माद्यास्तत्र चाजग्मुर्देवा देवर्षिभिः सह॥ ४
बृहस्पतिगृहे सर्वे जातकर्मोत्सवे तदा।
अपृच्छंस्ते सुरास्तारां केन जातः कुमारकः॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर एक वर्ष व्यतीत होनेपर ताराके उदरसे एक कुमार प्रकट हुआ। वह बारहों सूर्योंके समान तेजस्वी, दिव्य पीताम्बरधारी, दिव्य आभूषणोंसे विभूषित तथा चन्द्रमाके सदृश कान्तिमान् था। वह सम्पूर्ण अर्थशास्त्रका ज्ञाता, उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्न तथा हस्तिशास्त्र (हाथीके गुण-दोष तथा चिकित्सा आदि विवेचनापूर्ण शास्त्र)-का प्रवर्तक था। वही शास्त्र 'राजपुत्रीय' (या 'पालकाप्य'[1])-नामसे विख्यात है, इसमें गज-चिकित्साका विशद वर्णन है। सोम राजाका पुत्र होनेके कारण वह राजकुमार राजपुत्र[2] तथा बुधके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस बलवान् राजकुमारने जन्म लेते ही सभी तेजस्वी पदार्थोंको अभिभूत कर दिया। उसके जातकर्म-संस्कारके उत्सवमें ब्रह्मा आदि सभी देवता देवर्षियोंके साथ बृहस्पतिके घर पधारे। चन्द्रमाने उस पुत्रको ग्रहण

१. यह ग्रन्थ बहुत बड़ा है। अग्निपुराण २८७—९१, बृहत्संहिता ६६, ९३, आकाशभैरवकल्प, शिवतत्त्वरत्नाकर, मानसोल्लास १। १०००—१४०० आदिमें इसका वर्णन है। वाल्मी० रामा० १।६।२४—३० की तथा रघुवंश ५।५० की टीकाओंमें भी इसके कुछ अंश निर्दिष्ट हैं।

२. इन्हींसे 'राजपूत' शब्द भी प्रचलित हुआ।

तत: सा लज्जिता तेषां न किंचिदवदत् तदा।
पुन: पुनस्तदा पृष्टा लज्जयन्ती वराङ्गना॥ ६
सोमस्येति चिरादाह ततोऽगृह्लाद् विधु: सुतम्।
बुध इत्यकरोन्नाम्ना प्रादाद् राज्यं च भूतले॥ ७
अभिषेकं तत: कृत्वा प्रधानमकरोद् विभु:।
ग्रहसाम्यं प्रदायाथ ब्रह्मा ब्रह्मर्षिसंयुत:॥ ८
पश्यतां सर्वदेवानां तत्रैवान्तरधीयत।
इलोदरे च धर्मिष्ठं बुध: पुत्रमजीजनत्॥ ९
अश्वमेधशतं साग्रमकरोद् य: स्वतेजसा।
पुरूरवा इति ख्यात: सर्वलोकनमस्कृत:॥ १०
हिमवच्छिखरे रम्ये समाराध्य जनार्दनम्।
लोकैश्वर्यमगाद् राजा सप्तद्वीपपतिस्तदा॥ ११
केशिप्रभृतयो दैत्या: कोटिशो येन दारिता:।
उर्वशी यस्य पत्नीत्वमगमद् रूपमोहिता॥ १२
सप्तद्वीपा वसुमती सशैलवनकानना।
धर्मेण पालिता तेन सर्वलोकहितैषिणा॥ १३
चामरग्राहिणी कीर्ति: सदा चैवाङ्गवाहिका।
विष्णो: प्रसादाद् देवेन्द्रो ददावर्धासनं तदा॥ १४
धर्मार्थकामान् धर्मेण सममेवाभ्यपालयत्।
धर्मार्थकामा: संद्रष्टुमाजग्मु: कौतुकात् पुरा॥ १५
जिज्ञासवस्तच्चरितं कथं पश्यति न: समम्।
भक्त्या चक्रे ततस्तेषामर्घ्यपाद्यादिकं नृप:॥ १६
आसनत्रयमानीय दिव्यं कनकभूषितम्।
निवेश्याथाकरोत् पूजामीषद् धर्मेऽधिकां पुन:॥ १७
जग्मतुस्तेन कामार्थावतिकोपं नृपं प्रति।
अर्थ: शापमदात् तस्मै लोभात् त्वं नाशमेष्यसि॥ १८
कामोऽप्याह तवोन्मादो भविता गन्धमादने।
कुमारवनमाश्रित्य वियोगादुर्वशीभवात्॥ १९
धर्मोऽप्याह चिरायुस्त्वं धार्मिकश्च भविष्यसि।
सन्ततिस्तव राजेन्द्र यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥ २०
शतशो वृद्धिमायातु न नाशं भुवि यास्यति।
इत्युक्त्वान्तर्दधु: सर्वे राजा राज्यं तदन्वभूत्॥ २१

कर लिया और उसका नाम 'बुध' रखा। तत्पश्चात् सर्वव्यापी ब्रह्माने ब्रह्मर्षियोंके साथ उसे भूतलके राज्यपर अभिषिक्त कर सर्वप्रधान बना दिया और ग्रहोंकी समता प्रदान की। फिर सभी देवताओंके देखते-देखते ब्रह्मा वहीं अन्तर्हित हो गये। बुधने इलाके गर्भसे एक धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न किया। वह पुरूरवा नामसे विख्यात हुआ। वह सम्पूर्ण लोगोंद्वारा वन्दित हुआ। उन्होंने अपने प्रभावसे एक सौसे भी अधिक अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उस राजा पुरूरवाने हिमवान् पर्वतके रमणीय शिखरपर भगवान् विष्णुकी आराधना करके लोकोंका ऐश्वर्य प्राप्त किया तथा वे सातों द्वीपोंके अधिपति हुए। उन्होंने केशि आदि करोड़ों दैत्योंको विदीर्ण कर दिया। उनके रूपपर मुग्ध होकर उर्वशी उनकी पत्नी बन गयी। सम्पूर्ण लोकोंकी हित-कामनासे युक्त पुरूरवाने पर्वत, वन और काननोंसहित सातों द्वीपोंकी पृथ्वीका धर्मपूर्वक पालन किया। कीर्ति तो (मानो) सदा उनकी चँवर धारण करनेवाली सेविका थी। भगवान् विष्णुकी कृपासे देवराज इन्द्रने उन्हें अपना अर्धासन प्रदान किया था॥ १—१४॥

पुरूरवा धर्म, अर्थ और कामका समानरूपसे ही पालन करते थे। पूर्वकालमें एक बार धर्म, अर्थ और काम कुतूहलवश यह देखनेके लिये राजाके निकट आये कि यह हमलोगोंको समानरूपसे कैसे देखता है। उनके मनमें राजाके चरित्रको जाननेकी अभिलाषा थी। राजाने उन्हें भक्तिपूर्वक अर्घ्य-पाद्य आदि प्रदान किया। तत्पश्चात् स्वर्णजटित तीन दिव्य आसन लाकर उनपर उन्हें बैठाया और उनकी पूजा की। इसके बाद उन्होंने पुन: धर्मकी थोड़ी अधिक पूजा कर दी। इस कारण अर्थ और काम राजापर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। अर्थने राजाको शाप देते हुए कहा—'तुम लोभके कारण नष्ट हो जाओगे।' कामने भी कहा—'राजन्! गन्धमादन पर्वतपर स्थित कुमारवनमें तुम्हें उर्वशीजन्य वियोगसे उन्माद हो जायगा।' धर्मने कहा—'राजेन्द्र! तुम दीर्घायु और धार्मिक होगे। तुम्हारी संतति करोड़ों प्रकारसे वृद्धिको प्राप्त होती रहेगी और जबतक सूर्य, चन्द्रमा तथा तारागणकी सत्ता विद्यमान है, तबतक उनका भूतलपर विनाश नहीं होगा।' यों कहकर वे सभी अन्तर्हित हो गये और राजा राज्यका उपभोग करने लगे॥ १५—२१॥

देवासुरमनुष्याणामभूत् स विजयी तदा।
अथ देवासुरं युद्धमभूद् वर्षशतत्रयम्॥ ३७

प्रह्लादशक्रयोर्भीमं न कश्चिद् विजयी तयोः।
ततो देवासुरैः पृष्टः प्राह देवश्चतुर्मुखः॥ ३८

अनयोर्विजयी कः स्याद् रजिर्यत्रेति सोऽब्रवीत्।
जयाय प्रार्थितो राजा सहायस्त्वं भवस्व नः॥ ३९

दैत्यैः प्राह यदि स्वामी वो भवामि ततस्त्वलम्।
नासुरैः प्रतिपन्नं तत् प्रतिपन्नं सुरैस्तथा॥ ४०

स्वामी भव त्वमस्माकं संग्रामे नाशय द्विषः।
ततो विनाशिताः सर्वे येऽवध्या वज्रपाणिना॥ ४१

पुत्रत्वमगमत् तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा विभुः।
दत्त्वेन्द्राय तदा राज्यं जगाम तपसे रजिः॥ ४२

जिससे वे उस समय देवों, असुरों और मनुष्योंके विजेता हो गये। तदनन्तर प्रह्लाद और इन्द्रका भयंकर देवासुर-संग्राम छिड़ गया, जो तीन सौ वर्षोंतक चलता रहा; परंतु उन दोनोंमें कोई किसीपर विजय नहीं पा रहा था। तब देवताओं और असुरोंने मिलकर देवाधिदेव ब्रह्मासे पूछा—'ब्रह्मन्! इन दोनोंमें कौन (पक्ष) विजयी होगा?' यह सुनकर ब्रह्माने उत्तर दिया—'जिस पक्षमें राजा रजि रहेंगे (वही विजयी होगा)।' तब दैत्योंने राजाके पास जाकर अपनी विजयके लिये उनसे प्रार्थना की कि 'आप हमारे सहायक हो जायँ।' उनकी प्रार्थना सुनकर रजिने कहा—'यदि मैं आप लोगोंका स्वामी हो जाऊँ तभी उपयुक्त सहायता हो सकेगी।' परंतु असुरोंने उस प्रस्तावको स्वीकार नहीं किया, किंतु देवताओंने उसे स्वीकार करते हुए कहा—'राजन्! आप हमलोगोंके स्वामी हो जायँ और संग्राममें शत्रुओंका संहार करें।' तदनन्तर राजा रजिने उन सभी असुरोंको मौतके घाट उतार दिया, जो इन्द्रद्वारा अवध्य थे। इस कर्मसे प्रसन्न होकर देवराज इन्द्र राजाके पुत्र बन गये। तब राजा रजि इन्द्रको राज्य समर्पित कर स्वयं तपस्या करनेके लिये चले गये॥ ३२—४२॥

रजिपुत्रैस्तदाच्छिन्नं बलादिन्द्रस्य वैभवम्।
यज्ञभागं च राज्यं च तपोबलगुणान्वितैः॥ ४३

राज्याद् भ्रष्टस्तदा शक्रो रजिपुत्रैर्निपीडितः।
प्राह वाचस्पतिं दीनः पीडितोऽस्मि रजेः सुतैः॥ ४४

न यज्ञभागो राज्यं मे निर्जितश्च बृहस्पते।
राज्यलाभाय मे यत्नं विधत्स्व धिषणाधिप॥ ४५

ततो बृहस्पतिः शक्रमकरोद् बलदर्पितम्।
ग्रहशान्तिविधानेन पौष्टिकेन च कर्मणा॥ ४६

गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः।
जिनधर्मं समास्थाय वेदबाह्यं स वेदवित्॥ ४७

वेदत्रयीपरिभ्रष्टांश्चकार धिषणाधिपः।
वेदबाह्यान् परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान्॥ ४८

जघान शक्रो वज्रेण सर्वान् धर्मबहिष्कृतान्।
नहुषस्य प्रवक्ष्यामि पुत्रान् सप्तैव धार्मिकान्॥ ४९

यतिर्ययातिः संयातिरुद्भवः पचिरेव च।
शर्यातिर्मेघजातिश्च सप्तैते वंशवर्धनाः॥ ५०

तत्पश्चात् तपस्या, बल और गुणोंसे सम्पन्न रजिपुत्रोंने इन्द्रके वैभव, यज्ञभाग और राज्यको बलपूर्वक छीन लिया। इस प्रकार रजि-पुत्रोंद्वारा सताये गये एवं राज्यसे भ्रष्ट हुए दीन-दुःखी इन्द्र बृहस्पतिके पास जाकर बोले—'गुरुदेव! मैं रजिके पुत्रोंद्वारा सताया जा रहा हूँ, मुझे अब यज्ञमें भाग नहीं मिलता तथा मेरा राज्य जीत लिया गया, अतः धिषणाधिप! (बृहस्पते) पुनः मेरी राज्य-प्राप्तिके लिये किसी उपायका विधान कीजिये।' तब बृहस्पतिने ग्रह-शान्तिके विधानसे तथा पौष्टिक कर्मद्वारा इन्द्रको बलसम्पन्न बना दिया और रजि-पुत्रोंके पास जाकर उन्हें मोहमें डाल दिया। उन वेदज्ञ बृहस्पतिने वेदोंद्वारा बहिष्कृत जिनधर्मका आश्रय लेकर उन्हें वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद)-से परिभ्रष्ट कर दिया। तदुपरान्त इन्द्रने उन्हें हेतुवाद (तर्कवाद-नास्तिक्य)-से समन्वित और वेदबाह्य जानकर अपने वज्रसे उन सभी धर्मबहिष्कृत रजि-पुत्रोंका संहार कर डाला। अब मैं नहुषके सात धार्मिक पुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। उनके नाम हैं—यति, ययाति, संयाति, उद्भव, पाचि, शर्याति और मेघजाति। ये सातों वंश-विस्तारक थे॥ ४३—५०॥

यतिः कुमारभावेऽपि योगी वैखानसोऽभवत्।
ययातिश्चाकरोद् राज्यं धर्मैकशरणः सदा॥ ५१
शर्मिष्ठा तस्य भार्याभूद् दुहिता वृषपर्वणः।
भार्गवस्यात्मजा तद्वद्देवयानी च सुव्रता॥ ५२
ययातेः पञ्च दायादास्तान् प्रवक्ष्यामि नामतः।
देवयानी यदुं पुत्रं तुर्वसुं चाप्यजीजनत्॥ ५३
तथा द्रुह्युमनुं पूरुं शर्मिष्ठाजनयत् सुतान्।
यदुः पूरुश्चाभवतां तेषां वंशविवर्धनौ॥ ५४
ययातिर्नाहुषश्चासीद् राजा सत्यपराक्रमः।
पालयामास स महीमीजे च विधिवन्मखैः॥ ५५
अतिभक्त्या पितॄनर्च्य देवांश्च प्रयतः सदा।
अथाजयत् प्रजाः सर्वा ययातिरपराजितः॥ ५६
स शाश्वतीः समा राजा प्रजा धर्मेण पालयन्।
जरामार्च्छन्महाघोरां नाहुषो रूपनाशिनीम्॥ ५७
जराभिभूतः पुत्रान् स राजा वचनमब्रवीत्।
यदुं पूरुं तुर्वसुं च द्रुह्युं चानुं च पार्थिवः॥ ५८
यौवनेन चलान् कामान् युवा युवतिभिः सह।
विहर्तुमहमिच्छामि साह्यं कुरुतात्मजाः॥ ५९
तं पुत्रो देवयानेयः पूर्वजो यदुरब्रवीत्।
साहाय्यं भवतः कार्यमस्माभिर्यौवनेन किम्॥ ६०
ययातिरब्रवीत् पुत्रा जरा मे प्रतिगृह्यताम्।
यौवनेनाथ भवतां चरेयं विषयानहम्॥ ६१
यजतो दीर्घसत्रैर्मे शापाच्चोशनसो मुनेः।
कामार्थः परिहीनो मेऽतृप्तोऽहं तेन पुत्रकाः॥ ६२
स्वकीयेन शरीरेण जरामेनां प्रशास्तु वः।
अहं तन्वाभिनवया युवा कामानवाप्नुयाम्॥ ६३
न तेऽस्य प्रत्यगृह्णन्त यदुप्रभृतयो जराम्।
चतुरस्तान् स राजर्षिरशपच्चेति नः श्रुतम्॥ ६४
तमब्रवीत् ततः पूरुः कनीयान् सत्यविक्रमः।
जरां मां देहि नवया तन्वा मे यौवनात् सुखी॥ ६५

(इनमें सबसे) ज्येष्ठ यति जब अपनी कुमारावस्थामें ही वैखानसका रूप धारण करके योगी हो गये, तब दूसरे पुत्र ययाति सदा एकमात्र धर्मका ही आश्रय लेकर राज्यभार सँभालने लगे। उस समय दानवराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा तथा शुक्राचार्यकी कन्या व्रतपरायणा देवयानी— ये दोनों ययातिकी पत्नियाँ हुईं। इनके गर्भसे राजा ययातिके पाँच पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिनका मैं नाम-निर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ। देवयानीने यदु और तुर्वसु नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया तथा शर्मिष्ठाने द्रुह्यु, अनु और पूरु नामक तीन पुत्रोंको पैदा किया। इनमें यदु और पूरु—ये दोनों वंशका विस्तार करनेवाले हुए। नहुषनन्दन राजा ययाति सत्यपराक्रमी एवं अजेय थे। उन्होंने (धर्मपूर्वक) पृथ्वीका पालन किया और विधिपूर्वक अनेकों यज्ञोंका अनुष्ठान किया तथा जितेन्द्रिय होकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक देवों और पितरोंको अर्चना करके सारी प्रजाओंपर अधिकार जमा लिया। इस प्रकार नहुष-पुत्र राजा ययाति अनेकों वर्षोंतक धर्मपूर्वक प्रजाका पालन करते रहे। इसी बीच वे रूपको विकृत कर देनेवाली महान् भयंकर वृद्धावस्थासे ग्रस्त हो गये। बुढ़ापाके वशीभूत हुए राजा ययातिने अपने यदु, पूरु, तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु नामक पुत्रोंसे ऐसी बात कही—'पुत्रो! यद्यपि युवावस्थाके साथ-साथ मेरी कामनाएँ भी चली गयीं, तथापि मैं पुनः युवा होकर युवतियोंके साथ विहार करना चाहता हूँ, इस विषयमें तुमलोग मेरी सहायता करो॥ ५१—५९॥

यह सुनकर देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र यदुने राजासे कहा— 'पिताजी! हमलोगोंको अपनी युवावस्थाद्वारा आपकी कौन-सी सहायता करनी है।' तब ययातिने अपने पुत्रोंसे कहा— 'तुमलोग मेरा बुढ़ापा ले लेना, तत्पश्चात् मैं तुमलोगोंकी जवानीसे विषयोंका उपभोग करूँगा। पुत्रो! दीर्घकालव्यापी अनेकों यज्ञोंके अनुष्ठान तथा महर्षि शुक्राचार्यके शापसे मेरे काम और अर्थ नष्ट हो गये हैं, इसी कारण मैं उनसे तृप्त नहीं हो सका हूँ। इसलिये तुमलोगोंमेंसे कोई अपने शरीरद्वारा इस बुढ़ापेको स्वीकार करे और मैं उसके अभिनव शरीरकी प्राप्तिसे युवा होकर विषयोंका उपभोग करूँ।' परंतु जब यदु आदि चार पुत्रोंने पिताकी वृद्धावस्थाको ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया, तब राजर्षि ययातिने उन्हें शाप दे दिया—ऐसा हमलोगोंने सुन रखा है। तत्पश्चात् सबसे कनिष्ठ पुत्र सत्यपराक्रमी पूरुने राजासे कहा—'पिताजी! आप अपना बुढ़ापा मुझे दे दीजिये और मेरे नूतन शरीरकी प्राप्तिसे युवा होकर सुखोंका उपभोग कीजिये।

अहं जरां तवादाय राज्ये स्थास्यामि चाज्ञया।
एवमुक्तः स राजर्षिस्तपोवीर्यसमाश्रयात्॥ ६६
संस्थापयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि।
पौरवेणाथ वयसा राजा यौवनमास्थितः॥ ६७
ययातेश्चाथ वयसा राज्यं पूरुरकारयत्।
ततो वर्षसहस्रान्ते ययातिरपराजितः॥ ६८
अतृप्त इव कामानां पूरुं पुत्रमुवाच ह।
त्वया दायादवानस्मि त्वं मे वंशकरः सुतः॥ ६९
पौरवो वंश इत्येष ख्यातिं लोके गमिष्यति।
ततः स नृपशार्दूलः पूरुं राज्येऽभिषिच्य च॥ ७०
कालेन महता पश्चात् कालधर्ममुपेयिवान्।
पूरुवंशं प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः।
यत्र ते भारता जाता भरतान्वयवर्धनाः॥ ७१

मैं आपकी वृद्धावस्था स्वीकार करके आपके आज्ञानुसार राजकार्य सँभालूँगा।' पूरुके यों कहनेपर राजर्षि ययातिने अपने तपोबलका आश्रय लेकर उस महात्मा पुत्र पूरुके शरीरमें अपने बुढ़ापेको स्थापित किया और वे स्वयं पूरुकी युवावस्थाको लेकर तरुण हो गये। तदनन्तर ययातिकी वृद्धावस्थासे युक्त हुए पुरु राजकाजका संचालन करने लगे। इस प्रकार एक सहस्र वर्ष व्यतीत होनेपर भी अजेय ययाति कामोपभोगसे अतृप्त-से ही बने रहे। तब उन्होंने अपने पुत्र पूरुसे कहा—'बेटा! अकेले तुम्हींसेमैं पुत्रवान् हूँ और तुम्हीं मेरे वंशविस्तारक पुत्र हो। आजसे यह वंश पूरुवंशके नामसे लोकमें विख्यात होगा।' तदनन्तर राजसिंह ययाति पूरुको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वयं उससे उपराम हो गये और बहुत समय बीतनेके पश्चात् कालधर्म—मृत्युको प्राप्त हो गये। श्रेष्ठ ऋषियो! अब मैं जिस वंशमें भरत-वंशकी वृद्धि करनेवाले भारत नामसे प्रसिद्ध नरेश हो चुके हैं, उस पूरुवंशका वर्णन करने जा रहा हूँ, आपलोग समाहितचित्त होकर श्रवण कीजिये॥ ६०—७१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चतुर्विंशोऽध्यायः॥ २४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक चौबीसवाँ अध्याय पूरा हुआ॥ २४॥

पचीसवाँ अध्याय

कचका शिष्यभावसे शुक्राचार्य और देवयानीकी सेवामें संलग्न होना और अनेक कष्ट सहनेके पश्चात् मृतसंजीविनी विद्या प्राप्त करना

ऋषय ऊचुः

किमर्थं पौरवो वंशः श्रेष्ठत्वं प्राप भूतले।
ज्येष्ठस्यापि यदोर्वंशः किमर्थं हीयते श्रिया॥ १
अन्यद् ययातिचरितं सूत विस्तरतो वद।
यस्मात् तत्पुण्यमायुष्यमभिनन्द्यं सुरैरपि॥ २

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः शतानीकेन शौनकः।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं ययातिचरितं महत्॥ ३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! (अनुज होकर भी) पूरुका वंश भूतलपर श्रेष्ठताको क्यों प्राप्त हुआ और ज्येष्ठ होते हुए भी यदुका वंश (राज्य-)लक्ष्मीसे हीन क्यों हो गया? इसका तथा ययातिके चरितका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये; क्योंकि यह पुण्यप्रद, आयुवर्धक और देवताओंद्वारा भी अभिनन्दनीय है॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें शतानीकने (भी) महर्षि शौनकसे ययातिके इसी पुण्यप्रद, परम पवित्र, आयुवर्धक एवं महत्त्वशाली चरितके विषयमें (इस प्रकार) प्रश्न किया था॥ ३॥

शतानीक उवाच

ययातिः पूर्वजोऽस्माकं दशमो यः प्रजापतेः।
कथं स शुक्रतनयां लेभे परमदुर्लभाम्॥ ४
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं विस्तरेण तपोधन।
आनुपूर्व्याच्च मे शंस पूरोर्वंशधरान् नृपान्॥ ५

शतानीकने पूछा—तपोधन! हमारे पूर्वज महाराज ययातिने, जो प्रजापतिसे दसवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुए थे, शुक्राचार्यकी अत्यन्त दुर्लभ पुत्री देवयानीको पत्नीरूपमें कैसे प्राप्त किया? मैं इस वृत्तान्तको विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। आप मुझसे पूरुके सभी वंश-प्रवर्तक राजाओंका क्रमशः पृथक्-पृथक् वर्णन कीजिये॥ ४-५॥

शौनक उवाच

ययातिरासीद् राजर्षिर्देवराजसमद्युतिः।
तं शुक्रवृषपर्वाणौ वव्राते वै यथा पुरा॥ ६
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छतो राजसत्तम।
देवयान्याश्च संयोगं ययातेर्नाहुषस्य च॥ ७
सुराणामसुराणां च समजायत वै मिथः।
ऐश्वर्यं प्रति सङ्घर्षस्त्रैलोक्ये सचराचरे॥ ८
जिगीषया ततो देवा वव्रुराङ्गिरसं मुनिम्।
पौरोहित्ये च यज्ञार्थे काव्यं तूशनसं परे॥ ९
ब्राह्मणौ तावुभौ नित्यमन्योन्यं स्पर्धिनौ भृशम्।
तत्र देवा निजघ्नुर्यान् दानवान् युधि संगतान्॥ १०
तान् पुनर्जीवयामास काव्यो विद्याबलाश्रयात्।
ततस्ते पुनरुत्थाय योधयाञ्चक्रिरे सुरान्॥ ११
असुरास्तु निजघ्नुर्यान् सुरान् समरमूर्धनि।
न तान् स जीवयामास बृहस्पतिरुदारधीः॥ १२
न हि वेद स तां विद्यां यां काव्यो वेद वीर्यवान्।
सञ्जीवनीं ततो देवा विषादमगमन् परम्॥ १३

शौनकजीने कहा—राजसत्तम! राजर्षि ययाति देवराज इन्द्रके समान तेजस्वी थे। पूर्वकालमें शुक्राचार्य और वृषपर्वाने ययातिका अपनी-अपनी कन्याके पतिरूपमें जिस प्रकार वरण किया था, वह सब प्रसङ्ग तुम्हारे पूछनेपर मैं तुमसे कहूँगा। साथ ही यह भी बताऊँगा कि नहुषनन्दन ययाति तथा देवयानीका संयोग किस प्रकार हुआ। एक समय चराचर प्राणियोंसहित समस्त त्रिलोकीके ऐश्वर्यके लिये देवताओं और असुरोंमें परस्पर बड़ा भारी संघर्ष हुआ, उसमें विजय पानेकी इच्छासे देवताओंने यज्ञ-कार्यके लिये अङ्गिरा मुनिके पुत्र बृहस्पतिका पुरोहितके पदपर वरण किया और दैत्योंने शुक्राचार्यको पुरोहित बनाया। वे दोनों ब्राह्मण सदा आपसमें बहुत लाग-डाँट रखते थे। देवता उस युद्धमें आये हुए जिन दानवोंको मारते थे, उन्हें शुक्राचार्य अपनी संजीविनी विद्याके बलसे पुनः जीवित कर देते थे। वे पुनः उठकर देवताओंसे युद्ध करने लगते; परंतु असुरगण युद्धके मुहानेपर जिन देवताओंको मारते, उन्हें उदारबुद्धि बृहस्पति जीवित नहीं कर पाते; क्योंकि शक्तिशाली शुक्राचार्य जिस संजीविनी विद्याको जानते थे, उसका ज्ञान बृहस्पतिको न था। इससे देवताओंको बड़ा विषाद हुआ॥ ६—१३॥

अथ देवा भयोद्विग्नाः काव्यादुशनसस्तदा।
ऊचुः कचमुपागम्य ज्येष्ठं पुत्रं बृहस्पतेः॥ १४
भजमानान् भजस्वास्मान् कुरु साहाय्यमुत्तमम्।
यासौ विद्या निवसति ब्राह्मणेऽमिततेजसि॥ १५
शुक्रे तामाहर क्षिप्रं भागमग्रौ भविष्यसि।
वृषपर्वणः समीपेऽसौ शक्यो द्रष्टुं त्वया द्विजः॥ १६
रक्षते दानवांस्तत्र न स रक्षत्यदानवान्।
तमाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चिदृते त्वया॥ १७
देवयानी च दयिता सुता तस्य महात्मनः।
तामाराधयितुं शक्तो नान्यः कश्चन विद्यते॥ १८

देवता शुक्राचार्यके भयसे उद्विग्न हो गये। तब वे बृहस्पतिके ज्येष्ठ पुत्र कचके पास जाकर बोले—'ब्रह्मन्! हम तुम्हारी शरणमें हैं। तुम हमें अपनाओ और हमारी उत्तम सहायता करो। अमित तेजस्वी ब्राह्मण शुक्राचार्यके पास जो मृतसंजीविनी विद्या है, उसे तुम शीघ्र सीख लो, इससे तुम हम देवताओंके साथ यज्ञमें भाग प्राप्त कर सकोगे। राजा वृषपर्वाके समीप तुम्हें विप्रवर शुक्राचार्यका दर्शन हो सकता है। वहाँ रहकर वे दानवोंकी रक्षा करते हैं; किंतु जो दानव नहीं हैं, उनकी रक्षा नहीं करते। उनकी आराधना करनेके लिये तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोई समर्थ नहीं है। उन महात्माकी प्यारी पुत्रीका नाम देवयानी है, उसे अपनी सेवाओंद्वारा तुम्हीं प्रसन्न कर सकते हो। दूसरा कोई इसमें समर्थ नहीं है।

शीलदाक्षिण्यमाधुर्यैराचारेण दमेन च।
देवयान्यां तु तुष्टायां विद्यां तां प्राप्स्यसि ध्रुवम्॥ १९
तदा हि प्रेषितो देवैः समीपे वृषपर्वणः।
तथेत्युक्त्वा तु स प्रायाद् बृहस्पतिसुतः कचः॥ २०
स गत्वा त्वरितो राजन् देवैः सम्पूजितः कचः।
असुरेन्द्रपुरे शुक्रं प्रणम्येदमुवाच ह॥ २१
ऋषेरङ्गिरसः पौत्रं पुत्रं साक्षाद् बृहस्पतेः।
नाम्ना कचेति विख्यातं शिष्यं गृह्णातु मां भवान्॥ २२
ब्रह्मचर्यं चरिष्यामि त्वय्यहं परमं गुरो।
अनुमन्यस्व मां ब्रह्मन् सहस्रपरिवत्सरान्॥ २३

अपने शील-स्वभाव, उदारता, मधुर व्यवहार, सदाचार तथा इन्द्रियसंयमद्वारा देवयानीको संतुष्ट कर लेनेपर तुम निश्चय ही उस विद्याको प्राप्त कर लोगे।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर बृहस्पति-पुत्र कच देवताओंसे सम्मानित हो वहाँसे वृषपर्वाके समीप गया। राजन्! देवताओंद्वारा भेजा गया कच तुरंत दानवराज वृषपर्वाके नगरमें जाकर शुक्राचार्यसे मिला और उन्हें प्रणाम करके इस प्रकार बोला—'भगवन्! मैं अङ्गिरा ऋषिका पौत्र तथा साक्षात् बृहस्पतिका पुत्र हूँ। मेरा नाम कच है। आप मुझे अपने शिष्यके रूपमें ग्रहण करें। ब्रह्मन्! आप मेरे गुरु हैं। मैं आपके समीप रहकर एक हजार वर्षोंतक उत्तम ब्रह्मचर्यका पालन करूँगा। इसके लिये आप मुझे अनुमति दें'॥ १४—२३॥

शुक्र उवाच

कच सुस्वागतं तेऽस्तु प्रतिगृह्णामि ते वचः।
अर्चयिष्येऽहमर्च्यं त्वामर्चितोऽस्तु बृहस्पतिः॥ २४

शुक्राचार्यने कहा—कच! तुम्हारा भलीभाँति स्वागत है, मैं तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करता हूँ। तुम मेरे लिये आदरके पात्र हो, अतः मैं तुम्हारा सम्मान एवं सत्कार करूँगा। तुम्हारे आदर-सत्कारसे मेरे द्वारा बृहस्पतिका (ही) आदर-सत्कार होगा॥ २४॥

शौनक उवाच

कचस्तु तं तथेत्युक्त्वा प्रतिजग्राह तद् व्रतम्।
आदिष्टं कविपुत्रेण शुक्रेणोशनसा स्वयम्॥ २५
व्रतं च व्रतकालं च यथोक्तं प्रत्यगृह्णत।
आराधयन्नुपाध्यायं देवयानीं च भारत॥ २६
नित्यमाराधयिष्यंस्तां युवा यौवनगोचराम्।
गायन् नृत्यन् वादयंश्च देवयानीमतोषयत्॥ २७
संशीलयन् देवयानीं कन्यां सम्प्राप्तयौवनाम्।
पुष्पैः फलैः प्रेषणैश्च तोषयामास भार्गवीम्॥ २८
देवयान्यपि तं विप्रं नियमव्रतचारिणम्।
अनुगायन्ती ललना रहः पर्यचरत् तदा॥ २९
पञ्चवर्षशतान्येवं कचस्य चरतो भृशम्।
ततस्तीव्रं व्रतं बुद्ध्वा दानवास्तं ततः कचम्॥ ३०
गा रक्षन्तं वने दृष्ट्वा रहस्येनममर्षिताः।
जघ्नुर्बृहस्पतेर्द्वेषाद्विद्यारक्षार्थमेव च॥ ३१
हत्वा सालावृकेभ्यश्च प्रायच्छंस्तिलशः कृतम्।
ततो गावो निवृत्तास्ता अगोपाः स्वनिवेशनम्॥ ३२

शौनकजी कहते हैं—तब कचने 'बहुत अच्छा' कहकर महाकान्तिमान् कविपुत्र शुक्राचार्यके आदेशके अनुसार स्वयं ब्रह्मचर्य-व्रत ग्रहण किया। राजन्! नियत समयतकके लिये व्रतकी दीक्षा लेनेवाले कचको शुक्राचार्यने भलीभाँति अपना लिया। कच आचार्य शुक्र तथा उनकी पुत्री देवयानी—दोनोंकी नित्य आराधना करने लगा। वह नवयुवक था और जवानीमें प्रिय लगनेवाले कार्य—गायन और नृत्य करके भाँति-भाँतिके बाजे बजाकर देवयानीको संतुष्ट रखता था। आचार्यकन्या देवयानी भी युवावस्थामें पदार्पण कर चुकी थी। कच उसके लिये फूल और फल ले आता तथा उसकी आज्ञाके अनुसार कार्य करता। (इस प्रकार उसकी सेवामें संलग्न रहकर वह सदा उसे प्रसन्न रखता था।) देवयानी भी नियमपूर्वक ब्रह्मचर्य धारण करनेवाले कचके ही समीप रहकर गाती और आमोद-प्रमोद करती हुई एकान्तमें उसकी सेवा करती थी। इस प्रकार वहाँ रहकर ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करते हुए कचके पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये। तब दानवोंको यह बात मालूम हुई। तदनन्तर कचको वनके एकान्त प्रदेशमें अकेले गौएँ चराते देख बृहस्पतिके द्वेषसे और संजीवनी विद्याकी रक्षाके लिये क्रोधमें भरे हुए दानवोंने कचको मार डाला। उन्होंने मारनेके बाद उसके शरीरको टुकड़े-टुकड़े कर कुत्तों और सियारोंको बाँट दिया। उस दिन गौएँ बिना रक्षकके ही अपने स्थानपर लौटीं। जब

ता दृष्ट्वा रहिता गास्तु कचो नाभ्यागतो वनात्।
उवाच वचनं काले देवयान्यथ भार्गवम्॥ ३३
हुतं चैवाग्निहोत्रं ते सूर्यश्चास्तं गतः प्रभो।
अगोपाश्चागता गावः कचस्तात न दृश्यते॥ ३४
व्यक्तं हतो धृतो वापि कचस्तात भविष्यति।
तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीम्यहम्॥ ३५

शुक्र उवाच

अथेह्येहीति शब्देन मृतं संजीवयाम्यहम्।
ततः संजीवनीं विद्यां प्रयुक्त्वा कचमाह्वयत्॥ ३६
आहूतः प्राद्रवद् दूरात् कचः शुक्रं ननाम सः।
हतोऽहमिति चाचख्यौ राक्षसैर्धिषणात्मजः॥ ३७
स पुनर्देवयान्योक्तः पुष्पाहारे यदृच्छया।
वनं ययौ कचो विप्रः पठन् ब्रह्म च शाश्वतम्॥ ३८
वने पुष्पाणि चिन्वन्तं ददृशुर्दानवाश्च तम्।
ततो द्वितीये तं हत्वा दग्धं कृत्वा च चूर्णवत्।
प्रायच्छन् ब्राह्मणायैव सुरायामसुरास्तदा॥ ३९
देवयान्यथ भूयोऽपि पितरं वाक्यमब्रवीत्।
पुष्पाहारप्रेषणकृत्कचस्तात न दृश्यते॥ ४०
व्यक्तं हतो मृतो वापि कचस्तात भविष्यति।
तं विना नैव जीवामि वचः सत्यं ब्रवीमि ते॥ ४१

शुक्र उवाच

बृहस्पतेः सुतः पुत्रि कचः प्रेतगतिं गतः।
विद्यया जीवितोऽप्येवं हन्यते करवाणि किम्॥ ४२
मैवं शुचो मा रुद देवयानि
न त्वादृशी मर्त्यमनु प्रशोचेत्।
यस्यास्तव ब्रह्म च ब्राह्मणाश्च
सेन्द्रा देवा वसवोऽश्विनौ च॥ ४३
सुरद्विषश्चैव जगच्च सर्व-
मुपस्थितं मत्तपसः प्रभावात्।
अशक्योऽयं जीवयितुं द्विजातिः
स जीवितो वध्यते चैव भूयः॥ ४४

देवयानीने देखा, गौएँ तो वनसे लौट आयीं, पर उनके साथ कच नहीं है, तब उसने उस समय अपने पितासे इस प्रकार कहा—'प्रभो! आपने अग्निहोत्र कर लिया और सूर्यदेव भी अस्ताचलको चले गये। गौएँ भी आज बिना रक्षकके ही लौट आयी हैं। तात! तो भी कच नहीं दिखायी देता। पिताजी! अवश्य ही कच या तो मारा गया है या पकड़ लिया गया है। मैं आपसे सच कहती हूँ, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकूँगी'॥ २५—३५॥

शुक्राचार्यने कहा—(बेटी! चिन्ता न करो।) मैं मरे हुए कचको अभी 'आओ, आओ'—इस प्रकार बुलाकर जीवित किये देता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने संजीविनी विद्याका प्रयोग किया और कचको पुकारा। फिर तो गुरुके पुकारनेपर सरस्वतीनन्दन कच दूरसे ही दौड़ पड़ा और शुक्राचार्यके निकट आकर उन्हें प्रणाम कर बोला—'गुरो! राक्षसोंने मुझे मार डाला था।' पुनः देवयानीने स्वेच्छानुसार वनसे पुष्प लानेके लिये कचको आज्ञा दी, तब ब्राह्मण कच सनातन ब्रह्म (वेद)-का पाठ करते हुए वनमें गया। दानवोंने वनमें उसे पुष्पोंका चयन करते हुए देख लिया। तत्पश्चात् असुरोंने दूसरी बार मारकर आगमें जलाया और उसकी जली हुई लाशका चूर्ण बनाकर मदिरामें मिला दिया तथा उसे शुक्राचार्यको ही पिला दिया। अब देवयानी पुनः अपने पितासे यह बात बोली—'पिताजी! आज मैंने उसे फूल लानेके लिये भेजा था, परंतु अभीतक वह दिखायी नहीं दिया। तात! जान पड़ता है कि वह मार दिया गया या मर गया। मैं आपसे सच कहती हूँ, मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती'॥ ३६—४१॥

शुक्राचार्यने कहा—बेटी! बृहस्पतिका पुत्र कच मर गया। मैंने विद्यासे उसे कई बार जिलाया तो भी वह इस प्रकार मार दिया जाता है, अब मैं क्या करूँ। देवयानि! तुम इस प्रकार शोक न करो, रोओ मत। तुम-जैसी शक्तिशालिनी स्त्री किसी मरनेवालेके लिये शोक नहीं करती। तुम्हें तो वेद, ब्राह्मण, इन्द्रसहित सब देवता, वसुगण, अश्विनीकुमार, दैत्य तथा सम्पूर्ण जगत्‌के प्राणी मेरे प्रभावसे तीनों संध्याओंके समय मस्तक झुकाकर प्रणाम करते हैं। अब उस ब्राह्मणको जिलाना असम्भव है। यदि जीवित हो जाय तो फिर दैत्योंद्वारा मार डाला जायगा (अतः उसे जिलानेसे कोई लाभ नहीं है।)॥४२—४४॥

देवयान्युवाच

यस्याङ्गिरा वृद्धतमः पितामहो
बृहस्पतिश्चापि पिता तपोनिधिः।
ऋषेः सुपुत्रं तमथापि पौत्रं
कथं न शोचे यमहं न रुद्याम्॥ ४५
स ब्रह्मचारी च तपोधनश्च
सदोत्थितः कर्मसु चैव दक्षः।
कचस्य मार्गं प्रतिपत्स्ये न भोक्ष्ये
प्रियो हि मे तात कचोऽभिरूपः॥ ४६

देवयानी बोली—पिताजी! अत्यन्त वृद्ध महर्षि अङ्गिरा जिसके पितामह हैं, तपस्याके भण्डार बृहस्पति जिसके पिता हैं, जो ऋषिका पुत्र और ऋषिका ही पौत्र है, उस ब्रह्मचारी कचके लिये मैं कैसे शोक न करूँ और कैसे न रोऊँ? तात! वह ब्रह्मचर्यपालनमें रत था, तपस्या ही उसका धन था। वह सदा ही सजग रहनेवाला और कार्य करनेमें कुशल था। इसलिये कच मुझे बहुत प्रिय था। वह सदा मेरे मनके अनुरूप चलता था। अब मैं भोजनका त्याग कर दूँगी और कच जिस मार्गपर गया है, वहीं मैं भी चली जाऊँगी॥ ४५-४६॥

शौनक उवाच

स त्वेवमुक्तो देवयान्या महर्षिः
संरम्भेण व्याजहाराथ काव्यः।
असंशयं मामसुरा द्विषन्ति
ये मे शिष्यानागतान् सूदयन्ति॥ ४७
अब्राह्मणं कर्तुमिच्छन्ति रौद्रा
एभिर्व्यर्थं प्रस्तुतो दानवैर्हि।
तत्कर्मणाप्यस्य भवेदिहान्तः
कं ब्रह्महत्या न दहेदपीन्द्रम्॥ ४८
स तेनापृष्टो विद्यया चोपहूतो
शनैर्वाचं जठरे व्याजहार।
तमब्रवीत् केन चेहोपनीतो
ममोदरे तिष्ठसि ब्रूहि वत्स॥ ४९

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! देवयानीके कहनेसे उसके दुःखसे दुःखी महर्षि शुक्राचार्यने कचको पुकारा और दैत्योंके प्रति कुपित होकर बोले—'इसमें तनिक भी संशय नहीं है कि असुरलोग मुझसे द्वेष करते हैं। तभी तो यहाँ आये हुए मेरे शिष्योंको ये लोग मार डालते हैं। ये भयंकर स्वभाववाले दैत्य मुझे ब्राह्मणत्वसे गिराना चाहते हैं। इसीलिये प्रतिदिन मेरे विरुद्ध आचरण कर रहे हैं। इस पापका परिणाम यहाँ अवश्य प्रकट होगा। ब्रह्महत्या किसे नहीं जला देगी, चाहे वह इन्द्र ही क्यों न हों?' जब गुरुने विद्याका प्रयोग करके बुलाया, तब उनके पेटमें बैठा हुआ कच भयभीत हो धीरेसे बोला। (उसकी आवाज सुनकर) शुक्राचार्यने पूछा—'वत्स! किस मार्गसे जाकर तुम मेरे उदरमें स्थित हो गये। ठीक-ठीक बताओ'॥ ४७—४९॥

कच उवाच

भवत्प्रसादान्न जहाति मां स्मृतिः
सर्वं स्मरेयं यच्च यथा च वृत्तम्।
न त्वेवं स्यात् तपसः क्षयो मे
ततः क्लेशं घोरतरं स्मरामि॥ ५०
असुरैः सुरायां भवतोऽस्मि दत्तो
हत्वा दग्ध्वा चूर्णयित्वा च काव्य।
ब्राह्मीं मायां त्वासुरीं त्वत्र माया
त्वयि स्थिते कथमेवाभिबाधते॥ ५१

कचने कहा—गुरुदेव! आपके प्रसादसे मेरी स्मरणशक्तिने साथ नहीं छोड़ा है। जो बात जैसे हुई, वह सब मुझे स्मरण है। इस प्रकार पेट फाड़कर निकल जानेसे मेरी तपस्याका नाश होगा। वह न हो, इसलिये मैं यहाँ घोर क्लेश सहन करता हूँ। आचार्यपाद! असुरोंने मुझे मारकर मेरे शरीरको जलाया और चूर्ण बना दिया। फिर उसे मदिरामें मिलाकर आपको पिला दिया। विप्रवर! आप ब्राह्मी, आसुरी और दैवी—तीनों प्रकारकी मायाओंको जानते हैं। आपके होते हुए कोई इन मायाओंका उल्लङ्घन कैसे कर सकता है?॥ ५०-५१॥

शुक्र उवाच

किं ते प्रियं करवाण्यद्य वत्से
विनैव मे जीवितं स्यात् कचस्य।
नान्यत्र कुक्षेर्मम भेदनाच्च
दृश्येत् कचो मद्गतो देवयानि॥ ५२

शुक्राचार्य बोले—बेटी देवयानि! अब तुम्हारे लिये कौन-सा प्रिय कार्य करूँ! मेरे वधसे ही कचका जीवित होना सम्भव है। मेरे उदरको विदीर्ण करनेके अतिरिक्त और कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे मेरे शरीरमें बैठा हुआ कच बाहर दिखायी दे॥ ५२॥

देवयान्युवाच

द्वौ मां शोकावग्निकल्पौ दहेतां
कचस्य नाशस्तव चैवोपघातः।
कचस्य नाशे मम नास्ति शर्म
तवोपघाते जीवितुं नास्मि शक्ता॥ ५३

देवयानीने कहा—पिताजी! कचका नाश और आपका वध—ये दोनों ही शोक अग्निके समान मुझे जला देंगे। कचके नष्ट होनेपर मुझे शान्ति नहीं मिलेगी और आपके मरनेपर मैं जीवित न रह सकूँगी॥ ५३॥

शुक्र उवाच

संसिद्धरूपोऽसि बृहस्पतेः सुत
यत् त्वां भक्तं भजते देवयानी।
विद्यामिमां प्राप्नुहि जीवनीं त्वं
न चेदिन्द्रः कचरूपी त्वमद्य॥ ५४
न निवर्तेत पुनर्जीवन् कश्चिदन्यो ममोदरात्।
ब्राह्मणं वर्जयित्वैकं तस्माद् विद्यामवाप्नुहि॥ ५५
पुत्रो भूत्वा निष्क्रमस्वोदरान्मे
भित्त्वा कुक्षिं जीवय मां च तात।
अवेक्षेथा धर्मवतीमवेक्षां
गुरोः सकाशात् प्राप्तविद्यां सविद्यः॥ ५६

शुक्राचार्य बोले—बृहस्पतिके पुत्र कच! अब तुम सिद्ध हो गये; क्योंकि तुम देवयानीके भक्त हो और वह तुम्हें चाहती है। यदि कचके रूपमें तुम इन्द्र नहीं हो तो मुझसे मृतसंजीविनी विद्या ग्रहण करो। केवल एक ब्राह्मणको छोड़कर दूसरा कोई ऐसा नहीं है, जो मेरे पेटसे पुनः जीवित निकल सके। इसलिये तुम विद्या ग्रहण करो। तात! मेरे इस शरीरसे जीवित निकलकर मेरे लिये पुत्रके तुल्य हो मुझे पुनः जिला देना। मुझ गुरुसे विद्या प्राप्त करके विद्वान् हो जानेपर भी मेरे प्रति धर्मयुक्त दृष्टिसे ही देखना॥ ५४—५६॥

शौनक उवाच

गुरोः सकाशात् समवाप्य विद्यां
भित्त्वा कुक्षिं निर्विचक्राम विप्रः।
प्रालेयाद्रेः शुक्लमुद्भिद्य शृङ्गं
रात्र्यागमे पौर्णमास्यामिवेन्दुः॥ ५७
दृष्ट्वा च तं पतितं वेदराशि-
मुत्थापयामास ततः कचोऽपि।
विद्यां सिद्धां तामवाप्याभिवाद्य
ततः कचस्तं गुरुमित्युवाच॥ ५८
निधिं निधीनां वरदं वराणां
ये नाद्रियन्ते गुरुमर्चनीयम्।
प्रालेयाद्रिप्रोज्ज्वलद्बालसंस्थं
पापाँल्लोकांस्ते व्रजन्त्यप्रतिष्ठाः॥ ५९

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! गुरुसे संजीविनी विद्या प्राप्त करके विप्रवर कच तत्काल ही महर्षि शुक्राचार्यका पेट फाड़कर ठीक उसी तरह निकल आया, जैसे दिन बीतनेपर पूर्णिमाकी संध्याके समय हिमालय पर्वतके श्वेत शिखरको भेदकर चन्द्रमा प्रकट हो जाते हैं। मूर्तिमान् वेदराशिके तुल्य शुक्राचार्यको भूमिपर पड़ा देख कचने भी अपने मरे हुए गुरुको (संजीविनी) विद्याको प्राप्त कर लेनेपर गुरुको प्रणाम कर वह इस प्रकार बोला—'जो लोग निधियोंके भी निधि, श्रेष्ठ लोगोंको भी वरदान देनेवाले, मस्तकपर हिमालय पर्वतके समान श्वेत केशधारी पूजनीय गुरुदेवका (उनसे विद्या प्राप्त करके भी) आदर नहीं करते, वे प्रतिष्ठारहित होकर पापपूर्ण लोकों—नरकोंमें जाते हैं'॥ ५७—५९॥

शौनक उवाच

सुरापानाद् वञ्चनात् प्रापयित्वा
संज्ञानाशं चेतसश्चापि घोरम्।
दृष्ट्वा कचं चापि तथाभिरूपं
पीतं तथा सुरया मोहितेन॥ ६०
समन्युरुत्थाय महानुभाव-
स्तदोशना विप्रहितं चिकीर्षुः।
काव्यः स्वयं वाक्यमिदं जगाद
सुरापानं प्रत्यसौ जातशङ्कः॥ ६१

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! विद्वान् शुक्राचार्य मदिरापानसे ठगे गये थे और उस अत्यन्त भयानक परिस्थितिको पहुँच गये थे, जिसमें तनिक भी चेत नहीं रह जाता। मदिरासे मोहित होनेके कारण ही वे उस समय अपने मनके अनुकूल चलनेवाले प्रिय शिष्य ब्राह्मणकुमार कचको भी पी गये थे। यह सब देख और सोचकर वे महानुभाव कविपुत्र शुक्र कुपित हो उठे। मदिरा-पानके प्रति उनके मनमें क्रोध और घृणाका भाव जाग उठा और उन्होंने ब्राह्मणोंका हित करनेकी इच्छासे स्वयं इस प्रकार घोषणा की॥ ६०-६१॥

शुक्र उवाच

योब्राह्मणोऽद्यप्रभृतीह कश्चि-
न्मोहात् सुरां पास्यति मन्दबुद्धिः।
अपेतधर्मा ब्रह्महा चैव स स्या-
दस्मिँल्लोके गर्हितः स्यात् परे च॥ ६२
मया चेमां विप्रधर्मोक्तसीमां
मर्यादां वै स्थापितां सर्वलोके।
सन्तो विप्राः शुश्रुवांसो गुरूणां
देवा दैत्याश्चोपशृण्वन्तु सर्वे॥ ६३

शुक्राचार्यने कहा— आजसे (इस जगत्‌का) जो कोई भी मन्दबुद्धि ब्राह्मण अज्ञानसे भी मदिरापान करेगा, वह धर्मसे भ्रष्ट हो ब्रह्महत्याके पापका भागी होगा तथा इहलोक और परलोक—दोनोंमें निन्दित होगा। धर्मशास्त्रोंमें ब्राह्मण-धर्मकी जो सीमा निर्धारित की गयी है, उसीमें मेरे द्वारा स्थापित की हुई यह मर्यादा भी रहे और सम्पूर्ण लोकमें मान्य हो। साधु पुरुष, ब्राह्मण, गुरुओंके समीप अध्ययन करनेवाले शिष्य, देवता और समस्त जगत्‌के मनुष्य मेरी बाँधी हुई इस मर्यादाको अच्छी तरह सुन लें॥ ६२-६३॥

शौनक उवाच

इतीदमुक्त्वा स महाप्रभाव-
स्ततो निधीनां निधिरप्रमेयः।
तान् दानवांश्चैव निगूढबुद्धी-
निदं समाहूय वचोऽभ्युवाच॥ ६४

शौनकजी कहते हैं— ऐसा कहकर तपस्याकी निधियोंकी निधि, अप्रमेय शक्तिशाली महानुभाव शुक्राचार्यने, दैवने जिनकी बुद्धिको मोहित कर दिया था, उन दानवोंको बुलाया और इस प्रकार कहा॥ ६४॥

शुक्र उवाच

आचक्षे वो दानवा बालिशाः स्थ
शिष्यः कचो वत्स्यति मत्समीपे।
संजीवनीं प्राप्य विद्यां मयायं
तुल्यप्रभावो ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः॥ ६५

शुक्राचार्यने कहा— 'दानवो! तुम सब (बड़े) मूर्ख हो। मैं तुम्हें बताये देता हूँ—(महात्मा) कच मुझसे संजीवनी विद्या पाकर सिद्ध हो गया है। इसका प्रभाव मेरे ही समान है। यह ब्राह्मण ब्रह्मस्वरूप है॥ ६५॥

शौनक उवाच

गुरोरुष्य सकाशे च दशवर्षशतानि सः।
अनुज्ञातः कचो गन्तुमियेष त्रिदशालयम्॥ ६६

शौनकजी कहते हैं— कचने (इस प्रकार) एक हजार वर्षोंतक गुरुके समीप रहकर अपना व्रत पूरा कर लिया। तब (गुरुसे) घर जानेकी अनुमति मिल जानेपर उसने देवलोकमें जानेका विचार किया॥ ६६॥

॥ इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित नामक पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५॥

छब्बीसवाँ अध्याय

देवयानीका कचसे पाणिग्रहणके लिये अनुरोध, कचकी अस्वीकृति तथा दोनोंका एक-दूसरेको शाप देना

शौनक उवाच

समापितव्रतं तं तु विसृष्टं गुरुणा तदा।
प्रस्थितं त्रिदशावास देवयानीदमब्रवीत्॥ १

शौनकजी कहते हैं— जब कचका व्रत समाप्त हो गया और गुरु (शुक्राचार्य)-ने उसे जानेकी आज्ञा दे दी, तब वह देवलोक जानेको उद्यत हुआ। उस समय देवयानीने उससे इस प्रकार कहा—॥ १॥

देवयान्युवाच

ऋषेरङ्गिरसः पौत्र वृत्तेनाभिजनेन च।
भ्राजसे विद्यया चैव तपसा च दमेन च॥ २
ऋषिर्यथाङ्गिरा मान्यः पितुर्मम महायशाः।
तथा मान्यश्च पूज्यश्च मम भूयो बृहस्पतिः॥ ३
एवं ज्ञात्वा विजानीहि यद् ब्रवीमि तपोधन।
व्रतस्थे नियमोपेते यथा वर्ताम्यहं त्वयि॥ ४
स समापितविद्यो मां भक्तां न त्यक्तुमर्हसि।
गृहाण पाणिं विधिवन्मम मन्त्रपुरस्कृतम्॥ ५

कच उवाच

पूज्यो मान्यश्च भगवान् यथा मम पिता तव।
तथा त्वमनवद्याङ्गि पूजनीयतमा मता॥ ६
आत्मप्राणैः प्रियतमा भार्गवस्य महात्मनः।
त्वं भद्रे धर्मतः पूज्या गुरुपुत्री सदा मम॥ ७
यथा मम गुरुर्नित्यं मान्यः शुक्रः पिता तव।
देवयानि तथैव त्वं नैवं मां वक्तुमर्हसि॥ ८

देवयान्युवाच

गुरुपुत्रस्य पुत्रो मे न तु त्वमसि मे पितुः।
तस्मान्मान्यश्च पूज्यश्च ममापि त्वं द्विजोत्तम॥ ९
असुरैर्हन्यमाने तु कच त्वयि पुनः पुनः।
तदाप्रभृति या प्रीतिस्तां त्वमेव स्मरस्व मे॥ १०
सौहार्दे चानुरागे च वेत्थ मे भक्तिमुत्तमाम्।
न मामर्हसि धर्मज्ञ त्यक्तुं भक्तामनागसाम्॥ ११

कच उवाच

अनियोज्ये नियोगे मां नियुनक्षि शुभव्रते।
प्रसीद सुभ्रु मह्यं त्वं गुरोर्गुरुतरा शुभे॥ १२
यत्रोषितं विशालाक्षि त्वया चन्द्रनिभानने।
तत्राहमुषितो भद्रे कुक्षौ काव्यस्य भामिनि॥ १३
भगिनी धर्मतो मे त्वं मैवं वोचः शुभानने।
सुखेनाध्युषितो भद्रे न मन्युर्विद्यते मम॥ १४

देवयानी बोली—महर्षि अङ्गिराके पौत्र! तुम सदाचार, उत्तम कुल, विद्या, तपस्या तथा इन्द्रियसंयम आदिसे बड़ी शोभा पा रहे हो। महायशस्वी महर्षि अङ्गिरा जिस प्रकार मेरे पिताजीके लिये माननीय हैं, उसी प्रकार तुम्हारे पिता बृहस्पतिजी मेरे लिये आदरणीय तथा पूज्य हैं। तपोधन! ऐसा जानकर मैं जो कहती हूँ, उसपर विचार करो। तुम जब व्रत और नियमोंके पालनमें लगे थे, उन दिनों मैंने तुम्हारे साथ जो बर्ताव किया है, (आशा है,) उसे तुम भूले नहीं होगे। अब तुम व्रत समाप्त करके अपनी अभीष्ट विद्या प्राप्त कर चुके हो। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ; तुम मुझे स्वीकार करो; अतः वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक विधिवत् मेरा पाणिग्रहण करो॥ २—५॥

कचने कहा—निर्दोष अङ्गोंवाली देवयानी! जैसे तुम्हारे पिता शुक्राचार्य मेरे लिये पूजनीय और माननीय हैं, वैसे ही तुम हो; बल्कि उनसे भी बढ़कर मेरी पूजनीया हो। भद्रे! महात्मा भार्गवको तुम प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो। गुरुपुत्री होनेके कारण धर्मकी दृष्टिसे मेरी सदा पूजनीया हो। देवयानी! जैसे मेरे गुरुदेव तुम्हारे पिता शुक्राचार्य सदा मेरे माननीय हैं, उसी प्रकार तुम हो; अतः तुम्हें मुझसे ऐसी बात नहीं कहनी चाहिये॥ ६—८॥

देवयानी बोली—द्विजोत्तम! तुम मेरे गुरुके पुत्र हो, मेरे पिताके नहीं; (अतः मेरे भाई नहीं लगते, पर) मेरे पूजनीय और माननीय हो। कच! जब असुर तुम्हें बार-बार मार डालते थे, तबसे लेकर आजतक तुम्हारे प्रति मेरा जो प्रेम रहा है, उसे तुम्हीं स्मरण करो। तुम्हें मेरे सौहार्द और अनुराग तथा मेरी उत्तम भक्तिका परिचय मिल चुका है। तुम धर्मके ज्ञाता भी हो। मैं तुम्हारे प्रति भक्ति रखनेवाली निरपराध अबला हूँ। तुम्हें मेरा त्याग करना (कदापि) उचित नहीं है॥ ९—११॥

कचने कहा—उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली सुन्दरि! तुम मुझे ऐसे कार्यमें प्रवृत्त कर रही हो, जो कदापि उचित नहीं है। शुभे! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। तुम मेरे लिये गुरुसे भी बढ़कर श्रेष्ठ हो। विशाल नेत्र तथा चन्द्रमाके समान मुखवाली भामिनि! शुक्राचार्यके जिस उदरमें तुम रह चुकी हो, उसीमें मैं भी रहा हूँ। इसलिये भद्रे! धर्मकी दृष्टिसे तुम मेरी बहन हो; अतः शुभानने! मुझसे ऐसी बात न कहो। कल्याणि! मैं तुम्हारे यहाँ बड़े सुखसे रहा हूँ। तुम्हारे प्रति मेरे मनमें तनिक भी रोष नहीं है।

आपृच्छे त्वां गमिष्यामि शिवमस्त्वथ मे पथि।
अविरोधेन धर्मस्य स्मर्तव्योऽस्मि कथान्तरे॥ १५
अप्रमत्तोद्यता नित्यमाराधय गुरुं मम।

अब मैं जाऊँगा, इसलिये तुम्हारी आज्ञा चाहता हूँ; आशीर्वाद दो कि मार्गमें मेरा मङ्गल हो। धर्मकी अनुकूलता रखते हुए बातचीतके प्रसङ्गमें कभी मेरा भी स्मरण कर लेना और सदा सावधान एवं सजग रहकर मेरे गुरुदेव (अपने पिता शुक्राचार्य) की सेवामें लगी रहना॥ १२—१५ १/२॥

देवयान्युवाच

दैत्यैर्हतस्त्वं यद्भर्तृबुद्ध्या त्वं रक्षितो मया॥ १६
यदि मां धर्मकामार्थां प्रत्याख्यास्यसि धर्मतः।
ततः कच न ते विद्या सिद्धिरेषा गमिष्यति॥ १७

देवयानी बोली—कच! दैत्योंद्वारा बार-बार तुम्हारे मारे जानेपर मैंने पति-बुद्धिसे ही तुम्हारी रक्षा की है (अर्थात् पिताद्वारा जीवनदान दिलाया है, इसीलिये) मैंने धर्मानुकूल कामके लिये तुमसे प्रार्थना की है। यदि तुम मुझे ठुकरा दोगे तो यह संजीविनी विद्या तुम्हारे कोई काम न आयेगी॥ १६-१७॥

कच उवाच

गुरुपुत्रीति कृत्वाहं प्रत्याख्यास्ये न दोषतः।
गुरुणा चाभ्यनुज्ञातः काममेवं शपस्व माम्॥ १८
आर्षं धर्मं ब्रुवाणोऽहं देवयानि यथा त्वया।
शप्तुं नार्होऽस्मि कल्याणि कामतोऽद्य च धर्मतः॥ १९
तस्माद् भवत्या यः कामो न तथा सम्भविष्यति।
ऋषिपुत्रो न ते कश्चिज्जातु पाणिं ग्रहीष्यति॥ २०
फलिष्यति न मे विद्या त्वद्वचश्चेति तत् तथा।
अध्यापयिष्यामि च यं तस्य विद्या फलिष्यति॥ २१

कचने कहा—देवयानी! गुरुपुत्री समझकर ही मैंने तुम्हारे अनुरोधको टाल दिया है, तुममें कोई दोष देखकर नहीं। गुरुजी भी इसे जानते-मानते हैं। स्वेच्छासे मुझे शाप भी दे दो। बहन! मैं आर्ष-धर्मकी बात कर रहा था। इस दशामें तुम्हारे द्वारा शाप पानेके योग्य नहीं था। तुमने मुझे धर्मके अनुसार नहीं, कामके वशीभूत होकर आज शाप दिया है, इसलिये तुम्हारे मनमें जो कामना है, वह पूरी नहीं होगी। कोई भी ऋषिपुत्र (ब्राह्मणकुमार) कभी तुम्हारा पाणिग्रहण नहीं करेगा। तुमने जो मुझे यह कहा कि तुम्हारी विद्या सफल नहीं होगी, सो ठीक है; किंतु मैं जिसे यह पढ़ा दूँगा, उसकी विद्या तो सफल होगी ही॥ १८—२१॥

शौनक उवाच

एवमुक्त्वा नृपश्रेष्ठ देवयानीं कचस्तदा।
त्रिदशेशालयं शीघ्रं जगाम द्विजसत्तमः॥ २२
तमागतमभिप्रेक्ष्य देवाः सेन्द्रपुरोगमाः।
बृहस्पतिं सभाज्येदं कचमाहुर्मुदान्विताः॥ २३

शौनकजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ शतानीक! द्विजश्रेष्ठ कच देवयानीसे ऐसा कहकर तत्काल बड़ी उतावलीके साथ इन्द्रलोकको चला गया। उसे आया देख इन्द्रादि देवता बृहस्पतिजीकी सेवामें उपस्थित हो उन्हें साथ ले आगे बढ़कर बड़ी प्रसन्नतासे कचसे इस प्रकार बोले॥ २२-२३॥

देवा ऊचुः

त्वं कचास्मद्धितं कर्म कृतवान् महदद्भुतम्।
न ते यशः प्रणशिता भागभाक् च भविष्यसि॥ २४

देवता बोले—कच! तुमने हमारे हितके लिये यह बड़ा अद्भुत कार्य किया है, अतः तुम्हारे यशका कभी लोप नहीं होगा और तुम यज्ञमें भाग पानेके अधिकारी होओगे॥ २४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते षड्विंशोऽध्यायः॥ २६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित नामक छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६॥



सत्ताईसवाँ अध्याय

देवयानी और शर्मिष्ठाका कलह, शर्मिष्ठाद्वारा कुएँमें गिरायी गयी देवयानीको ययातिका निकालना और देवयानीका शुक्राचार्यके साथ वार्तालाप

शौनक उवाच

कृतविद्ये कचे प्राप्ते हृष्टरूपा दिवौकसः।
कचादवेत्य तां विद्यां कृतार्था भरतर्षभ॥ १

सर्वं एव समागम्य शतक्रतुमथाब्रुवन्।
कालस्त्वद्विक्रमस्याद्य जहि शत्रून् पुरंदर॥ २

एवमुक्तस्तु सह तैस्त्रिदशैर्मघवांस्तदा।
तथेत्युक्त्वोपचक्राम सोऽपश्यद् विपिने स्त्रियः॥ ३

क्रीडन्तीनां तु कन्यानां वने चैत्ररथोपमे।
वायुर्भूतः स वस्त्राणि सर्वाण्येव व्यमिश्रयत्॥ ४

ततो जलात् समुत्तीर्य ताः कन्याः सहितास्तदा।
वस्त्राणि जगृहुस्तानि यथा संस्थान्यनेकशः॥ ५

तत्र वासो देवयान्याः शर्मिष्ठा जगृहे तदा।
व्यतिक्रममजानन्ती दुहिता वृषपर्वणः॥ ६

ततस्तयोर्मिथस्तत्र विरोधः समजायत।
देवयान्याश्च राजेन्द्र शर्मिष्ठायाश्च तत्कृते॥ ७

शौनकजी कहते हैं—भरतर्षभ! जब कच मृतसंजीविनी विद्या सीखकर आ गये, तब देवताओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। वे कचसे उस विद्याको पढ़कर कृतार्थ हो गये। फिर सबने मिलकर इन्द्रसे कहा—'पुरंदर! अब आपके लिये पराक्रम करनेका समय आ गया है, अपने शत्रुओंका संहार कीजिये।' संगठित होकर आये हुए देवताओंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्र 'बहुत अच्छा' कहकर भूलोकमें आये। वहाँ एक वनमें उन्होंने बहुत-सी स्त्रियोंको देखा। वह वन चैत्ररथ* नामक देवोद्यानके समान मनोहर था। उसमें वे कन्याएँ जलक्रीड़ा कर रही थीं। इन्द्रने वायुका रूप धारण करके उनके सारे कपड़े परस्पर मिला दिये। तब वे सभी कन्याएँ एक साथ जलसे निकलकर अपने-अपने अनेक प्रकारके वस्त्र, जो निकट ही रखे हुए थे, लेने लगीं। उस सम्मिश्रणमें शर्मिष्ठाने देवयानीका वस्त्र ले लिया। शर्मिष्ठा वृषपर्वाकी पुत्री थी। दोनोंके वस्त्र मिल गये हैं, इस बातका उसे पता न था। राजेन्द्र! वस्त्रोंको उस अदला-बदलीको लेकर देवयानी और शर्मिष्ठा—दोनोंमें वहाँ परस्पर बड़ा भारी विरोध खड़ा हो गया॥ १—७॥

देवयान्युवाच

कस्माद् गृह्णासि मे वस्त्रं शिष्या भूत्वा ममासुरि।
समुदाचारहीनाया न ते श्रेयो भविष्यति॥ ८

देवयानी बोली—अरी दानवकी बेटी! मेरी शिष्या होकर तू मेरा वस्त्र कैसे ले रही है? तू सज्जनोंके उत्तम आचारसे शून्य है, अतः तेरा भला न होगा॥ ८॥

शर्मिष्ठोवाच

आसीनं च शयानं च पिता ते पितरं मम।
स्तौति पृच्छति चाभीक्ष्णं नीचस्थः सुविनीतवत्॥ ९

याचतस्त्वं च दुहिता स्तुवतः प्रतिगृह्णतः।
सुताहं स्तूयमानस्य ददतो न तु गृह्णतः॥ १०

शर्मिष्ठाने कहा—अरी! मेरे पिता बैठे हों या सो रहे हों, उस समय तेरा पिता विनयशील सेवकके समान नीचे खड़ा होकर बार-बार वन्दीजनोंकी भाँति उनकी स्तुति करता है। तू भिखमंगेकी बेटी है, तेरा बाप स्तुति करता और दान लेता है। मैं उनकी बेटी हूँ, जिनकी स्तुति की जाती है, जो दूसरोंको दान देते हैं और स्वयं किसीसे कुछ भी नहीं लेते।

* जैसे इन्द्रके वनका नाम नन्दन है, वैसे वरुणका उद्यान चैत्ररथ है।

अनायुधा सायुधाया: किं त्वं कुप्यसि भिक्षुकि।
लप्स्यसे प्रतियोद्धारं न च त्वां गणयाम्यहम्॥ ११

शौनक उवाच

सा विस्मयं देवयानीं गतां सक्तां च वाससि।
शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे ततः स्वपुरमाविशत्॥ १२
हतेयमिति विज्ञाय शर्मिष्ठा पापनिश्चया।
अनवेक्ष्य ययौ तस्मात् क्रोधवेगपरायणा॥ १३
अथ तं देशमध्यागाद् ययातिर्नहुषात्मजः।
श्रान्तयुग्यः श्रान्तरूपो मृगलिप्सुः पिपासितः॥ १४
नाहुषिः प्रेक्षमाणो हि स निपाते गतोदके।
ददर्श कन्यां तां तत्र दीप्तामग्निशिखामिव॥ १५
तामपृच्छत् स दृष्ट्वैव कन्याममरवर्णिनीम्।
सान्त्वयित्वा नृपश्रेष्ठः साम्ना परमवल्गुना॥ १६
का त्वं चारुमुखी श्यामा सुमृष्टमणिकुण्डला।
दीर्घं ध्यायसि चात्यर्थं कस्माच्छ्वसिषि चातुरा॥ १७
कथं च पतिता ह्यस्मिन् कूपे वीरुत्तृणावृते।
दुहिता चैव कस्य त्वं वद सर्वं सुमध्यमे॥ १८

देवयान्युवाच

योऽसौ देवैर्हतान् दैत्यानुत्थापयति विद्यया।
तस्य शुक्रस्य कन्याहं त्वं मां नूनं न बुध्यसे॥ १९
एष मे दक्षिणो राजन् पाणिस्ताम्रनखाङ्गुलिः।
समुद्धर गृहीत्वा मां कुलीनस्त्वं हि मे मतः॥ २०
जानामि त्वां च संशान्तं वीर्यवन्तं यशस्विनम्।
तस्मान्मां पतितामस्मात्कूपादुद्धर्तुमर्हसि॥ २१

शौनक उवाच

तामथ ब्राह्मणीं स्त्रीं च विज्ञाय नहुषात्मजः।
गृहीत्वा दक्षिणे पाणावुज्जहार ततोऽवटात्॥ २२
उद्धृत्य चैनां तरसा तस्मात् कूपान्नराधिपः।
आमन्त्रयित्वा सुश्रोणीं ययातिः स्वपुरं ययौ॥ २३

अरी भिक्षुकि! तू खाली हाथ है, तेरे पास कोई अस्त्र-शस्त्र भी नहीं है। और देख ले, मेरे पास हथियार है। इसलिये तू मेरे ऊपर व्यर्थ ही क्रोध कर रही है। यदि लड़ना ही चाहती है तो इधरसे भी डटकर सामना करनेवाली मुझ-जैसी योद्धी तुझे मिल जायगी। मैं तुझे कुछ भी नहीं गिनती॥९—११॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! यह सुनकर देवयानी आश्चर्यचकित हो गयी और शर्मिष्ठाके शरीरसे अपने वस्त्रको खींचने लगी। यह देख शर्मिष्ठाने उसे कुएँमें ढकेल दिया और अब वह (डूबकर) मर गयी होगी—ऐसा समझकर पापमय विचारवाली शर्मिष्ठा नगरको लौट आयी। वह क्रोधके आवेशमें थी, अतः देवयानीकी ओर देखे बिना घर लौट गयी। तदनन्तर नहुषपुत्र ययाति उस स्थानपर आये। उनके रथके वाहन तथा अन्य घोड़े भी थक गये थे। वे भी थकावटसे चूर हो गये थे। वे एक हिंसक पशुको पकड़नेके लिये उसके पीछे-पीछे आये थे और प्याससे कष्ट पा रहे थे। ययाति उस जलशून्य कूपको देखने लगे। वहाँ उन्हें अग्निशिखाके समान तेजस्विनी एक कन्या दिखायी दी, जो देवाङ्गनाके समान सुन्दरी थी। उसपर दृष्टि पड़ते ही नृपश्रेष्ठ ययातिने पहले परम मधुर वचनोंद्वारा शान्तभावसे उसे आश्वासन दिया और पूछा—'सुमध्यमे! तुम कौन हो? तुम्हारा मुख परम मनोहर है। तुम्हारी अवस्था भी अभी बहुत अधिक नहीं दीखती। तुम्हारे कानोंके मणिमय कुण्डल अत्यन्त सुन्दर और चमकीले हैं। तुम किसी अत्यन्त घोर चिन्तामें पड़ी हो। आतुर होकर लम्बी साँस क्यों ले रही हो? तृण और लताओंसे ढके हुए इस कुएँमें कैसे गिर पड़ी? तुम किसकी पुत्री हो? सब ठीक-ठीक बताओ'॥ १२—१८॥

देवयानी बोली—जो देवताओंद्वारा मारे गये दैत्योंको अपनी विद्याके बलसे जिलाया करते हैं, उन्हीं शुक्राचार्यकी मैं पुत्री हूँ। निश्चय ही आप मुझे पहचानते नहीं हैं। महाराज! लाल नख और अङ्गुलियोंसे युक्त यह मेरा दाहिना हाथ है। इसे पकड़कर आप इस कुएँसे मेरा उद्धार कीजिये। मैं जानती हूँ, आप उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए नरेश हैं। मुझे यह भी ज्ञात है कि आप परम शान्त स्वभाववाले, पराक्रमी तथा यशस्वी वीर हैं। इसलिये इस कुएँमें गिरी हुई मुझ अबलाका आप यहाँसे उद्धार कीजिये॥ १९—२१॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर नहुषपुत्र राजा ययातिने देवयानीको ब्राह्मण-कन्या जानकर उसका दाहिना हाथ अपने हाथमें ले उसे उस कुएँसे बाहर निकाला। इस प्रकार वेगपूर्वक उसे कुएँसे बाहर निकालकर राजा ययाति सुन्दरी देवयानीकी अनुमति लेकर अपने

गते तु नाहुषे तस्मिन् देवयान्यप्यनिन्दिता।
उवाच शोकसंतप्ता घूर्णिकामागतां पुनः॥ २४

देवयान्युवाच

त्वरितं घूर्णिके गच्छ सर्वमाचक्ष्व मे पितुः।
नेदानीं तु प्रवेक्ष्यामि नगरं वृषपर्वणः॥ २५

शौनक उवाच

सा तु वै त्वरितं गत्वा घूर्णिकासुरमन्दिरम्।
दृष्ट्वा काव्यमुवाचेदं कम्पमाना विचेतना॥ २६
आचख्यौ च महाभागा देवयानी वने हता।
शर्मिष्ठया महाप्राज्ञ दुहित्रा वृषपर्वणः॥ २७
श्रुत्वा दुहितरं काव्यस्तदा शर्मिष्ठया हताम्।
त्वरया निर्ययौ दुःखान्मार्गमाणः सुतां वने॥ २८
दृष्ट्वा दुहितरं काव्यो देवयानीं ततो वने।
बाहुभ्यां सम्परिष्वज्य दुःखितो वाक्यमब्रवीत्॥ २९
आत्मदोषैर्नियच्छन्ति सर्वे दुःखसुखे जनाः।
मन्ये दुश्चरितं तस्मिंस्तस्येयं निष्कृतिः कृता॥ ३०

देवयान्युवाच

निष्कृतिर्वास्तु वा मास्तु शृणुष्वावहितो मम।
शर्मिष्ठया यदुक्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः॥ ३१
सत्यं किलैतत् सा प्राह दैत्यानामस्मि गायना।
एवं हि मे कथयति शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी॥ ३२
वचनं तीक्ष्णपरुषं क्रोधरक्तेक्षणा भृशम्।
स्तुवतो दुहितासि त्वं याचतः प्रतिगृह्णतः॥ ३३
सुताहं स्तूयमानस्य ददतोऽप्रतिगृह्णतः।
इति मामाह शर्मिष्ठा दुहिता वृषपर्वणः।
क्रोधसंरक्तनयना दर्पपूर्णानना ततः॥ ३४
यद्यहं स्तुवतस्तात दुहिता प्रतिगृह्णतः।
प्रसादयिष्ये शर्मिष्ठामित्युक्ता हि सखी मया॥ ३५

नगरको चले गये। नहुषनन्दन ययातिके चले जानेपर सती-साध्वी देवयानी शोकसे संतप्त हो अपने सामने आयी हुई धाय घूर्णिकासे बोली॥ २२—२४॥

देवयानीने कहा—घूर्णिके! तुम तुरंत वेगपूर्वक यहाँसे जाओ और शीघ्र मेरे पिताजीसे सब वृत्तान्त कह दो। अब मैं (राजा) वृषपर्वाके नगरमें प्रवेश नहीं करूँगी—उस नगरमें पैर नहीं रखूँगी॥ २५॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! देवयानीकी बात सुनकर घूर्णिका तुरंत असुरराजके महलमें गयी और वहाँ शुक्राचार्यको देखकर काँपती हुई उसने सम्भ्रमपूर्ण चित्तसे वह बात बतला दी। उसने कहा—'महाप्राज्ञ! वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाके द्वारा देवयानी वनमें मार डाली (मृततुल्य कर दी) गयी है।' अपनी पुत्रीको शर्मिष्ठाद्वारा मृततुल्य की गयी सुनकर शुक्राचार्य बड़ी उतावलीके साथ निकले और दुःखी होकर उसे वनमें ढूँढ़ने लगे। तदनन्तर वनमें अपनी बेटी देवयानीको देखकर शुक्राचार्यने दोनों भुजाओंसे उठाकर उसे हृदयसे लगा लिया और दुःखी होकर कहा—'बेटी! सब लोग अपने ही दोष और गुणोंसे—अशुभ या शुभ कर्मोंसे दुःख एवं सुखमें पड़ते हैं। मालूम होता है, तुमसे कोई बुरा कर्म बन गया था, जिसका तुमने इस रूपमें प्रायश्चित्त किया है'॥ २६—३०॥

देवयानी बोली—पिताजी! मुझे अपने कर्मोंके फलसे निस्तार हो या न हो, आप मेरी बात ध्यान देकर सुनिये। वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने आज मुझसे जो कुछ कहा है, क्या यह सच है? वह कहती है—मैं भाटोंकी तरह दैत्योंके गुण गाया करती हूँ। वृषपर्वाकी लाड़िली शर्मिष्ठा क्रोधसे लाल आँखें करके आज मुझसे इस प्रकार अत्यन्त तीखे और कठोर वचन कह रही थी। 'देवयानी! तू स्तुति करनेवाले, नित्य भीख माँगनेवाले और दान लेनेवालेकी बेटी है और मैं तो उन महाराजकी पुत्री हूँ, जिनकी तुम्हारे पिता स्तुति करते हैं, जो स्वयं दान देते हैं और लेते (किसीसे) एक अधेला भी नहीं हैं।' वृषपर्वाकी बेटी शर्मिष्ठाने आज मुझसे ऐसी बात कही है। कहते समय उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वह भारी घमंडसे भरी हुई थी। तात! यदि सचमुच मैं स्तुति करनेवाले और दान लेनेवालेकी बेटी हूँ तो मैं शर्मिष्ठाको अपनी सेवाओंद्वारा प्रसन्न करूँगी। यह बात मैंने अपनी सखीसे कह दी थी। (मेरे ऐसा कहनेपर भी अत्यन्त क्रोधमें भरी हुई शर्मिष्ठाने उस निर्जन वनमें मुझे पकड़कर कुएँमें ढकेल दिया। उसके बाद वह अपने घर चली गयी)॥ ३१—३५॥

शुक्र उवाच

स्तुवतो दुहिता न त्वं भद्रे न प्रतिगृह्णतः।
अतस्त्वं स्तूयमानस्य दुहिता देवयान्यसि॥ ३६
वृषपर्वैव तद् वेद शक्रो राजा च नाहुषः।
अचिन्त्यं ब्रह्म निर्द्वन्द्वमैश्वरं हि बलं मम॥ ३७

शुक्राचार्यने कहा—देवयानी! तू स्तुति करनेवाले, भीख माँगनेवाले या दान लेनेवालेकी बेटी नहीं है। तू उस पवित्र ब्राह्मणकी पुत्री है, जो किसीकी स्तुति नहीं करता और जिसकी सब लोग स्तुति करते हैं। इस बातको वृषपर्वा, देवराज इन्द्र तथा राजा ययाति जानते हैं। निर्द्वन्द्व अचिन्त्य ब्रह्म ही मेरा ऐश्वर्ययुक्त बल है॥ ३६-३७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययातिचरित नामक सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७॥

अट्ठाईसवाँ अध्याय

शुक्राचार्यद्वारा देवयानीको समझाना और देवयानीका असंतोष

शुक्र उवाच

यः परेषां नरो नित्यमतिवादांस्तितिक्षति।
देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्॥ १
यः समुत्पतितं क्रोधं निगृह्णाति हयं यथा।
स यन्तेत्युच्यते सद्भिर्न यो रश्मिषु लम्बते॥ २
यः समुत्पतितं क्रोधमक्रोधेन नियच्छति।
देवयानि विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम्॥ ३
यः समुत्पतितं कोपं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते॥ ४
यस्तु भावयते धर्मं योऽतिमात्रं तितिक्षति।
यस्य तप्तो न तपति भृशं सोऽर्थस्य भाजनम्॥ ५
यो यजेदश्वमेधेन मासि मासि शतं समाः।
यस्तु कुप्येन्न सर्वस्य तयोरक्रोधनो वरः॥ ६
ये कुमाराः कुमार्यश्च वैरं कुर्युरचेतसः।
नैतत् प्राज्ञस्तु कुर्वीत विदुस्ते न बलाबलम्॥ ७

शुक्राचार्यने कहा—बेटी देवयानी! तुम इसे निश्चय जानो, जो मनुष्य सदा दूसरोंके कठोर वचन (दूसरोंद्वारा की हुई अपनी निन्दा)-को सह लेता है, उसने मानो इस सम्पूर्ण जगत्पर विजय प्राप्त कर ली। जो उभरे हुए क्रोधको घोड़ेके समान वशमें कर लेता है, वही सत्पुरुषोंद्वारा सच्चा सारथि कहा गया है; जो केवल बागडोर या लगाम पकड़कर लटकता रहता है, वह नहीं। देवयानी! जो उत्पन्न हुए क्रोधको अक्रोध (क्षमाभाव)-द्वारा मनसे निकाल देता है, समझ लो, उसने सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया। जैसे साँप पुरानी केंचुल छोड़ता है, उसी प्रकार जो मनुष्य उभड़नेवाले क्रोधको वहीं क्षमाद्वारा त्याग देता है, वही श्रेष्ठ पुरुष कहा गया है। जो श्रद्धापूर्वक धर्माचरण करता है, कड़ी-से-कड़ी निन्दा सह लेता है और दूसरेके सतानेपर भी दुःखी नहीं होता, वही सब पुरुषार्थोंका सुदृढ़ पात्र है। एक व्यक्ति, जो सौ वर्षोंतक प्रत्येक मासमें अश्वमेधयज्ञ करता जाता है और दूसरा जो किसीपर भी क्रोध नहीं करता, उन दोनोंमें क्रोध न करनेवाला ही श्रेष्ठ है। अबोध बालक और बालिकाएँ अज्ञानवश आपसमें जो वैर-विरोध करते हैं, उसका अनुकरण समझदार मनुष्योंको नहीं करना चाहिये; क्योंकि वे नादान बालक दूसरोंके बलाबलको नहीं जानते॥ १—७॥

देवयान्युवाच

वेदाहं तात बालापि कार्याणां तु गतागतम्।
क्रोधे चैवातिवादे वा कार्यस्यापि बलाबले॥ ८

शिष्यस्याशिष्यवृत्तं हि न क्षन्तव्यं बुभूषुणा।
असत्संकीर्णवृत्तेषु वासो मम न रोचते॥ ९

पुंसो ये नाभिनन्दन्ति वृत्तेनाभिजनेन च।
न तेषु निवसेत् प्राज्ञः श्रेयोऽर्थी पापबुद्धिषु॥ १०

ये नैनमभिजानन्ति वृत्तेनाभिजनेन च।
तेषु साधुषु वस्तव्यं स वासः श्रेष्ठ उच्यते॥ ११

तन्मे मथ्नाति हृदयमग्निकल्पमिवारणिम्।
वाग्दुरुक्तं महाघोरं दुहितुर्वृषपर्वणः॥ १२

न ह्यतो दुष्करं मन्ये तात लोकेष्वपि त्रिषु।
यः सपत्नश्रियं दीप्तां हीनश्रीः पर्युपासते॥ १३

देवयानी बोली—पिताजी! यद्यपि मैं अभी (नादान) बालिका हूँ, फिर भी धर्म-अधर्मका अन्तर समझती हूँ। क्षमा और निन्दाकी सबलता और निर्बलताका भी मुझे ज्ञान है; परंतु जो शिष्य होकर भी शिष्योचित बर्ताव नहीं करता, अपना हित चाहनेवाले गुरुको उसकी धृष्टता क्षमा नहीं करनी चाहिये। इसलिये इन संकीर्ण आचार-विचारवाले दानवोंके बीच निवास करना अब मुझे अच्छा नहीं लगता। जो पुरुष दूसरोंके सदाचार और कुलकी निन्दा करते हैं, उन पापपूर्ण विचारवाले मनुष्योंमें कल्याणकी इच्छावाले विद्वान् पुरुषको नहीं रहना चाहिये। जो लोग आचार, व्यवहार अथवा कुलीनताकी प्रशंसा करते हों, उन साधु पुरुषोंमें ही निवास करना चाहिये और वही निवास श्रेष्ठ कहा जाता है। तात! वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने जो अत्यन्त भयंकर दुर्वचन कहा है, वह मेरे हृदयको ठीक उसी तरह मथ रहा है, जैसे अग्नि प्रकट करनेकी इच्छावाला पुरुष अरणीकाष्ठका मन्थन करता है। इससे बढ़कर महान् दुःखकी बात मैं तीनों लोकोंमें और कुछ नहीं मानती, जो स्वयं श्रीहीन होकर शत्रुओंकी चमकती हुई (सातिशय) लक्ष्मीकी उपासना करता है (उस दुःखी मनुष्यका तो मर जाना ही अच्छा है।)॥ ८—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ययातिचरितेऽष्टाविंशोऽध्यायः॥ २८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ययातिचरितविषयक अट्ठाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८॥

उन्तीसवाँ अध्याय

शुक्राचार्यका वृषपर्वाको फटकारना तथा उसे छोड़कर जानेके लिये उद्यत होना और वृषपर्वाके आदेशसे शर्मिष्ठाका देवयानीकी दासी बनकर शुक्राचार्य तथा देवयानीको संतुष्ट करना

शौनक उवाच

ततः काव्यो भृगुश्रेष्ठः समन्युरुपगम्य ह।
वृषपर्वाणमासीनमित्युवाचाविचारयन्॥ १

नाधर्मश्चरितो राजन् सद्यः फलति गौरिव।
शनैरावर्त्यमानस्तु मूलान्यपि निकृन्तति॥ २

यदि नात्मनि पुत्रेषु न चेत् पश्यति नप्तृषु।
पापमाचरितं कर्म त्रिवर्गमतिवर्तते॥ ३

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! देवयानीकी बात सुनकर भृगुश्रेष्ठ शुक्राचार्य बड़े क्रोधमें भरकर वृषपर्वाके समीप गये। वह राजसिंहासनपर बैठा हुआ था। शुक्राचार्यजीने बिना कुछ सोचे-विचारे उससे इस प्रकार कहना आरम्भ किया—'राजन्! जो (लोकमें) अधर्म किया जाता है, उसका फल तुरंत नहीं मिलता। जैसे गायकी सेवा करनेपर धीरे-धीरे कुछ कालके बाद वह ब्याती और दूध देती है अथवा धरतीको जोत-बोकर बीज डालनेसे कुछ कालके बाद पौधा उगता और यथासमय फल देता है, उसी प्रकार किया जानेवाला अधर्म धीरे-धीरे जड़ काट देता है। यदि वह (पापसे उपार्जित द्रव्यका) दुष्परिणाम न अपने ऊपर दिखायी देता है, न पुत्रों अथवा नाती-पोतोंपर ही तो वह इस त्रिवर्गका अतिक्रमण करके आगेकी पीढ़ियोंपर अवश्य प्रकट होता है।

फलत्येवं ध्रुवं पापं गुरुभुक्तमिवादरे।
यदा घातयसे विप्रं कचमाङ्गिरसं तदा॥ ४

अपापशीलं धर्मज्ञं शुश्रूषुं मद्गृहे रतम्।
वधादनर्हतस्तस्य वधाच्च दुहितुर्मम॥ ५

वृषपर्वन् निबोध त्वं त्यक्ष्यामि त्वां सबान्धवम्।
स्थातुं त्वद्विषये राजन् न शक्नोमि त्वया सह॥ ६

अद्यैवमभिजानामि दैत्यं मिथ्याप्रलापिनम्।
यतस्त्वमात्मनोदीर्णां दुहितां किमुपेक्षसे॥ ७

जैसे खाया हुआ गरिष्ठ अन्न तुरंत नहीं तो कुछ देर बाद अवश्य ही पेटमें उपद्रव करता है, उसी प्रकार किया हुआ पाप भी निश्चय ही अपना फल देता है। राजन्! अङ्गिराका पौत्र कच विशुद्ध ब्राह्मण है। वह स्वभावसे ही निष्पाप और धर्मज्ञ है तथा उन दिनों मेरे घरमें रहकर निरन्तर मेरी सेवामें संलग्न था, परंतु तुमने उसका बार-बार वध करवाया था। वृषपर्वन्! ध्यान देकर मेरी यह बात सुन लो, तुम्हारे द्वारा पहले वधके अयोग्य ब्राह्मणका वध किया गया है और अब मेरी पुत्री देवयानीका भी वध करनेके लिये उसे कुएँमें ढकेला गया है। इन दोनों हत्याओंके कारण मैं तुमको और तुम्हारे भाई-बन्धुओंको त्याग दूँगा। राजन्! तुम्हारे राज्यमें और तुम्हारे साथ मैं एक क्षण भी नहीं ठहर सकूँगा। दैत्यराज! आज मैं तुम-जैसे मिथ्याप्रलापी दैत्यको भलीभाँति समझ सका हूँ। तुम अपनी पुत्रीके उद्धत स्वभावकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो?'॥ १—७॥

वृषपर्वोवाच

नावद्यं न मृषावादं त्वयि जानामि भार्गव।
त्वयि सत्यं च धर्मश्च तत् प्रसीदतु मां भवान्॥ ८
अद्यास्मानपहाय त्वमितो यास्यसि भार्गव।
समुद्रं सम्प्रवेक्ष्यामि नान्यदस्ति परायणम्॥ ९

वृषपर्वा बोले—भृगुनन्दन! आपने मेरे जानते कभी अनुचित या मिथ्या भाषण नहीं किया। आपमें धर्म और सत्य सदा प्रतिष्ठित हैं। अतः आप हमलोगोंपर कृपा करके प्रसन्न होइये! भार्गव! यदि आप हमें छोड़कर चले जाते हैं तो मैं (तुरन्त) समुद्रमें प्रवेश कर जाऊँगा; क्योंकि हमारे लिये फिर दूसरी कोई गति नहीं है॥ ८-९॥

शुक्र उवाच

समुद्रं प्रविशध्वं वा दिशो वा व्रजतासुराः।
दुहितुर्नाप्रियं सोढुं शक्तोऽहं दयिता हि मे॥ १०
प्रसाद्यतां देवयानीं जीवितं यत्र मे स्थितम्।
योगक्षेमकरस्तेऽहमिन्द्रस्येव बृहस्पतिः॥ ११

शुक्राचार्यने कहा—असुरो! तुम लोग समुद्रमें घुस जाओ अथवा चारों दिशाओंमें भाग जाओ, मैं अपनी पुत्रीके प्रति किया गया अप्रिय बर्ताव नहीं सह सकता; क्योंकि वह मुझे अत्यन्त प्रिय है। तुम देवयानीको प्रसन्न करो; क्योंकि उसीमें मेरे प्राण बसते हैं। उसके प्रसन्न हो जानेपर इन्द्रके पुरोहित बृहस्पतिकी भाँति मैं तुम्हारे योगक्षेमका वहन करता रहूँगा॥ १०-११॥

वृषपर्वोवाच

यत्किञ्चिदसुरेन्द्राणां विद्यते वसु भार्गव।
भुवि हस्तिरथाश्वं वा तस्य त्वं मम चेश्वरः॥ १२

वृषपर्वा बोले—भृगुनन्दन! असुरेश्वरोंके पास इस भूतलपर जो कुछ भी सम्पत्ति तथा हाथी-घोड़े आदि पशुधन है, उसके और मेरे भी आप ही स्वामी हैं॥ १२॥

शुक्र उवाच

यत्किचिदस्ति द्रविणं दैत्येन्द्राणां महासुर।
तस्येश्वरोऽस्मि यद्येतद् देवयानी प्रसाद्यताम्॥ १३

शुक्राचार्यने कहा—महान् असुर! दैत्यराजोंका जो कुछ भी धन-वैभव है, यदि उसका स्वामी मैं ही हूँ तो उसके द्वारा इस देवयानीको प्रसन्न करो॥ १३॥

शौनक उवाच

ततस्तु त्वरितः शुक्रस्तेन राज्ञा समं ययौ।
उवाच चैनां सुभगे प्रतिपन्नं वचस्तव॥ १४

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर शुक्राचार्य तुरंत ही राजा वृषपर्वाके साथ अपनी पुत्री देवयानीके पास पहुँचे और उससे बोले—'सुभगे! तुम्हारी बात पूरी हो गयी'॥ १४॥

देवयान्युवाच

यदि त्वमीश्वरस्तात राज्ञो वित्तस्य भार्गव।
नाभिजानामि तत्तेऽहं राजा वदतु मां स्वयम्॥ १५

तब देवयानीने कहा—तात भार्गव! 'आप राजाके धनके स्वामी हैं' मैं इस बातको आपके कहनेसे नहीं मानूँगी। राजा स्वयं कहें तो हमें विश्वास होगा॥ १५॥

वृषपर्वोवाच

यं काममभिजानासि देवयानि शुचिस्मिते।
तत्तेऽहं सम्प्रदास्यामि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम्॥ १६

वृषपर्वा बोले—पवित्र मुसकानवाली देवयानी! तुम जिस वस्तुको पाना चाहती हो, वह यदि अत्यन्त दुर्लभ हो तो भी मैं उसे तुम्हें अवश्य दूँगा (यह तुम विश्वास करो)॥ १६॥

देवयान्युवाच

दासीं कन्यासहस्रेण शर्मिष्ठामभिकामये।
अनुयास्यति मां तत्र यत्र दास्यति मे पिता॥ १७

देवयानीने कहा—मैं चाहती हूँ, शर्मिष्ठा एक हजार कन्याओंके साथ मेरी दासी बनकर रहे और पिताजी जहाँ मेरा विवाह करें, वहाँ भी वह मेरे साथ जाय॥ १७॥

वृषपर्वोवाच

उत्तिष्ठ धात्रि गच्छ त्वं शर्मिष्ठां शीघ्रमानय।
यं च कामयते कामं देवयानी करोतु तम्॥ १८

यह सुनकर वृषपर्वाने धायसे कहा—धात्रि! तुम उठो, जाओ और शर्मिष्ठाको (यहाँ) शीघ्र बुला लाओ एवं देवयानीकी जिस वस्तुकी कामना हो, उसे वह पूर्ण करे॥ १८॥

शौनक उवाच

ततो धात्री तत्र गत्वा शर्मिष्ठामिदमब्रवीत्।
उत्तिष्ठ भद्रे शर्मिष्ठे ज्ञातीनां सुखमावह॥ १९
यं सा कामयते कामं स कार्योऽत्र त्वयानघे।
दासी त्वमभिजातासि देवयान्याः सुशोभने॥ २०
त्यजति ब्राह्मणः शिष्यान् देवयान्या प्रचोदितः।

शौनकजी कहते हैं—तब धायने शर्मिष्ठाके पास जाकर कहा—'भद्रे शर्मिष्ठे! उठो और अपने जाति-भाइयोंको सुख पहुँचाओ। पापरहित राजकुमारी! आज शुक्राचार्य देवयानीके कहनेसे अपने शिष्यों—यजमानोंको त्याग रहे हैं। अतः देवयानीकी जो कामना हो, वह तुम्हें पूर्ण करनी चाहिये। सुशोभने! तुम देवयानीकी दासी बनायी गयी हो'॥ १९-२० १/२॥

शर्मिष्ठोवाच

यं च कामयते कामं करवाण्यहमद्य तम्।
मा गान्मन्युवशं शुक्रो देवयानी च मत्कृते॥ २१

शर्मिष्ठा बोली—यदि इस प्रकार देवयानीके लिये ही शुक्राचार्यजी मुझे बुला रहे हैं तो देवयानी जो कुछ चाहती हैं, वह सब आजसे मैं करूँगी। मेरे अपराधसे न शुक्राचार्यजी कहीं जायँ और न देवयानी ही। मेरे कारण ये अन्यत्र जानेका विचार न करें॥ २१॥

शौनक उवाच

ततः कन्यासहस्रेण वृता शिविकया तदा।
पितुर्निदेशात् त्वरिता निश्चक्राम पुरोत्तमात्॥ २२

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर पिताकी आज्ञासे राजकुमारी शर्मिष्ठा शिविकापर आरूढ़ हो तुरन्त राजधानीसे बाहर निकली। उस समय वह एक सहस्र कन्याओंसे घिरी हुई थी॥ २२॥

शर्मिष्ठोवाच

अहं कन्यासहस्रेण दासी ते परिचारिका।
ध्रुवं त्वां तत्र यास्यामि यत्र दास्यति ते पिता॥ २३

शर्मिष्ठा बोली—देवयानी! मैं एक सहस्र दासियोंके साथ तुम्हारी दासी बनकर सेवा करूँगी और तुम्हारे पिता जहाँ भी तुम्हारा ब्याह करेंगे, निश्चय ही वहाँ तुम्हारे साथ चलूँगी॥ २३॥

देवयान्युवाच

स्तुवतो दुहिता चाहं याचतः प्रतिगृह्णतः।
स्तूयमानस्य दुहिता कथं दासी भविष्यसि॥ २४

देवयानीने कहा—अरी! मैं तो स्तुति करनेवाले और दान लेनेवाले भिक्षुककी पुत्री हूँ और तुम उस बड़े बापकी बेटी हो, जिसकी मेरे पिता स्तुति करते हैं, फिर मेरी दासी बनकर कैसे रहोगी?॥ २४॥

शर्मिष्ठोवाच

येन केनचिदार्त्तानां ज्ञातीनां सुखमावहेत्।
अनुयास्याम्यहं तत्र यत्र दास्यति ते पिता॥ २५

शर्मिष्ठा बोली—जिस-किसी उपायसे भी सम्भव हो, अपने विपद्ग्रस्त जाति-भाइयोंको सुख पहुँचाना चाहिये। (इसलिये) तुम्हारे पिता जहाँ तुम्हें देंगे, वहाँ भी मैं तुम्हारे साथ चलूँगी॥ २५॥

शौनक उवाच

प्रतिश्रुते दासभावे दुहित्रा वृषपर्वणः।
देवयानी नृपश्रेष्ठ पितरं वाक्यमब्रवीत्॥ २६

शौनकजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! जब वृषपर्वाकी पुत्रीने दासी होनेकी प्रतिज्ञा कर ली, तब देवयानीने अपने पितासे कहा॥ २६॥

देवयान्युवाच

प्रविशामि पुरं तात तुष्टास्मि द्विजसत्तम।
अमोघं तव विज्ञानमस्ति विद्याबलं च ते॥ २७

देवयानी बोली—पिताजी! अब मैं नगरमें प्रवेश करूँगी। द्विजश्रेष्ठ! अब मुझे विश्वास हो गया कि आपका विज्ञान और आपकी विद्याका बल अमोघ है॥ २७॥

शौनक उवाच

एवमुक्तो द्विजश्रेष्ठो दुहित्रा सुमहायशाः।
प्रविवेश पुरं हृष्टः पूजितः सर्वदानवैः॥ २८

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! अपनी पुत्री देवयानीके ऐसा कहनेपर महायशस्वी द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यने समस्त दानवोंसे पूजित एवं प्रसन्न होकर नगरमें प्रवेश किया॥ २८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरितवर्णन नामक उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २९॥

तीसवाँ अध्याय

सखियोंसहित देवयानी और शर्मिष्ठाका वनविहार, राजा ययातिका आगमन, देवयानीके साथ बातचीत तथा विवाह

शौनक उवाच

अथ दीर्घेण कालेन देवयानी नृपोत्तम।
वनं तदेव निर्याता क्रीडार्थं वरवर्णिनी॥ १
तेन दासीसहस्रेण साधं शर्मिष्ठया तदा।
तमेव देशं सम्प्राप्ता यथाकामं चचार सा॥ २
ताभिः सखीभिः सहिता सर्वाभिर्मुदिता भृशम्।
क्रीडन्त्योऽभिरताः सर्वाः पिबन्त्यो मधु माधवम्॥ ३
खादन्त्यो विविधान् भक्ष्यान् फलानि विविधानि च।
पुनश्च नाहुषो राजा मृगलिप्सुर्यदृच्छया॥ ४

शौनकजी कहते हैं—नृपश्रेष्ठ! तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् उत्तम वर्णवाली देवयानी फिर उसी वनमें विहारके लिये गयी। उस समय उसके साथ एक हजार दासियोंसहित शर्मिष्ठा भी सेवामें उपस्थित थी। वनमें उसी प्रदेशमें जाकर वह उन समस्त सखियोंके साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इच्छानुसार विचरने लगी। वे सब वहाँ भाँति-भाँतिके खेल खेलती हुई आनन्दमें मग्न हो गयीं। वे कभी वासन्तिक पुष्पोंके मकरन्दका पान करतीं, कभी नाना प्रकारके भोज्य पदार्थोंका स्वाद लेतीं और कभी फल खाती थीं। इसी समय दैवेच्छासे नहुषपुत्र राजा ययाति पुनः शिकार खेलनेके लिये

तमेव देशं सम्प्राप्तो जललिप्सुः प्रतर्षितः।
ददर्श देवयानीं च शर्मिष्ठां ताश्च योषितः॥ ५
पिबन्त्यो ललनास्ताश्च दिव्याभरणभूषिताः।
उपविष्टां च ददृशे देवयानीं शुचिस्मिताम्॥ ६
रूपेणाप्रतिमां तासां स्त्रीणां मध्ये वराङ्गनाम्।
शर्मिष्ठया सेव्यमानां पादसंवाहनादिभिः॥ ७

उसी स्थानपर आ गये। वे परिश्रम करनेके कारण अधिक थक गये थे और जल पीना चाहते थे। उन्होंने देवयानी, शर्मिष्ठा तथा अन्य युवतियोंको भी देखा। वे सभी पीनेयोग्य रसका पान कर रही थीं। राजाने पवित्र मुसकानवाली देवयानीको वहाँ परम सुन्दर आसनपर बैठी हुई देखा। उसके रूपकी कहीं तुलना नहीं थी। वह सुन्दरी उन स्त्रियोंके मध्यमें बैठी हुई थी और शर्मिष्ठा उसकी चरणसेवा कर रही थी॥ १—७॥

ययातिरुवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां द्वे कन्ये परिवारिते।
गोत्रे च नामनी चैव द्वयोः पृच्छाम्यतो ह्यहम्॥ ८

ययातिने पूछा—दो हजार* कुमारी सखियोंसे घिरी हुई कन्याओ! मैं आप दोनोंके गोत्र और नाम पूछ रहा हूँ। शुभे! आप दोनों अपना परिचय दें॥ ८॥

देवयान्युवाच

आख्यास्याम्यहमादत्स्व वचनं मे नराधिप।
शुक्रो नामासुरगुरुः सुतां जानीहि तस्य माम्॥ ९
इयं च मे सखी दासी यत्राहं तत्र गामिनी।
दुहिता दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा वृषपर्वणः॥ १०

देवयानी बोली—महाराज! मैं स्वयं परिचय देती हूँ, आप मेरी बात सुनें। असुरोंके जो सुप्रसिद्ध गुरु शुक्राचार्य हैं, मुझे उन्हींकी पुत्री जानिये। यह दानवराज वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा मेरी सखी और दासी है। मैं विवाह होनेपर जहाँ जाऊँगी, वहाँ यह भी साथ जायगी॥ ९-१०॥

ययातिरुवाच

कथं तु ते सखी दासी कन्येयं वरवर्णिनी।
असुरेन्द्रसुता सुभ्रूः परं कौतूहलं हि मे॥ ११

ययाति बोले—सुन्दरि! यह असुरराजकी रूपवती कन्या सुन्दर भौंहोंवाली शर्मिष्ठा आपकी सखी और दासी किस प्रकार हुई? यह बताइये। इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है॥ ११॥

देवयान्युवाच

सर्वमेव नरव्याघ्र विधानमनुवर्तते।
विधिना विहितं ज्ञात्वा मा विचित्रं मनः कृथाः॥ १२
राजवद् रूपवेशौ ते ब्राह्मीं वाचं बिभर्षि च।
किंनामा त्वं कुतश्चासि कस्य पुत्रश्च शंस मे॥ १३

देवयानी बोली—नरश्रेष्ठ! सब लोग दैवके विधानका ही अनुसरण करते हैं। इसे भी भाग्यका विधान मानकर संतोष कीजिये। इस विषयकी विचित्र घटनाओंको न पूछिये। आपके रूप और वेश राजाके समान हैं और आप विशुद्ध संस्कृत भाषा बोल रहे हैं। मुझे बताइये, आपका क्या नाम है, आप कहाँसे आये हैं और किसके पुत्र हैं?॥ १२-१३॥

ययातिरुवाच

ब्रह्मचर्येण वेदो मे कृत्स्नः श्रुतिपथं गतः।
राजाहं राजपुत्रश्च ययातिरिति विश्रुतः॥ १४

ययातिने कहा—मैंने ब्रह्मचर्य-पालनपूर्वक सम्पूर्ण वेदका अध्ययन किया है। मैं राजा नहुषका पुत्र हूँ और इस समय स्वयं राजा हूँ। मेरा नाम ययाति है॥ १४॥

देवयान्युवाच

केन चार्थेन नृपते इमं देशं समागतः।
जिघृक्षुर्वारि यत् किञ्चिदथवा मृगलिप्सया॥ १५

देवयानीने कहा—महाराज! आप किस कार्यसे वनके इस प्रदेशमें आये हैं? आप जल अथवा कमल लेना चाहते हैं या शिकारकी इच्छासे ही आये हैं?॥ १५॥

ययातिरुवाच

मृगलिप्सुरहं भद्रे पानीयार्थमिहागतः।
बहुधाप्यनुयुक्तोऽस्मि त्वमनुज्ञातुमर्हसि॥ १६

ययातिने कहा—भद्रे! मैं एक हिंसक पशुको मारनेके लिये उसका पीछा कर रहा था, इससे बहुत थक गया हूँ और पानी पीनेके लिये यहाँ आया हूँ, अतः अब आप मुझे आज्ञा दीजिये॥ १६॥

* यहाँ किन्हीं श्लोकोंमें देवयानीको दो हजार और किन्हींमें एक हजार सखियोंका उल्लेख हुआ है। यथावसर दोनों ही ठीक हैं।

देवयान्युवाच

द्वाभ्यां कन्यासहस्राभ्यां दास्या शर्मिष्ठया सह।
त्वदधीनास्मि भद्रं ते सखे भर्ता च मे भव॥ १७

ययातिरुवाच

विद्ध्यौशनसि भद्रं ते न त्वदर्होऽस्मि भामिनि।
अविवाह्याः स्म राजानो देवयानि पितुस्तव॥ १८

देवयान्युवाच

सृष्टं ब्रह्मणा क्षत्रं क्षत्रं ब्रह्मणि संश्रितम्।
ऋषिश्च ऋषिपुत्रश्च नाहुषाद्य भजस्व माम्॥ १९

ययातिरुवाच

एकदेहोद्भवा वर्णाश्चत्वारोऽपि वरानने।
पृथग्धर्माः पृथक्छौचास्तेषां वै ब्राह्मणो वरः॥ २०

देवयान्युवाच

पाणिग्रहो नाहुषायं न पुम्भिः सेवितः पुरा।
त्वमेनमग्रहीरग्रे वृणोमि त्वामहं ततः॥ २१
कथं तु मे मनस्विन्याः पाणिमन्यः पुमान् स्पृशेत्।
गृहीतमृषिपुत्रेण स्वयं वाप्यृषिणा त्वया॥ २२

ययातिरुवाच

क्रुद्धादाशीविषात् सर्पाज्ज्वलनात् सर्वतोमुखात्।
दुराधर्षतरो विप्रः पुरुषेण विजानता॥ २३

देवयान्युवाच

कथमाशीविषात् सर्पाज्ज्वलनात् सर्वतोमुखात्।
दुराधर्षतरो विप्र इत्यात्थ पुरुषर्षभ॥ २४

ययातिरुवाच

दशेदाशीविषस्त्वेकं शस्त्रेणैकश्च वध्यते।
हन्ति विप्रः सराष्ट्राणि पुराण्यपि हि कोपितः॥ २५
दुराधर्षतरो विप्रस्तस्माद् भीरु मतो मम।
अतोऽदत्तां च पित्रा त्वां भद्रे न विवहाम्यहम्॥ २६

देवयान्युवाच

दत्तां वहस्व पित्रा मां त्वं हि राजन् वृतो मया।
अयाचतो भयं नास्ति दत्तां च प्रतिगृह्णतः॥ २७

देवयानीने कहा—सखे! आपका कल्याण हो। मैं दो हजार कन्याओं तथा अपनी सेविका शर्मिष्ठाके साथ आपके अधीन होती हूँ। आप मेरे पति हो जायँ॥ १७॥

ययाति बोले—शुक्रनन्दिनी देवयानि! आपका भला हो। भामिनि! मैं आपके योग्य नहीं हूँ। क्षत्रियलोग आपके पितासे कन्यादान लेनेके अधिकारी नहीं हैं॥ १८॥

देवयानीने कहा—नहुषनन्दन! ब्राह्मणसे क्षत्रिय जाति और क्षत्रियसे ब्राह्मण जाति मिली हुई है। आप राजर्षिके पुत्र हैं और स्वयं भी राजर्षि हैं; अतः आज मुझसे विवाह कीजिये॥ १९॥

ययाति बोले—वरानने! एक ही परमेश्वरके शरीरसे चारों वर्णोंकी उत्पत्ति हुई है, परंतु सबके धर्म और शौचाचार अलग-अलग हैं। ब्राह्मण उन सभी वर्णोंमें श्रेष्ठ है॥ २०॥

देवयानीने कहा—नहुषकुमार! नारीके लिये पाणिग्रहण एक धर्म है। पहले किसी भी पुरुषने मेरा हाथ नहीं पकड़ा था। सबसे पहले आपने ही मेरा हाथ पकड़ा था। इसलिये आपका ही मैं पतिरूपमें वरण करती हूँ। मैं मनको वशमें रखनेवाली स्त्री हूँ। आप-जैसे राजर्षिकुमार अथवा राजर्षिद्वारा पकड़े गये मेरे हाथका स्पर्श अब दूसरा कोई कैसे कर सकता है?॥ २१-२२॥

ययाति बोले—देवि! विज्ञ पुरुषको चाहिये कि वह ब्राह्मणको क्रोधमें भरे हुए विषधर सर्प अथवा सब ओरसे प्रज्वलित अग्निसे भी अधिक दुर्धर्ष एवं भयंकर समझे॥ २३॥

देवयानीने कहा—पुरुषप्रवर! ब्राह्मण विषधर सर्प और सब ओरसे प्रज्वलित होनेवाली अग्निसे भी दुर्धर्ष एवं भयंकर है, यह बात आपने कैसे कही?॥ २४॥

ययाति बोले—भद्रे! सर्प एकको ही डँसता है, शस्त्रसे भी एक ही व्यक्तिका वध होता है; परंतु क्रोधमें भरा हुआ ब्राह्मण समस्त राष्ट्र और नगरका भी नाश कर सकता है। भीरु! इसीलिये मैं ब्राह्मणको अधिक दुर्धर्ष मानता हूँ। अतः जबतक आपके पिता आपको मेरे हवाले न कर दें, तबतक मैं आपसे विवाह नहीं करूँगा॥ २५-२६॥

देवयानीने कहा—राजन्! मैंने आपका वरण कर लिया है, अब आप मेरे पिताके देनेपर ही मुझसे विवाह करें। आप स्वयं तो उनसे याचना करते नहीं हैं, उनके देनेपर ही मुझे स्वीकार करेंगे; अतः आपको उनके कोपका भय नहीं है। (राजन्! दो घड़ी ठहर जाइये। मैं अभी पिताके पास संदेश भेजती हूँ। धाय! शीघ्र जाओ और मेरे ब्रह्मतुल्य पिताको यहाँ बुला ले आओ। उनसे यह भी कह देना कि देवयानीने स्वयंवरकी विधिसे नहुष-नन्दन राजा ययातिका पतिरूपमें वरण किया है।)॥ २७॥

शौनक उवाच

त्वरितं देवयान्याथ प्रेषिता पितुरात्मनः।
सर्वं निवेदयामास धात्री तस्मै यथातथम्॥ २८
श्रुत्वैव च स राजानं दर्शयामास भार्गवः।
दृष्ट्वैवमागतं विप्रं ययातिः पृथिवीपतिः॥ २९
ववन्दे ब्राह्मणं काव्यं प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः।
तं चाप्यभ्यवदत् काव्यः साम्ना परमवल्गुना॥ ३०

शौनकजी कहते हैं—राजन्! इस प्रकार देवयानीने तुरन्त धायको भेजकर अपने पिताको संदेश दिया। धायने जाकर शुक्राचार्यसे सब बातें ठीक-ठीक बता दीं। सब समाचार सुनते ही शुक्राचार्यने वहाँ आकर राजाको दर्शन दिया। विप्रवर शुक्राचार्यको आया देख राजा ययातिने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर विनम्रभावसे खड़े हो गये। तब शुक्राचार्यने भी राजाको परम मधुर वाणीसे सान्त्वना प्रदान की॥ २८—३०॥

देवयान्युवाच

राजायं नाहुषस्तात दुर्गमे पाणिमग्रहीत्।
नमस्ते देहि मामस्मै लोके नान्यं पतिं वृणे॥ ३१

देवयानी बोली—तात! आपको (हाथ जोड़कर) नमस्कार है। ये नहुषपुत्र राजा ययाति हैं। इन्होंने संकटके समय मेरा हाथ पकड़ा था। आप मुझे इन्हींकी सेवामें समर्पित कर दें। मैं इस जगत्‌में इनके सिवा दूसरे किसी पतिका वरण नहीं करूँगी॥ ३१॥

शुक्र उवाच

वृतोऽनया पतिर्वीर सुतया त्वं ममेष्टया।
गृहाणेमां मया दत्तां महिषीं नहुषात्मज॥ ३२

शुक्राचार्यने कहा—वीर नहुषनन्दन! मेरी इस लाड़ली पुत्रीने तुम्हें पतिरूपमें वरण किया है, अतः मेरी दी हुई इस कन्याको तुम अपनी पटरानीके रूपमें ग्रहण करो॥ ३२॥

ययातिरुवाच

अधर्मो मां स्पृशेदेवं पापमस्याश्च भार्गव।
वर्णसंकरतो ब्रह्मन्निति त्वां प्रवृणोम्यहम्॥ ३३

ययाति बोले—भार्गव ब्रह्मन्! मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि इस विवाहमें यह प्रत्यक्ष दीखनेवाला वर्णसंकरजनित महान् अधर्म मेरा स्पर्श न करे॥ ३३॥

शुक्र उवाच

अधर्मात् त्वां विमुञ्चामि वरं वरय चेप्सितम्।
अस्मिन् विवाहे त्वं श्लाघ्यो रहःपापं नुदामि ते॥ ३४
वहस्व भार्यां धर्मेण देवयानीं शुचिस्मिताम्।
अनया सह सम्प्रीतिमतुलां समवाप्नुहि॥ ३५
इयं चापि कुमारी ते शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
सम्पूज्या सततं राजन् न चैनां शयने ह्वय॥ ३६

शुक्राचार्यने कहा—राजन्! मैं तुम्हें अधर्मसे मुक्त करता हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो, वर माँग लो। विवाहको लेकर तुम प्रशंसाके पात्र बन जाओगे। मैं तुम्हारे सारे पापको दूर करता हूँ। तुम सुन्दर मुसकानवाली देवयानीको धर्मपूर्वक अपनी पत्नी बनाओ और इसके साथ रहकर अतुल सुख एवं प्रसन्नता प्राप्त करो। महाराज! वृषपर्वाकी पुत्री यह कुमारी शर्मिष्ठा भी तुम्हें समर्पित है। इसका सदा आदर करना, किंतु इसे अपनी सेजपर कभी न सुलाना॥ ३४—३६॥

(तुम्हारा कल्याण हो। इस शर्मिष्ठाको एकान्तमें बुलाकर न तो इससे बात करना और न इसके शरीरका स्पर्श ही करना। अब तुम विवाह करके इसे (देवयानीको) अपनी पत्नी बनाओ। इससे तुम्हें इच्छानुसार फलकी प्राप्ति होगी।)

शौनक उवाच

एवमुक्तो ययातिस्तु शुक्रं कृत्वा प्रदक्षिणम्।
जगाम स्वपुरं हृष्टः सोऽनुज्ञातो महात्मना॥ ३७

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! शुक्राचार्यके ऐसा कहनेपर राजा ययातिने उनकी परिक्रमा की (और शास्त्रोक्त विधिसे मङ्गलमय विवाह-कार्य सम्पन्न किया)। पुनः उन महात्माकी आज्ञा ले नृपश्रेष्ठ ययाति बड़े हर्षके साथ अपनी राजधानीको चले गये॥ ३७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित नामक तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३०॥

एकतीसवाँ अध्याय

ययातिसे देवयानीको पुत्रप्राप्ति, ययाति और शर्मिष्ठाका एकान्त-मिलन और उनसे एक पुत्रका जन्म

शौनक उवाच

ययातिः स्वपुरं प्राप्य महेन्द्रपुरसंनिभम्।
प्रविश्यान्तःपुरं तत्र देवयानीं न्यवेशयत्॥ १

देवयान्याश्चानुमते सुतां तां वृषपर्वणः।
अशोकवनिकाभ्याशे गृहं कृत्वा न्यवेशयत्॥ २

वृतां दासीसहस्रेण शर्मिष्ठामासुरायणीम्।
वासोभिरन्नपानैश्च संविभज्य सुसंवृताम्॥ ३

देवयान्या तु सहितः स नृपो नहुषात्मजः।
विजहार बहूनब्दान् देववन्मुदितो भृशम्॥ ४

ऋतुकाले तु सम्प्राप्ते देवयानी वराङ्गना।
लेभे गर्भं प्रथमतः कुमारश्च व्यजायत॥ ५

गते वर्षसहस्रे तु शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
ददर्श यौवनं प्राप्ता ऋतुं सा कमलेक्षणा॥ ६

चिन्तयामास धर्मज्ञा ऋतुप्राप्तौ च भामिनी।
ऋतुकालश्च सम्प्राप्तो न कश्चिन्मे पतिर्वृतः॥ ७

किं प्राप्तं किं च कर्तव्यं कथं कृत्वा सुखं भवेत्।
देवयानी प्रसूतासौ वृथाहं प्राप्तयौवना॥ ८

यथा तया वृतो भर्ता तथैवाहं वृणोमि तम्।
राज्ञा पुत्रफलं देयमिति मे निश्चिता मतिः।
अपीदानीं स धर्मात्मा रहो मे दर्शनं व्रजेत्॥ ९

शौनक उवाच

अथ निष्क्रम्य राजासौ तस्मिन् काले यदृच्छया।
अशोकवनिकाभ्याशे शर्मिष्ठां प्राप्य विस्मितः॥ १०

तमेकं रहसि दृष्ट्वा शर्मिष्ठा चारुहासिनी।
प्रत्युद्गम्याञ्जलिं कृत्वा राजानं वाक्यमब्रवीत्॥ ११

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! ययातिकी राजधानी महेन्द्रपुरी (अमरावती)-के समान थी। उन्होंने वहाँ आकर देवयानीको अन्तःपुरमें स्थान दिया तथा उसीकी अनुमतिसे अशोकवाटिकाके समीप एक महल बनवाकर उसमें वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाको उसकी एक हजार दासियोंके साथ ठहराया और उन सबके लिये अन्न, वस्त्र तथा पेय आदिकी अलग-अलग व्यवस्था कर दी। (देवयानी ययातिके साथ परम रमणीय एवं मनोरम अशोकवाटिकामें आती और शर्मिष्ठाके साथ वन-विहार करके उसे वहीं छोड़कर स्वयं राजाके साथ महलमें चली जाती थी। इस तरह वह बहुत समयतक प्रसन्नतापूर्वक आनन्द भोगती रही।) नहुषकुमार राजा ययातिने देवयानीके साथ बहुत वर्षोंतक देवताओंकी भाँति विहार किया। वे उसके साथ बहुत प्रसन्न और सुखी थे। ऋतुकाल आनेपर सुन्दरी देवयानीने गर्भ धारण किया और समयानुसार प्रथम पुत्रको जन्म दिया। इधर एक हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर युवावस्थाको प्राप्त हुई वृषपर्वाकी पुत्री कमलनयनी शर्मिष्ठाने अपनेको रजस्वलावस्थामें देखा और चिन्तामग्न हो मन-ही-मन कहने लगी—'मुझे ऋतुकाल प्राप्त हो गया, किंतु अभीतक मैंने पतिका वरण नहीं किया। यह कैसी परिस्थिति आ गयी। अब क्या करना चाहिये अथवा क्या करनेसे सुख होगा। देवयानी तो पुत्रवती हो गयी, किंतु मुझे जो युवावस्था प्राप्त हुई है, वह व्यर्थ जा रही है। जिस प्रकार उसने पतिका वरण किया है, उसी तरह मैं भी उन्हीं महाराजका क्यों न पतिके रूपमें वरण कर लूँ। मेरे याचना करनेपर राजा मुझे पुत्ररूप फल दे सकते हैं, इस बातका मुझे पूरा विश्वास है; परंतु क्या वे धर्मात्मा नरेश इस समय मुझे एकान्तमें दर्शन देंगे?॥ १—९॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! शर्मिष्ठा इस प्रकार विचार कर ही रही थी कि राजा ययाति उसी समय दैववश महलसे बाहर निकले और अशोकवाटिकाके निकट शर्मिष्ठाको देखकर आश्चर्यचकित हो गये। मनोहर हासवाली शर्मिष्ठाने उन्हें एकान्तमें अकेला देखा। तब उसने आगे बढ़कर उनकी अगवानी की तथा हाथ जोड़कर राजासे यह बात कही—॥ १०-११॥

शर्मिष्ठोवाच

सोमश्चेन्द्रश्च वायुश्च यमश्च वरुणश्च वा।
तव वा नाहुष गृहे कः स्त्रियं द्रष्टुमर्हति॥ १२
रूपाभिजनशीलैर्हि त्वं राजन् वेत्थ मां सदा।
सा त्वां याचे प्रसाद्येह रन्तुमेहि नराधिप॥ १३

ययातिरुवाच

वेद्मि त्वां शीलसम्पन्नां दैत्यकन्यामनिन्दिताम्।
रूपं तु ते न पश्यामि सूच्यग्रमपि निन्दितम्॥ १४
मामब्रवीत् तदा शुक्रो देवयानीं यदावहम्।
नेयमाह्वयितव्या ते शयने वार्षपर्वणी॥ १५

शर्मिष्ठोवाच

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति
न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे
पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥ १६
पृष्टास्तु साक्ष्ये प्रवदन्ति चान्यथा
भवन्ति मिथ्यावचना नरेन्द्र ते।
एकार्थतायां तु समाहितायां
मिथ्यावदन्तं ह्यनृतं हिनस्ति॥ १७

ययातिरुवाच

राजा प्रमाणं भूतानां स विनश्येन्मृषा वदन्।
अर्थकृच्छ्रमपि प्राप्य न मिथ्या कर्तुमुत्सहे॥ १८

शर्मिष्ठोवाच

समावेतौ मतौ राजन् पतिः सख्याश्च यः पतिः।
समं विवाह इत्याहुः सख्या मेऽसि पतिर्यतः॥ १९

ययातिरुवाच

दातव्यं याचमानस्य हीति मे व्रतमाहितम्।
त्वं च याचसि कामं मां ब्रूहि किं करवाणि तत्॥ २०

शर्मिष्ठोवाच

अधर्मात् त्राहि मां राजन् धर्मं च प्रतिपादय।
त्वत्तोऽपत्यवती लोके चरेयं धर्ममुत्तमम्॥ २१
त्रय एवाधना राजन् भार्या दासस्तथा सुतः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥ २२ *

शर्मिष्ठाने कहा—नहुषनन्दन! चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, यम अथवा वरुण ही क्यों न हों, आपके महलमें कौन किसी स्त्रीकी ओर दृष्टि डाल सकता है? (अतएव मैं यहाँ सर्वथा सुरक्षित हूँ।) महाराज! मेरे रूप, कुल और शील कैसे हैं, यह तो आप सदासे ही जानते हैं। मैं आज आपको प्रसन्न करके यह प्रार्थना करती हूँ कि मुझे ऋतुदान दीजिये—मेरे ऋतुकालको सफल बनाइये॥ १२-१३॥

ययातिने कहा—शर्मिष्ठे! तुम दैत्यराजकी सुशील और निर्दोष कन्या हो। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम्हारे शरीर अथवा रूपमें सूईकी नोक बराबर भी ऐसा स्थान नहीं है, जो निन्दाके योग्य हो; परंतु क्या करूँ, जब मैंने देवयानीके साथ विवाह किया था, उस समय शुक्राचार्यने मुझसे स्पष्ट कहा था कि 'वृषपर्वाकी पुत्री इस शर्मिष्ठाको अपनी सेजपर न बुलाना'॥ १४-१५॥

शर्मिष्ठाने कहा—राजन्! परिहासयुक्त वचन असत्य हो तो भी वह हानिकारक नहीं होता। अपनी स्त्रियोंके प्रति, विवाहके समय, प्राणसंकटके समय तथा सर्वस्वका अपहरण होते समय यदि कभी विवश होकर असत्य भाषण करना पड़े तो वह दोषकारक नहीं होता। ये पाँच प्रकारके असत्य पापशून्य बताये गये हैं। महाराज! गवाही देते समय किसीके पूछनेपर जो अन्यथा (असत्य) भाषण करते हैं, वे मिथ्यावादी कहलाते हैं; परंतु जहाँ दो व्यक्तियोंके (जैसे देवयानीका तथा मेरा) कल्याणका प्रसङ्ग उपस्थित हो, वहाँ एकका (अर्थात् मेरा) कल्याण न करना असत्य भाषण है, जो वक्ताकी (अर्थात् आपकी) हानि कर सकता है॥ १६-१७॥

ययाति बोले—देवि! सब प्राणियोंके लिये राजा ही प्रमाण है। यदि वह झूठ बोलने लगे तो उसका नाश हो जाता है; अतः अर्थ-संकटमें पड़नेपर भी मैं गलत काम नहीं कर सकता॥ १८॥

शर्मिष्ठाने कहा—राजन्! अपना पति और सखीका पति—दोनों बराबर माने गये हैं। मेरी सखीने आपको अपना पति बनाया है, अतः मैंने भी बना लिया॥ १९॥

ययाति बोले—याचकोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ दी जायँ, ऐसा मेरा व्रत है। तुम भी मुझसे अपने मनोरथकी याचना करती हो; अतः बताओ, मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ॥ २०॥

शर्मिष्ठाने कहा—राजन्! मुझे अधर्मसे बचाइये और धर्मका पालन कराइये। मैं चाहती हूँ, आपसे संतानवती होकर इस लोकमें उत्तम धर्मका आचरण करूँ। महाराज! तीन व्यक्ति धनके अधिकारी नहीं होते—पत्नी, दास और पुत्र। उनकी सम्पत्ति भी उसीकी होती है, जहाँ ये

*यह श्लोक स्वल्पान्तरसे मनुस्मृति ८। ४१६, नारदस्मृति ५। ३९, महाभारत १। ८२। २२ आदिमें भी है। मेधातिथि, गोविन्दराज, कुल्लूक भट्ट, राघवानन्द आदि मनुके सभी व्याख्याता इस श्लोकका तात्पर्य धनके व्ययमें अभिभावककी सहमति लेनेमें ही चरितार्थ मानते हैं। नीलकण्ठकी व्याख्या केवल प्रस्तुत प्रसङ्गसे ही सम्बद्ध है।

देवयान्या भुजिष्यास्मि वश्या च तव भार्गवी।
सा चाहं च त्वया राजन् भजनीये भजस्व माम्॥ २३

जाते—जिसके अधिकारमें रहते हैं; अर्थात् पत्नीके धनपर पतिका, सेवकके धनपर स्वामीका और पुत्रके धनपर पिताका अधिकार होता है। मैं देवयानीकी सेविका हूँ और देवयानी आपके अधीन है; अतः राजन्! वह और मैं—दोनों ही आपके सेवन अपनाने योग्य हैं। इसलिये आप मुझे भी अङ्गीकार कीजिये॥ २१—२३॥

शौनक उवाच

एवमुक्तस्तया राजा तथ्यमित्यभिजज्ञिवान्।
पूजयामास शर्मिष्ठां धर्मं च प्रतिपादयन्॥ २४
स समागम्य शर्मिष्ठां यथाकाममवाप्य च।
अन्योऽन्यं चाभिसम्पूज्य जग्मतुस्तौ यथागतम्॥ २५
तस्मिन् समागमे सुभ्रूः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
लेभे गर्भं प्रथमतस्तस्मान्नृपतिसत्तमात्॥ २६
प्रजज्ञे च ततः काले राज्ञी राजीवलोचना।
कुमारं देवगर्भाभमादित्यसमतेजसम्॥ २७

शौनकजी कहते हैं—शर्मिष्ठाके ऐसा कहनेपर राजाने उसकी बातोंको ठीक समझा। उन्होंने शर्मिष्ठाका सत्कार किया और धर्मानुसार उसे अपनी भार्या बनाया। फिर शर्मिष्ठाके साथ सहवास करके एक-दूसरेका आदर-सत्कार करनेके पश्चात् दोनों जैसे आये थे, वैसे ही अपने-अपने स्थानपर चले गये। सुन्दर भौंहोंवाली वृषपर्वा-कुमारी शर्मिष्ठाने उस सहवासमें नृपश्रेष्ठ ययातिसे प्रथम गर्भ धारण किया। शतानीक! तदनन्तर समय आनेपर कमलके समान नेत्रोंवाली शर्मिष्ठाने देवबालक-जैसे सुन्दर एवं सूर्यके समान तेजस्वी एक कुमारको उत्पन्न किया॥ २४—२७॥

॥ इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित नामक एकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३१॥

बत्तीसवाँ अध्याय

देवयानी और शर्मिष्ठाका संवाद, ययातिसे शर्मिष्ठाके पुत्र होनेकी बात जानकर देवयानीका रूठना और अपने पिताके पास जाना तथा शुक्राचार्यका ययातिको बूढ़े होनेका शाप देना

शौनक उवाच

श्रुत्वा कुमारं जातं सा देवयानी शुचिस्मिता।
चिन्तयाविष्टदुःखार्ता शर्मिष्ठां प्रति भारत॥ १
ततोऽभिगम्य शर्मिष्ठां देवयान्यब्रवीदिदम्।
किमर्थं वृजिनं सुभ्रु कृतं ते कामलुब्धया॥ २

शौनकजी कहते हैं—भारत! पवित्र मुसकानवाली देवयानीने जब सुना कि शर्मिष्ठाके पुत्र हुआ है, तब वह दुःखसे पीड़ित हो शर्मिष्ठाके व्यवहारको लेकर बड़ी चिन्तामें पड़ गयी। वह शर्मिष्ठाके पास गयी और इस प्रकार बोली—'सुन्दर भौंहोंवाली शर्मिष्ठे! तुमने काम-लोलुप होकर यह कैसा पाप कर डाला है?'॥ १-२॥

शर्मिष्ठोवाच

ऋषिरभ्यागतः कश्चिद् धर्मात्मा वेदपारगः।
स मया तु वरः कामं याचितो धर्मसंहतम्॥ ३
नाहमन्यायतः काममाचरामि शुचिस्मिते।
तस्मादृषेर्ममापत्यमिति सत्यं ब्रवीमि ते॥ ४

शर्मिष्ठा बोली—सखी! कोई धर्मात्मा ऋषि आये थे, जो वेदोंके पारंगत विद्वान् थे। मैंने उन वरदायक ऋषिसे धर्मानुसार कामकी याचना की। शुचिस्मिते! मैं न्यायविरुद्ध कामका आचरण नहीं करती। उन ऋषिसे ही मुझे संतान पैदा हुई है, यह तुमसे सत्य कहती हूँ॥ ३-४॥

देवयान्युवाच

यद्येतदेवं शर्मिष्ठे न मन्युर्विद्यते मम।
अपत्यं यदि ते लब्धं ज्येष्ठाच्छ्रेष्ठाच्च वै द्विजात्॥ ५
शोभनं भीरु सत्यं चेत् कथं स ज्ञायते द्विजः।
गोत्रनामाभिजनतः श्रोतुमिच्छामि तं द्विजम्॥ ६

शर्मिष्ठोवाच

ओजसा तेजसा चैव दीप्यमानं रविं यथा।
तं दृष्ट्वा मम सम्प्रष्टुं शक्तिर्नासीच्छुचिस्मिते॥ ७

शौनक उवाच

अन्योऽन्यमेवमुक्त्वा च सम्प्रहस्य च ते मिथः।
जगाम भार्गवी वेश्म तथ्यमित्यभिजानती॥ ८
ययातिर्देवयान्यां तु पुत्रावजनयन्नृपः।
यदुं च तुर्वसुं चैव शक्रविष्णू इवापरौ॥ ९
तस्मादेव तु राजर्षेः शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी।
द्रुह्युं चानुं च पूरुं च त्रीन् कुमारानजीजनत्॥ १०
ततःकाले च कस्मिंश्चिद् देवयानी शुचिस्मिता।
ययातिसहिता राजञ्जगाम हरितं वनम्॥ ११
ददर्श च तदा तत्र कुमारान् देवरूपिणः।
क्रीडमानान् सुविस्रब्धान् विस्मिता चेदमब्रवीत्॥ १२

देवयान्युवाच

कस्यैते दारका राजन् देवपुत्रोपमाः शुभाः।
वर्चसा रूपतश्चैव दृश्यन्ते सदृशास्तव॥ १३
एवं पृष्ट्वा तु राजानं कुमारान् पर्यपृच्छत।
किं नामधेयगोत्रे वः पुत्रका ब्राह्मणः पिता॥ १४
विब्रूत मे यथातथ्यं श्रोतुकामास्म्यतो ह्यहम्।
तेऽदर्शयन् प्रदेशिन्या तमेव नृपसत्तमम्॥ १५
शर्मिष्ठां मातरं चैव तस्या ऊचुः कुमारकाः।

शौनक उवाच

इत्युक्त्वा सहितास्तेन राजानमुपचक्रमुः॥ १६
नाभ्यनन्दत तान् राजा देवयान्यास्तदान्तिके।
रुदन्तस्तेऽथ शर्मिष्ठामभ्ययुर्बालकास्तदा॥ १७
दृष्ट्वा तेषां तु बालानां प्रणयं पार्थिवं प्रति।
बुद्ध्वा च तत्त्वतो देवी शर्मिष्ठामिदमब्रवीत्॥ १८

देवयानीने कहा—शर्मिष्ठे! यदि ऐसी बात है, तुमने यदि ज्येष्ठ और श्रेष्ठ द्विजसे संतान प्राप्त की है तो तुम्हारे ऊपर मेरा क्रोध नहीं रहा। भीरु! यदि ऐसी बात है तो बहुत अच्छा हुआ। क्या उन द्विजके गोत्र, नाम और कुलका कुछ परिचय मिला है? मैं उनको जानना चाहती हूँ॥ ५-६॥

शर्मिष्ठा बोली—शुचिस्मिते! वे अपने तप और तेजसे सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहे थे। उन्हें देखकर मुझे कुछ पूछनेका साहस ही न हुआ॥ ७॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! वे दोनों आपसमें इस प्रकार बातें करके हँस पड़ीं। देवयानीको प्रतीत हुआ कि शर्मिष्ठा ठीक कहती है, अतः वह चुपचाप महलमें चली गयी। राजा ययातिने देवयानीके गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न किये, जिनके नाम थे—यदु और तुर्वसु। वे दोनों दूसरे इन्द्र और विष्णुकी भाँति प्रतीत होते थे। उन्हीं राजर्षिसे वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठाने तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जिनके नाम थे—द्रुह्यु, अनु और पूरु। राजन्! तदनन्तर किसी समय पवित्र मुसकानवाली देवयानी ययातिके साथ एकान्त वनमें गयी। वहाँ उसने देवताओंके समान सुन्दर रूपवाले कुछ बालकोंको निर्भय होकर क्रीडा करते देखा। उन्हें देखकर वह आश्चर्यचकित हो इस प्रकार बोली॥ ८—१२॥

देवयानीने पूछा—राजन्! ये देवबालकोंके तुल्य शुभ लक्षणसम्पन्न कुमार किसके हैं? तेज और रूपमें तो ये मुझे आपके ही समान जान पड़ते हैं। राजासे इस प्रकार पूछकर उसने फिर उन कुमारोंसे प्रश्न किया—'बच्चो! तुमलोग किस गोत्रमें उत्पन्न हुए हो? तुम्हारे ब्राह्मण पिताका क्या नाम है? यह मुझे ठीक-ठीक बताओ। मैं तुम्हारे पिताका नाम सुनना चाहती हूँ।' (देवयानीके इस प्रकार पूछनेपर) उन बालकोंने पिताका परिचय देते हुए तर्जनी अँगुलीसे उन्हीं नृपश्रेष्ठ ययातिको दिखा दिया और शर्मिष्ठाको अपनी माता बताया॥ १३—१५½॥

शौनकजी कहते हैं—ऐसा कहकर वे सब बालक एक साथ राजाके समीप आ गये, परंतु उस समय देवयानीके निकट राजाने उनका अभिनन्दन नहीं किया—इन्हें गोदमें नहीं उठाया। तब बालक रोते हुए शर्मिष्ठाके पास चले गये। (उनकी बातें सुनकर राजा ययाति लज्जित-से हो गये।) उन बालकोंका राजाके प्रति विशेष प्रेम देखकर देवयानी सारा रहस्य समझ गयी और शर्मिष्ठासे इस प्रकार बोली—॥ १६—१८॥

देवयान्युवाच

मदधीना सती कस्मादकार्षीर्विप्रियं मम।
तमेवासुरधर्मं त्वमास्थिता न बिभेषि किम्॥ १९

शर्मिष्ठोवाच

यदुक्तमृषिरित्येव तत् सत्यं चारुहासिनि।
न्यायतो धर्मतश्चैव चरन्ती न बिभेमि ते॥ २०

यदा त्वया वृतो राजा वृत एव तदा मया।
सखीभर्ता हि धर्मेण भर्ता भवति शोभने॥ २१

पूज्यासि मम मान्या च श्रेष्ठा ज्येष्ठा च ब्राह्मणी।
त्वत्तो हि मे पूज्यतरो राजर्षिः किं न वेत्सि तत्॥ २२

शौनक उवाच

श्रुत्वा तस्यास्ततो वाक्यं देवयान्यब्रवीदिदम्।
राजन् नाद्येह वत्स्यामि विप्रियं मे त्वया कृतम्॥ २३

सहसोत्पतितां श्यामां दृष्ट्वा तां साश्रुलोचनाम्।
तूर्णं सकाशं काव्यस्य प्रस्थितां व्यथितस्तदा॥ २४

अनुवव्राज सम्भ्रान्तः पृष्ठतः सान्त्वयन् नृपः।
न्यवर्तत न सा चैव क्रोधसंरक्तलोचना॥ २५

अविब्रुवन्ती किंचिच्च राजानं साश्रुलोचना।
अचिरादेव सम्प्राप्ता काव्यस्योशनसोऽन्तिकम्॥ २६

सा तु दृष्ट्वैव पितरमभिवाद्याग्रतः स्थिता।
अनन्तरं ययातिस्तु पूजयामास भार्गवम्॥ २७

देवयान्युवाच

अधर्मेण जितो धर्मः प्रवृत्तमधरोत्तरम्।
शर्मिष्ठया तिवृत्तास्मि दुहित्रा वृषपर्वणः॥ २८

त्रयोऽस्यां जनिताः पुत्रा राज्ञानेन ययातिना।
दुर्भगाया मम द्वौ तु पुत्रौ तात ब्रवीमि ते॥ २९

धर्मज्ञ इति विख्यात एष राजा भृगूद्वह।
अतिक्रान्तश्च मर्यादां काव्यैतत् कथयामि ते॥ ३०

देवयानी बोली—शर्मिष्ठे! तुमने मेरे अधीन होकर भी मुझे अप्रिय लगनेवाला बर्ताव क्यों किया? तुम फिर उसी असुर-धर्मपर उतर आयी। क्या मुझसे नहीं डरती?॥ १९॥

शर्मिष्ठा बोली—मनोहर मुसकानवाली सखी! मैंने जो ऋषि कहकर अपने स्वामीका परिचय दिया था, सो सत्य ही है। मैं न्याय और धर्मके अनुकूल आचरण करती हूँ, अतः तुमसे नहीं डरती। जब तुमने राजाका पतिरूपमें वरण किया था, उसी समय मैंने भी कर लिया। शोभने! तुम ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ हो, ब्राह्मणपुत्री हो, अतः मेरे लिये माननीय एवं पूजनीय हो; परंतु ये राजर्षि मेरे लिये तुमसे भी अधिक पूजनीय हैं। क्या यह बात तुम नहीं जानती? (शुभे! तुम्हारे पिता और मेरे गुरु (शुक्राचार्यजी)-ने हम दोनोंको एक ही साथ महाराजकी सेवामें समर्पित किया है। तुम्हारे पति और पूजनीय महाराज ययाति भी मुझे पालन करने योग्य मानकर मेरा पोषण करते हैं।)॥ २०—२२॥

शौनकजी कहते हैं—शर्मिष्ठाका यह वचन सुनकर देवयानीने कहा—'राजन्! अब मैं यहाँ नहीं रहूँगी। आपने मेरा अत्यन्त अप्रिय किया है।' ऐसा कहकर तरुणी देवयानी आँखोंमें आँसू भरकर सहसा उठी और तुरन्त ही शुक्राचार्यजीके पास जानेके लिये वहाँसे चल दी। यह देख उस समय राजा ययाति व्यथित हो गये। वे व्याकुल हो देवयानीको समझाते हुए उसके पीछे-पीछे गये, किंतु वह नहीं लौटी। उसकी आँखें क्रोधसे लाल हो रही थीं। वह राजासे कुछ न बोलकर केवल नेत्रोंसे आँसू बहाये जाती थी। कुछ ही देरमें वह कवि-पुत्र शुक्राचार्यके पास पहुँची। पिताको देखते ही वह प्रणाम करके उनके सामने खड़ी हो गयी। तदनन्तर राजा ययातिने भी शुक्राचार्यकी वन्दना की॥ २३—२७॥

देवयानीने कहा—पिताजी! अधर्मने धर्मको जीत लिया। नीचकी उन्नति हुई और उच्चकी अवनति। वृषपर्वाकी पुत्री शर्मिष्ठा मुझे लाँघकर आगे बढ़ गयी। इन महाराज ययातिसे ही उसके तीन पुत्र हुए हैं, किंतु तात! मुझ भाग्यहीनाके दो ही पुत्र हुए हैं। यह मैं आपसे ठीक बता रही हूँ। भृगुश्रेष्ठ! ये महाराज धर्मज्ञके रूपमें प्रसिद्ध हैं, किंतु इन्होंने मर्यादाका उल्लङ्घन किया है। कवि-नन्दन! यह मैं आपसे यथार्थ कह रही हूँ॥ २८—३०॥

शुक्र उवाच

धर्मज्ञस्त्वं महाराज योऽधर्ममकृथाः प्रियम्।
तस्माज्जरा त्वामचिराद् धर्षयिष्यति दुर्जया॥ ३१

ययातिरुवाच

ऋतुं यो याच्यमानाया न ददाति पुमान् वृतः।
भ्रूणहेत्युच्यते ब्रह्मन् स चेह ब्रह्मवादिभिः॥ ३२

ऋतुकामां स्त्रियं यस्तु गम्यां रहसि याचितः।
नोपैति यो हि धर्मेण ब्रह्महेत्युच्यते बुधैः॥ ३३

इत्येतानि समीक्ष्याहं कारणानि भृगूद्वह।
अधर्मभयसंविग्नः शर्मिष्ठामुपजग्मिवान्॥ ३४

शुक्र उवाच

न त्वहं प्रत्यवेक्ष्यस्ते मदधीनोऽसि पार्थिव।
मिथ्याचरणधर्मेषु चौर्यं भवति नाहुष॥ ३५

शौनक उवाच

क्रोधेनोशनसा शप्तो ययातिर्नाहुषस्तदा।
पूर्वं वयः परित्यज्य जरां सद्योऽन्वपद्यत॥ ३६

ययातिरुवाच

अतृप्तो यौवनस्याहं देवयान्यां भृगूद्वह।
प्रसादं कुरु मे ब्रह्मञ्जरेयं मा विशेत माम्॥ ३७

शुक्र उवाच

नाहं मृषा वदाम्येतज्जरां प्राप्तोऽसि भूमिप।
जरां त्वेतां त्वमन्यस्मिन् संक्रामय यदीच्छसि॥ ३८

ययातिरुवाच

राज्यभाक् स भवेद् ब्रह्मन् पुण्यभाक् कीर्तिभाक् तथा।
यो दद्यान्मे वयः शुक्र तद् भवाननुमन्यताम्॥ ३९

शुक्राचार्यने (ययातिसे) कहा—महाराज! तुमने धर्मज्ञ होकर भी अधर्मको प्रिय मानकर उसका आचरण किया है। इसलिये जिसको जीतना कठिन है, वह वृद्धावस्था तुम्हें शीघ्र ही धर दबायेगी॥ ३१॥

ययाति बोले—भगवन्! दानवराजकी पुत्री मुझसे ऋतुदान माँग रही थी, अतः मैंने धर्मसम्मत मानकर यह कार्य किया, किसी दूसरे विचारसे नहीं। ब्रह्मन्! जो पुरुष न्याययुक्त ऋतुकी याचना करनेवाली स्त्रीको ऋतुदान नहीं देता, वह ब्रह्मवादी विद्वानोंद्वारा भ्रूण (गर्भ)-की हत्या करनेवाला कहा जाता है। जो न्यायसम्मत कामनासे युक्त गम्या स्त्रीके द्वारा एकान्तमें प्रार्थना करनेपर उसके साथ समागम नहीं करता, वह धर्मशास्त्रके विद्वानोंद्वारा गर्भ या ब्राह्मणकी हत्या करनेवाला बताया जाता है। (ब्रह्मन्! मेरा यह व्रत है कि मुझसे कोई जो भी वस्तु माँगे, उसे वह अवश्य दे दूँगा। आपके ही द्वारा मुझे सौंपी हुई शर्मिष्ठा इस जगत्‌में दूसरे किसी पुरुषको अपना पति बनाना नहीं चाहती थी; अतः उसकी इच्छा पूर्ण करना धर्म समझकर मैंने वैसा किया है। आप इसके लिये मुझे क्षमा करें।) भृगुश्रेष्ठ! इन्हीं सब कारणोंका विचार करके अधर्मके भयसे उद्विग्न हो मैं शर्मिष्ठाके पास गया था॥ ३२—३४॥

शुक्राचार्यने कहा—राजन्! तुम्हें इस विषयमें मेरे आदेशका भी ध्यान रखना चाहता था; क्योंकि तुम मेरे अधीन हो। नहुषनन्दन! धर्ममें मिथ्या आचरण करनेवाले पुरुषको चोरीका पाप लगता है॥ ३५॥

शौनकजी कहते हैं—क्रोधमें भरे हुए शुक्राचार्यके शाप देनेपर नहुष-पुत्र राजा ययाति उसी समय पूर्वावस्था (यौवन)-का परित्याग करके तत्काल बूढ़े हो गये॥ ३६॥

ययाति बोले—भृगुश्रेष्ठ! मैं देवयानीके साथ युवावस्थामें रहकर तृप्त नहीं हो सका हूँ, अतः ब्रह्मन्! मुझपर ऐसी कृपा कीजिये, जिससे यह बुढ़ापा मेरे शरीरमें प्रवेश न करे॥ ३७॥

शुक्राचार्यने कहा—भूमिपाल! मैं झूठ नहीं बोलता। बूढ़े तो तुम हो ही गये, किंतु तुम्हें इतनी सुविधा देता हूँ कि यदि चाहो तो किसी दूसरेसे जवानी लेकर इस बुढ़ापाको उसके शरीरमें डाल सकते हो॥ ३८॥

ययाति बोले—ब्रह्मन्! मेरा जो पुत्र अपनी युवावस्था मुझे दे, वही पुण्य और कीर्तिका भागी होनेके साथ ही मेरे राज्यका भी भागी हो। शुक्राचार्यजी! आप इसका अनुमोदन करें॥ ३९॥

शुक्र उवाच

संक्रामयिष्यसि जरां यथेष्टं नहुषात्मज।
मामनुध्याय तत्त्वेन न च पापमवाप्स्यसि॥ ४०
वयो दास्यति ते पुत्रो यः स राजा भविष्यति।
आयुष्मान् कीर्तिमांश्चैव बह्वपत्यस्तथैव च॥ ४१

शुक्राचार्यने कहा—नहुषनन्दन! तुम भक्तिभावसे मेरा चिन्तन करके अपनी वृद्धावस्थाका इच्छानुसार दूसरेके शरीरमें संचार कर सकोगे। उस दशामें तुम्हें पाप भी नहीं लगेगा। जो पुत्र तुम्हें (प्रसन्नतापूर्वक) अपनी युवावस्था देगा, वही राजा होगा। साथ ही दीर्घायु, यशस्वी तथा अनेक संतानोंसे युक्त होगा॥ ४०-४१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्वात्रिंशोऽध्यायः॥ ३२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिचरित नामक बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३२॥

तैंतीसवाँ अध्याय

ययातिका अपने यदु आदि पुत्रोंसे अपनी युवावस्था देकर वृद्धावस्था लेनेके लिये आग्रह और उनके अस्वीकार करनेपर उन्हें शाप देना, फिर पूरुको जरावस्था देकर उसकी युवावस्था लेना तथा उसे वर प्रदान करना

शौनक उवाच

जरां प्राप्य ययातिस्तु स्वपुरं प्राप्य चैव हि।
पुत्रं ज्येष्ठं वरिष्ठं च यदुमित्यब्रवीद् वचः॥ १

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! राजा ययाति बुढ़ापा लेकर वहाँसे अपने नगरमें आये और अपने ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र यदुसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

ययातिरुवाच

जरा बली च मां तात पलितानि च पर्यगुः।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने॥ २
त्वं यदो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह।
यौवनेन त्वदीयेन चरेयं विषयानहम्॥ ३
पूर्णे वर्षसहस्रे तु त्वदीयं यौवनं त्वहम्।
दत्त्वा सम्प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह॥ ४

ययातिने कहा—तात! कवि-पुत्र शुक्राचार्यके शापसे मुझे बुढ़ापेने घेर लिया, मेरे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयीं और बाल सफेद हो गये, किंतु मैं अभी जवानीके भोगोंसे तृप्त नहीं हुआ हूँ। यदो! तुम बुढ़ापेके साथ मेरे दोषको ले लो और मैं तुम्हारी जवानीके द्वारा विषयोंका उपभोग करूँ। एक हजार वर्ष पूरे होनेपर मैं पुनः तुम्हारी जवानी देकर बुढ़ापेके साथ अपना दोष वापस ले लूँगा॥ २—४॥

यदुरुवाच

सितश्मश्रुधरो दीनो जरसा शिथिलीकृतः।
बलीसंततगात्रश्च दुर्दर्शो दुर्बलः कृशः॥ ५
अशक्तः कार्यकरणे परिभूतः स यौवने।
सहोपजीविभिश्चैव तज्जरां नाभिकामये॥ ६
सन्ति ते बहवः पुत्रा मत्तः प्रियतरा नृप।
जरां ग्रहीतुं धर्मज्ञ पुत्रमन्यं वृणीष्व वै॥ ७

यदु बोले—महाराज! मैं उस बुढ़ापेको लेनेकी इच्छा नहीं करता, जिसके आनेपर दाढ़ी-मूँछके बाल सफेद हो जाते हैं, जीवनका आनन्द चला जाता है। वृद्धावस्था सर्वथा शिथिल कर देती है। सारे शरीरमें झुर्रियाँ पड़ जाती हैं और मनुष्य इतना दुर्बल तथा कृशकाय हो जाता है कि उसकी ओर देखते नहीं बनता। बुढ़ापेमें काम-काज करनेकी शक्ति नहीं रहती, युवतियाँ तथा जीविका पानेवाले सेवक भी तिरस्कार करते हैं, अतः मैं वृद्धावस्था नहीं लेना चाहता। धर्मज्ञ नरेश्वर! आपके बहुत-से पुत्र हैं, जो आपको मुझसे भी अधिक प्रिय हैं; अतः बुढ़ापा लेनेके लिये आप अपने किसी दूसरे पुत्रको चुन लीजिये॥ ५—७॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
पापान्मातुलसम्बन्धाद् दुष्प्रजा ते भविष्यति॥ ८
तुर्वसो प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह।
यौवनेन चरेयं वै विषयांस्तव पुत्रक॥ ९
पूर्णे वर्षसहस्रे तु पुनर्दास्यामि यौवनम्।
तथैव प्रतिपत्स्यामि पाप्मानं जरया सह॥ १०

ययातिने कहा—तात! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न (औरस पुत्र) होकर भी मुझे अपनी युवावस्था नहीं देते हो, इसलिये इस पापके कारण तुम्हारी संतान मामाके अनुचित सम्बन्धद्वारा उत्पन्न होकर दुष्प्रजा कहलायेगी। (अब उन्होंने तुर्वसुको बुलाकर कहा—) 'तुर्वसो! तुम बुढ़ापेके साथ मेरा दोष ले लो। बेटा! मैं तुम्हारी जवानीसे विषयोंका उपभोग करूँगा। एक हजार वर्ष पूर्ण होनेपर मैं तुम्हें जवानी लौटा दूँगा और बुढ़ापेसहित अपने दोषको वापस ले लूँगा'॥ ८—१०॥

तुर्वसुरुवाच

न कामये जरां तात कामभोगप्रणाशिनीम्।
बलरूपान्तकरणीं बुद्धिमानविनाशिनीम्॥ ११

तुर्वसु बोले—तात! काम-भोगका नाश करनेवाली वृद्धावस्था मुझे नहीं चाहिये। वह बल तथा रूपका अन्त कर देती है और बुद्धि एवं मान-प्रतिष्ठाका भी नाश करनेवाली है॥ ११॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तस्मात् प्रजासमुच्छेदं तुर्वसो तव यास्यति॥ १२
संकीर्णाचारधर्मेषु प्रतिलोमचरेषु च।
पिशिताशिषु लोकेषु नूनं राजा भविष्यसि॥ १३
गुरुदारप्रसक्तेषु तिर्यग्योनिरतेषु च।
पशुधर्मिषु म्लेच्छेषु पापेषु प्रभविष्यसि॥ १४

ययातिने कहा—तुर्वसो! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी मुझे अपनी युवावस्था नहीं देते हो, इसलिये तुम्हारी संतति नष्ट हो जायगी। मूढ़! जिनके आचार और धर्म वर्णसंकरोंके समान हैं, जो प्रतिलोम—संकर जातियोंमें गिने जाते हैं तथा जो कच्चा मांस खानेवाले एवं चाण्डाल आदिकी श्रेणीमें हैं, ऐसे (यवनादिसे अधिष्ठित आटट्टादि देशोंके) लोगोंके तुम राजा होगे। जो गुरु-पत्नियोंमें आसक्त हैं, जो पशु-पक्षी आदिका-सा आचरण करनेवाले हैं तथा जिनके सारे आचार-विचार भी पशुओंके समान हैं, तुम उन पापात्मा म्लेच्छोंके राजा होगे॥ १२—१४॥

शौनक उवाच

एवं स तुर्वसुं शप्त्वा ययातिः सुतमात्मनः।
शर्मिष्ठायाः सुतं ज्येष्ठं द्रुह्युं वचनमब्रवीत्॥ १५

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! राजा ययातिने इस प्रकार अपने पुत्र तुर्वसुको शाप देकर शर्मिष्ठाके ज्येष्ठ पुत्र द्रुह्युसे यह बात कही—॥ १५॥

ययातिरुवाच

द्रुह्यो त्वं प्रतिपद्यस्व वर्णरूपविनाशिनीम्।
जरां वर्षसहस्रं मे यौवनं स्वं प्रयच्छताम्॥ १६
पूर्णे वर्षसहस्रे तु ते प्रदास्यामि यौवनम्।
स्वं चादास्यामि भूयोऽहं पाप्मानं जरया सह॥ १७

ययातिने कहा—द्रुह्यो! कान्ति तथा रूपका नाश करनेवाली यह वृद्धावस्था तुम ले लो और एक हजार वर्षोंके लिये अपनी जवानी मुझे दे दो। हजार वर्ष पूर्ण हो जानेपर मैं पुनः तुम्हारी जवानी तुम्हें दे दूँगा और बुढ़ापेके साथ अपना दोष फिर ले लूँगा॥ १६-१७॥

द्रुह्युरुवाच

न राज्यं न रथं नाश्वं जीर्णो भुङ्क्ते न च स्त्रियम्।
न रागश्चास्य भवति तज्जरां ते न कामये॥ १८

द्रुह्यु बोले—पिताजी! बूढ़ा मनुष्य न तो राज्य-सुखका अनुभव कर सकता है, न घोड़े और रथपर ही चढ़ सकता है। वह स्त्रीका भी उपभोग नहीं कर सकता। उसके हृदयमें राग-प्रेम उत्पन्न ही नहीं होता; अतः मैं वृद्धावस्था नहीं लेना चाहता॥ १८॥

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
तद् द्रुह्यो वै प्रियः कामो न ते सम्पत्स्यते क्वचित्॥ १९

ययातिने कहा—द्रुह्यो! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी अपनी जवानी मुझे नहीं दे रहे हो, इसलिये तुम्हारा प्रिय मनोरथ कभी नहीं सिद्ध होगा।

नौरूपप्लवसंचारो यत्र नित्यं भविष्यति।
अराजभोजशब्दं त्वं तत्र प्राप्स्यसि सान्वयः॥ २०

ययातिरुवाच

अनो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह।
एकं वर्षसहस्रं तु चरेयं यौवनेन ते॥ २१

अनुरुवाच

जीर्णः शिशुरिवादत्तेऽकालेऽन्नमशुचिर्यथा।
न जुहोति च कालेऽग्निं तां जरां नाभिकामये॥ २२

ययातिरुवाच

यस्त्वं मे हृदयाज्जातो वयः स्वं न प्रयच्छसि।
जरादोषस्त्वयोक्तो यस्तस्मात् त्वं प्रतिपद्यसे॥ २३

प्रजाश्च यौवनं प्राप्ता विनश्यन्ति ह्यनो तव।
अग्निप्रस्कन्दनगतस्त्वं चाप्येवं भविष्यसि॥ २४॥

ययातिरुवाच

पूरो त्वं प्रतिपद्यस्व पाप्मानं जरया सह।
त्वं मे प्रियतरः पुत्रस्त्वं वरीयान् भविष्यसि॥ २५

जरा बली च मां तात पलितानि च पर्यगुः।
काव्यस्योशनसः शापान्न च तृप्तोऽस्मि यौवने॥ २६

किञ्चित्कालं चरेयं वै विषयान् वयसा तव।
पूर्णे वर्षसहस्रे तु प्रतिदास्यामि यौवनम्।
स्वं चैव प्रतिपत्स्येऽहं पाप्मानं जरया सह॥ २७

शौनक उवाच

एवमुक्तः प्रत्युवाच पूरुः पितरमञ्जसा।
यथात्थ त्वं महाराज तत् करिष्यामि ते वचः॥ २८

प्रतिपत्स्यामि ते राजन् पाप्मानं जरया सह।
गृहाण यौवनं मत्तश्चर कामान् यथेप्सितान्॥ २९

(जहाँ घोड़े जुते हुए उत्तम रथों, घोड़ों, हाथियों, पीठकों, पालकियों, गदहों, बकरों, बैलों और शिबिका आदिकी भी गति नहीं है) जहाँ प्रतिदिन (केवल) नावपर ही बैठकर घूमना-फिरना होगा, ऐसे (पञ्चनदके निचले) प्रदेशमें तुम अपनी संतानोंके साथ चले जाओगे और वहाँ तुम्हारे वंशके लोग राजा नहीं, भोज कहलायेंगे॥ १९-२०॥

तदनन्तर ययातिने अनुसे कहा—अनो! तुम बुढ़ापेके साथ मेरा दोष-पाप ले लो और मैं तुम्हारी जवानीके द्वारा एक हजार वर्षतक सुखसे चलते-फिरते आनन्द भोगूँगा॥ २१॥

अनु बोले—पिताजी! बूढ़ा मनुष्य बच्चोंकी तरह असमयमें भोजन करता है, अपवित्र रहता है तथा समयपर अग्निहोत्र आदि कर्म नहीं करता, अतः वैसी वृद्धावस्था-को मैं नहीं लेना चाहता॥ २२॥

ययातिने कहा—अनो! तुम मेरे हृदयसे उत्पन्न होकर भी अपनी युवावस्था मुझे नहीं दे रहे हो और बुढ़ापेके दोष बतला रहे हो, अतः तुम वृद्धावस्थाके समस्त दोषोंको प्राप्त करोगे और तुम्हारी संतान जवान होते ही मर जायगी तथा तुम भी बूढ़े-जैसे होकर अग्निहोत्रका त्याग कर दोगे॥ २३-२४॥

तत्पश्चात् ययातिने पूरुसे कहा—पूरो! तुम मेरे अत्यधिक प्रिय पुत्र हो। गुणोंमें तुम श्रेष्ठ होओगे। तात! मुझे बुढ़ापेने घेर लिया, सब अङ्गोंमें झुर्रियाँ पड़ गयीं और सिरके बाल सफेद हो गये। बुढ़ापेके ये सारे चिह्न मुझे एक ही साथ प्राप्त हुए हैं। कवि-पुत्र शुक्राचार्यके शापसे मेरी यह दशा हुई है; किंतु मैं जवानीके भोगोंसे अभी तृप्त नहीं हुआ हूँ। पूरो! (तुम बुढ़ापेके साथ मेरे दोष-पापको ले लो और) मैं तुम्हारी युवावस्था लेकर उसके द्वारा कुछ कालतक विषयोंका उपभोग करूँगा। एक हजार वर्ष पूरे होनेपर मैं तुम्हें पुनः तुम्हारी जवानी दे दूँगा और बुढ़ापेके साथ अपना दोष ले लूँगा॥ २५—२७॥

शौनकजी कहते हैं—ययातिके ऐसा कहनेपर पूरुने अपने पितासे विनयपूर्वक कहा—'महाराज! आप मुझे जैसा आदेश दे रहे हैं, आपके उस वचनका मैं पालन करूँगा। (गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन मनुष्योंके लिये पुण्य, स्वर्ग तथा आयु प्रदान करनेवाला है। गुरुके ही प्रसादसे इन्द्रने तीनों लोकोंका शासन किया है। गुरुस्वरूप पिताकी अनुमति प्राप्त करके मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओंको पा लेता है।) राजन्! मैं बुढ़ापेके साथ आपका दोष ग्रहण कर लूँगा। आप मुझसे जवानी ले लें और इच्छानुसार विषयोंका उपभोग करें।

जरयाहं प्रतिच्छन्नो वयोरूपधरस्तव।
यौवनं भवते दत्त्वा चरिष्यामि यथेच्छया॥ ३०

मैं वृद्धावस्थासे आच्छादित हो आपकी आयु एवं रूप धारण करके रहूँगा और आपको जवानी देकर आप मेरे लिये जो आज्ञा देंगे, उसका पालन करूँगा॥ २८—३०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययातिचरित नामक तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३३॥

चौंतीसवाँ अध्याय

राजा ययातिका विषय-सेवन और वैराग्य तथा पूरुका राज्याभिषेक करके वनमें जाना

शौनक उवाच

एवमुक्तः स राजर्षिः काव्यं स्मृत्वा महाव्रतम्।
संक्रामयामास जरां तदा पुत्रे महात्मनि॥ १

पौरवेणाथ वयसा ययातिर्नहुषात्मजः।
प्रीतियुक्तो नरश्रेष्ठश्चचार विषयान् प्रियान्॥ २

यथाकामं यथोत्साहं यथाकालं यथासुखम्।
धर्माविरुद्धान् राजेन्द्रो यथार्हति स एव हि॥ ३

देवानतर्पयद् यज्ञैः श्राद्धैरपि पितामहान्।
दीनाननुग्रहैरिष्टैः कामैश्च द्विजसत्तमान्॥ ४

अतिथीनन्नपानैश्च विशश्च प्रतिपालनैः।
अनृशंस्येन शूद्रांश्च दस्यून् निग्रहणेन च॥ ५

धर्मेण च प्रजाः सर्वा यथावदनुरञ्जयन्।
ययातिः पालयामास साक्षादिन्द्र इवापरः॥ ६

स राजा सिंहविक्रान्तो युवा विषयगोचरः।
अविरोधेन धर्मस्य चचार सुखमुत्तमम्॥ ७

स सम्प्राप्य शुभान् कामांस्तृप्तः खिन्नश्च पार्थिवः।
कालं वर्षसहस्रान्तं सस्मार मनुजाधिपः॥ ८

परिचिन्त्य स कालज्ञः कलाः काष्ठाश्च वीर्यवान्।
पूर्णं मत्वा ततः कालं पूरुं पुत्रमुवाच ह॥ ९

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥ १०

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! पूरुके ऐसा कहनेपर राजर्षि ययातिने महान् व्रतपरायण शुक्राचार्यका स्मरण कर अपने महात्मा पुत्र पूरुके शरीरमें अपनी वृद्धावस्थाका संक्रमण कराया (और उसकी युवावस्था स्वयं ले ली)। नहुषके पुत्र नरश्रेष्ठ ययातिने पूरुकी युवावस्थासे अत्यन्त प्रसन्न होकर अभीष्ट विषय-भोगोंका सेवन आरम्भ किया। उन राजेन्द्रकी जैसी कामना होती, जैसा उत्साह होता और जैसा समय होता, उसके अनुसार वे सुखपूर्वक धर्मानुकूल भोगोंका उपभोग करते थे। वास्तवमें उसके योग्य वे ही थे। उन्होंने यज्ञोंद्वारा देवताओंको, श्राद्धोंसे पितरोंको, इच्छाके अनुसार अनुग्रह करके दीन-दुःखियोंको और मुँहमाँगी भोग्य वस्तुएँ देकर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको तृप्त किया। वे अतिथियोंको अन्न और जल देकर, वैश्योंको उनके धन-वैभवकी रक्षा करके, शूद्रोंको दयाभावसे, लुटेरोंको कैद करके तथा सम्पूर्ण प्रजाको धर्मपूर्वक संरक्षणद्वारा प्रसन्न रखते थे। इस प्रकार साक्षात् दूसरे इन्द्रके समान राजा ययातिने समस्त प्रजाका पालन किया। वे राजा सिंहके समान पराक्रमी और नवयुवक थे। सम्पूर्ण विषय उनके अधीन थे और वे धर्मका विरोध न करते हुए उत्तम सुखका उपभोग करते थे। वे नरेश शुभ भोगोंको प्राप्त करके पहले तो तृप्त एवं आनन्दित होते थे, परंतु जब यह बात ध्यानमें आती कि ये हजार वर्ष भी पूरे हो जायँगे, तब उन्हें बड़ा खेद होता था। कालतत्त्वको जाननेवाले पराक्रमी राजा ययाति एक-एक कला और काष्ठाकी गिनती कर एक हजार वर्षके समयकी अवधिका स्मरण रखते थे। जब उन्होंने देखा कि अब समय पूरा हो गया, तब वे अपने पुत्र पूरुके पास आकर बोले—'शत्रुदमन पुत्र! मैंने तुम्हारी जवानीके द्वारा अपनी रुचि, उत्साह और समयके अनुसार विषयोंका सेवन किया; परंतु विषयोंकी कामना उन विषयोंके उपभोगसे कभी शान्त नहीं होती, अपितु घीकी आहुति पड़नेसे अग्निकी भाँति वह अधिकाधिक बढ़ती ही जाती है।

यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति मत्वा शमं व्रजेत्॥ ११

यथासुखं यथोत्साहं यथाकाममरिंदम।
सेविता विषयाः पुत्र यौवनेन मया तव॥ १२

पूरो प्रीतोऽस्मि भद्रं ते गृहाणेदं स्वयौवनम्।
राज्यं चैव गृहाणेदं त्वं हि मे प्रियकृत् सुतः॥ १३

इस पृथ्वीपर जितने भी धान, जौ, सुवर्ण, पशु और स्त्रियाँ हैं, वे सब एक मनुष्यके लिये भी पर्याप्त नहीं हैं, ऐसा मानकर शान्ति धारण कर लेना चाहिये। पूरो! तुम्हारा भला हो, मैं प्रसन्न हूँ। तुम अपनी यह जवानी ले लो। साथ ही यह राज्य भी अपने अधिकारमें कर लो; क्योंकि तुम मेरा प्रिय करनेवाले पुत्र हो'॥ १—१३॥

शौनक उवाच

प्रतिपेदे जरां राजा ययातिर्नाहुषस्तदा।
यौवनं प्रतिपेदे स पूरुः स्वं पुनरात्मनः॥ १४

अभिषेक्तुकामं च नृपं पूरुं पुत्रं कनीयसम्।
ब्राह्मणप्रमुखा वर्णा इदं वचनमब्रुवन्॥ १५

कथं शुक्रस्य दौहित्रं देवयान्याः सुतं प्रभो।
ज्येष्ठं यदुमतिक्रम्य राज्यं पूरोः प्रदास्यसि॥ १६

ज्येष्ठो यदुस्तव सुतस्तुर्वसुस्तदनन्तरम्।
शर्मिष्ठायाः सुतो द्रुह्युस्तथानुः पूरुरेव च॥ १७

कथं ज्येष्ठमतिक्रम्य कनीयान् राज्यमर्हति।
एतत् सम्बोधयामस्त्वां स्वधर्ममनुपालय॥ १८

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! उस समय नहुषनन्दन राजा ययातिने अपनी वृद्धावस्था वापस ले ली और पूरुने पुनः अपनी युवावस्था प्राप्त कर ली। जब ब्राह्मण आदि वर्णोंने देखा कि महाराज ययाति अपने छोटे पुत्र पूरुको राजाके पदपर अभिषिक्त करना चाहते हैं, तब उनके पास आकर इस प्रकार बोले—'प्रभो! शुक्राचार्यके नाती और देवयानीके ज्येष्ठ पुत्र यदुके होते हुए उन्हें लाँघकर आप पूरुको राज्य क्यों देते हैं? यदु आपके ज्येष्ठ पुत्र हैं। उनके बाद तुर्वसु उत्पन्न हुए। तदनन्तर शर्मिष्ठाके पुत्र क्रमशः द्रुह्यु, अनु और पूरु हैं। ज्येष्ठ पुत्रोंका उल्लङ्घन करके छोटा पुत्र राज्यका अधिकारी कैसे हो सकता है? हम आपको इस बातका स्मरण दिला रहे हैं। आप धर्मका पालन कीजिये'॥ १४—१८॥

ययातिरुवाच

ब्राह्मणप्रमुखा वर्णाः सर्वे शृण्वन्तु मे वचः।
ज्येष्ठं प्रति यतो राज्यं न देयं मे कथंचन॥ १९

मम ज्येष्ठेन यदुना नियोगो नानुपालितः।
प्रतिकूलः पितुर्यश्च न स पुत्रः सतां मतः॥ २०

मातापित्रोर्वचनकृद्धितः पथ्यश्च यः सुतः।
स पुत्रः पुत्रवद् यश्च वर्तते पितृमातृषु॥ २१

यदुनाहमवज्ञातस्तथा तुर्वसुनापि वा।
द्रुह्युणा चानुना चैव मय्यवज्ञा कृता भृशम्॥ २२

पूरुणा मे कृतं वाक्यं मानितश्च विशेषतः।
कनीयान् मम दायादो जरा येन धृता मम॥ २३

मम कामः स च कृतः पूरुणा पुत्ररूपिणा।
शुक्रेण च वरो दत्तः काव्येनोशनसा स्वयम्॥ २४

पुत्रो यस्त्वानुवर्तेत स राजा पृथिवीपतिः।
भवन्तः प्रतिजानन्तु पूरुं राज्येऽभिषिच्यताम्॥ २५

ययातिने कहा—ब्राह्मण आदि सब वर्णके लोग मेरी बात सुनें, मुझे ज्येष्ठ पुत्रको किसी तरह राज्य नहीं देना है। मेरे ज्येष्ठ पुत्र यदुने मेरी आज्ञाका पालन नहीं किया है। जो पिताके प्रतिकूल हो, वह सत्पुरुषोंकी दृष्टिमें पुत्र नहीं माना गया है। जो माता और पिताकी आज्ञा मानता है, उनका हित चाहता है, उनके अनुकूल चलता है तथा माता-पिताके प्रति पुत्रोचित बर्ताव करता है, वही वास्तवमें पुत्र है। यदुने मेरी अवहेलना की है, तुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनुने भी मेरा बड़ा तिरस्कार किया है। (और) पूरुने मेरी आज्ञाका पालन किया, मेरी बातको अधिक आदर दिया है, इसीने मेरा बुढ़ापा ले रखा था; अतः मेरा यह छोटा पुत्र ही वास्तवमें मेरे राज्य और धनको पानेका अधिकारी है। पूरुने पुत्ररूप होकर मेरी कामनाएँ पूर्ण की हैं। स्वयं शुक्राचार्यने मुझे वर दिया है कि 'जो पुत्र तुम्हारा अनुसरण करे वही राजा एवं समस्त भूमण्डलका पालक हो।' अतः मैं आपलोगोंसे विनयपूर्ण आग्रह करता हूँ कि पूरुको ही राज्यपर अभिषिक्त करें॥ १९—२५॥

प्रकृतय ऊचुः

यः पुत्रो गुणसम्पन्नो मातापित्रोर्हितः सदा।
सर्वं सोऽर्हति कल्याणं कनीयानपि स प्रभुः॥ २६

अहं पूरोरिदं राज्यं यः प्रियः प्रियकृत् तव।
वरदानेन शुक्रस्य न शक्यं वक्तुमुत्तरम्॥ २७

शौनक उवाच

पौरजानपदैस्तुष्टैरित्युक्तो नाहुषस्तदा।
अभिषिच्य ततः पूरुं राज्ये स्वसुतमात्मजम्॥ २८

दत्त्वा च पूरवे राज्यं वनवासाय दीक्षितः।
पुरात् स निर्ययौ राजा ब्राह्मणैस्तापसैः सह॥ २९

यदोस्तु यादवा जातास्तुर्वसोर्यवनाः सुताः।
द्रुह्योश्चैव सुता भोजा अनोस्तु म्लेच्छजातयः॥ ३०

पूरोस्तु पौरवो वंशो यत्र जातोऽसि पार्थिव।
इदं वर्षसहस्रात् तु राज्यं कुरु कुलागतम्॥ ३१

प्रजावर्गके लोग बोले—जो पुत्र गुणवान् और सदा माता-पिताका हितैषी हो, वह छोटा होनेपर भी श्रेष्ठतम है। वही सम्पूर्ण कल्याणका भागी होने योग्य है। पूरु आपका प्रिय करनेवाले पुत्र हैं, अतः शुक्राचार्यके वरदानके अनुसार ये ही इस राज्यको पानेके अधिकारी हैं। इस निश्चयके विरुद्ध अब कुछ भी उत्तर नहीं दिया जा सकता॥ २६-२७॥

शौनकजी कहते हैं—नगर और राज्यके लोगोंने संतुष्ट होकर जब इस प्रकार कहा, तब नहुषनन्दन ययातिने अपने पुत्र पूरुको ही अपने राज्यपर अभिषिक्त किया। इस प्रकार पूरुको राज्य दे वनवासकी दीक्षा लेकर राजा ययाति तपस्वी ब्राह्मणोंके साथ नगरसे बाहर निकल गये। यदुसे यादव क्षत्रिय उत्पन्न हुए, तुर्वसुकी संतान (सीमान्तसे लेकर यूनानतकके निवासी) यवन कहलायी, द्रुह्युके पुत्र भोज नामसे प्रसिद्ध हुए और अनुसे म्लेच्छ जातियाँ उत्पन्न हुईं। राजन्! पूरुसे पौरव वंश चला, जिसमें तुम उत्पन्न हुए हो। हजारों वर्षोंसे यह राज्य कुरुकुलमें सम्मिलित हो गया है, अर्थात् यह कुरुवंश नामसे प्रसिद्ध हो गया है॥ २८—३१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ययातिचरिते चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३४॥

पैंतीसवाँ अध्याय

वनमें राजा ययातिकी तपस्या और उन्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति

शौनक उवाच

एवं स नाहुषो राजा ययातिः पुत्रमीप्सितम्।
राज्येऽभिषिच्य मुदितो वानप्रस्थोऽभवन्मुनिः॥ १
उषित्वा वनवासं स ब्राह्मणैः सह संश्रितः।
फलमूलाशनो दान्तो यथा स्वर्गमितो गतः॥ २
स गतः स्वर्गवासं तु न्यवसन्मुदितः सुखी।
कालस्य नातिमहतः पुनः शक्रेण पातितः॥ ३
विवशः प्रच्युतः स्वर्गादप्राप्तो मेदिनीतलम्।
स्थितश्चासीदन्तरिक्षे स तदेति श्रुतं मया॥ ४
तत एव पुनश्चापि गतः स्वर्गमिति श्रुतिः।
राज्ञा वसुमता सार्धमष्टकेन च वीर्यवान्।
प्रतर्दनेन शिबिना समेत्य किल संसदि॥ ५

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! इस प्रकार नहुषनन्दन राजा ययाति अपने प्रिय पुत्र पूरुका राज्याभिषेक करके प्रसन्नतापूर्वक वानप्रस्थ मुनि हो गये। वे वनमें ब्राह्मणोंके साथ रहकर कठोर व्रतका पालन करते हुए फल-मूलका आहार तथा मन और इन्द्रियोंका संयम करते थे, इससे वे स्वर्गलोकमें गये। स्वर्गलोकमें जाकर वे बड़ी प्रसन्नताके साथ सुखपूर्वक रहने लगे और बहुत कालके बाद इन्द्रद्वारा वे पुनः स्वर्गसे नीचे गिरा दिये गये। स्वर्गसे भ्रष्ट हो पृथ्वीपर गिरते समय वे भूतलतक नहीं पहुँचे, आकाशमें ही स्थिर हो गये, ऐसा मैंने सुना है। फिर यह भी सुननेमें आया है कि वे पराक्रमी राजा ययाति मुनिसमाजमें राजा वसुमान्, अष्टक, प्रतर्दन और शिबिसे मिलकर पुनः वहींसे साधु पुरुषोंके सङ्गके प्रभावसे स्वर्गलोकमें चले गये॥ १—५॥

शतानीक उवाच

कर्मणा केन स दिवं पुनः प्राप्तो महीपतिः।
कथमिन्द्रेण भगवन् पातितो मेदिनीतले॥ ६
सर्वमेतदशेषेण श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
कथ्यमानं त्वया विप्र देवर्षिगणसंनिधौ॥ ७
देवराजसमो ह्यासीद् ययातिः पृथिवीपतिः।
वर्धनः कुरुवंशस्य विभावसुसमद्युतिः॥ ८
तस्य विस्तीर्णयशसः सत्यकीर्तेर्महात्मनः।
श्रोतुमिच्छामि देवेश दिवि चेह च सर्वशः॥ ९

शतानीकने पूछा—भगवन्! किस कर्मसे वे भूपाल पुनः स्वर्गमें पहुँचे थे? तथा इन्द्रने उन्हें भूतलपर क्यों ढकेल दिया था? विप्रवर! मैं ये सारी बातें पूर्णरूपसे यथावत् सुनना चाहता हूँ। इन ब्रह्मर्षियोंके समीप आप इस प्रसंगका वर्णन करें। कुरुवंशकी वृद्धि करनेवाले अग्निके समान तेजस्वी राजा ययाति देवराज इन्द्रके समान थे। उनका यश चारों ओर फैला था। देवेश! मैं उन सत्यकीर्ति महात्मा ययातिका चरित्र, जो इहलोक और स्वर्गलोकमें सर्वत्र प्रसिद्ध है, सुनना चाहता हूँ॥ ६—९॥

शौनक उवाच

हन्त ते कथयिष्यामि ययातेरुत्तमां कथाम्।
दिवि चेह च पुण्यार्थां सर्वपापप्रणाशिनीम्॥ १०
ययातिर्नाहुषो राजा पूरुं पुत्रं कनीयसम्।
राज्येऽभिषिच्य मुदितः प्रवव्राज वनं तदा॥ ११
अन्तेषु स विनिक्षिप्य पुत्रान् यदुपुरोगमान्।
फलमूलाशनो राजा वनेऽसौ न्यवसच्चिरम्॥ १२
स जितात्मा जितक्रोधस्तर्पयन् पितृदेवताः।
अग्नींश्च विधिवज्जुह्वन् वानप्रस्थविधानतः॥ १३
अतिथीन् पूजयन् नित्यं वन्येन हविषा विभुः।
शिलोञ्छवृत्तिमास्थाय शेषान्नकृतभोजनः॥ १४
पूर्णं सहस्रं वर्षाणामेवंवृत्तिरभून्नृपः।
अम्बुभक्षः स चाब्दांस्त्रीनासीन्नियतवाङ्मनाः॥ १५
ततस्तु वायुभक्षोऽभूत् संवत्सरमतन्द्रितः।
पञ्चाग्निमध्ये च तपस्तेपे संवत्सरं पुनः॥ १६
एकपादस्थितश्चासीत् षण्मासाननिलाशनः।
पुण्यकीर्तिस्ततः स्वर्गं जगामावृत्य रोदसी॥ १७

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! ययातिकी उत्तम कथा इहलोक और स्वर्गलोकमें भी पुण्यदायक है। यह सब पापोंका नाश करनेवाली है, मैं तुमसे उसका वर्णन करता हूँ। नहुष-पुत्र महाराज ययातिने अपने छोटे पुत्र पूरुको राज्यपर अभिषिक्त करके यदु आदि अन्य पुत्रोंको सीमान्त (किनारेके देशों)-में रख दिया। फिर बड़ी प्रसन्नताके साथ वे वनमें चले गये। वहाँ फल-मूलका आहार करते हुए उन्होंने दीर्घकालतक निवास किया। उन्होंने अपने मनको शुद्ध करके क्रोधपर विजय पायी और प्रतिदिन देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करते हुए वानप्रस्थाश्रमकी विधिसे शास्त्रीय विधानके अनुसार अग्निहोत्र प्रारम्भ किया। वे राजा शिलोञ्छवृत्तिका आश्रय ले यज्ञशेष अन्नका भोजन करते थे। भोजनसे पूर्व वनमें उपलब्ध होनेवाले फल, मूल आदि हविष्यके द्वारा अतिथियोंका आदर-सत्कार करते थे। राजाको इसी वृत्तिसे रहते हुए पूरे एक हजार वर्ष बीत गये। उन्होंने मन और वाणीपर संयम करके तीन वर्षोंतक केवल जलका आहार किया। तत्पश्चात् वे आलस्यरहित हो एक वर्षतक केवल वायु पीकर रहे। फिर एक वर्षतक पाँच अग्नियोंके बीच बैठकर तपस्या की। इसके बाद छः महीनेतक हवा पीकर वे एक पैरसे खड़े रहे। तदनन्तर पुण्यकीर्ति महाराज ययाति पृथ्वी और आकाशमें अपना यश फैलाकर स्वर्गलोकमें चले गये॥ १०—१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥ ३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३५॥

छत्तीसवाँ अध्याय

इन्द्रके पूछनेपर ययातिका अपने पुत्र पूरुको दिये हुए उपदेशकी चर्चा करना

शौनक उवाच

स्वर्गतस्तु स राजेन्द्रो न्यवसद् देवसद्मनि।
पूजितस्त्रिदशैः साध्यैर्मरुद्भिर्वसुभिस्तथा॥ १
देवलोकाद् ब्रह्मलोकं स चरन् पुण्यकृद् वशी।
अवसत् पृथिवीपालो दीर्घकालमिति श्रुतिः॥ २
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठो ययातिः शक्रमागतः।
कथान्ते तत्र शक्रेण पृष्टः स पृथिवीपतिः॥ ३

शक्र उवाच

यदा स पूरुस्तव रूपेण राज-
ञ्जरां गृहीत्वा प्रचचार लोके।
तदा राज्यं सम्प्रदायैवमस्मै
त्वया किमुक्तः कथयेह सत्यम्॥ ४

ययातिरुवाच

प्रकृत्यनुमते पूरुं राज्ये कृत्वेदमब्रुवम्।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कृत्स्नोऽयं विषयस्तव।
मध्ये पृथिव्यास्त्वं राजा भ्रातरोऽन्तेऽधिपास्तव॥ ५
अक्रोधनः क्रोधनेभ्यो विशिष्ट-
स्तथा तितिक्षुरतितिक्षोर्विशिष्टः।
अमानुषेभ्यो मानुषश्च प्रधानो
विद्वांस्तथैवाविदुषः प्रधानः॥ ६
आक्रोश्यमानो नाक्रोशेन्मन्युमेव तितिक्षति।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति॥ ७
नारुंतुदः स्यान्न नृशंसवादी
न हीनतः परमभ्याददीत।
ययास्य वाचा पर उद्विजेत
न तां वदेद् रुशतीं पापलौल्याम्॥ ८

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! स्वर्गलोकमें जाकर महाराज ययाति देव-भवनमें निवास करने लगे। वहाँ देवताओं, साध्यगणों, मरुद्गणों तथा वसुओंने उनका बड़ा स्वागत-सत्कार किया। पुण्यात्मा तथा जितेन्द्रिय राजा वहाँ देवलोकसे ब्रह्मलोकतक भ्रमण करते हुए दीर्घकालतक रहे—ऐसी पौराणिक परम्परा है। एक दिन नृपश्रेष्ठ ययाति देवराज इन्द्रके पास आये। वार्तालापके अन्तमें इन्द्रने राजा ययातिसे इस प्रकार प्रश्न किया॥ १—३॥

इन्द्रने पूछा—राजन्! जिस समय पूरु आपसे वृद्धावस्था लेकर आपके स्वरूपसे इस पृथ्वीपर विचरण करने लगा, सत्य कहिये, उस समय राज्य देकर आपने उसको क्या आदेश दिया था?॥ ४॥

ययातिने कहा—देवराज! मैंने प्रजाओंकी अनुमतिसे पूरुको राज्याभिषिक्त करके उससे यह कहा था कि 'बेटा! गङ्गा और यमुनाके बीचका यह सारा प्रदेश तुम्हारे अधिकारमें रहेगा। यह पृथ्वीका मध्य भाग है, इसके तुम राजा होओगे और तुम्हारे भाई सीमान्त देशोंके अधिपति होंगे।' देवेन्द्र! (इसके बाद मैंने यह उपदेश दिया कि मनुष्यको चाहिये कि वह दीनता, शठता और क्रोध न करे। कुटिलता, मात्सर्य और वैर कहीं न करे। माता, पिता, विद्वान्, तपस्वी तथा क्षमाशील पुरुषका बुद्धिमान् मनुष्य कभी अपमान न करे। शक्तिशाली पुरुष सदा क्षमा करता है। शक्तिहीन मनुष्य सदा क्रोध करता है। दुष्ट मानव साधु पुरुषसे और दुर्बल अधिक बलवान्से द्वेष करता है। कुरूप मनुष्य रूपवान्से, निर्धन धनवान्से, अकर्मण्य कर्मनिष्ठसे और अधार्मिक धर्मात्मासे द्वेष करते हैं। इसी प्रकार गुणहीन मनुष्य गुणवान्से डाह रखता है। इन्द्र! यह कलिका लक्षण है।) क्रोध करनेवालोंसे वह पुरुष श्रेष्ठ है जो कभी क्रोध नहीं करता। इसी प्रकार असहनशीलसे सहनशील उत्तम है, मनुष्येतर प्राणियोंसे मनुष्य श्रेष्ठ है और मूर्खोंसे विद्वान् उत्तम है। यदि कोई किसीकी निन्दा करता या उसे गाली देता है तो वह भी बदलेमें निन्दा या गाली-गलौज न करे; क्योंकि जो गाली या निन्दा सह लेता है, उस पुरुषका आन्तरिक दुःख ही गाली देनेवाले या अपमान करनेवालेको जला डालता है। साथ ही उसके पुण्यको भी वह ले लेता है। क्रोधवश किसीके मर्म-स्थानमें चोट न पहुँचाये (ऐसा बर्ताव न करे, जिससे किसीको मार्मिक पीड़ा हो)।

अरुंतुदं पुरुषं तीव्रवाचं
वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां
मुखे निबद्धां निर्ऋतिं वहन्तम्॥ ९
सद्भिः पुरस्तादभिपूजितः स्यात्
सद्भिस्तथा पृष्ठतो रक्षितः स्यात्।
सदासतामतिवादांस्तितिक्षेत्
सतां वृत्तं पालयन् साधुवृत्तः॥ १०
वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य वा मर्मसु ते पतन्ति
तान् पण्डितो नावसृजेत् परेषु॥ ११
नास्तीदृशं संवननं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
यथा मैत्री च लोकेषु दानं च मधुरा च वाक्॥ १२
तस्मात् सान्त्वं सदा वाच्यं न वाच्यं परुषं क्वचित्।
पूज्यान् सम्पूजयेद् दद्यान्नाभिशापं कदाचन॥ १३

किसीके प्रति कठोर बात भी मुँहसे न निकाले, अनुचित उपायसे शत्रुको भी वशमें न करे। जो जीको जलानेवाली हो, जिससे दूसरेको उद्वेग होता हो ऐसी बात मुँहसे न बोले; क्योंकि पापीलोग ही ऐसी बातें बोला करते हैं। जो स्वभावका कठोर हो, दूसरोंके मर्ममें चोट पहुँचाता हो, तीखी बातें बोलता हो और कठोर वचनरूपी काँटोंसे दूसरे मनुष्यको पीड़ा देता हो, उसे अत्यन्त लक्ष्मीहीन (दरिद्र या अभागा) समझे। उसको देखना भी बुरा है; क्योंकि वह कड़वी बोलीके रूपमें अपने मुँहमें बँधी हुई एक पिशाचिनीको ढो रहा है। (अपना बर्ताव और व्यवहार ऐसा रखे, जिससे) साधु पुरुष सामने तो सत्कार करें ही, पीठ-पीछे भी उनके द्वारा अपनी रक्षा हो। दुष्ट लोगोंकी कही हुई अनुचित बातें सदा सह लेनी चाहिये तथा श्रेष्ठ पुरुषोंके सदाचारका आश्रय लेकर साधु पुरुषोंके व्यवहारको ही अपनाना चाहिये। दुष्ट मनुष्योंके मुखसे कटुवचनरूपी बाण सदा छूटते रहते हैं, जिनसे आहत होकर मनुष्य रात-दिन शोक और चिन्तामें डूबा रहता है। वे वाग्बाण दूसरोंके मर्मस्थानोंपर ही चोट करते हैं; अतः विद्वान् पुरुष दूसरेके प्रति ऐसी कठोर वाणीका प्रयोग न करे। सभी प्राणियोंके प्रति दया और मैत्रीका बर्ताव, दान और सबके प्रति मधुर वाणीका प्रयोग—तीनों लोकोंमें इनके समान कोई वशीकरण नहीं है। इसलिये कभी कठोर वचन न बोले। सदा सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन ही बोले। पूजनीय पुरुषोंका पूजन (आदर-सत्कार) करे। दूसरोंको दान दे और स्वयं कभी किसीसे कुछ न माँगे॥ ५—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसंगमें ययाति-चरित्र-वर्णन नामक छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३६॥



सैंतीसवाँ अध्याय

ययातिका स्वर्गसे पतन और अष्टकका उनसे प्रश्न करना

इन्द्र उवाच

सर्वाणि कार्याणि समाप्य राजन्
गृहान् परित्यज्य वनं गतोऽसि।
तत् त्वां पृच्छामि नहुषस्य पुत्र
केनासि तुल्यस्तपसा ययाते॥ १

ययातिरुवाच

नाहं देवमनुष्येषु न गन्धर्वमहर्षिषु।
आत्मनस्तपसा तुल्यं कंचित् पश्यामि वासव॥ २

इन्द्र उवाच

यदावमंस्थाः सदृशः श्रेयसश्च
पापीयसश्चाविदितप्रभावः।
तस्माल्लोका ह्यन्तवन्तस्तवेमे
क्षीणे पुण्ये पतितोऽस्यद्य राजन्॥ ३

ययातिरुवाच

सुरर्षिगन्धर्वनरावमानात्
क्षयं गता मे यदि शक्र लोकाः।
इच्छाम्यहं सुरलोकाद् विहीनः
सतां मध्ये पतितुं देवराज॥ ४

इन्द्र उवाच

सतां सकाशे पतितोऽसि राजं-
श्च्युतः प्रतिष्ठां यत्र लब्धासि भूयः।
एवं विदित्वा तु पुनर्ययाते
न तेऽवमान्याः सदृशः श्रेयसे च॥ ५

शौनक उवाच

ततः पपातामरराजजुष्टात्
पुण्याल्लोकात् पतमानं ययातिम्।
सम्प्रेक्ष्य राजर्षिवरोऽष्टकस्त-
मुवाच सद्धर्मविधानगोप्ता॥ ६

अष्टक उवाच

कस्त्वं युवा वासवतुल्यरूपः
स्वतेजसा दीप्यमानो यथाग्निः।
पतस्युदीर्णाम्बुधरप्रकाशः
खे खेचराणां प्रवरो यथार्कः॥ ७

इन्द्रने कहा—राजन्! आप सम्पूर्ण कर्मोंको समाप्त करके घर छोड़कर वनमें चले गये थे; अतः नहुषपुत्र ययाते! मैं आपसे पूछता हूँ कि आप तपस्यामें किसके समान हैं?॥ १॥

ययातिने कहा—इन्द्र! मैं न तो देवताओं एवं मनुष्योंमें तथा न गन्धर्वों और महर्षियोंमें ही किसीको ऐसा देख रहा हूँ, जो तपस्यामें मेरे समान हो (अर्थात् मैं तपमें अद्वितीय हूँ)॥ २॥

इन्द्र बोले—राजन्! आपने अपने समान, अपने-से बड़े और छोटे लोगोंका प्रभाव न जानकर सबका तिरस्कार किया है, अतः आपके इन पुण्यलोकोंमें रहनेकी अवधि समाप्त हो गयी; क्योंकि (दूसरोंकी निन्दा करनेके कारण) आपका पुण्य क्षीण हो गया, इसलिये अब आप यहाँसे नीचे गिरेंगे॥ ३॥

ययातिने कहा—देवराज इन्द्र! देवता, ऋषि, गन्धर्व और मनुष्य आदिका अपमान करनेके कारण यदि मेरे पुण्यलोक क्षीण हो गये हैं तो इन्द्रलोकसे भ्रष्ट होकर मैं साधु पुरुषोंके बीचमें गिरनेकी इच्छा करता हूँ॥ ४॥

इन्द्र बोले—राजन् ययाति! आप यहाँसे च्युत होकर साधु पुरुषोंके ही समीप गिरेंगे और वहाँ अपनी खोयी हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त कर लेंगे; किंतु यह सब जानकर आप फिर (आगे) कभी अपनी बराबरीवाले तथा अपनेसे बड़े लोगोंका अपमान मत कीजियेगा॥ ५॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर देवराज इन्द्रके सेवन करनेयोग्य पुण्यलोकोंका परित्याग कर राजा ययाति नीचे गिरने लगे। उस समय राजर्षियोंमें श्रेष्ठ एवं उत्तम धर्मविधिके पालक अष्टकने उन्हें गिरते देखा। (तब) उन्होंने उन (ययाति)-से (इस प्रकार) कहा॥ ६॥

अष्टकने पूछा—'इन्द्रके समान सुन्दर रूपवाले तरुण पुरुष आप कौन हैं? आप अपने तेजसे अग्निकी भाँति देदीप्यमान हो रहे हैं। मेघरूपी घने अन्धकारवाले आकाशसे आकाशचारी ग्रहोंमें श्रेष्ठ सूर्यके समान आप कैसे गिर रहे हैं?

दृष्ट्वा च त्वां सूर्यपथात् पतन्तं
वैश्वानरार्कद्युतिमप्रमेयम्।
किं नु स्विदेतत् पततीव सर्वे
वितर्कयन्तः परिमोहिताः स्मः॥ ८
दृष्ट्वा च त्वाधिष्ठितं देवमार्गे
शक्रार्कविष्णुप्रतिमप्रभावम्।
प्रत्युद्गतास्त्वां वयमद्य सर्वे
तस्मात् पाते तव जिज्ञासमानाः॥ ९
न चापि त्वां धृष्णवः प्रष्टुमग्रे
न च त्वमस्मान् पृच्छसि के वयं स्म।
तत् त्वां पृच्छामि स्पृहणीयरूप
कस्य त्वं वा किं निमित्तं त्वमागाः॥ १०
भयं तु ते व्येतु विषादमोहौ
त्यजाशु देवेन्द्रसमानरूप।
त्वां वर्तमानं हि सतां सकाशे
शक्रो न सोढुं बलहापि शक्तः॥ ११
सन्तः प्रतिष्ठा हि सुखच्युतानां
सतां सदैवामरराजकल्प।
ते सङ्गताः स्थावरजङ्गमेशाः
प्रतिष्ठितस्त्वं सदृशेषु सत्सु॥ १२
प्रभुरग्निः प्रतपने भूमिरावपने प्रभुः।
प्रभुः सूर्यः प्रकाशाच्च सतां चाभ्यागतः प्रभुः॥ १३

आपका तेज सूर्य और अग्निके सदृश है। आप अप्रमेय शक्तिशाली जान पड़ते हैं। आपको सूर्यके मार्गसे गिरते देख हम सब लोग मोहित (आश्चर्यचकित) होकर इस तर्क-वितर्कमें पड़े हैं कि यह क्या गिर रहा है? आप इन्द्र, सूर्य और विष्णुके समान प्रभावशाली हैं। आपको आकाशमें स्थित देखकर हम सब लोग अब यह जाननेके लिये आपके निकट आये हैं कि आपके पतनका यथार्थ कारण क्या है। हम पहले आपसे कुछ पूछनेका साहस नहीं कर सकते और आप भी हमसे हमारा परिचय नहीं पूछते कि हम कौन हैं। इसलिये मैं ही आपसे पूछता हूँ। मनोरम रूपवाले महापुरुष! आप किसके पुत्र हैं और किसलिये यहाँ आये हैं? इन्द्रके तुल्य शक्तिशाली पुरुष! आपका भय दूर हो जाना चाहिये। अब आपको (स्वर्गसे गिरनेका) विषाद और मोह भी तुरंत त्याग देना चाहिये। इस समय आप संतोंके समीप विद्यमान हैं। बल दानवका नाश करनेवाले इन्द्र भी अब आपका तेज सहन करनेमें असमर्थ हैं। देवेश्वर इन्द्रके समान तेजस्वी महानुभाव! सुखसे वञ्चित होनेवाले साधु पुरुषोंके लिये सदा संत ही परम आश्रय हैं। वे स्थावर और जङ्गम—सभी प्राणियोंपर शासन करनेवाले सत्पुरुष यहाँ एकत्र हुए हैं। आप अपने समान पुण्यात्मा संतोंके बीचमें स्थित हैं। जैसे तपनेकी शक्ति अग्निमें है, बोये हुए बीजको धारण करनेकी शक्ति पृथ्वीमें है, प्रकाशित होनेकी शक्ति सूर्यमें है, उसी प्रकार संतोंका स्वामित्व—उनपर शासन करनेकी शक्ति केवल अतिथिको ही प्राप्त है'॥ ७—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते ययातिपतनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः॥ ३७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३७॥

अड़तीसवाँ अध्याय

ययाति और अष्टकका संवाद

ययातिरुवाच

अहं ययातिर्नहुषस्य पुत्रः
पूरोः पिता सर्वभूतावमानात्।
प्रभ्रंशितोऽहं सुरसिद्धलोकात्
परिच्युतः प्रपताम्यल्पपुण्यः॥ १

ययातिने कहा—महात्मन्! मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता ययाति हूँ। समस्त प्राणियोंका अपमान करनेसे मेरा पुण्य क्षीण हो गया है। इस कारण मैं देवताओं तथा सिद्धोंके लोकसे च्युत होकर नीचे गिर रहा हूँ।

अहं हि पूर्वो वयसा भवद्भ्य-
स्तेनाभिवादं भवतां न युञ्जे।
यो विद्यया तपसा जन्मना वा
वृद्धः स वै सम्भवति द्विजानाम्॥ २

अष्टक उवाच

अवादीस्त्वं वयसास्मि वृद्ध
इति वै राजन्नधिकः कथंचित्।
यो वै विद्वांस्तपसा च वृद्धः
स एव पूज्यो भवति द्विजानाम्॥ ३

ययातिरुवाच

प्रतिकूलं कर्मणां पापमाहु-
स्तद्वर्तिनां प्रवणं पापलोकम्।
सन्तोऽसतो नानुवर्तन्त ते वै
यदात्मनैषां प्रतिकूलवादी॥ ४
अभूद् धनं मे विपुलं महद् वै
विचेष्टमानोऽधिगन्ता तदस्मि।
एवं प्रधार्यात्महिते निविष्टो
यो वर्तते स विजानाति धीरः॥ ५
नानाभावा बहवो जीवलोके
दैवाधीना नष्टचेष्टाधिकाराः।
तत् तत् प्राप्य न विहन्येत धीरो
दिष्टं बलीय इति मत्वात्मबुद्ध्या॥ ६
सुखं हि जन्तुर्यदि वापि दुःखं
दैवाधीनं विन्दति नात्मशक्त्या।
तस्माद् दिष्टं बलवन्मन्यमानो
न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कदाचित्॥ ७
दुःखे न तप्येत सुखे न हृष्येत्
समेन वर्तेत सदैव धीरः।
दिष्टं बलीय इति मन्यमानो
न संज्वरेन्नापि हृष्येत् कदाचित्॥ ८
भये न मुह्याम्यष्टकाहं कदाचित्
संतापे मे मानसो नास्ति कश्चित्।
धाता यथा मां विदधाति लोके
ध्रुवं तदाहं भवितेति मत्वा॥ ९
संस्वेदजा ह्यण्डजा ह्युद्भिदश्च
सरीसृपाः कृमयोऽप्यप्सु मत्स्याः।
तथाश्मानस्तृणकाष्ठं च सर्वं
दिष्टक्षये स्वां प्रकृतिं भजन्ते॥ १०

मैं आपलोगोंसे अवस्थामें बड़ा हूँ, अतः आपलोगोंको प्रणाम नहीं कर रहा हूँ। द्विजातियोंमें जो विद्या, तप और अवस्थामें बड़ा होता है वही पूजनीय माना जाता है॥ १-२॥

अष्टक बोले—राजन्! आपने जो यह कहा है कि मैं अवस्थामें बड़ा हूँ, इसलिये ज्येष्ठ हूँ, सो इसमें आप कुछ अधिक कह गये; क्योंकि द्विजोंमें जो विद्या और तपस्यामें बढ़ा-चढ़ा होता है, वही पूज्य माना जाता है॥ ३॥

ययातिने कहा—पापको पुण्यकर्मोंका नाशक बताया जाता है। वह नरककी प्राप्ति करानेवाला है और वह उद्दण्ड पुरुषोंमें ही देखा जाता है। श्रेष्ठ पुरुष दुराचारी पुरुषोंके दुराचारका अनुसरण नहीं करते। पहलेके साधु पुरुष भी उन श्रेष्ठ पुरुषोंके ही अनुकूल आचरण करते थे। मेरे पास पुण्यरूपी बहुत धन था, किंतु दूसरोंकी निन्दा करनेके कारण वह सब नष्ट हो गया। अब मैं चेष्टा करके भी उसे नहीं पा सकता। मेरी इस दुरवस्थाको समझ-बूझकर जो आत्मकल्याणमें संलग्न रहता है, वही ज्ञानी और धीर है। इस जीव-जगत्में भिन्न-भिन्न स्वभाववाले बहुत-से प्राणी हैं, वे सभी प्रारब्धके अधीन हैं, अतः उनके धनादि पदार्थोंके लिये किये हुए उद्योग और अधिकार सभी व्यर्थ हो जाते हैं। इसलिये धीर पुरुषको चाहिये कि वह अपनी बुद्धिसे 'प्रारब्ध ही बलवान् है'—यह जानकर दुःख या सुख जो भी मिले, उसमें विकारको न प्राप्त हो। जीव जो सुख अथवा दुःख पाता है, वह उसे प्रारब्ध (भाग्य)-से ही प्राप्त होता है, अपनी शक्तिसे नहीं; अतः प्रारब्धको ही बलवान् मानकर मनुष्य किसी प्रकार भी हर्ष अथवा शोक न करे। दुःखोंसे संतप्त न हो और सुखोंसे हर्षित न हो। धीर पुरुष सदा समभावसे ही रहे और भाग्यको ही प्रबल मानकर किसी प्रकार चिन्ता एवं हर्षके वशीभूत न हो। अष्टक! मैं कभी भयमें पड़कर मोहित नहीं होता, मुझे कोई मानसिक संताप भी नहीं होता; क्योंकि मैं समझता हूँ कि विधाता इस संसारमें मुझे जैसे रखेगा वैसे ही रहूँगा। स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, सरीसृप, कृमि, जलमें रहनेवाले मत्स्य आदि जीव तथा पर्वत, तृण और काष्ठ—ये सभी प्रारब्ध-भोगका सर्वथा क्षय हो जानेपर अपनी प्रकृतिको प्राप्त हो जाते हैं।

अनित्यतां सुखदुःखस्य बुद्ध्वा
कस्मात् संतापमष्टकाहं भजेयम्।
किं कुर्यां वै किं च कृत्वा न तप्ये
तस्मात् संतापं वर्जयाम्यप्रमत्तः॥ ११

अष्टक! मैं सुख तथा दुःख—दोनोंकी अनित्यताको जानता हूँ, फिर मुझे संताप हो तो कैसे? मैं क्या करूँ और क्या करके संतप्त न होऊँ—इन बातोंकी चिन्ता छोड़ चुका हूँ, अतः सावधान रहकर शोक-संतापको अपनेसे दूर रखता हूँ॥ ४—११॥

शौनक उवाच

एवं ब्रुवाणं नृपतिं ययाति-
मथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छत्।
मातामहं सर्वगुणोपपन्नं
यत्र स्थितं स्वर्गलोके यथावत्॥ १२

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! राजा ययाति समस्त सद्गुणोंसे सम्पन्न थे और नातेमें अष्टकके नाना लगते थे। वे अन्तरिक्षमें वैसे ही ठहरे हुए थे, जैसे मानो स्वर्गलोकमें हों। जब उन्होंने उपर्युक्त बातें कहीं तब अष्टकने उनसे पुनः प्रश्न किया॥ १२॥

अष्टक उवाच

ये ये लोकाः पार्थिवेन्द्र प्रधाना-
स्त्वया भुक्ता यं च कालं यथा च।
तन्मे राजन् ब्रूहि सर्वं यथावत्
क्षेत्रज्ञवद् भाषसे त्वं हि धर्मम्॥ १३

अष्टकने कहा—महाराज! आपने जिन-जिन प्रधान लोकोंमें रहकर जितने समयतक वहाँके सुखोंका भली-भाँति उपभोग किया है, उन सबका मुझे यथार्थ परिचय दीजिये। राजन्! आप तो महात्माओंकी भाँति धर्मोंका उपदेश कर रहे हैं॥ १३॥

ययातिरुवाच

राजाहमासं त्विह सार्वभौम-
स्ततो लोकान् महतश्चार्जयं वै।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं
ततो लोकान् परमानभ्युपेतः॥ १४
ततः पुरीं पुरुहूतस्य रम्यां
सहस्रद्वारां शतयोजनान्ताम्।
अध्यावसं वर्षसहस्रमात्रं
ततो लोकान् परमानभ्युपेतः॥ १५
ततो दिव्यमजरं प्राप्य लोकं
प्रजापतेर्लोकपतेर्दुरापम्।
तत्रावसं वर्षसहस्रमात्रं
ततो लोकान् परमानभ्युपेतः॥ १६
देवस्य देवस्य निवेशने च
विजित्य लोकान् न्यवसं यथेष्टम्।
सम्पूज्यमानस्त्रिदशैः समस्तै-
स्तुल्यप्रभावद्युतिरीश्वराणाम्॥ १७
तथावसं नन्दने कामरूपी
संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
सहाप्सरोभिर्विचरन् पुण्यगन्धान्
पश्यन् नगान् पुष्पितांश्चारुरूपान्॥ १८

ययातिने कहा—अष्टक! मैं पहले समस्त भूमण्डलमें प्रसिद्ध चक्रवर्ती राजा था। तदनन्तर सत्कर्मोंद्वारा बड़े-बड़े लोकोंपर मैंने विजय प्राप्त की और उनमें एक हजार वर्षोंतक (सुखपूर्वक) निवास किया। इसके बाद उनसे भी उच्चतम लोकमें जा पहुँचा। वहाँ सौ योजन विस्तृत और एक हजार दरवाजोंसे युक्त इन्द्रकी रमणीय पुरी प्राप्त हुई। उसमें मैंने केवल एक हजार वर्षोंतक निवास किया और उसके बाद उससे भी ऊँचे लोकमें गया। तदनन्तर लोकपालोंके लिये भी दुर्लभ प्रजापतिके उस दिव्यलोकमें जा पहुँचा, जहाँ जरावस्थाका प्रवेश नहीं है। वहाँ एक हजार वर्षतक रहा, फिर उससे भी उत्तम लोकमें चला गया। वह देवाधिदेव ब्रह्माजीका धाम था। वहाँ मैं अपनी इच्छाके अनुसार भिन्न-भिन्न लोकोंमें विहार करता हुआ सम्पूर्ण देवताओंसे सम्मानित होकर रहा। उस समय मेरा प्रभाव और तेज देवेश्वरोंके समान था। इसी प्रकार मैं नन्दनवनमें इच्छानुसार रूप धारण करके अप्सराओंके साथ विहार करता हुआ दस लाख वर्षोंतक रहा। वहाँ मुझे पवित्र गन्ध और मनोहर रूपवाले वृक्ष देखनेको मिले, जो फूलोंसे लदे हुए थे।

तत्र स्थितं मां देवसुखेषु सक्तं
कालेऽतीते महति ततोऽतिमात्रम्।
दूतो देवानामब्रवीदुग्ररूपो
ध्वंसेत्युच्चैस्त्रिः प्लुतेन स्वरेण॥ १९
एतावन्मे विदितं राजसिंह
ततो भ्रष्टोऽहं नन्दनात् क्षीणपुण्यः।
वाचोऽश्रौषं चान्तरिक्षे सुराणा-
मनुक्रोशाच्छोचतां मां नरेन्द्र॥ २०
अकस्माद् वै क्षीणपुण्यो ययातिः
पतत्यसौ पुण्यकृत् पुण्यकीर्तिः।
तानब्रुवं पतमानस्तदाहं
सतां मध्ये निपतेयं कथं नु॥ २१
तैराख्यातां भवतां यज्ञभूमिं
समीक्ष्य चैनामहमागतोऽस्मि।
हविर्गन्धैर्दर्शितां यज्ञभूमिं
धूमापाङ्गं परिगृह्य प्रतीताम्॥ २२

वहाँ रहकर मैं देवलोकके सुखोंमें आसक्त हो गया। तदनन्तर बहुत अधिक समय बीत जानेपर एक भयंकर रूपधारी देवदूत आकर मुझसे ऊँची आवाजमें तीन बार बोला—'गिर जाओ, गिर जाओ, गिर जाओ।' राजशिरोमणे! मुझे इतना ही ज्ञात हो सका है। तदनन्तर पुण्य क्षीण हो जानेके कारण मैं नन्दनवनसे नीचे गिर पड़ा। नरेन्द्र! उस समय मेरे लिये शोक करनेवाले देवताओंकी अन्तरिक्षमें यह दयाभरी वाणी सुनायी पड़ी—'अहो! बड़े कष्टकी बात है कि पवित्र कीर्तिवाले ये पुण्यकर्मा महाराज ययाति पुण्य क्षीण होनेके कारण नीचे गिर रहे हैं!' तब नीचे गिरते हुए मैंने उनसे पूछा—'देवताओ! मैं साधु पुरुषोंके बीच गिरूँ, इसका क्या उपाय है?' तब देवताओंने मुझे आपकी यज्ञभूमिका परिचय दिया। मैं इसीको देखता हुआ तुरंत यहाँ आ पहुँचा हूँ। यज्ञभूमिका परिचय देनेवाली हविष्यकी सुगन्धका अनुभव तथा धूम्रप्रान्तका अवलोकन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता और सान्त्वना मिली है॥ १४—२२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरितेऽष्टात्रिंशोऽध्यायः॥ ३८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३८॥

उन्तालीसवाँ अध्याय

अष्टक और ययातिका संवाद

अष्टक उवाच

यदा वसन् नन्दने कामरूपे
संवत्सराणामयुतं शतानाम्।
किं कारणं कार्तयुगप्रधानं
हित्वा तद् वै वसुधामन्वपद्यः॥ १

ययातिरुवाच

ज्ञातिः सुहृत् स्वजनो यो यथेह
क्षीणे वित्ते त्यज्यते मानवैर्हि।
तथा स्वर्गे क्षीणपुण्यं मनुष्यं
त्यजन्ति सद्यः खचरा देवसंघाः॥ २

अष्टक उवाच

कथं तस्मिन् क्षीणपुण्या भवन्ति
सम्मुह्यते मेऽत्र मनोऽतिमात्रम्।
किं विशिष्टाः कस्य धामोपयान्ति
तद् वै ब्रूहि क्षेत्रवित् त्वं मतो मे॥ ३

अष्टकने पूछा—सत्ययुगके निष्पाप राजाओंमें प्रधान नरेश! जब आप इच्छानुसार रूप धारण करके दस लाख वर्षोंतक नन्दनवनमें निवास कर चुके हैं, तब क्या कारण है कि आप उसे छोड़कर भूतलपर चले आये?॥ १॥

ययाति बोले—जैसे इस लोकमें जाति-भाई, सुहृद् अथवा स्वजन कोई भी क्यों न हो, धन नष्ट हो जानेपर उसे सब मनुष्य त्याग देते हैं, उसी प्रकार स्वर्गलोकमें जिसका पुण्य समाप्त हो जाता है, उस मनुष्यको देवराज इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवता तुरंत त्याग देते हैं॥ २॥

अष्टकने पूछा—देवलोकमें मनुष्योंके पुण्य कैसे क्षीण होते हैं? इस विषयमें मेरा मन अत्यन्त मोहित हो रहा है। प्रजापतिका वह कौन-सा धाम है, जिसमें विशिष्ट (अपुनरावृत्तिकी योग्यतावाले) पुरुष जाते हैं? यह बताइये; क्योंकि आप मुझे ज्ञानी जान पड़ते हैं॥ ३॥

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं ते पतन्ति
लालप्यमाना नरदेव सर्वे।
ते कङ्कगोमायुपलाशनार्थं
क्षितौ विवृद्धिं बहुधा प्रयान्ति॥ ४
तस्मादेवं वर्जनीयं नरेन्द्र
दुष्टं लोके गर्हणीयं च कर्म।
आख्यातं ते पार्थिव सर्वमेतद्
भूयश्चेदानीं वद किं ते वदामि॥ ५

ययाति बोले—नरदेव! जो अपने मुखसे अपने पुण्यकर्मोंका बखान करते हैं, वे सभी इस भौम नरकमें आ गिरते हैं। यहाँ वे गीधों, गीदड़ों और कौओं आदिके खानेयोग्य इस शरीरके लिये पृथ्वीपर पुत्र-पौत्रादिरूपसे बहुधा विस्तारको प्राप्त होते हैं। इसलिये नरेन्द्र! इस लोकमें जो दुष्ट और निन्दनीय कर्म हो, उसे सर्वथा त्याग देना चाहिये। भूपाल! मैंने तुमसे सब कुछ कह दिया; बोलो, अब तुम्हें क्या बताऊँ॥ ४-५॥

अष्टक उवाच

यदा तु तांस्ते वितुदन्ते वयांसि
तथा गृध्राः शितिकण्ठाः पतङ्गाः।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति
त्वत्तो भौमं नरकमहं शृणोमि॥ ६

अष्टकने पूछा—जब मनुष्योंको मृत्युके पश्चात् पक्षी, गीध, मयूर और पतङ्ग—ये नोच-नोचकर खा लेते हैं तब वे कैसे और किस रूपमें उत्पन्न होते हैं? आज मैं आपके ही मुखसे (प्रथम बार) भौम नरकका (जिसे कभी नहीं सुना था) नाम सुन रहा हूँ॥ ६॥

ययातिरुवाच

ऊर्ध्वं देहात् कर्मणो जृम्भमाणाद्
व्यक्तं पृथिव्यामनुसंचरन्ति।
इमं भौमं नरकं ते पतन्ति
नावेक्षन्ते वर्षपूगाननेकान्॥ ७
षष्टिं सहस्राणि पतन्ति व्योम्नि
तथाशीतिं चैव तु वत्सराणाम्।
तान् वै तुदन्ते प्रपतन्तः प्रयातान्
भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः॥ ८

ययाति बोले—कर्मसे उत्पन्न होने और बढ़नेवाले शरीरको पाकर गर्भसे निकलनेके पश्चात् जीव सबके समक्ष इस पृथ्वीपर (विषयोंमें) विचरते हैं। उनका यह विचरण ही भौम नरक कहा गया है। इसीमें वे पड़ते हैं। इसमें पड़नेपर वे व्यर्थ बीतनेवाले अनेक वर्षसमूहोंकी ओर दृष्टिपात नहीं करते। कितने ही प्राणी स्वर्गादि लोकोंमें साठ हजार वर्ष रहते हैं। कुछ अस्सी हजार वर्षोंतक वहाँ निवास करते हैं। इसके बाद वे भूमिपर गिरते हैं। यहाँ उन गिरनेवाले जीवोंको तीखी दाढ़ोंवाले पृथ्वीके भयानक राक्षस (दुष्ट प्राणी) अत्यन्त पीड़ा देते हैं॥ ७-८॥

अष्टक उवाच

यदेतांस्ते सम्पतन्तस्तुदन्ति
भीमा भौमा राक्षसास्तीक्ष्णदंष्ट्राः।
कथं भवन्ति कथमाभवन्ति
कथंभूता गर्भभूता भवन्ति॥ ९

अष्टकने पूछा—तीखी दाढ़ोंवाले पृथ्वीके भयंकर राक्षस पापवश आकाशसे गिरते हुए जिन जीवोंको सताते हैं, वे गिरकर कैसे जीवित रहते हैं? किस प्रकार इन्द्रिय आदिसे युक्त होते हैं? और गर्भमें कैसे आते हैं?॥ ९॥

ययातिरुवाच

असृग्रेतःपुष्परसानुयुक्त-
मन्वेति सद्यः पुरुषेण सृष्टम्।
तद्वै तस्या रज आपद्यते च
स गर्भभूतः समुपैति तत्र॥ १०
वनस्पतीनोषधीश्चाविशन्ति
अपो वायुं पृथिवीं चान्तरिक्षम्।
चतुष्पदं द्विपदं चापि सर्व-
मेवंभूता गर्भभूता भवन्ति॥ ११

ययाति बोले—अन्तरिक्षसे गिरा हुआ प्राणी असृक् (रक्त) होता है। फिर वही क्रमशः नूतन शरीरका बीजभूत वीर्य बन जाता है। (फिर) वह पुष्पके रससे संयुक्त होकर कर्मानुरूप योनिका अनुसरण करता है। गर्भाधान करनेवाले पुरुषके द्वारा स्त्रीसंसर्ग होनेपर वीर्यमें आविष्ट हुआ वह जीव उस स्त्रीके रजसे मिल जाता है। तदनन्तर वही गर्भरूपमें परिणत हो जाता है। जीव जलरूपसे गिरकर वनस्पतियों और ओषधियोंमें प्रवेश करते हैं तथा जल, वायु, पृथ्वी और अन्तरिक्ष आदिमें प्रवेश करते हुए कर्मानुसार पशु अथवा मनुष्य सब कुछ होते हैं। इस प्रकार वे भूमिपर आकर फिर पूर्वोक्त क्रमके अनुसार गर्भभावको प्राप्त होते हैं॥ १०-११॥

अष्टक उवाच

अन्यद्वपुर्विदधातीह गर्भे
उताहोस्वित् स्वेन कामेन याति।
आपद्यमानो नरयोनिमेता-
माचक्ष्व मे संशयात् पृच्छतस्त्वम्॥ १२
शरीरदेहादिसमुच्छ्रयं च
चक्षुः श्रोत्रे लभते केन संज्ञाम्।
एतत् सर्वं तात आचक्ष्व पृष्टः
क्षेत्रज्ञं त्वां मन्यमाना हि सर्वे॥ १३

ययातिरुवाच

वायुः समुत्कर्षति गर्भयोनि-
मृतौ रेतः पुष्परसानुयुक्तम्।
स तत्र तन्मात्रकृताधिकारः
क्रमेण संवर्धयतीह गर्भम्॥ १४
स जायमानोऽथ गृहीतगात्रः
संज्ञामधिष्ठाय ततो मनुष्यः।
स श्रोत्राभ्यां वेदयतीह शब्दं
स वै रूपं पश्यति चक्षुषा च॥ १५
घ्राणेन गन्धं जिह्वयाथो रसं च
त्वचा स्पर्शं मनसा देवभावम्।
इत्यष्टकेहोपचितं हि विद्धि
महात्मनः प्राणभृतः शरीरे॥ १६

अष्टक उवाच

यः संस्थितः पुरुषो दह्यते वा
निखन्यते वापि निकृष्यते वा।
अभावभूतः स विनाशमेत्य
केनात्मानं चेतयते पुरस्तात्॥ १७

ययातिरुवाच

हित्वा सोऽसून् सुप्तवन्निष्ठितत्वात्
पुरोधाय सुकृतं दुष्कृतं च।
अन्यां योनिं पुण्यपापानुसारां
हित्वा देहं भजते राजसिंह॥ १८
पुण्यां योनिं पुण्यकृतो विशन्ति
पापां योनिं पापकृतो व्रजन्ति।
कीटाः पतङ्गाश्च भवन्ति पापा-
न्न मे विवक्षास्ति महानुभाव॥ १९

अष्टकने पूछा—राजन्! इस मनुष्ययोनिमें आनेवाला जीव अपने इसी शरीरसे गर्भमें आता है या दूसरा शरीर धारण करता है? आप यह रहस्य मुझे बताइये। मैं संशय होनेके कारण पूछता हूँ। गर्भमें आनेपर वह भिन्न-भिन्न शरीररूपी आश्रयको, आँख और कान आदि इन्द्रियोंको तथा चेतनाको भी कैसे उपलब्ध करता है? मेरे पूछनेपर ये सब बातें आप बताइये। तात! हम सब लोग आपको क्षेत्रज्ञ (आत्मज्ञानी) मानते हैं॥ १२-१३॥

ययाति बोले—ऋतुकालमें पुष्परससे संयुक्त वीर्यको वायु गर्भाशयमें खींच लेता है और वह वहाँ उसपर अधिकार जमाकर क्रमशः गर्भकी वृद्धि करता रहता है। वह गर्भ बढ़कर जब सम्पूर्ण अवयवोंसे सम्पन्न हो जाता है तब चेतनाका आश्रय ले योनिसे बाहर निकलकर मनुष्य कहलाता है। वह कानोंसे शब्द सुनता है, आँखोंसे रूप देखता है, नासिकासे गन्ध लेता है, जिह्वासे रसका आस्वादन करता है, त्वचासे स्पर्श और मनसे आन्तरिक भावोंका अनुभव करता है। अष्टक! इस प्रकार महान् आत्मबलसे सम्पन्न प्राणधारियोंके शरीरमें जीवकी स्थापना होती है॥ १४—१६॥

अष्टकने पूछा—जो मनुष्य मर जाता है, वह जलाया जाता है या गाड़ दिया जाता है अथवा जलमें बहा दिया जाता है। इस प्रकार विनाश होकर स्थूल शरीरका अभाव हो जाता है। फिर वह चेतन जीवात्मा किस शरीरके आधारपर रहकर चैतन्ययुक्त व्यवहार करता है?॥ १७॥

ययाति बोले—राजसिंह! जैसे मनुष्य श्वास लेते हुए प्राणयुक्त स्थूल शरीरको छोड़कर स्वप्नमें विचरण करता है, वैसे ही यह चेतन जीवात्मा अस्फुट शब्दोच्चारणके साथ इस मृतक स्थूल शरीरको त्यागकर सूक्ष्म शरीरसे संयुक्त होता है और फिर पुण्य अथवा पापको आगे रखकर उसी पुण्य-पापके अनुसार अन्य योनिको प्राप्त होता है। पुण्य करनेवाले मनुष्य पुण्य-योनिमें और पाप करनेवाले मनुष्य पाप-योनिमें जाते हैं। इस प्रकार पापी जीव कीट-पतङ्ग आदि होते हैं। महानुभाव! इन सब विषयोंको विस्तारके साथ कहनेकी इच्छा नहीं होती।

चतुष्पदा द्विपदाः पक्षिणश्च
तथाभूता गर्भभूता भवन्ति।
आख्यातमेतन्निखिलं हि सर्वं
भूयस्तु किं पृच्छसि राजसिंह॥ २०

अष्टक उवाच

किंस्वित् कृत्वा लभते तात संज्ञां
मर्त्यः श्रेष्ठां तपसा विद्यया वा।
तन्मे पृष्टः शंस सर्वं यथाव-
च्छुभाँल्लोकान् येन गच्छेत् क्रमेण॥ २१

ययातिरुवाच

तपश्च दानं च शमो दमश्च
ह्रीरार्जवं सर्वभूतानुकम्पा।
स्वर्गस्य लोकस्य वदन्ति सन्तो
द्वाराणि सप्तैव महान्ति पुंसाम्॥ २२
सर्वाणि चैतानि यथोदितानि
तपः प्रधानान्यभिमर्षकेण।
नश्यन्ति मानेन तमोऽभिभूताः
पुंसः सदैवेति वदन्ति सन्तः॥ २३
अधीयानः पण्डितम्मन्यमानो
यो विद्यया हन्ति यशः परस्य।
तस्यान्तवन्तः पुरुषस्य लोका
न चास्य तद् ब्रह्मफलं ददाति॥ २४
चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि
भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
पानाग्निहोत्रमुत मानमौनं
मानेनाधीतमुत मानयज्ञः॥ २५
न मान्यमानो मुदमाददीत
न संतापं प्राप्नुयाच्चावमानात्।
सन्तः सतः पूजयन्तीह लोके
नासाधवः साधुबुद्धिं लभन्ते॥ २६
इति दद्यादिति यजेदित्यधीयीत मे श्रुतम्।
इत्येतान्यभयान्याहुस्तान्यवर्ज्यानि नित्यशः॥ २७
ये चाश्रयं वेदयन्ते पुराणं
मनीषिणो मानसमार्गरुद्धम्।
तन्निःश्रेयस्तेन संयोगमेत्य
परां शान्तिं प्राप्नुयुः प्रेत्य चेह॥ २८

नृपश्रेष्ठ! इसी प्रकार जीव गर्भमें आकर चार पैरवाले (चतुष्पाद), दो पैरवाले मनुष्यादि और पक्षियोंके रूपमें उत्पन्न होते हैं। यह सब मैंने पूरा-पूरा बतला दिया। अब और क्या पूछना चाहते हो?॥ १८—२०॥

अष्टकने पूछा—तात! मनुष्य कौन-सा कर्म करके उत्तम यश प्राप्त करता है? वह यश तपसे प्राप्त होता है या विद्यासे? मैं यही पूछता हूँ। जिस कर्मके द्वारा क्रमशः श्रेष्ठ लोकोंकी प्राप्ति हो सके, वह सब यथार्थ-रूपसे बताइये॥ २१॥

ययाति बोले—राजन्! साधु पुरुष स्वर्गलोकके सात महान् दरवाजे बतलाते हैं, जिनसे प्राणी उसमें प्रवेश करते हैं। उनके नाम ये हैं—तप, दान, शम, दम, लज्जा, सरलता और समस्त प्राणियोंके प्रति दया। वे तप आदि द्वार सदा ही पुरुषके अभिमानरूप तमसे आच्छादित होनेपर नष्ट हो जाते हैं, यह संत पुरुषोंका कथन है। जो वेदोंका अध्ययन करके अपनेको सबसे बड़ा पण्डित मानता और अपनी विद्याद्वारा दूसरोंके यशका नाश करता है, उसके पुण्यलोक अन्तवान् (विनाशशील) होते हैं और उसका पढ़ा हुआ वेद भी उसे फल नहीं देता। अग्निहोत्र, मौन, अध्ययन और यज्ञ—ये चार कर्म मनुष्यको भयसे मुक्त करनेवाले हैं; परंतु वे ही ठीकसे न किये जायँ, दूषित भावसे अनुष्ठित हों तो वे उलटे भय प्रदान करते हैं। विद्वान् पुरुष सम्मानित होनेपर अधिक आनन्दित न हो, अपमानित होनेपर संतप्त न हो। इस लोकमें संत पुरुष ही सत्पुरुषोंका आदर करते हैं। दुष्ट पुरुषोंको 'यह सत्पुरुष है' ऐसी बुद्धि प्राप्त ही नहीं होती। ऐसा दान देना चाहिये, इस प्रकार यजन करना चाहिये, इस तरह स्वाध्यायमें लगा रहना चाहिये—ये सभी वचन अभयदायक हैं, अतः नित्य पालनीय हैं—ऐसा मैंने सुना है। जो सबका आश्रय है, पुराण (कूटस्थ) है तथा जहाँ मनकी गति भी रुक जाती है, वह (परब्रह्म परमात्मा) तुम सब लोगोंके लिये कल्याणकारी हो। जो विद्वान् उसे जानते हैं वे उस परब्रह्म परमात्मासे संयुक्त होकर इहलोक और परलोकमें परम शान्तिको प्राप्त होते हैं॥ २२—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ३९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ३९॥

चालीसवाँ अध्याय

ययाति और अष्टकका आश्रमधर्मसम्बन्धी संवाद

अष्टक उवाच

चरन् गृहस्थः कथमेति देवान्
कथं भिक्षुः कथमाचार्यकर्मा।
वानप्रस्थः सत्पथे सन्निविष्टो
बहून्यस्मिन् सम्प्रति वेदयन्ति॥ १

ययातिरुवाच

आहूताध्यायी गुरुकर्मसु चोद्यतः
पूर्वोत्थायी चरमं चाथ शायी।
मृदुर्दान्तो धृतिमानप्रमत्तः
स्वाध्यायशीलः सिध्यति ब्रह्मचारी॥ २
धर्मागतं प्राप्य धनं यजेत
दद्यात् सदैवातिथीन् भोजयेच्च।
अनाददानश्च परैरदत्तं
सैषा गृहस्थोपनिषत् पुराणी॥ ३
स्ववीर्यजीवी वृजिनान्निवृत्तो
दाता परेभ्यो न परोपतापी।
तादृङ्मुनिः सिद्धिमुपैति मुख्यां
वसन्नरण्ये नियताहारचेष्टः॥ ४
अशिल्पजीवी विगृहश्च नित्यं
जितेन्द्रियः सर्वतो विप्रमुक्तः।
अनोकशायी लघु लिप्समान-
श्चरन् देशानेकाम्बरः स भिक्षुः॥ ५
रात्र्या यया चाभिरताश्च लोका
भवन्ति कामाभिजिताः सुखेन च।
तामेव रात्रिं प्रयतेत विद्वा-
नरण्यसंस्थो भवितुं यतात्मा॥ ६
दशैव पूर्वान् दशचापरांस्तु
ज्ञातींस्तथात्मानमथैकविंशम्।
अरण्यवासी सुकृतं दधाति
मुक्त्वा त्वरण्ये स्वशरीरधातून्॥ ७

अष्टकने पूछा—महाराज! वेदज्ञ विद्वान् इस धर्मके अन्तर्गत बहुत-से कर्मोंको उत्तम लोकोंकी प्राप्तिका द्वार बताते हैं, अतः मैं आपसे पूछता हूँ कि आचार्यकी सेवा करनेवाला ब्रह्मचारी, गृहस्थ, सन्मार्गमें स्थित वानप्रस्थ और संन्यासी किस प्रकार धर्माचरण करके उत्तम लोकमें जाते हैं?॥ १॥

ययाति बोले—शिष्यको उचित है कि गुरुके बुलानेपर उसके समीप जाकर पढ़े, गुरुकी सेवामें बिना कहे लगा रहे, रातमें गुरुजीके सो जानेके बाद सोवे और सबेरे उनसे पहले ही उठ जाय। वह मृदुल (विनम्र), जितेन्द्रिय, धैर्यवान्, सावधान और स्वाध्यायशील हो। इस नियमसे रहनेवाला ब्रह्मचारी सिद्धिको पाता है। गृहस्थ पुरुष न्यायसे प्राप्त हुए धनको पाकर उससे यज्ञ करे, दान दे और सदा अतिथियोंको भोजन करावे। दूसरोंकी वस्तु उनके दिये बिना ग्रहण न करे। यह गृहस्थधर्मका प्राचीन एवं रहस्यमय स्वरूप है। वानप्रस्थ मुनि वनमें निवास करे। आहार और विहारको नियमित रखे। अपने ही पराक्रम एवं परिश्रमसे जीवन-निर्वाह करे, पापसे दूर रहे। दूसरोंको दान दे और किसीको कष्ट न पहुँचाये। ऐसा मुनि परम मोक्ष (सिद्धि)-को प्राप्त होता है। संन्यासी शिल्पकलासे जीवन-निर्वाह न करे। वह शम, दम आदि श्रेष्ठ गुणोंसे सम्पन्न हो, सदा अपनी इन्द्रियोंको काबूमें रखे, सबसे अलग रहे, गृहस्थके घरमें न सोये, परिग्रहका भार न लेकर अपनेको हलका रखे, थोड़ा-थोड़ा चले और अकेला ही अनेक स्थानोंमें भ्रमण करता रहे। ऐसा संन्यासी ही वास्तवमें भिक्षु कहलाने योग्य है। जिस समय रूप, रस आदि विषय तुच्छ प्रतीत होने लगें, इच्छानुसार जीत लिये जायँ तथा उनके परित्यागमें ही सुख जान पड़े, उसी समय विद्वान् पुरुष मनको वशमें करके समस्त संग्रहोंका त्याग कर वनवासी होनेका प्रयत्न करे। जो वनवासी मुनि वनमें ही अपने पञ्चभूतात्मक शरीरका परित्याग करता है, वह दस पीढ़ी पूर्वके और दस पीढ़ी बादके जाति-भाइयोंको तथा इक्कीसवें अपनेको भी पुण्यलोकोंमें पहुँचा देता है॥ २—७॥

अष्टक उवाच

कतिस्विद् देव मुनयो मौनानि कति चाप्युत।
भवन्तीति तदाचक्ष्व श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥ ८

ययातिरुवाच

अरण्ये वसतो यस्य ग्रामो भवति पृष्ठतः।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं स मुनिः स्याज्जनाधिप॥ ९

अष्टक उवाच

कथंस्विद् वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः।
ग्रामे वा वसतोऽरण्यं कथं भवति पृष्ठतः॥ १०

ययातिरुवाच

न ग्राम्यमुपयुञ्जीत य आरण्यो मुनिर्भवेत्।
तथास्य वसतोऽरण्ये ग्रामो भवति पृष्ठतः॥ ११
अनग्निरनिकेतश्चाप्यगोत्रचरणो मुनिः।
कौपीनाच्छादनं यावत् तावदिच्छेच्च चीवरम्॥ १२
यावत् प्राणाभिसंधानं तावदिच्छेच्च भोजनम्।
तदास्य वसतो ग्रामेऽरण्यं भवति पृष्ठतः॥ १३
यस्तु कामान् परित्यज्य त्यक्तकर्मा जितेन्द्रियः।
आतिष्ठेत मुनिर्मौनं स लोके सिद्धिमाप्नुयात्॥ १४
धौतदन्तं कृत्तनखं सदा स्नातमलङ्कृतम्।
असितं सितकर्मस्थं कस्तं नार्चितुमर्हति॥ १५
तपसा कर्शितः क्षामः क्षीणमांसास्थिशोणितः।
यदा भवति निर्द्वन्द्वो मुनिर्मौनं समास्थितः॥ १६
अथ लोकमिमं जित्वा लोकं चापि जयेत् परम्।
आस्येन तु यथाहारं गोवन्मृगयते मुनिः।
अथास्य लोकः सर्वो यः सोऽमृतत्वाय कल्पते॥ १७

अष्टकने पूछा—राजन्! मुनि कितने हैं? और मौन कितने प्रकारके हैं! यह बताइये, हम इसे सुनना चाहते हैं॥ ८॥

ययातिने कहा—जनेश्वर! अरण्यमें निवास करते समय जिसके लिये ग्राम पीछे होता है और ग्राममें वास करते समय जिसके लिये अरण्य पीछे होता है, वह मुनि कहलाता है॥ ९॥

अष्टकने पूछा—अरण्यवासीके लिये ग्राम और ग्राममें निवास करनेवालेके लिये अरण्य पीछे कैसे है?॥ १०॥

ययातिने कहा—जो मुनि वनमें निवास करता है और गाँवोंमें प्राप्त होनेवाली वस्तुओंका उपयोग नहीं करता, इस प्रकार वनमें निवास करनेवाले उस (वानप्रस्थ) मुनिके लिये गाँव पीछे समझा जाता है। जो अग्नि और गृहको त्याग चुका है, जिसका गोत्र और चरण (वेदकी शाखा एवं जाति)-से भी सम्बन्ध नहीं रह गया है, जो मौन रहता और उतने ही वस्त्रकी इच्छा रखता है, जितनेसे लँगोटी और ओढ़नेका काम चल जाय; इसी प्रकार जितनेसे प्राणोंकी रक्षा हो सके उतना ही भोजन चाहता है, इस नियमसे गाँवमें निवास करनेवाले उस (संन्यासी) मुनिके लिये अरण्य पीछे समझा जाता है। जो मुनि सम्पूर्ण कामनाओंको छोड़कर कर्मोंको त्याग चुका है और इन्द्रिय-संयमपूर्वक सदा मौनमें स्थित है, ऐसा संन्यासी लोकमें परम सिद्धिको प्राप्त होता है। जिसके दाँत शुद्ध और साफ हैं, जिसके नख (और केश) कटे हुए हैं, जो सदा स्नान करता है तथा यम-नियमादिसे अलंकृत (उन्हें धारण किये हुए) है, शीतोष्णको सहनेसे जिसका शरीर श्याम पड़ गया है, जिसके आचरण उत्तम हैं—ऐसा संन्यासी किसके लिये पूजनीय नहीं है। तपस्यासे मास, हड्डी तथा रक्तके क्षीण हो जानेपर जिसका शरीर कृश और दुर्बल हो गया है तथा जो सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वोंसे रहित एवं भलीभाँति मौनावलम्बी हो चुका है, वह इस लोकको जीतकर परलोकपर भी विजय पाता है। जब संन्यासी मुनि गाय-बैलोंकी तरह मुखसे ही आहार ग्रहण करता है, हाथ आदिका भी सहारा नहीं लेता, तब उसके द्वारा ये सब लोक जीत लिये गये समझे जाते हैं और वह मोक्षकी प्राप्तिके लिये समर्थ समझा जाता है॥ ११—१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंशवर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४०॥

एकतालीसवाँ अध्याय

अष्टक-ययाति-संवाद और ययातिद्वारा दूसरोंके दिये हुए पुण्यदानको अस्वीकार करना

अष्टक उवाच

कतरस्त्वेतयोः पूर्वं देवानामेति सात्म्यताम्।
उभयोर्धावतो राजन् सूर्याचन्द्रमसोरिव॥ १

ययातिरुवाच

अनिकेतगृहस्थेषु कामवृत्तेषु संयतः।
ग्राम एव चरन् भिक्षुस्तयोः पूर्वतरं गतः॥ २
अप्राप्य दीर्घमायुस्तु यः प्राप्तो विकृतिं चरेत्।
तप्येत यदि तत् कृत्वा चरेत् सोग्रं तपस्ततः॥ ३
यद् वै नृशंसं तदपथ्यमाहु-
र्यः सेवते धर्ममनर्थबुद्धिः।
असावनीशः स तथैव राजं-
स्तदार्जवं स समाधिस्तदार्यम्॥ ४

अष्टकने पूछा—राजन्! सूर्य और चन्द्रमाकी तरह अपने-अपने लक्ष्यकी ओर दौड़ते हुए वानप्रस्थ और संन्यासी—इन दोनोंमेंसे पहले कौन-सा देवताओंके आत्मभाव (ब्रह्म)-को प्राप्त होता है?॥ १॥

ययाति बोले—कामवृत्तिवाले गृहस्थोंके बीच ग्राममें ही वास करते हुए भी जो जितेन्द्रिय और गृहरहित संन्यासी है, वही उन दोनों प्रकारके मुनियोंमें पहले ब्रह्मभावको प्राप्त होता है। जो वानप्रस्थ दुर्लभ दीर्घायुको पाकर भी विषयोंके प्राप्त होनेपर उनसे विकृत हो उन्हींमें विचरने लगता है, उसे यदि विषयोपभोगके अनन्तर पश्चात्ताप होता है तो उसे मोक्षके लिये पुनः तपका अनुष्ठान करना चाहिये। राजन्! जो पापबुद्धिवाला मनुष्य अधर्मका आचरण करता है, उसका वह आचरण नृशंस (पापमय) और असत्य कहा गया है (एवं उस अजितेन्द्रियका धन भी वैसा ही पापमय और असत्य है); परंतु वानप्रस्थ मुनिका जो धर्मपालन है, वही सरलता है, वही समाधि है और वही श्रेष्ठ आचरण है॥ २—४॥

अष्टक उवाच

केनाद्य त्वं तु प्रहितोऽसि राजन्
युवा स्रग्वी दर्शनीयः सुवर्चाः।
कुत आगतः कतमस्यां दिशि त्व-
मुताहोस्वित् पार्थिवं स्थानमस्ति॥ ५

अष्टकने पूछा—राजन्! आपको यहाँ किसने भेजा है? आप अवस्थामें तरुण, फूलोंकी मालासे सुशोभित, दर्शनीय तथा उत्तम तेजसे उद्भासित जान पड़ते हैं। आप कहाँसे आये हैं? अथवा क्या आपके लिये इस पृथ्वीपर ही किसी दिशामें कोई उत्तम वासस्थान है?॥ ५॥

ययातिरुवाच

इमं भौमं नरकं क्षीणपुण्यः
प्रवेष्टुमुर्वीं गगनाद् विप्रहीणः।
उक्त्वाहं वः प्रपतिष्याम्यनन्तरं
त्वरन्त्यमी ब्रह्मणो लोकपा ये॥ ६
सतां सकाशे तु वृतः प्रपात-
स्ते सङ्गता गुणवन्तस्तु सर्वे।
शक्राच्च लब्धो हि वरो मयैष
पतिष्यता भूमितलं नरेन्द्र॥ ७

ययातिने कहा—मैं अपने पुण्यका क्षय होनेसे भीमनरकमें प्रवेश करनेके लिये आकाशसे गिर रहा हूँ। ये जो ब्रह्माजीके लोकपाल हैं, वे मुझे गिरनेके लिये जल्दी मचा रहे हैं। अतः (अब) आपलोगोंसे पूछकर—विदा लेकर इस पृथ्वीपर गिरूँगा। नरेन्द्र! मैं जब इस पृथ्वीतलपर गिरनेवाला था, उस समय मैंने इन्द्रसे यह वर माँगा था कि मैं साधु पुरुषोंके समीप गिरूँ। वह वर मुझे मिला, जिसके कारण आप सब सद्गुणी संतोंका सङ्ग प्राप्त हुआ॥ ६-७॥

अष्टक उवाच

पृच्छामि त्वां प्रपतन्तं प्रपातं
यदि लोकाः पार्थिव सन्ति मेऽत्र।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये॥ ८

अष्टक बोले—महाराज! मेरा विश्वास है कि आप पारलौकिक धर्मके ज्ञाता हैं। मैं नीचे गिरनेवाले आपसे एक बात पूछता हूँ—'क्या अन्तरिक्ष या स्वर्गलोकमें मुझे प्राप्त होनेवाले कोई पुण्यलोक भी हैं?'॥ ८॥

ययातिरुवाच

यावत् पृथिव्यां विहितं गवाश्वं
सहारण्यैः पशुभिः पक्षिभिश्च।
तावल्लोका दिवि ते संस्थिता वै
तथा विजानीहि नरेन्द्रसिंह॥ ९

ययातिने कहा—नरेन्द्रसिंह! इस पृथ्वीपर जंगली पशुओं और पक्षियोंके साथ जितने गाय, घोड़े आदि पशु रहते हैं, स्वर्गमें तुम्हारे लिये उतने ही लोक विद्यमान हैं। तुम इसे निश्चय जानो॥ ९॥

अष्टक उवाच

तांस्ते ददामि मा प्रपत प्रपातं
ये मे लोका दिवि राजेन्द्र सन्ति।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिता-
स्तानाक्रम क्षिप्रममित्रहासि॥ १०

अष्टक बोले—राजेन्द्र! स्वर्गमें मेरे लिये जो लोक विद्यमान हैं, उन्हें मैं आपको देता हूँ, परंतु आपका पतन न हो। अन्तरिक्ष या द्युलोकमें मेरे लिये जो स्थान हैं, उनमें आप शीघ्र ही चले जायँ; क्योंकि आप शत्रुओंका संहार करनेवाले हैं॥ १०॥

ययातिरुवाच

नास्मद्विधो ब्राह्मणो ब्रह्मविच्च
प्रतिग्रहे वर्तते राजमुख्य।
यथा प्रदेयं सततं द्विजेभ्य-
स्तथा ददे पूर्वमहं नरेन्द्र॥ ११
नाब्राह्मणः कृपणो जातु जीवेद्
याच्ञापि स्याद् ब्राह्मणी वीरपत्नी।
सोऽहं यदेवाकृतपूर्वं चरेयं
विधित्समानः किमु तत्र साधुः॥ १२

ययातिने कहा—नृपश्रेष्ठ! ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण ही प्रतिग्रह लेता है, मेरे-जैसा क्षत्रिय कदापि नहीं। नरेन्द्र! जैसे दान करना चाहिये, उस विधिसे मैंने पहले भी सदा उत्तम ब्राह्मणोंको बहुत दान दिये हैं। जो ब्राह्मण नहीं है, उसे दीन याचक बनकर कभी जीवन नहीं बिताना चाहिये। याचना तो विद्यासे दिग्विजय करनेवाले विद्वान् ब्राह्मणकी पत्नी है अर्थात् ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मणको ही याचना करनेका अधिकार है। मुझे सत्कर्म करनेकी इच्छा है, अतः ऐसा कोई अकार्य कैसे कर सकता हूँ, जो पहले कभी न किया हो॥ ११-१२॥

प्रतर्दन उवाच

पृच्छामि त्वां स्पृहणीयरूप
प्रतर्दनोऽहं यदि मे सन्ति लोकाः।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये॥ १३

प्रतर्दन बोले—वाञ्छनीय रूपवाले श्रेष्ठ पुरुष! मैं प्रतर्दन हूँ और आपसे पूछता हूँ, यदि अन्तरिक्ष अथवा स्वर्गमें मेरे भी लोक हों तो बताइये। मैं आपको पारलौकिक धर्मका ज्ञाता मानता हूँ॥ १३॥

ययातिरुवाच

सन्ति लोका बहवस्ते नरेन्द्र
अप्येकैकं सप्त सप्ताप्यहानि।
मधुच्युतो घृतवन्तो विशोका-
स्ते नान्तवन्तः प्रतिपालयन्ति॥ १४

ययातिने कहा—नरेन्द्र! तुम्हारे तो बहुत लोक हैं, यदि एक-एक लोकमें सात-सात दिन रहा जाय तो भी उनका अन्त नहीं है। वे सब-के-सब अमृतके झरने बहाते हैं एवं घृत (तेज)-से युक्त हैं। उनमें शोकका सर्वथा अभाव है। वे सभी लोक तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ १४॥

प्रतर्दन उवाच

तांस्ते ददामि पतमानस्य राजन्
ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिता-
स्तानाक्रम क्षिप्रमपेतमोहः॥ १५

प्रतर्दन बोले—महाराज! वे सभी लोक मैं आपको देता हूँ, आप नीचे न गिरें। जो मेरे लोक हैं, वे सब आपके हो जायँ। वे अन्तरिक्षमें हों या स्वर्गमें, आप शीघ्र मोहरहित होकर उनमें चले जाइये॥ १५॥

ययातिरुवाच

न तुल्यतेजाः सुकृतं हि कामये
योगक्षेमं पार्थिवात् पार्थिवः सन्।
दैवादेशादापदं प्राप्य विद्वां-
श्चरेन्नृशंसं हि न जातु राजा॥ १६

ययातिने कहा—राजन्! मैं स्वयं एक तेजस्वी राजा होकर दूसरेसे पुण्य तथा योग-क्षेमकी इच्छा नहीं करता। विद्वान् राजा दैववश भारी आपत्तिमें पड़ जानेपर भी कोई पापमय कार्य न करे।

धर्म्यं मार्गं चिन्तयानो यशस्यं
कुर्यान्नृपो धर्ममवेक्षमाणः।
न मद्विधो धर्मबुद्धिर्हि राजा
ह्येवं कुर्यात् कृपणं मां यथात्थ॥ १७
कुर्यामपूर्वं न कृतं यदन्यै-
र्विधित्समानः किमु तत्र साधुः।
ब्रुवाणमेवं नृपतिं ययातिं
नृपोत्तमो वसुमानब्रवीत्तम्॥ १८

धर्मपर दृष्टि रखनेवाले राजाको उचित है कि वह प्रयत्नपूर्वक धर्म और यशके मार्गपर ही चले। जिसकी बुद्धि धर्ममें लगी हो, उस मेरे-जैसे मनुष्यको जान-बूझकर ऐसा दीनतापूर्ण कार्य नहीं करना चाहिये जिसके लिये तुम मुझसे कह रहे हो। जो शुभ कर्म करनेकी इच्छा रखता है वह ऐसा काम नहीं कर सकता, जिसे अन्य राजाओंने नहीं किया हो। (तदनन्तर) इस प्रकारकी बातें कहनेवाले राजा ययातिसे नृपश्रेष्ठ वसुमान् बोले॥ १६—१८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते एकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन नामक एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४१॥

बयालीसवाँ अध्याय

राजा ययातिका वसुमान् और शिबिके प्रतिग्रहको अस्वीकार करना तथा अष्टक आदि चारों राजाओंके साथ स्वर्गमें जाना

वसुमानुवाच

पृच्छाम्यहं वसुमानौषदश्वि-
र्यद्यस्ति लोको दिवि मह्यं नरेन्द्र।
यद्यन्तरिक्षे प्रथितो महात्मन्
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये॥ १

वसुमान्‌ने कहा—नरेन्द्र! मैं उषदश्वका पुत्र हूँ और आपसे पूछ रहा हूँ। यदि स्वर्ग या अन्तरिक्षमें मेरे लिये भी कोई विख्यात लोक हों तो बताइये। महात्मन्! मैं आपको पारलौकिक धर्मका ज्ञाता मानता हूँ॥ १॥

ययातिरुवाच

यदन्तरिक्षं पृथिवी दिशश्च
यत्तेजसा तपते भानुमांश्च।
लोकास्तावन्तो दिवि संस्थिता वै
ते त्वां भवन्तं प्रतिपालयन्ति॥ २

ययातिने कहा—राजन्! पृथ्वी, आकाश और दिशाओंके जितने प्रदेशको सूर्यदेव अपनी किरणोंसे तपाते और प्रकाशित करते हैं, उतने लोक तुम्हारे लिये स्वर्गमें स्थित हैं। वे तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं॥ २॥

वसुमानुवाच

तांस्ते ददामि पत मा प्रपातं
ये मे लोकास्तव ते वै भवन्तु।
क्रीणीष्वैनांस्तृणकेनापि राजन्
प्रतिग्रहस्ते यदि सम्यक् प्रदुष्टः॥ ३

वसुमान् बोले—राजन्! वे सभी लोक मैं आपके लिये देता हूँ, वे सब आपके हो जायँ। धीमन्! यदि आपको प्रतिग्रह लेनेमें दोष दिखायी देता हो तो एक मुट्ठा तिनका मुझे मूल्यके रूपमें देकर मेरे इन सभी लोकोंको आप खरीद लें॥ ३॥

ययातिरुवाच

न मिथ्याहं विक्रियं वै स्मरामि
मया कृतं शिशुभावेऽपि राजन्।
कुर्यां न चैवाकृतपूर्वमन्यै-
र्विधित्समानो वसुमन् न साधु॥ ४

ययातिने कहा—राजन्! मैंने बचपनमें भी कभी इस प्रकार झूठ-मूठकी खरीद-बिक्री की हो, इसका मुझे स्मरण नहीं है। जिसे पूर्ववर्ती अन्य महापुरुषोंने नहीं किया, वह कार्य मैं भी नहीं कर सकता हूँ; क्योंकि मैं सत्कर्म करना चाहता हूँ॥ ४॥

वसुमानुवाच

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन्
मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।
नाहं तान् वै प्रतिगन्ता नरेन्द्र
सर्वे लोकास्तावका वै भवन्तु॥ ५

शिबिरुवाच

पृच्छामि त्वां शिबिरौशीनरोऽहं
ममापि लोका यदि सन्ति तात।
यद्यन्तरिक्षे यदि वा दिवि श्रिताः
क्षेत्रज्ञं त्वां तस्य धर्मस्य मन्ये॥ ६

ययातिरुवाच

न त्वं वाचा हृदयेनापि राजन्
परीप्समानो मावमंस्था नरेन्द्र।
तेनानन्ता दिवि लोकाः स्थिता वै
विद्युद्रूपाः स्वनवन्तो महान्तः॥ ७

शिबिरुवाच

तांस्त्वं लोकान् प्रतिपद्यस्व राजन्
मया दत्तान् यदि नेष्टः क्रयस्ते।
न चाहं तान् प्रतिपद्येह दत्त्वा
यत्र त्वं तात गन्तासि लोके॥ ८

ययातिरुवाच

यथा त्वमिन्द्रप्रतिमप्रभाव-
स्ते चाप्यनन्ता नरदेव लोकाः।
तथाद्य लोके न रमेऽन्यदत्ते
तस्माच्छिबे नाभिनन्दामि वाचम्॥ ९

अष्टक उवाच

न चेदेकैकशो राजँल्लोकान् नः प्रतिनन्दसि।
सर्वे प्रदाय ताँल्लोकान् गन्तारो नरकं वयम्॥ १०

ययातिरुवाच

यदर्हास्तद् वदध्वं वः सन्तः सत्यादिदर्शिनः।
अहं तु नाभिगृह्णामि यत् कृतं न मया पुरा॥ ११
अलिप्समानस्य तु मे यदुक्तं
न तत्तथास्तीह नरेन्द्रसिंह।
अस्य प्रदानस्य यदेव युक्तं
तस्यैव चानन्तफलं भविष्यम्॥ १२

वसुमान् बोले—राजन्! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरे द्वारा स्वतः अर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। नरेन्द्र! निश्चय जानिये कि मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा। वे सब आपके ही अधिकारमें रहें॥ ५॥

शिबिने कहा—तात! मैं उशीनरका पुत्र शिबि आपसे पूछता हूँ। यदि अन्तरिक्ष या स्वर्गमें मेरे भी पुण्यलोक हों तो बताइये; क्योंकि मैं आपको उक्त धर्मका ज्ञाता मानता हूँ॥ ६॥

ययाति बोले—नरेन्द्र! जो-जो साधु पुरुष तुमसे कुछ माँगनेके लिये आये, उनका तुमने वाणीसे कौन कहे, मनसे भी अपमान नहीं किया। इस कारण स्वर्गमें तुम्हारे लिये अनन्त लोक विद्यमान हैं जो विद्युत्के समान तेजोमय, भाँति-भाँतिके सुमधुर शब्दोंसे युक्त तथा महान् हैं॥ ७॥

शिबिने कहा—महाराज! यदि आप खरीदना नहीं चाहते तो मेरे द्वारा स्वयं अर्पण किये हुए पुण्यलोकोंको ग्रहण कीजिये। तात! उन सबको देकर निश्चय ही मैं उन लोकोंमें नहीं जाऊँगा जिन लोकोंमें आप जा रहे होंगे॥ ८॥

ययाति बोले—नरदेव शिबि! जिस प्रकार तुम इन्द्रके समान प्रभावशाली हो उसी प्रकार तुम्हारे वे लोक भी अनन्त हैं, तथापि दूसरेके दिये हुए लोकमें मैं विहार नहीं कर सकता; इसीलिये तुम्हारे दिये हुएका अभिनन्दन नहीं करता॥ ९॥

अष्टकने कहा—राजन्! यदि आप हममेंसे एक-एकके दिये हुए लोकोंको प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण नहीं करते तो हम सब लोग अपने पुण्यलोक आपकी सेवामें समर्पित करके नरक (भूलोक)-में जानेको तैयार हैं॥ १०॥

ययाति बोले—मैं जिसके योग्य हूँ, उसीके लिये यत्न करो; क्योंकि साधु पुरुष सत्यका ही अभिनन्दन करते हैं। मैंने पूर्वकालमें जो कर्म नहीं किया, उसे अब भी स्वीकार नहीं कर सकता। नरेन्द्रसिंह! मुझ निर्लोभके प्रति तुमलोगोंने जो कुछ कहा है उसका फल वैसे ही निराशापूर्ण नहीं होगा, अपितु इतने बड़े दानके लिये जो उपयुक्त होगा, वह अनन्त फल तुम लोगोंको अवश्य प्राप्त होगा॥ ११-१२॥

अष्टक उवाच

कस्यैते प्रतिदृश्यन्ते रथाः पञ्च हिरण्मयाः।
उच्चैः सन्तः प्रकाशन्ते ज्वलन्तोऽग्निशिखा इव॥ १३

ययातिरुवाच

भवतां मम चैवैते रथा भान्ति हिरण्मयाः।
आरुह्यैतेषु गन्तव्यं भवद्भिश्च मया सह॥ १४

अष्टक उवाच

आतिष्ठस्व रथं राजन् विक्रमस्व विहायसा।
वयमप्यनुयास्यामो यदा कालो भविष्यति॥ १५

ययातिरुवाच

सर्वैरिदानीं गन्तव्यं सह स्वर्गो जितो यतः।
एष वो विरजाः पन्था दृश्यते देवसद्मगः॥ १६

शौनक उवाच

तेऽभिरुह्य रथं सर्वे प्रयाता नृपते नृपाः।
आक्रमन्तो दिवं भान्ति धर्मेणावृत्य रोदसी॥ १७

अष्टक उवाच

अहं मन्ये पूर्वमेकोऽभिगन्ता
सखा चेन्द्रः सर्वथा मे महात्मा।
कस्मादेवं शिबिरौशीनरोऽय-
मेकोऽत्ययात् सर्ववेगेन वाहान्॥ १८

ययातिरुवाच

अददाद् देवयानाय यावद् वित्तमनिन्दितः।
उशीनरस्य पुत्रोऽयं तस्माच्छ्रेष्ठो हि वः शिबिः॥ १९
दानं शौचं सत्यमथो ह्यहिंसा
ह्रीः श्रीस्तितिक्षा समताऽऽनृशंस्यम्।
राजन्येतान्यथ सर्वाणि राज्ञि
शिबौ स्थितान्यप्रतिमेषु बुद्ध्या।
एवं वृत्तं ह्रीनिषेवी बिभर्ति
तस्माच्छिबिरभिगन्ता रथेन॥ २०

शौनक उवाच

अथाष्टकः पुनरेवान्वपृच्छ-
न्मातामहं कौतुकादिन्द्रकल्पम्।
पृच्छामि त्वां नृपते ब्रूहि सत्यं
कुतश्च कश्चासि कथं त्वमागाः।
कृतं त्वया यद्धि न तस्य कर्ता
लोके त्वदन्यो ब्राह्मणः क्षत्रियो वा॥ २१

अष्टकने पूछा—आकाशमें ये किसके पाँच सुवर्णमय रथ दिखायी देते हैं, जो आकाशमण्डलमें बड़ी ऊँचाईपर स्थित हैं और अग्नि-शिखाकी भाँति प्रकाशित हो रहे हैं?॥ १३॥

ययाति बोले—ये जो स्वर्णमय रथ चमक रहे हैं, सभी मेरे तथा तुमलोगोंके लिये आये हैं। इन्हींपर आरूढ़ होकर तुमलोग मेरे साथ इन्द्र-लोकको चलोगे॥१४॥

अष्टक बोले—राजन्! आप रथमें बैठिये और आकाशमें ऊपरकी ओर बढ़िये। जब समय होगा तब हम भी आपका अनुसरण करेंगे॥१५॥

ययाति बोले—हम सब लोगोंने साथ-साथ स्वर्गपर विजय पायी है, इसलिये इस समय सबको वहाँ चलना चाहिये। देवलोकका यह रजोहीन सात्त्विक मार्ग हमें स्पष्ट दिखायी दे रहा है॥१६॥

शौनकजी कहते हैं—राजन्! तदनन्तर वे सभी नृपश्रेष्ठ उन दिव्य रथोंपर आरूढ़ हो धर्मके बलसे स्वर्गमें पहुँचनेके लिये चल दिये। उस समय पृथ्वी और आकाशमें उनकी प्रभा व्याप्त हो रही थी॥१७॥

अष्टक बोले—राजन्! महात्मा इन्द्र मेरे बड़े मित्र हैं, अतः मैं तो समझता था कि अकेला मैं ही सबसे पहले उनके पास पहुँचूँगा; परंतु ये उशीनर-पुत्र शिबि अकेले सम्पूर्ण वेगसे हम सबके वाहनोंको लाँघकर आगे बढ़ गये हैं, ऐसा कैसे हुआ?॥१८॥

ययातिने कहा—राजन्! उशीनरके पुत्र शिबिने ब्रह्मलोकके मार्गकी प्राप्तिके लिये अपना सर्वस्व दान कर दिया था, इसलिये ये तुमलोगोंमें श्रेष्ठ हैं। नरेश्वर! दान, पवित्रता, सत्य, अहिंसा, ह्री, श्री, क्षमा, समता और दयालुता—ये सभी अनुपम गुण राजा शिबिमें विद्यमान हैं तथा बुद्धिमें भी उनकी समता करनेवाला कोई नहीं है। राजा शिबि ऐसे सदाचारसम्पन्न और लज्जाशील हैं। (इनमें अभिमानकी मात्रा छू भी नहीं गयी है।) इसीलिये शिबि रथारूढ़ हो हम सबसे आगे बढ़ गये हैं॥१९-२०॥

शौनकजी कहते हैं—शतानीक! तदनन्तर अष्टकने कौतूहलवश इन्द्रतुल्य अपने नाना राजा ययातिसे पुनः प्रश्न किया—'महाराज! मैं आपसे एक बात पूछता हूँ। आप उसे सच-सच बताइये। आप कहाँसे आये हैं, कौन हैं और किसके पुत्र हैं? आपने जो कुछ किया है, उसे करनेवाला आपके सिवा दूसरा कोई क्षत्रिय अथवा ब्राह्मण इस संसारमें नहीं है'॥२१॥

ययातिरुवाच

ययातिरस्मि नहुषस्य पुत्रः
पूरोः पिता सार्वभौमस्त्विहासम्।
गुह्यं मन्त्रं मामकेभ्यो ब्रवीमि
मातामहो भवतां सुप्रकाशः॥ २२
सर्वामिमां पृथिवीं निर्जिगाय
ऋद्धां महीमददां ब्राह्मणेभ्यः।
मेध्यानश्वान् नैकशस्तान् सुरूपां-
स्तदा देवाः पुण्यभाजो भवन्ति॥ २३
अदामहं पृथिवीं ब्राह्मणेभ्यः
पूर्णामिमामखिलान्नैः प्रशस्ताम्।
गोभिः सुवर्णैश्च धनैश्च मुख्यै-
रश्वाः सनागाः शतशस्त्वर्बुदानि॥ २४
सत्येन मे द्यौश्च वसुंधरा च
तथैवाग्निर्ज्वलते मानुषेषु।
न मे वृथा व्याहृतमेव वाक्यं
सत्यं हि सन्तः प्रतिपूजयन्ति॥ २५
साध्वष्टक प्रब्रवीमीह सत्यं
प्रतर्दनं वसुमन्तं शिबिं च।
सर्वे देवा मुनयश्च लोकाः
सत्येन पूज्या इति मे मनोगतम्॥ २६
यो नः स्वर्गजितं सर्वं यथावृत्तं निवेदयेत्।
अनसूयुर्द्विजाग्र्येभ्यः स भोजेन्नः सलोकताम्॥ २७

शौनक उवाच

एवं राजन् स महात्मा ययातिः
स्वदौहित्रैस्तारितो मित्रवर्यैः।
त्यक्त्वा महीं परमोदारकर्मा
स्वर्गं गतः कर्मभिर्व्याप्य पृथ्वीम्॥ २८
एवं सर्वं विस्तरतो यथाव-
दाख्यातं ते चरितं नाहुषस्य।
वंशो यस्य प्रथितः पौरवेयो
यस्मिञ्जातस्त्वं मनुजेन्द्रकल्पः॥ २९

ययातिने कहा—मैं नहुषका पुत्र और पूरुका पिता राजा ययाति हूँ। मैं इस लोकमें चक्रवर्ती नरेश था। तुम सब लोग मेरे अपने हो, अतः तुमसे गुप्त बात भी खोलकर बतलाये देता हूँ। मैं तुमलोगोंका नाना हूँ। (यद्यपि पहले भी यह बात बता चुका हूँ, तथापि पुनः स्पष्ट कर देता हूँ।) मैंने इस सारी पृथ्वीको जीत लिया था और पुनः इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीको ब्राह्मणोंको दान भी कर दिया था। मनुष्य जब एक सौ सुन्दर पवित्र अश्वोंका दान करते हैं तब वे पुण्यात्मा देवता होते हैं। मैंने सब तरहके अन्न, गौ, सुवर्ण तथा उत्तम धनसे परिपूर्ण यह प्रशस्त पृथ्वी ब्राह्मणोंको दान कर दी थी एवं सौ अर्बुद (दस अरब) हाथियोंसहित घोड़ोंका दान भी किया था। सत्यसे ही पृथ्वी और आकाश टिके हुए हैं। इसी प्रकार सत्यसे ही मनुष्य-लोकमें अग्नि प्रज्वलित होती है। मैंने कभी व्यर्थ बात मुँहसे नहीं निकाली है; क्योंकि साधु पुरुष सदा सत्यका ही आदर करते हैं। अष्टक! मैं तुमसे, प्रतर्दनसे, वसुमान्‌से और शिबिसे भी यहाँ जो कुछ कहता हूँ, वह सब सत्य ही है। मेरे मनका यह विश्वास है कि समस्त लोक, मुनि और देवता सत्यसे ही पूजनीय होते हैं। जो मनुष्य हृदयमें ईर्ष्या न रखकर स्वर्गपर अधिकार करनेवाले हम सब लोगोंके इस वृत्तान्तको यथार्थरूपसे श्रेष्ठ द्विजोंके सामने सुनायेगा, वह हमारे ही समान पुण्यलोकोंको प्राप्त कर लेगा॥ २२—२७॥

शौनकजी कहते हैं—राजन्! राजा ययाति बड़े महात्मा थे और उनके कर्म अत्यन्त उदार थे। उनके श्रेष्ठ मित्ररूपी दौहित्रोंने उनका उद्धार किया और वे सत्कर्मोंद्वारा सम्पूर्ण भूमण्डलको व्याप्त करके पृथ्वीको छोड़कर स्वर्गलोकमें चले गये। इस प्रकार मैंने तुमसे नहुष-पुत्र राजा ययातिका सारा चरित्र यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक कह सुनाया। यही वंश आगे चलकर पुरुवंशके नामसे विख्यात हुआ, जिसमें तुम मनुष्योंमें इन्द्रके समान उत्पन्न हुए हो॥ २८-२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे ययातिचरिते द्विचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें ययाति-चरित-वर्णन-विषयक बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४२॥

तैंतालीसवाँ अध्याय

ययाति-वंश-वर्णन, यदुवंशका वृत्तान्त तथा कार्तवीर्य अर्जुनकी कथा

सूत उवाच

इत्येतच्छौनकाद् राजा शतानीको निशम्य तु।
विस्मितः परया प्रीत्या पूर्णचन्द्र इवाबभौ॥ १

पूजयामास नृपतिर्विधिवच्चाथ शौनकम्।
रत्नैर्गोभिः सुवर्णैश्च वासोभिर्विविधैस्तथा॥ २

प्रतिगृह्य ततः सर्वं यद् राज्ञा प्रहितं धनम्।
दत्त्वा च ब्राह्मणेभ्यश्च शौनकोऽन्तरधीयत॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! राजा शतानीक महर्षि शौनकसे यह सारा वृत्तान्त सुनकर विस्मयाविष्ट हो गये तथा उत्कृष्ट प्रेमके कारण उनका चेहरा पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति खिल उठा। तदनन्तर राजाने अनेक प्रकारके रत्न, गौ, सुवर्ण और वस्त्रोंद्वारा महर्षि शौनककी विधिपूर्वक पूजा की। शौनकजीने राजाद्वारा दिये गये उस सारे धनको ग्रहण करके पुनः उसे ब्राह्मणोंको दान कर दिया और स्वयं वहीं अन्तर्हित हो गये॥ १—३॥

ऋषय ऊचुः

ययातेर्वंशमिच्छामः श्रोतुं विस्तरतो वद।
यदुप्रभृतिभिः पुत्रैर्यदा लोके प्रतिष्ठितम्॥ ४

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब हमलोग ययातिके वंशका वर्णन सुनना चाहते हैं। जब उनके यदु आदि पुत्र लोकमें प्रतिष्ठित हुए तब फिर आगे चलकर क्या हुआ? इसे विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ ४॥

सूत उवाच

यदोर्वंशं प्रवक्ष्यामि ज्येष्ठस्योत्तमतेजसः।
विस्तरेणानुपूर्व्या च गदतो मे निबोधत॥ ५

यदोः पुत्रा बभूवुर्हि पञ्च देवसुतोपमाः।
महारथा महेष्वासा नामतस्तान् निबोधत॥ ६

सहस्रजिरथो ज्येष्ठः क्रोष्टुर्नीलोऽन्तिको लघुः।
सहस्रजेस्तु दायादः शतजिर्नाम पार्थिवः॥ ७

शतजेरपि दायादास्त्रयः परमकीर्तयः।
हैहयश्च हयश्चैव तथा वेणुहयश्च यः॥ ८

हैहयस्य तु दायादो धर्मनेत्रः प्रतिश्रुतः।
धर्मनेत्रस्य कुन्तिस्तु संहतस्तस्य चात्मजः॥ ९

संहतस्य तु दायादो महिष्मान् नाम पार्थिवः।
आसीन्माहिष्मतः पुत्रो रुद्रश्रेण्यः प्रतापवान्॥ १०

वाराणस्यामभूद् राजा कथितं पूर्वमेव तु।
रुद्रश्रेण्यस्य पुत्रोऽभूद् दुर्दमो नाम पार्थिवः॥ ११

दुर्दमस्य सुतो धीमान् कनको नाम वीर्यवान्।
कनकस्य तु दायादाश्चत्वारो लोकविश्रुताः॥ १२

कृतवीर्यः कृताग्निश्च कृतवर्मा तथैव च।
कृतौजाश्च चतुर्थोऽभूत् कृतवीर्यात् ततोऽर्जुनः॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं ययातिके ज्येष्ठ पुत्र परम तेजस्वी यदुके वंशका क्रमसे एवं विस्तारपूर्वक* वर्णन कर रहा हूँ, आपलोग मेरे कथनानुसार उसे ध्यानपूर्वक सुनिये। यदुके पाँच पुत्र हुए जो सभी देवपुत्र-सदृश तेजस्वी, महारथी और महान् धनुर्धर थे। उन्हें नामनिर्देशानुसार यों जानिये—उनमें ज्येष्ठका नाम सहस्रजि था, शेष चारोंका नाम क्रमशः क्रोष्टु, नील, अन्तिक और लघु था। सहस्रजिका पुत्र राजा शतजि हुआ। शतजिके हैहय, हय और वेणुहय नामक परम यशस्वी तीन पुत्र हुए। हैहयका विश्वविख्यात पुत्र धर्मनेत्र हुआ। धर्मनेत्रका पुत्र कुन्ति और उसका पुत्र संहत हुआ। संहतका पुत्र राजा महिष्मान् हुआ। महिष्मान्का पुत्र प्रतापी रुद्रश्रेण्य था, जो वाराणसी नगरीका राजा हुआ। इसका वृत्तान्त पहले ही कहा जा चुका है। रुद्रश्रेण्यका पुत्र दुर्दम नामका राजा हुआ। दुर्दमका पुत्र परम बुद्धिमान् एवं पराक्रमी कनक था। कनकके चार विश्वविख्यात पुत्र हुए, जिनके नाम हैं—कृतवीर्य, कृताग्नि, कृतवर्मा और चौथा कृतौजा। इनमें कृतवीर्यसे अर्जुनका जन्म हुआ,

* यह वर्णन भागवत ९। २३। १९ से २४। ६७ तक तथा वायु, ब्रह्माण्ड, विष्णु, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी मिलता है।

जातः करसहस्रेण सप्तद्वीपेश्वरो नृपः।
वर्षायुतं तपस्तेपे दुश्चरं पृथिवीपतिः॥ १४

दत्तमाराधयामास कार्तवीर्योऽत्रिसम्भवम्।
तस्मै दत्ता वरास्तेन चत्वारः पुरुषोत्तमः॥ १५

पूर्वं बाहुसहस्रं तु स वव्रे राजसत्तमः।
अधर्मं चरमाणस्य सद्भिश्चापि निवारणम्॥ १६

युद्धेन पृथिवीं जित्वा धर्मेणैवानुपालनम्।
संग्रामे वर्तमानस्य वधश्चैवाधिकाद् भवेत्॥ १७

जो सहस्र भुजाधारी (होनेके कारण सहस्रार्जुन नामसे प्रसिद्ध था) तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर था। पुरुषश्रेष्ठ कृतवीर्यनन्दन राजा सहस्रार्जुनने दस हजार वर्षोंतक घोर तपस्या करते हुए महर्षि अत्रिके पुत्र दत्तात्रेयकी आराधना की। उससे प्रसन्न होकर दत्तात्रेयने इसे चार वर प्रदान किये। उनमें प्रथम वरके रूपमें राजश्रेष्ठ अर्जुनने अपने लिये एक हजार भुजाएँ माँगी। दूसरे वरसे सत्पुरुषोंके साथ अधर्म करनेवालोंके निवारणका अधिकार माँगा। तीसरे वरसे युद्धद्वारा सारी पृथ्वीको जीतकर धर्मानुसार उसका पालन करना था और चौथा वर यह माँगा कि रणभूमिमें युद्ध करते समय मुझसे अधिक बलवान्‌के हाथों मेरा वध हो॥ ५—१७॥

तेनेयं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपर्वता।
सप्तोदधिपरिक्षिप्ता क्षात्रेण विधिना जिता॥ १८

जज्ञे बाहुसहस्रं वै इच्छतस्तस्य धीमतः।
रथो ध्वजश्च सञ्जज्ञे इत्येवमनुशुश्रुमः॥ १९

दशयज्ञसहस्राणि राज्ञा द्वीपेषु वै तदा।
निरर्गलानि वृत्तानि श्रूयन्ते तस्य धीमतः॥ २०

सर्वे यज्ञा महाराज्ञस्तस्यासन् भूरिदक्षिणाः।
सर्वे काञ्चनयूपास्ते सर्वाः काञ्चनवेदिकाः॥ २१

सर्वे देवैः समं प्राप्तैर्विमानस्थैरलङ्कृताः।
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च नित्यमेवोपशोभिताः॥ २२

तस्य यज्ञे जगौ गाथां गन्धर्वो नारदस्तथा।
कार्तवीर्यस्य राजर्षेर्महिमानं निरीक्ष्य सः॥ २३

न नूनं कार्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्च विक्रमेण श्रुतेन च॥ २४

स हि सप्तसु द्वीपेषु खड्गी चक्री शरासनी।
रथी द्वीपान्यनुचरन् योगी पश्यति तस्करान्॥ २५

पञ्चाशीतिसहस्राणि वर्षाणां स नराधिपः।
स सर्वरत्नसम्पूर्णश्चक्रवर्ती बभूव ह॥ २६

स एव पशुपालोऽभूत् क्षेत्रपालः स एव हि।
स एव वृष्ट्या पर्जन्यो योगित्वादर्जुनोऽभवत्॥ २७

योऽसौ बाहुसहस्रेण ज्याघातकठिनत्वचा।
भाति रश्मिसहस्रेण शारदेनैव भास्करः॥ २८

उस वरदानके प्रभावसे कार्तवीर्य अर्जुनने क्षात्र-धर्मानुसार सातों समुद्रोंसे परिवेष्टित पर्वतोंसहित सातों द्वीपोंकी समग्र पृथ्वीको जीत लिया; क्योंकि उस बुद्धिमान् अर्जुनके इच्छा करते ही एक हजार भुजाएँ निकल आयीं तथा उसी प्रकार रथ और ध्वज भी प्रकट हो गये—ऐसा हमलोगोंके सुननेमें आया है। साथ ही उस बुद्धिमान् अर्जुनके विषयमें यह भी सुना जाता है कि उसने सातों द्वीपोंमें दस सहस्र यज्ञोंका अनुष्ठान निर्विघ्नतापूर्वक सम्पन्न किया था। उस राजराजेश्वरके सभी यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणाएँ बाँटी गयी थीं। उनमें गड़े हुए यूप (यज्ञस्तम्भ) स्वर्णनिर्मित थे। सभी वेदिकाएँ सुवर्णकी बनी हुई थीं। वे सभी यज्ञ अपना-अपना भाग लेनेके लिये आये हुए विमानारूढ़ देवोंद्वारा सुशोभित थे। गन्धर्व और अप्सराएँ भी नित्य आकर उनकी शोभा बढ़ाती थीं। राजर्षि कार्तवीर्यके महत्त्वको देखकर नारदनामक गन्धर्वने उनके यज्ञमें ऐसी गाथा गायी थी—'भावी क्षत्रिय नरेश निश्चय ही यज्ञ, दान, तप, पराक्रम और शास्त्रज्ञानके द्वारा कार्तवीर्यकी समकक्षताको नहीं प्राप्त होंगे।' योगी अर्जुन रथपर आरूढ़ हो हाथमें खड्ग, चक्र और धनुष धारण करके सातों द्वीपोंमें भ्रमण करता हुआ चोरों-डाकुओंपर कड़ी दृष्टि रखता था। राजा अर्जुन पचासी हजार वर्षोंतक भूतलपर शासन करके समस्त रत्नोंसे परिपूर्ण हो चक्रवर्ती सम्राट् बना रहा। राजा अर्जुन ही अपने योगबलसे पशुओंका पालक था, वही खेतोंका भी रक्षक था और वही समयानुसार मेघ बनकर वृष्टि भी करता था। प्रत्यञ्चाके आघातसे कठोर हुई त्वचाओंवाली अपनी सहस्रों भुजाओंसे वह उसी प्रकार शोभा पाता था, जिस प्रकार सहस्रों किरणोंसे युक्त शारदीय सूर्य शोभित होते हैं॥ १८—२८॥

एष नागं मनुष्येषु माहिष्मत्यां महाद्युतिः।
कर्कोटकसुतं जित्वा पुर्यां तत्र न्यवेशयत्॥ २९
एष वेगं समुद्रस्य प्रावृट्काले भजेत वै।
क्रीडन्नेव सुखोद्भिन्नः प्रतिस्रोतो महीपतिः॥ ३०
ललनाः क्रीडता तेन प्रतिस्रग्दाममालिनीः।
ऊर्मिभ्रुकुटिसंत्रासाच्चकिताभ्येति नर्मदा॥ ३१
एको बाहुसहस्रेण वगाहे स महार्णवः।
करोत्युद्वृत्तवेगां तु नर्मदां प्रावृडुद्धताम्॥ ३२
तस्य बाहुसहस्रेण क्षोभ्यमाणे महोदधौ।
भवन्त्यतीव निश्चेष्टाः पातालस्था महासुराः॥ ३३
चूर्णीकृतमहावीचिलीनमीनमहातिमिम् ।
मारुताविद्धफेनौघमावर्ताक्षिप्तदुःसहम् ॥ ३४
करोत्यालोडयन्नेव दोःसहस्रेण सागरम्।
मन्दरक्षोभचकिता ह्यमृतोत्पादशङ्किताः॥ ३५
तदा निश्चलमूर्धानो भवन्ति च महोरगाः।
सायाह्ने कदलीखण्डा निर्वातस्तिमिता इव॥ ३६
एवं बद्ध्वा धनुर्ज्यायामुत्सिक्तं पञ्चभिः शरैः।
लङ्कायां मोहयित्वा तु सबलं रावणं बलात्॥ ३७
निर्जित्य बद्ध्वा चानीय माहिष्मत्यां बबन्ध च।
ततो गत्वा पुलस्त्यस्तु ह्यर्जुनः सम्प्रसादयत्॥ ३८
मुमोच रक्षः पौलस्त्यं पुलस्त्येनेह सान्त्वितम्।
तस्य बाहुसहस्रेण बभूव ज्यातलस्वनः॥ ३९
युगान्ताभ्रसहस्रस्य आस्फोटस्त्वशनेरिव।
अहो बत विधेर्वीर्यं भार्गवोऽयं यदाच्छिनत्॥ ४०
तद् वै सहस्रं बाहूनां हेमतालवनं यथा।
यत्रापवस्तु संक्रुद्धो ह्यर्जुनं शमवान् प्रभुः॥ ४१
यस्माद् वनं प्रदग्धं वै विश्रुतं मम हैहय।
तस्मात् ते दुष्करं कर्म कृतमन्यो हरिष्यति॥ ४२

मनुष्योंमें महान् तेजस्वी अर्जुनने कर्कोटक नागके पुत्रको जीतकर अपनी माहिष्मती पुरीमें बाँध रखा था। भूपाल अर्जुन वर्षा-ऋतुमें प्रवाहके सम्मुख सुखपूर्वक क्रीडा करते हुए ही समुद्रके वेगको रोक देता था। ललनाओंके साथ जलविहार करते समय उसके गलेसे टूटकर गिरी हुई मालाओंको धारण करनेवाली तथा लहररूपी भ्रुकुटियोंके व्याजसे भयभीत-सी हुई नर्मदा चकित होकर उसके निकट आ जाती थी। वह अकेला ही अपनी सहस्र भुजाओंसे अगाध समुद्रको विलोडित कर देता था एवं वर्षाकालमें वेगसे बहती हुई नर्मदाको और भी उद्धत वेगवाली बना देता था। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा विलोडन करनेसे महासागरके क्षुब्ध हो जानेपर पातालनिवासी बड़े-बड़े असुर अत्यन्त निश्चेष्ट हो जाते थे। अपनी सहस्र भुजाओंसे महासागरका विलोडन करते समय वह समुद्रकी उठती हुई विशाल लहरोंके मध्य आयी हुई मछलियों और बड़े-बड़े तिमिङ्गिलोंके चूर्णसे उसे व्याप्त कर देता था तथा वायुके झकोरेसे उठे हुए फेनसमूहसे फेनिल और भँवरोंके चपेटसे दुःसह बना देता था। उस समय पूर्वकालमें मन्दराचलके मन्थनके विक्षोभसे चकित एवं पुनः अमृतोत्पादनकी आशङ्कासे सशङ्कित-से हुए बड़े-बड़े नागोंके मस्तक इस प्रकार निश्चल हो जाते थे, जैसे सायंकाल वायुके स्थगित हो जानेपर केलेके पत्ते प्रशान्त हो जाते हैं। इसी प्रकार अर्जुनने एक बार लंकामें जाकर अपने पाँच बाणोंद्वारा सेनासहित रावणको मोहित कर दिया और उसे बलपूर्वक जीतकर अपने धनुषकी प्रत्यञ्चामें बाँध लिया, फिर माहिष्मती पुरीमें लाकर उसे बंदी बना लिया। यह सुनकर महर्षि पुलस्त्यने माहिष्मतीपुरीमें जाकर अर्जुनको अनेकों प्रकारसे समझा-बुझाकर प्रसन्न किया। तब अर्जुनने महर्षि पुलस्त्यद्वारा सान्त्वना दिये जानेपर उस पुलस्त्य-पौत्र राक्षसराज रावणको बन्धनमुक्त कर दिया। उसकी हजारों भुजाओंद्वारा धनुषकी प्रत्यञ्चा खींचनेपर ऐसा भयंकर शब्द होता था, मानो प्रलयकालीन सहस्रों बादलोंकी घटाके मध्य वज्रकी गड़गड़ाहट हो रही हो; परंतु विधिका पराक्रम धन्य है जो भृगुकुलोत्पन्न परशुरामजीने उसकी हजारों भुजाओंको हेमतालके वनकी भाँति काटकर छिन्न-भिन्न कर दिया। इसका कारण यह है कि एक बार सामर्थ्यशाली महर्षि आपव* (वसिष्ठ)-ने क्रुद्ध होकर अर्जुनको शाप देते हुए कहा था—'हैहय! चूँकि तुमने मेरे लोकप्रसिद्ध वनको जलाकर भस्म कर दिया है, इसलिये तुम्हारे द्वारा किये गये इस दुष्कर कर्मका फल कोई दूसरा

* आप शब्द वरुणका वाचक है। उनके पुत्र मैत्रावारुणिके होनेसे यहाँ महर्षि वसिष्ठ ही महाभारत, हरिवंश, देवीभागवत तथा उसके व्याख्याताओंके अनुसार 'आपव' नामसे निर्दिष्ट हैं।

छित्त्वा बाहुसहस्रं ते प्रथमं तरसा बली।
तपस्वी ब्राह्मणश्च त्वां स वधिष्यति भार्गवः॥ ४३

हरण कर लेगा। भृगुकुलमें उत्पन्न एक तपस्वी एवं बलवान् ब्राह्मण पहले तुम्हारी सहस्रों भुजाओंको काटकर फिर तुम्हारा वध कर देगा'॥ २९—४३॥

सूत उवाच

तस्य रामस्तदा त्वासीन्मृत्युः शापेन धीमतः।
वरश्चैवं तु राजर्षेः स्वयमेव वृतः पुरा॥ ४४
तस्य पुत्रशतं त्वासीत् पञ्च तत्र महारथाः।
कृतास्त्रा बलिनः शूरा धर्मात्मानो महाबलाः॥ ४५
शूरसेनश्च शूरश्च धृष्टः क्रोष्टुस्तथैव च।
जयध्वजश्च वैकर्ता अवन्तिश्च विशांपते॥ ४६
जयध्वजस्य पुत्रस्तु तालजङ्घो महाबलः।
तस्य पुत्रशतान्येव तालजङ्घा इति श्रुताः॥ ४७
तेषां पञ्च कुलाः ख्याता हैहयानां महात्मनाम्।
वीतिहोत्राश्च शार्याता भोजाश्चावन्तयस्तथा॥ ४८
कुण्डिकेराश्च विक्रान्तास्तालजङ्घास्तथैव च।
वीतिहोत्रसुतश्चापि आनर्तो नाम वीर्यवान्।
दुर्जेयस्तस्य पुत्रस्तु बभूवामित्रकर्शनः॥ ४९
सद्भावेन महाप्राज्ञः प्रजा धर्मेण पालयन्।
कार्तवीर्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रवान्॥ ५०
येन सागरपर्यन्ता धनुषा निर्जिता मही।
यस्तस्य कीर्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय मानवः॥ ५१
न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टं च लभते पुनः।
कार्तवीर्यस्य यो जन्म कथयेदिह धीमतः।
यथावत् स्विष्टपूतात्मा स्वर्गलोके महीयते॥ ५२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार उस शापके कारण परशुरामजी उसकी मृत्युके कारण तो अवश्य हुए, परंतु पूर्वकालमें उस राजर्षिने स्वयं ही ऐसे वरका वरण किया था। राजन्! सहस्रार्जुनके पुत्र तो एक सौ हुए, परंतु उनमें पाँच महारथी थे। उनके अतिरिक्त शूरसेन, शूर, धृष्ट, क्रोष्टु, जयध्वज, वैकर्ता और अवन्ति—ये सातों अस्त्रविद्यामें निपुण, बलवान्, शूरवीर, धर्मात्मा और महान् पराक्रमशाली थे। जयध्वजका पुत्र महाबली तालजङ्घ हुआ। उसके एक सौ पुत्र हुए जो तालजङ्घके नामसे विख्यात हुए। हैहयवंशी इन महात्मा नरेशोंका कुल विभक्त होकर पाँच भागोंमें विख्यात हुआ। उनके नाम हैं—वीतिहोत्र, शार्यात, भोज, आवन्ति तथा पराक्रमी कुण्डिकेर। ये ही तालजङ्घके भी नामसे प्रसिद्ध थे। वीतिहोत्रका पुत्र प्रतापी आनर्त (गुजरातका शासक) हुआ। उसका पुत्र दुर्जेय हुआ जो शत्रुओंका विनाशक था। अमित बुद्धिसम्पन्न एवं सहस्रभुजाधारी कृतवीर्य-नन्दन राजा अर्जुन सद्भावना एवं धर्मपूर्वक प्रजाओंका पालन करता था। उसने अपने धनुषके बलसे सागरपर्यन्त पृथ्वीपर विजय पायी थी। जो मानव प्रातःकाल उठकर उसका नाम स्मरण करता है उसके धनका नाश नहीं होता और यदि नष्ट हो गया है तो पुनः प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य कार्तवीर्य अर्जुनके जन्म-वृत्तान्तको कहता है उसका आत्मा यथार्थरूपसे पवित्र हो जाता है और वह स्वर्गलोकमें प्रशंसित होता है॥ ४४—५२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे सहस्रार्जुनचरिते त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोम-वंश-वर्णन-प्रसङ्गमें सहस्रार्जुनचरित नामक तैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४३॥

चौवालीसवाँ अध्याय

कार्तवीर्यका आदित्यके तेजसे सम्पन्न होकर वृक्षोंको जलाना, महर्षि आपवद्वारा कार्तवीर्यको शाप और क्रोष्टुके वंशका वर्णन

ऋषय ऊचुः

किमर्थं तद् वनं दग्धमापवस्य महात्मनः।
कार्तवीर्येण विक्रम्य सूत प्रब्रूहि तत्त्वतः॥ १
रक्षिता स तु राजर्षिः प्रजानामिति नः श्रुतम्।
स कथं रक्षिता भूत्वा अदहत् तत् तपोवनम्॥ २

सूत उवाच

आदित्यो द्विजरूपेण कार्तवीर्यमुपस्थितः।
तृप्तिमेकां प्रयच्छस्व आदित्योऽहं नरेश्वर॥ ३

राजोवाच

भगवन् केन तृप्तिस्ते भवत्येव दिवाकर।
कीदृशं भोजनं दद्मि श्रुत्वा तु विदधाम्यहम्॥ ४

आदित्य उवाच

स्थावरं देहि मे सर्वमाहारं ददतां वर।
तेन तृप्तो भवेयं वै सा मे तृप्तिर्हि पार्थिव॥ ५

कार्तवीर्य उवाच

न शक्याः स्थावराः सर्वे तेजसा च बलेन च।
निर्दग्धुं तपतां श्रेष्ठ तेन त्वां प्रणमाम्यहम्॥ ६

आदित्य उवाच

तुष्टस्तेऽहं शरान् दद्मि अक्षयान् सर्वतोमुखान्।
ये प्रक्षिप्ता ज्वलिष्यन्ति मम तेजः समन्विताः॥ ७
आविष्टा मम तेजोभिः शोषयिष्यन्ति स्थावरान्।
शुष्कान् भस्मीकरिष्यन्ति तेन तृप्तिर्नराधिप॥ ८

सूत उवाच

ततः शरांस्तदादित्यस्त्वर्जुनाय प्रयच्छत।
ततो ददाह सम्प्राप्तान् स्थावरान् सर्वमेव च॥ ९
ग्रामांस्तथाऽऽश्रमांश्चैव घोषाणि नगराणि च।
तपोवनानि रम्याणि वनान्युपवनानि च॥ १०
एवं प्राचीमन्वदहं ततः सर्वां सदक्षिणाम्।
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्हता घोरेण तेजसा॥ ११

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कार्तवीर्यने बलपूर्वक महात्मा आपवके उस वनको किस कारण जलाया था? अभी-अभी हम लोगोंने सुना है कि वे राजर्षि कार्तवीर्य प्रजाओंके रक्षक थे तो फिर रक्षक होकर उन्होंने महर्षिके तपोवनको कैसे जला दिया?॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! एक बार सूर्य* ब्राह्मणका रूप धारण करके कार्तवीर्यके निकट पहुँचे और कहने लगे—'नरेश्वर! मैं सूर्य हूँ, आप मुझे एक बार तृप्ति प्रदान कीजिये'॥ ३॥

राजाने पूछा—भगवन्! किस पदार्थसे आपकी तृप्ति होगी? दिवाकर! मैं आपको किस प्रकारका भोजन प्रदान करूँ? आपकी बात सुनकर मैं उसी प्रकारका विधान करूँगा॥ ४॥

सूर्य बोले—दानिशिरोमणे! मुझे समस्त स्थावर अर्थात् वृक्ष आदिको आहाररूपमें प्रदान कीजिये। मैं उसीसे तृप्त होऊँगा। राजन्! वही मेरे लिये सर्वश्रेष्ठ तृप्ति होगी॥ ५॥

कार्तवीर्यने कहा—तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ सूर्य! ये समस्त वृक्ष मेरे तेज और बलद्वारा जलाये नहीं जा सकते; अतः मैं आपको प्रणाम करता हूँ॥ ६॥

सूर्य बोले—नरेश्वर! मैं आपपर प्रसन्न हूँ, इसलिये मैं आपको ऐसे अक्षय एवं सर्वतोमुखी बाण दे रहा हूँ, जो मेरे तेजसे युक्त होनेके कारण चलाये जानेपर स्वयं जल उठेंगे और मेरे तेजसे परिपूर्ण हुए वे सारे वृक्षोंको सुखा देंगे; फिर सूख जानेपर उन्हें जलाकर भस्म कर देंगे। उससे मेरी तृप्ति हो जायगी॥ ७-८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर सूर्यने कार्तवीर्य अर्जुनको अपने बाण प्रदान कर दिये। तब अर्जुनने सम्मुख आये हुए समस्त वृक्षों, ग्रामों, आश्रमों, घोषों, नगरों, तपोवनों तथा रमणीय वनों एवं उपवनोंको जलाकर राखका ढेर बना दिया। इस प्रकार पूर्व दिशाको जलाकर फिर समूची दक्षिण दिशाको भी भस्म कर दिया। उस भयंकर तेजसे पृथ्वी वृक्षों एवं तृणोंसे रहित होकर नष्ट-

* यहाँ आदित्य सूर्य हैं, पर हरिवंशपु० १। ३३ आदिके अनुसार अग्निदेव ही ब्राह्मणवेषमें आये थे।

एतस्मिन्नेव काले तु आपवो जलमास्थितः।
दशवर्षसहस्राणि तत्रास्ते स महान् ऋषिः॥ १२
पूर्णे व्रते महातेजा उदतिष्ठंस्तपोधनः।
सोऽपश्यदाश्रमं दग्धमर्जुनेन महामुनिः॥ १३
क्रोधाच्छशाप राजर्षि कीर्तितं वो यथा मया।
क्रोष्टोः शृणुत राजर्षेर्वंशमुत्तमपौरुषम्॥ १४
यस्यान्ववाये सम्भूतो विष्णुर्वृष्णिकुलोद्वहः।
क्रोष्टोरेवाभवत् पुत्रो वृजिनीवान् महारथः॥ १५
वृजिनीवतश्च पुत्रोऽभूत् स्वाहो नाम महाबलः।
स्वाहपुत्रोऽभवद् राजन् रुषङ्गुर्वदतां वरः॥ १६
स तु प्रसूतिमिच्छन् वै रुषङ्गुः सौम्यमात्मजम्।
चित्रश्चित्ररथश्चास्य पुत्रः कर्मभिरन्वितः॥ १७
अथ चैत्ररथिर्वीरो जज्ञे विपुलदक्षिणः।
शशबिन्दुरिति ख्यातश्चक्रवर्ती बभूव ह॥ १८
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतस्तस्मिन् पुराभवत्।
शशबिन्दोस्तु पुत्राणां शतानामभवच्छतम्॥ १९
धीमतां चाभिरूपाणां भूरिद्रविणतेजसाम्।
तेषां शतप्रधानानां पृथुसाह्वा महाबलाः॥ २०
पृथुश्रवाः पृथुयशाः पृथुधर्मा पृथुञ्जयः।
पृथुकीर्तिः पृथुमना राजानः शशबिन्दवः॥ २१
शंसन्ति च पुराणज्ञाः पृथुश्रवसमुत्तमम्।
अन्तरस्य सुयज्ञस्य सुयज्ञस्तनयोऽभवत्॥ २२
उशना तु सुयज्ञस्य यो रक्षेत् पृथिवीमिमाम्।
आजहाराश्वमेधानां शतमुत्तमधार्मिकः॥ २३
तितिक्षुरभवत् पुत्र औशनः शत्रुतापनः।
मरुत्तस्तस्य तनयो राजर्षीणामनुत्तमः॥ २४
आसीन्मरुत्ततनयो वीरः कम्बलबर्हिषः।
पुत्रस्तु रुक्मकवचो विद्वान् कम्बलबर्हिषः॥ २५
निहत्य रुक्मकवचः परान् कवचधारिणः।
धन्विनो विविधैर्बाणैरवाप्य पृथिवीमिमाम्॥ २६

भ्रष्ट हो गयी। उसी समय महर्षि आपव जो महान् तेजस्वी और तपस्याके धनी थे, दस हजार वर्षोंसे जलके भीतर बैठकर तप कर रहे थे, व्रत पूर्ण होनेपर बाहर निकले तो उन महामुनिने अर्जुनद्वारा अपने आश्रमको जलाया हुआ देखा। तब उन्होंने क्रुद्ध होकर राजर्षि अर्जुनको उक्त शाप दे दिया, जैसा कि मैंने अभी आप लोगोंको बतलाया है॥ ९—१३ $\frac{1}{2}$॥

ऋषियो! (अब) आपलोग राजर्षि क्रोष्टुके उस उत्तम बल-पौरुषसे सम्पन्न वंशका वर्णन सुनिये, जिस वंशमें वृष्णिवंशावतंस भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) अवतीर्ण हुए थे। क्रोष्टुके पुत्र महारथी वृजिनीवान् हुए। वृजिनीवान्के स्वाह (पद्मपुराणमें स्वाति) नामक महाबली पुत्र उत्पन्न हुआ। राजन्! वक्ताओंमें श्रेष्ठ रुषङ्गु[1] स्वाहके पुत्ररूपमें पैदा हुए। रुषङ्गुने संतानकी इच्छासे सौम्य स्वभाववाले पुत्रकी कामना की। तब उनके सत्कर्मोंसे समन्वित एवं चित्र-विचित्र रथसे युक्त चित्ररथ नामक पुत्र हुआ। चित्ररथके एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जो शशबिन्दु नामसे विख्यात था। वह आगे चलकर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। वह यज्ञोंमें प्रचुर दक्षिणा देनेवाला था। पूर्वकालमें इस शशबिन्दुके विषयमें वंशानुक्रमणिकारूप यह श्लोक गाया जाता रहा है कि शशबिन्दुके सौ पुत्र हुए। उनमें भी प्रत्येकके सौ-सौ पुत्र हुए। वे सभी प्रचुर धन-सम्पत्ति एवं तेजसे परिपूर्ण, सौन्दर्यशाली एवं बुद्धिमान् थे। उन पुत्रोंके नामके अग्रभागमें 'पृथु' शब्दसे संयुक्त छः महाबली पुत्र हुए। उनके पूरे नाम इस प्रकार हैं—पृथुश्रवा, पृथुयशा, पृथुधर्मा, पृथुंजय, पृथुकीर्ति और पृथुमना। ये शशबिन्दुके वंशमें उत्पन्न हुए राजा थे। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान्लोग इनमें सबसे ज्येष्ठ पृथुश्रवाकी विशेष प्रशंसा करते हैं। उत्तम यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले पृथुश्रवाका पुत्र सुयज्ञ हुआ। सुयज्ञका पुत्र उशना हुआ, जो सर्वश्रेष्ठ धर्मात्मा था। उसने इस पृथ्वीकी रक्षा करते हुए सौ अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उशनाका पुत्र तितिक्षु[2] हुआ जो शत्रुओंको संतप्त कर देनेवाला था। राजर्षियोंमें सर्वश्रेष्ठ मरुत्त तितिक्षुके पुत्र हुए। मरुत्तका पुत्र वीरवर कम्बलबर्हिष था। कम्बलबर्हिषका पुत्र विद्वान् रुक्मकवच हुआ। रुक्मकवचने अपने अनेकों प्रकारके बाणोंके प्रहारसे धनुर्धारी एवं कवचसे सुसज्जित शत्रुओंको मारकर इस पृथ्वीको प्राप्त किया था।

१. भागवत ९। २३। ३१ तथा विष्णुपुराण ४। १२। २ में 'रुशङ्कु' एवं पद्म० १। १३। ४ में 'कुशङ्गु' पाठ है।
२. अन्यत्र शिमेयु, रुचक या शितपु पाठ भी मिलता है।

अश्वमेधे ददौ राजा ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम्।
यज्ञे तु रुक्मकवचः कदाचित् परवीरहा॥ २७

शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले राजा रुक्मकवचने एक बार बड़े (भारी) अश्वमेध-यज्ञमें ब्राह्मणोंको प्रचुर दक्षिणा प्रदान की थी॥ १४—२७॥

जज्ञिरे पञ्च पुत्रास्तु महावीर्या धनुर्भृतः।
रुक्मेषुः पृथुरुक्मश्च ज्यामघः परिघो हरिः॥ २८
परिघं च हरिं चैव विदेहेऽस्थापयत् पिता।
रुक्मेषुरभवद् राजा पृथुरुक्मस्तदाश्रयः॥ २९
तेभ्यः प्रव्राजितो राज्याज्ज्यामघस्तु तदाश्रमे।
प्रशान्तश्चाश्रमस्थश्च ब्राह्मणेनावबोधितः॥ ३०
जगाम धनुरादाय देशमन्यं ध्वजी रथी।
नर्मदां नृप एकाकी केवलं वृत्तिकामतः॥ ३१
ऋक्षवन्तं गिरिं गत्वा भुक्तमन्यैरुपाविशत्।
ज्यामघस्याभवद् भार्या शैव्या परिणता सती॥ ३२
अपुत्रो न्यवसद् राजा भार्यामन्यां न विन्दति।
तस्यासीद् विजयो युद्धे तत्र कन्यामवाप्य सः॥ ३३
भार्यामुवाच संत्रासात् स्नुषेयं ते शुचिस्मिते।
एकमुक्ताब्रवीदेनं कस्य चेयं स्नुषेति च॥ ३४

इन (राजा रुक्मकवच)-के रुक्मेषु, पृथुरुक्म, ज्यामघ, परिघ और हरिनामक पाँच पुत्र हुए, जो महान् पराक्रमी एवं श्रेष्ठ धनुर्धर थे। पिता रुक्मकवचने इनमेंसे परिघ और हरि—इन दोनोंको विदेह देशके राज-पदपर नियुक्त कर दिया। रुक्मेषु प्रधान राजा हुआ और पृथुरुक्म उसका आश्रित बन गया। उन लोगोंने ज्यामघको राज्यसे निकाल दिया। वहाँ एकत्र ब्राह्मणद्वारा समझाये-बुझाये जानेपर वह प्रशान्त-चित्त होकर वानप्रस्थीरूपसे आश्रमोंमें स्थिररूपसे रहने लगा। कुछ दिनोंके पश्चात् वह (एक ब्राह्मणकी शिक्षासे) ध्वजायुक्त रथपर सवार हो हाथमें धनुष धारणकर दूसरे देशकी ओर चल पड़ा। वह केवल जीविकोपार्जनकी कामनासे अकेले ही नर्मदातटपर जा पहुँचा। वहाँ दूसरोंद्वारा उपभुक्त ऋक्षवान् गिरि (शतपुरा पर्वत-श्रेणी)-पर जाकर निश्चितरूपसे निवास करने लगा। ज्यामघकी सती-साध्वी पत्नी शैव्या* प्रौढ़ा हो गयी थी। (उसके गर्भसे) कोई पुत्र न उत्पन्न हुआ। इस प्रकार यद्यपि राजा ज्यामघ पुत्रहीन अवस्थामें ही जीवनयापन कर रहे थे, तथापि उन्होंने दूसरी पत्नी नहीं स्वीकार की। एक बार किसी युद्धमें राजा ज्यामघकी विजय हुई। वहाँ उन्हें (विवाहार्थ) एक कन्या प्राप्त हुई। (पर) उसे लाकर पत्नीको देते हुए राजाने उससे भयपूर्वक कहा—'शुचिस्मिते! यह (मेरी स्त्री नहीं,) तुम्हारी स्नुषा (पुत्रवधू) है।' इस प्रकार कहे जानेपर उसने राजासे पूछा—'यह किसकी स्नुषा है?'॥ २८—३४॥

राजोवाच

यस्ते जनिष्यते पुत्रस्तस्य भार्या भविष्यति।
तस्मात् सा तपसोग्रेण कन्यायाः सम्प्रसूयत॥ ३५
पुत्रं विदर्भं सुभगा चैत्रा परिणता सती।
राजपुत्र्यां च विद्वान् स स्नुषायां क्रथकैशिकौ।
लोमपादं तृतीयं तु पुत्रं परमधार्मिकम्॥ ३६
तस्यां विदर्भोऽजनयच्छूरान् रणविशारदान्।
लोमपादान्मनुः पुत्रो ज्ञातिस्तस्य तु चात्मजः॥ ३७
कैशिकस्य चिदिः पुत्रो तस्माच्चैद्या नृपाः स्मृताः।
क्रथो विदर्भपुत्रस्तु कुन्तिस्तस्यात्मजोऽभवत्॥ ३८
कुन्तेर्धृष्टः सुतो जज्ञे रणधृष्टः प्रतापवान्।
धृष्टस्य पुत्रो धर्मात्मा निर्वृतिः परवीरहा॥ ३९

तब राजाने कहा—(प्रिये) तुम्हारे गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, उसीकी यह पत्नी होगी। (यह आश्चर्य देख-सुनकर वह कन्या तप करने लगी।) तत्पश्चात् उस कन्याकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप वृद्धा प्रायः बूढ़ी होनेपर भी शैव्याने (गर्भ धारण किया और) विदर्भ नामक एक पुत्रको जन्म दिया। उस विद्वान् विदर्भने स्नुषाभूता उस राजकुमारीके गर्भसे क्रथ, कैशिक तथा तीसरे परम धर्मात्मा लोमपाद नामक पुत्रोंको उत्पन्न किया। ये सभी पुत्र शूरवीर एवं युद्धकुशल थे। इनमें लोमपादसे मनु नामक पुत्र उत्पन्न हुआ तथा मनुका पुत्र ज्ञाति हुआ। कैशिकका पुत्र चिदि हुआ, उससे उत्पन्न हुए नरेश चैद्य नामसे प्रख्यात हुए। विदर्भ-पुत्र क्रथके कुन्ति नामक पुत्र पैदा हुआ। कुन्तिसे धृष्ट नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जो परम प्रतापी एवं रणविशारद था। धृष्टका पुत्र निर्वृति हुआ जो धर्मात्मा एवं शत्रु-वीरोंका

* प्रायः अठारह पुराणों तथा उपपुराणोंमें एवं भागवतादिकी टीकाओंमें 'ज्यामघ'की पत्नी शैव्या ही कही गयी है। कुछ मत्स्यपुराणकी प्रतियोंमें 'चैत्रा' नाम भी आया है, परंतु यह अनुकृतिमें भ्रान्तिका ही परिणाम है।

तदेको निर्वृतेः पुत्रो नाम्ना स तु विदूरथः।
दशार्हस्तस्य वै पुत्रो व्योमस्तस्य च वै स्मृतः।
दाशार्हाच्चैव व्योमात्तु पुत्रो जीमूत उच्यते॥ ४०

जीमूतपुत्रो विमलस्तस्य भीमरथः सुतः।
सुतो भीमरथस्यासीत् स्मृतो नवरथः किल॥ ४१

तस्य चासीद् दृढरथः शकुनिस्तस्य चात्मजः।
तस्मात् करम्भः कारम्भिर्देवरातो बभूव ह॥ ४२

देवक्षत्रोऽभवद् राजा देवरातिर्महायशाः।
देवगर्भसमो जज्ञे देवनक्षत्रनन्दनः॥ ४३

मधुर्नाम महातेजा मधोः पुरवसस्तथा।
आसीद् पुरवसः पुत्रः पुरुद्वान् पुरुषोत्तमः॥ ४४

जन्तुर्जज्ञेऽथ वैदर्भ्यां भद्रसेन्यां पुरुद्वतः।
ऐक्ष्वाकी चाभवद् भार्या जन्तोस्तस्यामजायत॥ ४५

सात्त्वतः सत्त्वसंयुक्तः सात्त्वतां कीर्तिवर्धनः।
इमां विसृष्टिं विज्ञाय ज्यामघस्य महात्मनः।
प्रजावानेति सायुज्यं राज्ञः सोमस्य धीमतः॥ ४६

सात्त्वतात्सत्त्वसम्पन्नान् कौसल्या सुषुवे सुतान्।
भजिनं भजमानं तु दिव्यं देवावृधं नृपम्॥ ४७

अन्धकं च महाभोजं वृष्णिं च यदुनन्दनम्।
तेषां हि सर्गाश्चत्वारो विस्तरेणैव तच्छृणु॥ ४८

भजमानस्य सृञ्जय्यां वाह्यकायां च वाह्यकाः।
सृंजयस्य सुते द्वे तु वाह्यकास्तु तदाभवन्॥ ४९

तस्य भार्ये भगिन्यौ द्वे सुषुवाते बहून् सुतान्।
निमिं च कृमिलं चैव वृष्णिं परपुरंजयम्।
ते वाह्यकायां सृंजय्यां भजमानाद् विजज्ञिरे॥ ५०

संहारक था। निर्वृतिके एक ही पुत्र था जो विदूरथ नामसे प्रसिद्ध था। विदूरथका पुत्र दशार्ह* और दशार्हका पुत्र व्योम बतलाया जाता है। दशार्हवंशी व्योमसे पैदा हुए पुत्रको जीमूत नामसे कहा जाता है॥ ३५—४०॥

जीमूतका पुत्र विमल और विमलका पुत्र भीमरथ हुआ। भीमरथका पुत्र नवरथ नामसे प्रसिद्ध था। नवरथका पुत्र दृढरथ और उसका पुत्र शकुनि था। शकुनिसे करम्भ और करम्भसे देवरात उत्पन्न हुआ। देवरातका पुत्र महायशस्वी राजा देवक्षत्र हुआ। देवक्षत्रका पुत्र देव-पुत्रकी-सी कान्तिसे युक्त महातेजस्वी मधु नामसे उत्पन्न हुआ। मधुका पुत्र पुरवस् तथा पुरवस्का पुत्र पुरुषश्रेष्ठ पुरुद्वान् था। पुरुद्वान्के संयोगसे विदर्भ-राजकुमारी भद्रसेनीके गर्भसे जन्तु नामक पुत्रने जन्म लिया। उस जन्तुकी पत्नी ऐक्ष्वाकी हुई, उसके गर्भसे उत्कृष्ट बल-पराक्रमसे सम्पन्न एवं सात्त्वतवंशियों (या आप)-की कीर्तिका विस्तारक सात्त्वत नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस प्रकार महात्मा ज्यामघकी इस संतान-परम्पराको जानकर मनुष्य पुत्रवान् हो जाता है और अन्तमें बुद्धिमान् राजा सोमका सायुज्य प्राप्त कर लेता है। राजन्! कौसल्या (सात्त्वतकी पत्नी थी। उसने) सात्त्वतके संयोगसे जिन बल-पराक्रमसम्पन्न पुत्रोंको जन्म दिया, उनके नाम हैं—भजि, भजमान, दिव्य राजा देवावृध, अन्धक, महाभोज और यदुकुलको आनन्द प्रदान करनेवाले वृष्णि। इनमें चार वंशका विस्तार हुआ। अब उसका विस्तारपूर्वक वर्णन श्रवण कीजिये। सृंजयकी दो कन्याएँ सृंजयी और वाह्यका भजमानकी पत्नियाँ थीं। इनसे वाह्यक नामक पुत्र उत्पन्न हुए। इनके अतिरिक्त उन दोनों बहनोंने और भी बहुत-से पुत्रोंको जन्म दिया था। उनके नाम हैं—निमि, कृमिल और शत्रु-नगरीको जीतनेवाला वृष्णि। ये सभी भजमानके संयोगसे सृंजयी और वाह्यकाके गर्भसे उत्पन्न हुए थे॥ ४१—५०॥

* इन्हींसे श्रीकृष्ण आदि दाशार्हवंशीरूपमें प्रसिद्ध हुए हैं।

जज्ञे देवावृधो राजा बन्धूनां मित्रवर्धनः।
अपुत्रस्त्वभवद् राजा चचार परमं तपः।
पुत्रः सर्वगुणोपेतो मम भूयादिति स्पृहन्॥ ५१
संयोज्य मन्त्रमेवाथ पर्णाशाजलमस्पृशत्।
तदोपस्पर्शनात् तस्य चकार प्रियमापगा॥ ५२
कल्याणत्वान्नरपतेस्तस्मै सा निम्नगोत्तमा।
चिन्तयाथ परीतात्मा जगामाथ विनिश्चयम्॥ ५३
नाधिगच्छाम्यहं नारीं यस्यामेवंविधः सुतः।
जायेत तस्मादद्याहं भवाम्यथ सहस्रशः॥ ५४
अथ भूत्वा कुमारी सा बिभ्रती परमं वपुः।
ज्ञापयामास राजानं तामियेष महाव्रतः॥ ५५
अथ सा नवमे मासि सुषुवे सरितां वरा।
पुत्रं सर्वगुणोपेतं बभ्रुं देवावृधान्नृपात्॥ ५६
अनुवंशे पुराणज्ञा गायन्तीति परिश्रुतम्।
गुणान् देवावृधस्यापि कीर्तयन्तो महात्मनः॥ ५७
यथैव शृणुमो दूरादपश्यामस्तथान्तिकात्।
बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः॥ ५८
षष्टिशतं च पूर्वपुरुषाः सहस्राणि च सप्ततिः।
एतेऽमृतत्वं सम्प्राप्ता बभ्रोर्देवावृधान्नृप॥ ५९
यज्वा दानपतिर्वीरो ब्रह्मण्यश्च दृढव्रतः।
रूपवान् सुमहातेजाः श्रुतवीर्यधरस्तथा॥ ६०
अथ कङ्कस्य दुहिता सुषुवे चतुरः सुतान्।
कुकुरं भजमानं च शशिं कम्बलबर्हिषम्॥ ६१
कुकुरस्य सुतो वृष्णिर्वृष्णोस्तु तनयो धृतिः।
कपोतरोमा तस्याथ तैत्तिरिस्तस्य चात्मजः॥ ६२
तस्यासीत् तनुजः सर्पो विद्वान् पुत्रो नलः किल।
ख्यायते तस्य नाम्ना स नन्दनो दरदुन्दुभिः॥ ६३

तत्पश्चात् राजा देवावृधका जन्म हुआ, जो बन्धुओंके साथ सुदृढ़ मैत्रीके प्रवर्धक थे। परंतु राजा (देवावृध)-को कोई पुत्र न था। उन्होंने 'मुझे सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न पुत्र पैदा हो' ऐसी अभिलाषासे युक्त हो अत्यन्त घोर तप किया। अन्तमें उन्होंने मन्त्रको संयुक्त कर पर्णाशा[1] नदीके जलका स्पर्श किया। इस प्रकार स्पर्श करनेके कारण पर्णाशा नदी राजाका प्रिय करनेका विचार करने लगी। वह श्रेष्ठ नदी उस राजाके कल्याणकी चिन्तासे व्याकुल हो उठी। अन्तमें वह इस निश्चयपर पहुँची कि मैं ऐसी किसी दूसरी स्त्रीको नहीं देख पा रही हूँ, जिसके गर्भसे इस प्रकारका (राजाकी अभिलाषाके अनुसार) पुत्र पैदा हो सके, इसलिये आज मैं स्वयं ही हजारों प्रकारका रूप धारण करूँगी। तत्पश्चात् पर्णाशाने परम सुन्दर शरीर धारण करके कुमारीरूपमें प्रकट होकर राजाको सूचित किया। तब महान् व्रतशाली राजाने उसे (पत्नीरूपसे) स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त नदियोंमें श्रेष्ठ पर्णाशाने राजा देवावृधके संयोगसे नवें महीनेमें सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न बभ्रु नामक पुत्रको जन्म दिया। पुराणोंके ज्ञाता विद्वान्लोग वंशानुकीर्तनप्रसङ्गमें महात्मा देवावृधके गुणोंका कीर्तन करते हुए ऐसी गाथा गाते हैं—उद्गार प्रकट करते हैं—'इन (बभ्रु)-के विषयमें हमलोग जैसा (दूरसे) सुन रहे थे, उसी प्रकार (इन्हें) निकट आकर भी देख रहे हैं। बभ्रु तो सभी मनुष्योंमें श्रेष्ठ हैं और देवावृध (साक्षात्) देवताओंके समान हैं। राजन्! बभ्रु और देवावृधके प्रभावसे इनके छिहत्तर हजार पूर्वज अमरत्वको प्राप्त हो गये। राजा बभ्रु यज्ञानुष्ठानी, दानशील, शूरवीर, ब्राह्मणभक्त, सुदृढ़व्रती, सौन्दर्यशाली, महान् तेजस्वी तथा विख्यात बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। तदनन्तर (बभ्रुके संयोगसे) कङ्ककी कन्याने कुकुर, भजमान, शशि और कम्बलबर्हिष नामक चार पुत्रोंको जन्म दिया। कुकुरका पुत्र वृष्णि,[2] वृष्णिका पुत्र धृति, उसका पुत्र कपोतरोमा, उसका पुत्र तैत्तिरि, उसका पुत्र सर्प, उसका पुत्र विद्वान् नल था। नलका पुत्र दरदुन्दुभि[3] नामसे कहा जाता था॥ ५१—६३॥

---

१. भारतमें पर्णाशा नामकी दो नदियाँ हैं। ये दोनों राजस्थानकी पूर्वी सीमापर स्थित हैं और पारियात्र पर्वतसे निकली हैं। (द्रष्टव्य मत्स्य० १२। ५० तथा वायुपुराण ३८। १७६)।

२. ऊपर ४८वें श्लोकमें 'वृष्णि'का उल्लेख हो चुका है, अतः अधिकांश अन्य पुराणसम्मत यहाँ 'धृष्णु' पाठ मानना चाहिये, या इन्हें द्वितीय वृष्णि मानना चाहिये।

३. पद्म० १। १३। ४० में चन्दनोदकदुंदुभि नाम है।

तस्मिन् प्रवितते यज्ञे अभिजातः पुनर्वसुः।
अश्वमेधं च पुत्रार्थमाजहार नरोत्तमः॥ ६४
तस्य मध्येऽतिरात्रस्य सभामध्यात् समुत्थितः।
अतस्तु विद्वान् कर्मज्ञो यज्वा दाता पुनर्वसुः॥ ६५
तस्यासीत् पुत्रमिथुनं बभूवाविजितं किल।
आहुकश्चाहुकी चैव ख्यातं मतिमतां वर॥ ६६
इमांश्चोदाहरन्त्यत्र श्लोकान् प्रति तमाहुकम्।
सोपासङ्गानुकर्षाणां सध्वजानां वरूथिनाम्॥ ६७
रथानां मेघघोषाणां सहस्राणि दशैव तु।
नासत्यवादी नातेजा नायज्वा नासहस्रदः॥ ६८
नाशुचिर्नाप्यविद्वान् हि यो भोजेष्वभ्यजायत।
आहुकस्य भृतिं प्राप्ता इत्येतद् वै तदुच्यते॥ ६९
आहुकश्चाप्यवन्तीषु स्वसारं चाहुकीं ददौ।
आहुकात् काश्यदुहिता द्वौ पुत्रौ समसूयत॥ ७०
देवकश्चोग्रसेनश्च देवगर्भसमावुभौ।
देवकस्य सुता वीरा जज्ञिरे त्रिदशोपमाः॥ ७१
देववानुपदेवश्च सुदेवो देवरक्षितः।
तेषां स्वसारः सप्तासन् वसुदेवाय ता ददौ॥ ७२
देवकी श्रुतदेवी च मित्रदेवी यशोधरा।
श्रीदेवी सत्यदेवी च सुतापी चेति सप्तमी॥ ७३
नवोग्रसेनस्य सुताः कंसस्तेषां तु पूर्वजः।
न्यग्रोधश्च सुनामा च कङ्कः शङ्कुश्च भूयशः॥ ७४
अजभू राष्ट्रपालश्च युद्धमुष्टिः सुमुष्टिदः।
तेषां स्वसारः पञ्चासन् कंसा कंसवती तथा॥ ७५
सुतन्तू राष्ट्रपाली च कङ्का चेति वराङ्गनाः।
उग्रसेनः सहापत्यो व्याख्यातः कुकुरोद्भवः॥ ७६
भजमानस्य पुत्रोऽथ रथिमुख्यो विदूरथः।
राजाधिदेवः शूरश्च विदूरथसुतोऽभवत्॥ ७७
राजाधिदेवस्य सुतो जज्ञाते देवसम्मितौ।
नियमव्रतप्रधानौ शोणाश्वः श्वेतवाहनः॥ ७८
शोणाश्वस्य सुताः पञ्च शूरा रणविशारदाः।
शमी च देवशर्मा च निकुन्तः शक्रशत्रुजित्॥ ७९

नरश्रेष्ठ दरदुन्दुभि पुत्रप्राप्तिके लिये अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। उस विशाल यज्ञमें पुनर्वसु नामक पुत्र प्रादुर्भूत हुआ। पुनर्वसु अतिरात्रके मध्यमें सभाके बीच प्रकट हुआ था, इसलिये वह विद्वान्, शुभाशुभ कर्मोंका ज्ञाता, यज्ञपरायण और दानी था। बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ राजन्! पुनर्वसुके आहुक नामका पुत्र और आहुकी नामकी कन्या—ये जुड़वाँ संतान पैदा हुईं। इनमें आहुक अजेय और लोकप्रसिद्ध था। उन आहुकके प्रति विद्वान् लोग इन श्लोकोंको गाया करते हैं—'राजा आहुकके पास दस हजार ऐसे रथ रहते थे, जिनमें सुदृढ़ उपासङ्ग (कूबर) एवं अनुकर्ष (धूरे) लगे रहते थे, जिनपर ध्वजाएँ फहराती रहती थीं, जो कवचसे सुसज्जित रहते थे तथा जिनसे मेघकी घरघराहटके सदृश शब्द निकलते थे। उस भोजवंशमें ऐसा कोई राजा नहीं पैदा हुआ जो असत्यवादी, निस्तेज, यज्ञविमुख, सहस्रोंकी दक्षिणा देनेमें असमर्थ, अपवित्र और मूर्ख हो।' राजा आहुकसे भरण-पोषणकी वृत्ति पानेवाले लोग ऐसा कहा करते थे। आहुकने अपनी बहन आहुकीको अवन्ती-नरेशको प्रदान किया था। आहुकके संयोगसे काश्यकी कन्याने देवक और उग्रसेन नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। वे दोनों देव-पुत्रोंके सदृश कान्तिमान् थे। देवकके देवताओंके समान कान्तिमान् एवं पराक्रमी चार शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम हैं—देववान्, उपदेव, सुदेव और देवरक्षित। इनके सात बहनें भी थीं, जिन्हें देवकने वसुदेवको समर्पित किया था। उनके नाम हैं—देवकी, श्रुतदेवी, मित्रदेवी, यशोधरा, श्रीदेवी, सत्यदेवी और सातवीं सुतापी॥ ६४—७३॥

उग्रसेनके नौ पुत्र थे, उनमें कंस ज्येष्ठ था। उनके नाम हैं—न्यग्रोध, सुनामा, कङ्क, शङ्कु अजभू, राष्ट्रपाल, युद्धमुष्टि और सुमुष्टिद। उनके कंसा,कंसवती, सतन्तु, राष्ट्रपाली और कङ्का नामकी पाँच बहनें थीं, जो परम सुन्दरी थीं। अपनी संतानोंसहित उग्रसेन कुकुर-वंशमें उत्पन्न हुए कहे जाते हैं। भजमानका पुत्र महारथी विदूरथ और शूरवीर राजाधिदेव विदूरथका पुत्र हुआ। राजाधिदेवके शोणाश्व और श्वेतवाहन नामक दो पुत्र हुए, जो देवोंके सदृश कान्तिमान् और नियम एवं व्रतके पालनमें तत्पर रहनेवाले थे। शोणाश्वके शमी, देवशर्मा, निकुन्त, शक्र और शत्रुजित् नामक पाँच शूरवीर एवं युद्धनिपुण पुत्र हुए।

शमिपुत्रः प्रतिक्षत्रः प्रतिक्षत्रस्य चात्मजः।
प्रतिक्षेत्रः सुतो भोजो हृदीकस्तस्य चात्मजः॥ ८०

हृदीकस्याभवन् पुत्रा दश भीमपराक्रमाः।
कृतवर्माग्रजस्तेषां शतधन्वा च मध्यमः॥ ८१

देवार्हश्चैव नाभश्च धिषणश्च महाबलः।
अजातो वनजातश्च कनीयककरम्भकौ॥ ८२

देवार्हस्य सुतो विद्वाञ्जज्ञे कम्बलबर्हिषः।
असोमजाः सुतस्तस्य तमोजास्तस्य चात्मजः॥ ८३

अजातपुत्रा विक्रान्तास्त्रयः परमकीर्तयः।
सुदंष्ट्रश्च सुनाभश्च कृष्ण इत्यन्धका मताः॥ ८४

अन्धकानामिमं वंशं यः कीर्तयति नित्यशः।
आत्मनो विपुलं वंशं प्रजावानाप्नुते नरः॥ ८५

शमीका पुत्र प्रतिक्षत्र, प्रतिक्षत्रका पुत्र प्रतिक्षेत्र, उसका पुत्र भोज और उसका पुत्र हृदीक हुआ। हृदीकके दस अनुपम पराक्रमी पुत्र उत्पन्न हुए, उनमें कृतवर्मा ज्येष्ठ और शतधन्वा मँझला था। शेषके नाम (इस प्रकार) हैं—देवार्ह, नाभ, धिषण, महाबल, अजात, वनजात, कनीयक और करम्भक। देवार्हके कम्बलबर्हिष नामक विद्वान् पुत्र हुआ। उसका पुत्र असोमजा और असोमजाका पुत्र तमोजा हुआ। इसके बाद सुदंष्ट्र, सुनाभ और कृष्ण नामके तीन राजा और हुए जो परम पराक्रमी और उत्तम कीर्तिवाले थे। इनके कोई संतान नहीं हुई। ये सभी अन्धकवंशी माने गये हैं। जो मनुष्य अन्धकोंके इस वंशका नित्य कीर्तन करता है वह स्वयं पुत्रवान् होकर अपने वंशकी वृद्धि करता है॥ ७४—८५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४४॥

पैंतालीसवाँ अध्याय

वृष्णिवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें स्यमन्तक मणिकी कथा

सूत उवाच

गान्धारी चैव माद्री च वृष्णिभार्ये बभूवतुः।
गान्धारी जनयामास सुमित्रं मित्रनन्दनम्॥ १

माद्री युधाजितं पुत्रं ततो वै देवमीढुषम्।
अनमित्रं शिबिं चैव पञ्चमं कृतलक्षणम्॥ २

अनमित्रसुतो निघ्नो निघ्नस्यापि तु द्वौ सुतौ।
प्रसेनश्च महावीर्यः शक्तिसेनश्च तावुभौ॥ ३

स्यमन्तकः प्रसेनस्य मणिरत्नमनुत्तमम्।
पृथिव्यां सर्वरत्नानां राजा वै सोऽभवन्मणिः॥ ४

हृदि कृत्वा तु बहुशो मणिं तमभियाचितः।
गोविन्दोऽपि न तं लेभे शक्तोऽपि न जहार सः॥ ५

कदाचिन्मृगयां यातः प्रसेनस्तेन भूषितः।
यथाशब्दं स शुश्राव बिले सत्त्वेन पूरिते॥ ६

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (अब आपलोग सात्वतके कनिष्ठ पुत्र वृष्णिका वंश-वर्णन सुनिये।) गान्धारी और माद्री—ये दोनों वृष्णिकी पत्नियाँ हुईं। उनमें गान्धारीने सुमित्र और मित्रनन्दन नामक दो पुत्रोंको तथा माद्रीने युधाजित, तत्पश्चात् देवमीढुष, अनमित्र, शिबि और पाँचवें कृतलक्षण नामक पुत्रोंको जन्म दिया। अनमित्रका पुत्र निघ्न हुआ और निघ्नके महान् पराक्रमी प्रसेन और शक्तिसेन नामक दो पुत्र हुए। इसी प्रसेनके पास स्यमन्तक नामक सर्वश्रेष्ठ मणिरत्न था। वह मणिरत्न भूतलपर समस्त रत्नोंका राजा था। भगवान् श्रीकृष्णने भी अनेकों बार मनमें उसे प्राप्त करनेकी इच्छा करके प्रसेनसे याचना की, परंतु वे उसे प्राप्त न कर सके। साथ ही समर्थ होनेपर भी उन्होंने उसका अपहरण भी नहीं किया। एक बार प्रसेन उस मणिसे विभूषित हो शिकार खेलनेके लिये वनमें गया। वहाँ उसने एक बिल (गुफा)-में, जिसका स्वामी जीव उसमें विद्यमान था, होनेवाले कोलाहलको सुना।

ततः प्रविश्य स बिलं प्रसेनो ह्यृक्षमैक्षत।
ऋक्षः प्रसेनं च तथा ऋक्षं चैव प्रसेनजित्॥ ७
हत्वा ऋक्षः प्रसेनं तु ततस्तं मणिमाददात्।
अदृष्टस्तु हतस्तेन अन्तर्बिलगतस्तदा॥ ८
प्रसेनं तु हतं ज्ञात्वा गोविन्दः परिशङ्कितः।
गोविन्देन हतो व्यक्तं प्रसेनो मणिकारणात्॥ ९
प्रसेनस्तु गतोऽरण्यं मणिरत्नेन भूषितः।
तं दृष्ट्वा स हतस्तेन गोविन्दः प्रत्युवाच ह।
हन्मि चैनं दुराचारं शत्रुभूतं हि वृष्णिषु॥ १०
अथ दीर्घेण कालेन मृगयां निर्गतः पुनः।
यदृच्छया च गोविन्दो बिलस्याभ्याशमागमत्॥ ११
तं दृष्ट्वा तु महाशब्दं स चक्रे ऋक्षराड् वली।
शब्दं श्रुत्वा तु गोविन्दः खड्गपाणिः प्रविश्य सः।
अपश्यज्जाम्बवन्तं तमृक्षराजं महाबलम्॥ १२
ततस्तूर्णं हृषीकेशस्तमृक्षपतिमञ्जसा।
जाम्बवन्तं स जग्राह क्रोधसंरक्तलोचनः॥ १३
तुष्टावैनं तदा ऋक्षः कर्मभिर्वैष्णवैः प्रभुम्।
ततस्तुष्टस्तु भगवान् वरेणैनमरोचयत्॥ १४

कुतूहलवश प्रसेनने उसमें प्रवेश करके एक रीछको देखा। फिर तो रीछकी दृष्टि प्रसेनपर और प्रसेनकी दृष्टि रीछपर पड़ी। (तत्पश्चात् दोनोंमें युद्ध छिड़ गया।) रीछने प्रसेनको मारकर वह मणि ले ली।[1] बिलके भीतर प्रविष्ट हुआ प्रसेन रीछद्वारा मार डाला गया, इसलिये उसे कोई देख न सका। इधर प्रसेनको मारा गया जानकर भगवान् श्रीकृष्णको आशङ्का हो गयी कि लोग स्पष्टरूपसे कहते होंगे कि मणि लेनेके लिये श्रीकृष्णने ही प्रसेनका वध किया है। ऐसी किंवदन्तीके फैलनेपर भगवान् गोविन्दने उत्तर दिया कि 'उस मणिरत्नको धारण करके प्रसेन वनमें गया था, उसे देखकर (मणिको हथियानेके लिये) किसीके द्वारा (सम्भवतः) वह मार डाला गया है। अतः वृष्णिवंशके शत्रुरूप उस दुराचारीका मैं वध करूँगा।' तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् आखेटके लिये निकले हुए भगवान् श्रीकृष्ण इच्छानुसार भ्रमण करते हुए उसी बिल (गुफा)-के निकट जा पहुँचे। उन्हें देखकर महाबली रीछराजने उच्चस्वरसे गर्जना की। उस शब्दको सुनकर भगवान् गोविन्द हाथमें तलवार लिये हुए उस बिलमें घुस गये। वहाँ उन्होंने उन महाबली रीछराज जाम्बवान्को देखा। तब जिनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे, उन हृषीकेश श्रीकृष्णने शीघ्र ही रीछराज जाम्बवान्को वेगपूर्वक अपने वशमें कर लिया। उस समय रीछराजने विष्णुसम्बन्धी स्तोत्रोंद्वारा उन प्रभुका स्तवन किया। उससे संतुष्ट होकर भगवान् श्रीकृष्णने जाम्बवान्को भी वरप्रदानद्वारा प्रसन्न कर दिया॥ १—१४॥

जाम्बवानुवाच

इच्छे चक्रप्रहारेण त्वत्तोऽहं मरणं प्रभो।
कन्या चेयं मम शुभा भर्तारं त्वामवाप्नुयात्।
योऽयं मणिः प्रसेनं तु हत्वा प्राप्तो मया प्रभो॥ १५
ततः स जाम्बवन्तं तं हत्वा चक्रेण वै प्रभुः।
कृतकर्मा महाबाहुः सकन्यं मणिमाहरत्॥ १६
ददौ सत्राजितायै तं सर्वसात्त्वतसंसदि।
तेन मिथ्यापवादेन संतप्तोऽयं जनार्दनः॥ १७
ततस्ते यादवाः सर्वे वासुदेवमथाब्रुवन्।
अस्माकं तु मतिर्ह्यासीत् प्रसेनस्तु त्वया हतः॥ १८

जाम्बवान्ने कहा—प्रभो! मेरी अभिलाषा है कि मैं आपके चक्र-प्रहारसे मृत्युको प्राप्त होऊँ। यह मेरी सौन्दर्यशालिनी कन्या आपको पतिरूपमें प्राप्त करे। प्रभो! यह मणि, जिसे मैंने प्रसेनको मारकर प्राप्त किया है, आपके ही पास रहे। तत्पश्चात् सामर्थ्यशाली एवं महाबाहु श्रीकृष्णने अपने चक्रसे उन जाम्बवान्का वध करके कृतकृत्य हो कन्यासहित मणिको ग्रहण कर लिया।[2] घर लौटकर भगवान् जनार्दनने समस्त सात्वतोंकी भरी सभामें वह मणि सत्राजित्को समर्पित कर दी; क्योंकि वे उस मिथ्यापवादसे अत्यन्त दुःखी थे। उस समय सभी यदुवंशियोंने वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्णसे यों कहा—'श्रीकृष्ण! हमलोगोंका तो यह दृढ़ निश्चय था कि प्रसेन तुम्हारे ही हाथों मारा गया है।

१. अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंके अनुसार सिंहने प्रसेनको और जाम्बवान्ने सिंहको मारा है। परिष्कारदृष्ट्या मत्स्यपुराणकी भागवतादिसे पूर्व स्थिति सिद्ध होती है।

२. यह कथा प्रायः कल्किपुराणसे मिलती है। शेष अन्य भागवत, विष्णु आदि पुराणोंमें जाम्बवान् कन्या-दान करनेके बाद भी जीवित ही रहते हैं। कल्किपुराणके अन्तमें जाम्बवान् तथा शशबिन्दुकी ऐसी स्थिति हुई है।

कैकेयस्य सुता भार्या दश सत्राजितः शुभाः।
तासूत्पन्नाः सुतास्तस्य शतमेकं तु विश्रुताः।
ख्यातिमन्तो महावीर्या भङ्गकारस्तु पूर्वजः॥ १९
अथ व्रतवती तस्माद् भङ्गकारात् तु पूर्वजात्।
सुषुवे सुकुमारीस्तु तिस्रः कमललोचनाः॥ २०
सत्यभामा वरा स्त्रीणां व्रतिनी च दृढव्रता।
तथा पद्मावती चैव ताश्च कृष्णाय सोऽददात्॥ २१
अनमित्राच्छिनिर्जज्ञे कनिष्ठाद् वृष्णिनन्दनात्।
सत्यकस्तस्य पुत्रस्तु सात्यकिस्तस्य चात्मजः॥ २२
सत्यवान् युयुधानस्तु शिनेर्नप्ता प्रतापवान्।
असङ्गो युयुधानस्य द्युम्निस्तस्यात्मजोऽभवत्॥ २३
द्युम्नेर्युगंधरः पुत्र इति शैन्याः प्रकीर्तिताः।
अनमित्रान्वयो ह्येष व्याख्यातो वृष्णिवंशजः॥ २४
अनमित्रस्य संजज्ञे पृथ्व्यां वीरो युधाजितः।
अन्यौ तु तनयौ वीरौ वृषभः क्षत्र एव च॥ २५
वृषभः काशिराजस्य सुतां भार्यामविन्दत।
जयन्तस्तु जयन्त्यां तु पुत्रः समभवच्छुभः॥ २६
सदायज्ञोऽतिवीरश्च श्रुतवानतिथिप्रियः।
अक्रूरः सुषुवे तस्मात् सदायज्ञोऽतिदक्षिणः॥ २७
रत्ना कन्या च शैब्यस्य अक्रूरस्तामवाप्तवान्।
पुत्रानुत्पादयामास त्वेकादश महाबलान्॥ २८
उपलम्भः सदालम्भो वृकलो वीर्य एव च।
सवीतरः सदापक्षः शत्रुघ्नो वारिमेजयः॥ २९
धर्मभृद् धर्मवर्माणो धृष्टमानस्तथैव च।
सर्वे च प्रतिहोतारो रत्नायां जज्ञिरे च ते॥ ३०
अक्रूरादुग्रसेनायां सुतौ द्वौ कुलवर्धनौ।
देववानुपदेवश्च जज्ञाते देवसंनिभौ॥ ३१
अश्विन्यां च ततः पुत्राः पृथुर्विपृथुरेव च।
अश्वत्थामा सुबाहुश्च सुपार्श्वकगवेषणौ॥ ३२
वृष्टिनेमिः सुधर्मा च तथा शर्यातिरेव च।
अभूमिर्वर्जभूमिश्च श्रमिष्ठः श्रवणस्तथा॥ ३३
इमां मिथ्याभिशस्तिं यो वेद कृष्णादपोहिताम्।
न स मिथ्याभिशापेन अभिशाप्योऽथ केनचित्॥ ३४

केकयराजकी दस सौन्दर्यशालिनी कन्याएँ सत्राजित्की पत्नियाँ थीं। उनके गर्भसे सत्राजित्के एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, जो विश्वविख्यात, प्रशंसित एवं महान् पराक्रमी थे। उनमें भंगकार ज्येष्ठ था। उस ज्येष्ठ भंगकारके संयोगसे व्रतवतीने तीन कमलनयनी सुकुमारी कन्याओंको जन्म दिया। उनके नाम हैं— स्त्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ सत्यभामा, दृढव्रतपरायणा व्रतिनी तथा पद्मावती। भंगकारने इन तीनोंको पत्नीरूपमें श्रीकृष्णको प्रदान किया था। कनिष्ठ वृष्णिनन्दन अनमित्रसे शिनिका जन्म हुआ। उसका पुत्र सत्यक और सत्यकका पुत्र सात्यकि हुआ। सत्यवान् और प्रतापी युयुधान—ये दोनों शिनिके नाती थे। युयुधानका पुत्र असंग और उसका पुत्र द्युम्नि हुआ। द्युम्निका पुत्र युगंधर हुआ। इस प्रकार यह शिनि-वंशका वर्णन किया गया॥ १५—२३½॥

अब मैं वृष्णि-वंशमें उत्पन्न अनमित्रके वंशका वर्णन कर रहा हूँ। अनमित्रकी दूसरी पत्नी पृथ्वीके गर्भसे वीरवर युधाजित् पैदा हुए। उनके वृषभ और क्षत्र नामवाले दो अन्य शूरवीर पुत्र थे। वृषभने काशिराजकी जयन्ती नामकी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त (ग्रहण) किया। उन्हें उस जयन्तीके गर्भसे जयन्त नामक अत्यन्त सुन्दर पुत्र प्राप्त हुआ, जो सदा यज्ञानुष्ठानमें निरत रहनेवाला, महान् शूरवीर, शास्त्रज्ञ तथा अतिथियोंका प्रेमी था। उससे अक्रूर नामक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। वह भी आगे चलकर सदा यज्ञानुष्ठानशील और विपुल दक्षिणा देनेवाला हुआ। शिवि-नरेशकी एक रत्ना नामकी कन्या थी, जिसे अक्रूरने पत्नीरूपमें प्राप्त किया और उसके गर्भसे ग्यारह महाबली पुत्रोंको उत्पन्न किया। उनके नाम इस प्रकार हैं—उपलम्भ, सदालम्भ, वृकल, वीर्य, सविता, सदापक्ष, शत्रुघ्न, वारिमेजय, धर्मभृद्, धर्मवर्मा और धृष्टमान। रत्नाके गर्भसे उत्पन्न हुए ये सभी पुत्र यज्ञादि शुभ कर्म करनेवाले थे। अक्रूरके संयोगसे उग्रसेनाके गर्भसे देववान् और उपदेव नामक दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे, जो देवताके सदृश शोभाशाली और वंश-विस्तारक थे। उन्हींकी दूसरी पत्नी अश्विनीके गर्भसे पृथु, विपृथु, अश्वत्थामा, सुबाहु, सुपार्श्वक, गवेषण, वृष्टिनेमि, सुधर्मा, शर्याति, अभूमि, वर्जभूमि, श्रमिष्ठ तथा श्रवण—ये तेरह पुत्र भी पैदा हुए थे। जो मनुष्य श्रीकृष्णके शरीरसे हटाये गये इस मिथ्यापवादको जानता है, वह किसीके भी द्वारा मिथ्याभिशापसे अभिशप्त नहीं किया जा सकता॥ २४—३४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णनमें पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४५॥



छियालीसवाँ अध्याय

वृष्णि-वंशका वर्णन

सूत उवाच

ऐक्ष्वाकी सुषुवे शूरं ख्यातमद्भुतमीढुषम्।
पौरुषाज्जज्ञिरे शूराद् भोजायां पुत्रका दश॥ १

वसुदेवो महाबाहुः पूर्वमानकदुन्दुभिः।
देवभागस्ततो जज्ञे ततो देवश्रवाः पुनः॥ २

अनाधृष्टिः शिनिश्चैव नन्दश्चैव ससृञ्जयः।
श्यामः शमीकः संयूपः पञ्च चास्य वराङ्गनाः॥ ३

श्रुतकीर्तिः पृथा चैव श्रुतदेवी श्रुतश्रवाः।
राजाधिदेवी च तथा पञ्चैता वीरमातरः॥ ४

कृतस्य तु श्रुतादेवी सुग्रीवं सुषुवे सुतम्।
कैकेय्यां श्रुतकीर्त्यां तु जज्ञे सोऽनुव्रतो नृपः॥ ५

श्रुतश्रवसि चैद्यस्य सुनीथः समपद्यत।
बहुशो धर्मचारी स सम्बभूवारिमर्दनः॥ ६

अथ सख्येन वृद्धेऽसौ कुन्तिभोजे सुतां ददौ।
एवं कुन्ती समाख्याता वसुदेवस्वसा पृथा॥ ७

वसुदेवेन सा दत्ता पाण्डोर्भार्या ह्यनिन्दिता।
पाण्डोरर्थेन सा जज्ञे देवपुत्रान् महारथान्॥ ८

धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे वायोर्जज्ञे वृकोदरः।
इन्द्राद् धनञ्जयश्चैव शक्रतुल्यपराक्रमः॥ ९

माद्रवत्यां तु जनितावश्विभ्यामिति शुश्रुमः।
नकुलः सहदेवश्च रूपशीलगुणान्वितौ॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐक्ष्वाकी (माद्री)-ने शूर (शूरसेन) नामक एक अद्‌भुत पुत्रको जन्म दिया, जो आगे चलकर ईढुष (देवमीढुष) नामसे विख्यात हुआ। पुरुषार्थी शूरके सम्पर्कसे भोजाके गर्भसे दस पुत्रों और पाँच सुन्दरी कन्याओंकी उत्पत्ति हुई। पुत्रोंमें सर्वप्रथम महाबाहु वसुदेव उत्पन्न हुए, जिनकी आनकदुन्दुभि नामसे भी प्रसिद्धि हुई। उसके बाद देवभाग-(देवमार्ग)-का जन्म हुआ। तत्पश्चात् पुनः देवश्रवा, अनाधृष्टि, शिनि, नन्द, सृञ्जय, श्याम, शमीक और संयूप पैदा हुए। कन्याओंके नाम हैं—श्रुतकीर्ति, पृथा, श्रुतादेवी, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी। ये पाँचों शूरवीर पुत्रोंकी माताएँ हुईं। कृतकी पत्नी श्रुतदेवीने सुग्रीव नामक पुत्रको जन्म दिया। केकय देशकी राजमहिषी श्रुतकीर्तिके गर्भसे राजा अनुव्रतने जन्म लिया। चेदि-नरेशकी पत्नी श्रुतश्रवाके गर्भसे एक सुनीथ नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो अनेकों प्रकारके धर्मोंका आचरण करनेवाला एवं शत्रुओंका विनाशक था। तत्पश्चात् शूरने अपनी पृथा नाम्नी कन्याको मित्रतावश वृद्ध राजा कुन्तिभोजको पुत्रीरूपमें दे दिया। इसी कारण वसुदेवकी बहन यह पृथा कुन्ती नामसे विख्यात हुई। उसे वसुदेवने पाण्डुको (पत्नीरूपमें) प्रदान किया था। उस अनिन्द्यसुन्दरी पाण्डु-पत्नी कुन्तीने पाण्डुकी वंशवृद्धिके लिये (पतिकी आज्ञासे) महारथी देवपुत्रोंको जन्म दिया था। उनमें धर्मके संयोगसे युधिष्ठिर पैदा हुए, वायुके सम्पर्कसे वृकोदर (भीमसेन)-का जन्म हुआ और इन्द्रके सकाशसे इन्द्रके ही समान पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन)-की उत्पत्ति हुई। साथ ही अश्विनीकुमारोंके संयोगसे माद्रवती (माद्री)-के गर्भसे रूप, शील एवं सद्‌गुणोंसे समन्वित नकुल और सहदेव पैदा हुए—ऐसा हमलोगोंने सुना है॥ १—१०॥

रोहिणी पौरवी चैव पत्न्यावानकदुन्दुभेः।
लेभे ज्येष्ठं सुतं रामं सारणं च सुतं प्रियम्॥ ११

दुर्दमं दमनं सुभ्रुं पिण्डारकमहाहनू।
चित्राक्ष्यौ द्वे कुमार्यौ तु रोहिण्यां जज्ञिरे तदा॥ १२

देवक्यां जज्ञिरे शौरेः सुषेणः कीर्तिमानपि।

उदारो भद्रसेनश्च भद्रवासस्तथैव च।
षष्ठो भद्रविदेहश्च कंसः सर्वानघातयत्॥ १३

अथ तस्यामवस्थायामायुष्मान् संबभूव ह।
लोकनाथो महाबाहुः पूर्वकृष्णः प्रजापतिः॥ १४

अनुजा त्वभवत् कृष्णात् सुभद्रा भद्रभाषिणी।
देवक्यां तु महातेजा जज्ञे शूरी महायशाः॥ १५

सहदेवस्तु ताम्रायां जज्ञे शौरिकुलोद्वहः।

उपासङ्गधरं लेभे तनयं देवरक्षिता।
एकां कन्यां च सुभगां कंसस्तामभ्यघातयत्॥ १६

विजयं रोचमानं च वर्धमानं तु देवलम्।
एते सर्वे महात्मानो ह्युपदेव्यां प्रजज्ञिरे॥ १७

अवगाहो महात्मा च वृकदेव्यामजायत।
वृकदेव्यां स्वयं जज्ञे नन्दनो नाम नामतः॥ १८

सप्तमं देवकीपुत्रं मदनं सुषुवे नृप।
गवेषणं महाभागं संग्रामेष्वपराजितम्॥ १९

श्रद्धादेव्या विहारे तु वने हि विचरन् पुरा।
वैश्यायामदधाच्छौरिः पुत्रं कौशिकमग्रजम्॥ २०

सुतनू रथराजी च शौरेरास्तां परिग्रहौ।
पुण्ड्रश्च कपिलश्चैव वसुदेवात्मजौ बलौ॥ २१

जरा नाम निषादोऽभूत् प्रथमः स धनुर्धरः।
सौभद्रश्च भवश्चैव महासत्त्वौ बभूवतुः॥ २२

आनकदुन्दुभि (वसुदेव)-के संयोगसे रोहिणी (उनकी चौबीस पत्नियोंमें प्रथम)-ने विश्वविख्यात ज्येष्ठ पुत्र राम-(बलराम)-को, तत्पश्चात् प्रिय पुत्र सारण, दुर्दम, दमन, सुभ्रु, पिण्डारक और महाहनुको प्राप्त किया। (उनकी दूसरी पत्नी पौरवीके भी भद्र, सुभद्रादि पुत्र हुए।) उसी समय रोहिणीके गर्भसे चित्रा और अक्षी नामवाली (अथवा सुन्दर नेत्रोंवाली) दो कन्याएँ भी पैदा हुईं। वसुदेवजीके सम्पर्कसे देवकीके गर्भसे सुषेण, कीर्तिमान्, उदार, भद्रसेन, भद्रवास और छठा भद्रविदेह नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे, जिन्हें कंसने मार डाला। फिर उसी समय (देवकीके गर्भसे) आयुष्मान् लोकनाथ महाबाहु प्रजापति श्रीकृष्ण उत्पन्न हुए। श्रीकृष्णके बाद उनकी छोटी बहन शुभभाषिणी सुभद्रा पैदा हुई। तदनन्तर देवकीके गर्भसे महान् तेजस्वी एवं महायशस्वी शूरी नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। ताम्राके गर्भसे शौरिकुलका उद्वहन करनेवाला सहदेव नामक पुत्र पैदा हुआ। देवरक्षिताने उपासङ्गधर नामक पुत्रको और एक सुन्दरी कन्याको, जिसे कंसने मार डाला, उत्पन्न किया। विजय, रोचमान, वर्धमान और देवल—ये सभी महान् आत्मबलसे सम्पन्न पुत्र उपदेवीके गर्भसे पैदा हुए थे। महात्मा अवगाह वृकदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए। इसी वृकदेवीके गर्भसे नन्दन नामक एक और पुत्र पैदा हुआ था॥ ११—१८॥

राजन्! देवकीने अपने सातवें पुत्र मदनको तथा संग्राममें अजेय एवं महान् भाग्यशाली गवेषणको जन्म दिया था। इससे पूर्व श्रद्धादेवीके साथ विहारके अवसरपर वनमें विचरण करते हुए शूरनन्दन वसुदेवने एक वैश्य-कन्याके उदरमें गर्भाधान किया, जिससे कौशिक नामक ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ। वसुदेवजीकी (नवीं) सुतनु और (दसवीं)* रथराजी नामकी दो पत्नियाँ और थीं। उनके गर्भसे वसुदेवके पुण्ड्र और कपिल नामक दो पुत्र तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न सौभद्र और भव नामक दो पुत्र और उत्पन्न हुए थे। उनमें जो ज्येष्ठ था,

* यहाँ वसुदेवजीकी दस, पर हरिवंशपु० १, ब्रह्मपु० ४१।३६ आदिमें चौदह पत्नियाँ और उनकी संततियाँ निर्दिष्ट हैं।

देवभागसुतश्चापि नाम्नासावुद्धवः स्मृतः।
पण्डितं प्रथमं प्राहुर्देवश्रवःसमुद्भवम्॥ २३

ऐक्ष्वाक्यलभतापत्यमनाधृष्टेर्यशस्विनी।
निधूतसत्त्वं शत्रुघ्नं श्राद्धस्तस्मादजायत॥ २४

करूषायानपत्याय कृष्णस्तुष्टः सुतं ददौ।
सुचन्द्रं तु महाभागं वीर्यवन्तं महाबलम्॥ २५

जाम्बवत्याः सुतावेतौ द्वौ च सत्कृतलक्षणौ।
चारुदेष्णश्च साम्बश्च वीर्यवन्तौ महाबलौ॥ २६

तन्तिपालश्च तन्तिश्च नन्दनस्य सुतावुभौ।

शमीकपुत्राश्चत्वारो विक्रान्ताः सुमहाबलाः।
विराजश्च धनुश्चैव श्यामश्च सृञ्जयस्तथा॥ २७

अनपत्योऽभवच्छ्यामः शमीकस्तु वनं ययौ।
जुगुप्समानो भोजत्वं राजर्षित्वमवाप्तवान्॥ २८

कृष्णस्य जन्माभ्युदयं यः कीर्तयति नित्यशः।
शृणोति मानवो नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २९

वह जरा नामक निषाद हुआ, जो महान् धनुर्धर था। देवभागका पुत्र उद्धव नामसे प्रसिद्ध था। देवश्रवाके प्रथम पुत्रको पण्डित नामसे पुकारा जाता था। यशस्विनी ऐक्ष्वाकीने अनाधृष्टिके संयोगसे शत्रुसंहारक निधूतसत्त्व नामक पुत्रको प्राप्त किया। निधूतसत्त्वसे श्राद्धकी उत्पत्ति हुई। संतानहीन करूषपर प्रसन्न होकर श्रीकृष्णने उसे एक सुचन्द्र नामक पुत्र प्रदान किया था, जो महान् भाग्यशाली, पराक्रमी और महाबली था। जाम्बवतीके चारुदेष्ण और साम्ब—ये दोनों पुत्र उत्तम लक्षणोंसे युक्त, पराक्रमी और महान् बलसम्पन्न थे। नन्दनके तन्तिपाल और तन्तिनामक दो पुत्र हुए। शमीकके चारों पुत्र विराज, धनु, श्याम और सृञ्जय अत्यन्त पराक्रमी और महाबली थे। इनमें श्याम तो संतानहीन हो गया और शमीक भोजवंशके आचार-व्यवहारकी निन्दा करता हुआ वनमें चला गया, वहाँ आराधना करके उसने राजर्षिकी पदवी प्राप्त की। जो मनुष्य भगवान् श्रीकृष्णके इस जन्म एवं अभ्युदयका नित्य कीर्तन (पाठ) अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १९—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे वृष्णिवंशानुकीर्तनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें वृष्णिवंशानुकीर्तन नामक छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४६॥

सैंतालीसवाँ अध्याय

श्रीकृष्ण-चरित्रका वर्णन, दैत्योंका इतिहास तथा देवासुर-संग्रामके प्रसङ्गमें विभिन्न अवान्तर कथाएँ

सूत उवाच

अथ देवो महादेवः पूर्वं कृष्णः प्रजापतिः।
विहारार्थं स देवेशो मानुषेष्विह जायते॥ १

देवक्यां वसुदेवस्य तपसा पुष्करेक्षणः।
चतुर्बाहुस्तदा जातो दिव्यरूपो ज्वलञ्श्रिया॥ २

श्रीवत्सलक्षणं देवं दृष्ट्वा दिव्यैश्च लक्षणैः।
उवाच वसुदेवस्तं रूपं संहर वै प्रभो॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें जो प्रजाओंके स्वामी थे, वे ही देवाधिदेव महादेव श्रीकृष्ण लीला-विहार करनेके लिये मृत्युलोकमें मानव-योनिमें अवतीर्ण हुए। वे वसुदेवजीकी तपस्यासे देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुए। उनके नेत्र कमल-सदृश अति रमणीय थे, उनके चार भुजाएँ थीं, उनका दिव्य रूप दिव्य कान्तिसे प्रज्वलित हो रहा था और उनका वक्षःस्थल श्रीवत्सके चिह्नसे विभूषित था। वसुदेवजीने इन दिव्य लक्षणोंसे सम्पन्न श्रीकृष्णको देखकर उनसे कहा—

भीतोऽहं देव कंसस्य ततस्त्वेतद् ब्रवीमि ते।
मम पुत्रा हतास्तेन ज्येष्ठास्ते भीमविक्रमाः॥ ४

वसुदेववचः श्रुत्वा रूपं संहरतेऽच्युतः।
अनुज्ञाप्य ततः शौरिं नन्दगोपगृहेऽनयत्॥ ५

दत्त्वैनं नन्दगोपस्य रक्ष्यतामिति चाब्रवीत्।

अतस्तु सर्वकल्याणं यादवानां भविष्यति।
अयं तु गर्भो देवक्यां जातः कंसं हनिष्यति॥ ६

'प्रभो! आप इस रूपको समेट लीजिये। देव! मैं कंससे डरा हुआ हूँ, इसीलिये आपसे ऐसा कह रहा हूँ; क्योंकि उसने मेरे उन अत्यन्त पराक्रमी (छः) पुत्रोंको मार डाला है, जो आपसे ज्येष्ठ थे।' वसुदेवजीकी बात सुनकर अच्युतभगवान्‌ने शूरनन्दन वसुदेवजीको (अपनेको नन्दके घर पहुँचा देनेकी) आज्ञा देकर उस रूपका संवरण कर लिया। (तब वसुदेवजी उन्हें नन्दगोपके घर ले गये और) उन्हें नन्दगोपके हाथमें समर्पित करके यों बोले—'सखे! इस (बालक)की रक्षा करो, इससे यदुवंशियोंका सब प्रकारसे कल्याण होगा। देवकीके गर्भसे उत्पन्न हुआ यह बालक कंसका वध करेगा'॥१—६॥

ऋषय ऊचुः

क एष वसुदेवस्तु देवकी च यशस्विनी।
नन्दगोपश्च कस्त्वेष यशोदा च महाव्रता॥ ७

यो विष्णुं जनयामास यं च तातेत्यभाषत।
या गर्भं जनयामास या चैनं त्वभ्यवर्धयत्॥ ८

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! ये वसुदेव कौन थे, जिन्होंने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया और जिन्हें भगवान् 'तात-पिता' कहकर पुकारते थे तथा यशस्विनी देवकी कौन थीं, जिन्होंने भगवान्‌को अपने गर्भसे जन्म दिया? साथ ही ये नन्दगोप कौन थे तथा महाव्रतपरायणा यशोदा कौन थीं, जिन्होंने बालकरूपमें भगवान्‌का पालन-पोषण किया?॥ ७-८॥

सूत उवाच

पुरुषः कश्यपस्त्वासीददितिस्तु प्रिया स्मृता।
ब्रह्मणः कश्यपस्त्वंशः पृथिव्यास्त्वदितिस्तथा॥ ९

अथ कामान् महाबाहुर्देवक्याः समपूरयत्।
ये तया काङ्क्षिता नित्यमजातस्य महात्मनः॥ १०

सोऽवतीर्णो महीं देवः प्रविष्टो मानुषीं तनुम्।
मोहयन् सर्वभूतानि योगात्मा योगमायया॥ ११

नष्टे धर्मे तथा जज्ञे विष्णुर्वृष्णिकुले प्रभुः।
कर्तुं धर्मस्य संस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥ १२

रुक्मिणी सत्यभामा च सत्या नाग्नजिती तथा।
सुभामा च तथा शैव्या गान्धारी लक्ष्मणा तथा॥ १३

मित्रविन्दा च कालिन्दी देवी जाम्बवती तथा।

सुशीला च तथा माद्री कौसल्या विजया तथा।
एवमादीनि देवीनां सहस्राणि च षोडश॥ १४

रुक्मिणी जनयामास पुत्रान् रणविशारदान्।
चारुदेष्णं रणे शूरं प्रद्युम्नं च महाबलम्॥ १५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पुरुष (वसुदेवजी) कश्यप हैं और उनकी प्रिय पत्नी देवकी अदिति (प्रकृति) कही गयी हैं। कश्यप ब्रह्माके अंश हैं और अदिति पृथ्वीका। देवकी देवीने अजन्मा एवं महात्मा परमेश्वरसे जो कामनाएँ की थीं, उन सभी कामनाओंको महाबाहु श्रीकृष्णने पूर्ण कर दिया। वे ही योगात्मा भगवान् योगमायाके आश्रयसे समस्त प्राणियोंको मोहित करते हुए मानव-शरीर धारण करके भूतलपर अवतीर्ण हुए। उस समय धर्मका ह्रास हो चुका था, अतः धर्मकी स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके लिये उन सामर्थ्यशाली विष्णुने वृष्णिकुलमें जन्म धारण किया। रुक्मिणी, सत्यभामा, नग्नजित्‌की कन्या सत्या, सुभामा, शैव्या, गान्धारराजकुमारी लक्ष्मणा, मित्रविन्दा, देवी कालिन्दी, जाम्बवती, सुशीला, मद्रराजकुमारी कौसल्या तथा विजया आदि सोलह हजार देवियाँ श्रीकृष्णकी पत्नियाँ थीं। रुक्मिणीने ग्यारह पुत्रोंको जन्म दिया; जो सभी युद्धकर्ममें निष्णात थे। उनके नाम हैं—महाबली प्रद्युम्न, रणशूर चारुदेष्ण, सुचारु, भद्रचारु, सुदेष्ण, भद्र,

सुचारुं भद्रचारुं च सुदेष्णं भद्रमेव च।
परशुं चारुगुप्तं च चारुभद्रं सुचारुकम्।
चारुहासं कनिष्ठं च कन्यां चारुमतीं तथा॥ १६

परशु, चारुगुप्त, चारुभद्र, सुचारुक और सबसे छोटा चारुहास। रुक्मिणीसे एक चारुमती नामकी कन्या भी उत्पन्न हुई थी॥ ९—१६॥

जज्ञिरे सत्यभामायां भानुर्भ्रमरतेक्षणः।
रोहितो दीप्तिमांश्चैव ताम्रश्चक्रो जलंधमः॥ १७
चतस्रो जज्ञिरे तेषां स्वसारस्तु यवीयसीः।
जाम्बवत्याः सुतो जज्ञे साम्बः समितिशोभनः॥ १८
मित्रवान् मित्रविन्दश्च मित्रविन्दा वराङ्गना।
मित्रबाहुः सुनीथश्च नाग्नजित्याः प्रजा हि सा॥ १९
एवमादीनि पुत्राणां सहस्राणि निबोधत।
शतं शतसहस्राणां पुत्राणां तस्य धीमतः॥ २०
अशीतिश्च सहस्राणि वासुदेवसुतास्तथा।
लक्षमेकं तथा प्रोक्तं पुत्राणां च द्विजोत्तमाः॥ २१
उपासङ्गस्य तु सुतौ वज्रः संक्षिप्त एव च।
भूरीन्द्रसेनो भूरिश्च गवेषणसुतावुभौ॥ २२
प्रद्युम्नस्य तु दायादो वैदर्भ्यां बुद्धिसत्तमः।
अनिरुद्धो रणेऽरुद्धो जज्ञेऽस्य मृगकेतनः॥ २३
काश्या सुपार्श्वतनया साम्बाल्लेभे तरस्विनः।
सत्यप्रकृतयो देवाः पञ्च वीराः प्रकीर्तिताः॥ २४
तिस्रः कोट्यः प्रवीराणां यादवानां महात्मनाम्।
षष्टिः शतसहस्राणि वीर्यवन्तो महाबलाः॥ २५
देवांशाः सर्व एवेह ह्युत्पन्नास्ते महौजसः।
देवासुरे हता ये च त्वसुरा ये महाबलाः॥ २६
इहोत्पन्ना मनुष्येषु बाधन्ते सर्वमानवान्।
तेषामुत्सादनार्थाय उत्पन्नो यादवे कुले॥ २७
कुलानां शतमेकं च यादवानां महात्मनाम्।
सर्वमेतत् कुलं यावद् वर्तते वैष्णवे कुले॥ २८
विष्णुस्तेषां प्रणेता च प्रभुत्वे च व्यवस्थितः।
निदेशस्थायिनस्तस्य कथ्यन्ते सर्वयादवाः॥ २९

सत्यभामाके गर्भसे भानु, भ्रमरतेक्षण, रोहित, दीप्तिमान्, ताम्र, चक्र और जलन्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुए थे। इनकी चार छोटी बहनें भी पैदा हुई थीं। जाम्बवतीके संग्रामशोभी साम्ब नामक पुत्र पैदा हुआ। श्रेष्ठ सुन्दरी मित्रविन्दाने मित्रवान् और मित्रविन्दको तथा नाग्नजिती सत्याने मित्रबाहु और सुनीथको पुत्ररूपमें जन्म दिया। इसी प्रकार अन्य पत्नियोंसे भी हजारों पुत्रोंकी उत्पत्ति समझ लीजिये। द्विजवरो! इस प्रकार उन बुद्धिमान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णके पुत्रोंकी संख्या एक करोड़ एक लाख अस्सी हजार बतलायी गयी है। उपासङ्गके दो पुत्र वज्र और संक्षिप्त थे। भूरीन्द्रसेन और भूरि—ये दोनों गवेषणके पुत्र थे। प्रद्युम्नके विदर्भ-राजकुमारीके गर्भसे अनिरुद्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो परम बुद्धिमान् एवं युद्धमें उत्साहपूर्वक लड़नेवाला वीर था। अनिरुद्धके पुत्रका नाम मृगकेतन था। पार्श्वनन्दिनी काश्याने साम्बके संयोगसे ऐसे पाँच पुत्रोंको जन्म दिया, जो तरस्वी (एवं फुर्तीले), सत्यवादी, देवोंके समान सौन्दर्यशाली और शूरवीर थे। इस प्रकार प्रबल शूरवीर एवं महात्मा यादवोंकी संख्या तीन करोड़ थी, उनमें साठ लाख तो महाबली और महान् पराक्रमी थे। ये सभी महान् ओजस्वी यादव देवताओंके अंशसे ही भूतलपर उत्पन्न हुए थे। देवासुर-संग्राममें जो महाबली असुर मारे गये थे, वे ही भूतलपर मानव-योनिमें उत्पन्न होकर सभी मानवोंको कष्ट दे रहे थे। उन्हींका संहार करनेके लिये भगवान् यदुकुलमें अवतीर्ण हुए। इन महाभाग यादवोंके एक सौ एक कुल हैं। ये सब-के-सब कुल विष्णुसे सम्बन्धित कुलके अंदर ही वर्तमान थे। भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण) उनके नेता और स्वामी थे तथा वे सभी यादव श्रीकृष्णकी आज्ञाके अधीन रहते थे—ऐसा कहा जाता है॥ १७—२९॥

ऋषय ऊचुः

समर्षयः कुबेरश्च यक्षो मणिचरस्तथा*।
शालङ्किर्नारदश्चैव सिद्धो धन्वन्तरिस्तथा॥ ३०
आदिदेवस्तथा विष्णुरेभिस्तु सहदैवतैः।
किमर्थं सङ्घशो भूताः स्मृताः सम्भूतयः कति॥ ३१
भविष्याः कति चैवान्ये प्रादुर्भावा महात्मनः।
ब्रह्मक्षत्रेषु शान्तेषु किमर्थमिह जायते॥ ३२
यदर्थमिह सम्भूतो विष्णुर्वृष्ण्यन्धकोत्तमः।
पुनः पुनर्मनुष्येषु तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥ ३३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सप्तर्षि, कुबेर, यक्ष मणिचर (मणिभद्र), शालङ्कि, नारद, सिद्ध, धन्वन्तरि तथा देवसमाज—इन सबके साथ आदिदेव भगवान् विष्णु संबद्ध होकर किसलिये अवतीर्ण होते हैं? इन महापुरुषके कितने अवतार हो चुके और भविष्यमें कितने अन्य अवतार होनेवाले हैं? ब्राह्मणों और क्षत्रियोंके थक जानेपर ये किस कारण भूतलपर उत्पन्न होते हैं? वृष्णि और अन्धकवंशमें सर्वश्रेष्ठ विष्णु (श्रीकृष्ण) जिस प्रयोजनसे भूतलपर बारंबार मानव-योनिमें प्रकट होते हैं, वह सभी कारण हम सब प्रश्नकर्ताओंको बतलाइये॥ ३०—३३॥

सूत उवाच

त्यक्त्वा दिव्यां तनुं विष्णुर्मानुषेष्विह जायते।
युगे त्वथ परावृत्ते काले प्रशिथिले प्रभुः॥ ३४
देवासुरविमर्देषु जायते हरिरीश्वरः।
हिरण्यकशिपौ दैत्ये त्रैलोक्यं प्राक् प्रशासति॥ ३५
बलिनाधिष्ठिते चैव पुरा लोकत्रये क्रमात्।
सख्यमासीत् परमकं देवानामसुरैः सह॥ ३६
युगाख्यासुरसम्पूर्णं ह्यासीदत्याकुलं जगत्।
निदेशस्थायिनश्चापि तयोर्देवासुराः समम्॥ ३७
मृधो बलिविमर्दाय सम्प्रवृद्धः सुदारुणः।
देवानामसुराणां च घोरः क्षयकरो महान्॥ ३८
कर्तुं धर्मव्यवस्थानं जायते मानुषेष्विह।
भृगोः शापनिमित्तं तु देवासुरकृते तदा॥ ३९

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! युग-युगमें जब लोग धर्मसे विमुख हो जाते हैं तथा शुभ कर्मोंमें विशेषरूपसे शिथिलता आ जाती है, तब भगवान् विष्णु अपने दिव्य शरीरका त्यागकर भूतलपर मानव-योनिमें प्रकट होते हैं। पूर्वकालमें दैत्यराज हिरण्यकशिपुके त्रिलोकीका शासन करते समय देवासुर-संग्रामके अवसरपर भगवान् श्रीहरि अवतीर्ण हुए थे। इसी प्रकार क्रमशः जब बलि तीनों लोकोंपर अधिष्ठित था, उस समय देवताओंकी असुरोंके साथ प्रगाढ़ मैत्री हो गयी थी। ऐसा समय एक युगतक चलता रहा। उस समय सारा जगत् असुरोंसे व्याप्त होकर अत्यन्त व्याकुल हो उठा था। देवता और असुर—दोनों समानरूपसे उसकी आज्ञाके अधीन थे। अन्तमें (बलि-बन्धनके समय) बलिका विमर्दन करनेके लिये देवताओं और असुरोंके बीच अत्यन्त भयंकर एवं महान् विनाशकारी घोर संग्राम प्रारम्भ हो गया। तब भगवान् विष्णु धर्मकी व्यवस्था करनेके लिये तथा देवताओं और असुरोंके प्रति दिये गये भृगुके शापके कारण पृथ्वीपर मानव-योनिमें उत्पन्न हुए॥ ३४—३९॥

ऋषय ऊचुः

कथं देवासुरकृते व्यापारं प्रासवान् स्वतः।
देवासुरं यथा वृत्तं तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्॥ ४०

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उस समय भगवान् विष्णु देवताओं और असुरोंके लिये अपने-आप इस अवताररूप कार्यमें कैसे प्रवृत्त हुए थे? तथा वह देवासुरसंग्राम जिस प्रकार हुआ था? वह सब हमलोगोंको बतलाइये॥ ४०॥

सूत उवाच

तेषां दायनिमित्तं ते संग्रामास्तु सुदारुणाः।
वराहाद्या दश द्वौ च शण्डामर्कान्तरे स्मृताः॥ ४१

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें वराह आदि बारह अत्यन्त भयंकर देवासुर-संग्राम भागप्राप्तिके निमित्त हुए थे।

* वायुपुराण ९७। २ आदिमें मणिकर और मणिरथ पाठ है, सबका भाव 'मणिभद्र' से ही है।

नामतस्तु समासेन शृणु तेषां विवक्षतः।
प्रथमो नारसिंहस्तु द्वितीयश्चापि वामनः॥ ४२

देवासुरक्षयकराः प्रजानां तु हिताय वै।
तृतीयस्तु वराहश्च चतुर्थोऽमृतमन्थनः।
संग्रामः पञ्चमश्चैव संजातस्तारकामयः॥ ४३

षष्ठो ह्याडीवकाख्यस्तु सप्तमस्त्रैपुरस्तथा।
अन्धकाख्योऽष्टमस्तेषां नवमो वृत्रघातकः॥ ४४

धात्रश्च दशमश्चैव ततो हालाहलः स्मृतः।
प्रथितो द्वादशस्तेषां घोरः कोलाहलस्तथा॥ ४५

हिरण्यकशिपुर्दैत्यो नारसिंहेन पातितः।
वामनेन बलिर्बद्धस्त्रैलोक्याक्रमणे पुरा॥ ४६

हिरण्याक्षो हतो द्वन्द्वे प्रतिघाते तु दैवतैः।
दंष्ट्रया तु वराहेण समुद्रस्तु द्विधा कृतः॥ ४७

प्रह्लादो निर्जितो युद्धे इन्द्रेणामृतमन्थने।
विरोचनस्तु प्राह्लादिर्नित्यमिन्द्रवधोद्यतः॥ ४८

इन्द्रेणैव तु विक्रम्य निहतस्तारकामये।
अशक्नुवन् स देवानां सर्वं सोढुं सदैवतम्॥ ४९

निहता दानवाः सर्वे त्रैलोक्ये त्र्यम्बकेण तु।
असुराश्च पिशाचाश्च दानवाश्चान्धकाहवे॥ ५०

हता देवमनुष्यैस्ते पितृभिश्चैव सर्वशः।
सम्पृक्तो दानवैर्वृत्रो घोरो हालाहले हतः॥ ५१

तदा विष्णुसहायेन महेन्द्रेण निवर्तितः।
हतो ध्वजे महेन्द्रेण मायाच्छन्नस्तु योगवित्।
ध्वजलक्षणमाविश्य विप्रचित्तिः सहानुजः॥ ५२

ये सभी युद्ध शण्डामर्कके पौरोहित्यकालमें घटित हुए बतलाये जाते हैं। मैं संक्षेपमें नामनिर्देशानुसार उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। प्रथम युद्ध नरसिंह (नृसिंहावतार)में, दूसरा वामन, तीसरा वाराह (वराहावतार)-में और चौथा अमृत-मन्थनके अवसरपर हुआ था। पाँचवाँ तारकामय संग्राम घटित हुआ था। इसी प्रकार छठा युद्ध आडीवक, सातवाँ त्रैपुर (त्रिपुरसम्बन्धी), आठवाँ अन्धक, नवाँ वृत्रघातक, दसवाँ धात्र (या वार्त्र), ग्यारहवाँ हालाहल और बारहवाँ भयंकर संग्राम कोलाहलके नामसे विख्यात है। (इन संग्रामोंमें) भगवान् विष्णुने दैत्यराज हिरण्यकशिपुको नृसिंह-रूप धारण करके मार डाला था। पूर्वकालमें त्रिलोकीको नापते समय भगवान्ने वामन-रूपसे बलिको बाँध लिया था। देवताओंके साथ भगवान्ने वराहका रूप धारण करके द्वन्द्व-युद्धमें अपनी दाढ़ोंसे हिरण्याक्षको विदीर्ण कर मार डाला था और समुद्रको दो भागोंमें विभक्त कर दिया था। अमृत-मन्थनके अवसरपर घटित हुए युद्धमें इन्द्रने प्रह्लादको पराजित किया था। उससे अपमानित होकर प्रह्लाद-पुत्र विरोचन नित्य इन्द्रका वध करनेकी ताकमें लगा रहता था। वह पृथक्-पृथक् देवोंको तथा पूरे देवसमाजको सहन नहीं कर पाता था, किंतु इन्द्रने तारकामय युद्धमें पराक्रम प्रकट करके उसे यमलोकका पथिक बना दिया। त्रिलोकीमें जितने दानव, असुर और पिशाच थे, वे सभी शंकरजीद्वारा अन्धक नामक युद्धमें मौतके घाट उतारे गये। उस युद्धमें देवता, मनुष्य और पितृगण भी सब ओरसे सहायक-रूपमें उपस्थित थे। दानवोंसे घिरा हुआ भयंकर वृत्रासुर हालाहल-युद्धमें मारा गया था।* तत्पश्चात् इन्द्रने विष्णुकी सहायतासे विप्रचित्तिको युद्धसे विमुख कर दिया, परंतु योगका ज्ञाता विप्रचित्ति अपनेको मायासे छिपाकर ध्वजरूपमें परिणत कर दिया, फिर भी इन्द्रने ध्वजमें छिपे होनेपर भी अनुज-समेत उसका सफाया कर दिया। इस प्रकार देवोंकी सहायतासे इन्द्रने कोलाहल नामक युद्धमें संगठित होकर आये हुए सभी पराक्रमी दानवों और दैत्योंको पराजित किया था। (ऐसा प्रतीत होता है कि युद्धके उपरान्त देवताओंने किसी यज्ञका अनुष्ठान किया था, उस) यज्ञकी समाप्तिके अवसरपर अवभृथ-स्नानके

* इसके ९ से ११ वाँ संख्यातकके निर्दिष्ट संग्राम वृत्र-इन्द्र-विष्णु-युद्धसे ही सम्बद्ध दीखते हैं।

दैत्यांश्च दानवांश्चैव संयतान् किल संयुतान्।
जयन् कोलाहले सर्वान् देवैः परिवृतो वृषा॥ ५३
यज्ञस्यावभृथे दृश्यौ शण्डामर्कौ तु दैवतैः।
एते देवासुरे वृत्ताः संग्रामा द्वादशैव तु॥ ५४
हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ॥ ५५
द्विसप्तति तथान्यानि नियुतान्यधिकानि च।
अशीतिं च सहस्राणि त्रैलोक्यैश्वर्यतां गतः॥ ५६
पर्यायेण तु राजाभूद् बलिर्वर्षायुतं पुनः।
षष्टिवर्षसहस्राणि नियुतानि च विंशतिः॥ ५७
बले राज्याधिकारस्तु यावत्कालं बभूव ह।
तावत्कालं तु प्रह्लादो निवृत्तो ह्यसुरैः सह॥ ५८
इन्द्रास्त्रयस्ते विज्ञेया असुराणां महौजसः।
दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः॥ ५९
त्रैलोक्यमिदमव्यग्रं महेन्द्रेणानुपाल्यते।
असपत्नमिदं सर्वमासीद् दशयुगं पुनः॥ ६०
प्रह्लादस्य हते तस्मिंस्त्रैलोक्ये कालपर्ययात्।
पर्यायेण तु सम्प्राप्ते त्रैलोक्यं पाकशासने।
ततोऽसुरान् परित्यज्य शुक्रो देवानगच्छत॥ ६१
यज्ञे देवानथ गतान् दितिजाः काव्यमाह्वयन्।
किं त्वं नो मिषतां राज्यं त्यक्त्वा यज्ञं पुनर्गतः॥ ६२
स्थातुं न शक्नुमो ह्यत्र प्रविशामो रसातलम्।
एवमुक्तोऽब्रवीद् दैत्यान् विषण्णान् सान्त्वयन् गिरा॥ ६३
मा भैष्ट धारयिष्यामि तेजसा स्वेन वोऽसुराः।
मन्त्राश्चौषधयश्चैव रसा वसु च यत्परम्॥ ६४
कृत्स्नानि मयि तिष्ठन्ति पादस्तेषां सुरेषु वै।
तत् सर्वं वः प्रदास्यामि युष्मदर्थे धृता मया॥ ६५

समय शण्ड और अमर्क नामक दोनों दैत्यपुरोहित देवताओंके दृष्टिगोचर हुए थे। इस प्रकार ये बारह युद्ध देवताओं और असुरोंके बीच घटित हुए थे, जो देवताओं और असुरोंके विनाशक और प्रजाओंके लिये हितकारी थे॥ ४१—५४॥

पूर्वकालमें राजा हिरण्यकशिपु एक अरब सात करोड़ बीस लाख अस्सी हजार वर्षोंतक त्रिलोकीके ऐश्वर्यका उपभोग करता हुआ (सिंहासनपर) विराजमान था। तदनन्तर पर्यायक्रमसे बलि राजा हुए। इनका शासनकाल दो करोड़ सत्तर हजार वर्षोंतक था। जितने समयतक बलिका शासनकाल था, उतने कालतक प्रह्लाद अपने अनुयायी असुरोंके साथ निवृत्तिमार्गपर अवलम्बित रहे। इन महान् ओजस्वी तीनों दैत्योंको असुरोंका इन्द्र (अध्यक्ष) जानना चाहिये। इस प्रकार दस युगपर्यन्त यह सारा विश्व दैत्योंके अधीन था। पुनः कालक्रमानुसार गत युद्धमें प्रह्लादके मारे जानेपर पर्याय-क्रमसे त्रिलोकीका राज्य इन्द्रके हाथोंमें आ गया। उस समय दस युगतक यह विश्व शत्रुहीन था, तब इन्द्र निश्चिन्ततापूर्वक त्रिलोकीका पालन कर रहे थे। उसी समय शुक्राचार्य असुरोंका परित्याग कर एक देवयज्ञमें चले आये। इस प्रकार यज्ञके अवसरपर शुक्राचार्यको देवताओंके पक्षमें गया हुआ देखकर दैत्योंने शुक्राचार्यको उपालम्भ देते हुए कहा—'गुरुदेव! आप हमलोगोंके देखते-देखते हमारे राज्यको छोड़कर देवताओंके यज्ञमें क्यों चले गये? अब हमलोग यहाँ किसी प्रकार ठहर नहीं सकते, अतः रसातलमें प्रवेश कर जायँगे।' दैत्योंके इस प्रकार गिड़गिड़ानेपर शुक्राचार्य उन दुःखी दैत्योंको मधुर वाणीसे सान्त्वना देते हुए बोले—'असुरो! तुमलोग डरो मत, मैं अपने तेजोबलसे पुनः तुमलोगोंको धारण करूँगा अर्थात् अपनाऊँगा; क्योंकि त्रिलोकीमें जितने मन्त्र, ओषधि, रस और धन-सम्पत्ति हैं, वे सब-के-सब मेरे पास हैं।* इनका चतुर्थांश ही देवोंके अधिकारमें है। मैं वह सारा-का-सारा तुमलोगोंको प्रदान कर दूँगा; क्योंकि तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने उन्हें धारण कर रखा है'॥ ५५—६५॥

* महाभारत उद्योगपर्व तथा भीष्मपर्व ६। २२-२३ में भी शुक्रको ही धन-रत्नोंका अधिकारी कहा गया है।

ततो देवास्तु तान् दृष्ट्वा वृतान् काव्येन धीमता।
सम्मन्त्रयन्ति देवा वै संविग्नास्तु जिघृक्षया॥ ६६
काव्यो ह्येष इदं सर्वं व्यावर्तयति नो बलात्।
साधु गच्छामहे तूर्णं यावन्नाध्यापयिष्यति॥ ६७
प्रसह्य हत्वा शिष्टांस्तु पातालं प्रापयामहे।
ततो देवास्तु संरब्धा दानवानुपसृत्य ह॥ ६८
ततस्ते वध्यमानास्तु काव्यमेवाभिदुद्रुवुः।
ततः काव्यस्तु तान् दृष्ट्वा तूर्णं देवैरभिद्रुतान्॥ ६९
रक्षां काव्येन संहृत्य देवास्तेऽप्यसुरार्दिताः।
काव्यं दृष्ट्वा स्थितं देवा निःशङ्कमसुरा जहुः॥ ७०
ततः काव्योऽनुचिन्त्याथ ब्राह्मणो वचनं हितम्।
तानुवाच ततः काव्यः पूर्वं वृत्तमनुस्मरन्॥ ७१
त्रैलोक्यं वो हृतं सर्वं वामनेन त्रिभिः क्रमैः।
बलिर्बद्धो हतो जम्भो निहतश्च विरोचनः॥ ७२
महासुरा द्वादशसु संग्रामेषु शरैर्हताः।
तैस्तैरुपायैर्भूयिष्ठं निहता वः प्रधानतः॥ ७३
किञ्चिच्छिष्टास्तु यूयं वै युद्धं मास्त्विति मे मतम्।
नीतयो वोऽभिधास्यामि तिष्ठध्वं कालपर्ययात्॥ ७४
यास्याम्यहं महादेवं मन्त्रार्थं विजयावहम्।
अप्रतीपांस्ततो मन्त्रान् देवात् प्राप्य महेश्वरात्।
युध्यामहे पुनर्देवांस्ततः प्राप्स्यथ वै जयम्॥ ७५
ततस्ते कृतसंवादा देवानूचुस्तदासुराः।
न्यस्तशस्त्रा वयं सर्वे निःसंनाहा रथैर्विना॥ ७६
वयं तपश्चरिष्यामः संवृता वल्कलैर्वने।
प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा सत्याभिव्याहृतं तु तत्॥ ७७
ततो देवा न्यवर्तन्त विज्वरा मुदिताश्च ते।
न्यस्तशस्त्रेषु दैत्येषु विनिवृत्तास्तदा सुराः॥ ७८

तदनन्तर जब देवताओंने देखा कि बुद्धिमान् शुक्राचार्यने पुनः असुरोंका पक्ष ग्रहण कर लिया है, तब विचारशील देवगण समग्र राज्य ग्रहण करनेके विषयमें मन्त्रणा करते हुए कहने लगे—'भाइयो! ये शुक्राचार्य हमलोगोंके सभी कार्योंको बलपूर्वक उलट-पलट देंगे, अतः ठीक तो यही होगा कि जबतक ये उन असुरोंको सिखा-पढ़ाकर बली नहीं बना देते, उसके पूर्व ही हमलोग यहाँसे शीघ्र चलें और उन्हें बलपूर्वक मार डालें तथा बचे हुए लोगोंको पातालमें भाग जानेके लिये विवश कर दें।' ऐसा परामर्श करके देवगण दानवोंके निकट जाकर उनपर टूट पड़े। इस प्रकार अपना संहार होते देखकर असुरगण शुक्राचार्यकी शरणमें भाग चले। तब शुक्राचार्यने असुरोंको देवताओंद्वारा खदेड़ा गया देखकर तुरंत ही उनकी रक्षाका विधान किया। इससे उलटे देवता ही असुरोंद्वारा पीड़ित किये जाने लगे। तब देवगण वहाँ शुक्राचार्यको निःशङ्क भावसे स्थित देखकर असुरोंके सामनेसे हट गये। तदनन्तर ब्राह्मण शुक्राचार्य पूर्वमें घटित हुए वृत्तान्तका स्मरण करते हुए बहुत सोच-विचारकर असुरोंसे हितकारक वचन बोले—'असुरो! वामनद्वारा अपने तीन पगोंसे (बलिद्वारा शासित) सम्पूर्ण त्रिलोकीका राज्य छीन लिया गया, बलि बाँध लिया गया, जम्भासुरका वध हुआ और विरोचनका भी निधन हुआ। इस प्रकार बारहों युद्धोंमें तुमलोगोंमें जो प्रधान-प्रधान महाबली असुर थे, वे सभी देवताओंद्वारा तरह-तरहके उपायोंका आश्रय लेकर मार डाले गये। अब थोड़ा-बहुत तुमलोग शेष रह गये हो, अतः मेरा विचार है कि अभी तुमलोग युद्ध बंद कर दो और कालके विपर्ययको देखते हुए चुपचाप शान्त हो जाओ। पीछे मैं तुमलोगोंको नीति बतलाऊँगा। मैं आज ही विजय प्रदान करनेवाले मन्त्रकी प्राप्तिके लिये महादेवजीके पास जा रहा हूँ। जब मैं देवाधिदेव महेश्वरसे उन अमोघ मन्त्रोंको प्राप्त करके लौटूँ, तब पुनः मेरे सहयोगसे तुमलोग देवताओंके साथ युद्ध करना, उस समय तुम्हें विजय प्राप्त होगी'— ॥ ६६—७५ ॥

इस प्रकार परस्पर युद्धविषयक परामर्श करके उन असुरोंने देवताओंके पास जाकर कहा—'देवगण! इस समय हम सभी लोगोंने अपने शस्त्रास्त्रोंको रख दिया है, कवचोंको उतार दिया है और रथोंको छोड़ दिया है। अब हमलोग वल्कल-वस्त्र धारण करके वनमें छिपकर तपस्या करेंगे।' सत्यवादी प्रह्लादके उस सत्य वचनको सुनकर तथा दैत्योंके शस्त्रास्त्र रख देनेपर देवतालोग प्रसन्न हो गये। उनकी चिन्ता नष्ट हो गयी और वे युद्धसे विरत

ततस्तानब्रवीत् काव्यः कञ्चित्कालमुपास्यथ।
निरुत्सिक्तास्तपोयुक्ताः कालं कार्यार्थसाधकम्॥ ७९

पितुर्ममाश्रमस्था वै मां प्रतीक्षथ दानवाः।
तत्संदिश्यासुरान् काव्यो महादेवं प्रपद्यत॥ ८०

हो गये। युद्ध बंद हो जानेपर शुक्राचार्यने असुरोंसे कहा—'दानवो! तुमलोग अपने अभिमान आदि कुप्रवृत्तियोंका त्याग कर तपस्यामें लग जाओ और कुछ कालतक उपासना करो; क्योंकि काल ही अभीष्ट कार्यका साधक होता है। इस प्रकार तुमलोग मेरे पिताजीके आश्रममें निवास करते हुए मेरे लौटनेकी प्रतीक्षा करो।' असुरोंको ऐसी शिक्षा देकर शुक्राचार्य महादेवजीके पास जा पहुँचे (और उनसे निवेदन करने लगे)॥ ७६—८०॥

शुक्र उवाच

मन्त्रानिच्छाम्यहं देव ये न सन्ति बृहस्पतौ।
पराभवाय देवानामसुराणां जयाय च॥ ८१
एवमुक्तोऽब्रवीद् देवो व्रतं त्वं चर भार्गव।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु कणधूममवाक्शिराः।
यदि पास्यसि भद्रं ते ततो मन्त्रानवाप्स्यसि॥ ८२
तथेति समनुज्ञाप्य शुक्रस्तु भृगुनन्दनः।
पादौ संस्पृश्य देवस्य बाढमित्यब्रवीद् वचः।
व्रतं चराम्यहं देव त्वयाऽऽदिष्टोऽद्य वै प्रभो॥ ८३
ततोऽनुसृष्टो देवेन कुण्डधारोऽस्य धूमकृत्।
तदा तस्मिन् गते शुक्रे ह्यसुराणां हिताय वै।
मन्त्रार्थं तत्र वसति ब्रह्मचर्यं महेश्वरे॥ ८४
तद् बुद्ध्वा नीतिपूर्वं तु राज्ये न्यस्ते तदा सुरैः।
अस्मिंश्छिद्रे तदामर्षाद् देवास्तान् समुपाद्रवन्॥ ८५
दंशिताः सायुधाः सर्वे बृहस्पतिपुरःसराः॥ ८६

शुक्राचार्यने कहा—'देव! मैं देवताओंके पराभव तथा असुरोंकी विजयके लिये आपसे उन मन्त्रोंको जानना चाहता हूँ, जो बृहस्पतिके पास नहीं हैं।' ऐसा कहे जानेपर महादेवजीने कहा—'भार्गव! तुम्हारा कल्याण हो। इसके लिये तुम्हें कठोर व्रतका पालन करना पड़ेगा। यदि तुम पूरे एक सहस्र वर्षोंतक नीचा सिर करके कनीके धुएँका पान करोगे, तब कहीं तुम्हें उन मन्त्रोंकी प्राप्ति हो सकेगा।' तब भृगुनन्दन शुक्रने महादेवजीकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनके चरणोंका स्पर्श किया और कहा—'देव! ठीक है, मैं वैसा ही करूँगा। प्रभो! मैं आजसे ही आपके आदेशानुसार व्रतपालनमें लग रहा हूँ।' इस प्रकार महादेवजीसे विदा होकर शुक्राचार्य धूमको उत्पन्न करनेवाले कुण्डधार यक्षके निकट गये और असुरोंके हितार्थ मन्त्रप्राप्तिके लिये ब्रह्मचर्यपूर्वक महेश्वरके आश्रममें निवास करने लगे। तदनन्तर जब देवताओंको यह ज्ञात हुआ कि असुरोंद्वारा राज्य छोड़नेमें ऐसी कूटनीति और यह छिद्र था, तब वे अमर्षसे भर गये; फिर तो वे संगठित हो कवच धारणकर हथियारोंसे सुसज्जित हो बृहस्पतिजीको आगे करके असुरोंपर टूट पड़े॥ ८१—८६॥

दृष्ट्वासुरगणा देवान् प्रगृहीतायुधान् पुनः।
उत्पेतुः सहसा ते वै संत्रस्तास्तान् वचोऽब्रुवन्॥ ८७
न्यस्ते शस्त्रेऽभये दत्ते आचार्ये व्रतमास्थिते।
दत्त्वा भवन्तो ह्यभयं सम्प्राप्ता नो जिघांसया॥ ८८
अनाचार्या वयं देवास्त्यक्तशस्त्रास्त्ववस्थिताः।
चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहाः॥ ८९
रणे विजेतुं देवांश्च न शक्ष्यामः कथञ्चन।
अयुद्धेन प्रपत्स्यामः शरणं काव्यमातरम्॥ ९०

इस प्रकार पुनः देवताओंको आयुध धारण करके आक्रमण करते देख असुरगण सहसा भयभीत होकर उठ खड़े हुए और देवताओंसे बोले—'देवगण! हमलोगोंने शस्त्रास्त्र रख दिया है, आपलोगोंद्वारा हमें अभयदान मिल चुका है, मेरे गुरुदेव इस समय व्रतमें स्थित हैं—ऐसी परिस्थितिमें अभय-दान देकर भी आपलोग हमारा वध करनेकी इच्छासे क्यों आये हैं? इस समय हमलोग बिना गुरुके हैं, शस्त्रास्त्रोंका परित्याग करके निहत्थे खड़े हैं, तपस्वियोंकी भाँति चीर और काला मृगचर्म धारण किये हुए हैं, निष्क्रिय और परिग्रहरहित हैं। ऐसी दशामें हम किसी प्रकार भी युद्धमें आप देवताओंको जीतनेमें समर्थ नहीं हैं, अतः बिना युद्ध किये ही काव्यकी माताकी शरणमें जा रहे हैं।

यापयामः कृच्छ्रमिदं यावदभ्येति नो गुरुः।
निवृत्ते च तथा शुक्रे योत्स्यामो दंशितायुधाः॥ ९१

एवमुक्त्वासुरान्योऽन्यं शरणं काव्यमातरम्।
प्रापद्यन्त ततो भीतास्तेभ्योऽदादभयं तु सा॥ ९२

न भेतव्यं न भेतव्यं भयं त्यजत दानवाः।
मत्संनिधौ वर्ततां वो न भीर्भवितुमर्हति॥ ९३

तथा चाभ्युपपन्नांस्तान् दृष्ट्वा देवास्ततोऽसुरान्।
अभिजग्मुः प्रसह्यैतानविचार्य बलाबलम्॥ ९४

ततस्तान् बाध्यमानांस्तु देवैर्दृष्ट्वासुरांस्तदा।
देवी क्रुद्धाब्रवीद् देवाननिन्द्रान् वः करोम्यहम्॥ ९५

सम्भृत्य सर्वसम्भारानिन्द्रं साभ्यचरत् तदा।
तस्तम्भ देवी बलवद् योगयुक्ता तपोधना॥ ९६

ततस्तं स्तम्भितं दृष्ट्वा इन्द्रं देवाश्च मूकवत्।
प्राद्रवन्त ततो भीता इन्द्रं दृष्ट्वा वशीकृतम्॥ ९७

गतेषु सुरसंघेषु शक्रं विष्णुरभाषत।
मां त्वं प्रविश भद्रं ते नयिष्ये त्वां सुरोत्तम॥ ९८

एवमुक्तस्ततो विष्णुं प्रविवेश पुरंदरः।
विष्णुना रक्षितं दृष्ट्वा देवी क्रुद्धा वचोऽब्रवीत्॥ ९९

एषा त्वां विष्णुना सार्धं दहामि मघवन् बलात्।
मिषतां सर्वभूतानां दृश्यतां मे तपोबलम्॥१००

भयाभिभूतौ तौ देवाविन्द्रविष्णू बभूवतुः।
कथं मुच्येव सहितौ विष्णुरिन्द्रमभाषत॥ १०१

इन्द्रोऽब्रवीज्जहि ह्येनां यावन्नौ न दहेत् प्रभो।
विशेषेणाभिभूतोऽस्मि त्वत्तोऽहं जहि मा चिरम्॥ १०२

ततः समीक्ष्य विष्णुस्तां स्त्रीवधे कृच्छ्रमास्थितः।
अभिध्याय ततश्चक्रमापदुद्धरणे तु तत्॥ १०३

वहाँ हमलोग इस विषम संकटके समयको तबतक व्यतीत करेंगे, जबतक हमारे गुरुदेव लौटकर आ नहीं जाते। गुरुदेव शुक्राचार्यके वापस आ जानेपर हमलोग कवच और शस्त्रास्त्रसे लैस होकर आपलोगोंके साथ युद्ध करेंगे।' इस प्रकार भयभीत हुए असुरगण परस्पर परामर्श करके शुक्राचार्यकी माताकी शरणमें चले गये। तब उन्होंने असुरोंको अभयदान देते हुए कहा—'दानवो! मत डरो, मत डरो, भय छोड़ दो। मेरे निकट रहते हुए तुमलोगोंको किसी प्रकारका भय नहीं प्राप्त हो सकता'॥८७—९३॥

तत्पश्चात् शुक्रमाताद्वारा असुरोंको सुरक्षित देखकर देवताओंने बलाबलका (कौन बलवान् है, कौन दुर्बल है—ऐसा) विचार न करके बलपूर्वक उनपर धावा बोल दिया। उस समय देवताओंद्वारा उन असुरोंको पीड़ित किया जाता हुआ देखकर (शुक्रमाता ख्याति) देवी क्रुद्ध होकर देवताओंसे बोलीं—'मैं अभी-अभी तुमलोगोंको इन्द्र-रहित कर देती हूँ।' उस समय उन तपस्विनी एवं योगिनी देवीने सभी सामग्रियोंको एकत्र करके अभिचार-मन्त्रका प्रयोग किया और बलपूर्वक इन्द्रको स्तम्भित कर दिया। अपने स्वामी इन्द्रको स्तम्भित हुआ देखकर देवगण मूक-से हो गये और इन्द्रको असुरोंके वशीभूत हुआ देखकर वहाँसे भाग खड़े हुए। देवगणके भाग जानेपर भगवान् विष्णुने इन्द्रसे कहा—'सुरश्रेष्ठ! तुम्हारा कल्याण हो। तुम मेरे शरीरमें प्रवेश कर जाओ, मैं तुम्हें यहाँसे अन्यत्र पहुँचा दूँगा।' ऐसा कहे जानेपर इन्द्र भगवान् विष्णुके शरीरमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार भगवान् विष्णुद्वारा इन्द्रको सुरक्षित देखकर (ख्याति) देवी कुपित होकर ऐसा वचन बोली—'मघवन्! यह मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके देखते-देखते विष्णुसहित तुमको बलपूर्वक जलाये देती हूँ। तुम दोनों मेरे तपोबलको देखो'॥९४—१००॥

यह सुनकर वे दोनों देवता—इन्द्र और विष्णु भयभीत हो गये। तब विष्णुने इन्द्रसे कहा—'हम दोनों एक साथ किस प्रकार (इस संकटसे) मुक्त हो सकेंगे?' यह सुनकर इन्द्र बोले—'प्रभो! जबतक यह हम दोनोंको जला नहीं देती है, उसके पूर्व ही आप इसे मार डालिये। मैं तो आपके द्वारा विशेषरूपसे अभिभूत हो चुका हूँ, इसलिये आप ही इसका वध कर दीजिये, अब विलम्ब मत कीजिये।' तब भगवान् विष्णु एक ओर उस देवीकी

ततस्तु त्वरया युक्तः शीघ्रकारी भयान्वितः।
ज्ञात्वा विष्णुस्ततस्तस्याः क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम्।
क्रुद्धः स्वमस्त्रमादाय शिरश्छिच्छेद वै भिया॥ १०४

तं दृष्ट्वा स्त्रीवधं घोरं चुक्रोध भृगुरीश्वरः।
ततोऽभिशप्तो भृगुणा विष्णुर्भार्यावधे तदा॥ १०५

यस्मात् ते जानतो धर्ममवध्या स्त्री निषूदिता।
तस्मात् त्वं सप्तकृत्वेह मानुषेषूपपत्स्यसि॥ १०६

ततस्तेनाभिशापेन नष्टे धर्मे पुनः पुनः।
लोकस्य च हितार्थाय जायते मानुषेष्विह॥ १०७

अनुव्याहृत्य विष्णुं स तदादाय शिरस्त्वरन्।
समानीय ततः कायमसौ गृह्येदमब्रवीत्॥ १०८

एषा त्वं विष्णुना देवि हता संजीवयाम्यहम्।
ततस्तां योज्य शिरसा अभिजीवेति सोऽब्रवीत्॥ १०९

यदि कृत्स्नो मया धर्मो ज्ञायते चरितोऽपि वा।
तेन सत्येन जीवस्व यदि सत्यं वदाम्यहम्॥ ११०

ततस्तां प्रोक्ष्य शीताभिरद्भिर्जीवेति सोऽब्रवीत्।
ततोऽभिव्याहृते तस्य देवी स जीविता तदा॥ १११

ततस्तां सर्वभूतानि दृष्ट्वा सुप्तोत्थितामिव।
साधु साध्विति चक्रुस्ते वचसा सर्वतो दिशम्॥ ११२

एवं प्रत्याहृता तेन देवी सा भृगुणा तदा।
मिषतां देवतानां हि तदद्भुतमिवाभवत्॥ ११३

असम्भ्रान्तेन भृगुणा पत्नीं संजीवितां पुनः।
दृष्ट्वा चेन्द्रो नालभत शर्म काव्यभयात् पुनः।
प्रजागरे ततश्चेन्द्रो जयन्तीमिदमब्रवीत्॥ ११४

भीषण दुर्भावना—दुश्चेष्टा तथा दूसरी ओर स्त्रीवधरूप घोर पापको देखकर गम्भीर चिन्तामें पड़ गये। फिर उस देवीके क्रूर विचारको जानकर उस आपत्तिसे उद्धार पानेके लिये उन्होंने अपने सुदर्शन चक्रका ध्यान किया। अस्त्रके आ जानेपर शीघ्र ही कार्य-सम्पादन करनेमें निपुण एवं भयभीत विष्णु क्रुद्ध हो उठे और तुरंत ही उन्होंने अपना अस्त्र लेकर (पापसे) डरते-डरते उसके सिरको काट गिराया। इधर ऐश्वर्यशाली भृगु उस भयंकर स्त्री-वधको देख कुपित हो गये और वे उस भार्या-वधको निमित्त बनाकर भगवान् विष्णुको शाप देते हुए बोले—'विष्णो! चूँकि 'स्त्री अवध्य होती है'—इस धर्मको जानते हुए भी तुमने मेरी भार्याका प्राण हरण किया है, अतः तुम मृत्युलोकमें सात बार मानव-योनिमें जन्म धारण करोगे।' उसी शापके कारण धर्मका ह्रास हो जानेपर भगवान् विष्णु लोकके कल्याणके लिये मृत्युलोकमें पुनः-पुनः मानव-योनिमें अवतीर्ण होते हैं*॥ १०१—१०७॥

भगवान् विष्णुको ऐसा शाप देकर भृगुने फिर तुरंत ही (ख्यातिके) उस सिरको उठा लिया और उसे देवीके शरीरके निकट लाकर तथा उस शरीरसे जोड़कर इस प्रकार कहा—'देवि! यह तुम विष्णुद्वारा मार डाली गयी हो, अब मैं तुम्हें पुनः जिलाये देता हूँ।' यों कहकर उसके शरीरको सिरसे जोड़कर कहा—'जी उठो'। पुनः वे प्रतिज्ञा करते हुए बोले—'यदि मैं सम्पूर्ण धर्मोंको जानता हूँ तथा मेरे द्वारा सम्पूर्ण धर्मोंका आचरण भी किया गया हो अथवा यदि मैं सत्यवादी होऊँ तो उस सत्यके प्रभावसे तुम जीवित हो जाओ।' तत्पश्चात् देवीके शरीरका शीतल जलसे प्रोक्षण करके उन्होंने पुनः कहा—'जीवित हो जाओ!' भृगुके यों कहते ही देवी तुरंत जीवित होकर उठ बैठी। उस देवीको सोकर उठी हुईकी भाँति जीवित देखकर सभी प्राणी 'ठीक है, ठीक है'—ऐसा कहने लगे। उनका वह साधुवाद सभी दिशाओंमें गूँज उठा। इस प्रकार महर्षि भृगुने सभी देवताओंके देखते-देखते देवीको पुनः जीवन प्रदान कर दिया, यह एक अद्भुत-सी बात हुई॥ १०८—११३॥

इस प्रकार व्यवस्थित चित्तवाले भृगुद्वारा अपनी पत्नीको जीवित किया हुआ देखकर इन्द्रको शुक्राचार्यके भयसे शान्ति नहीं मिल पा रही थी। वे रातभर जागते ही रहते। अन्तमें बुद्धिमान् इन्द्र बहुत कुछ सोच-विचारकर अपनी कन्या जयन्तीसे यह वचन बोले—

* यह कथा वाल्मीकीय रामायण १। २४। २१—२५, योगवासिष्ठ १। १। ६१—६५ तथा भविष्यपुराण ४। ६३। १—१३ में भी आती है।

संचिन्त्य मतिमान् वाक्यं स्वां कन्यां पाकशासनः।
एष काव्यो ह्यमित्राय व्रतं चरति दारुणम्।
तेनाहं व्याकुलः पुत्रि कृतो मतिमता भृशम्॥ ११५

गच्छ संसाधयस्वैनं श्रमापनयनैः शुभैः।
तैस्तैर्मनोऽनुकूलैश्च ह्युपचारैरतन्द्रिता॥ ११६

काव्यमाराधयस्वैनं यथा तुष्येत स द्विजः।
गच्छ त्वं तस्य दत्तासि प्रयत्नं कुरु मत्कृते॥ ११७

एवमुक्ता जयन्ती सा वचः संगृह्य वै पितुः।
अगच्छद् यत्र घोरं स तप आरभ्य तिष्ठति॥ ११८

तं दृष्ट्वा तु पिबन्तं सा कणधूममवाङ्मुखम्।
यक्षेण पात्यमानं च कुण्डधारेण पातितम्॥ ११९

दृष्ट्वा च तं पात्यमानं देवी काव्यमवस्थितम्।
स्वरूपध्यानशाम्यं तं दुर्बलं भूतिमास्थितम्।
पित्रा यथोक्तं वाक्यं सा काव्ये कृतवती तदा॥ १२०

गीर्भिश्चैवानुकूलाभिः स्तुवती वल्गुभाषिणी।
गात्रसंवाहनैः काले सेवमाना त्वचः सुखैः।
व्रतचर्यानुकूलाभिरुवास बहुलाः समाः॥ १२१

पूर्णेऽथवा व्रते तस्मिन् घोरे वर्षसहस्रके।
वरेण च्छन्दयामास काव्यं प्रीतो भवस्तदा॥ १२२

'बेटी! ये शुक्राचार्य मेरे शत्रुओंके हितार्थ भीषण व्रतका अनुष्ठान कर रहे हैं। इससे बुद्धिमान् काव्य (उन शुक्राचार्य)-ने मुझे अत्यन्त व्याकुल कर दिया है, अतः तुम उनके पास जाओ और मेरा कार्य सिद्ध करो। वहाँ तुम आलस्यरहित होकर थकावटको दूर करनेवाले तथा उनके मनोऽनुकूल विभिन्न प्रकारके शुभ उपचारोंद्वारा शुक्राचार्यकी ऐसी उत्तम आराधना करो, जिससे वे ब्राह्मण प्रसन्न हो जायँ। जाओ, आज मैं तुम्हें शुक्राचार्यको समर्पित कर दे रहा हूँ। तुम मेरे कल्याणके लिये प्रयत्न करो।' इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्रपुत्री जयन्ती पिताके वचनको अङ्गीकार करके उस स्थानके लिये प्रस्थित हुई, जहाँ बैठकर शुक्राचार्य भीषण तपका अनुष्ठान कर रहे थे। वहाँ जाकर जयन्तीने शुक्राचार्यको नीचे मुख किये हुए कुण्डधार नामक यक्षद्वारा गिराये गये तथा गिराये जाते हुए कण-धूमका पान करते हुए देखा। उनके निकट जाकर जयन्तीने जब यह लक्ष्य किया कि शुक्राचार्य उस गिराये जाते हुए धूमका पान करते हुए अपने स्वरूपके ध्यानमें शान्तभावसे अवस्थित हैं, उनके शरीरपर विभूति लगी है और वे अत्यन्त दुर्बल हो गये हैं, तब पिताने जैसी सीख दी थी, उसीके अनुसार वह शुक्राचार्यके प्रति व्यवहार करने लगी। मधुर भाषण करनेवाली जयन्ती अनुकूल वचनोंद्वारा शुक्राचार्यकी स्तुति करती थी, समय-समयपर उनके सिर-हाथ-पैर आदि अङ्गोंको दबाकर उनकी सेवा करती थी। इस प्रकार व्रतचर्याके अनुकूल प्रवृत्तियोंद्वारा उनकी सेवा करती हुई वह बहुत वर्षोंतक उनके निकट निवास करती रही। एक सहस्र वर्षको अवधिवाले उस भयंकर धूमव्रतके पूर्ण होनेपर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये और शुक्राचार्यको वर प्रदान करते हुए बोले— ॥ ११४—१२२ ॥

महादेव उवाच

एतद् व्रतं त्वयैकेन चीर्णं नान्येन केनचित्।
तस्माद् वै तपसा बुद्ध्या श्रुतेन च बलेन च॥ १२३
तेजसा च सुरान् सर्वांस्त्वमेकोऽभिभविष्यसि।
यच्चाभिलषितं ब्रह्मन् विद्यते भृगुनन्दन॥ १२४
प्रपत्स्यसे तु तत् सर्वं नानुवाच्यं तु कस्यचित्।
सर्वाभिभावी तेन त्वं भविष्यसि द्विजोत्तम॥ १२५
एतान् दत्त्वा वरांस्तस्मै भार्गवाय भवः पुनः।
प्रजेशत्वं धनेशत्वमवध्यत्वं च वै ददौ॥ १२६
एताँल्लब्ध्वा वरान् काव्यः सम्प्रहृष्टतनूरुहः।
हर्षात् प्रादुर्बभौ तस्य दिव्यस्तोत्रं महेश्वरे।
तथा तिर्यक् स्थितश्चैव तुष्टुवे नीललोहितम्॥ १२७

शुक्र उवाच

नमोऽस्तु शितिकण्ठाय कनिष्ठाय सुवर्चसे।
लेलिहानाय काव्याय वत्सरायान्धसःपते*॥ १२८
कपर्दिने करालाय हर्यक्ष्णे वरदाय च।
संस्तुताय सुतीर्थाय देवदेवाय रंहसे॥ १२९
उष्णीषिणे सुवक्त्राय बहुरूपाय वेधसे।
वसुरेताय रुद्राय तपसे चित्रवाससे॥ १३०
ह्रस्वाय मुक्तकेशाय सेनान्ये रोहिताय च।
कवये राजवृक्षाय तक्षकक्रीडनाय च॥ १३१
सहस्रशिरसे चैव सहस्राक्षाय मीढुषे।
वराय भव्यरूपाय श्वेताय पुरुषाय च॥ १३२

महादेवजीने कहा—भृगुनन्दन! अबतक एकमात्र तुमने ही इस व्रतका अनुष्ठान किया है, किसी अन्यके द्वारा इस व्रतका पालन नहीं हो सका है; इसलिये तुम अकेले ही अपने तप, बुद्धि, शास्त्रज्ञान, बल और तेजसे समस्त देवताओंको पराजित कर दोगे। ब्रह्मन्! तुम्हारी जो कुछ भी अभिलाषा है, वह सारी-की-सारी तुम्हें प्राप्त हो जायगी, किंतु तुम यह मन्त्र किसी दूसरेको मत बतलाना। द्विजोत्तम! इससे तुम सम्पूर्ण शत्रुओंके दमनकर्ता हो जाओगे।' भृगुनन्दन शुक्राचार्यको इतना वरदान देनेके पश्चात् शंकरजीने पुनः उन्हें प्रजेशत्व (प्रजापति), धनेशत्व (धनाध्यक्ष) और अवध्यत्वका भी वर प्रदान किया। इन वरदानोंको पाकर शुक्राचार्यका शरीर हर्षसे पुलकित हो उठा। उसी हर्षावेगके कारण उनके हृदयमें भगवान् शंकरके प्रति एक दिव्य स्तोत्र प्रादुर्भूत हो गया। तब वे उसी तिर्यक्-अवस्थामें पड़े-पड़े नीललोहित शंकरजीकी स्तुति करने लगे॥ १२३—१२७॥

शुक्राचार्यने कहा—प्रभो! आप **शितिकण्ठ**—जगत्की रक्षाके लिये हालाहल विषका पान करके उसके नील चिह्नको कण्ठमें धारण करनेवाले (अथवा कर्पूर-गौरकण्ठवाले), **कनिष्ठ**—ब्रह्माके पुत्रोंमें सबसे छोटे रुद्र या अदितिके छोटे पुत्ररूप, **सुवर्चा**—अध्ययन एवं तप आदिसे उत्पन्न हुए सुन्दर तेजवाले, **लेलिहान**—प्रलय-कालमें त्रिलोकीके संहारार्थ बारंबार जीभ लपलपानेवाले, **काव्य**—कवि या पण्डितके लक्षणोंसे सम्पन्न, **वत्सर**—संवत्सररूप, **अन्धस्पति**—सोमलताके अथवा सभी अन्नोंके स्वामी, **कपर्दी**—जटाजूटधारी, **कराल**—भीषण रूपधारी, **हर्यक्ष**—पीले नेत्रोंवाले, **वरद**—वरप्रदाता, **संस्तुत**—पूर्णरूपसे प्रशंसित, **सुतीर्थ**—महान् गुरुस्वरूप अथवा उत्तम तीर्थस्वरूप, **देवदेव**—देवताओंके अधीश्वर, **रंहस**—वेगशाली, **उष्णीषी**—सिरपर पगड़ी धारण करनेवाले, **सुवक्त्र**—सुन्दर मुखवाले, **बहुरूप**—एकादश रुद्रोंमेंसे एक, **वेधा**—विधानकर्ता, **वसुरेता**—अग्निरूप, **रुद्र**—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, **तपः**—तपः-स्वरूप, **चित्रवासा**—चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, **ह्रस्व**—बौना, **मुक्तकेश**—खुली हुई जटाओंवाले, **सेनानी**—सेनापति, **रोहित**—मृगरूपधारी, **कवि**—अतीन्द्रिय विषयोंके ज्ञाता, **राजवृक्ष**—रुद्राक्ष-वृक्षस्वरूप, **तक्षकक्रीडन**—नागराज तक्षकके साथ क्रीडा करनेवाले, **सहस्रशिरा**—हजारों मस्तकोंवाले, **सहस्राक्ष**—सहस्र नेत्रधारी, **मीढुष**—सेक्ता अथवा स्तुतिकी वृद्धि करनेवाले, **वर**—वरण करनेयोग्य, वरस्वरूप, **भव्यरूप**—सौन्दर्यशाली, **श्वेत**—गौरवर्णवाले,

* यहाँ प्रायः २५७ नामोंद्वारा भगवान् शंकरकी दिव्य स्तुति है। ये नाम प्रसिद्ध 'वाजसनेयि-संहिता' (यजुर्वेद १६) आदिपर आधृत हैं। ये नाम विभिन्न शिवसहस्रनामोंमें भी आते हैं। यह स्तोत्र वायु और ब्रह्माण्डपुराणोंमें भी प्राप्त है।

गिरिशाय नमोऽर्काय बलिने आज्यपाय च।
सुतृप्ताय सुवस्त्राय धन्विने भार्गवाय च॥ १३३

निषङ्गिणे च ताराय स्वक्षाय क्षपणाय च।
ताम्राय चैव भीमाय उग्राय च शिवाय च॥ १३४

पुरुष—आत्मनिष्ठ, गिरिश—कैलासपर्वतपर शयनकर्ता, अर्क—सबकी उत्पत्तिके हेतुभूत सूर्य, बली—बलसम्पन्न, आज्यप—घृतपायी, सुतृप्त—परम संतुष्ट, सुवस्त्र—सुन्दर वस्त्र पहननेवाले, धन्वी—धनुर्धर, भार्गव—परशुरामस्वरूप, निषङ्गी—तूणीरधारी, तार—विश्वके रक्षक, स्वक्ष—सुशोभन नेत्रोंसे युक्त, क्षपण—भिक्षुकस्वरूप, ताम्र—अरुण अधरोंवाले, भीम—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, संहारक होनेके कारण भयंकर, उग्र—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, निष्ठुर तथा शिव—कल्याणस्वरूपको नमस्कार है॥१२८—१३४॥

महादेवाय शर्वाय विश्वरूपशिवाय च।
हिरण्याय वरिष्ठाय ज्येष्ठाय मध्यमाय च॥ १३५

वास्तोष्पते पिनाकाय मुक्तये केवलाय च।
मृगव्याधाय दक्षाय स्थाणवे भीषणाय च॥ १३६

बहुनेत्राय धुर्याय त्रिनेत्रायेश्वराय च।
कपालिने च वीराय मृत्यवे त्र्यम्बकाय च॥ १३७

बभ्रवे च पिशङ्गाय पिङ्गलायारुणाय च।
पिनाकिने चेषुमते चित्राय रोहिताय च॥ १३८

दुन्दुभ्यायैकपादाय अजाय बुद्धिदाय च।
आरण्याय गृहस्थाय यतये ब्रह्मचारिणे॥ १३९

सांख्याय चैव योगाय व्यापिने दीक्षिताय च।
अनाहताय शर्वाय भव्येशाय यमाय च॥ १४०

रोधसे चेकितानाय ब्रह्मिष्ठाय महर्षये।
चतुष्पदाय मेध्याय रक्षिणे शीघ्रगाय च॥ १४१

महादेव—देवताओंके भी पूज्य, शर्व—प्रलयकालमें सबके संहारक, विश्वरूप शिव—विश्वरूप धारण करके जीवोंके कल्याणकर्ता, हिरण्य—सुवर्णकी उत्पत्तिके मूल कारण, वरिष्ठ—सर्वश्रेष्ठ, ज्येष्ठ—आदिदेव, मध्यम—मध्यस्थ, वास्तोष्पति—गृहक्षेत्रके पालक, पिनाक—पिनाक नामक धनुषके स्वामी, मुक्ति—मुक्तिदाता, केवल—असाधारण पुरुष, मृगव्याध—मृगरूपधारी यज्ञके लिये व्याधस्वरूप, दक्ष—उत्साही, स्थाणु—गृहके आधारभूत स्तम्भके समान जगत्के आधारस्तम्भ, भीषण—अमङ्गल वेषधारी, बहुनेत्र—सर्वद्रष्टा, धुर्य—अग्रगण्य, त्रिनेत्र—सोम-सूर्य-अग्निरूप त्रिनेत्रधारी, ईश्वर—सबके शासक, कपाली—चौथे हाथमें कपालधारी, वीर—शूरवीर, मृत्यु—संहारकर्ता, त्र्यम्बक—त्रिनेत्रधारी, एकादश रुद्रोंमें अन्यतम, बभ्रु—विष्णुस्वरूप, पिशङ्ग—भूरे रंगवाले, पिङ्गल—नील-पीतमिश्रित वर्णवाले, अरुण—आदित्यरूप, पिनाकी—पिनाक नामक धनुष या त्रिशूल धारण करनेवाले, ईषुमान्—बाणधारी, चित्र—अद्भुत रूपधारी, रोहित—लाल रंगका मृगविशेष, दुन्दुभ्य—दुन्दुभिके शब्दोंको सुनकर प्रसन्न होनेवाले, एकपाद—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, एकमात्र शरण लेने योग्य, अज—एकादश रुद्रोंमें एक रुद्र, अजन्मा, बुद्धिद—बुद्धिदाता, आरण्य—अरण्यनिवासी, गृहस्थ—गृहमें निवास करनेवाले, यति—संन्यासी, ब्रह्मचारी—ब्रह्मनिष्ठ, सांख्य—आत्मानात्मविवेकशील, योग—चित्तवृत्तियोंके निरोधस्वरूप अथवा निर्बीज समाधिस्वरूप, व्यापी—सर्वव्यापक, दीक्षित—अष्ट मूर्तियोंमें एक मूर्ति, सोमयागके विशिष्ट यागकर्ता, अनाहत—हृदयस्थित द्वादशदल कमलरूप चक्रके निवासी, शर्व—दारुकावनमें स्थित मुनियोंको मोहित करनेवाले, भव्येश—पार्वतीके प्राणपति, यम—संहारकालमें यमस्वरूप, रोधा—समुद्र-तटकी भाँति धर्म-ह्रासके निरोधक, चेकितान—

शिखण्डिने करालाय दंष्ट्रिणे विश्ववेधसे।
भास्वराय प्रतीताय सुदीप्ताय सुमेधसे॥ १४२

क्रूरायाविकृतायैव भीषणाय शिवाय च।
सौम्याय चैव मुख्याय धार्मिकाय शुभाय च॥ १४३

अवध्यायामृतायैव नित्याय शाश्वताय च।
व्यापृताय विशिष्टाय भरताय च साक्षिणे॥ १४४

क्षेमाय सहमानाय सत्याय चामृताय च।
कर्त्रे परशवे चैव शूलिने दिव्यचक्षुषे॥ १४५

सोमपायाज्यपायैव धूमपायोष्मपाय च।
शुचये परिधानाय सद्योजाताय मृत्यवे॥ १४६

पिशिताशाय शर्वाय मेघाय वैद्युताय च।
व्यावृत्ताय वरिष्ठाय भरिताय तरक्षवे॥ १४७

त्रिपुरघ्नाय तीर्थायावक्राय रोमशाय च।
तिग्मायुधाय व्याख्याय सुसिद्धाय पुलस्तये॥ १४८

रोचमानाय चण्डाय स्फीताय ऋषभाय च।
व्रतिने युञ्जमानाय शुचये चोर्ध्वरेतसे॥ १४९

असुरघ्नाय स्वाघ्नाय मृत्युघ्ने यज्ञियाय च।
कृशानवे प्रचेताय वह्नये निर्मलाय च॥ १५०

अतिशय ज्ञानसम्पन्न, **ब्रह्मिष्ठ**—वेदोंके पारंगत विद्वान्, **महर्षि**—वसिष्ठ आदि, **चतुष्पाद**—विश्व, तैजस, प्राज्ञ और शिव-ध्यानरूप चार पादोंवाले, **मेध्य**—पवित्रस्वरूप, **रक्षी**—रक्षक, **शीघ्रग**—शीघ्रगामी, **शिखण्डी**—जटाके ऊपर जयाग्र-गुच्छको धारण करनेवाले, **कराल**—भयानक, **दंष्ट्री**—दाढ़वाले, **विश्ववेधा**—विश्वके सृष्टिकर्ता, **भास्वर**—दीप्तिमान् स्वरूपवाले, **प्रतीत**—विख्यात, **सुदीप्त**—परम प्रकाशमान तथा **सुमेधा**—उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्नको नमस्कार है॥ १३५—१४२॥

क्रूर—निर्दयी, **अविकृत**—सम्पूर्ण विपरीत क्रियाओंसे रहित, **भीषण**—भयंकर, **शिव**—धर्मचिन्तारहित, **सौम्य**—शान्तस्वरूप, **मुख्य**—सर्वश्रेष्ठ, **धार्मिक**—धर्मका आचरण करनेवाले, **शुभ**—मङ्गलस्वरूप, **अवध्य**—वधके अयोग्य, **अमृत**—मृत्युरहित, **नित्य**—अविनाशी, **शाश्वत**—सनातन स्थायी, **व्यापृत**—कर्मसचिव, **विशिष्ट**—सर्वश्रेष्ठ, **भरत**—लोकोंका भरण-पोषण करनेवाले, **साक्षी**—जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंके साक्षीरूप, **क्षेम**—मोक्षस्वरूप, **सहमान**—सहनशील, **सत्य**—सत्यस्वरूप, **अमृत**—धन्वन्तरिस्वरूप, **कर्ता**—सबके उत्पादक, **परशु**—परशुधारी, **शूली**—त्रिशूलधारी, **दिव्यचक्षु**—दिव्य नेत्रोंवाले, **सोमप**—सोमरसका पान करनेवाले, **आज्यप**—घृतपायी अथवा एक विशिष्ट पितरस्वरूप, **धूमप**—धूमपान करनेवाले, **ऊष्मप**—एक विशिष्ट पितरस्वरूप, ऊष्माको पी जानेवाले, **शुचि**—सर्वथा शुद्ध, **परिधान**—ताण्डवके समय साज-सज्जासे विभूषित, **सद्योजात**—पञ्च मूर्तियोंमेंसे एक मूर्ति, तत्काल प्रकट होनेवाले, **मृत्यु**—कालस्वरूप, **पिशिताश**—फलका गूदा खानेवाले, **सर्व**—विश्वात्मा होनेके कारण सर्वस्वरूप, **मेघ**—बादलकी भाँति दाता, **विद्युत्**—बिजलीकी तरह दीप्तिमान्, **व्यावृत्त**—गजचर्म या व्याघ्रचर्मसे आवृत, सबसे अलग मुक्तस्वरूप, **वरिष्ठ**—सर्वश्रेष्ठ, **भरित**—परिपूर्ण, **तरक्षु**—व्याघ्रविशेष, **त्रिपुरघ्न**—त्रिपुरासुरके वधकर्ता, **तीर्थ**—महान् गुरुस्वरूप, **अवक्र**—सौम्य स्वभाववाले, **रोमश**—लम्बी जटाओंवाले, **तिग्मायुध**—तीखे हथियारोंवाले, **व्याख्य**—विशेषरूपसे व्याख्येय या प्रशंसित, **सुसिद्ध**—परम सिद्धिसम्पन्न, **पुलस्ति**—पुलस्त्य ऋषिरूप, **रोचमान**—आनन्दप्रद, **चण्ड**—अत्यन्त क्रोधी, **स्फीत**—वृद्धिंगत, **ऋषभ**—सर्वोत्कृष्ट, **व्रती**—व्रतपरायण, **युञ्जमान**—सर्वदा कार्यरत, **शुचि**—निर्मलचित्त, **ऊर्ध्वरेता**—अखण्डित ब्रह्मचर्यवाले, **असुरघ्न**—राक्षसोंके विनाशक, **स्वाघ्न**—निजजनोंके रक्षक, **मृत्युघ्न**—मृत्यु-संकटको टालनेवाले, **यज्ञिय**—यज्ञके लिये हितकारी, **कृशानु**—अपने तेजसे तृण-काष्ठादि वस्तुओंको सूक्ष्म कर देनेवाले, **प्रचेता**—उत्कृष्ट चेतनावाले, **वह्नि**—अग्निस्वरूप और **निर्मल**—जागतिक मलोंसे रहितको नमस्कार है॥ १४३—१५०॥

रक्षोघ्नाय पशुघ्नायाविघ्नाय श्वसिताय च।
विभ्रान्ताय महान्ताय अत्यन्तं दुर्गमाय च॥ १५१

कृष्णाय च जयन्ताय लोकानामीश्वराय च।
अनाश्रिताय वेध्याय समत्वाधिष्ठिताय च॥ १५२

हिरण्यबाहवे चैव व्याप्ताय च महाय च।
सुकर्मणे प्रसह्याय चेशानाय सुचक्षुषे॥ १५३

क्षिप्रेषवे सदश्वाय शिवाय मोक्षदाय च।
कपिलाय पिशङ्गाय महादेवाय धीमते॥ १५४

महाकल्पाय दीप्ताय रोदनाय हसाय च।
दृढधन्विने कवचिने रथिने च वरूथिने॥ १५५

भृगुनाथाय शुक्राय गह्वरेष्ठाय वेधसे।
अमोघाय प्रशान्ताय सुमेधाय वृषाय च॥ १५६

नमोऽस्तु तुभ्यं भगवन् विश्वाय कृत्तिवाससे।
पशूनां पतये तुभ्यं भूतानां पतये नमः॥ १५७

रक्षोघ्न—राक्षसोंके संहारकर्ता, **पशुघ्न**—जीवोंके संहारक, **अविघ्न**—विघ्नरहित, **श्वसित**—ताण्डवकालमें ऊँची श्वास लेनेवाले, **विभ्रान्त**—भ्रान्तिहीन, **महान्त**—विशाल मर्यादावाले, **अत्यन्त दुर्गम**—परम दुष्प्राप्य, **कृष्ण**—सच्चिदानन्दस्वरूप, **जयन्त**—बारंबार शत्रुओंपर विजय पानेवाले, **लोकानामीश्वर**—समस्त लोकोंके स्वामी, **अनाश्रित**—स्वतन्त्र, **वेध्य**—भक्तोंद्वारा प्राप्त करनेके लिये लक्ष्यस्वरूप, **समत्वाधिष्ठित**—समतासम्पन्न, **हिरण्यबाहु**—सुनहरी कान्तिवाली सुन्दर भुजाओंसे सुशोभित, **व्याप्त**—सर्वव्यापी, **मह**—दीप्तिशाली, **सुकर्मा**—उत्तम कर्मवाले, **प्रसह्य**—विशेषरूपसे सहन करनेयोग्य, **ईशान**—नियन्ता, **सुचक्षुः**—सुशोभन नेत्रोंसे युक्त, **क्षिप्रेषु**—शीघ्रतापूर्वक बाण चलानेवाले, **सदश्व**—उच्चैःश्रवा आदि उत्तम अश्वरूप, **शिव**—निरुपाधि, **मोक्षद**—मोक्षदाता, **कपिल**—कपिल वर्ण, **पिशङ्ग**—कनक-सदृश कान्तिमान्, **महादेव**—ब्रह्मादि देवताओंके तथा ब्रह्मवादी मुनियोंके देवता, **धीमान्**—उत्तम बुद्धिसम्पन्न, **महाकल्प**—महाप्रलय-कालमें विशाल शरीर धारण करनेवाले, **दीप्त**—अत्यन्त तेजस्वी, **रोदन**—रुलानेवाले, **हस**—हसनशील, **दृढधन्वा**—सुदृढ़ धनुषवाले, **कवची**—कवचधारी, **रथी**—रथके स्वामी, **वरूथी**—भूतों एवं पिशाचोंकी सेनावाले, **भृगुनाथ**—महर्षि भृगुके रक्षक, **शुक्र**—अग्निस्वरूप, **गह्वरेष्ठ**—निकुञ्जप्रिय, **वेधा**—ब्रह्मस्वरूप, **अमोघ**—निष्फलतारहित, **प्रशान्त**—शान्तचित्त, **सुमेध**—सुन्दर बुद्धिवाले और **वृष**—धर्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। भगवन्! आप **विश्व**—विश्वस्वरूप, **कृत्तिवासा**—गजासुरके चर्मको धारण करनेवाले, **पशुपति**—पशुओंके स्वामी और **भूतपति**—भूत-प्रेतोंके अधीश्वर हैं, आपको बारंबार प्रणाम है॥ १५१—१५७॥

प्रणवे ऋग्यजुःसाम्ने स्वाहाय च स्वधाय च।
वषट्कारात्मने चैव तुभ्यं मन्त्रात्मने नमः॥ १५८

त्वष्ट्रे धात्रे तथा कर्त्रे चक्षुःश्रोत्रमयाय च।
भूतभव्यभवेशाय तुभ्यं कर्मात्मने नमः॥ १५९

वसवे चैव साध्याय रुद्रादित्यसुराय च।
विश्वाय मारुतायैव तुभ्यं देवात्मने नमः॥ १६०

अग्नीषोमविधिज्ञाय पशुमन्त्रौषधाय च।
स्वयम्भुवे ह्यजायैव अपूर्वप्रथमाय च।

आप **प्रणव**—ॐकारस्वरूप एवं **ऋग्यजुःसाम**—वेदत्रयीरूप हैं, **स्वाहा**, **स्वधा**, **वषट्कार**—ये तीनों आपके स्वरूप हैं तथा **मन्त्रात्मा**—मन्त्रोंके आत्मा आप ही हैं, आपको अभिवादन है। आप **त्वष्टा**—प्रजापति विश्वकर्मा, **धाता**—सबको धारण करनेवाले, **कर्ता**—कर्मनिष्ठ, **चक्षुःश्रोत्रमय**—दिव्य नेत्र एवं दिव्य श्रोत्रसे युक्त, **भूतभव्यभवेश**—भूत, भविष्य और वर्तमानके ज्ञाता और **कर्मात्मा**—कर्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप **वसु**—आठ वसुओंमें एक वसु, **साध्य**—गणदेवोंकी एक कोटि, **रुद्र**—दुःखोंके विनाशक, **आदित्य**—अदितिपुत्र, **सुर**—देवरूप, **विश्व**—विश्वेदेवतारूप, **मारुत**—वायुस्वरूप एवं **देवात्मा**—देवताओंके आत्मस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप **अग्नीषोमविधिज्ञ**—अग्नीषोम नामक यज्ञकी विधिके ज्ञाता, **पशुमन्त्रौषध**—यज्ञमें प्रयुक्त होनेवाले पशु,

प्रजानां पतये चैव तुभ्यं ब्रह्मात्मने नमः॥ १६१

आत्मेशायात्मवश्याय सर्वेशातिशयाय च।
सर्वभूताङ्गभूताय तुभ्यं भूतात्मने नमः॥ १६२

निर्गुणाय गुणज्ञाय व्याकृतायामृताय च।
निरुपाख्याय मित्राय तुभ्यं योगात्मने नमः॥ १६३

पृथिव्यै चान्तरिक्षाय महसे त्रिदिवाय च।
जनस्तपाय सत्याय तुभ्यं लोकात्मने नमः॥ १६४

अव्यक्ताय च महते भूतादेरिन्द्रियाय च।
आत्मज्ञाय विशेषाय तुभ्यं सर्वात्मने नमः॥ १६५

नित्याय चात्मलिङ्गाय सूक्ष्मायैवेतराय च।
शुद्धाय विभवे चैव तुभ्यं मोक्षात्मने नमः॥ १६६

नमस्ते त्रिषु लोकेषु नमस्ते परतस्त्रिषु।
सत्यान्तेषु महाद्येषु चतुर्षु च नमोऽस्तु ते॥ १६७

नमः स्तोत्रे मया ह्यस्मिन् सदसद् व्याहृतं विभो।
मद्भक्त इति ब्रह्मण्य तत् सर्वं क्षन्तुमर्हसि॥ १६८

सूत उवाच

एवमाभाष्य देवेशमीश्वरं नीललोहितम्।
प्रह्वोऽभिप्रणतस्तस्मै प्राञ्जलिर्वाग्यतोऽभवत्॥ १६९

काव्यस्य गात्रं संस्पृश्य हस्तेन प्रीतिमान् भवः।
निकामं दर्शनं दत्त्वा तत्रैवान्तरधीयत॥ १७०

ततः सोऽन्तर्हिते तस्मिन् देवेशेऽनुचरीं तदा।
तिष्ठन्तीं पार्श्वतो दृष्ट्वा जयन्तीमिदमब्रवीत्॥ १७१

मन्त्र और औषधके निर्णेता, **स्वयम्भू**—स्वयं उत्पन्न होनेवाले, **अज**—जन्मरहित, **अपूर्वप्रथम**—आद्यन्तस्वरूप, **प्रजापति**—प्रजाओंके स्वामी और **ब्रह्मात्मा**—ब्रह्मस्वरूप हैं, आपको अभिवादन है। आप **आत्मेश**—मनके स्वामी, **आत्मवश्य**—मनको वशमें रखनेवाले, **सर्वेशातिशय**—समस्त ईश्वरोंमें सबसे बढ़कर, **सर्वभूताङ्गभूत**—सम्पूर्ण जीवोंके अङ्गभूत तथा **भूतात्मा**—समस्त प्राणियोंके आत्मा हैं, आपको नमस्कार है॥ १५८—१६२॥

आप **निर्गुण**—सत्त्व, रजस्, तमस्—तीनों गुणोंसे परे, **गुणज्ञ**—तीनों गुणोंके रहस्यके ज्ञाता, **व्याकृत**—रूपान्तरित, **अमृत**—अमृतस्वरूप, **निरुपाख्य**—अदृश्य, **मित्र**—जीवोंके हितैषी और **योगात्मा**—योगस्वरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप **पृथिवी**—मृत्युलोक, **अन्तरिक्ष**—अन्तरिक्षलोक, **मह**—महर्लोक, **त्रिदिव्य**—स्वर्गलोक, **जन**—जनलोक, **तपः**—तपोलोक, **सत्य**—सत्यलोक हैं, इस प्रकार **लोकात्मा**—सातों लोकस्वरूप आपको अभिवादन है। आप **अव्यक्त**—निराकाररूप, **महान्**—पूज्य, **भूतादि**—समस्त प्राणियोंके आदिभूत, **इन्द्रिय**—इन्द्रियस्वरूप, **आत्मज्ञ**—आत्मतत्त्वके ज्ञाता, **विशेष**—सर्वाधिक और **सर्वात्मा**—सम्पूर्ण जीवोंके आत्मस्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप **नित्य**—सनातन, **आत्मलिङ्ग**—स्वप्रमाणस्वरूप, **सूक्ष्म**—अणुसे भी अणु, **इतर**—महान्‌से भी महान्, **शुद्ध**—शुद्धज्ञानसम्पन्न, **विभु**—सर्वव्यापक और **मोक्षात्मा**—मोक्षरूप हैं, आपको प्रणाम है। यहाँ तीनों लोकोंमें आपके लिये मेरा नमस्कार है तथा इनके अतिरिक्त (अन्य) तीन परलोकोंमें भी मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इसी प्रकार महर्लोकसे लेकर सत्यलोकपर्यन्त चारों लोकोंमें मैं आपको अभिवादन करता हूँ। ब्राह्मणवत्सल विभो! इस स्तोत्रमें मेरे द्वारा जो कुछ उचित-अनुचित कहा गया, उसे 'यह मेरा भक्त है'—ऐसा जानकर आप क्षमा कर दें॥ १६३—१६८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर शुक्राचार्य देवाधिदेव नीललोहित भगवान् शंकरसे इस प्रकार प्रार्थना करके हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें लोट गये और पुनः विनम्र होकर उनके समक्ष चुपचाप खड़े हो गये। तब शिवजीने हर्षपूर्वक अपने हाथसे शुक्राचार्यके शरीरको सहलाते हुए उन्हें यथेष्ट दर्शन दिया और वे वहीं अन्तर्हित हो गये। उन देवेश्वरके अन्तर्हित हो जानेपर शुक्राचार्य अपने पार्श्व भागमें खड़ी हुई सेविका जयन्तीको देखकर उससे इस

कस्य त्वं सुभगे का वा दुःखिते मयि दुःखिता।
महता तपसा युक्ता किमर्थं मां निषेवसे॥ १७२
अनया संस्तुतो भक्त्या प्रश्रयेण दमेन च।
स्नेहेन चैव सुश्रोणि प्रीतोऽस्मि वरवर्णिनि॥ १७३
किमिच्छसि वरारोहे कस्ते कामः समृद्ध्यताम्।
तं ते सम्पादयाम्यद्य यद्यपि स्यात् सुदुष्करः॥ १७४
एवमुक्ताब्रवीदेनं तपसा ज्ञातुमर्हसि।
चिकीर्षितं हि मे ब्रह्मंस्त्वं हि वेत्थ यथातथम्॥ १७५
एवमुक्तोऽब्रवीदेनां दृष्ट्वा दिव्येन चक्षुषा।
मया सह त्वं सुश्रोणि दश वर्षाणि भामिनि॥ १७६
देवि चेन्दीवरश्यामे वरार्हे वामलोचने।
एवं वृणोषि कामं त्वं मत्तो वै वल्गुभाषिणि॥ १७७
एवं भवतु गच्छामो गृहान्नो मत्तकाशिनि।
ततः स्वगृहमागत्य जयन्त्याः पाणिमुद्वहन्॥ १७८
तया सहावसद् देव्या दश वर्षाणि भार्गवः।
अदृश्यः सर्वभूतानां मायया संवृतः प्रभुः॥ १७९
कृतार्थमागतं दृष्ट्वा काव्यं सर्वे दितेः सुताः।
अभिजग्मुर्गृहं तस्य मुदितास्ते दिदृक्षवः॥ १८०
यदा गता न पश्यन्ति मायया संवृतं गुरुम्।
लक्षणं तस्य तद् बुद्ध्वा प्रतिजग्मुर्यथागतम्॥ १८१
बृहस्पतिस्तु संरुद्धं काव्यं ज्ञात्वा वरेण तु।
तुष्ट्यर्थं दश वर्षाणि जयन्त्या हितकाम्यया॥ १८२
बुद्ध्वा तदन्तरं सोऽपि दैत्यानामिन्द्रनोदितः।
काव्यस्य रूपमास्थाय असुरान् समुपाह्वयत्॥ १८३
ततस्तानागतान् दृष्ट्वा बृहस्पतिरुवाच ह।
स्वागतं मम याज्यानां प्राप्तोऽहं वो हिताय च॥ १८४

प्रकार बोले—'सुभगे! तुम कौन हो अथवा किसकी पुत्री हो, जो मेरे तपस्यामें निरत होनेपर तुम भी कष्ट झेल रही हो? इस प्रकार यह घोर तप करती हुई तुम किसलिये मेरी सेवा कर रही हो? सुश्रोणि! मैं तुम्हारी इस उत्कृष्ट भक्ति, विनम्रता, इन्द्रियनिग्रह और प्रेमसे परम प्रसन्न हूँ। वरवर्णिनि! तुम मुझसे क्या प्राप्त करना चाहती हो? वरारोहे! तुम्हारी क्या अभिलाषा है? उसे तुम अवश्य बतलाओ। मैं आज उसे अवश्य पूर्ण करूँगा, चाहे वह कितना ही दुष्कर क्यों न हो'॥१६९—१७४॥

शुक्राचार्यके यों कहनेपर जयन्तीने उनसे कहा—'ब्रह्मन्! आप अपने तपोबलसे मेरे मनोरथको भली-भाँति जान सकते हैं; क्योंकि आपको तो सबका यथार्थ ज्ञान है। ऐसा कहे जानेपर शुक्राचार्यने अपनी दिव्य दृष्टिद्वारा जयन्तीके मनोरथको जानकर उससे कहा—'सुन्दर भावोंवाली सुश्रोणि! इन्दीवर कमलके सदृश तुम्हारा वर्ण श्याम है, देवि! तुम्हारे नेत्र अत्यन्त रमणीय हैं तथा तुम्हारा भाषण अतिशय मधुर है। वरार्हे! तुम दस वर्षोंतक मेरे साथ रहनेका जो मुझसे वर चाह रही हो, वह वैसा ही हो। मत्तकाशिनि! आओ, अब हमलोग अपने घर चलें।' तब अपने घर आकर शुक्राचार्यने जयन्तीका पाणिग्रहण किया। फिर तपोबलसम्पन्न शुक्राचार्यने मायाका आवरण डाल दिया, जिससे सभी प्राणियोंसे अदृश्य होकर वे दस वर्षोंतक जयन्तीके साथ निवास करते रहे। इसी बीच जब दितिके पुत्रोंको यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्य सफलमनोरथ होकर घर लौट आये हैं, तब वे सभी हर्षपूर्वक उन्हें देखनेकी अभिलाषासे उनके घरकी ओर चल पड़े। वहाँ पहुँचनेपर जब उन्हें मायासे छिपे हुए गुरुदेव शुक्राचार्य नहीं दीख पड़े, तब वे उनके उस लक्षणको समझकर जैसे आये थे, वैसे ही वापस चले गये॥१७५—१८१॥

इधर बृहस्पतिको जब यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्य जयन्तीकी हित-कामनासे उसे संतुष्ट करनेके लिये दस वर्षोंतक वरदानके बन्धनसे बँध चुके हैं, तब इसे दैत्योंका महान् छिद्र जानकर इन्द्रकी प्रेरणासे उन्होंने शुक्राचार्यका रूप धारणकर असुरोंको बुलाया। उन्हें आया देखकर (शुक्ररूपधारी) बृहस्पतिने उनसे कहा—'मेरे यजमानो! तुम्हारा स्वागत है। मैं तुमलोगोंके कल्याणके लिये तपोवनसे लौट आया हूँ।

अहं वोऽध्यापयिष्यामि विद्याः प्राप्तास्तु या मया।
ततस्ते हृष्टमनसो विद्यार्थमुपपेदिरे॥ १८५

पूर्णे काव्यस्तदा तस्मिन् समये दशवार्षिके।
समयान्ते देवयानी तदोत्पन्ना इति श्रुतिः।
बुद्धिं चक्रे ततः सोऽथ याज्यानां प्रत्यवेक्षणे॥ १८६

देवि गच्छाम्यहं द्रष्टुं तव याज्यान् शुचिस्मिते।
विभ्रान्तवीक्षिते साध्वि विवर्णायतलोचने॥ १८७

एवमुक्ताब्रवीदेनं भज भक्तान् महाव्रत।
एष धर्मः सतां ब्रह्मन् न धर्मं लोपयामि ते॥ १८८

ततो गत्वासुरान् दृष्ट्वा देवाचार्येण धीमता।
वञ्चितान् काव्यरूपेण ततः काव्योऽब्रवीत्तु तान्॥ १८९

काव्यं मां वो विजानीध्वं तोषितो गिरिशो विभुः।
वञ्चिता बत यूयं वै सर्वे शृणुत दानवाः॥ १९०

श्रुत्वा तथा ब्रुवाणं तं सम्भ्रान्तास्ते तदाभवन्।
प्रेक्षन्तस्तावुभौ तत्र स्थितासीनौ सुविस्मिताः॥ १९१

सम्प्रमूढास्ततः सर्वे न प्राबुध्यन्त किंचन।
अब्रवीत् सम्प्रमूढेषु काव्यस्तानसुरांस्तदा॥ १९२

आचार्यो वो ह्यहं काव्यो देवाचार्योऽयमङ्गिराः।
अनुगच्छत मां दैत्यास्त्यजतैनं बृहस्पतिम्॥ १९३

इत्युक्ता ह्यसुरास्तेन तावुभौ समवेक्ष्य च।
यदासुरा विशेषं तु न जानन्त्युभयोस्तयोः॥ १९४

बृहस्पतिरुवाचैनानसम्भ्रान्तस्तपोधनः।
काव्यो वोऽहं गुरुर्दैत्या मद्रूपोऽयं बृहस्पतिः॥ १९५

सम्मोहयति रूपेण मामकेनैष वोऽसुराः।
श्रुत्वा तस्य ततस्ते वै समेत्य तु ततोऽब्रुवन्॥ १९६

अयं नो दशवर्षाणि सततं शास्ति वै प्रभुः।
एष वै गुरुरस्माकमन्तरे स्फुरयन् द्विजः॥ १९७

वहाँ मुझे जो विद्याएँ प्राप्त हुई हैं, उन्हें मैं तुमलोगोंको पढ़ाऊँगा।' यह सुनकर वे सभी प्रसन्नमनसे विद्या-प्राप्तिके लिये वहाँ एकत्र हो गये। उधर जब वह दस वर्षका निश्चित समय पूर्ण हो गया, तब शुक्राचार्यने अपने यजमानोंकी खोज-खबर लेनेका विचार किया। इसी समयकी समाप्तिपर (जयन्तीके गर्भसे) देवयानी उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है। (तब वे जयन्तीसे बोले—) 'पावन मुसकानवाली देवि! तुम्हारे नेत्र तो विभ्रान्त-से एवं बड़े हैं तथा तुम्हारी दृष्टि चञ्चल है, साध्वि! अब मैं तुम्हारे यजमानोंकी देखभाल करनेके लिये जा रहा हूँ।' यों कहे जानेपर जयन्तीने शुक्राचार्यसे कहा—'महाव्रत! आप अपने भक्तोंका अवश्य भला कीजिये; क्योंकि यही सत्पुरुषोंका धर्म है। ब्रह्मन्! मैं आपके धर्मका लोप नहीं करना चाहती'॥ १८२—१८८॥

तदनन्तर असुरोंके निकट पहुँचकर शुक्राचार्यने जब यह देखा कि बुद्धिमान् देवाचार्य बृहस्पतिने मेरा रूप धारणकर असुरोंको ठग लिया है, तब वे असुरोंसे बोले—'दानवो! तुमलोग ध्यानपूर्वक सुन लो। अपनी तपस्याद्वारा भगवान् शंकरको प्रसन्न करनेवाला शुक्राचार्य मैं हूँ। मुझे ही तुमलोग अपना गुरुदेव शुक्राचार्य समझो। बृहस्पतिद्वारा तुम सब लोग ठग लिये गये हो।' शुक्राचार्यको वैसा कहते हुए सुनकर उस समय वे सभी अत्यन्त भ्रममें पड़ गये और आश्चर्यचकित हो वहाँ बैठे हुए उन दोनोंकी ओर निहारते ही रह गये। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। उस समय उनकी समझमें कुछ भी नहीं आ रहा था। इस प्रकार उनके किंकर्तव्यविमूढ़ हो जानेपर शुक्राचार्यने उन असुरोंसे कहा—'असुरो! तुमलोगोंका आचार्य शुक्राचार्य मैं हूँ और ये देवताओंके आचार्य बृहस्पति हैं। इसलिये तुमलोग इन बृहस्पतिका त्याग कर दो और मेरा अनुगमन करो।' शुक्राचार्यके यों समझानेपर असुरगण उन दोनोंकी ओर ध्यानपूर्वक निहारने लगे, परंतु जब उन्हें उन दोनोंमें कोई विशेषता नहीं प्रतीत हुई, तब तपस्वी बृहस्पति धैर्यपूर्वक उन असुरोंसे बोले—'दैत्यो! तुमलोगोंका गुरु शुक्राचार्य मैं हूँ और मेरा रूप धारण करनेवाले ये बृहस्पति हैं। असुरो! ये मेरा रूप धारणकर तुमलोगोंको मोहमें डाल रहे हैं'॥ १८९—१९५½॥

बृहस्पतिकी बात सुनकर वे सभी एकत्र हो इस प्रकार बोले—'ये सामर्थ्यशाली ब्राह्मणदेवता हमारे अन्तःकरणमें स्फुरित होते हुए दस वर्षोंसे लगातार हमलोगोंको शिक्षा दे रहे हैं, अतः ये ही हमारे गुरु हैं।'

ततस्ते दानवाः सर्वे प्रणिपत्याभिनन्द्य च।
वचनं जगृहुस्तस्य चिराभ्यासेन मोहिताः॥ १९८

ऊचुस्तमसुराः सर्वे क्रोधसंरक्तलोचनाः।
अयं गुरुर्हितोऽस्माकं गच्छ त्वं नासि नो गुरुः॥ १९९

भार्गवो वाङ्गिरा वापि भगवानेष नो गुरुः।
स्थिता वयं निदेशेऽस्य साधु त्वं गच्छ मा चिरम्॥ २००

एवमुक्त्वासुराः सर्वे प्रापद्यन्त बृहस्पतिम्।
यदा न प्रत्यपद्यन्त काव्येनोक्तं महद्धितम्॥ २०१

चुकोप भार्गवस्तेषामवलेपेन तेन तु।
बोधिता हि मया यस्मान्न मां भजथ दानवाः॥ २०२

तस्मात् प्रनष्टसंज्ञा वै पराभवमवाप्स्यथ।
इति व्याहृत्य तान् काव्यो जगामाथ यथागतम्॥ २०३

शप्तांस्तानसुराञ् ज्ञात्वा काव्येन स बृहस्पतिः।
कृतार्थः स तदा हृष्टः स्वरूपं प्रत्यपद्यत॥ २०४

बुद्ध्यासुरान् हताञ् ज्ञात्वा कृतार्थोऽन्तरधीयत।
ततः प्रनष्टे तस्मिंस्तु विभ्रान्ता दानवाभवन्॥ २०५

अहो विवञ्चिताः स्मेति परस्परमथाब्रुवन्।
पृष्ठतोऽभिमुखाश्चैव ताडिताङ्गिरसेन तु॥ २०६

वञ्चिताः सोपधानेन स्वे स्वे वस्तुनि मायया।
ततस्त्वपरितुष्टास्ते तमेव त्वरिता ययुः।
प्रह्लादमग्रतः कृत्वा काव्यस्यानुपदं पुनः॥ २०७

ततः काव्यं समासाद्य उपतस्थुरवाङ्मुखाः।
समागतान् पुनर्दृष्ट्वा काव्यो याज्यानुवाच ह॥ २०८

मया सम्बोधिताः सर्वे यस्मान्मां नाभिनन्दथ।
ततस्तेनावमानेन गता यूयं पराभवम्॥ २०९

एवं ब्रुवाणं शुक्रं तु बाष्पसंदिग्धया गिरा।
प्रह्लादस्तं तदोवाच मा नस्त्वं त्यज भार्गव॥ २१०

स्वाश्रयान् भजमानांश्च भक्तांस्त्वं भज भार्गव।

'ऐसा कहकर चिरकालके अभ्याससे मोहित हुए उन सभी दानवोंने बृहस्पतिको प्रणाम करके उनका अभिनन्दन किया और उन्हींके वचनोंको अङ्गीकार किया। तत्पश्चात् क्रोधसे आँखें लाल करके उन सभी असुरोंने शुक्राचार्यसे कहा—'ये ही हमलोगोंके हितैषी गुरुदेव हैं, आप हमारे गुरु नहीं हैं, अतः आप यहाँसे चले जाइये। ये चाहे शुक्राचार्य हों अथवा बृहस्पति ही क्यों न हों, ये ही हमारे ऐश्वर्यशाली गुरुदेव हैं। हमलोग इन्हींकी आज्ञामें स्थित हैं। अतः आपके लिये यही अच्छा होगा कि आप यहाँसे शीघ्र चले जाइये, विलम्ब मत कीजिये।' ऐसा कहकर सभी असुर बृहस्पतिके निकट चले आये। इधर जब असुरोंने शुक्राचार्यद्वारा कहे गये महान् हितकारक वचनोंपर कुछ ध्यान नहीं दिया, तब उनके उस गर्वसे शुक्राचार्य कुपित हो उठे (और शाप देते हुए बोले—) 'दानवो! चूँकि मेरे समझानेपर भी तुमलोगोंने मेरी बात नहीं मानी है, इसलिये (भावी संग्राममें) तुम्हारी चेतना नष्ट हो जायगी और तुमलोग पराभवको प्राप्त करोगे।' इस प्रकार असुरोंको शाप देकर शुक्राचार्य जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये॥ १९६—२०३॥

इधर जब बृहस्पतिको यह ज्ञात हुआ कि शुक्राचार्यने असुरोंको शाप दे दिया, तब वे प्रसन्नतासे खिल उठे; क्योंकि उनका प्रयोजन सिद्ध हो चुका था। तत्पश्चात् वे तुरंत अपने वास्तविक बृहस्पतिरूपमें प्रकट हो गये और अपने बुद्धिबलसे असुरोंको मरा हुआ जानकर सफलमनोरथ हो अन्तर्हित हो गये। बृहस्पतिके आँखोंसे ओझल हो जानेपर दानवगण विशेषरूपसे भ्रममें पड़ गये और परस्पर यों कहने लगे—'अहो! हमलोग तो विशेषरूपसे ठग लिये गये। बृहस्पतिने हमलोगोंको आगे और पीछे अर्थात् प्रत्यक्ष और परोक्ष—दोनों ओरसे व्यथित कर दिया। उन्होंने अपनी मायाद्वारा सहायकसहित हमलोगोंको अपनी-अपनी वस्तुओंसे वञ्चित कर दिया।' इस प्रकार असंतुष्ट हुए वे सभी दानव प्रह्लादको आगे कर पुनः उन्हीं शुक्राचार्यका अनुगमन करनेके लिये तुरंत प्रस्थित हुए और शुक्राचार्यके निकट पहुँचकर नीचे मुख किये हुए उन्हें घेरकर खड़े हो गये। तब अपने यजमानोंको पुनः आया देखकर शुक्राचार्यने उनसे कहा—'दानवो! चूँकि मेरे द्वारा भलीभाँति समझाये जानेपर भी तुम सब लोगोंने मेरा अभिनन्दन नहीं किया, इसलिये मेरे प्रति किये हुए उस अपमानके कारण तुमलोग पराभवको प्राप्त हुए हो।' शुक्राचार्यके यों कहनेपर प्रह्लादकी आँखोंमें आँसू उमड़ आये। तब वे गद्गद वाणीद्वारा उनसे प्रार्थना करते हुए बोले—'भृगुनन्दन! आप हमलोगोंका परित्याग न करें। भार्गव! हमलोग आपके आश्रित,

त्वय्यदृष्टे वयं तेन देवाचार्येण मोहिताः।
भक्तानर्हसि वै ज्ञातुं तपोदीर्घेण चक्षुषा॥ २११
यदि नस्त्वं न कुरुषे प्रसादं भृगुनन्दन।
अपध्यातास्त्वया ह्यद्य प्रविशामो रसातलम्॥ २१२
ज्ञात्वा काव्यो यथातत्त्वं कारुण्यादनुकम्पया।
एवं प्रत्यनुनीतो वै ततः कोपं नियम्य सः।
उवाचैतान् न भेतव्यं न गन्तव्यं रसातलम्॥ २१३
अवश्यं भाविनो ह्यर्थाः प्राप्तव्या मयि जाग्रति।
न शक्यमन्यथा कर्तुं दिष्टं हि बलवत्तरम्॥ २१४
संज्ञा प्रणष्टा या वोऽद्य कामं तां प्रतिपत्स्यथ।
देवाञ् जित्वा सकृच्चापि पातालं प्रतिपत्स्यथ॥ २१५
प्राप्ते पर्यायकाले च हीति ब्रह्माभ्यभाषत।
मत्प्रसादाच्च त्रैलोक्यं भुक्तं युष्माभिरूर्जितम्॥ २१६
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि।
एतावन्तं च कालं वै ब्रह्मा राज्यमभाषत॥ २१७
राज्यं सावर्णिके तुभ्यं पुनः किल भविष्यति।
लोकानामीश्वरो भाव्यस्तव पौत्रः पुनर्बलिः॥ २१८
एवं किल मिथः प्रोक्तः पौत्रस्ते विष्णुना स्वयम्।
वाचा हृतेषु लोकेषु तास्तास्तस्याभवन् किल॥ २१९
यस्मात् प्रवृत्तयश्चास्य सकाशादभिसंधिताः।
तस्माद् वृत्तेन प्रीतेन तुभ्यं दत्तं स्वयम्भुवा॥ २२०
देवराज्ये बलिर्भाव्य इति मामीश्वरोऽब्रवीत्।
तस्माददृश्यो भूतानां कालापेक्षः स तिष्ठति॥ २२१
प्रीतेन चापरो दत्तो वरस्तुभ्यं स्वयम्भुवा।
तस्मान्निरुत्सुकस्त्वं वै पर्यायं सहितोऽसुरैः॥ २२२
न हि शक्यं मया तुभ्यं पुरस्ताद् विप्रभाषितुम्।

सेवक और भक्त हैं, इसलिये आप हमें अपनाइये। आपके अदृष्ट हो जानेपर देवाचार्य बृहस्पतिने हमलोगोंको मोहमें डाल दिया था। आप अपनी दीर्घकालिक तपस्याद्वारा अर्जित दिव्यदृष्टिद्वारा स्वयं अपने भक्तोंको जान सकते हैं। भृगुनन्दन! यदि आप हमलोगोंपर कृपा नहीं करेंगे और हमलोगोंका अनिष्ट-चिन्तन ही करते रहेंगे तो हमलोग आज ही रसातलमें प्रवेश कर जायँगे'॥ २०४—२१२॥

इस प्रकार अनुनय-विनय किये जानेपर शुक्राचार्यने दिव्यदृष्टिद्वारा यथार्थ तत्त्वको समझ लिया, तब उनके हृदयमें करुणा एवं अनुकम्पा उमड़ आयी और वे उमड़े हुए क्रोधको रोककर उन असुरोंसे इस प्रकार बोले—'प्रह्लाद! न तो तुमलोग डरो और न रसातलको ही जाओ। यों तो जो अवश्यम्भावी इष्ट-अनिष्ट कार्य हैं, वे तो मेरे जागरूक रहनेपर भी तुमलोगोंको प्राप्त होंगे ही, उन्हें अन्यथा नहीं किया जा सकता; क्योंकि दैवका विधान सबसे बलवान् होता है। मेरे शापानुसार तुमलोगोंकी जो चेतना नष्ट हो गयी है, उसे तो तुमलोग आज ही प्राप्त कर लोगे। साथ ही विपरीत समय आनेपर तुमलोगोंको देवताओंपर विजय पा लेनेपर भी एक बार पातालमें जाना पड़ेगा; क्योंकि ब्रह्माने पहले ही ऐसा बतलाया है। मेरी ही कृपासे तुमलोगोंने देवताओंके मस्तकपर पैर रखकर समूचे दस युगपर्यन्त त्रिलोकीके ऊर्जस्वी राज्यका उपभोग किया है। इतने ही दिनोंतक ब्रह्माने तुमलोगोंका राज्यकाल बतलाया था। सावर्णि-मन्वन्तरमें पुनः तुमलोगोंका राज्य होगा। उस समय तुम्हारा पौत्र बलि त्रिलोकीका अधीश्वर होगा। ऐसा स्वयं भगवान् विष्णुने वाणीद्वारा त्रिलोकीके अपहरण कर लेनेपर तुम्हारे पौत्रसे परस्पर वार्तालापके प्रसङ्गमें कहा था। वे सारी बातें अब उसके लिये घटित होंगी। चूँकि इसकी प्रवृत्तियाँ दस वर्षोंतक उत्तम बनी रहीं, इसलिये इसके व्यवहारसे प्रसन्न होकर स्वयम्भूने तुम्हें यह राज्य प्रदान किया है। देवराज्यपर बलि अधिष्ठित होगा—ऐसा मुझसे भगवान् शंकरने भी कहा था। इसी कारण वह कालकी प्रतीक्षा करता हुआ जीवोंके नेत्रोंके अगोचर होकर अवस्थित है। उस समय प्रसन्न हुए स्वयम्भूने तुम्हें एक दूसरा वरदान भी दिया था, इसलिये तुम असुरोंसहित निरुत्सुक रहकर कालकी प्रतीक्षा करो। विभो! यद्यपि मैं भविष्यकी सारी बातें जानता हूँ, तथापि मैं पहले ही तुमसे उन घटनाओंका वर्णन नहीं कर सकता;

ब्रह्मणा प्रतिषिद्धोऽहं भविष्यं जानता विभो॥ २२३
इमौ च शिष्यौ द्वौ मह्यं समावेतौ बृहस्पतेः।
दैवतैः सह संसृष्टान् सर्वान् वो धारयिष्यतः॥ २२४

क्योंकि ब्रह्माजीने मुझे मना कर दिया है। मेरे ये दोनों शिष्य (शण्ड और अमर्क), जो बृहस्पतिके समान प्रभावशाली हैं, देवताओंके साथ ही उत्पन्न हुए तुम सब लोगोंकी रक्षा करेंगे'॥ २२३—२२४॥

इत्युक्ता ह्यसुराः सर्वे काव्येनाक्लिष्टकर्मणा।
हृष्टास्तेन ययुः सार्धं प्रह्लादेन महात्मना॥ २२५
अवश्यं भाव्यमर्थं तु श्रुत्वा शुक्रेण भाषितम्।
सकृदाशंसमानास्तु जयं शुक्रेण भाषितम्।
दंशिताः सायुधाः सर्वे ततो देवान् समाह्वयन्॥ २२६
देवास्तदासुरान् दृष्ट्वा संग्रामे समुपस्थितान्।
सर्वे सम्भृतसम्भारा देवास्तान् समयोधयन्॥ २२७
देवासुरे तदा तस्मिन् वर्तमाने शतं समाः।
अजयन्नसुरा देवांस्ततो देवा ह्यमन्त्रयन्॥ २२८
यज्ञेनोपाह्वयामस्तौ ततो जेष्यामहेऽसुरान्।
तदोपामन्त्रयन् देवाः शण्डामर्कौ तु तावुभौ॥ २२९
यज्ञे चाहूय तौ प्रोक्तौ त्यजेतामसुरान् द्विजौ।
वयं युवां भजिष्यामः सह जित्वा तु दानवान्॥ २३०
एवं कृताभिसंधी तौ शण्डामर्कौ सुरास्तथा।
ततो देवा जयं प्रापुर्दानवाश्च पराजिताः॥ २३१
शण्डामर्कपरित्यक्ता दानवा ह्यबलास्तथा।
एवं दैत्याः पुरा काव्यशापेनाभिहतास्तदा॥ २३२
काव्यशापाभिभूतास्ते निराधाराश्च सर्वशः।
निरस्यमाना देवैश्च विविशुस्ते रसातलम्॥ २३३
एवं निरुद्यमा देवैः कृताः कृच्छ्रेण दानवाः।
ततः प्रभृति शापेन भृगोर्नैमित्तिकेन तु॥ २३४
जज्ञे पुनः पुनर्विष्णुर्धर्मे प्रशिथिले प्रभुः।

सरलतापूर्वक कार्यको सम्पन्न करनेवाले शुक्राचार्यके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर असुरगण उन महात्मा प्रह्लादके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने वासस्थानको चले गये। उस समय उनके मनमें शुक्राचार्यद्वारा कथित यह विचार कि 'अवश्यम्भावी कार्य तो होगा ही' गूँज रहा था। कुछ दिन व्यतीत होनेपर उन्होंने सोचा कि शुक्राचार्यके कथनानुसार एक बार विजय तो होगी ही, अतः सभी असुरोंने विजयकी आशासे अपना-अपना कवच धारण कर लिया और शस्त्रास्त्रसे लैस हो देवताओंके निकट जाकर उन्हें ललकारा। देवताओंने जब यह देखा कि असुरगण सेनासहित रणभूमिमें आ डटे हैं, तब देवगण भी संगठित एवं युद्ध-सामग्रीसे सुसज्जित हो असुरोंके साथ युद्ध करने लगे। वह देवासुर-संग्राम सौ वर्षोंतक चलता रहा। उसमें असुरोंने देवताओंको पराजित किया। तब देवताओंने परस्पर मन्त्रणा करके यह निश्चय किया कि जब हमलोग यज्ञके निमित्तसे उन दोनों (शण्ड और अमर्क)-को अपने यहाँ बुलायेंगे तभी असुरोंपर विजय पा सकेंगे। ऐसा परामर्श करके देवताओंने उन शण्ड और अमर्क—दोनोंको आमन्त्रित किया और अपने यज्ञमें बुलाकर उनसे कहा—'द्विजवरो! आपलोग असुरोंका पक्ष छोड़ दें। हमलोग आप दोनोंके सहयोगसे दानवोंको पराजित कर आपकी सेवा करेंगे।' इस प्रकार जब देवताओंके तथा शण्ड-अमर्क—दोनों दैत्याचार्योंके बीच संधि हो गयी, तब रणभूमिमें देवताओंको विजय प्राप्त हुई और दानवगण पराजित हो गये; क्योंकि शण्ड-अमर्कद्वारा परित्याग कर दिये जानेपर दानववृन्द बलहीन हो गये थे। इस प्रकार पूर्वकालमें शुक्राचार्यद्वारा दिये गये शापके कारण उस समय दैत्यगण मारे गये। अवशिष्ट दैत्यगण शुक्राचार्यके शापसे अभिभूत होनेके कारण जब सब ओरसे निराधार हो गये, साथ ही देवताओंने उन्हें खदेड़ना आरम्भ किया, तब वे विवश होकर रसातलमें प्रविष्ट हो गये। इस प्रकार देवगण दानवोंको बड़ी कठिनाईसे उद्यमहीन अर्थात् युद्धविमुख कर पाये। तभीसे शुक्राचार्यके नैमित्तिक शापके कारण धर्मका विशेषरूपसे ह्रास हो जानेपर धर्मकी पुनः स्थापना

कुर्वन् धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्॥ २३५
प्रह्लादस्य निदेशे तु न स्थास्यन्त्यसुराश्च ये।
मनुष्यवध्यास्ते सर्वे ब्रह्मेति व्याहरत् प्रभुः॥ २३६
धर्मान्नारायणस्यांशः सम्भूतश्चाक्षुषेऽन्तरे।
यज्ञं प्रवर्तयामासदेवो वैवस्वतेऽन्तरे॥ २३७
प्रादुर्भावे ततस्तस्य ब्रह्मा ह्यासीत् पुरोहितः।
युगाख्यायां चतुर्थ्यां तु आपन्नेषु सुरेषु वै॥ २३८
सम्भूतस्तु समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे।
द्वितीये नरसिंहाख्ये रुद्रो ह्यासीत् पुरोहितः॥ २३९
बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमं प्रति।
दैत्यैस्त्रैलोक्य आक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत्॥ २४०
एतास्तिस्त्रः स्मृतास्तस्य दिव्याः सम्भूतयो द्विजाः।
मानुषाः सप्त यान्यास्तु शापतस्ता निबोधत॥ २४१
त्रेतायुगे तु प्रथमे दत्तात्रेयो बभूव ह।
नष्टे धर्मे चतुर्थांशे मार्कण्डेयपुरःसरः॥ २४२
पञ्चमः पञ्चदश्यां च त्रेतायां सम्बभूव ह।
मान्धाता चक्रवर्ती तु तस्थौतथ्यपुरःसरः॥ २४३
एकोनविंश्यां त्रेतायां सर्वक्षत्रान्तकृद् विभुः।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरःसरः॥ २४४
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः॥ २४५
अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात्।
वेदव्यासस्तथा जज्ञे जातूकर्ण्यपुरःसरः॥ २४६
कर्तुं धर्मव्यवस्थानमसुराणां प्रणाशनम्।
बुद्धो नवमको जज्ञे तपसा पुष्करेक्षणः।
देवसुन्दररूपेण द्वैपायनपुरःसरः॥ २४७
तस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याशिष्टे भविष्यति।
कल्की तु विष्णुयशसः पाराशर्यपुरःसरः।
दशमो भाव्यसम्भूतो याज्ञवल्क्यपुरःसरः॥ २४८
सर्वांश्च भूतान् स्तिमितान् पाषण्डांश्चैव सर्वशः।

और असुरोंका विनाश करनेके लिये भगवान् विष्णु बारंबार अवतीर्ण होते रहे॥ २२५—२३५॥

पूर्वकालमें सामर्थ्यशाली ब्रह्माने प्रसङ्गवश ऐसा कहा था कि जो असुर प्रह्लादकी आज्ञाके वशीभूत नहीं रहेंगे, वे सभी मनुष्योंके हाथों मारे जायँगे। चाक्षुष-मन्वन्तरमें धर्मके अंशसे साक्षात् भगवान् नारायणका अवतार हुआ था। अपने प्रादुर्भावके पश्चात् वैवस्वत-मन्वन्तरमें उन्होंने एक यज्ञानुष्ठान प्रवर्तित किया था; उस यज्ञके पुरोहित ब्रह्मा थे। चौथे तामस-मन्वन्तरमें देवताओंके विपत्तिग्रस्त हो जानेपर हिरण्यकशिपुका वध करनेके लिये समुद्रतटपर नृसिंहका अवतार हुआ था। इस द्वितीय नृसिंहावतारमें रुद्र पुरोहित-पदपर आसीन थे। सातवें वैवस्वत-मन्वन्तरके त्रेतायुगमें, जब त्रिलोकीपर बलिका अधिकार था, उस समय तीसरा वामन-अवतार हुआ था। (उस कार्यकालमें धर्म पुरोहितका पद सँभाल रहे थे।) द्विजवरो! भगवान् विष्णुकी ये तीन दिव्य उत्पत्तियाँ बतलायी गयी हैं। अब अन्य सात सम्भूतियाँ, जो भृगुके शापवश मानव-योनिमें हुई हैं, उन्हें सुनिये। प्रथम त्रेतायुगमें, जब धर्मका चतुर्थांश नष्ट हो गया था, भगवान् मार्कण्डेयको पुरोहित बनाकर दत्तात्रेयके रूपमें अवतीर्ण हुए थे। पंद्रहवें त्रेतायुगमें चक्रवर्ती मान्धाताके रूपमें पाँचवाँ अवतार हुआ था। उस समय पुरोहितका पद महर्षि तथ्य (उतथ्य)-को मिला था। उन्नीसवें त्रेतायुगमें छठा अवतार जमदग्निनन्दन महाबली परशुरामके रूपमें हुआ था, जो सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशके संहारक थे। उस समय महर्षि विश्वामित्र आदि सहायक बने थे। चौबीसवें त्रेतायुगमें सातवें अवतारके रूपमें रावणका वध करनेके लिये भगवान् श्रीराम महाराज दशरथके पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए थे। उस समय महर्षि वसिष्ठ पुरोहित थे। अट्ठाईसवें द्वापरयुगमें आठवें अवतारमें भगवान् विष्णु महर्षि पराशरसे वेदव्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए। उस समय जातूकर्ण्यने पुरोहित-पदको सुशोभित किया॥ २३६—२४६॥

धर्मकी विशेषरूपसे स्थापना और असुरोंका विनाश करनेके निमित्त नवें अवतारमें बुद्ध अवतीर्ण हुए। सुन्दर (सौन्दरानन्दके नायक) उनके सहचर रूपवाले थे। उनके नेत्र कमल-सरीखे थे। उनके पुरोहित महर्षि द्वैपायन थे। इसी युगकी समाप्तिके समय, जब संध्यामात्र अवशिष्ट रह जायगी, विष्णुयशाके पुत्ररूपमें कल्किका अवतार होगा। इसी भावी दसवें अवतारमें पराशर-पुत्र व्यास और याज्ञवल्क्य पुरोहितका कार्यभार सँभालेंगे। उस समय भगवान् कल्कि आयुधधारी सैकड़ों एवं सहस्रों विप्रोंको साथ लेकर चारों ओरसे

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैर्वृतः शतसहस्रशः ॥ २४९
निःशेषः क्षुद्रराज्ञस्तु तदा स तु करिष्यति।
ब्रह्मद्विषः सपत्नांस्तु संहत्यैव च तद्वपुः ॥ २५०
अष्टाविंशे स्थितः कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः।
शूद्रान् संशोधयित्वा तु समुद्रान्तं च वै स्वयम् ॥ २५१
प्रवृत्तचक्रो बलवान् संहारं तु करिष्यति।
उत्सादयित्वा वृषलान् प्रायशस्तानधार्मिकान् ॥ २५२
ततस्तदा स वै कल्किश्चरितार्थः ससैनिकः।
प्रजास्तं साधयित्वा तु समृद्धास्तेन वै स्वयम् ॥ २५३
अकस्मात् कोपितान्योऽन्यं भविष्यन्तीह मोहिताः।
क्षपयित्वा तु तेऽन्योऽन्यं भाविनार्थेन चोदिताः ॥ २५४

धर्मविमुख जीवों, पाखण्डों और शूद्रवंशी राजाओंका सर्वथा विनाश कर डालेंगे; क्योंकि ब्रह्मद्वेषी शत्रुओंका संहार करनेके हेतु ही कल्कि-अवतार होता है। इस अट्ठाईसवें युगमें भगवान् कल्कि सेनासहित सफलमनोरथ हो विराजमान रहेंगे। उस समय वे बलशाली भगवान् उन धर्महीन शूद्रोंका समूल विनाश करके अपने राज्यचक्रका विस्तार करते हुए पापियोंका संहार कर डालेंगे। तदुपरान्त कल्कि अपना कार्य पूरा करके सेनासहित विश्राम-लाभ करेंगे। उस समय सारी प्रजाएँ उनके प्रभावसे समृद्धिशालिनी होकर उनकी सेवामें लग जायँगी। तत्पश्चात् भावी कार्यसे प्रेरित हुई प्रजाएँ मोहित होकर अकस्मात् एक-दूसरेपर कुपित हो जायँगी और परस्पर लड़कर एक-दूसरेको मार डालेंगी। उस समय कार्यकाल समाप्त हो जानेपर भगवान् कल्कि भी अन्तर्हित हो जायँगे ॥ २४७—२५४½ ॥

ततः काले व्यतीते तु स देवोऽन्तरधीयत।
नृपेष्वथ प्रणष्टेषु प्रजानां संग्रहात् तदा ॥ २५५
रक्षणे विनिवृत्ते तु हत्वा चान्योऽन्यमाहवे।
परस्परं निहत्वा तु निराक्रन्दाः सुदुःखिताः ॥ २५६
पुराणि हित्वा ग्रामांश्च तुल्यत्वे निष्परिग्रहाः।
प्रणष्टाश्रमधर्माश्च नष्टवर्णाश्रमास्तथा ॥ २५७
अट्टशूला जानपदाः शिवशूलाश्चतुष्पथाः।
प्रमदाः केशशूलिन्यो भविष्यन्ति युगक्षये ॥ २५८
ह्रस्वदेहायुषश्चैव भविष्यन्ति वनौकसः।
सरित्पर्वतवासिन्यो मूलपत्रफलाशनाः ॥ २५९
चीरचर्माजिनधराः संकरं घोरमाश्रिताः।
उत्पातदुःखाः स्वल्पार्था बहुबाधाश्च ताः प्रजाः ॥ २६०
एवं कष्टमनुप्राप्ताः काले संध्यंशके तदा।
ततः क्षयं गमिष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु ॥ २६१
क्षीणे कलियुगे तस्मिंस्ततः कृतमवर्तत।
इत्येतत् कीर्तितं सम्यग् देवासुरविचेष्टितम् ॥ २६२
यदुवंशप्रसङ्गेन समासाद् वैष्णवं यशः।
तुर्वसोस्तु प्रवक्ष्यामि पूरोर्द्रुह्योस्तथा ह्यनोः ॥ २६३

इस प्रकार प्रजाओंके संगठनसे राजाओंके नष्ट हो जानेपर जब कोई रक्षक नहीं रह जायगा, तब प्रजाएँ युद्धभूमिमें एक-दूसरेको मार डालेंगी। यों परस्पर मार-पीट कर वे आक्रन्दनरहित एवं अत्यन्त दुःखित हो जायँगी। फिर तो वे परिवारहीन होकर समानरूपसे ग्रामों एवं नगरोंको छोड़कर वनकी राह लेंगी। उनके वर्ण-धर्म तथा आश्रम-धर्म नष्ट हो जायँगे। कलियुगकी समाप्तिके समय देशवासी अन्न बेचने लगेंगे, चौराहोंपर शिवकी मूर्तियाँ बिकने लगेंगी और स्त्रियाँ अपने शीलका विक्रय करेंगी अर्थात् वेश्या-कर्ममें प्रवृत्त हो जायँगी। लोगोंके कद छोटे होंगे। उनकी आयु स्वल्प होगी। वे वनमें तथा नदीतट और पर्वतोंपर निवास करेंगे। कन्द-मूल, पत्तियाँ और फल ही उनके भोजन होंगे। वल्कल, पशुचर्म और मृगचर्म ही उनके वस्त्र होंगे। वे सभी भयंकर वर्णसंकरत्वके आश्रित हो जायँगे। तरह-तरहके उपद्रवोंसे दुःखी रहेंगे। उनकी धन-सम्पत्ति घट जायगी और वे अनेकों बाधाओंसे घिरे रहेंगे। इस प्रकार कष्टका अनुभव करती हुई वे सारी प्रजाएँ उस संध्यांशके समय कलियुगके साथ ही नष्ट हो जायँगी। इस कलियुगके व्यतीत हो जानेपर कृतयुगका प्रारम्भ होगा। इस प्रकार मैंने पूर्णरूपसे देवताओं और असुरोंकी चेष्टाका तथा यदुवंशके वर्णन-प्रसङ्गमें संक्षेपरूपसे भगवान् विष्णु (श्रीकृष्ण)-के यशका वर्णन कर दिया। अब मैं तुर्वसु, पूरु, द्रुह्यु और अनुके वंशका क्रमशः वर्णन करूँगा ॥ २५५—२६३ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽसुरशापो नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें असुर-शाप-नामक सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ४७ ॥

अड़तालीसवाँ अध्याय

तुर्वसु और द्रुह्युके वंशका वर्णन, अनुके वंश-वर्णनमें बलिकी कथा और कर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग

सूत उवाच

तुर्वसोस्तु सुतो गर्भो गोभानुस्तस्य चात्मजः।
गोभानोस्तु सुतो वीरस्त्रिसारिरपराजितः॥ १
करंधमस्तु त्रैसारिर्मरुत्तस्तस्य चात्मजः।
दुष्यन्तं पौरवं चापि स वै पुत्रमकल्पयत्॥ २
एवं ययातिशापेन जरासंक्रमणे पुरा।
तुर्वसोः पौरवं वंशं प्रविवेश पुरा किल॥ ३
दुष्यन्तस्य तु दायादो वरूथो नाम पार्थिवः।
वरूथात् तु तथाण्डीरः संधानस्तस्य चात्मजः॥ ४
पाण्ड्यश्च केरलश्चैव चोलः कर्णस्तथैव च।
तेषां जनपदाः स्फीताः पाण्ड्याश्चोलाः सकेरलाः॥ ५
द्रुह्योस्तु तनयौ शूरौ सेतुः केतुस्तथैव च।
सेतुपुत्रः शरद्वांस्तु गन्धारस्तस्य चात्मजः॥ ६
ख्यायते यस्य नाम्नासौ गान्धारविषयो महान्।
आरट्टदेशजास्तस्य तुरगा वाजिनां वराः॥ ७
गन्धारपुत्रो धर्मस्तु धृतस्तस्यात्मजोऽभवत्।
धृताच्च विदुषो जज्ञे प्रचेतास्तस्य चात्मजः॥ ८
प्रचेतसः पुत्रशतं राजानः सर्व एव ते।
म्लेच्छराष्ट्राधिपाः सर्वे ह्युदीचीं दिशमाश्रिताः॥ ९
अनोश्चैव सुता वीरास्त्रयः परमधार्मिकाः।
सभानरश्चाक्षुषश्च परमेषुस्तथैव च॥ १०
सभानरस्य पुत्रस्तु विद्वान् कोलाहलो नृपः।
कोलाहलस्य धर्मात्मा संजयो नाम विश्रुतः॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (ययातिके पञ्चम पुत्र) तुर्वसुका पुत्र गर्भ[1] और उसका पुत्र गोभानु हुआ। गोभानुका पुत्र अजेय शूरवीर त्रिसारि हुआ। त्रिसारिका[2] पुत्र करंधम और उसका पुत्र मरुत्त हुआ। उसने (संतानरहित होनेके कारण) पूरुवंशी दुष्यन्तको अपना पुत्र बनाया। इस प्रकार पूर्वकालमें वृद्धावस्थाके परिवर्तनके समय ययातिद्वारा दिये गये शापके कारण तुर्वसुका वंश पूरुवंशमें प्रविष्ट हो गया था।[3] दुष्यन्तका पुत्र राजा वरूथ[4] था। वरूथसे आण्डीर (भुवमन्यु)-की उत्पत्ति हुई। आण्डीरके संधान, पाण्ड्य, केरल, चोल और कर्ण नामक पाँच पुत्र हुए। उनके समृद्धिशाली देश उन्हींके नामपर पाण्ड्य, चोल और केरल नामसे प्रसिद्ध हुए। (ययातिके चतुर्थ पुत्र) द्रुह्युके सेतु और केतु (अन्यत्र सर्वत्र बभ्रु) नामक दो शूरवीर पुत्र उत्पन्न हुए। सेतुका पुत्र शरद्वान् और उसका पुत्र गन्धार हुआ, जिसके नामसे यह विशाल गान्धार जनपद विख्यात है। उस जनपदके आरट्ट[5] (पंजाबका पश्चिम भाग) प्रदेशमें उत्पन्न हुए घोड़े अश्वजातिमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। गन्धारका पुत्र धर्म और उसका पुत्र धृत हुआ। धृतसे विदुषका जन्म हुआ और उसका पुत्र प्रचेता हुआ। प्रचेताके सौ पुत्र हुए जो सब-के-सब राजा हुए। वे सभी उत्तर दिशामें स्थित म्लेच्छ-राज्योंके अधीश्वर थे॥ १—९॥

(ययातिके तृतीय पुत्र) अनुके सभानर, चाक्षुष और परमेषु नामक तीन शूरवीर एवं परम धार्मिक पुत्र उत्पन्न हुए। सभानरका पुत्र विद्वान् राजा कोलाहल हुआ। कोलाहलका धर्मात्मा पुत्र संजय नामसे विख्यात था।

१. ऋग्वेदमें यह तुर्वश है और ४। ३०। १६ से १०। ६२। १० तक निरन्तर अपने सभी उपर्युक्त भाइयोंके साथ वर्णित है। भागवत ९। २३। १६ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ३ आदिमें तुर्वसुके पुत्रका नाम 'वह्नि' और उसके पुत्रका नाम 'गोभानु'की जगह 'भर्ग' बतलाया गया है।

२. अन्यत्र प्रायः सर्वत्र इसका 'त्रिसारि'की जगह 'त्रिभानु' नाम आया है।

३. तुर्वसुके वंशके पौरव वंशमें प्रविष्ट होनेकी कथा सभी पुराणोंमें (विशेषकर वायु० ९९। ५, ब्रह्माण्ड० ३। ७५। ७ तथा विष्णुपुराण ४। १६। ६ में बहुत) स्पष्ट रूपसे आयी है।

४. इनके दूसरे नाम वितथ एवं भरद्वाज भी हैं।

५. इस प्रदेशकी महाभारत, कर्णपर्व ४४। ३७-३८ (श्लोक) से ४५ (श्लोक ३० तक) अध्यायोंतकमें चर्चा एवं आलोचना है।

संजयस्याभवत् पुत्रो वीरो नाम पुरंजयः।
जनमेजयो महाराजः पुरंजयसुतोऽभवत्॥ १२
जनमेजयस्य राजर्षेर्महाशालोऽभवत् सुतः।
आसीदिन्द्रसमो राजा प्रतिष्ठितयशाभवत्॥ १३
महामनाः सुतस्तस्य महाशालस्य धार्मिकः।
सप्तद्वीपेश्वरो जज्ञे चक्रवर्ती महामनाः॥ १४
महामनास्तु द्वौ पुत्रौ जनयामास विश्रुतौ।
उशीनरं च धर्मज्ञं तितिक्षुं चैव तावुभौ॥ १५
उशीनरस्य पत्न्यस्तु पञ्च राजर्षिसम्भवाः।
भृशा कृशा नवा दर्शा या च देवी दृषद्वती॥ १६
उशीनरस्य पुत्रास्तु तासु जाताः कुलोद्वहाः।
तपसा ते तु महता जाता वृद्धस्य धार्मिकाः॥ १७
भृशायास्तु नृगः पुत्रो नवाया नव एव च।
कृशायास्तु कृशो जज्ञे दर्शायाः सुव्रतोऽभवत्।
दृषद्वत्याः सुतश्चापि शिबिरौशीनरो नृपः॥ १८
शिबेस्तु शिबयः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः।
पृथुदर्भः सुवीरश्च केकयो मद्रकस्तथा॥ १९
तेषां जनपदाः स्फीताः कैकया मद्रकास्तथा।
सौवीराश्चैव पौराश्च नृगस्य केकयास्तथा॥ २०
सुव्रतस्य तथाम्बष्ठा कृशस्य वृषला पुरी।
नवस्य नवराष्ट्रं तु तितिक्षोस्तु प्रजां शृणु॥ २१

संजयका पुरंजय नामक वीरवर पुत्र हुआ। महाराज जनमेजय (प्रथम) पुरंजयके पुत्र हुए। राजर्षि जनमेजयसे महाशाल नामक पुत्र पैदा हुआ जो इन्द्रतुल्य तेजस्वी एवं प्रतिष्ठित कीर्तिवाला राजा हुआ। उन महाशालके महामना नामक पुत्र पैदा हुआ जो परम धर्मात्मा, महान् मनस्वी तथा सातों द्वीपोंका अधीश्वर चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। महामनाने दो पुत्रोंको जन्म दिया। वे दोनों धर्मज्ञ उशीनर और तितिक्षु नामसे विख्यात हुए। उशीनरकी भृशा, कृशा, नवा, दर्शा और देवी दृषद्वती—ये पाँच पत्नियाँ थीं, जो सभी राजर्षियोंकी कन्याएँ थीं। उनके गर्भसे उशीनरके परम धर्मात्मा एवं कुलवर्धक पुत्र उत्पन्न हुए थे। वे सभी उशीनरकी वृद्धावस्थामें महान् तपके फलस्वरूप पैदा हुए थे। भृशाका पुत्र नृग और नवाका पुत्र नव हुआ। कृशाने कृशको जन्म दिया। दर्शाके सुव्रत नामक पुत्र हुआ। दृषद्वतीके पुत्र उशीनर-नन्दन राजा शिबि हुए। शिबिके पृथुदर्भ, सुवीर, केकय और मद्रक नामक चार विश्वविख्यात पुत्र हुए। ये सभी शिबिगण नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनके समृद्धिशाली जनपद केकय (व्यास और शतलजके मध्य पंजाबका पश्चिमोत्तर भाग), मद्रक, सौवीर (सिंधका उत्तरी भाग) और पौर नामसे विख्यात थे। नृगका जनपद केकय और सुव्रतका अम्बष्ठ नामसे प्रसिद्ध था। कृशकी राजधानी वृषलापुरी थी। नव नवराष्ट्रके अधीश्वर थे। अब तितिक्षुकी संततिका वर्णन सुनिये॥ १०—२१॥

तितिक्षुरभवद् राजा पूर्वस्यां दिशि विश्रुतः।
वृषद्रथः सुतस्तस्य तस्य सेनोऽभवत् सुतः॥ २२
सेनस्य सुतपा जज्ञे सुतपस्तनयो बलिः।
जातो मानुषयोन्या तु क्षीणे वंशे प्रजेच्छया॥ २३
महायोगी तु स बलिर्बद्धो बन्धैर्महात्मना।
पुत्रानुत्पादयामास क्षेत्रजान् पञ्च पार्थिवान्॥ २४
अङ्गं स जनयामास वङ्गं सुह्मं तथैव च।
पुण्ड्रं कलिङ्गं च तथा बालेयं क्षेत्रमुच्यते।
बालेया ब्राह्मणाश्चैव तस्य वंशकराः प्रभोः॥ २५
बलेश्च ब्रह्मणा दत्तो वरः प्रीतेन धीमतः।
महायोगित्वमायुश्च कल्पस्य परिमाणकम्॥ २६
संग्रामे चाप्यजेयत्वं धर्मे चैवोत्तमा मतिः।
त्रैकाल्यदर्शनं चैव प्राधान्यं प्रसवे तथा॥ २७

तितिक्षु पूर्व दिशामें विख्यात राजा हुआ। उसका पुत्र वृषद्रथ और वृषद्रथका पुत्र सेन हुआ। सेनके सुतपा नामक पुत्र उत्पन्न हुआ और सुतपाका पुत्र बलि हुआ। महायोगी बलि अपने वंशके नष्ट हो जानेपर संतानकी कामनासे मानव-योनिमें उत्पन्न हुआ था। इसे महान् आत्मबलसे सम्पन्न भगवान् विष्णुने वामन-रूपसे बन्धनोंद्वारा बाँध लिया था। राजा बलिने पाँच क्षेत्रज पुत्रोंको जन्म दिया जो सभी आगे चलकर पृथ्वीपति हुए। उसने अङ्ग, वङ्ग, सुह्म, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामक पुत्रोंको पैदा किया जो बलिके क्षेत्रज पुत्र कहलाते हैं। ये बलिपुत्र ब्राह्मणसे उत्पन्न होनेके कारण ब्राह्मण थे और सामर्थ्यशाली बलिके वंशप्रवर्तक हुए। पूर्वकालमें ब्रह्माने प्रसन्न होकर बुद्धिमान् बलिको ऐसा वरदान दिया था कि 'तुम महान् योगी होगे। कल्पपर्यन्त परिमाणवाली तुम्हारी आयु होगी। तुम संग्राममें किसीसे पराजित नहीं होगे। धर्मके विषयमें तुम्हारी बुद्धि उत्तम होगी। तुम त्रिकालदर्शी और असुरवंशमें प्रधान होगे।

जयं चाप्रतिमं युद्धे धर्मे तत्त्वार्थदर्शनम्।
चतुरो नियतान् वर्णान् स वै स्थापयिता प्रभुः॥ २८
तेषां च पञ्च दायादा वङ्गाङ्गाः सुह्यकास्तथा।
पुण्ड्राः कलिङ्गाश्च तथा अङ्गस्य तु निबोधत॥ २९

ऋषय ऊचुः

कथं बलेः सुता जाताः पञ्च तस्य महात्मनः।
किं नाम्नी महिषी तस्य जनिता कतमो ऋषिः॥ ३०
कथं चोत्पादितास्तेन तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम्।
माहात्म्यं च प्रभावं च निखिलेन वदस्व तत्॥ ३१

सूत उवाच

अथोशिज इति ख्यात आसीद् विद्वान् ऋषिः पुरा।
पत्नी वै ममता नाम बभूवास्य महात्मनः॥ ३२
उशिजस्य यवीयान् वै भ्रातृपत्नीमकामयत्।
बृहस्पतिर्महातेजा ममतामेत्य कामतः॥ ३३
उवाच ममता तं तु देवरं वरवर्णिनी।
अन्तर्वत्न्यस्मि ते भ्रातुर्ज्येष्ठस्य तु विरम्यताम्॥ ३४
अयं तु मे महाभाग गर्भः कुर्य्याद् बृहस्पते।
औशिजो भ्रातृजन्यस्ते सोपाङ्गं वेदमुद्गिरन्॥ ३५
अमोघरेतास्त्वं चापि न मां भजितुमर्हसि।
अस्मिन्नेवं गते काले यथा वा मन्यसे प्रभो॥ ३६
एवमुक्तस्तथा सम्यग् बृहत्तेजा बृहस्पतिः।
कामात्मा स महात्मापि न मनः सोऽभ्यवारयत्॥ ३७
सम्बभूवैव धर्मात्मा तया सार्धमकामया।
उत्सृजन्तं तु तद्रेतो वाचं गर्भोऽभ्यभाषत॥ ३८
भो तात वाचामधिप द्वयोर्नास्तीह संस्थितिः।
अमोघरेतास्त्वं चापि पूर्वं चाहमिहागतः॥ ३९
सोऽशपत् तं ततः क्रुद्ध एवमुक्तो बृहस्पतिः।
पुत्रं ज्येष्ठस्य वै भ्रातुर्गर्भस्थं भगवानृषिः॥ ४०
यस्मात् त्वमीदृशे काले गर्भस्थोऽपि निषेधसि।
मामेवमुक्तवांस्तस्मात् तमो दीर्घं प्रवेक्ष्यसि॥ ४१
ततो दीर्घतमा नाम शापादृषिरजायत।
अथौशिजो बृहत्कीर्तिर्बृहस्पतिरिवौजसा॥ ४२
ऊर्ध्वरेतास्ततोऽसौ वै वसते भ्रातुराश्रमे।
स धर्मान् सौरभेयांस्तु वृषभाच्छ्रुतवांस्ततः॥ ४३
तस्य भ्राता पितृव्यो यश्चकार भरणं तदा।

युद्धमें तुम्हें अनुपम विजय प्राप्त होगी। धर्मके विषयमें तुम तत्त्वार्थदर्शी होगे।' इसीके परिणामस्वरूप सामर्थ्यशाली बलि चारों नियत (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) वर्णोंकी स्थापना करनेवाला हुआ। बलिके पाँचों क्षेत्रज पुत्रोंके वंश भी उन्हींके नामपर अङ्ग, वङ्ग, सुह्मक, पुण्ड्र और कलिङ्ग नामसे विख्यात हुए*। उनमें अङ्गके वंशका वर्णन सुनिये॥ २२—५०॥

ऋषियो! दीर्घतमाके प्रभावसे सुदेष्णाका जो ज्येष्ठ पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम अङ्ग था। तत्पश्चात् कलिङ्ग, पुण्ड्र, सुह्म और वङ्गराजका जन्म हुआ। ये पाँचों दैत्यराज

* इनके वंशजातियोंके कारण ये जनपद भी इन्हीं नामोंसे प्रसिद्ध हुए। इनमें अङ्ग—भागलपुर, वङ्ग—पश्चिम बंगाल, सुह्म—आसाम, पुण्ड्र—आजका बंगला देश तथा कलिङ्ग—उड़ीसा है।

तस्मिन् निवसतस्तस्य यदृच्छैवागतो वृषः॥ ४४
यज्ञार्थमाहृतान् दर्भांश्चचार सुरभीसुतः।
जग्राह तं दीर्घतमाः शृङ्गयोस्तु चतुष्पदम्॥ ४५
तेनासौ निगृहीतश्च न चचाल पदात् पदम्।
ततोऽब्रवीद् वृषस्तं वै मुञ्च मां बलिनां वर॥ ४६
न मयाऽऽसादितस्तात बलवांस्त्वत्समः क्वचित्।
मम चान्यः समो वापि न हि मे बलसंख्यया।
मुञ्च तातेति च पुनः प्रीतस्तेऽहं वरं वृणु॥ ४७
एवमुक्तोऽब्रवीदेनं जीवन्मे त्वं क्व यास्यसि।
एष त्वां न विमोक्ष्यामि परस्वादं चतुष्पदम्॥ ४८

वृषभ उवाच

नास्माकं विद्यते तात पातकं स्तेयमेव च।
भक्ष्याभक्ष्यं तथा चैव पेयापेयं तथैव च॥ ४९
द्विपदां बहवो ह्येते धर्म एष गवां स्मृतः।
कार्याकार्ये न वागम्यागमनं च तथैव च॥ ५०

सूत उवाच

गवां धर्मं तु वै श्रुत्वा सम्भ्रान्तस्तु विसृज्य तम्।
शक्त्यान्नपानदानात् तु गोपतिं सम्प्रसादयत्॥ ५१
प्रसादिते गते तस्मिन् गोधर्मं भक्तितस्तु सः।
मनसैव समादध्यौ तन्निष्ठस्तत्परो हि सः॥ ५२
ततो यवीयसः पत्नीं गौतमस्याभ्यपद्यत।
कृतावलेपां तां मत्वा सोऽनड्वानिव न क्षमे॥ ५३
गोधर्मं तु परं मत्वा स्नुषां तामभ्यपद्यत।
निर्भर्त्स्यं चैनं रुद्ध्वा च बाहुभ्यां सम्प्रगृह्य च॥ ५४
भाव्यमर्थं तु तं ज्ञात्वा माहात्म्यात् तमुवाच सा।
विपर्ययं तु त्वं लब्ध्वा अनड्वानिव वर्तसे॥ ५५
गम्यागम्यं न जानीषे गोधर्मात् प्रार्थयन् सुताम्।
दुर्वृत्तं त्वां त्यजाम्यद्य गच्छ त्वं स्वेन कर्मणा॥ ५६
काष्ठे समुद्रे प्रक्षिप्य गङ्गाम्भसि समुत्सृजत्।
तस्मात् त्वमन्धो वृद्धश्च भर्तव्यो दुरधिष्ठितः॥ ५७
तमुह्यमानं वेगेन स्रोतसोऽभ्याशमागतः।
जग्राह तं स धर्मात्मा बलिर्वैरोचनिस्तदा॥ ५८
अन्तःपुरे जुगोपैनं भक्ष्यभोज्यैश्च तर्पयन्।
प्रीतश्चैवं वरेणैवच्छन्दयामास वै बलिम्॥ ५९
तस्माच्च स वरं वव्रे पुत्रार्थे दानवर्षभः।
संतानार्थं महाभाग भार्यायां मम मानद।
पुत्रान् धर्मार्थतत्त्वज्ञानुत्पादयितुमर्हसि॥ ६०

बलिके क्षेत्रज पुत्र थे। ये सभी पुत्र महर्षि दीर्घतमाद्वारा बलिको प्रदान किये गये थे। तदनन्तर उन्होंने मानव-योनिमें कई संतानें उत्पन्न कीं। एक बार सुरभि (गौ) दीर्घतमाके पास आकर उनसे बोले—'विभो! आपने हम लोगोंके प्रति अनन्यभक्ति होनेके कारण भलीभाँति विचारकर पशु-धर्मको प्रमाणित कर दिया है, इसलिये मैं आपपर परम प्रसन्न हूँ। अनघ! आपके शरीरमें बृहस्पतिका अंशभूत जो यह पाप स्थित है, उस घोर अन्धकारको सूँघकर मैं आपसे दूर किये देती हूँ। साथ ही आपके शरीरसे बुढ़ापा, मृत्यु और अंधकारको भी सूँघकर हटा दे रही हूँ।' (ऐसा कहकर सुरभिने उनके शरीरको सूँघा।) सुरभिके सूँघते ही वे मुनिश्रेष्ठ दीर्घतमा तुरन्त दीर्घ आयु, सौन्दर्यशाली शरीर और सुन्दर नेत्रोंसे युक्त हो गये॥ ५१—८३॥

इस प्रकार गौद्वारा अन्धकारके नष्ट कर दिये जानेपर वे गौतम नामसे प्रसिद्ध हुए। तदनन्तर कक्षीवान् अपने पिता गौतमके साथ गिरिव्रजको जाकर उन्हींके साथ निवास करता हुआ चिरकालिक तपस्यामें संलग्न हो गया। वहाँ वह नित्य

एवमुक्तोऽथ देवर्षिस्तथास्त्वित्युक्तवान् प्रभुः।
स तस्य राजा स्वां भार्यां सुदेष्णां नाम प्राहिणोत्।
अन्धं वृद्धं च तं ज्ञात्वा न सा देवी जगाम ह॥ ६१
शूद्रां धात्रेयिकां तस्मादन्धाय प्राहिणोत् तदा।
तस्यां काक्षीवदादींश्च शूद्रयोनावृषिर्वशी॥ ६२
जनयामास धर्मात्मा शूद्रानित्येवमादिकम्।
उवाच तं बली राजा दृष्ट्वा काक्षीवदादिकान्॥ ६३

राजोवाच

प्रवीणानृषिधर्मस्य चेश्वरान् ब्रह्मवादिनः।
विद्वान् प्रत्यक्षधर्माणां बुद्धिमान् वृत्तिमाञ्छुचीन्॥ ६४
ममैव चेति होवाच तं दीर्घतमसं बलिः।
नेत्युवाच मुनिस्तं वै ममैवमिति चाब्रवीत्॥ ६५
उत्पन्नाः शूद्रयोनौ तु भवच्छन्देऽसुरोत्तम।
अन्धं वृद्धं च मां ज्ञात्वा सुदेष्णा महिषी तव।
प्राहिणोदवमानान्मे शूद्रां धात्रेयिकां नृप॥ ६६
ततः प्रसादयामास बलिस्तमृषिसत्तमम्।
बलिः सुदेष्णां तां भार्यां भर्त्सयामास दानवः॥ ६७
पुनश्चैनामलङ्कृत्य ऋषये प्रत्यपादयत्।
तां स दीर्घतमा देवीं तथा कृतवतीं तदा॥ ६८
दध्ना लवणमिश्रेण त्वभ्यक्तं मधुकेन तु।
लिह मामजुगुप्सन्ती आपादतलमस्तकम्।
ततस्त्वं प्राप्स्यसे देवि पुत्रान् वै मनसेप्सितान्॥ ६९
तस्य सा तद्वचो देवी सर्वं कृतवती तदा।
तस्य सापानमासाद्य देवी पर्यहरत् तदा॥ ७०
तामुवाच ततः सोऽथ यत् ते परिहृतं शुभे।
विनापानं कुमारं तु जनयिष्यसि पूर्वजम्॥ ७१

सुदेष्णोवाच

नार्हसि त्वं महाभाग पुत्रं मे दातुमीदृशम्।
तोषितश्च यथाशक्ति प्रसादं कुरु मे प्रभो॥ ७२

दीर्घतमा उवाच

तवापचाराद् देव्येष नान्यथा भविता शुभे।
नैव ह्यस्यति पुत्रस्ते पौत्रो वै दास्यते फलम्॥ ७३
तस्यापानं विना चैव योग्यभावो भविष्यति।
तस्माद् दीर्घतमाङ्गेषु कुक्षौ स्पृष्ट्वेदमब्रवीत्॥ ७४
प्राशितं यद्यदङ्गेषु न सोपस्थं शुचिस्मिते।
तेन तिष्ठन्ति ते गर्भे पौर्णमास्यामिवोडुराट्॥ ७५

पिताका दर्शन और स्पर्श करता था। दीर्घकालके पश्चात् महान् तपस्यासे शुद्ध हुए कक्षीवान्ने शूद्रा माताके गर्भसे उत्पन्न हुए शरीरको तपाकर ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति कर ली। तब पिता गौतमने उससे कहा—'बेटा! तुम्हारे-जैसे यशस्वी सत्पुत्रसे मैं पुत्रवान् हो गया हूँ। धर्मज्ञ! अब मैं कृतार्थ हो गया।' ऐसा कहकर गौतम अपने शरीरका त्याग कर ब्रह्मलोकको चले गये। ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति करके कक्षीवान्ने हजारों पुत्रोंको उत्पन्न किया। कक्षीवान्के वे पुत्र कौष्माण्ड और गौतम नामसे विख्यात हुए॥ ८४—८९॥

इधर बलिने अपने पाँचों निष्पाप पुत्रोंका अभिनन्दन करके उनसे कहा—'पुत्रो! मैं कृतार्थ हो गया।' स्वयं धर्मात्मा एवं सामर्थ्यशाली बलि योगमायासे समावृत था। वह सम्पूर्ण प्राणियोंसे अदृश्य रहकर कालकी प्रतीक्षा कर रहा था। उन पुत्रोंमें अङ्गका पुत्र राजा दधिवाहन हुआ। राजा दिविरथ दधिवाहनके पुत्र कहे जाते हैं। दिविरथका पुत्र विद्वान् राजा धर्मरथ था। ये धर्मरथ बड़े सम्पत्तिशाली नरेश थे। इन्होंने विष्णुपद पर्वतपर महात्मा शुक्राचार्यके साथ सोमरसका पान किया था। धर्मरथका पुत्र चित्ररथ हुआ। उसका पुत्र सत्यरथ हुआ और उससे दशरथका जन्म हुआ जो लोमपाद नामसे विख्यात था। उसके शान्ता नामकी एक (दत्त्रिमा) कन्या हुई थी।

भविष्यन्ति कुमारास्तु पञ्च देवसुतोपमाः।
तेजस्विनः सुवृत्ताश्च यज्वानो धार्मिकाश्च ते॥ ७६

सूत उवाच

तदंशस्तु सुदेष्णाया ज्येष्ठः पुत्रो व्यजायत।
अङ्गस्तथा कलिङ्गश्च पुण्ड्रः सुह्यस्तथैव च॥ ७७
वङ्गराजस्तु पञ्चैते बलेः पुत्राश्च क्षेत्रजाः।
यस्यैते दीर्घतमसा बलेर्दत्ताः सुतास्तथा॥ ७८
प्रतिष्ठामागतानां हि ब्राह्मण्यं कारयंस्ततः।
ततो मानुषयोन्यां स जनयामास वै प्रजाः॥ ७९
ततस्तं दीर्घतमसं सुरभिर्वाक्यमब्रवीत्।
विचार्य यस्माद् गोधर्मं प्रमाणं ते कृतं विभो॥ ८०
भक्त्या चानन्ययास्मासु तेन प्रीतास्मि तेऽनघ।
तस्मात् तुभ्यं तमो दीर्घमाघ्रायापनुदामि वै॥ ८१
बार्हस्पत्यस्तथैवैष पाप्मा वै तिष्ठति त्वयि।
जरां मृत्युं तमश्चैव आघ्रायापनुदामि ते॥ ८२
सद्यः स घ्रातमात्रस्तु अभितो मुनिसत्तमः।
आयुष्मांश्च वपुष्मांश्च चक्षुष्मांश्च ततोऽभवत्॥ ८३
गोऽभ्याहते तमसि वै गौतमस्तु ततोऽभवत्।
कक्षीवांस्तु ततो गत्वा सह पित्रा गिरिव्रजम्॥ ८४
दृष्ट्वा स्पृष्ट्वा पितुर्वै स ह्युपविष्टश्चिरं तपः।
ततः कालेन महता तपसा भावितस्तु सः॥ ८५
विधूय मातृजं कायं ब्राह्मणं प्राप्तवान् विभुः।
ततोऽब्रवीत् पिता तं वै पुत्रवानस्म्यहं त्वया॥ ८६
सत्पुत्रेण तु धर्मज्ञ कृतार्थोऽहं यशस्विना।
मुक्त्वाऽऽत्मानं ततोऽसौ वै प्राप्तवान् ब्रह्मणः क्षयम्॥ ८७
ब्राह्मण्यं प्राप्य काक्षीवान् सहस्रमसृजत् सुतान्।
कौष्माण्डा गौतमाश्चैव स्मृताः काक्षीवतः सुताः॥ ८८
इत्येष दीर्घतमसो बलेर्वैरोचनस्य च।
समागमो वः कथितः सन्ततिश्चोभयोस्तथा॥ ८९
बलिस्तानभिनन्द्याह पञ्च पुत्रानकल्मषान्।
कृतार्थःसोऽपि धर्मात्मा योगमायावृतः स्वयम्॥ ९०
अदृश्यः सर्वभूतानां कालापेक्षः स वै प्रभुः।
तत्राङ्गस्य तु दायादो राजासीद् दधिवाहनः॥ ९१
दधिवाहनपुत्रस्तु राजा दिविरथः स्मृतः।
आसीद् दिविरथापत्यं विद्वान् धर्मरथो नृपः॥ ९२

दशरथका पुत्र महायशस्वी शूरवीर चतुरङ्ग हुआ। चतुरङ्गका पुत्र पृथुलाक्ष नामसे प्रसिद्ध हुआ। अपने कुलकी वृद्धि करनेवाला यह पृथुलाक्ष महर्षि ऋष्यशृङ्गकी कृपासे पैदा हुआ था। पृथुलाक्षके चम्प नामक पुत्र हुआ। चम्पकी राजधानीका नाम चम्पा (भागलपुर) था, जो पहले मालिनी नामसे प्रसिद्ध थी। पूर्णभद्रकी कृपासे चम्पका पुत्र हर्यङ्ग हुआ। इस राजाके यज्ञमें महर्षि विभाण्डकने मन्त्रोंद्वारा एक ऐसे हस्तीको भूतलपर अवतीर्ण किया था जो शत्रुओंको विमुख कर देनेवाला एवं उत्तम वाहन था। हर्यङ्गका पुत्र भद्ररथ पैदा हुआ। भद्ररथका पुत्र राजा बृहत्कर्मा हुआ। उसका पुत्र बृहद्भानु हुआ। उससे महात्मवान्‌का जन्म हुआ। राजेन्द्र बृहद्भानुने एक अन्य पुत्रको भी उत्पन्न किया था जिसका नाम जयद्रथ था। उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ। बृहद्रथसे विश्वविजयी जनमेजय पैदा हुआ था। उसका पुत्र अङ्ग था और उससे राजा कर्णकी उत्पत्ति हुई थी। कर्णका वृषसेन और उसका पुत्र पृथुसेन हुआ। द्विजवरो! ये सभी राजा अङ्गके वंशमें उत्पन्न हुए थे, मैंने इनका आनुपूर्वी विस्तारपूर्वक वर्णन कर दिया। अब आप लोग पूरुके वंशका वर्णन सुनिये॥ ९०—१०३॥

स हि धर्मरथः श्रीमांस्तेन विष्णुपदे गिरौ।
सोमः शुक्रेण वै राज्ञा सह पीतो महात्मना॥ ९३
अथ धर्मरथस्याभूत् पुत्रश्चित्ररथः किल।
तस्य सत्यरथः पुत्रस्तस्माद् दशरथः किल॥ ९४
लोमपाद इति ख्यातस्तस्य शान्ता सुताभवत्।
अथ दाशरथिर्वीरश्चतुरङ्गो महायशाः॥ ९५
ऋष्यशृङ्गप्रसादेन जज्ञे स्वकुलवर्धनः।
चतुरङ्गस्य पुत्रस्तु पृथुलाक्ष इति स्मृतः॥ ९६
पृथुलाक्षसुतश्चापि चम्पनामा बभूव ह।
चम्पस्य तु पुरी चम्पा पूर्वं या मालिनी भवत्॥ ९७
पूर्णभद्रप्रसादेन हर्यङ्गोऽस्य सुतोऽभवत्।
यज्ञे विभाण्डकाच्चास्य वारणः शत्रुवारणः॥ ९८
अवतारयामास महीं मन्त्रैर्वाहनमुत्तमम्।
हर्यङ्गस्य तु दायादो जातो भद्ररथः किल॥ ९९
अथ भद्ररथस्यासीद् बृहत्कर्मा जनेश्वरः।
बृहद्भानुः सुतस्तस्य तस्माज्जज्ञे महात्मवान्॥ १००
बृहद्भानुस्तु राजेन्द्रो जनयामास वै सुतम्।
नाम्ना जयद्रथं नाम तस्माद् बृहद्रथो नृपः॥ १०१
आसीद् बृहद्रथाच्चैव विश्वजिज्जनमेजयः।
दायादस्तस्य चाङ्गो वै तस्मात् कर्णोऽभवन्नृपः॥ १०२
कर्णस्य वृषसेनस्तु पृथुसेनस्तथात्मजः।
एतेऽङ्गस्यात्मजाः सर्वे राजानः कीर्तिता मया।
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च पूरोस्तु शृणुत द्विजाः॥ १०३

ऋषय ऊचुः

कथं सूतात्मजः कर्णः कथमङ्गस्य चात्मजः।
एतदिच्छामहे श्रोतुमत्यन्तकुशलो ह्यसि॥ १०४

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! कर्ण कैसे अधिरथ सूतके पुत्र थे, पुनः किस प्रकार अङ्गके पुत्र कहलाये? इस रहस्यको सुननेकी हम लोगोंकी उत्कट इच्छा है, इसका वर्णन कीजिये; क्योंकि आप कथा कहनेमें परम प्रवीण हैं॥ १०४॥

सूत उवाच

बृहद्भानुसुतो जज्ञे राजा नाम्ना बृहन्मनाः।
तस्य पत्नीद्वयं ह्यासीच्छैब्यस्य तनये ह्युभे।
यशोदेवी च सत्या च तयोर्वंशं च मे शृणु॥ १०५
जयद्रथं तु राजानं यशोदेवी ह्यजीजनत्।
सा बृहन्मनसः सत्या विजयं नाम विश्रुतम्॥ १०६
विजयस्य बृहत्पुत्रस्तस्य पुत्रो बृहद्रथः।
बृहद्रथस्य पुत्रस्तु सत्यकर्मा महामनाः॥ १०७
सत्यकर्मणोऽधिरथः सूतश्चाधिरथः स्मृतः।
यः कर्णं प्रतिजग्राह तेन कर्णस्तु सूतजः।
तच्चेदं सर्वमाख्यातं कर्णं प्रति यथोदितम्॥ १०८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! बृहद्भानुका पुत्र बृहन्मना नामका राजा हुआ। उसके दो पत्नियाँ थीं। वे दोनों शैब्यकी कन्याएँ थीं। उनका नाम यशोदेवी और सत्या था। अब मुझसे उन दोनोंका वंश-वर्णन सुनिये। बृहन्मनाके संयोगसे यशोदेवीने राजा जयद्रथको और सत्याने विश्वविख्यात विजयको जन्म दिया था। विजयका पुत्र बृहत्पुत्र और उसका पुत्र बृहद्रथ हुआ। बृहद्रथका पुत्र महामना सत्यकर्मा हुआ। सत्यकर्माका पुत्र अधिरथ हुआ। यही अधिरथ सूत नामसे भी विख्यात था, जिसने (गङ्गामें बहते हुए) कर्णको पकड़ा था। इसी कारण कर्ण सूत-पुत्र कहे जाते हैं। इस प्रकार कर्णके प्रति जो किंवदन्ती फैली है, उसे पूर्णतया मैंने आप लोगोंसे कह दिया॥ १०५—१०८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४८॥

उनचासवाँ अध्याय

पूरु-वंशके वर्णन-प्रसङ्गमें भरत-वंशकी कथा, भरद्वाजकी उत्पत्ति और उनके वंशका कथन, नीप-वंशका वर्णन तथा पौरवोंका इतिहास

सूत उवाच

पूरोः पुत्रो महातेजा राजा स जनमेजयः।
प्राचीत्वतः सुतस्तस्य यः प्राचीमकरोद् दिशम्॥ १

प्राचीत्वतस्य तनयो मनस्युश्च तथाभवत्।
राजा वी(पी)तायुधो नाम मनस्योरभवत् सुतः॥ २

दायादस्तस्य चाप्यासीद् धुन्धुर्नाम महीपतिः।
धुन्धोर्बहुविधः पुत्रः संयातिस्तस्य चात्मजः॥ ३

संयातेस्तु रहंवर्चा भद्राश्वस्तस्य चात्मजः।
भद्राश्वस्य घृतायां तु दशाप्सरसि सूनवः॥ ४

औचेयुश्च हृषेयुश्च कक्षेयुश्च सनेयुकः।
धृतेयुश्च विनेयुश्च स्थलेयुश्चैव सत्तमः॥ ५

धर्मेयुः संनतेयुश्च पुण्येयुश्चेति ते दश।
औचेयोर्ज्वलना नाम भार्या वै तक्षकात्मजा॥ ६

तस्यां स जनयामास रन्तिनारं महीपतिम्।
रन्तिनारो मनस्विन्यां पुत्राञ् जज्ञे पराञ् शुभान्॥ ७

अमूर्तरयसं वीरं त्रिवनं चैव धार्मिकम्।
गौरी कन्या तृतीया च मान्धातुर्जननी शुभा॥ ८

इलिना तु यमस्यासीत् कन्या साजनयत् सुतम्।
त्रिवनाद् दयितं पुत्रमैलिनं ब्रह्मवादिनम्॥ ९

उपदानवी सुताँल्लेभे चतुरस्त्विलिनात्मजात्।
ऋष्यन्तमथ दुष्यन्तं प्रवीरमनघं तथा॥ १०

चक्रवर्ती ततो जज्ञे दुष्यन्तात् समितिंजयः।
शकुन्तलायां भरतो यस्य नाम्ना च भारताः॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (ययातिके सबसे छोटे पुत्र) पूरुका पुत्र महातेजस्वी राजा जनमेजय (प्रथम) था। उसका पुत्र प्राचीत्वत (प्राचीनवंत) हुआ, जिसने प्राची (पूर्व) दिशा बसायी। प्राचीत्वतका पुत्र मनस्यु* हुआ। मनस्युका पुत्र राजा वीतायुध (अभय) हुआ। उसका पुत्र धुन्धु नामका राजा हुआ। धुन्धुका पुत्र बहुविध (बहुविद्य, अन्यत्र बहुगव) और उसका पुत्र संयाति हुआ। संयातिका पुत्र रहंवर्चा और उसका पुत्र भद्राश्व (रौद्राश्व) हुआ। भद्राश्वके घृता (घृताची, अन्यत्र मिश्रकेशी) नामकी अप्सराके गर्भसे दस पुत्र उत्पन्न हुए। उन दसोंके नाम हैं—औचेयु (अधिकांश पुराणोंमें ऋचेयु), हृषेयु, कक्षेयु, सनेयु, धृतेयु, विनेयु, श्रेष्ठ स्थलेयु, धर्मेयु, संनतेयु और पुण्येयु। औचेयु (ऋचेयु)-की पत्नीका नाम ज्वलना था। वह नागराज तक्षककी कन्या थी। उसके गर्भसे उन्होंने भूपाल रन्तिनार (यह प्रायः सर्वत्र मतिनार, पर भागवतमें रन्तिभार है)-को जन्म दिया। रन्तिनारने अपनी पत्नी मनस्विनीके गर्भसे कई सुन्दर पुत्रोंको उत्पन्न किया, जिनमें वीरवर अमूर्तरय और धर्मात्मा त्रिवन प्रधान थे। उसकी तीसरी संतति गौरी नामकी सुन्दरी कन्या थी, जो मान्धाताकी जननी हुई। इलिना यमराजकी कन्या थी। उसने त्रिवनसे ब्रह्मवादमें श्रेष्ठ पराक्रमी ऐलिन (ऐलिक, त्रंसु या जंसु) नामक प्रिय पुत्र उत्पन्न किया। इलिना-नन्दन ऐलिन (जंसु)-के संयोगसे उपदानवीने ऋष्यन्त, दुष्यन्त, प्रवीर तथा अनघ नामक चार पुत्रोंको प्राप्त किया। इनमें द्वितीय पुत्र राजा दुष्यन्तके संयोगसे शकुन्तलाके गर्भसे भरतका जन्म हुआ, जो आगे चलकर संग्राम-विजयी चक्रवर्ती सम्राट् हुआ। उसीके नामपर उसके वंशधर 'भारत' नामसे कहे जाने लगे॥ १—११॥

* महाभारत १। ९४। १ तथा अन्य वायु, विष्णु, ब्रह्माण्डादि पुराणोंमें प्राचीनवंत या प्राचीनवंशका पुत्र प्रवीर और उसका पुत्र मनस्यु कहा गया है। इसमें आगे भी जहाँ-तहाँ कुछ पुरुष छोड़ दिये गये हैं जो पढ़ते समय स्पष्ट ज्ञात हो जाता है।

मातापितृभ्यां त्यक्तं तु दृष्ट्वा तं मरुतः शिशुम्।
जगृहुस्तं भरद्वाजं मरुतः कृपया स्थिताः॥ २६

तस्मिन् काले तु भरतो बहुभिर्ऋतुभिर्विभुः।
पुत्रनैमित्तिकैर्यज्ञैरयजत् पुत्रलिप्सया॥ २७

यदा स यजमानस्तु पुत्रं नासादयत् प्रभुः।
ततः क्रतुं मरुत्सोमं पुत्रार्थे समुपाहरत्॥ २८

तेन ते मरुतस्तस्य मरुत्सोमेन तुष्टुवुः।
उपनिन्युर्भरद्वाजं पुत्रार्थं भरताय वै॥ २९

दायादोऽङ्गिरसः सूनोरौरसस्तु बृहस्पतेः।
संक्रामितो भरद्वाजा मरुद्भिर्भरतं प्रति॥ ३०

भरतस्तु भरद्वाजं पुत्रं प्राप्य विभुर्ब्रवीत्।
आदावात्महिताय त्वं कृतार्थोऽहं त्वया विभो॥ ३१

पूर्वं तु वितथे तस्मिन् कृते वै पुत्रजन्मनि।
ततस्तु वितथो नाम भरद्वाजो नृपोऽभवत्॥ ३२

तस्मादपि भरद्वाजाद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया भुवि।
द्व्यामुष्यायणकौलीनाः स्मृतास्ते द्विविधेन च॥ ३३

इस प्रकार माता-पिताद्वारा त्यागे गये उस शिशुको देखकर मरुद्गणोंका हृदय दयार्द्र हो गया, तब उन्होंने उस भरद्वाज नामक शिशुको उठा लिया। उसी समय राजा भरत पुत्र-प्राप्तिकी अभिलाषासे अनेकों ऋतुकालके अवसरोंपर पुत्रनिमित्तक यज्ञोंका अनुष्ठान करते आ रहे थे, परंतु जब उन सामर्थ्यशाली नरेशको उन यज्ञोंके करनेसे भी पुत्रकी प्राप्ति नहीं हुई, तब उन्होंने पुत्र-प्राप्तिके निमित्त 'मरुत्स्तोम' नामक यज्ञका अनुष्ठान प्रारम्भ किया। राजा भरतके उस मरुत्स्तोम यज्ञसे सभी मरुद्गण प्रसन्न हो गये। तब वे उस भरद्वाज नामक शिशुको साथ लेकर भरतको पुत्ररूपमें प्रदान करनेके लिये उस यज्ञमें उपस्थित हुए। वहाँ उन्होंने अङ्गिरा-पुत्र बृहस्पतिके औरस पुत्र भरद्वाजको भरतके हाथोंमें समर्पित कर दिया। तब राजा भरत भरद्वाजको पुत्ररूपमें पाकर इस प्रकार बोले—'विभो! पहले तो आप (इस शिशुको लेकर) आत्महितकी ही बात सोच रहे थे, परंतु अब इसे पाकर मैं आपकी कृपासे कृतार्थ हो गया हूँ।' पुत्र-जन्मके हेतु किये गये पहलेके सभी यज्ञ वितथ (निष्फल) हो गये थे, इसलिये वह भरद्वाज राजा वितथके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस भरद्वाजसे भी भूतलपर ब्राह्मण और क्षत्रिय—दोनों प्रकारके पुत्र उत्पन्न हुए, जो द्व्यामुष्यायण और कौलीन नामसे विख्यात हुए॥ २६—३३॥

ततो जाते हि वितथे भरतश्च दिवं ययौ।
भरद्वाजो दिवं यातो ह्यभिषिच्य सुतं ऋषिः॥ ३४

दायादो वितथस्यासीद् भुवमन्युर्महायशाः।
महाभूतोपमाः पुत्राश्चत्वारो भुवमन्यवः॥ ३५

बृहत्क्षत्रो महावीर्यो नरो गर्गश्च वीर्यवान्।
नरस्य संकृतिः पुत्रस्तस्य पुत्रो महायशाः॥ ३६

गुरुधी रन्तिदेवश्च सत्कृत्यां तावुभौ स्मृतौ।
गर्गस्य चैव दायादः शिबिर्विद्वानजायत॥ ३७

स्मृताः शैब्यास्ततो गर्गाः क्षत्रोपेता द्विजातयः।
आहार्यतनयश्चैव धीमानासीदुरुक्षवः॥ ३८

तस्य भार्या विशाला तु सुषुवे पुत्रकत्रयम्।
त्र्यरुणं पुष्करिं चैव कविं चैव महायशाः॥ ३९

तदनन्तर वितथके पुत्ररूपमें प्राप्त हो जानेपर राजा भरत (उसे राज्याभिषिक्त करके) स्वर्गलोकको चले गये। राजर्षि भरद्वाज भी यथासमय अपने पुत्रको राज्यपर अभिषिक्त करके स्वर्गलोक सिधारे। महायशस्वी भुवमन्यु वितथका पुत्र था। भुवमन्युके बृहत्क्षत्र, महावीर्य, नर और वीर्यशाली गर्ग नामक चार पुत्र थे, जो वायु आदि चार महातत्त्वोंके समान थे। नरका पुत्र संकृति हुआ। संकृतिके दो पुत्र महायशस्वी गुरुधी और रन्तिदेव हुए। वे दोनों सत्कृतिके गर्भसे उत्पन्न हुए बतलाये जाते हैं। गर्गके पुत्ररूपमें विद्वान् शिबि उत्पन्न हुआ। उसके वंशधर जो क्षत्रियांशसे युक्त द्विज थे, शैब्य और गर्गके नामसे विख्यात हुए। शिबिके आहार्यतनय और बुद्धिमान् उरुक्षव नामक दो पुत्र थे। उरुक्षवकी पत्नी विशालाने त्र्यरुण, पुष्करि और महायशस्वी कवि—इन तीन पुत्रोंको जन्म दिया।

उरुक्षवाः स्मृता ह्येते सर्वे ब्राह्मणतां गताः।
काव्यानां तु वरा ह्येते त्रयः प्रोक्ता महर्षयः॥ ४०
गर्गाः संकृतयः काव्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः।
सम्भृताङ्गिरसो दक्षा बृहत्क्षत्रस्य च क्षितिः॥ ४१
बृहत्क्षत्रस्य दायादो हस्तिनामा बभूव ह।
तेनेदं निर्मितं पूर्वं पुरं तु गजसाह्वयम्॥ ४२
हस्तिनश्चैव दायादास्त्रयः परमकीर्तयः।
अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढस्तथैव च॥ ४३
अजमीढस्य पत्न्यस्तु तिस्रः कुरुकुलोद्वहाः।
नीलिनी धूमिनी चैव केशिनी चैव विश्रुताः॥ ४४
स तासु जनयामास पुत्रान् वै देववर्चसः।
तपसोऽन्ते महातेजा जाता वृद्धस्य धार्मिकाः॥ ४५
भारद्वाजप्रसादेन विस्तरं तेषु मे शृणु।
अजमीढस्य केशिन्यां कण्वः समभवत् किल॥ ४६
मेधातिथिः सुतस्तस्य तस्मात् काण्वायना द्विजाः।
अजमीढस्य भूमिन्यां जज्ञे बृहदनुर्नृपः॥ ४७
बृहदनोर्बृहन्तोऽथ बृहन्तस्य बृहन्मनाः।
बृहन्मनःसुतश्चापि बृहद्धनुरिति श्रुतः॥ ४८
बृहद्धनोर्बृहदिषुः पुत्रस्तस्य जयद्रथः।
अश्वजित् तनयस्तस्य सेनजित् तस्य चात्मजः॥ ४९
अथ सेनजितः पुत्राश्चत्वारो लोकविश्रुताः।
रुचिराश्वश्च काव्यश्च राजा दृढरथस्तथा॥ ५०
वत्सश्चावर्तको राजा यस्यैते परिवत्सकाः।
रुचिराश्वस्य दायादः पृथुसेनो महायशाः॥ ५१
पृथुसेनस्य पौरस्तु पौरान्नीपोऽथ जज्ञिवान्।
नीपस्यैकशतं त्वासीत् पुत्राणाममितौजसाम्॥ ५२
नीपा इति समाख्याता राजानः सर्व एव ते।
तेषां वंशकरः श्रीमान्नीपानां कीर्तिवर्धनः॥ ५३
काव्याच्च समरो नाम सदेष्टसमरोऽभवत्।
समरस्य पारसम्पारौ सदश्व इति ते त्रयः॥ ५४
पुत्राः सर्वगुणोपेता जाता वै विश्रुता भुवि।
पारपुत्रः पृथुर्जातः पृथोस्तु सुकृतोऽभवत्॥ ५५

ये सभी उरुक्षव कहलाते हैं और अन्तमें ब्राह्मणत्वको प्राप्त हो गये थे। काव्यके वंशधरों (भार्गव गोत्र-प्रवरों)-में ये तीनों महर्षि कहे गये हैं। इस प्रकार गर्ग, संकृति और कविके वंशमें उत्पन्न हुए लोग क्षत्रियांशसे युक्त ब्राह्मण थे। अङ्गिरागोत्रीय बृहत्क्षत्रने भी इस समृद्धिशालिनी पृथ्वीका शासन किया था। बृहत्क्षत्रका हस्ति नामक पुत्र हुआ। उसीने पूर्वकालमें इस हस्तिनापुर नामक नगरको बसाया था। हस्तीके अजमीढ, द्विमीढ और पुरुमीढ नामक तीन परम कीर्तिशाली पुत्र हुए। अजमीढकी तीन पत्नियाँ थीं, जो कुरुकुलमें उत्पन्न हुई थीं। वे नीलिनी, धूमिनी और केशिनी नामसे प्रसिद्ध थीं। अजमीढने उनके गर्भसे अनेकों पुत्रोंको पैदा किया था, जो सभी देवताओंके समान वर्चस्वी, महान् तेजस्वी और धर्मात्मा थे। वे अपने वृद्ध पिताकी तपस्याके अन्तमें महर्षि भारद्वाजकी कृपासे उत्पन्न हुए थे। उनका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त मुझसे सुनिये॥ ३४—४५½॥

अजमीढके केशिनीके गर्भसे कण्व नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका पुत्र मेधातिथि हुआ। उससे काण्वायन ब्राह्मणोंकी* उत्पत्ति हुई। भूमिनी (धूमिनी)-के गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें राजा बृहदनुका जन्म हुआ। बृहदनुका पुत्र बृहन्त, बृहन्तका पुत्र बृहन्मना और बृहन्मनाका पुत्र बृहद्धनु नामसे विख्यात हुआ। बृहद्धनुका पुत्र बृहदिषु और उसका पुत्र जयद्रथ हुआ। उसका पुत्र अश्वजित् और उसका पुत्र सेनजित् हुआ। सेनजित्के रुचिराश्व, काव्य, राजा दृढरथ और राजा वत्सावर्तक—ये चार लोकविख्यात पुत्र हुए। इनमें वत्सावर्तकके वंशधर परिवत्सक नामसे कहे जाते हैं। रुचिराश्वका पुत्र महायशस्वी पृथुसेन हुआ। पृथुसेनसे पौरका और पौरसे नीपका जन्म हुआ। नीपके अमित तेजस्वी पुत्रोंकी संख्या एक सौ थी। वे सभी राजा थे और नीप नामसे ही विख्यात थे। काव्यसे समर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो उन नीपवंशियोंका वंशप्रवर्तक, लक्ष्मीसे युक्त और कीर्तिवर्धक था। वह समरके लिये सदा प्रयत्नशील रहता था। समरके पार, सम्पार और सदश्व—ये तीन पुत्र हुए, जो सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न तथा भूतलपर विख्यात थे। पारका पुत्र पृथु हुआ और पृथुसे सुकृतकी उत्पत्ति हुई।

* विशेष द्रष्टव्य—ऋग्वेदसंहिता— ८। ५५। ८, ब्राह्मणोत्पत्ति मार्तण्ड, भागवत १२। १। ४९ तथा पुनः मत्स्यपुराण १९१। २६।

जज्ञे सर्वगुणोपेतो विभ्राजस्तस्य चात्मजः।
विभ्राजस्य तु दायादस्त्वणुहो नाम वीर्यवान्॥ ५६
बभूव शुकजामाता कृत्वीभर्ता महायशाः।
अणुहस्य तु दायादो ब्रह्मदत्तो महीपतिः॥ ५७
युगदत्तः सुतस्तस्य विष्वक्सेनो महायशाः।
विभ्राजः पुनराजातो सुकृतेनेह कर्मणा॥ ५८
विष्वक्सेनस्य पुत्रस्तु उदक्सेनो बभूव ह।
भल्लाटस्तस्य पुत्रस्तु तस्यासीज्जनमेजयः।
उग्रायुधेन तस्यार्थे सर्वे नीपाः प्रणाशिताः॥ ५९

उससे सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न विभ्राज नामक पुत्र पैदा हुआ। विभ्राजका पुत्र महायशस्वी एवं पराक्रमी अणुह हुआ, जो शुकदेवजीका जामाता एवं कृत्वीका पति था। अणुहका पुत्र राजा ब्रह्मदत्त हुआ। उसका पुत्र युगदत्त और युगदत्तका पुत्र महायशस्वी विष्वक्सेन हुआ। अपने पुण्यकर्मोंके फलस्वरूप राजा विभ्राजने ही पुनः विष्वक्सेनरूपसे जन्म धारण किया था। विष्वक्सेनका पुत्र उदक्सेन हुआ। उसका पुत्र भल्लाट* और उसका पुत्र जनमेजय (द्वितीय) हुआ। इसी जनमेजयकी रक्षाके लिये उग्रायुधने सभी नीपवंशी नरेशोंको मौतके घाट उतारा था॥ ४६—५९॥

ऋषय ऊचुः

उग्रायुधः कस्य सुतः कस्य वंशे स कथ्यते।
किमर्थं तेन ते नीपाः सर्वे चैव प्रणाशिताः॥ ६०

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! उग्रायुध किसका पुत्र था? वह किसके वंशमें उत्पन्न हुआ बतलाया जाता है? तथा किस कारण उसने समस्त नीपवंशी राजाओंका संहार किया था? (यह हमें बतलाइये)॥ ६०॥

सूत उवाच

उग्रायुधः सूर्यवंश्यस्तपस्तेपे वराश्रमे।
स्थाणुभूतोऽष्टसाहस्रं तं भेजे जनमेजयः॥ ६१
तस्य राज्यं प्रतिश्रुत्य नीपानाजघ्निवान् प्रभुः।
उवाच सान्त्वं विविधं जघ्नुस्ते वै ह्युभावपि॥ ६२
हन्यमानांश्च तांश्चैव यस्माद्धेतोर्न मे वचः।
शरणागतरक्षार्थं तस्मादेवं शपामि वः॥ ६३
यदि मेऽस्ति तपस्तप्तं सर्वान् नयतु वो यमः।
ततस्तान् कृष्यमाणांस्तु यमेन पुरतः स तु॥ ६४
कृपया परयाऽऽविष्टो जनमेजयमूचिवान्।
गतानेतानिमान् वीरांस्त्वं मे रक्षितुमर्हसि॥ ६५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उग्रायुध सूर्यवंशमें उत्पन्न हुए थे। इन्होंने एक श्रेष्ठ आश्रममें जाकर स्थाणुकी भाँति स्थित हो आठ हजार वर्षोंतक घोर तप किया। उसी समय (युद्धमें पराजित हुए) राजा जनमेजय उनके पास पहुँचे। (जनमेजयकी प्रार्थनापर) उन्हें राज्य दिलानेकी प्रतिज्ञा करके सामर्थ्यशाली उग्रायुधने नीपवंशियोंका संहार किया था। प्रथमतस्तु उग्रायुधने उन्हें अनेक प्रकारके सान्त्वनापूर्ण वचनोंद्वारा समझाने-बुझानेकी चेष्टा की, किंतु जब वे (इनकी बात न मानकर) इन्हीं दोनोंको मार डालनेके लिये उतारू हो गये, तब मारनेके लिये उद्यत हुए उनसे उग्रायुधने कहा—'जिस कारण तुमलोग मेरी बातको अनसुनी कर रहे हो, इसीलिये शरणागतकी रक्षाके हेतु मैं तुमलोगोंको इस प्रकारका शाप दे रहा हूँ कि यदि मैंने तपका अनुष्ठान किया है तो यमराज तुम सबको अपने घर उठा ले जायँ।' तदनन्तर अपने सामने ही उन्हें यमराजद्वारा घसीटा जाता हुआ देखकर उग्रायुधके हृदयमें अतिशय दया उत्पन्न हो गयी। तब उन्होंने जनमेजयसे कहा—'जनमेजय! तुम मेरे कहनेसे इन ले जाये गये हुए तथा ले जाये जाते हुए वीरोंकी रक्षा करो'॥ ६१—६५॥

जनमेजय उवाच

अरे पापा दुराचारा भवितारोऽस्य किंकराः।
तथेत्युक्तस्ततो राजा यमेन युयुधे चिरम्॥ ६६

जनमेजय बोले—अरे पापी एवं दुराचारी यमदूतो! तुमलोग दण्डके भागी होओगे, अन्यथा उन्हें छोड़ दो। यमदूतोंद्वारा भी उसी प्रकारका उत्तर दिये जानेपर राजा जनमेजयने यमके साथ चिरकालतक युद्ध किया।

* इसने भल्लाटनगर (सुलेमानपर्वतके पासका एक शहर) बसाया, जहाँका राजा शशिध्वज (कल्किपुराण, अ० २१-२२) प्रसिद्ध था।

व्याधिभिर्नारकैर्घोरैर्यमेन सह तान् बलात्।
विजित्य मुनये प्रादात् तदद्भुतमिवाभवत्॥ ६७

यमस्तुष्टस्ततस्तस्मै मुक्तिज्ञानं ददौ परम्।
सर्वे यथोचितं कृत्वा जग्मुस्ते कृष्णमव्ययम्॥ ६८

येषां तु चरितं गृह्य हन्यते नापमृत्युभिः।
इह लोके परे चैव सुखमक्षय्यमश्नुते॥ ६९

अन्ततोगत्वा उन्होंने भयंकर नारकीय व्याधियोंके साथ उन सबको बलपूर्वक जीतकर यमराजसहित उन्हें उग्रायुध मुनिको समर्पित कर दिया। यह एक अद्भुत-सी बात हुई। इससे प्रसन्न हुए यमराजने राजा जनमेजयको मुक्तिका उत्तम ज्ञान प्रदान किया। तत्पश्चात् वे सभी यथोचित धर्मकार्य कर अविनाशी भगवान् श्रीकृष्णमें लीन हो गये। इन नरेशोंके जीवन-चरितको जान लेनेपर मनुष्य अपमृत्यु आदिका शिकार नहीं होता। उसे इस लोक और परलोकमें अक्षय सुखकी प्राप्ति होती है॥ ६६—६९॥

अजमीढस्य धूमिन्यां विद्वाञ् जज्ञे यवीनरः।
धृतिमांस्तस्य पुत्रस्तु तस्य सत्यधृतिः स्मृतः।
अथ सत्यधृतेः पुत्रो दृढनेमिः प्रतापवान्॥ ७०
दृढनेमिसुतश्चापि सुधर्मा नाम पार्थिवः।
आसीत् सुधर्मतनयः सार्वभौमः प्रतापवान्॥ ७१
सार्वभौमेति विख्यातः पृथिव्यामेकराड् बभौ।
तस्यान्ववाये महति महापौरवनन्दनः॥ ७२
महापौरवपुत्रस्तु राजा रुक्मरथः स्मृतः।
अथ रुक्मरथस्यासीत् सुपार्श्वो नाम पार्थिवः॥ ७३
सुपार्श्वतनयश्चापि सुमतिर्नाम धार्मिकः।
सुमतेरपि धर्मात्मा राजा संनतिमानपि॥ ७४
तस्यासीत् संनतिमतः कृतो नाम सुतो महान्।
हिरण्यनाभिनः शिष्यः कौसल्यस्य[1] महात्मनः॥ ७५
चतुर्विंशतिधा येन प्रोक्ता वै सामसंहिताः।
स्मृतास्ते प्राच्यसामानः कार्ता नामेह सामगाः॥ ७६
कार्तिरुग्रायुधोऽसौ वै महापौरववर्धनः।
बभूव येन विक्रम्य पृथुकस्य पिता हतः॥ ७७
नीलो नाम महाराजः पाञ्चालाधिपतिर्वशी।
उग्रायुधस्य दायादः क्षेमो नाम महायशाः॥ ७८
क्षेमात् सुनीथः सञ्जज्ञे सुनीथस्य नृपञ्जयः।
नृपञ्जयाच्च विरथ इत्येते पौरवाः स्मृताः॥ ७९

धूमिनीके गर्भसे अजमीढके पुत्ररूपमें विद्वान् यवीनरका जन्म हुआ। उसका पुत्र धृतिमान् हुआ और उसका पुत्र सत्यधृति कहा जाता है। सत्यधृतिका पुत्र प्रतापी दृढनेमि हुआ। दृढनेमिका पुत्र सुधर्मा नामक भूपाल हुआ। सुधर्माका पुत्र प्रतापी सार्वभौम था, जो भूतलपर एकच्छत्र चक्रवर्ती सम्राट्के रूपमें सुशोभित हुआ। उसके उस विशाल वंशमें एक महापौरव नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा रुक्मरथ महापौरवके पुत्र कहे गये हैं। रुक्मरथका पुत्र सुपार्श्व नामका राजा हुआ। सुपार्श्वका पुत्र धर्मात्मा सुमति हुआ। सुमतिका पुत्र धर्मात्मा राजा संनतिमान् था। उस संनतिमान्का कृत नामक महान् प्रतापी पुत्र था, जो महात्मा हिरण्यनाभ कौसल्य (कौथुम[1])-का शिष्य हुआ। इसी राजाने सामवेदकी संहिताओंको चौबीस भागोंमें विभक्त किया, जो प्राच्यसामके नामसे प्रसिद्ध हुईं तथा उन साम-संहिताओंका गान करनेवाले कार्त नामसे कहे जाने लगे।[2] ये उग्रायुध इसी कृतके पुत्र थे, जो पौरववंशकी विशेषरूपसे वृद्धि करनेवाले थे। इन्होंने ही पराक्रम प्रकट करके पृथुकके पिता पाञ्चाल-नरेश जितेन्द्रिय महाराज नीलका वध किया था। उग्रायुधका पुत्र महायशस्वी क्षेम हुआ। क्षेमसे सुनीथका और सुनीथसे नृपञ्जयका जन्म हुआ। नृपञ्जयसे विरथकी उत्पत्ति हुई। ये सभी नरेश पौरवनामसे विख्यात हुए॥ ७०—७९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पौरववंशकीर्तनं नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ४९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें पौरव-वंश-कीर्तन नामक उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ४९॥

---

१. वायुपुराण ९९। १०० में यहाँ 'कौथुम' पाठ है। सामवेदियोंकी कौथुमी संहिता प्रसिद्ध है।

२. यहाँ सामवेद-संहिताके इतिहासकी एकसे चौबीस (तथा पुनः एक हजार शाखा होनेकी) बड़ी रहस्यात्मक बात कही गयी है। कार्त शाखाका उल्लेख सभी चरणव्यूहोंमें भी है। इसी प्रकार वायु ५९—६१ तथा ब्रह्माण्ड २। ३८—४१ में भी वेदोंका सच्चा एवं विस्तृत इतिहास है। २४ सामशाखाएँ चरणव्यूह आदिमें यों निर्दिष्ट हैं—१-वार्तान्तरेय, २-राणायनीय, ३-शाट्यायनीय, ४-आसुरायणीय, ५-वासुरायणीय, ६-प्राचीनयोग, ७-प्राञ्जल ऋग्, ८-साक्ष्यमुद्गल, ९-खल्वल, १०-महाखल्वल, ११-माङ्गल, १२-कौथुम, १३-गौतम, १४-जैमिनीय, १५-सुपर्ण, १६-वालखिल्य, १७-सांख्यमुग्र, १८-कालेय, १९-महाकालेय, २०-लाङ्गलायन, २१-शार्दूल, २२-तातायन, २३-नैगमीय और २४-गायमान।

पचासवाँ अध्याय

पूरुवंशी नरेशोंका विस्तृत इतिहास

सूत उवाच

अजमीढस्य नीलिन्यां नीलः समभवन्नृपः।
नीलस्य तपसोग्रेण सुशान्तिरुदपद्यत॥ १
पुरुजानुः सुशान्तेस्तु पृथुस्तु पुरुजानुतः।
भद्राश्वः पृथुदायादो भद्राश्वतनयाञ्छृणु॥ २
मुद्गलश्च जयश्चैव राजा बृहदिषुस्तथा।
जवीनरश्च विक्रान्तः कपिलश्चैव पञ्चमः॥ ३
पञ्चानां चैव पञ्चालानेताञ्जनपदान् विदुः।
पञ्चालरक्षिणो ह्येते देशानामिति नः श्रुतम्॥ ४
मुद्गलस्यापि मौद्गल्याः क्षत्रोपेता द्विजातयः।
एते ह्यङ्गिरसः पक्षं संश्रिताः काण्वमुद्गलाः॥ ५
मुद्गलस्य सुतो जज्ञे ब्रह्मिष्ठः सुमहायशाः।
इन्द्रसेनः सुतस्तस्य विन्ध्याश्वस्तस्य चात्मजः॥ ६
विन्ध्याश्वान्मिथुनं जज्ञे मेनकायामिति श्रुतिः।
दिवोदासश्च राजर्षिरहल्या च यशस्विनी॥ ७
शरद्वतस्तु दायादमहल्या सम्प्रसूयत।
शतानन्दमृषिश्रेष्ठं तस्यापि सुमहातपाः॥ ८
सुतः सत्यधृतिर्नाम धनुर्वेदस्य पारगः।
आसीत् सत्यधृतेः शुक्रममोघं धार्मिकस्य तु॥ ९
स्कन्नं रेतः सत्यधृतेर्दृष्ट्वा चाप्सरसं जले।
मिथुनं तत्र सम्भूतं तस्मिन् सरसि सम्भृतम्॥ १०
ततः सरसि तस्मिंस्तु क्रममाणं महीपतिः।
दृष्ट्वा जग्राह कृपया शन्तनुर्मृगयां गतः॥ ११
एते शरद्वतः पुत्रा आख्याता गौतमा वराः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि दिवोदासस्य वै प्रजाः॥ १२

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! अजमीढकी नीलिनी नामकी पत्नीके गर्भसे राजा नीलका[1] जन्म हुआ। नीलकी उग्र तपस्याके परिणामस्वरूप सुशान्तिकी उत्पत्ति हुई। सुशान्तिसे पुरुजानुका और पुरुजानुसे पृथुका जन्म हुआ। पृथुका पुत्र भद्राश्व हुआ। अब भद्राश्वके पुत्रोंके विषयमें सुनिये—मुद्गल, जय, राजा बृहदिषु, पराक्रमी जवीनर और पाँचवाँ कपिल—ये पाँचों भद्राश्वके पुत्र थे। इन पाँचोंके द्वारा शासित जनपद पञ्चाल[2] नामसे प्रसिद्ध हुए। ये सभी पञ्चाल देशोंके रक्षक थे—ऐसा हमलोगोंने सुना है। मुद्गलके पुत्रगण, जो क्षत्रियांशसे युक्त द्विजाति थे, मौद्गल्य नामसे प्रसिद्ध हुए। ये कण्व और मुद्गलके गोत्रमें उत्पन्न होनेवाले द्विजाति अङ्गिराके पक्षमें सम्मिलित हो गये। महायशस्वी ब्रह्मिष्ठने मुद्गलके पुत्ररूपमें जन्म लिया। उसका पुत्र इन्द्रसेन और उसका पुत्र विन्ध्याश्व हुआ। विन्ध्याश्वके संयोगसे मेनकाके गर्भसे जुड़वाँ संतान उत्पन्न हुई थी—ऐसा सुना जाता है। उनमें एक तो राजर्षि दिवोदास थे और दूसरी यशस्विनी अहल्या थी। अहल्याने शरद्वान् गौतमके पुत्र ऋषिश्रेष्ठ शतानन्दको उत्पन्न किया था। शतानन्दका पुत्र महातपस्वी एवं धनुर्वेदका पारंगत विद्वान् सत्यधृति हुआ। धर्मात्मा सत्यधृतिका वीर्य अमोघ था। एक बार एक अप्सराको देखकर सत्यधृतिका वीर्य (सरोवरमें स्नान करते समय) जलमें स्खलित हो गया। उस वीर्यसे उस सरोवरमें जुड़वाँ संतान उत्पन्न हो गयी। वे उसी सरोवरमें पल रहे थे। एक बार महाराज शंतनु शिकारके लिये निकले हुए थे। वे उस सरोवरमें घूमते हुए उन बच्चोंको देखकर कृपा-परवश हो उन्हें उठा लाये। इस प्रकार मैंने शरद्वान्‌के उन पुत्रोंका जो गौतम (गोत्र) नामसे विख्यात हैं, वर्णन कर दिया। अब इसके आगे दिवोदासकी संततिका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये॥ १—१२॥

---

१. यह नील राजाकी चर्चा गत अध्यायके अन्तमें ७८ वें श्लोकमें भी है। ये उनसे भिन्न हैं।

२. यह रुहेलखण्ड है, जो दिल्लीसे पूर्व गङ्गाके उत्तर तथा दक्षिणमें चम्बल नदीके तटतक फैला है। ये दक्षिण और उत्तर पञ्चालके नामसे प्रसिद्ध हैं। उत्तर पञ्चालकी राजधानी अहिच्छत्र (रामनगर) तथा दक्षिण पञ्चालकी राजधानी कम्पिल और माकंद थी। (द्रष्टव्य- महाभारत आदि० १४०, उद्योग० १९३, गर्गसंहिता १३९ आदि) गौतमबुद्धके समय उत्तर पञ्चालकी राजधानी कन्नौज भी रहा। राइस् डेविड्स। 'Buddhist India'.

दिवोदासस्य दायादो धर्मिष्ठो मित्रयुर्नृपः।
मैत्रायणावरः सोऽथ मैत्रेयस्तु ततः स्मृतः॥ १३
एते वंश्या यतेः पक्षाः क्षत्रोपेतास्तु भार्गवाः।
राजा चैद्यवरो नाम मैत्रेयस्य सुतः स्मृतः॥ १४
अथ चैद्यवराद् विद्वान् सुदासस्तस्य चात्मजः।
अजमीढः पुनर्जातः क्षीणे वंशे तु सोमकः॥ १५
सोमकस्य सुतो जन्तुर्हते तस्मिञ्शतं बभौ।
पुत्राणामजमीढस्य सोमकस्य महात्मनः॥ १६
महिषी त्वजमीढस्य धूमिनी पुत्रवर्धिनी।
पुत्राभावे तपस्तेपे शतं वर्षाणि दुश्चरम्॥ १७
हुत्वाग्निं विधिवत् सम्यक् पवित्रीकृतभोजना।
अग्निहोत्रक्रमेणैव सा सुष्वाप महाव्रता॥ १८
तस्यां वै धूमवर्णायामजमीढः समीयिवान्।
ऋक्षं सा जनयामास धूमवर्णं शताग्रजम्॥ १९
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणात् ततः।
यः प्रयागमतिक्रम्य कुरुक्षेत्रमकल्पयत्॥ २०
कृष्यतस्तु महाराजो वर्षाणि सुबहून्यथ।
कृष्यमाणस्ततः शक्रो भयात् तस्मै वरं ददौ॥ २१
पुण्यं च रमणीयं च कुरुक्षेत्रं तु तत् स्मृतम्।
तस्यान्ववायः सुमहान् यस्य नाम्ना तु कौरवाः॥ २२
कुरोस्तु दयिताः पुत्राः सुधन्वा जह्नुरेव च।
परीक्षिच्च महातेजाः प्रजनश्चारिमर्दनः॥ २३
सुधन्वनस्तु दायादः पुत्रो मतिमतां वरः।
च्यवनस्तस्य पुत्रस्तु राजा धर्मार्थतत्त्ववित्॥ २४
च्यवनस्य कृमिः पुत्र ऋक्षाज्जज्ञे महातपाः।
कृमेः पुत्रो महावीर्यः ख्यातस्त्विन्द्रसमो विभुः॥ २५
चैद्योपरिचरो वीरो वसुर्नामान्तरिक्षगः।
चैद्योपरिचराज्जज्ञे गिरिका सप्त वै सुतान्॥ २६

दिवोदासका ज्येष्ठ पुत्र धर्मिष्ठ राजा मित्रयु हुआ। तत्पश्चात् उससे छोटे मैत्रायण और उसके बाद मैत्रेयकी उत्पत्ति हुई। ये सभी पुत्र (ययातिके भाई) यतिके पक्षके थे और क्षत्रियांशसे युक्त भार्गव (भृगुवंशी) कहलाते थे। राजा चैद्यवर मैत्रेयके पुत्र कहे जाते हैं। चैद्यवरसे विद्वान् सुदासका जन्म हुआ। वंशके नष्ट हो जानेपर पुनः अजमीढ सुदासके पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए। इन्हींका दूसरा नाम सोमक भी है। सोमकका पुत्र जन्तु हुआ। उसके मारे जानेपर महात्मा अजमीढ सोमकके सौ पुत्र हुए। अजमीढकी धूमिनी नामकी पत्नी थी, जो पुत्रोंकी वृद्धि करनेवाली थी। जन्तुके मारे जानेसे पुत्रका अभाव हो जानेपर वह सौ वर्षोंतक दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गयी। एक समय भलीभाँति पवित्र किये हुए पदार्थोंको ही भोजन करनेवाली महान् व्रतपरायणा धूमिनी अग्निहोत्रके क्रमसे विधिपूर्वक अग्निमें हवन करके नींदके वशीभूत हो गयी। निरन्तर अग्निहोत्र करनेके कारण उसके शरीरका रंग धूमिल पड़ गया था। उसी समय अजमीढने उसमें गर्भाधान किया। उस गर्भसे धूमिनीने ऋक्ष नामक पुत्रको जन्म दिया, जो अपने सौ भाइयोंमें ज्येष्ठ था तथा जिसके शरीरका रंग धूम-वर्णका था। ऋक्षसे संवरणकी और संवरणसे कुरुकी उत्पत्ति हुई, जिन्होंने प्रयागका अतिक्रमण कर कुरुक्षेत्रकी तीर्थरूपमें कल्पना की थी। महाराज कुरु अनेकों वर्षोंतक इस कुरुक्षेत्रको अपने हाथों जोतते रहे। उन्हें इस प्रकार जोतते देखकर इन्द्रने भयभीत हो उन्हें वर प्रदान किया। इसी कारण कुरुक्षेत्र पुण्यप्रद और रमणीय क्षेत्र कहा जाता है। उन महाराज कुरुका वंश अत्यन्त विशाल था, जो उन्हींके नामसे (आगे चलकर) कौरव कहलाया॥ १३—२२॥

कुरुके सुधन्वा, जह्नु, महातेजस्वी परीक्षित् और शत्रुविनाशक प्रजन—ये चार परम प्रिय पुत्र हुए। सुधन्वाका पुत्र राजा च्यवन हुआ, जो बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ एवं धर्म और अर्थके तत्त्वका ज्ञाता था। च्यवनका पुत्र कृमि हुआ, जो ऋक्षसे उत्पन्न हुआ था। (इन्हीं) कृमिके पुत्र महापराक्रमी चैद्योपरिचर वसु हुए। वे प्रभावशाली, शूरवीर, इन्द्रके समान विख्यात और (सदा विमानद्वारा) आकाशमें गमन करनेवाले थे। चैद्योपरिचरके संयोगसे गिरिकाने सात संतानोंको जन्म दिया।

महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः।
प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः॥ २७
पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः॥ २८
कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नाम वीर्यवान्।
वृषभस्य तु दायादः पुण्यवान् नाम पार्थिवः॥ २९
पुण्यः पुण्यवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः।
दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्च जज्ञिवान्॥ ३०
सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद् राजा बृहद्रथः।
द्वे तस्य शकले जाते जरया संधितश्च सः॥ ३१
जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततः स्मृतः।
जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासंधो महाबलः॥ ३२
जरासंधस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान्।
सहदेवात्मजः श्रीमान् सोमवित् स महातपाः॥ ३३
श्रुतश्रवास्तु सोमाद् वै मागधाः परिकीर्तिताः।

इनमें पहला महारथी मगधराज था, जो बृहद्रथ नामसे विख्यात हुआ। उसके बाद दूसरा प्रत्यश्रवा, तीसरा कुश, चौथा हरिवाहन, पाँचवाँ यजुष् और छठा मत्स्य नामसे प्रसिद्ध हुआ। सातवीं संतान काली नामकी कन्या थी। बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र नामसे विख्यात हुआ। कुशाग्रका पुत्र पराक्रमी वृषभ हुआ। वृषभका पुत्र राजा पुण्यवान् था। पुण्यवान्से पुण्य और उससे राजा सत्यधृतिका जन्म हुआ। उसका पुत्र धनुष हुआ और उससे सर्वकी उत्पत्ति हुई। सर्वका पुत्र सम्भव हुआ और उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ। बृहद्रथका पुत्र दो टुकड़ेके रूपमें उत्पन्न हुआ, जिन्हें जरानामकी राक्षसीने जोड़ दिया था। जराद्वारा जोड़ दिये जानेके कारण वह जरासंध नामसे विख्यात हुआ। महाबली जरासंध अपने समयके समस्त क्षत्रियोंका विजेता था। जरासंधका पुत्र प्रतापी सहदेव हुआ। सहदेवका पुत्र लक्ष्मीवान् एवं महातपस्वी सोमवित् हुआ। सोमवित्से श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई। (मगधपर शासन करनेके कारण) ये सभी नरेश मागध नामसे विख्यात हुए॥ २३—३३ $\frac{1}{2}$ ॥

जह्नुस्त्वजनयत् पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम्॥ ३४
सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः।
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृतः॥ ३५
सार्वभौमाज्जयत्सेनो रुचिरस्तस्य चात्मजः।
रुचिरस्य सुतो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत्॥ ३६
अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद् देवातिथिः स्मृतः।
देवातिथेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह॥ ३७
भीमसेनस्ततो दक्षाद् दिलीपस्तस्य चात्मजः।
दिलीपस्य प्रतीपस्तु तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः॥ ३८
देवापिः शंतनुश्चैव बाह्लीकश्चैव ते त्रयः।
बाह्लीकस्य तु दायादाः सप्त बाह्लीश्वरा नृपाः।
देवापिस्तु ह्यपध्यातः प्रजाभिरभवन्मुनिः॥ ३९

जह्नुने सुरथ नामक भूपालको पुत्ररूपमें जन्म दिया। सुरथका पुत्र वीरवर राजा विदूरथ हुआ। विदूरथका पुत्र सार्वभौम कहा गया है। सार्वभौमसे जयत्सेन उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र रुचिर हुआ। रुचिरसे भौमका और उससे त्वरितायुका जन्म हुआ। त्वरितायुका पुत्र अक्रोधन और उससे देवातिथिकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। देवातिथिका एकमात्र पुत्र दक्ष ही था। दक्षसे भीमसेनका जन्म हुआ और उसका पुत्र (पुरुवंशी) दिलीप तथा दिलीपका पुत्र प्रतीप हुआ। प्रतीपके तीन पुत्र कहे जाते हैं, ये तीनों देवापि, शंतनु और बाह्लीक हैं। बाह्लीकके सात पुत्र थे, जो सभी राजा थे और बाह्लीक (बल्ख) देशके अधीश्वर थे। देवापिको प्रजाओंने दोषी ठहरा दिया था; इसलिये वह राजपाट छोड़कर मुनि हो गया॥ ३४—३९॥

ऋषय ऊचुः

प्रजाभिस्तु किमर्थं वै ह्यपध्यातो जनेश्वरः।
को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभिः समुदाहृतः॥ ४०

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! प्रजाओंने राजा देवापिको किस कारण दोषी ठहराया था? तथा प्रजाओंने उस राजकुमारका कौन-सा दोष प्रकट किया था?॥ ४०॥

सूत उवाच

किलासीद् राजपुत्रस्तु कुष्ठी तं नाभ्यपूजयन्।
भविष्यं कीर्तयिष्यामि शंतनोस्तु निबोधत॥ ४१

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! राजकुमार देवापि कुष्ठ-रोगी था, इसीलिये प्रजाओंने उसका आदर-सत्कार नहीं किया। अब मैं शंतनुके भविष्यका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये।

शंतनुस्त्वभवद् राजा विद्वान् स वै महाभिषक्।
इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम्॥ ४२
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च।
पुनर्युवा स भवति तस्मात् तं शंतनुं विदुः॥ ४३
तत् तस्य शंतनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते।
ततोऽवृणुत भार्यार्थं शंतनुर्जाह्नवीं नृपः॥ ४४
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः।
काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयी जनयत् सुतम्॥ ४५
शंतनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम्।
कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके॥ ४६
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्।
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयच्छतम्॥ ४७
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः।
माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः॥ ४८
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे।
धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः॥ ४९
इन्द्राद् धनञ्जयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः।
नकुलं सहदेवं च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत्॥ ५०
पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः।
द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात्॥ ५१
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिं धनञ्जयात्।
चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत॥ ५२
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः।
तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाः षडेवान्ये महारथाः॥ ५३
हैडम्बो भीमसेनात् तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः।
काशी बलधराद् भीमाज्जज्ञे वै सर्वगं सुतम्॥ ५४
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत।
करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः॥ ५५

(देवापिके वन चले जानेपर) शंतनु राजा हुए। ये विद्वान् तो थे ही, साथ ही महान् वैद्य भी थे। इनकी महावैद्यताके प्रति लोग एक श्लोक कहा करते हैं, जिसका आशय यह है कि 'महाराज शंतनु जिस-जिस रोगी अथवा वृद्धको अपने हाथोंसे स्पर्श कर लेते थे, वह पुनः नौजवान हो जाता था। इसी कारण लोग उन्हें शंतनु कहते थे।' उस समय प्रजागण उनके इस शंतनुत्व (रोगी और वृद्धको युवा बना देनेवाले) गुणका ही वर्णन करते थे। तदनन्तर प्रभावशाली राजा शंतनुने जह्नु-नन्दिनी गङ्गाको अपनी पत्नीके रूपमें वरण किया और उनके गर्भसे देवव्रत (भीष्म) नामक कुमारको पैदा किया। दाश-कन्या काली सत्यवतीने शंतनुके संयोगसे विचित्रवीर्य नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पिताके लिये परम प्रिय, शान्तात्मा और निष्पाप था। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा (दासीसे) विदुरको उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया, उनमें दुर्योधन सबसे श्रेष्ठ था और वह सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशका स्वामी था। इसी प्रकार पाण्डुकी कुन्ती और माद्री नामकी दो पत्नियाँ हुईं। इन्हीं दोनोंके गर्भसे महाराज पाण्डुकी वंश-वृद्धिके लिये देवताओंद्वारा प्रदान किये गये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्तीने धर्मके संयोगसे युधिष्ठिरको, वायुके संयोगसे वृकोदर (भीमसेन)-को और इन्द्रके संयोगसे इन्द्रसरीखे पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन)-को जन्म दिया। इसी प्रकार माद्रीने अश्विनीकुमारोंके संयोगसे नकुल और सहदेवको पैदा किया॥ ४१—५०॥

इन पाँचों पाण्डवोंके संयोगसे द्रौपदीके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें द्रौपदीने युधिष्ठिरके संयोगसे ज्येष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्यको, भीमसेनके संयोगसे श्रुतसेनको और अर्जुनके संयोगसे श्रुतकीर्तिको जन्म दिया था। चौथा पुत्र श्रुतकर्मा सहदेवसे और शतानीक नकुलसे उत्पन्न किया था। ये पाँचों द्रौपदेय अर्थात् द्रौपदीके पुत्र कहलाये। इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके छः अन्य महारथी पुत्र भी थे। (उनका विवरण इस प्रकार है—) भीमसेनके संयोगसे हिडिम्बा नामकी राक्षसीके गर्भसे घटोत्कच नामक पुत्रका जन्म हुआ था। उनकी दूसरी पत्नी काशीने बलवान् भीमसेनके संयोगसे सर्वग नामक पुत्रको जन्म दिया था। मद्रराज-कुमारी सहदेव-पत्नीने सहदेवके संयोगसे सुहोत्र नामक पुत्रको पैदा किया था। नकुल-पुत्र निरमित्र चेदिराज-कुमारी करेणुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था।

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत।
यौधेयं देवकी चैव पुत्रं जज्ञे युधिष्ठिरात्॥ ५६
अभिमन्योः परीक्षित् तु पुत्रः परपुरञ्जयः।
जनमेजयः परीक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः॥ ५७

पृथा-पुत्र अर्जुनके संयोगसे सुभद्राके गर्भसे महारथी अभिमन्यु पैदा हुआ था। युधिष्ठिर-पत्नी देवकीने युधिष्ठिरके संयोगसे यौधेय नामक पुत्रको जन्म दिया था। अभिमन्युके पुत्र शत्रुओंकी नगरीको जीतनेवाले परीक्षित् हुए। परीक्षित्के पुत्र परम धर्मात्मा जनमेजय (तृतीय) हुए॥ ५१—५७॥

ब्रह्माणं कल्पयामास स वै वाजसनेयकम्।
स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा॥ ५८
न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद् वचनं भुवि।
यावत् स्थास्यसि त्वं लोके तावदेव प्रपत्स्यति॥ ५९
क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः।
अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपं च जनमेजयम्॥ ६०
ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः।
उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः॥ ६१
क्षत्रस्य याजिनः केचिच्छापात् तस्य महात्मनः।
पौर्णमासेन हविषा इष्ट्वा तस्मिन् प्रजापतिम्।
स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्ततः॥ ६२
परीक्षितः सुतोऽसौ वै पौरवो जनमेजयः।
द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः॥ ६३
प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम्।
विवादे ब्राह्मणैः सार्धमभिशप्तो वनं ययौ॥ ६४
जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्।
जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान्॥ ६५
अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्य वीर्यवान्।
जज्ञेऽधिसीमकृष्णाख्यः साम्प्रतं यो महायशाः॥ ६६
तस्मिन्प्रशासति राष्ट्रं तु युष्माभिरिदमाहृतम्।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥ ६७

जनमेजयने अपने यज्ञमें वाजसनेय (शुक्लयजुर्वेदके आचार्य) ऋषिको ब्रह्माके पदपर नियुक्त किया। यह देखकर वैशम्पायन (कृष्णयजुर्वेदके आचार्य)-ने उन्हें शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे! तुम्हारा यह (नवीन) वचन अर्थात् (संहिता-ग्रन्थ) भूतलपर स्थायी नहीं हो सकेगा। जबतक तुम लोकमें जीवित रहोगे, तभीतक यह भी ठहर सकेगा।' तभीसे क्षत्रियजातिकी विजय जानकर बहुत-से लोग चारों ओरसे (शुक्लयजुर्वेदके प्रवर्धक) राजा जनमेजयके पास आकर रहने लगे। परंतु महात्मा वैशम्पायनके शापके कारण उस यज्ञमें बहुत-से यज्ञानुष्ठान करनेवाले क्षत्रिय तथा कुछ याजक भी नष्ट हो गये। तब उस यज्ञमें जब जनमेजय पौर्णमास हविद्वारा ब्रह्माका यजन कर यज्ञशालामें प्रवेश करनेके लिये प्रयत्नशील हुए, उसी समय महर्षि वैशम्पायनने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया। तदनन्तर परीक्षित्पुत्र पूरुवंशी जनमेजयने दो अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उनमें उन्होंने अपने द्वारा प्रवर्तित महावाजसनेय (शौक्लयाजुष) विधिका ही प्रयोग किया। वह सारा कार्य वाजसनेय ऋषिकी अध्यक्षतामें ही सम्पन्न हो रहा था। उसी समय ब्राह्मणोंके साथ विवाद हो जानेपर ब्राह्मणोंने उन्हें शाप दे दिया, जिससे वे वनमें चले गये।* उन जनमेजयसे पराक्रमी शतानीकका जन्म हुआ। जनमेजयने (वन-गमन करते समय) अपने पुत्र शतानीकको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया था। शतानीकद्वारा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किये जानेपर उसके फलस्वरूप शतानीकके एक महायशस्वी एवं पराक्रमी अधिसीमकृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस (पुराणप्रवचनके) समय सिंहासनासीन है। द्विजवरो! उसीके राज्यशासन करते समय आपलोगोंने अभी-अभी पुष्करक्षेत्रमें तीन वर्षोंतक तथा कुरुक्षेत्रमें दृषद्वतीके तटपर दो वर्षोंतक इस दुर्लभ दीर्घ सत्रका अनुष्ठान सम्पन्न किया है॥ ५८—६७॥

ऋषय ऊचुः

भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे।
पुरा किल यदेतद् वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया॥ ६८

ऋषियोंने पूछा—लोमहर्षणके पुत्र सूतजी! पूर्वकालमें जो बातें बीत चुकी हैं, उनका वर्णन तो आपने कर दिया। अब हमलोग प्रजाओंके भविष्यके विषयमें सुनना चाहते हैं।

* द्रष्टव्य हरिवंशपु०, भविष्यपु०, अ० ५।

येषु वै स्थास्यते क्षत्रमुत्पत्स्यन्ते नृपाश्च ये।
तेषामायु:प्रमाणं च नामतश्चैव तान् नृपान्॥ ६९
कृतयुगप्रमाणं च त्रेताद्वापरयोस्तथा।
कलियुगप्रमाणं च युगदोषं युगक्षयम्॥ ७०
सुखदु:खप्रमाणं च प्रजादोषं युगस्य तु।
एतत् सर्वं प्रसंख्याय पृच्छतां ब्रूहि न: प्रभो॥ ७१

सूत उवाच

यथा मे कीर्तितं पूर्वं व्यासेनाक्लिष्टकर्मणा।
भाव्यं कलियुगं चैव तथा मन्वन्तराणि च॥ ७२
अनागतानि सर्वाणि ब्रुवतो मे निबोधत।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि भविष्या ये नृपास्तथा॥ ७३
ऐडेक्ष्वाक्वान्वये चैव पौरवे चान्वये तथा।
येषु संस्थास्यते तच्च ऐडेक्ष्वाकुकुलं शुभम्।
तान् सर्वान् कीर्तयिष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्॥ ७४
तेभ्योऽपरेऽपि ये त्वन्ये ह्युत्पत्स्यन्ते नृपा: पुन:।
क्षत्रा: पारशवा: शूद्रास्तथान्ये ये बहिश्चरा:॥ ७५
अन्धा: शका: पुलिन्दाश्च चूलिका यवनास्तथा।
कैवर्ताभीरशबरा ये चान्ये म्लेच्छसम्भवा:।
पर्यायत: प्रवक्ष्यामि नामतश्चैव तान् नृपान्॥ ७६
अधिसीमकृष्णश्चैतेषां प्रथमं वर्तते नृप:।
तस्यान्ववाये वक्ष्यामि भविष्ये कथितान् नृपान्॥ ७७
अधिसीमकृष्णपुत्रस्तु विवक्षुर्भविता नृप:।
गङ्गया तु हृते तस्मिन् नगरे नागसाह्वये॥ ७८
त्यक्त्वा विवक्षुर्नगरं कौशाम्ब्यां तु निवत्स्यति।
भविष्याष्टौ सुतास्तस्य महाबलपराक्रमा:॥ ७९
भूरिर्ज्येष्ठ: सुतस्तस्य तस्य चित्ररथ: स्मृत:।
शुचिद्रवश्चित्ररथाद् वृष्णिमांश्च शुचिद्रवात्॥ ८०
वृष्णिमत: सुषेणश्च भविष्यति शुचिर्नृप:।
तस्मात् सुषेणाद् भविता सुनीथो नाम पार्थिव:॥ ८१
नृपात् सुनीथाद् भविता नृचक्षु: सुमहायशा:।
नृचक्षुषस्तु दायादो भविता वै सुखीबल:॥ ८२
सुखीबलसुतश्चापि भावी राजा परिष्णव:।
परिष्णवसुतश्चापि भविता सुतपा नृप:॥ ८३
मेधावी तस्य दायादो भविष्यति न संशय:।
मेधाविन: सुतश्चापि भविष्यति पुरञ्जय:॥ ८४

यह क्षत्रिय-जाति जिन-जिन वंशोंमें स्थित रहेगी और उनमें जो-जो नरेश उत्पन्न होंगे, उनके क्या नाम होंगे तथा उनकी आयुका प्रमाण कितना होगा? कृतयुग, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग— इन चारों युगोंकी कितनी-कितनी अवधि होगी? प्रत्येक युगमें क्या-क्या दोष होंगे? तथा उन युगोंका विनाश कैसे होगा? सुख और दु:खका प्रमाण क्या होगा? तथा प्रत्येक युगकी प्रजाओंमें क्या-क्या दोष उत्पन्न होंगे? प्रभो! यह सब क्रमश: हमें बतलाइये; क्योंकि हमलोग इसे जानना चाहते हैं॥ ६८—७१॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें अक्लिष्टकर्मा व्यासजीने मुझसे भावी कलियुग तथा आनेवाले सभी मन्वन्तरोंके विषयमें जैसा वर्णन किया था, वही मैं आपलोगोंको बतला रहा हूँ; सुनिये। इसके बाद अब मैं उन्हीं राजाओंका वर्णन करने जा रहा हूँ, जो भविष्यमें ऐड (ऐल) और इक्ष्वाकुके वंशमें तथा पौरववंशमें उत्पन्न होनेवाले हैं। जिन राजाओंमें ये मङ्गलमय ऐड और इक्ष्वाकुवंश स्थित रहेंगे, भविष्यमें होनेवाले उन सभी तथाकथित नरेशोंका मैं वर्णन करूँगा। इनके अतिरिक्त भी जो अन्य नृपतिगण क्षत्रिय, पारशव, शूद्र, बहिश्चर, अंध, शक, पुलिन्द, चूलिक, यवन, कैवर्त, आभीर और शबर जातियोंमें उत्पन्न होंगे तथा दूसरे जो म्लेच्छ-जातियोंमें पैदा होंगे, उन सभी नरेशोंका पर्याय क्रमसे नामनिर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ। इन सबमें सर्वप्रथम राजा अधिसीमकृष्ण हैं, जो सम्प्रति वर्तमान हैं। इनके वंशमें भविष्यमें उत्पन्न होनेवाले राजाओंका वर्णन कर रहा हूँ। अधिसीमकृष्णका पुत्र राजा विवक्षु होगा। गङ्गाद्वारा हस्तिनापुर नगरके डुबो (बहा) दिये जानेपर विवक्षु उस नगरका परित्याग कर कौशाम्बी नगरीमें निवास करेगा। उसके महान् बलपराक्रमसे सम्पन्न आठ पुत्र होंगे। उसका ज्येष्ठ पुत्र भूरि होगा और उसका पुत्र चित्ररथ नामसे विख्यात होगा। चित्ररथसे शुचिद्रव, शुचिद्रवसे वृष्णिमान् और वृष्णिमान्से परम पवित्र राजा सुषेण उत्पन्न होगा। उस सुषेणसे सुनीथ नामका राजा होगा। राजा सुनीथसे महायशस्वी नृचक्षुकी उत्पत्ति होगी। नृचक्षुका पुत्र सुखीबल होगा। सुखीबलका पुत्र भावी राजा परिष्णव और परिष्णवका पुत्र राजा सुतपा होगा। उसका पुत्र निस्संदेह मेधावी होगा। मेधावीका पुत्र पुरञ्जय होगा।

उर्वो भाव्यः सुतस्तस्य तिग्मात्मा तस्य चात्मजः।
तिग्माद् बृहद्रथो भाव्यो वसुदामा बृहद्रथात्॥ ८५
वसुदाम्नः शतानीको भविष्योदयनस्ततः।
भविष्यते चोदयनाद् वीरो राजा वहीनरः॥ ८६
वहीनरात्मजश्चैव दण्डपाणिर्भविष्यति।
दण्डपाणेर्निरमित्रो निरमित्रात्तु क्षेमकः॥ ८७
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं गीतो विप्रैः पुरातनैः।
ब्रह्मक्षत्रस्य यो योनिर्वंशो देवर्षिसत्कृतः।
क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थास्यति कलौ युगे॥ ८८
इत्येष पौरवो वंशो यथावदिह कीर्तितः।
धीमतः पाण्डुपुत्रस्य चार्जुनस्य महात्मनः॥ ८९

उसका भावी पुत्र उर्व और उसका पुत्र तिग्मात्मा होगा। तिग्मात्मासे बृहद्रथ और बृहद्रथसे वसुदामाका जन्म होगा। वसुदामासे शतानीक और उससे उदयनकी उत्पत्ति होगी। उदयनसे वीरवर राजा वहीनर उत्पन्न होगा। वहीनरका पुत्र दण्डपाणि होगा। दण्डपाणिसे निरमित्र और निरमित्रसे क्षेमकका जन्म होगा। इस वंशपरम्पराके विषयमें प्राचीनकालिक विप्रोंद्वारा एक श्लोक गाया गया है, जिसका आशय यह है कि 'ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी योनिस्वरूप यह वंश, जो देवर्षियोंद्वारा सत्कृत है, कलियुगमें राजा क्षेमकको प्राप्त कर समाप्त हो जायगा।' इस प्रकार पुरु-वंशका तथा पाण्डुपुत्र परम बुद्धिमान् महात्मा अर्जुनके वंशका वर्णन मैंने यथार्थरूपसे कर दिया॥ ७२—८९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सोमवंशे पुरुवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सोमवंश-वर्णन-प्रसङ्गमें पूरुवंशानुकीर्तन नामक पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५०॥

इक्यावनवाँ अध्याय

अग्नि-वंशका वर्णन तथा उनके भेदोपभेदका कथन

ऋषय ऊचुः

ये पूज्याः स्युर्द्विजातीनामग्नयः सूत सर्वदा।
तानिदानीं समाचक्ष्व तद्वंशं चानुपूर्वशः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! जो अग्नि द्विजातियोंके लिये सदा परम पूज्य माने गये हैं, अब उनका तथा उनके वंशका आनुपूर्वी वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

योऽसावग्निरभीमानी स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तरे।
ब्रह्मणो मानसः पुत्रस्तस्मात् स्वाहा व्यजायती॥ २
पावकं पवमानं च शुचिरग्निश्च यः स्मृतः।
निर्मथ्यः पवमानोऽग्निर्वैद्युतः पावकात्मजः॥* ३
शुचिरग्निः स्मृतः सौरः स्थावराश्चैव ते स्मृताः।
पवमानात्मजो ह्यग्निः कव्यवाहन उच्यते॥ ४
पावकिः सहरक्षस्तु हव्यवाहः शुचेः सुतः।
देवानां हव्यवाहोऽग्निः पितॄणां कव्यवाहनः॥ ५
सहरक्षोऽसुराणां तु त्रयाणां ते त्रयोऽग्नयः।
एतेषां पुत्रपौत्राश्च चत्वारिंशन्नवैव च॥ ६

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें जो ये अग्निके अभिमानी देवता कहे गये हैं, वे ब्रह्माके मानस पुत्र हैं। स्वाहाने उनके संयोगसे पावक (दक्षिणाग्नि), पवमान (गार्हपत्य) और शुचि (आहवनीय) नामक तीन पुत्रोंको जन्म दिया, जो अग्नि भी कहलाते हैं। उनमेंसे पावकको वैद्युत (जलबिजलीसे उत्पन्न), पवमानको निर्मथ्य (निर्मन्थन करनेपर उत्पन्न) और शुचिको सौर (सूर्यके सम्बन्धसे उत्पन्न) अग्नि कहा जाता है। ये सभी अग्नि स्थावर (स्थिर स्वभाववाले) माने गये हैं। पवमानके पुत्र जो अग्नि हुए, उन्हें कव्यवाहन कहा जाता है। पावकके पुत्र सहरक्ष और शुचिके पुत्र हव्यवाहन हुए। देवताओंके अग्नि हव्यवाह हैं, जो ब्रह्माके प्रथम पुत्र हैं। सहरक्ष असुरोंके अग्नि हैं तथा पितरोंके अग्नि कव्यवाहन हैं। इस प्रकार ये तीनों देव-असुर-पितर—इन तीनोंके पृथक्-पृथक् अग्नि हैं। इनके पुत्र-पौत्रोंकी संख्या उनचास है।

*'अब्योनिर्वैद्युतः स्मृतः' इति पाठान्तरम्।

प्रवक्ष्ये नामतस्तान् वै प्रविभागेन तान् पृथक्।
पावनो लौकिको ह्यग्निः प्रथमो ब्रह्मणश्च यः॥ ७

ब्रह्मौदनाग्निस्तत्पुत्रो भरतो नाम विश्रुतः।
वैश्वानरः सुतस्तस्य वहन् हव्यं समाः शतम्॥ ८

सम्भृतोऽथर्वणः पुत्रो मथितः पुष्करादधि।
सोऽथर्वा लौकिको ह्यग्निर्दध्यङ्ङाथर्वणःसुतः॥ ९

भृगोः प्रजायताथर्वा दध्यङ्ङाथर्वणः स्मृतः।
तस्य ह्यलौकिको ह्यग्निर्दक्षिणाग्निः स वै स्मृतः॥ १०

अथ यः पवमानस्तु निर्मथ्योऽग्निः स उच्यते।
स च वै गार्हपत्योऽग्निः प्रथमो ब्रह्मणः स्मृतः॥ ११

ततः सभ्यावसथ्यौ च संशत्यास्तौ सुतावुभौ।
ततः षोडश नद्यस्तु चकमे हव्यवाहनः।
यः खल्वाहवनीयोऽग्निरभिमानी द्विजैः स्मृतः॥ १२

कावेरीं कृष्णवेणां च नर्मदां यमुनां तथा।
गोदावरीं वितस्तां च चन्द्रभागामिरावतीम्॥ १३

विपाशां कौशिकीं चैव शतद्रुं सरयूं तथा।
सीतां मनस्विनीं चैव ह्लादिनीं पावनां तथा॥ १४

तासु षोडशधाऽऽत्मानं प्रविभज्य पृथक् पृथक्।
तदा तु विहरंस्तासु धिष्ण्येच्छः स बभूव ह॥ १५

स्वाभिधानस्थिता धिष्ण्यास्तासूत्पन्नाश्च धिष्णवः।
धिष्ण्येषु जज्ञिरे यस्मात् ततस्ते धिष्णवः स्मृताः॥ १६

इत्येते वै नदीपुत्रा धिष्ण्येषु प्रतिपेदिरे।
तेषां विहरणीया ये उपस्थेयाश्च ताञ्शृणु।
विभुः प्रवाहणोऽग्नीध्रस्तत्रस्था धिष्णवोऽपरे॥ १७

विहरन्ति यथास्थानं पुण्याहे समुपक्रमे।
अनिर्देश्यानिवार्याणामग्नीनां शृणुत क्रमम्॥ १८

वासवोऽग्निः कृशानुर्यो द्वितीयोत्तरवेदिकः।
सम्राडग्निसुतो ह्यष्टावुपतिष्ठन्ति तान् द्विजाः॥ १९

उनको मैं विभागपूर्वक पृथक्-पृथक् नामनिर्देशानुसार बतला रहा हूँ। सर्वप्रथम पावन नामक लौकिक अग्निदेव हुए, जो ब्रह्माके पुत्र हैं। उनके पुत्र ब्रह्मौदनाग्नि हुए, जो भरत नामसे भी विख्यात हैं। वैश्वानर नामक अग्नि सौ वर्षोंतक हव्यको वहन करते रहे। पुष्कर (या आकाश)-का मन्थन करनेपर अथर्वाके पुत्ररूपमें जो अग्नि उत्पन्न हुए, वे दध्यङ्ङथर्वणके नामसे प्रसिद्ध हुए। उन्हींको दक्षिणाग्नि भी कहा जाता है। भृगुसे अथर्वाकी और अथर्वासे अङ्गिराकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। उनसे अलौकिक अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिसे दक्षिणाग्नि भी कहते हैं॥ २—१०॥

हम पहले कह चुके हैं कि जो पवमान अग्नि हैं, वे ही निर्मथ्य नामसे भी कहे जाते हैं। वे ही ब्रह्माके प्रथम पुत्र गार्हपत्य* अग्नि हैं। फिर संशतिसे सभ्य और आवसथ्य—इन दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। तदनन्तर आहवनीय नामक अग्निने जिन्हें ब्राह्मणोंने अग्निके अभिमानी देवता नामसे अभिहित किया है, अपनेको सोलह भागोंमें विभक्त कर कावेरी, कृष्णवेणा, नर्मदा, यमुना, गोदावरी, वितस्ता (झेलम), चन्द्रभागा, इरावती, विपाशा, कौशिकी (कोसी), शतद्रु (सतलज), सरयू, सीता, मनस्विनी, ह्लादिनी तथा पावना—इन सोलह नदियोंके साथ पृथक्-पृथक् विहार किया। उनके साथ विहार करते समय अग्निको स्थान-प्राप्तिकी इच्छा उत्पन्न हो गयी थी, इसलिये उन नदियोंके गर्भसे उत्पन्न हुए पुत्र उस इच्छाके अनुसार धिष्णु (या धिष्ण्य) कहलाये। चूँकि वे यज्ञिय अग्निके स्थापनयोग्य स्थानपर पैदा हुए थे, इसलिये धिष्णु नामसे कहे जाने लगे। इस प्रकार ये सभी नदीपुत्र धिष्ण्य (यज्ञिय अग्निके स्थापनयोग्य स्थान)-में उत्पन्न हुए थे। अब इनके विहार एवं उपासनायोग्य स्थानका वर्णन कर रहा हूँ, उन्हें सुनिये। यज्ञादि पुण्य अवसरके उपस्थित होनेपर विभु, प्रवाहण, आग्नीध्र आदि अन्यान्य धिष्णु वहाँ उपस्थित होकर यथास्थान विचरते रहते हैं। अब अनिर्देश्य और अनिवार्य अग्नियोंके क्रमको सुनिये। वासव नामक अग्नि, जिसे कृशानु भी कहते हैं, यज्ञकी दूसरी वेदीके उत्तर भागमें स्थित होते हैं। उन्हीं अग्निका एक नाम सम्राट् भी है। इन अग्निके आठ पुत्र हैं, जिनकी विप्रगण उपासना करते हैं।

* इन अग्नियोंकी वैदिक २१ यज्ञसंस्थाओंमें बड़ी प्रतिष्ठा है। इनका विस्तृत विवरण आश्वलायनादि (२। १-२) श्रौतसूत्रों, कौशिकसूत्र, महाभारत, ब्रह्माण्डपुराणादिमें है। वासुदेवशरण अग्रवालने 'Matsya Puran A Study' में, अनेक कर्मोंमें अग्निनाम संग्रहमें विधानपारिजातकारने तथा 'यज्ञमीमांसा' ग्रन्थमें वेणीराम शर्माने बहुत श्रम किया है।

पर्जन्यः पवमानस्तु द्वितीयः सोऽनुदृश्यते।
पावकोष्णः समूह्यस्तु वोत्तरे सोऽग्निरुच्यते॥ २०

हव्यसूदो ह्यसम्मृज्यः शामित्रः स विभाव्यते।
शतधामा सुधाज्योती रौद्रैश्वर्यः स उच्यते॥ २१

ब्रह्मज्योतिर्वसुधामा ब्रह्मस्थानीय उच्यते।
अजैकपादुपस्थेयः स वै शालामुखो यतः॥ २२

अनिर्देश्यो ह्यहिर्बुध्न्यो बहिरन्ते तु दक्षिणे।
पुत्रा ह्येते वासवस्य उपस्थेया द्विजैः स्मृताः॥ २३

पवमान नामक जो द्वितीय अग्नि हैं, वे पर्जन्यके रूपमें देखे जाते हैं और उत्तर दिशामें स्थित पावक नामक अग्निको समूह्य अग्नि कहा जाता है। असम्मृज्य हव्यसूद अग्निको शामित्र कहा जाता है। शतधामा अग्नि सुधाज्योति हैं, इन्हें रौद्रैश्वर्य नामसे अभिहित किया जाता है। ब्रह्मज्योति अग्निको वसुधाम और ब्रह्मस्थानीय भी कहते हैं। अजैकपाद् उपासनीय अग्नि हैं, इन्हें शालामुख भी कहा जाता है। अहिर्बुध्न्य अनिर्देश्य अग्नि हैं, ये वेदीकी दक्षिण दिशामें परिधिके अन्तमें स्थित होते हैं। वासव नामक अग्निके ये आठों पुत्र ब्राह्मणोंद्वारा उपासनीय बतलाये गये हैं॥ ११—२३॥

ततो विहरणीयांस्तु वक्ष्याम्यष्टौ तु तान् सुतान्।
होत्रियस्य सुतो ह्यग्निर्बर्हिषो हव्यवाहनः॥ २४

प्रशंस्योऽग्निः प्रचेतास्तु द्वितीयः संसहायकः।
सुतो ह्यग्नेर्विश्ववेदा ब्राह्मणाच्छंसिरुच्यते॥ २५

अपां योनिः स्मृतः स्वाम्भः सेतुर्नाम विभाव्यते।
धिष्ण्य आहरणा ह्येते सोमेनेज्यन्त वै द्विजैः॥ २६

ततो यः पावको नाम्ना यः सद्भिर्योग उच्यते।
अग्निः सोऽवभृथो ज्ञेयो वरुणेन सहेज्यते॥ २७

हृदयस्य सुतो ह्यग्नेर्जठरेऽसौ नृणां पचन्।
मन्युमाञ्जठरश्चाग्निर्विद्धाग्निः सततं स्मृतः॥ २८

परस्परोत्थितो ह्यग्निर्भूतानीह विभुर्दहन्।
अग्नेर्मन्युमतः पुत्रो घोरः संवर्तकः स्मृतः॥ २९

पिबन्नपः स वसति समुद्रे वडवामुखे।
समुद्रवासिनः पुत्रः सहरक्षो विभाव्यते॥ ३०

सहरक्षस्तु वै कामान् गृहे स वसते नृणाम्।
क्रव्यादग्निः सुतस्तस्य पुरुषान् योऽत्ति वै मृतान्॥ ३१

इत्येते पावकस्याग्नेर्द्विजैः पुत्राः प्रकीर्तिताः।
ततः सुतास्तु सौवीर्याद् गन्धर्वैरसुरैर्हृताः॥ ३२

मथितो यस्त्वरण्यां तु सोऽग्निराप समिन्धनम्।
आयुर्नाम्ना तु भगवान् पशौ यस्तु प्रणीयते॥ ३३

आयुषो महिमान् पुत्रो दहनस्तु ततः सुतः।
पाकयज्ञेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः॥ ३४

अब मैं उन आठ विहरणीय अग्निपुत्रोंका वर्णन कर रहा हूँ। बर्हिष् नामक होत्रिय अग्निके पुत्र हव्यवाहन अग्नि हैं। इसके पश्चात् प्रचेता नामक प्रशंसनीय अग्निकी उत्पत्ति हुई, जिनका दूसरा नाम संसहायक है। पुनः अग्निपुत्र विश्ववेदा हुए, जिन्हें ब्राह्मणाच्छंसि[1] भी कहा जाता है। जलसे उत्पन्न होनेवाले प्रसिद्ध स्वाम्भ अग्नि सेतु नामसे भी अभिहित होते हैं। इन धिष्ण्यसंज्ञक अग्नियोंका यज्ञमें यथास्थान आवाहन होता है और ब्राह्मणलोग सोम-रसद्वारा इनकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् जो पावक नामक अग्नि हैं, जिन्हें सत्पुरुषगण योग नामसे पुकारते हैं, उन्हींको अवभृथ अग्नि[2] समझना चाहिये। उनकी वरुणके साथ पूजा होती है। हृदय नामक अग्निके पुत्र मन्युमान् हैं, जिन्हें जठराग्नि भी कहते हैं। ये मनुष्योंके उदरमें स्थित रहकर भक्षित पदार्थोंको पचाते हैं। परस्परके संघर्षसे उत्पन्न हुए प्रभावशाली अग्निको, जो जगत्में निरन्तर प्राणियोंको जलाते रहते हैं, विद्धाग्नि कहते हैं। मन्युमान् अग्निके पुत्र संवर्तक हैं जो अत्यन्त भयंकर बताये जाते हैं। वे समुद्रमें बडवामुखद्वारा निरन्तर जलपान करते हुए निवास करते हैं। समुद्रवासी संवर्तक अग्निके पुत्र सहरक्ष बतलाये जाते हैं। सहरक्ष मनुष्योंके घरोंमें निवास करते हैं और उनकी सभी कामनाओंको सम्पन्न करते रहते हैं। सहरक्षके पुत्र क्रव्यादग्नि हैं, जो मरे हुए पुरुषोंका भक्षण करते हैं। इस प्रकार ये सभी ब्राह्मणोंद्वारा पावक नामक अग्निके पुत्र बतलाये गये हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य पुत्र हैं, उन्हें सौवीर्यसे गन्धर्वों और असुरोंने हरण कर लिया था। अरणीमें मन्थन करनेसे जो अग्नि उत्पन्न होता है, वह तो इन्धनके आश्रित रहता है। पृथु-योनिके लिये जिन अग्निकी नियुक्ति हुई है, उन ऐश्वर्यशाली अग्निका नाम आयु है। आयुके पुत्र महिमान् और उनके पुत्र दहन हैं, जो पाकयज्ञोंके अभिमानी देवता हैं। वे ही उन यज्ञोंमें हवन किये गये हविको खाते हैं।

१. यह अग्निष्टोमके १६ ऋत्विजोंमेंसे भी एक होता है, जिसका इस अग्निपरिचर्यासे विशेष सम्बन्ध होता है।
२. यज्ञान्तहवन एवं अवभृथ स्नानके समय इसका उपयोग होता है।

सर्वस्माद् देवलोकाच्च हव्यं कव्यं भुनक्ति यः।
पुत्रोऽस्य स हितो ह्यग्निरद्भुतः स महायशाः॥ ३५
प्रायश्चित्तेष्वभीमानी हुतं हव्यं भुनक्ति यः।
अद्भुतस्य सुतो वीरो देवांशस्तु महान् स्मृतः॥ ३६
विविधाग्निस्ततस्तस्य तस्य पुत्रो महाकविः।
विविधाग्निसुतादर्कादग्नयोऽष्टौ सुताः स्मृताः॥ ३७
काम्यास्विष्टिष्वभीमानी रक्षोहा यतिकृच्च यः।
सुरभिर्वसुमान् नादो ह्यर्यश्वश्चैव रुक्मवान्॥ ३८
प्रवर्ग्यः क्षेमवांश्चैव इत्यष्टौ च प्रकीर्तिताः।
शुच्यग्नेस्तु प्रजा ह्येषा अग्नयश्च चतुर्दश॥ ३९
इत्येते ह्यग्नयः प्रोक्ताः प्रणीता ये हि चाध्वरे।
समतीते तु सर्गे ये यामैः सह सुरोत्तमैः॥ ४०
स्वायम्भुवेऽन्तरे पूर्वमग्नयस्तेऽभिमानिनः।
एते विहरणीयेषु चेतनाचेतनेष्विह॥ ४१
स्थानाभिमानिनोऽग्नीध्राः प्रागासन् हव्यवाहनाः।
काम्यनैमित्तिकाद्यास्ते ये ते कर्मस्ववस्थिताः॥ ४२
पूर्वे मन्वन्तरेऽतीते शुक्रैर्यामैश्च तैः सह।
एते देवगणैः सार्धं प्रथमस्यान्तरे मनोः॥ ४३
इत्येता योनयो ह्युक्ताः स्थानाख्या जातवेदसाम्।
स्वारोचिषादिषु ज्ञेयाः सवर्णान्तेषु सप्तसु॥ ४४
तैरेवं तु प्रसंख्यातं साम्प्रतानागतेष्विह।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु लक्षणं जातवेदसाम्॥ ४५
मन्वन्तरेषु सर्वेषु नानारूपप्रयोजनैः।
वर्तन्ते वर्तमानैश्च यामैर्देवैः सहाग्नयः॥ ४६
अनागतैः सुरैः सार्धं वत्स्यन्तोऽनागतास्त्वथ।
इत्येष प्रचयोऽग्नीनां मया प्रोक्तो यथाक्रमम्।
विस्तरेणानुपूर्व्या च किमन्यच्छ्रोतुमिच्छथ॥ ४७

दहनके पुत्र अद्भुत नामक अग्नि हैं, जो समस्त देवलोकोंमें दिये गये हव्य एवं कव्यका भक्षण करते हैं। वे महान् यशस्वी और जनताके हितकारी हैं। ये प्रायश्चित्तनिमित्तक यज्ञोंके अभिमानी देवता हैं, इसी कारण उन यज्ञोंमें हवन किये गये हव्यको खाते हैं। अद्भुतके पुत्र वीर नामक अग्नि हैं, जो देवांशसे उद्भूत और महान् कहे जाते हैं। उनके पुत्र विविधाग्नि हैं और विविधाग्निके पुत्र महाकवि हैं। विविधाग्निके दूसरे पुत्र अर्कसे आठ अग्नि-पुत्रोंकी उत्पत्ति बतलायी जाती है॥ ३४—३७॥

कामना-पूर्तिके निमित्त किये जानेवाले यज्ञोंके जो अभिमानी देवता हैं, उनका नाम रक्षोहा अग्नि है। उनका दूसरा नाम यतिकृत भी है। इनके अतिरिक्त सुरभि, वसुरत्न, नाद, हर्यश्व, रुक्मवान्, प्रवर्ग्य और क्षेमवान्—ये आठ अग्नि कहे गये हैं। ये सभी शुचि नामक अग्निकी संतान हैं। इन सबकी संख्या चौदह है। इस प्रकार मैंने उन सभी अग्नियोंका वर्णन कर दिया, जिनका यज्ञ-कार्यमें प्रयोग किया जाता है। प्रलयकालमें ये सभी अग्निपुत्र याम नामक श्रेष्ठ देवताओंके साथ स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सभी चेतन एवं अचेतन विहरणीय पदार्थोंके अभिमानी देवता थे। इस पूर्व मन्वन्तरके समाप्त हो जानेपर पुनः प्रथम मन्वन्तरमें ये सभी अग्निगण शुक्र एवं याम नामक देवगणोंके साथ स्थानाभिमानी देवता बनकर अग्नीध्र नामक अग्निके साथ हव्य-वहनका कार्य करते थे और काम्य एवं नैमित्तिक आदि जो यज्ञ किये जाते थे, उन कर्मोंमें अवस्थित रहते थे। इस प्रकार मैंने अग्नियोंकी स्थाननाम्नी योनियोंका वर्णन कर दिया। उन्हें स्वारोचिष् मन्वन्तरसे लेकर सावर्णि मन्वन्तरतकके सातों लोकोंमें वर्तमान जानना चाहिये। ऋषियोंने वर्तमान एवं भविष्यमें आनेवाली सभी मन्वन्तरोंमें इसी प्रकार अग्नियोंके लक्षणका वर्णन किया है। ये सभी अग्नि समस्त मन्वन्तरोंमें नाना प्रकारके रूप और प्रयोजनोंसे समन्वित हो वर्तमानकालीन याम नामक देवताओंके साथ वर्तमान थे और इस समय भी हैं तथा भविष्यमें भी उत्पन्न होकर इन नये उत्पन्न होनेवाले देवगणोंके साथ निवास करेंगे। इस प्रकार मैं अग्नियोंके वंश-समूहका क्रमशः विस्तारपूर्वक आनुपूर्वी वर्णन कर चुका। अब आपलोग और क्या सुनना चाहते हैं?॥ ३८—४७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽग्निवंशो नामैकपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अग्निवंश-वर्णन नामक इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५१॥



बावनवाँ अध्याय

कर्मयोगकी महत्ता

ऋषय ऊचुः

इदानीं प्राह यद् विष्णुः पृष्टः परममुत्तमम्।
तमिदानीं समाचक्ष्व धर्माधर्मस्य विस्तरम्॥ १

सूत उवाच

एवमेकार्णवे तस्मिन् मत्स्यरूपी जनार्दनः।
विस्तारमादिसर्गस्य प्रतिसर्गस्य चाखिलम्॥ २
कथयामास विश्वात्मा मनवे सूर्यसूनवे।
कर्मयोगं च सांख्यं च यथावद् विस्तरान्वितम्॥ ३

ऋषय ऊचुः

श्रोतुमिच्छामहे सूत कर्मयोगस्य लक्षणम्।
यस्मादविदितं लोके न किंचित् तव सुव्रत॥ ४

सूत उवाच

कर्मयोगं च वक्ष्यामि यथा विष्णुविभाषितम्।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगः प्रशस्यते॥ ५
कर्मयोगोद्भवं ज्ञानं तस्मात् तत्परमं पदम्।
कर्मज्ञानोद्भवं ब्रह्म न च ज्ञानमकर्मणः॥ ६
तस्मात् कर्मणि युक्तात्मा तत्त्वमाप्नोति शाश्वतम्।
वेदोऽखिलो धर्ममूलमाचारश्चैव तद्विदाम्॥ ७
अष्टावात्मगुणास्तस्मिन् प्रधानत्वेन संस्थिताः।
दया सर्वेषु भूतेषु क्षान्ती रक्षाऽऽतुरस्य तु॥ ८
अनसूया तथा लोके शौचमन्तर्बहिर्द्विजाः।
अनायासेषु कार्येषु माङ्गल्याचारसेवनम्॥ ९
न च द्रव्येषु कार्पण्यमार्तेषूपार्जितेषु च।
तथास्पृहा परद्रव्ये परस्त्रीषु च सर्वदा॥ १०

ऋषियोंने पूछा— सूतजी! सूर्यपुत्र मनुद्वारा पूछे जानेपर भगवान् विष्णुने उनसे धर्म और अधर्मके जिस परम उत्तम प्रसङ्गको विस्तारपूर्वक कहा था, वह इस समय आप हमलोगोंको बतलाइये॥ १॥

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! प्रलयकालके उस एकार्णवके जलमें मत्स्यरूपधारी विश्वात्मा भगवान् विष्णुने सूर्यपुत्र मनुके प्रति सर्गके विस्तारका पूर्णरूपसे वर्णन किया था। साथ ही कर्मयोग और सांख्ययोगको भी उन्हें विस्तारपूर्वक यथार्थरूपसे बतलाया था (उसे ही मैं आपलोगोंको सुनाना चाहता हूँ)॥ २-३॥

ऋषियोंने पूछा— उत्तम व्रतका पालन करनेवाले सूतजी! आपके लिये लोकमें कोई वस्तु अज्ञात तो है नहीं, अतः हमलोग आपसे कर्मयोगका लक्षण सुनना चाहते हैं॥ ४॥

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! विष्णुभगवान्ने जिस प्रकार कर्मयोगकी व्याख्या की थी, उसे मैं बतला रहा हूँ। कर्मयोग ज्ञानयोगसे हजारोंगुना अधिक प्रशस्त है; क्योंकि ज्ञान कर्मयोगसे ही प्रादुर्भूत होता है; अतः वह परमपद है। ब्रह्म भी कर्मज्ञानसे उद्भूत होता है। कर्मके बिना तो ज्ञानकी सत्ता ही नहीं है। इसीलिये कर्मयोगके अभ्यासमें संलग्न मनुष्य अविनाशी तत्त्वको प्राप्त कर लेता है। सम्पूर्ण वेद और वेदज्ञोंके आचार-विचार धर्मके मूल हैं। उनमें आठ प्रकारके आत्मगुण प्रधानरूपसे विद्यमान रहते हैं; जैसे समस्त प्राणियोंपर दया, क्षमा, दुःखसे पीडित प्राणीको आश्वासन प्रदान करना और उसकी रक्षा करना, जगत्में किसीसे ईर्ष्या-द्वेष न करना, बाह्य एवं आन्तरिक पवित्रता, परिश्रमरहित अथवा अनायास प्राप्त हुए कार्योंके अवसरपर उन्हें माङ्गलिक आचार-व्यवहारके द्वारा सम्पन्न करना, अपने द्वारा उपार्जित द्रव्योंसे दीन-दुखियोंकी सहायता करते समय कृपणता न करना तथा पराये धन और परायी स्त्रीके प्रति सदा निःस्पृह रहना—

अष्टावात्मगुणाः प्रोक्ताः पुराणस्य तु कोविदैः।
अयमेव क्रियायोगो ज्ञानयोगस्य साधकः॥ ११
कर्मयोगं विना ज्ञानं कस्यचिन्नेह दृश्यते।
श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममुपतिष्ठेत् प्रयत्नतः॥ १२
देवतानां पितॄणां च मनुष्याणां च सर्वदा।
कुर्यादहरहर्यज्ञैर्भूतर्षिगणतर्पणम् ॥ १३
स्वाध्यायैरर्चयेच्चर्षीन् होमैर्विद्वान् यथाविधि।
पितॄन् श्राद्धैरन्नदानैर्भूतानि बलिकर्मभिः॥ १४
पञ्चैते विहिता यज्ञाः पञ्चसूनापनुत्तये।
कण्डनी पेषणी चुल्ली जलकुम्भी प्रमार्जनी॥ १५
पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन स्वर्गं न गच्छति।
तत्पापनाशनायामी पञ्च यज्ञाः प्रकीर्तिताः*॥ १६
द्वात्रिंशच्च तथाष्टौ च ये संस्काराः प्रकीर्तिताः।
तद्युक्तोऽपि न मोक्षाय यस्त्वात्मगुणवर्जितः॥ १७
तस्मादात्मगुणोपेतः श्रुतिकर्म समाचरेत्।
गोब्राह्मणानां वित्तेन सर्वदा भद्रमाचरेत्॥ १८
गोभूहिरण्यवासोभिर्गन्धमाल्योदकेन च।
पूजयेद् ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्रवस्वात्मकं शिवम्॥ १९
व्रतोपवासैर्विधिवच्छ्रद्धया च विमत्सरः।
योऽसावतीन्द्रियः शान्तः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
वासुदेवो जगन्मूर्तिस्तस्य सम्भूतयो ह्यमी॥ २०

पुराणोंके ज्ञाता विद्वानोंद्वारा ये आठ आत्मगुण बतलाये गये हैं। यही कर्मयोग ज्ञानयोगका साधक है। जगत्में कर्मयोगके बिना किसीको ज्ञानकी प्राप्ति हुई हो, ऐसा नहीं देखा गया है; इसलिये श्रुतियों एवं स्मृतियोंद्वारा कहे गये धर्मका प्रयत्नपूर्वक पालन करना चाहिये। प्रतिदिन सर्वदा देवताओं, पितरों और मनुष्योंकी यज्ञोंद्वारा तृप्त करना चाहिये। साथ ही पितरों और ऋषियोंके तर्पणका कार्य भी कर्तव्य है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह स्वाध्यायद्वारा देवताओंकी, हवनद्वारा ऋषियोंकी, श्राद्धद्वारा पितरोंकी, अन्नद्वारा अतिथियोंकी तथा बलिकर्मद्वारा मृत प्राणियोंकी विधिपूर्वक अर्चना करे। गृहस्थोंके घरमें जीवहिंसाके पाँच प्रकारके स्थानोंपर घटित हुए पापकी निवृत्तिके लिये इन पाँच प्रकारके यज्ञोंका विधान बतलाया गया है। गृहस्थके घरमें जीवहिंसाके पाँच स्थान ये हैं—कण्डनी (वस्तुओंके कूटनेका पात्र ओखली, खरल आदि), पेषणी (पीसनेका उपकरण चक्की, सिलवट आदि), चुल्ली (चूल्हा), जलकुम्भी (पानी रखे जानेवाले घड़े) और प्रमार्जनी (झाड़ू आदि)। इन स्थानोंपर उत्पन्न हुए पापके कारण गृहस्थ पुरुष स्वर्ग नहीं जा सकता, अतः उन पापोंके विनाशके लिये ये पाँचों यज्ञ बतलाये गये हैं॥ ५—१६॥

द्विजातियोंके लिये जो चालीस प्रकारके संस्कार बतलाये गये हैं, उनसे संस्कृत होनेपर भी जो मनुष्य (उपर्युक्त आठ) आत्मगुणोंसे रहित है, वह मोक्षका भागी नहीं हो सकता। इसलिये आत्मगुणोंसे सम्पन्न होकर ही वैदिक कर्मका अनुष्ठान करना चाहिये। गृहस्थको सदा उपार्जित धनद्वारा गौओं और ब्राह्मणोंका कल्याण करना चाहिये। उसका कर्तव्य है कि वह व्रत एवं उपवास आदि करके गौ, पृथ्वी, सुवर्ण, वस्त्र, गन्ध, माला और जल आदिसे ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, रुद्र और वसुस्वरूप शिवकी श्रद्धापूर्वक विधिसहित पूजा करे; इसमें कृपणता न करे। जो ये इन्द्रियोंके अगोचर, परम शान्त, सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म, अव्यक्त, अविनाशी एवं विश्वस्वरूप भगवान् वासुदेव हैं,

* ये १३—१६ तकके ४ श्लोक मनुस्मृति ३। ६८—७१ में भी प्राप्त होते हैं। और आठ गुणोंके निर्देशक श्लोक गौतमधर्मसूत्र शुक स० ३१। १७१, चाणक्य० १२। १५ आदिमें उपलब्ध भी हैं।

ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् मार्तण्डो वृषवाहनः।
अष्टौ च वसवस्तद्वदेकादश गणाधिपाः।
लोकपालाधिपाश्चैव पितरो मातरस्तथा॥ २१

इमा विभूतयः प्रोक्ताश्चराचरसमन्विताः।
ब्रह्माद्याश्चतुरो मूलमव्यक्ताधिपतिः स्मृतः॥ २२

ब्रह्मणा चाथ सूर्येण विष्णुनाथ शिवेन वा।
अभेदात् पूजितेन स्यात् पूजितं सचराचरम्॥ २३

ब्रह्मादीनां परं धाम त्रयाणामपि संस्थितिः।
वेदमूर्तावतः पूषा पूजनीयः प्रयत्नतः॥ २४

तस्मादग्निद्विजमुखान् कृत्वा सम्पूजयेदिमान्।
दानैर्व्रतोपवासैश्च जपहोमादिना नरः॥ २५

इति क्रियायोगपरायणस्य
वेदान्तशास्त्रस्मृतिवत्सलस्य।
विकर्मभीतस्य सदा न किंचित्
प्राप्तव्यमस्तीह परे च लोके॥ २६

उन्हींकी ये विभूतियाँ हैं। उन विभूतियोंके नाम ये हैं— ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, सूर्य, शिव, आठ वसु, ग्यारह गणाधिप, लोकपालाधीश्वर, पितर और मातृकाएँ। चराचर जगत्सहित ये सभी विभूतियाँ बतलायी गयी हैं। ब्रह्मा आदि चार (ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य, शिव) देवता मूलरूपसे इस जगत्के अव्यक्त अधिपति कहे जाते हैं। इसलिये ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु अथवा शिवकी अभेदभावसे पूजा करनेपर चराचर जगत्की पूजा सम्पन्न हो जाती है। सूर्य ब्रह्मा आदि तीनों देवताओंके परम धाम हैं, जिनमें वे निवास करते हैं। सूर्यदेव वेदोंके मूर्तस्वरूप हैं, अतः इनकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह अग्नि अथवा ब्राह्मणोंके मुखोंमें इनका आवाहन करके दान, व्रत, उपवास, जप, हवन आदि-द्वारा इनकी पूजा करे। इस प्रकार जो मनुष्य कर्मयोगनिष्ठ, वेदान्तशास्त्र और स्मृतियोंका प्रेमी तथा अधर्मसे सदा भयभीत रहता है, उसके लिये इस लोक अथवा परलोकमें कुछ भी प्राप्तव्य नहीं रह जाता, अर्थात् सभी पदार्थ उसके हस्तगत हो जाते हैं॥ १७— २६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कर्मयोगमाहात्म्यं नाम द्विपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कर्मयोगमाहात्म्यनामक बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५२॥



तिरपनवाँ अध्याय

पुराणोंकी नामावलि और उनका संक्षिप्त परिचय

ऋषय ऊचुः

पुराणसंख्यामाचक्ष्व सूत विस्तरशः क्रमात्।
दानधर्ममशेषं तु यथावदनुपूर्वशः॥ १

सूत उवाच

इदमेव पुराणेषु पुराणपुरुषस्तदा।
यदुक्तवान् स विश्वात्मा मनवे तन्निबोधत॥ २

मत्स्य उवाच

पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्।
अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः॥ ३
पुराणमेकमेवासीत् तदा कल्पान्तरेऽनघ।
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्॥ ४
निर्दग्धेषु च लोकेषु वाजिरूपेण वै मया।
अङ्गानि चतुरो वेदान् पुराणं न्यायविस्तरम्॥ ५
मीमांसां धर्मशास्त्रं च परिगृह्य मया कृतम्।
मत्स्यरूपेण च पुनः कल्पादावुदकार्णवे॥ ६
अशेषमेतत् कथितमुदकान्तर्गतेन च।
श्रुत्वा जगाद च मुनीन् प्रति देवांश्चतुर्मुखः॥ ७
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत् ततः।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्य ततो नृप॥ ८
व्यासरूपमहं कृत्वा संहरामि युगे युगे।
चतुर्लक्षप्रमाणेन द्वापरे द्वापरे सदा॥ ९
तथाष्टादशधा कृत्वा भूर्लोकेऽस्मिन् प्रकाश्यते।
अद्यापि देवलोकेऽस्मिञ् शतकोटिप्रविस्तरम्॥ १०

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमलोगोंसे क्रमशः पुराणोंकी संख्याका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। साथ ही उनके दान और धर्मकी सम्पूर्ण आनुपूर्वी विधि भी यथार्थरूपसे बतलाइये॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसे ही प्रश्नके उत्तरमें उस समय पुराणपुरुष विश्वात्मा मत्स्यभगवान्‌ने मनुके प्रति पुराणोंके विषयमें जो कुछ कहा था, उसे सुनिये॥ २॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजर्षे! ब्रह्माजीने (सृष्टिनिर्माणके समय) समस्त शास्त्रोंमें सर्वप्रथम पुराणका ही स्मरण किया था। उसके बाद उनके मुखोंसे वेद प्रादुर्भूत हुए हैं। अनघ! उस कल्पान्तरमें सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तृत, पुण्यप्रद और त्रिवर्ग—तीन पुरुषार्थके समुदाय (धर्म, अर्थ, काम)-का साधनस्वरूप पुराण एक ही था। सभी लोकोंके जलकर नष्ट हो जानेपर मैंने ही अश्व (हयग्रीव)-रूपसे व्याकरणादि छहों अङ्गोंसहित चारों वेद, पुराण, न्यायशास्त्र, मीमांसा और धर्मशास्त्रको ग्रहण करके उनका संकलन किया था। पुनः मैंने ही कल्पके आदिमें एकार्णवके समय मत्स्यरूपसे जलके भीतर स्थित रहकर इस (विषय)-का पूर्णरूपसे वर्णन किया था। उसे सुनकर ब्रह्माने देवताओं और मुनियोंसे कहा था। राजन्! तभीसे संसारमें समस्त शास्त्रों और पुराणोंका प्रचार हुआ। काल-प्रभावसे पुराणकी ओरसे लोगोंकी उदासीनता देखकर प्रत्येक द्वापरयुगमें मैं सदा व्यासरूपसे प्रकट होता हूँ* और उस (पुराण)-का संक्षेप कर चार लाख श्लोकोंमें बना देता हूँ। वही अठारह भागोंमें विभक्त होकर इस भूलोकमें प्रकाशित होता है। आज भी यह पुराण इस देवलोकमें सौ करोड़ श्लोकोंमें ही है।

* व्यासजीके विष्णुरूप होनेकी बात महाभारत, विष्णुपुराण (३।४।५) आदिमें भी कही गयी है, यथा—'कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम्। को ह्यन्यः पुण्डरीकाक्षान्महाभारतकृद् भवेत्॥' इत्यादि।

तदर्थोऽत्र चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम्।
पुराणानि दशाष्टौ च साम्प्रतं तदिहोच्यते॥ ११

उसका पूरा सारांश मैंने संक्षेपसे इस चार लाख श्लोकोंवाले पुराणमें भर दिया है। अब उन अठारह पुराणोंका यहाँ वर्णन किया जाता है॥ ३—११॥

नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तमाः।
ब्रह्मणाभिहितं पूर्वं यावन्मात्रं मरीचये॥ १२
ब्राह्मं त्रिदशसाहस्रं पुराणं परिकीर्त्यते।
लिखित्वा तच्च यो दद्याज्जलधेनुसमन्वितम्।
वैशाखपूर्णिमायां च ब्रह्मलोके महीयते॥ १३
एतदेव यदा पद्ममभूद्धैरण्मयं जगत्।
तद्वृत्तान्ताश्रयं तद्वत् पाद्ममित्युच्यते बुधैः।
पाद्मं तत्पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणीह कथ्यते॥ १४
तत्पुराणं च यो दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्।
ज्येष्ठे मासि तिलैर्युक्तमश्वमेधफलं लभेत्॥ १५
वाराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः।
यत् प्राह धर्मानखिलांस्तद्युक्तं वैष्णवं विदुः॥ १६
तदाषाढे च यो दद्याद् घृतधेनुसमन्वितम्।
पौर्णमास्यां विपूतात्मा स पदं याति वारुणम्।
त्रयोविंशतिसाहस्रं तत्प्रमाणं विदुर्बुधाः॥ १७
श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरिहाब्रवीत्।
यत्र तद्वायवीयं स्याद् रुद्रमाहात्म्यसंयुतम्।
चतुर्विंशत्सहस्राणि पुराणं तदिहोच्यते॥ १८
श्रावण्यां श्रावणे मासि गुडधेनुसमन्वितम्।
यो दद्याद् वृषसंयुक्तं ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
शिवलोके स पूतात्मा कल्पमेकं वसेन्नरः॥ १९

श्रेष्ठ मुनियो! अब मैं उनका नाम निर्देशानुसार वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। पूर्वकल्पमें ब्रह्माजीने महर्षि मरीचिके प्रति जितने श्लोकोंका वर्णन किया था, वह प्रथम ब्रह्मपुराण कहा जाता है। उसमें तेरह हजार श्लोक हैं। जो मानव इस पुराणको लिखकर उस पुस्तकका जलधेनु[1] (दानके लिये जलके घड़ेमें कल्पित गौ)-के साथ वैशाखकी पूर्णिमा तिथिके दिन ब्राह्मणको दान कर देता है, वह ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जिस समय यह जगत् स्वर्णमय कमलके रूपमें परिणत था, उस समयका वृत्तान्त जिसमें वर्णन किया गया है, उसे विद्वान्लोग (द्वितीय) पद्मपुराण नामसे अभिहित करते हैं। उस पद्मपुराणकी श्लोक-संख्या पचपन हजार बतायी जाती है। स्वर्णनिर्मित कमलसे युक्त उस पुराणका जो मनुष्य तिलके साथ ज्येष्ठमासमें ब्राह्मणको दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञ[2]के फलकी प्राप्ति होती है। महर्षि पराशरने वाराह-कल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर जिन सम्पूर्ण धर्मोंका वर्णन किया है, उनसे युक्त (तृतीय) पुराणको वैष्णव (विष्णुपुराण) कहा जाता है। विद्वान्लोग उसका प्रमाण तेईस[3] हजार श्लोकोंका बतलाते हैं। जो मानव आषाढ़मासकी पूर्णिमाको घृतधेनुयुक्त इस पुराणका दान करता है, उसका आत्मा पवित्र हो जाता है और वह वरुण-लोकमें जाता है। श्वेतकल्पके प्रसङ्गवश वायुने इस मर्त्यलोकमें जिन धर्मोंका वर्णन किया था, उनका संकलन जिसमें हुआ है, उसे (चतुर्थ) वायवीय (वायुपुराण या शिवपुराण[4]) कहते हैं। वह शङ्करजीके माहात्म्यसे भी परिपूर्ण है। इस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है। जो मनुष्य श्रावणमासमें श्रावणी पूर्णिमाको गुडधेनु और बैलके साथ इस पुराणका कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह पवित्रात्मा होकर शिवलोकमें एक कल्पतक निवास करता है।

---

१. जलधेनु-दानकी विधि वाराहादि पुराणोंमें तथा इसी मत्स्यपुराणके ८२ वें अध्यायमें भी आयी है। इसके आगे घृतधेनु आदिकी भी विधि है, जिसकी चर्चा यहाँ भी आगे १७ वें श्लोकमें हुई है।

२. विष्णुपुराण (५। ५। १४) तथा मनुस्मृति (११। २६०) आदि स्मृतियोंके अनुसार यह क्रतुराट्—सभी यज्ञोंका राजा तथा सर्वपापापनोदक है। शतपथब्राह्मणके अश्वमेधकाण्डके पचासों पृष्ठों तथा ऐतरेय-तैत्तिरीय ब्राह्मणों, तैत्तिरीय संहिता-भाष्य, आश्वलायन, आपस्तम्ब, हिरण्यकेशी, कात्यायनादि श्रौतसूत्रों तथा वाल्मीकीय रामायण बालकाण्ड, उत्तरकाण्ड, पद्म आदि कई स्थानों और रामाश्वमेध, महाभारतके आश्वमेधिकपर्व, जैमिनीयाश्वमेध आदि कई ग्रन्थोंमें इसकी विस्तृत महिमा एवं विधि निरूपित है। इसमें प्रति आठवें पूरे दिन 'परिप्लव'में पुराण (विशेषकर मत्स्यपुराण) सुननेकी विधि है और इसमें पुराण-श्रवणकी ३६ बार पुनरावृत्ति होती है।

३. यह संख्या विष्णुधर्मोत्तरको लेकर है। अन्यथा लिङ्गपुराणादिके वचनानुसार इसमें साढ़े पाँच सहस्र श्लोक ही हैं।

४. पुराणगणनामें चौथी संख्यापर कहीं वायु और कहीं शिवपुराणका उल्लेख है। शिवपुराणमें भी एक वायवीय संहिता है तथा शूलपाणिके वचनानुसार वायुपुराण भी शैवपुराण ही है।

यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः।
वृत्रासुरवधोपेतं तद् भागवतमुच्यते॥ २०

सारस्वतस्य कल्पस्य मध्ये ये स्युर्नरोत्तमाः।
तद्वृत्तान्तोद्भवं लोके तद् भागवतमुच्यते॥ २१

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम्।
पौर्णमास्यां प्रौष्ठपद्यां स याति परमां गतिम्।
अष्टादश सहस्राणि पुराणं तत् प्रचक्षते॥ २२

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयाणि च।
पञ्चविंशत्सहस्राणि नारदीयं तदुच्यते॥ २३

आश्विने पञ्चदश्यां तु दद्याद् धेनुसमन्वितम्।
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ २४

यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः॥ २५

मार्कण्डेयेन कथितं तत् सर्वं विस्तरेण तु।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते॥ २६

प्रतिलिख्य च यो दद्यात् सौवर्णकरिसंयुतम्।
कार्तिक्यां पुण्डरीकस्य यज्ञस्य फलभाग् भवेत्॥ २७

यत्तदीशानकं कल्पं वृत्तान्तमधिकृत्य च।
वसिष्ठायाग्निना प्रोक्तमाग्नेयं तत् प्रचक्षते॥ २८

लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमपद्मसमन्वितम्।
मार्गशीर्ष्यां विधानेन तिलधेनुसमन्वितम्।
तच्च षोडशसाहस्रं सर्वक्रतुफलप्रदम्॥ २९

जिसमें गायत्रीका आश्रय लेकर विस्तारपूर्वक धर्मका वर्णन किया गया है तथा जो वृत्रासुरवधके वृत्तान्तसे संयुक्त है, उसे (पञ्चम) भागवतपुराण[१] कहा जाता है। इसी प्रकार सारस्वतकल्पमें जो श्रेष्ठ मनुष्य हो गये हैं, लोकमें उनके वृत्तान्तसे सम्बन्धित पुराणको 'भागवतपुराण' कहा जाता है। यह पुराण अठारह हजार श्लोकोंका बतलाया जाता है। जो मनुष्य इसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित सिंहके साथ भाद्रपदमासकी पूर्णिमा तिथिको दान कर देता है वह परमगति—मोक्षको प्राप्त हो जाता है॥ १२—२२॥

जिस पुराणमें बृहत्कल्पका आश्रय लेकर देवर्षि नारदने धर्मोका उपदेश किया है, उसे (षष्ठ) नारदीय (नारदपुराण) कहा जाता है। उसमें पचीस हजार श्लोक हैं। जो मनुष्य आश्विनमासकी पूर्णिमा तिथिको धेनुके साथ इस पुराणका दान करता है, वह पुनर्जन्मसे रहित परम सिद्धिको प्राप्त हो जाता है। जिस पुराणमें पक्षियोंका आश्रय लेकर एक मुनिके प्रश्न करनेपर धर्मचारी मुनियोंद्वारा धर्म और अधर्मके विचारका जो कुछ व्याख्यान दिया गया है, उन सबका महर्षि मार्कण्डेयने पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, वह लोकमें (सप्तम) मार्कण्डेयपुराणके नामसे विख्यात है। इसकी श्लोक-संख्या नौ हजार है। जो मनुष्य इस पुराणको लिखकर स्वर्णनिर्मित हाथीके सहित कार्तिकी पूर्णिमाको उस पुस्तकका दान करता है, वह पुण्डरीक-यज्ञके[२] फलका भागी होता है। जिसमें ईशानकल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर अग्निने महर्षि वसिष्ठके प्रति उपदेश किया है, उसे (अष्टम) आग्नेय (अग्निपुराण) कहते हैं। इसमें सोलह सहस्र श्लोक हैं। जो मनुष्य इसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित कमल और तिलधेनुसहित मार्गशीर्षमासकी पूर्णिमा तिथिको विधि-विधानके साथ दान करता है,उसके लिये यह सम्पूर्ण यज्ञोंके फलका प्रदाता हो जाता है।

१. भागवतपुराण बहुत प्राचीन सर्वाधिक प्रसिद्ध है; क्योंकि इसपर ११ वीं शतीकी श्रीधरीसे १९ वीं शतीकी अन्वितार्थप्रकाशिका-तक पचासों संस्कृत टीकाएँ हैं तथा सूरसागर आदि-जैसे सैकड़ों देशी-विदेशी भाषाओंमें इसके गद्य-पद्यानुवाद हैं। बर्नफका फ्रेंच अनुवाद भी श्रेष्ठरूप पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसपर प्रथम शतीसे लेकर मध्वादितकके 'भागवत'-तात्पर्यनिर्णय, लघुभागवतामृत, बृहद्भागवतामृतादि अगणित प्रबन्ध निबद्ध हुए हैं और गोपाल भट्ट आदिके हरिभक्तिविलासादिमें इसके हजारों वचन उद्धृत हैं। कल्याणके १६वें वर्षमें १-२ अङ्कोंमें यह अनुवाद तथा मूलसहित प्रकाशित है। गीताप्रेससे इसकी प्रायः लाखों प्रतियाँ विभिन्न संस्करणोंमें बिक चुकी हैं।

२. इस यज्ञकी विस्तृत महिमा एवं प्रक्रिया आश्वलायन, सत्याषाढ, कात्यायन देवयाज्ञिक पद्धति आदिमें है।

यत्राधिकृत्य माहात्म्यमादित्यस्य चतुर्मुखः।
अघोरकल्पवृत्तान्तप्रसङ्गेन जगत्स्थितिम्।
मनवे कथयामास भूतग्रामस्य लक्षणम्॥ ३०
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानि च।
भविष्यच्चरितप्रायं भविष्यं तदिहोच्यते॥ ३१
तत्पौषे मासि यो दद्यात् पौर्णमास्यां विमत्सरः।
गुडकुम्भसमायुक्तमग्निष्टोमफलं भवेत्॥ ३२
रथन्तरस्य कल्पस्य वृत्तान्तमधिकृत्य च।
सावर्णिना नारदाय कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम्॥ ३३
यत्र ब्रह्मवराहस्य चोदन्तं वर्णितं मुहुः।
तदष्टादशसाहस्रं ब्रह्मवैवर्तमुच्यते॥ ३४
पुराणं ब्रह्मवैवर्तं यो दद्यान्माघमासि च।
पौर्णमास्यां शुभदिने ब्रह्मलोके महीयते॥ ३५
यत्राग्निलिङ्गमध्यस्थः प्राह देवो महेश्वरः।
धर्मार्थकाममोक्षार्थमाग्नेयमधिकृत्य च॥ ३६
कल्पान्ते लैङ्गमित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम्।
तदेकादशसाहस्रं फाल्गुन्यां यः प्रयच्छति।
तिलधेनुसमायुक्तं स याति शिवसाम्यताम्॥ ३७
महावराहस्य पुनर्माहात्म्यमधिकृत्य च।
विष्णुनाभिहितं क्षोण्यै तद्वाराहमिहोच्यते॥ ३८
मानवस्य प्रसङ्गेन कल्पस्य मुनिसत्तमाः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि तत्पुराणमिहोच्यते॥ ३९
काञ्चनं गरुडं कृत्वा तिलधेनुसमन्वितम्।
पौर्णमास्यां मधौ दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
वराहस्य प्रसादेन पदमाप्नोति वैष्णवम्॥ ४०

जिसमें अघोर कल्पके वृत्तान्तके प्रसङ्गवश सूर्यके माहात्म्यका आश्रय लेकर ब्रह्माने मनुके प्रति जगत्‌की स्थिति और प्राणिसमूहके लक्षणका वर्णन किया है तथा जिसमें प्रायः भविष्यकालीन चरितका वर्णन आया है, उसे इस लोकमें (नवम) भविष्यपुराण कहते हैं। उसमें चौदह हजार पाँच सौ श्लोक हैं। जो मनुष्य ईर्ष्या-द्वेषरहित हो पौषमासकी पूर्णिमा तिथिको उसका गुड़से पूर्ण घड़ेसहित दान करता है, उसे अग्निष्टोम* नामक यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। जिसमें रथन्तर कल्पके वृत्तान्तका आश्रय लेकर सावर्णि मनुने नारदजीके प्रति भगवान् श्रीकृष्णके श्रेष्ठ माहात्म्यका वर्णन किया है तथा जिसमें ब्रह्मवराहका वृत्तान्त बारम्बार वर्णित हुआ है, उसे (दशम) ब्रह्मवैवर्तपुराण कहते हैं। इसमें अठारह सहस्र श्लोक हैं। जो मनुष्य माघमासमें पूर्णिमा तिथिको शुभ दिनमें इस ब्रह्मवैवर्तपुराणका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें सत्कृत होता है॥ ३३—३५॥

जिसमें कल्पान्तके समय अग्निका आश्रय लेकर देवाधिदेव महेश्वरने अग्निलिङ्गके मध्यमें स्थित रहते हुए धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारोंकी प्राप्तिके लिये उपदेश दिया है, उस पुराणको स्वयं ब्रह्माने (एकादश) लैङ्ग (लिङ्ग)-पुराण नामसे अभिहित किया है। उसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं। जो मानव फाल्गुनमासकी पूर्णिमा तिथिको तिलधेनुसहित इस पुराणका दान करता है, वह शिवजीकी साम्यताको प्राप्त कर लेता है। मुनिवरो! जिसमें मानवकल्पके प्रसङ्गवश पुनः महावराहके माहात्म्यका आश्रय लेकर भगवान् विष्णुने पृथ्वीके प्रति उपदेश दिया है, उसे भूतलपर (द्वादश) वराहपुराण कहते हैं। उस पुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार बतलायी जाती है। जो मनुष्य गरुड़की सोनेकी मूर्ति बनवाकर उस मूर्ति तथा तिल-धेनुके साथ इस पुराणका चैत्रमासकी पूर्णिमा तिथिको कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह वराहभगवान्‌की कृपासे विष्णुपदको प्राप्त कर लेता है।

* यह ज्योतिष्टोमका एक अङ्ग है।

यत्र माहेश्वरान् धर्मानधिकृत्य च षण्मुखः।
कल्पे तत्पुरुषं वृत्तं चरितैरुपबृंहितम्॥ ४१

स्कान्दं नाम पुराणं च ह्येकाशीति निगद्यते।
सहस्राणि शतं चैकमिति मर्त्येषु गद्यते॥ ४२

परिलिख्य च यो दद्याद्धेमशूलसमन्वितम्।
शैवं पदमवाप्नोति मीने चोपागते रवौ॥ ४३

त्रिविक्रमस्य माहात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुखः।
त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामनं परिकीर्तितम्॥ ४४

पुराणं दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुगं शिवम्।
यः शरद्विषुवे दद्याद् वैष्णवं यात्यसौ पदम्॥ ४५

यत्र धर्मार्थकामानां मोक्षस्य च रसातले।
माहात्म्यं कथयामास कूर्मरूपी जनार्दनः॥ ४६

इन्द्रद्युम्नप्रसङ्गेन ऋषिभ्यः शक्रसंनिधौ।
अष्टादश सहस्राणि लक्ष्मीकल्पानुषङ्गिकम्॥ ४७

यो दद्यादयने कूर्मं हेमकूर्मसमन्वितम्।
गोसहस्रप्रदानस्य फलं सम्प्राप्नुयान्नरः॥ ४८

श्रुतीनां यत्र कल्पादौ प्रवृत्त्यर्थं जनार्दनः।
मत्स्यरूपेण मनवे नरसिंहोपवर्णनम्॥ ४९

अधिकृत्याब्रवीत् सप्तकल्पवृत्तं मुनीश्वराः।
तन्मात्स्यमिति जानीध्वं सहस्राणि चतुर्दश॥ ५०

जिसमें कल्पान्तके समय स्वामिकार्तिकने माहेश्वर धर्मोंका आश्रय लेकर शिवजीके सुशोभन चरित्रोंसे युक्त वृत्तान्तका वर्णन किया है, उस (त्रयोदश पुराण)-का नाम स्कन्दपुराण है। वह मृत्युलोकमें इक्यासी हजार एक सौ श्लोकोंका बतलाया जाता है।[१] जो मनुष्य उसे लिखकर उस पुस्तकका स्वर्णनिर्मित त्रिशूलके साथ सूर्यके मीन राशिपर आनेपर (प्रायः चैत्रमासमें) दान करता है, वह शिव-पदको प्राप्त कर लेता है। जिसमें ब्रह्माने त्रिविक्रमके माहात्म्यका आश्रय लेकर त्रिवर्गोंका वर्णन किया है, उसे (चतुर्दश) वामनपुराण कहते हैं। इसमें दस हजार श्लोक हैं। यह कूर्मकल्पका अनुगमन करनेवाला तथा मङ्गलप्रद है। जो मानव शरत्कालीन विषुवयोग (१८ सितम्बरके लगभग दिन-रातके बराबर होनेके काल—तुलासंक्रान्ति)-में इसका दान करता है, वह विष्णु-पदको प्राप्त कर लेता है। जिसमें कूर्मरूपी भगवान् जनार्दनने रसातलमें इन्द्रद्युम्नकी कथाके प्रसङ्गवश इन्द्रके निकट धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके माहात्म्यका ऋषियोंके प्रति वर्णन किया है, उसे (पञ्चदश) कूर्मपुराण कहते हैं। यह लक्ष्मीकल्पसे सम्बन्ध रखनेवाला है। इसमें अठारह हजार श्लोक हैं। जो मनुष्य सूर्यके उत्तरायण एवं दक्षिणायनके प्रारम्भकालमें स्वर्णनिर्मित कच्छपसहित कूर्मपुराणका दान करता है, उसे एक हजार गोदान करनेका फल प्राप्त होता है॥ ३६—४८॥

मुनिवरो! जिसमें कल्पके प्रारम्भमें भगवान् जनार्दनने मत्स्य-रूप धारण करके मनुके प्रति श्रुतियोंकी प्रवृत्तिके निमित्त नृसिंहावतारके वृत्तान्तका आश्रय लेकर सातों कल्पोंके वृत्तान्तोंका वर्णन किया है, उसे (षोडश[२] मात्स्य) मत्स्यपुराण जानना चाहिये। उसमें चौदह हजार श्लोक हैं।

---

१. यहाँके अतिरिक्त विष्णुपुराण ३। ६। २१—२४; भागवत १२। ७ तथा १३; मार्कण्डेय १३४; वाराह ११२। ७१-७२; कूर्म १। १३—१५; लिङ्ग १। ३९। ६१-४; पद्म १। ६२। २—७; नारद १। ९२—१०९ आदिमें पुराणक्रम एवं श्लोक-संख्यादिका वर्णन है। शोधकर्ताओंने इन क्रमोंको तीन भागोंमें क्रमबद्ध किया है। इनमें मत्स्य, भागवत, विष्णु आदि क्रमको मत्स्य या विष्णुपुराणक्रम कहा है। इनके अनुसार स्कन्दपुराण १३वीं संख्यापर तथा लिङ्गपुराणद्वारा निर्दिष्ट क्रममें १७ वीं संख्यापर निर्दिष्ट है। इसके सूतसंहितादि छः संहिताओंका एक रूप तथा माहेश्वरादि सात खण्डोंका दूसरा रूप—दोनों मिलकर पौने दो लाख श्लोक होते हैं। फिर शम्भल-माहात्म्य, सत्यनारायण-व्रतकथा आदि इसके अनेक खिल ग्रंथ भी हैं।

२. यह विष्णुपुराण आदिक्रममें १६ वीं संख्यापर, पर लिङ्गादिक्रममें १५ वीं संख्यापर परिगणित है।

विषुवे हेममत्स्येन धेन्वा चैव समन्वितम्।
यो दद्यात् पृथिवी तेन दत्ता भवति चाखिला॥ ५१
यदा च गारुडे कल्पे विश्वाण्डाद् गरुडोद्भवम्।
अधिकृत्याब्रवीत् कृष्णो गारुडं तदिहोच्यते॥ ५२
तदष्टादशकं चैकं सहस्राणीह पठ्यते।
सौवर्णहंससंयुक्तं यो ददाति पुमानिह।
स सिद्धिं लभते मुख्यां शिवलोके च संस्थितिम्॥ ५३
ब्रह्मा ब्रह्माण्डमाहात्म्यमधिकृत्याब्रवीत् पुनः।
तच्च द्वादशसाहस्रं ब्रह्माण्डं द्विशताधिकम्॥ ५४
भविष्याणां च कल्पानां श्रूयते यत्र विस्तरः।
तद् ब्रह्माण्डपुराणं च ब्रह्मणा समुदाहृतम्॥ ५५
यो दद्यात् तद् व्यतीपाते पीतोर्णायुगसंयुतम्।
राजसूयसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः।
हेमधेन्वा युतं तच्च ब्रह्मलोकफलप्रदम्॥ ५६
चतुर्लक्षमिदं प्रोक्तं व्यासेनाद्भुतकर्मणा।
मत्पितुर्मम पित्रा च मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५७
इह लोकहितार्थाय संक्षिप्तं परमर्षिणा।
इदमद्यापि देवेषु शतकोटिप्रविस्तरम्॥ ५८
उपभेदान् प्रवक्ष्यामि लोके ये सम्प्रतिष्ठिताः।
पाद्मे पुराणे यत्रोक्तं नरसिंहोपवर्णनम्।
तच्चाष्टादशसाहस्रं नारसिंहमिहोच्यते॥ ५९
नन्दाया यत्र माहात्म्यं कार्तिकेयेन वर्ण्यते।
नन्दीपुराणं तल्लोकैराख्यातमिति कीर्त्यते॥ ६०

जो मनुष्य विषुवयोग (मेष अथवा तुलाकी संक्रान्ति)-में स्वर्णनिर्मित मत्स्य और दुधारू गौके साथ इस पुराणका दान करता है, उसके द्वारा समग्र पृथ्वीका दान सम्पन्न हो जाता है अर्थात् उसे सम्पूर्ण पृथ्वीके दानका फल प्राप्त होता है। जिसमें भगवान् श्रीकृष्णने गरुड-कल्पके समय विश्वाण्ड (ब्रह्माण्ड)-से गरुडकी उत्पत्तिके वृत्तान्तका आश्रय लेकर उपदेश दिया है, उसे इस लोकमें सप्तदश गारुड (गरुडपुराण) कहते हैं। उसे भूतलपर उन्नीस हजार श्लोकोंका कहा जाता है। जो पुरुष स्वर्णनिर्मित हंसके साथ इस पुराणका दान करता है, उसे मुख्य सिद्धि प्राप्त होती है और वह शिवलोकमें निवास करता है। जिसमें ब्रह्माने पुनः ब्रह्माण्डके माहात्म्यका आश्रय लेकर वृत्तान्तोंका वर्णन किया है तथा जिसमें भविष्यकल्पोंका भी विस्तारपूर्वक वर्णन सुना जाता है, उसे ब्रह्माने (अन्तिम—अष्टादश) ब्रह्माण्डपुराण बतलाया है[1]। वह ब्रह्माण्डपुराण बारह हजार दो सौ श्लोकोंवाला है। जो मानव व्यतीपात नामक योगमें पीले रंगके दो ऊनी वस्त्रोंके साथ इस पुराणका दान करता है, उसे एक हजार राजसूय-यज्ञके[2] फलकी प्राप्ति होती है। उसी (ब्रह्माण्डपुराण)-को यदि स्वर्णनिर्मित गौके साथ दान किया जाय तो वह ब्रह्मलोक-प्राप्तिरूपी फलका प्रदाता बन जाता है। अद्भुतकर्मा महर्षि वेदव्यासने मेरे पिता रोमहर्षणके प्रति इन चार लाख श्लोकोंका वर्णन किया था। उसीको मेरे पिताने मुझे बतलाया और मैंने आपलोगोंके प्रति निवेदन कर दिया। परमर्षि व्यासजीने मृत्युलोकमें लोकहितके लिये इसका संक्षेप कर दिया है, किंतु देवलोकमें तो यह आज भी सौ करोड़ श्लोकोंसे युक्त ही है॥ ४९—५८॥

ऋषियो! अब मैं उन उपपुराणोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो लोकमें प्रचलित हैं। पद्मपुराणमें जहाँ नृसिंहावतारके वृत्तान्तका वर्णन किया गया है, उसे नारसिंह (नरसिंहपुराण[3]) कहते हैं। उसमें अठारह हजार श्लोक हैं। जिसमें स्वामिकार्तिकने नन्दाके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे लोग नन्दीपुराणके नामसे पुकारते हैं।

१. यह पुराण प्रायः सर्वांशमें वायुपुराणसे (और अत्यधिक अंशोंमें मत्स्यपुराणसे भी) मिल जाता है, यह एक विचित्र बात है। केवल अन्तमें उसके गयामाहात्म्यकी जगह इसमें ललितोपाख्यान है।

२. यह भी अश्वमेधवत् प्रसिद्ध तथा श्रौतसूत्रोंमें प्रायः उन्हीं स्थलोंपर चर्चित है।

३. कल्याण वर्ष ४५ में यह मूलसहित और सानुवाद प्रकाशित है और अब ग्रन्थरूपमें पुनर्मुद्रित हो चुका है।

यत्र साम्बं पुरस्कृत्य भविष्यति कथानकम्।
प्रोच्यते तत् पुनर्लोके साम्बमेतन्मुनिव्रताः॥ ६१

एवमादित्यसंज्ञा च तत्रैव परिगण्यते।
अष्टादशभ्यस्तु पृथक् पुराणं यत् प्रदिश्यते॥ ६२

विजानीध्वं द्विजश्रेष्ठास्तदेतेभ्यो विनिर्गतम्।
पञ्चाङ्गानि पुराणेषु आख्यानकमतः स्मृतम्॥ ६३

सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंश्यानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम्॥ ६४

ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां माहात्म्यं भुवनस्य च।
ससंहारप्रदानां च पुराणे पञ्चवर्णके॥ ६५

धर्मश्चार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवात्र कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद्विरुद्धं च यत् फलम्॥ ६६

मुनिवरो! जहाँ भविष्यकी चर्चासहित साम्बका प्रसङ्ग लेकर कथानकका वर्णन किया गया है, उसे लोकमें साम्बपुराण कहते हैं। इस प्रकार सूर्य-महिमाके प्रसङ्गमें होनेसे उसे आदित्यपुराण भी कहा जाता है। द्विजवरो! उपर्युक्त अठारह पुराणोंसे पृथक् जो पुराण बतलाये गये हैं, उन्हें इन्हींसे निकला हुआ समझना चाहिये। पुराणोंमें बतलाये गये सर्गादि पाँच अङ्ग तथा आख्यान भी कहे गये हैं। उनमें—सर्ग (ब्रह्माद्वारा की गयी सृष्टिरचना), प्रतिसर्ग (ब्रह्माके मानस पुत्रोंद्वारा की गयी सृष्टि-रचना*), वंश (सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि), मन्वन्तर (स्वायम्भुव आदि मनुओंका कार्यकाल) और वंश्यानुचरित (पूर्वोक्त वंशोंमें उत्पन्न हुए नरेशोंका जीवन-चरित्र)—ये पाँच पुराणोंके लक्षण बतलाये गये हैं। इन पाँच लक्षणोंवाले सभी पुराणोंमें सृष्टि और संहार करनेवाले ब्रह्मा, विष्णु, सूर्य और रुद्रके तथा भुवनके माहात्म्यका वर्णन किया गया है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका भी इनमें विस्तृत विवेचन किया गया है। इनके विरुद्ध आचरण करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका भी निरूपण किया गया है॥ ५९—६६॥

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरेः।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः॥ ६७

तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितॄणां च निगद्यते॥ ६८

अष्टादश पुराणानि कृत्वा सत्यवतीसुतः।
भारताख्यानमखिलं चक्रे तदुपबृंहितम्।
लक्षेणैकेन यत् प्रोक्तं वेदार्थपरिबृंहितम्॥ ६९

वाल्मीकिना तु यत् प्रोक्तं रामोपाख्यानमुत्तमम्।
ब्रह्मणाभिहितं यच्च शतकोटिप्रविस्तरम्॥ ७०

आहृत्य नारदायैव तेन वाल्मीकये पुनः।
वाल्मीकिना च लोकेषु धर्मकामार्थसाधनम्।
एवं सपादाः पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्तिताः॥ ७१

सत्त्वगुणप्रधान पुराणोंमें भगवान् विष्णुके माहात्म्यकी तथा रजोगुणप्रधान पुराणोंमें ब्रह्माकी प्रधानता जाननी चाहिये। उसी प्रकार तमोगुणप्रधान पुराणोंमें अग्नि और शिवजीके माहात्म्यका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है। संकीर्ण पुराणों (उपपुराणों)-में सरस्वती और पितरोंका वृत्तान्त कहा गया है। सत्यवती-नन्दन व्यासजीने इन अठारह पुराणोंकी रचना कर इनके कथानकोंसे समन्वित सम्पूर्ण महाभारत नामक इतिहासकी रचना की, जो वेदोंके अर्थसे सम्पन्न है। वह एक लाख श्लोकोंमें वर्णित है। महर्षि वाल्मीकिने जिस उत्तम रामोपाख्यान—रामायणका वर्णन किया है, उसीको पहले सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तार करके ब्रह्माने नारदजीको बतलाया था। नारदजीने उसे लाकर वाल्मीकिजीको प्रदान किया। वाल्मीकिजीने धर्म, अर्थ और कामके साधनस्वरूप उस रामायणका लोकोंमें प्रचार किया। इस प्रकार ये सवा पाँच लाख श्लोक मृत्युलोकमें प्रचलित बतलाये गये हैं।

*पुराणोंमें प्रायः 'प्रतिसर्ग'का दूसरा अर्थ प्रतिसंचर या प्रलय भी आया है। यहाँ केवल तीन ही उपपुराणोंका वर्णन हुआ है। पर कूर्मपुराणके आरम्भमें अठारह उपपुराणोंका रूप कथन है।

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्बुधाः।
धन्यं यशस्यमायुष्यं पुराणानामनुक्रमम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि स याति परमां गतिम्॥ ७२
इदं पवित्रं यशसो निधान-
मिदं पितॄणामतिवल्लभं च।
इदं च देवेष्वमृतायितं च
नित्यं त्विदं पापहरं च पुंसाम्॥ ७३*

विद्वान्लोग इन पुराणोंको पुरातन कल्पकी कथाएँ मानते हैं। इन पुराणोंका अनुक्रम धन, यश और आयुकी वृद्धि करनेवाला है। जो इसे पढ़ता अथवा सुनता है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता है। यह परम पवित्र और यशका खजाना है। यह पितरोंको परम प्रिय है। यह देवताओंमें अमृतके समान प्रतिष्ठित है और नित्य मनुष्योंके पापका हरण करनेवाला है॥ ६७—७३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पुराणानुक्रमणिकाभिधानं नाम त्रिपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पुराणानुक्रमणिकाभिधान नामक तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५३॥

चौवनवाँ अध्याय

नक्षत्र-पुरुष-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि दानधर्मानशेषतः।
व्रतोपवाससंयुक्तान् यथा मत्स्योदितानिह॥ १

महादेवस्य संवादे नारदस्य च धीमतः।
यथावृत्तं प्रवक्ष्यामि धर्मकामार्थसाधकम्॥ २

कैलासशिखरासीनमपृच्छन्नारदः पुरा।
त्रिनयनमनङ्गारिमनङ्गाङ्गहरं हरम्॥ ३

नारद उवाच

भगवन् देवदेवेश ब्रह्मविष्ण्विन्द्रनायक।
श्रीमदारोग्यरूपायुर्भाग्यसौभाग्यसम्पदा ।
संयुक्तस्तव विष्णोर्वा पुमान् भक्तः कथं भवेत्॥ ४

नारी वा विधवा सर्वगुणसौभाग्यसंयुता।
क्रमान्मुक्तिप्रदं देव किञ्चिद् व्रतमिहोच्यताम्॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद अब मैं व्रत और उपवाससे समन्वित सभी दान-धर्मोंका पूर्णरूपसे उसी प्रकार वर्णन कर रहा हूँ, जैसे इस मृत्युलोकमें मत्स्यभगवान्‌ने मनुके प्रति किया था। इसी प्रकार महादेवजी तथा बुद्धिमान् नारदजीके संवादमें धर्म, काम और अर्थको सिद्ध करनेवाला जैसा वृत्तान्त घटित हुआ था, उसे भी बतला रहा हूँ। पूर्वकालकी बात है, एक बार भगवान् शङ्कर, जो तीन नेत्रोंसे युक्त, कामदेवके शत्रु और कामदेवके शरीरको दग्ध कर देनेवाले हैं, कैलास पर्वतके शिखरपर सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उसी समय देवर्षि नारदने उनके पास जाकर ऐसा प्रश्न किया॥ १—३॥

नारदजीने पूछा—भगवन्! आप तो देवेश्वरोंके भी देव तथा ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रके अधीश्वर हैं, इसलिये यह बताइये कि आपका अथवा भगवान् विष्णुका भक्त पुरुष किस प्रकार धन-सम्पत्ति, नीरोगता, सौन्दर्य, आयु, भाग्य और सौभाग्यरूपी सम्पत्तिसे सम्पन्न हो सकता है? अथवा विधवा स्त्री (जन्मान्तरमें) किस प्रकार समस्त गुणों एवं सौभाग्यसे संयुक्त हो सकती है? तथा देव! इस लोकमें कोई अन्य मुक्तिदायक व्रत हो तो क्रमशः उसे भी बतलाइये॥ ४-५॥

* पुराण-संख्या-निर्देश-दाननिरूपणादि प्रायः अठारह पुराणोंमें ही वर्णित है। पर यहाँ तथा नारदपुराण ९१—१०८में यह कुछ विस्तारसे निरूपित है। गीतामें ब्रह्मसूत्रका, ब्रह्मसूत्रमें गीताका, पुराणोंमें महाभारतका तथा परस्पर एक-दूसरेका एवं महाभारतमें पुराणोंका ठीक-ठीक वर्णन व्यासजीके अद्भुत दिव्य ज्ञान एवं वैदुष्यका ही चमत्कार है।

ईश्वर उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया ब्रह्मन् सर्वलोकहितावहम्।
श्रुतमप्यत्र यच्छान्त्यै तद् व्रतं शृणु नारद॥ ६

नक्षत्रपुरुषं नाम व्रतं नारायणात्मकम्।
पादादि कुर्याद् शीर्षान्तं विष्णुनामानुकीर्तनम्॥ ७

प्रतिमां वासुदेवस्य मूलर्क्षादिषु चार्चयेत्।
चैत्रमासं समासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥ ८

मूले नमो विश्वधराय पादौ
गुल्फावनन्ताय च रोहिणीषु।
जङ्घेऽभिपूज्ये वरदाय चैव
द्वे जानुनी चाश्विकुमारऋक्षे॥ ९

पूर्वोत्तराषाढयुगे तथोरू
नमः शिवायेत्यभिपूजनीयौ।
पूर्वोत्तराफल्गुनियुग्मके च
मेढ्रं नमः पञ्चशराय पूज्यम्॥ १०

कटिं नमः शार्ङ्गधराय विष्णोः
सम्पूजयेन्नारद कृत्तिकासु।
तथार्चयेद् भाद्रपदाद्वये च
पार्श्वे नमः केशिनिषूदनाय॥ ११

कुक्षिद्वयं नारद रेवतीषु
दामोदरायेत्यभिपूजनीयम्।
ऋक्षेऽनुराधासु च माधवाय
नमस्तथोरःस्थलमेव पूज्यम्॥ १२

पृष्ठं धनिष्ठासु च पूजनीय-
मघौघविध्वंसकराय तच्च।
श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय
नमो विशाखासु भुजाश्च पूज्याः॥ १३

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! आपने तो बड़ा उत्तम प्रश्न किया, यह तो समस्त लोकोंके लिये हितकारी है। नारद! जो सुननेमात्रसे शान्ति प्रदान करनेवाला है, वह व्रत मैं बतला रहा हूँ, सुनो। नक्षत्रपुरुष* नामक एक व्रत है, जो भगवान् नारायणका स्वरूप ही है। इस व्रतमें चैत्रमास आनेपर भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करते हुए विधिपूर्वक चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्तकी एक विष्णुकी मूर्ति बनावे। फिर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर मूल आदि नक्षत्रोंमें क्रमशः भगवान् विष्णुकी उस प्रतिमाका पूजन करे। मूल-नक्षत्रमें **'विश्वधराय नमः'**—'विश्वके धारकको नमस्कार है'—यों कहकर दोनों चरणोंकी, रोहिणी नक्षत्रमें **'अनन्ताय नमः'**—'अनन्तको प्रणाम है'—कहकर दोनों गुल्फोंकी तथा अश्विनी नक्षत्रमें **'वरदाय नमः'**—'वरदाताको अभिवादन है'—कहकर दोनों जानुओं और दोनों जङ्घाओंकी पूजा करे। पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रोंमें **'शिवाय नमः'**—'शिवजीको नमस्कार है'—कहकर दोनों ऊरुओंकी पूजा करे। पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रोंमें **'पञ्चशराय नमः'**—'पाँच बाण धारण करनेवालेको प्रणाम है'—कहकर जननेन्द्रियकी पूजा करे। नारद! कृत्तिकानक्षत्रमें **'शार्ङ्गधराय नमः'**—'शार्ङ्ग-धनुष धारण करनेवालेको अभिवादन है'—कहकर भगवान् विष्णुकी कटिका पूजन करे। इसी प्रकार पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद नक्षत्रोंमें **'केशिनिषूदनाय नमः'**—'केशी नामक असुरके संहारकको नमस्कार है'—कहकर दोनों पार्श्वभागोंकी पूजा करे। नारद! रेवती नक्षत्रमें **'दामोदराय नमः'**—'दामोदरको प्रणाम है'—कहकर दोनों कुक्षियोंकी पूजा करनी चाहिये। अनुराधा नक्षत्रमें **'माधवाय नमः'**—'माधव (लक्ष्मीके प्राणपति)-को अभिवादन है'—कहकर वक्षःस्थलकी पूजा करे। धनिष्ठा नक्षत्रमें **'अघौघविध्वंसकराय नमः'**—'पापसमूहके विनाशकको नमस्कार है'—कहकर पृष्ठभागकी पूजा करनी चाहिये। विशाखा नक्षत्रमें **'श्रीशङ्खचक्रासिगदाधराय नमः'**—'लक्ष्मी, शङ्ख, चक्र, खड्ग और गदा धारण करनेवालेको प्रणाम है'—कहकर भुजाओंका पूजन करना चाहिये॥ ६—१३॥

* वामनपुराण अध्याय ८० के 'नक्षत्रपुरुष' व्रतमें भी प्रायः ये ही बातें स्वल्पान्तरसे आयी हैं। वहाँ पूजाके मन्त्र नहीं, पर दोहदपदार्थ—अभिलषित पदार्थ उपदिष्ट हैं। इस अर्चामें नक्षत्रक्रमसे नहीं, अङ्गक्रमसे निर्दिष्ट हैं। यह अद्भुत बात है।

हस्ते तु हस्ता मधुसूदनाय
नमोऽभिपूज्या इति कैटभारेः।
पुनर्वसावङ्गुलिपूर्वभागाः
साम्नामधीशाय नमोऽभिपूज्याः॥ १४
भुजङ्गनक्षत्रदिने नखानि
सम्पूजयेन्मत्स्यशरीरभाजः ।
कूर्मस्य पादौ शरणं व्रजामि
ज्येष्ठासु कण्ठे हरिरर्चनीयः॥ १५
श्रोत्रे वराहाय नमोऽभिपूज्ये
जनार्दनस्य श्रवणेन सम्यक्।
पुष्ये मुखं दानवसूदनाय
नमो नृसिंहाय च पूजनीयम्॥ १६
नमो नमः कारणवामनाय
स्वातीषु दन्ताग्रमथार्चनीयम्।
आस्यं हरेर्भार्गवनन्दनाय
सम्पूजनीयं द्विज वारुणे तु॥ १७
नमोऽस्तु रामाय मघासु नासा
सम्पूजनीया रघुनन्दनस्य।
मृगोत्तमाङ्गे नयनेऽभिपूज्ये
नमोऽस्तु ते राम विघूर्णिताक्ष॥ १८
बुद्धाय शान्ताय नमो ललाटं
चित्रासु सम्पूज्यतमं मुरारेः।
शिरोऽभिपूज्यं भरणीषु विष्णो-
र्नमोऽस्तु विश्वेश्वर कल्किरूपिणे॥ १९
आर्द्रासु केशाः पुरुषोत्तमस्य
सम्पूजनीया हरये नमस्ते।
उपोषितेनर्क्षदिनेषु भक्त्या
सम्पूजनीया द्विजपुङ्गवाः स्युः॥ २०

हस्तनक्षत्रमें **'मधुसूदनाय नमः'**—'मधु नामक दैत्यके वधकर्ताको अभिवादन है'—कहकर कैटभ नामक असुरके शत्रु—भगवान् विष्णुके (चारों) हाथोंका पूजन करे। पुनर्वसुनक्षत्रमें **'साम्नामधीशाय नमः'**—'सामवेदकी ऋचाओंके अधीश्वरको नमस्कार है'—कहकर अङ्गुलियोंके अग्रभागकी पूजा करे। आश्लेषा-नक्षत्रके दिन **'मत्स्यशरीरभाजः पादौ शरणं व्रजामि'**—'मत्स्य-शरीरधारीके चरणोंके शरणागत हूँ'—कहकर नखोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठानक्षत्रमें **'कूर्मस्य पादौ शरणं व्रजामि'**—'कूर्मरूपधारी भगवान्‌के चरणोंकी शरणमें जाता हूँ'—कहकर कण्ठस्थानमें भगवान् श्रीहरिकी पूजा करनी चाहिये। श्रवणनक्षत्रमें **'वराहाय नमः'**—'वराहरूपधारी भगवान्‌को प्रणाम है'—कहकर भगवान् जनार्दनके दोनों कानोंका* भलीभाँति पूजन करे। पुष्य-नक्षत्रमें **'दानवसूदनाय नृसिंहाय नमः'**—'दानवोंके विनाशक नृसिंहरूपधारी भगवान्‌को अभिवादन है'—कहकर मुखकी अर्चना करनी चाहिये। स्वातीनक्षत्रमें **'कारणवामनाय नमो नमः'**—'कारणवश वामनरूपधारी भगवान्‌को बारम्बार नमस्कार है'—कहकर दाँतोंके अग्रभागकी पूजा करनी चाहिये। द्विजवर नारद! शतभिष्-नक्षत्रमें **'भार्गवनन्दनाय नमः'**—'भार्गवनन्दन परशुरामजीको प्रणाम है'—कहकर मुखके मध्यभागका पूजन करे। मघानक्षत्रमें **'रामाय नमोऽस्तु'**—'श्रीरामको अभिवादन है'—कहकर श्रीरघुनन्दनकी नासिकाकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। मृगशिरानक्षत्रमें **'विघूर्णिताक्ष राम! ते नमोऽस्तु'**—'तिरछी चितवनसे युक्त राम! आपको नमस्कार है'—कहकर उत्तमाङ्गरूप नेत्रोंकी पूजा करे। चित्रानक्षत्रमें **'शान्ताय बुद्धाय नमः'**—'परम शान्त बुद्धभगवान्‌को प्रणाम है'—कहकर भगवान् मुरारिके ललाटका पूजन करना चाहिये। भरणीनक्षत्रमें **'विश्वेश्वर कल्किरूपिणे नमोऽस्तु'**—'विश्वेश्वर! कल्किरूपधारी आपको अभिवादन है'—कहकर भगवान् विष्णुके सिरका पूजन करे। आर्द्रानक्षत्रमें **'हरये नमस्ते'**—'श्रीहरिको नमस्कार है'—कहकर पुरुषोत्तमभगवान्‌के बालोंकी पूजा करनी चाहिये। व्रती मनुष्यद्वारा उपर्युक्त नक्षत्र-दिनोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मणोंका भी भक्तिपूर्वक सम्यक् प्रकारसे पूजन करते रहना चाहिये॥ १४—२०॥

* यहाँ पुनर्वसुका सामवेदसे, हस्तका हाथोंसे तथा श्रवणमें कानों आदिसे सम्बन्ध दिखलाकर आलंकारिक चमत्कार प्रदृष्ट हुआ है।

पूर्णे व्रते सर्वगुणान्विताय
वाग्रूपशीलाय च सामगाय।
हैमीं विशालायतबाहुदण्डां
मुक्ताफलेन्दूपलवज्रयुक्ताम् ॥ २१
जलस्य पूर्णे कलशे निविष्टा-
मर्चां हरेर्वस्त्रगवा सहैव।
शय्यां तथोपस्करभाजनादि-
युक्तां प्रदद्याद् द्विजपुंगवाय॥ २२
यद्यस्ति यत्किञ्चिदिहास्ति देयं
दद्याद् द्विजायात्महिताय सर्वम्।
मनोरथं नः सफलीकुरुष्व
हिरण्यगर्भाच्युतरुद्ररूपिन् ॥ २३
सलक्ष्मीकं सभार्याय काञ्चनं पुरुषोत्तमम्।
शय्यां च दद्यान्मन्त्रेण ग्रन्थिभेदविवर्जिताम्॥ २४
यथा न विष्णुभक्तानां वृजिनं जायते क्वचित्।
तथा सुरूपताऽऽरोग्यं केशवे भक्तिमुत्तमाम्॥ २५
यथा न लक्ष्म्या शयनं तव शून्यं जनार्दन।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु कृष्ण जन्मनि जन्मनि॥ २६
एवं निवेद्य तत् सर्वं वस्त्रमाल्यानुलेपनम्।
नक्षत्रपुरुषज्ञाय विप्रायाथ विसर्जयेत्॥ २७
भुञ्जीतातैललवणं सर्वर्क्षेष्वप्युपोषितः।
भोजनं च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्॥ २८
इति नक्षत्रपुरुषमुपास्य विधिवत् स्वयम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते॥ २९
ब्रह्महत्यादिकं किञ्चिदिह वामुत्र वा कृतम्।
आत्मना वाथ पितृभिस्तत् सर्वं क्षयमाप्नुयात्॥ ३०
इति पठति शृणोति यश्च भक्त्या
पुरुषवरो व्रतमङ्गनाथ कुर्यात्।
कलिकलुषविदारणं मुरारेः
सकलविभूतिफलप्रदं च पुंसाम्॥ ३१

इस प्रकार व्रतके समाप्त होनेपर जो सम्पूर्ण सद्गुणोंसे सम्पन्न, वक्ता, सौन्दर्यशाली, सुशील और सामवेदका ज्ञाता हो, ऐसे श्रेष्ठ ब्राह्मणको उस स्वर्णनिर्मित एवं मुक्ताफल, चन्द्रकान्त-मणि और हीरेसे खचित जलपूर्ण कलशमें रखी हुई विशाल एवं लम्बी भुजाओंवाली श्रीहरिकी अर्चा-मूर्तिका वस्त्र और गौके साथ दान कर देना चाहिये। साथ ही पात्र आदि सभी सामग्रियोंसे युक्त शय्याका भी दान करना चाहिये। इस प्रकार उस समय अपने पास जो कुछ भी दान देनेयोग्य वस्तु हो, वह सब अपने कल्याणके लिये उस ब्राह्मणको दान कर दे और उससे यों प्रार्थना करे—'ब्रह्मा, विष्णु और शिवस्वरूप द्विजवर! आप हमारे मनोरथको सफल कीजिये।' स्वर्णनिर्मित लक्ष्मीसहित पुरुषोत्तमभगवान्‌की मूर्तिका तथा ग्रन्थिभेदरहित शय्याका मन्त्रोच्चारणपूर्वक सपत्नीक ब्राह्मणको दान करनेका विधान है। उस समय ऐसी प्रार्थना करे—'भगवन्! जैसे विष्णु-भक्तोंको कहीं भी कष्ट नहीं प्राप्त होता, वैसे ही मुझे भी (आपकी कृपासे) सुन्दर रूप, नीरोगता और आप—भगवान् केशवके प्रति उत्तम भक्ति प्राप्त हो। जनार्दन! जैसे आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, श्रीकृष्ण! वैसे ही मेरी भी शय्या प्रत्येक जन्ममें अशून्य बनी रहे।' इस प्रकार निवेदन कर वस्त्र, माला, चन्दन आदि सभी वस्तुएँ नक्षत्रपुरुष-व्रतके ज्ञाता ब्राह्मणको देकर व्रतका विसर्जन करना चाहिये। इस प्रकार सभी नक्षत्रोंमें उपवास करके एक बार तेल और नमकरहित भोजन करनेका विधान है। वह भोजन शक्तिके अनुसार उपयुक्त होना चाहिये। उसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार स्वयं विधिपूर्वक नक्षत्रपुरुषकी उपासना करके मनुष्य इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और मृत्युके पश्चात् विष्णुलोकमें पूजित होता है। साथ ही इहलोक अथवा परलोकमें अपने अथवा पितरोंद्वारा जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप घटित हुए रहते हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार श्रेष्ठ पुरुष अथवा स्त्री—जो कोई भी हो, उसे इस व्रतका पठन, श्रवण और अनुष्ठान करना चाहिये। भगवान् मुरारिका यह व्रत कलिके प्रभावसे घटित हुए पापोंको विदीर्ण करनेवाला और समस्त विभूतियोंके फलका प्रदाता है॥ २१—३१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नक्षत्रपुरुषव्रतं नाम चतुःपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नक्षत्रपुरुष-व्रत नामक चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५४॥

पचपनवाँ अध्याय

आदित्यशयन-* व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

उपवासेष्वशक्तस्य तदेव फलमिच्छतः।
अनभ्यासेन रोगाद् वा किमिष्टं व्रतमुत्तमम्॥ १

नारदजीने पूछा—भगवन्! जो अभ्यास न होनेके कारण अथवा रोगवश उपवास करनेमें असमर्थ है, किंतु उसका फल चाहता है, उसके लिये कौन-सा व्रत उत्तम है—यह बताइये॥ १॥

ईश्वर उवाच

उपवासेष्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते।
यस्मिन् व्रते तदप्यत्र श्रूयतामक्षयं महत्॥ २
आदित्यशयनं नाम यथावच्छङ्करार्चनम्।
येषु नक्षत्रयोगेषु पुराणज्ञाः प्रचक्षते॥ ३
यदा हस्तेन सप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्।
सूर्यस्य चाथ संक्रान्तिस्तिथिः सा सार्वकामिकी॥ ४
उमामहेश्वरस्यार्चामर्चयेत् सूर्यनामभिः।
सूर्यार्चां शिवलिङ्गं च प्रकुर्वन् पूजयेद् यतः॥ ५
उमापते रवेर्वापि न भेदो दृश्यते क्वचित्।
यस्मात् तस्मान्मुनिश्रेष्ठ गृहे शम्भुं (भानुं) समर्चयेत्॥ ६
हस्ते च सूर्याय नमोऽस्तु पादाव-
र्काय चित्रासु च गुल्फदेशम्।
स्वातीषु जङ्घे पुरुषोत्तमाय
धात्रे विशाखासु च जानुदेशम्॥ ७
तथानुराधासु नमोऽभिपूज्य-
मूरुद्वयं चैव सहस्रभानोः।
ज्येष्ठास्वनङ्गाय नमोऽस्तु गुह्य-
मिन्द्राय भीमाय कटिं च मूले॥ ८

भगवान् शंकरने कहा—नारद! जो लोग उपवास करनेमें असमर्थ हैं, उनके लिये वही व्रत अभीष्ट है, जिसमें दिनभर उपवास करके रात्रिमें भोजनका विधान हो; मैं ऐसे महान् एवं अक्षय फल देनेवाले व्रतका परिचय देता हूँ, सुनो। उस व्रतका नाम है—'आदित्य-शयन'। उसमें विधिपूर्वक भगवान् शङ्करकी पूजा की जाती है। पुराणोंके ज्ञाता महर्षि जिन नक्षत्रोंके योगमें इस व्रतका उपदेश करते हैं, उन्हें बताता हूँ। जब सप्तमी तिथिको हस्तनक्षत्रके साथ रविवार हो अथवा सूर्यकी संक्रान्ति हो, वह तिथि समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाली होती है। उस दिन सूर्यके नामोंसे भगवती पार्वती और महादेवजीकी पूजा करनी चाहिये। सूर्यदेवकी प्रतिमा तथा शिवलिङ्गका भी भक्तिपूर्वक पूजन करना उचित है; क्योंकि मुनिश्रेष्ठ! उमापति शङ्कर अथवा सूर्यमें कहीं भेद नहीं देखा जाता; इसलिये अपने घरमें शङ्करजीकी अर्चना करनी चाहिये। हस्तनक्षत्रमें **'सूर्याय नमः'** का उच्चारण करके सूर्यदेवके चरणोंकी, चित्रा-नक्षत्रमें **'अर्काय नमः'** कहकर उनके गुल्फों (घुट्टियों)-की, स्वातीनक्षत्रमें **'पुरुषोत्तमाय नमः'** से पिंडलियोंकी, विशाखामें **'धात्रे नमः'** से घुटनोंकी तथा अनुराधामें **'सहस्रभानवे नमः'** से दोनों जाँघोंकी पूजा करनी चाहिये। ज्येष्ठानक्षत्रमें **'अनङ्गाय नमः'** से गुह्य प्रदेशकी, मूलमें **'इन्द्राय नमः'** और **'भीमाय नमः'** से कटिभागकी पूजा करे॥ २—८॥

* इस अध्यायमें आदित्यशयन नामक बड़े सरस व्रतधर्मका उल्लेख है। सूर्यके नामोंमें वेद, वाल्मीकीय रामायण युद्धकाण्ड एवं भविष्यपुराणके आदित्यहृदयादिमें भी आये हुए नाम हैं। मत्स्यपुराणकी सभी प्रतियाँ यहाँ बहुत अशुद्ध हैं। अन्य पुराणों तथा व्रतनिबन्धोंके सहारे ये पाठ शुद्ध किये गये हैं।

पूर्वोत्तराषाढयुगे च नाभिं
त्वष्ट्रे नमः सप्ततुरङ्गमाय।
तीक्ष्णांशवे च श्रवणे च कुक्षौ
पृष्ठं धनिष्ठासु विकर्तनाय॥ ९
वक्षःस्थलं ध्वान्तविनाशनाय
जलाधिपर्क्षे: परिपूजनीयम्।
पूर्वोत्तराभाद्रपदद्वये च
बाहू नमश्चण्डकराय पूज्यौ॥ १०
साम्नामधीशाय करद्वयं च
सम्पूजनीयं द्विज रेवतीषु।
नखानि पूज्यानि तथाश्विनीषु
नमोऽस्तु सप्ताश्वधुरंधराय॥ ११
कठोरधाम्ने भरणीषु कण्ठं
दिवाकरायेत्यभिपूजनीया।
ग्रीवाग्निपर्क्षेऽधरमम्बुजेशे
सम्पूजयेन्नारद रोहिणीषु॥ १२
मृगेऽर्चनीया रसना पुरारेः
रौद्रे तु दन्ता हरये नमस्ते।
नमः सवित्रे इति शंकरस्य
नासाभिपूज्या च पुनर्वसौ च॥ १३
ललाटमम्भोरुहवल्लभाय
पुष्येऽलकान् वेदशरीरधारिणे।
सार्पेऽथ मौलिं विबुधप्रियाय
मघासु कर्णाविति गोगणेशे॥ १४
पूर्वासु गोब्राह्मणनन्दनाय
नेत्राणि सम्पूज्यतमानि शम्भोः।
अथोत्तराफल्गुनिभे भ्रुवौ च
विश्वेश्वरायेति च पूजनीये॥ १५
नमोऽस्तु पाशाङ्कुशपद्मशूल-
कपालसर्पेन्दुधनुर्धराय।
गजासुरानङ्गपुरान्धकादि-
विनाशमूलाय नमः शिवाय॥ १६
इत्यादि चास्त्राणि च पूजयित्वा
विश्वेश्वरायेति शिवोऽभिपूज्यः।
भोक्तव्यमत्रैवमतैलशाक-
ममांसमक्षारमभुक्तशेषम्॥ १७

पूर्वाषाढ और उत्तराषाढमें **'त्वष्ट्रे नमः'** और **'सप्ततुरङ्गाय नमः'** से नाभिकी, श्रवणमें **'तीक्ष्णांशवे नमः'** से दोनों कुक्षियोंकी, धनिष्ठामें **'विकर्तनाय नमः'** से पृष्ठभागकी और शतभिष नक्षत्रमें **'ध्वान्तविनाशनाय नमः'** से सूर्यके वक्षःस्थलकी पूजा करनी चाहिये। द्विजवर! पूर्वाभाद्रपद और उत्तराभाद्रपदमें **'चण्डकराय नमः'** से दोनों भुजाओंका, रेवतीमें **'साम्नामधीशाय नमः'** से दोनों हाथोंका पूजन करना चाहिये। अश्विनीमें **'सप्ताश्वधुरंधराय नमः'** से नखोंका और भरणीमें **'कठोरधाम्ने नमः'** से भगवान् सूर्यके कण्ठका पूजन करे। नारदजी! कृत्तिकामें **'दिवाकराय नमः'** से ग्रीवाकी, रोहिणीमें **'अम्बुजेशाय नमः'** से सूर्यदेवके ओठोंकी, मृगशिरामें **'हरये नमस्ते'** से त्रिपुर-दाहक शिवकी जिह्वाकी और आर्द्रानक्षत्रमें **'रुद्राय नमः'** से उनके दाँतोंकी पूजा करनी चाहिये। पुनर्वसुमें **'सवित्रे नमः'** से शङ्करजीकी नासिकाका, पुष्यमें **'अम्भोरुहवल्लभाय नमः'** से ललाटका तथा **'वेदशरीरधारिणे नमः'** से शिवके बालोंका पूजन करना चाहिये। आश्लेषामें **'विबुधप्रियाय नमः'** से उनके मस्तकका, मघामें **'गोगणेशाय नमः'** से शङ्करजीके दोनों कानोंका, पूर्वाफाल्गुनीमें **'गोब्राह्मणनन्दनाय नमः'** से शम्भुके नेत्रोंका तथा उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रमें **'विश्वेश्वराय नमः'** से उनकी दोनों भौंहोंका पूजन करे। 'पाश, अङ्कुश, त्रिशूल, कमल, कपाल, सर्प, चन्द्रमा तथा धनुष धारण करनेवाले श्रीमहादेवजीको नमस्कार है। गजासुर, कामदेव, त्रिपुर और अन्धकासुर आदिके विनाशके मूल कारण भगवान् श्रीशिवको प्रणाम है।' इत्यादि वाक्योंका उच्चारण करके प्रत्येक अङ्गकी पूजा करनेके पश्चात् **'विश्वेश्वराय नमः'** से भगवान् शिवका पूजन करना चाहिये। तदनन्तर अन्न-भोजन करना उचित है। भोजनमें तेलसे युक्त शाक और खारे नमकका उपयोग नहीं करना चाहिये। मांस और उच्छिष्ट अन्नका तो कदापि सेवन न करे॥ ९—१७॥

इत्येवं द्विज नक्तानि कृत्वा दद्यात् पुनर्वसौ।
शालेयतण्डुलप्रस्थमौदुम्बरमये घृतम्॥ १८
संस्थाप्य पात्रे विप्राय सहिरण्यं निवेदयेत्।
सप्तमे वस्त्रयुग्मं च पारणे त्वधिकं भवेत्॥ १९
चतुर्दशे तु सम्प्राप्ते पारणे नारदाब्दिके।
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभिः॥ २०
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममष्टपत्रं सकर्णिकम्।
शुद्धमष्टाङ्गुलं तच्च पद्मरागदलान्वितम्॥ २१
शय्यां सुलक्षणां कृत्वा विरुद्धग्रन्थिवर्जितम्।
सोपधानकविश्रामस्वास्तरव्यजनाश्रिताम्॥ २२
भाजनोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः।
भूषणैरपि संयुक्तां फलवस्त्रानुलेपनैः॥ २३
तस्यां विधाय तत्पद्ममलङ्कृत्य गुणान्विताम्।
कपिलां वस्त्रसंयुक्तां सुशीलां च पयस्विनीम्॥ २४
रौप्यखुरीं हेमशृङ्गीं सवत्सां कांस्यदोहनाम्।
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्णे न चैनामभिलङ्घयेत्॥ २५
यथैवादित्य शयनमशून्यं तव सर्वदा।
कान्त्या धृत्या श्रिया रत्या तथा मे सन्तु सिद्धयः॥ २६
यथा न देवाः श्रेयांसं त्वदन्यमनघं विदुः।
तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात्॥ २७
ततः प्रदक्षिणीकृत्य प्रणिपत्य विसर्जयेत्।
शय्यागवादि तत् सर्वं द्विजस्य भवनं नयेत्॥ २८

द्विजवर नारद! इस प्रकार रात्रिमें शुद्ध भोजन करके पुनर्वसुनक्षत्रमें गूलरकी लकड़ीके पात्रमें एक सेर अगहनीका चावल तथा घृत रखकर सुवर्णके साथ उसे ब्राह्मणको दान करना चाहिये। सातवें दिनके पारणमें और दिनोंकी अपेक्षा एक जोड़ा वस्त्र अधिक दान करना चाहिये। नारद! चौदहवें दिनमें पारणमें गुड़, खीर और घृत आदिके द्वारा ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन कराये। तदनन्तर कर्णिकासहित सोनेका अष्टदल कमल बनवाये, जो आठ अङ्गुलका हो तथा जिसमें पद्मरागमणि (माणिक्य अथवा लाल)-की पत्तियाँ अङ्कित की गयी हों। फिर सुन्दर शय्या तैयार करावे, जिसपर सुन्दर बिछौने बिछाकर तकिया रखा गया हो, शय्याके ऊपर पंखा रखा गया हो। उसके आस-पास बर्तन, खड़ाऊँ, जूता, छत्र, चँवर, आसन और दर्पण रखे गये हों। फल, वस्त्र, चन्दन तथा आभूषणोंसे वह शय्या सुशोभित होनी चाहिये। ऊपर बताये हुए सर्वगुणसम्पन्न सोनेके कमलको अलङ्कृत करके उस शय्यापर रख दे। इसके बाद मन्त्रोच्चारणपूर्वक दूध देनेवाली अत्यन्त सीधी कपिला गौका दान करे। वह गौ उत्तम गुणोंसे सम्पन्न, वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित और बछड़ेसहित होनी चाहिये। उसके खुर चाँदीसे और सींग सोनेसे मढ़े होने चाहिये तथा उसके साथ काँसेकी दोहनी होनी चाहिये। दिनके पूर्व भागमें ही दान करना उचित है। समयका उल्लङ्घन कदापि नहीं करना चाहिये। शय्यादानके पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'सूर्यदेव! जिस प्रकार आपकी शय्या कान्ति, धृति, श्री और रतिसे कभी सूनी नहीं होती, वैसे ही मुझे भी सिद्धियाँ प्राप्त हों। देवगण आपके सिवा और किसीको निष्पाप एवं श्रेयस्कर नहीं जानते, इसलिये आप सम्पूर्ण दुःखोंसे भरे हुए इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।' इसके पश्चात् भगवान्‌की प्रदक्षिणा कर उन्हें प्रणाम करनेके अनन्तर विसर्जन करे। शय्या और गौ आदि समस्त पदार्थोंको ब्राह्मणके घर पहुँचा दे॥ १८—२८॥

नैतद् विशीलाय न दाम्भिकाय
कुतर्कदुष्टाय विनिन्दकाय।
प्रकाशनीयं व्रतमिन्दुमौले-
र्यश्चापि निन्दामधिकां विधत्ते॥ २९

दुराचारी और दम्भी पुरुषके सामने भगवान् शंकरके इस व्रतकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। जो गौ, ब्राह्मण, देवता, अतिथि और धार्मिक पुरुषोंकी विशेषरूपसे निन्दा करता है, उसके सामने भी इसको प्रकट न करे।

भक्ताय दान्ताय च गुह्यमेत-
दाख्येयमानन्दकरं शिवस्य।
इदं महापातकभिन्नराणा-
मप्यक्षरं वेदविदो वदन्ति॥ ३०
न बन्धुपुत्रेण धनैर्वियुक्तः
पत्नीभिरानन्दकरः सुराणाम्।
नाभ्येति रोगं न च शोकदुःखं
या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या॥ ३१
इदं वसिष्ठेन पुरार्जुनेन
कृतं कुबेरेण पुरन्दरेण।
यत्कीर्तनेनाप्यखिलानि नाश-
मायान्ति पापानि न संशयोऽस्ति॥ ३२
इति पठति शृणोति वा य इत्थं
रविशयनं पुरुहूतवल्लभः स्यात्।
अपि नरकगतान् पितॄनशेषा-
नपि दिवमानयतीह यः करोति॥ ३३

भगवान्‌के भक्त और जितेन्द्रिय पुरुषके समक्ष ही शिवजीका यह आनन्ददायी एवं गूढ़ रहस्य प्रकाशित करनेके योग्य है। वेदवेत्ता पुरुषोंका कहना है कि यह व्रत महापातकी मनुष्योंके भी पापोंका नाश कर देता है। जो पुरुष इस व्रतका अनुष्ठान करता है, उसका बन्धु, पुत्र, धन और स्त्रीसे कभी वियोग नहीं होता तथा वह देवताओंका आनन्द बढ़ानेवाला माना जाता है। इसी प्रकार जो नारी भक्तिपूर्वक इस व्रतका पालन करती है उसे कभी रोग, दुःख और शोकका शिकार नहीं होना पड़ता। प्राचीनकालमें महर्षि वसिष्ठ, अर्जुन, कुबेर तथा इन्द्रने इस व्रतका आचरण किया था। इस व्रतके कीर्तनमात्रसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जो पुरुष इस आदित्यशयन नामक व्रतके माहात्म्य एवं विधिका पाठ या श्रवण करता है, वह इन्द्रका प्रियतम होता है तथा जो इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह नरकमें भी पड़े हुए समस्त पितरोंको स्वर्गलोकमें पहुँचा देता है॥ २९—३३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यशयनव्रतं नाम पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यशयनव्रत नामक पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५५॥

छप्पनवाँ अध्याय

श्रीकृष्णाष्टमी-* व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

कृष्णाष्टमीमथो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम्।
शान्तिर्मुक्तिश्च भवति जयः पुंसां विशेषतः॥ १
शङ्करं मार्गशिरसि शम्भुं पौषेऽभिपूजयेत्।
माघे महेश्वरं देवं महादेवं च फाल्गुने॥ २
स्थाणुं चैत्रे शिवं तद्वद् वैशाखे त्वर्चयेन्नरः।
ज्येष्ठे पशुपतिं चार्चेदाषाढे उग्रमर्चयेत्॥ ३

श्रीभगवान्‌ने कहा—नारद! अब मैं श्रीकृष्णाष्टमी-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो समस्त पापोंका विध्वंस करनेवाला है। इस व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्योंको विशेषरूपसे शान्ति, मुक्ति और विजयकी प्राप्ति होती है। मनुष्यको अगहनमासमें शङ्करकी और पौषमासमें शम्भुकी पूजा करनी चाहिये। माघमासमें देवाधिदेव महेश्वरका, फाल्गुनमासमें महादेवका, चैत्रमासमें स्थाणुका, और उसी प्रकार वैशाखमासमें शिवका पूजन करना उचित है। ज्येष्ठ-मासमें पशुपतिकी और आषाढ़मासमें उग्रकी अर्चना करे।

* यह श्रीकृष्ण-जन्माष्टमीसे भिन्न शिवोपासनाका एक मुख्य अङ्गभूत व्रत है। इसकी महिमा तथा अनुष्ठानविधिका वर्णन भविष्य, नारद, सौरपुराण १४। १—३६, व्रतकल्पद्रुम आदिमें बहुत विस्तारसे है। विशेष जानकारीके लिये उन्हें भी देखना चाहिये।

पूजयेच्छ्रावणे शर्वं नभस्ये त्र्यम्बकं तथा।
हरमाश्वयुजे मासि तथेशानं च कार्त्तिके॥ ४
कृष्णाष्टमीषु सर्वासु शक्तः सम्पूजयेद् द्विजान्।
गोभूहिरण्यवासोभिः शिवभक्तांश्च शक्तितः॥ ५
गोमूत्रघृतगोक्षीरतिलान् यवकुशोदकम्।
गोशृङ्गोदशिरीषार्कबिल्वपत्रदधीनि च।
पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य शंकरं पूजयेन्निशि॥ ६
अश्वत्थं च वटं चैवोदुम्बरं प्लक्षमेव च।
पलाशं जम्बुवृक्षं च विदुः षष्ठं महर्षयः॥ ७
मार्गशीर्षादिमासाभ्यां द्वाभ्यां द्वाभ्यामिति क्रमात्।
एकैकं दन्तपवनं वृक्षेष्वेतेषु भक्षयेत्॥ ८
देवाय दद्यादर्घ्यं च कृष्णां गां कृष्णवाससम्।
दद्यात् समाप्ते दध्यन्नं वितानध्वजचामरम्॥ ९
द्विजानामुदकुम्भांश्च पञ्चरत्नसमन्वितान्।
गावः कृष्णाः सुवर्णं च वासांसि विविधानि च।
अशक्तस्तु पुनर्दद्यात् गामेकामपि शक्तितः॥ १०
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषमवाप्नुयात्।
कृष्णाष्टमीमुपोष्यैव सप्तकल्पशतत्रयम्।
पुमान् सम्पूजितो देवैः शिवलोके महीयते॥ ११

श्रावणमासमें शर्वकी, भाद्रपदमासमें त्र्यम्बककी, आश्विनमासमें हरकी तथा कार्तिकमासमें ईशानकी पूजा करनी चाहिये। धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न व्रतीको चाहिये कि कृष्णपक्षकी सभी अष्टमी तिथियोंमें अपनी शक्तिके अनुसार गौ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रद्वारा शिव-भक्त ब्राह्मणोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजा करे। रातमें गोमूत्र, गोघृत, गोदुग्ध, तिल, यव, कुशोदक, गो-शृङ्गोदक, शिरीष (मौलसिरी)-का पुष्प, मन्दार-पुष्प, बिल्वपत्र और दधि—एकत्र मिश्रित हुए इन पदार्थोंका अथवा केवल पञ्चगव्य (गोदुग्ध, गोघृत, गोदधि, गोमूत्र और गोमय)-का प्राशन करके शङ्करजीकी पूजा करे। महर्षिगण मार्गशीर्षसे प्रारम्भकर कार्तिकतक तथा क्रमशः दो-दो मासोंमें पीपल, बरगद, गूलर, पाकड़, पलाश और छठे जामुनकी दातुनोंको—पूरे वर्षभर इस व्रतमें विशेष उपकारी मानते हैं। (इन वृक्षोंमेंसे एक-एक वृक्षकी दातुन दो-दो मासके क्रमसे करनी चाहिये, अर्थात् दो महीनेतक एक वृक्षकी दातुन करे, पुनः तीसरे-चौथे माससे दूसरे वृक्षकी करे।) फिर प्रधान देवताके निमित्त अर्घ्य देना चाहिये तथा काली गौ और काला वस्त्र दान करना चाहिये। व्रतकी समाप्तिके अवसरपर दही, अन्न, वितान (तम्बू, चँदोवा आदि), ध्वज, चँवर, पञ्चरत्नसे युक्त जलपूर्ण घड़ा, काली गौ, सुवर्ण, अनेकों प्रकारके रंग-बिरंगे वस्त्र आदि ब्राह्मणोंको देनेका विधान है। जो उपर्युक्त वस्तुएँ देनेमें असमर्थ हो, वह अपनी शक्तिके अनुसार एक ही गौका दान करे। दान देनेमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो वह दोषका भागी होता है। जो मनुष्य इस श्रीकृष्णाष्टमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह इक्कीस सौ कल्पोंतक देवताओंद्वारा सम्मानित होकर शिवलोकमें पूजित होता है॥ १—११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कृष्णाष्टमीव्रतं नाम षट्पञ्चाशोऽध्यायः॥ ५६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें श्रीकृष्णाष्टमी-व्रत नामक छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५६॥



सत्तावनवाँ अध्याय

रोहिणीचन्द्रशयन-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

दीर्घायुरारोग्यकुलाभिवृद्धि-
युक्तः पुमान् भूपकुलान्वितः स्यात्।
मुहुर्मुहुर्जन्मनि येन सम्यग्
व्रतं समाचक्ष्व तदिन्दुमौले॥ १

नारदजीने पूछा—चन्द्रभाल! जिस व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य प्रत्येक जन्ममें दीर्घायु, नीरोगता, कुलीनता और अभ्युदयसे युक्त हो राजाके कुलमें जन्म पाता है, उस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन कीजिये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

त्वया पृष्टमिदं सम्यगुक्तं चाक्षय्यकारकम्।
रहस्यं तव वक्ष्यामि यत्पुराणविदो विदुः॥ २
रोहिणीचन्द्रशयनं नाम व्रतमिहोत्तमम्।
तस्मिन् नारायणस्यार्चामर्चयेदिन्दुनामभिः॥ ३
यदा सोमदिने शुक्ला भवेत् पञ्चदशी क्वचित्।
अथवा ब्रह्मनक्षत्रं पौर्णमास्यां प्रजायते॥ ४
तदा स्नानं नरः कुर्यात् पञ्चगव्येन सर्षपैः।
आप्यायस्वेति च जपेद् विद्वानष्ट शतं पुनः॥ ५
शूद्रोऽपि परया भक्त्या पाखण्डालापवर्जितः।
सोमाय वरदायाथ विष्णवे च नमो नमः॥ ६
कृतजप्यः स्वभवनमागत्य मधुसूदनम्।
पूजयेत् फलपुष्पैश्च सोमनामानि कीर्तयन्॥ ७
सोमाय शान्ताय नमोऽस्तुपादा-
वनन्तधाम्नेति च जानुजङ्घे।
ऊरुद्वयं चापि जलोदराय
सम्पूजयेन्मेढ्रमनन्तबाहोः॥ ८
नमो नमः कामसुखप्रदाय
कटिः शशाङ्कस्य सदार्चनीया।
अथोदरं चाप्यमृतोदराय
नाभिः शशाङ्काय नमोऽभिपूज्या॥ ९
नमोऽस्तु चन्द्राय प्रपूज्य कण्ठं
दन्ता द्विजानामधिपाय पूज्याः।
आस्यं नमश्चन्द्रमसेऽभिपूज्य-
मोष्ठौ कुमुद्वन्तवनप्रियाय॥ १०

श्रीभगवान्ने कहा—नारद! तुमने बड़ी उत्तम बात पूछी है। अब मैं तुम्हें वह गोपनीय व्रत बतलाता हूँ, जो अक्षय स्वर्गकी प्राप्ति करानेवाला है तथा जिसे पुराणवेत्ता विद्वान् ही जानते हैं। इस लोकमें 'रोहिणीचन्द्रशयन' नामक व्रत बड़ा ही उत्तम है। इसमें चन्द्रमाके नामोंद्वारा भगवान् नारायणकी प्रतिमाका पूजन करना चाहिये। जब कभी सोमवारके दिन पूर्णिमा-तिथि हो अथवा पूर्णिमाको रोहिणीनक्षत्र हो, उस दिन मनुष्य सवेरे पञ्चगव्य और सरसोंके दानोंसे युक्त जलसे स्नान करे तथा विद्वान् पुरुष 'आप्यायस्व०' इत्यादि मन्त्रको एक सौ आठ बार जपे। यदि शूद्र भी इस व्रतको करे तो अत्यन्त भक्तिपूर्वक **'सोमाय नमः', 'वरदाय नमः', 'विष्णवे नमः'**—इन मन्त्रोंका जप करे और पाखण्डियों—विधर्मियोंसे बातचीत न करे। जप करनेके पश्चात् अपने घर आकर फल-फूल आदिके द्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजा करे। साथ ही चन्द्रमाके नामोंका उच्चारण करता रहे। **'सोमाय नमः'** से भगवान्के दक्षिण चरण और **'शान्ताय नमः'** से वाम चरणका, **'अनन्तधाम्ने नमः'** का उच्चारण करके उनके घुटनों और पिंडलियोंका, **'जलोदराय नमः'** से दोनों जाँघोंका और **'अनन्तबाहवे नमः'** से जननेन्द्रियका पूजन करे। **'कामसुखप्रदाय नमो नमः'** से चन्द्रस्वरूप भगवान्के कटिभागकी सदा अर्चना करनी चाहिये। इसी प्रकार **'अमृतोदराय नमः'** से उदरका और **'शशाङ्काय नमः'** से नाभिका पूजन करे। **'चन्द्राय नमोऽस्तु'** से कण्ठका और **'द्विजानामधिपाय नमः'** से दाँतोंका पूजन करना चाहिये। **'चन्द्रमसे नमः'** से मुँहका पूजन करे। **'कुमुद्वन्तवनप्रियाय नमः'** से

नासा च नाथाय वनौषधीना-
मानन्दबीजाय पुनर्भ्रुवौ च।
नेत्रद्वयं पद्मनिभं तथेन्दो-
रिन्दीवरव्यासकराय शौरेः॥ ११
नमः समस्ताध्वरवन्दिताय
कर्णद्वयं दैत्यनिषूदनाय।
ललाटमिन्दोरुदधिप्रियाय
केशाः सुषुम्नाधिपतेः प्रपूज्याः॥ १२
शिरः शशाङ्काय नमो मुरारे-
र्विश्वेश्वरायेति नमः किरीटिने।
नमः श्रियै रोहिणिनामलक्ष्म्यै
सौभाग्यसौख्यामृतसागरायै॥ १३
देवीं च सम्पूज्य सुगन्धपुष्पै-
र्नैवेद्यधूपादिभिरिन्दुपत्नीम्।
सुप्त्वाथ भूमौ पुनरुत्थितेन
स्नात्वा च विप्राय हविष्ययुक्तः॥ १४
दद्यात् प्रभाते सहिरण्यवारि-
कुम्भं नमः पापविनाशनाय।
सम्प्राश्य गोमूत्रममांसमन्न-
मक्षारमष्टावथ विंशतिं च।
ग्रासान् पयःसर्पियुतानुपोष्य
भुक्त्वेतिहासं शृणुयान्मुहूर्तम्॥ १५
कदम्बनीलोत्पलकेतकानि
जाती सरोजं शतपत्रिका च।
अम्लानकुब्जान्यथ सिन्धुवारं
पुष्पं पुनर्नारद मल्लिकायाः।
शुभ्रं च विष्णोः करवीरपुष्पं
श्रीचम्पकं चन्द्रमसे प्रदेयम्॥ १६
श्रावणादिषु मासेषु क्रमादेतानि सर्वदा।
यस्मिन् मासे व्रतादिः स्यात् तत्पुष्पैरर्चयेद्धरिम्॥ १७
एवं संवत्सरं यावदुपास्य विधिवन्नरः।
व्रतान्ते शयनं दद्याद् दर्पणोपस्करान्वितम्॥ १८
रोहिणीचन्द्रमिथुनं कारयित्वाथ काञ्चनम्।
चन्द्रः षडङ्गुलः कार्यो रोहिणी चतुरङ्गुला॥ १९

ओठोंका, '**वनौषधीनां नाथाय नमः**' से नासिकाका, '**आनन्दबीजाय नमः**' से दोनों भौंहोंका, '**इन्दीवरव्यासकराय नमः**' से चन्द्रस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णके कमल-सदृश दोनों नेत्रोंका, '**समस्ताध्वरवन्दिताय दैत्यनिषूदनाय नमः**' से दोनों कानोंका, '**उदधिप्रियाय नमः**' से चन्द्रमाके ललाटका, '**सुषुम्नाधिपतये नमः**' से केशोंका पूजन करे। '**शशाङ्काय नमः**' से मस्तकका और '**विश्वेश्वराय नमः**' से भगवान् मुरारिके किरीटका पूजन करे। फिर '**रोहिणिनामलक्ष्म्यै सौभाग्यसौख्यामृतसागराय पद्मश्रियै नमः**'—रोहिणी नाम धारण करनेवाली सौभाग्य और सुखरूप अमृतके समुद्र लक्ष्मीको नमस्कार है—इस मन्त्रका उच्चारण कर सुगन्धित पुष्प, नैवेद्य और धूप आदिके द्वारा इन्दुपत्नी रोहिणीदेवीका पूजन करे॥ २—१३ $\frac{1}{2}$॥

इसके बाद रात्रिके समय भूमिपर शयन करे और सबेरे उठकर स्नानके पश्चात् '**पापविनाशाय नमः**' का उच्चारण करके ब्राह्मणको घृत और सुवर्णसहित जलसे भरा कलश दान करे। फिर दिनभर उपवास करनेके पश्चात् गोमूत्र पीकर मांसवर्जित एवं खारे नमकसे रहित अन्नके अट्ठाईस ग्रास, दूध और घीके साथ भोजन करे। तदनन्तर दो घड़ीतक इतिहास, पुराण आदिका श्रवण करे। नारद! चन्द्रस्वरूप भगवान् विष्णुको कदम्ब, नील कमल, केवड़ा, जाती-पुष्प, कमल, शतपत्रिका, बिना कुम्हलाये कुब्जके फूल, सिन्दुवार, चमेली, अन्यान्य श्वेत पुष्प, करवीर-पुष्प तथा चम्पा—ये ही फूल चढ़ाने चाहिये। उपर्युक्त फूलोंकी जातियोंमेंसे एक-एकको श्रावण आदि महीनोंमें क्रमशः अर्पण करे। जिस महीनेमें व्रत प्रारम्भ किया जाय, उस समय जो भी पुष्प सुलभ हों, उन्हींके द्वारा श्रीहरिका पूजन करना चाहिये॥ १४—१७॥

इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिवत् अनुष्ठान करके समाप्तिके समय व्रतीको चाहिये कि वह दर्पण तथा शयनोपयोगी सामग्रियोंके साथ शय्यादान करे। रोहिणी और चन्द्रमा—दोनोंकी सुवर्णमयी मूर्ति बनवाये। उनमें चन्द्रमा छः अङ्गुलके और रोहिणी चार अङ्गुलकी होनी चाहिये।

मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृतम्।
क्षीरकुम्भोपरि पुनः कांस्यपात्राक्षतान्वितम्।
दद्यान्मन्त्रेण पूर्वाह्ने शालीक्षुफलसंयुतम्॥ २०

श्वेतामथ सुवर्णास्यां खुरै रौप्यैः समन्विताम्।
सवस्त्रभाजनां धेनुं तथा शङ्खं च शोभनम्॥ २१

भूषणैर्द्विजदाम्पत्यमलङ्कृत्य गुणान्वितम्।
चन्द्रोऽयं द्विजरूपेण सभार्य इति कल्पयेत्॥ २२

यथा न रोहिणी कृष्ण शय्यां सन्त्यज्य गच्छति।
सोमरूपस्य ते तद्वन्ममाभेदोऽस्तु भूतिभिः॥ २३

यथा त्वमेव सर्वेषां परमानन्दमुक्तिदः।
भुक्तिर्मुक्तिस्तथा भक्तिस्त्वयि चन्द्रास्तु ते सदा॥ २४

आठ मोतियोंसे युक्त तथा दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित उन प्रतिमाओंको अक्षतसे भरे हुए काँसेके पात्रमें रखकर दुग्धपूर्ण कलशके ऊपर स्थापित कर दे और पूर्वाह्नके समय अगहनी चावल, ईख और फलके साथ उसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक दान कर दे। फिर जिसका मुख (थूथुन) सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, ऐसी वस्त्र और दोहिनीके साथ दूध देनेवाली श्वेत रंगकी गौ तथा सुन्दर शङ्ख प्रस्तुत करे। फिर उत्तम गुणोंसे युक्त ब्राह्मण-दम्पतिको बुलाकर उन्हें आभूषणोंसे अलङ्कृत करे तथा मनमें यह भावना रखे कि ब्राह्मण-दम्पतिके रूपमें ये रोहिणीसहित चन्द्रमा ही विराजमान हैं। तत्पश्चात् इनकी इस प्रकार प्रार्थना करे—'श्रीकृष्ण! जिस प्रकार रोहिणी देवी चन्द्रस्वरूप आपकी शय्याको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाती हैं, उसी तरह मेरा भी इन विभूतियोंसे कभी विछोह न हो। चन्द्रदेव! आप ही सबको परम आनन्द और मुक्ति प्रदान करनेवाले हैं। आपकी कृपासे मुझे भोग और मोक्ष—दोनों प्राप्त हों तथा आपमें मेरी सदा अनन्य भक्ति बनी रहे।' (इस प्रकार विनय कर शय्या, प्रतिमा तथा धेनु आदि सब कुछ ब्राह्मणको दान कर दे।)॥ १८—२४॥

इति संसारभीतस्य मुक्तिकामस्य चानघ।
रूपारोग्यायुषामेतद्विधायकमनुत्तमम्॥ २५

इदमेव पितॄणां च सर्वदा वल्लभं मुने।
त्रैलोक्याधिपतिर्भूत्वा सप्तकल्पशतत्रयम्।
चन्द्रलोकमवाप्नोति विद्युद् भूत्वा विमुच्यते॥ २६

नारी वा रोहिणीचन्द्रशयनं या समाचरेत्।
सापि तत्फलमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ २७

इति पठति शृणोति वा य इत्थं
मधुमथनार्चनमिन्दुकीर्तने नित्यम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि
शौरेर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः॥ २८

निष्पाप नारद! जो संसारसे भयभीत होकर मोक्ष पानेकी इच्छा रखता है, उसके लिये यही एक व्रत सर्वोत्तम है। यह रूप, आरोग्य और आयु प्रदान करनेवाला है। मुने! यही पितरोंको सर्वदा प्रिय है। जो पुरुष इसका अनुष्ठान करता है, वह त्रिभुवनका अधिपति होकर इक्कीस सौ कल्पोंतक चन्द्रलोकमें निवास करता है। उसके बाद विद्युत् होकर मुक्त हो जाता है। अथवा जो स्त्री इस रोहिणीचन्द्रशयन नामक व्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी उसी पूर्वोक्त फलको प्राप्त होती है। साथ ही वह आवागमनसे मुक्त हो जाती है। चन्द्रमाके नामकीर्तनद्वारा भगवान् श्रीमधुसूदनकी पूजाका यह प्रसङ्ग जो नित्य पढ़ता अथवा सुनता है, उसे भगवान् उत्तम बुद्धि प्रदान करते हैं तथा वह भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जाकर देवसमूहके द्वारा पूजित होता है॥ २५—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रोहिणीचन्द्रशयनव्रतं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रोहिणीचन्द्रशयन-व्रत नामक सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५७॥

अट्ठावनवाँ अध्याय

तालाब, बगीचा, कुआँ, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा आदिका विधान

सूत उवाच

जलाशयगतं विष्णुमुवाच रविनन्दनः।
तडागाराममकूपानां वापीषु नलिनीषु च॥ १
विधिं[1] पृच्छामि देवेश देवतायतनेषु च।
के तत्र चर्त्विजो नाथ वेदी वा कीदृशी भवेत्॥ २
दक्षिणावलयः कालः स्थानमाचार्य एव च।
द्रव्याणि कानि शस्तानि सर्वमाचक्ष्व तत्त्वतः॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! सूर्यपुत्र मनुने जलाशयके भीतर अवस्थित मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुसे पूछा—'देवेश! अब मैं आपसे तालाब, बगीचा, कुआँ, बावली, पुष्करिणी तथा देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा आदिकी विधि पूछ रहा हूँ। नाथ! इन कार्योंमें ऋत्विज् कैसे होने चाहिये? वेदी किस प्रकारकी बनती है? दक्षिणाका प्रमाण कितना होता है? समय कौन-सा उत्तम होता है? स्थान कैसा होना चाहिये? आचार्य किन-किन गुणोंसे युक्त हों तथा कौन-से पदार्थ प्रशस्त माने गये हैं—यह सब हमें यथार्थरूपसे बतलाइये॥१—३॥

मत्स्य उवाच

शृणु राजन् महाबाहो तडागादिषु यो विधिः।
पुराणेष्वितिहासोऽयं पठ्यते वेदवादिभिः॥ ४
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लं सम्प्राप्ते चोत्तरायणे।
पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥ ५
प्रागुदक्प्रवणे देशे तडागस्य समीपतः।
चतुर्हस्तां शुभां वेदीं चतुरस्रां चतुर्मुखाम्॥ ६
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।
वेद्याश्च परितो गर्ता रत्निमात्रास्त्रिमेखलाः॥ ७
नव सप्ताथ वा पञ्च नातिरिक्ता नृपात्मज।
वितस्तिमात्रा योनिः स्यात् षट्सप्ताङ्गुलिविस्तृता॥ ८
गर्त्ताश्च हस्तमात्राः स्युस्त्रिपर्वोच्छ्रितमेखलाः।
सर्वतस्तु सवर्णाः स्युः पताकाध्वजसंयुताः॥ ९

मत्स्यभगवान्ने कहा—महाबाहु राजन्! सुनो; तालाब आदिकी प्रतिष्ठाका जो विधान है, उसका वेदवक्ताओंने पुराणोंमें इस रूपमें वर्णन किया है। उत्तरायण आनेपर शुभ शुक्लपक्षमें ब्राह्मणद्वारा कोई पवित्र दिन निश्चित करा ले। उस दिन ब्राह्मणोंका वरण करे और तालाबके समीप, जहाँकी भूमि पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू हो, चार हाथ लम्बी और उतनी ही चौड़ी चौकोर सुन्दर वेदी बनाये। वेदी सब ओर समतल हो और उसका मुख चारों दिशाओंमें हो। फिर सोलह हाथका मण्डप तैयार कराये, जिसके चारों ओर एक-एक दरवाजा हो। वेदीके सब ओर कुण्डोंका निर्माण कराये। नृप-नन्दन! कुण्डोंकी संख्या नौ, सात या पाँच होनी चाहिये, इससे कम-बेशी नहीं। कुण्डोंकी लम्बाई-चौड़ाई एक-एक अरत्नि[2]की हो तथा वे सभी तीन-तीन मेखलाओंसे सुशोभित हों। उनमें यथास्थान योनि और मुख भी बने होने चाहिये। योनिकी लम्बाई एक बित्ता और चौड़ाई छः-सात अङ्गुलकी हो तथा कुण्डकी गहराई एक हाथ, मेखलाएँ तीन पर्व[3] ऊँची होनी चाहिये। ये चारों ओरसे एक समान—एक रंगकी बनी हों। सबके समीप ध्वजा और पताकाएँ लगायी जायँ।

---

१. इसकी पूरी विस्तृत विधि भविष्यपुराण, मध्यमपर्व भाग ३, अध्याय २०, (अग्निपुराण ६४) एवं प्रतिष्ठामहोदधि, प्रतिष्ठाकल्पलता, प्रतिष्ठातत्त्वादर्श आदिमें है। पद्म० सृष्टिखं० २७ की विधि तो ठीक इसी प्रकार है। भविष्यपुराणमें प्रायः १ हजार श्लोक हैं। इस अध्यायमें कुण्ड-मण्डप-वेदी-निर्माणसहित यज्ञकी भी संक्षिप्त विधि आ गयी है। इसकी विस्तृत जानकारीके लिये कुण्ड-मण्डप-सिद्धि तथा आह्निकसूत्रावली आदि द्रष्टव्य हैं।

२. कोहनीसे लेकर मुट्ठी बँधे हुए हाथतककी लम्बाईको 'रत्नि' या अरत्नि कहते हैं।

३. अङ्गुलियोंके पोरको 'पर्व' कहते हैं।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि तु।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्॥ १०

शुभास्तत्राष्ट होतारो द्वारपालास्तथाष्ट वै।
अष्टौ तु जापकाः कार्या ब्राह्मणा वेदपारगाः॥ ११

सर्वलक्षणसम्पूर्णो मन्त्रविद् विजितेन्द्रियः।
कुलशीलसमायुक्तः पुरोधाः स्याद् द्विजोत्तमः॥ १२

प्रतिगर्तेषु कलशा यज्ञोपकरणानि च।
व्यजनं चामरे शुभ्रे ताम्रपात्रे सुविस्तृते॥ १३

मण्डपके चारों ओर क्रमशः पीपल, गूलर, पाकड़ और बरगदकी शाखाओंके दरवाजे बनाये जायँ। वहाँ आठ होता, आठ द्वारपाल तथा आठ जप करनेवाले ब्राह्मणोंका वरण किया जाय। वे सभी ब्राह्मण वेदोंके पारगामी विद्वान् होने चाहिये। सब प्रकारके शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न, मन्त्रोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, कुलीन, शीलवान् एवं श्रेष्ठ ब्राह्मणको ही इस कार्यमें पुरोहित-पदपर नियुक्त करना चाहिये। प्रत्येक कुण्डके पास कलश, यज्ञ-सामग्री, पंखा, दो चँवर और दो दिव्य एवं विस्तृत ताम्रपात्र प्रस्तुत रहें॥ ४—१३॥

ततस्त्वनेकवर्णाः स्युश्चरवः प्रतिदैवतम्।
आचार्यः प्रक्षिपेद् भूमावनुमन्त्र्य विचक्षणः॥ १४

त्र्यरत्निमात्रो यूपः स्यात् क्षीरवृक्षविनिर्मितः।
यजमानप्रमाणो वा संस्थाप्यो भूतिमिच्छता॥ १५

हेमालङ्कारिणः कार्याः पञ्चविंशति ऋत्विजः।
कुण्डलानि च हैमानि केयूरकटकानि च॥ १६

तथाङ्गुल्यः पवित्राणि वासांसि विविधानि च।
पूजयेत् तु समं सर्वानाचार्यो द्विगुणं पुनः।
दद्याच्छयनसंयुक्तमात्मनश्चापि यत् प्रियम्॥ १७

सौवर्णौ कूर्ममकरौ राजतौ मत्स्यदुण्डुभौ।
ताम्रौ कुलीरमण्डूका वायसः शिशुमारकः।
एवमासाद्य तत् सर्वमादावेव विशाम्पते॥ १८

शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः।
सर्वौषध्युदकैस्तत्र स्नापितो वेदपारगैः॥ १९

यजमानः सपत्नीकः पुत्रपौत्रसमन्वितः।
पश्चिमं द्वारमासाद्य प्रविशेद् यागमण्डपम्॥ २०

तदनन्तर प्रत्येक देवताके लिये नाना प्रकारकी चरू (पुरोडास, खीर, दही, अक्षत आदि उत्तम भक्ष्य पदार्थ) उपस्थित करे। विद्वान् आचार्य मन्त्र पढ़कर उन सामग्रियोंको पृथ्वीपर सब देवताओंको समर्पित करे। तीन अरत्निके बराबर एक यूप (यज्ञस्तम्भ) स्थापित किया जाय, जो किसी दूधवाले वृक्ष (वट, पाकड़ आदि)-की शाखाका बना हुआ हो। ऐश्वर्य चाहनेवाले पुरुषको यजमानके शरीरके बराबर ऊँचा यूप स्थापित करना चाहिये। उसके बाद पचीस ऋत्विजोंका वरण करके उन्हें सोनेके आभूषणोंसे विभूषित करे। सोनेके बने कुण्डल, बाजूबंद, कड़े, अङ्गूठी, पवित्री तथा नाना प्रकारके वस्त्र—ये सभी आभूषणादि प्रत्येक ऋत्विज्को बराबर-बराबर दे और आचार्यको दूना अर्पण करे। इसके सिवा उन्हें शय्या तथा अपनेको प्रिय लगनेवाली अन्यान्य वस्तुएँ भी प्रदान करे। सोनेका बना हुआ कछुआ और मगर, चाँदीके मत्स्य और दुण्डुभ (गिरगिट), ताँबेके केंकड़ा और मेढक तथा लोहेके दो सूँस बनवाये (और सबको सोनेके पात्रमें रखे)। राजन्! इन सभी वस्तुओंको पहलेसे ही बनवाकर ठीक रखना चाहिये। इसके बाद यजमान वेदज्ञ विद्वानोंकी बतायी हुई विधिके अनुसार सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत माला धारण करे। फिर श्वेत चन्दन लगाकर पत्नी और पुत्र-पौत्रोंके साथ पश्चिम द्वारसे यज्ञमण्डपमें प्रवेश करे। उस समय माङ्गलिक शब्द होने चाहिये और भेरी आदि बाजे बजने चाहिये॥ १४—२०½॥

ततो मङ्गलशब्देन भेरीणां निःस्वनेन च।
चूर्णेन मण्डलं कुर्यात् पञ्चवर्णेन तत्त्ववित्॥ २१

तदनन्तर विद्वान् पुरुष पाँच रंगके चूर्णोंसे मण्डल बनाये

षोडशारं ततश्चक्रं पद्मगर्भं चतुर्मुखम्।
चतुरस्रं च परितो वृत्तं मध्ये सुशोभनम्॥ २२

वेद्याश्चोपरि तत् कृत्वा ग्रहाँल्लोकपतींस्ततः।
संन्यसेन्मन्त्रतः सर्वान् प्रतिदिक्षु विचक्षणः॥ २३

कलशं स्थापयेन्मध्ये वारुण्यां मन्त्रमाश्रितः।
ब्रह्माणं च शिवं विष्णुं तत्रैव स्थापयेद् बुधः॥ २४

विनायकं च विन्यस्य कमलामम्बिकां तथा।
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां भूतग्रामं न्यसेत् ततः॥ २५

पुष्पभक्ष्यफलैर्युक्तमेवं कृत्वाधिवासनम्।
कुम्भान् सजलगर्भांस्तान् वासोभिः परिवेष्टयेत्॥ २६

पुष्पगन्धैरलङ्कृत्य द्वारपालान् समन्ततः।
पठध्वमिति तान् ब्रूयादाचार्यस्त्वभिपूजयेत्॥ २७

बह्वृचौ पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेन यजुर्विदौ।
सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेण त्वथर्वणौ॥ २८

उदङ्मुखो दक्षिणतो यजमान उपाविशेत्।
यजध्वमिति तान् ब्रूयाद्धौ त्रिकान् पुनरेव तु॥ २९

उत्कृष्टमन्त्रजापेन तिष्ठध्वमिति जापकान्।
एवमादिश्य तान् सर्वान् पर्युक्ष्याग्निं स मन्त्रवित्॥ ३०

जुहुयाद् वारुणैर्मन्त्रैराज्यं च समिधस्तथा।
ऋत्विग्भिश्चाथ होतव्यं वारुणैरेव सर्वतः॥ ३१

ग्रहेभ्यो विधिवद्धुत्वा तथेन्द्रायेश्वराय च।
मरुद्भ्यो लोकपालेभ्यो विधिवद् विश्वकर्मणे॥ ३२

शान्तिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं च मङ्गलम्।
जपेयुः पौरुषं सूक्तं पूर्वतो बह्वृचः पृथक्॥ ३३

शाक्रं रौद्रं च सौम्यं च कुष्माण्डं जातवेदसम्।
सौरं सूक्तं जपेयुस्ते दक्षिणेन यजुर्विदः॥ ३४

और उसमें सोलह अरोंसे युक्त चक्र चिह्नित करे। उसके गर्भमें कमलका आकार बनाये। चक्र देखनेमें सुन्दर और चौकोर हो। चारों ओरसे गोल होनेके साथ ही मध्यभागमें अधिक शोभायमान दीख पड़ता हो। बुद्धिमान् पुरुष उस चक्रको वेदीके ऊपर स्थापित कर उसके चारों और प्रत्येक दिशामें मन्त्रपाठपूर्वक ग्रहों और लोकपालोंकी स्थापना करे। फिर मध्यभागमें वरुण-सम्बन्धी मन्त्रका उच्चारण करते हुए एक कलश स्थापित करे और उसीके ऊपर ब्रह्मा, शिव, विष्णु, गणेश, लक्ष्मी तथा पार्वतीकी भी स्थापना करे। इसके पश्चात् सम्पूर्ण लोकोंकी शान्तिके लिये भूतसमुदायको स्थापित करे। इस प्रकार पुष्प, नैवेद्य और फलोंके द्वारा सबकी स्थापना करके उन सभी जलपूर्ण कलशोंको वस्त्रोंसे आवेष्टित कर दे। फिर पुष्प और चन्दनके द्वारा उन्हें अलङ्कृत कर द्वार-रक्षाके लिये नियुक्त ब्राह्मणोंसे स्वयं आचार्य वेदपाठ करनेके लिये प्रेमसे कहे। पूर्व दिशाकी ओर दो ऋग्वेदी, दक्षिणद्वारपर दो यजुर्वेदी, पश्चिमद्वारपर दो सामवेदी तथा उत्तरद्वारपर दो अथर्ववेदी विद्वानोंको रखना चाहिये। यजमान मण्डलके दक्षिणभागमें उत्तराभिमुख होकर बैठे और ऋत्विजोंसे पुनः आचार्य कहें—'आप यज्ञ प्रारम्भ करें।' तत्पश्चात् वे जप करनेवाले ब्राह्मणोंसे कहें—'आपलोग उत्तम मन्त्रका जप करते रहें।' इस प्रकार सबको प्रेरित करके मन्त्रज्ञ पुरुष अग्निका पर्युक्षण (चारों ओर जल छिड़क) कर वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंका उच्चारण कर घी और समिधाओंकी आहुति दे। ऋत्विजोंको भी वरुण-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा सब ओरसे हवन करना चाहिये। ग्रहोंके निमित्त विधिवत् आहुति देकर उस यज्ञ-कर्ममें इन्द्र, शिव, मरुद्गण, लोकपाल और विश्वकर्माके निमित्त भी विधिपूर्वक होम करे॥ २१—३२॥

पूर्वद्वारपर नियुक्त ऋग्वेदी ब्राह्मण शान्तिसूक्त,* रुद्रसूक्त, पवमानसूक्त (ऋग्वेद ३। ४। ५ आदि), सुमङ्गलसूक्त (ऋ० २।४।२१) तथा पुरुषसूक्त (१०।९०) का पृथक्-पृथक् जप करें। दक्षिणद्वारपर स्थित यजुर्वेदी विद्वान् इन्द्र (अ० १६), रुद्र, सोम, कूष्माण्ड (२०।१४—१६), अग्नि (अ० २) तथा सूर्य-सम्बन्धी (अ० ३५) सूक्तोंका जप करें।

* यहाँ वेद-निर्देश महत्त्वपूर्ण है, किंतु अन्यत्र पद्म, भविष्यादि पुराणोंमें ऋग्वेदीय ७। ३५ के मत्स्य-पाठ रात्रिसूक्तकी जगह 'शान्तिसूक्त'के सर्वप्रथम पाठका ही निर्देश है, जिसका सर्वारम्भमें होना विशेष उचित जँचता है। तीनों वेदके शान्तिसूक्त तो प्रसिद्ध हैं। अथर्ववेदके शान्तिसूक्तका नाम शंतातीयसूक्त है। पवमानसूक्तके बहिष्, माध्यंदिन, तृतीय और अर्यव—ये चार भेद हैं। यजुर्वेदमें कूष्माण्डसूक्त भी उपरिनिर्दिष्टके अतिरिक्त ४ हैं, जो तै० ब्रा० २। ४। ४; ६। ६। १; ३। ७। २ और तै० आरण्यक २। ३। ६ में प्राप्त होते हैं।

वैराजं पौरुषं सूक्तं सौपर्णं रुद्रसंहिताम्।
शैशवं पञ्चनिधनं गायत्रं ज्येष्ठसाम च॥ ३५
वामदेव्यं बृहत्साम रौरवं च रथन्तरम्।
गवां व्रतं च काण्वं च रक्षोघ्नं च यमं तथा।
गायेयुः सामगा राजन् पश्चिमं द्वारमाश्रिताः॥ ३६
आथर्वणश्चोत्तरतः शान्तिकं पौष्टिकं तथा।
जपेयुर्मनसा देवमाश्रित्य वरुणं प्रभुम्॥ ३७
पूर्वेद्युरभितो रात्रावेवं कृत्वाधिवासनम्।
गजाश्वरथ्यावल्मीकात् संगमाद्ध्रगोकुलात्।
मृदमादाय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात् तथा॥ ३८
रोचनां च ससिद्धार्थां गन्धं गुग्गुलमेव च।
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पञ्चगव्यसमन्वितम्॥ ३९
प्रत्येकं तु महामन्त्रैरेवं कृत्वा विधानतः।
एवं क्षपातिवाह्याथ विधियुक्तेन कर्मणा॥ ४०
ततः प्रभाते विमले संजातेऽथ शतं गवाम्।
ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्यमष्टषष्टिश्च वा पुनः।
पञ्चाशद् वाथ षट्त्रिंशत् पञ्चविंशतिरप्यथ॥ ४१
ततः सांवत्सरप्रोक्ते शुभे लग्ने सुशोभने।
वेदशब्दैश्च गान्धर्ववाद्यैश्च विविधैः पुनः॥ ४२
कनकालङ्कृतां कृत्वा जले गामवतारयेत्।
सामगाय च सा देया ब्राह्मणाय विशाम्पते॥ ४३
पात्रीमादाय सौवर्णीं पञ्चरत्नसमन्विताम्।
ततो निक्षिप्य मकरमत्स्यादींश्चैव सर्वशः।
धृतां चतुर्विधैर्विप्रैर्वेदवेदाङ्गपारगैः॥ ४४
महानदीजलोपेतां दध्यक्षतसमन्विताम्।
उत्तराभिमुखीं धेनुं जलमध्ये तु कारयेत्॥ ४५

राजन्! पश्चिमद्वारपर रहनेवाले सामवेदी ब्राह्मण वैराजसाम (२। २९। ८०), पुरुषसूक्त (६१३—३१), सुपर्णसूक्त (साम० ३। २। १-३), रुद्रसंहिता, शिशुसूक्त, पञ्चनिधनसूक्त, गायत्रसाम, ज्येष्ठसाम (१। २। २९), वामदेव्यसाम (५। ६। २५), बृहत्साम (१। २२। ३४), रौरवसाम, रथन्तरसाम (१। २२३), गोव्रत, काण्व, सूक्तसाम, रक्षोघ्न (३। १२। ३९) और यमसम्बन्धी सूक्तोंका गान करें। उत्तरद्वारके अथर्ववेदी विद्वान् मन-ही-मन भगवान् वरुणदेवकी शरण ले शान्ति और पुष्टि-सम्बन्धी मन्त्रोंका जप करें। इस प्रकार पहले दिन मन्त्रोंद्वारा देवताओंकी स्थापना करके हाथी और घोड़ेके पैरोंके नीचेकी, जिसपर रथ चलता हो—ऐसी सड़ककी, बाँबीकी, दो नदियोंके संगमकी, गोशालाकी, साक्षात् गौओंके पैरके नीचेकी तथा चौराहेकी मिट्टी (सप्तमृत्तिका) लेकर कलशोंमें छोड़ दे। उसके बाद सर्वौषधि, गोरोचन, सरसोंके दाने, चन्दन और गूगल भी छोड़े। फिर पञ्चगव्य (दधि, दूध, घी, गोबर और गोमूत्र) मिलाकर उन कलशोंके जलसे यजमानका विधिपूर्वक अभिषेक करे। इस प्रकार प्रत्येक कार्य महामन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक विधिसहित करना चाहिये॥ ३३—३९½॥

श्रेष्ठ मुनियो! इस प्रकार शास्त्रविहित कर्मद्वारा रात्रि व्यतीत करके निर्मल प्रभातका उदय होनेपर व्रती हवनके अन्तमें ब्राह्मणोंको सौ, अड़सठ, पचास, छत्तीस अथवा पचीस गौ दान करे। राजन्! तदनन्तर ज्योतिषीद्वारा बतलाये गये शुद्ध एवं सुन्दर लग्न आनेपर वेदपाठ, संगीत तथा नाना प्रकारके बाजोंकी मनोहर ध्वनिके साथ एक गौको सुवर्णसे अलङ्कृत करके तालाबके जलमें उतारे और उसे सामगान करनेवाले ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् पञ्चरत्नोंसे युक्त सोनेका पात्र लेकर उसमें पूर्वोक्त मगर और मछली आदिको रखे और उसे किसी बड़ी नदीसे मँगाये हुए जलसे भर दे। फिर उस पात्रको दही-अक्षतसे विभूषितकर वेद और वेदाङ्गोंके विद्वान् चार ब्राह्मण हाथसे पकड़ें और अथर्ववेदके मन्त्रोंसे उसे स्नान कराये, फिर यजमानकी प्रेरणासे उसे उत्तराभिमुख उलटकर तालाबके जलमें डाल दें। इस प्रकार

आथर्वणेन संस्नातां पुनर्मामित्यथेति च।
आपो हि ष्ठेति मन्त्रेण क्षिप्त्वाऽऽगत्य च मण्डपम्॥ ४६

पूजयित्वा सदस्यांस्तु बलिं दद्यात् समन्ततः।
पुनर्दिनानि होतव्यं चत्वारि मुनिसत्तमाः॥ ४७

चतुर्थीकर्म कर्तव्यं देया तत्रापि शक्तितः।
दक्षिणा राजशार्दूल वरुणक्ष्मापणं ततः॥ ४८

कृत्वा तु यज्ञपात्राणि यज्ञोपकरणानि च।
ऋत्विग्भ्यस्तु समं दत्त्वा मण्डपं विभजेत् पुनः।
हेमपात्रीं च शय्यां च स्थापकाय निवेदयेत्॥ ४९

ततः सहस्रं विप्राणामथवाष्टशतं तथा।
भोजनीयं यथाशक्ति पञ्चाशद् वाथ विंशतिः।
एवमेष पुराणेषु तडागविधिरुच्यते॥ ५०

कूपवापीषु सर्वासु तथा पुष्करिणीषु च।
एष एव विधिर्दृष्टः प्रतिष्ठासु तथैव च॥ ५१

मन्त्रतस्तु विशेषः स्यात् प्रासादोद्यानभूमिषु।
अयं त्वशक्तावर्धेन विधिर्दृष्टः स्वयम्भुवा।
अल्पे त्वेकाग्निवत् कृत्वा वित्तशाठ्यादृते नृणाम्॥ ५२

प्रावृट्काले स्थिते तोये ह्यग्निष्टोमफलं स्मृतम्।
शरत्काले स्थितं यत् स्यात्तदुक्तफलदायकम्।
वाजपेयातिरात्राभ्यां हेमन्ते शिशिरे स्थितम्॥ ५३

अश्वमेधसमं प्राह वसन्तसमये स्थितम्।
ग्रीष्मेऽपि तत्स्थितं तोयं राजसूयाद् विशिष्यते॥ ५४

एतान् महाराज विशेषधर्मान्
करोति योऽप्यागमशुद्धबुद्धिः।
स याति रुद्रालयमाशु पूतः
कल्पाननेकान् दिवि मोदते च॥ ५५

'पुनर्मामिति०' तथा 'आपो हि ष्ठा मयो०' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा उसे जलमें डालकर पुनः सब लोग यज्ञमण्डपमें आ जायँ और यजमान सदस्योंकी पूजा कर सब ओर देवताओंके उद्देश्यसे बलि अर्पण करे। इसके बाद लगातार चार दिनोंतक हवन होना चाहिये। राजसिंह! चौथे दिन चतुर्थी-कर्म करना उचित है। उसमें भी यथाशक्ति दक्षिणा देनी चाहिये। तदनन्तर वरुणसे क्षमा-प्रार्थना करके यज्ञ-सम्बन्धी जितने पात्र और सामग्री हों, उन्हें ऋत्विजोंमें बराबर बाँट देना चाहिये। फिर मण्डपको भी विभाजित करे। सुवर्णपात्र और शय्या व्रतारम्भ करानेवाले ब्राह्मणको दान कर दे। इसके बाद अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार, एक सौ आठ, पचास अथवा बीस ब्राह्मणोंको भोजन कराये। पुराणों (एवं कल्पसूत्रों)-में तालाबकी प्रतिष्ठाके लिये यही विधि बतलायी गयी है। सभी कुआँ, बावली और पुष्करिणीके लिये भी यही विधि है। देवताओंकी प्रतिष्ठामें भी ऐसा ही विधान समझना चाहिये। प्रासाद (महल अथवा मन्दिर) और बगीचे आदिके प्रतिष्ठा-कार्यमें केवल (कुछ) मन्त्रोंका ही भेद है। विधि-विधान प्रायः एक-से ही हैं। उपर्युक्त विधिका यदि पूर्णतया पालन करनेकी शक्ति न हो तो आधे व्ययसे भी यह कार्य सम्पन्न हो सकता है। यह बात ब्रह्माजीने कही है। किंतु इस अल्प विधानमें भी मनुष्यको कृपणताका त्याग कर एकाग्नि ब्राह्मणकी भाँति दान आदि करना चाहिये॥ ४०—५२॥

जिस पोखरेमें केवल वर्षाकालमें ही जल रहता है, वह अग्निष्टोम-यज्ञके बराबर फल देनेवाला होता है। जिसमें शरत्कालतक जल रहता हो, उसका भी यही फल है। हेमन्त और शिशिरकालतक रहनेवाला जल क्रमशः वाजपेय और अतिरात्र नामक यज्ञका फल देता है। वसन्तकालतक टिकनेवाले जलको अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायक बतलाया गया है तथा जो जल ग्रीष्मकालतक वर्तमान रहता है, वह राजसूय-यज्ञसे भी अधिक फल देनेवाला होता है॥ ५३-५४॥

महाराज! जो मनुष्य पृथ्वीपर इन विशेष धर्मोंका पालन करता है, वह शुद्धचित्त होकर शिवजीके लोकमें जाता है और वहाँ अनेक कल्पोंतक दिव्य आनन्दका अनुभव करता है।

अनेकलोकान् स महत्तमादीन्
भुक्त्वा परार्धद्वयमङ्गनाभिः।
सहैव विष्णोः परमं पदं यत्
प्राप्नोति तद्योगबलेन भूयः॥ ५६

वह पुनः परार्ध (ब्रह्माजीकी पिछली आधी आयु)-तक देवाङ्गनाओंके साथ अनेक महत्तम लोकोंका सुख भोगनेके पश्चात् ब्रह्माजीके साथ ही योगबलसे श्रीविष्णुके परमपदको प्राप्त होता है॥ ५५-५६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तडागविधिर्नामाष्टपञ्चाशोऽध्यायः॥ ५८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तडागविधि नामक अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५८॥

उनसठवाँ अध्याय

वृक्ष लगानेकी विधि

ऋषय ऊचुः

पादपानां विधिं सूत यथावद् विस्तराद् वद।
विधिना केन कर्तव्यं पादपोद्यापनं बुधैः।
ये च लोकाः स्मृतास्तेषां तानिदानीं वदस्व नः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमें विस्तारके साथ वृक्ष लगानेकी यथार्थ विधि बतलाइये। विद्वानोंको किस विधिसे वृक्ष लगाने चाहिये तथा वृक्षारोपण करनेवालोंके लिये जिन लोकोंकी प्राप्ति बतलायी गयी है, उन्हें भी आप इस समय हमलोगोंको बतलाइये॥ १॥

सूत उवाच

पादपानां विधिं वक्ष्ये तथैवोद्यानभूमिषु।
तडागविधिवत् सर्वमासाद्य जगदीश्वर॥ २
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारमाचार्यं चैव तद्विधम्।
पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद्धेमवस्त्रानुलेपनैः॥ ३
सर्वौषध्युदकैः सिक्तान् दध्यक्षतविभूषितान्।
वृक्षान् माल्यैरलङ्कृत्य वासोभिरभिवेष्टयेत्॥ ४
सूच्या सौवर्णया कार्यं सर्वेषां कर्णवेधनम्।
अञ्जनं चापि दातव्यं तद्वद्धेमशलाकया॥ ५
फलानि सप्त चाष्टौ वा कलधौतानि कारयेत्।
प्रत्येकं सर्ववृक्षाणां वेद्यां तान्यधिवासयेत्॥ ६
धूपोऽत्र गुग्गुलः श्रेष्ठस्ताम्रपात्रैरधिष्ठितान्।
सर्वान् धान्यस्थितान् कृत्वा वस्त्रगन्धानुलेपनैः॥ ७
कुम्भान् सर्वेषु वृक्षेषु स्थापयित्वा नरेश्वर।
सहिरण्यानशेषांस्तान् कृत्वा बलिनिवेदनम्॥ ८

सूतजी कहते हैं—[यही प्रश्न जब मनुने मत्स्य-भगवान्‌से किया था तो इसे उनसे मत्स्य (भगवान्)-ने कहा था।] जगदीश्वर! मैं बगीचेमें वृक्षोंके लगानेकी विधि तुम्हें बतलाता हूँ। तड़ागकी प्रतिष्ठाके विषयमें जो विधान बतलाया गया है, उसीके समान सारी विधि समझनी चाहिये। इसमें भी ऋत्विज, मण्डप, सामग्री और आचार्यको पूर्ववत् रखे। उसी प्रकार सुवर्ण, वस्त्र और चन्दनद्वारा ब्राह्मणोंकी पूजा भी करनी चाहिये। रोपे गये पौधोंको सर्वौषधिमिश्रित जलसे सींचे। फिर उनके ऊपर दही और अक्षत छोड़े। उसके बाद उन्हें पुष्पमालाओंसे अलङ्कृत कर वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। सोनेकी सूईसे सबका कर्णवेध करे। उसी प्रकार सोनेकी सलाईसे अञ्जन भी लगाना चाहिये। सात अथवा आठ सुवर्णके फल बनवावे, फिर इन फलोंके साथ सभी वृक्षोंको वेदीपर स्थापित कर दे। वहाँ गुग्गुलका धूप देना श्रेष्ठ माना गया है। वृक्षोंको पृथक्-पृथक् ताम्रपात्रमें रखकर उन्हें सप्तधान्यसे आवृत करे तथा उनके ऊपर वस्त्र और चन्दन चढ़ावे। नरेश्वर! फिर प्रत्येक वृक्षके पास कलश-स्थापन करके उन सभी कलशोंमें स्वर्ण-खण्ड डाले, फिर बलि प्रदान करके उनकी पूजा करे।

यथास्वं लोकपालानामिन्द्रादीनां विशेषतः।
वनस्पतेश्च विद्वद्भिर्होमः कार्यो द्विजातिभिः॥ ९

ततः शुक्लाम्बरधरां सौवर्णकृतभूषणाम्।
सकांस्यदोहां सौवर्णशृङ्गाभ्यामतिशालिनीम्।
पयस्विनीं वृक्षमध्यादुत्सृजेद् गामुदङ्मुखीम्॥ १०

ततोऽभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च वारुणैरभितस्तथा।
तैरेव कुम्भैः स्नपनं कुर्युर्ब्राह्मण पुङ्गवाः॥ ११

स्नातः शुक्लाम्बरस्तद्वद् यजमानोऽभिपूजयेत्।
गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजस्तान् समाहितः॥ १२

हेमसूत्रैः सकटकैरङ्गुलीयपवित्रकैः।
वासोभिः शयनीयैश्च तथोपस्करपादुकैः।
क्षीरेण भोजनं दद्याद् यावद्दिनचतुष्टयम्॥ १३

होमश्च सर्षपैः कार्यो यवैः कृष्णतिलैस्तथा।
पलाशसमिधः शस्ताश्चतुर्थेऽह्नि तथोत्सवः।
दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रापि शक्तितः॥ १४

यद् यदिष्टतमं किञ्चित् तत्तद् दद्यादमत्सरी।
आचार्ये द्विगुणं दद्यात् प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥ १५

अनेन विधिना यस्तु कुर्याद् वृक्षोत्सवं बुधः।
सर्वान् कामानवाप्नोति फलं चानन्त्यमश्नुते॥ १६

यश्चैकमपि राजेन्द्र वृक्षं संस्थापयेन्नरः।
सोऽपि स्वर्गे वसेद् राजन् यावदिन्द्रायुतत्रयम्॥ १७

भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् द्रुमसम्मितान्।
परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्॥ १८

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।
सोऽपि सम्पूजितो देवैर्ब्रह्मलोके महीयते॥ १९

रातमें विद्वान् द्विजातियोंद्वारा इन्द्रादि लोकपालों तथा वनस्पतिके निमित्त वित्तानुसार हवन कराये। तदनन्तर दूध देनेवाली एक गौको लाकर उसे श्वेत वस्त्र ओढ़ाये। उसके मस्तकपर सोनेकी कँलगी लगाये, सींगोंको सोनेसे मँढ़ा दे। उसको दूहनेके लिये काँसेकी दोहनी प्रस्तुत करे। इस प्रकार अत्यन्त शोभासम्पन्न उस गौको उत्तराभिमुख खड़ी करके वृक्षोंके बीचसे छोड़े। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मण बाजों और मङ्गलगीतोंकी ध्वनिके साथ अभिषेकके मन्त्र—तीनों वेदोंकी वरुणसम्बन्धिनी ऋचाएँ पढ़ते हुए उक्त कलशोंके जलसे यजमानका अभिषेक करें। अभिषेकके पश्चात् यज्ञकर्ता पुरुष श्वेत वस्त्र धारण करे और अपनी सामर्थ्यके अनुसार सावधानीपूर्वक गौ, सोनेकी जंजीर, कड़े, अँगूठी, पवित्री, वस्त्र, शय्या शय्योपयोगी सामान तथा चरणपादुका देकर सम्पूर्ण ऋत्विजोंका पूजन करे। इसके बाद चार दिनोंतक उन्हें दूधके साथ भोजन कराये तथा सरसोंके दाने, जौ और काले तिलोंसे होम कराये। होममें पलाश (ढाक) की लकड़ी उत्तम मानी गयी है। वृक्षारोपणके पश्चात् चौथे दिन विशेष उत्सव करे। उसमें भी अपनी शक्तिके अनुसार पुनः उसी प्रकार दक्षिणा दे। जो-जो वस्तु अपनेको अधिक प्रिय हो, ईर्ष्या छोड़कर उस-उसका दान करे। आचार्यको दूनी दक्षिणा दे तथा प्रणाम करके यज्ञकी समाप्ति करे॥ २—१५॥

जो विद्वान् उपर्युक्त विधिसे वृक्षारोपणका उत्सव करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा वह अक्षय फलका भागी होता है। राजेन्द्र! जो मनुष्य इस प्रकार एक भी वृक्षकी स्थापना करता है, राजन्! वह भी जबतक तीस इन्द्र समाप्त हो जाते हैं, तबतक स्वर्गलोकमें निवास करता है। वह जितने वृक्षोंका रोपण करता है, अपने पहले और पीछेकी उतनी ही पीढ़ियोंका वह उद्धार कर देता है तथा उसे पुनरावृत्तिसे रहित परम सिद्धि प्राप्त होती है। जो मनुष्य प्रतिदिन इस प्रसङ्गको सुनता या सुनाता है, वह भी देवताओंद्वारा सम्मानित और ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है* ॥ १६—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृक्षोत्सवो नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वृक्षोत्सव नामक उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ५९॥



* वृक्ष मुनियों तथा कवियोंको बहुत प्रिय थे। वृक्ष-उद्यानादि रोपण-प्रतिष्ठाकी सभी विधियाँ पद्म, भविष्य, स्कन्दादि पुराणोंमें बहुत विस्तारसे हैं। अमरसिंह, कालिदासादिने भी इनका खूब वर्णन किया है। मत्स्यपुराणमें वृक्षोंका वर्णन बार-बार मिलेगा।

साठवाँ अध्याय

सौभाग्यशयन-व्रत तथा जगद्धात्री सतीकी आराधना

मत्स्य उवाच

तथैवान्यत् प्रवक्ष्यामि सर्वकामफलप्रदम्।
सौभाग्यशयनं नाम यत् पुराणविदो विदुः॥ १

पुरा दग्धेषु लोकेषु भूर्भुवःस्वर्महादिषु।
सौभाग्यं सर्वभूतानामेकस्थमभवत् तदा।
वैकुण्ठं स्वर्गमासाद्य विष्णोर्वक्षःस्थलस्थितम्॥ २

ततः कालेन महता पुनः सर्गविधौ नृप।
अहङ्कारावृते लोके प्रधानपुरुषान्विते॥ ३

स्पर्धायां च प्रवृत्तायां कमलासनकृष्णयोः।
पिङ्गाकारा* समुद्भूता वह्नेर्ज्वालातिभीषणा।
तयाभितप्तस्य हरेर्वक्षसस्तद् विनिःसृतम्॥ ४

वक्षःस्थलं समाश्रित्य विष्णौ सौभाग्यमास्थितम्।
रसं रूपं न तद् यावत् प्राप्नोति वसुधातले॥ ५

उत्क्षिप्तमन्तरिक्षे तद् ब्रह्मपुत्रेण धीमता।
दक्षेण पीतमात्रं तद् रूपलावण्यकारकम्॥ ६

बलं तेजो महज्जातं दक्षस्य परमेष्ठिनः।
शेषं यदपतद् भूमावष्टधा तद् व्यजायत॥ ७

ततस्त्वोषधयो जाताः सप्त सौभाग्यदायिकाः।
इक्षवो रसराजश्च निष्पावा राजधान्यकम्॥ ८

विकारवच्च गोक्षीरं कुसुम्भं कुङ्कुमं तथा।
लवणं चाष्टमं तद्वत् सौभाग्याष्टकमुच्यते॥ ९

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! इसी प्रकार एक दूसरा व्रत बतलाता हूँ, जो समस्त मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है। उसका नाम है—'सौभाग्यशयन'। इसे पुराणोंके विद्वान् ही जानते हैं। पूर्वकालमें जब भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक तथा महर्लोक आदि सम्पूर्ण लोक दग्ध हो गये, तब समस्त प्राणियोंका सौभाग्य एकत्रित हो गया। वह वैकुण्ठलोकमें जाकर भगवान् श्रीविष्णुके वक्षःस्थलमें स्थित हो गया। तदनन्तर दीर्घकालके पश्चात् जब पुनः सृष्टि-रचनाका समय आया, तब प्रकृति और पुरुषसे युक्त सम्पूर्ण लोकोंके अहंकारसे आवृत हो जानेपर श्रीब्रह्माजी तथा भगवान् श्रीविष्णुमें स्पर्धा जाग्रत् हुई। उस समय एक पीले रंगकी (अथवा शिवलिङ्गके आकारकी) अत्यन्त भयंकर अग्निज्वाला प्रकट हुई। उससे भगवान्‌का वक्षःस्थल तप उठा, जिससे वह सौभाग्यपुञ्ज वहाँसे गलित हो गया। श्रीविष्णुके वक्षःस्थलका आश्रय लेकर स्थित वह सौभाग्य अभी रसरूप होकर धरतीपर गिरने भी न पाया था कि ब्रह्माजीके बुद्धिमान् पुत्र दक्षने उसे आकाशमें ही रोककर पी लिया। दक्षके पीते ही वह अद्भुत रूप और लावण्य प्रदान करनेवाला सिद्ध हुआ। ब्रह्म-पुत्र दक्षका बल और तेज बढ़ गया। उनके पीनेसे बचा हुआ जो अंश पृथ्वीपर गिर पड़ा, वह आठ भागोंमें बँट गया। उनमेंसे सात भागोंसे सात सौभाग्यदायिनी ओषधियाँ उत्पन्न हुईं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—ईख, रसराज (पारा), निष्पाव (सेम), राजधान्य (शालि या अगहनी), गोक्षीर (क्षीरजीरक), कुसुम्भ (कुसुम नामक) पुष्प, कुङ्कुम (केसर) तथा आठवाँ पदार्थ नमक है। इन आठोंको सौभाग्याष्टक कहते हैं॥ १—९॥

* कहीं-कहीं लिङ्गाकारा पाठ है; जिसका शिव, स्कन्द आदि पुराणोंकी तथा शिवरात्रि-व्रत कथाके लिङ्गोद्भव-वृत्तान्तसे तात्पर्य माना जाना चाहिये।

पीतं यद् ब्रह्मपुत्रेण योगज्ञानविदा पुनः।
दुहिता साभवत् तस्य या सतीत्यभिधीयते॥ १०

लोकानतीत्य लालित्याल्ललिता तेन चोच्यते।
त्रैलोक्यसुन्दरीमेनामुपयेमे पिनाकधृक्॥ ११

त्रिविश्वसौभाग्यमयी भुक्तिमुक्तिफलप्रदा।
तामाराध्य पुमान् भक्त्या नारी वा किं न विन्दति॥ १२

योग और ज्ञानके तत्त्वको जाननेवाले ब्रह्मपुत्र दक्षने पूर्वकालमें जिस सौभाग्य-रसका पान किया था, उसके अंशसे उन्हें एक कन्या उत्पन्न हुई; जिसे सती नामसे अभिहित किया जाता है। अपनी सुन्दरतासे तीनों लोकोंको पराजित कर देनेके कारण वह कन्या लोकमें ललिता* के नामसे भी प्रसिद्ध है। पिनाकधारी भगवान् शंकरने उस त्रिभुवनसुन्दरी देवीके साथ विवाह किया। सती तीनों लोकोंकी सौभाग्यरूपा हैं। वे भोग और मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं। उनकी भक्तिपूर्वक आराधना करके नर या नारी क्या नहीं प्राप्त कर सकती॥ १०—१२॥

मनुरुवाच

कथमाराधनं तस्या जगद्धात्र्या जनार्दन।
तद्विधानं जगन्नाथ तत् सर्वं च वदस्व मे॥ १३

मनुजीने पूछा—जनार्दन! जगद्धात्री सतीकी आराधना कैसे की जाती है? जगन्नाथ! उसके लिये जो विधान हो, वह सब मुझे बतानेकी कृपा कीजिये॥ १३॥

मत्स्य उवाच

वसन्तमाससमासाद्य तृतीयायां जनप्रिय।
शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे तिलैः स्नानं समाचरेत्॥ १४
तस्मिन्नहनि सा देवी किल विश्वात्मना सती।
पाणिग्रहणकैर्मन्त्रैरवसद् वरवर्णिनी॥ १५
तया सहैव देवेशं तृतीयायामथार्चयेत्।
फलैर्नानाविधैर्धूपैर्दीपैर्नैवेद्यसंयुतैः॥ १६
प्रतिमां पञ्चगव्येन तथा गन्धोदकेन तु।
स्नापयित्वार्चयेद् गौरीमिन्दुशेखरसंयुताम्॥ १७
नमोऽस्तु पाटलायै तु पादौ देव्याः शिवस्य तु।
शिवायेति च संकीर्त्य जयायै गुल्फयोर्द्वयोः॥ १८
त्रिगुणायेति रुद्राय भवान्यै जङ्घयोर्युगम्।
शिवं भद्रेश्वरायेति विजयायै च जानुनी।
संकीर्त्य हरिकेशाय तथोरू वरदे नमः॥ १९
ईशायै च कटिं देव्याः शंकरायेति शंकरम्।
कुक्षिद्वयं च कोटव्यै शूलिने शूलपाणये॥ २०
मङ्गलायै नमस्तुभ्यमुदरं चाभिपूजयेत्।
सर्वात्मने नमो रुद्रमीशान्यै च कुचद्वयम्॥ २१

मत्स्यभगवान्ने कहा—जनप्रिय! चैत्रमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाको दिनके पूर्वभागमें मनुष्य तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। उस दिन परम सुन्दरी भगवती सतीका विश्वात्मा भगवान् शंकरके साथ वैवाहिक मन्त्रोंद्वारा विवाह हुआ था, अतः तृतीयाको सती देवीके साथ ही भगवान् शंकरका भी पूजन करे। पञ्चगव्य तथा चन्दनमिश्रित जलके द्वारा गौरी और भगवान् चन्द्रशेखरकी प्रतिमाको स्नान कराकर धूप, दीप, नैवेद्य तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा उन दोनोंकी पूजा करनी चाहिये। '**पाटलायै नमोऽस्तु**', '**शिवाय नमः**' इन मन्त्रोंसे क्रमशः पार्वती और शिवके चरणोंका, '**जयायै नमः**', '**शिवाय नमः**' से दोनोंकी घुट्ठियोंका, '**त्रिगुणाय रुद्राय नमः**', '**भवान्यै नमः**' से गुल्फोंका, '**भद्रेश्वराय नमः**', '**विजयायै नमः**' से घुटनोंका '**हरिकेशाय नमः**', '**वरदायै नमः**' से ऊरुओंका, '**शङ्कराय नमः**' '**ईशायै नमः**' से दोनों कटिभागका, '**कोटव्यै नमः**', '**शूलिने नमः**' से दोनों कुक्षिभागोंका, '**शूलपाणये नमः**', '**मङ्गलायै नमः**' से उदरका पूजन करना चाहिये। '**सर्वात्मने नमः**', '**ईशान्यै नमः**' से दोनों स्तनोंकी,

*इसमें वर्णित—'सौभाग्य' एवं 'ललिता' देवीके रहस्यका सामञ्जस्य-स्थापन तथा पूर्ण चित्रण भास्करराय भारतीने 'ललितासहस्रनाम'के परम श्रेष्ठ 'सौभाग्य-भास्कर-भाष्य'में मत्स्यपुराणके नामोल्लेखपूर्वक किया है।

शिवं वेदात्मने तद्वद् रुद्राण्यै कण्ठमर्चयेत्।
त्रिपुरघ्नाय विश्वेशमनन्तायै करद्वयम्॥ २२

त्रिलोचनाय च हरं बाहू कालानलप्रिये।
सौभाग्यभवनायेति भूषणानि सदार्चयेत्।
स्वाहास्वधायै च मुखमीश्वरायेति शूलिनम्॥ २३
अशोकमधुवासिन्यै पूज्यावोष्ठौ च भूतिदौ।
स्थाणवे तु हरं तद्वद्धास्यं चन्द्रमुखप्रिये॥ २४
नमोऽर्धनारीशहरमसिताङ्गीति नासिकाम्।
नम उग्राय लोकेशं ललितेति पुनर्भ्रुवौ॥ २५
शर्वाय पुरहन्तारं वासव्यै तु तथालकान्।
नमः श्रीकण्ठनाथायै शिवकेशांस्ततोऽर्चयेत्।
भीमोग्रसमरूपिण्यै शिरः सर्वात्मने नमः॥ २६
शिवमभ्यर्च्य विधिवत् सौभाग्याष्टकमग्रतः।
स्थापयेद् घृतनिष्पावकुसुम्भक्षीरजीरकान्॥ २७
रसराजं च लवणं कुस्तुम्बुरुं तथाष्टकम्।
दत्तं सौभाग्यमित्यस्मात् सौभाग्याष्टकमित्यतः॥ २८
एवं निवेद्य तत् सर्वमग्रतः शिवयोः पुनः।
रात्रौ शृङ्गोदकं प्राश्य तद्वद् भूमावरिन्दम॥ २९
पुनः प्रभाते तु तथा कृतस्नानजपः शुचिः।
सम्पूज्य द्विजदाम्पत्यं वस्त्रमाल्यविभूषणैः॥ ३०
सौभाग्याष्टकसंयुक्तं सुवर्णचरणद्वयम्।
प्रीयतामत्र ललिता ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ३१
एवं संवत्सरं यावत् तृतीयायां सदा मनो।
कर्तव्यं विधिवद् भक्त्या सर्वसौभाग्यमीप्सुभिः॥ ३२
प्राशने दानमन्त्रे च विशेषोऽयं निबोध मे।
शृङ्गोदकं चैत्रमासे वैशाखे गोमयं पुनः॥ ३३
ज्येष्ठे मन्दारकुसुमं बिल्वपत्रं शुचौ स्मृतम्।
श्रावणे दधि सम्प्राश्यं नभस्ये च कुशोदकम्॥ ३४
क्षीरमाश्वयुजे मासि कार्तिके पृषदाज्यकम्।
मार्गे मासे तु गोमूत्रं पौषे सम्प्राशयेद् घृतम्॥ ३५

'वेदात्मने नमः', **'रुद्राण्यै नमः'** से कण्ठकी, **'त्रिपुरघ्नाय नमः'**, **'अनन्तायै नमः'** से दोनों हाथोंकी पूजा करे॥ १४—२२॥

फिर **'त्रिलोचनाय नमः'**, **'कालानलप्रियायै नमः'** से बाँहोंका, **'सौभाग्यभवनाय नमः'** से आभूषणोंका नित्य पूजन करे। **'स्वाहास्वधायै नमः'**, **'ईश्वराय नमः'** से दोनोंके मुखमण्डलका, **'अशोकमधुवासिन्यै नमः'**— इस मन्त्रसे ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले ओठोंका, **'स्थाणवे नमः'**, **'चन्द्रमुखप्रियायै नमः'** से मुँहका, **'अर्धनारीश्वराय नमः'**, **'असिताङ्ग्यै नमः'** से नसिकाका, **'उग्राय नमः'**, **'ललितायै नमः'** से दोनों भौंहोंका, **'शर्वाय नमः'**, **'वासव्यै नमः'** से केशोंका, **'श्रीकण्ठनाथाय नमः'** से केवल शिवके बालोंका पूजन करे तथा **'भीमोग्रसमरूपिण्यै नमः'**, **'सर्वात्मने नमः'** से दोनोंके मस्तकोंका पूजन करे। इस प्रकार शिव और पार्वतीकी विधिवत् पूजा कर उनके आगे सौभाग्याष्टक रखे। निष्पाव (सेम), कुसुम्भ, क्षीरजीरक, रसराज, इक्षु, लवण, कुङ्कुम तथा राजधान्य—इन आठ वस्तुओंको देनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति होती है, इसलिये इनकी 'सौभाग्याष्टक' संज्ञा है। शत्रुदमन! इस प्रकार शिवपार्वतीके आगे सब सामग्री निवेदन करके रातमें सिंघाड़ा खाकर अथवा शृङ्गोदक पान करके भूमिपर शयन करे। फिर सबेरे उठकर स्नान और जप करके पवित्र हो माला, वस्त्र और आभूषणोंके द्वारा ब्राह्मण-दम्पतिका पूजन करे। इसके बाद सौभाग्याष्टकसहित शिव और पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमाओंको ललितादेवीकी प्रसन्नताके लिये ब्राह्मणको निवेदन करे॥ २३—३१॥

मनो! इस प्रकार सम्पूर्ण सौभाग्यकी अभिलाषावाले मनुष्योंको एक वर्षतक प्रत्येक तृतीया तिथिको भक्तिपूर्वक विधिवत् पूजन करना चाहिये। केवल भोजन और दानके मन्त्रोंमें कुछ विशेषता है, उसे मुझसे सुनिये। चैत्रमासमें शृङ्गोदक, वैशाखमें गोबर, ज्येष्ठमें मन्दारका पुष्प, आषाढ़में बिल्वपत्र, श्रावणमें दही, भाद्रपदमें कुशोदक, आश्विनमासमें दूध, कार्तिकमें दही मिला हुआ घी, मार्गशीर्षमासमें गोमूत्र, पौषमें घृत,

माघे कृष्णातिलं तद्वत् पञ्चगव्यं च फाल्गुने।
ललिता विजया भद्रा भवानी कुमुदा शिवा॥ ३६
वासुदेवी तथा गौरी मङ्गला कमला सती।
उमा च दानकाले तु प्रीयतामिति कीर्तयेत्॥ ३७
मल्लिकाशोककमलं कदम्बोत्पलमालती:।
कुब्जकं करवीरं च बाणमम्लानकुङ्कुमम्॥ ३८
सिन्धुवारं च सर्वेषु मासेषु क्रमशः स्मृतम्।
जपाकुसुम्भकुसुमं मालती शतपत्रिका॥ ३९
यथालाभं प्रशस्तानि करवीरं च सर्वदा।
एवं संवत्सरं यावदुपोष्य विधिवन्नरः॥ ४०
स्त्री भक्ता वा कुमारी वा शिवमभ्यर्च्य भक्तितः।
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम्॥ ४१
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवां सह।
स्थापयित्वाथ शयने ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ४२
अन्यान्यपि यथाशक्ति मिथुनान्यम्बरादिभिः।
धान्यालङ्कारगोदानैरभ्यर्चेद् धनसंचयैः।
वित्तशाठ्येन रहितः पूजयेद् गतविस्मयः॥ ४३
एवं करोति यः सम्यक् सौभाग्यशयनव्रतम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति पदमानन्त्यमश्नुते।
फलस्यैकस्य त्यागेन व्रतमेतत् समाचरेत्॥ ४४
य इच्छन् कीर्तिमाप्नोति प्रतिमासं नराधिप।
सौभाग्यारोग्यरूपायुर्वस्त्रालङ्कारभूषणैः ।
न वियुक्तो भवेद् राजन् नवार्बुदशतत्रयम्॥ ४५
यस्तु द्वादश वर्षाणि सौभाग्यशयनव्रतम्।
करोति सप्त चाष्टौ वा श्रीकण्ठभवनेऽमरैः।
पूज्यमानो वसेत् सम्यग् यावत्कल्पायुतत्रयम्॥ ४६
नारी वा कुरुते वापि कुमारी वा नरेश्वर।
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता॥ ४७
शृणुयादपि यश्चैव प्रदद्यादथवा मतिम्।
सोऽपि विद्याधरो भूत्वा स्वर्गलोके चिरं वसेत्॥ ४८

माघमें काला तिल और फाल्गुनमें पञ्चगव्यका प्राशन करना चाहिये तथा दानके समय ललिता, विजया, भद्रा, भवानी, कुमुदा, शिवा, वासुदेवी, गौरी, मङ्गला, कमला, सती और उमा प्रसन्न हों—ऐसा कीर्तन करे। मल्लिका, अशोक, कमल, कदम्ब, उत्पल (नीलकमल), मालती, कुब्जक, करवीर (कनेर), बाण (कचनार या काश), ताजा कुङ्कुम और सिन्दुवार—इनके पुष्प क्रमशः सभी मासोंमें उपयुक्त माने गये हैं। जपाकुसुम, कुसुम्भ-कुसुम, मालती और शतपत्रिकाके पुष्प यदि मिल सकें तो प्रशस्त माने गये हैं, किंतु करवीर (कनेर) पुष्प तो सदा सभी महीनोंमें ग्राह्य है। इस प्रकार एक वर्षतक इस व्रतका विधिपूर्वक अनुष्ठान कर पुरुष, स्त्री या कुमारी भक्तिके साथ शिवजीकी पूजा करे। व्रतकी समाप्तिके समय सम्पूर्ण सामग्रियोंसे युक्त शय्या दान करे। उस शय्यापर शिव-पार्वतीकी सुवर्णमयी प्रतिमा और स्वर्णनिर्मित गौके साथ बैलको स्थापित कर ब्राह्मणको दान करे॥ ३२—४२॥

अन्यान्य ब्राह्मण-दम्पतियोंका भी वस्त्र, धान्य, अलंकार, गोदान और प्रचुर धनसे पूजन करना चाहिये। कृपणता छोड़कर दृढ़ निश्चयके साथ भगवान्‌का पूजन करे। जो मनुष्य इस प्रकार उत्तम सौभाग्यशयन नामक व्रतका भलीभाँति अनुष्ठान करता है, उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं। अथवा (यदि वह निष्कामभावसे इस व्रतको करता है तो) उसे नित्यपदकी प्राप्ति होती है। इस व्रतका आचरण करनेवाले पुरुषको एक फलका परित्याग कर देना चाहिये। राजन्! प्रतिमास इसका आचरण करनेवाला पुरुष यश और कीर्ति प्राप्त करता है। नरेश्वर! (सौभाग्य-शयनका दान करनेवाला पुरुष) सौभाग्य, आरोग्य, सुन्दर रूप, आयु, वस्त्र, अलंकार और आभूषणोंसे नौ अरब तीन सौ वर्षोंतक वञ्चित नहीं होता। जो बारह, आठ या सात वर्षोंतक सौभाग्यशयन-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह श्रीकण्ठ (महादेव) के लोकमें देवगणोंद्वारा भलीभाँति पूजित होकर तीस कल्पोंतक निवास करता है। नरेश्वर! जो विवाहिता स्त्री या कुमारी इस व्रतका पालन करती है, वह भी ललितादेवीके अनुग्रहसे लालित होकर पूर्वोक्त फलको प्राप्त करती है। जो इस व्रतकी कथाको श्रवण करता है अथवा दूसरोंको इसे करनेकी सलाह देता है, वह भी विद्याधर होकर चिरकालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है।

इदमिह मदनेन पूर्वमिष्टं
शतधनुषा कृतवीर्यसूनुना च।
कृतमथ वरुणेन नन्दिना वा
किमु जननाथ ततो यदुद्भवः स्यात्॥ ४९

जननाथ! पूर्वकालमें कामदेवने, राजा शतधन्वाने, कार्तवीर्य अर्जुनने, वरुणदेवने तथा नन्दीने भी इस अद्भुत व्रतका अनुष्ठान किया था। इस प्रकार इस व्रतके अनुष्ठानसे जैसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है, उसके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय॥ ४३—४९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सौभाग्यशयनव्रतं नाम षष्टितमोऽध्यायः॥ ६०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सौभाग्यशयनव्रत नामक साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६०॥

इकसठवाँ अध्याय

अगस्त्य और वसिष्ठकी दिव्य उत्पत्ति, उर्वशी अप्सराका प्राकट्य और अगस्त्यके लिये अर्घ्य-प्रदान करनेकी विधि एवं माहात्म्य

नारद उवाच

भूर्लोकोऽथ भुवर्लोकः स्वर्लोकोऽथ महर्जनः।
तपः सत्यं च सप्तैते देवलोकाः प्रकीर्तिताः॥ १
पर्यायेण तु सर्वेषामाधिपत्यं कथं भवेत्।
इह लोके शुभं रूपमायुः सौभाग्यमेव च।
लक्ष्मीश्च विपुला नाथ कथं स्यात् पुरसूदन॥ २

नारदजीने पूछा—त्रिपुरविनाशक महेश्वर! भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक और सत्यलोक—ये सात देवलोक बतलाये गये हैं। इन सबपर क्रमशः आधिपत्य कैसे प्राप्त किया जा सकता है? तथा नाथ! इस लोकमें सुन्दर रूप, दीर्घायु, सौभाग्य और विपुल लक्ष्मीकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? (कृपया इसे बतलाइये)॥ १-२॥

महेश्वर उवाच

पुरा हुताशनः सार्धं मारुतेन महीतले।
आदिष्टः पुरुहूतेन विनाशाय सुरद्विषाम्॥ ३
निर्दग्धेषु ततस्तेन दानवेषु सहस्रशः।
तारकः कमलाक्षश्च कालदंष्ट्रः परावसुः।
विरोचनश्च संग्रामादपलायंस्तपोधन॥ ४
अम्भः सामुद्रमाविश्य संनिवेशमकुर्वत।
अशक्या इति तेऽप्यग्निमारुताभ्यामुपेक्षिताः॥ ५
ततः प्रभृति ते देवान् मनुष्यान् सभुजङ्गमान्।
सम्पीड्य च मुनीन् सर्वान् प्रविशन्ति पुनर्जलम्॥ ६
एवं वर्षसहस्राणि वीराः पञ्च च सप्त च।
जलदुर्गबलाद् ब्रह्मन् पीडयन्ति जगत्त्रयम्॥ ७
ततः परमथो वह्निमारुतावमराधिपः।
आदिदेश चिरादम्बुनिधिरेष विशोष्यताम्॥ ८

भगवान् महेश्वरने कहा—तपोधन! पूर्वकालकी बात है, एक बार इन्द्रने भूतलपर देवद्रोही असुरोंका विनाश करनेके लिये वायुके साथ अग्निको आज्ञा दी। तब अग्निद्वारा हजारों दानवोंको जलाकर भस्म कर दिये जानेपर तारक, कमलाक्ष, कालदंष्ट्र, परावसु और विरोचन आदि प्रधान दानव रणभूमिसे भाग खड़े हुए और समुद्रके जलमें प्रविष्ट होकर (वहाँ छिपकर) निवासस्थान बनाकर रहने लगे। उस समय अग्नि और वायुने भी 'अब ये सर्वथा अशक्त, निर्जीव हो गये हैं'—ऐसा समझकर उनकी उपेक्षा कर दी। तबसे वे दानव जलसे निकलकर देवताओं, नागों (सामान्य) मनुष्यों और समस्त मुनियोंको बुरी तरह पीड़ित कर पुनः जलमें प्रविष्ट हो जाते थे। ब्रह्मन्! इस प्रकार वे पाँच-सात ही दानववीर हजारों वर्षोंसे अपने जलदुर्गके बलपर त्रिलोकीको पीड़ा पहुँचा रहे थे। तब यह सब देखकर देवेश्वर इन्द्रने अग्नि और वायुको आज्ञा दी कि 'आपलोग इस समुद्रको सुखा डालें।

यस्मादस्मद्द्विषामेष शरणं वरुणालयः।
तस्माद् भवद्भ्यामद्यैव क्षयमेष प्रणीयताम्॥ ९

तावूचतुस्ततः शक्रमुभौ शम्बरसूदनम्।
अधर्म एष देवेन्द्र सागरस्य विनाशनम्॥ १०

यस्माज्जीवनिकायस्य महतः संक्षयो भवेत्।
तस्मान्न पापमद्यावां करवावः पुरंदर॥ ११

अस्य योजनमात्रेऽपि जीवकोटिशतानि च।
निवसन्ति सुरश्रेष्ठ स कथं नाशमर्हति॥ १२

एवमुक्तः सुरेन्द्रस्तु कोपात् संरक्तलोचनः।
उवाचेदं वचो रोषान्निर्दहन्निव पावकम्॥ १३

न धर्माधर्मसंयोगं प्राप्नुवन्त्यमराः क्वचित्।
भवतस्तु विशेषेण माहात्म्यं चाधितिष्ठति॥ १४

मदाज्ञालङ्घनं यस्मान्मारुतेन समं त्वया।

मुनिव्रतमहिंसादि परिगृह्य त्वया कृतम्।
धर्मार्थशास्त्ररहितं शत्रुं प्रति विभावसो॥ १५

तस्मादेकेन वपुषा मुनिरूपेण मानुषे।
मारुतेन समं लोके तव जन्म भविष्यति॥ १६

यदा च मानुषत्वेऽपि त्वयागस्त्येन शोषितः।
भविष्यत्युदधिर्वह्ने तदा देवत्वमाप्स्यसि॥ १७

इतीन्द्रशापात् पतितौ तत्क्षणात् तौ महीतले।
अवापावेकदेहेन कुम्भाज्जन्म तपोधन॥ १८

मित्रावरुणयोर्वीर्याद् वसिष्ठस्यानुजोऽभवत्।
अगस्त्य इत्युग्रतपाः सम्बभूव पुनर्मुनिः॥ १९

नारद उवाच

सम्भूतः स कथं भ्राता वसिष्ठस्याभवन्मुनिः।
कथं च मित्रावरुणौ पितरावस्य तौ स्मृतौ।
जन्म कुम्भादगस्त्यस्य कथं स्यात् पुरसूदन॥ २०

ईश्वर उवाच

पुरा पुराणपुरुषः कदाचिद् गन्धमादने।
भूत्वा धर्मसुतो विष्णुश्चचार विपुलं तपः॥ २१

चूँकि यह वरुणका निवासस्थान समुद्र हमारे शत्रुओंका आश्रयस्थान बना हुआ है, इसलिये आपलोग आज ही इसे नष्ट कर दें।' तब वे दोनों (अग्नि और वायु) शम्बरासुरका विनाश करनेवाले इन्द्रसे बोले—'देवेन्द्र! समुद्रका विनाश कर देना—यह महान् अधर्म होगा। पुरंदर! ऐसा करनेसे बहुत बड़े जीव-समुदायका विनाश हो जायगा, इसलिये हमलोग आज यह पाप नहीं करना चाहते। सुरश्रेष्ठ! इस समुद्रके एक योजन (चार मील)-के विस्तारमें ही सैकड़ों करोड़ जीव निवास करते हैं, भला, उनका विनाश कैसे किया जा सकता है!'॥ ३—१२॥

उनके ऐसा कहनेपर क्रोधके कारण सुरेन्द्रके नेत्र लाल हो गये। तब वे अपनी क्रोधाग्निसे अग्निको जलाते हुएकी तरह यह वचन बोले—'विभावसो! देवताओंपर कहीं भी धर्म और अधर्मका प्रभाव नहीं पड़ता। आपमें तो यह महत्त्व विशेषरूपसे वर्तमान है। चूँकि आपने वायुके साथ मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन किया है और अहिंसा आदि मुनि-व्रत धारण कर धर्म, अर्थ और शास्त्रसे विहीन शत्रुके प्रति उपेक्षा की है, इसलिये मानवलोकमें वायुके साथ आपका एक शरीरसे मुनिरूपमें जन्म होगा। अग्ने! मानव-योनिमें उत्पन्न होनेपर भी जब आपद्वारा अगस्त्यरूपसे समुद्र सोख लिया जायगा, तब पुनः आपको देवत्वकी प्राप्ति होगी।' तपोधन! इस प्रकार इन्द्रके शापसे वे दोनों (अग्नि और वायु) उसी क्षण पृथ्वीतलपर गिर पड़े और एक ही शरीरसे (दोनोंने) घड़ेसे जन्म धारण किया। वे मित्रावरुणके वीर्यसे उत्पन्न होकर वसिष्ठके अनुज हुए। आगे चलकर वे दोनों संयुक्त उग्रतपस्वी अगस्त्य मुनिके नामसे विख्यात हुए॥ १३—१९॥

नारदजीने पूछा—त्रिपुरसूदन! वे मुनि जन्म धारण करनेके पश्चात् वसिष्ठके भ्राता कैसे हो गये? वे दोनों मित्रावरुण इनके पिता कैसे कहलाये? तथा अगस्त्य मुनिका घड़ेसे जन्म कैसे हुआ? (यह सब हम जानना चाहते हैं।)॥ २०॥

ईश्वरने कहा—नारद! पूर्वकालमें पुराणपुरुष भगवान् विष्णु किसी समय धर्मके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर गन्धमादन पर्वतपर महान् तपस्यामें संलग्न थे।

तपसा तस्य भीतेन विघ्नार्थं प्रेषितावुभौ।
शक्रेण माधवानङ्गावप्सरोगणसंयुतौ॥ २२
तदा तद्गीतवाद्येन नाङ्गरागादिना हरिः।
न काममाधवाभ्यां च विषयान् प्रति चुक्षुभे॥ २३
तदा काममधुस्त्रीणां विषादमगमद् गणः।
संक्षोभाय ततस्तेषां स्वोरुदेशान्नराग्रजः।
नारीमुत्पादयामास त्रैलोक्यजनमोहिनीम्॥ २४
संक्षुब्धास्तु तया देवास्तौ तु देववरावुभौ।
अप्सरोभिः समक्षं हि देवानामब्रवीद्धरिः॥ २५
अप्सरा इति सामान्या देवानामब्रवीद्धरिः।
उर्वशीति च नाम्नेयं लोके ख्यातिं गमिष्यति॥ २६
ततः कामयमानेन मित्रेणाहूय सोर्वशी।
उक्ता मां रमयस्वेति बाढमित्यब्रवीत् तु सा॥ २७
गच्छन्ती चाम्बरं तद्वत् स्तोकमिन्दीवरेक्षणा।
वरुणेन धृता पश्चाद् वरुणं नाभ्यनन्दत॥ २८
मित्रेणाहं वृता पूर्वमद्य भार्या न ते विभो।
उवाच वरुणश्चित्तं मयि संन्यस्य गम्यताम्॥ २९
गतायां बाढमित्युक्त्वा मित्रः शापमदात्तदा।
तस्यै मानुषलोके त्वं गच्छ सोमसुतात्मजम्॥ ३०
भजस्वेति यतो वेश्याधर्म एष त्वया कृतः।
जलकुम्भे ततो वीर्यं मित्रेण वरुणेन च।
प्रक्षिप्तमथ संजातौ द्वावेव मुनिसत्तमौ॥ ३१
निमिर्नाम सह स्त्रीभिः पुरा द्यूतमदीव्यत।
तत्रान्तरेऽभ्याजगाम वसिष्ठो ब्रह्मसम्भवः॥ ३२
तस्य पूजामकुर्वन्तं शशाप स मुनिर्नृपम्।
विदेहस्त्वं भवस्वेति ततस्तेनाप्यसौ मुनिः॥ ३३
अन्योन्यशापाच्च तयोर्विगते इव चेतसी।
जग्मतुः शापनाशाय ब्रह्माणं जगतः पतिम्॥ ३४
अथ ब्रह्मण आदेशाल्लोचनेष्ववसन्निमिः।
निमेषाः स्युश्च लोकानां तद्विश्रामाय नारद॥ ३५
वसिष्ठोऽप्यभवत् तस्मिन् जलकुम्भे च पूर्ववत्।
ततः श्वेतश्चतुर्बाहुः साक्षसूत्रकमण्डलुः।
अगस्त्य इति शान्तात्मा बभूव ऋषिसत्तमः॥ ३६

उनकी तपस्यासे भयभीत हुए इन्द्रने उसमें विघ्न डालनेके लिये अप्सराओंके साथ वसन्त-ऋतु और कामदेव—दोनोंको भेजा। उस समय श्रीहरि न तो उनके गाने, बजाने अथवा अङ्गराग आदिसे ही प्रभावित हुए, न वसन्त और कामदेवद्वारा उपस्थित किये गये विषय-भोगोंके प्रति ही उनका मन क्षुब्ध हुआ। यह देखकर कामदेव, वसन्त और अप्सराओंका समूह विषादमें डूब गया। तत्पश्चात् नरके अग्रज नारायणने उन्हें विशेषरूपसे क्षुब्ध करनेके हेतु अपने ऊरुप्रदेशसे एक ऐसी नारीको उत्पन्न किया, जो त्रिलोकीके मनुष्योंको मोहित करनेवाली थी। उस स्त्रीने समस्त देवताओं तथा उन दोनों देवश्रेष्ठोंको भलीभाँति क्षुब्ध कर दिया। उस समय श्रीहरिने अप्सराओंके सामने ही देवताओंसे कहा—'देवगण! यह एक अप्सरा है। यह लोकमें उर्वशी-नामसे प्रसिद्ध होगी'॥ २१—२९॥

तदनन्तर एक घड़ेसे मित्र और वरुणके अंशसे दो मुनिश्रेष्ठ उत्पन्न हुए। प्राचीनकालकी बात है, एक बार जब महाराज निमि स्त्रियोंके साथ जुआ खेल रहे थे, उसी समय ब्रह्मपुत्र महर्षि वसिष्ठ उनके पास आये, किंतु राजाने उनका स्वागत-सत्कार नहीं किया। तब वसिष्ठ मुनिने राजाको शाप दे दिया—'तुम विदेह—देहरहित हो जाओ।' तब राजाने भी मुनिको वही शाप दे दिया। इस प्रकार एक-दूसरेके शापवश दोनोंकी चेतना लुप्त-सी हो गयी। तब वे दोनों शापसे छुटकारा पानेके लिये जगत्पति ब्रह्माके पास गये। वहाँ ब्रह्माके आदेशसे राजा निमिका प्राणियोंके नेत्रोंमें निवास हुआ। नारद! उन्हींको विश्राम देनेके लिये लोगोंके निमेष (पलकोंका गिरना और खुलना) होते रहते हैं। वसिष्ठ भी पहलेकी तरह उसी जलकुम्भसे प्रकट हुए। तदुपरान्त उसी जलकुम्भसे ऋषिश्रेष्ठ अगस्त्य उत्पन्न हुए, जो अत्यन्त शान्त स्वभाववाले थे। उनका गौर वर्ण था, उनके चार भुजाएँ थीं तथा वे अक्षसूत्र (यज्ञोपवीत) और कमण्डलु धारण किये हुए थे। विप्रोंसे घिरे हुए अगस्त्यने अपनी पत्नीके साथ

मलयस्यैकदेशे तु वैखानसविधानतः।
सभार्यः संवृतो विप्रैस्तपश्चक्रे सुदुश्चरम्॥ ३७

ततः कालेन महता तारकादतिपीडितम्।
जगद् वीक्ष्य स कोपेन पीतवान् वरुणालयम्॥ ३८

ततोऽस्य वरदाः सर्वे बभूवुः शंकरादयः।
ब्रह्मा विष्णुश्च भगवान् वरदानाय जग्मतुः।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं च वै मुने॥ ३९

अगस्त्य उवाच

यावद् ब्रह्मसहस्राणां पञ्चविंशतिकोटयः।
वैमानिको भविष्यामि दक्षिणाचलवर्त्मनि॥ ४०

मद्विमानोदये कुर्याद् यः कश्चित् पूजनं मम।
स सप्तलोकाधिपतिः पर्यायेण भविष्यति॥ ४१

ईश्वर उवाच

एवमस्त्विति तेऽप्युक्त्वा जग्मुर्देवा यथागतम्।
तस्मादर्घः प्रदातव्यो ह्यगस्त्यस्य सदा बुधैः॥ ४२

नारद उवाच

कथमर्घप्रदानं तु कर्तव्यं तस्य वै विभो।
विधानं यदगस्त्यस्य पूजने तद् वदस्व मे॥ ४३

ईश्वर उवाच

प्रत्यूषसमये विद्वान् कुर्यादस्योदये निशि।
स्नानं शुक्लतिलैस्तद्वच्छुक्लमाल्याम्बरो गृही॥ ४४

स्थापयेदव्रणं कुम्भं माल्यवस्त्रविभूषितम्।
पञ्चरत्नसमायुक्तं घृतपात्रसमन्वितम्॥ ४५

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव
सौवर्णमेवायतबाहुदण्डम्।
चतुर्मुखं कुम्भमुखे निधाय
धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि॥ ४६

सकांस्यपात्राक्षतशुक्तियुक्तं
मन्त्रेण दद्याद् द्विजपुङ्गवाय।
उत्क्षिप्य लम्बोदरदीर्घबाहु-
मनन्यचेता यमदिङ्मुखः सन्॥ ४७

रहकर मलयपर्वतके एक प्रदेशमें वैखानस-विधिके अनुसार अत्यन्त कठोर तप किया था। चिरकालके पश्चात् तारकासुरद्वारा जगत्को अत्यन्त पीड़ित देखकर वे कुपित हो गये और समुद्रको पी गये। यह देखकर शंकर आदि सभी देवता उन्हें वर-देनेके लिये उत्सुक हो उठे। उसी समय ब्रह्मा और भगवान् विष्णु वर प्रदान करनेके निमित्त उनके निकट गये और बोले—'मुने! आपका कल्याण हो! आपको जो अभीष्ट हो, वह वर माँग लीजिये'॥ ३०—३९॥

अगस्त्य बोले—देव! मैं एक सहस्र ब्रह्माओंके पचीस करोड़ वर्षोंतक दक्षिणाचलके मार्गमें विमानपर स्थित होकर निवास करूँ। उस समय मेरे विमानके उदय होनेपर जो कोई मनुष्य मेरा पूजन करे, वह क्रमशः सातों लोकोंका अधिपति हो जाय॥ ४०-४१॥

ईश्वरने कहा—नारद! तब वे देवगण भी 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' यों कहकर जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। इसलिये विद्वानोंको अगस्त्यके लिये सदा अर्घ्य प्रदान करते रहना चाहिये॥ ४२॥

नारदजीने पूछा—विभो! अगस्त्यके लिये किस विधिसे अर्घ्य प्रदान करना चाहिये? तथा उनके पूजनका क्या विधान है? यह मुझे बतलाइये?॥ ४३॥

ईश्वरने कहा—नारद! विद्वान् गृहस्थको चाहिये कि वह अगस्त्यके उदयसे संयुक्त रात्रिमें प्रातःकाल श्वेत तिलमिश्रित जलसे स्नान करे। उसी प्रकार श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करे। तत्पश्चात् एक छिद्ररहित कलश स्थापित करे और उसे पुष्पमाला तथा वस्त्रसे विभूषित कर दे। उसके भीतर पञ्चरत्न डाल दे और पार्श्वभागमें घीसे भरा हुआ एक पात्र रख दे। साथ ही काँसेका पात्र चावल भरकर उसके ऊपर सीप अथवा शङ्ख रखकर प्रस्तुत करे। फिर अँगूठेके बराबर लम्बी सोनेकी एक ऐसी पुरुषाकार प्रतिमा बनवाये, जिसमें चार मुख दीख पड़ते हों और जिसकी भुजाएँ लम्बी हों, उसे कलशके मुखमें स्थापित कर दे। उसके निकट पृथक्-पृथक् सात वस्त्रोंमें बँधी हुई धान्य-राशि भी रखे। तदनन्तर अनन्य चित्तसे दक्षिणाभिमुख हो लम्बे उदर और लम्बी भुजाओंवाली अगस्त्यमुनिकी उस प्रतिमाको (घड़ेसे) निकालकर हाथमें लेकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक सारी सामग्रियोंसहित सुपात्र ब्राह्मणको दान कर दे।

श्वेतां च दद्याद् यदि शक्तिरस्ति
रौप्यैः खुरैर्हेममुखीं सवत्साम्।
धेनुं नरः क्षीरवतीं प्रणम्य
स्रग्वस्त्रघण्टाभरणां द्विजाय॥ ४८

आसप्तरात्रोदयमेतदस्य
दातव्यमेतत् सकलं नरेण।
यावत्समाः सप्त दशाथ वा स्यु-
रथोर्ध्वमप्यत्र वदन्ति केचित्॥ ४९

साथ ही यदि धनसम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो गृहस्थ पुरुष एक श्वेत वर्णकी बछड़ेवाली दुधारू गौको सोनेके मुख और चाँदीके खुरोंसे संयुक्त करे तथा उसे माला, वस्त्र और घंटीसे विभूषित करके नमस्कारपूर्वक ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार गृहस्थ पुरुषको अगस्त्योदयसे सात रात्रियोंतक इन सभी वस्तुओंका दान करना चाहिये। इस विधानको सात अथवा दस वर्षोंतक करना चाहिये। कुछ लोग इससे आगे भी इसकी अवधि बतलाते हैं॥ ४४—४९॥

काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव।
मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते।
प्रत्यब्दं तु फलत्यागमेवं कुर्वन्न सीदति[1]॥ ५०

होमं कृत्वा ततः पश्चाद् वर्जयेन्मानवः फलम्।
अनेन विधिना यस्तु पुमानर्घ्यं निवेदयेत्॥ ५१

इमं लोकं स चाप्नोति रूपारोग्यसमन्वितः।
द्वितीयेन भुवर्लोकं स्वर्लोकं च ततः परम्॥ ५२

सप्तैव लोकानाप्नोति सप्तार्घ्यान् यः प्रयच्छति।
यावदायुश्च यः कुर्यात् परं ब्रह्माधिगच्छति॥ ५३

तदनन्तर यों प्रार्थना करते हुए अर्घ्य प्रदान करे—'कुम्भसे उत्पन्न होनेवाले अगस्त्यजी! आपके शरीरका रंग कासके पुष्पके सदृश उज्ज्वल है, आपकी उत्पत्ति अग्नि और वायुसे हुई है और आप मित्रावरुणके पुत्र हैं, आपको नमस्कार है।' इस प्रकार फलत्यागपूर्वक प्रतिवर्ष अर्घ्य प्रदान करनेवाला पुरुष कष्टभागी नहीं होता। तत्पश्चात् हवन करके कार्य समाप्त करे। उस समय मनुष्यको फलकी अभिलाषा नहीं करनी चाहिये। जो पुरुष इस विधिके अनुसार अगस्त्यको अर्घ्य निवेदित करता है, वह सुन्दर रूप और नीरोगतासे युक्त होकर इस मृत्युलोकमें पुनः जन्म धारण करता है। इसी प्रकार वह दूसरे अर्घ्यसे भुवर्लोकको और तीसरेसे उससे भी श्रेष्ठ स्वर्लोकको जाता है। इसी तरह जो मनुष्य उन (सात) दिनोंमें अर्घ्य देता है, वह क्रमशः सातों लोकोंको प्राप्त होता है तथा जो आयुपर्यन्त इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है॥ ५०—५३॥

इह पठति शृणोति वा य
एतद् युगलमुनिप्रभवार्घ्यसम्प्रदानम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि
विष्णोर्भवनगतः परिपूज्यतेऽमरौघैः॥ ५४

जो मनुष्य इस मर्त्यलोकमें इन दोनों (वसिष्ठ और अगस्त्य) मुनियोंकी उत्पत्ति और अगस्त्य मुनिके अर्घ्यप्रदान[2] के वृत्तान्तको पढ़ता अथवा सुनता है या ऐसा करनेकी सलाह देता है, वह विष्णुलोकमें जाकर देवगणोंद्वारा पूजित होता है॥ ५४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽगस्त्योत्पत्तिपूजाविधानं नामैकषष्टितमोऽध्यायः॥ ६१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अगस्त्योत्पत्तिपूजा-विधान नामक इकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६१॥



१. यहाँ पूनावाली प्रतिमें तीन श्लोक अधिक हैं।

२. अगस्त्यार्घ्यपर ऋग्वेद १। १७९। ६ से लेकर अग्नि, गरुड, बृहद्धर्म आदि पुराणोंतकमें अपार सामग्री भरी पड़ी है। हेमाद्रि, गोपाल तथा रत्नाकर आदिने भी इन्हें अपने व्रत-निबन्धोंमें कई पृष्ठोंमें संगृहीत किया है। ऋक् प्रथम मण्डलमें दीर्घतमा १६४ सू० के बाद १९१ सूक्तोंतकके ये ही द्रष्टा हैं।

बासठवाँ अध्याय

अनन्ततृतीया-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

सौभाग्यारोग्यफलदं विपक्षक्षयकारकम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं देव तन्मे ब्रूहि जनार्दन॥ १

मत्स्य उवाच

यदुमायाः पुरा देव उवाच पुरसूदनः।
कैलासशिखरासीनो देव्या पृष्टस्तदा किल॥ २
कथासु सम्प्रवृत्तासु धर्म्यासु ललितासु च।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ३

ईश्वर उवाच

शृणुष्वावहिता देवि तथैवानन्तपुण्यकृत्।
नराणामथ नारीणामाराधनमनुत्तमम्॥ ४
नभस्ये वाथ वैशाखे पौषे मार्गशिरेऽथवा।
शुक्लपक्षे तृतीयायां सुस्नातो गौरसर्षपैः॥ ५
गोरोचनं सगोमूत्रं मुस्तां गोशकृतं तथा।
दधिचन्दनसम्मिश्रं ललाटे तिलकं न्यसेत्।
सौभाग्यारोग्यदं यत् स्यात् सदा च ललिताप्रियम्॥ ६
प्रतिपक्षं तृतीयासु पुमानापीतवाससी।
धारयेदथ रक्तानि नारी चेदथ संयता॥ ७
विधवा धातुरक्तानि कुमारी शुक्लवाससी।
देवीं तु पञ्चगव्येन ततः क्षीरेण केवलम्।
स्नापयेन्मधुना तद्वत् पुष्पगन्धोदकेन च॥ ८
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च फलैर्नानाविधैरपि।
धान्यलाजाजिलवणैर्गुडक्षीरघृतान्वितैः॥ ९
शुक्लाक्षततिलैरर्च्या ललितां यः सदार्चयेत्।
आपादाद्यर्चनं कुर्याद् गौर्याः सम्यक् समासतः॥ १०

मनुने पूछा—जनार्दनदेव! जो इस लोकमें सौभाग्य और नीरोगतारूप फल देनेवाला तथा भोग और मोक्षका प्रदाता एवं शत्रुनाशक हो, वह व्रत मुझे बतलाइये॥ १॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! पूर्वकालमें कैलास पर्वतके शिखरपर बैठे हुए त्रिपुरविनाशक महादेवजीने सुन्दर धार्मिक कथाओंके प्रसङ्गमें उमादेवीद्वारा पूछे जानेपर उनसे जिस व्रतका वर्णन किया था, वही इस समय मैं बतला रहा हूँ, यह भोग और मोक्षरूप फल देनेवाला है॥ २-३॥

ईश्वरने कहा—देवि! मैं पुरुषों तथा स्त्रियोंके लिये एक सर्वश्रेष्ठ व्रत बतला रहा हूँ, जो अनन्त पुण्यदायक है। तुम सावधानीपूर्वक उसे सुनो। इस व्रतका व्रती भाद्रपद, वैशाख, पौष अथवा मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको पीली सरसोंसे युक्त जलसे भलीभाँति स्नान करे। फिर गोरोचन, गोमूत्र, मुश्ता, गोबर, दही और चन्दनको मिलाकर ललाटमें तिलक लगावे; क्योंकि यह तिलक सौभाग्य और आरोग्यका प्रदायक तथा ललितादेवीको परम प्रिय* है। प्रत्येक शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको पुरुषको पीला वस्त्र, यदि सधवा स्त्री व्रतनिष्ठ होती है तो उसे लाल वस्त्र, विधवाको गेरू आदि धातुओंसे रँगा हुआ वस्त्र और कुमारी कन्याको श्वेत वस्त्र धारण करना चाहिये। उस समय देवीकी मूर्तिको पञ्चगव्यसे स्नान करानेके पश्चात् केवल दूधसे नहलाना चाहिये। उसी प्रकार मधु और पुष्प-चन्दनमिश्रित जलसे भी स्नान करावे। फिर श्वेत पुष्प, अनेक प्रकारके फल, धनिया, श्वेत जीरा, नमक, गुड़, दूध और घृतसे देवीकी पूजा करे। श्वेत अक्षत और तिलसे तो ललितादेवीकी सदा पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक शुक्लपक्षमें तृतीया तिथिको देवीकी मूर्तिके चरणसे लेकर मस्तकपर्यन्त संक्षेपसे पूजनका विधान है।

* सौर, पाद्म सृष्टि, भविष्योत्तरपुराण अ० २६ में यह व्रत सविस्तर निरूपित है। सौभाग्य एवं ललितादेवीके विषयमें ६० वें अध्यायकी टिप्पणी द्रष्टव्य है।

वरदायै नमः पादौ तथा गुल्फौ श्रियै नमः।
अशोकायै नमो जङ्घे पार्वत्यै जानुनी तथा॥ ११
ऊरू मङ्गलकारिण्यै वामदेव्यै तथा कटिम्।
पद्मोदरायै जठरमुरः कामश्रियै नमः॥ १२
करौ सौभाग्यदायिन्यै बाहूदरमुखं श्रियै।
दन्तान् दर्पणवासिन्यै स्मरदायै स्मितं नमः॥ १३
गौर्यै नमस्तथा नासामुत्पलायै च लोचने।
तुष्ट्यै ललाटमलकान् कात्यायन्यै शिरस्तथा॥ १४
नमो गौर्यै नमो धिष्ण्यै नमः कान्त्यै नमः श्रियै।
रम्भायै ललितायै च वासुदेव्यै नमो नमः॥ १५

'**वरदायै नमः**' से दोनों चरणोंका, '**श्रियै नमः**' से दोनों गुल्फोंका, '**अशोकायै नमः**' से दोनों जाँघोंका, '**पार्वत्यै नमः**' से दोनों जानुओंका, '**मङ्गलकारिण्यै नमः**' से दोनों ऊरुओंका, '**वामदेव्यै नमः**' से कटिप्रदेशका, '**पद्मोदरायै नमः**' से उदरका तथा '**कामश्रियै नमः**' से वक्षःस्थलका अर्चन करे; फिर '**सौभाग्यदायिन्यै नमः**' से दोनों हाथोंका, '**श्रियै नमः**' से बाहु, उदर और मुखका, '**दर्पणवासिन्यै नमः**' से दाँतोंका, '**स्मरदायै नमः**' से मुसकानका, '**गौर्यै नमः**' से नासिकाका, '**उत्पलायै नमः**' से नेत्रोंका, '**तुष्ट्यै नमः**' से ललाटका, '**कात्यायन्यै नमः**' से सिर और बालोंका पूजन करना चाहिये। तदुपरान्त '**गौर्यै नमः**', '**धिष्ण्यै नमः**', '**कान्त्यै नमः**', '**श्रियै नमः**', '**रम्भायै नमः**', '**ललितायै नमः**' और '**वासुदेव्यै नमः**' कहकर देवीके चरणोंमें प्रणिपात करना चाहिये॥ ४—१५॥

एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः पद्ममालिखेत्।
पत्रैर्द्वादशभिर्युक्तं कुङ्कुमेन सकर्णिकम्॥ १६
पूर्वेण विन्यसेद् गौरीमपर्णां च ततः परम्।
भवानीं दक्षिणे तद्वद् रुद्राणीं च ततः परम्॥ १७
विन्यसेत् पश्चिमे सौम्यां सदा मदनवासिनीम्।
वायव्ये पाटलावासामुत्तरेण ततोऽप्युमाम्॥ १८
लक्ष्मीं स्वाहां स्वधां तुष्टिं मङ्गलां कुमुदां सतीम्।
रुद्रं च मध्ये संस्थाप्य ललितां कर्णिकोपरि।
कुसुमैरक्षतैर्वार्भिर्नमस्कारेण विन्यसेत्॥ १९
गीतमङ्गलनिर्घोषान् कारयित्वा सुवासिनीः।
पूजयेद् रक्तवासोभी रक्तमाल्यानुलेपनैः।
सिन्दूरं गन्धचूर्णं च तासां शिरसि पातयेत्॥ २०
सिन्दूरकुङ्कुमस्नानमिष्टं सत्याः सदा यतः।
तथोपदेष्टारमपि पूजयेद् यत्नतो गुरुम्।
न पूज्यते गुरुर्यत्र सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥ २१
नभस्ये पूजयेद् गौरीमुत्पलैरसितैः सदा।
बन्धुजीवैराश्वयुजे कार्तिके शतपत्रकैः॥ २२

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करके मूर्तिके आगे कुङ्कुमसे बारह पत्तोंसे युक्त कर्णिकासहित कमल बनाये। उसके पूर्वभागमें गौरी, उसके बाद अपर्णा, दक्षिणभागमें भवानी और नैर्ऋत्य कोणमें रुद्राणीको स्थापित करे। पुनः पश्चिममें सदा सौम्य स्वभावसे रहनेवाली मदनवासिनी, वायव्यकोणमें पाटला और उत्तरमें पुष्पमें निवास करनेवाली उमाकी स्थापना करे। मध्यभागमें लक्ष्मी, स्वाहा, स्वधा, तुष्टि, मङ्गला, कुमुदा और सतीको स्थित करे। कमलके मध्यमें रुद्रकी स्थापना करके कर्णिकाके ऊपर ललितादेवीको स्थित करे। तत्पश्चात् गीत और माङ्गलिक बाजाका आयोजन कराकर पुष्प, श्वेत अक्षत और जलसे देवीकी अर्चना करके उन्हें नमस्कार करे। फिर लाल वस्त्र, लाल पुष्पोंकी माला और लाल अङ्गरागसे सुहागिनी स्त्रियोंका पूजन करे तथा उनके सिर (माँग)-में सिन्दूर और कुङ्कुम लगावे; क्योंकि सिन्दूर और कुङ्कुम सती देवीको सदा अभीष्ट हैं। तदनन्तर उपदेश करनेवाले गुरु अर्थात् आचार्यकी यत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये; क्योंकि जहाँ आचार्यकी पूजा नहीं होती, वहाँ सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। गौरीदेवीकी पूजा सदा भाद्रपदमासमें नीले कमलसे, आश्विनमें बन्धुजीव (गुलदुपहरिया)-के फूलोंसे, कार्तिकमें शतपत्रक (कमल)-के पुष्पोंसे,

जातीपुष्पैर्मार्गशीर्षे पौषे पीतैः कुरण्टकैः।
कुन्दकुङ्कुमपुष्पैस्तु देवीं माघे तु पूजयेत्।
सिन्धुवारेण जात्या वा फाल्गुनेऽप्यर्चयेदुमाम्॥ २३
चैत्रे तु मल्लिकाशोकैर्वैशाखे गन्धपाटलैः।
ज्येष्ठे कमलमन्दारैराषाढे चम्पकाम्बुजैः।
कदम्बैरथ मालत्या श्रावणे पूजयेदुमाम्॥ २४
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्।
बिल्वपत्रार्कपुष्पं च गवां शृङ्गोदकं तथा॥ २५
पञ्चगव्यं च बिल्वं च प्राशयेत् क्रमशस्तदा।
एतद् भाद्रपदाद्यं तु प्राशनं समुदाहृतम्॥ २६

मार्गशीर्षमें जाती (मालती)-के पुष्पोंसे, पौषमें पीले कुरण्टक (कटसरैया)-के पुष्पोंसे, माघमें कुन्द और कुङ्कुमके पुष्पोंसे करनी चाहिये। इसी प्रकार फाल्गुनमें सिन्दुवार अथवा मालतीके पुष्पोंसे उमाकी अर्चना करे। चैत्रमें मल्लिका और अशोकके पुष्पोंसे, वैशाखमें गन्धपाटलके फूलोंसे, ज्येष्ठमें कमल और मन्दारके कुसुमोंसे, आषाढ़में चम्पा एवं कमल-पुष्पोंसे और श्रावणमें कदम्ब तथा मालतीके फूलोंसे पार्वतीकी पूजा करनी चाहिये। इसी तरह भाद्रपदसे आरम्भ कर आश्विन आदि बारह महीनोंमें क्रमशः गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, बिल्व-पत्र, मदारका पुष्प, गोशृङ्गोदक, पञ्चगव्य और बेलका नैवेद्य अर्पण करनेका विधान है। क्रमशः भाद्रपदसे लेकर श्रावणतक प्रत्येक मासके लिये ये नैवेद्य बतलाये गये हैं॥ १६—२६॥

प्रतिपक्षं च मिथुनं तृतीयायां वरानने।
ब्राह्मणं ब्राह्मणीं चैव शिवं गौरीं प्रकल्प्य च॥ २७
भोजयित्वार्चयेद् भक्त्या वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।
पुंसः पीताम्बरे दद्यात् स्त्रियै कौसुम्भवाससी॥ २८
निष्पावाजाजिलवणमिक्षुदण्डगुडान्वितम्।
स्त्रियै दद्यात् फलं पुंसे सुवर्णोत्पलसंयुतम्॥ २९
यथा न देवि देवेशस्त्वां परित्यज्य गच्छति।
तथा मां सम्परित्यज्य पतिर्नान्यत्र गच्छतु॥ ३०
कुमुदा विमलानन्ता भवानी च सुधा शिवा।
ललिता कमला गौरी सती रम्भाथ पार्वती॥ ३१
नभस्यादिषु मासेषु प्रीयतामित्युदीरयेत्।
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्॥ ३२
मिथुनानि चतुर्विंशद् दश द्वौ च समर्चयेत्।
अष्टौ षड् वाप्यथ पुनश्चानुमासं समर्चयेत्॥ ३३
पूर्वं दत्त्वा तु गुरवे शेषानप्यर्चयेद् बुधः।
उक्तानन्ततृतीयैषा सदानन्तफलप्रदा॥ ३४

वरानने! प्रत्येक शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको एक ब्राह्मण-दम्पतिको उनमें शिव-पार्वतीकी कल्पना कर भोजन कराकर उनकी वस्त्र, पुष्पमाला और चन्दनसे भक्तिपूर्वक अर्चना करे तथा पुरुषको दो पीताम्बर और स्त्रीको दो पीली साड़ियाँ प्रदान करे। फिर ब्राह्मणी-स्त्रीको निष्पाव (बड़ी मटर या सेम), जीरा, नमक, ईख, गुड़, फल और फूल आदि सौभाग्याष्टक देकर और पुरुषको सुवर्णनिर्मित कमल देकर यों प्रार्थना करे—'देवि! जिस प्रकार देवाधिदेव भगवान् महादेव आपको छोड़कर नहीं जाते, उसी प्रकार मेरे भी पतिदेव मुझे छोड़कर अन्यत्र न जायँ।' पुनः कुमुदा, विमला, अनन्ता, भवानी, सुधा, शिवा, ललिता, कमला, गौरी, सती, रम्भा और पार्वतीदेवीके इन नामोंका उच्चारण करके प्रार्थना करे कि आप क्रमशः भाद्रपद आदि मासोंमें प्रसन्न हों। व्रतकी समाप्तिमें सुवर्ण-निर्मित कमलसहित शय्या दान करे और चौबीस अथवा बारह द्विज-दम्पतियोंकी पूजा करे। पुनः प्रतिमास आठ या छः दम्पतियोंका पूजन करते रहनेका विधान है। विद्वान् व्रती सर्वप्रथम गुरुको दान देकर तत्पश्चात् दूसरे ब्राह्मणोंकी अर्चना करे। देवि! इस प्रकार मैंने इस अनन्त-तृतीयाका वर्णन कर दिया, जो सदा अनन्त फलकी प्रदायिका है॥ २७—३४॥

सर्वपापहरां देवि सौभाग्यारोग्यवर्धिनीम्।
न चैनां वित्तशाठ्येन कदाचिदपि लङ्घयेत्।
नरो वा यदि वा नारी वित्तशाठ्यात् पतत्यधः॥ ३५

देवि! यह अनन्ततृतीया समस्त पापोंकी विनाशिका तथा सौभाग्य और नीरोगताकी वृद्धि करनेवाली है, इसका कृपणता-वश कभी भी उल्लङ्घन नहीं करना चाहिये; क्योंकि चाहे पुरुष हो या स्त्री—कोई भी कृपणताके वशीभूत होकर यदि इसका उल्लङ्घन करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है।

गर्भिणी सूतिका नक्तं कुमारी वाथ रोगिणी।
यद्यशुद्धा तदान्येन कारयेत् प्रयता स्वयम्॥ ३६

इमामनन्तफलदां यस्तृतीयां समाचरेत्।
कल्पकोटिशतं साग्रं शिवलोके महीयते॥ ३७

वित्तहीनोऽपि कुरुते वर्षत्रयमुपोषणैः।
पुष्पमन्त्रविधानेन सोऽपि तत्फलमाप्नुयात्॥ ३८

नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवाथवा।
सापि तत्फलमाप्नोति गौर्यनुग्रहलालिता॥ ३९

इति पठति शृणोति वा
य इत्थं गिरितनयाव्रतमिन्द्रलोकसंस्थः।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवै-
रमरवधूजनकिंनरैश्च पूज्यः॥ ४०

गर्भिणी एवं सूतिका (सौरीमें पड़ी हुई) स्त्री नक्तव्रत (रातमें भोजन) करे। कुमारी और रोगिणी अथवा अशुद्ध स्त्री स्वयं नियमपूर्वक रहकर दूसरेके द्वारा व्रतका अनुष्ठान कराये। जो मानव अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस तृतीयाके व्रतका अनुष्ठान करता है, वह सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। निर्धन पुरुष भी यदि तीन वर्षोंतक उपवास करके पुष्प और मन्त्र आदिके द्वारा इस व्रतका अनुष्ठान करता है तो उसे भी उस फलकी प्राप्ति होती है। सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा—जो कोई भी इस व्रतका पालन करती है, वह भी गौरीकी कृपासे लालित होकर उस फलको प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार जो मनुष्य गिरीश-नन्दिनी पार्वतीके इस व्रतको पढ़ता अथवा सुनता है, वह इन्द्रलोकमें वास करता है तथा जो इसका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी देवताओं, देवाङ्गनाओं और किन्नरोंद्वारा पूजनीय हो जाता है॥ ३५—४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनन्ततृतीयाव्रतं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः॥ ६२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनन्ततृतीया-व्रत नामक बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६२॥

तिरसठवाँ अध्याय

रसकल्याणिनी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम्।
रसकल्याणिनीमेनां पुराकल्पविदो विदुः॥ १

माघमासे तु सम्प्राप्ते तृतीयां शुक्लपक्षतः।
प्रातर्गव्येन पयसा तिलैः स्नानं समाचरेत्॥ २

स्नापयेन्मधुना देवीं तथैवेक्षुरसेन च।
दक्षिणाङ्गानि सम्पूज्य ततो वामानि पूजयेत्॥ ३

गन्धोदकेन च पुनः पूजनं कुङ्कुमेन वै।
ललितायै नमो देव्याः पादौ गुल्फौ ततोऽर्चयेत्।
जङ्घां जानुं तथा शान्त्यै तथैवोरुं श्रियै नमः॥ ४

ईश्वरने कहा—नारद! अब मैं एक अन्य तृतीयाका भी वर्णन कर रहा हूँ जो पापोंका विनाश करनेवाली है, तथा जिसे पुराकल्पके ज्ञातालोग 'रस-कल्याणिनी' के नामसे जानते हैं। माघका महीना आनेपर शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको प्रातःकाल व्रतीको गो-दुग्ध और तिलमिश्रित जलसे स्नान करना चाहिये। (इस प्रकार स्वयं शुद्ध होकर) फिर देवीकी मूर्तिको मधु और गन्नेके रससे स्नान करावे। तत्पश्चात् सुगन्धित जलसे शुद्ध स्नान कराकर कुङ्कुमका अनुलेप करे। पूजनमें दक्षिणाङ्गकी पूजा कर लेनेके पश्चात् वामाङ्गकी पूजा करनेका विधान है। **'ललितायै नमः'** से देवीके दोनों चरणों तथा दोनों गुल्फोंकी अर्चना करे। **'शान्त्यै नमः'** से जंघाओं और जानुओंका, **'श्रियै नमः'** से ऊरुओंका,

मदालसायै तु कटिममलायै तथोदरम्।
स्तनौ मदनवासिन्यै कुमुदायै च कन्धराम्॥ ५

भुजं भुजाग्रं माधव्यै कमलायै मुखस्मिते।
भ्रूललाटे च रुद्राण्यै शंकरायै तथालकान्॥ ६

मुकुटं विश्ववासिन्यै शिरः कान्त्यै तथार्चयेत्।
मदनायै ललाटं तु मोहनायै पुनर्भ्रुवौ॥ ७

नेत्रे चन्द्रार्धधारिण्यै तुष्ट्यै च वदनं पुनः।
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठममृतायै नमः स्तनौ॥ ८

रम्भायै वामकुक्षिं च विशोकायै नमः कटिम्।
हृदयं मन्मथाधिष्ण्यै पाटलायै तथोदरम्॥ ९

कटिं सुरतवासिन्यै तथोरुं चम्पकप्रिये।
जानुजङ्घे नमो गौर्यै गायत्र्यै घुटिके नमः॥ १०

धराधरायै पादौ तु विश्वकायै नमः शिरः।
नमो भवान्यै कामिन्यै कामदेव्यै जगत्प्रिये॥ ११

'**मदालसायै नमः**' से कटिभागका, '**अमलायै नमः**' से उदरका, '**मदनवासिन्यै नमः**' से दोनों स्तनोंका, '**कुमुदायै नमः**' से कंधोंका, '**माधव्यै नमः**' से भुजाओं और भुजाओंके अग्रभागका, '**कमलायै नमः**' से मुख और मुसकानका, '**रुद्राण्यै नमः**' से भौंहों और ललाटका, '**शङ्करायै नमः**' से बालोंका, '**विश्ववासिन्यै नमः**' से मुकुटका और '**कान्त्यै नमः**' से सिरका पूजन करे। पुनः (पूजनका अन्य क्रम बतलाते हैं—) '**मदनायै नमः**' से ललाटकी, '**मोहनायै नमः**' से दोनों भौंहोंकी, '**चन्द्रार्धधारिण्यै नमः**' से दोनों नेत्रोंकी, '**तुष्ट्यै नमः**' से मुखकी, '**उत्कण्ठिन्यै नमः**' से कण्ठकी, '**अमृतायै नमः**' से दोनों स्तनोंकी, '**रम्भायै नमः**' से बायीं कुक्षिकी, '**विशोकायै नमः**' से कटिभागकी, '**मन्मथाधिष्ण्यै नमः**' से हृदयकी, '**पाटलायै नमः**' से उदरकी, '**सुरतवासिन्यै नमः**' से कटिप्रदेशकी, '**चम्पकप्रियायै नमः**' से ऊरुओंकी, '**गौर्यै नमः**' से जंघाओं और जानुओंकी, '**गायत्र्यै नमः**' से घुटनोंकी, '**धराधरायै नमः**' से दोनों चरणोंकी और '**विश्वकायै नमः**' से सिरकी पूजा करके '**भवान्यै नमः**', '**कामिन्यै नमः**', '**कामदेव्यै नमः**', '**जगत्प्रियायै नमः**' कहकर चरणोंमें प्रणिपात (प्रणाम) करना चाहिये॥ १—११॥

एवं सम्पूज्य विधिवद् द्विजदाम्पत्यमर्चयेत्।
भोजयित्वान्नपानेन मधुरेण विमत्सरः॥ १२

जलपूरितं तथा कुम्भं शुक्लाम्बरयुगद्वयम्।
दत्त्वा सुवर्णकमलं गन्धमाल्यैः समर्चयेत्॥ १३

प्रीयतामत्र कुमुदा गृह्णीयाल्लवणव्रतम्।
अनेन विधिना देवीं मासि मासि सदार्चयेत्॥ १४

इस प्रकार विधि-विधानके साथ देवीकी पूजा करके एक द्विज-दम्पतिका भी पूजन करना चाहिये। उस समय व्रती अहंकाररहित हो अर्थात् विनम्रतापूर्वक उन्हें मधुर अन्न और जलका भोजन कराकर दो श्वेत वस्त्रोंसे परिवेष्टित एवं स्वर्णनिर्मित कमलसहित जलसे भरा हुआ घड़ा प्रदान करे फिर चन्दन और पुष्पमाला आदिसे उनकी अर्चना करे, तथा इस प्रकार कहे—'इस व्रतसे कुमुदा देवी प्रसन्न हों।' ऐसा कहकर उस दिन लवण-व्रत ग्रहण करे अर्थात् नमक खाना छोड़ दे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सदा देवीकी अर्चना करनी चाहिये।

लवणं वर्जयेन्माघे फाल्गुने च गुडं पुनः।
तैलं राजिं तथा चैत्रे वर्ज्यं च मधु माधवे॥ १५

पानकं ज्येष्ठमासे तु आषाढे चाथ जीरकम्।
श्रावणे वर्जयेत् क्षीरं दधि भाद्रपदे तथा॥ १६

घृतमाश्वयुजे तद्वदूर्जे वर्ज्यं च माक्षिकम्।
धान्यकं मार्गशीर्षे तु पौषे वर्ज्या च शर्करा॥ १७

व्रतीको माघमें नमक और फाल्गुनमें गुड़ नहीं खाना चाहिये। चैत्रमें तेल और पीली सरसों (या राई) तथा वैशाखमें मधु वर्जित है। ज्येष्ठमासमें पानक (एक प्रकारका पेय पदार्थ या ताम्बूल), आषाढ़में जीरा, श्रावणमें दूध और भाद्रपदमें दही निषिद्ध है। इसी प्रकार आश्विनमें घी और कार्तिकमें मधुका निषेध किया गया है। मार्गशीर्षमें धनिया और पौषमें शक्कर वर्जित है।

व्रतान्ते करकं पूर्णमेतेषां मासि मासि च।
दद्याद् द्विकालवेलायां पूर्णपात्रेण संयुतम्॥ १८
लड्डुकाञ् श्वेतवर्णांश्च संयावमथ पूरिकाः।
घारिकानप्यपूपांश्च पिष्टापूपांश्च मण्डकान्॥ १९
क्षीरं शाकं च दध्यन्नमिण्डर्योऽशोकवर्तिकाः।
माघादिक्रमशो दद्यादेतानि करकोपरि॥ २०
कुमुदा माधवी गौरी रम्भा भद्रा जया शिवा।
उमा रतिः सती तद्वन्मङ्गला रतिलालसा॥ २१
क्रमान्माघादि सर्वत्र प्रीयतामिति कीर्तयेत्।
सर्वत्र पञ्चगव्येन प्राशनं समुदाहृतम्।
उपवासी भवेन्नित्यमशक्ते नक्तमिष्यते॥ २२
पुनर्माघे तु सम्प्राप्ते शर्करां करकोपरि।
कृत्वा तु काञ्चनीं गौरीं पञ्चरत्नसमन्विताम्॥ २३
हैमीमङ्गुष्ठमात्रां च साक्षसूत्रकमण्डलुम्।
चतुर्भुजामिन्दुयुतां सितनेत्रपटावृताम्॥ २४
तद्वद् गोमिथुनं शुक्लं सुवर्णास्यं सिताम्बरम्।
सवस्त्रभाजनं दद्याद् भवानी प्रीयतामिति॥ २५
अनेन विधिना यस्तु रसकल्याणिनीव्रतम्।
कुर्यात् स सर्वपापेभ्यस्तत्क्षणादेव मुच्यते॥ २६
नवार्बुदसहस्रं तु न दुःखी जायते नरः।
सुवर्णकमलं गौरि मासि मासि ददन्नरः।
अग्निष्टोमसहस्रस्य यत्फलं तदवाप्नुयात्॥ २७
नारी वा कुरुते या तु कुमारी वा वरानने।
विधवा या तथा नारी सापि तत्फलमाप्नुयात्।
सौभाग्यारोग्यसम्पन्ना गौरीलोके महीयते॥ २८

इस प्रकार इन महीनोंके क्रमसे प्रत्येक मासमें व्रतकी समाप्तिके समय सायंकालकी वेलामें उपर्युक्त पदार्थोंसे भरा हुआ एक करवा पूर्णपात्रसहित ब्राह्मणको दान करे। इसी तरह श्वेत रंगके लड्डू, गोझिया, पूरी, घेवर, पूआ, आटेका बना हुआ पूआ, मण्डक (एक प्रकारका पिष्टक), दूध, शाक, दही-मिश्रित अन्न, इण्डरी (एक प्रकारकी रोटी) और अशोकवर्तिका (सेंवई)—इन पदार्थोंको माघ आदि मासक्रमसे करवाके ऊपर रखकर दान करनेका विधान है। फिर कुमुदा, माधवी, गौरी, रम्भा, भद्रा, जया, शिवा, उमा, रति, सती, मङ्गला, रतिलालसा प्रसन्न हों—ऐसा कहकर माघ आदि सभी मासोंमें क्रमशः कीर्तन करना चाहिये॥ १२—२१ $\frac{१}{२}$॥

सभी मासोंके व्रतमें पञ्चगव्यका प्राशन (भक्षण) बतलाया गया है। इन सभी व्रतोंमें उपवास करनेका विधान है। यदि उपवास करनेमें असमर्थ हो तो रात्रिमें एक बार तारिकाओंके निकल आनेपर भोजन किया जा सकता है। वर्षान्तमें पुनः माघमास आनेपर गौरीकी एक सोनेकी मूर्ति बनवाये जो अँगूठेके बराबर लम्बी हो। वह चार भुजाओं और ललाटमें चन्द्रमासे युक्त हो। उसे पञ्चरत्नोंसे विभूषित और दो श्वेत वस्त्रोंसे आच्छादित कर दे। फिर करवामें शक्कर भरकर उसीके ऊपर उस मूर्तिको स्थापित करके रुद्राक्षकी माला और कमण्डलुसहित ब्राह्मणको दान कर दे। उसी प्रकार गौके जोड़ेको, जिनका रंग श्वेत और मुख सुवर्णसे मढ़ा हुआ हो, जो श्वेत वस्त्रसे आच्छादित हों, अन्य वस्त्र और पात्रके सहित दान करके 'भवानी प्रसन्न हों' यों कहकर प्रार्थना करनी चाहिये। जो मनुष्य इस विधिके अनुसार रसकल्याणिनीव्रतका अनुष्ठान करता है, वह उसी क्षण समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और नौ अरब एक हजार वर्षोंतक कष्टमें नहीं पड़ता। गौरि! इसी प्रकार जो मनुष्य प्रत्येक मासमें स्वर्णनिर्मित कमलका दान करता है वह हजारों अग्निष्टोम-यज्ञोंका जो फल होता है, उसे प्राप्त कर लेता है। वरानने! सधवा स्त्री, कुमारी अथवा विधवा स्त्री—कोई भी यदि इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी उस फलको प्राप्त होती है, साथ ही सौभाग्य और आरोग्यसे सम्पन्न होकर गौरी-लोकमें पूजित होती है।

इति पठति शृणोति श्रावयेद् यः प्रसङ्गात्
कलिकलुषविमुक्तः पार्वतीलोकमेति।
मतिमपि च नराणां यो ददाति प्रियार्थं
विबुधपतिविमाने नायकः स्यादमोघः॥ २९

इस प्रकार जो मनुष्य प्रसङ्गवश इस व्रतको पढ़ता, सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, वह कलियुगके पापोंसे मुक्त होकर पार्वती-लोकमें जाता है तथा जो मनुष्योंकी हित-कामनासे इस व्रतका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह इन्द्रके विमानमें स्थित होकर अक्षयकालतक नायक— नेताका पद प्राप्त करता है॥ २२—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रसकल्याणिनीव्रतं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः॥ ६३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रस-कल्याणिनी-व्रत नामक तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६३॥

चौंसठवाँ अध्याय

आर्द्रानन्दकरी तृतीया-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

तथैवान्यां प्रवक्ष्यामि तृतीयां पापनाशिनीम्।
नाम्ना च लोके विख्यातामार्द्रानन्दकरीमिमाम्॥ १
यदा शुक्लतृतीयायामाषाढर्क्षं भवेत् क्वचित्।
ब्रह्मर्क्षं या मृगर्क्षं वा हस्तो मूलमथापि वा।
दर्भगन्धोदकैः स्नानं तदा सम्यक् समाचरेत्॥ २
शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः।
भवानीमर्चयेद् भक्त्या शुक्लपुष्पैः सुगन्धिभिः।
महादेवेन सहितामुपविष्टां महासने॥ ३
वासुदेव्यै नमः पादौ शंकराय नमो हरम्।
जङ्घे शोकविनाशिन्यै आनन्दाय नमः प्रभो॥ ४
रम्भायै पूजयेदूरू शिवाय च पिनाकिनः।
अदित्यै च कटिं देव्याः शूलिनः शूलपाणये॥ ५
माधव्यै च तथा नाभिमथ शम्भोर्भवाय च।
स्तनावानन्दकारिण्यै शङ्करस्येन्दुधारिणे॥ ६
उत्कण्ठिन्यै नमः कण्ठं नीलकण्ठाय वै हरम्।
करावुत्पलधारिण्यै रुद्राय च जगत्पतेः।
बाहू च परिरम्भिण्यै त्रिशूलाय हरस्य च॥ ७
देव्या मुखं विलासिन्यै वृषेशाय पुनर्विभोः।
स्मितं सस्मेरलीलायै विश्ववक्त्राय वै विभोः॥ ८

ईश्वरने कहा—नारद! उसी प्रकार अब मैं एक-दूसरी पापनाशिनी तृतीयाका वर्णन कर रहा हूँ जो लोकमें आर्द्रानन्दकरी नामसे विख्यात है। इसकी विधि यह है—जब कभी शुक्लपक्षकी तृतीयाको पूर्वाषाढ़ अथवा उत्तराषाढ़, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त अथवा मूल नक्षत्र पड़े तो उस समय कुश और चन्दनमिश्रित जलसे भलीभाँति स्नान करना चाहिये। फिर श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेप कर ले। तत्पश्चात् महादेवसहित दिव्य आसनपर विराजमान भवानीकी (स्वर्णमयी मूर्तिकी) श्वेत पुष्पों और सुगन्धित पदार्थोंद्वारा भक्तिपूर्वक अर्चना करे। (पूजनकी विधि इस प्रकार है—) '**वासुदेव्यै नमः, शंकराय नमः**' से गौरी-शंकरके दोनों चरणोंका, '**शोकविनाशिन्यै नमः, आनन्दाय नमः**' से दोनों जंघाओंका, '**रम्भायै नमः**', '**शिवाय नमः**' से दोनों ऊरुओंका, '**अदित्यै नमः, शूलपाणये नमः**' से कटिप्रदेशका, '**माधव्यै नमः, भवाय नमः**' से नाभिका, '**आनन्दकारिण्यै नमः, इन्दुधारिणे नमः**' से दोनों स्तनोंका, '**उत्कण्ठिन्यै नमः, नीलकण्ठाय नमः**' से कण्ठका, '**उत्पलधारिण्यै नमः, रुद्राय नमः**' से दोनों हाथोंका, '**परिरम्भिण्यै नमः, त्रिशूलाय नमः**' से दोनों भुजाओंका, '**विलासिन्यै नमः, वृषेशाय नमः**' से मुखका, '**सस्मेरलीलायै नमः, विश्ववक्त्राय नमः**' से मुसकानका,

नेत्रे मदनवासिन्यै विश्वधाम्ने त्रिशूलिनः।
भ्रुवौ नृत्यप्रियायै तु ताण्डवेशाय शूलिनः॥ ९
देव्या ललाटमिन्द्राण्यै हव्यवाहाय वै विभोः।
स्वाहायै मुकुटं देव्या विभोर्गङ्गाधराय वै॥ १०
विश्वकायौ विश्वमुखौ विश्वपादकरौ शिवौ।
प्रसन्नवदनौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥ ११

'मदनवासिन्यै नमः, विश्वधाम्ने नमः' से दोनों नेत्रोंका, 'नृत्यप्रियायै नमः, ताण्डवेशाय नमः' से दोनों भौंहोंका, 'इन्द्राण्यै नमः, हव्यवाहाय नमः' से ललाटका तथा 'स्वाहायै नमः, गङ्गाधराय नमः' से मुकुटका पूजन करे। तत्पश्चात् विश्व जिनका शरीर है, जो विश्वके मुख, पाद और हस्तस्वरूप तथा मङ्गलकारक हैं, जिनके मुखपर प्रसन्नता झलकती रहती है, उन पार्वती और परमेश्वरकी मैं वन्दना करता हूँ। (ऐसा कहकर उनके चरणोंमें लुढ़क पड़े।)॥ १—११॥

एवं सम्पूज्य विधिवदग्रतः शिवयोः नमः।
पद्मोत्पलानि रजसा नानावर्णेन कारयेत्॥ १२
शङ्खचक्रे सकटके स्वस्तिकाङ्कुशचामरान्।
यावन्तः पांसवस्तत्र रजसः पतिता भुवि।
तावद् वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥ १३
चत्वारि घृतपात्राणि सहिरण्यानि शक्तितः।
दत्त्वा द्विजाय करकमुदकान्नसमन्वितम्।
प्रतिपक्षं चतुर्मासं यावदेतन्निवेदयेत्॥ १४
ततस्तु चतुरो मासान् पूर्ववत् करकोपरि।
चत्वारि सक्तुपात्राणि तिलपात्राण्यतः परम्॥ १५
गन्धोदकं पुष्पवारि चन्दनं कुङ्कुमोदकम्।
अपक्वं दधि दुग्धं च गोशृङ्गोदकमेव च॥ १६
पिष्टोदकं तथा वारि कुष्ठचूर्णान्वितं पुनः।
उशीरसलिलं तद्वद् यवचूर्णोदकं पुनः॥ १७
तिलोदकं च सम्प्राश्य स्वपेन्मार्गशिरादिषु।
मासेषु पक्षद्वितयं प्राशनं समुदाहृतम्॥ १८
सर्वत्र शुक्लपुष्पाणि प्रशस्तानि सदार्चने।
दानकाले च सर्वत्र मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥ १९
गौरी मे प्रीयतां नित्यमघनाशाय मङ्गला।
सौभाग्यायास्तु ललिता भवानी सर्वसिद्धये॥ २०
संवत्सरान्ते लवणं गुडकुम्भं च सर्जिकाम्।
चन्दनं नेत्रपट्टं च सहिरण्याम्बुजेन तु॥ २१
उमामहेश्वरं हैमं तद्वदिक्षुफलैर्युतम्।
सतूलावरणां शय्यां सविश्रामां निवेदयेत्।
सपत्नीकाय विप्राय गौरी मे प्रीयतामिति॥ २२

इस प्रकार विधिके अनुसार पूजन कर पुनः शिव-पार्वतीकी मूर्तिके अग्रभागमें विभिन्न प्रकारके रङ्गोंवाले रजसे कमलका आकार बनवाये। साथ ही कटकसहित शङ्ख, चक्र, स्वस्तिक, अङ्कुश और चँवरको भी चित्रित करे। ऐसा करते समय वहाँ भूतलपर जितने रजःकण गिरते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक व्रती शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसहित घीसे भरे हुए चार पात्र और अन्न एवं जलसे युक्त करवा ब्राह्मणको दान करे। ऐसा चार मासतक प्रत्येक शुक्लपक्षकी तृतीयाको करना चाहिये। इसके बाद चार मासतक पहलेकी तरह करवापर सत्तूसे पूर्ण चार पात्र रखकर तथा उसके बाद चार मासतक करवापर तिलपूर्ण चार पात्र रखकर दान करे। व्रतीको मार्गशीर्ष आदि मासोंमें क्रमशः गन्धोदक (सुगन्धमिश्रित जल), पुष्पवारि (फूलयुक्त जल), चन्दनमिश्रित जल, कुङ्कुमयुक्त जल, बिना पका हुआ दही, दूध, गोशृङ्गोदक (गौके सींगसे स्पर्श कराया हुआ जल), पिष्टोदक (पीठीयुक्त जल), कुष्ठ (गन्धक)-के चूर्णसे युक्त जल, उशीर (खस)-मिश्रित जल, यवके चूर्णसे युक्त जल तथा तिलमिश्रित जलका भक्षण करके रात्रिमें शयन करना चाहिये। यह प्राशन (भक्षण) प्रत्येक मासमें दोनों पक्षोंमें करनेका विधान है। सभी महीनोंके पूजनमें श्वेत पुष्प सदा प्रशस्त माने गये हैं। सभी मासोंमें दानके समय इस प्रकारका मन्त्र उच्चारण करना चाहिये—'गौरी नित्य मुझपर प्रसन्न रहें, मङ्गला मेरे पापोंका विनाश करें, ललिता मुझे सौभाग्य प्रदान करें और भवानी मेरे लिये सम्पूर्ण सिद्धियोंकी प्रदात्री हों।' इस प्रकार वर्षके अन्तमें स्वर्णनिर्मित कमलसहित नमक, गुड़से भरा हुआ घट, सज्जी, चन्दन, आँखोंको ढँकनेके लिये वस्त्र, गन्ना और नाना प्रकारके फलोंके साथ स्वर्णनिर्मित उमा और महेश्वरकी मूर्ति सपत्नीक ब्राह्मणको दान कर दे। उस समय रूईसे भरा हुआ गद्दा, चादर और तकियासे युक्त सुन्दर शय्या भी दान करनेका विधान है। (दान करनेके पश्चात् उनसे यों प्रार्थना करे—) 'गौरीदेवी मुझपर प्रसन्न हों'॥ १२—२२॥

आर्द्रानन्दकरी नाम्ना तृतीयैषा सनातनी।
यामुपोष्य नरो याति शम्भोर्यत् परमं पदम्॥ २३
इह लोके सदानन्दमाप्नोति धनसम्पदः।
आयुरारोग्यसम्पत्त्या न कश्चिच्छोकमाप्नुयात्॥ २४
नारी वा कुरुते या तु कुमारी विधवा च या।
सापि तत्फलमाप्नोति देव्यनुग्रहलालिता॥ २५
प्रतिपक्षमुपोष्यैवं मन्त्रार्चनविधानवित्।
रुद्राणीलोकमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ २६
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।
शक्रलोके स गन्धर्वैः पूज्यतेऽपि युगत्रयम्॥ २७
आनन्ददां सकलदुःखहरां तृतीयां
या स्त्री करोत्यविधवा विधवाथवापि।
सा स्वे गृहे सुखशतान्यनुभूय भूयो
गौरीपदं सदयिता दयिता प्रयाति॥ २८

यह आर्द्रानन्दकरी नामकी सनातनी तृतीया है, जिसका व्रतोपवास करके मनुष्य उस स्थानको प्राप्त होता है जो शिवजीका परमपद कहलाता है। वह इस लोकमें धन-सम्पत्ति, दीर्घायु और नीरोगतारूप सम्पत्तिसे युक्त होकर सुखका उपभोग करता है। उसे कोई शोक नहीं प्राप्त होता। यदि सधवा नारी, कुमारी अथवा विधवा इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी देवीकी कृपासे लालित होकर उसी फलको प्राप्त होती है। इसी प्रकार मन्त्र और अर्चा-विधिका ज्ञाता मनुष्य प्रत्येक पक्षमें इस व्रतका अनुष्ठान कर रुद्राणीके उस लोकमें जाता है जहाँसे पुनरागमन नहीं होता। जो मानव नित्य इस व्रतको सुनता अथवा सुनाता है वह तीन युगोंतक इन्द्रलोकमें गन्धर्वोंद्वारा पूजित होता है। जो स्त्री, चाहे वह सधवा हो अथवा विधवा, इस सम्पूर्ण दुःखोंको हरण करनेवाली एवं आनन्ददायिनी तृतीयाका अनुष्ठान करती है वह नारी पतिसहित अपने घरमें सैकड़ों प्रकारके सुखोंका अनुभव करके पुनः गौरी-लोकमें चली जाती है॥ २३—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आर्द्रानन्दकरीतृतीयाव्रतं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः॥ ६४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आर्द्रानन्दकरी तृतीया-व्रत नामक चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६४॥

पैंसठवाँ अध्याय

अक्षयतृतीया-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि तृतीयां सर्वकामदाम्।
यस्यां दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाक्षयम्॥ १
वैशाखशुक्लपक्षे तु तृतीया यैरुपोषिता।
अक्षयं फलमाप्नोति सर्वस्य सुकृतस्य च॥ २
सा तथा कृत्तिकोपेता विशेषेण सुपूजिता।
तत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वमक्षयमुच्यते॥ ३
अक्षया संततिस्तस्य तस्यां सुकृतमक्षयम्।
अक्षतैः पूज्यते विष्णुस्तेन साक्षया स्मृता।
अक्षतैस्तु नराः स्नाता विष्णोर्दत्त्वा तथाक्षताम्॥ ४

भगवान् शंकरने कहा—नारद! अब मैं सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाली एक अन्य तृतीयाका वर्णन कर रहा हूँ, जिसमें दान देना, हवन करना और जप करना सभी अक्षय हो जाता है। जो लोग वैशाखमासके शुक्लपक्षकी तृतीयाके दिन व्रतोपवास करते हैं, वे अपने समस्त सत्कर्मोंका अक्षय फल प्राप्त करते हैं। वह तृतीया यदि कृत्तिका नक्षत्रसे युक्त हो तो विशेषरूपसे पूज्य मानी गयी है। उस दिन दिया गया दान, किया हुआ हवन और जप सभी अक्षय बतलाये गये हैं। इस व्रतका अनुष्ठान करनेवालेकी संतान अक्षय हो जाती है और उस दिनका किया हुआ पुण्य अक्षय हो जाता है। इस दिन अक्षतके द्वारा भगवान् विष्णुकी पूजा की जाती है, इसीलिये इसे अक्षय-तृतीया

विप्रेषु दत्त्वा तानेव तथा सक्तून् सुसंस्कृतान्।
यथान्नभुङ् महाभाग फलमक्षय्यमश्नुते॥ ५

एकामप्युक्तवत् कृत्वा तृतीयां विधिवन्नरः।
एतासामपि सर्वासां तृतीयानां फलं भवेत्॥ ६

तृतीयायां समभ्यर्च्य सोपवासो जनार्दनम्।
राजसूयफलं प्राप्य गतिमग्र्यां च विन्दति॥ ७

कहते हैं।* मनुष्यको चाहिये कि इस दिन स्वयं अक्षतयुक्त जलसे स्नान करके भगवान् विष्णुकी मूर्तिपर अक्षत चढ़ावे और अक्षतके साथ ही शुद्ध सत्तू ब्राह्मणोंको दान दे; तत्पश्चात् स्वयं भी उसी अन्नका भोजन करे। महाभाग! ऐसा करनेसे वह अक्षय फलका भागी हो जाता है। उपर्युक्त विधिके अनुसार एक भी तृतीयाका व्रत करनेवाला मनुष्य इन सभी तृतीया-व्रतोंके फलको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस तृतीया तिथिको उपवास करके भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति पूजा करता है, वह राजसूय-यज्ञका फल पाकर अन्तमें श्रेष्ठ गतिको प्राप्त होता है॥ १—७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽक्षयतृतीयाव्रतं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥ ६५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अक्षयतृतीया-व्रत नामक पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६५॥

छाछठवाँ अध्याय

सारस्वत-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

मधुरा भारती केन व्रतेन मधुसूदन।
तथैव जनसौभाग्यं मतिं विद्यासु कौशलम्॥ १
अभेदश्चापि दम्पत्योस्तथा बन्धुजनेन च।
आयुश्च विपुलं पुंसां तन्मे कथय माधव॥ २

मनुने पूछा—मधुसूदन! किस व्रतका अनुष्ठान करनेसे मनुष्योंको मधुर वाणी, जनतामें उत्कृष्ट सौभाग्य, उत्तम बुद्धि, विद्याओंमें निपुणता, पति-पत्नीमें अभेद, बन्धुजनोंके साथ प्रेम और दीर्घायुकी प्राप्ति हो सकती है? माधव! वह व्रत मुझे बतलाइये॥ १-२॥

मत्स्य उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया राजञ् शृणु सारस्वतं व्रतम्।
यस्य संकीर्तनादेव तुष्यतीह सरस्वती॥ ३
यो मद्भक्तः पुमान् कुर्यादेतद् व्रतमनुत्तमम्।
तद्वासरादौ सम्पूज्य विप्रानेतान् समाचरेत्॥ ४
अथवाऽऽदित्यवारेण ग्रहताराबलेन च।
पायसं भोजयेद् विप्रान् कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥ ५
शुक्लवस्त्राणि दत्त्वा च सहिरण्यानि शक्तितः।
गायत्रीं पूजयेद् भक्त्या शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ ६

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! तुमने तो बड़ा उत्तम प्रश्न किया है। अच्छा सुनो! अब मैं उस सारस्वत-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसकी चर्चामात्र करनेसे इस लोकमें सरस्वतीदेवी प्रसन्न हो जाती हैं। जो पुरुष मेरा भक्त हो, उसे पञ्चमीके दिन इस श्रेष्ठ व्रतका अनुष्ठान प्रारम्भ करना चाहिये। आरम्भ-कालमें ब्राह्मणोंके पूजनका विधान है। अथवा रविवारको जब ग्रह और तारा आदि अनुकूल हों, ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर उन ब्राह्मणोंको खीरका भोजन करावे और अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसहित श्वेत वस्त्र दान करे। फिर श्वेत पुष्पमाला और चन्दन आदि उपकरणोंद्वारा भक्तिपूर्वक

* ध्यान रहे, सामान्यतया अक्षतके द्वारा विष्णुका पूजन निषिद्ध है—'नाक्षतैरर्चयेद् विष्णुम्' (पद्म० ६। ९६। २०)। पर केवल इस दिन अक्षतसे उनकी पूजाका विधान है। अन्यत्र अक्षतके स्थानपर सफेद तिलका विधान है। इस व्रतकी विस्तृत विधि भविष्यपुराण एवं 'व्रत-कल्पद्रुम'में है। इसी तिथिको सत्ययुगका प्रारम्भ तथा परशुरामजीका जन्म भी हुआ था।

यथा न देवि भगवान् ब्रह्मलोके पितामहः।
त्वां परित्यज्य संतिष्ठेत् तथा भव वरप्रदा॥ ७

वेदाः शास्त्राणि सर्वाणि गीतनृत्यादिकं च यत्।
न विहीनं त्वया देवि तथा मे सन्तु सिद्धयः॥ ८

लक्ष्मीर्मेधा धरा पुष्टिर्गौरी तुष्टिः प्रभा मतिः।
एताभिः पाहि अष्टाभिस्तनुभिर्मां सरस्वति॥ ९

एवं सम्पूज्य गायत्रीं वीणाक्षमालधारिणीम्।
शुक्लपुष्पाक्षतैर्भक्त्या सकमण्डलुपुस्तकाम्।
मौनव्रतेन भुञ्जीत सायं प्रातस्तु धर्मवित्॥ १०

पञ्चम्यां प्रतिपक्षं च पूजयेद् ब्रह्मवासिनीम्।
तथैव तण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम्।
क्षीरं दद्याद्धिरण्यं च गायत्री प्रीयतामिति॥ ११

संध्यायां च तथा मौनमेतत् कुर्वन् समाचरेत्।
नान्तरा भोजनं कुर्याद् यावन्मासास्त्रयोदश॥ १२

समाप्ते तु व्रते कुर्याद् भोजनं शुक्लतण्डुलैः।
पूर्वं सवस्त्रयुग्मं च दद्याद् विप्राय भोजनम्॥ १३

देव्या वितानं घण्टां च सितनेत्रे पयस्विनीम्।
चन्दनं वस्त्रयुग्मं च दद्याच्च शिखरं पुनः॥ १४

तथोपदेष्टारमपि भक्त्या सम्पूजयेद् गुरुम्।
वित्तशाठ्येन रहितो वस्त्रमाल्यानुलेपनैः॥ १५

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् सारस्वतं व्रतम्।
विद्यावानर्थसंयुक्तो रक्तकण्ठश्च जायते॥ १६

सरस्वत्याः प्रसादेन ब्रह्मलोके महीयते।
नारी वा कुरुते या तु सापि तत्फलगामिनी।
ब्रह्मलोके वसेद् राजन् यावत् कल्पायुतत्रयम्॥ १७

सारस्वतं व्रतं यस्तु शृणुयादपि यः पठेत्।
विद्याधरपुरे सोऽपि वसेत् कल्पायुतत्रयम्॥ १८

गायत्रीदेवीकी पूजा करके यों प्रार्थना करे—'देवि! जैसे ब्रह्मलोकमें भगवान् पितामह आपको छोड़कर कहीं अन्यत्र नहीं रुकते, उसी प्रकारका वर मुझे भी प्रदान करें। देवि! जैसे वेद, सम्पूर्ण शास्त्र तथा गीत-नृत्य आदि जितनी कलाएँ हैं, वे सभी आपके बिना नहीं रह सकतीं, उसी प्रकारकी सिद्धियाँ मुझे भी प्राप्त हों। सरस्वति! आप अपनी लक्ष्मी, मेधा, धरा, पुष्टि, गौरी, तुष्टि, प्रभा और मति—इन आठ मूर्तियोंद्वारा मेरी रक्षा करें।' इस प्रकार धर्मज्ञ पुरुष वीणा, रुद्राक्ष-माला, कमण्डलु और पुस्तक धारण करनेवाली गायत्रीकी श्वेत पुष्प, अक्षत आदिसे भक्तिपूर्वक पूजा कर प्रातः एवं सायंकाल मौन धारण करके भोजन करे तथा प्रत्येक पक्षकी पञ्चमी तिथिको ब्रह्मवासिनी (वेद-विद्याकी अधिष्ठात्री)-का पूजन कर घृतपूर्ण पात्रसहित एक सेर चावल, दूध और सुवर्णका दान करे और कहे—'गायत्रीदेवी मुझपर प्रसन्न हों।' यह कर्म सायंकालमें मौन धारण करके करना चाहिये। तेरह महीनेतक प्रातः और सायंकालके बीच भोजन न करनेका विधान है। व्रत समाप्त हो जानेपर पहले ब्राह्मणको दो वस्त्रोंसहित भोजन-पदार्थका दान करके तत्पश्चात् स्वयं श्वेत चावलोंका भोजन करे। पुनः देवीके निमित्त वितान (चँदोवा या चाँदनी), घण्टा, दो श्वेत (चाँदीके बने हुए) नेत्र, दुधारू गौ, चन्दन, दो वस्त्र और सिरका कोई आभूषण दान करना चाहिये। तदनन्तर उपदेश करनेवाले अर्थात् कर्म करानेवाले गुरुका भी कृपणतारहित होकर वस्त्र, पुष्पमाला, चन्दन आदिसे भलीभाँति पूजन करे॥ ३—१५॥

जो मनुष्य इस (उपर्युक्त) विधिके अनुसार सारस्वतव्रतका अनुष्ठान करता है, वह विद्या-सम्पन्न, धनवान् और मधुरभाषी हो जाता है; साथ ही सरस्वतीकी कृपासे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा राजन्! यदि कोई स्त्री इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी उस फलको प्राप्त करती है और तीस कल्पोंतक ब्रह्मलोकमें निवास करती है। जो मनुष्य इस सारस्वत-व्रतका पाठ अथवा श्रवण करता है वह भी विद्याधर-लोकमें तीस कल्पोंतक निवास करता है॥ १६—१८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सारस्वतव्रतं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः॥ ६६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सारस्वत-व्रत नामक छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६६॥



सड़सठवाँ अध्याय

सूर्य-चन्द्र-ग्रहणके समय स्नानकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

चन्द्रादित्योपरागे तु यत् स्नानमभिधीयते।
तदहं श्रोतुमिच्छामि द्रव्यमन्त्रविधानवित्॥ १

मत्स्य उवाच

यस्य राशिं समासाद्य भवेद् ग्रहणसम्प्लवः।
तस्य स्नानं प्रवक्ष्यामि मन्त्रौषधविधानतः॥ २

चन्द्रोपरागं सम्प्राप्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
सम्पूज्य चतुरो विप्रान् शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ ३

पूर्वमेवोपरागस्य समासाद्यौषधादिकम्।
स्थापयेच्चतुरः कुम्भानव्रणान् सागरानिति॥ ४

गजाश्वरथ्यावल्मीकसंगमाद्ध्रदगोकुलात्।
राजद्वारप्रदेशाच्च मृदमानीय चाक्षिपेत्॥ ५

पञ्चगव्यं च कुम्भेषु शुद्धमुक्ताफलानि च।
रोचनां पद्मशङ्खौ च पञ्चरत्नसमन्वितम्॥ ६

स्फटिकं चन्दनं श्वेतं तीर्थवारि ससर्षपम्।
राजदन्तं सकुमुदं तथैवोशीरगुग्गुलम्।
एतत् सर्वं विनिक्षिप्य कुम्भेष्वावाहयेत सुरान्॥ ७

सर्वे समुद्राः सरितस्तीर्थानि जलदा नदाः।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥ ८

योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः।
सहस्त्रनयनश्चेन्द्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥ ९

मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः।
चन्द्रोपरागसम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु॥ १०

यः कर्मसाक्षी भूतानां धर्मो महिषवाहनः।
यमश्चन्द्रोपरागोत्थां मम पीडां व्यपोहतु॥ ११

मनुने पूछा—द्रव्य और मन्त्रोंकी विधियोंके ज्ञाता (पूर्ण वेदविद्) भगवन्! सूर्य एवं चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर स्नानकी जैसी विधि बतलायी गयी है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—(राजन्!) जिस पुरुषकी राशिपर ग्रहणका प्लावन (लगना) होता है, उसके लिये मन्त्र और औषधके विधानपूर्वक स्नान बतला रहा हूँ। ऐसे मनुष्यको चाहिये कि चन्द्र-ग्रहणके अवसरपर चार ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर श्वेत पुष्प और चन्दन आदिसे उनकी पूजा करे। ग्रहणके पूर्व ही औषध आदिको एकत्र कर ले। फिर छिद्ररहित चार कलशोंको, उनमें समुद्रकी भावना करके स्थापना करे। फिर उनमें सप्तमृत्तिका—हाथीसार, घुड़शाल, वल्मीक (बल्मोट-दियाँड़), नदीके संगम, सरोवर, गोशाला और राजद्वारसे मिट्टी लाकर डाल दे। तत्पश्चात् उन कलशोंमें पञ्चगव्य, शुद्ध मुक्ताफल, गोरोचन, कमल, शङ्ख, पञ्चरत्न, स्फटिक, श्वेत चन्दन, तीर्थ-जल, सरसों, राजदन्त (एक ओषधिविशेष), कुमुद (कोइयाँ), खस, गुग्गुल—यह सब डालकर उन कलशोंपर देवताओंका आवाहन करे। (आवाहनका मन्त्र इस प्रकार है—) 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदियाँ, नद और जलप्रद तीर्थ यहाँ पधारें।' (इसके बाद प्रार्थना करे—) 'जो देवताओंके स्वामी माने गये हैं तथा जिनके एक हजार नेत्र हैं, वे वज्रधारी इन्द्रदेव मेरी ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो समस्त देवताओंके मुखस्वरूप, सात ज्वालाओंसे युक्त और अतुल कान्तिवाले हैं, वे अग्निदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न हुई मेरी पीडाका विनाश करें। जो समस्त प्राणियोंके कर्मोंके साक्षी हैं तथा महिष जिनका वाहन है, वे धर्मस्वरूप यम चन्द्र-ग्रहणसे उद्भूत हुई मेरी पीडाको मिटायें।

रक्षोगणाधिपः साक्षात् प्रलयानलसंनिभः।
खड्गहस्तोऽतिभीमश्च रक्षःपीडां व्यपोहतु॥ १२
नागपाशधरो देवः साक्षान्मकरवाहनः।
स जलाधिपतिश्चन्द्रग्रहपीडां व्यपोहतु॥ १३
प्राणरूपेण यो लोकान् पाति कृष्णमृगप्रियः।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां पीडामत्र व्यपोहतु॥ १४

जो राक्षसगणोंके अधीश्वर, साक्षात् प्रलयाग्निके सदृश भयानक, खड्गधारी और अत्यन्त भयंकर हैं, वे निर्ऋति ग्रहणजन्य पीडाको दूर करें। जो नागपाश धारण करनेवाले हैं तथा मकर जिनका वाहन है वे जलाधीश्वर साक्षात् वरुणदेव मेरी चन्द्र-ग्रहणजनित पीडाको नष्ट करें। जो प्राणरूपसे समस्त प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, (तीव्रगामी) कृष्णमृग जिनका प्रिय वाहन है, वे वायुदेव मेरी चन्द्रग्रहणसे उत्पन्न हुई पीडाका विनाश करें'॥ २—१४॥

योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः।
चन्द्रोपरागकलुषं धनदो मे व्यपोहतु॥ १५
योऽसाविन्दुधरो देवः पिनाकी वृषवाहनः।
चन्द्रोपरागजां पीडां विनाशयतु शंकरः॥ १६
त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्ण्वर्कयुक्तानि तानि पापं दहन्तु वै॥ १७
एवमामन्त्र्य तैः कुम्भैरभिषिक्तो गुणान्वितैः।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च शुक्लमाल्यानुलेपनैः।
पूजयेद् वस्त्रगोदानैर्ब्राह्मणानिष्टदेवताः॥ १८
एतानेव ततो मन्त्रान् विलिखेत् करकान्वितान्।
वस्त्रपट्टेऽथवा पद्मे पञ्चरत्नसमन्वितान्॥ १९
यजमानस्य शिरसि निदध्युस्ते द्विजोत्तमाः।
ततोऽतिवाहयेद् वेलामुपरागानुगामिनीम्॥ २०
प्राङ्मुखः पूजयित्वा तु नमस्यन्निष्टदेवताम्।
चन्द्रग्रहे विनिर्वृत्ते कृतगोदानमङ्गलः।
कृतस्नानाय तं पट्टं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ २१

'जो (नव) निधियोंके* स्वामी तथा खड्ग, त्रिशूल और गदा धारण करनेवाले हैं, वे कुबेरदेव चन्द्र-ग्रहणसे उत्पन्न होनेवाले मेरे पापको नष्ट करें। जिनका ललाट चन्द्रमासे सुशोभित है, वृषभ जिनका वाहन है, जो पिनाक नामक धनुष (या त्रिशूलको) धारण करनेवाले हैं वे देवाधिदेव शंकर मेरी चन्द्र-ग्रहणजन्य पीडाका विनाश करें। ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यसहित त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जङ्गम प्राणी हैं वे सभी मेरे (चन्द्र-ग्रहणजन्य) पापको भस्म कर दें।' इस प्रकार देवताओंको आमन्त्रित कर व्रती ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदके मन्त्रोंकी ध्वनिके साथ-साथ उन उपकरणयुक्त कलशोंके जलसे स्वयं अभिषेक करे। फिर श्वेत पुष्पोंकी माला, चन्दन, वस्त्र और गोदानद्वारा उन ब्राह्मणोंकी तथा इष्ट देवताओंकी पूजा करे। तत्पश्चात् वे द्विजवर उन्हीं मन्त्रोंको वस्त्र-पट्ट अथवा कमल-दलपर अङ्कित करें, फिर पञ्चरत्नसे युक्त करवाको यजमानके सिरपर रख दें। उस समय यजमान पूर्वाभिमुख हो अपने इष्टदेवकी पूजा कर उन्हें नमस्कार करते हुए ग्रहण-कालकी वेलाको व्यतीत करे। चन्द्र-ग्रहणके निवृत्त हो जानेपर माङ्गलिक कार्य कर गोदान करे और उस (मन्त्रद्वारा अङ्कित) पट्टको स्नानादिसे शुद्ध हुए ब्राह्मणको दान कर दे॥१५—२१॥

अनेन विधिना यस्तु ग्रहस्नानं समाचरेत्।
न तस्य ग्रहजा पीडा न च बन्धुजनक्षयः॥ २२

जो मानव इस उपर्युक्त विधिके अनुसार ग्रहणका स्नान करता है, उसे न तो ग्रहणजन्य पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है, अपितु उसे

* पुराणों तथा महाभारतादिमें निधिपति यक्षराज कुबेरके सदा नौ निधियोंके साथ प्रकट होनेकी बात मिलती है। पद्म, महापद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और वर्च—ये नौ निधिगण हैं।

परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।
सूर्यग्रहे सूर्यनाम सदा मन्त्रेषु कीर्तयेत्॥ २३

अधिकाः पद्मरागाः स्युः कपिलां च सुशोभनाम्।
प्रयच्छेच्च निशाम्पत्ये चन्द्रसूर्योपरागयोः॥ २४

य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रलोके महीयते॥ २५

पुनरागमनरहित परम सिद्धि प्राप्त हो जाती है। सूर्य-ग्रहणमें मन्त्रोंमें सदा सूर्यका नाम उच्चारण करना चाहिये। इसके अतिरिक्त चन्द्र-ग्रहण एवं सूर्य-ग्रहण—दोनों अवसरोंपर सूर्यके निमित्त पद्मराग मणि और निशापति चन्द्रमाके निमित्त एक सुन्दर कपिला गौका दान करनेका विधान है। जो मनुष्य इस (ग्रहणस्नानकी विधि)-को नित्य सुनता अथवा दूसरेको श्रवण कराता है वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ २२—२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे चन्द्रादित्योपरागस्नानविधिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥ ६७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें चन्द्रादित्योपरागस्नान-विधि नामक सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६७॥

अड़सठवाँ अध्याय

सप्तमीस्नपन-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

किमुद्वेगाद्भुते कृत्यमलक्ष्मीः केन हन्यते।
मृतवत्साभिषेकादिकार्येषु च किमिष्यते॥ १

नारदजीने पूछा—प्रभो! किसी आकस्मिक एवं वेगशाली कष्टके प्राप्त होनेपर उसकी निवृत्तिके लिये तथा अद्भुत शान्तिके* लिये कौन-सा व्रत करना चाहिये? किस व्रतके अनुष्ठानसे दरिद्रताका विनाश किया जा सकता है तथा जिसके बच्चे पैदा होकर मर जाते हैं, उस मृतवत्सा स्त्रीके स्नान आदि कार्योंमें उसकी शान्तिके लिये किस व्रतका विधान है?॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

पुरा कृतानि पापानि फलन्त्यस्मिंस्तपोधन।
रोगदौर्गत्यरूपेण तथैवेष्टवधेन च॥ २

तद्विघाताय वक्ष्यामि सदा कल्याणकारकम्।
सप्तमीस्नपनं नाम जनपीडाविनाशनम्॥ ३

बालानां मरणं यत्र क्षीरपाणां प्रदृश्यते।
तद्वद् वृद्धातुराणां च यौवने चापि वर्तताम्॥ ४

शान्तये तत्र वक्ष्यामि मृतवत्साभिषेचनम्।
एतदेवाद्भुतोद्वेगचित्तभ्रमविनाशनम्॥ ५

श्रीभगवान्‌ने कहा—तपोधन! पूर्वजन्ममें किये हुए पाप इस जन्ममें रोग, दुर्गति तथा इष्टजनोंकी मृत्युके रूपमें फलित होते हैं। उनके विनाशके लिये मैं सदा कल्याणकारी सप्तमीस्नपन नामक व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, यह लोगोंकी पीडाका विनाश करनेवाला है। जहाँ दुधमुँहे शिशुओं, वृद्धों, आतुरों और नवयुवकोंकी आकस्मिक मृत्यु देखी जाती है वहाँ उसकी शान्तिके लिये मैं इस 'मृतवत्साभिषेक' को बतला रहा हूँ। यही समस्त अद्भुत नामक उत्पातों, उद्वेगों और चित्तभ्रमका भी विनाशक है॥ २—५॥

* सामवेदीय 'अद्भुतब्राह्मण' (ताण्डव २६) तथा अथर्वपरिशिष्ट ७२ में अद्भुत शान्तिका विस्तारसे उल्लेख है।

भविष्यति च वाराहो यत्र कल्पस्तपोधन।
वैवस्वतश्च तत्रापि यदा तु मनुरुत्तमः॥ ६
भविष्यति च तत्रैव पञ्चविंशतिमं यदा।
कृतं नाम युगं तत्र हैहयान्वयवर्धनः।
भविता नृपतिर्वीरः कृतवीर्यः प्रतापवान्॥ ७
स सप्तद्वीपमखिलं पालयिष्यति भूतलम्।
यावद्वर्षसहस्राणि सप्तसप्तति नारद॥ ८
जातमात्रं च तस्यापि यावत् पुत्रशतं तथा।
च्यवनस्य तु शापेन विनाशमुपयास्यति॥ ९
सहस्रबाहुश्च यदा भविता तस्य वै सुतः।
कुरङ्गनयनः श्रीमान् सम्भूतो नृपलक्षणैः॥ १०
कृतवीर्यस्तदाऽऽराध्य सहस्रांशुं दिवाकरम्।
उपवासैर्व्रतैर्दिव्यैर्वेदसूक्तैश्च नारद।
पुत्रस्य जीवनायालमेतत् स्नानमवाप्स्यति॥ ११
कृतवीर्येण वै पृष्ट इदं वक्ष्यति भास्करः।
अशेषदुष्टशमनं सदा कल्मषनाशनम्॥ १२

सूर्य उवाच

अलं क्लेशेन महता पुत्रस्तव नराधिप।
भविष्यति चिरंजीवी किंतु कल्मषनाशनम्॥ १३
सप्तमीस्नपनं वक्ष्ये सर्वलोकहिताय वै।
जातस्य मृतवत्सायाः सप्तमे मासि नारद।
अथवा शुक्लसप्तम्यामेतत् सर्वं प्रशस्यते॥ १४
ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
बालस्य जन्मनक्षत्रं वर्जयेत् तां तिथिं बुधः।
तद्वद् वृद्धातुराणां च कृत्यं स्यादितरेषु च॥ १५
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावेकाग्निवत् तदा।
तण्डुलै रक्तशालीयैश्चरुं गोक्षीरसंयुतम्।
निर्वपेत् सूर्यरुद्राभ्यां तन्मन्त्राभ्यां विधानतः॥ १६
कीर्तयेत् सूर्यदैवत्यं सप्तार्चि च घृताहुतीः।
जुहुयाद् रुद्रसूक्तेन तद्वद् रुद्राय नारद॥ १७

तपोधन! जब वाराह-कल्प आयेगा, उसमें भी जब श्रेष्ठ वैवस्वत मनुका कार्यकाल होगा, उसमें जब पचीसवाँ कृतयुग आयेगा तब कृतवीर्य नामका एक प्रतापी एवं शूरवीर नरेश उत्पन्न होगा जो हैहयवंशकी वृद्धि करनेवाला होगा। नारद! वह सतहत्तर हजार वर्षोंतक सातों द्वीपोंकी समस्त पृथ्वीका पालन करेगा। उसके सौ पुत्र होंगे, परंतु महर्षि च्यवनके शापसे वे सभी जन्मते ही नष्ट हो जायँगे। नारद! जब उसके सहस्र भुजाधारी, मृग-नेत्र-सरीखे नेत्रोंवाला, शोभाशाली एवं सम्पूर्ण राज-लक्षणोंसे सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा तब राजा कृतवीर्य अपने उस पुत्रके दीर्घ जीवनकी प्राप्तिके निमित्त उपवास, व्रत तथा दिव्य वेद-सूक्तोंद्वारा सहस्रकिरणधारी सूर्यकी आराधना करके इस विशेष स्नान (स्नपनव्रत)-को प्राप्त करेगा। उस समय कृतवीर्यद्वारा पूछे जानेपर भगवान् सूर्य अखिल दोषोंके शामक एवं पापनाशक इस व्रतको बतलायेंगे॥ ६—१२॥

भगवान् सूर्य कहेंगे—नरेश्वर! अब तुम अधिक कष्ट मत सहन करो, तुम्हारा पुत्र चिरंजीवी होगा, किंतु सम्पूर्ण लोकोंके हितके हेतु मैं जिस पापनाशक सप्तमीस्नपन-व्रतका वर्णन करूँगा, उसका अनुष्ठान तुम्हें भी करना चाहिये। नारद! मृतवत्सा स्त्रीके नवजात शिशुके लिये सातवें महीनेमें अथवा शुक्लपक्षकी किसी भी सप्तमी तिथिको यह सारा कार्य प्रशस्त माना गया है। यदि उस तिथिको बालकका जन्म-नक्षत्र पड़ता हो तो बुद्धिमान् कर्ताको उस तिथिका त्याग कर देना चाहिये। उसी प्रकार वृद्ध, रोगी अथवा अन्य लोगोंके लिये भी किये जानेवाले कार्यमें इसका विचार करना आवश्यक है। व्रतारम्भमें व्रती ग्रहबल एवं ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर एकाग्निक उपासककी भाँति गो-दुग्धके साथ लाल अगहनीके चावलोंसे हव्यान्न पकाये, फिर सूर्य और रुद्रको पृथक्-पृथक् उनके मन्त्रोंद्वारा विधिपूर्वक वह हव्यान्न प्रदान करे। उस समय सूर्यसूक्तकी सात ऋचाओंका पाठ करे और अग्निमें घीकी सात आहुतियोंसे हवन करे। नारद! रुद्रके लिये भी उसी प्रकार

होतव्याः समिधश्चात्र तथैवार्कपलाशयोः।
यवकृष्णतिलैर्होमः कर्तव्योऽष्टशतं पुनः॥ १८

व्याहृतिभिस्तथाऽऽज्येन तथैवाष्टशतं पुनः।
हुत्वा स्नानं च कर्तव्यं मङ्गलं येन धीमता॥ १९

विप्रेण वेदविदुषा विधिवद् दर्भपाणिना।
स्थापयित्वा तु चतुरः कुम्भान् कोणेषु शोभनाम्॥ २०

पञ्चमं च पुनर्मध्ये दध्यक्षतविभूषितम्।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं सप्तर्चेनाभिमन्त्रितम्॥ २१

सौरेण तीर्थतोयेन पूर्णं रत्नसमन्वितम्।
सर्वान् सर्वौषधैर्युक्तान् पञ्चगव्यसमन्वितान्।
पञ्चरत्नफलैः पुष्पैर्वासोभिः परिवेष्टयेत्॥ २२

गजाश्वरथ्यावल्मीकात् संगमाद्ध्रदगोकुलात्।
संशुद्धां मृदमानीय सर्वेष्वेव विनिक्षिपेत्॥ २३

चतुर्ष्वपि च कुम्भेषु रत्नगर्भेषु मध्यमम्।
गृहीत्वा ब्राह्मणस्तत्र सौरान् मन्त्रानुदीरयेत्॥ २४

नारीभिः सप्तसंख्याभिरव्यङ्गाङ्गीभिरत्र च।
पूजिताभिर्यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः।
सविप्राभिश्च कर्तव्यं मृतवत्साभिषेचनम्॥ २५

दीर्घायुरस्तु बालोऽयं जीवत्पुत्रा च भामिनी।
आदित्यश्चन्द्रमाः सार्धं ग्रहनक्षत्रमण्डलैः॥ २६

सशक्रा लोकपाला वै ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
ते ते चान्ये च देवौघाः सदा पान्तु कुमारकम्॥ २७

मित्रः शनिर्वा हुतभुग् ये च बालग्रहाः क्वचित्।
पीडां कुर्वन्तु बालस्य मा मातुर्जनकस्य वै॥ २८

ततः शुक्लाम्बरधरा कुमारपतिसंयुता।
सप्तकं पूजयेद् भक्त्या स्त्रीणामथ गुरुं पुनः॥ २९

काञ्चनीं च ततः कुर्यात् ताम्रपात्रोपरिस्थिताम्।
प्रतिमां धर्मराजस्य गुरवे विनिवेदयेत्॥ ३०

रुद्रसूक्तकी ऋचाओंका पाठ एवं उनके द्वारा हवन करना चाहिये। इस व्रतमें हवनके लिये मन्दार और पलाशकी समिधा होनी चाहिये। पुनः जौ और काले तिलद्वारा एक सौ आठ बार हवन करनेका विधान है। उसी प्रकार व्याहृतियों (भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम्)-के उच्चारणपूर्वक एक सौ आठ बार घीकी आहुति देनी चाहिये। इस प्रकार हवन करके बुद्धिमान् व्रती पुनः स्नान करे; क्योंकि इससे मङ्गलकी प्राप्ति होती है। तदनन्तर हाथमें कुश लिये हुए वेदज्ञ ब्राह्मणद्वारा वेदीके चारों कोणोंमें चार सुन्दर कलश स्थापित कराये। पुनः उसके बीचमें छिद्ररहित पाँचवाँ कलश स्थापित करे। उसे दही-अक्षतसे विभूषित करके सूर्यसम्बन्धिनी सात ऋचाओंसे अभिमन्त्रित कर दे। फिर उसे तीर्थ-जलसे भरकर उसमें रत्न या सुवर्ण डाल दे। इसी प्रकार सभी कलशोंमें सर्वौषधि, पञ्चगव्य, पञ्चरत्न, फल और पुष्प डालकर उन्हें वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर हाथीसार, घुड़शाल, विमवट, नदीके संगम, तालाब, गोशाला और राजद्वारसे शुद्ध मिट्टी लाकर उन सभी कलशोंमें छोड़ दे॥ १३—२३॥

तदनन्तर कार्यकर्ता ब्राह्मण रत्नगर्भित चारों कलशोंके मध्यमें स्थित पाँचवें कलशको हाथमें लेकर सूर्य-मन्त्रोंका पाठ करे तथा सात ऐसी स्त्रियोंद्वारा, जो किसी अङ्गसे हीन न हों तथा जिनकी यथाशक्ति पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषणोंद्वारा पूजा की गयी हो, ब्राह्मणके साथ-साथ उस घड़ेके जलसे मृतवत्सा स्त्रीका अभिषेक कराये। (अभिषेकके समय इस प्रकार कहे—) 'यह बालक दीर्घायु और यह स्त्री जीवत्पुत्रा (जीवित पुत्रवाली) हो। सूर्य, ग्रहों और नक्षत्र-समूहोंसहित चन्द्रमा, इन्द्रसहित लोकपालगण, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनके अतिरिक्त अन्यान्य जो देव-समूह हैं, वे सभी इस कुमारकी सदा रक्षा करें। सूर्य, शनि, अग्नि अथवा अन्यान्य जो कोई बालग्रह हों वे सभी इस बालकको तथा इसके माता-पिताको कहीं भी कष्ट न पहुँचायें।' अभिषेकके पश्चात् वह स्त्री श्वेत वस्त्र धारण करके अपने बच्चे और पतिके साथ उन सातों स्त्रियोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। पुनः गुरुकी पूजा करके धर्मराजकी स्वर्णमयी प्रतिमाको ताम्रपात्रके ऊपर स्थापित करके गुरुको निवेदित कर दे।

वस्त्रकाञ्चनरत्नौघैर्भक्ष्यैः सघृतपायसैः।
पूजयेद् ब्राह्मणांस्तद्वद् वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ ३१
भुक्त्वा च गुरुणा चेयमुच्चार्या मन्त्रसन्ततिः।
दीर्घायुरस्तु बालोऽयं यावद्वर्षशतं सुखी॥ ३२
यत्किंचिदस्य दुरितं तत् क्षिप्तं वडवानले।
ब्रह्मा रुद्रो वसुः स्कन्दो विष्णुः शक्रो हुताशनः॥ ३३
रक्षन्तु सर्वे दुष्टेभ्यो वरदाः सन्तु सर्वदा।
एवमादीनि वाक्यानि वदन्तं पूजयेद् गुरुम्॥ ३४
शक्तितः कपिलां दद्यात् प्रणम्य च विसर्जयेत्।
चरुं च पुत्रसहिता प्रणम्य रविशंकरौ॥ ३५
हुतशेषं तदाश्नीयादादित्याय नमोऽस्त्विति।
इदमेवाद्भुतोद्वेगदुःस्वप्नेषु प्रशस्यते॥ ३६

उसी प्रकार कृपणता छोड़कर अन्य ब्राह्मणोंका भी वस्त्र, सुवर्ण, रत्नसमूह आदिसे पूजन करके उन्हें घी और खीरसहित भक्ष्य पदार्थोंका भोजन कराये। भोजनोपरान्त गुरुदेवको इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये—'यह बालक दीर्घायु हो और सौ वर्षोंतक सुखका उपभोग करे। इसका जो कुछ पाप था उसे बडवानलमें डाल दिया गया। ब्रह्मा, रुद्र, वसुगण, स्कन्द, विष्णु, इन्द्र और अग्नि—ये सभी दुष्ट ग्रहोंसे इसकी रक्षा करें और सदा इसके लिये वरदायक हों।' इस प्रकारके वाक्योंका उच्चारण करनेवाले गुरुदेवका यजमान पूजन करे। अपनी शक्तिके अनुसार उन्हें एक कपिला गौ प्रदान करे और फिर प्रणाम करके विदा कर दे। तत्पश्चात् मृतवत्सा स्त्री पुत्रको गोदमें लेकर सूर्यदेव और भगवान् शंकरको नमस्कार करे और हवनसे बचे हुए हव्यान्नको 'सूर्यदेवको नमस्कार है'—यह कहकर खा जाय। यही व्रत आश्चर्यजनक उद्विग्नता और दुःस्वप्न आदिमें भी प्रशस्त माना गया है॥ २४—३६॥

कर्तुर्जन्मदिनर्क्षं च त्यक्त्वा सम्पूजयेत् सदा।
शान्त्यर्थं शुक्लसप्तम्यामेतत् कुर्वन् न सीदति॥ ३७
सदानेन विधानेन दीर्घायुरभवन्नरः।
संवत्सराणामयुतं शशास पृथिवीमिमाम्॥ ३८
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सप्तमीस्नपनं रविः।
कथयित्वा द्विजश्रेष्ठ तत्रैवान्तरधीयत॥ ३९
एतत् सर्वं समाख्यातं सप्तमीस्नानमुत्तमम्।
सर्वदुष्टोपशमनं बालानां परमं हितम्॥ ४०
आरोग्यं भास्करादिच्छेद् धनमिच्छेद्धुताशनात्।
ईश्वराज्ज्ञानमन्विच्छेन्मोक्षमिच्छेज्जनार्दनात्॥ ४१
एतन्महापातकनाशनं स्यात्
परं हितं बालविवर्धनं च।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेता-
स्तस्यापि सिद्धिं मुनयो वदन्ति॥ ४२

इस प्रकार कर्ताके जन्मदिनके नक्षत्रको छोड़कर शान्ति-प्राप्तिके हेतु शुक्ल-पक्षकी सप्तमी तिथिमें सदा (सूर्य और शंकरका) पूजन करना चाहिये; क्योंकि इस व्रतका अनुष्ठान करनेवाला कभी कष्टमें नहीं पड़ता। जो मनुष्य सदा इस विधानके अनुसार इस व्रतका अनुष्ठान करता है वह दीर्घायु होता है। (इसी व्रतके प्रभावसे) कृतवीर्यने दस हजार वर्षोंतक इस पृथ्वीपर शासन किया था। द्विजश्रेष्ठ! इस प्रकार सूर्यदेव इस पुण्यप्रद, परम पावन और आयुवर्धक सप्तमीस्नपन-व्रतका विधान बतलाकर वहीं अन्तर्हित हो गये। इस प्रकार मैंने इस सप्तमीस्नपन-व्रतका, जो सर्वश्रेष्ठ, समस्त दोषोंको शान्त करनेवाला और बालकोंके लिये परम हितकारक है, समग्ररूपसे वर्णन कर दिया। मनुष्यको सूर्यसे नीरोगता, अग्निसे धन, ईश्वर (शिवजी)-से ज्ञान और भगवान् जनार्दनसे मोक्षकी अभिलाषा करनी चाहिये। यह व्रत बड़े-से-बड़े पापोंका विनाशक, बाल-वृद्धिकारक तथा परम हितकारी है। जो मनुष्य अनन्यचित्त होकर इस व्रत-विधानको श्रवण करता है, उसे भी सिद्धि प्राप्त होती है, ऐसा मुनियोंका कथन है॥ ३७—४२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सप्तमीस्नपनव्रतं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः॥ ६८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सप्तमीस्नपन-व्रत नामक अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६८॥

उनहत्तरवाँ अध्याय

भीमद्वादशी-व्रतका विधान

मत्स्य उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे परिपृष्टो महात्मना।
मन्दरस्थो महादेवः पिनाकी ब्रह्मणा स्वयम्॥ १

ब्रह्मोवाच

कथमारोग्यमैश्वर्यमनन्तममरेश्वर ।
स्वल्पेन तपसा देव भवेन्मोक्षोऽथवा नृणाम्॥ २
किमज्ञातं महादेव त्वत्प्रसादादधोक्षज।
स्वल्पकेनाथ तपसा महत्फलमिहोच्यताम्॥ ३

मत्स्य उवाच

एवं पृष्टः स विश्वात्मा ब्रह्मणा लोकभावनः।
उमापतिरुवाचेदं मनसः प्रीतिकारकम्॥ ४

ईश्वर उवाच

अस्माद् रथन्तरात् कल्पात् त्रयोविंशात् पुनर्यदा।
वाराहो भविता कल्पस्तस्य मन्वन्तरे शुभे॥ ५
वैवस्वताख्ये संजाते सप्तमे सप्तलोककृत्।
द्वापराख्यं युगं तद्वदष्टाविंशतिमं जगुः॥ ६
तस्यान्ते स महादेवो वासुदेवो जनार्दनः।
भारावतरणार्थाय त्रिधा विष्णुर्भविष्यति॥ ७
द्वैपायनऋषिस्तद्वद् रौहिणेयोऽथ केशवः।
कंसादिदर्पमथनः केशवः क्लेशनाशनः॥ ८
पुरीं द्वारवतीं नाम साम्प्रतं या कुशस्थली।
दिव्यानुभावसंयुक्तामधिवासाय शार्ङ्गिणः।
त्वष्टा ममाज्ञया तद्वत् करिष्यति जगत्पतेः॥ ९
तस्यां कदाचिदासीनः सभायाममितद्युतिः।
भार्याभिर्वृष्णिभिश्चैव भूभृद्भिर्भूरिदक्षिणैः॥ १०
कुरुभिर्देवगन्धर्वैरभितः कैटभार्दनः।
प्रवृत्तासु पुराणीषु धर्मसंवर्धिनीषु च॥ ११

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्!- प्राचीन रथन्तरकल्पकी बात है, पिनाकधारी भगवान् शंकर मन्दराचलपर विराजमान थे। उस समय महात्मा ब्रह्माजीने स्वयं ही उनके पास जाकर प्रश्न किया॥ १॥

ब्रह्माजीने पूछा—देवेश्वर! थोड़ी-सी तपस्यासे मनुष्योंको नीरोगता, अनन्त ऐश्वर्य और मोक्षकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? महादेव! आपके लिये कुछ अज्ञात तो है नहीं, अर्थात् आप सर्वज्ञ हैं, इसलिये अधोक्षज! आपकी कृपासे थोड़ी-सी तपस्याद्वारा इस लोकमें महान् फलकी प्राप्तिका क्या उपाय है? यह बतलाइये॥ २-३॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—ब्रह्माजीके इस प्रकार प्रश्न करनेपर जगत्‌की उत्पत्ति एवं वृद्धि करनेवाले विश्वात्मा उमानाथ शिव मनको प्रिय लगनेवाले वचन बोले॥ ४॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! इस तेईसवें रथन्तरकल्पके पश्चात् जब पुनः वाराहकल्प आयेगा, तब उसके सातवें वैवस्वत नामक मङ्गलमय मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर अट्ठाईसवें द्वापर नामक युगके अन्तमें सातों लोकोंके रचयिता देवाधिदेव जनार्दन भगवान् विष्णु वासुदेवरूपसे पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये अपनेको महर्षि द्वैपायन, रोहिणीनन्दन बलराम और केशवरूपसे तीन भागोंमें विभक्त करके अवतीर्ण होंगे। वे कष्टहारी केशव कंस आदि राक्षसोंके मदको चूर्ण करेंगे। शार्ङ्गधनुषधारी उन जगत्पतिके निवासके लिये मेरी आज्ञासे विश्वकर्मा द्वारवती (द्वारका) नामकी पुरीका निर्माण करेंगे, जो समस्त दिव्य भावोंसे युक्त होगी। वह इस समय कुशस्थली नामसे विख्यात है। वहीं कभी जब द्वारकाकी सभामें दानवराज कैटभके संहारक अमिततेजस्वी भगवान् श्रीकृष्ण अपनी पत्नियों, वृष्णिवंशी पुरुषों, प्रचुर दक्षिणा देनेवाले राजाओं, कौरवों और देव-गन्धर्वोंसे घिरे हुए बैठे रहेंगे और धर्मकी वृद्धि करनेवाली पौराणिक कथाएँ होती रहेंगी,

कथान्ते भीमसेनेन परिपृष्टः प्रतापवान्।
त्वया पृष्टस्य धर्मस्य रहस्यस्यास्य भेदकृत्॥ १२

भविता स तदा ब्रह्मन् कर्ता चैव वृकोदरः।
प्रवर्तकोऽस्य धर्मस्य पाण्डुपुत्रो महाबलः॥ १३

यस्य तीक्ष्णो वृको नाम जठरे हव्यवाहनः।
मया दत्तः स धर्मात्मा तेन चासौ वृकोदरः॥ १४

मतिमान् दानशीलश्च नागायुतबलो महान्।
भविष्यत्यजरः श्रीमान् कंदर्प इव रूपवान्॥ १५

धार्मिकस्याप्यशक्तस्य तीव्राग्नित्वादुपोषणे।
इदं व्रतमशेषाणां व्रतानामधिकं यतः॥ १६

कथयिष्यति विश्वात्मा वासुदेवो जगद्गुरुः।
अशेषयज्ञफलदमशेषाघविनाशनम्॥ १७

अशेषदुष्टशमनमशेषसुरपूजितम्।
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्।
भविष्यं च भविष्याणां पुराणानां पुरातनम्॥ १८

तब कथाकी समाप्तिपर भीमसेन प्रतापी श्रीकृष्णसे वैसा ही प्रश्न करेंगे, जो तुम्हारे द्वारा पूछा गया है और इस धर्मके रहस्यके भेदको प्रकट करनेवाला है। ब्रह्मन्! उस समय पाण्डुपुत्र महाबली भीमसेन इस धर्मके कर्ता एवं प्रवर्तक होंगे। उनके उदरमें मेरे द्वारा दिये गये वृक नामक तीक्ष्ण अग्निका निवास होगा, इसी कारण वे धर्मात्मा 'वृकोदर' नामसे विख्यात होंगे। वे श्रेष्ठ बुद्धिसम्पन्न, दानशील, दस हजार हाथियोंके सदृश बलशाली, महत्त्वयुक्त, जरारहित, लक्ष्मीवान् और कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली होंगे। भीमसेनके धर्मात्मा होनेपर भी उदरमें तीव्र अग्निके स्थित रहनेके कारण उपवासमें असमर्थ जानकर विश्वात्मा जगद्गुरु भगवान् वासुदेव उन्हें यह व्रत बतलायेंगे; क्योंकि यह सम्पूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ है। यह समस्त यज्ञोंका फलदाता, सम्पूर्ण पापोंका विनाशक, अखिल दोषोंका शामक, समस्त देवताओंद्वारा सम्मानित, सम्पूर्ण पवित्र पदार्थोंमें परम पवित्र, निखिल मङ्गलोंमें श्रेष्ठ मङ्गलरूप, भविष्यमें सर्वाधिक भव्य और पुरातनोंमें विशेष पुरातन है॥ ५—१८॥

वासुदेव उवाच

यद्यष्टमीचतुर्दश्योर्द्वादशीष्वथ भारत।
अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम्॥ १९

ततः पुण्यां तिथिमिमां सर्वपापप्रणाशिनीम्।
उपोष्य विधिनानेन गच्छ विष्णोः परं पदम्॥ २०

माघमासस्य दशमी यदा शुक्ला भवेत् तदा।
घृतेनाभ्यञ्जनं कृत्वा तिलैः स्नानं समाचरेत्॥ २१

तथैव विष्णुमभ्यर्च्य नमो नारायणाय च।
कृष्णाय पादौ सम्पूज्य शिरः सर्वात्मने नमः॥ २२

वैकुण्ठायेति वै कण्ठमुरः श्रीवत्सधारिणे।
शङ्खिने चक्रिणे तद्वद् गदिने वरदाय वै।
सर्वं नारायणस्यैवं सम्पूज्या बाहवः क्रमात्॥ २३

भगवान् वासुदेव कहेंगे—भारत! यदि तुम अष्टमी, चतुर्दशी, द्वादशी तिथियोंमें तथा अन्यान्य दिनों और नक्षत्रोंमें उपवास करनेमें असमर्थ हो तो मैं तुम्हें एक पापविनाशिनी तिथिका परिचय देता हूँ। उस दिन निम्नाङ्कित विधिसे उपवास कर तुम श्रीविष्णुके परम धामको प्राप्त करो। जिस दिन माघमासके शुक्लपक्षकी दशमी* तिथि आये, उस दिन (व्रतीको चाहिये कि) समस्त शरीरमें घी लगाकर तिलमिश्रित जलसे स्नान करे तथा '**ॐ नमो नारायणाय**' इस मन्त्रसे भगवान् श्रीविष्णुका पूजन करे। '**श्रीकृष्णाय नमः**' कहकर दोनों चरणोंकी और '**सर्वात्मने नमः**' कहकर मस्तककी पूजा करे। '**वैकुण्ठाय नमः**' इस मन्त्रसे कण्ठकी और '**श्रीवत्सधारिणे नमः**' इससे वक्षःस्थलकी अर्चा करे। फिर '**शङ्खिने नमः**', '**चक्रिणे नमः**', '**गदिने नमः**', **वरदाय नमः** तथा '**सर्वं नारायणस्य**' (सब कुछ नारायणका ही है)—ऐसा कहकर आवाहन आदिके क्रमसे भगवान्की बाहुओंकी पूजा करे॥ १९—२३॥

* अन्य पुराणोंमें तथा एकादशीमाहात्म्य आदिमें ज्येष्ठ शुक्ल ११को निर्जला या भीमसेनी एकादशी अथवा द्वादशी कहा गया है।

दामोदरायेत्युदरं मेढ्रं पञ्चशराय वै।
ऊरू सौभाग्यनाथाय जानुनी भूतधारिणे॥ २४
नमो नीलाय वै जङ्घे पादौ विश्वसृजे नमः।
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै॥ २५
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै धृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः।
नमो विहङ्गनाथाय वायुवेगाय पक्षिणे।
विषप्रमाथिने नित्यं गरुडं चाभिपूजयेत्॥ २६
एवं सम्पूज्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ।
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्भक्ष्यैर्नानाविधैरपि॥ २७
गव्येन पयसा सिद्धां कृसरामथ वाग्यतः।
सर्पिषा सह भुक्त्वा च गत्वा शतपदं बुधः॥ २८
न्यग्रोधं दन्तकाष्ठमथवा खादिरं बुधः।
गृहीत्वा धावयेद् दन्तानाचान्तः प्रादुदङ्मुखः॥ २९
ब्रूयात् सायंतनीं कृत्वा संध्यामस्तमिते रवौ।
नमो नारायणायेति त्वामहं शरणं गतः॥ ३०
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य च केशवम्।
रात्रिं च सकलां स्थित्वा स्नानं च पयसा तथा॥ ३१
सर्पिषा चापि दहनं हुत्वा ब्राह्मणपुङ्गवैः।
सहैव पुण्डरीकाक्ष द्वादश्यां क्षीरभोजनम्॥ ३२
करिष्यामि यतात्माहं निर्विघ्नेनास्तु तच्च मे।
एवमुक्त्वा स्वपेद् भूमावितिहासकथां पुनः॥ ३३
श्रुत्वा प्रभाते संजाते नदीं गत्वा विशाम्पते।
स्नानं कृत्वा मुदा तद्वत् पाषण्डानभिवर्जयेत्॥ ३४
उपास्य संध्यां विधिवत् कृत्वा च पितृतर्पणम्।
प्रणम्य च हृषीकेशं सप्तलोकैकमीश्वरम्॥ ३५
गृहस्य पुरतो भक्त्या मण्डपं कारयेद् बुधः।
दशहस्तमथाष्टौ वा करान् कुर्याद् विशांपते॥ ३६

'इसके बाद **'दामोदराय नमः'** कहकर उदरका, **'पञ्चशराय नमः'** इस मन्त्रसे जननेन्द्रियका, **'सौभाग्यनाथाय नमः'** इससे दोनों जंघोंका, **'भूतधारिणे नमः'** से दोनों घुटनोंका, **'नीलाय नमः'** इस मन्त्रसे पिंडलियों (घुटनेसे नीचेके भाग)-का और **'विश्वसृजे नमः'** इससे पुनः दोनों चरणोंका पूजन करे। तत्पश्चात् **'देव्यै नमः', 'शान्त्यै नमः', 'लक्ष्म्यै नमः', 'श्रियै नमः', पुष्ट्यै नमः, 'तुष्ट्यै नमः', 'धृष्ट्यै नमः', 'हृष्ट्यै नमः'**—इन मन्त्रोंसे भगवती लक्ष्मीकी पूजा करे। इसके बाद **'विहङ्गनाथाय नमः', 'वायुवेगाय नमः' 'पक्षिणे नमः', 'विषप्रमाथिने नमः'**—इन मन्त्रोंके द्वारा सदा गरुडकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार गन्ध, पुष्प, धूप तथा नाना प्रकारके पकवानोंद्वारा श्रीकृष्णकी, महादेवजीकी तथा गणेशजीकी भी पूजा करे। फिर गौके दूधकी बनी हुई खीर लेकर घीके साथ मौनपूर्वक भोजन करे। भोजनके अनन्तर विद्वान् पुरुष सौ पग चलकर बरगद अथवा खैरकी दाँतुन ले उसके द्वारा दाँतोंको साफ करे, फिर मुँह धोकर आचमन करे। सूर्यास्त होनेके बाद पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर सायंकालीन संध्या करे। उसके अन्तमें यह कहे—'भगवान् श्रीनारायणको नमस्कार है। भगवन्! मैं आपकी शरणमें आया हूँ।' (इस प्रकार प्रार्थना करके रात्रिमें शयन करे।)॥ २४—३०॥

दूसरे दिन एकादशीको निराहार रहकर भगवान् केशवकी पूजा करे और रातभर बैठा रहकर प्रातःकाल दूध या जलसे स्नान करे। फिर अग्निमें घीकी आहुति देकर प्रार्थना करे—'पुण्डरीकाक्ष! मैं जितेन्द्रिय होकर द्वादशीको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके साथ ही खीरका भोजन करूँगा। मेरा यह व्रत निर्विघ्नतापूर्वक पूर्ण हो।' यह कहकर इतिहास-पुराणकी कथा सुननेके पश्चात् भूमिपर शयन करे। राजन्! सवेरा होनेपर जाकर नदीमें प्रसन्नतापूर्वक स्नान करे। पाखण्डियोंके संसर्गसे दूर रहे। विधिपूर्वक संध्योपासन करके पितरोंका तर्पण करे। फिर सातों लोकोंके एकमात्र अधीश्वर भगवान् हृषीकेशको प्रणाम करके बुद्धिमान् व्रती घरके सामने भक्तिपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये। राजन्! वह मण्डप दस अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा होना चाहिये।

चतुर्हस्तां शुभां कुर्याद् वेदीमरिनिषूदन।
चतुर्हस्तप्रमाणं च विन्यसेत् तत्र तोरणम्॥ ३७
आरोप्य कलशं तत्र दिक्पालान् पूजयेत् ततः।
छिद्रेण जलसम्पूर्णमथ कृष्णाजिनस्थितः।
तस्य धारां च शिरसा धारयेत् सकलां निशाम्॥ ३८
तथैव विष्णोः शिरसि क्षीरधारां प्रपातयेत्।
अरत्निमात्रं कुण्डं च कुर्यात् तत्र त्रिमेखलम्॥ ३९
योनिवक्त्रं च तत् कृत्वा ब्राह्मणैः यवसर्पिषी।
तिलांश्च विष्णुदैवत्यैर्मन्त्रैरेकाग्निवत् तदा॥ ४०
हुत्वा च वैष्णवं सम्यक् चरुं गोक्षीरसंयुतम्।
निष्पावार्धप्रमाणां वै धारामाज्यस्य पातयेत्॥ ४१
जलकुम्भान् महावीर्य स्थापयित्वा त्रयोदश।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तान् सितवस्त्रैरलंकृतान्॥ ४२
युक्तानौदुम्बरैः पात्रैः पञ्चरत्नसमन्वितान्।
चतुर्भिर्बह्वृचैर्होमस्तत्र कार्य उदङ्मुखैः॥ ४३
रुद्रजापश्चतुर्भिश्च यजुर्वेदपरायणैः।
वैष्णवानि तु सामानि चतुरः सामवेदिनः।
अरिष्टवर्गसहितान्यभितः परिपाठयेत्॥ ४४
एवं द्वादश तान् विप्रान् वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।
पूजयेदङ्गुलीयैश्च कटकैर्हेमसूत्रकैः॥ ४५
वासोभिः शयनीयैश्च वित्तशाठ्यविवर्जितः।
एवं क्षपातिवाह्या च गीतमङ्गलनिःस्वनैः॥ ४६
उपाध्यायस्य च पुनर्द्विगुणं सर्वमेव तु।
ततः प्रभाते विमले समुत्थाय त्रयोदश॥ ४७
गां वै दद्यात् कुरुश्रेष्ठ सौवर्णमुखसंयुताः।
पयस्विनीः शीलवतीः कांस्यदोहसमन्विताः॥ ४८
रौप्यखुराः सवस्त्राश्च चन्दनेनाभिषेचिताः।
तास्तु तेषां ततो भक्त्या भक्ष्यभोज्यान्नतर्पितान्॥ ४९

शत्रुसूदन! उसके भीतर चार हाथकी सुन्दर वेदी बनवाये। वेदीके ऊपर चार हाथका तोरण लगाये। फिर (सुदृढ़ खम्भोंके आधारपर) एक कलश रखे और दिक्पालोंकी पूजा करे, उसमें नीचेकी ओर (उड़दके दानेके बराबर) छेद कर दे। तदनन्तर उसे जलसे भरे और स्वयं उसके नीचे काला मृगचर्म बिछाकर बैठ जाय। कलशसे गिरती हुई धाराको सारी रात अपने मस्तकपर धारण करे। उसी प्रकार भगवान् विष्णुके सिरपर दूधकी धारा गिराये। फिर उनके निमित्त एक कुण्ड बनवाये, जो हाथभर लंबा, उतना ही चौड़ा और उतना ही गहरा हो। उसके ऊपरी किनारेपर तीन मेखलाएँ बनवाये। उसमें यथास्थान योनि और मुखके चिह्न बनवाये। तदनन्तर ब्राह्मण (कुण्डमें अग्नि प्रज्वलित कर) एकाग्निक उपासककी तरह जौ, घी और तिलोंका श्रीविष्णु-सम्बन्धी मन्त्रोंद्वारा हवन करे। फिर गो-दुग्धसे बने हुए चरुका हवन करके विधिपूर्वक वैष्णवयागका सम्पादन करे। फिर कुण्डके मध्यमें मटरकी दालके बराबर मोटी घीकी धारा गिराये॥ ३१—४१॥

महावीर्य! फिर जलसे भरे हुए तेरह कलशोंकी स्थापना करे। वे नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंसे युक्त और श्वेत वस्त्रोंसे अलंकृत होने चाहिये। उनके साथ उदुम्बर-पात्र तथा पञ्चरत्नका होना भी आवश्यक है। वहाँ चार ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तरकी ओर मुख करके हवन करें, चार यजुर्वेदी विप्र रुद्राध्यायका पाठ करें तथा चार सामवेदी ब्राह्मण चारों ओरसे अरिष्टवर्गसहित वैष्णवसामका गान करते रहें। इस प्रकार उपर्युक्त बारहों ब्राह्मणोंको वस्त्र, पुष्प, चन्दन, अँगूठी, कड़े, सोनेकी जंजीर, वस्त्र तथा शय्या आदि देकर उनका पूर्ण सत्कार करे। इस कार्यमें धनकी कृपणता न करे। इस प्रकार गीत और माङ्गलिक शब्दोंके साथ रात्रि व्यतीत करे। उपाध्याय (आचार्य या पुरोहित)-को सब वस्तुएँ अन्य ब्राह्मणोंकी अपेक्षा दूनी मात्रामें अर्पण करे। कुरुश्रेष्ठ! रात्रिके बाद जब निर्मल प्रभातका उदय हो, तब शयनसे उठकर (नित्यकर्मके पश्चात्) मुखपर सोनेके पत्रसे विभूषित की हुई तेरह गौएँ दान करनी चाहिये। वे सब-की-सब दूध देनेवाली और सीधी हों। उनके खुर चाँदीसे मँढ़े हुए हों तथा उन सबको वस्त्र ओढ़ाकर चन्दनसे विभूषित किया गया हो। गौओंके साथ काँसेका दोहनपात्र भी होना चाहिये। गोदानके पश्चात् उन सभी ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक नाना प्रकारके भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे तृप्त

कृत्वा वै ब्राह्मणान् सर्वानन्नैर्नानाविधैस्तथा।
भुक्त्वा चाक्षारलवणमात्मना च विसर्जयेत्॥ ५०

अनुगम्य पदान्यष्टौ पुत्रभार्यासमन्वितः।
प्रीयतामत्र देवेशः केशवः क्लेशनाशनः॥ ५१

शिवस्य हृदये विष्णुर्विष्णोश्च हृदये शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्ति चायुषः॥ ५२

एवमुच्चार्य तान् कुम्भान् गाश्चैव शयनानि च।
वासांसि चैव सर्वेषां गृहाणि प्रापयेद् बुधः॥ ५३

अभावे बहुशय्यानामेकामपि सुसंस्कृताम्।
शय्यां दद्याद् द्विजातेश्च सर्वोपस्करसंयुताम्॥ ५४

इतिहासपुराणानि वाचयित्वातिवाहयेत्।
तद्दिनं नरशार्दूल य इच्छेद् विपुलां श्रियम्॥ ५५

तस्मात् त्वं सत्त्वमालम्ब्य भीमसेन विमत्सरः।
कुरु व्रतमिदं सम्यक् स्नेहात् तव मयेरितम्॥ ५६

त्वया कृतमिदं वीर त्वन्नामाख्यं भविष्यति।
सा भीमद्वादशी ह्येषा सर्वपापहरा शुभा।
या तु कल्याणिनी नाम पुरा कल्पेषु पठ्यते॥ ५७

त्वमादिकर्ता भव सौकरेऽस्मिन्
कल्पे महावीरवरप्रधान।
यस्याः स्मरन् कीर्तनमप्यशेषं
विनष्टपापस्त्रिदशाधिपः स्यात्॥ ५८

कृत्वा च यामप्सरसामधीशा
वेश्या कृता ह्यन्यभवान्तरेषु।
आभीरकन्यातिकुतूहलेन
सैवोर्वशी सम्प्रति नाकपृष्ठे॥ ५९

जाताथवा वैश्यकुलोद्भवापि
पुलोमकन्या पुरुहूतपत्नी।
तत्रापि तस्याः परिचारिकेयं
मम प्रिया सम्प्रति सत्यभामा॥ ६०

करके स्वयं भी क्षार लवणसे रहित अन्नका भोजन करके ब्राह्मणोंको विदा करे॥ ४२—५०॥

पुत्र और स्त्रीके साथ आठ पगतक उनके पीछे-पीछे जाय और इस प्रकार प्रार्थना करे—'हमारे इस कार्यसे देवताओंके स्वामी भगवान् श्रीविष्णु, जो सबका क्लेश दूर करनेवाले हैं, प्रसन्न हों। श्रीशिवके हृदयमें श्रीविष्णु हैं और श्रीविष्णुके हृदयमें श्रीशिव विराजमान हैं। मैं यदि इन दोनोंमें अन्तर न देखता होऊँ तो इस धारणासे मेरी आयु बढ़े तथा कल्याण हो।' यह कहकर बुद्धिमान् व्रती उन कलशों, गौओं, शय्याओं तथा वस्त्रोंको सब ब्राह्मणके घर पहुँचवा दे। अधिक शय्याएँ सुलभ न हों तो गृहस्थ पुरुष एक ही सुसज्जित एवं सभी उपकरणोंसे सम्पन्न शय्या ब्राह्मणको दान करे। नरसिंह! जिसे विपुल लक्ष्मीकी अभिलाषा हो, उसे वह दिन इतिहास और पुराणोंके श्रवणमें ही बिताना चाहिये। अतः भीमसेन! तुम भी सत्त्वगुणका आश्रय ले, मात्सर्यका त्यागकर इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे अनुष्ठान करो। (यह बहुत गुप्त व्रत है, किंतु) स्नेहवश मैंने तुम्हें बता दिया है। वीर! तुम्हारे द्वारा इसका अनुष्ठान होनेपर यह व्रत तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होगा। इसे लोग 'भीमद्वादशी' कहेंगे। यह भीमद्वादशी सब पापोंको नाश करनेवाली और शुभकारिणी होगी। प्राचीन कल्पोंमें इस व्रतको 'कल्याणिनी व्रत' कहा जाता था। महान् वीरोंमें श्रेष्ठ वीर भीमसेन! इस वाराहकल्पमें तुम इस व्रतके सर्वप्रथम अनुष्ठानकर्ता बनो। इसका स्मरण और कीर्तनमात्र करनेसे मनुष्यका सारा पाप नष्ट हो जाता है और वह देवताओंका राजा इन्द्र बन जाता है॥ ५१—५८॥

जन्मान्तरमें एक अहीरकी कन्याने अत्यन्त कुतूहलवश इस व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके फलस्वरूप वह वेश्या अप्सराओंकी अधीश्वरी हुई। वही इस समय स्वर्गलोकमें उर्वशी नामसे विख्यात है। इसी प्रकार वैश्यकुलमें उत्पन्न हुई एक दूसरी कन्याने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके परिणामस्वरूप वह पुलोम (दानव)-की पुत्रीरूपमें उत्पन्न होकर इन्द्रकी पत्नी बनी। उसके अनुष्ठान-कालमें जो उसकी सेविका थी,

स्नातः पुरा मण्डलमेष तद्वत्
तेजोमयं वेदशरीरमाप।
अस्यां च कल्याणतिथौ विवस्वान्
सहस्रधारेण सहस्ररश्मिः॥ ६१
इदमेव कृतं महेन्द्रमुख्यै-
र्वसुभिर्देवसुरारिभिस्तथा तु।
फलमस्य न शक्यतेऽभिवक्तुं
यदि जिह्वायुतकोटयो मुखे स्युः॥ ६२
कलिकलुषविदारिणीमनन्ता-
मिति कथयिष्यति यादवेन्द्रसूनुः।
अपि नरकगतान् पितॄनशेषा-
नलमुद्धर्तुमिहैव यः करोति॥ ६३
य इदमघविदारणं शृणोति
भक्त्या परिपठतीह परोपकारहेतोः।
तिथिमिह सकलार्थभाङ्नरेन्द्र-
स्तव चतुरानन साम्यतामुपैति॥ ६४
कल्याणिनी नाम पुरा बभूव
या द्वादशी माघदिनेषु पूज्या।
सा पाण्डुपुत्रेण कृता भविष्य-
त्यनन्तपुण्यानघ भीमपूर्वा॥ ६५

वही इस समय मेरी प्रिया सत्यभामा है। पूर्वकालमें इस कल्याणमयी तिथिको सहस्र किरणधारी सूर्यने हजारों धाराओंसे स्नान किया था, इसी कारण उन्हें उस प्रकारका तेजोमय मण्डल और वेदमय शरीर प्राप्त हुआ है। महेन्द्र आदि देवताओं, वसुओं तथा असुरोंने भी इस व्रतका अनुष्ठान किया है। यदि एक मुखमें दस हजार करोड़ जिह्वाएँ हों तो भी इसके फलका पूरा वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ५९—६२॥

ब्रह्मन्! कलियुगके पापोंको नष्ट करनेवाली एवं अनन्त फल प्रदान करनेवाली इस कल्याणमयी तिथिकी महिमाका वर्णन यादवराजकुमार भगवान् श्रीकृष्ण अपने श्रीमुखसे करेंगे। जो इसके व्रतका अनुष्ठान करता है, उसके नरकमें पड़े हुए सम्पूर्ण पितरोंका भी यह उद्धार करनेमें समर्थ है। चतुरानन! जो अत्यन्त भक्तिके साथ इस पापनाशक व्रतकी कथाको सुनता तथा दूसरोंके उपकारके लिये पढ़ता है, वह इस लोकमें जनताका स्वामी और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका भागी हो जाता है तथा परलोकमें आपकी समताको प्राप्त कर लेता है। पूर्वकल्पमें जो माघमासकी द्वादशी परम पूजनीय कल्याणिनी तिथिके नामसे प्रसिद्ध थी, वही पाण्डुनन्दन भीमसेनके व्रत करनेपर अनन्त पुण्यदायिनी 'भीमद्वादशी' के नामसे प्रसिद्ध होगी॥ ६३—६५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भीमद्वादशीव्रतं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः॥ ६९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भीमद्वादशी-व्रत नामक उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ६९॥

सत्तरवाँ अध्याय

पण्यस्त्री-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

वर्णाश्रमाणां प्रभवः पुराणेषु मया श्रुतः।
सदाचारस्य भगवन् धर्मशास्त्रविनिश्चयः।
पण्यस्त्रीणां सदाचारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ १

ईश्वर उवाच

तस्मिन्नेव युगे ब्रह्मन् सहस्राणि तु षोडश।
वासुदेवस्य नारीणां भविष्यन्त्यम्बुजोद्भव॥ २
ताभिर्वसन्तसमये कोकिलालिकुलाकुले।
पुष्पितोपवने फुल्लकह्लारसरसस्तटे॥ ३
निर्भरं सह पत्नीभिः प्रसक्ताभिरलंकृतः।
रमयिष्यति विश्वात्मा कृष्णो यदुकुलोद्वहः।
कुरङ्गनयनः श्रीमान् मालतीकृतशेखरः॥ ४
गच्छन् समीपमार्गेण साम्बः परपुरञ्जयः।
साक्षात् कन्दर्परूपेण सर्वाभरणभूषितः॥ ५
अनङ्गशरतप्ताभिः साभिलाषमवेक्षितः।
प्रवृद्धो मन्मथस्तासां भविष्यति यदात्मनि॥ ६
तदावेक्ष्य जगन्नाथः सर्वतो ध्यानचक्षुषा।
शापं वक्ष्यति ताः सर्वा वो हरिष्यन्ति दस्यवः।
मत्परोक्षं यतः कामलौल्यादीदृग्विधं कृतम्॥ ७
ततः प्रसादितो देव इदं वक्ष्यति शार्ङ्गभृत्।
ताभिः शापाभितप्ताभिर्भगवान् भूतभावनः॥ ८
उत्तारभूतं दाशत्वं समुद्राद् ब्राह्मणप्रियः।
उपदेक्ष्यत्यनन्तात्मा भाविकल्याणकारकम्॥ ९

ब्रह्माजीने पूछा—भगवन्! मैं पुराणोंमें सभी वर्णों और आश्रमोंके सदाचारकी उत्पत्ति तथा धर्मशास्त्रके सिद्धान्तोंको तो सुन चुका, अब मैं पण्यस्त्रियों (मूल्यद्वारा खरीदी जानेवाली स्त्रियों)-के समुचित आचारको यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ*॥ १॥

भगवान् शंकरने कहा—कमलोद्भव ब्रह्मन्! उसी द्वापरयुगमें वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी सोलह सहस्र पत्नियाँ होंगी। एक बार वसन्त-ऋतुमें वे सभी नारियाँ खिले हुए पुष्पोंसे सुशोभित वनमें उत्फुल्ल कमल-पुष्पोंसे परिपूर्ण एक सरोवरके तटपर जायँगी। उस समय कोकिल कूज रहे होंगे, भ्रमर-समूह अपनी गुंजार चतुर्दिक् बिखेर रहे होंगे तथा शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन बह रहा होगा। इसी समय वे निश्चिन्त रूपसे एकत्र होकर जलपान आदि कार्योंमें लीन होंगी। उस समय यदुकुलके उद्वाहक विश्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी उनके साथ वहाँ भ्रमण करेंगे। उसी समय शत्रु-नगरीको जीतनेवाले, अलंकारोंसे सुशोभित श्रीमान् साम्ब, जिनके नेत्र मृगनेत्रसरीखे होंगे, जिनका मस्तक मालतीकी मालासे सुशोभित होगा, जो सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा रूपसे साक्षात् कामदेवके समान होंगे, उस सरोवरके समीपवर्ती मार्गसे जा निकलेंगे। उन्हें देखकर वे सभी (स्त्रियाँ) रागभरी दृष्टिसे उनकी ओर देखने लगेंगी। तब जगदीश्वर श्रीकृष्ण ध्यान-दृष्टिसे सारा वृत्तान्त जानकर उन्हें शाप दे देंगे—'चूँकि तुमलोगोंने मुझसे विश्वासघात किया; कामलोलुपतावश ऐसा जघन्य कार्य किया है, इसलिये चोर तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे।' तत्पश्चात् शापसे संतप्त हुई उन स्त्रियोंद्वारा प्रसन्न किये जानेपर भगवान् श्रीकृष्ण जो अनन्तात्मा, ब्राह्मणोंके प्रेमी तथा प्राणियोंको भवसागरसे पार करनेवाले कर्णधार हैं, उन्हें भविष्यमें

---

* इस अध्यायमें कृपालु भगवान्-द्वारा—'मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः। स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥ (गीता ९। ३२)-के भाव, पापयोनिकी व्याख्या तथा उनके कल्याणकी पद्धति निर्दिष्ट हुई है। यह अध्याय पद्म० खं० २३। ७४—१४६ तथा भविष्य० ४। १२०। १—७३ तकमें तो ज्यों-का-त्यों आता ही है।

भवतीनामृषिर्दाल्भ्यो यद् व्रतं कथयिष्यति।
तदेवोत्तारणायालं दासीत्वेऽपि भविष्यति।
इत्युक्त्वा ताः परिष्वज्य गतो द्वारवतीश्वरः॥ १०
ततः कालेन महता भारावतरणे कृते।
निवृत्ते मौसले तद्वत् केशवे दिवमागते॥ ११
शून्ये यदुकुले सर्वैश्चौरैरपि जितेऽर्जुने।
हृतासु कृष्णपत्नीषु दाशभोग्यासु चाम्बुधौ॥ १२
तिष्ठन्तीषु च दौर्गत्यसंतप्तासु चतुर्मुख।
आगमिष्यति योगात्मा दाल्भ्यो नाम महातपाः॥ १३
तास्तमर्घ्येण सम्पूज्य प्रणिपत्य पुनः पुनः।
लालप्यमाना बहुशो बाष्पपर्याकुलेक्षणाः॥ १४
स्मरन्त्यो विपुलान् भोगान् दिव्यमाल्यानुलेपनम्।
भर्तारं जगतामीशमनन्तमपराजितम्॥ १५
दिव्यभावां तां च पुरीं नानारत्नगृहाणि च।
द्वारकावासिनः सर्वान् देवरूपान् कुमारकान्।
प्रश्नमेवं करिष्यन्ति मुनेरभिमुखं स्थिताः॥ १६

स्त्रिय ऊचुः

दस्युभिर्भगवन् सर्वाः परिभुक्ता वयं बलात्।
स्वधर्माच्यवनेऽस्माकमस्मिन् त्वं शरणं भव॥ १७
आदिष्टोऽसि पुरा ब्रह्मन् केशवेन च धीमता।
कस्मादीशेन संयोगं प्राप्य वेश्यात्वमागताः॥ १८
वेश्यानामपि यो धर्मस्तं नो ब्रूहि तपोधन।
कथयिष्यत्यतस्तासां स दाल्भ्यश्चैकितायनः॥ १९

दाल्भ्य उवाच

जलक्रीडाविहारेषु पुरा सरसि मानसे।
भवतीनां च सर्वासां नारदोऽभ्याशमागतः॥ २०

इस प्रकार कल्याणकारी मार्गका उपदेश करेंगे—'महर्षि दाल्भ्य तुमलोगोंको जो व्रत बतलायेंगे, वही दासीत्वावस्थामें भी तुमलोगोंका उद्धार करनेमें समर्थ होगा।' यों कहकर द्वारकाधीश वहाँसे चले जायँगे। चतुर्मुख! इसके बहुत दिन बाद जब श्रीभगवान्‌द्वारा पृथ्वीका भार दूर करने, मौसलयुद्ध समाप्त होने—मूसलद्वारा यदुवंशियोंके विनाश होने, भगवान् श्रीकेशवके वैकुण्ठ पधार जाने तथा यदुकुलके वीरोंसे शून्य हो जानेपर दस्युगण अर्जुनको पराजितकर श्रीकृष्णकी पत्नियोंका अपहरण कर लेंगे और उन्हें अपनी पत्नी बना लेंगे, तब अपनी दुर्गतिसे दुःखी हुई वे सभी समुद्रमें निवास करेंगी। उसी समय महान् तपस्वी योगात्मा महर्षि दाल्भ्य वहाँ आयेंगे। तब वे ऋषिको अर्घ्यद्वारा पूजा करके बारंबार उनके चरणोंमें प्रणिपात करेंगी और आँखोंमें आँसू भरकर अनेकों प्रकारसे विलाप करेंगी। उस समय उनको प्रचुर भोगोंका, दिव्य पुष्पमाला और अनुलेपका, अनन्त एवं अपराजित जगदीश्वर पतिका, दिव्य भावोंसे संयुक्त द्वारकापुरीका, नाना प्रकारके रत्नोंसे निर्मित गृहोंका, द्वारकावासियोंका और देवरूपी सभी कुमारोंका स्मरण हो रहा होगा। तब वे मुनिके समक्ष खड़ी होकर इस प्रकार प्रश्न करेंगी॥ २—१६॥

स्त्रियाँ कहेंगी—भगवन्! डाकुओंने बलपूर्वक (हमलोगोंका अपहरण करके) अपने वशीभूत कर लिया है। इस प्रकार हम सभी अपने धर्मसे च्युत हो गयी हैं। अब इस विषयमें आप हमलोगोंके आश्रयदाता बनें। ब्रह्मन्! इसके लिये बुद्धिमान् श्रीकेशवने पहले ही आपको आदेश दे दिया है। पता नहीं, किस घोर पाप-कर्मके कारण जगदीश्वर श्रीकृष्णका संयोग पाकर भी हमलोग कुधर्ममें आ पड़ी हैं। इसलिये तपोधन! पण्यस्त्रियोंके लिये भी जो धर्म कहे गये हैं, उन्हें हमें बतलाइये। उनके द्वारा यों पूछे जानेपर चेकितायन महर्षिके पुत्र दाल्भ्य उन्हें सारा वृत्तान्त बतलायेंगे॥ १७—१९॥

दाल्भ्य कहते हैं—नारियो! पूर्वकालमें तुमलोग अप्सराएँ थीं और सब-की-सब अग्निकी कन्याएँ थीं। एक बार जब तुमलोग मानस-सरोवरमें जलक्रीडाद्वारा मनोरञ्जन कर रही थीं, उसी समय तुमलोगोंके निकट नारदजी आ पहुँचे।

हुताशनसुताः सर्वा भवन्त्योऽप्सरसः पुरा।
अप्रणम्यावलेपेन परिपृष्टः स योगवित्।
कथं नारायणोऽस्माकं भर्ता स्यादित्युपादिश॥ २१

तस्माद् वरप्रदानं वः शापश्चायमभूत् पुरा।
शय्याद्वयप्रदानेन मधुमाधवमासयोः॥ २२

सुवर्णोपस्करोत्सर्गाद् द्वादश्यां शुक्लपक्षतः।
भर्ता नारायणो नूनं भविष्यत्यन्यजन्मनि॥ २३

यदकृत्वा प्रणामं मे रूपसौभाग्यमत्सरात्।
परिपृष्टोऽस्मि तेनाशु वियोगो वो भविष्यति।
चौरैरपहृताः सर्वा वेश्यात्वं समवाप्स्यथ॥ २४

एवं नारदशापेन केशवस्य च धीमतः।
वेश्यात्वमागताः सर्वा भवन्त्यः काममोहिताः।
इदानीमपि यद् वक्ष्ये तच्छृणुध्वं वराङ्गनाः॥ २५

पुरा देवासुरे युद्धे हतेषु शतशः सुरैः।
दानवासुरदैत्येषु राक्षसेषु ततस्ततः॥ २६

तेषां व्रातसहस्राणि शतान्यपि च योषिताम्।
परिणीतानि यानि स्युर्बलाद् भुक्तानि यानि वै।
तानि सर्वाणि देवेशः प्रोवाच वदतां वरः॥ २७

उस समय तुमलोग गर्ववश उन्हें प्रणाम न कर उन योगवेत्तासे इस प्रकार प्रश्न कर बैठीं—'देवर्षे! भगवान् नारायण किस प्रकार हमलोगोंके पति हो सकते हैं, इसका उपाय बतलाइये।' उस समय तुमलोगोंको नारदजीसे वरदान और शाप दोनों प्राप्त हुए थे। (उन्होंने कहा था—) 'यदि तुमलोग चैत्र और वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी द्वादशी तिथिके दिन स्वर्णनिर्मित उपकरणोंसहित दो शय्याएँ प्रदान करोगी तो निश्चय ही दूसरे जन्ममें भगवान् नारायण तुमलोगोंके पति होंगे। साथ ही सुन्दरता और सौभाग्यके अभिमानवश जो तुमलोगोंने मुझे बिना प्रणाम किये ही मुझसे प्रश्न किया है, इस कारण तुमलोगोंका उनसे शीघ्र ही वियोग भी हो जायगा तथा डाकू तुमलोगोंका अपहरण कर लेंगे और तुम सभी कुधर्मको प्राप्त हो जाओगी।' इस प्रकार नारदजी एवं बुद्धिमान् भगवान् केशवके शापसे तुम सभी कामसे मोहित होकर कुधर्मको प्राप्त हो गयी हो। सुन्दरियो! इस समय मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसे भी तुमलोग ध्यान देकर सुनो। पूर्वकालमें घटित हुए सैकड़ों देवासुर-संग्रामोंमें देवताओंने समय-समयपर बहुत-से दानवों, असुरों, दैत्यों और राक्षसोंको मार डाला था, उनकी जो सैकड़ों-हजारों यूथ-की-यूथ पत्नियाँ थीं, जिन्हें अन्य राक्षसोंने बलपूर्वक (इसी प्रकार) ब्याह लिया था, उन सबसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ देवराज इन्द्रने कहा॥ २०—२७॥

इन्द्र उवाच

वेश्याधर्मेण वर्तध्वमधुना नृपमन्दिरे।
भक्तिमत्यो वरारोहास्तथा देवकुलेषु च॥ २८

राजानः स्वामिनस्तुल्याः सुता वापि च तत्समाः।
भविष्यति च सौभाग्यं सर्वासामपि शक्तितः॥ २९

यः कश्चिच्छुल्कमादाय गृहमेष्यति वः सदा।
निधनेनोपचार्यो वः स तदान्यत्र दाम्भिकात्॥ ३०

देवतानां पितॄणां च पुण्याहे समुपस्थिते।
गोभूहिरण्यधान्यानि प्रदेयानि स्वशक्तितः।
ब्राह्मणानां वरारोहाः कार्याणि वचनानि च॥ ३१

यच्चाप्यन्यद् व्रतं सम्यगुपदेक्ष्याम्यहं ततः।
अविचारेण सर्वाभिरनुष्ठेयं च तत् पुनः॥ ३२

संसारोत्तारणायालमेतद् वेदविदो विदुः।

इन्द्र बोले—भक्तिमती सुन्दरियो! तुमलोगोंको दाम्भिकोंसे सदा दूर रहना चाहिये। तुमलोगोंको देवताओं एवं पितरोंके पुण्य-पर्व आनेपर अपनी शक्तिके अनुसार गौ, पृथ्वी, स्वर्ण और अन्न आदिका दान करना तथा ब्राह्मणोंकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। इसके अतिरिक्त मैं तुमलोगोंको जिस दूसरे व्रतका उपदेश दे रहा हूँ, उसका भी बिना आगा-पीछा सोचे तुम सभीको अनुष्ठान करना चाहिये। यह व्रत तुमलोगोंका संसारसे उद्धार करनेमें समर्थ है। इसे वेदवेत्तालोग ही जानते हैं॥ २८—३२ $\frac{1}{2}$॥

यदा सूर्यदिने हस्तः पुष्यो वाथ पुनर्वसुः ॥ ३३
भवेत् सर्वौषधीस्नानं सम्यङ्नारी समाचरेत्।
तदा पञ्चशरस्यापि संनिधातृत्वमेष्यति।
अर्चयेत् पुण्डरीकाक्षमनङ्गस्यानुकीर्तनैः ॥ ३४
कामाय पादौ सम्पूज्य जङ्घे वै मोहकारिणे।
मेढ्रं कंदर्पनिधये कटिं प्रीतिमते नमः ॥ ३५
नाभिं सौख्यसमुद्राय रामाय च तथोदरम्।
हृदयं हृदयेशाय स्तनावाह्लादकारिणे ॥ ३६
उत्कण्ठायेति वै कण्ठमास्यमानन्दकारिणे।
वामाङ्गं पुष्पचापाय पुष्पबाणाय दक्षिणम् ॥ ३७
मानसायेति वै मौलिं विलोलायेति मूर्धजम्।
सर्वात्मने च सर्वाङ्गं देवदेवस्य पूजयेत् ॥ ३८
नमः शिवाय शान्ताय पाशाङ्कुशधराय च।
गदिने पीतवस्त्राय शङ्खचक्रधराय च ॥ ३९
नमो नारायणायेति कामदेवात्मने नमः।
सर्वशान्त्यै नमः प्रीत्यै नमो रत्यै नमः श्रियै ॥ ४०
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै नमः सर्वार्थसम्पदे।
एवं सम्पूज्य देवेशमनङ्गात्मकमीश्वरम्।
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैर्नैवेद्येन च कामिनी ॥ ४१
तत आहूय धर्मज्ञं ब्राह्मणं वेदपारगम्।
अव्यङ्गावयवं पूज्य गन्धपुष्पार्चनादिभिः ॥ ४२
शालेयतण्डुलप्रस्थं घृतपात्रेण संयुतम्।
तस्मै विप्राय सा दद्यान्माधवः प्रीयतामिति ॥ ४३
यथेष्टाहारयुक्तं वै तमेव द्विजसत्तमम्।
रत्यर्थं कामदेवोऽयमिति चित्तेऽवधार्य तम् ॥ ४४
यद् यदिच्छति विप्रेन्द्रस्तत्तत्कुर्याद् विलासिनी।
सर्वभावेन चात्मानमर्पयेत् स्मितभाषिणी ॥ ४५
एवमादित्यवारेण सर्वमेतत् समाचरेत्।
तण्डुलप्रस्थदानं च यावन्मासास्त्रयोदश ॥ ४६
ततस्त्रयोदशे मासि सम्प्राप्ते तस्य भामिनी।
विप्रायोपस्करैर्युक्तां शय्यां दद्यात् विलक्षणाम् ॥ ४७
सोपधानकविश्रामां सास्तरावरणां शुभाम्।
प्रदीपोपानहच्छत्रपादुकासनसंयुताम् ॥ ४८

जब रविवारको हस्त, पुष्य अथवा पुनर्वसु नक्षत्र आवे तो स्त्रीको सर्वौषधिमिश्रित जलसे भलीभाँति स्नान करना उचित है। ऐसा करनेसे उसे देवताकी संनिकटता प्राप्त होगी। फिर नामोंका कीर्तन करते हुए भगवान् पुण्डरीकाक्षकी यों अर्चना करनी चाहिये— **'कामाय नमः'**से दोनों चरणोंका, **'मोहकारिणे नमः'** से जङ्घाओंका, **'कंदर्पनिधये नमः'**से जननेन्द्रियका, **'प्रीतिमते नमः'**से कटिका, **'सौख्यसमुद्राय नमः'**से नाभिका, **'रामाय नमः'**से उदरका, **'हृदयेशाय नमः'** से हृदयका, **'आह्लादकारिणे नमः'** से दोनों स्तनोंका, **'उत्कण्ठाय नमः'** से कण्ठका, **'आनन्दकारिणे नमः'**-से मुखका, **'पुष्पचापाय नमः'** से वामाङ्गका, **'पुष्पबाणाय नमः'**से दक्षिणाङ्गका, **'मानसाय नमः'**-से ललाटका , **'विलोलाय नमः'**से केशोंका और **'सर्वात्मने नमः'**से देवाधिदेव पुण्डरीकाक्षके सर्वाङ्गका पूजन करना चाहिये। पुनः **'शिवाय नमः'**, **'शान्ताय नमः'**, **'पाशाङ्कुशधराय नमः'**, **'गदिने नमः'**, **'पीतवस्त्राय नमः'**, **'शङ्खचक्रधराय नमः'**, **'नारायणाय नमः'**, **'कामदेवात्मने नमः'**से भगवान् विष्णुकी पूजा करके **'सर्वशान्त्यै नमः'**, **'प्रीत्यै नमः'**, **'रत्यै नमः'**, **'श्रियै नमः'**, **'पुष्ट्यै नमः'**, **'तुष्ट्यै नमः'**, **'सर्वार्थसम्पदे नमः'**से लक्ष्मीका भी पूजन करनेका विधान है। इस प्रकार व्रतिनी नारी चन्दन, पुष्पमाला, धूप और नैवेद्य आदिसे कामदेवस्वरूप देवेश्वर भगवान् विष्णुकी पूजा करे। तत्पश्चात् वह सुडौल अङ्गोंवाले, धर्मज्ञ एवं वेदज्ञ ब्राह्मणको बुलाकर चन्दन, पुष्प आदि पूजन-सामग्रीद्वारा उनकी पूजा करे और घीसे भरे हुए पात्रके साथ एक सेर अगहनी चावल उस ब्राह्मणको दान करे और कहे—'माधव मुझपर प्रसन्न हों।' फिर वह विलासिनी नारी उस द्विजवरको यथेष्ट भोजन करावे ॥ ३३—४५ ॥

इस प्रकार रविवारसे प्रारम्भ करके यह सब कार्य करते रहना चाहिये। एक सेर चावलका दान तो तेरह मासतक करनेका विधान है। तेरहवाँ महीना आनेपर उस स्त्रीको चाहिये कि उपर्युक्त ब्राह्मणको समस्त उपकरणोंसे युक्त एक ऐसी विलक्षण शय्या प्रदान करे, जो गद्दा, चादर और विश्रामहेतु बने हुए तकियेसे युक्त एवं सुन्दर हो तथा उसके साथ दीपक, जूता, छाता, खड़ाऊँ और

सपत्नीकमलङ्कृत्य हेमसूत्राङ्गुलीयकैः।
सूक्ष्मवस्त्रैः सकटकैर्भूरिमाल्यानुलेपनैः॥ ४९
कामदेवं सपत्नीकं गुडकुम्भोपरि स्थितम्।
ताम्रपात्रासनगतं हेमनेत्रपटावृतम्॥ ५०
सकांस्यभाजनोपेतमिक्षुदण्डसमन्वितम्।
दद्यादेतेन मन्त्रेण तथैकां गां पयस्विनीम्॥ ५१
यथान्तरं न पश्यामि कामकेशवयोः सदा।
तथैव सर्वकामाप्तिरस्तु विष्णो सदा मम॥ ५२
यथा न कमला देहात् प्रयाति तव केशव।
तथा ममापि देवेश शरीरं स्वीकुरु प्रभो॥ ५३
तथा च काञ्चनं देवं प्रतिगृह्णन् द्विजोत्तमः।
क इदं कस्मादादिति वैदिकं मन्त्रमीरयेत्॥ ५४
ततः प्रदक्षिणीकृत्य विसर्ज्य द्विजपुंगवम्।
शय्यासनादिकं सर्वं ब्राह्मणस्य गृहं नयेत्॥ ५५
ततः प्रभृति यो विप्रो रत्यर्थं गृहमागतः।
स मान्यः सूर्यवारे च स मन्तव्यो भवेत् तदा॥ ५६
एवं त्रयोदशं यावन्मासमेवं द्विजोत्तमान्।
तर्पयेत यथाकामं प्रोषितेऽन्यं समाचरेत्॥ ५७
तदनुज्ञया रूपवान् यावदभ्यागतो भवेत्।
आत्मनोऽपि यथाविघ्नं गर्भभूतिकरं प्रियम्॥ ५८
दैवं वा मानुषं वा स्यादनुरागेण वा ततः।
साचारानष्टपञ्चाशद् यथाशक्त्या समाचरेत्॥ ५९
एतद्धि कथितं सम्यग् भवतीनां विशेषतः।
अधर्मोऽयं ततो न स्याद् वेश्यानामिह सर्वदा॥ ६०
पुरुहूतेन यत् प्रोक्तं दानवीषु पुरा मया।
तदिदं साम्प्रतं सर्वं भवतीष्वपि युज्यते॥ ६१
सर्वपापप्रशमनमनन्तफलदायकम्।
कल्याणीनां च कथितं तत् कुरुध्वं वराननाः॥ ६२
करोति याशेषमखण्डमेतत्
कल्याणिनी माधवलोकसंस्था।
सा पूजिता देवगणैरशेषै-
रानन्दकृत् स्थानमुपैति विष्णोः॥ ६३

आसनी भी हो। उस समय उस सपत्नीक ब्राह्मणको महीन वस्त्र, सोनेकी जंजीर, अँगूठी, कड़ा, अधिकाधिक पुष्पमाला और चन्दनसे अलंकृत करके गुड़से भरे हुए कलशके ऊपर स्थापित ताम्रपात्रके आसनपर सपत्नीक कामदेवकी मूर्तिको रख दे, उसे स्वर्णनिर्मित नेत्राच्छादनसे ढक दे। उसके निकट काँसेका पात्र और गन्ना भी रख दे। फिर आगे कहे जानेवाले मन्त्रका उच्चारण करके समग्र उपकरणोंसहित उस मूर्तिका तथा एक दुधारू गौका उस ब्राह्मणको दान करे। (दानका मन्त्र इस प्रकार है—) 'केशव! जिस प्रकार लक्ष्मी आपके शरीरसे विलग होकर कहीं अन्यत्र नहीं जातीं, देवेश्वर प्रभो! उसी प्रकार आप मेरे शरीरको भी स्वीकार कर लें।' स्वर्णमय कामदेवकी मूर्तिको ग्रहण करते समय वे द्विजवर— **'कोऽदात् कस्मा अदात् कामोऽदात् कामायादात्'** इत्यादि— (वाजस० सं० ७। ४८) इस वैदिक मन्त्रका उच्चारण करें। तदनन्तर वह स्त्री उन द्विजवरकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा करे और शय्या, आसन आदि दानकी सभी वस्तुएँ उनके घर भिजवा दे। इस प्रकार इस दैवकर्मको अनुरागपूर्वक अपनी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक अट्ठावन बार करना चाहिये। विशेषतः तुम्हीं लोगोंके लिये ही मैंने इस व्रतका सम्यक् प्रकारसे वर्णन किया है। ऐसा करनेसे पण्यस्त्रियोंको इस लोकमें कभी अधर्मका भागी नहीं होना पड़ेगा॥ ४६—६०॥

पूर्वकालमें इन्द्रने दानव-पत्नियोंके प्रति जिस व्रतका वर्णन किया था, वही सब इस समय तुमलोगोंको भी करना उचित है। सुन्दरियो! कल्याणी स्त्रियोंके समस्त पापोंको शान्त करनेवाले एवं अनन्त फलदायक जिस व्रतका मैंने वर्णन किया है, उसका तुमलोग अवश्य पालन करो। जो कल्याणमयी नारी इस व्रतका पूरा-पूरा अखण्डरूपसे पालन करती है, वह भगवान् विष्णुके लोकमें स्थित होती है और अखिल देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णुके आनन्ददायक स्थानको प्राप्त होती है॥ ६१—६३॥

श्रीभगवानुवाच

तपोधनः सोऽप्यभिधाय चैवं
तदा च तासां व्रतमङ्गनानाम्।
स्वस्थानमेष्यत्यनु वै समस्ताः
व्रतं चरिष्यन्ति च वेदयोने॥ ६४

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! इस प्रकार तपस्वी दाल्भ्य उन स्त्रियोंसे वाराङ्गनाओंके व्रतका वर्णन करके अपने स्थानको चले जायँगे। उसके पश्चात् वे सभी उस व्रतका अनुष्ठान करेंगी॥ ६४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनङ्गदानव्रतं नाम सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनङ्गदान-व्रत नामक सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७०॥

इकहत्तरवाँ अध्याय

अशून्यशयन (द्वितीया)-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

भगवन् पुरुषस्येह स्त्रियाश्च विरहादिकम्।
शोकव्याधिभयं दुःखं न भवेद् येन तद् वद॥ १

ब्रह्माजीने पूछा—भगवन्! इस लोकमें जिसका अनुष्ठान करनेसे पुरुषको पत्नीवियोग अथवा स्त्रीको पतिवियोग न हो तथा शोक एवं रोगका भय और दुःख न हो, वह व्रत बतलाइये॥ १॥

श्रीभगवानुवाच

श्रावणस्य द्वितीयायां कृष्णायां मधुसूदनः।
क्षीरार्णवे सपत्नीकः सदा वसति केशवः॥ २
तस्यां सम्पूज्य गोविन्दं सर्वान् कामान् समश्नुते।
गोभूहिरण्यदानादि सप्तकल्पशतानुगम्॥ ३
अशून्यशयना नाम द्वितीया सम्प्रकीर्तिता।
तस्यां सम्पूजयेद् विष्णुमेभिर्मन्त्रैर्विधानतः॥ ४
श्रीवत्सधारिञ् श्रीकान्त श्रीधामन् श्रीपतेऽव्यय।
गार्हस्थ्यं मा प्रणाशं मे यातु धर्मार्थकामदम्॥ ५
अग्नयो मा प्रणश्यन्तु देवताः पुरुषोत्तम।
पितरो मा प्रणश्यन्तु मास्तु दाम्पत्यभेदनम्॥ ६

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! श्रावणमासके कृष्ण-पक्षकी द्वितीया तिथिको मधुसूदनभगवान् केशव लक्ष्मीसहित सदा क्षीरसागरमें निवास करते हैं, अतः उस तिथिको जो मनुष्य भगवान् गोविन्दकी पूजा कर सात सौ कल्पोंतक फल देनेवाली गौ, पृथ्वी और सुवर्णका दान करता है, उसकी सारी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं। यह द्वितीया अशून्यशयना* नामसे प्रसिद्ध है; इस दिन विधिपूर्वक भगवान् विष्णुका पूजन कर इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंद्वारा प्रार्थना करनी चाहिये—'लक्ष्मीकान्त! आप श्रीवत्सको धारण करनेवाले, धन-सम्पत्तिके निधि और सौन्दर्यके अधीश्वर हैं। अविनाशी भगवन्! मेरा धर्म, अर्थ और कामको सिद्ध करनेवाला गृहस्थ-आश्रम कभी विनाशको न प्राप्त हो। पुरुषोत्तम! मेरे गृहमें अग्नियों और इष्ट देवताओंका कभी अभाव न हो, मेरे पितरोंका विनाश न हो और दाम्पत्य—पति-पत्नी (रूप-व्यवहार)-में कभी भेद-भाव न उत्पन्न हो।

* इस व्रतकी विस्तृत विधि वामनपुराणके १६ वें अध्यायमें है। पर यह वहाँ तथा पद्म, भविष्यादिमें कुछ अन्तरसे प्रायः इसी प्रकार निर्दिष्ट है।

लक्ष्म्या वियुज्यते देव न कदाचिद् यथा भवान्।
तथा कलत्रसम्बन्धो देव मा मे वियुज्यताम्॥ ७
लक्ष्म्या न शून्यं वरद यथा ते शयनं सदा।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु तथैव मधुसूदन॥ ८
गीतवादित्रनिर्घोषं देवदेवस्य कीर्तयेत्।
घण्टा भवेदशक्तस्य सर्ववाद्यमयी यतः॥ ९

देवाधिदेव! जैसे आप कभी लक्ष्मीसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार मेरा भी स्त्री-सम्बन्ध कभी खण्डित न हो। वरदाता मधुसूदन! जिस प्रकार आपकी शय्या कभी लक्ष्मीसे शून्य नहीं रहती, उसी तरह मेरी भी शय्या स्त्रीसे शून्य न हो।' इस प्रकार प्रार्थना कर गाने-बजानेके माङ्गलिक शब्दोंके साथ-साथ देवाधिदेव भगवान् विष्णुके नामोंका कीर्तन करना चाहिये। जो गीत-वाद्यके आयोजनमें असमर्थ हो, उसे घण्टाका शब्द कराना चाहिये; क्योंकि घण्टा समस्त बाजोंके समान माना गया है॥ २—९॥

एवं सम्पूज्य गोविन्दमश्नीयात् तैलवर्जितम्।
नक्तमक्षारलवणं यावत् तत् स्याच्चतुष्टयम्॥ १०
ततः प्रभाते संजाते लक्ष्मीपतिसमन्विताम्।
दीपान्नभाजनैर्युक्तां शय्यां दद्याद् विलक्षणाम्॥ ११
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुताम्।
अभीष्टोपस्करैर्युक्तां शुक्लपुष्पाम्बरावृताम्॥ १२
सोपधानकविश्रामां फलैर्नानाविधैर्युताम्।
तथाऽऽभरणधान्यैश्च यथाशक्त्या समन्विताम्॥ १३
अव्यङ्गाङ्गाय विप्राय वैष्णवाय कुटुम्बिने।
दातव्या वेदविदुषे भावेनापतिताय च॥ १४
तत्रोपवेश्य दाम्पत्यमलंकृत्य विधानतः।
पत्न्यास्तु भाजनं दद्याद् भक्ष्यभोज्यसमन्वितम्॥ १५
ब्राह्मणस्यापि सौवर्णीमुपस्करसमन्विताम्।
प्रतिमां देवदेवस्य सोदकुम्भां निवेदयेत्॥ १६

इस प्रकार भगवान् गोविन्दकी पूजा करके रातमें एक बार तेल और क्षार नमकसे रहित अन्नका भोजन करे। ऐसा भोजन तबतक करे, जबतक इस व्रतकी चार आवृत्ति न हो जाय (चार मासतक ऐसा ही भोजन करना चाहिये)। तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर एक विलक्षण शय्याका भी दान करनेका विधान है। वह शय्या गद्दा, श्वेत चादर और विश्रामोपयोगी तकियेसे सुशोभित हो; उसपर भगवान् लक्ष्मीपतिकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित हो; उसके निकट दीपक, अन्नके पात्र, खड़ाऊँ, जूता, छाता, चँवर और आसन रखे गये हों; वह अभीष्ट सामग्रियोंसे युक्त हो, उसपर श्वेत पुष्प बिखेरे गये हों, वह नाना प्रकारके ऋतुफलोंसे सम्पन्न हो तथा अपनी शक्तिके अनुसार आभूषण और अन्न आदिसे समन्वित हो। इस प्रकार वह शय्या ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जिसका कोई अङ्ग विकृत न हो तथा जो विष्णु-भक्त, परिवारवाला, वेदज्ञ और आचरणसे पतित न हो। फिर उस शय्यापर द्विजदम्पतिको बैठाकर विधानके अनुसार उन्हें अलंकृत करे। उस समय पत्नीको भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंसे युक्त बर्तन दान करे और ब्राह्मणको सभी उपकरणोंसे युक्त देवाधिदेव विष्णुकी स्वर्णमयी प्रतिमा जलपूर्ण घटके साथ निवेदित करे। (तत्पश्चात् ब्राह्मणको विदा कर व्रत समाप्त करे)॥ १०—१६॥

एवं यस्तु पुमान् कुर्यादशून्यशयनं हरेः।
वित्तशाठ्येन रहितो नारायणपरायणः॥ १७
न तस्य पत्न्या विरहः कदाचिदपि जायते।
नारी वा विधवा ब्रह्मन् यावच्चन्द्रार्कतारकम्।
न विरूपौ न शोकार्तौ दम्पती भवतः क्वचित्॥ १८

ब्रह्मन्! इस प्रकार जो पुरुष श्रीहरिके अशून्यशयनव्रतका अनुष्ठान करता है, उसे कभी पत्नी-वियोग नहीं होता तथा सधवा अथवा विधवा नारी नारायणपरायण होकर कृपणता छोड़कर इसका अनुष्ठान करती है, वह दम्पति सूर्य-चन्द्रमाके स्थितिपर्यन्त न तो कभी शोकसे दुःखी होते हैं और न उनका रूप ही विकृत होता है। साथ ही

न पुत्रपशुरत्नानि क्षयं यान्ति पितामह।
सप्तकल्पसहस्राणि सप्तकल्पशतानि च।
कुर्वन्नशून्यशयनं विष्णुलोके महीयते॥ १९

उनके पुत्र, पशु और धन आदिका विनाश नहीं होता। पितामह! अशून्यशयनव्रतका अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सात हजार सात सौ कल्पोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है॥ १७—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽशून्यशयनव्रतं नामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अशून्यशयन-व्रत नामक इकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवाँ अध्याय

अङ्गारक-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

शृणु चान्यद् भविष्यं यद् रूपसम्पत्प्रदायकम्।
भविष्यति युगे तस्मिन् द्वापरान्ते पितामह।
पिप्पलादस्य संवादो युधिष्ठिरपुरःसरैः॥ १
वसन्तं नैमिषारण्ये पिप्पलादं महामुनिम्।
अभिगम्य तदा चैनं प्रश्नमेकं करिष्यति।
युधिष्ठिरो धर्मपुत्रो धर्मयुक्तस्तपोधनम्॥ २

युधिष्ठिर उवाच

कथमारोग्यमैश्वर्य मतिर्धर्मे गतिस्तथा।
अव्यङ्गता शिवे भक्तिर्वैष्णवो वा भवेत् कथम्॥ ३

ईश्वर उवाच

तस्योत्तरमिदं ब्रह्मन् पिप्पलादस्य धीमतः।
शृणुष्व यद् वक्ष्यति वै धर्मपुत्राय धार्मिकः॥ ४

पिप्पलाद उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र इदानीं कथयामि ते।
अङ्गारव्रतमित्येतत् स वक्ष्यति महीपतेः॥ ५
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम्।
विरोचनस्य संवादं भार्गवस्य च धीमतः॥ ६
प्रह्लादस्य सुतं दृष्ट्वा द्विरष्टपरिवत्सरम्।
रूपेणाप्रतिमं कान्त्या सोऽहसद् भृगुनन्दनः॥ ७
साधु साधु महाबाहो विरोचन शिवं तव।
तत् तथा हसितं तस्य पप्रच्छ सुरसूदनः॥ ८

ईश्वरने कहा—पितामह! अब भविष्यमें घटित होनेवाले एक अन्य व्रतके वृत्तान्तको सुनो, जो सुन्दरता और सम्पत्ति प्रदान करनेवाला है। उसी द्वापरयुगके अन्तमें युधिष्ठिर आदिके साथ महर्षि पिप्पलादका संवाद होगा। उस समय तपस्वी महामुनि पिप्पलादके नैमिषारण्यमें निवास करते समय धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिर उनके निकट जाकर एक प्रश्न करेंगे॥ १-२॥

युधिष्ठिर पूछेंगे—नीरोगता, ऐश्वर्य, धर्ममें बुद्धि तथा गति, अव्यङ्गता (शरीरके सभी अङ्गोंकी पूर्णता) तथा शिव एवं विष्णुमें अनुपम भक्ति कैसे प्राप्त हो सकती है?॥ ३॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! (इस विषयमें) उन बुद्धिमान् पिप्पलादका वह उत्तर सुनो, जो वे धर्मपुत्र धर्मात्मा युधिष्ठिरसे कहेंगे॥ ४॥

पिप्पलाद कहेंगे—भद्र! आपने बड़ी उत्तम बात पूछी है, अब मैं आपको इस अङ्गारक-व्रतको बतला रहा हूँ। यों कहकर वे मुनि राजा युधिष्ठिरसे इस व्रतका (इस प्रकार) वर्णन करेंगे। महाराज युधिष्ठिर! इस विषयमें एक पुरातन इतिहासका उदाहरण दिया जाता है, जो विरोचन और बुद्धिमान् शुक्राचार्यके संवाद (रूप)-में है। एक बार प्रह्लादके षोडशवर्षीय पुत्र विरोचनको देखकर, जो अनुपम सौन्दर्यशाली और कान्तिमान् था, भृगुनन्दन शुक्राचार्य हँस पड़े और उससे बोले—'महाबाहु विरोचन! तुम धन्य हो, तुम्हारा कल्याण हो।' उन्हें उस प्रकार हँसते देखकर देवशत्रु विरोचनने

ब्रह्मन् किमर्थमेतत् ते हास्यमाकस्मिकं कृतम्।
साधु साध्विति मामेवमुक्तवांस्त्वं वदस्व मे॥ ९

तमेवंवादिनं शुक्र उवाच वदतां वरः।
विस्मयाद् व्रतमाहात्म्याद्धास्यमेतत् कृतं मया॥ १०

पुरा दक्षविनाशाय कुपितस्य तु शूलिनः।
अथ तद्भीमवक्त्रस्य स्वेदबिन्दुर्ललाटजः॥ ११

भित्त्वा स सप्त पातालानदहत् सप्त सागरान्।
अनेकवक्त्रनयनो ज्वलज्ज्वलनभीषणः॥ १२

वीरभद्र इति ख्यातः करपादायुतैर्युतः।
कृत्वासौ यज्ञमथनं पुनर्भूतलसम्भवः।
त्रिजगन्निर्दहन् भूयः शिवेन विनिवारितः॥ १३

उनसे पूछा—'ब्रह्मन्! आपने किस प्रयोजनसे यह आकस्मिक हास्य किया है और मुझे 'साधु-साधु' (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है? इसका कारण मुझे बतलाइये।' इस प्रकार पूछनेपर विरोचनसे वक्ताओंमें श्रेष्ठ शुक्राचार्यने कहा—'व्रतके माहात्म्यसे आश्चर्यचकित होकर मैंने यह हास्य किया है। (उस प्रसङ्गको सुनो—) पूर्वकालमें दक्ष-यज्ञका विनाश करनेके लिये जब भयंकर मुखवाले त्रिशूलधारी भगवान् शंकर कुपित हो उठे, तब उनके ललाटसे पसीनेकी एक बूँद टपक पड़ी। वह स्वेदबिन्दु अनेकों मुखों, नेत्रों और दस सहस्र हाथ-पैरोंसे युक्त एक पुरुषाकारमें परिणत हो गया। वह प्रज्वलित अग्निके समान भयंकर पुरुष वीरभद्रके नामसे विख्यात हुआ। उसने सातों पातालोंका भेदन कर सातों सागरोंको भस्म कर दिया। पुनः दक्ष-यज्ञका विध्वंस कर वह भूतलपर आ धमका और त्रिलोकीको जला डालनेके लिये उद्यत हुआ। यह देखकर शिवजीने उसे रोक दिया॥ ५—१३॥

कृतं त्वया वीरभद्र दक्षयज्ञविनाशनम्।
इदानीमलमेतेन लोकदाहेन कर्मणा॥ १४

शान्तिप्रदाता सर्वेषां ग्रहाणां प्रथमो भव।
प्रेक्षिष्यन्ते जनाः पूजां करिष्यन्ति वरान्मम॥ १५

अङ्गारक इति ख्यातिं गमिष्यसि धरात्मज।
देवलोकेऽद्वितीयं च तव रूपं भविष्यति॥ १६

ये च त्वां पूजयिष्यन्ति चतुर्थ्यां त्वद्दिने नराः।
रूपमारोग्यमैश्वर्यं तेष्वनन्तं भविष्यति॥ १७

एवमुक्तस्तदा शान्तिमगमत् कामरूपधृक्।
संजातस्तत्क्षणाद् राजन् ग्रहत्वमगमत् पुनः॥ १८

स कदाचिद् भवांस्तस्य पूजार्घ्यादिकमुत्तमम्।
दृष्टवान् क्रियमाणं च शूद्रेण च व्यवस्थितः॥ १९

तेन त्वं रूपवाञ्जातः सुरशत्रुकुलोद्वह।
विविधा च रुचिर्जाता यस्मात् तव विदूरगा॥ २०

विरोचन इति प्राहुस्तस्मात् त्वां देवदानवाः।
शूद्रेण क्रियमाणस्य व्रतस्य तव दर्शनात्।
ईदृशीं रूपसम्पत्तिं दृष्ट्वा विस्मितवानहम्॥ २१

फिर उन्होंने उसे मना करते हुए कहा—'वीरभद्र! तुमने दक्ष-यज्ञका विनाश तो कर ही दिया, अब तुम अपने इस लोक-दहनरूप क्रूर कर्मको बंद कर दो। मेरे वरदानसे तुम सभी ग्रहोंके लिये शान्ति-प्रदायक बनो और सर्वप्रथम स्थान ग्रहण करो। लोग तुम्हारा दर्शन और पूजन करेंगे। पृथ्वीनन्दन! तुम अङ्गारक नामसे ख्याति प्राप्त करोगे और देवलोकमें तुम्हारा अनुपम रूप होगा। जो मनुष्य तुम्हारा जन्मदिन चतुर्थी तिथि आनेपर तुम्हारी पूजा करेंगे उन्हें अनन्त सौन्दर्य, नीरोगता और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होगी।' शिवजीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला वीरभद्र तुरंत शान्त हो गया। राजन्! पुनः उसी क्षण (पृथ्वीसे) उत्पन्न होकर उसने ग्रहका स्थान प्राप्त कर लिया। असुरकुलोद्वह! किसी समय शूद्रद्वारा व्यवस्थितरूपसे की जाती हुई उसकी अर्घ्य आदिसे सम्पन्न श्रेष्ठ पूजाको तुमने देख लिया था, इसी कारण तुम सुन्दररूपसे युक्त होकर पैदा हुए हो और तुम्हारी रुचि—प्रतिभा विभिन्न प्रकारके ज्ञानोंवाली और दूरगामिनी है। इसी कारण देवता और दानव तुम्हें विरोचन नामसे पुकारते हैं। शूद्रद्वारा किये जाते हुए व्रतके दर्शनसे प्राप्त हुई तुम्हारी इस प्रकारकी रूप-

साधु साध्विति तेनोक्तमहो माहात्म्यमुत्तमम्।
पश्यतोऽपि भवेद् रूपमैश्वर्यं किमु कुर्वतः॥ २२

यस्माच्च भक्त्या धरणीसुतस्य
विनिन्द्यमानेन गवादिदानम्।
आलोकितं तेन सुरारिगर्भे
सम्भूतिरेषा तव दैत्य जाता॥ २३

सम्पत्तिको देखकर मैं आश्चर्यचकित हो गया। इसी कारण मैंने 'साधु-साधु' (तुम धन्य हो) ऐसा कहा है। अहो! यह कैसा उत्तम माहात्म्य है कि जब देखनेवालेको भी ऐसी सुन्दरता और ऐश्वर्यकी प्राप्ति हो जाती है, तब करनेवालेकी तो बात ही क्या है। दितिवंशज! चूँकि तुमने पृथ्वीपुत्र वीरभद्रके व्रतमें भक्तिपूर्वक दिये जाते हुए गो-दान आदि दानोंको अवहेलनापूर्वक देखा था, इसीलिये तुम्हारी उत्पत्ति राक्षस-योनिमें हुई है॥ १४—२३॥

ईश्वर उवाच

अथ तद् वचनं श्रुत्वा भार्गवस्य महात्मनः।
प्रह्लादनन्दनो वीरः पुनः पप्रच्छ विस्मितः॥ २४

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! महात्मा शुक्राचार्यके उस वचनको सुनकर प्रह्लाद-नन्दन विरोचनने विस्मय-विमुग्ध हो पुनः प्रश्न किया॥ २४॥

विरोचन उवाच

भगवंस्तद् व्रतं सम्यक् श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः।
दीयमानं तु यद् दानं मया दृष्टं भवान्तरे॥ २५
माहात्म्यं च विधिं तस्य यथावद् वक्तुमर्हसि।
इति तद्वचनं श्रुत्वा कविः प्रोवाच विस्तरात्॥ २६

विरोचनने पूछा—भगवन्! जन्मान्तरमें मैंने जिसके दिये जाते हुए दानको देखा था, उस व्रतको भलीभाँति अनुपूर्वी सुनना चाहता हूँ। आप मुझे उसके विधान और माहात्म्यको यथार्थ रूपसे बतलाइये। इस प्रकार विरोचनकी बात सुनकर शुक्राचार्यने विस्तारपूर्वक कहना प्रारम्भ किया॥ २५-२६॥

शुक्र उवाच

चतुर्थ्यङ्गारकदिने यदा भवति दानव।
मृदा स्नानं तदा कुर्यात् पद्मरागविभूषितः॥ २७
अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्रं जपंस्तिष्ठेदुदङ्मुखः।
शूद्रस्तूष्णीं स्मरन् भौममास्ते भोगविवर्जितः॥ २८
अथास्तमित आदित्ये गोमयेनानुलेपयेत्।
प्राङ्गणं पुष्पमालाभिरक्षताभिः समंततः॥ २९
अभ्यर्च्याभिलिखेत् पद्मं कुङ्कुमेनाष्टपत्रकम्।
कुङ्कुमस्याप्यभावे तु रक्तचन्दनमिष्यते॥ ३०
चत्वारः करकाः कार्या भक्ष्यभोज्यसमन्विताः।
तण्डुलै रक्तशालीयैः पद्मरागैश्च संयुताः॥ ३१
चतुष्कोणेषु तान् कृत्वा फलानि विविधानि च।
गन्धमाल्यादिकं सर्वं तथैव विनिवेशयेत्॥ ३२

सुवर्णशृङ्गीं कपिलामथार्च्य
रौप्यैः खुरैः कांस्यदुहां सवत्साम्।
धुरंधरं रक्तखुरं च सौम्यं
धान्यानि सप्ताम्बरसंयुतानि॥ ३३

शुक्र बोले—दानव! जब मंगलवारको चतुर्थी तिथि पड़ जाय तो उस दिन शरीरमें मिट्टी लगाकर स्नान करे और पद्मरागमणिकी अँगूठी आदि धारण करके उत्तराभिमुख बैठकर '**अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्—**' इस मन्त्रका जप करता रहे। यदि व्रती शूद्र हो तो उसे भोगसे दूर रहकर चुपचाप मंगलका स्मरण करते हुए दिन बिताना चाहिये। फिर सूर्यास्त हो जानेपर आँगनको गोबरसे लीपकर सर्वाङ्गसुन्दर पुष्पमाला आदिसे चारों ओर पूजा कर दे। आँगनके मध्यमें कुङ्कुमसे अष्टदल कमलकी रचना करे। कुङ्कुमका अभाव हो तो लाल चन्दनसे काम चलाना चाहिये। फिर आँगनके चारों कोनोंमें चार करवा स्थापित करे, जिन्हें लाल अगहनीके चावलसे भरकर उनके ऊपर पद्मरागमणि रख दे। वे भक्ष्य-भोज्य पदार्थोंसे भी संयुक्त रहें। उनके निकट नाना प्रकारके ऋतुफल, चन्दन, पुष्पमाला आदि सभी पूजन-सामग्री भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् बछड़ेसहित एक कपिला गौका पूजन करे, जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उसके निकट काँसेकी दोहनी रखी हो। इसी प्रकार लाल खुरोंसे युक्त सौम्य स्वभाववाले हृष्ट-पुष्ट एक वृषभकी भी पूजा करे और उसके निकट

अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं तथैव
सौवर्णमत्यायतबाहुदण्डम्।
चतुर्भुजं हेममये निविष्टं
पात्रे गुडस्योपरि सर्पिषा युतम्॥ ३४
सामस्वरज्ञाय जितेन्द्रियाय
पात्राय शीलान्वयसंयुताय।
दातव्यमेतत् सकलं द्विजाय
कुटुम्बिने नैव तु दाम्भिकाय।
समर्पयेद् विप्रवराय भक्त्या
कृताञ्जलिः पूर्वमुदीर्य मन्त्रम्॥ ३५
भूमिपुत्र महातेजः स्वेदोद्भव पिनाकिनः।
रूपार्थी त्वां प्रपन्नोऽहं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ ३६
मन्त्रेणानेन दत्त्वार्घ्यं रक्तचन्दनवारिणा।
ततोऽर्चयेद् विप्रवरं रक्तमाल्याम्बरादिभिः॥ ३७
दद्यात् तेनैव मन्त्रेण भौमं गोमिथुनान्वितम्।
शय्यां च शक्तितो दद्यात् सर्वोपस्करसंयुताम्॥ ३८
यद् यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे।
तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षय्यमिच्छता॥ ३९
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा विसर्ज्य द्विजपुङ्गवम्।
नक्तमक्षारलवणमश्नीयाद् घृतसंयुतम्॥ ४०
भक्त्या यस्तु पुनः कुर्यादेवमङ्गारकाष्टकम्।
चतुरो वाथवा तस्य यत् पुण्यं तद् वदामि ते॥ ४१
रूपसौभाग्यसम्पन्नः पुनर्जन्मनि जन्मनि।
विष्णौ वाथ शिवे भक्तः सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥ ४२
सप्तकल्पसहस्राणि रुद्रलोके महीयते।
तस्मात् त्वमपि दैत्येन्द्र व्रतमेतत् समाचर॥ ४३

पिप्पलाद उवाच

इत्येवमुक्त्वा भृगुनन्दनोऽपि
जगाम दैत्यश्च चकार सर्वम्।

सात वस्त्रोंसे युक्त धान्यराशि भी प्रस्तुत कर दे। फिर अँगूठेके बराबर लम्बाई-चौड़ाईवाली एक पुरुषाकार मूर्ति बनवाये, जो चार बड़ी भुजाओंसे संयुक्त हो। उसे गुड़के ऊपर रखे हुए स्वर्णमय पात्रमें स्थापित कर दे और उसके निकट घी भी प्रस्तुत कर दे। तत्पश्चात् मूर्तिसहित ये सारी वस्तुएँ ऐसे सुपात्र ब्राह्मणको दान करनी चाहिये, जो सामवेदके स्वर एवं अर्थका ज्ञाता, जितेन्द्रिय, सुशील, कुलीन और विशाल कुटुम्बवाला हो। दाम्भिकको कभी दान नहीं देना चाहिये। उस समय भक्तिपूर्वक हाथ जोड़कर वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण करते हुए ऐसे द्विजवरको सारा सामान समर्पित कर दे। (उस मन्त्रका भाव इस प्रकार है—) 'महातेजस्वी भूमिपुत्र! आप पिनाकधारी भगवान् शिवके स्वेदबिन्दुसे उद्भूत हुए हैं। मैं सौन्दर्यका अभिलाषी होकर आपकी शरणमें आया हूँ। आपको मेरा नमस्कार है। आप मेरे द्वारा दिया हुआ अर्घ्य ग्रहण कीजिये।' इस मन्त्रके उच्चारणपूर्वक लाल चन्दनमिश्रित जलसे अर्घ्य देनेके पश्चात् लाल पुष्पोंकी माला और लाल रंगके वस्त्र आदि उपकरणोंसे उन द्विजवरकी अर्चना करे और इसी मन्त्रको पढ़कर गौ एवं वृषभसहित मंगलकी स्वर्णमयी मूर्तिको उन्हें दान कर दे। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार समस्त उपकरणोंसे युक्त शय्याका भी दान करना चाहिये। साथ ही दाताको लोकमें जो-जो वस्तुएँ अधिक इष्ट हों तथा अपने घरमें भी जो अधिक प्रिय हों, उन सबको अक्षयरूपमें प्राप्त करनेकी अभिलाषासे गुणवान् (ब्राह्मण)-को देना चाहिये। तदनन्तर उन द्विजश्रेष्ठकी प्रदक्षिणा करके उन्हें विदा कर दे तथा स्वयं रातमें एक बार क्षारनमकरहित एवं घृतयुक्त अन्नका भोजन करे। इस प्रकार जो मनुष्य भक्तिपूर्वक पुनः इस अङ्गारक-व्रतका आठ अथवा चार बार अनुष्ठान करता है, उसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। वह मनुष्य प्रत्येक जन्ममें सुन्दरता और सौभाग्यसे सम्पन्न होकर विष्णु अथवा शिवकी भक्तिमें लीन होता है और सातों द्वीपोंका अधीश्वर हो जाता है तथा सात हजार कल्पोंतक रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसलिये दैत्येन्द्र! तुम भी इस व्रतका अनुष्ठान करो॥ २७—४३॥

पिप्पलादने कहा—राजन्! इस प्रकार व्रतका विधान बतलाकर शुक्राचार्य चले गये। तत्पश्चात् दैत्य विरोचनने पूरी विधिके साथ उस व्रतका अनुष्ठान किया।

त्वं चापि राजन् कुरु सर्वमेतद्
यतोऽक्षयं वेदविदो वदन्ति॥ ४४

इसलिये आप भी इन सारे विधानोंके साथ इस व्रतका अनुष्ठान कीजिये; क्योंकि वेदवेत्तालोग इसका फल अक्षय बतलाते हैं॥ ४४॥

ईश्वर उवाच

तथेति सम्पूज्य स पिप्पलादं
वाक्यं चकाराद्भुतवीर्यकर्मा।
शृणोति यश्चैनमनन्यचेता-
स्तस्यापि सिद्धिं भगवान् विधत्ते॥ ४५

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! तब अद्भुत पराक्रमपूर्ण कर्मोंको करनेवाले युधिष्ठिरने '**तथेति**—ऐसा ही करूँगा'—कहकर महर्षि पिप्पलादकी विधिवत् पूजा की और उनके वचनोंका पालन किया। जो मनुष्य अनन्यचित्तसे इस व्रत-विधानका श्रवण करता है, भगवान् उसकी सिद्धिका भी विधान करते हैं॥ ४५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽङ्गारकव्रतं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अङ्गारक-व्रत नामक बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७२॥

तिहत्तरवाँ अध्याय

शुक्र और गुरुकी पूजा-विधि

पिप्पलाद उवाच

अथातः शृणु भूपाल प्रतिशुक्रं प्रशान्तये।
यात्रारम्भेऽवसाने च तथा शुक्रोदये त्विह॥ १
राजते वाथ सौवर्णे कांस्यपात्रेऽथवा पुनः।
शुक्लपुष्पाम्बरयुते सिततण्डुलपूरिते॥ २
विधाय राजतं शुक्रं शुचिमुक्ताफलान्वितम्।
मन्त्रेणानेन तत् सर्वं सामगाय निवेदयेत्॥ ३
नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन।
कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥ ४
एवमस्योदये कुर्वन् यात्रादिषु च भारत।
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते॥ ५

पिप्पलादने कहा—भूपाल! अब मैं विपरीत शुक्रकी* शान्तिके लिये विधान बतला रहा हूँ, सुनिये। इस लोकमें शुक्रके उदयकालमें यात्राके आरम्भ अथवा समाप्तिके अवसरपर शुक्रकी एक चाँदीकी मूर्ति बनवाये, उसे श्वेत मुक्ताफल (मोती)-के साथ श्वेत चावलसे परिपूर्ण सुवर्ण, चाँदी अथवा काँसेके पात्रके ऊपर स्थापित करके श्वेत पुष्प और श्वेत वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर इस वक्ष्यमाण मन्त्रका उच्चारण कर वह सारा सामान सामवेदके ज्ञाता (सस्वर गान करनेवाले) ब्राह्मणको निवेदित कर दे। (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सम्पूर्ण लोकोंके अधीश्वर! आपको नमस्कार है। भृगुनन्दन! आपको प्रणाम है। कवे! मैं आपको अभिवादन करता हूँ। आप मेरी समस्त कामनाओंकी पूर्तिके लिये यह अर्घ्य ग्रहण करें।' भारत! जो मनुष्य शुक्रके विपरीत रहनेपर यात्रा आदि कार्योंमें इस प्रकार विधान करता है, वह समस्त कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और अन्तमें

* ज्योतिष्प्रकाश, रत्नमाला, गर्गसंहिता आदिमें शुक्रके सामने यात्रा अत्यन्त हानिकर कही गयी है। ज्योतिर्निबन्ध आदिमें प्रतिकूल शुक्र-शान्तिके लिये कई श्रेष्ठ स्तोत्र तथा 'रेवतीसे कृत्तिका'-तकमें उन्हें अन्धा बतलाकर यात्रा-विधान निर्दिष्ट है। वहाँ 'मत्स्यपुराण'के ही नामसे—'चतुःशालं चतुर्द्वारम्' आदि श्लोकको उद्धृत कर चार दरवाजेके मकानोंमें शुक्रदोष नहीं माना गया है। सम्भवतः वे श्लोक पहले मत्स्यपुराणमें यहाँ प्राप्त थे। ज्योतिर्निबन्धकी विषयवस्तु इससे बहुधा मिलती है। वहाँ १०वें श्लोकमें इसी प्रकार अर्घ्यदानकी बात आयी है।

यावच्छुक्रस्य न कृता पूजा समाल्यकैः शुभैः।
वटकैः पूरिकाभिश्च गोधूमैश्चणकैरपि।
तावदन्नं न चाश्नीयात् त्रिभिः कामार्थसिद्धये॥ ६

तद्वद् वाचस्पतेः पूजां प्रवक्ष्यामि युधिष्ठिर।
सुवर्णपात्रे सौवर्णममरेशपुरोहितम्॥ ७

पीतपुष्पाम्बरयुतं कृत्वा स्नात्वाथ सर्षपैः।
पलाशाश्वत्थयोगेन पञ्चगव्यजलेन च॥ ८

पीताङ्गरागवसनो घृतहोमं तु कारयेत्।
प्रणम्य च गवा सार्धं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ९

नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पते च बृहस्पते।
क्रूरग्रहैः पीडितानाममृताय नमो नमः॥ १०

संक्रान्तावस्य कौन्तेय यात्रास्वभ्युदयेषु च।
कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते॥ ११

विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। शुक्रकी वह पूजा जबतक माङ्गलिक पुष्पमाला, बड़ा, पूरी, गेहूँ और चनाद्वारा सम्पन्न न कर ली जाय, तबतक धर्म, अर्थ और कामकी अभिलाषा रखनेवाले व्रतीको अपनी मनोरथ-सिद्धिके लिये भोजन नहीं करना चाहिये॥ १—६॥

युधिष्ठिर! इसी प्रकार मैं बृहस्पतिकी भी पूजा-विधि बतला रहा हूँ। व्रतीको चाहिये कि वह सरसों, पलाश, पीपल और पञ्चगव्यसे युक्त जलसे स्नान करे, पीला वस्त्र पहनकर शरीरमें पीला अङ्गराग, चन्दन आदिका अनुलेप करे और ब्राह्मणद्वारा घीका हवन करावे। तत्पश्चात् मूर्तिको प्रणाम करके गौसहित उसे ब्राह्मणको दान कर दे। (उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'वाणीके अधीश्वर! आप अङ्गिरा-वंशियोंके स्वामी हैं। बृहस्पते! क्रूर ग्रहोंसे पीड़ित प्राणियोंके लिये आप अमृततुल्य फलदाता हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है।' कुन्तीनन्दन! सूर्यकी संक्रान्तिके दिन, यात्राओंमें तथा अन्यान्य आभ्युदयिक कार्योंके अवसरपर बृहस्पतिकी पूजा करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है॥ ७—११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे गुरुशुक्रपूजाविधिर्नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शुक्र-गुरु-पूजाविधि नामक तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७३॥

चौहत्तरवाँ अध्याय

कल्याणसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ब्रह्मोवाच

भगवन् भवसंसारसागरोत्तारकारक।
किञ्चिद् व्रतं समाचक्ष्व स्वर्गारोग्यसुखप्रदम्॥ १

ईश्वर उवाच

सौरं धर्मं प्रवक्ष्यामि नाम्ना कल्याणसप्तमीम्।
विशोकसप्तमीं तद्वत् फलाढ्यां पापनाशिनीम्॥ २
शर्करासप्तमीं पुण्यां तथा कमलसप्तमीम्।
मन्दारसप्तमीं तद्वच्छुभदां शुभसप्तमीम्॥ ३

ब्रह्माने पूछा—भगवन्! आप तो भवसागररूपी संसारसे उद्धार करनेवाले हैं, अतः कोई ऐसा व्रत बतलाइये जो स्वर्ग, नीरोगता और सुखका प्रदाता हो॥ १॥

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं सूर्यसे सम्बन्धित धर्म (व्रत)-का वर्णन कर रहा हूँ, जो लोकमें कल्याणसप्तमी, विशोकसप्तमी, पापनाशिनी फलसप्तमी, पुण्यदायिनी शर्करासप्तमी, कमलसप्तमी, मन्दारसप्तमी तथा मङ्गलप्रदायिनी शुभसप्तमीके नामसे प्रसिद्ध है।

सर्वानन्तफला: प्रोक्ता: सर्वा देवर्षिपूजिता:।
विधानमासां वक्ष्यामि यथावदनुपूर्वश:॥ ४

ये सभी सप्तमियाँ* देवर्षियोंद्वारा पूजित हैं तथा अनन्त फल देनेवाली कही गयी हैं। मैं इनके विधानको आनुपूर्वी यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ॥ २—४॥

यदा तु शुक्लसप्तम्यामादित्यस्य दिनं भवेत्।
सा तु कल्याणिनी नाम विजया च निगद्यते॥ ५
प्रातर्गव्येन पयसा स्नानमस्यां समाचरेत्।
तत: शुक्लाम्बर: पद्ममक्षताभि: प्रकल्पयेत्॥ ६
प्राङ्मुखोऽष्टदलं मध्ये तद्वद् वृत्तां च कर्णिकाम्।
पुष्पाक्षतैश्च देवेशं विन्यसेत् सर्वत: क्रमात्॥ ७
पूर्वेण तपनायेति मार्तण्डायेति चानले।
याम्ये दिवाकरायेति विधात्र इति नैर्ऋते॥ ८
पश्चिमे वरुणायेति भास्करायेति चानिले।
सौम्ये विकर्तनायेति रवये चाष्टमे दले॥ ९
आदावन्ते च मध्ये च नमोऽस्तु परमात्मने।
मन्त्रैरेभि: समभ्यर्च्य नमस्कारान्तदीपितै:॥ १०
शुक्लवस्त्रै: फलैर्भक्ष्यैर्धूपमाल्यानुलेपनै:।
स्थण्डिले पूजयेद् भक्त्या गुडेन लवणेन च॥ ११
ततो व्याहृतिमन्त्रेण विसृजे द्विजपुङ्गवान्।
शक्तित: पूजयेद् भक्त्या गुडक्षीरघृतादिभि:।
तिलपात्रं हिरण्यं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १२
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानव:।
कृतस्नानजपो विप्रै: सहैव घृतपायसम्॥ १३
भुक्त्वा च वेदविदुषे विडालव्रतवर्जिते।
घृतपात्रं सकनकं सोदकुम्भं निवेदयेत्॥ १४
प्रीयतामत्र भगवान् परमात्मा दिवाकर:।
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि व्रतं चरेत्॥ १५
ततस्त्रयोदशे मासि गा वै दद्यात् त्रयोदश।
वस्त्रालंकारसंयुक्ता: सुवर्णास्या: पयस्विनी:॥ १६
एकामपि प्रदद्याद् वा वित्तहीनो विमत्सर:।
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत यतो मोहात् पतत्यध:॥ १७

जब शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको रविवार पड़ जाय तो उस सप्तमीको कल्याणिनी (नामसे) कहा जाता है। उसीका दूसरा नाम विजया भी है। व्रतीको चाहिये कि वह उस दिन प्रात:काल उठकर गोदुग्धयुक्त जलसे स्नान करनेके पश्चात् श्वेत वस्त्र धारण करे। फिर पूर्वाभिमुख हो चावलोंद्वारा अष्टदल कमल बनावे। उसके मध्यभागमें उसी आकारवाली कर्णिकाकी भी रचना करे। तत्पश्चात् पुष्प और अक्षतद्वारा क्रमश: सब ओर देवेश्वर सूर्यकी स्थापना करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे— '**तपनाय नम:**' से पूर्वदलपर, '**मार्तण्डाय नम:**' से अग्निकोणस्थित दलपर, '**दिवाकराय नम:**' से दक्षिणदलपर, '**विधात्रे नम:**' से नैर्ऋत्यकोणके दलपर, '**वरुणाय नम:**' से पश्चिमदलपर, '**भास्कराय नम:**' से वायव्यकोणवाले दलपर, '**विकर्तनाय नम:**' से उत्तरदलपर, '**रवये नम:**' से ईशानकोणस्थित आठवें दलपर और '**परमात्मने नम:**' से आदि, मध्य और अन्तमें सूर्यका आवाहन करके स्थापित कर दे। फिर नमस्कारान्तसे सुशोभित इन मन्त्रोंका उच्चारण कर श्वेत वस्त्र, फल, नैवेद्य, धूप, पुष्पमाला और चन्दनसे भलीभाँति पूजन करे। वेदीपर भी व्याहृति-मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक गुड़ और नमकसे भक्तिपूर्वक पूजा करनेका विधान है। इसके बाद विसर्जन करना चाहिये। फिर अपनी शक्तिके अनुसार भक्तिपूर्वक गुड़, दूध और घी आदिके द्वारा श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करे और तिलसे भरा हुआ पात्र और सुवर्ण ब्राह्मणको दान कर दे। इस प्रकार विधानको पूरा करके व्रती मानव रात्रिमें शयन करे और प्रात:काल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्म पूरा करे। तत्पश्चात् उन ब्राह्मणोंके साथ ही घी और दूधसे बने हुए पदार्थोंका भोजन करे। अन्तमें विडालव्रत (छल-कपट)-से रहित वेदज्ञ ब्राह्मणको सुवर्णसहित घृतपूर्ण पात्र और जलसे भरा हुआ घट दान कर दे और उस समय इस प्रकार कहे—'मेरे इस व्रतसे परमात्मा भगवान् सूर्य प्रसन्न हों।' इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सभी व्रतोंका अनुष्ठान करना चाहिये। तदनन्तर तेरहवाँ महीना आनेपर तेरह गौ दान करनेका विधान है, जो सभी दुधारू हों, वस्त्र और अलंकार आदिसे सुसज्जित हों और जिनके मुखपर सोनेका पत्र लगा हुआ हो। यदि व्रती निर्धन हो तो वह अलंकाररहित होकर एक ही गौका दान करे, किंतु कृपणता न करे; क्योंकि मोहवश कंजूसी करनेसे अध:पतन हो जाता है॥ ५—१७॥

* प्राय: ये सभी सप्तमियाँ भविष्यपुराणमें अन्य कई अधिक सप्तमीव्रतोंके साथ उपदिष्ट हैं।

अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कल्याणसप्तमीम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते।
आयुरारोग्यमैश्वर्यमनन्तमिह जायते॥ १८

सर्वपापहरा नित्यं सर्वदैवतपूजिता।
सर्वदुष्टोपशमनी सदा कल्याणसप्तमी॥ १९

इमामनन्तफलदां यस्तु कल्याणसप्तमीम्।
शृणोति पठते चेह सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २०

जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार इस कल्याणसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस लोकमें भी उसे अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है; क्योंकि यह कल्याणसप्तमी सदा समस्त पापोंको हरनेवाली और सम्पूर्ण दुष्ट ग्रहोंका शमन करनेवाली है। सभी देवता नित्य इसकी पूजा करते हैं। जो मानव इस लोकमें इस अनन्त फलप्रदायिनी कल्याणसप्तमीकी चर्चा—कथाको सुनता अथवा पढ़ता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १८—२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्याणसप्तमीव्रतं नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कल्याणसप्तमी-व्रत नामक चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७४॥

पचहत्तरवाँ अध्याय

विशोकसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

विशोकसप्तमीं तद्वद् वक्ष्यामि मुनिपुङ्गव।
यामुपोष्य नरः शोकं न कदाचिदिहाश्नुते॥ १

माघे कृष्णतिलैः स्नात्वा षष्ठ्यां वै शुक्लपक्षतः।
कृताहारः कृसरया दन्तधावनपूर्वकम्।
उपवासव्रतं कृत्वा ब्रह्मचारी भवेन्निशि॥ २

ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः।
कृत्वा तु काञ्चनं पद्ममर्कायेति च पूजयेत्।
करवीरेण रक्तेन रक्तवस्त्रयुगेन च॥ ३

यथा विशोकं भुवनं त्वयैवादित्य सर्वदा।
तथा विशोकता मेऽस्तु त्वद्भक्तिः प्रतिजन्म च॥ ४

एवं सम्पूज्य षष्ठ्यां तु भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजान्।
सुप्त्वा सम्प्राश्य गोमूत्रमुत्थाय कृतनैत्यकः॥ ५

सम्पूज्य विप्रानन्नेन गुडपात्रसमन्वितम्।
तद्वस्त्रयुग्मं पद्मं च ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ६

ईश्वरने कहा—मुनिपुङ्गव! अब मैं उसी प्रकार विशोकसप्तमी-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ। जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य इस लोकमें कभी शोकको नहीं प्राप्त होता। व्रतीको चाहिये कि वह माघमासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिको दातूनसे दाँतोंको साफ करनेके बाद काले तिलमिश्रित जलसे स्नान करे और (तिल-चावलकी) खिचड़ीका भोजन करे। फिर उपवासका व्रत लेकर ब्रह्मचर्यपूर्वक रातमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर स्नान, जप आदि नित्यकर्म करके पवित्र हो ले, फिर स्वर्णनिर्मित कमलको स्थापित कर **'अर्काय नमः'**—इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए लाल कनेरके पुष्प और दो लाल रंगके वस्त्रोंद्वारा सूर्यकी पूजा करे और ऐसा कहे—'आदित्य! जैसे आपके द्वारा यह सारा जगत् सदा शोकरहित बना रहता है, उसी प्रकार मुझे भी प्रत्येक जन्ममें विशोकता और आपकी भक्ति प्राप्त हो।' इस प्रकार षष्ठी तिथिको भगवान् सूर्यकी पूजा कर ब्राह्मणोंका भी भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। फिर रात्रिमें गोमूत्रका प्राशन कर शयन करे और प्रातःकाल उठकर नित्यकर्मसे निवृत्त हो जाय। तत्पश्चात् अन्नद्वारा ब्राह्मणोंका पूजन करके दो वस्त्र और गुड़पूर्ण पात्रसहित वह स्वर्णमय कमल ब्राह्मणको निवेदित कर दे।

अतैललवणं भुक्त्वा सप्तम्यां मौनसंयुतः।
ततः पुराणश्रवणं कर्तव्यं भूतिमिच्छता॥ ७
अनेन विधिना सर्वमुभयोरपि पक्षयोः।
कृत्वा यावत् पुनर्माघशुक्लपक्षस्य सप्तमी॥ ८

स्वयं सप्तमीको तेल और नमकरहित अन्नका भोजन करके मौन धारण कर ले। वैभवकी इच्छा रखनेवाले व्रतीको उस दिन पुराणोंकी कथाएँ सुननी चाहिये। इस विधिसे दोनों पक्षोंमें सारा कार्य तबतक करते रहना चाहिये जबतक पुनः माघमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी न आ जाय॥ १—८॥

व्रतान्ते कलशं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्।
शय्यां सोपस्करां दद्यात् कपिलां च पयस्विनीम्॥ ९
अनेन विधिना यस्तु वित्तशाठ्यविवर्जितः।
विशोकसप्तमीं कुर्यात् स याति परमां गतिम्॥ १०
यावज्जन्मसहस्राणां साग्रं कोटिशतं भवेत्।
तावन्न शोकमभ्येति रोगदौर्गत्यवर्जितः॥ ११
यं यं प्रार्थयते कामं तं तमाप्नोति पुष्कलम्।
निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति॥ १२
यः पठेच्छृणुयाद् वापि विशोकाख्यां च सप्तमीम्।
सोऽपीन्द्रलोकमाप्नोति न दुःखी जायते क्वचित्॥ १३

व्रतके अन्तमें स्वर्णनिर्मित कमलसमेत कलश, समस्त उपकरणोंसहित शय्या और दुधारू कपिला गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य कृपणता छोड़कर उपर्युक्त विधिके अनुसार विशोकसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह परमगतिको प्राप्त होता है तथा करोड़ों जन्मतक उसे शोककी प्राप्ति नहीं होती। वह रोग और दुर्गतिसे रहित हो जाता है तथा जिस-जिस मनोरथकी प्रार्थना करता है, उसे-उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त करता है। जो व्रती निष्कामभावसे अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त होता है। जो मनुष्य इस विशोकसप्तमी-व्रतकी कथा या विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी इस लोकमें कभी दुःखी नहीं होता और अन्तमें इन्द्रलोकको प्राप्त होता है॥ ९—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकसप्तमीव्रतं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकसप्तमी-व्रत नामक पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७५॥



छिहत्तरवाँ अध्याय

फलसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अन्यामपि प्रवक्ष्यामि नाम्ना तु फलसप्तमीम्।
यामुपोष्य नरः पापाद् विमुक्तः स्वर्गभाग् भवेत्॥ १
मार्गशीर्षे शुभे मासि सप्तम्यां नियतव्रतः।
तामुपोष्याथ कमलं कारयित्वा तु काञ्चनम्॥ २
शर्करासंयुतं दद्याद् ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
रविं काञ्चनकं कृत्वा पलस्यैकस्य धर्मवित्।
दद्याद् द्विकालवेलायां भानुर्मे प्रीयतामिति॥ ३
भक्त्या तु विप्रान् सम्पूज्य चाष्टम्यां क्षीरभोजनम्।
दत्त्वा कुर्यात् फलयुतं यावत् स्यात् कृष्णसप्तमी॥ ४

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं फलसप्तमी नामक एक अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य पापोंसे विमुक्त हो स्वर्गभागी हो जाता है। व्रतनिष्ठ मनुष्यको चाहिये कि वह मार्गशीर्ष नामक शुभ मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको सोनेका एक कमल बनवाये और उस दिन उपवास कर उसे शक्करसमेत कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर दे। इसी प्रकार धर्मवेत्ता व्रती एक पल सोनेकी सूर्यकी मूर्ति बनवाकर उसे सायंकालके समय 'भगवान् सूर्य मुझपर प्रसन्न हों'—यों कहकर ब्राह्मणको दान करे। फिर अष्टमीके दिन ब्राह्मणोंको फलसहित दूधसे बने हुए अन्नका भोजन कराकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा करे। ऐसा तबतक करते रहना चाहिये जबतक पुनः

तामप्युपोष्य विधिवदनेनैव क्रमेण तु।
तद्वद्धेमफलं दत्त्वा सुवर्णकमलान्वितम्॥ ५
शर्करापात्रसंयुक्तं वस्त्रमाल्यसमन्वितम्।
संवत्सरं च तेनैव विधिनोभयसप्तमीम्॥ ६
उपोष्य दत्त्वा क्रमशः सूर्यमन्त्रमुदीरयेत्।
भानुरर्को रविर्ब्रह्मा सूर्यः शक्रो हरिः शिवः।
श्रीमान् विभावसुस्त्वष्टा वरुणः प्रीयतामिति॥ ७
प्रतिमासं च सप्तम्यामेकैकं नाम कीर्तयेत्।
प्रतिपक्षं फलत्यागमेतत् कुर्वन् समाचरेत्॥ ८

कृष्णपक्षकी सप्तमी न आ जाय। उस दिन भी उसी क्रमसे विधिपूर्वक उपवास करके स्वर्णमय कमलके साथ स्वर्णनिर्मित फलका दान करना चाहिये। उसके साथ शक्करसे भरा हुआ पात्र, वस्त्र और पुष्पमाला भी होना आवश्यक है। इस प्रकार एक वर्षतक दोनों पक्षोंकी सप्तमीके दिन उपवास और दान कर क्रमशः सूर्य-मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। भानु, अर्क, रवि, ब्रह्मा, सूर्य, शक्र, हरि, शिव, श्रीमान्, विभावसु, त्वष्टा और वरुण—ये मुझपर प्रसन्न हों। मार्गशीर्षसे प्रारम्भ कर प्रत्येक मासकी सप्तमी तिथिको उपर्युक्त नामोंमें क्रमशः एक-एकका कीर्तन करना चाहिये। प्रत्येक पक्षमें फलदान करनेका भी विधान है। इस प्रकार सारा कार्य करते हुए व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये॥ १—८॥

व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूजयेद् वस्त्रभूषणैः।
शर्कराकलशं दद्याद्धेमपद्मदलान्वितम्॥ ९
यथा न विफलाः कामास्त्वद्भक्तानां सदा रवे।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु मे सप्तजन्मसु॥ १०
इमामनन्तफलदां यः कुर्यात् फलसप्तमीम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा सूर्यलोके महीयते॥ ११
सुरापानादिकं किञ्चिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्।
तत् सर्वं नाशमायाति यः कुर्यात् फलसप्तमीम्॥ १२
कुर्वाणः सप्तमीं चेमां सततं रोगवर्जितः।
भूतान् भव्यांश्च पुरुषांस्तारयेदेकविंशतिम्।
यः शृणोति पठेद् वापि सोऽपि कल्याणभाग् भवेत्॥ १३

व्रतकी समाप्तिपर वस्त्र और आभूषण आदिद्वारा सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करे और स्वर्णमय कमलसहित शक्करसे भरा हुआ कलश दान करे। उस समय ऐसा कहे—'सूर्यदेव! जिस प्रकार आपके भक्तोंकी कामनाएँ कभी विफल नहीं होतीं, उसी प्रकार मुझे भी सात जन्मोंतक अनन्त फलकी प्राप्ति होती रहे।' जो मनुष्य इस अनन्त फलदायिनी फलसप्तमीका व्रत करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। फलसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यद्वारा इस लोकमें अथवा परलोकमें मद्यपान आदि जो कुछ भी दुष्कर्म किया गया है, वह सारा-का-सारा विनष्ट हो जाता है। इस फलसप्तमी- व्रतका* निरन्तर अनुष्ठान करनेवाले मनुष्यके पास रोग नहीं फटकते और वह अपनी भूत एवं भविष्यकी इक्कीस पीढ़ियोंको तार देता है। जो इस व्रत-विधानको सुनता अथवा पढ़ता है, वह भी कल्याणभागी हो जाता है॥ ९—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे फलसप्तमीव्रतं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः॥ ७६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें फलसप्तमी-व्रत नामक छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७६॥

---

* 'व्रतकल्पद्रुम'में इसके अतिरिक्त दो और भिन्न फलसप्तमियाँ निर्दिष्ट हुई हैं।

सतहत्तरवाँ अध्याय

शर्करासप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

शर्करासप्तमीं वक्ष्ये तद्वत् कल्मषनाशिनीम्।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं ययानन्तं प्रजायते॥ १
माधवस्य सिते पक्षे सप्तम्यां नियतव्रतः।
प्रातः स्नात्वा तिलैः शुक्लैः शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ २
स्थण्डिले पद्ममालिख्य कुङ्कुमेन सकर्णिकम्।
तस्मिन् नमः सवित्रे तु गन्धधूपौ निवेदयेत्॥ ३
स्थापयेदुदकुम्भं च शर्करापात्रसंयुतम्।
शुक्लवस्त्रैरलङ्कृत्य शुक्लमाल्यानुलेपनैः।
सुवर्णेन समायुक्तं मन्त्रेणानेन पूजयेत्॥ ४
विश्ववेदमयो यस्माद् वेदवादीति पठ्यसे।
त्वमेवामृतसर्वस्वमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ५
पञ्चगव्यं ततः पीत्वा स्वपेत् तत्पार्श्वतः क्षितौ।
सौरसूक्तं जपंस्तिष्ठेत् पुराणश्रवणेन वा॥ ६
अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां कृतनैत्यकः।
तत् सर्वं वेद विदुषे ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ ७
भोजयेच्छक्तितो विप्राञ् शर्कराघृतपायसैः।
भुञ्जीतातैललवणं स्वयमप्यथ वाग्यतः॥ ८
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्।
संवत्सरान्ते शयनं शर्कराकलशान्वितम्॥ ९
सर्वोपस्करसंयुक्तं तथैकां गां पयस्विनीम्।
गृहं च शक्तिमान् दद्यात् समस्तोपस्करान्वितम्॥ १०
सहस्रेणाथ निष्काणां कृत्वा दद्याच्छतेन वा।
दशभिर्वाथ निष्केण तदर्धेनापि शक्तितः॥ ११

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं उसी प्रकार पापनाशिनी शर्करासप्तमीका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्यको अनन्त आयु, आरोग्य और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है। व्रतनिष्ठ पुरुष वैशाखमासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको प्रातःकाल श्वेत तिलोंसे युक्त जलसे स्नान करके श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत चन्दन धारण कर ले। फिर वेदीपर कुङ्कुमसे कर्णिकासहित कमलका चित्र बनावे। उसपर **'सवित्रे नमः'** कहकर गन्ध और धूप निवेदित करे। फिर उसपर शक्करसे परिपूर्ण पात्रसहित जलपूर्ण कलश स्थापित करे, उसपर स्वर्णमयी मूर्ति रख दे और उसे श्वेत वस्त्रसे सुशोभित करके श्वेत पुष्पमाला और चन्दनद्वारा वक्ष्यमाण-मन्त्रके उच्चारणपूर्वक पूजन करे। (वह मन्त्र इस प्रकार है—) 'सूर्यदेव! विश्व और वेद आपके स्वरूप हैं, आप वेदवादी कहे जाते हैं और सभी प्राणियोंके लिये अमृततुल्य फलदायक हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान कीजिये।' तत्पश्चात् पञ्चगव्य पान कर उसी कलशके पार्श्वभागमें भूमिपर शयन करे। उस समय सूर्यसूक्तका जप* अथवा पुराणका श्रवण करते रहना चाहिये। इस प्रकार दिन-रात बीत जानेपर अष्टमीके दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर पहलेकी तरह वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको शक्कर, घी और दूधसे बने हुए पदार्थ भोजन करावे और स्वयं भी मौन रहकर तेल और नमकसे रहित पदार्थोंका भोजन करे। इसी विधिसे प्रत्येक मासमें सारा कार्य करना चाहिये। एक वर्ष व्यतीत हो जानेपर शक्करसे पूर्ण कलशसमेत समग्र उपकरणोंसे युक्त शय्या तथा एक दुधारू गौ दान करनेका विधान है। व्रती यदि धन-सम्पत्तिसे युक्त हो तो उसे समस्त उपकरणोंसे युक्त गृहका भी दान करना चाहिये। तदनन्तर अपनी सामर्थ्यके अनुकूल एक हजार अथवा एक सौ अथवा पाँच निष्क (सोलह माशेका एक निष्क होता है जिसे दीनार भी कहते हैं।)

* ऋग्वेदके प्रथम मण्डलका ५० वाँ सूक्त सूर्यसूक्त है।

सुवर्णाश्वः प्रदातव्यः पूर्ववन्मन्त्रवादनम्।
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषं समश्नुते॥ १२

सोनेका एक घोड़ा बनवाकर पहलेकी ही भाँति मन्त्रोच्चारणपूर्वक दान करना चाहिये। इसमें कृपणता न करे, यदि करता है तो दोषभागी होना पड़ता है॥ १—१२॥

अमृतं पिबतो वक्त्रात् सूर्यस्यामृतबिन्दवः।
निष्पेतुर्ये धरण्यां ते शालिमुद्गेक्षवः स्मृताः॥ १३
शर्करा तु परा तस्मादिक्षुसारोऽमृतात्मवान्।
इष्टा रवेरतः पुण्या शर्करा हव्यकव्ययोः॥ १४
शर्करासप्तमी चेयं वाजिमेधफलप्रदा।
सर्वदुष्टप्रशमनी पुत्रपौत्रप्रवर्धिनी॥ १५
यः कुर्यात् परया भक्त्या स वै सद्गतिमाप्नुयात्।
कल्पमेकं वसेत् स्वर्गे ततो याति परं पदम्॥ १६
इदमनघं शृणोति यः स्मरेद् वा
परिपठतीह दिवाकरस्य लोके।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवै-
रमरवधूजनमालयाभिपूज्यः॥ १७

अमृत-पान करते समय सूर्यके मुखसे जो अमृतबिन्दु भूतलपर गिर पड़े थे, वे ही शालि (अगहनी धान), मूँग और ईख नामसे कहे जाते हैं। इनमें ईखका सारभूत शक्कर अमृततुल्य सुस्वादु है, इसलिये यह तीनोंमें श्रेष्ठ है। इसी कारण यह पुण्यवती शर्करा सूर्यके हव्य एवं कव्य—दोनों हवनीय पदार्थोंमें उन्हें अत्यन्त प्रिय है। यह शर्करासप्तमी अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायिनी, समस्त दुष्ट ग्रहोंको शान्त करनेवाली और पुत्र-पौत्रोंकी प्रवर्धिनी है। जो मानव उत्कृष्ट श्रद्धाके साथ इसका अनुष्ठान करता है, उसे सद्गतिकी प्राप्ति होती है। वह एक कल्पतक स्वर्गमें निवास कर अन्तमें परमपदको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस निष्पाप व्रतका श्रवण, स्मरण अथवा पाठ करता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। साथ ही जो इसका अनुष्ठान करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी देवगणों एवं देवाङ्गनाओंके समूहसे पूजित होता है॥ १३—१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शर्करासप्तमीव्रतं नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७७॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शर्करासप्तमी-व्रत नामक सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७७॥



अठहत्तरवाँ अध्याय

कमलसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तद्वत् कमलसप्तमीम्।
यस्याः संकीर्तनादेव तुष्यतीह दिवाकरः॥ १
वसन्तामलसप्तम्यां स्नातः सन् गौरसर्षपैः।
तिलपात्रे च सौवर्णं निधाय कमलं शुभम्॥ २
वस्त्रयुग्मावृतं कृत्वा गन्धपुष्पैः समर्चयेत्।
नमस्ते पद्महस्ताय नमस्ते विश्वधारिणे॥ ३
दिवाकर नमस्तुभ्यं प्रभाकर नमोऽस्तु ते।
ततो विकालवेलायामुदकुम्भसमन्वितम्॥ ४
विप्राय दद्यात् सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः।
शक्त्या च कपिलां दद्यादलङ्कृत्य विधानतः॥ ५

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! इसके बाद अब मैं कमलसप्तमी-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका नाम लेनेमात्रसे भी भगवान् सूर्यदेव प्रसन्न हो जाते हैं। व्रती मनुष्य वसन्त-ऋतुमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको पीली सरसोंयुक्त जलसे स्नान करके शुद्ध हो जाय और किसी तिलसे पूर्ण पात्रमें एक सुन्दर स्वर्णमय कमल स्थापित कर दे। फिर उसे दो वस्त्रोंसे आच्छादित कर गन्ध, पुष्प आदिद्वारा उसकी अर्चना करे। पूजनके समय '**पद्महस्ताय ते नमः**', '**विश्वधारिणे ते नमः**', '**दिवाकर तुभ्यं नमः**', '**प्रभाकर ते नमोऽस्तु**'—इन मन्त्रोंका उच्चारण (कर सूर्यको प्रणाम) करे। तदनन्तर सायंकाल वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषण आदिसे ब्राह्मणका पूजन कर उन्हें जलपूर्ण कलशसहित कमल दान कर दे। साथ ही एक कपिला गौको

अहोरात्रे गते पश्चादष्टम्यां भोजयेद् द्विजान्।
यथाशक्त्यथ भुञ्जीत मांसतैलविवर्जितम्॥ ६
अनेन विधिना शुक्लसप्तम्यां मासि मासि च।
सर्वं समाचरेद् भक्त्या वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ ७
व्रतान्ते शयनं दद्यात् सुवर्णकमलान्वितम्।
गां च दद्यात् स्वशक्त्या तु सुवर्णाढ्यां पयस्विनीम्॥ ८
भोजनासनदीपादीन् दद्यादिष्टानुपस्करान्।
अनेन विधिना यस्तु कुर्यात् कमलसप्तमीम्।
लक्ष्मीमनन्तामभ्येति सूर्यलोके महीयते॥ ९
कल्पे कल्पे ततो लोकान् सप्त गत्वा पृथक् पृथक्।
अप्सरोभिः परिवृतस्ततो याति परां गतिम्॥ १०
यः पश्यतीदं शृणुयाच्च मर्त्यः
पठेच्च भक्त्याथ मतिं ददाति।
सोऽप्यत्र लक्ष्मीमचलामवाप्य
गन्धर्वविद्याधरलोकभाक् स्यात्॥ ११

भी शक्तिके अनुसार विधिपूर्वक सुसज्जित करके दान करे। पुनः दिन-रात बीत जानेके बाद अष्टमी तिथिको अपनी सामर्थ्यके अनुसार ब्राह्मणोंको भोजन करावे। उसके बाद स्वयं भी मांस और तेलसे रहित अन्नका भोजन करे। प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमीको इसी विधिके अनुसार कंजूसी छोड़कर भक्तिपूर्वक सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये। (एक वर्ष पूर्ण होनेपर) व्रतकी समाप्तिके समय स्वर्णमय कमलके साथ एक शय्याका भी दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे सुसज्जित एक दुधारू गौ तथा भोजन, आसन, दीप आदि अभीष्ट सामग्रियोंके भी दान करनेका विधान है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार कमलसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे अनन्त लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है और वह सूर्यलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वह प्रत्येक कल्पमें अप्सराओंसे घिरा हुआ पृथक्-पृथक् सातों लोकोंमें भ्रमण करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस व्रतको देखता, सुनता, पढ़ता और इसे करनेके लिये सम्मति देता है, वह भी इस लोकमें अचल लक्ष्मीका उपभोग कर अन्तमें गन्धर्व-विद्याधरलोकका भागी होता है॥ १—११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कमलसप्तमीव्रतं नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥ ७८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कमलसप्तमी-व्रत नामक अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७८॥

उन्यासीवाँ अध्याय

मन्दारसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्।
सर्वकामप्रदां पुण्यां नाम्ना मन्दारसप्तमीम्॥ १
माघस्यामलपक्षे तु पञ्चम्यां लघुभुङ्नरः।
दन्तकाष्ठं ततः कृत्वा षष्ठीमुपवसेद् बुधः॥ २
विप्रान् सम्पूजयित्वा तु मन्दारं प्राशयेन्निशि।
ततः प्रभात उत्थाय कृत्वा स्नानं पुनर्द्विजान्॥ ३

ईश्वरने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं परम पुण्यप्रदायिनी मन्दारसप्तमीका वर्णन करता हूँ, जो समस्त पापोंकी विनाशिनी एवं सम्पूर्ण कामनाओंकी प्रदात्री है। बुद्धिमान् व्रतीको चाहिये कि वह माघमासमें शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको थोड़ा आहार करके (रात्रिमें शयन करे)। पुनः षष्ठी तिथिको प्रातःकाल दातून कर दिनभर उपवास करे। रातमें ब्राह्मणोंकी पूजा कर मन्दार-पुष्पका भक्षण करे और सो जाय। तत्पश्चात् सप्तमी* तिथिको प्रातःकाल उठकर स्नान आदि नित्यकर्म सम्पादन कर

* पद्म, वायव्यादि विविध माघमाहात्म्यों एवं 'व्रतराज' आदि व्रतनिबन्धोंमें इसी तिथिको अचलासप्तमी, रथसप्तमी, रथाङ्गसप्तमी, महासप्तमी आदि कहकर अन्य व्रत भी निर्दिष्ट हैं।

भोजयेच्छक्तितः कुर्यात् मन्दारकुसुमाष्टकम्।
सौवर्णं पुरुषं तद्वत् पद्महस्तं सुशोभनम्॥ ४

पद्मं कृष्णतिलैः कृत्वा ताम्रपात्रेऽष्टपत्रकम्।
हेममन्दारकुसुमैर्भास्करायेति पूर्वतः॥ ५

नमस्कारेण तद्वच्च सूर्यायेत्यानले दले।
दक्षिणे तद्वदर्काय तथार्यम्णेति नैर्ऋते॥ ६

पश्चिमे वेदधाम्ने च वायव्ये चण्डभानवे।
पूष्णेत्युत्तरतः पूज्यमानन्दायेत्यतः परम्॥ ७

कर्णिकायां च पुरुषं स्थाप्य सर्वात्मनेति च।
शुक्लवस्त्रैः समावेष्ट्य भक्ष्यैर्माल्यफलादिभिः॥ ८

अपनी शक्तिके अनुसार पुनः ब्राह्मणोंको भोजन करावे। तदनन्तर सोनेके आठ मन्दार-पुष्प और एक पुरुषाकार सुन्दर मूर्ति बनवाये, जिसके हाथमें कमल सुशोभित हो। पुनः ताँबेके पात्रमें काले तिलोंसे अष्टदल कमलकी रचना करे। तदनन्तर स्वर्णमय मन्दार-पुष्पोंद्वारा (कमलके आठों दलोंपर वक्ष्यमाण-मन्त्रोंका उच्चारण करके सूर्यका आवाहन करे। यथा—) '**भास्कराय नमः**'से पूर्वदलपर, '**सूर्याय नमः**'से अग्निकोणस्थित दलपर, '**अर्काय नमः**' से दक्षिणदलपर, '**अर्यम्णे नमः**' से नैर्ऋत्यकोणवाले दलपर, '**वेदधाम्ने नमः**' से पश्चिमदलपर, '**चण्डभानवे नमः**' से वायव्यकोणस्थित दलपर, '**पूष्णे नमः**' से उत्तरदलपर, उसके बाद '**आनन्दाय नमः**' से ईशानकोणवाले दलपर स्थापना करके कर्णिकाके मध्यमें '**सर्वात्मने नमः**' कहकर पुरुषाकार मूर्तिको स्थापित कर दे तथा उसे श्वेत वस्त्रोंसे ढँककर खाद्य पदार्थ (नैवेद्य), पुष्पमाला, फल आदिसे उसकी अर्चना करे॥ १—८॥

एवमभ्यर्च्य तत् सर्वं दद्याद् वेदविदे पुनः।
भुञ्जीतातैललवणं वाग्यतः प्राङ्मुखो गृही॥ ९

अनेन विधिना सर्वं सप्तम्यां मासि मासि च।
कुर्यात् संवत्सरं यावद् वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ १०

एतदेव व्रतान्ते तु निधाय कलशोपरि।
गोभिर्विभवतः सार्धं दातव्यं भूतिमिच्छता॥ ११

नमो मन्दारनाथाय मन्दारभवनाय च।
त्वं रवे तारयस्वास्मानस्मात् संसारसागरात्॥ १२

अनेन विधिना यस्तु कुर्यान्मन्दारसप्तमीम्।
विपाप्मा स सुखी मर्त्यः कल्पं च दिवि मोदते॥ १३

इमामघौघपटलभीषणध्वान्तदीपिकाम्।
गच्छन् संगृह्य संसारशर्वर्यां न स्खलेन्नरः॥ १४

मन्दारसप्तमीमेतामीप्सितार्थफलप्रदाम्।
यः पठेच्छृणुयाद् वापि सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ १५

इस प्रकार गृहस्थ व्रती उस मूर्तिका पूजन कर पुनः वह सारा सामान वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे और स्वयं पूर्वाभिमुख बैठकर मौन हो तेल और नमकरहित अन्नका भोजन करे। इस प्रकार एक वर्षतक प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको इसी विधिके अनुसार सारा कार्य सम्पन्न करनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। व्रतकी समाप्तिके समय वैभवकी अभिलाषा रखनेवाला व्रती उस मूर्तिको कलशके ऊपर रखकर अपनी धन-सम्पत्तिके अनुसार प्रस्तुत की गयी गौओंके साथ दान कर दे। (उस समय सूर्यभगवान्‌से यों प्रार्थना करे—) 'सूर्यदेव! आप मन्दारके स्वामी हैं और मन्दार आपका भवन है, आपको नमस्कार है। आप हमलोगोंका इस संसाररूपी सागरसे उद्धार कीजिये।' जो मानव उपर्युक्त विधिके अनुसार इस मन्दारसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पापरहित हो सुखपूर्वक एक कल्पतक स्वर्गमें आनन्दका उपभोग करता है। यह सप्तमी-व्रत पाप-समूहरूप परदेसे आच्छादित होनेके कारण प्रकट हुए भयंकर अन्धकारके लिये दीपकके समान है, जो मनुष्य इसे हाथमें लेकर संसाररूपी रात्रिमें यात्रा करता है, वह कहीं पथभ्रष्ट नहीं होता। जो मनुष्य अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली इस मन्दारसप्तमीके व्रतको पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ९—१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्दारसप्तमीव्रतं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः॥ ७९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्दारसप्तमी-व्रत नामक उन्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ७९॥

अस्सीवाँ अध्याय

शुभसप्तमी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

श्रीभगवानुवाच

अथान्यामपि वक्ष्यामि शोभनां शुभसप्तमीम्।
यामुपोष्य नरो रोगशोकदुःखैः प्रमुच्यते॥ १

पुण्ये चाश्वयुजे मासि कृतस्नानजपः शुचिः।
वाचयित्वा ततो विप्रानारभेच्छुभसप्तमीम्॥ २

कपिलां पूजयेद् भक्त्या गन्धमाल्यानुलेपनैः।
नमामि सूर्यसम्भूतामशेषभुवनालयाम्।
त्वामहं शुभकल्याणशरीरां सर्वसिद्धये॥ ३

अथ कृत्वा तिलप्रस्थं ताम्रपात्रेण संयुतम्।
काञ्चनं वृषभं तद्वद् गन्धमाल्यगुडान्वितम्॥ ४

फलैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्घृतपायससंयुतैः।
दद्याद् विकालवेलायामर्यमा प्रीयतामिति॥ ५

पञ्चगव्यं च सम्प्राश्य स्वपेद् भूमावसंस्तरे।
ततः प्रभाते संजाते भक्त्या सम्पूजयेद् द्विजान्॥ ६

अनेन विधिना दद्यान्मासि मासि सदा नरः।
वाससी वृषभं हैमं तद्वद् गां काञ्चनोद्भवाम्॥ ७

संवत्सरान्ते शयनमिक्षुदण्डगुडान्वितम्।
सोपधानकविश्रामं भाजनासनसंयुतम्॥ ८

ताम्रपात्रे तिलप्रस्थं सौवर्णं वृषभं तथा।
दद्याद् वेदविदे सर्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥ ९

अनेन विधिना विद्वान् कुर्याद् यः शुभसप्तमीम्।
तस्य श्रीर्विपुला कीर्तिर्भवेज्जन्मनि जन्मनि॥ १०

अप्सरोगणगन्धर्वैः पूज्यमानः सुरालये।
वसेद् गणाधिपो भूत्वा यावदाभूतसम्प्लवम्।
कल्पादाववतीर्णस्तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥ ११

श्रीभगवान्‌ने कहा—ब्रह्मन्! अब मैं एक अन्य सुन्दर शुभसप्तमी-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका अनुष्ठान करके मनुष्य रोग, शोक और दुःखसे मुक्त हो जाता है। पुण्यप्रद आश्विनमासमें (शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको) व्रती स्नान, जप आदि नित्यकर्म करके पवित्र हो जाय, तब ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर शुभसप्तमी-व्रत आरम्भ करे। उस समय सुगन्धित पदार्थ, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे भक्तिपूर्वक कपिला गौकी पूजा करके यों प्रार्थना करे—'देवि! आप सूर्यसे उत्पन्न हुई हैं और सम्पूर्ण लोकोंकी आश्रयभूता हैं तथा आपका शरीर सुशोभन मङ्गलोंसे युक्त है, आपको मैं समस्त सिद्धियोंकी प्राप्तिके निमित्त नमस्कार करता हूँ।' तदनन्तर एक ताँबेके पात्रमें एक सेर तिल भर दे और एक बड़े आसनपर स्वर्णमय वृषभको स्थापित कर उसकी चन्दन, माला, गुड़, फल, घी एवं दूधसे बने हुए नाना प्रकारके नैवेद्य आदिसे पूजा करे। फिर सायंकाल 'अर्यमा प्रसन्न हों' यों कहकर उसे दान कर दे। रातमें पञ्चगव्य खाकर बिना बिछावनके ही भूमिपर शयन करे। प्रातःकाल होनेपर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करे। व्रती मनुष्यको प्रत्येक मासमें सदा इसी विधिसे दो वस्त्र, स्वर्णमय बैल और स्वर्णनिर्मित गौका दान करना चाहिये। इस प्रकार वर्षकी समाप्तिमें विश्रामहेतु गद्दा, तकिया आदिसे युक्त एवं ईख, गुड़, बर्तन, आसन आदिसे सम्पन्न शय्या तथा एक सेर तिलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रके ऊपर स्थापित स्वर्णमय वृषभ आदि सारा उपकरण वेदज्ञ ब्राह्मणको दान कर दे और यों कहे—'विश्वात्मा मुझपर प्रसन्न हों'॥ १—९॥

जो विद्वान् पुरुष उपर्युक्त विधिके अनुसार इस शुभसप्तमी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे प्रत्येक जन्ममें विपुल लक्ष्मी और कीर्ति प्राप्त होती है। वह देवलोकमें गणाधीश्वर होकर अप्सराओं और गन्धर्वोंद्वारा पूजित होता हुआ प्रलयपर्यन्त निवास करता है। पुनः कल्पके

ब्रह्महत्यासहस्रस्य भ्रूणहत्याशतस्य च।
नाशायालमियं पुण्या पठ्यते शुभसप्तमी॥ १२
इमां पठेद् यः शृणुयान्मुहूर्तं
पश्येत् प्रसङ्गादपि दीयमानम्।
सोऽप्यत्र सर्वाघविमुक्तदेहः
प्राप्नोति विद्याधरनायकत्वम्॥ १३
यावत् समाः सप्त नरः करोति
यः सप्तमीं सप्तविधानयुक्ताम्।
स सप्तलोकाधिपतिः क्रमेण
भूत्वा पदं याति परं मुरारेः॥ १४

आदिमें उत्पन्न होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। यह पुण्यप्रद शुभसप्तमी एक हजार ब्रह्महत्या और एक सौ भ्रूणहत्याके पापोंका नाश करनेके लिये समर्थ कही जाती है। जो मनुष्य इस व्रत-विधिको पढ़ता अथवा दो घड़ीतक सुनता है तथा प्रसङ्गवश दिये जाते हुए दानको देखता है, वह भी इस लोकमें समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परलोकमें विद्याधरोंके अधिनायक-पदको प्राप्त करता है। जो मनुष्य उपर्युक्त सात विधानोंसे युक्त इस सप्तमी-व्रतका सात वर्षोंतक अनुष्ठान करता है, वह क्रमशः सातों लोकोंका अधिपति होकर अन्तमें भगवान् विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है॥ १०—१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शुभसप्तमीव्रतं नामाशीतितमोऽध्यायः॥ ८०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शुभसप्तमी-व्रत नामक अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८०॥

इक्यासीवाँ अध्याय

विशोकद्वादशी-व्रतकी विधि

मनुरुवाच

किमभीष्टवियोगशोकसंघा-
दलमुद्धर्तुमुपोषणं व्रतं वा।
विभवोद्भवकारि भूतलेऽस्मिन्
भवभीतेरपि सूदनं च पुंसः॥ १

मत्स्य उवाच

परिपृष्टमिदं जगत्प्रियं ते
विबुधानामपि दुर्लभं महत्त्वात्।
तव भक्तिमतस्तथापि वक्ष्ये
व्रतमिन्द्रासुरमानवेषु गुह्यम्॥ २
पुण्यमाश्वयुजे मासि विशोकद्वादशीव्रतम्।
दशम्यां लघुभुग्विद्वानारभेन्नियमेन तु॥ ३
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा दन्तधावनपूर्वकम्।
एकादश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य केशवम्।
श्रियं वाभ्यर्च्य विधिवद् भोक्ष्येऽहं चापरेऽहनि॥ ४

मनुने पूछा—भगवन्! इस भूतलपर कौन ऐसा उपवास या व्रत है, जो मनुष्यके अभीष्ट वस्तुओंके वियोगसे उत्पन्न शोकसमूहसे उद्धार करनेमें समर्थ, धन-सम्पत्तिकी वृद्धि करनेवाला और संसार-भयका नाशक है॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजर्षे! तुमने जिस व्रतके विषयमें प्रश्न किया है, यह समस्त जगत्को प्रिय तथा इतना महत्त्वशाली है कि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यद्यपि इन्द्र, असुर और मानव भी उसे नहीं जानते, तथापि तुम-जैसे भक्तिमान्के प्रति मैं अवश्य इसका वर्णन करूँगा। उस पुण्यप्रद व्रतका नाम विशोकद्वादशी-व्रत है। विद्वान् व्रतीको आश्विनमासमें दशमी तिथिको अल्प आहार करके नियमपूर्वक इस व्रतका आरम्भ करना चाहिये। पुनः एकादशीके दिन व्रती मानव उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर दातुन करे, फिर (स्नान आदिसे निवृत्त होकर) निराहार रहकर भगवान् केशव और लक्ष्मीकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करे और 'दूसरे दिन

एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः।
स्नानं सर्वौषधैः कुर्यात् पञ्चगव्यजलेन तु।
शुक्लमाल्याम्बरधरः पूजयेच्छ्रीशमुत्पलैः॥ ५
विशोकाय नमः पादौ जङ्घे च वरदाय वै।
श्रीशाय जानुनी तद्वदूरू च जलशायिने॥ ६
कन्दर्पाय नमो गुह्यं माधवाय नमः कटिम्।
दामोदरायेत्युदरं पार्श्वे च विपुलाय वै॥ ७
नाभिं च पद्मनाभाय हृदयं मन्मथाय वै।
श्रीधराय विभोर्वक्षः करौ मधुजिते नमः॥ ८
चक्रिणे वामबाहुं च दक्षिणं गदिने नमः।
वैकुण्ठाय नमः कण्ठमास्यं यज्ञमुखाय वै॥ ९
नासामशोकनिधये वासुदेवाय चक्षुषी।
ललाटं वामनायेति हरयेति पुनर्भ्रुवौ॥ १०
अलकान् माधवायेति किरीटं विश्वरूपिणे।
नमः सर्वात्मने तद्वच्छिर इत्यभिपूजयेत्॥ ११
एवं सम्पूज्य गोविन्दं फलमाल्यानुलेपनैः।
ततस्तु मण्डलं कृत्वा स्थण्डिलं कारयेन्मुदा॥ १२
चतुरस्त्रं समन्ताच्च रत्निमात्रमुदक्प्लवम्।
श्लक्ष्णं हृद्यं च परितो वप्रत्रयसमावृतम्॥ १३
त्र्यङ्गुलेनोच्छ्रिता वप्रास्तद्विस्तारस्तु द्व्यङ्गुलः।
स्थण्डिलस्योपरिष्टाच्च भित्तिरष्टाङ्गुला भवेत्॥ १४
नदीवालुकया शूर्पे लक्ष्म्याः प्रतिकृतिं न्यसेत्।
स्थण्डिले शूर्पमारोप्य लक्ष्मीमित्यर्चयेद् बुधः॥ १५
नमो देव्यै नमः शान्त्यै नमो लक्ष्म्यै नमः श्रियै।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै वृष्ट्यै हृष्ट्यै नमो नमः॥ १६
विशोका दुःखनाशाय विशोका वरदास्तु मे।
विशोका चास्तु सम्पत्त्यै विशोका सर्वसिद्धये॥ १७
ततः शुक्लाम्बरैः शूर्पं वेष्ट्य सम्पूजयेत् फलैः।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् सुवर्णकमलेन च॥ १८
रजनीषु च सर्वासु पिबेद् दर्भोदकं बुधः।
ततस्तु गीतनृत्यादि कारयेत् सकलां निशाम्॥ १९

भोजन करूँगा'—ऐसा नियम लेकर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर सर्वौषधि और पञ्चगव्य मिले हुए जलसे स्नान करे तथा श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण करके भगवान् विष्णुकी कमल-पुष्पोंद्वारा पूजा करे। (पूजनकी विधि इस प्रकार है—) '**विशोकाय नमः**' से दोनों चरणोंका, '**वरदाय नमः**' से दोनों जङ्घाओंका, '**श्रीशाय नमः**'से दोनों जानुओंका, '**जलशायिने नमः**'से दोनों ऊरुओंका, '**कन्दर्पाय नमः**'से गुह्यप्रदेशका, '**माधवाय नमः**' से कटिप्रदेशका, '**दामोदराय नमः**' से उदरका, '**विपुलाय नमः**'से दोनों पार्श्वभागोंका, '**पद्मनाभाय नमः**' से नाभिका, '**मन्मथाय नमः**' से हृदयका, '**श्रीधराय नमः**' से विष्णुके वक्षःस्थलका, '**मधुजिते नमः**'से दोनों हाथोंका, '**चक्रिणे नमः**'से बायीं भुजाका, '**गदिने नमः**'से दाहिनी भुजाका, '**वैकुण्ठाय नमः**'से कण्ठका, '**यज्ञमुखाय नमः**'से मुखका, '**अशोकनिधये नमः**'से नासिकाका, '**वासुदेवाय नमः**'से दोनों नेत्रोंका, '**वामनाय नमः**' से ललाटका, '**हरये नमः**' से दोनों भौंहोंका, '**माधवाय नमः**' से बालोंका, '**विश्वरूपिणे नमः**' से किरीटका और '**सर्वात्मने नमः**' से सिरका पूजन करना चाहिये॥ २—११॥

इस प्रकार हर्षपूर्वक फल, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे भगवान् गोविन्दका पूजन करनेके पश्चात् मण्डल बनाकर वेदीका निर्माण कराये। वह वेदी बीस अंगुल लम्बी-चौड़ी, चारों ओरसे चौकोर, उत्तरकी ओर ढालू, चिकनी, सुन्दर और तीन ओर वप्र (परिधि)-से युक्त हो। वे वप्र तीन अङ्गुल ऊँचे और दो अङ्गुल चौड़े होने चाहिये। वेदीके ऊपर आठ अङ्गुलकी दीवाल बनायी जाय। तत्पश्चात् बुद्धिमान् व्रती सूपमें नदीकी बालुकासे लक्ष्मीकी मूर्ति अङ्कित करे और उस सूपको वेदीपर रखकर '**देव्यै नमः**', '**शान्त्यै नमः**', '**लक्ष्म्यै नमः**', '**श्रियै नमः**', '**पुष्ट्यै नमः**', '**तुष्ट्यै नमः**', '**वृष्ट्यै नमः**', '**हृष्ट्यै नमः**' के उच्चारणपूर्वक लक्ष्मीकी अर्चना करे और यों प्रार्थना करे—'विशोका (लक्ष्मीदेवी) मेरे दुःखोंका नाश करें, विशोका मेरे लिये वरदायिनी हों, विशोका मुझे धन-सम्पत्ति दें और विशोका मुझे सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करें।' तदनन्तर श्वेत वस्त्रोंसे सूपको परिवेष्टित कर नाना प्रकारके फलों, वस्त्रों और स्वर्णमय कमलसे लक्ष्मीकी पूजा करे। चतुर व्रती सभी रात्रियोंमें कुशोदक पान करे और सारी रात नाच-गान आदिका आयोजन

बयासीवाँ अध्याय

गुड-धेनुके[1] दानकी विधि और उसकी महिमा

मनुरुवाच

गुडधेनुविधानं मे समाचक्ष्व जगत्पते।
किं रूपं केन मन्त्रेण दातव्यं तदिहोच्यताम्॥ १

मत्स्य उवाच

गुडधेनुविधानस्य यद् रूपमिह यत् फलम्।
तदिदानीं प्रवक्ष्यामि सर्वपापविनाशनम्॥ २

कृष्णाजिनं चतुर्हस्तं प्राग्ग्रीवं विन्यसेद् भुवि।
गोमयेनानुलिप्तायां दर्भानास्तीर्य सर्वतः॥ ३

लघ्वेणकाजिनं तद्वद् वत्सं च परिकल्पयेत्।
प्राङ्मुखीं कल्पयेद् धेनुमुदक्पादां सवत्सकाम्॥ ४

उत्तमा गुडधेनुः स्यात् सदा भारचतुष्टयम्।
वत्सं भारेण कुर्वीत द्वाभ्यां वै मध्यमा स्मृता॥ ५

अर्धभारेण वत्सः स्यात् कनिष्ठा भारकेण तु।
चतुर्थांशेन वत्सः स्याद् गृहवित्तानुसारतः॥ ६

धेनुवत्सौ घृतास्यौ तौ सितसूक्ष्माम्बरावृतौ।
शुक्तिकर्णाविक्षुपादौ शुचिमुक्ताफलेक्षणौ॥ ७

सितसूत्रशिरालौ तौ सितकम्बलकम्बलौ।
ताम्रगण्डकपृष्ठौ तौ सितचामररोमकौ॥ ८

विद्रुमभ्रूयुगोपेतौ नवनीतस्तनावुभौ।
क्षौमपुच्छौ कांस्यदोहाविन्द्रनीलकतारकौ॥ ९

सुवर्णशृङ्गाभरणौ राजतैः खुरसंयुतौ।

मनुने पूछा—जगत्पते! अब आप मुझे (अभी विशोक द्वादशीके प्रसङ्गमें निर्दिष्ट) गुड-धेनुका विधान बतलाइये। साथ ही उस गुड-धेनुका कैसा रूप होता है और उसे किस मन्त्रका पाठ करके दान करना चाहिये—यह भी बतलानेकी कृपा कीजिये॥ १॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजर्षे! इस लोकमें गुड-धेनुके विधानका जो रूप है और उसका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, उसका मैं अब वर्णन कर रहा हूँ। वह समस्त पापोंका विनाशक है। गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर सब ओरसे कुश बिछाकर उसपर चार हाथ लम्बा काला मृगचर्म स्थापित कर दे, जिसका अग्रभाग पूर्व दिशाकी ओर हो। उसी प्रकार एक छोटे मृगचर्ममें बछड़ेकी कल्पना करके उसीके निकट रख दे। फिर उसमें पूर्व मुख और उत्तर पैरवाली सवत्सा गौकी कल्पना करनी चाहिये। चार भार[2] गुडसे बनी हुई गुड-धेनु सदा उत्तम मानी गयी है। उसका बछड़ा एक भार गुडका बनाना चाहिये। दो भार गुडकी बनी हुई धेनु मध्यम कही गयी है। उसका बछड़ा आधा भार गुडका होना चाहिये। एक भार गुडकी बनी धेनु कनिष्ठा होती है, उसका बछड़ा चौथाई भार गुडका बनता है। तात्पर्य यह है कि अपने गृहकी सम्पत्तिके अनुसार इस (गौ)-का निर्माण कराना चाहिये। इस प्रकार गौ और बछड़ेकी कल्पना करके उन्हें श्वेत एवं महीन वस्त्रसे आच्छादित कर दे। फिर घीसे उनके मुखकी, सीपसे कानोंकी, गन्नेसे पैरोंकी, श्वेत मोतीसे नेत्रोंकी, श्वेत सूतसे नाड़ियोंकी, श्वेत कम्बलसे गलकम्बलकी, लाल रंगके चिह्नसे पीठकी, श्वेत रंगके मृगपुच्छके बालोंसे रोएँकी, मूँगेसे दोनों भौंहोंकी, मक्खनसे दोनोंके स्तनोंकी, रेशमके धागेसे पूँछकी, काँसासे दोहनीकी, इन्द्रनीलमणिसे आँखोंकी तारिकाओंकी, सुवर्णसे सींगके

---

[1] यह अध्याय पद्मपु० १। २१, वराहपुराण १०२, कृत्यकल्पतरु ५, दानकाण्ड तथा दानमयूख, दानसागरादिमें विशेष शुद्धरूपसे उद्धृत है। तदनुसार इसे भी शुद्ध किया गया है।

[2] दो हजार पल अर्थात् तीन मनके वजनको 'भार' कहते हैं।

नानाफलसमायुक्तौ घ्राणगन्धकरण्डकौ।
इत्येवं रचयित्वा तौ धूपदीपैरथार्चयेत्॥ १०

आभूषणोंकी, चाँदीसे खुरोंकी और नाना प्रकारके फलोंसे नासापुटोंकी रचना कर धूप, दीप आदिद्वारा उनकी अर्चना करनेके पश्चात् यों प्रार्थना करे॥ २—१०॥

या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता।
धेनुरूपेण सा देवी मम शान्तिं प्रयच्छतु॥ ११

देहस्था या च रुद्राणी शंकरस्य सदा प्रिया।
धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु॥ १२

विष्णोर्वक्षसि या लक्ष्मीः स्वाहा या च विभावसोः।
चन्द्रार्कशक्रशक्तिर्या धेनुरूपास्तु सा श्रिये॥ १३

चतुर्मुखस्य या लक्ष्मीर्या लक्ष्मीर्धनदस्य च।
लक्ष्मीर्या लोकपालानां सा धेनुर्वरदास्तु मे॥ १४

स्वधा या पितृमुख्यानां स्वाहा यज्ञभुजां च या।
सर्वपापहरा धेनुस्तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ १५

एवमामन्त्र्य तां धेनुं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
विधानमेतद् धेनूनां सर्वासामभिपठ्यते॥ १६

'जो समस्त प्राणियों तथा देवताओंमें निवास करनेवाली लक्ष्मी हैं, धेनुरूपसे वही देवी मुझे शान्ति प्रदान करें। जो सदा शङ्करजीके वामाङ्गमें विराजमान रहती हैं तथा उनकी प्रिय पत्नी हैं, वे रुद्राणीदेवी धेनुरूपसे मेरे पापोंका विनाश करें। जो लक्ष्मी विष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान हैं, जो स्वाहारूपसे अग्निकी पत्नी हैं तथा जो चन्द्र, सूर्य और इन्द्रकी शक्तिरूपा हैं, वे ही धेनुरूपसे मेरे लिये सम्पत्तिदायिनी हों। जो ब्रह्माकी लक्ष्मी हैं, जो कुबेरकी लक्ष्मी हैं तथा जो लोकपालोंकी लक्ष्मी हैं, वे धेनुरूपसे मेरे लिये वरदायिनी हों। जो लक्ष्मी प्रधान पितरोंके लिये स्वधारूपा हैं, जो यज्ञभोजी अग्नियोंके लिये स्वाहारूपा हैं, समस्त पापोंको हरनेवाली वे ही धेनुरूपा हैं, अतः मुझे शान्ति प्रदान करें।' इस प्रकार उस गुड-धेनुको आमन्त्रित कर उसे ब्राह्मणको निवेदित कर दे। यही विधान घृत-तिल आदि सम्पूर्ण धेनुओंके दानके लिये कहा जाता है। नरेश्वर! अब जो दस पापविनाशिनी गौएँ बतलायी जाती हैं, उनका नाम और स्वरूप बतला रहा हूँ। पहली गुड-धेनु, दूसरी घृत-धेनु, तीसरी तिल-धेनु, चौथी जल-धेनु, पाँचवीं सुप्रसिद्ध क्षीर-धेनु, छठी मधु-धेनु, सातवीं शर्करा-धेनु, आठवीं दधि-धेनु, नवीं रस-धेनु और दसवीं स्वरूपतः प्रत्यक्ष धेनु है। द्रव (बहनेवाले) पदार्थोंसे बननेवाली गौओंका स्वरूप घट है और अद्रव पदार्थोंसे बननेवाली गौओंका उन-उन पदार्थोंकी राशि है। इस लोकमें कुछ मानव सुवर्ण-धेनुकी तथा अन्य महर्षिगण नवनीत (मक्खन) और रत्नोंसे भी गौकी रचनाकी इच्छा करते हैं। परंतु सभीके लिये यही विधान है और ये ही सामग्रियाँ भी हैं। सदा पर्व-पर्वपर अपनी श्रद्धाके अनुसार मन्त्रोच्चारणपूर्वक आवाहनसहित इन गौओंका दान करना चाहिये; क्योंकि ये सभी भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाली हैं॥ ११—२२॥

यास्ताः पापविनाशिन्यः पठ्यन्ते दश धेनवः।
तासां स्वरूपं वक्ष्यामि नामानि च नराधिप॥ १७

प्रथमा गुडधेनुः स्याद् घृतधेनुस्तथापरा।
तिलधेनुस्तृतीया तु चतुर्थी जलसंज्ञिता॥ १८

क्षीरधेनुश्च विख्याता मधुधेनुस्तथापरा।
सप्तमी शर्कराधेनुर्दधिधेनुस्तथाष्टमी।
रसधेनुश्च नवमी दशमी स्यात् स्वरूपतः॥ १९

कुम्भाः स्युर्द्रवधेनूनामितरासां तु राशयः।
सुवर्णधेनुमप्यत्र केचिदिच्छन्ति मानवाः॥ २०

नवनीतेन रत्नैश्च तथान्ये तु महर्षयः।
एतदेवं विधानं स्यात्त एवोपस्कराः स्मृताः॥ २१

मन्त्रावाहनसंयुक्ताः सदा पर्वणि पर्वणि।
यथाश्रद्धं प्रदातव्या भुक्तिमुक्तिफलप्रदाः॥ २२

गुडधेनुप्रसङ्गेन सर्वास्तावन्मयोदिताः।
अशेषयज्ञफलदाः सर्वाः पापहराः शुभाः॥ २३

इस प्रकार गुड-धेनुके वर्णन-प्रसङ्गसे मैंने सभी धेनुओंका वर्णन कर दिया। ये सभी सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाली, कल्याणकारिणी और पापहारिणी हैं। चूँकि इस लोकमें विशोकद्वादशी-व्रत सभी व्रतोंमें श्रेष्ठ माना गया है, इसलिये उसका अङ्ग होनेके कारण गुड-धेनु भी प्रशस्त मानी गयी है।

व्रतानामुत्तमं यस्माद् विशोकद्वादशीव्रतम्।
तदङ्गत्वेन चैवात्र गुडधेनुः प्रशस्यते॥ २४

अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपातेऽथवा पुनः।
गुडधेन्वादयो देयास्तूपरागादिपर्वसु॥ २५

उत्तरायण और दक्षिणायनके दिन, पुण्यप्रद विषुवयोग, व्यतीपातयोग अथवा सूर्य-चन्द्रके ग्रहण आदि पर्वोंपर इन गुड-धेनु आदि गौओंका दान करना चाहिये।

विशोकद्वादशी चैषा पुण्या पापहरा शुभा।
यामुपोष्य नरो याति तद् विष्णोः परमं पदम्॥ २६

इह लोके च सौभाग्यमायुरारोग्यमेव च।
वैष्णवं पुरमाप्नोति मरणे च स्मरन् हरिम्॥ २७

नवार्बुदसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्।
न शोकदुःखदौर्गत्यं तस्य संजायते नृप॥ २८

नारी वा कुरुते या तु विशोकद्वादशीव्रतम्।
नृत्यगीतपरा नित्यं सापि तत्फलमाप्नुयात्॥ २९

तस्मादग्रे हरेर्नित्यमनन्तं गीतवादनम्।
कर्तव्यं भूतिकामेन भक्त्या तु परया नृप॥ ३०

इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ्-
मधुमुरनरकारेरर्चनं यश्च पश्येत्।
मतिमपि च जनानां यो ददातीन्द्रलोके
वसति स बिबुधौघैः पूज्यते कल्पमेकम्॥ ३१

यह विशोकद्वादशी पुण्यदायिनी, पापहारिणी और मङ्गलकारिणी है। इसका व्रत करके मनुष्य विष्णुके परमपदको प्राप्त हो जाता है तथा इस लोकमें सौभाग्य, नीरोगता और दीर्घायुका उपभोग करके मरनेपर श्रीहरिका स्मरण करता हुआ विष्णुलोकको चला जाता है। धर्मज्ञ नरेश! उसे नौ अरब अठारह हजार वर्षोंतक शोक, दुःख और दुर्गतिकी प्राप्ति नहीं होती। अथवा जो स्त्री नित्य नाच-गानमें तत्पर रहकर इस विशोकद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करती है, उसे भी वही पूर्वोक्त फल प्राप्त होता है। राजन्! इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले पुरुषको उत्कृष्ट भक्तिके साथ श्रीहरिके समक्ष नित्य-निरन्तर गायन-वादनका आयोजन करना चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य इस व्रत-विधानको पढ़ता अथवा श्रवण करता है एवं मधु, मुर और नरक नामक राक्षसोंके शत्रु श्रीहरिके पूजनको भलीभाँति देखता है तथा वैसा करनेके लिये लोगोंको सम्मति देता है, वह इन्द्रलोकमें वास करता है और एक कल्पतक देवगणोंद्वारा पूजित होता है॥ २३—३१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विशोकद्वादशीव्रतं नाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः॥ ८२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विशोकद्वादशीव्रत नामक बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८२॥

तिरासीवाँ अध्याय

पर्वतदानके दस भेद, धान्यशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवञ् श्रोतुमिच्छामि दानमाहात्म्यमुत्तमम्।
यदक्षयं परे लोके देवर्षिगणपूजितम्॥ १

नारदजीने पूछा—भगवन्! अब मैं विविध दानोंके उत्तम माहात्म्यको श्रवण करना चाहता हूँ, जो देवगणों एवं ऋषिसमूहोंद्वारा पूजित और परलोकमें अक्षय फल देनेवाला है॥ १॥

उमापतिरुवाच

मेरोः प्रदानं वक्ष्यामि दशधा मुनिपुङ्गव।
यत्प्रदानान्नरो लोकानाप्नोति सुरपूजितान्॥ २

पुराणेषु च वेदेषु यज्ञेष्वायतनेषु च।
न तत्फलमधीतेषु कृतेष्विह यदश्नुते॥ ३

उमापतिने कहा—मुनिपुङ्गव! मैं मेरु-(पर्वत) दानके दस भेदोंको बतला रहा हूँ। जिनका दान करनेसे मनुष्य देवपूजित लोकोंको प्राप्त करता है। उसे इस लोकमें जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह वेदों और पुराणोंके अध्ययनसे, यज्ञानुष्ठानसे और देव-मन्दिर आदिके

तस्माद् विधानं वक्ष्यामि पर्वतानामनुक्रमात्।
प्रथमो धान्यशैल: स्याद् द्वितीयो लवणाचल:॥ ४
गुडाचलस्तृतीयस्तु चतुर्थो हेमपर्वत:।
पञ्चमस्तिलशैल: स्यात् षष्ठ: कार्पासपर्वत:॥ ५
सप्तमो घृतशैलश्च रत्नशैलस्तथाष्टम:।
राजतो नवमस्तद्वद् दशम: शर्कराचल:॥ ६
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वश:।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये॥ ७
शुक्लपक्षे तृतीयायामुपरागे शशिक्षये।
विवाहोत्सवयज्ञेषु द्वादश्यामथ वा पुन:॥ ८
शुक्लायां पञ्चदश्यां वा पुण्यर्क्षे वा विधानत:।
धान्यशैलादयो देया यथाशास्त्रं विजानता॥ ९
तीर्थेष्वायतने वापि गोष्ठे वा भवनाङ्गणे।
मण्डपं कारयेद् भक्त्या चतुरस्रमुदङ्मुखम्।
प्रागुदक्प्रवणं तद्वत् प्राङ्मुखं च विधानत:॥ १०
गोमयेनानुलिप्तायां भूमावास्तीर्य वै कुशान्।
तन्मध्ये पर्वतं कुर्याद् विष्कम्भपर्वतान्वितम्॥ ११
धान्यद्रोणसहस्रेण भवेद् गिरिरिहोत्तम:।
मध्यम: पञ्चशतिक: कनिष्ठ: स्यात् त्रिभि: शतै:॥ १२
मेरुर्महाव्रीहिमयस्तु मध्ये
सुवर्णवृक्षत्रयसंयुत: स्यात्।
पूर्वेण मुक्ताफलवज्रयुक्तो
याम्येन गोमेदकपुष्परागै:॥ १३
पश्चाच्च गारुत्मतनीलरत्नै:
सौम्येन वैदूर्यसरोजरागै:।
श्रीखण्डखण्डैरभित: प्रवालै-
र्लतान्वित: शुक्तिशिलातल: स्यात्॥ १४
ब्रह्माथ विष्णुर्भगवान् पुरारि-
र्दिवाकरोऽप्यत्र हिरण्मय: स्यात्।
मूर्धन्यवस्थानममत्सरेण
कार्यं त्वनेकैश्च पुनर्द्विजौघै:॥ १५

निर्माणसे भी नहीं प्राप्त होता। इसलिये अब मैं पर्वतोंके क्रमसे उनके विधानका वर्णन कर रहा हूँ। (उनके नाम हैं—) पहला धान्यशैल, दूसरा लवणाचल, तीसरा गुडाचल, चौथा हेमपर्वत, पाँचवाँ तिलशैल, छठा कार्पासपर्वत, सातवाँ घृतशैल, आठवाँ रत्नशैल, नवाँ रजतशैल और दसवाँ शर्कराचल। इनका विधान यथार्थरूपसे क्रमश: बतला रहा हूँ। सूर्यके उत्तरायण और दक्षिणायनके समय, पुण्यमय विषुवयोगमें, व्यतीपातयोगमें, ग्रहणके समय सूर्य अथवा चन्द्रमाके अदृश्य हो जानेपर, शुक्लपक्षकी तृतीया, द्वादशी अथवा पूर्णिमा तिथिके दिन, विवाह, उत्सव और यज्ञके अवसरोंपर तथा पुण्यप्रद शुभ नक्षत्रके योगमें विद्वान् दाताको शास्त्रादेशानुसार विधिपूर्वक धान्यशैल आदि पर्वतदानोंको करना चाहिये। इसके लिये तीर्थोंमें, देवमन्दिरमें, गोशालामें अथवा अपने घरके आँगनमें ही भक्तिपूर्वक विधि-विधानके साथ एक चौकोर मण्डपका निर्माण करावे; उसमें उत्तर और पूर्व दिशामें दो दरवाजे हों और उसकी भूमि पूर्वोत्तर दिशामें ढालू हो। उस मण्डपकी गोबरसे लिपी-पुती भूमिपर कुश बिछाकर उसके बीचमें विष्कम्भपर्वतसहित[1] देय पदार्थकी पर्वताकार राशि लगा दे। इस विषयमें एक हजार द्रोण[2] अन्नका पर्वत उत्तम, पाँच सौ द्रोणका मध्यम और तीन सौ द्रोणका कनिष्ठ माना जाता है॥ २—१२॥

महान् धान्यराशिसे बने हुए मेरु पर्वतको मध्यमें तीन स्वर्णमय वृक्षोंसे युक्त कर, पूर्व दिशामें मोती और हीरेसे, दक्षिण दिशामें गोमेद और पुष्पराग (पुखराज)-से, पश्चिम दिशामें गारुत्मत (पन्ना) और नीलम मणिसे, उत्तर दिशामें वैदूर्य और पद्मराग मणिसे तथा चारों ओर चन्दनके टुकड़ों और मूँगेसे सुशोभित कर दे। उसे लताओंसे परिवेष्टित तथा सीपीके शिलाखण्डोंसे सुसज्जित कर दिया जाय। पुन: यजमान गर्वरहित होकर अनेकों द्विजसमूहोंके साथ उस पर्वतके मूर्धा-स्थानपर ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शङ्कर और सूर्यकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे।

१. सुमेरुगिरिके चारों ओर स्थित मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक पर्वतोंको 'विष्कम्भपर्वत' कहा जाता है।
२. बत्तीस सेरका एक प्राचीन मान।

चत्वारि शृङ्गाणि च राजतानि
नितम्बभागेष्वपि राजतः स्यात्।
तथेक्षुवंशावृतकन्दरस्तु
घृतोदकप्रस्रवणैश्च दिक्षु॥ १६
शुक्लाम्बराण्यम्बुधरावली स्यात्
पूर्वेण पीतानि च दक्षिणेन।
वासांसि पश्चादथ कर्बुराणि
रक्तानि चैवोत्तरतो घनाली॥ १७
रौप्यान् महेन्द्रप्रमुखांस्तथाष्टौ
संस्थाप्य लोकाधिपतीन् क्रमेण।
नानाफलाली च समन्ततः स्या-
न्मनोरमं माल्यविलेपनं च॥ १८
वितानकं चोपरि पञ्चवर्ण-
मम्लानपुष्पाभरणं सितं च।
इत्थं निवेश्यामरशैलमग्र्यं
मेरोस्तु विष्कम्भगिरीन् क्रमेण॥ १९
तुरीयभागेन चतुर्दिशं च
संस्थापयेत् पुष्पविलेपनाढ्यान्।
पूर्वेण मन्दरमनेकफलावलीभि-
र्युक्तं यवैः कनकभद्रकदम्बचिह्नैः॥ २०
कामेन काञ्चनमयेन विराजमान-
माकारयेत् कुसुमवस्त्रविलेपनाढ्यम्।
क्षीरारुणोदसरसाथ वनेन चैवं
रौप्येण शक्तिघटितेन विराजमानम्॥ २१
याम्येन गन्धमदनश्च विवेशनीयो
गोधूमसंचयमयः कलधौतयुक्तः।
हैमेन यज्ञपतिना घृतमानसेन
वस्त्रैश्च राजतवनेन च संयुतः स्यात्॥ २२
पश्चात् तिलाचलमनेकसुगन्धिपुष्प-
सौवर्णपिप्पलहिरण्मयहंसयुक्तम्।
आकारयेद् रजतपुष्पवनेन तद्वद्
वस्त्रान्वितं दधिसितोदसरस्तथाग्रे॥ २३
संस्थाप्य तं विपुलशैलमथोत्तरेण
शैलं सुपार्श्वमपि माषमयं सुवस्त्रम्।
पुष्पैश्च हेमवटपादपशेखरं त-
माकारयेत् कनकधेनुविराजमानम्॥ २४

उसमें चाँदीके चार शिखर बनाये जायँ, जिनके नितम्बभाग भी चाँदीके ही बने हों। उसी प्रकार चारों दिशाओंमें गन्ना और बाँससे ढकी हुई कन्दराएँ तथा घी और जलके झरने भी बनाये जायँ। पुनः पूर्व दिशामें श्वेत वस्त्रोंसे, दक्षिण दिशामें पीले वस्त्रोंसे, पश्चिम दिशामें चितकबरे वस्त्रोंसे और उत्तर दिशामें लाल वस्त्रोंसे बादलोंकी पङ्क्तियाँ बनायी जायँ। फिर चाँदीके बने हुए महेन्द्र आदि आठों लोकपालोंको क्रमशः स्थापित करे और उस पर्वतके चारों ओर अनेकों प्रकारके फल, मनोरम पुष्पमालाएँ और चन्दन भी रख दे। उसके ऊपर पँचरंगा चँदोवा लगा दे और उसे खिले हुए श्वेत पुष्पोंसे विभूषित कर दे। इस प्रकार श्रेष्ठ अमरशैल (सुमेरुगिरि)-की स्थापना कर उसके चतुर्थांशसे इसकी चारों दिशाओंमें क्रमशः विष्कम्भ (मर्यादा) पर्वतोंकी स्थापना करनी चाहिये। ये सभी पुष्प और चन्दनसे सुशोभित हों। पूर्व दिशामें यवसे मन्दराचलका आकार बनावे, उसके निकट अनेकों प्रकारके फलोंकी कतारें लगा दे, उसे कनकभद्र (देवदारु) और कदम्ब-वृक्षोंके चिह्नोंसे सुशोभित कर दे, उसपर कामदेवकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्थापित कर दे। फिर उसे अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीके बने हुए वन और दूधनिर्मित अरुणोद नामक सरोवरसे सुशोभित कर दे। तत्पश्चात् वस्त्र, पुष्प और चन्दन आदिसे उसे भरपूर सुसज्जित कर देना चाहिये॥ १३—२१॥

दक्षिण दिशामें गेहूँकी राशिसे गन्धमादनकी रचना करनी चाहिये। उसे स्वर्णपत्रसे सुशोभित कर दे। उसपर यज्ञपतिकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर दे और उसे वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दे। फिर उसे घीके सरोवर और चाँदीके वनसे सुशोभित कर देना चाहिये। पश्चिम दिशामें अनेकों सुगन्धित पुष्पों, स्वर्णमय पीपल-वृक्ष और सुवर्णनिर्मित हंससे युक्त तिलाचलकी स्थापना करनी चाहिये। उसी प्रकार इसे भी वस्त्रसे परिवेष्टित तथा चाँदीके पुष्पवनसे सुशोभित कर दे। इसके अग्रभागमें दहीसे सितोद सरोवरकी भी रचना कर दे। इस प्रकार उस विपुल शैलकी स्थापना करके उत्तर दिशामें उड़दसे सुपार्श्व नामक पर्वतकी स्थापना करे। इसे भी सुन्दर वस्त्र और पुष्पोंसे सुसज्जित कर दे, इसके शिखरपर स्वर्णमय वटवृक्ष रख दे और सुवर्णनिर्मित गौसे सुशोभित कर दे।

माक्षीकभद्रसरसाथ वनेन तद्वद्
रौप्येण भास्वरवता च युतं निधाय।
होमश्चतुर्भिरथ वेदपुराणविद्धि-
र्दान्तैरनिन्द्यचरिताकृतिभिर्द्विजेन्द्रैः ॥ २५
पूर्वेण हस्तमितमत्र विधाय कुण्डं
कार्यस्तिलैर्यवघृतेन समित्कुशैश्च।
रात्रौ च जागरमनुद्धतगीततूर्यै-
रावाहनं च कथयामि शिलोच्चयानाम्॥ २६
त्वं सर्वदेवगणधामनिधे विरुद्ध-
मस्मद्गृहेष्वमरपर्वत नाशयाशु।
क्षेमं विधत्स्व कुरु शान्तिमनुत्तमां नः
सम्पूजितः परमभक्तिमता मया हि॥ २७
त्वमेव भगवानीशो ब्रह्मा विष्णुर्दिवाकरः।
मूर्तामूर्तात् परं बीजमतः पाहि सनातन॥ २८
यस्मात् त्वं लोकपालानां विश्वमूर्तेश्च मन्दिरम्।
रुद्रादित्यवसूनां च तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ २९
यस्मादशून्यममरैर्नारीभिश्च शिवेन च।
तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ ३०
एवमभ्यर्च्य तं मेरुं मन्दरं चाभिपूजयेत्।
यस्माच्चैत्ररथेन त्वं भद्राश्वेन च वर्षतः॥ ३१
शोभसे मन्दर क्षिप्रमतस्तुष्टिकरो भव।
यस्माच्चूडामणिर्जम्बूद्वीपे त्वं गन्धमादन॥ ३२
गन्धर्ववनशोभावानतः कीर्तिर्दृढास्तु मे।
यस्मात् त्वं केतुमालेन वैभ्राजेन वनेन च॥ ३३
हिरण्मयाश्वत्थशिरास्तस्मात् पुष्टिर्ध्रुवास्तु मे।
उत्तरैः कुरुभिर्यस्मात् सावित्रेण वनेन च॥ ३४
सुपार्श्व राजसे नित्यमतः श्रीरक्षयास्तु मे।
एवमामन्त्र्य तान् सर्वान् प्रभाते विमले पुनः॥ ३५
स्नात्वाथ गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्।
विष्कम्भपर्वतान् दद्यादृत्विग्भ्यः क्रमशो मुने॥ ३६

उसी प्रकार मधुसे बने हुए भद्रसर नामक सरोवर और चमकीली चाँदीसे निर्मित वनसे संयुक्त कर देना चाहिये। तत्पश्चात् पूर्व दिशामें एक हाथ लम्बा, चौड़ा और गहरा कुण्ड बनाकर तिल, यव, घी, समिधा और कुशोंद्वारा चार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंसे हवन करावे। वे सभी ब्राह्मण वेदों और पुराणोंके ज्ञाता, जितेन्द्रिय, अनिन्द्य चरित्रवान् और सुरूप हों। रातमें मधुर शब्दमें गायन और तुरही आदि वाद्योंका वादन कराते हुए जागरण करना चाहिये। अब मैं इन पर्वतोंके आवाहनका प्रकार बतला रहा हूँ। (उन्हें इस प्रकार आवाहित करे—) अमरपर्वत! तुम समस्त देवगणोंके निवासस्थान और रत्नोंकी निधि हो। मैंने परम भक्तिके साथ तुम्हारी पूजा की है, इसलिये तुम हमारे घरोंमें स्थित विरुद्धभाव अर्थात् वैरभावको शीघ्र ही नष्ट कर दो, हमारे कल्याणका विधान करो और हमें श्रेष्ठ शान्ति प्रदान करो। सनातन! तुम्हीं ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, शङ्कर और सूर्य हो तथा मूर्त (साकार) और अमूर्त (निराकार)-से परे संसारके बीज (कारणरूप) हो, अतः हमारी रक्षा करो। चूँकि तुम लोकपालों, विश्वमूर्ति भगवान् विष्णु, रुद्र, सूर्य और वसुओंके निवासस्थान हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। चूँकि तुम देवताओं, देवाङ्गनाओं और शिवजीसे अशून्य अर्थात् संयुक्त रहते हो, इसलिये इस निखिल दुःखोंसे भरे हुए संसार-सागरसे मेरा उद्धार करो॥ २२—३०॥

इस प्रकार उस मेरुगिरिकी अर्चना करनेके पश्चात् मन्दराचलकी पूजा करनी चाहिये—'मन्दराचल! चूँकि तुम चैत्ररथ नामक वन और भद्राश्व नामक वर्षसे सुशोभित हो रहे हो, इसलिये शीघ्र ही मेरे लिये तुष्टिकारक बनो।' 'गन्धमादन! चूँकि तुम जम्बूद्वीपमें शिरोमणिके समान सुशोभित और गन्धर्वोंके वनोंकी शोभासे सम्पन्न हो, इसलिये मेरी कीर्तिको सुदृढ़ कर दो।' 'विपलु! चूँकि तुम केतुमाल वर्ष और वैभ्राज नामक वनसे सुशोभित हो और तुम्हारे शिखरपर स्वर्णमय पीपलका वृक्ष विराजमान है, इसलिये (तुम्हारी कृपासे) मुझे निश्चला पुष्टि प्राप्त हो।' 'सुपार्श्व! चूँकि तुम उत्तर कुरुवर्ष और सावित्र नामक वनसे नित्य शोभित हो रहे हो, अतः मुझे अक्षय लक्ष्मी प्रदान करो।' इस प्रकार उन सभी पर्वतोंको आमन्त्रित करके पुनः निर्मल प्रभात होनेपर स्नान आदिसे निवृत्त हो बीचवाला श्रेष्ठ पर्वत गुरु (यज्ञ करानेवाले)-को दान कर दे। मुने! इसी प्रकार क्रमशः विष्कम्भपर्वतोंको ऋत्विजोंको दान कर

महारथो मगधराड् विश्रुतो यो बृहद्रथः।
प्रत्यश्रवाः कुशश्चैव चतुर्थो हरिवाहनः॥ २७

पञ्चमश्च यजुश्चैव मत्स्यः काली च सप्तमी।
बृहद्रथस्य दायादः कुशाग्रो नाम विश्रुतः॥ २८

कुशाग्रस्यात्मजश्चैव वृषभो नाम वीर्यवान्।
वृषभस्य तु दायादः पुण्यवान् नाम पार्थिवः॥ २९

पुण्यः पुण्यवतश्चैव राजा सत्यधृतिस्ततः।
दायादस्तस्य धनुषस्तस्मात् सर्वश्च जज्ञिवान्॥ ३०

सर्वस्य सम्भवः पुत्रस्तस्माद् राजा बृहद्रथः।
द्वे तस्य शकले जाते जरया संधितश्च सः॥ ३१

जरया संधितो यस्माज्जरासंधस्ततः स्मृतः।
जेता सर्वस्य क्षत्रस्य जरासंधो महाबलः॥ ३२

जरासंधस्य पुत्रस्तु सहदेवः प्रतापवान्।
सहदेवात्मजः श्रीमान् सोमवित् स महातपाः॥ ३३

श्रुतश्रवास्तु सोमाद् वै मागधाः परिकीर्तिताः।
जह्नुस्त्वजनयत् पुत्रं सुरथं नाम भूमिपम्॥ ३४

सुरथस्य तु दायादो वीरो राजा विदूरथः।
विदूरथसुतश्चापि सार्वभौम इति स्मृतः॥ ३५

सार्वभौमाज्जयत्सेनो रुचिरस्तस्य चात्मजः।
रुचिरस्य सुतो भौमस्त्वरितायुस्ततोऽभवत्॥ ३६

अक्रोधनस्त्वायुसुतस्तस्माद् देवातिथिः स्मृतः।
देवातिथेस्तु दायादो दक्ष एव बभूव ह॥ ३७

भीमसेनस्ततो दक्षाद् दिलीपस्तस्य चात्मजः।
दिलीपस्य प्रतीपस्तु तस्य पुत्रास्त्रयः स्मृताः॥ ३८

देवापिः शंतनुश्चैव बाह्लीकश्चैव ते त्रयः।
बाह्लीकस्य तु दायादाः सप्त बाह्लीश्वरा नृपाः।
देवापिस्तु ह्यपध्यातः प्रजाभिरभवन्मुनिः॥ ३९

ऋषय ऊचुः

प्रजाभिस्तु किमर्थं वै ह्यपध्यातो जनेश्वरः।
को दोषो राजपुत्रस्य प्रजाभिः समुदाहृतः॥ ४०

सूत उवाच

किलासीद् राजपुत्रस्तु कुष्ठी तं नाभ्यपूजयन्।
भविष्यं कीर्तयिष्यामि शंतनोस्तु निबोधत॥ ४१

इनमें पहला महारथी मगधराज था, जो बृहद्रथ नामसे विख्यात हुआ। उसके बाद दूसरा प्रत्यश्रवा, तीसरा कुश, चौथा हरिवाहन, पाँचवाँ यजुष् और छठा मत्स्य नामसे प्रसिद्ध हुआ। सातवीं संतान काली नामकी कन्या थी। बृहद्रथका पुत्र कुशाग्र नामसे विख्यात हुआ। कुशाग्रका पुत्र पराक्रमी वृषभ हुआ। वृषभका पुत्र राजा पुण्यवान् था। पुण्यवान्से पुण्य और उससे राजा सत्यधृतिका जन्म हुआ। उसका पुत्र धनुष हुआ और उससे सर्वकी उत्पत्ति हुई। सर्वका पुत्र सम्भव हुआ और उससे राजा बृहद्रथका जन्म हुआ। बृहद्रथका पुत्र दो टुकड़ेके रूपमें उत्पन्न हुआ, जिन्हें जरानामकी राक्षसीने जोड़ दिया था। जराद्वारा जोड़ दिये जानेके कारण वह जरासंध नामसे विख्यात हुआ। महाबली जरासंध अपने समयके समस्त क्षत्रियोंका विजेता था। जरासंधका पुत्र प्रतापी सहदेव हुआ। सहदेवका पुत्र लक्ष्मीवान् एवं महातपस्वी सोमवित् हुआ। सोमवित्से श्रुतश्रवाकी उत्पत्ति हुई। (मगधपर शासन करनेके कारण) ये सभी नरेश मागध नामसे विख्यात हुए॥ २३—३३ $\frac{1}{2}$ ॥

जह्नुने सुरथ नामक भूपालको पुत्ररूपमें जन्म दिया। सुरथका पुत्र वीरवर राजा विदूरथ हुआ। विदूरथका पुत्र सार्वभौम कहा गया है। सार्वभौमसे जयत्सेन उत्पन्न हुआ और उसका पुत्र रुचिर हुआ। रुचिरसे भौमका और उससे त्वरितायुका जन्म हुआ। त्वरितायुका पुत्र अक्रोधन और उससे देवातिथिकी उत्पत्ति बतलायी जाती है। देवातिथिका एकमात्र पुत्र दक्ष ही था। दक्षसे भीमसेनका जन्म हुआ और उसका पुत्र (पुरुवंशी) दिलीप तथा दिलीपका पुत्र प्रतीप हुआ। प्रतीपके तीन पुत्र कहे जाते हैं, ये तीनों देवापि, शंतनु और बाह्लीक हैं। बाह्लीकके सात पुत्र थे, जो सभी राजा थे और बाह्लीक (बल्ख) देशके अधीश्वर थे। देवापिको प्रजाओंने दोषी ठहरा दिया था; इसलिये वह राजपाट छोड़कर मुनि हो गया॥ ३४—३९॥

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! प्रजाओंने राजा देवापिको किस कारण दोषी ठहराया था? तथा प्रजाओंने उस राजकुमारका कौन-सा दोष प्रकट किया था?॥ ४०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! राजकुमार देवापि कुष्ठ-रोगी था, इसीलिये प्रजाओंने उसका आदर-सत्कार नहीं किया। अब मैं शंतनुके भविष्यका वर्णन कर रहा हूँ, उसे सुनिये।

शंतनुस्त्वभवद् राजा विद्वान् स वै महाभिषक्।
इदं चोदाहरन्त्यत्र श्लोकं प्रति महाभिषम्॥ ४२
यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं रोगिणमेव च।
पुनर्युवा स भवति तस्मात् तं शंतनुं विदुः॥ ४३
तत् तस्य शंतनुत्वं हि प्रजाभिरिह कीर्त्यते।
ततोऽवृणुत भार्यार्थं शंतनुर्जाह्नवीं नृपः॥ ४४
तस्यां देवव्रतं नाम कुमारं जनयद् विभुः।
काली विचित्रवीर्यं तु दाशेयी जनयत् सुतम्॥ ४५
शंतनोर्दयितं पुत्रं शान्तात्मानमकल्मषम्।
कृष्णद्वैपायनो नाम क्षेत्रे वैचित्रवीर्यके॥ ४६
धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत्।
धृतराष्ट्रस्तु गान्धार्यां पुत्रानजनयच्छतम्॥ ४७
तेषां दुर्योधनः श्रेष्ठः सर्वक्षत्रस्य वै प्रभुः।
माद्री कुन्ती तथा चैव पाण्डोर्भार्ये बभूवतुः॥ ४८
देवदत्ताः सुताः पञ्च पाण्डोरर्थेऽभिजज्ञिरे।
धर्माद् युधिष्ठिरो जज्ञे मारुताच्च वृकोदरः॥ ४९
इन्द्राद् धनञ्जयश्चैव इन्द्रतुल्यपराक्रमः।
नकुलं सहदेवं च माद्र्यश्विभ्यामजीजनत्॥ ५०
पञ्चैते पाण्डवेभ्यस्तु द्रौपद्यां जज्ञिरे सुताः।
द्रौपद्यजनयच्छ्रेष्ठं प्रतिविन्ध्यं युधिष्ठिरात्॥ ५१
श्रुतसेनं भीमसेनाच्छ्रुतकीर्तिं धनञ्जयात्।
चतुर्थं श्रुतकर्माणं सहदेवादजायत॥ ५२
नकुलाच्च शतानीकं द्रौपदेयाः प्रकीर्तिताः।
तेभ्योऽपरे पाण्डवेयाः षडेवान्ये महारथाः॥ ५३
हैडाम्बो भीमसेनात् तु पुत्रो जज्ञे घटोत्कचः।
काशी बलधराद् भीमाज्जज्ञे वै सर्वगं सुतम्॥ ५४
सुहोत्रं तनयं माद्री सहदेवादसूयत।
करेणुमत्यां चैद्यायां निरमित्रस्तु नाकुलिः॥ ५५

(देवापिके वन चले जानेपर) शंतनु राजा हुए। ये विद्वान् तो थे ही, साथ ही महान् वैद्य भी थे। इनकी महावैद्यताके प्रति लोग एक श्लोक कहा करते हैं, जिसका आशय यह है कि 'महाराज शंतनु जिस-जिस रोगी अथवा वृद्धको अपने हाथोंसे स्पर्श कर लेते थे, वह पुनः नौजवान हो जाता था। इसी कारण लोग उन्हें शंतनु कहते थे।' उस समय प्रजागण उनके इस शंतनुत्व (रोगी और वृद्धको युवा बना देनेवाले) गुणका ही वर्णन करते थे। तदनन्तर प्रभावशाली राजा शंतनुने जह्नु-नन्दिनी गङ्गाको अपनी पत्नीके रूपमें वरण किया और उनके गर्भसे देवव्रत (भीष्म) नामक कुमारको पैदा किया। दाश-कन्या काली सत्यवतीने शंतनुके संयोगसे विचित्रवीर्य नामक पुत्रको जन्म दिया, जो पिताके लिये परम प्रिय, शान्तात्मा और निष्पाप था। महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासने विचित्रवीर्यके क्षेत्रमें धृतराष्ट्र और पाण्डुको तथा (दासीसे) विदुरको उत्पन्न किया था। धृतराष्ट्रने गान्धारीके गर्भसे सौ पुत्रोंको उत्पन्न किया, उनमें दुर्योधन सबसे श्रेष्ठ था और वह सम्पूर्ण क्षत्रिय-वंशका स्वामी था। इसी प्रकार पाण्डुकी कुन्ती और माद्री नामकी दो पत्नियाँ हुईं। इन्हीं दोनोंके गर्भसे महाराज पाण्डुकी वंश-वृद्धिके लिये देवताओंद्वारा प्रदान किये गये पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। कुन्तीने धर्मके संयोगसे युधिष्ठिरको, वायुके संयोगसे वृकोदर (भीमसेन)-को और इन्द्रके संयोगसे इन्द्रसरीखे पराक्रमी धनञ्जय (अर्जुन)-को जन्म दिया। इसी प्रकार माद्रीने अश्विनीकुमारोंके संयोगसे नकुल और सहदेवको पैदा किया॥ ४१—५०॥

इन पाँचों पाण्डवोंके संयोगसे द्रौपदीके गर्भसे पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें द्रौपदीने युधिष्ठिरके संयोगसे ज्येष्ठ पुत्र प्रतिविन्ध्यको, भीमसेनके संयोगसे श्रुतसेनको और अर्जुनके संयोगसे श्रुतकीर्तिको जन्म दिया था। चौथा पुत्र श्रुतकर्मा सहदेवसे और शतानीक नकुलसे उत्पन्न किया था। ये पाँचों द्रौपदेय अर्थात् द्रौपदीके पुत्र कहलाये। इनके अतिरिक्त पाण्डवोंके छः अन्य महारथी पुत्र भी थे। (उनका विवरण इस प्रकार है—) भीमसेनके संयोगसे हिडिम्बा नामकी राक्षसीके गर्भसे घटोत्कच नामक पुत्रका जन्म हुआ था। उनकी दूसरी पत्नी काशीने बलवान् भीमसेनके संयोगसे सर्वग नामक पुत्रको जन्म दिया था। मद्रराज-कुमारी सहदेव-पत्नीने सहदेवके संयोगसे सुहोत्र नामक पुत्रको पैदा किया था। नकुल-पुत्र निरमित्र चेदिराज-कुमारी करेणुमतीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था।

सुभद्रायां रथी पार्थादभिमन्युरजायत।
यौधेयं देवकी चैव पुत्रं जज्ञे युधिष्ठिरात्॥ ५६
अभिमन्योः परीक्षित् तु पुत्रः परपुरञ्जयः।
जनमेजयः परीक्षितः पुत्रः परमधार्मिकः॥ ५७
ब्रह्माणं कल्पयामास स वै वाजसनेयकम्।
स वैशम्पायनेनैव शप्तः किल महर्षिणा॥ ५८
न स्थास्यतीह दुर्बुद्धे तवैतद् वचनं भुवि।
यावत् स्थास्यसि त्वं लोके तावदेव प्रपत्स्यति॥ ५९
क्षत्रस्य विजयं ज्ञात्वा ततः प्रभृति सर्वशः।
अभिगम्य स्थिताश्चैव नृपं च जनमेजयम्॥ ६०
ततः प्रभृति शापेन क्षत्रियस्य तु याजिनः।
उत्सन्ना याजिनो यज्ञे ततः प्रभृति सर्वशः॥ ६१
क्षत्रस्य याजिनः केचिच्छापात् तस्य महात्मनः।
पौर्णमासेन हविषा इष्ट्वा तस्मिन् प्रजापतिम्।
स वैशम्पायनेनैव प्रविशन् वारितस्ततः॥ ६२
परीक्षितः सुतोऽसौ वै पौरवो जनमेजयः।
द्विरश्वमेधमाहृत्य महावाजसनेयकः॥ ६३
प्रवर्तयित्वा तं सर्वमृषिं वाजसनेयकम्।
विवादे ब्राह्मणैः सार्धमभिशप्तो वनं ययौ॥ ६४
जनमेजयाच्छतानीकस्तस्माज्जज्ञे स वीर्यवान्।
जनमेजयः शतानीकं पुत्रं राज्येऽभिषिक्तवान्॥ ६५
अथाश्वमेधेन ततः शतानीकस्य वीर्यवान्।
जज्ञेऽधिसीमकृष्णाख्यः साम्प्रतं यो महायशाः॥ ६६
तस्मिन्प्रशासति राष्ट्रं तु युष्माभिरिदमाहृतम्।
दुरापं दीर्घसत्रं वै त्रीणि वर्षाणि पुष्करे।
वर्षद्वयं कुरुक्षेत्रे दृषद्वत्यां द्विजोत्तमाः॥ ६७

ऋषय ऊचुः

भविष्यं श्रोतुमिच्छामः प्रजानां लोमहर्षणे।
पुरा किल यदेतद् वै व्यतीतं कीर्तितं त्वया॥ ६८

पृथा-पुत्र अर्जुनके संयोगसे सुभद्राके गर्भसे महारथी अभिमन्यु पैदा हुआ था। युधिष्ठिर-पत्नी देवकीने युधिष्ठिरके संयोगसे यौधेय नामक पुत्रको जन्म दिया था। अभिमन्युके पुत्र शत्रुओंकी नगरीको जीतनेवाले परीक्षित् हुए। परीक्षित्के पुत्र परम धर्मात्मा जनमेजय (तृतीय) हुए॥ ५१—५७॥

जनमेजयने अपने यज्ञमें वाजसनेय (शुक्लयजुर्वेदके आचार्य) ऋषिको ब्रह्माके पदपर नियुक्त किया। यह देखकर वैशम्पायन (कृष्णयजुर्वेदके आचार्य)-ने उन्हें शाप देते हुए कहा—'दुर्बुद्धे! तुम्हारा यह (नवीन) वचन अर्थात् (संहिता-ग्रन्थ) भूतलपर स्थायी नहीं हो सकेगा। जबतक तुम लोकमें जीवित रहोगे, तभीतक यह भी ठहर सकेगा।' तभीसे क्षत्रियजातिकी विजय जानकर बहुत-से लोग चारों ओरसे (शुक्लयजुर्वेदके प्रवर्धक) राजा जनमेजयके पास आकर रहने लगे। परंतु महात्मा वैशम्पायनके शापके कारण उस यज्ञमें बहुत-से यज्ञानुष्ठान करनेवाले क्षत्रिय तथा कुछ याजक भी नष्ट हो गये। तब उस यज्ञमें जब जनमेजय पौर्णमास हविद्वारा ब्रह्माका यजन कर यज्ञशालामें प्रवेश करनेके लिये प्रयत्नशील हुए, उसी समय महर्षि वैशम्पायनने उन्हें भीतर जानेसे रोक दिया। तदनन्तर परीक्षित्पुत्र पूरुवंशी जनमेजयने दो अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान किया। उनमें उन्होंने अपने द्वारा प्रवर्तित महावाजसनेय (शौक्लयाजुष) विधिका ही प्रयोग किया। वह सारा कार्य वाजसनेय ऋषिकी अध्यक्षतामें ही सम्पन्न हो रहा था। उसी समय ब्राह्मणोंके साथ विवाद हो जानेपर ब्राह्मणोंने उन्हें शाप दे दिया, जिससे वे वनमें चले गये।* उन जनमेजयसे पराक्रमी शतानीकका जन्म हुआ। जनमेजयने (वन-गमन करते समय) अपने पुत्र शतानीकको राज्यपर अभिषिक्त कर दिया था। शतानीकद्वारा अश्वमेध-यज्ञका अनुष्ठान किये जानेपर उसके फलस्वरूप शतानीकके एक महायशस्वी एवं पराक्रमी अधिसीमकृष्ण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो इस (पुराणप्रवचनके) समय सिंहासनासीन है। द्विजवरो! उसीके राज्यशासन करते समय आपलोगोंने अभी-अभी पुष्करक्षेत्रमें तीन वर्षोंतक तथा कुरुक्षेत्रमें दृषद्वतीके तटपर दो वर्षोंतक इस दुर्लभ दीर्घ सत्रका अनुष्ठान सम्पन्न किया है॥ ५८—६७॥

ऋषियोंने पूछा—लोमहर्षणके पुत्र सूतजी! पूर्वकालमें जो बातें बीत चुकी हैं, उनका वर्णन तो आपने कर दिया। अब हमलोग प्रजाओंके भविष्यके विषयमें सुनना चाहते हैं।

* द्रष्टव्य हरिवंशपु०, भविष्यपु०, अ० ५।

छियासीवाँ अध्याय

सुवर्णाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथ पापहरं वक्ष्ये सुवर्णाचलमुत्तमम्।
यस्य प्रदानाद् भवनं वैरिञ्च्यं याति मानवः॥ १

उत्तमः पलसाहस्रो मध्यमः पञ्चभिः शतैः।
तदर्धेनाधमस्तद्वदल्पवित्तोऽपि शक्तितः।
दद्यादेकपलादूर्ध्वं यथाशक्त्या विमत्सरः॥ २

धान्यपर्वतवत् सर्वं विदध्यान्मुनिपुङ्गव।
विष्कम्भशैलास्तद्वच्च ऋत्विग्भ्यः प्रतिपादयेत्॥ ३

नमस्ते ब्रह्मबीजाय ब्रह्मगर्भाय ते नमः।
यस्मादनन्तफलदस्तस्मात् पाहि शिलोच्चय॥ ४

यस्मादग्नेरपत्यं* त्वं यस्मात् तेजो जगत्पतेः।
हेमपर्वतरूपेण तस्मात् पाहि नगोत्तम॥ ५

अनेन विधिना यस्तु दद्यात् कनकपर्वतम्।
स याति परमं ब्रह्मलोकमानन्दकारकम्।
तत्र कल्पशतं तिष्ठेत् ततो याति परां गतिम्॥ ६

ईश्वरने कहा—नारद! अब मैं पापहारी एवं श्रेष्ठ सुवर्णाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है। एक हजार पलका सुवर्णाचल उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और ढाई सौ पलका अधम (साधारण) माना गया है। अल्प वित्तवाला भी अपनी शक्तिके अनुसार गर्वरहित होकर एक पलसे कुछ अधिक सोनेका पर्वत बनवा सकता है। मुनिश्रेष्ठ! शेष सारे कार्योंका विधान धान्यपर्वतकी भाँति ही करना चाहिये। उसी प्रकार विष्कम्भपर्वतोंकी भी स्थापना कर उन्हें ऋत्विजोंको दान करनेका विधान है। (प्रार्थना-मन्त्र इस प्रकार है—) 'शिलोच्चय! तुम ब्रह्मके बीजरूप हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे गर्भमें ब्रह्मा स्थित रहते हैं, अतः तुम्हें प्रणाम है। तुम अनन्त फलके दाता हो, इसलिये मेरी रक्षा करो। जगत्पति पर्वतोत्तम! तुम अग्निकी संतान और जगदीश्वर शिवके तेजःस्वरूप हो, अतः सुवर्णाचलके रूपसे मेरा पालन करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे सुवर्णाचलका दान करता है, वह परम आनन्ददायक ब्रह्मलोकमें जाता है और वहाँ सौ कल्पोंतक निवास करनेके पश्चात् परमगतिको प्राप्त होता है॥ १—६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सुवर्णाचलकीर्तनं नाम षडशीतितमोऽध्यायः॥ ८६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सुवर्णाचलकीर्तन नामक छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८६॥

सतासीवाँ अध्याय

तिलशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि तिलशैलं विधानतः।
यत्प्रदानान्नरो याति विष्णुलोकं सनातनम्॥ १

उत्तमो दशभिर्द्रोणैर्मध्यमः पञ्चभिः स्मृतः।
त्रिभिः कनिष्ठो विप्रेन्द्र तिलशैलः प्रकीर्तितः॥ २

पूर्ववच्चापरान् सर्वान् विष्कम्भानभितो गिरीन्।
दानमन्त्रान् प्रवक्ष्यामि यथावन्मुनिपुङ्गव॥ ३

यस्मान्मधुवधे विष्णोर्देहस्वेदसमुद्भवाः।
तिलाः कुशाश्च माषाश्च तस्माच्छान्त्यै भवत्विह॥ ४

हव्ये कव्ये च यस्माच्च तिलैरेवाभिरक्षणम्।
भवादुद्धर शैलेन्द्र तिलाचल नमोऽस्तु ते॥ ५

इत्यामन्त्र्य च यो दद्यात् तिलाचलमनुत्तमम्।
स वैष्णवं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ ६

दीर्घायुष्यमवाप्नोति पुत्रपौत्रैश्च मोदते।
पितृभिर्देवगन्धर्वैः पूज्यमानो दिवं व्रजेत्॥ ७

ईश्वरने कहा—नारद! इसके बाद मैं तिलशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका विधिपूर्वक दान करनेसे मनुष्य सनातन विष्णुलोकको प्राप्त होता है। विप्रवर! दस द्रोण तिलका बना हुआ तिलशैल उत्तम, पाँच द्रोणका मध्यम और तीन द्रोणका कनिष्ठ बतलाया गया है। इसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंकी स्थापना तथा अन्यान्य सारा कार्य पूर्ववत् करना चाहिये। मुनिपुङ्गव! अब मैं दानके मन्त्रोंको यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ। 'चूँकि मधुदैत्यके वधके समय भगवान् विष्णुके शरीरसे उत्पन्न हुए पसीनेकी बूँदोंसे तिल, कुश और उड़दकी उत्पत्ति हुई थी, इसलिये तुम इस लोकमें मुझे शान्ति प्रदान करो। शैलेन्द्र तिलाचल! चूँकि देवताओंके हव्य और पितरोंके कव्य—दोनोंमें सम्मिलित होकर तिल ही सब ओरसे (भूत-प्रेतादिसे) रक्षा करता है, इसलिये तुम मेरा भवसागरसे उद्धार करो, तुम्हें नमस्कार है। इस प्रकार आमन्त्रित कर जो मनुष्य श्रेष्ठ तिलाचलका दान करता है, वह पुनरागमनरहित विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है। उसे इस लोकमें दीर्घायुकी प्राप्ति होती है, वह पुत्र एवं पौत्रोंको प्राप्तकर उनके साथ आनन्द मनाता है तथा अन्तमें देवताओं, गन्धर्वों और पितरोंद्वारा पूजित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है॥ १—७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तिलाचलकीर्तनं नाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः॥ ८७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तिलाचलकीर्तन नामक सतासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८७॥

अठासीवाँ अध्याय

कार्पासाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कार्पासाचलमुत्तमम्।
यत्प्रदानान्नरः श्रीमान् प्राप्नोति परमं पदम्॥ १

कार्पासपर्वतस्तद्वद् विंशद्भारैरिहोत्तमः।

ईश्वरने कहा—नारद! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ कार्पासाचलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य धनवाला परमपदको प्राप्त कर लेता है। इस लोकमें बीस भार रूईसे बना हुआ कार्पासपर्वत उत्तम,

दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः।
भारेणाल्पधनो दद्याद् वित्तशाठ्यविवर्जितः॥ २

धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्य मुनिपुङ्गव।
प्रभातायां तु शर्वर्यां दद्यादिदमुदीरयन्॥ ३

त्वमेवावरणं यस्माल्लोकानामिह सर्वदा।
कार्पासाद्रे नमस्तुभ्यमघौघध्वंसनो भव॥ ४

इति कार्पासशैलेन्द्रं यो दद्याच्छर्वसंनिधौ।
रुद्रलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह॥ ५

दस भारसे बना हुआ मध्यम और पाँच भारसे बना हुआ अधम (साधारण) कहा गया है। अल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य कृपणता छोड़कर एक भार कपाससे बने हुए पर्वतका दान कर सकता है। मुनिश्रेष्ठ! धान्यपर्वतकी भाँति सारी सामग्री एकत्र कर रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल इसे दान करनेका विधान है। उस समय ऐसा मन्त्र उच्चारण करना चाहिये—'कार्पासाचल! चूँकि इस लोकमें तुम्हीं सदा सभी लोगोंके शरीरके आच्छादन हो, इसलिये तुम्हें नमस्कार है। तुम मेरे पापसमूहका विनाश कर दो।' इस प्रकार जो मनुष्य भगवान् शिवके संनिधानमें कार्पासाचलका दान करता है, वह एक कल्पतक रुद्रलोकमें निवास करनेके पश्चात् भूतलपर राजा होता है॥ १—५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कार्पासशैलकीर्तनं नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः॥ ८८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कार्पासशैलकीर्तन नामक अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८८॥

नवासीवाँ अध्याय

घृताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि घृताचलमनुत्तमम्।
तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम्॥ १

विंशत्या घृतकुम्भानामुत्तमः स्याद् घृताचलः।
दशभिर्मध्यमः प्रोक्तः पञ्चभिस्त्वधमः स्मृतः॥ २

अल्पवित्तः प्रकुर्वीत द्वाभ्यामिह विधानतः।
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वच्चतुर्थांशेन कल्पयेत्॥ ३

शालितण्डुलपात्राणि कुम्भोपरि निवेशयेत्।
कारयेत् संहतानुच्चान् यथाशोभं विधानतः॥ ४

वेष्टयेच्छुक्लवासोभिरिक्षुदण्डफलादिकैः।
धान्यपर्वतवच्छेषं विधानमिह पठ्यते॥ ५

अधिवासनपूर्वं च तद्वद्धोमसुरार्चनम्।
प्रभातायां तु शर्वर्यां गुरवे तन्निवेदयेत्।
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वदृत्विग्भ्यः शान्तमानसः॥ ६

ईश्वरने कहा—नारद! इसके बाद मैं दिव्य तेजसे सम्पन्न, अमृतमय और महान्-से-महान् पापोंके विनाशक श्रेष्ठ घृताचलका वर्णन कर रहा हूँ। बीस घड़े* घीसे बना हुआ घृताचल उत्तम, दससे मध्यम और पाँचसे अधम (साधारण) कहा गया है। अल्प वित्तवाला भी यदि करना चाहे तो वह दो ही घड़े घृतसे विधिपूर्वक घृताचलकी रचना करके दान कर सकता है। पुनः उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी कल्पना करनी चाहिये। उन सभी घड़ोंके ऊपर अगहनी चावलसे परिपूर्ण पात्र रखा जाय और उन्हें विधिपूर्वक शोभाका ध्यान रखते हुए एकके ऊपर एक रखकर ऊँचा कर दिया जाय। उन्हें श्वेत वस्त्रोंसे परिवेष्टित कर दिया जाय और उनके निकट गन्ना और फल आदि रख दिये जायँ। इसमें शेष सारा विधान धान्यपर्वतकी ही भाँति बतलाया गया है। देवताओंकी स्थापना, हवन और देवार्चन भी उसी प्रकार करना चाहिये। रात्रिके व्यतीत होनेपर प्रातःकाल (यजमान) शान्तमनसे वह घृताचल गुरुको निवेदित कर दे। उसी प्रकार विष्कम्भपर्वतोंको ऋत्विजोंको दान कर देनेका विधान है।

* मदन, नीलकण्ठ आदि व्याख्याता यहाँ कुम्भसे पात्रका ही अर्थ लेते हैं—'कुम्भः पात्ररूप एव द्रवत्वेन घृतधारणयोग्यपरिमाणः।'

संयोगाद् घृतमुत्पन्नं यस्मादमृततेजसोः।
तस्माद् घृतार्चिर्विश्वात्मा प्रीयतामत्र शंकरः॥ ७
यस्मात् तेजोमयं ब्रह्म घृते तद्विध्यवस्थितम्।
घृतपर्वतरूपेण तस्मात् त्वं पाहि नोऽनिशम्॥ ८
अनेन विधिना दद्याद् घृताचलमनुत्तमम्।
महापातकयुक्तोऽपि लोकमाप्नोति शाम्भवम्॥ ९
हंससारसयुक्तेन किङ्किणीजालमालिना।
विमानेनाप्सरोभिश्च सिद्धविद्याधरैर्वृतः।
विहरेत् पितृभिः सार्धं यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १०

(उस समय इस अर्थवाले मन्त्रका पाठ करना चाहिये—) 'चूँकि अमृत और अग्निके संयोगसे घृत उत्पन्न हुआ है, इसलिये अग्निस्वरूप विश्वात्मा शङ्कर इस व्रतसे प्रसन्न हों। चूँकि ब्रह्म तेजोमय है और घीमें विद्यमान है, ऐसा जानकर तुम घृतपर्वतरूपसे रात-दिन हमारी रक्षा करो।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे इस श्रेष्ठ घृताचलका दान करता है, वह महापापी होनेपर भी शिवलोकको प्राप्त होता है। वहाँ वह हंस और सारस पक्षियोंकी चित्रकारी क्षुद्र घंटिका (किङ्किणीजाल)-से सुशोभित तथा विमानपर आरूढ़ होकर अप्सराओं, सिद्धों और विद्याधरोंसे घिरा हुआ पितरोंके साथ प्रलय-कालतक विहार करता है॥ १—१०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे घृताचलकीर्तनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः॥ ८९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें घृताचलकीर्तन नामक नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ८९॥



नब्बेवाँ अध्याय

रत्नाचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रत्नाचलमनुत्तमम्।
मुक्ताफलसहस्रेण पर्वतः स्यादनुत्तमः॥ १
मध्यमः पञ्चशतिकस्त्रिशतेनाधमः स्मृतः।
चतुर्थांशेन विष्कम्भपर्वताः स्युः समंततः॥ २
पूर्वेण वज्रगोमेदैर्दक्षिणेनेन्द्रनीलकैः।
पद्मरागयुतः कार्यो विद्वद्भिर्गन्धमादनः॥ ३
वैदूर्यविद्रुमैः पश्चात् सम्मिश्रो विपुलाचलः।
पुष्परागैः ससौपर्णैरुत्तरेण च विन्यसेत्॥ ४
धान्यपर्वतवत् सर्वमत्रापि परिकल्पयेत्।
तद्वदावाहनं कुर्याद् वृक्षान् देवांश्च काननान्॥ ५

ईश्वरने कहा—नारद! इसके पश्चात् मैं श्रेष्ठ रत्नाचलका वर्णन कर रहा हूँ। एक हजार मुक्ताफल (मोतियों)-द्वारा बना हुआ पर्वत उत्तम, पाँच सौसे बना हुआ मध्यम और तीन सौसे बना हुआ अधम (साधारण) माना गया है। कल्पित पर्वतके चतुर्थांशसे उसके चारों दिशाओंमें विष्कम्भपर्वतोंको स्थापित करना चाहिये। विद्वानोंको पूर्व दिशामें हीरा और गोमेदसे मन्दराचलकी, दक्षिणमें पद्मराग (माणिक्य) और इन्द्रनील (नीलम) मणिके संयोगसे गन्धमादनकी, पश्चिममें वैदूर्य और मूँगेके सम्मिश्रणसे विपुलाचलकी और उत्तरमें गारुत्मतमणिसहित पुष्पराग (पोखराज) मणिसे सुपार्श्व पर्वतकी स्थापना करनी चाहिये।* इस दानमें भी धान्यपर्वतकी तरह सारे उपकरणोंकी कल्पना करे। उसी प्रकार स्वर्णमय देवताओं, वनों और वृक्षोंका स्थापन एवं आवाहन करे

* इन रत्नोंकी स्थापनामें नारदपुराण १।५६।२८२, शुक्रनी० ४।२ आदिमें निर्दिष्ट दिक्पालों तथा दिगीश ग्रहोंके प्रिय रत्नोंका भी ध्यान रखा गया है।

पूजयेत् पुष्पगन्धाद्यैः प्रभाते च विमत्सरः।
पूर्ववद् गुरुऋत्विग्भ्य इमान् मन्त्रानुदीरयेत्॥ ६
यदा देवगणाः सर्वे सर्वरत्नेष्ववस्थिताः।
त्वं च रत्नमयो नित्यं नमस्तेऽस्तु सदाचल॥ ७
यस्माद् रत्नप्रदानेन तुष्टिं प्रकुरुते हरिः।
सदा रत्नप्रदानेन तस्मान्नः पाहि पर्वत॥ ८
अनेन विधिना यस्तु दद्याद् रत्नमयं गिरिम्।
स याति विष्णुसालोक्यममरेश्वरपूजितः॥ ९
यावत्कल्पशतं साग्रं वसेच्चेह नराधिप।
रूपारोग्यगुणोपेतः सप्तद्वीपाधिपो भवेत्॥ १०
ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्।
तत् सर्वं नाशमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा॥ ११

तथा पुष्प, गन्ध आदिसे उनका पूजन करे। प्रातःकाल मत्सररहित होकर वह सारा सामान गुरु और ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'अचल! जब सभी देवगण सम्पूर्ण रत्नोंमें निवास करते हैं, तब तुम तो नित्य रत्नमय ही हो; अतः तुम्हें सदा हमारा नमस्कार प्राप्त हो। पर्वत! चूँकि सदा रत्नका दान करनेसे श्रीहरि संतुष्ट हो जाते हैं, अतः तुम हमारी रक्षा करो।' नराधिप! जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे रत्नमय पर्वतका दान करता है, वह इन्द्रसे सत्कृत हो विष्णु-सालोक्यको प्राप्त कर लेता है और वहाँ सौ कल्पोंसे भी अधिक कालतक निवास करता है। पुनः इस लोकमें जन्म लेनेपर वह सौन्दर्य, नीरोगता और सद्गुणोंसे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। साथ ही उसके द्वारा इहलोक अथवा परलोकमें जो कुछ भी ब्रह्महत्या आदि पाप किये गये होते हैं, वे सभी उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे वज्रद्वारा प्रहार किया गया हुआ पर्वत॥ १—११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रत्नाचलकीर्तनं नाम नवतितमोऽध्यायः॥ ९०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रत्नाचलकीर्तन नामक नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९०॥

इक्यानबेवाँ अध्याय

रजताचलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

ईश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम्।
यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकमनुत्तमम्॥ १
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः।
पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्धेनाधमः स्मृतः॥ २
अशक्तो विंशतेरूर्ध्वं कारयेच्छक्तितस्तदा।
विष्कम्भपर्वतांस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत्॥ ३
पूर्ववद् राजतान् कुर्वन् मन्दरादीन् विधानतः।
कलधौतमयांस्तद्वल्लोकेशानर्चयेद् बुधः॥ ४
ब्रह्मविष्ण्वर्कवान् कार्यो नितम्बोऽत्र हिरण्मयः।
राजतं स्याद् यदन्येषां कार्यं तदिह काञ्चनम्॥ ५

ईश्वरने कहा—नारद! इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ रौप्याचल अर्थात् रजतशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ चन्द्रलोकको प्राप्त करता है। दस हजार पल चाँदीसे बना हुआ रजताचल उत्तम, पाँच हजार पलसे बना हुआ मध्यम और ढाई हजार पलसे बना हुआ अधम कहा गया है। यदि दाता ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो उसे अपनी शक्तिके अनुसार बीस पलसे कुछ अधिक चाँदीद्वारा पर्वतका निर्माण कराना चाहिये। उसी प्रकार प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंकी भी कल्पना करनेका विधान है। पहलेकी तरह चाँदीके द्वारा मन्दर आदि पर्वतोंका निर्माण कर उनके नितम्बभागको सोनेसे सुशोभित कर दे। उनपर लोकपालोंकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित कर उन्हें ब्रह्मा, विष्णु और सूर्यकी मूर्तियोंसे भी संयुक्त कर दे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् दाता इन सबकी विधिपूर्वक अर्चना करे। सारांश यह है कि अन्य पर्वतोंमें जो उपकरण चाँदीके होते हैं, वे सभी इसमें सुवर्णके होने चाहिये।

शेषं तु पूर्ववत् कुर्याद्धोमजागरणादिकम्।
दद्यात् ततः प्रभाते तु गुरवे रौप्यपर्वतम्॥ ६

विष्कम्भशैलानृत्विग्भ्यः पूज्य वस्त्रविभूषणैः *।
इमं मन्त्रं पठन् दद्याद् दर्भपाणिर्विमत्सरः॥ ७

पितॄणां वल्लभो यस्माद्धरीन्द्राणां शिवस्य च।
पाहि राजत तस्मान्नः शोकसंसारसागरात्॥ ८

इत्थं निवेद्य यो दद्याद् रजताचलमुत्तमम्।
गवामयुतदानस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ९

सोमलोके स गन्धर्वैः किंनराप्सरसां गणैः।
पूज्यमानो वसेद् विद्वान् यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १०

शेष हवन, जागरण आदि सारे कार्य धान्यपर्वतकी भाँति ही करे। तत्पश्चात् प्रातःकाल वस्त्र और आभूषण आदिके द्वारा गुरु और ऋत्विजोंका पूजन कर रजताचल गुरुको और विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे। उस समय मत्सररहित हो हाथमें कुश लेकर इस मन्त्रका पाठ करे—'रजताचल! तुम पितरोंको तथा श्रीहरि, सूर्य, इन्द्र और शिवको परम प्रिय हो, इसलिये शोकरूपी संसार-सागरसे मेरी रक्षा करो।' जो मानव इस प्रकार निवेदन कर श्रेष्ठ रजताचलका दान करता है, वह दस हजार गो-दानका फल प्राप्त करता है। वह विद्वान् चन्द्रलोकमें गन्धर्वों, किन्नरों और अप्सराओंके समूहोंसे पूजित होकर प्रलयकालतक निवास करता है॥ १—१०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे रौप्याचलकीर्तनं नामैकनवतितमोऽध्यायः॥ ९१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें रौप्याचलकीर्तन नामक इक्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९१॥



बानबेवाँ अध्याय

शर्कराशैलके दानकी विधि और उसका माहात्म्य तथा राजा धर्ममूर्तिके वृत्तान्त-प्रसङ्गमें लवणाचलदानका महत्त्व

ईश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शर्कराशैलमुत्तमम्।
यस्य प्रदानाद् विष्ण्वर्करुद्रास्तुष्यन्ति सर्वदा॥ १

अष्टभिः शर्कराभारैरुत्तमः स्यान्महाचलः।
चतुर्भिर्मध्यमः प्रोक्तो भाराभ्यामवरः स्मृतः॥ २

भारेण वार्धभारेण कुर्याद् यः स्वल्पवित्तवान्।
विष्कम्भपर्वतान् कुर्यात् तुरीयांशेन मानवः॥ ३

धान्यपर्वतवत् सर्वमासाद्यामरसंयुतम्।
मेरोरुपरि तद्वच्च स्थाप्य हेमतरुत्रयम्॥ ४

भगवान् शंकरने कहा—नारदजी! इसके पश्चात् मैं परमोत्तम शर्कराशैलका वर्णन कर रहा हूँ, जिसका दान करनेसे भगवान् विष्णु, रुद्र और सूर्य सदा संतुष्ट रहते हैं। आठ भार शक्करसे बना हुआ शर्कराचल उत्तम, चार भारसे बना हुआ मध्यम और दो भारसे बना हुआ अधम कहा गया है। जो मानव स्वल्प सम्पत्तिवाला हो, वह एक भार अथवा आधे भारसे भी शर्कराचल बनवा सकता है। प्रधान पर्वतके चतुर्थांशसे विष्कम्भपर्वतोंका भी निर्माण करना चाहिये। पुनः धान्यपर्वतकी तरह सारी सामग्री प्रस्तुत करके मेरुपर्वतकी भाँति इसके ऊपर भी स्वर्णमयी देवमूर्तिके साथ

* हेमाद्रि, कल्पतरु, पद्मपुराणादिमें—वहाँ 'विलेपनैः' पाठ है।

मन्दारः पारिजातश्च तृतीयः कल्पपादपः।
एतद् वृक्षत्रयं मूर्ध्नि सर्वेष्वपि निवेशयेत्॥ ५
हरिचन्दनसंतानौ पूर्वपश्चिमभागयोः।
निवेश्यौ सर्वशैलेषु विशेषाच्छर्कराचले॥ ६
मन्दरे कामदेवस्तु प्रत्यग्वक्त्रः सदा भवेत्।
गन्धमादनशृङ्गे च धनदः स्यादुदङ्मुखः॥ ७
प्राङ्मुखो वेदमूर्तिश्च हंसः स्याद् विपुलाचले।
हैमी सुपार्श्वे सुरभिर्दक्षिणाभिमुखी भवेत्॥ ८

मन्दार, पारिजात और कल्पवृक्ष—इन तीनों वृक्षोंकी भी स्वर्णनिर्मित मूर्ति स्थापित करे। इन तीनों वृक्षोंको तो प्रायः सभी पर्वतोंपर स्थापित कर देना चाहिये। सभी पर्वतोंके पूर्व और पश्चिम भागमें हरिचन्दन और कल्पवृक्षको निविष्ट करना चाहिये। शर्कराचलमें तो इसका विशेषरूपसे ध्यान रखना चाहिये। मन्दराचलपर कामदेवकी मूर्ति सदा पश्चिमाभिमुखी, गन्धमादनके शिखरपर कुबेरकी मूर्ति उत्तराभिमुखी, विपुलाचलपर वेदमूर्ति—ब्रह्मा और हंसकी मूर्ति पूर्वाभिमुखी और सुपार्श्व पर्वतपर स्वर्णमयी गौकी मूर्ति दक्षिणाभिमुखी होनी चाहिये॥ १—८॥

धान्यपर्वतवत् सर्वमावाहनविधानकम्।
कृत्वा तु गुरवे दद्यान्मध्यमं पर्वतोत्तमम्।
ऋत्विग्भ्यश्चतुरः शैलानिमान् मन्त्रानुदीरयन्॥ ९
सौभाग्यामृतसारोऽयं पर्वतः शर्करायुतः।
तस्मादानन्दकारी त्वं भव शैलेन्द्र सर्वदा॥ १०
अमृतं पिबतां ये तु निपेतुर्भुवि शीकराः।
देवानां तत्समुत्थस्त्वं पाहि नः शर्कराचल॥ ११
मनोभवधनुर्मध्यादुद्भूता शर्करा यतः।
तन्मयोऽसि महाशैल पाहि संसारसागरात्॥ १२
यो दद्याच्छर्कराशैलमनेन विधिना नरः।
सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः स याति परमं पदम्॥ १३
चन्द्रतारार्कसंकाशमधिरुह्यानुजीविभिः।
सहैव यानमातिष्ठेत् तत्र विष्णुप्रचोदितः॥ १४
ततः कल्पशतान्ते तु सप्तद्वीपाधिपो भवेत्।
आयुरारोग्यसम्पन्नो यावज्जन्मार्बुदत्रयम्॥ १५
भोजनं शक्तितः दद्यात् सर्वशैलेष्वमत्सरः।
सर्वत्राक्षारलवणमश्नीयात् तदनुज्ञया।
पर्वतोपस्करान् सर्वान् प्रापयेद् ब्राह्मणालयम्॥ १६

तत्पश्चात् आवाहन आदि सारा विधान धान्यपर्वतकी भाँति करके अन्तमें इन वक्ष्यमाण मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए विचला प्रधान पर्वत गुरुको और चारों विष्कम्भपर्वत ऋत्विजोंको दान कर दे। (वे मन्त्र इस प्रकारके अर्थवाले हैं—) 'शैलेन्द्र! यह शक्करद्वारा निर्मित पर्वत सौभाग्य और अमृतका सार है, इसलिये तुम मेरे लिये सदा आनन्दकारक होओ। शर्कराचल! देवताओंके अमृत-पान करते समय जो बूँदें भूतलपर टपक पड़ी थीं, उन्हींसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई है; अतः तुम हमारी रक्षा करो। महाशैल! चूँकि शर्करा कामदेवके धनुषके मध्यभागसे प्रादुर्भूत हुई है और तुम शर्करामय हो, इसलिये संसारसागरसे मुझे बचाओ।' जो मनुष्य उपर्युक्त विधिके अनुसार शर्कराशैलका दान करता है, वह समस्त पापोंसे विमुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है। वहाँ वह भगवान् विष्णुकी आज्ञासे अपने आश्रितोंके साथ ही सूर्य, चन्द्र और तारकाओंके समान कान्तिमान् विमानपर आरूढ़ होकर सुशोभित होता है। पुनः सौ कल्पोंके बाद तीन अरब जन्मोंतक भूतलपर दीर्घायु और नीरोगतासे युक्त होकर सातों द्वीपोंका अधिपति होता है। सभी पर्वतदानोंमें मत्सररहित होकर अपनी शक्तिके अनुसार भोजन करनेका विधान है। सर्वत्र गुरुकी आज्ञासे अपनी शक्तिके अनुकूल क्षार (नमक)-रहित भोजन करना चाहिये। पुनः पर्वतदानकी सारी सामग्री ब्राह्मणके घर स्वयं भेजवा देनी चाहिये॥ ९—१६॥

ईश्वर उवाच

आसीत् पुरा बृहत्कल्पे धर्ममूर्तिर्जनाधिपः।
सुहृच्छक्रस्य निहता येन दैत्याः सहस्रशः॥ १७

ईश्वरने कहा—नारद! पहले बृहत्कल्पमें धर्ममूर्ति नामक एक राजा हुआ था। उसके तेजके सामने सूर्य और चन्द्रमा आदि भी कान्तिहीन हो जाते थे। वह इन्द्रका मित्र था। उसने हजारों दैत्योंका वध किया था।

सोमसूर्यादयो यस्य तेजसा विगतप्रभाः।
अभवञ्शतशो येन शत्रवश्च पराजिताः।
यथेच्छारूपधारी च मनुष्योऽप्यपराजितः॥ १८
तस्य भानुमती नाम भार्या त्रैलोक्यसुन्दरी।
लक्ष्मीवद् दिव्यरूपेण निर्जितामरसुन्दरी॥ १९
राज्ञस्तस्याग्र्यमहिषी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
दशनारीसहस्राणां मध्ये श्रीरिव राजते॥ २०
नृपकोटिसहस्रेण न कदाचित् स मुच्यते।
कदाचिदास्थानगतं पप्रच्छ स पुरोधसम्।
विस्मयेनावृतो राजा वसिष्ठमृषिसत्तमम्॥ २१

वह इच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला मनुष्य होनेपर भी किसीसे परास्त नहीं हुआ था, अपितु उसके द्वारा सैकड़ों शत्रु पराजित हो चुके थे। उसकी पत्नीका नाम भानुमती था। वह त्रिलोकीमें सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। उसने लक्ष्मीके समान अपने दिव्य रूपसे देवाङ्गनाओंको भी पराजित कर दिया था। वह दस हजार नारियोंके बीचमें लक्ष्मीकी तरह सुशोभित होती थी। राजा धर्ममूर्तिकी वह पटरानी उसे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय थी। उसे असंख्य राजा सदा घेरे रहते थे। एक बार सभामण्डपमें आये हुए अपने पुरोहित महर्षि वसिष्ठसे उस राजाने विस्मयविमुग्ध हो ऐसा प्रश्न किया॥ १७—२१॥

राजोवाच

भगवन् केन धर्मेण मम लक्ष्मीरनुत्तमा।
कस्माच्च विपुलं तेजो मच्छरीरे सदोत्तमम्॥ २२

राजाने पूछा—भगवन्! किस धर्मके प्रभावसे मुझे सर्वश्रेष्ठ लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है? तथा किस धर्मके फलस्वरूप मेरे शरीरमें सदा प्रचुरमात्रामें उत्तम तेज विराजमान रहता है?॥ २२॥

वसिष्ठ उवाच

पुरा लीलावती नाम वेश्या शिवपरायणा।
तया दत्तश्चतुर्दश्यां गुरवे लवणाचलः।
हेमवृक्षादिभिः सार्धं यथावद् विधिपूर्वकम्॥ २३
शूद्रः सुवर्णकारश्च नाम्ना शौण्डोऽभवत् तदा।
भृत्यो लीलावतीगेहे तेन हेम्ना विनिर्मिताः॥ २४
तरवः सुरमुख्याश्च श्रद्धायुक्तेन पार्थिव।
अतिरूपेण सम्पन्ना घटयित्वा बिना भृतिम्।
धर्मकार्यमिति ज्ञात्वा न गृह्णाति कथञ्चन॥ २५
उज्ज्वालिताश्च तत्पत्न्या सौवर्णामरपादपाः।
लीलावती गिरेः पार्श्वे परिचर्यां च पार्थिव॥ २६
कृत्वा ताभ्यामशाठ्येन गुरुशुश्रूषणादिकम्।
सा च लीलावती वेश्या कालेन महतापि च॥ २७
कालधर्ममनुप्राप्ता कर्मयोगेन नारद।
सर्वपापविनिर्मुक्ता जगाम शिवमन्दिरम्॥ २८
योऽसौ सुवर्णकारस्तु दरिद्रोऽप्यतिसत्त्ववान्।
न मौल्यमादाद् वेश्यातः स भवानिह साम्प्रतम्॥ २९

वसिष्ठजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें लीलावती नामकी एक वेश्या थी। वह शिवजीकी भक्ता थी। उसने चतुर्दशी तिथिके दिन विधिपूर्वक अपने गुरुको स्वर्णमय वृक्ष आदि उपकरणोंसहित लवणाचलका दान किया था। उन दिनों लीलावतीके घर एक शूद्रजातीय शौण्ड नामक सोनार नौकर था। भूपाल! उसने ही श्रद्धापूर्वक सुवर्णद्वारा वृक्षों और प्रधान देवताओंकी मूर्तियोंका निर्माण किया था। उसने बिना कुछ पारिश्रमिक लिये उन मूर्तियोंको गढ़कर अत्यन्त सुन्दर बनाया था और यह धर्मका कार्य है—ऐसा जानकर किसी भी प्रकारका कुछ वेतन भी नहीं लिया था। पृथ्वीपते! उस स्वर्णकारकी पत्नीने भी उन सुवर्णनिर्मित देवों एवं वृक्षोंकी मूर्तियोंको रगड़कर चमकीला बनाया था और लीलावतीके पर्वत-दानमें बड़ी परिचर्या की थी। उन दोनोंकी सहायतासे लीलावतीने गुरु-शुश्रूषा आदि कार्योंको सम्पन्न किया था। नारद! अधिक कालके व्यतीत होनेपर वह वेश्या लीलावती कर्मयोगके अनुसार जब कालधर्म (मृत्यु)-को प्राप्त हुई, तब समस्त पापोंसे मुक्त होकर शिवलोकको चली गयी। वह सोनार, जो दरिद्र होते हुए भी अत्यन्त सामर्थ्यशाली था और जिसने वेश्यासे कुछ भी मूल्य नहीं लिया था, इस समय इस जन्ममें तुम हो,

सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्यायुतसमप्रभः।

यथा सुवर्णकारस्य तरवो हेमनिर्मिताः।

सम्यगुज्ज्वालिताः पत्न्या सेयं भानुमती तव॥ ३०

उज्ज्वालनादुज्ज्वलरूपमस्याः
संजातमस्मिन् भुवनाधिपत्यम्।
यस्मात् कृतं तत् परिकर्म रात्रा-
वनुद्धताभ्यां लवणाचलस्य॥ ३१

तस्माच्च लोकेष्वपराजितत्व-
मारोग्यसौभाग्ययुता च लक्ष्मीः।
तस्मात्त्वमप्यत्र विधानपूर्वं
धान्याचलादीन् दशधा कुरुष्व॥ ३२

तथेति सत्कृत्य स धर्ममूर्ति-
र्वचो वसिष्ठस्य ददौ च सर्वान्।
धान्याचलादीञ्शतशो मुरारे-
र्लोकं जगामामरपूज्यमानः॥ ३३

पश्येदपीमानधनोऽतिभक्त्या
स्पृशेन्मनुष्यैरपि दीयमानान्।
शृणोति भक्त्याथ मतिं ददाति
विकल्मषः सोऽपि दिवं प्रयाति॥ ३४

दुःस्वप्नं प्रशममुपैति पाठ्यमानैः
शैलेन्द्रैर्भवभयभेदनैर्मनुष्यैः।
यः कुर्यात् किमु मुनिपुंगवेह सम्यक्
शान्तात्मा सकलगिरीन्द्रसम्प्रदानम्॥ ३५

जो दस हजार सूर्योंके समान कान्तिमान् और सातों द्वीपोंके अधीश्वररूपसे उत्पन्न हुए हो। सोनारकी जिस पत्नीने स्वर्णनिर्मित वृक्षों एवं देव-मूर्तियोंको अत्यन्त चमकीला बनाया था, वही यह भानुमती तुम्हारी पटरानी है॥ २३—३०॥

मूर्तियोंको उज्ज्वल करनेके कारण इसे इस जन्ममें सुन्दर गौरवर्णका शरीर और भुवनेश्वरीका पद प्राप्त हुआ है। चूँकि तुम दोनोंने दत्तचित्त होकर रात्रिमें लवणाचलके दान-प्रसंगमें सहायक रूपसे कर्म किया था, इसीलिये तुम्हें लोकमें अजेयता, नीरोगता और सौभाग्यसम्पन्नता लक्ष्मीकी प्राप्ति हुई है। इस कारण तुम भी इस जन्ममें विधानपूर्वक दस प्रकारके धान्याचल आदि पर्वतोंका दान करो। तब राजा धर्ममूर्तिने 'तथेति— ऐसा ही करूँगा' कहकर वसिष्ठजीके वचनोंका आदर किया और सैकड़ों बार धान्याचल आदि सभी पर्वतोंका दान किया, जिसके फलस्वरूप देवगणोंद्वारा पूजित होकर भगवान् मुरारिके लोकको प्राप्त हुआ। निर्धन मनुष्य भी यदि उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक इन पर्वत-दानोंको देखता है, मनुष्योंद्वारा दान करते समय उनका स्पर्श कर लेता है, उनकी कथाएँ सुनता है और उन्हें करनेके लिये सम्मति देता है तो वह भी पापरहित होकर स्वर्गलोकको चला जाता है। मुनिपुंगव! जब इस लोकमें मनुष्यद्वारा भव-भयको विदीर्ण करनेवाले इन शैलेन्द्रोंके प्रसङ्गका पाठ करनेसे दुःस्वप्न शान्त हो जाते हैं, तब जो मनुष्य स्वयं शान्तचित्तसे विधिपूर्वक इन सम्पूर्ण पर्वतदानोंको करता है, उसके लिये तो कहना ही क्या है?॥ ३१—३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पर्वतप्रदानमाहात्म्यं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः॥ ९२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पर्वतप्रदानमाहात्म्य नामक बानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९२॥



तिरानबेवाँ अध्याय

शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मो तथा नवग्रह-शान्तिकी विधिका वर्णन*

सूत उवाच

वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुरा।
सर्वकामाप्तये नित्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम्॥ १

वैशम्पायन उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहयज्ञं समारभेत्।
वृष्ट्यायुःपुष्टिकामो वा तथैवाभिवरन् पुनः।
येन ब्रह्मन् विधानेन तन्मे निगदतः शृणु॥ २

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य संक्षिप्य ग्रन्थविस्तरम्।
ग्रहशान्तिं प्रवक्ष्यामि पुराणश्रुतिचोदिताम्॥ ३

पुण्येऽह्नि विप्रकथिते कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
ग्रहान् ग्रहाधिदेवांश्च स्थाप्य होमं समारभेत्॥ ४

ग्रहयज्ञस्त्रिधा प्रोक्तः पुराणश्रुतिकोविदैः।
प्रथमोऽयुतहोमः स्याल्लक्षहोमस्ततः परम्॥ ५

तृतीयः कोटिहोमस्तु सर्वकामफलप्रदः।
अयुतेनाहुतीनां च नवग्रहमखः स्मृतः॥ ६

तस्य तावद्विधिं वक्ष्ये पुराणश्रुतिभाषितम्।
गर्तस्योत्तरपूर्वेण वितस्तिद्वयविस्तृताम्॥ ७

वप्रद्वयावृतां वेदिं वितस्त्युच्छ्रितसम्मिताम्।
संस्थापनाय देवानां चतुरस्रामुदङ्मुखाम्॥ ८

अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत् सुरान्।
देवतानां ततः स्थाप्या विंशतिर्द्वादशाधिका॥ ९

सूर्यः सोमस्तथा भौमो बुधजीवसितार्कजाः।
राहुः केतुरिति प्रोक्ता ग्रहा लोकहितावहाः॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालकी बात है, एक बार सुखपूर्वक बैठे हुए वैशम्पायनजीसे शौनकने पूछा—'महर्षे! सम्पूर्ण कामनाओंकी अविचल सिद्धिके लिये शान्तिक एवं पौष्टिक कर्मोंका अनुष्ठान किस प्रकार करना चाहिये?'॥ १॥

वैशम्पायनजीने कहा—ब्रह्मन्! लक्ष्मीकी कामनावाले अथवा शान्तिके अभिलाषी तथा वृष्टि, दीर्घायु और पुष्टिकी इच्छासे युक्त मनुष्यको ग्रहयज्ञका समारम्भ करना चाहिये। वह ग्रहयज्ञ जिस विधानसे करना चाहिये, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। मैं सम्पूर्ण शास्त्रोंका अवलोकन करनेके पश्चात् विस्तृत ग्रन्थको संक्षिप्तकर पुराणों एवं श्रुतियोंद्वारा आदिष्ट इस ग्रहशान्तिका वर्णन कर रहा हूँ। इसके लिये ज्योतिषी ब्राह्मणद्वारा बतलाये गये पुण्यमय दिनमें ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर ग्रहों एवं ग्रहाधिदेवोंकी स्थापना करके हवन प्रारम्भ करना चाहिये। पुराणों एवं श्रुतियोंके ज्ञाता विद्वानोंने तीन प्रकारका ग्रहयज्ञ बतलाया है। पहला दस हजार आहुतियोंका, उससे बढ़कर दूसरा एक लाख आहुतियोंका तथा सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला तीसरा एक करोड़ आहुतियोंका होता है। दस हजार आहुतियोंवाला ग्रहयज्ञ नवग्रहयज्ञ कहलाता है। इसकी विधिका, जो पुराणों एवं श्रुतियोंमें बतलायी गयी है, मैं वर्णन कर रहा हूँ। (यजमान मण्डपनिर्माणके बाद) हवनकुण्डकी पूर्वोत्तर दिशामें देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका निर्माण कराये, जो दो बीता लम्बी-चौड़ी, एक बीता ऊँची, दो परिधियोंसे सुशोभित और चौकोर हो। उसका मुख उत्तरकी ओर हो। पुनः कुण्डमें अग्निकी स्थापना करके उस वेदीपर देवताओंका आवाहन करे। इस प्रकार उसपर बत्तीस देवताओंकी स्थापना करनी चाहिये॥ २—९॥

सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये लोगोंके हितकारी ग्रह कहे गये हैं।

* यह पाँच आथर्वण कल्पों—नक्षत्र, वैतान, संहिताविधि, अङ्गिरस एवं शान्तिकल्पमेंसे प्रथम एवं पाँचवें शान्तिकल्पका समन्वित रूप है और अथर्वपरिशिष्ट, याज्ञवल्क्यस्मृति १। २९५—३०८, वृद्धपाराशर ११, पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ८२—८६, नारदपुराण १। ५१, भविष्यपुराण, अग्निपुराण २६४—७४ आदिमें भी प्राप्त हैं। मत्स्यका पाठ बहुत अशुद्ध है। उपर्युक्त ग्रन्थोंकी सहायतासे इसे पूर्णतया शुद्ध कर लिया गया है। इनकी कई बातें शान्ति-संग्रहों और ज्योतिषग्रन्थोंमें भी आयी हैं।

मध्ये तु भास्करं विद्याल्लोहितं दक्षिणेन तु।
उत्तरेण गुरुं विद्याद् बुधं पूर्वोत्तरेण तु॥ ११
पूर्वेण भार्गवं विद्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके।
पश्चिमेन शनिं विद्याद् राहुं पश्चिमदक्षिणे।
पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेच्छुक्लतण्डुलैः॥ १२
भास्करस्येश्वरं विद्यादुमां च शशिनस्तथा।
स्कन्दमङ्गारकस्यापि बुधस्य च तथा हरिम्॥ १३
ब्रह्माणं च गुरोर्विद्याच्छुक्रस्यापि शचीपतिम्।
शनैश्चरस्य तु यमं राहोः कालं तथैव च॥ १४
केतोर्वै चित्रगुप्तं च सर्वेषामधिदेवताः।
अग्निरापः क्षितिर्विष्णुरिन्द्र ऐन्द्री च देवता॥ १५
प्रजापतिश्च सर्पाश्च ब्रह्मा प्रत्यधिदेवताः।
विनायकं तथा दुर्गां वायुराकाशमेव च।
आवाहयेद् व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ॥ १६
संस्मरेद् रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम्।
सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ।
मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः॥ १७
ग्रहवर्णानि देयानि वासांसि कुसुमानि च।
धूपामोदोऽत्र सुरभिरुपरिष्टाद् वितानिकम्।
शोभनं स्थापयेत् प्राज्ञः फलपुष्पसमन्वितम्॥ १८
गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम्।
अङ्गारकाय संयावं बुधाय क्षीरषष्टिकम्॥ १९
दध्योदनं च जीवाय शुक्राय च घृतौदनम्।
शनैश्चराय कृसरामजामांसं च राहवे।
चित्रौदनं च केतुभ्यः सर्वैर्भक्ष्यैरथार्चयेत्॥ २०
प्रागुत्तरेण तस्माच्च दध्यक्षतविभूषितम्।
चूतपल्लवसंच्छन्नं फलवस्त्रयुगान्वितम्॥ २१
पञ्चरत्नसमायुक्तं पञ्चभङ्गसमन्वितम्।
स्थापयेदव्रणं कुम्भं वरुणं तत्र विन्यसेत्॥ २२
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्रांश्च सरांसि च।
गजाश्वरथ्यावल्मीकसङ्गमाद्ध्रदगोकुलात्॥ २३

श्वेत चावलोंद्वारा वेदीके मध्यमें सूर्यकी, दक्षिणमें मंगलकी, उत्तरमें बृहस्पतिकी, पूर्वोत्तरकोणपर बुधकी, पूर्वमें शुक्रको, दक्षिणपूर्वकोणपर चन्द्रमाकी, पश्चिममें शनिकी, पश्चिम-दक्षिणकोणपर राहुकी और पश्चिमोत्तरकोणपर केतुको स्थापना करनी चाहिये। इन सभी ग्रहोंमें सूर्यके शिव, चन्द्रमाके पार्वती, मंगलके स्कन्द, बुधके भगवान् विष्णु, बृहस्पतिके ब्रह्मा, शुक्रके इन्द्र, शनैश्चरके यम, राहुके काल और केतुके चित्रगुप्त अधिदेवता माने गये हैं। अग्नि, जल, पृथ्वी, विष्णु, इन्द्र, ऐन्द्री देवता, प्रजापति, सर्प और ब्रह्मा—ये सभी क्रमशः प्रत्यधिदेवता हैं। इनके अतिरिक्त विनायक, दुर्गा, वायु, आकाश और अश्विनीकुमारोंका भी व्याहृतियोंके उच्चारणपूर्वक आवाहन करना चाहिये। उस समय मंगलसहित सूर्यको लाल वर्णका, चन्द्रमा और शुक्रको श्वेतवर्णका, बुध और बृहस्पतिको पीतवर्णका, शनि और राहुको कृष्णवर्णका तथा केतुको धूम्रवर्णका जानना और ध्यान करना चाहिये। बुद्धिमान् यज्ञकर्ता जो ग्रह जिस रंगका हो, उसे उसी रंगका वस्त्र और फूल समर्पित करे, सुगन्धित धूप दे, ऊपर सुन्दर चँदोवा लगा दे। पुनः फल, पुष्प आदिके साथ सूर्यको गुड़ और चावलसे बने हुए अन्न (खीर)-का, चन्द्रमाको घी और दूधसे बने हुए पदार्थका, मंगलको गोझियाका, बुधको क्षीरषष्टिक (दूधमें पके हुए साठीके चावल)-का, बृहस्पतिको दही-भातका, शुक्रको घी-भातका, शनैश्चरको खिचड़ीका, राहुको अजा नामक वृक्षके फलके गूदाका और केतुको विचित्र रंगवाले भातका नैवेद्य अर्पण करके सभी प्रकारके भक्ष्य पदार्थोंद्वारा पूजन करे॥ १०—२०॥

वेदीके पूर्वोत्तरकोणपर एक छिद्ररहित कलशकी स्थापना करे, उसे दही और अक्षतसे सुशोभित, आमके पल्लवसे आच्छादित और दो वस्त्रोंसे परिवेष्टित करके उसके निकट फल रख दे। उसमें पञ्चरत्न डाल दे और उसे पञ्चभंग (पीपल, बरगद, पाकड़, गूलर और आमके पल्लव)-से युक्त कर दे। उसपर वरुण, गङ्गा आदि नदियों, सभी समुद्रों और सरोवरोंका आवाहन तथा स्थापन करे। विप्रेन्द्र! धर्मज्ञ पुरोहितको चाहिये कि वह हाथीसार, घुड़शाल, चौराहे, बिमवट, नदीके संगम,

मृदमानीय विप्रेन्द्र सर्वौषधिजलान्विताम्।
स्नानार्थं विन्यसेत् तत्र यजमानस्य धर्मवित्॥ २४
सर्वे समुद्राः सरितः सरांसि जलदा नदाः।
आयान्तु यजमानस्य दुरितक्षयकारकाः॥ २५
एवमावाहयेदेतानमरान् मुनिसत्तम।
होमं समारभेत् सर्पिर्यवव्रीहितिलादिभिः॥ २६
अर्कः पलाशखदिरावपामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्॥ २७
एकैकस्याष्टकशतमष्टाविंशतिरेव वा।
होतव्या मधुसर्पिभ्यां दध्ना चैव समन्विताः॥ २८
प्रादेशमात्रा अशिफा अशाखा अपलाशिनीः।
समिधः कल्पयेत् प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा॥ २९
देवानामपि सर्वेषामुपांशुः परमार्थवित्।
स्वेन स्वेनैव मन्त्रेण होतव्याः समिधः पृथक्॥ ३०

कुण्ड और गोशालेकी मिट्टी लाकर उसे सर्वौषधमिश्रित जलसे अभिषिक्त कर यजमानके स्नानके लिये वहाँ प्रस्तुत कर दे तथा 'यजमानके पापको नष्ट करनेवाले सभी समुद्र, नदी, नद, बादल और सरोवर यहाँ पधारें' यों कहकर इन देवताओंका आवाहन करे। मुनिसत्तम! तत्पश्चात् घी, यव, चावल, तिल आदिसे हवन प्रारम्भ करे। मदार, पलाश, खैर, चिचिंडा, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश—ये क्रमशः नवों ग्रहोंकी समिधाएँ हैं। इनमें-प्रत्येक ग्रहके लिये मधु, घी और दहीसे युक्त एक सौ आठ अथवा अट्ठाईस आहुतियाँ हवन करनी चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको सदा सभी कर्मोंमें अंगूठेके सिरेसे तर्जनीके सिरेतकको मापवाली-तथा बरोह, शाखा और पत्तोंसे रहित समिधाओंको कल्पना करनी चाहिये। परमार्थवेत्ता यजमान सभी देवताओंके लिये उन-उनके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंका मन्द स्वरसे उच्चारण करते हुए समिधाओंका हवन करे॥ २१—३०॥

होतव्यं च घृताभ्यक्तं चरुभक्षादिकं पुनः।
मन्त्रैर्दशाहुतीर्हुत्वा होमं व्याहृतिभिस्ततः॥ ३१
उदङ्मुखाः प्राङ्मुखा वा कुर्युर्ब्राह्मणपुंगवाः।
मन्त्रवन्तश्च कर्तव्याश्चरवः प्रतिदैवतम्॥ ३२
दत्त्वा च तांश्चरून् सम्यक् ततो होमं समाचरेत्।
आकृष्णेनेति सूर्याय होमः कार्यो द्विजन्मना॥ ३३
आप्यायस्वेति सोमाय मन्त्रेण जुहुयात् पुनः।
अग्निर्मूर्धा दिवो मन्त्र इति भौमाय कीर्तयेत्॥ ३४
अग्ने विवस्वदुषस इति सोमसुताय वै।
बृहस्पते परिदीया रथेनेति गुरोर्मतः॥ ३५
शुक्रं ते अन्यदिति च शुक्रस्यापि निगद्यते।
शनैश्चरायेति पुनः शं नो देवीति होमयेत्॥ ३६

पुनः चरु आदि हवनीय पदार्थोंमें घी मिलाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् व्याहृतियोंका उच्चारण करके घीकी दस आहुतियाँ अग्निमें डाले। पुनः श्रेष्ठ ब्राह्मण उत्तराभिमुख अथवा पूर्वाभिमुख बैठकर प्रत्येक देवताके मन्त्रोच्चारणपूर्वक चरु आदि पदार्थोंका हवन करें। इस प्रकार उन चरुओंका भलीभाँति हवन करनेके पश्चात् (प्रत्येक देवताके लिये उसके मन्त्रद्वारा) हवन करना चाहिये। ब्राह्मणको **'आकृष्णेन रजसा०'** (शुक्लयजुर्वाजसने० सं० ३३। ४३)—इस मन्त्रका उच्चारण कर सूर्यके लिये हवन करना चाहिये। पुनः **'आप्यायस्व०'** (वही १२। ११४) इस मन्त्रसे चन्द्रमाके लिये आहुति डाले। मंगलके लिये **'अग्निर्मूर्धा दिवः ककुत्०'** (वही० १३। १४) इस मन्त्रका पाठ करे। बुधके लिये **'अग्ने विवस्वदुषस०'**—(ऋ० सं० १। ४४। १) और देवगुरु बृहस्पतिके लिये **'परिदीया रथेन०'** (ऋक्० ५। ८३। ७)—ये मन्त्र माने गये हैं।* शुक्रके लिये **'शुक्रं ते अन्यद्०'** (ऋ० सं० ६। ५८। १, कृष्णय० तैत्तिरी० सं० ४। १। ११। २)—यह मन्त्र बतलाया गया है। शनैश्चरके लिये **'शं नो देवीरभीष्टये०'** (शुक्लयजु० वाज० ३६। १२३)—इस मन्त्रसे हवन करना

* यहाँ ग्रहों और देवताओंके कुछ मन्त्र अन्य पुराणों, स्मृतियों तथा पद्धतियोंसे भिन्न निर्दिष्ट हुए हैं।

कयानश्चित्र आभुव इति राहोरुदाहृतः।
केतुं कृण्वन्नपि ब्रूयात् केतूनामपि शान्तये॥ ३७

आवो राजेति रुद्रस्य बलिहोमं समाचरेत्।
आपो हिष्ठेत्युमायास्तु स्यो नेति स्वामिनस्तथा॥ ३८

विष्णोरिदं विष्णुरिति तमीशेति स्वयम्भुवः।
इन्द्रमिद्देवतायेति इन्द्राय जुहुयात् ततः॥ ३९

तथा यमस्य चायं गौरिति होमः प्रकीर्तितः।
कालस्य ब्रह्म जज्ञानमिति मन्त्रः प्रशस्यते॥ ४०

चित्रगुप्तस्य चाज्ञातमिति मन्त्रविदो विदुः।
अग्निं दूतं वृणीमह इति वह्नेरुदाहृतः॥ ४१

उदुत्तमं वरुणमित्यपां मन्त्रः प्रकीर्तितः।
भूमेः पृथिव्यन्तरिक्षमिति वेदेषु पठ्यते॥ ४२

सहस्रशीर्षा पुरुष इति विष्णोरुदाहृतः।
इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत इति शक्रस्य शस्यते॥ ४३

उत्तानपर्णे सुभगे इति देव्याः समाचरेत्।
प्रजापतेः पुनर्होमः प्रजापतिरिति स्मृतः॥ ४४

नमोऽस्तु सर्पेभ्य इति सर्पाणां मन्त्र उच्यते।
एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्य इति ब्रह्मण उदाहृतः॥ ४५

विनायकस्य चानूनमिति मन्त्रो बुधैः स्मृतः।
जातवेदसे सुनवामिति दुर्गोऽयमुच्यते॥ ४६

आदिप्रत्नस्य रेतस आकाशस्य उदाहृतः।
क्राणा शिशुर्महीनां च वायोर्मन्त्रः प्रकीर्तितः॥ ४७

एषो उषा अपूर्व्या इत्यश्विनोर्मन्त्र उच्यते।
पूर्णाहुतिस्तु मूर्धानं दिव इत्यभिपातयेत्॥ ४८

चाहिये। राहुके लिये **'कया नश्चित्र आभुव०'** (वही २७। ३९)—यह मन्त्र कहा गया है तथा केतुकी शान्तिके लिये— **'केतुं कृण्वन्०'** (वही २९। ३७) इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये॥ ३१—३७॥

फिर **'आ वो राजानमध्वरस्य रुद्रम्'** (ऋक्सं० ४। ३। १; कृष्णयजु० तै० सं० १। ३। १४। १)—इस मन्त्रका उच्चारण कर रुद्रके लिये हवन और बलि देना चाहिये। तत्पश्चात् उमाके लिये **'आपो हि ष्ठा०'** (वाजस-सं० ११। ५०)—इस मन्त्रसे, स्वामिकार्तिकके लिये **'स्यो ना०'**—इस मन्त्रसे, विष्णुके लिये **'इदं विष्णुः०'** (शुक्लयजु० वाज० ५। १५)—इस मन्त्रसे, ब्रह्माके लिये **'तमीशानम्०'** (वाजस० २५। १८)—इस मन्त्रसे, और इन्द्रके लिये **'इन्द्रमिद्देवताय०'**—इस मन्त्रसे आहुति डाले। उसी प्रकार यमके लिये **'अयं गौः०'** (वही ३। ६)—इस मन्त्रसे हवन बतलाया गया है। कालके लिये— **'ब्रह्मजज्ञानम्०'** (वही १३। ३) यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। मन्त्रवेत्तालोग चित्रगुप्तके लिये **'अज्ञातम्०'**—यह मन्त्र बतलाते हैं। अग्निके लिये **'अग्निं दूतं वृणीमहे'** (ऋक्सं० १। १२। १; अथर्व० २०। १०१। १)—यह मन्त्र बतलाया गया है। वरुणके लिये **'उदुत्तमं वरुणपाशम्'** (ऋक्सं० १। २४। १५)—यह मन्त्र कहा गया है। वेदोंमें पृथ्वीके लिये **'पृथिव्यन्तरिक्षम्०'**—इस मन्त्रका पाठ है। विष्णुके लिये **'सहस्रशीर्षा पुरुषः०'** (वाजस० सं० ३१। १)—यह मन्त्र कहा गया है। इन्द्रके लिये **'इन्द्रायेन्द्रो मरुत्वत०'**—यह मन्त्र प्रशस्त माना गया है। देवीके लिये **'उत्तानपर्णे सुभगे०'**—यह मन्त्र जानना चाहिये। पुनः प्रजापतिके लिये **'प्रजापतिः०'** (वाजस० सं० ३१। १७)—यह हवन-मन्त्र कहा जाता है। सर्पोंके लिये **'नमोऽस्तु सर्पेभ्यः०'** (वही १३। ६)—यह मन्त्र बतलाया जाता है। ब्रह्माके लिये **'एष ब्रह्मा य ऋत्विग्भ्यः०'**—यह मन्त्र कहा गया है। विनायकके लिये विद्वानोंने **'अनूनम्०'**—यह मन्त्र बतलाया है। **'जातवेदसे सुनवाम०'** (ऋक्० १। ९९। १)—यह दुर्गा-मन्त्र कहा जाता है। **'आदिप्रत्नस्य रेतस०'**—यह आकाशका मन्त्र बतलाया जाता है। **'क्राणा शिशुर्महीनां च०'**—यह वायुका मन्त्र कहा गया है। **'एषो उषाअपूर्व्यात्०'**—यह अश्विनी-कुमारोंका मन्त्र कहा जाता है। **'मूर्धानं दिव०'** (ऋक्० ६। ७। १; वाज० ७। २४)—इस मन्त्रसे हवनकुण्डमें पूर्णाहुति डालनी चाहिये॥ ३८—४८॥

अथाभिषेकमन्त्रेण वाद्यमङ्गलगीतकैः।
पूर्णकुम्भेन तेनैव होमान्ते प्रागुदङ्मुखम्॥ ४९
अव्यङ्गावयवैर्ब्रह्मन् हेमस्रग्दामभूषितैः।
यजमानस्य कर्तव्यं चतुर्भिः स्नपनं द्विजैः॥ ५०
सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
वासुदेवो जगन्नाथस्तथा संकर्षणो विभुः।
प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते॥ ५१
आखण्डलोऽग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा।
वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः।
ब्रह्मणा सहितः शेषो दिक्पालास्त्वामवन्तु ते॥ ५२
कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया नतिः।
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः।
एतास्त्वामभिषिञ्चन्तु धर्मपत्न्यः समागताः॥ ५३
आदित्यश्चन्द्रमा भौमो बुधो जीवः सितोऽर्कजः।
ग्रहास्त्वामभिषिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्पिताः॥ ५४
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
ऋषयो मुनयो गावो देवमातर एव च॥ ५५
देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः।
अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च॥ ५६
औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये।
सरितः सागराः शैलास्तीर्थानि जलदा नदाः।
एते त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वकामार्थसिद्धये॥ ५७

ब्रह्मन्! इस प्रकार हवन समाप्त हो जानेपर माङ्गलिक गायन और वादनके साथ-साथ अभिषेक-मन्त्रोंद्वारा उसी जलपूर्ण कलशसे पूर्व अथवा उत्तर मुख करके बैठे हुए यजमानका चार ब्राह्मण, जो सुडौल अङ्गोंवाले तथा सुवर्णनिर्मित जंजीरसे सुशोभित हों, अभिषेक करें और ऐसा कहें—'ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर—ये देवता तुम्हारा अभिषेक करें। जगदीश्वर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण, सामर्थ्यशाली संकर्षण (बलराम), प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—ये सभी तुम्हें विजय प्रदान करें। इन्द्र, अग्नि ऐश्वर्यशाली यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, कुबेर, ब्रह्मासहित शिव, शेषनाग और दिक्पालगण—ये सभी तुम्हारी रक्षा करें। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, नति (नम्रता), बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, तुष्टि, कान्ति—ये सभी माताएँ जो धर्मकी पत्नियाँ हैं, आकर तुम्हारा अभिषेक करें। सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनैश्चर, राहु और केतु—ये सभी ग्रह तृप्त होकर तुम्हारा अभिषेक करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषि, मुनि, गौ, देवमाताएँ, देवपत्नियाँ, वृक्ष, नाग, दैत्य, अप्सराओंके समूह, अस्त्र, सभी शस्त्र, नृपगण, वाहन, औषध, रत्न, (कला, काष्ठा आदि) कालके अवयव, नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थस्थान, बादल, नद—ये सभी सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये तुम्हारा अभिषेक करें'॥ ४९—५७॥

ततः शुक्लाम्बरधरः शुक्लगन्धानुलेपनः।
सर्वौषधैः सर्वगन्धैः स्नापितो द्विजपुङ्गवैः॥ ५८

यजमानः सपत्नीक ऋत्विजः सुसमाहितान्।
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद् गतविस्मयः॥ ५९

सूर्याय कपिलां धेनुं शङ्खं दद्यात् तथेन्दवे।
रक्तं धुरंधरं दद्याद् भौमाय च ककुद्मिनम्॥ ६०

बुधाय जातरूपं तु गुरवे पीतवाससी।
श्वेताश्वं दैत्यगुरवे कृष्णां गामर्कसूनवे॥ ६१

इस प्रकार श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषध एवं सम्पूर्ण सुगन्धित पदार्थोंसे युक्त जलसे स्नान करा दिये जानेके पश्चात् सपत्नीक यजमान श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत चन्दनका अनुलेपन करे और विस्मयरहित होकर शान्तचित्तवाले ऋत्विजोंका प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा आदि देकर पूजन करे तथा सूर्यके लिये कपिला गौका, चन्द्रमाके लिये शङ्खका, मंगलके लिये भार वहन करनेमें समर्थ एवं ऊँचे डीलवाले लाल रंगके बैलका, बुधके लिये सुवर्णका, बृहस्पतिके लिये एक जोड़ा पीले वस्त्रका, शुक्रके लिये श्वेत रंगके घोड़ेका, शनैश्चरके लिये काली गौका,

आयसं राहवे दद्यात् केतुभ्यश्छागमुत्तमम्।
सुवर्णेन समा कार्या यजमानेन दक्षिणा॥ ६२
सर्वेषामथवा गावो दातव्या हेमभूषिताः।
सुवर्णमथवा दद्याद् गुरुर्वा येन तुष्यति।
समन्त्रेणैव दातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणाः॥ ६३
कपिले सर्वदेवानां पूजनीयासि रोहिणी।
तीर्थदेवमयी यस्मादतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ६४
पुण्यस्त्वं शङ्ख पुण्यानां मङ्गलानां च मङ्गलम्।
विष्णुना विधृतश्चासि ततः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ६५
धर्मस्त्वं वृषरूपेण जगदानन्दकारक।
अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ६६
हिरण्यगर्भगर्भस्त्वं हेमबीजं विभावसोः।
अनन्तपुण्यफलदमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ६७
पीतवस्त्रयुगं यस्माद् वासुदेवस्य वल्लभम्।
प्रदानात् तस्य मे विष्णो ह्यतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ६८
विष्णुस्त्वमश्वरूपेण यस्मादमृतसम्भवः।
चन्द्रार्कवाहनो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ६९
यस्मात् त्वं पृथिवी सर्वा धेनुः केशवसंनिभा।
सर्वपापहरा नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७०
यस्मादायसकर्माणि तवाधीनानि सर्वदा।
लाङ्गलाद्यायुधादीनि तस्माच्छान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७१
छाग त्वं सर्वयज्ञानामङ्गत्वेन व्यवस्थितः।
यानं विभावसोर्नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ७२
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनानि चतुर्दश।
यस्मात् तस्माच्छ्रियै मे स्यादिह लोके परत्र च॥ ७३
यस्मादशून्यं शयनं केशवस्य च सर्वदा।
शय्या ममाप्यशून्यास्तु दत्ता जन्मनि जन्मनि॥ ७४
यथा रत्नेषु सर्वेषु सर्वे देवाः प्रतिष्ठिताः।
तथा रत्नानि यच्छन्तु रत्नदानेन मे सुराः॥ ७५

राहुके लिये लोहेकी बनी हुई वस्तुका और केतुके लिये उत्तम बकरेका दान करे। यजमानको ये सारी दक्षिणाएँ सुवर्णके साथ अथवा स्वर्णनिर्मित मूर्तिके रूपमें देनी चाहिये अथवा जिस प्रकार गुरु (पुरोहित) प्रसन्न हों, उनके आज्ञानुसार सभी ब्राह्मणोंको सुवर्णसे अलंकृत गौएँ अथवा केवल सुवर्ण दान करना चाहिये। किंतु सर्वत्र मन्त्रोच्चारणपूर्वक ही इन सभी दक्षिणाओंके देनेका विधान है॥ ५८—६३॥

(दान देते समय सभी देय वस्तुओंसे पृथक्-पृथक् इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये—) 'कपिले! तुम रोहिणीरूपा हो, तीर्थ एवं देवता तुम्हारे स्वरूप हैं तथा तुम सम्पूर्ण देवोंकी पूजनीया हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो।* शङ्ख! तुम पुण्योंके भी पुण्य और मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। भगवान् विष्णुने तुम्हें अपने हाथमें धारण किया है, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। जगत्‌को आनन्दित करनेवाले वृषभ! तुम वृषरूपसे धर्म और अष्टमूर्ति शिवजीके वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। सुवर्ण! तुम ब्रह्माके आत्मस्वरूप, अग्निके स्वर्णमय बीज और अनन्त पुण्यफलके प्रदाता हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। दो पीला वस्त्र अर्थात् पीताम्बर भगवान् श्रीकृष्णको परम प्रिय हैं, इसलिये विष्णो! उसका दान करनेसे आप मुझे शान्ति प्रदान करें। अश्व! तुम अश्वरूपसे विष्णु हो, अमृतसे उत्पन्न हुए हो तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके नित्य वाहन हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो। पृथ्वी! तुम समस्त धेनुस्वरूपा, केशवके सदृश फलदायिनी और सदा सम्पूर्ण पापोंको हरण करनेवाली हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। लौह! चूँकि विश्वके सभी सम्पादित होनेवाले लौह कर्म हल एवं अस्त्र आदि सारे कार्य सदा तुम्हारे ही अधीन हैं, इसलिये तुम मुझे शान्ति प्रदान करो। छाग! चूँकि तुम सम्पूर्ण यज्ञोंके मुख्य अङ्गरूपसे निर्धारित हो और अग्निदेवके नित्य वाहन हो, इसलिये मुझे शान्ति प्रदान करो। गौ! चूँकि गौओंके अङ्गोंमें चौदहों भुवन निवास करते हैं, इसलिये तुम मेरे लिये इहलोक एवं परलोकमें भी लक्ष्मी प्रदान करो। जिस प्रकार भगवान् केशवकी शय्या सदा अशून्य (लक्ष्मीसे युक्त) रहती है, वैसे ही मेरे द्वारा भी दान की गयी शय्या जन्म-जन्ममें अशून्य बनी रहे। जैसे सभी रत्नोंमें समस्त देवता निवास करते हैं, वैसे ही रत्नदान करनेसे वे देवता मुझे भी रत्न प्रदान करें।

* तुलनीय—'इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे' आदि (यजु० ८। ४३ और उसके उव्वट-महीधरादिभाष्य)।

यथा भूमिप्रदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
दानान्यन्यानि मे शान्तिर्भूमिदानाद् भवत्विह॥ ७६

जिस प्रकार अन्य सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः भूमि-दान करनेसे मुझे इस लोकमें शान्ति प्राप्त हो'॥ ६४—७६॥

एवं सम्पूजयेद् भक्त्या वित्तशाठ्येन वर्जितः।
रत्नकाञ्चनवस्त्रौघैर्धूपमाल्यानुलेपनैः ॥ ७७

अनेन विधिना यस्तु ग्रहपूजां समाचरेत्।
सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य स्वर्गे महीयते॥ ७८

यस्तु पीडाकरो नित्यमल्पवित्तस्य वा ग्रहः।
तं च यत्नेन सम्पूज्य शेषानप्यर्चयेद् बुधः॥ ७९

ग्रहा गावो नरेन्द्राश्च ब्राह्मणाश्च विशेषतः।
पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यवमानिताः॥ ८०

यथा बाणप्रहाराणां कवचं भवति वारणम्।
तद्वद् दैवोपघातानां शान्तिर्भवति वारिका॥ ८१

तस्मान्न दक्षिणाहीनं कर्तव्यं भूतिमिच्छता।
सम्पूर्णया दक्षिणया यस्माद् देवोऽपि तुष्यति॥ ८२

सदैवायुतहोमोऽयं नवग्रहमखे स्थितः।
विवाहोत्सवयज्ञेषु प्रतिष्ठादिषु कर्मसु॥ ८३

निर्विघ्नार्थं मुनिश्रेष्ठ तथोद्वेगाद्भुतेषु च।
कथितोऽयुतहोमोऽयं लक्षहोममतः शृणु॥ ८४

सर्वकामाप्तये यस्माल्लक्षहोमं विदुर्बुधाः।
पितॄणां वल्लभं साक्षाद् भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ ८५

ग्रहताराबलं लब्ध्वा कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
गृहस्योत्तरपूर्वेण मण्डपं कारयेद् बुधः॥ ८६

रुद्रायतनभूमौ वा चतुरस्रमुदङ्मुखम्।
दशहस्तमथाष्टौ वा हस्तान् कुर्याद् विधानतः॥ ८७

प्रागुदक्प्लवनां भूमिं कारयेद् यत्नतो बुधः।

इस प्रकार कृपणता छोड़कर भक्तिपूर्वक रत्न, सुवर्ण, वस्त्रसमूह, धूप, पुष्पमाला और चन्दन आदिसे ग्रहोंकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे ग्रहोंकी पूजा करता है, वह इस लोकमें सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है तथा मरनेपर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यदि किसी निर्धन मनुष्यको कोई ग्रह नित्य पीड़ा पहुँचा रहा हो तो उस बुद्धिमान्‌को चाहिये कि उस ग्रहकी यत्नपूर्वक भलीभाँति पूजा करके तत्पश्चात् शेष ग्रहोंकी भी अर्चना करे; क्योंकि ग्रह, गौ, राजा और ब्राह्मण—ये विशेषरूपसे पूजित होनेपर रक्षा करते हैं, अन्यथा अवहेलना किये जानेपर जलाकर भस्म कर देते हैं। जैसे बाणोंके आघातका प्रतिरोध करनेवाला कवच होता है, उसी प्रकार दुर्दैवद्वारा किये गये उपघातोंको निवारण करनेवाली शान्ति (ग्रह-यज्ञ) होती है। इसलिये वैभवकी अभिलाषा रखनेवाले मनुष्यको दक्षिणासे रहित यज्ञ नहीं करना चाहिये; क्योंकि भरपूर दक्षिणा देनेसे (यज्ञका प्रधान) देवता भी संतुष्ट हो जाता है। मुनिश्रेष्ठ! नवग्रहोंके यज्ञमें यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही होता है। इसी प्रकार विवाह, उत्सव, यज्ञ, देवप्रतिष्ठा आदि कर्मोंमें तथा चित्तकी उद्विग्नता एवं आकस्मिक विपत्तियोंमें भी यह दस हजार आहुतियोंवाला हवन ही बतलाया गया है। इसके बाद अब मैं एक लाख आहुतियोंवाला हवन बतला रहा हूँ, सुनिये। विद्वानोंने सम्पूर्ण कामनाओंकी सिद्धिके लिये लक्षहोमका विधान किया है; क्योंकि यह पितरोंको परम प्रिय और साक्षात् भोग एवं मोक्षरूपी फलका प्रदाता है। बुद्धिमान् यजमानको चाहिये कि ग्रहबल और ताराबलको अपने अनुकूल पाकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराये और अपने गृहके पूर्वोत्तर दिशामें अथवा शिवमन्दिरको समीपवर्ती भूमिपर विधानपूर्वक एक मण्डपका निर्माण कराये, जो दस हाथ अथवा आठ हाथ लम्बा-चौड़ा चौकोर हो तथा उसका मुख (प्रवेशद्वार) उत्तर दिशाकी ओर हो। उसकी भूमिको यत्नपूर्वक पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू बना देना चाहिये॥ ७७—८७ $\frac{1}{2}$॥

प्रागुत्तरं समासाद्य प्रदेशं मण्डपस्य तु॥ ८८
शोभनं कारयेत् कुण्डं यथावल्लक्षणान्वितम्।
चतुरस्त्रं समंतात्तु योनिवक्त्रं समेखलम्॥ ८९
चतुरङ्गुलविस्तारा मेखला तद्वदुच्छ्रिता।
प्रागुदक्प्लवना कार्या सर्वतः समवस्थिता॥ ९०
शान्त्यर्थं सर्वलोकानां नवग्रहमखः स्मृतः।
मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदं भवेत्।
यस्मात् तस्मात् सुसम्पूर्णं शान्तिकुण्डं विधीयते॥ ९१
अस्माद् दशगुणः प्रोक्तो लक्षहोमः स्वयम्भुवा।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिस्तथैव च॥ ९२
द्विहस्तविस्तृतं तद्वच्चतुर्हस्तायतं पुनः।
लक्षहोमे भवेत् कुण्डं योनिवक्त्रं त्रिमेखलम्॥ ९३
तस्य चोत्तरपूर्वेण वितस्तित्रयसंस्थितम्।
प्रागुदक्प्लवनं तच्च चतुरस्त्रं समंततः॥ ९४
विष्कम्भार्धोच्छ्रितं प्रोक्तं स्थण्डिलं विश्वकर्मणा।
संस्थापनाय देवानां वप्रत्रयसमावृतम्॥ ९५
द्व्यङ्गुलो ह्युच्छ्रितो वप्रः प्रथमः स उदाहृतः।
अङ्गुलोच्छ्रयसंयुक्तं वप्रद्वयमथोपरि॥ ९६
त्र्यङ्गुलस्य च विस्तारः सर्वेषां कथ्यते बुधैः।
दशाङ्गुलोच्छ्रिता भित्तिः स्थण्डिले स्यात् तथोपरि।
तस्मिन्नावाहयेद् देवान् पूर्ववत् पुष्पतण्डुलैः॥ ९७
आदित्याभिमुखाः सर्वाः साधिप्रत्यधिदेवताः।
स्थापनीया मुनिश्रेष्ठ नोत्तरेण पराङ्मुखाः॥ ९८
गरुत्मानधिकस्तत्र सम्पूज्यः श्रियमिच्छता।
सामध्वनिशरीरस्त्वं वाहनं परमेष्ठिनः।
विषपापहरो नित्यमतः शान्तिं प्रयच्छ मे॥ ९९

तदनन्तर मण्डपके पूर्वोत्तर भागमें यथार्थ लक्षणोंसे युक्त एक सुन्दर कुण्ड* तैयार कराये, जो चारों ओरसे चौकोर हो, जिसमें योनिरूप मुख बना हो और जो मेखलासे युक्त हो। यह मेखला चार अङ्गुल चौड़ी और उतनी ही ऊँची, कुण्डको चारों ओरसे घेरे हुए और पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू हो। सभी लोगोंके लिये ग्रह-शान्तिके निमित्त नवग्रह-यज्ञ बतलाया गया है। चूँकि उपर्युक्त परिमाणसे कम अथवा अधिक परिमाणमें बना हुआ कुण्ड अनेकों प्रकारका भय देनेवाला हो जाता है, इसलिये शान्तिकुण्डको परिमाणके अनुकूल ही बनाना चाहिये। ब्रह्माने लक्षहोमको अयुतहोमसे दस गुना अधिक फलदायक बतलाया है, इसलिये इसे प्रयत्नपूर्वक आहुतियों और दक्षिणाओंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। लक्षहोममें कुण्ड चार हाथ लम्बा और दो हाथ चौड़ा होता है, उसके भी मुखस्थानपर योनि बनी होती है और वह तीन मेखलाओंसे युक्त होता है। विश्वकर्माने कुण्डके पूर्वोत्तर दिशामें तीन बित्तेकी दूरीपर देवताओंकी स्थापनाके लिये एक वेदीका भी विधान बतलाया है, जो चारों ओरसे चौकोर, पूर्वोत्तर दिशाकी ओर ढालू, विष्कम्भ (कुण्डके व्यास)-के आधे परिमाणके बराबर ऊँची और तीन परिधियोंसे युक्त हो। इनमें पहली परिधि दो अङ्गुल ऊँची तथा शेष दो एक अङ्गुल ऊँची होनी चाहिये। विद्वानोंने इन सबकी चौड़ाई तीन अङ्गुलकी बतलायी है। वेदीके ऊपर दस अङ्गुल ऊँची एक दीवाल बनायी जाय, उसीपर पहलेकी ही भाँति फूल और अक्षतोंसे देवताओंका आवाहन किया जाय। मुनिश्रेष्ठ! अधिदेवताओं एवं प्रत्यधिदेवताओंसहित सभी ग्रहोंको सूर्यके सम्मुख ही स्थापित करना चाहिये, उत्तराभिमुख अथवा पराङ्मुख नहीं। लक्ष्मीकामी मनुष्यको इस यज्ञमें (सभी देवताओंके अतिरिक्त) गरुडकी भी पूजा करनी चाहिये। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) 'गरुड! तुम्हारे शरीरसे सामवेदकी ध्वनि निकलती रहती है, तुम भगवान् विष्णुके वाहन और नित्य विषरूप पापको हरनेवाले हो, अतः मुझे शान्ति प्रदान करो'॥ ८८—९९॥

* कल्याण—अग्निपुराणाङ्क अ० २४ की टिप्पणीमें कुण्ड-मण्डप-निर्माणकी पूरी विधि द्रष्टव्य है।

पूर्ववत् कुम्भमामन्त्र्य तद्वद्धोमं समाचरेत्।
सहस्त्राणां शतं हुत्वा समित्संख्याधिकं पुनः।
घृतकुम्भवसोर्धारां पातयेदनलोपरि॥ १००
औदुम्बरीं तथार्द्रां च ऋज्वीं कोटरवर्जिताम्।
बाहुमात्रां स्रुचं कृत्वा ततः स्तम्भद्वयोपरि।
घृतधारां तया सम्यगग्रेरुपरि पातयेत्॥ १०१
श्रावयेत् सूक्तमाग्नेयं वैष्णवं रौद्रमैन्दवम्।
महावैश्वानरं साम ज्येष्ठसाम च वाचयेत्॥ १०२
स्नानं च यजमानस्य पूर्ववत् स्वस्तिवाचनम्।
दातव्या यजमानेन पूर्ववद् दक्षिणाः पृथक्॥ १०३
कामक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा।
नवग्रहमखे विप्राश्चत्वारो वेदवेदिनः॥ १०४
अथवा ऋत्विजौ शान्तौ द्वावेव श्रुतिकोविदौ।
कार्यावयुतहोमे तु न प्रसज्येत विस्तरे॥ १०५
तद्वच्च दश चाष्टौ च लक्षहोमे तु ऋत्विजः।
कर्तव्याः शक्तितस्तद्वच्चत्वारो वा विमत्सरः॥ १०६
नवग्रहमखात् सर्वं लक्षहोमे दशोत्तरम्।
भक्ष्यान् दद्यान्मुनिश्रेष्ठ भूषणान्यपि शक्तितः॥ १०७
शयनानि सवस्त्राणि हैमानि कटकानि च।
कर्णाङ्गुलिपवित्राणि कण्ठसूत्राणि शक्तिमान्॥ १०८
न कुर्याद् दक्षिणाहीनं वित्तशाठ्येन मानवः।
अददन् लोभतो मोहात् कुलक्षयमवाप्नुते॥ १०९
अन्नदानं यथाशक्त्या कर्तव्यं भूतिमिच्छता।
अन्नहीनः कृतो यस्माद् दुर्भिक्षफलदो भवेत्॥ ११०
अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तु ऋत्विजः।
यष्टारं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥ १११
न वाप्यल्पधनः कुर्याल्लक्षहोमं नरः क्वचित्।
यस्मात् पीडाकरो नित्यं यज्ञे भवति विग्रहः॥ ११२

तत्पश्चात् पहलेकी तरह कलशकी स्थापना करके हवन आरम्भ करे। एक लाख आहुतियोंसे हवन करनेके पश्चात् पुनः समिधाओंकी संख्याके बराबर और अधिक आहुतियाँ डाले। फिर अग्निके ऊपर घृतकुम्भसे वसोर्धारा गिराये। (वसोर्धाराकी विधि यह है—) भुजा-बराबर लम्बी गूलरकी लकड़ीसे, जो खोखली न हो तथा सीधी एवं गीली हो, स्रुवा बनवाकर उसे दो खम्भोंपर रखकर उसके द्वारा अग्निके ऊपर सम्यक् प्रकारसे घीकी धारा गिराये। उस समय अग्निसूक्त (ऋ० सं० १।१), विष्णुसूक्त (वाजसं० ५।१—२२), रुद्रसूक्त (वही १६) और इन्दु (सोम) सूक्त (ऋ० १।९१) सुनाना चाहिये तथा महावैश्वानर साम और ज्येष्ठसामका पाठ कराना चाहिये। तदुपरान्त पूर्ववत् यजमान स्नानकर स्वस्तिवाचन कराये तथा काम-क्रोधरहित होकर शान्तचित्तसे पूर्ववत् ऋत्विजोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणा प्रदान करे। नवग्रहयज्ञके अयुतहोममें चार वेदवेत्ता ब्राह्मणोंको अथवा श्रुतिके जानकार एवं शान्तस्वभाववाले दो ही ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। विस्तारमें नहीं फँसना चाहिये॥ १००—१०५॥

उसी प्रकार लक्षहोममें अपनी सामर्थ्यके अनुकूल मत्सररहित होकर दस, आठ अथवा चार ऋत्विजोंको नियुक्त करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! सम्पत्तिशाली यजमानको यथाशक्ति भक्ष्य पदार्थ, आभूषण, वस्त्रोंसहित शय्या, स्वर्णनिर्मित कड़े, कुण्डल, अँगूठी और कण्ठसूत्र (हार) आदि सभी वस्तुएँ लक्षहोममें नवग्रह-यज्ञसे दस गुनी अधिक देनी चाहिये। मनुष्यको कृपणतावश दक्षिणारहित यज्ञ नहीं करना चाहिये। जो लोभ अथवा अज्ञानसे भरपूर दक्षिणा नहीं देता, उसका कुल नष्ट हो जाता है। समृद्धिकामी मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नका दान करना चाहिये; क्योंकि अन्नदानरहित किया हुआ यज्ञ दुर्भिक्षरूप फलका दाता हो जाता है। अन्नहीन यज्ञ राष्ट्रको, मन्त्रहीन ऋत्विज्को और दक्षिणारहित यज्ञकर्ताको जलाकर नष्ट कर देता है। इस प्रकार (विधिहीन) यज्ञके समान अन्य कोई शत्रु नहीं है। अल्प धनवाले मनुष्यको कभी लक्षहोम नहीं करना चाहिये; क्योंकि यज्ञमें (दक्षिणा आदिके लिये) प्रकट हुआ विग्रह सदाके लिये कष्टकारक हो जाता है।

तमेव पूजयेद् भक्त्या द्वौ वा त्रीन् वा यथाविधि।
एकमप्यर्चयेद् भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम्।
दक्षिणाभिः प्रयत्नेन न बहूनल्पवित्तवान्॥ ११३

लक्षहोमस्तु कर्तव्यो यदा वित्तं भवेद् बहु।
यतः सर्वानवाप्नोति कुर्वन् कामान् विधानतः॥ ११४

पूज्यते शिवलोके च वस्वादित्यमरुद्गणैः।
यावत् कल्पशतान्यष्टावथ मोक्षमवाप्नुयात्॥ ११५

सकामो यस्त्विमं कुर्याल्लक्षहोमं यथाविधि।
स तं काममवाप्नोति पदमानन्त्यमश्नुते॥ ११६

पुत्रार्थी लभते पुत्रान् धनार्थी लभते धनम्।
भार्यार्थी शोभनां भार्यां कुमारी च शुभं पतिम्॥ ११७

भ्रष्टराज्यस्तथा राज्यं श्रीकामः श्रियमाप्नुयात्।
यं यं प्रार्थयते कामं स वै भवति पुष्कलः।
निष्कामः कुरुते यस्तु स परं ब्रह्म गच्छति॥ ११८

स्वल्प सम्पत्तिवाला मनुष्य केवल पुरोहितकी अथवा दो या तीन ब्राह्मणोंकी भक्तिके साथ विधिपूर्वक पूजा करे अथवा एक ही वेदज्ञ ब्राह्मणकी भक्तिके साथ दक्षिणा आदिसे प्रयत्नपूर्वक अर्चना करे, बहुतोंके चक्करमें न पड़े। अधिक सम्पत्ति होनेपर लक्षहोम करना चाहिये; क्योंकि यह अधिक लाभदायक है। इसका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाला मनुष्य सभी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। वह आठ सौ कल्पोंतक शिवलोकमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गणोंद्वारा पूजित होता है तथा अन्तमें मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य किसी विशेष कामनासे इस लक्षहोमको विधिपूर्वक सम्पन्न करता है, उसे उस कामनाकी प्राप्ति तो हो ही जाती है, साथ ही वह अविनाशी पदको भी प्राप्त कर लेता है। इसका अनुष्ठान करनेसे पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है, धनार्थी धन लाभ करता है, भार्यार्थी सुन्दरी पत्नी, कुमारी कन्या सुन्दर पति, राज्यसे भ्रष्ट हुआ राजा राज्य और लक्ष्मीका अभिलाषी लक्ष्मी प्राप्त करता है। इस प्रकार मनुष्य जिस-जिस वस्तुकी अभिलाषा करता है, उसे वह प्रचुरमात्रामें प्राप्त हो जाती है। जो निष्कामभावसे इसका अनुष्ठान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है॥ १०६—११८॥

अस्माच्छतगुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा।
आहुतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फलेन च॥ ११९

पूर्ववद् ग्रहदेवानामावाहनविसर्जनैः।
होममन्त्रास्त एवोक्ताः स्नाने दाने तथैव च।
कुण्डमण्डपवेदीनां विशेषोऽयं निबोध मे॥ १२०

कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुरस्रं तु सर्वतः।
योनिवक्त्रद्वयोपेतं तदप्याहुस्त्रिमेखलम्॥ १२१

द्व्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता कार्या प्रथमा मेखला बुधैः।
त्र्यङ्गुलाभ्युच्छ्रिता तद्वद् द्वितीया परिकीर्तिता॥ १२२

उच्छ्रायविस्तराभ्यां च तृतीया चतुरङ्गुला।
द्व्यङ्गुलश्चेति विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते॥ १२३

वितस्तिमात्रा योनिःस्यात् षट्सप्ताङ्गुलविस्तृता।
कूर्मपृष्ठोन्नता मध्ये पार्श्वयोश्चाङ्गुलोच्छ्रिता॥ १२४

गजोष्ठसदृशी तद्वदायता छिद्रसंयुता।
एतत् सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमुच्यते॥ १२५

मुने! प्रयत्नपूर्वक दी गयी आहुतियों, दक्षिणाओं और फलकी दृष्टिसे ब्रह्माने कोटिहोमको इस लक्षहोमसे सौ गुना अधिक फलदायक बतलाया है। इसमें भी ग्रहों एवं देवोंके आवाहन, विसर्जन, स्नान तथा दानमें प्रयुक्त होनेवाले होममन्त्र पहलेके ही हैं। केवल कुण्ड, मण्डप और वेदीमें कुछ विशेषता है, वह मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। इस कोटिहोममें सब ओरसे चौकोर चार हाथके परिमाणवाला कुण्ड बनाना चाहिये। वह दो योनिमुखों और तीन मेखलाओंसे युक्त हो। विद्वानोंको पहली मेखला दो अङ्गुल ऊँची बनानी चाहिये। उसी प्रकार दूसरी मेखला तीन अङ्गुल ऊँची बतलायी गयी है और तीसरी मेखला ऊँचाई और चौड़ाईमें चार अङ्गुलकी होनी चाहिये। पहली दोनों मेखलाओंकी चौड़ाई तो दो अङ्गुलकी ही ठीक मानी गयी है। इनके ऊपर एक बित्ता लम्बी और छः-सात अङ्गुल चौड़ी योनि होनी चाहिये। उसका मध्य-भाग कछुवेकी पीठकी तरह ऊँचा और दोनों पार्श्वभाग एक अङ्गुल ऊँचा हो। वह हाथीके होंठके समान लम्बी और छिद्र (घी गिरनेका मार्ग) युक्त हो। सभी कुण्डोंमें यही योनिका लक्षण बतलाया जाता है।

मेखलोपरि सर्वत्र अश्वत्थदलसंनिभम्।
वेदी च कोटिहोमे स्याद् वितस्तीनां चतुष्टयम्॥ १२६
चतुरस्रा समन्ताच्च त्रिभिर्वप्रैस्तु संयुता।
वप्रप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदीनां च तथोच्छ्रयः॥ १२७
तथा षोडशहस्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः।
पूर्वद्वारे च संस्थाप्य बह्वृचं वेदपारगम्॥ १२८
यजुर्विदं तथा याम्ये पश्चिमे सामवेदिनम्।
अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद् बुधः॥ १२९
अष्टौ तु होमकाः कार्या वेदवेदाङ्गवेदिनः।
एवं द्वादश विप्राः स्युर्वस्त्रमाल्यानुलेपनैः।
पूर्ववत् पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालंकारभूषणैः॥ १३०
रात्रिसूक्तं च रौद्रं च पावमानं सुमङ्गलम्।
पूर्वतो बह्वृचः शान्तिं पठन्नास्ते ह्युदङ्मुखः॥ १३१
शाक्तं शाक्रं च सौम्यं च कौष्माण्डं शान्तिमेव च।
पाठयेद् दक्षिणद्वारि यजुर्वेदिनमुत्तमम्॥ १३२
सुपर्णमथ वैराजमाग्नेयं रुद्रसंहिताम्।
ज्येष्ठसाम तथा शान्तिं छन्दोगः पश्चिमे जपेत्॥ १३३
शान्तिसूक्तं च सौरं च तथा शाकुनकं शुभम्।
पौष्टिकं च महाराज्यमुत्तरेणाप्यथर्ववित्॥ १३४
पञ्चभिः सप्तभिर्वापि होमः कार्योऽत्र पूर्ववत्।
स्नाने दाने च मन्त्राः स्युस्त एव मुनिसत्तम॥ १३५
वसोर्धाराविधानं च लक्षहोमे विशिष्यते।
अनेन विधिना यस्तु कोटिहोमं समाचरेत्।
सर्वान् कामानवाप्नोति ततो विष्णुपदं व्रजेत्॥ १३६
यः पठेच्छृणुयाद् वापि ग्रहयज्ञत्रयं नरः।
सर्वपापविशुद्धात्मा पदमिन्द्रस्य गच्छति॥ १३७
अश्वमेधसहस्राणि दश चाष्टौ च धर्मवित्।
कृत्वा यत् फलमाप्नोति कोटिहोमात् तदश्नुते॥ १३८

योनि सभी मेखलाओंके ऊपर पीपलके पत्तेके सदृश होनी चाहिये। कोटिहोममें चार बित्ता लम्बी, चारों ओरसे चौकोर और तीन परिधियोंसे युक्त एक वेदी होनी चाहिये। परिधियोंका प्रमाण तथा वेदियोंकी ऊँचाई पहले कही जा चुकी है। पुनः सोलह हाथ लम्बे-चौड़े मण्डपकी स्थापना करे, जिसमें चारों दिशाओंमें दरवाजे हों। बुद्धिसम्पन्न यजमान उसके पूर्वद्वारपर ऋग्वेदके पारगामी ब्राह्मणको, दक्षिण द्वारपर यजुर्वेदके ज्ञाताको, पश्चिमद्वारपर सामवेदीको और उत्तरद्वारपर अथर्ववेदीको नियुक्त करे। इनके अतिरिक्त वेद एवं वेदाङ्गोंके ज्ञाता आठ ब्राह्मणोंको हवन करनेके लिये नियुक्त करना चाहिये। इस प्रकार इस कार्यमें बारह ब्राह्मणोंको नियुक्त करनेका विधान है। इन सभी ब्राह्मणोंका वस्त्र, आभूषण, पुष्पमाला, चन्दन आदि सामग्रियोंद्वारा पूर्ववत् भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये॥११९—१३०॥

(कार्यारम्भ होनेपर) पूर्वद्वारपर स्थित ऋग्वेदी ब्राह्मण उत्तराभिमुख हो परम माङ्गलिक रात्रिसूक्त, रुद्रसूक्त, पवमानसूक्त तथा अन्यान्य शान्ति-सूक्तोंका पाठ करता रहे। दक्षिणद्वारपर स्थित श्रेष्ठ यजुर्वेदी ब्राह्मणसे शक्तिसूक्त, शक्रसूक्त, सोमसूक्त, कूष्माण्डसूक्त तथा शान्ति-सूक्तका पाठ करवाना चाहिये। पश्चिमद्वारपर स्थित सामवेदी ब्राह्मण सुपर्ण, वैराज, आग्नेय—इन ऋचाओं, रुद्रसंहिता, ज्येष्ठसाम तथा शान्तिपाठोंका गान करे। उत्तरद्वारपर नियुक्त अथर्ववेदी ब्राह्मण शान्ति (शंतातीय १९)-सूक्त, सूर्यसूक्त, माङ्गलिक शकुनिसूक्त, पौष्टिक एवं महाराज्य (सूक्त)-का पाठ करे। मुनिश्रेष्ठ! इसमें भी पूर्ववत् पाँच अथवा सात ब्राह्मणोंद्वारा हवन कराना चाहिये। स्नान और दानके लिये वे ही पूर्वकथित मन्त्र इसमें भी हैं। लक्षहोममें केवल वसोर्धाराका विधान विशेष होता है। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे कोटिहोमका विधान करता है, वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त कर लेता है और मरनेपर विष्णुलोकमें चला जाता है। जो मनुष्य तीनों प्रकारके ग्रहयज्ञोंका पाठ अथवा श्रवण करता है उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और अन्तमें वह इन्द्रलोकमें चला जाता है। धर्मज्ञ मनुष्य अठारह हजार अश्वमेधयज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्राप्त करता है, वह फल कोटिहोम नामक यज्ञसे प्राप्त हो जाता

ब्रह्महत्यासहस्राणि भ्रूणहत्यार्बुदानि च।
कोटिहोमेन नश्यन्ति यथावच्छिवभाषितम्॥ १३९
वश्यकर्माभिचारादि तथैवोच्चाटनादिकम्।
नवग्रहमखं कृत्वा ततः काम्यं समाचरेत्॥ १४०
अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्।
तस्मादयुतहोमस्य विधानं पूर्वमाचरेत्॥ १४१
वृत्तं चोच्चाटने कुण्डं तथा च वशकर्मणि।
त्रिमेखलैश्चैकवक्त्रमरत्निर्विस्तरेण तु॥ १४२
पलाशसमिधः शस्ता मधुगोरोचनान्विताः।
चन्दनागुरुणा तद्वत् कुङ्कुमेनाभिषिञ्चिताः॥ १४३
होमयेन्मधुसर्पिभ्यां बिल्वानि कमलानि च।
सहस्राणि दशैवोक्तं सर्वदैव स्वयम्भुवा॥ १४४
वश्यकर्मणि बिल्वानां पद्मानां चैव धर्मवित्।
सुमित्रिया न आप ओषधय इति होमयेत्॥ १४५
न चात्र स्थापनं कार्यं न च कुम्भाभिषेचनम्।
स्नानं सर्वौषधैः कृत्वा शुक्लपुष्पाम्बरो गृही॥ १४६
कण्ठसूत्रैः सकनकैर्विप्रान् समभिपूजयेत्।
सूक्ष्मवस्त्राणि देयानि शुक्ला गावः सकाञ्चनाः॥ १४७
अवशानि वशीकुर्यात् सर्वशत्रुबलान्यपि।
अमित्राण्यपि मित्राणि होमोऽयं पापनाशनः॥ १४८
विद्वेषणेऽभिचारे च त्रिकोणं कुण्डमिष्यते।
त्रिमेखलं कोणमुखं हस्तमात्रं च सर्वशः॥ १४९
होमं कुर्युस्ततो विप्रा रक्तमाल्यानुलेपनाः।
निवीतलोहितोष्णीषा लोहिताम्बरधारिणः॥ १५०
नववायसरक्ताढ्यपात्रत्रयसमन्विताः।
समिधो वामहस्तेन श्येनास्थिबलसंयुताः।
होतव्या मुक्तकेशैस्तु ध्यायद्भिरशिवं रिपौ॥ १५१
दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु तथा हुंफडितीति च।
श्येनाभिचारमन्त्रेण क्षुरं समभिमन्त्र्य च॥ १५२

है। शिवजीने यथार्थरूपसे कहा है कि कोटिहोमके अनुष्ठानसे हजारों ब्रह्महत्या और अरबों भ्रूणहत्या-जैसे महापातक नष्ट हो जाते हैं॥ १३१—१३९॥

नारद! यदि वशीकरण, अभिचार तथा उच्चाटन आदि काम्य कर्मोंका अनुष्ठान करना हो तो पहले नवग्रह-यज्ञ सम्पन्न कर तत्पश्चात् काम्य कर्म करना चाहिये, अन्यथा वह काम्य कर्म मनुष्योंको कहीं भी फलदायक नहीं हो सकता। अतः पहले अयुतहोमका सम्पादन कर लेना उचित है। उच्चाटन और वशीकरण कर्मोंमें कुण्डको गोलाकार बनाना चाहिये। उसका विस्तार अर्थात् व्यास एक अरत्नि हो। वह तीन मेखलाओं और एक मुखसे युक्त हो। इन कार्योंमें मधु, गोरोचन, चन्दन, अगुरु और कुङ्कुमसे अभिषिक्त की हुई पलाशकी समिधाएँ प्रशस्त मानी गयी हैं। मधु और घीसे चुपड़े हुए बेल और कमल-पुष्पके हवनका विधान है। ब्रह्माने सदा दस हजार आहुतियोंका ही विधान बतलाया है। धर्मज्ञ यजमानको वशीकरण-कर्ममें **'सुमित्रिया न आप ओषधयः'**—इस मन्त्रसे हवन करना चाहिये। इस कार्यमें कलशका स्थापन और अभिषेचन नहीं किया जाता। गृहस्थ यजमान सर्वौषधमिश्रित जलसे स्नान करके श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारण कर ले और स्वर्णनिर्मित कण्ठहारोंसे ब्राह्मणोंकी पूजा करे तथा उन्हें महीन वस्त्र एवं स्वर्णसे विभूषित श्वेत रंगकी गौएँ प्रदान करे। (इस प्रकार विधिपूर्वक सम्पन्न किया गया) यह पापनाशक हवन वशमें न आनेवाली शत्रुओंकी सारी सेनाओंको वशीभूत कर देता है और शत्रुओंको मित्र बना देता है॥ १४०—१४८॥

समृद्धिकामी पुरुषको इन कर्मोंमेंसे केवल शान्तिकर्मका ही अनुष्ठान करना चाहिये। जो मानव निष्कामभावसे इन तीनों ग्रहयज्ञोंका अनुष्ठान करता है, वह पुनरागमनरहित विष्णुपदको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य इस ग्रहयज्ञको नित्य सुनता अथवा दूसरेको सुनाता है, उसे न तो ग्रहजनित पीडा होती है और न उसके बन्धुजनोंका विनाश ही होता है। जिस घरमें ये तीनों (ग्रह, लक्ष एवं कोटि होम)

प्रतिरूपं रिपोः कृत्वा क्षुरेण परिकर्तयेत्।
रिपुरूपस्य शकलान्यथैवाग्नौ विनिःक्षिपेत्॥ १५३
ग्रहयज्ञविधानान्ते सदैवाभिचरन् पुनः।
विद्वेषणं तथा कुर्वन्नेतदेव समाचरेत्॥ १५४
इहैव फलदं पुंसामेतन्नामुत्र शोभनम्।
तस्माच्छान्तिकमेवात्र कर्तव्यं भूतिमिच्छता॥ १५५
ग्रहयज्ञत्रयं कुर्याद् यस्त्वकाम्येन मानवः।
स विष्णोः पदमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ १५६
य इदं शृणुयान्नित्यं श्रावयेद् वापि मानवः।
न तस्य ग्रहपीडा स्यान्न च बन्धुजनक्षयः॥ १५७
ग्रहयज्ञत्रयं गेहे लिखितं यत्र तिष्ठति।
न पीडा तत्र बालानां न रोगो न च बन्धनम्॥ १५८
अशेषयज्ञफलदं निःशेषाघविनाशनम्।
कोटिहोमं विदुः प्राज्ञा भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्॥ १५९
अश्वमेधफलं प्राहुर्लक्षहोमं सुरोत्तमाः।
द्वादशाहमखस्तद्वन्नवग्रहमखः स्मृतः॥ १६०
इति कथितमिदानीमुत्सवानन्दहेतोः
सकलकलुषहारी देवयज्ञाभिषेकः।
परिपठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गा-
दभिभवति स शत्रूनायुरारोग्ययुक्तः॥ १६१

यज्ञ-विधान लिखकर रखे रहते हैं, वहाँ न तो बालकोंको कोई कष्ट होता है, न रोग तथा बन्धन भी नहीं होता। विद्वानोंका कहना है कि कोटिहोम सम्पूर्ण यज्ञोंके फलका प्रदाता, अखिल पापोंका विनाशक और भोग एवं मोक्षरूप फल प्रदान करनेवाला है। श्रेष्ठ देवगण लक्षहोमको अश्वमेध-यज्ञके समान फलदायक बतलाते हैं। उसी प्रकार नवग्रह-यज्ञ, द्वादशाह-यज्ञके सदृश फलकारक बतलाया जाता है। इस प्रकार मैंने इस समय उत्सवके आनन्दकी प्राप्तिके लिये सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाले इस देवयज्ञाभिषेकका वर्णन कर दिया। जो मनुष्य प्रसङ्गवश इसका इसी रूपमें पाठ अथवा श्रवण करता है, वह दीर्घायु एवं नीरोगतासे युक्त होकर अपने शत्रुओंको पराजित कर देता है॥ १४९—१६१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नवग्रहहोमशान्तिविधानं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नवग्रहहोमशान्तिविधान नामक तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९३॥



चौरानबेवाँ अध्याय

नवग्रहोंके स्वरूपका वर्णन

शिव उवाच

पद्मासनः पद्मकरः पद्मगर्भसमद्युतिः।
सप्ताश्वः सप्तरज्जुश्च द्विभुजः स्यात् सदा रविः॥ १

श्वेतः श्वेताम्बरधरः श्वेताश्वः श्वेतवाहनः।
गदापाणिर्द्विबाहुश्च कर्तव्यो वरदः शशी॥ २

रक्तमाल्याम्बरधरः शक्तिशूलगदाधरः।
चतुर्भुजः रक्तरोमा वरदः स्याद् धरासुतः॥ ३

पीतमाल्याम्बरधरः कर्णिकारसमद्युतिः।
खड्गचर्मगदापाणिः सिंहस्थो वरदो बुधः॥ ४

देवदैत्यगुरू तद्वत् पीतश्वेतौ चतुर्भुजौ।
दण्डिनौ वरदौ कार्यौ साक्षसूत्रकमण्डलू॥ ५

इन्द्रनीलद्युतिः शूली वरदो गृध्रवाहनः।
बाणबाणासनधरः कर्तव्योऽर्कसुतस्तथा॥ ६

करालवदनः खड्गचर्मशूली वरप्रदः।
नीलसिंहासनस्थश्च राहुरत्र प्रशस्यते॥ ७

धूम्रा द्विबाहवः सर्वे गदिनो विकृताननाः।
गृध्रासनगता नित्यं केतवः स्युर्वरप्रदाः॥ ८

सर्वे किरीटिनः कार्या ग्रहा लोकहितावहाः।
ह्यङ्गुलेनोच्छ्रिताः सर्वे शतमष्टोत्तरं सदा॥ ९

शिवजीने कहा—नारद! (चित्र-प्रतिमादिमें) सूर्यदेवकी दो भुजाएँ निर्दिष्ट हैं, वे कमलके आसनपर विराजमान रहते हैं, उनके दोनों हाथोंमें कमल सुशोभित रहते हैं। उनकी कान्ति कमलके भीतरी भागकी-सी है और वे सात घोड़ों तथा सात रस्सियोंसे जुते रथपर आरूढ़ रहते हैं। चन्द्रमा गौरवर्ण, श्वेतवस्त्र और श्वेत अश्वयुक्त हैं। उनका वाहन—श्वेत अश्वयुक्त रथ है। उनके दोनों हाथ गदा और वरदमुद्रासे युक्त बनाना चाहिये। धरणीनन्दन मंगलके चार भुजाएँ हैं। उनके शरीरके रोएँ लाल हैं, वे लाल रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं और उनके चारों हाथ क्रमशः शक्ति, त्रिशूल, गदा एवं वरमुद्रासे सुशोभित रहते हैं। बुध पीले रंगकी पुष्पमाला और वस्त्र धारण करते हैं। उनकी शरीर-कान्ति कनेरके पुष्प-सरीखी है। वे भी चारों हाथोंमें क्रमशः तलवार, ढाल, गदा और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं तथा सिंहपर सवार होते हैं। देवताओं और दैत्योंके गुरु बृहस्पति और शुक्रकी प्रतिमाएँ क्रमशः पीत और श्वेत वर्णकी करनी चाहिये। उनके चार भुजाएँ हैं, जिनमें वे दण्ड, रुद्राक्षकी माला, कमण्डलु और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। शनैश्चरकी शरीर-कान्ति इन्द्रनीलमणिकी-सी है। वे गीधपर सवार होते हैं और हाथमें धनुष-बाण, त्रिशूल और वरमुद्रा धारण किये रहते हैं। राहुका मुख भयंकर है। उनके हाथोंमें तलवार, ढाल, त्रिशूल और वरमुद्रा शोभा पाती हैं तथा वे नील रंगके सिंहासनपर आसीन होते हैं। ध्यान (प्रतिमा)-में ऐसे ही राहु प्रशस्त माने गये हैं। केतु बहुतेरे हैं। उन सबोंके दो भुजाएँ हैं। उनके शरीर आदि धूम्रवर्णके हैं। उनके मुख विकृत हैं। वे दोनों हाथोंमें गदा एवं वरमुद्रा धारण किये हैं और नित्य गीधपर समासीन रहते हैं। इन सभी लोक-हितकारी ग्रहोंको किरीटसे सुशोभित कर देना चाहिये तथा इन सबकी ऊँचाई एक सौ आठ अङ्गुल (४॥ हाथ)-की होनी चाहिये॥ १—९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ग्रहरूपाख्यानं नाम चतुर्णवतितमोऽध्यायः॥ ९४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ग्रहरूपाख्यान नामक चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९४॥

पंचानबेवाँ अध्याय

माहेश्वर-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नारद उवाच

भगवन् भूतभव्येश तथान्यदपि यच्छ्रुतम्।
भुक्तिमुक्तिफलायालं तत् पुनर्वक्तुमर्हसि॥ १
एवमुक्तोऽब्रवीच्छम्भुरयं वाङ्मयपारगः।
मत्समस्तपसा ब्रह्मन् पुराणश्रुतिविस्तरैः॥ २
धर्मोऽयं वृषरूपेण नन्दी नाम गणाधिपः।
धर्मान् माहेश्वरान् वक्ष्यत्यतः प्रभृति नारद॥ ३

मत्स्य उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशस्तत्रैवान्तरधीयत।
नारदोऽपि हि शुश्रूषुरपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्।
आदिष्टस्त्वं शिवेनेह वद माहेश्वरं व्रतम्॥ ४

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणुष्वावहितो ब्रह्मन् वक्ष्ये माहेश्वरं व्रतम्।
त्रिषु लोकेषु विख्याता नाम्ना शिवचतुर्दशी॥ ५
मार्गशीर्षत्रयोदश्यां सितायामेकभोजनः।
प्रार्थयेद् देवदेवेशं त्वामहं शरणं गतः॥ ६
चतुर्दश्यां निराहारः सम्यगभ्यर्च्य शंकरम्।
सुवर्णवृषभं दत्त्वा भोक्ष्यामि च परेऽहनि॥ ७
एवं नियमकृत् सुप्त्वा प्रातरुत्थाय मानवः।
कृतस्नानजपः पश्चादुमया सह शंकरम्।
पूजयेत् कमलैः शुभ्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ ८
पादौ नमः शिवायेति शिरः सर्वात्मने नमः।
त्रिनेत्रायेति नेत्राणि ललाटं हरये नमः॥ ९
मुखमिन्दुमुखायेति श्रीकण्ठायेति कन्धराम्।
सद्योजाताय कर्णौ तु वामदेवाय वै भुजौ॥ १०
अघोरहृदयायेति हृदयं चाभिपूजयेत्।
स्तनौ तत्पुरुषायेति तथेशानाय चोदरम्॥ ११

नारदजीने पूछा—भूत और भविष्यके स्वामी भगवन्! इनके अतिरिक्त भोग और मोक्षरूप फल प्रदान करनेमें समर्थ यदि कोई अन्य व्रत सुना गया हो तो उसे पुनः कहनेकी कृपा करें। ऐसा पूछे जानेपर भगवान् शम्भुने कहा—'ब्रह्मन्! यह नन्दी शब्दशास्त्रका पारगामी विद्वान् और तपस्या तथा पुराणों एवं श्रुतियोंकी विस्तृत जानकारीमें मेरे समान है। यह वृषरूपसे साक्षात् धर्म और गणका अधीश्वर है। नारद! अब यही इससे आगे माहेश्वर-धर्मोंका वर्णन करेगा॥' १—३॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—ऐसा कहकर देवाधिदेव शम्भु वहीं अन्तर्हित हो गये। तब श्रवण करनेकी उत्कट इच्छावाले नारदने नन्दिकेश्वरसे पूछा—'नन्दी! शिवजीने आपको इसके लिये जैसा आदेश दिया है, आप उस प्रकार माहेश्वर-व्रतका वर्णन कीजिये'॥ ४॥

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्मन्! मैं माहेश्वर-व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, आप समाहितचित्तसे श्रवण कीजिये। वह व्रत तीनों लोकोंमें शिवचतुर्दशीके नामसे विख्यात है। (इस व्रतके आरम्भमें) व्रती मानव मार्गशीर्षमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको एक बार भोजन कर देवाधिदेव शंकरजीसे इस प्रकार प्रार्थना करे—'भगवन्! मैं आपके शरणागत हूँ। मैं चतुर्दशी तिथिको निराहार रहकर भगवान् शंकरकी भलीभाँति अर्चना करनेके पश्चात् स्वर्ण-निर्मित वृषभका दान करके दूसरे दिन भोजन करूँगा।' इस प्रकारका नियम ग्रहण कर रात्रिमें शयन करे। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि नित्यकर्मसे निवृत्त होकर सुन्दर कमल-पुष्पों, सुगन्धित पुष्पमालाओं और चन्दन आदिसे पार्वतीसहित शंकरजीकी वक्ष्यमाण रीतिसे पूजा करे—'**शिवाय नमः**' से दोनों चरणोंका, '**सर्वात्मने नमः**'से सिरका, '**त्रिनेत्राय नमः**'से नेत्रोंका, '**हरये नमः**'से ललाटका, '**इन्दुमुखाय नमः**'से मुखका, '**श्रीकण्ठाय नमः**'से कंधोंका, '**सद्योजाताय नमः**'से कानोंका, '**वामदेवाय नमः**' से भुजाओंका और '**अघोरहृदयाय नमः**'से हृदयका पूजन करे। '**तत्पुरुषाय नमः**' से स्तनोंकी, '**ईशानाय नमः**' से उदरकी,

पार्श्वौ चानन्तधर्माय ज्ञानभूताय वै कटिम्।
ऊरू चानन्तवैराग्यसिंहायेत्यभिपूजयेत्॥ १२
अनन्तैश्वर्यनाथाय जानुनी चार्चयेद् बुधः।
प्रधानाय नमो जङ्घे गुल्फौ व्योमात्मने नमः॥ १३
व्योमकेशात्मरूपाय केशान् पृष्ठं च पूजयेत्।
नमः पुष्ट्यै नमस्तुष्ट्यै पार्वतीं चापि पूजयेत्॥ १४
ततस्तु वृषभं हैममुदकुम्भसमन्वितम्।
शुक्लमाल्याम्बरधरं पञ्चरत्नसमन्वितम्।
भक्ष्यैर्नानाविधैर्युक्तं ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १५
प्रीयतां देवदेवोऽत्र सद्योजातः पिनाकधृक्।
ततो विप्रान् समाहूय तर्पयेद् भक्तितः शुभान्।
पृषदाज्यं च सम्प्राश्य स्वपेद् भूमावुदमुखः॥ १६
पञ्चदश्यां च सम्पूज्य विप्रान् भुञ्जीत वाग्यतः।
तद्वत् कृष्णाचतुर्दश्यामेतत् सर्वं समाचरेत्॥ १७
चतुर्दशीषु सर्वासु कुर्यात् पूर्ववदर्चनम्।
ये तु मासे विशेषाः स्युस्तान् निबोध क्रमादिह॥ १८
मार्गशीर्षादिमासेषु क्रमादेतदुदीरयेत्।
शंकराय नमस्तेऽस्तु नमस्ते करवीरक॥ १९
त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु महेश्वरमतः परम्।
नमस्तेऽस्तु महादेव स्थाणवे च ततः परम्॥ २०
नमः पशुपते नाथ नमस्ते शम्भवे पुनः।
नमस्ते परमानन्द नमः सोमार्धधारिणे॥ २१
नमो भीमाय इत्येवं त्वामहं शरणं गतः।
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम्॥ २२
पञ्चगव्यं ततो बिल्वं कर्पूरचागुरुं यवाः।
तिलाः कृष्णाश्च विधिवत् प्राशनं क्रमशः स्मृतम्।
प्रतिमासं चतुर्दश्योरेकैकं प्राशनं स्मृतम्॥ २३

'**अनन्तधर्माय नमः**' से दोनों पार्श्वभागोंकी, '**ज्ञानभूताय नमः**' से कटिकी और '**अनन्तवैराग्यसिंहाय नमः**' से ऊरुओंकी अर्चना करे। बुद्धिमान् व्रतीको '**अनन्तैश्वर्यनाथाय नमः**' से जानुओंका, '**प्रधानाय नमः**' से जङ्घाओंका और '**व्योमात्मने नमः**' से गुल्फोंका पूजन करना चाहिये। फिर '**व्योमकेशात्मरूपाय नमः**' से बालों और पीठकी अर्चना करे। '**पुष्ट्यै नमः**' एवं '**तुष्ट्यै नमः**' से पार्वतीका भी पूजन करे। तत्पश्चात् जलपूर्ण कलशसहित, श्वेत पुष्पमाला और वस्त्रसे सुशोभित, पञ्चरत्नयुक्त स्वर्णमय वृषभको नाना प्रकारके खाद्य पदार्थोंके साथ ब्राह्मणको दान कर दे और यों प्रार्थना करे—'पिनाकधारी देवाधिदेव सद्योजात मेरे व्रतमें प्रसन्न हों।' तदनन्तर माङ्गलिक ब्राह्मणोंको बुलाकर उन्हें भक्तिपूर्वक भोजन एवं दक्षिणा आदि देकर तृप्त करे और स्वयं दधिमिश्रित घी खाकर रात्रिमें उत्तराभिमुख हो भूमिपर शयन करे। पूर्णिमा तिथिको प्रातःकाल उठकर ब्राह्मणोंकी पूजा करनेके पश्चात् मौन होकर भोजन करे। उसी प्रकार कृष्णपक्षकी चतुर्दशीमें भी यह सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये॥ ५—१७॥

इसी प्रकार सभी चतुर्दशी तिथियोंमें पूर्ववत् शिवपार्वतीका पूजन करना चाहिये। अब प्रत्येक मासमें जो विशेषताएँ हैं, उन्हें क्रमशः (बतला रहा हूँ,) सुनिये। मार्गशीर्ष आदि प्रत्येक मासमें क्रमशः इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये— '**शंकराय नमस्तेऽस्तु**'— आप शंकरके लिये मेरा नमस्कार प्राप्त हो। '**नमस्ते करवीरक**'—करवीरक! आपको नमस्कार है। '**त्र्यम्बकाय नमस्तेऽस्तु**'—आप त्र्यम्बकके लिये प्रणाम है। इसके बाद '**महेश्वराय नमः**'— महेश्वरको अभिवादन है। '**महादेव नमस्तेऽस्तु**'— महादेव! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। उसके बाद '**स्थाणवे नमः**'—स्थाणुको प्रणाम है। '**पशुपतये नमः**'— पशुपतिको अभिवादन है। '**नाथ नमस्ते**'— नाथ! आपको नमस्कार है। पुनः '**शम्भवे नमः**'—शम्भुको प्रणाम है। '**परमानन्द नमस्ते**'— परमानन्द! आपको अभिवादन है। '**सोमार्धधारिणे नमः**'— ललाटमें अर्धचन्द्र धारण करनेवालेको नमस्कार है। '**भीमाय नमः**'— भयंकर रूपधारीको प्रणाम है। ऐसा कहकर अन्तमें कहे कि 'मैं आपके शरणागत हूँ।' प्रत्येक मासकी दोनों चतुर्दशी तिथियोंमें गोमूत्र, गोबर, दूध, दही, घी, कुशोदक, पञ्चगव्य, बेल, कपूर, अगुरु, यव और काला तिल—इनमेंसे क्रमशः एक-एक पदार्थका प्राशन बतलाया गया है। इसी प्रकार प्रत्येक मासकी दोनों

मन्दारमालतीभिश्च तथा धत्तूरकैरपि।
सिन्धुवारैरशोकैश्च मल्लिकाभिश्च पाटलैः॥ २४
अर्कपुष्पैः कदम्बैश्च शतपत्र्या तथोत्पलैः।
एकैकेन चतुर्दश्योरर्चयेत् पार्वतीपतिम्॥ २५

चतुर्दशी तिथियोंमें मन्दार (पारिभद्र), मालती, धतूरा, सिन्दुवार, अशोक, मल्लिका, पाटल (पाँढर पुष्प या लाल गुलाब), मन्दार-पुष्प (सूर्यमुखी), कदम्ब, शतपत्री (श्वेत कमल या गुलाब) और कमल— इनमेंसे क्रमशः एक-एकके द्वारा पार्वतीपति शंकरकी अर्चना करनी चाहिये॥ १८—२५॥

पुनश्च कार्तिके मासे प्राप्ते संतर्पयेद् द्विजान्।
अन्नैर्नानाविधैर्भक्ष्यैर्वस्त्रमाल्यविभूषणैः॥ २६
कृत्वा नीलवृषोत्सर्गं श्रुत्युक्तविधिना नरः।
उमामहेश्वरं हैमं वृषभं च गवा सह॥ २७
मुक्ताफलाष्टकयुतं सितनेत्रपटावृताम्।
सर्वोपस्करसंयुक्तां शय्यां दद्यात् सकुम्भकाम्॥ २८
ताम्रपात्रोपरि पुनः शालितण्डुलसंयुतम्।
स्थाप्य विप्राय शान्ताय वेदव्रतपराय च॥ २९
ज्येष्ठसामविदे देयं न वकव्रतिने क्वचित्।
गुणज्ञे श्रोत्रिये दद्यादाचार्ये तत्त्ववेदिनि॥ ३०
अव्यङ्गाङ्गाय सौम्याय सदा कल्याणकारिणे।
सपत्नीकाय सम्पूज्य वस्त्रमाल्यविभूषणैः॥ ३१
गुरौ सति गुरोर्देयं तदभावे द्विजातये।
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत कुर्वन् दोषात् पतत्यधः॥ ३२

पुनः कार्तिकमास आनेपर अन्न, नाना प्रकारके खाद्य पदार्थ, वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषणोंसे ब्राह्मणोंको पूर्णरूपसे तृप्त करे। व्रती मनुष्यको वेदोक्त विधिके अनुसार नील वृषका भी उत्सर्ग करनेका विधान है। तत्पश्चात् अगहनीके चावलसे परिपूर्ण ताँबेके पात्रपर स्वर्णनिर्मित उमा, महेश्वर और वृषभकी मूर्तिको स्थापित कर दे और उसके निकट आठ मोती रख दे, फिर उसे गौके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। साथ ही दो श्वेत चादरोंसे आच्छादित तथा समस्त उपकरणोंसे युक्त घटसहित एक शय्या भी दान करनी चाहिये। यह दान ऐसे ब्राह्मणको देना चाहिये, जो शान्तस्वभाव, वेदव्रत-परायण और ज्येष्ठसामका ज्ञाता हो। बगुलाव्रती (कपटी) ब्राह्मणको कभी भी दान नहीं देना चाहिये। वस्तुतस्तु गुणज्ञ, वेदपाठी, तत्त्ववेत्ता, सुडौल अङ्गोंवाले, सौम्यस्वभाव, कल्याणकारक एवं सपत्नीक आचार्यकी वस्त्र, पुष्पमाला और आभूषण आदिसे भलीभाँति पूजा करके यह दान उन्हींको देना चाहिये। यदि गुरु (आचार्य) उस समय उपस्थित हों तो उन्हींको दान देनेका विधान है। उनकी अनुपस्थितिमें अन्य ब्राह्मणको दान दिया जा सकता है। इस दानमें कृपणता नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो उसके दोषसे कर्ताका अधःपतन हो जाता है॥ २६—३२॥

अनेन विधिना यस्तु कुर्याच्छिवचतुर्दशीम्।
सोऽश्वमेधसहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३३
ब्रह्महत्यादिकं किंचिद् यदत्रामुत्र वा कृतम्।
पितृभिर्भ्रातृभिर्वापि तत् सर्वं नाशमाप्नुयात्॥ ३४
दीर्घायुरारोग्यकुलान्नवृद्धि-
रत्राक्षयामुत्र चतुर्भुजत्वम्।
गणाधिपत्यं दिवि कल्पकोटि-
शतान्युषित्वा पदमेति शम्भोः॥ ३५

जो मानव उपर्युक्त विधिके अनुसार इस शिवचतुर्दशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, उसे एक हजार अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। उसके द्वारा अथवा उसके पिता या भाईद्वारा इस जन्ममें अथवा जन्मान्तरमें जो कुछ ब्रह्महत्या आदि पाप घटित हुए रहते हैं, वे सभी नष्ट हो जाते हैं। इस लोकमें वह दीर्घायु, नीरोगता, कुल और अन्नकी समृद्धिसे युक्त होता है और मरणोपरान्त स्वर्गलोकमें चार भुजाधारी होकर गणाधिप हो जाता है। वहाँ सौ करोड़ कल्पोंतक निवास कर शम्भु-पद—शिवलोकको चला जाता है।

न बृहस्पतिरप्यनन्तमस्याः
फलमिन्द्रो न पितामहोऽपि वक्तुम्।
न च सिद्धगणोऽप्यलं न चाहं
यदि जिह्वायुतकोटयोऽपि वक्त्रे॥ ३६

भवत्यमरवल्लभः पठति यः स्मरेद् वा सदा
शृणोत्यपिविमत्सरः सकलपापनिर्मोचनीम्।
इमां शिवचतुर्दशीममरकामिनीकोटयः
स्तुवन्ति तमनिन्दितं किमु समाचरेद् यः सदा॥ ३७

या वाथ नारी कुरुतेऽतिभक्त्या
भर्तारमापृच्छ्य सुतान् गुरून् वा।
सापि प्रसादात् परमेश्वरस्य
परं पदं याति पिनाकपाणेः॥ ३८

यदि मुखमें दस हजार करोड़ जिह्वाएँ हो जायँ तो भी इस चतुर्दशीके अनन्त फलका वर्णन करनेमें न तो बृहस्पति समर्थ हैं न इन्द्र, न ब्रह्मा समर्थ हैं न सिद्धगण तथा मैं भी इसका वर्णन नहीं कर सकता। जो मनुष्य मत्सररहित हो सम्पूर्ण पापोंसे विमुक्त करनेवाली इस शिवचतुर्दशीके माहात्म्यको सदा पढ़ता, स्मरण करता अथवा श्रवण करता है, उस पुण्यात्माका करोड़ों देवाङ्गनाएँ स्तवन करती हैं, फिर जो सदा इसका अनुष्ठान करता है, उसकी तो बात ही क्या है? स्त्री भी यदि अपने पति, पुत्र और गुरुजनोंको आज्ञा लेकर अत्यन्त भक्तिपूर्वक इस व्रतका अनुष्ठान करती है तो वह भी परमेश्वरकी कृपासे पिनाकपाणि भगवान् शंकरके परमपदको प्राप्त हो जाती है*॥ ३३—३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे शिवचतुर्दशीव्रतं नाम पञ्चनवतितमोऽध्यायः॥ ९५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें शिवचतुर्दशी-व्रत नामक पंचानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९५॥

छानबेवाँ अध्याय

सर्वफलत्याग-व्रतका विधान और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

फलत्यागस्य माहात्म्यं यद् भवेच्छृणु नारद।
यदक्षयं परं लोके सर्वकामफलप्रदम्॥ १
मार्गशीर्षे शुभे मासि तृतीयायां मुने व्रतम्।
द्वादश्यामथवाष्टम्यां चतुर्दश्यामथापि वा।
आरभेच्छुक्लपक्षस्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्॥ २
अन्येष्वपि हि मासेषु पुण्येषु मुनिसत्तम।
सदक्षिणं पायसेन भोजयेच्छक्तितो द्विजान्॥ ३

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब कर्म-'फलत्याग' नामक व्रतका जो महत्त्व है, उसे सुनिये। वह इस लोकमें सम्पूर्ण कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। मुने! मङ्गलमय मार्गशीर्षमासमें शुक्लपक्षकी तृतीया, अष्टमी, द्वादशी अथवा चतुर्दशी तिथिको ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर इस व्रतको आरम्भ करना चाहिये। मुनिसत्तम! इसी प्रकार यह व्रत अन्य पुण्यप्रद महीनोंमें भी किया जा सकता है। उस समय अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराकर दक्षिणा देनी चाहिये।

* मन्वादिके अनुसार पति आदिकी आज्ञाके विना स्त्रीको व्रत करनेका अधिकार नहीं है।

अष्टादशानां धान्यानामवद्यं फलमूलकैः।
वर्जयेदब्दमेकं तु ऋते औषधकारणम्।
सवृषं काञ्चनं रुद्रं धर्मराजं च कारयेत्॥ ४
कूष्माण्डं मातुलुङ्गं च वार्ताकं पनसं तथा।
आम्राम्रातकपित्थानि कलिङ्गमथ वालुकम्॥ ५
श्रीफलाश्वत्थबदरं जम्बीरं कदलीफलम्।
काश्मरं दाडिमं शक्त्या कलधौतानि षोडश॥ ६
मूलकामलकं जम्बूतिन्तिडी करमर्दकम्।
कङ्कोलैलाकतुण्डीरकरीरकुटजं शमी॥ ७
औदुम्बरं नारिकेलं द्राक्षाथ बृहतीद्वयम्।
रौप्याणि कारयेच्छक्त्या फलानीमानि षोडश॥ ८
ताम्रं तालफलं कुर्यादगस्तिफलमेव च।
पिण्डारकाश्मर्यफलं तथा सूरणकन्दकम्॥ ९
रक्तालुकाकन्दकं च कनकाह्वं च चिर्भिटम्।
चित्रवल्लीफलं तद्वत् कूटशाल्मलिजं फलम्॥ १०
आम्रनिष्पावमधुकवटमुद्गपटोलकम्।
ताम्राणि षोडशैतानि कारयेच्छक्तितो नरः॥ ११
उदकुम्भद्वयं कुर्याद् धान्योपरि सवस्त्रकम्।
ततश्च कारयेच्छय्यां यथोपरि सुवाससी॥ १२
भक्ष्यपात्रत्रयोपेतं यमरुद्रवृषान्वितम्।
धेन्वा सहैव शान्ताय विप्रायाथ कुटुम्बिने।
सपत्नीकाय सम्पूज्य पुण्येऽह्नि विनिवेदयेत्॥ १३
यथा फलेषु सर्वेषु वसन्त्यमरकोटयः।
तथा सर्वफलत्यागव्रताद् भक्तिः शिवेऽस्तु मे॥ १४
यथा शिवश्च धर्मश्च सदानन्तफलप्रदौ।
तद्युक्तफलदानेन तौ स्यातां मे वरप्रदौ॥ १५
यथा फलान्यनन्तानि शिवभक्तेषु सर्वदा।
तथानन्तफलावाप्तिरस्तु जन्मनि जन्मनि॥ १६
यथा भेदं न पश्यामि शिवविष्ण्वर्कपद्मजान्।
तथा ममास्तु विश्वात्मा शंकरः शंकरः सदा॥ १७

इस व्रतमें औषधके अतिरिक्त सामान्यरूपसे निन्द्य फल और मूलके साथ अठारह* प्रकारके धान्य त्याज्य— वर्जनीय माने गये हैं, अतः उन्हें एक वर्षतक त्याग देना चाहिये। पुनः रुद्र, धर्मराज और वृषभकी स्वर्णमयी मूर्ति बनवायी जाय। इसी प्रकार यथाशक्ति कूष्माण्ड, मातुलुङ्ग (बिजौरा नींबू), वार्ताक (भाँटा), पनस (कटहल), आम, आम्रातक (आमड़ा), कपित्थ (कैथ), कलिङ्ग (तरबूज), बालुक (पनियाला), बेल, पीपल, बेर, जम्बीर (जमीरी नींबू), केला, काश्मर (गम्भारी) और दाड़िम (अनार)— ये सोलह प्रकारके फल भी सोनेके बनवाये जायँ। मूली, आँवला, जामुन, इमली, करमर्दक (करौंदा), कङ्कोल (शीतलचीनीकी जातिके एक वृक्षका फल), इलायची, तुण्डीर (कुँदरू), करीर (करील), कुटज (इन्द्रयव), शमी, गूलर, नारियल, अंगूर और दोनों बृहती (बनभंटा, भटकटैया)— इन सोलहोंको अपनी शक्तिके अनुसार चाँदीका बनवाना चाहिये॥ १—८॥

व्रती मनुष्य सम्पत्तिके अनुकूल ताड़-फल, अगस्तफल, पिण्डारक (विकंकत या पिंड़ार), काश्मर्य (गम्भारी)-फल, सूरणकन्द (जमीकन्द), रतालू, धतूरा, चिर्भिट (ककड़ी या पिहटिया), चित्रवल्ली (तेजपात)-फल, काले सेमलका फल, आम, निष्पाव (सेम या मटर), महुआ, बरगद, मूँग और परवल— इन सोलहोंका ताँबेसे निर्माण कराये। तत्पश्चात् वस्त्रसे सुशोभित दो कलश सप्तधान्यके ऊपर स्थापित करे। वह तीन भोजन-पात्रोंसे युक्त हो और उसपर धर्मराज, रुद्र और वृषकी स्वर्णमयी मूर्ति स्थापित करे। साथ ही दो सुन्दर वस्त्रोंसे सुशोभित एक शय्या भी प्रस्तुत करे। फिर उस पुण्यप्रद दिनमें यह सारा उपकरण एक गौके साथ किसी शान्त स्वभाववाले एवं कुटुम्बी सपत्नीक ब्राह्मणकी पूजा करके उसे दान कर दे और इस प्रकार प्रार्थना करे— 'जिस प्रकार सभी फलोंमें करोड़ों देवता निवास करते हैं, उसी प्रकार सर्वफलत्याग-व्रतके अनुष्ठानसे शिवजीमें मेरी भक्ति हो। जैसे शिव और धर्म— दोनों सदा अनन्त फलके दाता कहे गये हैं, अतः उनसे युक्त फलका दान करनेसे वे दोनों मेरे लिये भी वरदायक हों। जिस प्रकार शिवभक्तोंको सदा अनन्त फलकी प्राप्ति होती रहती है, उसी तरह मुझे प्रत्येक जन्ममें अनन्त फलकी प्राप्ति हो। जैसे मैं ब्रह्मा, विष्णु, शंकर और सूर्यमें कोई भेद नहीं मानता, वैसे ही विश्वात्मा भगवान् शंकर सदा मेरे लिये कल्याणकारक हों'॥ ९—१७॥

* अठारह प्रकारके धान्योंकी बात यहाँके अतिरिक्त मत्स्यपुराणके अगले दानप्रकरणमें (विशेषकर २७६। ७, २७७। ११ आदिमें) भी आयी है, पर इसमें उनका पूर्ण विवरण कहीं नहीं आया है। ये अठारह धान्य-याज्ञवल्क्य-स्मृ० १। २०८ की अपरार्क व्याख्या, व्याकरणमहाभाष्य ५। २। ४, वाजसने० संहिता १८। १२, दानमयूख तथा विधानपारिजात आदिके अनुसार इस प्रकार हैं— सावाँ, धान, जौ, मूँग, तिल, अणु (कँगनी), उड़द, गेहूँ, कोदो, कुलथी, सतीन (छोटी मटर), सेम, आढ़की (अरहर) या मयुष्ट (उजली मटर), चना, कलाय, मटर, प्रियङ्गु (सरसों, राई या टाँगुन) और मसूर। अन्य मतसे मयुष्टादिकी जगह अतसी और नीवार ग्राह्य हैं।

इति दत्त्वा च तत् सर्वमलंकृत्य च भूषणैः।
शक्तिश्चेच्छयनं दद्यात् सर्वोपस्करसंयुतम्॥ १८
अशक्तस्तु फलान्येव यथोक्तानि विधानतः।
तथोदकुम्भसंयुक्तौ शिवधर्मौ च काञ्चनौ॥ १९
विप्राय दत्त्वा भुञ्जीत वाग्यतस्तैलवर्जितम्।
अन्यान्नपि यथाशक्त्या भोजयेच्छक्तितो द्विजान्॥ २०
एतद् भागवतानां तु सौरवैष्णवयोगिनाम्।
शुभं सर्वफलत्यागव्रतं वेदविदो विदुः॥ २१
नारीभिश्च यथाशक्त्या कर्तव्यं द्विजपुंगव।
एतस्मान्नापरं किंचिदिह लोके परत्र च।
व्रतमस्ति मुनिश्रेष्ठ यदनन्तफलप्रदम्॥ २२
सौवर्णरौप्यताम्रेषु यावन्तः परमाणवः।
भवन्ति चूर्ण्यमानेषु फलेषु मुनिसत्तम।
तावद् युगसहस्राणि रुद्रलोके महीयते॥ २३
एतत् समस्तकलुषापहरं जनाना-
माजीवनाय मनुजेषु च सर्वदा स्यात्।
जन्मान्तरेष्वपि न पुत्रवियोगदुःख-
माप्नोति धाम च पुरंदरलोकजुष्टम्॥ २४
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः पठेद् वा
देवालयेषु भवनेषु च धार्मिकाणाम्।
पापैर्वियुक्तवपुरत्र पुरं मुरारे-
रानन्दकृत् पदमुपैति मुनीन्द्र सोऽपि॥ २५

इस प्रकार आभूषणोंसे अलंकृत कर वह सारा सामान ब्राह्मणको दान कर दे। यदि सम्पत्तिरूपी शक्ति हो तो समस्त उपकरणोंसे युक्त शय्या भी देनी चाहिये। यदि असमर्थ हो तो पूर्वोक्त फलोंका ही विधिपूर्वक दान करे। तत्पश्चात् शिव और धर्मराजकी स्वर्णमयी मूर्तिको दोनों कलशोंके साथ ब्राह्मणको दान करके स्वयं मौन होकर तेलरहित पदार्थोंका भोजन करे। इसके बाद यथाशक्ति अन्य ब्राह्मणोंको भी भोजन करानेका विधान है। वेदवेत्तालोग सूर्य, विष्णु और शिवके उपासक भक्तोंके लिये इस मङ्गलमय सर्वफलत्यागव्रतको बतलाते हैं। द्विजपुंगव! स्त्रियोंको भी यथाशक्ति इस व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। मुनिश्रेष्ठ! इस लोक या परलोकमें इससे बढ़कर कोई दूसरा ऐसा व्रत नहीं है, जो अनन्त फलका प्रदायक हो। मुनिसत्तम! फलोंको चूर्ण कर देनेपर उनमें लगे हुए सोने, चाँदी और ताँबेके जितने परमाणु होते हैं, उतने सहस्र युगोंतक व्रती रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इस व्रतका जीवनपर्यन्त अनुष्ठान करनेवाले मनुष्योंके समस्त पापोंको यह विनष्ट कर देता है, उन्हें जन्मान्तरमें भी पुत्रवियोगका कष्ट नहीं भोगना पड़ता और मरणोपरान्त वे इन्द्रलोकमें चले जाते हैं। मुनीश्वर! जो निर्धन पुरुष देव-मन्दिरों अथवा धर्मात्मा पुरुषोंके गृहोंमें इस व्रत-माहात्म्यको सुनता अथवा पढ़ता है, उसका शरीर इस लोकमें पापसे मुक्त हो जाता है और मरणोपरान्त वह विष्णुलोकमें आनन्ददायक स्थान प्राप्त कर लेता है॥ १८—२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सर्वफलत्यागमाहात्म्यं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सर्वफलत्याग-माहात्म्य नामक छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९६॥

सत्तानबेवाँ अध्याय

आदित्यवार-कल्पका विधान और माहात्म्य

नारद उवाच

यदारोग्यकरं पुंसां यदनन्तफलप्रदम्।
यच्छान्त्यै च मर्त्यानां वद नन्दीश तद् व्रतम्॥ १

नारदजीने पूछा—नन्दीश्वर! अब जो व्रत मृत्युलोकवासी पुरुषोंके लिये आरोग्यकारी, अनन्त फलका प्रदाता और शान्तिकारक हो, उसका वर्णन कीजिये॥ १॥

नन्दिकेश्वर उवाच

यत् तद् विश्वात्मनो धाम परं ब्रह्म सनातनम्।
सूर्याग्निचन्द्ररूपेण तत् त्रिधा जगति स्थितम्॥ २
तदाराध्य पुमान् विप्र प्राप्नोति कुशलं सदा।
तस्मादादित्यवारेण सदा नक्ताशनो भवेत्॥ ३
यदा हस्तेन संयुक्तमादित्यस्य च वासरम्।
तदा शनिदिने कुर्यादेकभक्तं विमत्सरः॥ ४
नक्तमादित्यवारेण भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।
पत्रैर्द्वादशसंयुक्तं रक्तचन्दनपङ्कजम्॥ ५
विलिख्य विन्यसेत् सूर्यं नमस्कारेण पूर्वतः।
दिवाकरं तथाग्नेये विवस्वन्तमतः परम्॥ ६
भगं तु नैर्ऋते देवं वरुणं पश्चिमे दले।
महेन्द्रमनिले तद्वदादित्यं च तथोत्तरे॥ ७
शान्तमीशानभागे तु नमस्कारेण विन्यसेत्।
कर्णिकापूर्वपत्रे तु सूर्यस्य तुरगान् न्यसेत्॥ ८
दक्षिणेऽर्यमनामानं मार्तण्डं पश्चिमे दले।
उत्तरे तु रविं देवं कर्णिकायां च भास्करम्॥ ९
रक्तपुष्पोदकेनार्घ्यं सतिलारुणचन्दनम्।
तस्मिन् पद्मे ततो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ १०
कालात्मा सर्वभूतात्मा वेदात्मा विश्वतोमुखः।
यस्मादग्नीन्द्ररूपस्त्वमतः पाहि दिवाकर॥ ११
अग्निमीले नमस्तुभ्यमिषे त्वोर्जे च भास्कर।
अग्न आयाहि वरद नमस्ते ज्योतिषाम्पते॥ १२

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! विश्वात्मा भगवान्‌का जो परब्रह्मस्वरूप सनातन तेज है, वह जगत्‌में सूर्य, अग्नि और चन्द्ररूपसे तीन भागोंमें विभक्त होकर स्थित है। विप्रवर! उनकी आराधना करके मनुष्य सदा कुशलताका भागी हो जाता है। इसलिये रविवारको रात्रिमें एक बार भोजन करना चाहिये। जब रविवार हस्त नक्षत्रसे युक्त हो तो शनिवारको मत्सररहित हो एक ही बार भोजन करना चाहिये। रविवारको श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भोजन कराकर नक्तभोजन (रात्रिमें एक बार भोजन करने)-का विधान है। तदनन्तर लाल चन्दनसे द्वादश दलोंसे युक्त कमलकी रचना कर उसके पूर्वदलपर सूर्यकी, अग्निकोणवाले दलपर दिवाकरकी, दक्षिणदलपर विवस्वान्‌की, नैर्ऋत्यकोणस्थित दलपर भगकी, पश्चिमदलपर वरुणदेवकी, वायव्यकोणवाले दलपर महेन्द्रकी, उत्तरदलपर आदित्यकी और ईशानकोणस्थित दलपर शान्तकी नमस्कारपूर्वक स्थापना करे। पुनः कर्णिकाके पूर्वदलपर सूर्यके घोड़ोंको, दक्षिणदलपर अर्यमाको, पश्चिमदलपर मार्तण्डको, उत्तरदलपर रविदेवको और कर्णिकाके मध्यभागमें भास्करको स्थित कर दे। तदनन्तर लाल पुष्प, लाल चन्दन और तिलमिश्रित जलसे उस कमलपर अर्घ्य प्रदान करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—'दिवाकर! काल आपका ही स्वरूप है, आप समस्त प्राणियोंके आत्मा और वेदस्वरूप हैं, आपका मुख चारों दिशाओंमें है अर्थात् आप सर्वद्रष्टा हैं तथा अग्नि और इन्द्रके रूपमें आप ही वर्तमान हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिये। भास्कर! ऋग्वेदके प्रथम मन्त्र **'अग्निमीले'**, यजुर्वेदके **'इषे त्वोर्जे'** तथा सामवेदके प्रथम मन्त्र **'अग्न आयाहि'** के रूपमें आप ही वर्तमान हैं, आपको नमस्कार है। वरदायक! आप ज्योतिःपुञ्जोंके अधीश्वर हैं, आपको प्रणाम है॥ २—१२॥

अर्घ्यं दत्त्वा विसृज्याथ निशि तैलविवर्जितम्।
भुञ्जीत वत्सरान्ते तु काञ्चनं कमलोत्तमम्।
पुरुषं च यथाशक्त्या कारयेद् द्विभुजं तथा॥ १३
सुवर्णशृङ्गीं कपिलां महार्घ्यां
रौप्यैः खुरैः कांस्यदोहां सवत्साम्।
पूर्णे गुडस्योपरि ताम्रपात्रे
निधाय पद्मं पुरुषं च दद्यात्॥ १४

इस प्रकार अर्घ्य देकर विसर्जन कर रातमें तेलरहित भोजन करना चाहिये। एक वर्ष पूरा होनेपर अपनी शक्तिके अनुसार सुवर्णसे एक उत्तम कमल और एक दो भुजाधारी पुरुषकी मूर्ति बनवाये। फिर गुड़के ऊपर स्थित ताँबेके पूर्णपात्रपर उस कमल और पुरुषको रख दे। उस समय एक सवत्सा कपिला गौ भी प्रस्तुत करे, जो अधिक मूल्यवाली हो, जिसके सींग सुवर्णसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा जिसके निकट कांसदोहनी भी रखी हो।

सम्पूज्य रक्ताम्बरमाल्यधूपै-
र्द्विजं च रक्तैरथ हेमशृङ्गैः।
संकल्पयित्वा पुरुषं सपद्मं
दद्यादनेकव्रतदानकाय।
अव्यङ्गरूपाय जितेन्द्रियाय
कुटुम्बिने देयमनुद्धताय॥ १५
नमो नमः पापविनाशनाय
विश्वात्मने सप्ततुरंगमाय।
सामर्ग्यजुर्धामनिधे विधात्रे
भवाब्धिपोताय जगत्सवित्रे॥ १६
इत्यनेन विधिना समाचरे-
दब्दमेकमिह यस्तु मानवः।
सोऽधिरोहति विनष्टकल्मषः
सूर्यधाम धुतचामरावलिः॥ १७
धर्मसंक्षयमवाप्य भूपतिः
शोकदुःखभयरोगवर्जितः।
द्वीपसप्तकपतिः पुनः पुन-
र्धर्ममूर्तिरमितौजसा युतः॥ १८
या च भर्तृगुरुदेवतत्परा
वेदमूर्तिदिननक्तमाचरेत्।
सापि लोकममरेशवन्दिता
याति नारद रवेर्न संशयः॥ १९
यः पठेदपि शृणोति मानवः
पठ्यमानमथ वानुमोदते।
सोऽपि शक्रभुवनस्थितोऽमरैः
पूज्यते वसति चाक्षयं दिवि॥ २०

तत्पश्चात् लाल रंगके स्वर्णनिर्मित सिंघा बाजाके साथ लाल वस्त्र, पुष्पमाला और धूपसे ब्राह्मणकी पूजा करके संकल्पपूर्वक गौ एवं कमलसहित उस पुरुष-मूर्तिको ऐसे ब्राह्मणको दान कर दे, जो अनेकों श्रेष्ठ व्रतोंमें दान लेनेका अधिकारी, सुडौल रूपसे सम्पन्न, जितेन्द्रिय, शान्त-स्वभाव और विशाल कुटुम्बवाला हो। (उस समय ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये—) 'जो पापके विनाशक, विश्वके आत्मस्वरूप, सात घोड़ोंसे जुते रथपर आरूढ़ होनेवाले, ऋक्, यजुः, साम—तीनों वेदोंके तेजकी निधि, विधाता, भवसागरके लिये नौकास्वरूप और जगत्स्रष्टा हैं, उन सूर्यदेवको बारंबार नमस्कार है।' जो मानव इस लोकमें उपर्युक्त विधिके अनुसार एक वर्षतक इस व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पापरहित होकर सूर्यलोकको चला जाता है। उस समय उसके ऊपर चँवर डुलाये जाते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह इस लोकमें शोक, दुःख, भय और रोगसे रहित होकर बारंबार अमित ओजस्वी एवं धर्मात्मा भूपाल होता है, उस समय सातों द्वीप उसके अधिकारमें रहते हैं। नारदजी! पति, गुरुजन और देवताओंकी शुश्रूषामें तत्पर रहनेवाली जो नारी रविवारको इस नक्तव्रतका अनुष्ठान करती है, वह भी इन्द्रद्वारा पूजित होकर निस्संदेह सूर्यलोकको चली जाती है। जो मानव इस व्रतको पढ़ता या सुनता है अथवा पढ़नेवालेका अनुमोदन करता है, वह भी इन्द्रलोकमें स्थित होकर देवताओंद्वारा पूजित होता है और अक्षय कालतक स्वर्गलोकमें निवास करता है॥ १३—२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे आदित्यवारकल्पो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥ ९७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें आदित्यवार-कल्प नामक सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९७॥

अट्ठानबेवाँ अध्याय

संक्रान्ति-व्रतके उद्यापनकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच

**अथान्यदपि वक्ष्यामि संक्रान्त्युद्यापने फलम्।
यदक्षयं परे लोके सर्वकामफलप्रदम्॥ १
अयने विषुवे वापि संक्रान्तिव्रतमाचरेत्।
पूर्वेद्युरेकभुक्तेन दन्तधावनपूर्वकम्।
संक्रान्तिवासरे प्रातस्तिलैः स्नानं विधीयते॥ २
रविसंक्रमणे भूमौ चन्दनेनाष्टपत्रकम्।
पद्मं सकर्णिकं कुर्यात् तस्मिन्नावाहयेद् रविम्॥ ३
कणिकायां न्यसेत् सूर्यमादित्यं पूर्वतस्ततः।
नम उष्णार्चिषे याम्ये नमो ऋङ्मण्डलाय च॥ ४
नमः सवित्रे नैर्ऋत्ये वारुणे तपनं पुनः।
वायव्ये तु भगं न्यस्य पुनः पुनरर्थार्चयेत्॥ ५
मार्तण्डमुत्तरे विष्णुमीशाने विन्यसेत् सदा।
गन्धमाल्यफलैर्भक्ष्यैः स्थण्डिले पूजयेत् ततः॥ ६
द्विजाय सोदकुम्भं च घृतपात्रं हिरण्मयम्।
कमलं च यथाशक्त्या कारयित्वा निवेदयेत्॥ ७
चन्दनोदकपुष्पैश्च देवायार्घ्यं न्यसेद् भुवि।
विश्वाय विश्वरूपाय विश्वधाम्ने स्वयम्भुवे।
नमोऽनन्त नमो धात्रे ऋक्सामयजुषाम्पते॥ ८
अनेन विधिना सर्वं मासि मासि समाचरेत्।
वत्सरान्तेऽथवा कुर्यात् सर्वं द्वादशधा नरः॥ ९
संवत्सरान्ते घृतपायसेन
संतर्प्य वह्निं द्विजपुंगवांश्च।
कुम्भान् पुनर्द्वादशधेनुयुक्तान्
सरत्नहैरण्यमयपद्मयुक्तान्॥ १०**

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब मैं संक्रान्तिके समय किये जानेवाले उद्यापन-रूप अन्य व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो इस लोकमें समस्त कामनाओंके फलका प्रदाता और परलोकमें अक्षय फलदायक है। सूर्यके उत्तरायण या दक्षिणायनके दिन अथवा विषुवयोगमें इस संक्रान्तिव्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। इस व्रतमें संक्रान्तिके पहले दिन एक बार भोजन करके (रात्रिमें शयन करे।) संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल दाँतुन करनेके पश्चात् तिलमिश्रित जलसे स्नान करनेका विधान है। सूर्य-संक्रान्तिके दिन भूमिपर चन्दनसे कर्णिकासहित अष्टदल कमलकी रचना करे और उसपर सूर्यका आवाहन करे। कर्णिकामें '**सूर्याय नमः**', पूर्वदलपर '**आदित्याय नमः**', अग्निकोणस्थित दलपर '**उष्णार्चिषे नमः**', दक्षिणदलपर '**ऋङ्मण्डलाय नमः**', नैर्ऋत्यकोणवाले दलपर '**सवित्रे नमः**', पश्चिमदलपर '**तपनाय नमः**', वायव्यकोणस्थित दलपर '**भगाय नमः**', उत्तरदलपर '**मार्तण्डाय नमः**' और ईशानकोणवाले दलपर '**विष्णवे नमः**' से सूर्यदेवको स्थापित कर उनकी बारंबार अर्चना करे। तत्पश्चात् वेदीपर भी चन्दन, पुष्पमाला, फल और खाद्य पदार्थोंसे उनकी पूजा करनी चाहिये। पुनः अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमल बनवाकर उसे घृतपूर्ण पात्र और कलशके साथ ब्राह्मणको दान कर दे। तत्पश्चात् चन्दन और पुष्पयुक्त जलसे भूमिपर सूर्यदेवको अर्घ्य प्रदान करे। (अर्घ्यका मन्त्रार्थ इस प्रकार है—) 'अनन्त! आप ही विश्व हैं, विश्व आपका स्वरूप है, आप विश्वमें सर्वाधिक तेजस्वी, स्वयं उत्पन्न होनेवाले, धाता और ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेदके स्वामी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है।' इसी विधिसे मनुष्यको प्रत्येक मासमें सारा कार्य सम्पन्न करना चाहिये अथवा (यदि ऐसा करनेमें असमर्थ हो तो) वर्षकी समाप्तिके दिन यह सारा कार्य बारह बार करे (दोनोंका फल समान ही है)॥ १—९॥

एक वर्ष व्यतीत होनेपर घृतमिश्रित खीरसे अग्नि और श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको भलीभाँति संतुष्ट करे और बारह गौ एवं रत्नसहित स्वर्णमय कमलके साथ कलशोंको दान कर दे।

पयस्विनीः शीलवतीश्च दद्या-
द्धैमैः शृङ्गैः रौप्यखुरैश्च युक्ताः।
गावोऽष्ट वा सप्त सकांस्यदोहा
माल्याम्बरा वा चतुरोऽप्यशक्तः।
दौर्गत्ययुक्तः कपिलामथैकां
निवेदयेद् ब्राह्मणपुंगवाय॥ ११
हैमीं च दद्यात् पृथिवीं सशेषा-
माकार्य रूप्यामथ वा च ताम्रीम्।
पैष्टीमशक्तः प्रतिमां विधाय
सौवर्णसूर्येण समं प्रदद्यात्।
न वित्तशाठ्यं पुरुषोऽत्र कुर्यात्
कुर्वन्नधो याति न संशयोऽत्र॥ १२
यावन्महेन्द्रप्रमुखैर्नगेन्द्रैः
पृथ्वी च सप्ताब्धियुतेह तिष्ठेत्।
तावत् स गन्धर्वगणैरशेषैः
सम्पूज्यते नारद नाकपृष्ठे॥ १३
ततस्तु कर्मक्षयमाप्य सप्त-
द्वीपाधिपः स्यात् कुलशीलयुक्तः।
सृष्टेर्मुखेऽव्यङ्गवपुः सभार्यः
प्रभूतपुत्रान्वयवन्दिताङ्घ्रिः॥ १४
इति पठति शृणोति वाथ भक्त्या
विधिमखिलं रविसंक्रमस्य पुण्यम्।
मतिमपि च ददाति सोऽपि देवै-
रमरपतेर्भवने प्रपूज्यते च॥ १५

वे गौएँ दूध देनेवाली, सीधी-सादी एवं पुष्प-माला और वस्त्रसे सुसज्जित हों, उनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा उनके साथ काँसेकी दोहनी भी हो। जो इस प्रकारकी बारह गौओंका दान करनेमें असमर्थ हो, उसके लिये आठ, सात अथवा चार ही गौ दान करनेका विधान है। जो दुर्गतिमें पड़ा हुआ निर्धन हो, वह किसी श्रेष्ठ ब्राह्मणको एक ही कपिला गौका दान कर सकता है। इसी प्रकार सोने, चाँदी अथवा ताँबेकी शेषनागसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनवाकर दान करना चाहिये। जो ऐसा करनेमें असमर्थ हो, वह आटेकी शेषसहित पृथ्वीकी प्रतिमा बनाकर स्वर्णनिर्मित सूर्यके साथ दान कर सकता है। पुरुषको इस दानमें कंजूसी नहीं करनी चाहिये। यदि करता है तो उसका अधःपतन हो जाता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। नारदजी! जबतक इस मृत्युलोकमें महेन्द्र आदि देवगणों, हिमालय आदि पर्वतों और सातों समुद्रोंसे युक्त पृथ्वीका अस्तित्व है, तबतक स्वर्गलोकमें अखिल गन्धर्वसमूह उस व्रतीकी भलीभाँति पूजा करते हैं। पुण्य क्षीण होनेपर वह सृष्टिके आदिमें उत्तम कुल और शीलसे सम्पन्न होकर भूतलपर सातों द्वीपोंका अधीश्वर होता है। वह सुन्दर रूप और सुन्दरी पत्नीसे युक्त होता है, बहुत-से पुत्र और भाई-बन्धु उसके चरणोंकी वन्दना करते हैं। इस प्रकार जो मनुष्य सूर्य-संक्रान्तिकी इस पुण्यमयी अखिल विधिको भक्तिपूर्वक पढ़ता या श्रवण करता है अथवा इसे करनेकी सम्मति देता है, वह भी इन्द्रलोकमें देवताओंद्वारा पूजित होता है॥ १०—१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे संक्रान्त्युद्यापनविधिर्नामाष्टनवतितमोऽध्यायः॥ ९८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें संक्रान्त्युद्यापनविधि नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९८॥

निन्यानबेवाँ अध्याय

विभूतिद्वादशी-व्रतकी विधि और उसका माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि विष्णोर्व्रतमनुत्तमम्।
विभूतिद्वादशीनाम सर्वदेवनमस्कृतम्॥ १

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! सुनिये, अब मैं भगवान् विष्णुके विभूतिद्वादशी नामक सर्वोत्तम व्रतका वर्णन कर रहा हूँ, जो सम्पूर्ण देवगणोंद्वारा अभिवन्दित है।

कार्तिके चैत्रवैशाखे मार्गशीर्षे च फाल्गुने।
आषाढे वा दशम्यां तु शुक्लायां लघुभुङ्नरः।
कृत्वा सायन्तनीं संध्यां गृह्णीयान्नियमं बुधः॥ २
एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम्।
द्वादश्यां द्विजसंयुक्तः करिष्ये भोजनं विभो॥ ३
तदविघ्नेन मे यातु सफलं स्याच्च केशव।
नमो नारायणायेति वाच्यं च स्वपता निशि॥ ४
ततः प्रभात उत्थाय कृतस्नानजपः शुचिः।
पूजयेत् पुण्डरीकाक्षं शुक्लमाल्यानुलेपनैः॥ ५
विभूतये नमः पादावशोकाय च जानुनी।
नमः शिवायेत्यूरू च विश्वमूर्ते नमः कटिम्॥ ६
कंदर्पाय नमो मेढ्रमादित्याय नमः करौ।
दामोदरायेत्युदरं वासुदेवाय च स्तनौ॥ ७
माधवायेत्युरो विष्णोः कण्ठमुत्कण्ठिने नमः।
श्रीधराय मुखं केशान् केशवायेति नारद॥ ८
पृष्ठं शार्ङ्गधरायेति श्रवणौ वरदाय वै।
स्वनाम्ना शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये।
शिरः सर्वात्मने ब्रह्मन् नम इत्यभिपूजयेत्॥ ९
मत्स्यमुत्पलसंयुक्तं हैमं कृत्वा तु शक्तितः।
उदकुम्भसमायुक्तमग्रतः स्थापयेद् बुधः॥ १०
गुडपात्रं तिलैर्युक्तं सितवस्त्राभिवेष्टितम्।
रात्रौ जागरणं कुर्यादितिहासकथादिना॥ ११
प्रभातायां तु शर्वर्यां ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।
सकाञ्चनोत्पलं देवं सोदकुम्भं निवेदयेत्॥ १२
यथा न मुच्यसे देव सदा सर्वविभूतिभिः।
तथा मामुद्धराशेषदुःखसंसारकर्दमात्॥ १३
दशावताररूपाणि प्रतिमासं क्रमान्मुने।
दत्तात्रेयं तथा व्यासमुत्पलेन समन्वितम्।
दद्यादेवं समा यावत् पाषण्डानभिवर्जयेत्॥ १४

बुद्धिमान् मनुष्य कार्तिक, चैत्र, वैशाख, मार्गशीर्ष, फाल्गुन अथवा आषाढ़मासमें शुक्लपक्षकी दशमी तिथिको स्वल्पाहार कर सायंकालिक संध्योपासनासे निवृत्त होकर इस प्रकारका नियम ग्रहण करे—'प्रभो! मैं एकादशीको निराहार रहकर भगवान् जनार्दनकी भलीभाँति अर्चना करूँगा और द्वादशीके दिन ब्राह्मणके साथ बैठकर भोजन करूँगा। केशव! मेरा यह नियम निर्विघ्नतापूर्वक निभ जाय और फलदायक हो।' फिर रातमें '**ॐ नमो नारायणाय**' मन्त्रका जप करते हुए सो जाय। प्रातःकाल उठकर स्नान-जप आदि करके पवित्र हो जाय और श्वेत पुष्पोंकी माला एवं चन्दन आदिसे भगवान् पुण्डरीकाक्षका पूजन करे। (पूजनके मन्त्र इस प्रकार हैं—) '**विभूतये नमः**'से दोनों चरणोंकी, '**अशोकाय नमः**' से जानुओंकी, '**शिवाय नमः**' से ऊरुओंकी, '**विश्वमूर्ते नमः**' से कटिकी, '**कंदर्पाय नमः**'से जननेन्द्रियकी, '**आदित्याय नमः**'से हाथोंकी, '**दामोदराय नमः**' से उदरकी, '**वासुदेवाय नमः**' से दोनों स्तनोंकी, '**माधवाय नमः**'से विष्णुके वक्षःस्थलकी, '**उत्कण्ठिने नमः**' से कण्ठकी, '**श्रीधराय नमः**' से मुखकी, '**केशवाय नमः**' से केशोंकी, '**शार्ङ्गधराय नमः**'से पीठकी, '**वरदाय नमः**'से दोनों कानोंकी और '**सर्वात्मने नमः**'से सिरकी पूजा करनी चाहिये। ब्राह्मण देवता नारदजी!' तत्पश्चात् '**शङ्खचक्रासिगदाजलजपाणये नमः**'कहकर अपने नामका उच्चारण करते हुए चरणोंमें प्रणिपात करे। तदुपरान्त बुद्धिमान् व्रती मूर्तिके अग्रभागमें एक जलपूर्ण कलश स्थापित करे। उसपर तिलसे युक्त गुड़से भरा हुआ पात्र, जो श्वेत वस्त्रसे परिवेष्टित हो, रख दे। उसके ऊपर अपनी शक्तिके अनुसार सोनेका कमलसहित मत्स्य बनवाकर स्थापित करे और रात्रिमें इतिहास-पुराण आदिकी कथाओंको सुनते हुए जागरण करे॥ १—११॥

रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल स्वर्णमय कमल और कलशके साथ वह देव-मूर्ति कुटुम्बी ब्राह्मणको दान कर देनी चाहिये। (उस समय ऐसी प्रार्थना करे—) 'देव! जिस प्रकार आप सदा सम्पूर्ण विभूतियोंसे वियुक्त नहीं होते, उसी प्रकार इस निखिल कष्टोंसे परिपूर्ण संसाररूपी कीचड़से मेरा उद्धार कीजिये।' मुने! इस प्रकार एक वर्षतक प्रतिमास क्रमशः भगवान्के दस अवतारों तथा दत्तात्रेय और व्यासकी स्वर्णमयी प्रतिमा स्वर्णनिर्मित कमलके साथ दान करनी चाहिये। उस समय छल, कपट, पाखण्ड आदिसे दूर रहना चाहिये।

समाप्यैवं यथाशक्त्या द्वादश द्वादशीः पुनः।
संवत्सरान्ते लवणपर्वतेन समन्वितम्।
शय्यां दद्यान्मुनिश्रेष्ठ गुरवे धेनुसंयुताम्॥ १५
ग्रामं च शक्तिमान् दद्यात् क्षेत्रं वा भवनान्वितम्।
गुरुं सम्पूज्य विधिवद् वस्त्रालंकारभूषणैः॥ १६
अन्यानपि यथाशक्त्या भोजयित्वा द्विजोत्तमान्।
तर्पयेद् वस्त्रगोदानै रत्नौघधनसंचयैः।
अल्पवित्तो यथाशक्त्या स्तोकं स्तोकं समाचरेत्॥ १७
यश्चाप्यतीव निःस्वः स्याद् भक्तिमान् माधवं प्रति।
पुष्पार्चनविधानेन स कुर्याद् वत्सरद्वयम्॥ १८
अनेन विधिना यस्तु विभूतिद्वादशीव्रतम्।
कुर्यात् पापविनिर्मुक्तः पितॄणां तारयेच्छतम्॥ १९
जन्मनां शतसाहस्रं न शोकफलभाग् भवेत्।
न च व्याधिर्भवेत् तस्य न दारिद्र्यं न बन्धनम्।
वैष्णवो वाथ शैवो वा भजेज्जन्मनि जन्मनि॥ २०
यावद् युगसहस्राणां शतमष्टोत्तरं भवेत्।
तावत् स्वर्गे वसेद् ब्रह्मन् भूपतिश्च पुनर्भवेत्॥ २१

मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार यथाशक्ति बारहों द्वादशी-व्रतोंको समाप्त कर वर्षके अन्तमें गुरुको लवणपर्वतके साथ-साथ गौसहित शय्या दान करनी चाहिये। व्रती यदि सम्पत्तिशाली हो तो उसे वस्त्र, शृङ्गार-सामग्री और आभूषण आदिसे गुरुकी विधिपूर्वक पूजा कर ग्राम अथवा गृहके साथ-साथ खेतका दान करना चाहिये। साथ ही अपनी शक्तिके अनुसार अन्यान्य ब्राह्मणोंको भी भोजन कराकर उन्हें वस्त्र, गोदान, रत्नसमूह और धनराशियोंद्वारा संतुष्ट करनेका विधान है। स्वल्प धनवाला व्रती अपनी सामर्थ्यके अनुकूल थोड़ा-थोड़ा ही दान कर सकता है तथा जो व्रती परम निर्धन हो, किंतु भगवान् माधवके प्रति उसकी प्रगाढ़ निष्ठा हो तो उसे दो वर्षतक पुष्पार्चनकी विधिसे इस व्रतका पालन करना चाहिये। जो मनुष्य उपर्युक्त विधिसे विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करता है, वह स्वयं पापसे मुक्त होकर अपने सौ पीढ़ियोंतकके पितरोंको तार देता है। उसे एक लाख जन्मोंतक न तो शोकरूप फलका भागी होना पड़ता है, न व्याधि और दरिद्रता ही घेरती है तथा न बन्धनमें ही पड़ना पड़ता है। वह प्रत्येक जन्ममें विष्णु अथवा शिवका भक्त होता है। ब्रह्मन्! जबतक एक सौ आठ सहस्र युग नहीं बीत जाते, तबतक वह स्वर्गलोकमें निवास करता है और पुण्य क्षीण होनेपर पुनः भूतलपर राजा होता है॥ १२—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विष्णुव्रतं नाम नवनवतितमोऽध्यायः॥ ९९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-सम्बन्धी विष्णु-व्रत नामक निन्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ९९॥

सौवाँ अध्याय

विभूतिद्वादशी* के प्रसङ्गमें राजा पुष्पवाहनका वृत्तान्त

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा रथन्तरे कल्पे राजाऽऽसीत् पुष्पवाहनः।
नाम्ना लोकेषु विख्यातस्तेजसा सूर्यसंनिभः॥ १
तपसा तस्य तुष्टेन चतुर्वक्त्रेण नारद।
कमलं काञ्चनं दत्तं यथाकामगमं मुने॥ २

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! बहुत पहले रथन्तरकल्पमें पुष्पवाहन नामका एक राजा हुआ था जो सम्पूर्ण लोकोंमें विख्यात तथा तेजमें सूर्यके समान था। मुने! उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर ब्रह्माने उसे एक सोनेका कमल (रूप विमान) प्रदान किया था, जो इच्छानुसार जहाँ-कहीं भी आ-जा सकता था।

* इस व्रतका वर्णन पद्म० सृष्टिखं० २०। १—४२, भविष्योत्तर, विष्णुधर्मोत्तर, व्रतरत्न, व्रतराज, व्रतकल्पद्रुम आदिमें भी यों ही प्राप्त होता है। पाद्मीय कथामें तीर्थगुरु पुष्करक्षेत्रका भी सम्बन्ध प्रदृष्ट है।

लोकैः समस्तैर्नगरवासिभिः सहितो नृपः।
द्वीपानि सुरलोकं च यथेष्टं व्यचरत् तदा॥ ३
कल्पादौ सप्तमं द्वीपं तस्य पुष्करवासिनः।
लोकेन पूजितं यस्मात् पुष्करद्वीपमुच्यते॥ ४
देवेन ब्रह्मणा दत्तं यानमस्य यतोऽम्बुजम्।
पुष्पवाहनमित्याहुस्तस्मात् तं देवदानवाः॥ ५
नागम्यमस्यास्ति जगत्त्रयेऽपि
ब्रह्माम्बुजस्थस्य तपोऽनुभावात्।
पत्नी च तस्याप्रतिमा मुनीन्द्र
नारीसहस्त्रैरभितोऽभिनन्द्या।
नाम्ना च लावण्यवती बभूव
सा पार्वतीवेष्टतमा भवस्य॥ ६
तस्यात्मजानामयुतं बभूव
धर्मात्मनामग्र्यधनुर्धराणाम्।
तदात्मनः सर्वमवेक्ष्य राजा
मुहुर्मुहुर्विस्मयमाससाद।
सोऽभ्यागतं वीक्ष्य मुनिप्रवीरं
प्राचेतसं वाक्यमिदं बभाषे॥ ७

राजोवाच

कस्माद् विभूतिरमलामरमर्त्यपूज्या
जाता च सर्वविजितामरसुन्दरीणाम्।
भार्या ममाल्पतपसा परितोषितेन
दत्तं ममाम्बुजगृहं च मुनीन्द्र धात्रा॥ ८
यस्मिन् प्रविष्टमपि कोटिशतं नृपाणां
सामात्यकुञ्जररथौघजनावृतानाम्।
नो लभ्यते क्व गतमम्बरगामिभिश्च
तारागणेन्दुरविरश्मिभिरप्यगम्यम्॥ ९
तस्मात् किमन्यजननीजठरोद्भवेन
धर्मादिकं कृतमशेषफलाप्तिहेतुः।
भगवन् मयाथ तनयैरथवानयापि
भद्रं यदेतदखिलं कथय प्रचेतः॥ १०

उसे पाकर उस समय राजा पुष्पवाहन अपने नगर एवं जनपदवासियोंके साथ उसपर आरूढ़ होकर स्वेच्छानुसार देवलोकों तथा सातों द्वीपोंमें विचरण किया करता था। कल्पके आदिमें पुष्करनिवासी उस पुष्पवाहनका सातवें द्वीपपर अधिकार था, इसीलिये लोकमें उसकी प्रतिष्ठा थी और आगे चलकर वह द्वीप पुष्करद्वीप नामसे कहा जाने लगा। चूँकि देवेश्वर ब्रह्माने इसे कमलरूप विमान प्रदान किया था, इसलिये देवता एवं दानव उसे पुष्पवाहन कहा करते थे। तपस्याके प्रभावसे ब्रह्माद्वारा प्रदत्त कमलरूप विमानपर आरूढ़ होनेपर उसके लिये त्रिलोकीमें भी कोई स्थान अगम्य न था। मुनीन्द्र! उसकी पत्नीका नाम लावण्यवती था। वह अनुपम सुन्दरी थी तथा हजारों नारियोंद्वारा चारों ओरसे समादृत होती रहती थी। वह राजाको उसी प्रकार अत्यन्त प्यारी थी, जैसे शंकरजीको पार्वती परम प्रिय हैं। उसके दस हजार पुत्र थे, जो परम धार्मिक और धनुर्धारियोंमें अग्रगण्य थे। अपनी इन सारी विभूतियोंपर बारम्बार विचारकर राजा पुष्पवाहन विस्मयविमुग्ध हो जाता था। एक बार (प्रचेताके पुत्र) मुनिवर वाल्मीकि* राजाके यहाँ पधारे। उन्हें आया देख राजाने उनसे इस प्रकार प्रश्न किया॥ १—७॥

राजाने पूछा—मुनीन्द्र! किस कारणसे मुझे यह देवों तथा मानवोंद्वारा पूजनीय निर्मल विभूति तथा अपने सौन्दर्यसे समस्त देवाङ्गनाओंको पराजित कर देनेवाली सुन्दरी भार्या प्राप्त हुई है? मेरे थोड़े-से तपसे संतुष्ट होकर ब्रह्माने मुझे ऐसा कमल-गृह क्यों प्रदान किया, जिसमें अमात्य, हाथी, रथसमूह और जनपदवासियोंसहित यदि सौ करोड़ राजा बैठ जायँ तो वे जान नहीं पड़ते कि कहाँ चले गये। वह विमान भी आकाशगामी देवताओंद्वारा केवल चमकीले ताराओंसे घिरे हुए चन्द्रमाकी भाँति दीख पड़ता है। इसलिये इस सम्पूर्ण फलकी प्राप्तिके लिये अन्य माताके उदरसे उत्पन्न होकर अर्थात् पूर्वजन्ममें मैंने अथवा मेरे पुत्रोंने या मेरी इस पत्नीने कौन-सा ऐसा शुभ धर्म आदि कार्य किया है? प्रचेतः! यह सारा-का-सारा विषय मुझे बतलाइये॥ ८—१०॥

* वाल्मीकिरामायण, उत्तरकाण्ड ९३। १७, ९६। १९ तथा अध्यात्मरामायण ७। ७। ३१, बालरामायण, उत्तर-रामचरित आदिके अनुसार 'प्राचेतस' शब्द महर्षि वाल्मीकिका ही वाचक है।

मुनिरभ्यधादथ भवान्तरितं समीक्ष्य
पृथ्वीपतेः प्रसभमद्भुतहेतुवृत्तम्।
जन्माभवत् तव तु लुब्धकुलेऽतिघोरे
जातस्त्वमप्यनुदिनं किल पापकारी॥ ११
वपुरप्यभूत् तव पुनः परुषाङ्गसंधि-
दुर्गन्धसत्त्वकुनखाभरणं समन्तात्।
न च ते सुहृन्न सुतबन्धुजनो न तात-
स्त्वादृक् स्वसा न जननी च तदाभिशस्ता॥ १२
अतिसम्मता परमभीष्टतमाभिमुखी
जाता महीश तव योषिदियं सुरूपा।
अभूदनावृष्टिरतीव रौद्रा
कदाचिदाहारनिमित्तमस्मिन्।
क्षुत्पीडितेनाथ तदा न किञ्चि-
दासादितं वन्यफलादि खाद्यम्॥ १३
अथाभिदृष्टं महदम्बुजाढ्यं
सरोवरं पङ्कजषण्डमण्डितम्।
पद्मान्यथादाय ततो बहूनि
गतः पुरं वैदिशनामधेयम्॥ १४
तन्मूल्यलाभाय पुरं समस्तं
भ्रान्तं त्वयाशेषमहस्तदासीत्।
क्रेता न कश्चित् कमलेषु जातः
क्लान्तो भृशं क्षुत्परिपीडितश्च॥ १५
उपविष्टस्त्वमेकस्मिन् सभार्यो भवनाङ्गणे।
अथ मङ्गलशब्दश्च त्वया रात्रौ महाञ्श्रुतः॥ १६
सभार्यस्तत्र गतवान् यत्रासौ मङ्गलध्वनिः।
तत्र मण्डपमध्यस्था विष्णोरर्चा विलोकिता॥ १७
वेश्यानङ्गवती नाम विभूतिद्वादशीव्रतम्।
समाप्तौ माघमासस्य लवणाचलमुत्तमम्॥ १८
निवेदयन्ती गुरवे शय्यां चोपस्करान्विताम्।
अलंकृत्य हृषीकेशं सौवर्णामरपादपम्॥ १९
तां तु दृष्ट्वा ततस्ताभ्यामिदं च परिचिन्तितम्।
किमेभिः कमलैः कार्यं वरं विष्णुरलङ्कृतः॥ २०

तदनन्तर महर्षि वाल्मीकि राजाके इस आकस्मिक एवं अद्भुत प्रभावपूर्ण वृत्तान्तको जन्मान्तरसे सम्बन्धित जानकर इस प्रकार कहने लगे—राजन्! तुम्हारा पूर्वजन्म अत्यन्त भीषण व्याधके कुलमें हुआ था। एक तो तुम उस कुलमें पैदा हुए, फिर दिन-रात पापकर्ममें भी निरत रहते थे। तुम्हारा शरीर भी कठोर अङ्गसंधियुक्त तथा बेडौल था। तुम्हारी त्वचा दुर्गन्धियुक्त और नख बहुत बढ़े हुए थे। उससे दुर्गन्ध निकलती थी और वह बड़ा कुरूप था। उस जन्ममें न तो तुम्हारा कोई हितैषी मित्र था, न पुत्र और भाई-बन्धु ही थे, न पिता-माता और बहन ही थी। भूपाल! केवल तुम्हारी यह परम प्रियतमा पत्नी ही तुम्हारी अभीष्ट परमानुकूल संगिनी थी। एक बार कभी बड़ी भयंकर अनावृष्टि हुई, जिसके कारण अकाल पड़ गया। उस समय भूखसे पीड़ित होकर तुम आहारकी खोजमें निकले, परंतु तुम्हें कोई जंगली (कन्दमूल) फल आदि कुछ भी खाद्य वस्तु प्राप्त न हुई। इतनेमें ही तुम्हारी दृष्टि एक सरोवरपर पड़ी, जो कमलसमूहसे मण्डित था। उसमें बड़े-बड़े कमल खिले हुए थे। तब तुम उसमें प्रविष्ट होकर बहुसंख्यक कमल-पुष्पोंको लेकर वैदिश* नामक नगर (विदिशा नगरी)-में चले गये॥ ११—१४॥

वहाँ तुमने उन कमल-पुष्पोंको बेचकर मूल्य-प्राप्तिके हेतु पूरे नगरमें चक्कर लगाया। सारा दिन बीत गया, पर उन कमल-पुष्पोंका कोई खरीददार न मिला। उस समय तुम भूखसे अत्यन्त व्याकुल और थकावटसे अतिशय क्लान्त चूर होकर पत्नीसहित एक महलके प्राङ्गणमें बैठ गये। वहाँ रात्रिमें तुम्हें महान् मङ्गल शब्द सुनायी पड़ा। उसे सुनकर तुम पत्नीसहित उस स्थानपर गये, जहाँ वह मङ्गल शब्द हो रहा था। वहाँ मण्डपके मध्यभागमें भगवान् विष्णुकी पूजा हो रही थी। तुमने उसका अवलोकन किया। वहाँ अनङ्गवती नामकी वेश्या माघमासकी विभूतिद्वादशी-व्रतकी समाप्ति कर अपने गुरुको भगवान् हृषीकेशका विधिवत् शृङ्गार कर स्वर्णमय कल्पवृक्ष, श्रेष्ठ लवणाचल और समस्त उपकरणोंसहित शय्याका दान कर रही थी। इस प्रकार पूजा करती हुई अनङ्गवतीको देखकर तुम दोनोंके मनमें यह विचार जाग्रत् हुआ कि इन कमलपुष्पोंसे क्या लेना है। अच्छा तो यह होता कि इनसे भगवान् विष्णुका शृङ्गार किया जाता।

* यह इतिहास-पुराणादिमें अति प्रसिद्ध विदिशा नामकी नदीके तटपर बसा मध्यप्रदेशके मध्यकालीन इतिहासका बेसनगर, आजकलका भेलसा नगर है। इसपर कनिंघमका (Bhelsa-Topes) ग्रन्थ प्रसिद्ध है।

इति भक्तिस्तदा जाता दम्पत्योस्तु नराधिप।
तत्प्रसङ्गात् समभ्यर्च्य केशवं लवणाचलम्।
शय्या च पुष्पप्रकरैः पूजिताभूच्च सर्वतः॥ २१
अथानङ्गवती तुष्टा तयोर्धनशतत्रयम्।
दीयतामादिदेशाथ कलधौतशतत्रयम्॥ २२
न गृहीतं ततस्ताभ्यां महासत्त्वावलम्बनात्।
अनङ्गवत्या च पुनस्तयोरन्नं चतुर्विधम्।
आनीय व्याहृतं चात्र भुज्यतामिति भूपते॥ २३
ताभ्यां तु तदपि त्यक्तं भोक्ष्यावः श्वो वरानने।
प्रसङ्गादुपवासेन तवाद्य सुखमावयोः॥ २४
जन्मप्रभृति पापिष्ठौ कुकर्माणौ दृढव्रते।
प्रसङ्गात् तव सुश्रोणि धर्मलेशोस्तु नाविह॥ २५
इति जागरणं ताभ्यां तत्प्रसङ्गादनुष्ठितम्।
प्रभाते च तया दत्ता शय्या सलवणाचला॥ २६
ग्रामाश्च गुरवे भक्त्या विप्रेभ्यो द्वादशैव तु।
वस्त्रालंकारसंयुक्ता गावश्च कनकान्विताः॥ २७
भोजनं च सुहृन्मित्रदीनान्धकृपणैः समम्।
तच्च लुब्धकदाम्पत्यं पूजयित्वा विसर्जितम्॥ २८
स भवाँल्लुब्धको जातः सपत्नीको नृपेश्वरः।
पुष्करप्रकरात् तस्मात् केशवस्य च पूजनात्॥ २९
विनष्टाशेषपापस्य तव पुष्करमन्दिरम्।
तस्य सत्त्वस्य माहात्म्यादलोभतपसा नृप॥ ३०
प्रादात्तु कामगं यानं लोकनाथश्चतुर्मुखः।
संतुष्टस्तव राजेन्द्र ब्रह्मरूपी जनार्दनः॥ ३१
साप्यनङ्गवती वेश्या कामदेवस्य साम्प्रतम्।
पत्नी सपत्नी संजाता रत्याः प्रीतिरिति श्रुता।
लोकेष्वानन्दजननी सकलामरपूजिता॥ ३२

नरेश्वर! उस समय तुम दोनों पति-पत्नीके मनमें ऐसी भक्ति उत्पन्न हुई और इसी अर्चाके प्रसङ्गमें तुम्हारे उन पुष्पोंसे भगवान् केशव और लवणाचलकी अर्चना सम्पन्न हुई तथा शेष पुष्प-समूहोंसे तुम दोनोंद्वारा शय्याको भी सब ओरसे सुसज्जित किया गया॥१५—२१॥

तुम्हारी इस क्रियासे अनङ्गवती बहुत प्रसन्न हुई। उस समय उसने तुम दोनोंको इसके बदले तीन सौ अशर्फियाँ देनेका आदेश दिया, पर तुम दोनोंने बड़ी दृढ़तासे उस धन-राशिको अस्वीकार कर दिया—नहीं लिया। भूपते! तब अनङ्गवतीने तुम्हें (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) चार प्रकारका अन्न लाकर दिया और कहा—'इसे भोजन कीजिये', किंतु तुम दोनोंने उसका भी त्याग कर दिया और कहा—'वरानने! हमलोग कल भोजन कर लेंगे। दृढ़व्रते! हम दोनों जन्मसे ही पापपरायण और कुकर्म करनेवाले हैं; पर इस समय तुम्हारे उपवासके प्रसङ्गसे हम दोनोंको भी विशेष आनन्द प्राप्त हो रहा है।' उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंको धर्मका लेशांश प्राप्त हुआ था और उसी प्रसङ्गमें तुम दोनोंने रातभर जागरण भी किया। (दूसरे दिन) प्रातःकाल अनङ्गवतीने भक्तिपूर्वक अपने गुरुको लवणाचलसहित शय्या और अनेकों गाँव प्रदान किये। उसी प्रकार उसने अन्य बारह ब्राह्मणोंको भी सुवर्ण, वस्त्र, अलंकारादि सहित बारह गायें प्रदान कीं। तदनन्तर सुहृद्, मित्र, दीन, अन्धे और दरिद्रोंके साथ तुम लुब्धक-दम्पतिको भोजन कराया और विशेष आदर-सत्कारके साथ तुम्हें विदा किया॥२२—२८॥

राजेन्द्र! वह सपत्नीक लुब्धक तुम्हीं थे, जो इस समय राजराजेश्वरके रूपमें उत्पन्न हुए हो। उस कमल-समूहसे भगवान् केशवका पूजन होनेके कारण तुम्हारे सारे पाप नष्ट हो गये तथा दृढ़ त्याग, तप एवं निर्लोभिताके कारण तुम्हें इस कमलमन्दिरकी भी प्राप्ति हुई है। राजन्! तुम्हारी उसी सात्त्विक भावनाके माहात्म्यसे, तुम्हारे थोड़े-से ही तपसे ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन तथा लोकेश्वर ब्रह्मा भी संतुष्ट हुए हैं। इसीसे तुम्हारा पुष्कर-मन्दिर स्वेच्छानुसार जहाँ-कहीं भी जानेकी शक्तिसे युक्त है। वह अनङ्गवती वेश्या भी इस समय कामदेवकी पत्नी रति* के सौतरूपमें उत्पन्न हुई है। यह इस समय प्रीति नामसे विख्यात है और समस्त लोकोंमें सबको आनन्द प्रदान करती तथा सम्पूर्ण

* हरिवंश, अन्य पुराणों तथा कथासरित्सागरादिमें भी रति और प्रीति—ये कामदेवकी दो पत्नियाँ कही गयी हैं। किंतु उसकी दूसरी पत्नी प्रीतिकी उत्पत्तिकी पूरी कथा यहीं है।

तस्मादुत्सृज्य राजेन्द्र पुष्करं तन्महीतले।
गङ्गातटं समाश्रित्य विभूतिद्वादशीव्रतम्।
कुरु राजेन्द्र निर्वाणमवश्यं समवाप्स्यसि॥ ३३

देवताओंद्वारा सत्कृत है। इसलिये राजराजेश्वर! तुम उस पुष्कर-गृहको भूतलपर छोड़ दो और गङ्गातटका आश्रय लेकर विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करो। उससे तुम्हें निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति हो जायगी॥ २९—३३॥

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स मुनिर्ब्रह्मंस्तत्रैवान्तरधीयत।
राजा यथोक्तं च पुनरकरोत् पुष्पवाहनः॥ ३४
इदमाचरतो ब्रह्मन्नखण्डव्रतमाचरेत्।
यथाकथंचित् कमलैर्द्वादश द्वादशीर्मुने॥ ३५
कर्तव्याः शक्तितो देया विप्रेभ्यो दक्षिणानघ।
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत भक्त्या तुष्यति केशवः॥ ३६
इति कलुषविदारणं जनाना-
मपि पठतीह शृणोति चाथ भक्त्या।
मतिमपि च ददाति देवलोके
वसति स कोटिशतानि वत्सराणाम्॥ ३७

नन्दिकेश्वर बोले—ब्रह्मन्! ऐसा कहकर प्रचेता मुनि वहीं अन्तर्हित हो गये। तब राजा पुष्पवाहनने मुनिके कथनानुसार सारा कार्य सम्पन्न किया। ब्रह्मन्! इस विभूतिद्वादशी-व्रतका अनुष्ठान करते समय अखण्ड व्रतका पालन करना आवश्यक है। मुने! जिस किसी भी प्रकारसे हो सके, बारहों द्वादशियोंका व्रत कमलपुष्पोंद्वारा सम्पन्न करना चाहिये। अनघ! अपनी शक्तिके अनुसार ब्राह्मणोंको दक्षिणा भी देनेका विधान है। इसमें कृपणता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि भक्तिसे ही भगवान् केशव प्रसन्न होते हैं। जो मनुष्य लोगोंके पापोंको विदीर्ण करनेवाले इस व्रतको पढ़ता या श्रवण करता है, अथवा इसे करनेके लिये सम्मति प्रदान करता है वह भी सौ करोड़ वर्षोंतक देवलोकमें निवास करता है॥ ३४—३७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे विभूतिद्वादशीव्रतं नाम शततमोऽध्यायः॥ १००॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें विभूतिद्वादशी-व्रत नामक सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १००॥

एक सौ एकवाँ अध्याय

साठ व्रतोंका विधान और माहात्म्य

नन्दिकेश्वर उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि व्रतषष्टिमनुत्तमाम्।
रुद्रेणाभिहितां दिव्यां महापातकनाशिनीम्॥ १
नक्तमब्दं चरित्वा तु गवा सार्धं कुटुम्बिने।
हैमं चक्रं त्रिशूलं च दद्याद् विप्राय वाससी॥ २
शिवरूपस्ततोऽस्माभिः शिवलोके स मोदते।
एतद्देवव्रतं नाम महापातकनाशनम्॥ ३
यस्त्वेकभक्तेन क्षिपेत् समो हैमवृषान्वितम्।
धेनुं तिलमयीं दद्यात् स पदं याति शांकरम्।
एतद् रुद्रव्रतं नाम पापशोकविनाशनम्॥ ४

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! अब मैं उन साठ सर्वोत्तम व्रतोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो साक्षात् शंकरजीद्वारा कथित, दिव्य एवं महापातकोंके विनाशक हैं। जो मनुष्य एक वर्षतक रात्रिमें एक बार भोजन कर स्वर्णनिर्मित चक्र और त्रिशूल तथा दो वस्त्र गौके साथ कुटुम्बी ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवस्वरूप होकर शिवलोकमें हमलोगोंके साथ आनन्द मनाता है। यह महापातकोंका विनाश करनेवाला 'देवव्रत' है। जो मनुष्य एक वर्षतक दिनमें एक बार भोजन कर स्वर्णनिर्मित वृषसहित तिलमयी धेनुका दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। यह पाप एवं शोकका क्षयकारक 'रुद्रव्रत' है।

यस्तु नीलोत्पलं हैमं शर्करापात्रसंयुतम्।
एकान्तरितनक्ताशी समान्ते वृषसंयुतम्।
स वैष्णवं पदं याति नीलव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५
आषाढादिचतुर्मासमभ्यङ्गं वर्जयेन्नरः।
भोजनोपस्करं दद्यात् स याति भवनं हरेः।
जनप्रीतिकरं नृणां प्रीतिव्रतमिहोच्यते॥ ६
वर्जयित्वा मधौ यस्तु दधिक्षीरघृतैक्षवम्।
दद्याद् वस्त्राणि सूक्ष्माणि रसपात्रैश्च संयुतम्॥ ७
सम्पूज्य विप्रमिथुनं गौरी मे प्रीयतामिति।
एतद् गौरीव्रतं नाम भवानीलोकदायकम्॥ ८
पुष्यादौ यत्त्रयोदश्यां कृत्वा नक्तमथो पुनः।
अशोकं काञ्चनं दद्यादिक्षुयुक्तं दशाङ्गुलम्॥ ९
विप्राय वस्त्रसंयुक्तं प्रद्युम्नः प्रीयतामिति।
कल्पं विष्णुपदे स्थित्वा विशोकः स्यात् पुनर्नरः।
एतत् कामव्रतं नाम सदा शोकविनाशनम्॥ १०
आषाढादिव्रतं यस्तु वर्जयेन्नखकर्तनम्।
वार्त्ताकं च चतुर्मासं मधुसर्पिर्घटान्वितम्॥ ११
कार्तिक्यां तत्पुनर्हैमं ब्राह्मणाय निवेदयेत्।
स रुद्रलोकमाप्नोति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥ १२
वर्जयेद् यस्तु पुष्पाणि हेमन्तशिशिरावृतू।
पुष्पत्रयं च फाल्गुन्यां कृत्वा शक्त्या च काञ्चनम्॥ १३
दद्याद् विकालवेलायां प्रीयेतां शिवकेशवौ।
दत्त्वा परं पदं याति सौम्यव्रतमिदं स्मृतम्॥ १४
फाल्गुन्यादितृतीयायां लवणं यस्तु वर्जयेत्।
समान्ते शयनं दद्याद् गृहं चोपस्करान्वितम्॥ १५
सम्पूज्य विप्रमिथुनं भवानी प्रीयतामिति।
गौरीलोके वसेत् कल्पं सौभाग्यव्रतमुच्यते॥ १६
संध्यामौनं नरः कृत्वा समान्ते घृतकुम्भकम्।
वस्त्रयुग्मं तिलान् घण्टां ब्राह्मणाय निवेदयेत्॥ १७
सारस्वतं पदं याति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
एतत् सारस्वतं नाम रूपविद्याप्रदं व्रतम्॥ १८

जो मनुष्य एक दिनके अन्तरसे रातमें एक बार भोजन करके वर्षकी समाप्तिके अवसरपर शक्करसे पूर्ण पात्रसहित स्वर्णनिर्मित नील कमलको वृषभके साथ दान करता है वह विष्णुलोकको जाता है; यह 'नीलव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य आषाढ़से लेकर चार मासतक शरीरमें तेल नहीं लगाता और भोजनकी सामग्री दान करता है वह श्रीहरिके लोकको जाता है। इस लोकमें यह मनुष्योंमें प्रत्येक व्यक्तिको प्रिय लगनेवाला 'प्रीतिव्रत' नामसे कहा जाता है। जो मनुष्य चैत्रमासमें दही, दूध, घी और शक्करका त्याग कर देता है और 'गौरी मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे ब्राह्मण-दम्पतिकी भलीभाँति पूजा करके रसपूर्ण पात्रोंके साथ महीन वस्त्रोंका दान करता है (वह गौरीलोकमें जाता है)। गौरीलोककी प्राप्ति करानेवाला यह 'गौरीव्रत' है॥ १—८॥

पुनः जो मनुष्य पुष्यनक्षत्रसे युक्त त्रयोदशी तिथिको रातमें एक बार भोजन कर (दूसरे दिन) दस अङ्गुल लम्बा सोनेका अशोक-वृक्ष बनवाकर उसे वस्त्र और गन्नेके साथ 'प्रद्युम्न मुझपर प्रसन्न हों' इस भावनासे ब्राह्मणको दान करता है, वह एक कल्पतक विष्णुलोकमें निवास करके पुनः शोकरहित हो जाता है। सदा शोकका विनाश करनेवाला यह 'कामव्रत' है। जो मनुष्य चौमासेमें—आषाढ़ पूर्णिमासे लेकर कार्तिकतक नख (बाल) नहीं कटवाता और भाँटा नहीं खाता, पुनः कार्तिकी पूर्णिमाको मधु और घीसे भरे हुए घड़ेके साथ स्वर्णनिर्मित भाँटा ब्राह्मणको दान करता है वह रुद्रलोकको प्राप्त होता है। इसे 'शिवव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य हेमन्त और शिशिर ऋतुओंमें पुष्पोंको काममें नहीं लेता और फाल्गुन-मासकी पूर्णिमा तिथिको अपनी शक्तिके अनुकूल सोनेके तीन पुष्प बनवाकर उन्हें सायंकालमें 'भगवान् शिव और केशव मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे दान करता है, वह परमपदको प्राप्त होता है। यह 'सौम्यव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य फाल्गुनमासकी आदि तृतीया तिथिको नमक खाना छोड़ देता है तथा वर्षान्तके दिन 'भवानी मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे द्विज-दम्पतिकी भलीभाँति पूजा करके गृहस्थीके उपकरणोंसे युक्त गृह और शय्या दान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है। इसे 'सौभाग्यव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य संध्याकी वेलामें मौन रहनेका नियम पालन कर वर्षकी समाप्तिमें घृतपूर्ण घट, दो वस्त्र, तिल और घंटा ब्राह्मणको दान करता है, वह पुनरागमनरहित सारस्वत-पदको प्राप्त होता है। सौन्दर्य और विद्या प्रदान करनेवाला यह 'सारस्वत' नामक व्रत है॥ ९—१८॥

लक्ष्मीमभ्यर्च्य पञ्चम्यामुपवासी भवेन्नरः।
समान्ते हेमकमलं दद्याद् धेनुसमन्वितम्॥ १९
स वैष्णवं पदं याति लक्ष्मीवाञ् जन्मजन्मनि।
एतत् सम्पद्व्रतं नाम दुःखशोकविनाशनम्॥ २०
कृत्वोपलेपनं शम्भोरग्रतः केशवस्य च।
यावदब्दं पुनर्दद्याद् धेनुं जलघटान्विताम्॥ २१
जन्मायुतं स राजा स्यात् ततः शिवपुरं व्रजेत्।
एतदायुर्व्रतं नाम सर्वकामप्रदायकम्॥ २२
अश्वत्थं भास्करं गङ्गां प्रणम्यैकत्र वाग्यतः।
एकभक्तं नरः कुर्यादब्दमेकं विमत्सरः॥ २३
व्रतान्ते विप्रमिथुनं पूज्यं धेनुत्रयान्वितम्।
वृक्षं हिरण्मयं दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
एतत् कीर्तिव्रतं नाम भूतिकीर्तिफलप्रदम्॥ २४
घृतेन स्नपनं कुर्याच्छम्भोर्वा केशवस्य च।
अक्षताभिः सपुष्पाभिः कृत्वा गोमयमण्डलम्॥ २५
तिलधेनुसमोपेतं समान्ते हेमपङ्कजम्।
शुद्धमष्टाङ्गुलं दद्याच्छिवलोके महीयते।
सामगाय ततश्चैतत् सामव्रतमिहोच्यते॥ २६
नवम्यामेकभक्तं तु कृत्वा कन्याश्च शक्तितः।
भोजयित्वाऽऽसनं दद्याद्धैमकञ्चुकवाससी॥ २७
हैमं सिंहं च विप्राय दत्त्वा शिवपदं व्रजेत्।
जन्मार्बुदं सुरूपः स्याच्छत्रुभिश्चापराजितः।
एतद् वीरव्रतं नाम नारीणां च सुखप्रदम्॥ २८
यावत्समा भवेद् यस्तु पञ्चदश्यां पयोव्रतः।
समान्ते श्राद्धकृद् दद्यात् पञ्च गास्तु पयस्विनीः॥ २९
वासांसि च पिशङ्गानि जलकुम्भयुतानि च।
स याति वैष्णवं लोकं पितॄणां तारयेच्छतम्।
कल्पान्ते राजराजः स्यात् पितृव्रतमिदं स्मृतम्॥ ३०
चैत्रादिचतुरो मासाञ् जलं दद्यादयाचितम्।
व्रतान्ते मणिकं दद्यादन्नवस्त्रसमन्वितम्॥ ३१

जो मनुष्य पञ्चमी तिथिको निराहार रहकर लक्ष्मीकी पूजा करता है और वर्षकी समाप्तिके दिन गौके साथ स्वर्ण-निर्मित कमलका दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और प्रत्येक जन्ममें लक्ष्मीसे सम्पन्न रहता है। यह 'सम्पद्व्रत' है, जो दुःख और शोकका विनाश करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक भगवान् शिव और केशवकी मूर्तिके सामनेकी भूमिको लीपकर वहाँ जलपूर्ण घटसहित गौका दान करता है, वह दस हजार वर्षोंतक राजा होता है और मरणोपरान्त शिवलोकमें जाता है। यह 'आयुव्रत' है, जो सभी मनोरथोंको सिद्ध करनेवाला है। जो मनुष्य एक वर्षतक मत्सररहित हो दिनमें एक बार भोजन कर मौन-धारणपूर्वक एक ही स्थानपर पीपल, सूर्य और गङ्गाको प्रणाम करता है तथा व्रतकी समाप्तिमें पूजनीय ब्राह्मण-दम्पतिको तीन गौओंके साथ स्वर्णनिर्मित वृक्षका दान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। यह 'कीर्तिव्रत' है, जो वैभव और कीर्तिरूपी फलका प्रदाता है। जो मनुष्य एक वर्षतक गोबरसे मण्डल बनाकर वहाँ भगवान् शिव अथवा केशवको घीसे स्नान कराकर पुष्प, अक्षत आदिसे पूजा करता है और वर्षान्तमें तिल-धेनुसहित आठ अङ्गुल लम्बा शुद्ध स्वर्णनिर्मित कमल सामवेदी ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसे इस लोकमें 'सामव्रत' कहा जाता है॥ १९—२६॥

जो मनुष्य नवमी तिथिको दिनमें एक बार भोजन करके अपनी शक्तिके अनुसार कन्याओंको भोजन कराकर उन्हें आसन और सोनेके तारोंसे खचित चोली एवं साड़ी तथा ब्राह्मणको स्वर्णनिर्मित सिंह दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है और एक अरब जन्मोंतक सौन्दर्यसम्पन्न एवं शत्रुओंके लिये अजेय हो जाता है। यह 'वीरव्रत' है, जो नारियोंके लिये सुखदायक है। जो मनुष्य एक वर्षतक पूर्णिमा तिथिको केवल दूध पीकर व्रत करता है और वर्षकी समाप्तिके दिन श्राद्ध करके लालिमायुक्त भूरे रंगके वस्त्र और जलपूर्ण घंटोंके साथ पाँच दुधारू गायें दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है और अपने सौ पीढ़ीतकके पितरोंको तार देता है। पुनः एक कल्प व्यतीत होनेपर वह भूतलपर राजराजेश्वर होता है। यह 'पितृव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य चैत्रसे आरम्भ कर चार मासतक बिना याचना किये जलका दान देता है अर्थात् पौसला चलाता है तथा व्रतके अन्तमें अन्न एवं वस्त्रसे

तिलपात्रं हिरण्यं च ब्रह्मलोके महीयते।
कल्पान्ते भूपतिर्नूनमानन्दव्रतमुच्यते॥ ३२

पञ्चामृतेन स्नपनं कृत्वा संवत्सरं विभोः।
वत्सरान्ते पुनर्दद्याद् धेनुं पञ्चामृतेन हि॥ ३३

विप्राय दद्याच्छङ्खं च स पदं याति शांकरम्।
राजा भवति कल्पान्ते धृतिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ३४

वर्जयित्वा पुमान् मांसमब्दान्ते गोप्रदो भवेत्।
तद्वद्धेममृगं दद्यात् सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
अहिंसाव्रतमित्युक्तं कल्पान्ते भूपतिर्भवेत्॥ ३५

माघमास्युषसि स्नानं कृत्वा दाम्पत्यमर्चयेत्।
भोजयित्वा यथाशक्त्या माल्यवस्त्रविभूषणैः।
सूर्यलोके वसेत् कल्पं सूर्यव्रतमिदं स्मृतम्॥ ३६

आषाढादि चतुर्मासं प्रातःस्नायी भवेन्नरः।
विप्रेभ्यो भोजनं दद्यात् कार्तिक्यां गोप्रदो भवेत्।
स वैष्णवं पदं याति विष्णुव्रतमिदं शुभम्॥ ३७

अयनादयनं यावद् वर्जयेत् पुष्पसर्पिषी।
तदन्ते पुष्पदामानि घृतधेन्वा सहैव तु॥ ३८

दत्त्वा शिवपदं गच्छेद् विप्राय घृतपायसम्।
एतच्छीलव्रतं नाम शीलारोग्यफलप्रदम्॥ ३९

संध्यादीपप्रदो यस्तु घृतं तैलं विवर्जयेत्।
समान्ते दीपिकां दद्याच्चक्रशूले च काञ्चने॥ ४०

वस्त्रयुग्मं च विप्राय तेजस्वी स भवेदिह।
रुद्रलोकमवाप्नोति दीप्तिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ४१

कार्तिक्यादितृतीयायां प्राश्य गोमूत्रयावकम्।
नक्तं चरेदब्दमेकमब्दान्ते गोप्रदो भवेत्॥ ४२

गौरीलोके वसेत् कल्पं ततो राजा भवेदिह।
एतद् रुद्रव्रतं नाम सदा कल्याणकारकम्॥ ४३

युक्त मिट्टीका घड़ा, तिलसे भरा पात्र और सुवर्णका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठित होता है। एक कल्पके व्यतीत होनेपर वह निश्चय ही भूपाल होता है। यह 'आनन्दव्रत' कहा जाता है॥ २७—३२॥

जो एक वर्षतक पञ्चामृत (दूध, दही, घी, मधु, शक्कर)-से भगवान्‌की मूर्तिको स्नान कराता है, पुनः वर्षान्तमें पञ्चामृतसहित गौ और शङ्ख ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकमें जाता है और एक कल्पके बाद भूतलपर राजा होता है। यह 'धृतिव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य एक वर्षतक मांस खाना छोड़कर वर्षान्तमें गौ दान करता है तथा उसके साथ स्वर्णनिर्मित मृग भी देता है, वह अश्वमेधयज्ञके फलका भागी होता है और कल्पान्तमें राजा होता है। यह 'अहिंसाव्रत' कहलाता है। जो मनुष्य माघमासमें ब्राह्मवेलामें स्नान कर अपनी शक्तिके अनुसार एक द्विज-दम्पतिको भोजन कराकर पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषण आदिसे उनकी पूजा करता है, वह एक कल्पतक सूर्यलोकमें निवास करता है। यह 'सूर्यव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य आषाढ़से आरम्भकर चार महीनेतक नित्य प्रातःकाल स्नान करता है और ब्राह्मणोंको भोजन देता है तथा कार्तिकी पूर्णिमाको गो-दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। यह मङ्गलमय 'विष्णुव्रत' है। जो मनुष्य एक अयनसे दूसरे अयनतक (उत्तरायणसे दक्षिणायन अथवा दक्षिणायनसे उत्तरायणतक) पुष्प और घीका त्याग कर देता है और व्रतान्तके दिन घृत, धेनुसहित पुष्पोंकी मालाएँ एवं घी और दूधसे बने हुए खाद्य पदार्थ ब्राह्मणको दान करता है, वह शिवलोकको जाता है। यह 'शीलव्रत' है, जो सुशीलता एवं नीरोगतारूप फल प्रदान करता है। जो एक वर्षतक नित्य सायंकाल दीप-दान करता है और तेल-घी खाना छोड़ देता है, पुनः वर्षान्तमें ब्राह्मणको स्वर्णनिर्मित चक्र, त्रिशूल और दो वस्त्रके साथ दीपकका दान देता है, वह इस लोकमें तेजस्वी होता है और मरणोपरान्त रुद्रलोकको प्राप्त होता है। यह 'दीप्तिव्रत' कहलाता है॥ ३३—४१॥

जो एक वर्षतक कार्तिकमाससे प्रारम्भ कर तृतीया तिथिको गोमूत्र एवं जौसे बने हुए खाद्य पदार्थोंको खाकर नक्तव्रतका पालन करता है और वर्षान्तमें गोदान करता है, वह एक कल्पतक गौरीलोकमें निवास करता है और (पुण्य क्षीण होनेपर) भूतलपर राजा होता है। यह 'रुद्रव्रत' है जो सदाके लिये कल्याणकारी है।

वर्जयेच्चैत्रमासे च यश्च गन्धानुलेपनम्।
शुक्तिं गन्धभृतां दत्त्वा विप्राय सितवाससी।
वारुणं पदमाप्नोति दृढव्रतमिदं स्मृतम्॥ ४४
वैशाखे पुष्पलवणं वर्जयित्वाथ गोप्रदः।
भूत्वा विष्णुपदे कल्पं स्थित्वा राजा भवेदिह।
एतत् कान्तिव्रतं नाम कान्तिकीर्तिफलप्रदम्॥ ४५
ब्रह्माण्डं काञ्चनं कृत्वा तिलराशिसमन्वितम्।
त्र्यहं तिलप्रदो भूत्वा वह्निं संतर्प्य सद्द्विजम्॥ ४६
सम्पूज्य विप्रदाम्पत्यं माल्यवस्त्रविभूषणैः।
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वं विश्वात्मा प्रीयतामिति॥ ४७
पुण्येऽह्नि दद्यात् स परं ब्रह्म यात्यपुनर्भवम्।
एतद् ब्रह्मव्रतं नाम निर्वाणपददायकम्॥ ४८
यश्चोभयमुखीं दद्यात् प्रभूतकनकान्विताम्।
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेत् स याति परमं पदम्।
एतद् धेनुव्रतं नाम पुनरावृत्तिदुर्लभम्॥ ४९
त्र्यहं पयोव्रते स्थित्वा काञ्चनं कल्पपादपम्।
पलादूर्ध्वं यथाशक्त्या तण्डुलैस्तूपसंयुतम्।
दत्त्वा ब्रह्मपदं याति कल्पव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५०
मासोपवासी यो दद्याद् धेनुं विप्राय शोभनाम्।
स वैष्णवं पदं याति भीमव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५१
दद्याद् विंशत्पलादूर्ध्वं महीं कृत्वा तु काञ्चनीम्।
दिनं पयोव्रतस्तिष्ठेद् रुद्रलोके महीयते।
धराव्रतमिदं प्रोक्तं सप्तकल्पशतानुगम्॥ ५२
माघे मासेऽथवा चैत्रे गुडधेनुप्रदो भवेत्।
गुडव्रतस्तृतीयायां गौरीलोके महीयते।
महाव्रतमिदं नाम परमानन्दकारकम्॥ ५३
पक्षोपवासी यो दद्याद् विप्राय कपिलाद्वयम्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति देवासुरसुपूजितम्।
कल्पान्ते राजराजः स्यात् प्रभाव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५४

जो चैत्रमासमें सुगन्धित वस्तुओंका अनुलेपन छोड़ देता है अर्थात् शरीरमें सुगन्धित पदार्थ नहीं लगाता और व्रतान्तमें ब्राह्मणको दो श्वेत वस्त्रोंके साथ गन्धधारियोंकी शुक्ति (गन्धद्रव्यविशेष)-का दान करता है वह वरुणलोकको प्राप्त होता है। यह 'दृढव्रत' कहलाता है। जो वैशाख-मासमें पुष्प और नमकका परित्याग कर व्रतान्तमें गोदान करता है वह एक कल्पतक विष्णुलोकमें निवास करके (पुण्य क्षीण होनेपर) इस लोकमें राजा होता है। यह 'कान्तिव्रत' है, जो कान्ति और कीर्तिरूपी फलका प्रदाता है। जो किसी पुण्यप्रद दिनमें अपनी शक्तिके अनुसार तीन पलसे अधिक सोनेका ब्रह्माण्ड बनवाकर तिलकी राशिपर स्थापित कर देता है और तीन दिनतक ब्राह्मणसहित अग्निको संतुष्ट करके तिलका दान देता रहता है, पुनः चौथे दिन एक विप्र-दम्पतिकी पुष्पमाला, वस्त्र और आभूषण आदिसे विधिपूर्वक पूजा करके 'विश्वात्मा मुझपर प्रसन्न हों'—इस भावनासे वह ब्रह्माण्ड दान कर देता है, वह पुनर्जन्मरहित परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। यह 'ब्रह्मव्रत' है, जो मोक्षपदका दाता है। जो दिनभर पयोव्रतका पालन (दूधका आहार) करके अधिक-से-अधिक सोनेकी बनी हुई उभयमुखी (दो मुखवाली अथवा सवत्सा) गौका दान करता है, वह पुनरागमनरहित परमपदको प्राप्त हो जाता है। यह 'धेनुव्रत' है। जो तीन दिनतक पयोव्रतका पालन करके अपनी शक्तिके अनुसार एक पलसे अधिक सोनेका कल्पवृक्ष बनवाकर उसे चावलकी राशिपर स्थापित करके दान कर देता है वह ब्रह्मपदको प्राप्त हो जाता है। इसे 'कल्पव्रत' कहा जाता है। जो एक मासतक निराहार रहकर ब्राह्मणको सुन्दर गौका दान करता है वह विष्णुलोकको जाता है। यह 'भीमव्रत' कहलाता है॥ ४२—५१॥

जो दिनभर पयोव्रतका पालन कर बीस पलसे अधिक सोनेसे पृथ्वीकी मूर्ति बनवाकर दान करता है, वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसे 'धराव्रत' कहते हैं, जो सात सौ कल्पोंतक दाताका अनुगमन करता रहता है। जो माघ अथवा चैत्रमासमें तृतीया तिथिको गुडव्रतका पालन कर गुडधेनुका दान करता है वह गौरीलोकमें प्रतिष्ठित होता है। यह परमानन्द प्रदान करनेवाला 'महाव्रत' है। जो एक पक्षतक निराहार रहकर ब्राह्मणको दो कपिला गौका दान करता है वह देवताओं एवं असुरोंद्वारा सुपूजित ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है और एक कल्प बीतनेपर भूतलपर राजाधिराज होता है। इसे 'प्रभाव्रत' कहते हैं।

वत्सरं त्वेकभक्ताशी सभक्ष्यजलकुम्भदः।
शिवलोके वसेत् कल्पं प्राप्तिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ५५

नक्ताशी चाष्टमीषु स्याद् वत्सरान्ते च धेनुदः।
पौरन्दरं पुरं याति सुगतिव्रतमुच्यते॥ ५६

विप्रायेन्धनदो यस्तु वर्षादिचतुरो ऋतून्।
घृतधेनुप्रदोऽन्ते च स परं ब्रह्म गच्छति।
वैश्वानरव्रतं नाम सर्वपापविनाशनम्॥ ५७

एकादश्यां च नक्ताशी यश्चक्रं विनिवेदयेत्।
समान्ते वैष्णवं हैमं स विष्णोः पदमाप्नुयात्।
एतत् कृष्णव्रतं नाम कल्पान्ते राज्यभाग् भवेत्॥ ५८

पायसाशी समान्ते तु दद्याद् विप्राय गोयुगम्।
लक्ष्मीलोकमवाप्नोति ह्येतद् देवीव्रतं स्मृतम्॥ ५९

सप्तम्यां नक्तभुग् दद्यात् समान्ते गां पयस्विनीम्।
सूर्यलोकमवाप्नोति भानुव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६०

चतुर्थ्यां नक्तभुग्दद्यादब्दान्ते हेमवारणम्।
व्रतं वैनायकं नाम शिवलोकफलप्रदम्॥ ६१

महाफलानि यस्त्यक्त्वा चतुर्मासं द्विजातये।
हैमानि कार्तिके दद्याद् गोयुगेन समन्वितम्।
एतत् फलव्रतं नाम विष्णुलोकफलप्रदम्॥ ६२

यश्चोपवासी सप्तम्यां समान्ते हेमपङ्कजम्।
गाश्च वै शक्तितो दद्याद्धेमान्नघटसंयुताः।
एतत् सौरव्रतं नाम सूर्यलोकफलप्रदम्॥ ६३

द्वादश द्वादशीर्यस्तु समाप्योपोषणेन च।
गोवस्त्रकाञ्चनैर्विप्रान् पूजयेच्छक्तितो नरः।
परमं पदमाप्नोति विष्णुव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६४

कार्तिक्यां च वृषोत्सर्गं कृत्वा नक्तं समाचरेत्।
शैवं पदमवाप्नोति वार्षव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६५

जो एक वर्षतक दिनमें एक ही बार भोजन करके व्रतान्तमें खाद्य पदार्थोंसहित जलपूर्ण घटका दान करता है, वह एक कल्पतक शिवलोकमें निवास करता है। इसे 'प्राप्तिव्रत' कहा जाता है। जो प्रत्येक मासकी अष्टमी तिथियोंमें रातमें एक बार भोजन करता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह इन्द्रलोकमें जाता है। इसे 'सुगतिव्रत' कहा जाता है। जो वर्षा-ऋतुसे लेकर चार ऋतुओंतक ब्राह्मणको ईंधनका दान देता है और व्रतान्तमें घृत-धेनु प्रदान करता है, वह परब्रह्मको प्राप्त हो जाता है। सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला यह 'वैश्वानरव्रत' है। जो एकादशी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें सोनेका विष्णु-चक्र बनवाकर दान करता है, वह विष्णुलोकको प्राप्त होता है और एक कल्पके बीतनेपर भूतलपर राज्यका भागी होता है। यह 'कृष्णव्रत' है। जो खीरका भोजन करते हुए वर्षके अन्तमें ब्राह्मणको दो गौ दान करता है, वह लक्ष्मीलोकको प्राप्त होता है। इसे 'देवीव्रत' कहा जाता है। जो सप्तमी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षकी समाप्तिमें दुधारू गौका दान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यह 'भानुव्रत' कहलाता है। जो चतुर्थी तिथिको रातमें एक बार भोजन करते हुए वर्षकी समाप्तिके अवसरपर सोनेका हाथी दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। शिवलोकरूप फल प्रदान करनेवाला यह 'विनायकव्रत' है। जो चौमासेमें (बेल, जामुन, बेर, कैथ और बीजपुर नीबू) इन पाँच महाफलोंका परित्याग कर कार्तिकमासमें सोनेसे इन फलोंका निर्माण कराकर दो गौओंके साथ दान करता है, वह विष्णुलोकको जाता है। विष्णुलोकरूप फल प्रदान करनेवाला यह 'फलव्रत' है। जो सप्तमी तिथिको निराहार रहते हुए वर्षके अन्तमें अपनी शक्तिके अनुसार स्वर्णनिर्मित कमल तथा सुवर्ण, अन्न और घटसहित गौओंका दान करता है, वह सूर्यलोकमें जाता है। सूर्यलोकरूप फलका प्रदाता यह 'सौरव्रत' है॥ ५२—६३॥

जो मनुष्य बारहों द्वादशियोंको उपवास करके यथाशक्ति गौ, वस्त्र और सुवर्णसे ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह परमपदको प्राप्त हो जाता है। इसे 'विष्णुव्रत' कहा जाता है। जो कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको वृषोत्सर्ग करके नक्तव्रतका पालन करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। यह 'वार्षव्रत' कहलाता है।

कृच्छ्रान्ते गोप्रदः कुर्याद् भोजनं शक्तितः पदम्।
विप्राणां शांकरं याति प्राजापत्यमिदं व्रतम्॥ ६६
चतुर्दश्यां तु नक्ताशी समान्ते गोधनप्रदः।
शैवं पदमवाप्नोति त्रैयम्बकमिदं व्रतम्॥ ६७
सप्तरात्रोषितो दद्याद् घृतकुम्भं द्विजातये।
घृतव्रतमिदं प्राहुर्ब्रह्मलोकफलप्रदम्॥ ६८
आकाशशायी वर्षासु धेनुमन्ते पयस्विनीम्।
शक्रलोके वसेन्नित्यमिन्द्रव्रतमिदं स्मृतम्॥ ६९
अनग्निपक्वमश्नाति तृतीयायां तु यो नरः।
गां दत्त्वा शिवमभ्येति पुनरावृत्तिदुर्लभम्।
इह चानन्दकृत् पुंसां श्रेयोव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७०
हैमं पलद्वयादूर्ध्वं रथमश्वयुगान्वितम्।
ददन् कृतोपवासः स्याद् दिवि कल्पशतं वसेत्।
कल्पान्ते राजराजः स्यादश्वव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७१
तद्वद्धेमरथं दद्यात् करिभ्यां संयुतं नरः।
सत्यलोके वसेत् कल्पं सहस्रमथ भूपतिः।
भवेदुपोषितो भूत्वा करिव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७२
उपवासं परित्यज्य समान्ते गोप्रदो भवेत्।
यक्षाधिपत्यमाप्नोति सुखव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७३
निशि कृत्वा जले वासं प्रभाते गोप्रदो भवेत्।
वारुणं लोकमाप्नोति वरुणव्रतमुच्यते॥ ७४
चान्द्रायणं च यः कुर्याद्धेमचन्द्रं निवेदयेत्।
चन्द्रव्रतमिदं प्रोक्तं चन्द्रलोकफलप्रदम्॥ ७५
ज्येष्ठे पञ्चतपाः सायं हेमधेनुप्रदो दिवम्।
यात्यष्टमीचतुर्दश्यो रुद्रव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७६
सकृद् वितानकं कुर्यात् तृतीयायां शिवालये।
समान्ते धेनुदो याति भवानीव्रतमुच्यते॥ ७७
माघे निश्यार्द्रवासाः स्यात् सप्तम्यां गोप्रदो भवेत्।
दिवि कल्पमुषित्वेह राजा स्यात् पवनं व्रतम्॥ ७८

जो कृच्छ्र-चान्द्रायण-व्रतकी समाप्तिपर गोदान करके यथाशक्ति ब्राह्मणोंको भोजन कराता है, वह शिवलोकको जाता है। यह 'प्राजापत्यव्रत' है। जो चतुर्दशी तिथिको रातमें एक बार भोजन करता है और वर्ष समाप्त होनेपर गोधनका दान करता है, वह शिवलोकको प्राप्त होता है। यह 'त्र्यम्बकव्रत' है। जो सात राततक उपवास कर ब्राह्मणको घृतपूर्ण घटका दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें जाता है। यह ब्रह्मलोकरूप फल प्रदान करनेवाला 'घृतव्रत' है। जो वर्षा-ऋतुमें आकाशके नीचे (खुले मैदानमें) शयन करता है और व्रतान्तमें दुधारू गौका दान करता है, वह सदाके लिये इन्द्रलोकमें निवास करता है। इसे 'इन्द्रव्रत' कहा जाता है। जो मनुष्य तृतीया तिथिको बिना अग्निमें पकाया हुआ पदार्थ भोजन करता है और व्रतान्तमें गौ-दान देता है, वह पुनरागमनरहित शिवलोकको प्राप्त होता है। मनुष्योंको इस लोकमें आनन्द प्रदान करनेवाला यह 'श्रेयोव्रत' कहलाता है। जो निराहार रहकर दो पलसे अधिक सोनेसे दो घोड़ोंसे जुता हुआ रथ बनवाकर दान करता है, वह सौ कल्पोंतक स्वर्गलोकमें वास करता है और कल्पान्तमें भूतलपर राजाधिराज होता है। इसे 'अश्वव्रत' कहते हैं। इसी प्रकार जो मनुष्य निराहार रहकर दो हाथियोंसे जुता हुआ सोनेका रथ दान करता है, वह एक हजार कल्पोंतक सत्यलोकमें निवास करता है और (पुण्य-क्षीण होनेपर भूतलपर) राजा होता है। यह 'करिव्रत' कहलाता है। इसी प्रकार जो मनुष्य वर्षके अन्तमें उपवासका परित्याग कर गोदान करता है, वह यक्षोंका अधीश्वर होता है। इसे 'सुखव्रत' कहा जाता है। जो रातभर जलमें निवास कर प्रातःकाल गोदान करता है, वह वरुणलोकको प्राप्त करता है। इसे 'वरुणव्रत' कहते हैं। जो मनुष्य चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान कर स्वर्णनिर्मित चन्द्रमाका दान करता है, वह चन्द्रलोकको जाता है। चन्द्रलोकरूप फलका प्रदाता यह 'चन्द्रव्रत' कहलाता है। जो ज्येष्ठमासकी अष्टमी तथा चतुर्दशी तिथियोंमें पञ्चाग्नि तपकर सायंकाल स्वर्णनिर्मित गौका दान करता है, वह स्वर्गलोकको जाता है। यह 'रुद्रव्रत' नामसे विख्यात है॥ ६४—७६॥

जो तृतीया तिथिको शिवालयमें एक बार चँदोवा या चाँदनी लगा देता है और वर्षके अन्तमें गोदान करता है, वह भवानीलोकको जाता है। इसे 'भवानीव्रत' कहते हैं। जो माघमासमें सप्तमी तिथिको रातभर गीला वस्त्र धारण किये रहता है और प्रातःकाल गौका दान करता है, वह एक कल्पतक स्वर्गमें निवास करके भूतलपर

त्रिरात्रोपोषितो दद्यात् फाल्गुन्यां भवनं शुभम्।
आदित्यलोकमाप्नोति धामव्रतमिदं स्मृतम्॥ ७९

त्रिसंध्यं पूज्य दाम्पत्यमुपवासी विभूषणैः।
अन्नं गाश्च समाप्नोति मोक्षमिन्द्रव्रतादिह॥ ८०

दत्त्वा सितद्वितीयायामिन्दोर्लवणभाजनम्।
समान्ते गोप्रदो याति विप्राय शिवमन्दिरम्।
कल्पान्ते राजराजः स्यात् सोमव्रतमिदं स्मृतम्॥ ८१

प्रतिपद्येकभक्ताशी समान्ते कपिलाप्रदः।
वैश्वानरपदं याति शिवव्रतमिदं स्मृतम्॥ ८२

दशम्यामेकभक्ताशी समान्ते दशधेनुदः।
दिशश्च काञ्चनैर्दद्याद् ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत्।
एतद् विश्वव्रतं नाम महापातकनाशनम्॥ ८३

यः पठेच्छृणुयाद् वापि व्रतषष्टिमनुत्तमाम्।
मन्वन्तरशतं सोऽपि गन्धर्वाधिपतिर्भवेत्॥ ८४

षष्टिव्रतं नारद पुण्यमेतत्
तवोदितं विश्वजनीनमन्यत्।
श्रोतुं तवेच्छा तदुदीरयामि
प्रियेषु किं वाकथनीयमस्ति॥ ८५

राजा होता है। 'यह पवनव्रत' है। जो तीन राततक उपवास करके फाल्गुनमासकी पूर्णिमा तिथिको सुन्दर गृह दान करता है, वह सूर्यलोकको प्राप्त होता है। यह 'धामव्रत' नामसे प्रसिद्ध है। जो निराहार रहकर तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) संध्याओंमें आभूषणोंद्वारा ब्राह्मण-दम्पतिकी पूजा करता है, उसे इस लोकमें इन्द्रव्रतसे भी बढ़कर अधिक मात्रामें अन्न एवं गोधनकी प्राप्ति होती है तथा अन्तमें वह मोक्षलाभ करता है। जो शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिको चन्द्रमाके उद्देश्यसे नमकसे परिपूर्ण पात्र ब्राह्मणको दान करता है और वर्षकी समाप्तिमें गोदान देता है, वह शिवलोकको जाता है और एक कल्प व्यतीत होनेपर भूतलपर राजराजेश्वर होता है। यह 'सोमव्रत' नामसे विख्यात है। जो प्रतिपदा तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षान्तमें कपिला गौका दान देता है, वह वैश्वानरलोकको जाता है। इसे 'शिवव्रत' कहते हैं। जो दशमी तिथिको दिनमें एक बार भोजन करता है और वर्षकी समाप्तिके अवसरपर स्वर्णनिर्मित दसों दिशाओंकी प्रतिमाके साथ दस गायें दान करता है वह ब्रह्माण्डका अधीश्वर होता है। यह 'विश्वव्रत' है जो महापातकोंका विनाशक है। जो इस सर्वोत्तम 'षष्टिव्रत' (६० व्रतोंकी चर्चा)-को पढ़ता अथवा श्रवण करता है, वह भी सौ मन्वन्तरतक गन्धर्वलोकका अधिपति होता है। नारद! यह षष्टिव्रत[1] परम पुण्यप्रद और सभी जीवोंके लिये लाभदायक है, मैंने आपसे इसका वर्णन कर दिया। अब यदि आपकी और भी कुछ सुननेकी इच्छा हो तो मैं उसका वर्णन करूँगा; क्योंकि प्रियजनोंके प्रति भला कौन-सी वस्तु अकथनीय हो सकती है॥ ७७—८५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षष्टिव्रतमाहात्म्यं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें षष्टिव्रतमाहात्म्य नामक एक सौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०१॥

एक सौ दोवाँ अध्याय

स्नान[2] और तर्पणकी विधि

नन्दिकेश्वर उवाच

नैर्मल्यं भावशुद्धिश्च विना स्नानं न विद्यते।
तस्मान्मनोविशुद्ध्यर्थं स्नानमादौ विधीयते॥ १

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! स्नान किये बिना शरीरकी निर्मलता और भाव-शुद्धि नहीं प्राप्त होती, अतः मनकी विशुद्धिके लिये (सभी व्रतोंमें) सर्वप्रथम स्नानका

१. स्वल्पान्तरसे ये सभी व्रत पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड, अ० २०, श्लोक ४५ से १४४ तकमें तथा भविष्योत्तरपुराणके १२०वें अध्यायमें भी निर्दिष्ट हैं।

२. स्नानविधिकी विस्तृत चर्चा 'स्नानव्यास' में है। यह सुन्दर प्रकरण बृहद्व्यासादि स्मृतियोंमें भी संगृहीत है।

अनुद्धृतैरुद्धृतैर्वा जलैः स्नानं समाचरेत्।
तीर्थं प्रकल्पयेद् विद्वान् मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।
नमो नारायणायेति मन्त्र एष उदाहृतः॥ २

दर्भपाणिस्तु विधिना आचान्तः प्रयतः शुचिः।
चतुर्हस्तसमायुक्तं चतुरस्रं समंततः।
प्रकल्प्यावाहयेद् गङ्गामेभिर्मन्त्रैर्विचक्षणः॥ ३

विष्णुपादप्रसूतासि वैष्णवी विष्णुदेवता।
त्राहि नस्त्वेनसस्तस्मादाजन्ममरणान्तिकात्॥ ४

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भूम्यन्तरिक्षे च तानि ते सन्ति जाह्नवि॥ ५

नन्दिनीत्येव ते नाम देवेषु नलिनीति च।
दक्षा पृथ्वी च विहगा विश्वकायामृता शिवा॥ ६

विद्याधरी सुप्रसन्ना तथा विश्वप्रसादिनी।
क्षेमा च जाह्नवी चैव शान्ता शान्तिप्रदायिनी॥ ७

एतानि पुण्यनामानि स्नानकाले प्रकीर्तयेत्।
भवेत् संनिहिता तत्र गङ्गा त्रिपथगामिनी॥ ८

सप्तवाराभिजप्तेन करसम्पुटयोजितम्।
मूर्ध्नि कुर्याज्जलं भूयस्त्रिचतुःपञ्चसप्तकम्।
स्नानं कुर्यान्मृदा तद्वदामन्त्र्य तु विधानतः॥ ९

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुंधरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥ १०

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
मृत्तिके ब्रह्मदत्तासि कश्यपेनाभिमन्त्रिता।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रचोदय॥ ११ *

मृत्तिके देहि नः पुष्टिं सर्वं त्वयि प्रतिष्ठितम्।
नमस्ते सर्वलोकानां प्रभवारणि सुव्रते॥ १२

विधान है। कुएँ आदिसे निकाले हुए अथवा बिना निकाले हुए नदी-तालाब आदिके जलसे स्नान करना चाहिये। मन्त्रवेत्ता विद्वान् पुरुषको मूलमन्त्रद्वारा उस जलमें तीर्थकी कल्पना करनी चाहिये। 'ॐ नमो नारायणाय'—यह मूलमन्त्र कहा गया है। मनुष्य पहले हाथमें कुश लिये हुए विधिपूर्वक आचमन कर ले, फिर जितेन्द्रिय एवं शुद्ध भावसे अपने चारों ओर चार हाथका चौकोर मण्डल बनाकर उसमें तीर्थकी कल्पना कर इन (वक्ष्यमाण) मन्त्रोंद्वारा गङ्गाजीका आवाहन करे—'देवि! तुम भगवान् विष्णुके चरणोंसे प्रकट हुई हो, वैष्णवी कही जाती हो और विष्णु ही तुम्हारे देवता हैं, अतः तुम जन्मसे लेकर मरणान्ततक होनेवाले पापसे हमारी रक्षा करो। जह्नुनन्दिनी! वायुदेवने स्वर्गलोक, मृत्युलोक और अन्तरिक्षलोक—इन तीनों लोकोंमें जिन साढ़े तीन करोड़ तीर्थोंको बतलाया है, वे सभी तुम्हारे भीतर निवास करते हैं। देवोंमें तुम नन्दिनी और नलिनी नामसे प्रसिद्ध हो। इसके अतिरिक्त दक्षा, पृथ्वी, विहगा, विश्वकाया, अमृता, शिवा, विद्याधरी, सुप्रशान्ता, विश्वप्रसादिनी, क्षेमा, जाह्नवी, शान्ता और शान्तिप्रदायिनी—ये भी तुम्हारे ही नाम हैं।' स्नानके समय इन पुण्यमय नामोंका कीर्तन करना चाहिये, इससे त्रिपथगामिनी गङ्गा वहाँ उपस्थित हो जाती हैं॥ १—८॥

हाथोंको सम्पुटित करके सात बार इन नामोंका जप करनेके पश्चात् तीन, चार, पाँच अथवा सात बार जलको अपने मस्तकपर छिड़क ले। तत्पश्चात् विधिपूर्वक पृथ्वीको आमन्त्रित करके पहले शरीरमें मिट्टी लगाकर स्नान करना चाहिये। (आमन्त्रण-मन्त्र इस प्रकार है)—'मृत्तिके! तुम अग्निचयन, उख संभरणादिके समय अश्वके द्वारा शुद्ध की जाती हो, तुम (शिवके) रथ और वामन-अवतारमें भगवान् विष्णुके पैरद्वारा भी आक्रान्त होकर शुद्ध हुई हो, सारा धन तुम्हारे ही भीतर वर्तमान है, इसलिये मेरे द्वारा जो कुछ भी पाप घटित हुए हैं, उन सभीको हर लो। मृत्तिके! शतबाहु भगवान् विष्णुने श्यामवर्णका वराहरूप धारण कर तुम्हारा पातालसे उद्धार किया है, पुनः महर्षि कश्यपद्वारा आमन्त्रित होकर तुम ब्राह्मणोंको प्रदान की गयी हो, अतः मेरे अङ्गोंपर आरूढ़ होकर मेरे सारे पापोंको दूर कर दो। मृत्तिके! विश्वके सारे पदार्थ तो तुम्हारे भीतर ही स्थित हैं, अतः तुम हमें पुष्टि प्रदान करो। सुव्रते! तुम समस्त जीवोंकी उत्पत्तिके लिये अरणिस्वरूपा हो, तुम्हें

* ये दो मन्त्र तैत्तिरीयारण्यक १०। १। ३—२४ में भी प्राप्त हैं। उनपर सायणका भाष्य बहुत सुन्दर है।

एवं स्नात्वा ततः पश्चादाचम्य च विधानतः।
उत्थाय वाससी शुक्ले शुद्धे तु परिधाय वै॥ १३
ततस्तु तर्पणं कुर्यात् त्रैलोक्याप्यायनाय वै।
ब्रह्माणं तर्पयेत्पूर्वं विष्णुं रुद्रं प्रजापतिम्॥ १४
देवा यक्षास्तथा नागा गन्धर्वाप्सरसोऽसुराः।
क्रूराः सर्पाः सुपर्णाश्च तरवो जम्बुकाः खगाः॥ १५
वाय्वाधारा जलाधारास्तथैवाकाशगामिनः।
निराधाराश्च ये जीवाः पापे धर्मे रताश्च ये॥ १६
तेषामाप्यायनायैतद् दीयते सलिलं मया।
कृतोपवीती देवेभ्यो निवीती च भवेत् ततः॥ १७

नमस्कार है।' इस प्रकार मिट्टी लगाकर स्नान करनेके पश्चात् विधिपूर्वक आचमन करे। पुनः जलसे बाहर निकलकर दो श्वेत रंगके शुद्ध वस्त्र धारण करे। तत्पश्चात् त्रिलोकीको तृप्त करनेके लिये इस प्रकार तर्पण करना चाहिये। उस समय उपवीती होकर (जनेऊको जैसे पहनते हैं, बायें कंधेपर तथा दाहिने हाथके नीचे कर) सर्वप्रथम देवतर्पण करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करे—'देव, यक्ष, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, असुर, क्रूर सर्प, गरुड आदि पक्षी, वृक्ष, शृगाल, अन्य पक्षिगण तथा जो जीव वायु एवं जलके आधारपर जीवित रहनेवाले हैं, आकाशचारी हैं, निराधार हैं और जो जीव पाप एवं धर्ममें लगे हुए हैं, उन सबकी तृप्तिके लिये मैं यह जल दे रहा हूँ।' तदनन्तर निवीती हो जाय (जनेऊको मालाकार कर लें)॥ ९—१७॥

मनुष्यांस्तर्पयेद् भक्त्या ब्रह्मपुत्रानृषींस्तथा।
सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः॥ १८
कपिलश्चासुरिश्चैव वोढुः पञ्चशिखस्तथा।
सर्वे ते तृप्तिमायान्तु मद्दत्तेनाम्बुना सदा॥ १९
मरीचिमत्र्यङ्गिरसं पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
प्रचेतसं वसिष्ठं च भृगुं नारदमेव च।
देवब्रह्मऋषीन् सर्वांस्तर्पयेदक्षतोदकैः॥ २०
अपसव्यं ततः कृत्वा सव्यं जान्वाच्य भूतले।
अग्निष्वात्तास्तथा सौम्या हविष्मन्तस्तथोष्मपाः॥ २१
सुकालिनो बर्हिषदस्तथा चैवाज्यपाः पुनः।
संतर्प्याः पितरो भक्त्या सतिलोदकचन्दनैः॥ २२
यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च॥ २३
औदुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।
वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः।
दर्भपाणिस्तु विधिना पितॄन् संतर्पयेद् बुधः॥ २४
पित्रादीन् नामगोत्रेण तथा मातामहानपि।
संतर्प्य विधिना भक्त्या इमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ २५
येऽबान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः।
ते तृप्तिमखिलां यान्तु यश्चास्मत्तोऽभिवाञ्छति॥ २६

फिर भक्तिपूर्वक मनुष्यों तथा ब्रह्मपुत्र ऋषियोंके तर्पणका विधान है—'सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वोढु तथा पञ्चशिख—ये सभी मेरे द्वारा दिये हुए जलसे सदा तृप्त हो जायँ।' तत्पश्चात् मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेता, वसिष्ठ, भृगु और नारद—इन सभी देवर्षियों और ब्रह्मर्षियोंका अक्षत और जलसे तर्पण करनेका विधान है। तदनन्तर अपसव्य होकर (जनेऊको दाहिने कंधेपर रखकर) और बायें घुटनेको भूमिपर टेककर अग्निष्वात्त, सौम्य, हविष्मान्, ऊष्मप, सुकाली, बर्हिषद् तथा अन्य आज्यप नामक पितरोंको भक्तिपूर्वक तिल, जल, चन्दन आदिसे तृप्त करना चाहिये। पुनः बुद्धिमान् मनुष्य हाथमें कुश लेकर यम, धर्मराज, मृत्यु, अन्तक, वैवस्वत, काल, सर्वभूतक्षय, औदुम्बर, दध्न, नील, परमेष्ठी, वृकोदर, चित्र और चित्रगुप्त—इन चौदह दिव्य पितरोंका विधिपूर्वक तर्पण करके इन्हें नमस्कार करे। तत्पश्चात् अपने पिता आदि तथा नाना आदिके नाम और गोत्रका उच्चारण कर भक्तिपूर्वक विधानके साथ तर्पण करनेके पश्चात् इस मन्त्रका उच्चारण करे—'जो लोग इस जन्ममें मेरे भाई-बन्धु रहे हों या इनके अतिरिक्त कुटुम्बमें पैदा हुए हों अथवा जन्मान्तरमें भाई-बन्धु रहे हों तथा जो कोई भी मुझसे जलकी इच्छा रखते हों, वे सभी पूर्णतया तृप्त हो जायँ'॥ १८—२६॥

ततश्चाचम्य विधिवदालिखेत् पद्ममग्रतः।
अक्षताभिः सपुष्पाभिः सजलारुणचन्दनम्।
अर्घ्यं दद्यात् प्रयत्नेन सूर्यनामानि कीर्तयेत्॥ २७
नमस्ते विष्णुरूपाय नमो विष्णुमुखाय वै।
सहस्त्ररश्मये नित्यं नमस्ते सर्वतेजसे॥ २८
नमस्ते रुद्रवपुषे नमस्ते सर्ववत्सल।
जगत्स्वामिन् नमस्तेऽस्तु दिव्यचन्दनभूषित॥ २९
पद्मासन नमस्तेऽस्तु कुण्डलाङ्गदभूषित।
नमस्ते सर्वलोकेश जगत् सर्वं विबोधसे॥ ३०
सुकृतं दुष्कृतं चैव सर्वं पश्यसि सर्वग।
सत्यदेव नमस्तेऽस्तु प्रसीद मम भास्कर॥ ३१
दिवाकर नमस्तेऽस्तु प्रभाकर नमोऽस्तु ते।
एवं सूर्यं नमस्कृत्य त्रिःकृत्वाथ प्रदक्षिणम्।
द्विजं गां काञ्चनं स्पृष्ट्वा ततश्च स्वगृहं व्रजेत्॥ ३२

तदुपरान्त विधिपूर्वक आचमनकर अपने सामनेकी भूमिपर कमलका चित्र बनाकर अक्षत, पुष्प आदिसे सूर्यकी पूजा करे और प्रयत्नपूर्वक सूर्यके नामोंका कीर्तन करते हुए लाल चन्दनमिश्रित जलसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। पुनः इस प्रकार प्रार्थना करे—'सूर्यदेव! आप विष्णुरूप हैं, आपको नमस्कार है। विष्णुके मुखस्वरूप आपको प्रणाम है। सहस्रकिरणधारी एवं समस्त तेजोंके धामको नित्य अभिवादन है। सर्वेश्वर! दिव्य चन्दनसे विभूषित देव! आप रुद्र (शिव)-रूप हैं। आप सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणकारक तथा उनके प्रति पुत्रवत् प्रेमभाव रखनेवाले हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। पद्मासन! आप सदा कुण्डल और बाजूबंदसे सुसज्जित रहते हैं, आपको अभिवादन है। समस्त लोकोंके अधीश्वर! आप सारे जगत्को उद्‌बुद्ध करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। सर्वत्र गमन करनेवाले सत्यदेव! आप सम्पूर्ण प्राणियोंके सारे पुण्यों एवं पापोंको देखते रहते हैं, आपको प्रणाम है। भास्कर! मुझपर प्रसन्न हो जाइये। दिवाकर! आपको अभिवादन है। प्रभाकर! आपको नमस्कार है।' इस प्रकार प्रार्थना करनेके बाद तीन बार प्रदक्षिणा कर सूर्यको नमस्कार करे। पुनः ब्राह्मण, गौ और सुवर्णका स्पर्श करनेके पश्चात् अपने घर जाना चाहिये॥ २७—३२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे स्नानविधिर्नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०२॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें स्नानविधि नामक एक सौ दोवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०२॥

एक सौ तीनवाँ अध्याय

युधिष्ठिरकी चिन्ता, उनकी महर्षि मार्कण्डेयसे भेंट और महर्षिद्वारा प्रयाग-माहात्म्यका उपक्रम

नन्दिकेश्वर उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रयागस्योपवर्णनम्।
मार्कण्डेयेन कथितं यत् पुरा पाण्डुसूनवे॥ १
भारते तु यदा वृत्ते प्राप्तराज्ये पृथासुते।
एतस्मिन्नन्तरे राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः॥ २
भ्रातृशोकेन संतप्तश्चिन्तयन् स पुनः पुनः।
आसीत् सुयोधनो राजा एकादशचमूपतिः॥ ३

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! इसके बाद मैं प्रयागके माहात्म्यका वर्णन कर रहा हूँ जिसे पूर्वकालमें महर्षि मार्कण्डेयने पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरसे कहा था। जब महाभारत-युद्ध समाप्त हो गया और कुन्ती-पुत्र युधिष्ठिरको राज्य प्राप्त हो गया, इसी बीच कुन्ती-नन्दन महाराज युधिष्ठिर भाइयोंके शोकसे अत्यन्त दुःखी होकर बारम्बार इस प्रकार चिन्तन करने लगे—'हाय! जो राजा दुर्योधन ग्यारह अक्षौहिणी सेनाका स्वामी था,

अस्मान् संताप्य बहुशः सर्वे ते निधनं गताः।
वासुदेवं समाश्रित्य पञ्च शेषास्तु पाण्डवाः॥ ४
हत्वा भीष्मं च द्रोणं च कर्णं चैव महाबलम्।
दुर्योधनं च राजानं पुत्रभ्रातृसमन्वितम्॥ ५
राजानो निहताः सर्वे ये चान्ये शूरमानिनः।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा॥ ६
धिक् कष्टमिति संचिन्त्य राजा वैक्लव्यमागतः।
निर्विचेष्टो निरुत्साहः किंचित् तिष्ठत्यधोमुखः॥ ७
लब्धसंज्ञो यदा राजा चिन्तयन् स पुनः पुनः।
कतमो विनियोगो वा नियमं तीर्थमेव च॥ ८
येनाहं शीघ्रमामुञ्चे महापातककिल्बिषात्।
यत्र स्थित्वा नरो याति विष्णुलोकमनुत्तमम्॥ ९
कथं पृच्छामि वै कृष्णं येनेदं कारितोऽस्म्यहम्।
धृतराष्ट्रं कथं पृच्छे यस्य पुत्रशतं हतम्॥ १०
एवं वैक्लव्यमापन्ने धर्मराजे युधिष्ठिरे।
रुदन्ति पाण्डवाः सर्वे भ्रातृशोकपरिप्लुताः॥ ११
ये च तत्र महात्मानः समेताः पाण्डवाः स्मृताः।
कुन्ती च द्रौपदी चैव ये च तत्र समागताः।
भूमौ निपतिताः सर्वे रुदन्तस्तु समंततः॥ १२

वह हमलोगोंको अनेकों बार कष्टमें डालकर अपने सभी सहायकोंके साथ कालके गालमें चला गया। श्रीकृष्णका आश्रय लेनेके कारण केवल हम पाँच पाण्डव ही शेष रह गये हैं। गोविन्द! हमलोगोंने भीष्म, द्रोण, महाबली कर्ण और पुत्रों एवं भाइयोंसमेत राजा दुर्योधनको मारकर जो अन्य शूर, मानी नरेश थे उन सबका भी संहार कर डाला, ऐसी परिस्थितिमें हमें राज्यसे क्या लेना है, अथवा भोगों एवं जीवनसे ही क्या प्रयोजन है? 'हाय! धिक्कार है, महान् कष्ट आ पड़ा'—ऐसा सोचकर राजा युधिष्ठिर व्याकुल हो गये और निश्चेष्ट एवं उत्साहरहित हो कुछ देरतक नीचे मुख किये बैठे ही रह गये। जब राजा युधिष्ठिरको पुनः चेतना प्राप्त हुई तब वे इस प्रकार सोचने लगे—'ऐसा कौन-सा विनियोग (प्रायश्चित्त), नियम (व्रतोपवास) अथवा तीर्थ है, जिसका सेवन करनेसे मैं शीघ्र ही इस महापातकके पापसे मुक्त हो सकूँगा, अथवा जहाँ निवास कर मनुष्य सर्वोत्तम विष्णुलोकको प्राप्त कर सकता है। इसके लिये मैं श्रीकृष्णसे कैसे पूछूँ; क्योंकि उन्होंने ही तो मुझसे ऐसा कर्म करवाया है। दादा धृतराष्ट्रसे भी किसी प्रकार नहीं पूछ सकता; क्योंकि उनके सौ पुत्र मार डाले गये हैं।' ऐसा सोचकर धर्मराज युधिष्ठिर व्याकुल हो गये। उस समय सभी पाण्डव भ्रातृ-शोकमें निमग्न होकर रुदन कर रहे थे। उस समय राजा युधिष्ठिरके समीप जो अन्य महात्मा पुरुष आये थे तथा कुन्ती, द्रौपदी एवं अन्यान्य जो लोग आ गये थे, वे सभी रोते हुए युधिष्ठिरको घेरकर पृथ्वीपर पड़ गये॥ १—१२॥

वाराणस्यां मार्कण्डेयस्तेन ज्ञातो युधिष्ठिरः।
यथा वैक्लव्यमापन्नो रोदमानस्तु दुःखितः॥ १३
अचिरेणैव कालेन मार्कण्डेयो महातपाः।
सम्प्राप्तो ह्यस्तिनपुरं राजद्वारे ह्यतिष्ठत॥ १४
द्वारपालोऽपि तं दृष्ट्वा राज्ञः कथितवान् द्रुतम्।
त्वां द्रष्टुकामो मार्कण्डो द्वारि तिष्ठत्यसौ मुनिः।
त्वरितो धर्मपुत्रस्तु द्वारमागादतः परम्॥ १५

उस समय महर्षि मार्कण्डेय वाराणसीमें निवास कर रहे थे। उन्हें जिस प्रकार युधिष्ठिर दुःखी और व्याकुल हो रो रहे थे, ये सारी बातें (योगबलसे) ज्ञात हो गयीं। तब महातपस्वी मार्कण्डेय थोड़े ही समयमें हस्तिनापुर जा पहुँचे और राजद्वारपर उपस्थित हुए। उन्हें आया हुआ देखकर द्वारपालने तुरंत राजाको सूचना देते हुए कहा—'महाराज! ये महामुनि मार्कण्डेय आपसे मिलनेके लिये दरवाजेपर खड़े हैं।' यह सुनते ही धर्म-पुत्र युधिष्ठिर शीघ्रतापूर्वक दरवाजेपर आ पहुँचे॥ १३—१५॥

युधिष्ठिर उवाच

स्वागतं ते महाभाग स्वागतं ते महामुने।
अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्॥ १६
अद्य मे पितरस्तुष्टास्त्वयि दृष्टे महामुने।
अद्याहं पूतदेहोऽस्मि यत् त्वया सह दर्शनम्॥ १७

युधिष्ठिरने कहा—महाभाग! आपका स्वागत है। महामुने! आपका स्वागत है। महामुने! आपका दर्शन करके आज मेरा जन्म सफल हो गया। आज मैंने अपने कुलका उद्धार कर दिया तथा आज मेरे पितर संतुष्ट हो गये। आपका जो यह (आकस्मिक) दर्शन प्राप्त हुआ, इससे आज मेरा शरीर पवित्र हो गया॥ १६-१७॥

नन्दिकेश्वर उवाच

सिंहासने समास्थाप्य पादशौचार्चनादिभिः।
युधिष्ठिरो महात्मा वै पूजयामास तं मुनिम्॥ १८
ततः स तुष्टो मार्कण्डः पूजितश्चाह तं नृपम्।
आख्याहि त्वरितं राजन् किमर्थं रुदितं त्वया।
केन वा विक्लवीभूतः का बाधा ते किमप्रियम्॥ १९

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! तत्पश्चात् महात्मा युधिष्ठिरने मार्कण्डेय मुनिको सिंहासनपर बैठाकर पादप्रक्षालन आदि अर्चाविधिके अनुसार उनकी पूजा की। तब पूजनसे संतुष्ट हुए मुनिवर मार्कण्डेयने राजा युधिष्ठिरसे पूछा—'राजन्! तुम किसलिये रो रहे थे? किसने तुम्हें व्याकुल कर दिया? तुम्हें कौन-सी बाधा सता रही है? तुम्हारा कौन-सा अमङ्गल हो गया? यह सब हमें शीघ्र बतलाओ'॥ १८-१९॥

युधिष्ठिर उवाच

अस्माकं चैव यद् वृत्तं राज्यस्यार्थे महामुने।
एतत् सर्वं विदित्वा तु चिन्तावशमुपागतः॥ २०

युधिष्ठिरने कहा—महामुने! राज्यकी प्राप्तिके लिये हमलोगोंने जैसा-जैसा व्यवहार किया है, वही सब सोचकर मैं चिन्ताके वशीभूत हो गया हूँ॥ २०॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो क्षात्रधर्मव्यवस्थितिम्।
नैव दृष्टं रणे पापं युध्यमानस्य धीमतः॥ २१
किं पुना राजधर्मेण क्षत्रियस्य विशेषतः।
तदेवं हृदयं कृत्वा तस्मात् पापं न चिन्तयेत्॥ २२
ततो युधिष्ठिरो राजा प्रणम्य शिरसा मुनिम्।
पप्रच्छ विनयोपेतः सर्वपातकनाशनम्॥ २३

मार्कण्डेयजी बोले—महाबाहु राजन्! क्षात्रधर्मकी व्यवस्था तो सुनो। इसके अनुसार रणस्थलमें युद्ध करते हुए बुद्धिमान्‌के लिये पाप नहीं बतलाया गया है, तब फिर राजधर्मके अनुसार विशेषरूपसे युद्ध करनेवाले क्षत्रियके लिये तो पापकी बात ही क्या है। हृदयमें ऐसा विचारकर युद्धसे उत्पन्न हुए पापकी भावनाको छोड़ दो। तदनन्तर राजा युधिष्ठिरने मुनिवर मार्कण्डेयको सिर झुकाकर प्रणाम किया और विनम्रतापूर्वक समस्त पापोंका विनाश करनेवाले साधनके विषयमें प्रश्न किया॥ २१—२३॥

युधिष्ठिर उवाच

पृच्छामि त्वां महाप्राज्ञ नित्यं त्रैलोक्यदर्शिनम्।
कथय त्वं समासेन येन मुच्येत किल्बिषात्॥ २४

युधिष्ठिरने पूछा—महाप्राज्ञ! आप तो नित्य त्रैलोक्यदर्शी हैं, अतः मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप संक्षेपमें कोई ऐसा साधन बतलाइये, जिसका पालन करनेसे पापसे छुटकारा मिल सके॥ २४॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो सर्वपातकनाशनम्।
प्रयागगमनं श्रेष्ठं नराणां पुण्यकर्मणाम्॥ २५

मार्कण्डेयजी बोले—महाबाहु राजन्! सुनो, पुण्यकर्मा मनुष्योंके लिये प्रयाग-गमन ही सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाला सर्वश्रेष्ठ साधन है॥ २५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये त्र्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १०३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें एक सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०३॥

एक सौ चारवाँ अध्याय

प्रयाग[1]-माहात्म्य-प्रसङ्गमें प्रयाग-क्षेत्रके विविध तीर्थस्थानोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

भगवञ्श्रोतुमिच्छामि पुरा कल्पे यथास्थितम्।
ब्रह्मणा देवमुख्येन यथावत् कथितं मुने॥ १
कथं प्रयागे गमनं नराणां तत्र कीदृशम्।
मृतानां का गतिस्तत्र स्नातानां तत्र किं फलम्॥ २
ये वसन्ति प्रयागे तु ब्रूहि तेषां च किं फलम्।
एतन्मे सर्वमाख्याहि परं कौतूहलं हि मे॥ ३

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते वत्स यच्छ्रेष्ठं तत्र यत् फलम्।
पुरा ऋषीणां विप्राणां कथ्यमानं मया श्रुतम्॥ ४
आप्रयागं प्रतिष्ठानादापुराद् वासुकेर्ह्रदात्।
कम्बलाश्वतरौ नागौ नागाच्च बहुमूलकात्।
एतत् प्रजापतेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्॥ ५
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
तत्र ब्रह्मादयो देवा रक्षां कुर्वन्ति संगताः॥ ६
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः शुभाः।
न शक्याः कथितुं राजन् बहुवर्षशतैरपि।
संक्षेपेण प्रवक्ष्यामि प्रयागस्य तु कीर्तनम्॥ ७
षष्टिर्धनुःसहस्त्राणि यानि रक्षन्ति जाह्नवीम्।
यमुनां रक्षति सदा सविता सप्तवाहनः॥ ८
प्रयागं तु विशेषेण सदा रक्षति वासवः।
मण्डलं रक्षति हरिर्दैवतैः सह संगतः॥ ९

युधिष्ठिरने पूछा—ऐश्वर्यशाली मुने! प्राचीन कल्पमें प्रयाग-क्षेत्रकी जैसी स्थिति थी तथा देवश्रेष्ठ ब्रह्माने जिस प्रकार इसका वर्णन किया था, वह सब मैं सुनना चाहता हूँ। मुने! प्रयागकी यात्रा किस प्रकार करनी चाहिये? वहाँ मनुष्योंको कैसा आचार-व्यवहार करनेका विधान है? वहाँ मरनेवालेको कौन-सी गति प्राप्त होती है? वहाँ स्नान करनेसे क्या फल मिलता है? जो लोग सदा प्रयागमें निवास करते हैं, उन्हें किस फलकी प्राप्ति होती है? यह सब मुझे बतलाइये; क्योंकि इसे जाननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है॥ १—३॥

मार्कण्डेयजीने कहा—वत्स! पूर्वकालमें प्रयागक्षेत्रमें जो श्रेष्ठ स्थान हैं तथा वहाँकी यात्रासे जो फल प्राप्त होता है, इस विषयमें ऋषियों एवं ब्राह्मणोंके मुखसे मैंने जो कुछ सुना है, वह सब तुम्हें बतला रहा हूँ। प्रयागके प्रतिष्ठानपुर[2] (झूँसी)-से वासुकिह्रदतकका भाग, जहाँ कम्बल, अश्वतर और बहुमूलक नामवाले नाग निवास करते हैं, तीनों लोकोंमें प्रजापति-क्षेत्रके नामसे विख्यात है, वहाँ स्नान करनेसे लोग स्वर्गलोकमें जाते हैं और जो वहाँ मृत्युको प्राप्त होते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। ब्रह्मा आदि देवता संगठित होकर (वहाँ रहनेवालोंकी) रक्षा करते हैं। राजन्! इसके अतिरिक्त इस क्षेत्रमें मङ्गलमय एवं समस्त पापोंका विनाश करनेवाले और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जिनका वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता, अतः मैं संक्षेपमें प्रयागका वर्णन कर रहा हूँ। यहाँ साठ हजार धनुर्धर वीर गङ्गाकी रक्षा करते हैं तथा सात घोड़ोंसे जुते हुए रथपर चलनेवाले सूर्य सदा यमुनाकी देखभाल करते रहते हैं। इन्द्र विशेषरूपसे सदा प्रयागकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। श्रीहरि देवताओंको साथ लेकर पूरे प्रयाग-मण्डलकी रखवाली करते हैं।

१. भारतमें देव, रुद्र, कर्ण, नंदादि पञ्चप्रयाग प्रसिद्ध हैं। यह तीर्थराज उनमें भी सर्वश्रेष्ठ है। इसकी महिमापर प्रयागशताध्यायीके अतिरिक्त महाभारत, वनपर्व ८५।७, अग्नि, गरुड, नारद, कूर्म ३५, पद्म-स्कन्दसौरादि पुराणोंमें भी कई अध्याय हैं। इसके अतिरिक्त 'त्रिस्थलीसेतु', 'तीर्थकल्पतरु', 'तीर्थ-चिन्तामणि' आदिमें भी इनकी महिमा वर्णित है।

२. प्रतिष्ठानपुर दो हैं—एक गोदावरी-तटका पैठन तथा दूसरा यह झूँसी। प्रयागमाहात्म्यमें सर्वत्र यही अभिप्रेत है।

तं वटं रक्षति सदा शूलपाणिर्महेश्वरः।
स्थानं रक्षन्ति वै देवाः सर्वपापहरं शुभम्॥ १०
अधर्मेणावृतो लोको नैव गच्छति तत्पदम्।
अल्पमल्पतरं पापं यदा तस्य नराधिप।
प्रयागं स्मरमाणस्य सर्वमायाति संक्षयम्॥ ११
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥ १२
पञ्च कुण्डानि राजेन्द्र येषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागस्य प्रवेशे तु पापं नश्यति तत्क्षणात्॥ १३
योजनानां सहस्रेषु गङ्गायाः स्मरणान्नरः।
अपि दुष्कृतकर्मा तु लभते परमां गतिम्॥ १४
कीर्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति।
अवगाह्य च पीत्वा तु पुनात्यासप्तमं कुलम्॥ १५
सत्यवादी जितक्रोधो ह्यहिंसायां व्यवस्थितः।
धर्मानुसारी तत्त्वज्ञो गोब्राह्मणहिते रतः॥ १६
गङ्गायमुनयोर्मध्ये स्नातो मुच्येत किल्बिषात्।
मनसा चिन्तयन् कामानवाप्नोति सुपुष्कलान्॥ १७
ततो गत्वा प्रयागं तु सर्वदेवाभिरक्षितम्।
ब्रह्मचारी वसेन्मासं पितॄन् देवांश्च तर्पयेत्।
ईप्सिताँल्लभते कामान् यत्र यत्राभिजायते॥ १८
तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समागता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा।
तत्र संनिहितो नित्यं साक्षाद् देवो महेश्वरः॥ १९
दुष्प्राप्यं मानुषैः पुण्यं प्रयागं तु युधिष्ठिर।
देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः।
तदुपस्पृश्य राजेन्द्र स्वर्गलोकमुपासते॥ २०

महेश्वर हाथमें त्रिशूल लेकर सदा वट-वृक्षकी रक्षा करते रहते हैं। देवगण इस सर्वपापहारी मङ्गलमय स्थानकी रक्षामें तत्पर रहते हैं। इसलिये इस लोकमें अधर्मसे घिरा हुआ मनुष्य प्रयागक्षेत्रमें प्रवेश नहीं कर सकता। नरेश्वर! यदि किसीका स्वल्प अथवा उससे भी थोड़ा पाप होगा तो वह सारा-का-सारा प्रयागका स्मरण करनेसे नष्ट हो जायगा; क्योंकि (ऐसा विधान है कि) प्रयागतीर्थके दर्शन, नाम-संकीर्तन अथवा मृत्तिकाका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है॥८—१२॥

राजेन्द्र! प्रयागक्षेत्रमें पाँच कुण्ड हैं, उन्हींके मध्यमें गङ्गा बहती हैं, इसलिये प्रयागमें प्रवेश करते ही उसी क्षण पाप नष्ट हो जाता है। मनुष्य कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, यदि वह हजारों योजन दूरसे भी गङ्गाका स्मरण करता है तो उसे परम गतिकी प्राप्ति होती है। गङ्गाका नाम लेनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है, दर्शन करनेसे उसे जीवनमें माङ्गलिक अवसर देखनेको मिलते हैं तथा स्नान और जलपान करके तो वह अपनी सात पीढ़ियोंको पावन बना देता है। जो मनुष्य सत्यवादी, क्रोधरहित, अहिंसापरायण, धर्मानुगामी, तत्त्वज्ञ और गौ एवं ब्राह्मणके हितमें तत्पर रहकर गङ्गा और यमुनाके संगममें स्नान करता है, वह पापसे मुक्त हो जाता है तथा जो मनसे चिन्तनमात्र करता है, वह अपने अधिक-से-अधिक मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। इसलिये समस्त देवताओंद्वारा सुरक्षित प्रयाग-क्षेत्रमें जाकर वहाँ एक मासतक ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करते हुए देवों और पितरोंका तर्पण करना चाहिये। वहाँ रहते हुए मनुष्य जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ उसे अभिलषित पदार्थोंकी प्राप्ति होती है। वहाँ सूर्य-कन्या महाभागा यमुना देवी, जो तीनों लोकोंमें विख्यात हैं, नदीरूपमें आयी हुई हैं और साक्षात् भगवान् शंकर वहाँ नित्य निवास करते हैं। इसलिये युधिष्ठिर! यह पुण्यप्रद प्रयाग मनुष्योंके लिये दुर्लभ है। राजेन्द्र! देव, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध, चारण आदि गङ्गा-जलका स्पर्श कर स्वर्गलोकमें विराजमान होते हैं॥१३—२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रयागमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चारवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०४॥

एक सौ पाँचवाँ अध्याय

प्रयागमें मरनेवालोंकी गति और गो-दानका महत्त्व

मार्कण्डेय उवाच

श्रृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव च।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ १

आर्तानां हि दरिद्राणां निश्चितव्यवसायिनाम्।
स्थानमुक्तं प्रयागं तु नाख्येयं तु कदाचन॥ २

व्याधितो यदि वा दीनो वृद्धो वापि भवेन्नरः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ ३

दीप्तकाञ्चनवर्णाभैर्विमानैः सूर्यवर्चसैः।
गन्धर्वाप्सरसां मध्ये स्वर्गे मोदति मानवः।
ईप्सिताँल्लभते कामान् वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः॥ ४

सर्वरत्नमयैर्दिव्यैर्नानाध्वजसमाकुलैः।
वराङ्गनासमाकीर्णैर्मोदते शुभलक्षणैः॥ ५

गीतवाद्यविनिर्घोषैः प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते।
यावन्न स्मरते जन्म तावत् स्वर्गे महीयते॥ ६

ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
हिरण्यरत्नसम्पूर्णे समृद्धे जायते कुले।
तदेव स्मरते तीर्थं स्मरणात् तत्र गच्छति॥ ७

देशस्थो यदि वारण्ये विदेशस्थोऽथवा गृहे।
प्रयागं स्मरमाणोऽपि यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति वदन्ति ऋषिपुङ्गवाः॥ ८

सर्वकामफला वृक्षा मही यत्र हिरण्मयी।
ऋषयो मुनयः सिद्धास्तत्र लोके स गच्छति॥ ९

स्त्रीसहस्रावृते रम्ये मन्दाकिन्यास्तटे शुभे।
मोदते ऋषिभिः सार्धं सुकृतेनेह कर्मणा॥ १०

सिद्धचारणगन्धर्वैः पूज्यते दिवि दैवतैः।
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्॥ ११

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागके माहात्म्यका ही वर्णन सुनो, जिसे सुनकर मनुष्य समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। दुःखियों, दरिद्रों और निश्चित व्यवसाय करनेवालोंके कल्याणके लिये प्रयागक्षेत्र ही प्रशस्त कहा गया है। इसे कभी (कहीं) प्रकट नहीं करना चाहिये। श्रेष्ठ ऋषियोंका कथन है कि जो मनुष्य रोगग्रस्त, दीन अथवा वृद्ध होकर गङ्गा और यमुनाके संगममें प्राणोंका त्याग करता है, वह तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले एवं सूर्यसदृश तेजस्वी विमानोंद्वारा स्वर्गमें जाकर गन्धर्वों और अप्सराओंके मध्यमें आनन्दका उपभोग करता है और अपने अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है। वहाँ वह सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित, अनेकों रंगोंकी ध्वजाओंसे मण्डित, अप्सराओंसे खचाखच भरे हुए शुभ लक्षणसम्पन्न दिव्य विमानोंमें बैठकर आनन्द मनाता है तथा माङ्गलिक गीतों और बाजोंके शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार जबतक वह अपने जन्मका स्मरण नहीं करता, तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है। इस प्रकार स्वर्गसे भ्रष्ट हुआ वह जीव सुवर्ण-रत्नसे परिपूर्ण एवं समृद्ध कुलमें जन्म धारण करता है और समयानुसार पुनः उसी तीर्थका स्मरण करता है तथा स्मरण आनेसे पुनः उस प्रयागक्षेत्रकी यात्रा करता है। ऋषिवरोंका कथन है कि मनुष्य चाहे देशमें हो अथवा विदेशमें, घरमें हो अथवा वनमें, यदि वह प्रयागका स्मरण करते हुए प्राणोंका परित्याग करता है तो ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है॥१—८॥

वह ऐसे लोकमें जाता है, जहाँकी भूमि स्वर्णमयी है, जहाँके वृक्ष इच्छानुसार फल देनेवाले हैं और जहाँ ऋषि, मुनि तथा सिद्धलोग निवास करते हैं। वहाँ वह अपने इस जन्ममें किये हुए पुण्यकर्मोंके प्रभावसे सहस्रों स्त्रियोंसे युक्त, मङ्गलमय एवं रमणीय मन्दाकिनीके तटपर ऋषियोंके साथ सुख भोगता है। स्वर्गलोकमें देवताओंके साथ सिद्ध, चारण और गन्धर्व उसकी पूजा करते हैं। तत्पश्चात् (पुण्य क्षीण होनेपर) वह स्वर्गसे च्युत होकर

ततः शुभानि कर्माणि चिन्तयानः पुनः पुनः।
गुणवान् वित्तसम्पन्नो भवतीह न संशयः॥ १२
कर्मणा मनसा वाचा सत्यधर्मप्रतिष्ठितः।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु गां सम्प्रयच्छति।
स गोरोमसमाब्दानि लभते स्वर्गमुत्तमम्॥ १३
स्वकार्ये पितृकार्ये वा देवताभ्यर्चनेऽपि वा।
यस्तु गां प्रतिगृह्णाति गङ्गायमुनसंगमे॥ १४
सुवर्णमणिमुक्ताश्च यदि वान्यत् परिग्रहम्।
विफलं तस्य तत्तीर्थं यावत् तद्धनमश्नुते॥ १५
एवं तीर्थे न गृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेषु च।
निमित्तेषु च सर्वेषु ह्यप्रमत्तो भवेद् द्विजः॥ १६
कपिलां पाटलावर्णां यस्तु धेनुं प्रयच्छति।
स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां कांस्यदोहां पयस्विनीम्॥ १७
प्रयागे श्रोत्रियं सन्तं ग्राहयित्वा यथाविधि।
शुक्लाम्बरधरं शान्तं धर्मज्ञं वेदपारगम्॥ १८
सा गौस्तस्मै प्रदातव्या गङ्गायमुनसंगमे।
वासांसि च महार्हाणि रत्नानि विविधानि च॥ १९
यावद् रोमाणि तस्या गोः सन्ति गात्रेषु सत्तम।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ २०
यत्रासौ लभते जन्म सा गौस्तस्याभिजायते।
न च पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।
उत्तरान् स कुरून् प्राप्य मोदते कालमक्षयम्॥ २१
गवां शतसहस्रेभ्यो दद्यादेकां पयस्विनीम्।
पुत्रान् दारांस्तथा भृत्यान् गौरेका प्रति तारयेत्॥ २२
तस्मात् सर्वेषु दानेषु गोदानं तु विशिष्यते।
दुर्गमे विषमे घोरे महापातकसम्भवे।
गौरेव कुरुते रक्षां तस्माद् देया द्विजोत्तमे॥ २३

भूतलपर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है। इस जन्ममें उसे बारंबार अपने शुभकर्मोंका स्मरण होता है, जिससे वह निस्संदेह गुणवान् और धनसम्पन्न होता है तथा वह मनुष्य मन-वचन-कर्मसे सत्यधर्ममें स्थित रहता है। जो व्यक्ति गङ्गा-यमुनाके संगमपर कार्योंमें अपने मङ्गलके निमित्त या पितरोंके उद्देश्यसे किये जानेवाले अथवा देवपूजन आदि कार्योंमें गोदान करता है, वह उस गौके रोमतुल्य वर्षोंतक स्वर्गमें निवास करता है। यदि कोई वहाँ गोदान लेता है या स्वर्ण, मणि, मोती अथवा अन्य जो कुछ सामग्री दानरूपमें ग्रहण करता है, तो जबतक वह धन उसके पास रहता है, तबतक उसका वह तीर्थ विफल होता है। इस प्रकार (तीर्थयात्रीको) तीर्थमें, पुण्यमय देव-मन्दिरोंमें तथा सभी निमित्तों (दानपर्वों)-में दान लेना कदापि उचित नहीं है। इसके लिये ब्राह्मणको विशेषरूपसे सावधान रहना चाहिये॥ ९—१६॥

जो मनुष्य प्रयागमें जिसके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े हुए हों, निकटमें काँसेकी दोहनी भी रखी हो, ऐसी लाल रंगकी दुधारू कपिला* गौका दान करना चाहता हो तो उसे वह गौ गङ्गा-यमुनाके संगमपर विधिपूर्वक ऐसे ब्राह्मणको देनी चाहिये, जो श्रोत्रिय, साधुस्वभाव, श्वेत वस्त्र धारण करनेवाला, शान्त, धर्मज्ञ और वेदोंका पारगामी विद्वान् हो। उसके साथ बहुमूल्य वस्त्र और अनेकों प्रकारके रत्न भी दान करने चाहिये। राजसत्तम! ऐसा करनेसे उस गौके अङ्गोंमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक दाता स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् जहाँ वह जन्म लेता है, वहीं वह गौ भी उसके घर उत्पन्न होती है। उस पुण्यकर्मके प्रभावसे उसे नरकका दर्शन नहीं होता, अपितु वह उत्तरकुरु-प्रदेशको पाकर अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। लाखों गौओंकी अपेक्षा एक ही दुधारू गौका दान प्रशस्त माना गया है; क्योंकि वह एक ही गौ पुत्रों, स्त्रियों और नौकरोंतकका उद्धार कर देती है। यही कारण है कि समस्त दानोंमें गो-दानका विशेष महत्त्व बतलाया जाता है। दुर्गम स्थानपर, भयंकर विषम परिस्थितिमें और महापातकके घटित हो जानेपर केवल गौ ही रक्षा कर सकती है, अतः मनुष्यको श्रेष्ठ ब्राह्मणको गो-दान देना चाहिये॥ १७—२३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०५॥

* कपिला गौ 'स्वर्णकपिला' आदिके भेदसे दस प्रकारकी होती है। इसका विस्तृत वर्णन महाभारत, आश्वमेधिक, वैष्णवधर्म-पर्व, अ० ९५ गीताप्रेसमें दाक्षि० प्र० के श्लोकमें तथा वृद्ध गौतमस्मृतिमें अ० ९-१० में देखना चाहिये।

एक सौ छठा अध्याय

प्रयाग-माहात्म्य-वर्णन-प्रसङ्गमें वहाँके विविध तीर्थोंका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

यथा यथा प्रयागस्य माहात्म्यं कथ्यते त्वया।
तथा तथा प्रमुच्येऽहं सर्वपापैर्न संशयः॥ १

भगवन् केन विधिना गन्तव्यं धर्मनिश्चयैः।
प्रयागे यो विधिः प्रोक्तस्तन्मे ब्रूहि महामुने॥ २

मार्कण्डेय उवाच

कथयिष्यामि ते राजंस्तीर्थयात्राविधिक्रमम्।
आर्षेण विधिनानेन यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥ ३

प्रयागतीर्थं यात्रार्थी यः प्रयाति नरः क्वचित्।
बलीवर्दसमारूढः शृणु तस्यापि यत् फलम्॥ ४

नरके वसते घोरे गवां क्रोधो हि दारुणः।
सलिलं न च गृह्णन्ति पितरस्तस्य देहिनः॥ ५

यस्तु पुत्रांस्तथा बालान् स्नापयेत् पाययेत् तथा।
यथात्मना तथा सर्वं दानं विप्रेषु दापयेत्॥ ६

ऐश्वर्यलोभान्मोहाद् वा गच्छेद् यानेन यो नरः।
निष्फलं तस्य तत् तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत्॥ ७

गङ्गायमुनयोर्मध्ये यस्तु कन्यां प्रयच्छति।
आर्षेणैव विवाहेन यथाविभवसम्भवम्॥ ८

न स पश्यति तं घोरं नरकं तेन कर्मणा।
उत्तरान् स कुरून् गत्वा मोदते कालमक्षयम्।
पुत्रान् दारांश्च लभते धार्मिकान् रूपसंयुतान्॥ ९

तत्र दानं प्रकर्तव्यं यथाविभवसम्भवम्।
तेन तीर्थफलं चैव वर्धते नात्र संशयः।
स्वर्गे तिष्ठति राजेन्द्र यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १०

वटमूलं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुञ्चति।
सर्वलोकानतिक्रम्य रुद्रलोकं स गच्छति॥ ११

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आप ज्यों-ज्यों प्रयागके माहात्म्यका वर्णन कर रहे हैं, त्यों-त्यों मैं निःसंदेह समस्त पापोंसे मुक्त होता जा रहा हूँ। महामुने! धर्ममें सुदृढ़ बुद्धि रखनेवाले मनुष्योंको किस विधिसे प्रयागकी यात्रा करनी चाहिये? इसके लिये शास्त्रोंमें जिस विधिका वर्णन किया गया है, वह मुझे बतलाइये॥ १-२॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! मैंने ऋषिप्रणीत विधिके अनुसार जैसा देखा एवं जैसा सुना है, उसीके अनुरूप प्रयागतीर्थकी यात्रा-विधिका क्रम बतला रहा हूँ। जो मनुष्य कहींसे भी प्रयागतीर्थकी यात्राके लिये हृष्ट-पुष्ट बैलपर सवार होकर प्रस्थान करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। गो-वंशको कष्ट देनेवाला वह मनुष्य अत्यन्त घोर नरकमें निवास करता है तथा उस प्राणीके पितर उसका दिया हुआ जल नहीं ग्रहण करते; क्योंकि गौओंका क्रोध बड़ा भयानक होता है। जो विधिके अनुसार पुत्रों तथा बालकोंको प्रयागमें स्नान कराता है, गङ्गाजलका पान कराता है तथा अपनी ही तरह ब्राह्मणोंको सारा दान दिलाता है (वह तीर्थ-फलका भागी होता है)। जो मनुष्य ऐश्वर्यके लोभसे अथवा मोहवश सवारीपर बैठकर प्रयागकी यात्रा करता है, उसका वह तीर्थफल नष्ट हो जाता है, इसलिये सवारीका परित्याग कर देना चाहिये। जो गङ्गा-यमुनाके संगमपर ऋषिप्रणीत विवाह-विधिसे अपनी सम्पत्तिके अनुसार कन्या-दान करता है, उसे उस पुण्यकर्मके फलस्वरूप पूर्वोक्त घोर नरकका दर्शन नहीं होता, अपितु वह उत्तरकुरु देशमें जाकर अक्षय-कालतक आनन्दका उपभोग करता है और उसे धर्मात्मा एवं सौन्दर्यशाली स्त्री-पुत्रोंकी भी प्राप्ति होती है। इसलिये राजेन्द्र! अपनी सम्पत्तिके अनुकूल प्रयागमें दान अवश्य करना चाहिये। इससे तीर्थका फल बढ़ जाता है और वह दाता प्रलयपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं है॥ ३—१०॥

जो मनुष्य प्रयागस्थित अक्षयवटके नीचे पहुँचकर प्राणोंका त्याग करता है, वह अन्य सभी पुण्यलोकोंका अतिक्रमण कर रुद्रलोकको चला जाता है।

तत्र ते द्वादशादित्यास्तपन्ते रुद्रसंश्रिताः।
निर्दहन्ति जगत् सर्वं वटमूलं न दह्यते॥ १२

नष्टचन्द्रार्कभुवनं यदा चैकार्णवं जगत्।
स्थीयते तत्र वै विष्णुर्यजमानः पुनः पुनः॥ १३

देवदानवगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः।
सदा सेवन्ति तत् तीर्थं गङ्गायमुनसङ्गमम्॥ १४

ततो गच्छेत राजेन्द्र प्रयागं संस्तुवंश्च यत्।
यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः॥ १५

लोकपालाश्च साध्याश्च पितरो लोकसम्मताः।
सनत्कुमारप्रमुखास्तथैव परमर्षयः॥ १६

अङ्गिरः प्रमुखाश्चैव तथा ब्रह्मर्षयः परे।
तथा नागाः सुपर्णाश्च सिद्धाश्च खेचराश्च ये॥ १७

सागराः सरितः शैला नागा विद्याधराश्च ये।
हरिश्च भगवानास्ते प्रजापतिपुरःसरः॥ १८

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं राजशार्दूल त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
ततः पुण्यतमं नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत॥ १९

श्रवणात् तस्य तीर्थस्य नामसंकीर्तनादपि।
मृत्तिकालम्भनाद् वापि नरः पापात् प्रमुच्यते॥ २०

तत्राभिषेकं यः कुर्यात् संगमे शंसितव्रतः।
तुल्यं फलमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥ २१

न वेदवचनात् तात न लोकवचनादपि।
मतिरुत्क्रमणीया ते प्रयागमरणं प्रति॥ २२

दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथापराः।
तेषां सांनिध्यमत्रैव ततस्तु कुरुनन्दन॥ २३

या गतिर्योगयुक्तस्य सत्यस्थस्य मनीषिणः।
सा गतिस्त्यजतः प्राणान् गङ्गायमुनसङ्गमे॥ २४

न ते जीवन्ति लोकेऽस्मिंस्तत्र तत्र युधिष्ठिर।
ये प्रयागं न सम्प्राप्तास्त्रिषु लोकेषु वञ्चिताः॥ २५

एवं दृष्ट्वा तु तत् तीर्थं प्रयागं परमं पदम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः शशाङ्क इव राहुणा॥ २६

प्रलयकालमें जब बारहों सूर्य रुद्रके आश्रयमें स्थित होकर अपने प्रखर तेजसे तपने लगते हैं, उस समय वे सारे जगत्‌को तो जलाकर भस्म कर देते हैं, परंतु अक्षयवटको वे भी नहीं जला पाते। प्रलयकालमें जब सूर्य, चन्द्रमा और चौदहों भुवन नष्ट हो जाते हैं तथा सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न हो जाता है, उस समय भी भगवान् विष्णु प्रयागमें यज्ञाराधनमें तत्पर होकर स्थित रहते हैं। देवता, दानव, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण आदि गङ्गा-यमुनाके संगमभूत तीर्थका सदा सेवन करते हैं। अतः राजेन्द्र! जहाँ प्रयागकी स्तुति करते हुए ब्रह्मा आदि देवगण; ऋषि, सिद्ध, चारण, लोकपाल, साध्यगण, लोकसम्मत पितर; सनत्कुमार आदि परमर्षि; अङ्गिरा आदि महर्षि तथा अन्य ब्रह्मर्षि, नाग, एवं गरुड आदि पक्षी, सिद्ध, आकाशचारी जीव, सागर, नदियाँ, पर्वत, सर्प, विद्याधर तथा ब्रह्मासहित भगवान् श्रीहरि निवास करते हैं, उस प्रयागकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये। राजसिंह! यह गङ्गा-यमुनाके अन्तरालका प्रयाग-क्षेत्र पृथ्वीका जघनस्थल कहा गया है॥ १२—१८ $\frac{१}{२}$॥

भारत! यह प्रयाग तीनों लोकोंमें विख्यात है। इससे बढ़कर पुण्यप्रद तीर्थ तीनों लोकोंमें दूसरा नहीं है। इस प्रयागतीर्थका नाम सुननेसे, इसके नामोंका संकीर्तन करनेसे अथवा इसकी मिट्टीका स्पर्श करनेसे मनुष्य पापसे छूट जाता है। जो व्रतनिष्ठ मनुष्य उस संगममें स्नान करता है, उसे राजसूय और अश्वमेध-यज्ञोंके समान फलकी प्राप्ति होती है। तात! इसलिये न तो किसी वेद-वचनसे, न लोगोंके आग्रहपूर्ण कथनसे ही तुम्हें प्रयाग-मरणके प्रति निश्चित की हुई अपनी बुद्धिमें किसी प्रकारका उलट-फेर करना चाहिये। कुरुनन्दन! इस भूतलपर जो दस हजार बड़े तीर्थ हैं तथा इनके अतिरिक्त जो तीन करोड़ अन्य तीर्थ हैं, उन सबका प्रयागमें ही निवास है। गङ्गा-यमुनाके संगमपर प्राण छोड़नेवालेको वही गति प्राप्त होती है, जो गति योगनिष्ठ एवं सत्यपरायण विद्वान्‌को मिलती है। युधिष्ठिर! जिन लोगोंने प्रयागकी यात्रा नहीं की, वे तो मानो तीनों लोकोंमें ठग लिये गये और उनका जीवन इस लोकमें नहींके समान है। इस प्रकार परमपदस्वरूप इस प्रयागतीर्थका दर्शन करके मनुष्य उसी प्रकार समस्त पापोंसे छूट जाता है, जैसे (ग्रहणकालके बाद) राहुग्रस्त चन्द्रमा॥ १९—२६॥

कम्बलाश्वतरौ नागौ यमुना दक्षिणे तटे।
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २७
तत्र गत्वा च संस्थानं महादेवस्य विश्रुतम्।
नरस्तारयते सर्वान् दश पूर्वान् दशापरान्॥ २८
कृत्वाभिषेकं तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
स्वर्गलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ २९
पूर्वपार्श्वे तु गङ्गायास्त्रिषु लोकेषु भारत।
कूपं चैव तु सामुद्रं प्रतिष्ठानं च विश्रुतम्॥ ३०
ब्रह्मचारी जितक्रोधस्त्रिरात्रं यदि तिष्ठति।
सर्वपापविशुद्धात्मा सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ ३१
उत्तरेण प्रतिष्ठानाद् भागीरथ्यास्तु पूर्वतः।
हंसप्रपतनं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥ ३२
अश्वमेधफलं तस्मिन् स्नानमात्रेण भारत।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च तावत् स्वर्गे महीयते॥ ३३
उर्वशीरमणे पुण्ये विपुले हंसपाण्डुरे।
परित्यजति यः प्राणान् शृणु तस्यापि यत् फलम्॥ ३४
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
सेव्यते पितृभिः सार्धं स्वर्गलोके नराधिप॥ ३५
उर्वशीं तु सदा पश्येत् स्वर्गलोके नरोत्तम।
पूज्यते सततं पुत्र ऋषिगन्धर्वकिन्नरैः॥ ३६
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
उर्वशीसदृशीनां तु कन्यानां लभते शतम्॥ ३७
मध्ये नारीसहस्राणां बहूनां च पतिर्भवेत्।
दशग्रामसहस्राणां भोक्ता भवति भूमिपः॥ ३८
काञ्चीनूपुरशब्देन सुप्तोऽसौ प्रतिबुध्यते।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥ ३९
शुक्लाम्बरधरो नित्यं नियतः संयतेन्द्रियः।
एककालं तु भुञ्जानो मासं भूमिपतिर्भवेत्॥ ४०

कम्बल और अश्वतर नामवाले दोनों नाग यमुनाके दक्षिण तटपर निवास करते हैं, अतः वहाँ स्नान और जलपान कर मनुष्य समस्त पापोंसे छूट जाता है। प्रयागक्षेत्रमें स्थित महादेवजीके सुप्रसिद्ध स्थानकी यात्रा करके मनुष्य अपनी दस आगेकी और दस पीछेकी पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य वहाँ स्नान करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है और वह प्रलयपर्यन्त स्वर्गलोकमें निवास करता है। भारत! गङ्गाके पूर्वी तटपर तीनों लोकोंमें विख्यात समुद्रकूप और प्रतिष्ठानपुर (झूँसी) है। वहाँ यदि मनुष्य तीन राततक क्रोधको वशमें कर ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करता है तो उसका आत्मा समस्त पापोंसे मुक्त होकर शुद्ध हो जाता है और उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। भारत! भागीरथीके पूर्वतटपर प्रतिष्ठानपुर (झूँसी)-से उत्तर दिशामें 'हंसप्रपतन' नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ स्नानमात्र कर लेनेसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है तथा वह यात्री सूर्य एवं चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। इसी प्रकार जो मनुष्य पुण्यप्रद उर्वशीरमण तथा विशाल हंसपाण्डुर नामक तीर्थोंमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो! नरेश्वर! वह स्वर्गलोकमें छाछठ हजार वर्षोंतक पितरोंके साथ सेवित होता है और नरोत्तम! स्वर्गलोकमें वह सदा उर्वशीको देखता रहता है। पुत्र! साथ ही युधिष्ठिर ऋषि, गन्धर्व और किन्नर निरन्तर उसकी पूजा करते हैं। तदनन्तर पुण्य क्षीण हो जानेपर जब वह स्वर्गसे च्युत होता है, तब दस हजार गाँवोंका उपभोग करनेवाला भूपाल होता है। वह अनेकों सहस्र नारियोंके बीच रहता हुआ उनका पति होता है। उससे उर्वशी-सरीखी सौन्दर्यशालिनी सौ कन्याएँ उत्पन्न होती हैं। वह करधनी और नूपुरके झंकार-शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। इस प्रकार प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है॥ २७—३९॥

जो मनुष्य प्रयागतीर्थमें एक मासतक श्वेत वस्त्र धारण करके जितेन्द्रिय होकर नित्य नियमपूर्वक रहते हुए एक ही समय भोजन करता है, वह (जन्मान्तरमें) राजा होता है,

सुवर्णालङ्कृतानां तु नारीणां लभते शतम्।
पृथिव्यामासमुद्रायां महाभूमिपतिर्भवेत्॥ ४१
धनधान्यसमायुक्तो दाता भवति नित्यशः।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत्तीर्थं भजते पुनः॥ ४२
अथ संध्यावटे रम्ये ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
उपवासी शुचिः संध्यां ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्॥ ४३
कोटितीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
कोटिवर्षसहस्राणां स्वर्गलोके महीयते॥ ४४
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्यकुले जायेत रूपवान्॥ ४५
ततो भोगवतीं गत्वा वासुकेरुत्तरेण तु।
दशाश्वमेधकं नाम तीर्थं तत्रापरं भवेत्॥ ४६
कृताभिषेकस्तु नरः सोऽश्वमेधफलं लभेत्।
धनाढ्यो रूपवान् दक्षो दाता भवति धार्मिकः॥ ४७
चतुर्वेदेषु यत् पुण्यं यत् पुण्यं सत्यवादिषु।
अहिंसायां तु यो धर्मो गमनादेव तत् फलम्॥ ४८
कुरुक्षेत्रसमा गङ्गा यत्र यत्रावगाह्यते।
कुरुक्षेत्राद् दशगुणा यत्र विन्ध्येन संगता॥ ४९
यत्र गङ्गा महाभागा बहुतीर्था तपोधना।
सिद्धक्षेत्रं हि तज्ज्ञेयं नात्र कार्या विचारणा॥ ५०
क्षितौ तारयते मर्त्यान् नागांस्तारयतेऽप्यधः।
दिवि तारयते देवांस्तेन त्रिपथगा स्मृता॥ ५१
यावदस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति हि शरीरिणः।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ ५२
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
तीर्थानां तु परं तीर्थं नदीनां तु महानदी।
मोक्षदा सर्वभूतानां महापातकिनामपि॥ ५३

तथा समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका चक्रवर्ती सम्राट् हो जाता है। उसे सुवर्णालंकारोंसे विभूषित सैकड़ों स्त्रियाँ प्राप्त होती हैं। वह धन-धान्यसे सम्पन्न होकर नित्य दान देता रहता है। इस प्रकार प्रचुर भोगोंका उपभोग करके वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। तदनन्तर रमणीय संध्यावटकी छायामें जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक जितेन्द्रिय एवं निराहार रहकर पवित्रभावसे संध्योपासन करता है वह ब्रह्मलोकको प्राप्त होता है। जो मनुष्य कोटितीर्थमें जाकर प्राणोंका परित्याग करता है वह हजारों करोड़ वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् पुण्य क्षीण होनेपर जब स्वर्गलोकसे नीचे गिरता है, तब सुन्दर रूप धारण कर सुवर्ण, मणि और मोतीसे भरे-पूरे कुलमें जन्म लेता है। इसके बाद वासुकिह्रदकी उत्तर दिशामें स्थित भोगवती नामक तीर्थमें जानेपर वहाँ दशाश्वमेध नामवाला दूसरा तीर्थ मिलता है। वहाँ जो मनुष्य स्नान करता है उसे अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वह सम्पत्तिशाली, सौन्दर्य-सम्पन्न, चतुर, दानी और धर्मात्मा होता है। चारों वेदोंके अध्ययनसे जो पुण्य होता है, सत्यभाषणसे जो पुण्य कहा गया है तथा अहिंसा-व्रतका पालन करनेसे जो धर्म बतलाया गया है, वह सारा फल प्रयागतीर्थकी यात्रासे ही प्राप्त हो जाता है। गङ्गामें जहाँ कहीं भी स्नान किया जाय, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रके समान फलदायिका मानी गयी हैं, परंतु जहाँ वह विन्ध्यपर्वतसे संयुक्त हुई हैं, वहाँ गङ्गा कुरुक्षेत्रसे दसगुना अधिक फलदायिनी हो जाती हैं॥ ४०—४९॥

जहाँ बहुत-से तीर्थोंसे युक्त, महाभाग्यशालिनी एवं तपस्विनी गङ्गा बहती हैं, उस स्थानको सिद्धक्षेत्र मानना चाहिये, इसमें अन्यथा विचार करना अनुचित है। गङ्गा भूतलपर मनुष्योंको, पातालमें नागोंको तथा स्वर्गलोकमें देवताओंको तारती हैं, इसी कारण उन्हें 'त्रिपथगा'* कहा जाता है। मृत प्राणीकी हड्डियाँ जितने समयतक गङ्गामें वर्तमान रहती हैं, उतने वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तत्पश्चात् स्वर्गसे च्युत होनेपर वह जम्बूद्वीपका स्वामी होता है। गङ्गा सभी तीर्थोंमें सर्वोत्तम तीर्थ, नदियोंमें महानदी और महान्-से-महान् पाप करनेवाले सभी प्राणियोंके लिये मोक्षदायिनी हैं।

* तुलनीय वाल्मी० १। ४३—त्रीन् पथो भावयन्त्येषा तस्मात् त्रिपथगा स्मृता।

सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा।
गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसंगमे।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ५४
सर्वेषामेव भूतानां पापोपहतचेतसाम्।
गतिमन्विष्यमाणानां नास्ति गङ्गासमा गतिः॥ ५५
पवित्राणां पवित्रं च मङ्गलानां च मङ्गलम्।
महेश्वरशिरोभ्रष्टा सर्वपापहरा शुभा॥ ५६

गङ्गा सर्वत्र तो सुलभ हैं, परंतु गङ्गाद्वार, प्रयाग और गङ्गासागर-संगममें दुर्लभ मानी गयी हैं। इन स्थानोंपर स्नान करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको चले जाते हैं और जो यहाँ शरीर-त्याग करते हैं, उनका तो पुनर्जन्म होता ही नहीं, अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। जिनका चित्त पापसे आच्छादित है, अतः उद्धार पानेके लिये गतिकी खोजमें लगे हैं, उन सभी प्राणियोंके लिये गङ्गाके समान दूसरी गति नहीं है। महेश्वरके जटाजूटसे च्युत हुई मङ्गलमयी गङ्गा समस्त पापोंका हरण करनेवाली हैं। ये पवित्रोंमें परम पवित्र और मङ्गलोंमें मङ्गल-स्वरूपा हैं॥ ५०—५६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये षडधिकशततमोऽध्यायः॥ १०६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०६॥

एक सौ सातवाँ अध्याय

प्रयाग-स्थित विविध तीर्थोंका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

श्रृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ १
मानसं नाम तीर्थं तु गङ्गाया उत्तरे तटे।
त्रिरात्रोपोषितो स्नात्वा सर्वकामानवाप्नुयात्॥ २
गोभूहिरण्यदानेन यत् फलं प्राप्नुयान्नरः।
स तत्फलमवाप्नोति तत् तीर्थं स्मरते पुनः॥ ३
अकामो वा सकामो वा गङ्गायां यो विपद्यते।
मृतस्तु लभते स्वर्गं नरकं च न पश्यति॥ ४
अप्सरोगणसंगीतैः सुप्तोऽसौ प्रतिबुद्ध्यते।
हंससारसयुक्तेन विमानेन स गच्छति।
बहुवर्षसहस्राणि स्वर्गं राजेन्द्र भुञ्जते॥ ५
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टः क्षीणकर्मा दिवश्च्युतः।
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये जायते विपुले कुले॥ ६
षष्टितीर्थसहस्राणि षष्टितीर्थशतानि च।
माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायमुनसंगमम्॥ ७

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागका ही माहात्म्य श्रवण करो, जिसे सुनकर मनुष्य निस्संदेह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गाके उत्तरी तटपर मानस नामक तीर्थ है, जहाँ तीन राततक निराहार रहकर निवास करनेसे मनुष्य अपनी सारी कामनाओंको प्राप्त कर लेता है। गौ, पृथ्वी और सुवर्ण दान करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल उसे मानस-तीर्थके स्मरणसे प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य निष्कामभावसे अथवा किसी कामनाको लेकर गङ्गाकी धारामें डूबकर मर जाता है, वह स्वर्गमें चला जाता है। उसे नरकका दर्शन नहीं करना पड़ता; वह हंस और सारससे युक्त विमानपर चढ़कर देवलोकको जाता है। वहाँ वह अप्सरासमूहके सुमधुर गान-शब्दोंद्वारा नींदसे जगाया जाता है। राजेन्द्र! इस प्रकार वह अनेकों हजार वर्षोंतक स्वर्ग-सुखका उपभोग करता है। पुनः पुण्य-कर्मके क्षीण हो जानेपर जब उसका स्वर्गसे पतन हो जाता है, तब वह सुवर्ण, मणि और मोतियोंसे सम्पन्न विशाल कुलमें जन्म लेता है। माघमासमें गङ्गा-यमुनाके संगमपर छाछठ हजार तीर्थ एकत्र होते हैं।

गवां शतसहस्रस्य सम्यग् दत्तस्य यत् फलम्।
प्रयागे माघमासे तु त्र्यहःस्नानात्तु तत् फलम्॥ ८
गङ्गायमुनयोर्मध्ये कर्षाग्निं यस्तु साधयेत्।
अहीनाङ्गो ह्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः॥ ९
यावन्ति रोमकूपाणि तस्य गात्रेषु देहिनः।
तावद् वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ १०
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जम्बूद्वीपपतिर्भवेत्।
स भुक्त्वा विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं स्मरते पुनः॥ ११

इसलिये विधिपूर्वक एक लाख गौओंका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वही फल माघ मासमें प्रयाग-तीर्थमें तीन दिनतक स्नान करनेसे मिलता है। जो मनुष्य गङ्गा-यमुनाके संगमपर कर्षाग्नि (कंडा जलाकर पञ्चाग्नि)-की साधना करता है, वह सभी अङ्गोंसे सम्पन्न, नीरोग और पाँचों कर्मेन्द्रियोंसे स्वस्थ हो जाता है। उस प्राणीके अङ्गोंमें जितने रोमकूप होते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुण्य क्षीण हो जानेपर वह स्वर्गसे च्युत होकर भूतलपर जम्बूद्वीपका अधिपति होता है और यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग करके पुनः प्रयागतीर्थका स्मरण करता तथा वहाँ पहुँचता है॥ ८—११॥

जलप्रवेशं यः कुर्यात् सङ्गमे लोकविश्रुते।
राहुग्रस्ते तथा सोमे विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः॥ १२
सोमलोकमवाप्नोति सोमेन सह मोदते।
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ १३
स्वर्गे च शक्रलोकेऽस्मिन्नृषिगन्धर्वसेविते।
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र समृद्धे जायते कुले॥ १४
अधःशिरास्तु यो ज्वालामूर्ध्वपादः पिबेन्नरः।
शतवर्ष सहस्राणि स्वर्गलोके महीयते॥ १५
परिभ्रष्टस्तु राजेन्द्र सोऽग्निहोत्री भवेन्नरः।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ १६
यः स्वदेहं तु कर्तित्वा शकुनिभ्यः प्रयच्छति।
विहगैरुपभुक्तस्य शृणु तस्यापि यत् फलम्॥ १७
शतं वर्षसहस्राणां सोमलोके महीयते।
तस्मादपि परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः॥ १८
गुणवान् रूपसम्पन्नो विद्वांश्च प्रियवाचकः।
भुक्त्वा तु विपुलान् भोगांस्तत् तीर्थं भजते पुनः॥ १९
यामुने चोत्तरे कूले प्रयागस्य तु दक्षिणे।
ऋणप्रमोचनं नाम तत् तीर्थं परमं स्मृतम्॥ २०
एकरात्रोषितः स्नात्वा ऋणैः सर्वैः प्रमुच्यते।
स्वर्गलोकमवाप्नोति ह्यनृणश्च सदा भवेत्॥ २१

राहुद्वारा चन्द्रमाको ग्रस्त कर लिये जानेपर अर्थात् चन्द्रग्रहणके अवसरपर जो मनुष्य इस लोकप्रसिद्ध संगमके जलमें प्रवेश करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त होकर सोमलोकको प्राप्त होता है और वहाँ चन्द्रमाके साथ आनन्द मनाता है। पुनः साठ हजार वर्षोंतक स्वर्गलोक तथा ऋषियों एवं गन्धर्वोंद्वारा सेवित इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र! स्वर्गसे च्युत होनेपर वह समृद्ध कुलमें जन्म धारण करता है। राजेन्द्र! जो मनुष्य प्रयागमें पैरोंको ऊपर और सिरको नीचे कर अग्निकी ज्वालाका पान करता है, वह एक लाख वर्षोंतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा स्वर्गसे च्युत होनेपर भूतलपर अग्निहोत्री होता है। यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर वह पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। जो मनुष्य प्रयागतीर्थमें अपने शरीरके मांसको काटकर पक्षियोंको खानेके लिये दे देता है, पक्षियोंद्वारा खाये गये शरीरवाले उस प्राणीको जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। वह एक लाख वर्षोंतक सोमलोकमें प्रतिष्ठित होता है। वहाँसे च्युत होनेपर वह इस लोकमें धर्मात्मा, गुणसम्पन्न, सौन्दर्यशाली, विद्वान् और प्रियभाषी राजा होता है तथा यहाँ प्रचुर भोगोंका उपभोग कर पुनः प्रयागतीर्थकी यात्रा करता है। प्रयागके दक्षिण और यमुनाके उत्तर तटपर ऋणप्रमोचन नामक तीर्थ है, जो परम श्रेष्ठ कहा जाता है। वहाँ एक रात निवास कर स्नान करनेसे मनुष्य सभी ऋणोंसे मुक्त हो जाता है और सदाके लिये ऋणरहित होकर स्वर्गलोकमें चला जाता है॥ १२—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये सप्ताधिकशततमोऽध्यायः॥ १०७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०७॥

एक सौ आठवाँ अध्याय

प्रयागमें अनशन-व्रत तथा एक मासतकके निवास (कल्पवास)-का महत्त्व

युधिष्ठिर उवाच

एतच्छ्रुत्वा प्रयागस्य यत् त्वया परिकीर्तितम्।
विशुद्धं मेऽद्य हृदयं प्रयागस्य तु कीर्तनात्॥ १
अनाशकफलं ब्रूहि भगवंस्तत्र कीदृशम्।
यं च लोकमवाप्नोति विशुद्धः सर्वकिल्बिषैः॥ २

युधिष्ठिरने पूछा—भगवन्! आपने जो प्रयागके माहात्म्यका वर्णन किया है, उसे सुनकर प्रयागका कीर्तन करनेसे अब मेरा हृदय विशुद्ध हो गया है। अब मुझे यह बतलाइये कि प्रयागमें अनशन (उपवास) करनेसे कैसा फल प्राप्त होता है और उसके प्रभावसे समस्त पापोंसे मुक्त होकर मनुष्य किस लोकमें जाता है?॥ १-२॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागे तु अनाशकफलं विभो।
प्राप्नोति पुरुषो श्रीमाञ् श्रद्दधानो जितेन्द्रियः॥ ३
अहीनाङ्गोऽप्यरोगश्च पञ्चेन्द्रियसमन्वितः।
अश्वमेधफलं तस्य गच्छतस्तु पदे पदे॥ ४
कुलानि तारयेद् राजन् दश पूर्वान् दशापरान्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो गच्छेत् तु परमं पदम्॥ ५

मार्कण्डेयजीने कहा—ऐश्वर्यशाली राजन्! प्रयागतीर्थमें जो श्रद्धालु विद्वान् इन्द्रियोंको वशमें करके अनशन-व्रतका पालन करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। राजेन्द्र! वह सर्वाङ्गसे सम्पन्न, नीरोग और पाँचों कर्मेन्द्रियोंसे स्वस्थ रहता है। चलते समय उसे पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। वह अपने पहलेके दस और पीछे होनेवाले दस कुलोंका उद्धार कर देता है तथा सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाता है॥ ३—५॥

युधिष्ठिर उवाच

महाभाग्यं हि धर्मस्य यत् त्वं वदसि मे प्रभो।
अल्पेनैव प्रयत्नेन बहून् धर्मानवाप्नुते॥ ६
अश्वमेधैस्तु बहुभिः प्राप्यते सुव्रतैरिह।
इमं मे संशयं छिन्धि परं कौतूहलं हि मे॥ ७

युधिष्ठिरने पूछा—प्रभो! आप मुझे जो धर्मका माहात्म्य बतला रहे हैं, उसके अनुसार एक ओर तो थोड़े ही प्रयत्नसे महान् धर्मकी प्राप्ति होती है और दूसरी ओर वह धर्म अश्वमेध-सदृश अनेकों उत्तम व्रतोंके अनुष्ठानसे मिलता है। (इस विषमताको लेकर मेरे मनमें महान् संदेह उत्पन्न हो गया है, अतः) मेरे इस संदेहका निवारण कीजिये; क्योंकि मेरे मनमें महान् आश्चर्य हो रहा है॥ ६-७॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महावीर यदुक्तं पद्मयोनिना।
ऋषीणां संनिधौ पूर्वं कथ्यमानं मया श्रुतम्॥ ८
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्।
प्रविष्टमात्रे तद्भूमावश्वमेधः पदे पदे॥ ९
व्यतीतान् पुरुषान् सप्त भविष्यांश्च चतुर्दश।
नरस्तारयते सर्वान् यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ १०
एवं ज्ञात्वा तु राजेन्द्र सदा श्रद्धापरो भवेत्।

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पूर्वकालमें पद्मयोनि ब्रह्माने ऋषियोंके निकट जिसका वर्णन किया था, उसे कहते समय मैंने भी सुना था। (वही इस समय बतला रहा हूँ।) प्रयागका मण्डल पाँच योजन विस्तारवाला है। उसकी भूमिमें प्रवेश करते ही पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य प्रयागमण्डलमें अपने प्राणोंका परित्याग करता है, वह बीती हुई सात पीढ़ियोंका तथा आनेवाली चौदह पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। ऐसा जानकर मनुष्यको सदा प्रयागके सेवनमें तत्पर होना चाहिये।

अश्रद्दधानाः पुरुषाः पापोपहतचेतसः।
प्राप्नुवन्ति न तत्स्थानं प्रयागं देवरक्षितम्॥ ११

राजेन्द्र! जिनमें श्रद्धा नहीं है तथा जिनका चित्त पापोंसे आच्छादित हो गया है, ऐसे पुरुष देवताओंद्वारा सुरक्षित उस प्रयागतीर्थमें नहीं पहुँच पाते॥ ८—११॥

युधिष्ठिर उवाच

स्नेहाद् वा द्रव्यलोभाद् वा ये तु कामवशं गताः।
कथं तीर्थफलं तेषां कथं पुण्यफलं भवेत्॥ १२
विक्रयी सर्वभाण्डानां कार्याकार्यमजानतः।
प्रयागे का गतिस्तस्य तन्मे ब्रूहि पितामह॥ १३

युधिष्ठिरने पूछा—पितामह! प्रयागमें जाकर जो लोग स्नेहसे अथवा धनके लोभसे कामनाके वशीभूत हो जाते हैं, उन्हें कैसे तीर्थ-फलकी प्राप्ति होती है तथा किस प्रकारका पुण्यफल मिलता है? जो कर्तव्य और अकर्तव्यके ज्ञानसे विहीन पुरुष वहाँ सभी प्रकारके पात्रोंका व्यापार करता है, उसकी क्या गति होती है? यह सब मुझे बतलाइये॥ १२-१३॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महागुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
मासमेकं तु यः स्नायात् प्रयागे नियतेन्द्रियः॥ १४
शुचिस्तु प्रयतो भूत्वाहिंसकः श्रद्धयान्वितः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स गच्छेत् परमं पदम्॥ १५
विश्रम्भघातकानां तु प्रयागे शृणु यत् फलम्।
त्रिकालमेव स्नायीत आहारं भैक्ष्यमाचरेत्।
त्रिभिर्मासैः स मुच्येत प्रयागे नात्र संशयः॥ १६
अज्ञानेन तु यस्येह तीर्थयात्रादिकं भवेत्।
सर्वकामसमृद्धस्तु स्वर्गलोके महीयते।
स्थानं च लभते नित्यं धनधान्यसमाकुलम्॥ १७
एवं ज्ञानेन सम्पूर्णः सदा भवति भोगवान्।
तारिताः पितरस्तेन नरकात् सपितामहाः॥ १८
धर्मानुसारि तत्त्वज्ञ पृच्छतस्ते पुनः पुनः।
त्वत्प्रियार्थं समाख्यातं गुह्यमेतत् सनातनम्॥ १९

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! यह प्रसङ्ग तो परम गोपनीय एवं समस्त पापोंका विनाशक है, इसे बतला रहा हूँ, सुनो, जो मनुष्य जितेन्द्रिय, श्रद्धायुक्त और अहिंसाव्रती होकर पवित्रभावसे नियमपूर्वक एक मासतक प्रयागमें स्नान करता है, वह समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और परमपदको प्राप्त कर लेता है। अब विश्वासघात (रूप पाप) करनेवालोंको प्रयागमें आनेपर जो फल मिलता है, उसे सुनो, वह यदि प्रयागमें तीनों (प्रातः, मध्याह्न, सायं) वेलामें स्नान करे और भिक्षा माँगकर भोजन करे तो निस्संदेह तीन महीनेमें उस पापसे मुक्त हो सकता है। जो मनुष्य अनजानमें ही प्रयागकी यात्रा आदि कार्य कर बैठता है, वह भी सम्पूर्ण कामनाओंसे परिपूर्ण होकर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है तथा धनधान्यसे परिपूर्ण अविनाशी पदको प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार जो जान-बूझकर नियमानुसार प्रयागकी यात्रा करता है, वह भोगोंसे सम्पन्न हो जाता है तथा अपने प्रपितामह आदि पितरोंका नरकसे उद्धार कर देता है। तत्त्वज्ञ! तुम्हारे बारंबार पूछनेके कारण मैंने तुम्हारा प्रिय करनेके लिये इस धर्मानुकूल परम गोपनीय एवं सनातन (अविनाशी) विषयका वर्णन किया है॥ १४—१९॥

युधिष्ठिर उवाच

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे तारितं कुलम्।
प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि दर्शनादेव ते मुने॥ २०
त्वद्दर्शनात् तु धर्मात्मन् मुक्तोऽहं चाद्य किल्बिषात्।
इदानीं वेद्मि चात्मानं भगवन् गतकल्मषम्॥ २१

युधिष्ठिर बोले—मुने! आपके दर्शनसे आज मेरा जन्म सफल हो गया और आज मैंने अपने कुलका उद्धार कर दिया। मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है तथा मैं अनुगृहीत हो गया हूँ। धर्मात्मन्! आपके दर्शनसे आज पापसे मुक्त हो गया हूँ। भगवन्! अब मैं अपनेको पापरहित अनुभव कर रहा हूँ॥ २०-२१॥

मार्कण्डेय उवाच

दिष्ट्या ते सफलं जन्म दिष्ट्या ते तारितं कुलम्।
कीर्तनाद् वर्धते पुण्यं श्रुतात् पापप्रणाशनम्॥ २२

युधिष्ठिर उवाच

यमुनायां तु किं पुण्यं किं फलं तु महामुने।
एतन्मे सर्वमाख्याहि यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥ २३

मार्कण्डेय उवाच

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
समाख्याता महाभागा यमुना तत्र निम्नगा॥ २४
येनैव निःसृता गङ्गा तेनैव यमुनाऽऽगता।
योजनानां सहस्रेषु कीर्तनात् पापनाशिनी॥ २५
तत्र स्नात्वा च पीत्वा च यमुनायां युधिष्ठिर।
कीर्तनाल्लभते पुण्यं दृष्ट्वा भद्राणि पश्यति॥ २६
अवगाह्याथ पीत्वा च पुनात्यासप्तमं कुलम्।
प्राणांस्त्यजति यस्तत्र स याति परमां गतिम्॥ २७
अग्नितीर्थमिति ख्यातं यमुनादक्षिणे तटे।
पश्चिमे धर्मराजस्य तीर्थं तु नरकं स्मृतम्॥ २८
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
एवं तीर्थसहस्राणि यमुनादक्षिणे तटे॥ २९
उत्तरेण प्रवक्ष्यामि आदित्यस्य महात्मनः।
तीर्थं नीरुजकं* नाम यत्र देवा सवासवाः॥ ३०
उपासते सदा संध्यां त्रिकालं हि युधिष्ठिर।
देवाः सेवन्ति तत् तीर्थं ये चान्ये विदुषो जनाः॥ ३१
श्रद्दधानपरो भूत्वा कुरु तीर्थाभिषेचनम्।
अन्ये च बहवस्तीर्थाः सर्वपापहराः स्मृताः।
तेषु स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ३२

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! तुम्हारे सौभाग्यसे तुम्हारा जन्म सफल हुआ है और सौभाग्यसे ही तुम्हारे कुलका उद्धार हुआ है। प्रयागतीर्थका नाम लेनेसे पुण्यकी वृद्धि होती है और श्रवण करनेसे पापका नाश होता है॥ २२॥

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! यमुनामें स्नान करनेपर कैसा पुण्य होता है और कैसा फल प्राप्त होता है, इस विषयमें आपने जैसा देखा एवं सुना हो, वह सब मुझे बतलाइये॥ २३॥

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! महाभागा यमुनादेवी सूर्यकी कन्या हैं। ये तीनों लोकोंमें विख्यात हैं। प्रयागमें (संगम-स्थलपर) ये नदीरूपसे विशेष ख्याति प्राप्त कर रही हैं। जहाँसे गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है, वहींसे यमुना भी उद्भूत हुई हैं। ये हजार योजन (चार हजार मील) दूरसे भी नाम लेनेसे पापोंका नाश करनेवाली हैं। युधिष्ठिर! यमुनामें स्नान, जलपान और यमुनाका नाम-कीर्तन करनेसे महान् पुण्यकी प्राप्ति होती है तथा दर्शन करनेसे मनुष्यको अपने जीवनमें कल्याणकारी अवसर देखनेको मिलते हैं। यमुनामें स्नान और जलपान करके मनुष्य अपने सात कुलोंको पावन बना देता है, परंतु जो यमुना-तटपर अपने प्राणोंका त्याग करता है, वह परमगतिको प्राप्त हो जाता है। यमुनाके दक्षिण तटपर सुप्रसिद्ध अग्नितीर्थ है और उसमें पश्चिम दिशामें धर्मराजका तीर्थ है, जो नरक नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकको चले जाते हैं तथा जो लोग वहाँ प्राण-त्याग करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता अर्थात् वे मुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार यमुनाके दक्षिण तटपर हजारों तीर्थ हैं। युधिष्ठिर! अब मैं यमुनाके उत्तर तटपर महात्मा सूर्यके नीरुजक (निरंजन) नामक तीर्थका वर्णन कर रहा हूँ, जहाँ इन्द्रसहित सभी देवता त्रिकाल संध्योपासन करते हैं। देवता तथा अन्यान्य विद्वज्जन सदा उस तीर्थका सेवन करते हैं। इसी प्रकार और भी बहुत-से तीर्थ हैं, जो समस्त पापोंके विनाशक बतलाये जाते हैं। इसलिये तुम भी श्रद्धापरायण होकर उन तीर्थोंमें स्नान करो; क्योंकि उन तीर्थोंमें स्नान करके मनुष्य स्वर्गलोकमें चले जाते हैं और जो वहाँ मरते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

* इसका—'विरुजकम्' तथा 'निरञ्जनम्' नाम पाठान्तर भी मिलता है।

गङ्गा च यमुना चैव उभे तुल्यफले स्मृते।
केवलं ज्येष्ठभावेन गङ्गा सर्वत्र पूज्यते॥ ३३
एवं कुरुष्व कौन्तेय सर्वतीर्थाभिषेचनम्।
यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति॥ ३४
यस्त्विमं कल्य उत्थाय पठते च शृणोति च।
मुच्यते सर्वपापेभ्यः स्वर्गलोकं स गच्छति॥ ३५

गङ्गा और यमुना—ये दोनों समान फल देनेवाली बतलायी जाती हैं। केवल ज्येष्ठ होनेके कारण गङ्गाकी सर्वत्र पूजा होती है। कुन्तीनन्दन! इस प्रकार तुम सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करो; क्योंकि ऐसा करनेसे जीवनपर्यन्त किया हुआ सारा पाप तत्काल ही नष्ट हो जाता है। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस प्रसङ्गका पाठ अथवा श्रवण करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है तथा उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है॥ ३४—३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये अष्टाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०८॥

एक सौ नवाँ अध्याय

अन्य तीर्थोंकी अपेक्षा प्रयागकी महत्ताका वर्णन

मार्कण्डेय उवाच

श्रुतं मे ब्रह्मणा प्रोक्तं पुराणे ब्रह्मसम्भवे।
तीर्थानां तु सहस्राणि शतानि नियुतानि च।
सर्वे पुण्याः पवित्राश्च गतिश्च परमा स्मृता॥ १
सोमतीर्थं महापुण्यं महापातकनाशनम्।
स्नानमात्रेण राजेन्द्र पुरुषांस्तारयेच्छतम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नानं समाचरेत्॥ २

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र! मैंने ब्रह्माके मुखसे प्रादुर्भूत हुए पुराणोंमें ब्रह्माद्वारा कहे जाते हुए सुना है कि तीर्थोंकी संख्या कहीं सौ, कहीं हजार और कहीं लाखोंतक बतलायी गयी है। ये सभी पुण्यप्रद एवं परम पवित्र हैं। (इनमें स्नान करनेसे) परम गतिकी प्राप्ति बतलायी गयी है। इन्हीं तीर्थोंमें सोमतीर्थ महान् पुण्यप्रद एवं महापातकोंका विनाशक है। वहाँ केवल स्नान करनेसे वह स्नानकर्ताके सौ पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है, अतः सभी उपायोंद्वारा वहाँ स्नान अवश्य करना चाहिये॥ १-२॥

युधिष्ठिर उवाच

पृथिव्यां नैमिषं पुण्यमन्तरिक्षे च पुष्करम्।
त्रयाणामपि लोकानां कुरुक्षेत्रं विशिष्यते॥ ३
सर्वाणि तानि संत्यज्य कथमेकं प्रशंससि।
अप्रमाणं तु तत्रोक्तमश्रद्धेयमनुत्तमम्॥ ४
गतिं च परमां दिव्यां भोगांश्चैव यथेप्सितान्।
किमर्थमल्पयोगेन बहु धर्मं प्रशंससि।
एतन्मे संशयं ब्रूहि यथादृष्टं यथाश्रुतम्॥ ५

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! भूतलपर नैमिषारण्य और अन्तरिक्षमें पुष्कर पुण्यप्रद माने गये हैं तथा तीनों लोकोंमें कुरुक्षेत्रकी विशेषता बतलायी जाती है, परंतु आप इन सबको छोड़कर एक प्रयागकी ही प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? साथ ही वहाँ जानेसे परम दिव्य गति और अभीष्ट मनोरथोंकी प्राप्ति भी बतला रहे हैं, आपका यह कथन मुझे प्रमाणरहित, अश्रद्धेय और अनुचित प्रतीत हो रहा है। आप थोड़े-से परिश्रमसे बहुत बड़े धर्मकी प्राप्तिकी प्रशंसा किसलिये कर रहे हैं? अतः इस विषयमें आपने जैसा देखा अथवा सुना हो, उसके अनुसार कहकर मेरे इस संशयको दूर कीजिये॥ ३—५॥

मार्कण्डेय उवाच

अश्रद्धेयं न वक्तव्यं प्रत्यक्षमपि यद् भवेत्।
नरस्याश्रद्दधानस्य पापोपहतचेतसः॥ ६

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! जो श्रद्धाहीन है तथा जिसके चित्तपर पापने अपना स्वत्व जमा लिया है, ऐसे मनुष्यकी आँखोंके सामने जो बात घटित हो रही

अश्रद्दधानो ह्यशुचिर्दुर्मतिस्त्यक्तमङ्गलः।
एते पातकिनः सर्वे तेनेदं भाषितं त्वया॥ ७
शृणु प्रयागमाहात्म्यं यथादृष्टं यथाश्रुतम्।
प्रत्यक्षं च परोक्षं च यथान्यस्तं भविष्यति॥ ८
शास्त्रं प्रमाणं कृत्वा च युज्यते योगमात्मनः।
क्लिश्यते चापरस्तत्र नैव योगमवाप्नुयात्॥ ९
जन्मान्तरसहस्रेभ्यो योगो लभ्येत वा न वा।
तथा युगसहस्रेण योगो लभ्येत मानवैः॥ १०
यस्तु सर्वाणि रत्नानि ब्राह्मणेभ्यः प्रयच्छति।
तेन दानेन दत्तेन योगं नाभ्येति मानवः॥ ११
प्रयागे तु मृतस्येदं सर्वं भवति नान्यथा।
प्रधानहेतुं वक्ष्यामि श्रद्दधत्स्व च भारत॥ १२
यथा सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र दृश्यते।
ब्राह्मणे चास्ति यत्किंचित्तद् ब्राह्ममिति चोच्यते॥ १३
एवं सर्वेषु भूतेषु ब्रह्म सर्वत्र पूज्यते।
तथा सर्वेषु लोकेषु प्रयागं पूजयेद् बुधः॥ १४
पूज्यते तीर्थराजस्तु सत्यमेव युधिष्ठिर।
ब्रह्मापि स्मरते नित्यं प्रयागं तीर्थमुत्तमम्॥ १५
तीर्थराजमनुप्राप्य न चान्यत् किंचिदर्हति।
को हि देवत्वमासाद्य मनुष्यत्वं चिकीर्षति॥ १६
अनेनैवोपमानेन त्वं ज्ञास्यसि युधिष्ठिर।
यथा पुण्यतमं चास्ति तथैव कथितं मया॥ १७

युधिष्ठिर उवाच

श्रुतं चेदं त्वया प्रोक्तं विस्मितोऽहं पुनः पुनः।
कथं योगेन तत्प्राप्तिः स्वर्गवासस्तु कर्मणा॥ १८

है, उसे 'अश्रद्धेय' तो नहीं कहना चाहिये। अश्रद्धालु, अपवित्र, दुर्बुद्धि और माङ्गलिक कार्योंसे विमुख—ये सभी पापी कहलाते हैं। (ऐसा प्रतीत होता है कि मानो तुम्हारे सिरपर भी कोई पाप सवार है) जिसके कारण तुमने ऐसी बात कही है। अब प्रयागका माहात्म्य जैसा मैंने देखा अथवा सुना है, उसे बतला रहा हूँ, सुनो। जगत्में जो बात प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूपमें देखी अथवा सुनी गयी हो, उसे शास्त्रोंद्वारा प्रमाणित कर अपने कल्याण-कार्यमें लगाना चाहिये। जो ऐसा नहीं करता, वह कष्टभागी होता है और उसे योगकी प्राप्ति नहीं होती। यह योग हजारों युगों या जन्मोंमें किन्हीं मनुष्योंको सुलभ होता या नहीं भी होता है। जो मनुष्य सभी प्रकारके रत्न ब्राह्मणोंको दान करता है, परंतु उस दानके प्रभावसे भी उसे उस योगकी प्राप्ति नहीं होती। किंतु प्रयागमें मरनेवालेको वह सब कुछ सुलभ हो जाता है, उसमें कुछ भी विपरीतता नहीं होती। भारत! मैं इसका प्रधान कारण बतला रहा हूँ, उसे श्रद्धापूर्वक सुनो॥ ६—१२॥

जैसे ब्रह्म सभी प्राणियोंमें सर्वत्र विद्यमान रहता है, और ब्राह्मणमें उसका कुछ विशेष अंश रहता है, जिसके कारण वह सब ब्राह्म कहे जाते हैं। जिस प्रकार सभी प्राणियोंमें सर्वत्र ब्रह्मकी सत्ता मानकर उनकी पूजा होती है (परंतु ब्राह्मण विशेषरूपसे पूजित होता है), उसी प्रकार विद्वान् लोग सभी तीर्थोंमें प्रयागको विशेष मान्यता देते हैं। युधिष्ठिर! सचमुच तीर्थराज पूजनीय है। ब्रह्मा भी इस उत्तम प्रयागतीर्थका नित्य स्मरण करते हैं। ऐसे तीर्थराजको पाकर मनुष्यको किसी अन्य वस्तुको प्राप्त करनेकी इच्छा नहीं रह जाती। भला कौन ऐसा मनुष्य होगा जो देवत्वको पाकर मनुष्य बननेकी इच्छा करेगा। युधिष्ठिर! इसी उपमानसे तुम समझ जाओगे (कि प्रयागका इतना महत्त्व क्यों है)। जिस प्रकार प्रयाग सभी तीर्थोंमें विशेष पुण्यप्रद है, वैसा मैंने तुम्हें बतला दिया॥ १३—१७॥

युधिष्ठिरने पूछा—महर्षे! मैंने आपके द्वारा कहा गया प्रयाग-माहात्म्य तो सुना, किंतु इस योगरूप कर्मसे वैसे महान् फलकी प्राप्ति कैसे होती है तथा स्वर्गमें निवास कैसे मिलता है, इस विषयको सोचकर मैं बारंबार विस्मयविमुग्ध हो रहा हूँ;

दाता वै लभते भोगान् गां च यत्कर्मणः फलम्।
तानि कर्माणि पृच्छामि पुनस्तैः प्राप्यते मही॥ १९

अतः जिन कर्मोंके फलस्वरूप दाताको ऐहलौकिक भोग और पृथ्वीकी प्राप्ति होती है तथा जन्मान्तरमें जिन कर्मोंके प्रभावसे पुनः पृथ्वीपर अधिकार प्राप्त होता है, उन्हीं कर्मोंको मैं जानना चाहता हूँ, अतः उन्हें बतलानेकी कृपा करें॥ १८-१९॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् महाबाहो यथोक्तकरणं महीम्।
गामग्निं ब्राह्मणं शास्त्रं काञ्चनं सलिलं स्त्रियः॥ २०
मातरं पितरं चैव ये निन्दन्ति नराधमाः।
न तेषामूर्ध्वगमनमिदमाह प्रजापतिः॥ २१
एवं योगस्य सम्प्राप्तिस्थानं परमदुर्लभम्।
गच्छन्ति नरकं घोरं ये नराः पापकर्मिणः॥ २२
हस्त्यश्वं गामनड्वाहं मणिमुक्तादिकाञ्चनम्।
परोक्षं हरते यस्तु पश्चाद् दानं प्रयच्छति॥ २३
न ते गच्छन्ति वै स्वर्गं दातारो यत्र भोगिनः।
अनेककर्मणा युक्ताः पच्यन्ते नरके पुनः॥ २४
एवं योगं च धर्मं च दातारं च युधिष्ठिर।
यथा सत्यमसत्यं वा अस्ति नास्तीति यत्फलम्।
निरुक्तं तु प्रवक्ष्यामि यथाह स्वयमंशुमान्॥ २५

मार्कण्डेयजीने कहा—महाबाहु राजन्! मैंने जैसा करनेके लिये कहा है, उस विषयमें पुनः सुनो। जो नीच मनुष्य पृथ्वी, गौ, अग्नि, ब्राह्मण, शास्त्र, काञ्चन, जल, स्त्री, माता और पिताकी निन्दा करते हैं, उनकी ऊर्ध्वगति नहीं होती—ऐसा प्रजापति ब्रह्माने कहा है। अतः इस प्रकारके कर्मोंद्वारा योगकी प्राप्तिका स्थान परम दुर्लभ है; क्योंकि जो मनुष्य पापकर्ममें निरत रहते हैं, वे घोर नरकमें जाते हैं। जो मनुष्य परोक्षमें दूसरेकी हाथी, घोड़ा, गौ, बैल, मणि, मुक्ता और सुवर्ण आदि वस्तुओंको चुरा लेता है और पीछे उसे दान कर देता है, ऐसे लोग उस स्वर्गलोकमें नहीं जाते, जहाँ (अपनी वस्तु दान करनेवाले) दाता सुख भोगते हैं, अपितु वे अनेकों पाप-कर्मोंसे युक्त होकर पुनः नरकमें कष्ट भोगते हैं। युधिष्ठिर! इस प्रकार योग, धर्म, दाता, सत्य, असत्य, अस्ति, नास्तिका जो फल कहा गया है तथा स्वयं सूर्यने जैसा बतलाया है, वही मैं तुमसे वर्णन कर रहा हूँ॥ २०—२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये नवाधिकशततमोऽध्यायः॥ १०९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १०९॥

एक सौ दसवाँ अध्याय

जगत्‌के समस्त पवित्र तीर्थोंका प्रयागमें निवास

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागस्य माहात्म्यं पुनरेव तु।
नैमिषं पुष्करं चैव गोतीर्थं सिन्धुसागरम्॥ १
गया च धेनुकं चैव गङ्गासागरमेव च।
एते चान्ये च बहवो ये च पुण्याः शिलोच्चयाः॥ २
दश तीर्थसहस्राणि तिस्त्रः कोट्यस्तथा पराः।
प्रयागे संस्थिता नित्यमेवमाहुर्मनीषिणः॥ ३
त्रीणि चाप्यग्निकुण्डानि येषां मध्ये तु जाह्नवी।
प्रयागादभिनिष्क्रान्ता सर्वतीर्थनमस्कृता॥ ४

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! पुनः प्रयागका ही माहात्म्य सुनो। विद्वानोंका ऐसा कथन है कि नैमिषारण्य, पुष्कर, गोतीर्थ, सिन्धुसागर, गयातीर्थ, धेनुक (गयाके पासका एक तीर्थ) और गङ्गासागर—ये तथा इनके अतिरिक्त तीन करोड़ दस हजार जो अन्य तीर्थ हैं, वे सभी एवं पुण्यप्रद पर्वत प्रयागमें नित्य निवास करते हैं। यहाँ तीन अग्निकुण्ड भी हैं, जिनके बीचसे सम्पूर्ण तीर्थोंद्वारा नमस्कृत गङ्गा प्रवाहित होती हुई प्रयागसे आगे निकलती हैं।

तपनस्य सुता देवी त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
यमुना गङ्गया सार्धं संगता लोकभाविनी॥ ५

गङ्गायमुनयोर्मध्ये पृथिव्या जघनं स्मृतम्।
प्रयागं राजशार्दूल कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ ६

तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च तीर्थानां वायुरब्रवीत्।
दिवि भुव्यन्तरिक्षे च तत् सर्वं तव जाह्नवि॥ ७

प्रयागं सप्रतिष्ठानं कम्बलाश्वतरावुभौ।
भोगवत्यथ या चैषा वेदिरेषा प्रजापतेः॥ ८

तत्र वेदाश्च यज्ञाश्च मूर्तिमन्तो युधिष्ठिर।
प्रजापतिमुपासन्ते ऋषयश्च तपोधनाः॥ ९

यजन्ते क्रतुभिर्देवास्तथा चक्रधरा नृपाः।
ततः पुण्यतमो नास्ति त्रिषु लोकेषु भारत॥ १०

उसी प्रकार तीनों लोकोंमें विख्यात लोकभाविनी सूर्य-पुत्री यमुनादेवी यहाँ गङ्गाके साथ सम्मिलित हुई हैं। गङ्गा और यमुनाका यह मध्यभाग पृथ्वीका जघनस्थल कहा जाता है। राजसिंह! भूतल, अन्तरिक्ष और स्वर्गलोक—सभी जगहमें कुल मिलाकर साढ़े तीन करोड़ तीर्थ हैं, परंतु वे सभी प्रयागस्थित गङ्गाकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते—ऐसा वायुने कहा है। अतः गङ्गाकी ही प्रधानता मानी गयी है। प्रयागमें झूँसी है। यहाँ कम्बल और अश्वतर नामक दोनों नागोंका निवासस्थान है। यहाँ जो भोगवती तीर्थ है, वह प्रजापति ब्रह्माकी वेदी है। युधिष्ठिर! वहाँ शरीरधारी वेद एवं यज्ञ तथा तपोधन महर्षिगण ब्रह्माकी उपासना करते हैं। भारत! वहाँ देवगण तथा चक्रवर्ती सम्राट् यज्ञोंद्वारा यजन करते रहते हैं॥ १—१०॥

प्रयागः सर्वतीर्थेभ्यः प्रभवत्यधिकं विभो।
यत्र गङ्गा महाभागा स देशस्तत्तपोधनम्॥ ११

सिद्धक्षेत्रं च विज्ञेयं गङ्गातीरसमन्वितम्।
इदं सत्यं विजानीयात् साधूनामात्मनश्च वै॥ १२

सुहृदश्च जपेत् कर्णे शिष्यस्यानुगतस्य च।
इदं धन्यमिदं स्वर्ग्यमिदं सत्यमिदं सुखम्॥ १३

इदं पुण्यमिदं धर्म्यं पावनं धर्ममुत्तमम्।
महर्षीणामिदं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ १४

अधीत्य च द्विजोऽप्येतन्निर्मलः स्वर्गमाप्नुयात्।
य इदं शृणुयान्नित्यं तीर्थं पुण्यं सदा शुचिः॥ १५

जातिस्मरत्वं लभते नाकपृष्ठे च मोदते।
प्राप्यन्ते तानि तीर्थानि सद्भिः शिष्टानुदर्शिभिः॥ १६

स्नाहि तीर्थेषु कौरव्य न च वक्रमतिर्भव।
त्वया च सम्यक् पृष्टेन कथितं वै मया विभो॥ १७

पितरस्तारिताः सर्वे तथैव च पितामहाः।
प्रयागस्य तु सर्वे ते कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १८

एवं ज्ञानं च योगश्च तीर्थं चैव युधिष्ठिर।

विभो! तीनों लोकोंमें प्रयागसे बढ़कर अन्य कोई तीर्थ नहीं है, सबसे अधिक प्रभावशालिनी महाभागा गङ्गा जहाँ वर्तमान हैं, वह देश तपोमय (श्रेष्ठ सत्त्वसे युक्त) है। इस गङ्गाके तटवर्ती क्षेत्रको सिद्धक्षेत्र जानना चाहिये। इस माहात्म्यको सत्य मानना चाहिये और साधुओं तथा अपने मित्रों एवं आज्ञाकारी शिष्योंके कानमें ही इसे बतलाना उचित है। यह प्रयाग-माहात्म्य धन्य, स्वर्गप्रद, सत्य, सुखदायक, पुण्यप्रद, धर्मसम्पन्न, परम पावन, श्रेष्ठ धर्मस्वरूप और समस्त पापोंका विनाशक है। यह महर्षियोंके लिये भी अत्यन्त गोपनीय है। इसका पाठकर द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) पापरहित हो स्वर्गको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य पवित्रतापूर्वक इस अविनाशी एवं पुण्यप्रद तीर्थमाहात्म्यको सदा सुनता है, उसे जातिस्मरत्व (जन्मान्तर-स्मरण)-की प्राप्ति हो जाती है और वह स्वर्गलोकमें आनन्दका उपभोग करता है। कौरवकुलश्रेष्ठ युधिष्ठिर! शिष्ट पुरुषोंका अनुकरण करनेवाले सत्पुरुष ही इन तीर्थोंमें पहुँच पाते हैं, अतः तुम इन तीर्थोंमें स्नान करो, अश्रद्धा मत करो। सामर्थ्यशाली राजन्! तुम्हारे पूछनेपर ही मैंने सम्यक्‌रूपसे इसका वर्णन किया है। ऐसा प्रश्न कर तुमने अपने पितामह आदि सभी पितरोंका उद्धार कर दिया। (अन्य जितने तीर्थ हैं) वे सभी प्रयागकी सोलहवीं कलाकी बराबरी नहीं कर सकते। युधिष्ठिर! इस प्रकारके ज्ञान, योग और तीर्थकी प्राप्तिका

बहुक्लेशेन युज्यन्ते तेन यान्ति परां गतिम्।
त्रिकालं जायते ज्ञानं स्वर्गलोकं गमिष्यति॥ १९

संयोग बड़े कष्टसे मिलता है; क्योंकि उसके संयोगसे मनुष्यको परमगतिकी प्राप्ति हो जाती है, उसके हृदयमें तीनों कालोंका ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह स्वर्गलोकको चला जाता है॥ ११—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयाग-माहात्म्यमें एक सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।॥ ११०॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय

प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु और शिवके निवासका वर्णन

युधिष्ठिर उवाच

कथं सर्वमिदं प्रोक्तं प्रयागस्य महामुने।
एतन्नः सर्वमाख्याहि यथा हि मम तारयेत्॥ १

युधिष्ठिरने पूछा—महामुने! आपने तो यह सारा महत्त्व प्रयागका ही बतलाया है, इसका क्या कारण है? यह सब मुझे बतलाइये, जिससे मेरा तथा मेरे कुटुम्बका उद्धार हो जाय॥ १॥

मार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन् प्रयागे तु प्रोक्तं सर्वमिदं जगत्।
ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानो देवताः प्रभुरव्ययः॥ २
ब्रह्मा सृजति भूतानि स्थावरं जङ्गमं च यत्।
तान्येतानि परं लोके विष्णुः संवर्धते प्रजाः॥ ३
कल्पान्ते तत् समग्रं हि रुद्रः संहरते जगत्।
तदा प्रयागतीर्थं च न कदाचिद् विनश्यति॥ ४
ईश्वरं सर्वभूतानां यः पश्यति स पश्यति।
यत्नेनानेन तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम्॥ ५

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! इसका कारण सुनो। प्रयागमें इस सारे जगत्का निवास बतलाया जाता है। यहाँ अविनाशी एवं सामर्थ्यशाली ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा सम्पूर्ण देवता वास करते हैं, ब्रह्मा जिन स्थावर-जङ्गमरूप प्राणियोंकी सृष्टि करते हैं, उन सभी प्रजाओंका इस लोकमें भगवान् विष्णु पालन करते हैं तथा कल्पान्तमें रुद्र इस सारे जगत्का संहार कर देते हैं, किंतु इस प्रयागतीर्थका कभी विनाश नहीं होता। सम्पूर्ण प्राणियोंका जो ईश्वर है, उसे जो देखता है, वही सचमुच देखनेवाला है। इस प्रयत्नसे जो लोग प्रयागमें निवास करते हैं, वे परमगतिको प्राप्त होते हैं॥ २—५॥

युधिष्ठिर उवाच

आख्याहि मे यथातथ्यं यथैषा तिष्ठति श्रुतिः।
केन वा कारणेनैव तिष्ठन्ते लोकसत्तमाः॥ ६

युधिष्ठिरने पूछा—मुने! ये लोकश्रेष्ठ देवगण किस कारणवश प्रयागमें निवास करते हैं, इस विषयमें जैसा श्रुति-वचन हो, उसके अनुसार मुझे यथार्थरूपसे बतलाइये॥ ६॥

मार्कण्डेय उवाच

प्रयागे निवसन्त्येते ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
कारणं तत् प्रवक्ष्यामि शृणु तत्त्वं युधिष्ठिर॥ ७
पञ्चयोजनविस्तीर्णं प्रयागस्य तु मण्डलम्।
तिष्ठन्ति रक्षणायात्र पापकर्मनिवारणात्॥ ८
उत्तरेण प्रतिष्ठानाच्छद्मना ब्रह्म तिष्ठति।
वेणीमाधवरूपी तु भगवांस्तत्र तिष्ठति॥ ९

मार्कण्डेयजीने कहा—युधिष्ठिर! ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिस प्रयोजनसे प्रयागमें निवास करते हैं, वह कारण बतला रहा हूँ; उसके तत्त्वको श्रवण करो। प्रयागका मण्डल पाँच योजनमें फैला हुआ है। यहाँ पापकर्मका निवारण तथा प्राणियोंकी रक्षा करनेके लिये उपर्युक्त देवगण निवास करते हैं। प्रतिष्ठानपुरसे उत्तरकी ओर गुप्तरूपसे ब्रह्माजी निवास करते हैं। भगवान् विष्णु प्रयागमें वेणीमाधवरूपसे विद्यमान हैं

महेश्वरो वटो भूत्वा तिष्ठते परमेश्वरः।
ततो देवाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षयः।
रक्षन्ति मण्डलं नित्यं पापकर्मनिवारणात्॥ १०
यस्मिञ्जुह्वन् स्वकं पापं नरकं च न पश्यति।
एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च प्रयागे समहेश्वरः॥ ११
सप्तद्वीपाः समुद्राश्च पर्वताश्च महीतले।
रक्षमाणाश्च तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १२
ये चान्ये बहवः सर्वे तिष्ठन्ति च युधिष्ठिर।
पृथिवीं तत्समाश्रित्य निर्मिता दैवतैस्त्रिभिः॥ १३
प्रजापतेरिदं क्षेत्रं प्रयागमिति विश्रुतम्।
एतत् पुण्यं पवित्रं वै प्रयागं च युधिष्ठिर।
स्वराज्यं कुरु राजेन्द्र भ्रातृभिः सहितोऽनघ॥ १४

तथा परमेश्वर शिव अक्षयवटके रूपमें स्थित हैं। इनके अतिरिक्त गन्धर्वोंसहित देवगण, सिद्धसमूह तथा यूथ-के-यूथ परमर्षि पाप-कर्मसे निवारण करनेके निमित्त नित्य प्रयागमण्डलकी रक्षा करते हैं, जिस मण्डलमें अपने पापोंका हवन करके प्राणी नरकका दर्शन नहीं करता, इस प्रकार प्रयागमें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, सातों द्वीप, सातों समुद्र और भूतलपर स्थित सभी पर्वत उसकी रक्षा करते हुए प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। युधिष्ठिर! इनके अतिरिक्त अन्य जो बहुत-से देवता पृथ्वीका आश्रय लेकर निवास करते हैं, उनके निवासस्थानका निर्माण इन्हीं तीनों देवताओंद्वारा हुआ है। यह प्रयाग प्रजापति ब्रह्माका क्षेत्र है—ऐसी प्रसिद्धि है। युधिष्ठिर! यह प्रयाग पुण्यप्रद एवं परम पवित्र है। निष्पाप राजेन्द्र! तुम अपने भाइयोंके साथ अपना राज्य-कार्य सँभालो॥ ७—१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्ये एकादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ १११॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रयागमाहात्म्यमें एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ।॥ १११॥

एक सौ बारहवाँ अध्याय

भगवान् वासुदेवद्वारा प्रयागके माहात्म्यका वर्णन

नन्दिकेश्वर उवाच

भ्रातृभिः सहितः सर्वैर्द्रौपद्या सह भार्यया।
ब्राह्मणेभ्यो नमस्कृत्य गुरून् देवानतर्पयत्॥ १
वासुदेवोऽपि तत्रैव क्षणेनाभ्यागतस्तदा।
पाण्डवैः सहितैः सर्वैः पूज्यमानस्तु माधवः॥ २
कृष्णेन सहितैः सर्वैः पुनरेव महात्मभिः।
अभिषिक्तः स्वराज्ये च धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः॥ ३
एतस्मिन्नन्तरे चैव मार्कण्डेयो महामुनिः।
ततः स्वस्तीति चोक्त्वा तु क्षणादाश्रममागमत्॥ ४
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः सहितोऽवसत्।
महादानं ततो दत्त्वा धर्मपुत्रो महामनाः॥ ५
यस्त्विदं कल्य उत्थाय माहात्म्यं पठते नरः।
प्रयागं स्मरते नित्यं स याति परमं पदम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति॥ ६

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! तदनन्तर धर्मराज युधिष्ठिरने अपने सभी भाइयों तथा पत्नी द्रौपदीके साथ ब्राह्मणोंको नमस्कार कर देवताओं एवं अपने गुरुजनोंको तर्पणद्वारा तृप्त किया। भगवान् वासुदेव भी अकस्मात् उसी क्षण वहाँ आ पहुँचे। तब सभी पाण्डवोंने मिलकर भगवान् श्रीकृष्णकी पूजा की। तत्पश्चात् सभी महात्माओंके साथ-साथ भगवान् श्रीकृष्णने धर्मपुत्र युधिष्ठिरको पुनः उनके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। इसी बीच महामुनि मार्कण्डेय 'स्वस्ति—तुम्हारा कल्याण हो'—यों कहकर क्षणमात्रमें अपने आश्रमको लौट गये। तदनन्तर महामना एवं धर्मात्मा धर्मपुत्र युधिष्ठिर भी बड़ा-बड़ा दान देकर भाइयोंके साथ वहाँ निवास करने लगे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर इस माहात्म्यका पाठ करता है तथा नित्य प्रयागका स्मरण करता है, वह परमपदको प्राप्त कर लेता है तथा समस्त पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकको चला जाता है॥ १—६॥

वासुदेव उवाच

मम वाक्यं च कर्तव्यं महाराज ब्रवीम्यहम्।
नित्यं जपस्व जुह्वस्व प्रयागे विगतज्वरः॥ ७
प्रयागं स्मर वै नित्यं सहास्माभिर्युधिष्ठिर।
स्वयं प्राप्स्यति राजेन्द्र स्वर्गलोकं न संशयः॥ ८
प्रयागमनुगच्छेद् वा वसते वापि यो नरः।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥ ९
प्रतिग्रहादुपावृत्तः संतुष्टो नियतः शुचिः।
अहंकारनिवृत्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ १०
अक्रोपनश्च सत्यश्च सत्यवादी दृढव्रतः।
आत्मोपमश्च भूतेषु स तीर्थफलमश्नुते॥ ११
ऋषिभिः क्रतवः प्रोक्ता देवैश्चापि यथाक्रमम्।
न हि शक्या दरिद्रेण यज्ञाः प्राप्तुं महीपते॥ १२
बहूपकरणा यज्ञा नानासम्भारविस्तराः।
प्राप्यन्ते पार्थिवैरेतैः समृद्धैर्वा नरैः क्वचित्॥ १३
यो दरिद्रैरपि विधिः शक्यः प्राप्तुं नरेश्वर।
तुल्यो यज्ञफलैः पुण्यैस्तन्निबोध युधिष्ठिर॥ १४
ऋषीणां परमं गुह्यमिदं भरतसत्तम।
तीर्थानुगमनं पुण्यं यज्ञेभ्योऽपि विशिष्यते॥ १५
दश तीर्थसहस्राणि तिस्रः कोट्यस्तथाऽऽपगाः।
माघमासे गमिष्यन्ति गङ्गायां भरतर्षभ॥ १६
स्वस्थो भव महाराज भुङ्क्ष्व राज्यमकण्टकम्।
पुनर्द्रक्ष्यसि राजेन्द्र यजमानो विशेषतः॥ १७

नन्दिकेश्वर उवाच

इत्युक्त्वा स महाभागो वासुदेवो महातपाः।
युधिष्ठिरस्य नृपतेस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १८
ततस्तत्र समाप्लाव्य गात्राणि सगणो नृपः।
यथोक्तेनाथ विधिना परां निर्वृतिमागमत्॥ १९
तथा त्वमपि देवर्षे प्रयागाभिमुखो भव।
अभिषेकं तु कृत्वाद्य कृतकृत्यो भविष्यसि॥ २०

सूत उवाच

एवमुक्त्वाथ नन्दीशस्तत्रैवान्तरधीयत।
नारदोऽपि जगामाशु प्रयागाभिमुखस्तथा॥ २१

भगवान् वासुदेवने कहा—महाराज युधिष्ठिर! मैं जैसा कह रहा हूँ, मेरे उस वचनका पालन कीजिये। आप प्रयागमें जाकर संतापरहित हो नित्य भगवन्नामका जप और हवन कीजिये तथा हमलोगोंके साथ नित्य प्रयागका स्मरण कीजिये। राजेन्द्र! ऐसा करनेसे आप स्वयं स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। जो मनुष्य प्रयागकी यात्रा करता है अथवा वहाँ निवास करता है, उसका आत्मा समस्त पापोंसे विशुद्ध हो जाता है और वह रुद्रलोकको चला जाता है। जो प्रतिग्रह (दान लेने)-से विमुख, संतुष्ट, जितेन्द्रिय, पवित्र और अहंकारसे दूर रहता है, उसे तीर्थफलकी प्राप्ति होती है। जो क्रोधरहित, ईमानदार, सत्यवादी, दृढ़व्रत और समस्त प्राणियोंके प्रति अपने समान ही व्यवहार करता है, वह तीर्थफलका भागी होता है। महीपते! ऋषियों तथा देवताओंने क्रमशः जिन यज्ञोंका विधान बतलाया है, उन यज्ञोंका अनुष्ठान निर्धन मनुष्य नहीं कर सकता; क्योंकि उन यज्ञोंमें बहुत-से उपकरणों तथा नाना प्रकारकी सामग्रियोंकी आवश्यकता पड़ती है। इनका अनुष्ठान तो राजा अथवा कहीं-कहीं कुछ समृद्धिशाली मनुष्य ही कर सकते हैं। नरेश्वर युधिष्ठिर! निर्धन मनुष्योंद्वारा भी जिस विधिका पालन किया जा सकता है और जो पुण्यमें यज्ञफलके समान है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनो! भरतसत्तम! यह पुण्यमयी तीर्थयात्रा ऋषियोंके लिये भी परम गोपनीय है तथा यज्ञोंसे भी बढ़कर फलदायक है। भरतर्षभ! दस हजार तीर्थ तथा तीन करोड़ नदियाँ माघमासमें गङ्गामें आकर निवास करती हैं। महाराज! आप स्वस्थ हो जायँ और निष्कण्टक राज्यका उपभोग करें। राजेन्द्र! पुनः कभी विशेषरूपसे यज्ञ करते समय आप मुझे देख सकेंगे॥ ७—१७॥

नन्दिकेश्वर बोले—नारदजी! महान् भाग्यशाली एवं महान् तपस्वी वसुदेव-नन्दन श्रीकृष्ण महाराज युधिष्ठिरसे ऐसा कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये। तदनन्तर महाराज युधिष्ठिरने सकुटुम्ब प्रयागमें जाकर यथोक्त विधिके अनुसार स्नान किया, जिससे उन्हें परम शान्ति प्राप्त हुई। देवर्षे! इसलिये आप भी प्रयागकी ओर पधारिये और वहाँ स्नान कर आज ही कृतकृत्य हो जाइये॥ १८—२०॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर नन्दिकेश्वर ऐसा कहकर वहीं अन्तर्हित हो गये तथा नारदजी भी शीघ्र ही प्रयागकी ओर चल दिये।

तत्र स्नात्वा च जप्त्वा च विधिदृष्टेन कर्मणा।
दानं दत्त्वा द्विजाग्र्येभ्यो गतः स्वभवनं तदा॥ २२

वहाँ पहुँचकर उन्होंने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार स्नान एवं जप आदि कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको दान देकर वे अपने आश्रमकी ओर चले गये॥ २१-२२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रयागमाहात्म्यं नाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रयागमाहात्म्य नामक एक सौ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११२॥

एक सौ तेरहवाँ अध्याय

भूगोलका विस्तृत वर्णन

ऋषय ऊचुः

कति द्वीपाः समुद्रा वा पर्वता वा कति प्रभो।
कियन्ति चैव वर्षाणि तेषु नद्यश्च काः स्मृताः॥ १
महाभूमिप्रमाणं च लोकालोकस्तथैव च।
पर्याप्तिः परिमाणं च गतिश्चन्द्रार्कयोस्तथा॥ २
एतद् ब्रवीहि नः सर्वं विस्तरेण यथार्थवित्।
त्वदुक्तमेतत् सकलं श्रोतुमिच्छामहे वयम्॥ ३

ऋषियोंने पूछा—प्रभो! इस भूतलपर कितने द्वीप हैं? कितने समुद्र और पर्वत हैं? कितने वर्ष (पृथ्वीके खण्ड) हैं? उनमें कौन-कौन-सी नदियाँ बतलायी जाती हैं? इस विस्तृत भूमिका प्रमाण कितना है? लोकालोक पर्वत कैसा है? तथा चन्द्रमा और सूर्यकी गति, अवस्थिति और परिमाण कितना है? यह सब हमें विस्तारपूर्वक बतलाइये, क्योंकि आप यथार्थवेत्ता हैं। हमलोग यह सारा विषय आपके मुखसे सुनना चाहते हैं॥ १—३॥

सूत उवाच

द्वीपभेदसहस्राणि सप्त चान्तर्गतानि च।
न शक्यन्ते क्रमेणेह वक्तुं वै सकलं जगत्॥ ४
सप्तैव तु प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यग्रहैः सह।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते॥ ५
अचिन्त्याः खलु ये भावास्तांस्तु तर्केण साधयेत्।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम्॥ ६
सप्त वर्षाणि वक्ष्यामि जम्बूद्वीपं यथाविधम्।
विस्तरं मण्डलं यच्च योजनैस्तन्निबोधत॥ ७
योजनानां सहस्राणि शतं द्वीपस्य विस्तरः।
नानाजनपदाकीर्णं पुरैश्च विविधैः शुभैः॥ ८
सिद्धचारणसंकीर्णं पर्वतैरुपशोभितम्।
सर्वधातुपिनद्धैस्तैः शिलाजालसमुद्गतैः॥ ९

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! द्वीपोंके तो हजारों भेद हैं, परंतु वे सभी इन्हीं सात प्रधान द्वीपोंके अन्तर्गत हैं। इस सम्पूर्ण जगत्का क्रमशः वर्णन करना सम्भव नहीं है, अतः चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रहोंके साथ उन सात द्वीपोंका ही वर्णन कर रहा हूँ। साथ ही मनुष्यके अनुमानानुसार उनका प्रमाण भी बतला रहा हूँ; क्योंकि जो अचिन्त्य भाव हैं, उन्हें बुद्धि, ज्ञान एवं अनुमानद्वारा ही सिद्ध करनेकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये*। जो प्रकृतिसे परे है, वही अचिन्त्यका लक्षण है। अब मैं सातों वर्षोंका वर्णन प्रारम्भ कर रहा हूँ। इनमें सर्वप्रथम योजनके परिमाणसे जम्बूद्वीपका जितना बड़ा विस्तृत मण्डल है, उसे बतला रहा हूँ, सुनिये। जम्बूद्वीपका विस्तार एक लाख योजन है। यह अनेकों प्रकारके सुन्दर देशों एवं नगरोंसे परिपूर्ण है। इसमें सिद्ध और चारण निवास करते हैं। यह सभी प्रकारकी धातुओंसे संयुक्त एवं शिलासमूहोंसे समन्वित पर्वतोंद्वारा सुशोभित है;

* महाभारत ६। ६। १२ आदिका पाठ-अर्थ कुछ भिन्न होनेपर भी यहाँ यही पाठ एवं अर्थ युक्तियुक्त है।

पर्वतप्रभवाभिश्च नदीभिस्तु समंततः।
प्रागायता महापार्श्वाः षडिमे वर्षपर्वताः॥ १०
अवगाह्य ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ।
हिमप्रायश्च हिमवान् हेमकूटश्च हेमवान्॥ ११
सर्वतः सुमुखश्चापि निषधः पर्वतो महान्।

उन पर्वतोंसे निकलनेवाली नदियोंसे यह चारों ओरसे व्याप्त है। इसमें पूर्वसे पश्चिमतक फैले हुए अत्यन्त विस्तृत छः वर्षपर्वत हैं। इसमें पूर्व और पश्चिम—दोनों ओरके समुद्रोंतक फैला हुआ हिमवान् नामक पर्वत है, जो सदा बर्फसे ढका रहता है। इसके बाद सुवर्णसे व्याप्त हेमकूट नामक पर्वत है। तत्पश्चात् जो चारों ओरसे देखनेमें अत्यन्त सुन्दर है, वह निषध नामक महान् पर्वत है॥ ४—११½॥

चातुर्वर्ण्यस्तु सौवर्णो मेरुश्चोल्बमयः स्मृतः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णं च चतुर्दिशम्॥ १२
वृत्ताकृतिप्रमाणश्च चतुरस्त्रः समाहितः।
नानावर्णैः समः पार्श्वैः प्रजापतिगुणान्वितः॥ १३
नाभीबन्धनसम्भूतो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः।
पूर्वतः श्वेतवर्णस्तु ब्राह्मण्यं तस्य तेन वै॥ १४
पीतश्च दक्षिणेनासौ तेन वैश्यत्वमिष्यते।
भृङ्गिपत्रनिभश्चैव पश्चिमेन समन्वितः।
तेनास्य शूद्रता सिद्धा मेरोर्नामार्थकर्मतः॥ १५
पार्श्वमुत्तरतस्तस्य रक्तवर्णं स्वभावतः।
तेनास्य क्षत्रभावः स्यादिति वर्णाः प्रकीर्तिताः॥ १६
नीलश्च वैदूर्यमयः श्वेतः पीतो हिरण्मयः।
मयूरबर्हवर्णश्च शातकौम्भः स शृङ्गवान्॥ १७
एते पर्वतराजानः सिद्धचारणसेविताः।
तेषामन्तरविष्कम्भो नवसाहस्रमुच्यते॥ १८

इसके एक ओर सुवर्णमय मेरुपर्वत है, जिसके चारों पार्श्वभाग चार रंगोंके हैं और जो उल्बमय (गर्भाशयके समान) कहा जाता है। यह चारों दिशाओंमें चौबीस हजार योजनोंतक फैला हुआ है। इसका ऊपरी भाग वृत्तकी आकृतिका अर्थात् गोलाकार है तथा निचला भाग चौकोर है। इसके पार्श्वभाग नाना प्रकारकी रंग-विरंगी समतल भूमियोंसे युक्त हैं, जिससे प्रजापतिके गुणोंसे युक्त-सा दीखता है। यह अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके नाभि-बन्धनसे उद्भूत हुआ है। इसका पूर्वी भाग श्वेत रंगका है, इसीसे इसकी ब्राह्मणता झलकती है। इसका दक्षिणी भाग पीले रंगका है, इसीसे इसमें वैश्यत्वकी प्रतीति होती है। इसका पश्चिमी भाग भँवरेके पंख-सरीखा काला है, इसीसे इसकी शूद्रता तथा अर्थ और काम—दोनों दृष्टियोंसे मेरुके नामकी सार्थकता सिद्ध होती है। इसका उत्तरी भाग स्वभावसे ही लाल रंगका है, इसीसे इसका क्षत्रियत्व सूचित होता है। इस प्रकार मेरुके चारों रंगोंका विवरण बतलाया गया है। तदनन्तर नील पर्वत है, जो वैदूर्यमणिसे व्याप्त है। पुनः श्वेत पर्वत है, जो सुवर्णमय होनेके कारण पीले रंगका है तथा सुवर्णमय शिखरोंसे सुशोभित शृङ्गवान् पर्वत है, जो मयूर-पिच्छ-सरीखे चित्र-विचित्र रंगोंवाला है। ये सभी पर्वतराज सदा सिद्धों एवं चारणोंसे सेवित होते रहते हैं। उनका भीतरी व्यास नौ हजार योजन बतलाया जाता है॥ १२—१८॥

मध्ये त्विलावृतं नाम महामेरोः समंततः।
चतुर्विंशत्सहस्राणि विस्तीर्णो योजनैः समः॥ १९
मध्ये तस्य महामेरुर्विधूम इव पावकः।
वेद्यर्धं दक्षिणं मेरोरुत्तरार्धं तथोत्तरम्॥ २०
वर्षाणि यानि सप्तात्र तेषां वै वर्षपर्वताः।
द्वे द्वे सहस्रे विस्तीर्णा योजनैर्दक्षिणोत्तरम्॥ २१
जम्बूद्वीपस्य विस्तारस्तेषामायाम उच्यते।
नीलश्च निषधश्चैव तेषां हीनाश्च ये परे॥ २२

पृथ्वीके मध्य भागमें इलावृत नामक वर्ष है, जो महामेरु पर्वतके चारों ओर फैला हुआ है। यह चौबीस हजार योजनकी समतल भूमिमें विस्तृत है। इसके मध्य भागमें महामेरु नामक पर्वत है, जो धूमरहित अग्निके समान चमकता रहता है। मेरु पर्वतका आधा दक्षिणी भाग दक्षिण मेरु और आधा उत्तरी भाग उत्तर मेरुके नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार जो सात वर्ष बतलाये गये हैं, उनमें पृथक्-पृथक् सात वर्षपर्वत हैं, जो दक्षिणसे उत्तरतक दो-दो हजार योजनके परिमाणमें फैले हुए हैं। जम्बूद्वीपका विस्तार इन्हीं वर्षों तथा पर्वतोंके विस्तारके बराबर कहा जाता है। इनमें नील और निषध—ये दोनों विशाल पर्वत हैं

श्वेतश्च हेमकूटश्च हिमवाञ्शृङ्गवांश्च यः।
जम्बूद्वीपप्रमाणेन ऋषभः परिकीर्त्यते॥ २३
तस्माद् द्वादशभागेन हेमकूटोऽपि हीयते।
हिमवान् विंशभागेन तस्मादेव प्रहीयते।
अष्टाशीतिसहस्राणि हेमकूटो महागिरिः॥ २४
अशीतिर्हिमवाञ्शैल आयतः पूर्वपश्चिमे।
द्वीपस्य मण्डलीभावाद् ह्रासवृद्धी प्रकीर्तिते॥ २५
वर्षाणां पर्वतानां च यथाभेदं तथोत्तरम्।
तेषां मध्ये जनपदास्तानि वर्षाणि सप्त वै॥ २६
प्रपातविषमैस्तैस्तु पर्वतैरावृतानि तु।
सप्त तानि नदीभेदैरगम्यानि परस्परम्॥ २७
वसन्ति तेषु सत्त्वानि नानाजातीनि सर्वशः।
इदं हैमवतं वर्षं भारतं नाम विश्रुतम्॥ २८
हेमकूटं परं तस्मान्नाम्ना किम्पुरुषं स्मृतम्।
हेमकूटाच्च निषधं हरिवर्षं तदुच्यते॥ २९
हरिवर्षात् परं चापि मेरोस्तु तदिलावृतम्।
इलावृतात्परं नीलं रम्यकं नाम विश्रुतम्॥ ३०
रम्यकादपरं श्वेतं विश्रुतं तद्धिरण्यकम्।
हिरण्यकात् परं चैव शृङ्गशाकं कुरुं स्मृतम्॥ ३१
धनुःसंस्थे तु विज्ञेये देवर्षे दक्षिणोत्तरे।
दीर्घाणि तस्य चत्वारि मध्यमं तदिलावृतम्॥ ३२
पूर्वतो निषधस्येदं वेद्यर्धं दक्षिणं स्मृतम्।
परं त्विलावृतं पश्चाद् वेद्यर्धं तु तदुत्तरम्॥ ३३
तयोर्मध्ये तु विज्ञेयो मेरुर्यत्र त्विलावृतम्।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥ ३४
उदगायतो महाशैलो माल्यवान् नाम पर्वतः।
द्वात्रिंशता सहस्रेण प्रतीच्यां सागरानुगः॥ ३५
माल्यवान् वै सहस्रैक आनीलनिषधायतः।
द्वात्रिंशत् त्वेवमप्युक्तः पर्वतो गन्धमादनः॥ ३६

तथा श्वेत, हेमकूट, हिमवान् और शृङ्गवान्—ये अपेक्षाकृत उनसे छोटे हैं। ऋषभ पर्वत जम्बूद्वीपके समान ही विस्तारवाला बतलाया जाता है। हेमकूट पर्वत ऋषभ पर्वतके बारहवें भागसे न्यून है और हिमवान् उसके बीसवें अंशसे कम है। हेमकूट नामक महान् पर्वत अठासी हजार योजनके परिमाणवाला कहा जाता है तथा हिमवान् पर्वत पूर्वसे पश्चिमतक अस्सी हजार योजनमें फैला हुआ है। जम्बूद्वीपके मण्डलाकारमें स्थित होनेके कारण इन पर्वतोंका न्यूनाधिक्य बतलाया गया है। पर्वतोंकी ही भाँति वर्षोंमें भी भिन्नता है। वे सभी एक-दूसरेसे उत्तर दिशाकी ओर फैले हुए हैं। इनके बीचमें देश बसे हुए हैं, जो सात वर्षोंमें विभक्त हैं। ये सभी वर्ष ऐसे पर्वतोंसे घिरे हुए हैं, जो झरनोंके कारण अगम्य हैं। इसी प्रकार सात नदियोंके विभाजनसे ये परस्पर गमनागमनरहित हैं। इन वर्षोंमें सब ओर अनेकों जातियोंके प्राणी निवास करते हैं। यह हिमवान् पर्वतसे सम्बन्धित वर्ष भारतवर्षके नामसे विख्यात है॥ १९—२८॥

हिमवान्‌के बाद हेमकूटतकका प्रदेश किम्पुरुष नामसे कहा जाता है तथा हेमकूटसे आगे निषध पर्वततक हरिवर्ष कहलाता है। हरिवर्षके बाद मेरुपर्वततकका प्रदेश इलावृतवर्षके नामसे तथा इलावृतके बाद नीलपर्वततकका प्रदेश रम्यकवर्षके नामसे विख्यात है। रम्यकवर्षके बाद श्वेतपर्वततकका जो प्रदेश है, वह हिरण्यकवर्षके नामसे प्रसिद्ध है। हिरण्यकवर्षके बाद शृङ्गशाक नामक वर्ष है, जिसे कुरुवर्ष भी कहते हैं। मेरुपर्वतके दक्षिण और उत्तर दिशामें धनुषके आकारमें दो वर्ष स्थित हैं। उन्हींके मध्यमें इलावृतवर्ष है। निषध पर्वतके पूर्व दिशामें मेरुकी वेदीका अर्धभाग दक्षिणवेदी और इलावृतसे पश्चिमकी ओर वेदीका आधा भाग उत्तरवेदीके नामसे विख्यात है। इन्हीं दोनोंके बीचमें मेरुकी स्थिति समझनी चाहिये, जहाँ इलावृतवर्ष अवस्थित है। नील पर्वतके दक्षिण और निषध पर्वतके उत्तर माल्यवान् नामक पर्वत है, जिसकी गणना विशाल पर्वतोंमें है। यह उत्तरसे दक्षिणकी ओर लम्बा है। यह पश्चिम दिशामें सागरपर्यन्त बत्तीस हजार योजनमें फैला हुआ है। इस प्रकार माल्यवान् पर्वत नील और निषध पर्वतोंके बीचमें एक हजार योजनके विस्तारमें स्थित है। इसी तरह गन्धमादन पर्वत भी बत्तीस

परिमण्डलयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः।
चातुर्वर्ण्यसमो वर्णैश्चतुरस्रः समुच्छ्रितः॥ ३७
नानावर्णः स पार्श्वेषु पूर्वान्ते श्वेत उच्यते।
पीतं तु दक्षिणं तस्य भृङ्गिपत्रनिभं परम्।
उत्तरं तस्य रक्तं वै इति वर्णसमन्वितः॥ ३८
मेरुस्तु शुशुभे दिव्यो राजवत् स तु वेष्टितः।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः॥ ३९
योजनानां सहस्राणि चतुराशीति सूच्छ्रितः।
प्रविष्टः षोडशाधस्तादष्टाविंशतिविस्तृतः॥ ४०
विस्तराद् द्विगुणश्चास्य परीणाहः समंततः।
स पर्वतो महादिव्यो दिव्यौषधिसमन्वितः॥ ४१
भुवनैरावृतः सर्वैर्जातरूपपरिष्कृतैः।
तत्र देवगणाश्चैव गन्धर्वासुरराक्षसाः।
शैलराजे प्रमोदन्ते सर्वतोऽप्सरसां गणैः॥ ४२
स तु मेरुः परिवृतो भुवनैर्भूतभावनैः।
यस्येमे चतुरो देशा नानापार्श्वेषु संस्थिताः॥ ४३
भद्राश्वं भारतं चैव केतुमालं च पश्चिमे।
उत्तराश्चैव कुरवः कृतपुण्यप्रतिश्रयाः॥ ४४
विष्कम्भपर्वतास्तद्वन्मन्दरो गन्धमादनः।
विपुलश्च सुपार्श्वश्च सर्वरत्नविभूषिताः॥ ४५
अरुणोदं मानसं च सितोदं भद्रसंज्ञितम्।
तेषामुपरि चत्वारि सरांसि च वनानि च॥ ४६
तथा भद्रकदम्बस्तु पर्वते गन्धमादने।
जम्बूवृक्षस्तथाश्वत्थो विपुलेऽथ वटः परम्॥ ४७
गन्धमादनपार्श्वे तु पश्चिमेऽमरगण्डिकः।
द्वात्रिंशतिसहस्राणि योजनैः सर्वतः समः॥ ४८
तत्र ते शुभकर्माणः केतुमालाः परिश्रुताः।
तत्र कालानलाः सर्वे महासत्त्वा महाबलाः॥ ४९
स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः।
तत्र दिव्यो महावृक्षः पनसः पत्रभासुरः॥ ५०

हजार योजन विस्तृत बतलाया गया है। इन दोनोंके मण्डलके मध्यमें मेरु नामक स्वर्णमय पर्वत है। वह चार प्रकारके रंगोंसे युक्त, चौकोर और अत्यन्त ऊँचा है॥ २९—३७॥

उसके पार्श्वभाग अनेक प्रकारके रंगोंसे विभूषित हैं। इसका पूर्वीय भाग श्वेत, दक्षिणी भाग पीला, पश्चिमका भाग भ्रमरके पंखके समान काला और उत्तरी हिस्सा लाल है। इस प्रकार यह चार रंगोंसे युक्त कहा जाता है। इस तरह चारों ओरसे पर्वतोंसे घिरा हुआ दिव्य पर्वत मेरु राजाकी भाँति सुशोभित होता है। इसकी कान्ति तरुण सूर्य अर्थात् मध्याह्नकालिक सूर्यकी-सी है। वह धूमरहित अग्निके सदृश चमकता रहता है। पृथ्वीके ऊपर इसकी ऊँचाई चौरासी हजार योजन है। यह सोलह हजार योजनतक पृथ्वीके नीचे धँसा हुआ है और अट्ठाईस हजार योजनतक फैला हुआ है। चारों ओरसे इसका फैलाव विस्तारसे दुगुना है। यह महान् दिव्य पर्वत मेरु दिव्य ओषधियोंसे परिपूर्ण तथा सभी सुवर्णमय भुवनोंसे घिरा हुआ है। इस पर्वतराजपर देवगण, गन्धर्व, असुर और राक्षस सर्वत्र अप्सराओंके साथ रहकर आनन्दका अनुभव करते हैं। यह मेरु प्राणियोंके निमित्त-कारणभूत भुवनोंसे घिरा हुआ है। इसके विभिन्न पार्श्वभागोंमें चार देश अवस्थित हैं। उनके नाम हैं—(पूर्वमें) भद्राश्व, (दक्षिणमें) भारत, (पश्चिममें) केतुमाल और (उत्तरमें) किये हुए पुण्योंके आश्रयस्थानरूप उत्तरकुरु। इसी प्रकार उसके चारों दिशाओंमें सभी प्रकारके रत्नोंसे विभूषित मन्दर, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्व नामक विष्कम्भ पर्वत भी विद्यमान हैं। उनके ऊपर अरुणोद, मानस, सितोद और भद्र नामक सरोवर और अनेकों वन हैं तथा मन्दर पर्वतपर भद्रकदम्ब, गन्धमादनपर जामुन, विपुलपर पीपल और सुपार्श्वपर बरगदका वृक्ष है॥ ३८—४७॥

गन्धमादनके पश्चिम भागमें अमरगण्डिक नामक पर्वत है, जो सब ओरसे बत्तीस हजार योजनकी समतल भूमिसे सम्पन्न है। वहाँके शुभ कर्म करनेवाले निवासी केतुमाल नामसे विख्यात हैं। वे सभी कालाग्निके समान भयानक, महान् सत्त्वसम्पन्न एवं महाबली होते हैं। वहाँकी स्त्रियोंके शरीरका रंग लाल कमलके समान होता है। वे परम सुन्दरी एवं देखनेमें आह्लादकारिणी होती हैं। उसपर कटहलका एक महान् दिव्य वृक्ष है, जिसके पत्ते अत्यन्त चमकीले हैं।

तस्य पीत्वा फलरसं संजीवन्ति समायुतम्।
तस्य माल्यवतः पार्श्वे पूर्वे पूर्वा तु गण्डिका।
द्वात्रिंशच्च सहस्राणि तत्रापि शतमुच्यते॥ ५१

भद्राश्वस्तत्र विज्ञेयो नित्यं मुदितमानसः।
भद्रमालवनं तत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः॥ ५२

तत्र ते पुरुषाः श्वेता महासत्त्वा महाबलाः।
स्त्रियः कुमुदवर्णाभाः सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः॥ ५३

चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः।
चन्द्रशीतलगात्राश्च स्त्रियो ह्युत्पलगन्धिकाः॥ ५४

दशवर्षसहस्राणि आयुस्तेषामनामयम्।
कालाम्रस्य रसं पीत्वा ते सर्वे स्थिरयौवनाः॥ ५५

उसके फलोंका रस पीकर वहाँके निवासी दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। माल्यवान्‌के पूर्वी भागमें पूर्वगण्डिका नामक पर्वत है, जो बत्तीस हजार योजन लम्बा और सौ योजन चौड़ा कहा जाता है। उसकी तलहटीमें भद्राश्व नामक देश है, जहाँके निवासी सदा प्रसन्न-मन रहते हैं। वहाँ भद्रमाल नामक वन है, जिसमें कालाम्र नामक एक महान् वृक्ष है। वहाँके निवासी पुरुष गोरे, महान् सत्त्वसम्पन्न एवं महाबली होते हैं तथा कुछ स्त्रियाँ कुमुदिनीकी-सी कान्तिवाली, परम सुन्दरी एवं देखनेमें प्रिय लगनेवाली होती हैं। इसी प्रकार कुछ स्त्रियाँ गौर वर्णवाली होती हैं, उनकी कान्ति चन्द्रमा-सरीखी उज्ज्वल होती है और उनका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान चमकदार होता है। उनका शरीर भी चन्द्रमाके समान शीतल होता है और उससे कमलकी-सी गन्ध निकलती है। कालाम्र वृक्षोंके फलोंका रस पान कर वहाँके सभी निवासियोंकी युवावस्था स्थिर बनी रहती है और वे नीरोग रहकर दस हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं॥ ४८—५५॥

सूत उवाच

इत्युक्तवानृषीन् ब्रह्मा वर्षाणि च निसर्गतः।
पूर्वं ममानुग्रहकृद् भूयः किं वर्णयामि वः॥ ५६
एतच्छ्रुत्वा वचस्ते तु ऋषयः संशितव्रताः।
जातकौतूहलाः सर्वे प्रत्यूचुस्ते मुदान्विताः॥ ५७

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें ब्रह्माने स्वभावतः मुझपर कृपा कर जिन वर्षोंका वर्णन किया था, उनका विवरण मैं आपलोगोंको बतला चुका। अब पुनः आपलोगोंसे किसका वर्णन करूँ? सूतजीकी यह बात सुनकर वे सभी व्रतनिष्ठ ऋषि विस्मयविमुग्ध हो गये। तत्पश्चात् वे प्रसन्नतापूर्वक बोले॥ ५६-५७॥

ऋषय ऊचुः

पूर्वापरौ समाख्यातौ यौ देशौ तौ त्वया मुने।
उत्तराणां च वर्षाणां पर्वतानां च सर्वशः॥ ५८
आख्याहि नो यथातथ्यं ये च पर्वतवासिनः।
एवमुक्तस्तु ऋषिभिस्तेभ्यस्त्वाख्यातवान् पुनः॥ ५९

ऋषियोंने पूछा—मुने! पूर्व और पश्चिम दिशामें स्थित जो देश हैं; उनके विषयमें तो आप हमलोगोंको बतला चुके। अब उत्तर दिशामें स्थित वर्षों और पर्वतोंका वर्णन कीजिये। साथ ही उन पर्वतोंपर निवास करनेवाले लोगोंका चरित्र भी यथार्थरूपसे बतलाइये। ऋषियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर सूतजीने पुनः उनसे वर्णन करना आरम्भ किया॥ ५८-५९॥

सूत उवाच

शृणुध्वं यानि वर्षाणि पूर्वोक्तानि च वै मया।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु॥ ६०
वर्षं रमणकं नाम जायन्ते यत्र वै प्रजाः।

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पहले मैं आपलोगोंसे जिन वर्षोंके विषयमें वर्णन कर चुका हूँ, (उनके अतिरिक्त अन्य वर्षोंका वर्णन) सुनिये। नीलपर्वतसे दक्षिण और निषध पर्वतसे उत्तर दिशामें रमणक नामक वर्ष है, जहाँकी प्रजाएँ

रतिप्रधाना विमला जायन्ते यत्र मानवाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते प्रियदर्शनाः॥ ६१
तत्रापि च महावृक्षो न्यग्रोधो रोहिणो महान्।
तस्यापि ते फलरसं पिबन्तो वर्तयन्ति हि॥ ६२
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
जीवन्ति ते महाभागाः सदा हृष्टा नरोत्तमाः॥ ६३
उत्तरेण तु श्वेतस्य पार्श्वे शृङ्गस्य दक्षिणे।
वर्षं हिरण्वतं नाम यत्र हैरण्वती नदी॥ ६४
महाबला महासत्त्वा नित्यं मुदितमानसाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे च प्रियदर्शनाः॥ ६५
एकादश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः।
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति शतानि दश पञ्च च॥ ६६
तस्मिन् वर्षे महावृक्षो लकुचः पत्रसंश्रयः।
तस्य पीत्वा फलरसं तत्र जीवन्ति मानवाः॥ ६७
शृङ्गासाह्वस्य शृङ्गाणि त्रीणि तानि महान्ति वै।
एकं मणियुतं तत्र एकं तु कनकान्वितम्।
सर्वरत्नमयं चैकं भुवनैरुपशोभितम्॥ ६८
उत्तरे चास्य शृङ्गस्य समुद्रान्ते च दक्षिणे।
कुरवस्तत्र तद्वर्षं पुण्यं सिद्धनिषेवितम्॥ ६९
तत्र वृक्षा मधुफला दिव्यामृतमयाऽऽपगाः।
वस्त्राणि ते प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च॥ ७०
सर्वकामप्रदातारः केचिद् वृक्षा मनोरमाः।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र मनोरमाः।
ये रक्षन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चामृतोपमम्॥ ७१
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मा काञ्चनवालुका।
सर्वत्र सुखसंस्पर्शा निःशब्दाः पवनाः शुभाः॥ ७२
देवलोकच्युतास्तत्र जायन्ते मानवाः शुभाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे ते स्थिरयौवनाः॥ ७३
मिथुनानि प्रजायन्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः।
तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्ति ह्यमृतोपमम्॥ ७४
एकाहाज्जायते युग्मं समं चैव विवर्धते।
समं रूपं च शीलं च समं चैव म्रियन्ति वै॥ ७५

विशेष विलासिनी एवं स्वच्छ गौरवर्णवाली होती हैं। वहाँ उत्पन्न हुए सारे मानव गौरवर्ण, कुलीन और देखनेमें प्रिय लगनेवाले होते हैं। वहाँ भी रोहिण नामक एक महान् बरगदका वृक्ष है, उसीके फलोंका रस पान करके वहाँके निवासी जीवन-निर्वाह करते हैं। वे सभी महान् भाग्यशाली श्रेष्ठ पुरुष सदा प्रसन्न रहते हुए ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। श्वेत पर्वतके उत्तर और शृङ्गवान् पर्वतके दक्षिण पार्श्वमें हिरण्वत नामक वर्ष है, जहाँ हैरण्वती नामकी नदी प्रवाहित होती है। वहाँके निवासी श्रेष्ठ मानव, महाबली, महापराक्रमी, नित्य प्रसन्नचित्त, गौरवर्ण, कुलीन और देखनेमें मनोरम होते हैं। वे बारह हजार पाँच सौ वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं। उस वर्षमें पत्तोंसे आच्छादित लकुच (बड़हर)-का एक महान् वृक्ष है, उसके फलोंका रस पीकर वहाँके मानव जीवनयापन करते हैं। शृङ्गवान् पर्वतके तीन शिखर हैं, जो बड़े ऊँचे-ऊँचे हैं। उनमेंसे एक मणिसे परिपूर्ण, एक सुवर्णसे सम्पन्न और एक सर्वरत्नमय एवं भुवनोंसे सुशोभित है॥ ६०—६८॥

इस शृङ्गवान् पर्वतके उत्तर और दक्षिण समुद्र-तटतक उत्तरकुरु नामक वर्ष है जो परम पुण्यप्रद एवं सिद्धोंद्वारा सुसेवित है। वहाँ नदियोंमें दिव्य अमृततुल्य जल प्रवाहित होता है। वृक्ष मधुसदृश मीठे फलवाले होते हैं और उन्हींसे वस्त्र, फल और आभूषणोंकी उत्पत्ति होती है। उनमेंसे कुछ वृक्ष तो अत्यन्त सुन्दर और सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं तथा दूसरे कुछ ऐसे मनोहर वृक्ष हैं, जिनसे दूध निकलता है। वे सदा दूध और अमृततुल्य सुस्वादु छहों रसोंकी रक्षा करते हैं। वहाँकी सारी भूमि मणिमयी है जिसपर सुवर्णकी महीन बालुका बिखरी रहती है। चारों ओर सुख-स्पर्शवाली शब्दरहित शीतल-मंद-सुगन्ध वायु बहती रहती है। वहाँ देवलोकसे च्युत हुए धर्मात्मा मानव ही जन्म धारण करते हैं। वे सभी गौरवर्ण, कुलीन और स्थिर जवानीसे युक्त होते हैं। वे जोड़के रूपमें उत्पन्न होते हैं, उनमें स्त्रियाँ अप्सराओंकी भाँति सुन्दरी होती हैं। वे उन दूधसे भरे हुए वृक्षोंके अमृततुल्य दूधका पान करते हैं। वे प्राणी एक ही दिन जोड़के रूपमें उत्पन्न होते हैं, साथ-ही-साथ बढ़ते हैं, उनका रूप तथा शील-स्वभाव एक-सा

एकैकमनुरक्ताश्च चक्रवाकमिव ध्रुवम्।
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः॥ ७६
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
जीवन्ति च महासत्त्वा न चान्या स्त्री प्रवर्तते॥ ७७

होता है और वे एक साथ ही प्राण-त्याग भी करते हैं। वे चक्रवाककी तरह निश्चितरूपसे परस्पर अनुरक्त, नीरोग, शोकरहित और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। वे महापराक्रमी मानव ग्यारह हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वहाँ कोई पुरुष दूसरा विवाह नहीं करता॥ ६९—७७॥

सूत उवाच

एवमेव निसर्गो वै वर्षाणां भारते युगे।
दृष्टः परमधर्मज्ञाः किं भूयः कथयामि वः॥ ७८
आख्यातास्त्वेवमृषयः सूतपुत्रेण धीमता।
उत्तरश्रवणे भूयः पप्रच्छुः सूतनन्दनम्॥ ७९

सूतजी कहते हैं—परम धर्मज्ञ ऋषियो! इस प्रकार मैंने भारतीय युगमें वर्षोंकी सृष्टि देखी है (जिसका वर्णन कर दिया), अब पुनः आपलोगोंको क्या बतलाऊँ। बुद्धिमान् सूतपुत्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ऋषियोंने पुनः उत्तरवर्ती वर्षोंके विषयमें सुननेके लिये सूतनन्दनसे जिज्ञासा प्रकट की॥ ७८-७९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे द्वीपादिवर्णनं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें द्वीपादिवर्णन नामक एक सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११३॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय

भारतवर्ष, किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षका वर्णन

ऋषय ऊचुः

यदिदं भारतं वर्षं यस्मिन् स्वायम्भुवादयः।
चतुर्दशैव मनवः प्रजासर्गं ससर्जिरे॥ १
एतद् वेदितुमिच्छामः सकाशात् तव सुव्रत।
उत्तरश्रवणं भूयः प्रब्रूहि वदतांवर॥ २

ऋषियोंने पूछा—सुव्रत! जो यह भारतवर्ष है, जिसमें स्वायम्भुव आदि चौदह मनु हुए हैं, जिन्होंने प्रजाओंकी सृष्टि की है, उनके विषयमें हमलोग आपके मुखसे सुनना चाहते हैं। साथ ही वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! पुनः इसके बाद भारत आदि अन्य वर्षोंके विषयमें भी कुछ बतलाइये॥ १-२॥

एतच्छ्रुत्वा ऋषीणां तु प्राब्रवील्लौमहर्षणिः।
पौराणिकस्तदा सूत ऋषीणां भावितात्मनाम्॥ ३
बुद्ध्या विचार्य बहुधा विमृश्य च पुनः पुनः।
तेभ्यस्तु कथयामास उत्तरश्रवणं तदा॥ ४

प्रसिद्ध पौराणिक लोमहर्षणके पुत्र सूतजीने उन पवित्रात्मा ऋषियोंका प्रश्न सुनकर अपनी बुद्धिसे बारम्बार बहुधा विचार-विमर्श करके उन ऋषियोंसे 'उत्तरश्रवण' (उत्तरवर्ती वर्षों)-के विषयमें कहना आरम्भ किया॥ ३-४॥

सूत उवाच

अथाहं वर्णयिष्यामि वर्षेऽस्मिन् भारते प्रजाः।
भरणाच्च प्रजानां वै मनुर्भरत उच्यते॥ ५
निरुक्तवचनाच्चैव वर्षं तद् भारतं स्मृतम्।
यतः स्वर्गश्च मोक्षश्च मध्यमश्चापि हि स्मृतः॥ ६

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं इस भारतवर्षमें उत्पन्न होनेवाली प्रजाओंका वर्णन कर रहा हूँ। इन प्रजाओंकी सृष्टि करने तथा इनका भरण-पोषण करनेके कारण मनुको भरत कहा जाता है। निरुक्त-वचनोंके आधारपर यह वर्ष (उन्हींके नामपर) भारतवर्षके* नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ स्वर्ग, मोक्ष तथा इन दोनोंके अन्तर्वर्ती (भोग) पदकी प्राप्ति होती है।

* सभी पुराणोंमें प्रायः सर्वत्र ऋषभ-पुत्र भरतके नामपर ही देशका नाम भारत कहा गया है। नाभिसे अजनाभ तथा उनके पोते भरतसे देशका भारत नाम पड़ा। मनु इनके भी पूर्वज थे, अतः यह कथन भी ठीक है। पर पाश्चात्योंने शकुन्तला-पुत्रके नामपर देशका नाम पड़ना गलत बतलाया है और भ्रमसे आज उसीका प्रचार है (विशेष जानकारीके लिये देखिये कल्याण वर्ष [illegible]। ८)। यह अध्याय वायुपुराण ४५। ७२—१३७ तथा ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय आदि पुराणोंमें भी प्राप्त है।

न खल्वन्यत्र मर्त्यानां भूमौ कर्मविधिः स्मृतः।
भारतस्यास्य वर्षस्य नव भेदान् निबोधत॥ ७
इन्द्रद्वीपः कशेरुश्च ताम्रपर्णो गभस्तिमान्।
नागद्वीपस्तथा सौम्यो गन्धर्वस्त्वथ वारुणः॥ ८
अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः।
योजनानां सहस्रं तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः॥ ९
आयतस्तु कुमारीतो गङ्गायाः प्रवहावधिः।
तिर्यगूर्ध्वं तु विस्तीर्णः सहस्राणि दशैव तु॥ १०
द्वीपो ह्युपनिविष्टोऽयं म्लेच्छैरन्तेषु सर्वशः।
यवनाश्च किराताश्च तस्यान्ते पूर्वपश्चिमे॥ ११
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भागशः।
इज्यायुधवणिज्याभिर्वर्तयन्तो व्यवस्थिताः॥ १२
तेषां संव्यवहारोऽयं वर्तते तु परस्परम्।
धर्मार्थकामसंयुक्तो वर्णानां तु स्वकर्मसु॥ १३
सकल्पपञ्चमानां तु आश्रमाणां यथाविधि।
इह स्वर्गापवर्गार्थं प्रवृत्तिरिह मानुषे॥ १४
यस्त्वयं मानवो द्वीपस्तिर्यग्यामः प्रकीर्तितः।
य एनं जयते कृत्स्नं स सम्राडिति कीर्तितः॥ १५
अयं लोकस्तु वै सम्राडन्तरिक्षजितां स्मृतः।
स्वराडसौ स्मृतो लोकः पुनर्वक्ष्यामि विस्तरात्॥ १६
सप्त चास्मिन् महावर्षे विश्रुताः कुलपर्वताः।
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि॥ १७
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च इत्येते कुलपर्वताः।
तेषां सहस्रशश्चान्ये पर्वतास्तु समीपतः॥ १८

इस भूतलपर भारतवर्षके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं भी प्राणियोंके लिये कर्मका विधान नहीं सुना जाता। इस भारतवर्षके नौ भेद हैं, उनके नाम सुनिये—इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्यद्वीप, गान्धर्वद्वीप और वारुणद्वीप—ये आठ तथा उनमें नवाँ यह समुद्रसे घिरा हुआ भारतद्वीप[1] (या खण्ड) है। यह द्वीप दक्षिणसे उत्तरतक एक हजार योजनमें फैला हुआ है। इसका विस्तार गङ्गाके उद्गमस्थानसे लेकर कन्याकुमारी अथवा कुमारी अन्तरीपतक है। यह तिरछेरूपमें ऊपर-ही-ऊपर दस हजार योजन विस्तृत है। इस द्वीपके चारों ओर सीमावर्ती प्रदेशोंमें म्लेच्छ जातियोंकी बस्तियाँ हैं। इसकी पूर्व एवं पश्चिम दिशामें क्रमशः किरात और यवन निवास करते हैं। इसके मध्यभागमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विभागपूर्वक यज्ञ, शस्त्र-ग्रहण और व्यवसाय आदिके द्वारा जीवन-यापन करते हुए निवास करते हैं। उन चारों वर्णोंका पारस्परिक व्यवहार धर्म, अर्थ और कामसे संयुक्त होता है और वे अपने-अपने कर्मोंमें ही लगे रहते हैं। यहाँ कल्पसहित पाँचों वर्णों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, योगी और संन्यासी) तथा आश्रमोंका विधिपूर्वक पालन होता है। इस द्वीपके मनुष्योंकी कर्म-प्रवृत्ति स्वर्ग और मोक्षके लिये होती है॥ ५—१४॥

इस मानव द्वीपको जो त्रिकोणाकार फैला हुआ है, जो सम्पूर्ण रूपमें जीत लेता है वह सम्राट् कहलाता है। अन्तरिक्षपर विजय पानेवालोंके लिये यह लोक सम्राट् कहा गया है और यही लोक स्वराट्के नामसे भी प्रसिद्ध है। अब मैं इसका पुनः विस्तारपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। इस महान् भारतवर्षमें सात विश्वविख्यात कुलपर्वत हैं। महेन्द्र[2], मलय, सह्य, शुक्तिमान्[3], ऋक्षवान्[4], विन्ध्य और पारियात्र[5]—ये कुलपर्वत हैं। इनके समीप अन्य हजारों पर्वत हैं।

१. इस प्रकार आजका दीखनेवाला सारा भूमण्डल बृहत्तर भारतके ही अन्तर्गत सिद्ध होता है। इसीलिये हेमाद्रि संकल्पमें 'भारतवर्षे भरतखण्डे' पढ़ा जाता है।

२. उड़ीसाके दक्षिणपूर्वी भागका पर्वत।

३. यह शक्ति पर्वत है, जो रायगढ़से लेकर मानभूम जिलेकी डालमा पहाड़ीतक फैला है।

४. यह विन्ध्य-पर्वतमालाका पूर्वी भाग है।

५. यह विन्ध्यपर्वतमालाका पश्चिमी भाग है।

अभिज्ञातास्ततश्चान्ये विपुलाश्चित्रसानवः।
अन्ये तेभ्यः परिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः॥ १९
तैर्विमिश्रा जानपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वतः।
पीयन्ते यैरिमा नद्यो गङ्गा सिन्धुः सरस्वती*॥ २०
शतद्रुश्चन्द्रभागा च यमुना सरयूस्तथा।
इरावती वितस्ता च विपाशा देविका कुहूः॥ २१
गोमती धूतपापा च बाहुदा च दृषद्वती।
कौशिकी च तृतीया च निश्चीरा गण्डकी तथा।
चक्षुर्लौहित इत्येता हिमवत्पादनिःसृताः॥ २२
वेदस्मृतिर्वेत्रवती वृत्रघ्नी सिन्धुरेव च।
पर्णाशा चन्दना चैव सदानीरा मही तथा॥ २३
पारा चर्मण्वती यूपा विदिशा वेणुमत्यपि।
शिप्रा ह्यवन्ती कुन्ती च पारियात्राश्रिताःस्मृताः॥ २४
शोणो महानदी चैव नर्मदा सुरसा क्रिया।
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च।
तमसा पिप्पली श्येनी करतोया पिशाचिका॥ २५
विमला चञ्चला चैव वञ्जुला वालुवाहिनी।
शुक्तिमन्ती शुनी लज्जा मुकुटा ह्रदिकापि च।
ऋक्षवन्तप्रसूतास्ता नद्योऽमलजलाः शुभाः॥ २६
तापी पयोष्णी निर्विन्ध्या क्षिप्रा च निषधा नदी।
वेण्वा वैतरणी चैव विश्वमाला कुमुद्वती॥ २७
तोया चैव महागौरी दुर्गा चान्तःशिला तथा।
विन्ध्यपादप्रसूतास्ता नद्यः पुण्यजलाः शुभाः॥ २८
गोदावरी भीमरथी कृष्णवेणी च वञ्जुला।
तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाह्या कावेर्यथापि च।
दक्षिणापथनद्यस्ताः सह्यपादाद् विनिःसृताः॥ २९
कृतमाला ताम्रपर्णी पुष्पजा चोत्पलावती।
मलयान्निःसृता नद्यः सर्वाः शीतजलाः शुभाः॥ ३०
त्रिषामा ऋषिकुल्या च इक्षुला त्रिदिवाचला।
लाङ्गूलिनी वंशधरा महेन्द्रतनयाः स्मृताः॥ ३१
ऋषीका सुकुमारी च मन्दगा मन्दवाहिनी।
कृपा पलाशिनी चैव शुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः॥ ३२

इनके अतिरिक्त अन्य भी विशाल एवं चित्र-विचित्र शिखरोंवाले पर्वत हैं तथा दूसरे कुछ उनसे भी छोटे हैं जो निम्न (पर्वतीय) जातियोंके आश्रयभूत हैं। इन्हीं पर्वतोंसे संयुक्त जो प्रदेश हैं उनमें चारों ओर आर्य एवं म्लेच्छ जातियाँ निवास करती हैं, जो इन आगे कही जानेवाली नदियोंका जल पान करती हैं। जैसे गङ्गा, सिन्धु, सरस्वती, शतद्रु (सतलज), चन्द्रभागा (चिनाव), यमुना, सरयू, इरावती (रावी), वितस्ता (झेलम), विपाशा (व्यास), देविका, कुहू, गोमती, धूतपापा (धोपाप), बाहुदा, दृषद्वती, कौशिकी (कोसी), तृतीया, निश्चीरा, गण्डकी, चक्षु, लौहित—ये सभी नदियाँ हिमालयकी उपत्यका (तलहटी)-से निकली हुई हैं। वेदस्मृति, वेत्रवती (बेतवा), वृत्रघ्नी, सिन्धु, पर्णाशा, चन्दना, सदानीरा, मही, पारा, चर्मण्वती, यूपा, विदिशा, वेणुमती, शिप्रा, अवन्ती तथा कुन्ती—इन नदियोंका उद्गमस्थान पारियात्र पर्वत है॥ १५—२४॥

शोण, महानदी, नर्मदा, सुरसा, क्रिया, मन्दाकिनी, दशार्णा, चित्रकूटा, तमसा, पिप्पली, श्येनी, करतोया, पिशाचिका, विमला, चञ्चला, वञ्जुला, वालुवाहिनी, शुक्तिमन्ती, शुनी, लज्जा, मुकुटा और ह्रदिका—ये स्वच्छसलिला कल्याणमयी नदियाँ ऋक्षवन्त (ऋक्षवान्) पर्वतसे उद्भूत हुई हैं। तापी, पयोष्णी (पूर्णानदी या पैनगङ्गा), निर्विन्ध्या, क्षिप्रा, निषधा, वेण्वा, वैतरणी, विश्वमाला, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गा तथा अन्तःशिला—ये सभी पुण्यतोया मङ्गलमयी नदियाँ विन्ध्याचलकी उपत्यकाओंसे निकली हुई हैं। गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणी, वञ्जुला (मंजीरा), कर्णाटककी तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या (वर्धानदी) और कावेरी—ये सभी दक्षिणापथमें प्रवाहित होनेवाली नदियाँ हैं, जो सह्यपर्वतकी शाखाओंसे प्रकट हुई हैं। कृतमाला (वैगईन नदी), ताम्रपर्णी, पुष्पजा (कुसुमाङ्गा, पेम्बे या पेन्नार नदी) और उत्पलावती—ये कल्याणमयी नदियाँ मलयाचलसे निकली हुई हैं। इनका जल बहुत शीतल होता है। त्रिषामा, ऋषिकुल्या, इक्षुला, त्रिदिवा, अचला, लाङ्गूलिनी और वंशधरा—ये सभी नदियाँ महेन्द्रपर्वतसे निकली हुई मानी जाती हैं। ऋषीका, सुकुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा और पलाशिनी—इन नदियोंका उद्गम शुक्तिमान् पर्वतसे हुआ है।

*यह नदी वर्णन ठीक इसी प्रकार ब्रह्मपु० १९। १०—२४, ब्रह्माण्ड० १। १६। २४—३९ तथा वायु० ४५। ६३—७८ में भी है।

सर्वाः पुण्यजलाः पुण्याः सर्वाश्चैव समुद्रगाः।
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वपापहराः शुभाः॥ ३३

ये सभी पुण्यतोया नदियाँ पुण्यप्रद, सर्वत्र बहनेवाली तथा साक्षात् या परम्परासे समुद्रगामिनी हैं। ये सब-की-सब विश्वके लिये माता-सदृश हैं तथा इन सबको कल्याणकारिणी एवं पापहारिणी माना गया है[1]॥ २५—३३॥

तासां नद्युपनद्यश्च शतशोऽथ सहस्रशः।
तास्विमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वाश्चैव सजाङ्गलाः॥ ३४
शूरसेना भद्रकारा बाह्याः सहपटच्चराः।
मत्स्याः किराताः कुन्त्याश्च कुन्तलाः काशिकोसलाः॥ ३५
आवन्ताश्च कलिङ्गाश्च मूकाश्चैवान्धकैः सह।
मध्यदेशा जनपदाः प्रायशः परिकीर्तिताः॥ ३६
सह्यस्यानन्तरे चैते यत्र गोदावरी नदी।
पृथिव्यामपि कृत्स्नायां स प्रदेशो मनोरमः॥ ३७
यत्र गोवर्धनो नाम मन्दरो गन्धमादनः।
रामप्रियार्थं स्वर्गीया वृक्षा दिव्यास्तथौषधीः॥ ३८
भरद्वाजेन मुनिना तत्प्रियार्थेऽवतारिताः।
ततः पुष्पवरो देशस्तेन जज्ञे मनोरमः॥ ३९
बाह्लीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः।
पुरंध्राश्चैव शूद्राश्च पल्लवाश्चात्तखण्डिकाः॥ ४०
गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरभद्रकाः।
शका द्रुह्याः पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्तिकाः॥ ४१
रामठाः कण्टकाराश्च कैकेय्या दशनामकाः।
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्याः शूद्रकुलानि च॥ ४२
काम्बोजा दरदाश्चैव वर्वरा पह्लवा तथा।
अत्रेयाश्च भरद्वाजाः प्रस्थलाश्च कसेरकाः॥ ४३
लम्पकास्तलगानाश्च सैनिकाः सह जाङ्गलैः।
एते देशा उदीच्यास्तु प्राच्यान् देशान् निबोधत॥ ४४
अङ्गा वङ्गा मद्गुरका अन्तर्गिरिबहिर्गिरी।
ततः प्लवङ्गमातङ्गा यमका मालवर्णकाः।
सुह्योत्तराः प्रविजया मार्गवागेयमालवाः॥ ४५
प्राग्ज्योतिषाश्च पुण्ड्राश्च विदेहास्ताम्रलिप्तकाः।
शाल्वमागधगोनर्दाः प्राच्या जनपदाः स्मृताः॥ ४६

अथवा इनकी सैकड़ों-हजारों छोटी-बड़ी सहायक नदियाँ भी हैं जिनके कछारोंमें कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, सजाङ्गल, शूरसेन, भद्रकार, बाह्य, सहपटच्चर, मत्स्य[2], किरात, कुन्ती, कुन्तल, काशी, कोसल, आवन्त, कलिङ्ग, मूक और अन्धक—ये देश अवस्थित हैं, जो प्रायः मध्यदेशके जनपद कहलाते हैं। ये सह्यपर्वतके निकट बसे हुए हैं, यहाँ गोदावरी नदी प्रवाहित होती है। अखिल भूमण्डलमें वह प्रदेश अत्यन्त मनोरम है। तत्पश्चात् गोवर्धन, मन्दराचल और श्रीरामचन्द्रजीका प्रियकारक गन्धमादन पर्वत है, जिसपर मुनिवर भरद्वाजजीने श्रीरामके मनोरंजनके लिये स्वर्गीय वृक्षों और दिव्य ओषधियोंको अवतरित किया था। उन्हीं मुनिवरके प्रभावसे वह प्रदेश पुष्पोंसे परिपूर्ण होनेके कारण मनोमुग्धकारी हो गया था। बाह्लीक (बलख), वाटधान, आभीर, कालतोयक, पुरन्ध्र, शूद्र, पल्लव, आत्तखण्डिक, गान्धार, यवन, सिन्धु (सिंध), सौवीर (सिन्धका उत्तरी भाग), मद्रक (पंजाबका उत्तरी भाग), शक, द्रुह्य (ययाति-पुत्र द्रुह्युका उत्तरी भाग—पश्चिमी पंजाब), पुलिन्द, पारद, आहारमूर्तिक, रामठ, कण्टकार, कैकेय और दशनामक—ये क्षत्रियोंके उपनिवेश हैं तथा इनमें वैश्य और शूद्र-कुलके लोग भी निवास करते हैं। इनके अतिरिक्त कम्बोज (अफगानिस्तान), दरद, बर्बर, पह्लव (ईरान), अत्रि, भरद्वाज, प्रस्थल, कसेरक, लम्पक, तलगान और जाङ्गलसहित सैनिक प्रदेश—ये सभी उत्तरापथके देश हैं। अब पूर्व दिशाके देशोंको सुनिये। अङ्ग (भागलपुर), वङ्ग (बंगाल), मद्गुरक, अन्तर्गिरि, बहिर्गिरि, प्लवङ्ग, मातङ्ग, यमक, मालवर्णक, सुह्य (उत्तरी असम), प्रविजय, मार्ग, वागेय, मालव, प्राग्ज्योतिष (आसामका पूर्वीभाग), पुण्ड्र (बंगलादेश), विदेह (मिथिला), ताम्रलिप्तक (उड़ीसाका उत्तरी भाग), शाल्व, मागध और गोनर्द—ये पूर्व दिशाके जनपद हैं॥ ३४—४६॥

१. इन नदियोंका पूरा परिचय कल्याण, वराहपुराणाङ्कमें द्रष्टव्य है।

२. यहाँ पाणिनि अष्टाध्यायीके काशिका (४।१।१६०) कौमुदि (४।१।१७०) सम्प्रदायोंमें दो सूत्रोंका अन्तर होकर प्रतिलिपिकी भूलसे 'सूरमत्स्य' की जगह 'सूरमस' पाठ हो गया है। 'गणरत्नमहोदधि' में वर्द्धमानका पाठ ठीक है।

अथापरे जनपदा दक्षिणापथवासिनः।
पाण्ड्याश्च केरलाश्चैव चोलाः कुल्यास्तथैव च॥ ४७
सेतुका मूषिकाश्चैव कुपथा वाजिवासिकाः।
महाराष्ट्रा माहिषकाः कलिङ्गाश्चैव सर्वशः॥ ४८
आभीराश्च सहैषीका आटव्याः शबरास्तथा।
पुलिन्दा विन्ध्यमुलिका वैदर्भा दण्डकैः सह॥ ४९
कुलीयाश्च सिरालाश्च अश्मका भोगवर्धनाः।
तथा तैत्तिरिकाश्चैव दक्षिणापथवासिनः॥ ५०
नासिक्याश्चैव ये चान्ये ये चैवान्तरनर्मदाः।
भारुकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतैस्तथा॥ ५१
काच्छीकाश्चैव सौराष्ट्रा आनर्ता अर्बुदैः सह।
इत्येते अपरान्तास्तु शृणु ये विन्ध्यवासिनः॥ ५२
मालवाश्च करूषाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह।
औण्ड्रा माषा दशार्णाश्च भोजाः किष्किन्धकैः सह॥ ५३
तोशलाः कोसलाश्चैव त्रैपुरा वैदिशास्तथा।
तुमुरास्तुम्बराश्चैव पद्गमा नैषधैः सह॥ ५४
अरूपाः शौण्डिकेराश्च वीतिहोत्रा अवन्तयः।
एते जनपदाः ख्याता विन्ध्यपृष्ठनिवासिनः॥ ५५
अतो देशान् प्रवक्ष्यामि पर्वताश्रयिणश्च ये।
निराहाराः सर्वगाश्च कुपथा अपथास्तथा॥ ५६
कुथप्रावरणाश्चैव ऊर्णादर्वाः समुद्गकाः।
त्रिगर्ता मण्डलाश्चैव किराताश्चामरैः सह॥ ५७
चत्वारि भारते वर्षे युगानि मुनयोऽब्रुवन्।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम्।
तेषां निसर्गं वक्ष्यामि उपरिष्टाच्च कृत्स्नशः॥ ५८

इनके बाद अब दक्षिणापथके देश बतलाये जा रहे हैं। पाण्ड्य, केरल, चोल, कुल्य, सेतुक, मूषिक, कुपथ, वाजिवासिक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग (उड़ीसाका दक्षिणी भाग), आभीर, सहैषीक, आटव्य, शबर, पुलिन्द, विन्ध्यमुलिक, वैदर्भ (विदर्भ), दण्डक, कुलीय, सिराल, अश्मक (महाराष्ट्रका दक्षिण भाग), भोगवर्धन (उड़ीसाका दक्षिणभाग), तैत्तिरिक, नासिक्य तथा नर्मदाके अन्तःप्रान्तमें स्थित अन्य प्रदेश—ये दक्षिणापथके अन्तर्गतके देश हैं। भारुकच्छ, माहेय, सारस्वत, काच्छीक, सौराष्ट्र, आनर्त और अर्बुद—ये सभी अपरान्त प्रदेश हैं। अब जो विन्ध्यवासियोंके प्रदेश हैं, उन्हें सुनिये। मालव, करूष, मेकल, उत्कल, औण्ड्र (उड़ीसा), माष, दशार्ण, भोज, किष्किन्धक, तोशल, कोसल (दक्षिणकोसल), त्रैपुर, वैदिश (भेलसाराज्य), तुमुर, तुम्बर, पद्गम, नैषध, अरूप, शौण्डिकेर, वीतिहोत्र तथा अवन्ति—ये सभी प्रदेश विन्ध्यपर्वतकी घाटियोंमें स्थित बतलाये जाते हैं। इसके बाद अब मैं उन देशोंका वर्णन कर रहा हूँ जो पर्वतपर स्थित हैं। उनके नाम हैं—निराहार, सर्वग, कुपथ, अपथ, कुथप्रावरण, ऊर्णादर्व, समुद्गक, त्रिगर्त, मण्डल, किरात और चामर। मुनियोंका कथन है कि इस भारतवर्षमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चार युगोंकी व्यवस्था है। अब मैं उनके वृत्तान्तका पूर्णतया वर्णन कर रहा हूँ॥ ४७—५८॥

मत्स्य उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषय उत्तरं पुनरेव ते।
शुश्रूषवस्तमूचुस्ते प्रकामं लोमहर्षणिम्॥ ५९

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजर्षे! सूतजीद्वारा कहे हुए इस प्रकरणको सुनकर मुनियोंको और भी आगे सुननेकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गयी, तब वे पुनः लोमहर्षण-पुत्र सूतजीसे बोले॥ ५९॥

ऋषय ऊचुः

यच्च किम्पुरुषं वर्षं हरिवर्षं तथैव च।
आचक्ष्व नो यथातत्त्वं कीर्तितं भारतं त्वया॥ ६०
जम्बूखण्डस्य विस्तारं तथान्येषां विदांवर।
द्वीपानां वासिनां तेषां वृक्षाणां प्रब्रवीहि नः॥ ६१

ऋषियोंने पूछा—वेत्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! आपने भारतवर्षका तो वर्णन कर दिया। अब हमें किम्पुरुषवर्ष तथा हरिवर्षके विषयमें बतलाइये। साथ ही जम्बूखण्डके विस्तारका तथा अन्य द्वीपोंके निवासियोंका एवं वहाँ उद्गत होनेवाले वृक्षोंका भी वर्णन हमें सुनाइये।

पृष्टस्त्वेवं तदा विप्रैर्यथाप्रश्नं विशेषतः।
उवाच ऋषिभिर्दृष्टं पुराणाभिमतं तथा॥ ६२

उन ब्रह्मर्षियोंद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सूतजीने उनके प्रश्नके अनुकूल जैसा देखा था तथा जो पुराण-सम्मत था, वैसा उत्तर देना प्रारम्भ किया॥ ६०—६२॥

सूत उवाच

शुश्रूषवस्तु यद् विप्राः शुश्रूषध्वमतन्द्रिताः।
जम्बूवर्षः किम्पुरुषः सुमहान् नन्दनोपमः॥ ६३
दश वर्षसहस्राणि स्थितिः किम्पुरुषे स्मृता।
जायन्ते मानवास्तत्र निष्टप्तकनकप्रभाः॥ ६४
वर्षे किम्पुरुषे पुण्ये प्लक्षो मधुवहः स्मृतः।
तस्य किम्पुरुषाः सर्वे पिबन्ति रसमुत्तमम्॥ ६५
अनामया ह्यशोकाश्च नित्यं मुदितमानसाः।
सुवर्णवर्णाश्च नराः स्त्रियश्चाप्सरसः स्मृताः॥ ६६
ततः परं किम्पुरुषाद्धरिवर्षं प्रचक्षते।
महारजतसंकाशा जायन्ते यत्र मानवाः॥ ६७
देवलोकच्युताः सर्वे बहुरूपाश्च सर्वशः।
हरिवर्षे नराः सर्वे पिबन्तीक्षुरसं शुभम्॥ ६८
न जरा बाधते तत्र तेन जीवन्ति ते चिरम्।
एकादश सहस्राणि तेषामायुः प्रकीर्तितम्॥ ६९
मध्यमं यन्मया प्रोक्तं नाम्ना वर्षमिलावृतम्।
न तत्र सूर्यस्तपति न च जीर्यन्ति मानवाः॥ ७०
चन्द्रसूर्यौ सनक्षत्रावप्रकाशाविलावृते।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः॥ ७१
पद्मगन्धाश्च जायन्ते तत्र सर्वे च मानवाः।
जम्बूफलरसाहारा अनिष्पन्दाः सुगन्धिनः॥ ७२
देवलोकच्युताः सर्वे महारजतवाससः।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते नरोत्तमाः॥ ७३
आयुष्प्रमाणं जीवन्ति ये तु वर्षे इलावृते।

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! आपलोग जिस विषयको सुनना चाहते हैं, उसे बतला रहा हूँ, आलस्यरहित होकर श्रवण कीजिये। जम्बूवर्ष और किम्पुरुषवर्ष—ये दोनों अत्यन्त विशाल एवं नन्दन-वनकी भाँति शोभासम्पन्न हैं। इनमें किम्पुरुषवर्षमें मनुष्योंकी आयु दस हजार वर्षकी बतलायी जाती है। वहाँ जन्म लेनेवाले मनुष्य भलीभाँति तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले होते हैं। उस पुण्यमय किम्पुरुषवर्षमें एक पाकड़का वृक्ष बतलाया जाता है जिससे सदा मधु टपकता रहता है। उसके उस उत्तम रसको सभी किम्पुरुषनिवासी पान करते हैं, जिसके कारण वे नीरोग, शोकरहित और सदा प्रसन्नचित्त रहते हैं। वहाँ पुरुषोंके शरीरका रंग सुवर्ण-जैसा होता है और स्त्रियाँ अप्सराओं-जैसी सुन्दरी कही गयी हैं। उस किम्पुरुषवर्षके बाद हरिवर्ष बतलाया जाता है। वहाँ सुवर्णकी-सी कान्तिसे युक्त शरीरवाले मानव उत्पन्न होते हैं। वे सभी देवलोकसे च्युत हुए जीव होते हैं और उनके विभिन्न प्रकारके रूप होते हैं। हरिवर्षमें सभी मनुष्य मङ्गलमय इक्षु-रसका पान करते हैं, जिससे उन्हें वृद्धावस्था बाधा नहीं पहुँचाती और वे चिरकालतक जीवित रहते हैं। उनकी आयुका प्रमाण ग्यारह हजार वर्ष बतलाया जाता है। इनके बीचमें इलावृत नामक वर्ष है, जिसका वर्णन मैं पहले ही कर चुका हूँ। वहाँ सूर्यका ताप नहीं होता। वहाँके मानव भी वृद्ध नहीं होते। इलावृतवर्षमें नक्षत्रोंसहित चन्द्रमा और सूर्यका प्रकाश नहीं होता। यहाँ पैदा होनेवाले सभी मानवोंके शरीर कमलके-से कान्तिमान् और उनका रंग कमल-जैसा लाल होता है। उनके नेत्र कमल-दलके समान विशाल होते हैं और उनके शरीरसे कमलकी-सी गन्ध निकलती है। जामुनके फलका रस उनका आहार है। वे निस्पन्दरहित एवं सुगन्धयुक्त होते हैं। उनके वस्त्र सुवर्णके तारोंसे खचित होते हैं। देवलोकसे च्युत हुए जीव ही यहाँ जन्म धारण करते हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष इलावृतवर्षमें पैदा होते हैं वे तेरह हजार वर्षोंकी आयुतक जीवित रहते हैं॥ ६३—७३ $\frac{1}{2}$॥

मेरोस्तु दक्षिणे पार्श्वे निषधस्योत्तरेण वा॥ ७४

मेरुगिरिके दक्षिण तथा निषधपर्वतके उत्तर भागमें

सुदर्शनो नाम महाजम्बूवृक्षः सनातनः।
नित्यपुष्पफलोपेतः सिद्धचारणसेवितः॥ ७५

तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बूद्वीपो वनस्पतेः।
योजनानां सहस्रं च शतधा च महान् पुनः॥ ७६

उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवमावृत्य तिष्ठति।
तस्य जम्बूफलरसो नदी भूत्वा प्रसर्पति॥ ७७

मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा जम्बूमूलगता पुनः।
तं पिबन्ति सदा हृष्टा जम्बूरसमिलावृते॥ ७८

जम्बूफलरसं पीत्वा न जरा बाधतेऽपि तान्।
न क्षुधा न क्लमो वापि न दुःखं च तथाविधम्॥ ७९

तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम्।
इन्द्रगोपकसंकाशं जायते भासुरं च यत्॥ ८०

सर्वेषां वर्षवृक्षाणां शुभः फलरसस्तु सः।
स्कन्नं तु काञ्चनं शुभ्रं जायते देवभूषणम्॥ ८१

तेषां मूत्रं पुरीषं वा दिक्ष्वष्टासु च सर्वशः।
ईश्वरानुग्रहाद् भूमिर्मृतांश्च ग्रसते तु तान्॥ ८२

रक्षःपिशाचा यक्षाश्च सर्वे हैमवतास्तु ते।
हेमकूटे तु विज्ञेया गन्धर्वाः साप्सरोगणाः॥ ८३

सर्वे नागा निषेवन्ते शेषवासुकितक्षकाः।
महामेरौ त्रयस्त्रिंशत् क्रीडन्ते यज्ञियाः शुभाः॥ ८४

नीलवैदूर्ययुक्तेऽस्मिन् सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽवसन्।
दैत्यानां दानवानां च श्वेतः पर्वत उच्यते॥ ८५

शृङ्गवान् पर्वतश्रेष्ठः पितृणां प्रतिसंचरः।
इत्येतानि मयोक्तानि नव वर्षाणि भारते॥ ८६

भूतैरपि निविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च।
तेषां वृद्धिर्बहुविधा दृश्यते देवमानुषैः।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया च बुभूषता॥ ८७

सुदर्शन नामका एक विशाल प्राचीन जामुनका वृक्ष है। वह सदा पुष्प और फलोंसे लदा रहता है। सिद्ध और चारण सदा उसका सेवन करते हैं। उसी वृक्षके नामपर यह द्वीप जम्बूद्वीपके नामसे विख्यात हुआ है। उस वृक्षराजकी ऊँचाई ग्यारह सौ योजन है। वह महान् वृक्ष स्वर्गलोकतक व्याप्त है। उसके फलोंका रस नदीरूपमें प्रवाहित होता है। वह नदी मेरुकी प्रदक्षिणा करके पुनः उसी जम्बूवृक्षके मूलपर पहुँचती है। इलावृतवर्षमें वहाँके निवासी सदा हर्षपूर्वक उस जम्बूरसका पान करते हैं। उस जम्बूवृक्षके फलोंका रस पान करनेके कारण वहाँके निवासियोंको वृद्धावस्था बाधा नहीं पहुँचाती। न उन्हें भूख लगती है और न थकावट ही प्रतीत होती है तथा न किसी प्रकारका दुःख ही होता है। वहाँ जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है जो देवताओंके लिये आभूषणके काममें आता है। वह इन्द्रगोप (बीरबहूटी)-के समान लाल और अत्यन्त चमकीला होता है। उस वर्षके सभी वृक्षोंमें इस जामुन-वृक्षके फलोंका रस परम शुभकारक है। वह वृक्षसे टपकनेपर निर्मल सुवर्ण बन जाता है जिससे देवताओंके आभूषण बनते हैं। ईश्वरकी कृपासे वहाँकी भूमि आठों दिशाओंमें सब ओर इलावृत-निवासियोंके मूत्र, विष्ठा और मृत शरीरोंको आत्मसात् कर लेती है। राक्षस, पिशाच और यक्ष—ये सभी हिमालय पर्वतपर निवास करते हैं। हेमकूट पर्वतपर अप्सराओंसहित गन्धर्वोंका निवास जानना चाहिये तथा शेष, वासुकि और तक्षक आदि सभी प्रधान नाग भी उसपर स्थित रहते हैं। महामेरुपर यज्ञसम्बन्धी मङ्गलमय तैंतीस देवता क्रीडा करते रहते हैं। नीलम एवं वैदूर्य मणियोंसे सम्पन्न नीलपर्वतपर सिद्धों और ब्रह्मर्षियोंका निवास है। श्वेतपर्वत दैत्यों और दानवोंका निवासस्थान बतलाया जाता है। पर्वतश्रेष्ठ शृङ्गवान् पितरोंका विहारस्थल है। इस प्रकार मैंने भारतवर्षके अन्तर्गत इन नौ वर्षोंका वर्णन कर दिया। इनमें प्राणी निवास करते हैं। ये परस्पर गतिमान् और स्थिर हैं। देवताओं और मनुष्योंने अनेकों प्रकारसे इनकी वृद्धि देखी है। उनकी गणना करना असम्भव है, अतः मङ्गलार्थी मनुष्यको इनपर श्रद्धा रखनी चाहिये॥ ७४—८७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनमें एक सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११४॥

एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय

राजा पुरूरवाके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

मनुरुवाच

चरितं बुधपुत्रस्य जनार्दन मया श्रुतम्।
श्रुतः श्राद्धविधिः पुण्यः सर्वपापप्रणाशनः॥ १
धेन्वाः प्रसूयमानायाः फलं दानस्य मे श्रुतम्।
कृष्णाजिनप्रदानं च वृषोत्सर्गस्तथैव च॥ २
श्रुत्वा रूपं नरेन्द्रस्य बुधपुत्रस्य केशव।
कौतूहलं समुत्पन्नं तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः॥ ३
केन कर्मविपाकेन स तु राजा पुरूरवाः।
अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम्॥ ४
देवांस्त्रिभुवनश्रेष्ठान् गन्धर्वांश्च मनोरमान्।
उर्वशी संगता त्यक्त्वा सर्वभावेन तं नृपम्॥ ५

मनुने पूछा—जनार्दन! मैंने आपके मुखसे बुधपुत्र राजा पुरूरवाका जीवन-चरित्र तो सुना और समस्त पापोंका विनाश करनेवाली पुण्यमयी श्राद्धविधिका भी श्रवण किया तथा ब्याती हुई गौके दानका, काले मृगचर्मके दानका एवं वृषोत्सर्गका भी फल सुन लिया, परंतु केशव! बुधपुत्र नरेश्वर पुरूरवाके रूपको सुनकर मुझे महान् कौतूहल उत्पन्न हो गया है, इसीलिये पूछ रहा हूँ। अब आप मुझे यह बतलाइये कि किस कर्मके परिणामस्वरूप राजा पुरूरवाको वैसा सुन्दर रूप और उत्तम सौभाग्य प्राप्त हुआ था? (जिसपर मोहित होकर अप्सराओंमें श्रेष्ठ) उर्वशी त्रिलोकीमें श्रेष्ठ देवताओं और सौन्दर्यशाली गन्धर्वोंका त्याग करके सब प्रकारसे राजा पुरूरवाकी सङ्गिनी बनी थी॥ १—५॥

मत्स्य उवाच

शृणु कर्मविपाकेन येन राजा पुरूरवाः।
अवाप तादृशं रूपं सौभाग्यमपि चोत्तमम्॥ ६
अतीते जन्मनि पुरा योऽयं राजा पुरूरवाः।
पुरूरवा इति ख्यातो मद्रदेशाधिपो हि सः॥ ७
चाक्षुषस्यान्वये राजा चाक्षुषस्यान्तरे मनोः।
स वै नृपगुणैर्युक्तः केवलं रूपवर्जितः॥ ८

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! राजा पुरूरवाको जिस कर्मके फलस्वरूप वैसे सुन्दर रूप और उत्तम सौभाग्यकी प्राप्ति हुई थी, वह बतला रहा हूँ, सुनो। यह राजा पुरूरवा पूर्वजन्ममें भी पुरूरवा नामसे ही विख्यात था। यह चाक्षुष मन्वन्तरमें चाक्षुष मनुके वंशमें उत्पन्न होकर मद्र देश (पंजाबका पश्चिमोत्तर भाग)-का अधिपति था (जहाँका राजा शल्य तथा पाण्डुपत्नी माद्री थीं)। उस समय इसमें राजाओंके सभी गुण तो विद्यमान थे, पर वह केवल रूपरहित अर्थात् कुरूप था। (मत्स्यभगवान्‌द्वारा आगे कहे जानेवाले प्रसङ्गको ऋषियोंके पूछनेपर सूतजीने वर्णन किया है, अतः इसके आगे पुनः वही प्रसङ्ग चलाया गया है।)॥ ६—८॥

ऋषय ऊचुः

पुरूरवा मद्रपतिः कर्मणा केन पार्थिवः।
बभूव कर्मणा केन रूपवांश्चैव सूतज॥ ९

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! राजा पुरूरवा किस कर्मके फलस्वरूप मद्र देशका स्वामी हुआ तथा किस कर्मके परिणामस्वरूप परम सौन्दर्यशाली हुआ? यह बतलाइये॥ ९॥

सूत उवाच

द्विजग्रामे द्विजश्रेष्ठो नाम्ना चासीत् पुरूरवाः।
नद्याः कूले महाराजः पूर्वजन्मनि पार्थिवः॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वजन्ममें यह राजा पुरूरवा किसी नदीके तटवर्ती ब्राह्मणोंके एक गाँवमें श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उस समय भी इसका नाम पुरूरवा ही था।

स तु मद्रपती राजा यस्तु नाम्ना पुरूरवाः।
तस्मिञ्जन्मन्यसौ विप्रो द्वादश्यां तु सदानघ॥ ११
उपोष्य पूजयामास राज्यकामो जनार्दनम्।
चकार सोपवासश्च स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्॥ १२
उपवासफलात् प्राप्तं राज्यं मद्रेष्वकण्टकम्।
उपोषितस्तथाभ्यङ्गाद् रूपहीनो व्यजायत॥ १३
उपोषितैर्नरैस्तस्मात् स्नानमभ्यङ्गपूर्वकम्।
वर्जनीयं प्रयत्नेन रूपघ्नं तत्परं नृप॥ १४
एतद् वः कथितं सर्वं यद् वृत्तं पूर्वजन्मनि।
मद्रेश्वरानुचरितं शृणु तस्य महीपतेः॥ १५
तस्य राजगुणैः सर्वैः समुपेतस्य भूपतेः।
जनानुरागो नैवासीद् रूपहीनस्य तस्य वै॥ १६
रूपकामः स मद्रेशस्तपसे कृतनिश्चयः।
राज्यं मन्त्रिगतं कृत्वा जगाम हिमपर्वतम्॥ १७
व्यवसायद्वितीयस्तु पद्भ्यामेव महायशाः।
द्रष्टुं स तीर्थसदनं विषयान्ते स्वके नदीम्।
ऐरावतीति विख्यातां ददर्शातिमनोरमाम्॥ १८
तुहिनगिरिभवां महौघवेगां तुहिनगभस्तिसमानशीतलोदाम्।
तुहिनसदृशहैमवर्णपुञ्जां तुहिनयशाः सरितं ददर्श राजा॥ १९

अनघ! वह मद्र देशका स्वामी जो राजा पुरूरवाके नामसे विख्यात था, उस जन्ममें ब्राह्मणरूपसे राज्यप्राप्तिकी कामनासे युक्त होकर सदा द्वादशी तिथिको उपवास कर भगवान् विष्णुका पूजन किया करता था। एक बार उसने व्रतोपवास करके शरीरमें तेल लगाकर स्नान कर लिया—जिस कारण उसे उपवासके फलस्वरूप मद्र देशका निष्कण्टक राज्य तो प्राप्त हुआ, परंतु उपवासी होकर शरीरमें तेल लगानेके कारण वह कुरूप होकर पैदा हुआ। इसलिये व्रतोपवासी मनुष्यको प्रयत्नपूर्वक शरीरमें तेल लगाकर स्नान करना छोड़ देना चाहिये; क्योंकि यह सुन्दरताका विनाशक है। इस प्रकार उसके पूर्वजन्मका जो वृत्तान्त था, वह सब मैंने आप लोगोंको बतला दिया। अब उस भूपालके मद्रेश्वर हो जानेके बादका चरित्र सुनिये। यद्यपि राजा पुरूरवा सभी राज्यगुणोंसे सम्पन्न था, किंतु रूपहीन होनेके कारण उसके प्रति प्रजाओंका अनुराग नहीं ही था। अतः मद्र-नरेशने रूपप्राप्तिकी कामनासे तपस्याका निश्चय करके राज्य-भार मन्त्रीको सौंपकर हिमालय पर्वतकी ओर प्रस्थान किया। उस समय तपरूप व्यवसाय ही उसका सहायक था। वह महायशस्वी नरेश तीर्थस्थानोंका दर्शन करनेकी लालसासे पैदल ही चल रहा था। आगे बढ़नेपर उसने अपने देशकी सीमापर ऐरावती (रावी) नामसे विख्यात अत्यन्त मनोहारिणी नदीको देखा। वह नदी हिमालय पर्वतसे निकली हुई थी, अथाह जलके कारण गम्भीर वेगसे प्रवाहित हो रही थी, उसका जल चन्द्रमाके समान शीतल था और वह बर्फकी राशि-सरीखी उज्ज्वल प्रतीत हो रही थी। बर्फसदृश निर्मल यशवाले राजा पुरूरवाने उस नदीको देखा॥ १०—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मद्रेश्वरस्य तपोवनागमनं नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तपोवनागमन नामक एक सौ पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११५॥

एक सौ सोलहवाँ अध्याय

ऐरावती नदीका वर्णन

सूत उवाच

स ददर्श नदीं पुण्यां दिव्यां हैमवतीं शुभाम्।
गन्धर्वैश्च समाकीर्णां नित्यं शक्रेण सेविताम्॥ १
सुरेभमदसंसिक्तां समंतात् तु विराजिताम्।
मध्येन शक्रचापाभां तस्मिन्नहनि सर्वदा॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! वह मङ्गलकारिणी एवं पुण्यमयी दिव्य नदी ऐरावती हिमालयपर्वतसे निकली हुई थी। वह (जलक्रीडार्थ आये हुए) गन्धर्वोंसे भरी हुई, इन्द्रद्वारा सदा सेवित, चारों ओरसे ऐरावतके मद-जलसे अभिषिक्त होनेके कारण सुशोभित और मध्यमें

तपस्विशरणोपेतां महाब्राह्मणसेविताम्।
ददर्श तपनीयाभां महाराजः पुरूरवाः॥ ३
सितहंसावलिच्छन्नां काशचामरराजिताम्।
साभिषिक्तामिव सतां पश्यन् प्रीतिं परां ययौ॥ ४
पुण्यां सुशीतलां हृद्यां मनसः प्रीतिवर्धिनीम्।
क्षयवृद्धियुतां रम्यां सोममूर्तिमिवापराम्॥ ५
सुशीतशीघ्रपानीयां द्विजसंघनिषेविताम्।
सुतां हिमवतः श्रेष्ठां चञ्चद्वीचिविराजिताम्॥ ६
अमृतस्वादुसलिलां तापसैरुपशोभिताम्।
स्वर्गारोहणनिःश्रेणीं सर्वकल्मषनाशिनीम्॥ ७
अब्ध्यां समुद्रमहिषीं महर्षिगणसेविताम्।
सर्वलोकस्य चौत्सुक्यकारिणीं सुमनोहराम्॥ ८
हितां सर्वस्य लोकस्य नाकमार्गप्रदायिकाम्।
गोकुलाकुलतीरान्तां रम्यां शैवालवर्जिताम्॥ ९
हंससारससंघुष्टां जलजैरुपशोभिताम्।
आवर्तनाभिगम्भीरां द्वीपोरुजघनस्थलीम्॥ १०
नीलनीरजनेत्राभामुत्फुल्लकमलाननाम्।
हिमाभफेनवसनां चक्रवाकाधरां शुभाम्।
बलाकापङ्क्तिदशनां चलन्मत्स्यावलिभ्रुवम्॥ ११
स्वजलोद्भूतमातङ्गरम्यकुम्भपयोधराम्।
हंसनूपुरसंघुष्टां मृणालवलयावलीम्॥ १२
तस्यां रूपमदोन्मत्ता गन्धर्वानुगताः सदा।
मध्याह्नसमये राजन् क्रीडन्त्यप्सरसां गणाः॥ १३
तामप्सरोविनिर्मुक्तं वहन्तीं कुङ्कुमं शुभम्।
स्वतीरद्रुमसम्भूतनानावर्णसुगन्धिनीम्॥ १४
तरङ्गव्रातसंक्रान्तसूर्यमण्डलदुर्दृशम्।
सुरेभजनिताघातविकूलद्वयभूषिताम्॥ १५
शक्रेभगण्डसलिलैर्देवस्त्रीकुचचन्दनैः।
संयुक्तं सलिलं तस्याः षट्पदैरुपसेव्यते॥ १६

इन्द्र-धनुषके समान चमक रही थी। उसके तटपर तपस्वियोंके आश्रम बने हुए थे। वह श्रेष्ठ ब्राह्मणोंद्वारा सुसेवित तथा तपाये हुए सुवर्णके समान चमक रही थी। ऐसी नदीको उस दिन महाराज पुरूरवाने देखा। वह श्वेत वर्णवाले हंसोंकी पङ्क्तियोंसे आच्छन्न, काश-पुष्परूपी चँवरसे सुशोभित और सत्पुरुषोंद्वारा नहलायी गयी-सी दीख रही थी। उसे देखकर राजाको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई। वह पुण्यमयी नदी शीतल जलसे परिपूर्ण, मनोहारिणी, मनको प्रसन्नता बढ़ानेवाली, ह्रास और वृद्धिसे संयुक्त, रमणीय, दूसरी चन्द्र-मूर्तिके समान उज्ज्वल, अत्यन्त शीतल और वेगसे बहनेवाले जलसे संयुक्त, ब्राह्मणों तथा पक्षिसमूहोंद्वारा सुसेवित, हिमालयकी श्रेष्ठ पुत्रीभूत, लोल लहरोंसे सुशोभित, अमृतके समान सुस्वादु जलसे परिपूर्ण, तपस्वियोंद्वारा सुशोभित, स्वर्गपर चढ़नेके लिये सोपान-सदृश, समस्त पापोंकी विनाशिनी, सर्वश्रेष्ठ, समुद्रकी पटरानी, महर्षिगणोंद्वारा सेवित, सभी लोगोंके मनमें उत्सुकता प्रकट करनेवाली, परम मनोहर, सभी लोगोंकी हितकारिणी, स्वर्गका मार्ग प्रदान करनेवाली, गोसमूहोंसे व्याप्त तट-प्रान्तवाली, परम सुन्दर, सेवाररहित, हंस तथा सारस पक्षियोंके शब्दसे गूँजित, कमलोंसे सुशोभित, भँवररूपी गहरी नाभिसे युक्त, द्वीपरूपी ऊरु एवं जघन-भागवाली, नीले कमलरूपी नेत्रकी शोभासे युक्त, खिले हुए कमल-पुष्परूपी मुखवाली, हिम (बर्फ)-तुल्य उज्ज्वल फेनरूपी वस्त्रसे युक्त, चक्रवाकरूपी होंठोंवाली, कल्याणमयी, बगुलोंकी पङ्क्तिरूपी दाँतोंसे युक्त, चञ्चल मछलियोंकी कतारकी-सी भौंहोंवाली, अपने जलके घुमावसे बने हुए हाथीके रमणीय गण्डस्थलरूपी स्तनोंसे युक्त, हंसरूपी नूपुरके झंकारसे संयुक्त तथा कमलनालरूपी कंकणोंसे सुशोभित थी॥ १—१२॥

राजन्! उस नदीमें दोपहरके समय अपनी सुन्दरताके मदसे उन्मत्त हुई यूथ-की-यूथ अप्सराएँ गन्धर्वोंके साथ सदा क्रीडा करती थीं। उन अप्सराओंके शरीरसे गिरे हुए सुन्दर कुङ्कुमको बहानेवाली वह नदी अपने तटपर उगे हुए वृक्षोंसे गिरे हुए पुष्पोंके कारण रंग-बिरंगवाली तथा सुगन्धसे व्याप्त थी, उसके तरंगसमूहसे आच्छादित होनेके कारण सूर्यमण्डलका दीखना कठिन हो गया था। वह ऐरावतद्वारा किये गये आघातसे चिह्नित तटोंसे विभूषित थी। उसका जल ऐरावतके गण्डस्थलसे बहते हुए मद-जल तथा देवाङ्गनाओंके स्तनोंपर लगे हुए चन्दनोंसे युक्त

तस्यास्तीरभवा वृक्षाः सुगन्धकुसुमाचिताः।
तथापकृष्टसम्भ्रान्तभ्रमरस्तनिताकुलाः ॥ १७

यस्यास्तीरे रतिं यान्ति सदा कामवशा मृगाः।
तपोवनाश्च ऋषयस्तथा देवाः सहाप्सराः॥ १८

लभन्ते यत्र पूताङ्गा देवेभ्यः प्रतिमानिताः।
स्त्रियश्च नाकबहुलाः पद्मेन्दुप्रतिमाननाः॥ १९

या बिभर्त्ति सदा तोयं देवसङ्घैरपीडितम्।
पुलिन्दैर्नृपसङ्घैश्च व्याघ्रवृन्दैरपीडितम्॥ २०

सतामरसपानीयां सतारगगनामलाम्।
स तां पश्यन् ययौ राजा सतामीप्सितकामदाम्॥ २१

यस्यास्तीररुहैः काशैः पूर्णैश्चन्द्रांशुसंनिभैः।
राजते विविधाकारै रम्यं तीरं महाद्रुमैः।
या सदा विविधैर्विप्रैर्देवैश्चापि निषेव्यते॥ २२

या च सदा सकलौघविनाशं
भक्तजनस्य करोत्यचिरेण।
यानुगता सरितां हि कदम्बै-
र्यानुगता सततं हि मुनीन्द्रैः॥ २३

या हि सुतानिव पाति मनुष्यान्
या च युता सततं हिमसङ्घैः।
या च युता सततं सुरवृन्दै-
र्या च जनैः स्वहिताय श्रिता वै॥ २४

युक्ता च केसरिगणैः करिवृन्दजुष्टा
संतानयुक्तसलिलापि सुवर्णयुक्ता।
सूर्यांशुतापपरिवृद्धकदम्बवृक्षा
शीतांशुतुल्ययशसा ददृशे नृपेण॥ २५

था, जिसपर भौंरे मँडरा रहे थे। उसके तटपर उगे हुए वृक्ष सुगन्धित पुष्पोंसे लदे हुए तथा सुगन्धके लोभसे आकृष्ट हुए चञ्चल भौंरोंकी गुंजारसे व्याप्त थे। जिसके तटपर कामके वशीभूत हुए मृग हिरनियोंके साथ विहार करते थे तथा वहाँ तपोवन, ऋषिगण, अप्सराओंसमेत देवगण, देवताओंके समान सुन्दर एवं पवित्र अङ्गोंवाले अन्य पुरुष एवं कमल और चन्द्रमाकी-सी मुखवाली स्वर्गवासिनी स्त्रियाँ भी पायी जाती थीं, जो देवगणों, पुलिन्दों (जंगली जातियों), नृपसमूहों और व्याघ्रदलोंसे अपीडित अर्थात् परम पवित्र जल धारण करती थी, जो कमलयुक्त जल धारण करनेके कारण तारिकाओंसहित निर्मल आकाशके समान सुशोभित तथा सत्पुरुषोंकी अभीष्ट कामनाओंको पूर्ण करनेवाली थी, उसे देखते हुए राजा पुरूरवा आगे बढ़े। जिस नदीके रमणीय तट तीरभूमिमें उगे हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल काश-पुष्पों तथा अनेकों प्रकारके विशाल वृक्षोंसे सुशोभित थे, जो सदा विविध मतावलम्बी ब्राह्मणों और देवताओंसे सुसेवित थी, जो सदा भक्तजनोंके सम्पूर्ण पापोंका शीघ्र ही विनाश कर देती थी, जिसमें बहुत-सी छोटी-छोटी नदियाँ आकर मिली थीं, जो निरन्तर मुनीश्वरोंद्वारा सेवित थी, जो पुत्रकी तरह मनुष्योंका पालन करती थी, जो सदा हिम (बर्फ) राशिसे आच्छादित रहती थी, जो निरन्तर देवगणोंसे संयुक्त रहती थी, अपना कल्याण करनेके लिये मनुष्य जिसका आश्रय लेते थे, जिसके किनारे झुंड-के-झुंड सिंह घूमते रहते थे, जो हाथी-समूहोंसे सेवित थी, जिसका जल कल्पवृक्षके पुष्पोंसे युक्त और सुवर्णके समान चमकीला था तथा जिसके तटवर्ती कदम्ब-वृक्ष सूर्यकी किरणोंके तापसे बढ़े हुए थे—ऐसी ऐरावती नदीको चन्द्रमा-सरीखे निर्मल यशवाले राजा पुरूरवाने देखा॥ १३—२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोषे सुरनदीवर्णनं नाम षोडशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनप्रसंगमें सुरनदी-वर्णन नामक एक सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११६॥

एक सौ सत्रहवाँ अध्याय

हिमालयकी अद्भुत छटाका वर्णन

सूत उवाच

आलोकयन् नदीं पुण्यां तत्समीरहृतश्रमः।
स गच्छन्नेव ददृशे हिमवन्तं महागिरिम्॥ १
खमुल्लिखद्भिर्बहुभिर्वृतं शृङ्गैस्तु पाण्डुरैः।
पक्षिणामपि सञ्चारैर्विना सिद्धगतिं शुभाम्॥ २
नदीप्रवाहसञ्जातमहाशब्दैः समन्ततः।
असंश्रुतान्यशब्दं तं शीततोयं मनोरमम्॥ ३
देवदारुवने नीलैः कृताधोवसनं शुभम्।
मेघोत्तरीयकं शैलं ददृशे स नराधिपः॥ ४
श्वेतमेघकृतोष्णीषं चन्द्रार्कमुकुटं क्वचित्।
हिमानुलिप्तसर्वाङ्गं क्वचिद् धातुविमिश्रितम्॥ ५
चन्दनेनानुलिप्ताङ्गं दत्तपञ्चाङ्गुलं यथा।
शीतप्रदं निदाघेऽपि शिलाविकटसङ्कटम्।
सालक्तकैरप्सरसां मुद्रितं चरणैः क्वचित्॥ ६
क्वचित् संस्पृष्टसूर्यांशु क्वचिच्च तमसावृतम्।
दरीमुखैः क्वचिद् भीमैः पिबन्तं सलिलं महत्॥ ७
क्वचिद् विद्याधरगणैः क्रीडद्भिरुपशोभितम्।
उपगीतं तथा मुख्यैः किंनराणां गणैः क्वचित्॥ ८
आपानभूमौ गलितैर्गन्धर्वाप्सरसां क्वचित्।
पुष्पैः संतानकादीनां दिव्यैस्तमुपशोभितम्॥ ९
सुप्तोत्थिताभिः शय्याभिः कुसुमानां तथा क्वचित्।
मृदिताभिः समाकीर्णं गन्धर्वाणां मनोरमम्॥ १०
निरुद्धपवनैर्देशैर्नीलशाद्वलमण्डितैः।
क्वचिच्च कुसुमैर्युक्तमत्यन्तरुचिरं शुभम्॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐरावती नदीके जलका स्पर्श करके बहती हुई वायुके स्पर्शसे राजा पुरूरवाकी थकावट दूर हो गयी थी। वे उस पुण्यमयी नदीको देखते हुए आगे बढ़ रहे थे। इतनेमें उन्हें महान् पर्वत हिमवान् दृष्टिगोचर हुआ। वह बहुत-से पीलापन लिये हुए उज्ज्वल वर्णवाले गगनचुम्बी शिखरोंसे युक्त था। वहाँ मङ्गलमयी सिद्ध-गतिके बिना पक्षियोंका भी संचार कठिन था अर्थात् वहाँ केवल सिद्धलोग ही जा सकते थे। वहाँ नदियोंके प्रवाहसे उत्पन्न हुआ महान् घर्घर शब्द चारों ओर गूँज रहा था, जिसके कारण दूसरा कोई शब्द सुनायी ही नहीं पड़ता था। वह शीतल जलसे परिपूर्ण एवं अत्यन्त मनोरम था। उसने देवदारुके नीले वनोंको अधोवस्त्रके स्थानपर और मेघोंको उत्तरीय वस्त्रके रूपमें धारण कर रखा था। ऐसे हिमालय पर्वतको राजा पुरूरवाने देखा। उसने कहीं तो श्वेत बादलोंकी पगड़ी बाँध रखी थी और कहीं सूर्य एवं चन्द्रमा उसके मुकुट-सरीखे दीख रहे थे। उसका सारा अङ्ग तो बर्फसे आच्छादित था, किंतु उसमें कहीं-कहीं गेरू आदि धातुएँ भी मिली हुई थीं, जिससे वह ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो श्वेत चन्दनसे लिपटे हुए शरीरपर पाँचों अङ्गुलियोंकी छाप लगा दी गयी हो। वह ग्रीष्म-ऋतुमें भी शीतलता प्रदान कर रहा था तथा बड़ी-बड़ी शिलाओंसे युक्त होनेके कारण अगम्य था। कहीं-कहीं अप्सराओंके महावरयुक्त चरणोंसे चिह्नित था, कहीं तो सूर्यकी किरणोंका स्पर्श हो रहा था, किंतु कहीं घोर अन्धकारसे आच्छादित था, कहीं भयानक गुफाओंके मुखोंमें जल गिर रहा था, जो ऐसा लगता था मानो वह अधिक-से-अधिक जल पी रहा हो। कहीं क्रीडा करते हुए यूथ-के-यूथ विद्याधरोंसे सुशोभित था, कहीं किंनरोंके प्रधान गणोंद्वारा गान हो रहा था, कहीं गन्धर्वों एवं अप्सराओंकी आपानभूमि (मधुशाला)-में गिरे हुए कल्पवृक्ष आदि वृक्षोंके दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित था और कहीं गन्धर्वोंकी शयन करके उठ जानेके पश्चात् मर्दित हुई शय्याओंके बिखरे हुए पुष्पोंसे आच्छादित होनेके कारण अत्यन्त मनोरम लग रहा था। कहीं ऐसे प्रदेश थे, जहाँ वायुकी पहुँच नहीं थी, किंतु वे हरी घासोंसे सुशोभित थे तथा उनपर फूल बिखरे हुए थे, जिससे वह अत्यन्त रुचिर एवं सुन्दर लग रहा था॥ १—११॥

तपस्विशरणं शैलं कामिनामतिदुर्लभम्।
मृगैर्यथानुचरितं दन्तिभिन्नमहाद्रुमम्॥ १२
यत्र सिंहनिनादेन त्रस्तानां भैरवं रवम्।
दृश्यते न च संभ्रान्तं गजानामाकुलं कुलम्॥ १३
तटाश्च तापसैर्यत्र कुञ्जदेशैरलङ्कृताः।
रत्नैर्यस्य समुत्पन्नैस्त्रैलोक्यं समलङ्कृतम्॥ १४
अहीनशरणं नित्यमहीनजनसेवितम्।
अहीनः पश्यति गिरिमहीनं रत्नसम्पदा॥ १५
अल्पेन तपसा यत्र सिद्धिं प्राप्स्यन्ति तापसाः।
यस्य दर्शनमात्रेण सर्वकल्मषनाशनम्॥ १६
महाप्रपातसम्पातप्रपातादिगताम्बुभिः।
वायुनीतैः सदा तृप्तिकृतदेशं क्वचित् क्वचित्॥ १७
समालब्धजलैः शृङ्गैः क्वचिच्चापि समुच्छ्रितैः।
नित्यार्कतापविषमैरगम्यैर्मनसा युतम्॥ १८
देवदारुमहावृक्षव्रजशाखानिरन्तरैः।
वंशस्तम्बवनाकारैः प्रदेशैरुपशोभितम्॥ १९
हिमच्छत्रमहाशृङ्गं प्रपातशतनिर्झरम्।
शब्दलभ्याम्बुविषमं हिमसंरुद्धकन्दरम्॥ २०
दृष्ट्वैव तं चारुनितम्बभूमिं
महानुभावः स तु मद्रनाथः।
बभ्राम तत्रैव मुदा समेतः
स्थानं तदा किंचिदथाससाद॥ २१

वह पर्वत तपस्वियोंका आश्रयस्थान तथा कामीजनोंके लिये अत्यन्त दुर्लभ था, उसपर मृग आदि वन्य पशु स्वच्छन्द विचरण करते थे, उसके विशाल वृक्षोंको हाथियोंने भिन्न-भिन्न कर दिया था, जहाँ सिंहकी गर्जनासे भयभीत हुए हाथियोंके दल व्याकुल होकर भयंकर चिग्घाड़ कर रहे थे, जिससे उनमें शान्ति नहीं दीख रही थी, जिसके तटवर्ती प्रदेश निकुञ्जों और तपस्वियोंसे अलंकृत थे, जिससे उत्पन्न हुए रत्नोंसे त्रिलोकी अलंकृत होती है, वासुकि आदि बड़े-बड़े नागोंके आश्रयस्थान, सत्पुरुषोंद्वारा सेवित तथा रत्नसम्पत्तियोंसे परिपूर्ण उस पर्वतको कोई सत्पुरुष ही देख सकता है। जहाँ तपस्वीलोग थोड़े ही तपसे सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं, जिसके दर्शनमात्रसे सारा पाप नष्ट हो जाता है, जिसके किन्हीं-किन्हीं स्थलोंपर वायुद्वारा लाये गये बड़े-बड़े झरनोंके गिरनेसे उत्पन्न हुए छोटे-छोटे झरनोंके जलसे पर्वतीय प्रदेश तृप्त होते हैं। कहीं उसके ऊँचे-ऊँचे शिखर जलसे आप्लावित थे तथा कहीं सूर्यके तापसे संतप्त होनेके कारण अगम्य थे। वहाँ केवल मनसे ही जाया जा सकता था; जो कहीं-कहीं देवदारुके विशाल वृक्षोंकी शाखा-प्रशाखाओंसे घनीभूत हुए तथा कहीं बाँसोंकी झुरमुटरूपी वनोंके आकारसे युक्त प्रदेशोंसे सुशोभित था। कहीं छत्तेके समान बड़े-बड़े शिखर बर्फसे आच्छादित थे, कहीं सैकड़ों झरने झर रहे थे, कहीं जलके गिरनेसे उत्पन्न हुए शब्दोंसे ही जलकी प्रतीति होती थी, कहीं गुफाएँ बर्फसे ढकी हुई थीं। इस प्रकार सुन्दर नितम्बरूपी भूमिसे युक्त उस हिमालय पर्वतको देखकर महानुभाव मद्रेश्वर पुरूरवा हर्षपूर्वक वहीं (अपने मनोऽनुकूल स्थानकी खोज करते हुए) घूमने लगे। तब उन्हें एक स्थान प्राप्त हुआ॥ १२—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोषे हिमवद्वर्णनं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोष-वर्णनमें हिमवद् वर्णन नामक एक सौ सत्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११७॥



पीतयूथिकया चैव श्वेतयूथिकया तथा।
जात्या चम्पकजात्या च तुम्बरैश्चाप्यतुम्बरैः॥ १४
मोचैर्लोचैस्तु लकुचैस्तिलपुष्पकुशेशयैः।
तथा सुपुष्पावरणैश्चव्यकैः कामिवल्लभैः॥ १५
पुष्पाङ्कुरैश्च बकुलैः पारिभद्रहरिद्रकैः।
धाराकदम्बैः कुटजैः कदम्बैर्गिरिकूटजैः॥ १६
आदित्यमुस्तकैः कुम्भैः कुङ्कुमैः कामवल्लभैः।
कटुफलैर्बदरैर्नीपैर्दीपैरिव महोज्ज्वलैः॥ १७
रक्तैः पालीवनैः श्वेतैर्दाडिमैश्चम्पकद्रुमैः।
बन्धूकैश्च सुबन्धूकैः कुञ्जकानां तु जातिभिः॥ १८
कुसुमैः पाटलाभिश्च मल्लिकाकरवीरकैः।
कुरबकैर्हिमवरैर्जम्बूभिर्नृपजम्बुभिः॥ १९
बीजपूरैः सकर्पूरैर्गुरुभिश्चागुरुद्रुमैः।
बिम्बैश्च प्रतिबिम्बैश्च संतानकवितानकैः॥ २०

पीली जूही, सफेद जूही, मालती, चम्पाके समूह, तुम्बर (एक प्रकारकी धनिया), अतुम्बर, मोच (केला या सेमल), लोच (गोरखमुण्डी), लकुच (बड़हर), तिल तथा कमलके फूल, कामियोंको प्रिय लगनेवाले पुष्पाङ्कुरों (कुड्मलों) तथा प्रफुल्ल पुष्पोंसे युक्त चव्य (चाब नामक वृक्ष), बकुल (मौलसिरी), पारिभद्र (फरहद), हरिद्रक, धाराकदम्ब (कदम्बका एक भेद), कुटज (कुरैया), पर्वतशिखरोंपर उगनेवाले कदम्ब, आदित्यमुस्तक (मदार), कुम्भ (गुग्गुलका वृक्ष), कामदेवका प्रिय कुङ्कुम (केसर), कटुफल (कायफर), बेर, दीपककी भाँति अत्यन्त चमकीले कदम्ब, लाल रंगके पाली (पालीवत)-के वन, श्वेत अनार, चम्पाके वृक्ष, बन्धूक (दुपहरिया), सबन्धूक (तिलका पौधा), कुञ्जोंके समूह, लाल गुलाबके कुसुम, मल्लिका, करवीरक (कनेर), कुरबक (लाल कटसरैया), हिमवर, जम्बू (छोटी जामुन या कठजामुन), नृपजम्बू (बड़ी जामुन), बिजौरा, कपूर, गुरु, अगुरु, बिम्ब (एक फल), प्रतिबिम्ब और संतानक वृक्ष (कल्पवृक्ष) वितानकी तरह फैले हुए थे॥ ११—२०॥

तथा गुग्गुलवृक्षैश्च हिन्तालधवलेक्षुभिः।
तृणशून्यैः करवीरैरशोकैश्चक्रमर्दनैः॥ २१
पीलुभिर्धातकीभिश्च चिरिबिल्वैः समाकुलैः।
तिन्तिडीकैस्तथा लोध्रैर्विडङ्गैः क्षीरिकाद्रुमैः॥ २२
अश्मन्तकैस्तथा कालैर्जम्बीरैः श्वेतकद्रुमैः।
भल्लातकैरिन्द्रयवैर्वल्गुजैः सिन्दुवारकैः॥ २३
करमर्दैः कासमर्दैरविष्टकवरिष्टकैः।
रुद्राक्षैर्द्राक्षसम्भूतैः समाह्वैः पुत्रजीवकैः॥ २४
कङ्कोलकैर्लवङ्गैश्च त्वग्द्रुमैः पारिजातकैः।
प्रतानैः पिप्पलीनां च नागवल्ल्यश्च भागशः॥ २५
मरीचस्य तथा गुल्मैर्नवमल्लिकया तथा।
मृद्वीकामण्डपैर्मुख्यैरतिमुक्तकमण्डपैः॥ २६
त्रपुषैर्नर्तिकानां च प्रतानैः सफलैः शुभैः।
कूष्माण्डानां प्रतापैश्च अलाबूनां तथा क्वचित्॥ २७
चिर्भिटस्य प्रतानैश्च पटोलीकारवेल्लकैः।
कर्कोटकीवितानैश्च वर्ताकैर्बृहतीफलैः॥ २८

गुग्गुलवृक्ष, हिंताल, श्वेत ईख, केतकी, कनेर, अशोक, चक्रमर्दन (चकवड़), पीलु, धातकी (धव), घने चिलबिल, तिन्तिडीक (इमली), लोध, विडंग, क्षीरिकाद्रुम (खिरनी), अश्मन्तक (लहसोड़ा), काल (रक्तचित्र नामका एक वृक्ष), जम्बीर, श्वेतक (वरुण या वरना नामक एक वृक्षविशेष), भल्लतक (भिलावा), इन्द्रयव, वल्गुज (सोमराजी नामसे प्रसिद्ध), सिन्दुवार, करमर्द (करौंदा), कासमर्द (कसौंदी), अविष्टक (मिर्च), वरिष्टक (हुरहुर), रुद्राक्षके वृक्ष, अंगूरकी लता, सप्तपर्ण, पुत्रजीवक (पतजुग), कंकोलक (शीतलचीनी), लौंग, त्वग्द्रुम (दालचीनी) और पारिजातके वृक्ष लहलहा रहे थे। कहीं पिप्पली (पीपर) तथा कहीं नागवल्लीकी लताएँ फैली हुई थीं। कहीं काली मिर्च और नवमल्लिकाकी लताओंके कुञ्ज बने हुए थे। कहीं अंगूर और माधवीकी लताओंके मण्डप शोभा पा रहे थे। कहीं फलोंसे लदी हुई नीले रंगके फूलोंवाली लताएँ, कहीं कुम्हड़े तथा कद्दूकी लताएँ और कहीं घुँघुची, परवल, करैला एवं कर्कोटकी (पीतघोषा)-की लताएँ शोभा दे रही थीं। कहीं बैगन और भटकटैयाके फल,

कण्टकैर्मूलकैर्मूलशाकैस्तु विविधैस्तथा।
कह्लारैश्च विदार्या च रुरूटैः स्वादुकण्टकैः॥ २९
सभाण्डीरविदूसारराजजम्बूकवालुकैः।
सुवर्चलाभिः सर्वाभिः सर्षपाभिस्तथैव च॥ ३०
काकोलीक्षीरकाकोली छत्रया चातिच्छत्रया।
कासमर्दीसहासद्भिः सकन्दलसकाण्डकैः॥ ३१
तथा क्षीरकशाकेन कालशाकेन चाप्यथ।
शिम्बीधान्यैस्तथा धान्यैः सर्वैर्निरवशेषतः॥ ३२

मूली, जड़वाले शाक तथा अनेकों प्रकारके काँटेदार वृक्ष शोभा पा रहे थे। कहीं श्वेत कमल, कंदबिदारी, रुरूट (एक फलदार वृक्ष), स्वादुकण्टक, (सफेद पिंडालू), भाण्डीर (एक प्रकारका वट), बिदूसार (बिदारकन्द), राजजम्बूक (बड़ी जामुन), वालुक (एक प्रकारका आँवला), सुवर्चला (सूर्यमुखी) तथा सभी प्रकारके सरसोंके पौधे भी विद्यमान थे। काकोली (कंकोल), क्षीरकाकोली (कंकोलका एक भेद), छत्रा (छत्ता), अतिच्छत्रा (तालमखाना), कासमर्दी (अडूसा), कन्दल (केलेका एक भेद), काण्डक (करैला), क्षीरशाक (दूधी), कालशाक (करेमू) नामक शाकों, सेमकी लताओं तथा सभी प्रकारके अन्नोंके पौधोंसे वह सारा प्रदेश सुशोभित हो रहा था॥ २९—३२॥

औषधीभिर्विचित्राभिर्दीप्यमानाभिरेव च।
आयुष्याभिर्यशस्याभिर्बल्याभिश्च नराधिप॥ ३३
जरामृत्युभयघ्नीभिः क्षुद्भयघ्नीभिरेव च।
सौभाग्यजननीभिश्च कृत्स्नाभिश्चाप्यनेकशः॥ ३४
तत्र वेणुलताभिश्च तथा कीचकवेणुभिः।
काशैः शशाङ्ककाशैश्च शरगुल्मैस्तथैव च॥ ३५
कुशगुल्मैस्तथा रम्यैर्गुल्मैश्चेक्षोर्मनोरमैः।
कार्पासजातिवर्गेण दुर्लभेन शुभेन च॥ ३६
तथा च कदलीखण्डैर्मनोहारिभिरुत्तमैः।
तथा मरकतप्रख्यैः प्रदेशैः शाद्वलान्वितैः॥ ३७
इरापुष्पसमायुक्तैः कुङ्कुमस्य च भागशः।
तगरातिविषामांसीग्रन्थिकैस्तु सुरागदैः॥ ३८
सुवर्णपुष्पैश्च तथा भूमिपुष्पैस्तथापरैः।
जम्बीरकैर्भूस्तृणकैः सरसैः सशुकैस्तथा॥ ३९
शृङ्गवेराजमोदाभिः कुबेरकप्रियालकैः।
जलजैश्च तथावर्णैर्नानावर्णैः सुगन्धिभिः॥ ४०
उदयादित्यसङ्काशैः सूर्यचन्द्रनिभैस्तथा।
तपनीयसवर्णैश्च अतसीपुष्पसन्निभैः॥ ४१
शुकपत्रनिभैश्चान्यैः स्थलपत्रैश्च भागशः।
पञ्चवर्णैः समाकीर्णैर्बहुवर्णैस्तथैव च॥ ४२

नरेश्वर! वहाँ आयु, यश और बल प्रदान करनेवाली, वृद्धावस्था और मृत्युके भयको दूर करनेवाली, भूख-प्यासके कष्टकी विनाशिका एवं सौभाग्यप्रदायिनी सारी ओषधियाँ चित्र-विचित्ररूपमें देदीप्यमान हो रही थीं। वहाँ बाँसकी लताएँ फैली थीं तथा पोले बाँस हवाके संघर्षसे शब्द कर रहे थे। चन्द्रमाके समान उज्ज्वल काश-पुष्पों, सरपत, कुश और ईखके परम मनोहर रमणीय झाड़ियों तथा मनोरम एवं दुर्लभ कपास और मालतीके वृक्षों अथवा लताओंसे वह वन्य प्रदेश सुशोभित हो रहा था। वहाँ मनको चुरा लेनेवाले उत्तम जातिके केलेके वृक्ष भी लहलहा रहे थे। कोई-कोई प्रदेश मरकतमणिके तुल्य हरी-हरी घासोंसे हरे-भरे थे। कहीं कुङ्कुम और इरा (एक प्रकारकी नशीली मीठी लता)-के पुष्प बिखरे हुए थे। कहीं तगर, अतिविषा (अतीस नामकी जहरीली ओषधि), जटामासी और गुग्गुलकी भीनी सुगन्ध फैल रही थी। कहीं कनेरके पुष्पों, भूमिपर फैली हुई लताओंके फूलों, जम्बीर-वृक्षों और घासोंसे भूमि सुहावनी लग रही थी, जिसपर तोते विचर रहे थे। कहीं शृङ्गवेर (अदरख), अजमोदा, कुबेरक (तुनि) और प्रियालक (छोटी पियार)-के वृक्ष शोभा पा रहे थे तो कहीं अनेकों रंगोंके सुगन्धित कमलोंके पुष्प खिले हुए थे। उनमें कुछ पुष्प उगते हुए सूर्यके समान लाल, कुछ सूर्य-सरीखे चमकीले एवं चन्द्रमाके-से उज्ज्वल थे, कुछ सुवर्ण-सदृश पीतोज्ज्वल, कुछ अलसीके पुष्पके समान नीले तथा कुछ तोतेके पंखके सदृश हरे थे। इस प्रकार वहाँकी भूमि इन पाँचों रंगोंवाले तथा अन्यान्य रंग-बिरंगे स्थलपुष्पोंसे आच्छादित थी।

द्रष्टुर्दृष्ट्या हितमुदैः कुमुदैश्चन्द्रसन्निभैः।
तथा वह्निशिखाकारैर्गजवक्त्रोत्पलैः शुभैः॥ ४३

नीलोत्पलैः सकह्लारैर्गुञ्जातककसेरुकैः।
शृङ्गाटकमृणालैश्च करटै राजतोत्पलैः॥ ४४

जलजैः स्थलजैर्मूलैः फलैः पुष्पैर्विशेषतः।
विविधैश्चैव नीवारैर्मुनिभोज्यैर्नराधिप॥ ४५

न तद्धान्यं न तत्सस्यं न तच्छाकं न तत् फलम्।
न तन्मूलं न तत् कन्दं न तत् पुष्पं नराधिप॥ ४६

नागलोकोद्भवं दिव्यं नरलोकभवं च यत्।
अनूपोत्थं वनोत्थं च तत्र यन्नास्ति पार्थिवः॥ ४७

सदा पुष्पफलं सर्वमजर्यमृतुयोगतः।
मद्रेश्वरः स ददृशे तपसा ह्यतियोगतः॥ ४८

ददृशे च तथा तत्र नानारूपान् पतत्रिणः।
मयूरान् शतपत्रांश्च कलविङ्कांश्च कोकिलान्॥ ४९

तदा कादम्बकान् हंसान् कोयष्टीन् खञ्जरीटकान्।
कुररान् कालकूटांश्च खट्वाङ्गाँल्लुब्धकांस्तथा॥ ५०

गोक्ष्वेडकांस्तथा कुम्भान् धार्तराष्ट्राञ्छुकान् बकान्।
यातुकांश्चक्रवाकांश्च कटाकूण्टिट्टिभान् भटान्॥ ५१

पुत्रप्रियाँल्लोहपृष्ठान् गोचर्मगिरिवर्तकान्।
पारावतांश्च कमलान् सारिकाञ्जीवजीवकान्॥ ५२

लाववर्तकवार्ताकान् रक्तवर्त्मप्रभद्रकान्।
ताम्रचूडान् स्वर्णचूडाङ्कुक्कुटान् काष्ठकुक्कुटान्॥ ५३

कपिञ्जलान् कलविङ्कांस्तथा कुङ्कुमचूडकान्।
भृङ्गराजान् सीरपादान् भूलिङ्गण्डिण्डिमान् नवान्॥ ५४

मञ्जुलीतकदात्यूहान् भारद्वाजांस्तथा चषान्।
एतांश्चान्यांश्च सुबहून् पक्षिसङ्घान् मनोहरान्॥ ५५

वह वनस्थली देखनेवालेकी दृष्टिको आनन्ददायक एवं चन्द्रमा-सरीखे उज्ज्वल कुमुद-पुष्पों तथा अग्निकी शिखाके सदृश एवं हाथीके मुखमें संलग्न उज्ज्वल उत्पल, नीले उत्पल, कह्लार, गुंजातक (घुँघुची), कसेरुक (कसेरा), शृङ्गाटक (सिंघाड़ा), कमलनाल, करट (कुसुम्भ) तथा चाँदीके समान उज्ज्वल उत्पलोंसे सुशोभित थी। इस प्रकार वह प्रदेश जल-कमल एवं स्थलकमल तथा मूल, फल और पुष्पोंसे विशेष शोभायमान था। नरेश्वर! वहाँ मुनियोंके खानेयोग्य अनेकों प्रकारके नीवार (तिन्नी) भी उगे हुए थे॥ ३३—४५॥

नरेन्द्र! (यहाँतक कि) नागलोक, स्वर्गलोक, मृत्युलोक, जलप्रा स्थान तथा वनमें उत्पन्न होनेवाला ऐसा कोई भी अनाज, धान्य, शाक, फल, मूल, कन्द और फूल नहीं था, जो वहाँ विद्यमान न हो अर्थात् सभी प्राप्य थे। वहाँके वृक्ष ऋतुओंके अनुकूल सदा फूलों और फलोंसे लदे रहते थे। मद्रेश्वर पुरूरवाने अपनी तपस्याके प्रभावसे उस वनप्रान्तको देखा। राजाको वहाँ अनेकों प्रकारके रूप-रंगवाले पक्षी भी दीख पड़े। जैसे मोर, शतपत्र (कठफोरवा), कलविंक (गौरैया), कोयल, कादम्बक (कलहंस), हंस, कोयष्टि (जलकुक्कुट), खंजरीट (खिड़रिच), कुरर (कराँकुल), कालकूट (जलकौआ), लोभी खट्वाङ्ग (पक्षिविशेष), गोक्ष्वेडक (हारिल), कुम्भ (डोम कौआ), धार्तराष्ट्र (काली चोंच और काले पैरोंवाले हंस), तोते, बगुले, निष्ठुर चक्रवाक, कटाकू (कर्कश ध्वनि करनेवाले विशेष पक्षी), टिटिहिरी, भट (तीतर), पुत्रप्रिय (शरभ), लोहपृष्ठ (श्वेत चील्ह), गोचर्म (चरसा), गिरिवर्तक (बतख), कबूतर, कमल (सारस), मैना, जीवजीवक (चकोर), लवा, वर्तक (बटेर), वार्ताक (बटेरोंकी एक जाति), रक्तवर्त्म (मुर्गा), प्रभद्रक (हंसका एक भेद), ताम्रचूड (लाल शिखावाले मुर्गे), स्वर्णचूड (स्वर्ण-सदृश शिखावाले मुर्गे), सामान्य मुर्गे, काष्ठकुक्कुट (मुर्गेका एक भेद), कपिञ्जल (पपीहा), कलविंक (गौरैया), कुङ्कुमचूड (केसर-सरीखी शिखावाले पक्षी), भृङ्गराज (पक्षिविशेष), सीरपाद (बड़ा सारस), भूलिंग (भूमिमें रहनेवाले पक्षी), डिण्डिम (हारिल पक्षीकी एक जाति), नव (काक), मञ्जुलीतक (चील्हकी जातिविशेष), दात्यूह (जलकाक), भारद्वाज (भरदूल) तथा चाष (नीलकण्ठ)—इन्हें तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुत-से मनोहर पक्षिसमूहोंको राजाने देखा॥ ४६—५५॥

श्वापदान् विविधाकारान् मृगांश्चैव महामृगान्।
व्याघ्रान् केसरिणः सिंहान् द्वीपिनः शरभान् वृकान्॥ ५६
ऋक्षांस्तरक्षूंश्च बहून् गोलाङ्गूलान् सवानरान्।
शशलोमान् सकादम्बान् मार्जारान् वायुवेगिनः॥ ५७
तथा मत्तांश्च मातङ्गान् महिषान् गवयान् वृषान्।
चमरान् सृमरांश्चैव तथा गौरखरानपि॥ ५८
उरभ्रांश्च तथा मेषान् सारङ्गानथ कूकुरान्।
नीलांश्चैव महानीलान् करालान् मृगमातृकान्॥ ५९
सदंष्ट्रालोमशरभान् क्रौञ्चाकारकशम्बरान्।
करालान् कृतमालांश्च कालपुच्छांश्च तोरणान्॥ ६०
उष्ट्रान् खड्गान् वराहांश्च तुरङ्गान् खरगर्दभान्।
एतानद्विष्टान् मद्रेशो विरुद्धांश्च परस्परम्॥ ६१
अविरुद्धान् वने दृष्ट्वा विस्मयं परमं ययौ।
तच्चाश्रमपदं पुण्यं बभूवात्रेः पुरा नृप॥ ६२
तत्प्रसादात् प्रभायुक्तं स्थावरैर्जङ्गमैस्तथा।
हिंसन्ति हि न चान्योन्यं हिंसकास्तु परस्परम्॥ ६३
क्रव्यादाः प्राणिनस्तत्र सर्वे क्षीरफलाशनाः।
निर्मितास्तत्र चात्यर्थमत्रिणा सुमहात्मना॥ ६४
शैलानितम्बदेशेषु न्यवसच्च स्वयं नृपः।
पयः क्षरन्ति ते दिव्यममृतस्वादुकण्टकम्॥ ६५
क्वचिद् राजन् महिष्यश्च क्वचिदाजाश्च सर्वशः।
शिलाः क्षीरेण सम्पूर्णा दध्ना चान्यत्र वा बहिः॥ ६६
सम्पश्यन् परमां प्रीतिमवाप वसुधाधिपः।
सरांसि तत्र दिव्यानि नद्यश्च विमलोदकाः॥ ६७
प्रणालिकानि चोष्णानि शीतलानि च भागशः।
कन्दराणि च शैलस्य सुसेव्यानि पदे पदे॥ ६८
हिमपातो न तत्रास्ति समन्तात् पञ्चयोजनम्।
उपत्यका सुशैलस्य शिखरस्य न विद्यते॥ ६९
तत्रास्ति राजञ्छिखरं पर्वतेन्द्रस्य पाण्डुरम्।
हिमपातं घना यत्र कुर्वन्ति सहिताः सदा॥ ७०

इसी प्रकार राजाको वहाँ विभिन्न रूप-रंगवाले जंगली जीव भी देखनेको मिले। जैसे— हिरन, बारहसिंघे, बाघ, सिंह, शेर, चीता, शरभ (अष्टपदी), भेड़िया, रीछ, तरक्षु (लकड़ा), बहुत-से लाङ्गूली वानर, सामान्य वानर, वायु-सरीखे वेगशाली खरगोश, लोमड़ी, वनबिलाव, बिलाव, मतवाले हाथी, भैंसे, नीलगाय, बैल, चमर (सुरा गाय), सृमर (बालमृग), श्वेत रंगके गधे, भेंड़, मेढ़, मृग, कुत्ते, नीले एवं गाढ़े नीले रंगवाले भयानक मृगमातृक (कस्तूरी मृग), बड़ी-बड़ी दाढ़ों एवं रोमोंसे युक्त शरभ (अष्टपदी), क्रौंच पक्षीके आकारवाले शम्बर (साबर मृग), भयानक कृतमाल (एक प्रकारका हिरन), काली पूँछोंवाले तोरण (सियार), ऊँट, गैंडे, सूअर, घोड़े, खच्चर, गधे* आदि जीवोंको उस वनमें परस्पर विरुद्धस्वभाववाले होनेपर भी द्वेषरहित होकर निवास करते देखकर मद्रेश्वर पुरूरवा विस्मयविमुग्ध हो गये। राजन्! पूर्वकालमें उसी स्थानपर महर्षि अत्रिका पुण्यमय आश्रम था। उन ऋषिकी कृपासे वह प्रदेश स्थावर-जङ्गम प्राणियोंसे भरा हुआ अत्यन्त सुहावना था और वहाँ हिंसक जीव भी परस्पर एक-दूसरेकी हिंसा नहीं करते थे॥ ५६—६३॥

महर्षि अत्रिने उस आश्रममें ऐसा उत्तम वातावरण बना दिया था कि वहाँके सभी मांसभोजी जीव दूध और फलका ही आहार करते थे। राजन्! मद्रेश्वरने पर्वतके उसी नितम्बप्रदेश (निचले भाग)-में अपना निवास-स्थान बनाया। वहाँ सब ओर कहीं भैंसों तो कहीं बकरियोंके स्तनोंसे अमृतके समान स्वादिष्ट दिव्य दूध झरता रहता था, जिससे वहाँकी शिलाएँ भीतर-बाहर— सब ओर दूध एवं दहीसे सराबोर रहती थीं। यह देखकर भूपाल पुरूरवाको परम हर्ष प्राप्त हुआ। वहाँ दिव्य सरोवर थे तथा निर्मल जलसे भरी हुई नदियाँ बह रही थीं। नालियोंमें कहीं गरम तो कहीं शीतल जल बह रहा था। उस पर्वतकी कन्दराएँ पग-पगपर सेवन करने योग्य थीं। उस आश्रमके चारों ओर पाँच योजनके घेरेमें हिम-पात नहीं होता था। उस सुन्दर पर्वतके शिखरके नीचे उपत्यका (मैदानी भूमि) नहीं थी (जिसके कारण वह प्रदेश जनशून्य था)। राजन्! वहाँ उस पर्वतराजका एक पीले रंगका शिखर है, जिसपर बादल संगठित होकर सदा हिमकी वर्षा किया करते हैं।

* नामावलिमें एक ही नाम कई बार आये हैं, अतः उनसे उस जातिके विभिन्न भेदोंको समझना चाहिये।

तत्रास्ति चापरं शृङ्गं यत्र तोयघना घनाः।
नित्यमेवाभिवर्षन्ति शिलाभिः शिखरं वरम्॥ ७१

तदाश्रमं मनोहारि यत्र कामधरा धरा।
सुरमुख्योपयोगित्वाच्छाखिनां सफलाः फलाः॥ ७२

सदोपगीतभ्रमरसुरस्त्रीसेवितं परम्।
सर्वपापक्षयकरं शैलस्येव प्रहारकम्॥ ७३

वानरैः क्रीडमानैश्च देशाद् देशान् नराधिप।
हिमपुञ्जाः कृतास्तत्र चन्द्रबिम्बसमप्रभाः॥ ७४

तदाश्रमं समंताच्च हिमसंरुद्धकन्दरैः।
शैलवाटैः परिवृतमगम्यं मनुजैः सदा॥ ७५

पूर्वाराधितभावोऽसौ महाराजः पुरूरवाः।
तदाश्रमपदं प्राप्तो देवदेवप्रसादतः॥ ७६

तदाश्रमं श्रमशमनं मनोहरं
मनोहरैः कुसुमशतैरलङ्कृतम्।
कृतं स्वयं रुचिरमथात्रिणा शुभं
शुभावहं तद् ददृशे स मद्रराट्॥ ७७

वहाँ एक दूसरा शिखर भी है, उस सुन्दर शिखरपर जलसे बोझिल हुए बादल बड़ी-बड़ी शिलाओंके साथ नित्य बरसते रहते हैं। जहाँ वह मनको लुभानेवाला आश्रम स्थित है, वहाँकी पृथ्वी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। प्रधान देवताओंके उपयोगमें आनेके कारण वहाँके वृक्षोंके फल भी सफलताको प्राप्त करते रहते हैं। वह श्रेष्ठ आश्रम सदा भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान एवं देवाङ्गनाओंसे सुसेवित तथा उस पर्वतके प्रहरीकी तरह सम्पूर्ण पापोंका विनाशक था। नरेश्वर! एक स्थानसे दूसरे स्थानपर क्रीडा करते हुए बन्दरोंने वहाँकी बर्फराशिको चाँदनीके समान उज्ज्वल बना दिया था। वह आश्रम चारों ओरसे हिमाच्छादित कन्दराओं और कँकरीले-पथरीले मार्गोंसे घिरा हुआ था, इसलिये वह मनुष्योंके लिये सदा अगम्य था। पूर्वजन्मकी आराधनाके प्रभावसे युक्त महाराज पुरूरवा देवाधिदेव भगवान्‌की कृपासे उस आश्रमपर पहुँचे थे। वह आश्रम थकावटको दूर करनेवाला, मनोहर, मनोमोहक पुष्पोंसे अलंकृत, स्वयं महर्षिद्वारा सुन्दररूपमें निर्मित, मङ्गलमय एवं शुभकारक था, उसे मद्रराज पुरूरवाने देखा॥ ६४—७७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशेऽत्र्याश्रमवर्णनं नामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें अत्रि-आश्रमवर्णन नामक एक सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ ११८॥

एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय

आश्रमस्थ विवरमें पुरूरवा* का प्रवेश, आश्रमकी शोभाका वर्णन तथा पुरूरवाकी तपस्या

सूत उवाच

तत्र यौ तौ महाशृङ्गौ महावर्णौ महाहिमौ।
तृतीयं तु तयोर्मध्ये शृङ्गमत्यन्तमुच्छ्रितम्॥ १

नित्याततशिलाजालं सदाभ्रपरिवर्जितम्।
तस्याधस्ताद् वृक्षगणो दिशां भागे च पश्चिमे॥ २

जातीलतापरिक्षिप्तं विवरं चारुदर्शनम्।
दृष्ट्वैव कौतुकाविष्टस्तं विवेश महीपतिः॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! वहाँ सदा हिमाच्छादित तथा रंग-बिरंगे जो दो महान् शिखर थे, उनके बीचमें एक तीसरा शिखर था, जो अत्यन्त ऊँचा था। वह बादलोंसे सदा शून्य रहता था, जिससे उसकी शिलाएँ नित्य सन्तप्त बनी रहती थीं। उस शिखरके नीचे पश्चिम दिशामें वृक्षोंके समूह शोभा पा रहे थे। उन्हींके बीचमें एक अत्यन्त सुन्दर विवर (छिद्र) था, जो मालतीकी लताओंसे आच्छादित था। उसे देखते ही राजा पुरूरवा आश्चर्यचकित हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने उस विवरमें

* इस पुराणमें—यजुर्वेद ५। २, ऋग्वेद १०। ९५, शतपथब्रा० ११। ५ आदिमें संकथित पुरूरवाके कथानकका सर्वाधिक विस्तारसे उपबृंहण हुआ है और कई बार उसकी पुनरुक्ति भी हुई है। इससे विक्रमोर्वशीयमें कालिदास एवं पार्जीटर आदि आधुनिक पाश्चात्त्य विद्वान् लेखक बहुत प्रभावित हुए हैं। निघण्टु ५। ४ तथा यास्कीय निरुक्त १०। ४६ एवं ऋग्वेद १०। ९५। २ के अनुसार ये सूर्यका मूल प्राणतत्त्व हैं। पाणि० ६। ३। १३७ के अनुसार यहाँ 'पुरू' में दीर्घ हुआ है।

तमसा चातिनिबिडं नल्वमात्रं सुसंकटम्।
नल्वमात्रमतिक्रम्य स्वप्रभाभरणोज्ज्वलम्॥ ४
तमुच्छ्रितमथात्यन्तं गम्भीरं परिवर्तुलम्।
न तत्र सूर्यस्तपति न विराजति चन्द्रमाः॥ ५
तथापि दिवसाकारं प्रकाशं तदहर्निशम्।
क्रोशाधिकपरीमाणं सरसा च विराजितम्॥ ६
समंतात् सरसस्तस्य शैललग्ना तु वेदिका।
सौवर्णे राजतैर्वृक्षैर्विद्रुमैरुपशोभितम्॥ ७
नानामाणिक्यकुसुमैः सुप्रभाभरणोज्ज्वलैः।
तस्मिन् सरसि पद्मानि पद्मरागच्छदानि तु॥ ८
वज्रकेशरजालानि सुगन्धीनि तथा युतम्।
पत्रैर्मरकतैर्नीलैर्वैदूर्यस्य महीपते॥ ९
कर्णिकाश्च तथा तेषां जातरूपस्य पार्थिव।
तस्मिन् सरसि या भूमिः सा तु वज्रसमाकुला॥ १०
नानारत्नैरुपचिता जलजानां समाश्रया।
कपर्दिकानां शुक्तीनां शङ्खानां च महीपते॥ ११
मकराणां च मत्स्यानां चण्डानां कच्छपैः सह।
तत्र मरकतखण्डानि वज्राणां च सहस्रशः॥ १२
पद्मरागेन्द्रनीलानि महानीलानि पार्थिव।
पुष्परागाणि सर्वाणि तथा कर्केतनानि च॥ १३
तुत्थकस्य तु खण्डानि तथा शेषस्य भागशः।
रा(ला)जावर्तस्य मुख्यस्य रुधिराक्षस्य चाप्यथ॥ १४
सूर्येन्दुकान्तयश्चैव नीलो वर्णान्तिमश्च यः।
ज्योतीरसस्य रम्यस्य स्यमन्तस्य च भागशः॥ १५
सुरोरगवलक्षाणां स्फटिकस्य तथैव च।
गोमेदपित्तकानां च धूलीमरकतस्य च॥ १६
वैदूर्यसौगन्धिकयोस्तथा राजमणेर्नृप।
वज्रस्यैव च मुख्यस्य तथा ब्रह्ममणेरपि॥ १७
मुक्ताफलानि मुक्तानां ताराविग्रहधारिणीम्॥ १८

प्रवेश किया। वह मार्ग चार सौ हाथ (एक फर्लांग)-तक घने अन्धकारसे समावृत होनेके कारण अत्यन्त संकटमय था। उस चार सौ हाथकी दूरी पार कर लेनेपर राजा ऐसे स्थानपर पहुँचे, जो अपनी कान्तिसे ही उद्भासित हो रहा था। वह स्थान ऊँचा, अत्यन्त गम्भीर और गोलाकार था तथा एक कोसके विस्तारवाला था। यद्यपि वहाँ न सूर्य तपते थे न चन्द्रमा ही विराजमान थे, तथापि वह दिनकी भाँति रात-दिन प्रकाशयुक्त बना रहता था। वहाँ एक सरोवर भी था। जो सुवर्ण, चाँदी और मूँगेके समान रंग-बिरंगे वृक्षोंसे सुशोभित था। उन वृक्षोंमें नाना प्रकारके मणियोंके सदृश परमोत्कृष्ट कान्तिसे युक्त फूल खिले हुए थे। उस सरोवरके चारों ओर शिलाओंकी वेदी बनी हुई थी, भूपाल! उस सरोवरमें विभिन्न प्रकारके कमल खिले हुए थे, जिनके पुष्पदल पद्मरागमणि-सरीखे, केसर-समूह हीरेके-से और पत्ते नीले वैदूर्य मणिके समान चमक रहे थे और वे सुगन्धसे भरे हुए थे। उनकी कर्णिका (छत्ता) सुवर्णके समान चमकीली थी॥ १—९½॥

उस सरोवरमें जो भूमि थी, वह हीरेसे आच्छादित थी, साथ ही वह नाना प्रकारके दूसरे रत्नोंसे भी मण्डित थी। महीपाल! वहाँ जलमें उत्पन्न होनेवाली कौड़ी, सीपी और शङ्ख भी वर्तमान थे। वह कछुओंके साथ-साथ भयानक घड़ियालों और मछलियोंका वासस्थान था। राजन्! उसमें कहीं मरकतमणि तथा हीरेके हजारों टुकड़े पड़े थे। कहीं पद्मराग (माणिक्य या लाल), इन्द्रनील (नीलम), महानील, पुष्पराग (पुखराज), कर्केतन, तुत्थक तथा शेष मणियोंके खण्ड चमक रहे थे। कहीं लाजावर्त, मुख्य, रुधिराक्ष, सूर्यकान्त, चन्द्रकान्त, नीलवर्णान्तिक, ज्योतीरस, रम्य एवं स्यमन्तक मणियोंके टुकड़े यत्र-तत्र बिखरे पड़े थे। कहीं सुरमणि, सर्पमणि, वलक्षमणि और स्फटिकमणिकी चट्टानें चमक रही थीं, तो कहीं गोमेद, पित्तक, धूलीमणि, मरकत, वैदूर्य, सौगन्धिक, राजमणि, हीरा, मुख्य तथा ब्रह्ममणिके खण्ड दृष्टिगोचर हो रहे थे। कहीं-कहीं बिखरे हुए मोती* अपनी प्रभा फैला रहे थे, जो ताराओंके समान लग रहे थे।

* यहाँ श्लोक ८ से लेकर १९ तकके—बारह श्लोकोंमें—३२ मुख्य मणियोंके उल्लेखपूर्वक सम्पूर्ण रत्नशास्त्रका संक्षेपमें निरूपण हुआ है। गरुडपुराण ६८—७८, विष्णुधर्मो० २। १५, युक्तिकल्पतरु, बृहत्संहिता, रत्नसारमें इनका विस्तृत परिचय है।

सुखोष्णं चैव तत् तोयं स्नानाच्छीतविनाशनम्।
वैदूर्यस्य शिला मध्ये सरसस्तस्य शोभना॥ १९

प्रमाणेन तथा सा च द्वे च राजन् धनुःशते।
चतुरस्रा तथा रम्या तपसा निर्मितात्रिणा॥ २०

बिलद्वारसमो देशो यत्र यत्र हिरण्मयः।
प्रदेशः स तु राजेन्द्र द्वीपे तस्मिन् मनोहरे॥ २१

तथा पुष्करिणी रम्या तस्मिन् राजन् शिलातले।
सुशीतामलपानीया जलजैश्च विराजिता॥ २२

आकाशप्रतिमा राजंश्चतुरस्रा मनोहरा।
तस्यास्तदुदकं स्वादु लघु शीतं सुगन्धिकम्॥ २३

न क्षिणोति यथा कण्ठं कुक्षिं नापूरयत्यपि।
तृप्तिं विधत्ते परमां शरीरे च महत् सुखम्॥ २४

मध्ये तु तस्याः प्रासादं निर्मितं तपसात्रिणा।
रुक्मसेतुप्रवेशान्तं सर्वरत्नमयं शुभम्॥ २५

शशाङ्करश्मेः संकाशं प्रासादं राजतं हितम्।
रम्यवैदूर्यसोपानं विद्रुमामलसारकम्॥ २६

इन्द्रनीलमहास्तम्भं मरकतासक्तवेदिकम्।
वज्रांशुजालैः स्फुरितं रम्यं दृष्टिमनोरमम्॥ २७

प्रासादे तत्र भगवान् देवदेवो जनार्दनः।
भोगिभोगावलीसुप्तः सर्वालङ्कारभूषितः॥ २८

जान्वाच्य कुञ्चितस्त्वेको देवदेवस्य चक्रिणः।
फणीन्द्रसंनिविष्टोऽङ्घ्रिर्द्वितीयश्च तथानघ॥ २९

लक्ष्म्युत्सङ्गतोऽङ्घ्रिस्तु शेषभोगप्रशायिनः।
फणीन्द्रभोगसंन्यस्तबाहुः केयूरभूषणः॥ ३०

अङ्गुलीपृष्ठविन्यस्तदेवशीर्षधरं भुजम्।
एकं वै देवदेवस्य द्वितीयं तु प्रसारितम्॥ ३१

उस सरोवरका जल कुछ गुनगुना गरम था, जो स्नान करनेसे ठण्डकको दूर कर देता था। उस सरोवरके मध्यमें वैदूर्यमणिकी एक सुन्दर शिला थी। राजन्! उस रमणीय शिलाको महर्षि अत्रिने अपनी तपस्याके प्रभावसे निर्मित किया था। वह आठ सौ हाथ (दो फलाँग) विस्तृत एवं चौकोर थी। राजेन्द्र! उस मनोहर द्वीपमें सारा प्रदेश बिलद्वारके समान स्वर्णमय था॥१०—२१॥

राजन्! उस शिलातलपर एक रमणीय पुष्करिणी (पोखरी) थी, जो चौकोर, मनोमोहिनी तथा आकाशके समान निर्मल थी। वह अत्यन्त शीतल एवं निर्मल जलसे परिपूर्ण तथा कमलोंसे सुशोभित थी। उसका वह जल सुस्वादु, पचनेमें हलका, शीतल और सुगन्धयुक्त था। वह जैसे गलेको कष्ट नहीं पहुँचाता था, उसी प्रकार कुक्षिको भी वायुसे परिपूर्ण नहीं करता था, अर्थात् वायुविकार नहीं उत्पन्न करता था, अपितु शरीरमें पहुँचकर परम तृप्ति उत्पन्न करता तथा महान् सुख पहुँचाता था। उस पुष्करिणी (बावली)-के मध्यभागमें महर्षि अत्रिने अपनी तपस्याके बलसे एक महलका निर्माण किया था। वह सुन्दर प्रासाद चाँदीका बना हुआ था, जो चन्द्रमाकी किरणोंके समान चमक रहा था। उसमें सभी प्रकारके रत्न जड़े गये थे तथा भीतर प्रवेश करनेके लिये सोनेकी सीढ़ियाँ बनी थीं, जिनमें रमणीय वैदूर्य एवं निर्मल मूँगे लगे हुए थे। उसमें इन्द्रनील मणिके विशाल खम्भे लगे थे। उसकी वेदिका अर्थात् फर्शपर मरकतमणि जड़ी हुई थी। हीरेकी किरणोंसे चमचमाता हुआ वह रमणीय महल देखते ही मनको लुभा लेता था। उस महलमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दन (मूर्ति-रूपसे) सम्पूर्ण आभूषणोंसे विभूषित होकर शेषनागके फणोंपर शयन कर रहे थे। अनघ! देवाधिदेव चक्रधारी भगवान्‌का एक चरण घुटनेसे मुड़ा हुआ था और दूसरा चरण शेषनागके ऊपरसे होता हुआ लक्ष्मीकी गोदमें स्थित था। शेषनागके फणोंपर शयन करनेवाले भगवान्‌का बाजूबंदसे विभूषित एक हाथ शेषनागके फणोंपर स्थापित था॥२२—३०॥

उस हाथकी अङ्गुलियोंका पृष्ठभाग शेषके सिरपर रखा हुआ था। उनका दूसरा हाथ फैला हुआ था।

समाकुञ्चितजानुस्थमणिबन्धेन शोभितम्।
किञ्चिदाकुञ्चितं चैव नाभिदेशकरस्थितम्॥ ३२
तृतीयं तु भुजं तस्य चतुर्थं तु तथा शृणु।
आत्तसंतानकुसुमं घ्राणदेशानुसर्पिणम्॥ ३३
लक्ष्म्या संवाह्यमानाङ्घ्रिः पद्मपत्रनिभैः करैः।
संतानमालामुकुटं हारकेयूरभूषितम्॥ ३४
भूषितं च तथा देवमङ्गदैरङ्गुलीयकैः।
फणीन्द्रफणविन्यस्तचारुरत्नशिखोज्ज्वलम्॥ ३५
अज्ञातवस्तुचरितं प्रतिष्ठितमथात्रिणा।
सिद्धानुपूज्यं सततं संतानकुसुमार्चितम्॥ ३६
दिव्यगन्धानुलिप्ताङ्गं दिव्यधूपेन धूपितम्।
सुरसैः सुफलैर्हृद्यैः सिद्धैरुपहृतैः सदा॥ ३७
शोभितोत्तमपार्श्वं तं देवमुत्पलशीर्षकम्।
ततः सम्मुखमुद्वीक्ष्य ववन्दे स नराधिपः॥ ३८
जानुभ्यां शिरसा चैव गत्वा भूमिं यथाविधि।
नाम्नां सहस्रेण तथा तुष्टाव मधुसूदनम्॥ ३९
प्रदक्षिणमथो चक्रे स तूत्थाय पुनः पुनः।
रम्यमायतनं दृष्ट्वा तत्रोवासाश्रमे पुनः॥ ४०
बिलाद् बहिर्गुहां कांचिदाश्रित्य सुमनोहराम्।
तपश्चकार तत्रैव पूजयन् मधुसूदनम्॥ ४१
नानाविधैस्तथा पुष्पैः फलमूलैः सगोरसैः।
नित्यं त्रिषवणस्नायी वह्निपूजापरायणः॥ ४२
देववापीजलैः कुर्वन् सततं प्राणधारणम्।
सर्वाहारपरित्यागं कृत्वा तु मनुजेश्वरः॥ ४३
अनास्तृतगुहाशायी कालं नयति पार्थिवः।
त्यक्ताहारक्रियश्चैव केवलं तोयतो नृपः।
न तस्य ग्लानिमायाति शरीरं च तदद्भुतम्॥ ४४

तीसरे हाथका मणिबन्ध मुड़े हुए घुटनेपर सुशोभित था तथा कुछ मुड़कर नाभिदेशपर फैले हुए पहले हाथपर अवलम्बित था। अब उनके चौथे हाथकी दशा सुनो। चौथे हाथमें भगवान् कल्पवृक्षका पुष्प धारण किये हुए थे और उसे अपनी नासिकातक ले गये थे। उस समय लक्ष्मी अपने कमल-दलके समान कोमल हाथोंसे भगवान्‌का चरण दबा रही थीं। भगवान्‌के मस्तकपर कल्पवृक्षके पुष्पोंकी मालाओंका मुकुट शोभा दे रहा था। वे हार, केयूर, बाजूबंद और अँगूठीसे विभूषित तथा शेषनागके फणोंपर रखे हुए सुन्दर रत्नोंसे प्रकाशित हो रहे थे। एवं इनकी विशेषता यह थी कि महर्षि अत्रिने उनकी स्थापना की थी। उनका चरित्र वस्तुतः जाना नहीं जा सकता। सिद्धगण सदा उनकी पूजा करते थे। कल्पवृक्षके पुष्पोंद्वारा उनकी अर्चना होती थी। उनके अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप था तथा वे दिव्य धूपसे धूपित थे। सिद्धगण उन्हें सदा सरस एवं मनोहर फलोंका उपहार देते थे। वे उत्तम पार्श्वसे सुशोभित थे तथा उनके मस्तकपर कमल शोभा पा रहा था॥ ३१—३७½ ॥

ऐसे भगवान् (-की मूर्ति)-को अपने सम्मुख देखकर राजा पुरूरवाने विधिपूर्वक घुटने टेककर और मस्तकको भूमिपर रखकर भगवान्‌को प्रणाम किया तथा सहस्रनामोंद्वारा उन मधुसूदनका स्तवन किया और उठकर बारम्बार उनकी प्रदक्षिणा की। पुनः उस रमणीय देवमन्दिरको देखकर उसी आश्रममें निवास करनेका निश्चय किया। तत्पश्चात् उस बिलसे बाहर निकलकर वे किसी अतिशय मनोहारिणी गुफाका आश्रय लेकर नाना प्रकारके पुष्पों, फलों, मूलों तथा गोरसोंद्वारा भगवान् मधुसूदनकी पूजा करते हुए वहीं तपस्यामें संलग्न हो गये। वे नित्य त्रिकाल स्नान तथा अग्निहोत्र करते थे। वे नरेश सभी प्रकारके आहारका परित्याग कर सदा उस देववापी (पोखरी)-के जलसे ही प्राणोंकी रक्षा करते थे। राजा बिना बिछौनेके ही गुफामें शयन करते हुए समय बिता रहे थे। यद्यपि राजाने भोजन करना छोड़ दिया था और केवल जलपर ही निर्भर थे, तथापि उन्हें किसी प्रकारकी ग्लानि नहीं होती थी, प्रत्युत उनका शरीर अद्भुत तेजोमय हो गया

एवं स राजा तपसि प्रसक्तः
सम्पूजयन् देववरं सदैव।
तत्राश्रमे कालमुवास कश्चित्
स्वर्गोपमे दुःखमविन्दमानः ॥ ४५

था। इस प्रकार राजा पुरूरवाने तपस्यामें दत्तचित्त होकर सदा देवश्रेष्ठ भगवान् विष्णुकी पूजा करते हुए दुःखकी कुछ भी परवा न कर उस स्वर्गतुल्य आश्रममें कुछ कालतक निवास किया ॥ ३८—४५ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे आयतनवर्णनं नामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णनमें आयतनवर्णन नामक एक सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ ११९ ॥



एक सौ बीसवाँ* अध्याय

राजा पुरूरवाकी तपस्या, गन्धर्वों और अप्सराओंकी क्रीडा, महर्षि अत्रिका आगमन तथा राजाको वरप्राप्ति

सूत उवाच

स त्वाश्रमपदे रम्ये त्यक्ताहारपरिच्छदः।
क्रीडाविहारं गन्धर्वैः पश्यत्यप्सरसां सह ॥ १

कृत्वा पुष्पोच्चयं भूरि ग्रथयित्वा तथा स्रजः।
अर्घ्यं निवेद्य देवाय गन्धर्वेभ्यस्तदा ददौ ॥ २

पुष्पोच्चयप्रसक्तानां क्रीडन्तीनां यथासुखम्।
चेष्टा नानाविधाकाराः पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ३

काचित् पुष्पोच्चये सक्ता लताजालेन वेष्टिता।
सखीजनेन संत्यक्ता कान्तेनाभिसमुञ्झिता ॥ ४

काचित् कमलगन्धाभा निःश्वासपवनाहृतैः।
मधुपैराकुलमुखी कान्तेन परिमोचिता ॥ ५

मकरन्दसमाक्रान्तनयना काचिदङ्गना।
कान्तनिःश्वासवातेन नीरजस्ककृतेक्षणा ॥ ६

काचिदुच्चीय पुष्पाणि ददौ कान्तस्य भामिनी।
कान्तसंग्रथितैः पुष्पै रराज कृतशेखरा ॥ ७

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार राजकीय सामग्रियों तथा आहारका परित्याग कर राजा पुरूरवा उस रमणीय आश्रममें निवास करने लगे। वहाँ उन्हें गन्धर्वोंके साथ अप्सराओंका क्रीडाविहार भी देखनेको मिलता था। राजा बहुत-से फूलोंको तोड़कर उसकी माला गूँथते थे और उन्हें अर्घ्यसहित पहले भगवान् विष्णुको निवेदित कर पुनः गन्धर्वोंको दे देते थे। वे वहाँ पुष्प-चयनमें लगी हुई एवं सुखपूर्वक क्रीडा करती हुई अप्सराओंकी विभिन्न प्रकारकी चेष्टाओंको देखकर भी अनदेखी कर जाते थे। वहाँ पुष्प-चयनमें निरत कोई अप्सरा लता-समूहमें उलझ गयी और सखियाँ उसे उसी दशामें छोड़कर चलती बनीं, तब उसके पतिने आकर उसे बन्धन-मुक्त किया। किसी अप्सराके शरीरसे कमलकी-सी गन्ध निकल रही थी। इस कारण उसकी निःश्वासवायुसे आकृष्ट होकर भ्रमर उसके ऊपर मँडरा रहे थे। उन भ्रमरोंसे उसका मुख ढक-सा गया था; तब उसके पतिने उसे उस कष्टसे मुक्त किया। किसी अप्सराकी आँखें पुष्प-रजसे आक्रान्त हो गयीं, तब उसके पतिने अपनी श्वासवायुसे फूँककर उन्हें धूलरहित कर दिया। किसी सुन्दरीने पुष्पोंको एकत्रकर अपने पतिको दे दिया। तत्पश्चात् वह अपने पतिद्वारा गूँथी गयी पुष्पमालाको अपने मस्तकपर रखकर सुशोभित होने लगी। तभी

* इस अध्यायके अनेक शब्दार्थालंकारोंसे उद्दीपित अधिकांश श्लोक भागवत १०। ३३ से मिलते हैं। कोई एक-दूसरेसे अवश्य प्रभावित है। वैसे इस प्रकारका वर्णन गर्गसंहिता, ब्रह्मवैवर्तपुराणके रासप्रकरणोंमें तथा भागवतके रामनारायणकृत भावविभाविका तथा किशोरीदासकृता विशुद्धरसदीपिकामें इनकी भी पूरी व्याख्या है।

उच्चीय स्वयमुद्ग्रथ्य कान्तेन कृतशेखरा।
कृतकृत्यमिवात्मानं मेने मन्मथवर्धिनी॥ ८

किसीके पतिने पुष्प-चयन करके अपने ही हाथों माला गूँथकर उसे अपनी पत्नीके मस्तकपर रखकर उसे सुसज्जित कर दिया, इससे उसने अपनेको कृतकृत्य मान लिया॥ १—८॥

अस्त्यस्मिन् गहने कुञ्जे विशिष्टकुसुमा लता।
काचिदेवं रहो नीता रमणेन रिरंसुना॥ ९
कान्तसंनामितलता कुसुमानि विचिन्वती।
सर्वाभ्यः काचिदात्मानं मेने सर्वगुणाधिकम्॥ १०
काश्चित् पश्यन्ति भूपालं नलिनीषु पृथक् पृथक्।
क्रीडमानास्तु गन्धर्वैर्देवरामा मनोरमाः॥ ११
काचिदाताडयत् कान्तमुदकेन शुचिस्मिता।
ताड्यमानाथ कान्तेन प्रीतिं काचिदुपाययौ॥ १२
कान्तं च ताडयामास जातखेदा वराङ्गना।
अदृश्यत वरारोहा श्वासनृत्यत्पयोधरा॥ १३
कान्ताम्बुताडनाकृष्टकेशपाशनिबन्धना।
केशाकुलमुखी भाति मधुपैरिव पद्मिनी॥ १४
स्वचक्षुःसदृशैः पुष्पैः संच्छन्ने नलिनीवने।
छन्ना काचिच्चिरात् प्राप्ता कान्तेनान्विष्य यत्नतः॥ १५
स्नाता शीतापदेशेन काचित् प्राहाङ्गना भृशम्।
रमणालिङ्गनं चक्रे मनोऽभिलषितं चिरम्॥ १६
जलार्द्रवसनं सूक्ष्ममङ्गलीनं शुचिस्मिता।
धारयन्ती जनं चक्रे काचित् तत्र समन्मथम्॥ १७
कण्ठमाल्यगुणैः काचित् कान्तेन कृष्यताम्भसि।
त्रुट्यत्स्रग्दामपतितं रमणं प्राहसच्चिरम्॥ १८
काचिद्भुग्ना सखीदत्तजानुदेशे नखक्षता।
सम्भ्रान्ता कान्तशरणं मग्ना काचिद् गता चिरम्॥ १९
काचित् पृष्ठकृतादित्या केशनिस्तोयकारिणी।
शिलातलगता भर्त्रा दृष्टा कामार्तचक्षुषा॥ २०
कृत्तमाल्यं विलुलितं संक्रान्तकुचकुङ्कुमम्।
रतिक्रीडितकान्तेव रराज तत् सरोदकम्॥ २१
सुस्नातदेवगंधर्वदेवरामागणेन च।
पूज्यमानं च ददृशे देवदेवं जनार्दनम्॥ २२

कोई पतिद्वारा झुकायी गयी लतासे फूल तोड़ रही थी, जिससे वह अपनेको सभी सखियोंसे सम्पूर्ण गुणोंमें बढ़-चढ़कर मान रही थी। कुछ सुन्दरी देवाङ्गनाएँ गन्धर्वोंके साथ पृथक्-पृथक् क्रीडा करती हुई कमलसमूहोंके बीचसे राजाको ओर देख रही थीं। कोई सुन्दरी अपने पतिके ऊपर जल उछाल रही थी और किसीके ऊपर उसका पति जल फेंक रहा था, जिससे उसे बड़ी प्रसन्नता हो रही थी। कोई देवाङ्गना खिन्न मनसे अपने पतिके ऊपर जल उछाल रही थी। पतिके ऊपर जल फेंकनेसे किसीकी चोटी खुल गयी थी, जिससे उसका मुख बालोंसे ढक गया था। उस समय वह ऐसी प्रतीत हो रही थी मानो भ्रमरोंसे घिरी हुई कमलिनी हो। कोई अपने नेत्रोंके समान कमल-पुष्पोंसे ढके हुए उस कमलिनीके वनमें छिप गयी थी, जिसे उसके पतिने बड़ी देरके बाद प्रयत्नपूर्वक खोजकर प्राप्त किया। किसीको उसका पति गलेमें पड़ी हुई मालाके धागेको पकड़कर जलमें खींच रहा था, किंतु उस धागेके टूट

क्वचिच्च ददृशे राजा लतागृहगताः स्त्रियः।
मण्डयन्तीः स्वगात्राणि कान्तसंन्यस्तमानसाः॥ २३
काचिदादर्शनकरा व्यग्रा दूतीमुखोद्गतम्।
शृण्वती कान्तवचनमधिका तु तथा बभौ॥ २४
काचित् सत्वरिता दूत्या भूषणानां विपर्ययम्।
कुर्वाणा नैव बुबुधे मन्मथाविष्टचेतना॥ २५
वायुनुन्नातिसुरभिकुसुमोत्करमण्डिते।
काचित् पिबन्ती ददृशे मैरेयं नीलशाद्वले॥ २६
पाययामास रमणं स्वयं काचिद् वराङ्गना।
काचित् पपौ वरारोहा कान्तपाणिसमर्पितम्॥ २७
काचित् स्वनेत्रचपलनीलोत्पलयुतं पयः।
पीत्वा पप्रच्छ रमणं क्व गतौ तौ ममोत्पलौ॥ २८
त्वयैव पीतौ तौ नूनमित्युक्ता रमणेन सा।
तथा विदित्वा मुग्धत्वाद् बभूव व्रीडिता भृशम्॥ २९
काचित् कान्तार्पितं सुभ्रूः कान्तपीतावशेषितम्।
सविशेषरसं पानं पपौ मन्मथवर्धनम्॥ ३०
आपानगोष्ठीषु तथा तासां स नरपुङ्गवः।
शुश्राव विविधं गीतं तन्त्रीस्वरविमिश्रितम्॥ ३१
प्रदोषसमये ताश्च देवदेवं जनार्दनम्।
राजन् सदोपनृत्यन्ति नानावाद्यपुरःसराः॥ ३२
याममात्रे गते रात्रौ विनिर्गत्य गुहामुखात्।
आवसन् संयुताः कान्तैः परर्धिरचितां गुहाम्॥ ३३
नानागन्धान्वितलतां नानागन्धसुगन्धिनीम्।
नानाविचित्रशयनां कुसुमोत्करमण्डिताम्॥ ३४
एवमप्सरसां पश्यन् क्रीडितानि स पर्वते।
तपस्तेपे महाराजन् केशवार्पितमानसः॥ ३५
तमूचुर्नृपतिं गत्वा गन्धर्वाप्सरसां गणाः।
राजन् स्वर्गोपमं देशमिमं प्राप्तोऽस्यरिंदम॥ ३६
वयं हि ते प्रदास्यामो मनसः काङ्क्षितान् वरान्।
तानादाय गृहं गच्छ तिष्ठेह यदि वा पुनः॥ ३७

राजोवाच

अमोघदर्शनाः सर्वे भवन्तस्त्वमितौजसः।
वरं वितरताद्यैव प्रसादं मधुसूदनात्॥ ३८

जानेपर जब वह गिर पड़ा, तब वह बड़ी देरतक हँसती रही। इस प्रकार राजाने स्नानसे निवृत्त हुई सभी देव-देवियों एवं गन्धर्व-अप्सराओंद्वारा भगवान् जनार्दनको पूजित होते हुए देखा॥ ९—२५॥

राजन्! वे अप्सराएँ सदा प्रदोषकालमें देवाधिदेव भगवान् जनार्दनके समक्ष नाना प्रकारके बाजोंके साथ नृत्य करती थीं। एक पहर रात बीत जानेपर वे गुफाके मुखद्वारसे बाहर निकलकर अपने पतियोंके साथ ऐसी सजी-सजायी गुफामें निवास करती थीं, जिसपर अनेकों प्रकारके गन्धोंवाली लताएँ फैली हुई थीं, जिसमेंसे विभिन्न प्रकारकी सुगन्ध निकल रही थी, जो पुष्पसमूहसे सुशोभित थी तथा जिसमें अनेकों विचित्र शय्याएँ बिछी थीं। महाराज! इस प्रकार उस पर्वतपर अप्सराओंकी क्रीडाका अवलोकन करते हुए राजा पुरूरवा भगवान् केशवमें मनको एकाग्र करके तपस्या करते रहे। एक दिन यूथ-के-यूथ गन्धर्व और अप्सराएँ राजाके निकट जाकर उनसे बोलीं—'शत्रुओंका दमन करनेवाले नरेश! (बड़े सौभाग्यसे) आप इस स्वर्गतुल्य देशमें आ गये हैं, अतः हमलोग आपको मनोऽभिलषित वर प्रदान करेंगी। उन्हें ग्रहणकर यदि आपकी इच्छा हो तो घर चले जाइये अथवा यहीं रहिये'॥ २६—३७॥

राजाने कहा—गन्धर्वो एवं अप्सराओ! आपलोग अमित तेजस्वी हैं, इससे आपलोगोंका दर्शन कभी निष्फल नहीं होता, इसलिये आपलोग आज ही मुझे ऐसा वरदान दें, जिससे भगवान् मधुसूदनकी कृपा प्राप्त हो जाय। यह

एवमस्त्वित्यथोक्तस्तैः स तु राजा पुरूरवाः।
तत्रोवास सुखी मासं पूजयानो जनार्दनम्॥ ३९
प्रिय एव सदैवासीद् गन्धर्वाप्सरसां नृपः।
तुतोष स जनो राज्ञस्तस्यालौल्येन कर्मणा॥ ४०
मासस्य मध्ये स नृपः प्रविष्ट-
स्तदाश्रमं रत्नसहस्रचित्रम्।
तोयाशनस्तत्र ह्युवास मासं
यावत्सितान्तो नृप फाल्गुनस्य॥ ४१
फाल्गुनामलपक्षान्ते राजा स्वप्ने पुरूरवाः।
तस्यैव देवदेवस्य श्रुतवान् गदितं शुभम्॥ ४२
रात्र्यामस्यां व्यतीतायामत्रिणा त्वं समेष्यसि।
तेन राजन् समागम्य कृतकृत्यो भविष्यसि॥ ४३
स्वप्नमेवं स राजर्षिर्दृष्ट्वा देवेन्द्रविक्रमः।
प्रत्यूषकाले विधिवत् स्नातः स प्रयतेन्द्रियः॥ ४४
कृतकृत्यो यथाकामं पूजयित्वा जनार्दनम्।
ददर्शात्रिं मुनिं राजा प्रत्यक्षं तपसां निधिम्॥ ४५
स्वप्नं तु देवदेवस्य न्यवेदयत धार्मिकः।
ततः शुश्राव वचनं देवतानां समीरितम्॥ ४६
एवमेतन्महीपाल नात्र कार्या विचारणा।
एवं प्रसादं सम्प्राप्य देवदेवाज्जनार्दनात्॥ ४७
कृतदेवार्चनो राजा तथा हुतहुताशनः।
सर्वान् कामानवाप्तोऽसौ वरदानेन केशवात्॥ ४८

सुनकर वे 'एवमस्तु—ऐसा ही होगा'—ऐसा कहकर वहाँसे चले गये। तत्पश्चात् राजा पुरूरवा वहाँ एक मासतक भगवान् जनार्दनकी पूजा करते हुए सुखपूर्वक निवास करते रहे। वे सदा गन्धर्वों एवं अप्सराओंके प्रेमपात्र बने रहे। वे लोग राजाके निर्लोभ कर्मसे परम संतुष्ट थे। राजन्! उस मासके बीचमें ही राजा पुरूरवाने हजारों रत्नोंसे चित्रित उस आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ वे एक मासतक केवल जल पीकर तबतक निवास करते रहे, जबतक फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथि नहीं आ गयी। राजा पुरूरवाने फाल्गुनमासके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा तिथिकी रातमें स्वप्नमें उन्हीं देवाधिदेव भगवान् विष्णुद्वारा कहे जाते हुए इस प्रकारके मङ्गलमय शब्दोंको सुना—'राजन्! इस रात्रिके व्यतीत हो जानेपर अत्रिसे तुम्हारी भेंट होगी और उनसे मिलकर तुम कृतकृत्य हो जाओगे। देवराजके समान पराक्रमी राजर्षि पुरूरवाको जब इस प्रकारका स्वप्न दीख पड़ा, तब उन्होंने प्रातःकाल उठकर इन्द्रियोंको संयत रखते हुए विधिपूर्वक स्नान किया और इच्छानुसार भगवान् जनार्दनकी पूजा की। तत्पश्चात् उन्हें तपोधन महर्षि अत्रिका प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ, जिससे वे कृतकृत्य हो गये। तब धर्मात्मा राजाने महर्षि अत्रिसे देवाधिदेव भगवान्‌द्वारा दिखाये गये स्वप्नके वृत्तान्तको कह सुनाया। उसी समय उन्होंने देवताओंद्वारा कहे हुए इस वचनको फिर सुना—'महीपाल! यह ऐसा ही होगा, इसमें तुम्हें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।' इस प्रकार देवाधिदेव भगवान् जनार्दनकी कृपा प्राप्तकर राजाने देवार्चन किया और अग्निमें आहुतियाँ डालीं। इस तरह भगवान् केशवके वरदानसे उनकी सारी कामनाएँ पूरी हो गयीं॥ ३८—४८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ऐलाश्रमवर्णनं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनमें ऐलाश्रम-वर्णन नामक एक सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२०॥

एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय

कैलास पर्वतका वर्णन, गङ्गाकी सात धाराओंका वृत्तान्त तथा जम्बूद्वीपका विवरण

सूत उवाच

तस्याश्रमस्योत्तरतस्त्रिपुरारिनिषेवितः।
नानारत्नमयैः शृङ्गैः कल्पद्रुमसमन्वितैः॥ १

मध्ये हिमवतः पृष्ठे कैलासो नाम पर्वतः।
तस्मिन् निवसति श्रीमान् कुबेरः सह गुह्यकैः॥ २

अप्सरोऽनुगतो राजा मोदते ह्यलकाधिपः।
कैलासपादसम्भूतं पुण्यं शीतजलं शुभम्॥ ३

मन्दोदकं नाम सरः पयस्तु दधिसंनिभम्।
तस्मात् प्रवहते दिव्या नदी मन्दाकिनी शुभा॥ ४

दिव्यं च नन्दनं तत्र तस्यास्तीरे महद्वनम्।
प्रागुत्तरेण कैलासाद् दिव्यं सौगन्धिकं गिरिम्॥ ५

सर्वधातुमयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति।
चन्द्रप्रभो नाम गिरिः यः शुभ्रो रत्नसंनिभः॥ ६

तत्समीपे सरो दिव्यमच्छोदं नाम विश्रुतम्।
तस्मात् प्रभवते दिव्या नदी ह्यच्छोदिका शुभा॥ ७

तस्यास्तीरे वनं दिव्यं महच्चैत्ररथं शुभम्।
तस्मिन् गिरौ निवसति मणिभद्रः सहानुगः॥ ८

यक्षसेनापतिः शूरो गुह्यकैः परिवारितः।
पुण्या मन्दाकिनी नाम नदी ह्यच्छोदिका शुभा॥ ९

महीमण्डलमध्ये तु प्रविष्टा सा महोदधिम्।
कैलासदक्षिणे प्राच्यां शिवं सर्वौषधिं गिरिम्॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उस आश्रमकी उत्तर दिशामें हिमालय पर्वतके पृष्ठ-भागके मध्यमें कैलास नामक पर्वत स्थित है। उसपर त्रिपुरासुरके संहारक शंकरजी निवास करते हैं। उसके शिखर नाना प्रकारके रत्नोंसे सुशोभित हैं तथा उनपर कल्पवृक्ष शोभा पा रहे हैं। उस पर्वतपर श्रीमान् कुबेर गुह्यकोंके साथ निवास करते हैं। इस प्रकार अलकापुरीके अधीश्वर राजा कुबेर अप्सराओंद्वारा अनुगमन किये जाते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। कैलासके पाद (उपत्यका)-से एक मन्दोदक नामक सरोवर प्रकट हुआ है, जिसका जल बड़ा पवित्र, निर्मल एवं शीतल है। उसका जल दहीके समान उज्ज्वल है। उसी सरोवरसे मङ्गलमयी दिव्य मन्दाकिनी नदी प्रवाहित होती है। वहाँ उस नदीके तटपर नन्दन नामक दिव्य एवं महान् वन है। कैलासकी पूर्वोत्तर दिशामें चन्द्रप्रभ नामक पर्वत है, जो रत्न-सदृश चमकदार है। वह सभी प्रकारकी धातुओंसे विभूषित तथा अनेकों प्रकारकी सुगन्धसे सुवासित दिव्य सुबेल पर्वततक फैला हुआ है। उसके निकट अच्छोद (अच्छावत) नामसे विख्यात एक दिव्य सरोवर है, उससे अच्छोदिका (अच्छोदा) नामकी कल्याणमयी दिव्य नदी उद्भूत हुई है। उस नदीके तटपर चैत्ररथ नामक दिव्य एवं सुन्दर महान् वन है। उस पर्वतपर शूरवीर यक्ष-सेनापति मणिभद्र गुह्यकोंसे घिरे हुए अपने अनुयायियोंके साथ निवास करते हैं। पुण्यमयी मन्दाकिनी तथा कल्याणकारिणी अच्छोदा—ये दोनों नदियाँ पृथ्वी-मण्डलके मध्यभागसे प्रवाहित होती हुई महासागरमें मिली हैं॥ १—९$\frac{1}{2}$॥

कैलासके दक्षिण-पूर्व दिशामें लाल वर्णवाला हेमशृङ्ग नामक एक विशाल पर्वत है। वह दिव्य सुबेल पर्वततक

मनःशिलामयं दिव्यं सुवेलं पर्वतं प्रति।
लोहितो हेमशृङ्गस्तु गिरिः सूर्यप्रभो महान्॥ ११

तस्य पादे महद् दिव्यं लोहितं सुमहत्सरः।
तस्मात् प्रभवते पुण्यो लौहित्यश्च नदो महान्॥ १२

दिव्यारण्यं विशोकं च तस्य तीरे महद् वनम्।
तस्मिन् गिरौ निवसति यक्षो मणिधरो वशी॥ १३

सौम्यैः सुधार्मिकैश्चैव गुह्यकैः परिवारितः।
कैलासात् पश्चिमोदीच्यां ककुद्मानौषधीगिरिः॥ १४

ककुद्मति च रुद्रस्य उत्पत्तिश्च ककुद्मिनः।
तदञ्जनं त्रैककुदं शैलं त्रिककुदं प्रति॥ १५

सर्वधातुमयस्तत्र सुमहान् वैद्युतो गिरिः।
तस्य पादे महद् दिव्यं मानसं सिद्धसेवितम्॥ १६

तस्मात् प्रभवते पुण्या सरयूर्लोकपावनी।
यस्यास्तीरे वनं दिव्यं वैभ्राजं नाम विश्रुतम्॥ १७

कुबेरानुचरस्तस्मिन् प्रहेतितनयो वशी।
ब्रह्मधाता निवसति राक्षसोऽनन्तविक्रमः॥ १८

फैला हुआ है। उसकी कान्ति सूर्यके समान है। वह मङ्गलप्रद पर्वत सभी प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न तथा मैनशिल नामक धातुसे परिपूर्ण है। उसके पाद-प्रान्तमें एक विशाल दिव्य सरोवर है, जिसका नाम लोहित है। वह पुण्यमय लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) नामक महान् नदका उद्गमस्थान है। उस नदके तटपर विशोक नामक एक दिव्य एवं विस्तृत वन है। उस पर्वतपर मणिधर नामक यक्ष इन्द्रियोंको वशमें करके परम धार्मिक एवं सौम्य-स्वभाववाले गुह्यकोंके साथ निवास करता है। कैलासकी पश्चिमोत्तर दिशामें ककुद्मान् नामक पर्वत है, जिसपर सभी प्रकारकी ओषधियाँ सुलभ हैं। वह अञ्जन-जैसा काला तथा तीन शिखरोंसे सुशोभित है। उस ककुद्मान् पर्वतपर भगवान् रुद्रके गण ककुद्मी (नन्दिकेश्वर)-की उत्पत्ति हुई है। वहीं समस्त धातुओंसे सम्पन्न वैद्युत नामक अत्यन्त महान् पर्वत है, जो त्रिककुद् पर्वततक विस्तृत है। उसके पाद-प्रान्तमें सिद्धोंद्वारा सेवित एक महान् दिव्य मानस सरोवर है। उस सरोवरसे लोकपावनी पुण्य-सलिला सरयू* निकली हुई हैं, जिनके तटपर (वरुणका) वैभ्राज नामक सुप्रसिद्ध दिव्य वन है। उस वनमें प्रहेतिका पुत्र ब्रह्मधाता नामक राक्षस निवास करता है। वह जितेन्द्रिय, अनन्तपराक्रमी और कुबेरका अनुचर है॥ १०—१८॥

कैलासात् पश्चिमामाशां दिव्यः सर्वौषधिर्गिरिः।
वरुणः पर्वतश्रेष्ठो रुक्मधातुविभूषितः॥ १९

भवस्य दयितः श्रीमान् पर्वतो हैमसंनिभः।
शातकौम्भमयैर्दिव्यैः शिलाजालैः समाचितः॥ २०

शतसंख्यैस्तापनीयैः शृङ्गैर्दिवमिवोल्लिखन्।
शृङ्गवान् सुमहादिव्यो दुर्गः शैलो महाचितः॥ २१

तस्मिन् गिरौ निवसति गिरिशो धूम्रलोचनः।
तस्य पादात् प्रभवति शैलोदं नाम तत्सरः॥ २२

कैलासकी पश्चिम दिशामें सम्पूर्ण ओषधियोंसे सम्पन्न वरुण नामक दिव्य पर्वत है। वह पर्वतश्रेष्ठ सुवर्ण आदि धातुओंसे विभूषित, भगवान् शंकरका प्रियपात्र, शोभाशाली, स्वर्णसदृश चमकीला और स्वर्णमयी दिव्य शिलाओंसे सम्पन्न है। वह अपने स्वर्णसरीखे चमकदार सैकड़ों शिखरोंसे आकाशको छूता हुआ-सा दीख पड़ता है। वहीं शृङ्गवान् नामका एक महान् दिव्य पर्वत है, जो समृद्धिशाली एवं दुर्गम है। उस पर्वतपर धूम्रलोचन भगवान् शिव निवास करते हैं। उस पर्वतके पाद-प्रान्तमें शैलोद नामक सरोवर है। उसीसे मङ्गलमयी पुण्यतोया शैलोदका नामकी नदी प्रवाहित होती है। उसे चक्षुषी भी

* इस अध्यायका हिमालयसे सम्बद्ध भौगोलिक विवरण बड़े महत्त्वका है और यह वर्णन बहुत कुछ कालिकापुराणसे मिलता है।

तस्मात् प्रभवते पुण्या नदी शैलोदका शुभा।
सा चक्षुषी तयोर्मध्ये प्रविष्टा पश्चिमोदधिम्॥ २३
अस्त्युत्तरेण कैलासाच्छिवः सर्वौषधो गिरिः।
गौरं तु पर्वतश्रेष्ठं हरितालमयं प्रति॥ २४
हिरण्यशृङ्गः सुमहान् दिव्यौषधिमयो गिरिः।
तस्य पादे महद् दिव्यं सरः काञ्चनबालुकम्॥ २५
रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः।
गङ्गार्थे स तु राजर्षिरुवास बहुलाः समाः॥ २६
दिवं यास्यन्तु मे पूर्वे गङ्गातोयाप्लुतास्थिकाः।
तत्र त्रिपथगा देवी प्रथमं तु प्रतिष्ठिता॥ २७
सोमपादात् प्रसूता सा सप्तधा प्रविभज्यते।
यूपा मणिमयास्तत्र विमानाश्च हिरण्मयाः॥ २८
तत्रेष्ट्वा क्रतुभिः सिद्धः शक्रः सुरगणैः सह।
दिव्यश्छायापथस्तत्र नक्षत्राणां तु मण्डलम्॥ २९
दृश्यते भासुरा रात्रौ देवी त्रिपथगा तु सा।
अन्तरिक्षं दिवं चैव भावयित्वा भुवं गता॥ ३०
भवोत्तमाङ्गे पतिता संरुद्धा योगमायया।
तस्या ये बिन्दवः केचित् क्रुद्धायाः पतिता भुवि॥ ३१
कृतं तु तैर्बहुसरस्ततो बिन्दुसरः स्मृतम्।
ततस्तस्या निरुद्धाया भवेन सहसा रुषा॥ ३२
ज्ञात्वा तस्या ह्यभिप्रायं क्रूरं देव्याश्चिकीर्षितम्।
भित्त्वा विशामि पातालं स्रोतसा गृह्य शङ्करम्॥ ३३
अथावलेपं तं ज्ञात्वा तस्याः क्रुद्धस्तु शङ्करः।
तिरोभावयितुं बुद्धिरासीदङ्गेषु तां नदीम्॥ ३४
एतस्मिन्नेव काले तु दृष्ट्वा राजानमग्रतः।
धमनीसंततं क्षीणं क्षुधाव्याकुलितेन्द्रियम्॥ ३५

कहते हैं। वह उन दोनों पर्वतोंके बीचसे बहती हुई पश्चिम-सागरमें जा मिली है। कैलासकी उत्तर दिशामें हिरण्यशृङ्ग नामका अत्यन्त विशाल पर्वत है, जो हरितालसे परिपूर्ण पर्वतश्रेष्ठ गौरतक फैला हुआ है। इस कल्याणकारी पर्वतपर दिव्य ओषधियाँ प्राप्त होती हैं। इसके पादप्रान्तमें बिन्दुसर नामक अत्यन्त रमणीय दिव्य सरोवर है, जो सुवर्णके समान बालुकासे युक्त है। यहींपर राजर्षि भगीरथने 'मेरे पूर्वज गङ्गाजलसे हड्डियोंके अभिषिक्त हो जानेपर स्वर्गलोकको चले जायँ, इस भावनासे भावित होकर गङ्गाको भूतलपर लानेके लिये बहुत वर्षोंतक (तप करते हुए) निवास किया था। इसलिये त्रिपथगा* गङ्गादेवी सर्वप्रथम वहीं प्रतिष्ठित हुई थीं और सोम पर्वतके पादसे निकलकर सात भागोंमें विभक्त हो गयीं। उस सरोवरके तटपर अनेकों मणिमय यज्ञस्तम्भ तथा स्वर्णमय विमान शोभा पा रहे थे। वहाँ देवताओंके साथ इन्द्रने यज्ञोंका अनुष्ठान कर सिद्धि लाभ किया था। वहाँ दिव्य छायापथ तथा नक्षत्रोंका मण्डल विद्यमान है। वहाँ त्रिपथगा गङ्गादेवी रातमें चमकती हुई दीख पड़ती हैं॥ १९—२९ $\frac{1}{2}$॥

गङ्गादेवी स्वर्गलोक और अन्तरिक्षलोकको पवित्र कर भूतलपर आयीं और वे शिवजीके मस्तकपर गिरीं। तब शिवजीने अपनी योगमायाके बलसे उन्हें वहीं रोक दिया। (इससे गङ्गादेवी क्रुद्ध हो गयीं।) उस समय उन कुपित हुई गङ्गादेवीकी जो कुछ बूँदें पृथ्वीपर गिरीं, उनसे 'बहुसर' नामक एक सरोवर बन गया, वही आगे चलकर 'बिन्दुसर' नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस समय शिवजीके सहसा रोक लिये जानेपर गङ्गादेवी क्रुद्ध होकर ऐसा विचार करने लगीं कि मैं अपनी धाराके साथ शङ्करको बहाती हुई पृथ्वीको फोड़कर पातालमें प्रवेश कर जाऊँगी। जब शङ्करजीको गङ्गाकी यह कुचेष्टा और क्रूर अभिप्राय ज्ञात हुआ, तब वे उसे गङ्गाका अभिमान समझकर क्रुद्ध हो गये और उस नदी-रूपिणी गङ्गाको अपने अङ्गोंमें ही लीन कर लेनेका विचार करने लगे; परंतु ठीक इसी समय राजा भगीरथ, जिनकी इन्द्रियाँ भूखसे व्याकुल हो गयी थीं तथा जिनके शरीरमें नसेंमात्र दीख रही थीं, शिवजीके सम्मुख आ गये।

* वाल्मी० रामायण (१। ४४। ६)-के अनुसार गङ्गा भू, पाताल, स्वर्ग—इन तीन पथों—मार्गोंको भावित—पवित्र करनेके कारण 'त्रिपथगा' कही जाती हैं—'त्रीन् पथो भावयतीति तस्मात्त्रिपथगा स्मृता।'

अनेन तोषितश्चाहं नद्यर्थे पूर्वमेव तु।
बुद्ध्वास्य वरदानं तु ततः कोपं न्ययच्छत॥ ३६

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा यदुक्तं धारयन् नदीम्।
ततो विसर्जयामास संरुद्धां स्वेन तेजसा॥ ३७

नदीं भगीरथस्यार्थे तपसोग्रेण तोषितः।
ततो विसर्जयामास सप्त स्रोतांसि गङ्गया॥ ३८

त्रीणि प्राचीमभिमुखं प्रतीचीं त्रीण्यथैव तु।
स्रोतांसि त्रिपथायास्तु प्रत्यपद्यन्त सप्तधा॥ ३९

नलिनी ह्लादिनी चैव पावनी चैव प्राच्यगाः।
सीता चक्षुश्च सिन्धुश्च तिस्रस्ता वै प्रतीच्यगाः॥ ४०

सप्तमी त्वनुगा तासां दक्षिणेन भगीरथम्।
तस्माद् भागीरथी सा वै प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥ ४१

सप्त चैताः प्लावयन्ति वर्षं तु हिमसाह्वयम्।
प्रसूताः सप्त नद्यस्तु शुभा बिन्दुसरोद्भवाः॥ ४२

तान् देशान् प्लावयन्ति स्म म्लेच्छप्रायांश्च सर्वशः।
सशैलान् कुकुरान् रौध्रान् बर्बरान् यवनान् खसान्॥ ४३

पुलिन्दांश्च कुलत्थांश्च अङ्गलोक्यान् वरांश्च यान्।
कृत्वा द्विधा हिमवन्तं प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥ ४४

अथ वीरमरूंश्चैव कालिकांश्चैव शूलिकान्।
तुषारान् बर्बरान् कारान् पह्लवान् पारदाञ्छकान्॥ ४५

एताञ्जनपदांश्चक्षुः प्लावयित्वोदधिं गता।
दरदांर्जगुडांश्चैव गान्धारानौरसान् कुहून्॥ ४६

शिवपौरानिन्द्रमरून् वसतीन् समतेजसम्।
सैन्धवानुर्वशान् बर्वान् कुपथान् भीमरोमकान्॥ ४७

शुनामुखांश्चोर्दमरून् सिन्धुरेतान् निषेवते।
गन्धर्वान् किंनरान् यक्षान् रक्षोविद्याधरोरगान्॥ ४८

कलापग्रामकांश्चैव तथा किम्पुरुषान् नरान्।
किरातांश्च पुलिन्दांश्च कुरून् वै भारतानपि॥ ४९

उन क्षीणकाय नरेशको देखकर शङ्करजी विचारमें पड़ गये कि इसने तो पहले ही इस नदीको भूतलपर लानेके लिये तपस्याद्वारा मुझे संतुष्ट कर लिया है। फिर अपने द्वारा राजाको दिये गये वरदानको यादकर उन्होंने अपने क्रोधको रोक लिया। तत्पश्चात् गङ्गा नदीको धारण करते समय ब्रह्माद्वारा कहे गये वचनोंको सुनकर तथा भगीरथकी उग्र तपस्यासे प्रसन्न हो भगवान् शङ्करने अपने तेजसे रोकी हुई गङ्गा नदीको छोड़ दिया। इसके बाद गङ्गा सात धाराओंमें विभक्त होकर प्रवाहित हुई॥ ३०—३८॥

त्रिपथगा गङ्गाकी तीन धाराएँ पूर्वाभिमुखी तथा तीन पश्चिमाभिमुखी प्रवाहित हुईं (और सातवीं धारा स्वयं भागीरथी गङ्गा थीं)। इस प्रकार वे सात धाराओंमें विभक्त हो गयीं। उनमें पूर्व दिशामें बहनेवाली धाराओंका नाम नलिनी, ह्लादिनी और पावनी है तथा पश्चिम दिशामें प्रवाहित होनेवाली तीनों धाराएँ सीता, चक्षु और सिंधु नामसे कही गयी हैं। उनमें सातवीं धारा भगीरथके पीछे-पीछे दक्षिण दिशाकी ओर चली और दक्षिणसागरमें प्रविष्ट हो गयी, इसी कारण वह भागीरथी नामसे प्रसिद्ध हुई। ये ही सातों धाराएँ हिमवर्षको आप्लावित करती हैं। इस प्रकार ये सातों नदियाँ बिन्दुसरसे निकली हुई हैं। ये सब ओरसे उन म्लेच्छप्राय देशोंको सींचती हैं, जो पर्वतीय कुकुर, रौध्र, बर्बर, यवन, खस, पुलिन्द, कुलत्थ, अङ्गलोक्य और वर नामसे कहे जाते हैं। इस प्रकार गङ्गा हिमवान्‌को दो भागोंमें विभक्त कर दक्षिणसमुद्रमें प्रवेश कर गयी हैं। इसके बाद चक्षु (वंक्षु) नदी वीरमरु, कालिक, शूलिक, तुषार, बर्बर, कार, पह्लव, पारद और शक—इन देशोंको आप्लावित कर समुद्रमें मिल गयी है। सिन्धु नदी दरद, उर्जगुड, गान्धार, औरस, कुहू, शिवपौर, इन्द्रमरु, वसति, सैन्धव, उर्वश, बर्व, कुपथ, भीमरोभक, शुनामुख और उर्दमरु—इन देशोंकी सेवा करती अर्थात् इन देशोंमें बहती है। मङ्गलमयी गङ्गा गन्धर्व, किंनर, यक्ष, राक्षस, विद्याधर, नाग, कलापग्रामवासी जन, किम्पुरुष, किरात, पुलिन्द, कुरु, भारत, पाञ्चाल, कौशिक मत्स्य (विराट), मगध, अङ्ग,

पाञ्चालान् कौशिकान् मत्स्यान् मागधाङ्गांस्तथैव च।
सुह्मोत्तरांश्च वङ्गांश्च ताम्रलिप्तांस्तथैव च॥ ५०
एताञ्जनपदानार्यान् गङ्गा भावयते शुभा।
ततः प्रतिहता विन्ध्ये प्रविष्टा दक्षिणोदधिम्॥ ५१
ततस्तु ह्लादिनी पुण्या प्राचीनाभिमुखी ययौ।
प्लावयन्त्युपकांश्चैव निषादानपि सर्वशः॥ ५२
धीवरानृषिकांश्चैव तथा नीलमुखानपि।
केकरानेककर्णांश्च किरातानपि चैव हि॥ ५३
कालञ्जरान् विकर्णांश्च कुशिकान् स्वर्गभौमकान्।
सा मण्डले समुद्रस्य तीरे भूत्वा तु सर्वशः॥ ५४
ततस्तु नलिनी चापि प्राचीमेव दिशं ययौ।
कुपथान् प्लावयन्ती सा इन्द्रद्युम्नसरांस्यपि॥ ५५
तथा खरपथान् देशान् वेत्रशङ्कुपथानपि।
मध्येनोज्जानकमरून् कुथप्रावरणान् ययौ॥ ५६
इन्द्रद्वीपसमीपे तु प्रविष्टा लवणोदधिम्।
ततस्तु पावनी प्रायात् प्राचीमाशां जवेन तु॥ ५७
तोमरान् प्लावयन्ती च हंसमार्गान् समूहकान्।
पूर्वान् देशांश्च सेवन्ती भित्त्वा सा बहुधा गिरिम्।
कर्णप्रावरणान् प्राप्य गता साश्वमुखानपि॥ ५८
सिक्त्वा पर्वतमेरुं सा गत्वा विद्याधरानपि।
शैमिमण्डलकोष्ठं तु सा प्रविष्टा महत्सरः॥ ५९
तासां नद्युपनद्योऽन्याः शतशोऽथ सहस्रशः।
उपगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः॥ ६०
तीरे वंशीकसारायाः सुरभिर्नाम तद् वनम्।
हिरण्यशृङ्गो वसति विद्वान् कौबेरको वशी॥ ६१
यज्ञादपेतः सुमहानमितौजाः सुविक्रमः।
तत्रागस्त्यैः परिवृता विद्वद्भिर्ब्रह्मराक्षसैः॥ ६२
कुबेरानुचरा ह्येते चत्वारस्तत्समाश्रिताः।
एवमेव तु विज्ञेया सिद्धिः पर्वतवासिनाम्॥ ६३

उत्तरसुह्म, वङ्ग और ताम्रलिप्त—इन आर्य देशोंको पवित्र करती हैं। इस प्रकार वे (हिमालयसे निकलकर) विन्ध्यपर्वतसे अवरुद्ध होकर पूर्वकी ओर आगे बढ़ती हुई दक्षिणसमुद्रमें मिल गयी हैं॥ ३९—५१॥

इसी प्रकार पुण्यतोया ह्लादिनी, जो पूर्वाभिमुखी प्रवाहित होती है, उपका, निषाद, धीवर, ऋषिक, नीलमुख, केकर, अनेककर्ण, किरात, कालंजर, विकर्ण, कुशिक और स्वर्गभौमक—इन सभी देशोंको सींचती हुई समुद्रमण्डलके तटपर पहुँचकर उसमें लीन हो गयी है। नलिनी नदी भी बिन्दुसरसे निकलकर पूर्व दिशाकी ओर प्रवाहित हुई है। वह कुपथ, इन्द्रद्युम्नसर, खरपथ, वेत्र (ट) द्वीप, शङ्कुपथ आदि प्रदेशोंको सींचती हुई उज्जानक (जूनागढ़) मरुके मध्यभागसे बहती हुई कुथप्रावरणकी ओर चली गयी है तथा इन्द्रद्वीपके निकट लवणसागरमें मिल गयी है। उसी (मूल) सरोवरसे पावनी नदी बड़े वेगसे पूर्व दिशाकी ओर बहती है। वह तोमर, हंसमार्ग और समूहक देशोंको सींचती हुई पूर्वी देशोंमें जा पहुँचती है। वहाँ अनेकों प्रकारसे पर्वतको विदीर्ण करके कर्णप्रावरणमें पहुँचकर अश्वमुख देशमें चली जाती है। इसके बाद मेरु पर्वतको सींचती हुई विद्याधरोंके लोकोंमें जाकर शैमिमण्डलकोष्ठ नामक महान् सरोवरमें प्रवेश कर जाती है। इनकी छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों सहायक नदियाँ भी हैं, जो पृथक्-पृथक् इन्हींमें आकर मिली हैं। इन्हींके जलको ग्रहण कर इन्द्र वर्षा करते हैं॥ ५२—६०॥

वंशीकसाराके तटपर सुरभि नामक वह वन है, जिसमें जितेन्द्रिय एवं विद्वान् हिरण्यशृङ्ग निवास करता है। वह कुबेरका अनुचर, यज्ञसे विमुख, अमित तेजस्वी एवं परम पराक्रमी है। वहीं अगस्त्यगोत्रीय विद्वान् ब्रह्मराक्षसोंका भी निवासस्थान है। (उनकी संख्या चार है।) वे चारों कुबेरके अनुचर हैं, जो उसी हिरण्यशृङ्गके आश्रममें रहते हैं। इसी प्रकार पर्वतनिवासियोंकी सिद्धि समझनी चाहिये।

परस्परेण द्विगुणा धर्मतः कामतोऽर्थतः।
हेमकूटस्य पृष्ठे तु सर्पाणां तत् सरः स्मृतम्॥ ६४
सरस्वती प्रभवति तस्माज्ज्योतिष्मती तु या।
अवगाढे ह्युभयतः समुद्रौ पूर्वपश्चिमौ॥ ६५
सरो विष्णुपदं नाम निषधे पर्वतोत्तमे।
यस्मादग्रे प्रभवति गन्धर्वानुकुले च ते॥ ६६
मेरोः पार्श्वात् प्रभवति ह्रदश्चन्द्रप्रभो महान्।
जम्बूश्चैव नदी पुण्या यस्यां जाम्बूनदं स्मृतम्॥ ६७
पयोदस्तु ह्रदो नीलः स शुभः पुण्डरीकवान्।
पुण्डरीकात् पयोदाच्च तस्माद् द्वे सम्प्रसूयताम्॥ ६८
सरसस्तु सरस्वेतत् स्मृतमुत्तरमानसम्।
मृग्या च मृगकान्ता च तस्माद् द्वे सम्प्रसूयताम्॥ ६९
ह्रदाः कुरुषु विख्याताः पद्ममीनकुलाकुलाः।
नाम्ना ते वैजया नाम द्वादशोदधिसंनिभाः॥ ७०
तेभ्यः शान्ती च मध्वी च द्वे नद्यौ सम्प्रसूयताम्।
किम्पुरुषाद्यानि यान्यष्टौ तेषु देवो न वर्षति॥ ७१
उद्भिदान्युदकान्यत्र प्रवहन्ति सरिद्वराः।

वह धर्म, काम और अर्थके अनुसार परस्पर दुगुना फल देनेवाली होती है। हेमकूट पर्वतके पृष्ठभागपर जो सर्पोंका सरोवर बतलाया जाता है, उसीसे सरस्वती और ज्योतिष्मती नामकी दो नदियाँ निकली हैं। वे क्रमशः पूर्व और पश्चिम समुद्रमें जाकर मिली हैं। पर्वतश्रेष्ठ निषधपर विष्णुपद नामक सरोवर है, जो उसी पर्वतके अग्रभागसे निकला हुआ है। वे दोनों (नाग और विष्णुपद) सरोवर गन्धर्वोंके अनुकूल हैं। मेरुके पार्श्वभागसे चन्द्रप्रभ नामक महान् सरोवर तथा पुण्यसलिला जम्बूनदी निकलती है। जम्बूनदीमें जाम्बूनद नामक सुवर्ण पाया जाता है। वहीं पयोद और पुण्डरीकवान् नामक दो सरोवर और हैं, जिनका जल क्रमशः नील और श्वेत है। इन पुण्डरीक और पयोद सरोवरोंसे दो सरोवर और प्रकट हुए हैं। उनमें एक सरोवरसे निकला हुआ सर उत्तरमानस नामसे प्रसिद्ध है। उससे मृग्या और मृगकान्ता नामकी दो नदियाँ निकली हैं। कुरुदेशमें सागरके समान अगाध एवं विस्तृत बारह ह्रद हैं, जो कमलों और मछलियोंसे भरे रहते हैं, वे 'वैजय' नामसे विख्यात हैं। उनसे शान्ती और मध्वी नामकी दो नदियाँ निकली हैं। किम्पुरुष आदि जो आठ वर्ष हैं, उनमें इन्द्रदेव वर्षा नहीं करते, अपितु वहाँकी बड़ी-बड़ी नदियाँ ही अन्नोत्पादक जलको प्रवाहित करती हैं॥ ६१—७१ $\frac{1}{2}$॥

बलाहकश्च ऋषभो चक्रो मैनाक एव च॥ ७२
विनिविष्टाः प्रतिदिशं निमग्ना लवणाम्बुधिम्।
चन्द्रकान्तस्तथा द्रोणः सुमहांश्च शिलोच्चयः॥ ७३

बलाहक, ऋषभ, चक्र और मैनाक—ये चारों पर्वत क्रमशः चारों दिशाओंमें लवणसागरतक फैले हुए हैं।

उद्गायता उदीच्यां तु अवगाढा महोदधिम्।
चक्रो बधिरकश्चैव तथा नारदपर्वतः॥ ७४

चन्द्रकान्त, द्रोण तथा सुमहान्—इन पर्वतोंका विस्तार उत्तर दिशामें महासागरतक है। चक्र, बधिरक और नारद—ये पर्वत पश्चिम दिशामें फैले हुए हैं। इनका विस्तार महासागरतक है।

प्रतीचीमायतास्ते वै प्रतिष्ठास्ते महोदधिम्।
जीमूतो द्रावणश्चैव मैनाकश्चन्द्रपर्वतः॥ ७५

जीमूत, द्रावण, मैनाक और चन्द्र—ये महापर्वत दक्षिण दिशामें दक्षिण समुद्रतक विस्तृत हैं।

आयतास्ते महाशैलाः समुद्रं दक्षिणं प्रति।
चक्रमैनाकयोर्मध्ये दिवि संदक्षिणापथे॥ ७६

दक्षिणापथके समुद्रमें चक्र और मैनाक पर्वतके मध्यमें संवर्तक नामक अग्निका निवास है। वह उस सागरके जलको पीता है। समुद्रमें निवास करनेवाला और्व नामक अग्नि है, इसे

तत्र संवर्तको नाम सोऽग्निः पिबति तज्जलम्।
अग्निः समुद्रवासस्तु और्वोऽसौ वडवामुखः[1]॥ ७७
इत्येते पर्वताविष्टाश्चत्वारो लवणोदधिम्।
छिद्यमानेषु पक्षेषु पुरा इन्द्रस्य वै भयात्॥ ७८
तेषां तु दृश्यते चन्द्रे शुक्ले कृष्णो समाप्लुतिः।
ते भारतस्य वर्षस्य भेदा येन प्रकीर्तिताः॥ ७९
इहोदितस्य दृश्यन्ते अन्ये त्वन्यत्र चोदिताः।
उत्तरोत्तरमेतेषां वर्षमुद्रिच्यते गुणैः॥ ८०
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां धर्मतः कामतोऽर्थतः।
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भागशः॥ ८१
वसन्ति नानाजातीनि तेषु सर्वेषु तानि वै।
इत्येतद् धारयद् विश्वं पृथ्वी जगदिदं स्थिता॥ ८२

बडवाग्नि कहते हैं। जिसका मुख घोड़ीके समान है। (वह भी समुद्रके जलको सोखता रहता है।) पूर्वकालमें जब इन्द्र पर्वतोंका पक्षच्छेदन कर रहे थे, उस समय ये चारों पर्वत इन्द्रके भयसे भीत होकर लवणसागरमें भागकर छिप गये थे। ये पर्वत चन्द्रमाके शुक्लपक्षमें आनेपर दीखते हैं एवं कृष्णपक्ष आनेपर समुद्रमें डूब जाते हैं। भारतवर्षके जो भेद दीख पड़ते हैं, उनका वर्णन यहाँ किया गया। अन्य वर्षोंका वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। इन वर्षोंमें प्रत्येक वर्ष एक-दूसरेकी अपेक्षा उत्तरोत्तर गुणोंमें अधिक है। इन वर्षोंमें सभी प्राणी विभागपूर्वक आरोग्य और आयुके प्रमाणसे तथा धर्म, काम और अर्थसे युक्त होकर निवास करते हैं। उन सभी वर्षोंमें उन प्राणियोंकी अनेकों जातियाँ भी हैं। इस प्रकार इस विश्व एवं इस जगत्को धारण करती हुई पृथ्वी स्थित है॥ ७२—८२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णनमें जम्बूद्वीप-वर्णन नामक एक सौ इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२१॥

एक सौ बाईसवाँ अध्याय

शाकद्वीप, कुशद्वीप, क्रौञ्चद्वीप और शाल्मलद्वीपका वर्णन[2]

सूत उवाच

शाकद्वीपस्य वक्ष्यामि यथावदिह निश्चयम्।
कथ्यमानं निबोधध्वं शाकं द्वीपं द्विजोत्तमाः॥ १
जम्बूद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः।
विस्तारात् त्रिगुणश्चापि परिणाहः समन्ततः॥ २
तेनावृतः समुद्रोऽयं द्वीपेन लवणोदधिः।
तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः॥ ३

सूतजी कहते हैं—द्विजवरो! अब मैं शाकद्वीपका निश्चितरूपसे यथार्थ वर्णन कर रहा हूँ। आपलोग मेरे कथनानुसार शाकद्वीपके विषयमें जानकारी प्राप्त करें। शाकद्वीपका विस्तार जम्बूद्वीपके विस्तारसे दुगुना है और चारों ओरसे उसका फैलाव विस्तारसे भी तिगुना है। उस द्वीपसे यह लवणसागर घिरा हुआ है। शाकद्वीपमें अनेकों पुण्यमय जनपद हैं। वहाँके निवासी लम्बी आयु भोग कर मरते हैं। भला, उन क्षमाशील एवं तेजस्वी जनोंके प्रति दुर्भिक्षकी सम्भावना कहाँसे हो सकती है।

१. आर्यभटीय आदिके अनुसार बडवामुख दक्षिणी ध्रुवके पास एक स्थान है, जिस मार्गसे लोग पातालमें प्रवेश करते थे। बडवाग्निको बडवानल, बडवाभुग; हुत् आदि भी कहा गया है। महावीरचरितमें इसके रूप आदिका भी वर्णन है।

२. प्रायः सभी पुराणोंके भुवनकोश-प्रकरणमें इन सभी द्वीपोंका वर्णन है, पर मत्स्यपुराणसे उनके नामक्रमादिमें कुछ भेद है। W. Kirfel के भुवनकोश— (Das Purana Von, Weltge-banden P, III.F. Bharatvarsha 1931) ग्रन्थमें इन सबका एकत्र सूक्ष्म तुलनात्मक अध्ययन विशेष महत्त्वका है।

कुत एव च दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुतेष्विह।
तत्रापि पर्वताः शुभ्राः सप्तैव मणिभूषिताः॥ ४
शाकद्वीपादिषु त्वेषु सप्त सप्त नगास्त्रिषु।
ऋज्वायताः प्रतिदिशं निविष्टा वर्षपर्वताः॥ ५
रत्नाकराद्रिनामानः सानुमन्तो महाचिताः।
समोदिताः प्रतिदिशं द्वीपविस्तारमानतः॥ ६
उभयत्रावगाढौ च लवणक्षीरसागरौ।
शाकद्वीपे तु वक्ष्यामि सप्त दिव्यान् महाचलान्॥ ७
देवर्षिगन्धर्वयुतः प्रथमो मेरुरुच्यते।
प्रागायतः स सौवर्ण उदयो नाम पर्वतः॥ ८
तत्र मेघास्तु वृष्ट्यर्थं प्रभवन्त्यपयान्ति च।
तस्यापरेण सुमहाञ्जलधारो महागिरिः॥ ९
स वै चन्द्रः समाख्यातः सर्वौषधिसमन्वितः।
तस्मान्नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम्॥ १०
नारदो नाम चैवोक्तो दुर्गशैलो महाचितः।
तत्राचलौ समुत्पन्नौ पूर्वं नारदपर्वतौ॥ ११
तस्यापरेण सुमहाञ् श्यामो नाम महागिरिः।
यत्र श्यामत्वमापन्नाः प्रजाः पूर्वमिमाः किल॥ १२
स एव दुन्दुभिर्नाम श्यामपर्वतसंनिभः।
शब्दमृत्युः पुरा तस्मिन् दुन्दुभिस्ताडितः सुरैः॥ १३
रत्नमालान्तरमयः शाल्मलश्चान्तरालकृत्।
तस्यापरेण रजतो महानस्तो गिरिः स्मृतः॥ १४
स वै सोमक इत्युक्तो देवैर्यत्रामृतं पुरा।
सम्भृतं च हृतं चैव मातुरर्थे गरुत्मता॥ १५
तस्यापरे चाम्बिकेयः सुमनाश्चैव स स्मृतः।
हिरण्याक्षो वराहेण तस्मिञ्शैले निषूदितः॥ १६
आम्बिकेयात् परो रम्यः सर्वौषधिनिषेवितः।
विभ्राजस्तु समाख्यातः स्फाटिकस्तु महान् गिरिः॥ १७

इस द्वीपमें भी मणियोंसे विभूषित श्वेत रंगके सात पर्वत हैं। शाकद्वीप आदि तीन द्वीपोंमें सात-सात पर्वत हैं, जो चारों दिशाओंमें सीधे फैले हुए हैं। ये ही वहाँ वर्षपर्वत कहलाते हैं। ये रत्नाकराद्रि नामवाले वर्षपर्वत ऊँचे शिखरोंसे युक्त तथा वृक्षोंसे सम्पन्न हैं। ये द्वीप विस्तारके परिमाणकी समानतामें चारों दिशाओंमें फैले हुए हैं और एक ओर क्षीरसागरतक तथा दूसरी ओर लवणसागरतक पहुँच गये हैं। अब मैं शाकद्वीपके सातों दिव्य महापर्वतोंका वर्णन कर रहा हूँ। उनमें पहला पर्वत मेरु कहा जाता है, जो देवों, ऋषियों और गन्धर्वोंसे सुसेवित है। वह स्वर्णमय पर्वत पूर्व दिशामें फैला हुआ है। उसका दूसरा नाम 'उदयगिरि' है। वहाँ मेघगण वृष्टि करनेके लिये आते हैं और (जल बरसाकर) चले जाते हैं। उसके पार्श्वभागमें सम्पूर्ण ओषधियोंसे सम्पन्न जलधार नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है। वह चन्द्र नामसे भी विख्यात है। उसी पर्वतसे इन्द्र नित्य अधिक-से-अधिक जल ग्रहण करते हैं॥ १—१०॥

वहीं महान् समृद्धिशाली नारद नामक पर्वत है, जिसे दुर्गशैल भी कहते हैं। पूर्वकालमें ये दोनों नारद और दुर्गशैल पर्वत यहीं उत्पन्न हुए थे। उसके बाद श्याम नामक अत्यन्त विशाल पर्वत है, जहाँ पूर्वकालमें ये सारी प्रजाएँ श्यामलताको प्राप्त हो गयी थीं। श्यामपर्वतके सदृश काले रंगवाला वहीं दुन्दुभि पर्वत भी है, जिसपर प्राचीनकालमें देवताओंद्वारा दुन्दुभिके बजाये जानेपर उसके शब्दसे ही (शत्रुओंकी) मृत्यु हो जाती थी। इसके अन्तःप्रदेशमें रत्नोंके समूह भरे पड़े हैं और यह सेमलके वृक्षोंसे सुशोभित है। उसके बाद महान् अस्ताचल है, जो रजतमय है। उसे सोमक भी कहते हैं। इसी पर्वतपर पूर्वकालमें गरुड़ने अपनी माताके हितार्थ देवताओंद्वारा संचित किये गये अमृतका अपहरण किया था। उसके बाद आम्बिकेय नामक महापर्वत है, जिसे सुमना भी कहते हैं। इसी पर्वतपर वराहभगवान्ने हिरण्याक्षका वध किया था। आम्बिकेय पर्वतके बाद सम्पूर्ण ओषधियोंसे परिपूर्ण एवं स्फटिककी शिलाओंसे व्याप्त परम रमणीय महान् पर्वत है, जो विभ्राज नामसे विख्यात है। इससे अग्नि विशेष उद्दीप्त होती है, इसी

यस्माद् विभ्राजते वह्निर्विभ्राजस्तेन स स्मृतः।
सैवेह केशवेत्युक्तो यतो वायुः प्रवाति च॥ १८

तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि पर्वतानां द्विजोत्तमाः।
शृणुध्वं नामतस्तानि यथावदनुपूर्वशः॥ १९
द्विनामान्येव वर्षाणि यथैव गिरयस्तथा।
उदयस्योदयं वर्षं जलधारेति विश्रुतम्॥ २०
नाम्ना गतभयं नाम वर्षं तत् प्रथमं स्मृतम्।
द्वितीयं जलधारस्य सुकुमारमिति स्मृतम्॥ २१
तदेव शैशिरं नाम वर्षं तत् परिकीर्तितम्।
नारदस्य च कौमारं तदेव च सुखोदयम्॥ २२
श्यामपर्वतवर्षं तदनीचक्रमिति स्मृतम्।
आनन्दकमिति प्रोक्तं तदेव मुनिभिः शुभम्॥ २३
सोमकस्य शुभं वर्षं विज्ञेयं कुसुमोत्करम्।
तदेवासितमित्युक्तं वर्षं सोमकसंज्ञितम्॥ २४
आम्बिकेयस्य मैनाकं क्षेमकं चैव तत्स्मृतम्।
तदेव ध्रुवमित्युक्तं वर्षं विभ्राजसंज्ञितम्॥ २५

द्वीपस्य परिणाहं च ह्रस्वदीर्घत्वमेव च।
जाम्बूद्वीपेन संख्यातं तस्य मध्ये वनस्पतिम्॥ २६
शाको नाम महावृक्षः प्रजास्तस्य महानुगाः।
एतेषु देवगन्धर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः॥ २७
विहरन्ति रमन्ते च दृश्यमानाश्च तैः सह।
तत्र पुण्या जनपदाश्चातुर्वर्ण्यसमन्विताः॥ २८
तेषु नद्यश्च सप्तैव प्रतिवर्षं समुद्रगाः।
द्विनाम्ना चैव ताः सर्वा गङ्गाः सप्तविधाः स्मृताः॥ २९
प्रथमा सुकुमारीति गङ्गा शिवजला शुभा।
अनुतप्ता च नाम्नैषा नदी सम्परिकीर्तिता॥ ३०
सुकुमारी तपःसिद्धा द्वितीया नामतः सती।
नन्दा च पावनी चैव तृतीया परिकीर्तिता॥ ३१
शिबिका च चतुर्थी स्याद् द्विविधा च पुनः स्मृता।
इक्षुश्च पञ्चमी ज्ञेया तथैव च पुनः कुहूः॥ ३२

कारण इसे विभ्राज कहते हैं। इसीको 'केशव' भी कहते हैं। यहाँसे वायुकी गति प्रारम्भ होती है॥ ११—१८॥

द्विजवरो! अब मैं उन पर्वतोंके वर्षोंका यथार्थरूपसे नामनिर्देशानुसार आनुपूर्वी वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। जिस प्रकार वहाँके पर्वत दो नामवाले हैं, उसी तरह वर्षोंके भी दो-दो नाम हैं। उदयपर्वतके वर्ष उदय और जलधार नामसे प्रसिद्ध हैं। उनमें जो पहला उदय वर्ष है, वह गतभय नामसे अभिहित होता है। दूसरे जलधार पर्वतके वर्षको सुकुमार कहते हैं। वही शैशिर वर्षके नामसे भी विख्यात है। नारदपर्वतके वर्षका नाम कौमार है। उसीको सुखोदय भी कहते हैं। श्यामपर्वतका वर्ष अनीचक्र नामसे कहा जाता है। उसी मङ्गलमय वर्षको मुनिगण आनन्दक नामसे पुकारते हैं। सोमक पर्वतके कल्याणमय वर्षको कुसुमोत्कर नामसे जानना चाहिये। उसी सोमक नामवाले वर्षको असित भी कहा जाता है। आम्बिकेय पर्वतके वर्ष मैनाक और क्षेमक नामसे प्रसिद्ध हैं। (सातवें केसर पर्वतके वर्षका नाम) विभ्राज है। वही ध्रुव नामसे भी कहा जाता है॥ १९—२५॥

शाकद्वीपका विस्तार तथा लम्बाई-चौड़ाई जम्बूद्वीपके परिमाणसे अधिक है। (यह ऊपर बतला चुके हैं।) इस द्वीपके मध्यभागमें शाक नामका एक महान् वनस्पति है। इस द्वीपकी प्रजाएँ महापुरुषोंका अनुगमन करनेवाली हैं। इन वर्षोंमें देवता, गन्धर्व, सिद्ध और चारण विहार करते हैं और उनकी रमणीयता देखते हुए प्रजाओंके साथ क्रीडा करते हैं। इस द्वीपमें चारों वर्णोंकी प्रजाओंसे सम्पन्न सुन्दर जनपद हैं। इनमें प्रत्येक वर्षमें समुद्रगामिनी सात नदियाँ भी हैं और वे सभी दो नामोंवाली हैं। केवल गङ्गा सात प्रकारकी बतलायी जाती हैं। मङ्गलमयी एवं पुण्यसलिला प्रथमा गङ्गा सुकुमारी नामसे कही जाती हैं। यही नदी अनुतप्ता नामसे भी प्रसिद्ध है। दूसरी गङ्गा तपःसिद्धा सुकुमारी हैं। ये ही सती नामसे भी प्रसिद्ध हैं। तीसरी गङ्गा नन्दा और पावनी नामसे विख्यात हैं। चौथी गङ्गा शिबिका हैं, इन्हींको द्विविधा भी कहा जाता है। इक्षुको पाँचवीं गङ्गा समझना चाहिये। उसी प्रकार पुनः इन्हें कुहू भी कहते हैं।

वेणुका चामृता चैव षष्ठी सम्परिकीर्तिता।
सुकृता च गभस्ती च सप्तमी परिकीर्तिता॥ ३३

एताः सप्त महाभागाः प्रतिवर्षं शिवोदकाः।
भावयन्ति जनं सर्वं शाकद्वीपनिवासिनम्॥ ३४

अभिगच्छन्ति ताश्चान्या नदनद्यः सरांसि च।
बहूदकपरिस्रावा यतो वर्षति वासवः॥ ३५

छठी गङ्गा वेणुका और अमृता नामसे प्रसिद्ध हैं। सातवीं गङ्गाको सुकृता और गभस्ती कहा जाता है। कल्याणमय जलसे परिपूर्ण एवं महान् भाग्यशालिनी ये सातों गङ्गाएँ शाकद्वीपके प्रत्येक वर्षके सभी प्राणियोंको पवित्र करती हैं। दूसरे बड़े-बड़े नद, नदियाँ और सरोवर भी इन्हीं गङ्गाकी धाराओंमें आकर मिलते हैं, जिसके कारण ये सभी अथाह जल बहानेवाली हैं। इन्हींसे जल ग्रहण कर इन्द्र वर्षा करते हैं॥ २६—३५॥

तासां तु नामधेयानि परिमाणं तथैव च।
न शक्यं परिसंख्यातुं पुण्यास्ताः सरिदुत्तमाः॥ ३६

ताः पिबन्ति सदा हृष्टा नदीर्जनपदास्तु ते।
एते शान्तमयाः प्रोक्ताः प्रमोदा ये च वै शिवाः॥ ३७

आनन्दाश्च सुखाश्चैव क्षेमकाश्च नवैः सह।
वर्णाश्रमाचारयुता देशास्ते सप्त विश्रुताः॥ ३८

आरोग्या बलिनश्चैव सर्वे मरणवर्जिताः।
अवसर्पिणी न तेष्वस्ति तथैवोत्सर्पिणी पुनः॥ ३९

न तत्रास्ति युगावस्था चतुर्युगकृता क्वचित्।
त्रेतायुगसमः कालः सदा तत्र प्रवर्तते॥ ४०

शाकद्वीपादिषु ज्ञेयं पञ्चस्वेतेषु सर्वशः।
देशस्य तु विचारेण कालः स्वाभाविकः स्मृतः॥ ४१

न तेषु सङ्करः कश्चिद् वर्णाश्रमकृतः क्वचित्।
धर्मस्य चाव्यभीचारादेकान्तसुखिनः प्रजाः॥ ४२

न तेषु माया लोभो वा ईर्ष्यासूया भयं कुतः।
विपर्ययो न तेष्वस्ति तद्वै स्वाभाविकं स्मृतम्॥ ४३

कालो नैव च तेष्वस्ति न दण्डो न च दाण्डिकः।
स्वधर्मेण च धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम्॥ ४४

उन सहायक नदियोंके नाम और परिमाणकी गणना नहीं की जा सकती। ये सभी श्रेष्ठ नदियाँ पुण्यतोया हैं। इनके तटपर निवास करनेवाले जनपदवासी सदा हर्षपूर्वक इनका जल पीते हैं। उनके तटपर स्थित शान्तमय, प्रमोद, शिव, आनन्द, सुख, क्षेमक और नव—ये सात विश्व-विख्यात देश हैं। यहाँ वर्ण और आश्रमके धर्मोंका सुचारुरूपसे पालन होता है। यहाँके सभी निवासी नीरोग, बलवान् और मृत्युसे रहित होते हैं। उनमें अवसर्पिणी (अधोगामिनी) तथा उत्सर्पिणी (ऊर्ध्वगामिनी) क्रिया नहीं होती है। वहाँ कहीं भी चारों युगोंद्वारा की गयी युगव्यवस्था नहीं है। वहाँ सदा त्रेतायुगके समान ही समय वर्तमान रहता है। शाकद्वीप आदि इन पाँचों द्वीपोंमें ऐसी ही दशा जाननी चाहिये; क्योंकि देशके विचारसे ही कालकी स्वाभाविक गति जानी जाती है। उन द्वीपोंमें कहीं भी वर्ण एवं आश्रमजन्य संकर नहीं पाया जाता। इस प्रकार धर्मका परित्याग न करनेके कारण वहाँकी प्रजा एकान्त सुखका अनुभव करती है। उनमें न तो माया (छल-कपट) है, न लोभ, तब भला ईर्ष्या, असूया और भय कैसे हो सकते हैं? उनमें धर्मका विपर्यय भी नहीं देखा जाता। धर्म तो उनके लिये स्वाभाविक कर्म माना गया है। उनपर कालका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वहाँ न तो दण्डका विधान है, न कोई दण्ड देनेवाला ही है। वहाँके निवासी धर्मके ज्ञाता हैं, अतः वे स्वधर्मानुसार परस्पर एक-दूसरेकी रक्षा करते रहते हैं॥ ३६—४४॥

परिमण्डलस्तु सुमहान् द्वीपो वै कुशसंज्ञकः।
नदीजलैः परिवृतः पर्वतैश्चाभ्रसंनिभैः॥ ४५

सर्वधातुविचित्रैश्च मणिविद्रुमभूषितैः।
अन्यैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा॥ ४६

कुश नामक द्वीप अत्यन्त विशाल मण्डलवाला है। उसके चारों ओर नदियोंका जल प्रवाहित होता रहता है। वह बादल-सदृश रंगवाले, सम्पूर्ण धातुओंसे युक्त होनेके कारण रंगे-बिरंगे तथा मणियों और मूँगोंसे विभूषित पर्वतोंद्वारा घिरा हुआ है। उसमें चारों ओर विभिन्न आकारवाले रमणीय जनपद तथा फूल-फलोंसे लदे हुए

वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सर्वतो धनधान्यवान्।
नित्यं पुष्पफलोपेतः सर्वरत्नसमावृतः॥ ४७
आवृतः पशुभिः सर्वैर्ग्राम्यारण्यैश्च सर्वशः।
आनुपूर्व्यात् समासेन कुशद्वीपं निबोधत॥ ४८
अथ तृतीयं वक्ष्यामि कुशद्वीपं च कृत्स्नशः।
कुशद्वीपेन क्षीरोदः सर्वतः परिवारितः॥ ४९
शाकद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणेन समन्वितः।
तत्रापि पर्वताः सप्त विज्ञेया रत्नयोनयः॥ ५०
रत्नाकरास्तथा नद्यस्तेषां नामानि मे शृणु।
द्विनामानश्च ते सर्वे शाकद्वीपे यथा तथा॥ ५१
प्रथमः सूर्यसंकाशः कुमुदो नाम पर्वतः।
विद्रुमोच्चय इत्युक्तः स एव च महीधरः॥ ५२
सर्वधातुमयैः शृङ्गैः शिलाजालसमन्वितैः।
द्वितीयः पर्वतस्तत्र उन्नतो नाम विश्रुतः॥ ५३
हेमपर्वत इत्युक्तः स एव च महीधरः।
हरितालमयैः शृङ्गैर्द्वीपमावृत्य सर्वशः॥ ५४
बलाहकस्तृतीयस्तु भात्यञ्जनमयो गिरिः।
द्युतिमान् नामतः प्रोक्तः स एव च महीधरः॥ ५५
चतुर्थः पर्वतो द्रोणो यत्रौषध्यो महाबलाः।
विशल्यकरणी चैव मृतसंजीवनी तथा॥ ५६
पुष्पवान् नाम सैवोक्तः पर्वतः सुमहाचितः।
कङ्कस्तु पञ्चमस्तेषां पर्वतो नाम सारवान्॥ ५७
कुशेशय इति प्रोक्तः पुनः स पृथिवीधरः।
दिव्यपुष्पफलोपेतो दिव्यवीरुत्समन्वितः॥ ५८
षष्ठस्तु पर्वतस्तत्र महिषो मेघसंनिभः।
स एव तु पुनः प्रोक्तो हरिरित्यभिविश्रुतः॥ ५९
तस्मिन् सोऽग्निर्निवसति महिषो नाम योऽप्सुजः।
सप्तमः पर्वतस्तत्र ककुद्मान् स हि भाषते॥ ६०

वृक्षोंके समूह शोभायमान हो रहे हैं। वह धन-धान्यसे परिपूर्ण है। वह सदा पुष्पों और फलोंसे युक्त रहता है। इसमें सभी प्रकारके रत्न पाये जाते हैं। वह सर्वत्र ग्रामीण एवं जंगली पशुओंसे भरा हुआ है। उस कुशद्वीपका संक्षेपमें आनुपूर्वी वर्णन सुनिये। अब मैं तीसरे कुशद्वीपका समग्ररूपसे वर्णन कर रहा हूँ। कुशद्वीपसे क्षीरसागर चारों ओरसे घिरा हुआ है। यह शाकद्वीपके दुगुने विस्तारसे युक्त है। यहाँ भी रत्नोंकी खानोंसे युक्त सात पर्वत जानना चाहिये। यहाँकी नदियाँ भी रत्नोंकी भण्डार हैं। अब मुझसे उनका नाम सुनिये। जैसे शाकद्वीपमें सभी पर्वतों और नदियोंके दो नाम थे, वैसे ही यहाँके भी पर्वत एवं नदी दो नामवाली हैं। पहला सूर्यके समान चमकीला कुमुद नामक पर्वत है। वह पर्वत विद्रुमोच्चय नामसे भी कहा जाता है। वहाँ दूसरा पर्वत उन्नत नामसे विख्यात है। वह सम्पूर्ण धातुओंसे परिपूर्ण एवं शिला-समूहोंसे समन्वित शिखरोंसे युक्त है। वही पर्वत हेमपर्वत नामसे अभिहित होता है॥ ४५—५३ $\frac{१}{२}$॥

तीसरा बलाहक पर्वत है, जो अञ्जनके समान काला है। यह अपने हरितालमय शिखरोंसे सर्वत्र द्वीपको आवृत किये हुए है। यही पर्वत द्युतिमान् नामसे भी पुकारा जाता है। चौथा पर्वत द्रोण है। इस महान् गिरिपर विशल्यकरणी और मृतसंजीवनी आदि महाबलवती ओषधियाँ पायी जाती हैं। वही महान् समृद्धिशाली पर्वत पुष्पवान् नामसे विख्यात है। उनमें पाँचवाँ कङ्क पर्वत है, जो सारयुक्त पदार्थोंसे सम्पन्न है। इस पर्वतको कुशेशय भी कहते हैं। वहाँ छठा महिष पर्वत है, जो मेघ-सदृश काला है। वह दिव्य पुष्पों एवं फलोंसे युक्त तथा दिव्य वृक्षोंसे सम्पन्न है। वही पुनः हरि नामसे विख्यात है। उस पर्वतपर महिष नामक अग्नि, जो जलसे उत्पन्न हुआ है, निवास करता है। वहाँ सातवें पर्वतको ककुद्मान् कहा जाता है। उसीको मन्दर जानना चाहिये। वह

मन्दरः सैव विज्ञेयः सर्वधातुमयः शुभः।
मन्द इत्येष यो धातुरपामर्थे प्रकाशकः॥ ६१
अपां विदारणाच्चैव मन्दरः स निगद्यते।
तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः॥ ६२
प्रजापतिमुपादाय प्रजाभ्यो विदधत् स्वयम्।
तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः समुदाहृतः॥ ६३
इत्येते पर्वताः सप्त कुशद्वीपे प्रभाषिताः।
तेषां वर्षाणि वक्ष्यामि सप्तैव तु विभागशः॥ ६४
कुमुदस्य स्मृतः श्वेत उन्नतश्चैव स स्मृतः।
उन्नतस्य तु विज्ञेयं वर्षं लोहितसंज्ञकम्॥ ६५
वेणुमण्डलकं चैव तथैव परिकीर्तितम्।
बलाहकस्य जीमूतः स्वैरथाकारमित्यपि॥ ६६
द्रोणस्य हरिकं नाम लवणं च पुनः स्मृतम्।
कङ्कस्यापि ककुन्नाम धृतिमच्चैव तत् स्मृतम्॥ ६७
महिषं महिषस्यापि पुनश्चापि प्रभाकरम्।
ककुद्मिनस्तु तद्वर्षं कपिलं नाम विश्रुतम्॥ ६८
एतान्यपि विशिष्टानि सप्त सप्त पृथक् पृथक्।
वर्षाणि पर्वताश्चैव नदीस्तेषु निबोधत॥ ६९
तत्रापि नद्यः सप्तैव प्रतिवर्षं हि ताः स्मृताः।
द्विनामवत्यस्ताः सर्वाः सर्वाः पुण्यजलाः स्मृताः॥ ७०
धूतपापा नदी नाम योनिश्चैव पुनः स्मृता।
सीता द्वितीया विज्ञेया सा चैव हि निशा स्मृता॥ ७१
पवित्रा तृतीया विज्ञेया वितृष्णापि च या पुनः।
चतुर्थी ह्लादिनीत्युक्ता चन्द्रभा इति च स्मृता॥ ७२
विद्युच्च पञ्चमी प्रोक्ता शुक्ला चैव विभाव्यते।
पुण्ड्रा षष्ठी तु विज्ञेया पुनश्चैव विभावरी॥ ७३
महती सप्तमी प्रोक्ता पुनश्चैषा धृतिः स्मृता।
अन्यास्ताभ्योऽपि संजाताः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७४
अभिगच्छन्ति ता नद्यो यतो वर्षति वासवः।
इत्येष संनिवेशो वः कुशद्वीपस्य वर्णितः॥ ७५
शाकद्वीपेन विस्तारः प्रोक्तस्तस्य सनातनः।
कुशद्वीपः समुद्रेण घृतमण्डोदकेन च॥ ७६

सम्पूर्ण धातुओंसे युक्त और अत्यन्त सुन्दर है। जो यह मंद धातु है, वह जलरूप अर्थको प्रकट करनेवाली है, अतः जलका विदारण करके निकलनेके कारण इस पर्वतको मन्दर कहा जाता है। उस पर्वतपर अनेकों प्रकारके रत्न पाये जाते हैं, जिनकी रक्षा प्रजापतिको साथ लेकर स्वयं इन्द्र करते हैं। साथ ही स्वयं इन्द्र वहाँकी प्रजाओंकी भी देख-भाल करते हैं। इनके अन्तर-विष्कम्भ पर्वत परिमाणमें दुगुने बतलाये जाते हैं। कुशद्वीपमें ये सात पर्वत कहे गये हैं। अब मैं इनके सात वर्षोंका विभागपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ। कुमुद पर्वतके वर्षका नाम श्वेत है। इसे उन्नत नामसे भी पुकारते हैं। उन्नत पर्वतका लोहित नामक वर्ष जानना चाहिये। इसे वेणुमण्डलक भी कहते हैं। बलाहक पर्वतका वर्ष जीमूत है, इसीका नाम स्वैरथाकार भी है॥ ५४—६६॥

द्रोणपर्वतके वर्षका नाम हरिक है, इसे लवण भी कहते हैं। कङ्क पर्वतका वर्ष ककुद् है, इसे धृतिमान् भी कहा जाता है। महिष पर्वतके वर्षका नाम महिष है, इसे प्रभाकर नामसे अभिहित किया जाता है। ककुद्मी पर्वतका जो वर्ष है, वह कपिल नामसे विख्यात है। कुशद्वीपमें ये सातों विशिष्ट वर्ष तथा सात पर्वत पृथक्-पृथक् हैं। अब उन वर्षोंकी नदियोंको सुनिये। वहाँ प्रत्येक वर्षमें नदियाँ भी सात ही बतलायी जाती हैं। वे सभी दो नामोंवाली तथा पुण्यसलिला हैं। उनमें पहली नदीका नाम धूतपापा है, उसे योनि भी कहते हैं। दूसरी नदीको सीता नामसे जानना चाहिये। वही निशा भी कही जाती है। पवित्राको तीसरी नदी समझना चाहिये। उसीका नाम वितृष्णा भी है। चौथी ह्लादिनी नामसे पुकारी जाती है, यही चन्द्रमा नामसे भी प्रसिद्ध है। पाँचवीं नदीको विद्युत् कहते हैं, यही शुक्ला नामसे भी अभिहित होती है। पुण्ड्राको छठी नदी जानना चाहिये, इसको विभावरी भी कहते हैं। सातवीं नदीका नाम महती है, यही धृति नामसे भी कही जाती है। इनके अतिरिक्त अन्य भी छोटी-बड़ी सैकड़ों-हजारों नदियाँ हैं, जो इन्हीं प्रमुख नदियोंमें जाकर मिली हैं। इन्हींसे जल ग्रहण करके इन्द्र यहाँ वर्षा करते हैं। इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे कुशद्वीपकी संस्थितिका वर्णन कर दिया तथा उसके शाकद्वीपसे दुगुने सनातन विस्तारको भी बतला दिया। यह महान् कुशद्वीप चारों ओरसे चन्द्रमाकी भाँति घृत और मट्ठेसे

सर्वतः सुमहान् द्वीपश्चन्द्रवत् परिवेष्टितः।
विस्तारान्मण्डलाच्चैव क्षीरोदाद् द्विगुणो मतः॥ ७७

ततः परं प्रवक्ष्यामि क्रौञ्चद्वीपं यथा तथा।
कुशद्वीपस्य विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः॥ ७८
घृतोदकः समुद्रो वै क्रौञ्चद्वीपेन संवृतः।
चक्रनेमिप्रमाणेन वृतो वृत्तेन सर्वशः॥ ७९
तस्मिन् द्वीपे नराः श्रेष्ठा देवनो गिरिरुच्यते।
देवनात् परतश्चापि गोविन्दो नाम पर्वतः॥ ८०
गोविन्दात् परतश्चापि क्रौञ्चस्तु प्रथमो गिरिः।
क्रौञ्चात् परः पावनकः पावनादन्धकारकः॥ ८१
अन्धकारात् परे चापि देवावृन्नाम पर्वतः।
देवावृतः परेणापि पुण्डरीको महान् गिरिः॥ ८२
एते रत्नमयाः सप्त क्रौञ्चद्वीपस्य पर्वताः।
परस्परस्य द्विगुणो विष्कम्भो वर्षपर्वतः॥ ८३
वर्षाणि तस्य वक्ष्यामि नामतस्तु निबोधत।
क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोऽनुगः॥ ८४
मनोऽनुगात् परे चोष्णस्तृतीयोऽपि स उच्यते।
उष्णात् परे पावनकः पावनादन्धकारकः॥ ८५
अन्धकारकदेशात् तु मुनिदेशस्तथापरः।
मुनिदेशात् परे चापि प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः॥ ८६
सिद्धचारणसंकीर्णो गौरप्रायः शुचिर्जनः।
श्रुतास्तत्रैव नद्यस्तु प्रतिवर्षं गताः शुभाः॥ ८७
गौरी कुमुद्वती चैव संध्या रात्रिर्मनोजवा।
ख्यातिश्च पुण्डरीका च गङ्गा सप्तविधा स्मृता॥ ८८
तासां सहस्रशश्चान्या नद्यः पार्श्वसमीपगाः।
अभिगच्छन्ति ता नद्यो बहुलाश्च बहूदकाः॥ ८९
तेषां निसर्गो देशानामानुपूर्व्येण सर्वशः।
न शक्यो विस्तराद् वक्तुमपि वर्षशतैरपि॥ ९०
सर्गो यश्च प्रजानां तु संहारो यश्च तेषु वै।

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि शाल्मलस्य निबोधत॥ ९१
शाल्मलो द्विगुणो द्वीपः क्रौञ्चद्वीपस्य विस्तरात्।
परिवार्य समुद्रं तु घृतमण्डोदकं स्थितः॥ ९२

भरे हुए सागरसे घिरा हुआ है। यह विस्तार एवं मण्डल (घेराव)-में क्षीरसागरसे दुगुना माना गया है॥ ६७—७७॥

इसके बाद अब मैं क्रौञ्चद्वीपका यथार्थरूपसे वर्णन कर रहा हूँ। इसका विस्तार कुशद्वीपके विस्तारसे दुगुना है। चक्रकी भाँति गोलाकार उस क्रौञ्चद्वीपसे घृतसागर चारों ओरसे घिरा हुआ है। श्रेष्ठ ऋषियो! इस क्रौञ्चद्वीपमें देवन नामक पर्वत बतलाया जाता है। देवनके बाद गोविन्द नामक पर्वत है। गोविन्दके बाद क्रौञ्च नामक पहला पर्वत है। क्रौञ्चके बाद पावनक, पावनकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद देवावृत् नामक पर्वत है। देवावृत्के बाद पुण्डरीक नामक विशाल पर्वत है। क्रौञ्चद्वीपके ये सातों पर्वत रत्नमय हैं। इस द्वीपके वर्ष पर्वतके रूपमें स्थित विष्कम्भ पर्वत परस्पर एक-दूसरेसे दुगुने हैं। अब इस द्वीपके वर्षोंका नाम बतला रहा हूँ, सुनिये। क्रौञ्च पर्वतके प्रदेशका नाम कुशल है। वामन पर्वतका प्रदेश मनोऽनुग कहलाता है। मनोऽनुगके बाद तीसरा उष्ण प्रदेश कहा जाता है। उष्णके बाद पावनक, पावनकके बाद अन्धकारक और अन्धकारकके बाद दूसरा मुनिदेश है। मुनिदेशके बाद दुन्दुभिस्वन नामक देश कहा जाता है। यह द्वीप सिद्धों एवं चारणोंसे व्याप्त है। यहाँके निवासी प्रायः गौर वर्णके एवं परम पवित्र होते हैं। इस द्वीपके प्रत्येक वर्षमें मङ्गलमयी नदियाँ भी प्रवाहित होती हैं, ऐसा सुना गया है। वहाँ गौरी, कुमुद्वती, संध्या, रात्रि, मनोजवा, ख्याति और पुण्डरीका—ये सात प्रकारकी गङ्गा बतलायी जाती हैं। इनके अगल-बगलमें बहनेवाली अगाध जलसे भरी हुई हजारों अन्य नदियाँ भी हैं, जो इन्हीं प्रमुख नदियोंमें आकर मिली हैं। उन पर्वतीय प्रदेशोंकी सर्वथा आनुपूर्वी स्वाभाविकी स्थितिका तथा वहाँकी प्रजाओंकी सृष्टि एवं संहारका विस्तारपूर्वक वर्णन सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं किया जा सकता॥ ७८—९० $\frac{1}{2}$॥

इसके बाद मैं शाल्मलद्वीपका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। शाल्मलद्वीप क्रौञ्चद्वीपके विस्तारसे दुगुना है। यह घृतमण्डोदसागरको घेरकर स्थित है। इसमें पुण्यमय जनपद हैं। वहाँके निवासी क्षमाशील एवं तेजस्वी होते

तत्र पुण्या जनपदाश्चिराच्च म्रियते जनः।
कुत एव तु दुर्भिक्षं क्षमातेजोयुता हि ते॥ ९३

प्रथमः सूर्यसङ्काशः सुमना नाम पर्वतः।
पीतस्तु मध्यमश्चासीत् ततः कुम्भमयो गिरिः॥ ९४

नाम्ना सर्वसुखो नाम दिव्यौषधिसमन्वितः।
तृतीयश्चैव सौवर्णो भृङ्गपत्रनिभो गिरिः॥ ९५

सुमहान् रोहितो नाम दिव्यो गिरिवरो हि सः।
सुमनाः कुशलो देशः सुखोदर्कः सुखोदयः॥ ९६

रोहितो यस्तृतीयस्तु रोहिणो नाम विश्रुतः।
तत्र रत्नान्यनेकानि स्वयं रक्षति वासवः॥ ९७

प्रजापतिमुपादाय प्रसन्नो विदधत् स्वयम्।
न तत्र मेघा वर्षन्ति शीतोष्णं च न तद्विधम्॥ ९८

वर्णाश्रमाणां वार्ता वा त्रिषु द्वीपेषु विद्यते।
न ग्रहो न च चन्द्रोऽस्ति ईर्ष्यासूया भयं तथा॥ ९९

उद्भिदान्युदकान्यत्र गिरिप्रस्त्रवणानि च।
भोजनं षड्रसं तत्र तेषां स्वयमुपस्थितम्॥ १००

अधमोत्तमं न तेष्वस्ति न लोभो न परिग्रहः।
आरोग्यबलवन्तश्च एकान्तसुखिनो नराः॥ १०१

त्रिंशद्वर्षसहस्राणि मानसीं सिद्धिमास्थिताः।
सुखमायुश्च रूपं च धर्मैश्वर्यं तथैव च॥ १०२

शाल्मलान्तेषु विज्ञेयं द्वीपेषु त्रिषु सर्वतः।
व्याख्यातः शाल्मलान्तानां द्वीपानां तु विधिः शुभः॥ १०३

हैं तथा दीर्घायुका उपभोग कर मृत्युको प्राप्त होते हैं। वहाँ अकालकी कोई सम्भावना ही नहीं है। वहाँ पहले पर्वतका नाम सुमना है, जो सूर्यके समान चमकीला होनेके कारण पीले रंगका है। उसके बाद दूसरा कुम्भमय नामक पर्वत है। उसका दूसरा नाम सर्वसुख है। वह दिव्य ओषधियोंसे सम्पन्न है। तीसरा स्वर्णसम्पन्न एवं भ्रमरके पंखके समान रंगवाला रोहित नामक विशाल पर्वत है। यह पर्वतश्रेष्ठ दिव्य है। सुमना पर्वतका देश कुशल एवं दूसरे सर्वसुख पर्वतका देश सुखोदय है, जो सभी सुखोंको उत्पन्न करनेवाला है। तीसरे रोहित पर्वतका प्रदेश रोहिण नामसे विख्यात है। वहाँ अनेकों प्रकारके रत्नोंकी खानें हैं, जिनकी रक्षा प्रजापतिको साथ लेकर स्वयं इन्द्र करते हैं और वे ही प्रसन्नतापूर्वक वहाँकी प्रजाओंके लिये कार्यका विधान करते हैं। वहाँ न तो मेघ वर्षा करते हैं, न शीत एवं उष्णकी ही अधिकता रहती है। इन तीनों द्वीपोंमें वर्णाश्रमकी चर्चा चलती रहती है। अर्थात् यहाँ वर्णाश्रमका पूर्णरूपसे प्रचार है। यहाँ न ग्रहगण हैं, न चन्द्रमा हैं और न यहाँके निवासियोंमें ईर्ष्या, असूया और भय ही देखा जाता है। यहाँ पर्वतोंसे झरते हुए जल ही अन्नके उत्पादक हैं। वहाँके निवासियोंके लिये षट्-रसयुक्त भोजन स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। उनमें न तो ऊँच-नीचका भाव है, न लोभ है और न परिग्रह (दान लेनेकी प्रवृत्ति) ही है। वे नीरोग एवं बलवान् होते हैं तथा एकान्त सुखका उपभोग करते हैं। वे लोग तीस हजार वर्षतककी मानसी सिद्धिको प्राप्त होकर सुख, दीर्घायु, सुन्दर रूप, धर्म और ऐश्वर्यका उपभोग करते हुए जीवन-यापन करते हैं। कुश, क्रौञ्च और शाल्मल—इन तीनों द्वीपोंमें यही स्थिति समझनी चाहिये। इस प्रकार मैं इन तीनों द्वीपोंकी शुभमयी विधिका विवरण बतला चुका। इस

परिमण्डलस्तु द्वीपस्य चक्रवत् परिवेष्टितः।
सुरोदेन समुद्रेण द्विगुणेन समन्वितः॥ १०४

शाल्मलद्वीपका मण्डल (घेरा) दुगुने परिमाणवाले सुरोदसागरसे चारों ओर चक्रकी भाँति गोलाकार घिरा हुआ है॥ ९१—१०४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे द्वीपवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोशवर्णन-प्रसङ्गमें द्वीप-वर्णन नामक एक सौ बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२२॥

एक सौ तेईसवाँ अध्याय

गोमेदकद्वीप* और पुष्करद्वीपका वर्णन

सूत उवाच

गोमेदकं प्रवक्ष्यामि षष्ठं द्वीपं तपोधनाः।
सुरोदकसमुद्रस्तु गोमेदेन समावृतः॥ १
शाल्मलस्य तु विस्ताराद् द्विगुणस्तस्य विस्तरः।
तस्मिन् द्वीपे तु विज्ञेयौ पर्वतौ द्वौ समाहितौ॥ २
प्रथमः सुमना नाम भात्यञ्जनमयो गिरिः।
द्वितीयः कुमुदो नाम सर्वौषधिसमन्वितः॥ ३
शातकौम्भमयः श्रीमान् विज्ञेयः सुमहाचितः।
समुद्रेक्षुरसोदेन वृतो गोमेदकश्च सः॥ ४
षष्ठेन तु समुद्रेण सुरोदाद् द्विगुणेन च।
धातकी कुमुदश्चैव हव्यपुत्रौ सुविस्तृतौ॥ ५
सौमनं प्रथमं वर्षं धातकीखण्डमुच्यते।
धातकिनः स्मृतं तद् वै प्रथमं प्रथमस्य तु॥ ६
गोमेदं यत्स्मृतं वर्षं नाम्ना सर्वसुखं तु तत्।
कुमुदस्य द्वितीयस्य द्वितीयं कुमुदं ततः॥ ७
एतौ द्वौ पर्वतौ वृत्तौ शेषौ सर्वसमुच्छ्रितौ।
पूर्वेण तस्य द्वीपस्य सुमनाः पर्वतः स्थितः॥ ८
प्राक्पश्चिमायतैः पादैरासमुद्रादिति स्थितः।
पश्चार्धे कुमुदस्तस्य एवमेव स्थितस्तु वै॥ ९
एतैः पर्वतपादैस्तु स देशो वै द्विधा कृतः।
दक्षिणार्धे तु द्वीपस्य धातकीखण्डमुच्यते॥ १०

सूतजी कहते हैं—तपोधन ऋषियो! अब मैं छठे गोमेदक द्वीपका वर्णन कर रहा हूँ। गोमेदक द्वीपसे सुरोदकसागर घिरा हुआ है। इसका विस्तार शाल्मलद्वीपके विस्तारसे दुगुना है। उस द्वीपमें उच्च शिखरोंवाले दो पर्वत हैं—ऐसा जानना चाहिये। उनमें पहलेका नाम सुमना है। यह पर्वत अञ्जनके समान काले रंगसे सुशोभित है। दूसरा पर्वत कुमुद नामवाला है, जो सभी प्रकारकी ओषधियोंसे सम्पन्न, सुवर्णमय, शोभाशाली और वृक्षादिकी समृद्धियोंसे युक्त है। यह गोमेदक द्वीप छठे सुरोदसागरकी अपेक्षा दुगुने परिमाणवाले इक्षुरसोदसागरसे घिरा हुआ है। इसमें धातकी और कुमुद नामक दो अत्यन्त विस्तृत प्रदेश हैं, जो 'हव्यपुत्र' नामसे विख्यात हैं। सुमना पर्वतका जो प्रथम वर्ष है, उसीको धातकीखण्ड कहते हैं। यही धातकी नामक प्रथम पर्वतका प्रथम वर्ष कहलाता है। गोमेद नामसे जो वर्ष कहा गया है, उसीको सर्वसुख भी कहते हैं। इसके बाद दूसरे कुमुदपर्वतका प्रदेश भी कुमुद नामसे विख्यात है। ये दोनों पर्वत अन्य सभी पर्वतोंसे ऊँचे हैं। इस गोमेदक द्वीपके पूर्वभागमें सुमना नामक पर्वत स्थित है, जो पूर्वसे पश्चिम समुद्रतक फैला हुआ है। इसी प्रकार इस द्वीपके पश्चिमार्ध भागमें कुमुद नामक पर्वत स्थित है। इन पर्वतोंके चरण-प्रान्तोंसे वह देश दो भागोंमें विभक्त हो गया है। इस द्वीपका दक्षिणार्ध भाग धातकीखण्ड कहलाता है

* इस द्वीपका वर्णन प्रायः अन्य पुराणोंमें नहीं है। पर सिद्धान्तशिरोमणि गोलाध्याय ३। २५ आदिमें इसका वर्णन है। अन्य पुराणोंमें गोमेद प्लक्षद्वीपमें एक मर्यादा पर्वतमात्र है।

कुमुदं तूत्तरे तस्य द्वितीयं वर्षमुत्तमम्।
एतौ जनपदौ द्वौ तु गोमेदस्य तु विस्तृतौ॥ ११

इतः परं प्रवक्ष्यामि सप्तमं द्वीपमुत्तमम्।
समुद्रेक्षुरसं चैव गोमेदाद् द्विगुणं हि सः॥ १२

आवृत्य तिष्ठति द्वीपः पुष्करः पुष्करैर्वृतः।
पुष्करेण वृतः श्रीमांश्चित्रसानुर्महागिरिः॥ १३

कूटैश्चित्रैर्मणिमयैः शिलाजालसमुद्भवैः।
द्वीपस्यैव तु पूर्वार्धे चित्रसानुः स्थितो महान्॥ १४

परिमण्डलसहस्राणि विस्तीर्णः सप्तविंशतिः।
ऊर्ध्वं स वै चतुर्विंशद् योजनानां महाचलः॥ १५

द्वीपार्धस्य परिक्षिप्तः पश्चिमे मानसो गिरिः।
स्थितो वेलासमीपे तु पूर्वचन्द्र इवोदितः॥ १६

योजनानां सहस्राणि सार्धं पञ्चाशदुच्छ्रितः।
तस्य पुत्रो महावीतः पश्चिमार्धस्य रक्षिता॥ १७

पूर्वार्धे पर्वतस्यापि द्विधा देशस्तु स स्मृतः।
स्वादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवारितः॥ १८

विस्तारान्मण्डलाच्चैव गोमेदाद् द्विगुणेन तु।
त्रिंशद्वर्षसहस्राणि तेषु जीवन्ति मानवाः॥ १९

विपर्ययो न तेष्वस्ति एतत् स्वाभाविकं स्मृतम्।
आरोग्यं सुखबाहुल्यं मानसीं सिद्धिमास्थिताः॥ २०

सुखमायुश्च रूपं च त्रिषु द्वीपेषु सर्वशः।
अधमोत्तमौ न तेष्वास्तां तुल्यास्ते वीर्यरूपतः॥ २१

न तत्र वध्यवधकौ नेर्ष्यासूया भयं तथा।
न लोभो न च दम्भो वा न च द्वेषः परिग्रहः॥ २२

सत्यानृते न तेष्वास्तां धर्माधर्मौ तथैव च।
वर्णाश्रमाणां वार्ता च पाशुपाल्यं वणिक् कृषिः॥ २३

त्रयीविद्या दण्डनीतिः शुश्रूषा दण्ड एव च।
न तत्र वर्षं नद्यो वा शीतोष्णं न च विद्यते॥ २४

उद्भिदान्युदकानि स्युर्गिरिप्रस्रवणानि च।
तुल्योत्तरकुरूणां तु कालस्तत्र तु सर्वदा॥ २५

तथा इसके उत्तरार्ध भागमें कुमुद नामक दूसरा श्रेष्ठ वर्ष है। गोमेदक द्वीपके ये दोनों प्रदेश अत्यन्त विस्तृत माने जाते हैं॥ १—११॥

इसके बाद अब मैं सातवें सर्वोत्तम द्वीपका वर्णन कर रहा हूँ, जो पुष्करों (कमलों)-से व्याप्त होनेके कारण पुष्कर नामसे प्रसिद्ध है। यह परिमाणमें गोमेदकद्वीपसे दुगुना है और इक्षुरसोदक-सागरको घेरकर स्थित है। पुष्करद्वीपमें चित्रसानु (विचित्र शिखरोंवाला) नामक शोभाशाली महान् पर्वत है। यह अनेकों चित्र-विचित्र मणिमय शिखरों तथा शिलासमूहोंसे सुशोभित है। यह महान् पर्वत चित्रसानु द्वीपके पूर्वार्ध भागमें स्थित है। यह महान् गिरि सत्ताईस योजन विस्तृत और चौबीस योजन ऊँचा है। इस द्वीपके पश्चिमार्ध भागमें समुद्रतटपर मानस नामक पर्वत स्थित है, जो पूर्व दिशामें निकले हुए चन्द्रमाके समान शोभायमान है। यह साढ़े पचास हजार योजन ऊँचा है। मानस पर्वतके पूर्वार्धमें स्थित रहते हुए भी इसका पुत्र महावीत नामक पर्वत द्वीपके पश्चिमार्ध भागकी रक्षा करता है। इस प्रकार वह प्रदेश दो भागोंमें विभक्त कहा जाता है। पुष्करद्वीप स्वादिष्ट जलवाले महासागरसे घिरा हुआ है। यह विस्तार एवं मण्डल (घेराव)-में गोमेदक द्वीपसे दुगुना है। इस द्वीपके अन्तःस्थित प्रदेशोंके मानव तीस हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। उनमें वृद्धावस्थाका प्रवेश नहीं होता। वे स्वाभाविक रूपसे युवावस्था, नीरोगता, अत्यधिक सुख और मानसी सिद्धिसे युक्त होते हैं॥ १२—२०॥

तीनों द्वीपोंमें सर्वत्र सुख, दीर्घायु और सुन्दर रूपकी सुलभता रहती है। उनमें ऊँच-नीचका भाव नहीं होता। पराक्रम और रूपकी दृष्टिसे वे एकतुल्य होते हैं। उनमें न कोई वध करनेयोग्य होता है और न मारनेवाला ही पाया जाता है। उनमें ईर्ष्या, असूया, भय, लोभ, दम्भ, द्वेष और संग्रहका नामतक नहीं है। उनमें सत्य-असत्य एवं धर्म-अधर्मका विवाद, वर्णाश्रमकी चर्चा, पशुपालन, व्यवसाय, खेती, त्रयीविद्या, दण्डनीति (शत्रुओं या अपराधियोंको दण्ड देकर वशमें करनेकी नीति), नौकरी और परस्पर दण्ड-विधान भी नहीं पाया जाता। वहाँ न तो वर्षा होती है, न नदियाँ ही हैं तथा सर्दी-गरमी भी नहीं पड़ती। पर्वतोंसे टपकते हुए जल ही अन्न और जलका काम पूरा करते हैं। वहाँ सर्वदा उत्तरकुरु देशके सदृश समय बना रहता है।

सर्वतः सुखकालोऽसौ जराक्लेशविवर्जितः।
सर्गस्तु धातकीखण्डे महावीते तथैव च॥ २६
एवं द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः।
द्वीपस्यानन्तरो यस्तु समुद्रस्तत्समस्तु वै॥ २७
एवं द्वीपसमुद्राणां वृद्धिर्ज्ञेया परस्परम्।
अपां चैव समुद्रेकात् समुद्र इति संज्ञितः॥ २८
ऋषद्वसन्त्यो वर्षेषु प्रजा यत्र चतुर्विधाः।
ऋषिरित्येष गमने वर्षं त्वेतेन तेषु वै॥ २९
उदयतीन्दौ पूर्वे तु समुद्रः पूर्यते सदा।
प्रक्षीयमाणे बहुले क्षीयतेऽस्तमिते च वै॥ ३०
आपूर्यमाणो ह्युदधिरात्मनैवाभिपूर्यते।
ततो वै क्षीयमाणे तु स्वात्मन्येव ह्यपां क्षयः॥ ३१
उदयात् पयसां योगात् पुष्णन्त्यापो यथा स्वयम्।
तथा स तु समुद्रोऽपि वर्धते शशिनोदये॥ ३२
अन्यूनानतिरिक्तात्मा वर्धन्त्यापो ह्रसन्ति च।
उदयेऽस्तमये चेन्दोः पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥ ३३
क्षयवृद्धी समुद्रस्य शशिवृद्धिक्षये तथा।
दशोत्तराणि पञ्चाहुरङ्गुलानां शतानि च॥ ३४
अपां वृद्धिः क्षयो दृष्टः समुद्राणां तु पर्वसु।
द्विरापत्वात् स्मृतो द्वीपो दधनाच्चोदधिः स्मृतः॥ ३५
निगीर्णत्वाच्च गिरयो पर्वबन्धाच्च पर्वताः।
शाकद्वीपे तु वै शाकः पर्वतस्तेन चोच्यते॥ ३६
कुशद्वीपे कुशस्तम्बो मध्ये जनपदस्य तु।
क्रौञ्चद्वीपे गिरिः क्रौञ्चस्तस्य नाम्ना निगद्यते॥ ३७
शाल्मलिः शाल्मलद्वीपे पूज्यते स महाद्रुमः।
गोमेदके तु गोमेदः पर्वतस्तेन चोच्यते॥ ३८
न्यग्रोधः पुष्करद्वीपे पद्मवत् तेन स स्मृतः।
पूज्यते स महादेवैर्ब्रह्मांशोऽव्यक्तसम्भवः॥ ३९

वहाँ सब लोग सर्वत्र वृद्धावस्थाके कष्टसे रहित सुखमय समय व्यतीत करते हैं। यही स्थिति धातकीखण्ड तथा महावीत— दोनों प्रदेशोंमें पायी जाती है। इस प्रकार सातों द्वीप पृथक्-पृथक् सात समुद्रोंसे घिरे हुए हैं। जो समुद्र जिस द्वीपके बाद पड़ता है, वह परिमाणमें उसी द्वीपके बराबर माना गया है। इस प्रकार द्वीपों और समुद्रोंकी परस्पर वृद्धि समझनी चाहिये। जलकी सम्यक् प्रकारसे वृद्धि होनेके कारण इस जलराशिको समुद्र कहते हैं। 'ऋषि' धातुका अर्थ गमन है, इसीसे 'वर्ष' शब्द बनता है। उन वर्षोंमें चार प्रकारकी प्रजाएँ सुखपूर्वक निवास करती हैं। पूर्व दिशामें चन्द्रमाके उदय होनेपर समुद्र सर्वदा जलसे पूर्ण हो जाता है अर्थात् उसमें ज्वार आ जाता है और वही चन्द्रमा जब अस्त हो जाते हैं तब समुद्रका बढ़ा हुआ जल अत्यन्त क्षीण हो जाता है अर्थात् भाटा हो जाता है। जलकी वृद्धिके समय समुद्र अपनी मर्यादाके भीतर ही बढ़ता है और क्षीण होते समय मर्यादाके अंदर ही उसके जलका क्षय होता है॥ २१—३१॥

जिस प्रकार चन्द्रमाके उदय होनेपर चन्द्र-किरणोंका जलके साथ संयोग होनेसे जल अपने-आप उछलने लगता है, उसी प्रकार समुद्र भी बढ़ने लगता है। यद्यपि शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें चन्द्रमाके उदय और अस्त-कालमें जल बढ़ता और घटता है, तथापि समुद्रकी मर्यादामें न्यूनता या अधिकता नहीं दीख पड़ती। चन्द्रमाकी वृद्धि और क्षयके अवसरपर समुद्रका भी उत्कर्ष और अपकर्ष होता है। पानीका यह चढ़ाव-उतार एक सौ पंद्रह अङ्गुलतक बतलाया जाता है। पर्वके अवसरोंपर समुद्रोंके जलोंका यह ज्वारभाटा स्पष्ट दीखनेमें आता है। दो ओर जलसे घिरा होनेके कारण समुद्रस्थ प्रदेशको द्वीप कहते हैं और जलको धारण करनेके कारण समुद्रको उदधि कहा जाता है। (सभी वस्तुओंको) आत्मसात् कर लेनेके कारण 'गिरि' और (पृथ्वीके) संधिस्थानको बाँधनेके कारण 'पर्वत' नाम पड़ा है। शाकद्वीपमें शाक नामक पर्वत है, इसी कारण उसे शाकद्वीप कहते हैं। कुशद्वीपमें जनपदके मध्यभागमें विशाल कुशस्तम्ब (कुशका गुल्म) है (इसीलिये वह कुशद्वीप कहा जाता है)। क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामक पर्वत है, अतः उसीके नामपर वह क्रौञ्चद्वीप कहलाता है। शाल्मलद्वीपमें सेमलका महान् वृक्ष है, उसकी वहाँके लोग पूजा करते हैं। (इसीसे उसे शाल्मलद्वीप कहा जाता है।) गोमेदकद्वीपमें गोमेद नामका पर्वत है, अतः उसीके नामपर द्वीपको गोमेदक नामसे पुकारते हैं। पुष्करद्वीपमें कमलके समान बरगदका वृक्ष है, इसी कारण उसे पुष्करद्वीप कहते हैं। वह वटवृक्ष अव्यक्त ब्रह्माके अंशसे समुद्भूत हुआ है, इसीलिये प्रधान-प्रधान

तस्मिन् स वसति ब्रह्मा साध्यैः सार्धं प्रजापतिः।
तत्र देवा उपासन्ते त्रयस्त्रिंशन्महर्षिभिः॥ ४०

स तत्र पूज्यते देवो देवैर्महर्षिसत्तमैः।
जम्बूद्वीपात् प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधानि च॥ ४१

द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां क्रमशैस्तु वै।
आर्जवाद् ब्रह्मचर्येण सत्येन च दमेन च॥ ४२

आरोग्यायुष्प्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः।
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु यथोक्तं वर्षकेषु च॥ ४३

गोपायन्ते प्रजास्तत्र सर्वैः सहजपण्डितैः।
भोजनं चाप्रयत्नेन सदा स्वयमुपस्थितम्॥ ४४

षड्रसं तन्महावीर्यं तत्र ते भुञ्जते जनाः।
परेण पुष्करस्याथ आवृत्यावस्थितो महान्॥ ४५

स्वादूदकसमुद्रस्तु स समन्तादवेष्टयत्।
स्वादूदकस्य परितः शैलस्तु परिमण्डलः॥ ४६

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च लोकालोकः स उच्यते।
आलोकस्तत्र चार्वाक् च निरालोकस्ततःपरम्॥ ४७

लोकविस्तारमात्रं तु पृथिव्यर्धं तु बाह्यतः।
प्रतिच्छन्नं समन्तात् तु उदकेनावृतं महत्॥ ४८

भूमेर्दशगुणाश्चापः समन्तात् पालयन्ति गाम्।
अद्भ्यो दशगुणश्चाग्निः सर्वतो धारयत्यपः॥ ४९

अग्नेर्दशगुणो वायुर्धारयञ् ज्योतिरास्थितः।
तिर्यक् च मण्डली वायुर्भूतान्यावेष्ट्य धारयन्॥ ५०

दशाधिकं तथाऽऽकाशं वायोर्भूतान्यधारयत्।
भूतानि धारयन् व्योम तस्माद् दशगुणस्तु वै॥ ५१

भूतादितो दशगुणं महद्भूतान्यधारयत्।
महत्तत्त्वं ह्यनन्तेन अव्यक्तेन तु धार्यते॥ ५२

आधाराधेयभावेन विकारास्ते विकारिणाम्।
पृथ्व्यादयो विकारास्ते परिच्छिन्नाः परस्परम्॥ ५३

देवगण उसकी पूजा करते हैं। उस द्वीपमें साध्यगणोंके साथ प्रजापति ब्रह्मा निवास करते हैं। वहाँ महर्षियोंके साथ तैंतीस देवता उपासना करते हैं। वहाँ श्रेष्ठ महर्षियों एवं देवताओंद्वारा देवाधिदेव ब्रह्माकी पूजा की जाती है। जम्बूद्वीपसे अनेकों प्रकारके रत्न (अन्यान्य द्वीपोंमें) प्रवर्तित होते हैं॥ ३२—४१॥

उपर्युक्त उन सभी द्वीपों और वर्षोंमें क्रमशः प्रजाओंकी सरलता, ब्रह्मचर्य, सत्यवादिता, इन्द्रियनिग्रह, नीरोगता और आयुका प्रमाण एक-दूसरेसे दुगुना बढ़ता जाता है। वे सभी स्वाभाविक ही पण्डित होते हैं, अतः उनके द्वारा स्वयं प्रजाओंकी रक्षा होती रहती है। वहाँ भोजन अनायास ही स्वयं उपस्थित हो जाता है, जो छहों रसोंसे युक्त और महान् बलदायक होता है। उसे ही वहाँके निवासी खाते हैं। पुष्करद्वीपके बाद स्वादिष्ट जलसे परिपूर्ण महासागर उस द्वीपको चारों ओरसे घेरकर अवस्थित है। उस स्वादिष्ट जलवाले सागरके चारों ओर एक मण्डलाकार पर्वत है, जो प्रकाश और अन्धकारसे युक्त है। उसीको 'लोकालोक' नामसे पुकारा जाता है। उसका अगला भाग प्रकाशयुक्त तथा पिछला भाग अन्धकारसे आच्छादित रहता है। उसका विस्तार लोकोंके विस्तारके बराबर है, किंतु वह बाहरसे पृथ्वीके अर्धभाग-जितना दीख पड़ता है। वह महान् पर्वत चारों ओर जल-राशिसे आच्छन्न एवं घिरा हुआ है। पृथ्वीसे दसगुना जल चारों ओरसे पृथ्वीकी रक्षा करता है। जलसे दसगुनी अग्नि सब ओरसे जलको धारण करती है। अग्निसे दसगुनी वायु तेजको धारण करके स्थित है। वह वायुमण्डल तिरछा होकर समस्त प्राणियोंमें प्रविष्ट हो सबको धारण किये हुए है। वायुसे दसगुना आकाश भूतोंको धारण किये हुए है। उस आकाशसे दसगुना भूतादि अर्थात् तामस अहंकार है। उस भूतादिसे दसगुना महद्भूत (महत्तत्त्व) है और वह महत्तत्त्व अनन्त अव्यक्तद्वारा धारण किया जाता है। इन विकृतिशील तत्त्वोंके विकार आधाराधेयभावसे कल्पित हैं। ये पृथ्वी आदि विकार परस्पर विभक्त हैं,

परस्पराधिकाश्चैव प्रविष्टाश्च परस्परम्।
एवं परस्परोत्पन्ना धार्यन्ते च परस्परम्॥ ५४

परस्पर एक-दूसरेसे अधिक तथा एक-दूसरेमें घुसे हुए भी हैं। इसी प्रकार ये परस्पर उत्पन्न होते हैं और परस्पर एक-दूसरेको धारण भी करते हैं*॥ ४२—५४॥

यस्मात् प्रविष्टास्तेऽन्योन्यं तस्मात् ते स्थिरतां गताः।
आसंस्ते ह्यविशेषाश्च विशेषा अन्यवेशनात्॥ ५५
पृथ्व्यादयस्तु वाय्वन्ताः परिच्छिन्नास्तु तत्र ते।
भूतेभ्यः परतस्तेभ्यो ह्यलोकः सर्वतः स्मृतः॥ ५६
तथा ह्यालोक आकाशे परिच्छिन्नानि सर्वशः।
पात्रे महति पात्राणि यथा ह्यन्तर्गतानि च॥ ५७
भवन्त्यन्योन्यहीनानि परस्परसमाश्रयात्।
तथा ह्यालोक आकाशे भेदास्त्वन्तर्गतागताः॥ ५८
कृतान्येतानि तत्त्वानि अन्योन्यस्याधिकानि च।
यावदेतानि तत्त्वानि तावदुत्पत्तिरुच्यते॥ ५९
जन्तूनामिह संस्कारो भूतेष्वन्तर्गतेषु वै।
प्रत्याख्यायेह भूतानि कार्योत्पत्तिर्न विद्यते॥ ६०
तस्मात् परिमिता भेदाः स्मृताः कार्यात्मकास्तु वै।
ते कारणात्मकाश्चैव स्युर्भेदा महदादयः॥ ६१
इत्येवं संनिवेशोऽयं पृथ्व्याक्रान्तस्तु भागशः।
सप्तद्वीपसमुद्राणां याथातथ्येन वै मया॥ ६२
विस्तारान्मण्डलाच्चैव प्रसंख्यानेन चैव हि।
विश्वरूपं प्रधानस्य परिमाणैकदेशिनः॥ ६३
एतावत् संनिवेशस्तु मया सम्यक् प्रकाशितः।
एतावदेव श्रोतव्यं संनिवेशस्य पार्थिव॥ ६४

चूँकि ये सभी परस्पर एक-दूसरेमें प्रविष्ट-से हैं, इसीलिये स्थिरताको प्राप्त हुए हैं। पहले इनमें कोई विशेषता नहीं थी, परंतु एक-दूसरेमें प्रविष्ट हो जानेसे ये विशिष्ट हो गये हैं। पृथ्वीसे लेकर वायुतकके सभी तत्त्व परस्पर विभक्त हैं। इन तत्त्वोंसे परे सारा जगत् निर्जन है। (अन्य सभी तत्त्व) प्रकाशमान आकाशमें सर्वत्र व्याप्त हैं। जिस प्रकार छोटे-छोटे पात्र बड़े पात्रके अन्तर्गत समा जाते हैं और परस्पर समाश्रयण होनेके कारण एक-दूसरेसे छोटे होते जाते हैं, उसी प्रकार ये सारे भेद प्रकाशमान आकाशके अन्तर्गत विलीन हो जाते हैं। ये तत्त्व परस्पर एक-दूसरेसे अधिक परिमाणवाले बनाये गये हैं। जबतक ये तत्त्व वर्तमान रहते हैं, तभीतक प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। इस जगत्में इन्हीं तत्त्वोंके अन्तर्गत प्राणियोंकी व्यवस्थिति होती है। इन तत्त्वोंका प्रत्याख्यान कर देनेपर किसी प्रकार कार्यकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। इसीलिये वे परिमित (पृथ्वीसे वायुतक) तत्त्व कार्यात्मक कहे जाते हैं तथा महत्तत्त्व आदि भेद कारणात्मक हैं। इस प्रकार विभागपूर्वक पृथ्वीसे आच्छादित मण्डल, सातों द्वीपों और सातों समुद्रोंका यथार्थरूपसे गणनासहित विस्तार एवं मण्डल तथा परिमाणमें एकदेशी प्रधान तत्त्वका इसे विश्वरूप जानना चाहिये। राजन्! मैंने इस मण्डलका यहाँतक सम्यक् प्रकारसे वर्णन कर दिया; क्योंकि मण्डलके वृत्तान्तको यहाँतक ही सुनना चाहिये॥ ५५—६४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सप्त द्वीपनिवेशनं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सप्तद्वीपनिवेशन नामक एक सौ तेईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२३॥

---

* यह वर्णन अन्य पुराणमें भी है। पर इन सबोंका आचार्य यामुनने 'स्तोत्ररत्नम्'में परमात्मसम्बन्धसहित—
'यदण्डमण्डान्तरगोचरं च यद्दशोत्तराण्यावरणानि यानि च। गुणाः प्रधानं पुरुषः परं पदं परात्परं ब्रह्म च ते विभूतयः॥'
इस एक ही श्लोकमें बड़े संक्षेपमें, पर सुन्दर शब्दों तथा भावोंमें चित्रण कर दिया है।

मत्स्यावतार-कथा-प्रसंग

स्रुतिनि हित हरि मच्छ रूप धार्‌यौ। सदा ही भक्त-संकट निवार्‌यौ॥
चतुरमुख कह्यौ, सँख असुर स्रुति लै गयो, सत्यब्रत कह्यौ परलय दिखायौ।
भक्त-बत्सल, कृपाकरन, असरन-सरन, मत्स्यकौ रूप तब धारि आयौ॥
स्नान करि अंजली जल जबै नृप लियौ, मत्स्य जौ देखि कह्यो डारि दीजै।
मत्स्य कह्यौ, मैं गही आइ तुम्हरी सरन, करि कृपा मोहिं अब राखि लीजै॥
नृप सुनत बचन, चकित प्रथम ह्वै रह्यौ, कह्यौ, मछ बचन किहिं भाँति भाष्यौ।
पुनि कमंडल धर्‌यौ, तहाँ सो बढि गयौ, कुंभ धरि बहुरि पुनि माट राख्यौ॥
पुनि धर्‌यौ खाड़, तालाब मैं पुनि धर्‌यौ, नदी मैं बहुरि पुनि डारि दीन्हौ।
बहुरि जब बढ़ि गयौ, सिंधु तब लै गयौ, तहाँ हरि-रूप नृप चीन्हि लीन्हौ॥
कह्यौ करि बिनय तुम ब्रह्म जो अनंत हौ, मत्स्यकौ रूप किहिं काज कीन्हौ!
बेद-बिधि चहत, तुम प्रलय देखन कहत, तुम दुहुँनि हेत अवतार लीन्हौ॥
कबहुँ बाराह, नरसिंह कबहूँ भयौ, कबहुँ मैं कच्छकौ रूप लीन्हौ।
कबहुँ भयौ राम, बसुदेव-सुत कबहुँ भयौ, और बहु रूप हित-भक्त कीन्हौ॥
सातवें दिवस दिखराइहौं प्रलय तोहिं सप्त-रिषि नाव मैं बैठि आवैं।
तोहिं बैठारिहौं नावमैं हाथ गहि, बहुरि हम ज्ञान तोहिं कहि सुनावैं॥
सर्प इक आइहै बहुरि तुम्हरे निकट, ताहि सौं नाव मम सृंग बाँधौ।
यहै कहि भए अँतरधान तब मत्स्य प्रभु, बहुरि नृप आपनौ कर्म साधौ॥
सातवैं दिवस आयौ निकट जलधि जब, नृप कह्यौ अब कहाँ नाव पावैं।
आइ गइ नाव, तब रिषिन तासौं कह्यौ, आउ हम नृपति तुमकौं बचावैं॥
पुनि कह्यौ, मत्स्य हरि अब कहाँ पाइय, रिषिन कह्यौ, ध्यान चित माहिं धारौ।
मत्स्य अरु सर्प तिहिं ठौर परगट भए, बाँधि नृप नाव यौं कहि उचारौ॥
ज्यौं महाराज या जलधितैं पार कियौ, भव-जलधि पार त्यौं करौ स्वामी।
अहं-ममता हमैं सदा लागी रहै, मोह-मद-क्रोध-जुत मंद कामी॥
कर्म सुख-हित करत, होत तहँ दु:ख नित, तऊ नर मूढ नाहीं सँभारत।
करन-कारन महराज हैं आप हो, ध्यान प्रभुकौ न मन माहिं धारत॥
बिन तुम्हारी कृपा गति नहीं नरनिकी, जानि मोहिं आपनौ कृपा कीजै।
जनम अरु मरनमैं सदा दु:खित देहु मोहिं ज्ञान जिहिं सदा जीजै॥
मत्स्य भगवान कह्यौ ज्ञान पुनि नृपति सौं, भयो सो पुरान सब जगत जान्यौ।
लह्यौ नृप ज्ञान, कह्यौ आँखि अब मीचि तू, मत्स्य कह्यौ सो नृपति मान्यौ॥
आँखिकौं खोलि जब नृपति देख्यौ बहुरि, कह्यौ, हरि प्रलय-माया दिखाई।
कह्यौ जो ज्ञान भगवान, सो आनि उर, नृपति निज आपु इहिं बिधि बिताई॥
बहुरि सँखासुरहि मारि, बेद आनि दिए, चतुरमुख बिबिध अस्तुति सुनाई।
सूरके प्रभूकी नित्य लीला नई, सकै कहि कौन, यह कछुक गाई॥

('सूरदास' १६। ४४३)

एक सौ चौबीसवाँ अध्याय

सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्।
सूर्याचन्द्रमसावेतौ भ्रमन्तौ यावदेव तु॥ १[1]
सप्तद्वीपसमुद्राणां द्वीपानां भाति विस्तरः।
विस्तरार्धं पृथिव्यास्तु भवेदन्यत्र बाह्यतः॥ २
पर्यासपरिमाणं च चन्द्रादित्यौ प्रकाशतः।
पर्यासपारिमाण्यात्तु भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम्॥ ३
भवति त्रीनि माँल्लोकान् सूर्यो यस्मात् परिभ्रमन्।
अव धातुः प्रकाशाख्यो अवनात्तु रविः स्मृतः॥ ४
अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रमाणं चन्द्रसूर्ययोः।
महितत्वान्महीशब्दो ह्यस्मिन्नर्थे निगद्यते॥ ५
अस्य भारतवर्षस्य विष्कम्भं तु सुविस्तरम्।
मण्डलं भास्करस्याथ योजनैस्तन्निबोधत॥ ६
नवयोजनसाहस्रो विस्तारो भास्करस्य तु।
विस्तारात् त्रिगुणश्चापि परिणाहोऽत्र मण्डले॥ ७
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव भास्कराद् द्विगुणः शशी।
अतः पृथिव्या वक्ष्यामि प्रमाणं योजनैः पुनः॥ ८
सप्तद्वीपसमुद्राया विस्तारो मण्डलस्य तु।
इत्येतदिह संख्यातं पुराणे परिमाणतः॥ ९
तद्वक्ष्यामि प्रसंख्याय साम्प्रतं चाभिमानिभिः।
अभिमानिनो ह्यतीता ये तुल्यास्ते साम्प्रतैस्त्विह॥ १०
देवा ये वै ह्यतीतास्तु रूपैर्नामभिरेव च।
तस्माद्वै साम्प्रतैर्देवैर्वक्ष्यामि[2] वसुधातलम्॥ ११
दिव्यस्य संनिवेशो वै साम्प्रतैरेव कृत्स्नशः।
शतार्धकोटिविस्तारा पृथिवी कृत्स्नशः स्मृता॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद अब मैं सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन कर रहा हूँ। ये सूर्य और चन्द्रमा सातों द्वीपों एवं सातों समुद्रोंके विस्तारको तथा समग्र भूतलके अर्धभागको और उसके बाहरके अन्य प्रदेशोंको ये अपने प्रकाशसे उद्भासित करते हैं। ये विश्वकी अन्तिम सीमातक प्रकाश फैलाते हैं। तुलना परिभ्रमणके प्रमाणको लेकर ही विद्वान् लोग आकाशकी करते हैं। सूर्य सामान्यतः तीनों लोकोंमें शीघ्रतापूर्वक भ्रमण करते हैं। 'अव्' धातु रक्षण और प्रकाशार्थक है। प्रकाश फैलाने तथा प्राणियोंकी रक्षा करनेके कारण सूर्यको 'रवि' कहा जाता है। पुनः सूर्य और चन्द्रमाका प्रमाण बतला रहा हूँ। महनीय होनेके कारण पृथ्वीके लिये 'मही' शब्दका प्रयोग किया जाता है। अब भारतवर्षका तथा सूर्य-मण्डलके व्यासका परिमाण योजनोंमें बतला रहा हूँ, उसे सुनिये। सूर्य-मण्डलका परिमाण नौ हजार योजन है। इस मण्डलमें परिणाह (घेरा) विस्तारसे तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। व्यास और मण्डलकी दृष्टिसे भी सूर्यसे चन्द्रमा बहुत छोटे हैं। पुनः सातों द्वीपों और समुद्रोंसहित पृथ्वीमण्डलके विस्तारका प्रमाण, जिन्हें विद्वानोंने पुराणोंमें बतलाया है, (योजनोंकी संख्यामें) बतला रहा हूँ॥ १—९॥

पूर्वकालमें जो पुराणोंके ज्ञाता हो चुके हैं, वे भी आजकलके पुराणोंके तुल्य ही थे। पूर्वकालके विद्वान् एवं आधुनिक विद्वान्—दोनोंके मत इस विषयमें समान हैं। अतः वर्तमानकालिक विद्वानोंके अनुसार भूतलका परिमाण बतला रहा हूँ। आधुनिक विद्वानोंने दिव्यलोककी स्थितिको भी पृथ्वीमण्डलके बराबर ही माना है। समूची पृथ्वी पचास करोड़ योजनोंमें विस्तृत मानी गयी है।

१. इस अध्यायके सभी श्लोक वायुपु० ५०। ५६—१६९ (किसी प्रतिमें ५१। १—११३) तथा ब्रह्माण्डपुराणसे सर्वांशमें मिल जाते हैं। उनके श्लोक विशेष शुद्ध हैं।

२. यहाँ 'विद्वांसो ह वै देवाः' के अनुसार विद्वान् ही देवता हैं।

तस्याश्चार्धप्रमाणं च मेरोर्वै चातुरन्तरम्।
मेरोर्मध्यात् प्रतिदिशं कोटिरेका तु सा स्मृता॥ १३
तथा शतसहस्राणामेकोननवतिं पुनः।
पञ्चाशच्च सहस्राणि पृथिव्याः स तु विस्तरः॥ १४
पृथिव्या विस्तरं कृत्स्नं योजनैस्तन्निबोधत।
तिस्रः कोट्यस्तु विस्तारात्संख्यातास्तु चतुर्दिशम्॥ १५
विस्तारं त्रिगुणं चैव पृथिव्यन्तरमण्डलम्।
गणितं योजनानां तु कोट्यस्त्वेकादश स्मृताः॥ १६
तथा शतसहस्राणां सप्तत्रिंशाधिकास्तु ताः।
इत्येतद्वै प्रसंख्यातं पृथिव्यन्तरमण्डलम्॥ १७
तारकासंनिवेशस्य दिवि यावत्तु मण्डलम्।
पर्यासः संनिवेशस्य भूमेस्तावत्तु मण्डलम्॥ १८
पर्यासपरिमाणं च भूमेस्तुल्यं दिवः स्मृतम्।
सप्तानामपि लोकानामेतन्मानं प्रकीर्तितम्॥ १९
ज्योतिर्गणप्रचारस्य प्रमाणं परिवक्ष्यते।
मेरोः प्राच्यां दिशायां तु मानसोत्तरमूर्धनि॥ २०
वस्वौकसारा माहेन्द्री पुण्या हेमपरिष्कृता।
दक्षिणेन पुनर्मेरोर्मानसस्य तु पृष्ठतः॥ २१
वैवस्वतो निवसति यमः संयमने पुरे।
प्रतीच्यां तु पुनर्मेरोर्मानसस्य तु मूर्धनि॥ २२
सुखा नाम पुरी रम्या वरुणस्यापि धीमतः।
दिश्युत्तरस्यां मेरोस्तु मानसस्यैव मूर्धनि॥ २३
तुल्या महेन्द्रपुर्यापि सोमस्यापि विभावरी।
मानसोत्तरपृष्ठे तु लोकपालाश्चतुर्दिशम्॥ २४
स्थिता धर्मव्यवस्थार्थं लोकसंरक्षणाय च।
लोकपालोपरिष्टात् तु सर्वतो दक्षिणायने॥ २५

उसका आधा भाग मेरुपर्वतके उत्तरोत्तर फैला हुआ है और मेरुपर्वतके मध्यभागमें वह चारों ओर एक करोड़ योजन विस्तारवाली कही जाती है। इसी तरह पृथ्वीके अर्धभागका विस्तार नवासी लाख, पचास हजार योजन बतलाया जाता है। अब योजनके परिमाणसे पृथ्वीके समूचे विस्तारको सुनिये। इसका विस्तार चारों दिशाओंमें तीन करोड़ योजन माना गया है। यही सातों द्वीपों और समुद्रोंसे घिरी हुई पृथ्वीका विस्तार है। पृथ्वीका आन्तरिक मण्डल बाह्य मण्डलसे तिगुना अधिक है। इस प्रकार उसका परिमाण ग्यारह करोड़ सैंतीस लाख योजन माना गया है। यही पृथ्वीके आन्तरिक मण्डलकी गणना की गयी है। आकाश-मण्डलमें जितने तारागणोंकी स्थिति है, उतना ही समग्र पृथ्वीमण्डलका विस्तार माना गया है। इस प्रकार पृथ्वीमण्डलके परिमाणके बराबर आकाशमण्डल भी है। अब ज्योतिर्गणके प्रचारकी बात सुनिये। मेरुपर्वतको पूर्व दिशामें मानसोत्तर पर्वतके शिखरपर वस्वौकसारा नामकी महेन्द्रकी पुण्यमयी नगरी है, जो सुवर्णसे सुसज्जित है। पुनः मेरुकी दक्षिण दिशामें मानसपर्वतके पृष्ठभागपर संयमनी पुरी है, जिसमें सूर्यके पुत्र यमराज निवास करते हैं। पुनः मेरुकी पश्चिम दिशामें मानसपर्वतके शिखरपर बुद्धिमान् वरुणकी सुखा नामकी रमणीय पुरी है। मेरुकी उत्तर दिशामें मानसपर्वतके शिखरपर महेन्द्रपुरीके समान चन्द्रदेवकी विभावरी पुरी है। उसी मानसोत्तर पर्वतके पृष्ठभागकी चारों दिशाओंमें लोकपालगण धर्मकी व्यवस्था और लोकोंकी रक्षा करनेके लिये स्थित हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य उन लोकपालोंसे ऊपर होकर भ्रमण करते हैं॥ १०—२५॥

काष्ठागतस्य सूर्यस्य गतिस्तत्र निबोधत।
तद्दक्षिणोपक्रमे सूर्यः क्षिप्तेषुरिव सर्पति॥ २६

दक्षिण दिशाका आश्रय लेनेपर सूर्यकी जैसी गति होती है, उसे सुनिये। दक्षिणायनकालमें सूर्य छोड़े गये बाणकी तरह शीघ्रगतिसे चलते हैं।

ज्योतिषां चक्रमादाय सततं परिगच्छति।
मध्यगश्चामरावत्यां यदा भवति भास्करः॥ २७

वे ज्योतिश्चक्रको सदा साथ लिये रहते हैं। (इस प्रकार भ्रमण करते हुए) जिस समय सूर्य अमरावती पुरीमें पहुँचते हैं, उस समय वे गगनमण्डलके मध्यभागमें रहते हैं अर्थात् मध्याह्न होता है।

वैवस्वते संयमने उद्यन् सूर्यः प्रदृश्यते।
सुखायामर्धरात्रस्तु विभावर्यास्तमेति च॥ २८

उसी समय वे यमराजकी संयमनीपुरीमें उदित होते हुए और विभावरी नगरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा सुखा नगरीमें आधी रात होती है।

वैवस्वते संयमने मध्याह्ने तु रविर्यदा।
सुखायामथ वारुण्यामुत्तिष्ठन् स तु दृश्यते॥ २९
विभावर्यामर्धरात्रं माहेन्द्र्यामस्तमेव च।
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा॥ ३०
विभावर्यां सोमपुर्यामुत्तिष्ठति विभावसुः।
महेन्द्रस्यामरावत्यामुद्गच्छति दिवाकरः॥ ३१
सुखायामथ वारुण्यां मध्याह्ने तु रविर्यदा।
स शीघ्रमेव पर्येति भानुरालातचक्रवत्॥ ३२

इसी प्रकार जब सूर्य मध्याह्नकालमें यमराजकी संयमनी-पुरीमें पहुँचते हैं, तब वरुणकी सुखानगरीमें उगते हुए और महेन्द्रकी वस्वौकसारा (अमरावती) पुरीमें अस्त होते हुए दीखते हैं तथा विभावरी पुरीमें आधी रात होती है। जब दोपहरके समय सूर्य वरुणकी सुखानगरीमें पहुँचते हैं, तब चन्द्रदेवकी पुरी विभावरीमें उदय होते हैं। जब सूर्य महेन्द्रकी अमरावतीपुरीमें उदय होते हैं, तब वरुणकी सुखानगरीमें अस्त होते (दीखते) हैं और संयमनीपुरीमें आधी रात होती है। इस प्रकार सूर्य अलातचक्र (जलती बनेठी)-की भाँति बड़ी शीघ्रतासे चक्कर लगाते हैं॥ २६—३२॥

भ्रमन् वै भ्रममाणानि ऋक्षाणि चरते रविः।
एवं चतुर्षु पार्श्वेषु दक्षिणान्तेषु सर्पति॥ ३३
उदयास्तमये वासावुत्तिष्ठति पुनः पुनः।
पूर्वाह्णे चापराह्णे च द्वौ द्वौ देवालयौ तु सः॥ ३४
पतत्येकं तु मध्याह्ने भाभिरेव च रश्मिभिः।
उदितो वर्धमानाभिर्मध्याह्ने तपसे रविः॥ ३५
अतः परं ह्रसन्तीभिर्गोभिरस्तं स गच्छति।
उदयास्तमयाभ्यां च स्मृते पूर्वापरे तु वै॥ ३६
यादृक्पुरस्तात्तपति तादृक्पृष्ठे तु पार्श्वयोः।
यत्रोदयस्तु दृश्येत तेषां स उदयः स्मृतः॥ ३७
प्रणाशं गच्छते यत्र तेषामस्तः स उच्यते।
सर्वेषामुत्तरे मेरुर्लोकालोकस्तु दक्षिणे॥ ३८
विदूरभावादर्कस्य भूमेर्लेखावृतस्य च।
ह्रियन्ते रश्मयो यस्मात्तेन रात्रौ न दृश्यते॥ ३९
ऊर्ध्वं शतसहस्रांशुः स्थितस्तत्र प्रदृश्यते।
एवं पुष्करमध्ये तु यदा भवति भास्करः॥ ४०
त्रिंशद्भागं च मेदिन्या मुहूर्तेन स गच्छति।
योजनानां सहस्रस्य इमां संख्यां निबोधत॥ ४१
पूर्णं शतसहस्राणामेकत्रिंशच्च सा स्मृता।
पञ्चाशच्च सहस्राणि तथान्यान्यधिकानि च॥ ४२
मौहूर्तिकी गतिर्ह्येषा सूर्यस्य तु विधीयते।

इस प्रकार स्वयं भ्रमण करते हुए सूर्य नक्षत्रोंको भी भ्रमण कराते हैं। वे चारों दक्षिणान्त पार्श्व भागोंमें चलते रहते हैं। उदय और अस्तके समय वे पुनः-पुनः उदय और अस्त होते रहते हैं और पूर्वाह्ण एवं अपराह्णमें दो-दो देवपुरियोंमें तथा मध्याह्नके समय एक पुरीमें पहुँचते हैं। इस प्रकार सूर्य उदय होकर अपनी बढ़ती हुई तेजस्विनी किरणोंसे दोपहरके समय तपते हैं और उसके बाद धीरे-धीरे ह्रासको प्राप्त होती हुई उन्हीं किरणोंके साथ अस्त हो जाते हैं। सूर्यके इसी उदय और अस्तसे पूर्व और पश्चिम दिशाका ज्ञान होता है। यों तो सूर्य जैसे पूर्व दिशामें तपते हैं, उसी तरह पश्चिम तथा पार्श्वभाग (उत्तर और दक्षिण)-में भी प्रकाश फैलाते हैं, परंतु उन दिशाओंमें जहाँ सूर्यका उदय दीखता है, वही उदय-स्थान कहलाता है तथा जिस दिशामें सूर्य अदृश्य हो जाते हैं, उसे अस्त-स्थान कहते हैं। मेरुपर्वत सभी पर्वतोंसे उत्तर तथा लोकालोक पर्वत दक्षिण दिशामें स्थित है, इसलिये सूर्यके बहुत दूर हो जाने तथा पृथ्वीकी छायासे आवृत होनेके कारण उनकी किरणें अवरुद्ध हो जाती हैं, इसी कारण सूर्य रातमें नहीं दीख पड़ते। इस प्रकार एक लाख किरणोंसे सुशोभित सूर्य जब पुष्करद्वीपके मध्यभागमें पहुँचते हैं, तब वहाँ ऊँचाईपर स्थित होनेके कारण दीख पड़ते हैं। सूर्य एक मुहूर्त (दो घड़ी)-में पृथ्वीके तीसवें भागतक पहुँच जाते हैं। उनकी गतिका प्रमाण योजनोंके हजारोंकी गणनामें सुनिये। सूर्यकी एक मुहूर्तकी गतिका परिमाण एकतीस लाख पचास हजार योजनसे भी अधिक बतलाया जाता है॥ ३३—४२½॥

एतेन क्रमयोगेन यदा काष्ठां तु दक्षिणाम्॥ ४३
परिगच्छति सूर्योऽसौ मासं काष्ठामुदग्दिनात्।
मध्येन पुष्करस्याथ भ्रमते दक्षिणायने॥ ४४

इसी क्रमसे जब सूर्य दक्षिण दिशामें जाते हैं, तब (वहाँ छः महीनेतक भ्रमण करनेके पश्चात् पुनः) सातवें मासमें उत्तर दिशाकी ओर लौटते हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य पुष्करद्वीपके मध्यमें भ्रमण करते हैं।

मानसोत्तरमेरोस्तु अन्तरं त्रिगुणं स्मृतम्।
सर्वतो दक्षिणस्यां तु काष्ठायां तन्निबोधत॥ ४५
नव कोट्यः प्रसंख्याता योजनैः परिमण्डलम्।
तथा शतसहस्राणि चत्वारिंशच्च पञ्च च॥ ४६
अहोरात्रात् पतङ्गस्य गतिरेषा विधीयते।
दक्षिणादिङ्निवृत्तोऽसौ विषुवस्थो यदा रविः॥ ४७
क्षीरोदस्य समुद्रस्योत्तरतोऽपि दिशं चरन्।
मण्डलं विषुवच्चापि योजनैस्तन्निबोधत॥ ४८
तिस्रः कोट्यस्तु सम्पूर्णा विषुवस्यापि मण्डलम्।
तथा शतसहस्राणि विंशत्येकाधिकानि तु॥ ४९
श्रवणे चोत्तरां काष्ठां चित्रभानुर्यदा भवेत्।
गोमेदस्य परे द्वीपे उत्तरां च दिशं चरन्॥ ५०
उत्तरायाः प्रमाणं तु काष्ठाया मण्डलस्य तु।
दक्षिणोत्तरमध्यानि तानि विद्याद् यथाक्रमम्॥ ५१
स्थानं जरद्गवं मध्ये तथैरावतमुत्तरम्।
वैश्वानरं दक्षिणतो निर्दिष्टमिह तत्त्वतः॥ ५२
नागवीथ्युत्तरा वीथी ह्यजवीथिस्तु दक्षिणा।
उभे आषाढमूलं तु अजवीथ्युदयास्त्रयः॥ ५३
अभिजित्पूर्वतः स्वातिं नागवीथ्युदयास्त्रयः।
अश्विनी कृत्तिका याम्या नागवीथ्यस्त्रयः स्मृताः॥ ५४
रोहिण्यार्द्रा मृगशिरो नागवीथिरिति स्मृता।
पुष्यश्लेषापुनर्वस्वां वीथी चैरावती स्मृता॥ ५५
तिस्रस्तु वीथयो ह्येता उत्तरो मार्ग उच्यते।
पूर्वउत्तरफाल्गुन्यौ मघा चैवार्षभी भवेत्॥ ५६
पूर्वोत्तरप्रोष्ठपदौ गोवीथी रेवती स्मृता।
श्रवणं च धनिष्ठा च वारुणं च जरद्गवम्॥ ५७
एतास्तु वीथयस्तिस्रो मध्यमो मार्ग उच्यते।
हस्तश्चित्रा तथा स्वाती ह्यजवीथिरिति स्मृता॥ ५८
ज्येष्ठा विशाखा मैत्रं च मृगवीथी तथोच्यते।
मूलं पूर्वोत्तराषाढे वीथी वैश्वानरी भवेत्॥ ५९
स्मृतास्तिस्रस्तु वीथ्यस्ता मार्गो वै दक्षिणे पुनः।
काष्ठयोरन्तरं चैतद् वक्ष्यते योजनैः पुनः॥ ६०
एतच्छतसहस्राणामेकत्रिंशत्तु वै स्मृतम्।
शतानि त्रीणि चान्यानि त्रयस्त्रिंशत्तथैव च॥ ६१
काष्ठयोरन्तरं ह्येतद् योजनानां प्रकीर्तितम्।
काष्ठयोर्लेखयोश्चैव अयने दक्षिणोत्तरे॥ ६२

मानसोत्तर और मेरु पर्वतके बीचमें पुष्करद्वीपसे तिगुना अन्तर है। अब दक्षिण दिशामें सूर्यकी गतिका परिमाण सुनिये। यह (दक्षिणायन-) मण्डल नौ करोड़ पैंतालीस लाख योजन विस्तृत बतलाया गया है। यह सूर्यकी एक दिन-रातकी गति है। दक्षिणायनसे निवृत्त होकर जब सूर्य विषुव (खगोलीय विषुवद्वृत्त और क्रान्तिवृत्तका कटान-बिन्दु) स्थानपर स्थित होते हैं, तब वे क्षीरसागरकी उत्तर दिशामें भ्रमण करते हैं। अब विषुवन्मण्डलका परिमाण योजनोंमें सुनिये। वह विषुवन्मण्डल तीन करोड़ इक्कीस लाख योजनके परिमाणवाला है। श्रवणनक्षत्रमें जब सूर्य उत्तर दिशामें चले जाते हैं, तब वे गोमेदद्वीपके बादवाले द्वीपकी उत्तर दिशामें भ्रमण करते हैं। अब उत्तर दिशाके मण्डलका तथा दक्षिण और उत्तरके मध्यभागका प्रमाण क्रमशः सुनिये। इनके मध्यमें जरद्गव, उत्तरमें ऐरावत और दक्षिणमें वैश्वानर नामक स्थान सिद्धान्ततः निर्दिष्ट किये गये हैं। उत्तर दिशामें सूर्यके मार्गको नागवीथी तथा दक्षिणदिशाके मार्गको अजवीथी कहते हैं॥ ४३—५२ १/२॥

दोनों आषाढ़ अर्थात् पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़ और मूल—ये तीनों अजवीथी हैं। अभिजित्, श्रवण और स्वाती—ये तीनों नागवीथी हैं। अश्विनी, भरणी और कृत्तिका—ये तीनों नागवीथी नामसे प्रसिद्ध हैं। रोहिणी, आर्द्रा और मृगशिरा भी नागवीथी कहलाते हैं। पुष्य, श्लेषा और पुनर्वसु—ये तीनों ऐरावती वीथी कहे जाते हैं। ये तीनों वीथियाँ उत्तर दिशाका मार्ग कहलाती हैं। पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी और मघा—ये तीनों 'आर्षभी' वीथी हैं। पूर्वभाद्रपद, उत्तरभाद्रपद और रेवती—ये तीनों 'गोवीथी' नामसे पुकारे जाते हैं। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा—ये तीनों 'जरद्गववीथी' हैं। ये तीनों वीथियाँ मध्यम मार्ग कहलाती हैं। हस्त, चित्रा और स्वाती—ये तीनों 'अजवीथी' कहलाते हैं। ज्येष्ठा, विशाखा और अनुराधा—ये 'मृगवीथी' कहलाते हैं। मूल, पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़—ये 'वैश्वानर'-वीथी हैं। ये तीनों वीथियाँ दक्षिण-मार्गमें बतलायी गयी हैं। अब उत्तर और दक्षिण—दोनों दिशाओंका अन्तर योजनोंमें बतला रहा हूँ। इन दोनों दिशाओंका अन्तर एकतीस लाख तीन हजार छः सौ योजन बतलाया जाता है। अब उत्तरायण और दक्षिणायन-कालमें दोनों दिशाओं और दोनों रेखाओंका

ते वक्ष्यामि प्रसंख्याय योजनैस्तु निबोधत।
एकैकमन्तरं तस्या नियुतान्येकसप्ततिः॥ ६३
सहस्राण्यतिरिक्ता च ततोऽन्या पञ्चविंशतिः।
लेखयोः काष्ठयोश्चैव बाह्याभ्यन्तरयोश्चरन्॥ ६४
अभ्यन्तरं स पर्येति मण्डलान्युत्तरायणे।
बाह्यतो दक्षिणेनैव सततं सूर्यमण्डलम्॥ ६५
चरन्नसावुदीच्यां च ह्यशीत्या मण्डलाच्छतम्।
अभ्यन्तरं स पर्येति क्रमते मण्डलानि तु॥ ६६

अन्तर योजनोंमें परिगणित करके बतला रहा हूँ, सुनिये। उनमें एकसे दूसरीका अन्तर एकहत्तर लाख पचीस हजार योजन है। सूर्य दोनों दिशाओं और रेखाओंके बाहरी और भीतरी भागमें चक्कर लगाते हैं। यह सूर्यमण्डल सदा उत्तरायणमें मण्डलोंके भीतर और दक्षिणायनमें बाहरसे चक्कर लगाता है। उत्तर दिशामें विचरते हुए सूर्य एक सौ अस्सी मण्डलोंके भीतरसे गुजरते हुए उन्हें पार करते हैं॥ ५३—६६॥

प्रमाणं मण्डलस्यापि योजनानां निबोधत।
योजनानां सहस्राणि दश चाष्टौ तथा स्मृतम्॥ ६७
अधिकान्यष्टपञ्चाशद्योजनानि तु वै पुनः।
विष्कम्भो मण्डलस्यैव तिर्यक् स तु विधीयते॥ ६८
अहस्तु चरते नाभेः सूर्यो वै मण्डलं क्रमात्।
कुलालचक्रपर्यन्तो यथा चन्द्रो रविस्तथा॥ ६९
दक्षिणे चक्रवत्सूर्यस्तथा शीघ्रं निवर्तते।
तस्मात् प्रकृष्टां भूमिं तु कालेनाल्पेन गच्छति॥ ७०
सूर्यो द्वादशभिः शीघ्रं मुहूर्तैर्दक्षिणायने।
त्रयोदशार्धमृक्षाणां मध्ये चरति मण्डलम्॥ ७१
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि नक्तमष्टादशैश्चरन्।
कुलालचक्रमध्यस्थो यथा मन्दं प्रसर्पति॥ ७२
उदग्याने तथा सूर्यः सर्पते मन्दविक्रमः।
तस्माद् दीर्घेण कालेन भूमिं सोऽल्पां प्रसर्पति॥ ७३
सूर्योऽष्टादशभिरह्नो मुहूर्तैरुदगायने।
त्रयोदशानां मध्ये तु ऋक्षाणां चरते रविः।
मुहूर्तैस्तानि ऋक्षाणि रात्रौ द्वादशभिश्चरन्॥ ७४
ततो मन्दतरं ताभ्यां चक्रं तु भ्रमते पुनः।
मृत्पिण्ड इव मध्यस्थो भ्रमतेऽसौ ध्रुवस्तथा॥ ७५
मुहूर्तैस्त्रिंशता तावदहोरात्रं ध्रुवो भ्रमन्।
उभयोः काष्ठयोर्मध्ये भ्रमते मण्डलानि तु॥ ७६

अब मण्डलका प्रमाण योजनोंकी गणनामें सुनिये। इसका परिमाण अठारह हजार अट्ठावन योजन बतलाया जाता है। इस मण्डलका व्यास तिरछा जानना चाहिये। सूर्य दिनभर कुम्हारके चाककी तरह नाभिमण्डलपर चक्कर लगाते हैं। सूर्यकी भाँति चन्द्रमा भी वैसा ही भ्रमण करते हैं। उसी प्रकार दक्षिणायनमें भी सूर्य चाककी तरह शीघ्रतापूर्वक चलते हुए उसे पार करते हैं। इसी कारण वे इतनी विस्तृत भूमिको थोड़े ही समयमें पार कर जाते हैं। दक्षिणायनके समय सूर्य साढ़े तेरह नक्षत्रोंके मण्डलको शीघ्रतापूर्वक मध्यभागसे गुजरते हुए बारह मुहूर्तोंमें पार करते हैं, किंतु रातके समय उन्हीं नक्षत्रोंको पार करनेमें उन्हें अठारह मुहूर्त लगता है। जैसे कुम्हारके चाकके मध्यभागमें स्थित वस्तुकी गति मन्द हो जाती है, वैसे ही उत्तरायणके समय सूर्य मन्दगतिसे चलते हैं। इसी कारण थोड़ी-सी भूमि पार करनेमें उन्हें अधिक समय लगाना पड़ता है। उत्तरायणके समय सूर्य दिनके अठारह मुहूर्तोंमें तेरह नक्षत्रोंके मध्यमें विचरते हैं, किंतु रातमें उन्हीं नक्षत्रोंको पार करनेमें उन्हें बारह मुहूर्त लगते हैं। वह चक्र उन दोनों गतियोंसे मन्दतर गतिमें घूमता है। चाकके मध्यभागमें रखे हुए मृत्पिण्डकी तरह ध्रुव भी उस चक्रके मध्यमें स्थित होकर घूमते रहते हैं। ध्रुव तीस मुहूर्त अर्थात् दिन-रातभरमें दोनों दिशाओंके मध्यवर्ती मण्डलोंमें भ्रमण करते हैं॥ ६७—७६॥

उत्तरक्रमणेऽर्कस्य दिवा मन्दगतिः स्मृता।
तस्यैव तु पुनर्नक्तं शीघ्रा सूर्यस्य वै गतिः॥ ७७
दक्षिणप्रक्रमे वापि दिवा शीघ्रं विधीयते।
गतिः सूर्यस्य वै नक्तं मन्दा चापि विधीयते॥ ७८

उत्तरायणके समय दिनमें सूर्यकी गति मन्द और रात्रिके समय उन्हीं सूर्यकी गति तेज बतलायी गयी है। उसी तरह दक्षिणायन-कालमें सूर्यकी गति दिनमें तेज और रात्रिमें मन्द कही गयी है।

एवं गतिविशेषेण विभजन् रात्र्यहानि तु।
अजवीथ्यां दक्षिणायां लोकालोकस्य चोत्तरम्॥ ७९

लोकसंतानतो ह्येष वैश्वानरपथाद् बहिः।
व्युष्टिर्यावत्प्रभा सौरी पुष्करात् सम्प्रवर्तते॥ ८०

पार्श्वेभ्यो बाह्यतस्तावल्लोकालोकश्च पर्वतः।
योजनानां सहस्राणि दशोर्ध्वं चोच्छ्रितो गिरिः॥ ८१

प्रकाशश्चाप्रकाशश्च पर्वतः परिमण्डलः।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह॥ ८२

अभ्यन्तरे प्रकाशन्ते लोकालोकस्य वै गिरेः।
एतावानेव लोकस्तु निरालोकस्ततः परम्॥ ८३

लोक आलोकने धातुर्निरालोकस्त्वलोकता।
लोकालोकौ तु संधत्ते तस्मात्सूर्यः परिभ्रमन्॥ ८४

तस्मात् संध्येति तामाहुरुषाव्युष्ट्योर्यथान्तरम्।
उषा रात्रिः स्मृता विप्रैर्व्युष्टिश्चापि अहःस्मृतम्॥ ८५

त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु अहस्ते दश पञ्च च।
ह्रासो वृद्धिरहर्भागैर्दिवसानां यथा तु वै॥ ८६

संध्यामुहूर्तमात्रायां ह्रासवृद्धी तु ते स्मृते।
लेखाप्रभृत्यथादित्ये त्रिमुहूर्तागते तु वै॥ ८७

प्रातः स्मृतस्ततः कालो भागांश्चाहुश्च पञ्च च।
तस्मात् प्रातर्गतात् कालान्मुहूर्ताः सङ्गवस्त्रयः॥ ८८

मध्याह्नस्त्रिमुहूर्तस्तु तस्मात् कालादनन्तरम्।
तस्मान्मध्यंदिनात् कालादपराह्ण इति स्मृतः॥ ८९

त्रय एव मुहूर्तास्तु काल एष स्मृतो बुधैः।
अपराह्णव्यतीताच्च कालः सायं स उच्यते॥ ९०

दश पञ्च मुहूर्ताह्नो मुहूर्तास्त्रय एव च।
दश पञ्चमुहूर्तं वै अहस्तु विषुवे स्मृतम्॥ ९१

वर्धन्त्यतो ह्रसत्येव अयने दक्षिणोत्तरे।
अहस्तु ग्रसते रात्रिं रात्रिस्तु ग्रसते अहः॥ ९२

इस प्रकार अपनी विशेष गतिसे रात-दिनका विभाजन करते हुए सूर्य दक्षिण दिशामें अजवीथीसे गुजरते हुए लोकालोक पर्वतकी उत्तर दिशामें पहुँचते हैं। वहाँसे लोक-संतानक और वैश्वानर नामक पर्वतोंके बाहरी मार्गसे चलते हुए वे पुष्करद्वीपपर पहुँचते हैं। वहाँ सूर्यकी प्रभातकालिकी प्रभा होती है। इस मार्गके पार्श्वभागमें लोकालोक पर्वत पड़ता है, जो दस हजार योजन ऊँचा है। यह पर्वत मण्डलाकार है और इसका एक भाग प्रकाशयुक्त एवं दूसरा भाग तिमिराच्छन्न रहता है। इस लोकालोक पर्वतके भीतर सूर्य, चन्द्रमा, नक्षत्र और तारागणोंके साथ सभी ग्रह प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार जहाँतक प्रकाश होता है, उतनेको ही लोक माना गया है और शेष भाग निरालोक (तमसाच्छन्न) है। 'लोकृ' धातुका अर्थ दर्शन अर्थात् आलोकन है, इसलिये जो आलोक दृष्टिपथसे दूर है, वह अनालोकता है। सूर्य परिभ्रमण करते हुए जिस समय लोकालोकपर्वत (प्रकाशित और अप्रकाशित प्रदेशकी संधि)-पर पहुँचते हैं, उस समयको संध्या कहते हैं। उषःकाल और व्युष्टिमें अन्तर है। ब्राह्मणोंने उषःकालको रात्रिमें और व्युष्टिको दिनमें परिगणित किया है॥ ७७—८५॥

तीस कलाका एक मुहूर्त होता है और एक दिनमें पंद्रह मुहूर्त होते हैं। जिस प्रकार अहर्गणके हिसाबसे दिनोंकी ह्रास-वृद्धि होती है, उसी तरह संध्याके मुहूर्तमें भी ह्रास-वृद्धि माने गये हैं। तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे दिनके पाँच भाग माने गये हैं। सूर्योदय होनेके पश्चात् तीन मुहूर्ततकका काल प्रातःकाल कहा जाता है। उस प्रातःकालके व्यतीत होनेपर तीन मुहूर्ततकका समय संगवकाल कहलाता है। उस संगवकालके बाद तीन मुहूर्ततक मध्याह्न नामसे अभिहित होता है। उस मध्याह्नकालके बादका समय अपराह्ण कहा जाता है। इसका भी समय विद्वानोंने तीन मुहूर्त ही माना है। अपराह्णके बीत जानेके बादका काल सायं कहलाता है। इस प्रकार पंद्रह मुहूर्तोंका दिन तीन-तीन मुहूर्तोंके हिसाबसे पाँच भागोंमें विभक्त है। इसी प्रकार (रातमें भी १५ मुहूर्त होती है) दोनों विषुवोंमें (ठीक) पंद्रह मुहूर्तका दिन होता है—शरद् और वसन्त ऋतुओंके मध्य (मेष-तुलासंक्रान्ति)-का समय विषुव कहलाता है, उत्तरायणमें दिन रात्रिको दक्षिणायनमें रात्रि दिनको

शरद्वसन्तयोर्मध्यं विषुवं तु विधीयते।
आलोकान्तः स्मृतो लोको लोकाच्चालोक उच्यते॥ ९३

लोकपालाः स्थितास्तत्र लोकालोकस्य मध्यतः।
चत्वारस्ते महात्मानस्तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम्॥ ९४

सुधामा चैव वैराजः कर्दमश्च प्रजापतिः।
हिरण्यरोमा पर्जन्यः केतुमान् राजसश्च सः॥ ९५

निर्द्वन्द्वा निरभीमाना निस्तन्द्रा निष्परिग्रहाः।
लोकपालाः स्थितास्त्वेते लोकालोके चतुर्दिशम्॥ ९६

उत्तरं यदगस्त्यस्य शृङ्गं देवर्षिसेवितम्।
पितृयाणः स्मृतः पन्था वैश्वानरपथाद् बहिः॥ ९७

तत्रासते प्रजाकामा ऋषयो येऽग्निहोत्रिणः।
लोकस्य संतानकराः पितृयाणे पथि स्थिताः॥ ९८

भूतारम्भकृतं कर्म आशिषश्च विशाम्पते।
प्रारभन्ते लोककामास्तेषां पन्थाः स दक्षिणः॥ ९९

चलितं ते पुनर्धर्मं स्थापयन्ति युगे युगे।
संतप्ततपसा चैव मर्यादाभिः श्रुतेन च॥ १००

जायमानास्तु पूर्वे वै पश्चिमानां गृहेषु ते।
पश्चिमाश्चैव पूर्वेषां जायन्ते निधनेष्विह॥ १०१

एवमावर्तमानास्ते वर्तन्त्याभूतसम्प्लवम्।
अष्टाशीतिसहस्राणि ऋषीणां गृहमेधिनाम्॥ १०२

सवितुर्दक्षिणं मार्गमाश्रित्याभूतसम्प्लवम्।
क्रियावतां प्रसंख्यैषा ये श्मशानानि भेजिरे॥ १०३

लोकसंव्यवहारार्थं भूतारम्भकृतेन च।
इच्छाद्वेषरताच्चैव मैथुनोपगमाच्च वै॥ १०४

तथा कामकृतेनेह सेवनात् विषयस्य च।
इत्येतैः कारणैः सिद्धाः श्मशानानीह भेजिरे॥ १०५

प्रजैषिणः सप्तर्षयो द्वापरेष्विह जज्ञिरे।
संततिं ते जुगुप्सन्ते तस्मान्मृत्युजितस्तु तैः॥ १०६

अष्टाशीतिसहस्राणि तेषामप्यूर्ध्वरेतसाम्।
उदक्पन्थानमाश्रित्य तिष्ठन्त्याभूतसम्प्लवम्॥ १०७

ग्रसती है। जहाँतक सूर्यका प्रकाश पहुँचता है, उसे लोक कहते हैं और उस लोकके बाद जो तमसाच्छन्न प्रदेश है, उसे अलोक कहा जाता है। इसी लोक और अलोकके मध्यमें स्थित (लोकालोक) पर्वतपर चारों लोकपाल महाप्रलयपर्यन्त निवास करते हैं। उनके नाम हैं—वैराज सुधामा, प्रजापति कर्दम, पर्जन्य हिरण्यरोमा और राजस केतुमान्। ये सभी लोकपाल सुख-दुःख आदि द्वन्द्व, अभिमान, आलस्य और परिग्रहसे रहित होकर लोकालोकके चारों दिशाओंमें स्थित हैं॥ ८६—९६॥

लोकालोक पर्वतका जो उत्तरी शिखर है, वह अगस्त्यशिखर कहलाता है। देवर्षिगण उसका सेवन करते हैं। वह वैश्वानर-मार्गसे बाहर है और पितृयाण-मार्गके नामसे प्रसिद्ध है। उस पितृयाण-मार्गपर प्रजाभिलाषी अग्निहोत्री तथा लोगोंको संतान प्रदान करनेवाले ऋषिगण निवास करते हैं। राजन्! लौकिक कामनाओंसे युक्त वे ऋषिगण अपने आशीर्वादके प्रयोगसे प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मको सफल बनाते हैं। उनका मार्ग दक्षिणायनमें है। वे प्रत्येक युगमें अपनी उग्र तपस्या तथा धर्मशास्त्रकी मर्यादाद्वारा मर्यादासे स्खलित हुए धर्मकी पुनः स्थापना करते हैं। इनमें जो पहले उत्पन्न हुए थे, वे अपनेसे पीछे उत्पन्न होनेवालोंके घरोंमें जन्म लेते हैं और पीछे उत्पन्न होनेवाले मृत्युके पश्चात् पूर्वजोंके गृहोंमें चले जाते हैं। इस प्रकार वे प्रलयपर्यन्त आवागमनके चक्करमें पड़े रहते हैं। इन क्रियानिष्ठ गृहस्थ ऋषियोंकी संख्या अठासी हजार है। ये सूर्यके दक्षिण मार्गका आश्रय लेकर प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। उन्हें श्मशानकी शरण लेनी पड़ती है अर्थात् ये मृत्युभागी होते हैं। लोक-व्यवहारकी रक्षाके लिये प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मोंकी पूर्ति, इच्छा, द्वेषपरता, स्त्री-सहवास तथा स्वेच्छापूर्वक सांसारिक विषयभोगोंका सेवन—इन्हीं कारणोंसे उन ऋषियोंको इस लोकमें सिद्ध होते हुए भी श्मशानमें जाना पड़ता है॥ ९७—१०५॥

द्वापरयुगमें प्रजाभिलाषी सात ऋषि इस मृत्युलोकमें उत्पन्न हुए थे, किंतु आगे चलकर उन्हें संततिसे घृणा हो गयी, जिससे उन्होंने मृत्युको जीत लिया। इन ऊर्ध्वरेता ऋषियोंकी संख्या अठासी हजार है। ये सूर्यके उत्तर मार्गका आश्रय लेकर प्रलयपर्यन्त विद्यमान रहते हैं।

ते सम्प्रयोगाल्लोकस्य मिथुनस्य च वर्जनात्।
ईर्ष्याद्वेषनिवृत्त्या च भूतारम्भविवर्जनात्॥ १०८
ततोऽन्यकामसंयोगशब्दादेर्दोषदर्शनात् ।
इत्येतैः कारणैः शुद्धैस्तेऽमृतत्वं हि भेजिरे॥ १०९
आभूतसम्प्लवस्थानाममृतत्वं विभाव्यते।
त्रैलोक्यस्थितिकालो हि न पुनर्मारगामिणाम्॥ ११०
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां पुण्यपापकृतोऽपरम्।
आभूतसम्प्लवान्ते तु क्षीयन्ते चोर्ध्वरेतसः॥ १११
ऊर्ध्वोत्तरमृषिभ्यस्तु ध्रुवो यत्रानुसंस्थितः।
एतद् विष्णुपदं दिव्यं तृतीयं व्योम्नि भास्वरम्॥ ११२
यत्र गत्वा न शोचन्ति तद्विष्णोः परमं पदम्।
धर्मे ध्रुवस्य तिष्ठन्ति ये तु लोकस्य काङ्क्षिणः॥ ११३

वे लोक-कल्याणकर्ता, स्त्री-पुरुष-सम्पर्करहित, ईर्ष्या, द्वेष आदिसे निवृत्त, प्राणियोंद्वारा आरम्भ किये गये कर्मोंके त्यागी तथा अन्यान्य कामसम्बन्धी वासनामय शब्दोंमें दोषदर्शी होते हैं। इन शुद्ध कारणोंसे सम्पन्न होनेके कारण उन्हें अमरताकी प्राप्ति हुई। प्रलयपर्यन्त स्थित रहनेवाले नैष्ठिक ऋषियोंका त्रिलोकीकी स्थितितक वर्तमान रहना अमरत्व कहलाता है। यह कामासक्त व्यक्तियोंको नहीं प्राप्त होता। ब्रह्महत्याजन्य पाप और अश्वमेधजन्य पुण्यसे ही इनमें अन्तर आता है। (भाव यह कि जैसे घोर पाप और महान् पुण्य प्रलयपर्यन्त जीवात्माके साथ लगे रहते हैं, बीचमें नष्ट नहीं होते, वैसे ही ऊर्ध्वरेताका शरीर भी तबतक स्थित रहता है।) सप्तर्षिमण्डलके ऊपर उत्तर दिशामें जहाँ ध्रुवका निवास है, वहीं भगवान् विष्णुका तीसरा दिव्य पद स्थित हुआ था, जो (अब भी) आकाशमें उद्भासित होता रहता है। भगवान् विष्णुके उस परमपदको प्राप्त कर लेनेपर जीवोंको शोक नहीं करना पड़ता। इसलिये जिन्हें ध्रुवलोक प्राप्त करनेकी आकाङ्क्षा होती है, वे सदा धर्म-सम्पादनमें ही लगे रहते हैं॥ १०६—११३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे चन्द्रसूर्यभुवनविस्तारो नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें चन्द्र-सूर्य-भुवन-विस्तार नामक एक सौ चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२४॥

एक सौ पचीसवाँ अध्याय

सूर्यकी गति और उनके रथका वर्णन

एवं श्रुत्वा कथां दिव्यामब्रुवंल्लौमहर्षणिम्।
सूर्याचन्द्रमसोश्चारं ग्रहाणां चैव सर्वशः॥ १

इस प्रकार सूर्य और चन्द्रमाकी गति तथा सभी ग्रहोंके गतिचारकी सारी दिव्य कथाको सुनकर शौनकादि ऋषिगण लोमहर्षणके पुत्र सूतजीसे बोले॥ १॥

ऋषय ऊचुः

भ्रमन्ति कथमेतानि ज्योतींषि रविमण्डले।
अव्यूहेनैव सर्वाणि तथा चासंकरेण वा॥ २
कश्च भ्रामयते तानि भ्रमन्ति यदि वा स्वयम्।
एतद् वेदितुमिच्छामस्ततो निगद सत्तम॥ ३

ऋषियोंने पूछा—वक्ताओंमें श्रेष्ठ सूतजी! ये ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिर्गण तिर्यग्व्यूहमें निबद्ध हो सूर्यमण्डलमें किस प्रकार घूमते हैं? ये सभी परस्पर मिलकर घूमते हैं अथवा पृथक्-पृथक्? इन्हें कोई घुमाता है या ये स्वयं घूमते हैं? हमें इस रहस्यको जाननेकी विशेष उत्कण्ठा है, अतः आप इसका वर्णन कीजिये॥ २-३॥

सूत उवाच

भूतसम्मोहनं ह्येतद् ब्रुवतो मे निबोधत।
प्रत्यक्षमपि दृश्यं तत् सम्मोहयति वै प्रजाः॥ ४

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! यह विषय प्राणियोंको मोहमें डाल देनेवाला है; क्योंकि यह प्रत्यक्षरूपसे दृश्य होनेपर भी प्रजाओंको मोहित कर देता है। मैं इसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये!

योऽसौ चतुर्दशर्क्षेषु शिशुमारो व्यवस्थितः।
उत्तानपादपुत्रोऽसौ मेढीभूतो ध्रुवो दिवि॥ ५
सैष भ्रमन् भ्रामयते चन्द्रादित्यौ ग्रहैः सह।
भ्रमन्तमनुसर्पन्ति नक्षत्राणि च चक्रवत्॥ ६
ध्रुवस्य मनसा यो वै भ्रमते ज्योतिषां गणः।
वातानीकमयैर्बन्धैर्ध्रुवे बद्धः प्रसर्पति॥ ७
तेषां भेदाश्च योगश्च तथा कालस्य निश्चयः।
अस्तोदयास्तथोत्पाता अयने दक्षिणोत्तरे॥ ८
विषुवद्ग्रहवर्णश्च सर्वमेतद् ध्रुवेरितम्।
जीमूता नाम ते मेघा यदेभ्यो जीवसम्भवः॥ ९
द्वितीय आवहन् वायुर्मेघास्ते त्वभिसंश्रिताः।
इतो योजनमात्राच्च अध्यर्धविकृता अपि॥ १०
वृष्टिसर्गस्तथा तेषां धारासारः प्रकीर्तितः।
पुष्करावर्तका नाम ते मेघाः पक्षसम्भवाः॥ ११
शक्रेण पक्षाश्छिन्ना वै पर्वतानां महौजसा।
कामगानां समृद्धानां भूतानां नाशमिच्छताम्॥ १२
पुष्करा नाम ते पक्षा बृहन्तस्तोयधारिणः।
पुष्करावर्तका नाम कारणेनेह शब्दिताः॥ १३
नानारूपधराश्चैव महाघोरस्वराश्च ते।
कल्पान्तवृष्टिकर्तारः कल्पान्ताग्नेर्नियामकाः॥ १४
वाय्वाधारा वहन्ते वै सामृताः कल्पसाधकाः।
यान्यस्याण्डस्य भिन्नस्य प्राकृतान्यभवंस्तदा॥ १५
यस्मिन् ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वक्त्रः स्वयं प्रभुः।
तान्येवाण्डकपालानि सर्वे मेघाः प्रकीर्तिताः॥ १६
तेषामाप्यायनं धूमः सर्वेषामविशेषतः।
तेषां श्रेष्ठश्च पर्जन्यश्चत्वारश्चैव दिग्गजाः॥ १७
गजानां पर्वतानां च मेघानां भोगिभिः सह।
कुलमेकं द्विधाभूतं योनिरेका जलं स्मृतम्॥ १८

आकाशमण्डलमें जो यह (चौदह) नक्षत्रोंके मध्यमें स्थित शिशुमार[1] नामक चक्र है वही उत्तानपादका पुत्र ध्रुव है, जो (उस चक्रमें) मेंढीके[2] समान है। वह ध्रुव स्वयं भ्रमण करता हुआ ग्रहोंके साथ सूर्य और चन्द्रमाको भी घुमाता है। नक्षत्रगण भी चक्रकी भाँति घूमते हुए ध्रुवके पीछे-पीछे चलते हैं। जो ज्योतिर्गण वायुमय बन्धनोंद्वारा ध्रुवमें निबद्ध है, वह ध्रुवके मानसिक संकल्पसे ही घूमता है। उन ज्योतिर्गणोंके भेद, योग, कालका निश्चय, अस्त, उदय, उत्पात, उत्तरायण एवं दक्षिणायनमें गमन, विषुवत् रेखापर स्थिति और ग्रहोंके वर्ण आदि सभी कार्य ध्रुवकी प्रेरणासे होते हैं। (भगणके नीचे मेघ हैं।) जिनसे जीवोंकी उत्पत्ति होती है, उन मेघोंको जीमूत कहते हैं। वे मेघ यहाँसे एक योजन दूर आवह नामक दूसरी वायुके आश्रयपर टिके हुए हैं। उनमें कुछ विकार उत्पन्न हो जानेपर वे ही वृष्टि करते हैं, जो महावृष्टि कही जाती है। पूर्वकालमें महान् ओजस्वी इन्द्रने प्राणियोंके कल्याणकी भावनासे स्वच्छन्दचारी एवं समृद्धिशाली पर्वतोंके पंखोंको काट डाला था। उन पंखोंसे उत्पन्न हुए मेघोंको पुष्करावर्तक कहते हैं। पर्वतोंके पंखोंका नाम पुष्कर था, वे बहुत बड़े-बड़े और जलसे भी परिपूर्ण थे, इसी कारण वे मेघ भी पुष्करावर्तक नामसे कहे गये हैं। ये अनेकों प्रकारके रूप धारण करनेवाले, महान् भयंकर गर्जनासे युक्त, कल्पान्तके समय वृष्टि करनेवाले, कल्पान्तकी अग्निके प्रशामक, अमृतयुक्त और कल्प अर्थात् प्रलयके साधक हैं॥ ४—१४॥

वे वायुके आधारपर चलते-फिरते हैं। इस अण्डके विदीर्ण होनेपर उससे जो प्राकृतिक कपाल निकले थे और जिसमें सामर्थ्यशाली स्वयं चतुर्मुख ब्रह्मा उत्पन्न हुए थे, उन्हीं अण्डकपालोंको सभी मेघोंके रूपमें बतलाया जाता है। उन सभी मेघोंको समानरूपसे तृप्त करनेवाला धूम है। उनमें पर्जन्य नामक मेघ सबसे श्रेष्ठ है। इसके अतिरिक्त ऐरावत, वामन, अञ्जन आदि चार दिग्गज हैं। हाथी, पर्वत, मेघ और सर्प—इन सबका कुल एक है जो दो भागोंमें विभक्त हो गया है; परंतु इनकी योनि (उत्पत्ति-स्थान) एक ही है, जो जल नामसे कही जाती

१. शिशुमार (सूँस) एक जलीय जन्तु होता है, जो प्रायः सर्पवत् वृत्ताकार कुण्डल (गेंडुर) मारकर स्थित रहता है। उसके समान स्थितिको 'शिशुमार' चक्र कहते हैं। उसीके समान गोल होनेसे नक्षत्रमण्डलको उससे उपमा दी गयी है।

२. दौंरीके केन्द्रमें स्थित खम्भेको मेंढी कहते हैं। उसके आश्रयपर कई बैल चलकर अन्नकणको दाँते हैं। इस सम्बन्धमें विशेष जानकारीके लिये श्रीमद्भागवत तथा विष्णुपुराण देखना चाहिये।

पर्जन्यो दिग्गजाश्चैव हेमन्ते शीतसम्भवम्।
तुषारवर्षं वर्षन्ति वृद्धा ह्यन्नविवृद्धये॥ १९
षष्ठः परिवहो नाम वायुस्तेषां परायणः।
योऽसौ बिभर्ति भगवान् गङ्गामाकाशगोचराम्॥ २०
दिव्यामृतजलां पुण्यां त्रिपथामिति विश्रुताम्।
तस्या विस्यन्दितं तोयं दिग्गजाः पृथुभिः करैः॥ २१
शीकरान् सम्प्रमुञ्चन्ति नीहार इति स स्मृतः।
दक्षिणेन गिरिर्योऽसौ हेमकूट इति स्मृतः॥ २२
उदन् हिमवतः शैलस्योत्तरे चैव दक्षिणे।
पुण्ड्रं नाम समाख्यातं नगरं तत्र वै स्मृतम्॥ २३
तस्मिन् प्रवर्तते वर्षं तत् तुषारसमुद्भवम्।
ततो हिमवतो वायुर्हिमं तत्र समुद्भवम्॥ २४
आनयत्यात्मवेगेन सिञ्चमानो महागिरिम्।
हिमवन्तमतिक्रम्य वृष्टिशेषं ततः परम्॥ २५
इभास्ये च ततः पश्चादिदं भूतविवृद्धये।
वर्षद्वयं समाख्यातं सम्यग् वृष्टिविवृद्धये॥ २६
मेघाश्चाप्यायनं चैव सर्वमेतत् प्रकीर्तितम्।
सूर्य एव तु वृष्टीनां स्रष्टा समुपदिश्यते॥ २७
वर्षं घर्मं हिमं रात्रिं संध्ये चैव दिनं तथा।
शुभाशुभफलानीह ध्रुवात् सर्वं प्रवर्तते॥ २८
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चापः सूर्यो संगृह्य तिष्ठति।
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो ह्यनुश्रिताश्च याः॥ २९
दह्यमानेषु तेष्वेह जङ्गमस्थावरेषु च।
धूमभूतास्तु ता ह्यापो निष्क्रमन्तीह सर्वशः॥ ३०
तेन चाभ्राणि जायन्ते स्थानमभ्रमयं स्मृतम्।
तेजोभिः सर्वलोकेभ्य आदत्ते रश्मिभिर्जलम्॥ ३१
समुद्राद् वायुसंयोगाद् वहन्त्यापो गभस्तयः।
ततस्त्वृतुवशात्काले परिवर्तन् दिवाकरः॥ ३२
नियच्छत्यापो मेघेभ्यः शुक्लाः शुक्लैस्तु रश्मिभिः।
अभ्रस्थाः प्रपतन्त्यापो वायुना समुदीरिताः॥ ३३
ततो वर्षति षण्मासान् सर्वभूतविवृद्धये।
वायुभिः स्तनितं चैव विद्युतस्त्वग्निजाः स्मृताः॥ ३४

है। पर्जन्य मेघ और चारों वृद्ध दिग्गज हेमन्त-ऋतुमें अन्नकी वृद्धिके लिये शीतसे उत्पन्न हुए तुषारकी वर्षा करते हैं। परिवह नामक छठी वायु इनका आश्रय है। यह ऐश्वर्यशाली पवन आकाशगामिनी गङ्गाको, जो दिव्य अमृतरूपी जलसे परिपूर्ण, पुण्यमयी तथा त्रिपथगा नामसे विख्यात हैं, धारण करता है, गङ्गासे निकले हुए जलको दिग्गज अपने मोटे-मोटे शुण्डोंसे फुहारेके रूपमें छोड़ते हैं। उसे नीहार (कुहासा) कहते हैं। दक्षिण पार्श्वमें जो पर्वत है, वह हेमकूट नामसे प्रसिद्ध है। वह हिमालय पर्वतके उत्तर और दक्षिण—दोनों दिशाओंमें फैला हुआ है। वहाँ पुण्ड्र नामक एक प्रसिद्ध नगर है। उसी नगरमें वह तुषारसे उत्पन्न हुई वर्षा होती है। तदनन्तर हिमवान् पर्वतसे उद्भूत हुई वायु वहाँ उत्पन्न हुए शीकरोंको अपने साथ ले आती है और बड़े वेगसे उस महान् गिरिको सींचती हुई उसका अतिक्रमण करके इभास्य नामक वर्षमें निकल जाती है। तत्पश्चात् प्राणियोंकी वृद्धिके लिये वहाँ शेष वृष्टि होती है। पहले जिन दो वर्षोंका वर्णन किया गया है, उनमें अच्छी तरह वृष्टि होती है। इस प्रकार मैंने मेघों तथा उनसे उत्पन्न हुई सारी वृष्टिका वर्णन कर दिया॥ १५—२६ $\frac{1}{2}$ ॥

सूर्य ही सब प्रकारकी वृष्टियोंके मूल कारण कहे जाते हैं। इस लोकमें वर्षा, धूप, हिम, रात्रि, दिन, दोनों संध्याएँ और शुभ एवं अशुभ कर्मोंके फल ध्रुवसे प्रवर्तित होते हैं। ध्रुवद्वारा अधिष्ठित जलको सूर्य ग्रहण करते हैं। जल सभी प्राणियोंके शरीरोंमें परमाणुरूपसे स्थित है। इसी कारण स्थावर-जङ्गम सभी प्राणियोंके शरीरोंके जलाये जानेपर उनमेंसे वह जल धुएँके रूपमें बाहर निकलता है। उसी धूमसे बादल बनते हैं, इसलिये भूमको अभ्रमय स्थान कहा जाता है। सूर्य अपनी तेजोमयी किरणोंद्वारा सभी लोक (स्थानों)-से जल ग्रहण करते हैं। इसी प्रकार वे ही किरणें वायुके संयोगसे समुद्रसे भी जल खींचती हैं। तदनन्तर सूर्य ऋतुओंके अनुसार समय-समयपर जलको परिवर्तित कर अपनी श्वेत किरणोंद्वारा वह शुद्ध जल मेघोंको देते हैं। तब वायुद्वारा प्रेरित हुआ वह मेघस्थित जल वर्षाके रूपमें भूतलपर गिरता है। इस प्रकार सूर्य सभी प्राणियोंकी समृद्धिके निमित्त छः महीनेतक वर्षा करते हैं। उस समय वायुके आघातसे मेघ-निर्घोष भी होता है। (बिजली भी चमकती है।) ये बिजलियाँ अग्निसे प्रादुर्भूत बतलायी जाती हैं।

मेहनाच्च मिहेर्धातोर्मेघत्वं व्यञ्जयन्ति च।
न भ्रश्यन्ते ततो ह्यापस्तस्मादब्भ्रस्य वै स्थितिः।
स्त्रष्टासौ वृष्टिसर्गस्य ध्रुवेणाधिष्ठितो रविः॥ ३५
ध्रुवेणाधिष्ठितो वायुर्वृष्टिं संहरते पुनः।
ग्रहान्निवृत्त्या सूर्यात्तु चरते ऋक्षमण्डलम्॥ ३६
चारस्यान्ते विशत्यर्कं ध्रुवेण समधिष्ठितम्।
अतः सूर्यरथस्यापि सन्निवेशं प्रचक्षते।
स्थितेन त्वेकचक्रेण पञ्चारेण त्रिणाभिना॥ ३७
हिरण्मयेनाणुना वै अष्टचक्रैकनेमिना।
चक्रेण भास्वता सूर्यः स्यन्दनेन प्रसर्पिणा॥ ३८
शतयोजनसाहस्रो विस्तारायाम उच्यते।
द्विगुणश्च रथोपस्थादीषादण्डः प्रमाणतः॥ ३९
स तस्य ब्रह्मणा सृष्टो रथो ह्यर्थवशेन तु।
असङ्गः काञ्चनो दिव्यो युक्तः पवनगैर्हयैः॥ ४०
छन्दोभिर्वाजिरूपैस्तैर्यथाचक्रं समास्थितैः।
वारुणस्य रथस्येह लक्षणैः सदृशश्च सः॥ ४१
तेनासौ चरति व्योम्नि भास्वाननुदिनं दिवि।
अथाङ्गानि तु सूर्यस्य प्रत्यङ्गानि रथस्य च।
संवत्सरस्यावयवैः कल्पितानि यथाक्रमम्॥ ४२
अहर्नाभिस्तु सूर्यस्य एकचक्रस्य वै स्मृतः।
अराः संवत्सरास्तस्य नेम्यः षडृतवः स्मृताः॥ ४३
रात्रिर्वरूथो घर्मश्च ध्वज ऊर्ध्वं व्यवस्थितः।
अक्षकोट्योर्युगान्यस्य आर्तवाहाः कलाः स्मृताः॥ ४४
तस्य काष्ठा स्मृता घोणा दन्तपङ्क्तिः क्षणास्तु वै।
निमेषश्चानुकर्षोऽस्य ईषा चास्य कला स्मृता॥ ४५
युगाक्षकोटी ते तस्य अर्थकामावुभौ स्मृतौ।
सप्ताश्वरूपाश्छन्दांसि वहन्ते वायुरंहसा॥ ४६
गायत्री चैव त्रिष्टुप् च जगत्यनुष्टुप्तथैव च।
पङ्क्तिश्च बृहती चैव उष्णिगेव तु सप्तमः॥ ४७

'मिह सेचने' अर्थात् 'मिह' धातु सेचन अथवा मेहनके अर्थमें प्रयुक्त होती है, इसलिये 'मिह'—धातुसे मेघ शब्द निष्पन्न होता है। इसी प्रकार **'अपो बिभ्रति'** या **'न भ्रश्यन्ते आपो यस्मात्'** जिससे जल नहीं गिरते, उसे अब्भ्र या अभ्र कहते हैं। इस तरह ध्रुवद्वारा अधिकृत सूर्य वृष्टिसर्गकी सृष्टि करते हैं। पुनः ध्रुवद्वारा नियुक्त वायु उस वृष्टिका संहार करती है। नक्षत्रमण्डल सूर्यमण्डलसे निवृत्त होकर विचरण करता है और जब विचरण समाप्त हो जाता है, तब ध्रुवद्वारा अधिष्ठित सूर्यमें प्रविष्ट हो जाता है॥ २७—३६½॥

इसके बाद अब सूर्यके रथकी रचना बतलायी जाती है। उसमें एक पहिया, पाँच अरे (अरगजे) और तीन नाभियाँ हैं। उस चक्रकी नेमि (घेरे)-में स्वर्णमयी आठ छोटी-छोटी पुट्ठियाँ लगी हैं। ऐसे उद्दीप्त एवं शीघ्रगामी रथपर बैठकर सूर्य विचरण करते हैं। उस रथकी लम्बाई एक लाख योजन बतलायी जाती है। उसका ईषादण्ड (हरसा) रथके उपस्थ (मध्यभाग)-से प्रमाणमें दुगुना है। ब्रह्माने किसी मुख्य प्रयोजनवश उस रथका निर्माण किया था। उसका असङ्ग (वह रस्सी, जिससे घोड़े रथमें बँधे रहते हैं) दिव्य एवं स्वर्णमय है। उसमें पवनके समान शीघ्रगामी घोड़े जुते हुए हैं। चक्रके अनुकूल चलनेवाले छन्द ही उन घोड़ोंके रूपमें उपस्थित होते हैं। वह रथ वरुणके रथके लक्षणोंसे मिलता-जुलता-सा है। उसी रथसे सूर्य प्रतिदिन गगन-मण्डलमें विचरते हैं। सूर्यके अङ्गों तथा रथके अवयवोंकी समतामें क्रमशः कल्पना की गयी है। दिनको सूर्यके एक पहियेवाले रथकी नाभि कहा जाता है। वर्ष उसके अरे और छहों ऋतुएँ उसकी नेमि कहलाती हैं। रात्रि उसका वरूथ (कवच, बख्तर) और धूप ऊपर फहरानेवाला ध्वज है। चारों युग इसके धुरेके दोनों छोर हैं और कलाएँ आर्तवाह कही गयी हैं। काष्ठा उसकी नासिका तथा क्षण उसके दाँतोंकी पङ्क्तियाँ हैं। निमेषको इसका अनुकर्ष (रथका तला) और कलाको ईषा (हरसा) कहते हैं। उनके जुएके दोनों छोर अर्थ और काम कहलाते हैं॥ ३७—४५½॥

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पङ्क्ति, बृहती और उष्णिक्—ये सातों छन्द सातों घोड़ोंके रूपमें हैं, जो वायु-वेगसे रथको वहन करते हैं।

चक्रमक्षे निबद्धं तु ध्रुवे चाक्षः समर्पितः।
सहचक्रो भ्रमत्यक्षः सहाक्षो भ्रमति ध्रुवः॥ ४८
अक्षः सहैव चक्रेण भ्रमतेऽसौ ध्रुवेरितः।
एवमर्थवशात् तस्य सन्निवेशो रथस्य तु॥ ४९
तथा संयोगभागेन सिद्धो वै भास्करो रथः।
तेनाऽसौ तरणिर्देवो नभसः सर्पते दिवम्॥ ५०
युगाक्षकोटी ते तस्य दक्षिणे स्यन्दनस्य तु।
भ्रमतो भ्रमतो रश्मी तौ चक्रयुगयोस्तु वै॥ ५१
मण्डलानि भ्रमेतेऽस्य खेचरस्य रथस्य तु।
कुलालचक्रभ्रमवन्मण्डलं सर्वतोदिशम्॥ ५२
युगाक्षकोटी ते तस्य वातोर्मी स्यन्दनस्य तु।
संक्रमेते ध्रुवमहो मण्डले सर्वतोदिशम्॥ ५३
भ्रमतस्तस्य रश्मी ते मण्डले तूत्तरायणे।
वर्धते दक्षिणेष्वत्र भ्रमतो मण्डलानि तु॥ ५४
युगाक्षकोटी सम्बद्धौ द्वे रश्मी स्यन्दनस्य ते।
ध्रुवेण प्रगृहीतौ तौ रश्मी धारयता रविम्॥ ५५
आकृष्येते यदा ते तु ध्रुवेण समधिष्ठिते।
तदा सोऽभ्यन्तरे सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु॥ ५६
अशीतिमण्डलशतं काष्ठयोरुभयोश्चरन्।
ध्रुवेण मुच्यमानेन पुना रश्मियुगेन च॥ ५७
तथैव बाह्यतः सूर्यो भ्रमते मण्डलानि तु।
उद्वेष्टयन् वै वेगेन मण्डलानि तु गच्छति॥ ५८

इस रथका चक्र अक्षमें बँधा हुआ है और वह अक्ष ध्रुवसे संलग्न है। इसलिये चक्रके साथ अक्ष और अक्षके साथ ध्रुव घूमता रहता है। इस प्रकार ध्रुवद्वारा प्रेरित अक्ष चक्रके साथ ही घूमता है। किसी मुख्य प्रयोजनवश ब्रह्माने इस रथका निर्माण किया है तथा इस प्रकारके अवयवोंके संयोगसे यह सूर्यका रथ सिद्ध हुआ है। इसी रथसे सूर्यदेव आकाशमण्डलमें भ्रमण करते हैं। उस रथके जुए और धुरेके छोर दाहिनी ओरसे घूमते हैं। जब वह रथ आकाशमें मण्डलाकार घूमता है, उस समय उसकी किरणें भी मण्डलाकार घूमती-सी दीख पड़ती हैं। यह मण्डल कुम्हारके चाककी भाँति चारों दिशाओंमें घूमता है। उस रथकी दोनों युगाक्षकोटि और वातोर्मिके चारों दिशाओंमें मण्डलाकार घूमते समय उस रथकी किरणें बढ़ जाती हैं और दक्षिणायनमें घट जाती हैं। वे दोनों किरणें रथकी युगाक्षकोटिमें बँधी हुई हैं और वे ध्रुवमें निबद्ध हैं। ये सूर्यसे भी सम्बद्ध हैं। ध्रुव जब उन दोनों किरणोंको खींचते हैं, तब सूर्य मण्डलके अन्तर्गत ही भ्रमण करते हैं। उस समय सूर्य दोनों दिशाओंके एक सौ अस्सी मण्डलोंमें चक्कर लगाते हैं। पुनः जब ध्रुव दोनों किरणोंको छोड़ देते हैं, तब सूर्य मण्डलोंके बाह्य भागमें घूमने लगते हैं। उस समय वे मण्डलोंको उद्वेष्टित करते हुए बड़े वेगसे चलते हैं॥ ४६—५८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोश सूर्याचन्द्रमसोश्चारो नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सूर्य-चन्द्रमाकी गति नामक एक सौ पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२५॥

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय

सूर्य-रथ* पर प्रत्येक मासमें भिन्न-भिन्न देवताओंका अधिरोहण तथा चन्द्रमाकी विचित्र गति

सूत उवाच

स रथोऽधिष्ठितो देवैर्मासि मासि यथाक्रमम्।
ततो वहत्यथादित्यं बहुभिर्ऋषिभिः सह॥ १
गन्धर्वैरप्सरोभिश्च ग्रामणीसर्पराक्षसैः।
एते वसन्ति वै सूर्ये मासौ द्वौ द्वौ क्रमेण च॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! सूर्यका वह रथ प्रत्येक मासमें क्रमशः देवताओंद्वारा अधिष्ठित रहता है। इस प्रकार वह बहुत-से ऋषियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, ग्रामणियों, सर्पों और राक्षसोंके साथ सूर्यको वहन करता है। ये सभी देवगण दो-दो मासके क्रमसे सूर्यके निकट निवास करते

* यह विषय भी भागवत स्कन्ध १२, अ० ११, वायुपुराण अ० ५२ तथा अन्य विष्णु आदि सभी पुराणोंमें स्वल्पान्तरसे प्राप्त होता है।

धातार्यमा पुलस्त्यश्च पुलहश्च प्रजापतिः।
उरगौ वासुकिश्चैव संकीर्णश्चैव तावुभौ॥ ३
तुम्बुरुर्नारदश्चैव गन्धर्वौ गायतां वरौ।
क्रतुस्थलाप्सराश्चैव तथा वै पुञ्जिकस्थला॥ ४
ग्रामण्यौ रथकृत्तस्य रथौजाश्चैव तावुभौ।
रक्षो हेतिः प्रहेतिश्च यातुधानावुभौ स्मृतौ॥ ५
मधुमाधवयोर्ह्येष गणो वसति भास्करे।
वसन् ग्रीष्मे तु द्वौ मासौ मित्रश्च वरुणश्च वै॥ ६
ऋषिरत्रिर्वसिष्ठश्च नागौ तक्षकरम्भकौ।
मेनका सहजन्या च हाहा हूहूश्च गायकौ॥ ७
रथन्तरश्च ग्रामण्यौ रथकृच्चैव तावुभौ।
पुरुषादो वधश्चैव यातुधानौ तु तौ स्मृतौ॥ ८
एते वसन्ति वै सूर्ये मासयोः शुचिशुक्रयोः।
ततः सूर्ये पुनश्चान्या निवसन्ति स्म देवताः॥ ९
इन्द्रश्चैव विवस्वांश्च अङ्गिरा भृगुरेव च।
एलापत्रस्तथा सर्पः शङ्खपालश्च पन्नगः॥ १०
विश्वावसुसुषेणौ च प्रातश्चैव रथश्च हि।
प्रम्लोचेत्यप्सराश्चैव निम्लोचन्ती च ते उभे॥ ११
यातुधानस्तथा हेतिर्व्याघ्रश्चैव तु तावुभौ।
नभस्यनभसोरेतैर्वसन्तश्च दिवाकरे॥ १२
मासौ द्वौ देवताः सूर्ये वसन्ति च शरदृतौ।
पर्जन्यश्चैव पूषा च भरद्वाजः सगौतमः॥ १३
चित्रसेनश्च गन्धर्वस्तथा वा सुरुचिश्च यः।
विश्वाची च घृताची च उभे ते पुण्यलक्षणे॥ १४
नागश्चैरावतश्चैव विश्रुतश्च धनञ्जयः।
सेनजिच्च सुषेणश्च सेनानीर्ग्रामणीस्तथा॥ १५
आपो वातश्च द्वावेतौ यातुधानावुभौ स्मृतौ।
वसन्ते ते च वै सूर्ये मासयोश्च त्विषोर्जयोः॥ १६
हैमन्तिकौ च द्वौ मासौ निवसन्ति दिवाकरे।
अंशो भगश्च द्वावेतौ कश्यपश्च क्रतुश्च तौ॥ १७
भुजङ्गश्च महापद्मः सर्पः कर्कोटकस्तथा।
चित्रसेनश्च गन्धर्वः पूर्णायुश्चैव गायनौ॥ १८
अप्सराः पूर्वचित्तिश्च तथैव ह्युर्वशी च या।
तक्षावारिष्टनेमिश्च सेनानीर्ग्रामणीश्च तौ॥ १९

हैं। धाता और अर्यमा दो देव, प्रजापति पुलस्त्य और प्रजापति पुलह दो ऋषि, वासुकि और संकीर्ण दो नाग, गायकोंमें श्रेष्ठ तुम्बुरु और नारद दो गन्धर्व, क्रतुस्थला और पुञ्जिकस्थला दो अप्सराएँ, रथकृत् और रथौजा दो ग्रामणी, हेति और प्रहेति दो राक्षस—इन सबका दल चैत्र और वैशाखमासमें सूर्यके रथपर निवास करता है। ग्रीष्म-ऋतुके ज्येष्ठ और आषाढ़मासमें मित्र और वरुण देवता, अत्रि और वसिष्ठ ऋषि, तक्षक और रम्भक नाग, मेनका और सहजन्या अप्सरा, हाहा और हूहू गन्धर्व, रथन्तर और रथकृत् ग्रामणी, पुरुषाद और वध राक्षस—ये सभी सूर्यके निकट रहते हैं। इसी प्रकार श्रावण और भाद्रपद-मासमें इन्द्र और विवस्वान् देवता, अङ्गिरा और भृगु ऋषि, एलापत्र और शंखपाल नामक नाग, विश्वावसु और सुषेण गन्धर्व, प्रात और रथ नामक ग्रामणी, प्रम्लोचा और निम्लोचन्ती अप्सरा तथा हेति और व्याघ्र राक्षस—ये सभी सूर्यके रथपर निवास करते हैं॥ १—१२॥

शरद्-ऋतुमें भी दो मासतक देवगण सूर्यके निकट वास करते हैं। पर्जन्य और पूषा देवता, भरद्वाज और गौतम ऋषि, चित्रसेन और सुरुचि गन्धर्व, शुभ लक्षणोंवाली विश्वाची और घृताची अप्सराएँ, ऐरावत और सुप्रसिद्ध धनञ्जय नाग, सेनजित् और सेनानायक सुषेण ग्रामणी, आप और वात नामक दो राक्षस—ये सभी आश्विन और कार्तिकमासमें सूर्यके रथपर अधिरोहण करते हैं। हेमन्त-ऋतुके दो महीने मार्गशीर्ष और पौषमें अंश और भग देवता, कश्यप और क्रतु ऋषि, महापद्म और कर्कोटक नाग, गानविद्यामें निपुण चित्रसेन और पूर्णायु गन्धर्व, पूर्वचित्ति और उर्वशी अप्सरा, तक्षाव और अरिष्टनेमि नामक सेनापति एवं ग्रामणी,

विद्युत्सूर्यश्च तावुग्रौ यातुधानौ तु तौ स्मृतौ।
सहे चैव सहस्ये च वसन्त्येते दिवाकरे॥ २०
ततस्तु शिशिरे चापि मासयोर्निवसन्ति ते।
त्वष्टा विष्णुर्जमदग्निर्विश्वामित्रस्तथैव च॥ २१
काद्रवेयौ तथा नागौ कम्बलाश्वतरावुभौ।
गन्धर्वौ धृतराष्ट्रश्च सूर्यवर्चाश्च तावुभौ॥ २२
तिलोत्तमाप्सराश्चैव देवी रम्भा मनोरमा।
ग्रामणी ऋतजिच्चैव सत्यजिच्च महाबलः॥ २३
ब्रह्मोपेतश्च वै रक्षो यज्ञोपेतस्तथैव च।
इत्येते निवसन्ति स्म द्वौ द्वौ मासौ दिवाकरे॥ २४

विद्युत् और सूर्य नामक दो उग्र राक्षस—ये सभी सूर्यके निकट वास करते हैं। तत्पश्चात् शिशिर-ऋतुके माघ और फाल्गुनमासोंमें त्वष्टा और विष्णु देवता, जमदग्नि और विश्वामित्र ऋषि, कद्रूके पुत्र कम्बल और अश्वतर नाग, धृतराष्ट्र और सूर्यवर्चा गन्धर्व, तिलोत्तमा और मनोहारिणी रम्भा देवी अप्सरा, महाबली ऋतजित् और सत्यजित् ग्रामणी, ब्रह्मोपेत और यज्ञोपेत राक्षस—ये सभी सूर्यके रथपर अधिरूढ़ होते हैं। इस प्रकार प्रत्येक दो मासके अन्तरसे ये सभी क्रमशः सूर्यके निकट निवास करते हैं॥ १३—२४॥

स्थानाभिमानिनो ह्येते गणा द्वादश सप्तकाः।
सूर्यमापादयन्त्येते तेजसा तेज उत्तमम्॥ २५
ग्रथितैस्तु वचोभिश्च स्तुवन्ति ऋषयो रविम्।
गन्धर्वाप्सरसश्चैव गीतनृत्यैरुपासते॥ २६
विद्याग्रामणिनो यक्षाः कुर्वन्त्याभीषुसंग्रहम्।
सर्पाः सर्पन्ति वै सूर्ये यातुधानानुयान्ति च॥ २७
बालखिल्या नयन्त्यस्तं परिवार्योदयाद् रविम्।
एतेषामेव देवानां यथावीर्यं यथातपः॥ २८
यथायोगं यथाधर्मं यथातत्त्वं यथाबलम्।
तपत्यसौ यथा सूर्यस्तेषां सिद्धिस्तु तेजसा॥ २९
भूतानामशुभं सर्वं व्यपोहति स्वतेजसा।
मानवानां शुभैर्ह्येतैर्ह्रियते दुरितं तु वै॥ ३०
दुरितं हि प्रचाराणां व्यपोहन्ति क्वचित् क्वचित्।
एते सहैव सूर्येण भ्रमन्ति सानुगा दिवि॥ ३१
तपन्तश्च जपन्तश्च ह्लादयन्तश्च वै प्रजाः।
गोपायन्ति स्म भूतानि ईहन्ते ह्यनुकम्पया॥ ३२
स्थानाभिमानिनां ह्येतत्स्थानं मन्वन्तरेषु वै।
अतीतानां गतानां च वर्तन्ते साम्प्रतं च ये॥ ३३
एवं वसन्ति वै सूर्ये सप्तकास्ते चतुर्दश।
चतुर्दशेषु वर्तन्ते गणा मन्वन्तरेषु वै॥ ३४

ये बारह सप्तक (देव, ऋषि, नाग, गन्धर्व, अप्सरा, ग्रामणी और राक्षस) गण अपने-अपने स्थानके अभिमानी देवता हैं। ये अपने तेजसे सूर्यके तेजको उत्कृष्ट कर देते हैं। वहाँ ऋषिगण स्वरचित वचनों—स्तोत्रोंद्वारा सूर्यका स्तवन करते हैं तथा गन्धर्व और अप्सराएँ नाच-गानके द्वारा सूर्यकी उपासना करती हैं। सूत-विद्यामें निपुण यक्षगण (सूर्यके रथके अश्वोंकी) बागडोर सँभालते हैं। सर्प सूर्यमण्डलमें इधर-उधर दौड़ते तथा राक्षसगण सूर्यका अनुगमन करते हैं। बालखिल्य नामक ऋषि उदयकालसे ही सूर्यको घेरकर अस्ताचलको ले जाते हैं। इन देवताओंका जैसा पराक्रम, तपोबल, योगबल, धर्म, तत्त्व और शारीरिक बल होता है, उसीके अनुसार उनके तेजसे समृद्ध हुए सूर्य तपते हैं। वे अपने तेजसे प्राणियोंके सभी अमङ्गलको दूर कर देते हैं तथा इन्हीं मङ्गलमय उपादानोंद्वारा मनुष्योंके पापका अपहरण करते हैं। ये सहायकगण अपनी ओर अभिमुख होनेवालोंके पापको नष्ट कर देते हैं और अपने अनुचरोंसहित आकाशमण्डलमें सूर्यके साथ ही भ्रमण करते हैं। ये जप-तप करके सभी प्रजाओंको प्रसन्न रखते हुए उनकी रक्षा करते हैं और दयावश सभी प्राणियोंकी शुभ-कामना करते हैं। भूत, भविष्य और वर्तमानकालके इन स्थानाभिमानियोंका वह स्थान प्रत्येक मन्वन्तरमें वर्तमान रहता है। इस प्रकार दो-दोके हिसाबसे उन सातों गणोंके चौदह देवता सूर्यके रथपर निवास करते हैं और चौदहों मन्वन्तरोंतक वर्तमान रहते हैं।

ग्रीष्मे हिमे च वर्षासु मुञ्चमानो
घर्मं हिमं च वर्षं च दिनं निशां च।
गच्छत्यसावनुदिनं परिवृत्य रश्मीन्
देवान् पितॄंश्च मनुजांश्च सुतर्पयन् वै॥ ३५
शुक्ले तु पूर्ष्णो तदहःक्रमेण
तं कृष्णपक्षे विबुधाः पिबन्ति।
पीतं तु सोमं द्विकलावशिष्टं
सुवृष्टये रश्मिषु रक्षितं तु॥ ३६
स्वधामृतं तत्पितरः पिबन्ति
देवाश्च सौम्याश्च तथैव कव्यम्।
सूर्येण गोभिर्हि विवर्धिताभि-
रद्भिः पुनश्चैव समुच्छ्रिताभिः॥ ३७
वृष्ट्याभिवृष्टाभिरथौषधीभि-
र्मर्त्या अथान्नेन क्षुधं जयन्ति।
तृप्तिश्चाप्यमृतेनार्धमासं सुराणां
मासं स्वाहाभिः स्वधया पितृणाम्॥ ३८
अन्नेन जीवन्त्यनिशं मनुष्याः
सूर्यः श्रितं तद्धि बिभर्ति गोभिः।
इत्येष एकचक्रेण सूर्यस्तूर्णं प्रसर्पति।
तत्र तैरक्रमैरश्वैः सर्पतेऽसौ दिनक्षये॥ ३९
हरिर्हरिद्भिर्ह्रियते तुरंगमैः
पिबत्यथाऽपो हरिभिः सहस्रधा।
ततः प्रमुञ्चत्यथ ताश्च यो हरिः
संमुह्यमानो हरिभिस्तुरंगमैः॥ ४०
अहोरात्रं रथेनासावेकचक्रेण वै भ्रमन्।
सप्तद्वीपसमुद्रांश्च सप्तभिः सप्तभिर्द्रुतम्॥ ४१
छन्दोरूपैश्च तैरश्वैर्यतश्चक्रं ततः स्थितिः।
कामरूपैः सकृद्युक्तैः कामगैरतैर्मनोजवैः॥ ४२
हरितैरव्ययैः पिङ्गैरीश्वरैर्ब्रह्मवादिभिः।
बाह्यतोऽनन्तरं चैव मण्डलं दिवसः क्रमात्॥ ४३
कल्पादौ सम्प्रयुक्ताश्च वहन्त्याभूतसम्प्लवम्।
आवृतो वालखिल्यैश्च भ्रमते रात्र्यहानि तु॥ ४४

इस प्रकार सूर्य ग्रीष्म, हेमन्त और वर्षा-ऋतुओंमें क्रमशः अपनी किरणोंको परिवर्तित कर धूप, हिम और जलकी वर्षा करके देवताओं, पितरों और मानवोंको भलीभाँति तृप्त करते हुए प्रतिदिन रात-दिन चलते रहते हैं। जो शुद्ध अमृत उत्तम वृष्टिके लिये सूर्यकी किरणोंमें सुरक्षित रहता है, उसे देवगण प्रत्येक मासमें चन्द्रमामें प्रविष्ट होनेपर शुक्ल एवं कृष्णपक्षमें दिनके क्रमसे काल-क्षयके अनुसार पीते हैं। सभी देवगण तथा पितर कव्यस्वरूप उस अमृत चन्द्रमाका पान करते हैं। मानवगण सूर्यकी किरणोंद्वारा पोषित, जलद्वारा परिवर्धित और वृष्टिद्वारा सिंचित ओषधियों और अन्नसे अपनी क्षुधा शान्त करते हैं। उस स्वाहारूप अमृतसे देवताओंकी तृप्ति पंद्रह दिनतक तथा उस स्वधारूप अमृतसे पितरोंकी तृप्ति एक महीनेतक होती है। मनुष्य अन्नरूप अमृतसे सर्वदा जीवन धारण करते हैं। वह अमृत सूर्यकी किरणोंमें स्थित है, अतः सूर्य अपनी किरणोंद्वारा सबका पालन करते हैं॥ ३५—३८॥

इस प्रकार सूर्य अपने एक पहियेवाले रथसे शीघ्रतापूर्वक गमन करते हैं। दिनके व्यतीत हो जानेपर भी वे उन सात अश्वोंद्वारा चलते ही रहते हैं। हरे रंगवाले घोड़े सूर्यको वहन करते हैं। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा हजारों प्रकारसे जल खींचते हैं। पुनः हरे रंगवाले घोड़ोंद्वारा वहन किये जाते हुए वे ही सूर्य उस जलको बरसाते हैं। इस तरह सूर्य अपने एक पहियेवाले रथसे दिनके क्रमानुसार मण्डलके बाहर और भीतर होते हुए सात-सातके क्रमसे सातों समुद्रोंमें दिन-रात वेगपूर्वक घूमते रहते हैं। जहाँ वह चक्र पहुँचता है, वहीं उनकी स्थिति मानी जाती है। उनके रथके (समुद्रसे उत्पन्न श्यामकर्ण) अश्व छन्दःस्वरूप, स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, एक ही बार जुते हुए, इच्छानुरूप गमन करनेवाले और मनके समान शीघ्रगामी हैं। उनके शरीरका रंग हरा और पीला है। उन्हें थकावट नहीं होती। वे शक्तिशाली और ब्रह्मवादी हैं। वे कल्पके आरम्भमें रथमें जोते जाते हैं और प्रलय-पर्यन्त उस रथको वहन करते हैं। इस प्रकार वालखिल्य ऋषियोंद्वारा समावृत सूर्य रात-दिन भ्रमण करते रहते हैं।

ग्रथितैः स्ववचोभिश्च स्तूयमानो महर्षिभिः।
सेव्यते गीतनृत्यैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥ ४५
पतंगः पतगैरश्वैर्भ्राम्यमाणो दिवस्पतिः।
वीथ्याश्रयाणि चरति नक्षत्राणि तथा शशी॥ ४६
ह्रासवृद्धी तथैवास्य रश्मयः सूर्यवत् स्मृताः।
त्रिचक्रोभयतोऽश्वश्च विज्ञेयः शशिनो रथः॥ ४७
अपां गर्भसमुत्पन्नो रथः साश्वःससारथिः।
सहारैस्तैस्त्रिभिश्चक्रैर्युक्तः शुक्लैर्हयोत्तमैः॥ ४८
दशभिस्तुरगैर्दिव्यैरसङ्गैस्तन्मनोजवैः।
सकृद्युक्ते रथे तस्मिन् वहन्तस्त्वायुगक्षयम्॥ ४९
संगृहीता रथे तस्मिञ्श्वेताश्चक्षुःश्रवाश्च वै।
अश्वास्तमेकवर्णास्ते वहन्ते शङ्खवर्चसः॥ ५०
अजश्च त्रिपथश्चैव वृषो वाजी नरो हयः।
अंशुमान् सप्तधातुश्च हंसो व्योममृगस्तथा॥ ५१
इत्येते नामभिश्चैव दश चन्द्रमसो हयाः।
एवं चन्द्रमसं देवं वहन्ति स्मायुगक्षयम्॥ ५२
देवैः परिवृतः सोमः पितृभिः सह गच्छति।
सोमस्य शुक्लपक्षादौ भास्करे परतः स्थिते॥ ५३
आपूर्यते परो भागः सोमस्य तु अहःक्रमात्।
ततः पीतक्षयं सोमं युगपद्व्यापयन् रविः॥ ५४
पीतं पञ्चदशाहं च रश्मिनैकेन भास्करः।
आपूरयन् ददौ तेन भागं भागमहःक्रमात्॥ ५५
सुषुम्नाप्यायमानस्य शुक्ले वर्धन्ति वै कलाः।
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णे शुक्ले ह्याप्याययन्ति च॥ ५६
इत्येवं सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायते तनुः।
पौर्णमास्यां प्रदृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः॥ ५७
एवमाप्यायते सोमः शुक्लपक्षेष्वहःक्रमात्।
ततो द्वितीयाप्रभृति बहुलस्य चतुर्दशी॥ ५८
अपां सारमयस्येन्दो रसमात्रात्मकस्य च।
पिबन्त्यम्बुमयं देवा मधु सौम्यं तथामृतम्॥ ५९
सम्भृतं त्वर्धमासेन ह्यमृतं सूर्यतेजसा।
भक्षार्थमागताः सोमं पौर्णमास्यामुपासते॥ ६०

उस समय महर्षिगण स्वरचित वचनोंद्वारा सूर्यकी स्तुति करते हैं। गन्धर्वों और अप्सराओंका समुदाय नाच-गानद्वारा सूर्यकी सेवा करता है। दिनके स्वामी सूर्य पक्षियोंके समान वेगशाली अश्वोंद्वारा सदा भ्रमण कराये जाते हुए नक्षत्रसम्बन्धिनी वीथियोंका आश्रय लेकर भ्रमण करते हैं। इसी प्रकार चन्द्रमा भी चक्कर लगाते हैं। इनकी भी ह्रास-वृद्धि और किरणें सूर्यके समान ही बतलायी गयी हैं। चन्द्रमाका रथ तीन पहियेका है और उसमें दोनों ओर घोड़े जुते रहते हैं। घोड़े-सारथि और हारसे सुशोभित तथा तीन पहियोंसे युक्त रथके साथ चन्द्रदेव (समुद्र मन्थनके समय) जलके मध्यसे प्रकट हुए थे। उसमें श्वेत रंगवाले तथा दस उत्तम घोड़े जुते हुए थे। वे अश्व दिव्य, अनुपम और मनके समान वेगशाली हैं। वे एक बार उस रथमें जोत दिये जानेपर युगप्रलयपर्यन्त उस रथको वहन करते हैं। उस रथमें जुते हुए चक्षुःश्रवानामक घोड़े चन्द्रमाको वहन करते हैं, उनके नेत्र और कान भी श्वेत रंगके हैं। वे सभी शङ्खके समान उज्ज्वल एक ही रंगके हैं। चन्द्रमाके उन दस अश्वोंका नाम अज, त्रिपथ, वृष, वाजी, नर, हय, अंशुमान्, सप्तधातु, हंस और व्योममृग है। इस प्रकार वे अश्व युगप्रलयपर्यन्त चन्द्रदेवको वहन करते हैं। चन्द्रमा पितरोंसहित देवताओंद्वारा घिरे हुए गमन करते हैं॥ ३९—५२½॥

शुक्लपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके परभागमें स्थित होनेपर चन्द्रमाका परभाग दिनके क्रमसे पूर्ण होता है। उस समय (देवताओंद्वारा अमृत) पी लेनेसे क्षीण हुए चन्द्रमाको सूर्य एक ही बारमें पूर्ण कर देते हैं। इस प्रकार पंद्रह दिनोंतक देवताओंद्वारा चूसे गये चन्द्रमाके एक-एक भागको सूर्य अपनी एक ही किरणद्वारा दिनके क्रमसे परिपूर्ण करते रहते हैं। सूर्यकी सुषुम्ना नामक किरणद्वारा परिवर्धित चन्द्रमाकी कलाएँ शुक्लपक्षमें वृद्धिको प्राप्त होती हैं तथा कृष्णपक्षमें क्षीण हो जाती हैं। पुनः शुक्लपक्षमें वे बढ़ती जाती हैं। इस प्रकार सूर्यके पराक्रमसे चन्द्रमाका शरीर वृद्धिगत होता है और धीरे-धीरे पूर्णिमा तिथिको पूर्ण होकर सम्पूर्ण मण्डल श्वेत वर्णका दिखायी पड़ता है। इस प्रकार शुक्लपक्षमें दिनके क्रमसे चन्द्रमा वृद्धिको प्राप्त होते हैं। तदनन्तर जलके सारभूत एवं रसमात्रात्मक चन्द्रमाके मधु-सदृश जलमय अमृतको देवगण कृष्णपक्षकी द्वितीयासे लेकर चतुर्दशी तिथितक पान करते हैं। पंद्रह दिनोंतक सूर्यके तेजसे सञ्चित किये हुए अमृतको खानेके लिये पूर्णिमा तिथिको चन्द्रमाके निकट आये हुए देवगण

एकरात्रं सुराः सार्धं पितृभिर्ऋषिभिश्च वै।
सोमस्य कृष्णपक्षादौ भास्कराभिमुखस्य वै॥ ६१

प्रक्षीयते परो ह्यात्मा पीयमानकलाक्रमात्।
त्रयश्च त्रिंशता सार्धं त्रीणि चैव शतानि तु॥ ६२

त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि देवाः सोमं पिबन्ति वै।
इत्येवं पीयमानस्य कृष्णा वर्धन्ति ताः कलाः॥ ६३

क्षीयन्ते च ततः शुक्लाः कृष्णा ह्याप्याययन्ति च।
एवं दिनक्रमात् पीते देवैश्चापि निशाकरे॥ ६४
पीत्वार्धमासं गच्छन्ति अमावास्यां सुराश्च ते।
पितरश्चोपतिष्ठन्ति ह्यमावास्यां निशाकरम्॥ ६५
ततः पञ्चदशे भागे किंचिच्छेषे निशाकरे।
ततोऽपराह्णे पितरो यदन्यदिवसे पुनः॥ ६६
पिबन्ति द्विकलं कालं शिष्टास्तस्य तु याः कलाः।
विनिःसृतं त्वमावास्यां गभस्तिभ्यः स्वधामृतम्॥ ६७
अर्धमाससमाप्तौ तु पीत्वा गच्छन्ति तेऽमृतम्।
सौम्या बर्हिषदश्चैव अग्निष्वात्ताश्च ये स्मृताः॥ ६८
काव्याश्चैव तु ये प्रोक्ताः पितरः सर्व एव ते।
संवत्सरास्तु वै काव्याः पञ्चाब्दा ये द्विजैः स्मृताः॥ ६९
सौम्यास्तुऋतवो ज्ञेयाः मासा बर्हिषदस्तथा।
अग्निष्वात्तास्तथा पक्षः पितृसर्गस्थिता द्विजाः॥ ७०
पितृभिः पीयमानायां पञ्चदश्यां तु वै कलाम्।
यावच्च क्षीयते तस्माद् भागःपञ्चदशस्तु सः॥ ७१
अमावास्यां तथा तस्य अन्तरा पूर्यते परः।
वृद्धिक्षयौ वै पक्षादौ षोडश्यां शशिनः स्मृतौ।
एवं सूर्यनिमित्ते ते क्षयवृद्धी निशाकरे॥ ७२

पितरों और ऋषियोंके साथ एक राततक चन्द्रमाकी उपासना करते हैं। कृष्णपक्षके प्रारम्भमें सूर्यके सम्मुख उपस्थित चन्द्रमाका मन पान की जाती हुई कलाओंके क्रमसे अत्यन्त क्षीण हो जाता है। उस समय तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस देवता चन्द्रमाकी अमृतकलाको पीते* हैं। इस प्रकार पान किये जाते हुए चन्द्रमाकी वे कृष्णपक्षीय कलाएँ (शुक्लपक्षमें) बढ़ती हैं और शुक्लपक्षीय कलाएँ (कृष्णपक्षमें) घटती हैं। पुनः कृष्णपक्षीय कलाएँ बढ़ती हैं। (यही शुक्लपक्ष और कृष्णपक्षमें बढ़ने-घटनेका क्रम है।) ॥ ५३—६३ १/२ ॥

इस प्रकार दिनके क्रमसे देवगण पंद्रह दिनतक चन्द्रमाके अमृतका पान करते हैं और अमावास्या तिथिको वे वहाँसे चले जाते हैं। तब पितृगण अमावास्या तिथिमें चन्द्रमाके पास आते हैं। तदनन्तर चन्द्रमाके पंद्रहवें भागके कुछ शेष रहनेपर वे पितर दूसरे दिन अपराह्णके समय उन सभी अवशिष्ट कलाओंको केवल दो कला समयतक ही पान करते हैं। अमावास्यातक पंद्रह दिन पर्यन्त चन्द्रमाकी किरणोंसे निकलते हुए स्वधारूपी अमृतका पानकर पितृगण अमर हो जाते हैं। वे सभी पितर सौम्य, बर्हिषद्, अग्निष्वात्त और काव्य नामसे कहे गये हैं। पाँच वर्षके कार्यकालवाले जो पितर हैं, जिन्हें द्विजगण काव्य कहते हैं, वर्ष हैं। सौम्य नामक पितरोंको पक्ष ऋतु जानना चाहिये। दो बर्हिषद् और अग्निष्वात्तको मास—ये तीनों पितृलोकमें निवास करनेवाले द्विज हैं। पूर्णिमा तिथिको पितरोंद्वारा पान की जाती हुई कलाका जितना अंश क्षीण होता है, वह पंद्रहवाँ भाग है। अमावास्याके बाद चन्द्रमाका रिक्त भाग पूर्ण होता है। चन्द्रमाकी वृद्धि और क्षय दोनों पक्षोंके प्रारम्भमें ही माना गया है, उसे सोलहवीं कला कहते हैं। इस प्रकार चन्द्रमाकी क्षय-वृद्धि सूर्यके निमित्तसे ही होती है॥ ६४—७२ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे सूर्यादिगमनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें सूर्यादिगमन नामक एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२६ ॥

---

* देवताओंद्वारा चन्द्रकला-पानका वर्णन—कालिदासादिके रघुवंश (५। १६) के—'पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः' आदिमें बड़े सरस ढंगसे किया गया है। हेमाद्रि आदि व्याख्याताओंने इसको—'प्रथमां पिबते वह्निर्द्वितीयां पिबते रविः' आदिसे व्याख्या भी सुन्दर की है। पर वस्तुतः कालिदास तथा भर्तृहरि के 'कल्पशेषश्चन्द्रः' आदिका मूलाधार मत्स्यपुराणका यह प्रकरण ही दीखता है।

एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

ग्रहोंके रथका वर्णन और ध्रुवकी प्रशंसा

सूत उवाच

ताराग्रहाणां वक्ष्यामि स्वर्भानोस्तु रथं पुनः।
अथ तेजोमयः शुभ्रः सोमपुत्रस्य वै रथः॥ १
युक्तो हयैः पिशङ्गैस्तु दशभिर्वातरंहसैः।
श्वेतः पिशङ्गः सारङ्गो नीलः पीतो विलोहितः॥ २
कृष्णश्च हरितश्चैव पृषतः पृष्णिरेव च।
दशभिस्तु महाभागैरुत्तमैर्वातसम्भवैः॥ ३
ततो भौमरथश्चापि ह्यष्टाङ्गः काञ्चनः स्मृतः।
अष्टभिर्लोहितैरश्वैः सध्वजैरग्निसम्भवैः।
सर्प तेऽसौ कुमारो वै ऋजुवक्रानुवक्रगः॥ ४
अतश्चाङ्गिरसो विद्वान् देवाचार्यो बृहस्पतिः।
शोणैरश्वैश्च रौक्मेण स्यन्दनेन विसर्पति॥ ५
युक्तेनावाजिभिर्दिव्यैरष्टाभिर्वातरंहसैः।
अब्दं वसति यो राशौ सवर्णस्तेन गच्छति॥ ६
युक्तेनाष्टाभिरश्वैश्च सध्वजैरग्निसंनिभैः।
रथेन क्षिप्रवेगेन भार्गवस्तेन गच्छति॥ ७
ततः शनैश्चरोऽप्यश्वैः सबलैर्वातरंहसैः।
कार्ष्णायसं समारुह्य स्यन्दनं यात्यसौ शनिः॥ ८
स्वर्भानोस्तु यथाष्टाश्वाः कृष्णा वै वातरंहसः।
रथं तमोमयं तस्य वहन्ति स्म सुदंशिताः॥ ९
आदित्यनिलयो राहुः सोमं गच्छति पर्वसु।
आदित्यमेति सोमाच्च तमसोऽन्तेषु पर्वसु॥ १०
ततः केतुमतस्त्वश्वा अष्टौ ते वातरंहसः।
पलालधूमवर्णाभाः क्षामदेहाः सुदारुणाः॥ ११
एते वाहा ग्रहाणां वै मया प्रोक्ता रथैः सह।
सर्वे ध्रुवे निबद्धास्ते निबद्धा वातरश्मिभिः॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं (ग्रहकक्षानुसार बुधादि) ग्रहों, नक्षत्रों और राहुके रथका वर्णन कर रहा हूँ। सोमपुत्र बुधका रथ उज्ज्वल एवं तेजोमय है। उसमें वायुके समान वेगशाली पीले रंगके दस घोड़े जोते जाते हैं। उनके नाम हैं—श्वेत, पिशङ्ग, सारङ्ग, नील, पीत, विलोहित, कृष्ण, हरित, पृषत और पृष्णि। इन्हीं महान् भाग्यशाली, अनुपम एवं वायुसे उत्पन्न दस घोड़ोंसे वह रथ युक्त है। इसके बाद मङ्गलका रथ सुवर्णनिर्मित बतलाया जाता है। वह रथके सम्पूर्ण आठों अङ्गोंसे संयुक्त है तथा लाल रंगवाले आठ घोड़ोंसे युक्त है। उसपर अग्निसे प्रकट हुआ ध्वज फहराता रहता है। उसपर सवार होकर किशोरावस्थाके मङ्गल कभी सीधी एवं कभी वक्र गतिसे विचरण करते हैं। अङ्गिराके पुत्र देवाचार्य विद्वान् बृहस्पति पीले रंगके तथा वायुके-से वेगशाली आठ दिव्य अश्वोंसे जुते हुए सुवर्णमय रथपर चलते हैं। वे एक राशिपर एक वर्षतक रहते हैं, इसलिये इस रथके द्वारा स्वाधिष्ठित राशिकी दिशाकी ओर (दोनों गतियों)-से अपने वर्गसहित जाते हैं। शुक्र भी अपने वेगशाली रथपर आरूढ़ होकर भ्रमण करते हैं। उनके रथमें अग्निके समान रंगवाले आठ घोड़े जुते रहते हैं और वह ध्वजाओंसे सुशोभित रहता है। शनैश्चर अपने लोहनिर्मित रथपर सवार होकर चलते हैं। उसमें वायुतुल्य वेगशाली एवं बलवान् घोड़े जुते रहते हैं। राहुका रथ तमोमय है। उसे कवच आदिसे सुसज्जित वायुके समान वेगवाले काले रंगके आठ घोड़े खींचते हैं। सूर्यके भवनमें निवास करनेवाला वह राहु पूर्णिमा आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पास चला जाता है और अमावास्या आदि पर्वोंमें चन्द्रमाके पाससे सूर्यके निकट लौट आता है। इसी प्रकार केतुके रथमें भी वायुके समान शीघ्रगामी आठ घोड़े जोते जाते हैं। उनके शरीरकी कान्ति पुआलके धुँएके सदृश है। वे दुबले-पतले शरीरवाले और बड़े भयंकर हैं। वे सभी वायुरूपी रस्सीसे ध्रुवके साथ सम्बद्ध हैं। इस प्रकार मैंने ग्रहोंके रथोंके साथ-साथ घोड़ोंका वर्णन कर दिया॥ १—१२॥

एते वै भ्राम्यमाणास्ते यथायोगं वहन्ति वै।
वायव्याभिरदृश्याभिः प्रबद्धा वातरश्मिभिः॥ १३

परिभ्रमन्ति तद्बद्धाश्चन्द्रसूर्यग्रहा दिवि।
यावत्तमनुपर्येति ध्रुवं वै ज्योतिषां गणः॥ १४

यथा नद्युदके नौस्तु उदकेन सहोह्यते।
तथा देवगृहाणि स्युरुह्यन्ते वातरंहसा।
तस्माद्यानि प्रगृह्यन्ते व्योम्नि देवगृहा इति॥ १५

यावन्त्यश्चैव ताराः स्युस्तावन्तोऽस्य मरीचयः।
सर्वा ध्रुवनिबद्धास्ता भ्रमन्त्यो भ्रामयन्ति च॥ १६

तैलपीडाकरं चक्रं भ्रमद् भ्रामयते यथा।
तथा भ्रमन्ति ज्योतींषि वातबद्धानि सर्वशः॥ १७

अलातचक्रवद् यान्ति वातचक्रेरितानि तु।
यस्मात् प्रवहते तानि प्रवहस्तेन स स्मृतः॥ १८

एवं ध्रुवे नियुक्तोऽसौ भ्रमते ज्योतिषां गणः।
एष तारामयः प्रोक्तः शिशुमारे ध्रुवो दिवि॥ १९

यदह्ना कुरुते पापं तं दृष्ट्वा निशि मुञ्चति।
शिशुमारशरीरस्था यावत्यस्तारकास्तु ताः॥ २०

वर्षाणि दृष्ट्वा जीवेत तावदेवाधिकानि तु।
शिशुमाराकृतिं ज्ञात्वा प्रविभागेन सर्वशः॥ २१

उत्तानपादस्तस्याथ विज्ञेयः सोत्तरा हनुः।
यज्ञोऽधरस्तु विज्ञेयो धर्मो मूर्धानमाश्रितः॥ २२

हृदि नारायणः साध्या अश्विनौ पूर्वपादयोः।
वरुणश्चार्यमा चैव पश्चिमे तस्य सक्थिनी॥ २३

शिश्ने संवत्सरो ज्ञेयो मित्रश्चापानमाश्रितः।
पुच्छेऽग्निश्च महेन्द्रश्च मरीचिः कश्यपो ध्रुवः॥ २४

वायुरूपी अदृश्य रस्सियोंद्वारा बँधे हुए ये सभी अश्व भ्रमण करते हुए नियमानुसार उन रथोंको खींचते हैं। जिस प्रकार ध्रुवसे बँधे हुए सूर्य, चन्द्र आदि ग्रह गगनमण्डलमें परिभ्रमण करते हैं, उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिर्गण ध्रुवके पीछे-पीछे घूमता है। जिस प्रकार नदीके जलमें पड़ी हुई नौका जलके साथ बहती जाती है, उसी तरह देवताओंके गृह भी वायुके वेगसे वहन किये जाते हैं, इसीलिये वे आकाशमण्डलमें देव-गृह नामसे पुकारे जाते हैं। आकाशमण्डलमें जितनी तारकाएँ हैं, उतनी ही ध्रुवकी किरणें भी हैं। ये सभी तारकाएँ ध्रुवसे संलग्न हैं, इसलिये स्वयं घूमती हुई किरणें उन्हें भी घुमाती हैं। जैसे तेल पेरनेवाला चक्र (कोल्हू) स्वयं घूमता है और अपनेसे लगी हुई सभी वस्तुओंको घुमाता है, वैसे ही वायुरूपी रस्सीसे बँधी हुई ज्योतियाँ सब ओर भ्रमण करती हैं। वातचक्रसे प्रेरित होकर घूमती हुई वे ज्योतियाँ अलातचक्र (जलती हुई बनेठी)-की भाँति प्रतीत होती हैं। चूँकि वायु उन ज्योतियोंको वहन करता है, इसलिये वह 'प्रवह' नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार ध्रुवसे बँधा हुआ यह ज्योतिश्चक्र भ्रमण करता है। इसी प्रकार गगनमण्डलमें स्थित शिशुमारचक्रमें ये ध्रुव तारामय अर्थात् ताराओंसे युक्त कहे जाते हैं। दिनमें जो पाप किया जाता है, वह रात्रिमें उस चक्रको देखनेसे नष्ट हो जाता है॥ १३—१९$\frac{1}{2}$॥

शिशुमारचक्रके शरीरमें जितनी तारकाएँ स्थित हैं, उनका दर्शन कर तथा सर्वथा शिशुमारकी आकृतिको जानकर मनुष्य उतने ही अधिक वर्षोंतक जीवित रह सकता है। उत्तानपादको उस शिशुमारचक्रका ऊपरी जबड़ा तथा यज्ञको निचला जबड़ा समझना चाहिये। धर्म उसके मस्तकपर स्थित है। हृदयमें नारायण और साध्यगणोंको तथा अगले पैरोंमें अश्विनीकुमारोंको जानना चाहिये। वरुण और अर्यमा उसकी पिछली जाँघें हैं। शिश्न (जननेन्द्रिय)-के स्थानपर संवत्सरको समझिये और गुदास्थानपर मित्र स्थित हैं। उसकी पूँछमें अग्नि, महेन्द्र, मरीचि, कश्यप और ध्रुव स्थित हैं।

एष तारामयः स्तम्भो नास्तमेति न चोदयम्।
नक्षत्रचन्द्रसूर्याश्च ग्रहास्तारागणैः सह॥ २५
तन्मुखाभिमुखाः सर्वे चक्रभूता दिवि स्थिताः।
ध्रुवेणाधिष्ठिताश्चैव ध्रुवमेव प्रदक्षिणम्॥ २६
परियान्ति सुरश्रेष्ठं मेढीभूतं ध्रुवं दिवि।
आग्नीध्रकाश्यपानां तु तेषां स परमो ध्रुवः॥ २७
एक एव भ्रमत्येष मेरोरन्तरमूर्धनि।
ज्योतिषां चक्रमादाय आकर्षंस्तमधोमुखः॥ २८
मेरुमालोकयन्नेव प्रतियाति प्रदक्षिणम्॥ २९

ताराओंद्वारा निर्मित यह स्तम्भ नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और तारागणोंके साथ न अस्त होता है न उदय, अपितु ये सभी आकाशमें चक्रकी तरह उसके मुखकी ओर देखते हुए स्थित हैं। ये ध्रुवसे अधिकृत होकर आकाशस्थित मेढ़ीभूत सुरश्रेष्ठ ध्रुवकी ही प्रदक्षिणा करते हैं। उन आग्नीध्र तथा काश्यपके वंशमें ध्रुव ही सर्वश्रेष्ठ हैं। ये ध्रुव अकेले ही मेरुके अन्तर्वर्ती शिखरपर ज्योतिश्चक्रको साथ लेकर उसे खींचते हुए भ्रमण करते हैं। उस समय उनका मुख नीचेकी ओर रहता है। इस प्रकार वे मेरुको प्रकाशित करते हुए उसकी प्रदक्षिणा करते हैं॥ २०—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे ध्रुवप्रशंसा नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२७॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें ध्रुव-प्रशंसा नामक एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२७॥

एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

देव-गृहों तथा सूर्य-चन्द्रमाकी गतिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

यदेतद् भवता प्रोक्तं श्रुतं सर्वमशेषतः।
कथं देवगृहाणि स्युः कथं ज्योतींषि वर्णय॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने जो यह सारा विषय पूर्णरूपसे वर्णन किया है, उसे तो हमलोगोंने सुना, परंतु देव-गृह कैसे होते हैं? (यह जाननेकी विशेष उत्कण्ठा हो रही है।) अतः आप पुनः (पूर्वकथित) ज्योतिश्चक्रका कुछ और विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

एतत् सर्वं प्रवक्ष्यामि सूर्याचन्द्रमसोर्गतिम्।
यथा देवगृहाणि स्युः सूर्याचन्द्रमसोस्तथा॥ २
अग्नेर्व्युष्टौ रजन्यां वै ब्रह्मणाव्यक्तयोनिना।
अव्याकृतमिदं त्वासीन्नैशेन तमसाऽऽवृतम्॥ ३
चतुर्भूतावशिष्टेऽस्मिन् ब्रह्मणा समधिष्ठिते।
स्वयम्भूर्भगवांस्तत्र लोकतत्त्वार्थसाधकः॥ ४
खद्योतरूपी विचरन्नाविर्भावं व्यचिन्तयत्।
ज्ञात्वाग्निं कल्पकालादावपः पृथ्वीं च संश्रिताः॥ ५
स सम्भृत्य प्रकाशार्थं त्रिधा तुल्योऽभवत् पुनः।
पाचको यस्तु लोकेऽस्मिन् पार्थिवः सोऽग्निरुच्यते॥ ६

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं जिस प्रकार देव-गृह एवं सूर्य, चन्द्रमा और अग्निके गृह होते हैं तथा जैसी सूर्य और चन्द्रमाकी गति होती है, वह सब बतला रहा हूँ। (ब्रह्माकी) रात्रि व्यतीत होनेपर प्रातःकाल अव्यक्तयोनि ब्रह्माने देखा कि जगत्‌की कोई वस्तु दीख नहीं रही है। सारा जगत् रात्रिके अन्धकारसे आच्छन्न है। (कहीं प्रकाशका चिह्नमात्र भी अवशेष नहीं है।) ब्रह्माद्वारा अधिष्ठित इस जगत्‌में केवल चार पदार्थ अवशिष्ट थे, तब लोकोंके तत्त्वार्थको सिद्ध करनेवाले स्वयम्भू भगवान् ब्रह्मा खद्योत (जुगनू)-के रूपमें विचरण करते हुए प्रकाशको आविर्भूत करनेके लिये विचार करने लगे। (उस समय उन्हें स्मरण हुआ कि) कल्पकालके आदिमें अग्नि-तत्त्व जल और पृथ्वीमें सम्मिलित हो गया था। यह जानकर उन्होंने तीनोंको एकत्र कर प्रकाश करनेके लिये तीन भागोंमें विभक्त कर दिया। इस प्रकार इस लोकमें जो पाचक नामक अग्नि है, उसे

यश्चासौ तपते सूर्ये शुचिरग्निश्च स स्मृतः।
वैद्युतो जाठरः सौम्यो वैद्युतश्चाप्यनिन्धनः॥ ७

तेजोभिश्चाप्यते कश्चित् कश्चिदेवाप्यनिन्धनः।
काष्ठेन्धनस्तु निर्मथ्यः सोऽद्भिः शाम्यति पावकः॥ ८

अर्चिष्मयान्पचनोऽग्निस्तुनिष्प्रभः सौम्यलक्षणः।
यश्चासौ मण्डले शुक्ले निरूष्मा न प्रकाशते॥ ९

प्रभा सौरी तु पादेन अस्तं याति दिवाकरे।
अग्निमाविशते रात्रौ तस्मादग्निः प्रकाशते॥ १०

उदिते तु पुनः सूर्ये ऊष्माग्नेस्तु समाविशत्।
पादेन तेजसश्चाग्नेस्तस्मात् संतपते दिवा॥ ११

प्राकाश्यं च तथौष्ण्यं च सौर्याग्नेये तु तेजसी।
परस्परानुप्रवेशादाप्यायेते दिवानिशम्॥ १२

उत्तरे चैव भूम्यर्धे तथा ह्यस्मिंस्तु दक्षिणे।
उत्तिष्ठति पुनः सूर्ये रात्रिराविशते ह्यपः॥ १३

तस्मात् ताम्रा भवन्त्यापो दिवारात्रिप्रवेशनात्।
अस्तं गते पुनः सूर्ये अहो वै प्रविशत्यपः॥ १४

तस्मान्नक्तं पुनः शुक्ला ह्यापो दृश्यन्ति भासुराः।
एतेन क्रमयोगेन भूम्यर्धे दक्षिणोत्तरे॥ १५

उदयास्तमये चात्र ह्यहोरात्रं विशत्यपः।
यश्चासौ तपते सूर्यः सोऽपः पिबति रश्मिभिः॥ १६

सहस्रपादस्त्वेषोऽग्नी रक्तकुम्भनिभस्तु सः।
आदत्ते स तु नाडीनां सहस्रेण समन्ततः॥ १७

अपां नदीसमुद्रेभ्यो ह्रदकूपेभ्य एव च।
तस्य रश्मिसहस्रेण शीतवर्षोष्णनिःस्रवः॥ १८

तासां चतुःशतं नाड्यो वर्षन्ते चित्रमूर्तयः।

पार्थिव अग्नि कहते हैं। जो अग्नि सूर्यमें स्थित होकर ताप पैदा करती है, वह शुचि अग्नि कहलाती है। उदरमें स्थित अग्नि विद्युत्से उत्पन्न हुई मानी जाती है। उसे सौम्य कहते हैं। इस वैद्युताग्निका इन्धन जल है। कोई अग्नि अपने तेजसे ही बढ़ती है और कोई बिना इन्धनके भी उद्दीप्त होती है। काष्ठरूपी इन्धनसे जलनेवाली अग्निका नाम निर्मथ्य* है। यह अग्नि जलके संयोगसे शान्त हो जाती है। पचमान अग्नि ज्वालाओंसे संयुक्त रहता है और प्रभाहीन रहना सौम्य अग्निका लक्षण है। जो श्वेत मण्डलमें स्थित रहकर ऊष्मारहित हो प्रकाशित नहीं होती, सूर्यकी वह कान्ति सूर्यके अस्त हो जानेपर अपने चतुर्थांशसे अग्निमें प्रवेश कर जाती है, इसी कारण रातमें अग्निका प्रकाश अधिक होता है॥ २—१०॥

पुनः सूर्योदय होनेपर अग्निकी ऊष्मा अपने तेजके चतुर्थांशसे सूर्यमें प्रविष्ट हो जाती है, इस कारण दिनमें सूर्य पूर्णरूपसे तपते हैं। प्रकाशता, उष्णता, सूर्य और अग्निका तेज—इन सबके परस्पर अनुप्रवेश करनेके कारण दिन-रातकी पूर्ति होती है। पृथ्वीके उत्तरवर्ती तथा दक्षिणवर्ती अर्धभागमें सूर्यके उदय होनेपर रात्रि पुनः जलमें प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार दिनके समय रात्रिके जलमें प्रवेश करनेके कारण दिनमें जल लाल रंगका दीख पड़ता है। पुनः सूर्यके अस्त हो जानेपर दिन जलमें प्रवेश करता है। इसी कारण जल रातमें उज्ज्वल और चमकीला दिखायी पड़ता है। इसी क्रमसे भूमिके दक्षिणोत्तर अर्धभागमें सूर्यके उदय एवं अस्तके समय दिन और रात क्रमशः जलमें प्रवेश करते हैं। जो ये सूर्य तप रहे हैं, वे अपनी किरणोंद्वारा जलको सोखते हैं। सूर्यमें स्थित अग्निका रंग लाल रंगके घड़ेके समान है। उसमें हजारों किरणें हैं। वह अपनी सहस्रों नाडियोंसे नदी, समुद्र, ह्रद और कुएँसे जलको ग्रहण करता है। सूर्यकी उन्हीं हजारों किरणोंसे शीत, वर्षा और गरमीका प्रादुर्भाव होता है॥ ११—१८॥

उन सहस्रों किरणोंमें विचित्र आकृतिवाली चार सौ नाडियाँ जलकी वर्षा करनेवाली हैं। उनमें

* प्रकारान्तरसे इन अग्नियोंका बहुत कुछ उल्लेख अ० ५१ में भी हो चुका है। यहाँ १२६—२८तकके तीन अध्यायोंमें ग्रहोंके स्वरूप तथा उनके रथ, आयुध आदिका परिचय बहुत सुन्दर रूपमें कराया गया है। पहले ९४वें अध्यायमें भी इन ग्रहोंका स्वरूपनिरूपण हुआ है।

चन्दनाश्चैव मेध्याश्च केतनाश्चेतनास्तथा॥ १९
अमृता जीवनाः सर्वा रश्मयो वृष्टिसर्जनाः।
हिमोद्भवाश्च ताभ्योऽन्या रश्मयस्त्रिंशतः स्मृताः।
चन्द्रताराग्रहैः सर्वैः पीता भानोर्गभस्तयः॥ २०
एता मध्यास्तथान्याश्च ह्लादिन्यो हिमसर्जनाः।
शुक्लाश्च ककुभश्चैव गावो विश्वभृतश्च याः॥ २१
शुक्लास्ता नामतः सर्वास्त्रिंशत्या घर्मसर्जनाः।
सम्बिभ्रति हि ताः सर्वा मनुष्यान् देवताः पितॄन्॥ २२
मनुष्यानौषधीभिश्च स्वधया च पितॄनपि।
अमृतेन सुरान् सर्वान् संततं परितर्पयन्॥ २३
वसन्ते चैव ग्रीष्मे च शनैः संतपते त्रिभिः।
वर्षासु च शरद्येवं चतुर्भिः सम्प्रवर्षति॥ २४
हेमन्ते शिशिरे चैव हिमोत्सर्गस्त्रिभिः पुनः।
औषधीषु बलं धत्ते सुधां च स्वधया पुनः॥ २५
सूर्योऽमरत्वममृते त्रयस्त्रिषु नियच्छति।
एवं रश्मिसहस्रं तु सौरं लोकार्थसाधकम्॥ २६
भिद्यते ऋतुमासाद्य जलशीतोष्णनिःस्रवम्।
इत्येवं मण्डलं शुक्लं भास्वरं लोकसंज्ञितम्॥ २७
नक्षत्रग्रहसोमानां प्रतिष्ठा योनिरेव च।
ऋक्षचन्द्रग्रहाः सर्वे विज्ञेयाः सूर्यसम्भवाः॥ २८
सुषुम्ना सूर्यरश्मिर्या क्षीणं शशिनमेधते।
हरिकेशः पुरस्तात्तु यो वै नक्षत्रयोनिकृत्॥ २९
दक्षिणे विश्वकर्मा तु रश्मिराप्याययद् बुधम्।
विश्वावसुश्च यः पश्चाच्छुक्रयोनिश्च स स्मृतः॥ ३०
संवर्धनस्तु यो रश्मिः स योनिर्लोहितस्य च।
षष्ठस्तु ह्यश्वभू रश्मिर्योनिः सा हि बृहस्पतेः॥ ३१
शनैश्चरं पुनश्चापि रश्मिराप्यायते सुराट्।
न क्षीयन्ते यतस्तानि तस्मान्नक्षत्रता स्मृता॥ ३२
क्षेत्राण्येतानि वै सूर्यमापतन्ति गभस्तिभिः।
क्षेत्राणि तेषामादत्ते सूर्यो नक्षत्रता ततः॥ ३३

चन्दना, मेध्या, केतना, चेतना, अमृता और जीवना—ये सभी किरणें विशेषरूपसे वृष्टि करनेवाली हैं। सूर्यकी तीन सौ किरणें हिमसे उत्पन्न हुई कही जाती हैं। उन्हें चन्द्रमा, तारा और सभी ग्रह पीते रहते हैं। ये मध्य नाड़ियाँ कहलाती हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ह्लादिनी आदि नाड़ियाँ हिमकी सृष्टि करनेवाली हैं। शुक्ला, ककुभ, गौ और विश्वभृत् नामकी जो नाड़ियाँ हैं, वे सभी शुक्ला नामसे कही जाती हैं। इनकी भी संख्या तीन सौ है। ये धूपको उत्पन्न करनेवाली हैं। वे सभी मनुष्यों, देवताओं और पितरोंका भरण-पोषण करती हैं। ये किरणें ओषधियों (एवं अन्नों) द्वारा सभी मनुष्योंको, स्वधाद्वारा पितरोंको और अमृतके माध्यमसे देवताओंको सदा तृप्त करती रहती हैं। सूर्य वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमें शनैः-शनैः अपनी तीन सौ किरणोंसे ताप उत्पन्न करते हैं। इसी प्रकार वर्षा और शरद्-ऋतुमें चार सौ किरणोंके माध्यमसे वर्षा करते हैं। पुनः हेमन्त और शिशिर-ऋतुमें तीन सौ किरणोंद्वारा बर्फ गिराते हैं। यही सूर्य ओषधियोंमें बल, स्वधामें सुधा और अमृतमें अमरत्वका आधान करते हैं अर्थात् तीनों पदार्थोंमें तीन तरहके गुण उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार सूर्यकी ये हजारों किरणें लोगोंका प्रयोजन सिद्ध करनेवाली हैं। ऋतुओंके क्रमानुसार जलकी शीतलता और उष्णतामें परिवर्तन होता रहता है। इस प्रकार उद्दीप्त एवं श्वेत वर्णवाला वह लोकसंज्ञक मण्डल नक्षत्र, ग्रह और सोमकी प्रतिष्ठा एवं योनि है। इन सभी चन्द्र, नक्षत्र और ग्रहोंको सूर्यसे उत्पन्न हुआ जानना चाहिये॥ १९—२८॥

सूर्यकी जो सुषुम्ना नामकी किरण है, वह क्षीण हुए चन्द्रमाको पुनः बढ़ाती है। पूर्वदिशामें जो हरिकेश नामकी किरण है, वह नक्षत्रोंकी जननी है। दक्षिण दिशामें स्थित विश्वकर्मा नामकी किरण बुधको तृप्त करती है। पश्चिम दिशामें जो विश्वावसु नामक किरण है, उसे शुक्रकी योनि (उत्पत्तिस्थान) कहा जाता है। जो संवर्धन किरण है, वह लोहित (मंगल)-की योनि है। छठी किरणको अश्वभू कहते हैं, वह बृहस्पतिकी योनि है। पुनः सुराट् नामक किरण शनैश्चरकी वृद्धि करती है। चूँकि ये (चन्द्र, नक्षत्र और ग्रह) कभी नष्ट नहीं होते, इसीलिये इनकी नक्षत्रता मानी गयी है। उपर्युक्त नक्षत्रोंके क्षेत्र सूर्यपर आकर गिरते हैं और सूर्य अपनी किरणोंद्वारा उन क्षेत्रोंको ग्रहण करते हैं, इसीसे उनकी नक्षत्रता सिद्ध होती है।

अस्माल्लोकादमुं लोकं तीर्णानां सुकृतात्मनाम्।
तारणात्तारका ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव शुक्लिकाः॥ ३४

दिव्यानां पार्थिवानां च वंशानां चैव सर्वशः।
तपनस्तेजसो योगादादित्य इति गद्यते॥ ३५

सुवतिः स्पन्दनार्थे च धातुरेष निगद्यते।
सवनात्तेजसोऽपां च तेनासौ सविता स्मृतः॥ ३६

बह्वर्थश्चन्द्र इत्येष ह्लादने धातुरुच्यते।
शुक्लत्वे ह्यमृतत्वे च शीतत्वेऽपि विमान्यते॥ ३७

इस लोकसे परलोकमें जानेवाले पुण्यात्माओंका उद्धार करनेके कारण ये किरणें तारका नामसे प्रसिद्ध हैं तथा शुक्ल-वर्णकी होनेके कारण शुक्ला भी कही जाती हैं। दिव्य (स्वर्गीय) एवं पार्थिव (भौमिक) सभी प्रकारके वंशोंके तेजके संयोगसे सम्पन्न होनेके कारण सूर्यको 'तपन' कहा जाता है। 'सवति (सूते) अर्थात् 'सु' धातु 'उत्पत्ति अथवा चेतनाभाव' के अर्थमें प्रयुक्त होती है। * इसलिये (भूमि-) जल-तेजके उत्पादक होनेके कारण सूर्य सविता कहलाते हैं। इसी प्रकार '**चदि आह्लादने**' यह बह्वर्थक धातु आह्लादित करनेके अर्थमें भी प्रयुक्त होती है। इसका शुक्लत्व, अमृतत्व और शीतत्व आदि अन्य अनेकों अर्थोंमें प्रयोग किया जाता है। (इसी धातुसे चन्द्र या चन्द्रमा शब्द निष्पन्न हुआ है।)॥ २९—३७॥

सूर्याचन्द्रमसोर्दिव्ये मण्डले भास्वरे खगे।
जलतेजोमये शुक्ले वृत्तकुम्भनिभे शुभे॥ ३८
वसन्ति कर्मदेवास्तु स्थानान्येतानि सर्वशः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ऋषिसूर्यग्रहादयः॥ ३९
तानि देवगृहाणि स्युः स्थानाख्यानि भवन्ति हि।
सौरं सूर्योऽविशत्स्थानं सौम्यं सोमस्तथैव च॥ ४०
शौक्रं शुक्रोऽविशत्स्थानं षोडशारं प्रभास्वरम्।
बृहस्पतिर्बृहत्त्वं च लोहितं चापि लोहितः॥ ४१
शनैश्चरोऽविशत् स्थानमेवं शानैश्चरं तथा।
बुधोऽपि वै बुधस्थानं भानुं स्वर्भानुरेव च॥ ४२
नक्षत्राणि च सर्वाणि नाक्षत्राण्याविशन्ति च।
ज्योतींषि सुकृतामेते ज्ञेया देवगृहास्तु वै॥ ४३
स्थानान्येतानि तिष्ठन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु देवस्थानानि तानि वै॥ ४४
अभिमाने न तिष्ठन्ति तानि देवाः पुनः पुनः।
अतीतास्तु सहातीतैर्भाव्या भाव्यैः सुरैः सह॥ ४५
वर्तन्ते वर्तमानैश्च सुरैः सार्धं तु स्थानिनः।

सूर्य और चन्द्रमाके दिव्य मण्डल गगनतलमें उद्भासित होते हैं। वे सुन्दर श्वेत रंगवाले, जल और तेजसे सम्पन्न एवं कुम्भ-सदृश गोलाकार हैं। उनमें सभी मन्वन्तरोंके ऋषि एवं सूर्यादि ग्रह कर्मदेवताके रूपसे निवास करते हैं। ये ही उनके स्थान हैं, इसीसे उन्हें देव-गृह कहा जाता है। वे देव-गृह उन्हीं देवोंके नामसे प्रसिद्ध होते हैं। सूर्य सौर नामक स्थानमें तथा चन्द्रमा सौम्य स्थानमें प्रवेश करते हैं। शुक्र शौक्र स्थानमें प्रवेश करते हैं, जो सोलह अरोंसे युक्त और अत्यन्त कान्तिमान् है। इसी प्रकार बृहस्पति बृहत्त्व स्थानमें, मंगल लोहित स्थानमें, शनैश्चर शानैश्चर स्थानमें, बुध बुधस्थानमें और राहु भानुस्थानमें प्रवेश करते हैं। सभी नक्षत्र नाक्षत्र स्थानमें प्रवेश करते हैं। इस प्रकार इन सभी ज्योतियोंको उन पुण्यात्माओंके देव-गृह जानने चाहिये। ये सभी स्थान प्रलयपर्यन्त स्थित रहते हैं। सभी मन्वन्तरोंमें वे ही देवस्थान होते हैं। सभी देवता पुनः-पुनः उन्हीं अपने-अपने स्थानोंमें निवास करते हैं। अतीतकालीन स्थानीय देवता अतीतोंके साथ, भविष्यत्कालीन स्थानीय देवता भावी देवताओंके साथ और वर्तमानकालीन स्थानीय देवता वर्तमान देवताओंके साथ वर्तमान रहते हैं॥ ३८—४५ १/२॥

सूर्यो देवो विवस्वांश्च अष्टमस्त्वदितेः सुतः॥ ४६

द्युतिमान् धर्मयुक्तश्च सोमो देवो वसुः स्मृतः।
शुक्रो दैत्यस्तु विज्ञेयो भार्गवोऽसुरयाजकः॥ ४७

अदितिके आठवें पुत्र विवस्वान् सूर्य देवता माने गये हैं। प्रभाशाली एवं धर्मात्मा चन्द्रदेव वसु कहे गये हैं। भृगुनन्दन शुक्रको, जो असुरोंके पुरोहित हैं, कर्मानुसार दैत्य समझना चाहिये।

* निरुक्त, अमरटीका, धातुवृत्ति, उणादिकोश आदिके अनुसार भी 'षूङ् प्राणि-प्रसवे' धातुसे 'सविता' शब्द बनता है, जिसका अर्थ है—जगत्‌को उत्पन्न करनेवाला।

बृहस्पतिर्बृहत्तेजा देवाचार्योऽङ्गिरःसुतः।
बुधो मनोहरश्चैव शशिपुत्रस्तु स स्मृतः॥ ४८
शनैश्चरो विरूपश्च संज्ञापुत्रो विवस्वतः।
अग्निर्विकेश्यां जज्ञे तु युवासौ लोहिताधिपः॥ ४९
नक्षत्रनाम्न्यः क्षेत्रेषु दाक्षायण्याः सुताः स्मृताः।
स्वर्भानुः सिंहिकापुत्रो भूतसंतापनोऽसुरः॥ ५०
चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रेष्वभिमानी प्रकीर्तितः।
स्थानान्येतानि चोक्तानि स्थानिन्यश्चैव देवताः॥ ५१
शुक्लमग्निसमं दिव्यं सहस्रांशोर्विवस्वतः।
सहस्रांशुत्विषः स्थानमम्मयं तैजसं तथा॥ ५२
आप्यस्थानं मनोज्ञस्य रविरश्मिगृहे स्थितम्।
शुक्रः षोडशरश्मिस्तु यस्तु देवो ह्यपोमयः॥ ५३
लोहितो नवरश्मिस्तु स्थानमाप्यं तु तस्य वै।
बृहद्द्वादशरश्मीकं हरिद्राभं तु वेधसः॥ ५४
अष्टरश्मिः शनेस्तत्तु कृष्णं वृद्धमयस्मयम्।
स्वर्भानोस्त्वायसं स्थानं भूतसंतापनालयम्॥ ५५
सुकृतामाश्रयास्तारा रश्मयस्तु हिरण्मयाः।
तारणात्तारकाः ह्येताः शुक्लत्वाच्चैव तारकाः॥ ५६

महर्षि अङ्गिराके पुत्र परम तेजस्वी बृहस्पति देवोंके आचार्य हैं। मनोहर रूपवाले बुध चन्द्रमाके पुत्र हैं। शनैश्चर कुरूप कहे गये हैं। ये सूर्यके संयोगसे उत्पन्न हुए संज्ञाके पुत्र हैं। लाल रंगके अधिपति मंगल नवयुवक (माने गये) हैं। स्वयं अग्निदेव ही रूपमें विकेशी (भूमि) के* गर्भसे उत्पन्न हुए थे। नक्षत्र नामवाली सत्ताईस नक्षत्राभिमानी देवियाँ दाक्षायणीकी कन्या मानी गयी हैं। राहु सिंहिकाका पुत्र है। वह सभी प्राणियोंको कष्ट देनेवाला राक्षस है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र, ग्रह और नक्षत्रोंके अभिमानी देवताओंका वर्णन किया गया। साथ ही उनके स्थान तथा स्थानी देवता भी बतलाये गये। सहस्र किरणधारी सूर्यका स्थान दिव्य, श्वेत वर्णवाला तथा अग्निके समान तेजस्वी है। चन्द्रमाका स्थान तैजस एवं जलमय है। बुधका स्थान जलमय है और वह सूर्यकी किरणरूपी गृहमें स्थित है। शुक्रदेवका स्थान सोलह किरणोंसे युक्त एवं जलमय है। मंगल नौ किरणोंसे युक्त हैं, उनका स्थान जलमय है। बृहस्पतिका स्थान बारह किरणोंसे युक्त है और उसकी कान्ति हल्दीके समान पीली है। शनैश्चरका स्थान आठ किरणोंसे युक्त, प्राचीन, लौहमय एवं काले रंगका है। राहुका स्थान लोहेका बना है, वह प्राणियोंको कष्ट देनेवाला है। ताराएँ सुकृतीजनोंका आश्रय स्थान हैं। इनकी किरणें स्वर्णमयी हैं। जीवोंका निस्तार करनेके कारण ये तारका कहलाती हैं और शुक्लवर्ण होनेके कारण इनका शुक्ला भी नाम है॥ ४६—५६॥

नवयोजनसाहस्रो विष्कम्भः सवितुः स्मृतः।
मण्डलं त्रिगुणं चास्य विस्तारो भास्करस्य तु॥ ५७
द्विगुणः सूर्यविस्ताराद् विस्तारः शशिनः स्मृतः।
त्रिगुणं मण्डलं चास्य वैपुल्याच्छशिनः स्मृतम्॥ ५८
सर्वोपरि निसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः।
योजनार्धप्रमाणानि ताभ्योऽन्यानि गणानि तु॥ ५९
तुल्यो भूत्वा तु स्वर्भानुस्तदधस्तात् प्रसर्पति।
उद्धृत्य पार्थिवीं छायां निर्मितां मण्डलाकृतिम्॥ ६०
ब्रह्मणा निर्मितं स्थानं तृतीयं तु तमोमयम्।
आदित्यात् स तु निष्क्रम्य सोमं गच्छति पर्वसु॥ ६१
आदित्यमेति सोमाच्च पुनः सौरेषु पर्वसु।
स्वभासा तुदते यस्मात्स्वर्भानुरिति स स्मृतः॥ ६२

सूर्यके व्यासका विस्तार नौ हजार योजन है और इनका सम्पूर्ण मण्डल इस (व्यास) से तिगुना अर्थात् सत्ताईस हजार योजन है। चन्द्रमाका विस्तार सूर्यके विस्तारसे दुगुना बतलाया जाता है। चन्द्रमाका सम्पूर्ण मण्डल विपुलतामें सूर्य-मण्डलसे तिगुना है। सबके ऊपर तारकाओंके मण्डल हैं। उनका विस्तार आधे योजनका बतलाया जाता है। उनसे नीचे अन्य गणोंके स्थान हैं। राहु उनकी तुलनामें समान होते हुए भी उनके नीचेसे भ्रमण करता है। ब्रह्माद्वारा निर्मित वह तीसरा स्थान तमोमय है। उसे पृथ्वीकी छायाको ऊपर उठाकर मण्डलाकार बनाया गया है। राहु पूर्णिमा आदि पर्वोंमें सूर्यमण्डलसे निकलकर चन्द्रमण्डलमें चला जाता है और सूर्य-सम्बन्धी अमावास्या आदि पर्वोंमें पुनः चन्द्रमण्डलसे निकलकर सूर्यमण्डलमें चला आता है। वह अपनी कान्तिसे प्राणियोंको कष्ट पहुँचाता है, इसीलिये उसे स्वर्भानु कहते हैं।

* सभी पुराणों तथा मूर्त्यष्टक शिवव्याख्यानोंमें विकेशीको भूमि कहा गया है। उनके पुत्र होनेसे ही मङ्गलको भौम कहा जाता है।

चन्द्रतः षोडशो भागो भार्गवस्य विधीयते।
विष्कम्भान्मण्डलाच्चैव योजनानां तु स स्मृतः॥ ६३
भार्गवात्पादहीनश्च विज्ञेयो वै बृहस्पतिः।
बृहस्पतेः पादहीनौ कुंजसौरावुभौ स्मृतौ॥ ६४
विस्तारमण्डलाभ्यां तु पादहीनस्तयोर्बुधः।
तारानक्षत्ररूपाणि वपुष्मन्तीह यानि वै॥ ६५
बुधेन समरूपाणि विस्तारान्मण्डलात्तु वै।
तारानक्षत्ररूपाणि हीनानि तु परस्परम्॥ ६६
शतानि पञ्च चत्वारि त्रीणि द्वे चैकमेव च।
सर्वोपरि विसृष्टानि मण्डलानि तु तारकाः॥ ६७
योजनार्धप्रमाणानि तेभ्यो ह्रस्वं न विद्यते।
उपरिष्टात्तु ये तेषां ग्रहा ये क्रूरसात्त्विकाः॥ ६८
सौरश्चाङ्गिरसो वक्रो विज्ञेया मन्दचारिणः।
तेभ्योऽधस्तात्तु चत्वारः पुनश्चान्ये महाग्रहाः॥ ६९
सोमः सूर्यो बुधश्चैव भार्गवश्चेति शीघ्रगाः।
यावन्ति चैव ऋक्षाणि कोट्यस्तावन्ति तारकाः॥ ७०
सर्वेषां तु ग्रहाणां वै सूर्योऽधस्तात् प्रसर्पति।
विस्तीर्णं मण्डलं कृत्वा तस्योर्ध्वं चरते शशी॥ ७१
नक्षत्रमण्डलं चापि सोमादूर्ध्वं प्रसर्पति।
नक्षत्रेभ्यो बुधश्चोर्ध्वं बुधाच्चोर्ध्वं तु भार्गवः॥ ७२
वक्रस्तु भार्गवादूर्ध्वं वक्रादूर्ध्वं बृहस्पतिः।
तस्माच्छनैश्चरश्चोर्ध्वं देवाचार्योपरि स्थितः॥ ७३
शनैश्चरात्तथा चोर्ध्वं ज्ञेयं सप्तर्षिमण्डलम्।
सप्तर्षिभ्यो ध्रुवश्चोर्ध्वं समस्तं त्रिदिवं ध्रुवे॥ ७४
द्विगुणेषु सहस्रेषु योजनानां शतेषु च।
ग्रहान्तरमथैकैकमूर्ध्वं नक्षत्रमण्डलात्॥ ७५
ताराग्रहान्तराणि स्युरुपर्युपर्यधिष्ठितम्।
ग्रहाश्च चन्द्रसूर्यौ च दिवि दिव्येन तेजसा॥ ७६
नक्षत्रेषु च युज्यन्ते गच्छन्तो नियतक्रमात्।
चन्द्रार्कग्रहनक्षत्रा नीचोच्चगृहमाश्रिताः॥ ७७
समागमे च भेदे च पश्यन्ति युगपत्प्रजाः।
परस्परं स्थिता ह्येवं युज्यन्ते च परस्परम्॥ ७८

व्यास और बाह्यवृत्त—दोनोंके योजन-परिमाणमें शुक्रका परिमाण चन्द्रमाके सोलहवें भागके बराबर बतलाया जाता है। बृहस्पतिका परिमाण शुक्रके परिमाणसे एक चतुर्थांश कम जानना चाहिये। शनि और मंगल—ये दोनों प्रमाणमें बृहस्पतिसे चतुर्थांश कम बतलाये गये हैं। बुध इन दोनों ग्रहोंसे विस्तार और मण्डलमें चौथाई कम हैं। आकाशमण्डलमें तारा, नक्षत्र आदि जितने शरीरधारी हैं, वे सभी विस्तार और मण्डलके हिसाबसे बुधके समकक्ष हैं। तारा और नक्षत्र परस्पर एक-दूसरेसे कम हैं॥ ५७—६६॥

इस प्रकार उन सभी ज्योतिर्गणोंका मण्डल पाँच, चार, तीन, दो अथवा एक योजनमें विस्तृत है। तारकाओंके मण्डल सबसे ऊपर हैं। उनका प्रमाण आधा योजन है। इनसे कम विस्तारवाला अन्य कोई नहीं है। इनके ऊपर जो क्रूर और सात्त्विक ग्रह स्थित हैं, उन्हें शनैश्चर, बृहस्पति और मंगल समझना चाहिये। ये सभी मन्द गतिवाले हैं। इनके नीचे चन्द्र, सूर्य, बुध और शुक्र—ये चार अन्य महान् ग्रह विचरण करते हैं। ये सभी शीघ्रगामी हैं। जितने नक्षत्र हैं, उतने ही करोड़ तारकाएँ हैं। सूर्य सभी ग्रहोंके निचले भागमें गमन करते हैं। सूर्यके ऊपरी भागमें चन्द्रमा अपने मण्डलको विस्तृत करके चलते हैं। नक्षत्रमण्डल चन्द्रमासे ऊपर भ्रमण करता है। इसी प्रकार नक्षत्रोंसे ऊपर बुध, बुधसे ऊपर शुक्र, शुक्रसे ऊपर मंगल, मंगलसे ऊपर बृहस्पति और देवाचार्य बृहस्पतिके ऊपर शनैश्चर स्थित हैं। शनैश्चरसे ऊपर सप्तर्षि-मण्डलको जानना चाहिये। सप्तर्षियोंसे ऊपर ध्रुव हैं और ध्रुवसे ऊपर सारा आकाशमण्डल है। नक्षत्रमण्डलसे ऊपर प्रत्येक ग्रह दो लाख योजनोंके अन्तरपर स्थित है। ताराओं और ग्रहोंके अन्तर परस्पर एक-दूसरेके ऊपर स्थित हैं। आकाशमण्डलमें सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहगण दिव्य तेजसे युक्त हो निश्चित क्रमानुसार चलते हुए नक्षत्रोंसे मिलते हैं॥ ६७—७६ $\frac{१}{२}$॥

चन्द्रमा, सूर्य, ग्रह और नक्षत्र अपने-अपने नीचे-ऊँचे गृहोंमें स्थित होते हैं। इसी क्रमसे इनका समागम और वियोग भी होता है। उस अवसरपर सभी प्राणी इन्हें एक साथ देखते हैं। इस प्रकार स्थित रहकर ये परस्पर

असंकरेण विज्ञेयस्तेषां योगस्तु वै बुधैः।
इत्येवं संनिवेशो वै पृथिव्या ज्योतिषां च यः॥ ७९
द्वीपानामुदधीनां च पर्वतानां तथैव च।
वर्षाणां च नदीनां च ये च तेषु वसन्ति वै॥ ८०
इत्येषोऽर्कवशेनैव संनिवेशस्तु ज्योतिषाम्।
आवर्तः सान्तरो मध्ये संक्षिप्तश्च ध्रुवात्तु सः॥ ८१
सर्वतस्तेषु विस्तीर्णो वृत्ताकार इवोच्छ्रितः।
लोकसंव्यवहारार्थमीश्वरेण विनिर्मितः॥ ८२
कल्पादौ बुद्धिपूर्वं तु स्थापितोऽसौ स्वयम्भुवा।
इत्येष संनिवेशो वै सर्वस्य ज्योतिरात्मकः॥ ८३
विश्वरूपं प्रधानस्य परिणाहोऽस्य यः स्मृतः।
तेषां शक्यं न संख्यातुं याथातथ्येन केनचित्।
गतागतं मनुष्येण ज्योतिषां मांसचक्षुषा॥ ८४

संयुक्त होते हैं। विद्वान्‌लोग इनके इस सम्बन्धको अमिश्रित ही मानते हैं। इसी प्रकार पृथ्वी, ज्योतिर्गणों, द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष, नदी तथा उनमें निवास करनेवाले प्राणियोंकी स्थिति है। ज्योतिर्गणोंका यह स्थितिक्रम सूर्यके कारण ही है। (मण्डलाकार घूमते समय) उन गणोंके मध्यमें आवर्त-सा दीख पड़ता है। वह बीचमें ध्रुवके आ जानेसे संक्षिप्त हो जाता है। वह चारों ओर ऊँचाईपर गोलाकार फैला रहता है। परमेश्वरने लोकोंकी प्रयोजन-सिद्धिके लिये उसे बनाया है। ब्रह्माने कल्पके आदिमें बहुत सोच-विचारकर इसे स्थापित किया है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण ज्योतिर्मण्डलकी स्थिति है। प्रधान (प्रकृति)-का यह विश्वरूप परिणाम अत्यन्त अद्भुत है। कोई भी इसकी यथार्थ गणना नहीं कर सकता। मनुष्य अपने चर्मचक्षुओंसे इन ज्योतिर्गणोंके गमनागमनको नहीं देख सकता॥ ७७—८४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भुवनकोशे देवगृहवर्णनं नामाष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १२८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके भुवनकोश-वर्णन-प्रसङ्गमें देवगृहवर्णन नामक एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२८॥

एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय

त्रिपुर-निर्माणका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं जगाम भगवान् पुरारित्वं महेश्वरः।
ददाह च कथं देवस्तन्नो विस्तरतो वद॥ १
पृच्छामस्त्वां वयं सर्वे बहुमानात् पुनः पुनः।
त्रिपुरं तद् यथा दुर्गं मयमायाविनिर्मितम्।
देवेनैकेषुणा दग्धं तथा नो वद मानद॥ २

ऋषियोंने पूछा—सबको मान देनेवाले सूतजी! भगवान् महेश्वर पुरारि (त्रिपुरके शत्रु) किस कारण हो गये तथा उन देवाधिदेवने उसे कैसे दग्ध किया? यह आप हमलोगोंको विस्तारपूर्वक बतलाइये। हम सब लोग परम सम्मानपूर्वक आपसे बारंबार पूछ रहे हैं कि मय दानवकी मायाद्वारा विनिर्मित उस त्रिपुर दुर्गको भगवान् शंकरने एक ही बाणसे जिस प्रकार जला दिया था, हमलोगोंसे उस प्रसङ्गका विस्तारसे वर्णन कीजिये॥ १-२॥

सूत उवाच

शृणुध्वं त्रिपुरं* देवो यथा दारितवान् भवः।
मयो नाम महामायो मायानां जनकोऽसुरः॥ ३

निर्जितः स तु संग्रामे तताप परमं तपः।
तपस्यन्तं तु तं विप्रा दैत्यावन्यावनुग्रहात्॥ ४

तस्यैव कृत्यमुद्दिश्य तेपतुः परमं तपः।
विद्युन्माली च बलवांस्तारकाख्यश्च वीर्यवान्॥ ५

मयतेजःसमाक्रान्तौ तेपतुर्मयपार्श्वगौ।
लोका इव यथा मूर्तास्त्रयस्त्रय इवाग्नयः॥ ६

लोकत्रयं तापयन्तस्ते तेपुर्दानवास्तपः।
हेमन्ते जलशय्यासु ग्रीष्मे पञ्चतपे तथा॥ ७

वर्षासु च तथाऽऽकाशे क्षपयन्तस्तनूः प्रियाः।
सेवानाः फलमूलानि पुष्पाणि च जलानि च॥ ८

अन्यथाचरिताहाराः पङ्केनाचितवल्कलाः।
मग्नाः शैवालपङ्केषु विमलाविमलेषु च॥ ९

निर्मांसाश्च ततो जाताः कृशा धमनिसंतताः।
तेषां तपःप्रभावेण प्रभावविधुतं यथा॥ १०

निष्प्रभं तु जगत् सर्वं मन्दमेवाभिभाषितम्।
दह्यमानेषु लोकेषु तैस्त्रिभिर्दानवाग्निभिः॥ ११

तेषामग्रे जगद्बन्धुः प्रादुर्भूतः पितामहः।
ततः साहसकर्तारः प्राहुस्ते सहसागतम्॥ १२

स्वकं पितामहं दैत्यास्तं वै तुष्टुवुरेव च।
अथ तान् दानवान् ब्रह्मा तपसा तपनप्रभान्॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् शंकरने जिस प्रकार त्रिपुरको विदीर्ण किया था (उसका वर्णन कर रहा हूँ), सुनिये। मय नामक एक महान् मायावी असुर था। वह विभिन्न प्रकारकी मायाओंका उत्पादक था। वह संग्राममें देवताओंद्वारा पराजित हो गया था, इसलिये घोर तपस्यामें संलग्न हो गया। द्विजवरो! उसे तपस्या करते देख दो अन्य दैत्य भी अनुग्रहवश उसीके कार्यके उद्देश्यसे उग्र तपस्यामें जुट गये। उनमें एक महाबली विद्युन्माली और दूसरा महापराक्रमी तारक था। ये दोनों मयके तेजसे आकृष्ट होकर उसीके पार्श्वभागमें बैठकर तपस्या कर रहे थे। उस समय तपस्यासे उद्भासित होते हुए वे तीनों ऐसा प्रतीत हो रहे थे, मानो लौकिक रूपमें मूर्तिमान् तीनों अग्नियाँ हों। वे तीनों दानव त्रिलोकीको संतप्त करते हुए तपस्यामें संलग्न थे। वे हेमन्त-ऋतुमें जलमें शयन करते, ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्नि तापते और वर्षा-ऋतुमें आकाशके नीचे खुले मैदानमें खड़े रहते थे। इस प्रकार वे सबको परम प्रिय लगनेवाले अपने शरीरको सुखा रहे थे और मात्र फल, मूल, फूल और जलके आहारपर जीवन व्यतीत कर रहे थे अथवा वे कभी-कभी निराहार भी रह जाते थे। उनके वल्कलोंपर कीचड़ जम गया था और वे स्वयं विमल देहधारी होकर भी गंदे सेवारके कीचड़ोंमें निमग्न रहते थे। इस कारण उनके शरीरका मांस गल गया था। वे इतने दुर्बल हो गये थे कि उनके शरीरकी नसें बाहर उभड़ आयी थीं। उनकी तपस्याके प्रभावसे सारा जगत् निष्प्रभ हो गया— काँप उठा। सर्वत्र उदासी छा गयी। सभीके स्वर मन्द पड़ गये। इस प्रकार उन तीनों दानवरूपी अग्नियोंसे त्रिलोकीको जलते देखकर जगद्बन्धु पितामह ब्रह्मा उनके समक्ष प्रकट हुए॥ ३—११ $\frac{1}{2}$॥

तब वे दैत्य अपने पितामहको सहसा सम्मुख उपस्थित देखकर अत्यन्त साहस करके बोले और उनकी स्तुति करने लगे। उस समय ब्रह्माके नेत्र और मुख हर्षसे खिल उठे थे। तब उन्होंने तपस्याके प्रभावसे सूर्यके समान प्रभावशाली उन दानवोंसे

* यह महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग बहुत कुछ स्कन्द ५। ४३, शिव, सौरपु० २९-३० लिङ्गपु० ७३-४, आदि पुराणोंसे मिलता है। वैसे यह अपेक्षाकृत सर्वाधिक विस्तृत है तथा आगेके नर्मदा-माहात्म्यमें इसी ग्रन्थमें पुनः आया है। इसका बीज तै० सं० ६। ३। २। १, शतप० ६। ३। ३। २५ आदिमें प्राप्त होता है और पुष्पदन्तने भी 'शिवमहिम्नःस्तव' १८-१९ आदिके 'रथः क्षोणी यन्ता' '····त्रिपुरतृण', 'त्रिपुरहर' आदिमें इसकी खूब उत्प्रेक्षा की है।

उवाच हर्षपूर्णाक्षो हर्षपूर्णमुखस्तदा।
वरदोऽहं हि वो वत्सास्तपस्तोषित आगतः॥ १४
व्रियतामीप्सितं यच्च साभिलाषं तदुच्यताम्।
इत्येवमुच्यमानं तु प्रतिपन्नं पितामहम्॥ १५
विश्वकर्मा मयः प्राह प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः।
देव दैत्याः पुरा देवैः संग्रामे तारकामये॥ १६
निर्जितास्ताडिताश्चैव हताश्चाप्यायुधैरपि।
देवैर्वैरानुबन्धाच्च धावन्तो भयवेपिताः॥ १७
शरणं नैव जानीमः शर्म वा शरणार्थिनः।
सोऽहं तपःप्रभावेण तव भक्त्या तथैव च॥ १८
इच्छामि कर्तुं तद् दुर्गं यद् देवैरपि दुस्तरम्।
तस्मिंश्च त्रिपुरे दुर्गे मत्कृते कृतिनां वर॥ १९
भूम्यग्निजलदुर्गाणां शापानां मुनितेजसाम्।
देवप्रहरणानां च देवानां च प्रजापते॥ २०
अलङ्घनीयं भवतु त्रिपुरं यदि ते प्रियम्।
विश्वकर्मा इतीत्युक्तः स तदा विश्वकर्मणा॥ २१
उवाच प्रहसन् वाक्यं मयं दैत्यगणाधिपम्।
सर्वामरत्वं नैवास्ति असद्वृत्तस्य दानव॥ २२
तस्माद् दुर्गविधानं हि तृणादपि विधीयताम्।
पितामहवचः श्रुत्वा तदैव दानवो मयः॥ २३
प्राञ्जलिः पुनरप्याह ब्रह्माणं पद्मसम्भवम्।
यस्तदेकेषुणा दुर्गं सकृन्मुक्तेन निर्दहेत्॥ २४
समं स संयुगे हन्यादवध्यं शेषतो भवेत्।
एवमस्त्विति चाप्युक्त्वा मयं देवः पितामहः॥ २५
स्वप्ने लब्धो यथार्थो वै तत्रैवादर्शनं ययौ।
गते पितामहे दैत्या गता मयरविप्रभाः॥ २६
वरदानाद् विरेजुस्ते तपसा च महाबलाः।
स मयस्तु महाबुद्धिर्दानवो वृषसत्तमः॥ २७

कहा—'बच्चो! मैं तुमलोगोंकी तपस्यासे संतुष्ट होकर तुम्हें वर देनेके लिये आया हूँ। तुमलोगोंकी जो अभिलाषा हो, उसे कहो और अपना अभीष्ट वर माँग लो।' वर देनेके लिये उत्सुक पितामहको इस प्रकार कहते हुए देखकर असुरोंके शिल्पी मयके नेत्र अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो उठे। तब उसने कहा—'देव! प्राचीनकालमें घटित हुए तारकामय संग्राममें देवताओंने दैत्योंको पराजित कर दिया था। उन्होंने अस्त्रोंके प्रहारसे कुछको तो मौतके घाट उतार दिया था और कुछको बुरी तरहसे घायल कर दिया था। उस समय देवताओंके साथ वैर बँध जानेके कारण हमलोग भयसे कम्पित होकर चारों दिशाओंमें भागते फिरे, परंतु हम शरणार्थियोंको यह ज्ञात न हुआ कि हमारे लिये शरणदाता कौन है तथा हमारा कल्याण कैसे होगा। इसलिये मैं अपनी तपस्याके प्रभावसे तथा आपकी भक्तिके बलपर एक ऐसे दुर्गका निर्माण करना चाहता हूँ, जिसका पार करना देवताओंके लिये भी कठिन हो। सुकृती पुरुषोंमें श्रेष्ठ पितामह! मेरे द्वारा निर्मित उस त्रिपुरमें पृथ्वी, जल एवं अग्निसे निर्मित तथा सुरक्षित दुर्गोंका और मुनियोंके प्रभावसे दिये गये शापों, देवताओंके अस्त्रों और देवोंका प्रवेश न हो सके। प्रजापते! यदि आपको अच्छा लगे तो वह त्रिपुर सभीके लिये अलङ्घनीय हो जाय॥ १३—२० $\frac{1}{2}$॥

तब असुरोंके विश्वकर्मा (महाशिल्पी) मयद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर विश्व-स्रष्टा ब्रह्मा दैत्यगणोंके अधीश्वर मयसे हँसते हुए बोले—'दानव! (तुझ-जैसे) असदाचारीके लिये सर्वामरत्वका विधान नहीं है, अतः तुम तृणसे ही अपने दुर्गका निर्माण करो।' उस समय पितामहकी ऐसी बात सुनकर मय दानवने हाथ जोड़कर पुनः पद्मयोनि ब्रह्मासे कहा—'जो एक ही बारके छोड़े गये एक ही बाणसे उस दुर्गको जला दे, वही युद्धस्थलमें हम सबको मार सके, शेष प्राणियोंसे हमलोग अवध्य हो जायँ।' तदनन्तर मयसे 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर भगवान् ब्रह्मा स्वप्नमें प्राप्त हुए धनकी तरह वहीं अन्तर्हित हो गये। पितामहके चले जानेपर सूर्यके समान प्रभावशाली मय आदि दानव भी अपने स्थानको चले गये। वे महाबली दानव तपस्या तथा वरदानके प्रभावसे अत्यन्त शोभित हो रहे थे। कुछ समयके बाद दानवश्रेष्ठ महाबुद्धिमान् मय

दुर्गं व्यवसितः कर्तुमिति चाचिन्तयत् तदा।
कथं नाम भवेद् दुर्गं तन्मया त्रिपुरं कृतम्॥ २८
वत्स्यते तत्पुरं दिव्यं मत्तो नान्यैर्न संशयः।
यथा चैकेषुणा तेन तत्पुरं न हि हन्यते॥ २९
देवैस्तथा विधातव्यं मया मतिविचारणम्।
विस्तारो योजनशतमेकैकस्य पुरस्य तु॥ ३०
कार्यस्तेषां च विष्कम्भश्चैकैकशतयोजनम्।
पुष्ययोगेण निर्माणं पुराणां च भविष्यति॥ ३१
पुष्ययोगेण च दिवि समेष्यन्ति परस्परम्।
पुष्ययोगेण युक्तानि यस्तान्यासादयिष्यति॥ ३२
पुराण्येकप्रहारेण स तानि निहनिष्यति।
आयसं तु क्षितितले राजतं तु नभस्तले॥ ३३
राजतस्योपरिष्टात् तु सौवर्णं भविता पुरम्।
एवं त्रिभिः पुरैर्युक्तं त्रिपुरं तद् भविष्यति।
शतयोजनविष्कम्भैरन्तरैस्तद् दुरासदम्॥ ३४
अट्टालकैर्यन्त्रशतघ्निभिश्च
सचक्रशूलोपलकम्पनैश्च।
द्वारैर्महामन्दरमेरुकल्पैः प्राकार-
शृङ्गैः सुविराजमानम्॥ ३५
सतारकाख्येन मयेन गुप्तं
स्वस्थं च गुप्तं तडिमालिनापि।
को नाम हन्तुं त्रिपुरं समर्थो
मुक्त्वा त्रिनेत्रं भगवन्तमेकम्॥ ३६

दानव दुर्गकी रचना करनेके लिये उद्यत हो विचार करने लगा। मेरे द्वारा निर्मित होनेवाला यह त्रिपुर दुर्ग कैसा बनाया जाय, जिससे उस दिव्य पुरमें निस्संदेह मेरे अतिरिक्त अन्य कोई निवास न कर सके तथा उसके द्वारा छोड़े गये एक बाणसे यह पुर बींधा न जा सके। देवगण उसे नष्ट करनेकी चेष्टा करेंगे ही, किंतु मुझे तो अपनी बुद्धिसे विचार कर लेना चाहिये। उनमें एक-एक पुरका विस्तार सौ योजनका करना है तथा उनके विष्कम्भ (स्तम्भ या शहतीर) भी एक-एक सौ योजनके बनाने हैं॥ २१—३० १/२॥

इन पुरोंका निर्माण पुष्य नक्षत्रके योगमें होगा। इसी पुष्य नक्षत्रके योगमें ये तीनों पुर आकाशमण्डलमें परस्पर मिल जायँगे। जो मनुष्य पुष्य नक्षत्रके योगमें इन तीनों पुरोंको परस्पर मिला हुआ पा लेगा, वही एक बाणके प्रहारसे इन्हें नष्ट कर सकेगा। उनमेंसे एक पुर भूतलपर लौहमय, दूसरा गगनतलमें रजतमय और तीसरा रजतमय पुरसे ऊपर सुवर्णमय होगा। इस प्रकार तीनों पुरोंसे युक्त होनेके कारण वह त्रिपुर नामसे विख्यात होगा। इनके अन्तर्भागमें सौ योजन विस्तारवाले विष्कम्भ (बाधक स्तम्भ) रहेंगे, जिससे यह दूसरोंद्वारा दुष्प्राप्य होगा। वह त्रिपुर अट्टालिकाओं, एक ही बारमें सौ मनुष्योंका वध करनेवाले यन्त्रों, चक्र, त्रिशूल, उपल और ध्वजाओं, मन्दराचल और सुमेरु गिरि-सरीखे द्वारों और शिखर-सदृश परकोटोंसे सुशोभित होगा। उनमें तारक लौहमय पुरकी और मय सुवर्णमय पुरकी रक्षा करेंगे तथा आकाशस्थित रजतमय पुरकी रक्षामें विद्युन्माली नियुक्त रहेगा। ऐसी दशामें एकमात्र भगवान् शंकरको छोड़कर दूसरा कौन इस त्रिपुरका विनाश करनेमें समर्थ हो सकेगा॥ ३१—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १२९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें एक सौ उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १२९॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय

दानवश्रेष्ठ मयद्वारा त्रिपुरकी रचना

सूत उवाच

इति चिन्तायुतो दैत्यो दिव्योपायप्रभावजम्।
चकार त्रिपुरं दुर्गं मनःसंचारचारितम्॥ १

प्राकारोऽनेन मार्गेण इह वामुत्र गोपुरम्।
इह चाट्टालकद्वारमिह चाट्टालगोपुरम्॥ २

राजमार्ग इतश्चापि विपुलो भवतामिति।
रथ्योपरथ्याः सदृशा इह चत्वर एव च॥ ३

इदमन्तःपुरस्थानं रुद्रायतनमत्र च।
सवटानि तडागानि ह्यत्र वाप्यः सरांसि च॥ ४

आरामाश्च सभाश्चात्र उद्यानान्यत्र वा तथा।
उपनिर्गमो दानवानां भवत्यत्र मनोहरः॥ ५

इत्येवं मानसं तत्राकल्पयत् पुरकल्पवित्।
मयेन तत्पुरं सृष्टं त्रिपुरं त्विति नः श्रुतम्॥ ६

कार्ष्णायसमयं यत्तु मयेन विहितं पुरम्।
तारकाख्योऽधिपस्तत्र कृतस्थानाधिपोऽवसत्॥ ७

यत्तु पूर्णेन्दुसंकाशं राजतं निर्मितं पुरम्।
विद्युन्माली प्रभुस्तत्र विद्युन्माली त्विवाम्बुदः॥ ८

सुवर्णाधिकृतं यच्च मयेन विहितं पुरम्।
स्वयमेव मयस्तत्र गतस्तदधिपः प्रभुः॥ ९

तारकस्य पुरं तत्र शतयोजनमन्तरम्।
विद्युन्मालिपुरं चापि शतयोजनकेऽन्तरे॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार सोच-विचारकर (महाशिल्पी) मय दानव दिव्य उपायोंके प्रभावसे बननेवाले तथा मनके संकल्पानुसार चलनेवाले त्रिपुर नामक दुर्गकी रचना करनेको उद्यत हुआ। उसने सोचा कि इस मार्गमें परकोटा बनेगा, यहाँ अथवा वहाँ गोपुर (नगरका फाटक) रहेगा, यहाँ अट्टालिकाका दरवाजा तथा यहाँ महलका मुख्य द्वार रखना उचित है। इधर विशाल राजमार्ग होना चाहिये, यहाँ दोनों ओर पगडंडियोंसे युक्त सड़कें और गलियाँ होनी चाहिये, यहाँ चबूतरा रखना ठीक है, यह स्थान अन्तःपुरके योग्य है, यहाँ शिव-मन्दिर रखना अच्छा होगा, यहाँ वट-वृक्षसहित तड़ागों, बावलियों और सरोवरोंका निर्माण उचित होगा। यहाँ बगीचे, सभाभवन और वाटिकाएँ रहेंगी तथा यहाँ दानवोंके निकलनेके लिये मनोहर मार्ग रहेगा। इस प्रकार नगर-रचनामें निपुण मयने केवल मनःसंकल्पमात्रसे उस दिव्य त्रिपुर नगरकी रचना कर डाली थी, ऐसा हमने सुना है। मयने जो काले लोहेका पुर निर्मित किया था, उसका अधिपति तारकासुर हुआ। वह उसपर अपना आधिपत्य जमाकर वहाँ निवास करने लगा। दूसरा जो पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् रजतमय पुर निर्मित हुआ, उसका स्वामी विद्युन्माली हुआ। यह विद्युत्समूहोंसे युक्त बादलकी तरह जान पड़ता था। मयद्वारा जिस तीसरे स्वर्णमय पुरकी रचना हुई, उसमें सामर्थ्यशाली मय स्वयं गया और उसका अधिपति हुआ। जिस प्रकार तारकासुरके पुरसे विद्युन्मालीका पुर सौ योजनकी दूरीपर था, उसी प्रकार विद्युन्माली और मयके पुरोंमें भी सौ योजनका अन्तर था। मय दानवका विशाल पुर मेरुपर्वतके समान दीख पड़ता था॥ १—१०½॥

मेरुपर्वतसंकाशं मयस्यापि पुरं महत्।
पुष्यसंयोगमात्रेण कालेन स मयः पुरा॥ ११

कृतवांस्त्रिपुरं दैत्यस्त्रिनेत्रः पुष्पकं यथा।
येन येन मयो याति प्रकुर्वाणः पुरं पुरात्॥ १२

प्रशस्तास्तत्र तत्रैव वारुण्या मालया स्वयम्।
रुक्मरूप्यायसानां च शतशोऽथ सहस्रशः॥ १३

रत्नाचितानि शोभन्ते पुराण्यमरविद्विषाम्।
प्रासादशतजुष्टानि कूटागारोत्कटानि च॥ १४

सर्वेषां कामगानि स्युः सर्वलोकातिगानि च।
सोद्यानवापीकूपानि सपद्मसरवन्ति च॥ १५

अशोकवनभूतानि कोकिलारुतवन्ति च।
चित्रशालविशालानि चतुःशालोत्तमानि च॥ १६

सप्ताष्टदशभौमानि सत्कृतानि मयेन च।
बहुध्वजपताकानि स्रग्दामालंकृतानि च॥ १७

किङ्किणीजालशब्दानि गन्धवन्ति महान्ति च।
सुसंयुक्तोपलिप्तानि पुष्पनैवेद्यवन्ति च॥ १८

यज्ञधूमान्धकाराणि सम्पूर्णकलशानि च।
गगनावरणाभानि हंसपङ्क्तिनिभानि च॥ १९

पङ्क्तीकृतानि राजन्ते गृहाणि त्रिपुरे पुरे।
मुक्ताकलापैर्लम्बद्भिर्हसन्तीव शशिश्रियम्॥ २०

मल्लिकाजातिपुष्पाद्यैर्गन्धधूपाधिवासितैः।
पञ्चेन्द्रियसुखैर्नित्यं समैः सत्पुरुषैरिव॥ २१

हैमराजतलौहाद्यमणिरत्नाञ्जनाङ्किताः।
प्राकारास्त्रिपुरे तस्मिन् गिरिप्राकारसंनिभाः॥ २२

जिस प्रकार पूर्वकालमें त्रिलोचन भगवान् शंकरने पुष्पककी रचना की थी, उसी प्रकार मय दानवने केवल पुष्यनक्षत्रके संयोगसे कालकी व्यवस्था करके त्रिपुरका निर्माण किया। पुरकी रचना करता हुआ मय जिस-जिस मार्गसे एक पुरसे दूसरे पुरमें जाता था, वहाँ-वहाँ वरुणकी दी हुई मालाद्वारा उत्पन्न चमत्कारसे सोने, चाँदी और लोहेके सैकड़ों-हजारों भवन स्वयं ही बनते जाते थे। उन देव-शत्रुओंके पुर रत्नखचित होनेके कारण विशेष शोभा पा रहे थे। वे सैकड़ों महलोंसे युक्त थे। उनमें ऊँचे-ऊँचे कूटागार (छतके ऊपरकी कोठरियाँ) बने थे। उनमें सभी लोग स्वच्छन्द विचरण करते थे। वे (सुन्दरतामें) सभी लोकोंका अतिक्रमण करनेवाले थे। उनमें उद्यान, बावली, कुआँ और कमलोंसे युक्त सरोवर शोभा पा रहे थे। उनमें अशोक वृक्षके बहुतेरे वन थे, जिनमें कोयलें कूजती रहती थीं। उनमें बड़ी-बड़ी चित्रशालाएँ और उत्तम अटारियाँ बनी थीं। मयने क्रमशः सात, आठ और दस तल्लेवाले भवनोंका बड़ी सुन्दरताके साथ निर्माण किया था। उनपर बहुसंख्यक ध्वज और पताकाएँ फहरा रही थीं। वे मालाकी लड़ियोंसे अलंकृत थे। उनमें लगी हुई क्षुद्र घण्टिकाओंके शब्द हो रहे थे। वे उत्कृष्ट गन्धयुक्त पदार्थोंसे सुवासित थे। उन्हें समुचितरूपसे उपलिप्त किया गया था। उनमें पुष्प, नैवेद्य आदि पूजन-सामग्री सँजोयी गयी थी और जलपूर्ण कलश स्थापित थे। वे यज्ञजन्य धुएँसे अन्धकारित हो रहे थे। उस त्रिपुर नामक पुरमें आकाशसरीखे नीले तथा हंसोंकी पङ्क्तिके समान उज्ज्वल भवन कतारोंमें सुशोभित हो रहे थे। उनमें लटकती हुई मोतियोंकी झालरें ऐसी प्रतीत होती थीं, मानो चन्द्रमाकी शोभाका उपहास कर रही हैं॥ ११—२०॥

वे नित्य मल्लिका, चमेली आदि सुगन्धित पुष्पों तथा गन्ध, धूप आदिसे अधिवासित होनेसे पाँचों इन्द्रियोंके सुखोंसे समन्वित सत्पुरुषोंकी तरह सुशोभित हो रहे थे। उस त्रिपुरमें सोने, चाँदी और लोहेके प्राचीर बने हुए थे, जिनमें मणि, रत्न और अंजन (काले पत्थर) जड़े हुए थे।

एकैकस्मिन् पुरे तस्मिन् गोपुराणां शतं शतम्।
सपताकाध्वजवतां दृश्यन्ते गिरिशृङ्गवत्॥ २३
नूपुरारावरम्याणि त्रिपुरे तत्पुराण्यपि।
स्वर्गातिरिक्तश्रीकाणि तत्र कन्यापुराणि च॥ २४
आरामैश्च विहारैश्च तडागवटचत्वरैः।
सरोभिश्च सरिद्भिश्च वनैश्चोपवनैरपि॥ २५
दिव्यभोगोपभोगानि नानारत्नयुतानि च।
पुष्पोत्करैश्च सुभगास्त्रिपुरस्योपनिर्गमाः।
परिखाशतगम्भीराः कृता मायानिवारणैः॥ २६
निशम्य तद्दुर्गविधानमुत्तमं
कृतं मयेनाद्भुतवीर्यकर्मणा।
दितेः सुता दैवतराजवैरिणः
सहस्रशः प्रापुरनन्तविक्रमाः॥ २७
तदा सुरैर्दर्पितवैरिमर्दनै-
र्जनार्दनैः शैलकरीन्द्रसंनिभैः।
बभूव पूर्णं त्रिपुरं तथा पुरा
यथाम्बरं भूरिजलैर्जलप्रदैः॥ २८

वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो पर्वतोंकी चहारदीवारी हो। उस एक-एक पुरमें सैकड़ों गोपुर बने थे, जिनपर ध्वजा और पताकाएँ फहरा रही थीं। वे पर्वत-शिखरके समान दीख रहे थे। उस त्रिपुरमें नूपुरोंकी झनकार होती थी, जिससे वे अत्यन्त रमणीय लग रहे थे। उन पुरोंका सौन्दर्य स्वर्गसे भी बढ़कर था। उनमें कन्यापुर भी बने हुए थे। वे बगीचों, विहारस्थलों, तड़ागों, वटवृक्षके नीचे बने चबूतरों, सरोवरों, नदियों, वनों और उपवनोंसे सम्पन्न थे। वे दिव्य भोगकी सामग्रियों और नाना प्रकारके रत्नोंसे परिपूर्ण थे। उस त्रिपुरके बाहर निकलनेवाले मार्गोंपर पुष्प बिखेरे गये थे, जिससे वे बड़े सुन्दर लग रहे थे। उनमें मायाको निवारण करनेवाले उपकरणोंद्वारा सैकड़ों गहरी खाइयाँ बनायी गयी थीं। अद्भुत पराक्रमयुक्त कर्म करनेवाले मयके द्वारा निर्मित उस उत्तम दुर्गकी रचनाका वृत्तान्त सुनकर देवराज इन्द्रके शत्रु अनन्त पराक्रमी हजारों दैत्य वहाँ आ पहुँचे। उस समय वह त्रिपुर गर्वीले शत्रुओंका मान मर्दन करनेवाले, जनताके लिये कष्टदायक तथा पर्वतीय गजेन्द्रोंके समान विशालकाय असुरोंसे उसी प्रकार खचाखच भर गया, जैसे अधिक जलवाले बादलोंसे आकाश आच्छादित हो जाता है॥ २१—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें एक सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३०॥

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय

त्रिपुरमें दैत्योंका सुखपूर्वक निवास, मयका स्वप्न-दर्शन और दैत्योंका अत्याचार

सूत उवाच

निर्मिते त्रिपुरे दुर्गे मयेनासुरशिल्पिना।
तद् दुर्गं दुर्गतां प्राप बद्धवैरैः सुरासुरैः॥ १
सकलत्राः सपुत्राश्च शस्त्रवन्तोऽन्तकोपमाः।
मयादिष्टानि विविशुर्गृहाणि हृषिताश्च ते॥ २

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! इस प्रकार असुरशिल्पी मयने त्रिपुर नामक दुर्गका निर्माण किया, परंतु अन्ततोगत्वा परस्पर बँधे हुए वैरवाले देवताओं और असुरोंके लिये वह दुर्ग दुर्गम हो गया। उस समय वे सभी शस्त्रधारी दैत्य जो यमराजके समान भयंकर थे, मयके आदेशसे अपनी स्त्रियों और पुत्रोंके साथ हर्षपूर्वक उन गृहोंमें

सिंहा वनमिवानेके मकरा इव सागरम्।
रोषैश्चैवातिपारुष्यैः शरीरमिव संहतैः॥ ३
तद्वद् बलिभिरध्यस्तं तत्पुरं देवतारिभिः।
त्रिपुरं संकुलं जातं दैत्यकोटिशताकुलम्॥ ४
सुतलादपि निष्पत्य पातालाद् दानवालयात्।
उपतस्थुः पयोदाभा ये च गिर्युपजीविनः॥ ५
यो यं प्रार्थयते कामं सम्प्राप्तस्त्रिपुराश्रयात्।
तस्य तस्य मयस्तत्र मायया विदधाति सः॥ ६
सचन्द्रेषु प्रदोषेषु साम्बुजेषु सरःसु च।
आरामेषु सचूतेषु तपोधनवनेषु च॥ ७
स्वङ्गाश्चन्दनदिग्धाङ्गा मातङ्गाः समदा इव।
मृष्टाभरणवस्त्राश्च मृष्टस्त्रगनुलेपनाः॥ ८
प्रियाभिः प्रियकामाभिर्हावभावप्रसूतिभिः।
नारीभिः सततं रेमुर्मुदिताश्चैव दानवाः॥ ९

प्रविष्ट हुए। जैसे अनेकों सिंह वनको, अनेकों मगरमच्छ सागरको और क्रोध एवं अत्यन्त कठोरता परस्पर सम्मिलित होकर शरीरको अपने अधिकारमें कर लेते हैं, वैसे ही उन महाबली देव-शत्रुओंद्वारा वह पुर व्याप्त हो गया। इस प्रकार वह त्रिपुर असंख्य (अरबों) दैत्योंसे भर गया। उस समय सुतल और पाताल (दानवोंके निवासस्थान)-से निकलकर आये हुए दानव तथा (देवताओंके भयसे छिपकर) पर्वतोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले दैत्य भी, जो काले बादलकी-सी कान्तिवाले थे, (शरणार्थीके रूपमें) वहाँ उपस्थित हुए। त्रिपुरमें आश्रय लेनेके कारण जो असुर जिस वस्तुकी कामना करता था, उसकी उस कामनाको मय दानव मायाद्वारा पूर्ण कर देता था। जिनके सुडौल शरीरपर चन्दनका अनुलेप लगा था, जो निर्मल आभूषण, वस्त्र, माला और अङ्गरागसे अलंकृत थे तथा मतवाले गजेन्द्रसरीखे दीख रहे थे, ऐसे दानव चाँदनी रातोंमें एवं सायंकालके समय कमलसे सुशोभित सरोवरोंके तटपर, आमके बगीचों और तपोवनोंमें अपनी पत्नियोंके साथ निरन्तर हर्षपूर्वक विहार करते थे॥ १—९॥

मयेन निर्मिते स्थाने मोदमाना महासुराः।
अर्थे धर्मे च कामे च निदधुस्ते मतीः स्वयम्॥ १०
तेषां त्रिपुरयुक्तानां त्रिपुरे त्रिदशारिणाम्।
व्रजति स्म सुखं कालः स्वर्गस्थानां यथा तथा॥ ११
शुश्रूषन्ते पितॄन् पुत्राः पत्न्यश्चापि पतींस्तथा।
विमुक्तकलहाश्चापि प्रीतयः प्रचुराभवन्॥ १२
नाधर्मस्त्रिपुरस्थानां बाधते वीर्यवानपि।
अर्चयन्तो दितेः पुत्रास्त्रिपुरायतने हरम्॥ १३
पुण्याहशब्दानुच्चैरुराशीर्वादांश्च वेदगान्।
स्वनूपुररवोन्मिश्रान् वेणुवीणारवानपि॥ १४
हासश्च वरनारीणां चित्तव्याकुलकारकः।
त्रिपुरे दानवेन्द्राणां रमतां श्रूयते सदा॥ १५

इस प्रकार मयद्वारा निर्मित उस स्थानपर निवास करते हुए वे महासुर आनन्दका उपभोग कर रहे थे। उन्होंने स्वयं ही धर्म, अर्थ और कामके सम्पादनमें अपनी बुद्धि लगायी। त्रिपुरमें निवास करनेवाले उन देव-शत्रुओंका समय ऐसा सुखमय व्यतीत हो रहा था, जैसे स्वर्गवासियोंका व्यतीत होता है। वहाँ पुत्र पितृगणोंकी तथा पत्नियाँ पतियोंकी सेवा करती थीं। वे परस्पर कलह नहीं करते थे। उनमें परम प्रेम था। किसी प्रकारका अधर्म प्रबल होनेपर भी त्रिपुर-निवासियोंको बाधा नहीं पहुँचाता था। वे दैत्य शिव-मन्दिरमें शङ्करजीकी अर्चना करते हुए वेदोक्त माङ्गलिक शब्दों एवं आशीर्वादोंका उच्चारण करते थे। त्रिपुरमें आनन्द मनानेवाले दानवेन्द्रोंके अपने नूपुरकी झनकारसे मिश्रित वेणु एवं वीणाके शब्द तथा सुन्दरी नारियोंके चित्तको व्याकुल कर देनेवाले हास सदा सुनायी पड़ते थे।

तेषामर्चयतां देवान् ब्राह्मणांश्च नमस्यताम्।
धर्मार्थकामतन्त्राणां महान् कालोऽभ्यवर्तत॥ १६

अथालक्ष्मीरसूया च तृड्बुभुक्षे तथैव च।
कलिश्च कलहश्चैव त्रिपुरं विविशुः सह॥ १७

संध्याकालं प्रविष्टास्ते त्रिपुरं च भयावहाः।
समभ्यासुः समं घोराः शरीराणि यथाऽऽमयाः॥ १८

सर्व एते विशन्तस्तु मयेन त्रिपुरान्तरम्।
स्वप्ने भयावहा दृष्टा आविशन्तस्तु दानवान्॥ १९

उदिते च सहस्रांशौ शुभभासाकरे रवौ।
मयः सभामाविवेश भास्कराभ्यामिवाम्बुदः॥ २०

मेरुकूटनिभे रम्य आसने स्वर्णमण्डिते।
आसीनाः काञ्चनगिरेः शृङ्गे तोयमुचो यथा॥ २१

पार्श्वयोस्तारकाख्यश्च विद्युन्माली च दानवः।
उपविष्टौ मयस्यान्ते हस्तिनः कलभाविव॥ २२

ततः सुरारयः सर्वेऽशेषकोपा रणाजिरे।
उपविष्टा दृढं विद्धा दानवा देवशत्रवः॥ २३

तेष्वासीनेषु सर्वेषु सुखासनगतेषु च।
मयो मायाविजनक इत्युवाच स दानवान्॥ २४

खेचराः खेचरारावा भो भो दाक्षायणीसुताः*।
निशामयध्वं स्वप्नोऽयं मया दृष्टो भयावहः॥ २५

चतस्रः प्रमदास्तत्र त्रयो मर्त्या भयावहाः।
कोपानलादीप्तमुखाः प्रविष्टास्त्रिपुरार्दिनः॥ २६

इस प्रकार देवताओंकी अर्चना और ब्राह्मणोंको नमस्कार करनेवाले तथा धर्म, अर्थ एवं कामके साधक उन दैत्योंका महान् समय व्यतीत होता गया। तदनन्तर अलक्ष्मी (दरिद्रता), असूया (गुणोंमें दोष निकालना), तृष्णा, बुभुक्षा (भूख), कलि और कलह—ये सब एक साथ मिलकर त्रिपुरमें प्रविष्ट हुए। इन भयदायक दुर्गुणोंने सायंकाल त्रिपुरमें प्रवेश किया था। इन्होंने राक्षसोंपर ऐसा अधिकार जनाया, जैसे भयंकर व्याधियाँ शरीरोंको काबूमें कर लेती हैं। त्रिपुरके भीतर प्रवेश करते हुए इन दुर्गुणोंको मयने स्वप्नमें दानवोंके शरीरमें भयानक रूपसे प्रविष्ट होते हुए देख लिया। तब सहस्र किरणधारी एवं उज्ज्वल प्रकाश करनेवाले सूर्यके उदय होनेपर मयने (तारक और विद्युन्मालीके साथ) दो सूर्योंसे युक्त बादलकी तरह सभाभवनमें प्रवेश किया। वहाँ वे मेरुगिरिके शिखरके समान सुन्दर स्वर्णमण्डित रमणीय आसनपर आसीन हो गये। उस समय वे ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो सुमेरुगिरिके शिखरपर बादल उमड़ आये हों। मय दानवके निकट एक ओर तारकासुर और दूसरी ओर दानवश्रेष्ठ विद्युन्माली बैठे हुए थे, जो हाथीके बच्चेकी तरह दीख रहे थे॥ १०—२२॥

तत्पश्चात् युद्धस्थलमें अत्यन्त घायल होनेके कारण जिनके क्रोध शेष रह गये थे, वे सभी देवशत्रु दानव वहाँ आकर यथास्थान बैठ गये। इस प्रकार उन सबके सुखपूर्वक आसनपर बैठ जानेके पश्चात् मायाके उत्पादक मयने उन दानवोंसे इस प्रकार कहा—'अरे दाक्षायणीके पुत्रो! तुमलोग आकाशमें विचरण करनेवाले तथा आकाशचारियोंमें विशेषरूपसे गर्जना करनेवाले हो। मैंने यह एक भयानक स्वप्न देखा है, उसे तुमलोग ध्यानपूर्वक सुनो। मैंने स्वप्नमें चार स्त्रियों और तीन पुरुषोंको पुरमें प्रवेश करते हुए देखा है। उनके रूप भयानक थे तथा

* दक्षकी कन्या दनुको ही यहाँ दाक्षायणी कहा गया है। सभी दानव कश्यपजीके द्वारा उत्पन्न इन्हीं दनुके पुत्र थे। दैत्यगण दितिके पुत्र थे।

प्रविश्य रुषितास्ते च पुराण्यतुलविक्रमाः।
प्रविष्टाः स्म शरीराणि भूत्वा बहुशरीरिणः॥ २७

नगरं त्रिपुरं चेदं तमसा समवस्थितम्।
सगृहं सह युष्माभिः सागराम्भसि मज्जितम्॥ २८

उलूकं रुचिरा नारी नग्नाऽऽरूढा खरं तथा।
पुरुषः सिन्दुतिलकश्चतुरङ्घ्रिस्त्रिलोचनः॥ २९

येन सा प्रमदा नुन्ना अहं चैव विबोधितः।
ईदृशी प्रमदा दृष्टा मया चातिभयावहा॥ ३०

एष ईदृशिकः स्वप्नो दृष्टो वै दितिनन्दनाः।
दृष्टः कथं हि कष्टाय असुराणां भविष्यति॥ ३१

यदि वोऽहं क्षमो राजा यदिदं वेत्थ चेद्धितम्।
निबोधध्वं सुमनसो न चासूयितुमर्हथ॥ ३२

कामं चेर्ष्यां च कोपं च असूयां संविहाय च।
सत्ये दमे च धर्मे च मुनिवादे च तिष्ठत॥ ३३

शान्तयश्च प्रयुज्यन्तां पूज्यतां च महेश्वरः।
यदि नामास्य स्वप्नस्य ह्येवं चोपरमो भवेत्॥ ३४

कुप्यते नो ध्रुवं रुद्रो देवदेवस्त्रिलोचनः।
भविष्याणि च दृश्यन्ते यतो नस्त्रिपुरेऽसुराः॥ ३५

कलहं वर्जयन्तश्च अर्जयन्तस्तथाऽऽर्जवम्।
स्वप्नोदयं प्रतीक्षध्वं कालोदयमथापि च॥ ३६

श्रुत्वा दाक्षायणीपुत्रा इत्येवं मयभाषितम्।
क्रोधेर्ष्यावस्थया युक्ता दृश्यन्ते च विनाशगाः॥ ३७

विनाशमुपपश्यन्तो ह्यलक्ष्म्याध्यापितासुराः।
तत्रैव दृष्ट्वा तेऽन्योन्यं संक्रोधापूरितेक्षणाः॥ ३८

मुख क्रोधाग्निसे उद्दीप्त हो रहे थे, जिससे ऐसा लगता था मानो वे त्रिपुरके विनाशक हैं। वे अतुल पराक्रमशाली प्राणी क्रोधसे भरे हुए थे और पुरोंमें प्रवेश करके अनेकों शरीर धारणकर दानवोंके शरीरोंमें भी घुस गये हैं। यह त्रिपुर नगर अन्धकारसे आच्छन्न हो गया है और गृह तथा तुमलोगोंके साथ ही सागरके जलमें डूब गया है। एक सुन्दरी स्त्री नंगी होकर उलूकपर सवार थी तथा उसके साथ एक पुरुष था, जिसके ललाटमें लाल तिलक लगा था। उसके चार पैर और तीन नेत्र थे। वह गधेपर चढ़ा हुआ था। उसने उस स्त्रीको प्रेरित किया, तब उसने मुझे नींदसे जगा दिया। इस प्रकारकी अत्यन्त भयावनी नारीको मैंने स्वप्नमें देखा है। दितिपुत्रो! मैंने इस प्रकारका स्वप्न देखा है और यह भी देखा है कि यह स्वप्न असुरोंके लिये किस प्रकार कष्टदायक होगा। इसलिये यदि तुमलोग हमें अपना उचितरूपसे राजा मानते हो और यह समझते हो कि इनका कथन हितकारक होगा तो मन लगाकर मेरी बात सुनो। तुमलोग किसीकी असूया (झूठी निन्दा) मत करो। काम, क्रोध, ईर्ष्या, असूया आदि दुर्गुणोंको एकदम छोड़कर सत्य, दम, धर्म और मुनिमार्गका आश्रय लो। शान्तिदायक अनुष्ठानोंका प्रयोग करो और महेश्वरकी पूजा करो। सम्भवतः ऐसा करनेसे स्वप्नकी शान्ति हो जाय। असुरो! (ऐसा प्रतीत हो रहा है कि) त्रिनेत्रधारी देवाधिदेव भगवान् रुद्र निश्चय ही हमलोगोंपर कुपित हो गये हैं; क्योंकि हमारे त्रिपुरमें भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाएँ अभीसे दीख पड़ रही हैं। अतः तुमलोग कलहका परित्याग तथा सरलताका आश्रय लेकर इस दुःस्वप्नके परिणामस्वरूप आनेवाले कालकी प्रतीक्षा करो'॥ २३—३६॥

इस प्रकार मय दानवका भाषण सुनकर सभी दानव क्रोध और ईर्ष्याके वशीभूत हो गये तथा विनाशकी ओर जाते हुए-से दीखने लगे। अलक्ष्मीद्वारा प्रभावित हुए वे असुर अपने भावी विनाशको संनिकट देखते हुए भी परस्पर एक-दूसरेकी ओर देखकर वहीं क्रोधसे भर गये।

अथ दैवपरिध्वस्ता दानवास्त्रिपुरालयाः।
हित्वा सत्यं च धर्मं च अकार्याण्युपचक्रमुः॥ ३९

द्विषन्ति ब्राह्मणान् पुण्यान् न चार्चन्ति हि देवताः।
गुरुं चैव न मन्यन्ते ह्यन्योन्यं चापि चुक्रुधुः॥ ४०

कलहेषु च सज्जन्ते स्वधर्मेषु हसन्ति च।
परस्परं च निन्दन्ति अहमित्येव वादिनः॥ ४१

उच्चैर्गुरून् प्रभाषन्ते नाभिभाषन्ति पूजिताः।
अकस्मात् साश्रुनयना जायन्ते च समुत्सुकाः॥ ४२

दधिसक्तून् पयश्चैव कपित्थानि च रात्रिषु।
भक्षयन्ति च शेरन्त उच्छिष्टाः संवृतास्तथा॥ ४३

मूत्रं कृत्वोपस्पृशन्ति चाकृत्वा पादधावनम्।
संविशन्ति च शय्यासु शौचाचारविवर्जिताः॥ ४४

संकुचन्ति भयाच्चैव मार्जाराणां यथाऽऽखुकः।
भार्यां गत्वा न शुध्यन्ति रहोवृत्तिषु निस्त्रपाः॥ ४५

पुरा सुशीला भूत्वा च दुःशीलत्वमुपागताः।
देवांस्तपोधनांश्चैव बाधन्ते त्रिपुरालयाः॥ ४६

मयेन वार्यमाणापि ते विनाशमुपस्थिताः।
विप्रियाण्येव विप्राणां कुर्वाणाः कलहैषिणः॥ ४७

वैभ्राजं नन्दनं चैव तथा चैत्ररथं वनम्।
अशोकं च वराशोकं सर्वर्तुकमथापि च॥ ४८

स्वर्गं च देवतावासं पूर्वदेववशानुगाः।
विध्वंसयन्ति संक्रुद्धास्तपोधनवनानि च॥ ४९

उनकी आँखें लाल हो गयीं। तदनन्तर दैव (भाग्य)-से परिच्युत हुए त्रिपुरनिवासी दानव सत्य और धर्मका परित्याग कर निन्द्य कर्मोंमें प्रवृत्त हो गये। वे पवित्र ब्राह्मणोंसे द्वेष करने लगे। उन्होंने देवताओंकी अर्चना छोड़ दी। वे गुरुजनोंका मान नहीं करते थे और परस्पर क्रोधपूर्ण व्यवहार करने लगे। वे कलहमें प्रवृत्त होकर अपने धर्मका उपहास करने लगे और 'मैं ही सब कुछ हूँ' ऐसा कहते हुए परस्पर एक-दूसरेकी निन्दा करने लगे। वे गुरुजनोंसे कड़े शब्दोंमें बोलते थे। स्वयं सत्कृत होनेपर भी उन्होंने अपनेसे नीची कोटिवालोंसे बोलना भी छोड़ दिया। उनकी आँखोंमें अकस्मात् आँसू उमड़ आते थे और वे उत्कण्ठित-से जो जाते थे। वे रातमें दही, सत्तू, दूध और कैथका फल खाने लगे। जूँठे मुँह रहकर घिरे हुए स्थानमें शयन करने लगे। उनका शौचाचार ऐसा विनष्ट हो गया कि वे मूत्र-त्यागकर जलका स्पर्श तो करते, परंतु विना पैर धोये ही बिछौनोंपर शयन करने लगे। वे अकस्मात् भयसे इस प्रकार संकुचित हो जाते थे, जैसे बिलावको देखकर चूहे हो जाते हैं। उन्होंने स्त्री-सहवासके बाद शरीरकी शुद्धि करना छोड़ दिया और गोपनीय कार्योंमें भी निर्लज्ज हो गये। वे त्रिपुरनिवासी दैत्य पहले सुशील थे, पर अब बड़े क्रूर हो गये तथा देवताओं और तपस्वियोंको कष्ट देने लगे। मयके मना करनेपर भी वे विनाशकी ओर बढ़ने लगे। उनके मनमें कलहकी इच्छा जाग उठी, जिससे वे ब्राह्मणोंका अपकार ही करते थे। इस प्रकार जो पहले देवताओंके वशीभूत थे, वे दानवगण सम्प्रति त्रिपुरका आश्रय पानेसे संक्रुद्ध होकर वैभ्राजके नन्दन, चैत्ररथ, अशोक, वराशोक, सर्वर्तुक आदि वनों, देवताओंके निवास-स्थान स्वर्ग तथा तपस्वियोंके वनोंका विध्वंस करने लगे। उस समय देव-मन्दिर और आश्रम नष्ट कर दिये गये। देवताओं और ब्राह्मणोंके उपासक मार डाले गये।

विध्वस्तदेवायतनाश्रमं च
सम्भग्नदेवद्विजपूजकं तु।
जगद्बभूवामरराजदुष्टै-
रभिद्रुतं सस्यमिवालिवृन्दैः॥ ५०

इस प्रकार देवराज इन्द्रके शत्रुओंद्वारा विध्वस्त किया हुआ जगत् ऐसा लगने लगा, जैसे टिड्डीदलोंद्वारा नष्ट की हुई अन्नकी फसल हो॥ ३७—५०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने दुःस्वप्नदर्शनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें दुःस्वप्न-दर्शन नामक एक सौ इकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३१॥

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय

त्रिपुरवासी दैत्योंका अत्याचार, देवताओंका ब्रह्माकी शरणमें जाना और ब्रह्मासहित शिवजीके पास जाकर उनकी स्तुति करना

सूत उवाच

अशीलेषु प्रदुष्टेषु दानवेषु दुरात्मसु।
लोकेषूत्साद्यमानेषु तपोधनवनेषु च॥ १
सिंहनादे व्योमगानां तेषु भीतेषु जन्तुषु।
त्रैलोक्ये भयसम्मूढे तमोऽन्धत्वमुपागते॥ २
आदित्या वसवः साध्याः पितरो मरुतां गणाः।
भीताः शरणमाजग्मुर्ब्रह्माणं प्रपितामहम्॥ ३
ते तं स्वर्णोत्पलासीनं ब्रह्माणं समुपागताः।
नेमुरूचुश्च सहिताः पञ्चास्यं चतुराननम्॥ ४
वरगुप्तास्तवैवेह दानवास्त्रिपुरालयाः।
बाधन्तेऽस्मान् यथा प्रेष्याननुशाधि ततोऽनघ॥ ५
मेघागमे यथा हंसा मृगाः सिंहभयादिव।
दानवानां भयात् तद्वद् भ्रमामो हि पितामह॥ ६
पुत्राणां नामधेयानि कलत्राणां तथैव च।
दानवैर्भ्राम्यमाणानां विस्मृतानि ततोऽनघ॥ ७
देववेश्मप्रभङ्गाश्च आश्रमभ्रंशनानि च।
दानवैर्लोभमोहान्धैः क्रियन्ते च भ्रमन्ति च॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! त्रिपुरनिवासी दानवोंका शील तो भ्रष्ट ही हो गया था, उनमें दुष्टता भी कूट-कूटकर भर गयी थी। उन दुरात्माओंने लोकों एवं तपोवनोंका विनाश करना आरम्भ किया। वे आकाशमें जाकर सिंहनाद करते, जिसे सुनकर सारे जीव-जन्तु भयभीत हो जाते थे। इस प्रकार जब सारी त्रिलोकी भयके कारण किंकर्तव्यविमूढ़ हो गयी और सर्वत्र अन्धकार-सा छा गया, तब भयसे डरे हुए आदित्य, वसु, साध्य, पितृ-गण और मरुद्गण—ये सभी संगठित होकर प्रपितामह ब्रह्माकी शरणमें पहुँचे। वहाँ पञ्चमुख ब्रह्मा स्वर्णमय कमलासनपर आसीन थे। ये देवगण उनके निकट जाकर उन्हें नमस्कार कर (दानवोंके अत्याचारका) वर्णन करने लगे—'निष्पाप पितामह! त्रिपुरनिवासी दानव आपके ही वरदानसे सुरक्षित होकर हमलोगोंको सेवकोंकी तरह कष्ट दे रहे हैं, अतः आप उन्हें मना कीजिये। पितामह! जैसे बादलोंके उमड़नेपर हंस और सिंहकी दहाड़से मृग भयभीत होकर भागने लगते हैं, उसी प्रकार दानवोंके भयसे हमलोग इधर-उधर लुक-छिप रहे हैं। पापरहित ब्रह्मन्! यहाँतक कि दानवोंद्वारा खदेड़े जानेके कारण हमलोगोंको अपने पुत्रों तथा पत्नियोंके नामतक भूल गये हैं। लोभ एवं मोहसे अंधे हुए दानवगण देवताओंके निवासस्थानोंको तोड़ते-फोड़ते तथा ऋषियोंके आश्रमोंको विध्वस्त करते हुए

यदि न त्रायसे लोकं दानवैर्विद्रुतं द्रुतम्।
धर्षेणानेन निर्देवं निर्मनुष्याश्रमं जगत्॥ ९

इत्येवं त्रिदशैरुक्तः पद्मयोनिः पितामहः।
प्रत्याह त्रिदशान् सेन्द्रानिन्दुतुल्याननः प्रभुः॥ १०

मयस्य यो वरो दत्तो मया मतिमतां वराः।
तस्यान्त एष सम्प्राप्तो यः पुरोक्तो मया सुराः॥ ११

तच्च तेषामधिष्ठानं त्रिपुरं त्रिदशर्षभाः।
एकेषुपातमोक्षेण हन्तव्यं नेषुवृष्टिभिः॥ १२

भवतां च न पश्यामि कमप्यत्र सुरर्षभाः।
यस्तु चैकप्रहारेण पुरं हन्यात् सदानवम्॥ १३

त्रिपुरं नाल्पवीर्येण शक्यं हन्तुं शरेण तु।
एकं मुक्त्वा महादेवं महेशानं प्रजापतिम्॥ १४

ते यूयं यदि अन्ये च क्रतुविध्वंसकं हरम्।
याचामः सहिता देवं त्रिपुरं स हनिष्यति॥ १५

कृतः पुराणां विष्कम्भो योजनानां शतं शतम्।
यथा चैकप्रहारेण हन्यते वै भवेन तु।
पुष्ययोगेन युक्तानि तानि चैकक्षणेन तु॥ १६

ततो देवैश्च सम्प्रोक्तो यास्याम इति दुःखितैः।
पितामहश्च तैः सार्धं भवसंसदमागतः॥ १७

तं भवं भूतभव्येशं गिरिशं शूलपाणिनम्।
पश्यन्ति चोमया सार्धं नन्दिना च महात्मना॥ १८

अग्निवर्णमजं देवमग्निकुण्डनिभेक्षणम्।
अग्न्यादित्यसहस्राभमग्निवर्णविभूषितम् ॥ १९

चन्द्रावयवलक्ष्माणं चन्द्रसौम्यतराननम्।
आगम्य तमजं देवमथ तं नीललोहितम्॥ २०
स्तुवन्तो वरदं शम्भुं गोपतिं पार्वतीपतिम्॥ २१

घूम रहे हैं। यदि आप शीघ्र ही दानवोंद्वारा विध्वंस किये जाते हुए लोककी रक्षा नहीं करेंगे तो सारा जगत् देवता, मनुष्य और आश्रमसे रहित हो जायगा'॥ १—९॥

जब देवताओंने पद्मयोनि ब्रह्मासे इस प्रकार निवेदन किया, तब चन्द्रमाके समान गौरवर्ण मुखवाले सामर्थ्यशाली ब्रह्माने इन्द्रादि देवताओंसे कहा—'बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ देवगण! मैंने मयको जो वर दिया था, उसका यह अन्त समय आ पहुँचा है, जिसे मैंने पहले ही उन लोगोंसे कह दिया था। श्रेष्ठ देवताओ! उनका निवासस्थान वह त्रिपुर तो एक ही बाणके प्रहारसे नष्ट हो जानेवाला है। उसपर बाण-वृष्टिकी आवश्यकता नहीं है, किंतु श्रेष्ठ देवगण! मैं यहाँ तुमलोगोंमेंसे किसीको भी ऐसा नहीं देख रहा हूँ, जो एक ही बाणके आघातसे दानवोंसहित त्रिपुरको नष्ट कर सके। देवाधिदेव प्रजापति शङ्करके अतिरिक्त अन्य कोई अल्प पराक्रमी वीर एक ही बाणसे त्रिपुरका विनाश नहीं कर सकता। इसलिये यदि तुमलोग तथा अन्यान्य देवगण भी एक साथ होकर दक्ष-यज्ञके विध्वंसक भगवान् शङ्करके पास चलकर उनसे याचना करें तो वे त्रिपुरका विनाश कर देंगे। इन पुरोंका विष्कम्भ सौ-सौ योजनोंका बना हुआ है, अतः पुष्य नक्षत्रके योगमें जब ये तीनों एक साथ सम्मिलित होंगे, उसी क्षण भगवान् शङ्कर एक ही बाणके आघातसे इसका विध्वंस कर सकते हैं।' यह सुनकर दुःखित देवताओंने कहा कि 'हमलोग चलेंगे।' तब ब्रह्मा उन्हें साथ लेकर शङ्करजीकी सभामें आये। वहाँ उन्होंने देखा कि भूत एवं भविष्यके स्वामी तथा गिरिपर शयन करनेवाले त्रिशूलपाणि शङ्कर पार्वतीदेवी तथा महात्मा नन्दीके साथ विराजमान हैं। उन अजन्मा महादेवके शरीरका वर्ण अग्निके समान उद्दीप्त था। उनके नेत्र अग्निकुण्डके सदृश लाल थे। उनके शरीरसे सहस्रों अग्नियों और सूर्योंके समान प्रभा छिटक रही थी। वे अग्निके-से रंगवाली विभूतिसे विभूषित थे। उनके ललाटपर बालचन्द्र शोभा पा रहा था और मुख (पूर्णिमाके) चन्द्रमासे भी अधिक सुन्दर दीख रहा था। तब देवगण उन अजन्मा नीललोहित महादेवके निकट गये और पशुपति, पार्वती-प्राणवल्लभ, वरदायक शम्भुकी इस प्रकार स्तुति करने लगे— ॥ १०—२१॥

देवा ऊचुः

नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च।
पशूनां पतये नित्यमुग्राय च कपर्दिने॥ २२

महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय च शान्तये।
ईशानाय भयघ्नाय नमस्त्वन्धकघातिने॥ २३

नीलग्रीवाय भीमाय वेधसे वेधसा स्तुते।
कुमारशत्रुनिघ्नाय कुमारजनकाय च॥ २४

विलोहिताय धूम्राय वराय क्रथनाय च।
नित्यं नीलशिखण्डाय शूलिने दिव्यशायिने॥ २५

उरगाय त्रिनेत्राय हिरण्यवसुरेतसे।
अचिन्त्यायाम्बिकाभर्त्रे सर्वदेवस्तुताय च॥ २६

वृषध्वजाय मुण्डाय जटिने ब्रह्मचारिणे।
तप्यमानाय सलिले ब्रह्मण्यायाजिताय च॥ २७

विश्वात्मने विश्वसृजे विश्वमावृत्य तिष्ठते।
नमोऽस्तु दिव्यरूपाय प्रभवे दिव्यशम्भवे॥ २८

अभिगम्याय काम्याय स्तुत्यायार्च्याय सर्वदा।
भक्तानुकम्पिने नित्यं दिशते यन्मनोगतम्॥ २९

देवताओंने कहा—भगवन्! आप **भव**—सृष्टिके उत्पादक और पालक, **शर्व**—प्रलयकालमें सबके संहारक, **रुद्र**—समस्त प्राणियोंके प्राणस्वरूप, **वरद**—वरप्रदाता, **पशुपति***—समस्त जीवोंके स्वामी, **उग्र**—बहुत ऊँचे, एकादश रुद्रोंमेंसे एक और **कपर्दी**—जटाजूटधारी हैं, आपको नमस्कार है। आप **महादेव**—देवताओंके भी पूज्य, **भीम**—भयंकर, **त्र्यम्बक**—त्रिनेत्रधारी, एकादश रुद्रोंमें अन्यतम, **शान्त**—शान्तस्वरूप, **ईशान**—नियन्ता, **भयघ्न**—भयके विनाशक और **अन्धकघाती**—अन्धकासुरके वधकर्ताको प्रणाम है। **नीलग्रीव**—ग्रीवामें नील चिह्न धारण करनेवाले, **भीम**—भयदायक, **वेधाः**—ब्रह्मस्वरूप, **वेधसा स्तुतः**—ब्रह्माजीके द्वारा स्तुत, **कुमारशत्रुनिघ्न**—कुमार कार्तिकेयके शत्रुओंको मारनेवाले, **कुमारजनक**—स्वामी कार्तिकके पिता, **विलोहित**—लाल रंगवाले, **धूम्र**—धूम्रवर्ण, **वर**—जगत्‌को ढकनेवाले, **क्रथन**—प्रलयकारी, **नीलशिखण्ड**—नीली जटावाले, **शूली**—त्रिशूलधारी, **दिव्यशायी**—दिव्य समाधिमें लीन रहनेवाले, **उरग**—सर्पधारी, **त्रिनेत्र**—तीन नेत्रोंवाले, **हिरण्यवसुरेता**—सुवर्ण आदि धनके उद्गम-स्थान, **अचिन्त्य**—अतर्क्य, **अम्बिकाभर्ता**—पार्वतीपति, **सर्वदेवस्तुत**—सम्पूर्ण देवोंद्वारा स्तुत, **वृषध्वज**—बैल-चिह्नसे युक्त ध्वजवाले, **मुण्ड**—मुण्डधारी, **जटी**—जटाधारी, **ब्रह्मचारी**—ब्रह्मचर्यसम्पन्न, **सलिले तप्यमान**—जलमें तपस्या करनेवाले, **ब्रह्मण्य**—ब्राह्मण-भक्त, **अजित**—अजेय, **विश्वात्मा**—विश्वके आत्मस्वरूप, **विश्वसृक्**—विश्वके स्रष्टा, **विश्वमावृत्य तिष्ठते**—संसारमें व्याप्त रहनेवाले, **दिव्यरूप**—दिव्यरूपवाले, **प्रभु**—सामर्थ्यशाली, **दिव्यशम्भु**—अत्यन्त मङ्गलमय, **अभिगम्य**—शरण लेने योग्य, **काम्य**—अत्यन्त सुन्दर, **स्तुत्य**—स्वतन करनेयोग्य, **सर्वदा अर्च्य**—सदा पूजनीय, **भक्तानुकम्पी**—भक्तोंपर दया करनेवाले और **यन्मनोगतं नित्यं दिशते**—मनकी अभिलाषा पूर्ण करनेवालेको अभिवादन है॥ २२—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे ब्रह्मादिसर्वदेवकृतमहेश्वरस्तवो नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें ब्रह्मादि-सर्वदेवकृत महेश्वरस्तव नामक एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३२॥

* पशुपति—शैवागमानुसार जीवमात्र पाशबद्ध होनेसे पशु और पाशयुक्त शिव पशुपति कहे गये हैं।

एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय

त्रिपुर-विध्वंसार्थ शिवजीके विचित्र रथका निर्माण और देवताओंके साथ उनका युद्धके लिये प्रस्थान

सूत उवाच

ब्रह्माद्यैः स्तूयमानस्तु देवैर्देवो महेश्वरः।
प्रजापतिमुवाचेदं देवानां क्व भयं महत्॥ १

भो देवाः स्वागतं वोऽस्तु ब्रूत यद् वो मनोगतम्।
तावदेव प्रयच्छामि नास्त्यदेयं मया हि वः॥ २

युष्माकं नितरां शं वै कर्ताहं विबुधर्षभाः।
चरामि महदत्युग्रं यच्चापि परमं तपः॥ ३

विद्विष्टा वो मम द्विष्टाः कष्टाः कष्टपराक्रमाः।
तेषामभावः सम्पाद्यो युष्माकं भव एव च॥ ४

एवमुक्तास्तु देवेन प्रेम्णा सब्रह्मकाः सुराः।
रुद्रमाहुर्महाभागं भागार्हाः सर्व एव ते॥ ५

भगवंस्तैस्तपस्तप्तं रौद्रं रौद्रपराक्रमैः।
असुरैर्वध्यमानाः स्म वयं त्वां शरणं गताः॥ ६

मयो नाम दितेः पुत्रस्त्रिनेत्र कलहप्रियः।
त्रिपुरं येन तद्दुर्गं कृतं पाण्डुरगोपुरम्॥ ७

तदाश्रित्य पुरं दुर्गं दानवा वरनिर्भयाः।
बाधन्तेऽस्मान् महादेव प्रेष्यमस्वामिनं यथा॥ ८

उद्यानानि च भग्नानि नन्दनादीनि यानि च।
वराश्चाप्सरसः सर्वा रम्भाद्या दनुजैर्हृताः॥ ९

इन्द्रस्य वाह्याश्च गजाः कुमुदाञ्जनवामनाः।
ऐरावताद्यापहृता देवतानां महेश्वर॥ १०

ये चेन्द्ररथमुख्याश्च हरयोऽपहृतासुरैः।
जाताश्च दानवानां ते रथयोग्यास्तुरंगमाः॥ ११

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर देवाधिदेव महेश्वरने प्रजापति ब्रह्मासे यह कहा—'अरे! आप देवताओंको यह महान् भय कहाँसे आया? देवगण! आपलोगोंका स्वागत है। आपलोगोंके मनमें जो अभिलाषा हो, उसे कहिये। मैं उसे अवश्य प्रदान करूँगा; क्योंकि आपलोगोंके लिये मुझे कुछ भी अदेय नहीं है। श्रेष्ठ देवगण! मैं सदा आपलोगोंका कल्याण ही करता रहता हूँ। यहाँतक कि जो महान्, अत्यन्त उग्र एवं घोर तप करता हूँ, वह भी आपलोगोंके लिये ही करता हूँ। जो आपलोगोंसे विद्वेष करते हैं, वे मेरे भी घोर शत्रु हैं। इसलिये जो आपलोगोंको कष्ट देनेवाले हैं, वे कितने ही घोर पराक्रमी क्यों न हों, मुझे उनका अन्त और आपका श्रेय:सम्पादन करना है।' महादेवजीद्वारा प्रेमपूर्वक इस प्रकार कहे जानेपर ब्रह्मासहित समस्त भाग्यशाली देवताओंने महाभाग शङ्करजीसे कहा—'भगवन्! भयंकर पराक्रमी उन असुरोंने अत्यन्त भीषण तप किया है, जिसके प्रभावसे वे हमें कष्ट दे रहे हैं। इसलिये हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। त्रिलोचन! (आप तो जानते ही हैं) दितिका पुत्र मय स्वभावत: कलहप्रिय है। उसने ही पीले रंगके फाटकवाले उस त्रिपुर नामक दुर्गका निर्माण किया है। उस त्रिपुरदुर्गका आश्रय लेकर दानव वरदानके प्रभावसे निर्भय हो गये हैं। महादेव! वे हमलोगोंको इस प्रकार कष्ट दे रहे हैं, मानो अनाथ नौकर हों। उन दानवोंने नन्दन आदि जितने उद्यान थे, उन सबको विनष्ट कर दिया तथा रम्भा आदि सभी श्रेष्ठ अप्सराओंका अपहरण कर लिया। महेश्वर! वे इन्द्रके वाहन तथा दिशागज कुमुद, अञ्जन, वामन और ऐरावत आदि गजेन्द्रोंको भी छीन ले गये। इन्द्रके रथमें जुतनेवाले जो मुख्य अश्व थे, उन्हें भी वे असुर हरण कर ले गये और अब वे घोड़े दानवोंके रथमें जोते जाते हैं।

ये रथा ये गजाश्चैव याः स्त्रियो वसु यच्च नः।
तन्नो व्यपहृतं दैत्यैः संशयो जीविते पुनः॥ १२

(कहाँतक कहें) हमलोगोंके पास जितने रथ, जितने हाथी, जितनी स्त्रियाँ और जो कुछ भी धन था, हमारा वह सब दैत्योंने अपहरण कर लिया है और अब हमलोगोंके जीवनमें भी सन्देह उत्पन्न हो गया है'॥ १—१२॥

त्रिनेत्र एवमुक्तस्तु देवैः शक्रपुरोगमैः।
उवाच देवान् देवेशो वरदो वृषवाहनः॥ १३
व्यपगच्छतु वो देवा महद् दानवजं भयम्।
तदहं त्रिपुरं धक्ष्ये क्रियतां यद् ब्रवीमि तत्॥ १४
यदीच्छथ मया दग्धुं तत्पुरं सहदानवम्।
रथमौपयिकं मह्यं सज्जयध्वं किमास्यते॥ १५
दिग्वाससा तथोक्तास्ते सपितामहकाः सुराः।
तथेत्युक्त्वा महादेवं चक्रुस्ते रथमुत्तमम्॥ १६
धरां कूबरकौ द्वौ तु रुद्रपार्श्वचरावुभौ।
अधिष्ठानं शिरो मेरोरक्षो मन्दर एव च॥ १७
चक्रुश्चन्द्रं च सूर्यं च चक्रं काञ्चनराजते।
कृष्णपक्षं शुक्लपक्षं पक्षद्वयमपीश्वराः॥ १८
रथनेमिद्वयं चक्रुर्देवा ब्रह्मपुरःसराः।
आदिद्वयं पक्षयन्त्रं यन्त्रमेताश्च देवताः॥ १९
कम्बलाश्वतराभ्यां च नागाभ्यां समवेष्टितम्।
भार्गवश्चाङ्गिराश्चैव बुधोऽङ्गारक एव च॥ २०
शनैश्चरस्तथा चात्र सर्वे ते देवसत्तमाः।
वरूथं गगनं चक्रुश्चारुरूपं रथस्य ते॥ २१
कृतं द्विजिह्वनयनं त्रिवेणुं शातकौम्भिकम्।
मणिमुक्तेन्द्रनीलैश्च वृतं ह्यष्टमुखैः सुरैः॥ २२

इन्द्र आदि देवताओंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर त्रिनेत्रधारी, वरदायक, वृषवाहन, देवेश्वर शङ्करने देवताओंसे कहा—'देवगण! अब आपलोगोंका दानवोंसे उत्पन्न हुआ महान् भय दूर हो जाना चाहिये। मैं उस त्रिपुरको जला डालूँगा, किंतु मैं जो कह रहा हूँ, वैसा उपाय कीजिये। यदि आपलोग मेरे द्वारा दानवोंसहित उस त्रिपुरको जला देनेकी इच्छा रखते हैं तो मेरे लिये समस्त साधनोंसे सम्पन्न एक रथ सुसज्जित कीजिये। अब देर मत कीजिये।' दिग्वासा शङ्करजीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ब्रह्मासहित उन देवताओंने महादेवजीसे 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी आज्ञा स्वीकार कर ली। फिर तो वे एक उत्तम रथका निर्माण करनेमें लग गये। उन्होंने पृथ्वीको रथ, रुद्रके दो पार्श्वचरोंको, दोनों कूबर मेरुको रथका शिरः-स्थान और मन्दरको धुरा बनाया। सूर्य और चन्द्रमा रथके सोने-चाँदीके दोनों पहिये बनाये गये। ब्रह्मा आदि ऐश्वर्यशाली देवोंने शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष—दोनोंसे रथकी दोनों नेमियाँ बनायीं। देवताओंने कम्बल और अश्वतर नामक नागोंसे परिवेष्टित कर दोनों बगलके पक्ष-यन्त्र बनाये। शुक्र, बृहस्पति, बुध, मङ्गल तथा शनैश्चर ये—सभी देवश्रेष्ठ उसपर विराजित हुए। उन देवताओंने गगन-मण्डलको रथका सौन्दर्यशाली वरूथ बनाया। सर्पोंके नेत्रोंसे उसका त्रिवेणु बनाया गया, जो सुवर्ण-सा चमक रहा था। वह मणि, मुक्ता और इन्द्रनील मणिके समान आठ प्रधान देवताओंसे घिरा था॥ १३—२२॥

गङ्गा सिन्धुः शतद्रुश्च चन्द्रभागा इरावती।
वितस्ता च विपाशा च यमुना गण्डकी तथा॥ २३
सरस्वती देविका च तथा च सरयूरपि।
एताः सरिद्वराः सर्वा वेणुसंज्ञा कृता रथे॥ २४
धृतराष्ट्राश्च ये नागास्ते च रश्म्यात्मकाः कृताः।
वासुकेः कुलजा ये च ये च रैवतवंशजाः॥ २५
ते सर्पा दर्पसम्पूर्णाश्चापतूणेष्वनूनगाः।
अवतस्थुः शरा भूत्वा नानाजातिशुभाननाः॥ २६

गङ्गा, सिन्धु, शतद्रु, चन्द्रभागा, इरावती, वितस्ता, विपाशा, यमुना, गण्डकी, सरस्वती, देविका तथा सरयू—इन सभी श्रेष्ठ नदियोंको उस रथमें वेणुस्थानपर नियुक्त किया गया। धृतराष्ट्रके वंशमें उत्पन्न होनेवाले जो नाग थे, वे बाँधनेके लिये रस्सी बने हुए थे। जो वासुकि और रैवतके वंशमें उत्पन्न होनेवाले नाग थे, वे सभी दर्पसे पूर्ण और शीघ्रगामी होनेके कारण नाना प्रकारके सुन्दर मुखवाले बाण बनकर धनुषके तरकसोंमें अवस्थित हुए।

सुरसा सरमा कद्रूर्विनता शुचिरेव च।
तृषा बुभुक्षा सर्वोग्रा मृत्युः सर्वशमस्तथा॥ २७
ब्रह्मवध्या च गोवध्या बालवध्या प्रजाभयाः।
गदा भूत्वा शक्तयश्च तदा देवरथेऽभ्ययुः॥ २८
युगं कृतयुगं चात्र चातुर्होत्रप्रयोजकाः।
चतुर्वर्णाः सलीलाश्च बभूवुः स्वर्णकुण्डलाः॥ २९
तद्युगं युगसंकाशं रथशीर्षे प्रतिष्ठितम्।
धृतराष्ट्रेण नागेन बद्धं बलवता महत्॥ ३०
ऋग्वेदः सामवेदश्च यजुर्वेदस्तथापरः।
वेदाश्चत्वार एवैते चत्वारस्तुरगाऽभवन्॥ ३१
अन्नदानपुरोगाणि यानि दानानि कानिचित्।
तान्यासन् वाजिनां तेषां भूषणानि सहस्रशः॥ ३२
पद्मद्वयं तक्षकश्च कर्कोटकधनञ्जयौ।
नागा बभूवुरेवैते हयानां बालबन्धनाः॥ ३३
ओङ्कारप्रभवास्ता वा मन्त्रयज्ञक्रतुक्रियाः।
उपद्रवाः प्रतीकाराः पशुबन्धेष्टयस्तथा॥ ३४
यज्ञोपवाहान्येतानि तस्मिँल्लोकरथे शुभे।
मणिमुक्ताप्रवालैस्तु भूषितानि सहस्रशः॥ ३५
प्रतोदोङ्कार एवासीत्तदग्रं च वषट्कृतम्।
सिनीवाली कुहू राका तथा चानुमतिः शुभा॥ ३६
योक्त्राण्यासंस्तुरङ्गाणामपसर्पणविग्रहाः॥ ३७
कृष्णान्यथ च पीतानि श्वेतमाञ्जिष्ठकानि च।
अवदाताः पताकास्तु बभूवुः पवनेरिताः॥ ३८
ऋतुभिश्च कृतः षड्भिर्धनुः संवत्सरोऽभवत्।
अजरा ज्याभवच्चापि साम्बिका धनुषो दृढा॥ ३९
कालो हि भगवान् रुद्रस्तं च संवत्सरं विदुः।
तस्मादुमा कालरात्रिर्धनुषो ज्याजराभवत्॥ ४०
सगर्भं त्रिपुरं येन दग्धवान् स त्रिलोचनः।
स इषुर्विष्णुसोमाग्नित्रिदैवतमयोऽभवत्॥ ४१
आननं ह्यग्निरभवच्छल्यं सोमस्तमोनुदः।
तेजसः समवायोऽथ चेषोस्तेजो रथाङ्गधृक्॥ ४२
तस्मिंश्च वीर्यवृद्ध्यर्थं वासुकिर्नागपार्थिवः।
तेजः संवसनार्थं वै मुमोचातिविषो विषम्॥ ४३

सबसे उग्र स्वभाववाली सुरसा, देवशुनी, सरमा, कद्रू, विनता, शुचि, तृषा, बुभुक्षा तथा सबका शमन करनेवाली मृत्यु, ब्रह्महत्या, गोहत्या, बालहत्या और प्रजाभय—ये सभी उस समय गदा और शक्तिका रूप धारण कर उस देवरथमें उपस्थित हुईं। कृतयुगका जूआ बनाया गया। चातुर्होत्र यज्ञके प्रयोजक लीलासहित चारों वर्ण स्वर्णमय कुण्डल हुए। उस युग-सदृश जूएको रथके शीर्षस्थानपर रखा गया और उसे बलवान् धृतराष्ट्र नागद्वारा कसकर बाँध दिया गया। ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद—ये चारों वेद चार घोड़े हुए। अन्नदान आदि जितने प्रमुख दान हैं, वे सभी उन घोड़ोंके हजारों प्रकारके आभूषण बने। पद्मद्वय, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय—ये नाग उन घोड़ोंके बाल बाँधनेके लिये रस्सी हुए। ओंकारसे उत्पन्न होनेवाली मन्त्र, यज्ञ और क्रतुरूप क्रियाएँ, उपद्रव, उनकी शान्तिके लिये प्रायश्चित्त, पशुबन्ध आदि इष्टियाँ, यज्ञोपवीत आदि संस्कार—ये सभी उस सुन्दर लोकरथमें शोभा-वृद्धिके लिये मणि, मुक्ता और मूँगेके रूपमें उपस्थित हुए। ओंकारका चाबुक बना और वषट्कार उसका अग्रभाग हुआ। सिनीवाली (चतुर्दशीय अमा), कुहू (अमावास्याकी अधिष्ठात्री देवी), राका (शुद्ध पूर्णिमा तिथि) तथा शुभदायिनी अनुमति (प्रतिपदयुक्ता पूर्णिमा)—ये सभी घोड़ोंको रथमें जोतनेके लिये रस्सियाँ और बागडोर बनीं। उसमें काले, पीले, श्वेत और लाल रंगको निर्मल पताकाएँ लगी थीं, जो वायुके वेगसे फहरा रही थीं। छहों ऋतुओंसहित संवत्सरका धनुष बनाया गया। अम्बिकादेवी उस धनुषकी कभी जीर्ण न होनेवाली सुदृढ़ प्रत्यञ्चा हुई। भगवान् रुद्र कालस्वरूप हैं। उन्हींको संवत्सर कहा जाता है, इसी कारण अम्बिकादेवी कालरात्रिरूपसे उस धनुषकी कभी न कटनेवाली प्रत्यञ्चा बनीं। त्रिलोचन भगवान् शङ्कर जिस बाणसे अन्तर्भागसहित त्रिपुरको जलानेवाले थे, वह श्रेष्ठ बाण विष्णु, सोम, अग्नि—इन तीनों देवताओंके संयुक्त तेजसे निर्मित हुआ था। उस बाणका मुख अग्नि और फाल अन्धकारविनाशक चन्द्रमा थे। चक्रधारी विष्णुका तेज समूचे बाणमें व्याप्त था। इस प्रकार वह बाण तेजका समन्वित रूप था। उस बाणपर नागराज वासुकिने उसके पराक्रमकी वृद्धि एवं तेजकी स्थिरताके लिये अत्यन्त उग्र विष उगल दिया था॥ २३—४३॥

कृत्वा देवा रथं चापि दिव्यं दिव्यप्रभावतः।
लोकाधिपतिमभ्येत्य इदं वचनमब्रुवन्॥ ४४

संस्कृतोऽयं रथोऽस्माभिस्तव दानवशत्रुजित्।
इदमापत्परित्राणं देवान् सेन्द्रपुरोगमान्॥ ४५

तं मेरुशिखराकारं त्रैलोक्यरथमुत्तमम्।
प्रशस्य देवान् साध्विति रथं पश्यति शङ्करः॥ ४६

मुहुर्दृष्ट्वा रथं साधु साध्वित्युक्त्वा मुहुर्मुहुः।
उवाच सेन्द्रानमरानमराधिपतिः स्वयम्॥ ४७

यादृशोऽयं रथः क्लृप्तो युष्माभिर्मम सत्तमाः।
ईदृशो रथसम्पत्त्या यन्ता शीघ्रं विधीयताम्॥ ४८

इत्युक्ता देवदेवेन देवा विद्धा इवेषुभिः।
अवापुर्महतीं चिन्तां कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥ ४९

महादेवस्य देवोऽन्यः को नाम सदृशो भवेत्।
मुक्त्वा चक्रायुधं देवं सोऽप्यस्येषु समाश्रितः॥ ५०

धुरि युक्ता इवोक्षाणो घटन्त इव पर्वतैः।
निःश्वसन्तः सुराः सर्वे कथमेतदिति ब्रुवन्॥ ५१

देवेष्वाह देवदेवो लोकनाथस्य धूर्गतान्।
अहं सारथिरित्युक्त्वा जग्राहाश्वांस्ततोऽग्रजः॥ ५२

ततो देवैः सगन्धर्वैः सिंहनादो महान् कृतः।
प्रतोदहस्तं सम्प्रेक्ष्य ब्रह्माणं सूततां गतम्॥ ५३

भगवानपि विश्वेशो रथस्थे वै पितामहे।
सदृशः सूत इत्युक्त्वा चारुरोह रथं हरः॥ ५४

आरोहति रथं देवे ह्यश्वा हरभरातुराः।
जानुभिः पतिता भूमौ रजोग्रासश्च ग्रासितः॥ ५५

देवो दृष्ट्वाथ वेदांस्तानभीरुग्रहयान् भयात्।
उज्जहार पितॄनार्तान् सुपुत्र इव दुःखितान्॥ ५६

ततः सिंहरवो भूयो बभूव रथभैरवः।
जयशब्दश्च देवानां सम्बभूवार्णवोपमः॥ ५७

इस प्रकार देवगण दिव्य प्रभावसे उस दिव्य रथका निर्माण कर लोकाधिपति शङ्करके निकट जाकर इस प्रकार बोले—'दानवरूप शत्रुओंके विजेता भगवन्! हमलोगोंने आपके लिये इस रथकी रचना की है। यह इन्द्रसहित सम्पूर्ण देवताओंकी आपत्तिसे रक्षा करेगा। सुमेरुगिरिके शिखरके समान उस उत्तम त्रैलोक्यरथको देखकर भगवान् शङ्करने उसकी प्रशंसा करके देवताओंकी प्रशंसा की और पुनः उस रथका निरीक्षण करने लगे। वे बार-बार रथके प्रत्येक भागको देखते और बार-बार उसकी प्रशंसा करते थे। तत्पश्चात् देवताओंके अधीश्वर स्वयं भगवान् शङ्करने इन्द्रसहित देवताओंसे कहा—'देवगण! आपलोगोंने जिस प्रकार मेरे लिये रथकी सारी सामग्रियोंसे युक्त इस रथका निर्माण किया है, इसीकी मर्यादाके अनुकूल शीघ्र ही किसी सारथिका भी विधान कीजिये।' देवाधिदेव शङ्करके ऐसा कहनेपर देवगण ऐसे व्याकुल हो गये, मानो वे बाणोंसे बींध दिये गये हों। उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। वे कहने लगे कि अब क्या किया जाय। भला, चक्रधारी भगवान् विष्णुके अतिरिक्त दूसरा कौन देवता महादेवजीके सदृश हो सकता है, किंतु वे तो उनके बाणपर स्थित हो चुके हैं। यह सोचकर जैसे गाड़ीमें जुते हुए बैल पर्वतोंसे टकरा जानेपर हाँफने लगते हैं, वैसे ही सभी देवता लम्बी साँस लेने लगे और कहने लगे कि यह कार्य कैसे सिद्ध होगा? इतनेमें ही उन देवताओंके बीच देवदेव अग्रज ब्रह्मा बोल उठे—'सारथि मैं होऊँगा' ऐसा कहकर उन्होंने लोकनाथ शङ्करके रथमें जुते हुए घोड़ोंकी बागडोर पकड़ ली। उस समय ब्रह्माको हाथमें चाबुक लिये हुए सारथिके स्थानपर स्थित देखकर गन्धर्वोंसहित देवताओंने महान् सिंहनाद किया। तदनन्तर पितामह ब्रह्माको रथपर स्थित देखकर विश्वेश्वर भगवान् शङ्कर 'उपयुक्त सारथि मिला' ऐसा कहकर रथपर आरूढ़ हुए। भगवान् शंकरके रथपर चढ़ते ही घोड़े उनके भारसे व्याकुल हो गये। वे घुटनोंके बल पृथ्वीपर गिर पड़े और उनके मुखमें धूल भर गयी। इस प्रकार जब शङ्करजीने देखा कि अश्वरूपधारी वेद भयवश भूमिपर गिर पड़े हैं, तब उन्होंने उन्हें उसी प्रकार उठाया, जैसे सुपुत्र आर्त एवं दुःखी पितरोंका उद्धार करता है। तत्पश्चात् रथकी भयंकर घरघराहटके साथ सिंहनाद होने लगा। देवगण समुद्रकी गर्जनाके समान जय-जयकार करने लगे॥ ४४—५७॥

तदोङ्कारमयं गृह्य प्रतोदं वरदः प्रभुः।
स्वयम्भूः प्रययौ वाहाननुमन्त्र्य यथाजवम्॥ ५८
ग्रसमाना इवाकाशं मुष्णन्त इव मेदिनीम्
मुखेभ्यः ससृजुः श्वासानुच्छ्वसन्त इवोरगाः॥ ५९
स्वयम्भुवा चोद्यमानाश्चोदितेन कपर्दिना।
व्रजन्ति तेऽश्वा जवनाः क्षयकाल इवानिलाः॥ ६०
ध्वजोच्छ्रयविनिर्माणे ध्वजयष्टिमनुत्तमाम्।
आक्रम्य नन्दीवृषभस्तस्थौ तस्मिञ्छिवेच्छया॥ ६१
भार्गवाङ्गिरसौ देवौ दण्डहस्तौ रविप्रभौ।
रथचक्रे तु रक्षेते रुद्रस्य प्रियकाङ्क्षिणौ॥ ६२
शेषश्च भगवान् नागोऽनन्तोऽनन्तकरोऽरिणाम्।
शरहस्तो रथं पाति शयनं ब्रह्मणस्तदा॥ ६३
यमस्तूर्णं समास्थाय महिषं चातिदारुणम्।
द्रविणाधिपतिर्व्यालं सुराणामधिपो द्विपम्॥ ६४
मयूरं शतचन्द्रं च कूजन्तं किंनरं यथा।
गुह आस्थाय वरदो जुगोप तं रथं पितुः॥ ६५
नन्दीश्वरश्च भगवाञ्शूलमादाय दीप्तिमान्।
पृष्ठतश्चापि पार्श्वाभ्यां लोकस्य क्षयकृद् यथा॥ ६६
प्रमथाश्चाग्निवर्णाभाः साग्निज्वाला इवाचलाः।
अनुजग्मू रथं शार्वं नक्रा इव महार्णवम्॥ ६७

भृगुर्भरद्वाजवसिष्ठगौतमाः
क्रतुः पुलस्त्यः पुलहस्तपोधनाः।
मरीचिरत्रिर्भगवानथाङ्गिराः
पराशरागस्त्यमुखा महर्षयः॥ ६८
हरमजितमजं प्रतुष्टुवुर्वचन-
विशेषैर्विचित्रभूषणैः।
रथस्त्रिपुरं सकाञ्चनाचलो
व्रजति सपक्ष इवाद्रिरम्बरे॥ ६९
करिगिरिरविमेघसंनिभाः
सजलपयोदनिनादनादिनः।
प्रमथगणाः परिवार्य देवगुप्तं
रथमभितः प्रययुः स्वदर्पयुक्ताः॥ ७०

तदनन्तर सामर्थ्यशाली वरदायक ब्रह्मा ओंकारमय चाबुकको हाथमें लेकर घोड़ोंको पुचकारते हुए पूर्ण वेगसे आगे बढ़े। फिर तो वे घोड़े पृथ्वीको अपने साथ समेटते तथा आकाशको ग्रसते हुएकी तरह बड़े वेगसे दौड़ने लगे। उनके मुखोंसे ऐसे दीर्घ निःश्वास निकल रहे थे, मानो फुफकारते हुए सर्प हों। शङ्करजीकी प्रेरणासे ब्रह्माद्वारा हाँके जाते हुए वे घोड़े प्रलयकालिक वायुकी तरह अत्यन्त वेगसे दौड़ रहे थे। शिवजीकी इच्छासे उस रथमें ध्वजको ऊँचा उठानेमें निपुण नन्दी वृषभ उस अनुपम ध्वजयष्टिके ऊपर स्थित हुए। सूर्यके समान प्रभावशाली शुक्र और बृहस्पति—ये दोनों देवता हाथमें दण्ड धारण करके रुद्रका प्रिय करनेकी इच्छासे रथके पहियोंकी रक्षा कर रहे थे। उस समय शत्रुओंका समूल विनाश करनेवाले अनन्त भगवान् शेषनाग हाथमें बाण धारण कर रथकी तथा ब्रह्माके आसनकी रक्षामें जुटे हुए थे। यमराज तुरंत अपने अत्यन्त भयंकर भैंसेपर, कुबेर साँपपर और देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर चढ़कर आगे बढ़े। वरदायक गुह कार्तिकेय सैकड़ों चन्द्रवाले तथा किंनरकी भाँति कूजते हुए अपने मयूरपर सवार होकर पिताके उस रथकी रक्षा कर रहे थे। तेजस्वी भगवान् नन्दीश्वर शूल लेकर रथके पीछेसे दोनों पार्श्वभागोंकी रक्षा करते थे। उस समय वे ऐसा प्रतीत होते थे, मानो लोकका विनाश कर देना चाहते हों। अग्निके समान कान्तिमान् प्रमथगण, जो अग्निकी लपटोंसे युक्त पर्वत-सदृश दीख रहे थे, शङ्करजीके रथके पीछे चलते हुए ऐसे लगते थे जैसे महासागरमें नाकगण तैर रहे हों। भृगु, भरद्वाज, वसिष्ठ, गौतम, क्रतु, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पराशर, अगस्त्य—ये सभी तपस्वी एवं ऐश्वर्यशाली महर्षि विचित्र छन्दालंकारोंसे विभूषित उत्कृष्ट वचनोंद्वारा अजन्मा एवं अजेय शङ्करकी स्तुति कर रहे थे। सुमेरुगिरिके सहयोगसे सम्पन्न हुआ वह रथ आकाशमें विचरनेवाले पंखधारी पर्वतकी तरह त्रिपुरकी ओर बढ़ रहा था। हाथी, पर्वत, सूर्य और मेघके समान कान्तिवाले प्रमथगण जलधर बादलकी भाँति गर्जना करते हुए बड़े गर्वके साथ देवताओंद्वारा सब ओरसे सुरक्षित उस रथके पीछे-पीछे चल रहे थे।

मकरतिमितिमिंगिलावृतः
प्रलय इवातिसमुद्धतोऽर्णवः।
व्रजति रथवरोऽतिभास्वरो
ह्यशनिनिपातपयोदनिःस्वनः ॥ ७१

वह अत्यन्त उद्दीप्त श्रेष्ठ रथ प्रलयकालमें मकर, तिमि (एक प्रकारके महामत्स्य) और तिमिंगिलों (उसे निगलनेवाले महामत्स्य)-से व्याप्त भयंकर रूपसे उमड़े हुए समुद्रकी तरह आगे बढ़ रहा था। उससे वज्रपातकी तरह गड़गड़ाहट और बादलकी गर्जनाके सदृश शब्द हो रहा था॥ ५८—७१ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे रथप्रयाणं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें रथप्रयाण नामक एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३३॥

एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय

देवताओंसहित शङ्करजीका त्रिपुरपर आक्रमण, त्रिपुरमें देवर्षि नारदका आगमन तथा युद्धार्थ असुरोंकी तैयारी

सूत उवाच

पूज्यमाने रथे तस्मिँल्लोकैर्देवे रथे स्थिते।
प्रमथेषु नदत्सूग्रं प्रवदत्सु च साध्विति॥ १
ईश्वरस्वरघोषेण नर्दमाने महावृषे।
जयत्सु विप्रेषु तथा गर्जत्सु तुरगेषु च॥ २
रणाङ्गणात् समुत्पत्य देवर्षिर्नारदः प्रभुः।
कान्त्या चन्द्रोपमस्तूर्णं त्रिपुरं पुरमागतः॥ ३
औत्पातिकं तु दैत्यानां त्रिपुरे वर्तते ध्रुवम्।
नारदश्चात्र भगवान् प्रादुर्भूतस्तपोधनः॥ ४
आगतं जलदाभासं समेताः सर्वदानवाः।
उत्तस्थुर्नारदं दृष्ट्वा अभिवादनवादिनः॥ ५
तमर्घ्येण च पाद्येन मधुपर्केण चेश्वराः।
नारदं पूजयामासुर्ब्रह्माणमिव वासवः॥ ६
तेषां स पूजां पूजार्हः प्रतिगृह्य तपोधनः।
नारदः सुखमासीनः काञ्चने परमासने॥ ७
मयस्तु सुखमासीने नारदे नारदोद्भवे।
यथार्हं दानवैः सार्धमासीनो दानवाधिपः॥ ८
आसीनं नारदं प्रेक्ष्य मयस्त्वथ महासुरः।
अब्रवीद् वचनं तुष्टो हृष्टरोमाननेक्षणः॥ ९

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार उस लोकपूजित रथपर आरूढ़ होकर जब महादेवजी त्रिपुरपर आक्रमण करनेके लिये प्रस्थित हुए, उस समय प्रमथगण 'ठीक है, ठीक है' ऐसा कहते हुए उच्च स्वरसे सिंहनाद करने लगे। महान् वृषभ नन्दी भी शङ्करजीके सदृश स्वरमें गर्जना करने लगा। यूथ-के-यूथ विप्र जय-जयकार बोलने लगे तथा घोड़े हींसने लगे। इसी समय चन्द्रतुल्य कान्तिवाले सामर्थ्यशाली देवर्षि नारद युद्धस्थलसे उछलकर तुरंत त्रिपुर नामक नगरमें जा पहुँचे। दैत्योंके उस त्रिपुरमें निश्चितरूपसे उत्पात हो रहे थे। वहाँ तपस्वी भगवान् नारद सहसा प्रकट हो गये। श्वेत मेघकी-सी प्रभावाले नारदजीको आया हुआ देखकर सभी दानव एक साथ अभिवादन करते हुए उठ खड़े हुए। तत्पश्चात् उन ऐश्वर्यशाली दानवोंने पाद्य, अर्घ्य और मधुपर्कद्वारा नारदजीकी उसी प्रकार पूजा की, जैसे इन्द्र ब्रह्माकी अर्चना करते हैं। तब पूजनीय तपस्वी नारदजी उनकी पूजा स्वीकार कर स्वर्णनिर्मित श्रेष्ठ आसनपर सुखपूर्वक विराजमान हुए। इस प्रकार ब्रह्मपुत्र नारदके सुखपूर्वक बैठ जानेपर दानवराज मय भी सभी दानवोंके साथ यथायोग्य आसनपर बैठ गया। इस तरह नारदजीको वहाँ सुखपूर्वक बैठे देखकर महासुर मयको बड़ी प्रसन्नता हुई। वह हर्षसे रोमाञ्चित हो उठा, उसके मुख एवं नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे, उसने नारदजीसे ये बातें कहीं॥ १—९ ॥

औत्पातिकं पुरेऽस्माकं यथा नान्यत्र कुत्रचित्।
वर्तते वर्तमानज्ञ वद त्वं हि च नारद॥ १०
दृश्यन्ते भयदाः स्वप्ना भज्यन्ते च ध्वजाः परम्।
विना च वायुना केतुः पतते च तथा भुवि॥ ११
अट्टालकाश्च नृत्यन्ते सपताकाः सगोपुराः।
हिंस हिंसेति श्रूयन्ते गिरश्च भयदाः पुरे॥ १२
नाहं बिभेमि देवानां सेन्द्राणामपि नारद।
मुक्त्वैकं वरदं स्थाणुं भक्ताभयकरं हरम्॥ १३
भगवन् नास्त्यविदितमुत्पातेषु तवानघ।
अनागतमतीतं च भवाञ्जानाति तत्त्वतः॥ १४
तदेतन्नो भयस्थानमुत्पाताभिनिवेदितम्।
कथयस्व मुनिश्रेष्ठ प्रपन्नस्य तु नारद॥ १५
इत्युक्तो नारदस्तेन मयेनामयवर्जितः॥ १६

नारद उवाच

शृणु दानव तत्त्वेन भवन्त्यौत्पातिका यथा।
धर्मेति धारणे धातुर्माहात्म्ये चैव पठ्यते।
धारणाच्च महत्त्वेन धर्म एष निरुच्यते॥ १७
स इष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते।
इतरश्चानिष्टफलं आचार्यैर्नोपदिश्यते॥ १८
उत्पथान्मार्गमागच्छेन्मार्गाच्चैव विमार्गताम्।
विनाशस्तस्य निर्देश्य इति वेदविदो विदुः॥ १९
स स्वधर्मं रथारूढः सहैभिर्मत्तदानवैः।
अपकारिषु देवानां कुरुषे त्वं सहायताम्॥ २०
तदेतान्येवमादीनि उत्पातावेदितानि च।
वैनाशिकानि दृश्यन्ते दानवानां तथैव च॥ २१
एष रुद्रः समास्थाय महालोकमयं रथम्।
आयाति त्रिपुरं हन्तुं मय त्वामसुरानपि॥ २२

मयने नारदजीसे कहा—'नारदजी! आप तो (भूत-भव्य और) वर्तमानकी सारी बातोंके ज्ञाता हैं, अतः आप यह बतलाइये कि हमारे पुरमें जैसा उत्पात हो रहा है, वैसा सम्भवतः अन्यत्र कहीं भी नहीं होता होगा। (ऐसा क्यों हो रहा है?) यहाँ भयदायक स्वप्न दीख पड़ते हैं। ध्वजाएँ अकस्मात् टूटकर गिर रही हैं। वायुका स्पर्श न होनेपर भी पताकाएँ पृथ्वीपर गिर रही हैं। पताकाओं और फाटकोंसहित अट्टालिकाएँ नाचती-सी (काँपती-सी) दीखती हैं। नगरमें 'मार डालो, मार डालो' ऐसे भयावने शब्द सुननेमें आ रहे हैं। (इतना होनेपर भी) नारदजी! भक्तोंको अभय प्रदान करनेवाले स्थाणुस्वरूप वरदायक एकमात्र शङ्करजीको छोड़कर मुझे इन्द्रसहित समस्त देवताओंसे भी कुछ भय नहीं है। निष्पाप भगवन्! इन उपद्रवोंके विषयमें आपसे कुछ छिपा तो है नहीं; क्योंकि आप तो (पूर्वोक्त वर्तमानके अतिरिक्त) भूत और भविष्यके भी यथार्थ ज्ञाता हैं। मुनिश्रेष्ठ! ये उत्पात हमलोगोंके लिये भयके स्थान बन गये हैं, जिन्हें मैंने आपसे निवेदित कर दिया है। नारदजी! मैं आपके शरणागत हूँ, कृपया इसका कारण बतलाइये।' इस प्रकार मय दानवने अविनाशी नारदजीसे प्रार्थना की॥ १०—१६॥

(तब) नारदजी बोले—दानवराज! जिस कारण ये उत्पात हो रहे हैं, उन्हें यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ, सुनो! 'धृ' धातु धारण-पोषण और महत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त होती है। इसी धातुसे धर्म शब्द निष्पन्न हुआ है, अतः महत्त्वपूर्वक धारण करनेसे यह शब्द धर्म कहलाता है। आचार्यगण इष्टकी प्राप्ति करानेवाले इसी धर्मका उपदेश करते हैं। इसके विपरीत अधर्म अनिष्ट फल देनेवाला है, अतः आचार्यगण उसे ग्रहण करनेका आदेश नहीं देते। वेदज्ञोंका कथन है कि मनुष्यको उन्मार्गसे सुमार्गपर आना चाहिये; क्योंकि जो सुमार्गसे उन्मार्गपर चलते हैं, उनका विनाश तो निश्चित ही है। तुम इन उन्मत्त दानवोंके साथ महान् अधर्मके रथपर आरूढ़ होकर देवताओंका अपकार करनेवालोंकी सहायता करते हो। इसलिये इन सभी उत्पातोंद्वारा सूचित अपशकुन दानवोंके विनाशके सूचक हैं। मय! भगवान् रुद्र महालोकमय रथपर सवार होकर त्रिपुरका, तुम्हारा और समस्त असुरोंका भी विनाश करनेके लिये आ रहे हैं।

स त्वं महौजसं नित्यं प्रपद्यस्व महेश्वरम्।
यास्यसे सह पुत्रेण दानवैः सह मानद॥ २३
इत्येवमावेद्य भयं दानवोपस्थितं महत्।
दानवानां पुनर्देवो देवेशपदमागतः॥ २४

इसलिये मानद! (तुम्हारे लिये यही अच्छा होगा कि) तुम महान् ओजस्वी एवं अविनाशी महेश्वरकी शरण ग्रहण कर लो, अन्यथा तुम पुत्रों और दानवोंके साथ यमलोकके पथिक बन जाओगे। इस प्रकार देवर्षि नारद दानवोंको उनके ऊपर आये हुए महान् भयकी सूचना देकर पुनः देवेश्वर शङ्करजीके पास लौट आये॥ १७—२४॥

नारदे तु मुनौ याते मयो दानवनायकः।
शूरसम्मतमित्येवं दानवानाह दानवः॥ २५
शूराः स्थ जातपुत्राः स्थ कृतकृत्याः स्थ दानवाः।
युध्यध्वं दैवतैः सार्धं कर्त्तव्यं चापि नो भयम्॥ २६
जित्वा वयं भविष्यामः सर्वेऽमरसभासदः।
देवांश्च सेन्द्रकान् हत्वा लोकान् भोक्ष्यामहेऽसुराः॥ २७
अट्टालकेषु च तथा तिष्ठध्वं शस्त्रपाणयः।
दंशिता युद्धसज्जाश्च तिष्ठध्वं प्रोद्यतायुधाः॥ २८
पुराणि त्रीणि चैतानि यथास्थानेषु दानवाः।
तिष्ठध्वं लङ्घनीयानि भविष्यन्ति पुराणि च॥ २९
नभोगतास्तथा शूरा देवता विदिता हि वः।
ताः प्रयत्नेन वार्याश्च विदार्याश्चैव सायकैः॥ ३०
इति दनुतनयान्मयस्तथोक्त्वा
सुरगणवारणवारणे वचांसि।
युवतिजनविषण्णमानसं तत्-
त्रिपुरपुरं सहसा विवेश राजा॥ ३१
अथ रजतविशुद्धभावभावो
भवमभिपूज्य दिगम्बरं सुगीर्भिः।
शरणमुपजगाम देवदेवं
मदनार्यन्धकयज्ञदेहघातम्॥ ३२
मयमभयपदैषिणं प्रपन्नं
न किल बुबोध तृतीयदीप्तनेत्रः।
तदभिमतमदात् ततः शशाङ्की
स च किल निर्भय एव दानवोऽभूत्॥ ३३

इधर नारद मुनिके चले जानेपर दानवराज मयदानवने (वहाँ उपस्थित) सभी दानवोंसे इस प्रकार शूरसम्मत वचन कहना आरम्भ किया—'दानवो! तुमलोग शूर-वीर हो, पुत्रवान् हो और (जीवनमें सुखका उपभोग करके) कृतकृत्य हो चुके हो, अतः देवताओंके साथ डटकर युद्ध करो। इसमें तुमलोगोंको किसी प्रकारका भय नहीं मानना चाहिये। असुरो! देवताओंको जीतकर हमलोग देवसभाके सभासद हो जायँगे, अर्थात् देवसभा अपने अधिकारमें आ जायगी। तब इन्द्रसहित देवताओंका वध करके हमलोग लोकोंका उपभोग करेंगे। तुमलोग युद्धकी साज-सज्जासे विभूषित हो कवच धारण कर लो और हथियार लेकर तैयार हो जाओ तथा हाथमें शस्त्र धारण कर अट्टालिकाओंपर चढ़ जाओ। दानवो! तुमलोग इन तीनों पुरोंपर यथास्थान (सजग होकर) बैठ जाओ; क्योंकि देवगण इन तीनों पुरोंपर आक्रमण करेंगे। शूरवीरो! यदि देवता आकाशमार्गसे धावा करें तो तुमलोग तो उन्हें पहचानते ही हो, तुरंत उन्हें प्रयत्नपूर्वक रोक दो और बाणोंके प्रहारसे विदीर्ण कर दो।' इस प्रकार दानवराज मय दनु-पुत्रोंसे सुरगणरूपी हाथियोंको रोकनेके लिये बातें बताकर सहसा उस त्रिपुर-पुरमें प्रविष्ट हुआ, जहाँकी स्त्रियोंका मन भयके कारण उद्विग्न हो उठा था। तदनन्तर वह चाँदीके समान निर्मल भावसे भावित होकर सुन्दर वाणीद्वारा दिगम्बर भगवान् शङ्करकी पूजा कर उन कामदेवके शत्रु तथा अन्धक और दक्ष-यज्ञके विनाशक देवदेवेश्वरकी शरणमें गया। यद्यपि शङ्करजीके तृतीय नेत्रमें उद्दीप्त अग्निका वास है, तथापि उन चन्द्रशेखरके ध्यानमें यह बात न आयी कि यह मयदानव शरणागत होकर अभयपद प्राप्त करना चाहता है, अतः उन्होंने उसे अभीष्ट वरदान दे दिया, जिससे वह दानव निर्भय हो गया और आगसे भी सुरक्षित रहकर जीवित बच गया॥ २५—३३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे नारदागमनं नाम चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाह-प्रसङ्गमें नारदागमन नामक एक सौ चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३४॥

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय

शङ्करजीकी आज्ञासे इन्द्रका त्रिपुरपर आक्रमण, दोनों सेनाओंमें भीषण संग्राम, विद्युन्मालीका वध, देवताओंकी विजय और दानवोंका युद्ध-विमुख होकर त्रिपुरमें प्रवेश

सूत उवाच

ततो रणे देवबलं नारदोऽभ्यगमत् पुनः।
आगत्य चैव त्रिपुरात् सभायामास्थितः स्वयम्॥ १
इलावृतमिति ख्यातं तद्वर्षं विस्तृतायतम्।
यत्र यज्ञो बलेर्वृत्तो बलिर्यत्र च संयतः॥ २
देवानां जन्मभूमिर्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
विवाहाः क्रतवश्चैव जातकर्मादिकाः क्रियाः॥ ३
देवानां यत्र वृत्तानि कन्यादानानि यानि च।
रेमे नित्यं भवो यत्र सहायैः पार्षदैर्गणैः॥ ४
लोकपालाः सदा यत्र तस्थुर्मेरुगिरौ यथा।
मधुपिङ्गलनेत्रस्तु चन्द्रावयवभूषणः।
देवानामधिपं प्राह गणपांश्च महेश्वरः॥ ५
वासवैतदरीणां ते त्रिपुरं परिदृश्यते।
विमानैश्च पताकाभिर्ध्वजैश्च समलङ्कृतम्॥ ६
इदं वृत्तमिदं ख्यातं वह्निवद् भृशतापनम्।
एते जना गिरिप्रख्याः सकुण्डलकिरीटिनः॥ ७
प्राकारगोपुराट्टेषु कक्षान्ते दानवाः स्थिताः।
इमे च तोयदाभासा दनुजा विकृताननाः॥ ८
निर्गच्छन्ति पुरो दैत्याः सायुधा विजयैषिणः॥ ९
स त्वं सुरशतैः सार्धं ससहायो वरायुधः।
सुहृद्भिर्मामकैर्भृत्यैर्व्यापादय महासुरान्॥ १०
अहं च रथवर्येण निश्चलाचलवत्स्थितः।
पुरः पुरस्य रन्ध्रार्थी स्थास्यामि विजयाय वः॥ ११
यदा तु पुष्ययोगेने एकत्वं स्थास्यते परम्।
तदेतन्निर्दहिष्यामि शरेणैकेन वासव॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर नारदजी त्रिपुरसे लौटकर पुनः युद्धस्थलमें देवताओंकी सेनामें सम्मिलित हो गये। वे स्वयं देव-सभामें उपस्थित हुए। इलावृत्त नामसे विख्यात विस्तृत वर्ष, जहाँ बलिका यज्ञ सम्पन्न हुआ था तथा जहाँ बलि बाँधे गये थे, तीनों लोकोंमें देवताओंकी जन्मभूमिके रूपमें प्रसिद्ध है। उसी इलावृत्तमें देवताओंके जातकर्म आदि संस्कार तथा यज्ञ और कन्यादान आदि कर्म सम्पन्न हुए हैं। यहाँ भगवान् शङ्कर अपने पार्षदगणोंको साथ लेकर नित्य विहार करते हैं। यहाँ लोकपालगण मेरुगिरिकी तरह सदा निवास करते हैं। इसी स्थानपर जिनके नेत्र मधुके समान पीले रंगके हैं तथा जो द्वितीयाके चन्द्रमाको भूषणरूपमें धारण करते हैं, उन्हीं भगवान् महेश्वरने देवराज इन्द्र और अपने गणेश्वरोंसे इस प्रकार कहा—'इन्द्र! तुम्हारे शत्रुओंका यह त्रिपुर दिखायी पड़ रहा है। यह विमानों, पताकाओं और ध्वजोंसे सुशोभित है। यह सुदृढ़ है तथा इसके विषयमें ऐसी प्रसिद्धि है कि यह अग्निकी तरह अत्यन्त तापदायक है। इसके निवासी दानव किरीट-कुण्डल धारण किये उन्हीं पर्वतके समान दीख रहे हैं। इन दानवोंकी अङ्ग-कान्ति बादलकी-सी है और इनके मुख टेढ़े-मेढ़े हैं। ये सभी परकोटों, फाटकों और अट्टालिकाओंपर तथा कक्षान्तमें स्थित हैं। (वह देखो) वे सभी दैत्य विजयकी अभिलाषासे हथियारोंसे सुसज्जित हो नगरसे बाहर निकल रहे हैं। इसलिये तुम सहायकोंसहित अपना श्रेष्ठ अस्त्र वज्र लेकर सैकड़ों देवताओं तथा मेरे भृत्योंके साथ आगे बढ़कर इन महासुरोंका संहार करो। मैं इस श्रेष्ठ रथपर निश्चल पर्वतकी तरह स्थित रहकर तुमलोगोंकी विजयके लिये त्रिपुरके सम्मुख उसके छिद्रकी खोजमें खड़ा रहूँगा। वासव! जब पुष्य-नक्षत्रके योगके साथ ये तीनों पुर एक स्थानपर स्थित होंगे, तब मैं एक ही बाणसे इन्हें दग्ध कर डालूँगा'॥ १—१२॥

इत्युक्तो वै भगवता रुद्रेणेह सुरेश्वरः।
ययौ तत्त्रिपुरं जेतुं तेन सैन्येन संवृतः॥ १३

प्रक्रान्तरथभीमैस्तैः सदेवैः पार्षदां गणैः।
कृतसिंहरवोपेतैरुद्गच्छद्भिरिवाम्बुदैः ॥ १४

तेन नादेन त्रिपुराद् दानवा युद्धलालसाः।
उत्पत्य दुद्रुवुश्चेलुः सायुधाः खे गणेश्वरान्॥ १५

अन्ये पयोधराराावाः पयोधरसमा बभुः।
ससिंहनादं वादित्रं वादयामासुरुद्धताः॥ १६

देवानां सिंहनादश्च सर्वतूर्यरवो महान्।
ग्रस्तोऽभूद् दैत्यनादैश्च चन्द्रस्तोयधरैरिव॥ १७

चन्द्रोदयात् समुद्धूतः पौर्णमास इवार्णवः।
त्रिपुरं प्रभवत् तद्वद् भीमरूपमहासुरैः॥ १८

प्राकारेषु पुरे तत्र गोपुरेष्वपि चापरे।
अट्टालकान् समारुह्य केचिच्चलितवादिनः॥ १९

स्वर्णमालाधराः शूराः प्रभासितवराम्बराः।
केचिन्नदन्ति दनुजास्तोयमत्ता इवाम्बुदाः॥ २०

इतश्चेतश्च धावन्तः केचिदुद्धूतवाससः।
किमेतदिति पप्रच्छुरन्योऽन्यं गृहमाश्रिताः॥ २१

किमेतन्नैनं जानामि ज्ञानमन्तर्हितं हि मे।
ज्ञास्यसेऽनन्तरेणेति कालो विस्तारतो महान्॥ २२

सोऽप्यसौ पृथ्वीसारं सिंहश्च रथमास्थितः।
तिष्ठते त्रिपुरं पीड्य देहव्याधिरिवोच्छ्रितः॥ २३

य एषोऽस्ति स एषोऽस्तु का चिन्ता सम्भ्रमे सति।
एहि ह्यायुधमादाय क्व मे पृच्छा भविष्यति॥ २४

इति तेऽन्योन्यमाविद्धा उत्तरोत्तरभाषिणः।
आसाद्य पृच्छन्ति तदा दानवास्त्रिपुरालयाः॥ २५

तारकाख्यपुरे दैत्यास्तारकाख्यपुरःसराः।
निर्गताः कुपितास्तूर्णं बिलादिव महोरगाः॥ २६

भगवान् रुद्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर देवराज इन्द्र उस विशाल सेनाके साथ उस त्रिपुरको जीतनेके लिये आगे बढ़े। चलते समय देवताओं और पार्षदगणोंके रथोंसे भीषण शब्द हो रहा था और वे सभी मेघकी गर्जनाके समान सिंहनाद कर रहे थे। उस शब्दको सुनकर दानवगण युद्धकी लालसासे अस्त्र लेकर त्रिपुरसे बाहर निकले और आकाशमें छलाँग मारते हुए गणेश्वरोंपर टूट पड़े। उनमें कुछ अन्य उद्दण्ड दानव, जो काले मेघके समान शोभा पा रहे थे, मेघकी तरह गर्जना कर रहे थे और सिंहनाद करते हुए बाजा बजा रहे थे। उस समय दैत्योंके सिंहनादसे देवताओंका सिंहनाद और सभी प्रकारके तुरही आदि बाजोंका महान् शब्द उसी प्रकार अभिभूत हो गया, जैसे बादलोंके बीच चन्द्रमा छिप जाते हैं। जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर पूर्णिमा तिथिको समुद्र वृद्धिगत हो जाता है, वैसे ही उन भयंकर रूपवाले महान् असुरोंसे त्रिपुर उद्दीप्त हो उठा। उस पुरमें कुछ दानव परकोटोंपर तथा कुछ फाटकों और अट्टालिकाओंपर चढ़कर 'चलो, निकलो' ऐसा कहकर ललकार रहे थे। कुछ शूर-वीर दानव सुन्दर एवं श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये हुए थे, उनके गलेमें स्वर्णकी जंजीर शोभा पा रही थी और वे जलसे भरे हुए बादलकी भाँति सिंहनाद कर रहे थे। कुछ वस्त्र फहराते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे और घरपर आकर परस्पर एक-दूसरेसे पूछ रहे थे—'यह क्या हो रहा है?' (दूसरा उत्तर देता था कि) 'क्या हो रहा है, यह तो मैं नहीं जानता; क्योंकि उसकी जानकारी मुझसे छिपी हुई है। कुछ समयके बाद तुम्हें भी ज्ञात हो जायगा। अभी तो बहुत समय शेष है। (देखो न) वहाँ पृथ्वीके सारभूत रथपर बैठा हुआ वह जो सिंह खड़ा है, वह त्रिपुरको उसी प्रकार पीड़ा दे रहा है, जैसे बढ़ी हुई व्याधि शरीरको कष्ट देती है। वह जो हो, सो रहे; ऐसे हलचलके उपस्थित होनेपर चिन्ता करना व्यर्थ है। अब हथियार लेकर मैदानमें आ जाओ, फिर मुझसे पूछनेकी आवश्यकता नहीं रह जायगी।' उसी समय त्रिपुरनिवासी दानव परस्पर एक-दूसरेको पकड़कर इसी प्रकार पूछते थे और परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर देते थे॥ १३—२५॥

इधर तारकाक्षपुरके निवासी दैत्य क्रोधसे भरे हुए तारकाक्षको आगे करके तुरंत नगरसे उसी प्रकार बाहर निकले, मानो बिलसे विषधर सर्प निकल रहे हों।

निर्धावन्तस्तु ते दैत्याः प्रमथाधिपयूथपैः।
निरुद्धा गजराजानो यथा केसरियूथपैः॥ २७
दर्पितानां ततश्चैषां दर्पितानामिवाग्निनाम्।
रूपाणि जज्वलुस्तेषामग्नीनामिव धम्यताम्॥ २८
ततो बृहन्ति चापानि भीमनादानि सर्वशः।
निकृष्य जघ्नुरन्योऽन्यमिषुभिः प्राणभोजनैः॥ २९
मार्जारमृगभीमास्यान् पार्षदान् विकृताननान्।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा हसन्नुच्चैर्दानवा रूपसम्पदाः॥ ३०
बाहुभिः परिघाकारैः कृष्यतां धनुषां शराः।
भटवर्मेषु विविशुस्तडागानीव पक्षिणः॥ ३१
मृताः स्थ क्व नु यास्यध्वं हनिष्यामो निवर्तताम्।
इत्येवं परुषाण्युक्त्वा दानवाः पार्षदर्षभान्॥ ३२
बिभिदुः सायकैस्तीक्ष्णैः सूर्यपादा इवाम्बुदान्।
प्रमथा अपि सिंहाक्षाः सिंहविक्रान्तविक्रमाः।
खण्डशैलशिलावृक्षैर्बिभिदुर्दैत्यदानवान्॥ ३३
अम्बुदैराकुलमिव हंसाकुलमिवाम्बरम्।
दानवाकुलमत्यर्थं तत्पुरं सकलं बभौ॥ ३४
विकृष्टचापा दैत्येन्द्राः सृजन्ति शरदुर्दिनम्।
इन्द्रचापाङ्कितोरस्का जलदा इव दुर्दिनम्॥ ३५
इषुभिस्ताड्यमानास्ते भूयो भूयो गणेश्वराः।
चक्रुस्ते देहनिर्यासं स्वर्णधातुमिवाचलाः॥ ३६
तेऽथ वृक्षशिलावज्रशूलपट्टिपरश्वधैः।
चूर्ण्यन्तेऽभिहता दैत्याः काचाष्टङ्कहता इव॥ ३७
तारकाख्यो जयत्येष इति दैत्या अघोषयन्।
जयतीन्द्रश्च रुद्रश्च इत्येव च गणेश्वराः॥ ३८

बाहर निकलकर उन दैत्योंने देवसेनापर धावा बोल दिया, परंतु प्रमथगणोंके यूथपतियोंने उन्हें ऐसा रोक दिया, जैसे सिंहसमूह गजराजोंके दलको स्तम्भित कर देते हैं। उन गर्वीले दानवोंका रूप तो यों ही (क्रोधके कारण) अग्निकी तरह उद्दीप्त हो उठा था, इधर रोक दिये जानेपर वे धौंकी जाती हुई आगकी तरह जल उठे। फिर तो सब ओर भयंकर सिंहनाद होने लगा। दानवगण बड़े-बड़े धनुषोंपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर प्राण-हरण करनेवाले बाणोंद्वारा एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। प्रमथगणोंमें किन्हींके मुख बिलाव और किन्हींके मृगके समान भयंकर थे तथा किन्हींके मुख टेढ़े-मेढ़े थे। उन्हें देख-देखकर ठहाका मारकर सौन्दर्यशाली दानव हँसने लगे। परिघकी-सी आकारवाली भुजाओंद्वारा खींचे जाते हुए धनुषोंसे छूटे हुए बाण योद्धाओंके कवचोंमें उसी प्रकार घुस जाते थे, जैसे पक्षी तालाबोंमें प्रवेश करते हैं। उस समय दानवगण पार्षदयूथपतियोंको ललकारकर कह रहे थे—'अरे! अब तो तुमलोग मरे ही हो। हमारे हाथोंसे छूटकर कहाँ जाओगे! लौट आओ। हमलोग तुम्हें मार डालेंगे।' ऐसी कठोर बातें कहकर वे अपने तीखे बाणोंसे उन्हें इस प्रकार विदीर्ण कर रहे थे, जैसे सूर्यकी किरणें बादलोंको भेदकर पार कर जाती हैं। उधरसे सिंहके समान पराक्रमी एवं सिंह-सदृश नेत्रोंवाले प्रमथगण भी शिलाओं, शिलाखण्डों और वृक्षोंके प्रहारसे दैत्यों और दानवोंको चूर्ण-सा कर दे रहे थे। उस समय बादलोंसे आच्छादित एवं हंसोंसे व्याप्त आकाशकी तरह वह सारा पुर दानवोंसे व्याप्त होकर अत्यन्त सुशोभित हो रहा था। जैसे इन्द्र-धनुषसे चिह्नित मध्यभागवाले बादल जलकी वृष्टि कर दुर्दिन (मेघाच्छन्न दिवस) उत्पन्न कर लेते हैं, उसी प्रकार दैत्येन्द्रगण अपने धनुषोंकी प्रत्यञ्चाको कानतक खींचकर बाणोंकी वर्षा कर अन्धकार उत्पन्न कर रहे थे। दानवोंके बाणोंसे बारम्बार घायल होनेके कारण गणेश्वरोंके शरीरोंसे रक्तकी धार बह रही थी, जो ऐसी प्रतीत होती थी, मानो पर्वतोंसे सुवर्णधातु निकल रही हो। उधर गणेश्वरोंद्वारा चलाये गये वृक्ष, शिला, वज्र, शूल, पटा और कुठारके प्रहारसे दैत्यगण ऐसे चूर-चूर कर दिये जा रहे थे जैसे कुल्हाड़ी या छेनीके प्रहारसे काच छिन्न-भिन्न हो जाता है। उधर दैत्यगण 'यह देखो, तारकाक्ष जीत रहा है'—ऐसी घोषणा कर रहे थे। तभी इधरसे गणेश्वर सिंहनाद करते हुए बोल रहे थे—'देखो-देखो, इन्द्र और रुद्र विजयी हो रहे हैं'॥ २६—३८॥

वारिता दारिता बाणैर्योधास्तस्मिन् बलोभये।
निःस्वनन्तोऽम्बुसमये जलगर्भा इवाम्बुदाः॥ ३९
करैश्छिन्नैः शिरोभिश्च ध्वजैश्छत्रैश्च पाण्डुरैः।
युद्धभूमिर्भयवती मांसशोणितपूरिता॥ ४०
व्योम्नि चोत्प्लुत्य सहसा तालमात्रं वरायुधैः।
दृढाहताः पतन पूर्वं दानवाः प्रमथास्तथा॥ ४१
सिद्धाश्चाप्सरसश्चैव चारणाश्च नभोगताः।
दृढप्रहारहृषिताः साधु साध्विति चुक्रुशुः॥ ४२
अनाहताश्च वियति देवदुन्दुभयस्तथा।
नदन्तो मेघशब्देन शरभा इव रोषिताः॥ ४३
ते तस्मिंस्त्रिपुरे दैत्या नद्यः सिन्धुपताविव।
विशन्ति क्रुद्धवदना वल्मीकमिव पन्नगाः॥ ४४
तारकाख्यपुरे तस्मिन् सुराः शूराः समन्ततः।
सशस्त्रा निपतन्ति स्म सपक्षा इव भूधराः॥ ४५
योधयन्ति त्रिभागेन त्रिपुरे तु गणेश्वराः।
विद्युन्माली मयश्चैव मग्नौ च द्रुमवद्रणे॥ ४६
विद्युन्माली स दैत्येन्द्रो गिरीन्द्रसदृशद्युतिः।
आदाय परिघं घोरं ताडयामास नन्दिनम्॥ ४७
स नन्दी दानवेन्द्रेण परिघेण दृढाहतः।
भ्रमते मधुनाऽव्यक्तः पुरा नारायणो यथा॥ ४८

उन दोनों सेनाओंमें बाणोंद्वारा रोके एवं घायल किये गये वीर इतने जोरसे सिंहनाद कर रहे थे जैसे वर्षाकालमें जलसे भरे हुए बादल गरजते हैं। कटे हुए हाथों, मस्तकों, पीले रंगकी पताकाओं और छत्रोंसे तथा मांस और रुधिरसे भरी हुई युद्धभूमि बड़ी भयावनी लग रही थी। दानव तथा प्रमथगण उत्तम अस्त्र धारण कर पहले तो सहसा ताड़-वृक्षकी ऊँचाई-बराबर आकाशमें उछल पड़ते थे और पुनः सुदृढ़रूपसे घायल होकर भूतलपर गिर पड़ते थे। गगनमण्डलमें स्थित सिद्ध, अप्सरा और चारणोंके समूह (दानवोंपर) सुदृढ़ प्रहार होनेसे हर्षित होकर 'ठीक है, ठीक है', ऐसा कहते हुए चिल्लाने लगते थे। उस समय आकाशमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बिना चोट किये ही बज रही थीं। उनसे मेघकी गर्जना तथा क्रुद्ध हुए शरभ (अष्टपदी)-की दहाड़के समान शब्द हो रहे थे। दैत्यगण उस त्रिपुरमें इस प्रकार प्रविष्ट हो रहे थे जैसे नदियाँ समुद्रमें और क्रुद्ध मुखवाले सर्प बिमवटमें प्रवेश करते हैं। इधर अस्त्रधारी, शूरवीर देवगण तारकाक्षके उस नगरके ऊपर चारों ओर इस प्रकार छाये हुए थे, मानो पंखधारी पर्वत मँडरा रहे हों। गणेश्वर त्रिपुरमें तीन भागोंमें विभक्त होकर युद्ध कर रहे थे। उस समय विद्युन्माली और मय—ये दोनों युद्धस्थलमें वृक्षकी भाँति डटे हुए थे। इसी बीच हिमालय-तुल्य कान्तिमान् दैत्येन्द्र विद्युन्मालीने अपना भयंकर परिघ उठाकर नन्दीपर प्रहार किया। दानवेन्द्रके उस परिघके आघातसे नन्दी विशेषरूपसे घायल हो गये और वे ऐसा चक्कर काटने लगे, जैसे पूर्वकालमें दैत्यराज मधुके प्रहारसे अव्यक्तस्वरूप भगवान् नारायण भ्रमित हो गये थे॥ ३९—४८॥

नन्दीश्वरे गते तत्र गणपाः ख्यातविक्रमाः।
दुद्रुवुर्जातसंरम्भा विद्युन्मालिनमासुरम्॥ ४९
घण्टाकर्णः शङ्कुकर्णो महाकालश्च पार्षदाः।
ततश्च सायकैः सर्वान् गणपान् गणपाकृतीन्॥ ५०
भूयो भूयः स विव्याध गणेश्वरमहत्तमान्।
भित्त्वा भित्त्वा रुरावोच्चैर्नभस्यम्बुधरो यथा॥ ५१
तस्यारम्भितशब्देन नन्दी दिनकरप्रभः।
संज्ञां लभ्य ततः सोऽपि विद्युन्मालिनमाद्रवत्॥ ५२

नन्दीश्वरके घायल होकर रणभूमिसे हट जानेपर विख्यातपराक्रमी घण्टाकर्ण, शङ्कुकर्ण और महाकाल आदि प्रधान पार्षदगण क्रुद्ध होकर एक साथ राक्षस विद्युन्मालीके ऊपर टूट पड़े। तब विद्युन्मालीने उन सभी गणेश्वरोंको जो गणेश-सदृश आकृतिवाले तथा गणेश्वरोंमें प्रधान थे, बाणोंद्वारा लगातार बींधना आरम्भ किया। वह उन्हें घायल करके इतने उच्च स्वरसे सिंहनाद करता था मानो आकाशमें बादल गरज रहे हों। उसके उस सिंहनादसे सूर्य-सरीखे प्रभाशाली नन्दीकी मूर्च्छा भंग हो गयी, तब वे भी विद्युन्मालीपर चढ़ धाये।

रुद्रदत्तं तदा दीप्तं दीप्तानलसमप्रभम्।
वज्रं वज्रनिभाङ्गस्य दानवस्य ससर्ज ह॥ ५३

तन्नन्दिभुजनिर्मुक्तं मुक्ताफलविभूषितम्।
पपात वक्षसि तदा वज्रं दैत्यस्य भीषणम्॥ ५४

स वज्रनिहतो दैत्यो वज्रसंहननोपमः।
पपात वज्राभिहतः शक्रेणाद्रिरिवाहतः॥ ५५

दैत्येश्वरं विनिहतं नन्दिना कुलनन्दिना।
चुक्रुशुर्दानवाः प्रेक्ष्य दुद्रुवुश्च गणाधिपाः॥ ५६

दुःखामर्षितरोषास्ते विद्युन्मालिनि पातिते।
द्रुमशैलमहावृष्टिं पयोदाः ससृजुर्यथा॥ ५७

ते पीड्यमाना गुरुभिर्गिरिभिश्च गणेश्वराः।
कर्तव्यं न विदुः किंचिद्वन्द्यमाधार्मिका इव॥ ५८

ततोऽसुरवरः श्रीमांस्तारकाख्यः प्रतापवान्।
स तरूणां गिरीणां वै तुल्यरूपधरो बभौ॥ ५९

भिन्नोत्तमाङ्गा गणपा भिन्नपादाङ्कितानना:।
विरेजुर्भुजगा मन्त्रैर्वार्यमाणा यथा तथा॥ ६०

मयेन मायावीर्येण वध्यमाना गणेश्वराः।
भ्रमन्ति बहुशब्दालाः पञ्जरे शकुनो इव॥ ६१

तथासुरवरः श्रीमांस्तारकाख्यः प्रतापवान्।
ददाह च बलं सर्वं शुष्केन्धनमिवानलः॥ ६२

तारकाख्येण वार्यन्ते शरवर्षैस्तदा गणाः।
मयेन मायानिहतास्तारकाख्येण चेषुभिः॥ ६३

गणेशा विधुरा जाता जीर्णमूला यथा द्रुमाः॥ ६४

भूयः सम्पतते चाग्निर्ग्रहान् ग्राहान् भुजंगमान्।
गिरीन्द्रांश्च हरीन् व्याघ्रान् वृक्षान् सृमरवर्णकान्॥ ६५

शरभानष्टपादांश्च आपः पवनमेव च।
मयो मायाबलेनैव पातयत्येव शत्रुषु॥ ६६

ते तारकाक्षेण मयेन मायया
सम्मुह्यमाना विवशा गणेश्वराः।
न शक्नुवंस्ते मनसापि चेष्टितुं
यथेन्द्रियार्था मुनिनाभिसंयताः॥ ६७

उस समय उन्होंने रुद्रद्वारा दिये गये एवं प्रज्वलित अग्निके समान प्रभाशाली चमकते हुए वज्रको वज्रतुल्य कठोर शरीरवाले दानवके ऊपर चला दिया। तब नन्दीके हाथसे छूटा हुआ मोतियोंसे विभूषित वह भयंकर वज्र विद्युन्मालीके वक्षःस्थलपर जा गिरा। फिर तो वज्रके समान ठोस शरीरवाला दैत्य विद्युन्माली उस वज्रसे आहत होकर उसी प्रकार धराशायी हो गया, मानो इन्द्रके प्रहारसे पर्वत गिर पड़ा हो। अपने कुल (वर्ग)-को आनन्दित करनेवाले नन्दीद्वारा दैत्यराज विद्युन्मालीको मारा गया देखकर दानवलोग चीत्कार करने लगे। तब गणेश्वरोंने उनपर धावा बोल दिया। विद्युन्मालीके मारे जानेपर दानव दुःख और अमर्षके कारण क्रोधसे भरे हुए थे। वे गणेश्वरोंके ऊपर बादलकी भाँति वृक्षों और पर्वतोंकी महान् वृष्टि करने लगे। विशाल पर्वतोंके प्रहारसे पीड़ित हुए सभी गणेश्वर ऐसे किंकर्तव्यविमूढ हो गये, जैसे अधार्मिक जन वन्दनीय गुरुजनोंके प्रति हो जाते हैं। तदनन्तर असुरनायक प्रतापी श्रीमान् तारकाक्ष वृक्षों एवं पर्वतोंके समान रूप धारण करके रणभूमिमें उपस्थित हुआ॥ ४९—६०॥

उस समय बहुतेरे गणेश्वरोंके मस्तक फट गये थे, किन्हींके पैर टूट गये थे और कुछके मुखोंपर घाव लगा था। वे सभी मन्त्रोंद्वारा रोके गये सर्पकी तरह शोभा पा रहे थे। मायावी मयद्वारा मारे जाते हुए गणेश्वर पिंजरेमें बंद पक्षीकी तरह अनेकों प्रकारका शब्द करते हुए चक्कर काट रहे थे। तत्पश्चात् असुरश्रेष्ठ प्रतापी श्रीमान् तारकाक्षने पार्षदोंकी सारी सेनाको उसी प्रकार जलाना प्रारम्भ किया, जैसे आग सूखे इन्धनको जला देती है। तारकाक्ष बाणोंकी वर्षा करके पार्षदगणोंको रोक देता था। इस प्रकार मयकी माया और तारकाक्षके बाणोंद्वारा गणेश्वर मारे जा रहे थे। वे पुरानी जड़वाले वृक्षोंकी तरह व्याकुल हो गये। पुनः मयने अपनी मायाके बलपर शत्रुओंके ऊपर अग्निकी वर्षा की तथा ग्रह, मकर, सर्प, विशाल पर्वत, सिंह, बाघ, वृक्ष, काले हिरन और आठ पैरोंवाले शरभों (गैंडों)-को भी गिराया, जलकी घनघोर वृष्टि की और झंझावातका भी प्रकोप उत्पन्न किया। इस प्रकार तारकाक्ष और मयकी मायासे मोहित होकर वे गणेश्वर मनसे भी चेष्टा करनेमें असमर्थ हो गये। वे ऐसे निरुद्ध हो गये जैसे मुनियोंद्वारा रोके गये इन्द्रियोंके विषय।

महाजलाग्न्यादिसकुञ्जरोरगै-
र्हरीन्द्रव्याघ्रर्क्षतरक्षुराक्षसैः
विबाध्यमानास्तमसा विमोहिताः
समुद्रमध्येष्विव गाधकाङ्क्षिणः॥ ६८
सम्मर्द्यमानेषु गणेश्वरेषु
संनर्दमानेषु सुरेतरेषु।
ततः सुराणां प्रवराभिरक्षितुं
रिपोर्बलं संविविशुः सहायुधाः॥ ६९
यमो गदास्त्रो वरुणश्च भास्कर-
स्तथा कुमारोऽमरकोटिसंयुतः।
स्वयं च शक्रः सितनागवाहनः
कुलीशपाणिः सुरलोकपुङ्गवः॥ ७०
स चोडुनाथः ससुतो दिवाकरः
स सान्तकस्त्र्यक्षपतिर्महाद्युतिः।
एते रिपूणां प्रवराभिरीक्षितं
तदा बलं संविविशुर्मदोद्धताः॥ ७१
यथा वनं दर्पितकुञ्जराधिपा
यथा नभः साम्बुधरं दिवाकरः।
यथा च सिंहैर्विजनेषु गोकुलं
तथा बलं तत्त्रिदशैरभिद्रुतम्॥ ७२
कृतप्रहारातुरदीनदानवं
ततस्त्वभज्यन्त बलं हि पार्षदाः।
स्वर्ज्योतिषां ज्योतिरिवोष्मवान् हरि-
र्यथा तमो घोरतरं नराणाम्॥ ७३
विशान्तयामास यथा सदैव
निशाकरः संचितशार्वरं तमः।
ततोऽपकृष्टे च तमः प्रभावे
ह्यस्त्रप्रभावे च विवर्धमाने॥ ७४
दिग्लोकपालैर्गणनायकैश्च
कृतो महान् सिंहरवो मुहूर्तम्।
संख्ये विभग्ना विकरा विपादा-
श्छिन्नोत्तमाङ्गाः शरपूरिताङ्गाः॥ ७५
देवेतरा देववरैर्विभिन्नाः
सीदन्ति पङ्केषु यथा गजेन्द्राः।
वज्रेण भीमेन च वज्रपाणिः
शक्त्या च शक्त्या च मयूरकेतुः॥ ७६

उस समय प्रमथगण जल और अग्निकी महान् वृष्टि, हाथी, सर्प, सिंह, व्याघ्र, रीछ, चीते और राक्षसोंद्वारा सताये जा रहे थे। मायाका इतना घना अन्धकार प्रकट हुआ, जिसमें वे ऐसे विमोहित हो गये, जैसे समुद्रके मध्यमें जलकी थाह लगानेवाले विमूढ़ हो जाते हैं। इस प्रकार गणेश्वर पीड़ित किये जा रहे थे और दानवगण सिंहनाद कर रहे थे। इसी बीच प्रधान-प्रधान देवता अस्त्र धारणकर गणेश्वरोंकी रक्षा करनेके लिये शत्रुसेनामें प्रविष्ट हुए। उस अवसरपर गदाधारी यमराज, वरुण, भास्कर, एक करोड़ देवताओंके साथ कुमार कार्तिकेय, श्वेत हाथी ऐरावतपर सवार हो हाथमें वज्र लिये हुए स्वयं देवराज इन्द्र, चन्द्रमा और अपने पुत्र शनैश्चरके साथ सूर्य तथा अन्तकसहित परम तेजस्वी त्रिलोचन रुद्र—ये सभी मदोद्धत देवता उत्कृष्ट बलवानोंद्वारा सुरक्षित शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट हुए। जिस प्रकार मतवाले गजेन्द्र वनमें, बादलोंसे घिरे हुए आकाशमें सूर्य और निर्जन स्थानमें स्थित गोष्ठमें सिंह प्रवेश करते हैं, उसी प्रकार देवताओंने उस सेनापर धावा बोल दिया। फिर तो पार्षदगणोंने शस्त्रप्रहार करके दानवोंको ऐसा व्याकुल और दीन कर दिया कि उनका वह विशाल सेना-व्यूह उसी प्रकार छिन्न-भिन्न हो गया जैसे स्वर्गीय ज्योतिःपुञ्जोंके महान् ज्योति उष्णरश्मि सूर्य मनुष्योंके अन्धकारका विनाश कर देते हैं तथा चन्द्रमा रात्रिके घने अन्धकारका प्रशमन कर देते हैं॥ ६९—७३ ½॥

तदनन्तर अन्धकारका प्रभाव नष्ट हो जाने और अस्त्रका प्रभाव बढ़नेपर दिक्पालों, लोकपालों और गणनायकोंने दो घड़ीतक महान् सिंहनाद किया। फिर तो वे युद्धमें दानवोंको विदीर्ण करने लगे। वहाँ किन्हींके हाथ कट गये तो किन्हींके पैर खण्डित हो गये, किन्हींके मस्तक कट गये तो किन्हींके शरीर बाणोंसे घिर गये। इस प्रकार देवश्रेष्ठोंद्वारा घायल किये गये दानव ऐसा कष्ट पा रहे थे, जैसे दलदलमें फँसे हुए गजराज विवश हो जाते हैं। उस समय वज्रपाणि इन्द्र अपने भयंकर वज्रसे, मयूरध्वज स्वामिकार्तिक शक्तिपूर्वक अपनी शक्तिसे,

दण्डेन चोग्रेण च धर्मराजः
पाशेन चोग्रेण च वारिगोप्ता।
शूलेन कालेन च यक्षराजो
वीर्येण तेजस्वितया सुकेशः॥ ७७
गणेश्वरास्ते सुरसंनिकाशाः
पूर्णाहुतीसिक्तशिखिप्रकाशाः।
उत्सादयन्ते दनुपुत्रवृन्दान्
यथैव इन्द्राशनयः पतन्त्यः॥ ७८
मयस्तु देवान् परिरक्षितार-
मुमात्मजं देववरं कुमारम्।
शरेण भित्त्वा स हि तारकासुतं
स तारकाख्यासुरमाबभाषे॥ ७९
कृत्वा प्रहारं प्रविशामि वीरं
पुरं हि दैत्येन्द्र बलेन युक्तः।
विश्राममूर्जस्करमप्यवाप्य
पुनः करिष्यामि रणं प्रपन्नैः॥ ८०
वयं हि शस्त्रक्षतविक्षिताङ्गा
विशीर्णशस्त्रध्वजवर्मवाहाः।
जयैषिणस्ते जयकाशिनश्च
गणेश्वरा लोकवराधिपाश्च॥ ८१
मयस्य श्रुत्वा दिवि तारकाख्यो
वचोऽभिकाङ्क्षन् क्षतजोपमाक्षः।
विवेश तूर्णं त्रिपुरं दितेः सुतैः
सुतैरदित्या युधि वृद्धहर्षैः॥ ८२
ततः सशङ्खानकभेरिभीमं
ससिंहनादं हरसैन्यमाबभौ।
मयानुगं घोरगभीरगह्वरं
यथा हिमाद्रेर्गजसिंहनादितम्॥ ८३

धर्मराज अपने भयंकर दण्डसे, वरुण अपने उग्र पाशसे और पराक्रम एवं तेजसे सम्पन्न सुन्दर बालोंवाले यक्षराज कुबेर अपने काल-सदृश शूलसे प्रहार कर रहे थे। देवताओंके समान तेजस्वी एवं पूर्णाहुतिसे सिक्त हुई अग्निके समान प्रकाशमान गणेश्वर दानववृन्दपर उसी प्रकार झपटते थे मानो बिजलियाँ गिर रही हों। तत्पश्चात् मयने देवताओंकी रक्षामें तत्पर पार्वती-नन्दन एवं तारका-पुत्र सर्वश्रेष्ठ कुमार कार्तिकेयको बाणसे घायल कर तारकाक्षसे कहा—'दैत्येन्द्र! हमलोगोंके शरीर शस्त्रोंके आघातसे क्षत-विक्षत हो गये हैं तथा हमारे शस्त्रास्त्र, ध्वज, कवच और वाहन आदि भी छिन्न-भिन्न हो गये हैं। इधर गणेश्वरों तथा लोकनायक देवोंके मनमें जयकी अभिलाषा विशेषरूपसे जागरूक हो उठी है, साथ ही वे विजयी भी हो रहे हैं, अतः अब मैं इस वीरपर प्रहार करके सेनासहित नगरमें प्रवेश कर जाता हूँ और वहाँ कुछ देर विश्राम कर शक्ति-सम्पन्न होकर पुनः अनुचरोंसहित युद्ध करूँगा।' मयकी ऐसी बात सुनकर उसका पालन करता हुआ रुधिर-सरीखे लाल नेत्रोंवाला तारकाक्ष तुरंत ही आकाशमार्गसे दिति-पुत्रोंके साथ त्रिपुरमें प्रवेश कर गया। उस समय देवगण रणभूमिमें हर्षके मारे उछल पड़े। फिर तो मयका पीछा करते हुए भगवान् शंकरके सैनिक विशेष शोभा पा रहे थे। उनके शङ्ख, नगाड़े और भेरियाँ बजने लगीं तथा वे सिंहनाद करने लगे। उस समय ऐसा भीषण शब्द हो रहा था मानो हिमालय पर्वतकी भयंकर एवं गहरी गुफामें गजराज और सिंह दहाड़ रहे हों॥ ७४—८३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे इलावृते देवदानवयुद्धवर्णने प्रहारकृतं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाहप्रसङ्गमें इलावृतमें देव-दानव-युद्ध-प्रसङ्गमें परस्पर प्रहार नामक एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३५॥

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय

मयका चिन्तित होकर अद्भुत बावलीका निर्माण करना, नन्दिकेश्वर और तारकासुरका भीषण युद्ध तथा प्रमथगणोंकी मारसे विमुख होकर दानवोंका त्रिपुर-प्रवेश

सूत उवाच

मयः प्रहारं कृत्वा तु मायावी दानवर्षभः।
विवेश तूर्णं त्रिपुरमभ्रं नीलमिवाम्बरम्॥ १

स दीर्घमुष्णं निःश्वस्य दानवान् वीक्ष्य मध्यगान्।
दध्यौ लोकक्षये प्राप्ते कालं काल इवापरः॥ २

इन्द्रोऽपि बिभ्यते यस्य स्थितो युद्धेप्सुरग्रतः।
स चापि निधनं प्राप्तो विद्युन्माली महायशाः॥ ३

दुर्गं वै त्रिपुरस्यास्य न समं विद्यते पुरम्।
तस्याप्येषोऽनयः प्राप्तो नादुर्गं कारणं क्वचित्॥ ४

कालस्यैव वशे सर्वं दुर्गं दुर्गतरं च यत्।
काले क्रुद्धे कथं कालात्त्राणं नोऽद्य भविष्यति॥ ५

लोकेषु त्रिषु यत्किंचिद् बलं वै सर्वजन्तुषु।
कालस्य तद्वशं सर्वमिति पैतामहो विधिः॥ ६

अस्मिन् कः प्रभवेद् यो वै ह्यसंधार्येऽमितात्मनि।
लङ्घने कः समर्थः स्यादृते देवं महेश्वरम्॥ ७

बिभेमि नेन्द्राद्धि यमाद् वरुणान्न च वित्तपात्।
स्वामी चैषां तु देवानां दुर्जयः स महेश्वरः॥ ८

ऐश्वर्यस्य फलं यत्तत्प्रभुत्वस्य च समंततः।
तदद्य दर्शयिष्यामि यावद्वीराः समंततः॥ ९

वापीममृततोयेन पूर्णां स्रक्ष्ये वरौषधीः।
जीविष्यन्ति तदा दैत्याः संजीवनवरौषधैः॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! दानवश्रेष्ठ मायावी मय स्वामिकार्तिकपर प्रहारकर त्रिपुरमें उसी प्रकार तुरंत प्रवेश कर गया, जैसे नीले आकाशमें बादल प्रविष्ट हो जाते हैं। वहाँ आकर उसने लम्बी और गरम साँस ली तथा त्रिपुरमें भागकर आये हुए दानवोंकी ओर देखकर लोकके विनाशके अवसरपर दूसरे कालके समान मय कालके विषयमें विचार करने लगा—'अहो! रणभूमिमें युद्धकी अभिलाषासे सम्मुख खड़ा हो जानेपर जिससे इन्द्र भी डरते थे वह महायशस्वी विद्युन्माली भी कालका ग्रास बन गया। त्रिलोकीमें इस त्रिपुरकी समतामें अन्य कोई दुर्ग अथवा पुर नहीं है, फिर भी इसपर भी ऐसी आपत्ति आ ही गयी, अतः (प्राणरक्षाके लिये) दुर्ग कोई कारण नहीं है। (इसलिये मैं तो ऐसा समझता हूँ कि) दुर्ग ही क्यों? दुर्गसे भी बढ़कर सभी वस्तुएँ कालके ही वशमें हैं। तब भला कालके कुपित हो जानेपर इस समय हमलोगोंकी कालसे रक्षा कैसे हो सकेगी? तीनों लोकों तथा समस्त प्राणियोंमें जो कुछ बल है, वह सारा-का-सारा कालके वशीभूत है—ऐसा ब्रह्माका विधान है। ऐसे अमित पराक्रमी एवं असाध्य कालके प्रति कौन-सा उद्योग सफल हो सकता है? भगवान् शंकरके अतिरिक्त उस कालपर विजय पानेमें कौन समर्थ हो सकता है? मैं इन्द्र, यम और वरुणसे नहीं डरता, कुबेरसे भी मुझे कोई भय नहीं है, किंतु इन देवताओंके स्वामी जो महेश्वर हैं, उनपर विजय पाना दुष्कर है। फिर भी जबतक ये दानववीर चारों ओर बिखरे हुए हैं, तबतक ऐश्वर्य-प्राप्तिका जो फल होता है तथा स्वामी बननेका जो फल होता है, उसे मैं प्रदर्शित करूँगा। मैं एक ऐसी बावलीका निर्माण करूँगा, जिसमें अमृतरूपी जल भरा होगा। साथ ही कुछ श्रेष्ठ ओषधियोंका भी आविष्कार करूँगा। उन श्रेष्ठ संजीविनी ओषधियोंके प्रयोगसे मरे हुए दैत्य जीवित हो जायँगे'॥ १—१०॥

इति संचिन्त्य बलवान् मयो मायाविनां वरः।
मायया ससृजे वापीं रम्भामिव पितामहः॥ ११
द्वियोजनायतां दीर्घां पूर्णयोजनविस्तृताम्।
आरोहसंक्रमवतीं चित्ररूपां कथामिव॥ १२
इन्दोः किरणकल्पेन मृष्टेनामृतगन्धिना।
पूर्णां परमतोयेन गुणपूर्णामिवाङ्गनाम्॥ १३
उत्पलैः कुमुदैः पद्मैर्वृतां कादम्बकैस्तथा।
चन्द्रभास्करवर्णाभैर्भीमैरावरणैर्वृताम् ॥ १४
खगैर्मधुररावैश्च चारुचामीकरप्रभैः।
कामैषिभिरिवाकीर्णां जीवनाभरणीमिव॥ १५
संसृज्य स मयो वापीं गङ्गामिव महेश्वरः।
तस्यां प्रक्षालयामास विद्युन्मालिनमादितः॥ १६
स वाप्यां मज्जितो दैत्यो देवशत्रुर्महाबलः।
उत्तस्थाविन्धनैरिद्धः सद्यो हुत इवानलः॥ १७
मयस्य चाञ्जलिं कृत्वा तारकाख्योऽभिवादितः।
विद्युन्मालीति वचनं मयमुत्थाय चाब्रवीत्॥ १८
क्व नन्दी सह रुद्रेण वृतः प्रमथजम्बुकैः।
युध्यामोऽरीन् विनिष्पीड्य दयादेहेषु का हि नः॥ १९
अन्वास्यैव च रुद्रस्य भवामः प्रभविष्णवः।
तैर्वा विनिहता युद्धे भविष्यामो यमाशनाः॥ २०
विद्युन्मालेर्निशम्यैतन्मयो वचनमूर्जितम्।
तं परिष्वज्य सार्द्राक्ष इदमाह महासुरः॥ २१
विद्युन्मालिन् न मे राज्यमभिप्रेतं न जीवितम्।
त्वया विना महाबाहो किमन्येन महासुर॥ २२
महामृतमयी वापी ह्येषा मायाभिरीश्वर।
सृष्टा दानवदैत्यानां हतानां जीववर्धिनी॥ २३
दिष्ट्या त्वां दैत्य पश्यामि यमलोकादिहागतम्।
दुर्गतावनयग्रस्तं भोक्ष्यामोऽद्य महानिधिम्॥ २४

ऐसा विचारकर मायावियोंमें श्रेष्ठ बलवान् मयने एक (सुन्दर) बावलीकी रचना की, जैसे ब्रह्माजीने मायासे रम्भा अप्सराकी रचना कर डाली थी। वह (बावली) दो योजन लम्बी और एक योजन चौड़ी थी। उसमें चित्र-विचित्र प्रसङ्गोंवाली कथाकी भाँति क्रमशः चढ़ाव-उतारवाली सीढ़ियाँ बनी थीं। वह चन्द्रमाकी किरणोंके समान उज्ज्वल, अमृत-सदृश मधुर एवं सुगन्धित उत्तम जलसे भरी हुई ऐसी लग रही थी, मानो सम्पूर्ण सद्गुणोंसे पूर्ण कोई वनिता हो। उसमें नील कमल, कुमुदिनी और अनेकों प्रकारके कमल खिले हुए थे। वह चन्द्रमा और सूर्यके समान चमकीले रंगवाले भयंकर डैनोंसे युक्त कलहंसोंसे व्याप्त थी। उसमें सुन्दर सुनहली कान्तिवाले पक्षी मधुर शब्दोंमें कूज रहे थे। वह जलाभिलाषी जीवोंसे व्याप्त उन्हें प्राणदान करनेवालीकी तरह दीख रही थी। जैसे महेश्वरने (अपनी जटासे) गङ्गाको उत्पन्न किया था, उसी प्रकार मयने उस बावलीकी रचना कर उसके जलसे सर्वप्रथम विद्युन्मालीके शवको धोया। उस बावलीमें डुबोये जानेपर देवशत्रु महाबली दैत्य विद्युन्माली उसी प्रकार उठ खड़ा हुआ, जैसे इन्धन पड़नेसे हवन की गयी अग्नि तुरंत उद्दीप्त हो उठती है। उठते ही विद्युन्मालीने हाथ जोड़कर मय और तारकासुरका अभिवादन किया और मयसे इस प्रकार कहा—'प्रमथरूपी शृगालोंसे घिरा हुआ रुद्रके साथ नन्दी कहाँ खड़ा है? अब हमलोग शत्रुओंको पीसते हुए युद्ध करेंगे। हमलोगोंके शरीरमें दया कहाँ? हमलोग या तो रुद्रको खदेड़कर प्रभावशाली होंगे अथवा उनके द्वारा युद्धस्थलमें मारे जाकर यमराजके ग्रास बन जायँगे।' विद्युन्मालीके ऐसे उत्साहपूर्ण वचन सुनकर महासुर मयके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। तब उसने विद्युन्मालीका आलिङ्गन कर इस प्रकार कहा—'महाबाहु विद्युन्माली! तुम्हारे बिना न तो मुझे राज्य अभीष्ट है, न जीवनकी ही अभिलाषा है। महासुर! अन्य पदार्थोंकी तो बात ही क्या है? ऐश्वर्यशाली वीर! मैंने मायाद्वारा अमृतसे भरी हुई इस बावलीकी रचना की है। यह मरे हुए दानवों और दैत्योंको जीवन-दान देगी। दैत्य! सौभाग्यवश (इसीके प्रभावसे) मैं तुम्हें यमलोकसे लौटा हुआ देख रहा हूँ। अब हमलोग आपत्तिके समय अन्यायसे अपहरण की हुई महानिधिका उपभोग करेंगे'॥ ११—२४॥

दृष्ट्वा दृष्ट्वा च तां वापीं मायया मयनिर्मिताम्।
हृष्टाननाक्षा दैत्येन्द्रा इदं वचनमब्रुवन्॥ २५
दानवा युध्यतेदानीं प्रमथैः सह निर्भयाः।
मयेन निर्मिता वापी हतान् संजीवयिष्यति॥ २६
ततः क्षुब्धाम्बुधिनिभा भेरी सा तु भयंकरी।
वाद्यमाना ननादोच्चै रौरवी सा पुनः पुनः॥ २७
श्रुत्वा भेरीरवं घोरं मेघारम्भितसंनिभम्।
न्यपतन्नसुरास्तूर्णं त्रिपुराद् युद्धलालसाः॥ २८
लोहराजतसौवर्णैः कटकैर्मणिराजितैः।
आमुक्तैः कुण्डलैर्हारैर्मुकुटैरपि चोत्कटैः॥ २९
धूमायिता ह्यविरमा ज्वलन्त इव पावकाः।
आयुधानि समादाय काशिनो दृढविक्रमाः॥ ३०
नृत्यमाना इव नटा गर्जन्त इव तोयदाः।
करोच्छ्रया इव गजाः सिंहा इव च निर्भयाः॥ ३१
ह्रदा इव च गम्भीराः सूर्या इव प्रतापिताः।
द्रुमा इव च दैत्येन्द्रास्त्रासयन्तो बलं महत्॥ ३२
प्रमथा अपि सोत्साहा गरुडोत्पातपातिनः।
युयुत्सवोऽभिधावन्ति दानवान् दानवारयः॥ ३३
नन्दीश्वरेण प्रमथास्तारकाख्येन दानवाः।
चक्रुः संहत्य संग्रामं चोद्यमाना बलेन च॥ ३४
तेऽसिभिश्चन्द्रसंकाशैः शूलैश्चानलपिङ्गलैः।
बाणैश्च दृढनिर्मुक्तैरभिजघ्नुः परस्परम्॥ ३५
शराणां सृज्यमानानामसीनां च निपात्यताम्।
रूपाण्यासन् महोल्कानां पतन्तीनामिवाम्बरात्॥ ३६
शक्तिभिर्भिन्नहृदया निर्दया इव पातिताः।
निरयेष्विव निर्मग्नाः कूजन्ते प्रमथासुराः॥ ३७
हेमकुण्डलयुक्तानि किरीटोत्कटवन्ति च।
शिरांस्युर्व्यां पतन्ति स्म गिरिकूटा इवात्यये॥ ३८
परश्वधैः पट्टिशैश्च खड्गैश्च परिघैस्तथा।
छिन्नाः करिवराकारा निपेतुस्ते धरातले॥ ३९

मायाके प्रभावसे मयद्वारा निर्मित उस बावलीको देख-देखकर दैत्येन्द्रोंके नेत्र और मुख हर्षके कारण उत्फुल्ल हो उठे थे। तब वे (दानवोंको ललकारते हुए) इस प्रकार बोले—'दानवो! अब तुमलोग निर्भय होकर प्रमथगणोंके साथ युद्ध करो। मयद्वारा निर्मित यह बावली मरे हुए तुमलोगोंको जीवित कर देगी।' फिर तो क्षुब्ध हुए सागरके समान भय उत्पन्न करनेवाली दानवोंकी भेरी बज उठी। वह बड़े जोरसे भयंकर शब्द कर रही थी। मेघकी गर्जनाके समान उस भयंकर भेरीके शब्दको सुनकर युद्धके लिये लालायित हुए असुरगण तुरंत ही त्रिपुरसे बाहर निकल पड़े। वे लोहे, चाँदी, सुवर्ण और मणियोंके बने हुए कड़े, कुण्डल, हार और उत्तम मुकुट धारण किये हुए थे। वे अनवरत जलते हुए धूमसे युक्त प्रज्वलित अग्निके समान दीख रहे थे। वे सुदृढ़ पराक्रमी दैत्य अपने-अपने अस्त्र लेकर (उछलते-कूदते हुए) ऐसे लग रहे थे, जैसे रंगमंचपर नाचते हुए नट हों। वे सूँड़ उठाये हुए हाथीके समान हाथ उठाकर और सिंह-सदृश निर्भय होकर बादलकी तरह गर्जना कर रहे थे। कुण्डके समान गम्भीर, सूर्यके सदृश तेजस्वी और वृक्षोंके-से धैर्यशाली दैत्येन्द्र प्रमथोंकी विशाल सेनाको पीडित करने लगे। तत्पश्चात् गरुडकी भाँति झपट्टा मारनेवाले दानव-शत्रु प्रमथगण भी उत्साहपूर्वक युद्ध करनेकी अभिलाषासे दानवोंपर टूट पड़े। उस समय नन्दीश्वरकी अध्यक्षतामें प्रमथगण और तारकासुरकी अध्यक्षतामें दानवयूथ समवेतरूपसे युद्ध करने लगे। उन्हें सेनाएँ भी प्रेरित कर रही थीं। वे चन्द्रमाके समान चमकीली तलवारों, अग्नि-सदृश पीले शूलों और सुदृढ़रूपसे छोड़े गये बाणोंसे परस्पर एक-दूसरेपर प्रहार कर रहे थे। उस समय छोड़े जाते हुए बाणों तथा प्रहार की जाती हुई तलवारोंके रूप ऐसे दीख रहे थे मानो आकाशसे गिरती हुई महोल्काएँ हों॥ २५—३६॥

शक्तिके आघातसे उनके हृदय छिन्न-भिन्न हो गये थे और वे दयाहीनकी भाँति भूमिपर पड़े हुए थे। इस प्रकार प्रमथगण तथा असुरवृन्द नरकमें पड़े हुए जीवोंकी तरह चीत्कार कर रहे थे। स्वर्णनिर्मित कुण्डलों और प्रभावशाली किरीटोंसे युक्त वीरोंके मस्तक प्रलयकालमें पर्वतशिखरकी भाँति पृथ्वीपर गिर रहे थे। वे कुठार, पटा, खड्ग और लोहेकी गदाके आघातसे छिन्न-भिन्न होकर गजेन्द्रोंके समान धराशायी हो रहे थे। कभी

गर्जन्ति सहसा हृष्टाः प्रमथा भीमगर्जनाः।
साधयन्त्यपरे सिद्धात्त युद्धगान्धर्वमद्भुतम्॥ ४०

बलवान् भासि प्रमथ दर्पितो भासि दानव।
इति चोच्चारयन् वाचं चारणा रणधूर्गताः॥ ४१

परिघैराहताः केचिद् दानवैः शंकरानुगाः।
वमन्ते रुधिरं वक्त्रैः स्वर्णधातुमिवाचलाः॥ ४२

प्रमथैरपि नाराचैरसुराः सुरशत्रवः।
द्रुमैश्च गिरिशृङ्गैश्च गाढमेवाहवे हताः॥ ४३

सूदितानथ तान् दैत्यानन्ये दानवपुङ्गवाः।
उत्क्षिप्य चिक्षिपुर्वाप्यां मयदानवचोदिताः॥ ४४

ते चापि भास्वरैर्देहैः स्वर्गलोक इवामराः।
उत्तस्थुर्वापीमासाद्य सद्रूपाभरणाम्बराः॥ ४५

अथैके दानवाः प्राप्य वापीप्रक्षेपणादसून्।
आस्फोट्य सिंहनादं च कृत्वाधावंस्तथासुराः॥ ४६

दानवाः प्रमथानेतान् प्रसर्पत किमासथ।
हतानपि हि वो वापी पुनरुज्जीवयिष्यति॥ ४७

एवं श्रुत्वा शङ्कुकर्णो वचोऽग्रग्रहसंनिभः।
द्रुतमेवैत्य देवेशमिदं वचनमब्रवीत्॥ ४८

सूदिताः सूदिता देव प्रमथैरसुरा ह्यमी।
उत्तिष्ठन्ति पुनर्भीमाः सस्या इव जलोक्षिताः॥ ४९

अस्मिन् किल पुरे वापी पूर्णामृतरसाम्भसा।
निहता निहता यत्र क्षिप्ता जीवन्ति दानवाः॥ ५०

इति विज्ञापयद् देवं शङ्कुकर्णो महेश्वरम्।
अभवन् दानवबल उत्पाता वै सुदारुणाः॥ ५१

तारकाख्यः सुभीमाक्षो दारितास्यो हरिर्यथा।
अभ्यधावत् संक्रुद्धो महादेवरथं प्रति॥ ५२

त्रिपुरे तु महान् घोरो भेरीशङ्खरवो बभौ।
दानवा निःसृता दृष्ट्वा देवदेवरथे सुरम्॥ ५३

सहसा भयंकर गर्जना करनेवाले प्रमथगण हर्षपूर्वक गर्जना करने लगते तो इधर सिद्धगण अद्भुत युद्ध-कौशल दिखाते थे। रणभूमिमें आगे चलनेवाले चारण—'प्रमथ! तुम तो बलवान् मालूम पड़ते हो,' 'दानव! तुम गर्वीले दीख रहे हो'—इस प्रकारके वचन बोल रहे थे। दानवोंद्वारा चलाये गये लोहनिर्मित गदाके आघातसे कुछ पार्षदगण मुखसे रक्त उगल रहे थे, जो ऐसे लगते थे, मानो पर्वत सुवर्णधातु उगल रहे हों। उधर प्रमथगण भी रणभूमिमें बाणों, वृक्षों और पर्वत-शिखरोंके प्रहारसे बहुतेरे देवशत्रु असुरोंको पूर्णरूपसे घायल कर उन्हें कालके हवाले कर रहे थे। मय दानवकी आज्ञासे दूसरे दानवश्रेष्ठ उन मरे हुए दानवोंको उठाकर उसी बावलीमें डाल देते थे। उस बावलीमें पड़ते ही वे सभी दानव स्वर्गवासी देवताओंकी तरह तेजस्वी शरीर धारण कर उत्तम आभूषणों और वस्त्रोंसे विभूषित हो बाहर निकल आते थे। तदनन्तर बावलीमें डाल देनेसे जीवित हुए कुछ दानव ताल ठोंककर सिंहनाद करते हुए इधर-उधर दौड़ लगा रहे थे और कह रहे थे—'दानवो! इन प्रमथगणोंपर धावा करो। क्यों बैठे हो? (अब तुमलोगोंको कोई भय नहीं है; क्योंकि) मर जानेपर भी तुमलोगोंको यह बावली पुनः जीवित कर देगी'॥ ३७—४७॥

दानवोंको ऐसा कहते सुनकर सूर्यके समान तेजस्वी शङ्कुकर्णने शीघ्र ही देवेश्वर शंकरजीके निकट जाकर इस प्रकार कहा—'देव! प्रमथगणोंद्वारा बारंबार मारे गये ये भयंकर असुर पुनः उसी प्रकार जी उठते हैं, जैसे जलके सिञ्चनसे सूखी हुई फसल। निश्चय ही इस पुरमें अमृतरूपी जलसे परिपूर्ण कोई बावली है, जिसमें डाल देनेसे बार-बार मारे गये दानव पुनः जीवित हो जाते हैं।' इस प्रकार शङ्कुकर्णने भगवान् महेश्वरको सूचित किया। उसी समय दानवोंकी सेनामें अत्यन्त भीषण उत्पात होने लगे। तब परम भयानक नेत्रोंवाले तारकाक्षने अत्यन्त कुपित होकर सिंहकी तरह मुँह फैलाये हुए महादेवजीके रथपर धावा किया। उस समय त्रिपुरमें भेरियों और शङ्खोंका महान् भीषण निनाद होने लगा। देवाधिदेव शंकरजीके रथपर (शंकर और) ब्रह्माको उपस्थित देखकर दानवगण त्रिपुरसे बाहर निकले।

भूकम्पश्चाभवत्तत्र रथाङ्गो* भूगतोऽभवत्।
दृष्ट्वा क्षोभमगादुद्रः स्वयम्भूश्च पितामहः॥ ५४
ताभ्यां देववरिष्ठाभ्यामन्वितः स रथोत्तमः।
अनायतनमासाद्य सीदते गुणवानिव॥ ५५
धातुक्षये देह इव ग्रीष्मे चाल्पमिवोदकम्।
शैथिल्यं याति स रथः स्नेहो विप्रकृतो यथा॥ ५६
रथादुत्पत्यात्मभूर्वै सीदन्तं तु रथोत्तमम्।
उज्जहार महाप्राणो रथं त्रैलोक्यरूपिणम्॥ ५७
तदा शराद् विनिष्पत्य पीतवासा जनार्दनः।
वृषरूपं महत्कृत्वा रथं जग्राह दुर्धरम्॥ ५८
स विषाणाभ्यां त्रैलोक्यं रथमेव महारथः।
प्रगृह्योद्वहते सज्जं कुलं कुलवहो यथा॥ ५९
तारकाख्योऽपि दैत्येन्द्रो गिरीन्द्र इव पक्षवान्।
अभ्यद्रवत्तदा देवं ब्रह्माणं हतवांश्च सः॥ ६०
स तारकाख्याभिहतः प्रतोदं न्यस्य कूबरे।
विजज्वाल मुहुर्ब्रह्मा श्वासं वक्त्रात् समुद्गिरन्॥ ६१

तभी वहाँ ऐसा भयंकर भूकम्प आया, जिससे (शिवजीके) रथका चक्का पृथ्वीमें प्रविष्ट हो गया। यह देखकर भगवान् रुद्र और स्वयम्भू ब्रह्मा क्षुब्ध हो उठे। उन दोनों देवश्रेष्ठोंसे युक्त वह उत्तम रथ कहीं ठहरनेका स्थान न पाकर स्थानरहित गुणी पुरुषकी तरह विपत्तिग्रस्त हो गया। वह रथ वीर्यनाश हो जानेपर शरीर, ग्रीष्म ऋतुमें अल्प जलवाले जलाशय और तिरस्कृत स्नेहकी तरह शिथिलताको प्राप्त हो गया। इस प्रकार जब वह श्रेष्ठ रथ नीचे जाने लगा, तब महाबली स्वयम्भू ब्रह्माने उससे कूदकर उस त्रैलोक्यरूपी रथको ऊपर उठा दिया। इतनेमें ही पीताम्बरधारी भगवान् जनार्दनने बाणसे निकलकर विशाल वृषभका रूप धारण किया और उस दुर्धर रथको उठा लिया। वे महारथी जनार्दन त्रिलोकीरूप उस रथको अपने सींगोंपर उठाकर उसी तरह ढो रहे थे, जैसे कुलपति अपने संगठित कुलका भार वहन करता है। उसी समय पक्षधारी गिरिराजकी तरह विशालकाय दैत्येन्द्र तारकासुरने भी देवेश्वर ब्रह्मापर धावा बोल दिया और उन्हें घायल कर दिया। तब तारकासुरके प्रहारसे घायल हुए ब्रह्मा रथके कूबरपर चाबुक रखकर मुखसे बारंबार लम्बी साँस छोड़ते हुए (क्रोधसे) प्रज्वलित हो उठे॥ ४८—६१॥

तत्र दैत्यैर्महानादो दानवैरपि भैरवः।
तारकाख्यस्य पूजार्थं कृतो जलधरोपमः॥ ६२
रथचरणकरोऽथ महामृधे
वृषभवपुर्वृषभेन्द्रपूजितः।
दितितनयबलं विमर्द्य सर्वं
त्रिपुरपुरं प्रविवेश केशवः॥ ६३
सजलजलदराजितां समस्तां
कुमुदवरोत्पलफुल्लपङ्कजाढ्याम्।
सुरगुरुरपिबत् पयोऽमृतं त-
द्रविरिव संचितशार्वरं तमोऽन्धम्॥ ६४
वापीं पीत्वासुरेन्द्राणां पीतवासा जनार्दनः।
नर्दमानो महाबाहुः प्रविवेश शरं ततः॥ ६५
ततोऽसुरा भीमगणेश्वरैर्हताः
प्रहारसंवर्धितशोणितापगाः।
पराङ्मुखा भीममुखैः कृता रणे
यथा नयाभ्युद्यततत्परैर्नरैः॥ ६६

वहाँ दैत्य और दानव तारकासुरका सत्कार करनेके लिये मेघकी गर्जनाके समान अत्यन्त भयंकर सिंहनाद करने लगे। यह देखकर वृषभका शरीर धारण करनेवाले एवं शंकरद्वारा पूजित भगवान् केशव हाथमें सुदर्शन चक्र धारण कर उस महासमरमें दैत्योंकी सारी सेनाओंका मर्दन करते हुए त्रिपुरमें प्रविष्ट हुए। वहाँ वे उस बावलीपर जा पहुँचे, जो चारों ओरसे बादलोंसे सुशोभित तथा खिली हुई कुमुदिनी, नीलकमल और अन्यान्य कमलोंसे व्याप्त थी। फिर तो उन देवश्रेष्ठने उसके अमृतरूपी जलको इस प्रकार पी लिया, जैसे सूर्य रात्रिमें संचित हुए घने अन्धकारको पी जाते हैं। इस प्रकार पीताम्बरधारी महाबाहु जनार्दन असुरेन्द्रोंकी बावलीका अमृत पीकर सिंहनाद करते हुए पुनः उसी बाणमें प्रविष्ट हो गये। तत्पश्चात् भयावने मुखवाले भयंकर गणेश्वरोंने असुरोंको मारना प्रारम्भ किया। उनके प्रहारसे घायल हुए दानवोंके रुधिरसे नदियाँ बह चलीं। वे उसी प्रकार युद्धविमुख कर दिये गये, जैसे नयशील पुरुष अन्यायियोंको विमुख कर देते हैं।

* कुछ प्रतियोंके अनुसार यहाँ यदि 'शताङ्ग' पाठ भी हो तो भी विष्णु आदि सैकड़ों अङ्गयुक्त रथ ही अभिप्रेत होगा।

स तारकाख्यस्तडिमालिरेव च
मयेन सार्धं प्रमथैरभिद्रुताः।
पुरं परावृत्य नु ते शरार्दिता
यथा शरीरं पवनोदये गताः॥ ६७
गणेश्वराभ्युद्यतदर्पकाशिनो
महेन्द्रनन्दीश्वरषण्मुखा युधि।
विनेदुरुच्चैर्जहसुश्च दुर्मदा
जयेम चन्द्रादिदिगीश्वरैः सह॥ ६८

इस प्रकार प्रमथगणोंद्वारा खदेड़े गये एवं बाणोंके प्रहारसे घायल मयके साथ तारकासुर और विद्युन्माली त्रिपुरमें ऐसे लौट आये, मानो उनके शरीरसे प्राण ही निकल गये हों। उस समय युद्धस्थलमें महेन्द्र, नन्दीश्वर और स्वामिकार्तिक गणेश्वरोंके साथ दर्पसे सुशोभित हो रहे थे। वे उन्मत्त होकर सिंहनाद एवं अट्टहास करते हुए कहने लगे कि अब चन्द्रमा आदि दिक्पालोंसहित हमलोग अवश्य विजयी होंगे॥ ६२—६८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरदाहे षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरदाहप्रसङ्गमें एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३६॥

एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय

वापी-शोषणसे मयको चिन्ता, मय आदि दानवोंका त्रिपुरसहित समुद्रमें प्रवेश तथा शंकरजीका इन्द्रको युद्ध करनेका आदेश

सूत उवाच

प्रमथैः समरे भिन्नास्त्रैपुरास्ते सुरारयः।
पुरं प्रविविशुर्भीताः प्रमथैर्भग्नगोपुरम्॥ १

शीर्णदंष्ट्रा यथा नागा भग्नशृङ्गा यथा वृषाः।
यथा विपक्षाः शकुना नद्यः क्षीणोदका यथा॥ २

मृतप्रायास्तथा दैत्या दैवतैर्विकृताननाः।
बभूवुस्ते विमनसः कथं कार्यमिति ब्रुवन्॥ ३

अथ तान् म्लानमनसस्तदा तामरसाननः।
उवाच दैत्यो दैत्यानां परमाधिपतिर्मयः॥ ४

कृत्वा युद्धानि घोराणि प्रमथैः सह सामरैः।
तोषयित्वा तथा युद्धे प्रमथानमरैः सह॥ ५

यूयं यत् प्रथमं दैत्याः पश्चाच्च बलपीडिताः।
प्रविष्टा नगरं त्रासात् प्रमथैर्भृशमर्दिताः॥ ६

अप्रियं क्रियते व्यक्तं देवैर्नास्त्यत्र संशयः।
यत्र नाम महाभागाः प्रविशन्ति गिरेर्वनम्॥ ७

अहो हि कालस्य बलमहो कालो हि दुर्जयः।
यत्रेदृशस्य दुर्गस्य उपरोधोऽयमागतः॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार समरभूमिमें प्रमथगणोंद्वारा घायल किये गये त्रिपुरवासी देवशत्रु दानव भयभीत होकर त्रिपुरमें लौट गये। उस समय प्रमथोंने त्रिपुरके फाटकको भी नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। जैसे नष्ट हुए दाँतोंवाले सर्प, टूटे हुए सींगोंवाले साँड़, डैनेरहित पक्षी और क्षीण जलवाली नदियाँ शोभाहीन हो जाती हैं, उसी प्रकार देवताओंके प्रहारसे दैत्यवृन्द मृतप्राय हो गये थे। उनके मुख विकृत हो गये थे और वे खिन्न मनसे कह रहे थे कि अब क्या किया जाय? तब कमल-सदृश मुखवाले दैत्योंके चक्रवर्ती सम्राट् मय दैत्यने उन मलिन मनवाले दैत्योंसे कहा—'दैत्यो! इसमें सन्देह नहीं है कि तुमलोगोंने पहले युद्धभूमिमें देवताओंसहित प्रमथगणोंके साथ भयंकर युद्ध करके उन्हें संतुष्ट किया है, किंतु पीछे तुमलोग देवसेनासे पीड़ित और प्रमथोंके प्रहारसे अत्यन्त घायल होकर भयवश नगरमें भाग आये हो। निस्संदेह देवगण प्रकटरूपमें हमलोगोंका अप्रिय कर रहे हैं, इसी कारण ये महान् भाग्यशाली दैत्य इस समय भागकर पर्वतीय वनोंमें छिप रहे हैं। अहो! कालका बल महान् है! अहो! यह काल किसी प्रकार जीता नहीं जा सकता। कालके ही प्रभावसे त्रिपुर-जैसे दुर्गपर यह अवरोध उत्पन्न हो गया है।'

मये विवदमाने तु नर्दमान इवाम्बुदे।
बभूवुर्निष्प्रभा दैत्या ग्रहा इन्दूदये यथा॥ ९

वापीपालास्ततोऽभ्येत्य नभ: काल इवाम्बुदा:।
मयमाहुर्यमप्रख्यं साञ्जलिप्रग्रहा: स्थिता:॥ १०

या सामृतरसा गूढा वापी वै निर्मिता त्वया।
समाकुलोत्पलवना समीनाकुलपङ्कजा॥ ११

पीता सा वृषरूपेण केनचिद् दैत्यनायक।
वापी सा साम्प्रतं दृष्ट्वा मृतसंज्ञा इवाङ्गना॥ १२

वापीपालवच: श्रुत्वा मयोऽसौ दानवप्रभु:।
कष्टमित्यसकृत् प्रोच्य दितिजानिदमब्रवीत्॥ १३

मया मायाबलकृता वापी पीता त्वियं यदि।
विनष्टा: स्म न संदेहस्त्रिपुरं दानवा गतम्॥ १४

निहतान् निहतान् दैत्यानाजीवयति दैवतै:।
पीता वा यदि वा वापी पीता वै पीतवाससा॥ १५

कोऽन्यो मन्मायया गुप्तां वापीममृततोयिनीम्।
पास्यते विष्णुमजितं वर्जयित्वा गदाधरम्॥ १६

सुगुह्यमपि दैत्यानां नास्त्यस्याविदितं भुवि।
यत्र मद्वरकौशल्यं विज्ञानं न वृतं बुधै:॥ १७

समोऽयं रुचिरो देशो निर्द्रुमो निर्द्रुमाचल:।
नवाम्भ:पूरितं कृत्वा बाधन्तेऽस्मान् मरुद्गणा:॥ १८

ते यूयं यदि मन्यध्वं सागरोपरि धिष्ठिता:।
प्रमथानां महावेगं सहाम: श्वसनोपमम्॥ १९

एतेषां च समारम्भास्तस्मिन् सागरसम्प्लवे।
निरुत्साहा भविष्यन्ति एतद्रथपथावृता:॥ २०

युध्यतां निघ्नतां शत्रून् भीतानां च द्रविष्यताम्।
सागरोऽम्बरसङ्काश: शरणं नो भविष्यति॥ २१

इत्युक्त्वा स मयो दैत्यो दैत्यानामधिपस्तदा।
त्रिपुरेण ययौ तूर्णं सागरं सिन्धुबान्धवम्॥ २२

मेघकी भाँति कड़कते हुए मयके इस प्रकार विषाद करनेपर सभी दैत्य उसी प्रकार निस्तेज हो गये, जैसे चन्द्रमाके उदय होनेपर अन्य ग्रह मलिन हो जाते हैं॥ १—९॥

इसी समय वर्षाकालीन मेघकी तरह शरीरधारी बावलीके रक्षक दैत्य यमराज-सदृश भयंकर मयके निकट आकर हाथ जोड़कर (अभिवादन करके) खड़े हो गये और इस प्रकार बोले—'दैत्यनायक! आपने अमृतरूपी जलसे भरी हुई जिस गुप्त बावलीका निर्माण किया था, जो नील कमल-वनसे व्याप्त थी तथा जिसमें मछलियाँ और विभिन्न प्रकारके भी कमल भरे हुए थे, उसे वृषभरूपधारी किसी देवताने पी लिया। इस समय वह बावली मूर्च्छित हुई सुन्दरी स्त्रीकी भाँति दीख रही है।' बावलीके रक्षकोंकी बात सुनकर दानवराज मय 'कष्ट है'—ऐसा कई बार कहकर दैत्योंसे इस प्रकार बोला—'दानवो! मेरे द्वारा मायाके बलसे रची हुई बावलीको यदि किसीने पी लिया तो निश्चय समझो कि हमलोग नष्ट हो गये और त्रिपुरको भी गया हुआ ही समझो। हाय! जो देवताओंद्वारा बार-बार मारे गये दैत्योंको जीवन-दान देती थी, वह बावली पी ली गयी! यदि वह सचमुच पी ली गयी तो (निश्चय ही) उसे पीताम्बरधारी विष्णुने ही पीया होगा। भला, गदाधारी अजेय विष्णुको छोड़कर दूसरा कौन ऐसा समर्थ है, जो मेरी मायाद्वारा गुप्त एवं अमृतरूपी जलसे भरी हुई बावलीको पी सकेगा? भूतलपर दैत्योंकी गुप्त-से-गुप्त बात विष्णुसे अज्ञात नहीं है। मेरी वरप्राप्तिकी कुशलता, जिसे विद्वान् लोग नहीं जान सके, विष्णुसे छिपी नहीं है। हमारा यह देश सुन्दर और समतल है। यह वृक्ष और पर्वतसे रहित है। फिर भी मरुद्गण इसे नूतन जलसे परिपूर्ण करके हमलोगोंको बाधा पहुँचा रहे हैं। इसलिये यदि तुमलोगोंको स्वीकार हो तो हमलोग सागरके ऊपर स्थित हो जायँ और वहाँसे प्रमथोंके वायुके समान महान् वेगको सहन करें। सागरकी उस बाढ़में इनका सारा उद्योग उत्साहहीन हो जायगा और उस विशाल रथका मार्ग रुक जायगा। इसलिये युद्ध करते समय, शत्रुओंको मारते समय और भयभीत होकर भागते समय हमलोगोंके लिये यह सागर आकाशकी भाँति शरणदाता हो जायगा।' ऐसा कहकर दैत्यराज मय दानव तुरंत त्रिपुरसहित नदियोंके बन्धुस्वरूप सागरकी ओर प्रस्थित हुआ।

सागरे जलगम्भीर उत्पपात पुरं वरम्।
अवतस्थुः पुराण्येव गोपुराभरणानि च॥ २३

अपक्रान्ते तु त्रिपुरे त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः।
पितामहमुवाचेदं वेदवादविशारदम्॥ २४
पितामह दृढं भीता भगवन् दानवा हि नः।
विपुलं सागरं ते तु दानवाः समुपाश्रिताः॥ २५
यत एव हि ते यातास्त्रिपुरेण तु दानवाः।
तत एव रथं तूर्णं प्रापयस्व पितामह॥ २६
सिंहनादं ततः कृत्वा देवा देवरथं च तम्।
परिवार्य ययुर्हृष्टाः सायुधाः पश्चिमोदधिम्॥ २७
ततोऽमरामरगुरुं परिवार्य भवं हरम्।
नर्दयन्तो ययुस्तूर्णं सागरं दानवालयम्॥ २८
अथ चारुपताकभूषितं
पटहाडम्बरशङ्खनादितम्।
त्रिपुरमभिसमीक्ष्य देवता
विविधबला ननदुर्यथा घनाः॥ २९
असुरवरपुरेऽपि दारुणो
जलधररावमृदङ्गगह्वरः।
दनुतनयनिनादमिश्रितः
प्रतिनिधिः संक्षुभितार्णवोपमः॥ ३०
अथ भुवनपतिर्गतिः सुराणा-
मरिमृगयामददात् सुलब्धबुद्धिः।
त्रिदशगणपतिं ह्युवाच शक्रं
त्रिपुरगतं सहसा निरीक्ष्य शत्रुम्॥ ३१
त्रिदशगणपते निशामयैतत्
त्रिपुरनिकेतनं दानवाः प्रविष्टाः।
यमवरुणकुबेरषण्मुखैस्तत्
सह गणपैरपि हन्मि तावदेव॥ ३२
विहितपरबलाभिघातभूतं
व्रज जलधेस्तु यतः पुराणि तस्थुः।
स रथवरगतो भवः समर्थो
ह्युदधिमगात् त्रिपुरं पुनर्निहन्तुम्॥ ३३
इति परिगणयन्तो दितेः सुता
ह्यवतस्थुर्लवणार्णवोपरिष्टात्।
अभिभवत् त्रिपुरं सदानवेन्द्रं
शरवर्षैर्मुसलैश्च वज्रमिश्रैः॥ ३४

फिर तो वह श्रेष्ठ त्रिपुर नामक नगर अगाध जलवाले सागरके ऊपर मँडराने लगा। उसके फाटक और आभूषणादि-सहित तीनों पुर यथास्थान स्थित हो गये॥ १०—२३॥

इस प्रकार त्रिपुरके दूर हट जानेपर त्रिपुरारि भगवान् शंकरने वेदवादमें निपुण ब्रह्मासे इस प्रकार कहा—'ऐश्वर्यशाली पितामह! दानवगण हमलोगोंसे भलीभाँति डर गये हैं, इसलिये वे भागकर विशाल सागरकी शरणमें चले गये। पितामह! त्रिपुरसहित वे दानव जिस मार्गसे गये हैं, उसी मार्गसे आप शीघ्र ही मेरे रथको वहाँ पहुँचाइये।' तब आयुधधारी देवगण हर्षपूर्वक सिंहनाद करके और उस देवरथको चारों ओरसे घेरकर पश्चिम सागरकी ओर चल पड़े। तत्पश्चात् देवगण देवश्रेष्ठ भगवान् शंकरको चारों ओरसे घेरकर सिंहनाद करते हुए शीघ्र ही दानवोंके निवासस्थान सागरकी ओर प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचनेपर सुन्दर पताकाओंसे विभूषित तथा ढोल, नगारे और शङ्खके शब्दोंसे निनादित त्रिपुरको देखकर अनेकों सेनाओंसे सम्पन्न देवगण बादलोंकी तरह गर्जना करने लगे। उधर असुरश्रेष्ठ मयके पुरमें भी दानवोंके सिंहनादके साथ-साथ मेघ-गर्जनाके सदृश मृदंगोंका भयंकर एवं गम्भीर शब्द हो रहा था, जो क्षुब्ध हुए महासागरकी गर्जनाके समान प्रतीत हो रहा था। तदनन्तर देवताओंके आश्रयस्थान प्रत्युत्पन्नमति त्रिभुवनपति शंकर शत्रुओंका शिकार करनेके लिये उद्यत हो गये। तब उन्होंने सहसा शत्रुओंको त्रिपुरमें प्रवेश करते देखकर देवताओं और गणोंके सेनानायक इन्द्रसे इस प्रकार कहा—'देवताओं और गणेश्वरोंके नायक इन्द्र! आपलोग मेरी यह बात सुनें। दानवलोग अपने निवासस्थान त्रिपुरमें घुस गये हैं, अतः आप यम, वरुण, कुबेर, कार्तिकेय तथा गणेश्वरोंको साथ लेकर इनका संहार करें। तबतक मैं भी इन्हें मार रहा हूँ। आप शत्रुसेनापर प्रहार करते हुए समुद्रके उस स्थानतक बढ़ते चलें, जहाँ तीनों पुर स्थित हैं। यह देखकर जब उन दैत्योंको यह विदित हो जायगा कि सामर्थ्यशाली शंकर उस श्रेष्ठ रथपर आरूढ़ हो पुनः त्रिपुरका विनाश करनेके लिये समुद्रतटपर आ गये हैं, तब वे लवणसागरके ऊपर निकल आयेंगे। तब आप वज्रसहित मुसलों एवं बाणोंकी वर्षा करते हुए दानवेन्द्रोंसहित त्रिपुरपर आक्रमण कर दें।

अहमपि रथवर्यमास्थितः
सुरवरवर्य भवेय पृष्ठतः।
असुरवरवधार्थमुद्यतानां
प्रतिविदधामि सुखाय तेऽनघ॥ ३५
इति भववचनप्रचोदितो
दशशतनयनवपुः समुद्यतः।
त्रिपुरपुरजिघांसया हरिः
प्रविकसिताम्बुजलोचनो ययौ॥ ३६

सुरश्रेष्ठ! उस समय मैं भी इस श्रेष्ठ रथपर बैठा हुआ असुरेन्द्रोंका वध करनेके लिये उद्यत आपलोगोंके पीछे रहूँगा। अनघ! मैं सर्वथा आपलोगोंके सुखका विधान करता रहूँगा।' इस प्रकार शंकरजीके वचनोंसे प्रेरित होकर एक हजार नेत्रोंवाले इन्द्र, जिनके नेत्र प्रफुल्ल कमलके सदृश सुन्दर थे, त्रिपुरके विनाशकी इच्छासे उद्यत होकर आगे बढ़े॥ २४—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुराक्रमणं नाम सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें त्रिपुराक्रमण नामक एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३७॥

एक सौ अड़तीसवाँ अध्याय

देवताओं और दानवोंमें घमासान युद्ध तथा तारकासुरका वध

सूत उवाच

मघवा तु निहन्तुं तानसुरानमरेश्वरः।
लोकपाला ययुः सर्वे गणपालाश्च सर्वशः॥ १
ईश्वरेणोर्जिताः सर्व उत्पेतुश्चाम्बरे तदा।
खगतास्तु विरेजुस्ते पक्षवन्त इवाचलाः॥ २
प्रययुस्तत्पुरं हन्तुं शरीरमिव व्याधयः।
शङ्खाडम्बरनिर्घोषैः पणवान् पटहानपि।
नादयन्तः पुरो देवा दृष्टास्त्रिपुरवासिभिः॥ ३
हरः प्राप्त इतीवोक्त्वा बलिनस्ते महासुराः।
आजग्मुः परमं क्षोभमत्ययेष्विव सागराः॥ ४
सुरतूर्यरवं श्रुत्वा दानवा भीमदर्शनाः।
निनेदुर्वादयन्तश्च नानावाद्यान्यनेकशः॥ ५
भूयोदीरितवीर्यास्ते परस्परकृतागसः।
पूर्वदेवाश्च देवाश्च सूदयन्तः परस्परम्॥ ६
आक्रोशेऽपि समप्रख्ये तेषां देहनिकृन्तनम्।
प्रवृत्तं युद्धमतुलं प्रहारकृतनिःस्वनम्॥ ७
निष्पतन्त इवादित्याः प्रज्वलन्त इवाग्नयः।
शंसन्त इव नागेन्द्रा भ्रमन्त इव पक्षिणः।
गिरीन्द्रा इव कम्पन्तो गर्जन्त इव तोयदाः॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! शंकरजीद्वारा उत्साहित किये जानेपर देवराज इन्द्र, सभी लोकपाल और गणपाल सब ओरसे उन असुरोंका वध करनेके लिये चले और आकाशकी ओर उछल पड़े। आकाशमें पहुँचकर वे पंखधारी पर्वतकी तरह शोभा पाने लगे। तत्पश्चात् वे शङ्ख और डंकेके निर्घोषके साथ-साथ ढोलों और नगाड़ोंको पीटते हुए त्रिपुरका विनाश करनेके लिये उसी प्रकार आगे बढ़े, जैसे व्याधियाँ शरीरको नष्ट कर देती हैं। इतनेमें त्रिपुरवासी दानवोंने देवगणोंको आगे बढ़ते हुए देख लिया। फिर तो वे महाबली असुर 'शंकर (यहाँ भी) आ गये'—ऐसा कहकर प्रलयकालीन सागरोंकी तरह परम क्षुब्ध हो उठे। तब भयंकर रूपधारी दानव देवताओंकी तुरहियोंका शब्द सुनकर नाना प्रकारके बाजे बजाते हुए बारंबार उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे। तत्पश्चात् पुनः पराक्रम प्रकट करनेवाले वे दानव और देव परस्पर क्रुद्ध होकर एक-दूसरेपर प्रहार करने लगे। दोनों सेनाओंमें समानरूपसे सिंहनाद हो रहे थे। उनके शरीर कट-कटकर गिर रहे थे। फिर तो प्रहार करनेवालोंकी गर्जनाके साथ-साथ अनुपम युद्ध छिड़ गया। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो अनेकों सूर्य गिर रहे हैं, अग्नियाँ प्रज्वलित हो उठी हैं, विषधर सर्प फुफकार मार रहे हैं, पक्षी आकाशमें चक्कर काट रहे हैं, पर्वत काँप रहे हैं, बादल

जृम्भन्त इव शार्दूलाः प्रवान्त इव वायवः।
प्रवृद्धोर्मितरङ्गौघाः क्षुभ्यन्त इव सागराः॥ ९
प्रमथाश्च महाशूरा दानवाश्च महाबलाः।
युयुधुर्निश्चला भूत्वा वज्रा इव महाचलैः॥ १०
कार्मुकाणां विकृष्टानां बभूवुर्दारुणा रवाः।
कालानुगानां मेघानां यथा वियति वायुना॥ ११
आहुश्च युद्धे मा भैषीः क्व यास्यसि मृतो ह्यसि।
प्रहराशु स्थितोऽस्म्यत्र एहि दर्शय पौरुषम्॥ १२
गृहाण छिन्धि भिन्धीति खाद मारय दारय।
इत्यन्योऽन्यमनूच्चार्य प्रययुर्यमसादनम्॥ १३
खड्गापवर्जिताः केचित् केचिच्छिन्ना परश्वधैः।
केचिन्मुद्गरचूर्णाश्च केचिद् बाहुभिराहताः॥ १४
पट्टिशैः सूदिताः केचित् केचिच्छूलविदारिताः।
दानवाः शरपुष्पाभाः सवना इव पर्वताः।
निपतन्त्यर्णवजले भीमनक्रतिमिंगिले॥ १५
व्यसुभिः सुनिबद्धाङ्गैः पतमानैः सुरेतरैः।
सम्बभूवार्णवे शब्दः सजलाम्बुदनिःस्वनः॥ १६
तेन शब्देन मकरा नक्रास्तिमितिमिंगिलाः।
मत्ता लोहितगन्धेन क्षोभयन्तो महार्णवम्॥ १७
परस्परेण कलहं कुर्वाणा भीममूर्तयः।
भ्रमन्ते भक्षयन्तश्च दानवानां च लोहितम्॥ १८
सरथान् सायुधान् साश्वान् सवस्त्राभरणावृतान्।
जग्रसुस्तिमयो दैत्यान् द्रावयन्तो जलेचरान्॥ १९
मृधं यथासुराणां च प्रमथानां प्रवर्तते।
अम्बरेऽम्भसि च तथा युद्धं चक्रुर्जलेचराः॥ २०
यथा भ्रमन्ति प्रमथाः सदैत्या-
स्तथा भ्रमन्ते तिमयः सनक्राः।
यथैव छिन्दन्ति परस्परं तु
तथैव क्रन्दन्ति विभिन्नदेहाः॥ २१

गरज रहे हैं, सिंह जमुहाई ले रहे हैं, भयानक झंझावात चल रहा है और उछलती हुई लहरोंके समूहसे सागर क्षुब्ध हो उठा है। इस प्रकार महान् शूरवीर प्रमथ और महाबली दानव उसी प्रकार डटकर युद्ध कर रहे थे, जैसे महान् पर्वतोंसे टकरानेपर भी वज्र अटल रहता है॥ ९—१०॥

जैसे आकाशमें वायुद्वारा प्रेरित किये जानेपर प्रलयकालीन मेघोंकी गर्जना होती है, उसी तरह खींचे जाते हुए धनुषोंके भीषण शब्द हो रहे थे। युद्धभूमिमें दोनों ओरके वीर परस्पर 'मत डरो, कहाँ भागकर जाओगे, अब तो तुम मरे ही हो, शीघ्र प्रहार करो, मैं यहाँ खड़ा हूँ, आओ और अपना पुरुषार्थ दिखाओ, पकड़ लो, काट डालो, विदीर्ण कर दो, खा लो, मार डालो, फाड़ डालो'—ऐसा शब्द बोल रहे थे और पुनः शान्त होकर यमलोकके पथिक बन जाते थे। उनमेंसे कुछ वीर तलवारसे काट डाले गये थे, कुछ फरसोंसे छिन्न-भिन्न कर दिये गये थे, कुछ मुद्गरोंकी मारसे चूर्ण-सरीखे हो गये थे, कुछ हाथके चपेटोंसे घायल कर दिये गये, कुछ पट्टिशों (पटों)-के प्रहारसे मार डाले गये और कुछ शूलोंसे विदीर्ण कर दिये गये। सरपतके फूलकी-सी कान्तिवाले दानव वनसहित पर्वतोंकी तरह भयंकर नाक और तिमिंगिलोंसे भरे हुए समुद्रके जलमें गिर रहे थे। दानवोंके कवच आदिसे भलीभाँति बँधे हुए प्राणरहित शरीरोंके समुद्रमें गिरनेसे सजल जलधरकी गर्जनाके समान शब्द हो रहा था। उस शब्दसे तथा दानवोंके रुधिरकी गन्धसे मतवाले हुए मगर, नाक, तिमि और तिमिंगिल आदि जन्तु महासागरको क्षुब्ध कर रहे थे। वे भयंकर आकारवाले जलजन्तु परस्पर झगड़ते हुए दानवोंका रुधिर पान कर चक्कर काट रहे थे। यूथ-के-यूथ मगरमच्छ अन्य जल-जन्तुओंको खदेड़कर रथ, आयुध, अश्व, वस्त्र और आभूषणोंसहित दैत्योंको निगल जाते थे। जिस प्रकार आकाशमें दानवों और प्रमथोंका युद्ध चल रहा था, उसी तरह समुद्रमें जल-जन्तु (शवोंको खानेके लिये) परस्पर लड़ रहे थे॥ ११—२०॥

उस समय जैसे आकाशमें प्रमथगण दैत्योंके साथ युद्ध करते हुए चक्कर काट रहे थे, वैसे ही जलमें मगरमच्छ नाकोंके साथ झगड़ते हुए घूम रहे थे। जैसे देवता और दानव परस्पर एक-दूसरेके शरीरको काट रहे थे, वैसे ही मगरमच्छ और नाक भी एक-दूसरेके शरीरको

व्रणाननैरङ्गरसं स्रवद्भिः
सुरासुरैर्नक्रतिमिंगिलैश्च ।
कृतो मुहूर्तेन समुद्रदेशः
सरक्ततोयः समुदीर्णतोयः॥ २२
पूर्वं महाम्भोधरपर्वताभं
द्वारं महान्तं त्रिपुरस्य शक्रः।
निपीड्य तस्थौ महता बलेन
युक्तोऽमराणां महता बलेन॥ २३
तथोत्तरं सोऽन्तरजो हरस्य
बालार्कजाम्बूनदतुल्यवर्णः।
स्कन्दः पुरद्वारमथारुरोह
वृद्धोऽस्तशृङ्गं प्रपतन्निवार्कः॥ २४
यमश्च वित्ताधिपतिश्च देवो
दण्डान्वितः पाशवरायुधश्च।
देवारिणस्तस्य पुरस्य द्वारं
ताभ्यां तु तत्पश्चिमतो निरुद्धम्॥ २५
दक्षारिरुद्रस्तपनायुताभः
स भास्वता देवरथेन देवः।
तद्दक्षिणद्वारमरेः पुरस्य
रुद्ध्वावतस्थौ भगवांस्त्रिनेत्रः॥ २६
तुङ्गानि वेश्मानि सगोपुराणि
स्वर्णानि कैलासशशिप्रभाणि।
प्रह्लादरूपाः प्रमथावरुद्धा
ज्योतींषि मेघा इव चाश्मवर्षाः॥ २७
उत्पाट्य चोत्पाट्य गृहाणि तेषां
सशैलमालासमवेदिकानि ।
प्रक्षिप्य प्रक्षिप्य समुद्रमध्ये
कालाम्बुदाभाः प्रमथा विनेदुः॥ २८
रक्तानि चाशेषवनैर्युतानि
साशोकखण्डानि सकोकिलानि।
गृहाणि हे नाथ पितः सुतेति
भ्रातेति कान्तेति प्रियेति चापि।
उत्पाट्यमानेषु गृहेषु नार्य-
स्त्वनार्यशब्दान् विविधान् प्रचक्रुः॥ २९

विदीर्ण कर चीत्कार कर रहे थे। देवताओं, असुरों, नाकों और तिमिंगिलोंके घावों और मुखोंसे बहते हुए रुधिरसे समुद्रके उस प्रदेशका जल मुहूर्तमात्रके लिये रक्तयुक्त हो गया और वहाँ बाढ़ आ गयी। उस त्रिपुरका पूर्वद्वार अत्यन्त विशाल और काले मेघ तथा पर्वतके समान कान्तिमान् था। महान् बलशाली इन्द्र देवताओंकी विशाल सेनाके साथ उस द्वारको अवरुद्ध कर खड़े थे। उसी प्रकार उदयकालीन सूर्य और सुवर्णके तुल्य रंगवाले शंकरजीके आत्मज स्कन्द त्रिपुरके उत्तरद्वारपर ऐसे चढ़े हुए थे मानो बढ़े हुए सूर्य अस्ताचलके शिखरोंपर चढ़ रहे हों। दण्डधारी यमराज और अपने श्रेष्ठ अस्त्र पाशको धारण किये हुए कुबेर—ये दोनों देवता उस देवशत्रु मयके पुरके पश्चिमद्वारपर घेरा डाले हुए थे। दस हजार सूर्योंकी-सी आभावाले दक्षके शत्रु त्रिनेत्रधारी भगवान् रुद्रदेव उस उद्दीप्त देवरथपर आरूढ़ होकर शत्रु-नगरके दक्षिणद्वारको रोककर स्थित थे। उस त्रिपुरके फाटकोंसहित स्वर्णनिर्मित ऊँचे-ऊँचे महलोंको, जो कैलास और चन्द्रमाके सदृश चमक रहे थे, प्रसन्न मुखवाले प्रमथोंने उसी प्रकार अवरुद्ध कर रखा था, जैसे उपलोंकी वर्षा करनेवाले मेघ ज्योतिर्गणोंको घेर लेते हैं। काले मेघकी-सी कान्तिवाले प्रमथगण दानवोंके पर्वतमालाके सदृश ऊँची-ऊँची वेदिकाओंसे युक्त गृहोंको, जो लाल वर्णवाले तथा अशोक-वृक्षों एवं अन्यान्य वनोंसे युक्त थे और जिनमें कोयलें कूक रही थीं, उखाड़-उखाड़कर लगातार समुद्रमें फेंक रहे थे और उच्च स्वरसे गर्जना कर रहे थे। गृहोंको उखाड़ते समय उनमें रहनेवाली स्त्रियाँ—'हे नाथ! हा पिता! अरे पुत्र! हाय भाई! हाय कान्त! हे प्रियतम!' आदि अनेक प्रकारके अनार्योचित शब्द बोल रही थीं।

कलत्रपुत्रक्षयप्राणनाशे
तस्मिन् पुरे युद्धमतिप्रवृत्ते।
महासुराः सागरतुल्यवेगा
गणेश्वराः कोपवृताः प्रतीयुः॥ ३०
परश्वधैस्तत्र शिलोपलैश्च
त्रिशूलवज्रोत्तमकम्पनैश्च।
शरीरसद्मक्षपणं सुघोरं
युद्धं प्रवृत्तं दृढवैरबद्धम्॥ ३१
अन्योऽन्यमुद्दिश्य विमर्दतां च
प्रधावतां चैव विनिघ्नतां च।
शब्दो बभूवामरदानवानां
युगान्तकालेष्विव सागराणाम्॥ ३२
व्रणैरजस्त्रं क्षतजं वमन्तः
कोपोपरक्ता बहुधा नदन्तः।
गणेश्वरास्तेऽसुरपुंगवाश्च
युध्यन्ति शब्दं च महदुद्गिरन्तः॥ ३३
मार्गाः पुरे लोहितकर्दमाक्ताः
स्वर्णेष्टकास्फाटिकभिन्नचित्राः।
कृता मुहूर्तेन सुखेन गन्तुं
छिन्नोत्तमाङ्गाङ्घ्रिकराः करालाः॥ ३४
कोपावृताक्षः स तु तारकाख्यः
संख्ये सवृक्षः सगिरिर्निलीनः।
तस्मिन् क्षणे द्वारवरं रिरक्षो
रुद्रं भवेनाद्भुतविक्रमेण॥ ३५
स तत्र प्राकारगतांश्च भूतान्-
शान्तान् महानद्भुतवीर्यसत्त्वः।
चचार चासेन्द्रियगर्वदृप्तः
पुराद् विनिष्क्रम्य ररास घोरम्॥ ३६
ततः स दैत्योत्तमपर्वताभो
यथाञ्जसा नाग इवाभिमत्तः।
निवारितो रुद्ररथं जिघृक्षु-
र्यथार्णवः सर्पति चातिवेलः॥ ३७
शेषः सुधन्वा गिरिशश्च देव-
श्चतुर्मुखो यः स त्रिलोचनश्च।
ते तारकाख्याभिगतागताजौ
क्षोभं यथा वायुवशात् समुद्राः॥ ३८

इस प्रकार जब उस पुरमें स्त्री, पुत्र तथा प्राणका विनाश करनेवाला अत्यन्त भीषण युद्ध होने लगा, तब सागरतुल्य वेगशाली महान् असुर और गणेश्वर क्रोधसे भर गये। फिर तो कुठार, शिलाखण्ड, त्रिशूल, श्रेष्ठ वज्र और कम्पन* (एक प्रकारका शस्त्र) आदिके प्रहारसे शरीर और गृहको विनष्ट करनेवाला अत्यन्त घोर युद्ध आरम्भ हो गया; क्योंकि दोनों सेनाओंमें सुदृढ़ वैर बँधा हुआ था। परस्पर एक-दूसरेको लक्ष्य करके मर्दन, आक्रमण और प्रहार करनेवाले देवताओं और दानवोंका प्रलयकालमें सागरोंकी गर्जनाकी भाँति भीषण शब्द होने लगा॥ २९—३२॥

उस समय वे गणेश्वर और असुरश्रेष्ठ घावोंसे निरन्तर रक्तकी धारा बहाते हुए, बारंबार गरजते हुए और भयंकर शब्द बोलते हुए युद्ध कर रहे थे। उस पुरमें स्वर्ण और स्फटिक मणिकी ईंटोंसे बने हुए जो चित्र-विचित्र मार्ग थे, वे दो ही घड़ीमें रुधिरयुक्त कीचड़से भर दिये गये। जो सुखपूर्वक चलनेयोग्य थे, वे कटे हुए मस्तकों, पादों और पैरोंसे व्याप्त हो जानेके कारण दुर्गम हो गये। तब तारकासुर क्रोधसे आँखें तरेरता हुआ वृक्ष और पर्वत हाथमें लेकर युद्धस्थलमें आ पहुँचा। वह उस समय अद्भुत पराक्रमी शंकरद्वारा अवरुद्ध किये गये दक्षिणद्वारकी रक्षा करना चाहता था। महान् पराक्रमी एवं अद्भुत सत्त्वशाली तारकासुर अपनी इन्द्रियोंके गर्वसे उन्मत्त होकर परकोटोंपर चढ़े हुए भूतगणोंको काटकर वहाँ विचरण करने लगा। पुनः नगरसे बाहर निकलकर उसने घोर गर्जना की। पर्वतकी-सी आभावाला दैत्येन्द्र तारक मतवाले हाथीकी तरह शीघ्र ही शंकरजीके रथको पकड़ लेना चाहता था, परंतु प्रमथोंद्वारा इस प्रकार रोक दिया गया, जैसे बढ़ते हुए समुद्रको उसका तट रोक देता है। उस समय शेषनाग, ब्रह्मा तथा सुन्दर धनुष धारण करनेवाले और पर्वतपर शयन करनेवाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकर युद्धस्थलमें तारकासुरके आ जानेसे उसी प्रकार क्षुब्ध हो गये, जैसे वायुके वेगसे सागर उद्वेलित हो उठते हैं।

* यह एक शस्त्र है। इसका वर्णन महाभारत १। ६९। २३ में है।

शेषो गिरीशः सपितामहेश-
श्चोत्क्षुभ्यमाणः स रथेऽम्बरस्थः।
बिभेद संधीषु बलाभिपन्नः
कूजन्निनादांश्च करोति घोरान्॥ ३९
एकं तु ऋग्वेदतुरंगमस्य
पृष्ठे पदं न्यस्य वृषस्य चैकम्।
तस्थौ भवः सोद्यतबाणचापः
पुरस्य तत्सङ्गमवीक्षमाणः॥ ४०
तदा भवपदन्यासाद्धयस्य वृषभस्य च।
पेतुः स्तनाश्च दन्ताश्च पीडिताभ्यां त्रिशूलिना॥ ४१
ततःप्रभृति चाश्वानां स्तना दन्ता गवां तथा।
गूढाः समभवंस्तेन चादृश्यत्वमुपागताः॥ ४२
तारकाख्यस्तु भीमाक्षो रौद्ररक्तान्तरेक्षणीः।
रुद्रान्तिके सुसंरुद्धो नन्दिना कुलनन्दिना॥ ४३
परश्वधेन तीक्ष्णेन स नन्दी दानवेश्वरम्।
तक्षयामास वै तक्षा चन्दनं गन्धदो यथा॥ ४४
परश्वधहतः शूरः शैलादिः शरभो यथा।
दुद्राव खड्गं निष्कृष्य तारकाख्यो गणेश्वरम्॥ ४५
यज्ञोपवीतमार्गेण चिच्छेद च ननाद च।
ततः सिंहरवो घोरः शङ्खशब्दश्च भैरवः।
गणेश्वरैः कृतस्तत्र तारकाख्ये निषूदिते॥ ४६
प्रमथारसितं श्रुत्वा वादित्रस्वनमेव च।
पार्श्वस्थः सुमहापार्श्वं विद्युन्मालिं मयोऽब्रवीत्॥ ४७
बहुवदनवतां किमेष शब्दो
नदतां श्रूयते भिन्नसागराभः।
वद वद त्वं तडिन्मालिन् किमेत-
द्गणपा युयुधुर्यथा गजेन्द्राः॥ ४८
इति मयवचनाङ्कुशार्दित-
स्तं तडिन्माली रविरिवांशुमाली।
रणशिरसि समागतः सुराणां
निजगादेदमरिन्दमोऽतिदुःखात्॥ ४९
यमवरुणमहेन्द्ररुद्रवीर्य-
स्तव यशसो निधिर्धीरः तारकाख्यः।
सकलसमरशीर्षपर्वतेन्द्रो
युद्ध्वा यस्तपति हि तारको गणेन्द्रैः॥ ५०

आकाशस्थित रथपर बैठे हुए बलसम्पन्न शेषनाग, शंकर और ब्रह्माने विशेष क्षुब्ध होकर पृथक्-पृथक् तारकासुरके शरीरकी संधियोंको बींध दिया और वे घोर गर्जना करने लगे। उस समय हाथमें धनुष-बाण लिये हुए भगवान् शंकर अपना एक पैर ऋग्वेदरूप घोड़ेकी तथा दूसरा पैर नन्दीश्वरकी पीठपर रखकर त्रिपुरोंके परस्पर सम्मिलनकी प्रतीक्षा करते हुए खड़े हो गये। उस समय शंकरजीके पैर रखनेसे उन त्रिशूलधारीके भारसे पीड़ित हुए अश्वके स्तन और वृषभके दाँत टूटकर गिर पड़े। तभीसे घोड़ोंके स्तन और गो-वंशके (ऊपरी जबड़ेके) दाँत गुप्त हो गये। इसी कारण वे दिखायी नहीं पड़ते। उसी समय जिसके नेत्रोंके अन्तर्भाग भयंकर और लाल थे, उस भीषण नेत्रोंवाले तारकासुरको भगवान् रुद्रके निकट आते देखकर कुलको आनन्दित करनेवाले नन्दीने रोक दिया तथा उन्होंने अपने तीखे कुठारसे उस दानवेश्वरके शरीरको इस प्रकार छील डाला, जैसे गन्धकी इच्छावाला (अथवा इत्र बनानेवाला) बढ़ई चन्दन-वृक्षको छाँट देता है। कुठारके आघातसे आहत हुए शूरवीर तारकासुरने पर्वतीय सिंहकी तरह क्रुद्ध होकर म्यानसे तलवार खींचकर गणेश्वर नन्दीपर आक्रमण किया। तब नन्दीश्वरने यज्ञोपवीत-मार्गसे (अर्थात् जनेऊ पहननेकी जगह—बाएँ कंधेसे लेकर दाहिने कटितटतक) तिरछे रूपमें तारकासुरके शरीरको विदीर्ण कर दिया और भयंकर गर्जना की। फिर तो वहाँ तारकासुरके मारे जानेपर गणेश्वरोंके भयंकर सिंहनाद गूँज उठे और उनके शङ्खोंके भीषण शब्द होने लगे॥ ३३—४६॥

तब प्रमथगणोंके सिंहनाद और उनके बाजोंके भीषण शब्दको सुनकर बगलमें ही स्थित मयदानवने महान् बलशाली विद्युन्मालीसे पूछा—'विद्युन्मालिन्! बताओ तो सही, अनेकों मुखोंवाले प्रमथगणोंका सागरकी गर्जनाके समान यह भयंकर सिंहनाद क्यों सुनायी पड़ रहा है? ये गणेश्वर क्यों गजराज-से गरजते हुए इतने उत्साहसे युद्ध कर रहे हैं?' इस प्रकार मयके वचनरूपी अङ्कुशसे पीड़ित हुआ किरणमाली सूर्यकी तरह तेजस्वी शत्रुदमन विद्युन्माली, जो तुरंत ही देवताओंके युद्धके मुहानेसे लौटकर आया था, अत्यन्त दुःखके साथ मयसे इस प्रकार बोला—'धैर्यशाली राजन्! जो यम, वरुण, महेन्द्र और रुद्रके समान पराक्रमी, आपकी कीर्तिका निधिस्वरूप, समस्त युद्धोंके मुहानेपर पर्वतराजकी भाँति डटा रहनेवाला

एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

दानवराज मयका दानवोंको समझा-बुझाकर त्रिपुरकी रक्षामें नियुक्त करना तथा त्रिपुरकौमुदीका वर्णन

सूत उवाच

तारकाख्ये हते युद्धे उत्सार्य प्रमथान् मयः।
उवाच दानवान् भूयो भूयः स तु भयावृतान्॥ १
भोऽसुरेन्द्राधुना सर्वे निबोधध्वं प्रभाषितम्।
यत् कर्तव्यं मया चैव युष्माभिश्च महाबलैः॥ २
पुष्यं समेष्यते काले चन्द्रश्चन्द्रनिभानना:।
यदैकं त्रिपुरं सर्वं क्षणमेकं भविष्यति॥ ३
कुरुध्वं निर्भयाः काले पिशुनाशंसितेन च।
स कालः पुष्ययोगस्य पुरस्य च मया कृतः॥ ४
काले तस्मिन् पुरे यस्तु सम्भावयति संहतिम्।
स एनं कारयेच्चूर्णं बलिनैकेषुणा सुरः॥ ५
यो वः प्राणो बलं यच्च या च वो वैरिताऽसुराः।
तत् कृत्वा हृदये चैव पालयध्वमिदं पुरम्॥ ६
महेश्वररथं ह्येकं सर्वप्राणेन भीषणम्।
विमुखीकुर्वतात्यर्थं यथा नोत्सृजते शरम्॥ ७
तत एवं कृतेऽस्माभिस्त्रिपुरस्यापि रक्षणे।
प्रतीक्षिष्यन्ति विवशाः पुष्ययोगं दिवौकसः॥ ८
निशम्य तन्मयस्यैकं दानवास्त्रिपुरालयाः।
मुहुः सिंहरवं कृत्वा मयमूचुर्यमोपमाः॥ ९
प्रयत्नेन वयं सर्वे कुर्मस्तव प्रभाषितम्।
तथा कुर्मो यथा रुद्रो न मोक्ष्यति पुरे शरम्॥ १०
अद्य यास्यामः संग्रामे तद्रुद्रस्य जिघांसवः।
कथयन्ति दितेः पुत्रा हृष्टा भिन्नतनूरुहाः॥ ११
कल्पं स्थास्यति वा खस्थं त्रिपुरं शाश्वतं ध्रुवम्।
अदानवं वा भविता नारायणपदत्रयम्॥ १२
वयं न धर्मं हास्यामो यस्मिन् योक्ष्यति नो भवान्।
अदैवतमदैत्यं वा लोकं द्रक्ष्यन्ति मानवाः॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार युद्धभूमिमें तारकासुरके मारे जानेपर दानवराज मय प्रमथोंको खदेड़कर भयभीत हुए दानवोंको सब तरहसे सान्त्वना देते हुए बोला—'अरे असुरेन्द्रो! इस समय तुम सभी महाबली दानवोंका जो कर्तव्य है, उसे मैं बतला रहा हूँ, सब लोग ध्यान देकर सुनो। चन्द्रवदन दानवो! जिस समय चन्द्रमा पुष्य नक्षत्रसे समन्वित होंगे, उस समय एक क्षणके लिये तीनों पुर एकमें मिल जायँगे। यह चन्द्रमाका पुष्य नक्षत्रसे सम्बन्ध होनेपर त्रिपुरके सम्मिलित होनेका काल मैंने ही निर्धारित कर रखा है, अतः उस समय तुमलोग निर्भय होकर नारदजीद्वारा बतलाये गये उपायोंका प्रयोग करो; क्योंकि उस समय जो कोई देवता त्रिपुरोंके सम्मिलित होनेका पता लगा लेगा, वह एक ही सुदृढ बाणसे इस त्रिपुरको चूर्ण कर डालेगा। इसलिये असुरो! तुमलोगोंमें जितनी प्राणशक्ति है, जितना बल है और देवताओंके साथ जितना वैर-विद्वेष है, वह सब हृदयमें विचारकर इस त्रिपुरकी रक्षामें जुट जाओ। तुमलोग एकमात्र महेश्वरके भीषण रथको पूरी शक्ति लगाकर ऐसा विमुख कर दो, जिससे वे बाण न छोड़ सकें। इस प्रकार हमलोगोंद्वारा त्रिपुरकी रक्षा सम्पन्न कर लेनेपर देवताओंको विवश होकर पुनः आनेवाले पुष्ययोगकी प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।' मयका ऐसा कथन सुनकर यमराजके समान भीषण त्रिपुरनिवासी दानव बारम्बार सिंहनाद कर मयसे बोले—'राजन्! हम सब लोग प्रयत्नपूर्वक आपके कथनका पालन करेंगे और ऐसा कर्म कर दिखायेंगे, जिससे रुद्र त्रिपुरपर बाण नहीं छोड़ सकेंगे। हमलोग आज ही उस रुद्रका वध करनेके लिये संग्रामभूमिमें जा रहे हैं। या तो हमारा त्रिपुर कल्पपर्यन्त निश्चलरूपसे सर्वदाके लिये आकाशमें स्थिर रहेगा अथवा नारायणके तीन पदकी तरह यह दानवोंसे खाली हो जायगा। आप हमलोगोंको जिस कार्यमें नियुक्त कर देंगे, हमलोग उस कर्तव्यका कदापि त्याग नहीं करेंगे। आज मानव जगत्‌को देवता अथवा दैत्यसे रहित ही देखेंगे।'

इति सम्मन्त्र्य हृष्टास्ते पुरान्तर्विबुधारयः।
प्रदोषे मुदिता भूत्वा चेरुर्मन्मथचारताम्॥ १४

मुहुर्मुक्तोदयो भ्रान्त उदयाग्रं महामणिः।
तमांस्युत्सार्य भगवांश्चन्द्रो जृम्भति सोऽम्बरम्॥ १५
कुमुदालङ्कृते हंसो यथा सरसि विस्तृते।
सिंहो यथा चोपविष्टो वैदूर्यशिखरे महान्॥ १६
विष्णोर्यथा च विस्तीर्णे हारश्चोरसि संस्थितः।
तथावगाढे नभसि चन्द्रोऽत्रिनयनोद्भवः।
भ्राजते भ्राजयँल्लोकान् सृजञ्ज्योत्स्नारसं बलात्॥ १७
शीतांशावुदिते चन्द्रे ज्योत्स्नापूर्णे पुरेऽसुराः।
प्रदोषे ललितं चक्रुर्गृहमात्मानमेव च॥ १८
रथ्यासु राजमार्गेषु प्रासादेषु गृहेषु च।
दीपाश्चम्पकपुष्पाभा नाल्पस्नेहप्रदीपिताः॥ १९
तदा मठेषु ते दीपाः स्नेहपूर्णाः प्रदीपिताः।
गृहाणि वसुमन्त्येषां सर्वरत्नमयानि च।
ज्वलतोऽदीपयन् दीपांश्चन्द्रोदय इव ग्रहाः॥ २०
चन्द्रांशुभिर्भासमानमन्तर्दीपैः सुदीपितम्।
उपद्रवैः कुलमिव पीयते त्रिपुरे तमः॥ २१
तस्मिन् पुरे वै तरुणप्रदोषे
चन्द्राट्टहासे तरुणप्रदोषे।
रत्यर्थिनो वै दनुजा गृहेषु
सहाङ्गनाभिः सुचिरं विरेमुः॥ २२
विनोदिता ये तु वृषध्वजस्य
पञ्चेषवस्ते मकरध्वजेन।
तत्रासुरेष्वासुरपुङ्गवेषु
स्वाङ्गाङ्गनाः स्वेदयुता बभूवुः॥ २३
कलप्रलापेषु च दानवीनां
वीणाप्रलापेषु च मूर्च्छितांस्तु।
मत्तप्रलापेषु च कोकिलानां
सचापबाणो मदनो ममन्थ॥ २४
तमांसि नैशानि द्रुतं निहत्य
ज्योत्स्नावितानेन जगद्वितत्य।
खे रोहिणीं तां च प्रियां समेत्य
चन्द्रः प्रभाभिः कुरुतेऽधिराज्यम्॥ २५

पुलकित शरीरवाले दैत्य हर्षपूर्वक इस प्रकार कह रहे थे। इस प्रकार वे देवशत्रु दानव त्रिपुरके भीतर मन्त्रणा करके सायंकाल होनेपर प्रसन्न होकर स्वच्छन्दाचारमें प्रसक्त हो गये॥ १—१४॥

उसी समय बारम्बार मोतीके निकलनेका भ्रम उत्पन्न करनेवाले एवं महामणिके समान भगवान् चन्द्रमा उदयाचलके शिखरपर दीख पड़े। वे अन्धकारका विनाश करके आकाशमण्डलमें आगे बढ़ रहे थे। उस समय जैसे कुमुदिनीसे सुशोभित विशाल सरोवरमें हंस, वैदूर्यके शिखरपर बैठा हुआ महान् सिंह और भगवान् विष्णुके विस्तीर्ण वक्षःस्थलपर लटकता हुआ हार शोभा पाता है, उसी तरह महर्षि अत्रिके नेत्रसे उत्पन्न हुए चन्द्रमा अथाह आकाशमें स्थित होकर अपनी चाँदनीसे बलपूर्वक सारे लोकोंको सींचते एवं प्रकाशित करते हुए सुशोभित हो रहे थे। इस

स्थित्वैव कान्तस्य तु पादमूले
काचिद् वरस्त्री स्वकपोलमूले।
विशेषकं चारुतरं करोति
तेनाननं स्वं समलङ्करोति॥ २६

दृष्ट्वाननं मण्डलदर्पणस्थं
महाप्रभा मे मुखजेति जप्त्वा।
स्मृत्वा वराङ्गी रमणैरितानि
तेनैव भावेन रतीमवाप॥ २७

रोमाञ्चितैर्गात्रवरैर्युवभ्यो
रतानुरागाद्रमणेन चान्याः।
स्वयं द्रुतं यान्ति मदाभिभूताः
क्षपा यथा चार्कदिनावसाने॥ २८

पेपीयते चातिरसानुविद्धा
विमार्गितान्या च प्रियं प्रसन्ना।
काचित् प्रियस्यातिचिरात् प्रसन्ना
आसीत् प्रलापेषु च सम्प्रसन्ना॥ २९

गोशीर्षयुक्तैर्हरिचन्दनैश्च
पङ्काङ्किताक्षीरधराऽऽसुरीणाम्।
मनोज्ञरूपा रुचिरा बभूवुः
पूर्णामृतस्येव सुवर्णकुम्भाः॥ ३०

क्षताधरोष्ठा द्रुतदोषरक्ता
ललन्ति दैत्या दयितासु रक्ताः।
तन्त्रीप्रलापास्त्रिपुरेषु रक्ताः
स्त्रीणां प्रलापेषु पुनर्विरक्ताः॥ ३१

क्वचित् प्रवृत्तं मधुराभिगानं
कामस्य बाणैः सुकृतं निधानम्।
आपानभूमीषु सुखप्रमेयं
गेयं प्रवृत्तं त्वथ साधयन्ति॥ ३२

गेयं प्रवृत्तं त्वथ शोधयन्ति
केचित् प्रियां तत्र च साधयन्ति।
केचित् प्रियां सम्प्रति बोधयन्ति
सम्बुध्य सम्बुध्य च रामयन्ति॥ ३३

चूतप्रसूनप्रभवः सुगन्धः
सूर्ये गते वै त्रिपुरे बभूव।
सम्मर्मरो नूपुरमेखलानां
शब्दश्च सम्बाधति कोकिलानाम्॥ ३४

प्रकार सायंकालमें शीतरश्मि चन्द्रमाके उदय होनेपर जब त्रिपुरमें चाँदनी फैल गयी, तब असुरगण अपने-अपने गृहोंको सजाने लगे। गलियों, सड़कों, महलों और गृहोंमें तेलसे भरे हुए दीपक जला दिये गये, जो चम्पाके पुष्पकी भाँति सुशोभित हो रहे थे। उसी प्रकार देवालयोंमें भी तेलसे परिपूर्ण दीपक जलाये गये। दानवोंके गृह धन-सम्पत्तिसे परिपूर्ण तो थे ही, उनमें अनेक प्रकारके रत्न भी जड़े हुए थे, जिससे वे जलते हुए दीपकोंको चन्द्रोदय होनेपर ग्रहोंकी तरह अधिक उद्दीप्त कर रहे थे॥ १५—३०॥

वे भवन बाहरसे तो चन्द्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित थे और भीतर जलते हुए दीपकोंसे उद्दीप्त हो रहे थे, जिससे वे त्रिपुरके अन्धकारको उसी प्रकार पीकर नष्ट कर रहे थे, जैसे उपद्रवोंके प्रकोपसे कुल नष्ट हो जाता

प्रियावगूढा दयितोपगूढा
काचित् प्ररूढाङ्गरुहापि नारी।
सुचारुबाष्पाङ्कुरपल्लवानां
नवाम्बुसिक्ता इव भूमिरासीत्॥ ३५
शशाङ्कपादैरुपशोभितेषु
प्रासादवर्येषु वराङ्गनानाम् ।
माधुर्यभूताभरणामहान्तः
स्वना बभूवुर्मदनेषु तुल्याः॥ ३६
पानेन खिन्ना दयितातिवेलं
कपोलमाघ्रासि च किं ममेदम्।
आरोह मे श्रोणिमिमां विशालां
पीनोन्नतां काञ्चनमेखलाख्याम्॥ ३७
रथ्यासु चन्द्रोदयभासितासु
सुरेन्द्रमार्गेषु च विस्तृतेषु।
दैत्याङ्गना यूथगता विभान्ति
तारा यथा चन्द्रमसो दिवान्ते॥ ३८
अट्टाट्टहासेषु च चामरेषु
प्रेङ्खासु चान्या मदलोलभावात्।
संदोलयन्ते कलसम्प्रहासाः
प्रोवाच काञ्चीगुणसूक्ष्मनादा॥ ३९
अम्लानमालान्वितसुन्दरीणां
पर्याय एषोऽस्ति च हर्षितानाम्।
श्रूयन्ति वाचः कलधौतकल्पा
वापीषु चान्ये कलहंसशब्दाः॥ ४०
काञ्चीकलापश्च सहाङ्गरागः
प्रेङ्खासु तद्रागकृताश्च भावाः।
छिन्दन्ति तासामसुराङ्गनानां
प्रियालयान् मन्मथमार्गणानाम्॥ ४१
चित्राम्बरश्चोद्धृतकेशपाशः
संदोल्यमानः शुशुभेऽसुरीणाम्।
सुचारुवेशाभरणैरुपेत-
स्तारागणैर्ज्योतिरिवास चन्द्रः॥ ४२
सन्दोलनादुच्छ्वसितैश्छिन्नसूत्रैः
काञ्चीभ्रष्टैर्मणिभिर्विप्रकीर्णैः ।
दोलाभूमिस्तैर्विचित्रा विभाति
चन्द्रस्य पार्श्वोपगतैर्विचित्रा॥ ४३
सचन्द्रिके सोपवने प्रदोषे
रुतेषु वृन्देषु च कोकिलानाम्।
शरव्ययं प्राप्य पुरेऽसुराणां
प्रक्षीणबाणो मदनश्चचार॥ ४४

है। रात्रिके समय जब चन्द्रमाकी उज्ज्वल छटा पूरे त्रिपुरमें फैल गयी तब दानवगण रात बितानेके लिये अपनी पत्नियोंके साथ अपने-अपने गृहोंमें चले गये। इधर रात बीती और कोयलें कूजने लगीं॥ ३१—४४॥

इति तत्र पुरेऽमरद्विषाणां
सपदि हि पश्चिमकौमुदी तदासीत्।
रणशिरसि पराभविष्यतां वै
भवतुरगैः कृतसंक्षया अरीणाम्॥ ४५
चन्द्रोऽथ कुन्दकुसुमाकरहारवर्णो
ज्योत्स्नावितानरहितोऽभ्रसमानवर्णः।
विच्छायतां हि समुपेत्य न भाति तद्वद्
भाग्यक्षये धनपतिश्च नरो विवर्णः॥ ४६
चन्द्रप्रभामरुणसारथिनाभिभूय
संतप्तकाञ्चनरथाङ्गसमानबिम्बः।
स्थित्वोदयाग्रमुकुटे बहुरेव सूर्यो
भात्यम्बरे तिमिरतोयवहां तरिष्यन्॥ ४७

कुछ देर बाद त्रिपुरमें युद्धके मुहानेपर शङ्करजीके घोड़ोंद्वारा पराजित किये गये शत्रुओंकी क्षीण कीर्तिकी तरह उन देवशत्रुओंके नगरमें एकाएक चतुर्थ प्रहरकी क्षीण चाँदनी दीख पड़ने लगी। उस समय कुन्दके पुष्पसमूहोंसे निर्मित हारके समान उज्ज्वल वर्णवाले चन्द्रमा किरणजालके क्षीण हो जानेके कारण निर्जल बादलकी तरह दीखने लगे। चाँदनीके नष्ट हो जानेपर चन्द्रमाकी शोभा उसी प्रकार जाती रही, जैसे धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न मनुष्य भाग्यके नष्ट हो जानेपर शोभाहीन हो जाता है। उस समय तपाये हुए स्वर्णमय चक्रके समान बिम्बवाले सूर्य अपने सारथि अरुणकी प्रभासे चन्द्रमाकी कान्तिको तिरस्कृत कर उदयाचलके अग्र शिखरपर स्थित हुए और आकाशमण्डलमें अन्धकाररूपी नदीको पार करते हुए शोभा पा रहे थे॥ ४५—४७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरकौमुदीनामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १३९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें त्रिपुरकौमुदी नामक एक सौ उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १३९॥

एक सौ चालीसवाँ अध्याय

देवताओं और दानवोंका भीषण संग्राम, नन्दीश्वरद्वारा विद्युन्मालीका वध, मयका पलायन तथा शङ्करजीकी त्रिपुरपर विजय

सूत उवाच

उदिते तु सहस्रांशौ मेरौ भासाकरे रवौ।
नदद्देव बलं कृत्स्नं युगान्त इव सागराः॥ १
सहस्रनयनो देवस्ततः शक्रः पुरन्दरः।
सवित्तदः सवरुणस्त्रिपुरं प्रययौ हरः॥ २
ते नानाविधिरूपाश्च प्रमथातिप्रमाथिनः।
ययुः सिंहरवैर्घोरैर्वादित्रनिनदैरपि॥ ३
ततो वादितवादित्रैश्चातपत्रैर्महाद्रुमैः।
बभूव तद्बलं दिव्यं वनं प्रचलितं यथा॥ ४
तदापतन्तं सम्प्रेक्ष्य रौद्रं रुद्रबलं महत्।
संक्षोभो दानवेन्द्राणां समुद्रप्रतिमो बभौ॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्रकाश बिखेरनेवाले सहस्रांशुमाली सूर्यके मेरुगिरिपर उदित होते ही सारी-की-सारी देवसेना प्रलयकालीन सागरकी तरह उच्च स्वरसे गर्जना करने लगी। तब भगवान् शङ्कर सहस्रनेत्रधारी पुरन्दर इन्द्र, कुबेर और वरुणको साथ लेकर त्रिपुरकी ओर प्रस्थित हुए। उनके पीछे विभिन्न रूपधारी शत्रुविनाशक प्रमथगण भीषण सिंहनाद करते और बाजा बजाते हुए चले। उस समय बजते हुए बाजों, छत्रों और विशाल वृक्षोंसे युक्त होनेके कारण वह देवसेना ऐसी लग रही थी, मानो चलता-फिरता वन हो। तत्पश्चात् शङ्करजीकी उस विशाल भयंकर सेनाको आक्रमण करते देखकर दानवेन्द्रोंका समूह सागरकी तरह संक्षुब्ध हो उठा।

ते चासीन् पट्टिशान् शक्तीः शूलदण्डपरश्वधान्।
शरासनानि वज्राणि गुरूणि मुसलानि च॥ ६
प्रगृह्य कोपरक्ताक्षाः सपक्षा इव पर्वताः।
निजघ्नुः पर्वतघ्नाय घना इव तपात्यये॥ ७

फिर तो पंखधारी पर्वतोंकी भाँति विशालकाय दानवोंके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। वे खड्ग, पट्टिश (पट्टे), शक्ति, शूल, दण्ड, कुठार, धनुष, वज्र तथा बड़े-बड़े मूसलोंको लेकर एक साथ ही इन्द्रपर इस प्रकार प्रहार करने लगे, जैसे ग्रीष्म-ऋतुके बीत जानेपर बादल जलकी वृष्टि करते हैं॥ १—७॥

सविद्युन्मालिनस्ते वै समया दितिनन्दनाः।
मोदमानाः समासेदुर्देवदेवैः सुरारयः॥ ८
मर्तव्यकृतबुद्धीनां जये चानिश्चितात्मनाम्।
अबलानां चमूर्ह्यासीदबलावयवा इव॥ ९
विगर्जन्त इवाम्भोदा अम्भोदसदृशत्विषः।
प्रयुध्य युद्धकुशलाः परस्परकृतागसः॥ १०
धूमायन्तो ज्वलद्भिश्च आयुधैश्चन्द्रवर्चसैः।
कोपाद् वा युद्धलुब्धाश्च कुट्टयन्ते परस्परम्॥ ११
वज्राहताः पतन्त्यन्ये बाणैरन्ये विदारिताः।
अन्ये विदारिताश्चक्रैः पतन्ति ह्युदधेर्जले॥ १२
छिन्नस्रग्दामहाराश्च प्रमृष्टाम्बरभूषणाः।
तिमिनक्रगणे चैव पतन्ति प्रमथाः सुराः॥ १३
गदानां मुसलानां च तोमराणां परश्वधाम्।
वज्रशूलर्ष्टिपातानां पट्टिशानां च सर्वतः॥ १४
गिरिशृङ्गोपलानां च प्रेरितानां प्रमन्युभिः।
सजवानां दानवानां सधूमानां रवित्विषाम्।
आयुधानां महानाघः सोगरौघे पतत्यपि॥ १५
प्रवृद्धवेगैस्तैस्तत्र सुरासुरकरेरितैः।
आयुधैस्त्रस्तनक्षत्रः क्रियते संक्षयो महान्॥ १६
क्षुद्राणां गजयोर्युद्धे यथा भवति सङ्क्षयः।
देवासुरगणैस्तद्वत् तिमिनक्रक्षयोऽभवत्॥ १७

इस प्रकार मयसहित देवशत्रु दैत्यगण विद्युन्मालीके साथ होकर प्रसन्नतापूर्वक देवेश्वरोंसे टक्कर लेने लगे। उनके मनमें विजयकी आशा तो थी ही नहीं, अतः वे मरनेपर उतारू हो गये थे। उन बलहीनोंकी सेना स्त्रियोंके अवयवोंकी तरह दुर्बल थी। मेघकी-सी कान्तिवाले युद्धकुशल दैत्य परस्पर एक-दूसरेपर प्रहार करते हुए लड़ रहे थे और मेघके समान गरज रहे थे। युद्धलोभी सैनिक प्रज्वलित अग्नि एवं चन्द्रमाके समान तेजस्वी अस्त्रोंद्वारा क्रोधपूर्वक परस्पर एक-दूसरेको मार-पीट—कूट रहे थे। कुछ लोग वज्रसे घायल होकर, कुछ लोग बाणोंसे विदीर्ण होकर और कुछ लोग चक्रोंसे छिन्न-भिन्न होकर समुद्रके जलमें गिर रहे थे। (दैत्योंकी मारसे) जिनकी मालाओंके सूत्र और हार टूट गये थे तथा जिनके वस्त्र और आभूषण नष्ट-भ्रष्ट हो गये थे, वे देवता और गणेश्वर समुद्रमें मगरमच्छों एवं नाकोंके मध्यमें गिर रहे थे। धूमयुक्त सूर्यकी-सी कान्तिवाले वेगशाली दानवोंद्वारा क्रोधपूर्वक चलाये गये गदा, मुसल, तोमर, कुठार, वज्र, शूल, ऋष्टि, पट्टिश, पर्वतशिखर और शिलाखण्ड आदि आयुधोंका महान् समूह सागरमें गिर रहा था। देवताओं और असुरोंके हाथोंसे वेगपूर्वक चलाये गये आयुधोंसे नक्षत्रगण (भी) त्रस्त हो रहे थे। और महान् संहार हो रहा था। जैसे दो हाथियोंके लड़ते समय क्षुद्र जीवोंका विनाश हो जाता है, उसी तरह देवताओं और असुरोंके संग्रामसे मगरमच्छ और नाकोंका संहार होने लगा॥ ८—१७॥

विद्युन्माली च वेगेन विद्युन्माली इवाम्बुदः।
विद्युन्मालं घनोन्नादो नन्दीश्वरमभिद्रुतः॥ १८
स तं तमोऽरिवदनं प्रणदन् वदतां वरः।
उवाच युधि शैलादिं दानवोऽम्बुधिनिःस्वनः॥ १९
युद्धाकाङ्क्षी तु बलवान् विद्युन्माल्यहमागतः।
यदि त्विदानीं मे जीवन्मुच्यसे नन्दिकेश्वर।
न विद्युन्मालिहननं वचोभिर्युधि दानवम्॥ २०

तत्पश्चात् विद्युत्समूहोंसे युक्त मेघकी तरह कान्तिमान् विद्युन्मालीने बिजलीसे युक्त बादलकी तरह गरजते हुए नन्दीश्वरपर वेगपूर्वक धावा किया। उस समय वक्ताओंमें श्रेष्ठ दानव विद्युन्माली बादलकी तरह गरजता हुआ युद्धस्थलमें सूर्यके समान तेजस्वी मुखवाले नन्दीश्वरसे बोला—'नन्दिकेश्वर! मैं बलवान् विद्युन्माली हूँ और युद्ध करनेकी इच्छासे तुम्हारे सम्मुख खड़ा हूँ। अब तुम्हारा मेरे हाथोंसे जीवित बच पाना असम्भव है। युद्धस्थलमें वचनोंद्वारा दानव विद्युन्मालीका हनन नहीं किया जा सकता।'

तमेवंवादिनं दैत्यं नन्दीशस्तपतां वरः।
उवाच प्रहरंस्तत्र वाक्यालङ्कारकोविदः॥ २१

दानवाधम कामानां नैषोऽवसर इत्युत।
शक्तो हन्तुं किमात्मानं जातिदोषाद् विबृंहसि॥ २२

यदि तावन्मया पूर्वं हतोऽसि पशुवद् यथा।
इदानीं वा कथं नाम न हिंस्ये क्रतुदूषणम्॥ २३

सागरं तरते दोर्भ्यां पातयेद् यो दिवाकरम्।
सोऽपि मां शक्नुयान्नैव चक्षुर्भ्यां समवीक्षितुम्॥ २४

इत्येवंवादिनं तत्र नन्दिनं तन्निभो बले।
बिभेदैकेषुणा दैत्यः करेणार्क इवाम्बुदम्॥ २५

वक्षसः स शरस्तस्य पपौ रुधिरमुत्तमम्।
सूर्यस्त्वात्मप्रभावेण नद्यर्णवजलं यथा॥ २६

स तेन सुप्रहारेण प्रथमं च तिरोहितः।
हस्तेन वृक्षमुत्पाट्य चिक्षेप गजराडिव॥ २७

वायुनुन्नः स च तरुः शीर्णपुष्पो महारवः।
विद्युन्मालिशरैश्छिन्नः पपात पतगेशवत्॥ २८

वृक्षमालोक्य तं छिन्नं दानवेन वरेषुभिः।
रोषमाहारयत् तीव्रं नन्दीश्वरः सुविग्रहः॥ २९

सोद्यम्य करमारावे रविशक्रकरप्रभम्।
दुद्राव हन्तुं स क्रूरं महिषं गजराडिव॥ ३०

तमापतन्तं वेगेन वेगवान् प्रसभं बलात्।
विद्युन्माली शरशतैः पूरयामास नन्दिनम्॥ ३१

शरकण्टकिताङ्गो वै शैलादिः सोऽभवत् पुनः।
अरेर्गृह्य रथं तस्य महतः प्रययौ जवात्॥ ३२

विलम्बिताश्वो विशिरो भ्रमितश्च रणे रथः।
पपात मुनिशापेन सादित्योऽर्करथो यथा॥ ३३

अन्तरान्निर्गतश्चैव मायया स दितेः सुतः।
आजघान तदा शक्त्या शैलादिं समवस्थितम्॥ ३४

तब वाक्यके अलंकारोंके ज्ञाता एवं श्रेष्ठ तेजस्वी नन्दीश्वरने ऐसा कहनेवाले दैत्य विद्युन्मालीपर प्रहार करते हुए कहा—'दानवाधम! तुमलोग इस समय कामासक्त ही हो, जिसका यह अवसर नहीं है। तुम मुझे मारनेमें समर्थ हो तो उसे कर दिखाओ, किंतु जाति-दोषके कारण तुम अपने प्रति ऐसी डींग क्यों मार रहे हो। यदि इससे भी पहले मैंने तुम्हें पशुकी तरह बहुत मारा है तो इस समय तुझ यज्ञविध्वंसीका हनन कैसे नहीं करूँगा? (तुम समझ लो) जो हाथोंसे सागरको तैरनेकी तथा सूर्यको आकाशसे गिरा देनेकी शक्ति रखता हो, वह भी मेरी ओर आँख उठाकर नहीं देख सकता।' तब नन्दीश्वरके समान ही बलशाली विद्युन्मालीने इस प्रकार कहते हुए नन्दीश्वरको एक बाणसे वैसे ही बींध दिया, जैसे सूर्य अपनी किरणसे बादलका भेदन करते हैं। वह बाण नन्दीश्वरके वक्षःस्थलपर जा लगा और उनका शुद्ध रक्त इस प्रकार पीने लगा जैसे सूर्य अपने प्रभावसे नदी और समुद्रके जलको पीते हैं। उस प्रथम प्रहारसे अत्यन्त क्रुद्ध हुए नन्दीश्वरने अपने हाथसे एक वृक्ष उखाड़कर गजराजकी भाँति विद्युन्मालीके ऊपर फेंका। वायुसे प्रेरित हुआ वह वृक्ष घोर शब्द करता और पुष्पोंको बिखेरता हुआ आगे बढ़ा, किंतु विद्युन्मालीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर एक बड़े पक्षीकी तरह भूतलपर बिखर गया॥ १८—२८॥

विद्युन्मालीद्वारा श्रेष्ठ बाणोंके प्रहारसे उस वृक्षको छिन्न-भिन्न हुआ देखकर महाबली नन्दीश्वर अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे। फिर तो वे सूर्य और इन्द्रके हाथके समान प्रभावशाली अपने हाथको उठाकर सिंहनाद करते हुए उस क्रूर राक्षसका वध करनेके लिये इस प्रकार झपटे, जैसे गजराज भैंसेपर टूट पड़ता है। नन्दीश्वरको वेगपूर्वक आक्रमण करते देखकर वेगशाली विद्युन्मालीने बलपूर्वक नन्दीश्वरके शरीरको सैकड़ों बाणोंसे व्याप्त कर दिया। उस समय नन्दीश्वरका शरीर बाणरूपी काँटोंसे भरा हुआ दिखायी पड़ने लगा; तब उन्होंने अपने शत्रु विद्युन्मालीके रथको पकड़कर बड़े वेगसे दूर फेंक दिया। उस समय उस रथके घोड़े उसमें लटके हुए थे और उसका अग्रभाग टूट गया था तथा वह चक्कर काटता हुआ रणभूमिमें उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे मुनिके शापसे सूर्यसहित सूर्यका रथ गिर पड़ा था। तब दितिपुत्र विद्युन्माली मायाके बलसे अपनेको सुरक्षित रखकर रथके भीतरसे निकल पड़ा और उसने सामने खड़े हुए नन्दीश्वरपर शक्तिसे प्रहार किया।

तामेव तु विनिष्क्रम्य शक्तिं शोणितभूषिताम्।
विद्युन्मालिनमुद्दिश्य चिक्षेप प्रमथाग्रणीः॥ ३५

तया भिन्नतनुत्राणो विभिन्नहृदयस्त्वपि।
विद्युन्माल्यपतद् भूमौ वज्राहत इवाचलः॥ ३६

विद्युन्मालिनि निहते सिद्धचारणकिन्नराः।
साधु साध्विति चोक्त्वा ते पूजयन्त उमापतिम्॥ ३७

नन्दिना सादिते दैत्ये विद्युन्मालौ हते मयः।
ददाह प्रमथानीकं वनमग्निरिवोद्धतः॥ ३८

शूलनिर्दारितोरस्का गदाचूर्णितमस्तकाः।
इषुभिर्गाढविद्धाश्च पतन्ति प्रमथार्णवे॥ ३९

अथ वज्रधरो यमोऽर्थदः स च नन्दी
स च षण्मुखो गुहः।
मयमसुरवीरसम्प्रवृत्तं विविधुः शस्त्रवरैर्हतारयः॥ ४०

नागं तु नागाधिपतेः शताक्षं
मयो विदार्येषु वरेण तूर्णम्।
यमं च वित्ताधिपतिं च विद्ध्वा
ररास मत्ताम्बुदवत् तदानीम्॥ ४१

ततः शरैः प्रमथगणैश्च दानवा
दृढाहताश्चोत्तमवेगविक्रमाः।
भृशानुविद्धास्त्रिपुरं प्रवेशिता
यथासुराश्चक्रधरेण संयुगे॥ ४२

ततस्तु शङ्खानकभेरिमर्दला:
ससिंहनादा दनुपुत्रभङ्गदाः।
कपर्दिसैन्ये प्रबभुः समन्ततो
निपात्यमाना युधि वज्रसंनिभाः॥ ४३

अथ दैत्यपुराभावे पुष्ययोगो बभूव ह।
बभूव चापि संयुक्तं तद्योगेन पुरत्रयम्॥ ४४

ततो बाणं त्रिधा देवस्त्रिदैवतमयं हरः।
मुमोच त्रिपुरे तूर्णं त्रिनेत्रस्त्रिपथाधिपः॥ ४५

तेन मुक्तेन बाणेन बाणपुष्पसमप्रभम्।
आकाशं स्वर्णसंकाशं कृतं सूर्येण रञ्जितम्॥ ४६

मुक्त्वा त्रिदैवतमयं त्रिपुरे त्रिदशः शरम्।
धिग्धिङ्मामेति चक्रन्द कष्टं कष्टमिति ब्रुवन्॥ ४७

प्रमथगणोंके नायक नन्दीश्वरने रक्तसे लथपथ हुई उस शक्तिको हाथमें लेकर विद्युन्मालीको लक्ष्य करके फेंक दिया। फिर तो उस शक्तिने विद्युन्मालीके कवचको फाड़कर उसके हृदयको भी विदीर्ण कर दिया, जिससे वह वज्रसे मारे गये पर्वतकी तरह धराशायी हो गया॥ २९—३६॥

इस प्रकार विद्युन्मालीके मारे जानेपर सिद्ध, चारण और किन्नरोंके समूह 'ठीक है, ठीक है' ऐसा कहते हुए शंकरजीकी पूजा करने लगे। इधर नन्दीश्वरद्वारा दैत्य विद्युन्मालीके मारे जानेपर मयने प्रमथोंकी सेनाको उसी प्रकार जलाना आरम्भ किया, जैसे उद्दीप्त दावाग्नि वनको जला डालती है। उस समय शूलके आघातसे जिनके वक्षःस्थल फट गये थे एवं गदाके प्रहारसे मस्तक चूर्ण हो गये थे और जो बाणोंकी मारसे अत्यन्त घायल हो गये थे, ऐसे प्रमथगण समुद्रमें गिर रहे थे। तदनन्तर शत्रुओंके विनाशक वज्रधारी इन्द्र, यमराज, कुबेर, नन्दीश्वर तथा छः मुखवाले स्वामिकार्तिक—ये सभी असुर-वीरोंसे घिरे हुए मयको श्रेष्ठ अस्त्रोंद्वारा बींधने लगे। उस समय मयने शीघ्र ही एक श्रेष्ठ बाणसे गजारूढ सौ नेत्रोंवाले इन्द्रको तथा ऐरावत नागको विदीर्ण कर यमराज और कुबेरको भी बींध दिया। फिर वह घुमड़ते हुए बादलकी तरह गर्जना करने लगा। इधर प्रमथगणोंद्वारा छोड़े गये बाणोंसे उत्तम वेग एवं पराक्रमशाली दानव बुरी तरह घायल हो रहे थे। वे अत्यन्त घायल होनेके कारण भागकर त्रिपुरमें उसी प्रकार घुस रहे थे, जैसे युद्धस्थलमें चक्रपाणि विष्णुके प्रहारसे असुर। तत्पश्चात् रणभूमिमें शंकरजीकी सेनामें चारों ओर शङ्ख, ढोल, भेरी और मृदङ्ग बज उठे। वीरोंका सिंहनाद वज्रकी गड़गड़ाहटकी भाँति गूँज उठा, जो दानवोंकी पराजयको सूचित कर रहा था। इसी समय उस दैत्यपुरका विनाशक पुष्ययोग आ गया। उस योगके प्रभावसे तीनों पुर संयुक्त हो गये॥ ३७—४४॥

तब त्रैलोक्याधिपति त्रिनेत्रधारी भगवान् शंकरने शीघ्र ही अपने त्रिदेवमय बाणको तीन भागोंमें विभक्त कर त्रिपुरपर छोड़ दिया। उस छूटे हुए बाणने (तीनों देवताओंके अंशसे तीन प्रकारकी प्रभासे युक्त होकर) बाण वृक्षके पुष्पके समान नीले आकाशको स्वर्ण-सदृश प्रभाशाली और सूर्यकी किरणोंसे उद्दीप्त कर दिया। देवेश्वर शम्भु त्रिपुरपर त्रिदेवमय बाण छोड़कर—'मुझे धिक्कार

वैधुर्यं दैवतं दृष्ट्वा शैलादिर्गजवद्गतिः।
किमिदं त्विति पप्रच्छ शूलपाणिं महेश्वरम्॥ ४८
ततः शशाङ्कतिलकः कपर्दी परमार्तवत्।
उवाच नन्दिनं भक्तः स मयोऽद्य विनङ्क्ष्यति॥ ४९
अथ नन्दीश्वरस्तूर्णं मनोमारुतवद् बली।
शरे त्रिपुरमायाति त्रिपुरं प्रविवेश सः॥ ५०
स मयं प्रेक्ष्य गणपः प्राह काञ्चनसंनिभः।
विनाशस्त्रिपुरस्यास्य प्राप्तो मय सुदारुणः॥ ५१
अनेनैव गृहेण त्वमपक्राम ब्रवीम्यहम्।
श्रुत्वा तन्नन्दिवचनं दृढभक्तो महेश्वरे।
तेनैव गृहमुख्येन त्रिपुरादपसर्पितः॥ ५२
सोऽपीषुः पत्रपुटवद् दग्ध्वा तन्नगरत्रयम्।
त्रिधा इव हुताशश्च सोमो नारायणस्तथा॥ ५३
शरतेजःपरीतानि पुराणि द्विजपुंगवाः।
दुष्पुत्रदोषाद् दह्यन्ते कुलान्यूर्ध्वं यथा तथा॥ ५४
मेरुकैलासकल्पानि मन्दराग्रनिभानि च।
सकपाटगवाक्षाणि बलिभिः शोभितानि च॥ ५५
सप्रासादानि रम्याणि कूटागारोत्कटानि च।
सजलानि समाख्यानि सावलोकनकानि च॥ ५६
बद्धध्वजपताकानि स्वर्णरौप्यमयानि च।
गृहाणि तस्मिंस्त्रिपुरे दानवानामुपद्रवे।
दह्यन्ते दहनाभानि दहनेन सहस्रशः॥ ५७
प्रासादाग्रेषु रम्येषु वनेषूपवनेषु च।
वातायनगताश्चान्याश्चाकाशस्य तलेषु च॥ ५८
रमणैरुपगूढाश्च रमन्त्यो रमणैः सह।
दह्यन्ते दानवेन्द्राणामग्निना ह्यपि ताः स्त्रियः॥ ५९
काचित्प्रियं परित्यज्य अशक्ता गन्तुमन्यतः।
पुरः प्रियस्य पञ्चत्वं गताग्निवदने क्षयम्॥ ६०

है, धिक्कार है, हाय! बड़े कष्टकी बात हो गयी' यों कहते हुए चिल्ला उठे। इस प्रकार शंकरजीको व्याकुल देखकर गजराजकी चालसे चलनेवाले नन्दीश्वर शूलपाणि महेश्वरके निकट पहुँचे और पूछने लगे—'कहिये, क्या बात है?' तब चन्द्रशेखर जटाजूटधारी भगवान् शंकरने अत्यन्त दुःखी होकर नन्दीश्वरसे कहा—'आज मेरा वह भक्त मय भी नष्ट हो जायगा।' यह सुनकर मन और वायुके समान वेगशाली महाबली नन्दीश्वर तुरंत उस बाणके त्रिपुरमें पहुँचनेके पूर्व ही वहाँ जा पहुँचे। वहाँ स्वर्ण-सरीखे कान्तिमान् गणेश्वर नन्दीने मयके निकट जाकर कहा—'मय! इस त्रिपुरका अत्यन्त भयंकर विनाश आ पहुँचा है, इसलिये मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। तुम अपने इस गृहके साथ इससे बाहर निकल जाओ।' तब महेश्वरके प्रति दृढ़ भक्ति रखनेवाला मय नन्दीश्वरके उस वचनको सुनकर अपने उस मुख्य गृहके साथ त्रिपुरसे निकलकर भाग गया। तदनन्तर वह बाण अग्नि, सोम और नारायणके रूपसे तीन भागोंमें विभक्त होकर उन तीनों नगरोंको पत्तेके दोनेकी तरह जलाकर भस्म कर दिया। द्विजवरो! वे तीनों पुर बाणके तेजसे उसी प्रकार जलकर नष्ट हो रहे थे, जैसे कुपुत्रके दोषसे आगेकी पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं॥ ४५—५४॥

उस त्रिपुरमें ऐसे गृह बने थे जो सुमेरु, कैलास और मन्दराचलके अग्रभागकी तरह दीख रहे थे। जिनमें बड़े-बड़े किंवाड़ और झरोखे लगे हुए थे तथा छज्जाओंकी विचित्र छटा दीख रही थी। जो सुन्दर महलों, उत्कृष्ट कूटागारों (ऊपरी छतके कमरों), जल रखनेकी वेदिकाओं और खिड़कियोंसे सुशोभित थे। जिनके ऊपर सुवर्ण एवं चाँदीके बने हुए डंडोंमें बँधे हुए ध्वज और पताकाएँ फहरा रही थीं। ये सभी हजारोंकी संख्यामें दानवोंके उस उपद्रवके समय अग्निद्वारा जलाये जा रहे थे, जो आगकी तरह धधक रहे थे। दानवेन्द्रोंकी स्त्रियाँ, जिनमें कुछ महलोंके रमणीय शिखरोंपर बैठी थीं, कुछ वनों और उपवनोंमें घूम रही थीं, कुछ झरोखोंमें बैठकर दृश्य देख रही थीं कुछ मैदानमें घूम रही थीं—ये सभी अग्निद्वारा जलायी जा रही थीं। कोई अपने पतिको छोड़कर अन्यत्र जानेमें असमर्थ थी, अतः पतिके सम्मुख ही अग्निकी लपटोंमें आकर दग्ध हो

उवाच शतपत्राक्षी सास्राक्षीव कृताञ्जलिः।
हव्यवाहन भार्याहं परस्य परतापन।
धर्मसाक्षी त्रिलोकस्य न मां स्प्रष्टुमिहार्हसि॥ ६१
शायितं च मया देव शिवया च शिवप्रभ।
शरेण प्रेहि मुक्त्वेदं गृहं च दयितं हि मे॥ ६२
एका पुत्रमुपादाय बालकं दानवाङ्गना।
हुताशनसमीपस्था इत्युवाच हुताशनम्॥ ६३
बालोऽयं दुःखलब्धश्च मया पावक पुत्रकः।
नार्हस्येनमुपादातुं दयितं षण्मुखप्रिय॥ ६४
काश्चित् प्रियान् परित्यज्य पीडिता दानवाङ्गनाः।
निपतन्त्यर्णवजले शिञ्जमानविभूषणाः॥ ६५
तात पुत्रेति मातेति मातुलेति च विह्वलम्।
चक्रन्दुस्त्रिपुरे नार्यः पावकज्वालवेपिताः॥ ६६
यथा दहति शैलाग्निः साम्बुजं जलजाकरम्।
तथा स्त्रीवक्त्रपद्मानि चादहत् पुरेऽनलः॥ ६७

गयी। कोई कमलनयनी नारी आँखोंमें आँसू भरे हुए हाथ जोड़कर कह रही थी—'हव्यवाहन! मैं दूसरेकी पत्नी हूँ। परतापन! आप त्रिलोकीके धर्मके साक्षी हैं, अतः यहाँ मेरा स्पर्श करना आपके लिये उचित नहीं है।' (कोई कह रही थी—) 'शिवके समान कान्तिमान् अग्निदेव! मुझ पतिव्रताने इस घरमें अपने पतिको सुला रखा है, अतः इसे छोड़कर आप दूसरी ओरसे चले जाइये; क्योंकि यह गृह मुझे परम प्रिय है।' एक दानवपत्नी अपने शिशु पुत्रको गोदमें लेकर अग्निके समीप गयी और अग्निसे कहने लगी—'स्वामीकार्तिकके प्रेमी पावक! मुझे यह शिशु पुत्र बड़े दुःखसे प्राप्त हुआ है, अतः इसे ले लेना आपके लिये उचित नहीं है। यह मुझे परम प्रिय है।' कुछ पीड़ित हुई दानव-पत्नियाँ अपने पतियोंको छोड़कर समुद्रके जलमें कूद रही थीं। उस समय उनके आभूषणोंसे शब्द हो रहा था। त्रिपुरमें आगकी लपटोंके भयसे काँपती हुई नारियाँ 'हा तात!, हा पुत्र!, हा माता!, हा मामा!' कहकर विह्वलतापूर्वक करुण-क्रन्दन कर रही थीं। जैसे पर्वताग्नि (दावाग्नि) कमलोंसहित सरोवरको जला देती है उसी प्रकार अग्निदेव त्रिपुरमें स्त्रियोंके मुखरूपी कमलोंको जला रहे थे॥ ५५—६७॥

तुषारराशिः कमलाकराणां
यथा दहत्यम्बुजकानि शीते।
तथैव सोऽग्निस्त्रिपुराङ्गनानां
ददाह वक्त्रेक्षणपङ्कजानि॥ ६८
शराग्निपातात् समभिद्रुतानां
तत्राङ्गनानामतिकोमलानाम्।
बभूव काञ्चीगुणनूपुराणा-
माक्रन्दितानां च रवोऽति मिश्रः॥ ६९
दग्धार्धचन्द्राणि सवेदिकानि
विशीर्णहर्म्याणि सतोरणानि।
दग्धानि दग्धानि गृहाणि तत्र
पतन्ति रक्षार्थमिवार्णवौघे॥ ७०
गृहैः पतद्भिर्ज्वलनावलीढै-
रासीत् समुद्रे सलिलं प्रतप्तम्।
कुपुत्रदोषैः प्रहतानुविद्धं
यथा कुलं याति धनान्वितस्य॥ ७१

जिस प्रकार शीतकालमें तुषारराशि कमलोंसे भरे हुए सरोवरोंके कमलोंको नष्ट कर देती है उसी तरह अग्निदेव त्रिपुर-निवासिनी नारियोंके मुख और नेत्ररूप कमलोंको जला रहे थे। त्रिपुरमें बाणाग्निके गिरनेसे भयभीत होकर भागती हुई अत्यन्त कोमलाङ्गी सुन्दरियोंकी करधनीकी लड़ियों और पायजेबोंका शब्द आक्रन्दनके शब्दोंसे मिलकर अत्यन्त भयंकर लग रहा था। जिनमें अर्धचन्द्रसे सुशोभित वेदिकाएँ जल गयी थीं तथा तोरणसहित अट्टालिकाएँ जलकर छिन्न-भिन्न हो गयी थीं। ऐसे गृह जलते-जलते समुद्रमें इस प्रकार गिर रहे थे मानो वे रक्षाके लिये उसमें कूद रहे हों। अग्निकी लपटोंसे झुलसे हुए गृहोंके समुद्रमें गिरनेसे उसका जल ऐसा संतप्त हो उठा था, जैसे सम्पत्तिशाली व्यक्तिका कुल कुपुत्रके दोषसे नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है।

गृहप्रतापैः क्वथितं समन्तात्
तदार्णवे तोयमुदीर्णवेगम्।
वित्रासयामास तिमीन् सनक्रां-
स्तिमिंगिलांस्तत्क्वथितांस्तथान्यान्॥ ७२
सगोपुरो मन्दरपादकल्पः
प्राकारवर्यस्त्रिपुरे च सोऽथ।
तैरेव सार्धं भवनैः पपात
शब्दं महान्तं जनयन् समुद्रे॥ ७३
सहस्रशृङ्गैर्भवनैर्यदासीत्
सहस्रशृङ्गः स इवाचलेशः।
नामावशेषं त्रिपुरं प्रजज्ञे
हुताशनाहारबलिप्रयुक्तम् ॥ ७४
प्रदह्यमानेन पुरेण तेन
जगत्सपातालदिवं प्रतप्तम्।
दुःखं महत्प्राप्य जलावमग्नं
हित्वा महान् सौधवरो मयस्य॥ ७५
तद् देवेशो वचः श्रुत्वा इन्द्रो वज्रधरस्तदा।
शशाप तद्गृहं चापि मयस्यादितिनन्दनः॥ ७६
असेव्यमप्रतिष्ठं च भयेन च समावृतम्।
भविष्यति मयगृहं नित्यमेव यथानलः॥ ७७
यस्य यस्य तु देशस्य भविष्यति पराभवः।
द्रक्ष्यन्ति त्रिपुरं खण्डं तत्रेदं नाशगा जनाः।
तदेतदद्यापि गृहं मयस्यामयवर्जितम्॥ ७८

उस समय समुद्रमें चारों ओर गिरते हुए गृहोंकी उष्णतासे खौलते हुए जलमें तूफान आ गया, जिससे मगरमच्छ, नाक, तिमिंगिल तथा अन्यान्य जलजन्तु संतप्त होकर भयभीत हो उठे। उसी समय त्रिपुरमें लगा हुआ मन्दराचलके समान ऊँचा परकोटा फाटकसहित उन गिरते हुए भवनोंके साथ-ही-साथ महान् शब्द करता हुआ समुद्रमें जा गिरा। जो त्रिपुर थोड़ी देर पहले सहस्रों ऊँचे-ऊँचे भवनोंसे युक्त होनेके कारण सहस्र शिखरवाले पर्वतकी भाँति शोभा पा रहा था वही अग्निके आहार और बलिके रूपमें प्रयुक्त होकर नाममात्र अवशेष रह गया। जलते हुए उस त्रिपुरके तापसे पाताल और स्वर्गलोकसहित सारा जगत् संतप्त हो उठा। इस प्रकार महान् कष्ट झेलता हुआ वह त्रिपुर समुद्रके जलमें निमग्न हो गया। इसमें एकमात्र मयका महान् भवन ही बच गया था। अदिति-नन्दन वज्रधारी देवराज इन्द्रने जब ऐसी बात सुनी तो मयके उस गृहको शाप देते हुए बोले—'मयका वह गृह किसीके सेवन करनेयोग्य नहीं होगा। उसकी संसारमें प्रतिष्ठा नहीं होगी। वह अग्निकी तरह सदा भयसे युक्त बना रहेगा। जिस-जिस देशकी पराजय होनेवाली होगी उस-उस देशके विनाशोन्मुख निवासी इस त्रिपुर-खण्डका दर्शन करेंगे।' मयका वह गृह आज भी आपत्तियोंसे रहित है॥ ६८—७८॥

ऋषय ऊचुः

भगवन् स मयो येन गृहेण प्रपलायितः।
तस्य नो गतिमाख्याहि मयस्य चमसोद्भव॥ ७९

ऋषियोंने पूछा—चमससे उत्पन्न होनेवाले ऐश्वर्यशाली सूतजी! वह मय जिस गृहको साथ लेकर भाग गया था, उस मयकी आगे चलकर क्या गति हुई? वह हमें बतलाइये॥ ७९॥

सूत उवाच

दृश्यते दृश्यते यत्र ध्रुवस्तत्र मयास्पदम्।
देवद्विट् तु मयश्चातः स तदा खिन्नमानसः।
ततश्च युतोऽन्यलोकेऽस्मिंस्त्राणार्थं स चकार सः॥ ८०
तत्रापि देवताः सन्ति आप्तोर्यामाः सुरोत्तमाः।
तत्राशक्तं ततो गन्तुं तं चैकं पुरमुत्तमम्॥ ८१

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! जहाँ ध्रुव दिखलायी पड़ते हैं वहीं मयका भी स्थान दीख पड़ता था, किंतु कुछ समयके बाद देवशत्रु मयका मन खिन्न हो गया, तब वह अपनी रक्षाके निमित्त वहाँसे हटकर अन्य लोकमें चला गया। वहाँ भी आप्तोर्याम नामक श्रेष्ठ देवता निवास करते थे, परंतु अब मयमें वहाँसे अन्यत्र जानेकी शक्ति नहीं रह गयी थी।

शिवः सृष्ट्वा गृहं प्रादान्मयायैव गृहार्थिने।
विरराम सहस्राक्षः पूजयामास चेश्वरम्।
पूज्यमानं च भूतेशं सर्वे तुष्टुवुरीश्वरम्॥ ८२
सम्पूज्यमानं त्रिदशैः समीक्ष्य
गणैर्गणेशाधिपतिं तु मुख्यम्।
हर्षाद्ववल्गुर्जहसुश्च देवा
जग्मुर्ननर्दुस्तु विषक्तहस्ताः॥ ८३
पितामहं वन्द्य ततो महेशं
प्रगृह्य चापं प्रविसृज्य भूतान्।
रथाच्च सम्पत्य हरेषुदग्धं
क्षिप्तं पुरं तन्मकरालये च॥ ८४
य इमं रुद्रविजयं पठते विजयावहम्।
विजयं तस्य कृत्येषु ददाति वृषभध्वजः॥ ८५
पितृणां वापि श्राद्धेषु य इमं श्रावयिष्यति।
अनन्तं तस्य पुण्यं स्यात् सर्वयज्ञफलप्रदम्॥ ८६
इदं स्वस्त्ययनं पुण्यमिदं पुंसवनं महत्।
इदं श्रुत्वा पठित्वा च यान्ति रुद्रसलोकताम्॥ ८७

तब भक्तवत्सल शंकरजीने एक उत्तम पुर और गृहका निर्माण कर गृहार्थी मयको प्रदान कर दिया। यह देखकर सहस्र नेत्रधारी इन्द्र शान्त हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने महेश्वरकी पूजा की। उस समय सभी देवताओंने पूजित होते हुए भूतपति शंकरकी स्तुति की। तदनन्तर देवताओं और गणेश्वरोंद्वारा प्रधान गणेशाधिपति महेश्वरकी पूजा होते देखकर देवगण हाथ उठाकर हर्षपूर्वक जय-जयकार, अट्टहास और सिंहनाद करने लगे। इसके बाद रथसे निकलकर उन्होंने ब्रह्मा और शंकरजीकी वन्दना की। फिर हाथमें धनुष ग्रहणकर और भूतगणोंसे विदा होकर वे अपने-अपने स्थानके लिये प्रस्थित हुए; क्योंकि शंकरजीके बाणसे भस्म हुआ त्रिपुर महासागरमें निमग्न हो चुका था। जो मनुष्य विजय प्रदान करनेवाले इस रुद्रविजयका पाठ करता है, उसे भगवान् शंकर सभी कार्योंमें विजय प्रदान करते हैं। जो मनुष्य पितरोंके श्राद्धोंके अवसरपर इसे पढ़कर सुनाता है उसे सम्पूर्ण यज्ञोंका फल प्रदान करनेवाले अनन्त पुण्यकी प्राप्ति होती है। यह रुद्रविजय महान् मङ्गलकारक, पुण्यप्रद और संतानप्रदायक है। इसे पढ़ और सुनकर लोग रुद्रलोकमें चले जाते हैं॥ ८०—८७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे त्रिपुरोपाख्याने त्रिपुरदाहो नाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके त्रिपुरोपाख्यानमें त्रिपुरदाह नामक एक सौ चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४०॥

एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय

पुरूरवाका सूर्य-चन्द्रके साथ समागम और पितृतर्पण, पर्वसंधिका वर्णन तथा श्राद्धभोजी पितरोंका निरूपण

ऋषय ऊचुः

कथं गच्छत्यमावास्यां मासि मासि दिवं नृपः।
ऐलः पुरूरवाः सूत तर्पयेत कथं पितॄन्।
एतदिच्छामहे श्रोतुं प्रभावं तस्य धीमतः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! इलानन्दन महाराज पुरूरवा प्रति मासकी अमावास्याको किस प्रकार स्वर्गलोकमें जाते हैं और वहाँ अपने पितरोंको कैसे तृप्त करते हैं? उन बुद्धिमान् नरेशके इस प्रभावको हमलोग सुनना चाहते हैं॥ १॥

सूत उवाच

एतदेव तु पप्रच्छ मनुः स मधुसूदनम्।
सूर्यपुत्राय चोवाच यथा तन्मे निबोधत॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पूर्वकालमें महाराज मनुने भगवान् मधुसूदनसे यही प्रश्न किया था। उस समय भगवान्ने उन सूर्यपुत्र मनुके प्रति जो कुछ कहा था, वही मैं बतला रहा हूँ, आपलोग ध्यान देकर सुनिये॥ २॥

मत्स्य उवाच

तस्य चाहं प्रवक्ष्यामि प्रभावं विस्तरेण तु।
ऐलस्य दिवि संयोगं सोमेन सह धीमता॥ ३

सोमाच्चैवामृतप्राप्तिः पितृणां तर्पणं तथा।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च॥ ४

यदा चन्द्रश्च सूर्यश्च नक्षत्राणां समागतौ।
अमावास्यां निवसत एकस्मिन्नथ मण्डले॥ ५

तदा स गच्छति द्रष्टुं दिवाकरनिशाकरौ।
अमावास्याममावास्यां मातामहपितामहौ॥ ६

अभिवाद्य तु तौ तत्र कालापेक्षः स तिष्ठति।
प्रचस्कन्द ततः सोममर्चयित्वा परिश्रमात्॥ ७

ऐलः पुरूरवा विद्वान् मासि श्राद्धचिकीर्षया।
ततः स दिवि सोमं वै ह्युपतस्थे पितॄनपि॥ ८

द्विलवं कुहुमात्रं च तावुभौ तु निधाय सः।
सिनीवालीप्रमाणाल्पकुहूमात्रव्रतोदये॥ ९

कुहूमात्रं पित्रुद्देशं ज्ञात्वा कुहूमुपासते।
तमुपास्य ततः सोमं कलापेक्षी प्रतीक्षते॥ १०

स्वधामृतं तु सोमाद् वै वसंस्तेषां च तृप्तये।
दशभिः पञ्चभिश्चैव स्वधामृतपरिस्त्रवैः।
कृष्णपक्षभुजां प्रीतिर्दुह्यते परमांशुभिः॥ ११

सद्योऽभिक्षरता तेन सौम्येन मधुना च सः।
निवापेष्वथ दत्तेषु पित्र्येण विधिना तु वै॥ १२

स्वधामृतेन सौम्येन तर्पयामास वै पितॄन्।
सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्तास्तथैव च॥ १३

ऋतुरग्निः स्मृतो विप्रैर्ऋतुं संवत्सरं विदुः।
जज्ञिरे ऋतवस्तस्मादृतुभ्यो ह्यार्तवाऽभवन्॥ १४

पितरोऽऽर्तवोऽर्धमासा विज्ञेया ऋतुसूनवः।
पितामहास्तु ऋतवो ह्यमावास्याब्दसूनवः।
प्रपितामहाः स्मृता देवाः पञ्चाब्दा ब्रह्मणः सुताः॥ १५

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! मैं इलापुत्र पुरूरवाका प्रभाव, स्वर्गलोकमें उसका बुद्धिमान् चन्द्रमाके साथ संयोग, उन चन्द्रमासे अमृतकी उपलब्धि तथा पितृतर्पणकी बात विस्तारपूर्वक बतला रहा हूँ। सौम्य, बर्हिषद्, काव्य तथा अग्निष्वात्तसंज्ञक पितरों तथा नक्षत्रोंपर विचरण करते हुए सूर्य और चन्द्रमा जिस समय अमावास्या तिथिको एक मण्डल अर्थात् एक राशिपर स्थित होते हैं, उस समय वह प्रत्येक अमावास्याको सूर्य और चन्द्रमाका दर्शन करनेके लिये स्वर्गमें जाता है और वहाँ मातामह (नाना) और पितामह (बाबा)—दोनोंको अभिवादन कर कालकी प्रतीक्षा करता हुआ कुछ दिनतक ठहरा रहता है। चन्द्रमासे अमृतके क्षरण होनेपर उससे परिश्रमपूर्वक पितरोंकी पूजा करके लौटता है। किसी महीनेमें श्राद्ध करनेकी इच्छासे इला-नन्दन विद्वान् पुरूरवा स्वर्गलोकमें चन्द्रमा और पितरोंके निकट गया और दो लवमात्र कुहू अमावास्यामें उसने दोनोंको स्थापित किया; क्योंकि पितृ-व्रतमें जब सिनीवालीका प्रमाण थोड़ा तथा कुहू (अमावास्या) प्रशस्त मानी गयी है। अतः कुहूका समय प्राप्त हुआ जानकर वह पितरोंके उद्देश्यसे कुहूकी उपासना करता है। उसकी उपासना करनेके पश्चात् वह कालकी प्रतीक्षा करता हुआ चन्द्रमाकी भी प्रतीक्षा करता है। वहाँ रहते हुए उसे पितरोंकी तृप्तिके लिये चन्द्रमासे स्वधारूप अमृत प्राप्त होता है। चन्द्रमाकी पंद्रह किरणोंसे स्वधामृतका क्षरण होता है। कृष्णपक्षमें श्राद्धभोजी पितरोंका उन श्रेष्ठ किरणोंसे बड़ा प्रेम रहता है तथा अन्य पितर उनसे द्वेष करते हैं। पुरूरवा तुरंत अभिक्षरित हुए उस उत्तम मधुको पितृ-श्राद्धकी विधिके अनुसार श्राद्धके समय पितरोंको प्रदान करता है। इस प्रकार वह उत्तम स्वधामृतसे सौम्य, बर्हिषद्, काव्य तथा अग्निष्वात्त पितरोंको तृप्त करता रहता है। महर्षियोंने ऋतुको अग्नि बतलाया है और ऋतुको संवत्सर भी कहते हैं। उस संवत्सरसे ऋतुकी उत्पत्ति होती है और ऋतुओंसे उत्पन्न हुए पितर आर्तव कहलाते हैं। आर्तव और अर्धमास पितरोंको ऋतुका पुत्र तथा ऋतुस्वरूप पितामह और अमावास्याको संवत्सरका पुत्र जानना चाहिये। प्रपितामह और पञ्च संवत्सररूप देवगण ब्रह्माके पुत्र माने गये हैं॥ ३—१५॥

सौम्या बर्हिषदः काव्या अग्निष्वात्ता इति त्रिधा।
गृहस्था ये तु यज्वानो हविर्यज्ञार्तवाश्च ये।
स्मृता बर्हिषदस्ते वै पुराणे निश्चयं गताः॥ १६
गृहमेधिनश्च यज्वानो अग्निष्वात्तार्तवाः स्मृताः।
अष्टकापतयः काव्याः पञ्चाब्दांस्तु निबोधत॥ १७
तेषु संवत्सरो ह्यग्निः सूर्यस्तु परिवत्सरः।
सोमस्त्विड्वत्सरश्चैव वायुश्चैवानुवत्सरः॥ १८
रुद्रस्तु वत्सरस्तेषां पञ्चाब्दा ये युगात्मकाः।
कालेनाधिष्ठितस्तेषु चन्द्रमाः स्रवते सुधाम्॥ १९
एते स्मृता देवकृत्याः सोमपाश्चोष्मपाश्च ये।
तांस्तेन तर्पयामास यावदासीत् पुरूरवाः॥ २०
यस्मात्प्रसूयते सोमो मासि मासि विशेषतः।
ततः स्वधामृतं तद्वै पितॄणां सोमपायिनाम्।
एतत् तदमृतं सोममवाप मधु चैव हि॥ २१
ततः पीतसुधं सोमं सूर्योऽसावेकरश्मिना।
आप्यायते सुषुम्णेन सोमं तु सोमपायिनम्॥ २२
निःशेषं वै कलाः पूर्वा युगपद्व्यापयन्पुरा।
सुषुम्णाऽऽप्यायमानस्य भागं भागमहःक्रमात्॥ २३
कलाः क्षीयन्ति कृष्णास्ताः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च।
एवं सा सूर्यवीर्येण चन्द्रस्याप्यायिता तनुः॥ २४
पौर्णमास्यां स दृश्येत शुक्लः सम्पूर्णमण्डलः।
एवमाप्यायितः सोमः शुक्लपक्षेऽप्यहःक्रमात्।
देवैः पीतसुधं सोमं पुरा पश्चात्पिबेद् रविः॥ २५
पीतं पञ्चदशाहं तु रश्मिनैकेन भास्करः।
आप्यायत्सुषुम्णेन भागं भागमहःक्रमात्॥ २६
सुषुम्णाप्यायमानस्य शुक्ला वर्धयन्ति वै कलाः।
तस्माद्ध्रसन्ति वै कृष्णाः शुक्ला ह्याप्याययन्ति च॥ २७
एवमाप्यायते सोमः क्षीयते च पुनः पुनः।
समृद्धिरेवं सोमस्य पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः॥ २८
इत्येष पितृमान् सोमः स्मृतस्तद्वत्सुधात्मकः।
कान्तः पञ्चदशैः सार्धं सुधामृतपरिस्रवैः॥ २९

सौम्य, बर्हिषद्, काव्य और अग्निष्वात्त—पितरोंके ये तीन भेद हैं। इनमें जो गृहस्थ, यज्ञकर्ता और हवन करनेवाले हैं, वे आर्तव पितर पुराणमें बर्हिषद् नामसे निश्चित किये गये हैं। गृहस्थाश्रमी और यज्ञकर्ता आर्तव पितर अग्निष्वात्त कहलाते हैं। अष्टकापति आर्तव पितरोंको काव्य कहा जाता है। अब पञ्चाब्दोंको सुनिये। इनमें, अग्नि संवत्सर, सूर्य परिवत्सर, सोम इड्वत्सर, वायु अनुवत्सर और रुद्र वत्सर हैं। ये पञ्चाब्द युगात्मक होते हैं। समयानुसार इनपर स्थित हुए चन्द्रमा अमृतका क्षरण करते हैं। ये देवकर्म कहे जाते हैं। जबतक पुरूरवा वहाँ रहता था तबतक वह जो सोमप और ऊष्मप पितर हैं, उनको भी उसी अमृतसे तृप्त करता था। चूँकि चन्द्रमा प्रत्येक मासमें विशेषरूपसे अमृतका क्षरण करते हैं और वह सोमपायी पितरोंको स्वधामृतरूपसे प्राप्त होता है। इसीलिये वह अमृतस्वरूप मधु सोमको प्राप्त होता है। इस प्रकार पितरोंद्वारा चन्द्रमाका अमृत पी लिये जानेपर सूर्यदेव अपनी एकमात्र सुषुम्णा नामकी किरणद्वारा उन सोमपायी चन्द्रमाको पुनः परिपूर्ण कर देते हैं। इस प्रकार सूर्य सुषुम्णाद्वारा पूर्ण किये जाते हुए चन्द्रमाकी पहलेकी सम्पूर्ण कलाओंको दिनके क्रमसे थोड़ा-थोड़ा करके पूर्ण करते हैं। चन्द्रमाकी कलाएँ कृष्णपक्षमें क्षीण हो जाती हैं और शुक्लपक्षमें वे पुनः पूर्ण हो जाती हैं। इस प्रकार सूर्यके प्रभावसे चन्द्रमाका शरीर पूर्ण होता रहता है। इसी कारण शुक्लपक्षमें दिनके क्रमसे परिपूर्ण किये गये चन्द्रमाका सम्पूर्ण मण्डल पूर्णिमा तिथिको श्वेत वर्णका दिखायी पड़ता है। पहले देवगण चन्द्रमासे स्रवित हुए अमृतको पीते हैं, उसके बाद सूर्य भी सोमका पान करते हैं। सूर्य अपनी एक किरणसे पंद्रह दिनोंतक सोमको पीते हैं और पुनः दिनके क्रमसे थोड़ा-थोड़ा कर सुषुम्णा किरणद्वारा उसे पूर्ण कर देते हैं। इसी कारण शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कलाएँ बढ़ती हैं और कृष्णपक्षमें वे क्षीण होती हैं, यही इनका क्रम है। इस प्रकार चन्द्रमा पंद्रह दिनोंतक बढ़ते हैं और पुनः पंद्रह दिनतक क्षीण होते रहते हैं। चन्द्रमाकी इस प्रकारकी समृद्धि और ह्रास शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्षके आश्रयसे होते हैं। इस प्रकार सुधामृतस्रावी पंद्रह किरणोंसे सुशोभित ये चन्द्रमा सुधात्मक एवं पितृमान् कहे जाते हैं॥ १६—२९॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि पर्वाणां संधयश्च याः।
यथा ग्रथ्नन्ति पर्वाणि आवृत्तादिक्षुवेणुवत्॥ ३०
तथाब्दमासाः पक्षाश्च शुक्लाः कृष्णास्तु वै स्मृताः।
पौर्णमास्यास्तु यो भेदो ग्रन्थयः संधयस्तथा॥ ३१
अर्धमासस्य पर्वाणि द्वितीयाप्रभृतीनि च।
अग्न्याधानक्रिया यस्तान्नीयन्ते पर्वसन्धिषु॥ ३२
तस्मात्तु पर्वणो ह्यादौ प्रतिपद्यादिसंधिषु।
सायाह्ने अनुमत्याश्च द्वौ लवौ काल उच्यते।
लवौ द्वावेव राकायाः कालो ज्ञेयोऽपराह्निकः॥ ३३
प्रकृतिः कृष्णपक्षस्य कालेऽतीतेऽपराह्निके।
सायाह्ने प्रतिपद्येष स कालः पौर्णमासिकः॥ ३४
व्यतीपाते स्थिते सूर्ये लेखादूर्ध्वं युगान्तरम्।
युगान्तरोदिते चैव चन्द्रे लेखोपरि स्थिते॥ ३५
पूर्णमासव्यतीपातो यदा पश्येत्परस्परम्।
तौ तु वै प्रतिपद्यावत्तस्मिन्काले व्यवस्थितौ॥ ३६
तत्कालं सूर्यमुद्दिश्य दृष्ट्वा संख्यातुमर्हसि।
स चैव सत्क्रियाकालः षष्ठः कालोऽभिधीयते॥ ३७
पूर्णेन्दुः पूर्णपक्षे तु रात्रिसंधिषु पूर्णिमा।
तस्मादाप्यायते नक्तं पौर्णमास्यां निशाकरः॥ ३८
यदान्योन्यवतो पाते पूर्णिमां प्रेक्षते दिवा।
चन्द्रादित्योऽपराह्ने तु पूर्णत्वात्पूर्णिमा स्मृता॥ ३९
यस्मात्तामनुमन्यन्ते पितरो दैवतैः सह।
तस्मादनुमतिर्नाम पूर्णत्वात् पूर्णिमा स्मृता॥ ४०
अत्यर्थं राजते यस्मात्पौर्णमास्यां निशाकरः।
रञ्जनाच्चैव चन्द्रस्य राकेति कवयो विदुः॥ ४१
अमा वसेतामृक्षे तु यदा चन्द्रदिवाकरौ।
एका पञ्चदशी रात्रिरमावस्या ततः स्मृता॥ ४२

इसके बाद अब मैं पर्वोंकी जो संधियाँ हैं, उनका वर्णन कर रहा हूँ। जैसे गन्ने और बाँसमें गोलाकार गाँठें बनी रहती हैं वैसे ही वर्ष, मास, शुक्लपक्ष, कृष्णपक्ष, अमावास्या और पूर्णिमाके भेद—ये सभी पर्वकी ग्रन्थियाँ और संधियाँ हैं। (प्रत्येक पक्षमें) प्रतिपद्-द्वितीया आदि पंद्रह तिथियाँ होती हैं। चूँकि अग्न्याधान आदि क्रियाएँ पर्वसंधियोंमें सम्पन्न की जाती हैं, अतः उन्हें (अमा, पूर्णिमा) पर्वकी तथा प्रतिपदाकी संधियोंमें करना चाहिये। चतुर्दशी और पूर्णिमा आदिके दो लवको पर्वकाल कहा जाता है तथा राकाके दूसरे दिनमें आनेवाले दो लवको पर्वकाल जानना चाहिये। कृष्णपक्षके अपराह्निक कालके व्यतीत हो जानेपर सायंकालमें प्रतिपदाके योगमें जो काल आता है उसे पौर्णमासिक कहते हैं। सूर्यके लेखा (विषुव)-के ऊपर व्यतीपातमें स्थित होनेपर युगान्तर कहलाता है। उस समय चन्द्रमा लेखाके ऊपर स्थित युगान्तरमें उदित होते हैं। इस प्रकार जब चन्द्रमा और व्यतीपात परस्पर एक-दूसरेको देखें और प्रतिपदा तिथितक उसी अवस्थामें स्थित रहें तो उस समय सूर्यके उद्देश्यसे उस समयको देखकर गणना करनी चाहिये। उसे सत्क्रियाकाल नामक छठा काल कहते हैं। शुक्लपक्षके पूर्ण होनेपर रात्रिकी संधिमें जब पूर्णचन्द्र उदय होते हैं, तब उसे पूर्णिमा कहते हैं। इसीलिये चन्द्रमा पूर्णिमाकी रातमें अपनी सभी कलाओंसे पूर्ण हो जाते हैं। पूर्णिमा तिथिकी ह्रास-वृद्धि होती रहती है, अतः यदि वृद्धिके समय दूसरे दिन सूर्य और चन्द्र दिनमें पूर्णिमामें दीखते हैं तो वह तिथि पूर्ण होनेके कारण पूर्णिमा कहलाती है। यदि दूसरे दिन प्रतिपदाका योग होनेमें चन्द्रमाकी एक कला हीन हो गयी तो उस पूर्णिमाको अनुमति कहते हैं। यह अनुमति देवताओंसहित पितरोंको परम प्रिय है। चूँकि पूर्णिमाकी रातमें चन्द्रमा अत्यन्त सुशोभित होते हैं, इसलिये चन्द्रमाको प्रिय होनेके कारण उस पूर्णिमाको विद्वानोंने राका नामसे अभिहित किया है। कृष्णपक्षकी पंद्रहवीं रात्रिको जब सूर्य और चन्द्र एक साथ एक नक्षत्रपर स्थित होते हैं, तब उसे अमावास्या कहा जाता है॥ ३०—४२॥

उद्दिश्यताममावास्यां यदा दर्शं समागतौ।
अन्योन्यं चन्द्रसूर्यौ तु दर्शनाद् दर्श उच्यते॥ ४३

उस अमावास्याको लक्ष्य कर जब सूर्य और चन्द्रमा दर्शपर आ जाते हैं और परस्पर एक-दूसरेको देखते हैं, तब उसे दर्श कहते हैं।

द्वौ द्वौ लवावमावास्यां स कालः पर्वसंधिषु।
द्व्यक्षरः कुहुमात्रश्च पर्वकालस्तु स स्मृतः॥ ४४
दृष्टचन्द्रा त्वमावास्या मध्याह्नप्रभृतीह वै।
दिवा तदूर्ध्वं रात्र्यां तु सूर्ये प्राप्ते तु चन्द्रमाः।
सूर्येण सहसोद्गच्छेत्ततः प्रातस्तनात्तु वै॥ ४५
समागम्य लवौ द्वौ तु मध्याह्नान्निपतन् रविः।
प्रतिपच्छुक्लपक्षस्य चन्द्रमाः सूर्यमण्डलात्॥ ४६
निर्मुच्यमानयोर्मध्ये तयोर्मण्डलयोस्तु वै।
स तदान्वाहुतेः कालो दर्शस्य च वषट्क्रियाः।
एतदृतुमुखं ज्ञेयममावास्यां तु पार्वणम्॥ ४७
दिवा पर्व त्वमावास्यां क्षीणेन्दौ धवले तु वै।
तस्माद् दिवा त्वमावास्यां गृह्यते यो दिवाकरः॥ ४८
कुह्वेति कोकिलेनोक्तं यस्मात्कालात् समाप्यते।
तत्कालसंज्ञिता ह्येषा अमावास्या कुहूः स्मृता॥ ४९
सिनीवालीप्रमाणं तु क्षीणशेषो निशाकरः।
अमावास्या विशत्यर्कं सिनीवाली तदा स्मृता॥ ५०
अनुमतिश्च राका च सिनीवाली कुहूस्तथा।
एतासां द्विलवः कालः कुहूमात्रा कुहूः स्मृता॥ ५१
इत्येष पर्वसन्धीनां कालो वै द्विलवः स्मृतः।
पर्वणां तुल्यकालस्तु तुल्याहुतिवषट्क्रियाः॥ ५२
चन्द्रसूर्यव्यतीपाते समे वै पूर्णिमे उभे।
प्रतिपत्प्रतिपन्नस्तु पर्वकालो द्विमात्रकः॥ ५३
कालः कुहूसिनीवाल्यो समृद्धो द्विलवः स्मृतः।
अर्कनिर्मण्डले सोमे पर्वकालः कलाः स्मृताः॥ ५४
यस्मादापूर्यते सोमः पञ्चदश्यां तु पूर्णिमा।
दशभिः पञ्चभिश्चैव कलाभिर्दिवसक्रमात्॥ ५५
तस्मात् पञ्चदशे सोमे कला वै नास्ति षोडशी।
तस्मात् सोमस्य विप्रोक्तः पञ्चदश्यां मया क्षयः॥ ५६

अमावास्यामें पर्वसंधिके अवसरपर दो-दो लव पर्वकाल कहलाते हैं। इनमें प्रतिपदाके योगवाला पर्वकाल कुहू कहलाता है। जिस दिन दोपहरतक अमावास्यामें चन्द्रमाका सम्पर्क बना रहे और उसके बाद रात्रिके प्राप्त होनेपर चन्द्रमा सहसा सूर्यके निकट पहुँच जायँ, पुनः प्रातःकाल सूर्यमण्डलसे पृथक् हो जायँ तो शुक्लपक्षकी प्रतिपदामें प्रातःकाल दो लव पर्वकाल कहलाता है। इस प्रकार सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डलके पृथक् होते समय अमावास्याके उस मध्यवर्ती कालको अन्वाहुति कहते हैं। इसमें पितरोंके निमित्त वषट् क्रियाएँ की जाती हैं। इसे ऋतुमुख और अमावास्याको पार्वण जानना चाहिये। दिनमें जब क्षीण चन्द्रमा सूर्यके साथ मिलते हैं तब अमावास्याका वह काल पर्वकाल कहलाता है। इसीलिये दिनमें अमावास्याके उस पर्वकालमें सूर्यके पहुँचनेपर सूर्य गृहीत हो जाते हैं अर्थात् सूर्यग्रहण लगता है। कोयलद्वारा उच्चरित 'कुहू' शब्द जितने समयमें समाप्त होता है, अमावास्याका उतना मुख्य काल 'कुहू' नामसे कहा जाता है। सिनीवालीका प्रमाण यह है कि जब क्षीण चन्द्रमा सूर्यमें प्रवेश करते हैं तब वह अमावास्या सिनीवाली कही जाती है। अनुमति, राका, सिनीवाली और कुहू—इनका दो लवकाल पर्वकाल होता है। कुहू शब्दके उच्चारणपर्यन्त कालको कुहू कहते हैं। इस प्रकार पर्वसंधियोंका यह काल दो लवका बतलाया जाता है और यह पर्वोंके समान फलदायक होता है। इसमें हवन और वषट् क्रियाएँ की जाती हैं। चन्द्रमा और सूर्यका व्यतिपातपर स्थित होना तथा दोनों (अमावास्या और पूर्णिमा) पूर्णिमाएँ—ये सभी एक-से पुण्यदायक हैं। प्रतिपदाके संयोगसे उत्पन्न होनेवाला पर्वकाल दो लवका होता है। इसी प्रकार कुहू और सिनीवालीके सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ पर्वकाल भी दो लवका ही माना जाता है। चन्द्रमा जब सूर्यमण्डलसे बाहर होते हैं, तब वह पर्वकाल एक कलाका बतलाया जाता है। चूँकि दिनके क्रमसे पंद्रहवीं तिथिको चन्द्रमा पंद्रह कलाओंद्वारा पूर्ण किये जाते हैं, इसलिये उस तिथिको पूर्णिमा कहते हैं। इस प्रकार चन्द्रमा पंद्रह कलाओंवाले* ही हैं, उनमें सोलहवीं कला नहीं है। इसी कारण मैंने पंद्रहवीं तिथिको चन्द्रमाका

* इसका विस्तृत वर्णन सूर्यसिद्धान्त, बृहत्संहिता आदिमें है। १६ वीं बीजकलासहित १५ ह्रास-वृद्धियुक्त कलाओंका वर्णन शारदातिलक आदिमें इस प्रकार है—'अमृता मानदा नन्दा पूषा तुष्टि रतिर्धृतिः। शशिनी चन्द्रिका कान्तिर्ज्योत्स्ना श्रीः प्रीतिरङ्गदा॥ पूर्णा पूर्णामृता कामदायिन्यः स्वरजाः कलाः।' (शारदातिलक २। १२-१३)

इत्येते पितरो देवाः सोमपाः सोमवर्धनाः।
आर्तवा ऋतवोऽथाब्दा देवास्तान्भावयन्ति हि॥ ५७

अतः परं प्रवक्ष्यामि पितॄञ्श्राद्धभुजस्तु ये।
तेषां गतिं च सत्तत्त्वं प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि॥ ५८

न मृतानां गतिः शक्या ज्ञातुं वा पुनरागतिः।
तपसा हि प्रसिद्धेन किं पुनर्मांसचक्षुषा॥ ५९

अत्र देवान्पितॄंश्चैते पितरो लौकिकाः स्मृताः।
तेषां ते धर्मसामर्थ्यात्स्मृताः सायुज्यगा द्विजैः॥ ६०

यदि वाश्रमधर्मेण प्रज्ञानेषु व्यवस्थितान्।
अन्ये चात्र प्रसीदन्ति श्रद्धायुक्तेषु कर्मसु॥ ६१

ब्रह्मचर्येण तपसा यज्ञेन प्रजया भुवि।
श्राद्धेन विद्यया चैव चान्नदानेन सप्तधा॥ ६२

कर्मस्वेवेषु ये सक्ता वर्तन्त्या देहपातनात्।
देवैस्ते पितृभिः सार्धमूष्मपैः सोमपैस्तथा।
स्वर्गता दिवि मोदन्ते पितृमन्त उपासते॥ ६३

प्रजावतां प्रसिद्धैषा उक्ता श्राद्धकृतां च वै।
तेषां निवापे दत्तं हि तत्कुलीनैस्तु बान्धवैः॥ ६४

मासश्राद्धं हि भुञ्जानास्तेऽप्येते सोमलौकिकाः।
एते मनुष्याः पितरो मासश्राद्धभुजस्तु वै॥ ६५

तेभ्योऽपरे तु ये त्वन्ये सङ्कीर्णाः कर्मयोनिषु।
भ्रष्टाश्चाश्रमधर्मेषु स्वधास्वाहाविवर्जिताः॥ ६६

भिन्ने देहे दुरापन्नाः प्रेतभूता यमक्षये।
स्वकर्माण्यनुशोचन्तो यातनास्थानमागताः॥ ६७

दीर्घाश्चैवातिशुष्काश्च श्मश्रुलाश्च विवाससः।
क्षुत्पिपासाभिभूतास्ते विद्रवन्ति त्वितस्ततः॥ ६८

सरित्सरस्तडागानि पुष्करिण्यश्च सर्वशः।
परान्नान्यभिकाङ्क्षन्तः काल्यमाना इतस्ततः॥ ६९

स्थानेषु पात्यमाना ये यातनास्थेषु तेषु वै।
शाल्मल्यां वैतरण्यां च कुम्भीपाकेऽद्धवालुके॥ ७०

असिपत्रवने चैव पात्यमानाः स्वकर्मभिः।
तत्रस्थानां तु तेषां वै दुःखितानामशायिनाम्॥ ७१

क्षय बतलाया है। इस प्रकार ये सोमपायी देव-पितर सोमकी वृद्धि करनेवाले हैं और ऋतु एवं अब्दसे सम्बन्धित आर्तवसंज्ञक देवगण उन्हींके परिपोषक हैं॥ ४३—५७॥

इसके बाद अब मैं जो श्राद्धभोजी पितर हैं, उनकी गति, उनका उत्तम तत्त्व तथा उनके निमित्त दिये गये श्राद्धकी प्राप्तिका वर्णन कर रहा हूँ। मृतकोंके आवागमनका रहस्य तो उत्कृष्ट तपोबलसम्पन्न तपस्वी भी नहीं जान सकते, फिर चर्मचक्षुधारी साधारण मनुष्यकी तो बात ही क्या है। इन श्राद्धभोजियोंमें देवता और पितर दोनों हैं। इनमें जो अपने धर्मके बलसे सायुज्य मुक्तिको प्राप्त कर चुके हैं अथवा आश्रमधर्मका पालन करते हुए ज्ञान-प्राप्तिमें लगे हुए हैं और श्रद्धायुक्त कर्मोंके सम्पन्न होनेपर प्रसन्न होते हैं, उन्हें महर्षिगण लौकिक पितर कहते हैं। ब्रह्मचर्य, तप, यज्ञ, संतान, श्राद्ध, विद्या और अन्नदान—ये भूतलपर प्रधान धर्म कहे गये हैं। जो लोग मृत्युपर्यन्त इन सातों धर्मोंका पालन करते हुए इनमें आसक्त रहते हैं, वे ऊष्मप तथा सोमप देवताओं और पितरोंके साथ स्वर्गलोकमें जाकर आनन्दका उपभोग करते हुए पितरोंकी उपासना करते हैं। ऐसी प्रसिद्धि उन संतानयुक्त श्राद्धकर्ताओंके लिये कही गयी है, जिनके लिये उनके कुलीन भाई-बन्धुओंने दानके अवसरपर श्राद्ध आदि प्रदान किया है। मासिक श्राद्धमें भोजन करनेवाले पितर चन्द्रलोकवासी हैं। ये मासश्राद्धभोजी पितर मनुष्योंके पितर हैं। इनके अतिरिक्त जो अन्य लोग कर्मानुसार प्राप्त हुई योनियोंमें कष्ट झेल रहे हैं, आश्रमधर्मसे भ्रष्ट हो गये हैं, जिनके लिये स्वाहा-स्वधाका प्रयोग हुआ ही नहीं है, जो शरीरके नष्ट होनेपर यमलोकमें प्रेत होकर दुर्गति भोग रहे हैं, नरक-स्थानपर पहुँचकर अपने कर्मोंपर पश्चात्ताप करते हैं, लम्बे शरीरवाले, अत्यन्त कृशकाय, लम्बी दाढ़ियोंसे युक्त, वस्त्रहीन और भूख एवं प्यासरो व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ते हैं, नदी, सरोवर, तडाग और जलाशयोंपर सब ओर दूसरोंके द्वारा दिये गये अन्नकी ताकमें इधर-उधर घूमते रहते हैं, शाल्मली, वैतरणी, कुम्भीपाक, तप्तवालुका और असिपत्रवन नामक भीषण नरकोंमें अपने कर्मानुसार गिराये जाते हैं तथा उन नरकोंमें पड़े हुए जो निद्रारहित हो दुःख भोग रहे हैं,

तेषां लोकान्तरस्थानां बान्धवैर्नामगोत्रतः।
भूमावसव्यं दर्भेषु दत्ताः पिण्डास्त्रयस्तु वै।
प्राप्तांस्तु तर्पयन्त्येव प्रेतस्थानेष्वधिष्ठितान्॥ ७२
अप्राप्ता यातनास्थानं प्रभ्रष्टा ये च पञ्चधा।
पश्चाद्ये स्थावरान्ते वै भूतानीके स्वकर्मभिः॥ ७३
नानारूपासु जातीनां तिर्यग्योनिषु मूर्तिषु।
यदाहारा भवन्त्येते तासु तास्विह योनिषु॥ ७४
तस्मिंस्तस्मिंस्तदाहारे श्राद्धे दत्तं तु प्रीणयेत्।
काले न्यायागतं पात्रे विधिना प्रतिपादितम्।
प्राप्नुवन्त्यन्नमादत्तं यत्र यत्रावतिष्ठति॥ ७५
यथा गोषु प्रनष्टासु वत्सो बिन्दति मातरम्।
तथा श्राद्धेषु दृष्टान्तो मन्त्रः प्रापयते तु तम्॥ ७६
एवं ह्यविकलं श्राद्धं श्रद्धादत्तं मनुर्ब्रवीत्।
सनत्कुमारः प्रोवाच पश्यन् दिव्येन चक्षुषा॥ ७७
गतागतज्ञः प्रेतानां प्राप्तिं श्राद्धस्य चैव हि।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी॥ ७८
इत्येते पितरो देवा देवाश्च पितरश्च वै।
अन्योऽन्यपितरो ह्येते देवाश्च पितरो दिवि॥ ७९
एते तु पितरो देवा मनुष्याः पितरश्च ये।
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः॥ ८०
इत्येष विषयः प्रोक्तः पितृणां सोमपायिनाम्।
एतत्पितृमहत्त्वं हि पुराणे निश्चयं गतम्॥ ८१
इत्येष सोमसूर्याभ्यामैलस्य च समागमः।
अवाप्तिं श्रद्धया चैव पितृणां चैव तर्पणम्॥ ८२
पर्वणां चैव यः कालो यातनास्थानमेव च।
समासात्कीर्तितस्तुभ्यं सर्ग एष सनातनः॥ ८३
वैरूप्यं येन तत्सर्वं कथितं त्वेकदेशिकम्।
अशक्यं परिसंख्यातुं श्रद्धेयं भूतिमिच्छता॥ ८४
स्वायम्भुवस्य देवस्य एष सर्गो मयेरितः।
विस्तरेणानुपूर्वाच्च भूयः किं कथयामि वः॥ ८५

उन लोकान्तरमें स्थित जीवोंके लिये उनके भाई-बन्धुओंद्वारा यहाँ भूतलपर जब उनका नाम-गोत्र उच्चारण कर अपसव्य होकर कुशोंपर तीन पिण्ड प्रदान किये जाते हैं तब प्रेतस्थानोंमें स्थित होनेपर भी वे पिण्ड उन्हें प्राप्त होकर तृप्त करते हैं॥ ५८—७२॥

जो नरकोंमें न जाकर पाँच प्रकारसे विभक्त होकर भ्रष्ट हो चुके हैं अर्थात् जो मृत्युके उपरान्त अपने कर्मोंके अनुसार स्थावर, भूत-प्रेत, अनेकों प्रकारकी जातियों, तिर्यग्योनियों एवं अन्य जन्तुओंमें जन्म ले चुके हैं, वहाँ उन-उन योनियोंमें वे जैसे आहारवाले होते हैं, उन्हीं-उन्हीं योनियोंमें उसी आहारके रूपमें परिणत होकर श्राद्धमें दिया गया पिण्ड उन्हें तृप्त करता है। यदि श्राद्धोपयुक्त कालमें न्यायोपार्जित अन्न (मृतकोंके निमित्त) विधिपूर्वक सत्पात्रको दान किया जाता है तो वह अन्न वे मृतक जहाँ-कहीं भी रहते हैं, उन्हें प्राप्त होता है। जैसे बछड़ा गौओंमें विलीन हुई अपनी माँको ढूँढ़ निकालता है उसी प्रकार श्राद्धोंमें प्रयुक्त हुआ मन्त्र (दानकी वस्तुओंको) उस जीवके पास पहुँचा देता है। इस प्रकार विधानपूर्वक श्रद्धासहित दिया गया श्राद्ध-दान उस जीवको प्राप्त होता है—ऐसा मनुने कहा है। साथ ही महर्षि सनत्कुमारने भी, जो प्रेतोंके गमनागमनके ज्ञाता हैं, दिव्य चक्षुसे देखकर श्राद्धकी प्राप्तिके विषयमें ऐसा ही बतलाया है। कृष्णपक्ष उन पितरोंका दिन है तथा शुक्लपक्ष शयन करनेके लिये उनकी रात्रि है। इस प्रकार ये पितृदेव और देवपितर स्वर्गलोकमें परस्पर एक-दूसरेके देवता और पितर हैं। यह तो स्वर्गीय देवों और पितरोंकी बात हुई। मनुष्योंके पितर पिता, पितामह और प्रपितामह हैं। इस प्रकार मैंने सोमपायी पितरोंके विषयमें वर्णन कर दिया। पितरोंका यह महत्त्व पुराणोंमें निश्चित किया गया है। इस प्रकार मैंने इला-नन्दन पुरूरवाका चन्द्रमा और सूर्यके साथ समागम, पितरोंको श्रद्धापूर्वक दी गयी वस्तुकी प्राप्ति, पितरोंका तर्पण, पर्व-काल और यातनास्थान (नरक)-का संक्षिप्त वर्णन आपको सुना दिया, यही सनातन सर्ग है। इसका विस्तार बहुत बड़ा है। मैंने संक्षेपमें ही इसका वर्णन किया है; क्योंकि पूर्णरूपसे वर्णन करना तो असम्भव है। इसलिये कल्याणकामीको इसपर श्रद्धा रखनी चाहिये। मैंने स्वायम्भुव मनुके इस सर्गका विस्तारपूर्वक आनुपूर्वी वर्णन कर दिया। अब पुनः आपलोगोंको क्या बतलाऊँ ?॥ ७३—८५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तने श्राद्धानुकीर्तनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके मन्वन्तरानुकीर्तनके प्रसङ्गमें श्राद्धानुकीर्तन नामक एक सौ एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४१॥

एक सौ बयालीसवाँ अध्याय

युगोंकी काल-गणना तथा त्रेतायुगका वर्णन

ऋषय ऊचुः

चतुर्युगाणि यानि स्युः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे।
एषां निसर्गं संख्यां च श्रोतुमिच्छामो विस्तरात्॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! पूर्वकालमें स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें जिन चारों युगोंका प्रवर्तन हुआ है, उनकी सृष्टि और संख्याके विषयमें हमलोग विस्तारपूर्वक सुनना चाहते हैं॥ १॥

सूत उवाच

पृथिवीद्युप्रसङ्गेन मया तु प्रागुदाहृतम्।
एतच्चतुर्युगं त्वेवं तद् वक्ष्यामि निबोधत।
तत्प्रमाणं प्रसंख्याय विस्तराच्चैव कृत्स्नशः॥ २
लौकिकेन प्रमाणेन निष्पाद्याब्दं तु मानुषम्।
तेनापीह प्रसंख्याय वक्ष्यामि तु चतुर्युगम्॥ ३
काष्ठा निमेषा दश पञ्च चैव
त्रिंशच्च काष्ठां गणयेत् कलां तु।
त्रिंशत्कलाश्चैव भवेन्मुहूर्त-
स्तैस्त्रिंशता रात्र्यहनी समेते॥ ४
अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषलौकिके।
रात्रिः स्वप्नाय भूतानां चेष्टायै कर्मणामहः॥ ५
पित्र्ये रात्र्यहनी मासः प्रविभागस्तयोः पुनः।
कृष्णपक्षस्त्वहस्तेषां शुक्लः स्वप्नाय शर्वरी॥ ६
त्रिंशद् ये मानुषा मासाः पैत्रो मासः स उच्यते।
शतानि त्रीणि मासानां षष्ट्या चाभ्यधिकानि तु।
पैत्रः संवत्सरो ह्येष मानुषेण विभाव्यते॥ ७
मानुषेणैव मानेन वर्षाणां यच्छतं भवेत्।
पितॄणां तानि वर्षाणि संख्यातानि तु त्रीणि वै।
दश च द्व्यधिका मासाः पितृसंख्येह कीर्तिताः॥ ८
लौकिकेन प्रमाणेन अब्दो यो मानुषः स्मृतः।
एतद्दिव्यमहोरात्रमित्येषा वैदिकी श्रुतिः॥ ९

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पृथ्वी और आकाशके प्रसङ्गसे मैंने पहले ही इन चारों युगोंका वर्णन कर दिया है, फिर भी (यदि आपलोगोंकी उनको सुननेकी अभिलाषा है तो) संख्यापूर्वक उनके प्रमाणको विस्तारके साथ समूचे रूपमें बतला रहा हूँ, सुनिये। लौकिक प्रमाणके द्वारा मानवीय वर्षका आश्रय लेकर उसीके अनुसार गणना करके चारों युगोंका प्रमाण बतला रहा हूँ। पंद्रह निमेष (आँखके खोलने और मूँदनेका समय)-की एक काष्ठा और तीस काष्ठाकी एक कला मानी जाती है। तीस कलाका एक मुहूर्त होता है और तीस मुहूर्तके रात-दिन दोनों होते हैं। सूर्य मानवीय लोकमें दिन-रातका विभाजन करते हैं। उनमें रात्रि जीवोंके शयन करनेके लिये और दिन कर्ममें प्रवृत्त होनेके लिये है। पितरोंके रात-दिनका एक लौकिक मास होता है। उनमें रात-दिनका विभाग है। पितरोंके लिये कृष्णपक्ष दिन है और शुक्लपक्ष शयन करनेके लिये रात्रि है। मनुष्योंके तीस मासका पितरोंका एक मास कहा जाता है। इस प्रकार तीन सौ साठ मानव-मासोंका एक पितृवर्ष होता है। यह गणना मानवीय गणनाके अनुसार की जाती है। मानवीय गणनाके अनुसार एक सौ वर्ष पितरोंके तीन वर्षके बराबर माने गये हैं। इस प्रकार पितरोंके बारहों महीनोंकी संख्या बतलायी जा चुकी है। लौकिक प्रमाणके अनुसार जिसे एक मानव-वर्ष कहते हैं, वही देवताओंका एक दिन-रात होता है—ऐसी वैदिकी श्रुति है॥ २—९॥

दिव्ये रात्र्यहनी वर्षं प्रविभागस्तयोः पुनः।
अहस्तु यदुदक्चैव रात्रिर्या दक्षिणायनम्।
एते रात्र्यहनी दिव्ये प्रसंख्याते तयोः पुनः॥ १०

मानवीय वर्षके अनुसार जो देवताओंके रात-दिन होते हैं, उनमें भी पुनः विभाग है। उनमें उत्तरायणको देवताओंका दिन और दक्षिणायनको रात्रि कहा जाता है। इस प्रकार दिव्य रात-दिनकी गणना बतलायी जा चुकी।

त्रिंशद् यानि तु वर्षाणि दिव्यो मासस्तु स स्मृतः।
मानुषाणां शतं यच्च दिव्या मासास्त्रयस्तु वै।
तथैव सह संख्यातो दिव्य एष विधिः स्मृतः॥ ११
त्रीणि वर्षशतान्येवं षष्टिर्वर्षास्तथैव च।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः॥ १२
त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः।
त्रिंशदन्यानि वर्षाणि स्मृतः सप्तर्षिवत्सरः॥ १३
नव यानि सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च।
वर्षाणि नवतिश्चैव ध्रुवसंवत्सरः स्मृतः॥ १४
षट्त्रिंशत् तु सहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि च।
षष्टिश्चैव सहस्राणि संख्यातानि तु संख्यया।
दिव्यं वर्षसहस्रं तु प्राहुः संख्याविदो जनाः॥ १५
इत्येतद् ऋषिभिर्गीतं दिव्यया संख्यया द्विजाः।
दिव्येनैव प्रमाणेन युगसंख्या प्रकल्पिता॥ १६
चत्वारि भारते वर्षे युगानि ऋषयोऽब्रुवन्।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैवं चतुर्युगम्॥ १७
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेताभिधीयते।
द्वापरं च कलिश्चैव युगानि परिकल्पयेत्॥ १८
चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशश्च तथाविधः॥ १९
इतरेषु ससंध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु।
एकपादे निवर्तन्ते सहस्राणि शतानि च॥ २०
त्रेता त्रीणि सहस्राणि युगसंख्याविदो विदुः।
तस्यापि त्रिशती संध्या संध्यांशः संध्यया समः॥ २१
द्वे सहस्रे द्वापरं तु संध्यांशौ तु चतुःशतम्।
सहस्रमेकं वर्षाणां कलिरेव प्रकीर्तितः।
द्वे शते च तथान्ये च संध्यासंध्यांशयोः स्मृते॥ २२
एषा द्वादशसाहस्री युगसंख्या तु संज्ञिता।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुष्टयम्॥ २३
तत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषास्तान् निबोधत।
नियुतानि दश द्वे च पञ्च चैवात्र संख्यया।
अष्टाविंशत्सहस्राणि कृतं युगमथोच्यते॥ २४
प्रयुतं तु तथा पूर्णं द्वे चान्ये नियुते पुनः।
षण्णवतिसहस्राणि संख्यातानि च संख्यया।
त्रेतायुगस्य संख्यैषा मानुषेण तु संज्ञिता॥ २५

तीस मानवीय वर्षोंका एक दिव्य मास बतलाया जाता है। इसी प्रकार सौ मानवीय वर्षोंका तीन दिव्य मास माना गया है। यह दिव्य गणनाकी विधि कही जाती है। मानुषगणनाके अनुसार तीन सौ साठ वर्षोंका एक दिव्य (देव)-वर्ष कहा गया है। मानुषगणनाके अनुसार तीन हजार तीस वर्षोंका एक सप्तर्षि-वर्ष होता है। नौ हजार नब्बे मानुष-वर्षोंका एक 'ध्रुव-संवत्सर' कहलाता है। छियानबे हजार मानुषवर्षोंका एक हजार दिव्य वर्ष होता है—ऐसा गणितज्ञ लोग कहते हैं। द्विजवरो! इस प्रकार ऋषियोंद्वारा दिव्य गणनाके अनुसार यह गणना बतलायी गयी है। इसी दिव्य प्रमाणके अनुसार युग-संख्याकी भी कल्पना की गयी है। ऋषियोंने इस भारतवर्षमें चार युग बतलाये हैं। उन चारों युगोंके नाम हैं—कृत, त्रेता, द्वापर और कलि। इनमें सर्वप्रथम कृतयुग, तत्पश्चात् त्रेता, तब द्वापर और 'कलियुग आनेकी परिकल्पना की गयी है। उनमें कृतयुग चार हजार (दिव्य) वर्षोंका बतलाया जाता है। इसी प्रकार चार सौ वर्षोंकी उसकी संध्या और चार सौ वर्षोंका संध्यांश होता है। इसके अतिरिक्त संध्या और संध्यांशसहित अन्य तीनों युगोंमें हजारों और सैकड़ोंकी संख्यामें एक चतुर्थांश कम हो जाता है॥ १०—२०॥

इस प्रकार युगसंख्या-ज्ञाता लोग त्रेताका प्रमाण तीन हजार वर्ष, उसकी संध्याका प्रमाण तीन सौ वर्ष और संध्याके बराबर ही संध्यांशका प्रमाण तीन सौ वर्ष बतलाते हैं। द्वापरका प्रमाण दो हजार वर्ष और उसकी संध्या तथा संध्यांशका प्रमाण दो-दो सौ अर्थात् चार सौ वर्षोंका होता है। कलियुग एक हजार वर्षोंका बतलाया गया है तथा उसकी संध्या और संध्यांश मिलकर दो सौ वर्षोंके होते हैं। इस प्रकार कृतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चार युग होते हैं और इनकी काल-संख्या बारह हजार दिव्य वर्षोंकी बतायी गयी है। अब मानुषवर्षके अनुसार इन युगोंमें कितने वर्ष होते हैं, उसे सुनिये। इनमें कृतयुग सत्रह लाख

अष्टौ शतसहस्राणि वर्षाणां मानुषाणि तु।
चतुःषष्टिसहस्राणि वर्षाणां द्वापरं युगम्॥ २६
चत्वारि नियुतानि स्युर्वर्षाणि तु कलिर्युगम्।
द्वात्रिंशच्च तथान्यानि सहस्राणि तु संख्यया।
एतत् कलियुगं प्रोक्तं मानुषेण प्रमाणतः॥ २७
एषा चतुर्युगावस्था मानुषेण प्रकीर्तिता।
चतुर्युगस्य संख्याता संध्या संध्यांशकैः सह॥ २८
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका त्वेकसप्ततिः।
कृतत्रेतादियुक्ता सा मनोरन्तरमुच्यते॥ २९
मन्वन्तरस्य संख्या तु मानुषेण निबोधत।
एकत्रिंशत् तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः॥ ३०
तथा शतसहस्राणि दश चान्यानि भागशः।
सहस्राणि तु द्वात्रिंशच्छतान्यष्टाधिकानि च॥ ३१
आशीतिश्चैव वर्षाणि मासाश्चैवाधिकास्तु षट्।
मन्वन्तरस्य संख्यैषा मानुषेण प्रकीर्तिता॥ ३२
दिव्येन च प्रमाणेन प्रवक्ष्याम्यन्तरं मनोः।
सहस्राणां शतान्याहुः स च वै परिसंख्यया॥ ३३
चत्वारिंशत् सहस्राणि मनोरन्तरमुच्यते।
मन्वन्तरस्य कालस्तु युगैः सह परिकीर्तितः॥ ३४
एषा चतुर्युगाख्या तु साधिका ह्येकसप्ततिः।
क्रमेण परिवृत्ता सा मनोरन्तरमुच्यते॥ ३५
एतच्चतुर्दशगुणं कल्पमाहुस्तु तद्विदः।
ततस्तु प्रलयः कृत्स्नः स तु सम्प्रलयो महान्॥ ३६
कल्पप्रमाणे द्विगुणो यथा भवति संख्यया।
चतुर्युगाख्या व्याख्याता कृतं त्रेतायुगं च वै॥ ३७
त्रेतासृष्टिं प्रवक्ष्यामि द्वापरं कलिमेव च।
युगपत्समवेतौ द्वौ द्विधा वक्तुं न शक्यते॥ ३८
क्रमागतं मयाप्येतत् तुभ्यं नोक्तं युगद्वयम्।
ऋषिवंशप्रसङ्गेन व्याकुलत्वात् तथा क्रमात्॥ ३९
नोक्तं त्रेतायुगे शेषं तद्वक्ष्यामि निबोधत।

अट्ठाईस हजार वर्षोंका कहा जाता है। इसी मानुष-गणनाके अनुसार त्रेतायुगकी वर्ष-संख्या बारह लाख छानबे हजार बतलायी गयी है। द्वापरयुग आठ लाख चौंसठ हजार मानुष वर्षोंका होता है। मानुषगणनाके अनुसार कलियुगका मान चार लाख बत्तीस हजार वर्षोंका कहा गया है। चारों युगोंकी यह अवस्था मानव-गणनाके अनुसार बतलायी गयी है। इस प्रकार संध्या और संध्यांशसहित चारों युगोंकी संख्या बतलायी जा चुकी॥ २१—२८॥

(अब मन्वन्तरका वर्णन करते हैं।) इन कृतयुग, त्रेता आदि युगोंकी यह चौकड़ी जब एकहत्तर बार बीत जाती है, तब उसे एक मन्वन्तर कहते हैं। अब मन्वन्तरकी वर्षसंख्या मानुषगणनाके अनुसार सुनिये। मानव-वर्षके अनुसार एक मन्वन्तरकी वर्ष-संख्या एकतीस करोड़ दस लाख बत्तीस हजार आठ सौ अस्सी वर्ष छः महीनेकी बतलायी जाती है। अब मैं दिव्य गणनाके अनुसार मन्वन्तरका वर्णन कर रहा हूँ। एक मनुका कार्यकाल एक लाख चालीस हजार दिव्य वर्षोंका बतलाया जाता है। मन्वन्तरका समय युग-वर्णनके साथ ही कहा जा चुका है। चारों युगोंकी यह चौकड़ी जब क्रमशः एकहत्तर बार बीत जाती है, तब उसे एक मन्वन्तर कहते हैं। कालतत्त्वको जाननेवाले विद्वान् मन्वन्तरके चौदह गुने कालको एक कल्प बतलाते हैं। इसके बाद सारी सृष्टिका विनाश हो जाता है, जिसे महाप्रलय कहते हैं। महाप्रलयका समय कल्पके समयसे दुगुना होता है। इस प्रकार कृतयुग, त्रेता आदि चारों युगोंकी वर्ष-संख्या बतलायी जा चुकी। अब मैं त्रेता, द्वापर और कलियुगकी सृष्टिका वर्णन कर रहा हूँ। कृतयुग और त्रेता—ये दोनों परस्पर सम्बद्ध हैं, अतः इनका पृथक् रूपसे वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी कारण इन दोनों युगोंके वर्णनका अवसर क्रमशः प्राप्त होनेपर भी मैंने आपलोगोंसे नहीं कहा। साथ ही उस समय ऋषि-वंशका प्रसङ्ग छिड़ जानेपर चित्त व्याकुल हो उठा था। उस समय जो नहीं कहा था, वह शेषांश अब त्रेतायुगके वर्णन-प्रसङ्गमें कह रहा हूँ, सुनिये॥ २९—३९½॥

अथ त्रेतायुगस्यादौ मनुः सप्तर्षयश्च ये।
श्रौतस्मार्तं ब्रुवन् धर्मं ब्रह्मणा तु प्रचोदिताः॥ ४०
दाराग्निहोत्रसम्बन्धमृग्यजुःसामसंहिताः ।
इत्यादिबहुलं श्रौतं धर्मं सप्तर्षयोऽब्रुवन्॥ ४१
परम्परागतं धर्मं स्मार्तं त्वाचारलक्षणम्।
वर्णाश्रमाचारयुतं मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ ४२
सत्येन ब्रह्मचर्येण श्रुतेन तपसा तथा।
तेषां सुतप्ततपसामार्षेणानुक्रमेण ह॥ ४३
सप्तर्षीणां मनोश्चैव आदौ त्रेतायुगे ततः।
अबुद्धिपूर्वकं तेन सकृत्पूर्वकमेव च॥ ४४
अभिवृत्तास्तु ते मन्त्रा दर्शनैस्तारकादिभिः।
आदिकल्पे तु देवानां प्रादुर्भूतास्तु ते स्वयम्॥ ४५
प्रमाणेष्वथ सिद्धानामन्येषां च प्रवर्तते।
मन्त्रयोगो व्यतीतेषु कल्पेष्वथ सहस्रशः।
ते मन्त्रा वै पुनस्तेषां प्रतिमायामुपस्थिताः॥ ४६
ऋचो यजूंषि सामानि मन्त्राश्चाथर्वणास्तु ये।
सप्तर्षिभिश्च ये प्रोक्ताः स्मार्तं तु मनुरब्रवीत्॥ ४७
त्रेतादौ संहता वेदाः केवलं धर्मसेतवः।
संरोधादायुषश्चैव व्यस्यन्ते द्वापरे च ते।
ऋषयस्तपसा वेदानहोरात्रमधीयत॥ ४८
अनादिनिधना दिव्याः पूर्वं प्रोक्ताः स्वयम्भुवा।
स्वधर्मसंवृताः साङ्गा यथाधर्मं युगे युगे।
विक्रियन्ते स्वधर्मं तु वेदवादाद् यथायुगम्॥ ४९
आरम्भयज्ञः क्षत्रस्य हविर्यज्ञा विशः स्मृताः।
परिचारयज्ञाः शूद्राश्च जपयज्ञाश्च ब्राह्मणाः॥ ५०
ततः समुदिता वर्णास्त्रेतायां धर्मशालिनः।
क्रियावन्तः प्रजावन्तः समृद्धाः सुखिनश्च वै॥ ५१
ब्राह्मणाश्चैव विधीयन्ते क्षत्रियाः क्षत्रियैर्विशः।
वैश्याश्छूद्रानुवर्तन्ते परस्परमनुग्रहात्॥ ५२
शुभाः प्रकृतयस्तेषां धर्मा वर्णाश्रमाश्रयाः॥
संकल्पितेन मनसा वाचा वा हस्तकर्मणा।
त्रेतायुगे ह्यविकले कर्मारम्भः प्रसिद्ध्यति॥ ५३
आयू रूपं बलं मेधा आरोग्यं धर्मशीलता।
सर्वसाधारणं ह्येतदासीत् त्रेतायुगे तु वै॥ ५४

त्रेतायुगके आदिमें जो मनु और सप्तर्षिगण थे, उन लोगोंने ब्रह्माकी प्रेरणासे श्रौत और स्मार्त धर्मोंका वर्णन किया था। उस समय सप्तर्षियोंने दार-सम्बन्ध (विवाह), अग्निहोत्र, ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदकी संहिता आदि अनेकविध श्रौत धर्मोंका विवेचन किया था। उसी प्रकार स्वायम्भुव मनुने वर्णों एवं आश्रमोंके धर्मोंसे युक्त परम्परागत आचार-लक्षणरूप स्मार्त-धर्मका वर्णन किया था। त्रेतायुगके आदिमें उत्कृष्ट तपस्यावाले उन सप्तर्षियों तथा मनुके हृदयमें वे मन्त्र सत्य, ब्रह्मचर्य, शास्त्र-ज्ञान, तपस्या तथा ऋषि-परम्पराके अनुक्रमसे बिना सोचे-विचारे ही दर्शनों एवं तारकादिद्वारा एक ही बारमें स्वयं प्रकट हो गये थे। वे ही मन्त्र आदि कल्पमें देवताओंके हृदयोंमें स्वयं उद्भूत हुए थे। वह मन्त्रयोग हजारों गत-कल्पोंमें सिद्धों तथा अन्यान्य लोगोंके लिये भी प्रमाणरूपमें प्रयुक्त होता था। वे मन्त्र पुनः उन देवताओंकी प्रतिमाओंमें भी उपस्थित हुए। इस प्रकार ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद-सम्बन्धी जो मन्त्र हैं, वे सप्तर्षियोंद्वारा कहे गये हैं। स्मार्तधर्मका वर्णन तो मनुने किया है। त्रेतायुगके आदिमें ये सभी वेद धर्मके सेतु-स्वरूप थे, किंतु द्वापरयुगमें आयुके न्यून हो जानेके कारण उनका विभाग कर दिया गया है। ऋषि अपने धर्मसे परिपूर्ण हैं। वे तपमें निरत हो रात-दिन वेदाध्ययन करते थे। ब्रह्माने सर्वप्रथम प्रत्येक युगमें युगधर्मानुसार इनका साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया है। वे योगानुकूल वेदवादसे स्खलित होकर अपने धर्मसे विकृत हो जाते हैं। त्रेतायुगमें ब्राह्मणोंका धर्म जपयज्ञ, क्षत्रियोंका यज्ञारम्भ, वैश्योंका हविर्यज्ञ और शूद्रोंका सेवायज्ञ कहा जाता था। उस समय सभी वर्णके लोग उन्नत, धर्मात्मा, क्रियानिष्ठ, संतानयुक्त, समृद्ध और सुखी थे। परस्पर प्रेमपूर्वक ब्राह्मण क्षत्रियोंके लिये और क्षत्रिय वैश्योंके लिये सब प्रकारका विधान करते थे तथा शूद्र वैश्योंका अनुवर्तन करते थे। उनके स्वभाव सुन्दर थे तथा उनके धर्म वर्ण एवं आश्रमके अनुकूल होते थे॥ ४०—५२ १/२॥

समूचे त्रेतायुगके कार्यकालमें मानसिक संकल्प, वचन और हाथसे प्रारम्भ किये गये कर्म सिद्ध होते थे। त्रेतायुगमें आयु, रूप, बल, बुद्धि, नीरोगता और धर्मपरायणता—ये सभी गुण सर्वसाधारण लोगोंमें भी विद्यमान थे।

वर्णाश्रमव्यवस्थानामेषां ब्रह्मा तथाकरोत्।
संहिताश्च तथा मन्त्रा आरोग्यं धर्मशीलता॥ ५५
संहिताश्च तथा मन्त्रा ऋषिभिर्ब्रह्मणः सुतैः।
यज्ञः प्रवर्तितश्चैव तदा ह्येव तु दैवतैः॥ ५६
यामैः शुक्लैर्जयैश्चैव सर्वसाधनसम्भृतैः।
विश्वसृड्भिस्तथा सार्धं देवेन्द्रेण महौजसा।
स्वायम्भुवेऽन्तरे देवैस्ते यज्ञाः प्राक् प्रवर्तिताः॥ ५७
सत्यं जपस्तपो दानं पूर्वधर्मो य उच्यते।
यदा धर्मस्य ह्रसते शाखाधर्मस्य वर्धते॥ ५८
जायन्ते च तदा शूरा आयुष्मन्तो महाबलाः।
न्यस्तदण्डा महायोगा यज्वानो ब्रह्मवादिनः॥ ५९
पद्मपत्रायताक्षाश्च पृथुवक्त्राः सुसंहताः।
सिंहोरस्का महासत्त्वा मत्तमातङ्गगामिनः॥ ६०
महाधनुर्धराश्चैव त्रेतायां चक्रवर्तिनः।
सर्वलक्षणपूर्णास्ते न्यग्रोधपरिमण्डलाः॥ ६१
न्यग्रोधौ तु स्मृतौ बाहू व्यामो न्यग्रोध उच्यते।
व्यामेनैवोच्छ्रयो यस्य सम ऊर्ध्वं तु देहिनः।
समुच्छ्रयपरिणाहो न्यग्रोधपरिमण्डलः॥ ६२
चक्रं रथो मणिर्भार्या निधिरश्वो गजस्तथा।
प्रोक्तानि सप्त रत्नानि सर्वेषां चक्रवर्तिनाम्॥ ६३
चक्रं रथो मणिः खड्गं धनू रत्नं च पञ्चमम्।
केतुर्निधिश्च पञ्चैते प्राणहीनाः प्रकीर्तिताः॥ ६४
विष्णोरंशेन जायन्ते पृथिव्यां चक्रवर्तिनः।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु ह्यतीतानागतेषु वै॥ ६५
भूतभव्यानि यानीह वर्तमानानि यानि च।
त्रेतायुगानि तेष्वत्र जायन्ते चक्रवर्तिनः॥ ६६
भद्राणीमानि तेषां च विभाव्यन्ते महीक्षिताम्।
अत्यद्भुतानि चत्वारि बलं धर्मं सुखं धनम्॥ ६७
अन्योन्यस्याविरोधेन प्राप्यन्ते नृपतेः समम्।
अर्थो धर्मश्च कामश्च यशो विजय एव च॥ ६८

ब्रह्माने स्वयं इनके लिये वर्णाश्रमकी व्यवस्था की थी तथा ब्रह्माके मानसिक पुत्र ऋषियोंद्वारा संहिताओं, मन्त्रों, नीरोगता और धर्मपरायणताका विधान किया गया था। उसी समय देवताओंने यज्ञकी भी प्रथा प्रचलित की थी। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें सम्पूर्ण यज्ञिय साधनोंसहित याम, शुक्ल, जय, विश्वसृज् तथा महान् तेजस्वी देवराज इन्द्रके साथ देवताओंने सर्वप्रथम इन यज्ञोंका प्रचार किया था। उस समय सत्य, जप, तप और दान—ये ही प्रारम्भिक धर्म कहलाते थे। जब इन धर्मोंका ह्रास प्रारम्भ होता था और अधर्मकी शाखाएँ बढ़ने लगती थीं, तब त्रेतायुगमें ऐसे शूरवीर चक्रवर्ती सम्राट् उत्पन्न होते थे, जो दीर्घायुसम्पन्न, महाबली, दण्ड देनेवाले, महान् योगी, यज्ञपरायण और ब्रह्मनिष्ठ थे, जिनके नेत्र कमलदलके समान विशाल और सुन्दर, मुख भरे-पूरे और शरीर सुसंगठित थे, जिनकी छाती सिंहके समान चौड़ी थी, जो महान् पराक्रमी और मतवाले गजराजकी भाँति चलनेवाले और महान् धनुर्धर थे, वे सभी राजलक्षणोंसे परिपूर्ण तथा न्यग्रोध (बरगद-) सदृश मण्डलवाले थे। यहाँ दोनों बाहुओंको ही न्यग्रोध कहा जाता है तथा व्योममें फैलायी हुई बाहुओंका मध्यभाग भी न्यग्रोध कहलाता है। उस व्योमकी ऊँचाई और विस्तारवाला 'न्यग्रोधपरिमण्डल' कहलाता है, अतः जिस प्राणीका शरीर व्योमके बराबर ऊँचा और विस्तृत हो, उसे न्यग्रोधपरिमण्डल* कहा जाता है। पूर्वकालके स्वायम्भुव मन्वन्तरमें चक्र (शासन, अज्ञाद भी), रथ, मणि, भार्या, निधि, अश्व और गज—ये सातों (चल-) रत्न कहे गये हैं। दूसरा चक्र (अचल) रथ, मणि, खड्ग, धनुष, रत्न, झंडा और खजाना—ये स्थिर (अचल) सप्तरत्न हैं। (सब मिलकर ये ही राजाओंके चौदह रत्न हैं।) बीते हुए एवं आनेवाले सभी मन्वन्तरोंमें भूतलपर चक्रवर्ती सम्राट् विष्णुके अंशसे उत्पन्न होते हैं॥ ५३—६५॥

इस प्रकार भूत, भविष्य और वर्तमानमें जितने त्रेतायुग हुए होंगे और हैं, उन सभीमें चक्रवर्ती सम्राट् उत्पन्न होते हैं। उन भूपालोंके बल, धर्म, सुख और धन—ये चतुर्भद्र चारों अत्यन्त अद्भुत और माङ्गलिक होते हैं। उन राजाओंको अर्थ, धर्म, काम, यश और विजय—ये सभी समानरूपसे परस्पर अविरोध भावसे प्राप्त होते हैं।

* वाल्मीकीय रामायण ३। ३५ तथा भट्टिकाव्य ५ में सीताजीको 'न्यग्रोधपरिमण्डला' कहा गया है।

ऐश्वर्येणाणिमाद्येन प्रभुशक्तिबलान्विताः।
श्रुतेन तपसा चैव ऋषींस्तेऽभिभवन्ति हि॥ ६९
बलेनाभिभवन्त्येते देवदानवमानवान्।
लक्षणैश्चैव जायन्ते शरीरस्थैरमानुषैः॥ ७०
केशाः स्थिता ललाटोर्णा जिह्वा चास्य प्रमार्जनी।
ताम्रप्रभाश्चतुर्दंष्ट्राः सुवंशाश्चोर्ध्वरेतसः॥ ७१
आजानुबाहवश्चैव जालहस्ता वृषाङ्किताः।
परिणाहप्रमाणाभ्यां सिंहस्कन्धाश्च मेधिनः॥ ७२
पादयोश्चक्रमत्स्यौ तु शङ्खपद्मे च हस्तयोः।
पञ्चाशीतिसहस्राणि जीवन्ति ह्यजरामयाः॥ ७३
असङ्गा गतयस्तेषां चतस्रश्चक्रवर्तिनाम्।
अन्तरिक्षे समुद्रेषु पाताले पर्वतेषु च॥ ७४
इज्या दानं तपः सत्यं त्रेताधर्मास्तु वै स्मृताः।
तदा प्रवर्तते धर्मो वर्णाश्रमविभागशः।
मर्यादास्थापनार्थं च दण्डनीतिः प्रवर्तते॥ ७५
हृष्टपुष्टा जनाः सर्वे अरोगाः पूर्णमानसाः।
एको वेदश्चतुष्पादस्त्रेतायां तु विधिः स्मृतः।
त्रीणि वर्षसहस्राणि जीवन्ते तत्र ताः प्रजाः॥ ७६
पुत्रपौत्रसमीकीर्णा म्रियन्ते च क्रमेण ताः।
एष त्रेतायुगे भावस्त्रेतासंध्यां निबोधत॥ ७७
त्रेतायुगस्वभावेन संध्यापादेन वर्तते।
संध्यापादः स्वभावाच्च योंऽशः पादेन तिष्ठति॥ ७८

प्रभुशक्ति और बलसे सम्पन्न वे नृपतिगण ऐश्वर्य, अणिमा आदि सिद्धि, शास्त्रज्ञान और तपस्यामें ऋषियोंसे भी बढ़-चढ़कर होते हैं। इसलिये वे सम्पूर्ण देव-दानवों और मानवोंको बलपूर्वक पराजित कर देते हैं। उनके शरीरमें स्थित सभी लक्षण दिये होते हैं। उनके सिरके बाल ललाटतक फैले रहते हैं। उनकी जीभ बड़ी स्वच्छ और स्निग्ध होती है। उनकी अङ्गकान्ति लाल होती है। उनके चार दाढ़ें होते हैं। वे उत्तम वंशमें उत्पन्न , ऊर्ध्वरेता, आजानुबाहु, जालहस्त हाथोंमें जालचिह्न तथा बैल आदि श्रेष्ठ चिह्नयुक्त परिणाहमात्र लम्बे होते हैं। उनके कंधे सिंहके समान मांसल और वे यज्ञपरायण होते हैं। उनके पैरोंमें चक्र और मत्स्यके तथा हाथोंमें शङ्ख और पद्मके चिह्न होते हैं। वे बुढ़ापा और व्याधिसे रहित होकर पचासी हजार वर्षोंतक जीवित रहते हैं। वे चक्रवर्ती सम्राट् अन्तरिक्ष, समुद्र, पाताल और पर्वत—इन चारों स्थानोंमें एकाकी एवं स्वच्छन्दरूपसे विचरण करते हैं। यज्ञ, दान, तप और सत्यभाषण—ये त्रेतायुगके प्रधान धर्म कहे गये हैं। ये धर्म वर्ण एवं आश्रमके विभागपूर्वक प्रवृत्त होते हैं। इनमें मर्यादाकी स्थापनाके निमित्त दण्डनीतिका प्रयोग किया जाता है। त्रेतायुगमें एक वेद चार भागोंमें विभक्त होकर विधान करता है। उस समय सभी लोग हृष्ट-पुष्ट, नीरोग और सफल-मनोरथ होते हैं। वे प्रजाएँ तीन हजार वर्षोंतक जीवित रहती हैं और पुत्र-पौत्रसे युक्त होकर क्रमशः मृत्युको प्राप्त होती हैं। यही त्रेतायुगका स्वभाव है। अब उसकी संध्याके विषयमें सुनिये। इसकी संध्यामें युग-स्वभावका एक चरण रह जाता है। उसी प्रकार संध्यांशमें संध्याका चतुर्थांश शेष रहता है अर्थात् उत्तरोत्तर परिवर्तन होता जाता है॥ ६६—७८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकल्पो नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४२॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्वन्तरानुकल्प नामक एक सौ बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४२॥

एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

यज्ञकी प्रवृत्ति तथा विधिका वर्णन

ऋषय ऊचुः

कथं त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्तनम्।
पूर्वे स्वायम्भुवे सर्गे यथावत् प्रब्रवीहि नः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! पूर्वकालमें स्वायम्भुवमनुके कार्य-कालमें त्रेतायुगके प्रारम्भमें किस प्रकार यज्ञकी प्रवृत्ति हुई थी?

अन्तर्हितायां संध्यायां सार्धं कृतयुगेन हि।
कालाख्यायां प्रवृत्तायां प्राप्ते त्रेतायुगे तदा॥ २
ओषधीषु च जातासु प्रवृत्ते वृष्टिसर्जने।
प्रतिष्ठितायां वार्तायां ग्रामेषु च पुरेषु च॥ ३
वर्णाश्रमप्रतिष्ठानं कृत्वन्तश्च वैः पुनः।
संहितास्तु सुसंहत्य कथं यज्ञः प्रवर्तितः।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत् सूतः श्रूयतां तत्प्रचोदितम्॥ ४

सूत उवाच

मन्त्रान् वै योजयित्वा तु इहामुत्र च कर्मसु।
तथा विश्वभुगिन्द्रस्तु यज्ञं प्रावर्तयत् प्रभुः॥ ५
दैवतैः सह संहत्य सर्वसाधनसंवृतः।
तस्याश्वमेधे वितते समाजग्मुर्महर्षयः॥ ६
यज्ञकर्मण्यवर्तन्त कर्मण्यग्रे तथर्त्विजः।
हूयमाने देवहोत्रे अग्नौ बहुविधं हविः॥ ७
सम्प्रतीतेषु देवेषु सामगेषु च सुस्वरम्।
परिक्रान्तेषु लघुषु अध्वर्युपुरुषेषु च॥ ८
आलब्धेषु च मध्ये तु तथा पशुगणेषु वै।
आहूतेषु च देवेषु यज्ञभुक्षु ततस्तदा॥ ९
य इन्द्रियात्मका देवा यज्ञभागभुजस्तु ते।
तान् यजन्ति तदा देवाः कल्पादिषु भवन्ति ये॥ १०
अध्वर्यवः प्रैषकाले व्युत्थिता ऋषयस्तथा।
महर्षयश्च तान् दृष्ट्वा दीनान् पशुगणांस्तदा।
विश्वभुजं ते त्वपृच्छन् कथं यज्ञविधिस्तव॥ ११
अधर्मो बलवानेष हिंसा धर्मेप्सया तव।
नव पशुविधिस्त्विष्टस्तव यज्ञे सुरोत्तम॥ १२
अधर्मो धर्मघाताय प्रारब्धः पशुभिस्त्वया।
नायं धर्मो ह्यधर्मोऽयं न हिंसा धर्म उच्यते।
आगमेन भवान् धर्मं प्रकरोतु यदीच्छति॥ १३
विधिदृष्टेन यज्ञेन धर्मेणाव्यसनेन तु।
यज्ञबीजैः सुरश्रेष्ठ त्रिवर्गपरिमोषितैः॥ १४

जब कृतयुगके साथ उसकी संध्या (तथा संध्यांश) दोनों अन्तर्हित हो गये, तब कालक्रमानुसार त्रेतायुगकी संधि प्राप्त हुई। उस समय वृष्टि होनेपर ओषधियाँ उत्पन्न हुईं तथा ग्रामों एवं नगरोंमें वार्ता-वृत्तिकी स्थापना हो गयी। उसके बाद वर्णाश्रमकी स्थापना करके परम्परागत आये हुए मन्त्रोंद्वारा पुनः संहिताओंको एकत्रकर यज्ञकी प्रथा किस प्रकार प्रचलित हुई? हमलोगोंके प्रति इसका यथार्थरूपसे वर्णन कीजिये। यह सुनकर सूतजीने कहा—'आपलोगोंके प्रश्नानुसार कह रहा हूँ, सुनिये'॥ १—४॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! विश्वभोक्ता सामर्थ्यशाली इन्द्रने ऐहलौकिक तथा पारलौकिक कर्मोंमें मन्त्रोंको प्रयुक्तकर देवताओंके साथ सम्पूर्ण साधनोंसे सम्पन्न हो यज्ञ प्रारम्भ किया। उनके उस अश्वमेध-यज्ञके आरम्भ होनेपर उसमें महर्षिगण उपस्थित हुए। उस यज्ञकर्ममें ऋत्विग्गण यज्ञक्रियाको आगे बढ़ा रहे थे। उस समय सर्वप्रथम अग्निमें अनेकों प्रकारके हवनीय पदार्थ डाले जा रहे थे, सामगान करनेवाले देवगण विश्वासपूर्वक ऊँचे स्वरसे सामगान कर रहे थे, अध्वर्युगण धीमे स्वरसे मन्त्रोंका उच्चारण कर रहे थे। पशुओंका समूह मण्डपके मध्यभागमें लाया जा रहा था, यज्ञभोक्ता देवोंका आवाहन हो चुका था। जो इन्द्रियात्मक देवता तथा जो यज्ञभागके भोक्ता थे और जो प्रत्येक कल्पके आदिमें उत्पन्न होनेवाले अजानदेव थे, देवगण उनका यजन कर रहे थे। इसी बीच जब यजुर्वेदके अध्येता एवं हवनकर्ता ऋषिगण पशु-बलिका उपक्रम करने लगे, तब यूथ-के-यूथ ऋषि तथा महर्षि उन दीन पशुओंको देखकर उठ खड़े हुए और वे विश्वभुग् नामके विश्वभोक्ता इन्द्रसे पूछने लगे—'देवराज! आपके यज्ञकी यह कैसी विधि है? आप धर्म-प्राप्तिकी अभिलाषासे जो जीव-हिंसा करनेके लिये उद्यत हैं, यह महान् अधर्म है। सुरश्रेष्ठ! आपके यज्ञमें पशु-हिंसाकी यह नवीन विधि दीख रही है। ऐसा प्रतीत होता है कि आप पशु-हिंसाके व्याजसे धर्मका विनाश करनेके लिये अधर्म करनेपर तुले हुए हैं। यह धर्म नहीं है। यह सरासर अधर्म है। जीव-हिंसा धर्म नहीं कही जाती। इसलिये यदि आप धर्म करना चाहते हैं तो वेदविहित धर्मका अनुष्ठान कीजिये। सुरश्रेष्ठ! वेदविहित विधिके अनुसार किये हुए यज्ञ और दुर्व्यसनरहित धर्मके पालनसे यज्ञके बीजभूत त्रिवर्ग (नित्य धर्म, अर्थ, काम)-की प्राप्ति होती है।

एष यज्ञो महानिन्द्र स्वयम्भुविहितः पुरा।
एवं विश्वभुगिन्द्रस्तु ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
उक्तो न प्रतिजग्राह मानमोहसमन्वितः॥ १५

तेषां विवादः सुमहान् जज्ञे इन्द्रमहर्षिणाम्।
जङ्गमैः स्थावरैः केन यष्टव्यमिति चोच्यते॥ १६

ते तु खिन्ना विवादेन शक्त्या युक्ता महर्षयः।
संधाय सममिन्द्रेण पप्रच्छुः खचरं वसुम्॥ १७

ऋषय ऊचुः

महाप्राज्ञ त्वया दृष्टः कथं यज्ञविधिर्नृप।
औत्तानपादे प्रब्रूहि संशयं छिन्धि नः प्रभो॥ १८

सूत उवाच

श्रुत्वा वाक्यं वसुस्तेषामविचार्य बलाबलम्।
वेदशास्त्रमनुस्मृत्य यज्ञतत्त्वमुवाच ह॥ १९

यथोपनीतैर्यष्टव्यमिति होवाच पार्थिवः।
यष्टव्यं पशुभिर्मेध्यैरथ मूलफलैरपि॥ २०

हिंसा स्वभावो यज्ञस्य इति मे दर्शनागमः।
तथैते भाविता मन्त्रा हिंसालिङ्गा महर्षिभिः॥ २१

दीर्घेण तपसा युक्तैस्तारकादिनिदर्शनैः।
तत्प्रमाणं मया चोक्तं तस्माच्छमितुमर्हथ॥ २२

यदि प्रमाणं स्तान्येव मन्त्रवाक्यानि वो द्विजाः।
तदा प्रवर्ततां यज्ञो ह्यन्यथा मानृतं वचः॥ २३

एवं कृतोत्तरास्ते तु युज्यात्मानं ततो धिया।
अवश्यम्भाविनं दृष्ट्वा तमधो ह्यशपंस्तदा॥ २४

इत्युक्तमात्रो नृपतिः प्रविवेश रसातलम्।
ऊर्ध्वचारी नृपो भूत्वा रसातलचरोऽभवत्॥ २५

वसुधातलचारी तु तेन वाक्येन सोऽभवत्।
धर्माणां संशयच्छेत्ता राजा वसुरधोगतः॥ २६

तस्मान्न वाच्यो ह्येकेन बहुज्ञेनापि संशयः।
बहुद्वारस्य धर्मस्य सूक्ष्मा दुरनुगा गतिः॥ २७

इन्द्र! पूर्वकालमें ब्रह्माने इसीको महान् यज्ञ बतलाया है।' तत्त्वदर्शी ऋषियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर भी विश्वभोक्ता इन्द्रने उनकी बातोंको अङ्गीकार नहीं किया; क्योंकि उस समय वे मान और मोहसे भरे हुए थे। फिर तो इन्द्र और उन महर्षियोंके बीच 'स्थावरों या जङ्गमोंमेंसे किससे यज्ञानुष्ठान करना चाहिये'—इस बातको लेकर वह अत्यन्त महान् विवाद उठ खड़ा हुआ। यद्यपि वे महर्षि शक्तिसम्पन्न थे, तथापि उन्होंने उस विवादसे खिन्न होकर इन्द्रके साथ संधि करके (उसके निर्णयार्थ) उपरिचर (आकाशचारी राजर्षि) वसुसे प्रश्न किया॥ ५—१७॥

ऋषियोंने पूछा—उत्तानपाद-नन्दन नरेश! आप तो सामर्थ्यशाली एवं महान् बुद्धिमान् हैं। आपने किस प्रकारकी यज्ञ-विधि देखी है, उसे बतलाइये और हम लोगोंका संशय दूर कीजिये॥ १८॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उन ऋषियोंका प्रश्न सुनकर महाराज वसु उचित-अनुचितका कुछ भी विचार न कर वेद-शास्त्रोंका अनुस्मरण कर यज्ञतत्त्वका वर्णन करने लगे। उन्होंने कहा—'शक्ति एवं समयानुसार प्राप्त हुए पदार्थोंसे यज्ञ करना चाहिये। पवित्र पशुओं और मूल-फलोंसे भी यज्ञ किया जा सकता है। मेरे देखनेमें तो ऐसा लगता है कि हिंसा यज्ञका स्वभाव ही है। इसी प्रकार तारक आदि मन्त्रोंके ज्ञाता उग्रतपस्वी महर्षियोंने हिंसासूचक मन्त्रोंको उत्पन्न किया है। उसीको प्रमाण मानकर मैंने ऐसी बात कही है, अतः आपलोग मुझे क्षमा कीजियेगा। द्विजवरो! यदि आप लोगोंको वेदोंके मन्त्रवाक्य प्रमाणभूत प्रतीत होते हों तो यही कीजिये, अन्यथा यदि आप वेद-वचनको झूठा मानते हों तो मत कीजिये।' वसुद्वारा ऐसा उत्तर पाकर महर्षियोंने अपनी बुद्धिसे विचार किया और अवश्यम्भावी विषयको जानकर राजा वसुको विमानसे नीचे गिर जानेका तथा पातालमें प्रविष्ट होनेका शाप दे दिया। ऋषियोंके ऐसा कहते ही राजा वसु रसातलमें चले गये। इस प्रकार जो राजा वसु एक दिन आकाशचारी थे, वे रसातलगामी हो गये। ऋषियोंके शापसे उन्हें पातालचारी होना पड़ा। धर्मविषयक संशयोंका निवारण करनेवाले राजा वसु इस प्रकार अधोगतिको प्राप्त हुए॥ १९—२६॥

इसलिये बहुज्ञ (अत्यन्त विद्वान्) होते हुए भी अकेले किसी धार्मिक संशयका निर्णय नहीं करना चाहिये; क्योंकि अनेक द्वार (मार्ग-) वाले धर्मकी गति अत्यन्त सूक्ष्म

तस्मान्न निश्चयाद्वक्तुं धर्मः शक्यो हि केनचित्।
देवानृषीनुपादाय स्वायम्भुवमृते मनुम्॥ २८
तस्मान्न हिंसा यज्ञे स्याद् यदुक्तमृषिभिः पुरा।
ऋषिकोटिसहस्राणि स्वैस्तपोभिर्दिवं गताः॥ २९
तस्मान्न हिंसायज्ञं च प्रशंसन्ति महर्षयः।
उञ्छो मूलं फलं शाकमुदपात्रं तपोधनाः॥ ३०
एतद् दत्त्वा विभवतः स्वर्गलोके प्रतिष्ठिताः।
अद्रोहश्चाप्यलोभश्च दमो भूतदया शमः॥ ३१
ब्रह्मचर्यं तपः शौचमनुक्रोशं क्षमा धृतिः।
सनातनस्य धर्मस्य मूलमेतद्दुरासदम्॥ ३२
द्रव्यमन्त्रात्मको यज्ञस्तपश्च समतात्मकम्।
यज्ञैश्च देवानाप्नोति वैराजं तपसा पुनः॥ ३३
ब्रह्मणः कर्मसंन्यासाद्वैराग्यात् प्रकृतेर्लयम्।
ज्ञानात्प्राप्नोति कैवल्यं पञ्चैता गतयः स्मृताः॥ ३४
एवं विवादः सुमहान् यज्ञस्यासीत् प्रवर्तने।
ऋषीणां देवतानां च पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ३५
ततस्ते ऋषयो दृष्ट्वा हतं धर्मं बलेन तु।
वसोर्वाक्यमनादृत्य जग्मुस्ते वै यथागतम्॥ ३६
गतेषु ऋषिसङ्घेषु देवा यज्ञमवाप्नुयुः।
श्रूयन्ते हि तपःसिद्धा ब्रह्मक्षत्रादयो नृपाः॥ ३७
प्रियव्रतोत्तानपादौ ध्रुवो मेधातिथिर्वसुः।
सुधामा विरजाश्चैव शंखपाद्राजसस्तथा॥ ३८
प्राचीनबर्हिः पर्जन्यो हविर्धानादयो नृपाः।
एते चान्ये च बहवस्ते तपोभिर्दिवं गताः॥ ३९
राजर्षयो महात्मानो येषां कीर्तिः प्रतिष्ठिता।
तस्माद्विशिष्यते यज्ञात्तपः सर्वैस्तु कारणैः॥ ४०
ब्रह्मणा तपसा सृष्टं जगद्विश्वमिदं पुरा।
तस्मान्नाप्नोति तद् यज्ञात्तपोमूलमिदं स्मृतम्॥ ४१

और दुर्गम है। अतः देवताओं और ऋषियोंके साथ-साथ स्वायम्भुव मनुके अतिरिक्त अन्य कोई भी अकेला व्यक्ति धर्मके विषयमें निश्चयपूर्वक निर्णय नहीं दे सकता। इसलिये पूर्वकालमें जैसा ऋषियोंने कहा है, उसके अनुसार यज्ञमें जीव-हिंसा नहीं होनी चाहिये। हजारों करोड़ ऋषि अपने तपोबलसे स्वर्गलोकको गये हैं। इसी कारण महर्षिगण हिंसात्मक यज्ञकी प्रशंसा नहीं करते। वे तपस्वी अपनी सम्पत्तिके अनुसार उञ्छवृत्तिसे प्राप्त हुए अन्न, मूल, फल, शाक और कमण्डलु आदिका दान कर स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित हुए हैं। ईर्ष्याहीनता, निर्लोभता, इन्द्रियनिग्रह, जीवोंपर दयाभाव, मानसिक स्थिरता, ब्रह्मचर्य, तप, पवित्रता, करुणा, क्षमा और धैर्य—ये सनातन धर्मके मूल ही हैं, जो बड़ी कठिनतासे प्राप्त किये जा सकते हैं। यज्ञ द्रव्य और मन्त्रद्वारा सम्पन्न किये जा सकते हैं और तपस्याकी सहायिका समता है। यज्ञोंसे देवताओंकी तथा तपस्यासे विराट् ब्रह्मकी प्राप्ति होती है। कर्म (फल)-का त्याग कर देनेसे ब्रह्म-पदकी प्राप्ति होती है, वैराग्यसे प्रकृतिमें लय होता है और ज्ञानसे कैवल्य (मोक्ष) सुलभ हो जाता है। इस प्रकार ये पाँच गतियाँ बतलायी गयी हैं॥ २७—३४॥

पूर्वकालमें स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें यज्ञकी प्रथा प्रचलित होनेके अवसरपर देवताओं और ऋषियोंके बीच इस प्रकारका महान् विवाद हुआ था। तदनन्तर जब ऋषियोंने यह देखा कि यहाँ तो बलपूर्वक धर्मका विनाश किया जा रहा है, तब वसुके कथनकी उपेक्षा कर वे जैसे आये थे, वैसे ही चले गये। उन ऋषियोंके चले जानेपर देवताओंने यज्ञकी सारी क्रियाएँ सम्पन्न कीं। इसके अतिरिक्त इस विषयमें ऐसा भी सुना जाता है कि बहुतेरे ब्राह्मण तथा क्षत्रियनरेश तपस्याके प्रभावसे ही सिद्धि प्राप्त की थी। प्रियव्रत, उत्तानपाद, ध्रुव, मेधातिथि, वसु, सुधामा, विरजा, शङ्खपाद, राजस, प्राचीनबर्हि, पर्जन्य और हविर्धान आदि नृपतिगण तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से नरेश तपोबलसे स्वर्गलोकको प्राप्त हुए हैं, जिन महात्मा राजर्षियोंकी कीर्ति अबतक विद्यमान है। अतः तपस्या सभी कारणोंसे सभी प्रकार यज्ञसे बढ़कर है। पूर्वकालमें ब्रह्माने तपस्याके प्रभावसे ही इस सारे जगत्की सृष्टि की थी, अतः यज्ञद्वारा वह बल नहीं प्राप्त हो सकता। उसकी प्राप्तिका मूल कारण तप

यज्ञप्रवर्तनं ह्येवमासीत् स्वायम्भुवेऽन्तरे।
तदाप्रभृति यज्ञोऽयं युगैः सह व्यवर्तत॥ ४२

ही कहा गया है। इस प्रकार स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें यज्ञकी प्रथा प्रारम्भ हुई थी। तबसे यह यज्ञ सभी युगोंके साथ प्रवर्तित हुआ॥ ३५—४२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकल्पे देवर्षिसंवादो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके मन्वन्तरानुकल्पमें देवर्षिसंवाद नामक एक सौ तैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४३॥

एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय

द्वापर और कलियुगकी प्रवृत्ति तथा उनके स्वभावका वर्णन, राजा प्रमतिका वृत्तान्त तथा पुनः कृतयुगके प्रारम्भका वर्णन

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि द्वापरस्य विधिं पुनः।
तत्र त्रेतायुगे क्षीणे द्वापरं प्रतिपद्यते॥ १
द्वापरादौ प्रजानां तु सिद्धिस्त्रेतायुगे तु या।
परिवृत्ते युगे तस्मिंस्ततः सा सम्प्रणश्यति॥ २
ततः प्रवर्तिते तासां प्रजानां द्वापरे पुनः।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः॥ ३
प्रध्वंसश्चैव वर्णानां कर्मणां तु विपर्ययः।
याच्ञा वधः पणो दण्डो मानो दम्भोऽक्षमा बलम्॥ ४
तथा रजस्तमो भूयः प्रवृत्तिर्द्वापरे स्मृता।
आद्ये कृते तु धर्मोऽस्ति स त्रेतायां प्रपद्यते॥ ५
द्वापरे व्याकुलो भूत्वा प्रणश्यति कलौ पुनः।
वर्णानां द्वापरे धर्माः संकीर्यन्ते तथाऽऽश्रमाः॥ ६
द्वैधमुत्पद्यते चैव युगे तस्मिञ् श्रुतौ स्मृतौ।
द्वैधाच्छ्रुतेः स्मृतेश्चैव निश्चयो नाधिगम्यते॥ ७
अनिश्चयावगमनाद् धर्मतत्त्वं न विद्यते।
धर्मतत्त्वे ह्यविज्ञाते मतिभेदस्तु जायते॥ ८
परस्परं विभिन्नैस्तैर्दृष्टीनां विभ्रमेण तु।
अयं धर्मो ह्ययं नेति निश्चयो नाधिगम्यते॥ ९
एको वेदश्चतुष्पादः त्रेतास्विह विधीयते।
संक्षेपादायुषश्चैव व्यस्यते द्वापरेष्विह॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद अब मैं द्वापरयुगकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। त्रेतायुगके क्षीण हो जानेपर द्वापरयुगकी प्रवृत्ति होती है। द्वापरयुगके प्रारम्भ-कालमें प्रजाओंको त्रेतायुगकी भाँति ही सिद्धि प्राप्त होती है, किंतु जब द्वापरयुगका प्रभाव पूर्णरूपसे व्याप्त हो जाता है, तब वह सिद्धि नष्ट हो जाती है। उस समय प्रजाओंमें लोभ, धैर्यहीनता, वाणिज्य, युद्ध, सिद्धान्तोंकी अनिश्चितता, वर्णोंका विनाश, कर्मोंका उलट-फेर, याच्ञा (भिक्षावृत्ति), संहार, परायापन, दण्ड, अभिमान, दम्भ, असहिष्णुता, बल तथा रजोगुण एवं तमोगुण बढ़ जाते हैं। सर्वप्रथम कृतयुगमें तो अधर्मका लेशमात्र भी नहीं रहता, किंतु त्रेतायुगमें उसकी कुछ-कुछ प्रवृत्ति होती है। पुनः द्वापरयुगमें वह विशेषरूपसे व्याप्त होकर कलियुगमें युग-समाप्तिके समय विनष्ट हो जाता है। द्वापरयुगमें चारों वर्णों तथा आश्रमोंके धर्म परस्पर घुल-मिल जाते हैं। इस युगमें श्रुतियों और स्मृतियोंमें भेद उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार श्रुति और स्मृतिकी मान्यतामें भेद पड़नेके कारण किसी विषयका ठीक निश्चय नहीं हो पाता। अनिश्चितताके कारण धर्मका तत्त्व लुप्त हो जाता है। धर्मतत्त्वका ज्ञान न होनेपर बुद्धिमें भेद उत्पन्न हो जाता है। बुद्धिमें भेद पड़नेके कारण उनके विचार भी भ्रान्त हो जाते हैं और फिर धर्म क्या है और अधर्म क्या है, यह निश्चय नहीं हो पाता॥ १—९॥

पहले त्रेताके प्रारम्भमें आयुके संक्षिप्त हो जानेके कारण एक ही वेद ऋक्, यजुः, अथर्वण, साम-चार नामोंसे विभक्त कर दिया जाता है। फिर द्वापरमें विभिन्न

वेदश्चैकश्चतुर्धा तु व्यस्यते द्वापरादिषु।
ऋषिपुत्रैः पुनर्वेदा भिद्यन्ते दृष्टिविभ्रमैः॥ ११
मन्त्रब्राह्मणविन्यासैः स्वरक्रमविपर्ययैः।
संहिता ऋग्यजुःसाम्नां संहन्यन्ते श्रुतर्षिभिः॥ १२
सामान्याद् वैकृताच्चैव दृष्टिभिन्नैः क्वचित् क्वचित्।
ब्राह्मणं कल्पसूत्राणि भाष्यविद्यास्तथैव च॥ १३
अन्ये तु प्रस्थितास्तान् वै केचित् तान् प्रत्यवस्थिताः।
द्वापरेषु प्रवर्तन्ते भिन्नार्थैस्तैः स्वदर्शनैः॥ १४
एकमाध्वर्यवं पूर्वमासीद् द्वैधं तु तत्पुनः।
सामान्यविपरीतार्थैः कृतं शास्त्राकुलं त्विदम्॥ १५
आध्वर्यवं च प्रस्थानैर्बहुधा व्याकुलीकृतम्।
तथैवाथर्वणां साम्नां विकल्पैः स्वस्य संक्षयैः॥ १६
व्याकुलो द्वापरेष्वर्थः क्रियते भिन्नदर्शनैः।
द्वापरे संनिवृत्ते तु वेदा नश्यन्ति वै कलौ॥ १७
तेषां विपर्ययोत्पन्ना भवन्ति द्वापरे पुनः।
अदृष्टिर्मरणं चैव तथैव व्याध्युपद्रवाः॥ १८
वाङ्मनःकर्मभिर्दुःखैर्निर्वेदो जायते ततः।
निर्वेदाज्जायते तेषां दुःखमोक्षविचारणा॥ १९
विचारणायां वैराग्यं वैराग्याद् दोषदर्शनम्।
दोषाणां दर्शनाच्चैव ज्ञानोत्पत्तिस्तु जायते॥ २०
तेषां मेधाविनां पूर्वं मर्त्ये स्वायम्भुवेऽन्तरे।
उत्पत्स्यन्तीह शास्त्राणां द्वापरे परिपन्थिनः॥ २१
आयुर्वेदविकल्पाश्च अङ्गानां ज्यौतिषस्य च।
अर्थशास्त्रविकल्पाश्च हेतुशास्त्रविकल्पनम्॥ २२
प्रक्रियाकल्पसूत्राणां भाष्यविद्याविकल्पनम्।
स्मृतिशास्त्रप्रभेदाश्च प्रस्थानानि पृथक्-पृथक्॥ २३
द्वापरेष्वभिवर्तन्ते मतिभेदास्तथा नृणाम्।
मनसा कर्मणा वाचा कृच्छ्राद् वार्ता प्रसिद्ध्यति॥ २४

विचारवाले ऋषिपुत्रोंद्वारा उन वेदोंका पुनः (शाखा-प्रशाखा आदिमें) विभाजन कर दिया जाता है। वे महर्षिगण मन्त्र-ब्राह्मणों, स्वर और क्रमके विपर्ययसे ऋक्, यजुः और सामवेदकी संहिताओंका अलग-अलग संघटन करते हैं। भिन्न विचारवाले श्रुतर्षियोंने ब्राह्मणभाग, कल्पसूत्र तथा भाष्यविद्या आदिको भी कहीं-कहीं सामान्य रूपसे और कहीं-कहीं विपरीतक्रमसे परिवर्तित कर दिया है। कुछ लोगोंने तो उनका समर्थन और कुछ लोगोंने अवरोध किया है। इसके बाद प्रत्येक द्वापरयुगमें भिन्नार्थदर्शी ऋषिवृन्द अपने-अपने विचारानुसार वैदिक प्रथामें अर्थभेद उत्पन्न कर देते हैं। पूर्वकालमें यजुर्वेद एक ही था, परंतु ऋषियोंने उसे बादमें सामान्य और विशेष अर्थसे कृष्ण और यजुः-रूपमें दो भागोंमें विभक्त कर दिया, जिससे शास्त्रमें भेद हो गया। इस प्रकार इन लोगोंने यजुर्वेदको अनेकों उपाख्यानों तथा प्रस्थानों, खिलांशों-द्वारा विस्तृत कर दिया है। इसी प्रकार अथर्ववेद और सामवेदके मन्त्रोंका भी ह्रास एवं विकल्पोंद्वारा अर्थ-परिवर्तन कर दिया है। इस तरह प्रत्येक द्वापरयुगमें (पूर्वपरम्परासे चले आते हुए) वेदार्थको भिन्नदर्शी ऋषिवृन्द परिवर्तित करते हैं। फिर द्वापरके बीत जानेपर कलियुगमें वे वेदार्थ शनैः-शनैः नष्ट हो जाते हैं। वेदार्थका विपर्यय हो जानेके कारण द्वापरके अन्तमें ही यथार्थ दृष्टिका लोप, असामयिक मृत्यु और व्याधियोंके उपद्रव प्रकट हो जाते हैं। तब मन-वचन-कर्मसे उत्पन्न हुए दुःखोंके कारण लोगोंके मनमें खेद उत्पन्न होता है। खेदाधिक्यके कारण दुःखसे मुक्ति पानेके लिये उनके मनमें विचार जाग्रत् होता है। फिर विचार उत्पन्न होनेपर वैराग्य, वैराग्यसे दोष-दर्शन और दोषोंके प्रत्यक्ष होनेपर ज्ञानकी उत्पत्ति होती है॥ १०—२०॥

इस प्रकार पूर्वकालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके द्वापरयुगमें उन मेधावी ऋषियोंके वंशमें इस भूतलपर शास्त्रोंके विरोधी लोग उत्पन्न होते हैं और उस युगमें आयुर्वेदमें विकल्प, ज्योतिषशास्त्रके अङ्गोंमें विकल्प, अर्थशास्त्रमें विकल्प, हेतुशास्त्रमें विकल्प, कल्पसूत्रोंकी प्रक्रियामें विकल्प, भाष्यविद्यामें विकल्प, स्मृतिशास्त्रोंमें नाना प्रकारके भेद, पृथक्-पृथक् मार्ग तथा मनुष्योंकी बुद्धियोंमें भेद प्रचलित हो जाते हैं। तब मन-वचन-कर्मसे लगे रहनेपर भी बड़ी कठिनाईसे लोगोंकी जीविका सिद्ध हो पाती है।

द्वापरे सर्वभूतानां कायक्लेशः परः स्मृतः।
लोभोऽधृतिर्वणिग्युद्धं तत्त्वानामविनिश्चयः॥ २५
वेदशास्त्रप्रणयनं धर्माणां संकरस्तथा।
वर्णाश्रमपरिध्वंसः कामद्वेषौ तथैव च॥ २६
पूर्णे वर्षसहस्रे द्वे परमायुस्तदा नृणाम्।
निःशेषे द्वापरे तस्मिंस्तस्य संध्या तु पादतः॥ २७
प्रतिष्ठिते गुणैर्हीना धर्मोऽसौ द्वापरस्य तु।
तथैव संध्यापादेन अंशस्तस्यां प्रतिष्ठितः॥ २८

इस प्रकार द्वापरयुगमें सभी प्राणियोंका जीवन भी कष्टसे ही चल पाता है। उस समय जनतामें लोभ, धैर्यहीनता, वाणिज्य-व्यवसाय, युद्ध, तत्त्वोंकी अनिश्चितता, वेदों एवं शास्त्रोंको मनःकल्पित रचना, धर्मसंकरता, वर्णाश्रम-धर्मका विनाश तथा काम और द्वेषकी भावना आदि दुर्गुणोंका प्राबल्य हो जाता है। उस समय लोगोंकी दो हजार वर्षोंकी पूर्णायु होती है। द्वापरकी समाप्तिके समय उसके चतुर्थांशमें उसकी संध्याका काल आता है। उस समय लोग धर्मके गुणोंसे हीन हो जाते हैं। उसी प्रकार संध्याके चतुर्थ चरणमें संध्यांशका समय उपस्थित होता है॥ २१—२८॥

द्वापरस्य तु पर्याये पुष्यस्य च निबोधत।
द्वापरस्यांशशेषे तु प्रतिपत्तिः कलेरथ॥ २९
हिंसा स्तेयानृतं माया वधश्चैव तपस्विनाम्।
एते स्वभावाः पुष्यस्य साधयन्ति च ताः प्रजाः॥ ३०
एष धर्मः स्मृतः कृत्स्नो धर्मश्च परिहीयते।
मनसा कर्मणा वाचा वार्ता सिद्ध्यति वा न वा॥ ३१
कलौ प्रमारको रोगः सततं चापि क्षुद्भयम्।
अनावृष्टिभयं घोरं देशानां च विपर्ययः॥ ३२
न प्रमाणं स्मृतश्चास्ति पुष्ये घोरे युगे कलौ।
गर्भस्थो म्रियते कश्चिद्यौवनस्थस्तथापरः॥ ३३
स्थविरे मध्यकौमारे म्रियन्ते च कलौ प्रजाः।
अल्पतेजोबलाः पापा महाकोपा ह्यधार्मिकाः॥ ३४
अनृतव्रतलुब्धाश्च पुष्ये चैव प्रजाः स्थिताः।
दुरिष्टैर्दुरधीतैश्च दुराचारैर्दुरागमैः॥ ३५
विप्राणां कर्मदोषैश्च प्रजानां जायते भयम्।
हिंसमानस्तथेर्ष्या च क्रोधोऽसूयाक्षमः कृतम्॥ ३६
पुष्ये भवन्ति जन्तूनां लोभो मोहश्च सर्वशः।
संक्षोभो जायतेऽत्यर्थं कलिमासाद्य वै युगम्॥ ३७
नाधीयन्ते तथा वेदा न यजन्ते द्विजातयः।
उत्सीदन्ति तथा चैव वैश्यैः सार्धं तु क्षत्रियाः॥ ३८
शूद्राणां मन्त्रयोनिस्तु सम्बन्धो ब्राह्मणैः सह।
भवतीह कलौ तस्मिञ् शयनासनभोजनैः॥ ३९

अब द्वापरयुगके बाद आनेवाले कलियुगका वृत्तान्त सुनिये। द्वापरकी समाप्तिके समय जब अंशमात्र शेष रह जाता है, तब कलियुगकी प्रवृत्ति होती है। जीव-हिंसा, चोरी, असत्यभाषण, माया (छल-कपट-दम्भ) और तपस्वियोंकी हत्या—ये कलियुगके स्वभाव (स्वाभाविक गुण) हैं। वह प्रजाओंको भलीभाँति चरितार्थ कर देता है। यही उसका अविकल धर्म है। यथार्थ धर्मका तो विनाश हो जाता है। उस समय मन-वचन-कर्मसे प्रयत्न करनेपर भी यह संदेह बना रहता है कि जीविकाकी सिद्धि होगी या नहीं। कलियुगमें विसूचिका, प्लेग आदि महामारक रोग होते हैं। इस घोर कलियुगमें भुखमरी और अकालका सदा भय बना रहता है। देशोंका उलट-फेर तो होता ही रहता है। किसी प्रमाणमें स्थिरता नहीं रहती। कोई गर्भमें ही मर जाता है तो कोई नौजवान होकर, कोई मध्य जवानीमें तो कोई बुढ़ापामें। इस प्रकार लोग कलियुगमें अकालमें ही कालके शिकार बन जाते हैं। उस समय लोगोंका तेज और बल घट जाता है। उनमें पाप, क्रोध और धर्महीनता बढ़ जाती है। वे असत्यभाषी और लोभी हो जाते हैं। ब्राह्मणोंके अनिष्ट-चिन्तन, अल्पाध्ययन, दुराचार और शास्त्र-ज्ञान-हीनता-रूप कर्मदोषोंसे प्रजाओंको सदा भय बना रहता है। कलियुगमें जीवोंमें हिंसा, अभिमान, ईर्ष्या, क्रोध, असूया, असहिष्णुता, अधीरता, लोभ, मोह और संक्षोभ आदि दुर्गुण सर्वथा अधिक मात्रामें बढ़ जाते हैं। कलियुगके आनेपर ब्राह्मण न तो वेदोंका अध्ययन करते हैं और न यज्ञानुष्ठान ही करते हैं। क्षत्रिय भी वैश्योंके साथ (कर्मभ्रष्ट होकर) विनष्ट हो जाते हैं। कलियुगमें शूद्र मन्त्रोंके ज्ञाता हो जाते हैं और उनका शयन, आसन एवं भोजनके समय ब्राह्मणोंके साथ सम्पर्क होता है।

राजानः शूद्रभूयिष्ठाः पाखण्डानां प्रवर्तकाः।
काषायिणश्च निष्कच्छास्तथा कापालिनश्च ह॥ ४०

शूद्र ही अधिकतर राजा होते हैं। पाखण्डका प्रचार बढ़ जाता है। शूद्रलोग गेरुआ वस्त्र धारण कर हाथमें नारियलका कपाल लेकर काछ खोले हुए (संन्यासीके वेषमें) घूमते रहते हैं॥ २९—४०॥

ये चान्ये देवव्रतिनस्तथा ये धर्मदूषकाः।
दिव्यवृत्ताश्च ये केचिद् वृत्त्यर्थं श्रुतिलिङ्गिनः॥ ४१

एवंविधाश्च ये केचिद्भवन्तीह कलौ युगे।
अधीयन्ते तदा वेदाञ्शूद्रान् धर्मार्थकोविदाः॥ ४२

यजन्ति ह्यश्वमेधैस्तु राजानः शूद्रयोनयः।
स्त्रीबालगोवधं कृत्वा हत्वा चैव परस्परम्॥ ४३

उपहृत्य तथान्योन्यं साधयन्ति तथा प्रजाः।
दुःखप्रचुरताल्पायुर्देशोत्सादः सरोगता॥ ४४

अधर्माभिनिवेशित्वं तमोवृत्तं कलौ स्मृतम्।
भ्रूणहत्या प्रजानां च तदा ह्येवं प्रवर्तते॥ ४५

तस्मादायुर्बलं रूपं प्रहीयन्ते कलौ युगे।
दुःखेनाभिप्लुतानां परमायुः शतं नृणाम्॥ ४६

भूत्वा च न भवन्तीह वेदाः कलियुगेऽखिलाः।
उत्सीदन्ते तथा यज्ञाः केवलं धर्महेतवः॥ ४७

एषा कलियुगावस्था संध्यांशौ तु निबोधत।
युगे युगे तु हीयन्ते त्रींस्त्रीन्पादांश्च सिद्धयः॥ ४८

युगस्वभावाः संध्यासु अवतिष्ठन्ति पादतः।
संध्यास्वभावाः स्वांशेषु पादेनैवावतस्थिरे॥ ४९

कुछ लोग देवताओंकी पूजा करते हैं तो कुछ लोग धर्मको दूषित करते हैं। कुछ लोगोंके आचार-विचार दिव्य होते हैं तो कुछ लोग जीविकोपार्जनके लिये साधुका वेष बनाये रहते हैं। कलियुगमें अधिकतर इसी प्रकारके लोग होते हैं। उस समय शूद्रलोग धर्म और अर्थके ज्ञाता बनकर वेदोंका अध्ययन करते हैं। शूद्रयोनिमें उत्पन्न नृपतिगण अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं। उस समय लोग स्त्री, बालक और गौओंकी हत्या कर, परस्पर एक-दूसरेको मारकर तथा अपहरण कर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं। कलियुगमें कष्टका बाहुल्य हो जाता है। प्राणियोंकी आयु थोड़ी हो जाती है। देशोंमें उथल-पुथल होता रहता है। व्याधिका प्रकोप बढ़ जाता है। अधर्मकी ओर लोगोंकी विशेष रुचि हो जाती है। सभीके आचार-विचार तामसिक हो जाते हैं। प्रजाओंमें भ्रूणहत्याकी प्रवृत्ति हो जाती है। इसी कारण कलियुगमें आयु, बल और रूपकी क्षीणता हो जाती है। दुःखोंसे संतप्त हुए लोगोंकी परमायु सौ वर्षकी होती है। कलियुगमें सम्पूर्ण वेद विद्यमान रहते हुए भी नहींके बराबर हो जाते हैं तथा धर्मके एकमात्र कारण यज्ञोंका विनाश हो जाता है। यह तो कलियुगकी दशा बतलायी गयी, अब उसकी संध्या और संध्यांशका वर्णन सुनिये। प्रत्येक युगमें तीन-तीन चरण व्यतीत हो जानेके बाद सिद्धियाँ घट जाती हैं, अर्थात् धर्मका ह्रास हो जाता है। उनकी संध्याओंमें युगका स्वभाव चतुर्थांश मात्र रह जाता है। उसी प्रकार संध्यांशोंमें संध्याका स्वभाव भी चतुर्थांश ही शेष रहता है॥ ४१—४९॥

एवं संध्यांशके काले सम्प्राप्ते तु युगान्तिके।
तेषामधर्मिणां शास्ता भृगूणां च कुले स्थितः॥ ५०
गोत्रेण वै चन्द्रमसो नाम्ना प्रमतिरुच्यते।
कलिसंध्यांशभागेषु मनोः स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ५१
समास्त्रिंशत्तु सम्पूर्णाः पर्यटन् वै वसुन्धराम्।
अस्त्रकर्मा स वै सेनां हस्त्यश्वरथसंकुलाम्॥ ५२

इस प्रकार स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें कलियुगके अन्तिम समयमें प्राप्त हुए संध्यांशकालमें उन अधर्मियोंका शासन करनेके लिये भृगुवंशमें चन्द्रगोत्रीय प्रमति* नामक राजा उत्पन्न होता है। वह अस्त्रधारी नरेश हाथी, घोड़े और रथोंसे भरी हुई सेनाको साथ लेकर तीस वर्षोंतक पृथ्वीपर

* श्रीविष्णुधर्मोत्तर महापुराणमें भी इस राजाकी विस्तृत महिमा निरूपित है। वासुदेवशरण अग्रवाल आदि इतिहासके अनेक विद्वान् इसे राजा विक्रमादित्यका अपर नाम मानते हैं।

प्रगृहीतायुधैर्विप्रैः शतशोऽथ सहस्रशः।
स तदा तैः परिवृतो म्लेच्छान् सर्वान्निजघ्निवान्॥ ५३
स हत्वा सर्वशश्चैव राजानः शूद्रयोनयः।
पाखण्डान् स तदा सर्वान्निःशेषानकरोत् प्रभुः॥ ५४
अधार्मिकाश्च ये केचित्तान् सर्वान् हन्ति सर्वशः।
औदीच्यान्मध्यदेशांश्च पार्वतीयांस्तथैव च॥ ५५
प्राच्यान्प्रतीच्यांश्च तथा विन्ध्यपृष्ठापरान्तिकान्।
तथैव दाक्षिणात्यांश्च द्रविडान्सिंहलैः सह॥ ५६
गान्धारान्पारदांश्चैव पह्लवान् यवनाञ्छकान्।
तुषारान्बर्बराञ् छ्वेतान्हलिकान्दरदान्खसान्॥ ५७
लम्पकानान्ध्रकांश्चापि चोरजातींस्तथैव च।
प्रवृत्तचक्रो बलवाञ्शूद्राणामन्तकृद् बभौ॥ ५८
विद्राव्य सर्वथैतानि चचार वसुधामिमाम्।
मानवस्य तु वंशे तु नृदेवस्येह जज्ञिवान्॥ ५९
पूर्वजन्मनि विष्णुश्च प्रमतिर्नाम वीर्यवान्।
स्वतः स वै चन्द्रमसः पूर्वं कलियुगे प्रभुः॥ ६०
द्वात्रिंशेऽभ्युदिते वर्षे प्रक्रान्ते विंशतिं समाः।
निजघ्ने सर्वभूतानि मानुषाण्येव सर्वशः॥ ६१
कृत्वा बीजावशिष्टां तां पृथ्वीं क्रूरेण कर्मणा।
परस्परनिमित्तेन कालेनाकस्मिकेन च॥ ६२
संस्थिता सहसा या तु सेना प्रमतिना सह।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये सिद्धिं प्राप्ता समाधिना॥ ६३
ततस्तेषु प्रनष्टेषु संध्यांशे क्रूरकर्मसु।
उत्साद्य पार्थिवान् सर्वांस्तेष्वतीतेषु वै तदा॥ ६४
ततः संध्यांशके काले सम्प्राप्ते च युगान्तके।
स्थितास्वल्पावशिष्टासु प्रजास्विह क्वचित्क्वचित्॥ ६५
स्वाप्रदानास्तदा ते वै लोभाविष्टास्तु वृन्दशः।
उपहिंसन्ति चान्योन्यं प्रलुम्पन्ति परस्परम्॥ ६६
अराजके युगांशे तु संक्षये समुपस्थिते।
प्रजास्ता वै तदा सर्वाः परस्परभयार्दिताः॥ ६७

भ्रमण करता है। उस समय उसके साथ आयुधधारी सैकड़ों-हजारों ब्राह्मण भी रहते हैं। वह सामर्थ्यशाली वीर सभी म्लेच्छोंका विनाश कर देता है तथा शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुए राजाओंका सर्वथा संहार करके सम्पूर्ण पाखण्डोंको भी निर्मूल कर देता है। वह सर्वत्र घूम-घूमकर सभी धर्महीनोंका वध कर देता है। शूद्रोंका विनाश करनेवाला वह महाबली राजा उत्तर दिशाके निवासी, मध्यदेशीय, पर्वतीय, पौरस्त्य, पाश्चात्य, विन्ध्याचलके ऊपर तथा तलहटियोंमें स्थित, दाक्षिणात्य, सिंहलोंसहित द्रविड, गान्धार, पारद, पह्लव, यवन, शक, तुषार, बर्बर, श्वेत, हलीक, दरद, खस, लम्पक, आन्ध्रक तथा चोर जातियोंका संहारकर अपना शासनचक्र प्रवृत्त करता है। वह समस्त अधार्मिक प्राणियोंको खदेड़कर इस पृथ्वीपर विचरण करता हुआ सुशोभित होता है॥ ५०—५८ १/२॥

पराक्रमी प्रमति पूर्व जन्ममें विष्णु था और इस जन्ममें महाराज मनुके वंशमें भूतलपर उत्पन्न हुआ था। पहले कलियुगमें वह वीर चन्द्रमाका पुत्र था। बत्तीस वर्षकी अवस्था होनेपर उसने बीस वर्षोंतक भूतलपर सर्वत्र घूम-घूमकर सभी धर्महीन मानवों एवं अन्य प्राणियोंका संहार कर डाला। उसने आकस्मिक कालके वशीभूत हो बिना किसी निमित्तके क्रूर कर्मद्वारा उस पृथ्वीको बीजमात्र अवशेष कर दिया। तत्पश्चात् प्रमतिके साथ जो विशाल सेना थी, वह सहसा गङ्गा और यमुनाके मध्यभागमें स्थित हो गयी और समाधिद्वारा सिद्धिको प्राप्त हो गयी। इस प्रकार युगके अन्तमें संध्यांशकालके प्राप्त होनेपर सभी अधार्मिक राजाओंका विनाश होता है। उन क्रूरकर्मियोंके नष्ट हो जानेपर भूतलपर कहीं-कहीं थोड़ी-बहुत प्रजाएँ अवशिष्ट रह जाती हैं। वे लोग अपनी वस्तु दूसरेको देना नहीं चाहते। उनमें लोभकी मात्रा अधिक होती है। वे लोग यूथ-के-यूथ एकत्र होकर परस्पर एक-दूसरेकी वस्तु लूट-खसोट लेते हैं तथा उन्हें मार भी डालते हैं। उस विनाशकारी संध्यांशके उपस्थित होनेपर अराजकता फैल जाती है। उस समय सारी प्रजामें परस्पर भय बना रहता है।

व्याकुलास्ता: परावृत्तास्त्यक्त्वा देवगृहाणि तु।
स्वान् स्वान् प्राणानवेक्षन्तो निष्कारुण्यात्सुदु:खिता: ॥ ६८

नष्टे श्रौतस्मृते धर्मे कामक्रोधवशानुगा:।
निर्मर्यादा निरानन्दा नि:स्नेहा निरपत्रपा: ॥ ६९

नष्टे धर्मे प्रतिहता ह्रस्वका: पञ्चविंशका:।
हित्वा दारांश्च पुत्रांश्च विषादव्याकुलप्रजा: ॥ ७०

अनावृष्टिहतास्ते वै वार्तामुत्सृज्य दु:खिता:।
आश्रयन्ति स्म प्रत्यन्तान् हित्वा जनपदान् स्वकान् ॥ ७१

लोग व्याकुल होकर देवताओं और गृहोंको छोड़कर उनसे मुख मोड़ लेते हैं। सभीको अपने-अपने प्राणोंकी रक्षाकी चिन्ता लगी रहती है। क्रूरताका बोलबाला होनेके कारण लोग अत्यन्त दु:खी रहते हैं। श्रौत एवं स्मार्त धर्म नष्ट हो जाता है। सभी लोग काम और क्रोधके वशीभूत हो जाते हैं। वे मर्यादा, आनन्द, स्नेह और लज्जासे रहित हो जाते हैं। धर्मके नष्ट हो जानेपर वे भी विनष्ट हो जाते हैं। उनका कद छोटा हो जाता है और उनकी आयु पचीस वर्षकी हो जाती है। विषादसे व्याकुल हुए लोग अपनी पत्नी और पुत्रोंको भी छोड़ देते हैं। वे अकालसे पीड़ित होनेके कारण जीविकाके साधनोंका परित्याग कर कष्ट झेलते हैं तथा अपने जनपदोंको छोड़कर निकटवर्ती देशोंकी शरण लेते हैं॥ ५९—७१ ॥

सरित: सागरानूपान् सेवन्ते पर्वतानपि।
चीरकृष्णाजिनधरा निष्क्रिया निष्परिग्रहा: ॥ ७२

वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा: संकरं घोरमास्थिता:।
एवं कष्टमनुप्राप्ता ह्यल्पशेषा: प्रजास्तत: ॥ ७३

जन्तवश्च क्षुधाविष्टा दु:खान्निर्वेदमागमन्।
संश्रयन्ति च देशांस्तांश्चक्रवत् परिवर्तना: ॥ ७४

तत: प्रजास्तु ता: सर्वा मांसाहारा भवन्ति हि।
मृगान् वराहान् वृषभान् ये चान्ये वनचारिण: ॥ ७५

भक्ष्यांश्चैवाप्यभक्ष्यांश्च सर्वांस्तान् भक्षयन्ति ता:।
समुद्रसंश्रिता यास्तु नदीश्चैव प्रजास्तु ता: ॥ ७६

तेऽपि मत्स्यान् हरन्तीह आहारार्थं च सर्वश:।
अभक्ष्याहारदोषेण एकवर्णगता: प्रजा: ॥ ७७

यथा कृतयुगे पूर्वमेकवर्णमभूत् किल।
तथा कलियुगस्यान्ते शूद्रीभूता: प्रजास्तथा* ॥ ७८

एवं वर्षशतं पूर्णं दिव्यं तेषां न्यवर्तत।
षट्त्रिंशच्च सहस्राणि मानुषाणि तु तानि वै ॥ ७९

अथ दीर्घेण कालेन पक्षिण: पशवस्तथा।
मत्स्याश्चैव हता: सर्वै: क्षुधाविष्टैश्च सर्वश: ॥ ८०

कुछ लोग भागकर नदियों, समुद्र-तटवर्ती भागों तथा पर्वतोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। वल्कल और काला मृगचर्म ही उनका परिधान होता है। वे क्रियाहीन और परिग्रहरहित हो जाते हैं तथा वर्णाश्रमधर्मसे भ्रष्ट होकर घोर संकर-धर्ममें आस्था करने लगते हैं। उस समय स्वल्प मात्रामें बची हुई प्रजा इस प्रकार कष्ट झेलती है। क्षुधासे पीड़ित जीव-जन्तु दु:खके कारण अपने जीवनसे ऊब जाते हैं, किंतु चक्रकी तरह घूमते हुए पुन: उन्हीं देशोंका आश्रय ग्रहण करते हैं। तदनन्तर वे सारी प्रजाएँ मांसाहारी हो जाती हैं। उनमें भक्ष्याभक्ष्यका विचार लुप्त हो जाता है। वे मृगों, सूकरों, वृषभों तथा अन्यान्य सभी वनचारी जीवोंको खाने लगती हैं। जो प्रजाएँ नदियों और समुद्रोंके तटपर निवास करती हैं, वे भी भोजनके लिये सर्वत्र मछलियोंको पकड़ती हैं। इस प्रकार अभक्ष्य भोजनके दोषके कारण सारी प्रजा एक वर्णकी हो जाती हैं, अर्थात् वर्णधर्म नष्ट हो जाता है। जैसे पहले कृतयुगमें एक ही (हंसनामका) वर्ण था, उसी तरह कलियुगके अन्तमें सारी प्रजाएँ शूद्रवर्णकी हो जाती हैं। इस प्रकार उन प्रजाओंके पूरे एक सौ दिव्य वर्ष तथा मानुष गणनाके अनुसार छत्तीस हजार वर्ष व्यतीत होते हैं। इतने लम्बे समयमें क्षुधासे पीड़ित वे सभी लोग सर्वत्र पशुओं, पक्षियों और मछलियोंको मारकर

* कलियुगका वर्णन अन्य पुराणों, सुभाषितों, गोस्वामीजीके मानसादि काव्यों तथा समर्थरामदासजीके दासबोध आदिमें भी बड़े आकर्षक ढंगसे हुआ है, जिनके अध्ययनसे लोग दोषोंसे बचते हैं। पर मत्स्यपुराण-जितना विस्तृत वर्णन वायु, ब्रह्माण्डादि पुराणों एवं महाभारत-वनपर्वमें भी नहीं हुआ है। तथापि वहाँ भी यह प्रसङ्ग प्राय: कुछ कम इन्हीं श्लोकोंमें मिलता है।

निःशेषेष्वथ सर्वेषु मत्स्यपक्षिपशुष्वथ।
संध्यांशे प्रतिपन्ने तु निःशेषास्तु तदा कृताः॥ ८१

ततः प्रजास्तु सम्भूय कन्दमूलमथोऽखनन्।
फलमूलाशनाः सर्वे अनिकेतास्तथैव च॥ ८२

वल्कलान्यथ वासांसि अधःशय्याश्च सर्वशः।
परिग्रहो न तेष्वस्ति धनं शुद्धिरथापि वा॥ ८३

खा डालते हैं। इस प्रकार जब संध्यांशके प्रवृत्त होनेपर सारे मछली, पक्षी और पशु मारकर निःशेष कर दिये जाते हैं, तब पुनः लोग कन्द-मूल खोदकर खाने लगते हैं। उस समय वे सभी गृहरहित होकर फल-मूलपर ही जीवन-निर्वाह करते हैं। वल्कल ही उनका वस्त्र होता है। वे सर्वत्र भूमिपर ही शयन करते हैं। उनके परिग्रह (स्त्री-परिवार आदि), अर्थशुद्धि और शौचाचार आदि सब नष्ट हो जाते हैं॥ ७२—८३॥

एवं क्षयं गमिष्यन्ति ह्यल्पशिष्टाः प्रजास्तदा।
तासामल्पावशिष्टानामाहाराद् वृद्धिरिष्यते॥ ८४

एवं वर्षशतं दिव्यं संध्यांशस्तस्य वर्तते।
ततो वर्षशतस्यान्ते अल्पशिष्टाः स्त्रियः सुताः॥ ८५

मिथुनानि तु ताः सर्वा ह्यन्योन्यं सम्प्रजज्ञिरे।
ततस्तास्तु म्रियन्ते वै पूर्वोत्पन्नाः प्रजास्तु याः॥ ८६

जातमात्रेष्वपत्येषु ततः कृतमवर्तत।
यथा स्वर्गे शरीराणि नरके चैव देहिनाम्॥ ८७

उपभोगसमर्थानि एवं कृतयुगादिषु।
एवं कृतस्य संतानः कलेश्चैव क्षयस्तथा॥ ८८

विचारणात्तु निर्वेदः साम्यावस्थात्मना तथा।
ततश्चैवात्मसम्बोधः सम्बोधाद्धर्मशीलता॥ ८९

कलिशिष्टेषु तेष्वेवं जायन्ते पूर्ववत् प्रजाः।
भाविनोऽर्थस्य च बलात्ततः कृतमवर्तत॥ ९०

अतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह।
एते युगस्वभावास्तु मयोक्तास्तु समासतः॥ ९१

इस प्रकार उस समय थोड़ी बची हुई प्रजाएँ नष्ट हो जाती हैं। उनमें भी जो थोड़ी शेष रह जाती हैं, उनकी आहार-शुद्धिके कारण वृद्धि होती है। इस प्रकार कलियुगका संध्यांश एक सौ दिव्य वर्षोंका होता है। उन सौ वर्षोंके बीत जानेपर जो अल्पजीवी संतानोत्पत्ति होती है और इसके पूर्व जो प्रजाएँ उत्पन्न हुई थीं, वे सभी मर जाती हैं। उन संतानोंके उत्पन्न होनेपर कृतयुगका प्रारम्भ होता है। जैसे (मृत्युके पश्चात् प्राप्त हुए) प्राणियोंके शरीर स्वर्ग और नरकमें उपभोगके योग्य होते हैं, उसी तरह कृतयुग आदि युगोंमें भी होता है। उसी प्रकार वह नूतन संतान कृतयुगकी वृद्धि और कलियुगके विनाशका कारण होता है। आत्माकी साम्यावस्थाके विचारसे विरक्ति उत्पन्न होती है, उससे आत्मज्ञान होता है और ज्ञानसे धर्म-बुद्धि होती है। इसी कारण कलियुगके अन्तमें बचे हुए लोगोंमें भावी प्रयोजनके प्रभावसे पुनः पूर्ववत् प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। तदनन्तर कृतयुगका आरम्भ होता है। उस समय मन्वन्तरोंमें जो भूत एवं भावी कर्म होते रहे हैं, वे सभी आवृत्त होने लगते हैं। इस प्रकार मैंने संक्षेपसे युगोंके स्वभावका वर्णन कर दिया॥ ८४—९१॥

विस्तरेणानुपूर्व्याच्च नमस्कृत्य स्वयम्भुवे।
प्रवृत्ते तु ततस्तस्मिन् पुनः कृतयुगे तु वै॥ ९२

उत्पन्नाः कलिशिष्टेषु प्रजाः कार्तयुगास्तथा।
तिष्ठन्ति चेह ये सिद्धा अदृष्टा विहरन्ति च॥ ९३

सह सप्तर्षिभिर्ये तु तत्र ये च व्यवस्थिताः।
ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्रा बीजार्थे य इह स्मृताः॥ ९४

तेषां सप्तर्षयो धर्मं कथयन्तीह तेषु च॥
वर्णाश्रमाचारयुतं श्रौतस्मार्तविधानतः।
एवं तेषु क्रियावत्सु प्रवर्तन्तीह वै कृते॥ ९५

अब मैं पुनः कृतयुगके प्रवृत्त होनेपर ब्रह्माको नमस्कार करके उसका विस्तारपूर्वक आनुपूर्वी वर्णन कर रहा हूँ। कलियुगके अन्तमें बचे हुए लोगोंमें कृतयुगकी तरह ही संतानोत्पत्ति होती है। उस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातियोंके बीजकी रक्षाके लिये जो सिद्धगण अदृष्टरूपसे विचरण करते हुए वर्तमान रहते हैं, वे सभी तथा सप्तर्षियोंके साथ जो अन्य लोग स्थित रहते हैं, वे सभी मिलकर कृतयुगमें क्रियाशील संततियोंके प्रति व्यवस्थाका विधान करते हैं और सप्तर्षिगण उन्हें श्रौत एवं स्मार्त विधिके अनुसार वर्ण एवं आश्रमके आचारसे सम्पन्न

श्रौतस्मार्तस्थितानां तु धर्मे सप्तर्षिदर्शिते।
ते तु धर्मव्यवस्थार्थं तिष्ठन्तीह कृते युगे॥ ९६
मन्वन्तराधिकारेषु तिष्ठन्ति ऋषयस्तु ते।
यथा दावप्रदग्धेषु तृणेष्वेवापरं तृणम्॥ ९७
वनानां प्रथमं वृष्ट्या तेषां मूलेषु सम्भवः।
एवं युगाद्युगानां वै संतानस्तु परस्परम्॥ ९८
प्रवर्तते ह्यविच्छेदाद् यावन्मन्वन्तरक्षयः।
सुखमायुर्बलं रूपं धर्मार्थौ काम एव च॥ ९९
युगेष्वेतानि हीयन्ते त्रयः पादाः क्रमेण तु।
इत्येष प्रतिसंधिर्वः कीर्तितस्तु मया द्विजाः॥ १००

धर्मका उपदेश देते हैं। इस प्रकार सप्तर्षियोंद्वारा प्रदर्शित धर्ममार्गपर चलती हुई सारी प्रजा श्रौत एवं स्मार्त विधिका पालन करती है। वे सप्तर्षि धर्मकी व्यवस्था करनेके लिये कृतयुगमें स्थित रहते हैं। वे ही ऋषिगण मन्वन्तरोंके कार्यकालतक स्थित रहते हैं। जैसे वनोंमें दावाग्निसे जली हुई घासोंकी जड़में प्रथम वृष्टि होनेपर पुनः अङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मन्वन्तरकी समाप्तिपर्यन्त एकसे दूसरे युगमें अविच्छिन्नरूपसे प्रजाओंमें परस्पर संतानकी परम्परा चलती रहती है। सुख, आयु, बल, रूप, धर्म, अर्थ, काम—ये सब क्रमशः आनेवाले युगोंमें तीन चरणसे हीन हो जाते हैं। द्विजवरो! इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे युगकी प्रतिसंधिका वर्णन किया॥ ९२—१००॥

चतुर्युगाणां सर्वेषामेतदेव प्रसाधनम्।
एषां चतुर्युगाणां तु गणिता ह्येकसप्ततिः॥ १०१
क्रमेण परिवृत्तास्ता मनोरन्तरमुच्यते।
युगाख्यासु तु सर्वासु भवतीह यदा च यत्॥ १०२
तदेव च तदन्यासु पुनस्तद्वै यथाक्रमम्।
सर्गे सर्गे यथा भेदा ह्युत्पद्यन्ते तथैव च॥ १०३
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह।
आसुरी यातुधानी च पैशाची यक्षराक्षसी॥ १०४
युगे युगे तदा काले प्रजा जायन्ति ताः शृणु।
यथाकल्पं युगैः सार्धं भवन्ते तुल्यलक्षणाः॥ १०५
इत्येतल्लक्षणं प्रोक्तं युगानां वै यथाक्रमम्।
मन्वन्तराणां परिवर्तनानि
चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात्।
क्षणं न संतिष्ठति जीवलोकः
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः॥ १०६
एते युगस्वभावा वः परिक्रान्ता यथाक्रमम्।
मन्वन्तराणि यान्यस्मिन् कल्पे वक्ष्यामि तानि च॥ १०७

यही नियम सभी—चारों युगोंके लिये हैं। ये चारों युग जब क्रमशः इकहत्तर बार बीत जाते हैं, तब उसे एक मन्वन्तरका समय कहा जाता है। एक मन्वन्तरके युगोंमें जैसा कार्यक्रम होता है, वैसा ही अन्य मन्वन्तरके युगोंमें भी क्रमशः होता रहता है। प्रत्येक सर्गमें जैसे भेद उत्पन्न होते हैं, वैसे ही चौदहों मन्वन्तरोंमें समझना चाहिये। प्रत्येक युगमें समयानुसार असुर, यातुधान, पिशाच, यक्ष और राक्षस स्वभाववाली प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। अब उनके विषयमें सुनिये। कल्पानुसार युगोंके साथ-साथ उन्हींके अनुरूप लक्षणोंवाली प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार क्रमशः युगोंका यह लक्षण बतलाया गया। मन्वन्तरोंका यह परिवर्तन युगोंके स्वभावानुसार चिरकालसे चला आ रहा है। इसलिये यह जीवलोक उत्पत्ति और विनाशके चक्रमें फँसा हुआ क्षणमात्र भी स्थिर नहीं रहता। इस प्रकार आपलोगोंको ये युगस्वभाव क्रमशः बतलाये जा चुके। अब इस कल्पमें जितने मन्वन्तर हैं, उनका वर्णन करूँगा॥ १०१—१०७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरानुकीर्तनयुगवर्तनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्वन्तरानुकीर्तनयुगवर्तन नामक एक सौ चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४४॥

एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

युगानुसार प्राणियोंकी शरीर-स्थिति एवं वर्ण-व्यवस्थाका वर्णन, श्रौत-स्मार्त, धर्म, तप, यज्ञ, क्षमा, शम, दया आदि गुणोंका लक्षण, चातुर्होत्रकी विधि तथा पाँच प्रकारके ऋषियोंका वर्णन

सूत उवाच

मन्वन्तराणि यानि स्युः कल्पे कल्पे चतुर्दश।
व्यतीतानागतानि स्युर्यानि मन्वन्तरेष्विह॥ १
विस्तरेणानुपूर्व्याच्च स्थितिं वक्ष्ये युगे युगे।
तस्मिन् युगे च सम्भूतिर्यासां यावच्च जीवितम्॥ २
युगमात्रं तु जीवन्ति न्यूनं तत् स्याद् द्वयेन च।
चतुर्दशसु तावन्तो ज्ञेया मन्वन्तरेष्विह॥ ३
मनुष्याणां पशूनां च पक्षिणां स्थावरैः सह।
तेषामायुरुपक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः॥ ४
तथैवायुः परिक्रान्तं युगधर्मेषु सर्वशः।
अस्थितिं च कलौ दृष्ट्वा भूतानामायुषश्च वै॥ ५
परमायुः शतं त्वेतन्मानुषाणां कलौ स्मृतम्।
देवासुरमनुष्याश्च यक्षगन्धर्वराक्षसाः॥ ६
परिणाहोच्छ्रये तुल्या जायन्तेह कृते युगे।
षण्णवत्यङ्गुलोत्सेधो ह्यष्टानां देवयोनिनाम्॥ ७
नवाङ्गुलप्रमाणेन निष्पन्नेन तथाष्टकम्।
एतत्स्वाभाविकं तेषां प्रमाणमधिकुर्वताम्॥ ८
मनुष्या वर्तमानास्तु युगसंध्यांशकेष्विह।
देवासुरप्रमाणं तु सप्तसप्ताङ्गुलं क्रमात्॥ ९
चतुराशीतिकैश्चैव कलिजैरङ्गुलैः स्मृतम्।
आपादतो मस्तकं तु नवतालो भवेत्तु यः॥ १०
संहत्याजानुबाहुश्च दैवतैरभिपूज्यते।
गवां च हस्तिनां चैव महिषस्थावरात्मनाम्॥ ११
क्रमेणैतेन विज्ञेये ह्रासवृद्धी युगे युगे।
षट्सप्तत्यङ्गुलोत्सेधः पशुराककुदो भवेत्॥ १२
अङ्गुलानामष्टशतमुत्सेधो हस्तिनां स्मृतः।
अङ्गुलानां सहस्रं तु द्विचत्वारिंशदङ्गुलम्॥ १३
शतार्धमङ्गुलानां तु ह्युत्सेधः शाखिनां परः।
मानुषस्य शरीरस्य संनिवेशस्तु यादृशः॥ १४

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! प्रत्येक कल्पमें जो चौदह मन्वन्तर होते हैं, उनमें जो बीत चुके हैं तथा जो आनेवाले हैं, उन मन्वन्तरोंके प्रत्येक युगमें प्रजाओंकी जैसी उत्पत्ति और स्थिति होती है तथा जितना उनका आयु-प्रमाण होता है, इन सबका विस्तारपूर्वक आनुपूर्वीक्रमसे वर्णन कर रहा हूँ। उनमें कुछ प्राणी तो युगपर्यन्त जीवित रहते हैं और कुछ उनसे कम समयतक ही जीते हैं। दोनों प्रकारकी बातें देखी जाती हैं। ऐसी ही विधि चौदहों मन्वन्तरोंमें जाननी चाहिये। सर्वत्र युगधर्मानुसार मनुष्यों, पशुओं, पक्षियों और स्थावरोंकी आयु घटती जाती है। कलियुगमें युगधर्मानुसार सर्वत्र प्राणियोंकी आयुकी अस्थिरता देखकर मनुष्योंकी परमायु सौ वर्षकी बतलायी गयी है। कृतयुगमें देवता, असुर, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व और राक्षस— ये सभी एक ही विस्तार और ऊँचाईके शरीरवाले उत्पन्न होते हैं। उनमें आठ प्रकारकी देवयोनियोंमें उत्पन्न होनेवाले देवोंके शरीर छानबे अंगुल ऊँचे और नौ अंगुल विस्तृत निष्पन्न होते हैं, यह उनकी आयुका स्वाभाविक प्रमाण है। अन्य देवताओं तथा असुरोंके शरीरका विस्तार क्रमशः सात-सात अंगुलका होता है। कलियुगके संध्यांशमें उत्पन्न होनेवाले मनुष्योंके शरीर कलियुगोत्पन्न मानवोंके अंगुलप्रमाणसे चौरासी अंगुलके होते हैं॥ १—९½॥

जिसका शरीर पैरसे लेकर मस्तकपर्यन्त नौ बित्ता-(एक सौ आठ अंगुल)-का होता है तथा भुजाएँ जानुतक लम्बी होती हैं, उसका देवतालोग भी आदर करते हैं। प्रत्येक युगमें गौओं, हाथियों, भैंसों और स्थावर प्राणियोंके शरीरोंका ह्रास एवं वृद्धि इसी क्रमसे जाननी चाहिये। पशु अपने कुकुद (मौर)-तक छिहत्तर अंगुल ऊँचा होता है। हाथियोंके शरीरकी ऊँचाई एक सौ आठ अंगुलकी बतलायी जाती है। वृक्षोंकी अधिक-से-अधिक ऊँचाई एक हजार चानबे अंगुलकी होती है। मनुष्यके शरीरका जैसा आकार-प्रकार होता है,

तल्लक्षणं तु देवानां दृश्यतेऽन्वयदर्शनात्।
बुद्ध्यातिशयसंयुक्तो देवानां काय उच्यते॥ १५
तथा नातिशयश्चैव मानुषः काय उच्यते।
इत्येव हि परिक्रान्ता भावा ये दिव्यमानुषाः॥ १६
पशूनां पक्षिणां चैव स्थावराणां च सर्वशः।
गावोऽजाश्वाश्च विज्ञेया हस्तिनः पक्षिणो मृगाः॥ १७
उपयुक्ताः क्रियास्वेते यज्ञियास्त्विह सर्वशः।
यथाक्रमोपभोगाश्च देवानां पशुमूर्तयः॥ १८
तेषां रूपानुरूपैश्च प्रमाणैः स्थिरजङ्गमाः।
मनोज्ञैस्तत्र तैर्भोगैः सुखिनो ह्युपपेदिरे॥ १९

वही लक्षण वंशपरम्परावश देवताओंमें भी देखा जाता है। देवताओंका शरीर केवल बुद्धिकी अतिशयतासे युक्त बतलाया जाता है। मानव-शरीरमें बुद्धिकी उतनी अधिकता नहीं रहती। इस प्रकार देवताओं और मानवोंके शरीरोंमें उत्पन्न हुए जो भाव हैं, वे पशुओं, पक्षियों और स्थावर प्राणियोंके शरीरोंमें भी पाये जाते हैं। गौ, बकरा, घोड़ा, हाथी, पक्षी और मृग—इनका सर्वत्र यज्ञीय कर्मोंमें उपयोग होता है तथा ये पशुमूर्तियाँ क्रमशः देवताओंके उपभोगमें प्रयुक्त होती हैं। उन उपभोक्ता देवताओंके रूप और प्रमाणके अनुरूप ही उन चर-अचर प्राणियोंकी मूर्तियाँ होती हैं। वे उन मनोज्ञ भोगोंका उपभोग करके सुखका अनुभव करते हैं॥ १०—१९॥

अथ सन्तः प्रवक्ष्यामि साधूनथ ततश्च वै।
ब्राह्मणाः श्रुतिशब्दाश्च देवानां व्यक्तमूर्तयः।
सम्पूज्या ब्रह्मणा ह्येतास्तेन सन्तः प्रचक्षते॥ २०
सामान्येषु च धर्मेषु तथा वैशेषिकेषु च।
ब्रह्मक्षत्रविशो युक्ताः श्रौतस्मार्तेन कर्मणा॥ २१
वर्णाश्रमेषु युक्तस्य सुखोदर्कस्य स्वर्गतौ।
श्रौतस्मार्तो हि यो धर्मो ज्ञानधर्मः स उच्यते॥ २२
दिव्यानां साधनात् साधुर्ब्रह्मचारी गुरोर्हितः।
कारणात् साधनाच्चैव गृहस्थः साधुरुच्यते॥ २३
नपसश्च तथारण्ये साधुर्वैखानसः स्मृतः।
यतमानो यतिः साधुः स्मृतो योगस्य साधनात्॥ २४
धर्मो धर्मगतिः प्रोक्तः शब्दो ह्येष क्रियात्मकः।
कुशलाकुशलौ चैव धर्माधर्मौ ब्रवीत् प्रभुः॥ २५
अथ देवाश्च पितरः ऋषयश्चैव मानुषाः।
अयं धर्मो ह्ययं नेति ब्रुवते मौनमूर्तिना॥ २६
धर्मेति धारणे धातुर्महत्त्वे चैव उच्यते।
अधारणेऽमहत्त्वे वाधर्मः स तु निरुच्यते॥ २७
तत्रेष्टप्रापको धर्म आचार्यैरुपदिश्यते।
अधर्मश्चानिष्टफलं आचार्यैर्नोपदिश्यते॥ २८

अब मैं संतों तथा साधुओंका वर्णन कर रहा हूँ। ब्राह्मण ग्रन्थ और श्रुतियोंके शब्द—ये भी देवताओंकी निर्देशिका-मूर्तियाँ हैं। अन्तःकरणमें इनके तथा ब्रह्माका संयोग बना रहता है, इसलिये ये संत कहलाते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सामान्य एवं विशेष धर्मोंमें सर्वत्र श्रौत एवं स्मार्त विधिके अनुसार कर्मका आचरण करते हैं। वर्णाश्रम-धर्मोंके पालनमें तत्पर तथा स्वर्ग-प्राप्तिमें सुख माननेवाले लोगोंद्वारा आचरित जो श्रुति एवं स्मृतिसम्बन्धी धर्म है, उसे ज्ञानधर्म कहा जाता है। दिव्य सिद्धियोंकी साधनामें संलग्न तथा गुरुका हितैषी होनेके कारण ब्रह्मचारीको साधु कहते हैं। (अन्य आश्रमोंकी जीविकाका) निमित्त तथा स्वयं साधनामें निरत होनेके कारण गृहस्थ भी साधु कहलाता है। वनमें तपस्या करनेवाला साधु वैखानस नामसे अभिहित होता है। योगकी साधनामें प्रयत्नशील संन्यासीको भी साधु कहते हैं। 'धर्म' शब्द क्रियात्मक है और यह धर्माचरणमें ही प्रयुक्त होनेवाला कहा गया है। सामर्थ्यशाली भगवान्ने धर्मको कल्याणकारक और अधर्मको अनिष्टकारक बतलाया है तथा देवता, पितर, ऋषि और मानव 'यह धर्म है और यह धर्म नहीं है' ऐसा कहकर मौन धारण कर लेते हैं। 'धृ' धातु धारण करने तथा महत्त्वके अर्थमें प्रयुक्त होती है। अधारण एवं अधर्म शब्दका अर्थ इसके विपरीत है। आचार्यलोग इष्टकी प्राप्ति करानेवाले धर्मका ही उपदेश करते हैं। अधर्म अनिष्ट-फलदायक होता है, इसलिये आचार्यगण उसका उपदेश नहीं करते।

वृद्धाश्चालोलुपाश्चैव आत्मवन्तो ह्यदाम्भिकाः।
सम्यग्विनीता मृदवस्तानाचार्यान् प्रचक्षते॥ २९
धर्मज्ञैर्विहितो धर्मः श्रौतस्मार्तो द्विजातिभिः।
दाराग्निहोत्रसम्बन्धमिज्या श्रौतस्य लक्षणम्॥ ३०
स्मार्तो वर्णाश्रमाचारो यमैश्च नियमैर्युतः।
पूर्वेभ्यो वेदयित्वेह श्रौतं सप्तर्षयोऽब्रुवन्॥ ३१
ऋचो यजूंषि सामानि ब्रह्मणोऽङ्गानि वै श्रुतिः।
मन्वन्तरस्यातीतस्य स्मृत्वा तन्मनुरब्रवीत्॥ ३२
तस्मात्स्मार्तः स्मृतो धर्मो वर्णाश्रमविभागशः।
एवं वै द्विविधो धर्मः शिष्टाचारः स उच्यते॥ ३३
शिषेर्धातोश्च निष्ठान्ताच्छिष्टशब्दं प्रचक्षते।
मन्वन्तरेषु ये शिष्टा इह तिष्ठन्ति धार्मिकाः॥ ३४
मनुः सप्तर्षयश्चैव लोकसन्तानकारिणः।
तिष्ठन्तीह च धर्मार्थं ताञ्छिष्टान् सम्प्रचक्षते॥ ३५
तैः शिष्टैश्चलितो धर्मः स्थाप्यते वै युगे युगे।
त्रयी वार्ता दण्डनीतिः प्रजावर्णाश्रमेप्सया॥ ३६
शिष्टैराचर्यते यस्मात्पुनश्चैव मनुक्षये।
पूर्वैः पूर्वैर्मतत्वाच्च शिष्टाचारः स शाश्वतः॥ ३७
दानं सत्यं तपोऽलोभो विद्येज्या पूजनं दमः।
अष्टौ तानि चरित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम्॥ ३८
शिष्टा यस्माच्चरन्त्येनं मनुः सप्तर्षयश्च ह।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु शिष्टाचारस्ततः स्मृतः॥ ३९
विज्ञेयः श्रवणाच्छ्रौतः स्मरणात् स्मार्त उच्यते।
इज्यावेदात्मकः श्रौतः स्मार्तो वर्णाश्रमात्मकः॥ ४०

जो वृद्ध, निर्लोभ, आत्मज्ञानी, निष्कपट, अत्यन्त विनम्र तथा मृदुल स्वभाववाले होते हैं, उन्हें आचार्य कहा जाता है। धर्मके ज्ञाता द्विजातियोंद्वारा श्रौत एवं स्मार्त-धर्मका विधान किया गया है। इनमें दारसम्बन्ध (विवाह), अग्निहोत्र और यज्ञ—ये श्रौत-धर्मके लक्षण हैं तथा यम और नियमोंसे युक्त वर्णाश्रमका आचरण स्मार्त-धर्म कहलाता है॥ २०—३० १/२॥

सप्तर्षियोंने पूर्ववर्ती ऋषियोंसे श्रौत-धर्मका ज्ञान प्राप्त करके पुनः उसका उपदेश किया था। ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—ये ब्रह्माके अङ्ग हैं। व्यतीत हुए मन्वन्तरके धर्मोंका स्मरण करके मनुने उनका उपदेश किया है। इसलिये वर्णाश्रमके विभागानुसार प्रयुक्त हुआ धर्म स्मार्त कहलाता है। इस प्रकार श्रौत एवं स्मार्तरूप द्विविध धर्मको शिष्टाचार कहते हैं। 'शिष्' धातुसे निष्ठासंज्ञक 'क्त' प्रत्ययका संयोग होनेसे 'शिष्ट' शब्द निष्पन्न होता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें इस भूतलपर जो धार्मिकलोग वर्तमान रहते हैं, उन्हें शिष्ट कहा जाता है। इस प्रकार लोककी वृद्धि करनेवाले सप्तर्षि और मनु इस भूतलपर धर्मका प्रचार करनेके लिये स्थित रहते हैं, अतः वे शिष्ट शब्दसे अभिहित होते हैं। वे शिष्टगण प्रत्येक युगमें मार्ग-भ्रष्ट हुए धर्मकी पुनः स्थापना करते हैं। इसीलिये शिष्टगण दूसरे मन्वन्तरमें प्रजाओंके वर्णाश्रम-धर्मकी सिद्धिके लिये पुनः वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद), वार्ता (कृषिव्यापार) और दण्डनीतिका आचरण करते हैं। इस प्रकार पूर्वके युगोंमें उपस्थित पूर्वजोंद्वारा अभिमत होनेके कारण यह शिष्टाचार सनातन होता है। दान, सत्य, तपस्या, निर्लोभता, विद्या, यज्ञानुष्ठान, पूजन और इन्द्रियनिग्रह—ये आठ आचरण शिष्टाचारके लक्षण हैं। चूँकि मनु और सप्तर्षि आदि शिष्टगण सभी मन्वन्तरोंमें इस लक्षणके अनुसार आचरण करते हैं, इसलिये इसे शिष्टाचार कहा जाता है। इस प्रकार पूर्वानुक्रमसे श्रवण किये जानेके कारण श्रुतिसम्बन्धी धर्मको श्रौत जानना चाहिये और स्मरण होनेके कारण स्मृति-प्रतिपादित धर्मको स्मार्त कहा जाता है। श्रौतधर्म यज्ञ और वेदस्वरूप है तथा स्मार्तधर्म वर्णाश्रमधर्म-नियामक है॥ ३१—४०॥

प्रत्यङ्गानि प्रवक्ष्यामि धर्मस्येह तु लक्षणम्॥ ४१

अब मैं धर्मके प्रत्येक अङ्गका लक्षण बतला रहा हूँ।

दृष्टानुभूतमर्थं च यः पृष्टो न विगूहते।
यथाभूतप्रवादस्तु इत्येतत् सत्यलक्षणम्॥ ४२

देखे तथा अनुभव किये हुए विषयके पूछे जानेपर उसे न छिपाना, अपितु घटित हुएके अनुसार यथार्थ कह देना—यह सत्यका लक्षण है।

ब्रह्मचर्यं तपो मौनं निराहारत्वमेव च।
इत्येतत् तपसो रूपं सुघोरं तु दुरासदम्॥ ४३
पशूनां द्रव्यहविषामृक्सामयजुषां तथा।
ऋत्विजां दक्षिणायाश्च संयोगो यज्ञ उच्यते॥ ४४
आत्मवत्सर्वभूतेषु यो हिताय शुभाय च।
वर्तते सततं हृष्टः क्रिया श्रेष्ठा दया स्मृता॥ ४५
आक्रुष्टोऽभिहतो यस्तु नाक्रोशेत्प्रहरेदपि।
अदुष्टो वाङ्मनःकायैस्तितिक्षा सा क्षमा स्मृता॥ ४६
स्वामिना रक्ष्यमाणानामुत्सृष्टानां च सम्भ्रमे।
परस्वानामनादानमलोभ इति संज्ञितः॥ ४७
मैथुनस्यासमाचारो जल्पनाच्चिन्तनात्तथा।
निवृत्तिर्ब्रह्मचर्यं च तदेतच्छमलक्षणम्॥ ४८
आत्मार्थे वा परार्थे वा इन्द्रियाणीह यस्य वै।
विषये न प्रवर्तन्ते दमस्यैतत्तु लक्षणम्॥ ४९
पञ्चात्मके यो विषये कारणे चाष्टलक्षणे।
न क्रुध्येत प्रतिहतः स जितात्मा भविष्यति॥ ५०
यद्यदिष्टतमं द्रव्यं न्यायेनैवागतं च यत्।
तत्तद् गुणवते देयमित्येतद् दानलक्षणम्॥ ५१
श्रुतिस्मृतिभ्यां विहितो धर्मो वर्णाश्रमात्मकः।
शिष्टाचारप्रवृद्धश्च धर्मोऽयं साधुसम्मतः॥ ५२
अप्रद्वेष्यो ह्यनिष्टेषु इष्टं वै नाभिनन्दति।
प्रीतितापविषादानां विनिवृत्तिर्विरक्तता॥ ५३
संन्यासः कर्मणां न्यासः कृतानामकृतैः सह।
कुशलाकुशलाभ्यां तु प्रहाणं न्यास उच्यते॥ ५४
अव्यक्तादिविशेषान्तद् विकारोऽस्मिन्निवर्तते।
चेतनाचेतनं ज्ञात्वा ज्ञाने ज्ञानी स उच्यते॥ ५५
प्रत्यङ्गानि तु धर्मस्य चेत्येतल्लक्षणं स्मृतम्।
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैः पूर्वे स्वायम्भुवेऽन्तरे॥ ५६
अत्र वो वर्णयिष्यामि विधिं मन्वन्तरस्य तु।
तथैव चातुर्होत्रस्य चातुर्वर्ण्यस्य चैव हि॥ ५७

ब्रह्मचर्य, तपस्या, मौनावलम्बन और निराहार रहना—ये तपस्याके लक्षण हैं, जो अत्यन्त भीषण एवं दुष्कर हैं। जिसमें पशु, द्रव्य, हवि, ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, ऋत्विज् तथा दक्षिणाका संयोग होता है, उसे यज्ञ कहते हैं। जो अपनी ही भाँति समस्त प्राणियोंके प्रति उनके हित तथा मङ्गलके लिये निरन्तर हर्षपूर्वक व्यवहार करता है, उसकी वह श्रेष्ठ क्रिया दया कहलाती है। जो निन्दित होनेपर बदलेमें निन्दककी निन्दा नहीं करता तथा आघात किये जानेपर भी बदलेमें उसपर प्रहार नहीं करता, अपितु मन, वचन और शरीरसे प्रतीकारकी भावनासे रहित हो उसे सहन कर लेता है, उसकी उस क्रियाको क्षमा कहते हैं। स्वामीद्वारा रक्षाके लिये दिये गये तथा घबराहटमें छूटे हुए परकीय धनको न ग्रहण करना निर्लोभ नामसे कहा जाता है। मैथुनके विषयमें सुनने, कहने तथा चिन्तन करनेसे निवृत्त रहना ब्रह्मचर्य है और यही शमका लक्षण है॥ ४३—४८॥

जिसकी इन्द्रियाँ अपने अथवा परायेके हितके लिये विषयोंमें नहीं प्रवृत्त होतीं, यह दमका लक्षण है। जो पाँच कर्मेन्द्रियोंके विषयों तथा आठ प्रकारके कारणोंमें बाधित होनेपर भी क्रोध नहीं करता, वह जितात्मा कहलाता है। जो-जो पदार्थ अपनेको अभीष्ट हों तथा न्यायद्वारा उपार्जित किये गये हों, उन्हें गुणी व्यक्तिको दे देना—यह दानका लक्षण है। जो धर्म श्रुतियों एवं स्मृतियोंद्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रमके आचारसे युक्त तथा शिष्टाचारद्वारा परिवर्धित होता है, वही साधु-सम्मत धर्म कहलाता है। अनिष्टके प्राप्त होनेपर उससे द्वेष न करना, इष्टकी प्राप्तिपर उसका अभिनन्दन न करना तथा प्रेम, संताप और विषादसे विशेषतया निवृत्त हो जाना—यह विरक्ति (वैराग्य)-का लक्षण है। किये हुए कर्मोंका न किये गये कर्मोंके साथ त्याग कर देना अर्थात् कृत-अकृत दोनों प्रकारके कर्मोंका त्याग संन्यास कहलाता है तथा कुशल (शुभ) और अकुशल (अशुभ)—दोनोंके परित्यागको न्यास कहते हैं। जिस ज्ञानके प्राप्त होनेपर अव्यक्तसे लेकर विशेषपर्यन्त सभी प्रकारके विकार निवृत्त हो जाते हैं तथा चेतन और अचेतनका ज्ञान हो जाता है, उस ज्ञानसे युक्त प्राणीको ज्ञानी कहते हैं। स्वायम्भुव मन्वन्तरमें धर्मतत्त्वके ज्ञाता पूर्वकालीन ऋषियोंने धर्मके प्रत्येक अङ्गका यही लक्षण बतलाया है॥ ४९—५६॥

अब मैं आपलोगोंसे मन्वन्तरमें होनेवाले चारों वर्णोंके चातुर्होत्रकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ।

प्रतिमन्वन्तरं चैव श्रुतिरन्या विधीयते।
ऋचो यजूंषि सामानि यथावत्प्रतिदैवतम्॥ ५८
विधिहोत्रं तथा स्तोत्रं पूर्ववत् सम्प्रवर्तते।
द्रव्यस्तोत्रं गुणस्तोत्रं कर्मस्तोत्रं तथैव च॥ ५९
तथैवाभिजनस्तोत्रं स्तोत्रमेवं चतुर्विधम्।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु यथाभेदा भवन्ति हि॥ ६०
प्रवर्तयन्ति तेषां वै ब्रह्मस्तोत्रं पुनः पुनः।
एवं मन्त्रगुणानां तु समुत्पत्तिश्चतुर्विधम्॥ ६१
अथर्वऋग्यजुःसाम्नां वेदेष्विह पृथक् पृथक्।
ऋषीणां तप्यतां तेषां तपः परमदुश्चरम्॥ ६२
मन्त्राः प्रादुर्भवन्त्यादौ पूर्वमन्वन्तरस्य ह।
असंतोषाद् भयाद् दुःखान्मोहाच्छोकाच्च पञ्चधा॥ ६३
ऋषीणां तारका येन लक्षणेन यदृच्छया।
ऋषीणां यादृशत्वं हि तद् वक्ष्यामीह लक्षणम्॥ ६४
अतीतानागतानां च पञ्चधा ह्यार्षकं स्मृतम्।
तथा ऋषीणां वक्ष्यामि आर्षस्येह समुद्भवम्॥ ६५
गुणसाम्येन वर्तन्ते सर्वसम्प्रलये तदा।
अविभागेन देवानामनिर्देश्यतमोमये॥ ६६
अबुद्धिपूर्वकं तद् वै चेतनार्थं प्रवर्तते।
तेनार्षं बुद्धिपूर्वं तु चेतनेनाप्यधिष्ठितम्॥ ६७
प्रवर्तते तथा ते तु यथा मत्स्योदकावुभौ।
चेतनाधिकृतं सर्वं प्रावर्तत गुणात्मकम्॥
कार्यकारणभावेन तथा तस्य प्रवर्तते॥ ६८
विषयो विषयित्वं च तथा ह्यर्थपदात्मकौ।
कालेन प्रापणीयेन भेदाश्च कारणात्मकाः॥ ६९
सांसिद्धिकास्तदा वृत्ताः क्रमेण महदादयः।
महतोऽसावहङ्कारस्तस्माद् भूतेन्द्रियाणि च॥ ७०
भूतभेदाश्च भूतेभ्यो जज्ञिरे तु परस्परम्।
संसिद्धिकारणं कार्यं सद्य एव विवर्तते॥ ७१
यथोल्मुकात् तु विटपा एककालाद् भवन्ति हि।
तथा प्रवृत्ताः क्षेत्रज्ञाः कालेनैकेन कारणात्॥ ७२

प्रत्येक मन्वन्तरमें विभिन्न प्रकारकी श्रुतिका विधान होता है, किंतु ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद—ये तीनों वेद देवताओंसे संयुक्त रहते हैं। अग्निहोत्रकी विधि तथा स्तोत्र पूर्ववत् चलते रहते हैं। द्रव्यस्तोत्र, गुणस्तोत्र, कर्मस्तोत्र और अभिजनस्तोत्र—ये चार प्रकारके स्तोत्र होते हैं तथा सभी मन्वन्तरोंमें कुछ भेदसहित प्रकट होते हैं। उन्हींसे ब्रह्मस्तोत्रकी बारंबार प्रवृत्ति होती है। इस प्रकार मन्त्रोंके गुणोंकी समुत्पत्ति चार प्रकारकी होती है, जो अथर्व, ऋक्, यजुः और साम—इन चारों वेदोंमें पृथक्-पृथक् प्राप्त होती है। पूर्व मन्वन्तरके आदिमें परम दुष्कर तपस्यामें लगे हुए उन ऋषियोंके अन्तःकरणमें ये मन्त्र प्रादुर्भूत होते हैं। ये असंतोष, भय, कष्ट, मोह और शोकरूप पाँच प्रकारके कष्टोंसे ऋषियोंकी रक्षा करते हैं। अब ऋषियोंका जैसा लक्षण, जैसी इच्छा तथा जैसा व्यक्तित्व होता है, उसका लक्षण बतला रहा हूँ। भूतकालीन तथा भविष्यकालीन ऋषियोंमें आर्ष शब्दका प्रयोग पाँच प्रकारसे होता है। अब मैं आर्ष शब्दकी उत्पत्ति बतला रहा हूँ। समस्त महाप्रलयोंके समय जब सारा जगत् घोर अन्धकारसे आच्छादित हो जाता है, उस समय देवताओंका कोई विभाग नहीं रह जाता। तीनों गुण अपनी साम्यावस्थामें स्थित हो जाते हैं, तब जो विना ज्ञानका सहारा लिये चेतनताको प्रकट करनेके लिये प्रवृत्त होता है, उस चेतनाधिष्ठित ज्ञानयुक्त कर्मको आर्ष कहते हैं। वे मत्स्य और उदककी भाँति आधाराधेयरूपसे प्रवृत्त होते हैं। तब सारा त्रिगुणात्मक जगत् चेतनासे युक्त हो जाता है॥ ५७—६७ $\frac{1}{2}$॥

उस जगत्की प्रवृत्ति कार्य-कारण-भावसे उसी प्रकार होती है, जैसे विषय और विषयित्व तथा अर्थ और पद परस्पर घुले-मिले रहते हैं। प्राप्त हुए कालके अनुसार कारणात्मक भेद उत्पन्न हो जाते हैं। तब क्रमशः महत्तत्त्व आदि प्राकृतिक तत्त्व प्रकट होते हैं। उस महत्तत्त्वसे अहंकार और अहंकारसे भूतेन्द्रियोंकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् उन भूतोंसे परस्पर अनेकों प्रकारके भूत उत्पन्न होते हैं। तब प्रकृतिका कारण तुरंत ही कार्य-रूपमें परिणत हो जाता है। जैसे एक ही उल्मुक—मशालसे एक ही साथ अनेकों वृक्ष प्रकाशित हो जाते हैं, उसी प्रकार एक ही कारणसे एक ही समय अनेकों क्षेत्रज्ञ—जीव प्रकट हो जाते हैं।

यथान्धकारे खद्योतः सहसा सम्प्रदृश्यते।
तथा निवृत्तो ह्यव्यक्तः खद्योत इव सञ्ज्वलन्॥ ७३
स महात्मा शरीरस्थस्तत्रैव परिवर्तते।
महतस्तमसः पारे वैलक्षण्याद् विभाव्यते॥ ७४
तत्रैव संस्थितो विद्वांस्तपसोऽन्त इति श्रुतम्।
बुद्धिर्विवर्धतस्तस्य प्रादुर्भूता चतुर्विधा॥ ७५
ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं धर्मश्चेति चतुष्टयम्।
सांसिद्धिकान्यथैतानि अप्रतीतानि तस्य वै॥ ७६
महात्मनः शरीरस्य चैतन्यात् सिद्धिरुच्यते।
पुरि शेते यतः पूर्वं क्षेत्रज्ञानं तथापि च॥ ७७
पुरे शयानात् पुरुषः ज्ञानात् क्षेत्रज्ञ उच्यते।
यस्माद् धर्मात् प्रसूते हि तस्माद् वै धार्मिकः स्मृतः॥ ७८
सांसिद्धिके शरीरे च बुद्ध्याव्यक्तस्तु चेतनः।
एवं विवृत्तः क्षेत्रज्ञः क्षेत्रं ह्यनभिसंधितः॥ ७९
निवृत्तिसमकाले तु पुराणं तदचेतनम्।
क्षेत्रज्ञेन परिज्ञातं भोग्योऽयं विषयो मम॥ ८०
ऋषिर्हिंसागतौ धातुर्विद्या सत्यं तपः श्रुतम्।
एष संनिचयो यस्मात् ब्रह्मणस्तु ततस्त्वृषिः॥ ८१
निवृत्तिसमकालाच्च बुद्ध्याव्यक्त ऋषिस्त्वयम्।
ऋषते परमं यस्मात् परमर्षिस्ततः स्मृतः॥ ८२
गत्यर्थाद् ऋषतेर्धातोर्नामनिर्वृत्तिकारणम्।
यस्मादेष स्वयम्भूतस्तस्माच्च ऋषिता मता॥ ८३
सेश्वराः स्वयमुद्भूता ब्रह्मणो मानसाः सुताः।
निवर्तमानैस्तैर्बुद्ध्या महान् परिगतः परः॥ ८४
यस्मादृषिर्महत्त्वेन ज्ञेयास्तस्मान्महर्षयः।
ईश्वराणां सुतास्तेषां मानसाश्चौरसाश्च वै॥ ८५
ऋषिस्तस्मात् परत्वेन भूतादिर्ऋषयस्ततः।
ऋषिपुत्रा ऋषीकास्तु मैथुनाद् गर्भसम्भवाः॥ ८६
परत्वेन ऋषन्ते वै भूतादीन् ऋषिकास्ततः।
ऋषीकाणां सुता ये तु विज्ञेया ऋषिपुत्रकाः॥ ८७

जैसे घने अन्धकारमें सहसा जुगनू चमक उठता है, वैसे ही जुगनूकी तरह चमकता हुआ अव्यक्त प्रकट हो जाता है। वह महात्मा अव्यक्त शरीरमें ही स्थित रहता है और महान् अन्धकारको पार करके बड़ी विलक्षणतासे जाना जाता है। वह विद्वान् अव्यक्त अपनी तपस्याके अन्त समयतक वहीं स्थित रहता है, ऐसा सुना जाता है। वृद्धिको प्राप्त होते हुए उस अव्यक्तके हृदयमें चार प्रकारकी बुद्धि प्रादुर्भूत होती है। उन चारोंके नाम हैं—ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और धर्म। उस अव्यक्तके ये प्राकृतिक कर्म अगम्य हैं। महात्मा अव्यक्तके शरीरके चैतन्यसे सिद्धिका प्रादुर्भाव बतलाया जाता है। चूँकि वह पहले-पहल शरीरमें शयन करता है तथा उसे क्षेत्रका ज्ञान प्राप्त रहता है, इसलिये वह शरीरमें शयन करनेसे पुरुष और क्षेत्रका ज्ञान होनेसे क्षेत्रज्ञ कहलाता है। चूँकि वह धर्मसे उत्पन्न होता है, इसलिये उसे धार्मिक भी कहते हैं। प्राकृतिक शरीरमें बुद्धिका संयोग होनेसे वह अव्यक्त चेतन कहलाता है तथा क्षेत्रसे कोई प्रयोजन न होनेपर भी उसे क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। निवृत्तिके समय क्षेत्रज्ञ उस अचेतन पुराणपुरुषको जानता है कि यह मेरा भोग्य विषय है॥ ६८—८०॥

'ऋषि' धातुका हिंसा और गति-अर्थमें प्रयोग होता है। इसीसे 'ऋषि' शब्द निष्पन्न हुआ है। चूँकि उसे ब्रह्मासे विद्या, सत्य, तप, शास्त्र-ज्ञान आदि समूहोंकी प्राप्ति होती है, इसलिये उसे ऋषि कहते हैं। यह अव्यक्त ऋषि निवृत्तिके समय जब बुद्धि-बलसे परमपदको प्राप्त कर लेता है, तब वह परमर्षि कहलाता है। गत्यर्थक* 'ऋषी' धातुसे ऋषिनामकी निष्पत्ति होती है तथा वह स्वयं उत्पन्न होता है, इसलिये उसकी ऋषिता मानी गयी है। ब्रह्माके मानस पुत्र ऐश्वर्यशाली वे ऋषि स्वयं उत्पन्न हुए हैं। निवृत्तिमार्गमें लगे हुए वे ऋषि बुद्धिबलसे परम महान् पुरुषको प्राप्त कर लेते हैं। चूँकि वे ऋषि महान् पुरुषत्वसे युक्त रहते हैं, इसलिये महर्षि कहे जाते हैं। उन ऐश्वर्यशाली महर्षियोंको जो मानस एवं औरस पुत्र हुए, वे ऋषिपरक होनेके कारण प्राणियोंमें सर्वप्रथम ऋषि कहलाये। मैथुनद्वारा गर्भसे उत्पन्न हुए ऋषि-पुत्रोंको ऋषीक कहा जाता है। चूँकि ये जीवोंको ब्रह्मपरक बनाते हैं, इसलिये इन्हें ऋषिक कहा जाता है। ऋषिकके पुत्रोंको ऋषि-पुत्र जानना चाहिये।

* गतिके ज्ञान, मोक्ष और गमन यहाँ तीनों अर्थ विवक्षित हैं।

श्रुत्वा ऋषं परत्वेन श्रुतास्तस्माच्छ्रुतर्षयः।
अव्यक्तात्मा महात्मा वाहङ्कारात्मा तथैव च॥ ८८
भूतात्मा चेन्द्रियात्मा च तेषां तज्ज्ञानमुच्यते।

वे दूसरेसे ऋषिधर्मको सुनकर ज्ञानसम्पन्न होते हैं, इसलिये श्रुतर्षि कहलाते हैं। उनका वह ज्ञान अव्यक्तात्मा, महात्मा, अहंकारात्मा, भूतात्मा और इन्द्रियात्मा कहलाता है॥ ८१—८८ १/२॥

इत्येवमृषिजातिस्तु पञ्चधा नाम विश्रुता॥ ८९
भृगुर्मरीचिरत्रिश्च अङ्गिराः पुलहः क्रतुः।
मनुर्दक्षो वसिष्ठश्च पुलस्त्यश्चापि ते दश॥ ९०
ब्रह्मणो मानसा ह्येते उत्पन्नाः स्वयमीश्वराः।
परत्वेनर्षयो यस्मान्मतास्तस्मान्महर्षयः॥ ९१
ईश्वराणां सुतास्त्वेषामृषयस्तान् निबोधत।
काव्यो बृहस्पतिश्चैव कश्यपश्च्यवनस्तथा॥ ९२
उतथ्यो वामदेवश्च अगस्त्यः कौशिकस्तथा।
कर्दमो बालखिल्याश्च विश्रवाः शक्तिवर्धनः॥ ९३
इत्येते ऋषयः प्रोक्तास्तपसा ऋषितां गताः।
तेषां पुत्रानृषीकांस्तु गर्भोत्पन्नान् निबोधत॥ ९४
वत्सरो नग्नहूश्चैव भरद्वाजश्च वीर्यवान्।
ऋषिर्दीर्घतमाश्चैव बृहद्वक्षाः शरद्वतः॥ ९५
वाजिश्रवाः सुचिन्तश्च शावश्च सपराशरः।
शृङ्गी च शङ्खपाच्चैव राजा वैश्रवणस्तथा॥ ९६
इत्येते ऋषिकाः सर्वे सत्येन ऋषितां गताः।
ईश्वरा ऋषयश्चैव ऋषीका ये च विश्रुताः॥ ९७

इस प्रकार ऋषिजाति पाँच प्रकारसे विख्यात है। भृगु, मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलह, क्रतु, मनु, दक्ष, वसिष्ठ और पुलस्त्य—ये दस ऐश्वर्यशाली ऋषि ब्रह्माके मानस पुत्र हैं और स्वयं उत्पन्न हुए हैं। ये ऋषिगण ब्रह्म-परत्वसे युक्त हैं, इसलिये महर्षि माने गये हैं। अब इन ऐश्वर्यशाली महर्षियोंके पुत्ररूप जो ऋषि हैं, उन्हें सुनिये। काव्य (शुक्राचार्य), बृहस्पति, कश्यप, च्यवन, उतथ्य, वामदेव, अगस्त्य, कौशिक, कर्दम, बालखिल्य, विश्रवा और शक्तिवर्धन—ये सभी ऋषि कहलाते हैं, जो अपने तपोबलसे ऋषिताको प्राप्त हुए हैं। अब इन ऋषियोंद्वारा गर्भसे उत्पन्न हुए ऋषीक नामक पुत्रोंको सुनिये। वत्सर, नग्नहू, पराक्रमी भरद्वाज, दीर्घतमा, बृहद्वक्षा, शरद्वान्, वाजिश्रवा, सुचिन्त, शाव, पराशर, शृङ्गी, शङ्खपाद् और राजा वैश्रवण—ये सभी ऋषीक हैं और सत्यके प्रभावसे ऋषिताको प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार जो ईश्वर (परमर्षि एवं महर्षि), ऋषि और ऋषीक नामसे विख्यात हैं, उनका वर्णन किया गया॥ ८९—९७॥

एवं मन्त्रकृतः सर्वे कृत्स्नश्च निबोधत।
भृगुः काश्यः प्रचेता च दधीचो ह्यात्मवानपि॥ ९८
ऊर्वोऽथ जमदग्निश्च वेदः सारस्वतस्तथा।
आर्ष्टिषेणश्च्यवनश्च वीतहव्यः सवेधसः॥ ९९
वैण्यः पृथुर्दिवोदासो ब्रह्मवान् गृत्सशौनकौ।
एकोनविंशतिर्ह्येते भृगवो मन्त्रकृत्तमाः॥ १००
अङ्गिराश्चैव त्रितश्च भरद्वाजोऽथ लक्ष्मणः।
कृतवाचस्तथा गर्गः स्मृतिसङ्कृतिरेव च॥ १०१
गुरुवीतश्च मान्धाता अम्बरीषस्तथैव च।
युवनाश्वः पुरुकुत्सः स्वश्रवस्तु सदस्यवान्॥ १०२
अजमीढोऽस्वहार्यश्च ह्युत्कलः कविरेव च।
पृषदश्वो विरूपश्च काव्यश्चैवाथ मुद्गलः॥ १०३
उतथ्यश्च शरद्वांश्च तथा वाजिश्रवा अपि।
अपस्यौषः सुचित्तिश्च वामदेवस्तथैव च॥ १०४

इसी प्रकार अब सभी मन्त्रकर्ता ऋषियोंका नाम पूर्णतया सुनिये। भृगु, काश्यप, प्रचेता, दधीचि, आत्मवान्, ऊर्व, जमदग्नि, वेद, सारस्वत, आर्ष्टिषेण, च्यवन, वीतिहव्य, वेधा, वैण्य, पृथु, दिवोदास, ब्रह्मवान्, गृत्स और शौनक—ये उन्नीस भृगुवंशी ऋषि मन्त्रकर्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। अङ्गिरा, त्रित, भरद्वाज, लक्ष्मण, कृतवाच, गर्ग, स्मृति, संकृति, गुरुवीत, मान्धाता, अम्बरीष, युवनाश्व, पुरुकुत्स, स्वश्रव, सदस्यवान्, अजमीढ, अस्वहार्य, उत्कल, कवि, पृषदश्व, विरूप, काव्य, मुद्गल, उतथ्य, शरद्वान्, वाजिश्रवा, अपस्यौष, सुचित्ति, वामदेव,

ऋषिजो बृहच्छुक्लश्च ऋषिर्दीर्घतमा अपि।
कक्षीवांश्च त्रयस्त्रिंशत् स्मृता ह्यङ्गिरसां पराः॥ १०५
एते मन्त्रकृतः सर्वे काश्यपांस्तु निबोधत।
कश्यपः सहवत्सारो नैध्रुवो नित्य एव च॥ १०६
असितो देवलश्चैव षडेते ब्रह्मवादिनः।
अत्रिरर्धस्वनश्चैव शावास्योऽथ गविष्ठिरः॥ १०७
कर्णकश्च ऋषिः सिद्धस्तथा पूर्वातिथिश्च यः॥ १०८
इत्येते त्वत्रयः प्रोक्ता मन्त्रकृत् षण्महर्षयः।
वसिष्ठश्चैव शक्तिश्च तृतीयश्च पराशरः॥ १०९
ततस्तु इन्द्रप्रमितः पञ्चमस्तु भरद्वसुः।
षष्ठस्तु मित्रवरुणः सप्तमः कुण्डिनस्तथा॥ ११०
इत्येते सप्त विज्ञेया वासिष्ठा ब्रह्मवादिनः।
विश्वामित्रश्च गाधेयो देवरातस्तथा बलः॥ १११
तथा विद्वान् मधुच्छन्दा ऋषिश्चान्योऽघमर्षणः।
अष्टको लोहितश्चैव भृतकीलस्तथाम्बुधिः॥ ११२
देवश्रवा देवरातः पुराणश्च धनञ्जयः।
शिशिरश्च महातेजाः शालङ्कायन एव च॥ ११३
त्रयोदशैते विज्ञेया ब्रह्मिष्ठाः कौशिका वराः।
अगस्त्योऽथ दृढद्युम्नो इन्द्रबाहुस्तथैव च॥ ११४
ब्रह्मिष्ठागस्तयो ह्येते त्रयः परमकीर्तयः।
मनुर्वैस्वतश्चैव ऐलो राजा पुरूरवाः॥ ११५
क्षत्रियाणां वरौ ह्येतौ विज्ञेयौ मन्त्रवादिनौ।
भलन्दकश्च वासाश्वः संकीलश्चैव ते त्रयः॥ ११६
एते मन्त्रकृतो ज्ञेया वैश्यानां प्रवरां सदा।
इति द्विनवतिः प्रोक्ता मन्त्रा यैश्च बहिष्कृताः॥ ११७
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या ऋषिपुत्रान् निबोधत।
ऋषीकाणां सुता ह्येते ऋषिपुत्राः श्रुतर्षयः॥ ११८

ऋषिज, बृहच्छुक्ल, दीर्घतमा और कक्षीवान्—ये तैंतीस श्रेष्ठ ऋषि अङ्गिरागोत्रीय कहे जाते हैं। ये सभी मन्त्रकर्ता हैं। अब कश्यपवंशमें उत्पन्न होनेवाले ऋषियोंके नाम सुनिये। कश्यप, सहवत्सार, नैध्रुव, नित्य, असित और देवल—ये छः ब्रह्मवादी ऋषि हैं। अत्रि, अर्धस्वन, शावास्य, गविष्ठिर, सिद्धर्षि कर्णक और पूर्वातिथि—ये छः मन्त्रकर्ता महर्षि अत्रिवंशोत्पन्न कहे गये हैं। वसिष्ठ, शक्ति, तीसरे पराशर, इन्द्रप्रमित, पाँचवें भरद्वसु, छठे मित्रावरुण तथा सातवें कुण्डिन—इन सात ब्रह्मवादी ऋषियोंको वसिष्ठवंशोत्पन्न जानना चाहिये॥ ९८—११० $\frac{1}{2}$॥

गाधि-नन्दन विश्वामित्र, देवरात, बल, विद्वान् मधुच्छन्दा, अघमर्षण, अष्टक, लोहित, भृतकील, अम्बुधि, देवपरायण देवरात, प्राचीन ऋषि धनञ्जय, शिशिर तथा महान् तेजस्वी शालंकायन—इन तेरहोंको कौशिकवंशोत्पन्न ब्रह्मवादी ऋषि समझना चाहिये। अगस्त्य, दृढद्युम्न तथा इन्द्रबाहु—ये तीनों परम यशस्वी ब्रह्मवादी ऋषि अगस्त्य-कुलमें उत्पन्न हुए हैं। विवस्वान्-पुत्र मनु तथा इला-नन्दन राजा पुरूरवा—क्षत्रिय-कुलमें उत्पन्न हुए इन दोनों राजर्षियोंको मन्त्रवादी जानना चाहिये। भलन्दक, वासाश्व और संकील—वैश्योंमें श्रेष्ठ इन तीनोंको मन्त्रकर्ता समझना चाहिये। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य-कुलमें उत्पन्न हुए बानबे ऋषियोंका वर्णन किया गया, जिन्होंने मन्त्रोंको प्रकट किया है। अब ऋषि-पुत्रोंके विषयमें सुनिये। ये ऋषिपुत्र जो श्रुतर्षि कहलाते हैं, ऋषियोंके पुत्र हैं॥ १११—११८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे मन्वन्तरकल्पवर्णनो नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मन्वन्तरकल्पवर्णन नामक एक सौ पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४५॥

एक सौ छियालीसवाँ अध्याय

वज्राङ्गकी उत्पत्ति, उसके द्वारा इन्द्रका बन्धन, ब्रह्मा और कश्यपद्वारा समझाये जानेपर इन्द्रको बन्धनमुक्त करना, वज्राङ्गका विवाह, तप तथा ब्रह्माद्वारा वरदान

ऋषय ऊचुः

कथं मत्स्येन कथितस्तारकस्य वधो महान्।
कस्मिन् काले विनिर्वृत्ता कथेयं सूतनन्दन॥ १

त्वन्मुखक्षीरसिन्धूत्था कथेयममृतात्मिका।
कर्णाभ्यां पिबतां तृप्तिरस्माकं न प्रजायते।
इदं मुने समाख्याहि महाबुद्धे मनोगतम्॥ २

सूत उवाच

पृष्टस्तु मनुना देवो मत्स्यरूपी जनार्दनः।
कथं शरवणे जातो देवः षड्वदनो विभो॥ ३
एतत्तु वचनं श्रुत्वा पार्थिवस्यामितौजसः।
उवाच भगवान् प्रीतो ब्रह्मसूनुर्महामतिम्॥ ४

मत्स्य उवाच

वज्राङ्गो नाम दैत्योऽभूत् तस्य पुत्रस्तु तारकः।
सुरानुद्वासयामास पुरेभ्यः स महाबलः॥ ५
ततस्ते ब्रह्मणोऽभ्याशं जग्मुर्भयनिपीडिताः।
भीतांश्च त्रिदशान् दृष्ट्वा ब्रह्मा तेषामुवाच ह॥ ६
संत्यजध्वं भयं देवाः शंकरस्यात्मजः शिशुः।
तुहिनाचलदौहित्रस्तं हनिष्यति दानवम्॥ ७
ततः काले तु कस्मिंश्चिद् दृष्ट्वा वै शैलजां शिवः।
स्वरेतो वह्निवदने व्यसृजत् कारणान्तरे॥ ८
तत् प्राप्तं वह्निवदने रेतो देवानतर्पयत्।
विदार्य जठराण्येषामजीर्णं निर्गतं मुने॥ ९

ऋषियोंने पूछा—सूतनन्दन! मत्स्यभगवान्ने तारकासुरके वधरूप महान् कार्यका वर्णन किस प्रकार किया था? यह कथा किस समय कही गयी थी? मुने! आपके मुखरूपी क्षीरसागरसे उद्भूत हुई इस अमृतरूपिणी कथाका दोनों कानोंद्वारा पान करते हुए भी हमलोगोंको तृप्ति नहीं हो रही है। अतः महाबुद्धिमान् सूतजी! आप हमलोगोंके इस मनोऽभिलषित विषयका वर्णन कीजिये॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (प्राचीन कालकी बात है) राजर्षि मनुने मत्स्यरूपधारी भगवान् विष्णुसे प्रश्न किया—'विभो! षडानन स्वामिकार्तिकका जन्म सरपतके वनमें कैसे हुआ था?' उन अमिततेजस्वी राजर्षि मनुका प्रश्न सुनकर महातेजस्वी ब्रह्मपुत्र भगवान् मत्स्य प्रसन्नतापूर्वक बोले॥ ३-४॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! (बहुत पहले) वज्राङ्ग नामका एक दैत्य उत्पन्न हुआ है, उसके पुत्रका नाम तारक था। उस महाबली तारकने देवताओंको उनके नगरोंसे निकालकर खदेड़ दिया। तब भयभीत हुए वे सभी देवगण ब्रह्माके निकट गये। उन देवताओंको डरा देखकर ब्रह्माने उनसे कहा—'देववृन्द! भय छोड़ दो। (शीघ्र ही) भगवान् शंकरके एक औरस पुत्र हिमाचलका दौहित्र (नाती) उत्पन्न होगा, जो उस दानवका वध करेगा।' तदनन्तर किसी समय पार्वतीको देखकर शिवजीका वीर्य स्खलित हो गया, तब उन्होंने उसे किसी भावी कारणवश अग्निके मुखमें गिरा दिया। अग्निके मुखमें पड़े हुए उस वीर्यने देवताओंको तृप्त कर दिया, किंतु पच न सकनेके कारण वह उनके उदरको फाड़कर बाहर निकल पड़ा

पतितं तत् सरिद्वरां ततस्तु शरकानने।
तस्मात्तु स समुद्भूतो गुहो दिनकरप्रभः॥ १०

स सप्तदिवसो बालो निजघ्ने तारकासुरम्।
एवं श्रुत्वा ततो वाक्यं तमूचुर्ऋषिसत्तमाः॥ ११

और नदियोंमें श्रेष्ठ गङ्गामें जा गिरा। फिर वहाँ वह बहते हुए सरपतके वनमें जा लगा। उसीसे सूर्यके समान तेजस्वी गुह उत्पन्न हुए। उसी सात दिवसीय बालकने तारकासुरका वध किया। ऐसी अद्भुत बात सुनकर उन श्रेष्ठ ऋषियोंने पुनः सूतजीसे प्रश्न किया॥ ५—११॥

ऋषय ऊचुः

अत्याश्चर्यवती रम्या कथेयं पापनाशिनी।
विस्तरेण हि नो ब्रूहि याथातथ्येन शृण्वताम्॥ १२

वज्राङ्गो नाम दैत्येन्द्रः कस्य वंशोद्भवः पुरा।
यस्याभूत् तारकः पुत्रः सुरप्रमथनो बली॥ १३

निर्मितः को वधे चाभूत् तस्य दैत्येश्वरस्य तु।
गुहजन्म तु कार्त्स्न्येन अस्माकं ब्रूहि मानद॥ १४

ऋषियोंने पूछा— सबको मान देनेवाले सूतजी! यह कथा तो अत्यन्त आश्चर्यसे परिपूर्ण, रमणीय और पापनाशिनी है। हमलोग इसे सुनना चाहते हैं, अतः आप हमलोगोंको इसे यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बतलाइये। पूर्वकालमें देवताओंका मान मर्दन करनेवाला महाबली तारक जिसका पुत्र था, वह दैत्यराज वज्राङ्ग किसके वंशमें उत्पन्न हुआ था? उस दैत्यराजके वधके लिये कौन-सा कारण निर्मित हुआ था? यह सब तथा गुहके जन्मकी कथा हमलोगोंको पूर्णरूपसे बतलाइये॥ १२—१४॥

सूत उवाच

मानसो ब्रह्मणः पुत्रो दक्षो नाम प्रजापतिः।
षष्टिं सोऽजनयत् कन्या वीरिण्यामेव नः श्रुतम्॥ १५

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश।
सप्तविंशति सोमाय चतस्रोऽरिष्टनेमये॥ १६

द्वे वै बाहुकपुत्राय द्वे वै चाङ्गिरसे तथा।
द्वे कृशाश्वाय विदुषे प्रजापतिसुतः प्रभुः॥ १७

अदितिर्दितिर्दनुर्विश्वा ह्यरिष्टा सुरसा तथा।
सुरभिर्विनता चैव ताम्रा क्रोधवशा इरा॥ १८

कद्रूर्मुनिश्च लोकस्य मातरो गोषु मातरः।
तासां सकाशाल्लोकानां जङ्गमस्थावरात्मनाम्॥ १९

जन्म नानाप्रकाराणां ताभ्योऽन्ये देहिनः स्मृताः।
देवेन्द्रोपेन्द्रपूषाद्याः सर्वे तेऽदितिजा मताः॥ २०

दितेः सकाशाल्लोकास्तु हिरण्यकशिपादयः।
दानवाश्च दनोः पुत्रा गावश्च सुरभीसुताः॥ २१

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! ब्रह्माके मानस पुत्र प्रजापति दक्षने वीरिणीके गर्भसे साठ कन्याएँ उत्पन्न की थीं, ऐसा हमने सुना है। उन ब्रह्मपुत्र सामर्थ्यशाली दक्षने उन कन्याओंमेंसे दस धर्मको, तेरह कश्यपको, सत्ताईस चन्द्रमाको, चार अरिष्टनेमिको, दो बाहुक-पुत्रको, दो अङ्गिराको तथा दो विद्वान् कृशाश्वको समर्पित कर दी थीं। अदिति, दिति, दनु, विश्वा, अरिष्टा, सुरसा, सुरभि, विनता, ताम्रा, क्रोधवशा, इरा, कद्रू और मुनि—ये तेरह लोकमाताएँ कश्यपकी पत्नियाँ थीं। इन्हींसे पशुओंकी भी उत्पत्ति हुई है। इन्हींसे स्थावर-जङ्गमरूप नाना प्रकारके प्राणियोंका जन्म हुआ है। देवेन्द्र, उपेन्द्र और सूर्य आदि सभी देवता अदितिसे उत्पन्न माने जाते हैं। दितिके गर्भसे हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण उत्पन्न हुए। दनुके दानव

पक्षिणो विनतापुत्रा गरुडप्रमुखाः स्मृताः।
नागाः कद्रूसुता ज्ञेयाः शेषाश्चान्येऽपि जन्तवः॥ २२

त्रैलोक्यनाथं शक्रं तु सर्वामरगणप्रभुम्।
हिरण्यकशिपुश्चक्रे जित्वा राज्यं महाबलः॥ २३

ततः केनापि कालेन हिरण्यकशिपादयः।
निहता विष्णुना संख्ये शेषाश्चेन्द्रेण दानवाः॥ २४

ततो निहतपुत्राभूत् दितिर्वरमयाचत।
भर्तारं कश्यपं देवं पुत्रमन्यं महाबलम्॥ २५

समरे शक्रहन्तारं स तस्या अददात् प्रभुः॥ २६

नियमे वर्त हे देवि सहस्रं शुचिमानसा।
वर्षाणां लप्स्यसे पुत्रमित्युक्ता सा तथाकरोत्॥ २७

वर्तन्त्या नियमे तस्याः सहस्राक्षः समाहितः।
उपासामाचरत् तस्याः सा चैनमन्वमन्यत॥ २८

दशवत्सरशेषस्य सहस्रस्य तदा दितिः।
उवाच शक्रं सुप्रीता वरदा तपसि स्थिता॥ २९

दितिरुवाच

पुत्रोत्तीर्णव्रतां प्रायो विद्धि मां पाकशासन।
भविष्यति च ते भ्राता तेन सार्धमिमां श्रियम्॥ ३०

भुङ्क्ष्व वत्स यथाकामं त्रैलोक्यं हतकण्टकम्।
इत्युक्त्वा निद्रयाऽऽविष्टा चरणाक्रान्तमूर्धजा॥ ३१

स्वयं सुष्वाप नियता भाविनोऽर्थस्य गौरवात्।
तत्तु रन्ध्रं समासाद्य जठरं पाकशासनः॥ ३२

चकार सप्तधा गर्भं कुलिशेन तु देवराट्।
एकैकं तु पुनः खण्डं चकार मघवा ततः॥ ३३

और गौ आदि पशु सुरभीके संतान हुए। गरुड आदि पक्षी विनताके पुत्र कहे जाते हैं। नागों तथा अन्य रेंगनेवाले जन्तुओंको कद्रूकी संतति समझना चाहिये। कुछ समय बाद हिरण्यकशिपु समस्त देवगणोंके स्वामी त्रिलोकीनाथ इन्द्रको जीतकर राज्य करने लगा। तदनन्तर कुछ समय बीतनेपर हिरण्यकशिपु आदि दैत्यगण भगवान् विष्णुके हाथों मारे गये तथा शेष दानवोंका इन्द्रने युद्धस्थलमें सफाया कर दिया। इस प्रकार जब दितिके सभी पुत्र मार डाले गये, तब उसने अपने पतिदेव महर्षि कश्यपसे युद्धमें इन्द्रका वध करनेवाले अन्य महाबली पुत्रकी याचना की। तब सामर्थ्यशाली कश्यपजीने उसे वर प्रदान करते हुए कहा—'देवि! तुम एक हजार वर्षतक पवित्र मनसे नियमका पालन करो तो तुम्हें वैसा पुत्र प्राप्त होगा।' पतिद्वारा ऐसा कही जानेपर वह नियममें तत्पर हो गयी। जिस समय वह नियममें संलग्न थी, उस समय सहस्रनेत्रधारी इन्द्र उसके निकट आकर सावधानीपूर्वक उसकी सेवा करने लगे। यह देखकर उसने इन्द्रपर विश्वास कर लिया। जब एक सहस्र वर्षकी अवधिमें दस वर्ष शेष रह गये, तब तपस्यामें निरत वरदायिनी दिति परम प्रसन्न होकर इन्द्रसे बोली॥ १५—२९॥

दितिने कहा—पुत्र! अब तुम ऐसा समझो कि मैंने प्रायः अपने व्रतको पूर्ण कर लिया है। पाकशासन! (व्रतकी समाप्तिपर) तुम्हारे एक भाई उत्पन्न होगा। वत्स! उसके साथ तुम इस राजलक्ष्मी तथा निष्कण्टक त्रिलोकीके राज्यका इच्छानुसार उपभोग करना। ऐसा कहकर स्वयं दिति निद्राके वशीभूत हो सो गयी। उस समय भावी कार्यके गौरवके कारण वह अपने नियमसे च्युत हो गयी थी; क्योंकि (सोते समय) उसके खुले हुए बाल चरणोंसे दबे हुए थे। ऐसी त्रुटिपर अवसर पाकर देवराज इन्द्र दितिके उदरमें प्रविष्ट हो गये और अपने वज्रसे उस गर्भके सात टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् इन्द्रने क्रुद्ध होकर पुनः प्रत्येक टुकड़ेको काटकर

सप्तधा सप्तधा कोपात्प्राबुध्यत ततो दितिः।
विबुध्योवाच मा शक्र घातयेथाः प्रजां मम॥ ३४

तच्छ्रुत्वा निर्गतः शक्रः स्थित्वा प्राञ्जलिरग्रतः।
उवाच वाक्यं संत्रस्तो मातुर्वै वदनेरितम्॥ ३५

शक्र उवाच

दिवास्वप्नपरा मातः पादाक्रान्तशिरोरुहा।
सप्तसप्तभिरेवातस्तव गर्भः कृतो मया॥ ३६
एकोनपञ्चाशत्कृता भागा वज्रेण ते सुताः।
दास्यामि तेषां स्थानानि दिवि दैवतपूजिते॥ ३७
इत्युक्ता सा तदा देवी सैवमस्त्वित्यभाषत।
पुनश्च देवी भर्त्तारमुवाचासितलोचना॥ ३८
पुत्रं प्रजापते देहि शक्रजेतारमूर्जितम्।
यो नास्त्रशस्त्रैर्वध्यत्वं गच्छेत् त्रिदिववासिनाम्॥ ३९
इत्युक्तः स तथोवाच तां पत्नीमतिदुःखिताम्।
दशवर्षसहस्राणि तपः कृत्वा तु लप्स्यसे॥ ४०
वज्रसारमयैरङ्गैरच्छेद्यैरायसैर्दृढैः।
वज्राङ्गो नाम पुत्रस्ते भविता पुत्रवत्सले॥ ४१
सा तु लब्धवरा देवी जगाम तपसे वनम्।
दशवर्षसहस्राणि सा तपो घोरमाचरत्॥ ४२
तपसोऽन्ते भगवती जनयामास दुर्जयम्।
पुत्रमप्रतिकर्माणमजेयं वज्रदुश्छिदम्॥ ४३
स जातमात्र एवाभूत् सर्वशस्त्रास्त्रपारगः।
उवाच मातरं भक्त्या मातः किं करवाण्यहम्॥ ४४
तमुवाच ततो हृष्टा दितिर्दैत्याधिपं च सा।
बहवो मे हताः पुत्राः सहस्राक्षेण पुत्रक॥ ४५
तेषां त्वं प्रतिकर्तुं वै गच्छ शक्रवधाय च।
बाढमित्येव तामुक्त्वा जगाम त्रिदिवं बली॥ ४६

सात-सात भागोंमें विभक्त कर दिया। इतनेमें ही दितिकी निद्रा भंग हो गयी। तब वह सचेत होकर बोली—'अरे इन्द्र! मेरी संततिका विनाश मत कर।' यह सुनकर इन्द्र दितिके उदरसे बाहर निकल आये और अपनी उस विमाताके आगे हाथ जोड़कर खड़े हो गये। फिर डरते-डरते मन्द स्वरमें यह वचन बोले—॥ ३०—३५॥

इन्द्रने कहा—माँ! आप दिनमें सो रही थीं और आपके बाल पैरोंके नीचे दबे हुए थे, इस नियम-च्युतिके कारण मैंने आपके गर्भको सात भागोंमें, पुनः प्रत्येकको सात भागोंमें विभक्त कर दिया है। इस प्रकार मैंने आपके पुत्रोंको उनचास भागोंमें बाँट दिया है। अब मैं उन्हें देवताओंद्वारा पूजित स्वर्गलोकमें स्थान प्रदान करूँगा। तब ऐसा उत्तर पानेपर देवी दितिने कहा—'अच्छा, ऐसा ही हो।' तदनन्तर कजरारे नेत्रोंवाली दिति देवीने पुनः अपने पति महर्षि कश्यपसे याचना की—'प्रजापते! मुझे एक ऐसा ऊर्जस्वी पुत्र प्रदान कीजिये, जो इन्द्रको पराजित करनेमें समर्थ हो तथा स्वर्गवासी देवगण अपने शस्त्रास्त्रोंसे जिसका वध न कर सकें।' इस प्रकार कहे जानेपर महर्षि कश्यप अपनी उस अत्यन्त दुखिया पत्नीसे बोले—'पुत्रवत्सले! दस हजार वर्षतक तपस्या करनेके उपरान्त तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी। तुम्हारे गर्भसे वज्राङ्ग नामका पुत्र उत्पन्न होगा। उसके अङ्ग वज्रके सार-तत्त्वके समान सुदृढ़ और लौहनिर्मित शस्त्रास्त्रोंद्वारा अच्छेद्य होंगे।' इस प्रकार वरदान पाकर दिति देवी तपस्या करनेके लिये वनमें चली गयीं। वहाँ उन्होंने दस हजार वर्षोंतक घोर तप किया। तपस्या समाप्त होनेपर ऐश्वर्यवती दितिने एक ऐसे पुत्रको उत्पन्न किया, जो दुर्जय, अद्भुतकर्मा और अजेय था तथा जिसके अङ्ग वज्रद्वारा अच्छेद्य थे। वह जन्म लेते ही समस्त शस्त्रास्त्रोंका पारगामी विद्वान् हो गया। उसने भक्तिपूर्वक अपनी माता दितिसे कहा—'माँ! मैं आपका कौन-सा प्रिय कार्य करूँ?' तब हर्षित हुई दितिने उस दैत्यराजसे कहा—'बेटा! इन्द्रने मेरे बहुत-से पुत्रोंको मार डाला है, अतः उनका बदला लेनेके लिये तुम जाओ और इन्द्रका वध करो।' तब 'बहुत अच्छा' ऐसा मातासे कहकर महाबली वज्राङ्ग स्वर्गलोकमें जा पहुँचा।

बद्ध्वा ततः सहस्राक्षं पाशेनामोघवर्चसा।
मातुरन्तिकमागच्छद्व्याघ्रः क्षुद्रमृगं यथा॥ ४७

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा कश्यपश्च महातपाः।
आगतौ तत्र यत्रास्तां मातापुत्रावभीतकौ॥ ४८

वहाँ उसने अपने अमोघवर्चस्वी पाशसे सहस्रनेत्रधारी इन्द्रको बाँधकर माताके निकट लाकर उसी प्रकार खड़ा कर दिया, जैसे व्याघ्र छोटे-से मृगको पकड़ लेता है। इसी बीच ब्रह्मा और महातपस्वी महर्षि कश्यप—ये दोनों वहाँ आ पहुँचे, जहाँ वे दोनों माता-पुत्र निर्भय हुए स्थित थे॥ ३६—४८॥

दृष्ट्वा तु तमुवाचेदं ब्रह्मा कश्यप एव च।
मुञ्चैनं पुत्र देवेन्द्रं किमनेन प्रयोजनम्॥ ४९

अपमानो वधः प्रोक्तः पुत्र सम्भावितस्य च।
अस्मद्वाक्येन यो मुक्तो विद्धि तं मृतमेव च॥ ५०

परस्य गौरवान्मुक्तः शत्रूणां भारमावहेत्।
जीवन्नेव मृतो वत्स दिवसे दिवसे स तु॥ ५१

महतां वशमायाते वैरं नैवास्ति वैरिणि।
एतच्छ्रुत्वा तु वज्राङ्गः प्रणतो वाक्यमब्रवीत्॥ ५२

न मे कृत्यमनेनास्ति मातुराज्ञा कृता मया।
त्वं सुरासुरनाथो वै मम च प्रपितामहः॥ ५३

करिष्ये त्वद्वचो देव एष मुक्तः शतक्रतुः।
तपसे मे रतिर्देव निर्विघ्नं चैव मे भवेत्॥ ५४

त्वत्प्रसादेन भगवन्नित्युक्त्वा विरराम सः।
तस्मिंस्तूष्णीं स्थिते दैत्ये प्रोवाचेदं पितामहः॥ ५५

वहाँ (इन्द्रको बँधा हुआ) देखकर ब्रह्मा और कश्यपने उस वज्राङ्गसे इस प्रकार कहा—'पुत्र! इन देवराजको छोड़ दे। इनको बाँधने अथवा मारनेसे तेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा? बेटा! सम्मानित पुरुषका अपमान ही उसकी मृत्युसे बढ़कर बतलाया गया है। हमलोगोंके कहनेसे जो बन्धनमुक्त हो रहा है, उसे तू मरा हुआ ही जान। वत्स! दूसरेके गौरवसे मुक्त हुआ मनुष्य शत्रुओंका भारवाही अर्थात् आभारी हो जाता है। उसे दिन-प्रतिदिन जीते हुए मृतक-तुल्य ही समझना चाहिये। शत्रुके वशमें आ जानेपर महान् पुरुषोंका शत्रुके प्रति वैरभाव नहीं रह जाता।' यह सुनकर वज्राङ्ग विनम्र होकर कहने लगा—'देव! इन्द्रको बाँधनेसे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। यह तो मैंने माताकी आज्ञाका पालन किया है। आप तो देवताओं और असुरोंके स्वामी तथा मेरे प्रपितामह हैं, अतः मैं अवश्य आपकी आज्ञाका पालन करूँगा। यह लीजिये, इन्द्र बन्धन-मुक्त हो गये। देव! मेरे मनमें तपस्या करनेके लिये बड़ी लालसा है। भगवन्! वह आपकी कृपासे निर्विघ्न पूरा हो जाय।' ऐसा कहकर वह चुप हो गया। तब उस दैत्यको चुपचाप सामने स्थित देखकर ब्रह्मा इस प्रकार बोले—॥ ४९—५५॥

ब्रह्मोवाच

तपस्त्वं क्रूरमापन्नो ह्यस्मच्छासनसंस्थितः।
अनया चित्तशुद्ध्या ते पर्याप्तं जन्मनः फलम्॥ ५६

ब्रह्माने कहा—बेटा! (तूने) जो मेरी आज्ञाका पालन किया है, यही मानो तूने घोर तप कर लिया। इस चित्तशुद्धिसे तुझे अपने जन्मका फल प्राप्त हो गया। ऐसा

इत्युक्त्वा पद्मजः कन्यां ससर्जायतलोचनाम्।
तामस्मै प्रददौ देवः पत्न्यर्थं पद्मसम्भवः॥ ५७

वराङ्गीति च नामास्याः कृत्वा यातः पितामहः।
वज्राङ्गोऽपि तया सार्धं जगाम तपसे वनम्॥ ५८

कहकर पद्मयोनि भगवान् ब्रह्माने एक विशाल नेत्रोंवाली कन्याकी सृष्टि की और उसे वज्राङ्गको पत्नीरूपमें प्रदान कर दिया। पुनः उस कन्याका वराङ्गी नाम रखकर ब्रह्मा वहाँसे चले गये। तत्पश्चात् वज्राङ्ग भी अपनी पत्नी वराङ्गीके साथ तपस्या करनेके लिये वनमें चला गया।

ऊर्ध्वबाहुः स दैत्येन्द्रोऽचरदब्दसहस्त्रकम्।
कालं कमलपत्राक्षः शुद्धबुद्धिर्महातपाः॥ ५९

तावच्चावाङ्मुखः कालं तावत्पञ्चाग्निमध्यगः।
निराहारो घोरतपास्तपोराशिरजायत॥ ६०

ततः सोऽन्तर्जले चक्रे कालं वर्षसहस्त्रकम्।
जलान्तरं प्रविष्टस्य तस्य पत्नी महाव्रता॥ ६१

तस्यैव तीरे सरसस्तप्स्यन्ती मौनमास्थिता।
निराहारा तपो घोरं प्रविवेश महाद्युतिः॥ ६२

तस्यां तपसि वर्तन्त्यामिन्द्रश्चक्रे विभीषिकाम्।
भूत्वा तु मर्कटस्तत्र तदाश्रमपदं महान्॥ ६३

चक्रे विलोलं निःशेषं तुम्बीघटकरण्डकम्।
ततस्तु मेषरूपेण कम्पं तस्याकरोन्महान्॥ ६४

ततो भुजङ्गरूपेण बध्वा च चरणद्वयम्।
अपाकर्षत् ततो दूरं भ्रमंस्तस्या महीमिमाम्॥ ६५

तपोबलाढ्या सा तस्य न वध्यत्वं जगाम ह।
ततो गोमायुरूपेण तस्यादूषयदाश्रमम्॥ ६६

ततस्तु मेघरूपेण तस्याः क्लेदयदाश्रमम्।
भीषिकाभिरनेकाभिस्तां क्लिश्यन् पाकशासनः॥ ६७

विरराम यदा नैवं वज्राङ्गमहिषी तदा।
शैलस्य दुष्टतां मत्वा शापं दातुं व्यवस्थिता॥ ६८

स शापाभिमुखां दृष्ट्वा शैलः पुरुषविग्रहः।
उवाच तां वरारोहां वराङ्गीं भीरुचेतनः॥ ६९

नाहं वराङ्गने दुष्टः सेव्योऽहं सर्वदेहिनाम्।
विभ्रमं तु करोत्येष रुषितः पाकशासनः॥ ७०

वहाँ महातपस्वी दैत्यराज वज्राङ्ग, जिसके नेत्र कमलदलके समान थे तथा जिसकी बुद्धि शुद्ध हो गयी थी, एक हजार वर्षतक दोनों हाथ ऊपर उठाकर तपस्या करता रहा। पुनः उसने एक हजार वर्षतक नीचे मुख किये हुए तथा एक हजार वर्षतक पञ्चाग्निके बीचमें बैठकर घोर तपस्या की। उस समय उसने भोजनका परित्याग कर दिया था। इस प्रकार वह तपस्याकी राशि-जैसा हो गया था। तत्पश्चात् उसने एक हजार वर्षतक जलके भीतर बैठकर तप किया। जिस समय वह जलके भीतर प्रविष्ट होकर तप कर रहा था, उसी समय उसकी अत्यन्त सुन्दरी एवं महाव्रतपरायणा पत्नी वराङ्गी भी उसी सरोवरके तटपर मौन धारणकर तपस्या करती हुई घोर तपमें संलग्न हो गयी। उस समय वह निराहार ही रहती थी। उसके तपस्या करते समय (उसे तपसे डिगानेके निमित्त) इन्द्र तरह-तरहकी विभीषिकाएँ उत्पन्न करने लगे॥ ५६—६२$\frac{1}{2}$॥

वे बन्दरका विशाल रूप धारणकर उसके आश्रमपर पहुँचे और वहाँके सम्पूर्ण तुंबी, घट और पिटारी आदिको तितर-बितर कर दिया। फिर मेषरूपसे उसे भलीभाँति कँपाया। तत्पश्चात् सर्पका रूप बनाकर उसके दोनों चरणोंको अपने शरीरसे बाँधकर इस पृथ्वीपर घूमते हुए उसे दूरतक घसीटते रहे, किंतु वराङ्गी तपोबलसे सम्पन्न थीं, अतः इन्द्रद्वारा मारी न जा सकी। तब इन्द्रने शृगालका रूप धारणकर उसके आश्रमको दूषित कर दिया। फिर उन्होंने बादल बनकर उसके आश्रमको भिगो दिया। इस प्रकार इन्द्र अनेकों प्रकारकी विभीषिकाओंको दिखाकर उसे कष्ट पहुँचाते रहे। जब इन्द्र इस प्रकारके कुकर्मसे विरत नहीं हुए, तब वज्राङ्गकी पटरानी वराङ्गी इसे पर्वतकी दुष्टता मानकर उसे शाप देनेके लिये उद्यत हो गयी। इस प्रकार उसे शाप देनेके लिये उद्यत देखकर पर्वतका हृदय भयभीत हो गया। तब उसने पुरुषका शरीर धारणकर उस सुन्दरी वराङ्गीसे कहा—'वराङ्गने! मैं दुष्ट नहीं हूँ। मैं तो सभी देहधारियोंके लिये सेवनीय हूँ। यह सब उपद्रव तो ये क्रुद्ध हुए इन्द्र कर रहे हैं।' इसी बीच (जलके भीतर बैठकर तपस्या करते हुए वज्राङ्गका)

एतस्मिन्नन्तरे जातः कालो वर्षसहस्त्रिकः।
तस्मिन् गते तु भगवान् काले कमलसम्भवः।
तुष्टः प्रोवाच वज्राङ्गं तमागम्य जलाश्रयम्॥ ७१

एक हजार वर्ष पूरा हो गया। उस समयके पूर्ण हो जानेपर पद्मसम्भव भगवान् ब्रह्मा प्रसन्न होकर उस जलाशयके तटपर आये और वज्राङ्गसे बोले॥ ६३—७१॥

ब्रह्मोवाच

ददामि सर्वकामांस्ते उत्तिष्ठ दितिनन्दन।
एवमुक्तस्तदोत्थाय दैत्येन्द्रस्तपसां निधिः।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं सर्वलोकपितामहम्॥ ७२

ब्रह्माने कहा—दितिनन्दन! उठो। मैं तुम्हें तुम्हारी सारी मनोवाञ्छित वस्तुएँ दे रहा हूँ। ऐसा कहे जानेपर तपोनिधि दैत्यराज वज्राङ्ग उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह ब्रह्मासे इस प्रकार कहा॥ ७२॥

वज्राङ्ग उवाच

आसुरो मास्तु मे भावः सन्तु लोका ममाश्रयाः।
तपस्येव रतिर्मेऽस्तु शरीरस्यास्तु वर्तनम्॥ ७३
एवमस्त्विति तं देवो जगाम स्वकमालयम्।
वज्राङ्गोऽपि समाप्ते तु तपसि स्थिरसंयमः॥ ७४
आहारमिच्छन्भार्यां स्वां न ददर्शाश्रमे स्वके।
क्षुधाविष्टः स शैलस्य गहनं प्रविवेश ह॥ ७५
आदातुं फलमूलानि स च तस्मिन् व्यलोकयत्।
रुदतीं तां प्रियां दीनां तनुप्रच्छादिताननाम्।
तां विलोक्य स दैत्येन्द्रः प्रोवाच परिसान्त्वयन्॥ ७६

वज्राङ्गने कहा—देव! मेरे शरीरमें आसुर भावका संचार मत हो, मुझे अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो। तपस्यामें ही मेरी रति हो और मेरा यह शरीर वर्तमान रहे। 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा अपने निवासस्थानको चले गये। वज्राङ्ग भी तपस्याके समाप्त हो जानेपर संयम-नियमसे निवृत्त हुआ। उस समय उसे भोजनकी इच्छा जाग्रत् हुई, परंतु उसे अपने आश्रममें अपनी पत्नी न दीख पड़ी। तब भूखसे पीड़ित हुआ वज्राङ्ग फल-मूल लानेके लिये उस पर्वतके वनमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ उसने अपनी प्रिय पत्नीको देखा, जो थोड़ा मुख ढके हुए दीनभावसे रुदन कर रही थी। उसे देखकर दैत्यराज वज्राङ्ग उसे सान्त्वना देते हुए बोला॥ ७३—७६॥

वज्राङ्ग उवाच

केन तेऽपकृतं भीरु यमलोकं यियासुना।
कं वा कामं प्रयच्छामि शीघ्रं मे ब्रूहि भामिनि॥ ७७

वज्राङ्गने कहा—भीरु! यमलोकको जानेके लिये उद्यत किस व्यक्तिने तुम्हारा अपकार किया है? अथवा मैं तुम्हारी कौन-सी कामना पूर्ण करूँ? भामिनि! तुम मुझे शीघ्र बतलाओ॥ ७७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें एक सौ छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४६॥



एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

ब्रह्माके वरदानसे तारकासुरकी उत्पत्ति और उसका राज्याभिषेक

वराङ्ग्युवाच

त्रासितास्म्यपविद्धास्मि ताडिता पीडितापि च।
रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः॥ १
दुःखपारमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता।
पुत्रं मे तारकं देहि दुःखशोकमहार्णवात्॥ २
एवमुक्तः स दैत्येन्द्रः कोपव्याकुललोचनः।
शक्तोऽपि देवराजस्य प्रतिकर्तुं महासुरः॥ ३
तपः कर्तुं पुनर्दैत्यो व्यवस्यत महाबलः।
ज्ञात्वा तु तस्य संकल्पं ब्रह्मा क्रूरतरं पुनः॥ ४
आजगाम तदा तत्र यत्रासौ दितिनन्दनः।
उवाच तस्मै भगवान् प्रभुर्मधुरया गिरा॥ ५

ब्रह्मोवाच

किमर्थं पुत्र भूयस्त्वं नियमं क्रूरमिच्छसि।
आहाराभिमुखो दैत्य तन्नो ब्रूहि महाव्रत॥ ६
यावदब्दसहस्रेण निराहारस्य यत्फलम्।
क्षणेनैकेन तल्लभ्यं त्यक्त्वाऽऽहारमुपस्थितम्॥ ७
त्यागो ह्यप्राप्तकामानां कामेभ्यो न तथा गुरुः।
यथा प्राप्तं परित्यज्य कामं कमललोचन॥ ८
श्रुत्वैतद् ब्रह्मणो वाक्यं दैत्यः प्राञ्जलिरब्रवीत्।
चिन्तयंस्तपसा युक्तो हृदि ब्रह्ममुखेरितम्॥ ९

वज्राङ्ग उवाच

उत्थितेन मया दृष्टा समाधानात् त्वदाज्ञया।
महिषी भीषिता दीना रुदती शाखिनस्तले॥ १०
सा मयोक्ता तु तन्वङ्गी दूयमानेन चेतसा।
किमेवं वर्तसे भीरु वद त्वं किं चिकीर्षसि॥ ११
इत्युक्ता सा मया देव प्रोवाच स्खलिताक्षरम्।
वाक्यं वाचस्पते भीता तन्वङ्गी हेतुसंहितम्॥ १२

वराङ्गी बोली—'पतिदेव! क्रूर स्वभाववाले देवराज इन्द्रने मुझे एक अनाथ विधवाकी तरह बहुत प्रकारसे डराया है, अपमानित किया है, ताडना दी है और कष्ट पहुँचाया है। इसलिये दुःखका अन्त न देखकर मैं अपने प्राणोंका परित्याग करनेके लिये उद्यत हूँ। अतः मुझे एक ऐसा पुत्र दीजिये, जो मेरा इस दुःख एवं शोकरूप महासागरसे उद्धार करनेमें समर्थ हो। पत्नीद्वारा ऐसा कहे जानेपर दैत्यराज वज्राङ्गका हृदय क्रोधसे व्याकुल हो गया। यद्यपि महासुर वज्राङ्ग देवराज इन्द्रसे बदला चुकानेमें समर्थ था, तथापि उस महाबली दैत्यने पुनः तप करनेका ही निश्चय किया। तब सामर्थ्यशाली भगवान् ब्रह्मा उसके उस क्रूरतर विचारको जानकर फिर जहाँ यह दिति-पुत्र वज्राङ्ग स्थित था वहाँ आ पहुँचे और उससे मधुर वाणीमें बोले— ॥१—५॥

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम तो तपसे निवृत्त हो भोजन करने जा रहे थे, फिर तुम पुनः कठोर नियममें किस कारणसे तत्पर होना चाहते हो? महाव्रतधारी दैत्यराज! वह कारण मुझे बतलाओ। कमललोचन! एक हजार वर्षतक निराहार रहनेका जो फल होता है, वह सामने उपस्थित आहारका त्याग कर देनेसे क्षणमात्रमें ही प्राप्त हो जाता है; क्योंकि अप्राप्त मनोरथवालोंका त्याग उतना महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता, जितना प्राप्त कामनावालेका त्याग वरिष्ठ होता है। ब्रह्माकी ऐसी बात सुनकर तपस्वी दैत्यराज वज्राङ्ग उस ब्रह्मवाणीका हृदयमें विचार करते हुए हाथ जोड़कर बोला॥ ६—९॥

वज्राङ्गने कहा—भगवन्! आपकी आज्ञासे समाधिसे विरत होनेपर मैंने देखा कि मेरी पटरानी वराङ्गी एक वृक्षके नीचे बैठी हुई दीनभावसे भयभीत होकर रो रही है। यह देखकर मेरा मन दुःखी हो गया। तब मैंने उस सुन्दरीसे पूछा—'भीरु! तुम क्यों ऐसी दशामें पड़ गयी हो? मुझे बतलाओ तो सही, तुम क्या करना चाहती हो?' वाणीके अधीश्वर देव! मेरे ऐसा पूछनेपर भयभीत हुई सुन्दरी वराङ्गीने लड़खड़ाते हुए शब्दोंमें कारण बतलाते हुए कहा

त्रासितास्म्यपविद्धास्मि कर्षिता पीडितास्मि च।
रौद्रेण देवराजेन नष्टनाथेव भूरिशः॥ १३
दुःखस्यान्तमपश्यन्ती प्राणांस्त्यक्तुं व्यवस्थिता।
पुत्रं मे तारकं देहि ह्यस्माद् दुःखमहार्णवात्॥ १४
एवमुक्तस्तु संक्षुब्धस्तस्याः पुत्रार्थमुद्यतः।
तपो घोरं करिष्यामि जयाय त्रिदिवौकसाम्॥ १५
एतच्छ्रुत्वा वचो देवः पद्मगर्भोद्भवस्तदा।
उवाच दैत्यराजानं प्रसन्नश्चतुराननः॥ १६

ब्रह्मोवाच

अलं ते तपसा वत्स मा क्लेशे दुस्तरे विश।
पुत्रस्ते तारको नाम भविष्यति महाबलः॥ १७
देवसीमन्तिनीनां तु धम्मिल्लस्य विमोक्षणः।
इत्युक्तो दैत्यनाथस्तु प्रणिपत्य पितामहम्॥ १८
आगत्यानन्दयामास महिषीं हर्षिताननः।
तौ दम्पती कृतार्थौ तु जग्मतुः स्वाश्रमं मुदा॥ १९
वज्राङ्गेणाहितं गर्भं वराङ्गी वरवर्णिनी।
पूर्णं वर्षसहस्रं च दधारोदर एव हि॥ २०
ततो वर्षसहस्रान्ते वराङ्गी सुषुवे सुतम्।
जायमाने तु दैत्येन्द्रे तस्मिँल्लोकभयङ्करे॥ २१
चचाल सकला पृथ्वी समुद्राश्च चकम्पिरे।
चेलुर्महीधराः सर्वे ववुर्वाताश्च भीषणाः॥ २२
जेपुर्जप्यं मुनिवरा नेदुर्व्यालमृगा अपि।
चन्द्रसूर्यौ जहुः कान्तिं सनीहारा दिशोऽभवन्॥ २३
जाते महासुरे तस्मिन् सर्वे चापि महासुराः।
आजग्मुर्हर्षितास्तत्र तथा चासुरयोषितः॥ २४

है कि—'नाथ! देवराज इन्द्रने निर्दय होकर मुझे अनाथ नारीकी तरह अनेक प्रकारसे डराया, अपमानित किया, घसीटा है और कष्ट पहुँचाया है। दुःखका अन्त न देखकर मैं प्राण-त्याग करनेको उद्यत हो गयी हूँ। इसलिये मुझे इस दुःखरूपी महासागरसे उद्धार करनेवाला पुत्र प्रदान कीजिये।' उसके ऐसा कहनेपर मेरा मन संक्षुब्ध हो उठा है। इसलिये मैं उसे पुत्र प्रदान करनेके लिये उद्यत हो देवताओंपर विजय पानेके लिये घोर तप करूँगा। उसकी यह बात सुनकर पद्मसम्भव चतुर्मुख ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और उस दैत्यराजसे बोले॥ १०—१६॥

ब्रह्माने कहा—वत्स! तुम्हारी तपस्या पूरी हो चुकी है। अब तुम उस दुस्तर क्लेशपूर्ण कार्यमें मत प्रविष्ट होओ। तुम्हें तारक नामका ऐसा महाबली पुत्र प्राप्त होगा, जो देवाङ्गनाओंके केशकलापको खोल देनेवाला होगा (अर्थात् उन्हें विधवाकी परिस्थितिमें ला देगा)। ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर दैत्यराज वज्राङ्गका मुख हर्षसे खिल उठा। तब वह ब्रह्माजीके चरणोंमें प्रणिपात करके अपनी पटरानी वराङ्गीके पास आया और उसने (पुत्र-प्राप्तिके वरदानकी बात बतलाकर) उसे आनन्दित किया। तत्पश्चात् दोनों पति-पत्नी कृतार्थ होकर प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमको लौट गये। समयानुसार वज्राङ्गद्वारा स्थापित किये गये गर्भको सुन्दरी वराङ्गी पूरे एक हजार वर्षोंतक अपने उदरमें ही धारण किये रही। एक हजार वर्ष पूरा होनेपर वराङ्गीने पुत्र उत्पन्न किया। उस लोकभयंकर दैत्येन्द्रके जन्म लेते ही सारी पृथ्वी डगमगा उठी अर्थात् भूकम्प आ गया, समुद्रोंमें ज्वार-भाटा उठने लगा, सभी पर्वत विचलित हो उठे, भयावना झंझावात बहने लगा। श्रेष्ठ मुनिगण शान्त्यर्थ जप करने लगे, सर्प तथा वन्य पशु आदि भी उच्च स्वरसे शब्द करने लगे, चन्द्रमा और सूर्यकी कान्ति फीकी पड़ गयी तथा दिशाओंमें कुहासा छा गया। द्विजवरो! उस महासुरके जन्म लेनेपर सभी प्रधान असुर हर्षसे भरे हुए वहाँ आ पहुँचे।

जगुर्हर्षसमाविष्टा ननृतुश्चासुराङ्गनाः।
ततो महोत्सवो जातो दानवानां द्विजोत्तमाः॥ २५

विषण्णमनसो देवाः समहेन्द्रास्तदाभवन्।
वराङ्गी स्वसुतं दृष्ट्वा हर्षेणापूरिता तदा॥ २६

बहु मेने न देवेन्द्रविजयं तु तदैव सा।
जातमात्रस्तु दैत्येन्द्रस्तारकश्चण्डविक्रमः॥ २७

अभिषिक्तोऽसुरैः सर्वैः कुजम्भमहिषादिभिः।
सर्वासुरमहाराज्ये पृथिवीतुलनक्षमैः॥ २८

स तु प्राप्य महाराज्यं तारको मुनिसत्तमाः।
उवाच दानवश्रेष्ठान् युक्तियुक्तमिदं वचः॥ २९

उनके साथ राक्षसियाँ भी थीं। हर्षसे फूली हुई उन असुराङ्गनाओंमें कुछ तो नाचने लगीं और कुछ गाने लगीं। इस प्रकार वहाँ दानवोंका महोत्सव प्रारम्भ हो गया। यह देखकर इन्द्रसहित सभी देवताओंका मन खिन्न हो गया। उधर वराङ्गी अपने पुत्रका मुख देखकर हर्षसे भर गयी। उसी समय वह देवराज इन्द्रकी विजयको तुच्छ मानने लगी। प्रचण्ड पराक्रमी दैत्यराज तारक जन्म लेते ही पृथ्वीको भी उठा लेनेमें समर्थ कुजम्भ और महिष आदि सभी प्रधान असुरोंद्वारा सम्पूर्ण असुरोंके सम्राट्पदपर अभिषिक्त कर दिया गया। मुनिवरो! तब उस महान् राज्यका अधिकार पाकर तारक उन दानवश्रेष्ठोंसे ऐसा युक्तिसंगत वचन बोला— ॥ १७—२९ ॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकासुरोपाख्याने तारकोत्पत्तिर्नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४७॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकासुरोपाख्यानमें तारकोत्पत्ति नामक एक सौ सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४७॥

एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

तारकासुरकी तपस्या और ब्रह्माद्वारा उसे वरदानप्राप्ति, देवासुर-संग्रामकी तैयारी तथा दोनों दलोंकी सेनाओंका वर्णन

तारक उवाच

शृणुध्वमसुराः सर्वे वाक्यं मम महाबलाः।
श्रेयसे क्रियतां बुद्धिः सर्वैः कृत्यस्य संविधौ॥ १

वंशक्षयकरा देवाः सर्वेषामेव दानवाः।
अस्माकं जातिधर्मो वै विरूढं वैरमक्षयम्॥ २

वयमद्य गमिष्यामः सुराणां निग्रहाय तु।
स्वबाहुबलमाश्रित्य सर्व एवमसंशयः॥ ३

किंतु नातपसा युक्तो मन्येऽहं सुरसंगमम्।
अहमादौ करिष्यामि तपो घोरं दितेः सुताः॥ ४

तारकने कहा—महाबली असुरो! आपलोग ध्यानपूर्वक मेरी बात सुनें। आप सभी लोगोंको इस कार्यकी तैयारीमें सर्वप्रथम अपने कल्याणके लिये विचार कर लेना चाहिये। दानववृन्द! देवतालोग हम सभीके कुलका (सदा) संहार करते रहते हैं, इस कारण उनके साथ विरोध करना हमलोगोंका जातिगत धर्म है और उनके साथ हमारा (सदा) अक्षय वैर बँधा रहता है। हम सभी लोग अपने बाहुबलका आश्रय लेकर आज ही उन देवताओंका दमन करनेके लिये चलेंगे, इसमें कोई संशय नहीं है, किंतु दिति-नन्दनो! तपोबलसे सम्पन्न हुए बिना मैं देवताओंके साथ लोहा लेना उचित नहीं समझता, अतः मैं पहले घोर तपस्या करूँगा, तत्पश्चात् हमलोग

ततः सुरान् विजेष्यामो भोक्ष्यामोऽथ जगत्त्रयम्।
स्थिरोपायो हि पुरुषः स्थिरश्रीरपि जायते॥ ५

रक्षितुं नैव शक्नोति चपलश्चपलां श्रियम्।
तच्छ्रुत्वा दानवाः सर्वे वाक्यं तस्यासुरस्य तु॥ ६

साधु साध्वित्यवोचंस्ते तत्र दैत्याः सविस्मयाः।
सोऽगच्छत् पारियात्रस्य गिरेः कन्दरमुत्तमम्॥ ७

सर्वर्तुकुसुमाकीर्णं नानौषधिविदीपितम्।
नानाधातुरसस्त्रावचित्रं नानागुहागृहम्॥ ८

गहनैः सर्वतो गूढं चित्रकल्पद्रुमाश्रयम्।
अनेकाकारबहुलं पृथक् पक्षिकुलाकुलम्॥ ९

नानाप्रस्त्रवणोपेतं नानाविधजलाशयम्।
प्राप्य तत्कन्दरं दैत्यश्चचार विपुलं तपः॥ १०

निराहारः पञ्चतपाः पत्रभुग् वारिभोजनः।
शतं शतं समानां तु तपांस्येतानि सोऽकरोत्॥ ११

ततः स्वदेहादुत्कृत्य कर्षं कर्षं दिने दिने।
मांसस्याग्नौ जुहावासौ ततो निर्मांसतां गतः॥ १२

तस्मिन् निर्मांसतां याते तपोराशित्वमागते।
जज्वलुः सर्वभूतानि तेजसा तस्य सर्वतः॥ १३

उद्विग्नाश्च सुराः सर्वे तपसा तस्य भीषिताः।
एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा परमं तोषमागतः॥ १४

तारकस्य वरं दातुं जगाम त्रिदशालयात्।
प्राप्य तं शैलराजानं स गिरेः कन्दरस्थितम्।
उवाच तारकं देवो गिरा मधुरया युतः॥ १५

ब्रह्मोवाच

पुत्रालं तपसा तेऽस्तु नास्त्यसाध्यं तवाधुना।
वरं वृणीष्व रुचिरं यत् ते मनसि वर्तते॥ १६

देवताओंको पराजित करेंगे और त्रिलोकीके सुखका उपभोग करेंगे; क्योंकि सुदृढ़ उपाय करनेवाला पुरुष ही अनपायिनी लक्ष्मीका पात्र होता है। चञ्चल बुद्धिवाला पुरुष चञ्चला लक्ष्मीकी रक्षा नहीं कर सकता। तारकासुरके उस कथनको सुनकर वहाँ उपस्थित सभी दानव और दैत्य आश्चर्यचकित हो उठे और वे सभी 'ठीक है, ठीक है' ऐसा कहने लगे। तत्पश्चात् तारकासुर (तपस्या करनेके लिये) पारियात्र पर्वत (अरावली एवं विंध्यका पश्चिम भाग)-की उत्तम कन्दराके पास पहुँचा। वह पर्वत सभी ऋतुओंमें विकसित होनेवाले पुष्पोंसे व्याप्त, अनेक प्रकारकी ओषधियोंसे उद्दीप्त, विविध धातुओंके रसोंके चूते रहनेसे चित्र-विचित्र, अनेकों गुहारूपी गृहोंसे युक्त, सब ओरसे घने वृक्षोंसे घिरा, रंग-बिरंगे कल्पवृक्षोंसे आच्छादित और अनेकों प्रकारके आकारवाले बहुत-से पक्षि-समूहोंसे सर्वत्र व्याप्त था। उस पर्वतसे अनेकों झरने झर रहे थे तथा वह अनेकविध जलाशयोंसे सुशोभित था। उसकी कन्दरामें जाकर तारक दैत्य घोर तपस्यामें संलग्न हो गया॥ १—१०॥

पहले वह सौ-सौ वर्षोंके क्रमसे निराहार रहकर, फिर पञ्चाग्नि तापकर, पुनः पत्ते खाकर तत्पश्चात् केवल जल पीकर तपस्या करता रहा। इसके बाद उसने प्रतिदिन अपने शरीरसे सोलह माशा मांस काट-काटकर अग्निमें हवन करना प्रारम्भ किया, जिससे उसका शरीर मांसरहित हो गया। इस प्रकार उसके मांसरहित हो जानेपर वह तपःपुञ्ज-सा दीख पड़ने लगा। उसके तेजसे चारों ओर सभी प्राणी संतप्त हो उठे। समस्त देवगण उसकी तपस्यासे भयभीत हो उद्विग्न हो गये। इसी अवसरपर ब्रह्मा उसकी भीषण तपस्यासे परम प्रसन्न हो गये। तब वे तारकासुरको वर प्रदान करनेके लिये स्वर्गलोकसे चल पड़े और उस पर्वतराज पारियात्रपर जा पहुँचे। वहाँ वे देवाधिदेव उस पर्वतकी कन्दरामें स्थित तारकके निकट जाकर उससे मधुर वाणीमें बोले॥ ११—१५॥

ब्रह्माजीने कहा—पुत्र! तुम्हें अब तप करनेकी आवश्यकता नहीं, वह पूरी हो चुकी। अब तुम्हारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। अब तुम्हारे मनमें जो रुचे, वह उत्तम वर माँग लो।

इत्युक्तस्तारको दैत्यः प्रणम्यात्मभुवं विभुम्।
उवाच प्राञ्जलिर्भूत्वा प्रणतः पृथुविक्रमः॥ १७

तारक उवाच

देव भूतमनोवास वेत्सि जन्तुविचेष्टितम्।
कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी जिगीषुः प्रायशो जनः॥ १८
वयं च जातिधर्मेण कृतवैराः सहामरैः।
तैश्च निःशेषिता दैत्याः क्रूरैः संत्यज्य धर्मिताम्।
तेषामहं समुद्धर्त्ता भवेयमिति मे मतिः॥ १९
अवध्यः सर्वभूतानामस्त्राणां च महौजसाम्।
स्यामहं परमो ह्येष वरो मम हृदि स्थितः॥ २०
एतन्मे देहि देवेश नान्यो मे रोचते वरः।
तमुवाच ततो दैत्यं विरिञ्चिः सुरनायकः॥ २१
न युज्यन्ते विना मृत्युं देहिनो दैत्यसत्तम।
यतस्ततोऽपि वरय मृत्युं यस्मान्न शङ्कसे॥ २२
ततः सञ्चिन्त्य दैत्येन्द्रः शिशोर्वै सप्तवासरात्।
वव्रे महासुरो मृत्युमवलेपनमोहितः॥ २३
ब्रह्मा चास्मै वरं दत्त्वा यत्किञ्चिन्मनसेप्सितम्।
जगाम त्रिदिवं देवो दैत्योऽपि स्वकमालयम्॥ २४
उत्तीर्णं तपसस्तं तु दैत्यं दैत्येश्वरास्तथा।
परिवव्रुः सहस्राक्षं दिवि देवगणा यथा॥ २५
तस्मिन् महति राज्यस्थे तारके दैत्यनन्दने।
ऋतवो मूर्तिमन्तश्च स्वकालगुणबृंहिताः॥ २६
अभवन् किंकरास्तस्य लोकपालाश्च सर्वशः।
कान्तिर्द्युतिर्धृतिर्मेधा श्रीरवेक्ष्य च दानवम्॥ २७
परिवव्रुर्गुणाकीर्णा निश्छिद्राः सर्व एव हि।
कालागुरुविलिप्ताङ्गं महामुकुटभूषणम्॥ २८

ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर परम पराक्रमी दैत्यराज तारकने स्वयम्भू भगवान् ब्रह्माको प्रणाम किया और विनम्रभावसे हाथ जोड़कर कहा॥ १६-१७॥

तारक बोला— सभी प्राणियोंके मनमें निवास करनेवाले देव! आप सभी जीवोंकी चेष्टाको जानते हैं। प्रायः प्रत्येक मनुष्य अपने शत्रुसे बदला लेनेकी भावनासे उसे जीतनेका इच्छुक रहता है। हमलोगोंका जातिधर्मानुसार देवताओंके साथ वैर है। उन क्रूरकर्मी देवताओंने धर्मको तिलाञ्जलि देकर प्रायः दैत्योंको निःशेष कर दिया है। मैं उनका उन्मूलन करनेवाला हो जाऊँ—ऐसा मेरा विचार है। साथ ही मैं समस्त प्राणियों तथा परम तेजस्वी अस्त्रोंद्वारा अवध्य हो जाऊँ—यही उत्तम वर मेरे हृदयमें स्थित है। देवेश! मुझे यही वर दीजिये। मुझे किसी अन्य वरकी अभिलाषा नहीं है। यह सुनकर सुरनायक ब्रह्मा उस दैत्यराजसे बोले—'दैत्यश्रेष्ठ! कोई भी देहधारी जीव मृत्युसे नहीं बच सकता, अर्थात् जो जन्म धारण करता है, उसकी मृत्यु अवश्य होती है, इसलिये जिससे तुम्हें मृत्युकी आशङ्का न हो, उसीसे अपनी मृत्युका वर माँग लो।' तब गर्वसे मूढ़ हुए महासुर दैत्यराज तारकने भलीभाँति सोच-विचारकर सात दिनके बालकके हाथसे अपनी मृत्युका वर माँगा। तदनन्तर देवाधिदेव ब्रह्मा उसके मनके अभिलाषानुसार उसे वर देकर स्वर्गलोकको चले गये। इधर दैत्यराज तारक भी अपने निवासस्थानको लौट आया। तब सभी दैत्याधिपति तपस्याको पूर्ण करके लौटे हुए उस दैत्यराज तारकको घेरकर इस प्रकार बातें करने लगे, जैसे स्वर्गलोकमें देवगण इन्द्रको घेरकर बातें करते हैं॥ १८—२५॥

दैत्योंके उस महान् साम्राज्यपर दैत्यनन्दन तारकके अवस्थित होनेपर छहों ऋतुएँ शरीर धारण कर अपने-अपने कालके अनुसार सभी गुणोंसे युक्त हो उपस्थित हुईं। सभी लोकपाल उसका किंकर बनकर रहने लगे। कान्ति, द्युति, धृति, मेधा और श्री—ये सभी देवियाँ गुणयुक्त होकर निष्कपट भावसे उस दानवराजकी ओर देखती हुई उसे घेरकर खड़ी रहती थीं। जब वह दैत्यराज शरीरमें काला अगुरुका लेप कर बहुमूल्य मुकुटसे विभूषित हो

रुचिराङ्गदनद्धाङ्गं महासिंहासने स्थितम्।
वीजयन्त्यप्सरःश्रेष्ठा भृशं मुञ्चन्ति नैव ताः॥ २९

चन्द्राकौं दीपमार्गेषु व्यजनेषु च मारुतः।
कृतान्तोऽग्रेसरस्तस्य बभूवुर्मुनिसत्तमाः॥ ३०

एवं प्रयाति काले तु वितते तारकासुरः।
बभाषे सचिवान् दैत्यः प्रभूतवरदर्पितः॥ ३१

तारक उवाच

राज्येन कारणं किं मे त्वनाक्रम्य त्रिविष्टपम्।
अनिर्याप्य सुरैर्वैरं का शान्तिर्हृदये मम॥ ३२
भुञ्जतेऽद्यापि यज्ञांशानमरा नाक एव हि।
विष्णुः श्रियं न जहति तिष्ठते च गतभ्रमः॥ ३३
स्वस्थाभिः स्वर्गनारीभिः पीड्यन्तेऽमरवल्लभाः।
सोत्पला मदिरामोदा दिवि क्रीडायनेषु च॥ ३४
लब्ध्वा जन्म न यः कश्चिद् घटयेत् पौरुषं नरः।
जन्म तस्य वृथाभूतमजन्मा तु विशिष्यते॥ ३५
मातापितृभ्यां न करोति कामान्
बन्धूनशोकान् न करोति यो वा।
कीर्तिं हि वा चार्जयते हिमाभां
पुमान् स जातोऽपि मृतो मतं मे॥ ३६
तस्माज्जयायामरपुंगवानां
त्रैलोक्यलक्ष्मीहरणाय शीघ्रम्।
संयोज्यतां मे रथमष्टचक्रं
बलं च मे दुर्जयदैत्यचक्रम्।
ध्वजं च मे काञ्चनपट्टनद्धं
छत्रं च मे मौक्तिकजालबद्धम्॥ ३७

और मनोहर बाजूबंद बाँधकर विशाल सिंहासनपर बैठता तब श्रेष्ठ अप्सराएँ उसपर निरन्तर पंखा झलती रहती थीं और क्षणमात्रके लिये भी उससे पृथक् नहीं होती थीं। मुनिवरो! उसके महलमें चन्द्रमा और सूर्य दीपके स्थानपर, वायुदेव पंखोंके स्थानपर तथा कृतान्त उसके अग्रेसरके स्थानपर नियुक्त हुए। इस प्रकार (सुखपूर्वक) बहुत-सा समय व्यतीत हो जानेपर एक दिन उत्कृष्ट वरप्राप्तिसे गर्वित हुआ दैत्यराज तारकासुर अपने मन्त्रियोंसे बोला॥ २६—३१॥

तारकने कहा—अमात्यो! स्वर्गलोकपर आक्रमण किये बिना मुझे इस राज्यसे क्या लाभ? देवताओंसे वैरका बदला चुकाये बिना मेरे हृदयमें शान्ति कहाँ? अभी भी देवगण स्वर्गलोकमें यज्ञांशोंका उपभोग कर रहे हैं। विष्णु लक्ष्मीको नहीं छोड़ रहा है और निर्भय होकर स्थित है। स्वर्गलोकमें क्रीडागारोंमें मदिराकी गन्धसे युक्त दुबले-पतले शरीरवाले श्रेष्ठ देवगण सुन्दरी देवाङ्गनाओंद्वारा आलिङ्गित किये जा रहे हैं। कोई भी व्यक्ति यदि जन्म लेकर अपना पुरुषार्थ नहीं प्रकट करता तो उसका जन्म लेना व्यर्थ है, उससे तो जन्म न लेनेवाला ही विशिष्ट है। जो पुरुष माता-पिताकी कामनाओंको पूर्ण नहीं करता, अपने बन्धुओंका शोक नष्ट नहीं करता और हिमके समान उज्ज्वल कीर्तिका अर्जन नहीं करता, वह जन्म लेकर भी मरे हुएके समान है—ऐसा मेरा विचार है। इसलिये श्रेष्ठ देवताओंको जीतने तथा त्रिलोकीकी लक्ष्मीका अपहरण करनेके लिये शीघ्र ही मेरा आठ पहियेवाला रथ, अजेय दैत्य-सैन्यसमूह, स्वर्णपत्र-जटित ध्वज और मुक्ताकी लड़ियोंसे सुशोभित छत्र तैयार किया जाय॥ ३२—३७॥

तारकस्य वचः श्रुत्वा ग्रसनो नाम दानवः।
सेनानीर्दैत्यराजस्य तथा चक्रे बलान्वितः॥ ३८

दैत्यराज तारककी बात सुनकर उसके सेनानायक महाबली ग्रसन नामक दानवने उसके आज्ञानुसार

आहत्य भेरीं गम्भीरां दैत्यानाहूय सत्वरः।
तुरगाणां सहस्रेण चक्राष्टकविभूषितम्॥ ३९

शुक्लाम्बरपरिष्कारं चतुर्योजनविस्तृतम्।
नानाक्रीडागृहयुतं गीतवाद्यमनोहरम्॥ ४०

विमानमिव देवस्य सुरभर्तुः शतक्रतोः।
दशकोटीश्वरा दैत्या दैत्यास्ते चण्डविक्रमाः॥ ४१

तेषामग्रेसरो जम्भः कुजम्भोऽनन्तरस्ततः।
महिषः कुञ्जरो मेघः कालनेमिर्निमिस्तथा॥ ४२

मथनो जम्भकः शुम्भो दैत्येन्द्रा दश नायकाः।
अन्येऽपि शतशस्तस्य पृथिवीदलनक्षमाः॥ ४३

दैत्येन्द्रा गिरिवर्ष्माणः सन्ति चण्डपराक्रमाः।
नानायुधप्रहरणा नानाशस्त्रास्त्रपारगाः॥ ४४

तारकस्याभवत् केतू रौद्रः कनकभूषणः।
केतुना मकरेणापि सेनानीर्ग्रसनोऽरिहा॥ ४५

पैशाचं यस्य वदनं जम्भस्यासीदयोमयम्।
खरं विधूतलाङ्गूलं कुजम्भस्याभवद्ध्वजे॥ ४६

महिषस्य तु गोमायुं केतोर्हैमं तदाभवत्।
ध्वाङ्क्षं ध्वजे तु शुम्भस्य कृष्णायोमयमुच्छ्रितम्॥ ४७

अनेकाकारविन्यासाश्चान्येषां तु ध्वजास्तथा।
शतेन शीघ्रवेगाणां व्याघ्राणां हेममालिनाम्॥ ४८

ग्रसनस्य रथो युक्तो किङ्किणीजालमालिनाम्।
शतेनापि च सिंहानां रथो जम्भस्य दुर्जयः॥ ४९

कुजम्भस्य रथो युक्तः पिशाचवदनैः खरैः।
रथस्तु महिषस्योष्ट्रैर्गजस्य तु तुरंगमैः॥ ५०

कार्य करना आरम्भ किया। उसने तुरंत ही गम्भीर शब्द करनेवाली भेरी बजाकर दैत्योंको बुलाया। फिर आठ पहियोंसे विभूषित रथमें एक हजार घोड़े जोत दिये गये। (वह उसपर सवार हुआ।)वह रथ चार योजन विस्तारवाला और अनेकों क्रीडागृहोंसे युक्त था। उसपर श्वेत वस्त्रका आच्छादन पड़ा हुआ था तथा वह गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनिसे मनोहर लग रहा था। उस समय वह ऐसा दीख रहा था, मानो देवराज इन्द्रदेवका विमान हो। उस समय दस करोड़ दैत्याधिपति उपस्थित थे, वे सभी दैत्य प्रचण्ड पराक्रमी थे। उनका अगुआ जम्भ था। इसके बाद कुजम्भ, महिष, कुंजर, मेघ, कालनेमि, निमि, मथन, जम्भक और शुम्भ नामक दस दैत्येन्द्र सेनानायक थे। इनके अतिरिक्त अन्य भी सैकड़ों दैत्य थे जो पृथ्वीका मर्दन करनेमें समर्थ थे। ये सभी दैत्येन्द्र पर्वतके समान विशाल शरीरवाले, प्रचण्ड पराक्रमी, नाना प्रकारके आयुधोंका प्रयोग करनेमें निपुण और अनेकविध शस्त्रास्त्रोंकी प्रयोगविधिमें पारंगत थे। तारकासुरका स्वर्णभूषित ध्वज अत्यन्त भयंकर था। शत्रुका विनाश करनेवाले सेनापति ग्रसनका ध्वज मकरके आकारसे युक्त था। जम्भका ध्वज लौहनिर्मित था और उसपर पिशाचके मुखका चिह्न बना हुआ था। कुजम्भके ध्वजपर हिलती हुई पूँछवाला गधा अङ्कित था। महिषके ध्वजपर स्वर्णनिर्मित शृगालका चित्र था। शुम्भका ध्वज काले लोहेका बना हुआ अत्यन्त ऊँचा था और उसपर फौलादका बना काकका आकार चित्रित था॥ ३८—४७॥

इसी प्रकार अन्य दैत्योंके ध्वजोंपर भी अनेकों प्रकारके आकारका विन्यास किया गया था। ग्रसनके रथमें सौ शीघ्रगामी व्याघ्र जुते हुए थे, जिनके गलेमें सोनेकी मालाएँ पड़ी थीं और जो क्षुद्रघंटिकाओंसे सुशोभित थे। जम्भका दुर्जय रथ भी सौ सिंहोंद्वारा खींचा जा रहा था। कुजम्भका रथ पिशाच-सदृश मुखवाले गधोंसे युक्त था। महिषका रथ ऊँटों, कुंजरका घोड़ों, मेघका

मेघस्य द्वीपिभिर्भीमैः कुञ्जरैः कालनेमिनः।
पर्वताभैः समारूढो निमिर्मत्तैर्महागजैः॥ ५१

चतुर्दन्तैर्गन्धवद्भिः शिक्षितैर्मेघभैरवैः।
शतहस्तायतैः कृष्णैः तुरङ्गैर्हेमभूषणैः॥ ५२

सितचामरजालेन शोभिते दक्षिणां दिशम्।
सितचन्दनचार्वङ्गो नानापुष्पस्रजोज्ज्वलः॥ ५३

मथनो नाम दैत्येन्द्रः पाशहस्तो व्यराजत।
जम्भकः किङ्किणीजालमालमुष्ट्रं समास्थितः॥ ५४

कालशुक्लमहामेषमारूढः शुम्भदानवः।
अन्येऽपि दानवा वीरा नानावाहनगामिनः॥ ५५

प्रचण्डचित्रकर्माणः कुण्डलोष्णीषभूषणाः।
नानाविधोत्तरासङ्गा नानामाल्यविभूषणाः॥ ५६

नानासुगन्धिगन्धाढ्या नानाबन्दिजनस्तुताः।
नानावाद्यपरिस्पन्दाश्चाग्रेसरमहारथाः॥ ५७

नानाशौर्यं कथासक्तास्तस्मिन् सैन्ये महासुराः।
तद्‌बलं दैत्यसिंहस्य भीमरूपं व्यजायत॥ ५८

प्रमत्तचण्डमातङ्गतुरङ्ग रथसङ्कुलम्।
प्रतस्थेऽमरयुद्धाय बहुपत्तिपताकिनम्॥ ५९

एतस्मिन्नन्तरे वायुर्देवदूतोऽम्बरालये।
दृष्ट्वा स दानवबलं जगामेन्द्रस्य शंसितुम्॥ ६०

स गत्वा तु सभां दिव्यां महेन्द्रस्य महात्मनः।
शशंस मध्ये देवानां तत्कार्यं समुपस्थितम्॥ ६१

चीतों और कालनेमिका भयंकर हाथियोंसे संयुक्त था। दैत्यनायक निमि एक ऐसे रथपर सवार था जिसमें मतवाले गजराज जुते हुए थे, जो पर्वतके समान विशालकाय और चार दाँतोंसे युक्त थे, जिनके गण्डस्थलोंसे मदकी धारा बह रही थी, जो मेघ-सदृश भयंकर गर्जना करनेवाले और युद्धकलामें शिक्षित थे। जिसके शरीरमें श्वेत चन्दनका अनुलेप लगा था और जो अनेकों प्रकारके उज्ज्वल पुष्पोंकी मालाओंसे सुशोभित था, वह मथन नामक दैत्येन्द्र हाथमें पाश लिये हुए उस सैन्यसमूहकी दक्षिण दिशामें स्थित श्वेत चामरोंसे विभूषित रथपर शोभा पा रहा था। उसके रथमें सौ हाथ लम्बे शरीरवाले स्वर्णाभरणोंसे विभूषित काले रंगके घोड़े जुते हुए थे। जम्भक क्षुद्र घंटिकाओंसे सुशोभित ऊँटपर सवार था। शुम्भ नामक दानव कालके समान भयंकर एवं श्वेत वर्णवाले एक विशालकाय मेषपर आरूढ़ था। दूसरे भी दानववीर नाना प्रकारके वाहनोंपर चढ़कर चल रहे थे॥ ४८—५५॥

वे सभी दैत्य अद्‌भुत पराक्रमपूर्ण कर्म करनेवाले, कुण्डल और पगड़ीसे विभूषित, अनेक प्रकारके दुपट्टोंसे सुशोभित, नाना प्रकारकी मालाओंसे सुसज्जित और अनेकविध सुगन्धित पदार्थोंसे सुवासित थे। उनके आगे-आगे बंदीगण स्तुति-गान कर रहे थे। उनके साथ अनेकों प्रकारके युद्धके बाजे बज रहे थे। और वे सभी अग्रेसर महारथी अनेकविध शृङ्गारसे सुसज्जित थे। उस सेनामें प्रधान-प्रधान असुर पराक्रमपूर्ण कथाओंके कहने-सुननेमें आसक्त थे। दैत्यसिंह तारकासुरकी वह सेना मतवाले एवं पराक्रमी हाथियों, घोड़ों और रथोंसे व्याप्त होनेके कारण अत्यन्त भयंकर दीख रही थी। उसमें ध्वजाएँ फहरा रही थीं और बहुत-से पैदल सैनिक भी थे। इस प्रकार वह सेना देवताओंसे टक्कर लेनेके लिये प्रस्थित हुई। इसी अवसरपर देवदूत वायु दानवोंकी उस सेनाको प्रस्थित होते हुए देखकर इन्द्रको सूचित करनेके लिये स्वर्गलोकमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने महात्मा महेन्द्रकी दिव्य सभामें जाकर देवताओंके बीच उस उपस्थित हुए कार्यकी सूचना दी।

तच्छ्रुत्वा देवराजस्तु निमीलितविलोचनः।
बृहस्पतिमुवाचेदं वाक्यं काले महाभुजः॥ ६२

उसे सुनकर उस समय महाबाहु देवराज इन्द्रने पहले तो अपनी आँखें बंद कर लीं, फिर वे बृहस्पतिसे इस प्रकार बोले॥ ५६—६२॥

इन्द्र उवाच

सम्प्राप्नोति विमर्दोऽयं देवानां दानवैः सह।
कार्यं किमत्र तद् ब्रूहि नीत्युपायसमन्वितम्॥ ६३

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं महेन्द्रस्य गिरांपतिः।
इत्युवाच महाभागो बृहस्पतिरुदारधीः॥ ६४

सामपूर्वा स्मृता नीतिश्चतुरङ्गां पताकिनीम्।
जिगीषतां सुरश्रेष्ठ स्थितिरेषा सनातनी॥ ६५

साम भेदस्तथा दानं दण्डश्चाङ्गचतुष्टयम्।
नीतौ क्रमादेशकालरिपुयोग्यक्रमादिदम्॥ ६६

साम दैत्येषु नैवास्ति यतस्ते लब्धसंश्रयाः।
जातिधर्मेण वाभेद्या दानं प्राप्तश्रिये च किम्॥ ६७

एकोऽभ्युपायो दण्डोऽत्र भवतां यदि रोचते।
दुर्जनेषु कृतं साम महद्याति च बन्ध्यताम्॥ ६८

भयादिति व्यवस्यन्ति क्रूराः साम महात्मनाम्।
ऋजुतामार्यबुद्धित्वं दयानीतिव्यतिक्रमम्॥ ६९

मन्यन्ते दुर्जना नित्यं साम चापि भयोदयात्।
तस्माद् दुर्जनमाक्रान्तुं श्रेयान् पौरुषसंश्रयः॥ ७०

आक्रान्ते तु क्रिया युक्ता सतामेतन्महाव्रतम्।
दुर्जनः सुजनत्वाय कल्पते न कदाचन॥ ७१

सुजनोऽपि स्वभावस्य त्यागं वा चेत्कदाचन।
एवं मे बुध्यते बुद्धिर्भवन्तोऽत्राध्यवस्यताम्॥ ७२

एवमुक्तः सहस्राक्ष एवमेवेत्युवाच तम्।
कर्तव्यतां स संचिन्त्य प्रोवाचामरसंसदि॥ ७३

इन्द्रने कहा—गुरुदेव! देवताओंका दानवोंके साथ यह अत्यन्त भयंकर संघर्ष आ पहुँचा है। अब इस विषयमें क्या करना चाहिये, उपायसहित वह नीति बतलाइये। इन्द्रके इस वचनको सुनकर वाणीके अधीश्वर उदार बुद्धिवाले महान् भाग्यशाली बृहस्पति इस प्रकार बोले—'सुरश्रेष्ठ! (इस प्रकारकी) चतुरंगिणी सेनापर विजय पानेकी इच्छा रखनेवालोंके लिये सामपूर्वक नीति बतलायी गयी है—यही सनातनी स्थिति है। नीतिके साम, भेद, दान और दण्ड—ये चार अङ्ग हैं। राजनीतिके प्रयोगमें क्रमशः देश, काल और शत्रुकी योग्यता आदिका क्रम देखना चाहिये। इनमें दैत्योंपर सामनीतिका प्रयोग तो हो नहीं सकता; क्योंकि उन्हें आश्रय प्राप्त हो चुका है (वे मदमत्त हैं), जातिधर्मके अनुसार भेदनीतिका प्रयोग करके उनमें फूट भी नहीं डाला जा सकता तथा जिन्हें लक्ष्मी प्राप्त है, उन्हें दान देनेसे भी क्या लाभ होगा? अतः इनपर एकमात्र दण्डका ही उपाय उपयुक्त प्रतीत हो रहा है। यदि आपको मेरी बात रुचती हो तो इसीका अवलम्बन कीजिये; क्योंकि दुर्जनोंके साथ की गयी सामनीति एकदम निरर्थक होती है। क्रूर लोग महात्माओंद्वारा प्रयुक्त की गयी सामनीतिको भयवश की हुई मानते हैं, अतः उनके साथ की गयी सरलता, उदारबुद्धिका प्रयोग और दयानीतिका विपरीत परिणाम होता है। दुर्जनलोग सामनीतिको भी सदा भयभीत होनेके कारण प्रयुक्त की हुई मानते हैं। इसलिये दुर्जनोंपर आक्रमण करनेके लिये पुरुषार्थका ही आश्रय लेना श्रेयस्कर है। दुर्जनोंके आक्रान्त हो जानेपर ही उनपर प्रयुक्त की हुई क्रिया फलवती होती है। यह सत्पुरुषोंका महान् व्रत है। सुजन कभी (कुसङ्गवश) अपने उत्तम स्वभावका त्याग करनेकी इच्छा कर सकता है, परंतु दुर्जन कभी भी सुजन नहीं हो सकता। मेरी बुद्धिमें तो ऐसा ही आ रहा है, अब आपलोग इस विषयमें जैसा विचार करें। इस प्रकार कहे जानेपर इन्द्रने बृहस्पतिसे कहा—'ऐसा ही होगा।' फिर वे अपने कर्तव्यके विषयमें भलीभाँति सोच-विचार कर उस देवसभामें बोले॥ ६३—७३॥

इन्द्र उवाच

सावधानेन मे वाचं शृणुध्वं नाकवासिनः।
भवन्तो यज्ञभोक्तारस्तुष्टात्मानोऽतिसात्त्विकाः॥ ७४

स्वे महिम्नि स्थिता नित्यं जगतः परिपालकाः।
भवतश्चानिमित्तेन बाधन्ते दानवेश्वराः॥ ७५

तेषां सामादि नैवास्ति दण्ड एव विधीयताम्।
क्रियतां समरोद्योगः सैन्यं संयुज्यतां मम॥ ७६

आधीयन्तां च शस्त्राणि पूज्यन्तामस्त्रदेवताः।
वाहनानि च यानानि योजयन्तु सहामराः॥ ७७

यमं सेनापतिं कृत्वा शीघ्रमेवं दिवौकसः।
इत्युक्ताः समनह्यन्त देवानां ये प्रधानतः॥ ७८

वाजिनामयुतेनाजौ हेमघण्टापरिष्कृतम्।
नानाश्चर्यगुणोपेतं सम्प्राप्तं सर्वदैवतैः॥ ७९

रथं मातलिना क्लृप्तं देवराजस्य दुर्जयम्।
यमो महिषमास्थाय सेनाग्रे समवर्तत॥ ८०

चण्डकिङ्करवृन्देन सर्वतः परिवारितः।
कल्पकालोद्धतज्वालापूरिताम्बरलोचनः॥ ८१

हुताशनश्छागरूढः शक्तिहस्तो व्यवस्थितः।
पवनोऽङ्कुशपाणिस्तु विस्तारितमहाजवः॥ ८२

भुजगेन्द्र समारूढो जलेशो भगवान् स्वयम्।
नरयुक्तरथे देवो राक्षसेशो वियच्चरः॥ ८३

तीक्ष्णखड्गयुतो भीमः समरे समवस्थितः।
महासिंहरवो देवो धनाध्यक्षो गदायुधः॥ ८४

चन्द्रादित्यावश्विनौ च चतुरङ्गबलान्वितौ।
राजभिः सहितास्तस्थुर्गन्धर्वा हेमभूषणाः॥ ८५

हेमपीठोत्तरासङ्गाश्चित्रवर्मरथायुधाः।
नाकपृष्ठशिखण्डास्तु वैदूर्यमकरध्वजाः॥ ८६

इन्द्रने कहा— स्वर्गवासियो! आपलोग सावधानीपूर्वक मेरी बात सुनें। आपलोग यज्ञके भोक्ता, संतुष्ट आत्मावाले, अत्यन्त सात्त्विक, अपनी महिमामें स्थित और नित्य जगत्‌का पालन करनेवाले हैं, तथापि दानवेश्वरगण अकारण ही आपलोगोंको पीड़ा पहुँचाते रहते हैं। उनपर साम आदि तीन नीतियोंके प्रयोगसे कोई लाभ है नहीं, अतः दण्डनीतिका ही विधान करना चाहिये। इसलिये अब आपलोग युद्धकी तैयारी कीजिये और मेरी सेना सुसज्जित की जाय। देवगण! आपलोग संगठित होकर शस्त्रोंको धारण कीजिये, अस्त्र-देवताओंकी पूजा कीजिये और सवारियोंको सुसज्जित करके रथोंको जोत दीजिये। इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर देवताओंमें जो प्रधान देव थे, वे लोग शीघ्र ही यमराजको सेनापतिके पदपर नियुक्त कर सेनाको संगठित करनेमें जुट गये। उस युद्धमें समस्त देवताओंके साथ दस हजार घोड़े सजाये गये, जो नाना प्रकारके आश्चर्ययुक्त गुणोंसे युक्त थे तथा जिनके गलेमें सोनेके घण्टे शोभा पा रहे थे। मातलिने देवराजके दुर्जय रथको सजाकर तैयार किया। यमराज अपने महिषपर सवार होकर सेनाके अग्रभागमें स्थित हुए। उस समय उनके नेत्र महाप्रलयके समय प्रचण्ड ज्वालासे धधकते हुए आकाशकी तरह धधक रहे थे और वे चारों ओरसे प्रचण्ड पराक्रमी किंकरोंसे घिरे हुए थे। अग्निदेव हाथमें शक्ति लिये हुए छागपर आरूढ हो उपस्थित हुए। अपने महान् वेगका विस्तार करनेवाले पवनदेवके हाथमें अङ्कुश शोभा पा रहा था। स्वयं भगवान् वरुण भुजगेन्द्रपर सवार थे। जो राक्षसोंके अधीश्वर, आकाशचारी और भयंकर रूपवाले हैं, जिनके हाथमें तेज तलवार शोभा पा रही थी, गदा जिनका आयुध है, जो सिंहके समान भयंकर रूपसे दहाड़नेवाले हैं, वे धनाध्यक्ष देवाधिदेव कुबेर पालकीपर बैठकर समरमें उपस्थित हुए॥ ७४—८४॥

चतुरङ्गिणी सेनाके साथ चन्द्रमा, सूर्य और दोनों अश्विनीकुमार भी सम्मिलित हुए। स्वर्णनिर्मित आभूषणोंसे विभूषित गन्धर्वगण अपने अधिपतियोंके साथ उपस्थित हुए। उनके आसन स्वर्णनिर्मित थे, उनके उपरनोंमें सोनेकी पच्चीकारी की गयी थी, वे चित्र-विचित्र कवच, रथ और आयुधसे युक्त थे, उनके सिरोंपर स्वर्गीय मयूरपिच्छ शोभा पा रहा था और उनके ध्वजोंपर वैदूर्यमणिकी मकराकृति बनी हुई थी।

जवारक्तोत्तरासङ्गा राक्षसा रक्तमूर्धजाः।
गृध्रध्वजा महावीर्या निर्मलायोविभूषणाः॥ ८७
मुसलासिगदाहस्ता रथे चोष्णीषदंशिताः।
महामेघरवा नागा भीमोल्काशनिहेतयः॥ ८८
यक्षाः कृष्णाम्बरभृतो भीमबाणधनुर्धराः।
ताम्रोलूकध्वजा रौद्रा हेमरत्नविभूषणाः॥ ८९
द्वीपिचर्मोत्तरासङ्गं निशाचरबलं बभौ।
गार्ध्रपत्रध्वजप्रायमस्थिभूषणभूषितम् ॥ ९०
मुसलायुधदुष्प्रेक्ष्यं नानाप्राणिमहारवम्।
किन्नराः श्वेतवसनाः सितपत्रिपताकिनः॥ ९१
मत्तेभवाहनप्रायास्तीक्ष्णतोमरहेतयः ।
मुक्ताजालपरिष्कारो हंसो रजतनिर्मितः॥ ९२
केतुर्जलाधिनाथस्य भीमधूमध्वजानलः।
पद्मरागमहारत्नविटपं धनदस्य तु॥ ९३
ध्वजं समुच्छ्रितं भाति गन्तुकाममिवाम्बरम्।
वृकेण काष्ठलोहेन यमस्यासीन्महाध्वजः॥ ९४
राक्षसेशस्य केतोर्वै प्रेतस्य मुखमाबभौ।
हिमसिंहध्वजौ देवौ चन्द्रार्कावमितद्युती॥ ९५
कुम्भेन रत्नचित्रेण केतुरश्विनयोरभूत्।
हेममातङ्गरचितं चित्ररत्नपरिष्कृतम्॥ ९६
ध्वजं शतक्रतोरासीत् सितचामरमण्डितम्।
सनागयक्षगन्धर्वमहोरगनिशाचरा: ॥ ९७
सेना सा देवराजस्य दुर्जया भुवनत्रये।
कोटयस्तास्त्रयस्त्रिंशद्दैवे देवनिकायिनाम्॥ ९८
हिमाचलाभे सितकर्णचामरे
सुवर्णपद्मामलसुन्दरस्त्रजि ।
कृताभिरागोज्ज्वलकुङ्कुमाङ्कुरे
कपोललीलालिकदम्बसंकुले ॥ ९९

इधर महान् पराक्रमी राक्षसोंके उपरने जपा-कुसुमके समान लाल रंगके थे। उनके बाल भी लाल थे। उनकी ध्वजाओंपर गीधके आकार बने हुए थे। वे निर्मल लोहेके बने हुए आभूषणोंसे विभूषित थे। उनके हाथमें मूसल, गदा और तलवार शोभा पा रहे थे। वे पगड़ी बाँधे हुए रथपर सवार थे। वे हाथीके समान विशालकाय थे और मेघके समान भयंकर गर्जना कर रहे थे, जो ऐसा लग रहा था मानो भयंकर उल्कापात अथवा वज्रपात हो रहा हो। यक्षलोग काला वस्त्र पहने हुए थे और उनके हाथोंमें भयंकर धनुष-बाण शोभा पा रहे थे। वे बड़े भयंकर और स्वर्ण एवं रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित थे। उनकी ध्वजाओंपर ताँबेके उलूक बने हुए थे। निशाचरोंकी सेना गैंडेके चमड़ेका उपरना धारण किये हुए बड़ी शोभा पा रही थी। उनकी ध्वजाओंमें गीधोंके पंख लगे हुए थे। वे हड्डीके आभूषणोंसे विभूषित थे। वे आयुधरूपमें मूसल धारण किये हुए थे, जिससे देखनेमें बड़े भयंकर लग रहे थे। उनकी सेनामें बहुत-से प्राणियोंके भयंकर शब्द हो रहे थे। किंनरगण श्वेत वस्त्र धारण किये हुए थे। उनकी श्वेत पताकाओंपर बाणके चिह्न बने हुए थे। वे प्रायः मतवाले गजराजोंपर सवार थे और तेज तोमर उनके अस्त्र थे॥ ८५—९१ ½॥

जलेश्वर वरुणकी ध्वजापर चाँदीका बना हुआ हंस अङ्कित था, जिसे मुक्तासमूहोंसे सुशोभित किया गया था। वह भयंकर धूमसे घिरे हुए अग्नि-ध्वज-जैसा दीख रहा था। कुबेरकी ध्वजापर पद्मरागमणि एवं बहुमूल्य रत्नोंसे वृक्षकी आकृति बनायी गयी थी। यमराजके महान् ध्वजपर काष्ठ और लोहेसे भेड़ियेका चिह्न अङ्कित किया गया था। वह ऊँचा ध्वज ऐसा लग रहा था मानो आकाशको पार कर जाना चाहता है। राक्षसेशके ध्वजपर प्रेतका मुख शोभा पा रहा था। अमित तेजस्वी चन्द्रदेव और सूर्यदेवके ध्वजपर सोनेके सिंह बने हुए थे। अश्विनीकुमारोंके ध्वजोंपर रत्नोंद्वारा कुम्भका आकार बना हुआ था। इन्द्रके ध्वजपर सोनेका हाथी बना हुआ था, जिसे चित्र-विचित्र रत्नोंसे सजाया गया था और वह श्वेत चँवरसे सुशोभित था। नाग, यक्ष, गन्धर्व, महोरग और निशाचरोंसे भरी हुई देवराज इन्द्रकी वह सेना त्रिभुवनमें अजेय थी। इस प्रकार उस देव-सेनामें देवताओंकी संख्या तैंतीस करोड़ थी। उस समय स्वर्गलोकमें सहस्रनेत्रधारी महाबली पाकशासन इन्द्र ऐरावत नामक गजराजपर, जो हिमालयके समान विशालकाय था, जिसके श्वेत कान चँवरके समान हिल रहे थे, जिसके गलेमें स्वर्णनिर्मित कमलोंकी निर्मल एवं सुन्दर माला लटक रही थी, जिसके उज्ज्वल मस्तकपर कुङ्कुमसे पत्रभंगीकी

स्थितस्तदैरावतनामकुञ्जरे
महाबलश्चित्रविभूषणाम्बरः ।
विशालवस्त्रांशुवितानभूषितः
प्रकीर्णकेयूरभुजाग्रमण्डलः ।
सहस्रदृग्वन्दिसहस्रसंस्तुत-
स्त्रिविष्टपेऽशोभत पाकशासनः॥ १००
तुरङ्गमातङ्गबलौघसंकुला
सितातपत्रध्वजराजिशालिनी ।
चमूश्च सा दुर्जयपत्रिसंतता
विभाति नानायुधयोधदुस्तरा॥ १०१

रचना की गयी थी तथा जिसके कपोलपर भ्रमरसमूह क्रीड़ा करते हुए मँडरा रहे थे, बैठे हुए शोभा पा रहे थे। वे चित्र-विचित्र आभूषण और वस्त्र पहने हुए थे, चमकीले वस्त्रोंके बने हुए विशाल छत्रसे सुशोभित थे, उनके बाजूबंदकी फैलती हुई प्रभा भुजाके अग्रभागको सुशोभित कर रही थी और हजारों वंदी उनकी स्तुति कर रहे थे। इसी प्रकार जो घोड़ों और हाथियोंके सैन्यसमूहसे व्याप्त, श्वेत छत्र और ध्वजसमूहोंसे सुशोभित, अजेय पैदल सैनिकोंसे भरी हुई तथा नाना प्रकारके आयुध धारण करनेवाले योद्धाओंसे युक्त होनेके कारण दुस्तर वह देवसेना भी अत्यन्त शोभा पा रही थी॥ ९२—१०१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकोपाख्याने रणयोजनो नामाष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकोपाख्यानमें रणयोजन नामक एक सौ अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४८॥

एक सौ उनचासवाँ अध्याय

देवासुर-संग्रामका प्रारम्भ

सूत उवाच

सुरासुराणां सम्मर्दस्तस्मिन्नत्यन्तदारुणे।
तुमुलोऽतिमहानासीत् सेनयोरुभयोरपि॥ १
गर्जतां देवदैत्यानां शङ्खभेरीरवेण च।
तूर्याणां चैव निर्घोषैर्मातङ्गानां च बृंहितैः॥ २
हेषतां हयवृन्दानां रथनेमिस्वनेन च।
ज्याघोषेण च शूराणां तुमुलोऽतिमहानभूत्॥ ३
समासाद्योभये सेने परस्परजयैषिणाम्।
रोषेणातिपरीतानां त्यक्तजीवितचेतसाम्॥ ४
समासाद्य तु तेऽन्योन्यं प्रक्रमेण विलोमतः।
रथेनासक्तपादातो रथेन च तुरंगमः॥ ५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! देवताओं और असुरोंके उस अत्यन्त भीषण संग्रामके अवसरपर दोनों ही सेनाओंमें घोर गर्जनाके साथ-साथ अत्यन्त भयंकर संघर्ष छिड़ गया। उस समय देवता और दैत्य सिंहनाद कर रहे थे, शङ्ख, भेरी और तुरहीका शब्द हो रहा था, हाथी चिग्घाड़ रहे थे, यूथ-के-यूथ घोड़े हींस रहे थे, रथके पहियोंकी घरघराहट हो रही थी और वीरोंद्वारा खींची गयी प्रत्यञ्चाके चटाचट शब्द हो रहे थे। इन सबके सम्मिलित हो जानेसे अत्यन्त भयानक ध्वनि होने लगी। अतिशय क्रोधसे युक्त हो जीवनकी आशाका परित्याग कर परस्पर एक-दूसरेपर विजय पानेकी इच्छासे युक्त वीरोंकी दोनों सेनाएँ आमने-सामने घमासान युद्ध करने लगीं। उस समय परस्पर अनुलोम और विलोमका क्रम नहीं रह गया। पैदल सैनिक रथीके साथ, घुड़सवार रथीके साथ,

हस्ती पदातिसंयुक्तो रथिना च क्वचिद् रथी।
मातङ्गेनापरो हस्ती तुरङ्गैर्बहुभिर्गजः॥ ६
पदातिरेको बहुभिर्गजैर्मत्तैश्च युज्यते।
ततः प्रासाशनिगदाभिन्दिपालपरश्वधैः॥ ७
शक्तिभिः पट्टिशैः शूलैर्मुद्गरैः कुणपैर्गडैः।
चक्रैश्च शङ्कुभिश्चैव तोमरैरङ्कुशैः सितैः॥ ८
कर्णिनालीकनाराचवत्सदन्तार्धचन्द्रकैः।
भल्लैश्च शतपत्रैश्च शुकतुण्डैश्च निर्मलैः॥ ९
वृष्टिरत्यद्भुताकारा गगने समदृश्यत।
सम्प्रच्छाद्य दिशः सर्वास्तमोमयमिवाकरोत्॥ १०
न प्राज्ञायत तेऽन्योऽन्यं तस्मिंस्तमसि संकुले।
अलक्ष्यं विसृजन्तस्ते हेतिसंघातमुद्धतम्॥ ११
पतितं सेनयोर्मध्ये निरीक्षन्ते परस्परम्।
ततो ध्वजैर्भुजैश्छत्रैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः॥ १२
गजैस्तुरंगैः पादातैः पतद्भिः पतितैरपि।
आकाशसरसो भ्रष्टैः पङ्कजैरिव भूः स्तृता॥ १३
भग्नदन्ता भिन्नकुम्भाश्छिन्नदीर्घमहाकराः।
गजाः शैलनिभाः पेतुर्धरण्यां रुधिरस्रवाः॥ १४
भग्नेषादण्डचक्राक्षा रथाश्च शकलीकृताः।
पेतुः शकलतां यातास्तुरंगाश्च सहस्रशः॥ १५
ततोऽसृग्ध्रददुस्तारा पृथिवी समजायत।
नद्यश्च रुधिरावर्ता हर्षदाः पिशिताशिनाम्।
वेतालाक्रीडमभवत् तत्संकुलरणाजिरम्॥ १६

हाथी पैदल सैनिकके साथ, कहीं एक रथी दूसरे रथीके साथ, एक हाथी दूसरे हाथीके साथ, एक हाथी बहुत-से घोड़ोंके साथ और अकेला पैदल सैनिक बहुत-से मतवाले हाथियोंके साथ जूझने लगे॥ १—६ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर आकाशमण्डलमें भाला, वज्र, गदा, ढेलवाँस, कुठार, शक्ति, पटा, त्रिशूल, मुद्गर, कुणप, गड, चक्र, शङ्कु, तोमर, चमकीले अङ्कुश, फलयुक्त बाण, बाण, पोला बाण, वत्सदन्त, अर्धचन्द्र, भाला, शतपत्र और निर्मल शुकतुण्डोंके प्रहारसे अत्यन्त अद्भुत आकारवाली वृष्टि दीख पड़ी। उससे सारी दिशाएँ आच्छादित हो गयीं और उसने सारे जगत्को अन्धकारमय बना दिया। उस घोर अन्धकारमें वे परस्पर एक-दूसरेको पहचानतक नहीं पाते थे; अतः वे बिना लक्ष्यके ही अपने भयंकर शस्त्रसमूहोंका प्रहार कर रहे थे। दोनों सेनाओंमें परस्पर कटकर धराशायी होते हुए वीरोंको देख रहे थे। उस समय कटकर गिरे हुए या गिरते हुए ध्वजों, भुजाओं, छत्रों, कुण्डलमण्डित मस्तकों, हाथियों, घोड़ों और पैदल सैनिकोंसे युद्धभूमि इस प्रकार पट गयी थी, मानो आकाशरूपी सरोवरसे गिरे हुए कमल-पुष्पोंसे आच्छादित हो। जिनके दाँत टूट गये थे, कुम्भस्थल विदीर्ण हो गये थे और लम्बे-लम्बे शुण्डदण्ड कटकर गिर गये थे ऐसे पर्वत-सदृश विशालकाय गजराज पृथ्वीपर पड़े हुए थे, जिनके शरीरसे खूनकी धाराएँ बह रही थीं। जिनके हरसे, पहिये और धुरे आदि विदीर्ण हो गये थे, ऐसे अनेकों रथ खण्ड-खण्ड होकर पड़े थे। हजारों घोड़े भी टुकड़े-टुकड़े हुए पड़े थे। इस प्रकार वहाँ रक्तसे भरे हुए बहुत-से गड्ढे बन गये थे, जिससे युद्धभूमिको पार करना कठिन हो गया था। खूनसे भरी हुई नदियाँ भँवर बनाती हुई बह रही थीं, जो मांसभोजियोंको हर्षोल्लसित कर रही थीं। इस प्रकार तरह-तरहकी लाशोंसे पटा हुआ वह युद्धस्थल वेतालोंका क्रीडास्थल बन गया था॥ ७—१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकासुरोपाख्याने देवासुरयुद्धं नामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १४९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकोपाख्यानमें देवासुरयुद्ध नामक एक सौ उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १४९॥



एक सौ पचासवाँ अध्याय

देवताओं और असुरोंकी सेनाओंमें अपनी-अपनी जोड़ीके साथ घमासान युद्ध, देवताओंके विकल होनेपर भगवान् विष्णुका युद्धभूमिमें आगमन और कालनेमिको परास्त कर उसे जीवित छोड़ देना

सूत उवाच

अथ ग्रसनमालोक्य यमः क्रोधविमूर्च्छितः।
ववर्ष शरवर्षेण विशेषेणाग्निवर्चसाम्॥ १

स विद्धो बहुभिर्बाणैर्ग्रसनोऽतिपराक्रमः।
कृतप्रतिकृताकाङ्क्षी धनुरानम्य भैरवम्॥ २

शतैः पञ्चभिरत्युग्रैः शराणां यममर्दयत्।
स विचिन्त्य यमो बाणान् ग्रसनस्यातिपौरुषम्॥ ३

बाणवृष्टिभिरुग्राभिर्यमो ग्रसनमर्दयत्।
कृतान्तशरवृष्टिं तां वियति प्रतिसर्पिणीम्॥ ४

चिच्छेद शरवर्षेण ग्रसनो दानवेश्वरः।
विफलां तां समालोक्य यमस्तां शरसंततिम्॥ ५

स विचिन्त्य शरव्रातं ग्रसनस्य रथं प्रति।
चिक्षेप मुद्गरं घोरं तरसा तस्य चान्तकः॥ ६

स तं मुद्गरमायान्तमुत्प्लुत्य गगनस्थितम्।
जग्राह वामहस्तेन याम्यं दानवनन्दनः॥ ७

तमेव मुद्गरं गृह्य यमस्य महिषं रुषा।
पातयामास वेगेन स पपात महीतले॥ ८

उत्प्लुत्याथ यमस्तस्मान्महिषान्निष्पतिष्यतः।
प्रासेन ताडयामास ग्रसनं वदने दृढम्॥ ९

स तु प्रासप्रहारेण मूर्च्छितो न्यपतद् भुवि।
ग्रसनं पतितं दृष्ट्वा जम्भो भीमपराक्रमः॥ १०

यमस्य भिन्दिपालेन प्रहारमकरोद्धृदि।
यमस्तेन प्रहारेण सुस्राव रुधिरं मुखात्॥ ११

कृतान्तमर्दितं दृष्ट्वा गदापाणिर्धनाधिपः।
वृतो यक्षायुतशतैर्जम्भं प्रत्युद्ययौ रुषा॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषिगण! तदनन्तर (रणभूमिमें असुर-सेनानी) ग्रसनको सम्मुख उपस्थित देखकर यमराज क्रोधसे क्षुब्ध हो उठे। उन्होंने ग्रसनके ऊपर अग्निके समान तेजस्वी बाणोंकी वर्षा प्रारम्भ कर दी। अत्यन्त पराक्रमी ग्रसन भी बहुसंख्यक बाणोंके प्रहारसे घायल होकर भयंकर धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर अत्यन्त भीषण पाँच सौ बाणोंसे यमराजको बींध डाला। उन बाणोंके आघातसे ग्रसनके प्रबल पुरुषार्थका भलीभाँति विचार कर यमराज पुनः घोर बाणवृष्टिद्वारा ग्रसनको पीड़ा पहुँचाने लगे। तब दानवेश्वर ग्रसनने गगनमण्डलमें फैलती हुई यमराजकी उस बाणवृष्टिको अपने बाणोंकी वर्षासे छिन्न-भिन्न कर दिया। इस प्रकार अपनी उस बाणवृष्टिको विफल हुई देखकर यमराज अपने बाणसमूहोंके विषयमें विचार करने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने उस ग्रसनके रथपर बड़े वेगसे अपना भयंकर मुद्गर फेंका। उस मुद्गरको अपनी ओर आते देख दानवनन्दन ग्रसनने रथसे उछलकर ऊपर-ही-ऊपर यमराजके उस मुद्गरको बायें हाथसे पकड़ लिया और उसी मुद्गरको लेकर क्रोधपूर्वक बड़े वेगसे यमराजके भैंसेपर दे मारा, जिसके आघातसे वह धराशायी हो गया। तब यमराज उस गिरते हुए भैंसेकी पीठसे उछलकर अलग हो गये। फिर तो उन्होंने भालेसे ग्रसनके मुखपर गहरी चोट पहुँचायी। तब भालेके प्रहारसे मूर्च्छित होकर ग्रसन भूतलपर गिर पड़ा। ग्रसनको धराशायी हुआ देखकर भयंकर पराक्रमी जम्भने भिन्दिपाल (ढेलवाँस)-से यमराजके हृदयपर प्रहार किया। उस प्रहारसे घायल होकर यमराज मुखसे खून उगलने लगे॥ १—११॥

इस प्रकार यमराजको घायल हुआ देखकर धनेश्वर कुबेरने हाथमें गदा लेकर दस लाख यक्षोंके साथ क्रोधपूर्वक जम्भपर धावा किया।

जम्भो रुषा तमायान्तं दानवानीकसंवृतः।
उवाच प्राज्ञो वाक्यं तु यथा स्निग्धेन भाषितम्॥ १३

ग्रसनो लब्धसंज्ञोऽथ यमस्य प्राहिणोद् गदाम्।
मणिहेमपरिष्कारां गुर्वीमरिविमर्दिनीम्॥ १४

तामप्रतर्क्यां सम्प्रेक्ष्य गदां महिषवाहनः।
गदायाः प्रतिघातार्थं जगद्दलनभैरवम्॥ १५

दण्डं मुमोच कोपेन ज्वालामालासमाकुलम्।
स गदां वियति प्राप्य ररासाम्बुधरो यथा॥ १६

संघट्टमभवत् ताभ्यां शैलाभ्यामिव दुःसहम्।
ताभ्यां निष्पेषनिर्ह्रादजडीकृतदिगन्तरम्॥ १७

जगद् व्याकुलतां यातं प्रलयागमशङ्कया।
क्षणात् प्रशान्तनिर्ह्रादं ज्वलदुल्कासमाहितम्॥ १८

निष्पेषेण तयोर्भीममभूद् गमनगोचरम्।
निहत्याथ गदां दण्डस्ततो ग्रसनमूर्धनि॥ १९

हत्वा श्रियमिवानर्थो दुर्वृत्तस्यापतद् दृढः।
स तु तेन प्रहारेण दृष्ट्वा सतिमिरा दिशः॥ २०

पपात भूमौ निःसंज्ञो भूमिरेणुविभूषितः।
ततो हाहारवो घोरः सेनयोरुभयोरभूत्॥ २१

तब क्रोधपूर्वक कुबेरको आक्रमण करते देखकर दानवोंकी सेनासे घिरा हुआ बुद्धिमान् जम्भ प्रेमीद्वारा कही गयी मधुर वाणीकी तरह वचन बोला। इतनेमें ही ग्रसनको चेतना लौट आयी। फिर तो उसने यमराजपर ऐसी गदाका प्रहार किया, जो बड़ी वजनदार थी, जिसमें मणि और सुवर्ण जड़े हुए थे तथा जो शत्रुओंका विनाश करनेवाली थी। उस अप्रत्याशित गदाको अपनी ओर आती देखकर महिषवाहन यमराजने क्रोधपूर्वक उस गदाका प्रतिरोध करनेके लिये अपने उस दण्डको छोड़ दिया, जो संसारका विनाश करनेमें समर्थ और अत्यन्त भयंकर था तथा जिससे अग्निके समान लपटें निकल रही थीं। वह दण्ड आकाशमें गदासे टकराकर मेघकी-सी गर्जना करने लगा। फिर तो दण्ड और गदामें दो पर्वतोंकी भाँति दुःसह संघर्ष छिड़ गया। उन दोनों अस्त्रोंके टक्करसे उत्पन्न हुए शब्दसे सारी दिशाएँ जड़ हो गयीं और जगत् प्रलयके आगमनकी आशङ्कासे व्याकुल हो गया। क्षणमात्र पश्चात् शब्द शान्त हो गया और उन दोनोंके मध्य जलती हुई उल्काके समान प्रकाश होने लगा। उन दोनोंके संघर्षसे आकाशमण्डल अत्यन्त भयंकर दीख रहा था। तदनन्तर दण्डने गदाको तोड़-मरोड़कर ग्रसनके मस्तकपर ऐसा कठोर आघात किया, जैसे दुराचारीका अनिष्ट उसकी श्रीका नाश करके उसे समाप्त कर देता है। उस प्रहारसे व्याकुल हुए ग्रसनको सारी दिशाएँ अन्धकारमयी दिखायी देने लगीं अर्थात् उसकी आँखों-तले अँधेरा छा गया। वह चेतनारहित होकर भूतलपर गिर पड़ा और उसका शरीर पृथ्वीकी धूलसे धूसरित हो गया। तत्पश्चात् दोनों सेनाओंमें भयंकर हाहाकार मच गया॥ १३—२१॥

ततो मुहूर्तमात्रेण ग्रसनः प्राप्य चेतनाम्।
अपश्यत् स्वां तनुं ध्वस्तां विलोलाभरणाम्बराम्॥ २२

स चापि चिन्तयामास कृते प्रतिकृतिक्रियाम्।
मद्विधे वस्तुनि पुंसि प्रभोः परिभवोदयाः॥ २३

मय्याश्रितानि सैन्यानि जिते मयि विनाशिता।
असम्भावित एवास्तु जनः स्वच्छन्दचेष्टितः॥ २४

तदनन्तर दो घड़ीके पश्चात् जब ग्रसनकी चेतना वापस लौटी तब उसने देखा कि उसका शरीर ध्वस्त हो गया है और उसके आभूषण तथा वस्त्र अस्त-व्यस्त हो गये हैं। फिर तो वह भी ऐसा करनेवालेसे बदला चुकानेका विचार करने लगा। वह मन-ही-मन सोचने लगा—मुझ-जैसे बली पुरुषके जीते-जी स्वामीके परिभवके लक्षण दिखायी पड़ रहे हैं। मेरे पराजित हो जानेपर मेरे आश्रित रहनेवाली सेनाएँ भी नष्ट हो जायँगी। अयोग्य पुरुष ही स्वच्छन्दाचारी हो सकता है,

न तु व्यर्थशतोद्घुष्टसम्भावितधनो नरः।
एवं संचिन्त्य वेगेन समुत्तस्थौ महाबलः॥ २५

मुद्गरं कालदण्डाभं गृहीत्वा गिरिसंनिभः।
ग्रसनो घोरसंकल्पः संदष्टौष्ठपुटच्छदः॥ २६

रथेन त्वरितो गच्छन्नाससादान्तकं रणे।
समासाद्य यमं युद्धे ग्रसनो भ्राम्य मुद्गरम्॥ २७

वेगेन महता रौद्रं चिक्षेप यममूर्धनि।
विलोक्य मुद्गरं दीप्तं यमः सम्भ्रान्तलोचनः॥ २८

वञ्चयामास दुर्धर्षं मुद्गरं स महाबलः।
तस्मिन्नपसृते दूरं चण्डानां भीमकर्मणाम्॥ २९
याम्यानां किङ्कराणां तु सहस्रं निष्पिपेष ह।
ततस्तां निहतां दृष्ट्वा घोरां किङ्करवाहिनीम्॥ ३०
अगमत् परमं क्षोभं नानाप्रहरणोद्यतः।
ग्रसनस्तु समालोक्य तां किङ्करमयीं चमूम्॥ ३१

मेने यमसहस्राणि सृष्टानि यममायया।
निग्राह्य ग्रसनः सेनां विसृजन्नस्त्रवृष्टयः॥ ३२

कल्पान्तघोरसङ्काशो बभूव क्रोधमूर्च्छितः।
कांश्चिद् बिभेद शूलेन कांश्चिद् बाणैरजिह्मगैः॥ ३३

कांश्चित्पिपेष गदया कांश्चिन्मुद्गरवृष्टिभिः।
केचित्प्रासप्रहारैश्च दारुणैस्ताडितास्तदा॥ ३४

अपरे बहुशस्तस्य ललम्बुर्बाहुमण्डले।
शिलाभिरपरे जघ्नुर्द्रुमैरन्यैर्महोच्छ्रयैः॥ ३५

किंतु जो पुरुष सैकड़ों बार योग्य घोषित किया जा चुका है, वह स्वच्छन्द नहीं हो सकता। (अर्थात् जिसकी जगत्में कोई प्रतिष्ठा नहीं है, वह स्वेच्छानुसार कार्य कर सकता है, किंतु जो सैकड़ों बार लब्धप्रतिष्ठ हो चुका है, उसे स्वामीके अधीन रहकर ही कार्य करना चाहिये।) ऐसा विचारकर महाबली ग्रसन वेगपूर्वक उठ खड़ा हुआ। उसका शरीर पर्वतके समान विशाल था। वह भयंकर विचारसे युक्त था और क्रोधवश दाँतोंसे होंठको दबाये हुए था। इस प्रकार वह शीघ्रतापूर्वक रथपर सवार हो हाथमें कालदण्डके सदृश मुद्गर लेकर रणभूमिमें यमराजके निकट आ पहुँचा। युद्धस्थलमें यमराजके सम्मुख आकर ग्रसनने उस भयानक मुद्गरको बड़े वेगसे घुमाकर यमराजके मस्तकपर फेंक दिया। उस प्रकाशमान मुद्गरको आते हुए देखकर यमराजके नेत्र चकमका गये। तत्पश्चात् महाबली यमराजने अपने स्थानसे हटकर उस दुर्धर्ष मुद्गरको लक्ष्यसे वञ्चित कर दिया। यमराजके दूर हट जानेपर उस मुद्गरने यमराजके हजारों पराक्रमी एवं भयंकर कर्म करनेवाले किंकरोंको पीस डाला। तत्पश्चात् उस भयंकर किंकर-सेनाको मारी गयी देखकर यमराजको परम क्षोभ हुआ। तब वे नाना प्रकारके अस्त्रोंका प्रहार करनेके लिये उद्यत हो गये॥ २२—३० $\frac{1}{2}$॥

उधर ग्रसनने उस सेनाको किंकरोंसे व्याप्त देखकर ऐसा समझा कि यमराजकी मायाद्वारा रचे गये ये हजारों यमराज ही हैं। फिर तो ग्रसन सेनाको रोककर उसपर अस्त्रोंकी वृष्टि करने लगा। उस समय वह कल्पान्तके समय क्षुब्ध हुए भयंकर समुद्रकी भाँति क्रोधसे विह्वल हो उठा था। उसने कुछ किंकरोंको त्रिशूलसे और कुछको सीधे जानेवाले बाणोंसे विदीर्ण कर दिया। कुछको गदाके प्रहारसे और कुछको मुद्गरोंकी वर्षासे पीस डाला। कुछ भयंकर भालोंके प्रहारसे घायल कर दिये गये। दूसरे बहुत-से उसकी बाहुओंपर लटके हुए थे। इधर किंकरोंमेंसे बहुत-से लोग शिलाओंद्वारा तथा अन्य कुछ लोग ऊँचे-ऊँचे वृक्षोंद्वारा ग्रसनपर

तस्यापरे तु गात्रेषु दशनैरप्यदंशयन्।
अपरे मुष्टिभिः पृष्ठं किंकराः प्रहरन्ति च॥ ३६

अभिद्रुतस्तथा घोरैर्ग्रसनः क्रोधमूर्च्छितः।
उत्सृज्य गात्रं भूपृष्ठे निष्पिपेष सहस्रशः॥ ३७

कांश्चिदुत्थाय मुष्टीभिर्जघ्ने किङ्करसंश्रयान्।
स तु किङ्करयुद्धेन ग्रसनः श्रममाप्तवान्॥ ३८

तमालोक्य यमः श्रान्तं निहतां च स्ववाहिनीम्।
आजगाम समुद्यम्य दण्डं महिषवाहनः॥ ३९

ग्रसनस्तु समायान्तमाजघ्ने गदयोरसि।
अचिन्तयित्वा तत्कर्म ग्रसनस्यान्तकोऽरिहा॥ ४०

जघ्ने रथस्य मूर्धन्यान् व्याघ्रान् दण्डेन कोपनः।
स रथो दण्डमथितैर्व्याघ्रैरर्धैर्विकृष्यते॥ ४१

संशयः पुरुषस्येव चित्तं दैत्यस्य तद्रथम्।
समुत्सृज्य रथं दैत्यः पदातिर्धरणीं गतः॥ ४२

यमं भुजाभ्यामादाय योधयामास दानवः।
यमोऽपि शस्त्राण्युत्सृज्य बाहुयुद्धेष्ववर्तत॥ ४३

ग्रसनः कटिवस्त्रस्तु यमं गृह्य बलोद्धतः।
भ्रामयामास वेगेन प्रदीपमिव सम्भ्रमम्॥ ४४

यमोऽपि कण्ठेऽवष्टभ्य दैत्यं बाहुयुगेन तु।
वेगेन भ्रामयामास समुत्कृष्य महीतलात्॥ ४५

ततो मुष्टिभिराजघ्नुरर्दयन्तो परस्परम्।
दैत्येन्द्रस्यातिकायत्वात्ततः श्रान्तभुजो यमः॥ ४६

स्कन्धे निधाय दैत्यस्य मुखं विश्रान्तिमैच्छत।
तमालक्ष्य ततो दैत्यः श्रान्तमन्तकमोजसा॥ ४७

प्रहार कर रहे थे। कुछ उसके शरीराङ्गोंमें दाँतोंसे काट रहे थे। दूसरे किंकर उसकी पीठपर मुकेसे प्रहार कर रहे थे। इस प्रकार घोरकर्मा किंकरोंद्वारा पीछा किये जानेपर ग्रसन अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। उसने अपने शरीरको भूतलपर गिराकर हजारों किंकरोंको उसके नीचे पीस डाला। फिर उठकर कुछ किंकरोंको मुक्केसे पीटकर मौतके घाट उतार दिया। इस प्रकार किंकरोंके साथ युद्ध करनेसे ग्रसन थकावटसे चूर हो गया था। तब ग्रसनको थका हुआ तथा अपनी सेनाको मारी गयी देखकर महिषवाहन यमराज हाथमें दण्ड लेकर आ पहुँचे। ग्रसनने सम्मुख आये हुए यमराजके वक्षःस्थलपर गदासे प्रहार किया। तब शत्रुसूदन यमराजने ग्रसनके उस प्रहारकी कुछ भी परवाह न कर उसके रथके अग्रभागमें जुते हुए बाघोंपर क्रोधपूर्वक दण्डसे प्रहार किया। उस दण्डप्रहारसे आधे बाघोंके मारे जानेपर वह रथ आधे बाघोंद्वारा ही खींचा जा रहा था॥ ३१—४१॥

उस समय दैत्यराज ग्रसनका वह रथ पुरुषके संशयग्रस्त चित्तकी भाँति अस्थिर हो गया था। अतः दैत्यराज ग्रसन रथको छोड़कर भूतलपर आ गया और पैदल ही आगे बढ़कर यमराजको दोनों भुजाओंसे पकड़कर युद्ध करने लगा। तब यमराज भी शस्त्रोंको छोड़कर बाहुयुद्धमें प्रवृत्त हो गये। बलाभिमानी ग्रसन यमराजके कमरबंदको पकड़कर उन्हें घूमते हुए दीपककी भाँति वेगपूर्वक घुमाने लगा। तब यमराज भी अपनी दोनों भुजाओंसे दैत्यके गलेको पकड़कर उसे वेगपूर्वक भूतलसे ऊपर खींचकर बड़ी देरतक घुमाते रहे। तत्पश्चात् वे दोनों परस्पर एक-दूसरेको पीड़ित करते हुए मुक्कोंसे प्रहार करने लगे। उस समय दैत्येन्द्र ग्रसनके विशालकाय होनेके कारण यमराजकी भुजाएँ शिथिल हो गयीं। तब वे उस दैत्यके कंधेपर अपना मुख रखकर विश्राम करनेकी इच्छा करने लगे। यमराजको इस प्रकार थका हुआ देखकर

निष्पिपेष महीपृष्ठे बहुशः पार्ष्णिपाणिभिः।
यावद्यमस्य वदनात् सुस्राव रुधिरं बहु॥ ४८
निर्जीवितं यमं दृष्ट्वा ततः संत्यज्य दानवः।
जयं प्राप्योद्धतं दैत्यो नादं मुक्त्वा महास्वनः॥ ४९
स्वीयं सैन्यं समासाद्य तस्थौ गिरिरिवाचलः।
धनाधिपस्य जम्भेन सायकैर्मर्मभेदिभिः॥ ५०
दिशोऽवरुद्धाः क्रुद्धेन सैन्यं चास्य निकृन्तितम्।
ततः क्रोधपरीतस्तु धनेशो जम्भदानवम्॥ ५१
हृदि विव्याध बाणानां सहस्रेणाग्निवर्चसाम्।
सारथिं च शतेनाजौ ध्वजं दशभिरेव च॥ ५२
हस्तौ च पञ्चसप्तत्या मार्गणैर्दशभिर्धनुः।
मार्गणैर्बर्हिपत्राङ्कैस्तैलधौतैरजिह्मगैः ॥ ५३
सिंहमेकेन तं तीक्ष्णैर्विव्याध दशभिः शरैः।
जम्भस्तु कर्म तद्दृष्ट्वा धनेशस्यातिदुष्करम्॥ ५४
हृदि धैर्यं समालम्ब्य किञ्चित्संत्रस्तमानसः।
जग्राह निशितान् बाणाञ्छत्रुमर्मविभेदिनः॥ ५५
आकर्णाकृष्टचापस्तु जम्भः क्रोधपरिप्लुतः।
विव्याध धनदं तीक्ष्णैः शरैर्वक्षसि दानवः॥ ५६
सारथिं चास्य बाणेन दृढेनाभ्यहनद्धृदि।
चिच्छेद ज्यामथैकेन तैलधौतेन दानवः॥ ५७
ततस्तु निशितैर्बाणैर्दारुणैर्मर्मभेदिभिः।
विव्याधोरसि वित्तेशं दशभिः क्रूरकर्मकृत्॥ ५८
मोहं परमतो गच्छन् दृढविद्धो हि वित्तपः।
स क्षणाद् धैर्यमालम्ब्य धनुराकृष्य भैरवम्॥ ५९
किरन् बाणसहस्राणि निशितानि धनाधिपः।
दिशः खं विदिशो भूमीरनीकान्यसुरस्य च॥ ६०

ग्रसन उन्हें बलपूर्वक पृथ्वीपर पटककर बारम्बार रगड़ने लगा और पैरोंकी ठोकरों और घूँसोंसे तबतक मारता रहा, जबतक यमराजके मुखसे बहुत-सा रक्त बहने लगा। तत्पश्चात् दानवराजने यमराजको प्राणहीन देखकर उन्हें छोड़ दिया। फिर गम्भीर गर्जना करनेवाला दैत्यराज ग्रसन विजयी होकर सिंहनाद करता हुआ अपनी सेनामें पहुँचकर पर्वतकी भाँति अटल होकर खड़ा हो गया॥ ४२—४९ $\frac{1}{2}$॥

उधर क्रोधसे भरे हुए जम्भने अपने मर्मभेदी बाणोंद्वारा कुबेरके सारे मार्ग (दिशाएँ) अवरुद्ध कर दिये और उनकी सेनाको काटना आरम्भ किया। यह देखकर धनेश क्रोधसे भर उठे। उन्होंने युद्धभूमिमें अग्निके समान वर्चस्वी एक हजार बाणोंसे दानवराज जम्भके हृदयको बींध दिया। फिर सौ बाणोंसे सारथिको, दस बाणोंसे ध्वजको, पचहत्तर बाणोंसे उसके दोनों हाथोंको, दस बाणोंसे धनुषको, एक बाणसे (उसके वाहन) सिंहको और दस तीखे बाणोंसे पुनः उस दानवराजको बींध दिया। इन सब बाणोंमें मोरके पंख लगे हुए थे तथा ये तेलमें डालकर साफ किये हुए और सीधे लक्ष्यवेध करनेवाले थे। धनेशके उस अत्यन्त दुष्कर कर्मको देखकर जम्भका मन कुछ भयभीत हो उठा। फिर उसने हृदयमें धैर्य धारण कर शत्रुओंके मर्मको विदीर्ण करनेवाले तीखे बाणोंको हाथमें लिया। उस समय दानवराज जम्भ क्रोधसे भरा हुआ था। उसने अपने धनुषको कानतक खींचकर तीखे बाणोंसे कुबेरके वक्षःस्थलको बींध दिया। फिर उनके सारथिके हृदयपर एक सुदृढ़ बाणसे आघात किया और तेलमें सफाये हुए एक बाणसे उनकी प्रत्यञ्चाको काट दिया। तदनन्तर क्रूरकर्मा दानवराज जम्भने तीखे एवं मर्मभेदी दस भयंकर बाणोंसे कुबेरके वक्षःस्थलको पुनः घायल कर दिया। तब बुरी तरह घायल हुए कुबेर मूर्च्छित हो गये। क्षणमात्रके बाद कुबेरकी मूर्च्छा भंग हुई, तब उन्होंने धैर्य धारणकर अपने भयंकर धनुषको वेगपूर्वक खींचकर हजारों तीखे बाणोंकी वर्षा करते हुए दिशाओं, विदिशाओं, आकाश, पृथ्वी और

पूरयामास वेगेन संछाद्य रविमण्डलम्।
जम्भोऽपि परमेकैकं शरैर्बहुभिराहवे॥ ६१
चिच्छेद लघुसंधानो धनेशस्यातिपौरुषात्।
ततो धनेशः संक्रुद्धो दानवेन्द्रस्य कर्मणा॥ ६२
व्यधमत् तस्य सैन्यानि नानासायकवृष्टिभिः।
तद् दृष्ट्वा दुष्कृतं कर्म धनाध्यक्षस्य दानवः॥ ६३
गृहीत्वा मुद्गरं भीममायसं हेमभूषितम्।
धनदानुचरान् यक्षान् निष्पिपेष सहस्रशः॥ ६४
ते वध्यमाना दैत्येन मुञ्चन्तो भैरवान् रवान्।
रथं धनपतेः सर्वे परिवार्य व्यवस्थिताः॥ ६५
दृष्ट्वा तानर्दितान् देवः शूलं जग्राह दारुणम्।
तेन दैत्यसहस्राणि सूदयामास सत्वरः॥ ६६
क्षीयमाणेषु दैत्येषु दानवः क्रोधमूर्च्छितः।
जग्राह परशुं दैत्यो मर्दनं दैत्यविद्विषाम्॥ ६७
स तेन शितधारेण धनभर्तुर्महारथम्।
चिच्छेद तिलशो दैत्यो ह्याखुः स्निग्धमिवाम्बरम्॥ ६८
पदातिरथ वित्तेशो गदामादाय भैरवीम्।
महाहवविमर्देषु दृप्तशत्रुविनाशिनीम्॥ ६९
अधृष्यां सर्वभूतानां बहुवर्षगणार्चिताम्।
नानाचन्दनदिग्धाङ्गां दिव्यपुष्पविवासिताम्॥ ७०
निर्मलायोमयीं गुर्वीममोघां हेमभूषणाम्।
चिक्षेप मूर्ध्नि संक्रुद्धो जम्भस्य तु धनाधिपः॥ ७१
आयान्तीं तां समालोक्य तडित्संघातमण्डिताम्।
दैत्यो गदाभिघातार्थं शस्त्रवृष्टिं मुमोच ह॥ ७२
चक्राणि कुणपान् प्रासान् भुशुण्डीः पट्टिशानपि।
हेमकेयूरनद्धाभ्यां बाहुभ्यां चण्डविक्रमः॥ ७३

असुरकी सेनाओंको ढक दिया। यहाँतक कि उस बाणवर्षासे सूर्यमण्डल भी आच्छादित हो गया॥ ५०—६०½॥

तब शीघ्रतापूर्वक बाण संधान करनेवाले जम्भने भी युद्धस्थलमें परम पुरुषार्थ प्रकट करके कुबेरके एक-एक बाणको बहुसंख्यक बाणोंसे काट गिराया। दानवेन्द्रके उस कर्मको देखकर धनेश अत्यन्त कुपित हो उठे, तब वे नाना प्रकारके बाणोंकी वृष्टि करके उसकी सेनाका विध्वंस करने लगे। कुबेरके दुष्कर कर्मको देखकर दानवराज जम्भने लौहनिर्मित एवं स्वर्णजटित भयंकर मुद्गरको लेकर कुबेरके अनुचर हजारों यक्षोंको चकनाचूर कर दिया। दैत्यद्वारा मारे जाते हुए वे सभी यक्ष भयंकर चीत्कार करते हुए कुबेरके रथको घेरकर खड़े हो गये। उन यक्षोंको दुःखी देखकर कुबेरने अपना भीषण त्रिशूल हाथमें लिया और उससे शीघ्र ही हजारों दैत्योंको मौतके हवाले कर दिया। इस प्रकार दैत्योंका विनाश होते देखकर दानवराज जम्भ क्रोधसे भर गया और उसने देवताओंका मर्दन करनेवाले तेज धारसे युक्त फरसेसे कुबेरके महान् रथको उसी प्रकार तिल-तिल करके काट डाला, जैसे चूहा रेशमी वस्त्रको कुतर डालता है। इससे कुबेर परम क्रुद्ध हो उठे, तब उन्होंने पैदल ही अपनी उस भयंकर गदाको, जो बड़े-बड़े युद्धोंमें गर्वीले शत्रुओंका विनाश करनेवाली, सभी प्राणियोंके लिये अधृष्य, बहुत वर्षोंसे पूजित, नाना प्रकारके चन्दनोंके अनुलेपसे युक्त, दिव्य पुष्पोंसे सुवासित, निर्मल लौहकी बनी हुई, वजनदार, अमोघ और स्वर्णभूषित थी, हाथमें लेकर जम्भके मस्तकको लक्ष्य बनाकर छोड़ दिया॥ ६१—७१॥

विद्युत्समूहसे विभूषित-जैसी उस गदाको अपनी ओर आती देखकर दैत्यराज जम्भ उसको नष्ट करनेके लिये बाणोंकी वृष्टि करने लगा। यद्यपि प्रचण्ड पराक्रमी जम्भ स्वर्णनिर्मित बाजूबन्दोंद्वारा विभूषित भुजाओंसे चक्रों, कुणपों, भालों, भुशुण्डियों और पट्टिशोंका प्रहार

व्यर्थीकृत्य तु तान् सर्वानायुधान् दैत्यवक्षसि।
प्रस्फुरन्ती पपातोग्रा महोल्केवाद्रिकन्दरे॥ ७४

स तयाभिहतो गाढं पपात रथकूबरे।
स्त्रोतोभिश्चास्य रुधिरं सुस्राव गतचेतसः॥ ७५

कर रहा था तथापि चमकती हुई वह भयंकर गदा उन सभी आयुधोंको विफल कर जम्भके वक्षःस्थलपर उसी प्रकार गिरी, मानो पर्वतकी कन्दरामें विशाल उल्का आ गिरी हो। उस गदाके आघातसे अत्यन्त घायल हुआ जम्भ रथके कूबरपर गिर पड़ा। उसके शरीरके छिद्रोंसे खूनकी धारा बहने लगी, जिससे वह चेतनारहित हो गया॥ ७२—७५॥

जम्भं तु निहतं मत्वा कुजम्भो भैरवस्वनः।
धनाधिपस्य संक्रुद्धो वाक्येनातीव कोपितः॥ ७६
चक्रे बाणमयं जालं दिक्षु यक्षाधिपस्य तु।
चिच्छेद बाणजालं तदर्धचन्द्रैः शितैस्ततः॥ ७७
मुमोच शरवृष्टिं तु तस्मै यक्षाधिपो बली।
स तं दैत्यः शरव्रातं चिच्छेद निशितैः शरैः॥ ७८
व्यर्थीकृतां तु तां दृष्ट्वा शरवृष्टिं धनाधिपः।
शक्तिं जग्राह दुर्द्धर्षां हेमघण्टाट्टहासिनीम्॥ ७९
बाहुना रत्नकेयूरकान्तिसन्नाहनासिना।
स तां निरूप्य वेगेन कुजम्भाय मुमोच ह॥ ८०
सा कुजम्भस्य हृदयं दारयामास दारुणम्।
वित्तेहा स्वल्पसत्त्वस्य पुरुषस्येव भाविता॥ ८१
अथास्य हृदयं भित्त्वा जगाम धरणीतलम्।
ततो मुहूर्तादस्वस्थो दानवो दारुणाकृतिः॥ ८२
जग्राह पट्टिशं दैत्यः प्रांशुं शितशिलीमुखम्।
स तेन पट्टिशेनाजौ धनदस्य स्तनान्तरम्॥ ८३
वाक्येन तीक्ष्णरूपेण मर्मान्तरविसर्पिणा।
निर्बिभेदाभिजातस्य हृदयं दुर्जनो यथा॥ ८४
तेन पट्टिशघातेन धनेशः परिमूर्च्छितः।
निपपात रथोपस्थे जर्जरो धूर्वहो यथा॥ ८५

जम्भको मरा हुआ समझकर भयंकर गर्जना करनेवाला क्रोधी कुजम्भ कुबेरके वाक्यसे अत्यन्त कुपित हो उठा। उसने यक्षराजके चारों ओर बाणोंका जाल बिछा दिया। तदनन्तर बलवान् यक्षराजने तीखे अर्धचन्द्र बाणोंके प्रहारसे उस बाणजालको छिन्न-भिन्न कर दिया और वे उस दैत्यपर बाणोंकी वृष्टि करने लगे; परन्तु दैत्यराज कुजम्भने अपने तीखे बाणोंसे उस बाणवृष्टिको काट दिया। उस बाणवृष्टिको विफल हुई देखकर धनेशने अपनी उस दुर्धर्ष शक्तिको हाथमें उठाया, जिसमें स्वर्णनिर्मित घंटियोंके शब्द हो रहे थे। उन्होंने अपने रत्ननिर्मित बाजूबंदके कान्तिसमूहसे सुशोभित हाथसे उस शक्तिको आजमाकर वेगपूर्वक कुजम्भके ऊपर छोड़ दिया। उस शक्तिने कुजम्भके दारुण हृदयको उसी प्रकार विदीर्ण कर दिया, जैसे निर्धन पुरुषकी अभिलषित धनाशा नष्ट हो जाती है। इस प्रकार वह शक्ति उसके हृदयको विदीर्ण करके भूतलपर जा गिरी, जिससे भयंकर आकृतिवाला वह दानव दो घड़ीतक मूर्च्छित पड़ा रहा। (मूर्च्छा भङ्ग होनेपर) उस दैत्यने एक लम्बे एवं तेज मुखवाले पट्टिशको हाथमें लिया। उसने उस पट्टिशसे कुबेरके स्तनोंके मध्यभागको इस प्रकार विदीर्ण कर दिया जैसे दुर्जन पुरुष अपने मर्मभेदी कठोर वाक्यसे सत्पुरुषके हृदयको विदीर्ण कर देता है। उस पट्टिशके आघातसे धनेश मूर्च्छित हो गये और रथके पिछले भागमें बूढ़े बैलकी तरह लुढ़क पड़े॥ ७६—८५॥

तथागतं तु तं दृष्ट्वा धनेशं नरवाहनम्।
खड्गास्त्रो निर्ऋतिर्देवो निशाचरबलानुगः॥ ८६

उन नरवाहन कुबेरको मूर्च्छित हुआ देखकर निर्ऋतिदेवने हाथमें तलवार लेकर निशाचरोंकी सेनाके साथ वेगपूर्वक भयंकर पराक्रमी कुजम्भपर आक्रमण

अभिदुद्राव वेगेन कुजम्भं भीमविक्रमम्।
अथ दृष्ट्वा तु दुर्धर्षं कुजम्भो राक्षसेश्वरम्॥ ८७

चोदयामास सैन्यानि राक्षसेन्द्रवधं प्रति।
स दृष्ट्वा चोदितां सेनां भल्लनानास्त्रभीषणाम्॥ ८८

रथादाप्लुत्य वेगेन भूषणद्युतिभास्वरः।
खड्गेन कमलानीव विकोशेनाम्बरत्विषा॥ ८९

चिच्छेद रिपुवक्त्राणि विचित्राणि समंततः।
तिर्यक्पृष्ठमधश्चोर्ध्वं दीर्घबाहुर्महासिना॥ ९०

संदष्टौष्ठपुटाटोपभ्रुकुटीविकटाननः।
प्रचण्डकोपरक्ताक्षो न्यकृन्तद् दानवान् रणे॥ ९१

ततो निःशेषितप्रायां विलोक्य स्वामनीकिनीम्।
मुक्त्वा कुजम्भो धनदं राक्षसेन्द्रमभिद्रवत्॥ ९२

लब्धसंज्ञोऽथ जम्भस्तु धनाध्यक्षपदानुगान्।
जीवग्राहान् स जग्राह बध्वा पाशैः सहस्रशः॥ ९३

मूर्तिमन्ति तु रत्नानि विविधानि च दानवाः।
वाहनानि च दिव्यानि विमानानि सहस्रशः॥ ९४

धनेशो लब्धसंज्ञोऽथ तामवस्थां विलोक्य तु।
निःश्वसन् दीर्घमुष्णं च रोषात् ताम्रविलोचनः॥ ९५

ध्यात्वास्त्रं गारुडं दिव्यं बाणं संधाय कार्मुके।
मुमोच दानवानीके तं बाणं शत्रुदारणम्॥ ९६

प्रथमं कार्मुकात् तस्य निश्चेरुर्धूमराजयः।
अनन्तरं स्फुलिङ्गानां कोटयो दीप्तवर्चसाम्॥ ९७

ततो ज्वालाकुलं व्योम चकारास्त्रं समन्ततः।
ततः क्रमेण दुर्वारं नानारूपं तदाभवत्॥ ९८

अमूर्तश्चाभवल्लोको ह्यन्धकारसमावृतः।
ततोऽन्तरिक्षे शंसन्ति तेजस्ते तु परिष्कृतम्॥ ९९

किया। तब दुर्धर्ष राक्षसेश्वर निर्ऋतिको आक्रमण करते देख कुजम्भने उन राक्षसेन्द्रका वध करनेके लिये अपनी सेनाओंको ललकारा। भल्ल आदि नाना प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेसे भयंकर रूपवाली उस सेनाको आगे बढ़ते देखकर आभूषणोंकी कान्तिसे उद्भासित होते हुए निर्ऋतिदेव रथसे वेगपूर्वक कूद पड़े और नीली कान्तिवाले म्यानसे तलवार खींचकर उससे शत्रुओंके विचित्र आकारवाले मुखोंको कमल-पुष्पकी तरह काटने लगे। उस समय दाँतोंसे होंठको चबाने एवं भौंहें चढ़ी होनेके कारण उनका मुख भयंकर दीख रहा था और प्रचण्ड क्रोधके कारण उनके नेत्र लाल हो गये थे। इस प्रकार लम्बी भुजाओंवाले निर्ऋति रणभूमिमें आगे-पीछे, ऊपर-नीचे चारों ओर घूम-घूमकर उस विशाल तलवारसे दानवोंको टुकड़े-टुकड़े कर रहे थे। इस प्रकार अपनी सेनाको समाप्तप्राय देखकर कुजम्भने कुबेरको छोड़कर राक्षसेश्वर निर्ऋतिपर धावा बोल दिया॥ ८६—९२॥

इधर जब जम्भकी मूर्च्छा भंग हुई, तब उसने कुबेरके अनुचर हजारों यक्षोंको जीते-जी पकड़कर पाशोंसे बाँध लिया तथा दानवोंने उनके अनेकों प्रकारके मूर्तिमान् रत्नों, वाहनों और हजारों दिव्य विमानोंको अपने अधीन कर लिया। उधर जब कुबेरकी चेतना लौटी, तब उस दशाको देखकर क्रोधवश उनके नेत्र लाल हो गये और वे लम्बी एवं गरम साँस लेने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने दिव्य गारुडास्त्रका ध्यान करके उस बाणका धनुषपर संधान किया और फिर उस शत्रुनाशक बाणको दानवोंकी सेनापर छोड़ दिया। पहले तो उनके धनुषसे धुएँकी पङ्क्तियाँ प्रकट हुईं। तदनन्तर उससे जलती हुई करोड़ों चिनगारियाँ निकलने लगीं। तत्पश्चात् उस अस्त्रने आकाशको चारों ओरसे लपटोंसे व्याप्त कर दिया। फिर वह नाना प्रकारके रूपोंमें फैलकर दुर्निवार हो गया। उस समय अन्धकारसे आच्छादित होनेके कारण सारा जगत् रूपरहित-सा दिखायी पड़ने लगा। तब आकाशमण्डलमें स्थित देवगण उस उत्कृष्ट तेजकी प्रशंसा करने लगे।

कुजम्भस्तत्समालोच्य दानवोऽतिपराक्रमः।
अभिदुद्राव वेगेन पदातिर्धनदं नदन्॥ १००

यह देखकर परम पराक्रमी दानवराज जम्भ सिंहनाद करता हुआ पैदल ही वेगपूर्वक कुबेरपर चढ़ दौड़ा॥ ९३—१००॥

अथाभिमुखमायान्तं दैत्यं दृष्ट्वा धनाधिपः।
बभूव सम्भ्रमाविष्टः पलायनपरायणः॥ १०१
ततः पलायतस्तस्य मुकुटं रत्नमण्डितम्।
पपात भूतले दीप्तं रविबिम्बमिवाम्बरात्॥ १०२
शूराणामभिजातानां भर्तर्युपसृते रणात्।
मर्तुं संग्राममशिरसि युक्तं तद्भूषणाग्रतः॥ १०३
इति व्यवस्य दुर्धर्षा नानाशस्त्रास्त्रपाणयः।
युयुत्सवः स्थिता यक्षा मुकुटं परिवार्य तम्॥ १०४
अभिमानधना वीरा धनदस्य पदानुगाः।
तानमर्षाच्च सम्प्रेक्ष्य दानवश्चण्डपौरुषः॥ १०५
भुशुण्डीं भैरवाकारां गृहीत्वा शैलगौरवाम्।
रक्षिणो मुकुटस्याथ निष्पिपेष निशाचरान्॥ १०६
तान् प्रमथ्याथ दनुजो मुकुटं तत् स्वके रथे।
समारोप्यामररिपुर्जित्वा धनदमाहवे॥ १०७
धनानि रत्नानि च मूर्तिमन्ति
तथा निधानानि शरीरिणश्च।
आदाय सर्वाणि जगाम दैत्यो
जम्भः स्वसैन्यं दनुजेन्द्रसिंहः
धनाधिपो वै विनिकीर्णमूर्धजो
जगाम दीनः सुरभर्तुरन्तिकम्॥ १०८

इस प्रकार उस दैत्यको अपनी ओर आता हुआ देखकर कुबेर घबरा उठे और रणभूमिसे भाग खड़े हुए। भागते समय उनका रत्नजटित उद्दीप्त मुकुट इस प्रकार भूतलपर गिर पड़ा मानो आकाशसे सूर्यका बिम्ब गिर पड़ा हो। 'रणभूमिसे स्वामीके पलायन कर जानेपर उनके आभूषणोंके समक्ष उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए वीरोंका संग्रामके मुहानेपर मर जाना उचित है।' ऐसा निश्चयकर दुर्धर्ष यक्ष हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र धारणकर युद्धकी अभिलाषासे युक्त हो उस मुकुटको घेरकर खड़े हो गये; क्योंकि कुबेरके अनुचर वे वीरवर यक्ष स्वाभिमानके धनी थे। तदनन्तर उन्हें इस प्रकार युद्धोन्मुख देखकर प्रचण्ड पुरुषार्थी दानवराज जम्भ अमर्षसे भर गया। तब उसने पर्वतकी-सी गम्भीर एवं भयंकर आकारवाली भुशुण्डि लेकर उससे मुकुटके रक्षक निशाचरोंको पीस डाला। इस प्रकार उनका संहार कर उस देवशत्रु दानवने उस मुकुटको अपने रथपर रख लिया। तत्पश्चात् सिंहके समान पराक्रमी दैत्येन्द्र जम्भ युद्धभूमिमें कुबेरको जीतकर सैनिकोंके सभी आभूषणों, सम्पत्तियों तथा मूर्तिमान् रत्नोंको लेकर अपनी सेनाकी ओर चला गया। इधर कुबेर बाल बिखेरे हुए दीनभावसे देवराज इन्द्रके निकट चले गये॥ १०१—१०८॥

कुजम्भेनाथ संसक्तो रजनीचरनन्दनः।
मायाममोघामाश्रित्य तामसीं राक्षसेश्वरः॥ १०९
मोहयामास दैत्येन्द्रं जगत् कृत्वा तमोमयम्।
ततो विफलनेत्राणि दानवानां बलानि तु॥ ११०
न शेकुश्चलितुं तत्र पदादपि पदं तदा।
ततो नानास्त्रवर्षेण दानवानां महाचमूम्॥ १११

उधर असुरनन्दन राक्षसेश्वर निर्ऋति अपनी अमोघ राक्षसी मायाका आश्रय लेकर कुजम्भके साथ भिड़े हुए थे। उन्होंने जगत्को अन्धकारमय बनाकर दैत्यराज कुजम्भको मोहमें डाल दिया। उससे दानवोंकी सेनामें किसीको कुछ सूझ नहीं पड़ता था। वे एक पगसे दूसरे पगतक भी चलनेमें असमर्थ हो गये थे। तब उन्होंने अनेकों अस्त्रोंकी वर्षा करके

जघान घननीहारतिमिरातुरवाहनाम्।
वध्यमानेषु दैत्येषु कुजम्भे मूढचेतसि॥ ११२

महिषो दानवेन्द्रस्तु कल्पान्ताम्भोदसंनिभः।
अस्त्रं चकार सावित्रमुल्कासंघातमण्डितम्॥ ११३

विजृम्भत्यथ सावित्रे परमास्त्रे प्रतापिनि।
प्रणाशमगमत् तीव्रं तमो घोरमनन्तरम्॥ ११४

ततोऽस्त्रं विस्फुलिङ्गाङ्कं तमः कृत्स्नं व्यनाशयत्।
प्रफुल्लारुणपद्मौघं शरदीवामलं सरः॥ ११५

ततस्तमसि संशान्ते दैत्येन्द्राः प्राप्तचक्षुषः।
चक्रुः क्रूरेण मनसा देवानीकैः सहाद्भुतम्॥ ११६

शस्त्रैरमर्षान्निर्मुक्तैर्भुजङ्गास्त्रं विनोदितम्।
अथादाय धनुर्घोरमिषूंश्चाशीविषोपमान्॥ ११७

कुजम्भोऽधावत क्षिप्रं रक्षोराजबलं प्रति।
राक्षसेन्द्रस्तमायान्तं विलोक्य सपदानुगः॥ ११८

विव्याध निशितैर्बाणैः क्रूराशीविषभीषणैः।
तदादानं च संधानं न मोक्षश्चापि लक्ष्यते॥ ११९

चिच्छेदास्य शरव्रातान् स्वशरैरतिलाघवात्।
ध्वजं परमतीक्ष्णेन चित्रकर्मामरद्विषः॥ १२०

सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
कुजम्भः कर्म तद् दृष्ट्वा राक्षसेन्द्रस्य संयुगे॥ १२१

रोषरक्तेक्षणयुतो रथादाप्लुत्य दानवः।
खड्गं जग्राह वेगेन शरदम्बरनिर्मलम्॥ १२२

चर्म चोदयखण्डेन्दुदशकेन विभूषितम्।
अभ्यद्रवद् रणे दैत्यो रक्षोऽधिपतिमोजसा॥ १२३

तं रक्षोऽधिपतिः प्राप्तं मुद्गरेणाहनद्धृदि।
स तु तेन प्रहारेण क्षीणः सम्भ्रान्तमानसः॥ १२४

तस्थावचेष्टो दनुजो यथा धीरो धराधरः।
स मुहूर्तं समाश्वस्तो दानवेन्द्रोऽतिदुर्जयः॥ १२५

घने कुहासेके अन्धकारसे व्याकुल हुए वाहनोंवाली दानवोंकी उस विशाल सेनाका संहार कर दिया। इस प्रकार दैत्योंके मारे जाने एवं कुजम्भके किंकर्तव्यविमूढ हो जानेपर प्रलयकालीन मेघके समान शरीरवाले दानवेन्द्र महिषने उल्कासमूहसे सुशोभित सावित्र नामक अस्त्रको प्रकट किया। उस प्रतापशाली सावित्र नामक परमास्त्रके प्रकट होते ही सारा निविड़ अन्धकार नष्ट हो गया। तत्पश्चात् उस अस्त्रसे चिनगारियाँ निकलने लगीं, जिन्होंने सम्पूर्ण अन्धकारको नष्ट कर दिया। उस समय सारा जगत् शरद्-ऋतुमें खिले हुए लाल कमलसमूहोंसे व्याप्त निर्मल सरोवरकी भाँति शोभा पाने लगा। इस प्रकार अन्धकारके नष्ट हो जानेपर जब दैत्येन्द्रोंको पुनः नेत्रज्योति प्राप्त हो गयी, तब वे क्रूर मनसे देवसेनाओंके साथ अद्भुत संग्राम करने लगे। क्रोधसे भरे हुए दैत्य शस्त्रोंका प्रहार तो कर ही रहे थे, साथ ही उन्होंने भुजंगास्त्रका भी प्रयोग किया॥१०९—११६ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर कुजम्भने अपना भयंकर धनुष और सर्प-विषके समान विषैले बाणोंको लेकर शीघ्र ही राक्षसराजकी सेनापर धावा किया। तब अनुचरोंसहित राक्षसेन्द्र निर्ऋतिने उस दैत्यको आक्रमण करते देखकर उसे विषैले सर्पोंके समान भीषण एवं तीखे बाणोंसे बींध दिया। उस समय वे इतनी फुर्तीसे बाण चला रहे थे कि बाणका लेना, संधान करना और छोड़ना दीख ही नहीं पड़ता था। विचित्र कर्म करनेवाले राक्षसेश्वरने बड़ी फुर्तीसे अपने बाणोंद्वारा उस देवद्रोही दैत्यके बाणसमूहोंको काट दिया और एक अत्यन्त तेज बाणसे उसके ध्वजको भी काट गिराया। साथ ही एक भाला मारकर उसके सारथिको भी रथपर बैठनेके स्थानसे नीचे गिरा दिया। युद्धस्थलमें राक्षसेश्वरके उस कर्मको देखकर कुजम्भके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये, तब उस दानवने वेगपूर्वक रथसे कूदकर शरत्कालीन आकाशकी भाँति निर्मल तलवार और उदयकालीन चन्द्रमाके समान दस चिह्नोंसे सुशोभित ढाल हाथमें उठा लिया। फिर तो वह दैत्य रणभूमिमें बड़े पराक्रमसे राक्षसेश्वरकी ओर झपटा। उसे निकट आया हुआ देखकर राक्षसेश्वरने उसके हृदयपर मुद्गरसे प्रहार किया। उस प्रहारसे कुजम्भ क्षतिग्रस्त होकर विक्षुब्ध हो उठा। उस समय वह धैर्यशाली दानव निश्चेष्ट होकर पर्वतकी तरह खड़ा रह गया। दो घड़ीके बाद आश्वस्त होनेपर

रथमारुह्य जग्राह रक्षो वामकरेण तु।
केशेषु निर्ऋतिं दैत्यो जानुनाक्रम्य धिष्ठितम्॥ १२६

ततः खड्गेन च शिरश्छेत्तुमैच्छदमर्षणः।
तस्मिंस्तदन्तरे देवो वरुणोऽपाम्पतिर्द्रुतम्॥ १२७

पाशेन दानवेन्द्रस्य बबन्ध च भुजद्वयम्।
ततो बद्धभुजं दैत्यं विफलीकृतपौरुषम्॥ १२८

अत्यन्त दुर्जय दानवेश्वरने रथपर आरूढ़ हो बायें हाथसे राक्षसेश्वरको पकड़ लिया। तब क्रोधसे भरा हुआ दैत्य कुजम्भ निर्ऋतिके बालोंको पकड़कर और घुटनोंसे दबाकर खड़ा हो गया तथा तलवारसे उनका सिर काट लेनेके लिये उद्यत हो गया। इसी बीच जलेश वरुणदेवने शीघ्र ही अपने पाशसे दानवेन्द्रकी दोनों भुजाओंको बाँध दिया। इस प्रकार दोनों भुजाओंके बँध जानेपर दैत्यका पुरुषार्थ विफल कर दिया गया॥ ११७—१२८॥

ताडयामास गदया दयामुत्सृज्य पाशधृक्।
स तु तेन प्रहारेण स्रोतोभिः क्षतजं वमन्॥ १२९

दधार रूपं मेघस्य विद्युन्मालालतावृतम्।
तदवस्थागतं दृष्ट्वा कुजम्भं महिषासुरः॥ १३०

व्यावृत्तवदनेऽगाधे ग्रस्तुमैच्छत् सुरावुभौ।
निर्ऋतिं वरुणं चैव तीक्ष्णदंष्ट्रोत्कटाननः॥ १३१

तावभिप्रायमालक्ष्य तस्य दैत्यस्य दूषितम्।
त्यक्त्वा रथपथं भीतौ महिषस्यातिरंहसा॥ १३२

भृशं द्रुतौ जवाद्दिग्भ्यामुभाभ्यां भयविह्वलौ।
जगाम निर्ऋतिः क्षिप्रं शरणं पाकशासनम्॥ १३३

क्रुद्धस्तु महिषो दैत्यो वरुणं समभिद्रुतः।
तमन्तकमुखासक्तमालोक्य हिमवद्द्युतिः॥ १३४

चक्रे सोमास्त्रनिःसृष्टं हिमसंघातकण्टकम्।
वायव्यं चास्त्रमतुलं चन्द्रश्चक्रे द्वितीयकम्॥ १३५

वायुना तेन चन्द्रेण संशुष्केण हिमेन च।
व्यथिता दानवाः सर्वे शीतोच्छिन्ना विपौरुषाः॥ १३६

न शेकुश्चलितुं पद्भ्यां नास्त्राण्यादातुमेव च।
महाहिमनिपातेन शस्त्रैश्चन्द्रप्रचोदितैः॥ १३७

तदनन्तर पाशधारी वरुणने दयाको तिलाञ्जलि देकर उस दैत्यपर गदासे प्रहार किया। उस गदाघातसे घायल होकर कुजम्भ (मुख, नाक, कान आदि) छिद्रोंसे रक्त वमन करने लगा। उस समय उसका रूप ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो विद्युत्समूहोंसे आच्छादित मेघ हो। कुजम्भको ऐसी दशामें पड़ा देखकर तीक्ष्ण दाढ़ोंसे युक्त एवं विकराल मुखवाला महिषासुर अपने गहरे मुखको फैलाकर वरुण और निर्ऋति—इन दोनों देवताओंको निगल जानेका प्रयास करने लगा। तब वे दोनों देव उस दैत्यके क्रूर अभिप्रायको समझकर भयभीत हो गये और बड़ी शीघ्रतासे महिषासुरके रथ-मार्गको छोड़कर हट गये। फिर भयसे व्याकुल होकर दोनों बड़े वेगसे दो भिन्न दिशाओंकी ओर भाग चले। उनमें निर्ऋतिने तो तुरंत ही भागकर इन्द्रकी शरण ग्रहण की। उधर कुपित महिषासुरने वरुणका पीछा किया। इस प्रकार वरुणको मौतके मुखमें पड़ा हुआ देखकर शीतरश्मि चन्द्रमाने अपने सोमास्त्रको प्रकट किया, जो हिमसमूहसे व्याप्त होनेके कारण अत्यन्त दुःसह था। उसी समय चन्द्रमाने अपने दूसरे अनुपम अस्त्र वायव्यास्त्रका भी प्रादुर्भाव किया। चन्द्रमाद्वारा छोड़े गये उस वायव्यास्त्र एवं सूखे हिमास्त्रसे सभी दानव व्यथित हो उठे। वे शीतसे जर्जर हो गये और उनका पुरुषार्थ जाता रहा। चन्द्रमाद्वारा चलाये गये अस्त्रोंसे महान् हिमराशिके गिरनेसे समस्त दानव न तो एक पग चल सकते थे और न अस्त्र ही उठानेमें समर्थ थे॥ १२९—१३७॥

गात्राण्यसुरसैन्यानामदह्यन्त समंततः।
महिषो निष्प्रयत्नस्तु शीतेनाकम्पिताननः॥ १३८

कक्षावालम्ब्य पाणिभ्यामुपविष्टो ह्यधोमुखः।
सर्वे ते निष्प्रतीकारा दैत्याश्चन्द्रमसा जिताः॥ १३९

इस प्रकार चारों ओर असुर-सैनिकोंके शरीर शीतसे ठिठुर गये। शीतसे काँपते हुए मुखवाला महिष भी प्रयत्नहीन हो गया। वह अपने दोनों हाथोंसे दोनों काँखोंको दबाकर नीचे मुख किये हुए बैठ गया। इस प्रकार चन्द्रमासे पराजित हुए वे सभी दैत्य बदला चुकानेमें असमर्थ हो गये।

रणेच्छां दूरतस्त्यक्त्वा तस्थुस्ते जीवितार्थिनः।
तत्राब्रवीत् कालनेमिर्दैत्यान् कोपेन दीपितः॥ १४०
भो भोः शृङ्गारिणःशूराः सर्वे शस्त्रास्त्रपारगाः।
एकैकोऽपि जगत्सर्वं शक्तस्तूलयितुं भुजैः॥ १४१
एकैकोऽपि क्षमो ग्रस्तुं जगत्सर्वं चराचरम्।
एकैकस्यापि पर्याप्ता न सर्वेऽपि दिवौकसः॥ १४२
कलां पूरयितुं यत्नात् षोडशीमतिविक्रमाः।
किं प्रयाताश्च तिष्ठध्वं समरेऽमरनिर्जिताः॥ १४३
न युक्तमेतच्छूराणां विशेषाद् दैत्यजन्मनाम्।
राजा चान्तरितोऽस्माकं तारको लोकमारकः॥ १४४
विरतानां रणादस्मात् क्रुद्धः प्राणान् हरिष्यति।

तब वे युद्धकी अभिलाषाको दूर छोड़कर जीवनकी रक्षाके लिये खड़े रहे। इसी बीच क्रोधसे उद्दीप्त हुए कालनेमिने दैत्योंको ललकारते हुए कहा—'भो भो शृङ्गारसे सुसज्जित शूरवीरो! तुम सभी शस्त्रास्त्रके पारगामी विद्वान् हो। तुमलोगोंमेंसे एक-एक भी अपनी भुजाओंसे सारे जगत्को तौल सकता है तथा प्रत्येक व्यक्ति सम्पूर्ण चराचर जगत्को निगल जानेमें समर्थ है। सब-के-सब प्रबल पराक्रमी देवता एक साथ मिलकर भी यत्नपूर्वक तुमलोगोंमेंसे किसी एककी सोलहवीं कलाकी समता नहीं कर सकते। फिर भी तुमलोग समरभूमिमें देवताओंसे पराजित होकर क्यों भागे जा रहे हो? ठहरो! ऐसा करना शूरवीरोंके लिये, विशेषतया दैत्यवंशियोंके लिये उचित नहीं है। सारे संसारका संहार करनेमें समर्थ हमलोगोंका राजा तारकासुर यहाँ उपस्थित नहीं है। वह क्रुद्ध होकर इस युद्धसे भागे हुए लोगोंके प्राणोंका हरण कर लेगा'॥ १३८—१४४ $\frac{1}{2}$॥

शीतेन नष्टश्रुतयो भ्रष्टवाक्पाटवास्तथा॥ १४५
मूकास्तदाभवन् दैत्या रणद्दशनपङ्क्तयः।
तान् दृष्ट्वा नष्टचेतस्कान् दैत्याञ्छीतेन सादितान्॥ १४६
मत्वा कालक्षमं कार्यं कालनेमिर्महासुरः।
आश्रित्य दानवीं मायां वितत्य स्वं महावपुः॥ १४७
पूरयामास गगनं दिशो विदिश एव च।
निर्ममे दानवेन्द्रेशः शरीरे भास्करायुतम्॥ १४८
दिशश्च मायया चण्डैः पूरयामास पावकैः।
ततो ज्वालाकुलं सर्वं त्रैलोक्यमभवत् क्षणात्॥ १४९
तेन ज्वालासमूहेन हिमांशुरगमच्छमम्।
ततः क्रमेण विभ्रष्टशीतदुर्दिनमाबभौ॥ १५०
तद् बलं दानवेन्द्राणां मायया कालनेमिनः।
तं दृष्ट्वा दानवानीकं लब्धसंज्ञं दिवाकरः।
उवाचारुणमुद्भ्रान्तः कोपाल्लोकैकलोचनः॥ १५१

उस समय शीतके प्रभावसे उन दैत्योंकी श्रवणशक्ति और वाक्-चातुरी नष्ट हो गयी थी, वे मूक हो गये थे तथा उनके दाँत कटकटा रहे थे। महासुर कालनेमिने उन दैत्योंको इस प्रकार शीतद्वारा व्यथित और चेतनारहित देखकर इस कार्यको कालद्वारा प्रेरित माना। फिर तो उसने आसुरी मायाका आश्रय लेकर अपने विशाल शरीरका विस्तार किया और उससे आकाशमण्डल, दिशाओं और विदिशाओंको व्याप्त कर लिया। फिर उस दानवेन्द्रने अपने शरीरमें दस हजार सूर्योंका निर्माण किया। उसने मायाके बलसे दसों दिशाओंको प्रचण्ड अग्निसे पूर्ण कर दिया, जिससे क्षणमात्रमें सारी त्रिलोकी अग्निकी लपटोंसे व्याप्त हो गयी। उस ज्वालासमूहसे चन्द्रमा शान्त हो गये। तदनन्तर कालनेमिकी मायासे दानवेन्द्रोंकी वह सेना क्रमशः शीतरूपी दुर्दिनके नष्ट हो जानेपर शोभा पाने लगी। इस प्रकार दानवोंकी सेनाको चेतनायुक्त देखकर जगत्के एकमात्र नेत्रस्वरूप सूर्य क्रोधसे तिलमिला उठे, तब उन्होंने अरुणसे कहा॥ १४५—१५१॥

दिवाकर उवाच

नयारुण रथं शीघ्रं कालनेमिरथो यतः।
विमर्दस्तत्र विषमो भविता शूरसंक्षयः॥ १५२
जित एष शशाङ्कोऽत्र तद्बलं बलमाश्रितम्।
इत्युक्तश्चोदयामास रथं गरुडपूर्वजः॥ १५३

सूर्य बोले—अरुण! मेरे रथको शीघ्र वहाँ ले चलो जहाँ कालनेमिका रथ खड़ा है। वहाँ (मेरा उसके साथ) शूरवीरोंका विनाश करनेवाला भीषण संग्राम होगा। जिनके बलपर हमलोग निर्भर थे, वे चन्द्रदेव तो इस युद्धमें परास्त हो गये। इस प्रकार कहे जानेपर गरुडके अग्रज अरुणने

प्रयत्नविधृतैरश्वैः सितचामरमालिभिः।
जगद्दीपोऽथ भगवान् जग्राह विततं धनुः॥ १५४
शरौ च द्वौ महाभागो दिव्यावाशीविषद्युती।
संचारास्त्रेण संधाय बाणमेकं ससर्ज सः॥ १५५
द्वितीयमिन्द्रजालेन योजितं प्रमुमोच ह।
संचारास्त्रेण रूपाणां क्षणाच्चक्रे विपर्ययम्॥ १५६
देवानां दानवं रूपं दानवानां च दैविकम्।
मत्वासुरान् स्वकानेव जघ्ने घोरास्त्रलाघवात्॥ १५७
कालनेमी रुषाविष्टः कृतान्त इव संक्षये।
कांश्चित् खड्गेन तीक्ष्णेन कांश्चिन्नाराचवृष्टिभिः॥ १५८
कांश्चिद्गदाभिर्घोराभिः कांश्चिद् घोरैः परश्वधैः॥ १५९
शिरांसि केषांचिदपातयच्च
भुजान् रथान् सारथींश्चोग्रवेगः।
कांश्चित्पिपेषाथ रथस्य वेगात्
कांश्चित् क्रुधा चोद्धतमुष्टिपातैः॥ १६०
रणे विनिहतान् दृष्ट्वा नेमिः स्वान् दानवाधिपः।
रूपं स्वं तु प्रपद्यन्त ह्यसुराः सुरधर्षिताः॥ १६१
कालनैमी रुषाविष्टस्तेषां रूपं न बुद्धवान्।
नेमिदैत्यस्तु तान् दृष्ट्वा कालनेमिमुवाच ह॥ १६२
अहं नेमिः सुरो नैव कालनेमे विदस्व माम्।
भवता मोहितेनाजौ निहता भूरिविक्रमाः॥ १६३
दैत्यानां दशलक्षाणि दुर्जयानां सुरैरिह।
सर्वास्त्रवारणं मुञ्च ब्राह्ममस्त्रं त्वरान्वितः॥ १६४
स तेन बोधितो दैत्यः सम्भ्रमाकुलचेतनः।
योजयामास बाणं हि ब्रह्मास्त्रविहितेन तु॥ १६५
मुमोच चापि दैत्येन्द्रः स स्वयं सुरकण्टकः।
ततोऽस्त्रतेजसा व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ १६६
देवानां चाभवत् सैन्यं सर्वमेव भयान्वितम्।
संचारास्त्रं च संशान्तं स्वयमायोधने बभौ॥ १६७
तस्मिन् प्रतिहते ह्यस्त्रे भ्रष्टतेजा दिवाकरः।
महेन्द्रजालमाश्रित्य चक्रे स्वां कोटिशस्तनुम्॥ १६८

श्वेत कलँगियोंसे विभूषित एवं प्रयत्नपूर्वक वशमें किये गये अश्वोंसे जुते हुए रथको आगे बढ़ाया। तत्पश्चात् जगत्को उद्भासित करनेवाले महाभाग भगवान् सूर्यने अपना विशाल धनुष तथा सर्पकी-सी कान्तिवाले दो दिव्य बाणोंको हाथमें लिया। उनमेंसे एक बाणको संचारास्त्रसे संयुक्त करके चलाया तथा दूसरेको इन्द्रजालसे युक्त करके छोड़ दिया। संचारास्त्रके प्रयोगसे क्षणमात्रमें ही लोगोंके रूपोंका परिवर्तन हो गया। देवता दानवोंके और दानव देवताओंके रूपमें बदल गये। फिर तो दानव देवताओंको आत्मीय मानकर दैत्योंपर ही फुर्तीसे प्रहार करने लगे। प्रलयकालमें कृतान्तके समान क्रोधसे भरा हुआ कालनेमि किन्हींको तीखी तलवारसे, किन्हींको बाणोंकी वृष्टिसे, किन्हींको भयंकर गदाओंसे और किन्हींको भीषण कुठारोंसे मार गिराया तथा किन्हींके मस्तकों, भुजाओं और सारथिसहित रथोंको धराशायी कर दिया। उस प्रचण्ड वेगशाली दैत्यने किन्हींको रथके वेगपूर्वक धक्केसे पीस दिया तथा किन्हींको क्रोधपूर्वक कठोर मुक्केके प्रहारसे यमलोकका पथिक बना दिया॥ १५२—१६०॥

उस समय देवताओंसे पराजित हुए बहुत-से दैत्योंको अपने रूपकी प्राप्ति हो चुकी थी, परंतु क्रोधसे भरा हुआ कालनेमि उनके रूपको नहीं जानता था। इस प्रकार रणभूमिमें अपने पक्षके उन दैत्योंको मारा गया देखकर दानवराज नेमि दैत्यने कालनेमिसे कहा—'कालनेमि! मैं नेमि नामक असुर हूँ, देवता नहीं हूँ। तुम मुझे पहचानो। मायासे मोहित होनेके कारण तुमने युद्धस्थलमें बहुत-से प्रचण्ड पराक्रमी दैत्योंका सफाया कर दिया है। देवताओंने इस युद्धमें दस लाख दुर्जय दैत्योंको मौतके घाट उतार दिया है। इसलिये अब तुम शीघ्रतापूर्वक सभी अस्त्रोंके निवारण करनेवाले ब्रह्मास्त्रका प्रयोग करो।' इस प्रकार नेमिद्वारा समझाये जानेपर दैत्यराज कालनेमिका चित्त सम्भ्रमके कारण व्याकुल हो गया, तब उसने बाणको ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके धनुषपर संधान किया तथा उस सुरकण्टक दैत्येन्द्रने स्वयं उसे छोड़ भी दिया। फिर तो उस अस्त्रके तेजसे चराचरसहित त्रिलोकी व्याप्त हो गयी। देवताओंकी सारी सेना भयभीत हो गयी तथा युद्धभूमिमें संचारास्त्र स्वयं शान्त हो गया। उस अस्त्रके विफल हो जानेपर सूर्यका तेज नष्ट हो गया, तब उन्होंने महेन्द्रजालका आश्रय लेकर अपने शरीरको करोड़ों रूपोंमें प्रकट किया॥ १६१—१६८॥

विस्फूर्जत्करसम्पातसमाक्रान्तजगत्त्रयम्‌ ।
ततापं दानवानीकं गतमज्जौघशोणितम्‌॥ १६९

ततश्चावर्षदनलं समन्तादतिसंहतम्‌।
चक्षूंषि दानवेन्द्राणां चकारान्धानि च प्रभुः॥ १७०

गजानामगलन्मेदः पेतुश्चाप्यरवा भुवि।
तुरगा निःश्वसन्तश्च घर्मार्ता रथिनोऽपि च॥ १७१

इतश्चेतश्च सलिलं प्रार्थयन्तस्तृषातुराः।
प्रच्छायविटपांश्चैव गिरीणां गह्वराणि च॥ १७२

दावाग्निः प्रज्वलंश्चैव घोरार्चिर्दग्धपादपः।
तोयार्थिनः पुरो दृष्ट्वा तोयं कल्लोलमालिनम्‌॥ १७३

पुरःस्थितमपि प्राप्तं न शेकुरवमर्दिताः।
अप्राप्य सलिलं भूमौ व्यात्तास्या गतचेतसः॥ १७४

तत्र तत्र व्यदृश्यन्त मृता दैत्येश्वरा भुवि।
रथा गजाश्च पतितास्तुरगाश्च समापिताः॥ १७५

स्थिता वमन्तो धावन्तो गलद्रक्तवसासृजः।
दानवानां सहस्राणि व्यदृश्यन्त मृतानि तु॥ १७६

संक्षये दानवेन्द्राणां तस्मिन्‌ महति वर्तिते।
प्रकोपोद्भूतताम्राक्षः कालनेमी रुषातुरः॥ १७७

अभवत्‌ कल्पमेघाभः स्फुरद्भूरिशतह्रदः।
गम्भीरास्फोटनिर्ह्रादजगद्धृदयघट्टकः ॥ १७८

प्रच्छाद्य गगनाभोगं रविमायां व्यनाशयत्‌।
शीतं ववर्ष सलिलं दानवेन्द्रबलं प्रति॥ १७९

दैत्यास्तां वृष्टिमासाद्य समाश्वस्तास्ततः क्रमात्‌।
बीजाङ्कुरा इवाम्लानाः प्राप्य वृष्टिं धरातले॥ १८०

ततः स मेघरूपी तु कालनेमिर्महासुरः।
शस्त्रवृष्टिं ववर्षोग्रां देवानीकेषु दुर्जयः॥ १८१

तया वृष्ट्या बाध्यमाना दैत्येन्द्राणां महौजसाम्‌।
गतिं कांचन पश्यन्तो गावः शीतार्दिता इव॥ १८२

उन रूपोंसे निकलती हुई किरणोंके गिरनेसे तीनों लोक आक्रान्त हो गये। उससे मज्जा और रक्तसे रहित दानवोंकी सेना संतप्त हो उठी। तत्पश्चात्‌ सामर्थ्यशाली सूर्यदेवने चारों ओर अग्निकी अत्यन्त घोर वृष्टि की और दानवेन्द्रोंके नेत्रोंको अंधा कर दिया। हाथियोंकी मज्जाएँ गल गयीं और वे चुपचाप धराशायी हो गये। धूपसे पीड़ित हुए घोड़े लम्बी साँस खींचने लगे। प्याससे व्याकुल हुए रथी भी इधर-उधर पानीकी खोज करते हुए छायादार वृक्षों और पर्वतोंकी गुफाओंकी शरण लेने लगे। उस समय दावाग्नि प्रज्वलित हो उठी, जिसकी भयंकर ज्वालाने वृक्षोंको जलाकर भस्म कर दिया। जलाभिलाषी लोग सामने ही हिलोरें लेते हुए जलसे भरे हुए जलाशयको देखकर सामने स्थित रहनेपर भी दावाग्निसे पीड़ित होनेके कारण प्राप्त नहीं कर सकते थे, अतः जल न पाकर मुख फैलाये हुए भूतलपर गिरकर चेतनारहित हो जाते थे। भूतलपर जगह-जगह मरे हुए दैत्येश्वर दिखायी पड़ते थे। कहीं-कहीं टूटे हुए रथ तथा मरे हुए हाथी और घोड़े पड़े हुए थे। कहीं कुछ लोग बैठकर रक्त उगल रहे थे और कुछ दौड़ लगा रहे थे, जिनके शरीरसे रक्त, मज्जा और चर्बी टपक रही थी। कहीं हजारोंकी संख्यामें मरे हुए दानव दीख रहे थे। दानवेन्द्रोंके उस महान्‌ विनाशके उपस्थित होनेपर कालनेमि क्रोधसे विह्वल हो उठा। प्रचण्ड क्रोधके कारण उसके नेत्र लाल हो गये। उसकी शरीरकान्ति प्रलयकालीन मेघके समान हो गयी। वह उमड़ते हुए सैकड़ों जलाशयोंके सदृश उछल पड़ा और गम्भीररूपसे ताल ठोंककर एवं सिंहनाद करके जगत्‌के प्राणियोंके हृदयोंको कम्पित कर दिया। फिर उसने आकाशमण्डलको आच्छादित कर सूर्यकी मायाको नष्ट कर दिया। तदनन्तर दानवेन्द्रकी सेनापर शीतल जलकी वर्षा होने लगी। दैत्यगण उस वृष्टिका अनुभव कर क्रमशः उसी प्रकार समाश्वस्त हो गये, जैसे भूतलपर सूखते हुए बीजाङ्कुर जलकी वृष्टिसे हरे-भरे हो जाते हैं॥१६९—१८०॥

तत्पश्चात्‌ दुर्जय एवं महान्‌ असुर कालनेमि मेघरूप होकर देवताओंकी सेनाओंपर भीषण शस्त्रवृष्टि करने लगा। प्रचण्ड पराक्रमी दैत्येन्द्रोंकी उस बाणवर्षासे पीड़ित हुए देवगणोंको शीतसे पीड़ित गौओंकी तरह कोई आश्रयस्थान नहीं दीख रहा था।

परस्परं व्यलीयन्त पृष्ठेषु व्यस्त्रपाणयः।
स्वेषु बाधे व्यलीयन्त गजेषु तुरगेषु च॥ १८३
रथेषु त्वमरास्त्रस्तास्तत्र तत्र निलिल्यिरे।
अपरे कुञ्चितैर्गात्रैः स्वहस्तपिहिताननाः॥ १८४
इतश्चेतश्च सम्भ्रान्ता बभ्रमुर्वै दिशो दश।
एवंविधे तु संग्रामे तुमुले देवसंक्षये॥ १८५
दृश्यन्ते पतिता भूमौ शस्त्रभिन्नाङ्गसंधयः।
विभुजा भिन्नमूर्धानस्तथा छिन्नोरुजानवः॥ १८६
विपर्यस्तरथासङ्गा निष्पिष्टध्वजपङ्क्तयः।
निर्भिन्नाङ्गैस्तुरङ्गैस्तु गजैश्चाचलसन्निभैः॥ १८७
स्रुतरक्तह्रदैर्भूमिविकृताविकृता बभौ।
एवमाजौ बली दैत्यः कालनेमिर्महासुरः॥ १८८
जघ्ने मुहूर्तमात्रेण गन्धर्वाणां दशायुतम्।
यक्षाणां पञ्चलक्षाणि रक्षसामयुतानि षट्॥ १८९
त्रीणि लक्षाणि जघ्ने स किन्नराणां तरस्विनाम्।
जघ्ने पिशाचमुख्यानां सप्तलक्षाणि निर्भयः॥ १९०
इतरेषामसंख्याताः सुरजातिनिकायिनाम्।
जघ्ने स कोटीः संक्रुद्धश्चित्रास्त्रैरस्त्रकोविदः॥ १९१
एवं परिभवे भीमे तदा त्वमरसंक्षये।
संक्रुद्धावश्विनौ देवौ चित्रास्त्रकवचोज्वलौ॥ १९२
जघ्नतुः समरे दैत्यं कृतान्तानलसंनिभम्।
तमासाद्य रणे घोरमेकैकः षष्टिभिः शरैः॥ १९३
जघ्ने मर्मसु तीक्ष्णाग्रैरसुरं भीमदर्शनम्।
ताभ्यां बाणप्रहारैः स किंचिदायस्तचेतनः॥ १९४
जग्राह चक्रमष्टारं तैलधौतं रणान्तकम्।
तेन चक्रेण सोऽश्विभ्यां चिच्छेद रथकूबरम्॥ १९५
जग्राहाथ धनुर्दैत्यः शरांश्चाशीविषोपमान्।
ववर्ष भिषजो मूर्ध्नि संछाद्याकाशगोचरम्॥ १९६

वे अस्त्र छोड़कर अपने-अपने हाथियों और घोड़ोंकी पीठोंपर चिपककर छिप गये। कहीं-कहीं भयभीत हुए देवगण रथोंमें लुक-छिप रहे थे। कुछ अन्य देवताओंके शरीर भयसे सिकुड़ गये थे, वे भयवश अपने हाथसे मुखको ढके हुए दसों दिशाओंमें इधर-उधर भाग-दौड़ कर रहे थे। इस प्रकार उस देव-विनाशक भीषण संग्राममें शस्त्रोंके आघातसे जिनकी अङ्गसंधियाँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं, भुजाएँ कट गयी थीं, मस्तक विदीर्ण हो गये थे तथा जंघा और जानु कट गये थे, ऐसे सैनिक, टूटे हुए हरसेवाले रथ और चूर-चूर हुए ध्वजाओंकी कतारें भूतलपर पड़ी हुई दीख रही थीं। जिनके शरीरोंसे बहते हुए रक्तसे गड्ढे भर जाते थे, ऐसे विदीर्ण अङ्गोंवाले घोड़ों और पर्वत-सदृश विशालकाय गजराजोंसे पटी हुई वह रणभूमि विकृत और बीभत्स दिखायी पड़ रही थी। इस प्रकार उस युद्धमें महाबली महासुर कालनेमि दैत्यने दो ही घड़ीमें एक लाख गन्धर्वों, पाँच लाख यक्षों, साठ हजार राक्षसों, तीन लाख वेगशाली किंनरों और सात लाख प्रधान-प्रधान पिशाचोंको कालके हवाले कर दिया। इनके अतिरिक्त उसने निर्भय होकर अन्य देवजातियोंके असंख्य वीरोंका संहार किया तथा अस्त्रविद्यानिपुण कालनेमिने विचित्र ढंगसे अस्त्रोंके प्रहारसे करोड़ों देवताओंको यमलोकका पथिक बना दिया॥ १८१—१९१॥

उस समय इस प्रकारकी भयंकर पराजय और देवताओंका संहार उपस्थित होनेपर चित्र-विचित्र अस्त्र और उज्ज्वल कवचसे सुसज्जित हो दोनों देवता अश्विनीकुमार क्रोधमें भरे हुए समरभूमिमें आगे बढ़े और कृतान्त एवं अग्निके समान पराक्रमी उस दैत्यपर प्रहार करने लगे। उस भयावनी आकृतिवाले भयंकर असुरको रणभूमिमें सम्मुख पाकर एक-एकने तीखे अग्रभागवाले साठ-साठ बाणोंसे उसके मर्मस्थानोंपर आघात किया। उन दोनों अश्विनीकुमारोंके बाण-प्रहारसे उसका चित्त कुछ दुःखी हो गया। फिर उसने आठ अरोंवाले चक्रको हाथमें लिया, जो तेलसे सफ्राया हुआ तथा रणमें अन्तकके समान विकराल था। उसने उस चक्रसे अश्विनीकुमारोंके रथके कूबरको काट गिराया। तत्पश्चात् उस दैत्यने धनुष और सर्पके समान जहरीले बाणोंको उठाया और आकाशमण्डलको बाणोंसे आच्छादित करके

तावप्यस्त्रैश्चिच्छिदतुः शितैस्तैर्दैत्यसायकान्।
तच्च कर्म तयोर्दृष्ट्वा विस्मितः कोपमाविशत्॥ १९७

महता स तु कोपेन सर्वायोमयसादनम्।
जग्राह मुद्गरं भीमं कालदण्डविभीषणम्॥ १९८

स ततो भ्राम्य वेगेन चिक्षेपाश्विरथं प्रति।
तं तु मुद्गरमायान्तमालोक्याम्बरगोचरम्॥ १९९

त्यक्त्वा रथौ तु तौ वेगादाप्लुतौ तरसाश्विनौ।
तौ रथौ स तु निष्पिष्य मुद्गरोऽचलसंनिभः॥ २००

दारयामास धरणीं हेमजालपरिष्कृतः।
तस्य कर्माश्विनौ दृष्ट्वा भिषजौ चित्रयोधिनौ॥ २०१

वज्रास्त्रं तु प्रकुर्वाते दानवेन्द्रनिवारणम्।
ततो वज्रमयं वर्षं प्रावर्तदतिदारुणम्॥ २०२

उन दोनों देववैद्योंके मस्तकोंपर बाणवृष्टि प्रारम्भ की। तब उन दोनों देवोंने भी अपने तीखे अस्त्रोंसे उस दैत्यके बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। उन दोनोंके उस कर्मको देखकर आश्चर्यचकित हुआ कालनेमि क्रुद्ध हो उठा। फिर तो उसने बड़े क्रोधसे अपने भयंकर मुद्गरको, जिसका सर्वाङ्गभाग लोहेका बना हुआ था तथा कालदण्डके समान अत्यन्त भीषण था, हाथमें लिया और बड़े वेगसे घुमाकर उसे अश्विनीकुमारोंके रथपर फेंक दिया। आकाशमार्गसे उस मुद्गरको अपनी ओर आते देखकर दोनों अश्विनीकुमार अपने-अपने रथको छोड़कर बड़े वेगसे भूतलपर कूद पड़े। तब स्वर्णसमूहसे सुसज्जित एवं पर्वतके समान विशाल उस मुद्गरने उन दोनों रथोंको चूर-चूर करके पृथ्वीको विदीर्ण कर दिया। उसके उस कर्मको देखकर विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले देववैद्य अश्विनीकुमारोंने दानवेन्द्रोंको विमुख करनेवाले वज्रास्त्रका प्रयोग किया। फिर तो अत्यन्त भीषण वज्रमयी वृष्टि होने लगी॥ १९२—२०२॥

घरवज्रप्रहारैस्तु दैत्येन्द्रः स परिष्कृतः।
रथो ध्वजो धनुश्चक्रं कवचं चापि काञ्चनम्॥ २०३

क्षणेन तिलशो जातं सर्वसैन्यस्य पश्यतः।
तद् दृष्ट्वा दुष्करं कर्म सोऽश्विभ्यां भीमविक्रमः॥ २०४

नारायणास्त्रं बलवान् मुमोच रणमूर्धनि।
वज्रास्त्रं शमयामास दानवेन्द्रोऽस्त्रतेजसा॥ २०५

तस्मिन् प्रशान्ते वज्रास्त्रे कालनेमिरनन्तरम्।
जीवग्राहं ग्राहयितुमश्विनौ तु प्रचक्रमे॥ २०६

तावश्विनौ रणाद् भीतौ सहस्राक्षरथं प्रति।
प्रयातौ वेपमानौ तु पदा शस्त्रविवर्जितौ॥ २०७

तयोरनुगतो दैत्यः कालनेमिर्महाबलः।
प्राप्येन्द्रस्य रथं क्रूरो दैत्यानीकपदानुगः॥ २०८

तं दृष्ट्वा सर्वभूतानि वित्रेसुर्विह्वलानि तु।
दृष्ट्वा दैत्यस्य तत् क्रौर्यं सर्वभूतानि मेनिरे॥ २०९

उस समय दैत्येन्द्र कालनेमि भयंकर वज्र-प्रहारोंसे आच्छादित हो उठा। क्षणमात्रमें ही सभी सैनिकोंके देखते-देखते उसके रथ, ध्वज, धनुष, चक्र और स्वर्णनिर्मित कवचके तिलके समान टुकड़े-टुकड़े हो गये। अश्विनीकुमारोंद्वारा किये गये उस दुष्कर कर्मको देखकर भयंकर पराक्रमी एवं महाबली दानवेन्द्र कालनेमिने उस युद्धके मुहानेपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया और उस अस्त्रके तेजसे वज्रास्त्रको शान्त कर दिया। उस वज्रास्त्रके शान्त हो जानेके बाद कालनेमि दोनों अश्विनीकुमारोंको जीते-जी पकड़ लेनेका प्रयत्न करने लगा। तब वे दोनों अश्विनीकुमार भयभीत होकर पैदल ही रणभूमिसे भागकर इन्द्रके रथके निकट जा पहुँचे। उस समय उनके शरीर काँप रहे थे और उन्होंने अस्त्रका भी त्याग कर दिया था। उस समय महाबली एवं क्रूर स्वभाववाला दैत्यराज कालनेमि भी दैत्योंकी सेनाके साथ अश्विनीकुमारोंका पीछा करते हुए इन्द्रके रथके निकट पहुँचा। उसे देखकर सभी प्राणी विह्वल हो गये और सबके मनमें भय छा गया। दैत्यराज कालनेमिके उस क्रूर कर्मको देखकर सभी प्राणियोंने

पराजयं महेन्द्रस्य सर्वलोकक्षयावहम्।
चेलुः शिखरिणो मुख्याः पेतुरुल्का नभस्तलात्॥ २१०

जगर्जुर्जलदा दिक्षु ह्युद्धूताश्च महार्णवाः।
तां भूतविकृतिं दृष्ट्वा भगवान् गरुडध्वजः॥ २११
व्यबुद्ध्यताहिपर्यङ्के योगनिद्रां विहाय तु।
लक्ष्मीकरयुगाजस्त्रलालिताङ्घ्रिसरोरुहः॥ २१२
शरदम्बरनीलाब्जकान्तदेहच्छविर्विभुः।
कौस्तुभोद्भासितोरस्को कान्तकेयूरभास्वरः॥ २१३
विमृश्य सुरसंक्षोभं वैनतेयं समाह्वयत्।
आहूतेऽवस्थिते तस्मिन् नागावस्थितवर्ष्मणि॥ २१४
दिव्यनानास्त्रतीक्ष्णार्चिरारुह्यागात् सुरान् स्वयम्।
तत्रापश्यत देवेन्द्रमभिद्रुतमभिप्लुतैः॥ २१५
दानवेन्द्रैर्नवाम्भोदसच्छायैः पौरुषोत्कटैः।
यथा हि पुरुषं घोरैरभाग्यैर्वशशालिभिः॥ २१६
परित्राणायाशु कृतं सुक्षेत्रे कर्म निर्मलम्।
अथापश्यन्त दैतेया वियति ज्योतिर्मण्डलम्॥ २१७
स्फुरन्तमुदयाद्रिस्थं सूर्यमुष्णत्विषा इव।
प्रभावं ज्ञातुमिच्छन्तो दानवास्तस्य तेजसः॥ २१८
गरुत्मन्तमपश्यन्तः कल्पान्तानलसंनिभम्।
तमास्थितं च मेघौघद्युतिमक्षयमच्युतम्॥ २१९
तमालोक्यासुरेन्द्रास्तु हर्षसम्पूर्णमानसाः।
अयं वै देवसर्वस्वं जितेऽस्मिन् निर्जिताः सुराः॥ २२०
अयं स दैत्यचक्राणां कृतान्तः केशवोऽरिहा।
एनमाश्रित्य लोकेषु यज्ञभागभुजोऽमराः॥ २२१

इत्युक्त्वा दानवाः सर्वे परिवार्य समंततः।
निजघ्नुर्विविधैरस्त्रैस्ते तमायान्तमाहवे॥ २२२

महेन्द्रकी पराजय मान ली, जो सम्पूर्ण लोकोंका विनाश करनेवाली थी। उस समय प्रधान-प्रधान पर्वत विचलित हो उठे, आकाशमण्डलसे उल्काएँ गिरने लगीं, दसों दिशाओंमें बादल गरजने लगे और महासागरोंमें ज्वार उठने लगा॥ २०३—२१० $\frac{३}{२}$॥

उस समय पञ्चभूतोंके उस विकारको देखकर शेषशय्यापर शयन करते हुए भगवान् गरुडध्वज योगनिद्राका त्याग कर सहसा जाग पड़े। लक्ष्मी अपने दोनों हाथोंसे जिनके चरणकमलोंकी निरन्तर सेवा करती रहती हैं, जिनके शरीरकी कान्ति शरत्कालीन आकाश एवं नीले कमल-सी सुन्दर है, जिनका वक्षःस्थल कौस्तुभ मणिसे उद्भासित होता रहता है, जो चमकीले बाजूबंदसे प्रकाशित होते रहते हैं, उन सर्वव्यापी भगवान्ने देवताओंकी अस्त-व्यस्तताका विचार कर गरुडका आह्वान किया। बुलाते ही हाथीके समान विशाल शरीरवाले गरुडके उपस्थित होनेपर भगवान् उनपर सवार होकर स्वयं देवताओंके निकट गये, उस समय उनके नाना प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रचण्ड प्रकाश फैल रहा था। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि नूतन मेघकी-सी कान्तिवाले एवं उत्कट पुरुषार्थी दानवेन्द्रोंद्वारा खदेड़े जाते हुए देवराज इन्द्र उसी प्रकार भाग रहे हैं, जैसे भयंकर अभाग्यसे युक्त विस्तृत परिवारसे घिरा हुआ पुरुष कष्ट पाता है। फिर तो उस सुन्दर अवसरपर भगवान्ने तुरंत ही इन्द्रकी रक्षाके लिये निर्मल कर्म किया। उस समय दैत्योंको आकाशमें एक ज्योतिर्मण्डल दिखायी पड़ा, जो उदयाचलपर स्थित उष्ण कान्तिवाले सूर्यके समान चमक रहा था। तब दानवगण उस तेजके प्रभावको जाननेके इच्छुक हो उठे। इतनेमें ही उन्हें प्रलयकालीन अग्निकी भाँति भयंकर गरुड दीख पड़े। तत्पश्चात् गरुडपर बैठे हुए मेघसमूहकी-सी कान्तिवाले अविनाशी भगवान् अच्युतका दर्शन हुआ। उन्हें देखकर असुरेन्द्रोंका मन हर्षसे परिपूर्ण हो गया (और वे कहने लगे—) 'यही तो देवताओंका सर्वस्व है। इसे जीत लेनेपर देवताओंको पराजित हुआ ही समझना चाहिये। यही वह दैत्यसमूहोंका विनाश करनेवाला शत्रुसूदन केशव है। इसीका आश्रय ग्रहण कर देवगण लोकोंमें यज्ञ-भागके भोक्ता बने हुए हैं'॥ २११—२२१॥

ऐसा कहकर कालनेमि प्रभृति दस महारथी दैत्य तथा वे सभी दानव युद्धस्थलमें आते हुए भगवान् विष्णुको चारों ओरसे घेरकर उनपर विविध प्रकारके अस्त्रोंसे प्रहार करने लगे।

कालनेमिप्रभृतयो दश दैत्या महारथाः।
षष्ट्या विव्याध बाणानां कालनेमिर्जनार्दनम्॥ २२३

निमिः शतेन बाणानां मथनोऽशीतिभिः शरैः।
जम्भकश्चैव सप्तत्या शुम्भो दशभिरेव च॥ २२४

शेषा दैत्येश्वराः सर्वे विष्णुमेकैकशः शरैः।
दशभिश्चैव यत्तास्ते जघ्नुः सगरुडं रणे॥ २२५

तेषाममृष्य तत् कर्म विष्णुर्दानवसूदनः।
एकैकं दानवं जघ्ने षड्भिः षड्भिरजिह्मगैः॥ २२६

आकर्णकृष्टैर्भूयश्च कालनेमिस्त्रिभिः शरैः।
विष्णुं विव्याध हृदये क्रोधाद् रक्तविलोचनः॥ २२७

तस्याशोभन्त ते बाणा हृदये तप्तकाञ्चनाः।
मयूखानीव दीप्तानि कौस्तुभस्य स्फुटत्विषः॥ २२८

तैर्बाणैः किंचिदायस्तो हरिर्जग्राह मुद्गरम्।
सततं भ्राम्य वेगेन दानवाय व्यसर्जयत्॥ २२९

दानवेन्द्रस्तमप्राप्तं वियत्येव शतैः शरैः।
चिच्छेद तिलशः क्रुद्धो दर्शयन् पाणिलाघवम्॥ २३०

ततो विष्णुः प्रकुपितः प्रासं जग्राह भैरवम्।
तेन दैत्यस्य हृदयं ताडयामास गाढतः॥ २३१

उस समय कालनेमिने भगवान् जनार्दनको साठ बाणोंसे, निमिने सौ बाणोंसे, मथनने असी बाणोंसे, जम्भकने सत्तर और शुम्भने दस बाणोंसे बींध दिया। शेष सभी प्रयत्नशील दैत्येश्वरोंमेंसे एक-एकने रणभूमिमें गरुडसहित भगवान् विष्णुको दस-दस बाणोंसे चोटें पहुँचायीं। तब उनके उस कर्मको सहन न कर दानवोंके विनाशक भगवान् विष्णुने एक-एक दानवको सीधे चोट करनेवाले छः-छः बाणोंसे घायल कर दिया। यह देखकर कालनेमिके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। तब उसने पुनः कानतक खींचकर छोड़े गये तीन बाणोंसे भगवान् विष्णुके हृदयपर चोट की। तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाले कालनेमिके वे बाण विष्णुके हृदयपर उसी प्रकार शोभित हो रहे थे मानो फैलती हुई कान्तिवाले कौस्तुभ मणिकी उद्दीप्त किरणें हों। उन बाणोंके आघातसे कुछ कष्टका अनुभव कर श्रीहरिने अपना मुद्गर उठाया और उसे लगातार वेगपूर्वक घुमाकर उस दानवपर फेंक दिया। वह मुद्गर अभी उसके निकटतम पहुँचा भी न था कि क्रोधसे भरे हुए दानवराजने अपने हाथकी फुर्ती दिखलाते हुए आकाशमार्गमें ही सैकड़ों बाणोंके प्रहारसे उसे तिल-तिल करके काट डाला। यह देखकर विशेषरूपसे कुपित हुए भगवान् विष्णुने भयंकर भाला हाथमें लिया और उससे उस दैत्यके हृदयपर गहरी चोट पहुँचायी (जिसके आघातसे वह मूर्च्छित हो गया)॥ २२२—२३१॥

क्षणेन लब्धसंज्ञस्तु कालनेमिर्महासुरः।
शक्तिं जग्राह तीक्ष्णाग्रां हेमघण्टाट्टहासिनीम्॥ २३२

तया वामभुजं विष्णोर्बिभेद दितिनन्दनः।
भिन्नः शक्त्या भुजस्तस्य स्रुतशोणित आबभौ॥ २३३

पद्मरागमयेनेव केयूरेण विभूषितः।
ततो विष्णुः प्रकुपितो जग्राह विपुलं धनुः॥ २३४

सप्त दश च नाराचांस्तीक्ष्णान् मर्मबिभेदिनः।
दैत्यस्य हृदयं षड्भिर्विव्याध च त्रिभिः शरैः॥ २३५

चतुर्भिः सारथिं चास्य ध्वजं चैकेन पत्रिणा।
द्वाभ्यां ज्याधनुषी चापि भुजं सव्यं च पत्रिणा॥ २३६

स विद्धो हृदये गाढं दैत्यो हरिशिलीमुखैः।
स्रुतरक्तारुणप्रांशुः पीडाकुलितमानसः॥ २३७

क्षणभरके पश्चात् जब उसकी चेतना लौटी, तब महासुर कालनेमिने तीखे अग्रभागवाली शक्ति हाथमें ली, जिसमें स्वर्णनिर्मित क्षुद्र घंटिकाएँ बज रही थीं। उस शक्तिसे दैत्य कालनेमिने भगवान् विष्णुकी बायीं भुजाको विदीर्ण कर दिया। शक्तिके आघातसे घायल हुई भगवान् विष्णुकी भुजा रक्त बहाती हुई ऐसी शोभा पा रही थी। मानो पद्मरागमणिके बने हुए बाजूबंदसे विभूषित की गयी हो। तब कुपित हुए भगवान् विष्णुने विशाल धनुष और सतरह तीखे एवं मर्मभेदी बाणोंको हाथमें लिया। उनमेंसे उन्होंने नौ बाणोंसे उस दैत्यके हृदयको, चार बाणोंसे उसके सारथिको, एक बाणसे ध्वजको, दो बाणोंसे प्रत्यञ्चासहित धनुषको और एक बाणसे उसकी दाहिनी भुजाको बींध दिया। उस समय भगवान् विष्णुके बाणोंसे उस दैत्यका हृदय गम्भीररूपसे घायल हो गया था, उससे रक्तकी मोटी धाराएँ निकल रही थीं, उसका मन पीडासे व्याकुल हो गया था और

चकम्पे मारुतेनेव नोदितः किंशुकद्रुमः।
तमाकम्पितमालक्ष्य गदां जग्राह केशवः॥ २३८

तां च वेगेन चिक्षेप कालनेमिरथं प्रति।
सा पपात शिरस्युग्रा विपुला कालनेमिनः॥ २३९

स चूर्णितोत्तमाङ्गस्तु निष्पिष्टमुकुटोऽसुरः।
स्रुतरक्तौघरन्ध्रस्तु स्रुतधातुरिवाचलः॥ २४०

प्रापतत् स्वे रथे भग्ने विसंज्ञः शिष्टजीवितः।
पतितस्य रथोपस्थे दानवस्याच्युतोऽरिहा॥ २४१

स्मितपूर्वमुवाचेदं वाक्यं चक्रायुधः प्रभुः।
गच्छासुर विमुक्तोऽसि साम्प्रतं जीव निर्भयः॥ २४२

ततः स्वल्पेन कालेन अहमेव तवान्तकः।

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य सारथिः कालनेमिनः।
अपवाह्य रथं दूरमनयत् कालनेमिनम्॥ २४३

वह झंझावातसे झकझोरे हुए पलाश-वृक्षकी भाँति काँप रहा था। उसे काँपता हुआ देखकर भगवान् केशवने गदा उठायी और उसे वेगपूर्वक कालनेमिके रथपर फेंक दिया। वह भयंकर एवं विशाल गदा कालनेमिके मस्तकपर जा गिरी। उसके आघातसे उस असुरका मस्तक चूर्ण हो गया, मुकुट पिस गया और शरीरके छिद्रोंसे रक्तकी धाराएँ बहने लगीं। उस समय वह ऐसा दीख रहा था मानो चूते हुए गेरु आदि धातुओंसे युक्त पर्वत हो। तत्पश्चात् वह मूर्च्छित होकर अपने टूटे हुए रथपर गिर पड़ा। उसके प्राणमात्र अवशेष थे। इस प्रकार रथके पिछले भागमें पड़े हुए उस दानवके प्रति चक्रायुधधारी एवं सामर्थ्यशाली शत्रुसूदन अच्युतने मुसकराते हुए यह बात कही—'असुर! जाओ, इस समय तुम छोड़ दिये गये हो, अतः निर्भय होकर जीवन धारण करो। फिर थोड़े ही समयके बाद मैं ही तुम्हारा विनाश करूँगा।' भगवान् विष्णुके उस वचनको सुनकर कालनेमिका सारथि रथको लौटाकर कालनेमिको रणभूमिसे दूर हटा ले गया॥ २३२—२४३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे कालनेमिपराजयो नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें कालनेमिपराजय नामक एक सौ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५०॥

एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुपर दानवोंका सामूहिक आक्रमण, भगवान् विष्णुका अद्भुत युद्ध-कौशल और उनके द्वारा दानवसेनापति ग्रसनकी मृत्यु

सूत उवाच

तं दृष्ट्वा दानवाः क्रुद्धाश्चेरुः स्वैः स्वैर्बलैर्वृताः।
सरघा इव माक्षीकहरणे सर्वतो दिशम्॥ १

कृष्णचामरजालाढ्ये सुधाविरचिताङ्कुरे।
चित्रपञ्चपताकेषु प्रभिन्नकरटामुखे॥ २

पर्वताभे गजे भीमे मदस्राविणि दुर्धरे।
आरुह्याजौ निमिर्दैत्यो हरिं प्रत्युद्ययौ बली॥ ३

तस्यासन् दानवा रौद्रा गजस्य पदरक्षिणः।
सप्तविंशतिसाहस्राः किरीटकवचोज्ज्वलाः॥ ४

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् विष्णुको देखकर क्रोधमें भरे हुए सभी दानवेन्द्र अपनी-अपनी सेनाके साथ उनके ऊपर इस प्रकार टूट पड़े जैसे मधु निकालते समय मधु निकालनेवालेको मधुमक्खियाँ चारों ओरसे घेर लेती हैं। उस समय महाबली दैत्यराज निमिने जो काले चँवरोंसे सुशोभित था, जिसके मस्तकपर उज्ज्वल पत्रभंगी की गयी थी, जिसके गण्डस्थलका मुख फूट जानेसे मद चू रहा था, जो पर्वतके समान विशालकाय था और जिसपर रंग-विरंगी पाँच पताकाएँ फहरा रही थीं, ऐसे दुर्धर्ष एवं भयंकर गजराजपर चढ़कर युद्धस्थलमें श्रीहरिपर आक्रमण किया। उसके हाथीकी पदरक्षामें सत्ताईस हजार भयंकर दानव नियुक्त थे, जो उज्ज्वल

अश्वारूढश्च मथनो जम्भकश्चोष्ट्रवाहनः।
शुम्भोऽपि विपुलं मेषं समारुह्याव्रजद् रणम्॥ ५
अपरे दानवेन्द्रास्तु यत्ता नानास्त्रपाणयः।
आजघ्नुः समरे क्रुद्धा विष्णुमक्लिष्टकारिणम्॥ ६
परिघेण निमिर्दैत्यो मथनो मुद्गरेण तु।
शुम्भः शूलेन तीक्ष्णेन प्रासेन ग्रसनस्तथा॥ ७
चक्रेण महिषः क्रुद्धो जम्भः शक्त्या महारणे।
जघ्नुर्नारायणं सर्वे शेषास्तीक्ष्णैश्च मार्गणैः॥ ८
तान्यस्त्राणि प्रयुक्तानि शरीरं विविशुर्हरेः।
गुरूक्तान्युपदिष्टानि सच्छिष्यस्य श्रुताविव॥ ९
असम्भ्रान्तो रणे विष्णुरथ जग्राह कार्मुकम्।
शरांश्चाशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्मगान्॥ १०
ततोऽभिसंध्य दैत्यांस्तानाकर्णाकृष्टकार्मुकः।
अभ्यद्रवद् रणे क्रुद्धो दैत्यानीके तु पौरुषात्॥ ११
निमिं विव्याध विंशत्या बाणानामग्निवर्चसाम्।
मथनं दशभिर्बाणैः शुम्भं पञ्चभिरेव च॥ १२
एकेन महिषं क्रुद्धो विव्याधोरसि पत्रिणा।
जम्भं द्वादशभिस्तीक्ष्णैः सर्वांश्चैकैकशोऽष्टभिः॥ १३
तस्य तल्लाघवं दृष्ट्वा दानवाः क्रोधमूर्च्छिताः।
नर्दमानाः प्रयत्नेन चक्रुरत्यद्भुतं रणम्॥ १४
चिच्छेदाथ धनुर्विष्णोर्निमिर्भल्लेन दानवः।
संध्यमानं शरं हस्ते चिच्छेद महिषासुरः॥ १५
पीडयामास गरुडं जम्भस्तीक्ष्णैस्तु सायकैः।
भुजं तस्याहनद् गाढं शुम्भो भूधरसंनिभः॥ १६
छिन्ने धनुषि गोविन्दो गदां जग्राह भीषणाम्।
तां प्राहिणोत् स वेगेन मथनाय महाहवे॥ १७
तामप्राप्तां निमिर्बाणैश्चिच्छेद तिलशो रणे।
तां नाशमागतां दृष्ट्वा हीनाग्रे प्रार्थनामिव॥ १८

किरीट और कवचसे लैस थे। साथ ही घोड़ेपर चढ़ा हुआ मथन, ऊँटपर बैठा हुआ जम्भक और विशालकाय मेषपर सवार हुआ शुम्भ भी रणभूमिमें पहुँचे। क्रुद्ध हुए अन्यान्य दानवेन्द्र भी विभिन्न प्रकारके अस्त्र हाथमें लिये हुए सतर्क होकर समरभूमिमें अक्लिष्टकर्मा विष्णुपर प्रहार कर रहे थे। उस भयंकर युद्धमें दैत्यराज निमिने परिघसे, मथनने मुद्गरसे, शुम्भने त्रिशूलसे, ग्रसनने तीखे भालेसे, महिषने चक्रसे, क्रोधसे भरे हुए जम्भने शक्तिसे तथा शेष सभी दानवराज तीखे बाणोंसे नारायणपर चोट कर रहे थे। दैत्योंद्वारा चलाये गये वे अस्त्र श्रीहरिके शरीरमें उसी प्रकार प्रवेश कर रहे थे, जैसे गुरुद्वारा उपदिष्ट वाक्य उत्तम शिष्यके कानमें प्रविष्ट हो जाते हैं॥ १—९॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुने रणभूमिमें स्थिरचित्त हो अपने धनुष तथा तेलसे धुले हुए एवं सीधे लक्ष्यवेध करनेवाले सर्पाकार बाणोंको हाथमें लिया और उन दैत्योंको लक्ष्य बनाकर धनुषको कानतक खींचकर उसपर उन बाणोंका संधान किया। तत्पश्चात् वे क्रोधमें भरकर रणभूमिमें पुरुषार्थपूर्वक दैत्योंकी सेनापर चढ़ आये। उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी बीस बाणोंसे निमिको, दस बाणोंसे मथनको और पाँच बाणोंसे शुम्भको बींध दिया। फिर क्रुद्ध हो एक बाणसे महिषकी छातीपर चोट पहुँचायी तथा बारह तीखे बाणोंसे जम्भको घायल कर शेष सभी दानवेश्वरोंमेंसे प्रत्येकको आठ-आठ बाणोंसे छेद डाला। भगवान् विष्णुके उस हस्तलाघवको देखकर दानवगण क्रोधसे तिलमिला उठे और सिंहनाद करते हुए प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त अद्भुत युद्ध करने लगे। उस समय दानवराज निमिने भल्ल नामक बाण मारकर भगवान् विष्णुके धनुषको काट दिया। फिर महिषासुरने संधान किये जाते हुए बाणको उनके हाथमें ही काट गिराया। जम्भने तीखे बाणोंके प्रहारसे गरुडको पीड़ित कर दिया। पर्वताकार शुम्भने उनकी भुजापर गम्भीर आघात किया। धनुषके कट जानेपर भगवान् गोविन्दने भीषण गदा हाथमें ली और उस भयंकर युद्धके समय उसे वेगपूर्वक घुमाकर मथनके ऊपर छोड़ दिया। वह उसके निकटतक पहुँच भी न पायी थी कि निमिने रणभूमिमें अपने बाणोंके प्रहारसे उसके तिलके समान टुकड़े-टुकड़े कर दिये। दयाहीन पुरुषके समक्ष विफल हुई प्रार्थनाकी

जग्राह मुद्गरं घोरं दिव्यरत्नपरिष्कृतम्।
तं मुमोचाथ वेगेन निमिमुद्दिश्य दानवम्॥ १९
तमायान्तं वियत्येव त्रयो दैत्या न्यवारयन्।
गदया जम्भदैत्यस्तु ग्रसनः पट्टिशेन तु॥ २०
शक्त्या च महिषो दैत्यः स्वपक्षजयकाङ्क्षया।
निराकृतं तमालोक्य दुर्जने प्रणवं यथा॥ २१
जग्राह शक्तिमुग्राग्रामष्टघण्टोत्कटस्वनाम्।
जम्भाय तां समुद्दिश्य प्राहिणोद् रणभीषणः॥ २२
तामम्बरस्थां जग्राह गजो दानवनन्दनः।
गृहीतां तां समालोक्य शिक्षामिव विवेकिभिः॥ २३
दृढं भारसहं सारमन्यदादाय कार्मुकम्।
रौद्रास्त्रमभिसंधाय तस्मिन् बाणं मुमोच ह॥ २४
ततोऽस्त्रतेजसा सर्वं व्याप्तं लोकं चराचरम्।
ततो बाणमयं सर्वमाकाशं समदृश्यत॥ २५
भूर्दिशो विदिशश्चैव बाणजालमया बभुः।
दृष्ट्वा तदस्त्रमाहात्म्यं सेनानीर्ग्रसनोऽसुरः॥ २६
ब्राह्ममस्त्रं चकारासौ सर्वास्त्रविनिवारणम्।
तेन तत् प्रशमं यातं रौद्रास्त्रं लोकघस्मरम्॥ २७
अस्त्रे प्रतिहते तस्मिन् विष्णुर्दानवसूदनः।
कालदण्डास्त्रमकरोत् सर्वलोकभयंकरम्॥ २८
संधीयमाने तस्मिंस्तु मारुतः परुषो ववौ।
चकम्पे च मही देवी दैत्या भिन्नधियोऽभवन्॥ २९
तदस्त्रमुग्रं दृष्ट्वा तु दानवा युद्धदुर्मदाः।
चक्रुरस्त्राणि दिव्यानि नानारूपाणि संयुगे॥ ३०
नारायणास्त्रं ग्रसनो गृहीत्वा
चक्रं निमिः स्वास्त्रवरं मुमोच।
ऐषीकमस्त्रं च चकारजम्भ-
स्तत्कालदण्डास्त्रनिवारणाय॥ ३१
यावन्न संधानदशां प्रयान्ति
दैत्येश्वराश्चास्त्रनिवारणाय।
तावत्क्षणेनैव जघान कोटी-
र्दैत्येश्वराणां सगजान् सहाश्वान्॥ ३२

तरह उस गदाको नष्ट हुई देखकर भगवान्‌ने दिव्य रत्नोंसे सुसज्जित भयंकर मुद्गर उठाया और दानवराज निमिको लक्ष्य करके उसे वेगपूर्वक फेंक दिया॥ १०—१९॥

उस मुद्गरको आते हुए देखकर तीन दैत्योंने—जम्भ दैत्यने गदासे, ग्रसनने पट्टिशसे और महिष दैत्यने शक्तिसे प्रहार करके आकाशमार्गमें ही उसका निवारण कर दिया; क्योंकि उनके मन अपने पक्षकी विजयकी अभिलाषासे पूर्ण थे। तब दुर्जनके प्रति किये गये प्रेमालापकी भाँति उस मुद्गरको विफल हुआ देखकर रणभूमिमें भयानक कर्म करनेवाले भगवान्‌ने आठ घंटियोंके उत्कट शब्दसे युक्त एवं कठोर अग्रभागवाली शक्ति हाथमें ली और उसे जम्भको लक्ष्य करके छोड़ दिया। दानवनन्दन गजने उस शक्तिको आकाशमार्गमें ही पकड़ लिया। विवेकियोंद्वारा धारण की गयी शिक्षाकी भाँति उस शक्तिको पकड़ी गयी देखकर भगवान्‌ने एक दूसरा धनुष उठाया, जो सुदृढ़, सारयुक्त और भार सहन करनेमें सक्षम था। उसपर रौद्रास्त्रका अभिसंधान करके उन्होंने उस बाणको छोड़ दिया। उस अस्त्रके तेजसे सारा चराचर जगत् व्याप्त हो गया और सारा आकाशमण्डल बाणमय दिखायी पड़ने लगा। सारी पृथ्वी, दिशाएँ और विदिशाएँ बाणसमूहसे आच्छादित हो गयीं। उस अस्त्रके प्रभावको देखकर सेनापति असुरराज ग्रसनने ब्रह्मास्त्रको प्रकट किया, जो सम्पूर्ण अस्त्रोंको निवारण करनेमें समर्थ था। उसके प्रभावसे वह लोकभक्षक रौद्रास्त्र शान्त हो गया। उस अस्त्रके विफल हो जानेपर दानवोंके संहारक विष्णुने कालदण्डास्त्रको प्रकट किया, जो सम्पूर्ण लोकोंको भयभीत करनेवाला था। उस अस्त्रके संधान करते ही प्रचण्ड वायु बहने लगी, पृथ्वीदेवी काँप उठीं और दैत्योंकी बुद्धि विकृत हो गयी। युद्धस्थलमें उस भयंकर अस्त्रको देखकर युद्धदुर्मद दानव नाना प्रकारके दिव्यास्त्रोंका प्रयोग करने लगे॥ २०—३०॥

उस कालदण्डास्त्रका निवारण करनेके लिये ग्रसनने नारायणास्त्रको और निमिने अपने श्रेष्ठ अस्त्र चक्रको लेकर उसपर फेंका तथा जम्भने ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया। उस अस्त्रके निवारणार्थ जबतक दैत्येश्वरगण अपने बाणोंका संधान भी नहीं कर पाये थे, उतनी ही देरमें कालदण्डास्त्रने दैत्येश्वरोंके घोड़े-हाथीसहित करोड़ों सैनिकोंका सफाया कर दिया।

अनन्तरं शान्तमभूत् तदस्त्रं
दैत्यास्त्रयोगेन तु कालदण्डम्।
शान्तं तदालोक्य हरिः स्वशस्त्रं
स्वविक्रमे मन्युपरीतमूर्तिः॥ ३३
जग्राह चक्रं तपनायुताभ-
मुग्रारमात्मानमिव द्वितीयम्।
चिक्षेप सेनापतयेऽभिसंध्य
कण्ठस्थलं वज्रकठोरमुग्रम्॥ ३४
चक्रं तदाकाशगतं विलोक्य
सर्वात्मना दैत्यवराः स्ववीर्यैः।
नाशक्नुवन् वारयितुं प्रचण्डं
दैवं यथा कर्म मुधा प्रपन्नम्॥ ३५
तमप्रतर्क्यं जनयन्नजय्यं
चक्रं पपात ग्रसनस्य कण्ठे।
द्विधा तु कृत्वा ग्रसनस्य कण्ठं
तद्रक्तधारारुणघोरनाभि।
जगाम भूयोऽपि जनार्दनस्य
पाणिं प्रवृद्धानलतुल्यदीप्ति॥ ३६

तदनन्तर दैत्योंद्वारा प्रयुक्त किये गये अस्त्रोंके संयोगसे वह कालदण्डास्त्र शान्त हो गया। अपने उस अस्त्रको शान्त हुआ देखकर श्रीहरि अपने पराक्रममें ठेस लगी समझकर क्रोधसे उबल पड़े। फिर तो उन्होंने उस चक्रको हाथमें लिया, जो दस हजार सूर्योंके समान तेजोमय, कठोर अरोंसे युक्त और प्रभावमें अपनी द्वितीय मूर्तिके समान था। उन्होंने उस वज्रकी भाँति कठोर एवं भयंकर चक्रको सेनापति ग्रसनके कण्ठस्थलको लक्ष्य करके छोड़ दिया। उस चक्रको आकाशमें पहुँचा हुआ देखकर दैत्येश्वरगण अपने पराक्रमसे पूरा बल लगानेपर भी उसी प्रकार निवारण करनेमें समर्थ न हो सके, जैसे अनिष्ट कर्मसे निष्पन्न हुए प्रचण्ड दुर्भाग्यको हटाया नहीं जा सकता। परिणामस्वरूप वह अतर्क्य महिमाशाली एवं अजेय चक्र ग्रसनके कण्ठपर जा गिरा और उसके गलेको दो भागोंमें विभक्त कर दिया। उससे बहते हुए रक्तकी धारासे उस चक्रकी कठोर नाभि लाल हो गयी थी। तत्पश्चात् धधकती हुई अग्निके समान वह उद्दीप्त चक्र पुनः भगवान् जनार्दनके हाथमें लौट गया॥ ३१—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे ग्रसनवधो नामैकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें ग्रसन-वध नामक एक सौ इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५१॥

एक सौ बावनवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुका मथन आदि दैत्योंके साथ भीषण संग्राम और अन्तमें घायल होकर युद्धसे पलायन

सूत उवाच

तस्मिन् विनिहते दैत्ये ग्रसने बलनायके।
निर्मर्यादमयुध्यन्त हरिणा सह दानवाः॥ १
पट्टिशैर्मुसलैः पाशैर्गदाभिः कुणपैरपि।
तीक्ष्णाननैश्च नाराचैश्चक्रैः शक्तिभिरेव च॥ २
तानस्त्रान् दानवैर्मुक्तांश्चित्रयोधी जनार्दनः।
एकैकं शतशश्चक्रे बाणैरग्निशिखोपमैः॥ ३
ततः क्षीणायुधप्राया दानवा भ्रान्तचेतसः।
अस्त्राण्यादातुमभवन्न समर्था यदा रणे॥ ४

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! उस सेनानायक दैत्यराज ग्रसनके मारे जानेपर दानवगण श्रीहरिके साथ युद्ध-मर्यादाका परित्याग कर (भयंकर) युद्ध करने लगे। उस समय वे पट्टिश, मुसल, पाश, गदा, कुणक, तीखे मुखवाले बाण, चक्र और शक्तियोंसे प्रहार कर रहे थे। तब विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले भगवान् जनार्दनने अपने अग्निकी लपटोंके समान उद्दीप्त बाणोंसे दैत्योंद्वारा छोड़े गये उन अस्त्रोंमें प्रत्येकके सौ-सौ टुकड़े कर दिये। तब दानवोंके अस्त्र प्रायः नष्ट हो गये और उनका चित्त व्याकुल हो गया। इस प्रकार जब वे रणभूमिमें अस्त्र ग्रहण करनेमें असमर्थ हो गये,

तदा मृतैर्गजैरश्वैर्जनार्दनमयोधयन्।
समन्तात्कोटिशो दैत्याः सर्वतः प्रत्ययोधयन्॥ ५

बहु कृत्वा वपुर्विष्णुः किंचिच्छ्रान्तभुजोऽभवत्।
उवाच च गरुत्मन्तं तस्मिन् सुतुमुले रणे॥ ६

गरुत्मन्कच्चिदश्रान्तस्त्वमस्मिन्नपि साम्प्रतम्।
यद्यश्रान्तोऽसि तद्याहि मथनस्य रथं प्रति॥ ७

श्रान्तोऽस्यथ मुहूर्तं त्वं रणादपसृतो भव।
इत्युक्तो गरुडस्तेन विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ८

आससाद रणे दैत्यं मथनं घोरदर्शनम्।
दैत्यस्त्वभिमुखं दृष्ट्वा शङ्खचक्रगदाधरम्॥ ९

जघान भिन्दिपालेन शितबाणेन वक्षसि।
तत्प्रहारमचिन्त्यैव विष्णुस्तस्मिन् महाहवे॥ १०

जघान पञ्चभिर्बाणैर्मार्जितैश्च शिलाशितैः।
पुनर्दशभिराकृष्टैस्तं तताड स्तनान्तरे॥ ११

विद्धो मर्मसु दैत्येन्द्रो हरिबाणैरकम्पत।
स मुहूर्तं समाश्वास्य जग्राह परिघं तदा॥ १२

जघ्ने जनार्दनं चापि परिघेणाग्निवर्चसा।
विष्णुस्तेन प्रहारेण किंचिदाघूर्णितोऽभवत्॥ १३

ततः क्रोधविवृत्ताक्षो गदां जग्राह माधवः।
मथनं सरथं रोषान्निष्पिपेषाथ रोषतः॥ १४

स पपाताथ दैत्येन्द्रः क्षयकालेऽचलो यथा।
तस्मिन् निपतिते भूमौ दानवे वीर्यशालिनि॥ १५

अवसादं ययुर्दैत्याः कर्दमे करिणो यथा।
ततस्तेषु विपन्नेषु दानवेष्वतिमानिषु॥ १६

प्रकोपाद् रक्तनयनो महिषो दानवेश्वरः।
प्रत्युद्ययौ हरिं रौद्रः स्वबाहुबलमास्थितः॥ १७

तीक्ष्णाधारेण शूलेन महिषो हरिमर्दयत्।
शक्त्या च गरुडं वीरो महिषोऽभ्यहनद्धृदि॥ १८

ततो व्यावृत्य वदनं महाचलगुहानिभम्।
ग्रस्तुमैच्छद् रणे दैत्यः सगरुत्मन्तमच्युतम्॥ १९

तब मरे हुए हाथियों और घोड़ोंकी लाशोंसे जनार्दनके साथ युद्ध करने लगे। इस तरह करोड़ों दैत्य चारों ओरसे घेरकर उनके साथ युद्ध कर रहे थे। उस समय उस भयंकर संग्राममें भगवान् विष्णुको, जो अनेकों विग्रह (शरीर) धारण कर उनके साथ युद्ध कर रहे थे, भुजाएँ कुछ शिथिल पड़ गयीं। तब वे गरुडसे बोले—'गरुड! तुम इस युद्धमें थक तो नहीं गये हो? यदि थके न हो तो तुम मुझे मथनके रथके निकट ले चलो और यदि तुम थक गये हो तो दो घड़ीके लिये रणभूमिसे दूर हट चलो।' शक्तिशाली भगवान् विष्णुके द्वारा इस प्रकार कहे जानेपर गरुड रणभूमिमें भयंकर आकृतिवाले दैत्यराज मथनके निकट जा पहुँचे। दैत्यराज मथनने शङ्ख, चक्र एवं गदा धारण किये हुए विष्णुको सम्मुख उपस्थित देखकर उनके वक्षःस्थलपर भिन्दिपाल (ढेलवाँस) एवं तीखे बाणसे प्रहार किया॥ १—९ $\frac{1}{2}$॥

उस महायुद्धमें दैत्यद्वारा किये गये उस प्रहारकी कुछ भी परवा न कर विष्णुने उसे ऐसे पाँच बाणोंसे घायल किया, जो पत्थरपर रगड़कर तेज किये गये थे। पुनः कानतक खींचकर छोड़े गये दस बाणोंसे उसके स्तनोंके मध्यभागमें चोट पहुँचायी। श्रीहरिके बाणोंसे मर्मस्थानोंके घायल हो जानेपर दैत्येन्द्र मथन काँपने लगा। फिर दो घड़ीके बाद आश्वस्त होकर उसने परिघ उठाया और उस अग्निके समान तेजस्वी परिघसे जनार्दनपर भी आघात किया। भगवान् विष्णु उस प्रहारसे कुछ चक्कर-सा काटने लगे। तत्पश्चात् माधवकी आँखें क्रोधसे चढ़ गयीं, तब उन्होंने गदा हाथमें ली और क्रोधपूर्वक उसके आघातसे रथसहित मथनको पीस डाला। दैत्येन्द्र मथन इस प्रकार धराशायी हो गया, जैसे प्रलयकालमें पर्वत ढह जाते हैं। उस पराक्रमशाली दानवके धराशायी हो जानेपर दैत्योंमें उसी प्रकार विषाद छा गया, मानो हाथियोंका समूह दलदलमें फँस गया हो। उन अत्यन्त अभिमानी दानवोंके इस प्रकार विपत्तिग्रस्त हो जानेपर दानवेश्वर महिषने, जिसके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये थे और जो अत्यन्त उग्र स्वभाववाला था, अपने बाहुबलका आश्रय लेकर श्रीहरिपर आक्रमण किया। उस समय महिषने श्रीहरिपर तीखी धारवाले शूलसे आघात किया। फिर वीरवर महिषने गरुडके हृदयपर शक्तिसे प्रहार किया। तत्पश्चात् उस दैत्यने रणभूमिमें विशाल पर्वतकी गुफाके समान अपने मुखको फैलाकर गरुडसहित अच्युतको निगल जानेकी चेष्टा करने लगा॥ १०—१९॥

अथाच्युतोऽपि विज्ञाय दानवस्य चिकीर्षितम्।
वदनं पूरयामास दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः॥ २०
महिषस्याथ ससृजे बाणौघं गरुडध्वजः।
पिधाय वदनं दिव्यैर्दिव्यास्त्रपरिमन्त्रितैः॥ २१
स तैर्बाणैरभिहतो महिषोऽचलसंनिभः।
परिवर्तितकायोऽधः पपात न ममार च॥ २२
महिषं पतितं दृष्ट्वा भूमौ प्रोवाच केशवः।
महिषासुर मत्तस्त्वं वधं नास्त्रैरिहार्हसि॥ २३
योषिद्वध्यः पुरोक्तोऽसि साक्षात्कमलयोनिना।
उत्तिष्ठ जीवितं रक्ष गच्छास्मात्सङ्गराद् द्रुतम्॥ २४
तस्मिन् पराङ्मुखे दैत्ये महिषे शुम्भदानवः।
संदष्टौष्ठपुटः कोपाद् भ्रुकुटीकुटिलाननः॥ २५
निर्मथ्य पाणिना पाणिं धनुरादाय भैरवम्।
सज्यं चकार स धनुः शरांश्चाशीविषोपमान्॥ २६

तदनन्तर जब महाबली विष्णुको उस दानवकी चेष्टा ज्ञात हुई, तब उन्होंने दिव्यास्त्रोंसे उसके मुखको भर दिया। इस प्रकार भगवान् गरुडध्वजने दिव्यास्त्रोंसे अभिमन्त्रित दिव्य बाणोंद्वारा महिषासुरके मुखको ढककर उसपर बाणसमूहोंकी वृष्टि करने लगे। उन बाणोंसे आहत हुए पर्वत-सदृश विशालकाय महिषासुरका शरीर विकृत हो गया और वह रथसे नीचे गिर पड़ा, परंतु मृत्युको नहीं प्राप्त हुआ। महिषको भूमिपर पड़ा हुआ देखकर केशवने कहा—'महिषासुर! इस युद्धमें तुम मेरे अस्त्रोंद्वारा मृत्युको नहीं प्राप्त हो सकते; क्योंकि कमलयोनि साक्षात् ब्रह्माने तुमसे पहले कह ही दिया है कि तुम्हारी मृत्यु किसी स्त्रीके हाथसे होगी। अतः उठो, अपने जीवनकी रक्षा करो और शीघ्र ही इस युद्धस्थलसे दूर हट जाओ।' इस प्रकार उस दैत्यराज महिषके युद्धविमुख हो जानेपर शुम्भ नामक दानव कुपित हो उठा। उसकी भौंहें तन गयीं और मुख विकराल हो गया। वह दाँतोंसे होंठको चबाता हुआ हाथ-से-हाथ मलने लगा। तत्पश्चात् उसने अपने भयंकर धनुषको हाथमें लेकर उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी तथा सर्पके समान जहरीले बाणोंको हाथमें लिया॥ २०—२६॥

स चित्रयोधी दृढमुष्टिपात-
स्ततस्तु विष्णुं गरुडं च दैत्यः।
बाणैर्ज्वलद्वह्निशिखानिकाशैः
क्षिप्तैरसंख्यैः परिघातहीनैः॥ २७
विष्णुश्च दैत्येन्द्रशराहतोऽपि
भुशुण्डिमादाय कृतान्ततुल्याम्।
तया भुशुण्ड्या च पिपेष मेषं
शुम्भस्य पत्रं धरणीधराभम्॥ २८
तस्मादवप्लुत्य हताच्च मेषाद्
भूमौ पदातिः स तु दैत्यनाथः।
ततो महीस्थस्य हरिः शरौघान्
मुमोच कालानलतुल्यभासः॥ २९
शरैस्त्रिभिस्तस्य भुजं बिभेद
षड्भिश्च शीर्षं दशभिश्च केतुम्।
विष्णुर्विकृष्टैः श्रवणावसानं
दैत्यस्य विव्याध विवृत्तनेत्रः॥ ३०

फिर तो सुदृढ़ मुष्टिसे युक्त एवं विचित्र ढंगसे युद्ध करनेवाले उस दैत्यने धधकती हुई अग्निकी लपटोंके समान विकराल एवं अचूक लक्ष्यवाले असंख्य बाणोंके प्रहारसे विष्णु और गरुडको घायल कर दिया। तब दैत्येन्द्र शुम्भके बाणोंसे आहत हुए विष्णुने भी कृतान्तके समान भुशुण्डि हाथमें ली और उस भुशुण्डिसे शुम्भके वाहन पर्वतके समान विशालकाय मेषको पीसकर चूर्ण कर दिया। तब वह दैत्यराज मरे हुए मेषसे कूदकर पृथ्वीपर आ गया और पैदल ही युद्ध करने लगा। इस प्रकार पृथ्वीपर खड़े हुए उस दानवपर श्रीहरि प्रलयकालीन अग्निके तुल्य चमकीले बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे। उस समय (उस दैत्यकी ओर) आँख फाड़कर देखते हुए विष्णुने प्रत्यञ्चाको कानतक खींचकर छोड़े गये तीन बाणोंसे उस दैत्यकी भुजाको, छः बाणोंसे मस्तकको और दस बाणोंसे ध्वजको विदीर्ण कर दिया। इस

स तेन विद्धो व्यथितो बभूव
दैत्येश्वरो विस्रुतशोणितौघः।
ततोऽस्य किंचिच्चलितस्य धैर्या-
दुवाच शङ्खाम्बुजशार्ङ्गपाणिः॥ ३१
कुमारिवध्योऽसि रणं विमुञ्च
शुम्भासुर स्वल्पतरैरहोभिः।
वधं न मत्तोऽर्हसि चेह मूढ
वृथैव किं युद्धसमुत्सुकोऽसि॥ ३२
जम्भो वचो विष्णुमुखान्निशम्य
निमिश्च निष्पेष्टुमियेष विष्णुम्।
गदामथोद्यम्य निमिः प्रचण्डां
जघान गाढं गरुडं शिरस्तः॥ ३३
शुम्भोऽपि विष्णुं परिघेण मूर्ध्नि
प्रमृष्टरत्नौघविचित्रभासा।
तौ दानवाभ्यां विषमैः प्रहारै-
र्निपेतुरुर्व्यां घनपावकाभौ॥ ३४
तत्कर्म दृष्ट्वा दितिजास्तु सर्वे
जगर्जुरुच्चैः कृतसिंहनादाः।
धनूंषि चास्फोट्य खुराभिघातै-
र्व्यदारयन्भूमिमपि प्रचण्डाः।
वासांसि चैवादुधुवुः परे तु
दध्मुश्च शङ्खानकगोमुखौघान्॥ ३५
अथ संज्ञामवाप्याशु गरुडोऽपि सकेशवः।
पराङ्मुखो रणात्तस्मात्पलायत महाजवः॥ ३६

प्रकार विष्णुद्वारा बींधा गया दैत्येश्वर शुम्भ व्यथित हो उठा। उसके शरीरसे रक्तकी धाराएँ बहने लगीं। तत्पश्चात् जब वह कुछ धैर्य धारणकर उठ खड़ा हुआ, तब हाथमें शङ्ख, कमल और शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले विष्णुने उससे कहा—'शुम्भासुर! तुम थोड़े ही दिनोंमें किसी कुमारी कन्याके हाथों मारे जाओगे, अतः रणभूमिको छोड़कर हट जाओ। मूर्ख! इस युद्धमें तुम्हारा मेरे हाथों वध नहीं हो सकता, फिर व्यर्थ ही मेरे साथ युद्ध करनेके लिये क्यों समुत्सुक हो रहे हो?'॥ २७—३२॥

तदनन्तर भगवान् विष्णुके मुखसे निकले हुए उस वचनको सुनकर जम्भ और निमि—दोनों दैत्य विष्णुको पीस डालनेके लिये आ पहुँचे। तब निमिने अपनी प्रचण्ड गुर्वीली गदाको उठाकर गरुड़के मस्तकपर प्रहार किया। उधर शुम्भने भी चमकीले रत्नसमूहोंकी विचित्र कान्तिसे सुशोभित परिघद्वारा विष्णुके मस्तकपर आघात किया। इस प्रकार उन दोनों दानवोंके भीषण प्रहारसे क्रमशः मेघ एवं अग्निकी-सी कान्तिवाले दोनों विष्णु और गरुड पृथ्वीपर गिर पड़े। उन दोनों दैत्योंके उस कर्मको देखकर सभी दैत्य सिंहनाद करते हुए उच्च स्वरसे गर्जना करने लगे। कुछ प्रचण्ड पराक्रमी दैत्य अपने धनुषोंको हिलाते हुए पैरोंके आघातसे पृथ्वीको भी विदीर्ण करने लगे। कुछ दैत्य हर्षमें भरकर अपने वस्त्रोंको हिलाने लगे तथा कुछ शङ्ख, नगाड़ा और गोमुख आदि बाजे बजाने लगे। तदनन्तर थोड़ी देर बाद केशवसहित गरुडकी भी चेतना लौट आयी। तब वे उस युद्धसे विमुख हो बड़े वेगसे भाग खड़े हुए॥ ३३—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे मथनादिसंग्रामो नाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें मथनादि-संग्राम नामक एक सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५२॥

एक सौ तिरपनवाँ अध्याय

भगवान् विष्णु और इन्द्रका परस्पर उत्साहवर्धक वार्तालाप, देवताओंद्वारा पुनः सैन्य-संगठन, इन्द्रका असुरोंके साथ भीषण युद्ध, गजासुर और जम्भासुरकी मृत्यु, तारकासुरका घोर संग्राम और उसके द्वारा भगवान् विष्णुसहित देवताओंका बंदी बनाया जाना

सूत उवाच

तमालोक्य पलायन्तं विभ्रष्टध्वजकार्मुकम्।
हरिं देवः सहस्राक्षो मेने भग्नं दुराहवे॥ १

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! उस भयंकर युद्धमें उन श्रीहरिको ध्वज और धनुषसे रहित हो भागते हुए देखकर सहस्र नेत्रधारी देवराज इन्द्रने उन्हें पराजित हुआ मान लिया।

दैत्यांश्च मुदितान् दृष्ट्वा कर्तव्यं नाध्यगच्छत।
अथायान्निकटे विष्णोः सुरेशः पाकशासनः॥ २
उवाच चैनं मधुरं प्रोत्साहपरिबृंहकम्।
किमेभिः क्रीडसे देव दानवैर्दुष्टमानसैः॥ ३
दुर्जनैर्लब्धरन्ध्रस्य पुरुषस्य कुतः क्रियाः।
शक्तेनोपेक्षितो नीचो मन्यते बलमात्मनः॥ ४
तस्मान्न नीचं मतिमान् दुर्गहीनं हि संत्यजेत्।
अथाग्रेसरसम्पत्त्या रथिनो जयमाप्नुयुः॥ ५
कस्ते सखाभवच्चाग्रे हिरण्याक्षवधे विभो।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वीर्यशाली मदोद्धतः॥ ६
त्वां प्राप्यापश्यदसुरो विषमं स्मृतिविभ्रमम्।
पूर्वेऽप्यतिबला ये च दैत्येन्द्राः सुरविद्विषः॥ ७
विनाशमागताः प्राप्य शलभा इव पावकम्।
युगे युगे च दैत्यानां त्वमेवान्तकरो हरे॥ ८
तथैवाद्येह भग्नानां भव विष्णो सुराश्रयः।

उधर दैत्योंको हर्षसे उछलते देखकर इन्द्र किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। तदनन्तर पाकशासन देवराज इन्द्र भगवान् विष्णुके निकट आये और इस प्रकार उत्साहवर्धक मधुर वाणीमें बोले—'देव! आप इन दुष्ट चित्तवाले दानवोंके साथ क्यों खिलवाड़ कर रहे हैं? भला जिसके भेदको दुर्जन जान लेते हैं, उस पुरुषकी क्रियाएँ कैसे सफल हो सकती हैं? समर्थ पुरुष-द्वारा उपेक्षाकी दृष्टिसे देखा गया नीच मनुष्य उसे अपना बल मानने लगता है। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि ऐसे आश्रयहीन नीच शत्रुकी कभी उपेक्षा न करे। विभो! प्रथम आक्रमण करनेपर रथियोंकी विजय होती है। पहले हिरण्याक्षका वध करते समय आपने यही किया। वहाँ कौन आपका मित्र हुआ था? दैत्यराज हिरण्यकशिपु परम पराक्रमी एवं गर्वोन्मत्त था, किंतु आपको अपने समक्ष पाकर उस असुरके भी होश उड़ गये और उसने आपको भयंकर रूपमें देखा। पूर्वकालमें जितने भी देवद्रोही महाबली दैत्येन्द्र हुए हैं, वे सभी आपके निकट पहुँचकर अग्निके समीप गये हुए पतंगोंकी तरह विनाशको प्राप्त हो गये। हरे! प्रत्येक युगमें आप ही दैत्योंके विनाशकर्ता होते आये हैं। विष्णो! उसी प्रकार आज इस युद्धमें पराजित हुए देवताओंके लिये आश्रयदाता होइये'॥ १—८½॥

एवमुक्तस्ततो विष्णुर्व्यवर्धत महाभुजः॥ ९
ऋद्ध्या परमया युक्तः सर्वभूताश्रयोऽरिहा।
अथोवाच सहस्राक्षं कालक्षममधोक्षजः॥ १०
दैत्येन्द्राः स्वैर्वधोपायैः शक्या हन्तुं हि नान्यतः।
दुर्जयस्तारको दैत्यो मुक्त्वा सप्तदिनं शिशुम्॥ ११
कश्चित् स्त्रीवध्यतां प्राप्तो वधेऽन्यस्य कुमारिका।
जम्भस्तु वध्यतां प्राप्तो दानवः क्रूरविक्रमः॥ १२
तस्माद् वीर्येण दिव्येन जहि जम्भं जगज्ज्वरम्।
अवध्यः सर्वभूतानां त्वां विना स तु दानवः॥ १३
मया गुप्तो रणे जम्भं जगत्कण्टकमुद्धर।
तद्वैकुण्ठवचः श्रुत्वा सहस्राक्षोऽमरारिहा॥ १४
समादिशत् सुरान् सर्वान् सैन्यस्य रचनां प्रति।

इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर महाबाहु विष्णुका उत्साह विशेषरूपसे बढ़ गया और वे परमोत्कृष्ट ऋद्धिसे सम्पन्न हो गये। तत्पश्चात् सम्पूर्ण प्राणियोंके आश्रयस्थान एवं शत्रुसूदन विष्णुने इन्द्रसे (यह) समयोपयोगी बात कही—'देवराज! ये दैत्येन्द्र अपने द्वारा प्राप्त किये गये वधोपायोंसे ही मारे जा सकते हैं, किसी अन्य उपायसे इनकी मृत्यु नहीं हो सकती। इनमें दैत्यराज तारक तो सात दिनके बालकके अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियोंसे अजेय है। किसीका वध स्त्रीद्वारा होनेवाला है तो दूसरेके वधमें कुमारी कन्या कारण है, किंतु भयंकर पराक्रमी दानवराज जम्भ तो मारा जा सकता है। अतः आप दिव्य पराक्रम प्रकट करके जगत्को संतप्त करनेवाले जम्भका वध कीजिये; क्योंकि वह दानव आपके अतिरिक्त अन्य सभी प्राणियोंके लिये अवध्य है। युद्धभूमिमें मेरे द्वारा सुरक्षित होकर आप जगत्के लिये कण्टकभूत जम्भको उखाड़ फेंकिये।' भगवान् विष्णुके उस कथनको सुनकर असुरहन्ता सहस्राक्ष इन्द्रने सम्पूर्ण देवताओंको पुनः सेना-संगठनके लिये आदेश दिया॥ ९—१४½॥

यत्सारं सर्वलोकेषु वीर्यस्य तपसोऽपि च॥ १५
तदेकादशरुद्रांस्तु चकाराग्रेसरान् हरिः।
व्यालभोगाङ्गसंनद्धा बलिनो नीलकन्धराः॥ १६
चन्द्रखण्डनृमुण्डालीमण्डितोरुशिखण्डिनः।
शूलज्वालावलिप्ताङ्गा भुजमण्डलभैरवाः॥ १७
पिङ्गोत्तुङ्गजटाजूटाः सिंहचर्मानुषङ्गिणः।
कपालीशादयो रुद्रा विद्रावितमहासुराः॥ १८
कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
अजेशः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो ध्रुवस्तथा॥ १९
एते एकादशानन्तबला रुद्राः प्रभाविणः।
पालयन्तो बलस्याग्रे दारयन्तश्च दानवान्॥ २०
आप्याययन्तस्त्रिदशान् गर्जन्त इव चाम्बुदाः।
हिमाचलाभे महति काञ्चनाम्बुरुहस्रजि॥ २१
प्रचलच्चामरे हेमघण्टासङ्घातमण्डिते।
ऐरावते चतुर्दन्ते मातङ्गेऽचलसंस्थिते॥ २२
महामदजलस्रावे कामरूपे शतक्रतुः।
तस्थौ हिमगिरेः शृङ्गे भानुमानिव दीप्तिमान्॥ २३
तस्यारक्षत्पदं सव्यं मारुतोऽमितविक्रमः।
जुगोपापरमग्निस्तु ज्वालापूरितदिङ्मुखः॥ २४
पृष्ठरक्षोऽभवद् विष्णुः ससैन्यस्य शतक्रतोः।
आदित्या वसवो विश्वे मरुतश्चाश्विनावपि॥ २५
गन्धर्वा राक्षसा यक्षाः सकिन्नरमहोरगाः।
नानाविधायुधाश्चित्रा दधाना हेमभूषणाः॥ २६
कोटिशः कोटिशः कृत्वा वृन्दं चिह्नोपलक्षितम्।
विश्रामयन्तः स्वां कीर्तिं बन्दिवृन्दपुरःसराः।
चेरुर्दैत्यवधे हृष्टाः सहेन्द्राः सुरजातयः॥ २७
शतक्रतोरमरनिकायपालिता
पताकिनी गजशतवाजिनादिता।
सितातपत्रध्वजकोटिमण्डिता
बभूव सा दितिसुतशोकवर्धिनी॥ २८

उस समय श्रीहरिने कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजेश, शासन, शास्ता, शम्भु, चण्ड तथा ध्रुव—इन एकादश रुद्रोंको आगे कर दिया, जो सम्पूर्ण लोकोंमें पराक्रम और तपस्याके सारभूत थे। इन महाबली रुद्रोंके अङ्ग सर्पोंके फणोंसे कसकर बँधे हुए थे। इनके कंधे नीले थे। ये बाल चन्द्रमा, मनुष्योंके मुण्डोंकी माला और मयूरपिच्छसे सुशोभित थे। इनके अङ्ग त्रिशूलकी ज्वालासे उद्‌भासित तथा भुजमण्डल भयंकर थे। ये पीली तथा ऊँची जटाजूटोंसे विभूषित एवं सिंहचर्म पहने हुए थे। इन कपालीश आदि रुद्रोंने अनेकों बार प्रधान-प्रधान असुरोंको खदेड़ दिया था। अनन्त बलसम्पन्न एवं प्रभावशाली ये ग्यारहों रुद्र सेनाके अग्रभागकी रक्षा करते हुए दानवोंको विदीर्ण कर रहे थे और देवताओंको आश्वस्त करते हुए मेघकी भाँति गरज रहे थे। तत्पश्चात् हिमाचलके समान विशालकाय, गलेमें स्वर्णनिर्मित कमलोंकी मालासे सुशोभित, चँवरोंसे संवीजित, स्वर्णनिर्मित घंटासमूहोंसे विभूषित एवं युद्धस्थलमें पर्वतकी भाँति अडिग, चार दाँतवाले, महामदस्रावी कामरूपी ऐरावत गजराजपर इन्द्र सवार हुए। उस समय उनकी शोभा हिमालय पर्वतके शिखरपर स्थित प्रकाशमान सूर्यकी भाँति हो रही थी॥ १५—२३॥

उस ऐरावतके दाहिने पैरकी रक्षामें अमित पराक्रमशाली वायुदेव तथा अपनी ज्वालासे दिशाओंके मुखको परिपूर्ण कर देनेवाले अग्निदेव उसके बायें पैरकी रक्षामें नियुक्त थे। भगवान् विष्णु सेनासहित इन्द्रके पृष्ठभागकी रक्षा कर रहे थे। आदित्यगण, वसुगण, विश्वेदेवगण, मरुद्‌गण और दोनों अश्विनीकुमार तथा गन्धर्व, राक्षस, यक्ष, किन्नर और प्रधान-प्रधान नाग, जो नाना प्रकारके आयुधधारी, स्वर्णनिर्मित आभूषणोंसे विभूषित और रंग-बिरंगे वस्त्र धारण किये हुए थे, अपने-अपने चिह्नोंसे उपलक्षित एक-एक करोड़का यूथ बनाकर उसपर आगे-आगे बंदियोंद्वारा गायी जाती हुई अपनी कीर्तिकी छाप डाल रहे थे। इस प्रकार वे सभी देव-जातियाँ इन्द्रके साथ हर्षपूर्वक दैत्योंका वध करनेके लिये चल रही थीं। देवसमूहोंसे सुरक्षित, सैकड़ों हाथियों और घोड़ोंके शब्दोंसे निनादित एवं करोड़ों श्वेत छत्र और ध्वजाओंसे सुशोभित इन्द्रकी वह सेना दैत्योंका शोक बढ़ानेवाली थी।

आयान्तीमवलोक्याथ सुरसेनां गजासुरः।
गजरूपी महाम्भोदसङ्घातो भाति भैरवः॥ २९
परश्वधायुधो दैत्यो दंशितोष्ठकसम्पुटः।
ममर्द चरणे देवांश्चिक्षेपान्यान् करेण तु॥ ३०
परान् परशुना जघ्ने दैत्येन्द्रो रौद्रविक्रमः।
तस्य पातयतः सेनां यक्षगन्धर्वकिंनराः॥ ३१
मुमुचुः संहताः सर्वे चित्रशस्त्रास्त्रसंहतिम्।
पाशान् परश्वधांश्चक्रान् भिन्दिपालान् समुद्गरान्॥ ३२
कुन्तान् प्रासानसींस्तीक्ष्णान् मुद्गरांश्चापि दुःसहान्।
तान् सर्वान् सोऽग्रसद् दैत्यः कवलानिव यूथपः॥ ३३
कोपास्फालितदीर्घाग्रकरास्फोटेन पातयन्।
विचचार रणे देवान् दुष्प्रेक्ष्ये गजदानवः॥ ३४
यस्मिन् यस्मिन् निपतति सुरवृन्दे गजासुरः।
तस्मिंस्तस्मिन् महाशब्दो हाहाकारकृतोऽभवत्॥ ३५
अथ विद्रवमाणं तद्बलं प्रेक्ष्य समंततः।
रुद्राः परस्परं प्रोचुरहंकारोत्थितार्चिषः॥ ३६
भो भो गृह्णीत दैत्येन्द्रं मर्दतैनं हताश्रयम्।
कर्षतैनं शितैः शूलैर्भञ्जतैनं च मर्मसु॥ ३७
कपाली वाक्यमाकर्ण्य शूलं शितशिखामुखम्।
सम्मार्ज्य वामहस्तेन संरम्भविवृतेक्षणः॥ ३८
अधावद् भृकुटीवक्रो दैत्येन्द्राभिमुखो रणे।
दृढेन मुष्टिबन्धेन शूलं विष्टभ्य निर्मलम्॥ ३९
जघान कुम्भदेशे तु कपाली गजदानवम्।
ततो दशापि ते रुद्रा निर्मलायोमयै रणे॥ ४०
जघ्नुः शूलैश्च दैत्येन्द्रं शैलवर्ष्माणमाहवे।
स्रुतशोणितरन्ध्रस्तु शितशूलमुखार्दितः॥ ४१
बभौ कृष्णाच्छविर्दैत्यः शरदीवामलं सरः।
प्रोत्फुल्लारुणनीलाब्जसङ्घातं सर्वतोदिशम्॥ ४२

तदनन्तर उस देव-सेनाको आती हुई देखकर गजासुरने घने मेघसमूहकी भाँति भयंकर हाथीका रूप धारण कर लिया। फिर तो उस भयंकर पराक्रमी दैत्येन्द्रने क्रोधसे होठोंको दाँतोंतले दबाये हुए कुठार हाथमें लेकर कुछ देवोंको चरणोंसे रौंद डाला, कुछको हाथसे पकड़कर दूर फेंक दिया तथा कुछको फरसेसे काट डाला॥ २४-३०½

इस प्रकार उसे सेनाका संहार करते हुए देखकर यक्ष, गन्धर्व और किंनर—ये सभी संगठित होकर चित्र-विचित्र शस्त्रास्त्रसमूहोंकी वर्षा करने लगे। उस समय वे पाश, कुठार, चक्र, भिन्दिपाल, मुद्गर, बर्छा, भाला, तीखी तलवार और दुःसह मुद्गरोंको फेंक रहे थे, किंतु उन सबको उस यूथपति दैत्यने कौरकी भाँति निगल लिया। फिर उस दुर्दर्श युद्धमें गजासुर क्रोधसे फैलाये हुए अपने लम्बे सूँड़की चपेटसे देवताओंको धराशायी करते हुए विचरण करने लगा। वह गजासुर जिस-जिस सुरयूथपर आक्रमण करता था, उस-उस यूथमें हाहाकारपूर्वक चीत्कार होने लगता था। तदनन्तर उस देव-सेनाको चारों ओर भागती हुई देखकर अहंकारसे भरे हुए रुद्रगण परस्पर कहने लगे—'भो भो सैनिको! इस दैत्येन्द्रको पकड़ लो। इस आश्रयहीनको रौंद डालो। इसे पकड़कर खींच लो और तीखे शूलोंसे इसके मर्मस्थानोंको छेद डालो।' ऐसा ललकार सुनकर कपालीके नेत्र क्रोधसे चढ़ गये और उनकी भौंहें टेढ़ी हो गयीं। तब वे तीखे एवं चमकीले मुखवाले शूलको बायें हाथसे पोंछकर रणभूमिमें दैत्येन्द्र गजासुरके सम्मुख दौड़े। फिर कपालीने उस निर्मल शूलको सुदृढ़ मुट्ठीसे पकड़कर गजासुरके गण्डस्थलपर प्रहार किया॥ ३१—३९½॥

तदनन्तर वे दसों रुद्र रणभूमिमें युद्ध करते समय निर्मल लोहेके बने हुए शूलोंसे पर्वत-सदृश विशालकाय दैत्येन्द्र गजपर आघात करने लगे। तीखे मुखवाले शूलोंके आघातसे पीड़ित हुए गजासुरके शरीरछिद्रोंसे रक्त बहने लगा। उस समय काली कान्तिवाला वह दैत्य शरद्-ऋतुमें सब ओरसे खिले हुए लाल और नीले कमलोंसे भरे हुए निर्मल सरोवरकी भाँति शोभा पा रहा था तथा

भस्मशुभ्रतनुच्छायै रुद्रैर्हंसैरिवावृतः।
उपस्थितार्तिर्दैत्योऽथ प्रचलत्कर्णपल्लवः॥ ४३

शम्भुं बिभेद दशनैर्नाभिदेशे गजासुरः।
दृष्ट्वा सक्तं तु रुद्राभ्यां नव रुद्रास्ततोऽद्भुतम्॥ ४४

ततक्षुर्विविधैः शस्त्रैः शरीरममरद्विषः।
निर्भया बलिनो युद्धे रणभूमौ व्यवस्थिताः॥ ४५

मृतं महिषमासाद्य वने गोमायवो यथा।
कपालिनं परित्यज्य गतश्चासुरपुंगवः॥ ४६

वेगेन कुपितो दैत्यो नवरुद्रानुपाद्रवत्।
ममर्द चरणाघातैर्दन्तैश्चापि करेण च॥ ४७

स तैस्तुमुलयुद्धेन श्रममासादितो यदा।
तदा कपाली जग्राह करं तस्यामरद्विषः॥ ४८

भ्रामयामास वेगेन ह्यतीव च गजासुरम्।
दृष्ट्वा श्रमातुरं दैत्यं किंचित्स्फुरितजीवितम्॥ ४९

निरुत्साहं रणे तस्मिन् गतयुद्धोत्सवोद्यमम्।
ततः पतत एवास्य चर्म चोत्कृत्य भैरवम्॥ ५०

स्रवत्सर्वाङ्गरक्तौघं चकाराम्बरमात्मनः।
दृष्ट्वा विनिहतं दैत्यं दानवेन्द्रा महाबलाः॥ ५१

वित्रेसुर्दुद्रुवुर्जग्मुर्निपेतुश्च सहस्रशः।
दृष्ट्वा कपालिनो रूपं गजचर्माम्बरावृतम्॥ ५२

दिक्षु भूमौ तमेवोग्रं रुद्रं दैत्या व्यलोकयन्।
एवं विलुलिते तस्मिन् दानवेन्द्रे महाबले॥ ५३

द्विपाधिरूढो दैत्येन्द्रो हतदुन्दुभिना ततः।
कल्पान्ताम्बुधराभेण दुर्धरेणापि दानवः॥ ५४

निमिरभ्यपतत् तूर्णं सुरसैन्यानि लोडयन्।
यां यां निमिगजो याति दिशं तां तां सवाहनाः॥ ५५

संत्यज्य दुद्रुवुर्देवा भयार्तास्त्यक्तहेतयः।
गन्धेन सुरमातङ्गा दुद्रुवुस्तस्य हस्तिनः॥ ५६

पलायितेषु सैन्येषु सुराणां पाकशासनः।
तस्थौ दिक्पालकैः सार्धमष्टभिः केशवेन च॥ ५७

हंसोंकी तरह शरीरमें श्वेत भस्म रमाये हुए रुद्रोंसे घिरा हुआ था। इस प्रकार विपत्तिमें फँसे हुए दैत्यराज गजासुरने अपने कर्णपल्लवोंको हिलाते हुए शम्भुके नाभिदेशको दाँतोंसे विदीर्ण कर दिया। तत्पश्चात् गजासुरको कपाली और शम्भु—इन दोनों रुद्रोंके साथ उलझा हुआ देख शेष नवों रुद्र, जो रण-भूमिमें उपस्थित थे तथा महाबली एवं युद्धमें निर्भय होकर लड़नेवाले थे, उस देवद्रोहीके शरीरको विविध प्रकारके शस्त्रोंसे उसी प्रकार काटने लगे, जैसे वनमें मरे हुए भैंसेको पाकर शृगाल नोचने लगते हैं। यह देखकर असुरश्रेष्ठ गज कपालीको छोड़कर हट गया। फिर कुपित हुए उस दैत्यने बड़े वेगसे नवों रुद्रोंपर धावा किया। उसने पैरोंके आघातसे, दाँतोंके प्रहारसे तथा सूँड़की चपेटोंसे उन्हें रौंद डाला। इस प्रकार उनके साथ द्वन्द्वयुद्ध करनेसे जब वह थक गया, तब कपालीने उस देवद्रोहीके सूँड़को पकड़ लिया और वे गजासुरको बड़े वेगसे घुमाने लगे। जब उन्होंने देखा कि यह दैत्य परिश्रमसे आतुर हो गया है, उसकी युद्धके लिये अभिलाषा एवं उद्यम समाप्त हो चुके हैं, यह रणमें उत्साहहीन हो गया है और अब इसके प्राणमात्र अवशेष हैं, तब उसे भूतलपर पटक दिया। उसके सभी अङ्गोंसे रक्तकी धारा बह रही थी। तब कपालीने भूतलपर पड़े हुए उस गजासुरके भयंकर चर्मको उधेड़कर अपना वस्त्र बना लिया॥ ४०—५० १/२॥

इस प्रकार दैत्यराज गजासुरको मारा गया देखकर हजारों महाबली दानवेन्द्र भयभीत हो गये। कुछ तो रणभूमि छोड़कर भाग गये, कुछ धीरेसे खिसक गये और कुछ वहीं गिर पड़े। गजासुरके चर्मसे आच्छादित कपालीके रूपको देखकर दैत्यगण सभी दिशाओंमें तथा भूतलपर सर्वत्र उन्हीं भयंकर रुद्रको ही देख रहे थे। इस प्रकार उस महाबली दानवेन्द्र गजासुरके नष्ट हो जानेपर गजराजपर आरूढ़ हुआ दैत्येन्द्र निमि शीघ्र ही देव-सेनाओंको विलोडित करता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उस समय उस दानवके साथ प्रलयकालीन मेघके समान दुर्धर्ष शब्द करनेवाली दुन्दुभि भी बज रही थी। निमिका वह गजराज जिस-जिस दिशाकी ओर बढ़ता था, उधर-उधरसे वाहनसहित देवगण भयभीत हो अस्त्र डालकर युद्धभूमिसे भाग खड़े होते थे। उस दैत्यके हाथीका गन्ध पाकर देवताओंके हाथी भी भागने लगे। इस प्रकार देव-सेनाओंमें भगदड़ पड़ जानेपर पाकशासन इन्द्र आठों दिक्पालों तथा भगवान् केशवके साथ खड़े रहे, किंतु

सम्प्राप्तो निमिमातङ्गो यावच्छक्रगजं प्रति।
तावच्छक्रगजो यातो मुक्त्वा नादं स भैरवम्॥ ५८

ध्रियमाणोऽपि यत्नेन स रणे नैव तिष्ठति।
पलायिते गजे तस्मिन्नारूढः पाकशासनः॥ ५९

विपरीतमुखोऽयुध्यद् दानवेन्द्रबलं प्रति।

निमिका गजराज ज्यों ही इन्द्रके गजराजके पास पहुँचा त्यों ही इन्द्रका गज ऐरावत भयंकर चिग्घाड़ करता हुआ भाग खड़ा हुआ। प्रयत्नपूर्वक रोके जानेपर भी वह रणभूमिमें नहीं खड़ा हुआ। तब उस भागते हुए गजराजपर आरूढ़ हुए इन्द्र पीछे मुख करके दानवेन्द्रोंकी सेनाके साथ युद्ध करने लगे॥ ५१—५९ $\frac{1}{2}$॥

शतक्रतुस्तु वज्रेण निमिं वक्षस्यताडयत्॥ ६०
गदया दन्तिनश्चास्य गण्डदेशेऽहनद् दृढम्।
तत्प्रहारमचिन्त्यैव निमिर्निर्भयपौरुषः॥ ६१
ऐरावतं कटीदेशे मुद्गरेणाभ्यताडयत्।
स हतो मुद्गरेणाथ शक्रकुञ्जर आहवे॥ ६२
जगाम पश्चाच्चरणैर्धरणीं भूधराकृतिः।
लाघवात् क्षिप्रमुत्थाय ततोऽमरमहागजः॥ ६३
रणादपससर्पाशु भीषितो निमिहस्तिना।
ततो वायुर्ववौ रूक्षो बहुशर्करपांसुलः॥ ६४
सम्मुखो निमिमातङ्गो जवनाचलकम्पनः।
स्रुतरक्तो बभौ शैलो घनधातुह्रदो यथा॥ ६५
धनेशोऽपि गदां गुर्वीं तस्य दानवहस्तिनः।
चिक्षेप वेगाद् दैत्येन्द्रो निपपातास्य मूर्धनि॥ ६६
गजो गदानिपातेन स तेन परिमूर्छितः।
दन्तैर्भित्त्वा धरां वेगात् पपाताचलसंनिभः॥ ६७
पतिते तु गजे तस्मिन् सिंहनादो महानभूत्।
सर्वतः सुरसैन्यानां गजबृंहितबृंहितैः॥ ६८
हेषारवेण चाश्वानां गुणास्फोटैश्च धन्विनाम्।
गजं तं निहतं दृष्ट्वा निमिं चापि पराङ्मुखम्॥ ६९
श्रुत्वा च सिंहनादं च सुराणामतिकोपनः।
जम्भो जज्वाल कोपेन पीताज्य इव पावकः॥ ७०

उस समय इन्द्रने वज्रसे निमिके वक्षःस्थलपर आघात किया और गदासे उसके हाथीके गण्डस्थलपर गहरी चोट पहुँचायी। फिर तो निर्भय पुरुषार्थी निमिने उस प्रहारकी कुछ भी परवाह न कर ऐरावतके कटिप्रदेशपर मुद्गरसे चोट की। युद्धमें मुद्गरसे आहत हुआ पर्वत-सरीखा विशालकाय इन्द्रका हाथी ऐरावत अपने पिछले पैरोंसे पृथ्वीपर बैठ गया। फिर निमिके हाथीसे डरा हुआ इन्द्रका वह महागज बड़ी फुर्तीसे शीघ्र ही उठकर वेगपूर्वक रणभूमिसे दूर हट गया। उस समय प्रचुर मात्रामें बालू और धूलसे भरी हुई रूखी वायु बहने लगी। ऐसी दशामें भी अपने वेगसे पर्वतको भी कम्पित कर देनेवाला निमिका गजराज सम्मुख खड़ा था। उसके शरीरसे रक्त बह रहा था, जिसके कारण वह गेरु आदि धातुओंके गहरे कुण्डसे युक्त पर्वतकी भाँति शोभा पा रहा था। तब धनेशने भी दानवके उस हाथीपर वेगपूर्वक अपनी भारी गदा चलायी, जो उसके मस्तकपर जा गिरी, जिससे दैत्येन्द्र तो भूतलपर गिर पड़ा और वह हाथी उस गदाके आघातसे मूर्च्छित हो गया। वह वेगपूर्वक दाँतोंसे पृथ्वीको विदीर्ण करके पर्वत-सरीखे धराशायी हो गया। उस गजराजके गिर जानेपर देवताओंकी सेनाओंमें सब ओर महान् सिंहनाद होने लगा। उस समय हर्षसे भरे हुए गजसमूह चिग्घाड़ने लगे, घोड़े हींसने लगे और धनुर्धारियोंके धनुषोंकी प्रत्यञ्चाएँ चटचटाने लगीं। इस प्रकार उस हाथीको मारा गया और निमिको भी युद्धविमुख देखकर तथा देवताओंका सिंहनाद सुनकर प्रचण्ड क्रोधी जम्भ घीकी आहुति पड़े हुए अग्निकी तरह क्रोधसे जल उठा॥ ६०—७०॥

स सुरान् कोपरक्ताक्षो धनुष्यारोप्य सायकम्।
तिष्ठतेत्यब्रवीत्तावत् सारथिं चाप्यचोदयत्॥ ७१

उस समय क्रोधसे लाल नेत्रोंवाले जम्भासुरने अपने धनुषपर बाण चढ़ाकर देवताओंको ललकारते हुए कहा—'खड़े रहो! (भागकर कहाँ जाओगे)।' साथ ही अपने सारथिको आगे बढ़नेके लिये प्रेरित किया।

वेगेन चलतस्तस्य तद्रथस्याभवद् द्युतिः।
यथाऽऽदित्यसहस्रस्याभ्युदितस्योदयाचले॥ ७२

तब वेगपूर्वक चलते हुए उसके रथकी ऐसी शोभा हो रही थी मानो उदयाचलपर उदित हुए हजारों सूर्य हों।

पताकिना रथेनाजौ किङ्किणीजालमालिना।
शशिशुभ्रातपत्रेण स तेन स्यन्दनेन तु॥ ७३
घट्टयन् सुरसैन्यानां हृदयं समदृश्यत।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य धनुष्याहितसायकः॥ ७४
शतक्रतुरदीनात्मा दृढमाधत्त कार्मुकम्।
बाणं च तैलधौताग्रमर्धचन्द्रमजिह्मगम्॥ ७५
तेनास्य सशरं चापं रणे चिच्छेद वृत्रहा।
क्षिप्रं संत्यज्य तच्चापं जम्भो दानवनन्दनः॥ ७६
अन्यत् कार्मुकमादाय वेगवद् भारसाधनम्।
शरांश्चाशीविषाकारांस्तैलधौतानजिह्मगान्॥ ७७
शक्रं विव्याध दशभिर्जत्रुदेशे तु पत्रिभिः।
हृदये च त्रिभिश्चापि द्वाभ्यां च स्कन्धयोर्द्वयोः॥ ७८
शक्रोऽपि दानवेन्द्राय बाणजालमपीदृशम्।
अप्राप्तान् दानवेन्द्रस्तु शराञ्छक्रभुजेरितान्॥ ७९
चिच्छेद दशधाऽऽकाशे शरैरग्निशिखोपमैः।
ततस्तु शरजालेन देवेन्द्रो दानवेश्वरम्॥ ८०
आच्छादयत यत्नेन वर्षास्विव घनैर्नभः।
दैत्योऽपि बाणजालं तद् व्यधमत् सायकैः शितैः॥ ८१
यथा वायुर्घनाटोपं परिवार्य दिशो मुखे।
शक्रोऽथ क्रोधसंरम्भान्न विशेषयते यदा॥ ८२
दानवेन्द्रं तदा चक्रे गन्धर्वास्त्रं महाद्भुतम्।
तदुत्थतेजसा व्याप्तमभूद् गगनगोचरम्॥ ८३
गन्धर्वनगरैश्चापि नानाप्राकारतोरणैः।
मुञ्चद्भिरद्भुताकारैरस्त्रवृष्टिं समंततः॥ ८४
अथास्त्रवृष्ट्या दैत्यानां हन्यमाना महाचमूः।
जम्भं शरणमागच्छदप्रमेयपराक्रमम्॥ ८५
व्याकुलोऽपि स्वयं दैत्यः सहस्राक्षास्त्रपीडितः।
सस्मरन् साधुमाचारं भीतत्राणपरोऽभवत्॥ ८६

वह रथ क्षुद्र घंटिकाओंके समूहसे सुशोभित था, उसमें चन्द्रमाके समान उज्ज्वल छत्र लगा हुआ था और उसपर पताका फहरा रही थी। ज्यों ही रथपर सवार जम्भासुर सुर-सैनिकोंके हृदयोंको धर्षित करता हुआ रणभूमिमें दिखायी पड़ा त्यों ही उदारहृदय इन्द्रने अपना सुदृढ़ धनुष हाथमें लिया और उसपर तेलसे साफ किये गये एवं सीधे लक्ष्यवेध करनेवाले अर्धचन्द्राकार बाणका संधान किया। वृत्रासुरका हनन करनेवाले इन्द्रने उस बाणसे रणभूमिमें जम्भासुरके बाणसहित धनुषको काट दिया। तब दानवनन्दन जम्भने शीघ्र ही उस धनुषको फेंककर दूसरा वेगशाली एवं भार सहन करनेमें समर्थ धनुष तथा तेलसे सफाये गये, सीधा लक्ष्यवेध करनेवाले एवं सर्पके समान जहरीले बाणोंको हाथमें लिया। उनमेंसे उसने दस बाणोंसे इन्द्रकी हँसलीको, तीन बाणोंसे हृदयको और दो बाणोंसे दोनों कंधोंको बींध दिया॥ ७१—७८॥

इसी प्रकार इन्द्रने भी उस दानवेन्द्रपर बाणसमूह चलाये, परंतु इन्द्रके हाथसे छोड़े गये उन बाणोंके अपने पास पहुँचनेके पूर्व ही दानवेन्द्र जम्भने अपने अग्निकी लपटोंके समान तेजस्वी बाणोंसे आकाशमें ही काटकर दस-दस टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने यत्नपूर्वक दानवेश्वरको बाणसमूहोंसे इस प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे वर्षा-ऋतुमें बादलोंसे आकाश आच्छादित हो जाता है। तब दैत्यने भी अपने तीखे बाणोंसे उस बाण-समूहको इस प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे वायु दिशाओंके मुखपर छाये हुए बादलोंके समूहको छिन्न-भिन्न कर देती है। तदनन्तर जब इन्द्र क्रोधवश उस दानवेन्द्रसे आगे न बढ़ सके, तब उन्होंने महान् अद्भुत गन्धर्वास्त्रका प्रयोग किया। उससे निकले हुए तेजसे सारा आकाशमण्डल व्याप्त हो गया। उससे अनेकों परकोटों एवं फाटकोंसे युक्त अद्भुत आकारवाले गन्धर्वनगर भी प्रकट हुए, जिनसे चारों ओर अस्त्रोंकी वर्षा होने लगी। उस अस्त्रवृष्टिसे मारी जाती हुई दैत्योंकी विशाल सेना अतुल पराक्रमी जम्भकी शरणमें आ गयी। यद्यपि उस समय इन्द्रके अस्त्रसे पीड़ित होकर दैत्यराज जम्भ स्वयं भी व्याकुल हो गया था, तथापि सज्जनोंके सदाचारका—अर्थात् शरणागतकी रक्षा करनी चाहिए—इस नियमका स्मरण कर वह उन भयभीतोंकी रक्षामें तत्पर हो गया।

अथास्त्रं मौसलं नाम मुमोच दितिनन्दनः।
ततोऽयोमुसलैः सर्वमभवत् पूरितं जगत्॥ ८७
एकप्रहारकरणैरप्रधृष्यैः समंततः।
गन्धर्वनगरं तेषु गन्धर्वास्त्रविनिर्मितम्॥ ८८

फिर तो उस दैत्यने मौसल नामक अस्त्रका प्रयोग किया। उससे निकले हुए लोहनिर्मित मुसलोंसे सारा जगत् व्याप्त हो गया। एक-एकपर प्रहार करनेवाले उन दुर्धर्ष मुसलोंद्वारा गन्धर्वास्त्रद्वारा निर्मित गन्धर्वनगर भी चारों ओरसे आच्छादित हो गया॥ ७९—८८॥

गान्धर्वमस्त्रं संधाय सुरसैन्येषु चापरम्।
एकैकेन प्रहारेण गजानश्वान् महारथान्॥ ८९
रथाश्वान् सोऽहनत् क्षिप्रं शतशोऽथ सहस्रशः।
ततः सुराधिपस्त्वाष्ट्रमस्त्रं च समुदीरयत्॥ ९०
संध्यमाने ततस्त्वाष्ट्रे निश्चेरुः पावकार्चिषः।
ततो यन्त्रमयान् दिव्यानायुधान् दुष्प्रधर्षिणः॥ ९१
तैर्यन्त्रैरभवद् बद्धमन्तरिक्षे वितानकम्।
वितानकेन तेनाथ प्रशमं मौसले गते॥ ९२
शैलास्त्रं मुमुचे जम्भो यन्त्रसङ्घाततताडनम्।
व्यामप्रमाणैरुपलैस्ततो वर्षमवर्तत॥ ९३
त्वाष्ट्रस्य निमितान्याशु यन्त्राणि तदनन्तरम्।
तेनोपलनिपातेन गतानि तिलशस्ततः॥ ९४
यन्त्राणि तिलशः कृत्वा शैलास्त्रं परमूर्धसु।
निपपातातिवेगेनादारयत् पृथिवीं ततः॥ ९५
ततो वज्रास्त्रमकरोत् सहस्राक्षः पुरन्दरः।
तदोपलमहावर्षं व्यशीर्यत समंततः॥ ९६
ततः प्रशान्ते शैलास्त्रे जम्भो भूधरसंनिभः।
ऐषीकमस्त्रमकरोदभीतोऽतिपराक्रमः॥ ९७
ऐषीकेणागमन्नाशं वज्रास्त्रं शक्रवल्लभम्।
विजृम्भत्यथ चैषीके परमास्त्रेऽतिदुर्धरे॥ ९८
जज्वलुर्देवसैन्यानि सस्यन्दनगजानि तु।

तदनन्तर जम्भासुरने दूसरे गान्धर्वास्त्रका संधान करके उसे देवताओंकी सेनाओंपर छोड़ दिया। उसने शीघ्र ही क्रमशः एक-एक प्रहारसे सैकड़ों एवं हजारोंकी संख्यामें गजराजों, घोड़ों, महारथियों एवं रथके घोड़ोंको नष्ट कर दिया। तब देवराज इन्द्रने त्वाष्ट्र नामक अस्त्रको प्रकट किया। उस त्वाष्ट्रास्त्रके संधान करते ही अग्निकी लपटें निकलने लगीं। तत्पश्चात् उन्होंने अन्यान्य दुर्धर्ष यन्त्रमय दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया। उन यन्त्रमय अस्त्रोंसे आकाशमें वितान-सा बँध गया। उस वितानसे वह मौसलास्त्र शान्त हो गया। यह देखकर जम्भासुरने उस यन्त्रसमूहको नष्ट करनेवाले शैलास्त्रका प्रयोग किया। उससे व्यामके बराबर उपलोंकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर उस उपल-वर्षासे त्वष्टास्त्रद्वारा निर्मित सभी यन्त्र शीघ्र ही तिल-सरीखे चूर्ण बन गये। इस प्रकार वह शैलास्त्र यन्त्रोंको तिलशः काटकर बड़े वेगसे शत्रुओंके मस्तकोंपर गिरते हुए पृथ्वीको भी विदीर्ण कर देता था। तब सहस्रनेत्रधारी इन्द्रने वज्रास्त्रका प्रयोग किया। उससे उपलोंकी वह महान् वृष्टि चारों ओर छिन्न-भिन्न हो गयी। उस शैलास्त्रके प्रशान्त हो जानेपर पर्वत-सा विशालकाय एवं प्रचण्ड पराक्रमी जम्भने निर्भय होकर ऐषीकास्त्रका प्रयोग किया। उस ऐषीकास्त्रसे देवराज इन्द्रका परम प्रिय वज्रास्त्र नष्ट हो गया। तत्पश्चात् उस परम दुर्धर्ष दिव्यास्त्र ऐषीकके फैलते ही रथों एवं हाथियोंसहित देवताओंकी सेनाएँ जलने लगीं॥८९—९८½॥

दह्यमानेष्वनीकेषु तेजसा सुरसत्तमः॥ ९९
आग्नेयमस्त्रमकरोद् बलवान् पाकशासनः।
तेनास्त्रेण तदस्त्रं च बभ्रंशे तदनन्तरम्॥ १००
तस्मिन् प्रतिहते चास्त्रे पावकास्त्रं व्यजम्भत।
जज्वाल कायं जम्भस्य सरथं च ससारथिम्॥ १०१

इस प्रकार ऐषीकास्त्रके तेजसे अपनी सेनाओंको भस्म होती हुई देखकर महाबली देवराज इन्द्रने आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया। उस अस्त्रके प्रभावसे ऐषीकास्त्र नष्ट हो गया। तदनन्तर उस अस्त्रके नष्ट हो जानेपर आग्नेयास्त्रने अपना प्रभाव फैलाया, उससे रथ एवं सारथिसहित जम्भका शरीर जलने लगा।

ततः प्रतिहतः सोऽथ दैत्येन्द्रः प्रतिभानवान्।
वारुणास्त्रं मुमोचाथ शमनं पावकार्चिषाम्॥ १०२
ततो जलधरैर्व्योम स्फुरद्विद्युल्लताकुलैः।
गम्भीरमुरजध्वानैरापूरितमिवाम्बरम् ॥ १०३
करीन्द्रकरतुल्याभिर्जलधाराभिरम्बरात् ।
पतन्तीभिर्जगत् सर्वं क्षणेनापूरितं बभौ॥ १०४
शान्तमाग्नेयमस्त्रं तत् प्रविलोक्य सुराधिपः।
वायव्यमस्त्रमकरोन्मेघसङ्घातनाशनम् ॥ १०५
वायव्यास्त्रबलेनाथ निर्धूते मेघमण्डले।
बभूव विमलं व्योम नीलोत्पलदलप्रभम्॥ १०६
वायुना चातिघोरेण कम्पितास्ते तु दानवाः।
न शेकुस्तत्र ते स्थातुं रणेऽतिबलिनोऽपि ये॥ १०७
तदा जम्भोऽभवच्छैलो दशयोजनविस्तृतः।
मारुतप्रतिघातार्थं दानवानां भयापहः॥ १०८
मुक्तनानायुधोदग्रतेजोऽभिज्वलितद्रुमः ।
ततः प्रशमिते वायौ दैत्येन्द्रे पर्वताकृतौ॥ १०९
महाशनीं वज्रमयीं मुमोचाशु शतक्रतुः।
तयाशन्या पतितया दैत्यस्याचलरूपिणः॥ ११०
कन्दराणि व्यशीर्यन्त समन्तान्निर्झराणि तु।
ततः सा दानवेन्द्रस्य शैलमाया न्यवर्तत॥ १११
निवृत्तशैलमायोऽथ दानवेन्द्रो मदोत्कटः।
बभूव कुञ्जरो भीमो महाशैलसमाकृतिः॥ ११२
स ममर्द सुरानीकं दन्तैश्चाप्यहनत् सुरान्।
बभञ्ज पृष्ठतः कांश्चित् करेणावेष्ट्य दानवः॥ ११३
ततः क्षपयतस्तस्य सुरसैन्यानि वृत्रहा।
अस्त्रं त्रैलोक्यदुर्धर्षं नारसिंहं मुमोच ह॥ ११४
ततः सिंहसहस्राणि निश्चेरुर्मन्त्रतेजसा।
कृष्णदंष्ट्राट्टहासानि क्रकचाभनखानि च॥ ११५
तैर्विपाटितगात्रोऽसौ गजमायां व्यपोथयत्।
ततश्चाशीविषो घोरोऽभवत् फणशताकुलः॥ ११६
विषनिःश्वासनिर्दग्धं सुरसैन्यं महारथः।
ततोऽस्त्रं गारुडं चक्रे शक्रश्चारुभुजस्तदा॥ ११७

उस अस्त्रसे प्रतिहत हो जानेपर प्रतिभाशाली दैत्यराज जम्भने अग्निकी ज्वालाओंको शान्त करनेवाले वारुणास्त्रका प्रयोग किया। फिर तो आकाशमें चमकती हुई बिजलियोंसे व्याप्त बादल उमड़ आये। गम्भीर मृदंगकी-सी ध्वनि करनेवाले मेघोंकी गर्जनासे आकाश निनादित हो उठा। फिर क्षणमात्रमें ही आकाशसे गिरती हुई गजराजके शुण्डदण्डकी-सी मोटी जलधाराओंसे सारा जगत् आप्लावित हुआ दीख पड़ने लगा। तब देवराज इन्द्रने उस आग्नेयास्त्रको शान्त हुआ देखकर मेघसमूहको नष्ट करनेवाले वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। उस वायव्यास्त्रके बलसे मेघमण्डलके छिन्न-भिन्न हो जानेपर आकाश नीलकमल-दलके सदृश निर्मल हो गया। पुनः अत्यन्त भीषण झंझावातके चलनेपर दानवगण कम्पित हो उठे, इस कारण उनमें जो महाबली थे, वे भी उस समय रणभूमिमें खड़ा रहनेके लिये समर्थ न हो सके। तब दानवोंके भयको दूर करनेवाले जम्भने उस वायुको रोकनेके लिये दस योजन विस्तारवाले पर्वतका रूप धारण कर लिया। उस पर्वतके वृक्ष छोड़े गये नाना प्रकारके अस्त्रोंके प्रचण्ड तेजसे उद्दीप्त हो रहे थे॥ ९९—१०८ ½ ॥

तदनन्तर वायुके शान्त हो जानेपर इन्द्रने तुरंत ही उस पर्वताकार दैत्येन्द्रपर एक वज्रमयी महान् अशनि फेंकी। उस अशनिके गिरनेसे पर्वतरूपी दैत्यकी कन्दराएँ और झरने सब ओरसे छिन्न-भिन्न हो गये। तत्पश्चात् दानवेन्द्रकी वह शैलमाया विलीन हो गयी। उस शैलमायाके निवृत्त हो जानेपर गर्वीला दानवराज जम्भ विशाल पर्वतकी-सी आकृतिवाले भयंकर गजराजके रूपमें प्रकट हुआ। फिर तो वह देव-सेनाका मर्दन करने लगा। उस दानवने कितने देवताओंको दाँतोंसे चूर्ण कर दिया और कितनोंको सूँड़से लपेटकर पृष्ठभागसे मरोड़ दिया। इस प्रकार उस दैत्यको देव-सेनाओंको नष्ट करते देखकर वृत्रासुरके हन्ता इन्द्रने त्रिलोकीके लिये दुर्धर्ष नारसिंहास्त्रका प्रयोग किया। उस मन्त्रके तेजसे हजारों ऐसे सिंह प्रकट हुए जो काले दाढ़ोंसे युक्त थे और जोर-जोरसे दहाड़ रहे थे तथा जिनके नख आरेके समान थे। उन सिंहोंद्वारा शरीरके फाड़ दिये जानेपर जम्भने अपनी गजमाया समेट ली और पुनः सैकड़ों फनोंसे युक्त भयंकर सर्पका रूप धारण कर लिया। तब उस महारथीने विषभरी निःश्वाससे देव-सैनिकोंको जलाना प्रारम्भ किया। यह देखकर सुन्दर भुजाओंवाले इन्द्रने उस समय गारुडास्त्रका प्रयोग किया।

ततो गरुत्मतस्तस्मात् सहस्राणि विनिर्ययुः।
तैर्गरुत्मद्भिरासाद्य जम्भो भुजगरूपवान्॥ ११८
कृतस्तु खण्डशो दैत्यः सास्य माया व्यनश्यत।
प्रनष्टायां तु मायायां ततो जम्भो महासुरः॥ ११९
चकार रूपमतुलं चन्द्रादित्यपथानुगम्।
विवृत्तवदनो ग्रस्तुमियेष सुरपुङ्गवान्॥ १२०
ततोऽस्य विविशुर्वक्त्रं समहारथकुञ्जराः।
सुरसेनाविशद् भीमं पातालोत्तानतालुकम्॥ १२१
सैन्येषु ग्रस्यमानेषु दानवेन बलीयसा।
शक्रो दैन्यं समापन्नः श्रान्तबाहुः सवाहनः॥ १२२
कर्तव्यतां नाध्यगच्छत् प्रोवाचेदं जनार्दनम्।
किमनन्तरमत्रास्ति कर्तव्यस्यावशेषितम्॥ १२३
यदाश्रित्य घटामोऽस्य दानवस्य युयुत्सवः।
ततो हरिरुवाचेदं वज्रायुधमुदारधीः॥ १२४
न साम्प्रतं रणस्त्याज्यस्त्वया कातरभैरवः।
वर्धस्वाशु महामायां पुरन्दर रिपुं प्रति॥ १२५
मयैष लक्षितो दैत्योऽधिष्ठितः प्राप्तपौरुषः।
मा शक्र मोहमागच्छ क्षिप्रमस्त्रं स्मर प्रभो॥ १२६
ततः शक्रः प्रकुपितो दानवं प्रति देवराट्।
नारायणास्त्रं प्रयतो मुमोचासुरवक्षसि॥ १२७
एतस्मिन्नन्तरे दैत्यो विवृतास्योऽग्रसत्क्षणात्।
त्रीणि लक्षाणि गन्धर्वकिन्नरोरगराक्षसान्॥ १२८
ततो नारायणास्त्रं तत् पपातासुरवक्षसि।
महास्त्रभिन्नहृदयः सुस्राव रुधिरं च सः॥ १२९
रणागारमिवोद्दारं तत्याजासुरनन्दनः।
तदस्त्रतेजसा तस्य रूपं दैत्यस्य नाशितम्॥ १३०
तत एवान्तर्दधे दैत्यो वियत्यनुपलक्षितः।
गगनस्थः स दैत्येन्द्रः शस्त्रासनमतीन्द्रियम्॥ १३१
मुमोच सुरसैन्यानां संहारे कारणं परम्।
प्रासान् परश्वधांश्चक्रान् बाणवज्रान् समुद्गरान्॥ १३२

उस गारुडास्त्रसे सहस्रों गरुड प्रकट हो गये। उन गरुडोंने सर्परूपी दैत्यराज जम्भको पकड़कर उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये, जिससे उसकी वह माया नष्ट हो गयी॥ १०९—११८ १/२॥

तत्पश्चात् उस मायाके नष्ट हो जानेपर महासुर जम्भने सूर्य एवं चन्द्रमाके मार्गका अनुगमन करनेवाला अपना अनुपम रूप बनाया तथा मुख फैलाकर वह प्रधान-प्रधान देवताओंको निगल जानेके लिये उनकी ओर झपटा। पाताललोकतक फैले हुए तालूवाले उसके भयंकर मुखमें महारथियोंसहित बड़े-बड़े गजराज प्रवेश करने लगे। इस प्रकार सारी देव-सेना उसमें प्रविष्ट होने लगी। इस प्रकार उस बलवान् दानवद्वारा सैनिकोंको ग्रसे जाते हुए देखकर वाहनसमेत इन्द्र अत्यन्त दीन हो गये। उनकी भुजाएँ थक गयी थीं। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये, तब उन्होंने भगवान् जनार्दनसे इस प्रकार कहा—'भगवन्! अब इस विषयमें कौन-सा कर्तव्य शेष रह गया है, जिसका आश्रय लेकर हमलोग युद्धकी इच्छासे प्रेरित हो इस दानवके साथ लोहा लें।' यह सुनकर उदारबुद्धिवाले श्रीहरि वज्रधारी इन्द्रसे इस प्रकार बोले—'पुरंदर! इस समय आपको भयभीत होकर रणभूमिसे विमुख नहीं होना चाहिये। आप शीघ्र ही शत्रुके प्रति महामायाका विस्तार करें। यह दैत्य जिस प्रकार पुरुषार्थ प्राप्तकर युद्धभूमिमें डटा हुआ है, इसे मैं जानता हूँ। सामर्थ्यशाली इन्द्र! आप मोहको मत प्राप्त हों, शीघ्र ही दूसरे अस्त्रका स्मरण कीजिये'॥ ११९—१२६॥

यह सुनकर देवराज इन्द्र उस दानवके प्रति विशेष कुपित हुए और उन्होंने प्रयत्नपूर्वक उस असुरके वक्षःस्थलपर नारायणास्त्रका प्रयोग किया। इस बीचमें मुख फैलाये हुए दैत्यराज जम्भने क्षणमात्रमें तीन लाख गन्धर्वों, किन्नरों और राक्षसोंको निगल लिया। तत्पश्चात् वह नारायणास्त्र उस असुरके वक्षःस्थलपर जा गिरा। उस महान् अस्त्रके आघातसे उसका हृदय विदीर्ण हो गया और उससे रक्त बहने लगा। तब वह असुरनन्दन वमनकी तरह युद्धस्थलको छोड़कर दूर हट गया। उस अस्त्रके तेजसे उस दैत्यका रूप नष्ट हो गया था। इसके बाद वह दैत्य अदृश्य होकर आकाशमें अन्तर्हित हो गया। फिर आकाशमें स्थित होकर वह दैत्येन्द्र ऐसे इन्द्रियातीत शस्त्रोंको फेंकने लगा, जो सुर-सैनिकोंके संहारमें विशेष कारण थे। उस समय वह क्रूर दानव भाला, फरसा, चक्र, बाण, वज्र, मुद्गर,

कुठारान् सह खड्गैश्च भिन्दिपालानयोगुडान्।
ववर्ष दानवो रौद्रो ह्यबन्ध्यानक्षयानपि॥ १३३
तैरस्त्रैर्दानवैर्मुक्तैर्देवानीकेषु भीषणैः।
बाहुभिर्धरणिः पूर्णा शिरोभिश्च सकुण्डलैः॥ १३४
ऊरुभिर्गजहस्ताभैः करीन्द्रैर्वाचलोपमैः।
भग्नेषादण्डचक्राक्षै रथैः सारथिभिः सह॥ १३५
दुःसंचाराभवत् पृथ्वी मांसशोणितकर्दमा।
रुधिरौघह्रदावर्ता शवराशिशिलोच्चयैः॥ १३६

कुठार, तलवार, भिन्दिपाल और लोहेके गुटकोंकी वर्षा करने लगा। ये सभी अस्त्र अमोघ और अविनाशी थे। देवसेनाओंपर दानवोंद्वारा छोड़े गये उन भीषण अस्त्रोंके प्रहारसे कटी हुई भुजाओं, कुण्डलमण्डित मस्तकों, हाथियोंके शुण्डादण्डसरीखे ऊरुओं, पर्वतके समान गजराजों तथा टूटे हुए हरसे, पहिये, जुए और सारथियोंसहित रथोंसे वहाँकी पृथ्वी पट गयी। वहाँ मांस और रक्तकी कीचड़ जम गयी, रक्तसे बड़े-बड़े गड्ढे भर गये थे, जिसमें लहरें उठ रही थीं और लाशोंकी राशि ऊँची शिलाओं-जैसी दीख रही थी, इस कारण वहाँकी भूमि अगम्य हो गयी थी॥ १२७—१३६॥

कबन्धनृत्यसंकुले स्रवद्वसास्रकर्दमे
जगत्त्रयोपसंहृतौ समे समस्तदेहिनाम्।
शृगालगृध्रवायसाः परं प्रमोदमादधुः
क्वचिद्विकृष्टलोचनः शवस्य रौति वायसः॥ १३७
विकृष्टपीवरान्त्रकाः प्रयान्ति जम्बुकाः क्वचित्
क्वचित्स्थितोऽतिभीषणः स्वचञ्चुचर्वितो बकः।
मृतस्य मांसमाहरञ्छ्वजातयश्च संस्थिताः
क्वचिद् वृको गजासृजं पपौ निलीयतान्त्रतः॥ १३८
क्वचित्तुरङ्गमण्डली विकृष्यते श्वजातिभिः
क्वचित् पिशाचजातकैः प्रपीतशोणितासवैः।
स्वकामिनीयुतैर्द्रुतं प्रमोदमत्तसम्भ्रमै-
ममेतदानयाननं खुरोऽयमस्तु मे प्रियः॥ १३९
करोऽयमब्जसन्निभो ममास्तु कर्णपूरकः
सरोषमीक्षतेऽपरा वपां विना प्रियं तदा।
परा प्रिया ह्यपाययद्‌तोष्णशोणितासवं
विकृष्य शवचम तत्प्रबद्धसान्द्रपल्लवम्॥ १४०

उस युद्धभूमिमें यूथ-के-यूथ कबन्ध नृत्य कर रहे थे। उनके शरीरसे बहती हुई मज्जा और रक्तकी कीचड़ जम गयी थी। वह समस्त प्राणियोंके लिये त्रिलोकीके उपसंहारके समान दीख रही थी। उसमें सियार, गीध और कौवे परम प्रसन्नताका अनुभव कर रहे थे। कहीं कौवा लाशकी आँखको नोचता हुआ उच्च स्वरसे बोल रहा था। कहीं शृगाल मोटी-मोटी अँतड़ियोंको खींचते हुए भाग रहे थे। कहीं अपनी चोंचसे मांसको चबाता हुआ अत्यन्त भयानक बगुला बैठा हुआ था। कहीं विभिन्न जातिके कुत्ते मरे हुए वीरकी लाशसे मांस खींच रहे थे। कहीं अँतड़ीमें छिपा हुआ भेड़िया गजराजका खून पी रहा था। कहीं विभिन्न जातिवाले कुत्ते घोड़ोंकी लाशोंको खींच रहे थे। कहीं रुधिररूप आसवका पान करनेवाले पिशाच-जातिके लोग अपनी पत्नियोंके साथ प्रमोदसे उन्मत्त हो रहे थे। (कोई स्त्री अपने पतिसे कह रही थी—) मेरे लिये वह मुख ले आओ। (कोई कह रही थी—) मेरे लिये वह खुर परम प्रिय है। (कोई कह रही थी—) यह कमल-सदृश हथेली मेरे लिये कर्णपूरका काम देगी। दूसरी स्त्री उस समय पतिके निकट रहनेके कारण क्रोधपूर्वक चर्बीकी ओर देख रही थी। दूसरी पिशाचिनी शवके चमड़ेको फाड़कर बनाये गये हरे पत्तेके दोनेमें गरमागरम रुधिररूप आसव रखकर अपने पतिको पिला रही थी॥ १३७—१४०॥

चकार यक्षकामिनी तरुं कुठारपाटितं
गजस्य दन्तमातमजं प्रगृह्य कुम्भसम्पुटम्।
विपाट्य मौक्तिकं परं प्रियप्रसादमिच्छते
समांसशोणितासवं पपुश्च यक्षराक्षसाः॥ १४१

फिर किसी यक्षपत्नीने वृक्षको कुठारसे काटकर गिरा दिया और गजराजके दाँतको हाथमें लेकर उससे गण्डस्थलको फोड़कर गजमुक्ता निकाल ली। फिर उससे वह अपने पतिको प्रसन्न करनेकी इच्छा करने लगी। उस समय यक्षों और राक्षसोंके समूह मांस एवं रुधिरसहित आसवका पान कर रहे थे।

मृतस्य केशवासितं रसं प्रगृह्य पाणिना
प्रिया विमुक्तजीवितं समानयासृगासवम्।
न पथ्यतां प्रयाति मे गतं श्मशानगोचरं
नरस्य तज्जहात्यसौ प्रशस्य किन्नराननम्॥ १४२
स नाग एष नो भयं दधाति मुक्तजीवितो
न दानवस्य शक्यते मया तदेकयाऽऽननम्।
इति प्रियाय वल्लभा वदन्ति यक्षयोषितः
परे कपालपाणयः पिशाचयक्षराक्षसाः॥ १४३
वदन्ति देहि देहि मे ममातिभक्ष्यचारिणः
परेऽवतीर्य शोणितापगासु धौतमूर्तयः।
पितॄन् प्रतर्प्य देवताः समर्चयन्ति चामिषै-
र्गजोडुपे सुसंस्थितास्तरन्ति शोणितं ह्रदम्॥ १४४
इति प्रगाढसङ्कटे सुरासुरे सुसङ्गरे
भयं समुज्झ्य दुर्जया भटाः स्फुटन्ति मानिनः॥ १४५

एक पिशाचिनी मृतकके रुधिरको, जिसमें बाल पड़े हुए थे, हाथमें लेकर अपने पतिसे कह रही थी—'मेरे लिये किसी दूसरे मरे हुए जीवका रुधिररूपी आसव ले आओ। इस श्मशानभूमिमें पड़ा हुआ कोई भी शव मेरे लिये पथ्य नहीं हो सकता।' ऐसा कहकर उसने किंनरके मुखकी प्रशंसा करके मनुष्यकी लाशको छोड़ दिया। (कोई कह रही थी—) वह हाथी यद्यपि मर चुका है, तथापि हमलोगोंको भयभीत कर रहा है। (कोई कह रही थी—) मैं अकेली दानवके उस मुखको नहीं खा सकती। इस प्रकार यक्षोंकी प्रियतमा पत्नियाँ अपने पतियोंसे कह रही थीं। अन्यान्य पिशाच, यक्ष और राक्षस हाथमें कपाल लेकर कह रहे थे—'अरे मुझसे भी अधिक खानेवाले पिशाचो! मुझे भी कुछ दे दो।' दूसरे कुछ पिशाच रुधिरसे भरी हुई नदियोंमें स्नान करके पवित्र हो पितरों और देवताओंका तर्पण करनेके बाद मांसद्वारा उनकी अर्चना कर रहे थे। कुछ हाथीरूपी नौकापर बैठकर खूनसे भरे हुए कुण्डोंको पार कर रहे थे। इस प्रकार घोर संकटसे भरे हुए उस देवासुर-संग्राममें दुर्जय योद्धा निर्भय होकर लोहा ले रहे थे॥१४१—१४५॥

ततः शक्रो धनेशश्च वरुणः पवनोऽनलः।
यमोऽपि निर्ऋतिश्चापि दिव्यास्त्राणि महाबलाः॥ १४६
आकाशे मुमुचुः सर्वे दानवानभिसंध्य ते।
अस्त्राणि व्यर्थतां जग्मुर्देवानां दानवान् प्रति॥ १४७
संरम्भेणाप्ययुध्यन्त संहतास्तुमुलेन च।
गतिं न विविदुश्चापि श्रान्ता दैत्यस्य देवताः॥ १४८
दैत्यास्त्रभिन्नसर्वाङ्गा ह्यकिंचित्करतां गताः।
परस्परं व्यलीयन्त गावः शीतार्दिता इव॥ १४९
तदवस्थान् हरिर्दृष्ट्वा देवाञ् शक्रमुवाच ह।
ब्रह्मास्त्रं स्मर देवेन्द्र यस्यावध्यो न विद्यते।
विष्णुना चोदितः शक्रः सस्मारास्त्रं महौजसम्॥ १५०

तदनन्तर महाबली इन्द्र, कुबेर, वरुण, वायु, अग्नि, यम और निर्ऋति—इन सभी लोगोंने आकाशमें दानवोंको लक्ष्य करके दिव्यास्त्रोंका प्रहार करने लगे, किंतु दानवोंके प्रति छोड़े गये देवताओंके वे सभी अस्त्र व्यर्थ हो गये। यद्यपि देवगण संगठित होकर अत्यन्त क्रोधसे तुमुल युद्ध कर रहे थे, तथापि वे उस दैत्यकी गतिको न समझ सके। उस समय वे थकावटसे चूर हो गये थे तथा उनके सारे अङ्ग दैत्यके अस्त्रोंसे विदीर्ण हो गये थे, अतः वे किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये। तब वे शीतसे पीड़ित हुई गौओंकी तरह परस्पर एक-दूसरेके पीछे छिपने लगे। देवताओंको ऐसी दशामें पड़ा हुआ देखकर श्रीहरिने इन्द्रसे कहा—'देवेन्द्र! अब आप उस ब्रह्मास्त्रका स्मरण कीजिये, जिसके लिये कोई अवध्य है ही नहीं अर्थात् जो सभीका वध कर सकता है।' इस प्रकार विष्णुद्वारा प्रेरित किये जानेपर इन्द्रने उस महान् ओजस्वी अस्त्रका स्मरण किया॥१४६—१५०॥

सम्पूजितं नित्यमरातिनाशनं
समाहितं बाणममित्रघातने।
धनुष्यजय्ये विनियोज्य बुद्धिमा-
नभूत् ततो मन्त्रसमाधिमानसः॥ १५१

तदनन्तर बुद्धिमान् इन्द्रने अपने मनको मन्त्र-समाधिमें लीन कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने इन्द्रियोंको वशमें करके नित्य पूजित होनेवाले शत्रुसंहारक बाणको अपने शत्रुविनाशक अजेय धनुषपर रखकर

सर्वायुधमसम्बाधं विचित्ररचनोज्वलम्।
तं रथं देवराजस्य परिवार्य समंततः॥ १६४
दंशिता लोकपालास्तु तस्थुः सगरुडध्वजाः।
ततश्चचाल वसुधा ततो रूक्षो मरुद् ववौ॥ १६५
ततोऽम्बुधय उद्धूतास्ततो नष्टा रविप्रभा।
ततस्तमः समुद्भूतं नातोऽदृश्यन्त तारकाः॥ १६६
ततो जज्वलुरस्त्राणि ततोऽकम्पत वाहिनी।
एकतस्तारको दैत्यः सुरसङ्घस्तु चैकतः॥ १६७
लोकावसादमेकत्र जगत्पालनमेकतः।
चराचराणि भूतानि सुरासुरविभेदतः॥ १६८
तद् द्विधाप्येकतां यातं ददृशुः प्रेक्षका इव।
यद्वस्तु किंचिल्लोकेषु त्रिषु सत्तास्वरूपकम्।
तत्तत्रादृश्यदखिलं खिलीभूतविभूतिकम्॥ १६९
अस्त्राणि तेजांसि धनानि धैर्य
सेनाबलं वीर्यपराक्रमौ च।
सत्त्वौजसां तन्निकरं बभूव
सुरासुराणां तपसो बलेन॥ १७०
अथाभिमुखमायान्तं नवभिर्नतपर्वभिः।
बाणैरनलकल्पाग्रैर्बिभिदुस्तारकं हृदि॥ १७१
स तानचिन्त्य दैत्येन्द्रः सुरबाणान् गतान् हृदि।
नवभिर्नवभिर्बाणैः सुरान् विव्याध दानवः॥ १७२
जगद्धरणसम्भूतैः शल्यैरिव पुरःसरैः।
ततोऽच्छिन्नं शरव्रातं संग्रामे मुमुचुः सुराः॥ १७३
अनन्तरं च कान्तानामश्रुपातमिवानिशम्।
तदप्राप्तं वियत्येव नाशयामास दानवः॥ १७४
शरैर्यथा कुचरितः प्रख्यातं परमागतम्।
सुनिर्मलं क्रमायातं कुपुत्रः स्वं महाकुलम्॥ १७५

वह सभी प्रकारके अस्त्रोंसे भरा हुआ था तथा उसमें उज्ज्वल रंगकी विचित्र रचना की गयी थी। देवराजके उस रथको गरुडध्वज भगवान् विष्णुसहित सभी लोकपाल कवचसे सुसज्जित हो चारों ओरसे घेरकर खड़े थे॥ १५६—१६४½॥ तदनन्तर पृथ्वी काँपने लगी। रूखी हवा चलने लगी। समुद्रोंमें ज्वार उठने लगा। सूर्यकी कान्ति नष्ट हो गयी। चारों ओर घना अन्धकार छा गया, जिससे ताराओंका दीखना बंद हो गया। अकस्मात् अस्त्र प्रकाशित हो उठे और सेना काँपने लगी। एक ओर दैत्यराज तारक था तो दूसरी ओर देवताओंका समूह डटा था। एक ओर लोकोंका विनाश था तो दूसरी ओर जगत्‌का पालन। इस प्रकार वहाँ सुर और असुरके भेदसे सभी चराचर प्राणी उपस्थित थे। वे दो भागोंमें विभक्त होनेपर भी दर्शकोंकी भाँति एकीभूत-से दिखायी पड़ रहे थे। तीनों लोकोंमें जितनी कुछ सत्तासम्पन्न वस्तुएँ थीं, वे सब-की-सब अपने एकत्र ऐश्वर्यसहित वहाँ दीख रही थीं। बल एवं पराक्रमशाली देवताओं और असुरोंकी तपस्याके बलसे वहाँ तेजस्वी अस्त्र, धन, धैर्य, सेनाबल, साहस और पराक्रमका जमघट लगा हुआ था। तत्पश्चात् तारकको सम्मुख धावा करते हुए देखकर इन्द्रादि देवगणोंने ऐसे नौ बाणोंसे, जिनकी गाँठें झुकी हुई थीं तथा जिनके अग्रभाग अग्नि-सरीखे तेजस्वी थे, तारकके हृदयको विदीर्ण कर दिया। तब दैत्यराज तारकने अपने हृदयमें गड़े हुए देवताओंके उन बाणोंकी कुछ भी परवा न कर प्रत्येक देवताको क्रमशः ऐसे नौ-नौ बाणोंसे, जो जगत्‌का विनाश करनेमें समर्थ तथा अग्रभागमें कीलकी भाँति नुकीले थे, बींध दिया। तदनन्तर देवगण संग्रामभूमिमें वियोगिनी स्त्रीके दिन-रात गिरते हुए अश्रुपातकी तरह लगातार बाणसमूहोंकी वर्षा करने लगे, किंतु दानवराज तारकने उन बाण-वृष्टिको अपने पास पहुँचनेसे पूर्व आकाशमें ही अपने बाणोंके प्रहारसे इस प्रकार नष्ट कर दिया, जैसे कुपुत्र दुराचरणोंसे अपने परम्परागत परम पावन, सुनिर्मल एवं प्रतिष्ठित महान् कुलको नष्ट कर देता है॥ १६५—१७५॥

ततो निवार्य तद् बाणजालं सुरभुजेरितम्।
बाणैर्व्योम दिशः पृथ्वीं पूरयामास दानवः॥ १७६
चिच्छेद पुङ्खदेशेषु स्वके स्थाने च लाघवात्।
बाणजालैः सुतीक्ष्णाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः॥ १७७
कर्णान्तकृष्टैर्विमलैः सुवर्णरजतोज्ज्वलैः।
शास्त्रार्थैः संशयप्रामान् यथार्थान् वै विकल्पितैः॥ १७८

तत्पश्चात् दानवराजने देवताओंकी भुजाओंसे छोड़े गये उस बाणसमूहका निवारण कर अपने बाणोंसे आकाश, पृथ्वी और दिशाओंको भर दिया। तदुपरान्त उसने अपने स्थानपर स्थित रहते हुए ही हाथकी फुर्तीसे छोड़े गये बाणसमूहोंद्वारा देवताओंके बाणोंके पुच्छभागको उसी प्रकार काट दिया, जैसे विकल्पित शास्त्रार्थद्वारा संशयग्रस्त यथार्थ तत्त्व कट जाते हैं। उसके वे बाण अत्यन्त निर्मल, सुवर्ण और चाँदीके समान उज्ज्वल और अत्यन्त तीखे नोकवाले थे, उनमें कंक और मोरके पंख लगे हुए थे तथा वे धनुषको कानतक खींचकर छोड़े गये थे।

ततः शतेन बाणानां शक्रं विव्याध दानवः।
नारायणं च सप्तत्या नवत्या च हुताशनम्॥ १७९
दशभिर्मारुतं मूर्ध्नि यमं दशभिरेव च।
धनदं चैव सप्तत्या वरुणं च तथाष्टभिः॥ १८०
विंशत्या निर्ऋतिं दैत्यः पुनश्चाष्टाभिरेव च।
विव्याध पुनरेकैकं दशभिर्दशभिः शरैः॥ १८१
तथा च मातलिं दैत्यो विव्याध त्रिभिराशुगः।
गरुडं दशभिश्चैव स विव्याध पतत्त्रिभिः॥ १८२
पुनश्च दैत्यो देवानां तिलशो नतपर्वभिः।
चकार वर्मजातानि चिच्छेद च धनूंषि तु।
ततो विकवचा देवा विधनुष्काः शरैः कृताः॥ १८३
अथान्यानि चापानि तस्मिन् सरोषा
रणे लोकपाला गृहीत्वा समंतात्।
शरैरक्षयैर्दानवेन्द्रं ततश्च-
स्तदा दानवोऽमर्षसंरक्तनेत्रः॥ १८४
शरानग्निकल्पान् ववर्षामराणां
ततो बाणमादाय कल्पानलाभम्।
जघानोरसि क्षिप्रमिन्द्रं सुबाहुं
महेन्द्रोऽप्यकम्पद् रथोपस्थ एव॥ १८५
विलोक्यान्तरिक्षे सहस्रार्कबिम्बं
पुनर्दानवो विष्णुमुद्भूतवीर्यम्।
शराभ्यां जघानांसमूले सलीलं
ततः केशवस्यापतच्छार्ङ्गमग्रे॥ १८६
ततस्तारकः प्रेतनाथं पृषत्कै-
र्वसुं तस्य सव्ये स्मरन् क्षुद्रभावम्।
शरैरग्निकल्पैर्जलेशस्य कायं
रणेऽशोषयद् दुर्जयो दैत्यराजः॥ १८७
शरैरग्निकल्पैश्चकाराशु दैत्य-
स्तथा राक्षसान् भीतभीतान् दिशासु।
पृषत्कैश्च रूक्षैर्विकारप्रयुक्तं
चकारानिलं लीलयैवासुरेशः॥ १८८

इसके बाद दानवराज तारकने सौ बाणोंसे इन्द्रको, सत्तर बाणोंसे नारायणको, नब्बे बाणोंसे अग्निको, दस बाणोंसे वायुके मस्तकको, दस बाणोंसे यमको, सत्तर बाणोंसे कुबेरको, आठ बाणोंसे वरुणको तथा अट्ठाईस बाणोंसे निर्ऋतिको घायल कर दिया। फिर उस दैत्यने प्रत्येकको पुनः दस-दस बाणोंसे बींध दिया। तत्पश्चात् उस दैत्यने तीन बाणोंसे मातलिपर और दस बाणोंसे गरुड़पर गहरा आघात किया तथा झुकी हुई गाँठोंवाले बाणोंके प्रहारसे देवताओंके कवचोंको काटकर तिल-जैसा बना दिया और उनके धनुषोंको भी काट दिया। इस प्रकार बाणोंके आघातसे देवगण कवच और धनुषसे रहित कर दिये गये॥ १७९—१८३॥

तदनन्तर उस युद्धमें क्रोधसे भरे हुए लोकपालगण दूसरा धनुष लेकर चारों ओरसे अमोघ बाणोंद्वारा दानवेन्द्र तारकको घायल करने लगे। तब उस दानवराजके नेत्र अमर्षसे लाल हो गये। फिर तो वह देवताओंपर अग्नि-सदृश दाहक बाणोंकी वर्षा करने लगा। पुनः उसने प्रलयकालीन अग्निके समान एक विकराल बाण लेकर बड़ी शीघ्रतासे सुन्दर भुजावाले इन्द्रकी छातीपर प्रहार किया। उस आघातसे रथके पिछले भागमें बैठे हुए महेन्द्र भी काँप उठे। पुनः अन्तरिक्षमें हजारों सूर्य-बिम्बकी तरह उद्दीप्त होते हुए अद्‌भुत पराक्रमी विष्णुको देखकर उस दानवने अनायास ही दो बाणोंसे उनके कंधोंके मूलभागपर ऐसी गहरी चोट की, जिससे केशवका शार्ङ्गधनुष उनके आगे गिर पड़ा। तत्पश्चात् अजेय दैत्यराज तारकने रणभूमिमें प्रेतनाथ यम तथा उनके दाहिने भागमें स्थित वसुको कुछ भी न गिनते हुए उन्हें बाणोंसे बींध दिया और अग्नि-सदृश दाहक बाणोंसे वरुणके शरीरको सुखा दिया तथा शीघ्र ही अग्नि-सदृश बाणोंसे राक्षसोंको भयभीत कर दिशाओंमें खदेड़ दिया। इसी प्रकार उस असुरराजने खेल-ही-खेलमें रूखे बाणोंके आघातसे वायुदेवको भी विकृत कर दिया।

क्षणाल्लब्धचित्ताः स्वयं विष्णुशक्रा-
नलाद्याः सुसंहत्य तीक्ष्णैः पृषत्कैः।
प्रचक्रुः प्रचण्डेन दैत्येन सार्धं
महासङ्गरं सङ्गरग्रासकल्पम्॥ १८९
अथानम्य चापं हरिस्तीक्ष्णबाणै-
र्हनत्सारथिं दैत्यराजस्य हृद्यम्।
ध्वजं धूमकेतुः किरीटं महेन्द्रो
धनेशो धनुः काञ्चनानद्धपृष्ठम्।
यमो बाहुदण्डं रथाङ्गानि वायु-
र्निशाचारिणामीश्वरस्यापि वर्म॥ १९०

थोड़ी देर बाद चेतना प्राप्त होनेपर स्वयं भगवान् विष्णु, इन्द्र, अग्नि आदि देवगण सुसंगठित होकर तीखे बाणोंद्वारा उस प्रचण्ड दैत्यके साथ विषके ग्रासके समान भीषण संग्राम करने लगे। उस समय श्रीहरिने अपने धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर तीखे बाणोंद्वारा दैत्यराजके प्रिय सारथिको यमलोकका पथिक बना दिया। पुनः अग्निने उसके ध्वजको, महेन्द्रने किरीटको, कुबेरने पृष्ठभागपर स्वर्णजटित धनुषको, यमने भुजाओंको और वायुने रथाङ्गों तथा उस असुरराजके कवचको भी काट गिराया॥ १८४—१९०॥

दृष्ट्वा तद् युद्धममरैरकृत्रिमपराक्रमम्।
दैत्यनाथः कृतं संख्ये स्वबाहुयुगबान्धवः॥ १९१
मुमोच मुद्गरं भीमं सहस्राक्षाय सङ्गरे।
दृष्ट्वा मुद्गरमायान्तमनिवार्यमथाम्बरे॥ १९२
रथादाप्लुत्य धरणीमगमत् पाकशासनः।
मुद्गरोऽपि रथोपस्थे पपात परुषस्वनः॥ १९३
स रथं चूर्णयामास न ममार च मातलिः।
गृहीत्वा पट्टिशं दैत्यो जघानोरसि केशवम्॥ १९४
स्कन्धे गरुत्मतः सोऽपि निषसाद विचेतनः।
खड्गेन राक्षसेन्द्रस्य निचकर्त च वाहनम्॥ १९५
यमं च पातयामास भूमौ दैत्यो भुशुण्डिना।
वह्निं च भिन्दिपालेन ताडयामास मूर्धनि॥ १९६
वायुं च दोर्भ्यामुत्क्षिप्य पातयामास भूतले।
धनेशं च धनुष्कोट्या कुट्टयामास कोपनः॥ १९७
ततो देवनिकायानामेकैकं समरे ततः।
जघानास्त्रैरसंख्येयैर्दैत्येन्द्रोऽमितविक्रमः॥ १९८

तदनन्तर अपनी दोनों भुजाएँ ही जिसकी सहायक थीं, उस दैत्यराज तारकने युद्धस्थलमें देवताओंद्वारा किये गये उस युद्ध और उनके सत्य पराक्रमको देखकर रणभूमिमें इन्द्रके ऊपर अपना भयंकर मुद्गर चला दिया। उस अनिवार्य मुद्गरको आकाशमार्गसे आते हुए देखकर इन्द्र रथसे कूदकर पृथ्वीपर खड़े हो गये और वह मुद्गर कठोर शब्द करता हुआ रथके पिछले भागपर जा गिरा। उसने रथको तो चूर्ण कर दिया, पर मातलिके प्राण बच गये। फिर उस दैत्यने पट्टिश लेकर केशवकी छातीपर आघात किया, जिससे वे भी चेतनारहित होकर गरुडके कंधेपर लुढ़क गये। पुनः उस दैत्यने तलवारसे राक्षसराज निर्ऋतिके वाहनको काट डाला, भुशुण्डिके प्रहारसे यमराजको धराशायी कर दिया, भिन्दिपालसे अग्निके मस्तकपर चोट की, वायुको दोनों हाथोंसे उठाकर भूतलपर पटक दिया और कुपित होकर कुबेरको धनुषके सिरेसे कूट डाला। तदुपरान्त उस अनुपम पराक्रमी दैत्यराजने समर भूमिमें देवसमूहोंमेंसे प्रत्येकपर असंख्य अस्त्रोंसे प्रहार किया॥ १९१—१९८॥

लब्धसंज्ञः क्षणाद् विष्णुश्चक्रं जग्राह दुर्धरम्।
दानवेन्द्रवसासिक्तं पिशिताशनकोन्मुखम्॥ १९९
मुमोच दानवेन्द्रस्य दृढं वक्षसि केशवः।
पपात चक्रं दैत्यस्य हृदये भास्करद्युति॥ २००
व्यशीर्यत ततः काये नीलोत्पलमिवाश्मनि।
ततो वज्रं महेन्द्रस्तु प्रमुमोचार्चितं चिरम्॥ २०१

तत्पश्चात् क्षणभर बाद चेतना प्राप्त होनेपर भगवान् विष्णुने अपने दुर्धर्ष चक्रको, जो दानवेन्द्रोंकी मज्जासे अभिषिक्त तथा मांसभोजी असुरोंका संहार करनेके लिये उन्मुख था, हाथमें लिया। फिर केशवने उसे सुदृढ़रूपसे दानवराजके वक्षःस्थलपर छोड़ दिया। वह सूर्यके समान तेजस्वी चक्र दैत्यके हृदयपर जा गिरा, किंतु उसके शरीरपर गिरते ही वह इस प्रकार टूट-फूट गया, जैसे पत्थरपर गिरा हुआ नीला कमल छिन्न-भिन्न हो जाता है।

यस्मिञ्जयाशा शक्रस्य दानवेन्द्ररणे त्वभूत्।
तारकस्य सुसम्प्राप्य शरीरं शौर्यशालिनः॥ २०२
व्यशीर्यत विकीर्णार्चिः शतधा खण्डतां गतम्।
विनाशमगमन्मुक्तं वायुनासुरवक्षसि॥ २०३
ज्वलितं ज्वलनाभासमङ्कुशं कुलिशं यथा।
विनाशमागतं दृष्ट्वा वायुश्चाङ्कुशमाहवे॥ २०४
रुष्टः शैलेन्द्रमुत्पाट्य पुष्पितद्रुमकन्दरम्।
चिक्षेप दानवेन्द्राय पञ्चयोजनविस्तृतम्॥ २०५
महीधरं तमायान्तं दैत्यः स्मितमुखस्तदा।
जग्राह वामहस्तेन बालकन्दुकलीलया॥ २०६
ततो दण्डं समुद्यम्य कृतान्तः क्रोधमूर्च्छितः।
दैत्येन्द्रं मूर्ध्नि चिक्षेप भ्राम्य वेगेन दुर्जयः॥ २०७
सोऽसुरस्यापतन्मूर्ध्नि दैत्यस्तं च न बुद्धवान्।
कल्पान्तदहनालोकामजय्यां ज्वलनस्ततः॥ २०८
शक्तिं चिक्षेप दुर्धर्षां दानवेन्द्राय संयुगे।
नवा शिरीषमालेव सास्य वक्ष्यस्यराजत॥ २०९
ततः खड्गं समाकृष्य कोपादाकाशनिर्मलम्।
भासितासितदिग्भागं लोकपालोऽपि निर्ऋतिः॥ २१०
चिक्षेप दानवेन्द्राय तस्य मूर्ध्नि पपात च।
पतितश्चागमत् खड्गः स शीघ्रं शतखण्डताम्॥ २११
जलेशस्तूग्रदुर्धर्षं विषपावकभैरवम्।
मुमोच पाशं दैत्यस्य भुजबन्धाभिलाषकः॥ २१२
स दैत्यभुजमासाद्य सर्पः सद्यो व्यपद्यत।
स्फुटितक्रकचक्रूरदशनालिर्महाहनुः॥ २१३
ततोऽश्विनौ समरुतः ससाध्याः समहोरगाः।
यक्षराक्षसगन्धर्वा दिव्यनानास्त्रपाणयः॥ २१४
जघ्नुर्दैत्येश्वरं सर्वे सम्भूय सुमहाबलाः।
न चास्त्राण्यस्य सज्जन्त गात्रे वज्राचलोपमे॥ २१५
ततो रथादवप्लुत्य तारको दानवाधिपः।
जघान कोटिशो देवान् करपार्ष्णिभिरेव च॥ २१६

तदुपरान्त महेन्द्रने अपने चिरकालसे अर्चित वज्रको छोड़ा, जिसपर उन्हें इस दानवराजके साथ युद्धमें विजयकी पूरी आशा थी, परंतु वह पराक्रमशाली तारकके शरीरसे टकराकर चिनगारियाँ बिखेरता हुआ सैकड़ों टुकड़ोंमें तितर-बितर हो गया। फिर वायुने उस असुरके वक्षःस्थलपर अग्निके समान तेजस्वी प्रज्वलित अंकुश फेंका, किंतु वह भी वज्रकी ही भाँति विनष्ट हो गया। इस प्रकार युद्धभूमिमें अपने अंकुशको विनष्ट हुआ देखकर वायुने क्रुद्ध हो खिले हुए वृक्षों एवं कन्दराओंसे युक्त एक विशाल पर्वतको उखाड़ लिया, जो पाँच योजनमें विस्तृत था। फिर उसे दानवराजपर फेंक दिया। उस समय उस पर्वतको आते हुए देखकर दैत्यने मुसकराते हुए बालकोंकी गेंदक्रीडाके समान उसे बायें हाथसे पकड़ लिया। तदनन्तर अत्यन्त कुपित हुए दुर्जय यमराजने अपना दण्ड उठाया और उसे वेगपूर्वक घुमाकर दैत्येन्द्रके मस्तकपर फेंक दिया। वह दण्ड असुरके मस्तकपर गिरा तो अवश्य, परंतु दैत्यको उसका कुछ भी ज्ञान न हुआ॥ १९९—२०७ १/२॥

तदुपरान्त अग्निने युद्धभूमिमें दानवेन्द्रपर अपनी शक्ति छोड़ी, जो प्रलयकालीन अग्निके समान तेजस्विनी, अजेय और दुर्धर्ष थी, किंतु वह उसके वक्षःस्थलपर नवीन शिरीष-पुष्पोंकी मालाकी तरह सुशोभित हुई। तत्पश्चात् लोकपाल निर्ऋतिने भी अपने आकाशके समान निर्मल एवं समस्त दिशाओंको उद्भासित करनेवाले खड्गको म्यानसे खींचकर उस दानवेन्द्रपर चला दिया और वह उसके मस्तकपर जा गिरा, परंतु गिरते ही वह खड्ग शीघ्र ही सैकड़ों टुकड़ोंमें चूर-चूर हो गया। इसके बाद वरुणने उस दैत्यकी भुजाओंको बाँध देनेकी अभिलाषासे अपना दुर्धर्ष तथा विष एवं अग्निके समान भयंकर पाश फेंका, किंतु वह सर्प-पाश दैत्यकी भुजापर पहुँचकर तुरंत ही नष्ट हो गया, उसकी आरेके समान क्रूर दन्तपङ्क्ति तथा विशाल ठुड्डी टूट-फूटकर नष्ट हो गयी। तदनन्तर अश्विनीकुमार, मरुद्गण, साध्यगण, बड़े-बड़े नाग, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व—ये सभी महाबली देवगण हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्यास्त्र धारण कर एक साथ उस दैत्यराजपर प्रहार करने लगे, परंतु वज्र एवं पर्वत-सरीखे उसके शरीरपर उन अस्त्रोंका कोई प्रभाव न पड़ा॥ २०८—२१५॥

तत्पश्चात् दानवराज तारकने रथसे कूदकर घूँसों एवं पैरोंकी ठोकरोंसे करोड़ों देवताओंका कचूमर निकाल

हतशेषाणि सैन्यानि देवानां विप्रदुद्रुवुः।
दिशो भीतानि संत्यज्य रणोपकरणानि तु॥ २१७
लोकपालांस्ततो दैत्यो बबन्धेन्द्रमुखान् रणे।
सकेशवान् दृढैः पाशैः पशुमारः पशूनिव॥ २१८
स भूयो रथमास्थाय जगाम स्वकमालयम्।
सिद्धगन्धर्वसंघुष्टविपुलाचलमस्तकम् ॥ २१९
स्तूयमानो दितिसुतैरप्सरोभिर्विनोदितः।
त्रैलोक्यलक्ष्मीस्तद्देशे प्राविशत् स्वपुरं यथा॥ २२०
निषसादासने पद्मरागरत्नविनिर्मिते।
ततः किन्नरगन्धर्वनागनारीविनोदितैः।
क्षणं विनोद्यमानस्तु प्रचलन्मणिकुण्डलः॥ २२१

दिया। मरनेसे बचे हुए देवताओंके सैनिकसमूह भयभीत हो युद्ध-सामग्रियोंका त्याग कर चारों दिशाओंमें भाग खड़े हुए। तब उस दैत्यने रणभूमिमें केशवसहित इन्द्र आदि सभी लोकपालोंको सुदृढ़ पाशसे उसी प्रकार बाँध लिया, जैसे कसाई पशुओंको बाँध लेता है। फिर वह रथपर बैठकर अपने उस निवासस्थानकी ओर चल पड़ा, जो सिद्धों एवं गन्धर्वोंसे सेवित एक विशाल पर्वतके शिखरपर अवस्थित था। उस समय उसके मनोरञ्जनके लिये दैत्यगण एवं अप्सराएँ उसकी स्तुति कर रही थीं। उस देशमें त्रिलोकीकी लक्ष्मी इस प्रकार प्रविष्ट हो रही थी मानो अपने नगरमें जा रही हो। वहाँ पहुँचकर वह पद्मराग मणि एवं रत्नोंसे बने हुए सिंहासनपर विराजमान हुआ। तब किंनर, गन्धर्व और नागोंकी स्त्रियाँ उसका मनोविनोद करने लगीं। मन बहलाते समय उसके मणिनिर्मित कुण्डल झलमला रहे थे॥ २१६—२२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे तारकजयलाभो नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें तारक-जयलाभ नामक एक सौ तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५३॥

एक सौ चौवनवाँ अध्याय

तारकके आदेशसे देवताओंकी बन्धन-मुक्ति, देवताओंका ब्रह्माके पास जाना और अपनी विपत्तिगाथा सुनाना, ब्रह्माद्वारा तारक-वधके उपायका वर्णन, रात्रिदेवीका प्रसङ्ग, उनका पार्वतीरूपमें जन्म, काम-दहन और रतिकी प्रार्थना, पार्वतीकी तपस्या, शिवपार्वती-विवाह तथा पार्वतीका वीरकको पुत्ररूपमें स्वीकार करना*

सूत उवाच

प्रादुरासीत् प्रतीहारः शुभ्रनीलाम्बुजाम्बरः।
स जानुभ्यां महीं गत्वा पिहितास्यः स्वपाणिना॥ १
उवाचानाविलं वाक्यमल्पाक्षरपरिस्फुटम्।
दैत्येन्द्रमर्कवृन्दानां बिभ्रतं भास्वरं वपुः॥ २
कालनेमिः सुरान् बद्ध्वांश्चादाय द्वारि तिष्ठति।
स विज्ञापयति स्थेयं क्व बन्दिभिरिति प्रभो॥ ३

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! तदनन्तर स्वच्छ नीले कमल-सा वस्त्र धारण किये द्वारपाल तारकके सम्मुख उपस्थित हुआ। वह अपने हाथसे मुखको ढके हुए था। उसने घुटनोंके बल पृथ्वीपर माथा टेककर सूर्यसमूहोंके-से उद्दीप्त शरीर धारण करनेवाले दैत्येश्वर तारकसे स्वल्प किंतु स्पष्ट शब्दोंमें निवेदन किया—'प्रभो! कालनेमि देवताओंको बंदी बनाकर साथ लिये हुए द्वारपर खड़ा है। वह पूछ रहा है कि इन बंदियोंको कहाँ रखा जाय।'

* मत्स्यपुराणका यह अध्याय पुराण-साहित्यमें सबसे बड़ा दीखता है। पर ये सभी श्लोक ठीक इसी प्रकार शिवपुराण पार्वतीखण्ड १—१०, स्कन्दपुराण माहेश्वरखण्ड, केदारखण्ड २५—३५, कौमारिकाखण्ड २१—३१, कालिकापुराण ४४—५०, पद्मपुराण सृष्टिखण्ड ३१-३२ आदिमें भी प्राप्त होते हैं।

तन्निशम्याब्रवीद् दैत्यः प्रतीहारस्य भाषितम्।
यथेष्टं स्थीयतामेभिर्गृहं मे भुवनत्रयम्॥ ४

केवलं पाशबन्धेन विमुक्तैरविलम्बितम्।
एवं कृते ततो देवा दूयमानेन चेतसा॥ ५

जग्मुर्जगद्गुरुं द्रष्टुं शरणं कमलोद्भवम्।
निवेदितास्ते शक्राद्याः शिरोभिर्धरणिं गताः।
तुष्टुवुः स्पष्टवर्णार्थैर्वचोभिः कमलासनम्॥ ६

देवा ऊचुः

त्वमोंकारोऽस्यङ्कुराय प्रसूतो
विश्वस्यात्मानन्तभेदस्य पूर्वम्।
सम्भूतस्यानन्तरं सत्त्वमूर्ते
संहारेच्छोस्ते नमो रुद्रमूर्ते॥ ७

व्यक्तिं नीत्वा त्वं वपुः स्वं महिम्ना
तस्मादण्डात् स्वाभिधानादचिन्त्यः।
द्यावापृथ्व्योरूर्ध्वखण्डावराभ्यां
ह्यण्डादस्मात् त्वं विभागं करोषि॥ ८

व्यक्तं मेरौ यज्जनायुस्तवाभू-
देवं विद्मस्त्वत्प्रणीतश्चकास्ति।
व्यक्तं देवाजन्मनः शाश्वतस्य
द्यौस्ते मूर्धा लोचने चन्द्रसूर्यौ॥ ९

व्यालाः केशाः श्रोत्ररन्ध्रा दिशस्ते
पादौ भूमिर्नाभिरन्ध्रे समुद्राः।
मायाकारः कारणं त्वं प्रसिद्धो
वेदैः शान्तो ज्योतिषा त्वं हि युक्तः॥ १०

वेदार्थेषु त्वां विवृण्वन्ति बुध्वा
हृत्पद्मान्तःसंनिविष्टं पुराणम्।
त्वामात्मानं लब्धयोगा गृणन्ति
सांख्यैर्यास्ताः सप्त सूक्ष्माः प्रणीताः॥ ११

तासां हेतुर्याष्टमी चापि गीता
तस्यां तस्यां गीयसे वै त्वमन्तम्।
दृष्ट्वा मूर्तिं स्थूलसूक्ष्मां चकार
देवैर्भावाः कारणैः कैश्चिदुक्ताः॥ १२

द्वारपालके उस कथनको सुनकर दैत्यराजने कहा—'अरे! ये स्वेच्छानुसार कहीं भी स्थित रहें, इन्हें शीघ्र ही केवल बन्धन-मुक्त कर दिया जाय; क्योंकि अब तो तीनों भुवन मेरा गृह है अर्थात् पूरे विश्वपर मेरा ही अधिकार है।' इस प्रकार बन्धन-मुक्त होनेके पश्चात् देवगण दुःखी चित्तसे जगद्गुरु कमलजन्मा ब्रह्माका दर्शन करनेके लिये उनकी शरणमें गये। वहाँ पहुँचकर उन इन्द्र आदि देवताओंने पृथ्वीपर सिर टेककर ब्रह्माको प्रणाम किया और उनसे अपनी करुण-कहानी कह सुनायी। तत्पश्चात् वे स्पष्ट अक्षरों एवं अर्थोंसे युक्त वचनोंद्वारा ब्रह्माकी स्तुति करने लगे॥ १—६॥

देवगण बोले—सत्त्वमूर्ते! आप ओंकारस्वरूप हैं। आप विश्वकी रचनाके लिये प्रकट सर्वप्रथम अङ्कुर हैं और इस अनन्त भेदोंवाले विश्वके आत्मा अर्थात् मूलस्वरूप हैं। रुद्रमूर्ते! अन्तमें इस उत्पन्न हुए विश्वका संहार भी आप ही करते हैं, आपको नमस्कार है। आपका स्वरूप अचिन्त्य है। आप अपनी महिमासे अपने शरीरको अपने ही नामसे युक्त अण्ड अर्थात् ब्रह्माण्डके रूपमें प्रकटकर उसी ब्रह्माण्डसे ऊपर एवं नीचेके दो खण्डोंद्वारा आकाश और पृथ्वीका विभाजन करते हैं। हमलोग स्पष्टरूपसे ऐसा जानते हैं कि मेरुपर्वतपर आपने जो देवादि प्राणियोंकी आयु-सीमा निर्धारित की थी, वही कर्तव्यता आदि आपद्वारा निर्मित विधान अब भी प्रचलित है। देव! यह स्पष्ट है कि आप अजन्मा और अविनाशी हैं। आकाश आपका मस्तक, चन्द्रमा एवं सूर्य आपके नेत्र, सर्प केश, दिशाएँ कानोंके छिद्र, पृथ्वी दोनों चरण और समुद्र नाभिछिद्र हैं। आप मायाके रचयिता तथा जगत्के कारणरूपसे प्रसिद्ध हैं। वेदोंका कहना है कि आप परमज्योतिसे युक्त एवं शान्तस्वरूप हैं॥ ७—१०॥

विद्वान्लोग आपको वेदार्थोंमें खोजते हैं और आपको जानकर अपने हृदयकमलके भीतरी भागमें स्थित पुराणपुरुष बतलाते हैं। योगके ज्ञाता आपको आत्मस्वरूप कहते हैं तथा सांख्यज्ञोंद्वारा जो सात सूक्ष्म मूर्तियाँ निर्मित की गयी हैं तथा उनकी हेतुभूता जो आठवीं कही गयी है, उन सभीके अन्तमें आपकी ही स्थिति मानी गयी है। यह देखकर आपने ही स्थूल एवं सूक्ष्म मूर्तियोंका आविष्कार किया था। किन्हीं अज्ञात कारणवश देवताओंने उन भावोंका वर्णन किया था।

सम्भूतास्ते त्वत्त एवादिसर्गे
भूयस्तां तां वासनां तेऽभ्युपेयुः।
त्वत्संकल्पेनानन्तमायाविमूढः
कालोऽमेयो ध्वस्तसंख्याविकल्पः॥ १३
भावाभावव्यक्तिसंहारहेतु-
स्त्वं सोऽनन्तस्तस्य कर्तासि चात्मन्।
येऽन्ये सूक्ष्माः सन्ति तेभ्योऽभिगीतः
स्थूला भावाश्चावृतारश्च तेषाम्॥ १४
तेभ्यः स्थूलैस्तैः पुराणैः प्रतीतो
भूतं भव्यं चैवमुद्भूतिभाजाम्।
भावे भावे भावितं त्वा युनक्ति
युक्तं युक्तं व्यक्तिभावान्निरस्य।
इत्थं देवो भक्तिभाजां शरण्य-
स्त्राता गोप्ता नो भवानन्तमूर्तिः॥ १५
विरिञ्चिममराः स्तुत्वा ब्रह्माणमविकारिणम्।
तस्थुर्मनोभिरिष्टार्थसम्प्राप्तिप्रार्थनास्ततः ॥ १६
एवं स्तुतो विरिञ्चिस्तु प्रसादं परमं गतः।
अमरान् वरदेनाह वामहस्तेन निर्दिशन्॥ १७

ब्रह्मोवाच

नारीवाभर्तृका कस्मात् तनुस्ते त्यक्तभूषणा।
न राजते तथा शक्र म्लानवक्त्रशिरोरुहा॥ १८
हुताशन विमुक्तोऽपि न धूमेन विराजसे।
भस्मनेव प्रतिच्छन्नो दग्धदावश्चिरोषितः॥ १९
यमामयमये नैव शरीरे त्वं विराजसे।
दण्डस्यालम्बनेनेव ह्यकृच्छ्रस्तु पदे पदे॥ २०
रजनीचरनाथोऽपि किं भीत इव भाषसे।
राक्षसेन्द्र क्षताराते त्वमरातिक्षतो यथा॥ २१
तनुस्ते वरुणोच्छुष्का परीतस्येव वह्निना।
विमुक्तरुधिरं पाशं फणिभिः प्रविलोकयन्॥ २२
वायो भवान् विचेतस्कस्त्वं स्निग्धैरिव निर्जितः।
किं त्वं बिभेषि धनद संन्यस्यैव कुबेरताम्॥ २३
रुद्रास्त्रिशूलिनः सन्तो वदध्वं बहुशूलताम्।
भवन्तः केन तत्क्षिप्तं तेजस्तु भवतामपि॥ २४

वे सभी आदिसृष्टिके समय आपसे ही प्रकट हुए थे और आपके संकल्पके अनुसार उन्हें पुनः वैसी-वैसी वासना प्राप्त हुई थी। आप अनन्त मायाओंद्वारा निगूढ़, अप्रमेय कालस्वरूप एवं कल्पित संख्यासे अतीत हैं। आप भाव और अभावकी उत्पत्ति और संहारके कारण हैं। आत्मस्वरूप भगवन्! आप अनन्त विश्व-ब्रह्माण्डके कर्ता हैं। अन्यान्य जितने सूक्ष्म, स्थूल तथा उनको भी ढकनेवाले अर्थात् उनसे उत्कृष्ट भाव हैं, उनके द्वारा भी आपका गुणगान किया गया है। उनसे बढ़कर जो स्थूल एवं प्राचीन हैं, उनके द्वारा भी आप जाने गये हैं। आप उन्नतिशीलोंके भूत एवं भविष्य-रूप हैं। आप प्रत्येक भावमें अनुप्रविष्ट होकर व्यक्त होते हैं और व्यक्तिभावका निरसन कर उसमें अवस्थित रहते हैं। इस प्रकार अनन्त मूर्ति धारण करनेवाले देवाधिदेव! आप हम भक्तजनोंके लिये शरणदाता, रक्षक और सहायक होइये॥ ११—१५॥

इस प्रकार देवगण अविकारी ब्रह्माकी स्तुति करके मनमें अभीष्ट प्रयोजनकी सिद्धिके लिये प्रार्थना करते हुए खड़े रहे। देवताओंद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर ब्रह्मा परम प्रसन्न हुए और अपने वरदायक बायें हाथसे देवताओंको निर्देश करते हुए बोले॥ १६-१७॥

ब्रह्माजीने कहा—इन्द्र! भूषणोंसे रहित तथा मलिन मुख एवं बालोंसे युक्त तुम्हारा शरीर पतिविहीना स्त्रीकी तरह शोभा नहीं पा रहा है। हुताशन! धूमसे रहित होनेपर भी तुम्हारी शोभा नहीं हो रही है। ऐसा प्रतीत होता है मानो तुम चिरकालसे जलकर शान्त हो गये हो और राखसे ढक गये हो। यमराज! इस रोगी शरीरमें तुम्हारी शोभा नहीं हो रही है। ऐसा ज्ञात होता है, मानो तुम पग-पगपर कठिनाईका अनुभव करते हुए कालदण्डके सहारे चल रहे हो। राक्षसेन्द्र निर्ऋति! तुम राक्षसोंके स्वामी होकर भी भयभीतकी तरह क्यों बोल रहे हो? अरे शत्रुसंहारक! तुम तो शत्रुओंद्वारा घायल किये हुए-से दीख रहे हो। वरुण! तुम्हारा शरीर अग्निसे घिरे हुएकी तरह अत्यन्त शुष्क दीख रहा है। ऐसा लग रहा है मानो सर्पोंने तुम्हारे पाशमेंसे खून उगल दिया है। वायुदेव! तुम स्नेहीजनोंद्वारा पराजित हुएकी तरह अचेत-से दीख रहे हो। कुबेर! तुम अपने यक्षाधिपत्यको त्यागकर क्यों भयभीत हो रहे हो? रुद्रगण! तुमलोग तो त्रिशूलधारी थे, बताओ तो सही, तुम्हारे त्रिशूलकी विशिष्ट क्षमता कहाँ

अकिञ्चित्करतां यातः करस्ते न विभासते।
अलं नीलोत्पलाभेन चक्रेण मधुसूदन॥ २५

किं त्वयानुदरालीनभुवनप्रविलोकनम्।
क्रियते स्तिमिताक्षेण भवता विश्वतोमुख॥ २६

चली गयी? तुमलोगोंके भी उस तेजको किसने नष्ट कर दिया? मधुसूदन! आपका हाथ कर्तव्यहीन हो गया है, जिससे इसकी शोभा नहीं हो रही है। इस नीले कमलकी-सी कान्तिवाले चक्रके धारण करनेसे क्या लाभ? विश्वतोमुख! इस समय आप नेत्र बंद करके अपने उदरमें विलीन हुए भुवनोंका अवलोकन क्यों कर रहे हैं?॥ १८—२६॥

एवमुक्ताः सुरास्तेन ब्रह्मणा ब्रह्ममूर्तिना।
वाचां प्रधानभूतत्वान्मारुतं तमचोदयन्॥ २७
अथ विष्णुमुखैर्देवैः श्वसनः प्रतिबोधितः।
चतुर्मुखं तदा प्राह चराचरगुरुं विभुम्॥ २८

उन वेदमूर्ति ब्रह्माद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर देवताओंने वाणी-शक्तिके मुख्य कारण वायुको प्रेरित किया। उस समय विष्णु आदि देवताओंने वायुको भलीभाँति समझा दिया, तब वे ऐश्वर्यशाली एवं चराचर प्राणियोंके गुरु ब्रह्मासे बोले—॥ २७-२८॥

न तु वेत्सि चराचरभूतगतं
भवभावमतीव महानुच्छ्रितः प्रभवः।
पुनरर्थिवचोऽभिविस्तृत-
श्रवणोपमकौतुकभावकृतः ॥ २९
त्वमनन्त करोषि जगद्भवतां
सचराचरगर्भविभिन्नगुणाम्।
अमरासुरमेतदशेषमपि
त्वयि तुल्यमहो जनकोऽसि यतः।
पितुरस्ति तथापि मनोविकृतिः
सगुणो विगुणो बलवानबलः॥ ३०
भवतो वरलाभनिवृत्तभयः
कुलिशाङ्गसुतो दितिजोऽतिबलः।
सचराचर निर्मथने किमिति
कितवस्तु कृतो विहितो भवता॥ ३१
किल देव त्वया स्थितये जगतां
महदद्भुतचित्रविचित्रगुणाः ।
अपि तुष्टिकृतः श्रुतकामफला
विहिता द्विजनायक देवगणाः॥ ३२
अपि नाकमभूत् किल यज्ञभुजां
भवतो विनियोगवशात् सततम्।
अपहृत्य विमानगणं स कृतो
दितिजेन महामरुभूमिसमः॥ ३३

'भगवन्! चराचर प्राणियोंके मनोंमें उत्पन्न हुए भावोंको आप न जानते हों—ऐसी बात नहीं है। आप अत्यन्त महान्, सर्वोपरि और जगत्के उत्पत्तिस्थान हैं। यह तो आपने केवल याचकोंके वचनोंको विस्तारपूर्वक सुननेके लिये कुतूहलका भाव प्रकट किया है। अनन्त! आप चराचर प्राणियोंसे युक्त विभिन्न गुणवाली विश्व-सृष्टि करते हैं। यद्यपि ये सम्पूर्ण देवता और असुर आपकी दृष्टिमें एक-से हैं; क्योंकि आप ही सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, तथापि पिताके मनमें भी पुत्रोंके सगुण-निर्गुण एवं सबल-निर्बलरूप पक्षको लेकर अन्तर रहता ही है। आपसे वरदान प्राप्त कर निर्भय हुआ वज्राङ्गका पुत्र महाबली धूर्त दैत्य तारक चराचर जगत्का नाश करनेके लिये क्या कर रहा है, यह आपको (भलीभाँति) विदित है। देव! क्या आपने जगत्की स्थितिके लिये महान् एवं अद्भुत चित्र-विचित्र गुणोंसे युक्त, संतुष्ट करनेवाले एवं वाञ्छित अभिलाषाओंकी पूर्ति करनेवाले देवगणोंकी सृष्टि नहीं की थी? द्विजनायक! क्या आपके आदेशानुसार स्वर्गलोक सदा यज्ञभोजी देवताओंके अधिकारमें नहीं रहता आया है, किंतु उस दैत्यने विमानसमूहोंको छीनकर उसे महान् मरुस्थल-सा बना दिया है॥ २९—३३॥

कृतवानसि सर्वगुणातिशयं
यमशेषमहीधरराजतया ।
सममिङ्गितभावविधिः स गिरि-
र्गगनेन सदोच्छ्रयतां हि गतः॥ ३४

अधिवासविहारविधावुचितो
दितिजेन पविक्षतशृङ्गतटः ।
परिलुण्ठितरत्नगुहानिवहो
बहुदैत्यसमाश्रयतां गमितः॥ ३५

सुरराज स तस्य भयेन गतं
व्यदधादशरीर इतोऽपि वृथा।
उपयोग्यतया विवृतं सुचिरं
विमलद्युतिपूरितदिग्वदनम् ॥ ३६

भवतैव विनिर्मितमादियुगे
सुरहेतिसमूहमकुण्ठमिदम् ।
दितिजस्य शरीरमवाप्य गतं
शतधा मतिभेदमिवाल्पमनाः॥ ३७

आसारधूलिध्वस्ताङ्गा द्वारस्थाः स्मः कदर्थिनः।
लब्धप्रवेशाः कृच्छ्रेण वयं तस्यामरद्विषः॥ ३८

सभायाममरा देव निकृष्टेऽप्युपवेशिताः।
वेत्रहस्तैरजल्पन्तस्ततोऽपहसितास्तु तैः॥ ३९

महार्याः सिद्धसर्वार्था भवन्तः स्वल्पभाषिणः।
चाटुयुक्तमथो कर्म ह्यमरा बहुभाषत॥ ४०

सभेयं दैत्यसिंहस्य न शक्रस्य विसंस्थुला।
वदतेति च दैत्यस्य प्रेष्यैर्विहसिता बहु॥ ४१

ऋतवो मूर्तिमन्तस्तमुपासन्ते ह्यहर्निशम्।
कृतापराधसंत्रासं न त्यजन्ति कदाचन॥ ४२

तन्त्रीत्रयलयोपेतं सिद्धगन्धर्वकिन्नरैः।
सुरागमुपधा नित्यं गीयते तस्य वेश्मसु॥ ४३

जिस हिमालयको समस्त पर्वतोंका राजा होनेके कारण आपने सर्वगुण-सम्पन्न बनाया, जो ऊँचाईमें आकाशतक व्याप्त था और संकेतानुसार चलनेवाला था, उसके शिखरके तटप्रान्तको उस दैत्यने वज्रसे तोड़-फोड़कर अपने निवास और विहारके उपयुक्त बना लिया है। उसकी गुफाओंके रत्न लूट लिये गये और अब वह बहुत-से दैत्योंका निवासस्थान बन गया है। उस दैत्यके भयसे वह शरीरहीन होनेपर भी इससे भी बढ़कर बुरे कामोंमें लगाया जा रहा है। सुरराज! कृतयुगके आदिमें आपने ही देवताओंके लिये उपयोगी समझकर जिन विशाल, चिरस्थायी, अपनी निर्मल कान्तिसे दिशाओंको उद्भासित करनेवाले एवं अप्रतिहत अस्त्रसमूहोंका निर्माण किया था, वे अस्त्र भी उस दैत्यके शरीरपर गिरकर कायरकी बुद्धि-भिन्नताकी तरह सैकड़ों टुकड़ोंमें टूट-टूट कर चूर हो गये॥ ३४—३७॥

देवेश! (इतना ही नहीं) उस देवद्रोहीके द्वारपर कीचड़ और धूलिसे भरे हुए अङ्गवाले हमलोग तिरस्कार-पूर्वक बैठाये गये थे और बड़ी कठिनाईसे हमलोगोंको उसकी सभामें प्रवेश करनेका अवसर मिला था। उस सभामें भी देवगण निकृष्ट आसनोंपर बैठाये गये थे। वहाँ यद्यपि हमलोग कुछ बोल नहीं रहे थे, तथापि उसके बेंतधारी भृत्योंद्वारा हमलोगोंका उपहास किया जा रहा था। वे कह रहे थे—'देवगण! आपलोग बड़े सम्मानित एवं सभी प्रयोजनोंको सिद्ध करनेवाले हैं, इसीलिये थोड़ा बोलते हैं न?' उनकी इन व्यङ्ग्यपूर्ण बातोंका उत्तर भी देवगण अनेक प्रकारकी चाटुताभरी बातोंद्वारा देते थे। 'यह दैत्यसिंह तारककी सभा है, इन्द्रकी लड़खड़ानेवाली सभा नहीं है, बोलो, बोलो।' इस प्रकार उस दैत्यके परिचारकोंद्वारा हमलोगोंकी बहुत हँसी उड़ायी गयी है। वहाँ छहों ऋतुएँ शरीर धारणकर रात-दिन उसकी सेवामें लगी हैं। वे कोई अपराध न हो जाय—इस भयसे उसे कभी नहीं छोड़तीं। सिद्ध, गन्धर्व और किंनर उसके महलोंमें निष्कपटरूपसे नित्य वीणापर तीनों लयोंसमेत सुन्दर राग अलापते रहते हैं।

हन्ताकृतोपकरणैर्मित्रारिगुरुलाघवैः ।
शरणागतसंत्यागी त्यक्तसत्यपरिश्रयः ॥ ४४
इति निःशेषमथवा निःशेषं वै न शक्यते।
तस्याविनयमाख्यातुं स्रष्टा तत्र परायणम्॥ ४५
इत्युक्तः स्वात्मभूर्देवः सुरैर्दैत्यविचेष्टितम्।
सुरानुवाच भगवांस्ततः स्मितमुखाम्बुजः॥ ४६

उस दैत्यका मित्र और शत्रुके प्रति भी बड़े-छोटेका विचार नहीं रह गया है। वह शरणमें आये हुएका भी त्याग कर देता है और सत्यका तो उसने व्यवहार ही छोड़ दिया है। यही सब उसकी बुराइयाँ हैं अथवा उसकी उद्दण्डता तो पूर्णरूपसे कही ही नहीं जा सकती। उसे तो ब्रह्मा ही जानें। इस प्रकार देवताओंद्वारा उस दैत्यकी कृतियोंका वर्णन किये जानेपर देवाधिदेव भगवान् ब्रह्माके मुखकमलपर मुसकराहट आ गयी, तब वे देवताओंसे बोले— ॥ ३८—४६ ॥

ब्रह्मोवाच

अवध्यस्तारको दैत्यः सर्वैरपि सुरासुरैः।
यस्य वध्यः स नाद्यापि जातस्त्रिभुवने पुमान्॥ ४७
मया स वरदानेन च्छन्दयित्वा निवारितः।
तपसः साम्प्रतं राजा त्रैलोक्यदहनात्मकात्॥ ४८
स च वव्रे वधं दैत्यः शिशुतः सप्तवासरात् ।
स सप्तदिवसो बालः शंकराद् यो भविष्यति॥ ४९
तारकस्य निहन्ता स भास्कराभो भविष्यति।
साम्प्रतं चाप्यपत्नीकः शंकरो भगवान् प्रभुः॥ ५०
यच्चाहमुक्तवान् यस्या ह्युत्तानकरता सदा।
उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु॥ ५१
हिमाचलस्य दुहिता सा तु देवी भविष्यति।
तस्याः सकाशाद् यः शर्वस्त्वरण्यां पावको यथा॥ ५२
जनयिष्यति तं प्राप्य तारकोऽभिभविष्यति।
मयाप्युपायः स कृतो यथैवं हि भविष्यति॥ ५३
शेषश्चाप्यस्य विभवो विनश्येत् तदनन्तरम्।
स्तोककालं प्रतीक्षध्वं निर्विशङ्केन चेतसा॥ ५४

ब्रह्माजीने कहा—देवगण! दैत्यराज तारक सभी देवताओं एवं राक्षसोंद्वारा अवध्य है। जो उसका वध कर सकता है, वह पुरुष अभी त्रिभुवनमें उत्पन्न ही नहीं हुआ है। मैंने ही उस दैत्यराजको वरदान देकर त्रिलोकीको भस्म करनेवाले उस तपसे निवारण किया था। उस समय उस दैत्यने सात दिनके बालकद्वारा अपनी मृत्युका वरदान माँगा था। वह सप्तदिवसीय बालक जो शंकरजीसे उत्पन्न होगा, सूर्यके समान तेजस्वी होगा। वही तारकका वध करनेवाला होगा, किंतु इस समय सामर्थ्यशाली भगवान् शंकर पत्नी-रहित हैं। इसके लिये मैंने पहले जिस देवीके विषयमें उत्तानकरताकी बात कही थी, वही देवी हिमाचलकी कन्याके रूपमें प्रकट होगी। उस देवीका वह वरदायक हाथ सदा उत्तान ही रहेगा। उस देवीके सम्पर्कसे शंकरजी अरणीमें अग्निकी तरह जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगे, उसे सम्मुख पाकर तारक पराजित हो जायगा। मैंने भी पहलेसे ही वैसा उपाय कर रखा है, जिससे यह सब वैसा ही होगा। तदनन्तर उसका यह सारा वैभव नष्ट हो जायगा। तुमलोग निःशङ्क चित्तसे थोड़े-से कालकी और प्रतीक्षा करो॥ ४७—५४॥

इत्युक्तास्त्रिदशास्तेन साक्षात्कमलजन्मना।
जग्मुस्तं प्रणिपत्येशं यथायोग्यं दिवौकसः॥ ५५
ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मा लोकपितामहः।
निशां सस्मार भगवान् स्वतनोः पूर्वसम्भवाम्॥ ५६
ततो भगवती रात्रिरुपतस्थे पितामहम्।
तां विविक्ते समालोक्य ब्रह्मोवाच विभावरीम्॥ ५७

कमलजन्मा साक्षात् ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर स्वर्गवासी देवगण उन देवेश्वरको प्रणाम करके अपने-अपने स्थानको चले गये। तदनन्तर देवताओंके चले जानेपर लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने जिसे पहले अपने शरीरसे उत्पन्न किया था, उस निशाका स्मरण किया। तब भगवती रात्रिदेवी पितामहके निकट उपस्थित हुई। उस विभावरी (रात्रि)-को एकान्तमें उपस्थित देखकर ब्रह्मा बोले॥ ५५—५७॥

ब्रह्मोवाच

विभावरि महत्कार्यं विबुधानामुपस्थितम्।
तत्कर्तव्यं त्वया देवि शृणु कार्यस्य निश्चयम्॥ ५८

तारको नाम दैत्येन्द्रः सुरकेतुरनिर्जितः।
तस्याभावाय भगवाञ्जनयिष्यति चेश्वरः॥ ५९

सुतं स भविता तस्य तारकस्यान्तकारकः।
शंकरस्याभवत् पत्नी सती दक्षसुता तु या॥ ६०

सा मृता कुपिता देवी कस्मिंश्चित्कारणान्तरे।
भविता हिमशैलस्य दुहिता लोकभाविनी॥ ६१

विरहेण हरस्तस्या मत्वा शून्यं जगत्त्रयम्।
तपस्यन् हिमशैलस्य कन्दरे सिद्धसेविते॥ ६२

प्रतीक्षमाणस्तज्जन्म कञ्चित् कालं निवत्स्यति।
तयोः सुतप्ततपसोर्भविता यो महाबलः॥ ६३

स भविष्यति दैत्यस्य तारकस्य विनाशकः।
जातमात्रा तु सा देवी स्वल्पसंज्ञा च भामिनी॥ ६४

विरहोत्कण्ठिता गाढं हरसङ्गमलालसा।
तयोः सुतप्ततपसोः संयोगः स्याच्छुभानने॥ ६५

ततस्ताभ्यां तु जनितः स्वल्पो वाक्कलहो भवेत्।
ततोऽपि संशयो भूयस्तारकं प्रति दृश्यते॥ ६६

तयोः संयुक्तयोस्तस्मात् सुरतासक्तिकारणे।
विघ्नस्त्वया विधातव्यो यथा ताभ्यां तथा शृणु॥ ६७

गर्भस्थाने च तन्मातुः स्वेन रूपेण रञ्जय।
ततो विहाय शर्वस्तां विश्रान्तो नर्मपूर्वकम्॥ ६८

भर्त्सयिष्यति तां देवीं ततः सा कुपिता सती।
प्रयास्यति तपश्चर्तुं तत्तस्मात् तपसे पुनः॥ ६९

जनयिष्यति यः शर्वादमितद्युतिमण्डितम्।
स भविष्यति हन्ता वै सुरारीणामसंशयम्॥ ७०

त्वयापि दानवा देवि हन्तव्या लोकदुर्जयाः।
यावच्च न सती देहसंक्रान्तगुणसञ्चया॥ ७१

ब्रह्माजीने कहा—विभावरि (रात्रिदेवी)!* इस समय देवताओंका एक बहुत बड़ा कार्य आ उपस्थित हुआ है। देवि! उसे तुम्हें अवश्य पूरा करना है। अब उस कार्यका निर्णय सुनो। दैत्यराज तारक देवताओंका कट्टर शत्रु है, वह अजेय है। उसका विनाश करनेके लिये भगवान् शंकर जिस पुत्रको उत्पन्न करेंगे, वही उस तारकका वध करनेवाला होगा। उधर शंकरजीकी पत्नी जो दक्षपुत्री सती थी, वह देवी किसी कारणवश कुपित होकर शरीरको भस्म कर चुकी है। वही लोकसुन्दरी देवी हिमाचलकी कन्याके रूपमें प्रकट होगी। भगवान् शंकर उसके वियोगसे तीनों लोकोंको शून्य समझकर हिमाचलकी सिद्धोंद्वारा सेवित कन्दरामें तपस्या कर रहे हैं। वे उस देवीके जन्मकी प्रतीक्षा करते हुए वहाँ कुछ कालतक निवास करेंगे। उत्कृष्ट तप करनेवाले उन दोनों (शिव-पार्वती)-से जो महाबली पुत्र उत्पन्न होगा, वही तारक दैत्यका विनाशक होगा। शुभानने! वह सुन्दरी देवी जन्म लेनेके पश्चात् थोड़ा होश सँभालनेपर जब विरहसे उत्कण्ठित होकर गाढ़ रूपसे शंकरजीके समागमकी लालसासे युक्त हो जायगी तब उन दोनों घोर तपस्वियोंका संयोग होगा। उस समय उन दोनोंमें थोड़ा वाक्-कलह भी हो जायगा जिससे तारकके विनाशके प्रति पुनः संशय दिखायी पड़ने लगेगा, अतः उन दोनोंके संयुक्त होनेपर सुरतकी आसक्तिके अवसरपर तुम्हें जैसा विघ्न उपस्थित करना होगा, उसे भी सुन लो॥ ५८—६७॥

उस समय तुम उसकी माताके गर्भस्थानमें प्रवेश करके उसपर अपने रूपकी छाप डाल दो। तब शंकरजी उसे छोड़कर विश्राम करने लगेंगे और परिहासमें उस देवीकी भर्त्सना करेंगे जिससे कुपित होकर वह पुनः तपस्या करनेके लिये चली जायगी। पुनः उस तपस्यासे लौटनेपर वह शंकरजीके सम्पर्कसे जिस उत्कृष्ट कान्तिसे सुशोभित पुत्रको उत्पन्न करेगी, वह निःसंदेह देव-शत्रुओंका संहारक होगा। देवि! तुम्हें भी इन लोकदुर्जय दानवोंका संहार करना चाहिये, किंतु जबतक तुम सतीके समागमसे उसके शरीरसे संक्रमित हुए गुणसमूहोंसे युक्त नहीं हो जाओगी,

* इन मूल श्लोकोंका ऋग्वेद, अथर्ववेद एवं आथर्वणपरिशिष्टप्रोक्त रात्रिसूक्तादिसे घनिष्ठ सम्बन्ध है। पूर्ण जानकारीके लिये यहाँका भी अर्थ ध्येय है। ये श्लोक बृहद्धर्मपुराणमें भी हैं।

तत्सङ्गमेन तावत् त्वं दैत्यान् हन्तुं न शक्ष्यसे।
एवं कृते तपस्तप्त्वा सृष्टिसंहारकारिणी॥ ७२
समाप्तनियमा देवी यदा चोमा भविष्यति।
तदा स्वमेव तद्रूपं शैलजा प्रतिपत्स्यते॥ ७३
तनुस्तवापि सहजा सैकानंशा भविष्यति।
रूपांशेन तु संयुक्ता त्वमुमायां भविष्यसि॥ ७४
एकानंशेति लोकस्त्वां वरदे पूजयिष्यति।
भेदैर्बहुविधाकारैः सर्वगा कामसाधिनी॥ ७५

तबतक दैत्योंका संहार करनेमें समर्थ नहीं हो सकोगी। ऐसा करनेपर जब सृष्टिका संहार करनेवाली वह देवी तपस्या करनेके पश्चात् नियमोंको समाप्त कर उमारूपसे प्रकट होगी, तब पार्वती अपने उसी रूपको प्राप्त करेंगी। साथ ही तुम्हारा जो यह प्राकृतिक शरीर है, वह भी एकानंशा नामसे प्रसिद्ध होगा और तुम उमाके रूपके अंशसे युक्त होकर उमासे प्रकट होओगी। वरदायिनि! संसार 'एकानंशा' नामसे तुम्हारी पूजा करेगा। तुम अनेकों प्रकारके भेदोंद्वारा सर्वगामिनी एवं कामनाओंको सिद्ध करनेवाली होओगी॥ ६८—७५॥

ओंकारवक्त्रा गायत्री त्वमिति ब्रह्मवादिभिः।
आक्रान्तिरूर्जिताकारा राजभिश्च महाभुजैः॥ ७६
त्वं भूरिति विशां माता शूद्रैः शैवीति पूजिता।
क्षान्तिर्मुनीनामक्षोभ्या दया नियमिनामिति॥ ७७
त्वं महोपायसंदोहा नीतिर्नयविसर्पणाम्।
परिच्छित्तिस्त्वमर्थानां त्वमीहा प्राणिहृच्छया॥ ७८
त्वं मुक्तिः सर्वभूतानां त्वं गतिः सर्वदेहिनाम्।
त्वं च कीर्तिमतां कीर्तिस्त्वं मूर्तिः सर्वदेहिनाम्॥ ७९
रतिस्त्वं रक्तचित्तानां प्रीतिस्त्वं हृष्टदर्शिनाम्।
त्वं कान्तिः कृतभूषाणां त्वं शान्तिर्दुःखकर्मणाम्॥ ८०
त्वं भ्रान्तिः सर्वभूतानां त्वं गतिः क्रतुयाजिनाम्।
जलधीनां महावेला त्वं च लीला विलासिनाम्॥ ८१
सम्भूतिस्त्वं पदार्थानां स्थितिस्त्वं लोकपालिनी।
त्वं कालरात्रिर्निःशेषभुवनावलिनाशिनी॥ ८२
प्रियकण्ठग्रहानन्ददायिनी त्वं विभावरी।
इत्यनेकविधैर्देवि रूपैर्लोके त्वमर्चिता॥ ८३
ये त्वां स्तोष्यन्ति वरदे पूजयिष्यन्ति वापि ये।
ते सर्वकामानाप्स्यन्ति नियता नात्र संशयः॥ ८४

इसी प्रकार ब्रह्मवादी विप्रगण तुम्हें ओंकाररूप मुखवाली गायत्री और महाबाहु नृपतिवृन्द उन्नतिशीला शक्ति कहेंगे। तुम पृथ्वीरूपसे वैश्योंकी माता कहलाओगी और शूद्र 'शैवी' कहकर तुम्हारी पूजा करेंगे। तुम मुनियोंकी क्षुब्ध न की जा सकनेवाली क्षमा, नियमधारियोंकी दया, नीतिज्ञोंकी महान् उपायोंसे परिपूर्ण नीति, अर्थ-साधनाकी सीमा, समस्त प्राणियोंके हृदयमें निवास करनेवाली इच्छा, समस्त प्राणियोंकी मुक्ति, सम्पूर्ण देहधारियोंकी गति, कीर्तिमान् जनोंकी कीर्ति, अखिल देहधारियोंकी मूर्ति, अनुरागी-जनोंकी रति, हर्षसे परिपूर्ण लोगोंकी प्रीति (प्रसन्नता), शृङ्गारसे सुसज्जित प्राणियोंकी कान्ति (शोभा), दुःखीजनोंके लिये शान्तिरूपा, निखिल प्राणियोंकी भ्रान्ति, यज्ञानुष्ठान करनेवालोंकी गति, समुद्रोंकी विशाल वेला (तट), विलासियोंकी लीला, पदार्थोंकी सम्भूति (उत्पत्तिस्थान), लोकोंका पालन करनेवाली स्थिति, सम्पूर्ण भुवनसमूहोंको नाश करनेवाली कालरात्रि तथा प्रियतमके गलेसे लगनेपर उत्पन्न हुए आनन्दको देनेवाली रात्रिके रूपमें सम्मानित होओगी। देवि! इस प्रकार तुम संसारमें अनेक प्रकारके रूपोंद्वारा पूजित होओगी। वरदे! जो लोग नियमपूर्वक तुम्हारा स्तवन-पूजन करेंगे, वे सभी मनोरथोंको प्राप्त कर लेंगे, इसमें तनिक भी संशय नहीं है॥ ७६—८४॥

इत्युक्ता तु निशा देवी तथेत्युक्त्वा कृताञ्जलिः।
जगाम त्वरिता तूर्णं गृहं हिमगिरेः परम्॥ ८५

ब्रह्माद्वारा इस प्रकार आदेश दिये जानेपर विभावरी (रात्रि) देवी हाथ जोड़कर 'अच्छा, ऐसा ही करूँगी' यों कहकर तुरंत ही बड़े वेगसे हिमाचलके उस सुन्दर भवनकी ओर प्रस्थित हुई।

तत्रासीनां महाहर्म्ये रत्नभित्तिसमाश्रयाम्।
ददर्श मेनामापाण्डुच्छविवक्त्रसरोरुहाम्॥ ८६

वहाँ पहुँचकर उसने एक विशाल अट्टालिकापर रत्ननिर्मित दीवालके सहारे बैठी हुई मेनाको देखा। उस समय उनके मुखकमलकी कान्ति कुछ पीली पड़ गयी थी।

किंचिच्छ्यामामुखोदग्रस्तनभारावनामिताम्।
महौषधिगणाबद्धमन्त्रराजनिषेविताम्॥ ८७

वे कुछ काले रंगवाले चूचुकोंसे युक्त स्तनके भारसे झुकी हुई थीं। उनके गलेमें जीव-

उद्वहन् कनकोन्नद्धजीवरक्षामहोरगाम्।
मणिदीपगणज्योतिर्महालोकप्रकाशिते ॥ ८८

प्रकीर्णबहुसिद्धार्थे मनोजपरिवारके।
शुचि न्यंशुकसंछन्नभूशय्यास्तरणोज्ज्वले॥ ८९

धूपामोदमनोरम्ये सर्जगन्धोपयोगिके।
ततः क्रमेण दिवसे गते दूरं विभावरी॥ ९०

व्यजृम्भत सुखोदर्के ततो मेनामहागृहे।
प्रसुप्तप्रायपुरुषे निद्राभूतोपचारिके॥ ९१

स्फुटालोके शशभृति भ्रान्तिरात्रिविहङ्गमे।
रजनीचरभूतानां सङ्घैरावृतचत्वरे॥ ९२

गाढकण्ठग्रहालग्नसुभगेष्टजने ततः।
किंचिदाकुलताप्राप्ते मेनानेत्राम्बुजद्वये॥ ९३

आविवेश मुखे रात्रिः सुचिरस्फुटसंगमा।
जन्मदाया जगन्मातुः क्रमेण जठरान्तरे॥ ९४

आविवेशान्तरं जन्म मन्यमाना क्षपा तु वै।
अरञ्जयच्छविं देव्या गुहारण्ये विभावरी॥ ९५

ततो जगत्परित्राणहेतुर्हिमगिरिप्रिया।
ब्राह्मे मुहूर्ते सुभगे व्यसूयत गुहारणिम्॥ ९६
तस्यां तु जायमानायां जन्तवः स्थाणुजङ्गमाः।
अभवन् सुखिनः सर्वे सर्वलोकनिवासिनः॥ ९७
नारकाणामपि तदा सुखं स्वर्गसमं महत्।
अभवत् क्रूरसत्त्वानां चेतः शान्तं च देहिनाम्॥ ९८
ज्योतिषामपि तेजस्त्वमभवत् सुरतोन्नता।
वनाश्रिताश्चौषधयः स्वादुवन्ति फलानि च॥ ९९
गन्धवन्ति च माल्यानि विमलं च नभोऽभवत्।
मारुतश्च सुखस्पर्शो दिशश्च सुमनोहराः॥ १००
तेन चोद्भूतफलितपरिपाकगुणोज्ज्वलाः।
अभवत् पृथिवी देवी शालिमालाकुलापि च॥ १०१

रक्षाके निमित्त एक स्वर्णनिर्मित विशाल सर्पके-से आकारवाली माला लटक रही थी, जिसमें महौषधियोंके समूह और अभिमन्त्रित मन्त्रराज बँधे हुए थे। उनका वह महल मणिनिर्मित दीपसमूहोंकी ज्योतिके उत्कट प्रकाशसे उद्भासित था। वहाँ प्रयोजन-सिद्धिके लिये बहुत-से पदार्थ रखे हुए थे, जिससे वह कामदेवके परिवार-जैसा लग रहा था। वहाँ भूतलपर शय्या बिछी थी, जिसपर शुद्ध एवं श्वेत रेशमी चद्दर बिछी हुई थी तथा सर्जकी गन्धके समान मनको लुभानेवाले धूपकी सुगन्ध फैल रही थी। तदनन्तर क्रमशः दिनके व्यतीत होनेपर विभावरी मेनाके उस सुखमय विशाल गृहमें अपना प्रसार करने लगी। तत्पश्चात् जब शयनके लिये बिछी हुई शय्याओंपर पुरुषगण प्रायः कुछ निद्रामग्न-से होने लगे, चाँदनी स्पष्टरूपसे बिखर गयी, रात्रिमें विचरनेवाले पक्षी निर्भय होकर इधर-उधर घूमने लगे, चबूतरों (चौराहों)-पर राक्षसों और भूत-प्रेतोंका जमघट लग गया, पति-पत्नी गाढ़रूपसे गले लगकर नींदके वशीभूत हो गये, तब मेनाके भी दोनों नेत्रकमल नींदसे कुछ व्याकुल हो गये। ऐसा अवसर पाकर चिरकालसे स्पष्टरूपसे संगमकी इच्छा रखनेवाली रात्रि देवी जगन्माता पार्वतीकी जन्मदायिनी मेनाके मुखमें प्रवेश कर गयी और उसने क्रमशः सारे उदरपर अधिकार जमा लिया। अपने प्रवेशके अनन्तर देवीका जन्म मानती हुई विभावरी रात्रिने जंगली गुफाकी तरह उस उदरमें देवीकी कान्तिको अपने रंगसे रँग दिया॥ ८५—९५॥

तदनन्तर जगत्के परिरक्षणकी हेतुभूता हिमाचलप्रिया मेनाने सुन्दर ब्राह्ममुहूर्तमें स्कन्दकी माता पार्वतीको जन्म दिया। पार्वतीके उत्पन्न होनेपर सम्पूर्ण लोकोंके निवासी एवं सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी सुखी हो गये। उस समय नरक-निवासियोंको भी स्वर्गके समान महान् सुखका अनुभव हुआ। क्रूर स्वभाववाले प्राणियोंका चित्त शान्त हो गया। ज्योतिर्गणोंका तेज बढ़ गया। देवसमूहोंकी उन्नति हुई। जंगली ओषधियाँ विकसित हो गयीं और फल स्वादिष्ट हो गये। पुष्पोंमें सुगन्ध बढ़ गयी और आकाश निर्मल हो गया। सुखस्पर्शी शीतल, मंद, सुगन्ध वायु चलने लगी। दिशाएँ अत्यन्त मनोहारिणी हो गयीं। वे कुछ उत्पन्न हुए, कुछ फले हुए और कुछ पके हुए पदार्थोंके गुणोंसे युक्त होनेके कारण चमक रही थीं। पृथ्वीदेवी भी धान्यसमूहोंसे व्याप्त हो गयी।

तपांसि दीर्घचीर्णानि मुनीनां भावितात्मनाम्।
तस्मिन् गतानि साफल्यं काले निर्मलचेतसाम्॥ १०२
विस्मृतानि च शस्त्राणि प्रादुर्भावं प्रपेदिरे।
प्रभावस्तीर्थमुख्यानां तदा पुण्यतमोऽभवत्॥ १०३
अन्तरिक्षे सुराश्चासन् विमानेषु सहस्रशः।
समहेन्द्रहरिब्रह्मवायुवह्निपुरोगमाः ॥ १०४
पुष्पवृष्टिं प्रमुमुचुस्तस्मिंस्तु हिमभूधरे।
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ १०५

निर्मल-चित्त एवं शुद्धात्मा मुनियोंकी दीर्घकालसे चली आती हुई तपस्याएँ उस समय सफल हो गयीं। भूले हुए शस्त्र पुनः प्रकट होने लगे। प्रधान-प्रधान तीर्थोंका प्रभाव परम पुण्यमय हो गया। उस समय महेन्द्र, विष्णु, ब्रह्मा, वायु, अग्नि आदि हजारों देवता विमानोंपर चढ़कर आकाशमें उपस्थित थे। वे उस हिमाचलपर पुष्पोंकी वर्षा करने लगे, प्रधान-प्रधान गन्धर्व गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं॥ ९६—१०५॥

मेरुप्रभृतयश्चापि मूर्तिमन्तो महाबलाः।
तस्मिन्महोत्सवे प्राप्ते दिव्यप्रभृतपाणयः॥ १०६
सरितः सागराश्चैव समाजग्मुश्च सर्वशः।
हिमशैलोऽभवल्लोके तथा सर्वैश्चराचरैः॥ १०७
सेव्यश्चाप्यभिगम्यश्च स श्रेयांश्चाचलोत्तमः।
अनुभूयोत्सवं देवा जग्मुः स्वानालयान्मुदा॥ १०८
देवगन्धर्वनागेन्द्रशैलशीलावनीगुणैः ।
हिमशैलसुता देवी स्वयंपूर्विकया ततः॥ १०९
क्रमेण वृद्धिमानीता लक्ष्मीवानलसैर्बुधैः।
क्रमेण रूपसौभाग्यप्रबोधैर्भुवनत्रयम्॥ ११०
अजयद् भूषयच्चापि निःसाधारैर्नगात्मजा।
एतस्मिन्नन्तरे शक्रो नारदं देवसम्मतम्॥ १११
देवर्षिमथ सस्मार कार्यसाधनसत्वरम्।
स्मृतिं शक्रस्य विज्ञाय जातां तु भगवांस्तदा॥ ११२
आजगाम मुदा युक्तो महेन्द्रस्य निवेशनम्।
तं स दृष्ट्वा सहस्राक्षः समुत्थाय महासनात्॥ ११३
यथार्हेण तु पाद्येन पूजयामास वासवः।
शक्रप्रणीतां तां पूजां प्रतिगृह्य यथाविधि॥ ११४
नारदः कुशलं देवमपृच्छत पाकशासनम्।
पृष्टे च कुशले शक्रः प्रोवाच वचनं प्रभुः॥ ११५

उस महोत्सवके अवसरपर महाबली सुमेरु आदि पर्वत शरीर धारणकर और हाथमें (उपहारके लिये) दिव्य पदार्थ लिये हुए तथा नदियों और सागरोंके दल सब ओरसे उपस्थित हुए। उस समय हिमाचल जगत्में सभी चराचर प्राणियोंद्वारा सेव्य तथा अभिगमन करने योग्य बन गये। वे श्रेष्ठ पर्वतके रूपमें मङ्गलरूप हो गये। तत्पश्चात् देवगण उस उत्सवका आनन्द लेकर हर्षपूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये। इधर हिमाचलकन्या पार्वतीदेवी आलस्यरहित एवं बुद्धिमान् पुरुषोंकी लक्ष्मीकी भाँति क्रमशः दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगीं। पार्वतीने अपने देव, गन्धर्व, नागेन्द्र, पर्वत और पृथ्वीके शीलस्वभावसे युक्त गुणों तथा रूप, सौभाग्य और ज्ञानद्वारा क्रमशः तीनों लोकोंको जीत लिया और असाधारणरूपसे विभूषित भी किया। इसी बीच इन्द्रने देवताओंके अनुकूलवर्ती एवं शीघ्र ही कार्य-साधनमें जुट जानेवाले देवर्षि नारदका स्मरण किया। तब अपनेको इन्द्रद्वारा स्मरण किया गया जानकर भगवान् नारद हर्षपूर्वक महेन्द्रके निवासस्थानपर आये। उन्हें आया हुआ देखकर सहस्रनेत्रधारी इन्द्र अपने सिंहासनसे उठ खड़े हुए और उन्होंने यथायोग्य पाद्य आदिद्वारा नारदजीकी पूजा की। इन्द्रद्वारा विधिपूर्वक की गयी उस पूजाको ग्रहणकर नारदने देवराज इन्द्रसे कुशल-प्रश्न किया। तब कुशल पूछे जानेपर सामर्थ्यशाली इन्द्रने इस प्रकार कहा— ॥ १०६—११५॥

इन्द्र उवाच

कुशलस्याङ्कुरे तावत् सम्भूते भुवनत्रये।
तत्फलोद्भवसम्पत्तौ त्वं भवातन्द्रितो मुने॥ ११६
वेत्सि चैतत्समस्तं त्वं तथापि परिचोदकः।
निर्वृतिं परमां याति निवेद्यार्थं सुहृज्जने॥ ११७

इन्द्र बोले—मुने! त्रिभुवनके कल्याणके लिये अङ्कुर तो उत्पन्न हो गया है, किंतु उससे फलरूपी सम्पत्तिकी उत्पत्तिके निमित्त आप सावधान हो जायँ। यद्यपि आप यह सब कुछ जानते हैं, तथापि कहनेवाला अपने मित्रसे अपना प्रयोजन निवेदित करके परम संतोषका अनुभव करता है।

तद्यथा शैलजा देवी योगं यायात् पिनाकिना।
शीघ्रं तदुद्यमः सर्वैरस्मत्पक्षैर्विधीयताम्॥ ११८
अवगम्यार्थमखिलं तत आमन्त्र्य नारदः।
शक्रं जगाम भगवान् हिमशैलनिवेशनम्॥ ११९
तत्र द्वारे स विप्रेन्द्रश्चित्रवेत्रलताकुले।
वन्दितो हिमशैलेन निर्गतेन पुरो मुनिः॥ १२०
सह प्रविश्य भवनं भुवो भूषणतां गतम्।
निवेदिते स्वयं हैमे हिमशैलेन विस्तृते॥ १२१
महासने मुनिवरो निषसादातुलद्युतिः।
यथार्हं चार्घ्यपाद्यं च शैलस्तस्मै न्यवेदयत्॥ १२२
मुनिस्तु प्रतिजग्राह तमर्घं विधिवत् तदा।
गृहीतार्घं मुनिवरमपृच्छच्छ्लक्ष्णया गिरा॥ १२३
कुशलं तपसः शैलः शनैः फुल्लाननाम्बुजः।
मुनिरप्यद्रिराजानमपृच्छत् कुशलं तदा॥ १२४

इसलिये पार्वतीदेवी जिस प्रकार शीघ्र ही शंकरजीसे संयुक्त हो जायँ, वह उपाय हमारे पक्षके सभी लोगोंको करना चाहिये। तत्पश्चात् सारा प्रयोजन समझकर और इन्द्रसे सलाह करके भगवान् नारद हिमाचलके भवनकी ओर चल पड़े। थोड़ी ही देरमें वे द्विजवर चित्र-विचित्र बेंतकी लताओंसे आच्छादित भवन-द्वारपर जा पहुँचे। वहाँ पहलेसे ही भवनके बाहर निकले हुए हिमाचलने मुनिकी वन्दना की। फिर वे हिमाचलके साथ पृथ्वीके भूषणस्वरूप उनके भवनमें प्रविष्ट हुए। वहाँ अनुपम कान्तिवाले मुनिवर नारद स्वयं हिमाचलद्वारा निवेदित किये गये एक स्वर्णनिर्मित विशाल सिंहासनपर विराजमान हुए। तब शैलराजने उन्हें यथायोग्य पाद्य और अर्घ्य निवेदित किया। मुनिने विधिपूर्वक उस अर्घ्यको स्वीकार किया। उस समय शैलराजका मुख खिले हुए कमलके समान हर्षसे खिल उठा। तब उन्होंने अर्घ्य ग्रहण करनेके पश्चात् मुनिवरसे मधुर वाणीमें धीरेसे उनकी तपस्याके विषयमें कुशल पूछी। इसके बाद मुनिने भी पर्वतराजसे कुशल-समाचार पूछा॥ ११६—१२४॥

नारद उवाच

अहोऽवतारिताः सर्वे संनिवेशे महागिरे।
पृथुत्वं मनसा तुल्यं कंदराणां तथाचल॥ १२५
गुरुत्वं ते गुणौघानां स्थावरादतिरिच्यते।
प्रसन्नता च तोयस्य मनसोऽप्यधिका च ते॥ १२६
न लक्षयामः शैलेन्द्र शिष्यते कन्दरोदरात्।
न च लक्ष्मीस्तथा स्वर्गे कुत्राधिकतया स्थिता॥ १२७
नाना तपोभिर्मुनिभिर्ज्वलनार्कसमप्रभैः।
पावनैः पावितो नित्यं त्वत्कन्दरसमाश्रितैः॥ १२८
अवमत्य विमानानि स्वर्गवासविरागिणः।
पितुर्गृह इवासन्ना देवगन्धर्वकिन्नराः॥ १२९
अहो धन्योऽसि शैलेन्द्र यस्य ते कंदरं हरः।
अध्यास्ते लोकनाथोऽपि समाधानपरायणः॥ १३०
इत्युक्तवति देवर्षौ नारदे सादरं गिरा।
हिमशैलस्य महिषी मेना मुनिदिदृक्षया॥ १३१
अनुयाता दुहित्रा तु स्वल्पालिपरिचारिका।
लज्जाप्रणयनम्राङ्गी प्रविवेश निवेशनम्॥ १३२

नारदजी बोले—महाचल! तुम्हारे इस भवनको देखकर आश्चर्य होता है। तुमने इस भवनमें सभी पदार्थोंको संगृहीत कर रखा है। पर्वतराज! तुम्हारी कन्दराओंकी पृथुता तो मनके समान गम्भीर है। तुम्हारे अन्यान्य गुणसमूहोंकी गुरुता अन्य स्थावरोंसे कहीं बढ़-चढ़कर है। तुम्हारे जलकी निर्मलता मनसे भी अधिक है। शैलराज! मैं ऐसी कोई वस्तु नहीं देख रहा हूँ, जो तुम्हारी कन्दराओंके भीतर वर्तमान न हो। स्वर्गमें कहीं भी तुमसे बढ़कर लक्ष्मी नहीं है। तुम अपनी गुफाओंमें निवास करनेवाले, नाना प्रकारकी तपस्याओंमें निरत, अग्नि एवं सूर्यकी-सी कान्तिवाले पावन मुनियोंद्वारा नित्य पवित्र होते रहते हो। देवता, गन्धर्व और किन्नरवृन्द स्वर्गवाससे विरक्त हो विमानोंकी अवहेलना कर पिताके गृहकी तरह तुम्हारे यहाँ निवास कर रहे हैं। अहो! शैलेन्द्र! तुम धन्य हो; क्योंकि तुम्हारी कन्दरामें लोकपति शंकर भी समाधिमें लीन होकर निवास कर रहे हैं। देवर्षि नारद इस प्रकार आदरपूर्ण वाणी बोल ही रहे थे कि उसी समय पर्वतराज हिमाचलकी पटरानी मेना अपनी कन्याके साथ मुनिका दर्शन करनेके लिये वहाँ आयीं। उनके साथ कुछ सखियाँ और सेविकाएँ भी थीं। उन्होंने लज्जा और प्रेमसे विनम्र हो उस भवनमें प्रवेश किया,

यत्र स्थितो मुनिवरः शैलेन सहितो वशी।
दृष्ट्वा तु तेजसो राशिं मुनिं शैलप्रिया तदा॥ १३३

जहाँ जितेन्द्रिय मुनिवर नारद हिमाचलके साथ बैठे हुए थे। तब हिमाचल-पत्नी मेनाने तेजके पुञ्जभूत मुनिको देखकर लज्जावश मुखको छिपाये हुए करकमलोंकी अञ्जलि बाँधकर मुनिकी वन्दना की॥ १२५—१३३ $\frac{1}{2}$॥

ववन्दे गूढवदना पाणिपद्मकृताञ्जलिः।
तां विलोक्य महाभागो महर्षिरमितद्युतिः॥ १३४
आशीर्भिरमृतोद्गाररूपाभिस्तां व्यवर्धयत्।
ततो विस्मितचित्ता तु हिमवद्गिरिपुत्रिका॥ १३५
उदैक्षन्नारदं देवी मुनिमद्भुतरूपिणम्।
एहि वत्सेति चाप्युक्ता ऋषिणा स्निग्धया गिरा॥ १३६
कण्ठे गृहीत्वा पितरमुत्सङ्गे समुपाविशत्।
उवाच माता तां देवीमभिवन्दय पुत्रिके॥ १३७
भगवन्तं ततो धन्यं पतिमाप्स्यसि सम्मतम्।
इत्युक्ता तु ततो मात्रा वस्त्रान्तपिहितानना॥ १३८
किंचित्कम्पितमूर्धा तु वाक्यं नोवाच किञ्चन।
ततः पुनरुवाचेदं वाक्यं माता सुतां तदा॥ १३९
वत्से वन्दय देवर्षिं ततो दास्यामि ते शुभम्।
रत्नक्रीडनकं रम्यं स्थापितं यच्चिरं मया॥ १४०
इत्युक्ता तु ततो वेगादुद्धृत्य चरणौ तदा।
ववन्दे मूर्ध्नि संधाय करपङ्कजकुड्मलम्॥ १४१

अमित कान्तिसम्पन्न एवं महान् भाग्यशाली महर्षि नारदने तब मेनाको देखकर अमृतके उद्गारस्वरूप आशीर्वचनोंद्वारा उनकी शुभकामना की। हिमाचलकी पुत्री पार्वतीदेवी यह देखकर आश्चर्यचकित हो गयीं। वे अद्भुत रूपवाले नारदमुनिकी ओर एकटक देख रही थीं। उस समय देवर्षि नारदने 'बेटी! आओ' ऐसी स्नेहपूर्ण वाणीसे पुकारा भी, किंतु वे पिताके गलेको पकड़कर उनकी गोदमें छिपकर बैठ गयीं। यह देखकर माता मेनाने पार्वती देवीसे कहा—'बेटी! भगवान् नारदको प्रणाम करो, इससे तुम अपने मनके अनुकूल योग्य पति प्राप्त करोगी।' माताद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने वस्त्रके छोरसे अपने मुखको ढक लिया और मस्तकको थोड़ा झुका दिया, परंतु मुखसे कुछ नहीं कहा। तत्पश्चात् माताने पुनः अपनी कन्यासे इस प्रकार कहा—'बेटी! यदि तुम देवर्षि नारदको प्रणाम कर लो तो मैं तुम्हें बड़ी सुन्दर वस्तु दूँगी। मैं तुम्हें वह सुन्दर रत्ननिर्मित खिलौना दूँगी, जिसे मैंने बहुत दिनोंसे छिपाकर रखा है।' इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने शीघ्र ही अपने कमल-मुकुल-सदृश दोनों हाथोंसे मुनिके दोनों चरणोंको उठाकर मस्तकपर रख कर प्रणाम किया॥ १३४—१४१॥

कृते तु वन्दने तस्या माता सखीमुखेन तु।
चोदयामास शनकैस्तस्याः सौभाग्यशंसिनाम्॥ १४२
शरीर लक्षणानां तु विज्ञानाय तु कौतुकात्।
स्त्रीस्वभावाद्यद्दुहितुश्चिन्तां हृदि समुद्वहन्॥ १४३
ज्ञात्वा तदिङ्गितं शैलो महिष्या हृदयेन तु।
अनुद्गीर्णोऽक्षतिर्मेने रम्यमेतदुपस्थितम्॥ १४४
चोदितः शैलमहिषीसख्या मुनिवरस्तदा।
स्मिताननो महाभागो वाक्यं प्रोवाच नारदः॥ १४५
न जातोऽस्याः पतिर्भद्रे लक्षणैश्च विवर्जिता।
उत्तानहस्ता सततं चरणैर्व्यभिचारिभिः।
स्वच्छायया भविष्येयं किमन्यद् बहु भाष्यते॥ १४६

पार्वतीके प्रणाम कर लेनेके पश्चात् माता मेनाने कुतूहलवश कन्याके सौभाग्यसूचक शरीर-लक्षणोंकी जानकारी प्राप्त करनेके लिये धीरेसे सखीद्वारा मुनिसे अनुरोध किया; क्योंकि स्त्री-स्वभाववश उनके हृदयमें कन्याविषयिणी चिन्ता उठ खड़ी हुई थी। पर्वतराज अपनी पत्नीके उस संकेतको जानकर मनमें परम प्रसन्न हुए कि यह तो बड़ा सुन्दर विषय उपस्थित हुआ। इसमें उन्हें कोई हानि नहीं दीख पड़ी, अतः वे स्वयं कुछ न बोले। तब हिमाचल-पत्नीकी सखीद्वारा अनुरोध किये जानेपर महाभाग मुनिवर नारद मुसकराते हुए इस प्रकार बोले—'भद्रे! इसका पति तो अभी जगत्‌में पैदा ही नहीं हुआ है। यह सभी शुभ लक्षणोंसे रहित है। इसकी हथेली सदा उत्तान ही रहती है तथा चरण भी कुलक्षणोंसे युक्त हैं। यह अपनी छायाके साथ अर्थात् अकेली ही रहेगी। इसके विषयमें और अधिक क्या कहा जाय।'

श्रुत्वैतत् सम्भ्रमाविष्टो ध्वस्तधैर्यो महाचलः।
नारदं प्रत्युवाचाथ साश्रुकण्ठो महागिरिः॥ १४७

यह सुनकर पर्वतराज हिमाचल व्याकुल हो गये। उनका सारा धैर्य जाता रहा। तब वे अश्रुगद्गद कण्ठसे नारदजीसे बोले॥ १४२—१४७॥

हिमवानुवाच

संसारस्यातिदोषस्य दुर्विज्ञेया गतिर्यतः।
सृष्ट्यां चावश्यभाविन्यां केनाप्यतिशयात्मना॥ १४८
कर्त्रा प्रणीता मर्यादा स्थिता संसारिणामियम्।
यो जायते हि यद्बीजाज्जनेतुः स ह्यसार्थकः॥ १४९
जनिता चापि जातस्य न कश्चिदिति यत्स्फुटम्।
स्वकर्मणैव जायन्ते विविधा भूतजातयः॥ १५०
अण्डजो ह्यण्डजाज्जातः पुनर्जायत मानवः।
मानुषाच्च सरीसृप्यां मनुष्यत्वेन जायते॥ १५१
तत्रापि जातौ श्रेष्ठायां धर्मस्योत्कर्षणेन तु।
अपुत्रजन्मिनः शेषाः प्राणिनः समवस्थिताः॥ १५२
मनुजास्तत्र जायन्ते यतो न गृहधर्मिणः।
क्रमेणाऽऽश्रमसम्प्राप्तिर्ब्रह्मचारिव्रतादनु ॥ १५३
तस्य कर्तुर्नियोगेन संसारो येन वर्धितः।
संसारस्य कुतो वृद्धिः सर्वे स्युर्यदतिग्रहाः॥ १५४
अतः कर्त्रा तु शास्त्रेषु सुतलाभः प्रशंसितः।
प्राणिनां मोहनार्थाय नरकत्राणसंश्रयात्॥ १५५
स्त्रिया विरहिता सृष्टिर्जन्तूनां नोपपद्यते।
स्त्रीजातिस्तु प्रकृत्यैव कृपणा दैन्यभाषिणी।
शास्त्रालोचनसामर्थ्यमुज्झितं तासु वेधसा॥ १५६

हिमवान्‌ने कहा—देवर्षे! इस अत्यन्त दोषपूर्ण संसारकी गति दुर्विज्ञेय है। इस अवश्यम्भाविनी सृष्टिमें किसी कर्ता महापुरुषद्वारा जो मर्यादा स्थापित की गयी है, वह संसारी जीवोंके लिये स्थिर है। जो जिसके बीजसे उत्पन्न होता है, वह उस पैदा करनेवालेके लिये निरर्थक होता है, उसी प्रकार पैदा करनेवाला भी पैदा हुएका कोई नहीं है—यह तो स्पष्ट है; क्योंकि प्राणियोंकी अनेकों जातियाँ अपने-अपने कर्मोंके अनुसार ही उत्पन्न होती हैं। एक ही जीव अण्डजके सम्पर्कसे अण्डजयोनिमें पैदा होता है और वही पुनः मनुष्यके संयोगसे मानव-योनिमें उत्पन्न होता है। फिर मानव-योनिसे भी उलटकर सर्प आदि रेंगनेवाली योनियोंमें जन्म लेता है। वहाँ भी धर्मकी उत्कृष्टतासे उत्तम जातिमें जन्म होता है। शेष जो अधार्मिक प्राणी होते हैं, वे पुत्रहीन होते हैं। उनमें गृहस्थधर्मका सुचारु रूपसे पालन न करनेवाले मानवोंको पुत्रकी प्राप्ति नहीं होती। इन आश्रमोंकी प्राप्ति उसी कर्ताकी व्यवस्थासे, जिसने संसारकी वृद्धि की है, क्रमशः ब्रह्मचर्य व्रतके बाद होती है। यदि सभी प्राणी आश्रमधर्मका त्याग कर दें तो संसारकी वृद्धि कैसे हो सकती है। इसीलिये सृष्टिकर्ताने शास्त्रोंमें नरकसे त्राण करनेका लोभ दिखाकर प्राणियोंको मोहित करनेके लिये पुत्रप्राप्तिकी प्रशंसा की है; परंतु प्राणियोंकी सृष्टि स्त्रीके बिना हो नहीं सकती और वह स्त्री-जाति स्वभावसे ही दयनीय और दीनतापूर्वक बोलनेवाली होती है। इसीलिये ब्रह्माने उन स्त्रियोंको शास्त्रालोचनकी शक्ति नहीं दी है॥ १४८—१५६॥

शास्त्रेषूक्तमसंदिग्धं बहुवारं महाफलम्।
दशपुत्रसमा कन्या या न स्याच्छीलवर्जिता॥ १५७
वाक्यमेतत् फलभ्रष्टं पुंसि ग्लानिकरं परम्।
कन्या हि कृपणा शोच्या पितुर्दुःखविवर्धिनी॥ १५८
यापि स्यात् पूर्णसर्वाढ्या पतिपुत्रधनादिभिः।
किं पुनर्दुर्भगा हीना पतिपुत्रधनादिभिः॥ १५९
त्वं चोक्तवान् सुताया मे शरीरे दोषसंग्रहम्।
अहो मुह्यामि शुष्यामि ग्लामि सीदामि नारद॥ १६०

इसी प्रकार शास्त्रोंमें अनेकों बार निश्चितरूपसे इस महान् फलका वर्णन किया गया है कि जो कन्या शील-सदाचारसे रहित न हो, वह दस पुत्रोंके समान मानी गयी है; किंतु यह वाक्य निष्फल है और पुरुषके लिये अत्यन्त ग्लानि उत्पन्न करनेवाला है; क्योंकि जो कन्या पति, पुत्र, धन आदि सभी सुख-साधनोंसे पूर्ण सम्पन्न होनेपर भी जब कृपण, शोचनीय और पिताके दुःखको बढ़ानेवाली होती है, तब जो पति, पुत्र, धन आदिसे हीन अभागिनी हो तो उसके विषयमें क्या कहना है। नारदजी! आपने मेरी कन्याके शरीरमें तो दोष-समूहका ही वर्णन किया है, इसी कारण मैं मोहमें पड़ा हूँ, मेरा शरीर सूखा जा रहा

अयुक्तमथ वक्तव्यमप्राप्यमपि साम्प्रतम्।
अनुग्रहेण मे छिन्धि दुःखं कन्याश्रयं मुने॥ १६१
परिच्छिन्नेऽप्यसंदिग्धे मनः परिभवाश्रयम्।
तृष्णामुष्णातिनिष्णाता फललोभाश्रयाशुभा॥ १६२
स्त्रीणां हि परमं जन्म कुलानामुभयात्मनाम्।
इहामुत्र सुखायोक्तं सत्पतिप्राप्तिसंज्ञितम्॥ १६३
दुर्लभः सत्पतिः स्त्रीणां विगुणोऽपि पतिः किल।
न प्राप्यते विना पुण्यैः पतिर्नार्या कदाचन॥ १६४
यतो निःसाधनो धर्मः परिमाणोज्झिता रतिः।
धनं जीवितपर्याप्तं पत्यौ नार्याः प्रतिष्ठितम्॥ १६५

है, मनमें ग्लानि हो रही है और कष्ट पा रहा हूँ। मुने! इस समय मुझपर अनुग्रह करके (कन्याके कष्ट-निवारक उपाय) यदि अयुक्त अथवा दुष्प्राप्य भी हो तो बतलाइये और मेरे कन्याविषयक दुःखको दूर कीजिये; क्योंकि निःसंदेहरूपसे कार्य-सिद्धिकी सम्भावना होनेपर भी फलके लोभमें आसक्त एवं कार्य-साधनमें निपुण अशुभ तृष्णा मेरे परिभवयुक्त मनको ठग रही है। स्त्रियोंके लिये उत्तम पतिकी प्राप्ति ही उनके सौभाग्यशाली जन्मकी सूचक है तथा वह पितृकुल एवं पतिकुल—दोनों कुलोंके लिये इहलोक और परलोकमें सुखका साधन बतलायी गयी है। इस प्रकार स्त्रियोंके लिये उत्तम पतिका मिलना तो दुर्लभ है ही, परंतु गुणहीन पति भी नारीको पुण्यके बिना कभी नहीं प्राप्त होता; क्योंकि नारीको साधनरहित धर्म, प्रचुर मात्रामें कामवासनाकी प्राप्ति और जीवन-निर्वाहके लिये धन पतिके द्वारा ही प्राप्त होते हैं॥ १५७—१६५॥

निर्धनो दुर्भगो मूर्खः सर्वलक्षणवर्जितः।
दैवतं परमं नार्याः पतिरुक्तः सदैव हि॥ १६६
त्वया चोक्तं हि देवर्षे न जातोऽस्याः पतिः किल।
एतद्दौर्भाग्यमतुलमसंख्यं गुरु दुःसहम्॥ १६७
चराचरे भूतसर्गे यदद्यापि च नो मुने।
न संजात इति ब्रूषे तेन मे व्याकुलं मनः॥ १६८
मनुष्यदेवजातीनां शुभाशुभनिवेदकम्।
लक्षणं हस्तपादादौ विहितैर्लक्षणैः किल॥ १६९
सेयमुत्तानहस्तेति त्वयोक्ता मुनिपुंगव।
उत्तानहस्तता प्रोक्ता याचतामेव नित्यदा॥ १७०
शुभोदयानां धन्यानां न कदाचित्प्रयच्छताम्।
स्वच्छाययास्याश्चरणौ त्वयोक्तो व्यभिचारिणौ॥ १७१
तत्रापि श्रेयसी ह्याशा मुने न प्रतिभाति नः।
शरीरलक्षणाश्चान्ये पृथक् फलनिवेदिनः॥ १७२
सौभाग्यधनपुत्रायुःपतिलाभानुशंसनम्।
तैश्च सर्वैर्विहीनेयं त्वमात्थ मुनिपुङ्गव॥ १७३
त्वं मे सर्वं विजानासि सत्यवागसि चाप्यतः।
मुह्यामि मुनिशार्दूल हृदयं दीर्यतीव मे॥ १७४

पति निर्धन, अभागा, मूर्ख और सभी शुभ लक्षणोंसे रहित क्यों न हो, किंतु वह नारीके लिये सदैव परम देवता कहा गया है। देवर्षे! आपने कहा है कि मेरी पुत्रीका पति पैदा ही नहीं हुआ है, यह तो इसका अतुलनीय एवं बहुत बड़ा दुःसह दुर्भाग्य है। मुने! आप जो ऐसा कह रहे हैं कि चराचर प्राणियोंकी सृष्टिमें वह अभीतक उत्पन्न ही नहीं हुआ है, इससे मेरा मन व्याकुल हो गया है। मनुष्यों एवं देवजातियोंके शुभाशुभसूचक लक्षण हाथों एवं पैरोंमें चिह्नित लक्षणोंद्वारा जाने जाते हैं। मुनिश्रेष्ठ! इस विषयमें भी आपने इसे उत्तानहस्ता बतलाया है। यह उत्तानहस्ता सदा याचकोंकी ही कही गयी है, किंतु जो सौभाग्यशाली, धन्यवादके पात्र और दानी होते हैं, उनके हाथ कभी उत्तान नहीं रहते। मुने! आपने यह भी कहा है कि इसके चरण अपनी छायासे युक्त होनेके कारण दोषी हैं, अतः इस विषयमें भी हमें कल्याणकारिणी आशा नहीं प्रतीत हो रही है। शरीरके अन्यान्य लक्षण पृथक्-पृथक् फल सूचित करते हैं। उनमें जो सौभाग्य, धन, पुत्र, आयु और पति-प्राप्तिके सूचक होते हैं, उन सभी लक्षणोंसे मेरी यह कन्या हीन है—ऐसा आप कह रहे हैं। मुनिश्रेष्ठ! आप मेरी सारी मनोगत अभिलाषाओंको जानते हैं। मुनिशार्दूल! आप सत्यवादी हैं, इसी कारण (आपकी बात सुनकर) मैं मोहित हो रहा हूँ और मेरा हृदय

इत्युक्त्वा विरतः शैलो महादुःखविचारणात्।
श्रुत्वैतदखिलं तस्माच्छैलराजमुखाम्बुजात्।
स्मितपूर्वमुवाचेदं नारदो देवपूजितः॥ १७५

नारद उवाच

हर्षस्थानेऽपि महति त्वया दुःखं निरूप्यते।
अपरिच्छिन्नवाक्यार्थे मोहं यासि महागिरे॥ १७६
इमां शृणु गिरं मत्तो रहस्यपरिनिष्ठिताम्।
समाहितो महाशैल मयोक्तस्य विचारणे॥ १७७
न जातोऽस्याः पतिर्देव्या यन्मयोक्तं हिमाचल।
न स जातो महादेवो भूतभव्यभवोद्भवः।
शरण्यः शाश्वतः शास्ता शंकरः परमेश्वरः॥ १७८
ब्रह्मविष्ण्विन्द्रमुनयो जन्ममृत्युजरार्दिताः।
तस्यैते परमेशस्य सर्वे क्रीडनका गिरे॥ १७९
आस्ते ब्रह्मा तदिच्छातः सम्भूतो भुवनप्रभुः।
विष्णुर्युगे युगे जातो नानाजातिर्महातनुः॥ १८०
मन्यसे मायया जातं विष्णुं चापि युगे युगे।
आत्मनो न विनाशोऽस्ति स्थावरान्तेऽपि भूधर॥ १८१
संसारे जायमानस्य म्रियमाणस्य देहिनः।
नश्यते देह एवात्र नात्मनो नाश उच्यते॥ १८२
ब्रह्मादिस्थावरान्तोऽयं संसारो यः प्रकीर्तितः।
स जन्ममृत्युदुःखार्तो ह्यवशः परिवर्तते॥ १८३
महादेवोऽचलः स्थाणुर्न जातो जनकोऽजरः।
भविष्यति पतिः सोऽस्या जगन्नाथो निरामयः॥ १८४
यदुक्तं च मया देवी लक्षणैर्वर्जिता तव।
शृणु तस्यापि वाक्यस्य सम्यक्त्वेन विचारणम्॥ १८५
लक्षणं दैविको ह्यङ्कः शरीरावयवाश्रयः।
सर्वायुर्धनसौभाग्यपरिमाणप्रकाशकः ॥ १८६

फटा-सा जा रहा है। ऐसा कहकर हिमाचल उस महान् दुःखकी कल्पनासे विरत हो गये। उस शैलराजके मुखकमलसे निकली हुई ये सारी बातें सुनकर देवपूजित नारदजी मुसकराते हुए इस प्रकार बोले॥ १६६—१७५॥

नारदजीने कहा— गिरिराज! आप तो महान् हर्षका अवसर उपस्थित होनेपर भी दुःखकी गाथा गा रहे हैं और मेरे अस्पष्ट वाक्यके अर्थको समझे बिना मोहको प्राप्त हो रहे हैं। शैलराज! इस रहस्यपूर्ण वाणीका तात्पर्य मुझसे सुनिये और मेरे द्वारा कही हुई बातपर सावधानीपूर्वक विचार कीजिये। हिमाचल! मैंने जो यह कहा है कि इस देवीका पति उत्पन्न ही नहीं हुआ है, इसका अभिप्राय यह है कि जो भूत, भविष्य, वर्तमान—तीनों कालोंमें वर्तमान रहनेवाले, जीवोंके शरणदाता, अविनाशी, नियामक, कल्याणकर्ता और परमेश्वर हैं, वे महादेव उत्पन्न नहीं हुए हैं अर्थात् वे अनादि हैं, उनका जन्म नहीं होता। पर्वतराज! ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, मुनि आदि जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्थासे ग्रस्त हैं। ये सभी उस परमेश्वरके खिलौनेमात्र हैं। उन्हींकी इच्छासे त्रिभुवनके स्वामी ब्रह्मा प्रकट हुए हैं और विष्णु प्रत्येक युगमें विशाल शरीर धारण करके नाना प्रकारकी जातियोंमें उत्पन्न होते हैं। पर्वतराज! प्रत्येक युगमें मायाका आश्रय लेकर उत्पन्न हुए विष्णुको तो तुम भी मानते ही हो। स्थावर योनिमें जन्म लेनेपर भी शरीरान्त होनेपर आत्माका विनाश नहीं होता। संसारमें उत्पन्न होकर मृत्युको प्राप्त हुए प्राणीका शरीरमात्र नष्ट होता है, आत्माका नाश नहीं कहा जाता। ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त जो यह संसार कहा जाता है, उसमें उत्पन्न हुए प्राणी जन्म-मृत्युके दुःखसे पीड़ित होकर पराधीन रहते हैं, किंतु महादेव स्थाणुकी भाँति अचल हैं। वे वृद्धावस्थासे रहित तथा सबको उत्पन्न करनेवाले हैं, किंतु स्वयं किसीसे उत्पन्न नहीं होते। वे ही निर्दोष जगदीश्वर शङ्कर इस कन्याके पति होंगे॥१७६—१८४॥

साथ ही मैंने तुमसे जो यह कहा था कि यह देवी लक्षणोंसे रहित है, उस वाक्यका अभिप्राय भी सम्यक्-रूपसे सुनो। पर्वतराज! शरीरके अवयवोंमें अङ्कित लक्षण दैविक चिह्न होता है। वह सभीके आयु, धन और सौभाग्यके परिणामको प्रकट करनेवाला होता है,

अनन्तस्याप्रमेयस्य सौभाग्यस्यास्य भूधर।
नैवाङ्को लक्षणाकारः शरीरे संविधीयते॥ १८७

अतोऽस्या लक्षणं गात्रे शैल नास्ति महामते।
यथाहमुक्तवान् तस्या ह्युत्तानकरतां सदा॥ १८८

उत्तानो वरदः पाणिरेष देव्याः सदैव तु।
सुरासुरमुनिव्रातवरदेयं भविष्यति॥ १८९

यथा प्रोक्तं तदा पादौ स्वच्छायाव्यभिचारिणौ।
अस्याः शृणु ममात्रापि वाग्युक्तिं शैलसत्तम॥ १९०

चरणौ पद्मसंकाशावस्याः स्वच्छनखोज्ज्वलौ।
सुरासुराणां नमतां किरीटमणिकान्तिभिः॥ १९१

विचित्रवर्णैर्भासन्तौ स्वच्छायाप्रतिबिम्बितौ।
भार्या जगद्गुरोर्ह्येषा वृषाङ्कस्य महीधर॥ १९२

जननी लोकधर्मस्य सम्भूता भूतभाविनी।
शिवेयं पावनायैव त्वत्क्षेत्रे पावकद्युतिः॥ १९३

तद्यथा शीघ्रमेवैषा योगं यायात् पिनाकिना।
तथा विधेयं विधिवत्त्वया शैलेन्द्रसत्तम।
अत्यन्तं हि महत् कार्यं देवानां हिमभूधर॥ १९४

किंतु इसके शरीरमें इस अनन्त एवं अप्रमेय सौभाग्यके किसी लक्षणाकार चिह्नका संविधान नहीं किया गया है, इसीलिये मैंने कहा है कि इसके शरीरमें लक्षण नहीं है। महाबुद्धिमान् हिमाचल! जो मैंने इसकी सदा उत्तानकरताका कथन किया था, उसका तात्पर्य यह है कि इस देवीका यह वरदायक हाथ सदा उत्तान ही रहेगा, जिससे यह सुर, असुर और मुनिसमूहके लिये वरदायिनी होगी। पर्वतश्रेष्ठ! उस समय मैंने जो ऐसा कहा था कि इसके चरण अपनी छायामें रहनेके कारण दोषी हैं, इस विषयमें भी तुम मेरे वचनोंकी युक्ति सुनो। इसके कमल-सदृश चरण स्वच्छ उज्ज्वल नखोंसे सुशोभित हैं। जब वे नमस्कार करनेवाले सुरों एवं असुरोंके किरीटोंमें जड़ी हुई मणियोंकी विचित्र वर्णकी कान्तिसे उद्भासित होंगे, तब अपनी छायासे प्रतिबिम्बित कहलायेंगे। महीधर! आपकी यह कन्या जगद्गुरु वृषभध्वज शङ्करकी भार्या, लोकधर्मकी जननी, प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाली, कल्याणस्वरूपा और अग्निके समान कान्तिमती है। यह तुम्हारे क्षेत्रमें तुम्हें पावन करनेके लिये प्रकट हुई है। इसलिये श्रेष्ठ पर्वतराज! जिस प्रकार यह शीघ्र-से-शीघ्र पिनाकधारी शङ्करजीके साथ संयुक्त हो जाय, तुम्हें विधिपूर्वक वैसा ही विधान करना चाहिये। हिमाचल! इससे देवताओंका अत्यन्त महान् कार्य सिद्ध हो जायगा॥ १८५—१९४॥

सूत उवाच

एवं श्रुत्वा तु शैलेन्द्रो नारदात् सर्वमेव हि।
आत्मानं स पुनर्जातं मेने मेनापतिस्तदा॥ १९५

नमस्कृत्य वृषाङ्काय तदा देवाय धीमते।
उवाच सोऽपि संहृष्टो नारदं तु हिमाचलः॥ १९६

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! नारदजीके मुखसे ये सारी बातें सुनकर उस समय मेनाके प्राणपति शैलराज अपनेको पुनः उत्पन्न हुआ-सा अनुभव करने लगे। तत्पश्चात् हर्षसे फूले हुए हिमाचल भी उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्न देवाधिदेव वृषभध्वजको नमस्कार करके नारदजीसे बोले॥ १९५-१९६॥

हिमवानुवाच

दुस्तरान्नरकाद् घोरादुद्धृतोऽस्मि त्वया मुने।
पातालादहमुद्धृत्य सप्तलोकाधिपः कृतः॥ १९७

हिमाचलोऽस्मि विख्यातस्त्वया मुनिवराधुना।
हिमाचलेऽचलगुणां प्रापितोऽस्मि समुन्नतिम्॥ १९८

आनन्ददिवसाहारि हृदयं मेऽधुना मुने।
नाध्यवस्यति कृत्यानां प्रविभागविचारणम्॥ १९९

यदि वाचामधीशः स्यां त्वद्गुणानां विचारणे॥ २००

हिमवान्ने कहा— मुने! आपने तो मुझे घोर दुस्तर नरकसे उबार लिया है और पाताललोकसे निकालकर सातों लोकोंका अधिपति बना दिया है। मुनिवर! इस समय आपने हिमाचलपर जो अचल गुणवाली समृद्धि उत्पन्न कर दी है, इससे मैं सचमुच हिमाचल नामसे विख्यात कर दिया गया हूँ। मुने! इस समय मेरा हृदय आनन्दमय दिनका अनुभव कर रहा है, जिससे यह आपके कृत्योंका विभागपूर्वक विचार करनेमें सक्षम नहीं हो रहा है। यदि मैं वाणीके अधीश्वर बृहस्पति हो जाऊँ तो भी आपके गुणोंका विचार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता।

भवद्विधानां नियतममोघं दर्शनं मुने।
तवास्मान् प्रति चापल्यं व्यक्तं मम महामुने॥ २०१

भवद्भिरेव कृत्योऽहं निवासायात्मरूपिणाम्।
मुनीनां देवतानां च स्वयं कर्तापि कल्मषम्॥ २०२

तथापि वस्तुन्येकस्मिन्नाज्ञा मे सम्प्रदीयताम्।
इत्युक्तवति शैलेन्द्रे स तदा हर्षनिर्भरे॥ २०३

तथा च नारदो वाक्यं कृतं सर्वमिति प्रभो।
सुरकार्ये य एवार्थस्तवापि सुमहत्तरः॥ २०४

इत्युक्त्वा नारदः शीघ्रं जगाम त्रिदिवं प्रति।
स गत्वा शक्रभवनममरेशं ददर्श ह॥ २०५

ततोऽभिरूपे स मुनिरुपविष्टो महासने।
पृष्टः शक्रेण प्रोवाच हिमजासंश्रयां कथाम्॥ २०६

नारद उवाच

समूह्य यत्तु कर्तव्यं तन्मया कृतमेव हि।
किंतु पञ्चशरस्यैव समयोऽयमुपस्थितः॥ २०७

इत्युक्तो देवराजस्तु मुनिना कार्यदर्शिना।
चूताङ्कुरास्त्रं सस्मार भगवान् पाकशासनः॥ २०८

संस्मृतस्तु तदा क्षिप्रं सहस्राक्षेण धीमता।
उपतस्थे रतियुतः सविलासो झषध्वजः।
प्रादुर्भूतं तु तं दृष्ट्वा शक्रः प्रोवाच सादरम्॥ २०९

शक्र उवाच

उपदेशेन बहुना किं त्वां प्रति वदे प्रियम्।
मनोभवोऽसि तेन त्वं वेत्सि भूतमनोगतम्॥ २१०

तद्यथार्थकमेव त्वं कुरु नाकसदां प्रियम्।
शङ्करं योजय क्षिप्रं गिरिपुत्र्या मनोभव।
संयुतो मधुना चैव ऋतुराजेन दुर्जय॥ २११

इत्युक्तो मदनस्तेन शक्रेण स्वार्थसिद्धये।
प्रोवाच पञ्चबाणोऽथ वाक्यं भीतः शतक्रतुम्॥ २१२

मुने! आप-जैसे महर्षियोंका दर्शन निश्चय ही अमोघ होता है। महामुने! हमलोगोंके प्रति आपकी अस्थिरता तो मुझे स्पष्टरूपसे ज्ञात है। आप लोगोंद्वारा ही मैं आत्मस्वरूप मुनियों एवं देवताओंके निवास-योग्य बनाया गया हूँ। यद्यपि मैं स्वयं भी पाप करनेवाला हूँ, तथापि किसी एक वस्तुके लिये मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये। उस समय हर्षसे भरे हुए शैलराजके इस प्रकार कहनेपर नारदजीने कहा—'प्रभो! तुमने सब कुछ कर लिया। (अब मुझे यही कहना है कि) देवताओंके कार्यका जो प्रयोजन है, वह तुम्हारे लिये भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होगा।' ऐसा कहकर नारदजी शीघ्र ही स्वर्गलोकको चले गये। वहाँ इन्द्रके भवनमें जाकर वे देवराज इन्द्रसे मिले। जब वे एक सुन्दर सिंहासनपर आसीन हो गये, तब इन्द्रने उनसे जिज्ञासा प्रकट की। फिर तो वे पार्वती-सम्बन्धी कथाका वर्णन करने लगे॥ १९७—२०६॥

नारदजी बोले—देवराज! संगठित होकर सबके द्वारा जो काम किया जाना चाहिये, उसे तो मैंने अकेले ही कर दिया; किंतु इस अवसरपर अब कामदेवकी आवश्यकता आ पड़ी है। कार्यदर्शी नारद मुनिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर देवराज भगवान् इन्द्रने आमके बौरके अङ्कुरको अस्त्ररूपमें धारण करनेवाले कामदेवका स्मरण किया। सहस्रनेत्रधारी बुद्धिमान् इन्द्रद्वारा स्मरण किये जानेपर झषकेतु कामदेव अपनी पत्नी रतिके साथ विलासपूर्वक शीघ्र ही उपस्थित हुआ। उसे उपस्थित देखकर इन्द्रने आदरपूर्वक उससे कहा॥ २०७—२०९॥

इन्द्र बोले—मनोभव! तुम तो अजेय हो और मनसे ही उत्पन्न होते हो, अतः सभी प्राणियोंके मनोगत भावोंको भलीभाँति जानते हो। ऐसी दशामें तुम्हारे प्रति अधिक उपदेश करनेसे क्या लाभ? मैं तुमसे एक प्रिय बात कह रहा हूँ। तुम स्वर्गवासियोंके उस प्रिय कार्यको अवश्य पूर्ण करो। (वह यह है कि) तुम चैत्रमास और ऋतुराज वसन्तको साथ लेकर शङ्करजीका गिरिराजकुमारी पार्वतीके साथ शीघ्र ही संयोग स्थापित करा दो। अपनी स्वार्थसिद्धिके निमित्त इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर पञ्चबाण कामदेव भयभीत होकर इन्द्रसे इस प्रकार बोला॥ २१०—२१२॥

काम उवाच

अनया देवसामग्र्या मुनिदानवभीमया।
दु:साध्य: शङ्करो देव: किं न वेत्सि जगत्प्रभो॥ २१३
तस्य देवस्य वेत्थ त्वं करणं तु यदव्ययम्।
प्राय: प्रसाद: कोपोऽपि सर्वो हि महतां महान्॥ २१४
सर्वोपभोगसारा हि सुन्दर्य: स्वर्गसम्भवा:।
अध्याश्रितं च यत्सौख्यं भवता नष्टचेष्टितम्॥ २१५
प्रमादादथ विभ्रंश्येदीशं प्रतिविचिन्त्यताम्।
प्रागेव चेह दृश्यन्ते भूतानां कार्यसम्भवा:॥ २१६
विशेषं काङ्क्षतां शक्र सामान्याद् भ्रंशनं फलम्।
श्रुत्वैतद्वचनं शक्रस्तमुवाचामरैर्युत:॥ २१७

शक्र उवाच

वयं प्रमाणास्ते ह्यत्र रतिकान्त न संशय:।
संदर्शेन विना शक्तिरयस्कारस्य नेष्यते।
कस्यचिच्च क्वचिद् दृष्टं सामर्थ्यं न तु सर्वत:॥ २१८
इत्युक्त: प्रययौ काम: सखायं मधुमाश्रित:।
रतियुक्तो जगामाशु प्रस्थं तु हिमभूभृत:॥ २१९
स तु तत्राकरोच्चिन्तां कार्यस्योपायपूर्विकाम्।
महार्था ये हि निष्कम्पा मनस्तेषां सुदुर्जयम्॥ २२०
तदादावेव संक्षोभ्य नियतं सुजयो भवेत्।
संसिद्धिं प्राप्नुयुश्चैव पूर्वं संशोध्य मानसम्॥ २२१
कथं च विविधैर्भावैर्द्वेषानुगमनं विना।
क्रोध: क्रूरतरासङ्गाद् भीषणेर्ष्यां महासखीम्॥ २२२
चापल्यमूर्ध्नि विध्वस्तधैर्याधारां महाबलाम्।
तामस्य विनियोक्ष्यामि मनसो विकृतिं पराम्॥ २२३

कामदेवने कहा—जगन्नाथ! क्या आप यह नहीं जानते कि मुनियों और दानवोंको भयभीत करनेवाली इस देवसामग्रीसे देवाधिदेव शङ्करको वशमें कर लेना सहज नहीं है। उन महादेवकी इन्द्रियाँ विकाररहित हैं, इसका भी ज्ञान तो आपको है ही। साथ ही महापुरुषोंकी प्रसन्नता और क्रोध भी महान् होता है। इस समय आप जो सम्पूर्ण उपभोगोंकी सारभूता स्वर्गमें उत्पन्न होनेवाली सुन्दरी अप्सराओं तथा बिना चेष्टा किये ही प्राप्त होनेवाले सुखदायक पदार्थोंका उपभोग कर रहे हैं, वह शङ्करजीके प्रति प्रमाद करनेसे नष्ट हो जायगा। थोड़ा इसपर भी विचार कर लीजिये; क्योंकि सामान्य प्राणियोंको भी कार्यफलकी सम्भावना पहलेसे ही दीखने लगती है। इन्द्रदेव! जो लोग सामान्यको छोड़कर विशेषकी आकाङ्क्षा करते हैं, उनका सामान्यसे पतन हो जाना ही फल है। (विशेष तो अप्राप्त है ही।) कामदेवके इस कथनको सुनकर देवताओंसे घिरे हुए इन्द्रने उससे कहा— ॥ २१३—२१७॥

इन्द्र बोले—रतिवल्लभ! तुम्हारे इस कथनके लिये हमलोग प्रमाण हैं। तुम्हारे कथनमें कोई संदेह नहीं है, किंतु (निर्मित वस्तुके) आकार-प्रकारके बिना लोहार अथवा कारीगरकी शक्तिका पता नहीं चलता तथा किसीकी भी शक्ति किसी विशेष विषयमें ही सफलरूपसे देखी जाती है, सर्वत्र नहीं। इन्द्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर रतिसहित कामदेव सहायकरूपमें अपने मित्र मधुमास (अथवा वसन्त)-को साथ लेकर प्रस्थित हुआ और शीघ्र ही हिमाचलके शिखरपर जा पहुँचा। वहाँ जाकर वह कार्यकी सिद्धिके लिये उपायपूर्वक चिन्ता करने लगा। उसने सोचा कि जो लोग महान् लक्ष्यसे युक्त और अटल निश्चयवाले हैं, उनके मनको जीतना अत्यन्त कठिन है। अत: सर्वप्रथम उसीको ही संक्षुब्ध कर निश्चयरूपसे विजय प्राप्त की जा सकती है; क्योंकि पूर्वकालमें मनको शुद्ध करके ही लोगोंने उत्तम सिद्धि प्राप्त की है। (किंतु कठिनाई तो यह है कि) क्रूरतर प्राणियोंके सङ्गसे अनेकों प्रकारके भावोंद्वारा द्वेषका अनुगमन किये बिना क्रोध कैसे उत्पन्न हो सकता है? इसके लिये मैं भयंकर ईर्ष्या नामकी महासखीको चपलताके मस्तकपर स्थापित करूँगा, तत्पश्चात् धैर्यके प्रवाहको विध्वस्त करनेवाली, महान् बलवती मनकी उस उत्कृष्ट विकृतिको शङ्करजीपर विनियुक्त करूँगा।

पिधाय धैर्यद्वाराणि संतोषमपकृष्य च।
अवगन्तुं हि मां तत्र न कश्चिदतिपण्डितः॥ २२४

विकल्पमात्रावस्थाने वैरूप्यं मनसो भवेत्।
पश्चान्मूलक्रियारम्भगम्भीरावर्तदुस्तरः ॥ २२५

हरिष्यामि हरस्याहं तपस्तस्य स्थिरात्मनः।
इन्द्रियग्राममावृत्य रम्यसाधनसंविधिः॥ २२६

चिन्तयित्वेति मदनो भूतभर्तुस्तदाश्रमम्।
जगाम जगतीसारं सरलद्रुमवेदिकम्॥ २२७

शान्तसत्त्वसमाकीर्णमचलप्राणिसंकुलम्।
नानापुष्पलताजालं गगनस्थगणेश्वरम्॥ २२८

निर्व्यग्रवृषभाध्युष्टनीलशाद्वलसानुकम्।
तत्रापश्यत् त्रिनेत्रस्य रम्यं कञ्चिद् द्वितीयकम्॥ २२९

वीरकं लोकवीरेशमीशानसदृशद्युतिम्।
यक्षकुङ्कुमकिञ्जल्कपुञ्जपिङ्गजटासटम्॥ २३०

वेत्रपाणिनमव्यग्रमुग्रभोगीन्द्रभूषणम्।
ततो निमीलितोन्निद्रपद्मपत्राभलोचनम्॥ २३१

प्रेक्षमाणमृजुस्थानं नासिकाग्रं सुलोचनैः।
श्रवस्तरससिंहेन्द्रचर्मलम्बोत्तरीयकम्॥ २३२

श्रवणाहिफलन्मुक्तं निःश्वासानलपिङ्गलम्।
प्रेङ्खत्कपालपर्यन्ततुम्बिलम्बिजटाचयम्॥ २३३

कृतवासुकिपर्यङ्कनाभिमूलनिवेशितम्।
ब्रह्माञ्जलिस्थपुच्छाग्रनिबद्धोरगभूषणम्॥ २३४

ददर्श शङ्करं कामः क्रमप्राप्तान्तिकं शनैः।
ततो भ्रमरझङ्कारमालम्बिद्रुमसानुकम्॥ २३५

प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण भवस्य मदनो मनः।

वहाँ धैर्यके द्वारोंको बंद कर तथा संतोषको दूर हटाकर कोई भी ऐसा उत्कृष्ट विद्वान् नहीं है, जो मुझे जाननेमें समर्थ हो सके। किसी भी कार्यके आरम्भमें विकल्पमात्रका विचार करनेसे मनकी विरूपता उत्पन्न हो जाती है, जिससे आगे चलकर मूल कार्यके आरम्भ होनेपर गम्भीर आपत्तियोंकी लहरें उठने लगती हैं और कार्य दुस्तर हो जाता है। अतः अब मैं रमणीय साधनोंके संविधानसे उन स्थिरात्मा शङ्करजीके इन्द्रियसमूहको ढककर उनकी तपस्याको भङ्ग करूँगा॥ २१८—२२६॥

इस प्रकार सोच-विचारकर कामदेव प्राणियोंके पालक शङ्करजीके उस आश्रमपर गया, जो पृथ्वीका सारभूत था। वहाँ आमके वृक्ष उगे हुए थे, जिनकी छायामें वेदिकाएँ बनी थीं। वह शान्त स्वभाववाले जीवोंसे व्याप्त तथा पर्वतीय जीवोंसे भरा हुआ था। वहाँ नाना प्रकारके पुष्पोंकी लताएँ फैली हुई थीं। ऊपर आकाशमण्डलमें गणेश्वर विराजमान थे। वहीं एक ओर नीली घासके ऊपर वृषभराज नन्दीश्वर निश्चिन्तभावसे बैठे हुए थे। वहाँ कामदेवने त्रिनेत्रधारी शङ्करजीके निकट किसी दूसरे सुन्दर पुरुषको देखा। उसका नाम वीरक था। वह जगत्के वीरोंमें प्रधान था। उसकी शरीर-कान्ति शङ्करजीके समान थी। उसकी जटाएँ यक्षकुङ्कुम*और पद्मकेसरके पुञ्जके समान पीली थीं। उसके हाथमें बेंत शोभा पा रहा था। वह विषैले सर्पोंके आभूषणोंसे विभूषित हो निश्चिन्त भावसे बैठा हुआ था। तदनन्तर कामदेवकी दृष्टि क्रमशः धीरे-धीरे निकट प्राप्त हुए शङ्करजीपर पड़ी, जिनके कमल-दलके सदृश नेत्र अधखुले थे। जो अपने सुन्दर नेत्रोंद्वारा सीधे नासिकाके अग्रभागको देख रहे थे। उनके कंधेपर सिंहके चमड़ेका ऐसा लम्बा उत्तरीय लटक रहा था, जिससे रक्त टपक रहा था। कानोंमें कुण्डलरूपमें पहने हुए सर्पोंके मुखसे निकलती हुई निःश्वासाग्निसे उनका शरीर पीला दीख रहा था। उनकी लम्बी जटाएँ खप्पर और तुम्बीतक हिलती हुई शोभा पा रही थीं। वे वासुकि नागकी शय्या बनाकर उसके नाभिमूलपर बैठे हुए थे। उनकी ब्रह्माञ्जलिमें भूषणरूपसे धारण किये गये सर्पकी पूँछका अग्रभाग स्थित था। तत्पश्चात् शङ्करजी जिस वृक्षके नीचे बैठे हुए थे, उसकी चोटीपर भ्रमरोंकी गुंजार गूँज उठी। उसी समय कामदेव शङ्करजीके श्रोत्रमार्गसे मनमें प्रविष्ट हुआ॥ २२७—२३५ $\frac{1}{2}$॥

* कपूर, अगर, कस्तूरी और कंकोलके सम्मिश्रणसे बने हुए अङ्गराग या चन्दनको यक्षकुङ्कुम कहते हैं।

शङ्करस्तमथाकर्ण्य मधुरं मदनाश्रयम्॥ २३६
सस्मार दक्षदुहितां दयितां रक्तमानसः।
ततः सा तस्य शनकैस्तिरोभूयातिनिर्मला॥ २३७
समाधिभावना तस्थौ लक्ष्यप्रत्यक्षरूपिणी।
ततस्तन्मयतां यातः प्रत्यूहपिहिताशयः॥ २३८
वशित्वेन बुबोधेशो विकृतिं मदनात्मिकाम्।
ईषत्कोपसमाविष्टो धैर्यमालम्ब्य धूर्जटिः॥ २३९
निरासे मदनस्थित्या योगमायासमावृतः।
स तया मायया्ऽऽविष्टो जज्वाल मदनस्ततः॥ २४०
इच्छाशरीरो दुर्जेयो रोषदोषमहाश्रयः।
हृदयान्निर्गतः सोऽथ वासनाव्यसनात्मकः॥ २४१
बहिःस्थलं समालम्ब्य ह्युपतस्थौ झषध्वजः।
अनुयातोऽथ हृद्येन मित्रेण मधुना सह॥ २४२
सहकारतरौ दृष्ट्वा मृदुमारुतनिर्धुतम्।
स्तबकं मदनो रम्यं हरवक्षसि सत्वरम्॥ २४३
मुमोच मोहनं नाम मार्गणं मकरध्वजः।
शिवस्य हृदये शुद्धे नाशशाली महाशरः॥ २४४
पपात परुषप्रांशुः पुष्पबाणो विमोहनः।
ततः करणसंदेहो विद्धस्तु हृदये भवः॥ २४५
बभूव भूधरौपम्यधैर्योऽपि मदनोन्मुखः।
ततः प्रभुत्वाद्भावानां नावेशं समपद्यत॥ २४६
बाह्यं बहु समासाद्य प्रत्यूहप्रसवात्मकम्।
ततः कोपानलोद्भूतघोरहुङ्कारभीषणे॥ २४७
बभूव वदने नेत्रं तृतीयमनलाकुलम्।
रुद्रस्य रौद्रवपुषो जगत्संहारभैरवम्॥ २४८
तदन्तिकस्थे मदने व्यस्फारयत धूर्जटिः।
तं नेत्रविस्फुलिङ्गेन क्रोशतां नाकवासिनाम्॥ २४९
गमितो भस्मसात् तूर्णं कंदर्पः कामिदर्पकः।
स तु तं भस्मसात्कृत्वा हरनेत्रोद्भवोऽनलः॥ २५०

भ्रमरोंकी उस मधुर झंकारको सुनकर शङ्करजीका मन कामदेवके प्रभावसे अनुरक्त हो गया। तब उन्होंने अपनी प्रिया दक्षकन्या सतीका स्मरण किया। उस समय उनकी वह लक्ष्यको प्रत्यक्षरूपमें प्रकट करनेवाली अत्यन्त निर्मल समाधिभावना धीरे-धीरे तिरोहित हो गयी। वे विघ्नोंद्वारा लक्ष्यके अवरुद्ध हो जानेसे सतीकी तन्मयताको प्राप्त हो गये। थोड़ी देर बाद जितेन्द्रिय होनेके कारण शङ्करजी इस कामजन्य विकारको समझ गये। फिर तो उनमें थोड़ा क्रोधकी झलक आ गयी। तब उन जटाधारीने धैर्य धारणकर अपनेको कामदेवकी स्थितिसे मुक्त करनेके लिये योगमायाका आश्रय लिया। उस मायासे आविष्ट होनेके कारण कामदेव जलने लगा। तत्पश्चात् जो वासना और दुर्व्यसनका मूर्तरूप, स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाला, अजेय, क्रोध और दोषका महान् आश्रयस्थान था, वह कामदेव शङ्करजीके हृदयसे बाहर निकला और एक बाहरी स्थानका सहारा लेकर निकट ही खड़ा हो गया। उस समय उसका परम स्नेही मित्र मधु (चैत्रमास या वसन्त) भी उसके साथ था। वहाँ आमके वृक्षपर मन्द वायुसे हिलाये गये रमणीय पुष्पगुच्छको देखकर मकरध्वज कामदेवने शीघ्र ही शङ्करजीके वक्षःस्थलपर वह मोहन नामक बाण छोड़ा। वह विमोहन नामक पुष्पबाण विनाशकारी, महान् प्रभावशाली, कठोर और विशाल था। वह शङ्करजीके शुद्ध हृदयपर जा गिरा। जिससे उनका हृदय घायल हो गया और उनकी इन्द्रियाँ विचलित हो गयीं। फिर तो पर्वतके समान धैर्यशाली होनेपर भी शङ्करजी कामोन्मुख हो गये, किंतु अनेकों बाहरी विघ्नसमूहोंके प्राप्त होनेपर भी सद्भावोंके प्रभुत्वके कारण उनमें कामका आवेश विशेषरूपसे नहीं हुआ॥ २३६—२४६½॥

तदुपरान्त क्रोधाग्निसे उत्पन्न हुए भयंकर हुंकारके भयानक शब्दसे युक्त मुखके ऊपर क्रोधाग्निसे उद्दीप्त तीसरा नेत्र प्रकट हो गया, जो भीषण रूपधारी शङ्करजीका जगत्‌का संहार करनेवाला भयानक रूप था। तब जटाधारी शङ्करजीने अपने निकट ही खड़े हुए कामदेवकी ओर दृष्टिपात किया। फिर तो उस नेत्रसे निकली हुई एक चिनगारीने तुरंत ही कामियोंके दर्पको बढ़ानेवाले कामदेवको जलाकर भस्म कर दिया। यह देखकर स्वर्गवासी हाहाकार मचा रहे थे। इस प्रकार शङ्करजीके नेत्रसे उद्भूत हुई अग्नि कामदेवको भस्म कर

व्यजृम्भत जगद्दग्धुं ज्वालाहुङ्कारघस्मरः।
ततो भवो जगद्धेतोर्व्यभजज्जातवेदसम्॥ २५१

सहकारे मधौ चन्द्रे सुमनःसु परेष्वपि।
भृङ्गेषु कोकिलास्येषु विभागेन स्मरानलम्॥ २५२

स बाह्यान्तरविद्धेन हरेण स्मरमार्गणः।
रागस्नेहसमिद्धान्तर्धावंस्तीव्रहुताशनः ॥ २५३

विभक्तलोकसंक्षोभकरो दुर्वारजृम्भितः।
सम्प्राप्य स्नेहसम्पृक्तं कामिनां हृदयं किल॥ २५४

ज्वलत्यहर्निशं भीमो दुश्चिकित्स्यमुखात्मकः।

विलोक्य हरहुङ्कारज्वालाभस्मकृतं स्मरम्॥ २५५
विललाप रतिः क्रूरं बन्धुना मधुना सह।
ततो विलप्य बहुशो मधुना परिसान्त्विता॥ २५६

जगाम शरणं देवमिन्दुमौलिं त्रिलोचनम्।
भृङ्गानुयातां संगृह्य पुष्पितां सहकारजाम्॥ २५७

लतां पवित्रकस्थाने पाणौ परभृतां सखीम्।
निर्बध्य तु जटाजूटं कुटिलैरलकै रतिः॥ २५८

उद्धूल्य गात्रं शुभ्रेण हृद्येन स्मरभस्मना।
जानुभ्यामवनीं गत्वा प्रोवाचेन्दुविभूषणम्॥ २५९

रतिरुवाच

नमः शिवायास्तु निरामयाय
नमः शिवायास्तु मनोमयाय।
नमः शिवायास्तु सुरार्चिताय
तुभ्यं सदा भक्तकृपापराय॥ २६०

नमो भवायास्तु भवोद्भवाय
नमोऽस्तु ते ध्वस्तमनोभवाय।
नमोऽस्तु ते गूढमहाव्रताय
नमोऽस्तु मायागहनाश्रयाय॥ २६१

जगत्को जलानेके लिये आगे बढ़ी और लपटोंके हुंकारसे पदार्थोंको भक्षण करने लगी। तब शङ्करजीने जगत्का कल्याण करनेके लिये उस अग्निका विभाजन कर दिया। उन्होंने कामाग्निको विभक्त कर आमके वृक्ष, वसन्त-ऋतु (अथवा चैत्रमास), चन्द्रमा, सुगन्धित पुष्पों, भ्रमरों और कोकिलोंके मुखोंमें स्थापित कर दिया। बाहर और भीतर—दोनों प्रकारसे घायल हुए शिवजीद्वारा विभक्त हुआ वह कामदेवका बाण अनुराग और स्नेहसे उद्दीप्त हो वेगपूर्वक दौड़ती हुई अग्निकी तरह लोगोंके मनोंको क्षुब्ध करने लगा। उसकी उन्नति रोकी नहीं जा सकती थी। वह इतना भयंकर थी कि उसके प्रतिषेधका कोई उपाय बड़ी कठिनाईसे हो सकता था। इस प्रकार वह अब भी कामियोंके स्नेहसिक्त हृदयमें पहुँचकर उन्हें रात-दिन जलाता रहता है॥२४७—२५४ $\frac{1}{2}$ ॥

इस प्रकार कामदेवको शङ्करजीके हुंकारकी ज्वालासे भस्म हुआ देख रति कामदेवके मित्र वसन्तके साथ फूट-फूटकर विलाप करने लगी। बहुत प्रकारसे विलाप करनेके पश्चात् वसन्तद्वारा समझायी-बुझायी जानेपर रति त्रिनेत्रधारी भगवान् चन्द्रशेखरकी शरणमें जानेके लिये प्रस्थित हुई। उस समय उसने अपने एक हाथमें पवित्रकके स्थानपर फूली हुई आमकी लताको, जिसपर भँवरे मँडरा रहे थे, धारण कर रखा था और उसके दूसरे हाथपर उसकी सखी कोयल बैठी थी। उसने अपने घुँघराले बालोंको जटाजूटके रूपमें बाँधकर अपने प्रियतम कामदेवके श्वेत भस्मसे शरीरको धूसरित कर लिया था। वहाँ पहुँचकर वह पृथ्वीपर घुटने टेककर भगवान् चन्द्रशेखरसे बोली— ॥ २५५—२५९ ॥

रतिने कहा—जो सब प्रकारकी क्षतिसे रहित हैं, उन शिवको नमस्कार है। जो सभी प्राणियोंके मनःस्वरूप हैं, उन शिवको प्रणाम है। जो देवताओंद्वारा पूजित और सदा भक्तोंपर कृपा करनेवाले हैं, उन आप शिवको अभिवादन है। जगत्को उत्पन्न करनेवाले शिवको नमस्कार है। कामदेवको भस्म कर देनेवाले आपको प्रणाम है। गुप्त रूपसे महान् व्रतको धारण करनेवाले आपको अभिवादन है। मायारूपी काननका आश्रय लेनेवालेको नमस्कार है।

नमोऽस्तु शर्वाय नमः शिवाय
नमोऽस्तु सिद्धाय पुरातनाय।
नमोऽस्तु कालाय नमः कलाय
नमोऽस्तु ते ज्ञानवरप्रदाय॥ २६२
नमोऽस्तु ते कालकलातिगाय
नमो निसर्गामलभूषणाय।
नमोऽस्त्वमेयान्धकमर्दकाय
नमः शरण्याय नमोऽगुणाय॥ २६३
नमोऽस्तु ते भीमगणानुगाय
नमोऽस्तु नानाभुवनादिकर्त्रे।
नमोऽस्तु नानाजगतां विधात्रे
नमोऽस्तु ते चित्रफलप्रयोक्त्रे॥ २६४
सर्वावसाने ह्यविनाशनेत्रे
नमोऽस्तु चित्राध्वरभागभोक्त्रे।
नमोऽस्तु भक्ताभिमतप्रदात्रे
नमः सदा ते भवसङ्गहर्त्रे॥ २६५
अनन्तरूपाय सदैव तुभ्य-
मसह्यकोपाय नमोऽस्तु तुभ्यम्।
शशाङ्कचिह्नाय सदैव तुभ्य-
ममेयमानाय नमः स्तुताय॥ २६६
वृषेन्द्रयानाय पुरान्तकाय
नमः प्रसिद्धाय महौषधाय।
नमोऽस्तु भक्त्याभिमतप्रदाय
नमोऽस्तु सर्वार्तिहराय तुभ्यम्॥ २६७
चराचराचारविचारवर्य-
माचार्यमुत्प्रेक्षितभूतसर्गम्।
त्वामिन्दुमौलिं शरणं प्रपन्ना
प्रियाप्रमेयं महतां महेशम्॥ २६८
प्रयच्छ मे कामयशःसमृद्धिं
पुनः प्रभो जीवतु कामदेवः।
प्रियं विना त्वां प्रियजीवितेषु
त्वत्तोऽपरः को भुवनेष्विहास्ति॥ २६९
प्रभुः प्रियायाः प्रसवः प्रियाणां
प्रणीतपर्यायपरापरार्थः।
त्वमेवमेको भुवनस्य नाथो
दयालुरुन्मूलितभक्तभीतिः॥ २७०

आप जगत्के संहारक, कल्याणकारक और पुरातन सिद्ध हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। आप कालस्वरूप, कल (कालकी गणना करनेवाले) और श्रेष्ठ ज्ञानके प्रदाता हैं, आपको पुनः-पुनः अभिवादन है। कालकी कलाका अतिक्रमण करनेवाले आपको नमस्कार है। प्रकृतिरूप निर्मल आभूषण धारण करनेवालेको प्रणाम है। आप अप्रमेय शक्तिशाली अन्धकासुरका मर्दन करनेवाले, शरणदाता और निर्गुण हैं, आपको बारंबार अभिवादन है। भयंकर गणोंद्वारा अनुगमन किये जानेवाले आपको नमस्कार है। अनेकों भुवनोंके आदिकर्ताको प्रणाम है। अनेकों जगत्की रचना करनेवालेको अभिवादन है। चित्र-विचित्र फल प्रदान करनेवाले आपको नमस्कार है। सबकी समाप्ति अर्थात् महाप्रलयके अवसरपर आप विनाशसे बचे हुए प्राणियोंके नेता तथा विशाल यज्ञोंमें अपने भागको भोगनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। भक्तोंको उनकी अभीष्ट वस्तुएँ प्रदान करनेवालेको अभिवादन है। संसारकी आसक्तिका हरण करनेवाले आपको सदा नमस्कार है॥ २६०—२६५॥

आप अनन्त रूपवाले हैं तथा आपका क्रोध असह्य होता है, आपको सदैव प्रणाम है। आप चन्द्रमाके चिह्नसे सुशोभित, अपरिमित मानसे युक्त और सभी प्राणियोंद्वारा स्तुत हैं, आपको सदैव अभिवादन है। वृषभेन्द्र नन्दी आपका वाहन है, आप त्रिपुरके विनाशक और प्रसिद्ध महौषधरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप भक्तिके वशीभूत हो अभीष्ट प्रदान करनेवाले और सभी प्रकारके कष्टोंको दूर करनेवाले हैं, आपको बारंबार प्रणाम है। आप चराचर प्राणियोंके आचार-विचारसे सर्वश्रेष्ठ, जगत्के आचार्य, समस्त भूत-सृष्टिपर दृष्टि रखनेवाले, मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले, अतुलित प्रेमी और महनीयोंके भी महेश्वर हैं, मैं आपकी शरणमें आयी हूँ। प्रभो! मुझे कामदेवके यशकी समृद्धि प्रदान कीजिये, जिससे ये कामदेव पुनः जीवित हो जायँ। इस त्रिभुवनमें आपसे बढ़कर दूसरा कौन है, जो मेरे प्रियतमको जीवित कर सके। एकमात्र आप ही अपनी प्रियाके प्राणपति, प्रिय पदार्थोंके उद्गम-स्थान, पर और अपर—इन दोनों अर्थोंके पर्यायस्वरूप, जगत्के स्वामी, परम दयालु और भक्तोंके भयको उखाड़ फेंकनेवाले हैं॥ २६६—२७०॥

सूत उवाच

इत्थं स्तुतः शङ्कर ईड्य ईशो
वृषाकपिर्मन्मथकान्तया तु।
तुतोष दोषाकरखण्डधारी
उवाच चैनां मधुरं निरीक्ष्य॥ २७१

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! कामदेवकी पत्नी रतिद्वारा इस प्रकार स्तवन किये जानेपर स्तुतिके योग्य भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गये। तब चन्द्रखण्डको धारण करनेवाले शिवजी उसकी ओर दृष्टिपात करके मधुर वाणीमें बोले॥२७१॥

शंकर उवाच

भवितेति च कामोऽयं कालात् कान्तोऽचिरादपि।
अनङ्ग इति लोकेषु स विख्यातिं गमिष्यति॥ २७२
इत्युक्ता शिरसा वन्द्य गिरिशं कामवल्लभा।
जगामोपवनं रम्यं रतिस्तु हिमभूभृतः॥ २७३
रुरोद बहुशो दीना रमणेऽपि स्थले तु सा।
मरणव्यवसायात्तु निवृत्ता सा हराज्ञया॥ २७४
अथ नारदवाक्येन चोदितो हिमभूधरः।
कृताभरणसंस्कारां कृतकौतुकमङ्गलाम्॥ २७५
स्वर्गपुष्पकृतापीडां शुभ्रचीनांशुकाम्बराम्।
सखीभ्यां संयुतां शैलो गृहीत्वा स्वसुतां ततः॥ २७६
जगाम शुभयोगेन तदा सम्पूर्णमानसः।
स काननान्युपाक्रम्य वनान्युपवनानि च॥ २७७
ददर्श रुदतीं नारीमग्रतः समहौजसम्।
रूपेणासदृशीं लोके रम्येषु वनसानुषु॥ २७८
कौतुकेन परामृश्य तां दृष्ट्वा रुदतीं गिरिः।
उपसर्प्य ततस्तस्या निकटे सोऽभ्यपृच्छत॥ २७९

शङ्करजीने कहा— कामवल्लभे! थोड़े ही समयके बाद यह कामदेव पुनः तुम्हें पतिरूपमें प्राप्त होगा। वह जगत्में अनङ्ग नामसे विख्यात होगा। इस प्रकार कही जानेपर काम-पत्नी रतिने सिर झुकाकर भगवान् शङ्करको प्रणाम किया, तत्पश्चात् वह हिमालयके रमणीय उपवनकी ओर चली गयी। उस सुरम्य स्थानपर पहुँचकर भी वह दीनभावसे बहुत देरतक विलाप करती रही; क्योंकि वह शङ्करजीकी आज्ञासे मृत्युके निश्चयसे निवृत्त हो चुकी थी॥२७२—२७४॥

इधर नारदजीके वाक्योंसे प्रेरित होकर पर्वतराज हिमालय उल्लासपूर्ण मनसे दो सखियोंके साथ अपनी कन्याको लेकर (शङ्करजीके पास जानेके लिये) शुभमुहूर्तमें प्रस्थित हुए। उस समय पार्वतीको आभूषणोंसे सुसज्जित कर दिया गया था। उनके सभी वैवाहिक मङ्गलकार्य सम्पन्न कर लिये गये थे। उनके मस्तकपर स्वर्गीय पुष्पोंकी माला पड़ी थी तथा शरीरपर श्वेत रंगकी महीन रेशमी साड़ी झलक रही थी। वे काननों, वनों एवं उपवनोंको पार करके जब आगे बढ़े तो उन्होंने उस रमणीय वनस्थलीमें एक महान् ओजस्विनी नारीको, जो लोकमें अनुपम रूपवती थी, रोती हुई देखा। तब गिरिराज उसे रोती देखकर कुतूहलवश उसके निकट गये और पूछने लगे॥२७५—२७९॥

हिमवानुवाच

कासि कस्यासि कल्याणि किमर्थं चापि रोदिषि।
नैतदल्पमहं मन्ये कारणं लोकसुन्दरि॥ २८०
सा तस्य वचनं श्रुत्वा उवाच मधुना सह।
रुदती शोकजननं श्वसती दैन्यवर्धनम्॥ २८१

हिमवान् बोले— कल्याणि! तुम कौन हो? किसकी पत्नी हो? किसलिये इस प्रकार रुदन कर रही हो? लोकसुन्दरि! मैं इसका असाधारण कारण नहीं मानता, (अपितु इसका कोई विशेष कारण है।) हिमाचलके वचनको सुनकर वसन्तसहित रोती हुई रति दीर्घ निःश्वास लेकर दैन्यवर्धक एवं शोकजनक वचन बोली॥२८०-२८१॥

रतिरुवाच

कामस्य दयितां भार्यां रतिं मां विद्धि सुव्रत।
गिरावस्मिन् महाभाग गिरिशस्तपसि स्थितः॥ २८२

रतिने कहा— सुव्रत! आप मुझे कामदेवकी प्यारी पत्नी रति समझें। महाभाग! इसी पर्वतपर भगवान् शङ्कर तपस्या कर रहे हैं।

तेन प्रत्यूहरुष्टेन विस्फार्यालोक्य लोचनम्।
दग्धोऽसौ झषकेतुस्तु मम कान्तोऽतिवल्लभः॥ २८३

अहं तु शरणं याता तं देवं भयविह्वला।
स्तुतवत्यथ संस्तुत्या ततो मां गिरिशोऽब्रवीत्॥ २८४

तुष्टोऽहं कामदयिते कामोऽयं ते भविष्यति।
त्वत्स्तुतिं चाप्यधीयानो नरो भक्त्या मदाश्रयः।
लप्स्यते काङ्क्षितं कामं निवर्त्य मरणादितः॥ २८५

प्रतीक्षन्ती च तद्वाक्यमाशावेशादिभिर्ह्यहम्।
शरीरं परिरक्षिष्ये कञ्चित् कालं महाद्युते॥ २८६

इत्युक्तस्तु तदा रत्या शैलः सम्भ्रमभीषितः।
पाणावादाय हि सुतां गन्तुमैच्छत् स्वकं पुरम्॥ २८७

भाविनोऽवश्यभावित्वाद्भवित्री भूतभाविनी।
लज्जमाना सखिमुखैरुवाच पितरं गिरिम्॥ २८८

शैलदुहितोवाच

दुर्भगेण शरीरेण किं मामनेन कारणम्।
कथं च तादृशं प्राप्तं सुखं मे स पतिर्भवेत्॥ २८९

तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं हि तपस्यतः।
दुर्भगत्वं वृथा लोको वहते सति साधने॥ २९०

जीविताद्दुर्भगाच्छ्रेयो मरणं ह्यतपस्यतः।
भविष्यामि न संदेहो नियमैः शोषये तनुम्॥ २९१

तपसि भ्रष्टसंदेह उद्यमोऽर्थजिगीषया।
साहं तपः करिष्यामि यदहं प्राप्य दुर्लभा॥ २९२

इत्युक्तः शैलराजस्तु दुहित्रा स्नेहविक्लवः।
उवाच वाचा शैलेन्द्रो स्नेहगद्गदवर्णया॥ २९३

हिमवानुवाच

उमेति चपले पुत्रि न क्षमं तावकं वपुः।
सोढुं क्लेशस्वरूपस्य तपसः सौम्यदर्शने॥ २९४

भावीन्यभिविचार्याणि पदार्थानि सदैव तु।
भाविनोऽर्था भवन्त्येव हठेनानिच्छतोऽपि वा॥ २९५

तपस्यामें विघ्न पड़नेसे रुष्ट होकर उन्होंने अपने तीसरे नेत्रको खोलकर देखा, जिससे मेरे परम प्रिय पति कामदेव जलकर भस्म हो गये। तब भयसे विह्वल हुई मैं उन देवाधिदेवकी शरणमें गयी। वहाँ मैंने उनकी स्तुति की। उस स्तवनसे प्रसन्न होकर भगवान् शङ्करने मुझसे कहा—'कामदयिते! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ। तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण हो जायगा। साथ ही जो मनुष्य मेरे शरणागत होकर तुम्हारे द्वारा की गयी इस स्तुतिका भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह अपनी मनोवाञ्छित कामनाको प्राप्त कर लेगा। अब तुम मृत्युके निश्चयसे निवृत्त हो जाओ।' महाद्युतिमान् पर्वतराज! उसी आशाके आवेशसे मैं शङ्करजीके वाक्यकी प्रतीक्षा करती हुई कुछ कालतक इस शरीरकी रक्षा करूँगी। रतिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर हिमाचल उस समय भयभीत हो गये। तब वे अपनी कन्याका हाथ पकड़कर अपने नगरको लौट जानेके लिये उद्यत हो गये। तब जो होनहार है, वह तो अवश्य होकर ही रहेगा— ऐसा विचारकर प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाली पार्वती लजाती हुई सखीके मुखसे अपने पिता गिरिराजसे बोलीं॥ २८२—२८८॥

गिरिराजकुमारीने कहा—पिताजी! इस अभागे शरीरको धारण करनेसे मुझे क्या लाभ प्राप्त हो सकता है? अब मैं किस प्रकार सुखी हो सकूँगी और किस उपायसे भगवान् शङ्कर मेरे पति हो सकेंगे? (ठीक है, ऐसा सुना जाता है कि) तपस्यासे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है; क्योंकि तपस्वीके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। भला ऐसे उत्तम साधनके रहते हुए भी लोग व्यर्थ ही दुर्भाग्यका भार क्यों वहन करते हैं? तपस्या न करनेवालेके लिये भाग्यहीन जीवनसे तो मर जाना ही श्रेयस्कर है। अतः मैं निःसंदेह तपस्विनी बनूँगी और नियमोंके पालनद्वारा अपने शरीरको सुखा डालूँगी। प्रयोजन-सिद्धिके लिये तपस्याके निमित्त संदेहरहित उद्यम अवश्य करना चाहिये। इसलिये अब मैं तपस्या करूँगी, जिससे मुझे वह दुर्लभ कामना प्राप्त हो जाय। पुत्रीद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर पर्वतराज हिमाचल स्नेहसे विह्वल हो गये, तब वे स्नेहभरी गद्गद वाणीसे बोले॥ २८९—२९३॥

हिमवान्‌ने कहा—बेटी! तू तो बड़ी चञ्चल है। 'उ—मा'—ऐसा मत कर; क्योंकि सुन्दर स्वरूपवाली बच्ची! तेरा यह शरीर क्लेशस्वरूप तपस्याके कष्टको सहन करनेके लिये सक्षम नहीं है। वत्से! भावी पदार्थोंके प्रति सदैव ऐसा समझना चाहिये कि होनहारके विषय न चाहनेपर

तस्मान्न तपसा तेऽस्ति बाले किञ्चित् प्रयोजनम्।
भवनायैव गच्छामश्चिन्तयिष्यामि तत्र वै॥ २९६

इत्युक्ता तु यदा नैव गृहायाभ्येति शैलजा।
ततः स चिन्तयाऽऽविष्टो दुहितां प्रशशंस च॥ २९७

ततोऽन्तरिक्षे दिव्या वागभूद्भुवनभूतले।
उमेति चपले पुत्रि त्वयोक्ता तनया ततः॥ २९८

उमेति नाम तेनास्या भुवनेषु भविष्यति।
सिद्धिं च मूर्तिमत्येषा साधयिष्यति चिन्तिताम्॥ २९९

इति श्रुत्वा तु वचनमाकाशात् काशपाण्डुरः।
अनुज्ञाय सुतां शैलो जगामाशु स्वमन्दिरम्॥ ३००

सूत उवाच

शैलजापि ययौ शैलमगम्यमपि दैवतैः।
सखीभ्यामनुयाता तु नियता नगराजजा॥ ३०१

शृङ्गं हिमवतः पुण्यं नानाधातुविभूषितम्।
दिव्यपुष्पलताकीर्णं सिद्धगन्धर्वसेवितम्॥ ३०२

नानामृगगणाकीर्णं भ्रमरोद्घुष्टपादपम्।
दिव्यप्रस्रवणोपेतं दीर्घिकाभिरलङ्कृतम्॥ ३०३

नानापक्षिगणाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम्।
जलजस्थलजैः पुष्पैः प्रोत्फुल्लैरुपशोभितम्॥ ३०४

चित्रकन्दरसंस्थानं गुहागृहमनोहरम्।
विहङ्गसंघसंजुष्टं कल्पपादपसंकटम्॥ ३०५

तत्रापश्यन्महाशाखं शाखिनं हरितच्छदम्।
सर्वर्तुकुसुमोपेतं मनोरथशतोज्ज्वलम्॥ ३०६

नानापुष्पसमाकीर्णं नानाविधफलान्वितम्।
नतं सूर्यस्य रुचिभिर्भिन्नसंहतपल्लवम्॥ ३०७

तत्राम्बराणि संत्यज्य भूषणानि च शैलजा।
संवीता वल्कलैर्दिव्यैर्दर्भनिर्मितमेखला॥ ३०८

भी हठपूर्वक घटित होते ही हैं; अतः बाले! तुझे तपस्या करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। आओ, हमलोग घर चलें, वहीं इस विषयमें विचार किया जायगा। इस प्रकार कहे जानेपर भी जब पार्वती घर लौटनेके लिये उद्यत नहीं हुई, तब हिमाचल चिन्तित हो गये और पुत्रीकी प्रशंसा करने लगे। इसी बीच धरातलपर इस प्रकारकी दिव्य आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'शैलराज! जो तुमने अपनी पुत्रीके प्रति **'उ मेति चपले पुत्रि**—चञ्चल बेटी! उसे मत कर'—ऐसा कहा है, इस कारण संसारमें इसका 'उमा' नाम प्रसिद्ध होगा। यह साक्षात् प्रकट होकर (भक्तोंको उनकी) अभीष्ट सिद्धि प्रदान करेगी।' इस आकाशवाणीको सुनकर कास-पुष्पके समान उज्ज्वल वर्णवाले हिमाचल अपनी पुत्रीको तपके निमित्त आज्ञा देकर शीघ्र ही अपने भवनको लौट गये॥ २९४—३००॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इधर पार्वती भी नियमबद्ध होकर अपनी दोनों सखियोंके साथ उस शिखरकी ओर प्रस्थित हुई, जो देवताओंके लिये भी अगम्य था। हिमालयका वह पावन शिखर अनेकों प्रकारकी धातुओंसे विभूषित था। उसपर दिव्य पुष्पोंकी लताएँ फैली हुई थीं। वह सिद्धों एवं गन्धर्वोंद्वारा सेवित था। वहाँ अनेकों जातियोंके मृगसमूह विचर रहे थे। उसके वृक्षोंपर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। वह दिव्य झरनोंसे युक्त तथा बावलियोंसे सुशोभित था। वहाँ नाना प्रकारके पक्षिसमूह चहचहा रहे थे। वह चक्रवाक पक्षीसे अलंकृत तथा जलमें एवं स्थलपर उत्पन्न होनेवाले खिले हुए पुष्पोंसे विभूषित था। वह विचित्र ढंगकी कन्दराओंसे युक्त था। उन गुफाओंमें मनको लुभानेवाले गृह बने थे। वहाँ घनेरूपमें कल्पवृक्ष उगे हुए थे, जिनपर पक्षिसमूह निवास करते थे। वहाँ पहुँचकर गिरिराजकुमारी पार्वतीने एक विशाल शाखाओंवाले वृक्षको देखा, जो हरे-हरे पत्तोंसे सुशोभित था। वह छहों ऋतुओंके पुष्पोंसे युक्त, सैकड़ों मनोरथोंकी भाँति उज्ज्वल, नाना प्रकारके पुष्पोंसे आच्छादित और अनेकविध फलोंसे लदा हुआ था। सूर्यकी किरणें उसके सघन पल्लवोंका भेदन कर नीचेतक नहीं पहुँच पाती थीं। उसी वृक्षके नीचे पार्वतीने अपने आभूषणों और वस्त्रोंको उतारकर मूँजकी मेखला और दिव्य वल्कलवस्त्रोंसे अपने शरीरको ढक लिया (और वे तपस्यामें निरत हो गयीं)।

त्रिःस्नाता पाटलाहारा बभूव शरदां शतम्।
शतमेकेन शीर्णेन पर्णेनावर्तयत् तदा॥ ३०९

निराहारा शतं साभूत् समानां तपसां निधिः।
तत उद्वेजिताः सर्वे प्राणिनस्तत्तपोऽग्निना॥ ३१०

उन्होंने प्रथम सौ वर्ष त्रिकाल स्नान और पाटल वृक्षके पत्तोंका भोजन करके बिताया। फिर दूसरे सौ वर्षोंतक वे एक सूखा पत्ता चबाकर जीवननिर्वाह करती रहीं और पुनः सौ वर्षोंतक निराहार रहकर तपस्यामें संलग्न रहीं। उस प्रकार वे तपस्याकी निधि बन गयीं। फिर तो उनकी तपस्याजन्य अग्निसे सभी प्राणी उद्विग्न हो उठे॥ ३०१—३१०॥

ततः सस्मार भगवान् मुनीन् सप्त शतक्रतुः।
ते समागम्य मुनयः सर्वे समुदितास्ततः॥ ३११
पूजिताश्च महेन्द्रेण पप्रच्छुस्तं प्रयोजनम्।
किमर्थं तु सुरश्रेष्ठ संस्मृतास्तु वयं त्वया॥ ३१२
शक्रः प्रोवाच शृण्वन्तु भगवन्तः प्रयोजनम्।
हिमाचले तपो घोरं तप्यते भूधरात्मजा।
तस्या ह्यभिमतं कामं भवन्तः कर्तुमर्हथ॥ ३१३
ततः समापतन् देव्या जगदर्थं त्वरान्विताः।
तथेत्युक्त्वा तु शैलेन्द्रं सिद्धसंघातसेवितम्॥ ३१४
ऊचुरागत्य मुनयस्तामथो मधुराक्षरम्।
पुत्रि किं ते व्यवसितः कामः कमललोचने॥ ३१५
तानुवाच ततो देवी सलज्जा गौरवान्मुनीन्।
तपस्यतो महाभागाः प्राप्य मौनं भवादृशान्॥ ३१६
वन्दनाय नियुक्ता धीः पावयत्यविकल्पितम्।
प्रश्नोन्मुखत्वाद् भवतां युक्तमासनमादितः॥ ३१७
उपविष्टाः श्रमोन्मुक्तास्ततः प्रक्ष्यथ मामतः।
इत्युक्त्वा सा ततश्चक्रे कृतासनपरिग्रहान्॥ ३१८
सा तु तान् विधिवत् पूज्यान् पूजयित्वा विधानतः।
उवाचादित्यसंकाशान् मुनीन् सप्त सती शनैः॥ ३१९

तदनन्तर ऐश्वर्यशाली इन्द्रने सातों मुनियोंका स्मरण किया। स्मरण करते ही वे सभी मुनि हर्षपूर्वक वहाँ उपस्थित हो गये। तब महेन्द्रद्वारा पूजित होनेपर उन्होंने इन्द्रसे अपना स्मरण किये जानेका प्रयोजन पूछते हुए कहा—'सुरश्रेष्ठ! किसलिये आपने हमलोगोंका स्मरण किया है?' यह सुनकर इन्द्रने कहा—'ऋषिगण! आपलोग मेरे उस प्रयोजनको श्रवण करें। हिमाचलकी कन्या पार्वती हिमालय पर्वतपर घोर तपका अनुष्ठान कर रही हैं। आपलोग उनकी अभीष्ट कामनाको पूर्ण करें।' तत्पश्चात् 'तथेति—बहुत अच्छा' यों कहकर जगत्‌का कल्याण करनेके लिये (अरुन्धतीसहित सभी) मुनिगण शीघ्र ही सिद्धसमूहोंसे सेवित हिमालयके शिखरपर पार्वती देवीके निकट पहुँचे। वहाँ पहुँचकर मुनियोंने पार्वतीसे मधुर वाणीमें पूछा—'कमलके समान नेत्रोंवाली पुत्रि! तुम अपना कौन-सा मनोरथ सिद्ध करना चाहती हो?' तब गौरववश लजाती हुई पार्वती देवीने उन मुनियोंसे कहा—'महाभाग मुनिगण! यद्यपि तपस्या करते समय मैंने मौनका नियम ले रखा था, तथापि आप-जैसे महापुरुषोंकी वन्दना करनेके लिये मेरी बुद्धि उत्सुक हो उठी है, जो निश्चय ही मुझे पावन बना रही है। प्रश्न पूछनेसे पूर्व आपलोगोंके लिये आसन ग्रहण कर लेना ही उपयुक्त है, अतः पहले आसनपर बैठिये, थकावटको दूर कीजिये, तत्पश्चात् मुझसे पूछिये।' ऐसा कहकर पार्वतीने उन पूजनीयोंको आसनपर विराजमान किया और विधि-विधानपूर्वक उनकी पूजा की। तत्पश्चात् सती धीमे स्वरमें सूर्यके समान तेजस्वी उन सप्तर्षियोंसे कहने लगीं॥ ३११—३१९॥

त्यक्त्वा व्रतात्मकं मौनं मौनं जग्राह ह्रीमयम्।
भावं तस्यास्तु मौनान्तं तस्याः सप्तर्षयो यथा॥ ३२०

उस समय उन्होंने व्रतसम्बन्धी मौनका त्याग कर लज्जामय मौन ग्रहण कर लिया था, जिससे उनका भाव मौन-दशामें परिणत हो गया था। तब सप्तर्षियोंने गौरवके अधीन हुई पार्वतीसे उस प्रयोजनके विषयमें पुनः प्रश्न

गौरवाधीनतां प्राप्ताः पप्रच्छुस्तां पुनस्तथा।
सापि गौरवगर्भेण मनसा चारुहासिनी॥ ३२१

किया। तदुपरान्त सुन्दर मुसकानवाली पार्वतीने गौरवपूर्ण

मुनीञ् शान्तकथालापान् प्रेक्ष्य प्रोवाच वाग्यमम्।
भगवन्तो विजानन्ति प्राणिनां मानसं हितम्॥ ३२२
मनोगतीभिरत्यर्थं कन्दर्प्यन्ते हि देहिनः।
केचित्तु निपुणास्तत्र घटन्ते विबुधोद्यमैः॥ ३२३
उपायैर्दुर्लभान् भावान् प्राप्नुवन्ति ह्यतन्द्रिताः।
अपरे तु परिच्छिन्ना नानाकाराभ्युपक्रमाः॥ ३२४
देहान्तरार्थमारम्भमाश्रयन्ति हितप्रदम्।
मम त्वाकाशसम्भूतपुष्पदामविभूषितम्॥ ३२५
वन्ध्या सुतं प्राप्तुकामा मनः प्रसरते मुहुः।
अहं किल भवं देवं पतिं प्राप्तुं समुद्यता॥ ३२६
प्रकृत्यैव दुराधर्षं तपस्यन्तं तु सम्प्रति।
सुरासुरैरनिर्णीतपरमार्थक्रियाश्रयम्॥ ३२७
साम्प्रतं चापि निर्दग्धमदनं वीतरागिणम्।
कथमाराधयेदीशं मादृशी तादृशं शिवम्॥ ३२८
इत्युक्ता मुनयस्ते तु स्थिरतां मनसस्ततः।
ज्ञातुमस्या वचः प्रोचुः प्रक्रमात् प्रकृतार्थकम्॥ ३२९

मुनय ऊचुः

द्विविधं तु सुखं तावत् पुत्रि लोकेषु भाव्यते।
शरीरस्यास्य सम्भोगैश्चेतसश्चापि निर्वृतिः॥ ३३०
प्रकृत्या स तु दिग्वासा भीमः पितृवणेशयः।
कपाली भिक्षुको नग्नो विरूपाक्षः स्थिरक्रियः॥ ३३१
प्रमत्तोन्मत्तकाकारो बीभत्सकृतसंग्रहः।
यतिना तेन कस्तेऽर्थो मूर्तानर्थेन काङ्क्षितः॥ ३३२
यदि ह्यस्य शरीरस्य भोगमिच्छसि साम्प्रतम्।
तत् कथं ते महादेवाद्भयभाजो जुगुप्सितात्॥ ३३३
स्त्रवद्रक्तवसाभ्यक्तकपालकृतभूषणात्।
श्वसदुग्रभुजंगेन्द्रकृतभूषणभीषणात्॥ ३३४
श्मशानवासिनो रौद्रप्रमथानुगतात् सति।

मनसे मुनियोंको शान्तरूपसे वार्तालाप करते देखकर वाणीपर संयम रखते हुए इस प्रकार कहा—'महर्षियो! आपलोग तो प्राणियोंके मानस हितको भलीभाँति जानते हैं। शरीरधारी प्राणी प्रायः अपने मनोगत भावोंके कारण ही अत्यधिक कष्टका अनुभव करते हैं। उनमें कुछ लोग ऐसे निपुण हैं, जो आलस्यरहित हो दैवी उपायोंद्वारा प्रयत्न करते हैं और दुर्लभ विषयोंको प्राप्त कर लेते हैं। दूसरे कुछ लोग ऐसे हैं, जो परिमित एवं नाना प्रकारके उपायोंसे युक्त हैं। वे देहान्तरको ही हितप्रद मानकर उसके लिये कार्यारम्भ करते हैं। परंतु मेरा मन आकाशमें उत्पन्न हुए पुष्पोंकी मालासे विभूषित वन्ध्या-पुत्रको प्राप्त करनेके लिये बारंबार प्रयास कर रहा है। मैं निश्चितरूपसे भगवान् शङ्करको पतिरूपमें प्राप्त करनेके लिये उद्यत हूँ। वे एक तो स्वभावसे ही दुराराध्य हैं, दूसरे इस समय तो वे तपस्यामें निरत हैं। सुर अथवा असुर कोई भी अबतक उनकी परमार्थ-क्रियाका निर्णय नहीं कर सका। अभी-अभी हालमें ही वे कामदेवको जलाकर वीतरागी तपस्वी बन गये हैं। भला मुझ-जैसी अबला वैसे कल्याणकारी शिवकी आराधना कैसे कर सकती है।' इस प्रकार कहे जानेपर वे मुनिगण पार्वतीके मनकी स्थिरताका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये क्रमशः उसी विषयपर पुनः बोले॥ ३२०—३२९॥

मुनियोंने कहा—'बेटी! लोकोंमें दो प्रकारके सुख बतलाये जाते हैं—एक तो इस शरीरके सम्भोगोंद्वारा और दूसरा मनकी (विषयभोगोंसे) निवृत्तिद्वारा प्राप्त होता है। शङ्करजी तो स्वभावसे ही दिगम्बर, विकृत वेषधारी, पितृवनमें शयन करनेवाले, कपालधारी, भिक्षुक, नग्न, विकृत नेत्रोंवाले और उद्यमहीन हैं। उनका आकार मतवाले पागलोंकी तरह है। वे घृणित वस्तुओंका ही संग्रह करते हैं। वे एकदम अनर्थकी मूर्ति हैं। ऐसे संन्यासीसे तुम अपना कौन-सा प्रयोजन सिद्ध करना चाहती हो? यदि तुम इस समय इस शरीरके भोगकी इच्छा करती हो तो भला उन भयावने एवं निन्दित महादेवसे तुम्हें उसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है; उनके तो चूते हुए रक्त और मज्जासे चुपड़े हुए कपाल ही भूषण हैं। वे फुफकारते हुए विषैले सर्पराजोंका आभूषण धारण करनेके कारण बड़े भीषण दीख पड़ते हैं, सदा श्मशानमें निवास करते हैं और भयंकर प्रमथगण उनके अनुचर हैं॥ ३३०—३३४½॥

सुरेन्द्रमुकुटव्रातनिघृष्टचरणोऽरिहा ॥ ३३५

हरिरस्ति जगद्धाता श्रीकान्तोऽनन्तमूर्तिमान्।
नाथो यज्ञभुजामस्ति तथेन्द्रः पाकशासनः॥ ३३६

देवतानां निधिश्चास्ति ज्वलनः सर्वकामकृत्।
वायुरस्ति जगद्धाता यः प्राणः सर्वदेहिनाम्॥ ३३७

तथा वैश्रवणो राजा सर्वार्थमतिमान् विभुः।
एभ्य एकतमं कस्मान्न त्वं सम्प्राप्तुमिच्छसि॥ ३३८

उतान्यदेहसम्प्राप्त्या सुखं ते मनसेप्सितम्।
एवमेतत् तवाप्यत्र प्रभवो नाकसम्पदाम्।
अस्मिन् नेह परत्रापि कल्याणप्राप्तयस्तव॥ ३३९

पितुरेवास्ति तत् सर्वं सुरेभ्यो यन्न विद्यते।
अतस्तत्प्राप्तये क्लेशः स वाप्यत्राफलस्तव॥ ३४०

प्रायेण प्रार्थितो भद्रे सुस्वल्पो ह्यतिदुर्लभः।
अस्य ते विधियोगस्य धाता कर्तात्र चैव हि॥ ३४१

इनसे तो कहीं अच्छे भगवान् विष्णु हैं, जिनके चरणोंपर प्रधान देवता अपने मुकुटसमूहोंको रगड़ते रहते हैं। जो शत्रुओंके संहारक, जगत्‌का पालन-पोषण करनेवाले, लक्ष्मीके पति और अनुपम शोभाशाली हैं। इसी प्रकार यज्ञभोजी देवताओंके स्वामी पाकशासन हैं। देवताओंके निधिस्वरूप एवं समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले अग्नि हैं। जगत्‌का पालन-पोषण करनेवाले वायु हैं, जो सभी शरीरधारियोंके प्राण हैं तथा विश्रवाके पुत्र राजाधिराज कुबेर हैं, जो बड़े ऐश्वर्यशाली, बुद्धिमान् और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके अधीश्वर हैं। तुम इनमेंसे किसी एकको प्राप्त करनेकी इच्छा क्यों नहीं कर रही हो? अथवा यदि तुमने अपने मनमें यह ठान लिया हो कि जन्मान्तरमें सुखकी प्राप्ति होगी तो वह भी तुम्हें स्वर्गवासी देवताओंसे ही प्राप्त हो सकता है। इस प्रकार तुम्हें देवताओंके बिना इस जन्ममें अथवा जन्मान्तरमें कल्याणकी प्राप्ति नहीं हो सकती। यदि अन्यान्य सुखदायक पदार्थोंको प्राप्त करना चाहती हो तो वे सब तुम्हारे पिताके पास ही इतने अधिक हैं, जो देवताओंके पास नहीं हैं; अतः उनकी प्राप्तिके हेतु तुम्हारा इस प्रकार कष्ट सहन करना व्यर्थ है। साथ ही भद्रे! प्रायः ऐसा देखा जाता है कि माँगी हुई वस्तुका मिलना अत्यन्त कठिन होता है और यदि मिल भी जाय तो बहुत थोड़ी ही मिलती है। इस कारण तुम्हारे इस मनोरथको ब्रह्मा ही पूर्ण कर सकते हैं (दूसरेकी शक्ति नहीं है)॥ ३३५—३४१॥

सूत उवाच

इत्युक्ता सा तु कुपिता मुनिवर्येषु शैलजा।
उवाच कोपरक्ताक्षी स्फुरद्भिर्दशनच्छदैः॥ ३४२

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! सप्तर्षियोंद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वती उन मुनियोंपर कुपित हो उठीं। उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये और होंठ फड़कने लगे, तब वे बोलीं॥ ३४२॥

देव्युवाच

असद्ग्रहस्य का नीतिर्नासनस्य क्व यन्त्रणा।
विपरीतार्थबोद्धारः सत्पथे केन योजिताः॥ ३४३

एवं मां वेत्थ दुष्प्रज्ञां ह्यस्थानासद्ग्रहप्रियाम्।
न मां प्रति विचारोऽस्ति ततोऽहङ्कारमानिनी॥ ३४४

प्रजापतिसमाः सर्वे भवन्तः सर्वदर्शिनः।

देवीने कहा— सप्तर्षियो! असद् वस्तुको ग्रहण करनेवालेके लिये नीति कैसी? तथा दुर्व्यसनीके लिये व्यसनकी प्राप्तिमें कष्ट कहाँ? (अर्थात् जिसमें जिसका मन आसक्त हो गया है, उसकी प्राप्तिके लिये उसे कितना ही कष्ट क्यों न झेलना पड़े, परंतु वह उसकी परवा नहीं करता।) अरे! विपरीत अर्थको जाननेवाले आपलोगोंको किसने सन्मार्गपर नियुक्त कर दिया? आपलोग मुझे इस प्रकार दुष्ट बुद्धिवाली तथा अयुक्त एवं असद् वस्तुको ग्रहण करनेकी अभिलाषिणी मानते हैं, अतः आपलोगोंका विचार मेरे प्रति ठीक नहीं है। इसी कारण मेरे मनमें अहंकारपूर्वक मान उत्पन्न हो गया है। यद्यपि आप सभी लोग प्रजापतिके समान समदर्शी हैं,

नूनं न वेत्थ तं देवं शाश्वतं जगतः प्रभुम्॥ ३४५
अजमीशानमव्यक्तममेयमहिमोदयम् ॥ ३४६

आस्तां तद्धर्मसद्भावसम्बोधस्तावदद्भुतः।
विदुर्यं न हरिब्रह्मप्रमुखा हि सुरेश्वराः॥ ३४७

यत्तस्य विभवात् स्वोत्थं भुवनेषु विजृम्भितम्।
प्रकटं सर्वभूतानां तदप्यत्र न वेत्थ किम्॥ ३४८

कस्यैतद्गगनं मूर्तिः कस्याग्निः कस्य मारुतः।
कस्य भूः कस्य वरुणः कश्चन्द्रार्कविलोचनः॥ ३४९

कस्यार्चयन्ति लोकेषु लिङ्गं भक्त्या सुरासुराः।
यं ब्रुवन्तीश्वरं देवा विधीन्द्राद्या महर्षयः॥ ३५०

प्रभावं प्रभवं चैव तेषामपि न वेत्थ किम्।
अदितिः कस्य मातेयं कस्माज्जातो जनार्दनः॥ ३५१

अदितेः कश्यपाज्जाता देवा नारायणादयः।
मरीचेः कश्यपः पुत्रो ह्यदितिर्दक्षपुत्रिका॥ ३५२

मरीचिश्चापि दक्षश्च पुत्रौ तौ ब्रह्मणः किल।
ब्रह्मा हिरण्मयात्त्वण्डाद्दिव्यसिद्धिविभूषितात्॥ ३५३

कस्य प्रादुरभूद्ध्यानात्प्राकृतैः प्रकृतांशकात्।
प्रकृतौ तु तृतीयायामम्बुजाज्जननक्रिया॥ ३५४

जातः ससर्ज षड्वर्गान् बुद्धिपूर्वान्स्वकर्मजान्।
अजातकोऽभवद्ब्रेधा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥ ३५५

यः स्वयोगेन संक्षोभ्य प्रकृतिं कृतवानिदम्।
ब्रह्मणः सिद्धसर्वार्थमैश्वर्यं लोककर्तृताम्॥ ३५६

विदुर्विष्ण्वादयो यच्च स्वमहिम्ना सदैव हि।
कृत्वान्यं देहमन्यादृक् तादृक् कृत्वा पुनर्हरिः॥ ३५७

कुरुते जगतः कृत्यमुत्तमाधममध्यमम्।
एवमेव हि संसारो यो जन्ममरणात्मकः॥ ३५८

कर्मणश्च फलं ह्येतन्नानारूपसमुद्भवम्।

तथापि उन महादेवके विषयमें आपलोगोंको निश्चय ही कुछ भी ज्ञात नहीं है। वे अविनाशी, जगत्‌के स्वामी, अजन्मा, शासक, अव्यक्त और अप्रमेय महिमावाले हैं। विष्णु और ब्रह्मा आदि सुरेश्वर भी जिन्हें नहीं जानते, उन महादेवके धर्म एवं सद्भावका जो अद्भुत ज्ञान आपलोग दे रहे हैं, उसे अब रहने दीजिये। जिसके विभवसे उत्पन्न हुआ चैतन्य सभी लोकोंमें फैला हुआ है और सभी प्राणियोंमें प्रत्यक्षरूपसे दृष्टिगोचर हो रहा है, उसे भी क्या आपलोग नहीं जानते। (भला सोचिये तो सही) यह आकाश, अग्नि, वायु, पृथ्वी और वरुण पृथक्-पृथक्‌रूपसे किसकी मूर्ति हैं? चन्द्रमा और सूर्यको नेत्ररूपमें धारण करनेवाला कौन है? समस्त सुर एवं असुर लोकोंमें भक्तिपूर्वक किसके लिङ्गकी अर्चना करते हैं? ब्रह्मा एवं इन्द्र आदि देवता तथा महर्षिगण जिन्हें अपना ईश्वर मानते हैं, उन देवताओंके प्रभाव एवं उत्पत्तिको भी क्या आपलोग नहीं जानते?॥ ३४३—३५०½॥

(यदि नहीं जानते तो सुनिये—) ये अदिति किसकी माता हैं और विष्णु किससे उत्पन्न हुए हैं? ये नारायण आदि सभी देवता कश्यप और अदितिसे ही उत्पन्न हुए हैं। वे कश्यप महर्षि मरीचिके पुत्र हैं और अदिति प्रजापति दक्षकी पुत्री हैं। ये दोनों मरीचि और दक्ष भी ब्रह्माके पुत्र हैं और ब्रह्मा दिव्य सिद्धिसे विभूषित हिरण्मय अण्डसे प्रकट हुए हैं। उनका प्रादुर्भाव किसके ध्यानसे हुआ था? (अर्थात् ब्रह्माके आविर्भावके कारण महादेव ही हैं।) ब्रह्मा प्राकृत गुणोंके संयोगसे प्रकृतिके अंशसे तृतीय-प्रकृतिमें कमलपर उत्पन्न हुए थे। जन्म लेते ही उन्होंने बुद्धिपूर्वक अपने कर्मवश उत्पन्न होनेवाले षड्वर्गोंकी सृष्टि की। इस प्रकार अव्यक्तजन्मा ब्रह्मसे उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्मा अजन्मा कहलाये, जिन्होंने अपने योगबलसे प्रकृतिको संक्षुब्ध कर इस जगत्‌की रचना की। विष्णु आदि सभी देवता अपनी महिमासे सदासे ही ब्रह्माकी सर्वार्थसिद्धि, ऐश्वर्य और लोकरचनाको जानते हैं। पुनः श्रीहरि युगानुसार विभिन्न प्रकारका शरीर धारण कर जगत्‌के उत्तम, मध्यम और अधम कर्मोंका सम्पादन करते हैं। जन्म-मृत्युरूप संसारकी यही स्थिति है और अनेक रूपोंमें उत्पन्न हुए कर्मोंका भी यही फल है॥ ३५१—३५८½॥

अथ नारायणो देवः स्वकां छायां समाश्रयत्॥ ३५९

तत्प्रेरितः प्रकुरुते जन्म नानाप्रकारकम्।
सापि कर्मण एवोक्ता प्रेरणा विवशात्मनाम्॥ ३६०

यथोन्मादादिजुष्टस्य मतिरेव हि सा भवेत्।
इष्टान्येव यथार्थानि विपरीतानि मन्यते॥ ३६१

लोकस्य व्यवहारेषु सृष्टेषु सहते सदा।
धर्माधर्मफलावाप्तौ विष्णुरेव निबोधितः॥ ३६२

अथानादित्वमस्यास्ति सामान्यात्तु तदात्मना।
न ह्यस्य जीवितं दीर्घं दृष्टं देहे तु कुत्रचित्॥ ३६३

भवद्भिर्यस्य नो दृष्टमन्तमग्रमथापि वा।
देहिनां धर्म एवैष क्वचिज्जायेत् क्वचिन्म्रियेत्॥ ३६४

क्वचिद्गर्भगतो नश्येत्क्वचिज्जीवेज्जरामयः।
क्वचित्समाःशतं जीवेत् क्वचिद्बाल्ये विपद्यते॥ ३६५

शतायुः पुरुषो यस्तु सोऽनन्तः स्वल्पजन्मनः।
जीवितो न म्रियत्यग्रे तस्मात् सोऽमर उच्यते॥ ३६६

अदृष्टजन्मनिधना ह्येवं विष्ण्वादयो मताः।
एतत् संशुद्धमैश्वर्यं संसारे को लभेदिह॥ ३६७

तत्र क्षयादियोगात् तु नानाश्चर्यस्वरूपिणि।
तस्माद्विवश्चरान् सर्वान् मलिनान् स्वल्पभूतिकान्॥ ३६८

नाहं भद्राः किलेच्छामि ऋते शर्वात् पिनाकिनः।
स्थितं च तारतम्येन प्राणिनां परमं त्विदम्॥ ३६९

धीबलैश्वर्यकार्यादिप्रमाणं महतां महत्।
यस्मान्न कश्चिदपरं सर्वे यस्मात् प्रवर्तते॥ ३७०

यस्यैश्वर्यमनाद्यन्तं तमहं शरणं गता।
एष मे व्यवसायश्च दीर्घोऽतिविपरीतकः॥ ३७१

यात वा तिष्ठतैवाथ मुनयो मद्विधायकाः।
एवं निशम्य वचनं देव्या मुनिवरास्तदा॥ ३७२

आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सस्वजुस्तां तपस्विनीम्।
ऊचुश्च परमप्रीताः शैलजां मधुरं वचः॥ ३७३

तदनन्तर भगवान् नारायण अपनी छायाका आश्रय ग्रहण करते हैं और उससे प्रेरित हो नाना प्रकारका जन्म धारण करते हैं। वह प्रेरणा भी भाग्याधीन प्राणियोंके कर्मके अनुरूप ही कही गयी है, जो उन्माद आदिसे युक्त पुरुषकी बुद्धि-जैसी होती है; क्योंकि वह अपनी यथार्थ इष्ट वस्तुओंको भी विपरीत ही मानता है और सदा लोकके लिये रचे गये व्यवहारोंमें कष्ट भोगता है। इस प्रकार धर्म और अधर्मके फलकी प्राप्तिमें विष्णु ही कारण माने गये हैं। यद्यपि विष्णुको सामान्यतया आत्मरूपसे अनादि माना जाता है,तथापि उनका किसी भी देहमें दीर्घ जीवन नहीं देखा गया। आपलोग भी उनके आदि- अन्तको नहीं जानते, किंतु देहधारियोंका यह धर्म है कि वे कहीं जन्म लेते हैं तो मरते कहीं हैं। कहीं गर्भमें ही नष्ट हो जाते हैं तो कहीं बुढ़ापा और रोगसे ग्रस्त होकर भी जीवित रहते हैं। कोई सौ वर्षोंतक जीवित रहता है तो कोई बचपनमें ही कालके गालमें चला जाता है। जिस पुरुषकी आयु सौ वर्षकी होती है, वह थोड़ी आयुवालेकी अपेक्षा अनन्त आयुवाला कहा जाता है। सदा जीवित रहते हुए जो आगे चलकर मृत्युको नहीं प्राप्त होता, उसे अमर कहा जाता है। इस तरह विष्णु आदि देवगण भी प्रारब्ध, जन्म और मृत्युसे युक्त माने गये हैं। भला, जो विनाश आदिके संयोगसे नाना प्रकारके आश्चर्यमय स्वरूपोंसे युक्त है, उस संसारमें ऐसा विशुद्ध ऐश्वर्य किसको प्राप्त हो सकता है? अतः भद्रपुरुषो! मैं पिनाकधारी शङ्करजीके अतिरिक्त इन सभी मलिन एवं स्वल्प विभूतिवाले देवताओंको नहीं वरण करना चाहती। प्राणियोंकी यह उत्कृष्टता तो क्रमशः चली ही आ रही है, किंतु जो महापुरुष हैं, उनके बल, बुद्धि, ऐश्वर्य और कार्यका प्रमाण भी विशाल होता है। अतः जिन शङ्करजीसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है और जहाँ पहुँचकर सभी समाप्त हो जाते हैं तथा जिनका ऐश्वर्य आदि-अन्तसे रहित है, मैंने उन्हींकी शरण ग्रहण की है। मेरा यह व्यवसाय अत्यन्त महान् तथा विचित्र है। मेरे कल्याणका विधान करनेवाले मुनियो! अब आपलोग चाहे चले जायँ अथवा ठहरें, यह आपकी इच्छापर निर्भर है। पार्वती देवीके ऐसे वचन सुनकर उन मुनिवरोंकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। तब उन्होंने उस तपस्विनी कन्याको गले लगाया। फिर वे परम प्रसन्न होकर पार्वतीसे मधुर वाणीमें बोले॥३५९—३७३॥

ऋषय ऊचुः

अत्यद्भुतास्यहो पुत्रि ज्ञानमूर्तिरिवामला।
प्रसादयति नो भावं भवभावप्रतिश्रयात्॥ ३७४

न तु विद्मो वयं तस्य देवस्यैश्वर्यमद्भुतम्।
त्वन्निश्चयस्य दृढतां वेत्तुं वयमिहागताः॥ ३७५

अचिरादेव तन्वङ्गि कामस्तेऽयं भविष्यति।
क्वादित्यस्य प्रभा याति रत्नेभ्यः क्व द्युतिः पृथक्॥ ३७६

कोऽर्थो वर्णालिकाव्यक्तः कथं त्वं गिरिशं विना।
यामो नैकाभ्युपायेन तमभ्यर्थयितुं वयम्॥ ३७७

अस्माकमपि वै सोऽर्थः सुतरां हृदि वर्तते।
अतस्त्वमेव सा बुद्धिर्यतो नीतिस्त्वमेव हि॥ ३७८

अतो निःसंशयं कार्यं शङ्करोऽपि विधास्यति।
इत्युक्त्वा पूजिता याता मुनयो गिरिकन्यया॥ ३७९

प्रययुर्गिरिशं द्रष्टुं प्रस्थं हिमवतो महत्।
गङ्गाम्बुप्लावितात्मानं पिङ्गबद्धजटासटम्॥ ३८०

भृङ्गानुयातपाणिस्थमन्दारकुसुमस्रजम्।
गिरेः सम्प्राप्य ते प्रस्थं ददृशुः शङ्कराश्रमम्॥ ३८१

प्रशान्ताशेषसत्त्वौघं नवस्तिमितकाननम्।
निःशब्दाक्षोभसलिलप्रपानं सर्वतोदिशम्॥ ३८२

तत्रापश्यंस्ततो द्वारि वीरकं वेत्रपाणिनम्।
सप्त ते मुनयः पूज्या विनीताः कार्यगौरवात्॥ ३८३

ऊचुर्मधुरभाषिण्या वाचा ते वाग्मिनां वराः।
द्रष्टुं वयमिहायाताः शरण्यं गणनायकम्॥ ३८४

त्रिलोचनं विजानीहि सुरकार्यप्रचोदिताः।
त्वमेव नो गतिस्तत्त्वं यथा कालानतिक्रमः॥ ३८५

सा प्रार्थनैषा प्रायेण प्रतीहारमयः प्रभुः।
इत्युक्तो मुनिभिः सोऽथ गौरवात् तानुवाच सः॥ ३८६

ऋषियोंने कहा—पुत्रि! तुम तो अत्यन्त अद्भुत निर्मल ज्ञानकी मूर्ति-जैसी प्रतीत हो रही हो। अहो! शङ्करजीके भावसे भावित तुम्हारा भाव हमलोगोंको परम आनन्दित कर रहा है। शैलजे! उन देवाधिदेव शङ्करके इस अद्भुत ऐश्वर्यको हमलोग नहीं जानते हैं— ऐसी बात नहीं है, अपितु हमलोग तुम्हारे निश्चयकी दृढ़ता जाननेके लिये यहाँ आये हैं। तन्वङ्गि! शीघ्र ही तुम्हारा यह मनोरथ पूर्ण होगा। भला, सूर्यकी प्रभा सूर्यको छोड़कर कहीं जा सकती है? रत्नोंकी कान्ति रत्नोंसे पृथक् होकर कहीं ठहर सकती है? तथा अक्षरसमूहोंसे प्रकट होनेवाला अर्थ अक्षरोंसे अलग कहीं रह सकता है? उसी प्रकार तुम शङ्करजीके बिना कैसे रह सकती हो। अच्छा, अब हमलोग अनेकों उपायोंद्वारा शङ्करजीसे प्रार्थना करनेके निमित्त जा रहे हैं; क्योंकि हमलोगोंके हृदयमें भी वही प्रयोजन निश्चित-रूपसे वर्तमान है। उसकी सिद्धिके लिये तुम्हीं वह बुद्धि और नीति हो। अतः शङ्करजी भी निःसंदेह उस कार्यका विधान करेंगे। ऐसा कहकर गिरिराजकुमारीद्वारा पूजित हो वे मुनिगण वहाँसे चल पड़े। तदनन्तर जो अपने शरीरको गङ्गा-जलसे आप्लावित करते हैं, जिनके मस्तकपर पीली जटा बँधी रहती है तथा जिनके गलेमें पड़ी हुई मन्दार-पुष्पोंकी माला हथेलीतक लटकती रहती है, जिसपर भँवरे मँड़राते रहते हैं, उन शङ्करजीका दर्शन करनेके लिये वे सप्तर्षि हिमालयके विशाल शिखरकी ओर प्रस्थित हुए। हिमालयके उस शिखरपर पहुँचकर उन्होंने शङ्करजीके आश्रमको देखा। उस आश्रममें सम्पूर्ण प्राणिसमूह शान्तरूपसे बैठे हुए थे। वहाँका नूतन कानन भी शान्त था। चारों दिशाओंमें शब्दरहित एवं स्वच्छन्दगतिसे प्रवाहित होनेवाले जलसे युक्त झरने झर रहे थे। उस आश्रमके द्वारपर उन पूज्य एवं विनीत सप्तर्षियोंने हाथमें बेंत धारण किये वीरकको देखा। तब वक्ताओंमें श्रेष्ठ वे सप्तर्षि कार्यके गौरववश वीरकसे मधुर वाणीमें बोले—'द्वारपाल! ऐसा समझो कि हमलोग देवकार्यसे प्रेरित होकर यहाँ शरणदाता एवं गणनायक त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्करका दर्शन करनेके लिये आये हैं। इस विषयमें तुम्हीं हमलोगोंके साधन हो। इसलिये हमलोगोंकी यह प्रार्थना है कि ऐसा उपाय करो, जिससे हमलोगोंका कालातिक्रम न हो; क्योंकि स्वामियोंको सूचना तो प्रायः द्वारपालसे ही मिलती है।' मुनियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वीरकने गौरववश उनसे कहा—

समन्वास्यापरां संध्यां स्नातुं मन्दाकिनीजलैः।
क्षणेन भविता विप्रास्तत्र द्रक्ष्यथ शूलिनम्॥ ३८७

इत्युक्ता मुनयस्तस्थुस्ते तत्कालप्रतीक्षिणः।
गम्भीराम्बुधरं प्रावृट्तृषिताश्चातका यथा॥ ३८८

'विप्रवरो! अभी-अभी दोपहरकी संध्या समाप्त कर शङ्करजी मन्दाकिनीके जलमें स्नान करनेके लिये गये हैं, अतः क्षणभर ठहरिये, फिर आपलोग उन त्रिशूलधारीका दर्शन कीजियेगा।' इस प्रकार कहे जानेपर वे मुनिगण उस कालकी प्रतीक्षा करते हुए उसी प्रकार खड़े रहे, जैसे वर्षा-ऋतुमें प्यासे चातक जलसे भरे हुए बादलकी ओर टकटकी लगाये रहते हैं॥ ३७४—३८८॥

ततः क्षणेन निष्पन्नसमाधानक्रियाविधिः।
वीरासनं बिभेदेशो मृगचर्मनिवासितम्॥ ३८९
ततो विनीतो जानुभ्यामवलम्ब्य महीस्थितिम्।
उवाच वीरको देवं प्रणामैकसमाश्रयः॥ ३९०
सम्प्राप्ता मुनयः सप्त द्रष्टुं त्वां दीप्ततेजसः।
विभो समादिश द्रष्टुमवगन्तुमिहार्हसि।
तेऽब्रुवन् देवकार्येण तव दर्शनलालसाः॥ ३९१
इत्युक्तो धूर्जटिस्तेन वीरकेण महात्मना।
भ्रूभङ्गसंज्ञया तेषां प्रवेशाज्ञां ददौ तदा॥ ३९२
मूर्धकम्पेन तान् सर्वान् वीरकोऽपि महामुनीन्।
आजुहावाविदूरस्थान् दर्शनाय पिनाकिनः॥ ३९३
त्वराबद्धार्धचूडास्ते लम्बमानाजिनाम्बराः।
विविशुर्वेदिकां सिद्धां गिरिशस्य विभूतिभिः॥ ३९४
बद्धपाणिपुटाक्षिप्तनाकपुष्पोत्करास्ततः।
पिनाकिपादयुगलं वन्द्यं नाकनिवासिनाम्॥ ३९५
ततः स्निग्धेक्षिताः शान्ता मुनयः शूलपाणिना।
मन्मथारिं ततो हृष्टाः सम्यक् तुष्टुवुरादृताः॥ ३९६

तत्पश्चात् थोड़ी देर बाद जब समाधि सम्पन्न करके शङ्करजी मृगचर्मपर लगाये हुए वीरासनको छोड़कर उठे, तब वीरकने विनम्र भावसे पृथ्वीपर घुटने टेककर प्रणाम करते हुए महादेवजीसे कहा—'विभो! प्रचण्ड तेजस्वी सप्तर्षि आपका दर्शन करनेके लिये आये हुए हैं। उन्हें दर्शन करनेके लिये आदेश दीजिये अथवा इस विषयमें आप जैसा उचित समझें। उनके मनमें आपके दर्शनकी लालसा है और वे कह रहे हैं कि हमलोग देवकार्यसे आये हुए हैं।' तब उस महात्मा वीरकद्वारा इस प्रकार सूचित किये जानेपर जटाधारी शङ्करने भौंहोंके संकेतसे उन लोगोंके लिये प्रवेशाज्ञा प्रदान की। फिर तो वीरकने भी समीपमें ही स्थित उन सभी मुनियोंको सिर हिलाकर संकेतसे पिनाकधारी शङ्करका दर्शन करनेके लिये बुलाया। यह देखकर उतावलीवश आधी बँधी हुई शिखावाले एवं मृगचर्मरूपी वस्त्रको लटकाये हुए वे मुनिलोग शङ्करजीकी विभूतिसे सिद्ध हुई वेदीमें प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने बँधी हुई अञ्जलि तथा दोनेमें रखे हुए स्वर्गीय पुष्पसमूहोंको स्वर्गवासियोंद्वारा वन्दनीय शिवजीके दोनों चरणोंपर बिखेरकर नमस्कार किया। तब त्रिशूलधारी शङ्करने उन शान्तस्वभाव मुनियोंकी ओर स्नेहभरी दृष्टिसे देखा। इस प्रकार सत्कृत होनेसे प्रसन्न हुए ऋषिगण कामदेवके शत्रु भगवान् शङ्करकी सम्यक् प्रकारसे स्तुति करने लगे॥ ३८९—३९६॥

मुनय ऊचुः

अहो कृतार्था वयमेव साम्प्रतं
सुरेश्वरोऽप्यत्र पुरो भविष्यति।
भवत्प्रसादामलवारिसेकतः
फलेन काचित् तपसा नियुज्यते॥ ३९७

मुनियोंने कहा—अहो भगवन्! इस समय हमलोग तो कृतार्थ हो ही गये, आगे चलकर देवराज इन्द्र भी सफलमनोरथ होंगे। इसी प्रकार आपकी कृपारूपी निर्मल जलके सिंचनसे कोई तपस्विनी भी अपनी तपस्याके फलसे युक्त होगी।

जयत्यसौ धन्यतरो हिमाचल-
स्तदाश्रयं यस्य सुता तपस्यति।
स दैत्यराजोऽपि महाफलोदयो
विमूलिताशेषसुरो हि तारकः॥ ३९८

त्वदीयमंशं प्रविलोक्य कल्मषात्
स्वकं शरीरं परिमोक्ष्यते हि यः।
स धन्यधीर्लोकपिता चतुर्मुखो
हरिश्च यत्सम्भ्रमवह्निदीपितः॥ ३९९

त्वदङ्घ्रियुग्मं हृदयेन बिभ्रतो
महाभितापप्रशमैकहेतुकम्।
त्वमेव चैको विविधकृतक्रियः
किलेति वाचा विधुरैर्विभाव्यते॥ ४००

अथाद्य एकस्त्वमवैषि नान्यथा
जगत्तथा निर्घृणतां तव स्पृशेत्।
न वेत्सि वा दुःखमिदं भवात्मकं
विहन्यते ते खलु सर्वतः क्रिया॥ ४०१

उपेक्षसे चेज्जगतामुपद्रवं
दयामयत्वं तव केन कथ्यते।
स्वयोगमायामहिमागुहाश्रयं
न विद्यते निर्मलभूतिगौरवम्॥ ४०२

वयं च ते धन्यतमाः शरीरिणां
यदीदृशं त्वां प्रविलोकयामहे।
अदर्शनं तेन मनोरथो यथा
प्रयाति साफल्यतया मनोगतम्॥ ४०३

जगद्विधानैकविधौ जगन्मुखे
करिष्यसेऽतो बलभिच्चरा वयम्।
विनेमुरित्थं मुनयो विसृज्य तां
गिरं गिरीशश्रुतिभूमिसन्निधौ।
उत्कृष्टकेदार इवावनीतले
सुबीजमुष्टिं सुफलाय कर्षकाः॥ ४०४

इस धन्यवादके पात्र हिमाचलकी जय हो, जिनके आश्रयमें रहकर उनकी कन्या तपस्या कर रही है। सम्पूर्ण देवताओंको उखाड़ फेंकनेवाले दैत्यराज तारकके भी महान् पुण्यफलका उदय हो गया है, जो आपके अंशसे उत्पन्न हुए पुत्रको देखकर पापसे निर्मुक्त हो अपने शरीरका परित्याग करेगा। लोकपिता चतुर्मुख ब्रह्माकी तथा तारकके भयरूपी अग्निसे संतप्त श्रीहरिकी भी बुद्धि धन्य है, जो महान् संतापके प्रशमनके लिये एकमात्र कारणभूत आपके दोनों चरणोंको अपने हृदयमें धारण करते हैं। एकमात्र आप ही अनेकविध दुरूह कार्योंको सम्पन्न करनेवाले हैं, दुःखी लोग आपका ऐसा विरद गाते हैं। इसे अकेले आप ही जानते हैं, अतः इसके विपरीत कोई ऐसा कार्य न कीजिये, जिससे जगत्‌को आपकी निर्दयताका अनुभव होने लगे। अथवा यदि आप इस सांसारिक दुःखकी ओर ध्यान नहीं देते तो आपकी सर्वतोमुखी क्रिया लुप्त होने जा रही है। यदि आप इस प्रकार जगत्‌के उपद्रवकी उपेक्षा कर दे रहे हैं तो किसलिये आपको दयामय कहा जा सकता है। साथ ही अपनी योगमायाकी महिमारूपी गुफामें स्थित रहनेवाला आपके निर्मल ऐश्वर्यका गौरव भी विद्यमान नहीं रह सकता। शरीरधारियोंमें हमलोग भी अतिशय धन्यवादके पात्र हैं, जो इस प्रकार आपका दर्शन कर रहे हैं। इसलिये हमारा मनोरथ नष्ट नहीं होना चाहिये। आप जगकी रक्षाके विधानमें जगत्‌के लिये ऐसा करें जिससे हमारे मनोगत भाव सफल हो जायँ। हमलोग देवराज इन्द्रके दूत बनकर आये हैं। ऐसा कहकर वे मुनिगण शङ्करजीके चरणोंमें अवनत हो गये। उस समय उन्होंने शङ्करजीके कानरूपी भूमिके निकट उस वाणीरूपी बीजको इस प्रकार छींट दिया था, जैसे किसानलोग भलीभाँति जोती हुई भूमिपर अच्छे फलकी प्राप्तिके निमित्त उत्तम बीजकी मूँठ डाल देते हैं॥३९७—४०४॥

तेषां श्रुत्वा ततो रम्यां प्रक्रमोपक्रमक्रियाम्।
वाचं वाचस्पतिरिव प्रोवाच स्मितसुन्दरः॥ ४०५

तदनन्तर उन मुनियोंकी सिलसिलेवार योजनासे युक्त मनोहर वाणीको सुनकर भगवान् शङ्करके मुखपर मुसकानकी छटा बिखर गयी। तब वे बृहस्पतिकी तरह सान्त्वनापूर्ण वचन बोले॥ ४०५॥

शर्व उवाच

जाने लोकविधानस्य कन्यासत्कार्यमुत्तमम्।
जाता प्रालेयशैलस्य संकेतकनिरूपणा:॥ ४०६

सत्यमुत्कण्ठिता: सर्वे देवकार्यार्थमुद्यता:।
तेषां त्वरन्ति चेतांसि किंतु कार्यं विवक्षितम्॥ ४०७

लोकयात्रानुगन्तव्या विशेषेण विचक्षणै:।
सेवन्ते ते यतो धर्मं तत्प्रामाण्यात्परे स्थिता:॥ ४०८

इत्युक्ता मुनयो जग्मुस्त्वरितास्तु हिमाचलम्।
तत्र ते पूजितास्तेन हिमशैलेन सादरम्।
ऊचुर्मुनिवरा: प्रीता: स्वल्पवर्णं त्वरान्विता:॥ ४०९

मुनय ऊचु:

देवो दुहितरं साक्षात्पिनाकी तव मार्गति।
तच्छीघ्रं पावयात्मानमाहुत्येवानलार्पणात्॥ ४१०

कार्यमेतच्च देवानां सुचिरं परिवर्तते।
जगदुद्धरणायैष क्रियतां वै समुद्यम:॥ ४११

इत्युक्तस्तैस्तदा शैलो हर्षाविष्टोऽवदन्मुनीन्।
असमर्थोऽभवद् वक्तुमुत्तरं प्रार्थयच्छिवम्॥ ४१२

ततो मेना मुनीन् वन्द्य प्रोवाच स्नेहविक्लवा।
दुहितुस्तान् मुनींश्चैव चरणाश्रयमर्थवित्॥ ४१३

मेनोवाच

यदर्थं दुहितुर्जन्म नेच्छन्त्यपि महाफलम्।
तदेवोपस्थितं सर्वं प्रक्रमेणैव साम्प्रतम्॥ ४१४

कुलजन्मवयोरूपविभूत्यर्द्धियुतोऽपि य:।
वरस्तस्यापि चाहूय सुता देया ह्ययाचत:॥ ४१५

तत्समस्ततपो घोरं कथं पुत्री प्रयास्यति।
पुत्रीवाक्याद्यदत्रास्ति विधेयं तद्विधीयताम्॥ ४१६

शङ्करजीने कहा— मुनिवरो! जगत्के कल्याणके लिये किये जाते हुए कन्याके उस उत्तम सत्कार्यको मैं जानता हूँ। वह कन्या हिमाचलकी पुत्रीरूपमें उत्पन्न हुई है। आपलोग उसीके संयोग-प्रस्तावका निरूपण कर रहे हैं। यह सत्य है कि सभी लोग देवकार्यकी सिद्धिके हेतु उत्सुक और उद्यत हैं, इसीसे उनके चित्त उतावलीसे भर गये हैं, किंतु यह कार्य कुछ कालकी अपेक्षा कर रहा है अर्थात् इसके पूर्ण होनेमें कुछ विलम्ब है। विद्वानोंको विशेषरूपसे लोकव्यवहारका निर्वाह करना चाहिये; क्योंकि वे जिस धर्मका सेवन करते हैं, वही दूसरोंके लिये प्रमाणरूप बन जाता है। ऐसा कहे जानेपर मुनिगण तुरंत ही हिमाचलके पास चल दिये। वहाँ पहुँचनेपर हिमाचलने उनकी आदरपूर्वक आवभगत की। तब प्रसन्न हुए मुनिवर शीघ्रतापूर्वक थोड़े शब्दोंमें (इस प्रकार) बोले॥ ४०६—४०९॥

मुनियोंने कहा— पर्वतराज! पिनाकधारी साक्षात् महादेव आपकी कन्याको प्राप्त करना चाहते हैं, अत: अग्निमें पड़ी हुई आहुतिकी तरह उसे शीघ्र ही उन्हें प्रदान करके अपने आत्माको पवित्र कर लीजिये। देवताओंका यह कार्य चिरकालसे चला आ रहा है, अत: जगत्का उद्धार करनेके लिये आप इस उद्योगको शीघ्र सम्पन्न कीजिये। मुनियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर उस समय हिमाचल हर्षविभोर हो मुनियोंको उत्तर देनेके लिये उद्यत हुए; किंतु जब उत्तर देनेमें असमर्थ हो गये, तब मन-ही-मन शङ्करजीसे प्रार्थना करने लगे। तत्पश्चात् प्रयोजनको समझनेवाली मेनाने मुनियोंको प्रणाम किया और पुत्रीके स्नेहसे व्याकुल हुई वह उन मुनियोंके चरणोंके निकट स्थित हो इस प्रकार बोली॥ ४१०—४१३॥

मेनाने कहा— मुनिवरो! जिन कारणोंसे लोग महान् फलदायक होनेपर भी कन्याके जन्मकी इच्छा नहीं करते, वही सब इस समय परम्परासे मेरे सामने आ उपस्थित हुआ है। (विवाहकी प्रथा तो यह है कि) जो वर उत्तम कुल, जन्म, अवस्था, रूप, ऐश्वर्य और सम्पत्तिसे भी युक्त हो, उसे अपने घर बुलाकर कन्या प्रदान करनी चाहिये, किंतु कन्याकी याचना करनेवालेको नहीं। भला बताइये, इस प्रकार समस्त घोर तपोंको करनेवाले वरके साथ मेरी पुत्री कैसे जायगी। इसलिये इस विषयमें मेरी पुत्रीके कथनानुसार जो उचित हो, वही आपलोग करें।

इत्युक्ता मुनयस्ते तु प्रियया हिमभूभृतः।
ऊचुः पुनरुदारार्थं नारीचित्तप्रसादकम्॥ ४१७

मुनय ऊचुः

ऐश्वर्यमवगच्छस्व शंकरस्य सुरासुरैः।
आराध्यमानपादाब्जयुगलत्वात् सुनिर्वृतैः॥ ४१८

यस्योपयोगि यद्रूपं सा च तत्प्राप्तये चिरम्।
घोरं तपस्यते बाला तेन रूपेण निर्वृतिः॥ ४१९

यस्तद्व्रतानि दिव्यानि नयिष्यति समापनम्।
तत्र सावहिता तावत् तस्मात् सैव भविष्यति॥ ४२०

इत्युक्त्वा गिरिणा सार्धं ते ययुर्यत्र शैलजा।
जितार्कज्वलनज्वाला तपस्तेजोमयी ह्युमा॥ ४२१

प्रोचुस्तां मुनयः स्निग्धं सम्मान्यपथमागतम्।
रम्यं प्रियं मनोहारि मा रूपं तपसा दह॥ ४२२

प्रातस्ते शंकरः पाणिमेष पुत्रि ग्रहीष्यति।
वयमर्थितवन्तस्ते पितरं पूर्वमागताः॥ ४२३
पित्रा सह गृहं गच्छ वयं यामः स्वमन्दिरम्॥ ४२४

इत्युक्ता तपसः सत्यं फलमस्तीति चिन्त्य सा।
त्वरमाणा ययौ वेश्म पितुर्दिव्यार्थशोभितम्॥ ४२५

सा तत्र रजनीं मेने वर्षायुतसमां सती।
हरदर्शनसंजातमहोत्कण्ठा हिमाद्रिजा॥ ४२६

ततो मुहूर्ते ब्राह्मे तु तस्याश्चक्रुः सुरस्त्रियः।
नानामङ्गलसंदोहान् यथावत्क्रमपूर्वकम्॥ ४२७

दिव्यमण्डनमङ्गानां मन्दिरे बहुमङ्गले।
उपासत गिरिं मूर्ता ऋतवः सार्वकात्मकाः॥ ४२८

वायवो वारिदाश्चासन् सम्मार्जनविधौ गिरेः।
हर्म्येषु श्रीः स्वयं देवी कृतनानाप्रसाधना॥ ४२९

कान्तिः सर्वेषु भावेषु ऋद्धिश्चाभवदाकुला।
चिन्तामणिप्रभृतयो रत्नाः शैलं समंततः॥ ४३०

हिमाचलकी पत्नी मेनाद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वे मुनिगण पुनः नारीके चित्तको प्रसन्न करनेवाले उदार अर्थसे युक्त वचन बोले॥ ४१४—४१७॥

मुनियोंने कहा—मेना! तुम शङ्करजीके ऐश्वर्यका ज्ञान उन देवताओं और असुरोंसे प्राप्त करो, जो उनके दोनों चरणकमलोंकी आराधना करके भलीभाँति संतुष्ट हो चुके हैं। जिसके लिये जो रूप उपयोगी होता है, वह उसीकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न करता है। इस नियमके अनुसार वह कन्या शंकरजीकी प्राप्तिके लिये चिरकालसे घोर तपस्या कर रही है। उसे उसी रूपसे पूर्ण संतोष है। जो पुरुष उसके दिव्य व्रतोंका समापन करेगा, उसके प्रति वह अतिशय प्रसन्न एवं संतुष्ट होगी। ऐसा कहकर वे मुनिगण हिमाचलके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ सूर्य और अग्निकी ज्वालाको जीतनेवाली एवं तपस्याके तेजसे युक्त पार्वती उमा तपस्या कर रही थीं। वहाँ पहुँचकर मुनियोंने पार्वतीसे स्नेहपूर्ण वाणीमें कहा—'पुत्रि! अब तुम्हारे लिये सम्मान्यका पथ प्राप्त हो गया है, इसलिये अब तुम अपने इस रमणीय, प्रिय एवं मनको लुभानेवाले रूपको तपस्यासे दग्ध मत करो। प्रातःकाल वे शङ्कर तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। हमलोग उनसे प्रार्थना करके पहले ही तुम्हारे पिताके पास आ गये हैं। अब तुम अपने पिताके साथ घर लौट जाओ और हमलोग अपने निवासस्थानको जा रहे हैं। इस प्रकार कही जानेपर पार्वती 'तपका फल निश्चय ही सत्य होता है'—ऐसा विचारकर दिव्य पदार्थोंसे सुशोभित अपने पिताके घरकी ओर शीघ्रतापूर्वक प्रस्थित हुई। वहाँ पहुँचकर पार्वतीके मनमें शङ्करजीके दर्शनकी महान् उत्कण्ठा उत्पन्न हुई, जिससे सती पार्वतीको वह रात्रि दस हजार वर्षोंके समान प्रतीत होने लगी॥ ४१८—४२६॥

तदनन्तर प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें देवाङ्गनाओंने पार्वतीके लिये क्रमशः नाना प्रकारके माङ्गलिक कार्योंको यथार्थरूपसे सम्पन्न किया। फिर उस विविध प्रकारके मङ्गलोंसे युक्त भवनमें पार्वतीके अङ्गोंको दिव्य शृंगारसे सुशोभित किया गया। उस समय सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली छहों ऋतुएँ शरीर धारणकर हिमाचलकी सेवामें उपस्थित हुईं, वायु और बादल पर्वतकी गुफाओंमें झाड़-बुहारके कार्यमें संलग्न थे। अट्टालिकाओंपर स्वयं लक्ष्मीदेवी नाना प्रकारकी सामग्रियोंको सँजोये हुए विराजमान थीं। सभी पदार्थोंमें कान्ति फूटी पड़ती थी। ऋद्धि आकुल हो उठी थी। चिन्तामणि आदि रत्न पर्वतपर चारों ओर

उपतस्थुर्नगाश्चापि कल्पकाममहाद्रुमाः।
ओषध्यो मूर्तिमत्यश्च दिव्यौषधिसमन्विताः॥ ४३१
रसाश्च धातवश्चैव सर्वे शैलस्य किङ्कराः।
किङ्करास्तस्य शैलस्य व्यग्राश्चाज्ञानुवर्तिनः॥ ४३२
नद्यः समुद्रा निखिलाः स्थावरं जङ्गमं च यत्।
तत्सर्वं हिमशैलस्य महिमानमवर्धयत्॥ ४३३
अभवन् मुनयो नागा यक्षगन्धर्वकिन्नराः।
शंकरस्यापि विबुधा गन्धमादनपर्वते॥ ४३४
सर्वे मण्डनसम्भारास्तस्थुर्निर्मलमूर्तयः।
शर्वस्यापि जटाजूटे चन्द्रखण्डं पितामहः॥ ४३५
बबन्ध प्रणयोदारविस्फारितविलोचनः।
कपालमालां विपुलां चामुण्डा मूर्ध्न्यबन्धत॥ ४३६
उवाच चापि वचनं पुत्रं जनय शंकर।
यो दैत्येन्द्रकुलं हत्वा मां रक्तैस्तर्पयिष्यति॥ ४३७
शौरिर्ज्वलच्छिरोरत्नमुकुटं चानलोल्बणम्।
भुजगाभरणं गृह्य सज्जं शम्भोः पुरोऽभवत्॥ ४३८
शक्रो गजाजिनं तस्य वसाभ्यक्ताग्रपल्लवम्।
दध्रे सरभसं स्विद्यद्विस्तीर्णमुखपङ्कजम्॥ ४३९
वायुश्च विपुलं तीक्ष्णशृङ्गं हिमगिरिप्रभम्।
वृषं विभूषयामास हरयानं महौजसम्॥ ४४०
वितेनुर्नयनान्तःस्थाः शम्भोः सूर्यानलेन्दवः।
स्वां द्युतिं लोकनाथस्य जगतः कर्मसाक्षिणः॥ ४४१
चिताभस्म समाधाय कपाले रजतप्रभम्।
मनुजास्थिमयीं मालामाबबन्ध च पाणिना॥ ४४२
प्रेताधिपः पुरो द्वारे सगदः समवर्तत।
नानाकारमहारत्नभूषणं धनदाहृतम्॥ ४४३
विहायोदग्रसर्पेन्द्रकटकेन स्वपाणिना।
कर्णोत्तंसं चकारेशो वासुकिं तक्षकं स्वयम्॥ ४४४
जलाधीशाहृतां स्थास्नुप्रसूनावेष्टितां पृथक्।

बिखरे हुए थे। कल्पवृक्ष आदि महनीय वृक्षोंसे युक्त अन्यान्य पर्वत भी सेवामें उपस्थित थे। दिव्यौषधिसे युक्त मूर्तिमती ओषधियाँ तथा सभी प्रकारके रस और धातुएँ हिमाचलके परिचारकरूपमें विद्यमान थे। हिमाचलके वे सभी किंकर आज्ञापालनके लिये उतावले हो रहे थे। इनके अतिरिक्त सभी समुद्र और नदियाँ तथा समस्त स्थावर-जङ्गम प्राणी उस समय हिमाचलकी महिमाको बढ़ा रहे थे॥ ४२७—४३३॥

उधर गन्धमादन पर्वतपर शङ्करजीके विवाहोत्सवमें सभी मुनि, नाग, यक्ष, गन्धर्व और किंनर आदि देवगण सम्मिलित हुए। वे सभी निर्मल मूर्ति धारणकर शृङ्गारसामग्रीके जुटानेमें तत्पर थे। उस समय प्रेम एवं उदार भावनासे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले ब्रह्माने शंकरजीके जटाजूटमें चन्द्रखण्डको बाँधा। चामुण्डाने उनके मस्तकपर एक विशाल कपालमाला बाँधी और इस प्रकार कहा—'शंकर! ऐसा पुत्र उत्पन्न करो, जो दैत्यराज तारकके कुलका संहार कर मुझे रक्तसे तृप्त करे।' भगवान् विष्णु अग्निके समान उद्दीप्त एवं चमकीले अग्रभागवाले रत्नोंसे निर्मित मुकुट और सर्पोंके आभूषण आदि शृङ्गारसामग्री लेकर शंकरजीके आगे उपस्थित हुए। इन्द्रने वेगपूर्वक गजचर्म लाकर शंकरजीको धारण कराया, जिसका अग्रभाग चर्बीसे लिप्त हुआ था। उस समय प्रसन्नतासे खिले हुए इन्द्रके मुखकमलपर पसीनेकी बूँदें झलक रही थीं। वायुने शंकरजीके वाहन उस वृषभराज नन्दीश्वरको विभूषित किया, जिसका शरीर विशाल था, जिसके सींग तीखे थे तथा जो हिमाचलके समान उज्ज्वल कान्तिवाला एवं महान् ओजस्वी था। जगत्‌के कर्मोंके साक्षी सूर्य, अग्नि और चन्द्र लोकनायक शम्भुके नेत्रोंके अन्तस्तलमें स्थित होकर अपनी-अपनी प्रभाका विस्तार करने लगे। प्रेतराज यमने शंकरजीके मस्तकपर चाँदीके समान चमकीला चिताभस्म लगाकर एक हाथसे मनुष्योंकी हड्डियोंसे बनी हुई मालाको बाँधा और फिर वे हाथमें गदा लेकर द्वारपर खड़े हो गये। तत्पश्चात् शिवजीने कुबेरद्वारा लाये गये नाना प्रकारके बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए आभूषणों और वरुणद्वारा लायी गयी अम्लान (न कुम्हलानेवाले) पुष्पोंसे गूँथी गयी मालाको पृथक् रखकर विषैले सर्पोंके कङ्कणसे सुशोभित अपने हाथसे स्वयं वासुकि और तक्षकको अपना कुण्डल बनाया॥ ४३४—४४४ $\frac{1}{2}$॥

ततस्तु ते गणाधीशा विनयात् तत्र वीरकम्॥ ४४५

प्रोचुर्व्यग्राकृते त्वं नो समावेदय शूलिने।
निष्पन्नाभरणं देवं प्रसाध्येशं प्रसाधनैः॥ ४४६

सप्त वारिधयस्तस्थुः कर्तुं दर्पणविभ्रमम्।
ततो विलोकितात्मानं महाम्बुधिजलोदरे॥ ४४७

धरामालिङ्ग्य जानुभ्यां स्थाणुं प्रोवाच केशवः।
शोभसे देव रूपेण जगदानन्ददायिना॥ ४४८

मातरः प्रेरयन् कामवधूं वैधव्यचिह्निताम्।
कालोऽयमिति चालक्ष्य प्रकारेङ्गितसंज्ञया॥ ४४९

ततस्ताश्चोदिता देवमूचुः प्रहसिताननाः।
रतिः पुरस्तव प्राप्ता नाभाति मदनोज्झिता॥ ४५०

ततस्तां सन्निवार्याह वामहस्ताग्रसंज्ञया।
प्रयाणे गिरिजावक्त्रदर्शनोत्सुकमानसः॥ ४५१

ततो हरो हिमगिरिकन्दराकृतिं
समुन्नतं मृदुगतिभिः प्रचोदयन्।
महावृषं गणतुमुलाहितेक्षणं
स भूधरानशनिरिव प्रकम्पयन्॥ ४५२

ततो हरिर्द्रुतपदपद्धतिः पुरः-
सरः श्रमाद् द्रुमनिकरेषु विश्रमन्।
धरारजः शबलितभूषणोऽब्रवीत्
प्रयात मा कुरुत पथोऽस्य संकटम्॥ ४५३

प्रभोः पुनः प्रथमनियोगमूर्जयन्
सुतोऽब्रवीद् भ्रुकुटिमुखोऽपि वीरकः।
वियच्चरा वियति किमस्ति कान्तकं
प्रयात नो धरणिधरा विदूरतः॥ ४५४

महार्णवाः कुरुत शिलोपमं पयः
सुरद्विषागमनमहातिकर्दमम्।
गणेश्वराश्चपलतया न गम्यतां
सुरेश्वरैः स्थिरगतिभिश्च गम्यताम्॥ ४५५

तत्पश्चात् वहाँ आये हुए गणाधीशोंने विनयपूर्वक वीरकसे कहा—'भयंकर आकृतिवाले वीरक! तुम शंकरजीसे हमारे आगमनकी सूचना दे दो। हमलोग सजे-सजाये महादेवको शृङ्गार-सामग्रियोंद्वारा पुनः सुशोभित करेंगे।' इतनेमें वहाँ सातों समुद्र दर्पणकी स्थानपूर्ति करनेके लिये उपस्थित हुए। तब उस महासागरके जलके भीतर अपने रूपको देखकर भगवान् केशव घुटनोंद्वारा पृथ्वीका आलिङ्गन करके (अर्थात् पृथ्वीपर दोनों घुटने टेककर) शंकरजीसे बोले—'देव! इस समय आप अपने इस जगत्को आनन्द प्रदान करनेवाले रूपसे सुशोभित हो रहे हैं।' इसी बीच मातृकाओंने उपयुक्त समय जानकर वैधव्यके चिह्नोंसे युक्त काम-पत्नी रतिको इशारेसे शंकरजीके सम्मुख जानेके लिये प्रेरित किया। (तब वह शिवजीके समक्ष जाकर खड़ी हो गयी।) तब वे मातृकाएँ हँसती हुई शंकरजीसे बोलीं—'देव! आपके सम्मुख खड़ी हुई कामदेवसे रहित यह रति शोभा नहीं पा रही है।' तब शंकरजी अपने बायें हाथके अग्रभागके संकेतसे उसे सान्त्वना देते हुए सामनेसे हटाकर प्रस्थित हुए। उस समय उनका मन गिरिजाके मुखका अवलोकन करनेके लिये समुत्सुक हो रहा था॥ ४४५—४५१॥

तदुपरान्त शंकरजीने विशालकाय महावृषभ नन्दीश्वर-पर, जिसकी आकृति हिमाचलके गुफा-सदृश थी तथा जिसके नेत्र प्रमथगणोंकी ओर लगे हुए थे, सवार होकर उसे धीमी चालसे आगे बढ़ाया। उस समय उनके प्रस्थानसे पृथ्वी उसी प्रकार काँप रही थी, मानो वज्रके प्रहारसे पर्वत काँप रहे हों। तत्पश्चात् श्रीहरिने जिनके आभूषण पृथ्वीकी धूलसे धूसरित हो गये थे, शीघ्रतापूर्वक कदम बढ़ाते हुए आगे जाकर श्रमवश घने वृक्षोंके नीचे विश्राम करते हुए लोगोंसे कहा—'अरे! चलो, आगे बढ़ो, इस मार्गमें भीड़ मत करो।' पुनः शंकरजीका पुत्र वीरक भौंहें टेढ़ी कर श्रीहरिकी प्रथम आज्ञाको उच्च स्वरसे फैलाता हुआ बोला—'अरे आकाशचारियो! आकाशमें कौन-सी सुन्दर वस्तु रखी है, जिसे सब लोग देख रहे हो, आगे बढ़ो। पर्वतसमूहो! तुमलोग एक-दूसरेसे अलग-अलग होकर चलो। महासागरो! तुमलोग राक्षसोंके आगमनसे उत्पन्न हुए महान् कीचड़से युक्त जलको शिलासदृश कर दो। गणेश्वरो! तुमलोग चञ्चलतापूर्वक मत चलो। सुरेश्वरोंको स्थिरगतिसे चलना चाहिये।

न भृङ्गिणा स्वतनुमवेक्ष्य नीयते
पिनाकिनः पृथुमुखमण्डमग्रतः।
वृथा यम प्रकटितदन्तकोटरं
त्वमायुधं वहसि विहाय सम्भ्रमम्॥ ४५६

पदं न यद्रथतुरगैः पुरद्विषः
प्रमुच्यते बहुतरमातृसंकुलम्।
अमी सुराः पृथगनुयायिभिर्वृताः
पदातयो द्विगुणपथान् हरप्रियाः॥ ४५७

स्ववाहनैः पवनविधूतचामैर-
श्लध्वजैर्व्रजत विहारशालिभिः।
सुराः स्वकं किमिति न रागमूर्जितं
विचार्यते नियतलयत्रयानुगम्॥ ४५८

न किन्नरैरभिभवितुं हि शक्यते
विभूषणप्रचयसमुद्भवो ध्वनिः।
स्वजातिकाः किमिति न षड्जमध्यम-
पृथुस्वरं बहुतरमत्र वक्ष्यते॥ ४५९

नतानतानतनततानतां गताः
पृथक्तया समयकृता विभिन्नताम्।
विशङ्किता भवदतिभेदशीलिनः
प्रयान्त्यमी द्रुतपदमेव गौडकाः॥ ४६०

विसंहताः किमिति न षाडवादयः
स्वगीतकैर्ललितप्रदप्रयोजकैः।
प्रभोः पुरो भवति हि यस्य चाक्षतं
समुद्गतार्थकमिति तत्प्रतीय॥ ४६१

अमी पृथग्विरचितरम्यरासकं
विलासिनो बहुगमकस्वभावकम्।
प्रयुञ्जते गिरिशयशोविसारिणं
प्रकीर्णकं बहुतरनागजातयः॥ ४६२

अमी कथं ककुभि कथाः प्रतिक्षणं
ध्वनन्ति ते विविधवधूविमिश्रिताः।
न जातयो ध्वनिमुरजासमीरिता
न मूर्च्छिताः किमिति च मूर्च्छनात्मिकाः॥ ४६३

शङ्करजीके आगे-आगे विशाल पानपात्रको लेकर चलनेवाले भृङ्गी अपने शरीरकी रक्षा करते हुए नहीं चल रहे हैं। यम! तुम अपने इस निकले हुए दाँतोंवाले आयुधको व्यर्थ ही धारण किये हुए हो। भय छोड़कर चलो। शङ्करजीके रथके घोड़े अपने मार्गको बहुत-सी माताओंसे व्याप्त होनेपर भी नहीं छोड़ रहे हैं। ये शङ्करजीके प्रिय देवगण पृथक्-पृथक् अपने अनुयायियोंसे घिरे हुए पैदल ही दूना मार्ग तय कर रहे हैं॥ ४५२—४५७॥

'देवगण! आपलोग आमोदके साधनोंसे सम्पन्न एवं वायुके आवेगसे हिलते हुए चामरोंसे युक्त अपने वाहनोंद्वारा, जिनपर ध्वजाएँ फहरा रही हैं, अलग-अलग होकर चलिये। आपलोग नियतरूपसे तीनों लयोंका अनुगमन करनेवाले अपने ऊर्जस्वी रागके विषयमें क्यों नहीं विचार कर रहे हैं? किंनरगण (अपने वाद्योंद्वारा) आभूषणसमूहसे उत्पन्न हुई ध्वनिको परास्त नहीं कर सकते। अपनी जातिवाले गणेश्वरो! इस समय षड्ज, मध्यम और पृथु स्वरसे युक्त गीत अधिक मात्रामें क्यों नहीं गाये जा रहे हैं। ये गौड[1]-रागके जानकार लोग कालभेदके अनुसार विभिन्नताको प्राप्त हुए एवं नतानत, नत और आनतके लयसे युक्त अत्यन्त भेदवाले रागको पृथक्‌रूपमें निःशङ्कभावसे अलापते हुए बड़ी शीघ्रतासे चले जा रहे हैं। पाडव[2] रागके ज्ञातालोग पृथक्-पृथक् अपने ललित पदोंके प्रयोजक गीतोंको अलापते हुए शंकरजीके आगे-आगे क्यों नहीं चल रहे हैं? ऐसा प्रतीत हो रहा है कि शंकरजीकी हर्षपूर्ण यात्रामें विघ्न न पड़ जाय, इस भयसे वे ऐसा नहीं कर रहे हैं। ये विभिन्न जातियोंके विलासोन्मत्त नाग शंकरजीके यशका विस्तार करनेवाले, अधिकांश गमक[3]के स्वभावसे सम्पन्न तथा मनोहर ध्वनिसे युक्त संगीतका पृथक्-पृथक् प्रयोग कर रहे हैं। उधर उस दिशामें ये वधुओं-सहित अनेकों संगीतज्ञ प्रतिक्षण कैसा संगीत अलाप रहे हैं? पता नहीं क्यों, न तो उसमें मृदङ्गसे निकली हुई ध्वनिकी जातियाँ लक्षित हो रही हैं, न मूर्छना[4]—आरोह-अवरोहसे युक्त स्वरका ही भान हो रहा है।

१. एक संकर राग। २. रागकी एक जाति, जिसमें केवल छः स्वर आते हैं। ३. सातों स्वरोंका क्रमसे आरोह-अवरोह। ४. गानेमें एक श्रुतिसे दूसरी श्रुतिपर जानेकी एक रीति।

श्रुतिप्रियक्रमगतिभेदसाधनं
ततादिकं किमिति न तुम्बरेरितम्।
न हन्यते बहुविधवाद्यडम्बरं
प्रकीर्णवीणामुरजादि नाम यत्॥ ४६४

तुम्बुरुद्वारा बजाये जानेवाले कर्णप्रिय तथा क्रम एवं गतिके भेदसे युक्त तारवाले बाजे क्यों नहीं बजाये जा रहे हैं? इधर वीणा, मृदंग आदि अनेकों प्रकारके वाद्यसमूह क्यों नहीं बजाये जा रहे हैं?'॥ ४५८—४६४॥

इतीरितां गिरमवधार्य शालिनीं
सुरासुराः सपदि तु वीरकाज्ञया।
नियामिताः प्रययुरतीव हर्षिता-
श्चराचरं जगदखिलं ह्यपूरयन्॥ ४६५
इति स्तनत्ककुभि रसन् महार्णवे
स्तनद्घने विदलितशैलकन्दरे।
जगत्यभूत् तुमुल इवाकुलीकृतः
पिनाकिना त्वरितगतेन भूधरः॥ ४६६
परिज्वलत्कनकसहस्रतोरणं
क्वचिन्मिलन्मरकतवेश्मवेदिकम्।
क्वचित्क्वचिद्विमलविदूर्यभूमिकं
क्वचिद्‌गलज्जलधररम्यनिर्झरम्॥ ४६७
चलद्ध्वजप्रवरसहस्रमण्डितं
सुरद्रुमस्तबककविकीर्णचत्वरम्।
सितासितारुणरुचिधातुवर्णिकं
श्रियोज्ज्वलं प्रविततमार्गगोपुरम्॥ ४६८
विजृम्भिताप्रतिमध्वनिवारिदं
सुगन्धिभिः पुरपवनैर्मनोहरम्।
हरो महागिरिनगरं समासदत्
क्षणादिव प्रवरसुरासुरस्तुतः॥ ४६९

इस प्रकार कही गयी उस सुन्दर वाणीको सुनकर देवता और दैत्य अत्यन्त प्रसन्न हो गये। तब वे तुरंत ही वीरककी आज्ञासे सम्पूर्ण चराचर जगत्‌को आच्छादित करते हुए नियमपूर्वक आगे बढ़ने लगे। इस प्रकार शंकरजीके शीघ्रतापूर्वक गमनसे दिशाओंमें कोलाहल गूँज उठा, महासागरोंमें ज्वार उठने लगा, बादल गरजने लगे, पर्वतकी कन्दराएँ तहस-नहस हो गयीं, जगत्‌में तुमुल ध्वनि व्याप्त हो गयी और हिमाचल व्याकुल हो गये। इस प्रकार श्रेष्ठ सुरों एवं असुरोंद्वारा प्रशंसित होते हुए शिवजी क्षणमात्रमें ही पर्वतराज हिमाचलके उस नगरमें जा पहुँचे, जो तपाये गये सुवर्णके सहस्रों तोरणोंसे सुशोभित था। उसमें कहीं-कहीं मरकतमणिके संयोगसे बने हुए घरोंमें वेदिकाएँ बनी हुई थीं। कहीं-कहीं निर्मल वैदूर्य मणिके फर्श बने थे। कहीं बादलके समान रमणीय झरने झर रहे थे। वह नगर हजारों फहराते हुए ऊँचे-ऊँचे ध्वजोंसे विभूषित था। वहाँ चबूतरोंपर कल्पवृक्षके पुष्पोंके गुच्छे बिखेरे गये थे। वह श्वेत, काले और लाल रंगकी धातुओंसे रँगा हुआ था। उसकी उज्ज्वल छटा फैल रही थी। उसके मार्ग और फाटक अत्यन्त विस्तृत थे। वहाँ उमड़े हुए बादलोंका अनुपम शब्द हो रहा था। सुगन्धयुक्त वायुके चलनेसे वह पुर अत्यन्त मनोहर लग रहा था॥ ४६५—४६९॥

तं प्रविशन्तमगात् प्रविलोक्य
व्याकुलतां नगरं गिरिभर्तुः।
व्यग्रपुरन्ध्रिजनं जवियानं
धावितमार्गजनाकुलरथ्यम्॥ ४७०
हर्म्यगवाक्षगतामरनारी-
लोचननीलसरोरुहमालम्।
सुप्रकटा समदृश्यत काचित्
स्वाभरणांशुवितानविगूढा॥ ४७१
काप्यखिलीकृतमण्डनभूषा
त्यक्तसखीप्रणया हरमैक्षत्।
काचिदुवाच कलं गतमाना
कातरतां सखि मा कुरु मूढे॥ ४७२

शिवजीको उस नगरमें प्रवेश करते देखकर पर्वतराज हिमाचलका सारा नगर व्याकुल हो गया। पति-पुत्र आदिसे युक्त सम्मानित नारियाँ व्याकुल होकर वेगपूर्वक इधर-उधर भागने लगीं। मार्गों और गलियोंमें भागते हुए लोगोंकी भीड़ लग गयी। कोई देवाङ्गना अट्टालिकाके झरोखेमें बैठकर अपने नीलकमलके-से नेत्रोंसे उसकी शोभा बढ़ा रही थी। कोई नारी अपने आभूषणोंकी किरणोंसे छिपी होनेपर भी प्रत्यक्ष रूपमें दीख रही थी। कोई सुन्दरी अपनेको सम्पूर्ण भृङ्गारोंसे विभूषितकर सखीके प्रेमको छोड़कर शिवजीकी ओर निहार रही थी। कोई नारी अभिमानरहित हो मधुर वाणीमें बोली—'अरी भोली-

दग्धमनोभव एव पिनाकी
कामयते स्वयमेव विहर्तुम्।
काचिदपि स्वयमेव पतन्ती
प्राह परां विरहस्खलिताङ्गीम्॥ ४७३
मा चपले मदनव्यतिषङ्गं
शङ्करजं स्खलनेन वद त्वम्।
कापि कृतव्यवधानमदृष्ट्वा
युक्तिवशाद्गिरिशो ह्ययमूचे॥ ४७४
एष स यत्र सहस्रमखाद्या
नाकसदामधिपाः स्वयमुक्तैः।
नामभिरिन्दुजटं निजसेवा-
प्राप्तिफलाय नतास्तु घटन्ते॥ ४७५
एष न चैष स एष यदग्रे
चर्मपरीततनुः शशिमौली।
धावति वज्रधरोऽमरराजो
मार्गममुं विवृतीकरणाय॥ ४७६
एष स पद्मभवोऽयमुपेत्य
प्रांशुजटामृगचर्मनगूढः।
सप्रणयं करघट्टितवक्त्रः
किंचिदुवाच मितं श्रुतिमूले॥ ४७७
एवमभूत् सुरनारिकुलानां
चित्तविसंस्थुलता गुरुरागात्।
शंकरसंश्रयणाद्गिरिजाया
जन्मफलं परमं त्विति चोचुः॥ ४७८

भाली सखि! तुम कातर मत होओ। यद्यपि शिवजीने कामदेवको जला दिया है, तथापि वे स्वयं ही विहार करनेकी इच्छा करते हैं।' कोई सुन्दरी, जो स्वयं मनोभवके फंदेमें पड़ गयी थी, विरहसे स्खलित अङ्गोंवाली दूसरी नारीसे बोली—'चपले! तुम भूलसे शङ्करजीके साथ कामदेवके संयोगकी चर्चा मत किया कर।' कोई कामिनी व्यवधान पड़नेके कारण शङ्करजीको न देखकर युक्तिपूर्वक 'शङ्कर यही हैं'—ऐसा मानकर कह रही थी—'वे शिव यही हैं, जिन चन्द्रशेखरको अपनी सेवाके फलकी प्राप्तिके निमित्त स्वर्गवासियोंके अधीश्वर इन्द्र आदि देवगण स्वयं अपना-अपना नाम लेकर नमस्कार कर रहे हैं।' कोई नारी कह रही थी—'अरे! शिवजी यह नहीं हैं, वे तो वह हैं, जिनके मस्तकपर चन्द्रमा शोभा पा रहा है और जिनका शरीर चमड़ेसे ढँका हुआ है तथा जिनके आगे वज्रधारी देवराज इन्द्र इस मार्गको निर्बाध करनेके लिये दौड़ रहे हैं। देखो, ये लम्बी जटाओं और मृगचर्मसे सुशोभित पद्मयोनि ब्रह्मा भी उनके निकट जाकर हाथसे मुख पकड़े हुए प्रेमपूर्वक उनके कानोंमें कुछ कह रहे हैं।' इस प्रकार अतिशय प्रेमके कारण देवाङ्गनाओंके चित्तमें परम संतोष हुआ। तब वे कहने लगीं कि शङ्करजीका आश्रय ग्रहण करनेसे पार्वतीको अपने जन्मका परम फल प्राप्त हो गया॥ ४७०—४७८॥

ततो हिमगिरेर्वेश्म विश्वकर्मनिवेदितम्।
महानीलमयस्तम्भं ज्वलत्काञ्चनकुट्टिमम्॥ ४७९
मुक्ताजालपरिष्कारं ज्वलितौषधिदीपितम्।
क्रीडोद्यानसहस्राढ्यं काञ्चनाबद्धदीर्घिकम्॥ ४८०
महेन्द्रप्रमुखाः सर्वे सुरा दृष्ट्वा तदद्भुतम्।
नेत्राणि सफलान्यद्य मनोभिरिति ते दधुः॥ ४८१
विमर्दकीर्णकेयूरा हरिणा द्वारि रोधिताः।
कथंचित् प्रमुखास्तत्र विविशुर्नाकवासिनः॥ ४८२
प्रणतेनाचलेन्द्रेण पूजितोऽथ चतुर्मुखः।
चकार विधिना सर्वं विधिमन्त्रपुरःसरम्॥ ४८३

तदनन्तर भगवान् शङ्कर हिमाचलके उस भवनमें प्रविष्ट हुए, जिसका निर्माण देवशिल्पी विश्वकर्माने किया था तथा जिसमें महानीलमणिके खम्भे लगे हुए थे, जिसका फर्श तपाये हुए स्वर्णका बना हुआ था, जो मोतियोंकी झालरोंसे सुशोभित और जलती हुई ओषधियोंके प्रकाशसे उद्दीप्त हो रहा था, जिसमें हजारों क्रीडोद्यान थे तथा जिसकी बावलियोंकी सीढ़ियाँ सोनेकी बनी हुई थीं। उस अद्भुत भवनको देखकर महेन्द्र आदि सभी देवताओंने अपने मनमें ऐसा समझा कि आज हमारे नेत्र सफल हो गये। उस भवनके द्वारपर श्रीहरिद्वारा रोके जानेपर भीड़के कारण जिनके केयूर परस्पर रगड़ खाकर चूर-चूर हो गये थे, ऐसे कुछ प्रमुख स्वर्गवासी किसी प्रकार उस भवनमें प्रविष्ट हुए। तदनन्तर वहाँ (मण्डपमें) पर्वतराज हिमाचलने विनम्रभावसे ब्रह्माकी पूजा की। तब

शर्वेण पाणिग्रहणमग्निसाक्षिकमक्षतम्।
दाता महीभृतां नाथो होता देवश्चतुर्मुखः॥ ४८४
वरः पशुपतिः साक्षात् कन्या विश्वारणिस्तथा।
चराचराणि भूतानि सुरासुरवराणि च॥ ४८५
तत्राप्येते नियमतो ह्यभवन् व्यग्रमूर्तयः।
मुमोचाभिनवान् सर्वान् सस्यशालीन् रसौषधीः॥ ४८६
व्यग्रा तु पृथिवी देवी सर्वभावमनोरमा।
गृहीत्वा वरुणः सर्वरत्नान्याभरणानि च॥ ४८७
पुण्यानि च पवित्राणि नानारत्नमयानि तु।
तस्थौ साभरणो देवो हर्षदः सर्वदेहिनाम्॥ ४८८

उन्होंने विधानानुसार मन्त्रोच्चारणपूर्वक सारा कार्य सम्पन्न किया। तदुपरान्त शिवजीने अग्निको साक्षी बनाकर गिरिजाका अटूट पाणिग्रहण किया। उस विवाहोत्सवमें पर्वतोंके राजा हिमाचल दाता, देवाधिदेव ब्रह्मा होता, साक्षात् शिव वर तथा विश्वकी अरणिभूता पार्वती कन्या थीं। उस समय प्रधान देवता एवं असुर तथा चराचर सभी प्राणी (कार्याधिक्यके कारण) नियमको छोड़कर व्यग्र हो उठे। सभी प्रकारके मनोरम भावोंसे परिपूर्ण पृथ्वीदेवी आकुल होकर सभी प्रकारके नूतन अन्नों, रसों और औषधियोंको उड़ेलने लगीं। सभी प्राणियोंको हर्ष प्रदान करनेवाले वरुणदेव स्वयं आभूषणोंसे विभूषित हो सभी प्रकारके रत्नों तथा अनेकविध रत्नोंसे निर्मित पुण्यमय एवं पावन आभरणोंको लेकर वहाँ उपस्थित थे॥ ४७९—४८८॥

धनदश्चापि दिव्यानि हैमान्याभरणानि च।
जातरूपविचित्राणि प्रयतः समुपस्थितः॥ ४८९
वायुर्ववौ सुसुरभिः सुखसंस्पर्शनो विभुः।
छत्रमिन्दुकरोद्गारं सुसितं च शतक्रतुः॥ ४९०
जग्राह मुदितः स्रग्वी बाहुभिर्बहुभूषणैः।
जगुर्गन्धर्वमुख्याश्च ननृतुश्चाप्सरोगणाः॥ ४९१
वादयन्तोऽति मधुरं जगुर्गन्धर्वकिन्नराः।
मूर्ताश्च ऋतवस्तत्र जगुश्च ननृतुश्च वै॥ ४९२
चपलाश्च गणास्तस्थुर्लोलयन्तो हिमाचलम्।
उत्तिष्ठन् क्रमशश्चात्र विश्वभुग्भगनेत्रहा॥ ४९३
चकारौद्वाहिकं कृत्यं पत्न्या सह यथोचितम्।
दत्तार्घो गिरिराजेन सुरवृन्दैर्विनोदितः॥ ४९४
अवसत् तां क्षपां तत्र पत्न्या सह पुरान्तकः।
ततो गन्धर्वगीतेन नृत्येनाप्सरसामपि॥ ४९५
स्तुतिभिर्देवदैत्यानां विबुद्धो विबुधाधिपः।
आमन्त्र्य हिमशैलेन्द्रं प्रभाते चोमया सह।
जगाम मन्दरगिरिं वायुवेगेन शृङ्गिणा॥ ४९६

उस समय वहाँ कुबेर भी विनम्रभावसे विभिन्न प्रकारके स्वर्णमय दिव्य आभूषणोंको लिये हुए उपस्थित थे। स्पर्शसे सुख उत्पन्न करनेवाली परम सुगन्धित वायु चारों ओर बहने लगी। मालाधारी इन्द्र हर्षपूर्वक अनेकों आभूषणोंसे विभूषित अपनी भुजाओंद्वारा चन्द्रमाकी किरणोंके समान कान्तिमान् अत्यन्त उज्ज्वल छत्र लिये हुए थे। प्रधान-प्रधान गन्धर्व गीत गा रहे थे और अप्सराएँ नाच रही थीं। कुछ अन्य गन्धर्व और किंनर बाजा बजाते हुए अत्यन्त मधुर स्वरसे राग अलाप रहे थे। वहाँ छहों ऋतुएँ भी शरीर धारणकर नाचती और गाती थीं। चञ्चल प्रकृतिवाले प्रमथगण हिमाचलको विचलित करते हुए उपस्थित थे। इसी समय विश्वके पालनकर्ता एवं भगदेवताके नेत्रोंके विनाशक भगवान् शिव उठे और अपनी पत्नी पार्वतीके साथ क्रमशः सारा वैवाहिक कार्य यथोचितरूपसे सम्पन्न किये। उस समय पर्वतराज हिमाचलने उन्हें अर्घ्य प्रदान किया और सुरसमूह विनोदकी बातें करने लगे। तत्पश्चात् त्रिपुरके विनाशक भगवान् शङ्करने उस रातमें पत्नीके साथ वहाँ निवास किया। प्रातःकाल गन्धर्वोंके गीत, अप्सराओंके नृत्य तथा देवों एवं दैत्योंकी स्तुतियोंके माध्यमसे जगाये गये देवेश्वर शङ्कर पर्वतराज हिमाचलसे आज्ञा लेकर उमाके साथ वायुके समान वेगशाली नन्दीश्वरपर सवार हो मन्दराचलको चले गये॥ ४८९—४९६॥

ततो गते भगवति नीललोहिते
सहोमया रतिमलभन्न भूधरः।
सबान्धवो भवति च कस्य नो मनो
विह्वलं च जगति हि कन्यकापितुः॥ ४९७
ज्वलन्मणिस्फटिकहाटकोत्कटं
स्फुटद्युति स्फटिकगोपुरं पुरम्।
हरो गिरौ चिरमनुकल्पितं तदा
विसर्जितामरनिवहोऽविशत् स्वकम्॥ ४९८
तदोमासहितो देवो विजहार भगाक्षिहा।
पुरोद्यानेषु रम्येषु विविक्तेषु वनेषु च॥ ४९९
सुरक्तहृदयो देव्या मकराङ्कपुरःसरः।
ततो बहुतिथे काले सुतकामा गिरेः सुता॥ ५००
सखीभिः सहिता क्रीडां चक्रे कृत्रिमपुत्रकैः।
कदाचिद्गन्धतैलेन गात्रमभ्यज्य शैलजा॥ ५०१
चूर्णैरुद्वर्तयामास मलिनान्तरितां तनुम्।
तदुद्वर्तनकं गृह्य नरं चक्रे गजाननम्॥ ५०२
पुत्रकं क्रीडती देवी तं चाक्षिपयदम्भसि।
जाह्नव्यास्तु शिवासख्यास्ततः सोऽभूद् बृहद्वपुः॥ ५०३
कायेनातिविशालेन जगदापूरयत्तदा।
पुत्रेत्युवाच तं देवी पुत्रेत्यूचे च जाह्नवी॥ ५०४
गाङ्गेय इति देवैस्तु पूजितोऽभूद्गजाननः।
विनायकाधिपत्यं च ददावस्य पितामहः॥ ५०५
पुनः सा क्रीडनं चक्रे पुत्रार्थं वरवर्णिनी।
मनोज्ञमङ्कुरं रूढमशोकस्य शुभानना॥ ५०६
वर्धयामास तं चापि कृतसंस्कारमङ्गला।
बृहस्पतिमुखैर्विप्रैर्दिवस्पतिपुरोगमैः ॥ ५०७
ततो देवैश्च मुनिभिः प्रोक्ता देवी त्विदं वचः।
भवानि भवती भव्या सम्भूता लोकभूतये॥ ५०८
प्रायः सुतफलो लोकः पुत्रपौत्रैश्च लभ्यते।
अपुत्रा च प्रजाः प्रायो दृश्यन्ते दैवहेतुतः॥ ५०९

तदनन्तर नीललोहित भगवान् शङ्करके उमासहित चले जानेपर भाई-बन्धुओंसहित हिमाचलका मन खिन्न हो गया; क्योंकि जगत्‌में भला ऐसा कौन कन्याका पिता होगा, जिसका मन उसकी विदाईके समय विह्वल न हो जाता हो? उधर मन्दराचलपर शिवजीका नगर बहुत पहलेसे ही विरचित था। वह चमकती हुई मणियों, स्फटिक-शिलाओं और स्वर्णसे निर्मित होनेके कारण अत्यन्त सुन्दर लग रहा था, उसकी कान्ति फूटी पड़ती थी और उसमें स्फटिकके फाटक लगे हुए थे। वहाँ पहुँचकर शिवजी देवसमूहको विदा कर अपने नगरमें प्रविष्ट हुए॥ ४९७-४९८॥

वहाँ भग-नेत्रहारी भगवान् शङ्कर उमासहित नगरके रमणीय उद्यानों तथा एकान्त वनोंमें विहार करने लगे। उस समय उनका हृदय कामके वशीभूत होनेके कारण पार्वतीदेवीके प्रति अतिशय अनुरक्त हो गया था। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेके पश्चात् पार्वतीके मनमें पुत्रकी कामना उत्पन्न हुई, तब वे सखियोंके साथ कृत्रिम पुत्र बनाकर क्रीडा करने लगीं। किसी समय पार्वतीने सुगन्धित तेलसे शरीरको मलकर उसके मैल जमे हुए अङ्गोंमें चूर्णका उबटन भी लगाया। फिर उस लेपनको इकट्ठाकर उससे हाथीके-से मुखवाले पुरुषकी आकृतिका निर्माण किया। उसके साथ क्रीडा करनेके पश्चात् पार्वतीदेवीने उसे अपनी सखी जाह्नवीके जलमें डलवा दिया। वहाँ वह विशाल शरीरवाला हो गया और अपने उस अत्यन्त विशाल शरीरसे सारे जगत्‌को आच्छादित कर लिया। तब पार्वतीदेवीने उसे 'पुत्र' ऐसा कहा और उधर जाह्नवीने भी उसे 'पुत्र' कहकर पुकारा। अन्तमें वह गजानन 'गाङ्गेय' नामसे देवताओंद्वारा सम्मानित किया गया और ब्रह्माने उसे विनायकोंका आधिपत्य प्रदान किया। तत्पश्चात् सुन्दर मुखवाली सुन्दरी पार्वतीने पुनः पुत्रकी कामनासे अशोकके नये निकले हुए सुन्दर अङ्कुरको खिलौना बनाया और बृहस्पति आदि विप्रों तथा इन्द्र आदि देवताओंद्वारा अपना माङ्गलिक संस्कार कराकर उसे पाला-पोसा। यह देखकर देवताओं और मुनियोंने पार्वतीदेवीसे यह बात कही—'भवानि! आप तो परम सुन्दर रूपवाली हो और लोकके कल्याणके लिये प्रकट हुई हो। प्रायः संसार पुत्ररूप फलका ही प्रेमी है और वह फल पुत्र-पौत्रोंद्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। जगत्‌में जो प्रजाएँ पुत्रहीन हैं, वे प्रायः प्रारब्धके कारण ही वैसा दीख पड़ती हैं।

अधुना दर्शिते मार्गे मर्यादां कर्तुमर्हसि।
फलं किं भविता देवि कल्पितैस्तरुपुत्रकैः।
इत्युक्ता हर्षपूर्णाङ्गी प्रोवाचोमा शुभां गिरम्॥ ५१०

देव्युवाच

एवं निरुदके देशे यः कूपं कारयेद् बुधः।
बिन्दौ बिन्दौ च तोयस्य वसेत् संवत्सरं दिवि॥ ५११

दशकूपसमा वापी दशवापीसमो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः।
एषैव मम मर्यादा नियता लोकभाविनी॥ ५१२

इत्युक्तास्तु ततो विप्रा बृहस्पतिपुरोगमाः।
जग्मुः स्वमन्दिराण्येव भवानीं वन्द्य सादरम्॥ ५१३

गतेषु तेषु देवोऽपि शङ्करः पर्वतात्मजाम्।
पाणिनाऽऽलम्ब्य वामेन शनैः प्रावेशयच्छुभाम्॥ ५१४

चित्तप्रसादजननं प्रासादमनुगोपुरम्।
लम्बमौक्तिकदामानं मालिकाकुलवेदिकम्॥ ५१५

निर्धौतकलधौतं च क्रीडागृहमनोरमम्।
प्रकीर्णकुसुमामोदमत्तालिकुलकूजितम्॥ ५१६

किन्नरोद्गीतसङ्गीतगृहान्तरितभित्तिकम्।
सुगन्धिधूपसङ्घातमनःप्रार्थ्यमलक्षितम्॥ ५१७

क्रीडन्मयूरनारीभिर्वृतं वै ततवादिभिः।
हंससंघातसङ्घुष्टं स्फाटिकस्तम्भवेदिकम्॥ ५१८

अनारतमतिप्रीत्या बहुशः किन्नराकुलम्।
शुकैर्यत्राभिहन्यन्ते पद्मरागविनिर्मिताः॥ ५१९

भित्तयो दाडिमभ्रान्त्या प्रतिबिम्बितमौक्तिकाः।
तत्राक्षक्रीडया देवी विहर्तुमुपचक्रमे॥ ५२०

स्वच्छेन्द्रनीलभूभागे क्रीडने यत्र धिष्ठितौ।
वपुःसहायतां प्राप्तौ विनोदरसनिर्वृतौ॥ ५२१

एवं प्रक्रीडतोस्तत्र देवीशङ्करयोस्तदा।
प्रादुर्भवन्महाशब्दस्तद्गृहोदरगोचरः॥ ५२२

देवि! इस समय आप शास्त्रद्वारा प्रदर्शित मार्गकी मर्यादा निर्धारित करें। इन कल्पित तरुपुत्रकोंसे क्या लाभ उपलब्ध होगा?' ऐसा कही जानेपर उमाके अङ्ग हर्षसे पूर्ण हो गये, तब वे सुन्दर वाणीमें बोलीं॥ ४९९—५१०॥

पार्वतीदेवीने कहा—'विप्रवरो! इस प्रकारके जलरहित प्रदेशमें जो बुद्धिमान् पुरुष कुआँ बनवाता है, वह कुएँके जलके एक-एक बूँदके बराबर वर्षोतक स्वर्गमें निवास करता है। इस प्रकार दस कुएँके समान एक बावली, दस बावलीके सदृश एक सरोवर, दस सरोवरकी तुलनामें एक पुत्र और दस पुत्रके समान एक वृक्ष माना गया है। यही लोकोंका कल्याण करनेवाली मर्यादा है, जिसे मैं निर्धारित कर रही हूँ। इस प्रकार कहे जानेपर बृहस्पति आदि विप्रगण भवानीको आदरपूर्वक नमस्कार कर अपने-अपने निवास-स्थानको चले गये। उन सबके चले जानेपर देवाधिदेव शङ्करने भी सुन्दरी पार्वतीको बायें हाथका सहारा देकर धीरे-धीरे अपने भवनमें प्रवेश कराया। चित्तको प्रसन्न करनेवाला वह भवन फाटकके निकट ही था। उसमें मोतियोंकी लम्बी-लम्बी झालरें लटक रही थीं, वेदिकाएँ पुष्पहारोंसे सुसज्जित थीं, तपाये हुए स्वर्णके मनोरम क्रीडागृह बने हुए थे, बिखरे हुए पुष्पोंकी सुगन्धसे उन्मत्त हुए भँवरे गुंजार कर रहे थे, किन्नरोंद्वारा गाये गये संगीतसे गृहकी भीतरी दीवाल प्रतिध्वनित हो रही थी, मनको अच्छी लगनेवाली सुगन्धित धूपोंकी भीनी सुगन्ध फैल रही थी। वह नाचती हुई मयूरियों तथा तारवाले बाजे बजानेवाले वादकोंसे व्याप्त था। वहाँ हंस-समूहोंकी ध्वनि गूँज रही थी, स्फटिकके खम्भोंसे युक्त वेदिकाएँ सुशोभित थीं, अधिकांश किन्नर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर उपस्थित रहते थे। उसमें पद्मराग मणिकी दीवालें बनी हुई थीं, जिनपर मोतियोंकी झलक पड़ रही थी, इस कारण अनारके भ्रमसे शुकसमूह उनपर अपने ठोरोंसे आघात कर रहे थे। ऐसे भवनमें पार्वतीदेवी द्यूतक्रीडाके माध्यमसे विहार करने लगीं। निर्मल इन्द्रनील मणिके बने हुए उस क्रीडा-स्थानपर क्रीडा करते हुए शिव-पार्वती विनोदके रसमें निमग्न हो परस्पर एक-दूसरेके शरीरकी सहायताको प्राप्त हुए॥ ५११—५२१॥

इस प्रकार वहाँ पार्वती और शंकरके क्रीडा करते समय उस गृहके भीतर महान् भयंकर शब्द प्रादुर्भूत हुआ।

तच्छ्रुत्वा कौतुकाद् देवी किमेतदिति शङ्करम्।
पप्रच्छ तं शुभतनुर्हरं विस्मयपूर्वकम्॥ ५२३

उवाच देवीं नैतत् ते दृष्टपूर्वं सुविस्मिते।
एते गणेशाः क्रीडन्ते शैलेऽस्मिन् मत्प्रियाः सदा॥ ५२४

तपसा ब्रह्मचर्येण नियमैः क्षेत्रसेवनैः।
यैरहं तोषितः पूर्वं त एते मनुजोत्तमाः॥ ५२५

मत्समीपमनुप्राप्ता मम हृद्याः शुभानने।
कामरूपा महोत्साहा महारूपगुणान्विताः॥ ५२६

कर्मभिर्विस्मयं तेषां प्रयामि बलशालिनाम्।
सामरस्यास्य जगतः सृष्टिसंहरणक्षमाः॥ ५२७

ब्रह्मविष्ण्विन्द्रगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः।
विवर्जितोऽप्यहं नित्यं नैभिर्विरहितो रमे॥ ५२८

हृद्या मे चारुसर्वाङ्गास्त एते क्रीडिता गिरौ।
इत्युक्ता तु ततो देवी त्यक्त्वा तद्विस्मयाकुला॥ ५२९

गवाक्षान्तरमासाद्य प्रेक्षते विस्मितानना।

उसे सुनकर सुन्दर शरीरवाली पार्वतीदेवीने कुतूहलवश आश्चर्यपूर्वक भगवान् शंकरसे पूछा—'यह क्या हो रहा है?' तब शिवजीने पार्वतीसे कहा—'सुविस्मिते! तुमने पहले इसे नहीं देखा है। मेरे परम प्रिय ये गणेश्वर इस पर्वतपर सदा क्रीडा करते रहते हैं। शुभानने! जो लोग पहले तपस्या, ब्रह्मचर्य, नियमपालन और तीर्थसेवनद्वारा मुझे संतुष्ट कर चुके हैं, वे ही ये श्रेष्ठ पुरुष मेरे पास प्राप्त हुए हैं। ये मुझे परम प्रिय हैं। ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, महान् उत्साहसे सम्पन्न तथा अतिशय सौन्दर्य एवं गुणोंसे युक्त हैं। इन बलशालियोंके कार्योंसे तो मुझे भी परम विस्मय हो जाता है। ये देवताओंसहित इस जगत्‌की सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ हैं। अतः ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, गन्धर्व, किंनर और प्रधान-प्रधान नागोंसे नित्य विलग रहनेपर भी मुझे कष्ट नहीं होता, परंतु इनसे वियुक्त होनेपर मुझे कभी आनन्द नहीं प्राप्त होता। इनके सभी अङ्ग अत्यन्त सुन्दर हैं और ये सभी मुझे परम प्रिय हैं। वे ही ये सब इस पर्वतपर क्रीडा कर रहे हैं।' इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने विस्मयसे व्याकुल हो द्यूतक्रीडा छोड़ दी और वे भौंचक्की-सी हो झरोखेमें बैठकर उनकी ओर देखने लगीं॥ ५२२—५२९ ½॥

यावन्तस्ते कृशा दीर्घा ह्रस्वाः स्थूला महोदराः॥ ५३०

व्याघ्रेभवदनाः केचित् केचिन्मेषाजरूपिणः।
अनेकप्राणिरूपाश्च ज्वालास्याः कृष्णपिङ्गलाः॥ ५३१

सौम्या भीमाः स्मितमुखाः कृष्णपिङ्गजटासटाः।
नानाविहङ्गवदना नानाविधमृगाननाः॥ ५३२

कौशेयचर्मवसना नग्नाश्चान्ये विरूपिणः।
गोकर्णा गजकर्णाश्च बहुवक्त्रेक्षणोदराः॥ ५३३

बहुपादा बहुभुजा दिव्यनानास्त्रपाणयः।
अनेककुसुमापीडा नानाव्यालविभूषणाः॥ ५३४

वृत्ताननायुधधरा नानाकवचभूषणाः।
विचित्रवाहनारूढा दिव्यरूपा वियच्चराः॥ ५३५

वे जितने थे, उनमें कुछ दुबले-पतले, लम्बे, छोटे और विशाल पेटवाले थे। किन्हींके मुख व्याघ्र और हाथीके समान थे तो कोई भेड़ और बकरेके-से रूपवाले थे। उनके रूप अनेकों प्राणियोंके सदृश थे। किन्हींके मुखसे ज्वाला निकल रही थी तो कोई काले एवं पीले रंगके थे। किन्हींके मुख सौम्य, किन्हींके भयंकर और किन्हींके मुसकानयुक्त थे। किन्हींके मस्तकपर काले एवं पीले रंगकी जटा बँधी थी। किन्हींके मुख नाना प्रकारके पक्षियोंके-से तथा किन्हींके मुख विभिन्न प्रकारके पशुओं-सदृश थे। किन्हींके शरीरपर रेशमी वस्त्र थे तो कोई वस्त्रके स्थानपर चमड़ा ही लपेटे हुए थे और कुछ नंगे ही थे। कुछ अत्यन्त कुरूप थे। किन्हींके कान गौ-सरीखे थे तो किन्हींके कान हाथी-जैसे थे। किन्हींके बहुत-से मुख, नेत्र और पेट थे तो किन्हींके बहुत-से पैर और भुजाएँ थीं। उनके हाथोंमें नाना प्रकारके दिव्यास्त्र शोभा पा रहे थे। किन्हींके मस्तकोंपर नाना प्रकारके पुष्प बँधे हुए थे तो कोई अनेकविध सर्पोंके ही आभूषण धारण किये हुए थे। कोई गोल मुखवाले अस्त्र लिये हुए थे तो कोई विभिन्न प्रकारके कवचोंसे विभूषित थे। कुछ दिव्य रूपधारी थे और विचित्र वाहनोंपर आरूढ़ हो आकाशमें विचर रहे थे।

वीणावाद्यमुखोद्‌घुष्टा नानास्थानकनर्तकाः।
गणेशांस्तांस्तथा दृष्ट्वा देवी प्रोवाच शङ्करम्॥ ५३६

कुछ मुखसे वीणा आदि बाजे बजा रहे थे और कुछ यत्र-तत्र नाच रहे थे। इस प्रकार उन गणेश्वरोंको देखकर पार्वतीदेवी शंकरजीसे बोलीं॥ ५३०—५३६॥

देव्युवाच

गणेशाः कति संख्याताः किंनामानः किमात्मकाः।
एकैकशो मम ब्रूहि धिष्ठिता ये पृथक् पृथक्॥ ५३७

देवीने पूछा—'प्रभो! इन गणेश्वरोंकी संख्या कितनी है? इनके क्या-क्या नाम हैं? इनके स्वभाव कैसे हैं? ये जो पृथक्-पृथक् बैठे हैं, इनमेंसे मुझे एक-एकका परिचय दीजिये॥ ५३७॥

शङ्कर उवाच

कोटिसंख्या ह्यसंख्याता नानाविख्यातपौरुषाः।
जगदापूरितं सर्वैरेभिर्भीमैर्महाबलैः॥ ५३८
सिद्धक्षेत्रेषु रथ्यासु जीर्णोद्यानेषु वेश्मसु।
दानवानां शरीरेषु बालेषून्मत्तकेषु च।
एते विशन्ति मुदिता नानाहारविहारिणः॥ ५३९
ऊष्मपाः फेनपाश्चैव धूमपा मधुपायिनः।
रक्तपाः सर्वभक्षाश्च वायुपा ह्यम्बुभोजनाः॥ ५४०
गेयनृत्योपहाराश्च नानावाद्यरवप्रियाः।
न ह्येषां वै अनन्तत्वाद् गुणान् वक्तुं हि शक्यते॥ ५४१

शंकरजी बोले—'देवि! यों तो ये असंख्य हैं, परंतु प्रधान-प्रधान गणेश्वरोंकी संख्या एक करोड़ है। ये विभिन्न प्रकारके पुरुषार्थोंके लिये विख्यात हैं। इन सभी महाबली भयंकर गणोंसे सारा जगत् परिपूर्ण है। नाना प्रकारके आहार-विहारसे युक्त ये गणेश्वर हर्षपूर्वक सिद्ध क्षेत्रों, गलियों, पुराने उद्यानों, घरों, दानवोंके शरीरों, बालकों और पागलोंमें प्रवेश करते हैं। ये सभी ऊष्मा, फेन, धूम, मधु, रक्त और वायुका पान करनेवाले हैं। जल इनका भोजन है और ये सर्वभक्षी हैं। ये नाच-गानके उपहारसे प्रसन्न होनेवाले और अनेकों प्रकारके वाद्य-शब्दोंके प्रेमी हैं। अनन्त होनेके कारण इनके गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता॥ ५३८—५४१॥

देव्युवाच

मार्गत्वगुत्तरासङ्गः शुद्धाङ्गो मुञ्जमेखली।
वामस्थेन च शिक्येन चपलो रञ्जिताननः॥ ५४२
मृगदंष्ट्रो ह्युत्पलानां स्त्रग्दामो मधुराकृतिः।
पाषाणशकलोत्तानकांस्यतालप्रवर्तकः॥ ५४३
असौ गणेश्वरो देवः किंनामा किंनरानुगः।
य एष गणगीतेषु दत्तकर्णो मुहुर्मुहुः॥ ५४४

देवीने पूछा—'स्वामिन्! जो मृगचर्मका दुपट्टा लपेटे हुए हैं, जिसके सभी अङ्ग शुद्ध हैं; जो मूँजकी मेखला धारण किये हुए हैं, जिसके बायें कंधेपर झोली लटक रही है, जो अत्यन्त चञ्चल और रँगे हुए मुखवाला है, जिसकी दाढ़ सिंहके सदृश है, जो कमल-पुष्पोंकी माला धारण किये हुए, सुन्दर आकृतिसे युक्त और पाषाण-खण्डसे उत्तान रखे हुए काँसेके बाजेपर ताल लगा रहा है तथा जिसके पीछे किन्नर लोग चल रहे हैं और जो अन्य गणोंद्वारा गाये गये गीतोंपर बार-बार कान लगाये हुए हैं, उस गणेश्वर देवका क्या नाम है?॥ ५४२—५४४॥

शर्व उवाच

स एष वीरको देवि सदा मद्धृदयप्रियः।
नानाश्चर्यगुणाधारो गणेश्वरगणार्चितः॥ ५४५

शंकरजीने कहा—देवि! यही वह वीरक है, जो सदा मेरे हृदयको प्रिय लगनेवाला है। यह नाना प्रकारके आश्चर्यजनक गुणोंका आश्रय तथा सभी गणेश्वरोंद्वारा पूजित—सम्मानित है॥ ५४५॥

देव्युवाच

ईदृशस्य सुतस्यास्ति ममोत्कण्ठा पुरान्तक।
कदाहमीदृशं पुत्रं द्रक्ष्याम्यानन्ददायिनम्॥ ५४६

देवीने पूछा—त्रिपुरनाशक भगवन्! मेरे मनमें ऐसा ही पुत्र प्राप्त करनेकी प्रबल उत्कण्ठा है। मैं कब ऐसे आनन्ददायक पुत्रको देखूँगी?॥ ५४६॥

शर्व उवाच

एष एव सुतस्तेऽस्तु नयनानन्दहेतुकः।
त्वया मात्रा कृतार्थस्तु वीरकोऽपि सुमध्यमे॥ ५४७
इत्युक्ता प्रेषयामास विजयां हर्षणोत्सुका।
वीरकानयनायाशु दुहिता हिमभूभृतः॥ ५४८
सावरुह्य त्वरायुक्ता प्रासादादम्बरस्पृशः।
विजयोवाच गणपं गणमध्ये प्रवर्तिता॥ ५४९
एहि वीरक चापल्यात् त्वया देवः प्रकोपितः।
किमुत्तरं वदत्यर्थे नृत्यरङ्गे तु शैलजा॥ ५५०
इत्युक्तस्त्यक्तपाषाणशकलो मार्जिताननः।
आहूतस्तु तयोद्भूतमूलप्रस्तावशंसकः॥ ५५१
देव्याः समीपमागच्छद् विजयानुगतः शनैः।
प्रासादशिखरात्फुल्लरक्ताम्बुजनिभद्युतिः॥ ५५२
तं दृष्ट्वा प्रस्नुतानल्पस्वादुक्षीरपयोधरा।
गिरिजोवाच सस्नेहं गिरा मधुरवर्णया॥ ५५३

उमोवाच

एह्येहि यातोऽसि मे पुत्रतां
देवदेवेन दत्तोऽधुना वीरक।
इत्येवमङ्के निधायाथ तं पर्यचुम्बत्
कपोले शनैः कलवादिनम्॥ ५५४
मूर्ध्न्युपाघ्राय सम्मार्ज्य गात्राणि
ते भूषयामास दिव्यैः स्रजैर्भूषणैः।
किङ्किणीमेखलानूपुरै-
र्माणिक्यकेयूरहारोरुमूलगुणैः॥ ५५५
कोमलैः पल्लवैश्चित्रितैश्चारुभि-
र्दिव्यमन्त्रोद्भवैस्तस्य शुभ्रैस्ततो
भूरिभिश्चाकरोन्मिश्र-
सिद्धार्थकैरङ्गरक्षाविधिम्॥ ५५६
एवमादाय चोवाच कृत्वा स्रजं
मूर्ध्नि गोरोचनापत्रभङ्गोज्ज्वलैः॥ ५५७
गच्छ गच्छाधुना क्रीड सार्धं गणै-
रप्रमत्तो वस श्वभ्रवर्जी शनै-

शिवजीने कहा—सुमध्यमे! नेत्रोंको आनन्द प्रदान करनेवाला यह वीरक ही तुम्हारा पुत्र हो और वीरक भी तुम-जैसी माताको पाकर कृतार्थ हो जाय। इस प्रकार कही जानेपर पर्वतराजकी कन्या पार्वतीने हर्षसे उत्सुक होकर तुरंत ही वीरकको बुला लानेके लिये विजयाको भेजा। तब विजया शीघ्र ही उस गगनचुम्बी अट्टालिकासे नीचे उतरकर गणोंके मध्यमें पहुँची और गणेश्वर वीरकसे बोली—'वीरक! यहाँ आओ, तुम्हारी चञ्चलतासे भगवान् शंकर क्रुद्ध हो गये हैं। तुम्हारे इस नाच-रंगके विषयमें माता पार्वती भी देखो क्या कहती हैं।' विजयाके ऐसा कहनेपर वीरकने पाषाणखण्डको फेंक दिया और वह अपने मुखको धोकर माताद्वारा बुलाये जानेके मूल कारणके विषयमें सोचता हुआ विजयाके पीछे-पीछे पार्वतीदेवीके निकट आया। खिले हुए लाल कमलपुष्पकी-सी कान्तिवाली पार्वतीने अट्टालिकाके शिखरपरसे जब वीरकको आते हुए देखा तो उनके स्तनोंसे अधिक मात्रामें स्वादिष्ट दूध टपकने लगा। तब गिरिजा स्नेहपूर्वक मधुर वाणीमें वीरकसे बोलीं॥ ५४७—५५३॥

उमाने कहा—वीरक! आओ, यहाँ आओ, देवाधिदेवने तुम्हें मुझे प्रदान किया है। अब तुम मेरे पुत्रस्वरूप हो गये हो। ऐसा कहकर माता पार्वती वीरकको अपनी गोदमें बैठाकर उस मधुरभाषी पुत्रके कपोलोंका चुम्बन करने लगीं। उन्होंने उसका मस्तक सूँघकर शरीरके सभी अङ्गोंको नहलाकर स्वच्छ किया। फिर किंकिणी, कटिसूत्र, नूपुर, मणिनिर्मित केयूर, हार और ऊरुमूलगुण (कच्छी) आदि दिव्य आभूषणोंसे उसे स्वयं विभूषित किया। तत्पश्चात् अत्यन्त सुन्दर विचित्र रंगके कोमल पल्लवों, दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित अनेकों माङ्गलिक सूक्तों तथा अनेक धातुओंके चूर्णोंसे मिश्रित सफेद सरसोंसे उसके अङ्गोंकी रक्षाका विधान किया। इस प्रकार उसे गोदमें लेकर मुखपर गोरोचनसे उज्ज्वल पत्रभंगीकी रचना करके उसके मस्तकपर माला डालकर कहा—'बेटा! अब जाओ और अपने साथी गणोंके साथ सावधान होकर खेलो। उनके साथ कपटरहित होकर निवास करो।

व्यालमालाकुलाः शैलसानुद्रुम-
दन्तिभिर्भिन्नसाराः परे सङ्गिनः॥ ५५८
जाह्नवीयं जलं क्षुब्धतोयाकुलं
कूलं मा विशेथा बहुव्याघ्रदुष्टे वने।
वत्सासंख्येषु दुर्गा गणेशेष्वेतस्मिन्
वीरके पुत्रभावोपतुष्टान्तःकरणा तिष्ठतु॥ ५५९
स्वस्य पितृजनप्रार्थितं
भव्यमायातिभाविन्यसौ भव्यता।
सोऽपि निर्वर्त्य सर्वान् गणान् सस्मय-
माह बालत्वलीलारसाविष्टधीः॥ ५६०
एष मात्रा स्वयं मे कृतभूषणो-
ऽत्र एष पटः पटलैर्बिन्दुभिः।
सिन्दुवारस्य पुष्पैरियं मालती-
मिश्रिता मालिका मे शिरस्याहिता॥ ५६१
कोऽयमातोद्यधारी गणस्तस्य
दास्यामि हस्तादिदं क्रीडनम्।
दक्षिणात्पश्चिमं पश्चिमादुत्तर-
मुत्तरात्पूर्वमभ्येत्य सख्या युता प्रेक्षती॥ ५६२
तं गवाक्षान्तराद्वीरकं शैलपुत्री बहिः
क्रीडनं यज्जगन्मातुरप्येष चित्तभ्रमः।
पुत्रलुब्धो जनस्तत्र को मोहमायाति
न स्वल्पचेता जडो मांसविण्मूत्रसङ्घातदेहः॥ ५६३
द्रष्टुमभ्यन्तरं नाकवासेश्वरै-
रिन्दुमौलिं प्रविष्टेषु कक्षान्तरम्।
वाहनात्यावरोहा गणास्तैर्युतो लोक-
पालास्त्रमूर्तो ह्ययं खड्गो विखड्गकरः॥ ५६४
निर्ममः कृतान्तः कस्य केनाहतो ब्रूत
मौनेभवन्तोऽस्त्रदण्डेन किं दुःस्पृहाः।
भीममूर्त्याननेनास्ति कृत्यं गिरौ
य एषोऽस्त्रज्ञेन किं वध्यते॥ ५६५
मा वृथा लोकपालानुगाचित्तता
एवमेवैतदित्यूचुरस्मै तदा देवताः।
देवदेवानुगं वीरकं लक्षणा प्राह
देवी वनं पर्वता निर्झराण्यग्निदेव्यान्यथो॥ ५६६

तुम्हारे दूसरे साथी व्यालसमूहोंसे व्याकुल और पर्वतशिखर, वृक्ष और गजराजोंसे परास्त हो रहे हैं। गङ्गाका जल अत्यन्त क्षुब्ध हो रहा है, उसने तटको जर्जर कर दिया है, अतः वहाँ तथा बहुत-से दुष्ट व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें मत प्रवेश करना। इन पुत्ररूप असंख्य गणेश्वरोंमें इस वीरकपर दुर्गादेवी सदा पुत्रभावसे संतुष्ट अन्तःकरणवाली बनी रहें। अपने पितृजनोंद्वारा प्रार्थित भावी अवश्य घटित होती है, अतः यह भव्यता तुम्हें भविष्यमें प्राप्त होगी'॥ ५५४—५५९ १/२॥

तदनन्तर बालक्रीडाके रसमें निमग्नबुद्धि वीरक भी वहाँसे लौटकर सभी गणोंसे हँसते हुए बोला—'मित्रो! देखो, स्वयं माताने मेरा यह शृङ्गार किया है। उन्होंने ही यह गुलाबी बुंदियोंसे युक्त वस्त्र पहनाया है और मालती-पुष्पोंसे मिली हुई यह सिन्दुवार-पुष्पोंकी माला मेरे सिरपर रखी है। यह आतोद्य नामक बाजा धारण करनेवाला कौन गण है? मैं उसे अपने हाथसे वह खिलौना दूँगा।' उधर सखीके साथ पार्वती कभी दक्षिणसे पश्चिम, कभी पश्चिमसे उत्तर और कभी उत्तरसे पूर्वकी ओर घूम-घूमकर गवाक्ष मार्गसे बाहर खेलते हुए वीरककी ओर निहार रही थीं। जब जगन्माता पार्वतीके चित्तमें (पुत्रको खेलते हुए देखकर) इस प्रकार व्यामोह उत्पन्न हो जाता है, तब भला स्वल्पबुद्धि, मूर्ख, मांस, विष्ठा और मूत्रकी राशिसे भरे हुए शरीरको धारण करनेवाला ऐसा कौन पुत्रप्रेमी जन होगा जिसे मोह न प्राप्त हो। इसी बीच देवगण भगवान् चन्द्रशेखरका दर्शन करनेके लिये कक्षके भीतर प्रविष्ट हुए और प्रमथगण अपने वाहनोंपर आरूढ़ हो गये। उनसे घिरे हुए वीरकने लोकपाल यमके अस्त्र खड्गको म्यानसे खींचकर कहा—'तुमलोग बतलाओ, निर्दय कृतान्त किस कारण किसका वध करना चाहता है? तुमलोग मौन क्यों हो? अस्त्रदण्डसे क्या अलभ्य है? भयंकर आकृतिवाले मेरे वर्तमान रहते इस पर्वतपर ऐसा कौन-सा कार्य है जो अस्त्रज्ञद्वारा सिद्ध नहीं हो सकता॥ ५६०—५६५ १/२॥

वीरकके इस प्रकार कहनेपर देवताओंने उनसे कहा—'वीरक! तुम्हें इस प्रकार लोकपालोंके चित्तका अनुगमन नहीं करना चाहिये।' फिर लक्षणादेवी देवाधिदेव महादेवके अनुचर वीरकसे बोलीं—'तुमलोग प्राणियोंको

भूतपा निर्झराम्भोनिपातेषु निमज्जत
पुष्पजालावनद्धेषु धामस्वपि शेत प्रोत्तुङ्ग।
नानाद्रिकुजेष्वनुगञ्जन्तु हेमा-
रुतास्फोटसंक्षेपणात्कामतः ॥ ५६७
काञ्चनोत्तुङ्गशृङ्गावरोहक्षितौ हेमरेणू-
त्करासङ्गद्युतिं खेचराणां वनाधायिनि।
रम्ये बहुरूपसम्पत्प्रकरे गणान्वासितं
मन्दरकन्दरे सुन्दरमन्दारपुष्पप्रवालाम्बुजे॥ ५६८
सिद्धनारीभिरापीतरूपामृतं विस्तृतै-
र्नेत्रपात्रैरनुन्मेषिभिर्वीरकं ।
शैलपुत्री निमेषान्तरादस्मर-
त्पुत्रगृघ्नी विनोदार्थिनी ॥ ५६९
सोऽपि तादृक्क्षणावासपुण्योदयो
योऽपि जन्मान्तरस्यात्मजत्वं गतः
क्रीडतस्तस्य तृप्तिः कथं जायते
योऽपि भाविजगद्वेधसा तेजसः कल्पितः
प्रतिक्षणं दिव्यगीतक्षणो
नृत्यलोलो गणेशैः प्रणतः॥ ५७०
क्षणं सिंहनादाकुले गण्डशैले
सृजद्रत्नजाले बृहत्सालताले।
क्षणं फुल्लनानातमालालिकाले
क्षणं वृक्षमूले विलोलो मराले॥ ५७१
क्षणे स्वल्पपङ्के जले पङ्कजाढ्ये
क्षणं मातुरङ्के शुभे निष्कलङ्के।
परिक्रीडते बाललीलाविहारी
गणेशाधिपो देवतानन्दकारी
निकुञ्जेषु विद्याधरैर्गीतशीलः
पिनाकीव लीलाविलासैः सलीलः॥ ५७२

रक्षा करते हुए वन, पर्वत, निर्झर और अग्नियुक्त स्थानोंपर विचरण करते हुए झरनोंके जलप्रवाहमें मज्जन करो, पुष्पोंसे सुसज्जित भवनोंमें शयन करो और ऊँचे-ऊँचे विभिन्न पर्वतोंके कुँओंमें स्वेच्छानुसार झंझावातके अव्यक्त शब्दका अनुकरण करते हुए गर्जना करो। विनोदकी अभिलाषावाली पुत्रप्रेमी पार्वती ऊँचे स्वर्णमय शिखरोंकी ढालू भूमिसे युक्त, आकाशचारियोंकी रमणीय वनस्थलीरूप, अनेकों प्रकारकी सम्पत्तियोंसे परिपूर्ण तथा सुन्दर मन्दारपुष्प, प्रवाल और कमल-पुष्पोंसे सुशोभित मन्दराचलके खोहोंमें खेलते वीरकको जिसकी अङ्गकान्ति सुवर्णकी रेणु-सरीखी थी, सिद्धोंकी स्त्रियाँ जिसके रूपामृतका पान कर रही थीं और जो गणोंके साथ विराजमान था, क्षण-क्षणपर निमेषरहित विस्फारित नेत्रोंसे देखती हुई स्मरण करती रहती थीं। वीरकका भी उस समय जन्मान्तरका पुण्य उदय हो गया था, जिससे वह पार्वतीका पुत्र हो गया। ऐसी दशामें उसे खेलसे तृप्ति कैसे प्राप्त हो सकती है? वह जगत्कर्ता ब्रह्माद्वारा तेजके भावी अंशसे कल्पित किया गया था। वह प्रतिक्षण दिव्य गीतोंको सुनता था और स्वयं भी चञ्चलतापूर्वक नृत्य करता था। गणेश्वर उसके सामने नतमस्तक रहते थे। वह चञ्चलतापूर्वक किसी क्षण सिंहनादसे व्याप्त, रत्नसमूहोंकी खानवाले तथा बड़े-बड़े साल और ताड़के वृक्षोंसे सुशोभित पर्वत-शिखरपर, किसी क्षण खिले हुए बहुत-से तमाल वृक्षोंसे युक्त होनेके कारण काले दीखनेवाले वनोंमें, किसी क्षण राजहंसपर चढ़कर, किसी क्षण कमलसे भरे हुए थोड़े कीचड़ और जलवाले सरोवरमें तथा किसी क्षण माताकी निष्कलंक सुन्दर गोदमें बैठकर क्रीडा करता था। इस प्रकार देवताओंको आनन्द प्रदान करनेवाला एवं गणेश्वरोंका भी अधिपति वह बाललीलाबिहारी वीरक निकुञ्जोंमें विद्याधरोंके साथ गान करता और शंकरजीकी तरह लीलाविलाससे युक्त हो क्रीडा करता था॥ ५६६—५७२॥

प्रकाश्य भुवनाभोगी ततो दिनकरे गते।
देशान्तरं तदा पश्चाद् दूरमस्तावनीधरम्॥ ५७३

तदनन्तर भगवान् सूर्य सारे भुवनोंको प्रकाशित करनेके पश्चात् सायंकाल अस्ताचलकी ओर प्रस्थित हुए।

उदयास्ते पुरो भावी यो हि चास्तेऽवनीधरः।
मित्रत्वमस्य सुदृढं हृदये परिचिन्त्यताम्॥ ५७४

उदयाचल और अस्ताचल—ये दोनों पर्वत पूर्वकालकी निश्चित योजनाके अनुसार स्थित हैं। इनमें सूर्यकी अस्ताचलके साथ सुदृढ़ मित्रता है—ऐसा विचारकर

नित्यमाराधितः श्रीमान् पृथुमूलः समुन्नतः।
नाकरोत् सेवितुं मेरुरुपहारं पतिष्यतः॥ ५७५

जलेऽप्येषा व्यवस्थेति संशयेताखिलं बुधः।
दिनान्तानुगतो भानुः स्वजनत्वमपूरयत्॥ ५७६

संध्याबद्धाञ्जलिपुटा मुनयोऽभिमुखा रविम्।
याचन्त्यागमनं शीघ्रं निवार्यात्मनि भाविताम्॥ ५७७

व्यजृम्भदथ लोकेऽस्मिन् क्रमाद् वैभावरं तमः।
कुटिलस्येव हृदये कालुष्यं दूषयन्मनः॥ ५७८

नित्य सूर्यद्वारा आराधित, शोभाशाली, स्थूल मूल भागवाले एवं समुन्नत मेरुने गिरते हुए सूर्यकी सेवा करनेके लिये कोई उपहार नहीं समर्पित किया। जलमें भी यही व्यवस्था है—इन सभी विषयोंपर बुद्धिमान् पुरुष संशय करेंगे। दिनके अवसानका अनुगमन करनेवाले सूर्यने अपनत्वकी पूर्ति की। संध्याके समय हाथ जोड़े हुए मुनिगण सूर्यके सम्मुख उपस्थित हो आत्मामें उत्पन्न हुई (बिछोहकी) भावनाको रोककर पुनः शीघ्र ही आगमनकी याचना कर रहे हैं। इस प्रकार सूर्यके अस्त हो जानेपर सारे जगत्में रात्रिका अन्धकार क्रमशः उसी प्रकार बढ़ने लगा, जैसे कुटिल मनुष्यके हृदयमें पाप मनको दूषित करते हुए फैल जाता है॥ ५७३—५७८॥

ज्वलत्फणिफणारत्नदीपोद्योतितभित्तिके ।
शयनं शशिसङ्घातशुभ्रवस्त्रोत्तरच्छदम्॥ ५७९

नानारत्नद्युतिलसच्छक्रचापविडम्बकम् ।
रत्नकिङ्किणिकाजालं लम्बमुक्ताकलापकम्॥ ५८०

कमनीयचलल्लोलवितानाच्छादिताम्बरम् ।
मन्दिरे मन्दसञ्चारः शनैर्गिरिसुतायुतः॥ ५८१

तस्थौ गिरिसुताबाहुलतामीलितकन्धरः।
शशिमौलिसितज्योत्स्नाशुचिपूरितगोचरः॥ ५८२

गिरिजाप्यसितापाङ्गी नीलोत्पलदलच्छविः।

विभावर्या च सम्पृक्ता बभूवातितमोमयी।
तामुवाच ततो देवः क्रीडाकेलिकलायुतम्॥ ५८३

तत्पश्चात् जिसकी दीवालें प्रभापूर्ण सर्पोंकी मणिरूपी दीपकोंसे उद्भाषित हो रही थीं, ऐसे भवनमें शय्या बिछी थी, जिसपर चाँदनीकी राशि-जैसी उज्ज्वल चादर बिछी थी, नाना प्रकारके रत्नोंकी कान्तिसे सुशोभित होनेके कारण वह इन्द्रधनुषकी विडम्बना कर रही थी, उसमें रत्ननिर्मित क्षुद्रघण्टिकाएँ तथा मोतियोंकी लम्बी-लम्बी झालरें लटक रही थीं और उसका ऊपरी भाग हिलते हुए कमनीय वितानसे आच्छादित था, ऐसी शय्यापर मन्दगतिसे चलते हुए भगवान् शंकर पार्वतीके साथ विराजमान हुए। उस समय उनका कंधा पार्वतीकी भुजलतासे संयुक्त था। चन्द्रभूषणकी उज्ज्वल एवं निर्मल प्रभा सर्वत्र फैल रही थी। कजरारे नेत्रोंवाली गिरिजाकी भी छवि नीले कमल-दलके समान थी। रात्रिसे संयुक्त होनेके कारण वे विशेषरूपसे तमोमयी दीख रही थीं। उस समय भगवान् शंकर पार्वतीसे क्रीडाकेलिकी कलासे युक्त वचन बोले॥ ५७९—५८३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके कुमारसम्भवमें एक सौ चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५४॥



एक सौ पचपनवाँ अध्याय

भगवान् शिवद्वारा पार्वतीके वर्णपर आक्षेप, पार्वतीका वीरकको अन्तःपुरका रक्षक नियुक्त कर पुनः तपश्चर्याके लिये प्रस्थान

शर्व उवाच

शरीरे मम तन्वङ्गि सिते भास्यसितद्युतिः।
भुजङ्गीवासिता शुद्धा संश्लिष्टा चन्दने तरौ॥ १

चन्द्रातपेन सम्पृक्ता रुचिराम्बरया तथा।
रजनीवासिते पक्षे दृष्टिदोषं ददासि मे॥ २

इत्युक्ता गिरिजा तेन मुक्तकण्ठा पिनाकिना।
उवाच कोपरक्ताक्षी भ्रुकुटीकुटिलानना॥ ३

देव्युवाच

स्वकृतेन जनः सर्वो जाड्येन परिभूयते।
अवश्यमर्थी प्राप्नोति खण्डनं शशिमण्डन॥ ४

तपोभिर्दीर्घचरितैर्यच्च प्रार्थितवत्यहम्।
तस्या मे नियतस्त्वेष ह्यवमानः पदे पदे॥ ५

नैवास्मि कुटिला शर्व विषमा नैव धूर्जटे।
सविषस्त्वं गतः ख्यातिं व्यक्तं दोषाकराश्रयः॥ ६

नाहं पूष्णोऽपि दशना नेत्रे चास्मि भगस्य हि।
आदित्यश्च विजानाति भगवान् द्वादशात्मकः॥ ७

मूर्ध्नि शूलं जनयसि स्वैर्दोषैर्मामधिक्षिपन्।
यत्त्वं मामाह कृष्णेति महाकालेति विश्रुतः॥ ८

यास्याम्यहं परित्यक्त्वा चात्मानं तपसा गिरिम्।
जीवन्त्या नास्ति मे कृत्यं धूर्तेन परिभूतया॥ ९

निशम्य तस्या वचनं कोपतीक्ष्णाक्षरं भवः।
उवाचाधिकसम्भ्रान्तिप्रणयोन्मिश्रया गिरा॥ १०

शर्व उवाच

अगात्मजासि गिरिजे नाहं निन्दापरस्तव।
त्वद्भक्तिबुद्ध्या कृतवांस्तवाहं नामसंश्रयम्॥ ११

शिवजीने (विवाहके बाद एक बार पार्वतीसे) कहा— कृशाङ्गी पार्वति! कृष्ण कान्तिसे युक्त तुम मेरे श्वेत शरीरमें लिपटनेपर चन्दन-वृक्षमें लिपटी हुई सीधी काली नागिन-जैसी दीखती हो। तुम कृष्णपक्षमें चाँदनीके पीछे काले आकाश तथा अँधेरी रात्रिकी तरह मेरी दृष्टिको दूषित कर रही हो। भगवान् शंकरद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वती उनके गलेसे अलग हो गयीं। क्रोधके कारण उनके नेत्र लाल हो गये। तब वे मुख और भौंहोंको टेढ़ी करके बोलीं॥ १—३॥

देवीने कहा— चन्द्रभूषण! सभी लोग अपने द्वारा की गयी मूर्खताका दुष्परिणाम भोगते हैं। स्वार्थी मनुष्य जनसमाजमें अवश्य ही अपमानित होता है। दीर्घकालिक तपस्याद्वारा मैंने जिस मनोरथकी प्रार्थना की थी, उसीके परिणामस्वरूप मुझे यह पग-पगपर तिरस्कार प्राप्त हो रहा है। जटाधारी शंकर! (आपके कथनानुसार) न तो मैं कुटिल हूँ और न विषम ही हूँ, अपितु आप स्वयं स्पष्टरूपसे विषयुक्त अर्थात् विषयी और दोषोंके समूह (अथवा चन्द्रमा) के आश्रयरूपसे प्रसिद्ध हैं। मैं पूषाके दाँत और भगके नेत्र भी नहीं हूँ। बारह भागोंमें विभक्त भगवान् सूर्य मुझे भलीभाँति जानते हैं। अपने दोषोंद्वारा मुझपर आक्षेप करते हुए आप मेरे सिरमें पीड़ा उत्पन्न कर रहे हैं। आपने मुझे जो 'कृष्णा' नामसे सम्बोधित किया है सो आप भी तो 'महाकाल' नामसे विख्यात हैं। अतः अब मैं जीवनका मोह त्यागकर तपस्या करनेके लिये पर्वतपर जाऊँगी; क्योंकि आप-जैसे धूर्तसे अपमानित होकर जीवित रहनेसे मैं अपना कोई प्रयोजन नहीं समझ रही हूँ। तब पार्वतीके इस प्रकार क्रोधके कारण तीखे अक्षरोंसे युक्त वचनको सुनकर भगवान् शंकर अतिशय प्रेमसे सनी हुई वाणीमें इस प्रकार बोले॥ ४—१०॥

शंकरजीने कहा— गिरिजे! तुम पर्वतकी पुत्री हो, अतः मैं तुम्हारी निन्दा करनेपर उतारू नहीं हूँ। यह तो मैंने तुम्हारे ऊपर भक्तिपूर्ण बुद्धिसे तुम्हारे नामका कारण बतलाया है।

विकल्पः स्वस्थचित्तेऽपि गिरिजे नैव कल्पना।
यद्येवं कुपिता भीरु त्वं तवाहं न वै पुनः॥ १२
नर्मवादी भविष्यामि जहि कोपं शुचिस्मिते।
शिरसा प्रणतश्चाहं रचितस्ते मयाञ्जलिः॥ १३
स्नेहेनावमानेन निन्दितेनैति विक्रियाम्।
तस्मान्न जातु रुष्टस्य नर्मस्पृष्टो जनः किल॥ १४
अनेकैश्चाटुभिर्देवी देवेन प्रतिबोधिता।
कोपं तीव्रं न तत्याज सती मर्मणि घट्टिता॥ १५
अवष्टब्धमथास्फाल्य वासः शङ्करपाणिना।
विपर्यस्तालका वेगद्यातुमैच्छत शैलजा॥ १६
तस्या व्रजन्त्याः कोपेन पुनराह पुरान्तकः।
सत्यं सर्वैरवयवैः सुतासि सदृशी पितुः॥ १७
हिमाचलस्य शृङ्गैस्तैर्मेघजालाकुलैर्नभः।
तथा दुरवगाह्येभ्यो हृदयेभ्यस्तवाशयः॥ १८
काठिन्याङ्कस्त्वमस्मभ्यं वनेभ्यो बहुधा गता।
कुटिलत्वं च वर्त्मभ्यो दुःसेव्यत्वं हिमादपि।
संक्रान्तिं सर्वमेवैतत् तन्वङ्गि हिमभूधरात्॥ १९
इत्युक्ता सा पुनः प्राह गिरिशं शैलजा तदा।
कम्पकम्पितमूर्धा च प्रस्फुरद्दशनच्छदा॥ २०

उमोवाच

मा सर्वान् दोषदानेन निन्दान्यान् गुणिनो जनान्।
तवापि दुष्टसम्पर्कात्संक्रान्तं सर्वमेव हि॥ २१
व्यालेभ्योऽधिकजिह्मत्वं भस्मना स्नेहबन्धनम्।
हृत्कालुष्यं शशाङ्कात्तु दुर्बोधित्वं वृषादपि॥ २२
तथा बहु किमुक्तेन अलं वाचा श्रमेण ते।
श्मशानवासान्निर्भीस्त्वं नग्नत्वान्न तव त्रपा॥ २३
निर्घृणत्वं कपालित्वाद् दया ते विगता चिरम्।
इत्युक्त्वा मन्दिरात् तस्मान्निर्जगाम हिमाद्रिजा॥ २४
तस्यां व्रजन्त्यां देवेशगणैः किलकिलो ध्वनिः।
क्व मातर्गच्छसि त्यक्त्वा रुदन्तो धाविताः पुनः॥ २५

गिरिजे! मेरे स्वस्थ चित्तमें भी तुम्हें विकल्पकी कल्पना नहीं करनी चाहिये। भीरु! यदि तुम इस प्रकार कुपित हो गयी हो तो अब मैं पुनः तुम्हारे साथ परिहासकी बात नहीं करूँगा। शुचिस्मिते! तुम क्रोध छोड़ दो। देखो, मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़कर सिर झुकाये हूँ। जो प्रेमयुक्त अवमानना तथा व्याजनिन्दासे क्रुद्ध हो जाता है, उस व्यक्तिके साथ कभी भी परिहासकी बात नहीं करनी चाहिये। इस प्रकार महादेवजीने अनेकों चाटुकारिताभरी बातोंसे पार्वतीको समझाया, परंतु सतीका वह उत्कट क्रोध शान्त नहीं हुआ; क्योंकि उस व्यङ्गसे उनका मर्मस्थल विद्ध हो गया था। तत्पश्चात् पार्वती शंकरजीके हाथसे पकड़े हुए अपने वस्त्रको छुड़ाकर बाल बिखेरे हुए वेगपूर्वक वहाँसे चली जानेकी चेष्टा करने लगीं। क्रोधावेशसे जानेके लिये उद्यत हुई पार्वतीसे त्रिपुरारिने पुनः कहा—'तुम सचमुच ही सभी अवयवोंद्वारा अपने पिताके सदृश उनकी कन्या हो। जैसे हिमाचलके मेघसमूहसे व्याप्त ऊँचे शिखरोंके कारण आकाश दुर्गम्य हो जाता है, उसी तरह तुम्हारा हृदय भी दुःखगाह्य हृदयोंसे भी अत्यन्त कठोर है। तुम्हारे सभी चिह्न बहुधा वनोंकी अपेक्षा कठिनतासे परिपूर्ण हैं। तुम्हारी चालमें पहाड़ी मार्गोंसे भी बढ़कर कुटिलता है। तुम्हारा सेवन बर्फसे भी अधिक कठिन है। सूक्ष्माङ्गी पार्वती! ये सभी गुण तुम्हारे शरीरमें हिमाचलसे ही संक्रमित हुए हैं। शिवजीद्वारा इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीका मस्तक क्रोधके कारण काँपने लगा और होंठ फड़कने लगे। तब वे पुनः शंकरजीसे बोलीं॥ ११—२०॥

उमाने कहा—भगवन्! आप अन्यान्य सभी गुणीजनोंमें दोष लगाकर उनकी निन्दा मत करें; क्योंकि आपमें भी तो सभी गुण दुष्टोंके संसर्गसे ही प्रविष्ट हुए हैं। आपमें सर्पोंके सम्पर्कसे अधिक टेढ़ापन, भस्मसे प्रेमहीनता, चन्द्रमासे हृदयकी कालिमा और वृषसे दुर्बोधता भर गयी है। आपके विषयमें अधिक कहनेसे क्या लाभ? वह तो केवल वचनका परिश्रम ही होगा। आप श्मशानमें निवास करनेके कारण निर्भीक हो गये हैं। नग्न रहनेके कारण आपमें लज्जा रह नहीं गयी है। कपाली होनेके कारण आप निर्मम हो गये हैं और आपकी दया तो चिरकालसे नष्ट हो गयी है। ऐसा कहकर पार्वती उस भवनसे बाहर निकल गयीं। उनको इस प्रकार जाती देखकर देवेशके गण (प्रमथ) किलकारी मारकर रोते हुए उनके पीछे दौड़े और कहने लगे—'माँ! हमलोगोंको

विष्टभ्य चरणौ देव्या वीरको बाष्पगद्गदम्।
प्रोवाच मातः किंत्वेतत्क्व यासि कुपितान्तरा॥ २६

अहं त्वामनुयास्यामि व्रजन्तीं स्नेहवर्जिताम्।
नो चेत् पतिष्ये शिखरात् तपोनिष्ठे त्वयोज्झितः॥ २७

उन्नाम्य वदनं देवी दक्षिणेन तु पाणिना।
उवाच वीरकं माता शोकं पुत्रक मा कृथाः॥ २८

शैलाग्रात् पतितुं नैव न चागन्तुं मया सह।
युक्तं ते पुत्र वक्ष्यामि येन कार्येण तच्छृणु॥ २९

कृष्णेत्युक्त्वा हरेणाहं निन्दिता चाप्यनिन्दिता।
साहं तपः करिष्यामि येन गौरीत्वमाप्नुयाम्॥ ३०

एष स्त्रीलम्पटो देवो यातायां मय्यनन्तरम्।
द्वाररक्षा त्वया कार्या नित्यं रन्ध्रान्ववेक्षिणा॥ ३१

यथा न काचित् प्रविशेद्योषिदत्र हरान्तिकम्।
दृष्ट्वा परां स्त्रियं चात्र वदेथा मम पुत्रक॥ ३२

शीघ्रमेव करिष्यामि यथायुक्तमनन्तरम्।
एवमस्त्विति देवीं स वीरकः प्राह साम्प्रतम्॥ ३३

मातुराज्ञामृताह्लादप्लाविताङ्गो गतज्वरः।
जगाम कक्ष्यां संद्रष्टुं प्रणिपत्य च मातरम्॥ ३४

छोड़कर आप कहाँ जा रही हैं?' तत्पश्चात् वीरक देवीके दोनों चरणोंको पकड़कर बाष्पगद्गद वाणीमें बोला—'माँ! यह क्या हो गया? आप क्रुद्ध होकर कहाँ जा रही हैं? तपोनिष्ठे! इस प्रकार स्नेह छोड़कर जाती हुई आपके पीछे मैं भी चलूँगा, अन्यथा आपके त्याग देनेपर मैं पर्वतशिखरसे कूदकर प्राण दे दूँगा॥ २१—२७॥

तदनन्तर माता पार्वती अपने दाहिने हाथसे वीरकके मुखको ऊपर उठाकर बोलीं—'बेटा! शोक मत करो। तुम्हारा पर्वतशिखरसे कूदना या मेरे साथ चलना उचित नहीं है। पुत्र! मैं जिस कार्यसे जा रही हूँ, वह तुम्हें बतला रही हूँ, सुनो। मेरे अनिन्द्य होनेपर भी शंकरजीने मुझे 'कृष्णा' कहकर मेरी निन्दा की है। इसलिये अब मैं तपस्या करूँगी, जिससे गौर वर्णकी प्राप्ति कर सकूँ। मेरे चले जानेके बाद ये महादेव स्त्रीलम्पट न हो जायँ, इसके लिये तुम्हें सभी छिद्रोंपर दृष्टि रखते हुए नित्य द्वारकी रक्षा करनी चाहिये, जिससे यहाँ कोई स्त्री शंकरजीके निकट प्रवेश न करने पावे। बेटा! यहाँ किसी परायी स्त्रीको देखकर मुझे तुरंत सूचित करना। फिर उसके बाद जैसा उचित होगा, मैं शीघ्र ही उपाय कर लूँगी।' इसपर वीरकने देवीसे कहा—'माँ! ऐसा ही होगा।' इस प्रकार माताकी आज्ञारूपी अमृतके आह्लादसे आप्लावित अङ्गोंवाला वीरक शोकरहित हो माताके चरणोंमें प्रणाम कर अन्तःपुरकी रखवाली करनेके लिये चला गया॥ २८—३४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे देव्यास्तपोऽनुगमनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके कुमारसम्भव-प्रसङ्गमें देवीका तपके लिये अनुगमन नामक एक सौ पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५५॥

एक सौ छप्पनवाँ अध्याय

कुसुमामोदिनी और पार्वतीकी गुप्त मन्त्रणा, पार्वतीका तपस्यामें निरत होना, आडि दैत्यका पार्वतीरूपमें शंकरके पास जाना और मृत्युको प्राप्त होना तथा पार्वतीद्वारा वीरकको शाप

सूत उवाच

देवीं सापश्यदायान्तीं सखीं मातुर्विभूषिताम्।
कुसुमामोदिनीं नाम तस्य शैलस्य देवताम्॥ १

सापि दृष्ट्वा गिरिसुतां स्नेहविक्लवमानसा।
क्व पुत्रि गच्छसीत्युच्चैरालिङ्ग्योवाच देवता॥ २

सूतजी कहते हैं—'ऋषियो! आगे बढ़नेपर पार्वतीने शृङ्गारसे विभूषित कुसुमामोदिनी (देवी)-को आते देखा, जो पार्वतीकी माता मेनाकी सखी और पर्वतराजकी प्रधान देवता थीं। उधर पार्वतीको देखकर कुसुमामोदिनीका भी मन स्नेहसे व्याकुल हो उठा। तब उन देवताने पार्वतीका आलिङ्गन कर उच्चस्वरसे पूछा—'बेटी! कहाँ जा रही

सा चास्यै सर्वमाचख्यौ शंकरात्कोपकारणम्।
पुनश्चोवाच गिरिजा देवतां मातृसम्मताम्॥ ३

उमोवाच

नित्यं शैलाधिराजस्य देवता त्वमनिन्दिते।
सर्वतः संनिधानं ते मम चातीव वत्सला॥ ४

अतस्तु ते प्रवक्ष्यामि यद्विधेयं तदा धिया।
अन्यस्त्रीसम्प्रवेशस्तु त्वया रक्ष्यः प्रयत्नतः॥ ५

रहस्यत्र प्रयत्नेन चेतसा सततं गिरौ।
पिनाकिनः प्रविष्टायां वक्तव्यं मे त्वयानघे॥ ६

ततोऽहं संविधास्यामि यत्कृत्यं तदनन्तरम्।
इत्युक्ता सा तथेत्युक्त्वा जगाम स्वगिरिं शुभम्॥ ७

उमापि पितुरुद्यानं जगामाद्रिसुता द्रुतम्।
अन्तरिक्षं समाविश्य मेघमालामिव प्रभा॥ ८

ततो विभूषणान्यस्य वृक्षवल्कलधारिणी।
ग्रीष्मे पञ्चाग्निसंतप्ता वर्षासु च जलोषिता॥ ९

वन्याहारा निराहारा शुष्का स्थण्डिलशायिनी।
एवं साधयती तत्र तपसा संव्यवस्थिता॥ १०

ज्ञात्वा तु तां गिरिसुतां दैत्यस्तत्रान्तरे बली।
अन्धकस्य सुतो दृप्तः पितुर्वधमनुस्मरन्॥ ११

देवान् सर्वान् विजित्याजौ बकभ्राता रणोत्कटः।
आडिर्नामान्तरप्रेक्षी सततं चन्द्रमौलिनः॥ १२

आजगामामररिपुः पुरं त्रिपुरघातिनः।
स तत्रागत्य ददृशे वीरकं द्वार्यवस्थितम्॥ १३

विचिन्त्यासीद्वरं दत्तं स पुरा पद्मजन्मना।
हते तदान्धके दैत्ये गिरिशेनामरद्विषि॥ १४

आडिश्चकार विपुलं तपः परमदारुणम्।
तमागत्याब्रवीद् ब्रह्मा तपसा परितोषितः॥ १५

किमाडे दानवश्रेष्ठ तपसा प्राप्तुमिच्छसि।
ब्रह्माणमाह दैत्यस्तु निर्मृत्युत्वमहं वृणे॥ १६

हो?" तत्पश्चात् गिरिजाने उन देवीसे शंकरजीके प्रति उत्पन्न हुए अपने क्रोधके सारे कारणोंका वर्णन किया और फिर मातृ-तुल्य हितैषिणी देवतासे इस प्रकार कहा॥ १—३॥

उमा बोलीं—'अनिन्दिते! आप मेरे पिता पर्वतराज हिमाचलकी देवता हैं, अतः आपका यहाँ नित्य निवास है। साथ ही मुझपर भी आपका अत्यन्त स्नेह है, इसलिये इस समय जो कार्य करना है उसे मैं आपके ध्यानमें ला रही हूँ। आपको इस पर्वतपर सावधान चित्तसे निरन्तर प्रयत्नपूर्वक ऐसी देखभाल करनी चाहिये कि यहाँ शिवजीके पास एकान्तमें कोई अन्य स्त्री प्रवेश न करने पाये। अनघे! यदि कोई स्त्री शंकरजीके पास प्रवेश करती है तो आपको मुझे तुरंत उसकी सूचना देनी चाहिये। उसके बाद जो कुछ करना होगा, उसका विधान मैं कर लूँगी। ऐसा कहे जानेपर वे 'तथेति'—ऐसा ही करूँगी' यों कहकर अपने मङ्गलमय पर्वतकी ओर चली गयीं। इधर गिरिराजकुमारी उमा भी तुरंत ही मेघसमूहमें चमकती हुई बिजलीकी तरह आकाशमार्गसे अपने पिताके उद्यानमें जा पहुँचीं। वहाँ उन्होंने आभूषणोंका परित्याग कर वृक्षोंका वल्कल धारण कर लिया। वे ग्रीष्म-ऋतुमें पञ्चाग्नि तपती थीं, वर्षा-ऋतुमें जलमें निवास करती थीं और जाड़ेमें शुष्क बंजरभूमिपर शयन करती थीं। वनके फल-मूल ही उनके आहार थे तथा वे कभी-कभी निराहार ही रह जाती थीं। इस प्रकार साधना करती हुई वे वहाँ तपस्यामें संलग्न हो गयीं॥ ४—१०॥

इसी बीच अन्धकासुरका पुत्र एवं बकासुरका भ्राता आडि नामक दैत्य जो बलवान्, घमंडी, रणमें दुःसह, देवताओंका शत्रु और निरन्तर शंकरजीके छिद्रान्वेषणमें निरत रहनेवाला था, पार्वतीको तपस्यामें संलग्न जानकर अपने पिताके वधका अनुस्मरण करते हुए युद्धस्थलमें सभी देवताओंको पराजित कर त्रिपुरहन्ता शंकरजीके नगरमें आ धमका। वहाँ आकर उसने वीरकको द्वारपर स्थित देखा। तब वह पूर्वकालमें ब्रह्माद्वारा दिये गये अपने वरदानके विषयमें सोच-विचार करने लगा। शंकरजीद्वारा देवद्रोही अन्धक दैत्यके मारे जानेपर आडिने बहुत दिनोंतक परम कठोर तप किया था। तब उसकी तपस्यासे संतुष्ट हो ब्रह्माने उसके निकट आकर कहा था—'दानवश्रेष्ठ आडि! तुम तपस्याद्वारा क्या प्राप्त करना चाहते हो?' तब उस दैत्यने ब्रह्मासे कहा था—'प्रभो! मैं अमरताका वरदान चाहता हूँ'॥ ११—१६॥

ब्रह्मोवाच

न कश्चिच्च विना मृत्युं नरो दानव विद्यते।
यतस्ततोऽपि दैत्येन्द्र मृत्युः प्राप्यः शरीरिणा॥ १७

इत्युक्तो दैत्यसिंहस्तु प्रोवाचाम्बुजसम्भवम्।
रूपस्य परिवर्तो मे यदा स्यात्पद्मसम्भव॥ १८

तदा मृत्युर्मम भवेदन्यथा त्वमरो ह्यहम्।
इत्युक्तस्तु तदोवाच तुष्टः कमलसम्भवः॥ १९

यदा द्वितीयो रूपस्य विवर्तस्ते भविष्यति।
तदा ते भविता मृत्युरन्यथा न भविष्यति॥ २०

इत्युक्तोऽमरतां मेने दैत्यसूनुर्महाबलः।
तस्मिन् काले तु संस्मृत्य तद्वधोपायमात्मनः॥ २१

परिहर्त्तुं दृष्टिपथं वीरकस्याभवत्तदा।
भुजङ्गरूपी रन्ध्रेण प्रविवेश दृशः पथम्॥ २२

परिहृत्य गणेशस्य दानवोऽसौ सुदुर्जयः।
अलक्षितो गणेशेन प्रविष्टोऽथ पुरान्तकम्॥ २३

भुजङ्गरूपं संत्यज्य बभूवाथ महासुरः।
उमारूपी च्छलयितुं गिरिशं मूढचेतनः॥ २४

कृत्वा मायां ततो रूपमप्रतर्क्यमनोहरम्।
सर्वावयवसम्पूर्णं सर्वाभिज्ञानसंवृतम्॥ २५

कृत्वा मुखान्तरे दन्तान् दैत्यो वज्रोपमान् दृढान्।
तीक्ष्णाग्रान् बुद्धिमोहेन गिरिशं हन्तुमुद्यतः॥ २६

कृत्वोमारूपसंस्थानं गतो दैत्यो हरान्तिकम्।
पापो रम्याकृतिश्चित्रभूषणाम्बरभूषितः॥ २७

तं दृष्ट्वा गिरिशस्तुष्टस्तदाऽऽलिङ्ग्य महासुरम्।
मन्यमानो गिरिसुतां सर्वैरवयवान्तरैः॥ २८

अपृच्छत् साधु ते भावो गिरिपुत्रि न कृत्रिमः।
या त्वं मदाशयं ज्ञात्वा प्राप्तेह वरवर्णिनि॥ २९

त्वया विरहितं शून्यं मन्यमानो जगत्त्रयम्।
प्राप्ता प्रसन्नवदना युक्तमेवंविधं त्वयि॥ ३०

तब ब्रह्माने कहा था—'दानव! इस सृष्टिमें कोई भी मनुष्य मृत्युसे रहित नहीं है। दैत्येन्द्र! शरीरधारीको किसी-न-किसी प्रकारसे मृत्यु प्राप्त होती ही है। ऐसा कहे जानेपर दैत्यसिंह आडिने पद्मयोनि ब्रह्मासे कहा था—'पद्मसम्भव! जब मेरे रूपका परिवर्तन हो जाय तभी मेरी मृत्यु हो, अन्यथा मैं अमर बना रहूँ।' उसके द्वारा ऐसा कहे जानेपर उस समय कमलयोनि ब्रह्माने प्रसन्न होकर उससे कहा था कि 'ठीक है, जब तुम्हारे रूपका दूसरा परिवर्तन होगा, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी, अन्यथा नहीं होगी।' ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर वह महाबली दैत्यपुत्र आडि अपनेको अमर मानने लगा। उस समय उसने अपनी मृत्युके उस उपायका स्मरणकर वीरकके दृष्टिमार्गको बचानेके लिये सर्पका रूप धारण कर लिया और एक बिलमें प्रविष्ट हो गया। फिर वह परम दुर्जय दानव गणेश्वर वीरकके दृष्टिपथको बचाकर उनसे अलक्षितरूपसे भगवान् शंकरके पास पहुँच गया। तदनन्तर उस मोहित चित्तवाले महासुर आडिने शंकरजीको छलनेके लिये सर्पका रूप त्यागकर उमाका रूप धारण कर लिया। उसने मायाका आश्रय लेकर पार्वतीके ऐसे अकल्पनीय एवं मनोहर रूपका निर्माण किया था, जो सभी अवयवोंसे परिपूर्ण तथा सभी लक्षणोंसे युक्त था। फिर वह दैत्य मुखके भीतर वज्रके समान सुदृढ़ और तीखे अग्रभागवाले दाँतोंका निर्माण कर मूर्खतावश शंकरजीका वध करनेके लिये उद्यत हुआ॥ १७—२६॥

तदनन्तर वह पापी दैत्य सुन्दर रूप एवं चित्र-विचित्र आभूषणों और वस्त्रोंसे विभूषित हो उमाका रूप धारण कर शंकरजीके निकट गया। उसे देखकर भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये। तब उन्होंने उस महासुरको सभी अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे पार्वती मानते हुए उसका आलिङ्गन करके पूछा—'गिरिजे! अब तो मेरे प्रति तुम्हारा भाव उत्तम है न? बनावटी तो नहीं है? सुन्दरि! (ऐसा प्रतीत होता है कि) तुम मेरे अभिप्रायको जानकर ही यहाँ आयी हो; क्योंकि तुम्हारे बिना मैं त्रिलोकीको सूना-सा मान रहा था। अब जो तुम प्रसन्नतापूर्वक यहाँ आ गयी हो, तुम्हारे लिये ऐसा करना उचित ही है।'

इत्युक्तो दानवेन्द्रस्तु तदाभाषत् स्मयञ्शनैः।
न चाबुध्यदभिज्ञानं प्रायस्त्रिपुरघातिनः॥ ३१

इस प्रकार कहे जानेपर दानवेन्द्र आडि मुसकराते हुए धीरे-धीरे बोला। वह त्रिपुरहन्ता शंकरजीद्वारा पार्वतीके शरीरमें लक्षित किये गये चिह्नको प्रायः नहीं जानता था॥ २७—३१॥

देव्युवाच

यातास्म्यहं तपश्चर्त्तुं वाल्लभ्याय तवातुलम्।
रतिश्च तत्र मे नाभूत्ततः प्राप्ता त्वदन्तिकम्॥ ३२

इत्युक्तः शङ्करः शङ्कां कांचित्प्राप्यावधारयत्।
हृदयेन समाधाय देवः प्रहसिताननः॥ ३३

कुपिता मयि तन्वङ्गि प्रकृत्या च दृढव्रता।
अप्राप्तकामा सम्प्राप्ता किमेतत्संशयो मम॥ ३४

इति चिन्त्य हरस्तस्या अभिज्ञानं विधारयन्।
नापश्यद्वामपार्श्वे तु तदङ्गे पद्मलक्षणम्॥ ३५

लोमावर्तं तु रचितं ततो देवः पिनाकधृक्।
अबुध्यद्दानवीं मायामाकारं गूहयंस्ततः॥ ३६

मेढ्रे वज्रास्त्रमादाय दानवं तमसूदयत्।
अबुध्यद्वीरको नैव दानवेन्द्रं निषूदितम्॥ ३७

हरेण सूदितं दृष्ट्वा स्त्रीरूपं दानवेश्वरम्।
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था शैलपुत्र्यै न्यवेदयत्॥ ३८

दूतेन मारुतेनाशुगामिना नगदेवता।
श्रुत्वा वायुमुखाद्देवी क्रोधरक्तविलोचना।
अशपद्वीरकं पुत्रं हृदयेन विदूयता॥ ३९

देवी (रूपधारी आडि)-ने कहा—'पतिदेव! आपके अतुलनीय पति-प्रेमकी प्राप्तिके अभिप्रायसे मैं तपस्या करने गयी थी, किंतु उसमें मेरा मन नहीं लगा, अतः पुनः आपके निकट लौट आयी हूँ। उसके ऐसा कहनेपर शंकरजीके मनमें कुछ शङ्का उत्पन्न हो गयी, परंतु उसे उन्होंने हृदयमें ही समाधान करके छिपा लिया। फिर वे मुसकराते हुए बोले—'सूक्ष्माङ्गि! तुम तो मुझपर कुपित होकर तपस्या करने गयी थी न? साथ ही तुम स्वभावसे ही सुदृढ़ प्रतिज्ञावाली हो, फिर बिना मनोरथ सिद्ध किये लौट आयी हो, यह क्या बात है? इससे तो मुझे संदेह हो रहा है।' ऐसा विचारकर शंकरजी पार्वतीके उस लक्षणका स्मरण करने लगे, जिसे उन्होंने पार्वतीके शरीरके बायें भागमें बालोंको घुमाकर पद्मके रूपमें बनाया था, परंतु वह उन्हें दिखायी न पड़ा।* तब पिनाकधारी महादेवने समझ लिया कि यह दानवी माया है। फिर तो उन्होंने अपने आकारको छिपाते हुए जननेन्द्रियमें वज्रास्त्रको अभिमन्त्रित करके उस दैत्यको मार डाला। इस प्रकार मारे गये दानवेन्द्र आडिकी बात वीरकको नहीं ज्ञात हुई। उधर इसके यथार्थ तत्त्वको न जाननेवाली हिमाचलकी देवता कुसुमामोदिनीने शंकरजीद्वारा स्त्रीरूपधारी दानवेश्वरको मारा गया देखकर अपने शीघ्रगामी दूत वायुद्वारा पार्वतीको इसकी सूचना भेज दी। वायुके मुखसे वह संदेश सुनकर पार्वती देवीके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। तब वे दुःखी हृदयसे अपने पुत्र वीरकको शाप देते हुए बोलीं॥ ३२—३९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे आडिवधो नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके कुमारसम्भव-प्रसङ्गमें आडिवध नामक एक सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५६॥

---

* यह महा-सौभाग्यजनक चिह्न है। भगवान् विष्णु तथा अन्य भाग्यशालियोंके शरीरमें ऐसा चिह्न श्रीवत्स नामसे प्रसिद्ध है।

एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय

पार्वतीद्वारा वीरकको शाप, ब्रह्माका पार्वती तथा एकानंशाको वरदान, एकानंशाका विन्ध्याचलके लिये प्रस्थान, पार्वतीका भवनद्वारपर पहुँचना और वीरकद्वारा रोका जाना

देव्युवाच

मातरं मां परित्यज्य यस्मात् त्वं स्नेहविक्लवात्।
विहितावसरैः स्त्रीणां शंकरस्य रहोविधौ॥ १
तस्मात् ते परुषा रूक्षा जडा हृदयवर्जिता।
गणेश क्षारसदृशी शिला माता भविष्यति॥ २
निमित्तमेतद् विख्यातं वीरकस्य शिलोदये।
सोऽभवत् प्रक्रमेणैव विचित्राख्यानसंश्रयः॥ ३
एवमुत्सृष्टशापाया गिरिपुत्र्यास्त्वनन्तरम्।
निर्जगाम मुखात् क्रोधः सिंहरूपी महाबलः॥ ४
स तु सिंहः करालास्यो जटाजटिलकन्धरः।
प्रोद्धूतलम्बलाङ्गूलो दंष्ट्रोत्कटमुखातटः॥ ५
व्यावृत्तास्यो ललज्जिह्वः क्षामकुक्षिश्चिखादिषुः।
तस्याशु वर्तितुं देवी व्यवस्यत सती तदा॥ ६
ज्ञात्वा मनोगतं तस्या भगवांश्चतुराननः।
आजगामाश्रमपदं सम्पदामाश्रयं तदा।
आगम्योवाच देवेशो गिरिजां स्पष्टया गिरा॥ ७

देवीने कहा— गणेश्वर वीरक! चूँकि तुमने मुझ माताका परित्याग कर स्नेहसे विकल हो शंकरजीके एकान्तमें अन्य स्त्रियोंको प्रवेश करनेका अवसर दिया है, इसलिये अत्यन्त कठोर, स्नेहहीन, मूर्ख, हृदयरहित एवं राख-सदृशी रूखी शिला तुम्हारी माता होगी। वीरकका शिलासे उत्पन्न होनेमें यही कारण विख्यात है। आगे चलकर वही शाप क्रमशः विचित्र कथाओंका आश्रयस्थान बन गया। इस प्रकार पार्वतीके शाप दे देनेके पश्चात् क्रोध उनके मुखसे महाबली सिंहके रूपमें बाहर निकला। उस सिंहका मुख विकराल था, उसका कंधा जटाओंसे आच्छादित था, उसकी लम्बी पूँछ ऊपर उठी हुई थी, उसके मुखके दोनों किनारे भयंकर दाढ़ोंसे युक्त थे, वह मुख फैलाये हुए जीभ लपलपा रहा था, उसकी कुक्षि दुबली-पतली थी और वह किसीको खा जानेकी टोहमें था। यह देखकर पार्वतीदेवी शीघ्र ही उसपर आरूढ़ होनेकी चेष्टा करने लगीं। तब उनके मनोगत भावको जानकर भगवान् ब्रह्मा उस आश्रमस्थानपर आये जो सभी सम्पदाओंका आश्रयस्थान था। वहाँ आकर देवेश्वर ब्रह्मा गिरिजासे स्पष्ट वाणीमें बोले॥ १—७॥

ब्रह्मोवाच

किं पुत्रि प्राप्तुकामासि किमलभ्यं ददामि ते।
विरम्यतामतिक्लेशात्तपसोऽस्मान्मदाज्ञया॥ ८
तच्छ्रुत्वोवाच गिरिजा गुरुं गौरवगर्भितम्।
वाक्यं वाचा चिरोद्गीर्णवर्णनिर्णीतवाञ्छितम्॥ ९

ब्रह्माने कहा— पुत्रि! अब तुम मेरी आज्ञा मानकर इस अत्यन्त कष्टकर तपस्यासे विरत हो जाओ। बताओ, तुम क्या प्राप्त करना चाहती हो? मैं तुम्हें कौन-सी दुर्लभ वस्तु प्रदान करूँ? यह सुनकर गिरिजाने गौरवास्पद गुरुजन ब्रह्मासे अपने चिरकालसे निर्णीत मनोरथको स्पष्टाक्षरोंसे युक्त वाणीद्वारा व्यक्त करते हुए कहा॥ ८—९॥

देव्युवाच

तपसा दुष्करेणाप्तः पतित्वे शङ्करो मया।
स मां श्यामलवर्णेति बहुशः प्रोक्तवान् भवः॥ १०
स्यामहं काञ्चनाकारा वाल्लभ्येन च संयुता।
भर्तुर्भूतपतेरङ्गमेकतो निविशेऽङ्गवत्॥ ११

देवी बोलीं— प्रभो! मैंने कठोर तपस्याके फलस्वरूप शंकरजीको पतिरूपमें प्राप्त किया है, किंतु वे मुझे बहुधा 'श्यामवर्णा—काले रंगकी' कहकर अपमानित करते रहते हैं। अतः मैं चाहती हूँ कि मेरा वर्ण सुवर्ण-सा गौर हो जाय, मैं उनकी परम वल्लभा बन जाऊँ और अपने भूतनाथ पतिदेवके शरीरमें एक ओर उन्हींके अङ्गकी तरह प्रविष्ट हो जाऊँ।

तस्यास्तद् भाषितं श्रुत्वा प्रोवाच कमलासनः।
एवं भव त्वं भूयश्च भर्तुर्देहार्धधारिणी॥ १२

ततस्तत्याज भृङ्गाङ्गं फुल्लनीलोत्पलत्वचम्॥ १३

त्वचा सा चाभवद् दीप्ता घण्टाहस्ता त्रिलोचना।
नानाभरणपूर्णाङ्गी पीतकौशेयधारिणी॥ १४

तामब्रवीत्ततो ब्रह्मा देवीं नीलाम्बुजत्विषम्।
निशे भूधरजादेहसम्पर्कात्त्वं ममाज्ञया॥ १५

सम्प्राप्ता कृतकृत्यत्वमेकानंशा पुरा ह्यसि।
य एष सिंहः प्रोद्भूतो देव्याः क्रोधाद् वरानने॥ १६

स तेऽस्तु वाहनं देवि केतौ चास्तु महाबलः।
गच्छ विन्ध्याचलं तत्र सुरकार्यं करिष्यसि॥ १७

पञ्चालो नाम यक्षोऽयं यक्षलक्षपदानुगः।
दत्तस्ते किङ्करो देवि मया मायाशतैर्युतः॥ १८

इत्युक्ता कौशिकी देवी विन्ध्यशैलं जगाम ह।
उमापि प्राप्तसंकल्पा जगाम गिरिशान्तिकम्॥ १९

प्रविशन्तीं तु तां द्वारादपकृष्य समाहितः।
रुरोध वीरको देवीं हेमवेत्रलताधरः॥ २०

तामुवाच च कोपेन रूपात्तु व्यभिचारिणीम्।
प्रयोजनं न तेऽस्तीह गच्छ यावन्न भेत्स्यसि॥ २१

देव्या रूपधरो दैत्यो देवं वञ्चयितुं त्विह।
प्रविष्टो न च दृष्टोऽसौ स वै देवेन घातितः॥ २२

घातिते चाहमाज्ञप्तो नीलकण्ठेन कोपिना।
द्वारेषु नावधानं ते यस्मात् पश्यामि वै ततः॥ २३

भविष्यसि न मद्द्वाःस्थो वर्षपूगान्यनेकशः।
अतस्तेऽत्र न दास्यामि प्रवेशं गम्यतां द्रुतम्॥ २४

पार्वतीके उस कथनको सुनकर कमलासन ब्रह्माने कहा—'ठीक है, तुम ऐसी ही होकर पुनः अपने पतिदेवके शरीरके अर्धभागको धारण करनेवाली हो जाओ।' ऐसा वरदान पाकर पार्वतीने अपने भ्रमर-सरीखे काले एवं खिले हुए नीले कमलके-से नीले चमड़ेको त्याग दिया। तब उनकी त्वचा उद्दीप्त हो उठी और वे तीन नेत्रोंसे भी युक्त हो गयीं। तदुपरान्त उन्होंने अपने शरीरको नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित कर पीले रंगकी रेशमी साड़ी धारण किया और हाथमें घण्टा ले लिया। तत्पश्चात् ब्रह्माने उस नीले कमलकी-सी कान्तिवाली देवीसे कहा—'निशे! तुम पहलेसे ही एकानंशा नामसे विख्यात हो और इस समय मेरी आज्ञासे पार्वतीके शरीरका सम्पर्क होनेके कारण तुम कृतकृत्य हो गयी हो। वरानने! पार्वतीदेवीके क्रोधसे जो यह सिंह प्रादुर्भूत हुआ है, वह तुम्हारा वाहन होगा और तुम्हारी ध्वजापर भी इस महाबलीका आकार विद्यमान रहेगा। अब तुम विन्ध्याचलको जाओ। वहाँ देवताओंका कार्य सिद्ध करो। देवि! जिसके पीछे एक लाख यक्ष चलते हैं, उस इस पञ्चाल नामक यक्षको मैं तुम्हें किंकरके रूपमें प्रदान कर रहा हूँ, यह सैकड़ों प्रकारकी मायाओंका ज्ञाता है।' ब्रह्माद्वारा ऐसा आदेश पाकर कौशिकी देवी विन्ध्यपर्वतकी ओर चली गयीं॥ १०—१८ $\frac{1}{2}$॥

इधर उमा भी अपना मनोवाञ्छित वरदान प्राप्त कर शंकरजीके पास चलीं। वहाँ द्वारपर हाथमें सोनेका डंडा धारण किये हुए वीरक सावधानीपूर्वक पहरा दे रहा था। उसने प्रवेश करती हुई पार्वतीको दरवाजेसे खींचकर रोक दिया और गौर रूपसे दूसरी स्त्री-सी प्रतीत होनेवाली उनसे क्रोधपूर्वक कहा—'तुम्हारा यहाँ कोई प्रयोजन नहीं है, अतः जबतक मैं तुम्हें पीट नहीं दे रहा हूँ, उससे पहले ही भाग जाओ। यहीं महादेवजीको छलनेके लिये एक दैत्य माता पार्वतीदेवीका रूप धारण कर प्रविष्ट हो गया था, जिसे मैं देख नहीं पाया था, किंतु महादेवजीने उसे यमलोकका पथिक बना दिया, उसे मारनेके बाद नीलकण्ठ शिवजीने क्रुद्ध होकर मुझे आज्ञा दी है कि अबसे तुम द्वारपर असावधानी मत करना। तभीसे मैं अच्छी तरह सजग होकर पहरा दे रहा हूँ। द्वारपर मेरे स्थित रहते हुए तुम अनेकों वर्षसमूहोंतक प्रविष्ट न हो सकेगी, इसलिये मैं तुम्हें भवनमें प्रवेश नहीं करने दूँगा। तुम शीघ्र ही यहाँसे चली जाओ'॥ १९—२४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कुमारसम्भवे वीरकशापो नाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके कुमारसम्भव-प्रसङ्गमें वीरक-शाप नामक एक सौ सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५७॥

एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

वीरकद्वारा पार्वतीकी स्तुति, पार्वती और शंकरका पुनः समागम, अग्निको शाप, कृत्तिकाओंकी प्रतिज्ञा और स्कन्दकी उत्पत्ति

वीरक उवाच

एवमुक्त्वा गिरिसुता माता मे स्नेहवत्सला।
प्रवेशं लभते नान्या नारी कमललोचने॥ १

इत्युक्ता तु तदा देवी चिन्तयामास चेतसा।
न सा नारीति दैत्योऽसौ वायुर्मे यामभाषत॥ २

वृथैव वीरकः शप्तो मया क्रोधपरीतया।
अकार्यं क्रियते मूढैः प्रायः क्रोधसमीरितैः॥ ३

क्रोधेन नश्यते कीर्तिः क्रोधो हन्ति स्थिरां श्रियम्।
अपरिच्छिन्नतत्त्वार्था पुत्रं शापितवत्यहम्।
विपरीतार्थबुद्धीनां सुलभो विपदोदयः॥ ४

संचिन्त्यैवमुवाचेदं वीरकं प्रति शैलजा।
लज्जासज्जविकारेण वदनेनाम्बुजत्विषा॥ ५

देव्युवाच

अहं वीरक ते माता मा तेऽस्तु मनसो भ्रमः।
शङ्करस्यास्मि दयिता सुता तुहिनभूभृतः॥ ६

मम गात्रच्छविभ्रान्त्या मा शङ्कां पुत्र भावय।
तुष्टेन गौरता दत्ता ममेयं पद्मजन्मना॥ ७

मया शप्तोऽस्यविदिते वृत्तान्ते दैत्यनिर्मिते।
ज्ञात्वा नारीप्रवेशं तु शङ्करे रहसि स्थिते॥ ८

न निवर्तयितुं शक्यः शापः किंतु ब्रवीमि ते।
शीघ्रमेष्यसि मानुष्यात्स त्वं कामसमन्वितः॥ ९

सूत उवाच

शिरसा तु ततो वन्द्य मातरं पूर्णमानसः।
उवाचोदितपूर्णेन्दुद्युतिं च हिमशैलजाम्॥ १०

वीरकने कहा—कमललोचने! मेरी स्नेहवत्सला माता पार्वतीने भी मुझे ऐसा ही आदेश दिया है, अतः कोई भी परायी स्त्री भवनके भीतर प्रवेश नहीं कर सकती। वीरकद्वारा ऐसा कही जानेपर पार्वतीदेवी मनमें विचार करने लगीं कि वायुने मुझे जिस स्त्रीके विषयमें सूचना दी थी, वह स्त्री नहीं थी, प्रत्युत वह कोई दैत्य था। क्रोधके वशीभूत हो मैंने व्यर्थ ही वीरकको शाप दे दिया। क्रोधसे प्रेरित हुए मूर्खलोग प्रायः इसी प्रकार अकार्य कर बैठते हैं। क्रोध करनेसे कीर्ति नष्ट हो जाती है और क्रोध सुस्थिर लक्ष्मीका भी विनाश कर देता है। इसी कारण तत्त्वार्थको निश्चितरूपसे न जानकर मैंने अपने पुत्रको ही शाप दे दिया। जिनकी बुद्धि विपरीत अर्थको ग्रहण करती है, उन्हें विपत्तियाँ मिलती हैं। ऐसा विचारकर पार्वती कमल-सी कान्तिवाले मुखसे लज्जाका नाट्य करती हुई वीरकसे इस प्रकार कहने लगीं॥ १—५॥

देवी बोलीं—वीरक! तुम अपने मनमें मेरे प्रति संदेह मत करो। मैं ही हिमाचलकी पुत्री, शंकरजीकी प्रियतमा पत्नी और तुम्हारी माता हूँ। बेटा! मेरे शरीरकी अभिनव शोभाके भ्रमसे तुम शङ्का मत करो। यह गौर कान्ति मुझे ब्रह्माने प्रसन्न होकर प्रदान की है। मुझे यह दैत्यद्वारा निर्मित वृत्तान्त ज्ञात नहीं था, अतः शंकरजीके एकान्तमें स्थित रहनेपर किसी अन्य नारीका प्रवेश (तुम्हारी असावधानीसे) जानकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया है। वह शाप तो अब टाला नहीं जा सकता, किंतु उससे उद्धारका उपाय तुम्हें बतला रही हूँ। तुम मनुष्य-योनिमें जन्म लेकर वहाँ अपना मनोरथ पूरा करके शीघ्र ही मेरे पास वापस आ जाओगे॥ ६—९॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर वीरक प्रसन्न मनसे उदय हुए पूर्णिमाके चन्द्रमाकी-सी कान्तिवाली माता पार्वतीको सिर झुकाकर प्रणाम करनेके पश्चात् बोला॥ १०॥

वीरक उवाच

नतसुरासुरमौलिमिलन्मणि-
प्रचयकान्तिकरालनखाङ्किते।
नगसुते शरणागतवत्सले
तव नतोऽस्मि नतार्तिविनाशिनि॥ ११
तपनमण्डलमण्डितकन्धरे
पृथुसुवर्णसुवर्णनगद्युते ।
विषभुजङ्गनिषङ्गविभूषिते
गिरिसुते भवतीमहमाश्रये॥ १२
जगति कः प्रणताभिमतं ददौ
झटिति सिद्धनुते भवती यथा।
जगति कां च न वाञ्छति शङ्करो
भुवनधृत्तनये भवतीं यथा॥ १३
विमलयोगविनिर्मितदुर्जय-
स्वतनुतुल्यमहेश्वरमण्डले ।
विदलितान्धकबान्धवसंहतिः
सुरवरैः प्रथमं त्वमभिष्टुता॥ १४
सितसटापटलोद्धतकन्धरा-
भरमहामृगराजरथस्थिता।
विकलशक्तिमुखानलपिङ्गलायत
भुजौघ विपिष्टमहासुरा ॥ १५
निगदिता भुवनैरिति चण्डिका
जननि शुम्भनिशुम्भनिषूदनी।
प्रणतचिन्तितदानवदानव-
प्रमथनैकरतिस्तरसा भुवि॥ १६
वियति वायुपथे ज्वलनोज्ज्वले-
ऽवनितले तव देवि च यद्वपुः।
तदजितेऽप्रतिमे प्रणमाम्यहं
भुवनभाविनि ते भववल्लभे॥ १७
जलधयो ललितोद्धतवीचयो
हुतवहद्युतयश्च चराचरम्।
फणसहस्रभृतश्च भुजङ्गमा-
स्त्वदभिधास्यति मय्यभयंकराः॥ १८
भगवति स्थिरभक्तजनाश्रये
प्रतिगतो भवतीचरणाश्रयम्।
करणजातमिहास्तु ममाचलं
नुतिलवाप्तिफलाशयहेतुतः ॥ १९

वीरकने कहा—गिरिराजकुमारी! आपके चरण-नख प्रणत हुए सुरों और असुरोंके मुकुटोंमें लगी हुई मणिसमूहोंकी उत्कट कान्तिसे सुशोभित होते रहते हैं। आप शरणागतवत्सला तथा प्रणतजनोंका कष्ट दूर करनेवाली हैं। मैं आपके चरणोंमें नमस्कार कर रहा हूँ। गिरिनन्दिनि! आपके कन्धे सूर्य-मण्डलके समान चमकते हुए सुशोभित हो रहे हैं। आपकी शरीरकान्ति प्रचुर सुवर्णसे परिपूर्ण सुमेरु गिरिकी तरह है। आप विषैले सर्परूपी तरकससे विभूषित हैं, मैं आपका आश्रय ग्रहण करता हूँ। सिद्धोंद्वारा नमस्कार की जानेवाली देवि! आपके समान जगत्में प्रणतजनोंके अभीष्टको तुरंत प्रदान करनेवाला दूसरा कौन है? गिरिजे! इस जगत्में भगवान् शंकर आपके समान किसी अन्य स्त्रीकी इच्छा नहीं करते। आपने महेश्वर-मण्डलको निर्मल योगबलसे निर्मित अपने शरीरके तुल्य दुर्जय बना दिया है। आप मारे गये अन्धकासुरके भाई-बन्धुओंका संहार करनेवाली हैं। सुरेश्वरोंने सर्वप्रथम आपकी स्तुति की है। आप श्वेत वर्णकी जटा (केश)-समूहसे आच्छादित कंधेवाले विशालकाय सिंहरूपी रथपर आरूढ़ होती हैं। आपने चमकती हुई शक्तिके मुखसे निकलनेवाली अग्निकी कान्तिसे पीला पड़नेवाली लम्बी भुजाओंसे प्रधान-प्रधान असुरोंको पीसकर चूर्ण कर दिया है॥ ११—१५॥

जननि! त्रिभुवनके प्राणी आपको शुम्भ-निशुम्भका संहार करनेवाली चण्डिका कहते हैं। एकमात्र आप इस भूतलपर विनम्र जनोंद्वारा चिन्तना किये गये प्रधान-प्रधान दानवोंका वेगपूर्वक मर्दन करनेमें उत्साह रखनेवाली हैं। देवि! आप अजेय, अनुपम, त्रिभुवन-सुन्दरी और शिवजीकी प्राणप्रिया हैं, आपका जो शरीर आकाशमें, वायुके मार्गमें, अग्निकी भीषण ज्वालाओंमें तथा पृथ्वीतलपर भासमान है, उसे मैं प्रणाम करता हूँ। रुचिर एवं भीषण लहरोंसे युक्त महासागर, अग्निकी लपटें, चराचर जगत् तथा हजारों फण धारण करनेवाले बड़े-बड़े नाग—ये सभी आपका नाम लेनेवाले मेरे लिये भयंकर नहीं दीख पड़ते। अनन्य भक्तजनोंकी आश्रयभूता भगवति! मैं आपके चरणोंकी शरणमें आ पड़ा हूँ। आपके चरणोंमें प्रणत होनेसे प्राप्त हुए थोड़े-से फलके कारण मेरा इन्द्रियसमुदाय आपके चरणोंमें अटल स्थान प्राप्त करे।

प्रशममेहि ममात्मजवत्सले
तव नमोऽस्तु जगत् त्रयसंश्रये।
त्वयि ममास्तु मतिः सततं शिवे
शरणगोऽस्मि नतोऽस्मि नमोऽस्तु ते॥ २०

पुत्रवत्सले! मेरे लिये पूर्णरूपसे शान्त हो जाइये। त्रिलोकीकी आश्रयभूता देवि! आपको नमस्कार है। शिवे! मेरी बुद्धि निरन्तर आपके चिन्तनमें ही लगी रहे। मैं आपके शरणागत हूँ और चरणोंमें पड़ा हूँ। आपको नमस्कार है॥ १६—२०॥

सूत उवाच

प्रसन्ना तु ततो देवी वीरकस्येति संस्तुता।
प्रविवेश शुभं भर्तुर्भवनं भूधरात्मजा॥ २१
द्वारस्थो वीरको देवान् हरदर्शनकाङ्क्षिण ा:।
व्यसर्जयत् स्वकान्येव गृहाण्यादरपूर्वकम्॥ २२
नास्त्यत्रावसरो देवा देव्या सह वृषाकपिः।
निभृतः क्रीडतीत्युक्ता ययुस्ते च यथागतम्॥ २३
गते वर्षसहस्त्रे तु देवास्त्वरितमानसाः।
ज्वलनं चोदयामासुर्ज्ञातुं शङ्करचेष्टितम्॥ २४
प्रविश्य जालरन्ध्रेण शुकरूपी हुताशनः।
ददृशे शयने शर्वं रतं गिरिजया सह॥ २५
ददृशे तं च देवेशो हुताशं शुकरूपिणम्।
तमुवाच महादेवः किञ्चित्कोपसमन्वितः॥ २६

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! वीरकके इस प्रकार संस्तवन करनेपर पार्वतीदेवी प्रसन्न हो गयीं, तब वे अपने पति शिवजीके सुन्दर भवनमें प्रविष्ट हुईं। इधर द्वारपाल वीरकने शिवजीके दर्शनकी अभिलाषासे आये हुए देवोंको आदरपूर्वक ऐसा कहकर अपने-अपने घरोंको लौटा दिया कि 'देवगण! इस समय मिलनेका अवसर नहीं है; क्योंकि भगवान् शंकर एकान्तमें पार्वतीदेवीके साथ क्रीडा कर रहे हैं।' ऐसा कहे जानेपर वे जैसे आये थे, वैसे ही लौट गये। इस प्रकार एक हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर देवताओंके मनमें उतावली उत्पन्न हो गयी, तब उन्होंने शंकरजीकी चेष्टाका पता लगानेके लिये अग्निको भेजा। वहाँ जाकर अग्निदेवने शुकका रूप धारण किया और गवाक्षमार्गसे भीतर प्रवेश करके देखा कि शंकरजी गिरिजाके साथ शय्यापर विराजमान हैं। उधर देवेश्वर शंकरजीकी दृष्टि शुकरूपी अग्निपर पड़ गयी, तब महादेव कुछ क्रुद्ध-से होकर अग्निसे बोले।

शर्व उवाच

यस्मात्तु त्वत्कृतो विघ्नस्तस्मात्त्वय्युपपद्यते।
इत्युक्तः प्राञ्जलिर्वह्निरपिबद् वीर्यमाहितम्॥ २७
तेनापूर्यत तान् देवांस्तत्तत्कायविभेदतः।
विपाट्य जठरं तेषां वीर्यं माहेश्वरं ततः॥ २८
निष्क्रान्तं तप्तहेमाभं वितते शङ्कराश्रमे।
तस्मिन् सरो महज्जातं विमलं बहुयोजनम्॥ २९
प्रोत्फुल्लहेमकमलं नानाविहगनादितम्।
तच्छ्रुत्वा तु ततो देवी हेमद्रुममहाजलम्॥ ३०
जगाम कौतुकाविष्टा तत्सरः कनकाम्बुजम्।
तत्र कृत्वा जलक्रीडां तदब्जकृतशेखरा॥ ३१
उपविष्टा ततस्तस्य तीरे देवी सखीयुता।
पातुकामा च तत्तोयं स्वादु निर्मलपङ्कजम्॥ ३२

शिवजीने कहा— अग्ने! चूँकि तुमने ही यह विघ्न उपस्थित किया है, इसलिये इसका फल भी तुम्हें भोगना पड़ेगा। ऐसा कहे जानेपर अग्नि हाथ जोड़कर शंकरजीद्वारा आधान किये गये वीर्यको पी गये और उसे सभी देवताओंके शरीरमें विभक्त करके उन्हें पूर्ण कर दिया। तदनन्तर शंकरजीका वह तपाये हुए स्वर्णके समान कान्तिमान् वीर्य देवताओंका उदर फाड़कर बाहर निकल आया और शंकरजीके उस विस्तृत आश्रममें अनेकों योजनोंमें विस्तृत एवं निर्मल जलसे पूर्ण महान् सरोवरके रूपमें परिणत हो गया। उसमें स्वर्णकी-सी कान्तिवाले कमल खिले हुए थे और नाना प्रकारके पक्षी चहचहा रहे थे। तत्पश्चात् स्वर्णमय वृक्ष एवं अगाध जलसे सम्पन्न उस सरोवरके विषयमें सुनकर कुतूहलसे भरी हुई पार्वतीदेवी उस स्वर्णमय कमलसे भरे हुए सरोवरके तटपर गयीं और उसके कमलको सिरपर धारण करके जलक्रीडा करने लगीं। तत्पश्चात् पार्वतीदेवी सखीके साथ उस सरोवरके तटपर बैठ गयीं और उस सरोवरके कमलकी गन्धसे सुवासित स्वच्छ स्वादिष्ट जलको पीनेकी इच्छा करने लगीं।

अपश्यत् कृत्तिकाः स्नाताः षडर्कद्युतिसन्निभाः।
पद्मपत्रे तु तद्वारि गृहीत्वोपस्थिता गृहम्॥ ३३

हर्षादुवाच पश्यामि पद्मपत्रे स्थितं पयः।
ततस्ता ऊचुरखिलं कृत्तिका हिमशैलजाम्॥ ३४

कृत्तिका ऊचुः

दास्यामो यदि ते गर्भः सम्भूतो यो भविष्यति।
सोऽस्माकमपि पुत्रः स्यादस्मन्नाम्ना च वर्तताम्।
भवेल्लोकेषु विख्यातः सर्वेष्वपि शुभानने॥ ३५
इत्युक्तोवाच गिरिजा कथं मद्गात्रसम्भवः।
सर्वैरवयवैर्युक्तो भवतीभ्यः सुतो भवेत्॥ ३६
ततस्तां कृत्तिका ऊचुर्विधास्यामोऽस्य वै वयम्।
उत्तमान्युत्तमाङ्गानि यद्येवं तु भविष्यति॥ ३७
उक्ता वै शैलजा प्राह भवत्वेवमनिन्दिताः।
ततस्ता हर्षसम्पूर्णाः पद्मपत्रस्थितं पयः॥ ३८
तस्यै ददुस्तया चापि तत्पीतं क्रमशो जलम्।
पीते तु सलिले तस्मिंस्ततस्तस्मिन् सरोवरे॥ ३९
विपाट्य देव्याश्च ततो दक्षिणां कुक्षिमुद्गतः।
निश्चक्रामाद्भुतो बालः सर्वलोकविभासकः॥ ४०
प्रभाकरप्रभाकारः प्रकाशकनकप्रभः।
गृहीतनिर्मलोदग्रशक्तिशूलः षडाननः॥ ४१
दीप्तो मारयितुं दैत्यान् कुत्सितान् कनकच्छविः।
एतस्मात् कारणाद् देवः कुमारश्चापि सोऽभवत्॥ ४२

इतनेमें ही उनकी दृष्टि उस सरोवरमें स्नान कर निकली हुई छहों कृत्तिकाओंपर पड़ी जो सूर्यकी कान्तिके समान उद्भासित हो रही थीं तथा कमलके पत्तेके दोनेमें उस सरोवरके जलको लेकर घरकी ओर जानेके लिये उद्यत थीं। तब पार्वतीने उनसे हर्षपूर्वक कहा—'मैं कमलके पत्तेमें रखे हुए जलको देख रही हूँ।' यह सुनकर उन कृत्तिकाओंने पार्वतीसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया॥ २७—३४॥

कृत्तिकाओंने कहा—शुभानने! यह जल हमलोग आपको दे देंगी, किंतु यदि आप यह प्रतिज्ञा करें कि इस जलके पान करनेसे जो गर्भ स्थित होगा, उससे उत्पन्न हुआ बालक हमलोगोंका भी पुत्र कहलाये और हमलोगोंके नामपर उसका नामकरण किया जाय। वह बालक सभी लोकोंमें विख्यात होगा। इस प्रकार कही जानेपर पार्वतीने कहा—'भला जो मेरे समान सभी अङ्गोंसे युक्त होकर मेरे शरीरसे उत्पन्न होगा, वह आप लोगोंका पुत्र कैसे हो सकेगा?' तब कृत्तिकाओंने पार्वतीसे कहा—'यदि हमलोग इस बालकके उत्तम मस्तकोंकी रचना करेंगी तो यह वैसा हो सकता है।' उनके ऐसा कहनेपर पार्वतीने कहा—'अनिन्द्य सुन्दरियो! ऐसा ही हो।' तब हर्षसे भरी हुई कृत्तिकाओंने कमलके पत्तेमें रखे हुए उस जलको पार्वतीको समर्पित कर दिया और पार्वतीने भी उस सारे जलको क्रमशः पी लिया। उस जलके पी लेनेपर उसी सरोवरके तटपर पार्वतीदेवीकी दाहिनी कोखको फाड़कर एक अद्भुत बालक निकल पड़ा जो समस्त लोकोंको उद्भासित कर रहा था। उसकी शरीरकान्ति सूर्यके समान थी। वह स्वर्ण-सदृश प्रकाशमान तथा हाथोंमें निर्मल एवं भयावनी शक्ति और शूल धारण किये हुए था। उसके छः मुख थे। वह सुवर्णकी-सी छविसे युक्त हो उद्दीप्त हो रहा था और पापाचारी दैत्योंको मारनेके लिये उद्यत-सा दीख रहा था। इसी कारण वे देव 'कुमार' नामसे भी प्रसिद्ध हुए॥ ३५—४२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकोपाख्याने कुमारसम्भवो नामाष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः॥ १५८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकोपाख्यानमें कुमारसम्भव नामक एक सौ अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५८॥

एक सौ उनसठवाँ अध्याय

स्कन्दकी उत्पत्ति, उनका नामकरण, उनसे देवताओंकी प्रार्थना और उनके द्वारा देवताओंको आश्वासन, तारकके पास देवदूतद्वारा संदेश भेजा जाना और सिद्धोंद्वारा कुमारकी स्तुति

सूत उवाच

वामं विदार्य निष्क्रान्तः सुतो देव्याः पुनः शिशुः।
स्कन्दाच्च वदने वह्नेः शुकात् सुवदनोऽरिहा॥ १

कृत्तिकामेलनादेव शाखाभिः सविशेषतः।
शाखाभिधाः समाख्याताः षट्सु वक्त्रेषु विस्तृताः॥ २

यतस्ततो विशाखोऽसौ ख्यातो लोकेषु षण्मुखः।
स्कन्दो विशाखः षड्वक्त्रः कार्तिकेयश्च विश्रुतः॥ ३

चैत्रस्य बहुले पक्षे पञ्चदश्यां महाबलौ।
सम्भूतावर्कसदृशौ विशाले शरकानने॥ ४

चैत्रस्यैव सिते पक्षे पञ्चम्यां पाकशासनः।
बालकाभ्यां चकारैकं मत्वा चामरभूतये॥ ५

तस्यामेव ततः षष्ठ्यामभिषिक्तो गुहः प्रभुः।
सर्वैरमरसंघातैर्ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रभास्करैः॥ ६

गन्धमाल्यैः शुभैर्धूपैस्तथा क्रीडनकैरपि।
छत्रैश्चामरजालैश्च भूषणैश्च विलेपनैः॥ ७

अभिषिक्तो विधानेन यथावत् षण्मुखः प्रभुः।
सुतामस्मै ददौ शक्रो देवसेनेति विश्रुताम्॥ ८

पत्न्यर्थं देवदेवस्य ददौ विष्णुस्तदायुधान्।
यक्षाणां दशलक्षाणि ददावस्मै धनाधिपः॥ ९

ददौ हुताशनस्तेजो ददौ वायुश्च वाहनम्।
ददौ क्रीडनकं त्वष्टा कुक्कुटं कामरूपिणम्।
एवं सुरास्तु ते सर्वे परिवारमनुत्तमम्॥ १०

ददुर्मुदितचेतस्काः स्कन्दायादित्यवर्चसे॥ ११

जानुभ्यामवनीं स्थित्वा सुरसंघास्तमस्तुवन्।
स्तोत्रेणानेन वरदं षण्मुखं मुख्यशः सुराः॥ १२

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! पुनः पार्वती देवीकी बायीं कोखको फाड़कर दूसरा शिशु पुत्ररूपमें बाहर निकला। सर्वप्रथम अग्निके मुखमें वीर्यका क्षरण होनेके कारण वह बालक सुन्दर मुखवाला और शत्रुओंका विनाशक हुआ। उसके छः मुख हुए। चूँकि छहों मुखोंमें विस्तृत शाखा नामसे प्रसिद्ध कृत्तिकाओंकी शाखाओंका विशेषरूपसे मेल हुआ था, इसलिये वह बालक लोकोंमें 'विशाख' नामसे विख्यात हुआ। इस प्रकार वह स्कन्द, विशाख, षड्वक्त्र और कार्तिकेयके नामसे प्रख्यात हुआ। चैत्रमासके कृष्णपक्षकी पंद्रहवीं तिथि (अमावास्या)-को विशाल सरपतके वनमें सूर्यके समान तेजस्वी एवं महाबली ये दोनों शिशु उत्पन्न हुए थे। पुनः चैत्रमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिको पाकशासन इन्द्रने देवताओंके लिये कल्याणकारी मानकर दोनों बालकोंको सम्मिलित करके एकीभूत कर दिया। उसी मासकी षष्ठी तिथिको ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, सूर्य आदि सभी देवसमूहोंद्वारा सामर्थ्यशाली गुह (देव-सेनापतिके पदपर) अभिषिक्त किये गये। उस समय चन्दन, पुष्पमाला, माङ्गलिक धूप, खिलौना, छत्र, चँवरसमूह, आभूषण और अङ्गरागद्वारा भगवान् षण्मुखका विधिपूर्वक यथावत् अभिषेक किया गया था। इन्द्रने 'देवसेना' नामसे विख्यात कन्याको उन्हें पत्नीरूपमें प्रदान किया। भगवान् विष्णुने देवाधिदेव गुहको अनेकों आयुध समर्पित किया। कुबेर उन्हें दस लाख यक्ष प्रदान किये। अग्निने तेज दिया। वायुने वाहन समर्पित किया। त्वष्टाने खिलौना तथा स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाला एक मुर्गा प्रदान किया। इस प्रकार उन सभी देवताओंने प्रसन्न मनसे सूर्यके समान तेजस्वी स्कन्दको सर्वश्रेष्ठ परिवार प्रदान किया। तत्पश्चात् प्रधान-प्रधान देवताओंके समूह पृथ्वीपर घुटने टेककर उन वरदायक षण्मुखकी निम्नाङ्कित स्तोत्रद्वारा स्तुति करने लगे॥ १—१२॥

देवा ऊचुः

नमः कुमाराय महाप्रभाय
स्कन्दाय च स्कन्दितदानवाय।
नवार्कविद्युद्द्युतये नमोऽस्तु ते
नमोऽस्तु ते षण्मुख कामरूप॥ १३
पिनद्धनानाभरणाय भर्त्रे
नमो रणे दारुणदारुणाय।
नमोऽस्तु तेऽर्कप्रतिमप्रभाय
नमोऽस्तु गुह्याय गुहाय तुभ्यम्॥ १४
नमोऽस्तु त्रैलोक्यभयापहाय
नमोऽस्तु ते बालकृपापराय।
नमो विशालामललोचनाय
नमो विशाखाय महाव्रताय॥ १५
नमो नमस्तेऽस्तु मनोहराय
नमो नमस्तेऽस्तु रणोत्कटाय।
नमो मयूरोज्ज्वलवाहनाय
नमोऽस्तु केयूरधराय तुभ्यम्॥ १६
नमो धृतोदग्रपताकिने नमो
नमः प्रभावप्रणताय तेऽस्तु।
नमो नमस्ते वरवीर्यशालिने
कृपापरो नो भव भव्यमूर्ते॥ १७
क्रियापरा यज्ञपतिं च स्तुत्वा
विरेमुरेवं त्वमराधिपाद्याः।
एवं तदा षड्वदनं तु सेन्द्रा
मुदा सुतुष्टश्च गुहस्ततस्तान्।
निरीक्ष्य नेत्रैरमलैः सुरेशाञ्
शत्रून् हनिष्यामि गतज्वराः स्थ॥ १८

देवताओंने कहा—कामरूप षण्मुख! आप कुमार, महान् तेजस्वी, शिवतेजसे उत्पन्न और दानवोंका कचूमर निकालनेवाले हैं। आपकी शरीर-कान्ति उदयकालीन सूर्य एवं बिजलीकी-सी है। आपको हमारा बारंबार नमस्कार प्राप्त हो। आप नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित, जगत्के पालनकर्ता और रणभूमिमें भीषण दानवोंके लिये अत्यन्त भयंकर हैं, आपको प्रणाम है। सूर्य-सरीखे प्रतिभाशाली आपको अभिवादन है। गुह्य रूपवाले आप गुहको हमारा नमस्कार है। त्रिलोकीके भयको दूर करनेवाले आपको प्रणाम है। कृपा करनेमें तत्पर रहनेवाले बालरूप आपको अभिवादन है। विशाल एवं निर्मल नेत्रोंवाले आपको नमस्कार है। महान् व्रतका पालन करनेवाले आप विशाखको प्रणाम है। सामान्यतया मनोहर रूपधारी तथा रणभूमिमें भयानक रूपसे युक्त आपको बारंबार अभिवादन है। उज्ज्वल मयूरपर सवार होनेवाले आपको नमस्कार है। आप केयूरधारीको प्रणाम है। अत्यन्त ऊँचाईपर फहरानेवाली पताकाको धारण करनेवाले आपको अभिवादन है। प्रणतजनोंपर प्रभाव डालनेवाले आपको नमस्कार है। आप सर्वश्रेष्ठ पराक्रमसे सम्पन्न हैं। आपको बारंबार प्रणाम है। मनोहर रूपधारिन्! हमलोगोंपर कृपा कीजिये। इस प्रकार देवराज इन्द्र आदि सभी क्रियापरायण देवगण जब हर्षपूर्वक यज्ञपति षडाननकी स्तुति करके चुप हो गये, तब परम प्रसन्न हुए गुह अपने निर्मल नेत्रोंसे उन सुरेश्वरोंकी ओर निहारकर बोले—'देवगण! मैं आपलोगोंके शत्रुओंका संहार करूँगा, अब आपलोग शोकरहित हो जायँ'॥ १३—१८॥

कुमार उवाच

कं वः कामं प्रयच्छामि देवता ब्रूत निर्वृताः।
यद्यप्यसाध्यं हृद्यं वो हृदये चिन्तितं परम्॥ १९

इत्युक्तास्तु सुरास्तेन प्रोचुः प्रणतमौलयः।
सर्व एव महात्मानं गुहं तद्गतमानसाः॥ २०

दैत्येन्द्रस्तारको नाम सर्वामरकुलान्तकृत्।
बलवान् दुर्जयो दुष्टो दुराचारोऽतिकोपनः।
तमेव जहि हृद्योऽर्थ एषोऽस्माकं भयापह॥ २१

कुमारने पूछा—देवगण! आपलोग निःसंकोच बतलायें कि मैं आपलोगोंकी कौन-सी अभिलाषा पूर्ण करूँ? वह उत्तम अभिलाषा, जिसे आपलोगोंने अपने हृदयमें चिरकालसे सोच रखा है, यदि दुःसाध्य भी होगी तो भी मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा। कुमारद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर सभी देवता उनके मनोऽनुकूल हो सिर झुकाकर महात्मा गुहसे बोले—'भय-विनाशक गुह! तारक नामवाले दैत्येन्द्रने सभी देवकुलोंका विनाश कर दिया है। वह बलवान्, दुर्जय, अत्यन्त दुष्ट, दुराचारी और अतिशय क्रोधी है, आप उसीका वध कीजिये। यही हमलोगोंकी हार्दिक अभिलाषा है।'

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सर्वामरपदानुगः।
जगाम जगतां नाथः स्तूयमानोऽमरेश्वरैः॥ २२

तारकस्य वधार्थाय जगतः कण्टकस्य वै।
ततश्च प्रेषयामास शक्रो लब्धसमाश्रयः॥ २३

दूतं दानवसिंहस्य परुषाक्षरवादिनम्।
स तु गत्वाब्रवीद् दैत्यं निर्भयो भीमदर्शनः॥ २४

दूत उवाच

शक्रस्त्वामाह देवेशो दैत्यकेतो दिवस्पतिः।
तारकासुर तच्छ्रुत्वा घट शक्त्या यथेच्छया॥ २५

यज्जगद्दलनादाप्तं किल्बिषं दानव त्वया।
तस्याहं शासकस्तेऽद्य राजास्मि भुवनत्रये॥ २६

श्रुत्वैतद् दूतवचनं कोपसंरक्तलोचनः।
उवाच दूतं दुष्टात्मा नष्टप्रायविभूतिकः॥ २७

तारक उवाच

दृष्टं ते पौरुषं शक्र रणेषु शतशो मया।
निस्त्रपत्वान्न ते लज्जा विद्यते शक्र दुर्मते॥ २८

एवमुक्ते गते दूते चिन्तयामास दानवः।
नालब्धसंश्रयः शक्रो वक्तुमेवं हि चार्हति॥ २९

जितः स शक्रो नाकस्माज्जायते संश्रयाश्रयः।
निमित्तानि च दुष्टानि सोऽपश्यद् दुष्टचेष्टितः॥ ३०

पांशुवर्षमसृक्पातं गगनादवनीतले।
भुजनेत्रप्रकम्पं च वक्त्रशोषं मनोभ्रमम्॥ ३१

स्वकान्तावक्त्रपद्मानां म्लानतां च व्यलोकयत्।
दुष्टांश्च प्राणिनो रौद्रान्सोऽपन्यद् दुष्टवेदिनः॥ ३२

तदचिन्त्यैव दितिजो न्यस्तचिन्तोऽभवत् क्षणात्।
यावद्गजघटाघण्टारणत्काररवोत्कटाम्॥ ३३

तद्वत्तुरगसङ्घातक्षुण्णभूरेणुपिञ्जराम्।
चञ्चलस्यन्दनोदग्रध्वजराजिविराजिताम्॥ ३४

देवताओंद्वारा ऐसा निवेदन किये जानेपर गुहने '**तथैति**' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तत्पश्चात् वे जगन्नाथ गुह देवेश्वरोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए सम्पूर्ण देवगणोंके साथ जगत्‌के कण्टकस्वरूप तारकका वध करनेके लिये प्रस्थित हुए। तदुपरान्त सहायक उपलब्ध हो जानेपर इन्द्रने एक कठोर वचन बोलनेवाले दूतको दैत्यसिंह तारकके पास भेजा। वह भयंकर रूपधारी दूत दैत्यराजके पास जाकर निर्भय होकर बोला॥१९—२४॥

दूतने कहा— दैत्यकेतु तारकासुर! स्वर्गके अधीश्वर देवराज इन्द्रने तुम्हें कुछ संदेश कहला भेजा है, उसे सुनकर तुम शक्तिपूर्वक स्वेच्छानुसार प्रयत्न करो। (उन्होंने कहलाया है कि) 'दानव! जगत्‌का विनाश करके तुमने जो पाप कमाया है, तुम्हारे उस पापका शासन करनेके लिये मैं प्रस्तुत हूँ। इस समय मैं त्रिभुवनका राजा हूँ।' दूतकी ऐसी बात सुनकर तारकके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। उसकी विभूति प्रायः नष्ट हो चुकी थी। तब उस दुष्टात्माने दूतसे कहा॥२५—२७॥

तारक बोला— इन्द्र! मैंने रणभूमिमें सैकड़ों बार तुम्हारे पुरुषार्थको देख लिया है। दुर्बुद्धि इन्द्र! निर्लज्ज होनेके कारण तुम्हें ऐसा कहते हुए लज्जा नहीं आती। ऐसा उत्तर पाकर दूतके चले जानेपर दानवराज तारक विचार करने लगा कि किसी विशिष्टकी सहायता प्राप्त हुए बिना इन्द्र इस तरहकी बातें नहीं कह सकते; क्योंकि वे हमसे पराजित हो चुके हैं। पता नहीं, अकस्मात् उन्हें कहाँसे सहायता उपलब्ध हो गयी है। इसी बीच उस दुष्ट चेष्टावाले दानवको अनर्थसूचक निमित्त दीख पड़े। उसी समय आकाशसे भूतलपर धूलकी वर्षा होने लगी तथा रक्तपात होने लगा। उसकी भुजाएँ और नेत्र काँपने लगे। उसका मुख सूख गया और उसके मनमें घबराहट उत्पन्न हो गयी। उसे अपनी पत्नियोंके मुखकमल मलिन दीख पड़ने लगे तथा अनर्थकी सूचना देनेवाले भयंकर दुष्ट प्राणियोंके दर्शन हुए, किंतु इन सबका कुछ भी विचार न कर दैत्य तारक क्षणभरमें ही चिन्तारहित हो गया। इतनेमें ही अट्टालिकापर बैठे हुए दैत्यने आती हुई देवताओंकी सेनाको देखा जिसमें गजयूथोंके बजते हुए घंटोंका उत्कट शब्द हो रहा था। उसी प्रकार जो घोड़ोंकी टापोंसे पिसी हुई धूलसे आच्छादित होनेके कारण पीली दीख रही थी तथा चलते हुए रथोंके ऊपर फहराते हुए ध्वजसमूहों,

विमानैश्चाद्भुताकारैश्चलितामरचामरैः ।
तां भूषणनिबद्धां च किंनरोद्गीतनादिताम्॥ ३५
नानानाकतरूत्फुल्लकुसुमापीडधारिणीम् ।
विकोशास्त्रपरिष्कारां वर्मनिर्मलदर्शनाम्॥ ३६
बन्द्युद्घुष्टस्तुतिरवां नानावाद्यनिनादिताम्।
सेनां नाकसदां दैत्यः प्रासादस्थो व्यलोकयत्॥ ३७

डुलाये जाते हुए देवताओंके चँवरों और अद्भुत आकारवाले विमानोंसे सुशोभित थी। जो आभूषणोंसे विभूषित, किन्नरोंके गानसे निनादित, नाना प्रकारके स्वर्गीय वृक्षोंके खिले हुए पुष्पोंको मस्तकपर धारण करनेवाले सैनिकोंसे युक्त, म्यानरहित शस्त्रास्त्रोंसे परिष्कृत और निर्मल कवचोंसे युक्त थी, जिसमें वन्दियोंद्वारा गायी जाती हुई स्तुतियोंके शब्द सुनायी पड़ रहे थे और जो नाना प्रकारके बाजोंसे निनादित हो रही थी॥ २८—३७॥

चिन्तयामास स तदा किंचिदुद्भ्रान्तमानसः।
अपूर्वः को भवेद् योद्धा यो मया न विनिर्जितः॥ ३८
ततश्चिन्ताकुलो दैत्यः शुश्राव कटुकाक्षरम्।
सिद्धवन्दिभिरुद्घुष्टमिदं हृदयदारणम्॥ ३९

उसे देखकर तारकका मन कुछ उद्भ्रान्त हो उठा। तब वह विचार करने लगा कि यह कौन अपूर्व योद्धा हो सकता है, जिसे मैंने पराजित नहीं किया है। इस प्रकार वह दैत्य जब चिन्तासे व्याकुल हो रहा था, उसी समय उसने सिद्ध-वन्दियोंद्वारा गायी जाती हुई यह कठोर अक्षरोंवाली एवं हृदयविदारिणी गाथा सुनी॥ ३८-३९॥

अथ गाथा

जयातुलशक्तिदीधितिपिञ्जर
भुजदण्डचण्डरणरभस ।
सुखद कुमुदकाननविकासनेन्दो कुमार
जय दितिजकुलमहोदधिवडवानल॥ ४०
षण्मुख मधुररवमयूररथ
सुरमुकुटकोटिघट्टितचरणनखाङ्कुरमहासन।
जय ललितचूडाकलापनवविमलदल-
कमलकान्त दैत्यवंशदुःसहदावानल॥ ४१
जय विशाख विभो जय
सकललोकतारक जय देवसेनानायक।
स्कन्द जय गौरीनन्दन घण्टाप्रिय
प्रिय विशाख विभो धृतपताकप्रकीर्णपटल।
कनकभूषण भासुरदिनकरच्छाय॥ ४२
जय जनितसम्भ्रम लीलालूनाखिलाराते
जय सकललोकतारक दितिजासुरवर तारकान्तक।
स्कन्द जय बाल सप्तवासर
जय भुवनावलिशोकविनाशन॥ ४३

कुमार! अप्रमेय शक्तिकी किरणोंसे आपका वर्ण पीला हो गया है। आप अपने भुजदण्डोंसे प्रचण्ड युद्धका दृश्य उत्पन्न कर देनेवाले, भक्तोंके लिये सुखदायक, कुमुदिनीके वनको विकसित करनेके लिये चन्द्रमा और दैत्यकुलरूप महासागरके लिये बडवानलके समान हैं, आपकी जय हो, जय हो। षण्मुख! मधुर शब्द करनेवाला मयूर आपका वाहन है, आपका सिंहासन देवताओंके मुकुटोंकी कोरसे संघट्टित चरणनखोंके अङ्कुरसे सुशोभित होता है, आपका रुचिर चूडासमूह नूतन एवं निर्मल कमलदलके सम्मेलनसे सुशोभित होता है, आप दैत्यवंशके लिये दुःसह दावानलके समान हैं, आपकी जय हो। ऐश्वर्यशाली विशाख! आपकी जय हो। आप सम्पूर्ण लोकोंका उद्धार करनेवाले हैं, आपकी जय हो। देवसेनाके नायककी जय हो। स्कन्द! आप गौरीनन्दन और घंटाके प्रेमी हैं। ऐश्वर्यशाली प्रिय विशाख! आप हाथमें पताकासमूह धारण करनेवाले हैं और आपकी छवि स्वर्णमय आभूषण धारण करनेसे सूर्यके समान चमकीली है, आपकी जय हो। आप भय उत्पन्न करनेवाले और लीलापूर्वक सम्पूर्ण शत्रुओंके विनाशकर्ता हैं, आपकी जय हो। आप सम्पूर्ण लोकोंके उद्धारक तथा असुरवर दैत्य तारकके विनाशकारक हैं, आपकी जय हो। सप्तदिवसीय बालक स्कन्द! आप समस्त भुवनोंके शोकका विनाश करनेवाले हैं, आपकी जय हो, जय हो॥ ४०—४३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवासुरसंग्रामे रणोद्योगो नामैकोनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १५९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके देवासुरसंग्राममें रणोद्योग नामक एक सौ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १५९॥

एक सौ साठवाँ अध्याय

तारकासुर और कुमारका भीषण युद्ध तथा कुमारद्वारा तारकका वध

सूत उवाच

श्रुत्वैतत्तारकः सर्वमुद्घुष्टं देवबन्दिभिः।
सस्मार ब्रह्मणो वाक्यं वधं बालादुपस्थितम्॥ १

स्मृत्वा धर्मं ह्यवर्माङ्गः पदातिरपदानुगः।
मन्दिरान्निर्जगामाशु शोकग्रस्तेन चेतसा॥ २

कालनेमिमुखा दैत्याः संरम्भाद् भ्रान्तचेतसः।
योधा धावत गृह्णीत योजयध्वं वरूथिनीम्॥ ३

कुमारं तारको दृष्ट्वा बभाषे भीषणाकृतिः।
किं बाल योद्धुकामोऽसि क्रीड कन्दुकलीलया॥ ४

त्वया न दानवा दृष्टा यत्सङ्गरविभीषकाः।
बालत्वादथ ते बुद्धिरेवं स्वल्पार्थदर्शिनी॥ ५

कुमारोऽपि तमग्रस्थं बभाषे हर्षयन् सुरान्।
शृणु तारक शास्त्रार्थस्तव चैव निरूप्यते॥ ६

शास्त्रैरर्था न दृश्यन्ते समये निर्भयैर्भटैः।
शिशुत्वं मावमंस्था मे शिशुः कालभुजंगमः॥ ७

दुष्प्रेक्ष्यो भास्करो बालस्तथाहं दुर्जयः शिशुः।
अल्पाक्षरो न मन्त्रः किं सुस्फुरो दैत्य दृश्यते॥ ८

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! देववन्दियोंद्वारा उद्घोषित वह सारा प्रसङ्ग सुनकर तारकको ब्रह्माद्वारा कही हुई बालकके हाथसे वध होनेवाली बातका स्मरण हो आया। तब वह कालधर्मका स्मरण कर कवचरहित अवस्थामें अकेले पैदल ही तुरंत अपने भवनसे बाहर निकल पड़ा। उस समय उसका चित्त शोकसे ग्रस्त था। उसने पुकारकर कहा—'अरे कालनेमि आदि प्रमुख दैत्य योद्धाओ! यद्यपि आतुरतावश तुमलोगोंका चित्त उद्भ्रान्त हो उठा है, तथापि तुमलोग दौड़ो, इसे पकड़ लो और इस सेनाके साथ युद्ध करो।' तत्पश्चात् भयंकर आकृतिवाला तारक कुमारको देखकर बोला—'अरे बच्चे! क्या तुम युद्ध करना चाहते हो? यदि ऐसी बात है तो आओ और कन्दुकक्रीडाकी तरह खेलो। तुमने अभीतक रणभूमिमें भय उत्पन्न करनेवाले दानवोंको नहीं देखा है। बालक होनेके कारण तुम्हारी बुद्धि इस प्रकारके छोटे-मोटे प्रयोजनोंको देखनेवाली है अर्थात् दूरदर्शिनी नहीं है।' यह सुनकर कुमार भी देवताओंको हर्षित करते हुए आगे खड़े हुए तारकसे बोले—'तारक! सुनो, मैं तुम्हारे शास्त्रीय अर्थका निरूपण कर रहा हूँ। निर्भीक योद्धा समरभूमिमें शास्त्रीय प्रयोजनको नहीं देखते। तुम मेरे बालकपनकी अवहेलना मत करो। जैसे साँपका बच्चा कष्टकारक होता है और उदयकालीन सूर्यकी ओर भी नहीं देखा जा सकता, उसी तरह मैं दुर्जय बालक हूँ। दैत्य! थोड़े अक्षरोंवाला मन्त्र क्या महान् स्फूर्तिदायक नहीं देखा जाता?'॥ १—८॥

कुमारे प्रोक्तवत्येवं दैत्यश्चिक्षेप मुद्गरम्।
कुमारस्तं निरस्याथ वज्रेणामोघवर्चसा॥ ९

ततश्चिक्षेप दैत्येन्द्रो भिन्दिपालमयोमयम्।
करेण तच्च जग्राह कार्तिकेयोऽमरारिहा॥ १०

गदां मुमोच दैत्याय षण्मुखोऽपि खरस्वनाम्।
तया हतस्ततो दैत्यश्चकम्पेऽचलराडिव॥ ११

मेने च दुर्जयं दैत्यस्तदा षड्वदनं रणे।
चिन्तयामास बुद्ध्या वै प्राप्तः कालो न संशयः॥ १२

कुमार इस प्रकारकी बातें कह ही रहे थे कि दैत्यने उनपर मुद्गरसे आघात किया। तब कुमारने अपने अमोघ वर्चस्वी वज्रसे उसे निरस्त कर दिया। तत्पश्चात् दैत्येन्द्रने उन पर लोहनिर्मित भिन्दिपाल चलाया, किंतु देवशत्रुओंका विनाश करनेवाले कार्तिकेयने उसे हाथसे पकड़ लिया। फिर षडाननने उस दैत्यके ऊपर घोर शब्द करती हुई गदा फेंकी। उस गदासे आहत हो वह दैत्य पर्वतराजकी तरह काँप उठा। तब उस दैत्यने षडाननको रणभूमिमें अजेय मान लिया और वह बुद्धिसे विचार करने लगा कि निश्चय ही मेरा काल आ पहुँचा है।

कुपितं तु यमालोक्य कालनेमिपुरोगमाः।
सर्वे दैत्येश्वरा जघ्नुः कुमारं रणदारुणम्॥ १३
स तैः प्रहारैरस्पृष्टो वृथाक्लेशो महाद्युतिः।
रणशौण्डास्तु दैत्येन्द्राः पुनः प्रासैः शिलीमुखैः॥ १४
कुमारं सामरं जघ्नुर्बलिनो देवकण्टकाः।
कुमारस्य व्यथा नाभूद् दैत्यास्त्रनिहतस्य तु॥ १५
प्राणान्तकरणो जातो देवानां दानवाहवः।
देवान्निपीडितान् दृष्ट्वा कुमारः कोपमाविशत्॥ १६
ततोऽस्त्रैर्वारयामास दानवानामनीकिनीम्।
ततस्तैर्निष्प्रतीकारैस्ताडिताः सुरकण्टकाः॥ १७
कालनेमिमुखाः सर्वे रणादासन् पराङ्मुखाः।
विद्रुतेष्वथ दैत्येषु हतेषु च समंततः॥ १८
ततः क्रुद्धो महादैत्यस्तारकोऽसुरनायकः।
जग्राह च गदां दिव्यां हेमजालपरिष्कृताम्॥ १९
जघ्ने कुमारं गदया निष्टप्तकनकाङ्गदः।
शरैर्मयूरं चित्रैश्च चकार विमुखान् सुरान्॥ २०
तथा परैर्महाभल्लैर्मयूरं गुहवाहनम्।
बिभेद तारकः क्रुद्धः स सैन्येऽसुरनायकः॥ २१
दृष्ट्वा पराङ्मुखान् देवान् मुक्तरक्तं स्ववाहनम्।
जग्राह शक्तिं विमलां रणे कनकभूषणाम्॥ २२
बाहुना हेमकेयूररुचिरेण षडाननः।
ततो जवान्महासेनस्तारकं दानवाधिपम्॥ २३
तिष्ठ तिष्ठ सुदुर्बुद्धे जीवलोकं विलोकय।
हतोऽस्यद्य मया शक्त्या स्मर शस्त्रं सुशिक्षितम्॥ २४
इत्युक्त्वा च ततः शक्तिं मुमोच दितिजं प्रति।
सा कुमारभुजोत्सृष्टा तत्केयूररवानुगा।
बिभेद दैत्यहृदयं वज्रशैलेन्द्रकर्कशम्॥ २५
गतासुः स पपातोर्व्यां प्रलये भूधरो यथा।
विकीर्णमुकुटोष्णीषो विस्रस्ताखिलभूषणः॥ २६

तदनन्तर रणमें भीषण कार्य करनेवाले उन कुमारको क्रुद्ध देखकर कालनेमि आदि सभी दैत्येश्वर उनपर प्रहार करने लगे, परंतु उन प्रहारोंका परम कान्तिमान् कुमारपर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। उनका शस्त्रास्त्र छोड़नेका श्रम व्यर्थ हो गया। पुनः युद्धनिपुण, देवकण्टक महाबली दैत्येन्द्र देवताओंसहित कुमारपर भाले और बाणोंसे प्रहार करने लगे। इस प्रकार दैत्यास्त्रोंद्वारा प्रहार करनेपर भी कुमारको कुछ भी पीड़ा न हुई। पर दानवोंका वह युद्ध जब देवताओंके लिये प्राणघातक-सा दीखने लगा, तब देवताओंको अत्यन्त पीड़ित देख कुमार क्रुद्ध हो उठे। फिर तो उन्होंने अपने अस्त्रोंके प्रहारसे दानवोंकी सेनाको खदेड़ दिया। उन अनिवार्य अस्त्रोंकी चोटसे कालनेमि आदि सभी देवकण्टक दानव घायल हो गये, तब वे युद्धसे विमुख हो भाग खड़े हुए॥ ९—१७ १/२॥

तदनन्तर चारों ओर दैत्योंके इस प्रकार मारे जाने एवं पलायन कर जानेपर असुरनायक महादैत्य तारक क्रोधमें भर गया। तब तपाये हुए स्वर्णके बने हुए बाजूबंदको धारण करनेवाले उस दैत्यने स्वर्णसमूहसे विभूषित अपनी दिव्य गदा हाथमें ली और उस गदासे कुमारपर प्रहार किया। फिर मोर-पंखसे सुशोभित बाणोंके आघातसे देवताओंको युद्ध-विमुख कर दिया। तदुपरान्त क्रोधसे भरे हुए असुरनायक तारकने उस सेनामें दूसरे भल्ल नामक विशाल बाणोंसे गुहके वाहन मयूरको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार रणभूमिमें देवताओंको युद्धविमुख और अपने वाहन मयूरको खून उगलते देखकर षडाननने वेगपूर्वक अपने स्वर्णनिर्मित केयूरसे विभूषित हाथमें स्वर्णजटित निर्मल शक्ति ग्रहण की। तत्पश्चात् देव-सेनानायक कुमार दानवेश्वर तारकको ललकारते हुए बोले—'सुदुर्बुद्धे! खड़ा रह, खड़ा रह और जीवलोककी ओर दृष्टिपात कर ले। अपने भलीभाँति सीखे हुए शस्त्रका स्मरण कर ले। अब तू मेरी शक्तिद्वारा मारा जा चुका।' ऐसा कहकर उन्होंने उस दैत्यपर अपनी शक्ति छोड़ दी। कुमारके हाथसे छूटी हुई उस शक्तिने उनके केयूरके शब्दका अनुगमन करती हुई आगे बढ़कर उस दैत्यके हृदयको, जो वज्र और पर्वतके समान अत्यन्त कठोर था, विदीर्ण कर दिया। फिर तो वह प्राणरहित हो भूतलपर उसी प्रकार गिर पड़ा, जैसे प्रलयकालमें पर्वत धराशायी हो जाते हैं। उसकी पगड़ी और मुकुट छिन्न-भिन्न हो गये और सारे आभूषण पृथ्वीपर बिखर गये॥ १८—२६॥

तस्मिन् विनिहते दैत्ये त्रिदशानां महोत्सवे।
नाभूत्कश्चित्तदा दुःखी नरकेष्वपि पापकृत्॥ २७

स्तुवन्तः षण्मुखं देवाः क्रीडन्तश्चाङ्गनायुताः।
जग्मुः स्वानेव भवनान् भूरिधामान उत्सुकाः॥ २८

ददुश्चापि वरं सर्वे देवाः स्कन्दमुखं प्रति।
तुष्टाः सम्प्राप्तसर्वेच्छाः सह सिद्धैस्तपोधनैः॥ २९

देवा ऊचुः

यः पठेत् स्कन्दसम्बद्धां कथां मर्त्यो महामतिः।
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि स भवेत् कीर्तिमान्नरः॥ ३०

बह्वायुः सुभगः श्रीमान् कान्तिमाञ्छुभदर्शनः।
भूतेभ्यो निर्भयश्चापि सर्वदुःखविवर्जितः॥ ३१

संध्यामुपास्य यः पूर्वां स्कन्दस्य चरितं पठेत्।
स मुक्तः किल्बिषैः सर्वैर्महाधनपतिर्भवेत्॥ ३२

बालानां व्याधिजुष्टानां राजद्वारं च सेवताम्।
इदं तत्परमं दिव्यं सर्वदा सर्वकामदम्।
तनुक्षये च सायुज्यं षण्मुखस्य व्रजेन्नरः॥ ३३

इस प्रकार उस दैत्यके मारे जानेपर देवताओंके उस महोत्सवके अवसरपर नरकोंमें भी कोई पापकर्मा प्राणी दुःखी नहीं था। परम तेजस्वी देवगण षडाननकी स्तुति करके अपनी-अपनी स्त्रियोंसहित क्रीडा करते हुए उत्सुकतापूर्वक अपने-अपने गृहोंको चले गये। सभी इच्छाओंकी पूर्ति हो जानेके कारण सभी देवता परम संतुष्ट थे। वे जाते समय तपोधन सिद्धोंके साथ स्कन्दको वर देते हुए बोले॥ २७—२९॥

देवताओंने कहा—जो महाबुद्धिमान् मरणधर्मा मनुष्य स्कन्दसे सम्बन्ध रखनेवाली इस कथाको पढ़ेगा, सुनेगा अथवा दूसरेको सुनायेगा, वह कीर्तिमान्, दीर्घायु, सौभाग्यशाली, श्रीसम्पन्न, कान्तिमान्, शुभदर्शन, सभी प्राणियोंसे निर्भय और सम्पूर्ण दुःखोंसे रहित हो जायगा। जो मनुष्य प्रातःकालिक संध्याकी उपासना करनेके बाद स्कन्दके चरित्रका पाठ करेगा वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर महान् धनराशिका स्वामी होगा। यह परम दिव्य स्कन्द-चरित बालकों, रोगियों और राजद्वारपर सेवा करनेवाले पुरुषोंके लिये सर्वदा सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला है। इसका पाठ करनेवाला मनुष्य शरीरान्त होनेपर षडाननकी सायुज्यताको प्राप्त हो जायगा॥ ३०—३३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकवधो नाम षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तारकवध नामक एक सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६०॥

एक सौ एकसठवाँ अध्याय

हिरण्यकशिपुकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा उसे वरप्राप्ति, हिरण्यकशिपुका अत्याचार, विष्णुद्वारा देवताओंको अभयदान, भगवान् विष्णुका नृसिंहरूप धारण करके हिरण्यकशिपुकी विचित्र सभामें प्रवेश

ऋषय ऊचुः

इदानीं श्रोतुमिच्छामो हिरण्यकशिपोर्वधम्।
नरसिंहस्य माहात्म्यं तथा पापविनाशनम्॥ १

सूत उवाच

पुरा कृतयुगे विप्रा हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
दैत्यानामादिपुरुषश्चकार स महत्तपः॥ २

दश वर्षसहस्राणि दश वर्षशतानि च।
जलवासी समभवत् स्नानमौनधृतव्रतः॥ ३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब हमलोग दानवराज हिरण्यकशिपुका वध तथा भगवान् नरसिंहके पापविनाशक माहात्म्यको सुनना चाहते हैं (आप उसे हमें सुनाइये)॥ १॥

सूतजी कहते हैं—विप्रवरो! पूर्वकालमें कृतयुगमें दैत्योंके आदि पुरुष सामर्थ्यशाली हिरण्यकशिपुने महान् तप किया। उसने स्नान और मौनका व्रत धारण करके ग्यारह हजार वर्षोंतक जलमें निवास किया।

ततः शमदमाभ्यां च ब्रह्मचर्येण चैव हि।
ब्रह्मा प्रीतोऽभवत्तस्य तपसा नियमेन च॥ ४
ततः स्वयम्भूर्भगवान् स्वयमागम्य तत्र ह।
विमानेनार्कवर्णेन हंसयुक्तेन भास्वता॥ ५
आदित्यैर्वसुभिः साध्यैर्मरुद्भिर्दैवतैस्तथा।
रुद्रैर्विश्वसहायैश्च यक्षराक्षसपन्नगैः॥ ६
दिग्भिश्चैव विदिग्भिश्च नदीभिः सागरैस्तथा।
नक्षत्रैश्च मुहूर्तैश्च खेचरैश्च महाग्रहैः॥ ७
देवैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं सिद्धैः सप्तर्षिभिस्तथा।
राजर्षिभिः पुण्यकृद्भिर्गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥ ८
चराचरगुरुः श्रीमान् वृतः सर्वैर्दिवौकसैः।
ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठो दैत्यं वचनमब्रवीत्॥ ९
प्रीतोऽस्मि तव भक्तस्य तपसानेन सुव्रत।
वरं वरय भद्रं ते यथेष्टं काममाप्नुहि॥ १०

तब उसके मनःसंयम, इन्द्रियनिग्रह, ब्रह्मचर्य, तपस्या और नियमपालनसे ब्रह्मा प्रसन्न हो गये। तत्पश्चात् स्वयं भगवान् ब्रह्मा सूर्यके समान तेजस्वी एवं चमकीले विमानपर, जिसमें हंस जुते हुए थे, सवार होकर आदित्यों, वसुओं, साध्यों, मरुद्गणों, देवताओं, रुद्रों, विश्वेदेवों, यक्षों, राक्षसों, नागों, दिशाओं, विदिशाओं, नदियों, सागरों, नक्षत्रों, मुहूर्तों, आकाशचारी महान् ग्रहों, देवगणों, ब्रह्मर्षियों, सिद्धों, सप्तर्षियों, पुण्यकर्मा राजर्षियों, गन्धर्वों और अप्सराओंके गणोंके साथ वहाँ आये। तदुपरान्त सम्पूर्ण देवताओंसे घिरे हुए ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ चराचरगुरु श्रीमान् ब्रह्मा उस दैत्यसे इस प्रकार बोले—'सुव्रत! तुम-जैसे भक्तकी इस तपस्यासे मैं प्रसन्न हूँ। तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम यथेष्ट वर माँग लो और अपना मनोरथ सिद्ध करो'॥ २—१०॥

हिरण्यकशिपुरुवाच

न देवासुरगन्धर्वा न यक्षोरगराक्षसाः।
न मानुषाः पिशाचा वा हन्युर्मां देवसत्तम॥ ११
ऋषयो वा न मां शापैः शपेयुः प्रपितामह।
यदि मे भगवान् प्रीतो वर एष वृतो मया॥ १२
न चास्त्रेण न शस्त्रेण गिरिणा पादपेन च।
न शुष्केण न चार्द्रेण न दिवा न निशाथ वा॥ १३
भवेयमहमेवार्कः सोमो वायुर्हुताशनः।
सलिलं चान्तरिक्षं च नक्षत्राणि दिशो दश॥ १४
अहं क्रोधश्च कामश्च वरुणो वासवो यमः।
धनदश्च धनाध्यक्षो यक्षः किंपुरुषाधिपः॥ १५

हिरण्यकशिपु बोला—देवसत्तम! देवता, असुर गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस, मनुष्य अथवा पिशाच—ये कोई भी मुझे न मार सकें। प्रपितामह! ऋषिगण अपने शापोंद्वारा मुझे अभिशप्त न कर सकें। न अस्त्रसे, न शस्त्रसे, न पर्वतसे, न वृक्षसे, न शुष्क पदार्थसे, न गीले पदार्थसे, न दिनमें, न रातमें—अर्थात् कभी भी अथवा किसीसे भी मेरी मृत्यु न हो। मैं ही सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल, आकाश, नक्षत्र, दसों दिशाएँ, क्रोध, काम, वरुण, इन्द्र, यम, धनाध्यक्ष कुबेर और किम्पुरुषोंका अधीश्वर यक्ष हो जाऊँ। यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो मैं यही वर माँग रहा हूँ॥ ११—१५॥

ब्रह्मोवाच

एते दिव्या परास्तात मया दत्तास्तवाद्भुताः।
सर्वान्कामान्सदा वत्स प्राप्स्यसे त्वं न संशयः॥ १६
एवमुक्त्वा स भगवाञ्जगामाकाश एव हि।
वैराजं ब्रह्मसदनं ब्रह्मर्षिगणसेवितम्॥ १७
ततो देवाश्च नागाश्च गन्धर्वा ऋषिभिः सह।
वरप्रदानं श्रुत्वैव पितामहमुपस्थिताः॥ १८

ब्रह्माने कहा—तात! मैंने तुम्हें इन दिव्य एवं अद्भुत वरदानोंको प्रदान कर दिया। वत्स! तुम सदा सभी मनोरथोंको प्राप्त करते रहोगे, इसमें संशय नहीं है। ऐसा कहकर भगवान् ब्रह्मा आकाशमार्गसे ब्रह्मर्षियोंद्वारा सेवित अपने वैराज नामक निवासस्थानको चले गये। तदनन्तर ऋषियोंसहित देवता, नाग और गन्धर्व इस प्रकारके वरप्रदानकी बात सुनते ही पितामहके पास पहुँचे (और बोले)॥ १६—१८॥

देवा ऊचुः

वरप्रदानाद् भगवन् वधिष्यति स नोऽसुरः।
तत्प्रसीदाशु भगवन् वधोऽप्यस्य विचिन्त्यताम्॥ १९
भगवन् सर्वभूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः।
स्रष्टा त्वं हव्यकव्यानामव्यक्तप्रकृतिर्बुधः॥ २०
सर्वलोकहितं वाक्यं श्रुत्वा देवः प्रजापतिः।
आश्वासयामास सुरान् सुशीतैर्वचनाम्बुभिः॥ २१
अवश्यं त्रिदशास्तेन प्राप्तव्यं तपसः फलम्।
तपसान्तेऽस्य भगवान् वधं विष्णुः करिष्यति॥ २२
तच्छ्रुत्वा विबुधा वाक्यं सर्वे पङ्कजजन्मनः।
स्वानि स्थानानि दिव्यानि विप्रजग्मुर्मुदान्विताः॥ २३
लब्धमात्रे वरे चाथ सर्वाः सोऽबाधत प्रजाः।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो वरदानेन दर्पितः॥ २४
आश्रमेषु महाभागान् स मुनीञ्छंसितव्रतान्।
सत्यधर्मपरान् दान्तान् धर्षयामास दानवः॥ २५
देवांस्त्रिभुवनस्थांश्च पराजित्य महासुरः।
त्रैलोक्यं वशमानीय स्वर्गे वसति दानवः॥ २६
यदा वरमदोत्सिक्तश्चोदितः कालधर्मतः।
यज्ञियानकरोद् दैत्यानयज्ञियाश्च देवताः॥ २७
तदादित्याश्च साध्याश्च विश्वे च वसवस्तथा।
सेन्द्रा देवगणा यक्षाः सिद्धद्विजमहर्षयः॥ २८
शरण्यं शरणं विष्णुमुपतस्थुर्महाबलम्।
देवदेवं यज्ञमयं वासुदेवं सनातनम्॥ २९

देवा ऊचुः

नारायण महाभाग देवास्त्वां शरणं गताः।
त्रायस्व जहि दैत्येन्द्रं हिरण्यकशिपुं प्रभो॥ ३०
त्वं हि नः परमो धाता त्वं हि नः परमो गुरुः।
त्वं हि नः परमो देवो ब्रह्मादीनां सुरोत्तम॥ ३१

विष्णुरुवाच

भयं त्यजध्वममरा अभयं वो ददाम्यहम्।
तथैव त्रिदिवं देवाः प्रतिपद्यत मा चिरम्॥ ३२

देवताओंने कहा— भगवन्! आपके इस वरप्रदानसे तो वह असुर हमलोगोंका वध कर डालेगा। अतः प्रभो! कृपा कीजिये और शीघ्र ही उसके वधका भी उपाय सोचिये। भगवन्! आप स्वयं सम्पूर्ण प्राणियोंके आदिकर्ता, स्वामी, हव्य एवं कव्यके स्रष्टा, अव्यक्तप्रकृति और सर्वज्ञ हैं। देवताओंके समस्त लोकोंके लिये हितकारक ऐसे वचनको सुनकर प्रजापति ब्रह्माने अपने परम शीतल वचनरूपी जलसे देवताओंको संसिक्त एवं आश्वस्त करते हुए बोले—'देवगण! उसे अपनी तपस्याका फल तो अवश्य ही मिलना चाहिये। हाँ, तपस्याके पुण्यफलके समाप्त हो जानेपर भगवान् विष्णु उसका वध करेंगे।' कमलजन्मा ब्रह्माकी वह बात सुनकर सभी देवता हर्षपूर्वक अपने-अपने दिव्य स्थानोंको लौट गये॥ १९—२३॥

उधर वर प्राप्त होते ही उस वरदानसे गर्वित हुआ दैत्यराज हिरण्यकशिपु सभी प्रजाओंको कष्ट देना प्रारम्भ किया। उस दानवने आश्रमोंमें जाकर उन महान् भाग्यशाली मुनियोंको, जो उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, सत्यधर्म-परायण और जितेन्द्रिय थे, धर्षित कर दिया। उस महान् असुरने त्रिभुवनमें स्थित सभी देवताओंको पराजित कर दिया। तब वह दानव त्रिलोकीको अपने अधीन करके स्वर्गमें निवास करने लगा। इस प्रकार कालधर्मकी प्रेरणासे जब उसने वरदानके मदसे उन्मत्त हो दैत्योंको यज्ञभागका अधिकारी बनाया और देवताओंको उनके समुचित यज्ञभागोंसे वञ्चित कर दिया, तब आदित्यगण, साध्यगण, विश्वेदेव, वसुगण, इन्द्रसहित देवगण, यक्ष, सिद्धगण और महर्षिगण—ये सभी उन महाबली विष्णुकी शरणमें गये, जो शरणदाता, देवाधिदेव, यज्ञमूर्ति, वसुदेवके पुत्र और अविनाशी हैं॥ २४—२९॥

देवताओंने कहा— महाभाग्यशाली नारायण! हम सभी देवता आपकी शरणमें आये हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिये। प्रभो! आप दैत्यराज हिरण्यकशिपुका वध कीजिये। सुरोत्तम! आप ही हमलोगोंके परम पालक हैं, आप ही हमलोगोंके सर्वोत्कृष्ट गुरु हैं और आप ही हम ब्रह्मा आदि देवताओंके परम देव हैं॥ ३०-३१॥

भगवान् विष्णुने कहा— देवताओ! तुमलोग भय छोड़ दो। मैं तुमलोगोंको अभयदान दे रहा हूँ। पहलेकी तरह पुनः तुमलोगोंका शीघ्र ही स्वर्गपर अधिकार हो जायगा।

एषोऽहं सगणं दैत्यं वरदानेन दर्पितम्।
अवध्यममरेन्द्राणां दानवेन्द्रं निहन्म्यहम्॥ ३३

एवमुक्त्वा तु भगवान् विसृज्य त्रिदशेश्वरान्।
वधं संकल्पयामास हिरण्यकशिपोः प्रभुः॥ ३४

साहाय्यं च महाबाहुरोङ्कारं गृह्य सत्वरम्।
अथोंकारसहायस्तु भगवान् विष्णुरव्ययः॥ ३५

हिरण्यकशिपुस्थानं जगाम हरिरीश्वरः।
तेजसा भास्कराकारः शशी कान्त्यैव चापरः॥ ३६

नरस्य कृत्वार्धतनुं सिंहस्यार्धतनुं तथा।
नारसिंहेन वपुषा पाणिं संस्पृश्य पाणिना॥ ३७

ततोऽपश्यत विस्तीर्णां दिव्यां रम्यां मनोरमाम्।
सर्वकामयुतां शुभ्रां हिरण्यकशिपोः सभाम्॥ ३८

विस्तीर्णां योजनशतं शतमध्यर्धमायताम्।
वैहायसीं कामगमां पञ्चयोजनविस्तृताम्॥ ३९

जराशोकक्लमापेतां निष्प्रकम्पां शिवां सुखाम्।
वेश्महर्म्यवतीं रम्यां ज्वलन्तीमिव तेजसा॥ ४०

अन्तःसलिलसंयुक्तां विहितां विश्वकर्मणा।
दिव्यरत्नमयैर्वृक्षैः फलपुष्पप्रदैर्युताम्॥ ४१

नीलपीतसितश्यामैः कृष्णैर्लोहितकैरपि।
अवतानैस्तथा गुल्मैर्मञ्जरीशतधारिभिः॥ ४२

सिताभ्रघनसङ्काशा प्लवन्तीव व्यदृश्यत।
रश्मिवती भास्वरा च दिव्यगन्धमनोरमा॥ ४३

सुसुखा न च दुःखा सा न शीता न च घर्मदा।
न क्षुत्पिपासे ग्लानिं वा प्राप्य तां प्राप्नुवन्ति ते॥ ४४

नानारूपैरुपकृतां विचित्रैरतिभास्वरैः।
स्तम्भैर्न विभृता सा वै शाश्वती चाक्षपा सदा॥ ४५

अति चन्द्रं च सूर्यं च शिखिनं च स्वयम्प्रभा।
दीप्यते नाकपृष्ठस्था भासयन्तीव भास्करान्॥ ४६

मैं सेनासहित उस दानवराज दैत्यका, जो वरदानकी प्राप्तिसे गर्वीला और देवेश्वरोंके लिये अवध्य हो गया है, वध करूँगा। ऐसा कहकर महाबाहु भगवान् विष्णुने देवेश्वरोंको विदा कर दिया और स्वयं शीघ्रतापूर्वक ओंकारको (सहायकरूपमें) साथ लेकर हिरण्यकशिपुके वधका विचार करने लगे। तदनन्तर जो सर्वव्यापक, अविनाशी, परमेश्वर, सूर्यके समान तेजस्वी और दूसरे चन्द्रमाके-से कान्तिमान् थे, वे भगवान् श्रीहरि ओंकारको साथ लेकर हिरण्यकशिपुके स्थानपर गये। उस समय वे आधा मनुष्यका और आधा सिंहका शरीर धारण कर नरसिंहरूपसे स्थित हो हाथसे हाथ मल रहे थे। तदनन्तर उन्होंने हिरण्यकशिपुकी चमकती हुई दिव्य सभा देखी, जो विस्तृत, अत्यन्त रुचिर, मनको लुभानेवाली और सम्पूर्ण अभिलषित पदार्थोंसे युक्त थी। सौ योजनके विस्तारमें फैली हुई वह सभा पचास योजन लम्बी और पाँच योजन चौड़ी थी। वह स्वेच्छानुसार आकाशमें उड़नेवाली तथा बुढ़ापा, शोक और थकावटसे रहित, निश्चल, कल्याणकारिणी, सुखदायिनी और परम रमणीय थी। उसमें अट्टालिकाओंसे युक्त भवन बने थे और वह तेजसे प्रज्वलित-सी हो रही थी॥ ३२—४०॥

उसके भीतर जलाशय थे। वह फल-पुष्प प्रदान करनेवाले दिव्य रत्नमय वृक्षोंसे संयुक्त थी। उसे विश्वकर्माने बनाया था। वह नीले, पीले, श्वेत, श्याम, कृष्ण और लोहित रंगके आवरणों और सैकड़ों मंजरियोंसे युक्त गुल्मोंसे आच्छादित होनेके कारण श्वेत बादलकी तरह उड़ती हुई-सी दीख रही थी। उसमेंसे किरणें फूट रही थीं। वह चमकीली और दिव्य गन्धसे युक्त होनेके कारण मनोरम थी। वह सर्वथा सुखदायिनी थी। उसमें दुःख, सर्दी और धूपका नाम-निशान नहीं था। उसमें पहुँचकर दानवोंको भूख-प्यास और ग्लानिकी प्राप्ति नहीं होती थी। वह चित्र-विचित्र रंगवाले एवं अत्यन्त चमकीले नाना प्रकारके खम्भोंसे युक्त थी, परंतु उन खम्भोंपर आधारित नहीं थी। वहाँ रात नहीं होती थी, अपितु निरन्तर दिन ही बना रहता था। वह अपनी प्रभासे सूर्य, चन्द्रमा और अग्निका तिरस्कार कर रही थी तथा स्वर्गलोकमें स्थित होकर अनेकों सूर्योको उद्भासित करती हुई-सी उद्दीप्त हो रही थी।

सर्वे च कामाः प्रचुरा ये दिव्या ये च मानुषाः।
रसयुक्तं प्रभूतं च भक्ष्यभोज्यमनन्तकम्॥ ४७

पुण्यगन्धस्त्रजश्चात्र नित्यपुष्पफलद्रुमाः।
उष्णे शीतानि तोयानि शीते चोष्णानि सन्ति च॥ ४८

पुष्पिताग्रा महाशाखाः प्रवालाङ्कुरधारिणः।
लतावितानसंछन्ना नदीषु च सरःसु च॥ ४९

वृक्षान् बहुविधांस्तत्र मृगेन्द्रो ददृशे प्रभुः।
गन्धवन्ति च पुष्पाणि रसवन्ति फलानि च॥ ५०
नातिशीतानि नोष्णानि तत्र तत्र सरांसि च।
अपश्यत् सर्वतीर्थानि सभायां तस्य स प्रभुः॥ ५१
नलिनैः पुण्डरीकैश्च शतपत्रैः सुगन्धिभिः।
रक्तैः कुवलयैर्नीलैः कुमुदैः संवृतानि च॥ ५२
सुकान्तैर्धार्तराष्ट्रैश्च राजहंसैश्च सुप्रियैः।
कारण्डवैश्चक्रवाकैः सारसैः कुररैरपि॥ ५३
विमलैः स्फाटिकाभैश्च पाण्डुरच्छदनैर्द्विजैः।
बहुहंसोपगीतानि सारसाभिरुतानि च॥ ५४
गन्धवत्यः शुभास्तत्र पुष्टमञ्जरिधारिणीः।
दृष्टवान् पर्वताग्रेषु नानापुष्पधरा लताः॥ ५५
केतक्यशोकसरलाः पुन्नागतिलकार्जुनाः।
चूता नीपाः प्रस्थपुष्पाः कदम्बा बकुला धवाः॥ ५६
प्रियङ्गुपाटलावृक्षाः शाल्मल्यः सहरिद्रकाः।
सालास्तालास्तमालाश्च चम्पकाश्च मनोरमाः॥ ५७
तथैवान्ये व्यराजन्त सभायां पुष्पिता द्रुमाः।
विद्रुमाश्च द्रुमाश्चैव ज्वलिताग्निसमप्रभाः॥ ५८
स्कन्धवन्तः सुशाखाश्च बहुतालसमुच्छ्रयाः।
अर्जुनाशोकवर्णाश्च बहवश्चित्रका द्रुमाः॥ ५९
वरुणो वत्सनाभश्च पनसाः सह चन्दनैः।
नीपाः सुमनसश्चैव निम्बा अश्वत्थतिन्दुकाः॥ ६०
पारिजाताश्च लोध्राश्च मल्लिका भद्रदारवः।
आमलक्यस्तथा जम्बूलकुचाः शैलवालुकाः॥ ६१

सभी प्रकारके मनोरथ, चाहे वे दिव्य हों या मानुष, सब-के-सब वहाँ प्रचुरमात्रामें उपलब्ध थे। वहाँ असंख्य प्रकारके अधिक-से-अधिक रसीले भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थ और पुण्यगन्धमयी मालाएँ सुलभ थीं। वहाँके वृक्ष नित्य पुष्प और फल देनेवाले थे। यहाँका जल गर्मीमें शीतल और सर्दीमें उष्ण रहता था। वहाँ नदियों और सरोवरोंके तटपर बड़ी-बड़ी शाखाओंवाले वृक्ष लगे थे, जिनके अग्रभागमें पुष्प खिले हुए थे और जो लाल-लाल पल्लवों और अङ्कुरोंसे सुशोभित एवं लतारूपी वितानसे आच्छादित थे। भगवान् नृसिंह वहाँ ऐसे अनेकों प्रकारके वृक्ष देखे, जो सुगन्धित पुष्पों और रसदार फलोंसे लदे हुए थे। वहाँ यत्र-तत्र सरोवर भी थे, जिनमें न तो अत्यन्त शीतल और न गरम जल भरा रहता था॥ ४१—५० $\frac{१}{२}$॥

भगवान् नृसिंहने उसकी सभामें सभी पुण्यक्षेत्रोंको भी देखा, जो सुगन्धयुक्त कमल, श्वेत कमल, लाल कमल, नील कमल और कुमुदिनी आदि पुष्पोंसे तथा अत्यन्त सुन्दर काली चोंच और काले पैरोंवाले हंसों, परमप्रिय लगनेवाले राजहंसों, बतखों, चक्रवाकों, सारसों, कराँकुलों एवं स्फटिककी-सी कान्तिवाले निर्मल और पीले पंखोंसे सुशोभित अन्यान्य पक्षियोंसे आच्छादित थे। उनमें बहुत-से हंस कूज रहे थे और सर्वत्र सारसोंकी बोली सुनायी पड़ती थी। भगवान् नृसिंहने पर्वत-शिखरोंपर पुष्पोंसे लदी हुई अनेकों प्रकारकी लताओंको भी देखा, जो सुन्दर मंजरियोंसे सुशोभित थीं और जिनसे मनोरम गन्ध फैल रही थी। उस सभामें केतकी, अशोक, सरल (चीड़), पुन्नाग, तिलक, अर्जुन, आम, नीप, प्रस्थपुष्प, कदम्ब, बकुल, धव, प्रियंगु, पाटल, शाल्मली, हरिद्रक, साल, ताल, तमाल, मनोरम चम्पक, विद्रुम तथा प्रज्वलित अग्निकी-सी कान्तिवाले अन्यान्य वृक्ष फूलोंसे लदे हुए शोभा पा रहे थे। वहाँ अर्जुन और अशोकके-से वर्णवाले मोटी-मोटी डालों एवं सुन्दर शाखाओंसे युक्त बहुत-से चित्रक (रेंड़ या तिलक)-के वृक्ष थे, जिनकी ऊँचाई अनेकों तालवृक्षोंके बराबर थी। वहाँ वरुण, वत्सनाभ, कटहल, चन्दन, सुन्दर पुष्पोंसे युक्त नीप, नीम, पीपल, तिन्दुक, पारिजात, लोध्र, मल्लिका, भद्रदारु, आमला, जामुन, बड़हर, शैलवालुक,

खर्जूर्यो नारिकेलाश्च हरीतकविभीतकाः।
कालीयका द्रुकालाश्च हिङ्गवः पारियात्रकाः॥ ६२
मन्दारकुन्दलक्ताश्च पतङ्गाः कुटजास्तथा।
रक्ताः कुरण्टकाश्चैव नीलाश्चागरुभिः सह॥ ६३
कदम्बाश्चैव भव्याश्च दाडिमा बीजपूरकाः।
सप्तपर्णाश्च बिल्वाश्च मधुपैरावृतास्तथा॥ ६४
अशोकाश्च तमालाश्च नानागुल्मलतावृताः।
मधूकाः सप्तपर्णाश्च बहवस्तीरगा द्रुमाः॥ ६५
लताश्च विविधाकाराः पत्रपुष्पफलोपगाः।
एते चान्ये च बहवस्तत्र काननजा द्रुमाः॥ ६६
नानापुष्पफलोपेता व्यराजन्त समंततः।
चकोराः शतपत्राश्च मत्तकोकिलसारिकाः॥ ६७
पुष्पिताः पुष्पिताग्रैश्च सम्पतन्ति महाद्रुमाः।
रक्तपीतारुणास्तत्र पादपाग्रगताः खगाः॥ ६८
परस्परमवेक्षन्ते प्रहृष्टा जीवजीवकाः।
तस्यां सभायां दैत्येन्द्रो हिरण्यकशिपुस्तदा॥ ६९
स्त्रीसहस्रैः परिवृतो विचित्राभरणाम्बरः।
अनर्घ्यमणिवज्रार्चिः शिखाज्वलितकुण्डलः॥ ७०
आसीनश्चासने चित्रे दशनल्वप्रमाणतः।
दिवाकरनिभे दिव्ये दिव्यास्तरणसंस्तृते॥ ७१
दिव्यगन्धवहस्तत्र मारुतः सुसुखो ववौ।
हिरण्यकशिपुर्दैत्य आस्ते ज्वलितकुण्डलः॥ ७२
उपचेरुर्महादैत्यं हिरण्यकशिपुं तदा।
दिव्यतानेन गीतानि जगुर्गन्धर्वसत्तमाः॥ ७३
विश्वाची सहजन्या च प्रम्लोचेत्यभिविश्रुता।
दिव्याथ सौरभेयी च समीची पुञ्जिकस्थली॥ ७४
मिश्रकेशी च रम्भा च चित्रलेखा शुचिस्मिता।
चारुकेशी घृताची च मेनका चोर्वशी तथा॥ ७५
एताः सहस्रशश्चान्या नृत्यगीतविशारदाः।
उपतिष्ठन्ति राजानं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्॥ ७६

खजूर, नारियल, हरीतक, विभीतक, कालीयक, द्रुकाल, हींग, पारियात्रक, मन्दार, कुन्द, लक, पतंग, कुटज, लाल कुरण्टक, अगुरु, कदम्ब, सुन्दर अनार, बिजौरा नींबू, सप्तपर्ण, बेल, भँवरोंसे घिरे हुए अशोक, अनेकों गुल्मों और लताओंसे आच्छादित तमाल, महुआ और सप्तपर्ण आदि बहुत-से वृक्ष तटपर उगे हुए थे॥ ५१—६५॥

वहाँ पत्र, पुष्प और फलसे सुशोभित अनेकों प्रकारकी लताएँ फैली हुई थीं। ये तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य बहुत-से जंगली वृक्ष नाना प्रकारके पुष्पों और फलोंसे लदे हुए चारों ओर शोभा पा रहे थे। चकोर, शतपत्र (कठफोड़वा), मतवाली कोयल और मैना एक पुष्पित वृक्षके पल्लवसे उड़कर दूसरे पुष्पित महान् वृक्षपर बैठ रही थीं। वहाँ रक्त, पीत और अरुण वर्णवाले बहुतेरे पक्षी वृक्षोंके शिखरोंपर बैठे थे तथा चकोर प्रसन्न मनसे परस्पर एक-दूसरेकी ओर देख रहे थे। उसी सभामें उस समय दैत्यराज हिरण्यकशिपु सूर्यके समान चमकीले एवं दिव्य बिछौनोंसे आच्छादित एक दस नल्व* प्रमाणवाले रमणीय दिव्य सिंहासनपर आसीन था। वह विचित्र ढंगके आभूषणों और वस्त्रोंसे सुसज्जित तथा हजारों स्त्रियोंसे घिरा हुआ था। उसके कुण्डल बहुमूल्य मणियों और हीरेकी प्रभासे उद्भासित हो रहे थे। ऐसे उद्दीप्त कुण्डलोंसे विभूषित दैत्यराज हिरण्यकशिपु वहाँ विराजमान था। उस समय दिव्य गन्धसे युक्त परम सुखदायिनी वायु चल रही थी। परिचारकगण महादैत्य हिरण्यकशिपुकी सेवामें जुटे हुए थे। गन्धर्वश्रेष्ठ दिव्य तानद्वारा गीत अलाप रहे थे॥ ६६—७३॥

उस समय विश्वाची, सहजन्या, सुविख्यात प्रम्लोचा, दिव्या, सौरभेयी, समीची, पुंजिकस्थली, मिश्रकेशी, रम्भा, पवित्र मुसकानवाली चित्रलेखा, चारुकेशी, घृताची, मेनका तथा उर्वशी—ये तथा अन्य हजारों नाचने-गानेमें निपुण अप्सराएँ सामर्थ्यशाली दैत्यराज हिरण्यकशिपुकी सेवामें उपस्थित थीं।

* चार सौ हाथका या किसी-किसीके मतसे एक सौ हाथका प्राचीन माप।

तत्रासीनं महाबाहुं हिरण्यकशिपुं प्रभुम्।
उपासते दितेः पुत्राः सर्वे लब्धवरास्तथा॥ ७७
तमप्रतिमकर्माणं शतशोऽथ सहस्रशः।
बलिर्विरोचनस्तत्र नरकः पृथिवीसुतः॥ ७८
प्रह्लादो विप्रचित्तिश्च गविष्ठश्च महासुरः।
सुरहन्ता दुःखहन्ता सुनामा सुमतिर्वरः॥ ७९
घटोदरो महापार्श्वः क्रथनः पिठरस्तथा।
विश्वरूपः सुरूपश्च स्वबलश्च महाबलः॥ ८०
दशग्रीवश्च वाली च मेघवासा महासुरः।
घटास्योऽकम्पनश्चैव प्रजनश्चेन्द्रतापनः॥ ८१
दैत्यदानवसङ्घाते सर्वे ज्वलितकुण्डलाः।
स्रग्विणोवाग्मिनः सर्वे सदैव चरितव्रताः॥ ८२
सर्वे लब्धवराः शूराः सर्वे विगतमृत्यवः।
एते चान्ये च बहवो हिरण्यकशिपुं प्रभुम्॥ ८३
उपासन्ति महात्मानं सर्वे दिव्यपरिच्छदाः।
विमानैर्विविधाकारैर्भ्राजमानैरिवाग्निभिः॥ ८४
महेन्द्रवपुषः सर्वे विचित्राङ्गदबाहवः।
भूषिताङ्गा दितेः पुत्रास्तमुपासन्त सर्वशः॥ ८५
तस्यां सभायां दिव्यायामसुराः पर्वतोपमाः।
हिरण्यवपुषः सर्वे दिवाकर समप्रभाः॥ ८६
न श्रुतं नैव दृष्टं हि हिरण्यकशिपोर्यथा।
ऐश्वर्यं दैत्यसिंहस्य यथा तस्य महात्मनः॥ ८७

अनुपम कर्म करनेवाले सामर्थ्यशाली महाबाहु हिरण्यकशिपुके वहाँ विराजमान होनेपर वरप्राप्तिवाले सैकड़ों-हजारों दैत्य उसकी सेवा करते रहते थे। बलि, विरोचन, भूमि-पुत्र नरक, प्रह्लाद, विप्रचित्ति, महान् असुर गविष्ठ, सुरहन्ता, दुःखहन्ता, सुनामा, असुरश्रेष्ठ सुमति, घटोदर, महापार्श्व, क्रथन, पिठर, विश्वरूप, सुरूप, महाबली स्वबल, दशग्रीव, वाली, महान् असुर मेघवासा, घटास्य, अकम्पन, प्रजन और इन्द्रतापन—ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य बहुत-से दैत्यों एवं दानवोंके समुदाय महान् आत्मबलसे सम्पन्न एवं सामर्थ्यशाली हिरण्यकशिपुकी सेवा कर रहे थे। उन सभीके कानोंमें चमकीले कुण्डल झलमला रहे थे और गलेमें माला शोभा पा रही थी। वे सभी बोलनेमें निपुण तथा सदा व्रतका पालन करनेवाले थे। वे सभी शूरवीर, वरदानसे सम्पन्न, मृत्युरहित और दिव्य वस्त्रोंसे विभूषित थे। वे अग्निके समान चमकीले विविध प्रकारके विमानोंसे सम्पन्न थे। उनके शरीर आभूषणोंसे विभूषित थे। उनकी भुजाओंपर विचित्र केयूर बँधा हुआ था और उनके शरीर महेन्द्रके समान सुन्दर थे। इस प्रकार वे दैत्य सब तरहसे हिरण्यकशिपुकी उपासना कर रहे थे। उस दिव्य सभामें बैठनेवाले सभी असुर पर्वतके समान विशालकाय थे। उनका शरीर स्वर्णके समान चमकीला था और उनकी कान्ति सूर्यके समान थी। महान् आत्मबलसे सम्पन्न उस दैत्यसिंह हिरण्यकशिपुका जैसा ऐश्वर्य था, वैसा न कभी देखा गया था और न सुना ही गया था॥ ७४—८७॥

कनकरजतचित्रवेदिकायां
परिहृतरत्नविचित्रवीथिकायाम्।
स ददर्श मृगाधिपः सभायां
सुरचितरत्नगवाक्षशोभितायाम्॥ ८८
कनकविमलहारविभूषिताङ्गं
दितितनयं स मृगाधिपो ददर्श।
दिवसकरमहाप्रभाज्वलन्तं
दितिजसहस्रशतैर्निषेव्यमाणम्॥ ८९

जिसमें सुवर्ण और चाँदीकी सुन्दर वेदिकाएँ बनी थीं, रत्नजटित होनेके कारण जिसकी गलियाँ अत्यन्त मनोहर लग रही थीं और जो सुन्दर ढंगसे बनाये गये रत्नोंके झरोखोंसे सुशोभित थी। उस सभामें भगवान् नृसिंहने दितिनन्दन हिरण्यकशिपुको देखा, उसका शरीर स्वर्णनिर्मित विमल हारसे विभूषित था, वह सूर्यकी उत्कट प्रभाके समान उद्दीप्त हो रहा था और उसकी सैकड़ों-हजारों दैत्य सेवा कर रहे थे॥ ८८-८९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नारसिंहप्रादुर्भावे एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नारसिंहप्रादुर्भावप्रसङ्गमें एक सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६१॥

एक सौ बासठवाँ अध्याय

प्रह्लादद्वारा भगवान् नरसिंहका स्वरूप-वर्णन तथा नरसिंह और दानवोंका भीषण युद्ध

सूत उवाच

ततो दृष्ट्वा महात्मानं कालचक्रमिवागतम्।
नरसिंहवपुश्छन्नं भस्मच्छन्नमिवानलम्॥ १

हिरण्यकशिपोः पुत्रः प्रह्लादो नाम वीर्यवान्।
दिव्येन चक्षुषा सिंहमपश्यद् देवमागतम्॥ २

तं दृष्ट्वा रुक्मशैलाभमपूर्वां तनुमाश्रितम्।
विस्मिता दानवाः सर्वे हिरण्यकशिपुश्च सः॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तदनन्तर राखमें छिपी हुई अग्निकी तरह नरसिंह-शरीरमें छिपे हुए महात्मा विष्णुको कालचक्रकी भाँति आया देख हिरण्यकशिपुके पुत्र पराक्रमी प्रह्लादने दिव्य दृष्टिसे सिंहको देखकर समझ लिया कि भगवान् विष्णु आ गये। सुमेरु पर्वतकी-सी कान्तिवाले अपूर्व शरीरको धारण किये हुए उस सिंहको देखकर हिरण्यकशिपुसहित सभी दानव घबरा गये॥ १—३॥

प्रह्लाद उवाच

महाबाहो महाराज दैत्यानामादिसम्भवः।
न श्रुतं न च नो दृष्टं नारसिंहमिदं वपुः॥ ४

अव्यक्तप्रभवं दिव्यं किमिदं रूपमागतम्।
दैत्यान्तकरणं घोरं संशतीव मनो मम॥ ५

अस्य देवाः शरीरस्थाः सागराः सरितश्च याः।
हिमवान् पारियात्रश्च ये चान्ये कुलपर्वताः॥ ६

चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैरादित्यैर्वसुभिः सह।
धनदो वरुणश्चैव यमः शक्रः शचीपतिः॥ ७

मरुतो देवगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
नागा यक्षाः पिशाचाश्च राक्षसा भीमविक्रमाः॥ ८

ब्रह्मा देवः पशुपतिर्ललाटस्था भ्रमन्ति वै।
स्थावराणि च सर्वाणि जङ्गमानि तथैव च॥ ९

भवांश्च सहितोऽस्माभिः सर्वैर्दैत्यगणैर्वृतः।
विमानशतसङ्कीर्णा तथैव भवतः सभा॥ १०

सर्वं त्रिभुवनं राजँल्लोकधर्माश्च शाश्वताः।
दृश्यन्ते नारसिंहेऽस्मिंस्तथेदमखिलं जगत्॥ ११

प्रजापतिश्चात्र मनुर्महात्मा
ग्रहाश्च योगाश्च महीरुहाश्च।
उत्पातकालश्च धृतिर्मतिश्च
रतिश्च सत्यं च तपो दमश्च॥ १२

तब प्रह्लादने कहा—महाबाहु महाराज! आप दैत्योंके मूल पुरुष हैं। आपके इस नरसिंह-शरीरके विषयमें अबतक कभी कुछ न सुना ही गया और न इसे कभी देखा ही गया, अज्ञातरूपसे उत्पन्न होनेवाला यह कौन-सा दिव्यरूप आ पहुँचा है? मुझे लगता है कि आपका यह भयंकर रूप दैत्योंका अन्त ही करनेवाला है। इस सिंहके शरीरमें सभी देवता, समुद्र, सभी नदियाँ, हिमवान्, पारियात्र (विन्ध्य) आदि सभी कुलपर्वत, नक्षत्रों, आदित्यगणों और वसुगणोंसहित चन्द्रमा, कुबेर, वरुण, यमराज, शचीपति इन्द्र, मरुद्गण, देवगन्धर्व, तपोधन महर्षि, नाग, यक्ष, पिशाच, भयंकर पराक्रमी राक्षस, ब्रह्मा और भगवान् शंकर स्थित हैं। ये सभी ललाटमें स्थित होकर भ्रमण कर रहे हैं। राजन्! सभी स्थावर-जङ्गम प्राणी, हमलोगोंसहित तथा समस्त दैत्यगणोंसे घिरे हुए आप, सैकड़ों विमानोंसे भरी हुई आपकी यह सभा, सारी त्रिलोकी, शाश्वत लोकधर्म तथा यह अखिल जगत् इस नरसिंहके शरीरमें दिखायी पड़ रहे हैं। साथ ही इस शरीरमें प्रजापति, महात्मा मनु, ग्रह, योग, वृक्ष, उत्पात, काल, धृति, मति, रति,

सनत्कुमारश्च महानुभावो
विश्वे च देवा ऋषयश्च सर्वे।
क्रोधश्च कामश्च तथैव हर्षो
धर्मश्च मोहः पितरश्च सर्वे॥ १३

सत्य, तप, दम, महानुभाव सनत्कुमार, विश्वेदेवगण, सभी ऋषिगण, क्रोध, काम, हर्ष, धर्म, मोह और सभी पितृगण भी विद्यमान हैं॥ ४—१३॥

प्रह्लादस्य वचः श्रुत्वा हिरण्यकशिपुः प्रभुः।
उवाच दानवान् सर्वान् गणांश्च स गणाधिपः॥ १४
मृगेन्द्रो गृह्यतामेष अपूर्वां तनुमास्थितः।
यदि वा संशयः कश्चिद् वध्यतां वनगोचरः॥ १५
ते दानवगणाः सर्वे मृगेन्द्रं भीमविक्रमम्।
परिक्षिपन्तो मुदितास्त्रासयामासुरोजसा॥ १६
सिंहनादं विमुच्याथ नरसिंहो महाबलः।
बभञ्ज तां सभां सर्वां व्यादितास्य इवान्तकः॥ १७
सभायां भज्यमानायां हिरण्यकशिपुः स्वयम्।
चिक्षेपास्त्राणि सिंहस्य रोषाद् व्याकुललोचनः॥ १८

इस प्रकार प्रह्लादकी बात सुनकर दानवगणोंके अधीश्वर सामर्थ्यशाली हिरण्यकशिपुने सभी दानवगणोंको आदेश देते हुए कहा—'दानवो! अपूर्व शरीर धारण करनेवाले इस मृगेन्द्रको पकड़ लो। अथवा यदि पकड़नेमें कोई संदेह हो तो इस बनैले जीवको मार डालो।' यह सुनकर वे सभी दानवगण हर्षपूर्वक उस भयंकर पराक्रमी मृगेन्द्रपर टूट पड़े और बलपूर्वक त्रास देने लगे। तदनन्तर मुख फैलाये हुए कालकी तरह भीषण दीखनेवाले महाबली नरसिंहने सिंहनाद करके उस सारी सभाको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सभाको विध्वंस होते देखकर हिरण्यकशिपुके नेत्र क्रोधसे व्याकुल हो गये, तब वह स्वयं नरसिंहपर अस्त्र छोड़ने लगा॥ १४—१८॥

सर्वास्त्राणामथ ज्येष्ठं दण्डमस्त्रं सुदारुणम्।
कालचक्रं तथा घोरं विष्णुचक्रं तथा परम्॥ १९
पैतामहं तथाप्युग्रं त्रैलोक्यदहनं महत्।
विचित्रामशनीं चैव शुष्कार्द्रं चाशनिद्वयम्॥ २०
रौद्रं तथोग्रं शूलं च कङ्कालं मुसलं तथा।
मोहनं शोषणं चैव सन्तापनविलापनम्॥ २१
वायव्यं मथनं चैव कापालमथ कैङ्करम्।
तथाप्रतिहतां शक्तिं क्रौञ्चमस्त्रं तथैव च॥ २२
अस्त्रं ब्रह्मशिरश्चैव सोमास्त्रं शिशिरं तथा।
कम्पनं शातनं चैव त्वाष्ट्रं चैव सुभैरवम्॥ २३
कालमुद्गरमक्षोभ्यं तपनं च महाबलम्।
संवर्तनं मादनं च तथा मायाधरं परम्॥ २४
गान्धर्वमस्त्रं दयितमसिरत्नं च नन्दकम्।
प्रस्वापनं प्रमथनं वारुणं चास्त्रमुत्तमम्।
अस्त्रं पाशुपतं चैव यस्याप्रतिहता गतिः॥ २५
अस्त्रं हयशिरश्चैव ब्राह्ममस्त्रं तथैव च।
नारायणास्त्रमैन्द्रं च सार्पमस्त्रं तथाद्भुतम्॥ २६
पैशाचमस्त्रमजितं शोषदं शामनं तथा।
महाबलं भावनं च प्रस्थापनविकम्पने॥ २७
एतान्यस्त्राणि दिव्यानि हिरण्यकशिपुस्तदा।
असृजन्नरसिंहस्य दीप्तस्याग्नेरिवाहुतिम्॥ २८

उस समय हिरण्यकशिपु सम्पूर्ण अस्त्रोंमें सबसे बड़ा दण्ड अस्त्र, अत्यन्त भीषण कालचक्र, अतिशय भयंकर विष्णुचक्र, त्रिलोकीको भस्म कर देनेवाला अत्यन्त उग्र पितामहका महान् अस्त्र ब्रह्मास्त्र, विचित्र वज्र, सूखी और गीली दोनों प्रकारकी अशनि, भयानक तथा उग्र शूल, कंकाल, मूसल, मोहन, शोषण, संतापन, विलापन, वायव्य, मथन, कापाल, कैंकर, अमोघ शक्ति, क्रौञ्चास्त्र, ब्रह्मशिरा अस्त्र, सोमास्त्र, शिशिर, कम्पन, शातन, अत्यन्त भयंकर त्वाष्ट्रास्त्र, कभी क्षुब्ध न होनेवाला कालमुद्गर, महाबलशाली तपन, संवर्तन, मादन, परमोत्कृष्ट मायाधर, परमप्रिय गान्धर्वास्त्र, असिरत्न नन्दक, प्रस्वापन, प्रमथन, सर्वोत्तम वारुणास्त्र, जिसकी गति अप्रतिहत होती है ऐसा पाशुपतास्त्र, हयशिरा अस्त्र, ब्राह्म अस्त्र, नारायणास्त्र, ऐन्द्रास्त्र, अद्भुत नागास्त्र, अजेय पैशाचास्त्र, शोषण, शामन, महाबलसे सम्पन्न भावन, प्रस्थापन, विकम्पन—इन सभी दिव्यास्त्रोंको नरसिंहके ऊपर उसी प्रकार छोड़ रहा था, मानो प्रज्वलित अग्निमें आहुति डाल रहा हो।

अस्त्रैः प्रज्वलितैः सिंहमावृणोदसुरोत्तमः।
विवस्वान् घर्मसमये हिमवन्तमिवांशुभिः॥ २९
स ह्यमर्षानिलोद्धूतो दैत्यानां सैन्यसागरः।
क्षणेन प्लावयामास मैनाकमिव सागरः॥ ३०
प्रासैः पाशैश्च खड्गैश्च गदाभिर्मुसलैस्तथा।
वज्रैरशनिभिश्चैव साग्निभिश्च महाद्रुमैः॥ ३१
मुद्गरैर्भिन्दिपालैश्च शिलोलूखलपर्वतैः।
शतघ्नीभिश्च दीप्ताभिर्दण्डैरपि सुदारुणैः॥ ३२

उस असुरश्रेष्ठने नरसिंहको प्रज्वलित अस्त्रोंद्वारा ऐसा आच्छादित कर दिया, जैसे ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्य अपनी किरणोंसे हिमवान् पर्वतको ढक लेते हैं। दैत्योंका वह सेनारूपी सागर क्रोधरूपी वायुसे उच्छ्वलित हो उठा और क्षणमात्रमें ही वहाँकी भूमिपर इस प्रकार छा गया, जैसे सागर मैनाक पर्वतको डुबाकर उबल उठा था। फिर तो वे भाला, पाश, तलवार, गदा, मुसल, वज्र, अग्निसहित अशनि, विशाल वृक्ष, मुद्गर, भिन्दिपाल, शिला, ओखली, पर्वत, प्रज्वलित शतघ्नी (तोप) और अत्यन्त भीषण दण्डसे नरसिंहपर प्रहार करने लगे॥ २९—३२॥

ते दानवाः पाशगृहीतहस्ता
महेन्द्रवज्राशनितुल्यवेगाः।
समन्ततोऽभ्युद्यतबाहुकायाः
स्थितास्त्रिशीर्षा इव नागपाशाः॥ ३३
सुवर्णमालाकुलभूषिताङ्गाः
पीतांशुकाभोगविभाविताङ्गाः।
मुक्तावलीदामसनाथकक्षा
हंसा इवाभान्ति विशालपक्षाः॥ ३४
तेषां तु वायुप्रतिमौजसां वै
केयूरमौलीवलयोत्कटानाम्।
तान्युत्तमाङ्गान्यभितो विभान्ति
प्रभातसूर्यांशुसमप्रभाणि॥ ३५
क्षिपद्भिरुग्रैर्ज्वलितैर्महाबलै-
र्महास्त्रपूगैः सुसमावृतो बभौ।
गिरिर्यथा संततवर्षिभिर्घनैः
कृतान्धकारान्तरकन्दरो द्रुमैः॥ ३६
तैर्हन्यमानोऽपि महास्त्रजालै-
र्महाबलैर्दैत्यगणैः समेतैः।
नाकम्पताजौ भगवान् प्रताप-
स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः॥ ३७
संत्रासितास्तेन नृसिंहरूपिणा
दितेः सुताः पावकतुल्यतेजसा।
भयाद् विचेलुः पवनोद्धुताङ्गा
यथोर्मयः सागरवारिसम्भवाः॥ ३८

उस समय महेन्द्रके वज्र एवं अशनिके समान वेगशाली वे दानव हाथमें पाश लिये हुए चारों ओर अपनी भुजाओं और शरीरोंको ऊपर उठाये हुए स्थित थे, जो तीन शिखावाले नागपाशकी तरह दीख रहे थे। उनके शरीर सोनेकी मालाओंसे विभूषित थे, उनके अङ्गोंपर पीला रेशमी वस्त्र शोभा पा रहा था तथा कटिबंध मोतियोंकी लड़ियोंसे संयुक्त थे, जिससे वे विशाल पंखधारी हंसकी भाँति शोभा पा रहे थे। केयूर, मुकुट और कंकणसे सुशोभित उन उत्कट पराक्रमी एवं वायुके समान ओजस्वी दानवोंके मस्तक प्रातःकालीन सूर्यकी किरणोंकी कान्ति-सदृश चमक रहे थे। उन महाबली दानवोंद्वारा चलाये गये भयंकर एवं उद्दीप्त महान् अस्त्रसमूहोंसे आच्छादित हुए भगवान् नरसिंह उसी प्रकार शोभा पा रहे थे, मानो निरन्तर वर्षा करनेवाले बादलों और वृक्षोंसे अन्धकारित किये गये गुफाओंसे युक्त पर्वत हो। संगठित हुए उन महाबली दैत्योंद्वारा महान् अस्त्रसमूहोंसे आघात किये जानेपर भी प्रतापशाली भगवान् नरसिंह युद्धस्थलमें विचलित नहीं हुए, अपितु प्रकृतिसे अटल रहनेवाले हिमवान्‌की तरह अडिग होकर डटे रहे। अग्निके समान तेजस्वी नृसिंहरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा डराये गये दैत्यगण भयके कारण उसी प्रकार विचलित हो गये, जैसे समुद्रके जलमें उठी हुई लहरें वायुके थपेड़ोंसे क्षुब्ध हो जाती हैं॥ ३३—३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नारसिंहप्रादुर्भावो नाम द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नारसिंहप्रादुर्भाव नामक एक सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६२॥

एक सौ तिरसठवाँ अध्याय

नरसिंह और हिरण्यकशिपुका भीषण युद्ध, दैत्योंको उत्पातदर्शन, हिरण्यकशिपुका अत्याचार, नरसिंहद्वारा हिरण्यकशिपुका वध तथा ब्रह्माद्वारा नरसिंहकी स्तुति

सूत उवाच

खरश्वानमुखाश्चैव मकराशीविषाननाः।
ईहामृगमुखाश्चान्ये वराहमुखसंस्थिताः॥ १
बालसूर्यमुखाश्चान्ये धूमकेतुमुखास्तथा।
अर्धचन्द्रार्धवक्त्राश्च अग्निदीप्तमुखास्तथा॥ २
हंसकुक्कुटवक्त्राश्च व्यादितास्या भयावहाः।
सिंहास्या लेलिहानाश्च काकगृध्रमुखास्तथा॥ ३
द्विजिह्वका वक्रशीर्षास्तथोल्कामुखसंस्थिताः।
महाग्राहमुखाश्चान्ये दानवा बलदर्पिताः॥ ४
शैलसंवर्ष्मणस्तस्य शरीरे शरवृष्टिभिः।
अवध्यस्य मृगेन्द्रस्य न व्यथां चक्रुराहवे॥ ५
एवं भूयो परान् घोरानसृजन् दानवेश्वराः।
मृगेन्द्रस्योपरि क्रुद्धा निःश्वसन्त इवोरगाः॥ ६
ते दानवशरा घोरा दानवेन्द्रसमीरिताः।
विलयं जग्मुराकाशे खद्योता इव पर्वते॥ ७
ततश्चक्राणि दिव्यानि दैत्याः क्रोधसमन्विताः।
मृगेन्द्रायासृजन्नाशु ज्वलितानि समन्ततः॥ ८
तैरासीद् गगनं चक्रैः सम्पतद्भिरितस्ततः।
युगान्ते सम्प्रकाशद्भिश्चन्द्रादित्यग्रहैरिव॥ ९
तानि सर्वाणि चक्राणि मृगेन्द्रेण महात्मना।
ग्रस्तान्युदीर्णानि तदा पावकार्चिःसमानि वै॥ १०
तानि चक्राणि वदने विशमानानि भान्ति वै।
मेघोदरदरीष्वेव चन्द्रसूर्यग्रहा इव॥ ११
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो भूयः प्रासृजदूर्जिताम्।
शक्तिं प्रज्वलितां घोरां धौतशस्त्रतडित्प्रभाम्॥ १२

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! उन दानवोंमें किन्हींके मुख गधे और कुत्तेके समान थे तो कुछ मकर और सर्पके-से मुखवाले थे। किन्हींके मुख भेड़िया-सदृश तो कुछके सूअर-जैसे थे। कुछ उदयकालीन सूर्यके समान तो कुछ धूमकेतु-से मुखवाले थे। किन्हींके मुख अर्धचन्द्र तथा किन्हींके अग्निकी तरह उद्दीप्त थे। किन्हींका मुख आधा ही था। किन्हींके मुख हंस और मुर्गेके समान थे। किन्हींके मुख फैले हुए थे, जो बड़े भयावने लग रहे थे। कुछ सिंहके-से मुखवाले दानव जीभ लपलपा रहे थे। किन्हींके मुख कौओं और गीधों-जैसे थे। किन्हींके मुखमें दो जिह्वाएँ थीं, किन्हींके मस्तक टेढ़े थे और कुछ उल्का-सरीखे मुखवाले थे। किन्हींके मुख महाग्राह-सदृश थे। इस प्रकार वे बलाभिमानी दानव रणभूमिमें पर्वतके समान सुदृढ़ शरीरवाले उन अवध्य मृगेन्द्रके शरीरपर बाणोंकी वृष्टि करके उन्हें पीड़ित न कर सके। तब क्रुद्ध हुए सर्पकी भाँति निःश्वास छोड़ते हुए वे दानवेश्वर नरसिंहके ऊपर पुनः दूसरे भयंकर बाणोंकी वृष्टि करने लगे, परंतु दानवेश्वरोंद्वारा छोड़े गये वे भयंकर बाण उसी प्रकार आकाशमें विलीन हो जाते थे, जैसे पर्वतपर चमकते हुए जुगनू। तत्पश्चात् क्रोधसे भरे हुए दैत्य शीघ्र ही नरसिंहके ऊपर चारों ओरसे चमकते हुए दिव्य चक्रोंकी वर्षा करने लगे। इधर-उधर गिरते हुए उन चक्रोंसे आकाशमण्डल ऐसा दीख रहा था, मानो युगान्तके समय प्रकाशित हुए चन्द्रमा, सूर्य आदि ग्रहोंसे युक्त हो गया हो। अग्निकी लपटोंके समान उठते हुए उन सभी चक्रोंको महात्मा नरसिंह निगल गये। उस समय उनके मुखमें प्रविष्ट होते हुए वे चक्र मेघोंकी घनघोर घटामें घुसते हुए चन्द्र, सूर्य एवं अन्यान्य ग्रहोंकी भाँति सुशोभित हो रहे थे॥ १—११॥

तदनन्तर दैत्यराज हिरण्यकशिपुने भगवान् नरसिंहपर पुनः अपनी भयंकर शक्ति छोड़ी, जो चमकीली, अत्यन्त शक्तिशालिनी और धुली होनेके कारण बिजली-सी चमक

तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य मृगेन्द्रः शक्तिमुज्ज्वलाम्।
हुङ्कारेणैव रौद्रेण बभञ्ज भगवांस्तदा॥ १३
रराज भग्ना सा शक्तिर्मृगेन्द्रेण महीतले।
सविस्फुलिङ्गा ज्वलिता महोल्केव दिवश्च्युता॥ १४
नाराचपङ्क्तिः सिंहस्य प्राप्ता रेजेऽविदूरतः।
नीलोत्पलपलाशानां मालेवोज्ज्वलदर्शना॥ १५
स गर्जित्वा यथान्यायं विक्रम्य च यथासुखम्।
तत्सैन्यमुत्सारितवांस्तृणाग्राणीव मारुतः॥ १६
ततोऽश्मवर्षं दैत्येन्द्रा व्यसृजन्त नभोगताः।
नगमात्रैः शिलाखण्डैर्गिरिशृङ्गैर्महाप्रभैः॥ १७
तदश्मवर्षं सिंहस्य महन्मूर्धनि पातितम्।
दिशो दश विकीर्णा वै खद्योतप्रकरा इव॥ १८
तदाश्मौघैर्दैत्यगणाः पुनः सिंहमरिन्दमम्।
छादयांचक्रिरे मेघा धाराभिरिव पर्वतम्॥ १९
न च तं चालयामासुर्दैत्यौघा देवसत्तमम्।
भीमवेगोऽचलश्रेष्ठं समुद्र इव मन्दरम्॥ २०

रही थी। तब उस उज्ज्वल शक्तिको अपनी ओर आती हुई देखकर भगवान् नरसिंहने अपने भयंकर हुंकारसे ही उसे तोड़कर टूक-टूक कर दिया। नरसिंहद्वारा तोड़ी गयी वह शक्ति ऐसी शोभा पा रही थी, जैसे आकाशमें भूतलपर गिरी हुई चिनगारियोंसहित प्रज्वलित महान् उल्का हो। नरसिंहके निकट पहुँची हुई (दैत्योंद्वारा छोड़े गये) बाणोंकी उज्ज्वल वर्णवाली पंक्ति नीले कमल-दलकी मालाकी तरह शोभा पा रही थी। यह देखकर भगवान् नरसिंहने न्यायतः पराक्रम प्रदर्शित कर सुखपूर्वक गर्जना की और उस दानवसेनाको वायुद्वारा उड़ाये गये क्षुद्र तिनकोंकी तरह खदेड़ दिया। तदुपरान्त दैत्येश्वरगण आकाशमें स्थित होकर पत्थरकी वर्षा करने लगे। पत्थरोंकी वह वर्षा नरसिंहके विशाल मस्तकपर गिरकर चूर-चूर हो जुगनुओंके समूहकी भाँति दसों दिशाओंमें बिखर गयी। तब दैत्यगणोंने पुनः पर्वत-सरीखे शिलाखण्डों, पर्वत-शिखरों और पत्थरोंसे उन शत्रुसूदन नरसिंहको इस प्रकार आच्छादित कर दिया, जैसे मेघ जलकी धाराओंद्वारा पर्वतको ढक देते हैं। फिर भी वह दैत्यसमुदाय उन देवश्रेष्ठ नरसिंहको उसी प्रकार विचलित नहीं कर सका, जैसे भयंकर वेगशाली समुद्र पर्वतश्रेष्ठ मन्दरको नहीं डिगा सका॥ १२—२०॥

ततोऽश्मवर्षे विहते जलवर्षमनन्तरम्।
धाराभिरक्षमात्राभिः प्रादुरासीत्समन्ततः॥ २१
नभसः प्रच्युता धारास्तिग्मवेगाः समंततः।
आवृत्य सर्वतो व्योम दिशश्चोपदिशस्तथा॥ २२
धारा दिवि च सर्वत्र वसुधायां च सर्वशः।
न स्पृशन्ति च ता देवं निपतन्त्योऽनिशं भुवि॥ २३
बाह्यतो ववृषुर्वर्षं नोपरिष्टाच्च ववृषुः।
मृगेन्द्रप्रतिरूपस्य स्थितस्य युधि मायया॥ २४
हतेऽश्मवर्षे तुमुले जलवर्षे च शोषिते।
सोऽसृजद् दानवो मायामग्निवायुसमीरिताम्॥ २५
महेन्द्रस्तोयदैः सार्धं सहस्राक्षो महाद्युतिः।
महता तोयवर्षेण शमयामास पावकम्॥ २६

तदनन्तर पत्थरोंकी वृष्टिके विफल हो जानेपर चारों ओर मूसलाधार जलकी वृष्टि होने लगी। चारों ओर आकाशसे गिरती हुई वे तीव्र वेगशाली धाराएँ सब ओरसे आकाश, दिशाओं तथा विदिशाओंको आच्छादित करके लगातार भूतलपर गिर रही थीं। यद्यपि वे धाराएँ आकाश तथा पृथ्वीपर सर्वत्र सब प्रकारसे व्याप्त थीं, तथापि वे भगवान् नरसिंहका स्पर्श नहीं कर पा रही थीं। युद्धभूमिमें मायाद्वारा मृगेन्द्रका रूप धारण करनेवाले भगवान्के ऊपर वे धाराएँ नहीं गिर रही थीं, अपितु बाहर चारों ओर वर्षा कर रही थीं। इस प्रकार जब वह शिलावृष्टि नष्ट कर दी गयी और घनघोर जलवृष्टि सोख ली गयी, तब दानवराज हिरण्यकशिपुने अग्नि और वायुद्वारा प्रेरित मायाका विस्तार किया, किंतु परम कान्तिमान् सहस्र नेत्रधारी महेन्द्रने बादलोंके साथ वहाँ आकर जलकी घनघोर वृष्टिसे उस अग्निको शान्त कर दिया।

तस्यां प्रतिहतायां तु मायायां युधि दानवः।
असृजद् घोरसंकाशं तमस्तीव्रं समन्ततः॥ २७
तमसा संवृते लोके दैत्येष्वात्तायुधेषु च।
स्वतेजसा परिवृतो दिवाकर इवाबभौ॥ २८
त्रिशिखां भृकुटीं चास्य ददृशुर्दानवा रणे।
ललाटस्थां त्रिशूलाङ्कां गङ्गां त्रिपथगामिव॥ २९

युद्धस्थलमें उस मायाके नष्ट हो जानेपर उस दानवने चारों ओर भयंकर दीखनेवाले घने अन्धकारकी सृष्टि की। उस समय सारा जगत् अन्धकारसे ढक गया और दैत्यगण अपना-अपना हथियार लिये डटे रहे। उसके मध्य अपने तेजसे घिरे हुए भगवान् नरसिंह सूर्यकी तरह शोभा पा रहे थे। दानवोंने रणभूमिमें नरसिंहके ललाटमें स्थित त्रिशूलकी-सी आकारवाली उनकी त्रिशिखा भृकुटिको देखा, जो त्रिपथगा गङ्गाकी तरह प्रतीत हो रही थी॥ २१—२९॥

ततः सर्वासु मायासु हतासु दितिनन्दनाः।
हिरण्यकशिपुं दैत्यं विवर्णाः शरणं ययुः॥ ३०
ततः प्रज्वलितः क्रोधात् प्रदहन्निव तेजसा।
तस्मिन् क्रुद्धे तु दैत्येन्द्रे तमोभूतमभूज्जगत्॥ ३१
आवहः प्रवहश्चैव विवहोऽथ ह्युदावहः।
परावहः संवहश्च महाबलपराक्रमाः॥ ३२
तथा परिवहः श्रीमानुत्पातभयशंसनाः।
इत्येवं क्षुभिताः सप्त मरुतो गगनेचराः॥ ३३
ये ग्रहाः सर्वलोकस्य क्षये प्रादुर्भवन्ति वै।
ते सर्वे गगने दृष्टा व्यचरन्त यथासुखम्॥ ३४
अयोगतश्चाप्यचरद् योगं निशि निशाकरः।
सग्रहः सह नक्षत्रै राकापतिररिन्दमः॥ ३५
विवर्णतां च भगवान् गतो दिवि दिवाकरः।
कृष्णं कबन्धं च तथा लक्ष्यते सुमहद्दिवि॥ ३६
अमुञ्चच्चार्चिषां वृन्दं भूमिवृत्तिर्विभावसुः।
गगनस्थश्च भगवानभीक्ष्णं परिदृश्यते॥ ३७
सप्त धूम्रनिभा घोरा सूर्यादिवि समुत्थिताः।
सोमस्य गगनस्थस्य ग्रहास्तिष्ठन्ति शृङ्गगाः॥ ३८
वामे तु दक्षिणे चैव स्थितौ शुक्रबृहस्पती।
शनैश्चरो लोहिताङ्गो ज्वलनाङ्गसमद्युती॥ ३९
समं समधिरोहन्तः सर्वे ते गगनेचराः।
शृङ्गानि शनकैर्घोरा युगान्तावर्तिनो ग्रहाः॥ ४०

इस प्रकार सभी मायाओंके नष्ट हो जानेपर तेजोहीन दैत्य अपने स्वामी हिरण्यकशिपुकी शरणमें गये। यह देख वह अपने तेजसे जगत्‌को जलाता-सा क्रोधसे प्रज्वलित हो उठा। उस दैत्येन्द्रके क्रुद्ध होनेपर सारा जगत् अन्धकारमय हो गया। पुनः आवह, प्रवह, विवह, उदावह, परावह, संवह तथा श्रीमान् परिवह—ये महान् बल एवं पराक्रमसे सम्पन्न आकाशचारी सातों वायुमार्ग उत्पातके भयकी सूचना देते हुए क्षुब्ध हो उठे। समस्त लोकोंके विनाशके अवसरपर जो ग्रह प्रकट होते हैं, वे सभी आकाशमें दृष्टिगोचर होकर सुखपूर्वक विचरण करने लगे। राहुने अमा एवं पूर्णिमाके बिना ही ग्रहणका दृश्य उपस्थित कर दिया। रातमें नक्षत्रों और ग्रहोंसहित राकापति शत्रुसूदन चन्द्रमा और दिनमें भगवान् सूर्य कान्तिहीन हो गये तथा आकाशमें अत्यन्त विशाल काले रंगका कबन्ध (धूमकेतु) दिखायी देने लगा। भगवान् अग्नि एक ओर पृथ्वीपर रहकर चिनगारियाँ छोड़ने लगे और दूसरी ओर वे निरन्तर आकाशमें भी स्थित दिखायी दे रहे थे। आकाशमण्डलमें धुएँकी-सी कान्तिवाले सात भयंकर सूर्य प्रकट हो गये। ग्रहगण आकाशमें स्थित चन्द्रमाके शिखरपर स्थित हो गये। उनके वामभागमें शुक्र और दाहिने भागमें बृहस्पति स्थित हो गये। अग्निके समान कान्तिमान् शनैश्चर और मङ्गल भी दृष्टिगोचर हुए। युगान्तके समय प्रकट होनेवाले वे सभी भयंकर ग्रह शनैः-शनैः एक साथ शिखरोंपर आरूढ़ हो आकाशमें विचरण करने लगे॥ ३०—४०॥

चन्द्रमाश्च सनक्षत्रैर्ग्रहैः सह तमोनुदः।
चराचरविनाशाय रोहिणीं नाभ्यनन्दत॥ ४१

इसी प्रकार अन्धकारका विनाश करनेवाले चन्द्रमा नक्षत्रों और ग्रहोंके साथ रहकर चराचर जगत्‌का विनाश करनेके लिये रोहिणीका अभिनन्दन नहीं कर रहे थे।

गृह्यते राहुणा चन्द्र उल्काभिरभिहन्यते।
उल्काः प्रज्वलिताश्चन्द्रे विचरन्ति यथासुखम्॥ ४२

राहु चन्द्रमाको ग्रस्त कर रहा था और उल्काएँ उन्हें मार भी रही थीं। प्रज्वलित उल्काएँ चन्द्रलोकमें सुखपूर्वक

देवानामपि यो देवः सोऽप्यवर्षत शोणितम्।
अपतन्गगनादुल्का विद्युद्रूपा महास्वनाः॥ ४३
अकाले च द्रुमाः सर्वे पुष्पन्ति च फलन्ति च।
लताश्च सफलाः सर्वा ये चाहुर्दैत्यनाशनम्॥ ४४
फलैः फलान्यजायन्त पुष्पैः पुष्पं तथैव च।
उन्मीलन्ति निमीलन्ति हसन्ति च रुदन्ति च॥ ४५
विक्रोशन्ति च गम्भीरा धूमयन्ति ज्वलन्ति च।
प्रतिमाः सर्वदेवानां वेदयन्ति महद् भयम्॥ ४६
आरण्यैः सह संसृष्टा ग्राम्याश्च मृगपक्षिणः।
चक्रुः सुभैरवं तत्र महायुद्धमुपस्थितम्॥ ४७
नद्यश्च प्रतिकूलानि वहन्ति कलुषोदकाः।
न प्रकाशन्ति च दिशो रक्तरेणुसमाकुलाः॥ ४८
वानस्पत्यो न पूज्यन्ते पूजनार्हाः कथञ्चन।
वायुवेगेन हन्यन्ते भज्यन्ते प्रणमन्ति च॥ ४९

विचरण कर रही थीं। जो देवताओंका भी देवता (इन्द्र) है, वह रक्तकी वर्षा करने लगा। आकाशसे बिजलीकी-सी कान्तिवाली उल्काएँ भयंकर शब्द करती हुई पृथ्वीपर गिरने लगीं। सभी वृक्ष असमयमें ही फूलने और फलने लगे तथा सभी लताएँ फलसे युक्त हो गयीं, जो दैत्योंके विनाशकी सूचना दे रही थीं। फलोंसे फल तथा फूलोंसे फूल एकट होने लगे। सभी देवताओंकी मूर्तियाँ कभी आँख फाड़कर देखतीं, कभी आँखें बंद कर लेतीं, कभी हँसती थीं तो कभी रोने लगती थीं। वे कभी जोर-जोरसे चिल्लाने लगती थीं, कभी गम्भीररूपसे धुआँ फेंकती थीं तो कभी प्रज्वलित हो जाती थीं। इस प्रकार वे महान् भयकी सूचना दे रही थीं। उस समय ग्रामीण मृग-पक्षी वन्य मृग-पक्षियोंसे संयुक्त होकर अत्यन्त भयंकर महान् युद्ध करने लगे। गंदे जलसे भरी हुई नदियाँ उलटी दिशामें बहने लगीं। रक्त और धूलसे व्याप्त दिशाएँ दिखायी नहीं दे रही थीं। पूजनीय वृक्षोंकी किसी प्रकार पूजा (रक्षा) नहीं हो रही थी। वे वायुके झोंकेसे प्रताडित हो रहे थे, झुक जाते थे और टूट भी जाते थे॥ ४१—४९॥

यदा च सर्वभूतानां छाया न परिवर्तते।
अपराह्णगते सूर्ये लोकानां युगसंक्षये॥ ५०
तदा हिरण्यकशिपोर्दैत्यस्योपरि वेश्मनः।
भाण्डागारायुधागारे निविष्टमभवन्मधु॥ ५१
असुराणां विनाशाय सुराणां विजयाय च।
दृश्यन्ते विविधोत्पाता घोरा घोरनिदर्शनाः॥ ५२
एते चान्ये च बहवो घोरोत्पाताः समुत्थिताः।
दैत्येन्द्रस्य विनाशाय दृश्यन्ते कालनिर्मिताः॥ ५३
मेदिन्यां कम्पमानायां दैत्येन्द्रेण महात्मना।
महीधरा नागगणा निपेतुरमितौजसः॥ ५४
विषज्वालाकुलैर्वक्त्रैर्विमुञ्चन्तो हुताशनम्।
चतुःशीर्षाः पञ्चशीर्षाः सप्तशीर्षाश्च पन्नगाः॥ ५५
वासुकिस्तक्षकश्चैव कर्कोटकधनञ्जयौ।
एलामुखः कालियश्च महापद्मश्च वीर्यवान्॥ ५६
सहस्रशीर्षो नागो वै हेमतालध्वजः प्रभुः।
शेषोऽनन्तोमहाभागो दुष्प्रकम्प्यः प्रकम्पितः॥ ५७

इस प्रकार लोकोंके युगान्तके समय सूर्यके अपराह्णसमयमें पहुँचनेपर जब सभी प्राणियोंकी छायामें कोई परिवर्तन नहीं दीखने लगा, तब दैत्यराज हिरण्यकशिपुके महल, भाण्डारागार और आयुधागारके ऊपर मधु टपकने लगा। इस प्रकार असुरोंके विनाश और देवताओंकी विजयके लिये भयकी सूचना देनेवाले अनेकों प्रकारके भयंकर उत्पात दिखायी दे रहे थे। वे तथा इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से भयंकर उत्पात, जो कालद्वारा निर्मित थे, दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके विनाशके लिये प्रकट हुए दीख रहे थे। महान् आत्मबलसे सम्पन्न दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुद्वारा पृथ्वीके प्रकम्पित किये जानेपर पर्वत तथा अमित तेजस्वी नागगण गिरने लगे। वे चार, पाँच अथवा सात सिरवाले नाग विषकी ज्वालासे व्याप्त मुखोंद्वारा अग्नि उगलने लगे। वासुकि, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, एलामुख, कालिय, पराक्रमी महापद्म, एक हजार फणोंवाला सामर्थ्यशाली नाग हेमतालध्वज तथा महान् भाग्यशाली अनन्त शेषनाग—इन सबका काँपना यद्यपि अत्यन्त कठिन था, तथापि वे सभी काँप उठे।

दीप्तान्यन्तर्जलस्थानि पृथिवीधरणानि च।
तदा क्रुद्धेन महता कम्पितानि समन्ततः॥ ५८
नागास्तेजोधराश्चापि पातालतलचारिणः।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यस्तदा संस्पृष्टवान् महीम्॥ ५९
संदष्टौष्ठपुटः क्रोधाद्वाराह इव पूर्वजः।

उसने चारों ओर जलके भीतर स्थित रहनेवाले उद्दीप्त पर्वतोंको भी अत्यन्त क्रोधवश कँपा दिया। उस समय पाताललोकमें विचरण करनेवाले तेजस्वी नाग भी प्रकम्पित हो उठे। इस प्रकार दैत्यराज हिरण्यकशिपु क्रोधवश दाँतोंसे होंठोंको दबाये हुए जब पृथ्वीपर खड़ा हुआ तो वह पूर्वकालमें प्रकट हुए वाराहकी तरह दीख रहा था॥ ५०—५९½॥

नदी भागीरथी चैव शरयूः कौशिकी तथा॥ ६०
यमुना त्वथ कावेरी कृष्णवेणा च निम्नगा।
सुवेणा च महाभागा नदी गोदावरी तथा॥ ६१
चर्मण्वती च सिन्धुश्च तथा नदनदीपतिः।
कमलप्रभवश्चैव शोणो मणिनिभोदकः॥ ६२
नर्मदा शुभतोया च तथा वेत्रवती नदी।
गोमती गोकुलाकीर्णा तथा पूर्वसरस्वती॥ ६३
मही कालमही चैव तमसा पुष्पवाहिनी।
जम्बूद्वीपं रत्नवटं सर्वरत्नोपशोभितम्॥ ६४
सुवर्णप्रकटं चैव सुवर्णाकरमण्डितम्।
महानदं च लौहित्यं शैलकाननशोभितम्॥ ६५
पत्तनं कोशकरणमृषिवीरजनाकरम्।
मागधाश्च महाग्रामा मुण्डाः शुङ्गास्तथैव च॥ ६६
सुह्मा मल्ला विदेहाश्च मालवाः काशिकोसलाः।
भवनं वैनतेयस्य दैत्येन्द्रेणाभिकम्पितम्॥ ६७
कैलासशिखराकारं यत् कृतं विश्वकर्मणा।
रक्ततोयो महाभीमो लौहित्यो नाम सागरः॥ ६८
उदयश्च महाशैल उच्छ्रितः शतयोजनम्।
सुवर्णवेदिकः श्रीमान् मेघपङ्क्तिनिषेवितः॥ ६९
भ्राजमानोऽर्कसदृशैर्जातरूपमयैर्द्रुमैः।
शालैस्तालैस्तमालैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः॥ ७०
अयोमुखश्च विख्यातः पर्वतो धातुमण्डितः।
तमालवनगन्धश्च पर्वतो मलयः शुभः॥ ७१
सुराष्ट्राश्च सबाह्लीकाः शूराभीरास्तथैव च।
भोजाः पाण्ड्याश्च वङ्गाश्च कलिङ्गास्ताम्रलिप्तकाः॥ ७२
तथैवोण्ड्राश्च पौण्ड्राश्च वामचूडाः सकेरलाः।
क्षोभितास्तेन दैत्येन सदेवाश्चाप्सरोगणाः॥ ७३

इसी प्रकार भागीरथी नदी, सरयू, कौशिकी, यमुना, कावेरी, कृष्णवेणा नदी, महाभागा, सुवेणा, गोदावरी नदी, चर्मण्वती, सिन्धु, नद और नदियोंका स्वामी, कमल उत्पन्न करनेवाला तथा मणिसदृश जलसे परिपूर्ण शोण, पुण्यसलिला नर्मदा, वेत्रवती नदी, गोकुलसे सेवित होनेवाली गोमती, प्राचीसरस्वती, मही, कालमही, तमसा, पुष्पवाहिनी, जम्बूद्वीप, सम्पूर्ण रत्नोंसे सुशोभित रत्नवट, सुवर्णकी खानोंसे युक्त सुवर्णप्रकट, पर्वतों और काननोंसे सुशोभित महानद लौहित्य, ऋषियों और वीरजनोंका उत्पत्तिस्थानस्वरूप कोशकरण नामक नगर, बड़े-बड़े ग्रामोंसे युक्त मागध, मुण्ड, शुङ्ग, सुह्म, मल्ल, विदेह, मालव, काशी, कोसल—इन सबको तथा गरुडके भवनको, जो कैलासके शिखरकी-सी आकृतिवाला था तथा जिसे विश्वकर्माने बनाया था, उस दैत्येन्द्रने प्रकम्पित कर दिया। रक्तरूपी जलसे भरा हुआ महान् भयंकर लौहित्य सागर तथा जो स्वर्णमयी वेदिकासे युक्त, शोभाशाली, मेघकी पङ्क्तियोंद्वारा सुसेवित और सूर्य-सदृश एवं स्वर्णमय खिले हुए साल, ताल, तमाल और कनेरके वृक्षोंसे सुशोभित है, वह सौ योजन ऊँचा महान् पर्वत उदयाचल, धातुओंसे विभूषित अयोमुख नामक विख्यात पर्वत, तमाल-वनके गन्धसे सुवासित सुन्दर मलय पर्वत, सुराष्ट्र, बाह्लीक, शूर, आभीर, भोज, पाण्ड्य, वङ्ग, कलिङ्ग, ताम्रलिप्तक, उण्ड्र, पौण्ड्र, केरल—इन सबको तथा देवों और अप्सराओंके समूहोंको उस दैत्यने क्षुब्ध कर दिया॥ ६०—७३॥

अगस्त्यभवनं चैव यदगम्यं कृतं पुरा।
सिद्धचारणसङ्घैश्च विप्रकीर्णं मनोहरम्॥ ७४

इसी प्रकार जो पहले अगम्य कर दिया गया था तथा सिद्धों और चारणोंके समूहोंसे व्याप्त,

विचित्रनानाविहगं सुपुष्पितमहाद्रुमम्।
जातरूपमयैः शृङ्गैरप्सरोगणनादितम्॥ ७५
गिरिपुष्पितकश्चैव लक्ष्मीवान् प्रियदर्शनः।
उत्थितः सागरं भित्त्वा विश्राममश्चन्द्रसूर्ययोः।
रराज सुमहाशृङ्गैर्गगनं विलिखन्निव॥ ७६
चन्द्रसूर्यांशुसङ्काशैः सागराम्बुसमावृतैः।
विद्युत्वान् सर्वतः श्रीमानायतः शतयोजनम्॥ ७७
विद्युतां यत्र सङ्घाता निपात्यन्ते नगोत्तमे।
ऋषभः पर्वतश्चैव श्रीमान् वृषभसंज्ञितः॥ ७८
कुञ्जरः पर्वतः श्रीमान् यत्रागस्त्यगृहं शुभम्।
विशालाक्षश्च दुर्धर्षः सर्पाणामालयः पुरी॥ ७९
तथा भोगवती चापि दैत्येन्द्रेणाभिकम्पिता।
महासेनो गिरिश्चैव पारियात्रश्च पर्वतः॥ ८०
चक्रवांश्च गिरिश्रेष्ठो वाराहश्चैव पर्वतः।
प्राग्ज्यौतिषपुरं चापि जातरूपमयं शुभम्॥ ८१
यस्मिन् वसति दुष्टात्मा नरको नाम दानवः।
मेघश्च पर्वतश्रेष्ठो मेघगम्भीरनिःस्वनः॥ ८२
षष्टिस्तत्र सहस्राणि पर्वतानां द्विजोत्तमाः।
तरुणादित्यसंकाशो मेरुस्तत्र महागिरिः॥ ८३
यक्षराक्षसगन्धर्वैर्नित्यं सेवितकन्दरः।
हेमगर्भो महाशैलस्तथा हेमसखो गिरिः॥ ८४
कैलासश्चैव शैलेन्द्रो दानवेन्द्रेण कम्पिताः।
हेमपुष्करसंछन्नं तेन वैखानसं सरः॥ ८५
कम्पितं मानसं चैव हंसकारण्डवाकुलम्।
त्रिशृङ्गपर्वतश्चैव कुमारी च सरिद्वरा॥ ८६
तुषारचयसंच्छन्नो मन्दरश्चापि पर्वतः।
उशीरबिन्दुश्च गिरिश्चन्द्रप्रस्थस्तथाद्रिराट्॥ ८७
प्रजापतिगिरिश्चैव तथा पुष्करपर्वतः।
देवाभ्रपर्वतश्चैव तथा वै रेणुको गिरिः॥ ८८
क्रौञ्चः सप्तर्षिशैलश्च धूम्रवर्णश्च पर्वतः।
एते चान्ये च गिरयो देशा जनपदास्तथा॥ ८९
नद्यः ससागराः सर्वाः सोऽकम्पयत दानवः।
कपिलश्च महीपुत्रो व्याघ्रवांश्चैव कम्पितः॥ ९०

मनोहर, नाना प्रकारके रंग-बिरंगे पक्षियोंसे युक्त और पुष्पोंसे लदे हुए महान् वृक्षोंसे सुशोभित था, उस अगस्त्य-भवनको भी कँपा दिया। इसके बाद जो लक्ष्मीवान्, प्रियदर्शन और अपने अत्यन्त ऊँचे शिखरोंसे आकाशमें रेखा-सी खींच रहा था तथा चन्द्रमा और सूर्यको विश्राम देनेके लिये सागरका भेदन कर बाहर निकला था, वह पुष्पितक गिरि अपने स्वर्णमय शिखरोंसे शोभा पा रहा था। फिर चन्द्रमा और सूर्यकी किरणोंके समान चमकीले एवं सागरके जलसे घिरे हुए शिखरोंसे युक्त शोभाशाली विद्युत्वान् पर्वत था, जो सब ओरसे सौ योजन विस्तृत था। उस पर्वतश्रेष्ठपर बिजलियोंके समूह गिराये जाते थे। वृषभ नामसे पुकारा जानेवाला शोभासम्पन्न ऋषभ पर्वत तथा शोभाशाली कुंजर पर्वत, जिसपर महर्षि अगस्त्यका सुन्दर आश्रम था। सर्पोंका दुर्धर्ष निवासस्थान विशालाक्ष तथा भोगवती पुरी—ये सभी दैत्येन्द्रद्वारा प्रकम्पित कर दिये गये। द्विजवरो! वहाँ महासेन गिरि, पारियात्र पर्वत, गिरिश्रेष्ठ चक्रवान्, वाराह पर्वत, स्वर्णनिर्मित रमणीय प्राग्ज्योतिषपुर, जिसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव निवास करता है, बादलोंके समान गम्भीर शब्द करनेवाला पर्वतश्रेष्ठ मेघ आदि साठ हजार पर्वत थे, वहीं मध्याह्नकालीन सूर्यके समान प्रकाशमान विशाल पर्वत मेरु था, जिसकी कन्दराओंमें यक्ष, राक्षस और गन्धर्व नित्य निवास करते थे। महान् पर्वत हेमगर्भ, हेमसख गिरि तथा पर्वतराज कैलास—इन सबको भी दानवेन्द्र हिरण्यकशिपुने कँपा दिया॥ ७४—८४ ½॥

हिरण्यकशिपुने स्वर्ण-सदृश कमल-पुष्पोंसे आच्छादित वैखानस सरोवर तथा हंसों और बतखोंसे भरे हुए मानसरोवरको भी कम्पित कर दिया। इसके बाद त्रिशृङ्ग पर्वत, नदियोंमें श्रेष्ठ कुमारी नदी, तुषारसमूहसे आच्छादित मन्दर पर्वत, उशीरबिन्दु गिरि, पर्वतराज चन्द्रप्रस्थ, प्रजापति गिरि, पुष्कर पर्वत, देवाभ्र पर्वत, रेणुक गिरि, क्रौंच पर्वत, सप्तर्षिशैल तथा धूम्रवर्ण पर्वत—इनको तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य पर्वतों, देशों, जनपदों तथा सागरोंसहित सभी नदियोंको उस दानवने कम्पित कर दिया। साथ ही महीपुत्र कपिल और व्याघ्रवान् भी काँप उठे।

खेचराश्च सतीपुत्राः पातालतलवासिनः।
गणस्तथा परो रौद्रो मेघनामाङ्कुशायुधः॥ ९१
ऊर्ध्वगो भीमवेगश्च सर्व एवाभिकम्पिताः।
गदी शूली करालश्च हिरण्यकशिपुस्तदा॥ ९२
जीमूतघनसंकाशो जीमूतघननिःस्वनः।
जीमूतघननिर्घोषो जीमूत इव वेगवान्॥ ९३
देवारिर्दितिजो वीरो नृसिंहं समुपाद्रवत्।
समुत्पत्य ततस्तीक्ष्णैर्मृगेन्द्रेण महानखैः॥ ९४
तदोंकारसहायेन विदार्य निहतो युधि।
मही च कालश्च शशी नभश्च
ग्रहाश्च सूर्यश्च दिशश्च सर्वाः।
नद्यश्च शैलाश्च महार्णवाश्च
गताः प्रसादं दितिपुत्रनाशात्॥ ९५
ततः प्रमुदिता देवा ऋषयश्च तपोधनाः।
तुष्टुवुर्नामभिर्दिव्यैरादिदेवं सनातनम्॥ ९६
यत्त्वया विहितं देव नारसिंहमिदं वपुः।
एतदेवार्चयिष्यन्ति परावरविदो जनाः॥ ९७

ब्रह्मोवाच

भवान् ब्रह्मा च रुद्रश्च महेन्द्रो देवसत्तमः।
भवान् कर्ता विकर्ता च लोकानां प्रभवाव्ययः॥ ९८
परां च सिद्धिं च परं च देवं
परं च मन्त्रं परमं हविश्च।
परं च धर्मं परमं च विश्वं
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ ९९
परं शरीरं परमं च ब्रह्म
परं च योगं परमां च वाणीम्।
परं रहस्यं परमां गतिं च
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ १००
एवं परस्यापि परं पदं यत्
परं परस्यापि परं च देवम्।
परं परस्यापि परं च भूतं
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ १०१

आकाशचारी एवं पाताललोकमें निवास करनेवाले सतीके पुत्र, अङ्कुशको अस्त्ररूपमें धारण करनेवाला परम भयंकर मेघ नामक गण तथा उर्ध्वग और भीमवेग—ये सभी कँपा दिये गये। तदनन्तर जो गदा और त्रिशूल धारण किये हुए था, जिसकी आकृति बड़ी विकराल थी, जो देवताओंका शत्रु, घने बादलके समान कान्तिमान्, घने बादल-जैसा बोलनेवाला, घने बादल-सदृश गरजनेवाला और बादल-सा वेगशाली था, उस दितिनन्दन वीरवर हिरण्यकशिपुने भगवान् नरसिंहपर आक्रमण किया। तब युद्धस्थलमें ओंकारकी सहायतासे भगवान् नरसिंहने आकाशमें उछलकर अपने तीखे विशाल नखोंसे उनके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर उसे मार डाला॥ ८५—९४ १/२॥

इस प्रकार उस दितिपुत्र हिरण्यकशिपुके मौतके मुखमें चले जानेसे पृथ्वी, काल, चन्द्रमा, आकाश, ग्रहगण, सूर्य, सभी दिशाएँ, नदियाँ, पर्वत और महासागर प्रसन्न हो गये। तदनन्तर हर्षसे फूले हुए देवता और तपोधन ऋषिगण दिव्य नामोंद्वारा उन अविनाशी आदि देवकी स्तुति करते हुए कहने लगे—'देव! आपने जो यह नरसिंहका शरीर धारण किया है, इसकी पूर्वापरके ज्ञाता लोग अर्चना करेंगे'॥ ९५—९७॥

ब्रह्माजीने कहा— देव! आप ही ब्रह्मा, रुद्र और देवश्रेष्ठ महेन्द्र हैं। आप ही लोकोंके कर्ता, संहर्ता और उत्पत्तिस्थान हैं। आपका कभी विनाश नहीं होता। आपको ही परमोत्कृष्ट सिद्धि, परात्पर देव, परम मन्त्र, परम हवि, परम धर्म, परम विश्व और आदि पुराणपुरुष कहा जाता है। आपको ही परम शरीर, परम ब्रह्म, परम योग, परमा वाणी, परम रहस्य, परम गति और अग्रजन्मा पुराण पुरुष कहा जाता है। इसी प्रकार जो परात्पर पद, परात्पर देव, परात्पर भूत और सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुष है, वह आप ही हैं।

परं परस्यापि परं रहस्यं
परं परस्यापि परं महत्त्वम्।
परं परस्यापि परं महद्यत्
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ १०२
परं परस्यापि परं निधानं
परं परस्यापि परं पवित्रम्।
परं परस्यापि परं च दान्तं
त्वामाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम्॥ १०३
एवमुक्त्वा तु भगवान् सर्वलोकपितामहः।
स्तुत्वा नारायणं देवं ब्रह्मलोकं गतः प्रभुः॥ १०४
ततो नदत्सु तूर्येषु नृत्यन्तीष्वप्सरःसु च।
क्षीरोदस्योत्तरं कूलं जगाम हरिरीश्वरः॥ १०५
नारसिंहं वपुर्देवः स्थापयित्वा सुदीप्तिमत्।
पौराणं रूपमास्थाय प्रययौ गरुडध्वजः॥ १०६
अष्टचक्रेण यानेन भूतयुक्तेन भास्वता।
अव्यक्तप्रकृतिर्देवः स्वस्थानं गतवान् प्रभुः॥ १०७

जो परात्पर रहस्य, परात्पर महत्त्व और परात्पर महत्तत्त्व है, वह सब आप अग्रजन्मा पुराणपुरुषको ही कहा जाता है। आप सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुषको परसे भी परम निधान, परसे भी परम पवित्र और परसे भी परम उदार कहा जाता है। ऐसा कहकर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह सामर्थ्यशाली भगवान् ब्रह्मा नारायणदेवकी स्तुति कर ब्रह्मलोकको चले गये। उस समय तुरहियाँ बज रही थीं और अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं। इसी बीच जगदीश्वर श्रीहरि क्षीरसागरके उत्तर तटपर जानेके लिये उद्यत हुए। वहाँसे जाते समय भगवान् गरुडध्वजने परम कान्तिमान् उस नरसिंह-शरीरको जगत्‌में स्थापित कर अपने पुराने रूपको धारण कर लिया था। फिर अव्यक्त प्रकृतिवाले भगवान् विष्णु पञ्चभूतोंसे युक्त एवं चमकीले आठ पहियेवाले रथपर सवार हो अपने निवास स्थानको चले गये॥ ९८—१०७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे हिरण्यकशिपुवधो नाम त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें हिरण्यकशिपु-वध नामक एक सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६३॥

एक सौ चौंसठवाँ अध्याय

पद्मोद्भवके प्रसङ्गमें मनुद्वारा भगवान् विष्णुसे सृष्टिसम्बन्धी विविध प्रश्न और भगवान्‌का उत्तर

ऋषय ऊचुः

कथितं नरसिंहस्य माहात्म्यं विस्तरेण च।
पुनस्तस्यैव माहात्म्यमन्यद्विस्तरतो वद॥ १
पद्मरूपमभूदेतत् कथं हेममयं जगत्।
कथं च वैष्णवी सृष्टिः पद्ममध्येऽभवत् पुरा॥ २

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आप भगवान् नरसिंहके माहात्म्यका तो विस्तारपूर्वक वर्णन कर चुके, अब पुनः उन्हीं भगवान्‌के दूसरे माहात्म्यको विस्तारपूर्वक बतलाइये। भला, पूर्वकालमें स्वर्णमय कमलसे यह जगत् कैसे उत्पन्न हुआ था और उस कमलमेंसे वैष्णवी सृष्टि कैसे प्रादुर्भूत हुई थी?॥ १-२॥

सूत उवाच

श्रुत्वा च नरसिंहस्य माहात्म्यं रविनन्दनः।
विस्मयोत्फुल्लनयनः पुनः पप्रच्छ केशवम्॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् नरसिंहके माहात्म्यको सुनकर सूर्यपुत्र मनुके नेत्र आश्चर्यसे उत्फुल्ल हो उठे, तब उन्होंने पुनः भगवान् केशवसे प्रश्न किया॥ ३॥

मनुरुवाच

कथं पाद्मे महाकल्पे तव पद्ममयं जगत्।
जलार्णवगतस्येह नाभौ जातं जनार्दन॥ ४

मनुने पूछा—जनार्दन! 'पाद्मकल्प' में जब आप इस जलार्णवके मध्यमें स्थित थे, तब आपकी नाभिसे यह पद्ममय जगत् कैसे उत्पन्न हुआ था?

प्रभावात् पद्मनाभस्य स्वपतः सागराम्भसि।
पुष्करे च कथं भूता देवाः सर्षिगणाः पुरा॥ ५

एनमाख्याहि निखिलं योगं योगविदां पते।
शृण्वतस्तस्य मे कीर्तिं न तृप्तिरुपजायते॥ ६

कियता चैव कालेन शेते वै पुरुषोत्तमः।
कियन्तं वा स्वपिति च कोऽस्य कालस्य सम्भवः॥ ७

कियता वाथ कालेन ह्युत्तिष्ठति महायशाः।
कथं चोत्थाय भगवान् सृजते निखिलं जगत्॥ ८

के प्रजापतयस्तावदासन् पूर्वं महामुने।
कथं निर्मितवांश्चैव चित्रं लोकं सनातनम्॥ ९

कथमेकार्णवे शून्ये नष्टस्थावरजङ्गमे।
दग्धे देवासुरनरे प्रनष्टोरगराक्षसे॥ १०

नष्टानिलानले लोके नष्टाकाशमहीतले।
केवलं गह्वरीभूते महाभूतविपर्यये॥ ११

विभुर्महाभूतपतिर्महातेजा महाकृतिः।
आस्ते सुरवरश्रेष्ठो विधिमास्थाय योगवित्॥ १२

शृणुयां परया भक्त्या ब्रह्मन्नेतदशेषतः।
वक्तुमर्हसि धर्मिष्ठ यशो नारायणात्मकम्॥ १३

श्रद्धया चोपविष्टानां भगवन् वक्तुमर्हसि॥ १४

मत्स्य उवाच

नारायणस्य यशसः श्रवणे या तव स्पृहा।
तद्वंश्यान्वयभूतस्य न्याय्यं रविकुलर्षभ॥ १५

शृणुष्वादिपुराणेषु वेदेभ्यश्च यथा श्रुतम्।
ब्राह्मणानां च वदतां श्रुत्वा वै सुमहात्मनाम्॥ १६

यथा च तपसा दृष्ट्वा बृहस्पतिसमद्युतिः।
पराशरसुतः श्रीमान् गुरुर्द्वैपायनोऽब्रवीत्॥ १७

तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाशक्ति यथाश्रुति।
यद्विज्ञातुं मया शक्यमृषिमात्रेण सत्तमाः॥ १८

कः समुत्सहते ज्ञातुं परं नारायणात्मकम्।
विश्वायनश्च यद् ब्रह्मा न वेदयति तत्त्वतः॥ १९

पूर्वकालमें समुद्रके जलमें शयन करनेवाले भगवान् पद्मनाभके प्रभावसे उस कमलमें ऋषिगणोंसहित देवगण कैसे उत्पन्न हुए थे? योगवेत्ताओंके अधीश्वर! इस सम्पूर्ण योगका वर्णन कीजिये; क्योंकि भगवान्‌की कीर्तिका वर्णन सुनते हुए मुझे तृप्ति नहीं हो रही है। (कृपया यह बतलाइये कि) भगवान् पुरुषोत्तम कितने समयके पश्चात् शयन करते हैं? कितने कालतक सोते हैं? इस कालका उद्भव (निर्धारण) कहाँसे होता है? फिर वे महायशस्वी भगवान् कितने समयके बाद निद्रा त्यागकर उठते हैं? निद्रासे उठकर वे भगवान् किस प्रकार सम्पूर्ण जगत्‌की सृष्टि करते हैं? महामुने! पूर्वकालमें कौन-कौन-से प्रजापति थे? इस विचित्र सनातन लोकका निर्माण किस प्रकार किया गया था? महाप्रलयके समय जब स्थावर-जङ्गम—सभी प्राणी नष्ट हो जाते हैं, देवता, राक्षस और मनुष्य जलकर भस्म हो जाते हैं, नागों और राक्षसोंका विनाश हो जाता है, लोकमें अग्नि, वायु, आकाश और पृथ्वीतलका सर्वथा लोप हो जाता है, उस समय पञ्चमहाभूतोंका विपर्यय हो जानेपर केवल घना अन्धकार छाया रहता है, तब उस शून्य एकार्णवके जलमें सर्वव्यापी, पञ्चमहाभूतोंके स्वामी, महातेजस्वी, विशालकाय, सुरेश्वरोंमें श्रेष्ठ एवं योगवेत्ता भगवान् किस प्रकार विधिका सहारा लेकर स्थित रहते हैं? ब्रह्मन्! यह सारा प्रसङ्ग मैं परम भक्तिके साथ सुनना चाहता हूँ। धर्मिष्ठ! आप इस नारायण-सम्बन्धी यशका वर्णन कीजिये। भगवन्! हमलोग श्रद्धापूर्वक आपके समक्ष बैठे हैं, अतः आप इसका अवश्य वर्णन कीजिये॥ ४—१४॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा— सूर्यकुलसत्तम! नारायणकी यशोगाथा सुननेमें जो आपकी विशेष स्पृहा है, यह नारायणके वंशजोंके कुलमें उत्पन्न होनेवाले आपके लिये उचित ही है। मैंने पुराणों, वेदों तथा प्रवचनकर्ता श्रेष्ठ महात्मा ब्राह्मणोंके मुखसे जैसा सुना है तथा बृहस्पतिके समान कान्तिमान् पराशरनन्दन गुरुदेव श्रीमान् कृष्णद्वैपायन व्यासजीने तपोबलसे साक्षात्कार करके जैसा मुझे बतलाया है, वही मैं अपनी जानकारीके अनुसार यथाशक्ति आपसे वर्णन कर रहा हूँ, सावधानीपूर्वक श्रवण कीजिये। द्विजवरो! जिसे ऋषियोंमें केवल मैं ही जान सकता हूँ। जिसे विश्वके आश्रयस्थान ब्रह्मा भी तत्त्वपूर्वक नहीं जानते, नारायणके उस परम तत्त्वको जाननेके लिये दूसरा कौन उत्साह कर सकता है।

तत्कर्म विश्ववेदानां तद्रहस्यं महर्षिणाम्।
तमिज्यं सर्वयज्ञानां तत्तत्त्वं सर्वदर्शिनाम्।
तदध्यात्मविदां चिन्त्यं नरकं च विकर्मिणाम्॥ २०

अधिदैवं च यद्दैवमधियज्ञं सुसंज्ञितम्।
तद्भूतमधिभूतं च तत्परं परमर्षिणाम्॥ २१
स यज्ञो वेदनिर्दिष्टस्तत्तपः कवयो विदुः।
यः कर्ता कारको बुद्धिर्मनः क्षेत्रज्ञ एव च॥ २२

प्रणवः पुरुषः शास्ता एकश्चेति विभाव्यते।
प्राणः पञ्चविधश्चैव ध्रुव अक्षर एव च॥ २३

कालः पाकश्च पक्ता च द्रष्टा स्वाध्याय एव च।
उच्यते विविधैर्देवः स एवायं न तत्परम्॥ २४

स एव भगवान् सर्वं करोति विकरोति च।
सोऽस्मान् कारयते सर्वान् सोऽत्येति व्याकुलीकृतान्॥ २५

यजामहे तमेवाद्यं तमेवेच्छाम निर्वृताः।
यो वक्ता यच्च वक्तव्यं यच्चाहं तद् ब्रवीमि वः॥ २६

श्रूयते यच्च वै श्राव्यं यच्चान्यत् परिजल्प्यते।
याः कथाश्चैव वर्तन्ते श्रुतयो वाथ तत्पराः।
विश्वं विश्वपतिर्यश्च स तु नारायणः स्मृतः॥ २७

यत्सत्यं यदमृतमक्षरं परं यत्-
यद्भूतं परममिदं च यद्भविष्यत्।
यत् किंचिच्चरमचरं यदस्ति चान्यत्
तत् सर्वं पुरुषवरः प्रभुः पुराणः॥ २८

वही समस्त वेदोंका कर्म है। वही महर्षियोंका रहस्य है। सम्पूर्ण यज्ञोंद्वारा पूजनीय वही है। वही सर्वज्ञोंका तत्त्व है। अध्यात्मवेत्ताओंके लिये वही चिन्तनीय और कुकर्मियोंके लिये नरकस्वरूप है। उसीको अधिदेव, देव और अधियज्ञ नामसे अभिहित किया जाता है। वही भूत, अधिभूत और परमर्षियोंका परम तत्त्व है॥ १५—२१॥

वेदोंद्वारा निर्दिष्ट यज्ञ वही है। विद्वान्‌लोग उसे तपरूपसे जानते हैं। जो कर्ता, कारक, बुद्धि, मन, क्षेत्रज्ञ, प्रणव, पुरुष, शास्ता और अद्वितीय कहा जाता है तथा विभिन्न देवता जिसे पाँच प्रकारका प्राण, अविनाशी ध्रुव, काल, पाक, पक्ता (पचानेवाला), द्रष्टा और स्वाध्याय कहते हैं, वह यही है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है। वे ही भगवान् सम्पूर्ण जगत्‌के उत्पादक हैं और वे ही संहारक भी हैं। वे ही हम सब लोगोंको उत्पन्न करते हैं और अन्तमें व्याकुल करके नष्ट कर देते हैं। हमलोग उन्हीं आदि पुरुषकी यज्ञद्वारा आराधना करते हैं और निवृत्तिपरायण होकर उन्हींको प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। जो वक्ता है, जो वक्तव्य है, जिसके विषयमें मैं आपलोगोंसे कह रहा हूँ, जो सुना जाता है, जो सुनने योग्य है, जिसके विषयमें अन्य सारी बातें कही जाती हैं, जो कथाएँ प्रचलित हैं, श्रुतियाँ जिसके परायण हैं, जो विश्वस्वरूप और विश्वका स्वामी है, वही नारायण कहा गया है। जो सत्य है, जो अमृत है, जो अक्षर है, जो परात्पर है, जो भूत है और जो भविष्यत् है, जो चर-अचर जगत् है, इसके अतिरिक्त अन्य जो कुछ है, वह सब कुछ सामर्थ्यशाली एवं सर्वश्रेष्ठ पुराणपुरुष ही है॥ २२—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६४॥

एक सौ पैंसठवाँ अध्याय

चारों युगोंकी व्यवस्थाका वर्णन

मत्स्य उवाच

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तु कृतं युगम्।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा रविनन्दन॥ १
यत्र धर्मश्चतुष्पादस्त्वधर्मः पादविग्रहः।
स्वधर्मनिरताः सन्तो जायन्ते यत्र मानवाः॥ २
विप्राः स्थिता धर्मपरा राजवृत्तौ स्थिता नृपाः।
कृष्यामभिरता वैश्याः शूद्राः शुश्रूषवः स्थिताः॥ ३
तदा सत्यं च शौचं च धर्मश्चैव विवर्धते।
सद्भिराचरितं कर्म क्रियते ख्यायते च वै॥ ४
एतत्कार्तयुगं वृत्तं सर्वेषामपि पार्थिव।
प्राणिनां धर्मसङ्गानामपि वै नीचजन्मनाम्॥ ५
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायुगमिहोच्यते।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा परिकीर्त्यते॥ ६
द्वाभ्यामधर्मः पादाभ्यां त्रिभिर्धर्मो व्यवस्थितः।
यत्र सत्यं च सत्त्वं च त्रेताधर्मो विधीयते॥ ७
त्रेतायां विकृतिं यान्ति वर्णास्त्वेते न संशयः।
चतुर्वर्णस्य वैकृत्याद्यान्ति दौर्बल्यमाश्रमाः॥ ८
एषा त्रेतायुगगतिर्विचित्रा देवनिर्मिता।
द्वापरस्य तु या चेष्टा तामपि श्रोतुमर्हसि॥ ९
द्वापरं द्वे सहस्रे तु वर्षाणां रविनन्दन।
तस्य तावच्छती संध्या द्विगुणा युगमुच्यते॥ १०
तत्र चार्थपराः सर्वे प्राणिनो रजसा हताः।
सर्वे नैष्कृतिकाः क्षुद्रा जायन्ते रविनन्दन॥ ११
द्वाभ्यां धर्मः स्थितः पद्भ्यामधर्मस्त्रिभिरुत्थितः।
विपर्ययाच्छनैर्धर्मः क्षयमेति कलौ युगे॥ १२
ब्राह्मण्यभावस्य ततस्तथौत्सुक्यं विशीर्यते।
व्रतोपवासास्त्यज्यन्ते द्वापरे युगपर्यये॥ १३

मत्स्यभगवान्ने कहा—रविनन्दन! कृतयुगकी अवधि चार हजार दिव्य वर्षोंकी बतलायी जाती है और उसकी संध्या उससे दुगुनी शती अर्थात् आठ सौ वर्षोंकी होती है। उस युगमें धर्म अपने चारों पादोंसे विद्यमान रहता है और अधर्म चतुर्थांशमात्र रहता है। उस युगमें उत्पन्न होनेवाले मानव अपने धर्ममें निरत रहते हैं। ब्राह्मण धर्म-पालनमें तत्पर रहते हैं। क्षत्रिय राजधर्ममें स्थित रहते हैं। वैश्य कृषिकर्ममें लगे रहते हैं और शूद्र सेवाकार्यमें तल्लीन रहते हैं। उस समय सत्य, शौच और धर्मकी अभिवृद्धि होती है। सभी लोग सत्पुरुषोंद्वारा आचरित कर्मका अनुकरण करते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। पार्थिव! कृतयुगका यह आचार सभी प्राणियोंमें पाया जाता है, चाहे वे धर्मप्राण विप्र आदि हों अथवा नीच जातिके हों। इसके बाद तीन हजार दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग कहलाता है। उसकी संध्या उससे दुगुनी शती अर्थात् छः सौ वर्षकी कही गयी है। इस युगमें धर्म तीन चरणोंसे और अधर्म दो पादोंसे स्थित रहता है। उस समय त्रेताधर्म सत्य और सत्त्वगुणप्रधान माना जाता है। इसमें संदेह नहीं कि त्रेतायुगमें ये ब्राह्मणादि चारों वर्ण (कुछ) विकृत हो जाते हैं और इनके विकृत हो जानेके कारण चारों आश्रम भी दुर्बलताको प्राप्त हो जाते हैं। भगवान्‌द्वारा निर्मित त्रेतायुगकी यह विचित्र गति है। अब द्वापरयुगकी जो चेष्टा है, उसे भी सुनिये॥ १—९॥

रविनन्दन! द्वापरयुग दो हजार दिव्य वर्षोंका होता है। उसकी संध्या चार सौ वर्षोंकी कही जाती है। सूर्यपुत्र! उस युगमें रजोगुणसे ग्रस्त सभी प्राणी अर्थपरायण होते हैं। उस युगमें जन्म लेनेवाले सभी प्राणी निष्कर्मी एवं क्षुद्र विचारवाले होते हैं। उस समय धर्म दो चरणोंसे स्थित रहता है और अधर्मकी वृद्धि तीन चरणोंसे होती है। इस प्रकार धीरे-धीरे परिवर्तन होनेके कारण कलियुगमें धर्म नष्ट हो जाता है। द्वापरयुगके परिवर्तनके समय लोगोंमें ब्राह्मणोंके प्रति आस्था नष्ट हो जाती है और लोग व्रत-उपवास आदिको छोड़ बैठते हैं। उस समय

तथा वर्षसहस्रं तु वर्षाणां द्वे शते अपि।
संध्यया सह संख्यातं क्रूरं कलियुगं स्मृतम्॥ १४

यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद् धर्मः पादविग्रहः।
कामिनस्तपसा हीना जायन्ते तत्र मानवाः॥ १५

नैवातिसात्त्विकः कश्चिन्न साधुर्न च सत्यवाक्।
नास्तिका ब्रह्मभक्ता वा जायन्ते तत्र मानवाः॥ १६

अहंकारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबन्धनाः।
विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे॥ १७

आश्रमाणां विपर्यासः कलौ सम्परिवर्तते।
वर्णानां चैव संदेहो युगान्ते रविनन्दन॥ १८

क्रूर कलियुगका प्रवेश होता है, जिसकी संख्या संध्याके दो सौ वर्षोंसहित एक हजारकी बतलायी गयी है। उस युगमें अधर्म चारों पादोंसे प्रभावी हो जाता है और धर्म चतुर्थांशमात्र रह जाता है। उस युगमें जन्म लेनेवाले मानव कामपरायण और तपस्यासे हीन होते हैं। कलियुगमें उत्पन्न होनेवाले मानवोंमें न तो कोई अत्यन्त सात्त्विक होता है और न साधुस्वभाव एवं सत्यवादी ही होता है। सभी नास्तिक हो जाते हैं और अपनेको परब्रह्मका भक्त बतलाते हैं। लोग अहंकारके वशीभूत और प्रेमबन्धनसे रहित हो जाते हैं। कलियुगमें सभी ब्राह्मण शूद्रके समान आचरण करने लगते हैं। रविनन्दन! कलियुगमें आश्रमोंमें भी परिवर्तन हो जाता है। युगान्तका समय आनेपर तो लोगोंमें वर्णोंका भी संदेह उत्पन्न हो जाता है॥ १०—१८॥

विद्याद् द्वादशसाहस्त्रीं युगाख्यां पूर्वनिर्मिताम्।
एवं सहस्रपर्यन्तं तदहर्ब्राह्ममुच्यते॥ १९

ततोऽहनि गते तस्मिन् सर्वेषामेव जीविनाम्।
शरीरनिर्वृतिं दृष्ट्वा लोकसंहारबुद्धितः॥ २०

देवतानां च सर्वासां ब्रह्मादीनां महीपते।
दैत्यानां दानवानां च यक्षराक्षसपक्षिणाम्॥ २१

गन्धर्वाणामप्सरसां भुजङ्गानां च पार्थिव।
पर्वतानां नदीनां च पशूनां चैव सत्तम।
तिर्यग्योनिगतानां च सत्त्वानां कृमिणां तथा॥ २२

महाभूतपतिः पञ्च हत्वा भूतानि भूतकृत्।
जगत्संहरणार्थाय कुरुते वशसं महत्॥ २३

भूत्वा सूर्यश्चक्षुषी चाददानो
भूत्वा वायुः प्राणिनां प्राणजालम्।
भूत्वा वह्निर्निर्दहन् सर्वलोकान्
भूत्वा मेघो भूय उग्रोऽप्यवर्षत्॥ २४

महीपते! इस प्रकार पूर्वकालमें निर्मित बारह हजारकी युग-संख्या जाननी चाहिये। इस प्रकार जब एक हजार चतुर्युगी बीत जाती है, तब ब्रह्माका एक दिन कहा जाता है। ब्रह्माके उस दिनके व्यतीत हो जानेपर जीवोंके उत्पादक महाभूतपति श्रीहरि सभी प्राणियोंके शरीर-मोक्षको देखकर लोकसंहारकी भावनासे ब्रह्मा आदि सभी देवताओं, दैत्यों, दानवों, यक्षों, राक्षसों, पक्षियों, गन्धर्वों, अप्सराओं, नागों, पर्वतों, नदियों, पशुओं, तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए जीवों तथा कीटोंके पञ्चमहाभूतोंका विनाश कर जगत्का संहार करनेके निमित्त महान् विनाशकारी दृश्य उत्पन्न कर देते हैं। उस समय वे सूर्य बनकर सभीके नेत्रोंकी ज्योति नष्ट कर देते हैं, वायुरूप होकर जीवोंके प्राणसमूहको समेट लेते हैं, अग्निका रूप धारणकर सभी लोकोंको जलाकर भस्म कर देते हैं तथा मेघ बनकर पुनः भयंकर वृष्टि करते हैं॥ १९—२४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रसङ्गमें एक सौ पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६५॥

एक सौ छाछठवाँ अध्याय

महाप्रलयका वर्णन

मत्स्य उवाच

भूत्वा नारायणो योगी सत्त्वमूर्तिर्विभावसुः।
गभस्तिभिः प्रदीप्ताभिः संशोषयति सागरान्॥ १

ततः पीत्वार्णवान् सर्वान् नदीः कूपांश्च सर्वशः।
पर्वतानां च सलिलं सर्वमादाय रश्मिभिः॥ २

भित्त्वा गभस्तिभिश्चैव महीं गत्वा रसातलात्।
पातालजलमादाय पिबते रसमुत्तमम्॥ ३

मूत्रासृक् क्लेदमन्यच्च यदस्ति प्राणिषु ध्रुवम्।
तत्सर्वमरविन्दाक्ष आदत्ते पुरुषोत्तमः॥ ४

वायुश्च भगवान् भूत्वा विधुन्वानोऽखिलं जगत्।
प्राणापानसमानाद्यान् वायूनाकर्षते हरिः॥ ५

ततो देवगणाः सर्वे भूतान्येव च यानि तु।
गन्धो घ्राणं शरीरं च पृथिवीं संश्रिता गुणाः॥ ६

जिह्वा रसश्च स्नेहश्च संश्रिताः सलिले गुणाः।
रूपं चक्षुर्विपाकश्च ज्योतिरेवाश्रिता गुणाः॥ ७

स्पर्शः प्राणश्च चेष्टा च पवने संश्रिता गुणाः।
शब्दः श्रोत्रं च खान्येव गगने संश्रिता गुणाः॥ ८

लोकमाया भगवता मुहूर्तेन विनाशिता।
मनो बुद्धिश्च सर्वेषां क्षेत्रज्ञश्चेति यः श्रुतः॥ ९

तं वरेण्यं परमेष्ठी हृषीकेशमुपाश्रितः।
ततो भगवतस्तस्य रश्मिभिः परिवारितः॥ १०

वायुनाक्रम्यमाणासु द्रुमशाखासु चाश्रितः।
तेषां संघर्षणोद्भूतः पावकः शतधा ज्वलन्॥ ११

अदहच्च तदा सर्वं वृतः संवर्तकोऽनलः।
सपर्वतद्रुमान् गुल्माँल्लतावल्लीस्तृणानि च॥ १२

विमानानि च दिव्यानि पुराणि विविधानि च।
यानि चाश्रयणीयानि तानि सर्वाणि सोऽदहत्॥ १३

भस्मीकृत्य ततः सर्वाँल्लोकाँल्लोकगुरुर्हरिः।
भूयो निर्वापयामास युगान्तेन च कर्मणा॥ १४

मत्स्यभगवान‍्ने कहा—रविनन्दन! तदनन्तर वे सत्त्वमूर्ति योगी नारायण सूर्यका रूप धारण कर अपनी उद्दीप्त किरणोंसे सागरोंको सोख लेते हैं। इस प्रकार सभी सागरोंको सुखा देनेके पश्चात् अपनी किरणोंद्वारा नदियों, कुओं और पर्वतोंका सारा जल खींच लेते हैं। फिर वे किरणोंद्वारा पृथ्वीका भेदन करके रसातलमें जा पहुँचते हैं और वहाँ पातालके उत्तम रसरूप जलका पान करते हैं। तत्पश्चात् कमलनयन पुरुषोत्तम नारायण प्राणियोंके शरीरमें निश्चितरूपसे रहनेवाले मूत्र, रक्त, मज्जा तथा अन्य जो गीले पदार्थ होते हैं, उन सबके रसको ग्रहण कर लेते हैं। तदुपरान्त भगवान् श्रीहरि वायुरूप होकर सम्पूर्ण जगत‍्को प्रकम्पित करते हुए प्राण, अपान, समान, उदान और व्यानरूप पाँचों प्राणवायुओंको खींच लेते हैं। तदनन्तर सभी देवगण, पाँचों महाभूत, गन्ध, प्राण, शरीर—ये सभी गुण पृथ्वीमें विलीन हो जाते हैं। जिह्वा, रस, स्नेह (चिकनाहट)—ये सभी गुण जलमें लीन हो जाते हैं। रूप, चक्षु, विपाक (परिणाम)—ये गुण अग्निमें मिल जाते हैं। स्पर्श, प्राण, चेष्टा—ये सभी गुण वायुका आश्रय ग्रहण कर लेते हैं। शब्द, श्रोत्र, इन्द्रियाँ—ये सभी गुण आकाशमें विलीन हो जाते हैं। इस प्रकार भगवान् नारायण दो ही घड़ीमें सारी लोकमायाको विनष्ट कर देते हैं॥ १—८ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर जो सभी प्राणियोंका मन, बुद्धि और क्षेत्रज्ञ कहा जाता है, वह अग्नि उन सर्वश्रेष्ठ हृषीकेशके निकट पहुँचता है और उन भगवान‍्की किरणोंसे युक्त हो वायुद्वारा आक्रान्त वृक्षोंकी शाखाओंका आश्रय ग्रहण करता है। वहाँ वृक्षोंके संघर्षसे उत्पन्न हुई वह अग्नि सैकड़ों ज्वालाएँ फेंकने लगती है। फिर उससे घिरा हुआ संवर्तक अग्नि सबको जलाना आरम्भ करती है। वह पर्वतीय वृक्षोंसहित गुल्मों, लताओं, वल्लियों, घास-फूसों, दिव्य विमानों, अनेकों नगरों तथा अन्यान्य जो आश्रय लेनेयोग्य स्थान होते हैं, उन सबको जलाकर भस्म कर देती है। इस प्रकार लोकोंके गुरुस्वरूप श्रीहरि समस्त लोकोंको जलाकर पुनः युगान्तकालिक कर्मद्वारा समूची सृष्टिका विनाश कर देते

सहस्रवृष्टिः शतधा भूत्वा कृष्णो महाबलः।
दिव्यतोयेन हविषा तर्पयामास मेदिनीम्॥ १५

ततः क्षीरनिकायेन स्वादुना परमाम्भसा।
शिवेन पुण्येन मही निर्वाणमगमत्परम्॥ १६

तेन रोधेन संछन्ना पयसां वर्षतो धरा।
एकार्णवजलीभूता सर्वसत्त्वविवर्जिता॥ १७

हैं। तदुपरान्त महाबली विष्णु सैकड़ों-हजारों प्रकारकी वृष्टिका रूप धारण कर दिव्य जलरूपी हविसे पृथ्वीको तृप्त कर देते हैं। तब उस दूध-सदृश स्वादिष्ट कल्याणकारक पुण्यमय उत्तम जलसे पृथ्वी परम शान्त हो जाती है। बरसते हुए जलके उस घेरेसे आच्छादित हुई पृथ्वी समस्त प्राणियोंसे रहित हो एकार्णवके जलके रूपमें परिणत हो जाती है॥ ९—१७॥

महासत्त्वान्यपि विभुं प्रविष्टान्यमितौजसम्।
नष्टार्कपवनाकाशे सूक्ष्मे जगति संवृते॥ १८

संशोषमात्मना कृत्वा समुद्रानपि देहिनः।
दग्ध्वा सम्प्लाव्य च तथा स्वपित्येकः सनातनः॥ १९

पौराणं रूपमास्थाय स्वपित्यमितविक्रमः।
एकार्णवजलव्यापी योगी योगमुपाश्रितः॥ २०

अनेकानि सहस्राणि युगान्येकार्णवाम्भसि।
न चैनं कश्चिदव्यक्तं व्यक्तं वेदितुमर्हति॥ २१

कश्चैव पुरुषो नाम किं योगः कश्च योगवान्।
असौ कियन्तं कालं च एकार्णवविधिं प्रभुः।
करिष्यतीति भगवानिति कश्चिन्न बुध्यते॥ २२

न द्रष्टा नैव गमिता न ज्ञाता नैव पार्श्वगः।
तस्य न ज्ञायते किंचित्तमृते देवसत्तमम्॥ २३

नभः क्षितिं पवनमपः प्रकाशं
प्रजापतिं भुवनधरं सुरेश्वरम्।
पितामहं श्रुतिनिलयं महामुनिं
प्रशाम्य भूयः शयनं ह्यरोचयत्॥ २४

उस समय सूर्य, वायु और आकाशके नष्ट हो जानेपर तथा सूक्ष्म जगत्‌के आच्छादित हो जानेपर महान्-से-महान् जीव-जन्तु भी अमित ओजस्वी एवं सर्वव्यापी नारायणमें प्रविष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार वे सनातन भगवान् स्वयं अपने द्वारा समुद्रोंको सुखाकर, देहधारियोंको जलाकर तथा पृथ्वीको जलमें निमग्न करके अकेले शयन करते हैं। अमित पराक्रमी, एकार्णवके जलमें व्याप्त रहनेवाले एवं योगबलसम्पन्न नारायण योगका आश्रय ले उस एकार्णवके जलमें अपना पुराना रूप धारण कर अनेकों हजार युगोंतक शयन करते हैं। उस समय कोई भी इन अव्यक्त नारायणको व्यक्तरूपसे नहीं जान सकता। वह पुरुष कौन है? उसका क्या योग है? वह किस योगसे युक्त है? वे सामर्थ्यशाली भगवान् कितने समयतक इस एकार्णवके विधानको करेंगे? इसे कोई नहीं जानता। उस समय न कोई उन्हें देख सकता है, न कोई वहाँ जा सकता है, न कोई उन्हें जान सकता है और न कोई उनके निकट पहुँच सकता है। उन देवश्रेष्ठके अतिरिक्त दूसरा कोई भी उनके विषयमें कुछ भी नहीं जान सकता। इस प्रकार आकाश, पृथ्वी, वायु, जल, अग्नि, प्रजापति, पर्वत, सुरेश्वर, पितामह ब्रह्मा, वेदसमूह और महर्षि—इन सबको प्रशान्त कर वे पुनः शयनकी इच्छा करते हैं॥ १८—२४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६६॥

एक सौ सड़सठवाँ अध्याय

भगवान् विष्णुका एकार्णवके जलमें शयन, मार्कण्डेयको आश्चर्य तथा भगवान् विष्णु और मार्कण्डेयका संवाद

मत्स्य उवाच

एवमेकार्णवीभूते शेते लोके महाद्युतिः।
प्रच्छाद्य सलिलेनोर्वीं हंसो नारायणस्तदा॥ १
महतो रजसो मध्ये महार्णवसरःसु वै।
विरजस्कं महाबाहुमक्षयं ब्रह्म यं विदुः॥ २
आत्मरूपप्रकाशेन तमसा संवृतः प्रभुः।
मनः सात्त्विकमाधाय यत्र तत्सत्यमासत॥ ३
याथातथ्यं परं ज्ञानं भूतं तद् ब्रह्मणा पुरा।
रहस्यारण्यकोद्दिष्टं यच्चौपनिषदं स्मृतम्॥ ४
पुरुषो यज्ञ इत्येतद्यत्परं परिकीर्तितम्।
यश्चान्यः पुरुषाख्यः स्यात् स एष पुरुषोत्तमः॥ ५
ये च यज्ञकरा विप्रा ये चर्त्विज इति स्मृताः।
अस्मादेव पुरा भूता यज्ञेभ्यः श्रूयतां तथा॥ ६
ब्रह्माणं प्रथमं वक्त्रादुद्गातारं च सामगम्।
होतारमपि चाध्वर्युं बाहुभ्यामसृजत् प्रभुः॥ ७
ब्रह्मणो ब्राह्मणाच्छंसि प्रस्तोतारं च सर्वशः।
तौ मित्रावरुणौ पृष्ठात् प्रतिप्रस्तारमेव च॥ ८
उदरात् प्रतिहर्तारं पोतारं चैव पार्थिव।
अच्छावाकमथोरुभ्यां नेष्टारं चैव पार्थिव॥ ९
पाणिभ्यामथ चाग्नीध्रं सुब्रह्मण्यं च जानुतः।
ग्रावस्तुतं तु पादाभ्यामुन्नेतारं च याजुषम्॥ १०

मत्स्यभगवान्ने कहा— राजर्षे! इस प्रकार जगत्के एकार्णवके जलमें निमग्न हो जानेपर परम कान्तिमान् हंसस्वरूपी नारायण पृथ्वीको जलसे भलीभाँति आच्छादित कर विशाल रेतीले टापूके मध्यमें स्थित उस महार्णवके सरोवरमें शयन करते हैं। उन्हीं महाबाहुको रजोगुणरहित अविनाशी ब्रह्म कहा जाता है। अन्धकारसे आच्छादित हुए भगवान् अपने स्वरूपके प्रकाशसे प्रकाशित हो मनको सत्त्वगुणमें स्थापितकर वहाँ विराजित होते हैं। वे ही सत्यस्वरूप हैं। यथार्थ परम ज्ञान भी वे ही हैं, जिसका पूर्वकालमें ब्रह्माने अनुभव किया था। वे ही आरण्यकोंद्वारा उपदिष्ट रहस्य और उपनिषत्प्रतिपादित ज्ञान हैं। उन्हींको परमोत्कृष्ट यज्ञपुरुष कहा गया है। इसके अतिरिक्त जो दूसरा पुरुष नामसे विख्यात है, वह पुरुषोत्तम भी वे ही हैं। जो यज्ञपरायण ब्राह्मण और जो ऋत्विज् कहे गये हैं, वे सभी पूर्वकालमें इन्हींसे उत्पन्न हुए थे। अब यज्ञोंके विषयमें सुनिये। राजन्! उन प्रभुने सर्वप्रथम मुखसे ब्रह्मा और सामगान करनेवाले उद्गाताको, दोनों भुजाओंसे होता और अध्वर्युको, ब्रह्मासे ब्राह्मणाच्छंसी और प्रस्तोताको, पृष्ठभागसे मैत्रावरुण और प्रतिप्रस्तोताको, उदरसे प्रतिहर्ता और पोताको, ऊरुओंसे अच्छावाक् और नेष्टाको, हाथोंसे आग्नीध्रको, जानुओंसे सुब्रह्मण्यको तथा पैरोंसे ग्रावस्तुत और यजुर्वेदी उन्नेताको उत्पन्न किया॥ १—१०॥

एवमेवैष भगवान् षोडशैव जगत्पतिः।
प्रवक्तॄन् सर्वयज्ञानामृत्विजोऽसृजदुत्तमान्॥ ११
तदेष वै वेदमयः पुरुषो यज्ञसंस्थितः।
वेदाश्चैतन्मयाः सर्वे साङ्गोपनिषदक्रियाः॥ १२
स्वपित्येकार्णवे चैव यदाश्चर्यमभूत् पुरा।
श्रूयतां तद्यथा विप्रा मार्कण्डेयकुतूहलम्॥ १३
गीर्णो भगवतस्तस्य कुक्षावेव महामुनिः।
बहुवर्षसहस्रायुस्तस्यैव वरतेजसा॥ १४

इस प्रकार इन जगदीश्वर भगवान्ने सम्पूर्ण यज्ञोंके प्रवक्ता सोलह श्रेष्ठ ऋत्विजोंको उत्पन्न किया। ये ही वेदमय पुरुष यज्ञोंमें भी स्थित रहते हैं। सभी वेद और उपनिषदोंकी साङ्गोपाङ्ग क्रियाएँ इन्हींके स्वरूप हैं। विप्रवरो! पूर्वकालमें एकार्णवके जलमें शयन करते समय मार्कण्डेय मुनिको कुतूहल उत्पन्न करनेवाली एक आश्चर्यजनक घटना घटित हुई थी। अब आप उसे सुनिये। भगवान्द्वारा निगले गये महामुनि मार्कण्डेय उन्हींकी कुक्षिमें उन्हींके श्रेष्ठ तेजसे कई हजार वर्षोंकी आयुतक भ्रमण करते रहे।

अटंस्तीर्थप्रसङ्गेन पृथिवीं तीर्थगोचराम्।
आश्रमाणि च पुण्यानि देवतायतनानि च॥ १५

देशान् राष्ट्राणि चित्राणि पुराणि विविधानि च।
जपहोमपरः शान्तस्तपो घोरं समास्थितः॥ १६

मार्कण्डेयस्ततस्तस्य शनैर्वक्त्राद् विनिःसृतः।
स निष्क्रामन् न चात्मानं जानीते देवमायया॥ १७

निष्क्रम्याप्यस्य वदनादेकार्णवमथो जगत्।
सर्वतस्तमसाच्छन्नं मार्कण्डेयोऽन्ववैक्षत॥ १८

तस्योत्पन्नं भयं तीव्रं संशयश्चात्मजीविते।
देवदर्शनसंहृष्टो विस्मयं परमं गतः॥ १९

वे तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे तीर्थोंको प्रकट करनेवाली पृथ्वी, पुण्यमय आश्रमों, देव-मन्दिरों, देशों, राष्ट्रों और अनेकों रमणीय नगरोंको देखते हुए जप और होममें तत्पर रहकर शान्तभावसे घोर तपस्यामें लगे हुए थे। तत्पश्चात् मार्कण्डेय मुनि धीरे-धीरे भ्रमण करते हुए भगवान्‌के मुखसे बाहर निकल आये, किंतु देवमायाके वशीभूत होनेके कारण वे अपनेको मुखसे निकला हुआ न जान सके। भगवान्‌के मुखसे बाहर निकलनेपर मार्कण्डेयजीने देखा कि सारा जगत् एकार्णवके जलमें निमग्न है और सब ओर अन्धकार छाया हुआ है। यह देखकर उनके मनमें महान् भय उत्पन्न हो गया और उन्हें अपने जीवनमें भी संशय दिखायी पड़ने लगा। इसी समय हृदयमें भगवान्‌का दर्शन होनेसे प्रसन्नता तो हुई, साथ ही महान् आश्चर्य भी हुआ॥ ११—१९॥

चिन्तयन् जलमध्यस्थो मार्कण्डेयो विशङ्कितः।
किं नु स्यान्मम चिन्तेयं मोहः स्वप्नोऽनुभूयते॥ २०

व्यक्तमन्यतमो भावस्तेषां सम्भावितो मम।
न हीदृशं जगत्क्लेशमयुक्तं सत्यमर्हति॥ २१

नष्टचन्द्रार्कपवने नष्टपर्वतभूतले।
कतमः स्यादयं लोक इति चिन्तामवस्थितः॥ २२

ददर्श चापि पुरुषं स्वपन्तं पर्वतोपमम्।
सलिलेऽर्धमथो मग्नं जीमूतमिव सागरे॥ २३

ज्वलन्तमिव तेजोभिर्गोयुक्तमिव भास्करम्।
शर्वर्यां जाग्रतमिव भासन्तं स्वेन तेजसा॥ २४

देवं द्रष्टुमिहायातः को भवानिति विस्मयात्।
तथैव स मुनिः कुक्षिं पुनरेव प्रवेशितः॥ २५

इस प्रकार जलके मध्यमें स्थित मार्कण्डेय मुनि शंकित चित्तसे विचार करने लगे कि यह मेरी आकस्मिक चिन्ता है या मेरी बुद्धिपर मोह छा गया है अथवा मैं स्वप्नका अनुभव कर रहा हूँ? परंतु यह तो स्पष्ट है कि मैं इनमेंसे किसी एक भावका अनुभव तो अवश्य कर रहा हूँ; क्योंकि इस प्रकार क्लेशसे रहित जगत् सत्य नहीं हो सकता। जब चन्द्रमा, सूर्य और वायु नष्ट हो गये तथा पर्वत और पृथ्वीका विनाश हो गया, तब यह कौन-सा लोक हो सकता है? वे इस प्रकारकी चिन्तासे ग्रस्त हो गये। इतनेमें ही उन्हें वहाँ एक पर्वत-सरीखा विशालकाय पुरुष शयन करता हुआ दीख पड़ा, जिसके शरीरका आधा भाग सागरमें बादलकी तरह जलमें डूबा हुआ था। वह अपने तेजसे किरणयुक्त सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहा था। अपने तेजसे उद्भासित होता हुआ वह रात्रिके अन्धकारमें जाग्रत्-सा दीख रहा था। तब मार्कण्डेय मुनि आश्चर्ययुक्त हो उस देवको देखनेके लिये ज्यों ही उसके निकट जाकर बोले—'आप कौन हैं?' त्यों ही उसने पुनः उन्हें अपनी कुक्षिमें समेट लिया।

सम्प्रविष्टः पुनः कुक्षिं मार्कण्डेयोऽतिविस्मयः।
तथैव च पुनर्भूयो विजानन् स्वप्नदर्शनम्॥ २६

स तथैव यथापूर्वं यो धरामटते पुरा।
पुण्यतीर्थजलोपेतां विविधान्याश्रमाणि च॥ २७

पुनः कुक्षिमें प्रविष्ट हुए मार्कण्डेयको परम विस्मय हुआ। वे बाह्य जगत्‌को पूर्ववत् स्वप्नदर्शन ही मान रहे थे। वे उस कुक्षिके अन्तर्गत जैसे पहले पृथ्वीपर विचरण कर रहे थे, उसी प्रकार पुनः भ्रमण करने लगे। उन्होंने पुण्यमय तीर्थजलसे भरी हुई नदियों, अनेकों आश्रमों तथा

क्रतुभिर्यजमानांश्च समाप्तवरदक्षिणान्।
अपश्यद्देवकुक्षिस्थान्याजकाञ्छतशो द्विजान्॥ २८

सद्वृत्तमास्थिताः सर्वे वर्णा ब्राह्मणपूर्वकाः।
चत्वारश्चाश्रमाः सम्यग्यथोद्दिष्टा मया तव॥ २९

कुक्षिके भीतर स्थित सैकड़ों याजक ब्राह्मणोंको देखा, जो कहीं यज्ञोंद्वारा यजन कर रहे थे और कहीं यज्ञ समाप्त होनेके पश्चात् उत्तम दक्षिणाओंसे युक्त थे। जैसा मैंने तुम्हें पहले बतलाया है, उसके अनुसार ब्राह्मण आदि सभी वर्णों तथा चारों आश्रमोंके लोग सम्यक् प्रकारसे सदाचारका पालन करते थे॥ २०—२९॥

एवं वर्षशतं साग्रं मार्कण्डेयस्य धीमतः।
चरतः पृथिवीं सर्वां न कुक्ष्यन्तः समीक्षितः॥ ३०

ततः कदाचिदथ वै पुनर्वक्त्राद्विनिःसृतः।
गुप्तं न्यग्रोधशाखायां बालमेकं निरैक्षत॥ ३१

तथैवैकार्णवजले नीहारेणावृताम्बरे।
अव्यग्रः क्रीडते लोके सर्वभूतविवर्जिते॥ ३२

स मुनिर्विस्मयाविष्टः कौतूहलसमन्वितः।
बालमादित्यसंकाशं नाशक्नोदभिवीक्षितुम्॥ ३३

स चिन्तयंस्तथैकान्ते स्थित्वा सलिलसन्निधौ।
पूर्वदृष्टमिदं मन्ये शङ्कितो देवमायया॥ ३४

अगाधसलिले तस्मिन् मार्कण्डेयः सुविस्मयः।
प्लवंस्तथार्तिमगमद् भयात् संत्रस्तलोचनः॥ ३५

स तस्मै भगवानाह स्वागतं बालयोगवान्।
बभाषे मेघतुल्येन स्वरेण पुरुषोत्तमः॥ ३६

मा भैर्वत्स न भेतव्यमिहैवायाहि मेऽन्तिकम्।
मार्कण्डेयो मुनिस्त्वाह बालं तं श्रमपीडितः॥ ३७

इस प्रकार बुद्धिमान् मार्कण्डेयके सौ वर्षोंसे भी अधिक कालतक समूची पृथ्वीपर भ्रमण करते रहनेपर भी उन्हें उस कुक्षिका अन्त न दीख पड़ा। तत्पश्चात् किसी समय वे पुनः उस पुरुषके मुखसे बाहर निकल आये। उस समय उन्होंने बरगदकी शाखामें छिपे हुए एक बालकको देखा, जो उसी प्रकारके एकार्णवके जलमें, यद्यपि आकाश नीहारसे आच्छादित था तथा जगत् समस्त प्राणियोंसे शून्य हो गया था, तथापि निश्चिन्तभावसे खेल रहा था। यह देखकर मार्कण्डेय मुनि आश्चर्यचकित हो गये। उनके मनमें उसे जाननेके लिये कुतूहल उत्पन्न हो गया, किंतु वे सूर्यके समान तेजस्वी उस बालककी ओर देखनेमें असमर्थ हो गये। तब जलके निकट एकान्त स्थानमें स्थित होकर विचार करते हुए मार्कण्डेयजी देवमायाके प्रभावसे सशङ्कित हो उसे पहले देखा हुआ मानने लगे। परम विस्मित हुए मार्कण्डेय उस अथाह जलमें तैरते हुए कष्टका अनुभव करने लगे तथा भयके कारण उनके नेत्र कातर हो गये। तब बालयोगी भगवान् पुरुषोत्तम मेघ-सदृश गम्भीर स्वरसे मार्कण्डेयसे स्वागतपूर्वक बोले—'वत्स! डरो मत, तुम्हें डरना नहीं चाहिये। यहाँ मेरे निकट आओ।' तदुपरान्त थके-माँदे मार्कण्डेय मुनि उस बालकसे बोले॥ ३०—३७॥

मार्कण्डेय उवाच

को मां नाम्ना कीर्तयति तपः परिभवन्मम।
दिव्यं वर्षसहस्राख्यं धर्षयन्निव मे वयः॥ ३८

न ह्येष वः समाचारो देवेष्वपि ममोचितः।
मां ब्रह्मापि हि देवेशो दीर्घायुरिति भाषते॥ ३९

कस्तमो घोरमासाद्य मामद्य त्यक्तजीवितः।
मार्कण्डेयेति मामुक्त्वा मृत्युमीक्षितुमर्हति॥ ४०

मार्कण्डेयजीने कहा— यह कौन है, जो मेरी तपस्याका तिरस्कार करता हुआ मेरा नाम लेकर पुकार रहा है? यह एक हजार दिव्य वर्षोंवाली मेरी आयुका भी अपमान-सा कर रहा है। देवताओंमें भी किसीको मेरे प्रति ऐसा व्यवहार करना उचित नहीं है; क्योंकि देवेश्वर ब्रह्मा भी मुझे 'दीर्घायु' कहकर ही पुकारते हैं। जीवनसे हाथ धोनेवाला ऐसा कौन है, जो घोर अज्ञानान्धकारका आश्रय लेकर आज मुझे 'मार्कण्डेय' ऐसा कहकर मृत्युका मुख देखना चाहता है?॥ ३८—४०॥

सूत उवाच

एवमाभाष्य तं क्रोधान्मार्कण्डेयो महामुनिः।
तथैव भगवान् भूयो बभाषे मधुसूदनः॥ ४१

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! महामुनि मार्कण्डेय क्रोधवश उस बालकसे ऐसा कहकर चुप हो गये। तब भगवान् मधुसूदन पुनः उसी प्रकार बोले॥ ४१॥

श्रीभगवानुवाच

अहं ते जनको वत्स हृषीकेशः पिता गुरुः।
आयुष्प्रदाता पौराणः किं मां त्वं नोपसर्पसि॥ ४२

मां पुत्रकामः प्रथमं पिता तेऽङ्गिरसो मुनिः।
पूर्वमाराधयामास तपस्तीव्रं समाश्रितः॥ ४३

ततस्त्वां घोरतपसा प्रावृणोदमितौजसम्।
उक्तवानहमात्मस्थं महर्षिममितौजसम्॥ ४४

कः समुत्सहते चान्यो यो न भूतात्मकात्मजः।
द्रष्टुमेकार्णवगतं क्रीडन्तं योगवर्त्मना॥ ४५

ततः प्रहृष्टवदनो विस्मयोत्फुल्ललोचनः।
मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटो मार्कण्डेयो महातपाः॥ ४६

नामगोत्रे ततः प्रोच्य दीर्घायुर्लोकपूजितः।
तस्मै भगवते भक्त्या नमस्कारमथाकरोत्॥ ४७

मार्कण्डेय उवाच

इच्छेयं तत्त्वतो मायामिमां ज्ञातुं तवानघ।
यदेकार्णवमध्यस्थः शेषे त्वं बालरूपवान्॥ ४८

किं संज्ञश्चैव भगवाँल्लोके विज्ञायसे प्रभो।
तर्कये त्वां महात्मानं को ह्यन्यः स्थातुमर्हति॥ ४९

श्रीभगवानुवाच

अहं नारायणो ब्रह्मन् सर्वभूः सर्वनाशनः।
अहं सहस्रशीर्षाख्यैर्यैः पदैरभिसंज्ञितः॥ ५०

आदित्यवर्णः पुरुषो मखे ब्रह्ममयो मखः।
अहमग्निर्हव्यवाहो यादसां पतिरव्ययः॥ ५१

अहमिन्द्रपदे शक्रो वर्षाणां परिवत्सरः।
अहं योगी युगाख्यश्च युगान्तावर्त एव च॥ ५२

अहं सर्वाणि सत्त्वानि दैवतान्यखिलानि तु।
भुजङ्गानामहं शेषस्तार्क्ष्यो वै सर्वपक्षिणाम्॥ ५३

कृतान्तः सर्वभूतानां विश्वेषां कालसंज्ञितः।
अहं धर्मस्तपश्चाहं सर्वाश्रमनिवासिनाम्॥ ५४

अहं चैव सरिद्दिव्या क्षीरोदश्च महार्णवः।
यत्तत्सत्यं च परममहमेकः प्रजापतिः॥ ५५

श्रीभगवान्ने कहा—'वत्स! मैं पुराणप्रसिद्ध हृषीकेश ही तुम्हें जन्म देनेवाला तुम्हारा पिता और गुरु हूँ। मैंने ही तुम्हें दीर्घायु प्रदान किया है, तुम मेरे निकट क्यों नहीं आ रहे हो? तुम्हारे पिता अङ्गिरा मुनिने पहले पुत्र-प्राप्तिकी कामनासे कठोर तपका आश्रय ले मेरी आराधना की थी और उस घोर तपस्याके परिणामस्वरूप तुम्हारे-जैसे अमित ओजस्वी पुत्रका वरदान माँगा था, तब मैंने उन आत्मज्ञानमें लीन एवं अमित पराक्रमी महर्षिको वरदान दिया था। अन्यथा तुम्हारे अतिरिक्त पञ्चभूतात्मक शरीरधारीका पुत्र दूसरा कौन है, जो एकार्णवके जलमें योगमार्गका आश्रय लेकर क्रीडा करते हुए मुझे देखनेका साहस कर सकता है? यह सुनकर महातपस्वी मार्कण्डेयका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा और उनके नेत्र विस्मयसे उत्फुल्ल हो गये। तब वे लोकपूजित दीर्घायु मुनि मस्तकपर हाथ जोड़कर नाम और गोत्रका उच्चारण करके भक्तिपूर्वक उन भगवान्को नमस्कार करते हुए बोले॥ ४२—४७॥

मार्कण्डेयजीने कहा—अनघ! मैं आपकी इस मायाको तत्त्वपूर्वक जानना चाहता हूँ, जो आप बालकका रूप धारण करके इस एकार्णवके जलके मध्यमें स्थित होकर शयन करते हैं। ऐश्वर्यशाली प्रभो! आप लोकमें किस नामसे विख्यात होते हैं? मैं आपको एक महान् आत्मबल-सम्पन्न पुरुष मानता हूँ, अन्यथा दूसरा कौन इस प्रकार स्थित रह सकता है॥ ४८-४९॥

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! मैं सभी प्राणियोंको उत्पन्न करनेवाला तथा सबका विनाशक नारायण हूँ। जो सहस्रशीर्ष आदि नामोंसे अभिहित होता है, वह मैं ही हूँ। मैं ही आदित्यवर्ण पुरुष और यज्ञमें ब्रह्ममय यज्ञ हूँ। मैं ही हव्यको वहन करनेवाला अग्नि और जल-जन्तुओंका अविनाशी स्वामी हूँ। इन्द्रपदपर स्थित रहनेवाला इन्द्र तथा वर्षोंमें परिवत्सर मैं हूँ। मैं ही योगी, युग नामसे प्रसिद्ध और युगोंका अन्त करनेवाला हूँ। समस्त प्राणी और सम्पूर्ण देवता मेरे ही स्वरूप हैं। मैं सर्पोंमें शेषनाग और सम्पूर्ण पक्षियोंमें गरुड हूँ। मैं सभी प्राणियोंका अन्त करनेवाला तथा लोकोंका काल हूँ। चारों आश्रमोंमें निवास करनेवाले मनुष्योंका धर्म और तप मैं ही हूँ। मैं दिव्य नदी गङ्गा और दूधरूपी जलसे भरा हुआ महासागर हूँ। जो परम सत्य है, वह मैं हूँ। मैं ही एकमात्र प्रजापति हूँ।

एक सौ अड़सठवाँ अध्याय

पञ्चमहाभूतोंका प्राकट्य तथा नारायणकी नाभिसे कमलकी उत्पत्ति

मत्स्य उवाच

आपवः स विभुर्भूत्वा चारयामास वै तपः।
छादयित्वाऽऽत्मनो देहं यादसां कुलसम्भवम्॥ १

ततो महात्मातिबलो मतिं लोकस्य सर्जने।
महतां पञ्चभूतानां विश्वो विश्वमचिन्तयत्॥ २

तस्य चिन्तयमानस्य निर्वाते संस्थितेऽर्णवे।
निराकाशे तोयमये सूक्ष्मे जगति गह्वरे॥ ३

ईषत् संक्षोभयामास सोऽर्णवं सलिलाश्रयः।
अनन्तरोर्मिभिः सूक्ष्ममथ च्छिद्रमभूत् पुरा॥ ४

शब्दं प्रति तदोद्भूतो मारुतश्छिद्रसम्भवः।
स लब्ध्वान्तरमक्षोभ्यो व्यवर्धत समीरणः॥ ५

विवर्धता बलवता वेगाद् विक्षोभितोऽर्णवः।
तस्यार्णवस्य क्षुब्धस्य तस्मिन्नम्भसि मन्थिते।
कृष्णवर्त्मा समभवत् प्रभुर्वैश्वानरो महान्॥ ६

ततः स शोषयामास पावकः सलिलं बहु।
क्षयाज्जलनिधेश्छिद्रमभवद्विस्तृतं नभः॥ ७

आत्मतेजोद्भवाः पुण्या आपोऽमृतरसोपमाः।
आकाशं छिद्रसम्भूतं वायुराकाशसम्भवः॥ ८

आभ्यां सङ्घर्षणोद्भूतं पावकं वायुसम्भवम्।
दृष्ट्वा प्रीतो महादेवो महाभूतविभावनः॥ ९

दृष्ट्वा भूतानि भगवाँल्लोकसृष्ट्यर्थमुत्तमम्।
ब्रह्मणो जन्मसहितं बहुरूपो व्यचिन्तयत्॥ १०

चतुर्युगाभिसंख्याते सहस्रयुगपर्यये।
बहुजन्मविशुद्धात्मा ब्रह्मणेह निरुच्यते॥ ११

यत्पृथिव्यां द्विजेन्द्राणां तपसा भावितात्मनाम्।
ज्ञानं दृष्टं तु विश्वार्थे योगिनां याति मुख्यताम्॥ १२

मत्स्यभगवान्‌ने कहा— राजन्! तदनन्तर वे सर्वव्यापी नारायण जल-जन्तुओंके कुलमें उत्पन्न अपने शरीरको छिपाकर जलमें निवास करते हुए तपस्यामें संलग्न हो गये। कुछ समयके पश्चात् उन महाबली महात्माने जगत्‌की सृष्टि करनेका विचार किया। तब उन विश्वात्माने पञ्चमहाभूतोंकी समष्टिरूप विश्वका चिन्तन किया। उनके चिन्तन करते समय महासागर वायुरहित होनेके कारण शान्त था। आकाशका विनाश हो गया था, सर्वत्र जल-ही-जल व्याप्त था, उसके गह्वरमें सूक्ष्म जगत् विद्यमान था, उस समय जलके मध्यमें स्थित नारायणने उस एकार्णवको थोड़ा संक्षुब्ध कर दिया। तदनन्तर उससे उठी हुई लहरोंसे सर्वप्रथम सूक्ष्म छिद्र प्रकट हुआ। छिद्रसे शब्द-गुणवाला आकाश उत्पन्न हुआ। उस छिद्राकाशसे वायुकी उत्पत्ति हुई। वह दुर्धर्ष पवन अवसर पाकर वृद्धिको प्राप्त हुआ। तब वेगपूर्वक बढ़ते हुए उस बलवान् पवनने महासागरको विक्षुब्ध कर दिया। उस क्षुब्ध हुए महासागरके जलके मथित होनेपर महान् प्रभावशाली कृष्णवर्त्मा वैश्वानर (अग्नि) प्रकट हुए। तब उस अग्निने अधिकांश जलको सोख लिया। समुद्र-जलके संकुचित हो जानेसे वह छिद्र विस्तृत आकाशके रूपमें परिणत हो गया। इस प्रकार अपने तेजसे उत्पन्न हुए एवं अमृत-रसके समान स्वादिष्ट पुण्यमय जल, छिद्रसे उत्पन्न हुए आकाश, आकाशसे प्रकट हुए पवन तथा आकाश और पवनके संघर्षसे उद्भूत हुए वायुजनित अग्निको देखकर महाभूतोंको उत्पन्न करनेवाले वे महान् देव प्रसन्न हो गये। तब विविध रूप धारण करनेवाले भगवान् उन महाभूतोंको उपस्थित देखकर लोककी सृष्टिके लिये ब्रह्माके जन्मसहित अन्यान्य उत्तम साधनोंके विषयमें विशेषरूपसे विचार करने लगे॥ १—१०॥

इस प्रकार चारों युगोंकी संख्यासे युक्त एक हजार युग बीत जानेपर बारम्बार जन्म लेनेपर भी जिसका आत्मा विशुद्ध होता है, उसे ब्रह्मा कहा जाता है। योगवेत्ता भगवान् भूतलपर जिसे तपस्यासे पवित्र आत्मावाले महर्षियोंके ज्ञान और योगियोंकी मुख्यतासे युक्त देखते

तं योगवन्तं विज्ञाय सम्पूर्णैश्वर्यमुत्तमम्।
पदे ब्रह्माणि विश्वेशं न्ययोजयत योगवित्॥ १३
ततस्तस्मिन् महातोये महीशो हरिरच्युतः।
स्वयं क्रीडंश्च विधिवन्मोदते सर्वलोककृत्॥ १४
पद्मं नाभ्युद्भवं चैकं समुत्पादितवांस्तदा।
सहस्रपर्णं विरजं भास्कराभं हिरण्मयम्॥ १५
हुताशनज्वलितशिखोज्ज्वलत्प्रभ-
मुपस्थितं शरदमलार्कतेजसम्।
विराजते कमलमुदारवर्चसं
ममात्मनस्तनुरुहचारुदर्शनम् ॥ १६

हैं, उसे योगसम्पन्न सम्पूर्ण उत्तम ऐश्वर्योंसे युक्त और विश्वके शासनकी क्षमतासे पूर्ण जानकर ब्रह्माके पदपर नियुक्त कर देते हैं। तत्पश्चात् जो सम्पूर्ण लोकोंके रचयिता, पृथ्वीके स्वामी और अपनी महिमासे कभी भी च्युत होनेवाले नहीं हैं, वे श्रीहरि उस महार्णवके जलमें स्वयं विधिपूर्वक क्रीडा करते हुए आनन्दका अनुभव करते हैं। उस समय वे अपनी नाभिसे एक कमल उत्पन्न करते हैं। उस स्वर्णमय कमलमें एक हजार पत्ते होते हैं। वह परागरहित और सूर्यके समान कान्तिमान् होता है। उस समय अग्निकी जलती हुई शिखाओंकी उज्ज्वल कान्तिके समान देदीप्यमान, शरत्कालीन निर्मल सूर्यके सदृश तेजस्वी, भगवान्‌की रोमावलि-सरीखे परम दर्शनीय तथा उत्तम कान्तिमान् उस प्रकट हुए कमलकी विशेष शोभा होती है॥ ११—१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे पद्मोद्भवो नामाष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः॥१६८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसंगमें पद्मोद्भव नामक एक सौ अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६८॥

एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव तथा उस कमलका साङ्गोपाङ्ग वर्णन

मत्स्य उवाच

अथ योगवतां श्रेष्ठमसृजद् भूरितेजसम्।
स्रष्टारं सर्वलोकानां ब्रह्माणं सर्वतोमुखम्॥ १
यस्मिन् हिरण्मये पद्मे बहुयोजनविस्तृते।
सर्वतेजोगुणमयं पार्थिवैर्लक्षणैर्वृतम्॥ २
तच्च पद्मं पुराणज्ञाः पृथिवीरूपमुत्तमम्।
नारायणसमुद्भूतं प्रवदन्ति महर्षयः॥ ३
या पद्मा सा रसा देवी पृथिवी परिचक्ष्यते।
ये पद्मसारगुरवस्तान् दिव्यान् पर्वतान् विदुः॥ ४
हिमवन्तं च मेरुं च नीलं निषधमेव च।
कैलासं मुञ्जवन्तं च तथान्यं गन्धमादनम्॥ ५
पुण्यं त्रिशिखरं चैव कान्तं मन्दरमेव च।
उदयं पिञ्जरं चैव विन्ध्यवन्तं च पर्वतम्॥ ६
एते देवगणानां च सिद्धानां च महात्मनाम्।
आश्रयाः पुण्यशीलानां सर्वकामफलप्रदाः॥ ७

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजर्षे! तदनन्तर नारायणने अनेकों योजन विस्तारवाले उस स्वर्णमय कमलमें सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करनेवाले ब्रह्माको उत्पन्न किया। वे योगवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, परम तेजस्वी, सब ओर मुखवाले, सभी तेजोमय गुणोंसे युक्त और राजलक्षणोंसे सुशोभित थे। पुराणोंके ज्ञाता महर्षिगण उस कमलको नारायणसे उत्पन्न हुआ उत्तम पृथ्वीरूप बतलाते हैं। जो पद्म है, वही रसा नामसे विख्यात पृथ्वीदेवी कही जाती है और जो कमलके सार-तत्त्वसे युक्त होनेके कारण भारी अंश हैं, उन्हें दिव्य पर्वत कहा जाता है। इस प्रकार जो हिमवान्, मेरु, नील, निषध, कैलास, मुञ्जवान् तथा दूसरा गन्धमादन, पुण्यमय त्रिशिखर, रमणीय मन्दर, उदयाचल, पिञ्जर तथा विन्ध्यवान् पर्वत हैं—ये सभी देवगणों, सिद्धों और पुण्यशील महात्माओंके निवासस्थान तथा समस्त कामनाओंका फल प्रदान करनेवाले हैं।

एतेषामन्तरे देशो जम्बूद्वीप इति स्मृतः।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं यज्ञिया यत्र वै क्रियाः॥ ८

एभ्यो यत् स्रवते तोयं दिव्यामृतरसोपमम्।
दिव्यास्तीर्थशताधाराः सुरम्याः सरितः स्मृताः॥ ९

इन सभी पर्वतोंके मध्यवर्ती देशको जम्बूद्वीप कहा जाता है। जम्बूद्वीपकी पहचान यह है कि वहाँ सभी यज्ञसम्बन्धिनी क्रियाएँ होती हैं। इन पर्वतोंसे जो दिव्य अमृत-रसके समान सुस्वादु जल प्रवाहित होता है, वह सैकड़ों धाराओंमें विभक्त होकर दिव्य तीर्थ बन जाता है और वे धाराएँ सुरम्य नदियाँ कहलाती हैं॥ १—९॥

स्मृतानि यानि पद्मस्य केसराणि समंततः।
असंख्येयाः पृथिव्यास्ते विश्वे वै धातुपर्वताः॥ १०
यानि पद्मस्य पर्णानि भूरीणि तु नराधिप।
ते दुर्गमाः शैलचिता म्लेच्छदेशा विकल्पिताः॥ ११
यान्यधोभागपर्णानि ते निवासास्तु भागशः।
दैत्यानामुरगाणां च पतङ्गानां च पार्थिव॥ १२
तेषां महार्णवो यत्र तद्रसेत्यभिसंज्ञितम्।
महापातककर्माणो मज्जन्ते यत्र मानवाः॥ १३
पद्मस्यान्तरतो यत्तदेकार्णवगता मही।
प्रोक्ताथ दिक्षु सर्वासु चत्वारः सलिलाकराः॥ १४
एवं नारायणस्यार्थे मही पुष्करसम्भवा।
प्रादुर्भावोऽप्ययं तस्मान्नाम्ना पुष्करसंज्ञितः॥ १५
एतस्मात् कारणात्तज्ज्ञैः पुराणैः परमर्षिभिः।
याज्ञिकैर्वेददृष्टान्तैर्यज्ञे पद्मविधिः स्मृतः॥ १६
एवं भगवता तेन विश्वेषां धारणाविधिः।
पर्वतानां नदीनां च ह्रदानां चैव निर्मितः॥ १७
विभुस्तथैवाप्रतिमप्रभावः
प्रभाकराभो वरुणासितद्युतिः।
शनैः स्वयम्भूः शयनं सृजत्तदा
जगन्मयं पद्मविधिं महार्णवे॥ १८

राजन्! उस कमलके चारों ओर जो केसर कहे जाते हैं, वे विश्वमें पृथ्वीके असंख्य धातुपर्वत हैं। उस कमलमें जो बहुसंख्यक पत्ते हैं, वे म्लेच्छोंके देश कहे जाते हैं, जो पर्वतोंसे व्याप्त होनेके कारण दुर्गम हैं। भूपाल! उस कमलमें जो निचले भागमें पत्ते हैं, वे विभागपूर्वक दैत्यों, नागों और कीट-पतङ्गोंके निवासस्थान हैं। इन सबका जहाँ महासागर है, उसे 'रसा' नामसे पुकारा जाता है। वहीं महान् पाप करनेवाले मानव डूबते-उतराते रहते हैं। उस कमलके अन्तर्गत जो ठोस भाग दीखता है, वही एकार्णवमें डूबी हुई पृथ्वी कही गयी है। उसकी सभी दिशाओंमें जलसे भरे हुए चार महासागर हैं। इस प्रकार नारायणकी कार्य-सिद्धिके लिये पृथ्वी कमलसे उद्भूत हुई है। इसी कारण यह प्रादुर्भाव भी पुष्कर नामसे कहा जाता है। इसी कारण उस वृत्तान्तको जाननेवाले प्राचीन याज्ञिक महर्षियोंने वेदके दृष्टान्तोंद्वारा यज्ञमें कमलकी रचनाका विधान बतलाया है। इस प्रकार उन भगवान्ने सम्पूर्ण पर्वतों, नदियों और जलाशयोंकी धारणाकी विधिका निर्माण किया है। तदुपरान्त जो अनुपम प्रभावशाली, सूर्य-सरीखे द्युतिमान् और वरुणकी-सी कृष्ण कान्तिवाले हैं, वे सर्वव्यापी स्वयम्भू भगवान् उस महार्णवमें जगन्मय कमलका विधान करके पुनः पूर्ववत् शयन करने लगे॥ १०—१८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १६९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १६९॥



एक सौ सत्तरवाँ अध्याय

मधु-कैटभकी उत्पत्ति, उनका ब्रह्माके साथ वार्तालाप और भगवान्‌द्वारा वध

मत्स्य उवाच

विघ्नस्तपसि सम्भूतो मधुर्नाम महासुरः।
तेनैव च सहोद्भूतो रजसा कैटभस्ततः॥ १

तौ रजस्तमसौ विघ्नसम्भूतौ तामसौ गणौ।
एकार्णवे जगत् सर्वं क्षोभयन्तौ महाबलौ॥ २

दिव्यरक्ताम्बरधरौ श्वेतदीप्ताग्रदंष्ट्रिणौ।
किरीटकुण्डलोदग्रौ केयूरवलयोज्ज्वलौ॥ ३

महाविवृत्तताम्राक्षौ पीनोरस्कौ महाभुजौ।
महागिरेः संहननौ जङ्गमाविव पर्वतौ॥ ४

नवमेघप्रतीकाशावादित्यसदृशाननौ।
विद्युदाभौ गदाग्राभ्यां कराभ्यामतिभीषणौ॥ ५

तौ पादयोस्तु विन्यासादुत्क्षिपन्ताविवार्णवम्।
कम्पयन्ताविव हरिं शयानं मधुसूदनम्॥ ६

तौ तत्र विचरन्तौ स्म पुष्करे विश्वतोमुखम्।
योगिनां श्रेष्ठमासाद्य दीप्तं ददृशतुस्तदा॥ ७

नारायणसमाज्ञातं सृजन्तमखिलाः प्रजाः।
दैवतानि च विश्वानि मानसानसुरानृषीन्॥ ८

ततस्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणमसुरोत्तमौ।
दीप्तौ मुमूर्षू संक्रुद्धौ रोषव्याकुलितेक्षणौ॥ ९

कस्त्वं पुष्करमध्यस्थः सितोष्णीषश्चतुर्भुजः।
आधाय नियमं मोहादास्से त्वं विगतज्वरः॥ १०

एह्यागच्छावयोर्युद्धं देहि त्वं कमलोद्भव।
आवाभ्यां परमीशाभ्यामशक्तस्त्वमिहार्णवे॥ ११

तत्र कश्चोद्भवस्तुभ्यं केन वासि नियोजितः।
कः स्रष्टा कश्च ते गोप्ता केन नाम्ना विधीयसे॥ १२

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! भगवान्‌के योगनिद्राके वशीभूत हो शयन करते समय मधु नामका महान् असुर उत्पन्न हुआ, जो ब्रह्माजीकी तपस्यामें विघ्नस्वरूप था। तत्पश्चात् उसीके साथ रजोगुणसे युक्त कैटभ भी उत्पन्न हुआ। रजोगुण और तमोगुणसे युक्त एवं विघ्नस्वरूप उत्पन्न हुए वे दोनों महाबली तामसी असुर एकार्णवके जलमें सम्पूर्ण जगत्‌को क्षुब्ध कर रहे थे। वे लाल रंगका दिव्य वस्त्र धारण किये हुए थे, उनकी श्वेत वर्णकी दाढ़ोंके अग्रभाग चमक रहे थे, वे उद्दीप्त किरीट और कुण्डल तथा उज्ज्वल केयूर और कंकणसे विभूषित थे, उनके लाल रंगके विशाल नेत्र खुले हुए थे, उनकी छाती मोटी और भुजाएँ लम्बी थीं, उनका शरीर विशाल पर्वतके समान था, वे चलते हुए पर्वत-जैसा जान पड़ते थे, उनकी शरीर-कान्ति नूतन मेघ-जैसी थी, उनका मुख सूर्यके समान प्रकाशमान था, वे बिजलीकी तरह चमक रहे थे और हाथमें गदा धारण करनेके कारण अत्यन्त भयानक दीख रहे थे, चलते समय वे पैरोंको इस प्रकार रख रहे थे मानो समुद्रको उछाल रहे हों और शयन करते हुए भगवान् मधुसूदनको कम्पित-सा कर रहे थे। इस प्रकार वहाँ विचरण करते हुए उन दोनोंने कमलपर उद्भासित होते हुए चारों ओर मुखवाले योगियोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके निकट पहुँचकर उन्हें नारायणकी आज्ञासे मानसिक संकल्पद्वारा समस्त प्रजाओं, सम्पूर्ण देवताओं, असुरों और ऋषियोंकी सृष्टि करते हुए देखा। वे दोनों असुरश्रेष्ठ अपनी कान्तिसे उद्दीप्त, क्रोधसे परिपूर्ण और आसन्नमृत्यु थे, उनके नेत्र क्रोधसे व्याकुल हो रहे थे। उन्होंने ब्रह्मासे पूछा—'श्वेत रंगकी पगड़ी बाँधे, चार भुजाधारी एवं कमलके मध्यमें स्थित तुम कौन हो? तुम मोहवश नियम धारणकर यहाँ शान्तचित्त होकर क्यों बैठे हो? कमलजन्मा! तुम यहाँ आओ और हम दोनोंके साथ युद्ध करो। हम दोनों सामर्थ्यशालियोंके अतिरिक्त तुम इस महासागरमें स्थित नहीं रह सकते। तुम्हें उत्पन्न करनेवाला कौन है? तुम किसके द्वारा इस काममें नियुक्त किये गये हो? तुम्हारी सृष्टि करनेवाला कौन है? तुम्हारा रक्षक कौन है? तुम किस नामसे पुकारे जाते हो?'॥ १—१२॥

ब्रह्मोवाच

एक इत्युच्यते लोकैरविचिन्त्यः सहस्रदृक्।
तत्संयोगेन भवतोः कर्म नामावगच्छताम्॥ १३

ब्रह्माने कहा— जो ध्यानसे परे एवं हजारों नेत्रोंवाला है, उस परम पुरुषको तो लोग अद्वितीय बतलाते हैं, (परंतु तुम दोनों कौन हो?) अतः मैं तुम दोनोंके नाम और कर्मको जानना चाहता हूँ॥ १३॥

मधुकैटभावूचतुः

नावयोः परमं लोके किंचिदस्ति महामते।
आवाभ्यां छाद्यते विश्वं तमसा रजसाथ वै॥ १४
रजस्तमोमयावावामृषीणामवलङ्घितौ।
छाद्यमानौ धर्मशीलौ दुस्तरौ सर्वदेहिनाम्॥ १५
आवाभ्यामुह्यते लोको दुष्कराभ्यां युगे युगे।
आवामर्थश्च कामश्च यज्ञः स्वर्गपरिग्रहः॥ १६
सुखं यत्र मुदा युक्तं यत्र श्रीः कीर्तिरेव च।
येषां यत्काङ्क्षितं चैव तत्तदावां विचिन्तय॥ १७

मधु-कैटभ बोले— महामते! जगत्‌में हम दोनोंसे उत्कृष्ट कुछ भी नहीं है। हमीं दोनोंने तमोगुण और रजोगुणद्वारा विश्वको आच्छादित कर रखा है। रजोगुण और तमोगुणसे व्याप्त होनेके कारण हम दोनों ऋषियोंके लिये अलङ्घनीय हैं। धर्म और शील-स्वभावका आच्छादन करनेवाले हम दोनों समस्त देहधारियोंके लिये अजेय हैं। प्रत्येक युगमें दुष्कर कर्म करनेवाले हमीं दोनों लोकका वहन करते हैं। अर्थ, काम, यज्ञ, स्वर्गसंकलन— यह सब हम दोनोंके लिये ही हैं। जहाँ जो कुछ प्रसन्नतायुक्त सुख, लक्ष्मी और कीर्ति है तथा प्राणियोंके जो मनोरथ हैं, उनके रूपमें हमीं दोनोंको जानना चाहिये॥ १४—१७॥

ब्रह्मोवाच

यत्नाद्योगवतो दृष्ट्या योगः पूर्वं मयार्जितः।
तं समाधाय गुणवत्सत्त्वं चास्मि समाश्रितः॥ १८
यः परो योगमतिमान् योगाख्यः सत्त्वमेव च।
रजसस्तमसश्चैव यः स्रष्टा विश्वसम्भवः॥ १९
ततो भूतानि जायन्ते सात्त्विकानीतराणि च।
स एव हि युवां नाशे वशी देवो हनिष्यति॥ २०

ब्रह्माने कहा— पूर्वकालमें मैंने यत्नपूर्वक योगदृष्टिद्वारा योगका उपार्जन किया था, उसी गुणशाली योगको धारण करके मैं सत्त्वगुणसे युक्त हो सका हूँ। जो परात्पर, योगकी बुद्धिसे युक्त, 'योग' नामवाले, सत्त्वगुणस्वरूप, रजोगुण और तमोगुणके रचयिता तथा विश्वको उत्पन्न करनेवाले हैं, जिनसे सात्त्विक, राजसिक और तामसिक प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है, वे ही देव तुम दोनोंका विनाश करनेमें समर्थ हैं, अतः वे ही तुम दोनोंका वध करेंगे॥ १८—२०॥

स्वपन्नेव ततः श्रीमान् बहुयोजनविस्तृतम्।
बाहुं नारायणो ब्रह्म कृतवानात्ममायया॥ २१
कृष्यमाणौ ततस्तस्य बाहुना बाहुशालिनः।
चेरतुस्तौ विगलितौ शकुनाविव पीवरौ॥ २२
ततस्तावाहतुर्गत्वा तदा देवं सनातनम्।
पद्मनाभं हृषीकेशं प्रणिपत्य स्थितावुभौ॥ २३
जानीवस्त्वां विश्वयोनिं त्वामेकं पुरुषोत्तमम्।
त्वमावां पाहि हेत्वर्थमिदं नौ बुद्धिकारणम्॥ २४
अमोघदर्शनः स त्वं यतस्त्वां विद्वःशाश्वतम्।
ततस्त्वामागतावावामभितः प्रसमीक्षितुम्॥ २५

ठीक उसी अवसरपर परब्रह्म श्रीमान् नारायणने शयन करते हुए ही अपनी मायासे अपने बाहुको अनेकों योजनके विस्तारवाला बना लिया। तब दीर्घ बाहुवाले भगवान्‌की उस भुजासे खींचे जाते हुए वे दोनों दैत्य स्थानसे भ्रष्ट होकर दो मोटे पक्षियोंकी भाँति घूमने लगे। इस प्रकार खिंचते हुए वे दोनों असुर अविनाशी पद्मनाभ हृषीकेशके निकट जा पहुँचे और उन्हें नमस्कार कर सामने खड़े हो गये और इस प्रकार बोले—'देव! हम दोनों आपको विश्वका उत्पादक, अद्वितीय और पुरुषोत्तम जानते हैं। आप हम दोनोंकी रक्षा करें। हमलोगोंकी ऐसी बुद्धिका कारण किसी प्रयोजनकी सिद्धिके लिये है। आपका दर्शन अमोघ होता है। इसीलिये हम दोनों आपको अविनाशी मानते हैं। देव! इसी कारण हम दोनों

तदिच्छावो वरं देव त्वत्तोऽद्भुतमरिन्दम।
अमोघदर्शनोऽसि त्वं नमस्ते समितिञ्जय॥ २६

श्रीभगवानुवाच

किमर्थं हि द्रुतं ब्रूतं वरं ह्यसुरसत्तमौ।
दत्तायुष्कौ पुनर्भूयो रहो जीवितुमिच्छथः॥ २७

मधुकैटभावूचतुः

यस्मिन्न कश्चिन्मृतवान् देव तस्मिन् प्रभो वधम्।
तमिच्छावो वधश्चैव त्वत्तो नोऽस्तु महाव्रत॥ २८

श्रीभगवानुवाच

बाढं युवां तु प्रवरौ भविष्यत्कालसम्भवे।
भविष्यतो न संदेहः सत्यमेतद् ब्रवीमि वाम्॥ २९
वरं प्रदायाथ महासुराभ्यां
सनातनौ विश्ववरः सुरोत्तमः।
रजस्तमोवर्गभवायनौ यमौ
ममन्थ तावूरुतलेन वै प्रभुः॥ ३०

आपका दर्शन करनेके लिये यहाँ आये हैं। शत्रुसूदन! हम दोनों आपसे अद्भुत वर प्राप्त करना चाहते हैं। युद्धविजयी देव! आप अमोघदर्शन हैं, अर्थात् आपका दर्शन निष्फल नहीं होता। आपको नमस्कार है'॥ २१—२६॥

श्रीभगवान्ने कहा— श्रेष्ठ असुरो! तुमलोगोंकी क्या अभिलाषा है? शीघ्र वर माँगो। तुमलोगोंने अपनी आयु तो दे दी है, अब तुमलोग पुनः एकान्तमें कैसे जीवित रहना चाहते हो?॥ २७॥

मधु-कैटभ बोले— सामर्थ्यशाली देव! जिस स्थानपर कोई भी न मरा हो, वहाँ हम अपनी मृत्यु चाहते हैं। साथ ही महाव्रत! हमारी वह मृत्यु आपके हाथों होनी चाहिये॥ २८॥

श्रीभगवान्ने कहा— ठीक है, भविष्यकालमें तुम दोनों असुरोंमें श्रेष्ठ होकर उत्पन्न होओगे, इसमें संदेह नहीं है। यह मैं तुम दोनोंसे सत्य कह रहा हूँ। इस प्रकार विश्वमें श्रेष्ठ सनातन सुरवर भगवान्ने उन दोनों महान् असुरोंको वर प्रदान करनेके पश्चात् रजोगुण और तमोगुणके उत्पत्तिस्थानस्वरूप उन दोनों असुरोंको अपनी जाँघपर सुलाकर उनका कचूमर निकाल लिया॥ २९-३०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावे सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७०॥

एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्माके मानस पुत्रोंकी उत्पत्ति, दक्षकी बारह कन्याओंका वृत्तान्त, ब्रह्माद्वारा सृष्टिका विकास तथा विविध देवयोनियोंकी उत्पत्ति

मत्स्य उवाच

स्थित्वा च तस्मिन् कमले ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः।
ऊर्ध्वबाहुर्महातेजास्तपो घोरं समाश्रितः॥ १
प्रज्वलन्निव तेजोभिर्भाभिः स्वाभिस्तमोनुदः।
बभासे सर्वधर्मस्थः सहस्रांशुरिवांशुभिः॥ २
अथान्यद् रूपमास्थाय शम्भुर्नारायणोऽव्ययः।
आजगाम महातेजा योगाचार्यो महायशाः॥ ३
सांख्याचार्यो हि मतिमान् कपिलो ब्राह्मणो वरः।
उभावपि महात्मानौ स्तुवन्तौ क्षेत्रतत्परौ॥ ४

मत्स्यभगवान्ने कहा— राजन्! ब्रह्मवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महान् तेजस्वी ब्रह्मा उस कमलपर स्थित होकर हाथोंको ऊपर उठाये हुए घोर तपस्यामें संलग्न हो गये। उस समय सम्पूर्ण धर्मोंके निवासस्थान ब्रह्मा अपने तेज और अपनी कान्तिसे प्रज्वलित होते हुए-से अन्धकारका विनाश कर रहे थे और अपनी किरणोंसे प्रकाशित सूर्यकी तरह उद्भासित हो रहे थे। तदनन्तर जो जगत्का कल्याण करनेवाले अविनाशी महान् यशस्वी एवं योगके आचार्य हैं, वे महान् तेजस्वी नारायण दूसरा रूप धारण कर वहाँ आये। साथ ही ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ सांख्याचार्य बुद्धिमान्

तौ प्राप्तावूचतुस्तत्र ब्रह्माणममितौजसम्।
परावरविशेषज्ञौ पूजितौ च महर्षिभिः॥ ५

ब्रह्मात्मदृढबन्धश्च विशालो जगदास्थितः।
ग्रामणीः सर्वभूतानां ब्रह्मा त्रैलोक्यपूजितः॥ ६

तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा ब्रह्माभ्याहृतयोगवित्।
त्रीनिमान् कृतवाँल्लोकान् यथेयं ब्रह्मणः श्रुतिः॥ ७

पुत्रं च शम्भवे चैकं समुत्पादितवान् ऋषिः।
तस्याग्रे वाग्यतस्तस्थौ ब्रह्माणमजमव्ययम्॥ ८

सोत्पन्नमात्रो ब्रह्माणमुक्तवान् मानसः सुतः।
किं कुर्मस्तव साहाय्यं ब्रवीतु भगवान् ऋषिः॥ ९

कपिलजी भी उपस्थित हुए। वे दोनों महात्मा परावरके विशेषज्ञ, महर्षियोंद्वारा पूजित और अपने-अपने मार्गमें तत्पर रहनेवाले थे। वे वहाँ पहुँचकर अमित तेजस्वी ब्रह्माकी प्रशंसा करते हुए बोले—'सर्वश्रेष्ठ', जगत्के रचयिता, त्रिलोकीद्वारा पूजित, सभी प्राणियोंके नायक ब्रह्मा अपने सुदृढ़ आसनपर विराजमान हैं।' उन दोनोंकी वह बात सुनकर पूर्वकथित योगके ज्ञाता ब्रह्माने इन तीन लोकोंकी रचना की, ब्रह्माके विषयमें यह श्रुति प्रसिद्ध है। उस समय ऋषिश्रेष्ठ ब्रह्माने जगत्के कल्याणके लिये एक पुत्र उत्पन्न किया। ब्रह्माका वह मानस पुत्र उत्पन्न होते ही उनके समक्ष चुपचाप खड़ा हो गया और फिर उन अजन्मा अविनाशी ब्रह्मासे इस प्रकार बोला—'आप ऐश्वर्यशाली ऋषि बतलावें कि मैं आपकी कौन-सी सहायता करूँ?'॥ १—९॥

ब्रह्मोवाच

य एष कपिलो ब्रह्म नारायणमयस्तथा।
वदते भवतस्तत्त्वं तत्कुरुष्व महामते॥ १०

ब्रह्मणस्तु तदर्थं तु तदा भूयः समुत्थितः।
शुश्रूषुरस्मि युवयोः किं करोमि कृताञ्जलिः॥ ११

ब्रह्माने कहा—महामते! ये जो महर्षि कपिल और नारायणस्वरूप ब्रह्म सामने उपस्थित हैं, ये दोनों तुमसे जिस तत्त्वका वर्णन करें, तुम वैसा ही करो। ब्रह्माके उस अभिप्रायको जानकर वह पुनः उठ खड़ा हुआ और उनके समक्ष जाकर हाथ जोड़कर बोला—'मैं आपलोगोंका आदेश सुनना चाहता हूँ, कहिये क्या करूँ?'॥ १०-११॥

श्रीभगवानुवाच

यत्सत्यमक्षरं ब्रह्म ह्यष्टादशविधं तु तत्।
यत्सत्यं यदृतं तत्तु परं पदमनुस्मर॥ १२

एतद्वचो निशम्यैव ययौ स दिशमुत्तराम्।
गत्वा च तत्र ब्रह्मत्वमगमज्ज्ञानतेजसा॥ १३

ततो ब्रह्मा भुवं नाम द्वितीयमसृजत् प्रभुः।
संकल्पयित्वा मनसा तमेव च महामनाः॥ १४

ततः सोऽथाब्रवीद् वाक्यं किं करोमि पितामह।
पितामहसमाज्ञातो ब्रह्माणं समुपस्थितः॥ १५

ब्रह्माभ्यासं तु कृतवान् भुवश्च पृथिवीं गतः।
प्राप्तं च परमं स्थानं स तयोः पार्श्वमागतः॥ १६

तस्मिन्नपि गते पुत्रे तृतीयमसृजत् प्रभुः।
सांख्यप्रवृत्तिकुशलं भूर्भुवं नामतो विभुम्॥ १७

गोपतित्वं समासाद्य तयोरेवागमद् गतिम्।
एवं पुत्रास्त्रयोऽप्येत उक्ताः शम्भोर्महात्मनः॥ १८

श्रीभगवान् बोले—ब्रह्मन्! जो सत्य और अविनाशी ब्रह्म है, वह अठारह प्रकारका है। जो सत्य है, जो ऋत है, वही परम पद है। तुम उसका अनुस्मरण करो। ऐसी बात सुनते ही वह उत्तर दिशाकी ओर चला गया और वहाँ जाकर उसने अपने ज्ञानके तेजसे ब्रह्मत्वको प्राप्त कर लिया। तत्पश्चात् महामना एवं सामर्थ्यशाली ब्रह्माने मानसिक संकल्पद्वारा 'भुव' नामक दूसरे पुत्रकी सृष्टि की। तब उसने भी ब्रह्माके समक्ष खड़ा होकर इस प्रकार कहा—'पितामह! मैं कौन-सा कार्य करूँ?' फिर ब्रह्माकी आज्ञासे वह ब्रह्मके निकट गया। तदुपरान्त 'भुव' ने भूतलपर आकर ब्रह्मका अभ्यास किया और ब्रह्म एवं महर्षि कपिलके पास आकर परम पदको प्राप्त कर लिया। उस पुत्रके भी चले जानेपर भगवान् ब्रह्माने 'भूर्भुव' नामक तीसरे पुत्रको प्रकट किया, जो सर्वव्यापी और सांख्यशास्त्रमें परम प्रवीण था। यह भी इन्द्रियजयी होकर उन दोनों भाइयोंकी गतिको प्राप्त हो गया। इस प्रकार कल्याणकारी महात्मा ब्रह्माके ये तीनों पुत्र कहे गये हैं।

तान् गृहीत्वा सुतांस्तस्य प्रयातः स्वार्जितां गतिम्।
नारायणश्च भगवान् कपिलश्च यतीश्वरः॥ १९

तदनन्तर भगवान् नारायण और यतीश्वर कपिल ब्रह्माके उन तीनों पुत्रोंको साथ लेकर अपने तपद्वारा उपार्जित गतिको प्राप्त हो गये॥ १२—१९॥

यं कालं तौ गतौ मुक्तौ ब्रह्मा तं कालमेव हि।
ततो घोरतमं भूयः संश्रितः परमं व्रतम्॥ २०
न रेमेऽथ ततो ब्रह्मा प्रभुरेकस्तपश्चरन्।
शरीरात्तां ततो भार्यां समुत्पादितवाञ्छुभाम्॥ २१
तपसा तेजसा चैव वर्चसा नियमेन च।
सदृशीमात्मनो देवीं समर्थां लोकसर्जने॥ २२
तया समाहितस्तत्र रेमे ब्रह्मा तपश्चरन्।
ततो जगाद त्रिपदां गायत्रीं वेदपूजिताम्॥ २३
सृजन् प्रजानां पतयः सागरांश्चासृजद् विभुः।
अपरांश्चैव चतुरो वेदान् गायत्रिसम्भवान्॥ २४
आत्मनः सदृशान् पुत्रानसृजद् वै पितामहः।
विश्वे प्रजानां पतयो येभ्यो लोका विनिःसृताः॥ २५
विश्वेशं प्रथमं तावन्महातापसमात्मजम्।
सर्वमन्त्रहितं पुण्यं नाम्ना धर्मं स सृष्टवान्॥ २६
दक्षं मरीचिमत्रिं च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
वसिष्ठं गौतमं चैव भृगुमङ्गिरसं मनुम्॥ २७
अथैवाद्भुतमित्येते ज्ञेयाः पैतामहर्षयः।
त्रयोदशगुणं धर्ममालभन्त महर्षयः॥ २८

इधर जिस समय वे दोनों मुक्त पुरुष चले गये, उसी समयसे ब्रह्मा पुनः अत्यन्त कठोर परम व्रतके पालनमें संलग्न हो गये। जब सामर्थ्यशाली ब्रह्माको अकेले तपस्या करते हुए आनन्दका अनुभव नहीं हुआ, तब उन्होंने अपने शरीरसे एक ऐसी सुन्दरी भार्याको उत्पन्न किया, जो तपस्या, तेज, ओजस्विता और नियमपालनमें उन्हींके समान थी। वह देवी लोकको सृष्टि करनेमें भी समर्थ थी। उससे युक्त होकर वहाँ तपस्या करते हुए ब्रह्माको संतोषका अनुभव हुआ, तब उन्होंने वेदपूजित त्रिपदा गायत्रीका उच्चारण किया। तत्पश्चात् सर्वव्यापी ब्रह्माने प्रजापतियोंकी सृष्टि करते हुए सागरोंकी तथा गायत्रीसे उत्पन्न होनेवाले अन्य चारों वेदोंकी रचना की। फिर ब्रह्माने अपने ही सदृश पुत्रोंको उत्पन्न किया, जो विश्वमें प्रजापतिके नामसे विख्यात हुए और जिनसे सारी प्रजाएँ उत्पन्न हुई। सर्वप्रथम उन्होंने अपने धर्म नामक पुत्रको प्रकट किया, जो विश्वके ईश्वर, महान् तपस्वी, सम्पूर्ण मन्त्रोंद्वारा अभिरक्षित और परम पावन थे। तदुपरान्त उन्होंने दक्ष, मरीचि, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, गौतम, भृगु, अङ्गिरा और मनुको उत्पन्न किया।* ब्रह्माके पुत्रभूत इन महर्षियोंको अत्यन्त अद्भुत जानना चाहिये। इन्हीं महर्षियोंने तेरह प्रकारके गुणोंसे युक्त धर्मका प्रतिपादन एवं अनुसरण किया॥ २०—२८॥

अदितिर्दितिर्दनुः काला अनायुः सिंहिका मुनिः।
ताम्रा क्रोधाथ सुरसा विनता कद्रुरेव च॥ २९
दक्षस्यापत्यमेता वै कन्या द्वादश पार्थिव।
मरीचेः कश्यपः पुत्रस्तपसा निर्मितः किल॥ ३०
तस्मै कन्या द्वादशान्या दक्षस्ताः प्रददौ तदा।
नक्षत्राणि च सोमाय तदा वै दत्तवान् ऋषिः॥ ३१
रोहिण्यादीनि सर्वाणि पुण्यानि रविनन्दन।
लक्ष्मीर्मरुत्वती साध्या विश्वेशा च मता शुभा॥ ३२
देवी सरस्वती चैव ब्रह्मणा निर्मिताः पुरा।
एताः पञ्च वरिष्ठा वै सुरश्रेष्ठाय पार्थिव॥ ३३

राजन्! अदिति, दिति, दनु, काला, अनायु, सिंहिका, मुनि, ताम्रा, क्रोधा, सुरसा, विनता और कद्रू—ये बारह कन्याएँ दक्ष प्रजापतिकी संतान हैं। कश्यप महर्षि मरीचिके पुत्र थे, जो पिताकी तपस्याके प्रभावसे उत्पन्न हुए थे। उस समय दक्षने कश्यपको अपनी उन बारह कन्याओंको पत्नीरूपमें प्रदान किया था। रविनन्दन! उसी समय ऋषिवर ब्रह्माने नक्षत्रसंज्ञक रोहिणी आदि सभी पुण्यमयी कन्याओंको चन्द्रमाके हाथोंमें सौंप दिया। लक्ष्मी, मरुत्वती, साध्या, शुभा, विश्वेशा और सरस्वती देवी—ये पूर्वकालमें ब्रह्माद्वारा निर्मित हुई थीं। राजन्! कर्मपर दृष्टि रखनेवाले ब्रह्माने इन पाँचों सर्वश्रेष्ठ कन्याओं-को मङ्गलकारक सुरश्रेष्ठ धर्मको समर्पित कर दिया।

* यह विषय प्रजापतिसर्गनिरूपण नामक पहलेके अध्यायोंमें भी वर्णित हुआ है।

दत्ता भद्राय धर्माय ब्रह्मणा दृष्टकर्मणा।
या तु रूपवती पत्नी ब्रह्मणः कामरूपिणी॥ ३४
सुरभिः सा हिता भूत्वा ब्रह्माणं समुपस्थिता।
ततस्तामगमद् ब्रह्मा मैथुनं लोकपूजितः॥ ३५
लोकसर्जनहेतुज्ञो गवामर्थाय सत्तमः।
जज्ञिरे च सुतास्तस्यां विपुला धूमसन्निभाः॥ ३६
नक्तसंध्याभ्रसङ्काशा प्रादहंस्तिग्मतेजसः।
ते रुदन्तो द्रवन्तश्च गर्हयन्तः पितामहम्॥ ३७
रोदनाद् द्रवणाच्चैव रुद्रा इति ततः स्मृताः।
निर्ऋतिश्चैव शम्भुर्वै तृतीयश्चापराजितः॥ ३८
मृगव्याधः कपर्दी च दहनोऽथेश्वरश्च वै।
अहिर्बुध्न्यश्च भगवान् कपाली चापि पिङ्गलः॥ ३९
सेनानीश्च महातेजा रुद्रास्त्वेकादश स्मृताः।
तस्यामेव सुरभ्यां च गावो यज्ञेश्वराश्च वै॥ ४०
प्रकृष्टाश्च तथा मायाः सुरभ्याः पशवोऽक्षराः।
अजाश्चैव तु हंसाश्च तथैवामृतमुत्तमम्॥ ४१
ओषध्यः प्रवरायाश्च सुरभ्यास्ताः समुत्थिताः।
धर्माल्लक्ष्मीस्तथा कामं साध्या साध्यान् व्यजायत॥ ४२
भवं च प्रभवं चैव हीशं चासुरहं तथा।
अरुणं चारुणिं चैव विश्वावसुबलध्रुवान्॥ ४३
हविष्यं च वितानं च विधानशमितावपि।
वत्सरं चैव भूतिं च सर्वासुरनिषूदनम्॥ ४४
सुपर्वाणं बृहत्कान्तिः साध्या लोकनमस्कृता।
तमेवानुगता देवी जनयामास वै सुरान्॥ ४५
वरं वै प्रथमं देवं द्वितीयं ध्रुवमव्ययम्।
विश्वावसुं तृतीयं च चतुर्थं सोममीश्वरम्॥ ४६
ततोऽनुरूपमायं च यमस्तस्मादनन्तरम्।
सप्तमं च तथा वायुमष्टमं निर्ऋतिं वसुम्॥ ४७
धर्मस्यापत्यमेतद् वै सुदेव्यां समजायत।
विश्वे देवाश्च विश्वायां धर्माज्जाता इति श्रुतिः॥ ४८
दक्षश्चैव महाबाहुः पुष्करस्वन एव च।
चाक्षुषस्तु मनुश्चैव तथा मधुमहोरगौ॥ ४९
विश्रान्तकवपुर्बालो विष्कम्भश्च महायशाः।
गरुडश्चातिसत्त्वौजा भास्करप्रतिमद्युतिः॥ ५०
विश्वान् देवान् देवमाता विश्वेशाजनयत् सुतान्।

इसी बीच ब्रह्माकी स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाली एवं हितकारिणी सुन्दरी पत्नी सुरभिका रूप धारण कर ब्रह्माके निकट उपस्थित हुई। तब लोक-सृष्टिके कारणोंके ज्ञाता लोकपूजित देवश्रेष्ठ ब्रह्माने गौओंकी उत्पत्तिके निमित्त उसके साथ मानसिक समागम किया। उससे धूमकी-सी कान्तिवाले विशालकाय पुत्र उत्पन्न हुए। उनका वर्ण रात्रि और संध्याके संयोगकालमें छाये हुए बादलोंके समान था। वे अपने प्रचण्ड तेजसे सबको जला रहे थे और ब्रह्माकी निन्दा करते हुए रोते-से वे इधर-उधर दौड़ रहे थे। इस प्रकार रोने और दौड़नेके कारण वे 'रुद्र' कहे जाते हैं। निर्ऋति, शम्भु, तीसरे अपराजित, मृगव्याध, कपर्दी, दहन, ईश्वर, अहिर्बुध्न्य, भगवान् कपाली, पिंगल और महातेजस्वी सेनानी—ये ग्यारह रुद्र कहलाते हैं॥ २९—३९ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर उसी श्रेष्ठ सुरभिसे यज्ञकी साधनभूता गौएँ, प्रकृष्ट माया, अविनाशी पशुगण, बकरियाँ, हंस, उत्तम अमृत और ओषधियाँ उत्पन्न हुईं। धर्मके संयोगसे लक्ष्मीने कामको और साध्याने साध्यगणोंको जन्म दिया। भव, प्रभव, ईश, असुरहन्ता, अरुण, आरुणि, विश्वावसु, बल, ध्रुव, हविष्य, वितान, विधान, शमित, वत्सर, सम्पूर्ण असुरोंके विनाशक भूति और सुपर्वा—इन देवताओंको लोकनमस्कृता परम सुन्दरी साध्यादेवीने धर्मके संयोगसे जन्म दिया। इसी प्रकार प्रथम वर, दूसरे अविनाशी ध्रुव, तीसरे विश्वावसु, चौथे ऐश्वर्यशाली सोम, पाँचवें अनुरूपमाय, तदनन्तर छठे यम, सातवें वायु और आठवें वसु निर्ऋति—ये सभी धर्मके पुत्र सुदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। धर्मके संयोगसे विश्वाके गर्भसे विश्वेदेवोंकी उत्पत्ति हुई है—ऐसा सुना जाता है। महाबाहु दक्ष, पुष्करस्वन, चाक्षुष मनु, मधु, महोरग, विश्रान्तकवपु, बाल, महायशस्वी विष्कम्भ और सूर्यकी-सी कान्तिवाले अत्यन्त पराक्रमी एवं तेजस्वी गरुड—इन विश्वेदेवोंको देवमाता विश्वेशाने पुत्ररूपमें जन्म दिया॥ ४०—५० $\frac{1}{2}$॥

मरुत्वती मरुत्वतो देवानजनयत् सुतान्॥ ५१
अग्निं चक्षुं रविर्ज्योतिः सावित्रं मित्रमेव च।
अमरं शरवृष्टिं च सुकर्षं च महाभुजम्॥ ५२
विराजं चैव वाचं च विश्वावसुमतिं तथा।
अश्वमित्रं चित्ररश्मिं तथा निषधनं नृप॥ ५३
ह्यन्तं वाडवं चैव चारित्रं मन्दपन्नगम्।
बृहन्तं वै बृहद्रूपं तथा वै पूतनानुगम्॥ ५४
मरुत्वती पुरा जज्ञे एतान् वै मरुतां गणान्।
अदितिः कश्यपाज्जज्ञ आदित्यान् द्वादशैव हि॥ ५५
इन्द्रो विष्णुर्भगस्त्वष्टा वरुणो ह्यर्यमा रविः।
पूषा मित्रश्च धनदो धाता पर्जन्य एव च॥ ५६
इत्येते द्वादशादित्या वरिष्ठास्त्रिदिवौकसः।
आदित्यस्य सरस्वत्यां जज्ञाते द्वौ सुतौ वरौ॥ ५७
तपःश्रेष्ठौ गुणिश्रेष्ठौ त्रिदिवस्यापि सम्मतौ।
दनुस्तु दानवाञ् जज्ञे दितिर्दैत्यान् व्यजायत॥ ५८
काला तु वै कालकेयानसुरान् राक्षसांस्तु वै।
अनायुषायास्तनया व्याधयः सुमहाबलाः॥ ५९
सिंहिका ग्रहमाता वै गन्धर्वजननी मुनिः।
ताम्रा त्वप्सरसां माता पुण्यानां भारतोद्भव॥ ६०
क्रोधायाः सर्वभूतानि पिशाचाश्चैव पार्थिव।
जज्ञे यक्षगणांश्चैव राक्षसांश्च विशाम्पते॥ ६१

इसी प्रकार मरुत्वतीने मरुत् देवताओंको पुत्ररूपमें उत्पन्न किया। अग्नि, चक्षु, रवि, ज्योति, सावित्र, मित्र, अमर, शरवृष्टि, महाभुज सुकर्ष, विराज, वाच, विश्वावसु, मति, अश्वमित्र, चित्ररश्मि, निषधन, ह्यन्त, वाडव, चारित्र, मन्दपन्नग, बृहन्त, बृहद्रूप तथा पूतनानुग—इन मरुद्गणोंको पूर्वकालमें मरुत्वतीने जन्म दिया था। अदितिने कश्यपके संयोगसे बारह आदित्योंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—इन्द्र, विष्णु, भग, त्वष्टा, वरुण, अर्यमा, रवि, पूषा, मित्र, धनद, धाता और पर्जन्य। ये बारह आदित्य देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। आदित्यके सरस्वतीके गर्भसे दो श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ, गुणवानोंमें प्रधान और देवताओंके लिये भी पूजनीय कहे जाते हैं। दनुने दानवोंको और दितिने दैत्योंको उत्पन्न किया। कालाने कालकेय नामक असुरों और राक्षसोंको जन्म दिया। अत्यन्त बलवती व्याधियाँ अनायुषाकी संतान हैं। सिंहिका राहुग्रहकी माता है और मुनि गन्धर्वोंकी जननी कही जाती है। भरतकुलोत्पन्न राजन्! ताम्रा पवित्रात्मा अप्सराओंकी माता है। क्रोधासे सभी भूत और पिशाच पैदा हुए। विशाम्पते! क्रोधाने यक्षगणों और राक्षसोंको भी जन्म दिया था॥ ५१—६१॥

चतुष्पदानि सत्त्वानि तथा गावस्तु सौरभाः।
सुपर्णान् पक्षिणश्चैव विनता चाप्यजायत॥ ६२
महीधरान् सर्वनागान् देवी कद्रूर्व्यजायत।
एवं वृद्धिं समगमन् विश्वे लोकाः परंतप॥ ६३
तदा वै पौष्करो राजन् प्रादुर्भावो महात्मनः।
प्रादुर्भावो पौष्करस्ते मया द्वैपायनेरितः॥ ६४
पुराणः पुरुषश्चैव मया विष्णुर्हरिः प्रभुः।
कथितस्तेऽनुपूर्व्येण संस्तुतः परमर्षिभिः॥ ६५
यश्चेदमग्र्यं शृणुयात् पुराणं
सदा नरः पर्वसु गौरवेण।
अवाप्य लोकान् स हि वीतरागः
परत्र च स्वर्गफलानि भुङ्क्ते॥ ६६
चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यः कृष्णं तं कृष्णोऽनुप्रसीदति॥ ६७

राजन्! सभी चौपाये जीव तथा गौएँ सुरभीकी संतान हैं। विनताने सुन्दर पंखधारी पक्षियोंको पैदा किया। कद्रूदेवीने पृथ्वीको धारण करनेवाले सभी प्रकारके नागोंको उत्पन्न किया। परंतप! इसी प्राकर विश्वमें लोकसृष्टि वृद्धिको प्राप्त हुई है। राजन्! यही महात्मा विष्णुका पुष्करसम्बन्धी प्रादुर्भाव है। व्यासद्वारा कहे गये इस पौष्कर प्रादुर्भावका तथा जो पुराणपुरुष, सर्वव्यापी और महर्षियोंद्वारा संस्तुत हैं, उन भगवान् श्रीहरिका वर्णन मैंने तुम्हें आनुपूर्वी सुना दिया। जो मनुष्य सदा पर्वोंके समय गौरवपूर्वक इस श्रेष्ठ पुराणको श्रवण करता है, वह वीतराग होकर लौकिक सुखोंका उपभोग करके परलोकमें स्वर्गफलोंका भोग करता है। जो मनुष्य श्रीकृष्णको नेत्र, मन, वचन और कर्म—इन चारों प्रकारोंसे प्रसन्न करता है तो श्रीकृष्ण भी उसे उसी प्रकार आनन्दित करते हैं।

राजा च लभते राज्यमधनश्चोत्तमं धनम्।
क्षीणायुर्लभते चायुः पुत्रकामः सुतं तथा॥ ६८
यज्ञा वेदास्तथा कामास्तपांसि विविधानि च।
प्राप्नोति विविधं पुण्यं विष्णुभक्तो धनानि च॥ ६९
यद्यत्कामयते किञ्चित् तत्तल्लोकेश्वराद् भवेत्।
सर्वं विहाय य इमं पठेत् पौष्करकं हरेः॥ ७०
प्रादुर्भावं नृपश्रेष्ठ न तस्य ह्यशुभं भवेत्।
एष पौष्करको नाम प्रादुर्भावो महात्मनः।
कीर्तितस्ते महाभाग व्यासश्रुतिनिदर्शनात्॥ ७१

राजाको राज्यकी, निर्धनको उत्तम धनकी, क्षीणायुको दीर्घायुकी तथा पुत्रार्थीको पुत्रकी प्राप्ति होती है। विष्णुभक्त मनुष्य यज्ञ, वेद, कामनापूर्ति, अनेकविध तप, विविध पुण्य और धनको प्राप्त करता है। नृपश्रेष्ठ! जो मनुष्य सबका परित्याग करके श्रीहरिके इस पौष्कर-प्रादुर्भावका पाठ करता है, वह जो-जो कामनाएँ करता है, वह सब कुछ उस लोकेश्वरभगवान्‌से प्राप्त हो जाता है और उसका कभी अमङ्गल नहीं होता। महाभाग! इस प्रकार मैंने तुमसे महात्मा विष्णुके पुष्कर या कमलके प्रादुर्भावका वर्णन कर चुका। यह व्यासके वचनों तथा श्रुतियोंका निदर्शन है॥ ६२—७१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावो नामैकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके पद्मोद्भवप्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें एक सौ एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७१॥

एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय

तारकामय-संग्रामकी भूमिका एवं भगवान् विष्णुका महासमुद्रके रूपमें वर्णन, तारकादि असुरोंके अत्याचारसे दुःखी होकर देवताओंकी भगवान् विष्णुसे प्रार्थना और भगवान्‌का उन्हें आश्वासन

मत्स्य उवाच

विष्णुत्वं शृणु विष्णोश्च हरित्वं च कृते युगे।
वैकुण्ठत्वं च देवेषु कृष्णत्वं मानुषेषु च॥ १
ईश्वरस्य हि तस्यैषा कर्मणां गहना गतिः।
सम्प्रत्यतीतान् भव्यांश्च शृणु राजन् यथातथम्॥ २
अव्यक्तो व्यक्तलिङ्गस्थो य एष भगवान् प्रभुः।
नारायणो ह्यनन्तात्मा प्रभवोऽव्यय एव च॥ ३
एष नारायणो भूत्वा हरिरासीत् सनातनः।
ब्रह्मा वायुश्च सोमश्च धर्मः शक्रो बृहस्पतिः॥ ४
अदितेरपि पुत्रत्वं समेत्य रविनन्दन।
एष विष्णुरिति ख्यात इन्द्रस्यावरजो विभुः॥ ५
प्रसादजं ह्यस्य विभोरदित्याः पुत्रकारणम्।
वधार्थं सुरशत्रूणां दैत्यदानवरक्षसाम्॥ ६
प्रधानात्मा पुरा ह्येष ब्रह्माणमसृजत् प्रभुः।
सोऽसृजत् पूर्वपुरुषः पुराकल्पे प्रजापतीन्॥ ७

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! अब मैं कृतयुगमें घटित हुए भगवान् विष्णुके विष्णुत्व एवं हरित्व, देवताओंमें वैकुण्ठत्व और मनुष्योंमें कृष्णत्वका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो। उस ईश्वरके कर्मोंकी यह गति बड़ी गहन है। इस समय तुम विष्णुके भूत एवं भावी अवतारोंके विषयमें यथार्थरूपसे श्रवण करो। जो ये ऐश्वर्यशाली अव्यक्तस्वरूप भगवान् हैं, वे ही व्यक्तरूपमें भी प्रकट होते हैं। वे ही नारायण अनन्तात्मा, सबके उत्पत्तिस्थान और अविनाशी भी कहे जाते हैं। ये सनातन नारायण श्रीहरि ब्रह्मा, वायु, सोम, धर्म, इन्द्र और बृहस्पतिके रूपमें भी प्रकट होते हैं। रविनन्दन! ये सर्वव्यापी विष्णु अदितिके पुत्ररूपमें उत्पन्न होकर इन्द्रके अनुज 'उपेन्द्र' के नामसे विख्यात होते हैं। इन सर्वव्यापीका अदितिके पुत्ररूपमें उत्पन्न होनेके दो कारण हैं—एक तो अदितिपर कृपा करना और दूसरा देवशत्रु दैत्यों, दानवों और राक्षसोंका वध करना। इन प्रधानात्मा प्रभुने सर्वप्रथम ब्रह्माको उत्पन्न किया। उन पूर्वपुरुषने पूर्व कल्पमें प्रजापतियोंकी सृष्टि की।

असृजन्मानवांस्तत्र ब्रह्मवंशाननुत्तमान्।
तेभ्योऽभवन्महात्मभ्यो बहुधा ब्रह्म शाश्वतम्॥ ८
एतदाश्चर्यभूतस्य विष्णोः कर्मानुकीर्तनम्।
कीर्तनीयस्य लोकेषु कीर्त्यमानं निबोध मे॥ ९
वृत्ते वृत्रवधे तत्र वर्तमाने कृते युगे।
आसीत् त्रैलोक्यविख्यातः संग्रामस्तारकामयः॥ १०
यत्र ते दानवा घोराः सर्वे संग्रामदुर्जयाः।
घ्नन्ति देवगणान् सर्वान् सयक्षोरगराक्षसान्॥ ११
ते वध्यमाना विमुखाः क्षीणप्रहरणा रणे।
त्रातारं मनसा जग्मुर्देवं नारायणं प्रभुम्॥ १२
एतस्मिन्नन्तरे मेघा निर्वाणाङ्गारवर्चसः।
सार्कचन्द्रग्रहगणं छादयन्तो नभस्तलम्॥ १३
चण्डविद्युद्गणोपेता घोरनिर्ह्रादकारिणः।
अन्योऽन्यवेगाभिहताः प्रववुः सप्त मारुताः॥ १४
दीप्ततोयाशनिघनैर्वज्रवेगानलानिलैः।
रवैः सुघोरैरुत्पातैर्दह्यमानमिवाम्बरम्॥ १५
तत उल्कासहस्राणि निपेतुः खगतान्यपि।
दिव्यानि च विमानानि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च॥ १६
चतुर्युगान्ते पर्याये लोकानां यद्भयं भवेत्।
अरूपवन्ति रूपाणि तस्मिन्नुत्पातलक्षणे॥ १७
जातं च निष्प्रभं सर्वं न प्राज्ञायत किञ्चन।
तिमिरौघपरिक्षिप्ता न रेजुश्च दिशो दश॥ १८
विवेश रूपिणी काली कालमेघावगुण्ठिता।
द्यौर्नभात्यभिभूतार्का घोरेण तमसावृता॥ १९
तान् घनौघान् सतिमिरान् दोर्भ्यामाक्षिप्य स प्रभुः।
वपुः सन्दर्शयामास दिव्यं कृष्णवपुर्हरिः॥ २०
बलाहकाञ्जननिभं बलाहकतनूरुहम्।
तेजसा वपुषा चैव कृष्णं कृष्णमिवाचलम्॥ २१
दीप्तपीताम्बरधरं तप्तकाञ्चनभूषणम्।
धूमान्धकारवपुषं युगान्ताग्निमिवोत्थितम्॥ २२

तत्पश्चात् ब्रह्माके वंशमें उत्पन्न होनेवाले सर्वश्रेष्ठ मानवोंको उत्पन्न किया। उन महात्माओंके सम्पर्कसे एक ही शाश्वत ब्रह्म अनेक रूपोंमें विभक्त हो गया। लोकोंमें वर्णन करनेयोग्य भगवान् विष्णुके कर्मोंका यह अनुकीर्तन परम आश्चर्यजनक है। मैं उसका वर्णन कर रहा हूँ, सुनो॥ ८—९॥

राजन्! कृतयुगकी स्थितिके समय वृत्रासुरका वध हो जानेके पश्चात् त्रिलोकीमें विख्यात तारकामय संग्राम हुआ था। जिसमें संग्राममें कठिनतासे जीते जानेवाले सभी भयंकर दानव यक्ष, नाग और राक्षसोंसहित सभी देवगणोंका संहार कर रहे थे। इस प्रकार मारे जाते हुए वे देवगण शस्त्ररहित हो युद्धसे विमुख हो गये और मनसे अपने रक्षक सामर्थ्यशाली भगवान् नारायणकी शरणमें गये। इसी बीच बुझते हुए अंगारकी-सी कान्तिवाले मेघोंने सूर्य, चन्द्रमा और ग्रहगणोंसमेत आकाशमण्डलको आच्छादित कर लिया। वे प्रचण्ड बिजलियोंसे युक्त थे तथा भयंकर गर्जना कर रहे थे। पुनः एक-दूसरेके वेगसे आहत हो सातों प्रकारकी वायु बहने लगी। उस समय कौंधती हुई बिजली और जलसे युक्त बादलों, वज्रके समान वेगशाली अग्नि और वायुके झकोरों तथा अत्यन्त भयंकर शब्दोंसे युक्त उत्पातोंद्वारा आकाश जलता हुआ-सा दीख रहा था। आकाशमें उड़ती हुई हजारों उल्काएँ भूतलपर गिरने लगीं। दिव्य विमान लड़खड़ाते हुए गिरने लगे। चारों युगोंकी समाप्तिके समय लोकोंके लिये जैसा भयकारी विनाश उपस्थित होता है, वैसा ही उत्पात उस समय भी घटित हुआ। सभी रूपवती वस्तुएँ विकृत हो गयीं। सारा जगत् प्रकाशहीन हो गया, जिससे कुछ भी जाना नहीं जा सकता था। घने अन्धकारसे ढकी हुई दसों दिशाएँ शोभाहीन हो गयीं। उस समय काले मेघोंके अवगुण्ठनसे युक्त काला रूप धारण करनेवाली देवी आकाशमें प्रविष्ट हुई। घोर अन्धकारसे आवृत होनेके कारण सूर्यके छिप जानेसे आकाशमण्डलकी शोभा जाती रही॥ १०—१९॥

उसी समय सामर्थ्यशाली भगवान्ने अपने दोनों हाथोंसे अन्धकारसहित घन-समूहोंको दूर हटाकर कृष्णवर्णका दिव्य शरीर प्रकट किया। उसकी कान्ति काले मेघ और कज्जलके समान थी, उसके रोएँ भी काले मेघ-जैसे थे, वह तेज और शरीर—दोनोंसे कज्जलगिरिकी भाँति कृष्ण था, उसपर उद्दीप्त पीताम्बर शोभा पा रहा था, वह तपाये हुए स्वर्णमय आभूषणोंसे विभूषित, धुएँके अन्धकारकी-सी कान्तिसे युक्त तथा

चतुर्द्विगुणपीनांसं किरीटच्छन्नमूर्धजम्।
बभौ चामीकरप्रख्यैरायुधैरुपशोभितम्॥ २३

चन्द्रार्ककिरणोद्द्योतं गिरिकूटमिवोच्छ्रितम्।
नन्दकानन्दितकरं शराशीविषधारिणम्॥ २४

शक्तिचित्रफलोदग्रशङ्खचक्रगदाधरम्।
विष्णुशैलं क्षमामूलं श्रीवृक्षं शार्ङ्गधन्विनम्॥ २५

त्रिदशोदारफलदं स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवम्।
सर्वलोकमनःकान्तं सर्वसत्त्वमनोहरम्॥ २६

नानाविमानविटपं तोयदाम्बुमधुस्रवम्।
विद्याहंकारसाराढ्यं महाभूतप्ररोहणम्॥ २७

विशेषपत्रैर्निचितं ग्रहनक्षत्रपुष्पितम्।
दैत्यलोकमहास्कन्धं मर्त्यलोके प्रकाशितम्॥ २८

सागराकारनिर्ह्रादं रसातलमहाश्रयम्।
मृगेन्द्रपाशैर्विततं पक्षजन्तुनिषेवितम्॥ २९

शीलार्थचारुगन्धाढ्यं सर्वलोकमहाद्रुमम्।
अव्यक्तानन्तसलिलं व्यक्ताहङ्कारफेनिलम्॥ ३०

महाभूततरङ्गौघं ग्रहनक्षत्रबुद्बुदम्।
विमानगरुतव्याप्तं तोयदाडम्बराकुलम्॥ ३१

जन्तुमत्स्यगणाकीर्णं शैलशङ्खकुलैर्युतम्।
त्रैगुण्यविषयावर्तं सर्वलोकतिमिङ्गिलम्॥ ३२

वीरवृक्षलतागुल्मं भुजगोत्कृष्टशैवलम्।
द्वादशार्कमहाद्वीपं रुद्रैकादशपत्तनम्॥ ३३

वस्वष्टपर्वतोपेतं त्रैलोक्याम्भोमहोदधिम्।
संध्यासंख्योर्मिसलिलं सुपर्णानिलसेवितम्॥ ३४

दैत्यरक्षोगणग्राहं यक्षोरगझषाकुलम्।
पितामहमहावीर्यं सर्वस्त्रीरत्नशोभितम्॥ ३५

प्रलयकालमें प्रकट हुई अग्निके समान उद्भासित हो रहा था, उसके कंधे दुगुने एवं चौगुने मोटे थे, उसके बाल किरीटसे ढके होनेके कारण शोभा पा रहे थे, वह स्वर्ण-सदृश चमकीले आयुधोंसे सुशोभित था, उससे चन्द्रमा और सूर्यकी किरणों-जैसी प्रभा निकल रही थी, वह पर्वत-शिखरकी तरह ऊँचा था, उसके हाथ नन्दक नामक खड्ग और विषैले सर्पों-जैसे बाणोंसे युक्त थे, वह चित्तल मछलीके समान विशाल शक्ति, शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये हुए था, क्षमा जिसका मूल था, जो श्रीवृक्षसे सम्पन्न, शार्ङ्गधनुषसे युक्त, देवताओंको उत्तम फल देनेवाला, देवाङ्गनारूपी रुचिर पल्लवोंसे सुशोभित, सभी लोगोंके मनको प्रिय लगनेवाला, सम्पूर्ण जीवोंसे युक्त होनेके कारण मनोहर, नाना प्रकारके विमानरूपी वृक्षोंसे युक्त और बादलोंके मीठे जलको टपकानेवाला, विद्या और अहंकारके सारसे सम्पन्न तथा महाभूतरूपी वृक्षोंको उगानेवाला था, वह घने पत्तोंसे आच्छादित था, उसपर ग्रह-नक्षत्ररूप पुष्प खिले हुए थे, दैत्योंके लोक उसकी विशाल शाखाके रूपमें थे, ऐसा वह विष्णुशैल मृत्युलोकमें प्रकाशित हो रहा था॥ २०—२८॥

रसातलतक व्याप्त रहनेवाला वह नारायणरूप महासागर सागरकी भाँति शब्द कर रहा था, वह मृगेन्द्ररूपी पाशोंसे व्याप्त, पंखधारी जन्तुओंसे सेवित, शील और अर्थकी सुन्दर गन्धसे युक्त तथा सम्पूर्ण लोकरूपी महान् वृक्षसे सम्पन्न था, नारायणका अव्यक्त स्वरूप उसका अगाध जल था, वह व्यक्त अहंकाररूप फेनसे युक्त था, उसमें महाभूतगण लहरोंके समूह थे, ग्रह और नक्षत्र बुद्बुदकी तरह शोभा पा रहे थे, वह विमानोंके चलनेसे होनेवाले शब्दोंसे व्याप्त था, वह बादलोंके आडम्बरसे सम्पन्न, जलजन्तुओं और मत्स्यसमूहोंसे परिपूर्ण और समुद्रस्थ पर्वतों एवं शङ्खसमूहसे युक्त था। उसमें त्रिगुणयुक्त विषयोंकी भँवरें उठ रही थीं और सारा लोक तिमिंगिल (बहुत बड़ी मछली)-के समान था, वीरगण वृक्षों और लताओंके झुरमुट थे, बड़े-बड़े नाग सेवारके समान थे, बारहों आदित्य महाद्वीप और ग्यारहों रुद्र नगर थे, वह महासागर आठों वसुओंरूप पर्वतसे युक्त और त्रिलोकीरूप जलसे भरा हुआ था, उसके जलमें असंख्य संध्यारूप लहरें उठ रही थीं, वह सुपर्णरूप वायुसे सेवित, दैत्य और राक्षसगणरूप ग्राह तथा यक्ष एवं नागरूप मीनसे व्याप्त था, पितामह ब्रह्मा ही उसमें महान् पराक्रमी व्यक्ति थे, वह सभी स्त्री-

श्रीकीर्तिकान्तिलक्ष्मीभिर्नदीभिरुपशोभितम्।
कालयोगिमहापर्वप्रलयोत्पत्तिवेगिनम्॥ ३६

तं तु योगमहापारं नारायणमहार्णवम्।
दैवाधिदेवं वरदं भक्तानां भक्तवत्सलम्॥ ३७

अनुग्रहकरं देवं प्रशान्तिकरणं शुभम्।
हर्यश्वरथसंयुक्ते सुपर्णध्वजसेविते॥ ३८

ग्रहचन्द्रार्करचिते मन्दराक्षवरावृते।
अनन्तरश्मिभिर्युक्ते विस्तीर्णे मेरुगह्वरे॥ ३९

तारकाचित्रकुसुमे ग्रहनक्षत्रबन्धुरे।
भयेष्वभयदं व्योम्नि देवा दैत्यपराजिताः॥ ४०

ददृशुस्ते स्थितं देवं दिव्ये लोकमये रथे।
ते कृताञ्जलयः सर्वे देवाः शक्रपुरोगमाः॥ ४१

जयशब्दं पुरस्कृत्य शरण्यं शरणं गताः।
स तेषां तां गिरं श्रुत्वा विष्णुर्दैवतदैवतम्॥ ४२

मनश्चक्रे विनाशाय दानवानां महामृधे।
आकाशे तु स्थितो विष्णुरुत्तमं वपुरास्थितः॥ ४३

उवाच देवताः सर्वाः सप्रतिज्ञमिदं वचः।
शान्तिं व्रजत भद्रं वो मा भैष्ट मरुतां गणाः॥ ४४

जिता मे दानवाः सर्वे त्रैलोक्यं परिगृह्यताम्।
ते तस्य सत्यसंधस्य विष्णोर्वाक्येन तोषिताः॥ ४५

देवाः प्रीतिं समाजग्मुः प्राश्यामृतमिवोत्तमम्।
ततस्तमः संहृतं तद्विनेशुश्च बलाहकाः॥ ४६

प्रववुश्च शिवा वाता प्रशान्ताश्च दिशो दश।
शुद्धप्रभाणि ज्योतींषि सोमश्चक्रुः प्रदक्षिणाम्॥ ४७

न विग्रहं ग्रहाश्चक्रुः प्रशान्ताश्चापि सिन्धवः।
विरजस्काभवन् मार्गा नाकवर्गादयस्त्रयः॥ ४८

यथार्थमूहुः सरितो नापि चुक्षुभिरेऽर्णवाः।
आसञ्शुभानीन्द्रियाणि नराणामन्तरात्मसु॥ ४९

रत्नों तथा श्री, कीर्ति, कान्ति और लक्ष्मीरूपी नदियोंसे सुशोभित था, उसमें समयानुसार महान् पर्व और प्रलयकी उत्पत्ति होती रहती थी, ऐसा वह योगरूप महान् तटवाला नारायण-महासागर था॥ २९—३६½॥

उस समय दैत्योंसे पराजित हुए देवताओंने आकाशमें उन देवाधिदेव भगवान‌को, जो भक्तोंके वरदायक, भक्तवत्सल, अनुग्रह करनेवाले, प्रशान्तिकारक, शुभमय और भयके अवसरोंपर अभय प्रदान करनेवाले हैं, देखा। वे ऐसे लोकमय दिव्य रथपर विराजमान थे, जो इन्द्रके रथके समान था, जिसपर गरुडध्वज फहरा रहा था, जिसमें सभी ग्रह, चन्द्र और सूर्य उपस्थित थे, जो मन्दराचलकी श्रेष्ठ धुरीपर आधारित था, वह असंख्य किरणोंसे युक्त मेरुको विस्तृत गुफा-जैसा लग रहा था, उसमें तारकाएँ विचित्र पुष्पोंके सदृश तथा ग्रह और नक्षत्र हंसके समान शोभा पा रहे थे। तब इन्द्र आदि वे सभी देवता हाथ जोड़कर जय-जयकार करते हुए उन शरणागतवत्सलको शरणमें गये॥ ३७—४१½॥

इस प्रकार देवताओंकी वह आर्त-वाणी सुनकर देवाधिदेव भगवान् विष्णुने महासमरमें दानवोंका विनाश करनेको सोचा। तब उत्तम शरीर धारण करके आकाशमें स्थित हुए भगवान् विष्णु सभी देवताओंसे प्रतिज्ञापूर्वक ऐसी वाणी बोले—'देवगण! तुम्हारा कल्याण हो। तुमलोग शान्त हो जाओ, भय मत करो, ऐसा समझो कि मैंने सभी दानवोंको जीत लिया है। अब तुमलोग पुनः त्रिलोकीका राज्य ग्रहण करो।' इस प्रकार उन सत्यसंध भगवान् विष्णुके वचनसे वे देवगण परम संतुष्ट हुए और उन्हें ऐसी प्रसन्नता प्राप्त हुई, मानो उत्तम अमृत ही पान करनेको मिल गया हो। तदनन्तर वह निबिड़ अन्धकार नष्ट हो गया। बादल विनष्ट हो गये। सुखदायिनी वायु चलने लगी और दसों दिशाएँ शान्त हो गयीं। ज्योतिर्गणोंकी प्रभा निर्मल हो गयी। तब चन्द्रमा और वे सभी ज्योतिर्गण प्रदक्षिणा करने लगे। ग्रहोंमें परस्पर विग्रहका भाव नष्ट हो गया। सागर प्रशान्त हो गये। मार्ग धूलरहित हो गये। स्वर्गादि तीनों लोकोंमें शान्ति स्थापित हो गयी। नदियाँ यथार्थरूपसे प्रवाहित होने लगीं। समुद्रोंका ज्वार-भाटा शान्त हो गया। मनुष्योंकी अन्तरात्माएँ तथा इन्द्रियाँ

महर्षयो वीतशोका वेदानुच्चैरधीयत।
यज्ञेषु च हविः पाकं शिवमाप च पावकः॥ ५०

प्रवृत्तधर्माः संवृत्ता लोका मुदितमानसाः।
विष्णोर्दत्तप्रतिज्ञस्य श्रुत्वारिनिधने गिरम्॥ ५१

शुभकारिणी हो गयीं। महर्षियोंका शोक नष्ट हो गया, वे उच्च स्वरसे वेदोंका अध्ययन करने लगे। यज्ञोंमें अग्निको पके हुए मङ्गलकारक हविकी प्राप्ति होने लगी। इस प्रकार शत्रुका विनाश करनेके विषयमें दत्तप्रतिज्ञ भगवान् विष्णुकी वाणी सुनकर सभी लोगोंका मन हर्षित हो गया, तब वे अपने-अपने धर्मोंमें संलग्न हो गये।

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७२॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामयसंग्राममें एक सौ बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७२॥

एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

दैत्यों और दानवोंकी युद्धार्थ तैयारी

मत्स्य उवाच

ततोऽभयं विष्णुवचः श्रुत्वा दैत्याश्च दानवाः।
उद्योगं विपुलं चक्रुर्युद्धाय विजयाय च॥ १

मयस्तु काञ्चनमयं त्रिनल्वायतमक्षयम्।
चतुश्चक्रं सुविपुलं सुकम्पितमहायुगम्॥ २

किङ्किणीजालनिर्घोषं द्वीपिचर्मपरिष्कृतम्।
रुचिरं रत्नजालैश्च हेमजालैश्च शोभितम्॥ ३

ईहामृगगणाकीर्णं पक्षिपङ्क्तिविराजितम्।
दिव्यास्त्रतूणीरधरं पयोधरनिनादितम्॥ ४

स्वक्षं रथवरोदारं सूपस्थं गगनोपमम्।
गदापरिघसम्पूर्णं मूर्तिमन्तमिवार्णवम्॥ ५

हैमकेयूरवलयं स्वर्णमण्डलकूबरम्।
सपताकध्वजोपेतं सादित्यमिव मन्दरम्॥ ६

गजेन्द्राभोगवपुषं क्वचित् केसरिवर्चसम्।
युक्तमृक्षसहस्रेण समृद्धाम्बुदनादितम्॥ ७

दीप्तमाकाशगं दिव्यं रथं पररथारुजम्।
अध्यतिष्ठद्रणाकाङ्क्षी मेरुं दीप्त इवांशुमान्॥ ८

मत्स्यभगवान् बोले—रविनन्दन! तदनन्तर देवताओंके लिये उपयुक्त भगवान् विष्णुके उस अभयदायक वचनको सुनकर दैत्य और दानव युद्ध एवं उसमें विजयप्राप्तिके लिये महान् उद्योग करने लगे। उस समय युद्धाकाङ्क्षी मय एक ऐसे दिव्य रथपर सवार हुआ, जो सोनेका बना हुआ था। वह अविनाशी रथ तीन नल्व* विस्तारवाला अत्यन्त विशाल तथा चार पहियों और परम सुन्दर महान् जुएसे युक्त था। उसमें क्षुद्र घंटिकाओंके रुनझुन शब्द हो रहे थे। वह गैंड़ेके चमड़ेसे आच्छादित, रत्नों और सुवर्णकी सुन्दर जालियोंसे सुशोभित, भेड़ियों और पङ्क्तिबद्ध पक्षियोंकी पच्चीकारीसे समलंकृत तथा दिव्यास्त्र और तरकससे परिपूर्ण था। उससे मेघकी गड़गड़ाहटके समान शब्द निकल रहा था। वह श्रेष्ठ रथ सुन्दर धुरी और सुदृढ़ मध्यभागसे युक्त, आकाशमण्डल-जैसा विस्तृत तथा गदा और परिघसे परिपूर्ण होनेके कारण मूर्तिमान् सागर-सा लग रहा था। उसके केयूर, बलय और कूबर (युगंधर) सोनेके बने हुए थे तथा उसपर पताकाएँ और ध्वज फहरा रहे थे, जिससे वह सूर्ययुक्त मन्दराचलकी भाँति शोभित हो रहा था। उसका ऊपरी भाग कहीं गजेन्द्र-चर्म तो कहीं सिंह-चर्म-जैसा चमक रहा था। उसमें एक हजार रीछ जुते हुए थे, वह घने बादलकी तरह शब्द कर रहा था, शत्रुओंके रथको रौंदनेवाला वह दीप्तिशाली रथ आकाशगामी था, उसपर बैठा हुआ मय ऐसा लग रहा था मानो दीप्तिमान् सूर्य सुमेरु पर्वतपर विराजमान हों॥ १—८॥

* एक फर्लांगका एक प्राचीन माप।

तारमुत्क्रोशविस्तारं सर्वं हेममयं रथम्।
शैलाकारमसम्बाधं नीलाञ्जनचयोपमम्॥ ९
कार्ष्णायसमयं दिव्यं लोहेषाबद्धकूबरम्।
तिमिरोद्गारिकिरणं गर्जन्तमिव तोयदम्॥ १०
लोहजालेन महता सगवाक्षेण दंशितम्।
आयसैः परिघैः पूर्णं क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः॥ ११
प्रासैः पाशैश्च विततैरसंयुक्तश्च कण्टकैः।
शोभितं त्रासयानैश्च तोमरैश्च परश्वधैः॥ १२
उद्यन्तं द्विषतां हेतोर्द्वितीयमिव मन्दरम्।
युक्तं खरसहस्त्रेण सोऽध्यारोहद्रथोत्तमम्॥ १३
विरोचनस्तु संक्रुद्धो गदापाणिरवस्थितः।
प्रमुखे तस्य सैन्यस्य दीप्तशृङ्ग इवाचलः॥ १४
युक्तं रथसहस्त्रेण हयग्रीवस्तु दानवः।
स्यन्दनं वाहयामास सपत्नानीकमर्दनः॥ १५
व्यायतं किष्कुसाहस्त्रं धनुर्विस्फारयन् महत्।
वाराहः प्रमुखे तस्थौ सप्ररोह इवाचलः॥ १६
खरस्तु विक्षरन् दर्पान्नेत्राभ्यां रोषजं जलम्।
स्फुरद्दन्तोष्ठनयनं संग्रामं सोऽभ्यकाङ्क्षत॥ १७

इसी प्रकार जो अत्यन्त ऊँचा और दूरतक शब्द करनेवाला था, जिसके सभी अङ्ग स्वर्णमय थे, जो आकारमें पर्वतके समान और नीलाञ्जनकी राशि-सा दीख रहा था, काले लोहेका बना हुआ था, जिसके लोहेके हरसेमें कूबर बँधा हुआ था, जिसमें कहीं-कहीं अंधकारको फाड़कर किरणें चमक रही थीं, जो बादलकी तरह गर्जना कर रहा था, लोहेकी विशाल जाली और झरोखोंसे सुशोभित था, लोहनिर्मित परिघ, क्षेपणीय (ढेलवाँस) और मुद्गरोंसे परिपूर्ण था, भाला, पाश, बड़े-बड़े शङ्कु, कण्टक, भयदायक तोमर और कुठारोंसे सुशोभित था, शत्रुओंसे युद्ध करनेके लिये उद्यत दूसरे मन्दराचलकी भाँति दीख रहा था तथा जिसमें एक हजार गधे जुते हुए थे, ऐसे उत्तम दिव्य रथपर तारकासुर सवार हुआ। क्रोधसे भरा हुआ विरोचन हाथमें गदा लिये हुए उस सेनाके मुहानेपर खड़ा हुआ। वह देदीप्यमान शिखरवाले पर्वतके समान लग रहा था। शत्रुसेनाका मर्दन करनेवाले दानवश्रेष्ठ हयग्रीवने एक हजार रथके साथ अपने रथको आगे बढ़ाया। बाराह नामक दानव अपने एक हजार किष्कु* लम्बे विशाल धनुषका टंकार करते हुए सेनाके अग्रभागमें स्थित हुआ, जो वृक्षोंसहित पर्वत-सा दीख रहा था। खर नामक दैत्य अभिमानवश नेत्रोंसे रोषजनित जल गिराता हुआ संग्रामके लिये उद्यत हुआ, उस समय उसके दाँत, होंठ और नेत्र फड़क रहे थे॥ ९—१७॥

त्वष्टा त्वष्टगजं घोरं यानमास्थाय दानवः।
व्यूहितुं दानवव्यूहं परिचक्राम वीर्यवान्॥ १८
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः श्वेतकुण्डलभूषणः।
श्वेतशैलप्रतीकाशो युद्धायाभिमुखे स्थितः॥ १९
अरिष्टो बलिपुत्रश्च वरिष्ठोऽद्रिशिलायुधः।
युद्धायाभिमुखस्तस्थौ धराधरविकम्पनः॥ २०
किशोरस्त्वभिसंहर्षात्किशोर इति चोदितः।
सबला दानवाश्चैव सन्नह्यन्ते यथाक्रमम्॥ २१
अभवद् दैत्यसैन्यस्य मध्ये रविरिवोदितः।
लम्बस्तु नवमेघाभः प्रलम्बाम्बरभूषणः॥ २२
दैत्यव्यूहगतो भाति सनीहार इवांशुमान्।
स्वर्भानुरास्ययोधी तु दशनोष्ठेक्षणायुधः॥ २३

इसी प्रकार पराक्रमी दानवराज त्वष्टा, जिसमें आठ हाथी जुते हुए थे, ऐसे भयंकर रथपर बैठकर दानवसेनाको व्यूहबद्ध करनेका प्रयत्न करने लगा। विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत, जो श्वेत पर्वतके समान विशालकाय और श्वेत कुण्डलोंसे विभूषित था, युद्धके लिये सेनाके अग्रभागमें स्थित हुआ। बलिका पुत्र अरिष्ट, जो महान् बलसम्पन्न और पर्वतको कँपा देनेवाला था तथा पर्वत-शिलाएँ जिसकी आयुधभूता थीं, युद्धकी कामनासे सेनाके सम्मुख खड़ा हुआ। किशोर नामक दैत्य प्रेरित किये गये सिंह-किशोरकी तरह अत्यन्त हर्षके साथ दैत्य-सेनाके मध्यभागमें उपस्थित हुआ, जो उदयकालीन सूर्य-सा प्रतीत हो रहा था। नवीन मेघकी-सी कान्तिवाला लम्ब नामक दानव, जो लम्बे वस्त्रों और आभूषणोंसे विभूषित था, दैत्यसेनामें पहुँचकर कुहासेसे घिरे हुए सूर्यकी तरह शोभा पा रहा था। महान् ग्रह राहु, जो मुख, दाँत, होंठ और नेत्रोंसे युद्ध करनेवाला था,

* बीस अंगुल या मतान्तरसे एक हाथका प्राचीन माप।

हसंस्तिष्ठति दैत्यानां प्रमुखे स महाग्रहः।
अन्ये हयगतास्तत्र गजस्कन्धगताः परे॥ २४
सिंहव्याघ्रगताश्चान्ये वराहर्क्षेषु चापरे।
केचित्खरोष्ट्रयातारः केचिच्छ्वापदवाहनाः॥ २५

हँसते हुए दैत्योंके आगे खड़ा हुआ। इस प्रकार अन्यान्य दानव भी क्रमशः सेनासहित कवच धारण करके युद्धके लिये प्रस्थित हुए। उनमें कुछ लोग घोड़ोंपर सवार थे तो कुछ लोग गजराजोंके कंधोंपर बैठे थे। दूसरे कुछ लोग सिंह, व्याघ्र, वराह और रीछोंपर सवार थे। कुछ गधे और ऊँटोंपर चढ़कर चल रहे थे तो किन्हींके वाहन चीते थे॥ १८—२५॥

पत्तिनस्त्वपरे दैत्या भीषणा विकृताननाः।
एकपादार्धपादाश्च ननृतुर्युद्धकाङ्क्षिणः॥ २६
आस्फोटयन्तो बहवः क्ष्वेडन्तश्च तथापरे।
हृष्टशार्दूलनिर्घोषा नेदुर्दानवपुङ्गवाः॥ २७
ते गदापरिघैरुग्रैः शिलामुसलपाणयः।
बाहुभिः परिघाकारैस्तर्जयन्ति स्म देवताः॥ २८
पाशैः प्रासैश्च परिघैस्तोमराङ्कुशपट्टिशैः।
चिक्रीडुस्ते शतघ्नीभिः शतधारैश्च मुद्गरैः॥ २९
गण्डशैलैश्च शैलैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः।
चक्रैश्च दैत्यप्रवराश्चक्रुरानन्दितं बलम्॥ ३०
एतद्दानवसैन्यं तत् सर्वं युद्धमदोत्कटम्।
देवानभिमुखे तस्थौ मेघानीकमिवोद्धतम्॥ ३१
तदद्भुतं दैत्यसहस्रगाढं
वाय्वग्निशैलाम्बुदतोयकल्पम्।
बलं रणौघाभ्युदयेऽभ्युदीर्णं
युयुत्सयोन्मत्तमिवावभासे॥ ३२

दूसरे भीषण दैत्य, जिनमें कुछके मुख टेढ़े थे, किन्हींके एक पैर तथा किन्हींके आधा पैर ही था, युद्धकी अभिलाषासे पैदल ही नाचते हुए चल रहे थे। उन दानवश्रेष्ठोंमें कुछ ताल ठोंक रहे थे, बहुतेरे उछल-कूद रहे थे और कुछ हर्षित होकर सिंहनाद कर रहे थे। इस प्रकार वे दानवगण हाथोंमें भयंकर गदा, परिघ, शिला और मुसल धारण करके अपनी परिघाकार भुजाओंसे देवताओंको धमका रहे थे। उस समय श्रेष्ठ दैत्यगण पाश, भाला, परिघ, तोमर (लकड़ीका बना गोलाकार अस्त्र), अङ्कुश, पट्टिश, शतघ्नी (तोप), शतधार, मुद्गर, गण्डशैल, शैल, उत्तम लोहेके बने हुए परिघ और चक्रोंसे क्रीडा करते हुए दैत्यसेनाको आनन्दित करने लगे। इस प्रकार दानवोंकी वह सारी सेना युद्धके मदसे उन्मत्त हो देवताओंके सम्मुख खड़ी हुई, जो उमड़े हुए मेघोंकी सेना-सी प्रतीत हो रही थी। दानवोंकी वह अद्भुत एवं प्रचण्ड सेना, जो हजारों प्रधान दैत्योंसे भरी हुई तथा वायु, अग्नि, पर्वत और मेघके समान भीषण दीख रही थी, युद्धकी तैयारीके समय युद्धकी इच्छासे उन्मत्त हुई-सी शोभा पा रही थी॥ २६—३२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामय-संग्राममें एक सौ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७३॥

एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

देवताओंका युद्धार्थ अभियान

मत्स्य उवाच

श्रुतस्ते दैत्यसैन्यस्य विस्तारो रविनन्दन।
सुराणामपि सैन्यस्य विस्तारं वैष्णवं शृणु॥ १
आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च महाबलौ।
सबलाः सानुगाश्चैव सन्नह्यन्त यथाक्रमम्॥ २

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—रविनन्दन! तुम दैत्योंकी सेनाका विस्तार तो सुन ही चुके, अब देवताओंकी—विशेषकर विष्णुकी सेनाका विस्तार श्रवण करो। उस समय आदित्यगण, वसुगण, रुद्रगण और दोनों महाबली अश्विनीकुमार—इन सभीने क्रमशः अपनी-अपनी सेना और अनुयायियोंसहित कवच धारण कर लिया।

पुरुहूतस्तु पुरतो लोकपालः सहस्रदृक्।
ग्रामणीः सर्वदेवानामारुरोह सुरद्विपम्॥ ३

मध्ये चास्य रथः सर्वपक्षिप्रवररंहसः।
सुचारुचक्रचरणो हेमवज्रपरिष्कृतः॥ ४

देवगन्धर्वयक्षौघैरनुयातः सहस्रशः।
दीप्तिमद्भिः सदस्यैश्च ब्रह्मर्षिभिरभिष्टुतः॥ ५

वज्रविस्फूर्जितोद्धूतैर्विद्युदिन्द्रायुधोदितैः।
युक्तो बलाहकगणैः पर्वतैरिव कामगैः॥ ६

यमारूढः स भगवान् पर्येति सकलं जगत्।
हविर्धानेषु गायन्ति विप्रा मखमुखे स्थिताः॥ ७

स्वर्गे शक्रानुयातेषु देवतूर्यनिनादिषु।
सुन्दर्यः परिनृत्यन्ति शतशोऽप्सरसां गणाः॥ ८

केतुना नागराजेन राजमानो यथा रविः।
युक्तो हयसहस्रेण मनोमारुतरंहसा॥ ९

स स्यन्दनवरो भाति गुप्तो मातलिना तदा।
कृत्स्नः परिवृतो मेरुर्भास्करस्येव तेजसा॥ १०

यमस्तु दण्डमुद्यम्य कालयुक्तश्च मुद्गरम्।
तस्थौ सुरगणानीके दैत्यान् नादेन भीषयन्॥ ११

चतुर्भिः सागरैर्युक्तो लेलिहानैश्च पन्नगैः।
शङ्खमुक्ताङ्गदधरो बिभ्रत् तोयमयं वपुः॥ १२

कालपाशान् समाविध्यन् हयैः शशिकरोपमैः।
वाय्वीरितैर्जलाकारैः कुर्वँल्लीलाः सहस्रशः॥ १३

पाण्डुरोद्धूतवसनः प्रवालरुचिराङ्गदः।
मणिश्यामोत्तमवपुर्हरिभारार्पितो वरः॥ १४

वरुणः पाशधृङ्मध्ये देवानीकस्य तस्थिवान्।
युद्धवेलामभिलषन् भिन्नवेल इवार्णवः॥ १५

यक्षराक्षससैन्येन गुह्यकानां गणैरपि।
युक्तश्च शङ्खपद्माभ्यां निधीनामधिपः प्रभुः॥ १६

सहस्र नेत्रधारी लोकपाल इन्द्र जो समस्त देवताओंके नायक हैं, सर्वप्रथम सुरगजेन्द्र ऐरावतपर आरूढ़ हुए। सेनाके मध्यभागमें इन्द्रका वह रथ भी खड़ा किया गया, जो समस्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ गरुडके समान वेगशाली था। उसमें सुन्दर पहिये लगे हुए थे तथा वह स्वर्ण और वज्रसे विभूषित था। सहस्रोंकी संख्यामें देवताओं, गन्धर्वों और यक्षोंके समूह उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। दीप्तिशाली सदस्य और महर्षि उसकी स्तुति कर रहे थे तथा वह वज्रकी गड़गड़ाहटके सदृश शब्द करनेवाले, बिजली और इन्द्रधनुषसे सुशोभित तथा स्वेच्छाचारी पर्वतकी तरह दीखनेवाले मेघसमूहोंसे घिरा हुआ था। उसपर सवार होकर ऐश्वर्यशाली इन्द्र समस्त जगत्में भ्रमण करते हैं, यज्ञोंमें स्थित ब्राह्मणलोग यज्ञके प्रारम्भमें उसकी प्रशंसा करते हैं, स्वर्गलोकमें उसपर बैठकर इन्द्रके प्रस्थित होनेपर उनके पीछे देवताओंकी तुरहियाँ बजने लगती हैं और सैकड़ों सुन्दरी अप्सराएँ संगठित होकर नृत्य करती हैं। वह रथ शेषनागसे अङ्कित ध्वजसे युक्त होकर सूर्यकी भाँति शोभा पाता है तथा उसमें मन और वायुके समान वेगशाली एक हजार घोड़े जोते जाते हैं। उस समय मातलिद्वारा सुरक्षित वह श्रेष्ठ रथ उसी प्रकार सुशोभित हो रहा था, जैसे सूर्यके तेजसे पूर्णतया घिरा हुआ सुमेरुपर्वत हो॥ १—१०॥

इसी प्रकार कालसहित यमराज भी दण्ड और मुद्गरको हाथमें लेकर अपने सिंहनादसे दैत्योंको भयभीत करते हुए देवसेनामें खड़े हुए। पाशधारी वरुण जलमय शरीर धारणकर देवसेनाके मध्यभागमें स्थित हुए। उनके साथ चारों सागर तथा जीभ लपलपाते हुए नाग भी थे, वे शङ्ख और मुक्ताजटित केयूर धारण किये हुए थे, हाथमें कालपाश लिये हुए थे, वायुके समान वेगशाली, चन्द्र-किरणोंके-से उज्ज्वल तथा जलाकार घोड़ोंसे युक्त रथपर सवार थे। वे हजारों प्रकारकी लीलाएँ कर रहे थे, पीले वस्त्र और प्रवालजटित अङ्गदसे विभूषित थे, उनकी शरीरकान्ति नीलमणिकी-सी सुन्दर थी, उन श्रेष्ठ देवपर इन्द्रने अपना भार सौंप रखा था। वे तटको छिन्न-भिन्न कर देनेवाले सागरकी तरह युद्ध-वेलाकी बाट जोह रहे थे। तत्पश्चात् निधियोंके अधिपति एवं विमानद्वारा युद्ध करनेवाले सामर्थ्यशाली राजराजेश्वर श्रीमान् कुबेर यक्षों, राक्षसों और गुह्यकोंकी सेना तथा शङ्ख और पद्मके साथ

राजराजेश्वरः श्रीमान् गदापाणिरदृश्यत।
विमानयोधी धनदो विमाने पुष्पके स्थितः॥ १७

स राजराजः शुशुभे युद्धार्थी नरवाहनः।
उक्षाणमास्थितः संख्ये साक्षादिव शिवः स्वयम्॥ १८

पूर्वपक्षः सहस्राक्षः पितृराजस्तु दक्षिणः।
वरुणः पश्चिमं पक्षमुत्तरं नरवाहनः॥ १९

चतुर्षु युक्ताश्चत्वारो लोकपाला महाबलाः।
स्वासु दिक्षु स्वरक्षन्त तस्य देवबलस्य ते॥ २०

सूर्यः सप्ताश्वयुक्तेन रथेनामितगामिना।
श्रिया जाज्वल्यमानेन दीप्यमानैश्च रश्मिभिः॥ २१

उदयास्तगचक्रेण मेरुपर्वतगामिना।
त्रिदिवद्वारचक्रेण तपता लोकमव्ययम्॥ २२

सहस्ररश्मियुक्तेन भ्राजमानेन तेजसा।
चचार मध्ये लोकानां द्वादशात्मा दिनेश्वरः॥ २३

सोमः श्वेतहये भाति स्यन्दने शीतरश्मिवान्।
हिमवत्तोयपूर्णाभिर्भाभिराह्लादयञ्जगत् ॥ २४

तमृक्षपूगानुगतं शिशिरांशुं द्विजेश्वरम्।
शशच्छायाङ्कितततनुं नैशस्य तमसः क्षयम्॥ २५

ज्योतिषामीश्वरं व्योम्नि रसानां रसदं प्रभुम्।
ओषधीनां सहस्राणां निधानममृतस्य च॥ २६

जगतः प्रथमं भागं सौम्यं सत्यमयं रथम्।
ददृशुर्दानवाः सोमं हिमप्रहरणं स्थितम्॥ २७

यः प्राणः सर्वभूतानां पञ्चधा भिद्यते नृषु।
सप्तधातुगतो लोकांस्त्रीन् दधार चचार च॥ २८

यमाहुरग्निकर्तारं सर्वप्रभवमीश्वरम्।
सप्तस्वरगतो यश्च नित्यं गीर्भिरुदीर्यते॥ २९

यं वदन्त्युत्तमं भूतं यं वदन्त्यशरीरिणम्।
यमाहुराकाशगमं शीघ्रगं शब्दयोगिनम्॥ ३०

हाथमें गदा धारण किये हुए पुष्पक विमानपर आरूढ़ हुए दिखायी पड़े। उस समय युद्धकी इच्छासे आये हुए राजराजेश्वर नरवाहन कुबेरकी ऐसी शोभा हो रही थी, मानो युद्धस्थलमें नन्दीश्वरपर बैठे हुए साक्षात् स्वयं शिवजी ही हों। सेनाके पूर्वभागमें इन्द्र, दक्षिणभागमें यमराज, पश्चिमभागमें वरुण और उत्तरभागमें कुबेर— इस प्रकार ये चारों महाबली लोकपाल चारों दिशाओंमें स्थित हुए। वे अपनी-अपनी दिशाओंमें बड़ी सतर्कताके साथ उस देवसेनाकी रक्षा कर रहे थे॥ ११—२०॥

तदुपरान्त सहस्र किरणोंके सम्मिलित तेजसे उद्भासित द्वादशात्मा दिनेश्वर सूर्य अपने अमित वेगशाली रथपर, जिसमें सात घोड़े जुते हुए थे, जो शोभासे प्रकाशित, सूर्यकी किरणोंसे देदीप्यमान, उदयाचल, अस्ताचल और मेरुपर्वतपर भ्रमण करनेवाला तथा स्वर्गद्वाररूप एक चक्रसे सुशोभित था, सवार हो अविनाशी लोकोंको संतप्त करते हुए लोगोंके बीच विचरण करने लगे। शीतरश्मि चन्द्रमा श्वेत घोड़े जुते हुए रथपर सवार हो अपनी जलपूर्ण हिमकी-सी कान्तिसे जगत्‌को आह्लादित करते हुए सुशोभित हुए। उस समय शीतल किरणोंवाले द्विजेश्वर चन्द्रमाके पीछे नक्षत्रगण चल रहे थे। उनके शरीरमें खरगोशका चिह्न झलक रहा था, वे रात्रिके अन्धकारके विनाशक, सामर्थ्यशाली, आकाशमण्डलमें स्थित ज्योतिर्गणोंके अधीश्वर, रसीले पदार्थोंको रस प्रदान करनेवाले, सहस्रों प्रकारकी ओषधियों तथा अमृतके निधान, जगत्‌के प्रथम भागस्वरूप और सौम्यस्व भाववाले हैं, उनका रथ सत्यमय है। इस प्रकार हिमसे प्रहार करनेवाले चन्द्रमाको दानवोंने वहाँ उपस्थित देखा॥ २१—२७॥

जो समस्त प्राणियोंका प्राणस्वरूप है, मनुष्योंके शरीरोंमें पाँच प्रकारसे विभक्त होता है, जिसकी सातों धातुओंमें गति है, जो तीनों लोकोंको धारण करता तथा उनमें विचरण करता है, जिसे अग्निका कर्ता, सबका उत्पत्तिस्थान और ईश्वर कहते हैं, जो नित्य सातों स्वरोंमें विचरण करता हुआ वाणीद्वारा उच्चरित होता है। जिसे पाँचों भूतोंमें उत्तम भूत, शरीररहित, आकाशचारी, शीघ्रगामी और शब्दयोगी अर्थात् शब्दको उत्पन्न करनेवाला कहा जाता है,

स वायुः सर्वभूतायुरुद्भूतः स्वेन तेजसा।
ववौ प्रव्यथयन् दैत्यान्प्रतिलोमं सतोयदः॥ ३१

मरुतो दिव्यगन्धर्वैर्विद्याधरगणैः सह।
चिक्रीडुरसिभिः शुभ्रैर्निर्मुक्तैरिव पन्नगैः॥ ३२

सृजन्तः सर्पपतयस्तीव्रतोयमयं विषम्।
शरभूता दिवीन्द्राणां चेरुर्व्यात्ताननां दिवि॥ ३३

पर्वतैश्च शिलाशृङ्गैः शतशश्चैव पादपैः।
उपतस्थुः सुरगणाः प्रहर्तुं दानवं बलम्॥ ३४

यः स देवो हृषीकेशः पद्मनाभस्त्रिविक्रमः।
युगान्ते कृष्णवर्णाभो विश्वस्य जगतः प्रभुः॥ ३५

सर्वयोनिः स मधुहा हव्यभुक् क्रतुसंस्थितः।
भूम्यापोव्योमभूतात्मा श्यामः शान्तिकरोऽरिहा॥ ३६

अरिघ्नममरादीनां चक्रं गृह्य गदाधरः।
अर्कं नगादिवोद्यन्तमुद्यम्योत्तमतेजसा॥ ३७

सव्येनालम्ब्य महतीं सर्वासुरविनाशिनीम्।
करेण कालीं वपुषा शत्रुकालप्रदां गदाम्॥ ३८

अन्यैर्भुजैः प्रदीप्ताभैर्भुजगारिध्वजः प्रभुः।
दधारायुधजातानि शार्ङ्गादीनि महाबलः॥ ३९

स कश्यपस्यात्मभुवं द्विजं भुजगभोजनम्।
पवनाधिकसम्पातं गगनक्षोभणं खगम्॥ ४०

भुजगेन्द्रेण वदने निविष्टेन विराजितम्।
अमृतारम्भनिर्मुक्तं मन्दराद्रिमिवोच्छ्रितम्॥ ४१

देवासुरविमर्देषु बहुशो दृढविक्रमम्।
महेन्द्रेणामृतस्यार्थे वज्रेण कृतलक्षणम्॥ ४२

शिखिनं बलिनं चैव तप्तकुण्डलभूषणम्।
विचित्रपत्रवसनं धातुमन्तमिवाचलम्॥ ४३

स्फीतक्रोडावलम्बेन शीतांशुसमतेजसा।
भोगिभोगावसिक्तेन मणिरत्नेन भास्वता॥ ४४

सम्पूर्ण प्राणियोंका आयुस्वरूप वह वायु वहाँ अपने तेजसे प्रकट हुआ। वह बादलोंको साथ लेकर दैत्योंको प्रव्यथित करता हुआ उनकी प्रतिकूल दिशामें बहने लगा। मरुद्गण दिव्य गन्धर्वों और विद्याधरोंके साथ केंचुलसे छूटे हुए सर्पकी भाँति निर्मल तलवारोंसे क्रीडा करने लगे॥ २८—३२॥

इसी प्रकार नागाधीश्वरगण आकाशमें मुख फैलाये हुए तीव्र जलमय विषको उगलते हुए आकाशचारियोंके बाणरूप होकर विचरण करने लगे। अन्यान्य देवगण सैकड़ों पर्वतों, शिलाओं, शिखरों और वृक्षोंसे दानवसेनापर प्रहार करनेके लिये उपस्थित हुए। तत्पश्चात् जो इन्द्रियोंके अधीश्वर, पद्मनाभ, तीन पगसे त्रिलोकीको नाप लेनेवाले, प्रलयकालमें कृष्ण वर्णकी आभासे युक्त, सम्पूर्ण जगत्‌के स्वामी, सबके उत्पत्तिस्थान, मधु नामक दैत्यके वधकर्ता, यज्ञमें स्थित होकर हव्यके भोक्ता, पृथ्वीजलआकाशस्वरूप, श्याम वर्णवाले, शान्तिकर्ता और शत्रुओंका हनन करनेवाले हैं, उन भगवान् गदाधरने देवताओंके शत्रुओंका विनाश करनेवाले अपने सुदर्शन चक्रको, जो अपने उत्तम तेजसे उदयाचलसे उदय होते हुए सूर्यके समान चमक रहा था, हाथमें ऊपर उठा लिया। फिर उन्होंने बायें हाथसे अपनी विशाल गदाका आलम्बन लिया, जो समस्त असुरोंकी विनाशिनी, काले रंगवाली और शत्रुओंको कालके गालमें डालनेवाली थी। महाबली गरुडध्वज भगवान्‌ने अपनी अन्य देदीप्यमान भुजाओंसे शार्ङ्गधनुष आदि अन्यान्य आयुधोंको धारण किया॥ ३३—३९॥

तदनन्तर जो कश्यपके पुत्र, सर्पभक्षी, वायुसे भी अधिक वेगशाली, आकाशको क्षुब्ध कर देनेवाले, आकाशचारी, मुखमें दबाये हुए सर्पसे सुशोभित, अमृत-मन्थनसे मुक्त हुए मन्दराचलके समान ऊँचे, अनेकों बार घटित हुए देवासुर-संग्राममें सुदृढ़ पराक्रम दिखानेवाले, अमृतके लिये इन्द्रके द्वारा वज्रके प्रहारसे किये गये चिह्नसे युक्त, शिखाधारी, महाबली, तपाये हुए स्वर्णनिर्मित कुण्डलोंसे विभूषित, विचित्र पंखरूपी वस्त्रवाले और धातुयुक्त पर्वतके समान शोभायमान थे, उनका वक्ष:स्थल लम्बा और चौड़ा था, जो चन्द्रमाके समान उद्भासित हो रहा था, उसपर नागोंके फणोंमें लगी हुई मणियाँ चमक रही थीं,

पक्षाभ्यां चारुपत्राभ्यामावृत्य दिवि लीलया।
युगान्ते सेन्द्रचापाभ्यां तोयदाभ्यामिवाम्बरम्॥ ४५
नीललोहितपीताभिः पताकाभिरलङ्कृतम्।
केतुवेषप्रतिच्छन्नं महाकायनिकेतनम्॥ ४६
अरुणावरजं श्रीमानारुह्य समरे विभुः।
सुवर्णस्वर्णवपुषा सुपर्णं खेचरोत्तमम्॥ ४७
तमन्वयुर्देवगणा मुनयश्च समाहिताः।
गीर्भिः परममन्त्राभिस्तुष्टुवुश्च जनार्दनम्॥ ४८
तद्वैश्रवणसंश्लिष्टं वैवस्वतपुरःसरम्।
द्विजराजपरिक्षिप्तं देवराजविराजितम्॥ ४९
चन्द्रप्रभाभिर्विपुलं युद्धाय समवर्तत।
स्वस्त्यस्तु देवेभ्य इति बृहस्पतिरभाषत।
स्वस्त्यस्तु दानवानीके उशना वाक्यमाददे॥ ५०

वे अपने दोनों सुन्दर पंखोंसे आकाशको उसी प्रकार लीलापूर्वक आच्छादित किये हुए थे, जैसे युगान्तके समय दो इन्द्रधनुषोंसे युक्त बादल आकाशको ढक लेते हैं। वे नीली, लाल और पीली पताकाओंसे सुशोभित थे, जो केतु (पताका)-के वेषमें छिपे हुए, विशालकाय और अरुणके छोटे भाई थे, उन सुन्दर वर्णवाले, सुनहले शरीरसे सुशोभित पक्षिश्रेष्ठ गरुडपर आरूढ़ होकर श्रीमान् भगवान् विष्णु समरभूमिमें उपस्थित हुए। फिर तो देवगणों तथा मुनियोंने सावधान-चित्तसे उनका अनुगमन किया और परमोत्कृष्ट मन्त्रोंसे युक्त वाणियोंद्वारा उन जनार्दनका स्तवन किया। इस प्रकार देवताओंकी वह विशाल सेना जब कुबेरसे युक्त, यमराजसे समन्वित, चन्द्रमासे सुरक्षित, इन्द्रसे सुशोभित और चन्द्रमाकी प्रभासे समलंकृत हो युद्धके लिये आगे बढ़ी, तब बृहस्पतिने कहा—'देवताओंका मङ्गल हो।' इसी प्रकार दानव-सेनामें भी शुक्राचार्यने 'दानवोंका कल्याण हो' ऐसा वचन उच्चारण किया॥ ४०—५०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामयसंग्राममें एक सौ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७४॥

एक सौ पंचहत्तरवाँ अध्याय

देवताओं और दानवोंका घमासान युद्ध, मयकी तामसी माया, और्वाग्निकी उत्पत्ति और महर्षि ऊर्वद्वारा हिरण्यकशिपुको उसकी प्राप्ति

मत्स्य उवाच

ताभ्यां बलाभ्यां संजज्ञे तुमुलो विग्रहस्तदा।
सुराणामसुराणां च परस्परजयैषिणाम्॥ १
दानवा दैवतैः सार्धं नानाप्रहरणोद्यताः।
समीयुर्युध्यमाना वै पर्वता इव पर्वतैः॥ २
तत्सुरासुरसंयुक्तं युद्धमत्यद्भुतं बभौ।
धर्माधर्मसमायुक्तं दर्पेण विनयेन च॥ ३
ततो रथैर्विप्रयुक्तैर्वारणैश्च प्रचोदितैः।
उत्पतद्भिश्च गगनमसिहस्तैः समंततः॥ ४
क्षिप्यमाणैश्च मुसलैः सम्पतद्भिश्च सायकैः।
चापैर्विस्फार्यमाणैश्च पात्यमानैश्च मुद्गरैः॥ ५

मत्स्यभगवान्ने कहा—रविनन्दन! तदनन्तर परस्पर विजयकी अभिलाषावाले देवताओं और दानवोंकी उन दोनों सेनाओंमें घमासान युद्ध होने लगा। नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे लैस हुए दानवगण देवताओंके साथ युद्ध करते हुए एक-दूसरेसे भिड़ गये। उस समय वे ऐसा प्रतीत हो रहे थे मानो पर्वत पर्वतोंके साथ भिड़ गये हों। देवताओं और असुरोंके बीच छिड़ा हुआ वह युद्ध धर्म, अधर्म, दर्प और विनयसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त अद्भुत लग रहा था। उस समय रथोंको पृथक्-पृथक् आगे बढ़ाया जा रहा था, हाथियोंको उत्तेजित किया जा रहा था, चारों ओर सैनिक हाथमें तलवार लिये हुए आकाशमें उछल रहे थे, मुसल फेंके जा रहे थे, बाणोंकी वर्षा हो रही थी, धनुषोंका टंकार हो रहा था, मुद्गर

तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम्।
जगत्संस्त्रासजननं युगसंवर्तकोपमम्॥ ६

हस्तमुक्तैश्च परिघैर्विप्रयुक्तैश्च पर्वतैः।
दानवाः समरे जघ्नुर्देवानिन्द्रपुरोगमान्॥ ७

ते वध्यमाना बलिभिर्दानवैर्जयकाङ्क्षिभिः।
विषण्णवदना देवा जग्मुरार्तिं परां मृधे॥ ८

तैस्त्रिशूलप्रमथिताः परिघैर्भिन्नमस्तकाः।
भिन्नोरस्का दितिसुतैर्वेमू रक्तं व्रणैर्बहु॥ ९

वेष्टिताः शरजालैश्च निर्यत्नाश्चासुरैः कृताः।
प्रविष्टा दानवीं मायां न शेकुस्ते विचेष्टितुम्॥ १०

अस्तंगतमिवाभाति निष्प्राणसदृशाकृतिः।
बलं सुराणामसुरैर्निष्प्रयत्नायुधं कृतम्॥ ११

दैत्यचापच्युतान् घोरांश्छित्त्वा वज्रेण ताञ्शरान्।
शक्रो दैत्यबलं घोरं विवेश बहुलोचनः॥ १२

स दैत्यप्रमुखान् हत्वा तद्दानवबलं महत्।
तामसेनास्त्रजालेन तमोभूतमथाकरोत्॥ १३

तेऽन्योऽन्यं नावबुध्यन्त देवानां वाहनानि च।
घोरेण तमसाविष्टाः पुरुहूतस्य तेजसा॥ १४

मायापाशैर्विमुक्तास्तु यत्नवन्तः सुरोत्तमाः।
वपूंषि दैत्यसिंहानां तमोभूतान्यपातयन्॥ १५

अपध्वस्ता विसंज्ञाश्च तमसा नीलवर्चसा।
पेतुस्ते दानवगणाश्छिन्नपक्षा इवाद्रयः॥ १६

तद् घनीभूतदैत्येन्द्रमन्धकार इवार्णवे।
दानवं देवकदनं तमोभूतमिवाभवत्॥ १७

तदा सृजन् महामायां मयस्तां तामसीं दहन्।
युगान्तोद्योतजननीं सृष्टामौर्वेण वह्निना॥ १८

सा ददाह ततः सर्वान् माया: मयविकल्पिताः।
दैत्याश्चादित्यवपुषः सद्य उत्तस्थुराहवे॥ १९

गिराये जा रहे थे, इस प्रकार देवों और दानवोंसे व्याप्त हुए उस युद्धने भयंकर रूप धारण कर लिया है। वह युगान्तकालिक संवर्तक अग्निकी तरह जगत्‌को भयभीत करने लगा। दानवगण समरभूमिमें पृथक्-पृथक् हाथोंसे फेंके गये परिघों और पर्वतोंसे इन्द्र आदि देवताओंपर प्रहार करने लगे। इस प्रकार रणभूमिमें विजयाभिलाषी बलवान् दानवोंद्वारा मारे जाते हुए उन देवताओंका मुख सूख गया और वे बड़ी कष्टपूर्ण स्थितिमें पड़ गये। दानवोंने उन्हें शूलोंसे बींध डाला, परिघोंकी चोटसे उनके मस्तक विदीर्ण तथा वक्षःस्थल चूर-चूर हो गये और उनके घावोंसे अविरल रक्त प्रवाहित होने लगा। असुरोंने देवताओंको बाणसमूहोंसे परिवेष्टित करके प्रयत्नहीन कर दिया। वे दानवी मायामें प्रविष्ट होकर किसी प्रकारकी भी चेष्टा करनेमें असमर्थ हो गये। देवताओंकी वह सेना प्राणरहितकी तरह विनष्ट हुई-सी दीख रही थी। असुरोंने उसे आयुध और प्रयत्नसे रहित कर दिया था॥ ६—११॥

तदनन्तर सहस्रनेत्रधारी इन्द्र वज्रद्वारा दैत्योंके धनुषोंसे छूटे हुए भयंकर बाणोंको छिन्न-भिन्न करके दैत्योंकी भीषण सेनामें प्रविष्ट हुए। उन्होंने प्रधान-प्रधान दैत्योंका वध करके दानवोंकी उस विशाल सेनाको तामस अस्त्रसमूहके प्रयोगसे अन्धकारमय बना दिया। इस प्रकार इन्द्रके पराक्रमसे घोर अन्धकारसे घिरे हुए वे दानव परस्पर एक-दूसरेको तथा देवताओंके वाहनोंको भी नहीं पहचान पाते थे। इधर दानवी मायाके पाशसे मुक्त हुए श्रेष्ठ देवगण प्रयत्न करके दैत्येन्द्रोंके अन्धकारमय शरीरोंको काटकर गिराने लगे। उस नील कान्तिवाले अन्धकारसे घिरे हुए वे दानवगण मूर्च्छित होकर धराशायी होते हुए ऐसे लग रहे थे मानो कटे हुए पंखवाले पर्वत हों। दैत्येन्द्रोंकी वह सेना समुद्रमें अन्धकारकी तरह एकत्र हो गयी और देवताओंद्वारा मारे जाते हुए दानव अन्धकारमय-से हो गये। यह देखकर मय दानवने इन्द्रकी उस तामसी मायाको नष्ट करते हुए अपनी महान् राक्षसी मायाका सृजन किया। वह और्व नामक अग्निसे उत्पन्न हुई और प्रलयकालीन (भयंकर) प्रकाशको प्रकट कर रही थी। मयद्वारा रची गयी उस मायाने सम्पूर्ण देवताओंको जलाना आरम्भ किया। इधर सूर्यके समान तेजस्वी शरीरवाले दैत्यगण युद्धस्थलमें तुरंत उठ खड़े हुए।

मायामौर्वीं समासाद्य दह्यमाना दिवौकसः।
भेजिरे चेन्द्रविषयं शीतांशुसलिलप्रदम्॥ २०

ते दह्यमाना ह्यौर्वेण वह्निना नष्टचेतसः।
शशंसुर्वज्रिणं देवाः संतप्ताः शरणैषिणः॥ २१

संतप्ते मायया सैन्ये हन्यमाने च दानवैः।
चोदितो देवराजेन वरुणो वाक्यमब्रवीत्॥ २२

ऊर्वो ब्रह्मर्षिजः शक्र तपस्तेपे सुदारुणम्।
ऊर्वः स पूर्वतेजस्वी सदृशो ब्रह्मणो गुणैः॥ २३

तं तपन्तमिवादित्यं तपसा जगदव्ययम्।
उपतस्थुर्मुनिगणा दिव्या देवर्षिभिः सह॥ २४

हिरण्यकशिपुश्चैव दानवो दानवेश्वरः।
ऋषिं विज्ञापयामासुः पुरा परमतेजसम्॥ २५

ऊचुर्ब्रह्मर्षयस्तं तु वचनं धर्मसंहितम्।
ऋषिवंशेषु भगवंश्छिन्नमूलमिदं पदम्॥ २६

एकस्त्वमनपत्यश्च गोत्रायान्यो न वर्तते।
कौमारं व्रतमास्थाय क्लेशमेवानुवर्तसे॥ २७

बहूनि विप्रगोत्राणि मुनीनां भावितात्मनाम्।
एकदेहानि तिष्ठन्ति विविक्तानि विना प्रजाः॥ २८

एवमुच्छिन्नमूलैश्च पुत्रैर्नो नास्ति कारणम्।
भवांस्तु तपसा श्रेष्ठो प्रजापतिसमद्युतिः॥ २९

तत्र वर्तस्व वंशाय वर्धयात्मानमात्मना।
त्वया धर्मोर्जितस्तेन द्वितीयां कुरु वै तनुम्॥ ३०

स एवमुक्तो मुनिभिर्ह्यूर्वो मर्मसु ताडितः।
जगर्हे तानृषिगणान् वचनं चेदमब्रवीत्॥ ३१

यथायं विहितो धर्मो मुनीनां शाश्वतस्तु सः।
आर्षं वै सेवतः कर्म वन्यमूलफलाशिनः॥ ३२

ब्रह्मयोनौ प्रसूतस्य ब्राह्मणस्यात्मदर्शिनः।
ब्रह्मचर्यं सुचरितं ब्रह्माणमपि चालयेत्॥ ३३

जनानां वृत्तयस्तिस्रो ये गृहाश्रमवासिनः।
अस्माकं तु वरं वृत्तिर्वनाश्रमनिवासिनाम्॥ ३४

इस प्रकार और्वी मायाके सम्पर्कसे जलते हुए देवगण शीतल किरणोंवाले एवं जलप्रदाता इन्द्रकी शरणमें गये। और्व अग्निसे जलनेके कारण देवताओंकी चेतना नष्ट हो रही थी। तब संतप्त हुए देवगणोंने शरणकी इच्छासे वज्रधारी इन्द्रके पास जाकर उन्हें सूचित किया॥ १२—२१॥

इस प्रकार अपनी सेनाको मायाद्वारा संतप्त होती तथा दानवोंद्वारा मारी जाती देखकर देवराज इन्द्रके पूछनेपर वरुणने इस प्रकार कहा—'इन्द्र! ऊर्व एक ब्रह्मर्षिके पुत्र हैं। वे पहलेसे ही तेजस्वी और गुणोंमें ब्रह्माके समान थे। उन्होंने अत्यन्त कठोर तप किया था। जब उनकी तपस्यासे सारा जगत् सूर्यकी भाँति संतप्त हो उठा, तब उनके निकट देवर्षियोंसहित दिव्य महर्षिगण उपस्थित हुए। उसी समय वहाँ दानवेश्वर हिरण्यकशिपु दानव भी पहुँचा। तब ब्रह्मर्षियोंने सर्वप्रथम उन परम तेजस्वी ऊर्व ऋषिको सूचना दी और फिर इस प्रकार धर्मयुक्त कहा—'ऐश्वर्यशाली ऊर्व! ऋषियोंके वंशोंमें इस संतान-परम्पराकी जड़ कट चुकी है। एकमात्र आप शेष हैं, सो भी संतानहीन हैं। दूसरा कोई गोत्रकी वृद्धि करनेवाला विद्यमान है नहीं और आप ब्रह्मचर्य-व्रतको धारणकर क्लेश सहन करते हुए तपमें ही लगे हुए हैं। भावितात्मा मुनियों तथा ब्राह्मणोंके बहुत-से गोत्र संततिके बिना केवल एक व्यक्तितक ही सीमित रह गये हैं। इस प्रकार मूलके नष्ट हो जानेपर हमलोगोंको पुनः पुत्रोत्पत्तिका कोई कारण नहीं दीख रहा है। आप तो तपस्याके प्रभावसे श्रेष्ठ और प्रजापतिके समान तेजस्वी हो गये हैं, अतः वंश-प्राप्तिके लिये प्रयत्न कीजिये और अपने द्वारा अपनी वृद्धि कीजिये। आपने धर्मोपार्जन तो कर ही लिया है, इसलिये अब दूसरे शरीरकी रचना कीजिये अर्थात् संतानोत्पत्तिके लिये प्रयत्नशील होइये'॥ २२—३०॥

मुनियोंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ऊर्व ऋषिके मर्मस्थानोंपर विशेष आघात पहुँचा, तब उन्होंने उन ऋषियोंकी निन्दा करते हुए इस प्रकार कहा—'ब्राह्मणकुलोत्पन्न जंगली फल-मूलका आहार करते हुए आर्ष कर्मके सेवनमें निरत आत्मदर्शी ब्राह्मणका भलीभाँति आचरण किया गया ब्रह्मचर्य ब्रह्माको भी विचलित कर सकता है। जो गृहस्थाश्रममें निवास करनेवाले हैं, उन लोगोंके लिये अन्य तीन वृत्तियाँ बतलायी गयी हैं, परंतु वनमें आश्रम बनाकर निवास करनेवाले हमलोगोंके लिये यही वृत्ति उत्तम है।

अब्भक्षा वायुभक्षाश्च दन्तोलूखलिनस्तथा।
अश्मकुट्टा दशतपाः पञ्चातपसहाश्च ये॥ ३५
एते तपसि तिष्ठन्ति व्रतैरपि सुदुष्करैः।
ब्रह्मचर्यं पुरस्कृत्य प्रार्थयन्ति परां गतिम्॥ ३६
ब्रह्मचर्याद् ब्राह्मणस्य ब्राह्मणत्वं विधीयते।
एवमाहुः परे लोके ब्रह्मचर्यविदो जनाः॥ ३७
ब्रह्मचर्ये स्थितं धैर्यं ब्रह्मचर्ये स्थितं तपः।
ये स्थिता ब्रह्मचर्ये तु ब्राह्मणास्ते दिवि स्थिताः॥ ३८
नास्ति योगं विना सिद्धिर्न वा सिद्धिं विना यशः।
नास्ति लोके यशोमूलं ब्रह्मचर्यात् परं तपः॥ ३९
यो निगृह्येन्द्रियग्रामं भूतग्रामं च पञ्चकम्।
ब्रह्मचर्येण वर्तेत किमतः परमं तपः॥ ४०
अयोगे केशधरणमसंकल्पे व्रतक्रिया।
अब्रह्मचर्या चर्या च त्रयं स्याद् दम्भसंज्ञकम्॥ ४१
क्व दाराःक्व च संयोगः क्व च भावविपर्ययः।
नन्विदं ब्रह्मणा सृष्टा मनसा मानसी प्रजा॥ ४२
यद्यस्ति तपसो वीर्यं युष्माकं विदितात्मनाम्।
सृजध्वं मानसान् पुत्रान् प्राजापत्येन कर्मणा॥ ४३
मनसा निर्मिता योनिराधातव्या तपस्विभिः।
न दारयोगो बीजं वा व्रतमुक्तं तपस्विनाम्॥ ४४
यदिदं लुप्तधर्मार्थं युष्माभिरिह निर्भयैः।
व्याहृतं सद्भिरत्यर्थमसद्भिरिव मे मतम्॥ ४५
वपुर्दीप्तान्तरात्मानमेतत् कृत्वा मनोमयम्।
दारयोगं विना स्रक्ष्ये पुत्रमात्मतनूरुहम्॥ ४६
एवमात्मानमात्मा मे द्वितीयं जनयिष्यति।
वन्येनानेन विधिना दिधिक्षन्तमिव प्रजाः॥ ४७
ऊर्वस्तु तपसाविष्टो निवेश्योरुं हुताशने।
ममन्थैकेन दर्भेण सुतस्य प्रभवारणिम्॥ ४८
तस्योरुं सहसा भित्त्वा ज्वालामाली ह्यनिन्धनः।
जगतो दहनाकाङ्क्षी पुत्रोऽग्निः समपद्यत॥ ४९

जो लोग केवल जल पीकर, वायुका आहार कर, दाँतोंसे ही ओखलीका काम लेकर, पत्थरपर कुटे हुए पदार्थोंको खाकर, दस या पाँच स्थानोंपर अग्नि जलाकर उनके मध्यमें बैठकर तपस्या करनेवाले हैं तथा सुदुष्कर व्रतोंका पालन करते हुए तपस्यामें निरत हैं, वे लोग भी ब्रह्मचर्यको प्रधान मानकर परम गतिको प्राप्त होते हैं। परलोकमें ब्रह्मचर्यके महत्त्वको जाननेवाले लोग ऐसा कहते हैं कि ब्रह्मचर्यके पालनसे ब्राह्मणको ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मचर्यमें धैर्य स्थित है, ब्रह्मचर्यमें तप स्थित है तथा जो ब्राह्मण ब्रह्मचर्यमें स्थित रहते हैं, वे मानो स्वर्गमें स्थित हैं। लोकमें योगके बिना सिद्धि और सिद्धिके बिना यशकी प्राप्ति नहीं हो सकती तथा यशःप्राप्तिका मूल कारण परम तप ब्रह्मचर्यके बिना नहीं हो सकता। जो इन्द्रियसमूह और पञ्चमहाभूतोंको वशमें करके ब्रह्मचर्यका पालन करता है, उसके लिये इससे बढ़कर और कौन-सा तप हो सकता है? अर्थात् कोई नहीं॥ ३१—४०॥

'योगाभ्यासके बिना जटा धारण करना, संकल्पके बिना व्रताचरण और ब्रह्मचर्य-हीन दशामें नियमोंका पालन—ये तीनों दम्भ कहे जाते हैं। कहाँ स्त्री, कहाँ स्त्री-संयोग और कहाँ स्त्री-पुरुषका भाव-परिवर्तन? परंतु इन सबके अभावमें ही ब्रह्माने इस सृष्टिको मनसे उत्पन्न की है और सारी प्रजाएँ भी मनसे ही प्रादुर्भूत हुई हैं। इसलिये आत्मज्ञानी आपलोगोंमें यदि तपस्याका बल है तो प्रजापतिके कर्मानुसार आपलोग भी मानसिक पुत्रोंकी सृष्टि कीजिये। तपस्वियोंको मानसिक संकल्पद्वारा योनिका निर्माण कर उसमें आधान करना चाहिये। उनके लिये स्त्री-संयोग, बीज और व्रत आदिका विधान नहीं है। आपलोगोंने मेरे सामने निर्भय होकर जो यह धर्म और अर्थसे हीन वचन कहा है, यह सत्पुरुषोंद्वारा अत्यन्त गर्हित है। मेरे विचारसे तो यह अज्ञानियोंकी उक्ति-जैसा है। मैं अपने इस उद्दीप्त अन्तरात्मावाले शरीरको मनोमय करके स्त्री-संयोगके बिना ही अपने शरीरसे पुत्रकी सृष्टि करूँगा। इस प्रकार मेरा आत्मा इस वन्य (वानप्रस्थ) विधिके अनुसार प्रजाओंको जला देनेवाले दूसरे आत्मा (पुत्र) को उत्पन्न करेगा।' तत्पश्चात् ऊर्वने तपस्यामें संलग्न होकर अपनी जाँघको अग्निमें डालकर पुत्रकी उत्पत्तिके लिये एक कुशसे अरणि-मन्थन किया। तब सहसा उनकी जाँघका भेदन कर इन्धनरहित होनेपर भी ज्वालाओंसे युक्त अग्नि जगत्‌को जला देनेकी इच्छासे पुत्ररूपमें प्रकट हुआ।

ऊर्वस्योरुं विनिर्भिद्य और्वो नामान्तकोऽनलः।
दिधक्षन्निव लोकांस्त्रीञ्जज्ञे परमकोपनः॥ ५०

उत्पन्नमात्रश्चोवाच पितरं क्षीणया गिरा।
क्षुधा मे बाधते तात जगद् भक्ष्ये त्यजस्व माम्॥ ५१

त्रिदिवारोहिभिर्ज्वालैर्जृम्भमाणो दिशो दश।
निर्दहन् सर्वभूतानि ववृधे सोऽन्तकोऽनलः॥ ५२

एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मा मुनिमूर्वं समाजयन्।
उवाच वार्यतां पुत्रो जगतश्च दयां कुरु॥ ५३

अस्यापत्यस्य ते विप्र करिष्ये स्थानमुत्तमम्।
तथ्यमेतद्वचः पुत्र शृणु त्वं वदतां वर॥ ५४

इस प्रकार ऊर्वकी जाँघका भेदन कर वह और्व नामक विनाशकारी अग्नि उत्पन्न हुआ, जो परम क्रोधी और तीनों लोकोंको जला डालना चाहता था। उत्पन्न होते ही उसने मन्द स्वरमें पितासे कहा—'तात! मुझे भूख कष्ट दे रही है, अतः मुझे छोड़िये। मैं जगत्‌को खा जाऊँगा।' ऐसा कहकर वह विनाशकारी और्व अग्नि स्वर्गतक पहुँचनेवाली ज्वालाओंसे युक्त हो दसों दिशाओंमें फैलकर समस्त प्राणियोंको भस्म करते हुए बढ़ने लगा। इसी बीच ब्रह्मा ऊर्व मुनिके निकट आये और उन्हें आदर देते हुए बोले—'विप्रवर! तुम मेरी बात तो सुनो। अपने पुत्रको मना कर दो, जगत्‌पर दया तो करो। मैं तुम्हारे इस पुत्रको उत्तम स्थान प्रदान करूँगा। वक्ताओंमें श्रेष्ठ पुत्र! मेरी यह बात एकदम सच है'॥ ४१—५४॥

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यन्मेऽद्य भगवाञ् शिशोः।
मतिमेतां ददातीह परमानुग्रहाय वै॥ ५५

प्रभातकाले सम्प्राप्ते काङ्क्षितव्ये समागमे।
भगवंस्तर्पितः पुत्रः कैर्हव्यैः प्राप्स्यते सुखम्॥ ५६

कुत्र चास्य निवासः स्याद् भोजनं वा किमात्मकम्।
विधास्यतीह भगवान् वीर्यतुल्यं महौजसः॥ ५७

ऊर्व बोले—भगवन्! आज मैं धन्य हो गया। आपने मुझपर महान् अनुग्रह किया, जो मेरे पुत्रके लिये इस प्रकारकी बुद्धि दे रहे हैं। यह आपका मुझपर परम अनुग्रह है। किंतु प्रातःकाल होनेपर जब वह पुत्र मेरे पास आयेगा तब मैं उसे किन पदार्थोंसे तृप्त करूँगा, जिससे उसे सुख प्राप्त हो सकेगा? इसका निवासस्थान कहाँ होगा? और इसका भोजन किस प्रकारका होगा? (मुझे आशा है कि) आप इस महान् तेजस्वीके पराक्रमके अनुरूप ही सब विधान करेंगे॥ ५५—५७॥

ब्रह्मोवाच

वडवामुखेऽस्य वसतिः समुद्रे वै भविष्यति।
मम योनिर्जलं विप्र तस्य पीतवतः सुखम्॥ ५८

यत्राहमास नियतं पिबन् वारिमयं हविः।
तद्धविस्तव पुत्रस्य विसृजाम्यालयं च तत्॥ ५९

ततो युगान्ते भूतानामेष चाहं च पुत्रक।
सहितौ विचरिष्यावो निष्पुत्राणामृणापहः॥ ६०

एषोऽग्निरन्तकाले तु सलिलाशी मया कृतः।
दहनः सर्वभूतानां सदेवासुररक्षसाम्॥ ६१

एवमस्त्विति तं सोऽग्निः संवृतज्वालमण्डलः।
प्रविवेशार्णवमुखं प्रक्षिप्य पितरि प्रभाम्॥ ६२

प्रतियातस्ततो ब्रह्मा ये च सर्वे महर्षयः।
और्वस्याग्नेः प्रभां ज्ञात्वा स्वां स्वां गतिमुपाश्रिताः॥ ६३

ब्रह्माने कहा—विप्रवर! समुद्रमें स्थित वडवाके मुखमें इसका निवास होगा और मेरे उत्पत्तिस्थानभूत जलको यह सुखपूर्वक पान करेगा। जहाँ मैं जलमय हविका पान करता हुआ नियत रूपसे निवास करता हूँ, वही हवि और वही स्थान मैं तुम्हारे पुत्रके लिये भी दे रहा हूँ। पुत्र! तत्पश्चात् युगान्तके समय यह और मैं—दोनों एक साथ होकर पुत्रहीन प्राणियोंको पितृ-ऋणसे मुक्त करते हुए विचरण करेंगे। इस प्रकार मैंने इस अग्निको जलभक्षी तथा अन्तकालमें देवता, असुर और राक्षसोंसहित समस्त प्राणियोंको दग्ध कर देनेवाला बना दिया। यह सुनकर ऊर्वने 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' कहकर ब्रह्म-वाणीका अनुमोदन किया। तदुपरान्त ज्वालामण्डलसे घिरा हुआ वह अग्नि अपनी कान्तिको पिता ऊर्वमें निहित कर समुद्रके मुखमें प्रविष्ट हो गया। इसके बाद ब्रह्मा ब्रह्मलोकको चले गये और वहाँ उपस्थित सभी महर्षि और्व अग्निकी प्रभाका महत्त्व जानकर अपने-अपने स्थानको चले गये॥ ५८—६३॥

हिरण्यकशिपुर्दृष्ट्वा तदा तन्महदद्भुतम्।
उच्चैः प्रणतसर्वाङ्गो वाक्यमेतदुवाच ह॥ ६४

भगवन्नद्भुतमिदं संवृत्तं लोकसाक्षिकम्।
तपसा ते मुनिश्रेष्ठ परितुष्टः पितामहः॥ ६५

अहं तु तव पुत्रस्य तव चैव महाव्रत।
भृत्य इत्यवगन्तव्यः साध्यो यदिह कर्मणा॥ ६६

तन्मां पश्य समापन्नं तवैवाराधने रतम्।
यदि सीदेन्मुनिश्रेष्ठ तवैव स्यात्पराजयः॥ ६७

ऊर्व उवाच

धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि यस्य तेऽहं गुरुः स्थितः।
नास्ति मे तपसानेन भयमद्येह सुव्रत॥ ६८

तामेव मायां गृह्णीष्व मम पुत्रेण निर्मिताम्।
निरिन्धनामग्निमयीं दुर्धर्षां पावकैरपि॥ ६९

एषा ते स्वस्य वंशस्य वशगारिविनिग्रहे।
संरक्षत्यात्मपक्षं च विपक्षं च प्रधर्षति॥ ७०

एवमस्त्विति तां गृह्य प्रणम्य मुनिपुंगवम्।
जगाम त्रिदिवं हृष्टः कृतार्थो दानवेश्वरः॥ ७१

एषा दुर्विषहा माया देवैरपि दुरासदा।
और्वेण निर्मिता पूर्वं पावकेनोर्वसूनुना॥ ७२

तस्मिंस्तु व्युत्थिते दैत्ये निर्वीर्यैषा न संशयः।
शापो ह्यस्याः पुरा दत्तः सृष्टा येनैव तेजसा॥ ७३

यद्येषा प्रतिहन्तव्या कर्तव्यो भगवान् सुखी।
दीयतां मे सखा शक्र तोययोनिर्निशाकरः॥ ७४

तेनाहं सह संगम्य यादोभिश्च समावृतः।
मायामेतां हनिष्यामि त्वत्प्रसादान्न संशयः॥ ७५

तदनन्तर उस महान् अद्भुत प्रसङ्गको देखकर हिरण्यकशिपु ऊर्व मुनिको साष्टाङ्ग प्रणामकर उच्चस्वरसे इस प्रकार बोला—'भगवन्! यह तो अत्यन्त अद्भुत घटना घटित हुई। सारा जगत् इसका साक्षी है। मुनिश्रेष्ठ! आपकी तपस्यासे पितामह ब्रह्मा संतुष्ट हो गये हैं। महाव्रत! आप ऐसा समझिये कि मैं आपका तथा आपके पुत्रका भृत्य हूँ, अतः यहाँ जो कुछ कार्य हो, उसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये। मुझे अपना शरणागत समझिये। मैं आपकी ही आराधनामें निरत हूँ। मुनिश्रेष्ठ! इसपर भी यदि मैं कष्ट पाता हूँ तो यह आपकी ही पराजय होगी॥ ६४—६७॥

ऊर्वने कहा—सुव्रत! यदि मैं तुम्हारे गुरुके रूपमें स्थित हूँ तो मैं धन्य हो गया। तुमने मुझपर महान् अनुग्रह किया। अब तुम्हें मेरी इस तपस्याके बलसे जगत्में किसी प्रकारका भय नहीं है। इसके लिये तुम मेरे पुत्रद्वारा निर्मित उसी मायाको ग्रहण करो, जो इन्धनरहित होनेपर भी अग्निमयी और अग्नियोंद्वारा भी दुर्धर्ष है। शत्रुओंका निग्रह करते समय यह माया तुम्हारे निजी वंशके वशमें रहेगी। यह आत्मपक्षका संरक्षण और विपक्षका विनाश करेगी। यह सुनकर दानवेश्वर हिरण्यकशिपुने 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' यों कहकर उस मायाको ग्रहणकर मुनिश्रेष्ठ ऊर्वको प्रणाम किया और वह कृतार्थ होकर प्रसन्नतापूर्वक स्वर्गको चला गया। (वरुण कहते हैं—) यह वही माया है, जो असह्य और देवताओंके लिये भी दुर्गम्य है। इसे पूर्वकालमें ऊर्वके पुत्र और्व अग्निने निर्मित किया था। उस हिरण्यकशिपु दैत्यके मर जानेपर निःसंदेह यह माया शक्तिहीन हो जायगी; क्योंकि यह जिसके तेजसे उत्पन्न हुई थी, उन ऊर्व ऋषिने इसे पहले ही ऐसा शाप दे रखा है। अतः शक्र! यदि आप इसका विनाश करके सबको सुखी करना चाहते हैं तो जलके उत्पत्तिस्थान चन्द्रमाको मुझे सखारूपमें प्रदान कीजिये। जल-जन्तुओंसे घिरा हुआ मैं उनके साथ रहकर आपकी कृपासे इस मायाको नष्ट कर डालूँगा—इसमें संशय नहीं है॥ ६८—७५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामयसंग्रामे पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामयसंग्राममें एक सौ पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७५॥

एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

चन्द्रमाकी सहायतासे वरुणद्वारा और्वाग्नि-मायाका प्रशमन, मयद्वारा शैली-मायाका प्राकट्य, भगवान् विष्णुके आदेशसे अग्नि और वायुद्वारा उस मायाका निवारण तथा कालनेमिका रणभूमिमें आगमन

मत्स्य उवाच

एवमस्त्विति संहृष्टः शक्रस्त्रिदशवर्धनः।
संदिदेशाग्रतः सोमं युद्धाय शिशिरायुधम्॥ १
गच्छ सोम सहायत्वं कुरु पाशधरस्य वै।
असुराणां विनाशाय जयार्थं च दिवौकसाम्॥ २
त्वं मत्तः प्रतिवीर्यश्च ज्योतिषां चेश्वरेश्वरः।
त्वन्मयं सर्वलोकेषु रसं रसविदो विदुः॥ ३
क्षयवृद्धी तव व्यक्ते सागरस्येव मण्डले।
परिवर्तस्यहोरात्रं कालं जगति योजयन्॥ ४
लोकच्छायामयं लक्ष्म तवाङ्कः शशसंनिभः।
न विदुः सोम देवापि ये च नक्षत्रयोनयः॥ ५
त्वमादित्यपथादूर्ध्वं ज्योतिषां चोपरि स्थितः।
तमः प्रोत्सार्य महसा भासयस्यखिलं जगत्॥ ६
श्वेतभानुर्हिमतनुर्ज्योतिषामधिपः शशी।
अधिकृत्कालयोगात्मा इष्टो यज्ञरसोऽव्ययः॥ ७
ओषधीशः क्रियायोनिर्हरशेखरभाक् तथा।
शीतांशुरमृताधारश्चपलः श्वेतवाहनः॥ ८
त्वं कान्तिः कान्तिवपुषां त्वं सोमः सोमपायिनाम्।
सौम्यस्त्वं सर्वभूतानां तिमिरघ्नस्त्वमृक्षराट्॥ ९
तद् गच्छ त्वं महासेन वरुणेन वरूथिना।
शमय त्वासुरीं मायां यया दह्याम संयुगे॥ १०

मत्स्यभगवान्ने कहा— देवताओंकी वृद्धि करनेवाले इन्द्र परम प्रसन्न हुए और 'एवमस्तु—ऐसा ही हो' यों कहकर सर्वप्रथम शीतायुध चन्द्रमाको युद्धके लिये आदेश देते हुए बोले—'सोम! आप जाइये और असुरोंके विनाश तथा देवताओंकी विजयके निमित्त पाशधारी वरुणकी सहायता कीजिये। आप मुझसे भी बढ़कर पराक्रमी और ज्योतिर्गणोंके अधीश्वर हैं। रसज्ञ लोग सम्पूर्ण लोकोंमें जितने रस हैं, उन्हें आपसे ही युक्त मानते हैं। आपके मण्डलमें सागरकी तरह क्षय और वृद्धि स्पष्टरूपसे होती रहती है। आप जगत्‌में कालका योग करते हुए दिन-रातका परिवर्तन करते रहते हैं। आपका चिह्न लोककी छायासे युक्त है। आप मृगलाञ्छन हैं। सोम! जो नक्षत्रोंके उत्पत्तिकर्ता हैं, वे देवता भी आपकी महिमाको नहीं जानते। आप सूर्यके मार्गसे ऊपर सभी ज्योतिर्गणोंके ऊपरी भागमें स्थित हैं और अपने तेजसे अन्धकारको दूर कर सम्पूर्ण जगत्‌को उद्भासित करते हैं। आप श्वेतभानु, हिमतनु, ज्योतियोंके अधीश्वर, शशलाञ्छन, कालयोग-स्वरूप, अग्निहोत्र-वेदाध्ययन आदि कर्मरूप, यज्ञके परिणामभूत, अविनाशी, ओषधियोंके स्वामी, कर्मके उत्पादक, शिवजीके मस्तकपर स्थित, शीतल किरणोंवाले, अमृतके आश्रयस्थान, चञ्चल और श्वेतवाहन हैं। आप ही सौन्दर्यशाली व्यक्तियोंके सौन्दर्य हैं और आप ही सोमपान करनेवालोंके लिये सोम हैं। आपका स्वभाव समस्त प्राणियोंके लिये सौम्य है। आप अन्धकारके विनाशक और नक्षत्रोंके स्वामी हैं। इसलिये महासेन! आप कवचधारी वरुणके साथ जाइये और उस आसुरी मायाको शान्त कीजिये, जिससे हमलोग युद्धस्थलमें जल रहे हैं'॥ १—१०॥

सोम उवाच

यन्मां वदसि युद्धार्थे देवराज वरप्रद।
एष वर्षामि शिशिरं दैत्यमायापकर्षणम्॥ ११

सोमने कहा— वरदायक देवराज! यदि आप मुझे युद्धके लिये आदेश देते हैं तो मैं अभी दैत्योंकी मायाका विनाश करनेवाले शिशिरकी वर्षा करता हूँ।

एतान् मच्छीतनिर्दग्धान् पश्य त्वं हिमवेष्टितान्।
विमायान् विमदांश्चैव दैत्यसिंहान् महाहवे॥ १२

तेषां हिमकरोत्सृष्टाः सपाशा हिमवृष्टयः।
वेष्टयन्ति स्म तान् घोरान् दैत्यान् मेघगणा इव॥ १३

तौ पाशशीतांशुधरौ वरुणेन्दू महाबलौ।
जघ्नतुर्हिमपातैश्च पाशपातैश्च दानवान्॥ १४

द्वावम्बुनाथौ समरे तौ पाशहिमयोधिनौ।
मृधे चेरतुरम्भोभिः क्षुब्धाविव महार्णवौ॥ १५

ताभ्यामाप्लावितं सैन्यं तद्दानवमदृश्यत।
जगत्संवर्तकाम्भोदैः प्रविष्टैरिव संवृतम्॥ १६

तावुद्यताम्बुनाथौ तु शशाङ्कवरुणावुभौ।
शमयामासतुर्मायां देवौ दैत्येन्द्रनिर्मिताम्॥ १७

शीतांशुजालनिर्दग्धाः पाशैश्च स्पन्दिता रणे।
न शेकुश्चलितुं दैत्या विशिरस्का इवाद्रयः॥ १८

शीतांशुनिहतास्ते तु दैत्यास्तोयहिमार्दिताः।
हिमाप्लावितसर्वाङ्गा निरुष्माण इवाग्नयः॥ १९

तेषां तु दिवि दैत्यानां विपरीतप्रभाणि वै।
विमानानि विचित्राणि प्रपतन्त्युत्पतन्ति च॥ २०

आप इस भीषण युद्धमें मेरे द्वारा प्रयुक्त किये गये शीतसे जले हुए, हिमपरिवेष्टित, माया और गर्वसे रहित इन दैत्यसिंहोंको देखिये। फिर तो वरुणके पाशसहित चन्द्रमाद्वारा छोड़ी गयी हिमवृष्टिने उन भयंकर दैत्योंको मेघसमूहकी तरह घेर लिया। वे दोनों महाबली पाशधारी वरुण और शीतांशु चन्द्रमा पाश और हिमके प्रहारसे दानवोंका संहार करने लगे। वे दोनों जलके स्वामी और समरमें पाश एवं हिमके द्वारा युद्ध करनेवाले थे, अतः वे रणभूमिमें जलसे क्षुब्ध हुए दो महासागरकी भाँति विचरण करने लगे। उन दोनोंके द्वारा जलमग्न की गयी हुई दानवोंकी वह सेना उमड़े हुए संवर्तक नामक बादलोंसे आच्छादित जगत्‌की तरह दीख रही थी। इस प्रकार जलके स्वामी उन दोनों देवता चन्द्रमा और वरुणने दैत्येन्द्रद्वारा निर्मित मायाको शान्त कर दिया। रणभूमिमें शीतल किरणसमूहोंसे जले हुए तथा पाशोंसे जकड़े हुए दैत्यगण शिखररहित पर्वतोंकी तरह चलनेमें भी असमर्थ हो गये। शीतांशुके आघातसे उन दैत्योंके सर्वाङ्ग हिमसे आप्लावित हो गये और वे जलकी ठण्ढकसे ठिठुर गये। इस प्रकार वे गरमीरहित अग्निकी तरह दीख रहे थे। आकाशमण्डलमें विचरनेवाले उन दैत्योंके विचित्र विमानोंकी कान्ति विपरीत हो गयी और वे लड़खड़ाकर गिरने-पड़ने लगे॥ ११—२०॥

तान् पाशहस्तग्रथितांश्छादितान् शीतरश्मिभिः।
मयो ददर्श मायावी दानवान् दिवि दानवः॥ २१

स शिलाजालवितताां खड्गचर्माट्टहासिनीम्।
पादपोत्कटकूटाग्रां कन्दराकीर्णकाननाम्॥ २२

सिंहव्याघ्रगणाकीर्णां नदद्भिर्गजयूथपैः।
ईहामृगगणाकीर्णां पवनाघूर्णितद्रुमाम्॥ २३

निर्मितां स्वेन यत्नेन कूजितां दिवि कामगाम्।
प्रथितां पार्वतीं मायामसृजत् स समन्ततः॥ २४

सासिशब्दैः शिलावर्षैः सम्पतद्भिश्च पादपैः।
जघान देवसङ्घांश्च दानवांश्चाप्यजीवयत्॥ २५

इस प्रकार जब मायावी मय दानवने आकाशमें उन दानवोंको वरुणके पाशद्वारा बँधे हुए तथा शीतल किरणोंद्वारा आच्छादित देखा, तब उसने चारों ओर सुप्रसिद्ध पार्वती मायाकी सृष्टि की, जो शिलासमूहसे व्याप्त तथा ढाल-तलवारसे युक्त हो अट्टहास करनेवाली थी, जिसका अग्रभाग घने वृक्षोंसे आच्छादित होनेके कारण भयंकर था, जो कन्दराओंसे व्याप्त काननोंसे युक्त, सिंहों, व्याघ्रों, चिग्घाड़ते हुए गजयूथों और भेड़ियोंसे परिपूर्ण थी, जिसके वृक्ष वायुके झकोरेसे चक्कर काट रहे थे, जो अपने ही प्रयत्नसे निर्मित, घोर शब्द करनेवाली और आकाशमें स्वेच्छानुसार गमन करनेवाली थी। वह पार्वती-माया तलवारोंकी खनखनाहट, शिलाओंकी वृष्टि और गिरते हुए वृक्षोंसे देवसमूहोंका संहार करने लगी। उधर उसने दानवोंको जीवित भी कर दिया।

नैशाकरी वारुणी च मायेऽन्तर्दधतुस्ततः।
असिभिश्चायसगणैः किरन् देवगणान् रणे॥ २६

साश्मयन्त्रायुधघना द्रुमपर्वतसङ्कटा।
अभवद् घोरसंचारा पृथिवी पर्वतैरिव॥ २७

अश्मना प्रहताः केचिच्छिलाभिः शकलीकृताः।
नानिरुद्धो द्रुमगणैर्देवोऽदृश्यत कश्चन॥ २८

तदपध्वस्तधनुषं भग्नप्रहरणाविलम्।
निष्प्रयत्नं सुरानीकं वर्जयित्वा गदाधरम्॥ २९

स हि युद्धगतः श्रीमानीशो न स्म व्यकम्पत।
सहिष्णुत्वाज्जगत्स्वामी न चुक्रोध गदाधरः॥ ३०

कालज्ञः कालमेघाभः समीक्षन् कालमाहवे।
देवासुरविमर्दं तु द्रष्टुकामस्तदा हरिः॥ ३१

उसके प्रभावसे चन्द्रमा और वरुणकी दोनों मायाएँ अन्तर्हित हो गयीं। वह दैत्य रणभूमिमें देवगणोंके ऊपर तलवारों और लोहनिर्मित अन्यान्य अस्त्रोंका प्रयोग कर रहा था। उसने रणभूमिको शिलाओं, यन्त्रों, अस्त्रों, वृक्षों और पर्वतोंसे ऐसा सघनरूपसे पाट दिया कि वहाँकी पृथ्वी पर्वतोंकी तरह चलने-फिरनेके लिये दुर्गम हो गयी। उस समय कुछ देवता पत्थरोंसे आहत कर दिये गये, कुछ शिलाओंकी मारसे खण्ड-खण्ड कर दिये गये तथा कोई भी देवता ऐसा नहीं दीख रहा था, जो वृक्षसमूहोंसे ढक न गया हो। इस प्रकार एकमात्र भगवान् गदाधरको छोड़कर देवताओंकी उस सेनाके धनुष छिन्न-भिन्न हो गये, अस्त्रसमूह नष्ट हो गये और वह प्रयत्नहीन हो गयी। शोभाशाली परमेश्वर गदाधर युद्धस्थलमें उपस्थित होनेपर भी विचलित नहीं हुए तथा सहनशील होनेके कारण उन जगदीश्वरको क्रोध भी नहीं आया। काले मेघकी-सी कान्तिवाले कालके ज्ञाता श्रीहरि रणभूमिमें देवताओं और असुरोंके युद्धको देखनेकी इच्छासे कालकी प्रतीक्षा करते हुए स्थित थे॥ २१—३१॥

ततो भगवता दृष्टौ रणे पावकमारुतौ।
चोदितौ विष्णुवाक्येन तौ मायामपकर्षताम्॥ ३२
ताभ्यामुद्भ्रान्तवेगाभ्यां प्रवृद्धाभ्यां महाहवे।
दग्धा सा पार्वती माया भस्मीभूता ननाश ह॥ ३३
सोऽनिलोऽनलसंयुक्तः सोऽनलश्चानिलाकुलः।
दैत्यसेनां ददहतुर्युगान्तेष्विव मूर्च्छितौ॥ ३४
वायुः प्रधावितस्तत्र पश्चादग्निस्तु मारुतम्।
चेरतुर्दानवानीके क्रीडन्तावनिलानलौ॥ ३५
भस्मावयवभूतेषु प्रपतत्सूत्पतत्सु च।
दानवानां विमानेषु निपतत्सु समन्ततः॥ ३६
वातस्कन्धापविद्धेषु कृतकर्मणि पावके।
मायाबन्धे निवृत्ते तु स्तूयमाने गदाधरे॥ ३७
निष्प्रयत्नेषु दैत्येषु त्रैलोक्ये मुक्तबन्धने।
सम्प्रहृष्टेषु देवेषु साधु साध्विति सर्वशः॥ ३८
जये दशशताक्षस्य दैत्यानां च पराजये।
दिक्षु सर्वासु शुद्धासु प्रवृत्ते धर्मविस्तरे॥ ३९
अपावृते चन्द्रमसि स्वस्थानस्थे दिवाकरे।
प्रकृतिस्थेषु लोकेषु त्रिषु चारित्रबन्धुषु॥ ४०

तदनन्तर रणभूमिमें भगवान्‌को अग्नि और वायु दीख पड़े। तब भगवान् विष्णुने उन्हें प्रेरित किया कि तुम दोनों इस मायाको नष्ट कर डालो। तब वृद्धिकी अन्तिम सीमापर पहुँचे हुए उन प्रचण्ड वेगशाली वायु और अग्निके प्रभावसे उस महासमरमें वह पार्वती माया जलकर भस्म हो गयी और सर्वथा नष्ट हो गयी। इसके बाद अग्निसे संयुक्त वायु और वायुसे संयुक्त अग्नि—दोनों पूरी शक्ति लगाकर युगान्तकी तरह दैत्यसेनाको भस्म करने लगे। आगे-आगे वायुदेव चलते थे, फिर वायुदेवके पीछे अग्निदेव चलते थे। इस प्रकार अग्नि और वायु उस दानव-सेनामें क्रीडा करते हुए विचरण कर रहे थे। दानवोंकी सेना जलती हुई इधर-उधर भागने लगी और विमान चारों ओर जलकर गिरने लगे। दानवोंके कंधे वायुसे अकड़ गये। इस प्रकार अग्निद्वारा अपना कर्म कर चुकनेपर मायाका बन्धन निवृत्त हो गया, भगवान् गदाधरकी स्तुति की जाने लगी, दैत्यगण प्रयत्नहीन हो गये, त्रिलोकी बन्धनसे मुक्त हो गयी, परम प्रसन्न हुए देवगण सब ओर 'ठीक है, ठीक है' ऐसा शब्द बोलने लगे। इन्द्रकी विजय और दैत्योंकी पराजय हो गयी, सभी दिशाएँ शुद्ध हो गयीं, धर्मका विस्तार होने लगा।' चन्द्रमाका आवरण हट गया, सूर्य अपने स्थानपर स्थित हो गये, तीनों लोक निश्चिन्त हो गये, लोगोंमें

यजमानेषु भूतेषु प्रशान्तेषु च पाप्मसु।
अभिन्नबन्धने मृत्यौ हूयमाने हुताशने॥ ४१
यज्ञशोभिषु देवेषु स्वर्गार्थं दर्शयत्सु च।
लोकपालेषु सर्वेषु दिक्षु संयानवर्तिषु॥ ४२
भावे तपसि सिद्धानामभावे पापकर्मणाम्।
देवपक्षे प्रमुदिते दैत्यपक्षे विषीदति॥ ४३
त्रिपादविग्रहे धर्मे अधर्मे पादविग्रहे।
अपावृत्ते महाद्वारे वर्तमाने च सत्पथे॥ ४४
लोके प्रवृत्ते धर्मेषु सुधर्मेष्वाश्रमेषु च।
प्रजारक्षणयुक्तेषु भ्राजमानेषु राजसु॥ ४५
प्रशान्तकल्मषे लोके शान्ते तमसि दानवे।
अग्निमारुतयोस्तत्र वृत्ते संग्रामकर्मणि॥ ४६
तन्मया विपुला लोकास्ताभ्यां कृतजयक्रिया।
पूर्वं दैत्यभयं श्रुत्वा मारुताग्निकृतं महत्॥ ४७
कालनेमीति विख्यातो दानवः प्रत्यदृश्यत।
भास्कराकारमुकुटः शिञ्जिताभरणाङ्गदः॥ ४८
मन्दराद्रिप्रतीकाशो महारजतपर्वतः।
शतप्रहरणोदग्रः शतबाहुः शताननः॥ ४९
शतशीर्षः स्थितः श्रीमाञ्छतशृङ्ग इवाचलः।
पक्षे महति संवृद्धो निदाघ इव पावकः॥ ५०
धूम्रकेशो हरिच्छ्मश्रुः संदष्टौष्ठपुटाननः।
त्रैलोक्यान्तरविस्तारि धारयन् विपुलं वपुः॥ ५१
बाहुभिस्तुलयन् व्योम क्षिपन् पद्भ्यां महीधरान्।
ईरयन् मुखनिःश्वासैर्वृष्टियुक्तान् बलाहकान्॥ ५२
तिर्यगायतरक्ताक्षं मन्दरोदग्रवर्चसम्।
दिधक्षन्तमिवायान्तं सर्वान् देवगणान् मृधे॥ ५३
तर्जयन्तं सुरगणांश्छादयन्तं दिशो दश।
संवर्तकाले तृषितं दृष्टं मृत्युमिवोत्थितम्॥ ५४

चरित्रबल और बन्धुत्वकी भावना जाग्रत् हो गयी, सभी प्राणी यज्ञकी भावनासे पूर्ण हो गये, पापोंका प्रशमन हो गया, मृत्युका बन्धन सुदृढ़ हो गया, अग्निमें आहुतियाँ पड़ने लगीं, यज्ञोंमें शोभा पानेवाले देवगण स्वर्गकी प्राप्तिके हेतु मार्गदर्शन करने लगे, लोकपालगण सभी दिशाओंके लिये प्रस्थित हो गये, सिद्धोंकी भावना तपस्यामें संलग्न हो गयी, पापकर्मोंका अभाव हो गया, देवपक्षमें आनन्द मनाया जाने लगा। दैत्यपक्षमें उदासी छा गयी, धर्म तीन चरणोंसे स्थित हुआ और अधर्मका एक चरण रह गया, महाद्वार (यममार्ग) बंद हो गया और सन्मार्गका प्रचार होने लगा। सभी लोग अपने-अपने वर्णधर्म एवं आश्रमधर्ममें प्रवृत्त हो गये, राजाओंका दल प्रजाकी रक्षामें तत्पर होकर सुशोभित होने लगा, दानवरूपी तमोगुणके शान्त हो जानेपर जगत्‌में पापका विनाश हो गया। इस प्रकार अग्नि और वायुद्वारा युद्धकर्म किये जानेपर सभी विशाल लोक उन्हींसे युक्त हो गये और उन्हींके द्वारा यह विजयकी क्रिया सम्पन्न हुई॥ ३२-४६½॥

तदनन्तर दैत्योंके लिये वायु और अग्निद्वारा उत्पन्न किये गये महान् भयको सुनकर सर्वप्रथम कालनेमि नामसे विख्यात दानव (युद्धभूमिमें) दिखायी पड़ा। वह सुवर्णसे युक्त मन्दराचलके समान विशालकाय था, उसके मस्तकपर सूर्य-सरीखा मुकुट चमक रहा था, वह मधुर शब्द करते हुए बाजूबंदसे विभूषित था, उसके सौ बाहु, सौ मुख और सौ मस्तक थे, वह परम भयानक सौ अस्त्रोंको एक साथ धारण किये हुए था, इस प्रकार वह सौ शिखरोंवाले पर्वतकी भाँति शोभा पा रहा था, दैत्योंके विशाल पक्षमें आगे बढ़ा हुआ वह दानव ग्रीष्मकालीन अग्निकी तरह दीख रहा था, उसके बाल धूमिल थे, उसकी दाढ़ी हरे रंगकी थी, वह दाँतोंसे होंठोंको दबाये हुए मुखसे युक्त था, इस प्रकार वह समूची त्रिलोकीमें विस्तृत विशाल शरीर धारण किये हुए था। वह भुजाओंसे आकाशको नापता हुआ, पैरोंसे पर्वतोंको फेंकता हुआ और मुखके निःश्वाससे जलयुक्त बादलोंको तितर-बितर करता हुआ चल रहा था। उसकी बड़ी-बड़ी लाल आँखें तिरछी मढ़ी हुई थीं। वह मन्दराचलके समान परम तेजस्वी था। वह युद्धस्थलमें समस्त देवगणोंको जलाते हुएकी तरह आ रहा था। वह देवगणोंको भयभीत कर रहा था, दसों दिशाओंको आच्छादित किये हुए था और प्रलयकालमें प्रकट हुए प्यासे मृत्युकी तरह दीख रहा

सुतलेनोच्छ्रयवता विपुलाङ्गुलिपर्वणा।
लम्बाभरणपूर्णेन किंचिच्चलितवर्मणा॥ ५५

उच्छ्रितेनाग्रहस्तेन दक्षिणेन वपुष्मता।
दानवान् देवनिहतानुत्तिष्ठध्वमिति ब्रुवन्॥ ५६

था। जो सुतलसे निकला था, जिसकी अंगुलियोंके पर्व (पोरु) विशाल थे, जो आभरणोंसे युक्त था, जिसका कवच कुछ हिल रहा था और जिसके दाहिने हाथका अग्रभाग उठा हुआ था, ऐसे शरीरसे युक्त कालनेमिने देवताओंद्वारा मारे गये दानवोंसे कहा—'अब तुमलोग उठकर खड़े हो जाओ'॥ ४७—५६॥

तं कालनेमिं समरे द्विषतां कालचेष्टितम्।
वीक्षन्ते स्म सुराः सर्वे भयवित्रस्तलोचनाः॥ ५७

तं वीक्षन्ति स्म भूतानि क्रमन्तं कालनेमिनम्।
त्रिविक्रमं विक्रमन्तं नारायणमिवापरम्॥ ५८

सोऽत्युच्छ्रयपुरःपादमारुताघूर्णिताम्बरः ।
प्रक्रामन्नसुरो युद्धे त्रासयामास देवताः॥ ५९

स मयेनासुरेन्द्रेण परिष्वक्तस्ततो रणे।
कालनेमिर्बभौ दैत्यः सविष्णुरिव मन्दरः॥ ६०

अथ विव्यथिरे देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः।
कालनेमिं समायान्तं दृष्ट्वा कालमिवापरम्॥ ६१

इस प्रकार समरभूमिमें शत्रुओंके प्रति कालकी-सी भीषण चेष्टा करनेवाले उस कालनेमिकी ओर सभी देवता एकटक निहारने लगे। उस समय उनके नेत्र भयसे कातर हो रहे थे। इस प्रकार चलते हुए उस कालनेमिको समस्त प्राणी ऐसे देख रहे थे मानो तीन पगसे त्रिलोकीको नापनेके लिये चलते हुए दूसरे नारायण हों। अत्यन्त विशाल शरीरवाले कालनेमिके चलते हुए पैरोंकी वायुसे आकाश चक्कर-सा काटने लगता था, इस प्रकार वह असुर युद्धभूमिमें विचरण करता हुआ देवताओंको भयभीत करने लगा। तदुपरान्त रणक्षेत्रमें असुरराज मयने कालनेमिका आलिङ्गन किया। उस समय वह दैत्य विष्णुसहित मन्दराचलके समान सुशोभित हो रहा था। तदनन्तर इन्द्र आदि सभी देवता दूसरे कालकी तरह कालनेमिको आया हुआ देखकर अत्यन्त व्यथित हो गये॥ ५७—६१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामययुद्धे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके तारकामययुद्धमें एक सौ छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७६॥

एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

देवताओं और दैत्योंकी सेनाओंकी अद्भुत मुठभेड़, कालनेमिका भीषण पराक्रम और उसकी देवसेनापर विजय

मत्स्य उवाच

दानवानामनीकेषु कालनेमिर्महासुरः।
व्यवर्धत महातेजास्तपान्ते जलदो यथा॥ १

तं त्रैलोक्यान्तरगतं दृष्ट्वा ते दानवेश्वराः।
उत्तस्थुरपरिश्रान्ताः पीत्वामृतमनुत्तमम्॥ २

ते वीतभयसंत्रासा मयतारपुरोगमाः।
तारकामयसंग्रामे सततं जितकाशिनः॥ ३

मत्स्यभगवान्ने कहा—रविनन्दन! महान् तेजस्वी महासुर कालनेमि दानवोंकी सेनामें उसी प्रकार वृद्धिंगत होने लगा, जैसे ग्रीष्म-ऋतुके अन्तमें बादल उमड़ पड़ते हैं। तब वे सभी दानव-यूथपति कालनेमिको त्रिलोकीमें व्याप्त देखकर श्रमरहित हो गये और सर्वोत्तम अमृतका पान कर उठ खड़े हुए। उनके भय और त्रास समाप्त हो चुके थे। वे तारकामय-संग्राममें मय और तारकको आगे रखकर सदा विजयी होते रहे हैं।

रेजुरायोधनगता दानवा युद्धकाङ्क्षिणः।
मन्त्रमभ्यसतां तेषां व्यूहं च परिधावताम्॥ ४
प्रेक्षतां चाभवत् प्रीतिर्दानवं कालनेमिनम्।
ये तु तत्र मयस्यासन् मुख्या युद्धपुरःसराः॥ ५
ते तु सर्वे भयं त्यक्त्वा हृष्टा योद्धुमुपस्थिताः।
मयस्तारो वराहश्च हयग्रीवश्च वीर्यवान्॥ ६
विप्रचित्तिसुतः श्वेतः खरलम्बावुभावपि।
अरिष्टो बलिपुत्रश्च किशोराख्यस्तथैव च॥ ७
स्वर्भानुश्चामरप्रख्यो वक्त्रयोधी महासुरः।
एतेऽस्त्रवेदिनः सर्वे सर्वे तपसि सुस्थिताः॥ ८
दानवाः कृतिनो जग्मुः कालनेमिं तमुद्धतम्।
ते गदाभिर्भुशुण्डीभिश्चक्रैरथ परश्वधैः॥ ९
कालकल्पैश्च मुसलैः क्षेपणीयैश्च मुद्गरैः।
अश्मभिश्चाद्रिसदृशैर्गण्डशैलैश्च दारुणैः॥ १०
पट्टिशैर्भिन्दिपालैश्च परिघैश्चोत्तमायसैः।
घातनीभिः सुगुर्वीभिः शतघ्नीभिस्तथैव च॥ ११
युगैर्यन्त्रैश्च निर्मुक्तैर्मार्गणैरुग्रताडितैः।
दोर्भिश्चायतदीप्तैश्च प्रासैः पाशैश्च मूर्च्छनैः॥ १२
भुजङ्गवक्त्रैर्लेलिहानैर्विसर्पद्भिश्च सायकैः।
वज्रैः प्रहरणीयैश्च दीप्यमानैश्च तोमरैः॥ १३
विकोशैरसिभिस्तीक्ष्णैः शूलैश्च शितनिर्मलैः।
दैत्याः संदीप्तमनसः प्रगृहीतशरासनाः॥ १४
ततः पुरस्कृत्य तदा कालनेमिं महाहवे।
सा दीप्तशस्त्रप्रवरा दैत्यानां रुरुचे चमूः॥ १५
द्यौर्निमीलितसर्वाङ्गा घनानीलाम्बुदागमे।
देवतानामपि चमूर्मुमुदे शक्रपालिता॥ १६

उपेतासितकृष्णाभ्यां ताराभ्यां चन्द्रसूर्ययोः।
वायुवेगवती सौम्या तारागणपताकिनी॥ १७

तोयदाविद्धवसना ग्रहनक्षत्रहासिनी।
यमेन्द्रवरुणैर्गुप्ता धनदेन च धीमता॥ १८

सम्प्रदीप्ताग्निनयना नारायणपरायणा।
सा समुद्रौघसदृशी दिव्या देवमहाचमूः॥ १९

युद्धाभिलाषी वे दानव युद्धभूमिमें उपस्थित होकर शोभा पा रहे थे। उनमें कुछ परस्पर मन्त्रणा कर रहे थे, कुछ व्यूहकी रचना कर रहे थे और कुछ रक्षकके रूपमें थे। उन सबका कालनेमि दानवके प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो गया। तत्पश्चात् वहाँ मय दानवके जितने मुख्य-मुख्य युद्धके अगुआ थे, वे सभी भय छोड़कर हर्षपूर्वक युद्ध करनेके लिये उपस्थित हुए। फिर मय, तारक, वराह, पराक्रमी हयग्रीव, विप्रचित्तिका पुत्र श्वेत, खर, लम्ब, बलिका पुत्र अरिष्ट, किशोर और देवरूपसे प्रसिद्ध मुखसे युद्ध करनेवाला महान् असुर स्वर्भानु—ये सभी अस्त्रवेत्ता थे और सभी तपोबलसे सम्पन्न थे। वे सभी सफलप्रयत्नवाले दानव उस उद्दण्ड कालनेमिके निकट गये। गदा, भुशुण्डि, चक्र, कुठार, काल-सदृश मुसल, क्षेपणीय (ढेलवाँस), मुद्गर, पर्वत-सदृश पत्थर, भीषण गण्डशैल, पट्टिश, भिन्दिपाल, उत्तम लोहेके बने हुए परिघ, संहारकारिणी बड़ी-बड़ी तोप, यन्त्र, हाथोंसे छूटनेपर भयानक चोट करनेवाले बाण, लम्बे चमकीले भाले, पाश, मूर्च्छन (बेहोश करनेका यन्त्र), रेंगते हुए जीभ लपलपानेवाले सर्पमुख बाण, फेंकने योग्य वज्र, चमचमाते हुए तोमर, म्यानसे बाहर निकली हुई तीखी तलवार और तीखे निर्मल शूलोंसे युक्त तथा धनुष धारण करनेवाले उन दैत्योंके मन उत्साहसे सम्पन्न थे, वे उस महासमरमें कालनेमिको आगे करके खड़े हो गये। उस समय देदीप्यमान शस्त्रोंसे युक्त दैत्योंकी वह सेना इस प्रकार शोभा पा रही थी मानो सघन नील बादलोंके छा जानेपर सर्वथा आच्छादित हुआ आकाशमण्डल हो॥ १—१५ १/२॥

दूसरी ओर इन्द्रद्वारा सुरक्षित देवताओंकी सेना भी अट्टहास कर रही थी। वह चन्द्रमा और सूर्यकी श्वेत और कृष्ण ताराओंसे युक्त, वायुकी-सी वेगशालिनी, सौम्य और तारागणको पताकारूपमें धारण करनेवाली थी। उसके वस्त्र बादलोंसे संयुक्त थे। वह ग्रहों और नक्षत्रोंका उपहास-सी कर रही थी। बुद्धिमान् कुबेर, यम, इन्द्र और वरुण उसकी रक्षा कर रहे थे। वह प्रज्वलित अग्निरूप नेत्रोंवाली और नारायणके आश्रित थी। इस प्रकार यक्षों एवं गन्धर्वोंसे युक्त सागरसमूहकी तरह भयंकर देवताओंकी वह विशाल दिव्य सेना अस्त्र

रराजास्त्रवती भीमा यक्षगन्धर्वशालिनी।
तयोश्चम्वोस्तदानीं तु बभूव स समागमः॥ २०
द्यावापृथिव्योः संयोगो यथा स्याद् युगपर्यये।
तद् युद्धमभवद् घोरं देवदानवसंकुलम्॥ २१
क्षमापराक्रमपरं दर्पस्य विनयस्य च।
निश्चक्रमुर्बलाभ्यां तु भीमास्तत्र सुरासुराः॥ २२
पूर्वापराभ्यां संरब्धाः सागराभ्यामिवाम्बुदाः।
ताभ्यां बलाभ्यां संहृष्टाश्चेरुस्ते देवदानवाः॥ २३
वनाभ्यां पार्वतीयाभ्यां पुष्पिताभ्यां यथा गजाः।
समाजघ्नुस्ततो भेरीः शङ्खान् दध्मुरनेकशः॥ २४
स शब्दो द्यां भुवं खं च दिशश्च समपूरयत्।
ज्याघाततलनिर्घोषो धनुषां कूजितानि च॥ २५
दुन्दुभीनां च निनदो दैत्यमन्तर्दधुः स्वनम्।
तेऽन्योन्यमभिसम्पेतुः पातयन्तः परस्परम्॥ २६
बभञ्जुर्बाहुभिर्बाहून् द्वन्द्वमन्ये युयुत्सवः।
देवास्तु चाशनिं घोरं परिघांश्चोत्तमायसान्॥ २७
निस्त्रिंशान् ससृजुः संख्ये गदा गुर्वीश्च दानवाः।
गदानिपातैर्भग्नाङ्गा बाणैश्च शकलीकृताः॥ २८
परिपेतुर्भृशं केचित् पुनः केचित् तु जघ्निरे।
ततो रथैः सतुरगैर्विमानैश्चाशुगामिभिः॥ २९
समीयुस्ते सुसंरब्धा रोषादन्योन्यमाहवे।
संवर्तमानाः समरे संदष्टौष्ठपुटाननाः॥ ३०
रथा रथैर्निरुद्ध्यन्ते पादाताश्च पदातिभिः।
तेषां रथानां तुमुलः स शब्दः शब्दवाहिनाम्॥ ३१
नभोनभश्च हि यथा नभस्यैर्जलदस्वनैः।
बभञ्जुस्तु रथान् केचित् केचित् सम्मर्दिता रथैः॥ ३२
सम्बाधमन्ये सम्प्राप्य न शेकुश्चलितुं रथाः।
अन्योन्यमन्ये समरे दोर्भ्यामुत्क्षिप्य दंशिताः॥ ३३
संह्रादमानाभरणा जघ्नुस्तत्रापि चर्मिणः।

धारण किये हुए शोभा पा रही थी। उस समय उन दोनों सेनाओंका ऐसा समागम हुआ जैसे प्रलयकालमें पृथ्वी और आकाशमण्डलका संयोग होता है। देवताओं और दानवोंसे व्याप्त तथा दर्प और विनयकी क्षमा और पराक्रमसे युक्त वह युद्ध अत्यन्त भयंकर हो गया। वहाँ दोनों सेनाओंमेंसे कुछ ऐसे भयंकर देवता और राक्षस निकल रहे थे, जो पूर्वी एवं पश्चिमी सागरोंसे निकलते हुए संक्षुब्ध बादलों-जैसे प्रतीत हो रहे थे। उन दोनों सेनाओंसे निकले हुए वे देवता और दानव इस प्रकार हर्षपूर्वक विचरण कर रहे थे, मानो खिले हुए पुष्पोंसे युक्त पर्वतीय वनोंसे गजराज निकल रहे हों॥ १६—२३ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर नगाड़ोंपर चोटें पड़ने लगीं और अनेकों शङ्ख बज उठे। वह शब्द अन्तरिक्ष, पृथ्वी, आकाश और दिशाओंमें व्याप्त हो गया। धनुषोंकी प्रत्यञ्चा चढ़ानेके शब्द तथा सैनिकोंके कोलाहल होने लगे। देवताओंकी दुन्दुभियोंका निनाद दैत्योंके वाद्यशब्दको पराभूत कर दिया। फिर तो वे एक-दूसरेपर टूट पड़े और परस्पर एक-दूसरेको मारकर गिराने लगे। कुछ द्वन्द्व-युद्ध करनेवाले वीर अपनी भुजाओंसे शत्रुकी भुजाओंको मरोड़ दिये। रणभूमिमें देवगण भयंकर अशनि और उत्तम लोहेके बने हुए परिघोंसे प्रहार कर रहे थे तो दानवगण भारी गदाओं और खड्गोंका प्रयोग कर रहे थे। गदाके आघातसे बहुतोंके अङ्ग चूर हो गये। कुछ लोग तो बाणोंकी चोटसे टुकड़े-टुकड़े हो गये। कुछ अत्यन्त घायल होकर धराशायी हो गये। कुछ पुनः उठकर प्रहार करने लगे। तदनन्तर वे क्रोधसे विक्षुब्ध हो रणभूमिमें घोड़े जुते रथों और शीघ्रगामी विमानोंद्वारा एक-दूसरेसे भिड़ गये। युद्ध करते समय वे क्रोधवश अपने होंठोंको दाँतों-तले दबाये हुए थे। इस प्रकार रथ रथोंके साथ तथा पैदल पैदलोंके साथ उलझ गये। शब्द करनेवाले उन रथोंका ऐसा भयंकर शब्द होने लगा मानो भाद्रपदमासमें बादल गरज रहे हों। कुछ लोग रथोंको तोड़ रहे थे और कुछ लोग रथोंके धक्केसे रौंदे जा चुके थे। दूसरे रथ मार्गके अवरुद्ध हो जानेके कारण आगे बढ़नेमें असमर्थ हो गये। कुछ कवचधारी वीर समरभूमिमें एक-दूसरेको दोनों हाथोंसे उठाकर भूतलपर पटक देते थे। उस समय उनके आभूषण खनखना रहे थे। वहाँ कुछ ढाल धारण करनेवाले दूसरे अस्त्रोंद्वारा भी विपक्षियोंपर प्रहार कर रहे थे॥ २४—३३ $\frac{1}{2}$॥

अस्त्रैरन्ये विनिर्भिन्ना वेमू रक्तं हता युधि॥ ३४
क्षरज्जलानां सदृशा जलदानां समागमे।
तैरस्त्रशस्त्रग्रथितं क्षिप्तोत्क्षिप्तगदाविलम्॥ ३५
देवदानवसंक्षुब्धं संकुलं युद्धमाबभौ।
तद्दानवमहामेघं देवायुधविराजितम्॥ ३६
अन्योन्यबाणवर्षेण युद्धदुर्दिनमाबभौ।
एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धः कालनेमी स दानवः॥ ३७
व्यवर्धत समुद्रौघैः पूर्यमाण इवाम्बुदः।
तस्य विद्युच्चलापीडैः प्रदीप्ताशनिवर्षिणः॥ ३८
गात्रैर्नगगिरिप्रख्या विनिपेतुर्बलाहकाः।
क्रोधान्निःश्वसतस्तस्य भ्रूभेदस्वेदवर्षिणः॥ ३९
साग्निस्फुलिङ्गप्रतता मुखान्निष्पेतुरर्चिषः।
तिर्यगूर्ध्वं च गगने ववृधुस्तस्य बाहवः॥ ४०
पर्वतादिव निष्क्रान्ताः पञ्चास्या इव पन्नगाः।
सोऽस्त्रजालैर्बहुविधैर्धनुर्भिः परिघैरपि॥ ४१
दिव्यमाकाशमावव्रे पर्वतैरुच्छ्रितैरिव।
सोऽनिलोद्धूतवसनस्तस्थौ संग्रामलालसः॥ ४२
संध्यातपग्रस्तशिलः साक्षान्मेरुरिवाचलः।
ऊरुवेगप्रमथितैः शैलशृङ्गाग्रपादपैः॥ ४३
अपातयद् देवगणान् वज्रेणेव महागिरीन्।
बहुभिः शस्त्रनिस्त्रिंशैश्छिन्नभिन्नशिरोरुहाः॥ ४४
न शेकुश्चलितुं देवाः कालनेमिहता युधि।
मुष्टिभिर्निहताः केचित् केचित् तु विदलीकृताः॥ ४५
यक्षगन्धर्वपतयः पेतुः सह महोरगैः।
तेन वित्रासिता देवाः समरे कालनेमिना॥ ४६

इसी प्रकार अन्य वीर युद्धस्थलमें अस्त्रोंद्वारा घायल होकर रक्त वमन करते हुए जलकी वृष्टि करनेवाले बादलोंकी तरह प्रतीत हो रहे थे। उस समय वह युद्ध अस्त्रों एवं शस्त्रोंसे परिपूर्ण, फेंकी गयी एवं फेंकनेके लिये उठायी हुई गदाओंसे युक्त और देवताओं एवं दानवोंसे व्याप्त और संक्षुब्ध होकर शोभा पा रहा था। दानवरूपी महामेघसे युक्त और देवताओंके हथियारोंसे विभूषित वह युद्ध परस्परकी बाणवर्षासे मेघाच्छन्न दुर्दिन-सा लग रहा था। इसी बीच क्रोधसे भरा हुआ कालनेमि नामक दानव रणभूमिमें आगे बढ़ा। वह समुद्रकी लहरोंसे पूर्ण होते हुए बादलकी तरह शोभा पा रहा था। प्रज्वलित वज्रोंकी वर्षा करनेवाले उस दानवके बिजलीके समान चञ्चल मस्तकोंसे युक्त शरीरावयवोंसे टकराकर हाथी और पर्वत-सदृश विशाल बादल तितर-बितर होकर बिखर रहे थे। क्रोधवश निःश्वास लेते हुए उसकी टेढ़ी भौंहोंसे पसीनेकी बूँदें टपक रही थीं और मुखसे अग्निकी चिनगारियोंसे व्याप्त लपटें निकल रही थीं। उसकी भुजाएँ आकाशमें तिरछी होकर ऊपरकी ओर बढ़ रही थीं, जो पर्वतसे निकले हुए पाँच मुखवाले नागकी तरह लग रही थीं। उसने ऊँचे-ऊँचे पर्वतों-सरीखे अनेक प्रकारके अस्त्रसमूहों, धनुषों और परिघोंसे दिव्य आकाशको आच्छादित कर दिया। वायुद्वारा उड़ाये जाते हुए वस्त्रोंवाला वह दानव संग्रामकी लालसासे डटकर खड़ा हुआ। उस समय वह संध्याकालीन धूपसे ग्रस्त हुई शिलासे युक्त साक्षात् मेरुपर्वतकी तरह दीख रहा था। उसने अपनी जंघाओंके वेगसे उखाड़े गये पर्वतशिखरके अग्रवर्ती वृक्षोंके प्रहारसे देवगणोंको उसी प्रकार धराशायी कर दिया, जैसे वज्रके आघातसे विशाल पर्वत ढाह दिये गये थे॥ ३४—४३ १/२॥

इस प्रकार रणभूमिमें कालनेमिद्वारा आहत हुए देवगण चलने-फिरनेमें भी असमर्थ हो गये। बहुत-से शस्त्रों तथा खड्गोंकी चोटसे कुछ लोगोंके सिरके बालतक छिन्न-भिन्न हो गये थे। कुछ मुक्कोंकी मारसे मार डाले गये और कुछके टुकड़े-टुकड़े कर दिये गये। यक्षों और गन्धर्वोंके नायक बड़े-बड़े नागोंके साथ पृथ्वीकी गोदमें पड़ गये। समरभूमिमें उस कालनेमिद्वारा भयभीत किये गये देवगण

न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि यत्नं कर्तुं विचेतसः।
तेन शक्रः सहस्राक्षः स्यन्दितः शरबन्धनैः॥ ४७
ऐरावतगतः संख्ये चलितुं न शशाक ह।
निर्जलाम्भोदसदृशो निर्जलार्णवसप्रभः॥ ४८
निर्व्यापारः कृतस्तेन विपाशो वरुणो मृधे।
रणे वैश्रवणस्तेन परिघैः कामरूपिणा॥ ४९
वित्तदोऽपि कृतः संख्ये निर्जितः कालनेमिना।
यमः सर्वहरस्तेन मृत्युप्रहरणे रणे॥ ५०
याम्यामवस्थां संत्यज्य भीतः स्वां दिशमाविशत्।
स लोकपालानुत्सार्य कृत्वा तेषां च कर्म तत्॥ ५१
दिक्षु सर्वासु देहं स्वं चतुर्धा विदधे तदा।
स नक्षत्रपथं गत्वा दिव्यं स्वर्भानुदर्शनम्॥ ५२
जहार लक्ष्मीं सोमस्य तं चास्य विषयं महत्।
चालयामास दीप्तांशुं स्वर्गद्वारात् सभास्करम्॥ ५३
सायनं चास्य विषयं जहार दिनकर्म च।
सोऽग्निं देवमुखं दृष्ट्वा चकारात्ममुखाश्रयम्॥ ५४
वायुं च तरसा जित्वा चकारात्मवशानुगम्।
स समुद्रान् समानीय सर्वांश्च सरितो बलात्॥ ५५
चकारात्ममुखे वीर्याद् देहभूताश्च सिन्धवः।
अपः स्ववशगाः कृत्वा दिविजा याश्च भूमिजाः॥ ५६
स स्वयम्भूरिवाभाति महाभूतपतिर्यथा।
सर्वलोकमयो दैत्यः सर्वभूतभयावहः॥ ५७
स लोकपालैकवपुश्चन्द्रादित्यग्रहात्मवान्।
स्थापयामास जगतीं सुगुप्तां धरणीधरैः॥ ५८
पावकानिलसम्पातो रराज युधि दानवः।
पारमेष्ठ्ये स्थितः स्थाने लोकानां प्रभवोपमे।
तं तुष्टुवुर्दैत्यगणा देवा इव पितामहम्॥ ५९

प्रयत्न करनेके लिये उद्यत होनेपर भी कोई उपाय न कर सके; क्योंकि उनका मन भ्रमित हो उठा था। उसने सहस्र नेत्रधारी इन्द्रको भी बाणोंके बन्धनसे इस प्रकार जकड़ दिया था कि वे युद्धस्थलमें ऐरावतपर बैठे हुए भी चलनेमें समर्थ न हो सके। उसने समर-भूमिमें वरुणको जलहीन बादल और निर्जल महासागरकी भाँति कान्तिहीन, व्यापाररहित और पाशसे शून्य कर दिया। स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले उस दानवने रणभूमिमें परिघोंकी मारसे वैश्रवण कुबेरको भी जीत लिया। मृत्यु-सदृश प्रहार होनेवाले उस युद्धमें कालनेमिने सबके प्राणहर्ता यमको पराजित कर दिया। वे डरकर युद्धका परित्याग कर अपनी दक्षिण दिशाकी ओर चले गये। इस प्रकार उसने चारों लोकपालोंको पराजित कर दिया और अपने शरीरको चार भागोंमें विभक्त कर वह सभी दिशाओंमें उनका कार्य स्वयं सँभालने लगा। फिर जहाँ ग्रहणके समय राहुका दर्शन होता है, उस दिव्य नक्षत्रमार्गमें जाकर चन्द्रमाकी लक्ष्मी तथा उनके विशाल साम्राज्यका अपहरण कर लिया॥ ४७—५२ $\frac{1}{2}$॥

उसने प्रदीप्त किरणोंवाले सूर्यको स्वर्गद्वारसे खदेड़ दिया और उनके सायन नामक साम्राज्य और दिनकी सृष्टि करनेकी शक्तिको छीन लिया। उसने देवताओंके मुखस्वरूप अग्निको सम्मुख देखकर उन्हें अपने मुखमें निगल लिया तथा वायुको वेगपूर्वक जीतकर उन्हें अपना वशवर्ती बना लिया। उसने अपने पराक्रमसे बलपूर्वक समुद्रोंको वशमें करके सभी नदियोंको अपने मुखमें डाल लिया और सागरोंको शरीरका अङ्ग बना लिया। इस प्रकार स्वर्ग अथवा भूतलपर जितने जल थे, उन सबको उसने अपने अधीन कर लिया। उस समय समस्त प्राणियोंको भयभीत करनेवाला वह दैत्य सम्पूर्ण लोकोंसे युक्त होकर महाभूतपति ब्रह्माकी तरह सुशोभित हो रहा था। सम्पूर्ण लोकपालोंके एकमात्र मूर्तस्वरूप तथा चन्द्र, सूर्य आदि ग्रहोंसे युक्त उस दानवने पर्वतोंद्वारा सुरक्षित पृथ्वीको स्थापित किया। इस प्रकार अग्नि और वायुके समान वेगशाली दानवराज कालनेमि युद्धस्थलमें लोकोंकी उत्पत्तिके स्थानभूत ब्रह्माके पदपर स्थित होकर शोभा पा रहा था। उस समय दैत्यगण उसकी उसी प्रकार स्तुति कर रहे थे, जैसे देवगण ब्रह्माकी किया करते हैं॥ ५३—५९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे तारकामययुद्धं नाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें तारकामय-युद्ध नामक एक सौ सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७७॥

एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

कालनेमि और भगवान् विष्णुका रोषपूर्वक वार्तालाप और भीषण युद्ध, विष्णुके चक्रके द्वारा कालनेमिका वध और देवताओंको पुनः निज पदकी प्राप्ति

मत्स्य उवाच

पञ्च तं नाभ्यवर्तन्त विपरीतेन कर्मणा।
वेदो धर्मः क्षमा सत्यं श्रीश्च नारायणाश्रया॥ १

स तेषामनुपस्थानात् सक्रोधो दानवेश्वरः।
वैष्णवं पदमन्विच्छन् ययौ नारायणान्तिकम्॥ २

स ददर्श सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम्।
दानवानां विनाशाय भ्रामयन्तं गदां शुभाम्॥ ३

सजलाम्भोदसदृशं विद्युत्सदृशवाससम्।
स्वारूढं स्वर्णपक्षाढ्यं शिखिनं काश्यपं खगम्॥ ४

दृष्ट्वा दैत्यविनाशाय रणे स्वस्थमवस्थितम्।
दानवो विष्णुमक्षोभ्यं बभाषे क्षुब्धमानसः॥ ५

अयं स रिपुरस्माकं पूर्वेषां प्राणनाशनः।
अर्णवावासिनश्चैव मधोर्वै कैटभस्य च॥ ६

अयं स विग्रहोऽस्माकमशाम्यः किल कथ्यते।
अनेन संयुगेष्वद्य दानवा बहवो हताः॥ ७

अयं स निर्घृणो लोके स्त्रीबालनिरपत्रपः।
येन दानवनारीणां सीमन्तोद्धरणं कृतम्॥ ८

अयं स विष्णुर्देवानां वैकुण्ठश्च दिवौकसाम्।
अनन्तो भोगिनामप्सु स्वपन्नाद्यः स्वयम्भुवः॥ ९

अयं स नाथो देवानामस्माकं व्यथितात्मनाम्।
अस्य क्रोधं समासाद्य हिरण्यकशिपुर्हतः॥ १०

मत्स्यभगवान् बोले— रविनन्दन! कालनेमिद्वारा विपरीत कर्म किये जानेके कारण वेद, धर्म, क्षमा, सत्य और नारायणके आश्रयमें रहनेवाली लक्ष्मी— ये पाँचों उसके अधीन नहीं हुए। उनके उपस्थित न होनेसे क्रोधसे भरा हुआ दानवेश्वर कालनेमि वैष्णवपदकी प्राप्तिकी अभिलाषासे नारायणके निकट गया। वहाँ जाकर उसने शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान्‌को गरुडकी पीठपर बैठे तथा दैत्योंका विनाश करनेके लिये कल्याणमयी गदा घुमाते देखा। उनके शरीरकी कान्ति सजल मेघके समान थी। उनका पीताम्बर बिजलीके समान चमक रहा था। वे स्वर्णमय पंखसे युक्त शिखाधारी कश्यपनन्दन गरुडपर समासीन थे। इस प्रकार रणभूमिमें दैत्योंका विनाश करनेके लिये स्वस्थचित्तसे स्थित अक्षोभ्य भगवान् विष्णुको देखकर दानवराज कालनेमिका मन क्षुब्ध हो उठा, तब वह कहने लगा— 'यही हमलोगोंके पूर्वजोंका प्राणनाशक शत्रु है तथा यही महासागरमें निवास करनेवाले मधु और कैटभका भी प्राणहर्ता है। हमलोगोंका यह विग्रह शान्त होनेका नहीं, ऐसा निश्चितरूपसे कहा जाता है। बहुतेरे युद्धोंमें इसके द्वारा बहुत-से दानव मारे जा चुके हैं। यह बड़ा निष्ठुर है। इसे जगत्‌में स्त्री-बच्चोंपर भी हाथ उठाते समय लज्जा नहीं आती। इसने बहुत-सी दानव-पत्नियोंके सोहागका उन्मूलन कर दिया है। यही देवताओंमें विष्णु, स्वर्गवासियोंमें वैकुण्ठ, नागोंमें अनन्त और जलमें शयन करनेवाला आदि स्वयम्भू है। यही देवताओंका स्वामी और व्यथित हृदयवाले हमलोगोंका शत्रु है। इसीके क्रोधमें पड़कर हिरण्यकशिपु मारे गये हैं॥ १—१०॥

अस्य छायामुपाश्रित्य देवा मखमुखे श्रिताः।
आज्यं महर्षिभिर्दत्तमश्नुवन्ति त्रिधा हुतम्॥ ११

'इसी प्रकार इसीका आश्रय ग्रहण कर यज्ञके प्रारम्भमें स्थित देवगण महर्षियोंद्वारा तीन प्रकारकी आहुति-रूपमें दिये गये आज्यका उपभोग करते हैं।

अयं स निधने हेतुः सर्वेषाममरद्विषाम्।
यस्य चक्रे प्रविष्टानि कुलान्यस्माकमाहवे॥ १२

यही सभी देवद्रोही असुरोंकी मृत्युका कारण है। युद्धभूमिमें हमारे सभी कुल इसीके चक्रमें प्रविष्ट हो गये हैं।

अयं स किल युद्धेषु सुरार्थे त्यक्तजीवितः।
सवितुस्तेजसा तुल्यं चक्रं क्षिपति शत्रुषु॥ १३

अयं स कालो दैत्यानां कालभूतः समास्थितः।
अतिक्रान्तस्य कालस्य फलं प्राप्स्यति केशवः॥ १४

दिष्ट्येदानीं समक्षं मे विष्णुरेष समागतः।
अद्य मद्बाहुनिष्पिष्टो मामेव प्रणयिष्यति॥ १५

यास्याम्यपचितिं दिष्ट्या पूर्वेषामद्य संयुगे।
इमं नारायणं हत्वा दानवानां भयावहम्॥ १६

क्षिप्रमेव हनिष्यामि रणेऽमरगणांस्ततः।
जात्यन्तरगतो ह्येष बाधते दानवान् मृधे॥ १७

एषोऽनन्तः पुरा भूत्वा पद्मनाभ इति श्रुतः।
जघानैकार्णवे घोरे तावुभौ मधुकैटभौ॥ १८

द्विधाभूतं वपुः कृत्वा सिंहस्यार्धं नरस्य च।
पितरं मे जघानैको हिरण्यकशिपुं पुरा॥ १९

शुभं गर्भमधत्तैनमदितिर्देवतारणिः।
त्रींल्लोकानुज्जहारैकः क्रममाणस्त्रिभिः क्रमैः॥ २०

भूयस्त्विदानीं संग्रामे सम्प्राप्ते तारकामये।
मया सह समागम्य सदेवो विनशिष्यति॥ २१

एवमुक्त्वा बहुविधं क्षिपन्नारायणं रणे।
वाग्भिरप्रतिरूपाभिर्युद्धमेवाभ्यरोचयत्॥ २२

यह युद्धोंमें देवताओंके हितके लिये प्राणोंकी बाजी लगा देता है और शत्रुओंपर सूर्यके समान तेजस्वी चक्रका प्रयोग करता है। यह दैत्योंके कालरूपसे यहाँ स्थित है, किंतु अब यह केशव अपने बीते हुए कालका फल भोगेगा। सौभाग्यवश यह विष्णु इस समय मेरे ही समक्ष आ गया है। यह आज मेरी भुजाओंसे पिसकर मुझसे ही प्रेम करेगा। सौभाग्यकी बात है कि आज मैं रणभूमिमें दानवोंको भयभीत करनेवाले इस नारायणका वध कर पूर्वजोंके प्रायश्चित्तको पूर्ण कर दूँगा। तत्पश्चात् रणमें शीघ्र ही देवताओंका संहार कर डालूँगा। यह अन्य जातियोंमें भी उत्पन्न होकर समरमें दानवोंको कष्ट पहुँचाता है। यही पूर्वकालमें अनन्त होकर पुनः पद्मनाभ नामसे विख्यात हुआ। इसने ही भयंकर एकार्णवके जलमें मधु-कैटभ नामक दोनों दैत्योंका वध किया था। इसने अपने शरीरको आधा सिंह और आधा मनुष्य—इस प्रकार दो भागोंमें विभक्त करके पूर्वकालमें मेरे पिता हिरण्यकशिपुको मौतके घाट उतारा था। देवताओंकी जननी अदितिने इसीको अपने मङ्गलमय गर्भमें धारण किया था। अकेले इसीने तीन पगोंसे नापते हुए त्रिलोकीका उद्धार किया था। इस समय यह पुनः तारकामय संग्रामके प्राप्त होनेपर उपस्थित हुआ है। यह मेरे साथ उलझकर सभी देवताओंसहित नष्ट हो जायगा।' ऐसा कहकर उसने रणके मैदानमें प्रतिकूल वचनोंद्वारा अनेकों प्रकारसे नारायणपर आक्षेप करते हुए युद्धके लिये ही अभिलाषा व्यक्त की॥ ११—२२॥

क्षिप्यमाणोऽसुरेन्द्रेण न चुकोप गदाधरः।
क्षमाबलेन महता सस्मितं चेदमब्रवीत्॥ २३

अल्पं दर्पबलं दैत्य स्थिरमक्रोधजं बलम्।
हतस्त्वं दर्पजैर्दोषैर्हित्वा यद् भाषसे क्षमाम्॥ २४

अधीरस्त्वं मम मतो धिगेतत् तव वाग्बलम्।
न यत्र पुरुषाः सन्ति तत्र गर्जन्ति योषितः॥ २५

अहं त्वां दैत्य पश्यामि पूर्वेषां मार्गगामिनम्।
प्रजापतिकृतं सेतुं भित्त्वा कः स्वस्तिमान् व्रजेत्॥ २६

भगवान् गदाधरमें क्षमाका महान् बल है, जिसके कारण असुरेन्द्रद्वारा इस प्रकार आक्षेप किये जानेपर भी वे कुपित नहीं हुए, अपितु मुसकराते हुए इस प्रकार बोले—'दैत्य! दर्पका बल अल्पकालस्थायी होता है, किंतु क्षमाजनित बल स्थिर होता है। तुम क्षमाका परित्याग करके जो इस प्रकारकी ऊटपटाँग बातें बक रहे हो, इससे प्रतीत होता है कि तुम अपने दर्पजन्य दोषोंसे नष्ट हो चुके हो। मेरी समझसे तो तुम बड़े अधीर दीख रहे हो। तुम्हारे इस वाग्बलको धिक्कार है; क्योंकि ऐसी गर्जना तो जहाँ पुरुष नहीं होते, वहाँ स्त्रियाँ भी करती हैं। दैत्य! मैं तुम्हें भी पूर्वजोंके मार्गका अनुगामी ही देख रहा हूँ। भला, ब्रह्माद्वारा स्थापित की गयी मर्यादाओंको तोड़कर

अद्य त्वां नाशयिष्यामि देवव्यापारघातकम्।
स्वेषु स्वेषु च स्थानेषु स्थापयिष्यामि देवताः॥ २७

कौन कुशलपूर्वक जीवित रह सकता है। अतः देवताओंके कार्योंमें बाधा पहुँचानेवाले तुम्हें मैं आज ही नष्ट कर डालूँगा और देवताओंको पुनः अपने-अपने स्थानोंपर स्थापित कर दूँगा।'॥ २३—२७॥

एवं ब्रुवति वाक्यं तु मृधे श्रीवत्सधारिणि।
जहास दानवः क्रोधाद्धस्तांश्चक्रे सहायुधान्॥ २८
स बाहुशतमुद्यम्य सर्वास्त्रग्रहणं रणे।
क्रोधाद् द्विगुणरक्ताक्षो विष्णुं वक्षस्यताडयत्॥ २९
दानवाश्चापि समरे मयतारपुरोगमाः।
उद्यतायुधनिस्त्रिंशा विष्णुमभ्यद्रवन् रणे॥ ३०
स ताड्यमानोऽतिबलैर्दैत्यैः सर्वोद्यतायुधैः।
न चचाल ततो युद्धेऽकम्प्यमान इवाचलः॥ ३१
संसक्तश्च सुपर्णेन कालनेमी महासुरः।
सर्वप्राणेन महतीं गदामुद्यम्य बाहुभिः॥ ३२
घोरां ज्वलन्तीं मुमुचे संरब्धो गरुडोपरि।
कर्मणा तेन दैत्यस्य विष्णुर्विस्मयमाविशत्॥ ३३
यदा तेन सुपर्णस्य पातिता मूर्ध्नि सा गदा।
सुपर्णं व्यथितं दृष्ट्वा क्षतं च वपुरात्मनः॥ ३४
क्रोधसंरक्तनयनो वैकुण्ठश्चक्रमाददे।
व्यवर्धत स वेगेन सुपर्णेन समं विभुः॥ ३५
भुजाश्चास्य व्यवर्धन्त व्याप्नुवन्तो दिशो दश।
प्रदिशश्चैव खं गां वै पूरयामास केशवः॥ ३६

रणभूमिमें श्रीवत्सधारी भगवान्‌के इस प्रकार कहनेपर दानवराज कालनेमि ठहाका मारकर हँस पड़ा और फिर उसने क्रोधवश हाथोंमें हथियार धारण कर लिया। क्रोधके कारण उसके नेत्र दुगुने लाल हो गये थे। उसने रणभूमिमें सभी प्रकारके अस्त्रोंको धारण करनेवाली अपनी सैकड़ों भुजाओंको उठाकर भगवान् विष्णुके वक्षःस्थलपर प्रहार किया। इसी प्रकार मय, तारक आदि अन्यान्य दानव भी खड्ग आदि आयुध लेकर युद्धस्थलमें भगवान् विष्णुपर टूट पड़े। यद्यपि सभी प्रकारके अस्त्रोंसे युक्त अत्यन्त बली दैत्य उनपर प्रहार कर रहे थे, तथापि वे विचलित नहीं हुए, अपितु युद्धभूमिमें पर्वतकी तरह अटल बने रहे। तब महान् असुर कालनेमि गरुडके साथ उलझ गया। उसने अपनी विशाल गदाको हाथोंमें धारण कर ली और क्रोधमें भरकर पूरी शक्तिके साथ उस चमकती हुई भयंकर गदाको गरुडके ऊपर छोड़ दिया। इस प्रकार उसके द्वारा फेंकी गयी वह गदा जब गरुडके मस्तकपर जा गिरी, तब दैत्यके उस कर्मसे भगवान् विष्णु आश्चर्यचकित हो उठे। फिर गरुडको पीड़ित तथा अपने शरीरको क्षत-विक्षत देखकर उनके नेत्र क्रोधसे लाल हो गये। तब उन्होंने चक्र हाथमें उठाया। फिर तो वे सर्वव्यापी विष्णु गरुडके साथ वेगपूर्वक आगे बढ़े। उनकी भुजाएँ दसों दिशाओंमें व्याप्त होकर बढ़ने लगीं। इस प्रकार भगवान् केशवने प्रदिशाओं, आकाशमण्डल और भूतलको आच्छादित कर लिया॥ २८—३६॥

ववृधे च पुनर्लोकान् क्रान्तुकाम इवौजसा।
तर्जनायासुरेन्द्राणां वर्धमानं नभस्तले॥ ३७
ऋषयश्चैव गन्धर्वास्तुष्टुवुर्मधुसूदनम्।
सर्वान् किरीटेन लिहन् साभ्रमम्बरमम्बरैः॥ ३८
पद्भ्यामाक्रम्य वसुधां दिशः प्रच्छाद्य बाहुभिः।
स सूर्यकरतुल्याभं सहस्रारमरिक्षयम्॥ ३९

पुनः वे अपने तेजसे लोकोंका अतिक्रमण करते हुए-से बढ़ने लगे। जिस समय वे आकाशमण्डलमें असुरेन्द्रोंको भयभीत करनेके लिये बढ़ रहे थे, उस समय ऋषिगण और गन्धर्व भगवान् मधुसूदनकी स्तुति कर रहे थे। वे अपने किरीटसे ऊपरी सभी लोकोंको तथा वस्त्रोंसे मेघसहित आकाशको छूते हुए पैरोंसे पृथ्वीको आक्रान्त करके और भुजाओंसे दिशाओंको आच्छादित करके स्थित थे। उनके चक्रकी कान्ति सूर्यकी किरणोंकी-सी उद्दीप्त थी। उसमें हजारों अरे लगे थे। वह शत्रुओंका

दीप्ताग्निसदृशं घोरं दर्शनेन सुदर्शनम्।
सुवर्णरेणुपर्यन्तं वज्रनाभं भयावहम्॥ ४०

मेदोऽस्थिमज्जारुधिरैः सिक्तं दानवसम्भवैः।
अद्वितीयप्रहरणं क्षुरपर्यन्तमण्डलम्॥ ४१

स्रग्दाममालाविततं कामगं कामरूपिणम्।
स्वयं स्वयम्भुवा सृष्टं भयदं सर्वविद्विषाम्॥ ४२

महर्षिरोषैराविष्टं नित्यमाहवदर्पितम्।
क्षेपणाद् यस्य मुह्यन्ति लोकाः स्थाणुजङ्गमाः॥ ४३

क्रव्यादानि च भूतानि तृप्तिं यान्ति महामृधे।
तदप्रतिमकर्मोग्रं समानं सूर्यवर्चसा॥ ४४

विनाशक था। वह प्रज्वलित अग्निकी तरह भयंकर होनेपर भी देखनेमें परम सुन्दर था। सुवर्णकी रेणुकासे धूसरित, वज्रकी नाभिसे युक्त और अत्यन्त भयानक था। वह दानवोंके शरीरसे निकले हुए मेदा, अस्थि, मज्जा और रुधिरसे चुपड़ा हुआ था। वह अपने ढंगका अकेला ही अस्त्र था। उसके चारों ओर क्षुरे लगे हुए थे। वह माला और हारसे विभूषित था। वह अभीप्सित स्थानपर जानेवाला तथा स्वेच्छानुकूल रूप धारण करनेवाला था। स्वयं ब्रह्माने उसकी रचना की थी। वह सम्पूर्ण शत्रुओंके लिये भयदायक था तथा महर्षिके क्रोधसे परिपूर्ण और नित्य युद्धमें गर्वीला बना रहता था। उसका प्रयोग करनेसे स्थावर-जङ्गमसहित सभी प्राणी मोहित हो जाते हैं तथा महासमरमें मांसभोजी जीव तृप्तिको प्राप्त होते हैं। वह अनुपम कर्म करनेवाला, भयंकर और सूर्यके समान तेजस्वी था॥ ३७—४४॥

चक्रमुद्यम्य समरे क्रोधदीप्तो गदाधरः।
स मुष्णन् दानवं तेजः समरे स्वेन तेजसा॥ ४५

चिच्छेद बाहूंश्चक्रेण श्रीधरः कालनेमिनः।
तस्य वक्त्रशतं घोरं साग्निपूर्णाट्टहासि वै॥ ४६

तस्य दैत्यस्य चक्रेण प्रममाथ बलाद्धरिः।
स च्छिन्नबाहुर्विशिरा न प्राकम्पत दानवः॥ ४७

कबन्धोऽवस्थितः संख्ये विशाख इव पादपः।
संवितत्य महापक्षौ वायोः कृत्वा समं जवम्॥ ४८

उरसा पातयामास गरुडः कालनेमिनम्।
स तस्य देहो विमुखो विबाहुश्च परिभ्रमन्॥ ४९

निपपात दिवं त्यक्त्वा क्षोभयन् धरणीतलम्।
तस्मिन् निपतिते दैत्ये देवाः सर्षिगणास्तदा॥ ५०

साधुसाध्विति वैकुण्ठं समेताः प्रत्यपूजयन्।
अपरे ये तु दैत्याश्च युद्धे दृष्टपराक्रमाः॥ ५१

ते सर्वे बाहुभिर्व्याप्ता न शेकुश्चलितुं रणे।
कांश्चित् केशेषु जग्राह कांश्चित् कण्ठेषु पीडयन्॥ ५२

क्रोधसे उद्दीप्त हुए भगवान् गदाधरने समरभूमिमें उस चक्रको उठाकर अपने तेजसे दानवके तेजको नष्ट कर दिया और फिर उन श्रीधरने चक्रद्वारा कालनेमिकी भुजाओंको काट डाला। तत्पश्चात् श्रीहरिने उस दैत्यके सौ मुखोंको, जो भयंकर, अग्निके समान तेजस्वी और अट्टहास कर रहे थे, बलपूर्वक चक्रके प्रहारसे काट डाला। इस प्रकार भुजाओं और सिरोंके कट जानेपर भी वह दानव विचलित नहीं हुआ, अपितु युद्धभूमिमें शाखाओंसे हीन वृक्षकी तरह कबन्धरूपसे स्थित रहा। तब गरुडने अपने विशाल पंखोंको फैलाकर और वायुके समान वेग भरकर अपनी छातीके धक्केसे कालनेमिके कबन्धको धराशायी कर दिया। मुखों और भुजाओंसे हीन उसका वह शरीर चक्कर काटता हुआ स्वर्गलोकको छोड़कर भूतलको क्षुब्ध करता हुआ नीचे गिर पड़ा। उस दैत्यके गिर जानेपर ऋषियोंसहित देवगणोंने उस समय संगठित होकर भगवान् विष्णुको साधुवाद देते हुए उनकी पूजा की। दूसरे दैत्यगण, जो युद्धमें भगवान्‌के पराक्रमको देख चुके थे, वे सभी भगवान्‌की भुजाओंके वशीभूत हो रणभूमिमें चलने-फिरनेमें भी असमर्थ थे। भगवान्‌ने किन्हींको केश पकड़कर पटक दिया तो किन्हींको गला घोंटकर मार डाला।

चकर्ष कस्यचिद् वक्त्रं मध्ये गृह्णादथापरम्।
ते गदाचक्रनिर्दग्धा गतसत्त्वा गतासवः॥ ५३
गगनाद् भ्रष्टसर्वाङ्गा निपेतुर्धरणीतले।
तेषु दैत्येषु सर्वेषु हतेषु पुरुषोत्तमः॥ ५४
तस्थौ शक्रप्रियं कृत्वा कृतकर्मा गदाधरः।
तस्मिन् विमर्दे संग्रामे निवृत्ते तारकामये॥ ५५
तं देशमाजगामाशु ब्रह्मा लोकपितामहः।
सर्वैर्ब्रह्मर्षिभिः सार्धं गन्धर्वाप्सरसां गणैः॥ ५६
देवदेवो हरिं देवं पूजयन् वाक्यमब्रवीत्।
कृतं देव महत् कर्म सुराणां शल्यमुद्धृतम्।
वधेनानेन दैत्यानां वयं च परितोषिताः॥ ५७
योऽयं त्वया हतो विष्णो कालनेमी महासुरः।
त्वमेकोऽस्य मृधे हन्ता नान्यः कश्चन विद्यते॥ ५८
एष देवान् परिभवंल्लोकांश्च ससुरासुरान्।
ऋषीणां कदनं कृत्वा मामपि प्रति गर्जति॥ ५९
तदनेन तवाग्र्येण परितुष्टोऽस्मि कर्मणा।
यदयं कालकल्पस्तु कालनेमी निपातितः॥ ६०
तदागच्छस्व भद्रं ते गच्छामः दिवमुत्तमम्।
ब्रह्मर्षयस्त्वां तत्रस्थाः प्रतीक्षन्ते सदोगताः॥ ६१
किं चाहं तव दास्यामि वरं वरवतां वर।
सुरेष्वथ च दैत्येषु वराणां वरदो भवान्॥ ६२
निर्यातयैतत् त्रैलोक्यं स्फीतं निहतकण्टकम्।
अस्मिन्नेव मृधे विष्णो शक्राय सुमहात्मने॥ ६३
एवमुक्तो भगवता ब्रह्मणा हरिरव्ययः।
देवान् शक्रमुखान् सर्वानुवाच शुभया गिरा॥ ६४

किसीका मुख फाड़ दिया तो दूसरेकी कमर तोड़ दी। इस प्रकार वे सभी गदाकी चोट और चक्रसे जल चुके थे, उनके पराक्रम नष्ट हो गये थे और शरीरके सभी अङ्ग चूर-चूर हो गये थे। वे प्राणरहित होकर आकाशसे भूतलपर गिर पड़े। इस प्रकार उन सभी दैत्योंके मारे जानेपर पुरुषोत्तम भगवान् गदाधर इन्द्रका प्रिय कार्य करके कृतार्थ हो शान्तिपूर्वक स्थित हुए॥ ४५—५४ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर उस भयानक तारकामय संग्रामके निवृत्त होनेपर लोकपितामह ब्रह्मा तुरंत ही उस स्थानपर आये। उस समय उनके साथ सभी ब्रह्मर्षि थे तथा गन्धर्वों एवं अप्सराओंका समुदाय भी था। तब देवाधिदेव ब्रह्माने भगवान् श्रीहरिका आदर करते हुए इस प्रकार कहा—'देव! आपने बहुत बड़ा काम किया है। आपने तो देवताओंका काँटा ही उखाड़ दिया। दैत्योंके इस संहारसे हमलोग परम संतुष्ट हैं। विष्णो! आपने जो इस महान् असुर कालनेमिका वध किया है, यह आपके ही योग्य है; क्योंकि एकमात्र आप ही रणभूमिमें इसके वधकर्ता हैं, दूसरा कोई नहीं है। यह दानव देवताओं और असुरोंसहित समस्त लोकों और देवताओंको तिरस्कृत करते हुए ऋषियोंका संहार कर मेरे पास भी आकर गर्जता था। इसलिये जो यह कालके समान भयंकर कालनेमि मारा गया, आपके इस श्रेष्ठ कर्मसे मैं भलीभाँति संतुष्ट हूँ। अतः आपका कल्याण हो, आइये, अब हमलोग उत्तम स्वर्गलोकमें चलें। वहाँ सभामें बैठे हुए ब्रह्मर्षिगण आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। वरदानियोंमें श्रेष्ठ भगवन्! आप तो स्वयं ही देवताओं और दैत्योंके लिये श्रेष्ठ वरदायक हैं। ऐसी दशामें मैं आपको कौन-सा वर प्रदान करूँ? विष्णो! त्रिलोकीका यह समृद्धिशाली राज्य अब कण्टकरहित हो गया है, इसे आप इसी युद्धस्थलमें महात्मा इन्द्रको समर्पित कर दीजिये।' भगवान् ब्रह्माद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर अविनाशी श्रीहरि इन्द्र आदि सभी देवताओंसे मधुर वाणीमें बोले॥ ५५—६४॥

विष्णुरुवाच

शृण्वन्तु त्रिदशाः सर्वे यावन्तोऽत्र समागताः।
श्रवणावहितैः श्रोत्रैः पुरस्कृत्य पुरंदरम्॥ ६५
अस्माभिः समरे सर्वे कालनेमिमुखा हताः।
दानवा विक्रमोपेताः शक्रादपि महत्तराः॥ ६६
अस्मिन् महति संग्रामे दैतेयौ द्वौ विनिःसृतौ।
विरोचनश्च दैत्येन्द्रः स्वर्भानुश्च महाग्रहः॥ ६७

भगवान् विष्णुने कहा— यहाँ आये हुए जितने देवता हैं, वे सभी इन्द्रको आगे करके सावधानीपूर्वक कान लगाकर मेरी बात सुनें। इस समरमें हमलोगोंने कालनेमि आदि सभी महान् पराक्रमी दानवोंको, जो इन्द्रसे भी बढ़कर बलशाली थे, मार डाला है; किंतु इस महान् संग्राममें दैत्येन्द्र विरोचन और महान् ग्रह राहु—ये दोनों दैत्य भाग निकले हैं।

स्वां दिशं भजतां शक्रो दिशं वरुण एव च।
याम्यां यमः पालयतामुत्तरां च धनाधिपः॥ ६८

ऋक्षैः सह यथायोगं गच्छतां चैव चन्द्रमाः।
अब्दमृतुमुखे सूर्यो भजतामयनैः सह॥ ६९

आज्यभागाः प्रवर्तन्तां सदस्यैरभिपूजिताः।
हूयन्तामग्नयो विप्रैर्वेददृष्टेन कर्मणा॥ ७०

देवाश्चाप्यग्निहोमेन स्वाध्यायेन महर्षयः।
श्राद्धेन पितरश्चैव तृप्तिं यान्तु यथासुखम्॥ ७१

वायुश्चरतु मार्गस्थस्त्रिधा दीप्यतु पावकः।
त्रींस्तु वर्णांश्च लोकांस्त्रींस्तर्पयंश्चात्मजैर्गुणैः॥ ७२

अब इन्द्र अपनी पूर्व दिशाकी रक्षा करें तथा वरुण पश्चिम दिशाकी, यम दक्षिण दिशाका और कुबेर उत्तर दिशाका पालन करें। चन्द्रमा नक्षत्रोंके साथ पूर्ववत् अपने स्थानको चले जायँ। सूर्य अयनोंके साथ ऋतुकालानुसार वर्षका उपभोग करें। यज्ञोंमें सदस्योंद्वारा अभिपूजित हो देवगण आज्यभाग ग्रहण करें। ब्राह्मणलोग वेदविहित कर्मानुसार अग्निमें आहुतियाँ डालें। देवगण अग्निहोत्रसे, महर्षिगण स्वाध्यायसे और पितृगण श्राद्धसे सुखपूर्वक तृप्तिलाभ करें। वायु अपने मार्गसे प्रवाहित हों। अग्नि अपने गुणोंसे तीनों वर्णों और तीनों लोकोंको तृप्त करते हुए तीन भागोंमें विभक्त होकर प्रकाशित हों॥ ६५—७२॥

क्रतवः सम्प्रवर्तन्तां दीक्षणीयैर्द्विजातिभिः।
दक्षिणाश्चोपपाद्यन्तां याज्ञिकेभ्यः पृथक् पृथक्॥ ७३

गां तु सूर्यो रसान् सोमो वायुः प्राणांश्च प्राणिषु।
तर्पयन्तः प्रवर्तन्तां सर्व एव स्वकर्मभिः॥ ७४

यथावदानुपूर्व्येण महेन्द्रमलयोद्भवाः।
त्रैलोक्यमातरः सर्वाः समुद्रं यान्तु सिन्धवः॥ ७५

दैत्येभ्यस्त्यज्यतां भीश्च शान्तिं व्रजत देवताः।
स्वस्ति वोऽस्तु गमिष्यामि ब्रह्मलोकं सनातनम्॥ ७६

स्वगृहे स्वर्गलोके वा संग्रामे वा विशेषतः।
विश्रम्भो वो न मन्तव्यो नित्यं क्षुद्रा हि दानवाः॥ ७७

छिद्रेषु प्रहरन्त्येते न तेषां संस्थितिर्ध्रुवा।
सौम्यानामृजुभावानां भवतामार्जवं धनम्॥ ७८

एवमुक्त्वा सुरगणान् विष्णुः सत्यपराक्रमः।
जगाम ब्रह्मणा सार्धं स्वलोकं तु महायशाः॥ ७९

एतदाश्चर्यमभवत् संग्रामे तारकामये।
दानवानां च विष्णोश्च यन्मां त्वं परिपृष्टवान्॥ ८०

दीक्षित ब्राह्मणोंद्वारा यज्ञानुष्ठान प्रारम्भ हों। याज्ञिक ब्राह्मणोंको पृथक्-पृथक् दक्षिणाएँ दी जायँ। सूर्य पृथ्वीको, चन्द्रमा रसोंको और वायु प्राणियोंमें स्थित प्राणोंको तृप्त करते हुए सभी अपने-अपने कर्ममें प्रवृत्त हों। महेन्द्र और मलय पर्वतसे निकलनेवाली त्रिलोकीकी मातास्वरूप सभी नदियाँ आनुपूर्वी पूर्ववत् समुद्रमें प्रविष्ट हों। देवगण! आपलोग दैत्योंसे प्राप्त होनेवाले भयको छोड़ दें और शान्ति धारण करें। आपलोगोंका कल्याण हो। अब मैं सनातन ब्रह्मलोकको जा रहा हूँ। आपलोगोंको अपने घरमें अथवा स्वर्गलोकमें अथवा विशेषकर संग्राममें दैत्योंका विश्वास नहीं करना चाहिये; क्योंकि दानव सदा क्षुद्र प्रकृतिवाले होते हैं। वे छिद्र पाकर तुरंत प्रहार कर बैठते हैं। उनकी स्थिति कभी निश्चित नहीं रहती। इधर सौम्य एवं कोमल स्वभाववाले आपलोगोंका आर्जव ही धन है। महायशस्वी एवं सत्यपराक्रमी भगवान् विष्णु देवगणोंसे ऐसा कहकर ब्रह्माके साथ अपने लोकको चले गये। राजन्! दानवों और भगवान् विष्णुके मध्य घटित हुए तारकामय संग्राममें यही आश्चर्य हुआ था, जिसके विषयमें तुमने मुझसे प्रश्न किया था॥ ७३—८०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पद्मोद्भवप्रादुर्भावसंग्रहो नामाष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पद्मोद्भवप्रादुर्भावसंग्रह नामक एक सौ अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७८॥

एक सौ उनासीवाँ अध्याय

शिवजीके साथ अन्धकासुरका युद्ध, शिवजीद्वारा मातृकाओंकी सृष्टि, शिवजीके हाथों अन्धककी मृत्यु और उसे गणेशत्वकी प्राप्ति, मातृकाओंकी विध्वंसलीला तथा विष्णुनिर्मित देवियोंद्वारा उनका अवरोध

ऋषय ऊचुः

श्रुतः पद्मोद्भवस्तात विस्तरेण त्वयेरितः।
समासाद् भवमाहात्म्यं भैरवस्याभिधीयताम्॥ १

ऋषियोंने पूछा—तात! आपके द्वारा विस्तारपूर्वक कहे गये पद्मोद्भवके प्रसङ्गको हमलोग सुन चुके, अब आप भैरवस्वरूप शंकरजीके माहात्म्यका संक्षेपसे वर्णन कीजिये॥ १॥

सूत उवाच

तस्यापि देवदेवस्य शृणुध्वं कर्म चोत्तमम्।
आसीद् दैत्योऽन्धको नाम भिन्नाञ्जनचयोपमः॥ २
तपसा महता युक्तो ह्यवध्यस्त्रिदिवौकसाम्।
स कदाचिन्महादेवं पार्वत्या सहितं प्रभुम्॥ ३
क्रीडमानं तदा दृष्ट्वा हर्तुं देवीं प्रचक्रमे।
तस्य युद्धं तदा घोरमभवत् सह शम्भुना॥ ४
आवन्त्ये विषये घोरे महाकालवनं प्रति।
तस्मिन् युद्धे तदा रुद्रश्चान्धकेनातिपीडितः॥ ५
ससृजे बाणमत्युग्रं नाम्ना पाशुपतं हि तत्।
रुद्रबाणविनिर्भेदाद् रुधिरादन्धकस्य तु॥ ६
अन्धकाश्च समुत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः।
तेषां विदार्यमाणानां रुधिरादपरे पुनः॥ ७
बभूवुरन्धका घोरा यैर्व्याप्तमखिलं जगत्।
एवं मायाविनं दृष्ट्वा तं च देवस्तदान्धकम्॥ ८
पानार्थमन्धकास्रस्य सोऽसृजन्मातरस्तदा।
माहेश्वरी तथा ब्राह्मी कौमारी मालिनी तथा॥ ९
सौपर्णी ह्यथ वायव्या शाक्री वै नैर्ऋता तथा।
सौरी सौम्या शिवा दूती चामुण्डा चाथ वारुणी॥ १०
वाराही नारसिंही च वैष्णवी च चलच्छिखा।
शतानन्दा भगानन्दा पिच्छिला भगमालिनी॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अच्छा, आपलोग देवाधिदेव शंकरजीके भी उत्तम कर्मको सुनिये। पूर्वकालमें अञ्जनसमूहके सदृश वर्णवाला अन्धक नामका एक दैत्य हुआ था। वह महान् तपोबलसे सम्पन्न था, इसी कारण देवताओंद्वारा अवध्य था। किसी समय उसकी दृष्टि पार्वतीके साथ क्रीडा करते हुए भगवान् शंकरपर पड़ी, तब वह पार्वती देवीका अपहरण करनेके लिये प्रयास करने लगा। उस समय अवन्ती-प्रदेशमें स्थित भयंकर महाकालवनमें उसका शंकरजीके साथ भीषण संग्राम हुआ। उस युद्धमें जब भगवान् रुद्र अन्धकद्वारा अत्यन्त पीडित कर दिये गये, तब उन्होंने अतिशय भयंकर पाशुपत नामक बाणको प्रकट किया। शंकरजीके उस बाणके आघातसे निकलते हुए अन्धकके रक्तसे दूसरे सैकड़ों-हजारों अन्धक उत्पन्न हो गये। पुनः उनके घायल शरीरोंसे बहते हुए रुधिरसे दूसरे भयंकर अन्धक प्रकट हुए, जिनके द्वारा सारा जगत् व्याप्त हो गया। तब उस अन्धकको इस प्रकारका मायावी जानकर भगवान् शंकरने उसके रक्तको पान करनेके लिये मातृकाओंकी सृष्टि की॥ २—८ $\frac{1}{2}$॥

उन (मातृकाओं)-के नाम हैं—माहेश्वरी, ब्राह्मी, कौमारी, मालिनी, सौपर्णी, वायव्या, शाक्री, नैर्ऋती, सौरी, सौम्या, शिवा, दूती, चामुण्डा, वारुणी, वाराही, नारसिंही, वैष्णवी, चलच्छिखा, शतानन्दा, भगानन्दा, पिच्छिला, भगमालिनी,

बला चातिबला रक्ता सुरभी मुखमण्डिका।
मातृनन्दा सुनन्दा च बिडाली शकुनी तथा॥ १२
रेवती च महारक्ता तथैव पिलपिच्छिका।
जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता॥ १३
काली चैव महाकाली दूती चैव तथैव च।
सुभगा दुर्भगा चैव कराली नन्दिनी तथा॥ १४
अदितिश्च दितिश्चैव मारी वै मृत्युरेव च।
कर्णमोटी तथा ग्राम्या उलूकी च घटोदरी॥ १५
कपाली वज्रहस्ता च पिशाची राक्षसी तथा।
भुशुण्डी शाङ्करी चण्डा लाङ्गली कुटभी तथा॥ १६
खेटा सुलोचना धूम्रा एकवीरा करालिनी।
विशालदंष्ट्रिणी श्यामा त्रिजटी कुक्कुटी तथा॥ १७
वैनायकी च वैताली उन्मत्तोदुम्बरी तथा।
सिद्धिश्च लेलिहाना च केकरी गर्दभी तथा॥ १८
भ्रुकुटी बहुपुत्री च प्रेतयाना विडम्बिनी।
क्रौञ्चा शैलमुखी चैव विनता सुरसा दनुः॥ १९
उषा रम्भा मेनका च ललिता चित्ररूपिणी।
स्वाहा स्वधा वषट्कारा धृतिर्ज्येष्ठा कपर्दिनी॥ २०
माया विचित्ररूपा च कामरूपा च सङ्गमा।
मुखेविला मङ्गला च महानासा महामुखी॥ २१
कुमारी रोचना भीमा सदाहा सा मदोद्धता।
अलम्बाक्षी कालपर्णी कुम्भकर्णी महासुरी॥ २२
केशिनी शंखिनी लम्बा पिङ्गला लोहितामुखी।
घण्टारवाथ दंष्ट्राला रोचना काकजङ्घिका॥ २३
गोकर्णिकाजमुखिका महाग्रीवा महामुखी।
उल्कामुखी धूमशिखा कम्पिनी परिकम्पिनी॥ २४
मोहना कम्पना क्ष्वेला निर्भया बाहुशालिनी।
सर्पकर्णी तथैकाक्षी विशोका नन्दिनी तथा॥ २५
ज्योत्स्नामुखी च रभसा निकुम्भा रक्तकम्पना।
अविकारा महाचित्रा चन्द्रसेना मनोरमा॥ २६
अदर्शना हरत्पापा मातङ्गी लम्बमेखला।
अबाला वञ्चना काली प्रमोदा लाङ्गलावती॥ २७
चित्ता चित्तजला कोणा शान्तिकाघविनाशिनी।
लम्बस्तनी लम्बसटा विसटा वासचूर्णिनी॥ २८

बला, अतिबला, रक्ता, सुरभी, मुखमण्डिका, मातृनन्दा, सुनन्दा, बिडाली, शकुनी, रेवती, महारक्ता, पिलपिच्छिका, जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, काली, महाकाली, दूती, सुभगा, दुर्भगा, कराली, नन्दिनी, अदिति, दिति, मारी, मृत्यु, कर्णमोटी, ग्राम्या, उलूकी, घटोदरी, कपाली, वज्रहस्ता, पिशाची, राक्षसी, भुशुण्डी, शांकरी, चण्डा, लाङ्गली, कुटभी, खेटा, सुलोचना, धूम्रा, एकवीरा, करालिनी, विशालदंष्ट्रिणी, श्यामा, त्रिजटी, कुक्कुटी, वैनायकी, वैताली, उन्मत्तोदुम्बरी, सिद्धि, लेलिहाना, केकरी, गर्दभी, भ्रुकुटी, बहुपुत्री, प्रेतयाना, बिडम्बिनी, क्रौञ्चा, शैलमुखी, विनता, सुरसा, दनु, उषा, रम्भा, मेनका, सलिला, चित्ररूपिणी, स्वाहा, स्वधा, वषट्कारा, धृति, ज्येष्ठा, कपर्दिनी, माया, विचित्ररूपा, कामरूपा, संगमा, मुखेविला, मङ्गला, महानासा, महामुखी, कुमारी, रोचना, भीमा, सदाहा, मदोद्धता, अलम्बाक्षी, कालपर्णी, कुम्भकर्णी, महासुरी, केशिनी, शंखिनी, लम्बा, पिंगला, लोहितामुखी, घण्टारवा, दंष्ट्राला, रोचना, काकजंघिका, गोकर्णिका, अजमुखिका, महाग्रीवा, महामुखी, उल्कामुखी, धूमशिखा, कम्पिनी, परिकम्पिनी, मोहना, कम्पना, क्ष्वेला, निर्भया, बाहुशालिनी, सर्पकर्णी, एकाक्षी, विशोका, नन्दिनी, ज्योत्स्नामुखी, रभसा, निकुम्भा, रक्तकम्पना, अविकारा, महाचित्रा, चन्द्रसेना, मनोरमा, अदर्शना, हरत्पापा, मातंगी, लम्बमेखला, अबाला, वञ्चना, काली, प्रमोदा, लाङ्गलावती, चित्ता, चित्तजला, कोणा, शान्तिका, अघविनाशिनी, लम्बस्तनी, लम्बसटा, विसटा, वासचूर्णिनी,

स्खलन्ती दीर्घकेशी च सुचिरा सुन्दरी शुभा।
अयोमुखी कटुमुखी क्रोधनी च तथाशनी॥ २९
कुटुम्बिका मुक्तिका च चन्द्रिका बलमोहिनी।
सामान्या हासिनी लम्बा कोविदारी समासवी॥ ३०
शङ्कुकर्णी महानादा महादेवी महोदरी।
हुंकारी रुद्रसुसटा रुद्रेशी भूतडामरी॥ ३१
पिण्डजिह्वा चलज्ज्वाला शिवा ज्वालामुखी तथा।
एताश्चान्याश्च देवेशः सोऽसृजन्मातरस्तदा॥ ३२

स्खलन्ती, दीर्घकेशी, सुचिरा, सुन्दरी, शुभा, अयोमुखी, कटुमुखी, क्रोधनी, अशनी, कुटुम्बिका, मुक्तिका, चन्द्रिका, बलमोहिनी, सामान्या, हासिनी, लम्बा, कोविदारी, समासवी, शंकुकर्णी, महानादा, महादेवी, महोदरी, हुंकारी, रुद्रसुसटा, रुद्रेशी, भूतडामरी, पिण्डजिह्वा, चलज्ज्वाला, शिवा तथा ज्वालामुखी। इनको तथा इनके अतिरिक्त अन्यान्य मातृकाओंकी* देवेश्वर शंकरने उस समय सृष्टि की॥ १—३२॥

अन्धकानां महाघोराः पपुस्तद्रुधिरं तदा।
ततोऽन्धकासृजः सर्वाः परां तृप्तिमुपागताः॥ ३३
तासु तृप्तासु सम्भूता भूय एवान्धकप्रजाः।
अर्दितस्तैर्महादेवः शूलमुद्गरपाणिभिः॥ ३४
ततः स शङ्करो देवस्त्वन्धकैर्व्याकुलीकृतः।
जगाम शरणं देवं वासुदेवमजं विभुम्॥ ३५
ततस्तु भगवान् विष्णुः सृष्टवान् शुष्करेवतीम्।
या पपौ सकलं तेषामन्धकानामसृक् क्षणात्॥ ३६
यथा यथा च रुधिरं पिबन्त्यन्धकसम्भवम्।
तथा तथाधिकं देवी संशुष्यति जनाधिप॥ ३७
पीयमाने तया तेषामन्धकानां तथासृजि।
अन्धकास्तु क्षयं नीताः सर्वे ते त्रिपुरारिणा॥ ३८
शूलान्धकं तु विक्रम्य तदा शर्वस्त्रिलोकधृक्।
चकार वेगाच्छूलाग्रे स च तुष्टाव शङ्करम्॥ ३९
अन्धकस्तु महावीर्यस्तस्य तुष्टोऽभवद् भवः।
सामीप्यं प्रददौ नित्यं गणेशत्वं तथैव च॥ ४०
ततो मातृगणाः सर्वे शङ्करं वाक्यमब्रुवन्।
भगवन् भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषान्।
त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि॥ ४१

तदनन्तर उत्पन्न हुई इन महाभयावनी मातृकाओंने अन्धकोंके रक्तको चूस लिया। इस प्रकार अन्धकोंके रक्तका पान करनेसे इन सबको परम तृप्तिका अनुभव हुआ। उनके तृप्त हो जानेके पश्चात् पुनः अन्धककी संतानें उत्पन्न हुईं। उन्होंने हाथमें शूल और मुद्गर धारण करके पुनः महादेवजीको पीडित कर दिया। इस प्रकार जब अन्धकोंने भगवान् शंकरको व्याकुल कर दिया, तब वे सर्वव्यापी एवं अजन्मा भगवान् वासुदेवकी शरणमें गये। तत्पश्चात् भगवान् विष्णुने शुष्करेवती नामवाली एक देवीको प्रकट किया, जिसने क्षणमात्रमें ही उन अन्धकोंके सम्पूर्ण रक्तको चूस लिया। जनेश्वर! वह देवी ज्यों-ज्यों अन्धकोंके शरीरसे निकले हुए रुधिरको पीती जाती थी, त्यों-त्यों वह अधिक क्षुधित एवं पिपासित होती जाती थी। इस प्रकार जब उस देवीद्वारा उन अन्धकोंका रक्त पान कर लिया गया, तब त्रिपुरारि शंकरने उन सभी अन्धकोंको कालके हवाले कर दिया। फिर त्रिलोकीको धारण करनेवाले भगवान् शंकरने जब वेगपूर्वक पराक्रम प्रकट करके प्रधान अन्धकको अपने त्रिशूलके अग्रभागका लक्ष्य बनाया, तब वह महापराक्रमी अन्धक शंकरजीकी स्तुति करने लगा। उसके स्तवन करनेसे भगवान् शंकर प्रसन्न हो गये, तब उन्होंने उसे अपना नित्य सामीप्य तथा गणेशत्वका पद प्रदान कर दिया। यह देखकर सभी मातृकाएँ शंकरजीसे इस प्रकार बोलीं—'भगवन्! हमलोग आपकी कृपासे देवता, असुर और मनुष्योंसहित सम्पूर्ण जगत्‌को खा जाना चाहती हैं, इसके लिये आप हमलोगोंको आज्ञा देनेकी कृपा करें'॥ ३३—४१॥

* अन्धकका वृत्तान्त शिव, सौरादि प्रायः दस पुराणोंमें भी है। पर इतनी संख्यामें मातृकाओंका वर्णन अन्यत्र कहीं नहीं आया है।

शङ्कर उवाच

भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः।
तस्माद् घोरादभिप्रायान्मनः शीघ्रं निवर्त्यताम्॥ ४२

इत्येवं शंकरेणोक्तमनादृत्य वचस्तदा।
भक्षयामासुरत्युग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४३

त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै।
नृसिंहमूर्तिं देवेशं प्रदध्यौ भगवाञ्शिवः॥ ४४

अनादिनिधनं देवं सर्वलोकभवोद्भवम्।
दैत्येन्द्रवक्षोरुधिरचर्चिताग्रमहानखम् ॥ ४५

विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केसरकण्ठकम्।
कल्पान्तमारुतक्षुब्धं सप्तार्णवसमस्वनम्॥ ४६

वज्रतीक्ष्णनखं घोरमाकर्णव्यादिताननम्।
मेरुशैलप्रतीकाशमुदयार्कसमेक्षणम् ॥ ४७

हिमाद्रिशिखराकारं चारुदंष्ट्रोज्ज्वलाननम्।
नखनिःसृतरोषाग्निज्वालाकेसरमालिनम् ॥ ४८

बद्धाङ्गदं सुमुकुटं हारकेयूरभूषणम्।
श्रोणीसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम्॥ ४९

नीलोत्पलदलश्यामं वासोयुगविभूषणम्।
तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डागारसङ्कुलम् ॥ ५०

पवनभ्राम्यमाणानां हुतहव्यवहार्चिषाम्।
आवर्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहलोमजैः॥ ५१

सर्वपुष्पविचित्रां च धारयन्तं महास्त्रजम्।
स ध्यातमात्रो भगवान् प्रददौ तस्य दर्शनम्॥ ५२

यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रेण धीमता।
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्ष्येण दैवतैः॥ ५३
प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः॥ ५४

शंकरजीने कहा—देवियो! आपलोगोंको तो निःसंदेह सभी प्रजाओंकी रक्षा करनी चाहिये, अतः आपलोग शीघ्र ही उस घोर अभिप्रायसे अपने मनको लौटा लें। इस प्रकार शंकरजीद्वारा कहे गये वचनकी अवहेलना करके वे अत्यन्त निष्ठुर मातृकाएँ चराचरसहित त्रिलोकीको भक्षण करने लगीं। तब मातृकाओंद्वारा त्रिलोकीको भक्षित होते हुए देखकर भगवान् शिवने उन नृसिंहमूर्ति भगवान् विष्णुका ध्यान किया, जो आदि-अन्तसे रहित और सभी लोकोंके उत्पादक हैं, जिनके विशाल नखोंका अग्रभाग दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलके रुधिरसे चर्चित है, जिनकी जीभ बिजलीकी तरह लपलपाती रहती है और दाढ़ें विशाल हैं, जिनके कंधेके बाल हिलते रहते हैं, जो प्रलयकालीन वायुकी तरह क्षुब्ध और सप्तार्णवकी भाँति गर्जना करनेवाले हैं, जिनके नख वज्र-सदृश तीक्ष्ण हैं, जिनकी आकृति भयंकर है, जिनका मुख कानतक फैला हुआ है, जो सुमेरु पर्वतके समान चमकते रहते हैं, जिनके नेत्र उदयकालीन सूर्य-सरीखे उद्दीप्त हैं, जिनकी आकृति हिमालयके शिखर-जैसी है, जिनका मुख सुन्दर उज्ज्वल दाढ़ोंसे विभूषित है, जो नखोंसे निकलती हुई क्रोधाग्निकी ज्वालारूपी केसरसे युक्त रहते हैं, जिनकी भुजाओंपर अङ्गद बँधा रहता है, जो सुन्दर मुकुट, हार और केयूरसे विभूषित रहते हैं, विशाल स्वर्णमयी करधनीसे जिनकी शोभा होती है, जिनकी कान्ति नीले कमलदलके समान श्याम है, जो दो वस्त्र धारण किये रहते हैं और अपने तेजसे सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमण्डलको आक्रान्त किये रहते हैं, वायुद्वारा घुमायी जाती हुई हवनयुक्त अग्निकी लपटोंकी भँवर-सदृश आकारवाले शरीर-रोमसे संयुक्त हैं तथा जो सभी प्रकारके पुष्पोंसे बनी हुई हवनयुक्त विचित्र एवं विशाल मालाको धारण करते हैं। ध्यान करते ही भगवान् विष्णु शिवजीके नेत्रोंके समक्ष प्रकट हो गये। बुद्धिमान् शंकरने जिस प्रकारके रूपका ध्यान किया था, वे उसी रूपसे प्रकट हुए। उनका वह रूप देवताओंद्वारा भी दुर्निरीक्ष्य था। तब शंकरजी उन देवेश्वरको प्रणाम कर उनकी स्तुति करने लगे॥ ४२—५४॥

शङ्कर उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर।
दैत्यनाथासृजापूर्णनखशक्तिविराजित ॥ ५५

शंकरजी बोले— जगन्नाथ! आप नरसिंहका शरीर धारण करनेवाले हैं और आपकी नखशक्ति दैत्यराज हिरण्यकशिपुके रक्तसे रंजित होकर सुशोभित होती है, आपको नमस्कार है।

ततः सकलसंलग्न हेमपिङ्गलविग्रह।
नतोऽस्मि पद्मनाभ त्वां सुरशक्रजगद्गुरो॥ ५६

कल्पान्ताम्भोदनिर्घोष सूर्यकोटिसमप्रभ।
सहस्रयमसंक्रोध सहस्रेन्द्रपराक्रम॥ ५७

सहस्रधनदस्फीत सहस्रवरुणात्मक।
सहस्रकालरचित सहस्रनियतेन्द्रिय॥ ५८

सहस्रभूमहाधैर्य सहस्रानन्तमूर्तिमन्।
सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रग्रहविक्रम॥ ५९

सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत।

सहस्रबाहुवेगोग्र सहस्रास्यनिरीक्षण।
सहस्रयन्त्रमथन सहस्रवधमोचन॥ ६०

अन्धकस्य विनाशाय याः सृष्टा मातरो मया।
अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्यद्य ताः प्रजाः॥ ६१

कृत्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्तुमपराजित।
स्वयं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिकारये॥ ६२

एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्धरः।
ससर्ज देवो जिह्वायास्तदा वागीश्वरीं हरिः॥ ६३

हृदयाच्च तथा माया गुह्याच्च भवमालिनी।
अस्थिभ्यश्च तथा काली सृष्टा पूर्वं महात्मना॥ ६४

यया तद्रुधिरं पीतमन्धकानां महात्मनाम्।
या चास्मिन् कथिता लोके नामतः शुष्करेवती॥ ६५

द्वात्रिंशन्मातरः सृष्टा गात्रेभ्यश्चक्रिणा ततः।
तासां नामानि वक्ष्यामि तानि मे गदतः शृणु॥ ६६

सर्वास्तास्तु महाभागा घण्टाकर्णी तथैव च।
त्रैलोक्यमोहिनी पुण्या सर्वसत्त्ववशङ्करी॥ ६७

तथा च चक्रहृदया पञ्चमी व्योमचारिणी।
शङ्खिनी लेखिनी चैव कालसंकर्षणी तथा॥ ६८

इत्येताः पृष्ठगा राजन् वागीशानुचराः स्मृताः।
संकर्षणी तथाश्वत्था बीजभावापराजिता॥ ६९

कल्याणी मधुदंष्ट्री च कमलोत्पलहस्तिका।
इति देव्यष्टकं राजन् मायानुचरमुच्यते॥ ७०

पद्मनाभ! आप सर्वव्यापी हैं, आपका शरीर स्वर्णके समान पीला है और आप देवता, इन्द्र तथा जगत्‌के गुरु हैं, आपको प्रणाम है। आपका सिंहनाद प्रलयकालीन मेघोंके समान है, आपकी कान्ति करोड़ों सूर्योंके सदृश है, आपका क्रोध हजारों यमराजके तथा पराक्रम सहस्रों इन्द्रके समान है, आप हजारों कुबेरोंसे भी बढ़कर समृद्ध, हजारों वरुणोंके समान, हजारों कालोंद्वारा रचित और हजारों इन्द्रियनिग्रहियोंसे बढ़कर हैं, आपका धैर्य सहस्रों पृथ्वियोंसे भी उत्तम है, आप सहस्रों अनन्तोंकी मूर्ति धारण करनेवाले, सहस्रों चन्द्रमा-सरीखे सौन्दर्यशाली और सहस्रों ग्रहों-सदृश पराक्रमी हैं, आपका तेज हजारों रुद्रोंके समान है, हजारों ब्रह्मा आपकी स्तुति करते हैं, आप हजारों बाहु, मुख और नेत्रवाले हैं, आपका वेग अत्यन्त उग्र है, आप सहस्रों यन्त्रोंको एक साथ तोड़ डालनेवाले तथा सहस्रोंका वध और सहस्रोंको बन्धनमुक्त करनेवाले हैं। भगवन्! अन्धकका विनाश करनेके लिये मैंने जिन मातृकाओंकी सृष्टि की थी, वे सभी आज मेरी आज्ञाका उल्लङ्घन कर प्रजाओंको खा जानेके लिये उतारू हैं। अपराजित! उन्हें उत्पन्न कर मैं पुनः उन्हींका संहार नहीं कर सकता। स्वयं उत्पन्न करके भला मैं उनका विनाश कैसे करूँ॥ ५५—६२॥

रुद्रद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर नरसिंह-विग्रहधारी भगवान् श्रीहरिने अपनी जीभसे वागीश्वरीको, हृदयसे मायाको, गुह्यप्रदेशसे भवमालिनीको और हड्डियोंसे कालीको प्रकट किया। उन महात्माने इस कालीकी सृष्टि पहले भी की थी, जिसने महान् आत्मबलसे सम्पन्न अन्धकोंके रुधिरका पान किया था और जो इस लोकमें शुष्करेवती नामसे प्रसिद्ध है। इसी प्रकार सुदर्शन चक्रधारी भगवान्‌ने अपने अङ्गोंसे बत्तीस अन्य मातृकाओंकी सृष्टि की, वे सभी महान् भाग्यशालिनी थीं। मैं उनके नामोंका वर्णन कर रहा हूँ, तुम उन्हें मुझसे श्रवण करो। उनके नाम हैं—घण्टाकर्णी, त्रैलोक्यमोहिनी, पुण्यमयी सर्वसत्त्ववशंकरी, चक्रहृदया, पाँचवीं व्योमचारिणी, शङ्खिनी, लेखिनी और काल-संकर्षणी। राजन्! ये वागीश्वरीके पीछे चलनेवाली उनकी अनुचरी कही गयी हैं। राजन्! संकर्षणी, अश्वत्था, बीजभावा, अपराजिता, कल्याणी, मधुदंष्ट्री, कमला और उत्पलहस्तिका—ये आठों देवियाँ मायाकी अनुचरी कहलाती हैं।

अजिता सूक्ष्महृदया वृद्धा वेशाश्मदर्शना।
नृसिंहभैरवा बिल्वा गरुत्मद्धृदया जया॥ ७१

भवमालिन्यनुचरा इत्यष्टौ नृप मातरः।
आकर्णनी सम्भटा च तथैवोत्तरमालिका॥ ७२

ज्वालामुखी भीषणिका कामधेनुश्च बालिका।
तथा पद्मकरा राजन् रेवत्यनुचराः स्मृताः॥ ७३

अष्टौ महाबलाः सर्वा देवगात्रसमुद्भवाः।
त्रैलोक्यसृष्टिसंहारसमर्थाः सर्वदेवताः॥ ७४

ताः सृष्टमात्रा देवेन क्रुद्धा मातृगणस्य तु।
प्रधाविता महाराज क्रोधविस्फारितेक्षणाः॥ ७५

अविषह्यतमं तासां दृष्टितेजः सुदारुणम्।
तमेव शरणं प्राप्ता नृसिंहो वाक्यमब्रवीत्॥ ७६

यथा मनुष्याः पशवः पालयन्ति चिरात् सुतान्।
जयन्ति ते तथैवाशु यथा वै देवतागणाः॥ ७७

भवत्यस्तु तथा लोकान् पालयन्तु मयेरिताः।
मनुजैश्च तथा देवैर्यजध्वं त्रिपुरान्तकम्॥ ७८

न च बाधा प्रकर्तव्या ये भक्तास्त्रिपुरान्तके।
ये च मां संस्मरन्तीह ते च रक्ष्याः सदा नराः॥ ७९

बलिकर्म करिष्यन्ति युष्माकं ये सदा नराः।
सर्वकामप्रदास्तेषां भविष्यध्वं तथैव च॥ ८०

उच्छ्रासनादिकं ये च कथयन्ति मयेरितम्।
ते च रक्ष्याः सदा लोका रक्षितव्यं च शासनम्॥ ८१

रौद्रीं चैव परां मूर्तिं महादेवः प्रदास्यति।
युष्मन्मुख्या महादेव्यस्तदुक्तं परिरक्ष्यथ॥ ८२

मया मातृगणः सृष्टो योऽयं विगतसाध्वसः।
एष नित्यं विशालाक्षो मयैव सह रंस्यते॥ ८३

मया सार्धं तथा पूजां नरेभ्यश्चैव लप्स्यथ।
पृथक् सुपूजिता लोके सर्वान् कामान् प्रदास्यथ॥ ८४

नरेश! अजिता, सूक्ष्महृदया, वृद्धा, वेशाश्मदर्शना, नृसिंहभैरवा, बिल्वा, गरुत्मद्धृदया और जया—ये आठों मातृकाएँ भवमालिनीकी अनुचरी हैं। राजन्! आकर्णनी, सम्भटा, उत्तरमालिका, ज्वालामुखी, भीषणिका, कामधेनु, बालिका तथा पद्मकरा—ये शुष्करेवतीकी अनुचरी कही जाती हैं। आठ-आठके विभागसे भगवान्के शरीरसे उद्भूत हुई ये सभी देवियाँ महान् बलवती तथा त्रिलोकीके सृजन और संहारमें समर्थ थीं॥ ६३—७४॥

महाराज! भगवान् विष्णुद्वारा प्रकट किये जाते ही वे देवियाँ कुपित हो मातृकाओंकी ओर क्रोधवश आँखें फाड़कर देखती हुई उनपर टूट पड़ीं। उन देवियोंके नेत्रोंका तेज अत्यन्त भीषण और सर्वथा असह्य था, इसलिये वे मातृकाएँ भगवान् नृसिंहको शरणमें आ पड़ीं। तब भगवान् नरसिंहने उनसे इस प्रकार कहा—'जिस प्रकार मनुष्य और पशु चिरकालसे अपनी संतानका पालन-पोषण करते आ रहे हैं और जिस प्रकार शीघ्र दोनों देवताओंको वशमें कर लेते हैं, उसी तरह तुमलोग मेरे आदेशानुसार समस्त लोकोंकी रक्षा करो। मनुष्य तथा देवता सभी त्रिपुरहन्ता शिवजीका यजन करें। जो लोग शंकरजीके भक्त हैं, उनके प्रति तुमलोगोंको कोई बाधा नहीं करनी चाहिये। इस लोकमें जो मनुष्य मेरा स्मरण करते हैं, वे तुमलोगोंद्वारा सदा रक्षणीय हैं। जो मनुष्य सदा तुमलोगोंके निमित्त बलिकर्म करेंगे, तुमलोग उनके सभी मनोरथ पूर्ण करो। जो लोग मेरे इस चरित्रका कथन करेंगे, उन लोगोंकी सदा रक्षा तथा मेरे आदेशका भी पालन करना चाहिये। तुमलोगोंमें जो मुख्य महादेवियाँ हैं, उन्हें महादेवजी अपनी परमोत्कृष्ट रौद्री मूर्ति प्रदान करेंगे। तुमलोगोंको उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। लज्जा और भयसे रहित हो मैंने जो इस मातृगणकी सृष्टि की है, यह विशाल नेत्रोंवाला दल नित्य मेरे साथ ही निवास करेगा तथा मेरे साथ इसे मनुष्योंद्वारा प्रदान की गयी पूजा भी प्राप्त होती रहेगी। लोगोंद्वारा पृथक्-रूपसे सुपूजित होनेपर ये देवियाँ सभी कामनाएँ प्रदान करेंगी।

शुष्कां सम्पूजयिष्यन्ति ये च पुत्रार्थिनो जनाः।
तेषां पुत्रप्रदा देवी भविष्यति न संशयः॥ ८५

जो पुत्राभिलाषी लोग शुष्करेवतीकी पूजा करेंगे, उनके लिये वह देवी पुत्र प्रदान करनेवाली होगी—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है'॥ ७५—८५॥

एवमुक्त्वा तु भगवान् सह मातृगणेन तु।
ज्वालामालाकुलवपुस्तत्रैवान्तरधीयत॥ ८६
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं कृतशौचेति यज्जगुः।
तत्रापि पूर्वजो देवो जगदार्तिहरो हरः॥ ८७
रौद्रस्य मातृवर्गस्य दत्त्वा रुद्रस्तु पार्थिव।
रौद्रां दिव्यां तनुं तत्र मातृमध्ये व्यवस्थितः॥ ८८
सप्त ता मातरो देव्यः सार्धनारीनरः शिवः।
निवेश्य रौद्रं तत्स्थानं तत्रैवान्तरधीयत॥ ८९
समातृवर्गस्य हरस्य मूर्ति-
र्यदा यदा याति च तत्समीपे।
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्तेः
पूजां विधत्ते त्रिपुरान्धकारिः॥ ९०

राजन्! ऐसा कहकर ज्वालासमूहोंसे व्याप्त शरीरवाले भगवान् नरसिंह उस मातृगणके साथ वहीं अन्तर्हित हो गये। वहीं एक तीर्थ उत्पन्न हो गया, जिसे लोग 'कृतशौच' नामसे पुकारते हैं। वहीं सबके पूर्वज तथा जगत्‌का कष्ट दूर करनेवाले भगवान् रुद्र उस भयंकर मातृवर्गको अपनी रौद्री दिव्य मूर्ति प्रदान कर उन्हीं मातृकाओंके मध्यस्थित हो गये। इस प्रकार अर्धनारी-नरस्वरूप शिव उन सातों मातृ-देवियोंको उस रौद्रस्थानपर स्थापित कर स्वयं वहीं अन्तर्हित हो गये। मातृवर्गसहित शिवजीकी मूर्ति जब-जब देवेश्वर भगवान् नरसिंहकी मूर्तिके निकट जाती है, तब-तब त्रिपुर एवं अन्धकके शत्रु शंकरजी उस नृसिंहमूर्तिकी पूजा करते हैं॥ ८६—९०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽन्धकवधो नामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १७९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अन्धकवध नामक एक सौ उनासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १७९॥



एक सौ असीवाँ अध्याय

वाराणसी-माहात्म्यके प्रसङ्गमें हरिकेश यक्षकी तपस्या, अविमुक्तकी शोभा और उसका माहात्म्य तथा हरिकेशको शिवजीद्वारा वरप्राप्ति

ऋषय ऊचुः

श्रुतोऽन्धकवधः सूत यथावत् त्वदुदीरितः।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं श्रोतुमिच्छाम साम्प्रतम्॥ १
भगवान् पिङ्गलः केन गणत्वं समुपागतः।
अन्नदत्वं च सम्प्राप्तो वाराणस्यां महाद्युतिः॥ २
क्षेत्रपालः कथं जातः प्रियत्वं च कथं गतः।
एतदिच्छाम कथितं श्रोतुं ब्रह्मसुत त्वया॥ ३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपद्वारा कहा गया अन्धक-वधका प्रसङ्ग तो हमलोगोंने यथार्थरूपसे सुन लिया, अब हमलोग वाराणसीका माहात्म्य सुनना चाहते हैं। ब्रह्मपुत्र सूतजी! वाराणसीमें परम कान्तिमान् भगवान् पिङ्गलको गणेशत्वकी प्राप्ति कैसे हुई? वे अन्नदाता कैसे बने और क्षेत्रपाल कैसे हो गये? तथा वे शंकरजीके प्रेमपात्र कैसे बने? आपके द्वारा कहे गये इस सारे प्रसङ्गको सुननेके लिये हमलोगोंकी उत्कट अभिलाषा है॥ १—३॥

सूत उवाच

श्रृणुध्वं वै यथा लेभे गणेशत्वं स पिङ्गलः।
अन्नदत्वं च लोकानां स्थानं वाराणसी त्विह॥ ४

पूर्णभद्रसुतः श्रीमानासीद्यक्षः प्रतापवान्।
हरिकेश इति ख्यातो ब्रह्मण्यो धार्मिकश्च ह॥ ५

तस्य जन्मप्रभृत्येव शर्वे भक्तिरनुत्तमा।
तदासीत्तन्नमस्कारस्तन्निष्ठस्तत्परायणः॥ ६

आसीनश्च शयानश्च गच्छंस्तिष्ठन्ननुव्रजन्।
भुञ्जानोऽथ पिबन् वापि रुद्रमेवान्वचिन्तयत्॥ ७

तमेवं युक्तमनसं पूर्णभद्रः पिताब्रवीत्।
न त्वां पुत्रमहं मन्ये दुर्जातो यस्त्वमन्यथा॥ ८

न हि यक्षकुलीनानामेतद् वृत्तं भवत्युत।
गुह्यका बत यूयं वै स्वभावात् क्रूरचेतसः॥ ९

क्रव्यादाश्चैव किम्भक्षा हिंसाशीलाश्च पुत्रक।
मैवं कार्षीर्न ते वृत्तिरेवं दृष्टा महात्मना॥ १०

स्वयम्भुवा यथाऽऽदिष्टा त्यक्तव्या यदि नो भवेत्।
आश्रमान्तरजं कर्म न कुर्युर्गृहिणस्तु तत्॥ ११

हित्वा मनुष्यभावं च कर्मभिर्विविधैश्चर।
यत्त्वमेवं विमार्गस्थो मनुष्याज्जात एव च॥ १२

यथावद् विविधं तेषां कर्म तज्जातिसंश्रयम्।
मयापि विहितं पश्य कर्मैतन्नात्र संशयः॥ १३

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! पिंगलको जिस प्रकार गणेशत्व, लोकोंके लिये अन्नदत्व और वाराणसी-जैसा स्थान प्राप्त हुआ था वह प्रसङ्ग बतला रहा हूँ, सुनिये। प्राचीनकालमें हरिकेश नामसे विख्यात एक सौन्दर्यशाली यक्ष हो गया है, जो पूर्णभद्रका पुत्र था। वह महाप्रतापी, ब्राह्मणभक्त और धर्मात्मा था। जन्मसे ही उसकी शंकरजीमें प्रगाढ़ भक्ति थी। वह तन्मय होकर उन्हींको नमस्कार करनेमें, उन्हींकी भक्ति करनेमें और उन्हींके ध्यानमें तत्पर रहता था। वह बैठते, सोते, चलते, खड़े होते, घूमते तथा खाते-पीते समय सदा शिवजीके ध्यानमें ही मग्न रहता था। इस प्रकार शंकरजीमें लीन मनवाले उससे उसके पिता पूर्णभद्रने कहा—'पुत्र! मैं तुम्हें अपना पुत्र नहीं मानता। ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अन्यथा ही उत्पन्न हुए हो; क्योंकि यक्षकुलमें उत्पन्न होनेवालोंका ऐसा आचरण नहीं होता। तुम गुह्यक* हो। राक्षस ही स्वभावसे क्रूर चित्तवाले, मांसभक्षी, सर्वभक्षी और हिंसापरायण होते हैं। महात्मा ब्रह्माद्वारा ऐसा ही निर्देश दिया गया है। तुम ऐसा मत करो; क्योंकि तुम्हारे लिये ऐसी वृत्ति नहीं बतलायी गयी है। गृहस्थ भी अन्य आश्रमोंका कर्म नहीं करते। इसलिये तुम मनुष्यभावका परित्याग करके यक्षोंके अनुकूल विविध कर्मोंका आचरण करो। यदि तुम इस प्रकार विमार्गपर ही स्थित रहोगे तो मनुष्यसे उत्पन्न हुआ ही समझे जाओगे। अतः तुम यक्षजातिके अनुकूल विविध कर्मोंका ठीक-ठीक आचरण करो। देखो, मैं भी निःसंदेह वैसा ही आचरण कर रहा हूँ॥ ४—१३॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा स तं पुत्रं पूर्णभद्रः प्रतापवान्।
उवाच निष्क्रम क्षिप्रं गच्छ पुत्र यथेच्छसि॥ १४

ततः स निर्गतस्त्यक्त्वा गृहं सम्बन्धिनस्तथा।
वाराणसीं समासाद्य तपस्तेपे सुदुश्चरम्॥ १५

स्थाणुभूतो ह्यनिमिषः शुष्ककाष्ठोपलोपमः।
संनियम्येन्द्रियग्राममवातिष्ठत निश्चलः॥ १६

अथ तस्यैवमनिशं तत्परस्य तदाशिषः।
सहस्रमेकं वर्षाणां दिव्यमप्यभ्यवर्तत॥ १७

वल्मीकेन समाक्रान्तो भक्ष्यमाणः पिपीलिकैः।
वज्रसूचीमुखैस्तीक्ष्णैर्विध्यमानस्तथैव च॥ १८

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! प्रतापी पूर्णभद्रने अपने उस पुत्रसे इस प्रकार (कहा; किंतु जब उसपर कोई प्रभाव पड़ते नहीं देखा, तब वह पुनः कुपित होकर) बोला—'पुत्र! तुम शीघ्र ही मेरे घरसे निकल जाओ और जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, वहाँ चले जाओ।' तब वह हरिकेश गृह तथा सम्बन्धियोंका त्याग कर निकल पड़ा और वाराणसीमें आकर अत्यन्त दुष्कर तपस्यामें संलग्न हो गया। वहाँ वह इन्द्रियसमुदायको संयमित कर सूखे काष्ठ और पत्थरकी भाँति निश्चल हो एकटक स्थाणु (ठूँठ)-की तरह स्थित हो गया। इस प्रकार निरन्तर तपस्यामें लगे रहनेवाले हरिकेशके एक सहस्र दिव्य वर्ष व्यतीत हो गये। उसके शरीरपर बिमवट जम गयी। वज्रके समान कठोर और सूई-जैसे पतले एवं तीखे मुखवाली चींटियोंने उसमें छेद कर उसे खा डाला।

* अमर, व्याडि, हलायुध आदि कोशों एवं महाभारतादि प्रायः सभी ग्रन्थोंमें यक्षोंकी निधिरक्षक श्रेणीको ही गुह्यक कहा गया है—'निधिं गूहन्ति ये यक्षास्ते स्युर्गुह्यकसंज्ञकाः।'

निर्मांसरुधिरत्वक् च कुन्दशङ्खेन्दुसप्रभः।
अस्थिशेषोऽभवच्छर्वं देवं वै चिन्तयन्नपि॥ १९

एतस्मिन्नन्तरे देवी व्यज्ञापयत शङ्करम्॥ २०

इस प्रकार वह मांस, रुधिर और चमड़ेसे रहित हो अस्थिमात्र अवशेष रह गया, जो कुन्द, शङ्ख और चन्द्रमाके समान चमक रहा था। इतनेपर भी वह भगवान् शंकरका ध्यान कर ही रहा था। इसी बीच पार्वती देवीने भगवान् शंकरसे निवेदन किया॥ १४—२०॥

देव्युवाच

उद्यानं पुनरेवेदं द्रष्टुमिच्छामि सर्वदा।
क्षेत्रस्य देव माहात्म्यं श्रोतुं कौतूहलं हि मे।
यतश्च प्रियमेतत् ते तथास्य फलमुत्तमम्॥ २१
इति विज्ञापितो देवः शर्वाण्या परमेश्वरः।
सर्वं पृष्टं ते यथातथ्यमाख्यातुमुपचक्रमे॥ २२
निर्जगाम च देवेशः पार्वत्या सह शङ्करः।
उद्यानं दर्शयामास देव्या देवः पिनाकधृक्॥ २३

देवीने कहा—देव! मैं इस उद्यानको पुनः देखना चाहती हूँ। साथ ही इस क्षेत्रका माहात्म्य सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ी उत्कण्ठा है; क्योंकि यह आपको परम प्रिय है और इसके श्रवणका फल भी उत्तम है। इस प्रकार भवानीद्वारा निवेदन किये जानेपर परमेश्वर शंकर प्रश्नानुसार सारा प्रसंग यथार्थरूपसे कहनेके लिये उद्यत हुए। तदनन्तर पिनाकधारी देवेश्वर भगवान् शंकर पार्वतीके साथ वहाँसे चल पड़े और देवीको उस उद्यानका दर्शन कराते हुए बोले॥ २१—२३॥

देवदेव उवाच

प्रोत्फुल्लनानाविधगुल्मशोभितं
लताप्रतानावनतं मनोहरम्।
विरूढपुष्पैः परितः प्रियङ्गुभिः
सुपुष्पितैः कण्टकितैश्च केतकैः॥ २४
तमालगुल्मैर्निचितं सुगन्धिभिः
सकर्णिकारैर्बकुलैश्च सर्वशः।
अशोकपुंनागवरैः सुपुष्पितै-
र्द्विरेफमालाकुलपुष्पसंचयैः॥ २५
क्वचित् प्रफुल्लाम्बुजरेणुरूषितै-
र्विहङ्गमैश्चारुकलप्रणादिभिः।
विनादितं सारसमण्डनादिभिः
प्रमत्तदात्यूहरुतैश्च वल्गुभिः॥ २६
क्वचिच्च चक्राह्वरवोपनादितं
क्वचिच्च कादम्बकदम्बकैर्युतम्।
क्वचिच्च कारण्डवनादनादितं
क्वचिच्च मत्तालिकुलाकुलीकृतम्॥ २७
मदाकुलाभिस्त्वमराङ्गनाभि-
र्निषेवितं चारुसुगन्धिपुष्पम्।
क्वचित् सुपुष्पैः सहकारवृक्षै-
र्लतोपगूढैस्तिलकद्रुमैश्च॥ २८

देवाधिदेव शंकरने कहा— प्रिये! यह उद्यान खिले हुए नाना प्रकारके गुल्मोंसे सुशोभित है। यह लताओंके विस्तारसे अवनत होनेके कारण मनोहर लग रहा है। इसमें चारों ओर पुष्पोंसे लदे हुए प्रियङ्गुके तथा भली-भाँति खिली हुई कँटीली केतकीके वृक्ष दीख रहे हैं। यह सब ओर तमालके गुल्मों, सुगन्धित कनेर और मौलसिरी तथा फूलोंसे लदे हुए अशोक और पुंनागके उत्तम वृक्षोंसे, जिसके पुष्पोंपर भ्रमरसमूह गुञ्जार कर रहे हैं, व्याप्त है। कहीं पूर्णरूपसे खिले हुए कमलके परागसे धूसरित अङ्गवाले पक्षी सुन्दर कलनाद कर रहे हैं, कहीं सारसोंका दल बोल रहा है। कहीं मतवाले चातकोंकी मधुर बोली सुनायी पड़ रही है। कहीं चक्रवाकोंका शब्द गूँज रहा है। कहीं यूथ-के-यूथ कलहंस विचर रहे हैं। कहीं बतखोंके नादसे निनादित हो रहा है। कहीं झुंड-के-झुंड मतवाले भौंरे गुनगुना रहे हैं। कहीं मदसे मतवाली हुई देवाङ्गनाएँ सुन्दर एवं सुगन्धित पुष्पोंका सेवन कर रही हैं। कहीं सुन्दर पुष्पोंसे आच्छादित आमके वृक्ष और लताओंसे आच्छादित तिलकके वृक्ष शोभा पा रहे हैं।

प्रगीतविद्याधरसिद्धचारणं
प्रमत्तनृत्याप्सरसां गणाकुलम् ।
प्रहृष्टनानाविधपक्षिसेवितं
प्रमत्तहारीतकुलोपनादितम् ॥ २९
मृगेन्द्रनादाकुलसत्त्वमानसैः
क्वचित्क्वचिद्द्वन्द्वकदम्बकैर्मृगैः ।
प्रफुल्लनानाविधचारुपङ्कजैः
सरस्तटाकैरुपशोभितं क्वचित् ॥ ३०

कहीं विद्याधर, सिद्ध और चारण राग अलाप रहे हैं तो कहीं अप्सराओंका दल उन्मत्त होकर नाच रहा है। इसमें नाना प्रकारके पक्षी प्रसन्नतापूर्वक निवास करते हैं। यह मतवाले हारीतसमूहसे निनादित है। कहीं-कहीं झुंड-के-झुंड मृगके जोड़े सिंहकी दहाड़से व्याकुल मनवाले होकर इधर-उधर भाग रहे हैं। कहीं ऐसे तालाब शोभा पा रहे हैं, जिनके तटपर नाना प्रकारके सुन्दर कमल खिले हुए हैं॥ २४—३०॥

निबिडनिचुलनीलं नीलकण्ठाभिरामं
मदमुदितविहङ्गव्रातनादाभिरामम् ।
कुसुमिततरुशाखालीनमत्तद्विरेफं
नवकिसलयशोभाशोभितप्रान्तशाखम् ॥ ३१
क्वचिच्च दन्तिक्षतचारुवीरुधं
क्वचिल्लतालिङ्गितचारुवृक्षकम् ।
क्वचिद्विलासालसगामिबर्हिणं
निषेवितं किम्पुरुषव्रजैः क्वचित् ॥ ३२
पारावतध्वनिविकूजितचारुशृङ्गै-
रभ्रंकषैः सितमनोहरचारुरूपैः ।
आकीर्णपुष्पनिकुरम्बविमुक्तहासै-
र्विभ्राजितं त्रिदशदेवकुलैरनेकैः ॥ ३३
फुल्लोत्पलागुरुसहस्रवितानयुक्तै-
स्तोयाशयैः समनुशोभितदेवमार्गम् ।
मार्गान्तरागलितपुष्पविचित्रभक्ति-
सम्बद्धगुल्मविटपैर्विहगैरुपेतम् ॥ ३४
तुङ्गाग्रैर्नीलपुष्पस्तबकभरनतप्रान्तशाखैरशोकै-
र्मत्तालिव्रातगीतश्रुतिसुखजननैर्भासितान्तर्मनोज्ञैः ।
रात्रौ चन्द्रस्य भासा कुसुमिततिलकैरेकतां सम्प्रयातं
छायासुप्तप्रबुद्धस्थितहरिणकुलालुप्तदर्भाङ्कुराग्रम् ॥ ३५

यह घने बेंतकी लताओं एवं नीलमयूरोंसे सुशोभित और मदसे उन्मत्त हुए पक्षिसमूहोंके नादसे मनोरम लग रहा है। इसके खिले हुए वृक्षोंकी शाखाओंमें मतवाले भौंरे छिपे हुए हैं और उन शाखाओंके प्रान्तभाग नये किसलयोंकी शोभासे सुशोभित हैं। कहीं सुन्दर वृक्ष हाथियोंके दाँतोंसे क्षत-विक्षत हो गये हैं। कहीं लताएँ मनोहर वृक्षोंका आलिङ्गन कर रही हैं। कहीं भोगसे अलसाये हुए मयूरगण मन्दगतिसे विचरण कर रहे हैं। कहीं किम्पुरुषगण निवास कर रहे हैं। जो कबूतरोंकी ध्वनिसे निनादित हो रहे थे, जिनका उज्ज्वल मनोहर रूप है, जिनपर बिखरे हुए पुष्पसमूह हासकी छटा दिखा रहे हैं और जिनपर अनेकों देवकुल निवास कर रहे हैं, उन गगनचुम्बी मनोहर शिखरोंसे सुशोभित हो रहा है। खिले हुए कमल और अगुरुके सहस्रों वितानोंसे युक्त जलाशयोंसे जिसका देवमार्ग सुशोभित हो रहा है। उन मार्गोंपर पुष्प बिखरे हुए हैं और वह विचित्र भक्तिसे युक्त पक्षियोंसे सेवित गुल्मों और वृक्षोंसे युक्त है। जिनके अग्रभाग ऊँचे हैं, जिनकी शाखाओंका प्रान्तभाग नीले पुष्पोंके गुच्छोंके भारसे झुके हुए हैं तथा जिनकी शाखाओंके अन्तर्भागमें लीन मतवाले भ्रमरसमूहोंकी श्रवण-सुखदायिनी मनोहर गीत हो रही है, ऐसे अशोकवृक्षोंसे युक्त है। रात्रिमें यह अपने खिले हुए तिलक-वृक्षोंसे चन्द्रमाकी चाँदनीके साथ एकताको प्राप्त हो जाता है। कहीं वृक्षोंकी छायामें सोये हुए, सोकर जगे हुए तथा बैठे हुए हरिणसमूहोंद्वारा काटे गये दूर्वाङ्कुरोंके अग्रभागसे युक्त

हंसानां पक्षपातप्रचलितकमलस्वच्छविस्तीर्णतोयं
तोयानां तीरजातप्रविकचकदलीवाटनृत्यन्मयूरम्।
मायूरैः पक्षचन्द्रैः क्वचिदपि पतितै रञ्जितक्ष्माप्रदेशं
देशे देशे विकीर्णप्रमुदितविलसन्मत्तहारीतवृक्षम्॥ ३६
सारङ्गैः क्वचिदपि सेवितप्रदेशं
संछन्नं कुसुमचयैः क्वचिद्विचित्रैः।
हृष्टाभिः क्वचिदपि किंनराङ्गनाभिः
क्षीबाभिः सुमधुरगीतवृक्षखण्डम्॥ ३७
संसृष्टैः क्वचिदुपलिप्तकीर्णपुष्पै-
रावासैः परिवृतपादपं मुनीनाम्।
आमूलात् फलनिचितैः क्वचिद्विशालै-
रुत्तुङ्गैः पनसमहीरुहैरुपेतम्॥ ३८
फुल्लातिमुक्तकलतागृहसिद्धलीलं
सिद्धाङ्गनाकनकनूपुरनादरम्यम्।
रम्यप्रियङ्गुतरुमञ्जरिसक्तभृङ्गं
भृङ्गावलीषु स्खलिताम्बुकदम्बपुष्पम्॥ ३९
पुष्पोत्करानिलविघूर्णितपादपाग्र-
मग्रेसरो भुवि निपातितवंशगुल्मम्।
गुल्मान्तरप्रभृतिलीनमृगीसमूहं
सम्मुह्यतां तनुभृतामपवर्गदातृ॥ ४०
चन्द्रांशुजालधवलैस्तिलकैर्मनोज्ञैः
सिन्दूरकुङ्कुमकुसुम्भनिभैरशोकैः।
चामीकराभनिचयैरथ कर्णिकारैः
फुल्लारविन्दरचितं सुविशालशाखैः॥ ४१
क्वचिद्रजतपर्णाभैः क्वचिद्विद्रुमसन्निभैः।
क्वचित्काञ्चनसंकाशैः पुष्पैराचितभूतलम्॥ ४२
पुंनागेषु द्विजगणविरुतं
रक्ताशोकस्तबकभरनमितम्।
रम्योपान्तश्रमहरपवनं
फुल्लाब्जेषु भ्रमरविलसितम्॥ ४३

है। कहीं हंसोंके पंख हिलानेसे चञ्चल हुए कमलोंसे युक्त, निर्मल एवं विस्तीर्ण जलराशि शोभा पा रही है। कहीं जलाशयोंके तटपर उगे हुए फूलोंसे सम्पन्न कदलीके लतामण्डपोंमें मयूर नृत्य कर रहे हैं। कहीं झड़कर गिरे हुए चन्द्रकयुक्त मयूरोंके पंखोंसे भूतल अनुरञ्जित हो रहा है। जगह-जगह पृथक्-पृथक् यूथ बनाकर हर्षपूर्वक विलास करते हुए मतवाले हारीत पक्षियोंसे युक्त वृक्ष शोभा पा रहे हैं। किसी प्रदेशमें सारङ्ग जातिके मृग बैठे हुए हैं। कुछ भाग विचित्र पुष्पसमूहोंसे आच्छादित है। कहीं उन्मत्त हुई किंनराङ्गनाएँ हर्षपूर्वक सुमधुर गीत अलाप रही हैं, जिनसे वृक्षखण्ड मुखरित हो रहा है॥ ३१—३७॥

कहीं वृक्षोंके नीचे मुनियोंके आवासस्थल बने हैं, जिनकी भूमि लिपी-पुती हुई है और उसपर पुष्प बिखेरा हुआ है। कहीं जिनमें जड़से लेकर अन्ततक फल लदे हुए हैं, ऐसे विशाल एवं ऊँचे कटहलके वृक्षोंसे युक्त है। कहीं खिली हुई अतिमुक्तक लताके बने हुए सिद्धोंके गृह शोभा पा रहे हैं, जिनमें सिद्धाङ्गनाओंके स्वर्णमय नूपुरोंका सुरम्य नाद हो रहा है। कहीं मनोहर प्रियंगु वृक्षोंकी मंजरियोंपर भँवरे मँडरा रहे हैं। कहीं भ्रमर-समूहोंके पंखोंके आघातसे कदम्बके पुष्प नीचे गिर रहे हैं। कहीं पुष्पसमूहका स्पर्श करके बहती हुई वायु बड़े-बड़े वृक्षोंके ऊपरकी शाखाओंको झुका दे रही है, जिनके आघातसे बाँसोंके झुरमुट भूतलपर गिर जा रहे हैं। उन गुल्मोंके अन्तर्गत हरिणियोंका समूह छिपा हुआ है। इस प्रकार यह उपवन मोहग्रस्त प्राणियोंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है। यहाँ कहीं चन्द्रमाकी किरणों-सरीखे उज्ज्वल मनोहर तिलकके वृक्ष, कहीं सिंदूर, कुंकुम और कुसुम्भ-जैसे लाल रंगवाले अशोकके वृक्ष, कहीं स्वर्णके समान पीले एवं लम्बी शाखाओंवाले कनेरके वृक्ष और कहीं खिले हुए कमलके पुष्प शोभा पा रहे हैं। इस उपवनकी भूमि कहीं चाँदीके पत्र-जैसे श्वेत, कहीं मूँगे-सरीखे लाल और कहीं स्वर्ण-सदृश पीले पुष्पोंसे आच्छादित है। कहीं पुंनागके वृक्षोंपर पक्षिगण चहचहा रहे हैं। कहीं लाल अशोकको डालियाँ पुष्प-गुच्छोंके भारसे झुक गयी हैं। रमणीय एवं श्रमहारी पवन शरीरका स्पर्श करके बह रहा है। उत्फुल्ल कमलपुष्पोंपर भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।

सकलभुवनभर्ता लोकनाथस्तदानीं
तुहिनशिखरिपुत्र्याः सार्धमिष्टैर्गणेशैः।
विविधतरुविशालं मत्तहृष्टान्यपुष्ट-
मुपवनतरुरम्यं दर्शयामास देव्याः॥ ४४

इस प्रकार समस्त भुवनोंके पालक जगदीश्वर शंकरने अपने प्रिय गणेश्वरोंको साथ लेकर उस विविध प्रकारके विशाल वृक्षोंसे युक्त तथा उन्मत्त और हर्ष प्रदान करनेवाले उपवनको हिमालयकी पुत्री पार्वतीदेवीको दिखाया॥ ३८—४४॥

देव्युवाच

उद्यानं दर्शितं देव शोभया परया युतम्।
क्षेत्रस्य तु गुणान् सर्वान् पुनर्वक्तुमिहार्हसि॥ ४५
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यमविमुक्तस्य तत्तथा।
श्रुत्वापि हि न मे तृप्तिरतो भूयो वदस्व मे॥ ४६

देवीने पूछा—देव! अनुपम शोभासे युक्त इस उद्यानको तो आपने दिखला दिया। अब आप पुनः इस क्षेत्रके सम्पूर्ण गुणोंका वर्णन कीजिये। इस क्षेत्रका तथा अविमुक्तका माहात्म्य सुनकर मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, अतः आप पुनः मुझसे वर्णन कीजिये॥ ४५-४६॥

देवदेव उवाच

इदं गुह्यतमं क्षेत्रं सदा वाराणसी मम।
सर्वेषामेव भूतानां हेतुर्मोक्षस्य सर्वदा॥ ४७
अस्मिन् सिद्धाः सदा देवि मदीयं व्रतमास्थिताः।
नानालिङ्गधरा नित्यं मम लोकाभिकाङ्क्षिणः॥ ४८
अभ्यस्यन्ति परं योगं मुक्तात्मानो जितेन्द्रियाः।
नानावृक्षसमाकीर्णे नानाविहगकूजिते॥ ४९
कमलोत्पलपुष्पाढ्यैः सरोभिः समलङ्कृते।
अप्सरोगणगन्धर्वैः सदा संसेविते शुभे॥ ५०
रोचते मे सदा वासो येन कार्येण तच्छृणु।
मन्मना मम भक्तश्च मयि सर्वार्पितक्रियः॥ ५१
यथा मोक्षमिहाप्नोति ह्यन्यत्र न तथा क्वचित्।
एतन्मम पुरं दिव्यं गुह्याद् गुह्यतरं महत्॥ ५२
ब्रह्मादयस्तु जानन्ति येऽपि सिद्धा मुमुक्षवः।
अतः प्रियतमं क्षेत्रं तस्माच्चेह रतिर्मम॥ ५३
विमुक्तं न मया यस्मान्मोक्ष्यते वा कदाचन।
महत् क्षेत्रमिदं तस्मादविमुक्तमिदं स्मृतम्॥ ५४
नैमिषेऽथ कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे।
स्नानात् संसेविताद् वापि न मोक्षः प्राप्यते यतः॥ ५५
इह सम्प्राप्यते येन तत एतद् विशिष्यते।
प्रयागे च भवेन्मोक्ष इह वा मत्परिग्रहात्॥ ५६

देवाधिदेव शंकर बोले—देवि! मेरा यह वाराणसी क्षेत्र परम गुह्य है। यह सर्वदा सभी प्राणियोंके मोक्षका कारण है। देवि! इस क्षेत्रमें नाना प्रकारका स्वरूप धारण करनेवाले नित्य मेरे लोकके अभिलाषी मुक्तात्मा जितेन्द्रिय सिद्धगण मेरा व्रत धारण कर परम योगका अभ्यास करते हैं। अब इस नाना प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त, अनेकविध पक्षियोंद्वारा निनादित, कमल और उत्पलके पुष्पोंसे भरे हुए सरोवरोंसे सुशोभित और अप्सराओं तथा गन्धर्वोंद्वारा सदा संसेवित इस शुभमय उपवनमें जिस हेतुसे मुझे सदा निवास करना अच्छा लगता है, उसे सुनो। मेरा भक्त मुझमें मन लगाकर और सारी क्रियाएँ मुझमें समर्पित कर इस क्षेत्रमें जैसी सुगमतासे मोक्ष प्राप्त कर सकता है, वैसा अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त कर सकता। यह मेरी महान् दिव्य नगरी गुह्यसे भी गुह्यतर है। ब्रह्मा आदि जो सिद्ध मुमुक्षु हैं, वे इसके विषयमें पूर्णरूपसे जानते हैं। अतः यह क्षेत्र मुझे परम प्रिय है और इसी कारण इसके प्रति मेरी विशेष रति है। चूँकि मैं कभी भी इस विमुक्त क्षेत्रका त्याग नहीं करता, इसलिये यह महान् क्षेत्र अविमुक्त नामसे कहा जाता है। नैमिष, कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार और पुष्करमें निवास करने तथा स्नान करनेसे यदि मोक्षकी प्राप्ति नहीं होती तो इस क्षेत्रमें वह प्राप्त हो जाता है, इसीलिये यह उनसे विशिष्ट है। प्रयागमें अथवा मेरा आश्रय ग्रहण करनेसे काशीमें मोक्ष प्राप्त हो जाता है॥ ४७—५६॥

प्रयागादपि तीर्थाग्र्यादिदमेव महत् स्मृतम्।
जैगीषव्यः परां सिद्धिं योगतः स महातपाः॥ ५७
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् भक्त्या च मम भावनात्।
जैगीषव्यो मुनिश्रेष्ठो योगिनां स्थानमिष्यते॥ ५८
ध्यायतस्तत्र मां नित्यं योगाग्निर्दीप्यते भृशम्।
कैवल्यं परमं याति देवानामपि दुर्लभम्॥ ५९
अव्यक्तलिङ्गैर्मुनिभिः सर्वसिद्धान्तवेदिभिः।
इह सम्प्राप्यते मोक्षो दुर्लभो देवदानवैः॥ ६०
तेभ्यश्चाहं प्रयच्छामि भोगैश्वर्यमनुत्तमम्।
आत्मनश्चैव सायुज्यमीप्सितं स्थानमेव च॥ ६१
कुबेरस्तु महायक्षस्तथा सर्वार्पितक्रियः।
क्षेत्रसंवसनादेव गणेशत्वमवाप ह॥ ६२
संवर्तो भविता यश्च सोऽपि भक्त्या ममैव तु।
इहैवाराध्य मां देवि सिद्धिं यास्यत्यनुत्तमाम्॥ ६३
पराशरसुतो योगी ऋषिर्व्यासो महातपाः।
धर्मकर्ता भविष्यश्च वेदसंस्थाप्रवर्तकः॥ ६४
रंस्यते सोऽपि पद्माक्षि क्षेत्रेऽस्मिन् मुनिपुंगवः।
ब्रह्मा देवर्षिभिः सार्धं विष्णुर्वायुर्दिवाकरः॥ ६५
देवराजस्तथा शक्रो येऽपि चान्ये दिवौकसः।
उपासन्ते महात्मानः सर्वे मामेव सुव्रते॥ ६६
अन्येऽपि योगिनः सिद्धाश्छन्नरूपा महाव्रताः।
अनन्यमनसो भूत्वा मामिहोपासते सदा॥ ६७
अलर्कश्च पुरीमेतां मत्प्रसादादवाप्स्यति।
स चैनां पूर्ववत्कृत्वा चातुर्वर्ण्याश्रमाकुलाम्॥ ६८
स्फीतां जनसमाकीर्णां भक्त्या च सुचिरं नृपः।
मयि सर्वार्पितप्राणो मामेव प्रतिपत्स्यते॥ ६९
ततः प्रभृति चार्वङ्गि येऽपि क्षेत्रनिवासिनः।
गृहिणो लिङ्गिनो वापि मद्भक्ता मत्परायणाः॥ ७०
मत्प्रसादाद् भजिष्यन्ति मोक्षं परमदुर्लभम्।
विषयासक्तचित्तोऽपि त्यक्तधर्मरतिर्नरः॥ ७१
इह क्षेत्रे मृतः सोऽपि संसारं न पुनर्विशेत्।
ये पुनर्निर्ममा धीराः सत्त्वस्था विजितेन्द्रियाः॥ ७२

यह तीर्थश्रेष्ठ प्रयागसे भी महान् कहा जाता है। महातपस्वी जैगीषव्य मुनि यहाँ परा सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। मुनिश्रेष्ठ जैगीषव्य इस क्षेत्रके माहात्म्यसे तथा भक्तिपूर्वक मेरी भावना करनेसे योगियोंके स्थानको प्राप्त कर लिये हैं। वहाँ नित्य मेरा ध्यान करनेसे योगाग्नि अत्यन्त उद्दीप्त हो जाती है, जिससे देवताओंके लिये भी परम दुर्लभ कैवल्य पद प्राप्त हो जाता है। यहाँ सम्पूर्ण सिद्धान्तोंके ज्ञाता एवं अव्यक्त चिह्नवाले मुनियोंद्वारा देवों और दानवोंके लिये दुर्लभ मोक्ष प्राप्त कर लिया जाता है। मैं ऐसे मुनियोंको सर्वोत्तम भोग, ऐश्वर्य, अपना सायुज्य और मनोवाञ्छित स्थान प्रदान करता हूँ। महायक्ष कुबेर, जिन्होंने अपनी सारी क्रियाएँ मुझे अर्पित कर दी थीं, इस क्षेत्रमें निवास करनेके कारण ही गणाधिपत्यको प्राप्त हुए हैं। देवि! जो संवर्तनामक ऋषि होंगे, वे भी मेरे ही भक्त हैं। वे यहीं मेरी आराधना करके सर्वश्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त करेंगे। पद्माक्षि! जो योगसम्पन्न, धर्मके नियामक और वैदिक कर्मकाण्डके प्रवर्तक होंगे, महातपस्वी मुनिश्रेष्ठ पराशरनन्दन महर्षि व्यास भी इसी क्षेत्रमें निवास करेंगे। सुव्रते! देवर्षियोंके साथ ब्रह्मा, विष्णु, वायु, सूर्य, देवराज इन्द्र तथा जो अन्यान्य देवता हैं, सभी महात्मा मेरी ही उपासना करते हैं। दूसरे भी योगी, सिद्ध, गुप्त रूपधारी एवं महाव्रती अनन्यचित्त होकर यहाँ सदा मेरी उपासना करते हैं॥ ५७—६७॥

अलर्क भी मेरी कृपासे इस पुरीको प्राप्त करेंगे। वे नरेश इसे पहलेकी तरह चारों वर्णों और आश्रमोंसे युक्त, समृद्धिशालिनी और मनुष्योंसे परिपूर्ण कर देंगे। तत्पश्चात् चिरकालतक भक्तिपूर्वक मुझमें प्राणोंसहित अपना सर्वस्व समर्पित करके मुझे ही प्राप्त कर लेंगे। सुन्दर अङ्गोंवाली देवि! तभीसे इस क्षेत्रमें निवास करनेवाले जो भी मत्परायण मेरे भक्त, चाहे वे गृहस्थ हों अथवा संन्यासी, मेरी कृपासे परम दुर्लभ मोक्षको प्राप्त कर लेंगे। जो मनुष्य धर्मत्यागका प्रेमी और विषयोंमें आसक्त चित्तवाला भी हो, वह भी यदि इस क्षेत्रमें प्राणत्याग करता है तो उसे पुनः संसारमें नहीं आना पड़ता। सुव्रते! फिर जो ममतारहित, धैर्यशाली, पराक्रमी, जितेन्द्रिय,

व्रतिनश्च निरारम्भाः सर्वे ते मयि भाविताः।
देहभङ्गं समासाद्य धीमन्तः सङ्गवर्जिताः।
गता एव परं मोक्षं प्रसादान्मम सुव्रते॥ ७३
जन्मान्तरसहस्रेषु युञ्जन् योगमवाप्नुयात्।
तमिहैव परं मोक्षं मरणादधिगच्छति॥ ७४
एतत् संक्षेपतो देवि क्षेत्रस्यास्य महत्फलम्।
अविमुक्तस्य कथितं मया ते गुह्यमुत्तमम्॥ ७५
अतः परतरं नास्ति सिद्धिगुह्यं महेश्वरि।
एतद् बुद्ध्यन्ति योगज्ञा ये च योगेश्वरा भुवि॥ ७६
एतदेव परं स्थानमेतदेव परं शिवम्।
एतदेव परं ब्रह्म एतदेव परं पदम्॥ ७७
वाराणसी तु भुवनत्रयसारभूता
रम्या सदा मम पुरी गिरिराजपुत्रि।
अत्रागता विविधदुष्कृतकारिणोऽपि
पापक्षयाद् विरजसः प्रतिभान्ति मर्त्याः॥ ७८
एतत्स्मृतं प्रियतमं मम देवि नित्यं
क्षेत्रं विचित्रतरुगुल्मलतासुपुष्पम्।
अस्मिन् मृतास्तनुभृतः पदमाप्नुवन्ति
मूर्खागमेन रहितापि न संशयोऽत्र॥ ७९

व्रतधारी, आरम्भरहित, बुद्धिमान् और आसक्तिहीन हैं, वे सभी मुझमें मन लगाकर यहाँ शरीरका त्याग करके मेरी कृपासे परम मोक्षको ही प्राप्त हुए हैं। हजारों जन्मोंमें योगका अभ्यास करनेसे जो मोक्ष प्राप्त होता है, वह परम मोक्ष यहाँ मरनेसे ही प्राप्त हो जाता है। देवि! मैंने तुमसे इस अविमुक्त क्षेत्रके इस उत्तम, गुह्य एवं महान् फलको संक्षेपरूपसे वर्णन किया है। महेश्वरि! भूतलपर इससे बढ़कर सिद्धिदाता दूसरा कोई गुह्य स्थान नहीं है। इसे जो योगेश्वर एवं योगके ज्ञाता हैं, वे ही जानते हैं। यही परमोत्कृष्ट स्थान है, यही परम कल्याणकारक है, यही परब्रह्म है और यही परमपद है। गिरिराजपुत्रि! मेरी रमणीय वाराणसीपुरी तो सदा त्रिभुवनकी सारभूता है। अनेकों प्रकारके पाप करनेवाले मानव भी यहाँ आकर पापोंके नष्ट हो जानेसे पापमुक्त हो सुशोभित होने लगते हैं। देवि! विचित्र वृक्षों, गुल्मों, लताओं और सुगन्धित पुष्पोंसे युक्त यह क्षेत्र मेरे लिये सदा प्रियतम कहा जाता है। वेदाध्ययनसे रहित मूर्ख प्राणी भी यदि यहाँ मरते हैं तो परम पदको प्राप्त हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है॥ ६८—७९॥

सूत उवाच

एतस्मिन्नन्तरे देवो देवीं प्राह गिरीन्द्रजाम्।
दातुं प्रसादाद् यक्षाय वरं भक्ताय भामिनि॥ ८०
भक्तो मम वरारोहे तपसा हतकिल्बिषः।
अहो वरमसौ लब्धुमस्मत्तो भुवनेश्वरि॥ ८१
एवमुक्त्वा ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः।
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशो धमनिसन्ततः॥ ८२
ततस्तं गुह्यकं देवी दृष्टिपातैर्निरीक्षती।
श्वेतवर्णं विचर्माणं स्नायुबद्धास्थिपञ्जरम्॥ ८३
देवी प्राह तदा देवं दर्शयन्ती च गुह्यकम्।
सत्यं नाम भवानुग्रो देवैरुक्तस्तु शङ्कर॥ ८४
ईदृशे चास्य तपसि न प्रयच्छसि यद्वरम्।
अतः क्षेत्रे महादेव पुण्ये सम्यगुपासिते॥ ८५
कथमेवं परिक्लेशं प्राप्तो यक्षकुमारकः।
शीघ्रमस्य वरं यच्छ प्रसादात् परमेश्वर॥ ८६
एवं मन्वादयो देव वदन्ति परमर्षयः।
रुष्टाद् वा चाथ तुष्टाद् वा सिद्धिस्तूभयतो भवेत्।
भोगप्राप्तिस्तथा राज्यमन्ते मोक्षः सदाशिवात्॥ ८७

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! इसी बीच महादेवजीने गिरिराजकुमारी पार्वतीदेवीसे भक्तराज यक्षको कृपारूप वर प्रदान करनेके लिये यों कहा—'भामिनि! वह मेरा भक्त है। वरारोहे! तपस्यासे उसके पाप नष्ट हो चुके हैं, अतः भुवनेश्वरि! वह अब हमलोगोंसे वर प्राप्त करनेका अधिकारी हो गया है।' तदनन्तर ऐसा कहकर जगदीश्वर महादेव पार्वतीदेवीके साथ उस स्थानके लिये चल पड़े, जहाँ धमनियोंसे व्याप्त दुर्बल यक्ष वर्तमान था। वहाँ पहुँचकर पार्वती देवी दृष्टि घुमाकर उस गुह्यककी ओर देखने लगीं, जिसका शरीर श्वेत रङ्गका हो गया था, चमड़ा गल गया था और अस्थिपंजर नसोंसे आबद्ध था। तब उस गुह्यकको दिखलाती हुई देवीने महादेवजीसे कहा—'शंकर! इस प्रकारकी घोर तपस्यामें निरत इसे आप जो वर नहीं प्रदान कर रहे हैं, इस कारण देवतालोग आपको जो अत्यन्त निष्ठुर बतलाते हैं, वह सत्य ही है। महादेव! इस पुण्यक्षेत्रमें भलीभाँति उपासना करनेपर भी इस यक्षकुमारको इस प्रकारका महान् कष्ट कैसे प्राप्त हुआ? अतः परमेश्वर! कृपा करके इसे शीघ्र ही वरदान दीजिये। देव! मनु आदि परमर्षि ऐसा कहते हैं कि सदाशिव चाहे रुष्ट हों अथवा तुष्ट—दोनों प्रकारसे उनसे सिद्धि, भोगकी प्राप्ति, राज्य तथा अन्तमें मोक्षकी प्राप्ति होती ही है।'

एवमुक्तस्ततो देवः सह देव्या जगत्पतिः।
जगाम यक्षो यत्रास्ते कृशो धमनिसंततः॥ ८८

तं दृष्ट्वा प्रणतं भक्त्या हरिकेशं वृषध्वजः।
दिव्यं चक्षुरदात् तस्मै येनापश्यत् स शङ्करम्॥ ८९

अथ यक्षस्तदादेशाच्छनैरुन्मील्य चक्षुषी।
अपश्यत् सगणं देवं वृषध्वजमुपस्थितम्॥ ९०

ऐसा कहे जानेपर जगदीश्वर महादेव पार्वतीके साथ उस स्थानके निकट गये जहाँ धमनियोंसे व्याप्त कृशकाय यक्ष स्थित था। (उनकी आहट पाकर यक्ष उनके चरणोंपर गिर पड़ा।) इस प्रकार उस हरिकेशको भक्तिपूर्वक चरणोंमें पड़ा हुआ देखकर शिवजीने उसे दिव्य चक्षु प्रदान किया जिससे वह शंकरका दर्शन कर सके। तदनन्तर यक्षने महादेवजीके आदेशसे धीरेसे अपने दोनों नेत्रोंको खोलकर गणसहित वृषध्वज महादेवजीको सामने उपस्थित देखा॥ ८८—९०॥

देवदेव उवाच

वरं ददामि ते पूर्वं त्रैलोक्ये दर्शनं तथा।
सावर्ण्यं च शरीरस्य पश्य मां विगतज्वरः॥ ९१

देवाधिदेव शंकरने कहा—यक्ष! अब तुम कष्टरहित होकर मेरी ओर देखो। मैं तुम्हें पहले वह वर देता हूँ जिससे तुम्हारे शरीरका वर्ण सुन्दर हो जाय तथा तुम त्रिलोकीमें देखनेयोग्य हो जाओ॥ ९१॥

सूत उवाच

ततः स लब्ध्वा तु वरं शरीरेणाक्षतेन च।
पादयोः प्रणतस्तस्थौ कृत्वा शिरसि चाञ्जलिम्॥ ९२
उवाचाथ तदा तेन वरदोऽस्मीति चोदितः।
भगवन् भक्तिमव्यग्रां त्वय्यनन्यां विधत्स्व मे॥ ९३
अन्नदत्वं च लोकानां गाणपत्यं तथाक्षयम्।
अविमुक्तं च ते स्थानं पश्येयं सर्वदा यथा॥ ९४
एतदिच्छामि देवेश त्वत्तो वरमनुत्तमम्॥ ९५

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! तत्पश्चात् वरदान पाकर वह अक्षत शरीरसे युक्त हो चरणोंपर गिर पड़ा, फिर मस्तकपर हाथ जोड़कर सम्मुख खड़ा हो गया और बोला—'भगवन्! आपने मुझसे कहा है कि 'मैं वरदाता हूँ' तो मुझे ऐसा वरदान दीजिये कि आपमें मेरी अनन्य एवं अटल भक्ति हो जाय। मैं अक्षय अन्नका दाता तथा लोकोंके गणोंका अधीश्वर हो जाऊँ, जिससे आपके अविमुक्त स्थानका सर्वदा दर्शन करता रहूँ। देवेश! मैं आपसे यही उत्तम वर प्राप्त करना चाहता हूँ॥ ९२—९५॥

देवदेव उवाच

जरामरणसंत्यक्तः सर्वरोगविवर्जितः।
भविष्यसि गणाध्यक्षो धनदः सर्वपूजितः॥ ९६
अजेयश्चापि सर्वेषां योगैश्वर्यं समाश्रितः।
अन्नदश्चापि लोकेभ्यः क्षेत्रपालो भविष्यसि॥ ९७
महाबलो महासत्त्वो ब्रह्मण्यो मम च प्रियः।
त्र्यक्षश्च दण्डपाणिश्च महायोगी तथैव च॥ ९८
उद्भ्रमः सम्भ्रमश्चैव गणौ ते परिचारकौ।
तवाज्ञया करिष्येते लोकस्योद्भ्रमसम्भ्रमौ॥ ९९

देवदेवने कहा—यक्ष! तुम जरा-मरणसे विमुक्त, सम्पूर्ण रोगोंसे रहित, सबके द्वारा सम्मानित धनदाता गणाध्यक्ष होओगे। तुम सभीके लिये अजेय, योगैश्वर्यसे युक्त, लोकोंके लिये अन्नदाता, क्षेत्रपाल, महाबली, महान् पराक्रमी, ब्राह्मणभक्त, मेरा प्रिय, त्रिनेत्रधारी, दण्डपाणि तथा महायोगी होओगे। उद्भ्रम और सम्भ्रम—ये दोनों गण तुम्हारे सेवक होंगे। ये उद्भ्रम और सम्भ्रम तुम्हारी आज्ञासे लोकका कार्य करेंगे॥ ९६—९९॥

सूत उवाच

एवं स भगवांस्तत्र यक्षं कृत्वा गणेश्वरम्।
जगाम वासं देवेशः सह तेन महेश्वरः॥ १००

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार देवेश भगवान् महेश्वर वहाँ उस यक्षको गणेश्वर बनाकर उसके साथ अपने निवासस्थानको लौट गये॥ १००॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वाराणसीमाहात्म्ये दण्डपाणिवरप्रदानं नामाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके वाराणसी-माहात्म्यमें दण्डपाणि-वरप्रदान नामक एक सौ अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८०॥

एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय

अविमुक्तक्षेत्र (वाराणसी)-का माहात्म्य

सूत उवाच

इमां पुण्योद्भवां स्निग्धां कथां पापप्रणाशिनीम्।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे सुविशुद्धास्तपोधनाः॥ १
गणेश्वरपतिं दिव्यं रुद्रतुल्यपराक्रमम्।
सनत्कुमारो भगवानपृच्छन्नन्दिकेश्वरम्॥ २
ब्रूहि गुह्यं यथातत्त्वं यत्र नित्यं भवः स्थितः।
माहात्म्यं सर्वभूतानां परमात्मा महेश्वरः॥ ३
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः।
आभूतसम्प्लवं यावत् स्थाणुभूतो महेश्वरः॥ ४

नन्दिकेश्वर उवाच

पुरा देवेन यत् प्रोक्तं पुराणं पुण्यमुत्तमम्।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य महेश्वरम्॥ ५
ततो देवेन तुष्टेन उमायाः प्रियकाम्यया।
कथितं भुवि विख्यातं यत्र नित्यं स्वयं स्थितः॥ ६
रुद्रस्यार्धासनगता मेरुशृङ्गे यशस्विनी।
महादेवं ततो देवी प्रणता परिपृच्छति॥ ७

देव्युवाच

भगवन् देवदेवेश चन्द्रार्धकृतशेखर।
धर्मं प्रब्रूहि मर्त्यानां भुवि चैवोर्ध्वरेतसाम्॥ ८
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्।
ध्यानाध्ययनसम्पन्नं कथं भवति चाक्षयम्॥ ९
जन्मान्तरसहस्रेण यत् पापं पूर्वसंचितम्।
कथं तत् क्षयमायाति तन्ममाचक्ष्व शङ्कर॥ १०
यस्मिन् व्यवस्थितो भक्त्या तुष्यसि त्वं महेश्वर।
व्रतानि नियमाश्चैव आचारो धर्म एव च॥ ११
सर्वसिद्धिकरं यत्र ह्यक्षयगतिदायकम्।
वक्तुमर्हसि तत् सर्वं परं कौतूहलं हि मे॥ १२

सूतजी कहते हैं— परम विशुद्ध हृदयवाले तपस्वी ऋषियो! आप सब लोग इस उत्तम कथाको जो पापकी विनाशिनी और पुण्यको उत्पन्न करनेवाली है, सुनिये! एक बार भगवान् सनत्कुमारने रुद्रके ही समान पराक्रमी तथा गणेश्वरोंके स्वामी दिव्य नन्दिकेश्वरसे पूछा—'जो सभी जीवोंके परमात्मा महेश्वर तथा देवताओं एवं दानवोंद्वारा दुष्प्राप्य हैं, वे महात्मा शंकर घोर स्वरूपको धारण कर सृष्टिसे प्रलयपर्यन्त स्थाणुरूपमें जहाँ नित्य अवस्थित रहते हैं, उस गोपनीय (स्थान)-को आप रहस्यपूर्वक हमलोगोंको बतलाइये'॥ १—४॥

नन्दिकेश्वरने कहा— पूर्वकालमें महादेवने पुण्य प्रदान करनेवाले जिस श्रेष्ठ पुराणका वर्णन किया था, वह सब मैं महेश्वरको नमस्कार कर वर्णन कर रहा हूँ। किसी समय उमाको प्रसन्न करनेकी इच्छासे प्रसन्नमना महादेवने जिस स्थानपर वे सदा स्वयं विराजमान रहते हैं, उस विश्वविख्यात स्थानका वर्णन किया था। एक बार सुमेरुके शिखरपर रुद्रके आधे आसनपर विराजमान यशस्विनी देवी उमाने विनयभावसे महादेवजीसे प्रश्न किया॥ ५—७॥

देवीने पूछा— अर्धचन्द्रसे सुशोभित मस्तकवाले देवदेवेश्वर भगवन्! भूतलपर वर्तमान ऊर्ध्वरेता प्राणियोंके धर्मको विस्तारसे बतलाइये। साथ ही यह भी बतलाइये कि जप, दान, हवन, यज्ञ, तपस्या, शुभ कर्म, ध्यान और अध्ययन आदि किस प्रकार अक्षयभावको प्राप्त होते हैं? शंकर! हजारों पूर्वजन्मोंमें जो पाप सञ्चित हुए हैं, वे किस प्रकार नष्ट होते हैं? यह आप मुझे स्पष्ट बतलाइये। महेश्वर! जिस स्थानपर स्थित होकर आप भक्तिसे प्रसन्न होते हैं तथा व्रत, नियम, आचार और धर्म जहाँ सभी सिद्धियोंके प्रदाता बन जाते हैं एवं अनश्वर गति प्रदान करते हैं, ये सभी बातें आप बतलाइये; क्योंकि इसे जाननेके लिये मेरे मनमें बड़ी ही उत्कण्ठा है॥ ८—१२॥

महेश्वर उवाच

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि गुह्यानां गुह्यमुत्तमम्।
सर्वक्षेत्रेषु विख्यातमविमुक्तं प्रिय मम॥ १३
अष्टषष्टिः पुरा प्रोक्ता स्थानानां स्थानमुत्तमम्।
यत्र साक्षात् स्वयं रुद्रः कृत्तिवासाः स्वयं स्थितः॥ १४
यत्र संनिहितो नित्यमविमुक्ते निरन्तरम्।
तत्क्षेत्रं न मया मुक्तमविमुक्तं ततः स्मृतम्॥ १५
अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परा गतिः।
जप्तं दत्तं हुतं चेष्टं तपस्तप्तं कृतं च यत्॥ १६
ध्यानमध्ययनं दानं सर्वं भवति चाक्षयम्।
जन्मान्तरसहस्रेण यत् पापं पूर्वसंचितम्॥ १७
अविमुक्तं प्रविष्टस्य तत् सर्वं व्रजति क्षयम्।
अविमुक्ताग्निना दग्धमग्नौ तूलमिवाहितम्॥ १८
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वै वर्णसंकराः।
कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये संकीर्णाः पापयोनयः॥ १९
कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः।
कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये॥ २०
चन्द्रार्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।
शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवाः॥ २१
अकामो वा सकामो वा ह्यपि तिर्यग्गतोऽपि वा।
अविमुक्ते त्यजन् प्राणान् मम लोके महीयते॥ २२
अविमुक्तं यदा गच्छेत् कदाचित् कालपर्ययात्।
अश्मना चरणौ भित्त्वा तत्रैव निधनं व्रजेत्॥ २३
अविमुक्तं गतो देवि न निर्गच्छेत् ततः पुनः।
सोऽपि मत्पदमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा॥ २४

महेश्वरने कहा—देवि! सुनो, मैं तुम्हें गुप्तसे भी गुप्त उत्तम विषय बतला रहा हूँ। सभी क्षेत्रोंमें प्रसिद्ध अविमुक्तक्षेत्र (वाराणसी) मुझे परम प्रिय है। पहले मैं अड़सठ श्रेष्ठ स्थानोंका वर्णन कर चुका हूँ, जहाँ गजचर्म धारण कर मैं साक्षात् रुद्रस्वरूपसे विराजमान रहता हूँ; परंतु अविमुक्तक्षेत्र (काशी)-में मैं नित्य-निरन्तर निवास करता हूँ। उस क्षेत्रको मैं कभी नहीं छोड़ता, इसीलिये इसे अविमुक्त कहा जाता है। उस अविमुक्त क्षेत्रमें परा सिद्धि और परमगति प्राप्त होती है। वहाँ किया गया जप, दान, हवन, यज्ञ, तप, शुभ कर्म, ध्यान, अध्ययन, दान आदि सभी अक्षय हो जाते हैं। अविमुक्त क्षेत्रमें प्रवेश करनेवाले व्यक्तिके हजारों पूर्व जन्मोंमें जो पाप संचित होते हैं वे सभी नष्ट हो जाते हैं। वे अविमुक्तरूपी अग्निमें उसी प्रकार जल जाते हैं जैसे अग्निमें समर्पित की हुई रूई। प्रिये! यदि अविमुक्त क्षेत्रमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णसंकर, कृमि, म्लेच्छ एवं अन्य निम्नस्तरके पापयोनिवाले कीट, चींटें, पशु, पक्षी आदि कालके वशीभूत हो मृत्युको प्राप्त होते हैं, (तो उनकी क्या गति होती है, उसे) सुनो। देवि! वे सभी मानव-शरीर धारणकर मस्तकपर अर्धचन्द्रसे सुशोभित, ललाटमें तृतीय नेत्रसे युक्त शिवस्वरूप होकर मेरे शिवपुरमें जन्म लेते हैं। चाहे सकाम हो या निष्काम अथवा तिर्यग्योनिगत ही क्यों न हो, यदि वह अविमुक्त क्षेत्रमें प्राणोंका त्याग करता है तो मेरे लोकमें पूजित होता है। देवि! यदि मनुष्य कालक्रमानुसार कभी अविमुक्त क्षेत्रमें पहुँच जाय तो वहाँ पत्थरसे अपने चरणोंको तोड़कर स्थित रहे और पुनः अविमुक्त क्षेत्रसे बाहर न जाय, वहीं मृत्युको प्राप्त हो जाय तो वह भी मेरे पदको प्राप्त होता है। इसमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ १३—२४॥

वस्त्रापथं रुद्रकोटिं सिद्धेश्वरमहालयम्।
गोकर्णं रुद्रकर्णं च सुवर्णाक्षं तथैव च॥ २५
अमरं च महाकालं तथा कायावरोहणम्।
एतानि हि पवित्राणि सांनिध्यात् संध्ययोर्द्वयोः॥ २६
कालिञ्जरवनं चैव शंकुकर्णं स्थलेश्वरम्।
एतानि च पवित्राणि सांनिध्याद्धि मम प्रिये।
अविमुक्ते वरारोहे त्रिसंध्यं नात्र संशयः॥ २७
हरिश्चन्द्रं परं गुह्यं गुह्यमाम्रातकेश्वरम्।
जालेश्वरं परं गुह्यं गुह्यं श्रीपर्वतं तथा॥ २८

प्रिये! वस्त्रापथ (जूनागढ़, गिरिनार), रुद्रकोटि, सिद्धेश्वर, महालय, गोकर्ण, रुद्रकर्ण तथा सुवर्णाक्ष, अमरकण्टक, महाकाल (उज्जैनी) और कायावरोहण (कारवार, गुजरात)—ये सभी स्थान प्रातः और संध्याकालमें मेरी संनिधिसे पवित्र माने जाते हैं। इसी प्रकार कालिंजरवन, शङ्कुकर्ण और स्थलेश्वर (थानेश्वर)—ये भी मेरी संनिधिके कारण ही पवित्र हैं। वरारोहे! अविमुक्त क्षेत्रमें मैं तीनों संध्याओंमें स्थित रहता हूँ—इसमें संदेह नहीं है। प्रिये! हरिश्चन्द्र, आम्रातकेश्वर, जालेश्वर, श्रीपर्वत,

महालयं तथा गुह्यं कृमिचण्डेश्वरं शुभम्।
गुह्यातिगुह्यं केदारं महाभैरवमेव च॥ २९
अष्टावेतानि स्थानानि सांनिध्याद्धि मम प्रिये।
अविमुक्ते वरारोहे त्रिसंध्यं नात्र संशयः॥ ३०
यानि स्थानानि श्रूयन्ते त्रिषु लोकेषु सुव्रते।
अविमुक्तस्य पादेषु नित्यं संनिहितानि वै॥ ३१
अथोत्तरां कथां दिव्यामविमुक्तस्य शोभने।
स्कन्दो वक्ष्यति माहात्म्यमृषीणां भावितात्मनाम्॥ ३२

महालय तथा शुभदायक कृमिचण्डेश्वर, केदार और महाभैरव—ये आठ स्थान परम गुह्य हैं और मेरी संनिधिसे पवित्र माने जाते हैं। किंतु सुन्दरि! अविमुक्तक्षेत्रमें मैं तीनों संध्याओंमें निवास करता हूँ—इसमें संदेह नहीं है। सुव्रते! तीनों लोकोंमें जो भी पवित्र स्थान सुने जाते हैं, वे सभी अविमुक्त क्षेत्रके चरणोंमें सदा उपस्थित रहते हैं। शोभने! अविमुक्त क्षेत्रकी इसके बादकी दिव्य कथा और माहात्म्य स्कन्द आत्मद्रष्टा ऋषियोंसे कहेंगे॥ २५—३२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अविमुक्त-माहात्म्य नामक एक सौ इक्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८१॥

एक सौ बयासीवाँ अध्याय

अविमुक्त-माहात्म्य

सूत उवाच

कैलासपृष्ठमासीनं स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम्।
पप्रच्छुर्ऋषयः सर्वे सनकाद्यास्तपोधनाः॥ १
तथा राजर्षयः सर्वे ये भक्तास्तु महेश्वरे।
ब्रूहि त्वं स्कन्द भूर्लोके यत्र नित्यं भवः स्थितः॥ २

स्कन्द उवाच

महात्मा सर्वभूतात्मा देवदेवः सनातनः।
घोररूपं समास्थाय दुष्करं देवदानवैः॥ ३
आभूतसम्प्लवं यावत् स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः।
गुह्यानां परमं गुह्यमविमुक्तमिति स्मृतम्॥ ४
अविमुक्ते सदा सिद्धिर्यत्र नित्यं भवः स्थितः।
अस्य क्षेत्रस्य माहात्म्यं यदुक्तं त्वीश्वरेण तु॥ ५
स्थानान्तरं पवित्रं च तीर्थमायतनं तथा।
श्मशानसंस्थितं वेश्म दिव्यमन्तर्हितं च यत्॥ ६
भूर्लोके नैव संयुक्तमन्तरिक्षे शिवालयम्।
अयुक्तास्तु न पश्यन्ति युक्ताः पश्यन्ति चेतसा॥ ७
ब्रह्मचर्यव्रतोपेताः सिद्धा वेदान्तकोविदाः।
आदेहपतनाद् यावत् तत् क्षेत्रं यो न मुञ्चति॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! एक समय सनक आदि तपस्वी ब्रह्मर्षिगण, सकल राजर्षिवृन्द एवं महेश्वरके भक्तगणोंने कैलास पर्वतके शिखरपर बैठे हुए ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ स्कन्दसे पूछा—'स्कन्द! मृत्युलोकमें जहाँ भगवान् शंकर सदैव विराजमान रहते हैं, वह स्थान आप (हमें) बतलाइये॥ १-२॥

स्कन्दने कहा—सभी प्राणियोंके आत्मस्वरूप, महात्मा, सनातन, देवाधिदेव, सामर्थ्यशाली, महादेव देवता एवं दानवोंसे दुष्प्राप्य, घोररूप धारणकर प्रलयपर्यन्त जहाँ स्थिररूपसे निवास करते हैं, उसे अत्यन्त गुप्त अविमुक्त क्षेत्र कहा जाता है। जहाँ शिव सदा स्थित रहते हैं, उस अविमुक्तक्षेत्रमें सिद्धि सदा सुलभ है। इस स्थानका जो माहात्म्य भगवान् शङ्करने स्वयं कहा है, उसे सुनिये। यह स्थान परम पवित्र तीर्थ और देवालय है। महाश्मशानपर स्थित जो दिव्य एवं सुगुप्त मन्दिर है, उसका पृथ्वीलोकसे सम्बन्ध नहीं है। वह शिवका मन्दिर अन्तरिक्षमें है। योगी व्यक्ति ही ज्ञानद्वारा उसका साक्षात्कार कर पाते हैं, किंतु जो योगसे रहित हैं वे उसे नहीं देख पाते। जो ब्रह्मचारी, सिद्ध और वेदान्तको जाननेवाले मृत्युपर्यन्त उस स्थानका परित्याग नहीं करते,

ब्रह्मचर्यव्रतैः सम्यक् सम्यगिष्टं मखैर्भवेत्।
अपापात्मा गतिः सर्वा या तूक्ता च क्रियावताम्॥ ९

यस्तत्र निवसेद् विप्रोऽसंयुक्तात्मासमाहितः।
त्रिकालमपि भुञ्जानो वायुभक्षसमो भवेत्॥ १०

निमेषमात्रमपि यो ह्यविमुक्ते तु भक्तिमान्।
ब्रह्मचर्यसमायुक्तः परमं प्राप्नुयात् तपः॥ ११

योऽत्र मासं वसेद् धीरो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
सम्यक् तेन व्रतं चीर्णं दिव्यं पाशुपतं महत्॥ १२

जन्ममृत्युभयं तीर्त्वा स याति परमां गतिम्।
नैःश्रेयसीं गतिं पुण्यां तथा योगगतिं व्रजेत्॥ १३

न हि योगगतिर्दिव्या जन्मान्तरशतैरपि।
प्राप्यते क्षेत्रमाहात्म्यात् प्रभावाच्छंकरस्य तु॥ १४

ब्रह्महा योऽभिगच्छेत् तु अविमुक्तं कदाचन।
तस्य क्षेत्रस्य माहात्म्याद् ब्रह्महत्या निवर्तते॥ १५

आदेहपतनाद् यावत् क्षेत्रं यो न विमुञ्चति।
न केवलं ब्रह्महत्या प्राक्कृतं च निवर्तते॥ १६

प्राप्य विश्वेश्वरं देवं न स भूयोऽभिजायते।
अनन्यमानसो भूत्वा योऽविमुक्तं न मुञ्चति॥ १७

तस्य देवः सदा तुष्टः सर्वान् कामान् प्रयच्छति।
द्वारं यत् सांख्ययोगानां स तत्र वसति प्रभुः॥ १८

सगणो हि भवो देवो भक्तानामनुकम्पया।
अविमुक्तं परं क्षेत्रमविमुक्ते परा गतिः॥ १९

अविमुक्ते परा सिद्धिरविमुक्ते परं पदम्।
अविमुक्तं निषेवेत देवर्षिगणसेवितम्॥ २०

यदीच्छेन्मानवो धीमान् न पुनर्जायते क्वचित्।
मेरोः शक्तो गुणान् वक्तुं द्वीपानां च तथैव च॥ २१

समुद्राणां च सर्वेषां नाविमुक्तस्य शक्यते।
अन्तकाले मनुष्याणां छिद्यमानेषु मर्मसु॥ २२

वायुना प्रेर्यमाणानां स्मृतिर्नैवोपजायते।
अविमुक्ते ह्यन्तकाले भक्तानामीश्वरः स्वयम्॥ २३

कर्मभिः प्रेर्यमाणानां कर्णजापं प्रयच्छति।
मणिकर्ण्यां त्यजन् देहं गतिमिष्टां व्रजेन्नरः॥ २४

उन्हें वह पवित्र गति प्राप्त होती है, जो ब्रह्मचर्यपूर्वक यज्ञोंद्वारा भलीभाँति अनुष्ठान करनेपर क्रियासम्पन्न व्यक्तियोंके लिये कही गयी है। जो विप्र समाधिसे रहित, योगसे शून्य एवं तीनों समय भोजन करते हुए भी वहाँ निवास करता है वह वायुभक्षीके समान माना जाता है। इस अविमुक्त क्षेत्रमें क्षणभर भी ब्रह्मचर्यपूर्वक निवास करनेवाला भक्तिमान् व्यक्ति परम तपको प्राप्त करता है। जो धीर पुरुष अल्प भोजन करते हुए इन्द्रियोंको वशमें कर एक मासतक यहाँ निवास करता है, वह (मानो) महान् दिव्य पाशुपत-व्रतका अनुष्ठान कर लेता है। वह पुरुष जन्म और मृत्युके भयको पारकर परमगतिको प्राप्त करता है तथा पुण्यदायक मोक्ष एवं योगगतिका अधिकारी हो जाता है। जिस दिव्य योगगतिको सैकड़ों जन्मोंमें भी नहीं प्राप्त किया जा सकता, वह स्थानके माहात्म्य और शंकरके प्रभावसे यहाँ प्राप्त हो जाती है॥ ३—१४॥

ब्रह्महत्या करनेवाला व्यक्ति भी यदि किसी समय इस अविमुक्तक्षेत्रमें चला जाता है तो इस क्षेत्रके प्रभावसे उसकी ब्रह्महत्या निवृत्त हो जाती है। जो मृत्युपर्यन्त इस क्षेत्रका परित्याग नहीं करता, उसकी केवल ब्रह्महत्या ही नहीं, अपितु पहलेके किये हुए पाप भी नष्ट हो जाते हैं। वह भगवान् विश्वेश्वरको प्राप्तकर पुनः संसारमें जन्म नहीं ग्रहण करता। जो अनन्यचित्त हो अविमुक्त क्षेत्रका परित्याग नहीं करता, उसपर भगवान् शङ्कर सदा प्रसन्न रहते हैं और उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। जो सांख्य और योगका द्वारस्वरूप है उस स्थानपर भक्तोंपर अनुकम्पा करनेके लिये सर्वशक्तिसम्पन्न भगवान् शङ्कर गणोंके साथ निवास करते हैं। अविमुक्त क्षेत्र श्रेष्ठ स्थान है। अविमुक्तमें रहनेसे श्रेष्ठ गति प्राप्त होती है। अविमुक्तमें रहनेसे परम सिद्धि प्राप्त होती है और अविमुक्तमें रहनेसे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त होता है। यदि बुद्धिमान् मनुष्य यह चाहता हो कि मेरा पुनर्जन्म न हो तो उसे देवर्षिगणोंसे सेवित अविमुक्त क्षेत्रमें निवास करना चाहिये। मेरु पर्वत, सभी द्वीपों तथा समुद्रोंके गुणोंका वर्णन किया जा सकता है, किंतु अविमुक्त क्षेत्रके गुणोंका वर्णन नहीं किया जा सकता। मृत्युके समय वायुसे प्रेरित मनुष्योंके मर्मस्थानोंके छिन्न हो जानेपर स्मृति नहीं उत्पन्न होती, किंतु अविमुक्तमें अन्तसमय कर्मोंसे प्रेरित भक्तोंके कानमें स्वयं ईश्वर मन्त्रका जाप करते हैं। मनुष्य मणिकर्णिकामें शरीरका

ईश्वरप्रेरितो याति दुष्प्रापामकृतात्मभिः।
अशाश्वतमिदं ज्ञात्वा मानुष्यं बहुकिल्बिषम्॥ २५
अविमुक्तं निषेवेत संसारभयमोचनम्।
योगक्षेमप्रदं दिव्यं बहुविघ्नविनाशनम्॥ २६
विघ्नैश्चालोड्यमानोऽपि योऽविमुक्तं न मुञ्चति।
स मुञ्चति जरां मृत्युं जन्म चैतदशाश्वतम्।
अविमुक्तप्रसादात् तु शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥ २७

त्याग करनेपर इष्टगतिको प्राप्त करता है। जो गति अविशुद्ध आत्माओंद्वारा दुष्प्राप्य है, उसे भी वह ईश्वरकी प्रेरणाद्वारा यहाँ प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य अनेक पापोंसे परिपूर्ण इस मानवयोनिको नश्वर समझकर संसार-भयसे छुटकारा देनेवाले, योगक्षेमके प्रदाता, अनेक विघ्नोंके विनाशक, दिव्य अविमुक्त (काशी)-में निवास करता है तथा अनेक विघ्नोंसे आलोडित होनेपर भी अविमुक्तको नहीं छोड़ता, वह वृद्धावस्था, मृत्यु और इस नश्वर जन्मसे छुटकारा पा लेता है तथा अविमुक्तके माहात्म्यसे शिवसायुज्यको प्राप्त करता है॥ १५—२७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८२॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अविमुक्तमाहात्म्य-वर्णनमें एक सौ बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८२॥



एक सौ तिरासीवाँ अध्याय

अविमुक्तमाहात्म्यके प्रसङ्गमें शिव-पार्वतीका प्रश्नोत्तर

देव्युवाच

हिमवन्तं गिरिं त्यक्त्वा मन्दरं गन्धमादनम्।
कैलासं निषधं चैव मेरुपृष्ठं महाद्युति॥ १
रम्यं त्रिशिखरं चैव मानसं सुमहागिरिम्।
देवोद्यानानि रम्याणि नन्दनं वनमेव च॥ २
सुरस्थानानि मुख्यानि तीर्थान्यायतनानि च।
तानि सर्वाणि संत्यज्य अविमुक्ते रतिः कथम्॥ ३
किमत्र सुमहत् पुण्यं परं गुह्यं वदस्व मे।
येन त्वं रमसे नित्यं भूतसम्पद्गुणैर्युतः॥ ४
क्षेत्रस्य प्रवरत्वं च ये च तत्र निवासिनः।
तेषामनुग्रहः कश्चित् तत्सर्वं ब्रूहि शङ्कर॥ ५

देवी पार्वतीने पूछा— कल्याणकारी पतिदेव! हिमालयपर्वत, मन्दर, गन्धमादन, कैलास, निषध, देदीप्यमान सुमेरुपीठ, मनोहर त्रिशिखर पर्वत एवं अतिशय विशाल मानस पर्वत, रमणीय देव-उद्यान, नन्दनवन, देवस्थानों, मुख्य तीर्थों और मन्दिरों—इन सभी स्थानोंको छोड़कर आपका अविमुक्तक्षेत्रमें इतना अधिक प्रेम क्यों है? यहाँ अतिशय गोपनीय कौन-सा बहुत बड़ा पुण्य है, जिससे आप प्रमथोंके साथ यहाँ नित्य रमण करते हैं। उस क्षेत्रकी तथा वहाँके निवासियोंकी जो श्रेष्ठता है और उन लोगोंपर आपका जो अपूर्व अनुग्रह है—वे सभी बातें मुझे बतलाइये॥ १—५॥

शंकर उवाच

अत्यद्भुतमिमं प्रश्नं यत्त्वं पृच्छसि भामिनि।
तत्सर्वं सम्प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु॥ ६
वाराणस्यां नदी पुण्या सिद्धगन्धर्वसेविता।
प्रविष्टा त्रिपथा गङ्गा तस्मिन् क्षेत्रे मम प्रिये॥ ७
ममैव प्रीतिरतुला कृत्तिवासे च सुन्दरि।
सर्वेषां चैव स्थानानां स्थानं तत्तु यथाधिकम्॥ ८

शिवजी बोले— भामिनि! तुम जो प्रश्न कर रही हो यह अतिशय अद्भुत है। मैं वह सब स्पष्टरूपसे कह रहा हूँ, सुनो। प्रिये! सिद्धों और गन्धर्वोंसे सेवित त्रिपथगामिनी पुण्यशीला नदी श्रीगङ्गाजी मेरे उस क्षेत्र वाराणसीमें प्रविष्ट होती हैं। सुन्दरि! कृत्तिवासलिङ्गपर मेरा अपार प्रेम है, इसीलिये वह स्थान सभी स्थानोंसे

तेन कार्येण सुश्रोणि तस्मिन् स्थाने रतिर्मम।
तस्मिँल्लिङ्गे च सांनिध्यं मम देवि सुरेश्वरि॥ ९
क्षेत्रस्य च प्रवक्ष्यामि गुणान् गुणवतां वरे।
याञ्श्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः॥ १०
यदि पापो यदि शठो यदि वाधार्मिको नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो ह्यविमुक्तं व्रजेद् यदि॥ ११
प्रलये सर्वभूतानां लोके स्थावरजङ्गमे।
न हि त्यक्ष्यामि तत्स्थानं महागणशतैर्वृतः॥ १२
यत्र देवाः सगन्धर्वाः सयक्षोरगराक्षसाः।
वक्त्रं मम महाभागे प्रविशन्ति युगक्षये॥ १३
तेषां साक्षादहं पूजां प्रतिगृह्णामि पार्वति।
सर्वगुह्योत्तमं स्थानं मम प्रियतमं शुभम्॥ १४
धन्याः प्रविष्टाः सुश्रोणि मम भक्ता द्विजातयः।
मद्भक्तिपरमा नित्यं ये मद्भक्तास्तु ते नराः॥ १५
तस्मिन् प्राणान् परित्यज्य गच्छन्ति परमां गतिम्।
सदा यजति रुद्रेण सदा दानं प्रयच्छति॥ १६
सदा तपस्वी भवति अविमुक्तस्थितो नरः।
यो मां पूजयते नित्यं तस्य तुष्याम्यहं प्रिये॥ १७
सर्वदानानि यो दद्यात् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः।
सर्वतीर्थाभिषिक्तश्च स प्रपद्येत मामिह॥ १८
अविमुक्तं सदा देवि ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः।
ते तिष्ठन्तीह सुश्रोणि मद्भक्ताश्च त्रिविष्टपे॥ १९
मत्प्रसादात् तु ते देवि दीव्यन्ति शुभलोचने।
दुर्धराश्चैव दुर्धर्षा भवन्ति विगतज्वराः॥ २०
अविमुक्तं शुभं प्राप्य मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः।
निर्धूतपापा विमला भवन्ति विगतज्वराः॥ २१

पार्वत्युवाच

दक्षयज्ञस्त्वया देव मत्प्रियार्थं निषूदितः।
अविमुक्तगुणानां तु न तृप्तिरिह जायते॥ २२

ईश्वर उवाच

क्रोधेन दक्षयज्ञस्तु त्वत्प्रियार्थं विनाशितः।
महाप्रिये महाभागे नाशितोऽयं वरानने॥ २३
अविमुक्ते यजन्ते तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ २४

श्रेष्ठ है। सुश्रोणि! इसी कारण मेरा उस स्थानपर अधिक राग है तथा सुरेश्वरि! उस लिङ्गमें मेरा सदा निवास रहता है। सभी गुणवानोंमें श्रेष्ठ देवि! अब मैं क्षेत्रके गुणोंका वर्णन करता हूँ जिन्हें सुनकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संदेह नहीं है। पापी, दुष्ट अथवा अधार्मिक मनुष्य भी यदि अविमुक्त (काशी)-में चला जाय तो वह सभी पापोंसे छूट जाता है। सभी प्राणियोंके स्थावर एवं जंगमसे व्याप्त लोकके प्रलयकालमें भी मैं सैकड़ों विशिष्ट गणोंके साथ रहकर उस स्थानको नहीं छोड़ता। महाभागे! जहाँ देवता, गन्धर्व, यक्ष, नाग, राक्षस—सभी युगके नाशके समय मेरे मुखमें प्रवेश कर जाते हैं। पार्वति! उनकी पूजाको मैं साक्षात्-रूपसे ग्रहण करता हूँ। यह शुभदायक अतिशय रहस्यमय स्थान मुझे परम प्रिय है। सुश्रोणि! वहाँ निवास करनेवाले मेरे भक्त द्विजातिगण धन्य हैं। सदा मेरी भक्तिमें तत्पर जो मेरे भक्त हैं वे वहाँ अपने शरीरका त्याग कर परम गतिको प्राप्त होते हैं। जो मनुष्य अविमुक्त क्षेत्र (काशी)-में निवास करता है, वह सदा रुद्रसूक्तसे पूजा करता है, सदा दान देता है और सदा तपस्यामें रत रहता है। प्रिये! जो मेरी नित्य पूजा करता है उससे मैं प्रसन्न रहता हूँ। जो सभी प्रकारका दान करता है, सभी तरहके यज्ञोंमें दीक्षित होता है और सभी तीर्थोंके जलोंके अभिषेकसे सम्पन्न है वही यहाँ मुझे प्राप्त करता है। देवि! जो सदा सुनिश्चित रूपसे अविमुक्त क्षेत्रमें जाते रहते हैं तथा यहाँ निवास करते हैं वे स्वर्गमें भी मेरे भक्त बने रहते हैं। शुभलोचने देवि! मेरी कृपासे वे देदीप्यमान रहते हैं तथा किसीसे पराजित न होनेवाले, पराक्रमशाली और संतापरहित होते हैं। स्थिर निश्चयवाले मेरे भक्त शुभप्रद अविमुक्तको प्राप्तकर पापरहित, निर्मल और उद्वेगशून्य हो जाते हैं॥ ९—२१॥

पार्वतीने कहा—देव! आपने मेरा प्रिय करनेके लिये दक्ष-यज्ञको विनष्ट किया था, किंतु अविमुक्तके गुणोंको सुननेसे मुझे यहाँ संतोष नहीं हो रहा है॥ २२॥

ईश्वर बोले—महाभागे! तुम्हें प्रसन्न करनेके लिये मैंने क्रोधवश दक्ष-यज्ञका विनाश किया था; क्योंकि वरानने! तुम तो मेरी अतिशय प्रियतमा हो, इसीलिये उस यज्ञको नष्ट किया था। जो मेरे भक्त अविमुक्तक्षेत्रमें निश्चयपूर्वक यज्ञ करते हैं उनका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी पुनः संसारमें आगमन नहीं होता॥ २३-२४॥

देव्युवाच

दुर्लभास्तु गुणा देव अविमुक्ते तु कीर्तिताः।
सर्वांस्तान् मम तत्त्वेन कथयस्व महेश्वर॥ २५
कौतूहलं महादेव हृदिस्थं मम वर्तते।
तत्सर्वं मम तत्त्वेन आख्याहि परमेश्वर॥ २६

ईश्वर उवाच

अक्षया ह्यमराश्चैव ह्यदेहाश्च भवन्ति ते।
मत्प्रसादाद् वरारोहे मामेव प्रविशन्ति वै॥ २७
ब्रूहि ब्रूहि विशालाक्षि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि॥ २८

देव्युवाच

अविमुक्ते महाक्षेत्रे अहो पुण्यमहो गुणाः।
न तृप्तिमधिगच्छामि ब्रूहि देव पुनर्गुणान्॥ २९

ईश्वर उवाच

महेश्वरि वरारोहे शृणु तांस्तु मम प्रिये।
अविमुक्ते गुणा ये तु तथान्यानपि तच्छृणु ॥ ३०
शाकपर्णाशिनो दान्ताः सम्प्रक्षाल्या मरीचिपाः।
दन्तोलूखलिनश्चान्ये अश्मकुट्टास्तथा परे॥ ३१
मासि मासि कुशाग्रेण जलमास्वादयन्ति वै।
वृक्षमूलनिकेताश्च शिलाशय्यास्तथा परे॥ ३२
आदित्यवपुषः सर्वे जितक्रोधा जितेन्द्रियाः।
एवं बहुविधैर्धर्मैरन्यत्र चरितव्रताः॥ ३३
त्रिकालमपि भुञ्जाना येऽविमुक्तनिवासिनः।
तपश्चरन्ति वान्यत्र कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
येऽविमुक्ते वसन्तीह स्वर्गे प्रतिवसन्ति ते॥ ३४
मत्समः पुरुषो नास्ति त्वत्समा नास्ति योषिताम्।
अविमुक्तसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति॥ ३५
अविमुक्ते परो योगो ह्यविमुक्ते परा गतिः।
अविमुक्ते परो मोक्षः क्षेत्रं नैवास्ति तादृशम्॥ ३६
परं गुह्यं प्रवक्ष्यामि तत्त्वेन वरवर्णिनि।
अविमुक्ते महाक्षेत्रे यदुक्तं हि मया पुरा॥ ३७

देवीने पूछा—देव! आपने अविमुक्तक्षेत्रके जिन दुर्लभ गुणोंका वर्णन किया है, महेश्वर! आप उन सभी गुणोंका रहस्यपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये। महादेव! मेरे हृदयमें परम आश्चर्य हो रहा है, अतः परमेश्वर! उन सभी विषयोंको मुझे रहस्यपूर्वक बतलाइये॥ २५-२६॥

ईश्वर बोले—सुन्दरि! जो अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करते हैं वे मेरी कृपासे विदेह, अक्षय और अमर हो जाते हैं तथा अन्तमें निश्चय ही मुझमें लीन हो जाते हैं। विशालनेत्रे! कहो, कहो, तुम और क्या सुनना चाहती हो?॥ २७-२८॥

देवीने पूछा—देव! अविमुक्त नामक विशाल क्षेत्रका आश्चर्यजनक पुण्य है एवं आश्चर्यजनक गुण हैं, इनके सुननेसे मुझे तृप्ति नहीं हो रही है, अतः पुनः उन गुणोंका वर्णन कीजिये॥ २९॥

ईश्वरने कहा—महेश्वरि! तुम तो परम सुन्दरी एवं मेरी प्रिया हो, अतः अविमुक्तक्षेत्रमें जो गुण हैं, उन्हें तथा उनके अतिरिक्त अन्यान्य गुणोंको भी सुनो। जो शाक एवं पत्तोंपर जीवन-निर्वाह करनेवाले, संयमी, भलीभाँति स्नानसे निर्मल सूर्य-किरणोंका पान करनेवाले, दाँतरूपी ओखलीसे निर्वाह करनेवाले, पत्थरपर कूटकर भोजन करनेवाले, प्रतिमास कुशके अग्रभागसे जलका आस्वादन करनेवाले, वृक्षकी जड़में निवास करनेवाले, पत्थरपर शयन करनेवाले, आदित्यके समान तेजस्वी शरीरधारी, क्रोधविजयी और जितेन्द्रिय हैं, तथा इसी तरह अनेक प्रकारके धर्मोंसे अन्य स्थानोंमें व्रतका आचरण करनेवाले हैं अथवा तपस्यामें संलग्न हैं, वे सभी तीनों कालोंमें भोजन करनेवाले अविमुक्तनिवासी व्यक्तिकी सोलहवीं कलाकी बराबरी नहीं कर सकते। जो अविमुक्तक्षेत्रमें निवास कर रहे हैं, वे मानो स्वर्गमें ही निवास कर रहे हैं॥ ३०—३४॥

विश्वमें मेरे समान न कोई दूसरा पुरुष है, न तुम्हारे समान कोई स्त्री है और न अविमुक्तके समान कोई अन्य तीर्थस्थान हुआ है, न होगा। अविमुक्तमें परम योग, अविमुक्तमें श्रेष्ठ गति, अविमुक्तमें परम मोक्ष प्राप्त होता है, इसके समान अन्य कोई भी क्षेत्र नहीं है। शोभने! महाक्षेत्र अविमुक्तके विषयमें मैंने जो पूर्वमें कहा है, उस परम रहस्यको मैं यथार्थरूपसे कह रहा हूँ।

जन्मान्तरशतैर्देवि योगोऽयं यदि लभ्यते।
मोक्षः शतसहस्रेण जन्मना लभ्यते न वा॥ ३८
अविमुक्ते न संदेहो मद्भक्तः कृतनिश्चयः।
एकेन जन्मना सोऽपि योगं मोक्षं च विन्दति॥ ३९
अविमुक्ते नरा देवि ये व्रजन्ति सुनिश्चिताः।
ते विशन्ति परं स्थानं मोक्षं परमदुर्लभम्॥ ४०
पृथिव्यामीदृशं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति।
चतुर्मूर्तिः सदा धर्मस्तस्मिन् संनिहितः प्रिये।
चतुर्णामपि वर्णानां गतिस्तु परमा स्मृता॥ ४१

देवि! करोड़ों जन्मोंके पश्चात् मोक्षकी प्राप्ति होती है या नहीं, इसमें भी संदेह है, परंतु यदि कहीं सैकड़ों जन्मोंके बाद ऐसा योग उपलब्ध हो जाय तो दृढ़ निश्चयवाला मेरा भक्त अविमुक्तक्षेत्रमें एक ही जन्ममें योग और मोक्षको प्राप्त कर लेता है। देवि! जो दृढ़ निश्चयसे सम्पन्न पुरुष अविमुक्तक्षेत्रमें जाते हैं वे परम दुर्लभ श्रेष्ठ मोक्षपदको प्राप्त करते हैं। प्रिये! पृथ्वीमें ऐसा क्षेत्र न हुआ है और न होगा। चार मूर्तिवाला धर्म इस क्षेत्रमें सदा निवास करता है। यहाँ चारों वर्णोंकी परम गति कही गयी है॥ ३५—४१॥

देव्युवाच

श्रुता गुणास्ते क्षेत्रस्य इह चान्यत्र ये प्रभो।
वदस्व भुवि विप्रेन्द्राः कं वा यज्ञैर्यजन्ति ते॥ ४२

देवीने पूछा—प्रभो! आपके क्षेत्रके लौकिक और पारलौकिक गुणोंको मैंने सुन लिया। अब यह बतलाइये कि पृथ्वीपर जो श्रेष्ठ विप्रवृन्द हैं वे यज्ञोंद्वारा किसका यजन करते हैं?॥ ४२॥

ईश्वर उवाच

इज्यया चैव मन्त्रेण मामेव हि यजन्ति ये।
न तेषां भयमस्तीति भवं रुद्रं यजन्ति यत्॥ ४३
अमन्त्रो मन्त्रको देवि द्विविधो विधिरुच्यते।
सांख्यं चैवाथ योगश्च द्विविधो योग उच्यते॥ ४४
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते॥ ४५
आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥ ४६
निर्गुणः सगुणो वापि योगश्च कथितो भुवि।
सगुणश्चैव विज्ञेयो निर्गुणो मनसः परः॥ ४७
एतत् ते कथितं देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि॥ ४८

ईश्वरने कहा—जो यज्ञ और मन्त्रद्वारा मेरा ही यजन करते हैं उन लोगोंको कोई भय नहीं रह जाता; क्योंकि वे भव और रुद्रकी आराधना करनेवाले हैं। देवि! मन्त्ररहित और मन्त्रसहित—दोनों प्रकारकी विधियाँ कही गयी हैं। इसी प्रकार सांख्य और योगके भेदसे योग भी दो प्रकारका कहा गया है। जो सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदोंसे शून्य हो सबको एक मानकर सभी प्राणियोंमें स्थित मेरी आराधना करता है वह योगी सदा अपने स्वरूपमें रहता हुआ भी मुझमें ही स्थित रहता है। जो सर्वत्र सबको आत्मसदृश मुझमें अवस्थित देखता है, उससे न तो मैं वियुक्त होता हूँ और न वह मुझसे अलग होता है। भूतलपर निर्गुण और सगुण—दो प्रकारके योग कहे गये हैं। उनमें सगुण योग ही ज्ञानके द्वारा जाना जा सकता है, निर्गुण योग मनसे परे है। देवि! जो तुमने मुझसे पूछा है, वह मैंने तुम्हें बतला दिया॥ ४३—४८॥

देव्युवाच

या भक्तिस्त्रिविधा प्रोक्ता भक्तानां बहुधा त्वया।
तामहं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः कथयस्व मे॥ ४९

देवीने पूछा—आपने भक्तोंकी जो तीन प्रकारकी भक्ति अनेक बार कही है उसे मैं सुनना चाहती हूँ। आप उसका यथार्थरूपमें मुझसे वर्णन कीजिये॥ ४९॥

ईश्वर उवाच

शृणु पार्वति देवेशि भक्तानां भक्तिवत्सले।
प्राप्य सांख्यं च योगं च दुःखान्तं च नियच्छति॥ ५०

ईश्वर (शिव)-ने कहा—भक्तोंके प्रति वात्सल्य भाव रखनेवाली देवेश्वरी पार्वती! सुनो। जो सांख्य और योगको प्राप्तकर दुःखका सर्वथा विनाश कर लेता है,

सदा यः सेवते भिक्षां ततो भवति रञ्जितः।
रञ्जनात् तन्मयो भूत्वा लीयते स तु भक्तिमान्॥ ५१
शास्त्राणां तु वरारोहे बहुकारणदर्शिनः।
न मां पश्यन्ति ते देवि ज्ञानवाक्यविवादिनः॥ ५२
परमार्थज्ञानतृप्ता युक्ता जानन्ति योगिनः।
विद्यया विदितात्मानो योगस्य च द्विजातयः॥ ५३
प्रत्याहारेण शुद्धात्मा नान्यथा चिन्तयेच्च तत्।
तुष्टिं च परमां प्राप्य योगं मोक्षं परं तथा।
त्रिभिर्गुणैः समायुक्तो ज्ञानवान् पश्यतीह माम्॥ ५४
एतत् ते कथितं देवि किमन्यच्छ्रोतुमर्हसि।
भूय एव वरारोहे कथयिष्यामि सुव्रते॥ ५५
गुह्यं पवित्रमथवा यच्चापि हृदि वर्त्तते।
तत् सर्वं कथयिष्यामि शृणुष्वैकमनाः प्रिये॥ ५६

सदा भिक्षासे जीवन-यापन करता है और उसीसे प्रसन्न रहता है तथा इस प्रकार प्रसन्नताके कारण उसीमें तन्मय होकर लीन हो जाता है, वह भक्तिमान् कहलाता है। वरारोहे! जो शास्त्रोंके अनेकों कारणोंपर विचार करनेवाले हैं, वे ज्ञानवाक्योंमें विवाद करनेवाले लोग मेरा दर्शन नहीं कर पाते। देवि! जो परमार्थ-ज्ञानसम्पन्न योगी हैं तथा जो द्विजातिवृन्द योगके ज्ञानसे आत्मज्ञानको प्राप्त कर चुके हैं, वे ही मुझे जान पाते हैं। जिसका आत्मा प्रत्याहारके द्वारा विशुद्ध हो गया है, जो परम संतोष, उत्कृष्ट योग और मोक्षको पाकर अन्यथा विचार नहीं करते और तीनों गुणोंसे सम्पन्न हैं, ऐसे ज्ञानी इस अविमुक्तक्षेत्रमें मेरा साक्षात्कार कर पाते हैं। देवि! यह तो मैंने तुमसे कह दिया, अब तुम और क्या सुनना चाहती हो? उत्तम पातिव्रत धारण करनेवाली सुन्दरि! मैं पुनः उसका वर्णन करूँगा। प्रिये! जो गोपनीय, पावन अथवा हृदयमें वर्तमान है, वह सब मैं कहूँगा, तुम एकाग्रचित्त होकर सुनो॥ ५०—५६॥

देव्युवाच

त्वद्रूपं कीदृशं देव युक्ताः पश्यन्ति योगिनः।
एतं मे संशयं ब्रूहि नमस्ते सुरसत्तम॥ ५७

देवीने पूछा—देव! योगसिद्धिसम्पन्न योगिगण आपके कैसे स्वरूपका दर्शन करते हैं? देवश्रेष्ठ! मैं आपको नमस्कार करती हूँ, आप मेरे इस संदेहपर प्रकाश डालिये॥ ५७॥

श्रीभगवानुवाच

अमूर्तं चैव मूर्तं च ज्योतीरूपं हि तत् स्मृतम्।
तस्योपलब्धिमन्विच्छन् यत्नः कार्यो विजानता॥ ५८
गुणैर्वियुक्तो भूतात्मा एवं वक्तुं न शक्यते।
शक्यते यदि वक्तुं वै दिव्यैर्वर्षशतैर्न वा॥ ५९

श्रीभगवान्ने कहा—मेरा वह ज्योतिःस्वरूप अमूर्त और मूर्त—दो प्रकारका कहा गया है। विद्वान् पुरुषको उसे प्राप्त करनेकी अभिलाषासे प्रयत्न करना चाहिये। जो प्राणी गुणोंसे रहित है, वह इस प्रकार इसका वर्णन नहीं कर सकता। यदि करना चाहे तो सैकड़ों दिव्य वर्षोंमें कर सकता है या नहीं—इसमें भी संदेह है॥ ५८-५९॥

देव्युवाच

किं प्रमाणं तु तत्क्षेत्रं समन्तात् सर्वतो दिशम्।
यत्र नित्यं स्थितो देवो महादेवो गणैर्युतः॥ ६०

देवीने पूछा—जहाँ देवाधिदेव महादेव अपने गणोंके साथ नित्य स्थित रहते हैं, वह क्षेत्र चारों ओर सभी दिशाओंमें कितनी दूरतक विस्तृत है?॥ ६०॥

ईश्वर उवाच

द्वियोजनं तु तत् क्षेत्रं पूर्वपश्चिमतः स्मृतम्।
अर्धयोजनविस्तीर्णं तत् क्षेत्रं दक्षिणोत्तरम्॥ ६१
वरणाऽसी नदी यावत् तावच्छुक्लनदी तु वै।
भीष्मचण्डिकमारभ्य पर्वतेश्वरमन्तिके॥ ६२

भगवान् शङ्करने कहा—वह क्षेत्र पूर्वसे पश्चिमतक दो योजन और दक्षिणसे उत्तरतक आधा योजन विस्तृत बतलाया जाता है। जहाँतक वरुणा और असी नदियाँ हैं, वहाँतक भीष्मचण्डिकसे लेकर पर्वतेश्वरके समीपतक शुक्लनदी है।

गणा यत्रावतिष्ठन्ति सन्नियुक्ता विनायकाः।
कूष्माण्डगजतुण्डश्च जयन्तश्च मदोत्कटाः॥ ६३

सिंहव्याघ्रमुखाः केचिद् विकटाः कुब्जवामनाः।
यत्र नन्दी महाकालश्चण्डघण्टो महेश्वरः॥ ६४

दण्डचण्डेश्वरश्चैव घण्टाकर्णो महाबलः।
एते चान्ये च बहवो गणाश्चैव गणेश्वराः॥ ६५

महोदरा महाकाया वज्रशक्तिधरास्तथा।
रक्षन्ति सततं देवि ह्यविमुक्तं तपोवनम्।
द्वारे द्वारे च तिष्ठन्ति शूलमुद्गरपाणयः॥ ६६

सुवर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां चैलाजिनपयस्विनीम्।
वाराणस्यां तु यो दद्यात् सवत्सां कांस्यभाजनाम्॥ ६७

गां दत्त्वा तु वरारोहे ब्राह्मणे वेदपारगे।
आसप्तमं कुलं तेन तारितं नात्र संशयः॥ ६८

यो दद्याद् ब्राह्मणे किञ्चित् तस्मिन् क्षेत्रे वरानने।
कनकं रजतं वस्त्रमन्नाद्यं बहुविस्तरम्॥ ६९

अक्षयं चाव्ययं चैव स्यातां तस्य सुलोचने।
शृणु तत्त्वेन तीर्थस्य विभूतिं व्युष्टिमेव च॥ ७०

तत्र स्नात्वा महाभागे भवन्ति नीरुजा नराः।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः॥ ७१

तदवाप्नोति धर्मात्मा तत्र स्नात्वा वरानने।
बहुस्वल्पं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे॥ ७२

शुभां गतिमवाप्नोति अग्निवच्चैव दीप्यते।
वाराणसीजाह्नवीभ्यां संगमे लोकविश्रुते॥ ७३

दत्त्वान्नं च विधानेन न स भूयोऽभिजायते।
एतत् ते कथितं देवि तीर्थस्य फलमुत्तमम्॥ ७४

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तीर्थस्य फलमुत्तमम्।
उपवासं तु यः कृत्वा विप्रान् संतर्पयेन्नरः।
सौत्रामणेश्च यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ७५

एकाहारस्तु यस्तिष्ठेन्मासं तत्र वरानने।
यावज्जीवकृतं पापं सहसा तस्य नश्यति॥ ७६

जहाँ कूष्माण्ड, गजतुण्ड, जयन्त, उत्कट पराक्रमी विनायकगण भलीभाँति नियुक्त होकर विराजमान रहते हैं। उनमें कुछ सिंह एवं बाघके-से मुखवाले, कुछ भयंकर, कुबड़े और वामन (बौने) हैं। जहाँ नन्दी, महाकाल, चण्डघण्ट, महेश्वर, दण्डचण्डेश्वर, महाबली घण्टाकर्ण—ये एवं अन्य अनेक गणसमूह और गणेश्वरवृन्द विद्यमान रहते हैं। देवि! ये सभी विशाल उदरवाले एवं विशालकाय हैं तथा हाथमें वज्र और शक्ति धारण करके इस अविमुक्त तपोवनकी सदा रक्षा करते हैं। ये सभी हाथमें शूल और मुद्गर धारण कर प्रत्येक द्वारपर स्थित रहते हैं॥ ६१—६६॥

वरारोहे! जो स्वर्णजटित सींगोंवाली, चाँदीसे युक्त खुरोंवाली, सुन्दर वस्त्र और मृगचर्मसे सुशोभित, दूध देनेवाली, कांसदोहनीसे युक्त सवत्सा गौका वाराणसीमें वेदपारङ्गत ब्राह्मणको दान करता है, वह अपनी सात पीढ़ियोंको तार देता है—इसमें संदेह नहीं है। वरानने! जो उस क्षेत्रमें थोड़ा अथवा अधिक मात्रामें सुवर्ण, रजत, वस्त्र, अन्न आदि ब्राह्मणको दान करता है, सुलोचने! उसका वह दान अक्षय एवं अविनाशी हो जाता है। महाभागे! इस तीर्थकी वास्तविक विभूति और विशिष्ट फलको सुनो। वहाँ स्नान कर मनुष्य रोगरहित हो जाते हैं। वरानने! दस अश्वमेध याग करनेसे मनुष्य जो फल प्राप्त करता है, वह उस धर्मात्मा व्यक्तिको वहाँ स्नान करनेसे ही प्राप्त हो जाता है। जो वेदके पारङ्गत ब्राह्मणको अधिक या स्वल्प—जो भी अपनी शक्तिके अनुसार दान देता है, उस दानसे उसे शुभ गति प्राप्त होती है और वह अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। जो संसारमें प्रसिद्ध वरुणा-असी और गङ्गाके संगमपर विधानपूर्वक अन्नका दान देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। देवि! मैंने इस तीर्थका यह उत्तम फल तुम्हें बतला दिया॥ ६७—७४॥

अब मैं पुनः इस तीर्थका अन्य उत्तम फल बतला रहा हूँ। जो मनुष्य इस तीर्थमें उपवासपूर्वक विप्रोंको भलीभाँति तृप्त करता है, वह मानव सौत्रामणि नामक यज्ञका फल प्राप्त करता है। वरानने! जो वहाँ एक मासतक एक समय भोजन कर जीवन व्यतीत करता है, उसका जीवनपर्यन्त किया हुआ पाप अनायास ही नष्ट हो

अग्निप्रवेशं ये कुर्युरविमुक्ते विधानतः।
प्रविशन्ति मुखं ते मे निःसंदिग्धं वरानने॥ ७७
कुर्वन्त्यनशनं ये तु मद्भक्ताः कृतनिश्चयाः।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि॥ ७८
अर्चयेद् यस्तु मां देवि अविमुक्ते तपोवने।
तस्य धर्मं प्रवक्ष्यामि यदवाप्नोति मानवः॥ ७९
दशाश्वमेधिकं पुण्यं लभते नात्र संशयः।
दशसौवर्णिकं पुष्पं योऽविमुक्ते प्रयच्छति॥ ८०
अग्निहोत्रफलं धूपे गन्धदाने तथा शृणु।
भूमिदानेन तत्तुल्यं गन्धदानफलं स्मृतम्॥ ८१
सम्मार्जने पञ्चशतं सहस्रमनुलेपने।
मालया शतसाहस्रमनन्तं गीतवाद्यतः॥ ८२

देव्युवाच

अत्यद्भुतमिदं देवं स्थानमेतत् प्रकीर्तितम्।
रहस्यं श्रोतुमिच्छामि यदर्थं त्वं न मुञ्चसि॥ ८३

ईश्वर उवाच

आसीत् पूर्वं वरारोहे ब्रह्मणस्तु शिरो वरम्।
पञ्चमं शृणु सुश्रोणि जातं काञ्चनसप्रभम्॥ ८४
ज्वलत् तत् पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः।
तदेवमब्रवीद् देवि जन्म जानामि ते ह्यहम्॥ ८५
ततः क्रोधपरीतेन संरक्तनयनेन च।
वामाङ्गुष्ठनखाग्रेण च्छिन्नं तस्य शिरो मया॥ ८६

ब्रह्मोवाच

यदा निरपराधस्य शिरश्छिन्नं त्वया मम।
तस्माच्छापसमायुक्तः कपाली त्वं भविष्यसि।
ब्रह्महत्याकुलो भूत्वा चर तीर्थानि भूतले॥ ८७
ततोऽहं गतवान् देवि हिमवन्तं शिलोच्चयम्।
तत्र नारायणः श्रीमान् मया भिक्षां प्रयाचितः॥ ८८
ततस्तेन स्वकं पार्श्वं नखाग्रेण विदारितम्।
स्रवतो महती धारा तस्य रक्तस्य निःसृता॥ ८९
प्रयाता सातिविस्तीर्णा योजनार्धशतं तदा।
न सम्पूर्णं कपालं तु घोरमद्भुतदर्शनम्॥ ९०

जाता है। वरानने! जो इस अविमुक्तक्षेत्रमें विधानपूर्वक अग्निमें प्रवेश कर जाते हैं, वे निश्चय ही मेरे मुखमें प्रवेश करते हैं, जो मेरे भक्त यहाँ दृढ़ निश्चयपूर्वक निराहार रहते हैं उनका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी पुनः संसारमें आगमन नहीं होता। देवि! जो इस अविमुक्त तपोवनमें मेरी पूजा करता है, उसका धर्म बतला रहा हूँ, जो उस मनुष्यको प्राप्त होता है। वह निःसंदेह दस अश्वमेध यागके फलको प्राप्त करता है। जो इस अविमुक्तमें दस सुवर्णनिर्मित पुष्पका दान करता है तथा वहाँ धूप दान करता है, उसे अग्निहोत्रका फल प्राप्त होता है। अब गन्धदानका फल सुनो। भूमिदानके समान ही गन्ध-दानका फल कहा गया है। भलीभाँति स्नान करनेपर पाँच सौ, चन्दन लगानेसे एक हजार, माला समर्पण करनेसे एक लाख और गाने-बजानेसे अनन्त अग्निहोत्रके फलकी प्राप्ति होती है॥ ७५—८२॥

देवीने पूछा— देव! जैसा आपने बतलाया है, सचमुच ही यह स्थान अतिशय अद्भुत है। अब मैं उस रहस्यको सुनना चाहती हूँ, जिसके कारण आप इस स्थानको नहीं छोड़ते॥ ८३॥

ईश्वरने कहा— सुन्दर कटिभागवाली वरारोहे! सुनो। प्राचीनकालमें ब्रह्माका सुवर्णके समान कान्तिमान् पाँचवाँ सुन्दर सिर उत्पन्न हुआ। देवि! उस महात्माके उत्पन्न हुए उस पाँचवें देदीप्यमान मुखने इस प्रकार कहा कि मैं तुम्हारा जन्म जानता हूँ। यह सुनकर मैं क्रोधसे परिव्याप्त हो गया और मेरी आँखें लाल हो गयीं। तब मैंने बायें अँगूठेके नखके अग्रभागसे उनके सिरको काट दिया॥ ८४—८६॥

ब्रह्मा बोले— आपने बिना अपराधके ही मेरा सिर काट दिया है, अतः आप भी शापसे युक्त हो कपाली हो जायँगे। साथ ही आप ब्रह्महत्यासे व्याकुल होकर भूतलपर तीर्थोंमें भ्रमण कीजिये। देवि! तब मैं हिमालय पर्वतपर चला गया और वहाँ मैंने श्रीमान् नारायणसे भिक्षाकी याचना की। इसके बाद उन्होंने नखके अग्रभागसे अपने पार्श्वभागको विदीर्ण कर दिया, तब उससे रक्तकी विपुल धारा प्रवाहित हुई। वह धारा बहती हुई पचास योजनतक परिव्याप्त हो गयी, किंतु भयंकर दीखनेवाला अद्भुत कपाल उससे नहीं भरा।

दिव्यं वर्षसहस्रं तु सा च धारा प्रवाहिता।
प्रोवाच भगवान् विष्णुः कपालं कुत ईदृशम्॥ ९१
आश्चर्यभूतं देवेश संशयो हृदि वर्तते।
कुतश्च सम्भवो देव सर्वं मे ब्रूहि पृच्छतः॥ ९२

देवदेव उवाच

श्रूयतामस्य हे देव कपालस्य तु सम्भवः।
शतं वर्षसहस्राणां तपस्तप्त्वा सुदारुणम्॥ ९३
ब्रह्मासृजद् वपुर्दिव्यमद्भुतं लोमहर्षणम्।
तपसश्च प्रभावेण दिव्यं काञ्चनसंनिभम्॥ ९४
ज्वलत् तत् पञ्चमं शीर्षं जातं तस्य महात्मनः।
निकृत्तं तन्मया देव तदिदं पश्य दुर्जयम्॥ ९५
यत्र यत्र च गच्छामि कपालं तत्र गच्छति।
एवमुक्तस्ततो देवः प्रोवाच पुरुषोत्तमः॥ ९६

श्रीभगवानुवाच

गच्छ गच्छ स्वकं स्थानं ब्रह्मणस्त्वं प्रियं कुरु।
तस्मिन् स्थास्यति भद्रं ते कपालं तस्य तेजसा॥ ९७
ततः सर्वाणि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च।
गतोऽस्मि पृथुलश्रोणि न क्वचित् प्रत्यतिष्ठत॥ ९८
ततोऽहं समनुप्राप्तो ह्यविमुक्ते महाशये।
अवस्थितः स्वके स्थाने शापश्च विगतो मम॥ ९९
विष्णुप्रसादात् सुश्रोणि कपालं तत् सहस्रधा।
स्फुटितं बहुधा जातं स्वप्नलब्धं धनं यथा॥ १००
ब्रह्महत्यापहं तीर्थं क्षेत्रमेतन्मया कृतम्।
कपालमोचनं देवि देवानां प्रथितं भुवि॥ १०१
कालो भूत्वा जगत् सर्वं संहरामि सृजामि च।
ततस्तत् पतितं तत्र शापश्च विगतो मम॥ १०२
कपालमोचनं तीर्थमभूद्धत्याविनाशनम्।
मद्भक्तास्तत्र गच्छन्ति विष्णुभक्तास्तथैव च॥ १०३
तत्रस्थोऽस्मि जगत् सर्वं सुकरोमि सुरेश्वरि।
देवेशि सर्वगुह्यानां स्थानं प्रियतरं मम॥ १०४
ये भक्ता भास्करे देवि लोकनाथे दिवाकरे।
तत्रस्थो यस्त्यजेद् देहं मामेव प्रविशेत् तु सः॥ १०५

इस प्रकार वह धारा हजार दिव्य वर्षोंतक अनवरत प्रवाहित होती रही। तब भगवान् विष्णुने पूछा कि 'ऐसा अद्भुत कपाल आपको कहाँसे प्राप्त हुआ है? देवेश! मेरे हृदयमें संदेह हो रहा है। देव! यह कहाँसे उत्पन्न हुआ? मुझ प्रश्नकर्ताको सभी बातें बतलाइये'॥ ८७—९२॥

(तब) देवाधिदेव शंकर बोले— देव! आप इस कपालकी उत्पत्तिका विवरण सुनिये। ब्रह्माने सौ हजार वर्षोंतक अतिशय घोर तपस्या कर दिव्य रोमाञ्चकारी अद्भुत शरीरकी रचना की। उन महात्मा ब्रह्माके शरीरमें तपस्याके प्रभावसे सुवर्णके समान देदीप्यमान पाँचवाँ सिर उत्पन्न हुआ। देव! मैंने उसे काट दिया। यह वही दुर्जय कपाल है। अब देखिये, मैं जहाँ-जहाँ जाता हूँ, वहाँ यह कपाल भी मेरे पीछे लगा रहता है। (इस प्रकार) ऐसा कहे जानेपर पुरुषोत्तमभगवान्ने तब कहा— ॥ ९३—९६॥

श्रीभगवान् बोले— जाइये, आप अपने स्थानको लौट जाइये और ब्रह्माको प्रसन्न कीजिये। उनके तेजसे आपका यह श्रेष्ठ कपाल वहीं स्थित हो जायगा। पृथुल-श्रोणि! इसके बाद मैं सभी तीर्थों और पुण्य क्षेत्रोंमें गया, परंतु यह कहीं भी ठहर न सका। तत्पश्चात् मैं अतिशय प्रभावशाली अविमुक्तक्षेत्रमें पहुँचा। वह वहाँ अपने स्थानपर स्थित हो गया और मेरा शाप समाप्त हो गया। सुश्रोणि! विष्णुकी कृपासे वह कपाल स्वप्नमें प्राप्त हुए धनके समान हजारों टुकड़ोंमें टूट-फूट गया। देवि! मैंने इस तीर्थको ब्रह्महत्याको दूर करनेवाला बना दिया। यह भूतलपर देवताओंके लिये कपालमोचनतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। मैं कालके रूपमें उत्पन्न होकर सम्पूर्ण विश्वका संहार और सृजन करता हूँ। इस प्रकार वह कपाल इस क्षेत्रमें गिरा और मेरा शाप नष्ट हुआ। इसी कारण यह कपालमोचनतीर्थ ब्रह्महत्याका विनाशक हुआ। सुरेश्वरि! मैं वहीं स्थित हूँ और सम्पूर्ण विश्वका कल्याण करता हूँ। देवेशि! सभी गुप्त स्थानोंमें यह अविमुक्तक्षेत्र मेरे लिये प्रियतर है। देवि! वहाँ मेरे भक्त, विष्णुभक्त और जो लोकनाथ प्रभाशाली सूर्यके भक्त हैं, वे सभी जाते हैं। जो वहाँ रहकर शरीरका त्याग करता है, वह मुझमें ही प्रविष्ट हो जाता है॥ ९७—१०५॥

देव्युवाच

अत्यद्भुतमिदं देव यदुक्तं पद्मयोनिना।
त्रिपुरान्तकरस्थानं गुह्यमेतन्महाद्युते॥ १०६
यान्यन्यानि सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
यत्र तिष्ठति देवेशो यत्र तिष्ठति शङ्करः॥ १०७
गङ्गा तीर्थसहस्राणां तुल्या भवति वा न वा।
त्वमेव भक्तिर्देवेश त्वमेव गतिरुत्तमा॥ १०८
ब्रह्मादीनां तु ते देव गतिरुक्ता सनातनी।
श्राव्यते यद् द्विजातीनां भक्तानामनुकम्पया॥ १०९

देवीने कहा— महाकान्तिशाली देव! ब्रह्माद्वारा कथित यह विषय अत्यद्भुत है। त्रिपुरका विनाश करनेवाले शिवजीका यह प्रिय गुप्त स्थान है। अन्य जितने उत्तम तीर्थस्थान हैं, वे सभी उस स्थानकी सोलहवीं कलाकी समता नहीं कर सकते। जहाँ देवेश भगवान् शंकर निवास करते हैं तथा जिससे हजारों तीर्थोंसे श्रेष्ठ गङ्गाकी तुलना नहीं हो सकती, वह भी यहीं स्थित है। देवेश! आप ही (ज्ञानात्मिका) भक्ति हैं और आप ही उत्तम गति हैं। देव! आपने ब्रह्मा आदिकी जो सनातनी गति बतलायी है, जिसे भक्त एवं द्विजातिगण सुनते हैं, वह सब भी आपकी ही अनुकम्पा है॥ १०६—१०९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्ये त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अविमुक्तमाहात्म्यमें एक सौ तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८३॥

एक सौ चौरासीवाँ अध्याय

काशीकी महिमाका वर्णन

महेश्वर उवाच

सेवितं बहुभिः सिद्धैरपुनर्भवकाङ्क्षिभिः।
विदित्वा तु परं क्षेत्रमविमुक्तनिवासिनाम्॥ १
तद् गुह्यं देवदेवस्य तत् तीर्थं तत् तपोवनम्।
परं स्थानं तु ते यान्ति सम्भवन्ति न ते पुनः॥ २
ज्ञाने विहितनिष्ठानां परमानन्दमिच्छताम्।
या गतिर्विहिता सद्भिः साविमुक्ते मृतस्य तु॥ ३
भवस्य प्रीतिरतुला ह्यविमुक्ते ह्यनुत्तमा।
असंख्येयं फलं तत्र ह्यक्षया च गतिर्भवेत्॥ ४
परं गुह्यं समाख्यातं श्मशानमिति संज्ञितम्।
अविमुक्तं न सेवन्ते वञ्चितास्ते नरा भुवि॥ ५
अविमुक्ते स्थितैः पुण्यैः पांशुभिर्वायुनेरितैः।
अपि दुष्कृतकर्माणो यास्यन्ति परमां गतिम्॥ ६
अविमुक्तगुणान् वक्तुं देवदानवमानवैः।
न शक्यतेऽप्रमेयत्वात् स्वयं यत्र भवः स्थितः॥ ७

भगवान् शिवने कहा— अविमुक्त-निवासियोंके इस परम श्रेष्ठ स्थानको जानकर पुनः संसारमें जन्मकी आकाङ्क्षा न रखनेवाले अनेक सिद्धगणोंने इस स्थानमें निवास किया है। महादेवका यह अतिशय गुह्य स्थान श्रेष्ठ तीर्थ तथा तपोवनस्वरूप है। जो लोग उस उत्तम क्षेत्रमें जाते हैं, वे पुनः संसारमें जन्म नहीं ग्रहण करते। सत्पुरुषोंद्वारा परमानन्दको प्राप्त करनेके इच्छुक तथा ज्ञानमें निष्ठा रखनेवाले व्यक्तियोंकी जो गति बतलायी गयी है, वह अविमुक्तक्षेत्रमें मरनेवालेको प्राप्त होती है। इस अविमुक्तक्षेत्रमें भगवान् शंकरकी अनुपम और अनुत्तम प्रीति है, अतः यहाँ जानेसे असंख्य फल और अक्षय गतिकी प्राप्ति होती है। (महा) श्मशानके* नामसे प्रसिद्ध यह अविमुक्त परम गुह्य कहा गया है। भूतलपर जो मनुष्य इसका सेवन नहीं करते, वे वस्तुतः ठगे गये हैं। अविमुक्तक्षेत्रमें स्थित वायुद्वारा उड़ायी गयी पवित्र धूलके स्पर्शसे अतिशय दुष्कर्म करनेवाले व्यक्ति भी परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। जहाँ स्वयं भगवान् शंकर निवास करते हैं, उस अविमुक्तकी अनुपम महिमा होनेके कारण देवता, दानव और मनुष्य उसका वर्णन नहीं कर सकते।

* काशीखण्ड एवं काशीरहस्यादिके अनुसार प्रलयकालमें सभी प्राणियोंके शमन करनेसे इसका नाम महाश्मशान है।

अनाहिताग्निर्नो यष्टा नोऽशुचिस्तस्करोऽपि वा।
अविमुक्ते वसेद् यस्तु स वसेदीश्वरालये॥ ८
तत्र नापुण्यकृत् कश्चित् प्रसादादीश्वरस्य च।
अज्ञानाज्ज्ञानतो वापि स्त्रिया वा पुरुषेण वा॥ ९
यत्किञ्चिदशुभं कर्म कृतं मानुषबुद्धिना।
अविमुक्ते प्रविष्टस्य तत्सर्वं भस्मसाद् भवेत्॥ १०

जो अग्निका आधान नहीं करता, यज्ञ नहीं करता, अपवित्र या चोर है, वह भी यदि अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करता है तो मानो महेश्वरके लोकमें ही निवास कर रहा है। महेश्वरकी कृपासे वहाँ कोई भी पापकर्म नहीं करता। स्त्री अथवा पुरुषद्वारा मानव-बुद्धिके अनुसार जान या अनजानमें भी जो कुछ दुष्कर्म किया होता है, वह सब अविमुक्तक्षेत्रमें प्रवेश करते ही भस्म हो जाता है॥ ८—१०॥

सरितः सागराः शैलास्तीर्थान्यायतनानि च।
भूतप्रेतपिशाचाश्च गणा मातृगणास्तथा॥ ११
श्मशानिकपरीवाराः प्रियास्तस्य महात्मनः।
न ते मुञ्चन्ति भूतेशं तान् भवस्तु न मुञ्चति॥ १२
रमते च गणैः सार्धमविमुक्ते स्थितः प्रभुः।
दृष्ट्वैतान् भीतकृपणान् पापदुष्कृतकारिणः॥ १३
अनुकम्पया तु देवस्य प्रयान्ति परमां गतिम्।
भक्तानुकम्पी भगवांस्तिर्यग्योनिगतानपि॥ १४
नयत्येव वरं स्थानं यत्र यान्ति च याज्ञिकाः।
भार्गवाङ्गिरसः सिद्धा ऋषयश्च महाव्रताः॥ १५
अविमुक्ताग्निना दग्धा अग्नौ तूलमिवाहितम्।
न सा गतिः कुरुक्षेत्रे गङ्गाद्वारे च पुष्करे॥ १६
सा गतिर्विहिता पुंसामविमुक्तनिवासिनाम्।
तिर्यग्योनिगताः सत्त्वा येऽविमुक्ते कृतालयाः।
कालेन निधनं प्राप्तास्ते यान्ति परमां गतिम्॥ १७
मेरुमन्दरमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः।
अविमुक्तं समासाद्य तत् सर्वं व्रजति क्षयम्॥ १८

नदियाँ, सागर, पर्वत, तीर्थ, देवालय, भूत, प्रेत, पिशाच, शिवगण, मातृगण तथा श्मशान-निवासी—ये सभी उन महात्मा शिवको प्रिय हैं, अतः न तो वे भूतपति शिवको छोड़ते हैं और न शिव उनका परित्याग करते हैं। अविमुक्तमें स्थित वे प्रभु अपने प्रमथगणोंके साथ रमण करते हैं। भयसे त्रस्त, पापी, दुराचाररत अथवा तिर्यग्योनिमें ही क्यों न उत्पन्न हुए हों, वे सभी अविमुक्तको देखकर महादेवकी अनुकम्पासे परम गतिको प्राप्त हो जाते हैं। भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले भगवान् शंकर उन सभीको ऐसे श्रेष्ठ स्थानपर पहुँचा देते हैं, जहाँ यज्ञ करनेवाले, भृगुवंशी, अंगिरागोत्री, सिद्ध तथा महाव्रती ऋषिगण जाते हैं। उनके पाप अग्निमें डाली गयी रूईके समान अविमुक्तकी अग्निसे नष्ट हो जाते हैं। अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करनेवाले पुरुषोंकी जो गति बतलायी गयी है, वह गति कुरुक्षेत्र, गङ्गाद्वार और पुष्कर तीर्थमें नहीं मिलती। तिर्यग्योनिमें उत्पन्न हुए जो जीव अविमुक्तमें निवास करते हैं, वे समयानुसार मृत्युको प्राप्त होनेपर परमगतिको प्राप्त करते हैं। चाहे मेरु या मन्दराचलके बराबर भी पापकर्मकी राशि क्यों न हो, वह सब-का-सब पाप अविमुक्तमें आते ही नष्ट हो जाता है॥ ११—१८॥

श्मशानमिति विख्यातमविमुक्तं शिवालयम्।
तद् गुह्यं देवदेवस्य तत् तीर्थं तत् तपोवनम्॥ १९
तत्र ब्रह्मादयो देवा नारायणपुरोगमाः।
योगिनश्च तथा साध्या भगवन्तं सनातनम्॥ २०
उपासन्ते शिवं मुक्ता मद्भक्ता मत्परायणाः।
या गतिर्ज्ञानतपसां या गतिर्यज्ञयाजिनाम्॥ २१
अविमुक्ते मृतानां तु सा गतिर्विहिता शुभा।
संहर्तारश्च कर्तारस्तस्मिन् ब्रह्मादयः सुराः॥ २२

शिवजीका यह निवासस्थान अविमुक्त श्मशानके नामसे विख्यात है। उन देवाधिदेवका वह परम गुप्त स्थान है, वह तीर्थ है और वह तपोवन है। वहाँ नारायणसहित ब्रह्मा आदि देवगण, योगिसमूह, साध्यगण तथा जीवन्मुक्त शिवपरायण शिवभक्त सनातन भगवान् शिवकी उपासनामें रत रहते हैं। ज्ञानसम्पन्न तपस्वियों तथा यज्ञोंका विधानपूर्वक अनुष्ठान करनेवालोंको जो गति प्राप्त होती है, वही शुभ गति अविमुक्तमें मरनेवालोंके लिये कही गयी है। जगत्की सृष्टि करनेवाले तथा जगत्का संहार करनेवाले ब्रह्मा

सम्राड्विराणमया लोका जायन्ते ह्यपुनर्भवाः।
महर्जनस्तपश्चैव सत्यलोकस्तथैव च॥ २३
मनसः परमो योगो भूतभव्यभवस्य च।
ब्रह्मादिस्थावरान्तस्य योनिः सांख्यादिमोक्षयोः॥ २४
येऽविमुक्तं न मुञ्चन्ति नरास्ते नैव वञ्चिताः।
उत्तमं सर्वतीर्थानां स्थानानामुत्तमं च यत्॥ २५
क्षेत्राणामुत्तमं चैव श्मशानानां तथैव च।
तटाकानां च सर्वेषां कूपानां स्त्रोतसां तथा॥ २६
शैलानामुत्तमं चैतत् तडागानां तथोत्तमम्।
पुण्यकृद्भवभक्तैश्च ह्यविमुक्तं तु सेव्यते॥ २७
ब्रह्मणः परमं स्थानं ब्रह्मणाध्यासितं च यत्।
ब्रह्मणा सेवितं नित्यं ब्रह्मणा चैव रक्षितम्॥ २८
अत्रैव सप्तभुवनं काञ्चनो मेरुपर्वतः।
मनसः परमो योगः प्रीत्यर्थं ब्रह्मणः स तु॥ २९
ब्रह्मा तु तत्र भगवांस्त्रिसंध्यं चेश्वरे स्थितः।
पुण्यात् पुण्यतमं क्षेत्रं पुण्यकृद्भिर्निषेवितम्॥ ३०
आदित्योपासनं कृत्वा विप्राश्चामरतां गताः।
अन्येऽपि ये त्रयो वर्णा भवभक्त्या समाहिताः॥ ३१
अविमुक्ते तनुं त्यक्त्वा गच्छन्ति परमां गतिम्।
अष्टौ मासान् विहारस्य यतीनां संयतात्मनाम्॥ ३२
एकत्र चतुरो मासान् मासौ वा निवसेत् पुनः।
अविमुक्ते प्रविष्टानां विहारस्तु न विद्यते॥ ३३
न देहो भविता तत्र दृष्टं शास्त्रे पुरातने।
मोक्षो ह्यसंशयस्तत्र पञ्चत्वं तु गतस्य वै॥ ३४
स्त्रियः पतिव्रता याश्च भवभक्ताः समाहिताः।
अविमुक्ते विमुक्तास्ता यास्यन्ति परमां गतिम्॥ ३५

अन्या याः कामचारिण्यः स्त्रियो भोगपरायणाः।
कालेन निधनं प्राप्ता गच्छन्ति परमां गतिम्॥ ३६

यत्र योगश्च मोक्षश्च प्राप्यते दुर्लभो नरैः।
अविमुक्तं समासाद्य नान्यद् गच्छेत् तपोवनम्॥ ३७

आदि देवगण एवं सम्राट्, विराट् आदि मानवसमूह एवं महः, जन, तप और सत्यलोकमें निवास करनेवाले प्राणी अविमुक्तक्षेत्रमें आकर पुनर्जन्मसे छुटकारा पा जाते हैं। यह मनका तथा भूत, भविष्य और वर्तमानका, परम योग है और ब्रह्मासे लेकर स्थावरपर्यन्त सभी प्राणिसमूहका तथा सांख्य आदि मोक्षका उत्पत्तिस्थान है। जो मनुष्य इस अविमुक्तका परित्याग नहीं करते, वे वञ्चित नहीं हैं। यह अविमुक्तक्षेत्र सभी तीर्थों, स्थानों, क्षेत्रों, श्मशानों, सरोवरों, सभी कूपों, नालों, पर्वतों और जलाशयोंमें उत्तम है। पुण्यकर्मा शिव-भक्त अविमुक्तका ही सेवन करते हैं॥ १९—२७॥

यह ब्रह्माका परमस्थान, ब्रह्माद्वारा अध्यासित, ब्रह्माद्वारा सदा सेवित और ब्रह्माद्वारा रक्षित है। ब्रह्माकी प्रसन्नताके लिये यहाँ सातों भुवन और सुवर्णमय सुमेरु पर्वत है। यहाँ मनका परम योग प्राप्त होता है। इस क्षेत्रमें भगवान् ब्रह्मा तीनों सन्ध्याओंमें शिवके ध्यानमें लीन रहते हैं। यह क्षेत्र पुण्यसे भी पुण्यतम है और पुण्यात्माओंद्वारा सेवित है। यहाँ आदित्यकी उपासना करके विप्रगण अमर हो गये हैं। जो अन्य तीनों वर्णोंके प्राणी हैं, वे भी शिव-भक्तिसे युक्त हो अविमुक्तक्षेत्रमें शरीरका परित्याग कर परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं। संयत आत्मावाले यतियोंके लिये आठ मासोंका विहार विहित है। वे (चातुर्मासमें) एक स्थानमें केवल चार मास या दो मासतक निवास कर सकते हैं, किंतु अविमुक्तमें निवास करनेवाले यतियोंके लिये (यह) विहारका विधान नहीं है। (वे काशीमें सदा निवास कर सकते हैं।) प्राचीन शास्त्रमें ऐसा देखा गया है कि यहाँ मरनेवालेका पुनर्जन्म नहीं होता, वह निस्संदेह मोक्षको प्राप्त हो जाता है। जो पतिव्रता स्त्रियाँ शिवजीकी भक्तिमें लीन हैं, वे इस अविमुक्तमें शरीरका त्याग कर परमगतिको प्राप्त हो जाती हैं। इनसे अतिरिक्त जो कामपरायण एवं भोगमें आसक्त स्त्रियाँ हैं, वे इस क्षेत्रमें यथासमय मृत्युको प्राप्त होकर परम गतिको प्राप्त हो जाती हैं॥ २८—३६॥

जहाँ मनुष्य दुर्लभ योग और मोक्षको प्राप्त करते हैं, उस अविमुक्तक्षेत्रमें पहुँचकर किसी अन्य तपोवनमें जानेकी आवश्यकता नहीं है।

सर्वात्मना तपः सेव्यं ब्राह्मणैर्नात्र संशयः।
अविमुक्ते वसेद् यस्तु मम तुल्यो भवेन्नरः॥ ३८

यतो मया न मुक्तं हि त्वविमुक्तं ततः स्मृतम्।
अविमुक्तं न सेवन्ते मूढा ये तमसावृताः॥ ३९

विण्मूत्ररेतसां मध्ये ते वसन्ति पुनः पुनः।
कामः क्रोधश्च लोभश्च दम्भः स्तम्भोऽतिमत्सरः॥ ४०

निद्रा तन्द्रा तथाऽऽलस्यं पैशुन्यमिति ते दश।
अविमुक्ते स्थिता विघ्नाः शक्रेण विहिताः स्वयम्॥ ४१

विनायकोपसर्गाश्च सततं मूर्ध्नि तिष्ठति।
पुण्यमेतद् भवेत् सर्वं भक्तानामनुकम्पया॥ ४२

परं गुह्यमिति ज्ञात्वा ततः शास्त्रानुदर्शनात्।
व्याहृतं देवदेवैस्तु मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४३

मेदसा विप्लुता भूमिरविमुक्ते तु वर्जिता।
पूता समभवत् सर्वा महादेवेन रक्षिता॥ ४४

संस्कारस्तेन क्रियते भूमेरन्यत्र सूरिभिः।
ये भक्त्या वरदं देवमक्षरं परमं पदम्॥ ४५

देवदानवगन्धर्वयक्षरक्षोमहोरगाः।
अविमुक्तमुपासन्ते तन्निष्ठास्तत्परायणाः॥ ४६

ते विशन्ति महादेवमाज्याहुतिरिवानलम्।
तं वै प्राप्य महादेवमीश्वराध्युषितं शुभम्॥ ४७

अविमुक्तं कृतार्थोऽस्मीत्यात्मानमुपलभ्यते।
ऋषिदेवासुरगणैर्जपहोमपरायणैः॥ ४८

यतिभिर्मोक्षकामैश्च ह्यविमुक्तं निषेव्यते।
नाविमुक्ते मृतः कश्चिन्नरकं याति किल्बिषी॥ ४९

ईश्वरानुगृहीता हि सर्वे यान्ति परां गतिम्।
द्वियोजनमथार्धं च तत् क्षेत्रं पूर्वपश्चिमम्॥ ५०

ब्राह्मणोंको यहाँ निःसन्देह सर्वभावसे तपस्यामें तत्पर रहना चाहिये। जो मनुष्य अविमुक्तमें निवास करता है, वह मेरे समान हो जाता है; क्योंकि मैं इस स्थानको कभी नहीं छोड़ता, इसीलिये यह अविमुक्त नामसे कहा जाता है। जो मोहग्रस्त पुरुष तमोगुणसे आवृत हो अविमुक्तमें निवास नहीं करते, वे मल-मूत्र-वीर्यके मध्यमें पुनः-पुनः निवास करते हैं। (अर्थात् उन्हें बारंबार जन्म लेना पड़ता है)। काम, क्रोध, लोभ, दम्भ, स्तम्भ, अतिशय मात्सर्य, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य तथा पिशुनता—ये दस विघ्न जो स्वयं इन्द्रद्वारा विहित हैं, अविमुक्तमें स्थित रहते हैं। इनके अतिरिक्त विनायकोंके उपद्रव निरन्तर सिरपर सवार रहते हैं, किंतु ये सभी भक्तोंके प्रति भगवान्‌की अनुकम्पाके कारण पुण्यफल प्रदान करते हैं, क्योंकि श्रेष्ठ देवताओं और तत्त्वद्रष्टा मुनियोंके द्वारा शास्त्रकी आलोचनाके आधारपर इस स्थानको परम गुह्य कहा गया है। (प्राचीनकालमें मधु-कैटभकी) मज्जासे सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त हो गयी थी, किंतु अविमुक्तकी भूमि उससे रहित थी। महादेवजीके द्वारा रक्षित यह सम्पूर्ण भूमि पवित्र ही बनी रही। इसीलिये (कल्पसूत्रोक्त-रीतिसे) मनीषिगण अन्यत्र भूमिका संस्कार करते हैं। जो देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और प्रधान नाग भगवान् भवमें निष्ठा रखते हुए उनकी भक्तिमें तत्पर हो अविमुक्तक्षेत्रमें आकर भक्तिपूर्वक वरप्रदान करनेवाले अविनाशी परमपदस्वरूप शंकरकी उपासना करते हैं, वे महादेवमें उसी प्रकार प्रवेश कर जाते हैं, जैसे घीकी आहुति अग्निमें प्रविष्ट होती है। वे उन महादेवको तथा ईश्वरद्वारा अधिकृत शुभमय अविमुक्तको पाकर अपनेको 'मैं कृतार्थ हूँ'—ऐसा अनुभव करते हैं॥ ३७—४७ १/२॥

ऋषि, देव, असुर तथा जप-होमपरायण मुमुक्षु और यतिसमूह इस अविमुक्तमें निवास करते हैं। कोई भी पापी अविमुक्तक्षेत्रमें मरकर नरकमें नहीं जाता; क्योंकि ईश्वरके अनुग्रहसे वे सभी परमगतिको प्राप्त होते हैं। यह क्षेत्र पूर्वसे पश्चिमतक ढाई योजन और

अर्धयोजनविस्तीर्णं दक्षिणोत्तरतः स्मृतम्।
वाराणसी तदीया च यावच्छुक्लनदी तु वै॥ ५१
एष क्षेत्रस्य विस्तारः प्रोक्तो देवेन धीमता।
लब्ध्वा योगं च मोक्षं च काङ्क्षन्तो ज्ञानमुत्तमम्॥ ५२
अविमुक्तं न मुञ्चन्ति तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
तस्मिन् वसन्ति ये मर्त्या न ते शोच्याः कदाचन॥ ५३
योगक्षेत्रं तपःक्षेत्रं सिद्धगन्धर्वसेवितम्।
सरितः सागराः शैला नाविमुक्तसमा भुवि॥ ५४
भूर्लोके चान्तरिक्षे च दिवि तीर्थानि यानि च।
अतीत्य वर्तते चान्यदविमुक्तं प्रभावतः॥ ५५
ये तु ध्यानं समासाद्य मुक्तात्मानः समाहिताः।
संनियम्येन्द्रियग्रामं जपन्ति शतरुद्रियम्॥ ५६
अविमुक्ते स्थिता नित्यं कृतार्थास्ते द्विजातयः।
भवभक्तिं समासाद्य रमन्ते तु सुनिश्चिताः॥ ५७
संहृत्य शक्तितः कामान् विषयेभ्यो बहिः स्थिताः।
शक्तितः सर्वतो मुक्ताः शक्तितस्तपसि स्थिताः॥ ५८
करणानीह चात्मानमपुनर्भवभाविताः।
तं वै प्राप्य महात्मानमीश्वरं निर्भयाः स्थिताः॥ ५९
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि।
अविमुक्ते तु गृह्यन्ते भवेन विभुना स्वयम्॥ ६०
उत्पादितं महाक्षेत्रं सिद्ध्यन्ते यत्र मानवाः।
उद्देशमात्रं कथिता अविमुक्तगुणास्तथा॥ ६१
समुद्रस्येव रत्नानामविमुक्तस्य विस्तरम्।
मोहनं तदभक्तानां भक्तानां भक्तिवर्धनम्॥ ६२
मूढास्ते तु न पश्यन्ति श्मशानमिति मोहिताः।
हन्यमानोऽपि यो विद्वान् वसेद् विघ्नशतैरपि॥ ६३
स याति परमं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति।
जन्ममृत्युजरामुक्तः परं याति शिवालयम्॥ ६४
अपुनर्मरणानां हि सा गतिर्मोक्षकाङ्क्षिणाम्।
यां प्राप्य कृतकृत्यः स्यादिति मन्येत पण्डितः॥ ६५
न दानैर्न तपोभिर्वा न यज्ञैर्नापि विद्यया।
प्राप्यते गतिरिष्टा या ह्यविमुक्ते तु लभ्यते॥ ६६

दक्षिणसे उत्तरतक आधा योजन विस्तृत बतलाया जाता है। यह शिवपुरी वाराणसी शुक्लनदीतक बसी हुई है। बुद्धिमान् महादेवने इस क्षेत्रका यह विस्तार स्वयं बतलाया है। शिवमें निष्ठावान् और शिवपरायण भक्तगण योग और मोक्षको प्राप्तकर उत्तम ज्ञानकी प्राप्तिके लिये अविमुक्तक्षेत्रका परित्याग नहीं करते। जो मृत्युलोकवासी व्यक्ति इस क्षेत्रमें निवास करते हैं, वे कभी भी शोचनीय नहीं होते। यह अविमुक्तक्षेत्र योगक्षेत्र है, तपःक्षेत्र है तथा सिद्ध और गन्धर्वोंसे सेवित है। भूतलपर नदी, सागर और पर्वत—कोई भी अविमुक्तके समान नहीं है। भूलोक, अन्तरिक्ष और स्वर्गमें जितने तीर्थ हैं, उनका अविमुक्त अपने प्रभावसे अतिक्रमण कर विराजमान है। अविमुक्तमें नित्य निवास करनेवाले जो द्विजगण ध्यानयोगकी प्राप्तिसे मुक्तात्मा हो समाहित चित्तसे इन्द्रियोंको निरुद्धकर शतरुद्रीका जप करते हैं, वे कृतार्थ हो जाते हैं और भवकी भक्तिको प्राप्त कर निश्चितरूपसे रमण करते हैं। जो यथाशक्ति कामनाओंका परित्याग कर विषयवासनासे रहित, यथाशक्ति सब तरहसे मुक्त, यथाशक्ति तपस्यामें स्थित तथा अपनी इन्द्रियों और आत्माको वशमें कर चुके हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। वे उन महात्मा शिवको प्राप्तकर निर्भय विचरण करते हैं। सर्वव्यापी शिव अविमुक्तमें उन व्यक्तियोंको स्वयं ग्रहण कर लेते हैं, अतः सैकड़ों कोटि कल्पोंमें भी उनका पुनरागमन नहीं होता है॥ ४८—६०॥

इस महाक्षेत्रको (स्वयं भगवान् शिवने) उत्पन्न किया है, जहाँ मानवोंको सभी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। मैंने अविमुक्तके गुणोंका संक्षेपसे वर्णन किया है। अविमुक्तक्षेत्रका विस्तार समुद्रके रत्नोंकी भाँति दुष्कर है। यह अभक्तोंको मोहित करनेवाला और भक्तोंकी भक्तिकी वृद्धि करनेवाला है। मोहग्रस्त मूढ व्यक्ति इसे श्मशान समझकर इसकी ओर नहीं देखते। जो विद्वान् सैकड़ों विघ्नोंसे बाधित होकर भी अविमुक्तक्षेत्रमें निवास करता है, वह उस परमपदको प्राप्त होता है, जहाँ जाकर शोक नहीं करना पड़ता। वह जन्म-जरा-मरणसे रहित होकर शिवलोकको प्राप्त हो जाता है। मोक्षकी कामना करनेवाले पुनर्जन्मसे रहित व्यक्तियोंको जो गति प्राप्त होती है, उसी गतिको प्राप्तकर विद्वान् अपनेको कृतकृत्य मानता है। जो अभीष्ट गति दान, तप, यज्ञ और ज्ञानसे नहीं प्राप्त होती, वह अविमुक्तक्षेत्रमें सुलभ हो जाती है।

नानावर्णा विवर्णाश्च चण्डाला ये जुगुप्सिताः।
किल्बिषैः पूर्णदेहाश्च प्रकृष्टैः पातकैस्तथा॥ ६७
भेषजं परमं तेषामविमुक्तं विदुर्बुधाः।
जात्यन्तरसहस्रेषु ह्यविमुक्ते म्रियेत् तु यः॥ ६८
भक्तो विश्वेश्वरे देवे न स भूयोऽभिजायते।
यत्र चेष्टं हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत्॥ ६९
सर्वमक्षयमेतस्मिन्नविमुक्ते न संशयः।
कालेनोपरता यान्ति भवे सायुज्यमक्षयम्॥ ७०
कृत्वा पापसहस्राणि पश्चात् संतापमेत्य वै।
योऽविमुक्ते वियुज्येत स याति परमां गतिम्॥ ७१
उत्तरं दक्षिणं चापि अयनं न विकल्पयेत्।
सर्वस्तेषां शुभः कालो ह्यविमुक्ते म्रियन्ति ये॥ ७२
न तत्र कालो मीमांस्यः शुभो वा यदि वाशुभः।
तस्य देवस्य माहात्म्यात् स्थानमद्भुतकर्मणः।
सर्वेषामेव नाथस्य सर्वेषां विभुना स्वयम्॥ ७३
श्रुत्वेदमृषयः सर्वे स्कन्देन कथितं पुरा।
अविमुक्ताश्रमं पुण्यं भावयेत्करणैः शुभैः॥ ७४

जो चाण्डालयोनिमें उत्पन्न, अनेकों रंगोंवाले, कुरूप और निन्दित हैं, जिनका शरीर उत्कृष्ट पातकों एवं पापोंसे परिपूर्ण है, उनके लिये अविमुक्तक्षेत्र परम औषधके समान है—ऐसा पण्डितवर्ग मानते हैं। जो भगवान् विश्वेश्वरका भक्त हजारों जन्मोंके बाद अविमुक्तमें मृत्युको प्राप्त होता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। इस अविमुक्तक्षेत्रमें किया हुआ यज्ञ, दान, तप, होम आदि सभी कर्म अक्षय हो जाते हैं—इसमें संदेह नहीं है। ऐसे लोग समयानुसार मृत्युको प्राप्तकर अविनाशी शिवसायुज्यको प्राप्त करते हैं। जो हजारों पापोंका सम्पादन कर बादमें पश्चात्तापका अनुभव करता है, वह अविमुक्तक्षेत्रमें प्राणोंका त्याग करके परमगतिको प्राप्त होता है। इस विषयमें उत्तरायण एवं दक्षिणायनकी कल्पना नहीं करनी चाहिये। जो अविमुक्तमें प्राण-त्याग करते हैं, उनके लिये सभी समय शुभ है। उस समय शुभ या अशुभ कालका विचार नहीं करना चाहिये। सभीके नाथ, सर्वव्यापी, अद्भुतकर्मा स्वयं महादेवके माहात्म्यसे यह स्थान परम अद्भुत है। पूर्व समयमें सभी ऋषियोंने स्कन्दद्वारा कथित इस पवित्र वृत्तान्तको सुनकर यह निर्णय किया कि इस अविमुक्तक्षेत्रका विशुद्ध इन्द्रियोंद्वारा सेवन करना चाहिये॥ ६१—७४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्यं नाम चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अविमुक्तमाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८४॥



एक सौ पचासीवाँ अध्याय

वाराणसी-माहात्म्य

सूत उवाच

अविमुक्ते महापुण्ये चास्तिकाः शुभदर्शनाः।
विस्मयं परमं जग्मुर्हर्षगद्गदनिःस्वनाः॥ १
ऊचुस्ते हृष्टमनसः स्कन्दं ब्रह्मविदां वरम्।
ब्रह्मण्यो देवपुत्रस्त्वं ब्राह्मणो ब्राह्मणप्रियः॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अतिशय पुण्यमय अविमुक्तक्षेत्रमें आस्तिक, शुभ दर्शनवाले एवं हर्षगद्गद वाणीसे युक्त उन ऋषियोंको (इस आश्चर्यजनक आख्यानको सुनकर) महान् आश्चर्य हुआ। तब उन्होंने प्रसन्नचित्त होकर ब्रह्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ स्कन्दजीसे कहा—भगवन्! आप ब्राह्मण-भक्त, महादेवजीके पुत्र, ब्राह्मण, ब्राह्मणोंके प्रिय,

ब्रह्मिष्ठो ब्रह्मविद् ब्रह्मा ब्रह्मेन्द्रो ब्रह्मलोककृत्।
ब्रह्मकृद् ब्रह्मचारी त्वं ब्रह्मादिर्ब्रह्मवत्सलः॥ ३

ब्रह्मतुल्योद्भवकरो ब्रह्मतुल्यो नमोऽस्तु ते।
ऋषयो भावितात्मानः श्रुत्वेदं पावनं महत्॥ ४

तत्त्वं तु परमं ज्ञातं यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामो भूर्लोकं शङ्करालयम्॥ ५

यत्रासौ सर्वभूतात्मा स्थाणुभूतः स्थितः प्रभुः।
सर्वलोकहितार्थाय तपस्युग्रे व्यवस्थितः॥ ६

संयोज्य योगेनात्मानं रौद्रीं तनुमुपाश्रितः।
गुह्यकैरात्मभूतस्तु आत्मतुल्यगुणैर्वृतः॥ ७

ब्रह्ममें स्थित, ब्रह्मज्ञ, स्वयं ब्रह्मस्वरूप, ब्रह्मेन्द्र, ब्रह्मलोककर्ता, ब्रह्मकृत्, ब्रह्मचारी, ब्रह्मासे भी पुरातन, ब्रह्मवत्सल, ब्रह्माके समान सृष्टिकर्ता और ब्रह्मतुल्य हैं, आपको नमस्कार है। इस अतिशय पवित्र कथाको सुनकर हम ऋषिगण कृतार्थ हुए। हमने उस परम तत्त्वको जान लिया, जिसे जानकर अमरत्व (मोक्ष)-की प्राप्ति होती है। आपका कल्याण हो, अब हमलोग पृथ्वीलोकमें शिवजीके उस निवासस्थानपर जा रहे हैं, जहाँ सभी जीवोंके आत्मस्वरूप सामर्थ्यशाली शिव स्थाणुरूपमें स्थित हैं। वे वहाँ सभी प्राणियोंके कल्याणकी कामनासे उग्र तपस्यामें संलग्न हैं। वे अपनेको योगयुक्त कर रुद्रभावापन्न शरीरका आश्रयण किये हुए हैं और अपने समान गुणोंसे युक्त आत्मभूत गुह्यकोंसे घिरे हुए विराजमान हैं॥ १—७॥

ततो ब्रह्मादिभिर्देवैः सिद्धैश्च परमर्षिभिः।
विज्ञप्तः परया भक्त्या त्वत्प्रसादाद् गणेश्वर॥ ८

वस्तुमिच्छाम नियतमविमुक्ते सुनिश्चिताः।
एवंगुणे तथा मर्त्या ह्यविमुक्ते वसन्ति ये॥ ९

धर्मशीला जितक्रोधा निर्ममा नियतेन्द्रियाः।
ध्यानयोगपराः सिद्धिं गच्छन्ति परमाव्ययाम्॥ १०

योगिनो योगसिद्धाश्च योगमोक्षप्रदं विभुम्।
उपासते भक्तियुक्ता गुह्यं देवं सनातनम्॥ ११

अविमुक्तं समासाद्य प्राप्तयोगान्महेश्वरात्।
सप्त ब्रह्मर्षयो नीता भवसायुज्यमागताः॥ १२

एतत्तु परमं क्षेत्रमविमुक्तं विदुर्बुधाः।
अप्रबुद्धा न पश्यन्ति भवमायाविमोहिताः॥ १३

तेनैव चाभ्यनुज्ञातास्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
अविमुक्ते तनूं त्यक्त्वा शान्ता योगगतिं गताः॥ १४

गणेश्वर! अब हमलोग ब्रह्मादि देवों, महर्षियों और सिद्धोंसे आज्ञा लेकर परम भक्तिपूर्वक आपकी कृपासे अविमुक्तक्षेत्रमें नियमपूर्वक सुनिश्चितरूपसे निवास करना चाहते हैं। पूर्वकथित गुणोंसे सम्पन्न इस अविमुक्तमें जो धर्मशील, क्रोधजयी, आसक्तिरहित, जितेन्द्रिय और ध्यानयोगपरायण मनुष्य निवास करते हैं, वे अविनाशिनी परम सिद्धिको प्राप्त होते हैं। योगसिद्ध योगिगण भक्तिपूर्वक योग और मोक्षको देनेवाले, सर्वव्यापी, सनातन एवं गुह्य महादेवकी उपासना करते हैं। सात ब्रह्मर्षियोंने अविमुक्त-क्षेत्रमें आकर महेश्वरकी कृपासे योगको प्राप्तकर भवसायुज्यको प्राप्त किया है। ज्ञानिगण इस अविमुक्तको परम क्षेत्र मानते हैं, किंतु भवकी मायासे विमोहित अज्ञानीलोग इसे नहीं जानते। शिवनिष्ठ एवं शिवभक्तिपरायण ऋषिगण शिवजीकी आज्ञासे अविमुक्तमें शरीरका त्यागकर शान्तिपूर्वक योगकी गतिको प्राप्त हो गये॥ ८—१४॥

स्थानं गुह्यं श्मशानानां सर्वेषामेतदुच्यते।
न हि योगादृते मोक्षः प्राप्यते भुवि मानवैः॥ १५

अविमुक्ते निवसतां योगो मोक्षश्च सिद्ध्यति।

एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि।
अनेन जन्मनैवेह प्राप्यते गतिरुत्तमा॥ १६

सभी श्मशानोंमें यह अविमुक्त गुह्य स्थान कहा गया है। मनुष्य संसारमें योगके विना मोक्षको नहीं प्राप्त कर सकते, किंतु अविमुक्तमें निवास करनेवालोंके लिये योग और मोक्ष—दोनों ही सिद्ध हो जाते हैं। परमेश्वरि! इस अविमुक्तक्षेत्रका एक ही प्रभाव है कि इसी जन्ममें और यहीं उत्तम गतिको प्राप्त किया जा सकता है।

अविमुक्ते निवसता व्यासेनामिततेजसा।
नैव लब्धा क्वचिद् भिक्षा भ्रममाणेन यत्नतः॥ १७

क्षुधाविष्टस्ततः क्रुद्धोऽचिन्तयच्छापमुत्तमम्।
दिनं दिनं प्रति व्यासः षण्मासं योऽवतिष्ठति॥ १८

कथं ममेदं नगरं भिक्षादोषाद्धतं त्विदम्।
विप्रो वा क्षत्रियो वापि ब्राह्मणी विधवापि वा॥ १९

संस्कृतासंस्कृता वापि परिपक्वाः कथं नु मे।
न प्रयच्छन्ति वै लोका ब्राह्मणाश्चर्यकारकम्॥ २०

एषां शापं प्रदास्यामि तीर्थस्य नगरस्य तु।
तीर्थं चातीर्थतां यातु नगरं शापयाम्यहम्॥ २१

मा भूत्त्रिपौरुषी विद्या मा भूत्त्रिपौरुषं धनम्।
मा भूत्त्रिपुरुषं सख्यं व्यासो वाराणसीं शपन्॥ २२

अविमुक्ते निवसतां जनानां पुण्यकर्मणाम्।
विघ्नं सृजामि सर्वेषां येन सिद्धिर्न विद्यते॥ २३

व्यासचित्तं तदा ज्ञात्वा देवदेव उमापतिः।
भीतभीतस्तदा गौरीं तां प्रियां पर्यभाषत॥ २४

शृणु देवि वचो मह्यं यादृशं प्रत्युपस्थितम्।
कृष्णद्वैपायनः कोपाच्छापं दातुं समुद्यतः॥ २५

देव्युवाच

किमर्थं शपते क्रुद्धो व्यासः केन प्रकोपितः।
किं कृतं भगवंस्तस्य येन शापं प्रयच्छति॥ २६

देवदेव उवाच

अनेन सुतपस्तप्तं बहून् वर्षगणान् प्रिये।
मौनिना ध्यानयुक्तेन द्वादशाब्दान् वरानने॥ २७

ततः क्षुधा सुसंजाता भिक्षामटितुमागतः।
नैवास्य केनचिद् भिक्षा ग्रासार्धमपि भामिनि॥ २८

एवं भगवतः काल आसीत् षाण्मासिको मुनेः।
ततः क्रोधपरीतात्मा शापं दास्यति सोऽधुना॥ २९

यावन्नैष शपेत्तावदुपायस्तत्र चिन्त्यताम्।
कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रिये॥ ३०

कोऽस्य शापान्न बिभेति ह्यपि साक्षात् पितामहः।
अदैवं दैवतं कुर्याद् दैवं चाप्यपदैवतम्॥ ३१

किसी समय असीम प्रतापी व्यास अविमुक्तमें निवास करते हुए प्रयत्नपूर्वक घूमते रहनेपर भी कहीं भी भिक्षा नहीं पा सके। तब वे भूखसे पीड़ित होकर क्रोधपूर्वक भयंकर शाप देनेका विचार करने लगे। इस प्रकार एक-एक दिन करते व्यासके छः मास बीत गये, (तब वे सोचने लगे कि) क्या कारण है कि इस नगरमें मुझे भिक्षा नहीं मिल रही है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, ब्राह्मणी, विधवा, संस्कृता या असंस्कृता, वृद्धा कोई भी नारी या कोई भी प्राणी और ब्राह्मण मुझे भिक्षा नहीं दे रहा है—आश्चर्य है! अतः मैं यहाँके निवासी, तीर्थ और नगर—सभीको ऐसा शाप दे रहा हूँ कि यह तीर्थ अतीर्थ हो जाय। अब मैं नगरको शाप दे रहा हूँ—यहाँ तीन पीढ़ीतक लोगोंकी विद्या नहीं रहेगी, तीन पीढ़ीतक धन नहीं रहेगा और तीन पीढ़ीतक मित्रता स्थिर नहीं रहेगी। अविमुक्तमें निवास करनेवाले सभी मनुष्योंके पुण्यकर्मोंमें विघ्न उत्पन्न हो जायगा, जिससे उन्हें सिद्धि नहीं मिल सकेगी। उस समय देवदेव उमापति व्यासके हृदयको जानकर भयभीत हो गये। तब वे अपनी प्रिया गौरीसे बोले—'देवि! इस नगरमें जैसी घटना घटित होनेवाली है, वह कह रहा हूँ, मेरी बात सुनो। श्रीकृष्णद्वैपायन क्रोधवश शाप देनेके लिये उद्यत हो गये हैं'॥ १५—२५॥

देवीने पूछा—भगवन्! व्यासजी क्रुद्ध होकर शाप देनेके लिये क्यों उद्यत हैं? वे किसके द्वारा क्रुद्ध किये गये हैं? उनका क्या अप्रिय कर दिया गया, जिससे वे शाप दे रहे हैं?॥ २६॥

देवाधिदेव महादेवने कहा—प्रिये! व्यासजीने अनेक वर्षोंतक कठोर तपस्या की है। वरानने! ये मौन धारणकर ध्यानपरायण हो बारह वर्षोंतक तपस्यामें लीन रहे। तदनन्तर भूख लगनेपर ये भिक्षा माँगनेके लिये यहाँ आये हैं। किंतु भामिनि! किसीने इन्हें आधा ग्रास भी भिक्षा नहीं दी। इस प्रकार भगवान् व्यासमुनिके छः महीने बीत गये। इसी कारण इस समय ये क्रोधसे अभिभूत होकर शाप देनेको उद्यत हो गये हैं। प्रिये! कृष्णद्वैपायन व्यासको साक्षात् नारायण समझो, अतः जबतक ये शाप नहीं दे देते, तभीतक इस विषयमें कोई उपाय सोच लो। कौन है, जो इनके शापसे नहीं डरता, चाहे वह साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न हो! ये मनुष्यको देवता और देवताको मनुष्य

आवां तु मानुषौ भूत्वा गृहस्थाविहवासिनौ।
तस्य तृप्तिकरीं भिक्षां प्रयच्छावो वरानने॥ ३२

एवमुक्ता ततो देवी देवेन शम्भुना तदा।
व्यासस्य दर्शनं दत्त्वा कृत्वा वेषं तु मानुषम्॥ ३३

एह्येहि भगवन् साधो भिक्षां गृहाण सत्तम।
अस्मद् गृहे कदाचित् त्वं नागतोऽसि महामुने॥ ३४

एतच्छ्रुत्वा प्रीतमना भिक्षां ग्रहीतुमागतः।
भिक्षां दत्त्वा तु व्यासाय षड्रसाममृतोपमाम्॥ ३५

अनास्वादितपूर्वा सा भक्षिता मुनिना तदा।
भिक्षां व्यासस्ततो भुक्त्वा चिन्तयन् हृष्टमानसः॥ ३६

ववन्दे वरदं देवं देवीं च गिरिजां तदा।
व्यासः कमलपत्राक्ष इदं वचनमब्रवीत्॥ ३७

देवो देवी नदी गङ्गा मिष्टमन्नं शुभा गतिः।
वाराणस्यां विशालाक्षि वासः कस्य न रोचते॥ ३८

एवमुक्त्वा ततो व्यासो नगरीमवलोकयन्।
चिन्तायानस्ततो भिक्षां हृदयानन्दकारिणीम्॥ ३९

अपश्यत् पुरतो देवं देवीं च गिरिजां तदा।
गृहाङ्गणस्थितं व्यासं देवदेवोऽब्रवीदिदम्॥ ४०

इह क्षेत्रे न वस्तव्यं क्रोधनस्त्वं महामुने।
एवं विस्मयमापन्नो देवं व्यासोऽब्रवीद् वचः॥ ४१

व्यास उवाच

चतुर्दश्यामथाष्टम्यां प्रवेशं दातुमर्हसि।
एवमस्त्वित्यनुज्ञाय तत्रैवान्तरधीयत॥ ४२

न तद् गृहं न सा देवी न देवो ज्ञायते क्वचित्।
एवं त्रैलोक्यविख्यातः पुरा व्यासो महातपाः॥ ४३

ज्ञात्वा क्षेत्रगुणान् सर्वान् स्थितस्तस्यैव पार्श्वतः।
एवं व्यासं स्थितं ज्ञात्वा क्षेत्रं शंसन्ति पण्डिताः॥ ४४

कर सकते हैं। वरानने! हम दोनों मनुष्य होकर यहाँ गृहस्थाश्रममें निवास कर रहे हैं, अतः उन्हें संतुष्ट करनेवाली भिक्षा समर्पित करें॥ २७—३२॥

तब महादेव शिवद्वारा इस प्रकार कही जानेपर देवीने मनुष्यका वेश धारण कर व्यासको दर्शन दिया और इस प्रकार कहा—'ऐश्वर्यशाली श्रेष्ठ साधो! आइये, आइये, भिक्षा ग्रहण कीजिये। महामुने! सम्भवतः आपने मेरे घरपर कभी आनेकी कृपा नहीं की है।' यह सुनकर व्यासजी प्रसन्नचित्त हो भिक्षा ग्रहण करनेके लिये आये। तब देवीने व्यासजीको छः रसोंसे समन्वित अमृतके समान भिक्षा प्रदान की। मुनिने पहले वैसी न खायी हुई भिक्षाको खाया। तत्पश्चात् भिक्षाको खाकर प्रसन्नचित्त हुए व्यासजी कुछ विचार करने लगे। तदुपरान्त कमलदलनेत्र व्यासजीने वरदाता शिव और देवी पार्वतीकी वन्दना की और इस प्रकार कहा—'विशाल नेत्रोंवाली देवि! वाराणसीमें महादेव, पार्वतीदेवी, गङ्गा नदी, स्वादिष्ट भोजन और शुभगति—सभी सुलभ हैं, फिर यहाँका निवास किसे अच्छा नहीं लगेगा!' ऐसा कहकर व्यासजी हृदयको आनन्द देनेवाली भिक्षाको सोचते हुए, नगरीका अवलोकन करते हुए घूमने लगे। तदनन्तर उन्होंने महादेव और देवी पार्वतीको अपने समक्ष उपस्थित देखा। तब देवाधिदेव महादेवने घरके आँगनमें अवस्थित व्याससे यह कहा—'महामुने! आप अतिशय क्रोधी स्वभावके हैं, अतः आपको इस क्षेत्रमें निवास नहीं करना चाहिये।' यह सुनकर व्यासजी आश्चर्यचकित हो गये और महादेवजीसे इस प्रकार बोले॥ ३३—४१॥

व्यासजीने कहा—भगवन्! चतुर्दशी और अष्टमीको मुझे यहाँ निवास करनेकी अनुमति दीजिये। अच्छा, 'ऐसा ही हो' यों अनुमति देकर शिवजी वहीं अन्तर्धान हो गये। फिर तो वहाँ न कहीं कोई घर था, न वह देवी थीं और न महादेव ही थे। वे कहाँ चले गये, कुछ भी समझमें न आया। प्राचीनकालमें इस प्रकार तीनों लोकोंमें विख्यात महातपस्वी व्यास इस क्षेत्रके सभी गुणोंको जानकर उसीके पास (गङ्गाजीके पूर्वतटपर दक्षिणकी ओर) निवास करने लगे। इस प्रकार व्यासको वहाँ स्थित जानकर पण्डितगण इस क्षेत्रकी प्रशंसा करते हैं॥ ४२—४४॥

अविमुक्तगुणानां तु कः समर्थो वदिष्यति।
देवब्राह्मणविद्विष्टा देवभक्तिविडम्बकाः॥ ४५
ब्रह्मघ्नाश्च कृतघ्नाश्च तथा नैष्कृतिकाश्च ये।
लोकद्विषो गुरुद्विषस्तीर्थायतनदूषकाः॥ ४६
सदा पापरताश्चैव ये चान्ये कुत्सिता भुवि।
तेषां नास्तीति वासो वै स्थितोऽसौ दण्डनायकः॥ ४७
रक्षणार्थं नियुक्तं वै दण्डनायकमुत्तमम्।
पूजयित्वा यथाशक्त्या गन्धपुष्पादिधूपकैः॥ ४८
नमस्कारं ततः कृत्वा नायकस्य तु मन्त्रवित्।
सर्ववर्णावृते क्षेत्रे नानाविधसरीसृपे॥ ४९
ईश्वरानुगृहीता हि गतिं गाणेश्वरीं गताः।
नानारूपधरा दिव्या नानावेषधरास्तथा॥ ५०
सुरा वै ये तु सर्वे च तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
यदिच्छन्ति परं स्थानमक्षयं तदवाप्नुयुः॥ ५१
परं पुरं दैवपुराद् विशिष्यते
तदुत्तरं ब्रह्मपुरात् पुरः स्थितम्।
तपोबलादीश्वरयोगनिर्मितं
न तत्समं ब्रह्मदिवौकसालयम्।
मनोरमं कामगमं ह्यनामय-
मतीत्य तेजांसि तपांसि योगवत्॥ ५२
अधिष्ठितस्तु तत्स्थाने देवदेवो विराजते।
तपांसि यानि तप्यन्ते व्रतानि नियमाश्च ये॥ ५३
सर्वतीर्थाभिषेकं तु सर्वदानफलानि च।
सर्वयज्ञेषु यत् पुण्यमविमुक्ते तदाप्नुयात्॥ ५४
अतीतं वर्तमानं च यज्ज्ञानाज्ञानतोऽपि वा।
सर्वं तस्य च यत्पापं क्षेत्रं दृष्ट्वा विनश्यति॥ ५५
शान्तैर्दान्तैस्तपस्तप्तं यत्किञ्चिद् धर्मसंज्ञितम्।
सर्वं च तदवाप्नोति अविमुक्ते जितेन्द्रियः॥ ५६
अविमुक्तं समासाद्य लिङ्गमर्चयते नरः।
कल्पकोटिशतैश्चापि नास्ति तस्य पुनर्भवः॥ ५७
अमरा ह्यक्षयाश्चैव क्रीडन्ति भवसंनिधौ।
क्षेत्रतीर्थोपनिषदमविमुक्तं न संशयः॥ ५८
अविमुक्ते महादेवमर्चयन्ति स्तुवन्ति वै।
सर्वपापविनिर्मुक्तास्ते तिष्ठन्त्यजरामराः॥ ५९

अविमुक्तक्षेत्रके सभी गुणोंका वर्णन करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? देवता और ब्राह्मणसे विद्वेष करनेवाले, देवभक्तिकी विडम्बना करनेवाले, ब्राह्मणोंकी हत्या करनेवाले, किये हुए उपकारको न माननेवाले, निश्चेष्ट-अकर्मण्य, लोकद्वेषी, गुरुद्वेषी, तीर्थस्थानोंको दूषित करनेवाले, सदा पापमें रत तथा इनके अतिरिक्त जो निषिद्ध कर्मोंके आचरण करनेवाले हैं—उन सबके लिये यहाँ स्थान नहीं है; क्योंकि यहाँ दण्डनायक अवस्थित हैं। यहाँ श्रेष्ठ दण्डनायकको इसकी रक्षाके लिये नियुक्त किया गया है। सभी वर्णाश्रमियों तथा अनेक प्रकारके जन्तुओंसे भरे हुए इस क्षेत्रमें नायकके परामर्शसे यथाशक्ति गन्ध, पुष्प, धूप आदिसे पूजन करनेके पश्चात् उन्हें नमस्कार करके ईश्वरके अनुग्रहसे बहुत-से लोग गणेश्वरकी गतिको प्राप्त हो गये हैं। अनेकों वेष और विभिन्न रूप धारण करनेवाले सभी दिव्य देव, शिवमें श्रद्धासम्पन्न एवं शिवभक्ति-परायण हो जिस अक्षय श्रेष्ठ स्थानकी कामना करते हैं, वह उन्हें प्राप्त हो जाता है। यह श्रेष्ठ नगर अमरावतीसे भी विशिष्ट है। इस अविमुक्तनगरका उत्तरी भाग ब्रह्मलोकसे भी अधिक प्रतिष्ठित है। यह शिवजीके तपोबल और उनकी योगमहिमासे निर्मित है, अतः इसके समान ब्रह्मलोक तथा स्वर्ग भी नहीं है। यह मनोरम, अभिलाषाको पूर्ण करनेवाला, रोगरहित, तेज और तपस्यासे परे तथा योगयुक्त है। इस अविमुक्तक्षेत्रमें देवाधिदेव शंकर सदा विराजमान रहते हैं। जो लोग सभी प्रकारके तप, व्रत, नियम, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, सभी प्रकारके दान और सभी प्रकारके यज्ञानुष्ठानसे जो पुण्य प्राप्त करते हैं, वह अविमुक्तनगरमें प्राप्त हो जाता है। अतीत या वर्तमानमें ज्ञानसे या अज्ञानसे किये गये उनके सभी पाप क्षेत्रके दर्शनमात्रसे विनष्ट हो जाते हैं॥ ४५—५५॥

अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखकर शान्तचित्तसे की गयी तपस्यासे एवं विहित कर्मोंके आचरणसे जो फल मिलते हैं, वह सब अविमुक्तनगरमें जितेन्द्रियको प्राप्त हो जाता है। जो मनुष्य अविमुक्तनगरमें आकर शिवलिङ्गकी पूजा करता है, उसका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी पुनर्जन्म नहीं होता। ऐसे लोग अमर और अविनश्वर रूपमें शिवके समीप क्रीड़ा करते हैं। यह अविमुक्तनगर अन्य स्थानों और तीर्थोंका प्रकाश-संवित्स्वरूप है—इसमें संदेह नहीं है। जो अविमुक्तनगरमें महादेवकी पूजा और स्तुति करते हैं, वे सभी पापोंसे विनिर्मुक्त होकर अजर-अमर हो जाते

सर्वकामाश्च ये यज्ञाः पुनरावृत्तिकाः स्मृताः।
अविमुक्ते मृता ये च सर्वे ते ह्यनिवर्तकाः॥ ६०
ग्रहनक्षत्रताराणां कालेन पतनाद् भयम्।
अविमुक्ते मृतानां तु पतनं नैव विद्यते॥ ६१
कल्पकोटिसहस्रैस्तु कल्पकोटिशतैरपि।
न तेषां पुनरावृत्तिर्मृता ये क्षेत्र उत्तमे॥ ६२
संसारसागरे घोरे भ्रमन्तः कालपर्ययात्।
अविमुक्तं समासाद्य गच्छन्ति परमां गतिम्॥ ६३
ज्ञात्वा कलियुगं घोरं हाहाभूतमचेतनम्।
अविमुक्तं न मुञ्चन्ति कृतार्थास्ते नरा भुवि॥ ६४
अविमुक्तं प्रविष्टस्तु यदि गच्छेत् ततः पुनः।
तदा हसन्ति भूतानि अन्योन्यं करताडनैः॥ ६५
कामक्रोधेन लोभेन ग्रस्ता ये भुवि मानवाः।
निष्क्रमन्ते नरा देवि दण्डनायकमोहिताः॥ ६६
जपध्यानविहीनानां ज्ञानवर्जितचेतसाम्।
ततो दुःखहतानां च गतिर्वाराणसी नृणाम्॥ ६७
तीर्थानां पञ्चकं सारं विश्वेशानन्दकानने।
दशाश्वमेधं लोलार्कः केशवो बिन्दुमाधवः॥ ६८
पञ्चमी तु महाश्रेष्ठा प्रोच्यते मणिकर्णिका।
एभिस्तु तीर्थवर्यैश्च वर्ण्यते ह्यविमुक्तकम्॥ ६९
एक एव प्रभावोऽस्ति क्षेत्रस्य परमेश्वरि।
एकेन जन्मना देवि मोक्षं पश्यन्त्यनुत्तमम्॥ ७०
एतद् वै कथितं सर्वं देव्यै देवेन भाषितम्।
अविमुक्तस्य क्षेत्रस्य तत् सर्वं कथितं द्विजाः॥ ७१

हैं। सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले जो यज्ञ हैं, वे सभी पुनर्जन्म प्रदान करनेवाले हैं; किंतु जो अविमुक्तनगरमें शरीरका त्याग करते हैं, उनका संसारमें पुनः आगमन नहीं होता। ग्रह, नक्षत्र और तारागणोंको समयानुसार पतनका भय बना रहता है, किंतु अविमुक्तमें मरनेवालोंका पतन कभी नहीं होता। जो इस उत्तम क्षेत्रमें मरते हैं, उनका सैकड़ों-करोड़ों कल्पोंमें क्या हजारों-करोड़ कल्पोंमें भी पुनरागमन नहीं होता। जो कालक्रमानुसार संसार-सागरमें भ्रमण करते हुए अविमुक्तनगरमें आ जाते हैं, वे परमगतिको प्राप्त हो जाते हैं॥ ५६—६३॥

जो मनुष्य हाहाकारमय एवं ज्ञानरहित भयंकर कलियुगको जानकर अविमुक्तका परित्याग नहीं करते, वे ही इस भूतलपर कृतार्थ हैं। जो अविमुक्तनगरमें जाकर यदि यहाँसे चला जाता है तो सभी प्राणी ताली बजाकर उसकी हँसी उड़ाते हैं। देवि! जो मानव भूतलपर क्रोध और लोभसे ग्रस्त हैं, वे ही दण्डनायककी मायासे मोहित होकर इस नगरसे चले जाते हैं। जो मनुष्य जप-ध्यानसे रहित, ज्ञानशून्य और दुःखसे संतप्त हैं, उनकी गति वाराणसी है। विश्वेश्वरके इस आनन्द-काननमें दशाश्वमेध, लोलार्क, केशव, बिन्दुमाधव और पाँचवीं जो परमश्रेष्ठ मणिकर्णिका कही गयी है—ये पाँचों तीर्थोंके सार कहे गये हैं। इन्हीं श्रेष्ठ तीर्थोंसे अविमुक्तकी प्रशंसा होती है। परमेश्वरी देवि! इस क्षेत्रकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि एक ही जन्ममें मनुष्य परमश्रेष्ठ मोक्षको प्राप्त कर लेता है। द्विजगण! अविमुक्तक्षेत्रके विषयमें महादेवजीने पार्वतीसे जो बात कही थी, वह सभी मैंने आप लोगोंसे वर्णन कर दिया॥ ६४—७१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽविमुक्तमाहात्म्यं नाम पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अविमुक्तमाहात्म्यवर्णन नामक एक सौ पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८५॥

एक सौ छियासीवाँ अध्याय

नर्मदा-माहात्म्यका उपक्रम

ऋषय ऊचुः

माहात्म्यमविमुक्तस्य यथावत् कथितं त्वया।
इदानीं नर्मदायास्तु माहात्म्यं वद सत्तम॥ १
यत्रोङ्कारस्य माहात्म्यं कपिलासंगमस्य च।
अमरेशस्य चैवाहुर्माहात्म्यं पापनाशनम्॥ २
कथं प्रलयकाले तु न नष्टा नर्मदा पुरा।
मार्कण्डेयश्च भगवान् न विनष्टस्तदा किल।
त्वयोक्तं तदिदं सर्वं पुनर्विस्तरतो वद॥ ३

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः पाण्डवेन महात्मना।
नर्मदायास्तु माहात्म्यं मार्कण्डेयो महामुनिः॥ ४
उग्रेण तपसा युक्तो वनस्थो वनवासिना।
पृष्टः पूर्वं महागाथां धर्मपुत्रेण धीमता॥ ५

युधिष्ठिर उवाच

श्रुता मे विविधा धर्मास्त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तम।
भूयश्च श्रोतुमिच्छामि तन्मे कथय सुव्रत॥ ६
कथमेषा महापुण्या नदी सर्वत्र विश्रुता।
नर्मदा नाम विख्याता तन्मे ब्रूहि महामुने॥ ७

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ ८
नर्मदायास्तु माहात्म्यं पुराणे यन्मया श्रुतम्।
तदेतद्धि महाराज तत्सर्वं कथयामि ते॥ ९
पुण्या कनखले गङ्गा कुरुक्षेत्रे सरस्वती।
ग्रामे वा यदि वारण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा॥ १०
त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्ताहेन तु यामुनम्।
सद्यः पुनाति गाङ्गेयं दर्शनादेव नार्मदम्॥ ११
कलिङ्गदेशे पश्चार्धे पर्वतेऽमरकण्टके।
पुण्या च त्रिषु लोकेषु रमणीया मनोरमा॥ १२

ऋषियोंने पूछा—सज्जनोंमें श्रेष्ठ सूतजी! आपने अविमुक्तका माहात्म्य तो भलीभाँति कह दिया, अब नर्मदाके माहात्म्यका वर्णन कीजिये, जहाँ ओंकार, कपिलासंगम और अमरेश पर्वतका पापनाशक माहात्म्य कहा जाता है। प्रलयकालमें भी नर्मदाका नाश क्यों नहीं होता? एवं भगवान् मार्कण्डेयका भी पूर्व प्रलयके समयमें विनाश क्यों नहीं हुआ? यद्यपि आपने ये बातें पूर्वमें कही हैं, तथापि इस समय पुनः विस्तारके साथ वर्णन कीजिये॥ १—३॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! प्राचीनकालमें धर्मपुत्र बुद्धिमान् महात्मा युधिष्ठिरने वनमें निवास करते समय वनवासी उग्र तपस्वी महामुनि मार्कण्डेयजीसे नर्मदाके माहात्म्यकी विस्तृत कथाके विषयमें प्रश्न किया था॥ ४-५॥

युधिष्ठिरने पूछा—द्विजश्रेष्ठ! आपकी कृपासे मैंने विभिन्न धर्मोंको सुना। सुव्रत! अब मैं पुनः जो सुनना चाहता हूँ, उसे आप बतलाइये? महामुने! यह महापुण्यप्रदायिनी नर्मदा-नामसे विख्यात नदी सर्वत्र क्यों प्रसिद्ध हुई—इसका रहस्य मुझे बतलाइये॥ ६-७॥

मार्कण्डेयजीने कहा—सभी पापोंका नाश करनेवाली नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदा सभी स्थावर-जङ्गम जीवोंका उद्धार करनेवाली है। महाराज! मैंने इस नर्मदा नदीका जो माहात्म्य पुराणमें आपसे सुना है, वह सब कह रहा हूँ। कनखलमें गङ्गा और कुरुक्षेत्रमें सरस्वती नदी पुण्यप्रदा कही गयी है, किंतु चाहे गाँव हो या वन, नर्मदा तो सभी जगह पुण्यप्रदायिनी है। सरस्वतीका जल तीन दिनोंतक सेवन करनेसे, यमुनाका जल सात दिनोंमें और गङ्गाका जल (स्नान-पानादिसे) उसी समय पवित्र कर देता है, परंतु नर्मदाका जल तो दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देता है। कलिङ्ग देशकी पश्चिमी सीमापर स्थित अमरकण्टक पर्वतसे त्रिलोकीमें विख्यात, रमणीय, मनोरम एवं पुण्यदायिनी नर्मदा प्रवाहित होती है।

सदेवासुरगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
तपस्तप्त्वा महाराज सिद्धिं च परमां गताः॥ १३

यत्र स्नात्वा नरो राजन् नियमस्थो जितेन्द्रियः।
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्॥ १४

जलेश्वरे नरः स्नात्वा पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ १५

महाराज! इसके तटपर देवता, असुर, गन्धर्व और तपस्यामें रत ऋषिगणोंने तपस्या कर परम सिद्धिको प्राप्त किया है। राजन्! यदि नियमनिष्ठ एवं जितेन्द्रिय मनुष्य नर्मदामें स्नानकर एक रात उपवास करके वहाँ निवास करे तो वह अपने सौ पीढ़ियोंको तार देता है। यदि मनुष्य जलेश्वर (जालेश्वर-तीर्थ)-में स्नानकर पिण्ड-दान करता है तो उसके पितर विधिपूर्वक प्रलयकालपर्यन्त तृप्त रहते हैं॥ ८—१५॥

पर्वतस्य समंतात् तु रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता।
स्नात्वा यः कुरुते तत्र गन्धमाल्यानुलेपनैः॥ १६

प्रीतस्तस्य भवेच्छर्वो रुद्रकोटिर्न संशयः।
पश्चिमे पर्वतस्यान्ते स्वयं देवो महेश्वरः॥ १७

तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः।
पितृकार्यं च कुर्वीत विधिवन्नियतेन्द्रियः॥ १८

तिलोदकेन तत्रैव तर्पयेत् पितृदेवताः।
आसप्तमं कुलं तस्य स्वर्गे मोदेत पाण्डव॥ १९

षष्टिर्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते।
अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते॥ २०

दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यालङ्कारभूषितः।
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो जायते विपुले कुले॥ २१

धनवान् दानशीलश्च धार्मिकश्चैव जायते।
पुनः स्मरति तत् तीर्थं गमनं तत्र रोचते॥ २२

कुलानि तारयेत् सप्त रुद्रलोकं स गच्छति।
योजनानां शतं साग्रं श्रूयते सरिदुत्तमा॥ २३

विस्तारेण तु राजेन्द्र योजनद्वयमायता।
षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथैव च॥ २४

सर्वं तस्य समंतात् तु तिष्ठत्यमरकण्टके।

अमरकण्टक पर्वतके चारों ओर करोड़ों रुद्र प्रतिष्ठित हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नानकर गन्ध, माल्य और चन्दनोंसे शिवजीकी पूजा करता है, उसपर भगवान् रुद्रकोटि प्रसन्न हो जाते हैं—इसमें संदेह नहीं है। पाण्डुनन्दन! उस पर्वतके पश्चिम भागके अन्तमें साक्षात् महेश्वरदेव विराजमान हैं। जो मनुष्य वहाँ स्नान करके पवित्र हो जितेन्द्रिय, ब्रह्मचारी एवं इन्द्रियोंको वशमें करके विधिपूर्वक पितृकार्य करता है तथा तिल-जलसे पितरों और देवताओंका तर्पण करता है, उसके सात पीढ़ीतकके पितर स्वर्गमें आनन्दका भोग करते हैं। साथ ही वह व्यक्ति दिव्य गन्धोंके अनुलेपनसे युक्त तथा दिव्य अलंकारोंसे विभूषित हो साठ हजार वर्षोंतक अप्सरासमूहोंसे परिव्याप्त एवं सिद्धों और चारणोंसे सेवित स्वर्गलोकमें पूजित होता है। तदनन्तर स्वर्गसे भ्रष्ट होनेपर प्रतिष्ठित कुलमें जन्म ग्रहण करता है। यहाँ वह धनवान्, दानशील और धार्मिक होता है। वह उस तीर्थका पुनः-पुनः स्मरण करता है तथा उसको वहाँ जाना प्रिय लगता है। वहाँ जाकर वह सात पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है और रुद्रलोकको चला जाता है। राजेन्द्र! ऐसी ख्याति है कि यह श्रेष्ठ नदी सौ योजनसे अधिक लम्बी और दो योजन चौड़ी है। साठ करोड़ साठ हजार तीर्थ इस अमरकण्टकके चारों ओर वर्तमान हैं॥ १६—२४ $\frac{१}{२}$॥

ब्रह्मचारी शुचिर्भूत्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः॥ २५

सर्वहिंसानिवृत्तस्तु सर्वभूतहिते रतः।
एवं सर्वसमाचारो यस्तु प्राणान् परित्यजेत्॥ २६

तस्य पुण्यफलं राजञ्शृणुष्वावहितो मम।
शतं वर्षसहस्राणां स्वर्गे मोदेत पाण्डव॥ २७

राजन्! जो मनुष्य ब्रह्मचारी, पवित्र, क्रोधजयी, जितेन्द्रिय, सभी प्रकारकी हिंसाओंसे रहित, सभी प्राणियोंके हितमें तत्पर—इस प्रकार सभी सदाचारोंसे युक्त होकर यहाँ अपने प्राणोंका परित्याग करता है, उसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उसे आप मुझसे सावधान होकर सुनिये।

अप्सरोगणसंकीर्णे सिद्धचारणसेविते।
दिव्यगन्धानुलिप्तश्च दिव्यपुष्पोपशोभितः॥ २८
क्रीडते देवलोकस्थो दैवतैः सह मोदते।
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान्॥ २९
गृहं तु लभते वै स नानारत्नविभूषितम्।
स्तम्भैर्मणिमयैर्दिव्यैर्वज्रवैडूर्यभूषितैः ॥ ३०
आलेख्यसहितं दिव्यं दासीदाससमन्वितम्।
मत्तमातङ्गशब्दैश्च हयानां हेषितेन च॥ ३१
क्षुभ्यते तस्य तद्द्वारमिन्द्रस्य भवनं यथा।
राजराजेश्वरः श्रीमान् सर्वस्त्रीजनवल्लभः॥ ३२
तस्मिन् गृहे उषित्वा तु क्रीडाभोगसमन्विते।
जीवेद् वर्षशतं साग्रं सर्वरोगविवर्जितः॥ ३३
एवं भोगो भवेत् तस्य यो मृतोऽमरकण्टके।
अग्नौ विषजले वापि तथा चैव ह्यनाशके॥ ३४
अनिवर्तिका गतिस्तस्य पवनस्याम्बरे यथा।
पतनं कुरुते यस्तु अमरेशे नराधिप॥ ३५
कन्यानां त्रिसहस्राणि एकैकस्यापि चापरे।
तिष्ठन्ति भुवने तस्य प्रेषणं प्रार्थयन्ति च।
दिव्यभोगैः सुसम्पन्नः क्रीडते कालमक्षयम्॥ ३६
पृथिव्यामासमुद्रायामीदृशो नैव जायते।
यादृशोऽयं नृपश्रेष्ठ पर्वतेऽमरकण्टके॥ ३७
तावत् तीर्थं तु विज्ञेयं पर्वतस्य तु पश्चिमे।
ह्रदो जलेश्वरो नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुतः॥ ३८
तत्र पिण्डप्रदानेन संध्योपासनकर्मणा।
पितरो दश वर्षाणि तर्पितास्तु भवन्ति वै॥ ३९
दक्षिणे नर्मदाकूले कपिलेति महानदी।
सकलार्जुनसंच्छन्ना नातिदूरे व्यवस्थिता॥ ४०
सापि पुण्या महाभागा त्रिषु लोकेषु विश्रुता।
तत्र कोटिशतं साग्रं तीर्थानां तु युधिष्ठिर॥ ४१
पुराणे श्रूयते राजन् सर्वं कोटिगुणं भवेत्।
तस्यास्तीरे तु ये वृक्षाः पतिताः कालपर्ययात्॥ ४२

पाण्डुपुत्र! वह एक लाख वर्षोंतक अप्सराओंसे व्याप्त तथा सिद्धों एवं चारणोंसे सेवित स्वर्गमें आनन्दका उपभोग करता है। वह दिव्य चन्दनके लेपसे युक्त एवं दिव्य पुष्पोंसे सुशोभित हो देवलोकमें रहता हुआ देवोंके साथ क्रीड़ा करते हुए आनन्दका अनुभव करता है। तत्पश्चात् स्वर्गसे भ्रष्ट होकर इस लोकमें पराक्रमी राजा होता है। उसे अनेक प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत ऐसे भवनकी प्राप्ति होती है, जो दिव्य हीरे, वैदूर्य और मणिमय स्तम्भोंसे विभूषित होता है। वह दिव्य चित्रोंसे सुशोभित तथा दासी-दाससे समन्वित रहता है। उसका द्वार मदमत्त हाथियोंके चिग्घाड़ और घोड़ोंकी हिनहिनाहटसे इन्द्रभवनके समान संकुलित रहता है। वह सम्पूर्ण स्त्रीजनोंका प्रिय, श्रीसम्पन्न और सभी प्रकारके रोगोंसे रहित होकर राजराजेश्वरके रूपमें क्रीडा और भोगसे समन्वित उस गृहमें निवासकर सौ वर्षोंसे भी अधिक समयतक जीवित रहता है। जो अमरकण्टकमें शरीरका त्याग करता है, उसे इस प्रकारके आनन्दका उपभोग मिलता है। जो अग्नि, विष, जल तथा अनशन करके यहाँ मरता है, उसे आकाशमें वायुके समान स्वच्छन्द गति प्राप्त होती है। नरेश्वर! जो इस अमरकण्टक पर्वतसे गिरकर देहत्याग करता है, उसके भवनमें एक-से-एक बढ़कर सुन्दरी तीन हजार कन्याएँ स्थित रहती हैं, जो उसकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करती रहती हैं। वह दिव्य भोगोंसे परिपूर्ण होकर अक्षय कालतक क्रीडा करता है॥ २५—३६॥

नृपश्रेष्ठ! अमरकण्टक पर्वतपर शरीरका त्याग करनेसे जैसा पुण्य होता है, वैसा समुद्रपर्यन्त पृथ्वीपर कहीं भी नहीं होता। इस तीर्थको पर्वतके पश्चिम प्रान्तमें समझना चाहिये। यहाँ तीनों लोकोंमें विख्यात जलेश्वर नामक कुण्ड वर्तमान है, वहाँ पिण्डदान एवं संध्योपासन कर्म करनेसे पितरगण दस वर्षोंतक तृप्त बने रहते हैं। नर्मदाके दक्षिण तटपर समीप ही कपिला नामकी महानदी स्थित है। वह सब ओरसे अर्जुन वृक्षोंसे परिव्याप्त है। युधिष्ठिर! वह महाभागा पुण्यतोया नदी भी तीनों लोकोंमें विख्यात है। वहाँ सौ करोड़से भी अधिक तीर्थ हैं। राजन्! पुराणमें जैसा वर्णन है, उसके अनुसार वे सभी तीर्थ करोड़गुना फल देनेवाले हैं। उसके तटके जो वृक्ष कालवश गिर जाते हैं,

नर्मदातोयसंस्पृष्टास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्।
द्वितीया तु महाभागा विशल्यकरणी शुभा॥ ४३
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा विशल्यो भवति क्षणात्।
तत्र देवगणाः सर्वे सकिन्नरमहोरगाः॥ ४४
यक्षराक्षसगन्धर्वा ऋषयश्च तपोधनाः।
सर्वे समागतास्तत्र पर्वतेऽमरकण्टके॥ ४५
तैश्च सर्वैः समागम्य मुनिभिश्च तपोधनैः।
नर्मदामाश्रिता पुण्या विशल्या नाम नामतः॥ ४६
उत्पादिता महाभागा सर्वपापप्रणाशिनी।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः॥ ४७
उपोष्य रजनीमेकां कुलानां तारयेच्छतम्।
कपिला च विशल्या च श्रूयते राजसत्तम॥ ४८
ईश्वरेण पुरा प्रोक्ते लोकानां हितकाम्यया।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्॥ ४९

वे भी नर्मदाके जलके स्पर्शसे श्रेष्ठ गतिको प्राप्त हो जाते हैं। दूसरी महाभागा मङ्गलदायिनी विशल्यकरणी नदी है। मनुष्य उस तीर्थमें स्नानकर उसी क्षण दुःखरहित हो जाता है। वहाँ सभी देवगण, किन्नर, महान् सर्पगण, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, तपस्वी ऋषिगण आये और उस अमरकण्टकपर्वतपर मुनियों और तपस्वियोंके साथ स्थित हुए। वहाँ उन लोगोंने सभी पापोंका विनाश करनेवाली महाभागा पुण्यसलिला विशल्या नामसे विख्यात नदीको उत्पन्न किया, जो नर्मदामें मिलती है। राजन्! वहाँ जो मनुष्य ब्रह्मचर्यपूर्वक जितेन्द्रिय होकर स्नानकर उपवासपूर्वक एक रात भी निवास करता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको तार देता है। नृपश्रेष्ठ! ऐसा सुना जाता है कि पूर्वकालमें लोगोंके हितकी कामनासे महेश्वरने कपिला और विशल्या नामके तीर्थोंका वर्णन किया था। राजन्! वहाँ स्नान करके मनुष्य अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है॥ ३७—४९॥

अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
सर्वपापविशुद्धात्मा रुद्रलोकं स गच्छति॥ ५०
नर्मदायास्तु राजेन्द्र पुराणे यन्मया श्रुतम्।
यत्र यत्र नरः स्नात्वा चाश्वमेधफलं लभेत्॥ ५१
ये वसन्त्युत्तरे कूले रुद्रलोके वसन्ति ते।
सरस्वत्यां च गङ्गायां नर्मदायां युधिष्ठिर॥ ५२
समं स्नानं च दानं च यथा मे शंकरोऽब्रवीत्।
परित्यजति यः प्राणान् पर्वतेऽमरकण्टके॥ ५३
वर्षकोटिशतं साग्रं रुद्रलोके महीयते।
नर्मदाया जलं पुण्यं फेनोर्मिभिरलङ्कृतम्॥ ५४
पवित्रं शिरसा वन्द्यं सर्वपापैः प्रमोचनम्।
नर्मदा च सदा पुण्या ब्रह्महत्यापहारिणी॥ ५५
अहोरात्रोपवासेन मुच्यते ब्रह्महत्यया।
एवं रम्या च पुण्या च नर्मदा पाण्डुनन्दन॥ ५६
त्रयाणामपि लोकानां पुण्या ह्येषा महानदी।
वटेश्वरे महापुण्ये गङ्गाद्वारे तपोवने॥ ५७
एतेषु सर्वस्थानेषु द्विजाः स्युः संशितव्रताः।
श्रुतं दशगुणं पुण्यं नर्मदोदधिसंगमे॥ ५८

नरेश्वर! इस तीर्थमें जो अनशन करता है, वह सभी पापोंसे रहित होकर रुद्रलोकको प्राप्त करता है। राजेन्द्र! मैंने स्कन्दपुराणमें नर्मदाका जो फल सुना है, उसके अनुसार वहाँ-वहाँ स्नानकर मनुष्य अश्वमेधके फलको प्राप्त करता है। जो नर्मदाके उत्तर तटपर निवास करते हैं, वे रुद्रलोकमें निवास करते हैं। युधिष्ठिर! जैसा मुझसे शंकरजीने कहा था, उसके अनुसार सरस्वती, गङ्गा और नर्मदामें स्नान और दानका फल समान होता है। जो अमरकण्टक पर्वतपर प्राणोंका परित्याग करता है, वह सौ करोड़ वर्षोंसे भी अधिक कालतक रुद्रलोकमें पूजित होता है। नर्मदाका लहरियोंके फेनसे अलंकृत, पुण्यमय पवित्र जल सभी पापोंसे मुक्त करनेवाला है, अतः वह सिरसे वन्दना करनेयोग्य है। पुण्यतोया नर्मदा ब्रह्महत्याका नाश करनेवाली है। यहाँ एक दिन-रात उपवास करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्यासे छूट जाता है। पाण्डुपुत्र! नर्मदा इस प्रकार पुण्यमयी और रमणीया है। यह महानदी तीनों लोकोंमें भी पुण्यमयी है। महापुण्यप्रद वटेश्वर, तपोवन और गङ्गाद्वार—इन स्थानोंमें द्विजगण व्रतानुष्ठान करते हैं, परंतु नर्मदा और समुद्रके सङ्गमपर उससे दसगुना अधिक फल सुना जाता है॥ ५०—५८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्यमें एक सौ छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८६॥

एक सौ सतासीवाँ अध्याय

नर्मदामाहात्म्यके प्रसङ्गमें पुनः * त्रिपुराख्यान

मार्कण्डेय उवाच

नर्मदा तु नदी श्रेष्ठा पुण्यात् पुण्यतमा हिता।
मुनिभिस्तु महाभागैर्विभक्ता मोक्षकाङ्क्षिभिः॥ १
यज्ञोपवीतमात्राणि प्रविभक्तानि पाण्डव।
तेषु स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २
जलेश्वरं परं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तस्योत्पत्तिं कथयतः शृणु त्वं पाण्डुनन्दन॥ ३
पुरा सुरगणाः सर्वे सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः।
स्तुवन्ति ते महात्मानं देवदेवं महेश्वरम्।
स्तुवन्तस्ते तु सम्प्राप्ता यत्र देवो महेश्वरः॥ ४
विज्ञापयन्ति देवेशं सेन्द्राश्चैव मरुद्गणाः।
भयोद्विग्ना विरूपाक्षं परित्रायस्व नः प्रभो॥ ५

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं तु सुरश्रेष्ठाः किमर्थमिह चागताः।
किं दुःखं को नु संतापः कुतो वा भयमागतम्॥ ६
कथयध्वं महाभागा एवमिच्छामि वेदितुम्।
एवमुक्तास्तु रुद्रेण कथयन् संशितव्रताः॥ ७

देवा ऊचुः

अतिवीर्यो महाघोरो दानवो बलदर्पितः।
बाणो नामेति विख्यातो यस्य वै त्रिपुरं पुरम्॥ ८
गगने सततं दिव्यं भ्रमते तस्य तेजसा।
ततो भीता विरूपाक्ष त्वामेव शरणं गताः॥ ९
त्रायस्व महतो दुःखात् त्वं हि नः परमा गतिः।
एवं प्रसादं देवेश सर्वेषां कर्तुमर्हसि॥ १०
येन देवाः सगन्धर्वाः सुखमेधन्ति शंकर।
परां निर्वृतिमायान्ति तत् प्रभो कर्तुमर्हसि॥ ११

मार्कण्डेयजीने कहा—पाण्डुनन्दन! नर्मदा नदियोंमें श्रेष्ठ है, वह अतिशय पुण्यदायिनी, हितकारिणी तथा मोक्षकी अभिलाषा रखनेवाले महाभाग्यशाली मुनियोंद्वारा सेवित है। वह यज्ञोपवीतकी दूरीपर (तीर्थ) विभक्त हैं। नृपश्रेष्ठ! मनुष्य उनमें स्नानकर सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पाण्डुपुत्र! जलेश्वर नामक श्रेष्ठ तीर्थ तीनों लोकोंमें विख्यात है, मैं उसकी उत्पत्तिका वर्णन कर रहा हूँ, आप सुनिये। पूर्वकालमें इन्द्रसहित सभी देवता और मरुद्गण देवाधिदेव महात्मा महेश्वरकी स्तुति कर रहे थे। स्तुति करते हुए वे इन्द्रसहित मरुद्गण महेश्वरदेवके पास पहुँचे और भयसे व्याकुल होकर विरूपाक्ष भगवान् शंकरसे कहने लगे—'प्रभो! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये'॥ १—५॥

श्रीभगवान्ने कहा—सुरश्रेष्ठगण! आपलोगोंका स्वागत है। आपलोग यहाँ किसलिये आये हैं। आप-लोगोंको कौन-सा दुःख है? कैसी पीड़ा है? और कहाँसे भय उपस्थित हो गया है? महाभाग देवगण! आपलोग कहिये, मैं उसे जानना चाहता हूँ। इस प्रकार रुद्रद्वारा कहे जानेपर भलीभाँति व्रतोंका सम्पादन करनेवाले देवताओंने कहा॥ ६-७॥

देवगण बोले—विरूपाक्ष! अतिशय भीषण, महान् पराक्रमी और बलाभिमानी बाण नामसे विख्यात एक दानव है, जिसका त्रिपुर नामक नगर है। वह दिव्य नगर उसके प्रभावसे सदा आकाशमें घूमता रहता है। उससे भयभीत होकर हमलोग आपकी शरणमें आये हैं। आप इस महान् कष्टसे हमलोगोंकी रक्षा कीजिये; क्योंकि आप ही हमलोगोंकी परमगति हैं। देवेश! इस प्रकार आप हम सभी लोगोंपर कृपा कीजिये। सामर्थ्यशाली शंकर! जिस कार्यसे गन्धर्वोंसहित देवगण सुखी हो सकें तथा परम संतोष प्राप्त कर लें, आप वही कीजिये॥ ८—११॥

* इसी पुराणके पहले भी १२९—१४० तक बारह अध्यायोंमें त्रिपुरवृत्त विस्तारसे आया है। अन्तर इतना ही है कि यह बाणासुरका कहा गया है और वह तारकाक्ष आदिका है। शेष बातें प्रायः समान हैं।

श्रीभगवानुवाच

एतत् सर्वं करिष्यामि मा विषादं गमिष्यथ।
अचिरेणैव कालेन कुर्यां युष्मत् सुखावहम्॥ १२
चिन्तयामास देवेशस्तद्वधं प्रति मानद॥ १३
अथ केन प्रकारेण हन्तव्यं त्रिपुरं मया।
एवं संचिन्त्य भगवान् नारदं चास्मरत् तदा।
स्मरणादेव सम्प्राप्तो नारदः समुपस्थितः॥ १४

नारद उवाच

आज्ञापय महादेव किमर्थं च स्मृतो ह्यहम्।
किं कार्यं तु मया देव कर्तव्यं कथयस्व मे॥ १५

श्रीभगवानुवाच

गच्छ नारद तत्रैव यत्र तत् त्रिपुरं महत्।
बाणस्य दानवेन्द्रस्य शीघ्रं गत्वा च तत् कुरु॥ १६
ता भर्तृदेवतास्तत्र स्त्रियश्चाप्सरसां समाः।
तासां वै तेजसा विप्र भ्रमते त्रिपुरं दिवि॥ १७
तत्र गत्वा तु विप्रेन्द्र मतिमन्यां प्रचोदय।
देवस्य वचनं श्रुत्वा मुनिस्त्वरितविक्रमः॥ १८
स्त्रीणां हृदयनाशाय प्रविष्टस्तत्पुरं प्रति।
शोभते यत्पुरं दिव्यं नानारत्नोपशोभितम्॥ १९
शतयोजनविस्तीर्णं ततो द्विगुणमायतम्।
ततोऽपश्यद्धि तत्रैव बाणं तु बलदर्पितम्॥ २०
मणिकुण्डलकेयूरमुकुटेन विराजितम्।
हेमहारशतै रत्नैश्चन्द्रकान्तविभूषितम्॥ २१
रशना तस्य रत्नाढ्या बाहू कनकमण्डितौ।
चन्द्रकान्तमहावज्रमणिविद्रुमभूषिते ॥ २२
द्वादशार्कद्युतिनिभे निविष्टं परमासने।
उत्थितो नारदं दृष्ट्वा दानवेन्द्रो महाबलः॥ २३

बाण उवाच

देवर्षे त्वं स्वयं प्राप्तो ह्यर्घ्यं पाद्यं निवेदये।
सोऽभिवाद्य यथान्यायं क्रियतां किं द्विजोत्तम॥ २४
चिरात् त्वमागतो विप्र स्थीयतामिदमासनम्।
एवं सम्भाषयित्वा तु नारदमृषिसत्तमम्।
तस्य भार्या महादेवी ह्यनौपम्या तु नामतः॥ २५

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवगण! आपलोग विषाद मत करें। मैं यह सब करूँगा। मैं थोड़े ही समयमें आप लोगोंके लिये सुखप्रद कार्यका सम्पादन करूँगा। मानद! इस प्रकार उन लोगोंको आश्वासन देकर देवेश नर्मदाके तटपर आये और उसके वधके विषयमें सोचने लगे कि मुझे त्रिपुरका विनाश किस प्रकार करना चाहिये। ऐसा सोच-विचारकर भगवान्‌ने उस समय नारदका स्मरण किया। स्मरण करते ही नारदजी वहाँ उपस्थित हो गये॥ १२—१४॥

नारदजीने कहा—महादेव! मुझे आज्ञा दीजिये, किसलिये मेरा स्मरण किया गया है? देव! मुझे क्या करना है? मेरे लिये उस कर्तव्यका निर्देश कीजिये॥ १५॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—नारद! दानवराज बाणका यह महान् त्रिपुर जहाँ स्थित है, आप वहीं जाइये और वहाँ जाकर शीघ्र ही ऐसा कीजिये। विप्र! वहाँकी स्त्रियाँ अप्सराओंके समान सुन्दरी हैं और वे सभी पतिव्रता हैं। उन्हींके तेजसे त्रिपुर आकाशमें घूमता है। विप्रेन्द्र! वहाँ जाकर आप उनकी बुद्धिको परिवर्तित कर दीजिये। महादेवजीकी बात सुनकर शीघ्र पराक्रमी नारदजी उन स्त्रियोंके हृदयको विकृत करनेके लिये उस त्रिपुरमें प्रविष्ट हुए। वह दिव्य पुर अनेक प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत, सौ योजन विस्तृत और दो सौ योजन चौड़ा था। वहाँ उन्होंने बलाभिमानी बाणको देखा। वह मणिमय कुण्डल, भुजबंद और मुकुटसे अलंकृत तथा सैकड़ों स्वर्णमय एवं रत्नोंके हारों और चन्द्रकान्तमणिसे विभूषित था। उसकी करधनी रत्नोंकी बनी थी तथा भुजाएँ स्वर्णमय आभूषणोंसे मण्डित थीं। वह चन्द्रकान्त, हीरक, मणि और मूँगोंसे जटित एवं बारह आदित्योंकी द्युतिके समान देदीप्यमान श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठा था। नारदजीको देखकर वह महाबली दानवराज उठकर खड़ा हो गया॥ १६—२३॥

बाणासुर बोला—देवर्षे! आप स्वयं मेरे नगरमें पधारे हैं, मैं आपको अर्घ्य एवं पाद्य निवेदित कर रहा हूँ। फिर उसने विधिपूर्वक अभिवादन कर कहा—'द्विजश्रेष्ठ! मैं आपका कौन-सा कार्य करूँ? ब्राह्मणदेव! आप बहुत दिनोंके बाद पधारे हैं। इस आसनपर बैठिये।' इस प्रकार ऋषिश्रेष्ठ नारदजीसे वार्तालाप करनेके पश्चात् उसकी पत्नी महादेवी अनौपम्याने प्रश्न किया॥ २४-२५॥

अनौपम्योवाच

भगवन् मानुषे लोके केन तुष्यति केशवः।
व्रतेन नियमेनाथ दानेन तपसापि वा॥ २६

नारद उवाच

तिलधेनुं च यो दद्याद् ब्राह्मणे वेदपारगे।
ससागरवनद्वीपा दत्ता भवति मेदिनी॥ २७
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः।
मोदते चाक्षयं कालं यावच्चन्द्रार्कतारकम्॥ २८
आम्रामलकपित्थानि बदराणि तथैव च।
कदम्बचम्पकाशोकपुंनागविविधद्रुमान् ॥ २९
अश्वत्थपिप्पलांश्चैव कदलीवटदाडिमान्।
पिचुमन्दं मधूकं च उपोष्य स्त्री ददाति या॥ ३०
स्तनौ कपित्थसदृशावूरू च कदलीसमौ।
अश्वत्थे वन्दनीया च पिचुमन्दे सुगन्धिनी॥ ३१
चम्पके चम्पकाभा स्यादशोके शोकवर्जिता।
मधूके मधुरं वक्ति वटे च मृदुगात्रिका॥ ३२
बदरी सर्वदा स्त्रीणां महासौभाग्यदायिनी।
कुक्कुटी कर्कटी चैव द्रव्यषष्ठी न शस्यते॥ ३३
कदम्बमिश्रकनकमञ्जरीपूजनं तथा।
अनग्निपक्कमन्नं च पक्वान्नानामभक्षणम्॥ ३४
फलानां च परित्यागः संध्यामौनं तथैव च।
प्रथमं क्षेत्रपालस्य पूजा कार्या प्रयत्नतः॥ ३५
तस्या भवति वै भर्ता मुखप्रेक्षी सदानघे।
अष्टमी च चतुर्थी च पञ्चमी द्वादशी तथा॥ ३६
संक्रान्तिर्विषुवच्चैव दिनच्छिद्रमुखं तथा।
एतांस्तु दिवसान् दिव्यानुपवसन्ति याः स्त्रियः।
तासां तु धर्मयुक्तानां स्वर्गवासो न संशयः॥ ३७
कलिकालुष्यनिर्मुक्ताः सर्वपापविवर्जिताः।
उपवासरतां नारीं नोपसर्पति तां यमः॥ ३८

अनौपम्योवाच

अस्मिन् कृतेन पुण्येन पुराजन्मकृतेन वा।
भवदागमनं भूतं किंचित् पृच्छाम्यहं व्रतम्॥ ३९

अनौपम्याने पूछा— भगवन्! मनुष्यलोकमें केशव व्रत, नियम, दान अथवा तपस्या—इनमें किससे प्रसन्न होते हैं?॥ २६॥

नारदजीने कहा— जो मनुष्य वेदमें पारङ्गत ब्राह्मणको तिलधेनुका दान करता है, उसके द्वारा समुद्र, वन और द्वीपोंसहित पृथ्वीका दान सम्पन्न हुआ समझना चाहिये। वह दाता करोड़ों सूर्योंके समान देदीप्यमान एवं सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंद्वारा सूर्य, चन्द्र और तारोंकी स्थितिपर्यन्त अक्षय कालतक आनन्द मनाता है। जो स्त्री उपवास करके आम, आँवला, कैथ, बेर, कदम्ब, चम्पक, अशोक, पुंनाग, जायफल, पीपल, केला, वट, अनार, नीम, महुआ आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंका दान करती है, उसके दोनों स्तन कैथके समान और दोनों जंघाएँ केलेके सदृश सुन्दर होती हैं। वह अश्वत्थके दानसे वन्दनीय और नीमके दानसे सुगन्धयुक्त होती है। वह चम्पाके दानसे चम्पाकी-सी कान्तिवाली और अशोकके दानसे शोकरहित होती है। महुआके दानसे वह मधुरभाषिणी होती है और वटके दानसे उसका शरीर कोमल होता है। बेर स्त्रियोंके लिये सदा महान् सौभाग्यदायी होता है। ककड़ी, जटाधारी और द्रव्यषष्ठीका दान, कदम्बसे मिश्रित धतूरेकी मंजरीसे पूजन, बिना अग्निसे पकाया हुआ अन्न एवं पके हुए अन्नोंका अभक्षण, फलोंका परित्याग तथा संध्याकालमें मौनधारण—ये स्त्रियोंके लिये प्रशस्त नहीं हैं। सर्वप्रथम प्रयत्नपूर्वक क्षेत्रपालकी पूजा करनी चाहिये। पापशून्ये! उस स्त्रीका पति सदा उसका मुख ही देखा करता है। जो स्त्रियाँ अष्टमी, चतुर्थी, पञ्चमी और द्वादशी तिथि, संक्रान्ति, विषुवयोग और दिनच्छिद्रमुख (दोपहरमें चन्द्रमाका नये मासकी तिथिमें प्रवेश करना)—इन दिव्य दिनोंमें उपवास करती हैं, उन धर्मयुक्त स्त्रियोंका स्वर्गमें निवास होता है—इसमें संदेह नहीं है। वे कलियुगके पापोंसे रहित और सभी पापोंसे शून्य हो जाती हैं। इस प्रकार जो स्त्री उपवासमें तत्पर रहती है, उसके समीप यम भी नहीं आते॥ २७—३८॥

अनौपम्या बोली— नारदजी! पता नहीं, इस जन्ममें या पूर्व जन्ममें किये हुए पुण्यसे ही आपका यहाँ आगमन हुआ है। अब मैं आपसे कतिपय व्रतोंके विषयमें पूछती

अस्ति विन्ध्यावलिर्नाम बलिपत्नी यशस्विनी।
श्वश्रूर्ममापि विप्रेन्द्र न तुष्यति कदाचन॥ ४०
श्वशुरोऽपि सर्वकालं दृष्ट्वा चापि न पश्यति।
अस्ति कुम्भीनसी नाम ननान्दा पापकारिणी॥ ४१
दृष्ट्वा चैवाङ्गुलीभङ्गं सदा कालं करोति माम्।
दिव्येन तु पथा याति मम सौख्यं कथं वद॥ ४२
ऊषरे न प्ररोहन्ति बीजाङ्कुराः कथञ्चन।
येन व्रतेन चीर्णेन भवन्ति वशगा मम।
तद्व्रतं ब्रूहि विपेन्द्र दासभावं व्रजामि ते॥ ४३

नारद उवाच

यदेतत् ते मया पूर्वं व्रतमुक्तं शुभानने।
अनेन पार्वती देवी चीर्णेन वरवर्णिनि॥ ४४
शंकरस्य शरीरस्था विष्णोर्लक्ष्मीस्तथैव च।
सावित्री ब्रह्मणश्चैव वसिष्ठस्याप्यरुन्धती॥ ४५
एतेनोपोषितेनेह भर्ता स्थास्यति ते वशे।
श्वश्रूश्वशुरयोश्चैव मुखबन्धो भविष्यति॥ ४६
एवं श्रुत्वा तु शुश्रोणि यथेष्टं कर्त्तुमर्हसि।
नारदस्य वचः श्रुत्वा राज्ञी वचनमब्रवीत्॥ ४७
प्रसादं कुरु विपेन्द्र दानं ग्राह्यं यथेप्सितम्।
सुवर्णमणिरत्नानि वस्त्राण्याभरणानि च॥ ४८
तव दास्याम्यहं विप्र यच्चान्यदपि दुर्लभम्।
प्रगृहाण द्विजश्रेष्ठ प्रीयेतां हरिशंकरौ॥ ४९

नारद उवाच

अन्यस्मै दीयतां भद्रे क्षीणवृत्तिस्तु यो द्विजः।
अहं तु सर्वसम्पन्नो मद्भक्तिः क्रियतामिति॥ ५०
एवं तासां मनो हृत्वा सर्वासां तु पतिव्रतात्।
जगाम भरतश्रेष्ठ स्वकीयं स्थानकं पुनः॥ ५१
ततो ह्यहृष्टहृदया अन्यतोगतमानसाः।
पतिव्रतात्वमुत्सृज्य तासां तेजो गतं ततः।
पुरे छिद्रं समुत्पन्नं बाणस्य तु महात्मनः॥ ५२

हूँ। विप्रवर! जो बलिकी पत्नी यशस्विनी विन्ध्यावलि हैं, वे मेरी भी सास हैं। वे मुझसे कभी भी प्रसन्न नहीं रहतीं। मेरे श्वशुर भी मुझे सभी समय देखते हुए भी अनदेखी करते हैं। पापाचरणमें रत रहनेवाली कुम्भीनसी नामकी मेरी ननद है। वह सभी समय मुझे देखकर अङ्गुली तोड़ती रहती है। वह दिव्य मार्गसे कैसे चले और मुझे सुखकी प्राप्ति कैसे हो—यह बतानेकी कृपा करें। (यह सत्य है कि) ऊषर भूमिमें डाले हुए बीजसे किसी प्रकार भी अङ्कुर नहीं उत्पन्न होते, फिर भी जिस व्रतका अनुष्ठान करनेसे ये मेरे वशमें आ जायँ, वह व्रत मुझे बतलाइये। विप्रेन्द्र! मैं आपकी दासी हूँ॥ ३९—४३॥

नारदजीने कहा—सुन्दर मुखवाली! जो व्रत मैंने पूर्वमें तुमसे कहा है, उस व्रतका अनुष्ठान करनेसे पार्वतीदेवी शंकरके, लक्ष्मी विष्णुके, सावित्री ब्रह्माके, अरुन्धती वसिष्ठके शरीरमें विराजमान रहती हैं। इस उपवास-व्रतसे तुम्हारा पति भी तुम्हारे अधीन रहेगा तथा सास और श्वशुरका भी मुख बंद हो जायगा अर्थात् वे तुमसे प्रेम करने लगेंगे। सुश्रोणि! ऐसा सुनकर तुम जैसा चाहो वैसा कर सकती हो। नारदजीके वचनको सुनकर रानीने इस प्रकार कहा—'विप्रवर! मुझपर कृपा कीजिये और यथाभिलषित दान स्वीकार कीजिये। विप्र! सुवर्ण, मणि, रत्न, वस्त्र, आभूषण एवं अन्य जो भी दुर्लभ पदार्थ हैं, वह सब मैं आपको दूँगी। द्विजश्रेष्ठ! आप उसे ग्रहण करें, जिससे विष्णु और शंकर मुझपर प्रसन्न हो जायँ॥ ४४—४९॥

नारदजी बोले—कल्याणि! जो ब्राह्मण जीविकारहित हो, उसे ही यह दान दो। मैं तो सर्वसम्पन्न हूँ। तुम मेरे प्रति भक्ति-भाव रखो। भरतश्रेष्ठ! इस प्रकार उन सभी स्त्रियोंके मनको पातिव्रतसे विचलित कर नारदजी पुनः अपने स्थानपर चले गये। तभीसे उन स्त्रियोंका हृदय उदास रहने लगा और उनका मन दूसरी ओर लग गया। इस प्रकार पातिव्रत्यके त्यागसे उनका तेज नष्ट हो गया तथा महान् आत्मबलसे सम्पन्न बाणके नगरमें छिद्र (दोष) उत्पन्न हो गया॥ ५०—५२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ सतासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८७॥

एक सौ अठासीवाँ अध्याय

त्रिपुर-दाहका वृत्तान्त

मार्कण्डेय उवाच

यन्मां पृच्छसि कौन्तेय तन्मे कथयतः शृणु।
एतस्मिन्नन्तरे रुद्रो नर्मदातटमास्थितः॥ १
नाम्ना माहेश्वरं स्थानं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
तस्मिन् स्थाने महादेवोऽचिन्तयत् त्रिपुरक्षयम्॥ २
गाण्डीवं मन्दरं कृत्वा गुणं कृत्वा च वासुकिम्।
स्थानं कृत्वा तु वैशाखं विष्णुं कृत्वा शरोत्तमम्॥ ३
शल्ये चाग्निं प्रतिष्ठाप्य पुंखे वायुं समर्पयत्।
हयांश्च चतुरो वेदान् सर्वदेवमयं रथम्॥ ४
अभीषवोऽश्विनौ देवावक्षो वज्रधरः स्वयम्।
स तस्याज्ञां समादाय तोरणे धनदः स्थितः॥ ५
यमस्तु दक्षिणे हस्ते वामे कालस्तु दारुणः।
चक्रे त्वमरकोट्यस्तु गन्धर्वा लोकविश्रुताः॥ ६
प्रजापतिरथ श्रेष्ठो ब्रह्मा चैव तु सारथिः।
एवं कृत्वा तु देवेशः सर्वदेवमयं रथम्॥ ७
सोऽतिष्ठत् स्थाणुभूतस्तु सहस्रपरिवत्सरान्।
यदा त्रीणि समेतानि अन्तरिक्षे स्थितानि वै॥ ८
त्रिपर्वणा त्रिशल्येन तदा तानि व्यभेदयत्।
शरः प्रचोदितस्तेन रुद्रेण त्रिपुरं प्रति॥ ९
भग्नतेजाः स्त्रियो जाता बलं तासां व्यशीर्यत।
उत्पाताश्च पुरे तस्मिन् प्रादुर्भूताः सहस्रशः॥ १०
त्रिपुरस्य विनाशाय कालरूपाभवंस्तदा।
अट्टहासं प्रमुञ्चन्ति हयाः काष्ठमयास्तदा॥ ११
निमेषोन्मेषणं चैव कुर्वन्ति चित्ररूपिणः।
स्वप्ने पश्यन्ति चात्मानं रक्ताम्बरविभूषितम्॥ १२
स्वप्ने तु सर्वे पश्यन्ति विपरीतानि यानि तु।
एतान् पश्यन्ति उत्पातांस्तत्र स्थाने तु ये जनाः॥ १३

मार्कण्डेयजीने कहा—कुन्तीनन्दन! आपने जो मुझसे पूछा है, उसे मैं कह रहा हूँ, सुनिये! इसी बीच रुद्रदेव नर्मदा-तटपर आये। वहाँ जो तीनों लोकोंमें विख्यात माहेश्वर नामक स्थान है, उस स्थानपर बैठकर महादेव त्रिपुर-संहारके विषयमें सोचने लगे। उन्होंने मन्दराचलको गाण्डीव धनुष, वासुकि सर्पको धनुषकी प्रत्यञ्चा, कार्तिकेयको तरकस, विष्णुको श्रेष्ठ बाण, बाणके अग्रभागमें अग्निको और पुच्छ भागमें वायुको प्रतिष्ठित करके चारों वेदोंको घोड़ा बनाया। इस प्रकार उन्होंने सर्वदेवमय रथका निर्माण किया। दोनों अश्विनीकुमारोंको बागडोर और रथकी धुरीके रूपमें साक्षात् वज्रधारी इन्द्रको नियुक्त किया। उनकी आज्ञाको स्वीकार कर कुबेर तोरणके स्थानपर स्थित हुए। दाहिने हाथपर यम और बायें हाथपर भयंकर काल स्थित हुए। करोड़ों देवगण और लोकविश्रुत गन्धर्वगण रथके चक्के हुए तथा श्रेष्ठ प्रजापति ब्रह्मा सारथि बने। इस प्रकार शिवजी सर्वदेवमय रथका निर्माण कर उसपर स्थाणुरूपमें एक हजार वर्षोंतक स्थित रहे। जब तीनों पुर अन्तरिक्षमें एक साथ सम्मिलित हुए, तब उन्होंने तीन पर्वोंवाले तीन बाणोंसे उनका भेदन किया। जिस समय भगवान् रुद्रने उस बाणको त्रिपुरके ऊपर चलाया, उस समय वहाँकी स्त्रियाँ तेजोहीन हो गयीं और उनका पातिव्रत्य-बल नष्ट हो गया तथा उस नगरमें हजारों प्रकारके उपद्रव उत्पन्न होने लगे॥ १—१०॥

उस समय वे स्त्रियाँ भी त्रिपुर-नाशके लिये कालस्वरूप हो गयीं। काष्ठमय घोड़े अट्टहास करने लगे। चित्ररूपमें निर्मित जीव आँखको खोलने और बंद करने लगे। वहाँके निवासी स्वप्नमें अपनेको लाल वस्त्रसे अलंकृत देखने लगे। उन्हें स्वप्नमें सभी वस्तुएँ विपरीत दिखायी पड़ने लगीं। वे इस प्रकार इन उत्पातोंको देखने

तेषां बलं च बुद्धिश्च हरकोपेन नाशिते।
ततः सांवर्तको वायुर्युगान्तप्रतिमो महान्॥ १४
समीरितोऽनलस्तेन उत्तमाङ्गेन धावति।
ज्वलन्ति पादपास्तत्र पतन्ति शिखराणि च॥ १५
सर्वतो व्याकुलीभूतं हाहाकारमचेतनम्।
भग्नोद्यानानि सर्वाणि क्षिप्रं तत् प्रत्यभज्यत॥ १६
तेनैव पीडितं सर्वं ज्वलितं त्रिशिखैः शरैः।
द्रुमाश्चारामखण्डानि गृहाणि विविधानि च॥ १७
दशदिक्षु प्रवृत्तोऽयं समृद्धो हव्यवाहनः।
मनःशिलापुञ्जनिभो दिशो दश विभागशः॥ १८
शिखाशतैरनेकैस्तु प्रजज्वाल हुताशनः।
सर्वं किंशुकवर्णाभं ज्वलितं दृश्यते पुरम्॥ १९

लगे। शंकरजीके कोपसे उनके बल और बुद्धि नष्ट हो गये। तदनन्तर प्रलयकालके समान प्रचण्ड सांवर्तक वायु बहने लगा। वायुसे प्रेरित आगकी भयंकर लपटें भी इधर-उधर व्याप्त होने लगीं। जिससे वहाँ वृक्ष-समूह जलने लगे और पर्वतके शिखर गिरने लगे। सभी ओर लोग व्याकुल होकर चेतनारहित हो गये। चतुर्दिक् भयंकर हाहाकार मच गया। सभी उद्यान नष्ट हो गये। वहाँ सब कुछ शीघ्र ही छिन्न-भिन्न हो गया। शंकरजीद्वारा सभी दुःखमग्न कर दिये गये। तीन शिखाओंवाले बाणोंसे वृक्ष, वाटिकाएँ और विविध प्रासाद जलने लगे। यह प्रदीप्त अग्नि दसों दिशाओंमें फैल गया। उस समय दसों दिशाएँ मैनशिलसमूहके समान दीखने लगीं। अग्निदेव अनेकों प्रकारकी सैकड़ों शिखाओंसे युक्त प्रज्वलित हो उठे, जिससे जला हुआ वह सम्पूर्ण त्रिपुर पलाशपुष्पके समान लाल रंगका दिखायी पड़ रहा था॥ ११—१९॥

गृहाद् गृहान्तरं नैव गन्तुं धूमेन शक्यते।
हरकोपानलैर्दग्धं क्रन्दमानं सुदुःखितम्॥ २०
प्रदीप्तं सर्वतो दिक्षु दह्यते त्रिपुरं पुरम्।
प्रासादशिखराग्राणि व्यशीर्यन्त सहस्रशः॥ २१
नानामणिविचित्राणि विमानान्यप्यनेकधा।
गृहाणि चैव रम्याणि दह्यन्ते दीप्तवह्निना॥ २२
धावन्ति द्रुमखण्डेषु वलभीषु तथा जनाः।
देवागारेषु सर्वेषु प्रज्वलन्तः प्रधाविताः॥ २३
क्रन्दन्ति चानलप्लुष्टा रुदन्ति विविधैः स्वरैः।
गिरिकूटनिभास्तत्र दृश्यन्तेऽङ्गारराशयः॥ २४
गजाश्च गिरिकूटाभा दह्यमाना यतस्ततः।
स्तुवन्ति देवदेवेशं परित्रायस्व नः प्रभो।
अन्योऽन्यं च परिष्वज्य हुताशनप्रधर्षिताः॥ २५
स्नेहात् प्रदह्यमानाश्च तथैव वलयंगताः।
दह्यन्ते दानवास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः॥ २६

उस समय धुएँके कारण एक घरसे दूसरे घरमें जाना सम्भव नहीं था। सभी लोग शंकरजीकी क्रोधाग्निसे जलते हुए अत्यन्त दुःखके कारण चीत्कार कर रहे थे। इस प्रकार सभी दिशाओंमें धधकता हुआ त्रिपुरनगर जल रहा था। राजभवनोंके शिखरोंके अग्रभाग हजारों टुकड़ोंमें टूटकर गिर रहे थे। विविध मणियोंसे जटित अनेकों विमान और रमणीय घर उद्दीप्त आगसे जल रहे थे। वहाँके निवासी वृक्षोंके समूहोंमें, घरोंके छज्जोंके नीचे तथा सभी देवगृहोंमें जलते हुए इधर-उधर दौड़ रहे थे। आगकी चपेटमें आकर वे सभी विविध स्वरोंमें क्रन्दन कर रहे थे। वहाँ पर्वतशिखरके समान अङ्गारसमूह दिखायी दे रहे थे। पर्वतशिखरके समान विशाल गजराज इधर-उधर जल रहे थे। सभी देवाधिदेव शंकरकी यों स्तुति कर रहे थे—'प्रभो! हमलोगोंकी रक्षा कीजिये।' वे अग्निसे जलते हुए स्नेहके कारण एक-दूसरेका आलिङ्गन कर उसी प्रकार जलते हुए नष्ट हो रहे थे। इस प्रकार वहाँ सैकड़ों-हजारों दानव जल रहे थे॥ २०—२६॥

हंसकारण्डवाकीर्णा नलिन्यः सहपङ्कजाः।
दृश्यन्तेऽनलदग्धानि पुरोद्यानानि दीपिकाः॥ २७
अम्लानपङ्कजच्छन्ना विस्तीर्णा योजनायताः।
गिरिकूटनिभास्तत्र प्रासादा रत्नभूषिताः॥ २८
पतन्त्यनलनिर्दग्धा निस्तोया जलदा इव।
वरस्त्रीबालवृद्धेषु गोषु पक्षिषु वाजिषु॥ २९

हंसों और बतखोंसे परिपूर्ण एवं कमलोंसे युक्त पुष्करिणी, बगीचे तथा बावलियाँ, जो एक योजन लम्बी-चौड़ी और खिले हुए कमलोंसे व्याप्त थीं, अग्निसे जलती हुई दिखायी दे रही थीं। वहाँ रत्नोंसे विभूषित पर्वतशिखरके समान राजभवन अग्निके द्वारा भस्म होकर गिर रहे थे। वे जलशून्य मेघके समान दिखायी दे रहे थे। शंकरजीके क्रोधसे प्रेरित अग्नि श्रेष्ठ स्त्री, बालक, वृद्ध, गौ, पक्षी

निर्दयो व्यदहद् वह्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः।
सहस्रशः प्रबुद्धाश्च सुप्ताश्च बहवो जनाः॥ ३०
पुत्रमालिङ्ग्य ते गाढं दह्यन्ते त्रिपुराग्निना।
निदाघोऽभून्महावह्नेरन्तकालो यथा तथा॥ ३१
केचिद् गुप्ताः प्रदग्धास्तु भार्योत्सङ्गगतास्तथा।
पित्रा मात्रा च सुश्लिष्टा दग्धास्ते त्रिपुराग्निना॥ ३२
अथ तस्मिन् पुरे दीप्ते स्त्रियश्चाप्सरसोपमाः॥ ३३
अग्निज्वालाहतास्तत्र ह्यपतन् धरणीतले।
काचिच्छ्यामा विशालाक्षी मुक्तावलिविभूषिता॥ ३४
धूमेनाकुलिता सा तु पतिता धरणीतले।
काचित् कनकवर्णाभा इन्द्रनीलविभूषिता॥ ३५
भर्तारं पतितं दृष्ट्वा पतिता तस्य चोपरि।
काचिदादित्यसङ्काशा प्रसुप्ता च गृहे स्थिता॥ ३६
अग्निज्वालाहता सा तु पतिता गतचेतना।
उत्थितो दानवस्तत्र खड्गहस्तो महाबलः॥ ३७
वैश्वानरहतः सोऽपि पतितो धरणीतले।
मेघवर्णापरा नारी हारकेयूरभूषिता॥ ३८
श्वेतवस्त्रपरीधाना बालं स्तन्यं न्यधापयत्।
दह्यन्तं बालकं दृष्ट्वा रुदती मेघशब्दवत्॥ ३९
एवं स तु दहन्नग्निर्हरक्रोधेन प्रेरितः।
काचिच्चन्द्रप्रभा सौम्या वज्रवैदूर्यभूषिता॥ ४०
सुतमालिङ्ग्य वेपन्ती दग्धा पतति भूतले।
काचित् कुन्देन्दुवर्णाभा क्रीडन्ती स्वगृहे स्थिता॥ ४१
गृहे प्रज्वलिते सा तु प्रतिबुद्धा शिखार्दिता।
पश्यन्ती ज्वलितं सर्वं हा सुतो मे कथं गतः॥ ४२
सुतं संदग्धमालिङ्ग्य पतिता धरणीतले।
आदित्योदयवर्णाभा लक्ष्मीवदनशोभना॥ ४३
त्वरिता दह्यमाना सा पतिता धरणीतले।
काचित् सुवर्णवर्णाभा नीलरत्नैर्विभूषिता॥ ४४

और घोड़ोंमें फैलकर निर्दयतापूर्वक जला रहे थे। हजारों जागे हुए एवं अनेकों सोये हुए व्यक्ति, जो पुत्रका गाढ़ आलिङ्गन किये हुए थे, त्रिपुराग्निसे जल रहे थे। वहाँ प्रचण्ड अग्निके कारण प्रलयकालीन संताप परिव्याप्त था। उस त्रिपुराग्निसे कुछ लोग पत्नीकी गोदमें छिपे हुए ही भस्म हो गये तो कुछ लोग माँ-बापसे चिपके हुए ही जलकर भस्मसात् हो गये। उस प्रज्वलित त्रिपुरमें अप्सराओंके समान सुन्दरी स्त्रियाँ अग्निकी ज्वालाओंसे झुलसकर पृथ्वीपर गिर रही थीं। कोई मोतीकी मालाओंसे अलंकृत विशाल नेत्रोंवाली षोडशवर्षीया नायिका धूएँसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। कोई इन्द्रनील मणिसे अलंकृत स्वर्णके समान कान्तिवाली स्त्री पतिको गिरा हुआ देखकर उसीके ऊपर गिर पड़ी। कोई सूर्यके समान तेजस्विनी नारी घरमें ही स्थित रहकर सो रही थी, वह अग्निकी ज्वालासे चेतनारहित होकर धराशायी हो गयी। उसी समय अतिशय बलशाली एक दानव हाथमें तलवार लेकर उठ खड़ा हुआ, किंतु अग्निसे जलकर वह भी पृथ्वीपर गिर पड़ा। मेघके समान श्यामवर्णकी दूसरी स्त्री, जो हार और केयूरसे अलंकृत तथा श्वेतवस्त्र पहने हुए अपने दुधमुँहे बच्चेको सुलाये हुए थी, वह उस बच्चेको जलते हुए देखकर मेघके शब्दके समान रोने लगी। इस प्रकार शंकरजीके कोपसे प्रेरित वह अग्नि त्रिपुरको जला रही थी॥ २७—३९ १/२॥

कोई चन्द्रके समान कान्तिवाली एवं हीरक और वैदूर्यसे अलंकृत सज्जन नायिका अपने पुत्रको गोदमें लेकर काँपती हुई जलकर पृथ्वीपर गिर पड़ी। कोई कुन्द-पुष्प एवं चन्द्रमाके समान कान्तिवाली स्त्री क्रीडा करती हुई अपने घरमें ही सो रही थी, वह घरके जलनेपर अग्निशिखासे पीड़ित हो जाग उठी और सबको जलता हुआ देखकर 'हा! मेरा पुत्र कहाँ चला गया?' ऐसा कहती हुई जलते हुए पुत्रका आलिङ्गन कर पृथ्वीपर गिर पड़ी। उदयकालीन सूर्यके समान कान्तिसे युक्त एवं लक्ष्मीके मुखके समान शोभायमान मुखवाली कोई स्त्री भागती हुई जलकर पृथ्वीपर गिर गयी। कोई स्वर्णके समान कान्तिवाली नीलरत्नोंसे अलंकृत स्त्री

धूमेनाकुलिता सा तु प्रसुप्ता धरणीतले।
अन्या गृहीतहस्ता तु सखि दह्यति बालिका॥ ४५

अनेकदिव्यरत्नाढ्या दृष्ट्वा दहनमोहिता।
शिरसि ह्यञ्जलिं कृत्वा विज्ञापयति पावकम्॥ ४६

भगवन् यदि वैरं ते पुरुषेष्वपकारिषु।
स्त्रियः किमपराध्यन्ते गृहपञ्जरकोकिलाः॥ ४७

पाप निर्दय निर्लज्ज कस्ते कोपः स्त्रियः प्रति।
न दाक्षिण्यं न ते लज्जा न सत्यं शौर्यवर्जितः॥ ४८

अनेन ह्युपसर्गेण तूपालम्भं शिखिन्यदात्।
किं त्वया न श्रुतं लोके ह्यवध्याः शत्रुयोषितः॥ ४९

किंतु तुभ्यं गुणा ह्येते दहनोत्सादनं प्रति।
न कारुण्यं भयं वापि दाक्षिण्यं न स्त्रियः प्रति॥ ५०

दयां कुर्वन्ति म्लेच्छापि दहन्तीं वीक्ष्य योषितम्।
म्लेच्छानामपि कष्टोऽसि दुर्निवारो ह्यचेतनः॥ ५१

एते चैव गुणास्तुभ्यं दहनोत्सादनं प्रति।
आसामपि दुराचार स्त्रीणां किं ते निपातने॥ ५२

दुष्ट निर्घृण निर्लज्ज हुताशिन् मन्दभाग्यक।
निराशत्वं दुरावास बलाद् दहसि निर्दय॥ ५३

एवं विलपमानास्ता जल्पन्त्यश्च बहून्यपि।
अन्याः क्रोशन्ति संक्रुद्धा बालशोकेन मोहिताः॥ ५४

दहते निर्दयो वह्निः संक्रुद्धः पूर्वशत्रुवत्।
पुष्करिण्यां जलं दग्धं कूपेष्वपि तथैव च॥ ५५

अस्मान् संदह्य म्लेच्छ त्वं कां गतिं प्रापयिष्यसि।
एवं प्रलपितं तासां श्रुत्वा देवो विभावसुः।
मूर्तिमान् सहसोत्थाय वह्निर्वचनमब्रवीत्॥ ५६

अग्निरुवाच

स्ववशो नैव युष्माकं विनाशं तु करोम्यहम्।
अहमादेशकर्ता वै नाहं कर्तास्म्यनुग्रहम्॥ ५७

रुद्रक्रोधसमाविष्टो विचरामि यथेच्छया।
ततो बाणो महातेजास्त्रिपुरं वीक्ष्य दीपितम्॥ ५८

सिंहासनस्थः प्रोवाच ह्यहं देवैर्विनाशितः।
अल्पसत्त्वैर्दुराचारैरीश्वरस्य निवेदितम्॥ ५९

धुएँसे व्याकुल होकर पृथ्वीपर सो गयी। अन्य स्त्री अपनी सखीका हाथ पकड़कर कह रही है—'सखि! बालिका जल रही है।' कोई अनेक दिव्य रत्नोंसे अलङ्कृत नारी अग्निको देखकर मोहित हो गयी, तब वह सिरपर हाथ जोड़कर अग्निसे प्रार्थना करने लगी—'भगवन्! यदि तुम्हारा अपकारी पुरुषोंसे वैर है तो घरके पिंजरेमें कोयलके समान आबद्ध स्त्रियोंने तुम्हारा क्या अपराध किया है? अरे पापी! तुम तो बड़े निर्दयी और निर्लज्ज हो। स्त्रियोंके प्रति यह तुम्हारा कैसा क्रोध है! अरे कायर! न तो तुममें कुशलता है, न लज्जा है और न सत्यता है।' वह ऐसे आक्षेपयुक्त वाक्योंसे अग्निको उलाहना देने लगी। (फिर दूसरी कहने लगी—) 'क्या तुमने यह नहीं सुना है कि शत्रुकी स्त्रियाँ भी अवध्य होती हैं? क्या जलाना और नाश करना ये ही तुम्हारे गुण हैं? तुम्हारेमें स्त्रियोंके प्रति दया, भय अथवा उदारता नहीं है। म्लेच्छगण भी स्त्रियोंको जलती हुई देखकर उनपर दया करते हैं। तुम तो म्लेच्छोंसे भी बढ़कर हृदयशून्य दुर्निवार कष्ट हो। दुराचारिन्! इन स्त्रियोंको मारनेसे तुम्हें क्या मिलेगा? क्या जलाना और मारना ये ही तुम्हारे गुण हैं? दुष्ट हुताशिन्! तुम बड़े दयाहीन, निर्लज्ज, अभागा, कठोर और कपटी हो। अरे निर्दय! तुम क्यों बलपूर्वक स्त्रियोंको जला रहे हो?' इस प्रकार वे स्त्रियाँ अनेकों प्रकारसे विलाप करती हुई चीत्कार कर रही थीं? अन्य कुछ स्त्रियाँ बालशोकसे मोहित होकर विलाप कर रही थीं। यह निष्ठुर अग्नि क्रुद्ध होकर पुराने शत्रुके समान हमलोगोंको जला रहा है। पुष्करिणियों और कुओंके भी जल सूख गये। अरे म्लेच्छ! हमलोगोंको जलाकर तुम किस गतिको प्राप्त होगे? इस प्रकार उनका प्रलाप सुनकर अग्निदेव सहसा मूर्तिमान् होकर उठ खड़े हुए और इस प्रकार बोले॥ ४०—५६॥

अग्निदेवने कहा—मैं अपनी इच्छाके अनुसार तुमलोगोंका विनाश नहीं कर रहा हूँ, अपितु मैं आदेशका पालक हूँ। मैं अनुग्रहका कर्ता नहीं हूँ। मैं रुद्रके क्रोधसे आविष्ट होकर इच्छानुसार विचरण कर रहा हूँ। तदनन्तर सिंहासनपर बैठा हुआ महातेजस्वी बाण त्रिपुरको जलता हुआ देखकर बोला—'मैं देवताओंद्वारा विनष्ट कर दिया गया। उस स्वल्पबलशाली दुराचारियोंने शंकरसे निवेदन

अपरीक्ष्य त्वहं दग्धः शंकरेण महात्मना।
नान्यः शक्तिस्तु मां हन्तुं वर्जयित्वा त्रिलोचनम्॥ ६०
उत्थितः शिरसा कृत्वा लिङ्गं त्रिभुवनेश्वरम्।
निर्गतः स पुरद्वारात् परित्यज्य सुहृत्सुतान्॥ ६१
रत्नानि यान्यनर्घाणि स्त्रियो नानाविधास्तथा।
गृहीत्वा शिरसा लिङ्गं गच्छन् गगनमण्डलम्॥ ६२
स्तुवंश्च देवदेवेशं त्रिलोकाधिपतिं शिवम्।
त्यक्ता पुरी मया देव यदि वध्योऽस्मि शंकर॥ ६३
त्वत्प्रसादान्महादेव मा मे लिङ्गं विनश्यतु।
अर्चितं हि मया देव भक्त्या परमया सदा॥ ६४
त्वत्कोपाद् यदि वध्योऽहं तदिदं मा विनश्यतु।
श्लाघ्यमेतन्महादेव त्वत्कोपाद् दहनं मम॥ ६५
प्रतिजन्म महादेव त्वत्पादनिरतो ह्यहम्।
तोटकच्छन्दसा देव स्तौमि त्वां परमेश्वर॥ ६६
शिव शंकर शर्व हराय नमो
भव भीम महेश्वर सर्व नमः।
कुसुमायुधदेहविनाशकर
त्रिपुरान्तक अन्धकशूलधर॥ ६७
प्रमदाप्रिय कान्त विरक्त नमः
ससुरासुरसिद्धगणैर्नमित।
हयवानरसिंहगजेन्द्रमुखै-
रतिह्रस्वसुदीर्घविशालमुखैः॥ ६८
उपलब्धुमशक्यतरैरसुरैः
प्रथितोऽस्मि च बाहुशतैर्बहुभिः।
प्रणतोऽस्मि भवं भवभक्तिरत-
श्चलचन्द्रकलाङ्कुर देव नमः॥ ६९
न च पुत्रकलत्रहयादिधनं
मम तु त्वदनुस्मरणं शरणम्।
व्यथितोऽस्मि शरीरशतैर्बहुभि-
र्गमिता च महानरकस्य गतिः॥ ७०
न निवर्तति जन्म न पापमतिः
शुचिकर्म निबद्धमपि त्यजति।
अनुकम्पति विभ्रमति त्रसति
मम चैव कुकर्म निवारयति॥ ७१

किया और महात्मा शंकरने भी बिना विचारे ही मुझे जला दिया। उन त्रिलोचनको छोड़कर अन्य कोई भी मेरा विनाश नहीं कर सकता। तब वह सिंहासनसे उठ खड़ा हुआ और त्रिभुवनपति शंकरके लिङ्गको सिरपर धारणकर मित्र, पुत्र, बहुमूल्य रत्नों, स्त्रियों और अन्यान्य अनेक प्रकारके पदार्थोंको छोड़कर नगरद्वारसे बाहर निकला। वह लिङ्गको सिरपर धारण कर गगनमण्डलमें जा पहुँचा और देवदेवेश त्रिभुवनपति शिवकी स्तुति करते हुए कहने लगा—'देव! मैंने अपनी पुरीका परित्याग कर दिया है। शंकर! यदि मैं वस्तुतः वध करने योग्य हूँ तो महादेव! आपकी कृपासे मेरा यह लिङ्ग विनष्ट न हो। देव! मैंने परमभक्तिके साथ सदा इसकी पूजा की है, अतः यदि मैं आपके कोपके कारण वध्य हूँ तो यह लिङ्ग विनष्ट न हो। महादेव! आपके कोपसे मेरा यह जल जाना प्रशस्त ही है। महादेव! प्रत्येक जन्ममें मैं आपके चरणोंमें ही लीन हूँ, अतः देवाधिदेव परमेश्वर! मैं तोटक-छन्दद्वारा आपकी स्तुति कर रहा हूँ॥ ५७—६६॥

आप शिव, शंकर, शर्व और हरको नमस्कार है। भव, भीम, महेश्वर और सर्वभूतमयको प्रणाम है। आप कामदेवके शरीरके नाशक, त्रिपुरान्तक, अन्धक, त्रिशूलधर, आनन्दप्रिय, कान्त, विरक्त और सुर-असुर-सिद्धगणोंसे नमस्कृत हैं, आपको नमस्कार है। मैं अश्व, वानर, सिंह और गजेन्द्रके-से मुखोंवाले, अतिशय छोटे, विस्तृत विशालमुखोंसे युक्त और सैकड़ों भुजाओंसे सम्पन्न बहुत-से अजेय असुरोंद्वारा प्राप्त करनेके लिये अशक्यरूपसे विख्यात हूँ। शिवजीकी भक्तिमें लीन रहनेवाला वही मैं भवके चरणोंमें प्रणिपात कर रहा हूँ। चञ्चल चन्द्रकलासे सुशोभित देव! आपको नमस्कार है। ये पुत्र, स्त्री, अश्वादि वैभव मेरे नहीं हैं, मेरे लिये तो आपका चिन्तन ही एकमात्र शरण है। मैं सैकड़ों शरीर (जन्म) धारण कर पीड़ित हो चुका हूँ। आगे महानरकमें पड़नेकी सम्भावना है। न जन्मसे छुटकारा मिलेगा, न पापबुद्धि ही निवृत्त होगी, शुद्ध कर्ममें लगा हुआ भी मन उसे छोड़ देता है, काँपता है, भ्रमित होता है और भयभीत होता है। मेरे ही कुकर्म अच्छे कर्मोंसे मुझे हटाते हैं।

यः पठेत् तोटकं दिव्यं प्रयतः शुचिमानसः।
बाणस्येव यथा रुद्रस्तस्यापि वरदो भवेत्॥ ७२

इमं स्तवं महादिव्यं श्रुत्वा देवो महेश्वरः।
प्रसन्नस्तु तदा तस्य स्वयं वचनमब्रवीत्॥ ७३

महेश्वर उवाच

न भेतव्यं त्वया वत्स सौवर्णे तिष्ठ दानव।
पुत्रपौत्रसुहृद्बन्धुभार्याभृत्यजनैः सह॥ ७४
अद्यप्रभृति बाण त्वमवध्यस्त्रिदशैरपि।
भूयस्तस्य वरो दत्तो देवदेवेन पाण्डव॥ ७५
अक्षयश्चाव्ययो लोके विचरस्वाकुतोभयः।
ततो निवारयामास रुद्रः सप्तशिखं तदा॥ ७६
तृतीयं रक्षितं तस्य शंकरेण महात्मना।
भ्रमत्तु गगने दिव्यं रुद्रतेजःप्रभावतः॥ ७७
एवं तु त्रिपुरं दग्धं शंकरेण महात्मना।
ज्वालामालाप्रदीप्तं तत् पतितं धरणीतले॥ ७८
एकं निपतितं तत्र श्रीशैले त्रिपुरान्तके।
द्वितीयं पतितं तस्मिन् पर्वतेऽमरकण्टके॥ ७९
दग्धेषु तेषु राजेन्द्र रुद्रकोटिः प्रतिष्ठिता।
ज्वलत्तदपतत् तत्र तेन ज्वालेश्वरः स्मृतः॥ ८०
ऊर्ध्वेन प्रस्थितास्तस्य दिव्यज्वाला दिवं गताः।
हाहाकारस्तदा जातो देवासुरकृतो महान्॥ ८१
शरमस्तम्भयद् रुद्रो माहेश्वरपुरोत्तमे।
एवं वृत्तं तदा तस्मिन् पर्वतेऽमरकण्टके॥ ८२
चतुर्दशाख्यं भुवनं स भुक्त्वा पाण्डुनन्दन।
वर्षकोटिसहस्रं तु त्रिंशत्कोट्यस्तथापराः॥ ८३
ततो महीतलं प्राप्य राजा भवति धार्मिकः।
पृथिवीमेकच्छत्रेण भुङ्क्ते स तु न संशयः॥ ८४

एवं पुण्यो महाराज पर्वतोऽमरकण्टकः।
चन्द्रसूर्योपरागे तु गच्छेद् योऽमरकण्टकम्॥ ८५

अश्वमेधाद् दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः।
स्वर्गलोकमवाप्नोति दृष्ट्वा तत्र महेश्वरम्॥ ८६

ब्रह्महत्या गमिष्यन्ति राहुग्रस्ते दिवाकरे।
तदेवं निखिलं पुण्यं पर्वतेऽमरकण्टके॥ ८७

जो मनुष्य संयत होकर पवित्र मनसे इस दिव्य तोटकछन्दमें रचित स्तोत्रको पढ़ता है, उसके लिये भी रुद्र बाणके समान वरदायक होते हैं। उस समय स्वयं महेश्वरदेव इस महादिव्य स्तोत्रको सुनकर उसपर प्रसन्न हो गये और इस प्रकार बोले॥६७—७३॥

भगवान् महेश्वरने कहा—वत्स! तुम्हें डरना नहीं चाहिये। दानव! तुम पुत्र, मित्र, बन्धु, पत्नी और भृत्यजनोंके साथ सुवर्णनिर्मित नगरमें निवास करो। बाण! आजसे तुम देवताओंद्वारा अवध्य हो गये। अब तुम लोकमें सर्वथा निर्भय, अव्यय और अक्षय होकर विचरण करो। पाण्डुनन्दन! इस प्रकार देवाधिदेवने बाणको पुनः वर प्रदान किया। तदनन्तर रुद्रने अग्निको जलानेसे मना कर दिया। इस प्रकार महात्मा शंकरने बाणासुरके तृतीय पुरकी रक्षा की। वह पुर रुद्रके तेजके प्रभावसे गगनमण्डलमें घूमने लगा। इस प्रकार महात्मा शंकरने त्रिपुरको जलाया। वह ज्वालामालासे प्रदीप्त होकर पृथ्वीतलपर गिर पड़ा। उनमेंसे एक पुर त्रिपुरान्तकके श्रीशैलपर गिरा और द्वितीय उस अमरकण्टक पर्वतपर गिरा। राजेन्द्र! उनके जल जानेपर उसपर करोड़ों रुद्र प्रतिष्ठित हुए। वह जलता हुआ गिरा था, इस कारण ज्वालेश्वर नामसे प्रसिद्ध हुआ। उसकी दिव्य ज्वालाएँ ऊपरको उठती हुई स्वर्गलोकतक जा पहुँचीं। उस समय देवों और असुरोंके द्वारा किया गया भयंकर हाहाकार व्याप्त हो गया। तब रुद्रने अमरकण्टक पर्वतपर उत्तम माहेश्वरपुरमें शरको स्तम्भित कर दिया। पाण्डुनन्दन! (इस प्रकार अमरकण्टकपर्वतपर जो व्यक्ति रुद्रकोटिकी अर्चना करता है) वह तीस करोड़ एक हजार वर्षपर्यन्त चौदहों भुवनोंका उपभोग कर अन्तमें पृथ्वीपर जन्म लेकर धार्मिक राजा होता है। वह एकच्छत्र सम्राट् होकर पृथ्वीका उपभोग करता है—इसमें संदेह नहीं है॥ ७४—८४॥

महाराज! यह अमरकण्टक पर्वत ऐसा पुण्यजनक है। जो व्यक्ति चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय अमरकण्टक पर्वतपर जाता है, वह अश्वमेध-यज्ञसे दसगुना फल प्राप्त करता है और वहाँ महेश्वरका दर्शन करके स्वर्गलोकको प्राप्त करता है—ऐसा मनीषियोंने कहा है। सूर्यग्रहणके अवसरपर अमरकण्टकपर जानेसे ब्रह्महत्याएँ निवृत्त हो जाती हैं। इस प्रकार अमरकण्टक पर्वतपर अशेष पुण्य

मनसापि स्मरेद् यस्तं गिरिं त्वमरकण्टकम्।
चान्द्रायणशतं साग्रं लभते नात्र संशयः॥ ८८
त्रयाणामपि लोकानां विख्यातोऽमरकण्टकः।
एष पुण्यो गिरिश्रेष्ठः सिद्धगन्धर्वसेवितः॥ ८९
नानाद्रुमलताकीर्णो नानापुष्पोपशोभितः।
मृगव्याघ्रसहस्रैस्तु सेव्यमानो महागिरिः॥ ९०
यत्र संनिहितो देवो देव्या सह महेश्वरः।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा चेन्द्रो विद्याधरगणैः सह॥ ९१
ऋषिभिः किन्नरैर्यक्षैर्नित्यमेव निषेवितः।
वासुकिः सहितस्तत्र क्रीडते पन्नगोत्तमैः॥ ९२
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् पर्वतेऽमरकण्टके।
पौण्डरीकस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ९३
तत्र ज्वालेश्वरं नाम तीर्थं सिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः॥ ९४
ज्वालेश्वरे महाराज यस्तु प्राणान् परित्यजेत्।
चन्द्रसूर्योपरागेषु तस्यापि शृणु यत्फलम्॥ ९५
सर्वकर्मविनिर्मुक्तो ज्ञानविज्ञानसंयुतः।
रुद्रलोकमवाप्नोति यावदाभूतसम्प्लवम्॥ ९६
अमरेश्वरदेवस्य पर्वतस्य उभे तटे।
तत्र ता ऋषिकोट्यस्तु तपस्तप्यन्ति सुव्रत॥ ९७
समंताद् योजनक्षेत्रो गिरिश्चामरकण्टकः॥ ९८
अकामो वा सकामो वा नर्मदायां शुभे जले।
स्नात्वा मुच्येत पापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति॥ ९९

प्राप्त होता है। जो मनसे भी उस अमरकण्टकपर्वतका स्मरण करता है, उसे निःसंदेह सौ चान्द्रायणव्रतसे भी अधिक फल मिलता है। अमरकण्टक पर्वत तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। यह पुण्यमय श्रेष्ठ पर्वत सिद्धों और गन्धर्वोंसे सेवित, विविध वृक्षों और लताओंसे व्याप्त तथा अनेक प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित है। यह महान् पर्वत हजारों मृगों और व्याघ्रोंसे सेवित है। जहाँ देवी पार्वतीके साथ महादेव, ब्रह्मा, विष्णु तथा विद्याधरोंके साथ इन्द्र सदा उपस्थित रहते हैं, वह अमरकण्टक पर्वत ऋषियों, किन्नरों और यक्षोंके द्वारा सदा सेवित रहता है। श्रेष्ठ सर्पोंके साथ वासुकि वहाँ क्रीड़ा करते रहते हैं। जो मनुष्य अमरकण्टक पर्वतकी प्रदक्षिणा करता है, वह पौण्डरीक यज्ञका फल प्राप्त करता है। वहाँ सिद्धोंद्वारा सेवित ज्वालेश्वर नामक तीर्थ है, उसमें स्नानकर मानव स्वर्गलोकको प्राप्त करते हैं और जो वहाँ शरीरका त्याग करते हैं, उनका पुनर्जन्म नहीं होता। महाराज! चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके अवसरपर जो व्यक्ति ज्वालेश्वरमें प्राणोंका परित्याग करता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनिये। वह व्यक्ति सभी कर्मोंसे विनिर्मुक्त तथा ज्ञान-विज्ञानसे सम्पन्न हो प्रलयकालपर्यन्त रुद्रलोकको प्राप्त करता है। सुव्रत! अमरकण्टकपर्वतके दोनों तटोंपर करोड़ों ऋषिगण तपस्यामें रत रहते हैं। यह अमरकण्टकपर्वत चारों ओरसे एक योजनमें विस्तृत है। अकाम हो या सकाम, जो मनुष्य नर्मदाके शुभदायक जलमें स्नान करता है, वह सभी पापोंसे छुटकारा पा लेता है और रुद्रलोकको प्राप्त करता है॥ ८५—९९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्यवर्णनमें एक सौ अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८८॥

एक सौ नवासीवाँ अध्याय

नर्मदा-कावेरी-संगमका माहात्म्य

सूत उवाच

पृच्छन्ति ते महात्मानो मार्कण्डेयं महामुनिम्।
युधिष्ठिरपुरोगास्ते ऋषयश्च तपोधनाः॥ १

आख्याहि भगवंस्तथ्यं कावेरीसंगमो महान्।
लोकानां च हितार्थाय अस्माकं च विवृद्धये॥ २

सदा पापरता ये च नरा दुष्कृतकारिणः।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो गच्छन्ति परमं पदम्।
एतदिच्छाम विज्ञातुं भगवन् वक्तुमर्हसि॥ ३

मार्कण्डेय उवाच

शृण्वन्त्ववहिताः सर्वे युधिष्ठिरपुरोगमाः।
अस्ति वीरो महायक्षः कुबेरः सत्यविक्रमः॥ ४

इदं तीर्थमनुप्राप्य राजा यक्षाधिपोऽभवत्।
सिद्धिं प्राप्तो महाराज तन्मे निगदतः शृणु॥ ५

कावेरी नर्मदा यत्र सङ्गमो लोकविश्रुतः।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कुबेरः सत्यविक्रमः॥ ६

तपोऽतप्यत यक्षेन्द्रो दिव्यं वर्षशतं महत्।
तस्य तुष्टो महादेवः प्रादाद् वरमनुत्तमम्॥ ७

भो भो यक्ष महासत्त्व वरं ब्रूहि यथेप्सितम्।
ब्रूहि कार्यं यथेष्टं तु यत्ते मनसि वर्तते॥ ८

कुबेर उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव यदि देयो वरो मम।
अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामधिपो भवे॥ ९

कुबेरस्य वचः श्रुत्वा परितुष्टो महेश्वरः।
एवमस्तु ततो देवस्तत्रैवान्तरधीयत॥ १०

सोऽपि लब्धवरो यक्षः शीघ्रं लब्धफलोदयः।
पूजितः स तु यक्षैश्च ह्यभिषिक्तस्तु पार्थिव॥ ११

कावेरीसङ्गमं तत्र सर्वपापप्रणाशनम्।
ये नरा नाभिजानन्ति वञ्चितास्ते न संशयः॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! युधिष्ठिरको आगे कर वे तपोधन महात्मा-ऋषिगण महामुनि मार्कण्डेयसे पूछने लगे—'भगवन्! आप हमलोगोंके अभ्युदय और लोकके कल्याणके लिये उस नर्मदा और कावेरीके संगमका माहात्म्य भलीभाँति वर्णन कीजिये। भगवन्! जिसके प्रभावसे सदा पापमें रत एवं दुराचारमें प्रवृत्त रहनेवाले मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाते हैं और परमपदको प्राप्त करते हैं, उसे हमलोग जानना चाहते हैं, आप बतानेकी कृपा करें॥१—३॥

मार्कण्डेयजीने कहा—युधिष्ठिरसहित ऋषिगण! आपलोग सावधान होकर सुनिये। सत्य पराक्रमी एवं शूरवीर महायक्ष कुबेरने इस तीर्थमें आकर सिद्धि प्राप्त की और वे यक्षोंके अधीश्वर बने। महाराज! मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। किसी समय सत्यपराक्रमी यक्षपति कुबेरने जहाँ कावेरी और नर्मदाका लोकप्रसिद्ध संगम है, वहाँ स्नानकर पवित्र हो सौ दिव्य वर्षोंतक घोर तपस्या की। तब संतुष्ट होकर महादेवजीने उन्हें उत्तम वर प्रदान करते हुए कहा—'महाबलशाली यक्ष! तुम अपना अभीष्ट वर माँग लो। तुम्हारे मनमें जो यथेष्ट कार्य वर्तमान है, उसे बतलाओ'॥४—८॥

कुबेर बोले—देव! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो मैं आजसे सभी यक्षोंका अधीश्वर हो जाऊँ। कुबेरका वचन सुनकर महेश्वर परम प्रसन्न हुए और 'ऐसा ही हो'—यों कहकर वे देवाधिदेव वहीं अन्तर्धान हो गये। राजन्! इस प्रकार उस यक्षने वर प्राप्त कर शीघ्र ही फलको भी प्राप्त किया। वह यक्षोंद्वारा पूजित होकर राजाके पदपर अभिषिक्त किया गया। वहीं सभी पापोंको नाश करनेवाला कावेरी-संगम है जो मनुष्य उसे नहीं जानते, वे निःसंदेह ठगे

तस्मात् सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीत मानवः।
कावेरी च महापुण्या नर्मदा च महानदी॥ १३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ह्यर्चयेद् वृषभध्वजम्।
अश्वमेधफलं प्राप्य रुद्रलोके महीयते॥ १४
अग्निप्रवेशं यः कुर्याद् यश्च कुर्यादनाशकम्।
अनिवर्त्या गतिस्तस्य यथा मे शंकरोऽब्रवीत्॥ १५
सेव्यमानो वरस्त्रीभिः क्रीडते दिवि रुद्रवत्।
षष्टिर्वर्षसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः॥ १६
मोदते रुद्रलोकस्थो यत्र तत्रैव गच्छति।
पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टो राजा भवति धार्मिकः॥ १७
भोगवान् दानशीलश्च महाकुलसमुद्भवः।
तत्र पीत्वा जलं सम्यक् चान्द्रायणफलं लभेत्॥ १८
स्वर्गं गच्छन्ति ते मर्त्या ये पिबन्ति शुभं जलम्।
गङ्गायमुनयोर्मध्ये यत्फलं प्राप्नुयान्नरः।
कावेरीसंगमे स्नात्वा तत्फलं तस्य जायते॥ १९
एवमादि तु राजेन्द्र कावेरीसंगमे महत्।
पुण्यं महत्फलं तत्र सर्वपापप्रणाशनम्॥ २०

गये। इसलिये मनुष्यको सब तरहसे प्रयत्न करके वहाँ स्नान करना चाहिये। राजेन्द्र! कावेरी और नर्मदा—ये दोनों अतिशय पुण्यशालिनी महानदी हैं। उसमें स्नानकर जो मनुष्य वृषभध्वज शिवकी पूजा करता है, वह अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करके रुद्रलोकमें पूजित होता है। जो मनुष्य वहाँ अग्निमें प्रवेश करता है या जो उपवासपूर्वक निवास करता है, उसे पुनरावृत्तिरहित गति प्राप्त होती है—ऐसा शंकरजीने मुझे बतलाया था। वह पुरुष स्वर्गलोकमें सुन्दरी स्त्रियोंद्वारा सेवित होकर रुद्रके समान साठ करोड़ साठ हजार वर्षोंतक क्रीड़ा करता है एवं रुद्रलोकमें स्थित होकर आनन्दका भोग करता है तथा जहाँ चाहता है वहाँ चला जाता है। पुनः पुण्य क्षीण होनेपर वह भ्रष्ट होकर उत्तम कुलमें उत्पन्न, भोगवान्, दानशील और धार्मिक राजा होता है। इस संगममें जलका सम्यक् पानकर मनुष्य चान्द्रायण-व्रतका फल प्राप्त करता है। जो मानव इसके पवित्र जलको पीते हैं, वे स्वर्गको चले जाते हैं। गङ्गा और यमुनाके संगममें स्नान करनेसे मनुष्यको जिस फलकी प्राप्ति होती है, वही फल उसे कावेरीके संगममें स्नान करनेसे मिलता है। राजेन्द्र! इस तरह कावेरी और नर्मदाके संगममें स्नान करनेसे सभी पापोंका नाश करनेवाला अतिशय पुण्य और महान् फल प्राप्त होता है॥ ९—२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १८९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नर्मदाका माहात्म्यवर्णन नामक एक सौ नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १८९॥

एक सौ नब्बेवाँ अध्याय

नर्मदाके तटवर्ती तीर्थ

मार्कण्डेय उवाच

नार्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं योजनविस्तृतम्।
यन्त्रेश्वरेति विख्यातं सर्वपापहरं परम्॥ १
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दैवतैः सह मोदते।
पञ्च वर्षसहस्राणि क्रीडते कामरूपधृक्॥ २
गर्जनं च ततो गच्छेद् यत्र मेघचयोत्थितः।
इन्द्रजिन्नाम सम्प्राप्तस्तस्य तीर्थप्रभावतः॥ ३
मेघनादं ततो गच्छेद् यत्र मेघानुगर्जितम्।
मेघनादो गणस्तत्र परमां गणतां गतः॥ ४

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! नर्मदाके उत्तर तटपर एक योजन विस्तृत यन्त्रेश्वर नामसे प्रसिद्ध एक श्रेष्ठ तीर्थ है, जो सभी पापोंका नाश करनेवाला है। वहाँ स्नानकर मानव देवताओंके साथ आनन्द मनाता है और इच्छानुसार रूप धारणकर पाँच हजार वर्षोंतक वहाँ क्रीड़ा करता है। वहाँ गर्जन नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ मेघसमूह ऊपर उठते रहते हैं। इस तीर्थके प्रभावसे मेघनादको इन्द्रजित् नाम प्राप्त हुआ था। वहाँसे मेघनाद जाना चाहिये, जहाँ मेघके गर्जनकी-सी ध्वनि होती रहती है। इसी स्थानपर मेघनाद-गण गणके श्रेष्ठ पदको प्राप्त किया था।

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थमाम्रातकेश्वरम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ५
नर्मदोत्तरतीरे तु धारा तीर्थं तु विश्रुतम्।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा तर्पयेत् पितृदेवताः॥ ६
सर्वान् कामानवाप्नोति मनसा ये विचिन्तिताः।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमिति स्मृतम्॥ ७
तत्र संनिहितो ब्रह्मा नित्यमेव युधिष्ठिर।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ब्रह्मलोके महीयते॥ ८

राजेन्द्र! इसके बाद आम्रातकेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नानकर मानव एक हजार गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। नर्मदाके उत्तर तटपर प्रसिद्ध धारातीर्थ है, उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य यदि पितरों और देवताओंका तर्पण करता है तो उसे मनोऽभिलषित कामनाएँ प्राप्त हो जाती हैं। राजेन्द्र! इसके बाद ब्रह्मावर्त नामसे प्रसिद्ध तीर्थमें जाना चाहिये। युधिष्ठिर! वहाँ ब्रह्मा सदा विराजमान रहते हैं। राजेन्द्र! उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य ब्रह्मलोकमें पूजित होता है॥ १—८॥

ततोऽङ्गारेश्वरं गच्छेन्नियतो नियताशनः।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति॥ ९
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् कपिलादानमाप्नुयात्॥ १०
गच्छेत् करञ्जतीर्थं तु देवर्षिगणसेवितम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोलोकं समवाप्नुयात्॥ ११
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कुण्डलेश्वरमुत्तमम्।
तत्र संनिहितो रुद्रस्तिष्ठते ह्युमया सह॥ १२
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र स वन्द्यस्त्रिदशैरपि।
पिप्पलेशं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्॥ १३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र रुद्रलोके महीयते।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र विमलेश्वरमुत्तमम्॥ १४
तत्र देवशिला रम्या चेश्वरेण विनिर्मिता।
तत्र प्राणपरित्यागाद् रुद्रलोकमवाप्नुयात्॥ १५
ततः पुष्करिणीं गच्छेत् तत्र स्नानं समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्रीन्द्रस्यार्धासनं लभेत्॥ १६

वहाँ नियमपूर्वक संयत भोजन करता हुआ अङ्गारेश्वर जाना चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त होकर रुद्रलोकको जाता है। राजेन्द्र! वहाँसे कपिला नामसे प्रसिद्ध श्रेष्ठ तीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य कपिला गौके दानका फल प्राप्त करता है। इसके बाद देवों और ऋषियोंसे सेवित करंज नामक तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजन्! इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको गोलोककी प्राप्ति होती है। राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ कुण्डलेश्वर नामक तीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ उमाके साथ रुद्र सदा निवास करते हैं। राजेन्द्र! उस तीर्थमें स्नानकर वह देवताओंद्वारा भी वन्दनीय हो जाता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् सभी पापोंके नाशक पिप्पलेश-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! वहाँसे श्रेष्ठ विमलेश्वर-तीर्थमें जाना चाहिये, वहाँ महेश्वरद्वारा निर्मित एक देवशिला है। उस स्थानपर प्राणोंका त्याग करनेसे रुद्रलोककी प्राप्ति होती है। तदुपरान्त पुष्करिणीतीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करे, वहाँ स्नान करनेमात्रसे ही मानव इन्द्रका आधा आसन प्राप्त कर लेता है॥ ९—१६॥

नर्मदा सरितां श्रेष्ठा रुद्रदेहाद् विनिःसृता।
तारयेत् सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च॥ १७
सर्वदेवाधिदेवेन त्वीश्वरेण महात्मना।
कथिता ऋषिसंघेभ्यो ह्यस्माकं च विशेषतः॥ १८
मुनिभिः संस्तुता ह्येषा नर्मदा प्रवरा नदी।
रुद्रदेहाद् विनिष्क्रान्ता लोकानां हितकाम्यया॥ १९

नदियोंमें श्रेष्ठ नर्मदा रुद्रके शरीरसे निकली है, यह स्थावर और जंगम सभी जीवोंका उद्धार करती है। ऐसा सभी देवताओंके अधीश्वर महात्मा शंकरने स्वयं ऋषिगणको और विशेषकर मुझे बताया है। मुनियोंने इस श्रेष्ठ नर्मदा नदीकी स्तुति की है। यह नर्मदा संसारके हितकी कामनासे रुद्रके शरीरसे निकली है।

सर्वपापहरा नित्यं सर्वदेवनमस्कृता।
संस्तुता देवगन्धर्वैरप्सरोभिस्तथैव च॥ २०
नमः पुण्यजले ह्याद्ये नमः सागरगामिनि।
नमस्ते पापनिर्दाहि नमो देवि वरानने॥ २१
नमोऽस्तु ते ऋषिगणसिद्धसेविते
नमोऽस्तु ते शंकरदेहनिःसृते।
नमोऽस्तु ते धर्मभृतां वरप्रदे
नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने॥ २२
यस्त्विदं पठते स्तोत्रं नित्यं श्रद्धासमन्वितः।
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत्॥ २३
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रश्चैव शुभां गतिम्।
अर्थार्थी लभते ह्यर्थं स्मरणादेव नित्यशः॥ २४
नर्मदां सेवते नित्यं स्वयं देवो महेश्वरः।
तेन पुण्या नदी ज्ञेया ब्रह्महत्यापहारिणी॥ २५

वह सभी पापोंका क्षय करनेवाली और सभी देवोंद्वारा नमस्कृत है। देव, गन्धर्व और अप्सराओंने इसकी भलीभाँति स्तुति की है। आदि गङ्गे! तुम्हें नमस्कार है। पुण्यसलिले! तुम्हें प्रणाम है। सागरकी ओर गमनशीले! तुम्हें अभिवादन है। पापोंको नष्ट करनेवाली एवं सुन्दर मुखवाली देवि! तुम्हें नमस्कार है। तुम ऋषिसमूह एवं सिद्धोंसे सेवित हो, तुम्हें प्रणाम है। शंकरके शरीरसे निकली हुई तुम्हें अभिवादन है। तुम धर्मात्मा प्राणियोंको वर देनेवाली हो, तुम्हें नमस्कार है। सभीको पवित्र एवं निष्पाप करनेवाली तुम्हें प्रणाम है। जो श्रद्धासे समन्वित होकर इस स्तोत्रका नित्य पाठ करता है, वह ब्राह्मण हो तो वेदज्ञ और क्षत्रिय हो तो विजयी होता है। वैश्य धनका लाभ करता है और शूद्रको शुभ गतिकी प्राप्ति होती है। अर्थको चाहनेवाला सदा स्मरणमात्रसे ही अर्थ-लाभ करता है। साक्षात् महेश्वरदेव नर्मदा नदीका नित्य सेवन करते हैं, इसीलिये इस पवित्र नदीको ब्रह्महत्यारूपी पापका निवारण करनेवाली जानना चाहिये॥ १७—२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्यवर्णन-प्रसङ्गमें एक सौ नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९०॥

एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

नर्मदाके तटवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

तदाप्रभृति ब्रह्माद्या ऋषयश्च तपोधनाः।
सेवन्ते नर्मदां राजन् रागक्रोधविवर्जिताः॥ १

युधिष्ठिर उवाच

कस्मिन् निपतितं शूलं देवस्य तु महीतले।
तत्र पुण्यं समाख्याहि यथावन्मुनिसत्तम॥ २

मार्कण्डेय उवाच

शूलभेदेति विख्यातं तीर्थं पुण्यतमं महत्।
तत्र स्नात्वार्चयेद् देवं गोसहस्रफलं लभेत्॥ ३
त्रिरात्रं कारयेद् यस्तु तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
अर्चयित्वा महादेवं पुनर्जन्म न विद्यते॥ ४

मार्कण्डेयजीने कहा—राजन्! तभीसे ब्रह्मा आदि देवता और तपस्वी ऋषिगण क्रोध-रागसे रहित होकर नर्मदाका सेवन करते हैं॥ १॥

युधिष्ठिरने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! इस पृथ्वीपर महादेवजीका त्रिशूल किस स्थानपर गिरा था? उस स्थानका पुण्य यथार्थरूपसे बतलाइये॥ २॥

मार्कण्डेयजी बोले—वह महान् पुण्यमय तीर्थ शूलभेद नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ स्नानकर महादेवजीकी पूजा करे, उससे एक हजार गो-दानका फल प्राप्त होता है। नराधिप! जो मनुष्य उस तीर्थस्थानमें तीन राततक महादेवजीकी पूजा करके निवास करता है, उसका पुनर्जन्म

भीमेश्वरं ततो गच्छेन्नारदेश्वरमुत्तमम्।
आदित्येशं महापुण्यं स्मृतं किल्बिषनाशनम्॥ ५
नन्दिकेशं परिष्वज्य पर्याप्तं जन्मनः फलम्।
वरुणेशं ततः पश्येत् स्वतन्त्रेश्वरमेव च।
सर्वतीर्थफलं तस्य पञ्चायतनदर्शनात्॥ ६
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र युद्धं यत्र सुसाधितम्।
कोटितीर्थं तु विख्यातमसुरा यत्र मोहिताः॥ ७
यत्रैव निहता राजन् दानवा बलदर्पिताः।
तेषां शिरांस्यगृह्णन्त सर्वे देवाः समागताः॥ ८
तस्तु संस्थापितो देवः शूलपाणिर्वृषध्वजः।
कोटिर्विनिहता तत्र तेन कोटीश्वरः स्मृतः॥ ९
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य सदेहः स्वर्गमारुहेत्।
यदा त्विन्द्रेण क्षुद्रत्वाद् वज्रं कीलेन यन्त्रितम्॥ १०
तदाप्रभृति लोकानां स्वर्गमार्गो निवारितः।
यः स्तुतं श्रीफलं दद्यात् कृत्वा चान्ते प्रदक्षिणाम्॥ ११
पार्वतं सहदीपं तु शिरसा चैव धारयेत्।
सर्वकामसुसम्पन्नो राजा भवति पाण्डव॥ १२
मृतो रुद्रत्वमाप्नोति ततोऽसौ जायते पुनः।
स्वर्गादेत्य भवेद् राजा राज्यं कृत्वा दिवं व्रजेत्॥ १३
बहुनेत्रं ततः पश्येत् त्रयोदश्यां तु मानवः।
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वयज्ञफलं लभेत्॥ १४
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम्।
नराणां पापनाशाय ह्यगस्त्येश्वरमुत्तमम्॥ १५
तत्र स्नात्वा नरो राजन् ब्रह्मलोके महीयते।
कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ १६
घृतेन स्नापयेद् देवं समाधिस्थो जितेन्द्रियः।
एकविंशकुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पदात्॥ १७
धेनुमुपानहौ छत्रं दद्याच्च घृतकम्बलम्।
भोजनं चैव विप्राणां सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ १८
ततो गच्छेत्त्व राजेन्द्र बलाकेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सिंहासनपतिर्भवेत्॥ १९

नहीं होता। इसके बाद श्रेष्ठ भीमेश्वर और नारदेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। आदित्येश तीर्थ महान् पुण्यशाली और पापका नाशक कहा गया है। नन्दिकेशका दर्शन करनेसे जन्म धारण करनेका पर्याप्त फल सुलभ हो जाता है। इसके बाद वरुणेश एवं स्वतन्त्रेश्वरका दर्शन करे। इस पञ्चायतनका दर्शन करनेसे सभी तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। राजेन्द्र! इसके बाद कोटितीर्थ नामसे प्रसिद्ध स्थानमें जाना चाहिये। जहाँ युद्ध हुआ था और जहाँ असुरगण मोहित हुए थे, राजन्! जहाँ बलके घमंडमें चूर दानवगण मारे गये थे और आये हुए देवगणोंने उनके सिरोंको ग्रहण कर लिया था, जहाँ देवताओंद्वारा हाथमें त्रिशूल धारण किये हुए भगवान् वृषध्वज महादेवकी प्रतिष्ठा की गयी थी, वहाँ करोड़ों दानवोंका संहार हुआ था, अतः वह कोटीश्वर तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। उस तीर्थका दर्शन करनेसे सशरीर स्वर्गारोहण प्राप्त होता है। जबसे इन्द्रने कृपणताके कारण वज्रको कीलसे कीलित कर दिया तबसे साधारण लोगोंके लिये स्वर्गका मार्ग बंद हो गया॥३—१०½॥

पाण्डुनन्दन! जो स्तुति करनेके पश्चात् अन्तमें इस तीर्थकी प्रदक्षिणा कर बिल्वफल प्रदान करता है तथा दीपकसहित पर्वतप्रतिमा सिरपर धारण करता है, वह सभी कामनाओंसे सम्पन्न होकर राजा होता है और मृत्यु होनेपर रुद्रत्वको प्राप्त करता है। पुनः जब वह स्वर्गसे लौटकर जन्म लेता है, तब राजा होता है और राज्यका उपभोग करनेके बाद स्वर्गमें चला जाता है। इसके बाद त्रयोदशी तिथिको मानव बहुनेत्र तीर्थका दर्शन करे। वहाँ मनुष्य स्नानमात्र करनेसे सभी यज्ञोंके फलको प्राप्त कर लेता है। राजेन्द्र! तदनन्तर मनुष्योंके पापोंका नाश करनेके लिये विख्यात अगस्त्येश्वर नामक श्रेष्ठ एवं परम रमणीय तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! उस तीर्थमें स्नान करनेसे मानव ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। जो जितेन्द्रिय मानव समाहितचित्तसे कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिमें महादेवजीको घृतसे स्नान कराता है, उसका इक्कीस पीढ़ीतक महेश्वरके पदसे पतन नहीं होता। वहाँ यदि विप्रोंको धेनु, जूता, छाता, घी, कम्बल और भोजनका दान दिया जाय तो वह सभी करोड़गुना हो जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त उत्तम बलाकेश्वरतीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! उस तीर्थमें स्नान करनेसे मानव सिंहासनका

अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
नर्मदातटमाश्रित्य तिष्ठेयुर्ये नरोत्तमाः॥ ३५
ते मृताः स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा।
सुरेश्वरं ततो गच्छेन्नाम्ना कर्कोटकेश्वरम्॥ ३६
गङ्गावतरते तत्र दिने पुण्ये न संशयः।
नन्दितीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ३७
तुष्यते तस्य नन्दीशः सोमलोके महीयते।
ततो दीपेश्वरं गच्छेद् व्यासतीर्थं तपोवनम्॥ ३८
निवर्तिता पुरा तत्र व्यासभीता महानदी।
हुंकारिता तु व्यासेन दक्षिणेन ततो गता॥ ३९
प्रदक्षिणां तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
अक्षयं मोदते कालं यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥ ४०
व्यासस्तस्य भवेत् प्रीतः प्राप्नुयादीप्सितं फलम्।
सूत्रेण वेष्टयित्वा तु दीपो देयः सवेदिकः॥ ४१
क्रीडते ह्यक्षयं कालं यथा रुद्रस्तथैव च।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम्॥ ४२
संगमे तु नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वपातकैः।
ऐरण्डी त्रिषु लोकेषु विख्याता पापनाशिनी॥ ४३
अथवाश्वयुजे मासि शुक्लपक्षे तु चाष्टमी।
शुचिर्भूत्वा नरः स्नात्वा सोपवासपरायणः॥ ४४
ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता।
ऐरण्डीसंगमे स्नात्वा भक्तिभावानुरञ्जितः।
मृत्तिकां शिरसि स्थाप्य ह्यवगाह्य च वै जलम्॥ ४५
नर्मदोदकसम्मिश्रं मुच्यते सर्वकिल्बिषैः।
प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप॥ ४६
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा।
ततः सुवर्णसलिले स्नात्वा दत्त्वा तु काञ्चनम्॥ ४७
काञ्चनेन विमानेन रुद्रलोके महीयते।
ततः स्वर्गाच्च्युतः कालाद् राजा भवति वीर्यवान्॥ ४८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ह्यीक्षुनद्यास्तु संगमम्।
त्रैलोक्यविश्रुतं दिव्यं तत्र संनिहितः शिवः॥ ४९

परित्याग करता है, वह चन्द्र और सूर्यकी स्थितिपर्यन्त अक्षय कालतक आनन्दका अनुभव करता है। जो श्रेष्ठ मानव नर्मदाके तटपर निवास करते हैं, वे मरकर सन्त और पुण्यवान् व्यक्तियोंके समान स्वर्गमें जाते हैं। तदनन्तर कर्कोटकेश्वर नामसे प्रसिद्ध सुरेश्वरकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ पुण्यतिथिको गङ्गाका अवतरण होता है, इसमें संदेह नहीं है। तत्पश्चात् नन्दितीर्थमें जाय और वहाँ विधिपूर्वक स्नान करे। इससे उसपर नन्दीश्वर शिव प्रसन्न होते हैं और वह चन्द्रलोकमें पूजित होता है। तत्पश्चात् व्यासके तपोवन दीपेश्वर-तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ प्राचीनकालमें व्याससे डरकर महानदी पीछेकी ओर लौटने लगी थी, तब व्यासके हुंकारसे वह दक्षिणकी ओर प्रवाहित हुई, नराधिप! उस तीर्थकी जो प्रदक्षिणा करता है, वह चन्द्र और सूर्यकी स्थितिपर्यन्त अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। उसपर व्यासदेव प्रसन्न होते हैं और उसे अभीष्ट फलकी प्राप्ति होती है। वहाँ वेदीपर सूतसे परिवेष्टित दीपका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मानव रुद्रकी तरह अक्षय कालतक आनन्दपूर्वक जीवनयापन करता है॥ ३२—४१½॥

राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ ऐरण्डी-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। ऐरण्डी नदी पापनाशकके रूपमें तीनों लोकोंमें विख्यात है। उसके सङ्गममें स्नान करनेसे मनुष्य सभी पातकोंसे मुक्त हो जाता है। अथवा यदि मनुष्य आश्विन-मासके शुक्लपक्षमें अष्टमी तिथिको स्नान करके पवित्र हो उपवासपूर्वक एक ब्राह्मणको भोजन करा दे तो उसे एक करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन करानेका फल प्राप्त होता है। जो ऐरण्डी-संगममें भक्तिभावपूर्वक उसकी मिट्टीको सिरपर धारणकर नर्मदाके जलसे मिश्रित जलमें अवगाहनकर स्नान करता है, वह सभी पापोंसे छूट जाता है। नराधिप! जो उस तीर्थमें जाकर प्रदक्षिणा करता है, उसने मानो सात द्वीपोंवाली वसुन्धराकी परिक्रमा कर ली। तदनन्तर सुवर्णसलिल नामक तीर्थमें स्नानकर सुवर्णका दान करनेसे मनुष्य सुवर्णमय विमानसे जाकर रुद्रलोकमें पूजित होता है। फिर वह समयानुसार स्वर्गसे च्युत होनेपर पराक्रमी राजा होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् इक्षु नदीके सङ्गमपर जाना चाहिये। यह दिव्य तीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ शिवजी सदा उपस्थित

तत्र स्नात्वा नरो राजन् गाणपत्यमवाप्नुयात्।
स्कन्दतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्॥ ५०
आजन्म जनितं पापं स्नानमात्राद् व्यपोहति।
लिङ्गसारं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ५१
गोसहस्रफलं तस्य रुद्रलोके महीयते।
भङ्गतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापप्रणाशनम्॥ ५२
तत्र गत्वा तु राजेन्द्र स्नानं तत्र समाचरेत्।
सप्तजन्मकृतैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ ५३
वटेश्वरं ततो गच्छेत् सर्वतीर्थमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ५४
संगमेशं ततो गच्छेत् सर्वदेवनमस्कृतम्।
स्नानमात्रान्नरस्तत्र चेन्द्रत्वं लभते ध्रुवम्॥ ५५
कोटितीर्थं ततो गच्छेत् सर्वपापहरं परम्।
तत्र स्नात्वा नरो राज्यं लभते नात्र संशयः॥ ५६
तत्र तीर्थं समासाद्य दत्त्वा दानं तु यो नरः।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ ५७
अथ नारी भवेत् काचित्तत्र स्नानं समाचरेत्।
गौरीतुल्या भवेत् सापि त्विन्द्रपत्नी न संशयः॥ ५८
अङ्गारेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥ ५९
अङ्गारकचतुर्थ्यां तु स्नानं तत्र समाचरेत्।
अक्षयं मोदते कालं शुचिः प्रयतमानसः॥ ६०
अयोनिसम्भवे स्नात्वा न पश्येद् योनिसंकटम्।
पाण्डवेशं तु तत्रैव स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ६१
अक्षयं मोदते कालमवध्यस्त्रिदशैरपि।
विष्णुलोकं ततो गत्वा क्रीडते भोगसंयुतः॥ ६२
तत्र भुक्त्वा महाभोगान् मर्त्यराजोऽभिजायते।
कलेश्वरं ततो गच्छेत् तत्र स्नानं समाचरेत्॥ ६३
उत्तरायणसम्प्राप्तौ यदिच्छेत् तस्य तद्भवेत्।
चन्द्रभागां ततो गच्छेत् तत्र स्नानं समाचरेत्॥ ६४

रहते हैं। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मानव गणाधिपतिका स्थान प्राप्त कर लेता है। तदुपरान्त स्कन्द-तीर्थकी यात्रा करे। यह तीर्थ सभी पापोंका विनाशक है। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मानव जन्मभरके किये हुए पापोंसे छूट जाता है। इसके बाद लिङ्गसार-तीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। इससे उसे एक हजार गौओंके दानका फल मिलता है और वह रुद्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। तदनन्तर सभी पापोंके विनाशक भङ्गतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ जाकर स्नान करनेसे मानव सात जन्मोंमें किये गये पापोंसे मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है॥ ४२—५३॥

तदनन्तर सभी तीर्थोंमें श्रेष्ठ वटेश्वरतीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मानव एक हजार गौओंके दानका फल प्राप्त करता है। तत्पश्चात् सभी देवोंद्वारा नमस्कृत सङ्गमेश-तीर्थमें जाय। वहाँ स्नान-मात्रसे मनुष्य निश्चित ही इन्द्र-पदको प्राप्त करता है। इसके बाद सभी पापोंको नष्ट करनेवाले श्रेष्ठ कोटितीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नानकर मनुष्य राज्यकी प्राप्ति करता है—इसमें संदेह नहीं है। उस तीर्थमें आकर जो मनुष्य दान देता है, उसका सब कुछ उस तीर्थके प्रभावसे करोड़गुना हो जाता है। यदि वहाँ कोई स्त्री स्नान करती है तो वह निःसंदेह गौरी अथवा इन्द्र-पत्नी शचीके समान हो जाती है। इसके बाद अङ्गारेश-तीर्थकी यात्रा करके वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो मनुष्य पवित्र एवं संयत-मन होकर अङ्गारक-चतुर्थीके दिन वहाँ स्नान करता है, वह अक्षय कालतक आनन्दका उपभोग करता है। अयोनिसम्भव नामक तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको योनिसंकटका दर्शन नहीं होता। वहीं पाण्डवेश-तीर्थ है, उसमें स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे वह देवताओंसे भी अवध्य होकर अक्षय कालतक आनन्दका अनुभव करता है और मरणोपरान्त विष्णुलोकमें जाकर भोगसे परिपूर्ण हो क्रीड़ा करता है तथा वहाँ उत्तम भोगोंका भोग कर मृत्युलोकमें राजा होता है। इसके बाद उत्तरायण आनेपर कलेश्वर-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मानव जो इच्छा करता है, वह उसे प्राप्त हो जाता है॥ ५४—६३ १/२॥

राजन्! इसके बाद चन्द्रभागा नदीपर जाकर वहाँ

स्नातमात्रो नरो राजन् सोमलोके महीयते।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थं शक्रस्य विश्रुतम्॥ ६५
पूजितं देवराजेन देवैरपि नमस्कृतम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् दानं दत्त्वा तु काञ्चनम्॥ ६६
अथवा नीलवर्णाभं वृषभं यः समुत्सृजेत्।
वृषभस्य तु रोमाणि तत्प्रसूतिकुलेषु च॥ ६७
तावद्वर्षसहस्राणि नरो हरपुरे वसेत्।
ततः स्वर्गात् परिभ्रष्टो राजा भवति वीर्यवान्॥ ६८
अश्वानां श्वेतवर्णानां सहस्राणां नराधिप।
स्वामी भवति मर्त्येषु तस्य तीर्थप्रभावतः॥ ६९
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ब्रह्मावर्तमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजंस्तर्पयेत् पितृदेवताः॥ ७०
उपोष्य रजनीमेकां पिण्डं दत्त्वा यथाविधि।
कन्यागते तथाऽऽदित्ये अक्षयं स्यान्नराधिप॥ ७१
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् कपिलां यः प्रयच्छति॥ ७२
सम्पूर्णपृथिवीं दत्त्वा यत्फलं तदवाप्नुयात्।
नर्मदेशं परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति॥ ७३
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नश्वमेधफलं लभेत्।
नर्मदादक्षिणे कूले संगमेश्वरमुत्तमम्॥ ७४
तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वयज्ञफलं लभेत्।
तत्र सर्वोद्यतो राजा पृथिव्यामेव जायते॥ ७५
सर्वलक्षणसम्पूर्णः सर्वव्याधिविवर्जितः।

स्नान करे। वहाँ स्नानमात्रसे मनुष्य चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होता है। राजेन्द्र! इसके बाद इन्द्रके प्रसिद्ध तीर्थमें जाय। वह तीर्थ साक्षात् देवराजद्वारा पूजित तथा सम्पूर्ण देवताओंद्वारा वन्दित है। राजन्! वहाँ स्नानकर जो मनुष्य सुवर्णका दान देता है अथवा नीलवर्णवाले वृषभका उत्सर्ग करता है तो वह वृषभके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने हजार वर्षोंतक अपने कुलमें उत्पन्न संततिके साथ शिवपुरमें निवास करता है। इसके बाद स्वर्गसे गिरनेपर वह पराक्रमी राजा होता है। नराधिप! उस तीर्थके प्रभावसे मृत्युलोकमें आकर वह श्वेतवर्णवाले हजारों अश्वोंका स्वामी होता है। राजन्! तदनन्तर ब्रह्मावर्त नामक श्रेष्ठ तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! उस तीर्थमें स्नानकर देवताओं और पितरोंका विधिवत् तर्पण करना चाहिये। नरेश्वर! सूर्यके कन्याराशिमें स्थित होनेपर जो वहाँ एक रात उपवास करके विधिपूर्वक पिण्डदान करता है, उसका वह कर्म अक्षय हो जाता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ कपिलातीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजन्! उस तीर्थमें स्नानकर जो मनुष्य कपिला गौका दान करता है, उसे सम्पूर्ण पृथ्वीका दान करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह मिल जाता है। नर्मदेश उत्तम तीर्थस्थान है। इसके समान तीर्थ न हुआ है, न होगा। राजन्! उस तीर्थमें स्नानकर मानव अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त करता है। नर्मदाके दक्षिण तटपर श्रेष्ठ सङ्गमेश्वर-तीर्थ है। राजन्! वहाँ स्नान करनेपर मनुष्य सभी यज्ञोंके फलको प्राप्त करता है और वह पृथ्वीपर सभी प्रकारके उद्यमोंसे सम्पन्न, सभी शुभ लक्षणोंसे युक्त तथा सभी प्रकारकी व्याधियोंसे रहित राजा होता है॥ ६४—७५ १/२ ॥

नार्मदे चोत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्॥ ७६
आदित्यायतनं दिव्यमीश्वरेण तु भाषितम्।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दानं दत्त्वा तु शक्तितः।
तस्य तीर्थप्रभावेण दत्तं भवति चाक्षयम्॥ ७७
दरिद्रा व्याधिनो ये तु ये तु दुष्कृतकर्मिणः।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यः सूर्यलोकं तु यान्ति ते॥ ७८
माघमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षस्य सप्तमी।
वसेदायतने तत्र निराहारो जितेन्द्रियः॥ ७९

नर्मदाके उत्तर तटपर अत्यन्त मनोहर आदित्यायतन नामक दिव्य तीर्थ है, ऐसा महादेवजीने कहा है। राजेन्द्र! उस तीर्थमें स्नान करके जो यथाशक्ति दान देता है, उसका वह दान उस तीर्थके प्रभावसे अक्षय हो जाता है। जो दरिद्र, रोगग्रस्त और दुष्कर्मी हैं, वे भी (यहाँ स्नान करनेसे) सभी पापोंसे मुक्त होकर सूर्यलोकको चले जाते हैं। जो मनुष्य माघमासके शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथि आनेपर इन्द्रियोंका संयम कर और निराहार रहकर इस आदित्यायतन तीर्थमें निवास करता है, वह

न जराव्याधितो मूको न चान्धो बधिरोऽथवा।
सुभगो रूपसम्पन्नः स्त्रीणां भवति वल्लभः॥ ८०
एवं तीर्थं महापुण्यं मार्कण्डेयेन भाषितम्।
ये न जानन्ति राजेन्द्र वञ्चितास्ते न संशयः॥ ८१
गर्गेश्वरं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र स्वर्गलोकमवाप्नुयात्॥ ८२
मोदते स्वर्गलोकस्थो यावदिन्द्राश्चतुर्दश।
समीपतः स्थितं तस्य नागेश्वरतपोवनम्॥ ८३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नागलोकमवाप्नुयात्।
बह्वीभिर्नागकन्याभिः क्रीडते कालमक्षयम्॥ ८४
कुबेरभवनं गच्छेत् कुबेरो यत्र संस्थितः।
कालेश्वरं परं तीर्थं कुबेरो यत्र तोषितः॥ ८५
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वसम्पदमाप्नुयात्।
ततः पश्चिमतो गच्छेन्मारुतालयमुत्तमम्॥ ८६
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र शुचिर्भूत्वा समाहितः।
काञ्चनं तु ततो दद्याद् यथाशक्ति सुबुद्धिमान्॥ ८७
पुष्पकेण विमानेन वायुलोकं स गच्छति।
यवतीर्थं ततो गच्छेन्माघमासे युधिष्ठिर॥ ८८
कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां स्नानं तत्र समाचरेत्।
नक्तं भोज्यं ततः कुर्यान्न पश्येद् योनिसंकटम्॥ ८९
अहल्यातीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र ह्यप्सरोभिः प्रमोदते॥ ९०
अहल्या च तपस्तप्त्वा तत्र मुक्तिमुपागता।
चैत्रमासे तु सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशी॥ ९१
कामदेवदिने तस्मिन्नहल्यां यस्तु पूजयेत्।
यत्र यत्र नरोत्पन्नो नरस्तत्र प्रियो भवेत्॥ ९२
स्त्रीवल्लभो भवेच्छ्रीमान् कामदेव इवापरः।
अयोध्यां तु समासाद्य तीर्थं रामस्य विश्रुतम्॥ ९३
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।
सोमतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ९४
स्नातमात्रो नरस्तत्र सर्वपापैः प्रमुच्यते।
सोमग्रहे तु राजेन्द्र पापक्षयकरं नृणाम्॥ ९५

न तो वृद्धावस्था और रोगसे ही ग्रस्त होता है, न गूँगा, अंधा अथवा बहरा ही होता है, अपितु भाग्यशाली, रूपवान् और स्त्रियोंका प्रिय होता है। राजेन्द्र! इस प्रकार मार्कण्डेयजीने इस महान् पुण्यदायक तीर्थका वर्णन किया था। जो उस तीर्थको नहीं जानते, वे निःसंदेह वञ्चित ही हैं। इसके बाद गर्गेश्वर-तीर्थमें जाकर वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेसे ही मानव स्वर्गलोकको प्राप्त कर लेता है और चौदह इन्द्रोंके कार्यकालतक वह स्वर्गमें आनन्दपूर्वक निवास करता है। राजेन्द्र! उसीके समीपमें नागेश्वर नामक तपोवन है। वहाँ स्नानकर मनुष्य नागलोकको प्राप्त करता है और अनेकों नागकन्याओंके साथ अक्षय कालतक क्रीडा करता है। तदनन्तर कुबेरभवनमें जाय, जहाँ कुबेर विराजमान रहते हैं। जहाँ कुबेर सन्तुष्ट हुए थे। वह कालेश्वर नामक उत्तम तीर्थ है। राजेन्द्र! इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्यको सभी सम्पत्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं॥ ७६—८५½॥

तत्पश्चात् उससे पश्चिममें स्थित श्रेष्ठ मारुतालय-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजेन्द्र! जो बुद्धिमान् वहाँ स्नान करके पवित्र हो सावधानीपूर्वक यथाशक्ति सुवर्णका दान करता है, वह पुष्पकविमानद्वारा वायुलोकको चला जाता है। युधिष्ठिर! तदुपरान्त माघमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको यवतीर्थमें जाकर स्नान करे और रातमें ही भोजन करे। ऐसा करनेवाले पुरुषको पुनः योनिसंकटका दर्शन नहीं करना पड़ता। इसके बाद अहल्यातीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मानव अप्सराओंके साथ आनन्दका उपभोग करता है। उस तीर्थमें अहल्याने तपस्या कर मुक्ति पायी थी। चैत्रमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथि एवं सोमवारको जो मनुष्य वहाँ अहल्याकी पूजा करता है, वह जहाँ-जहाँ जन्म लेता है, वहाँ-वहाँ सभीका प्रिय होता है। वह दूसरे कामदेवके समान स्त्रियोंका प्रियपात्र एवं श्रीसम्पन्न होता है। श्रीरामके प्रसिद्ध तीर्थ अयोध्यामें आकर स्नानमात्र करनेसे मानव सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसके बाद सोमतीर्थकी यात्रा करे और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मानव सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। राजेन्द्र! चन्द्रग्रहणके अवसरपर स्नान करनेसे यही तीर्थ मनुष्यके सभी पापोंको नष्ट कर देता है। राजन्!

त्रैलोक्यविश्रुतं राजन् सोमतीर्थं महाफलम्।
यस्तु चान्द्रायणं कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप॥ ९६
सर्वपापविशुद्धात्मा सोमलोकं स गच्छति।
अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवापि ह्यनाशके॥ ९७
सोमतीर्थे मृतो यस्तु नासौ मर्त्येऽभिजायते।
शुभतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ९८
स्नातमात्रो नरस्तत्र गोलोके तु महीयते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र विष्णुतीर्थमनुत्तमम्॥ ९९
योधनीपुरमाख्यातं विष्णुस्थानमनुत्तमम्।
असुरा योधितास्तत्र वासुदेवेन कोटिशः॥ १००
तत्र तीर्थं समुत्पन्नं विष्णुः प्रीतो भवेदिह।
अहोरात्रोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ १०१
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तापसेश्वरमुत्तमम्।
हरिणी व्याधसंत्रस्ता पतिता यत्र सा मृगी॥ १०२
जले प्रक्षिप्तगात्रा तु अन्तरिक्षं गता च सा।
व्याधो विस्मितचित्तस्तु परं विस्मयमागतः॥ १०३
तेन तापेश्वरं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्॥ १०४
अमोहकमिति ख्यातं पितॄंश्चैवात्र तर्पयेत्।
पौर्णमास्याममायां तु श्राद्धं कुर्याद् यथाविधि॥ १०५
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पितृपिण्डं तु दापयेत्।
गजरूपा शिला तत्र तोयमध्ये प्रतिष्ठिता॥ १०६
तस्यां तु दापयेत् पिण्डं वैशाख्यां तु विशेषतः।
तृप्यन्ति पितरस्तत्र यावत् तिष्ठति मेदिनी॥ १०७
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र सिद्धेश्वरमनुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् गणपत्यन्तिकं व्रजेत्॥ १०८
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र लिङ्गो यत्र जनार्दनः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र विष्णुलोके महीयते॥ १०९
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्।
कामदेवः स्वयं तत्र तपोऽतप्यत वै महत्॥ ११०

महान् फल देनेवाला यह सोमतीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। नराधिप! उस तीर्थमें जो चान्द्रायण-व्रत करता है, वह सभी पापोंसे विशुद्ध होकर सोमलोकको चला जाता है। जो अग्निमें प्रवेश कर, जलमें डूबकर या भोजनका परित्याग कर इस सोमतीर्थमें प्राणका त्याग करता है, वह पुनः मृत्युलोकमें जन्म नहीं ग्रहण करता॥ ९६—९७ $\frac{1}{2}$॥

तदनन्तर शुभतीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मनुष्य गोलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् सर्वोत्तम विष्णुतीर्थकी यात्रा करे। विष्णुका यह सर्वश्रेष्ठ स्थान योधनीपुरके नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ भगवान् वासुदेवने करोड़ों असुरोंसे युद्ध किया था, इसी कारण यह तीर्थस्थान बन गया। यहाँ जानेसे विष्णु प्रसन्न होते हैं। यहाँ एक दिन-रात उपवास करनेसे यह ब्रह्महत्याके पापको नष्ट कर देता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ तापसेश्वर तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ व्याधके भयसे डरी हुई मृगी गिर पड़ी थी और जलमें शरीरका परित्याग कर अन्तरिक्षमें चली गयी थी। यह देखकर आश्चर्यचकित हुए व्याधको महान् विस्मय हुआ। इसी कारण इसका नाम तापेश्वरतीर्थ हुआ। इसके समान दूसरा तीर्थ न हुआ है, न होगा। राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ ब्रह्मतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। यह तीर्थ अमोहक नामसे भी प्रसिद्ध है। यहाँ पितरोंका तर्पण तथा पूर्णिमा और अमावस्याको यथाविधि श्राद्ध करना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान कर मनुष्यको पितरोंको पिण्ड देना चाहिये। वहाँ जलमें गजके आकारकी एक शिला प्रतिष्ठित है। उसी शिलापर विशेषतया वैशाखकी पूर्णिमाको पिण्ड देना चाहिये। ऐसा करनेसे जबतक पृथ्वी स्थित रहती है, तबतक पितृगण तृप्त बने रहते हैं। राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ सिद्धेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य गणपतिके समीप पहुँच जाता है॥ ९८—१०८॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् जनार्दन-लिङ्गकी यात्रा करे। राजेन्द्र! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें पूजित होता है।

नर्मदाके दक्षिण तटपर परम रमणीय कुसुमेश्वर तीर्थ है। वहाँ स्वयं कामदेवने कठोर तपस्या की थी। उसने एक

दिव्यं वर्षसहस्रं तु शंकरं पर्युपासत।
समाधिभङ्गदग्धस्तु शंकरेण महात्मना॥ १११
श्वेतपर्वा यमश्चैव हुताशः शुक्रपर्वणि।
एते दग्धास्तु ते सर्वे कुसुमेश्वरसंस्थिताः॥ ११२
दिव्यवर्षसहस्रेण तुष्टस्तेषां महेश्वरः।
उमया सहितो रुद्रस्तुष्टस्तेषां वरप्रदः॥ ११३
मोक्षयित्वा तु तान् सर्वान् नर्मदातटमास्थितः।
ततस्तीर्थप्रभावेण पुनर्देवत्वमागताः॥ ११४
ऊचुश्च परया भक्त्या देवदेवं वृषध्वजम्।
त्वत्प्रसादान्महादेव तीर्थं भवतु चोत्तमम्।
अर्धयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं दिक्षु समंततः॥ ११५
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा चोपवासपरायणः।
कुसुमायुधरूपेण रुद्रलोके महीयते॥ ११६
वैश्वानरो यमश्चैव कामदेवस्तस्था मरुत्।
तपस्तप्त्वा तु राजेन्द्र परां सिद्धिमवाप्नुयुः॥ ११७
अङ्कोलस्य समीपे तु नातिदूरे तु तस्य वै।
स्नानं दानं च तत्रैव भोजनं पिण्डपातनम्॥ ११८
अग्निप्रवेशेऽथ जले अथवा तु ह्यनाशके।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य मृतस्यामुत्र जायते॥ ११९
त्र्यम्बकेण तु तोयेन यश्चरुं श्रपयेन्नरः।
अङ्कोलमूले दत्त्वा तु पिण्डं चैव यथाविधि॥ १२०
तृप्यन्ति पितरस्तस्य यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
उत्तरे त्वयने प्राप्ते घृतस्नानं करोति यः॥ १२१
पुरुषो वाथ स्त्री वापि वसेदायतने शुचिः।
सिद्धेश्वरस्य देवस्य प्रातः पूजां प्रकल्पयेत्॥ १२२
स यां गतिमवाप्नोति न तां सर्वैर्महामखैः।
यदावतीर्णः कालेन रूपवान् सुभगो भवेत्॥ १२३
मर्त्ये भवति राजा च त्वासमुद्रान्तगोचरे।
क्षेत्रपालं न पश्येत् तु दण्डपाणिं महाबलम्॥ १२४
वृथा तस्य भवेद् यात्रा ह्यदृष्ट्वा कर्णकुण्डलम्।
एवं तीर्थफलं ज्ञात्वा सर्वे देवाः समागताः।
मुञ्चन्ति कुसुमैर्वृष्टिं तेन तत् कुसुमेश्वरम्॥ १२५

हजार दिव्य वर्षोंतक शंकरकी सर्वभावसे उपासना की थी, किंतु महात्मा शंकरकी समाधिके भङ्ग होनेसे वह भस्म हो गया। इसी प्रकार कुसुमेश्वरमें स्थित श्वेतपर्वा, यम, हुताश और शुक्रपर्वा—ये सभी भी किसी समय जल गये थे। एक हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या करनेपर महेश्वर इनपर प्रसन्न हुए। इस प्रकार प्रसन्न हुए उमासहित रुद्रने इन्हें वर प्रदान किया। तब इन लोगोंको मोक्ष प्रदानकर वे नर्मदाके तटपर प्रतिष्ठित हो गये। तदनन्तर उस तीर्थके प्रभावसे उन लोगोंको पुनः देवत्व प्राप्त हो गया, तब उन्होंने अतिशय भक्तिके साथ देवाधिदेव वृषभध्वजसे कहा—'महादेव! आपकी कृपासे दिशाओंमें चारों ओर आधा योजन विस्तृत यह क्षेत्र उत्तम तीर्थ हो जाय।' उस तीर्थमें उपवासपूर्वक स्नानकर मनुष्य कामदेवके रूपमें रुद्रलोकमें पूजित होता है॥ १०९—११६॥

राजेन्द्र! यहाँ वैश्वानर, यम, कामदेव और मरुत्ने तपस्या कर परम सिद्धि प्राप्त की थी। उस तीर्थसे थोड़ी दूरपर अंकोलके समीप स्नान, दान, भोजन तथा पिण्डदान करना चाहिये। यहाँ अग्निमें जलकर, जलमें डूबकर या अनशन करके प्राण-त्याग करनेवालेको परलोकमें अपुनर्भवकी गति प्राप्त होती है। जो व्यक्ति त्र्यम्बकतीर्थके जलसे चरु पकाकर अङ्कोलके मूलमें विधिपूर्वक पिण्डदान करता है, उसके पितृगण चन्द्र और सूर्यकी स्थितिपर्यन्त तृप्त रहते हैं। उत्तरायण आनेपर चाहे पुरुष हो या स्त्री—जो कोई भी घृतसे स्नान करता है और पवित्र होकर उस आयतनमें निवास करता है तथा प्रातःकाल सिद्धेश्वरदेवकी पूजा करता है, वह जिस गतिको प्राप्त करता है, वह सभी यज्ञोंके करनेसे भी नहीं प्राप्त हो सकती। कालगतिसे पुनः जब वह मृत्युलोकमें जन्म ग्रहण करता है, तब सौभाग्यशाली एवं रूपसे सम्पन्न होकर समुद्रपर्यन्त पृथ्वीका राजा होता है। जो यहाँ आकर महाबली दण्डपाणि क्षेत्रपालका दर्शन नहीं करता और कर्णकुण्डलको नहीं देखता, उसकी यात्रा व्यर्थ हो जाती है। इस प्रकार तीर्थके फलको जानकर सभी देवगण वहाँ उपस्थित होकर कुसुमोंकी वृष्टि करने लगे, इसीसे यह कुसुमेश्वर नामसे विख्यात हुआ॥ ११७—१२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्य-वर्णनमें एक सौ इक्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९१॥



एक सौ बानबेवाँ अध्याय

शुक्लतीर्थका माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

भार्गवेशं ततो गच्छेद् भग्नो यत्र जनार्दनः।
असुरैस्तु महायुद्धे महाबलपराक्रमैः॥ १
हुंकारितास्तु देवेन दानवाः प्रलयं गताः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ २
शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन।
हिमवच्छिखरे रम्ये नानाधातुविचित्रिते॥ ३
तरुणादित्यसंकाशे तप्तकाञ्चनसप्रभे।
वज्रस्फटिकसोपाने चित्रपट्टशिलातले॥ ४
जाम्बूनदमये दिव्ये नानापुष्पोपशोभिते।
तत्रासीनं महादेवं सर्वज्ञं प्रभुमव्ययम्॥ ५
लोकानुग्रहकर्तारं गणवृन्दैः समावृतम्।
स्कन्दनन्दिमहाकालैर्वीरभद्रगणादिभिः।
उमया सहितं देवं मार्कण्डिः पर्यपृच्छत॥ ६
देवदेव महादेव ब्रह्मविष्ण्विन्द्रसंस्तुत।
संसारभयभीतोऽहं सुखोपायं ब्रवीहि मे॥ ७
भगवन् भूतभव्येश सर्वपापप्रणाशनम्।
तीर्थानां परमं तीर्थं तद् वदस्व महेश्वर॥ ८

ईश्वर उवाच

शृणु विप्र महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
स्नानाय गच्छ सुभगं ऋषिसङ्घैः समावृतः॥ ९
मन्वत्रिकश्यपाश्चैव याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिराः।
यमापस्तम्बसंवर्ताः कात्यायनबृहस्पती॥ १०
नारदो गौतमश्चैव सेवन्ते धर्मकाङ्क्षिणः।
गङ्गा कनखले पुण्या प्रयागं पुष्करं गयाम्॥ ११
कुरुक्षेत्रं महापुण्यं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
दिवा वा यदि वा रात्रौ शुक्लतीर्थं महाफलम्॥ १२

मार्कण्डेयजीने पूछा—राजेन्द्र! तदनन्तर भार्गवेशतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ एक बार भगवान् जनार्दन महायुद्धमें महाबली असुरोंके साथ युद्ध करते-करते थक गये, फिर उन प्रभुके हुंकारसे ही दानवगण नष्ट हो गये थे। वहाँ स्नान करनेसे मानव सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। पाण्डुनन्दन! अब आप शुक्लतीर्थकी उत्पत्ति सुनिये। किसी समय विविध धातुओंसे रंग-बिरंगे हिमवान् पर्वतके मनोरम शिखरपर, जो मध्याह्नकालिक सूर्यके समान देदीप्यमान, तपाये हुए सोनेकी प्रभासे युक्त, हीरक और स्फटिककी सीढ़ियोंसे सुशोभित था, एक दिव्य सुवर्णमय तथा अनेक पुष्पोंसे विभूषित शिलातलपर सर्वज्ञ, सामर्थ्यशाली, अविनाशी, लोकोंपर अनुग्रह करनेवाले महादेव स्कन्द, नन्दी, महाकाल, वीरभद्र आदि गणों तथा अन्यान्य गणसमूहोंसे घिरे हुए उमाके साथ बैठे हुए थे। उसी समय मार्कण्डेयजीने उनसे पूछा—'ब्रह्मा, विष्णु और इन्द्रसे वन्दित, देवाधिदेव महादेव! मैं संसार-भयसे भीत हूँ, मुझे सुखका साधन बतलाइये। ऐश्वर्यशाली महेश्वर! आप भूत और भविष्यके स्वामी हैं, अतः जो सभी पापोंका विनाशक एवं तीर्थोंमें श्रेष्ठ हो, वह तीर्थ मुझे बतलाइये॥ १—८॥

भगवान् शंकरने कहा—महाबुद्धिमान् विप्र! तुम तो सकलशास्त्रविशारद और सौभाग्यशाली हो, तुम मेरी बात सुनो और ऋषियोंके साथ स्नान करनेके लिये शुक्लतीर्थमें जाओ। मनु, अत्रि, कश्यप, याज्ञवल्क्य, उशना, अङ्गिरा, यम, आपस्तम्ब, संवर्त, कात्यायन, बृहस्पति, नारद और गौतम—ये ऋषिगण धर्मकी अभिलाषासे युक्त हो उसी तीर्थका सेवन करते हैं। गङ्गा कनखलमें पुण्यको देनेवाली है, सूर्यग्रहणके समय प्रयाग, पुष्कर, गया और कुरुक्षेत्र विशिष्ट पुण्यदायक हो जाते हैं, किंतु शुक्लतीर्थ दिन या रात—सभी समय महान् पुण्यफल देनेवाला है।

दर्शनात् स्पर्शनाच्चैव स्नानाद् दानात् तपोजपात्।
होमाच्चैवोपवासाच्च शुक्लतीर्थं महाफलम्॥ १३
शुक्लतीर्थं महापुण्यं नर्मदायां व्यवस्थितम्।
चाणक्यो नाम राजर्षिः सिद्धिं तत्र समागतः॥ १४
एतत् क्षेत्रं सुविपुलं योजनं वृत्तसंस्थितम्।
शुक्लतीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ १५
पादपाग्रेण दृष्टेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति।
जगतीदर्शनाच्चैव भ्रूणहत्यां व्यपोहति॥ १६
अहं तत्र ऋषिश्रेष्ठ तिष्ठामि ह्युमया सह।
वैशाखे चैत्रमासे तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ १७
कैलासाच्चापि निष्क्रम्य तत्र संनिहितो ह्यहम्।

यह शुक्लतीर्थ दर्शन, स्पर्श, स्नान, दान, तप, जप, हवन और उपवास करनेसे महान् फलदायक होता है। यह महान् पुण्यदायक शुक्लतीर्थ नर्मदामें अवस्थित है। चाणक्य नामक राजर्षिने यहाँ सिद्धि प्राप्त की थी। यह विशाल क्षेत्र एक योजन परिमाणका गोलाकार है। यह शुक्लतीर्थ महापुण्यको प्रदान करनेवाला और सम्पूर्ण पापोंका नाशक है। वह यहाँ स्थित वृक्षके अग्रभागको देखनेसे ब्रह्महत्या और यहाँकी भूमिका दर्शन करनेसे भ्रूणहत्याके पापको नष्ट कर देता है। ऋषिश्रेष्ठ! मैं वहाँ उमाके साथ निवास करता हूँ। चैत्र तथा वैशाख-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको मैं कैलाससे भी आकर यहाँ उपस्थित रहता हूँ॥ ९—१७ १/२॥

दैत्यदानवगन्धर्वाः सिद्धविद्याधरास्तथा॥ १८
गणाश्चाप्सरसो नागाः सर्वे देवाः समागताः।
गगनस्थास्तु तिष्ठन्ति विमानैः सार्वकामिकैः॥ १९
शुक्लतीर्थं तु राजेन्द्र ह्यागता धर्मकाङ्क्षिणः।
रजकेन यथा वस्त्रं शुक्लं भवति वारिणा॥ २०
आजन्मजनितं पापं शुक्लं तीर्थं व्यपोहति।
स्नानं दानं महापुण्यं मार्कण्ड ऋषिसत्तम॥ २१
शुक्लतीर्थात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
पूर्वे वयसि कर्माणि कृत्वा पापानि मानवः॥ २२
अहोरात्रोपवासेन शुक्लतीर्थे व्यपोहति।
तपसा ब्रह्मचर्येण यज्ञैर्दानेन वा पुनः॥ २३
देवार्चनेन या पुष्टिर्न सा क्रतुशतैरपि।
कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशी॥ २४
घृतेन स्नापयेद् देवमुपोष्य परमेश्वरम्।
एकविंशत्कुलोपेतो न च्यवेदैश्वरात् पदात्॥ २५
शुक्लतीर्थं महापुण्यमृषिसिद्धनिषेवितम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन्न पुनर्जन्मभाग् भवेत्॥ २६
स्नात्वा वै शुक्लतीर्थे तु ह्यर्चयेद् वृषभध्वजम्।
कपालपूरणं कृत्वा तुष्यत्यत्र महेश्वरः॥ २७

राजेन्द्र! दैत्य, दानव, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, गण, अप्सराएँ और नाग—ये सभी देवगण आकर सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले विमानोंपर आरूढ़ हो गगनमें स्थित रहते हैं। धर्मकी अभिलाषा रखनेवाले ये सभी शुक्लतीर्थमें आते हैं; क्योंकि जैसे धोबी मलिन वस्त्रको जलसे धोकर उज्ज्वल कर देता है, उसी तरह शुक्लतीर्थ जन्मसे लेकर तबतकके किये गये पापोंको नष्ट कर देता है। ऋषिश्रेष्ठ मार्कण्डेय! यहाँका स्नान और दान महान् पुण्यफलको देनेवाले होते हैं। शुक्लतीर्थसे श्रेष्ठ तीर्थ न हुआ है और न होगा। मानव बचपनमें किये गये पाप-कर्मोंको शुक्लतीर्थमें एक दिन-रात उपवास करके नष्ट कर देता है। यहाँ तपस्या, ब्रह्मचर्य, यज्ञ, दान और देवार्चनसे जो पुष्टि प्राप्त होती है, वह (अन्यत्र किये गये) सैकड़ों यज्ञोंसे भी नहीं मिलती। यहाँ कार्तिकमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको उपवास कर परमेश्वर महादेवको घृतसे स्नान कराना चाहिये। ऐसा करनेसे वह अपने इक्कीस पीढ़ियोंतकके पूर्वजोंके साथ महादेवके स्थानसे च्युत नहीं होता। राजन्! ऋषियों और सिद्धोंद्वारा सेवित यह शुक्लतीर्थ महान् पुण्यदायक है। वहाँ स्नान करनेसे मानव पुनर्जन्मका भागी नहीं होता। शुक्लतीर्थमें स्नानकर वृषभध्वजकी पूजा करे और कपालको भर दे, ऐसा करनेसे महेश्वर प्रसन्न होते हैं॥ १८—२७॥

अर्धनारीश्वरं देवं पटे भक्त्या लिखापयेत्।
शङ्खतूर्यनिनादैश्च ब्रह्मघोषश्च सद्विजैः॥ २८

जागरं कारयेत् तत्र नृत्यगीतादिमङ्गलैः।
प्रभाते शुक्लतीर्थे तु स्नानं वै देवतार्चनम्॥ २९

आचार्यान् भोजयेत् पश्चाच्छिवव्रतपराञ् शुचीन्।
दक्षिणां च यथाशक्ति वित्तशाठ्यं विवर्जयेत्॥ ३०

प्रदक्षिणं ततः कृत्वा शनैर्देवान्तिकं व्रजेत्।
एवं वै कुरुते यस्तु तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ३१

दिव्ययानं समारूढो गीयमानोऽप्सरोगणैः।
शिवतुल्यबलोपेतस्तिष्ठत्याभूतसम्प्लवम्॥ ३२

शुक्लतीर्थे तु या नारी ददाति कनकं शुभम्।
घृतेन स्नापयेद् देवं कुमारं चापि पूजयेत्॥ ३३

एवं या कुरुते भक्त्या तस्याः पुण्यफलं शृणु।
मोदते शर्वलोकस्था यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥ ३४

पौर्णमास्यां चतुर्दश्यां संक्रान्तौ विषुवे तथा।
स्नात्वा तु सोपवासः सन् विजितात्मा समाहितः॥ ३५

दानं दद्याद् यथाशक्त्या प्रीयेतां हरिशंकरौ।
एवं तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥ ३६

अनाथं दुर्गतं विप्रं नाथवन्तमथापि वा।
उद्वाहयति यस्तीर्थे तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ३७

यावत्तद्रोमसंख्या च तत्प्रसूतिकुलेषु च।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते॥ ३८

वस्त्रके ऊपर भक्तिके साथ अर्धनारीश्वर महादेवका चित्र लिखवाये और शङ्ख-तुरहीके शब्दों एवं उत्तम ब्राह्मणोंके द्वारा वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणके साथ-साथ नृत्य, गीत आदि मङ्गल-कार्य करते हुए वहाँ रातमें जागरण कराये। प्रातःकाल शुक्लतीर्थमें स्नान करके देवताकी पूजा करे। तत्पश्चात् शिवव्रत-परायण पवित्र आचार्योंको भोजन कराये और कृपणता छोड़कर उन्हें यथाशक्ति दक्षिणा दे। इसके बाद उनकी प्रदक्षिणा कर धीरेसे देवताके समीप जाय। जो ऐसा करता है, उसे प्राप्त होनेवाला पुण्यफल सुनिये। वह शिवके समान बलशाली हो अप्सराओंद्वारा गाया जाता हुआ दिव्य विमानपर बैठकर प्रलयपर्यन्त स्थित रहता है। जो स्त्री शुक्लतीर्थमें शुभकारक सुवर्णका दान करती है और महादेवको घृतसे स्नान कराकर कुमार (स्कन्द)-की भी पूजा करती है, भक्तिपूर्वक ऐसा करनेवाली स्त्रीको जो पुण्यफल प्राप्त होता है, उसे सुनिये। वह रुद्रलोकमें स्थित रहकर चौदह इन्द्रोंके कार्यकालतक आनन्दका उपभोग करती है। जो पूर्णिमा एवं चतुर्दशी तिथि, संक्रान्तिके दिन और विषुवयोगमें वहाँ स्नान करके मनको वशमें कर समाहित चित्तसे उपवासके साथ 'विष्णु और शंकर—दोनों प्रसन्न हों' इस भावनासे यथाशक्ति दान देता है, उसका वह सब तीर्थके प्रभावसे अक्षय हो जाता है। जो मानव उस तीर्थमें अनाथ, दुर्गतिग्रस्त अथवा सनाथ विप्रका भी विवाह कराता है उसे प्राप्त होनेवाला पुण्यफल सुनिये। वह उस ब्राह्मणके तथा उसकी वंशपरम्परामें उत्पन्न हुए लोगोंके शरीरमें जितने रोएँकी संख्या है, उतने हजार वर्षोंतक शिवलोकमें पूजित होता है॥ २८—३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके नर्मदामाहात्म्यमें एक सौ बानवेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९२॥

एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय

नर्मदामाहात्म्य-प्रसङ्गमें कपिलादि विविध तीर्थोंका माहात्म्य, भृगुतीर्थका माहात्म्य, भृगुमुनिकी तपस्या, शिव-पार्वतीका उनके समक्ष प्रकट होना, भृगुद्वारा उनकी स्तुति और शिवजीद्वारा भृगुको वर-प्रदान

मार्कण्डेय उवाच

ततस्त्वनरकं गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
स्नातमात्रो नरस्तत्र नरकं च न पश्यति॥ १
तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं शृणु त्वं पाण्डुनन्दन।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र यस्यास्थीनि विनिक्षिपेत्॥ २
विलयं यान्ति पापानि रूपवाञ्जायते नरः।
गोतीर्थं तु ततो गत्वा सर्वपापात् प्रमुच्यते॥ ३
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कपिलातीर्थमुत्तमम्।
तत्र गत्वा नरो राजन् गोसहस्रफलं लभेत्॥ ४
ज्येष्ठमासे तु सम्प्राप्ते चतुर्दश्यां विशेषतः।
तत्रोपोष्य नरो भक्त्या कपिलां यः प्रयच्छति॥ ५
घृतेन दीपं प्रज्वाल्य घृतेन स्नापयेच्छिवम्।
सघृतं श्रीफलं जग्ध्वा दत्त्वा चान्ते प्रदक्षिणम्॥ ६
घण्टाभरणसंयुक्तां कपिलां यः प्रयच्छति।
शिवतुल्यबलो भूत्वा नैवासौ जायते पुनः॥ ७
अङ्गारकदिने प्राप्ते चतुर्थ्यां तु विशेषतः।
पूजयेत् तु शिवं भक्त्या ब्राह्मणेभ्यश्च भोजनम्॥ ८
अङ्गारकनवम्यां तु अमायां च विशेषतः।
स्नापयेत् तत्र यत्नेन रूपवान् सुभगो भवेत्॥ ९
घृतेन स्नापयेल्लिङ्गं पूजयेद् भक्तितो द्विजान्।
पुष्पकेण विमानेन सहस्रैः परिवारितः॥ १०
शैवं पदमवाप्नोति यत्र चाभिमतं भवेत्।
अक्षयं मोदते कालं यथा रुद्रस्तथैव सः॥ ११
यदा तु कर्मसंयोगान्मर्त्यलोकमुपागतः।
राजा भवति धर्मिष्ठो रूपवाञ्जायते कुले॥ १२
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऋषितीर्थमनुत्तमम्।
तृणबिन्दुर्नाम ऋषिः शापदग्धो व्यवस्थितः॥ १३
तत्तीर्थस्य प्रभावेण शापमुक्तोऽभवद् द्विजः।

मार्कण्डेयजीने कहा— राजन्! तदनन्तर अनरक नामक तीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेमात्रसे मानवको नरकका दर्शन नहीं होता। पाण्डुनन्दन! अब आप उस तीर्थका माहात्म्य सुनिये। राजेन्द्र! उस तीर्थमें जिसकी हड्डियाँ डाल दी जाती हैं, उसके पापसमूह नष्ट हो जाते हैं और वह पुनः रूपवान् होकर जन्म ग्रहण करता है। तत्पश्चात् गोतीर्थमें जाकर मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ कपिलातीर्थकी यात्रा करे। राजन्! जो मनुष्य ज्येष्ठ-मासमें विशेषकर चतुर्दशी तिथिको वहाँ भक्तिपूर्वक स्नान और उपवासकर कपिला गौका दान करता है, उसे एक हजार गोदानका फल प्राप्त होता है। जो मनुष्य वहाँ घीसे दीपक जलाकर घीसे शिवको स्नान कराता है और घृतके साथ बेलको स्वयं खाता है एवं दान देता है तथा अन्तमें प्रदक्षिणा करके घण्टा और अलंकारसे विभूषित कपिला गौका दान करता है, वह शिवके तुल्य बलवान् होता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। मंगलवारको विशेषकर चतुर्थी तिथिको शिवकी भक्तिपूर्वक पूजा करके ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। मंगलवारकी नवमी एवं विशेषतया अमावास्या तिथिको यत्नपूर्वक शिवको स्नान करानेसे मनुष्य रूपवान् और भाग्यवान् होता है। जो घृतसे शिवलिङ्गको स्नान कराकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, वह हजारों विमानोंसे घिरे हुए पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो शिवलोकको जाता है और वहाँ अभिलषित वस्तुओंको प्राप्त करता है तथा रुद्रके समान ही अक्षय कालतक वहाँ आनन्दका उपभोग करता है। जब कभी कर्मवश वह मृत्युलोकमें आता है तो कुलीन वंशमें जन्म ग्रहण करता है और रूपवान् धर्मात्मा राजा होता है। राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ ऋषितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। यहाँ तृणबिन्दु नामक ऋषि शापसे दग्ध होकर स्थित थे, किंतु इस तीर्थके प्रभावसे वे द्विज शापसे मुक्त हो गये॥ १—१३ $\frac{1}{2}$॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र गङ्गेश्वरमनुत्तमम्॥ १४
श्रावणे मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
स्नातमात्रो नरस्तत्र रुद्रलोके महीयते॥ १५
पितृणां तर्पणं कृत्वा मुच्यते च ऋणत्रयात्।
गङ्गेश्वरसमीपे तु गङ्गावदनमुत्तमम्॥ १६
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नात्वा तु मानवः।
आजन्मजनितैः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः॥ १७
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा व्रजेद् वै यत्र शंकरः।
सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्॥ १८
पितृणां तर्पणं कृत्वा ह्यश्वमेधफलं लभेत्।
प्रयागे यत्फलं दृष्टं शंकरेण महात्मना॥ १९
तदेव निखिलं दृष्टं गङ्गावदनसंगमे।
तस्यैव पश्चिमे स्थाने समीपे नातिदूरतः॥ २०
दशाश्वमेधजननं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्।
उपोष्य रजनीमेकां मासि भाद्रपदे तथा॥ २१
अमायां च नरः स्नात्वा व्रजते यत्र शंकरः।
सर्वदा पर्वदिवसे स्नानं तत्र समाचरेत्॥ २२
पितृणां तर्पणं कृत्वा चाश्वमेधफलं लभेत्।
दशाश्वमेधात् पश्चिमतो भृगुर्ब्राह्मणसत्तमः॥ २३
दिव्यं वर्षसहस्रं तु ईश्वरं पर्युपासत।
वल्मीकवेष्टितश्चासौ पक्षिणां च निकेतनः॥ २४
आश्चर्यं सुमहज्जातमुमायाः शंकरस्य च।
गौरी पप्रच्छ देवेशं कोऽयमेवं तु संस्थितः।
देवो वा दानवो वाथ कथयस्व महेश्वर॥ २५

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ गङ्गेश्वरतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ श्रवणमासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी तिथिको स्नानमात्र कर लेनेसे मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है तथा पितरोंका तर्पण कर देव, पितर और ऋषि—इन तीनों ऋणोंसे मुक्त हो जाता है। गङ्गेश्वरतीर्थके समीपमें गङ्गावदन नामक श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ कामनापूर्वक या निष्काम होकर स्नान कर मनुष्य अपने जन्मभरके किये हुए पापोंसे छुटकारा पा जाता है, इसमें संदेह नहीं है। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्यको जहाँ शंकर हैं, वहीं जाना चाहिये और वहाँ सर्वदा पर्वदिनपर स्नान करना चाहिये। वहाँ पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। प्रयागमें स्नान करनेसे जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सम्पूर्ण फल गङ्गावदनसङ्गममें महात्मा शंकरके दर्शनसे प्राप्त हो जाता है। उसीके पश्चिम दिशामें संनिकट ही दशाश्वमेधजनन नामक तीर्थ है, जो तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। भाद्रपदमासकी अमावास्या तिथिको वहाँ एक रात उपवासकर स्नान करनेके पश्चात् शंकरके निकट जाना चाहिये और वहाँ सर्वदा पर्वके अवसरपर स्नान करना चाहिये। वहाँ पितरोंका तर्पण करनेसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। दशाश्वमेधसे पश्चिम दिशामें ब्राह्मणश्रेष्ठ भृगुने एक हजार दिव्य वर्षोंतक शिवजीकी उपासना की थी। उनका शरीर बिमवटसे परिवेष्टित हो गया था, जिससे वे पक्षियोंके निवासस्थान बन गये थे। यह देखकर उमा और शंकरको महान् आश्चर्य उत्पन्न हुआ। तब पार्वतीने शंकरजीसे पूछा—'महेश्वर! यह कौन इस प्रकार समाधिस्थ है? यह देव है अथवा दानव? यह मुझे बतलाइये॥ १४—२५॥

महेश्वर उवाच

भृगुर्नाम द्विजश्रेष्ठ ऋषीणां प्रवरो मुनिः।
मां ध्यायते समाधिस्थो वरं प्रार्थयते प्रिये॥ २६

ततः प्रहसिता देवी ईश्वरं प्रत्यभाषत।

धूमवत्तच्छिखा जाता ततोऽद्यापि न तुष्यसे।
दुराराध्योऽसि तेन त्वं नात्र कार्या विचारणा॥ २७

महेश्वर बोले—प्रिये! ये द्विजश्रेष्ठ भृगु हैं, जो ऋषियोंमें श्रेष्ठ मुनि हैं। ये समाधिस्थ होकर मेरा ध्यान कर रहे हैं और वर प्राप्त करना चाहते हैं। यह सुनकर पार्वतीदेवी हँस पड़ीं और महेश्वरसे बोलीं—'भगवन्! इस तपस्वीकी शिखा धुएँके समान हो गयी, फिर भी आप अभी भी संतुष्ट नहीं हो रहे हैं। इससे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि आप महान् कष्टसे आराधित-प्रसन्न होते हैं, इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है॥ २६-२७॥

महेश्वर उवाच

न जानासि महादेवि ह्ययं क्रोधेन वेष्टितः।
दर्शयामि यथातथ्यं प्रत्ययं ते करोम्यहम्॥ २८

महेश्वरने कहा—महादेवि! तुम नहीं जानती हो, ये मुनि क्रोधसे परिपूर्ण हैं। मैं तुम्हें अभी सत्य स्थिति

ततः स्मृतोऽथ देवेन धर्मरूपो वृषस्तदा।
स्मरणात्तस्य देवस्य वृषः शीघ्रमुपस्थितः।
वदंस्तु मानुषीं वाचमादेशो दीयतां प्रभो॥ २९

महेश्वर उवाच

वल्मीकं त्वं खनस्वैनं विप्रं भूमौ निपातय।
योगस्थस्तु ततो ध्यायन् भृगुस्तेन निपातितः॥ ३०
तत्क्षणात् क्रोधसंतप्तो हस्तमुत्क्षिप्य सोऽशपत्।
एवं सम्भाषमाणस्तु कुत्र गच्छसि भो वृष।
अद्याहं सम्प्रकोपेण प्रलयं त्वां नये वृष॥ ३१
धर्षितस्तु तदा विप्रश्चान्तरिक्षं गतो वृषम्।
आकाशे प्रेक्षते विप्र एतदद्भुतमुत्तमम्॥ ३२
तत्र प्रहसितो रुद्र ऋषिरग्रे व्यवस्थितः।
तृतीयलोचनं दृष्ट्वा वैलक्ष्यात् पतितो भुवि।
प्रणम्य दण्डवद् भूमौ तुष्टाव परमेश्वरम्॥ ३३
प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं त्वामहं दिव्यरूपम्।
भवातीतो भुवनपते प्रभो तु विज्ञापये किञ्चित्॥ ३४
त्वद्गुणनिकरान् वक्तुं कः शक्तो भवति मानुषो नाम।
वासुकिरपि हि कदाचिद् वदनसहस्रं भवेद् यस्य॥ ३५
भक्त्या तथापि शंकर भुवनपते त्वत्स्तुतौ मुखरः।
वदतः क्षमस्व भगवन् प्रसीद मे तव चरणपतितस्य॥ ३६
सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्त्योर्विनाशने देव।
त्वां मुक्त्वा भुवनपते भुवनेश्वर नैव दैवतं किञ्चित्॥ ३७
यमनियमयज्ञदानवेदाभ्यासाश्च धारणा योगः।
त्वद्भक्तेः सर्वमिदं नार्हति हि कलासहस्रांशम्॥ ३८
उच्छिष्टरसरसायनखड्गाञ्जनपादुकाविवरसिद्धिर्वा।
चिह्नं भवव्रतानां दृश्यति चेह जन्मनि प्रकटम्॥ ३९
शाठ्येन नमति यद्यपि ददासि त्वं भूतिमिच्छतो देव।
भक्तिर्भवभेदकरी मोक्षाय विनिर्मिता नाथ॥ ४०

दिखाकर विश्वस्त कर रहा हूँ। तत्पश्चात् शिवजीने उस समय धर्मरूपी वृषभका स्मरण किया। उन देवके स्मरण करते ही वह वृष शीघ्र ही उपस्थित हो गया और मनुष्यकी वाणीमें बोला—'प्रभो! आदेश दीजिये'॥ २८-२९॥

महेश्वरने कहा—तुम इस बिमवटको खोद डालो और विप्रको भूमिपर गिरा दो। तब वृषने ध्यान करते हुए योगस्थ भृगुको भूमिपर गिरा दिया। उसी क्षण क्रोधसे जले-भुने भृगु हाथ उठाकर शाप देते हुए इस प्रकार बोले—'भो वृष! तुम कहाँ जा रहे हो? वृष! अभी मैं क्रोधके बलसे तुम्हारा संहार कर डालता हूँ।' तब वह वृषभ उस विप्रको परास्तकर आकाशमें चला गया। उसे आकाशमें देखते हुए भृगु सोचने लगे—'यह तो महान् आश्चर्य है।' इतनेमें ही वहाँ भगवान् रुद्र हँसते हुए ऋषिके सम्मुख उपस्थित हो गये। तब तृतीय नेत्रधारी रुद्रको देखकर भृगु व्याकुल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और दण्डके समान भूमिपर लेटकर प्रणाम कर भगवान् शंकरकी स्तुति करने लगे॥ ३०—३३॥

त्रिभुवनके स्वामी प्रभो! आप प्राणिवर्गके स्वामी, संसारके उद्भवस्थान, दिव्य रूपधारी और जन्म-मरणसे परे हैं, मैं आपको प्रणाम करके कुछ निवेदन करना चाहता हूँ। यद्यपि कदाचित् किसी मानवको वासुकिके समान हजार मुख हो जाय तो भी ऐसा कोई भी मनुष्य आपके गुणसमूहोंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हो सकता, तथापि भुवनपते शंकर! मैं भक्तिपूर्वक आपकी स्तुति करनेके लिये उद्यत हूँ। भगवन्! अपने चरणोंमें पड़े हुए मुझपर प्रसन्न हो जाइये और बोलते समय घटित हुई त्रुटियोंके लिये मुझे क्षमा कीजिये। देव! विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और लयमें आप ही सत्त्व, रज और तमस्वरूप हैं। भुवनपते! आपको छोड़कर अन्य कोई देवता नहीं है। भुवनेश्वर! यम, नियम, यज्ञ, दान, वेदाभ्यास, धारणा और योग—ये सभी आपकी भक्तिकी एक कलाके हजारवें अंशकी समता नहीं कर सकते। उच्छिष्ट, रस-रसायन, खड्ग, अञ्जन, पादुका और विवरसिद्धि—ये सभी महादेवकी आराधना करनेवालोंके चिह्न हैं, जो इस जन्ममें व्यक्त-रूपसे देखे जाते हैं॥ ३४—३९॥

देव! यद्यपि भक्त शठतापूर्वक नमस्कार करता है, तथापि आप उसे इच्छानुसार ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। नाथ! आपने मोक्ष प्रदान करनेके लिये संसारको नष्ट करनेवाली

परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसंतप्तम्।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर मां परित्राहि॥ ४१

मिथ्याभिमानदग्धं क्षणभङ्गुरदेहविलसितं क्रूरम्।
कुपथ्याभिमुखं पतितं त्वं मां पापात् परित्राहि॥ ४२

दीने द्विजगणसार्थे बन्धुजनेनैव दूषिता ह्याशा।
तृष्णा तथापि शंकर किं मूढं मां विडम्बयति॥ ४३

तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं प्रदत्स्व यावदासिनीं नित्यम्।
छिन्धि मदमोहपाशानुत्तारय मां महादेव॥ ४४

करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्वसिद्धिदं दिव्यम्।
यः पठति भक्तियुक्तस्तस्य तुष्येद् भृगोर्यथा च शिवः॥ ४५

भक्तिका निर्माण किया है। परमेश्वर! मैं परायी स्त्री और पराये धनमें रत रहनेवाला, दूसरे द्वारा किये गये अनादरसे उत्पन्न हुए दुःख और शोकसे सन्तप्त और परमुखापेक्षी हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं मिथ्या अभिमानसे सन्तप्त, क्षणभङ्गुर शरीरके विलासमें रत, निष्ठुर, कुमार्गगामी और पतित हूँ, आप इस पापसे मेरी रक्षा कीजिये। यद्यपि द्विजगणोंके साथ-साथ मैं दीन हूँ और बन्धुजनोंने ही मेरी आशाको दूषित कर दिया है, तथापि शंकर! तृष्णा मुझ मोहग्रस्तकी विडम्बना क्यों कर रही है? महादेव! आप इस तृष्णाको शीघ्र दूर कर दें, नित्य चिरस्थायिनी लक्ष्मी प्रदान करें, मद और मोहके पाशको काट दें और मेरा उद्धार करें। यह 'करुणाभ्युदय' नामक दिव्य स्तोत्र सभी सिद्धियोंको देनेवाला है, जो भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, उसपर भृगु (पर प्रसन्न होने)-के समान ही शिवजी प्रसन्न होते हैं॥ ४०—४५॥

अहं तुष्टोऽस्मि ते वत्स प्रार्थयस्वेप्सितं वरम्।
उमया सहितो देवो वरं तस्य ह्यदापयत्॥ ४६

भगवान् शंकरने कहा—वत्स! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, तुम अभीष्ट वर माँग लो। इस प्रकार उमासहित महादेवजी भृगुको वरदान देनेके लिये उद्यत हुए॥ ४६॥

भृगुरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम।
रुद्रवेदी भवेदेवमेतत् सम्पादयस्व मे॥ ४७

भृगु बोले— देवेश! यदि आप प्रसन्न हैं और यदि मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे यह वरदान दीजिये कि यह स्थान रुद्रवेदीके नामसे प्रसिद्ध हो जाय॥ ४७॥

ईश्वर उवाच

एवं भवतु विप्रेन्द्र क्रोधस्त्वां न भविष्यति।
न पितापुत्रयोश्चैव त्वैकमत्यं भविष्यति॥ ४८
तदाप्रभृति ब्रह्माद्याः सर्वेदेवाः सकिन्नराः।
उपासते भृगोस्तीर्थं तुष्टो यत्र महेश्वरः॥ ४९
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य सद्यः पापात् प्रमुच्यते।
अवशाः स्ववशा वापि म्रियन्ते यत्र जन्तवः॥ ५०
गुह्यातिगुह्या सुगतिस्तेषां निःसंशयं भवेत्।
एतत् क्षेत्रं सुविपुलं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ५१
तत्र स्नात्वा दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः।
उपानहौ च छत्रं च ह्यमन्नं च काञ्चनम्॥ ५२
भोजनं च यथाशक्त्या ह्यक्षयं च तथा भवेत्।
सूर्योपरागे यो दद्याद् दानं चैव यथेच्छया॥ ५३

शिवजीने कहा—विप्रश्रेष्ठ! ऐसा ही होगा और अब तुम्हें क्रोध नहीं होगा। साथ ही तुम पिता और पुत्रमें सहमति नहीं होगी। तभीसे किन्नरोंसहित ब्रह्मा आदि सभी देवगण, जहाँ महेश्वर संतुष्ट हुए थे, उस भृगुतीर्थकी उपासना करते हैं। उस तीर्थका दर्शन करनेसे मनुष्य तत्काल ही पापसे मुक्त हो जाता है। स्वाधीन या पराधीन होकर भी जो प्राणी यहाँ मरते हैं, उन्हें निःसंदेह गुह्यातिगुह्य उत्तम गति प्राप्त होती है। यह अत्यन्त विस्तृत क्षेत्र सभी पापोंका विनाशक है। यहाँ स्नान करके मानव स्वर्गको प्राप्त होते हैं तथा जो वहाँ मरते हैं, उनका पुनः संसारमें आगमन नहीं होता। वहाँ यथाशक्ति जूता, छाता, अन्न, सोना और खाद्य पदार्थका दान देना चाहिये; क्योंकि वह अक्षय हो जाता है। जो मनुष्य सूर्यग्रहणके समय वहाँ इच्छानुसार जो कुछ दान देता है,

दीयमानं तु तद् दानमक्षयं तस्य तद् भवेत्।
चन्द्रसूर्योपरागेषु यत्फलं त्वमरकण्टके॥ ५४
तदेव निखिलं पुण्यं भृगुतीर्थे न संशयः।
क्षरन्ति सर्वदानानि यज्ञदानतपःक्रियाः॥ ५५
न क्षरेत् तु तपस्तप्तं भृगुतीर्थे युधिष्ठिर।
यस्य वै तपसोग्रेण तुष्टेनैव तु शम्भुना॥ ५६
सांनिध्यं तत्र कथितं भृगुतीर्थे नराधिप।
प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु यत्र तुष्टो महेश्वरः॥ ५७
एवं तु वदतो देवीं भृगुतीर्थमनुत्तमम्।
न जानन्ति नरा मूढा विष्णुमायाविमोहिताः॥ ५८
नर्मदायां स्थितं दिव्यं भृगुतीर्थं नराधिप।
भृगुतीर्थस्य माहात्म्यं यः शृणोति नरः क्वचित्॥ ५९
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम्॥ ६०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः।
काञ्चनेन विमानेन ब्रह्मलोके महीयते॥ ६१
धौतपापं ततो गच्छेत् क्षेत्रं यत्र वृषेण तु।
नर्मदायां कृतं राजन् सर्वपातकनाशनम्॥ ६२
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ब्रह्महत्यां विमुञ्चति।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र प्राणत्यागं करोति यः॥ ६३
चतुर्भुजस्त्रिनेत्रश्च शिवतुल्यबलो भवेत्।
वसेत् कल्पायुतं साग्रं शिवतुल्यपराक्रमः॥ ६४
कालेन महता प्राप्तः पृथिव्यामेकराड् भवेत्।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र ऐरण्डीतीर्थमुत्तमम्॥ ६५
प्रयागे यत् फलं दृष्टं मार्कण्डेयेन भाषितम्।
तत् फलं लभते राजन् स्नातमात्रो हि मानवः॥ ६६
मासि भाद्रपदे चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी।
उपोष्य रजनीमेकां तस्मिन् स्नानं समाचरेत्।
यमदूतैर्न बाध्येत रुद्रलोकं स गच्छति॥ ६७
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः।
हिरण्यद्वीपविख्यातं सर्वपापप्रणाशनम्॥ ६८

उसका वह दिया हुआ दान अक्षय हो जाता है। चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहणके समय अमरकण्टकमें जो फल प्राप्त होता है, वही सम्पूर्ण पुण्य निःसंदेह भृगुतीर्थमें सुलभ हो जाता है। युधिष्ठिर! सभी प्रकारके दान तथा यज्ञ, तप और कर्म—ये सभी नष्ट हो जाते हैं, किंतु भृगुतीर्थमें किया गया तप नष्ट नहीं होता। नराधिप! उस भृगुकी उग्र तपस्यासे संतुष्ट हुए शम्भुने उस भृगुतीर्थमें अपनी नित्य उपस्थिति बतलायी है, इसलिये वह भृगुतीर्थ तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है; क्योंकि वहाँ महेश्वर संतुष्ट हुए थे। नराधिप! इस प्रकार महेश्वरने पार्वतीसे श्रेष्ठ भृगुतीर्थके विषयमें कहा है, किंतु विष्णुकी मायासे मोहित हुए मूढ़ मनुष्य नर्मदामें स्थित इस दिव्य भृगुतीर्थको नहीं जानते। जो मनुष्य कहीं भी भृगुतीर्थका माहात्म्य सुनता है, वह सभी पापोंसे विमुक्त होकर रुद्रलोकको जाता है॥ ४८—५९½॥

राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ गौतमेश्वर तीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नानकर उपवास करनेवाला मनुष्य सुवर्णमय विमानसे ब्रह्मलोकमें जाकर पूजित होता है। राजन्! तदनन्तर धौतपाप नामक क्षेत्रकी यात्रा करनी चाहिये। स्वयं नन्दीने नर्मदामें इस क्षेत्रका निर्माण किया था, जो सभी पातकोंका नाशक है। उस तीर्थमें स्नानकर मनुष्य ब्रह्महत्यासे विमुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! उस तीर्थमें जो प्राण-त्याग करता है, वह चार भुजा और तीन नेत्रोंसे युक्त हो शिवके समान बलशाली हो जाता है और शिवके समान पराक्रमी होकर दस सहस्र कल्पोंसे भी अधिक कालतक स्वर्गमें निवास करता है। बहुत कालके बाद पृथ्वीपर आनेपर वह एकच्छत्र राजा होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ ऐरण्डीतीर्थमें जाना चाहिये। राजन्! मार्कण्डेयजीके द्वारा प्रयागमें जो पुण्य बतलाया गया है, वही पुण्य वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्यको सुलभ हो जाता है। जो भाद्रपदमासके शुक्लपक्षकी चतुर्दशी तिथिको एक रात उपवास कर वहाँ स्नान करता है, उसे यमदूत पीड़ित नहीं करते और वह रुद्रलोकको जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त सभी पापोंको नष्ट करनेवाले हिरण्यद्वीप नामसे विख्यात तीर्थमें जाना चाहिये, जहाँ भगवान् जनार्दनने

तत्र स्नात्वा नरो राजन् धनवान् रूपवान् भवेत्।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र तीर्थं कनखलं महत्॥ ६९
गरुडेन तपस्तप्तं तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
प्रख्यातं त्रिषु लोकेषु योगिनी तत्र तिष्ठति॥ ७०
क्रीडते योगिभिः सार्धं शिवेन सह नृत्यति।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ ७१

सिद्धि प्राप्त की थी। राजन्! वहाँ स्नान कर मानव धनवान् और रूपवान् हो जाता है। राजेन्द्र! इसके बाद महान् कनखलतीर्थकी यात्रा करे। नराधिप! उस तीर्थमें गरुडने तपस्या की थी। वह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। वहाँ योगिनी रहती है, जो योगियोंके साथ क्रीडा और शिवके साथ नृत्य करती है। राजन्! वहाँ स्नान कर मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है॥ ६०—७१॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र हंसतीर्थमनुत्तमम्।
हंसास्तत्र विनिर्मुक्ता गता ऊर्ध्वं न संशयः॥ ७२
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र सिद्धो यत्र जनार्दनः।
वाराहं रूपमास्थाय अर्चितः परमेश्वरः॥ ७३
वराहतीर्थे नरः स्नात्वा द्वादश्यां तु विशेषतः।
विष्णुलोकमवाप्नोति नरकं न च पश्यति॥ ७४
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र चन्द्रतीर्थमनुत्तमम्।
पौर्णमास्यां विशेषेण स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ७५
स्नातमात्रो नरस्तत्र चन्द्रलोके महीयते।
दक्षिणेन तु द्वारेण कन्यातीर्थं तु विश्रुतम्॥ ७६
शुक्लपक्षे तृतीयायां स्नानं तत्र समाचरेत्।
प्रणिपत्य तु चेशानं बलिस्तेन प्रसीदति॥ ७७
हरिश्चन्द्रपुरं दिव्यमन्तरिक्षे च दृश्यते।
शक्रध्वजे समावृत्ते सुप्ते नागारिकेतने॥ ७८
नर्मदा सलिलौघेन तरून् सम्प्लावयिष्यति।
अस्मिन् स्थाने निवासः स्याद् विष्णुः शंकरमब्रवीत्॥ ७९
द्वीपेश्वरे नरः स्नात्वा लभेद् बहु सुवर्णकम्।

राजेन्द्र! तदनन्तर उत्तम हंसतीर्थमें जाय। वहाँ हंस-समूह पापसे विनिर्मुक्त होकर निःसंदेह स्वर्गको चले गये थे। राजेन्द्र! तत्पश्चात् वाराहतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ भगवान् जनार्दन सिद्ध हुए थे। वहाँ वाराहरूपधारी परमेश्वरकी पूजा हुई थी। उस वाराहतीर्थमें विशेषकर द्वादशी तिथिको स्नान कर मनुष्य विष्णुलोकको प्राप्त करता है और उसे नरकका दर्शन नहीं करना पड़ता। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ चन्द्रतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ विशेषकर पूर्णिमा तिथिको स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य चन्द्रलोकमें पूजित होता है। उसके दक्षिण द्वारपर विख्यात कन्यातीर्थ है। वहाँ शुक्लपक्षकी तृतीया तिथिको स्नान करना चाहिये। वहाँ शिवजीको प्रणाम करके उन्हें बलि प्रदान करनेसे वे प्रसन्न हो जाते हैं। वहाँ हरिशयनके समय इन्द्रध्वजके निकलनेपर अन्तरिक्षमें दिव्य हरिश्चन्द्रपुर दिखायी देता है। जब नर्मदा जलसमूहसे वृक्षोंको आप्लावित कर देगी, उस समय इस स्थानमें विष्णुका निवास होगा—ऐसा विष्णुने शंकरसे कहा है। द्वीपेश्वरतीर्थमें स्नान कर मनुष्य सुवर्णराशिको प्राप्त करता है॥ ७२—७९ ½॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कन्यातीर्थे सुसंगमे॥ ८०
स्नातमात्रो नरस्तत्र देव्याः स्थानमवाप्नुयात्।
देवतीर्थं ततो गच्छेत् सर्वतीर्थमनुत्तमम्॥ ८१
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र दैवतैः सह मोदते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र शिखितीर्थमनुत्तमम्॥ ८२
यत् तत्र दीयते दानं सर्वं कोटिगुणं भवेत्।
अपरपक्षे त्वमायां तु स्नानं तत्र समाचरेत्॥ ८३

राजेन्द्र! इसके बाद कन्यातीर्थके सुन्दर संगमस्थानकी यात्रा करे। वहाँ स्नानमात्र करनेसे मनुष्य देवीके स्थानको प्राप्त करता है। तदनन्तर सभी तीर्थोंमें उत्तम देवतीर्थमें जाना चाहिये। राजेन्द्र! वहाँ स्नान कर मनुष्य देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ शिखितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ अमावस्या तिथिके तीसरे पहरमें स्नान करनेका विधान है। वहाँ जो कुछ भी दान दिया जाता है, वह सब, करोड़गुना हो जाता है।

ब्राह्मणं भोजयेदेकं कोटिर्भवति भोजिता।
भृगुतीर्थे तु राजेन्द्र तीर्थकोटिर्व्यवस्थिता॥ ८४
अकामो वा सकामो वा तत्र स्नानं समाचरेत्।
अश्वमेधमवाप्नोति दैवतैः सह मोदते॥ ८५
तत्र सिद्धिं परां प्राप्तो भृगुस्तु मुनिपुङ्गवः।
अवतारः कृतस्तत्र शंकरेण महात्मना॥ ८६

वहाँ एक ब्राह्मणको भोजन करानेपर करोड़ ब्राह्मणोंके भोजन करानेका फल होता है। राजेन्द्र! भृगुतीर्थमें करोड़ों तीर्थोंकी स्थिति है। वहाँ निष्काम या सकाम होकर भी स्नान करना चाहिये। ऐसा करनेसे मनुष्यको अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है और वह देवताओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। वहाँ मुनिश्रेष्ठ भृगुने परम सिद्धि प्राप्त की थी और महात्मा शंकर अवतीर्ण हुए थे॥ ८०—८६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्ये त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ तिरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९३॥

एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय

नर्मदातटवर्ती तीर्थोंका माहात्म्य

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र ह्यङ्कुशेश्वरमुत्तमम्।
दर्शनात् तस्य देवस्य मुच्यते सर्वपातकैः॥ १
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदेश्वरमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् स्वर्गलोके महीयते॥ २
अश्वतीर्थं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्।
सुभगो दर्शनीयश्च भोगवाञ्जायते नरः॥ ३
पैतामहं ततो गच्छेद् ब्रह्मणा निर्मितं पुरा।
तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या पितृपिण्डं तु दापयेत्॥ ४
तिलदर्भविमिश्रं तु ह्युदकं तत्र दापयेत्।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं भवति चाक्षयम्॥ ५
सावित्रीतीर्थमासाद्य यस्तु स्नानं समाचरेत्।
विधूय सर्वपापानि ब्रह्मलोके महीयते॥ ६
मनोहरं ततो गच्छेत् तीर्थं परमशोभनम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् पितृलोके महीयते॥ ७
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र मानसं तीर्थमुत्तमम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ ८
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र कुब्जतीर्थमनुत्तमम्।
विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापप्रणाशनम्॥ ९
यान् यान् कामयते कामान् पशुपुत्रधनानि च।
प्राप्नुयात् तानि सर्वाणि तत्र स्नात्वा नराधिप॥ १०

मार्कण्डेयजीने कहा—राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ अङ्कुशेश्वरतीर्थकी यात्रा करे, जहाँ उन देवके दर्शनमात्रसे मनुष्य सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ नर्मदेश्वरतीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य स्वर्गलोकमें पूजित होता है। तदुपरान्त अश्वतीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। ऐसा करनेसे मनुष्य सौभाग्यशाली, दर्शनीय और रूपवान् हो जाता है। इसके बाद प्राचीनकालमें ब्रह्माद्वारा निर्मित पैतामहतीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नानकर भक्तिपूर्वक पितरोंको पिण्डदान करे तथा तिल और कुशसे युक्त तर्पण करे; क्योंकि उस तीर्थके प्रभावसे वहाँ किया गया यह सब अक्षय हो जाता है। जो सावित्रीतीर्थमें जाकर स्नान करता है, वह अपने सभी पापोंको धोकर ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। राजन्! तदनन्तर अतिशय रमणीय मनोहर-तीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। वहाँ स्नानकर मनुष्य पितृलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! तत्पश्चात् श्रेष्ठ मानसतीर्थमें जाय। राजन्! वहाँ स्नानकर मनुष्य रुद्रलोकमें पूजित होता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त श्रेष्ठ कुब्जतीर्थकी यात्रा करे। तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध यह तीर्थ सभी पापोंका नाशक है। नराधिप! मनुष्य, पशु, पुत्र, धन आदि जिन-जिन वस्तुओंकी कामना करता है, वह सब उसे वहाँ स्नान करनेसे प्राप्त हो जाता है॥ १—१०॥

ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र त्रिदशज्योतिविश्रुतम्।
यत्र ता ऋषिकन्यास्तु तपोऽतप्यन्त सुव्रताः॥ ११

भर्ता भवतु सर्वासामीश्वरः प्रभुरव्ययः।
प्रीतस्तासां महादेवो दण्डरूपधरो हरः॥ १२

विकृताननबीभत्सुर्व्रती तीर्थमुपागतः।
तत्र कन्या महाराज वरयत् परमेश्वरः॥ १३

कन्या ऋषेर्वरयतः कन्यादानं प्रदीयताम्।
तीर्थं तत्र महाराज ऋषिकन्येति विश्रुतम्॥ १४

तत्र स्नात्वा नरो राजन् सर्वपापैः प्रमुच्यते।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र स्वर्णविन्दु त्विति स्मृतम्॥ १५

तत्र स्नात्वा नरो राजन् दुर्गतिं न च पश्यति।
अप्सरेशं ततो गच्छेत् स्नानं तत्र समाचरेत्॥ १६

क्रीडते नागलोकस्थोऽप्सरोभिः सह मोदते।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र नरके तीर्थमुत्तमम्॥ १७
तत्र स्नात्वार्चयेद् देवं नरकं च न पश्यति।
भारभूतिं ततो गच्छेदुपवासपरो जनः॥ १८

एतत् तीर्थं समासाद्य चावतारं तु शाम्भवम्।
अर्चयित्वा विरूपाक्षं रुद्रलोके महीयते॥ १९

अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा भारभूतौ महात्मनः।
यत्र तत्र मृतस्यापि ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः॥ २०

कार्तिकस्य तु मासस्य ह्यर्चयित्वा महेश्वरम्।
अश्वमेधाद् दशगुणं प्रवदन्ति मनीषिणः॥ २१

दीपकानां शतं तत्र घृतपूर्णं तु दापयेत्।
विमानैः सूर्यसंकाशैर्व्रजते यत्र शंकरः॥ २२

वृषभं यः प्रयच्छेत् तु शङ्खकुन्देन्दुसप्रभम्।
वृषयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति॥ २३

धेनुमेकां तु यो दद्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
पायसं मधुसंयुक्तं भक्ष्याणि विविधानि च॥ २४

राजेन्द्र! इसके बाद प्रसिद्ध त्रिदशज्योतितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये, जहाँ उत्तम व्रत धारण करनेवाली उन ऋषि-कन्याओंने तपस्या की थीं। उनकी अभिलाषा थी कि अविनाशी एवं सामर्थ्यशाली महेश्वर हम सभीके पति हों। तब उनकी तपस्यासे प्रसन्न होकर संहारकारी महादेव, जिनका मुख विकृत और शरीर घृणास्पद था तथा जो उत्तम व्रतमें लीन थे, दण्ड धारणकर उस तीर्थमें आये। महाराज! वहाँ शंकरजीने उन कन्याओंका वरण किया। महाराज! वहाँ शंकरजीने ऋषिकन्याओंका वरण किया था, अतः वह स्थान ऋषिकन्या नामसे विख्यात तीर्थ हुआ। यहाँ कन्यादान करना चाहिये। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तदनन्तर स्वर्णबिन्दु नामक प्रसिद्ध तीर्थमें जाय। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्यको दुर्गति नहीं देखनी पड़ती। तत्पश्चात् अप्सरेशतीर्थमें जाय और वहाँ स्नान करे। वहाँ स्नान करनेवाला नागलोकमें अप्सराओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त नरक नामक श्रेष्ठ तीर्थकी यात्रा करे। वहाँ स्नानकर महादेवजीकी पूजा करे तो नरक नहीं देखना पड़ता॥ ११—१७ ½॥

इसके बाद भारभूतितीर्थकी यात्रा करनी चाहिये। इस तीर्थमें आकर मनुष्य उपवासपूर्वक शम्भूके अवतार विरूपाक्षकी अर्चना करके रुद्रलोकमें पूजित होता है। महात्मा शंकरके इस भारभूतितीर्थमें स्नानकर मनुष्य जहाँ-कहीं भी मरता है तो उसे निश्चय ही गणोंके अध्यक्षकी गति प्राप्त होती है। कार्तिकमासमें यहाँ महेश्वरकी पूजा करनेसे अश्वमेधयज्ञसे दसगुना फल प्राप्त होता है—ऐसा विद्वानोंने कहा है। जो वहाँ घृतपूर्ण सौ दीपक जलाता है, वह सूर्यके समान देदीप्यमान विमानोंसे शंकरजीके निकट चला जाता है। जो वहाँ शङ्ख, कुन्द-पुष्प एवं चन्द्रमाके समान उज्ज्वल रंगके वृषभका दान करता है, वह वृषयुक्त विमानसे रुद्रलोकको जाता है। नराधिप! उस तीर्थमें जो एक धेनुका दान देता है और यथाशक्ति मधुसंयुक्त खीर एवं विविध भोज्य पदार्थ ब्राह्मणोंको खिलाता है,

यथाशक्त्या च राजेन्द्र ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः।
तस्य तीर्थप्रभावेण सर्वं कोटिगुणं भवेत्॥ २५
नर्मदाया जलं पीत्वा ह्यर्चयित्वा वृषध्वजम्।
दुर्गतिं च न पश्यन्ति तस्य तीर्थप्रभावतः॥ २६
एतत् तीर्थं समासाद्य यस्तु प्राणान् विमुञ्चति।
सर्वपापविनिर्मुक्तो व्रजेद् वै यत्र शंकरः।
जलप्रवेशं यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप॥ २७
हंसयुक्तेन यानेन रुद्रलोकं स गच्छति।
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च हिमवांश्च महोदधिः॥ २८
गङ्गाद्याः सरितो यावत् तावत् स्वर्गे महीयते।
अनाशकं तु यः कुर्यात् तस्मिंस्तीर्थे नराधिप॥ २९
गर्भवासे तु राजेन्द्र न पुनर्जायते पुमान्।
ततो गच्छेत् तु राजेन्द्र आषाढीतीर्थमुत्तमम्॥ ३०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्निन्द्रस्यार्धासनं लभेत्।
स्त्रियास्तीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापप्रणाशनम्॥ ३१
तत्रापि स्नातमात्रस्य ध्रुवं गाणेश्वरी गतिः।
ऐरण्डीनर्मदयोश्च संगमं लोकविश्रुतम्॥ ३२
तच्च तीर्थं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्।
उपवासपरो भूत्वा नित्यव्रतपरायणः॥ ३३
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र मुच्यते ब्रह्महत्यया।
ततो गच्छेच्च राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमम्॥ ३४
जामदग्न्यमिति ख्यातं सिद्धो यत्र जनार्दनः।
यत्रेष्ट्वा बहुभिर्यज्ञैरिन्द्रो देवाधिपोऽभवत्॥ ३५
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र नर्मदोदधिसंगमे।
त्रिगुणं चाश्वमेधस्य फलं प्राप्नोति मानवः॥ ३६
पश्चिमस्योदधेः संधौ स्वर्गद्वारविघट्टनम्।
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयः सिद्धचारणाः॥ ३७
आराधयन्ति देवेशं त्रिसंध्यं विमलेश्वरम्।
तत्र स्नात्वा नरो राजन् रुद्रलोके महीयते॥ ३८
विमलेशात् परं तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
तत्रोपवासं कृत्वा ये पश्यन्ति विमलेश्वरम्॥ ३९
सप्तजन्मकृतं पापं हित्वा यान्ति शिवालयम्।

राजेन्द्र! उसका वह सभी कर्म उस तीर्थके प्रभावसे करोड़गुना हो जाता है। जो लोग नर्मदाका जल पीकर शिवजीकी पूजा करते हैं, उन्हें उस तीर्थके प्रभावसे दुर्गति नहीं देखनी पड़ती। जो इस तीर्थमें आकर प्राणोंका त्याग करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर शंकरजीके समीप चला जाता है। नराधिप! उस तीर्थमें जो जलमें प्रवेश (करके प्राण-त्याग) करता है, वह हंसयुक्त विमानसे रुद्रलोकको जाता है तथा जबतक चन्द्रमा, सूर्य, हिमालय, महासागर और गङ्गा आदि नदियाँ हैं, तबतक स्वर्गमें पूजित होता है। नराधिप! जो पुरुष उस तीर्थमें अनशन करता है, राजेन्द्र! वह पुनः गर्भमें वास नहीं करता॥ १८—२९½॥

राजेन्द्र! तदनन्तर श्रेष्ठ आषाढ़ीतीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ स्नान करनेसे मनुष्य इन्द्रके आधे आसनको प्राप्त कर लेता है। तत्पश्चात् सभी पापोंके विनाशक स्त्री-तीर्थमें जाय। वहाँ भी स्नानमात्रसे निश्चय ही गाणेश्वरी गति प्राप्त होती है। ऐरण्डी और नर्मदाका संगम लोकप्रसिद्ध तीर्थ है, वह अतिशय पुण्यदायक तथा सभी पापोंका विनाश करनेवाला है। राजेन्द्र! वहाँ उपवास और नित्य व्रतोंका सम्पादन करते हुए स्नान करनेसे मनुष्य ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। राजेन्द्र! तदुपरान्त नर्मदा और समुद्रके संगमपर जाना चाहिये, जो जामदग्न्य नामसे प्रसिद्ध है। इसी तीर्थमें जनार्दनको सिद्धि प्राप्त हुई थी तथा इन्द्र अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान कर देवताओंके अधीश्वर हुए। राजेन्द्र! उस नर्मदा और सागरके सङ्गममें स्नान कर मनुष्य अश्वमेधयज्ञसे तिगुना फल प्राप्त करता है। पश्चिम समुद्रके संधि-स्थानपर स्वर्गद्वारविघट्टन तीर्थ है, वहाँ देवता, गन्धर्व, ऋषि, सिद्ध और चारण तीनों संध्याओंमें विमलेश्वर महादेवकी आराधना करते हैं। राजन्! वहाँ स्नानकर मानव रुद्रलोकमें पूजित होता है। विमलेश्वरसे बढ़कर तीर्थ न हुआ है और न होगा। उस तीर्थमें उपवास कर जो विमलेश्वरका दर्शन करते हैं, वे सात जन्मोंके पापोंसे मुक्त होकर शिवपुरीमें जाते हैं॥ ३०—३९½॥

तततो गच्छेत् तु राजेन्द्र कौशिकीतीर्थमुत्तमम्॥ ४०
तत्र स्नात्वा नरो राजन्नुपवासपरायणः।
उपोष्य रजनीमेकां नियतो नियताशनः॥ ४१
एतत्तीर्थप्रभावेण मुच्यते ब्रह्महत्यया।
सर्वतीर्थाभिषेकं तु यः पश्येत् सागरेश्वरम्॥ ४२
योजनाभ्यन्तरे तिष्ठन्नावर्ते संस्थितः शिवः।
तं दृष्ट्वा सर्वतीर्थानि दृष्टान्येव न संशयः॥ ४३
सर्वपापविनिर्मुक्तो यत्र रुद्रः स गच्छति।
नर्मदासंगमं यावद् यावच्चामरकण्टकम्॥ ४४
अत्रान्तरे महाराज तीर्थकोट्यो दश स्मृताः।
तीर्थात्तीर्थान्तरं यत्र ऋषिकोटिनिषेवितम्॥ ४५
साग्निहोत्रैस्तु विद्वद्भिः सर्वैर्ध्यानपरायणैः।
सेवितानेन राजेन्द्र त्वीप्सितार्थप्रदायिका॥ ४६
यस्त्विदं वै पठेन्नित्यं शृणुयाद् वापि भावतः।
तस्य तीर्थानि सर्वाणि ह्यभिषिञ्चन्ति पाण्डव॥ ४७
नर्मदा च सदा प्रीता भवेद् वै नात्र संशयः।
प्रीतस्तस्य भवेद् रुद्रो मार्कण्डेयो महामुनिः॥ ४८
वन्ध्या चैव लभेत् पुत्रान् दुर्भगा सुभगा भवेत्।
कन्या लभेत भर्तारं यश्च वाञ्छेत् तु यत्फलम्।
तदेव लभते सर्वं नात्र कार्या विचारणा॥ ४९
ब्राह्मणो वेदमाप्नोति क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यस्तु लभते लाभं शूद्रः प्राप्नोति सद्गतिम्॥ ५०
मूर्खस्तु लभते विद्यां त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
नरकं च न पश्येत् तु वियोगं च न गच्छति॥ ५१

राजेन्द्र! इसके बाद श्रेष्ठ कौशिकीतीर्थकी यात्रा करे। राजन्! वहाँ उपवासपूर्वक स्नान करने और नियमित भोजन करके एक रात निवास करनेसे मनुष्य इस तीर्थके प्रभावसे ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त हो जाता है। जो सागरेश्वरका दर्शन करता है, उसे सभी तीर्थोंके अभिषेकका फल प्राप्त हो जाता है। वहाँसे एक योजनके भीतर बर्तुलस्थानमें शिवजी संस्थित हैं, अतः उनका दर्शन कर लेनेसे सभी तीर्थोंका दर्शन हो जाता है—इसमें संशय नहीं है। वह मानव सभी पापोंसे मुक्त होकर जहाँ रुद्र रहते हैं, वहाँ चला जाता है। महाराज! नर्मदा-सङ्गमसे लेकर अमरकण्टकके मध्यमें दस करोड तीर्थ बतलाये जाते हैं। वहाँ एक तीर्थसे दूसरे तीर्थके मध्यमें करोड़ों ऋषिगण निवास करते हैं। राजेन्द्र! सभी ध्यानपरायण अग्निहोत्री विद्वानोंद्वारा सेवित यह तीर्थ-परम्परा अभीष्ट फल प्रदान करनेवाली है। पाण्डव! जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इन तीर्थोंका पाठ करता है या श्रवण करता है, उसे सभी तीर्थोंमें अभिषेक करनेका फल प्राप्त होता है और उसपर नर्मदा सदा प्रसन्न होती है—इसमें संदेह नहीं है। साथ ही उसपर महामुनि मार्कण्डेय एवं रुद्र प्रसन्न होते हैं। (इस तीर्थके प्रभावसे) वन्ध्याको पुत्रकी प्राप्ति होती है, अभागिनी सौभाग्यवती हो जाती है, कन्या पतिको प्राप्त करती है तथा अन्य जो कोई जिस फलको चाहता है, उसे वह सब फल प्राप्त हो जाता है—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। ब्राह्मण वेदका ज्ञान प्राप्त करता है, क्षत्रिय विजयी होता है, वैश्य धन प्राप्त करता है और शूद्रको अच्छी गति प्राप्त होती है तथा मूर्ख विद्याको प्राप्त करता है। जो मनुष्य तीनों संध्याओंमें इसका पाठ करता है उसे न तो नरकका दर्शन होता है और न प्रियजनोंका वियोग ही प्राप्त होता है॥ ४०—५१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे नर्मदामाहात्म्यं नाम चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें नर्मदामाहात्म्य-वर्णन नामक एक सौ चौरानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९४॥

एक सौ पञ्चानबेवाँ अध्याय

गोत्रप्रवर-निरूपण*-प्रसङ्गमें भृगुवंशकी परम्पराका विवरण

सूत उवाच

इत्याकर्ण्य स राजेन्द्र ओंकारस्याभिवर्णनम्।
ततः पप्रच्छ देवेशं मत्स्यरूपं जलार्णवे॥ १

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार ओंकारका वर्णन सुननेके पश्चात् राजेन्द्र मनुने उस जलार्णवमें स्थित मत्स्यरूपी देवेश विष्णुसे पुनः (इस प्रकार) प्रश्न किया॥ १॥

मनुरुवाच

ऋषीणां नाम गोत्राणि वंशावतरणं तथा।
प्रवराणां तथा साम्यमसाम्यं विस्तराद् वद॥ २
महादेवेन ऋषयः शप्ताः स्वायम्भुवान्तरे।
तेषां वैवस्वते प्राप्ते सम्भवं मम कीर्तय॥ ३
दाक्षायणीनां च तथा प्रजाः कीर्तय मे प्रभो।
ऋषीणां च तथा वंशं भृगुवंशविवर्धनम्॥ ४

मनुजीने पूछा—प्रभो! ऋषियोंके नाम, गोत्र, वंश, अवतार तथा प्रवरोंकी समता और विषमता—इन विषयोंका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। स्वायम्भुव-मन्वन्तरमें महादेवजीने ऋषियोंको शाप दिया था, अतः वैवस्वतमन्वन्तरमें उनकी पुनः उत्पत्ति कैसे हुई? यह मुझे बतलाइये। साथ ही दक्ष प्रजापतिकी संतानोंसे उत्पन्न प्रजाओंका, ऋषियोंके वंशका तथा भृगुवंशके विस्तारका वर्णन कीजिये॥ २—४॥

मत्स्य उवाच

मन्वन्तरेऽस्मिन् सम्प्राप्ते पूर्वं वैवस्वते तथा।
चरित्रं कथ्यते राजन् ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ५
महादेवस्य शापेन त्यक्त्वा देहं स्वयं तथा।
ऋषयश्च समुद्भूता हुते शुक्रे महात्मना॥ ६
देवानां मातरो दृष्ट्वा देवपत्यस्तथैव च।
स्कन्नं शुक्रं महाराज ब्रह्मणः परमेष्ठिनः॥ ७
तज्जुहाव ततो ब्रह्मा ततो जाता हुताशनात्।
ततो जातो महातेजा भृगुश्च तपसां निधिः॥ ८
अङ्गारेष्वङ्गिरा जातो ह्यर्चिभ्योऽत्रिस्तथैव च।
मरीचिभ्यो मरीचिस्तु ततो जातो महातपाः॥ ९
केशैस्तु कपिशो जातः पुलस्त्यश्च महातपाः।
केशैः प्रलम्बैः पुलहस्ततो जातो महातपाः॥ १०
वसुमध्यात् समुत्पन्नो वसिष्ठस्तु तपोधनः।
भृगुः पुलोम्नस्तु सुतां दिव्यां भार्यामविन्दत॥ ११

मत्स्यभगवान् बोले—राजन्! अब मैं पूर्वकालमें वैवस्वत-मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर जो परमेष्ठी ब्रह्मा थे, उनका चरित्र बतला रहा हूँ। महादेवजीके शापसे अपने शरीरका परित्याग कर ऋषिगण महात्मा ब्रह्माद्वारा अग्निसे उत्पन्न हुए। उसी अग्निसे परम तेजस्वी तपोनिधि भृगु उत्पन्न हुए। अङ्गारोंसे अङ्गिरा, शिखाओंसे अत्रि और किरणोंसे महातपस्वी मरीचि उत्पन्न हुए। केशोंसे कपिश रंगवाले महातपस्वी पुलस्त्य प्रकट हुए। तत्पश्चात् लम्बे केशोंसे महातपस्वी पुलहने जन्म लिया। अग्निकी दीप्तिसे तपोनिधि वसिष्ठ उत्पन्न हुए। महर्षि भृगुने पुलोमा ऋषिकी दिव्य पुत्रीको भार्यारूपमें ग्रहण किया।

* गोत्र-प्रवर-निर्णयपर कई स्वतन्त्र निबन्ध हैं। पर वे सभी इन्हीं (१९५—२०३) अध्यायोंपर आधृत हैं। वैसे ऋक्संहिता (७। १८। ५—८। ३। ९ तक) तथा स्कन्दपुराण माहेश्वर खं० एवं ब्रह्मखण्डमें भी इसपर विस्तृत विचार है।

तस्यामस्य सुता जाता देवा द्वादश याज्ञिकाः।
भुवनो भौवनश्चैव सुजन्यः सुजनस्तथा॥ १२
क्रतुर्वसुश्च मूर्धा च त्याज्यश्च वसुदश्च ह।
प्रभवश्चाव्ययश्चैव दक्षोऽथ द्वादशस्तथा॥ १३
इत्येते भृगवो नाम देवा द्वादश कीर्तिताः।
पौलोम्यां जनयद् विप्रान् देवानां तु कनीयसः॥ १४
च्यवनं तु महाभागमाप्नुवानं तथैव च।
आप्नुवानात्मजश्चौर्वो जमदग्निस्तदात्मजः॥ १५
और्वो गोत्रकरस्तेषां भार्गवाणां महात्मनाम्।
तत्र गोत्रकरान् वक्ष्ये भृगोर्वै दीप्ततेजसः॥ १६
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च।
और्वश्च जमदग्निश्च वात्स्यो दण्डिर्नडायनः॥ १७
वैगायनो वीतिहव्यः पैलश्चैवात्र शौनकः।
शौनकायनजीवन्तिरायेदः कार्षणिस्तथा॥ १८
वैहीनरिर्विरूपाक्षो रौहित्यायनिरेव च।
वैश्वानरिस्तथा नीलो लुब्धः सावर्णिकश्च सः॥ १९
विष्णुः पौरोऽपि बालाकिरैलिकोऽनन्तभागिनः।
मृगमार्गेयमार्कण्डजविनो नीतिनस्तथा॥ २०
मण्डमाण्डव्यमाण्डूकफेनपाः स्तनितस्तथा।
स्थलपिण्डः शिखावर्णः शार्कराक्षिस्तथैव च॥ २१
जालधिः सौधिकः क्षुभ्यः कुत्सोऽन्यो मौद्गलायनः।
माड्कायनो देवपतिः पाण्डुरोचिः सगालवः॥ २२
सांस्कृत्यश्चातकिः सर्पिर्यज्ञपिण्डायनस्तथा।
गार्ग्यायणो गायनश्च ऋषिर्गार्हायणस्तथा॥ २३
गोष्ठायनो वाह्यायनो वैशम्पायन एव च।
[illegible]र्णिनिः शार्ङ्गरवो याज्ञेयिर्भ्राष्ट्रकायणिः॥ २४
[illegible]टिर्नाकुलिश्चैव लौक्षिण्योपरिमण्डलौ।
[illegible] ॥ २५

उस पत्नीसे उनके यज्ञ करनेवाले बारह देवतुल्य पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम हैं—भुवन, भौवन, सुजन्य, सुजन, क्रतु, वसु, मूर्धा, त्याज्य, वसुद, प्रभव, अव्यय तथा बारहवें दक्ष। इस प्रकार ये बारह 'देवभृगु' नामसे विख्यात हैं। इसके बाद भृगुने पौलोमीके गर्भसे देवताओंसे कुछ निम्नकोटिके ब्राह्मणोंको उत्पन्न किया। उनके नाम हैं—महाभाग्यशाली च्यवन और आप्नुवान। आप्नुवानके पुत्र और्व हैं। और्वके पुत्र जमदग्नि हुए॥ ५—१५॥

और्व उन महात्मा भार्गवोंके गोत्र-प्रवर्तक हुए। अब मैं दीप्त तेजस्वी भृगुके गोत्र-प्रवर्तकोंका वर्णन कर रहा हूँ—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, और्व, जमदग्नि, वात्स्य, दण्डि, नडायन, वैगायन, वीतिहव्य, पैल, शौनक, शौनकायन, जीवन्ति, आयेद, कार्षणि, वैहीनरि, विरूपाक्ष, रौहित्यायनि, वैश्वानरि, नील, लुब्ध, सावर्णिक, विष्णु, पौर, बालाकि, ऐलिक, अनन्तभागिन, मृग, मार्गेय, मार्कण्ड, जविन, नीतिन, मण्ड, माण्डव्य, माण्डूक, फेनप,, स्तनित, स्थलपिण्ड, शिखावर्ण, शार्कराक्षि, जालधि, सौधिक, क्षुभ्य, कुत्स, मौद्गलायन, माड्कायन, देवपति, पाण्डुरोचि, गालव, सांकृत्य, चातकि, सर्पि, यज्ञपिण्डायन, गार्ग्यायण, गायन, गार्हायण, गोष्ठायन, बाह्यायन, वैशम्पायन, वैकर्णिनि, शार्ङ्गरव, याज्ञेयि, भ्राष्ट्रकायणि, लालाटि, नाकुलि, लौक्षिण्य, उपरिमण्डल, आलकि, सौचकि, कौत्स, पैंगलायनि, सात्यायनि,

अतः परं प्रवक्ष्यामि शृणु त्वन्यान् भृगूद्वहान्।
जमदग्निर्बिदश्चैव पौलस्त्यो बैजभृत् तथा॥ ३०
ऋषिश्चोभयजातश्च कायनिः शाकटायनः।
और्वेया मारुताश्चैव सर्वेषां प्रवराः शुभाः॥ ३१
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ३२
भृगुदासो मार्गपथो ग्राम्यायणिकटायनी।
आपस्तम्बिस्तथा बिल्विर्नैकशिः कपिरेव च॥ ३३
आर्ष्टिषेणो गार्दभिश्च कार्दमायनिरेव च।
आश्वायनिस्तथा रूपिः पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः॥ ३४
भृगुश्च च्यवनश्चैव आप्नुवानस्तथैव च।
आर्ष्टिषेणस्तथारूपिः प्रवराः पञ्च कीर्तिताः॥ ३५
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
यस्को वा वीतिहव्यो वा मथितस्तु तथा दमः॥ ३६
जैवन्त्यायनिर्मौञ्जश्च पिलिश्चैव चलिस्तथा।
भागिलो भागवित्तिश्च कौशापिस्त्वथ काश्यपिः॥ ३७
बालपिः श्रमदागेपिः सौरस्तिथिस्तथैव च।
गार्गीयस्त्वथ जाबालिस्तथा पौष्ण्यायनो ह्यृषिः॥ ३८
रामोदश्च तथैतेषामार्षेयाः प्रवरा मताः।
भृगुश्च वीतिहव्यश्च तथा रैवसवैवसौ॥ ३९
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
शालायनिः शाकटाक्षो मैत्रेयः खाण्डवस्तथा॥ ४०
द्रौणायनो रौक्मायणिरापिशिश्चापिकायनिः।
हंसजिह्वस्तथैतेषां मार्षेयाः प्रवरा मताः॥ ४१
भृगुश्चैवाथ वद्ध्र्यश्वो दिवोदासस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ४२
एकायनो यज्ञपतिर्मत्स्यगन्धस्तथैव च।
प्रत्यहश्च तथा सौरिश्चौक्षिर्वै कार्दमायनिः॥ ४३
तथा गृत्समदो राजन् सनकश्च महानृषिः।
प्रवरास्तु तथोक्तानामार्षेयाः परिकीर्तिताः॥ ४४
भृगुर्गृत्समदश्चैव आर्षावेतौ प्रकीर्तितौ।
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः॥ ४५

इसके बाद भृगुवंशमें उत्पन्न अन्य ऋषियोंका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। जमदग्नि, बिद, पौलस्त्य, बैजभृत्, उभयजात, कायनि, शाकटायन, और्वेय और मारुत। इनके तीन शुभ प्रवर हैं—भृगु, च्यवन और आप्नुवान। इन ऋषियोंमें परस्पर विवाहका निषेध है। भृगुदास, मार्गपथ, ग्राम्यायणि,कटायनि, आपस्तम्बि, बिल्वि, नैकशि, कपि, आर्ष्टिषेण, गार्दभि, कार्दमायनि, आश्वायनि तथा रूपि। इनके प्रवर ये पाँच हैं—भृगु, च्यवन, आप्नुवान, आर्ष्टिषेण तथा रूपि। इन पाँच प्रवरवालोंमें भी विवाहकर्म निषिद्ध है। यस्क, वीतिहव्य, मथित, दम, जैवन्त्यायनि, मौञ्ज, पिलि, चलि, भागिल, भागवित्ति, कौशापि, काश्यपि, बालपि, श्रमदागेपि, सौर, तिथि, गार्गीय, जाबालि, पौष्णायन और रामोद। इन वंशोंमें ये प्रवर हैं—भृगु, वीतिहव्य, रेवस और वैवस। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होते। शालायनि, शाकटाक्ष, मैत्रेय, खाण्डव, द्रौणायन, रौक्मायणि, आपिशि, आपिकायनि और हंसजिह्व। इनके प्रवर इन ऋषियोंके हैं—भृगु, वद्ध्र्यश्व और दिवोदास। इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। राजन्! एकायन, यज्ञपति, मत्स्यगन्ध, प्रत्यह, सौरि, ओक्षि, कार्दमायनि, गृत्समद और महर्षि सनक। इन वंशोंके दो ऋषियोंके प्रवर हैं—भृगु तथा गृत्समद। इन वंशोंमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है।

एते तवोक्ता भृगुवंशजाता
महानुभावा नृप गोत्रकाराः।
एषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन
पापं समग्रं विजहाति जन्तुः॥ ४६

राजन्! इस प्रकार मैंने आपसे भृगुवंशमें उत्पन्न महानुभाव गोत्रप्रवर्तक ऋषियोंका वर्णन कर दिया। इनके नामोंका कीर्तन करनेसे प्राणी सभी पापोंसे छुटकारा पा जाता है॥ ३०—४६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भृगुवंशप्रवरकीर्तनं नाम पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भृगुवंशप्रवरवर्णन नामक एक सौ पञ्चानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९५॥

एक सौ छानबेवाँ अध्याय

प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि अङ्गिराके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

मरीचितनया राजन् सुरूपा नाम विश्रुता।
भार्या चाङ्गिरसो देवास्तस्याः पुत्रा दश स्मृताः॥ १
आत्मायुर्दमनो दक्षः सदः प्राणस्तथैव च।
हविष्मांश्च गविष्ठश्च ऋतः सत्यश्च ते दश॥ २
एते चाङ्गिरसो नाम देवा वै सोमपायिनः।
सुरूपा जनयामास ऋषीन् सर्वेश्वरानिमान्॥ ३
बृहस्पतिं गौतमं च संवर्तमृषिमुत्तमम्।
उतथ्यं वामदेवं च अजस्यमृषिजं तथा॥ ४
इत्येते ऋषयः सर्वे गोत्रकाराः प्रकीर्तिताः।
तेषां गोत्रसमुत्पन्नान् गोत्रकारान् निबोध मे॥ ५
उतथ्यो गौतमश्चैव तौलेयोऽभिजितस्तथा।
सार्धनेमिः सलौगाक्षिः क्षीरः कौष्टिकिरेव च॥ ६
राहुकर्णिः सौपुरिश्च कैरातिः सामलोमकिः।
पौषाजितिर्भार्गवतो ह्यृषिश्चैरीडवस्तथा॥ ७
कारोटकः सजीवी च उपबिन्दुसुरैषिणौ।
वाहिनीपतिवैशाली क्रोष्टा चैवारुणायनिः॥ ८
सोमोऽत्रायनिकासोरुकौशल्याः पार्थिवस्तथा।
रौहिण्यायनिरेवाग्नी मूलपः पाण्डुरेव च॥ ९
क्षपाविश्वकरोऽरिश्च पारिकारारिरेव च।
आर्षेयाः प्रवराश्चैव तेषां च प्रवराञ् शृणु॥ १०
अङ्गिराः सुवचोतथ्य उशिजश्च महानृषिः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ११

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! महर्षि मरीचिकी कन्या सुरूपा नामसे विख्यात थी। वह महर्षि अङ्गिराकी पत्नी थी। उसके दस देव-तुल्य पुत्र थे। उनके नाम हैं—आत्मा, आयु, दमन, दक्ष, सद, प्राण, हविष्मान्, गविष्ठ, ऋत और सत्य। ये दस अङ्गिराके पुत्र सोमरसके पान करनेवाले देवता माने गये हैं। सुरूपाने इन सर्वेश्वर ऋषियोंको उत्पन्न किया था। बृहस्पति, गौतम, ऋषिश्रेष्ठ संवर्त, उतथ्य, वामदेव, अजस्य तथा ऋषिज—ये सभी ऋषि गोत्रप्रवर्तक कहे गये हैं। अब इनके गोत्रोंमें उत्पन्न हुए गोत्रप्रवर्तकोंको मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। उतथ्य, गौतम, तौलेय, अभिजित, सार्धनेमि, सलौगाक्षि, क्षीर, कौष्टिकि, राहुकर्णि, सौपुरि, कैराति, सामलोमकि, पौषाजिति, भार्गवत, चैरीडव, कारोटक, सजीवी, उपबिन्दु, सुरैषिण, वाहिनीपति, वैशाली, क्रोष्टा, आरुणायनि, सोम, अत्रायनि, कासोरु, कौशल्य, पार्थिव, रौहिण्यायनि, रेवाग्नि, मूलप, पाण्डु, क्षया, विश्वकर, अरि और पारिकारारि—ये सभी श्रेष्ठ ऋषि गोत्रप्रवर्तक हैं। अब इनके प्रवरोंको सुनिये—अङ्गिरा सुवचोतथ्य तथा महर्षि उशिज। इन ऋषियोंके वंशवाले आपसमें विवाह नहीं करते थे॥ १—११॥

आत्रेयायणिसौवेष्ठ्यावग्निवेश्यः शिलास्थलिः।
बालिशायनिश्चैकेपी वाराहिर्बाष्कलिस्तथा॥ १२
सौटिश्च तृणकर्णिश्च प्रावहिश्चाश्वलायनिः।
वाराहिर्बर्हिसादी च शिखाग्रीविस्तथैव च॥ १३
कारकिश्च महाकापिस्तथा चोडुपतिः प्रभुः।
कौचकिर्धमितश्चैव पुष्पान्वेषिस्तथैव च॥ १४
सोमतन्विर्ब्रह्मतन्विः सालडिर्बालडिस्तथा।
देवरारिर्देवस्थानिर्हारिकर्णिः सरिद्भुविः॥ १५
प्रावेपिः साद्यसुग्रीविस्तथा गोमेदगन्धिकः।
मत्स्याच्छाद्यो मूलहरः फलाहारस्तथैव च॥ १६
गाङ्गोदधिः कौरुपतिः कौरुक्षेत्रिस्तथैव च।
नायकिर्जैत्यद्रौणिश्च जैह्वलायनिरेव च॥ १७
आपस्तम्बिर्मौञ्जवृष्टिर्मार्ष्टिपिङ्गलिरेव च।
पैलश्चैव महातेजाः शालंकायनिरेव च॥ १८
द्व्याख्येयो मारुतश्चैषां सर्वेषां प्रवरो नृप।
अङ्गिराः प्रथमस्तेषां द्वितीयश्च बृहस्पतिः॥ १९
तृतीयश्च भरद्वाजः प्रवराः परिकीर्तिताः।
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः॥ २०
काण्वायनाः कोपचयास्तथा वात्स्यतरायणाः।
भ्राष्ट्रकृद् राष्ट्रपिण्डी च लैन्द्राणिः सायकायनिः॥ २१
क्रोष्टाक्षी बहुवीती च तालकृन्मधुरावहः।
लावकृद् गालविद् गाथी मार्कटिः पौलिकायनिः॥ २२
स्कन्दसश्च तथा चक्री गार्ग्यः श्यामायनिस्तथा।
बलाकिः साहरिश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः॥ २३
अङ्गिराश्च महातेजा देवाचार्यो बृहस्पतिः।
भरद्वाजस्तथा गर्गः सैत्यश्च भगवानृषिः॥ २४
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
कपीतरः स्वस्तितरो दाक्षिः शक्तिः पतञ्जलिः॥ २५
भूयसिर्जलसंधिश्च विन्दुर्मादिः कुसीदकिः।
ऊर्वस्तु राजकेशी च वौषडिः शंसपिस्तथा॥ २६
शालिश्च कलशीकण्ठ ऋषिः कारीरयस्तथा।
काट्यो धान्यायनिश्चैव भावास्यायनिरेव च॥ २७
भरद्वाजिः सौबुधिश्च लघ्वी देवमतिस्तथा।
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां प्रवरो भूमिपोत्तम॥ २८

आत्रेयायणि, सौवेष्ठ्य, अग्निवेश्य, शिलास्थलि, बालिशायनि, चैकेपी, वाराहि, बाष्कलि, सौटि, तृणकर्णि, प्रावहि, आश्वलायनि, वाराहि, बर्हिसादी, शिखाग्रीवि, कारकि, महाकापि, उडुपति, कौचकि, धमित, पुष्पान्वेषि, सोमतन्वि, ब्रह्मतन्वि, सालडि, बालडि, देवरारि, देवस्थानि, हारिकर्णि, सरिद्भुवि, प्रावेपि, साद्यसुग्रीवि, गोमेदगन्धिक, मत्स्याच्छाद्य, मूलहर, फलाहार, गाङ्गोदधि, कौरुपति, कौरुक्षेत्रि, नायकि, जैत्यद्रौणि, जैह्वलायनि, आपस्तम्बि, मौञ्जवृष्टि, मार्ष्टिपिङ्गलि, महातेजस्वी पैल, शालङ्कायनि, द्व्याख्येय तथा मारुत। नृप! इन ऋषियोंके प्रवर प्रथम अङ्गिरा, दूसरे बृहस्पति तथा तीसरे भरद्वाज कहे गये हैं। इन गोत्रवालोंमें भी परस्पर विवाह-कर्म नहीं होते॥ १२—२०॥

काण्वायन, कोपचय, वात्स्यतरायण, भ्राष्ट्रकृत्, राष्ट्रपिण्डी, लैन्द्राणि, सायकायनि, क्रोष्टाक्षी, बहुवीती, तालकृत्, मधुरावह, लावकृत्, गालवित्, गाथी, मार्कटि, पौलकायनि, स्कन्दस, चक्री, गार्ग्य, श्यामायनि, बलाकि तथा साहरि। इनके भी निम्नलिखित पाँच ऋषि प्रवर कहे गये हैं—महातेजस्वी अङ्गिरा, देवाचार्य बृहस्पति, भरद्वाज, गर्ग तथा ऐश्वर्यशाली महर्षि सैत्य। इनके वंशवालोंमें भी परस्पर विवाह नहीं होता। कपीतर, स्वस्तितर, दाक्षि, शक्ति, पतञ्जलि, भूयसि, जलसन्धि, विन्दु, मादि, कुसीदकि, ऊर्व, राजकेशी, वौषडि, शंसपि, शालि, कलशीकण्ठ, कारीरय, काट्य, धान्यायनि, भावास्यायनि, भरद्वाजि, सौबुधि, लघ्वी तथा देवमति। राजसत्तम! इन ऋषियोंके तीन

अङ्गिरा दमवाह्यश्च तथा चैवाप्युरुक्षयः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ २९
संकृतिश्च त्रिमार्ष्टिश्च मनुः सम्बधिरेव वा।
तण्डिश्चेनातकिश्चैव तैलका दक्ष एव च॥ ३०
नारायणिश्चार्षिणिश्च लौक्षिर्गार्ग्यहरिस्तथा।
गालवश्च अनेहश्च सर्वेषां प्रवरो मतः॥ ३१
अङ्गिराः संकृतिश्चैव गौरवीतिस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ३२
कात्यायनो हरितकः कौत्सः पिंगस्तथैव च।
हण्डिदासो वात्स्यायनिर्माद्रिर्मौलिः कुबेरणिः॥ ३३
भीमवेगः शाश्वदर्भिः सर्वे त्रिप्रवराः स्मृताः।
अङ्गिरा बृहदश्वश्च जीवनाश्वस्तथैव च॥ ३४
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
बृहदुक्थो वामदेवस्तथा त्रिप्रवरा मताः॥ ३५
अङ्गिरा बृहदुक्थश्च वामदेवस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या इत्येते परिकीर्तिताः॥ ३६
कुत्सगोत्रोद्भवाश्चैव तथा त्रिप्रवरा मताः।
अङ्गिराश्च सदस्युश्च पुरुकुत्सस्तथैव च।
कुत्साः कुत्सैरवैवाह्या एवमाहुः पुरातनाः॥ ३७
रथीतराणां प्रवरास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः।
अङ्गिराश्च विरूपश्च तथैव च रथीतरः।
रथीतरा ह्यवैवाह्या नित्यमेव रथीतरैः॥ ३८
विष्णुसिद्धिः शिवमतिर्जतृणः कतृणस्तथा।
पुत्रवश्च महातेजास्तथा वैरपरायणः॥ ३९
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप।
अङ्गिराश्च विरूपश्च वृषपर्वस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ४०
सात्यमुग्रिर्महातेजा हिरण्यस्तम्बिमुद्गलौ।
त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरो नृप॥ ४१
अङ्गिरा मत्स्यदग्धश्च मुद्गलश्च महातपाः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ४२
हंसजिह्वो देवजिह्वो ह्यग्निजिह्वो विराडपः।
अपाग्नेयस्त्वश्वयुश्च परण्यस्ता विमौद्गलाः॥ ४३

प्रवर बतलाये गये हैं—अङ्गिरा, दमवाह्य तथा उरुक्षय। इन गोत्रवालोंमें परस्पर विवाह नहीं होता॥ २१—२९॥

संकृति, त्रिमार्ष्टि, मनु, सम्बधि, तण्डि, एनातकि (नाचिकेत), तैलक, दक्ष, नारायणि, आर्षिणि, लौक्षि, गार्ग्य, हरि, गालव तथा अनेह—इन सबके प्रवर अङ्गिरा, संकृति तथा गौरवीति माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। कात्यायन, हरितक, कौत्स, पिङ्ग, हण्डिदास, वात्स्यायनि, माद्रि, मौलि, कुबेरणि, भीमवेग तथा शाश्वदर्भि—इन सभीके तीन प्रवर कहे गये हैं। उनके नाम हैं—अङ्गिरा, बृहदश्व तथा जीवनाश्व। इनके वंशवालोंमें भी परस्पर विवाह नहीं होता। बृहदुक्थ तथा वामदेवके भी तीन प्रवर माने गये हैं। उनके नाम हैं—अङ्गिरा, बृहदुक्थ तथा वामदेव। इन वंशवालोंमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। कुत्सगोत्रमें उत्पन्न होनेवालोंके तीन प्रवर हैं—अङ्गिरा, सदस्यु तथा पुरुकुत्स। प्राचीन लोग बतलाते हैं कि कुत्सगोत्रवालोंसे कुत्सगोत्रवालोंका विवाह नहीं होता। रथीतरके वंशमें उत्पन्न होनेवालोंके भी तीन प्रवर हैं—अङ्गिरा, विरूप तथा रथीतर। ये लोग आपसमें विवाह नहीं करते। विष्णुसिद्धि, शिवमति, जतृण, कतृण, महातेजस्वी पुत्र तथा वैरपरायण—ये सभी अङ्गिरा, विरूप और वृषपर्व—इन तीन ऋषियोंके प्रवरवाले माने गये हैं। राजन्! इन ऋषियोंके वंशमें परस्पर विवाह-कर्म नहीं होता॥ ३०—४०॥

महातेजस्वी सात्यमुग्रि, हिरण्यस्तम्बि तथा मुद्गल—ये सभी अङ्गिरा, मत्स्यदग्ध तथा महातपस्वी मुद्गल—इन तीन ऋषियोंके प्रवर माने गये हैं। इन तीन ऋषियोंके गोत्रोंमें उत्पन्न होनेवालोंका परस्पर विवाह नहीं होता। हंसजिह्व, देवजिह्व, अग्निजिह्व, विराडप, अपाग्नेय, अश्वयु, परण्यस्त तथा विमौद्गल—

त्र्यार्षेयाभिमतास्तेषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
अङ्गिराश्चैव ताण्डिश्च मौद्गल्यश्च महातपाः॥ ४४
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
अपाण्डुश्च गुरुश्चैव तृतीयः शाकटायनः।
ततः प्रागाथमा नारी मार्कण्डो मरणः शिवः॥ ४५
कटुर्मर्कटपश्चैव तथा नाडायनो ह्यृषिः।
श्यामायनस्तथैवैषां त्र्यार्षेयाः प्रवराः शुभाः॥ ४६
अङ्गिराश्चाजमीढश्च कट्यश्चैव महातपाः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ४७
तित्तिरिः कपिभूश्चैव गार्ग्यश्चैव महानृषिः।
त्र्यार्षेयो हि मतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः॥ ४८
अङ्गिरास्तित्तिरिश्चैव कपिभूश्च महानृषिः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ४९
अथ ऋक्षभरद्वाजौ ऋषिवान् मानवस्तथा।
ऋषिर्मैत्रवरश्चैव पञ्चार्षेयाः प्रकीर्तिताः॥ ५०
अङ्गिरा सभरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः।
ऋषिर्मैत्रवरश्चैव ऋषिवान् मानवस्तथा।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ५१
भारद्वाजो हुतः शौङ्गः शैशिरेयस्तथैव च।
इत्येते कथिताः सर्वे द्व्यामुष्यायणगोत्रजाः॥ ५२
पञ्चार्षेयास्तथा ह्येषां प्रवराः परिकीर्तिताः।
अङ्गिराश्च भरद्वाजस्तथैव च बृहस्पतिः॥ ५३
मौद्गल्यः शैशिरश्चैव प्रवराः परिकीर्तिताः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ५४
एते तवोक्ताङ्गिरसस्तु वंशे
महानुभावा ऋषिगोत्रकाराः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ ५५

ये सभी अङ्गिरा, ताण्डि तथा महातपस्वी मौद्गल्य—इन तीनों ऋषियोंके प्रवर माने गये हैं। इनके वंशधरोंमें भी विवाह नहीं होता। अपाण्डु, गुरु, शाकटायन, प्रागाथमा, नारी, मार्कण्ड, मरण, शिव, कटु, मर्कटप, नाडायन तथा श्यामायन—ये सभी अङ्गिरा, अजमीढ तथा महातपस्वी कट्य—इन तीन ऋषियोंके प्रवरवाले माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होते। तित्तिरि, कपिभू और महर्षि गार्ग्य—इन सबके अङ्गिरा, तित्तिरि तथा कपिभू नामक तीन प्रवर कहे गये हैं, जिनमें एक-दूसरेका विवाह निषिद्ध है। ऋक्ष, भरद्वाज, ऋषिवान्, मानव तथा मैत्रवर—ये पाँच आर्षेय कहे गये हैं। इनके अङ्गिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मैत्रवर, ऋषिवान् तथा मानव नामक पाँच प्रवर हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। भारद्वाज, हुत, शौङ्ग तथा शैशिरेय—ये सभी द्व्यामुष्यायण गोत्रमें उत्पन्न कहे गये हैं। इन सबके अङ्गिरा, भरद्वाज, बृहस्पति, मौद्गल्य तथा शैशिर नामक पाँच प्रवर हैं। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होता। इस प्रकार मैंने आपसे इस अङ्गिरा-वंशमें उत्पन्न होनेवाले गोत्रप्रवर्तक महानुभाव ऋषियोंका वर्णन कर दिया, जिनके नामका उच्चारण करनेसे पुरुष अपने सभी पापोंसे छुटकारा पा लेता है॥ ४१—५५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तनेऽङ्गिरोवंशकीर्तनं नाम षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनप्रसङ्गमें अङ्गिरावंशवर्णन नामक एक सौ छानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९६॥



एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय

महर्षि अत्रिके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

अत्रिवंशसमुत्पन्नान् गोत्रकारान् निबोध मे।
कर्दमायनशाखेयास्तथा शारायणाश्च ये॥ १

उद्दालकिः शौणकर्णिरथः शौक्रतवश्च ये।
गौरग्रीवो गौरजिनस्तथा चैत्रायणाश्च ये॥ २

अर्धपण्या वामरथ्या गोपनास्तकिबिन्दवः।
कर्णजिह्वो हरप्रीतिर्लैद्राणिः शाकलायनिः॥ ३

तैलपश्च सवैलेयो अत्रिर्गोणीपतिस्तथा।
जलदो भगपादश्च सौपुष्पिश्च महातपाः॥ ४

छन्दोगेयस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः।
श्यावाश्वश्च तथात्रिश्च आर्चनानश एव च॥ ५

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
दाक्षिर्बलिः पर्णविश्च ऊर्णुनाभिः शिलार्दनिः॥ ६

बीजवापी शिरीषश्च मौञ्जकेशो गविष्ठिरः।
भलन्दनस्तथैतेषां त्र्यार्षेयाः प्रवरा मताः॥ ७

अत्रिर्गविष्ठिरश्चैव तथा पूर्वातिथिः स्मृतः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ८

आत्रेयपुत्रिकापुत्रानत ऊर्ध्वं निबोध मे।
कालेयाश्च सवालेया वामरथ्यास्तथैव च॥ ९

धात्रेयाश्चैव मैत्रेयास्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः।
अत्रिश्च वामरथ्यश्च पौत्रिश्चैव महानृषिः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १०

इत्यत्रिवंशप्रभवास्तवोक्ता
महानुभावा नृप गोत्रकाराः।
येषां तु नाम्ना परिकीर्तितेन
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ ११

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजेन्द्र! अब मुझसे महर्षि अत्रिके वंशके उत्पन्न हुए कर्दमायन तथा शारायणशाखीय गोत्रकर्ता मुनियोंका वर्णन सुनिये। ये हैं—उद्दालकि, शौणकर्णिरथ, शौक्रतव, गौरग्रीव, गौरजिन, चैत्रायण, अर्धपण्य, वामरथ्य, गोपन, अस्तकि, बिन्दु, कर्णजिह्व, हरप्रीति, लैद्राणि, शाकलायनि, तैलप, सवैलेय, अत्रि, गोणीपति, जलद, भगपाद, महातपस्वी सौपुष्पि तथा छन्दोगेय—ये शरायणके वंशमें कर्दमायनशाखामें उत्पन्न हुए ऋषि हैं। इनके प्रवर श्यावाश्व, अत्रि और आर्चनानश—ये तीन हैं। इनमें परस्परमें विवाह नहीं होता। दाक्षि, बलि, पर्णवि, ऊर्णुनाभि, शिलार्दनि, बीजवापी, शिरीष, मौञ्जकेश, गविष्ठिर तथा भलन्दन—इन ऋषियोंके अत्रि, गविष्ठिर तथा पूर्वातिथि—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध है। इसके बाद अब मुझसे अत्रिकी पुत्रिका आत्रेयीसे उत्पन्न प्रवरकर्ता ऋषियोंका विवरण सुनिये—कालेय, वालेय, वामरथ्य, धात्रेय तथा मैत्रेय—इन ऋषियोंके अत्रि, वामरथ्य और महर्षि पौत्रि—ये तीन प्रवर ऋषि माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह नहीं होता। राजन्! इस प्रकार मैंने आपको इन अत्रिवंशमें उत्पन्न होनेवाले गोत्रकार महानुभाव ऋषियोंका नाम सुना दिया, जिनके नामसंकीर्तनमात्रसे मनुष्य अपने सभी पाप-कर्मोंसे छुटकारा पा जाता है॥ १—११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तनेऽत्रिवंशानुकीर्तनं नाम सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनप्रसङ्गमें अत्रिवंशवर्णन नामक एक सौ सत्तानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९७॥

एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय

प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि विश्वामित्रके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

अत्रेरेवापरं वंशं तव वक्ष्यामि पार्थिव।
अत्रेः सोमः सुतः श्रीमांस्तस्य वंशोद्भवो नृप॥ १
विश्वामित्रस्तु तपसा ब्राह्मण्यं समवाप्तवान्।
तस्य वंशमहं वक्ष्ये तन्मे निगदतः शृणु॥ २
वैश्वामित्रो देवरातस्तथा वैकृतिगालवः।
वतण्डश्च शलंकश्च ह्यभयश्चायतायनः॥ ३
श्यामायना याज्ञवल्क्या जाबालाः सैन्धवायनाः।
बाभ्रव्याश्च करीषाश्च संश्रुत्या अथ संश्रुताः॥ ४
उलूपा औपहावाश्च पयोदजनपादपाः।
खरवाचो हलयमाः साधिता वास्तुकौशिकाः॥ ५
त्र्यार्षेयाः प्रवरास्तेषां सर्वेषां परिकीर्तिताः।
विश्वामित्रो देवरात उद्दालश्च महायशाः॥ ६
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
देवश्रवाः सुजातेयाः सौमुकाः कारुकायणाः॥ ७
तथा वैदेहराता ये कुशिकाश्च नराधिप।
त्र्यार्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः शुभः॥ ८
देवश्रवा देवरातो विश्वामित्रस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ९
धनंजयः कपर्देयः परिकूटश्च पार्थिव।
पाणिनिश्चैव त्र्यार्षेयाः सर्व एते प्रकीर्तिताः॥ १०
विश्वामित्रस्तथाद्यश्च माधुच्छन्दस एव च।
त्र्यार्षेयाः प्रवरा ह्येते ऋषयः परिकीर्तिताः॥ ११
विश्वामित्रो मधुच्छन्दास्तथा चैवाघमर्षणः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १२
कामलायनिजश्चैव अश्मरथ्यस्तथैव च।
वञ्जुलिश्चापि त्र्यार्षेयः सर्वेषां प्रवरो मतः॥ १३

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! अब मैं आपसे महर्षि अत्रिके ही वंशमें उत्पन्न अन्य शाखाका वर्णन कर रहा हूँ। नरेश्वर! महर्षि अत्रिके पुत्र श्रीमान् सोम हुए। उनके वंशमें विश्वामित्र उत्पन्न हुए, जिन्होंने अपनी तपस्याके बलसे ब्राह्मणत्वको प्राप्त किया। अब मैं उनके वंशका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। वैश्वामित्र (मधुच्छन्दा), देवरात, वैकृति, गालव, वतण्ड, शलंक, अभय, आयतायन, श्यामायन, याज्ञवल्क्य, जाबाल, सैन्धवायन, बाभ्रव्य, करीष, संश्रुत्य, संश्रुत, उलूप, औपहाव, पयोद, जनपादप, खरवाच, हलयम, साधित तथा वास्तुकौशिक—इन सभी ऋषियोंके वंशमें उत्पन्न होनेवालोंमें विश्वामित्र, देवरात तथा महायशस्वी उद्दाल—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। नराधिप! देवश्रवा, सुजातेय, सौमुक, कारुकायण, वैदेहरात तथा कुशिक—इन सभी महर्षियोंके वंशमें देवश्रवा, देवरात तथा विश्वामित्र—ये तीनों प्रवर माने गये हैं। इन वंशजोंमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। राजन्! धनंजय, कपर्देय, परिकूट तथा पाणिनि*—इनके वंशमें विश्वामित्र, धनंजय और माधुच्छन्दस—ये तीन प्रवर माने गये हैं। विश्वामित्र, मधुच्छन्दा और अघमर्षण—इन तीन ऋषियोंके वंशजोंमें भी परस्पर विवाह नहीं होते॥ १—१२॥

कामलायनिज, अश्मरथ्य और वञ्जुलि—इन ऋषियोंके विश्वामित्र, अश्मरथ्य और महातपस्वी वञ्जुलि—ये तीनों प्रवर माने गये हैं।

* इससे सिद्ध है कि व्याकरण-कर्ता पाणिनि भी बहुत प्राचीन हैं।

विश्वामित्रश्चाश्मरथ्यो वञ्जुलिश्च महातपाः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १४
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकः पूरणस्तथा।
विश्वामित्रः पूरणश्च तयोर्द्वौ प्रवरौ स्मृतौ॥ १५
परस्परमवैवाह्याः पूरणाश्च परस्परम्।
लोहिता अष्टकाश्चैषां त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥ १६
विश्वामित्रो लोहितश्च अष्टकश्च महातपाः।
अष्टका लोहितैर्नित्यमवैवाह्याः परस्परम्॥ १७
उदरेणुः क्रथकश्च ऋषिश्चोदावहिस्तथा।
आर्षेयोऽभिमतस्तेषां सर्वेषां प्रवरः स्मृतः॥ १८
ऋणवन्गतिनश्चैव विश्वामित्रस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १९
उदुम्बरः सैषिरिटिर्ऋषिस्त्राक्षायणिस्तथा।
शाट्यायनिः करीराशी शालंकायनिलावकी।
मौञ्जायनिश्च भगवांस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥ २०
खिलिखिलिस्तथा विद्यो विश्वामित्रस्तथैव च।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ २१
एते तवोक्ताः कुशिका नरेन्द्र
महानुभावाः सततं द्विजेन्द्राः।
येषां तु नाम्नां परिकीर्तितेन
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ २२

इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। विश्वामित्र, लोहित, अष्टक और पूरण—इनके विश्वामित्र और पूरण—ये दो प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध है। पूरण, लोहित तथा अष्टक—इन ऋषियोंके विश्वामित्र, लोहित तथा महातपस्वी अष्टक प्रवर माने गये हैं। इनमें अष्टक वंशवालोंका लोहित वंशवालोंके साथ परस्पर विवाह नहीं होता। उदरेणु, क्रथक तथा उदावहि—इन सबके ऋणवन्, गतिन तथा विश्वामित्र—ये तीन प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है। उदुम्बर, सैषिरिटि, त्राक्षायणि, शाट्यायनि, करीराशी, शालंकायनि, लावकि तथा ऐश्वर्यशाली मौञ्जायनि—इन ऋषियोंके खिलिखिलि, विद्य तथा विश्वामित्र—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। नरेन्द्र! मैंने आपसे इन कुशिकवंशी महानुभाव द्विजेन्द्रोंका वर्णन कर चुका। इनके नामसंकीर्तनसे मनुष्य समग्र पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १३—२२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने विश्वामित्रवंशानुवर्णनं नामाष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तन-प्रसङ्गमें विश्वामित्रवंशानुवर्णन नामक एक सौ अट्ठानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९८॥

एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय

गोत्रप्रवर-कीर्तनमें महर्षि कश्यपके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

मरीचेः कश्यपः पुत्रः कश्यपस्य तथा कुले।
गोत्रकारानृषीन् वक्ष्ये तेषां नामानि मे शृणु॥ १
आश्रायणिऋषिगणो मेषकीरिटकायनाः।
उदग्रजा माठराश्च भोजा विनयलक्षणाः॥ २

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! महर्षि मरीचिके पुत्र कश्यप हुए। अब मैं उन्हीं कश्यपके कुलमें जन्म लेनेवाले गोत्र-प्रवर्तक ऋषियोंका वर्णन कर रहा हूँ, उनके नाम मुझसे सुनिये—आश्रायणि, मेषकीरिटकायन,

शालाहलेयाः कौरिष्टाः कन्यकाश्चासुरायणाः।
मन्दाकिन्यां वै मृगयाः श्रोतना भौतपायनाः॥ ३
देवयाना गोमयाना ह्यधश्छायाभयाश्च ये।
कात्यायनाः शाक्रायणा बर्हियोगगदायनाः॥ ४
भवनन्दिर्महाचक्रिर्दाक्षपायण एव च।
बोधयानाः कार्तिक्यो हस्तिदानास्तथैव च॥ ५
वात्स्यायना निकृतजा ह्याश्वलायनिनस्तथा।
प्रागायणाः पैलमौलिराश्ववातायनस्तथा॥ ६
कौबेरकाश्च श्याकारा अग्निशर्मायणाश्च ये।
मेषपाः कैकरसपास्तथा चैव तु बभ्रवः॥ ७
प्राचेयो ज्ञानसंज्ञेया आग्ना प्रासेव्य एव च।
श्यामोदरा वैवशपास्तथा चैवोद्वलायनाः॥ ८
काष्ठाहारिणमारीचा आजिहायनहास्तिकाः।
वैकर्णेयाः काश्यपेयाः सासिसाहारितायनाः॥ ९
मातङ्गिनश्च भृगवस्त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः।
वत्सरः कश्यपश्चैव निध्रुवश्च महातपाः॥ १०
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि द्व्यामुष्यायणगोत्रजान्॥ ११
अनसूयो नाकुरयः स्नातपो राजवर्तपः।
शैशिरोदवहिश्चैव सैरन्ध्री रौपसेवकिः॥ १२
यामुनिः काद्रुपिङ्गाक्षिः सजातम्बिस्तथैव च।
दिवावष्टाश्च इत्येते भक्त्या ज्ञेयाश्च काश्यपाः॥ १३
त्र्यार्षेयाश्च तथैवैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
वत्सरः कश्यपश्चैव वसिष्ठश्च महातपाः॥ १४
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
संयातिश्च नभाश्चोभौ पिप्पल्योऽथ जलंधरः॥ १५
भुजातपूरः पूर्यश्च कर्दमो गर्दभीमुखः।
हिरण्यबाहुकैरातावुभौ काश्यपगोभिलौ॥ १६
कुलहो वृषकण्डश्च मृगकेतुस्तथोत्तरः।
निदाघमसृणौ भर्त्स्या महान्तः केरलाश्च ये॥ १७
शाण्डिल्यो दानवश्चैव तथा वै देवजातयः।
पैप्पलादिः सप्रवरा ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १८

उदग्रज, माठर, भोज, विनयलक्षण, शालाहलेय, कौरिष्ट, कन्यक, आसुरायण, मन्दाकिनीमें उत्पन्न मृगय, श्रोतन, भौतपायन, देवयान, गोमयान, अधश्छाय, अभय, कात्यायन, शाक्रायण, बर्हियोग, गदायन, भवनन्दि, महाचक्रि, दाक्षपायण, बोधयान, कार्तिक्य, हस्तिदान, वात्स्यायन, निकृतज, आश्वलायनी, प्रागायण, पैलमौलि, आश्ववातायन, कौबेरक, श्याकार, अग्निशर्मायण, मेषप, कैकरसप, बभ्रु, प्राचेय, ज्ञानसंज्ञेय, आग्न, प्रासेव्य, श्यामोदर, वैवशप, उद्वलायन, काष्ठाहारिण, मारीच, आजिहायन, हास्तिक, वैकर्णेय, काश्यपेय, सासि, साहारितायन तथा मातङ्गी भृगु—इन ऋषियोंके वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी निध्रुव—ये तीन प्रवर माने गये हैं। इनमें भी आपसमें विवाह नहीं होता॥ १—१० १/२॥

इसके उपरान्त अब मैं द्व्यामुष्यायणके गोत्रमें उत्पन्न ऋषियोंके नामोंको बतला रहा हूँ—अनसूय, नाकुरय, स्नातप, राजवर्तप, शैशिर, उदवहि, सैरन्ध्री, रौपसेवकि, यामुनि, काद्रुपिंगाक्षि, सजातम्बि तथा दिवावष्ट—इन्हें भक्तिपूर्वक कश्यपके वंशमें उत्पन्न समझना चाहिये। इन सभी ऋषियोंके वत्सर, कश्यप तथा महातपस्वी वसिष्ठ—ये तीनों प्रवर माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। संयाति, नभ, पिप्पल्य, जलंधर, भुजातपूर, पूर्य, कर्दम, गर्दभीमुख, हिरण्यबाहु, कैरात, काश्यप, गोभिल, कुलह, वृषकण्ड, मृगकेतु, उत्तर, निदाघ, मसृण, भर्त्स्य, महान्, केरल, शाण्डिल्य, दानव, देवजाति तथा पैप्पलादि—इन सभी ऋषियोंके

त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
असितो देवलश्चैव कश्यपश्च महातपाः।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १९
ऋषिप्रधानस्य च कश्यपस्य
दाक्षायणीभ्यः सकलं प्रसूतम्।
जगत्समग्रं मनुसिंह पुण्यं
किं ते प्रवक्ष्याम्यहमुत्तरं तु॥ २०

असित, देवल तथा महातपस्वी कश्यप—ये तीनों ऋषि प्रवर माने गये हैं। इनमें भी परस्पर विवाह निषिद्ध है। मनुओंमें श्रेष्ठ राजन्! ऋषियोंमें प्रमुख कश्यपद्वारा दाक्षायणीके गर्भसे इस समग्र जगत्की उत्पत्ति हुई है। अतः उनके वंशका यह विवरण अति पुण्यप्रदायक है। इसके पश्चात् अब मैं तुमसे किस पवित्र कथाका वर्णन करूँ?॥ ११—२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने कश्यपवंशवर्णनं नाम नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तन-प्रसङ्गमें कश्यप-वंश-वर्णन नामक एक सौ निन्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ १९९॥



दो सौवाँ अध्याय

गोत्रप्रवर-कीर्तनमें महर्षि वसिष्ठकी शाखाका कथन

मत्स्य उवाच

वसिष्ठवंशजान् विप्रान् निबोध वदतो मम।
एकार्षेयस्तु प्रवरो वासिष्ठानां प्रकीर्तितः॥ १
वसिष्ठा एव वासिष्ठा अविवाह्या वसिष्ठजैः।
व्याघ्रपादा औपगवा वैक्लवा शाद्वलायनाः॥ २
कपिष्ठला औपलोमा अलब्धाश्च शठाः कठाः।
गौपायना बोधपाश्च दाकव्या ह्यथ वाह्यकाः॥ ३
बालिशयाः पालिशयास्ततो वाग्ग्रन्थयश्च ये।
आपस्थूणाः शीतवृत्तास्तथा ब्राह्मपुरेयकाः॥ ४
लोभायनाः स्वस्तिकराः शाण्डिलिर्गौडिनिस्तथा।
वाडोहलिश्च सुमनाश्चोपावृद्धिस्तथैव च॥ ५
चौलिर्बौलिर्ब्रह्मबलः पौलिः श्रवस एव च।
पौडवो याज्ञवल्क्यश्च एकार्षेया महर्षयः॥ ६
वसिष्ठ एषां प्रवरो ह्यवैवाह्याः परस्परम्।
शैलालयो महाकर्णः कौरव्यः क्रोधिनस्तथा॥ ७
कपिञ्जला बालखिल्या भागवित्तायनाश्च ये।
कौलायनः कालशिखः कोरकृष्णाः सुरायणाः॥ ८
शाकाहार्याः शाकधियः काण्वा उपलपाश्च ये।
शाकायना उहाकाश्च अथ माषशरावयः॥ ९
दाकायना बालवयो वाकयो गोरथास्तथा।
लम्बायनाः श्यामवयो ये च क्रोडोदरायणाः॥ १०

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! इसके बाद अब मैं वसिष्ठगोत्रमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। वसिष्ठगोत्रियोंका प्रवर एकमात्र वसिष्ठ ही हैं। इनका परस्पर विवाह नहीं होता। व्याघ्रपाद, औपगव, वैक्लव, शाद्वलायन, कपिष्ठल, औपलोम, अलब्ध, शठ, कठ, गौपायन, बोधप, दाकव्य, वाह्यक, बालिशय, पालिशय, वाग्ग्रन्थि, आपस्थूण, शीतवृत्त, ब्राह्मपुरेयक, लोभायन, स्वस्तिकर, शाण्डिलि, गौडिनि, वाडोहलि, सुमना, उपावृद्धि, चौलि, बौलि, ब्रह्मबल, पौलि, श्रवस, पौण्डव तथा याज्ञवल्क्य—ये सभी महर्षि एक प्रवरवाले हैं। महर्षि वसिष्ठ इनके प्रवर हैं और इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। शैलालय, महाकर्ण, कौरव्य, क्रोधिन, कपिञ्जल, बालखिल्य, भागवित्तायन, कौलायन, कालशिख, कोरकृष्ण, सुरायण, शाकाहार्य, शाकधी, काण्व, उपलप, शाकायन, उहाक, माषशरावय, दाकायन, बालवय, वाकय, गोरथ, लम्बायन, श्यामवय, क्रोडोदरायण,

प्रलम्बायनाश्च ऋषय औपमन्यव एव च।
सांख्यायनाश्च ऋषयस्तथा वै वेदशेरकाः॥ ११
पालंकायन उद्गाहा ऋषयश्च बलेक्षवः।
मातेया ब्रह्ममलिनः पत्रागारिस्तथैव च॥ १२
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा।
भिगीवसुर्वसिष्ठश्च इन्द्रप्रमदिरेव च॥ १३

प्रलम्बायन, औपमन्यु, सांख्यायन, वेदशेरक, पालंकायन, उद्गाह, बलेक्षु, मातेय, ब्रह्ममली तथा पत्रगारि—इन सभी ऋषियोंके भगीवसु, वसिष्ठ तथा इन्द्रप्रमदि—ये तीन ऋषि प्रवर कहे गये हैं। इनमें परस्पर विवाह निषिद्ध है॥ १—१३½॥

परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
औपस्थलास्वस्थलयो बालो हालो हलाश्च ये॥ १४
मध्यन्दिनो माक्षतयः पैप्पलादिर्विचक्षुषः।
त्रैशृंगायणसैबल्काः कुण्डिनश्च नरोत्तम॥ १५
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
वसिष्ठमित्रावरुणौ कुण्डिनश्च महातपाः॥ १६
दानकाया महावीर्या नागेयाः परमास्तथा।
आलाम्बा वायनश्चापि ये चक्रोडादयो नराः॥ १७
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
शिवकर्णो वयश्चैव पादपश्च तथैव च॥ १८
त्र्यार्षेयोऽभिमतश्चैषां सर्वेषां प्रवरस्तथा।
जातूकर्ण्यो वसिष्ठश्च तथैवात्रिश्च पार्थिव।
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः॥ १९
वसिष्ठवंशेऽभिहिता मयैते
ऋषिप्रधानाः सततं द्विजेन्द्राः।
येषां तु नाम्नां परिकीर्त्तितेन
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ २०

नरोत्तम! औपस्थल, अस्वस्थलय, बाल, हाल, हल, मध्यन्दिन, माक्षतय, पैप्पलादि, विचक्षुष, त्रैशुङ्गायण, सैबल्क तथा कुण्डिन—इन सभी ऋषियोंके वसिष्ठ, मित्रावरुण तथा महातपस्वी कुण्डिन—ये तीन प्रवर माने गये हैं। दानकाय, महावीर्य, नागेय, परम, आलम्ब, वायन तथा चक्रोड आदि—इनमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। राजन्! शिवकर्ण, वय तथा पादप—इन सभीके जातूकर्ण्य, वसिष्ठ तथा अत्रि—ये तीन प्रवर कहे गये हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। इस प्रकार महर्षि वसिष्ठके गोत्रमें उत्पन्न हुए ऋषियोंकी नामावलि मैं आपसे बता चुका। इनके नामोंके संकीर्तनसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ १४—२०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने वसिष्ठगोत्रानुवर्णनं नाम द्विशततमोऽध्यायः॥ २००॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तन-प्रसङ्गमें वसिष्ठगोत्रानुवर्णन नामक दो सौवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २००॥



दो सौ एकवाँ अध्याय

प्रवरानुकीर्तनमें महर्षि पराशरके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

वसिष्ठस्तु महातेजा निमेः पूर्वपुरोहितः।
बभूवुः पार्थिवश्रेष्ठ यज्ञास्तस्य समंततः॥ १

श्रान्तात्मा पार्थिवश्रेष्ठ विशश्राम तदा गुरुः।
तं गत्वा पार्थिवश्रेष्ठो निमिर्वचनमब्रवीत्॥ २

भगवन् यष्टुमिच्छामि तन्मां याजय मा चिरम्।
तमुवाच महातेजा वसिष्ठः पार्थिवोत्तमम्॥ ३

कंचित्कालं प्रतीक्षस्व तव यज्ञैः सुसत्तमैः।
श्रान्तोऽस्मि राजन् विश्रम्य याजयिष्यामि ते नृप॥ ४

एवमुक्तः प्रत्युवाच वसिष्ठं नृपसत्तमः।
पारलौकिककार्ये तु कः प्रतीक्षितुमुत्सहेत्॥ ५

न च मे सौहृदं ब्रह्मन् कृतान्तेन बलीयसा।
धर्मकार्ये त्वरा कार्या चलं यस्माद्धि जीवितम्॥ ६

धर्मपथ्यौदनो जन्तुर्मृतोऽपि सुखमश्नुते।
श्वः कार्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्॥ ७

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं चास्य न वा कृतम्।
क्षेत्रापणगृहासक्तमन्यत्रगतमानसम् ॥ ८

वृकीवोरणमासाद्य मृत्युरादाय गच्छति।
न कालस्य प्रियः कश्चिद् द्वेष्यश्चास्य न विद्यते॥ ९

आयुष्ये कर्मणि क्षीणे प्रसह्य हरते जनम्।
प्राणवायोश्चलत्वं च त्वया विदितमेव च॥ १०

यदत्र जीव्यते ब्रह्मन् क्षणमात्रं तदद्भुतम्।
शरीरं शाश्वतं मन्ये विद्याभ्यासे धनार्जने॥ ११

अशाश्वतं धर्मकार्ये ऋणवानस्मि संकटे।
सोऽहं सम्भृतसम्भारो भवन्मूलमुपागतः॥ १२

न चेद् याजयसे मां त्वमन्यं यास्यामि याजकम्।

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजसत्तम! महातेजस्वी वसिष्ठजी निमिके पूर्व पुरोहित थे। उनके सदा चारों ओर यज्ञ होते रहते थे। पार्थिवश्रेष्ठ! किसी समय यज्ञोंका सम्पादन करानेसे श्रान्त हुए गुरु वसिष्ठ विश्राम कर रहे थे, उसी समय राजाओंमें श्रेष्ठ निमिने उनके पास जाकर इस प्रकार कहा—'भगवन्! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः मेरा यज्ञ कराइये, देर मत कीजिये।' यह सुनकर महातेजस्वी वसिष्ठजीने राजश्रेष्ठ निमिसे कहा—'राजन्! मैं आपके श्रेष्ठ यज्ञोंका अनुष्ठान करानेसे थक गया हूँ, अतः कुछ कालतक प्रतीक्षा कीजिये। नरेश! विश्राम कर लेनेके बाद मैं पुनः आपका यज्ञ कराऊँगा।' ऐसा कहे जानेपर राजश्रेष्ठ निमिने वसिष्ठजीको इस प्रकार उत्तर दिया—'ब्रह्मन्! परलोक-सम्बन्धी कार्यमें कौन मनुष्य प्रतीक्षा करना चाहेगा? बलवान् यमराजसे मेरी कोई मित्रता तो है नहीं, अतः धर्मकार्यमें शीघ्रता ही करनी चाहिये; क्योंकि जीवन क्षणभङ्गुर है। धर्मरूप ओदनको पथ्य बनानेवाला प्राणी मरनेपर भी सुखका उपभोग करता है। इसलिये कल होनेवाले कार्यको आज ही एवं दूसरे प्रहरमें सम्पादित होनेवाले कार्यको पूर्वप्रहरमें ही सम्पन्न कर लेना चाहिये; क्योंकि मृत्यु इस बातकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने अपना कार्य कर लिया है अथवा नहीं। अतः मृत्यु खेत, बाजार और गृहमें आसक्त या अन्यत्र कहीं आसक्त मनवाले मनुष्यको उसी प्रकार लेकर चल देती है, जैसे भेड़िया मृगके बच्चेको लेकर चला जाता है। कालका न तो कोई प्रिय है और न कोई द्वेष्य ही है। आयुके साधक कर्मके क्षीण होते ही वह बलपूर्वक मनुष्यका अपहरण कर लेता है। प्राणवायुकी चञ्चलता तो आप भी जानते ही हैं। ब्रह्मन्! ऐसी दशामें जो क्षणभर भी जीवित रहता है, यही आश्चर्य है। विद्याके अभ्यास और धनके उपार्जनमें शरीरको चिरस्थायी समझना चाहिये, किंतु धर्म-कार्यमें उसे क्षणभङ्गुर मानना चाहिये। ऐसे संकटके समय मैं ऋणी बन गया हूँ, अतः मैं सभी द्रव्योंका आयोजन कर आपके चरणोंके निकट आया हूँ। यदि इस समय आप मेरा यज्ञ नहीं करायेंगे तो मैं किसी अन्य याजकके पास जाऊँगा'॥ १—१२½॥

एवमुक्तस्तदा तेन निमिना ब्राह्मणोत्तमः॥ १३
शशाप तं निमिं क्रोधाद् विदेहस्त्वं भविष्यसि।
श्रान्तं मां त्वं समुत्सृज्य यस्मादन्यं द्विजोत्तमम्॥ १४
धर्मज्ञस्तु नरेन्द्र त्वं याजकं कर्तुमिच्छसि।
निमिस्तं प्रत्युवाचाथ धर्मकार्यरतस्य मे॥ १५
विघ्नं करोषि नान्येन याजनं च तथेच्छसि।
शापं ददामि तस्मात् त्वं विदेहोऽथ भविष्यसि॥ १६
एवमुक्ते तु तौ जातौ विदेहौ द्विजपार्थिवौ।
देहहीनौ तयोर्जीवौ ब्रह्माणमुपजग्मतुः॥ १७
तावागतौ समीक्ष्याथ ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।
अद्यप्रभृति ते स्थानं निमिजीव ददाम्यहम्॥ १८
नेत्रपक्ष्मसु सर्वेषां त्वं वसिष्यसि पार्थिव।
त्वत्सम्बन्धात् तथा तेषां निमेषः सम्भविष्यति॥ १९
चालयिष्यन्ति तु तदा नेत्रपक्ष्माणि मानवाः।
एवमुक्तो मनुष्याणां नेत्रपक्ष्मसु सर्वशः॥ २०
जगाम निमिजीवस्तु वरदानात् स्वयम्भुवः।
वसिष्ठजीवो भगवान् ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥ २१
मित्रावरुणयोः पुत्रो वसिष्ठ त्वं भविष्यसि।
वसिष्ठेति च ते नाम तत्रापि च भविष्यति॥ २२
जन्मद्वयमतीतं च तत्रापि त्वं स्मरिष्यसि।
एतस्मिन्नेव काले तु मित्रश्च वरुणस्तथा॥ २३
बदर्याश्रममासाद्य तपस्तेपतुरव्ययम्।
तपस्यतोस्तयोरेवं कदाचिन्माधवे ऋतौ॥ २४
पुष्पितद्रुमसंस्थाने शुभे दयितमारुते।
उर्वशी तु वरारोहा कुर्वती कुसुमोच्चयम्॥ २५
सुसूक्ष्मरक्तवसना तयोर्दृष्टिपथं गता।
तां दृष्ट्वेन्दुमुखीं सुभ्रूं नीलनीरजलोचनाम्॥ २६
उभौ चुक्षुभतुर्देवौ तद्रूपपरिमोहितौ।
तपस्यतोस्तयोर्वीर्यमस्खलच्च मृगासने॥ २७
एकत्रं रेतस्ततो दृष्ट्वा शापभीता वराप्सरा।
चकार कलशे शुक्रं तोयपूर्णे मनोरमे॥ २८
तस्मादृषिवरौ जातौ तेजसाप्रतिमौ भुवि।
वसिष्ठश्चाप्यगस्त्यश्च मित्रावरुणयोः सुतौ॥ २९

तब उन निमिद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठने क्रोधपूर्वक निमिको शाप देते हुए कहा— 'नरेन्द्र! यदि तुम धर्मके ज्ञाता होकर भी मुझ थके हुए पुरोहितका परित्याग कर किसी अन्य ब्राह्मणश्रेष्ठको याजक बनाना चाहते हो तो तुम शरीररहित हो जाओगे।' तब निमिने उत्तर दिया—'मैं धार्मिक कार्यके लिये उद्यत हूँ, किंतु आप इसमें विघ्न डाल रहे हैं तथा दूसरेके द्वारा यज्ञ सम्पन्न होने देना भी नहीं चाहते, अतः मैं भी आपको शाप दे रहा हूँ कि आप भी विदेह हो जायँगे।' ऐसा कहते ही वे दोनों ब्राह्मण और राजा शरीररहित हो गये। तब उन दोनोंके देहहीन जीव ब्रह्माके पास गये। उन दोनोंको आया हुआ देखकर ब्रह्मा इस प्रकार बोले— 'निमिरूप जीव! आजसे मैं तुम्हारे लिये एक स्थान दे रहा हूँ। राजन्! तुम सभी प्राणियोंके नेत्रोंके पलकोंमें निवास करोगे। तुम्हारे संयोगसे ही उनके निमेष-उन्मेष (आँखका खुलना और बंद होना) होंगे। तब सभी मानव नेत्रोंके पलकोंको चलाते रहेंगे।' इस प्रकार कहे जानेपर निमिका जीव ब्रह्माके वरदानसे सभी मनुष्योंके नेत्र-पलकोंपर स्थित हो गया॥ १३—२०½॥

तदनन्तर भगवान् ब्रह्माने वसिष्ठके जीवसे कहा— 'वसिष्ठ! तुम मित्रावरुणके पुत्र होओगे। वहाँ भी तुम्हारा नाम वसिष्ठ ही होगा और तुम्हें बीते हुए दो जन्मोंका स्मरण बना रहेगा। इसी समय मित्र और वरुण—दोनों बदरिकाश्रममें आकर दुष्कर तपस्यामें तत्पर थे। इस प्रकार उन दोनोंके तपस्यामें रत रहनेपर किसी समय वसन्त-ऋतुमें जब सभी वृक्ष और लताएँ पुष्पित थीं, मन्द-मन्द मनोहर पवन प्रवाहित हो रहा था, सुन्दरी उर्वशी पुष्पोंको चुनती हुई वहाँ आयी। वह महीन लाल वस्त्र धारण किये हुए थी। संयोगवश वह उन दोनों तपस्वियोंकी आँखोंके सामने आ गयी। उसके नेत्र नील कमलके समान थे तथा मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर था। उस सुन्दर भौंहोंवाली उर्वशीको देखकर उसके रूपपर मोहित हो उन दोनों तपस्वियोंका मन क्षुब्ध हो उठा। तब तपस्या करते हुए ही उन दोनोंका वीर्य मृगासनपर स्खलित हो गया। तब शापसे भयभीत हुई सुन्दरी उर्वशीने उस वीर्यको जलपूर्ण मनोरम कलशमें रख दिया। उस कलशसे वसिष्ठ और अगस्त्य नामक दो ऋषिश्रेष्ठ उत्पन्न हुए, जो भूतलपर अनुपम तेजस्वी थे। वे मित्र और वरुणके पुत्र कहलाये। तदनन्तर वसिष्ठने

वसिष्ठस्तूपयेमेऽथ भगिनीं नारदस्य तु।
अरुंधतीं वरारोहां तस्यां शक्तिमजीजनत्॥ ३०

शक्तेः पराशरः पुत्रस्तस्य वंशं निबोध मे।
यस्य द्वैपायनः पुत्रः स्वयं विष्णुरजायत॥ ३१

प्रकाशो जनितो लोके येन भारतचन्द्रमाः।
येनाज्ञानमोऽन्धस्य लोकस्योतन्मीलनं कृतम्।
पराशरस्य तस्य त्वं शृणु वंशमनुत्तमम्॥ ३२

काण्डशयो वाहनपो जैह्मपो भौमतापनः।
गोपालिरेषां पञ्चम एते गौराः पराशराः॥ ३३

प्रपोहया वाह्यमयाः ख्यातेयाः कौतुजातयः।
हर्यश्विः पञ्चमो ह्येषां नीला ज्ञेयाः पराशराः॥ ३४

कार्ष्णायनाः कपिमुखाः काकेयस्था जपातयः।
पुष्करः पञ्चमश्चैषां कृष्णा ज्ञेयाः पराशराः॥ ३५

श्राविष्ठायनबालेयाः स्वायष्टाश्चोपयाश्च ये।
इषीकहस्तश्चैते वै पञ्च श्वेताः पराशराः॥ ३६

वाटिको बादरिश्चैव स्तम्बा वै क्रोधनायनाः।
क्षैमिरेषां पञ्चमस्तु एते श्यामाः पराशराः॥ ३७

खल्यायना वार्ष्णायनास्तैलेयाः खलु यूथपाः।
तन्तिरेषां पञ्चमस्तु एते धूम्राः पराशराः॥ ३८

पराशराणां सर्वेषां त्र्यार्षेयः प्रवरो मतः।
पराशरश्च शक्तिश्च वसिष्ठश्च महातपाः।
परस्परमवैवाह्या सर्व एते पराशराः॥ ३९

उक्तास्त्वेते नृप वंशमुख्याः
पराशराः सूर्यसमप्रभावाः।
येषां तु नाम्नां परिकीर्तितेन
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ ४०

देवर्षि नारदकी बहन सुन्दरी अरुन्धतीसे विवाह किया और उसके गर्भसे शक्ति नामक पुत्रको उत्पन्न किया। शक्तिके पुत्र पराशर हुए। अब मुझसे उनके वंशका वर्णन सुनिये। स्वयं भगवान् विष्णु पराशरके पुत्र-रूपमें द्वैपायन नामसे उत्पन्न हुए, जिन्होंने इस लोकमें भारतरूपी चन्द्रमाको प्रकाशित किया, जिससे अज्ञानान्धकारसे अन्धे हुए लोगोंके नेत्र खुल गये। अब उन पराशरके श्रेष्ठ वंशकी परम्परा सुनिये॥ २१—३२॥

काण्डशय, वाहनप, जैह्मप, भौमतापन और पाँचवें गोपालि—ये गौर पराशर नामसे प्रसिद्ध हैं। प्रपोहय, वाह्यमय, ख्यातेय, कौतुजाति और पाँचवें हर्यश्वि—इन्हें नील पराशर जानना चाहिये। कार्ष्णायन, कपिमुख, काकेयस्थ, जपाति और पाँचवें पुष्कर—इन्हें कृष्ण पराशर समझना चाहिये। श्राविष्ठायन, बालेय, स्वायष्ट, उपय और इषीकहस्त—ये पाँच श्वेत पराशर हैं। वाटिक, बादरि, स्तम्ब, क्रोधनायन और पाँचवें क्षैमि—ये श्याम पराशर हैं। खल्यायन, वार्ष्णायन, तैलेय, यूथप और पाँचवें तन्ति—ये धूम्र पराशर हैं। इन सभी पराशरोंके पराशर, शक्ति और महातपस्वी वसिष्ठ—ये तीन ऋषि प्रवर माने गये हैं। इन सभी पराशरोंका परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध है। राजन्! मैंने आपसे सूर्यके समान प्रभावशाली पराशरवंशी गोत्रप्रवर्तक ऋषियोंका वर्णन कर दिया। इनके नामोंके परिकीर्तनसे मनुष्य सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है॥ ३३—४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने पराशरवंशवर्णनं नामैकाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनमें पराशर-वंश-वर्णन नामक दो सौ एकवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०१॥



दो सौ दोवाँ अध्याय

गोत्रप्रवरकीर्तनमें महर्षि अगस्त्य, पुलह, पुलस्त्य और क्रतुकी शाखाओंका वर्णन

मत्स्य उवाच

अतः परमगस्त्यस्य वक्ष्ये वंशोद्भवान् द्विजान्।
अगस्त्यश्च: करम्भश्च: कौसल्या: शकटास्तथा॥ १
सुमेधसो मयोभुवस्तथा गान्धारकायणाः।
पौलस्त्याः पौलहाश्चैव क्रतुवंशभवास्तथा॥ २
त्र्यार्षेयाभिमताश्चैषां सर्वेषां प्रवराः शुभाः।
अगस्त्यश्च महेन्द्रश्च ऋषिश्चैव मयोभुवः॥ ३
परस्परमवैवाह्या ऋषयः परिकीर्तिताः।
पौर्णमासाः पारणाश्च त्र्यार्षेयाः परिकीर्तिताः॥ ४
अगस्त्यः पौर्णमासश्च पारणश्च महातपाः।
परस्परमवैवाह्याः पौर्णमासास्तु पारणैः॥ ५
एवमुक्तो ऋषीणां तु वंश उत्तमपौरुषः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि किं भवानद्य कथ्यताम्॥ ६

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! इसके बाद अब मैं अगस्त्यके वंशमें उत्पन्न हुए द्विजोंका वर्णन कर रहा हूँ। अगस्त्य, करम्भ, कौसल्य, शकट, सुमेधा, मयोभुव, गान्धारकायण, पौलस्त्य, पौलह तथा क्रतु-वंशोत्पन्न—इनके अगस्त्य, महेन्द्र और महर्षि मयोभुव—ये तीन शुभ प्रवर माने गये हैं। इनमें परस्पर विवाह नहीं होता। पौर्णमास और पारण—इन ऋषियोंके अगस्त्य, पौर्णमास और महातपस्वी पारण—ये तीन प्रवर हैं। पौर्णमासोंका पारणोंके साथ विवाह निषिद्ध है। राजन्! इस प्रकार मैंने ऋषियोंके उत्तम पुरुषोंसे परिपूर्ण वंशका वर्णन कर दिया। इसके बाद अब मैं किसका वर्णन करूँ, यह अब आप बतलाइये॥ १—६॥

मनुरुवाच

पुलहस्य पुलस्त्यस्य क्रतोश्चैव महात्मनः।
अगस्त्यस्य तथा चैव कथं वंशस्तदुच्यताम्॥ ७

मनुजीने पूछा—भगवन्! पुलह, पुलस्त्य, महात्मा क्रतु और अगस्त्यका वंश कैसा था, इसे बतलाइये॥ ७॥

मत्स्य उवाच

क्रतुः खल्वनपत्योऽभूद् राजन् वैवस्वतेऽन्तरे।
इध्मवाहं स पुत्रत्वे जग्राह ऋषिसत्तमः॥ ८
आगस्त्यपुत्रं धर्मज्ञमागस्त्याः क्रतवस्ततः।
पुलहस्य तथा पुत्रास्त्रयश्च पृथिवीपते॥ ९
तेषां तु जन्म वक्ष्यामि उत्तरत्र यथाविधि।
पुलहस्तु प्रजां दृष्ट्वा नातिप्रीतमनाः स्वकाम्॥ १०
अगस्त्यजं दृढास्यं तु पुत्रत्वे वृतवांस्ततः।
पौलहाश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः॥ ११
पुलस्त्यान्वयसम्भूतान् दृष्ट्वा रक्षःसमुद्भवान्।
अगस्त्यस्य सुतं धीमान् पुत्रत्वे वृतवांस्ततः॥ १२
पौलस्त्याश्च तथा राजन्नागस्त्याः परिकीर्तिताः।
सगोत्रत्वादिमे सर्वे परस्परमनन्वयाः॥ १३

मत्स्यभगवान् बोले—राजन्! वैवस्वत-मन्वन्तरमें क्रतु जब संतानहीन हो गये, तब उन ऋषिश्रेष्ठने अगस्त्यके धर्मज्ञ पुत्र इध्मवाहको पुत्ररूपमें स्वीकार कर लिया। तभीसे अगस्त्यवंशी क्रतुवंशी कहलाने लगे। भूपाल! पुलहके तीन पुत्र थे, उनका जन्म-वृत्तान्त मैं आगे विधिपूर्वक वर्णन करूँगा। पुलहका मन अपनी संतानको देखकर प्रसन्न नहीं रहता था, अतः उन्होंने अगस्त्यके पुत्र दृढास्यको पुत्ररूपमें वरण कर लिया। राजन्! इसीलिये पुलहवंशी अगस्त्यवंशीके नामसे कहे जाते हैं। पुलस्त्य ऋषि अपनी संततिको राक्षसोंसे उत्पन्न होते देखकर अत्यन्त दुःखी हुए। तब उन बुद्धिमान्‌ने अगस्त्यके पुत्रको पुत्ररूपमें वरण कर लिया। राजन्! तभीसे पुलस्त्यवंशी भी अगस्त्यवंशी कहलाने लगे। सगोत्र होनेके कारण इन सभीमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध वर्जित है।

एते तवोक्ताः प्रवरा द्विजानां
महानुभावा नृप वंशकाराः।
एषां तु नाम्नां परिकीर्तितेन
पापं समग्रं पुरुषो जहाति॥ १४

नरेश! इस प्रकार मैंने ब्राह्मणोंके वंशप्रवर्तक महानुभाव प्रवरोंका वर्णन कर दिया। इन लोगोंके नामोंका कीर्तन करनेसे मानवके सभी पाप नष्ट हो जाते हैं॥ ८—१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रवरानुकीर्तने द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके प्रवरानुकीर्तनमें अगस्त्यवंश-वर्णन नामक दो सौ दोवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०२॥

दो सौ तीनवाँ अध्याय

प्रवरकीर्तनमें धर्मके वंशका वर्णन

मत्स्य उवाच

अस्मिन् वैवस्वते प्राप्ते शृणु धर्मस्य पार्थिव।
दाक्षायणीभ्यः सकलं वंशं दैवतमुत्तमम्॥ १
पर्वतादिमहादुर्गशरीराणि नराधिप।
अरुन्धत्याः प्रसूतानि धर्माद् वैवस्वतेऽन्तरे॥ २
अष्टौ च वसवः पुत्राः सोमपाश्च विभोस्तथा।
धरो ध्रुवश्च सोमश्च आपश्चैवानलानिलौ॥ ३
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवोऽष्टौ प्रकीर्तिताः।
धरस्य पुत्रो द्रविणः कालः पुत्रो ध्रुवस्य तु॥ ४
कालस्यावयवानां तु शरीराणि नराधिप।
मूर्तिमन्ति च कालाद्धि सम्प्रसूतान्यशेषतः॥ ५
सोमस्य भगवान् वर्चाः श्रीमांश्चापस्य कीर्त्यते।
अनेकजन्मजननः कुमारस्त्वनलस्य तु॥ ६
पुरोजवाश्चानिलस्य प्रत्यूषस्य तु देवलः।
विश्वकर्मा प्रभासस्य त्रिदशानां स वर्धकिः॥ ७

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! इस वैवस्वत मन्वन्तरके प्राप्त होनेपर धर्मने दक्षकी कन्याओंके गर्भसे जिस उत्तम देव-वंशका विस्तार किया, उसका वर्णन सुनिये। नरेश्वर! इस वैवस्वत मन्वन्तरमें धर्मके द्वारा अरुन्धतीके गर्भसे पर्वत आदि एवं महादुर्गके समान विशालकाय संतान उत्पन्न हुए तथा उन्हीं सर्वव्यापी धर्मसे आठ सोमपायी पुत्र उत्पन्न हुए, जो वसु कहलाते हैं। उनके नाम हैं—धर, ध्रुव, सोम, आप, अनल, अनिल, प्रत्यूष और प्रभास—ये आठ वसु कहे गये हैं। धरका पुत्र द्रविण और ध्रुवका पुत्र काल हुआ। नरेश! कालके अवयवोंके जितने मूर्तिमान् शरीर हैं, वे सभी कालसे ही उत्पन्न हुए हैं। सोमके प्रभावशाली पुत्रको वर्चा और आपके पुत्रको श्रीमान् कहा जाता है। अनेक जन्म धारण करनेवाला कुमार अनलका पुत्र हुआ। अनिलका पुत्र पुरोजव और प्रत्यूषका पुत्र देवल हुआ। प्रभासका पुत्र विश्वकर्मा हुआ जो देवताओंका बढ़ई है॥ १—७॥

समीहितकराः प्रोक्ता नागवीथ्यादयो नव।
लम्बापुत्रः स्मृतो घोषो भानोः पुत्राश्च भानवः॥ ८
ग्रहर्क्षाणां च सर्वेषामन्येषां चामितौजसाम्।
मरुत्वत्यां मरुत्वन्तः सर्वे पुत्राः प्रकीर्तिताः॥ ९
संकल्पायाश्च संकल्पस्तथा पुत्रः प्रकीर्तितः।
मुहूर्ताश्च मुहूर्तायाः साध्याः साध्यासुताः स्मृताः॥ १०

नागवीथी आदि नव सन्तति अभीष्टको पूर्ण करनेवाली है। लम्बाका पुत्र घोष और भानुके पुत्र भानव (बारह आदित्य) कहे गये हैं, जो ग्रहों, नक्षत्रों एवं अन्य सभी अमित ओजस्वियोंमें बढ़-चढ़कर हैं। सभी मरुद्गण मरुत्वतीके पुत्र हैं तथा संकल्पाका पुत्र संकल्प कहा जाता है। मुहूर्ताके पुत्र मुहूर्त और साध्याके पुत्र साध्यगण

मनो मनुश्च प्राणश्च नरोषा नोच वीर्यवान्।
चित्तहार्योऽयनश्चैव हंसो नारायणस्तथा॥ ११
विभुश्चापि प्रभुश्चैव साध्या द्वादश कीर्तिताः।
विश्वायाश्च तथा पुत्रा विश्वेदेवाः प्रकीर्तिताः॥ १२
क्रतुर्दक्षो वसुः सत्यः कालकामो मुनिस्तथा।
कुरजो मनुजो बीजो रोचमानश्च ते दश॥ १३
एतावदुक्तस्तव धर्मवंशः
संक्षेपतः पार्थिववंशमुख्य।
व्यासेन वक्तुं न हि शक्यमस्ति
राजन् विना वर्षशतैरनेकैः॥ १४

कहे गये हैं। मन, मनु, प्राण, नरोषा, नोच, वीर्यवान्, चित्तहार्य, अयन, हंस, नारायण, विभु और प्रभु—ये बारह साध्य कहे गये हैं। विश्वाके पुत्र विश्वेदेव कहे जाते हैं। क्रतु, दक्ष, वसु, सत्य, कालकाम, मुनि, कुरज, मनुज, बीज और रोचमान—ये दस विश्वेदेव हैं। राजवंशश्रेष्ठ! मैंने आपसे यहाँतक धर्मके वंशका संक्षेपसे वर्णन कर दिया। राजन्! अनेक सैकड़ों वर्षोंके बिना इसका विस्तारसे वर्णन करना सम्भव नहीं है॥ ८—१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे धर्मवंशवर्णने धर्मप्रवरानुकीर्तनं नाम त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके धर्मवंशवर्णनमें धर्म-प्रवरानुकीर्तन नामक दो सौ तीनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०३॥

दो सौ चारवाँ अध्याय

श्राद्धकल्प—पितृगाथा-कीर्तन

मत्स्य उवाच

एतद्वंशभवा विप्राः श्राद्धे भोज्याः प्रयत्नतः।
पितृणां वल्लभं यस्मादेषु श्राद्धं नरेश्वर॥ १
अतः परं प्रवक्ष्यामि पितृभिर्याः प्रकीर्तिताः।
गाथाः पार्थिवशार्दूल कामयद्भिः पुरे स्वके॥ २
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यो नो दद्याज्जलाञ्जलिम्।
नदीषु बहुतोयासु शीतलासु विशेषतः॥ ३
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यः श्राद्धं नित्यमाचरेत्।
पयोमूलफलैर्भक्ष्यैस्तिलतोयेन वा पुनः॥ ४
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यो नो दद्यात्त्रयोदशीम्।
पायसं मधुसर्पिर्भ्यां वर्षासु च मघासु च॥ ५
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं खड्गमांसेन यः सकृत्।
श्राद्धं कुर्यात् प्रयत्नेन कालशाकेन वा पुनः॥ ६
कालशाकं महाशाकं मधु मुन्यन्नमेव च।
विषाणवर्जा ये खड्गा आसूर्यं तदशीमहि॥ ७
गयायां दर्शने राहोः खड्गमांसेन योगिनाम्।
भोजयेत् कः कुलेऽस्माकं छायायां कुञ्जरस्य च॥ ८

मत्स्यभगवान्ने कहा—नरेश्वर! इन धर्मके वंशमें उत्पन्न हुए विप्रोंको श्राद्धमें प्रयत्नपूर्वक भोजन कराना चाहिये; क्योंकि इन ब्राह्मणोंके सम्बन्धसे किया हुआ श्राद्ध पितरोंको अतिशय प्रिय है। राजसिंह! इसके बाद अब मैं उस गाथाका वर्णन कर रहा हूँ जिसका अपने पुरमें स्थित कामना करनेवाले पितरोंने कथन किया था। क्या हमलोगोंके वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा जो अधिक एवं शीतल जलवाली नदियोंमें जाकर हमलोगोंको जलाञ्जलि देगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा जो दूध, मूल, फल और खाद्य सामग्रियोंसे या तिलसहित जलसे नित्य श्राद्ध करेगा? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा जो वर्षा-ऋतुके मघानक्षत्रकी त्रयोदशी तिथिको मधु और घीसे मिश्रित दूधमें पका हुआ खाद्य पदार्थ हमें समर्पित करेगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा, जो कालशाकसे श्राद्ध करेगा? कालशाक, महाशाक, मधु और मुनिजनोंके अनुकूल अन्नोंको हमलोग सूर्यास्तसे पूर्व ही ग्रहण करते हैं। हमारे कुलमें उत्पन्न हुआ कौन व्यक्ति सूर्यग्रहणके अवसरपर अर्थात् राहुके दर्शनकालतक गयातीर्थमें एवं गजच्छायायोगमें योगियोंको फलके गूदेका भोजन करायेगा?

आकल्पकालिकी तृप्तिस्तेनास्माकं भविष्यति।
दाता सर्वेषु लोकेषु कामचारो भविष्यति॥ ९
आभूतसम्प्लवं कालं नात्र कार्या विचारणा।
यदेतत्पञ्चकं तस्मादेकेनापि वयं सदा॥ १०
तृप्तिं प्राप्स्याम चानन्तां किं पुनः सर्वसम्पदा।
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं दद्यात् कृष्णाजिनं च यः॥ ११

इन खाद्य पदार्थोंसे हमलोगोंको कल्पपर्यन्त तृप्ति बनी रहती है और दाता प्रलयकालपर्यन्त सभी लोकोंमें स्वेच्छानुसार विचरण करता है—इसमें अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये। पूर्वकथित इन पाँचोंमेंसे एकसे भी हमलोग सदा अनन्त तृप्ति प्राप्त करते हैं, फिर सभीके द्वारा करनेपर तो कहना ही क्या है? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति उत्पन्न होगा, जो कृष्णमृगचर्मका दान देगा?॥ ९—११॥

अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं कश्चित् पुरुषसत्तमः।
प्रसूयमानां यो धेनुं दद्याद् ब्राह्मणपुंगवे॥ १२
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं वृषभं यः समुत्सृजेत्।
सर्ववर्णविशेषेण शुक्लं नीलं वृषं तथा॥ १३
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं यः कुर्याच्छ्रद्धयान्वितः।
सुवर्णदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च॥ १४
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं कश्चित् पुरुषसत्तमः।
कूपारामतडागानां वापीनां यश्च कारकः॥ १५
अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं सर्वभावेन यो हरिम्।
प्रयायाच्छरणं विष्णुं देवेशं मधुसूदनम्॥ १६
अपि नः स कुले भूयात् कश्चिद् विद्वान् विचक्षणः।
धर्मशास्त्राणि यो दद्याद् विधिना विदुषामपि॥ १७
एतावदुक्तं तव भूमिपाल
श्राद्धस्य कल्पं मुनिसम्प्रदिष्टम्।
पापापहं पुण्यविवर्धनं च
लोकेषु मुख्यत्वकरं तथैव॥ १८
इत्येतां पितृगाथां तु श्राद्धकाले तु यः पितॄन्।
श्रावयेत्तस्य पितरो लभन्ते दत्तमक्षयम्॥ १९

क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा नरश्रेष्ठ पैदा होगा, जो ब्राह्मणश्रेष्ठको ब्याती हुई गायका दान देगा? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म लेगा, जो वृषभका उत्सर्ग करेगा? वह वृष विशेषरूपसे सभी रङ्गोंकी अपेक्षा नील अथवा शुक्ल वर्णका होना चाहिये। क्या हमलोगोंके कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति उत्पन्न होगा, जो श्रद्धासम्पन्न होकर सुवर्ण-दान, गो-दान और पृथ्वीदान करेगा? क्या हमारे वंशमें कोई ऐसा पुरुषश्रेष्ठ पैदा होगा, जो कूप, बगीचा, सरोवर और बावलियोंका निर्माण करायेगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा व्यक्ति जन्म ग्रहण करेगा जो सभी प्रकारसे मधु दैत्यके नाशक देवेश भगवान् विष्णुकी शरण ग्रहण करेगा? क्या हमारे कुलमें कोई ऐसा प्रतिभाशाली विद्वान् होगा, जो विद्वानोंको विधिपूर्वक धर्मशास्त्रकी पुस्तकोंका दान देगा? भूपाल! मैंने इस प्रकार आपसे मुनियोंद्वारा कही गयी इस श्राद्धकर्मकी विधिका वर्णन कर दिया। यह पापनाशिनी, पुण्यको बढ़ानेवाली एवं संसारमें प्रमुखता प्रदान करनेवाली है। जो श्राद्धके समय पितरोंको यह पितृगाथा सुनाता है उसके पितर दिये गये पदार्थोंको अक्षयरूपमें प्राप्त करते हैं॥ १२—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे पितृगाथाकीर्तनं नाम चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें पितृगाथानुकीर्तन नामक दो सौ चारवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०४॥



दो सौ पाँचवाँ अध्याय

धेनु-दान-विधि

मनुरुवाच

प्रसूयमाना दातव्या धेनुर्ब्राह्मणपुंगवे।
विधिना केन धर्मज्ञ दानं दद्याच्च किं फलम्॥ १

मत्स्य उवाच

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरां मुक्तालाङ्गूलभूषिताम्।
कांस्योपदोहनां राजन् सवत्सां द्विजपुंगवे॥ २

प्रसूयमानां गां दत्त्वा महत्पुण्यफलं लभेत्।
यावद्वत्सो योनिगतो यावद्गर्भं न मुञ्चति॥ ३

तावद् वै पृथिवी ज्ञेया सशैलवनकानना।
प्रसूयमानां यो दद्याद् धेनुं द्रविणसंयुताम्॥ ४

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना।
चतुरन्ता भवेद् दत्ता पृथिवी नात्र संशयः॥ ५

यावन्ति धेनुरोमाणि वत्सस्य च नराधिप।
तावत्संख्यं युगगणं देवलोके महीयते॥ ६

पितॄन पितामहांश्चैव तथैव प्रपितामहान्।
उद्धरिष्यत्यसंदेहं नरकाद् भूरिदक्षिणः॥ ७

घृतक्षीरवहाः कुल्या दधिपायसकर्दमाः।
यत्र तत्र गतिस्तस्य द्रुमाश्चेप्सितकामदाः।
गोलोकः सुलभस्तस्य ब्रह्मलोकश्च पार्थिव॥ ८

स्त्रियश्च तं चन्द्रसमानवक्त्राः
प्रतप्तजाम्बूनदतुल्यरूपाः।
महानितम्बास्तनुवृत्तमध्या
भजन्त्यजस्रं नलिनाभनेत्राः॥ ९

मनुजीने पूछा— धर्मके तत्त्वोंको जाननेवाले भगवन्! श्रेष्ठ ब्राह्मणको ब्याती हुई गौका दान किस विधिसे देना चाहिये और उस दानसे क्या फल प्राप्त होता है?॥ १॥

मत्स्यभगवान् बोले— राजन्! जिसके सींग सुवर्णजटित हों, खुर चाँदीसे मढ़े गये हों, जिसकी पूँछ मोतियोंसे सुशोभित हो तथा जिसके निकट काँसेकी दोहनी रखी हो, ऐसी सवत्सा गौका दान श्रेष्ठ ब्राह्मणको देना चाहिये। ब्याती हुई गायका दान करनेपर महान् पुण्यफल प्राप्त होता है। जबतक बछड़ा योनिके भीतर रहता है एवं जबतक गर्भको नहीं छोड़ता, तबतक उस गौको वन-पर्वतोंसहित पृथ्वी समझना चाहिये। जो व्यक्ति द्रव्यसहित ब्याती हुई गायका दान देता है, उसने मानो सभी समुद्र, गुफा, पर्वत और जंगलोंके साथ चतुर्दिग्व्याप्त पृथ्वीका दान कर दिया, इसमें संदेह नहीं है। नरेश्वर! उस बछड़ेके तथा गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं उतने युगोंतक दाता देवलोकमें पूजित होता है। विपुल दक्षिणा देनेवाला मनुष्य निश्चय ही अपने पिता, पितामह तथा प्रपितामहका नरकसे उद्धार कर देता है। वह जहाँ-कहीं जाता है, वहाँ उसे दही और पायसरूपी कीचड़से युक्त घृत एवं क्षीरकी नदियाँ प्राप्त होती हैं तथा मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाले वृक्ष प्राप्त होते रहते हैं। राजन्! उसे गोलोक और ब्रह्मलोक सुलभ हो जाते हैं तथा चन्द्रमुखी, तपाये हुए सुवर्णके समान वर्णवाली, स्थूल नितम्बवाली, पतली कमरसे सुशोभित, कमलनयनी स्त्रियाँ निरन्तर उसकी सेवा करती हैं॥ २—९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे धेनुदानं नाम पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें धेनु-दान-माहात्म्य नामक दो सौ पाँचवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०५॥

दो सौ छठा अध्याय

कृष्णमृगचर्मके दानकी विधि और उसका माहात्म्य

मनुरुवाच

कृष्णाजिनप्रदानस्य विधिकालौ ममानघ।
ब्राह्मणं च तथाऽऽचक्ष्व तत्र मे संशयो महान्॥ १

मत्स्य उवाच

वैशाखी पौर्णमासी च ग्रहणे शशिसूर्ययोः।
पौर्णमासी तु या माघी ह्याषाढ़ी कार्तिकी तथा॥ २

उत्तरायणे च द्वादश्यां तस्यां दत्तं महाफलम्।
आहिताग्निर्द्विजो यस्तु तद् देयं तस्य पार्थिव॥ ३

यथा येन विधानेन तन्मे निगदतः शृणु।
गोमयेनोपलिप्ते तु शुचौ देशे नराधिप॥ ४

आदावेव समास्तीर्य शोभनं वस्त्रमाविकम्।
ततः सशृङ्गं सखुरमास्तरेत् कृष्णमार्गकम्॥ ५

कर्तव्यं रुक्मशृङ्गं तद् रौप्यदन्तं तथैव च।
लाङ्गलं मौक्तिकैर्युक्तं तिलच्छन्नं तथैव च॥ ६

तिलैः सुपूरितं कृत्वा वाससाऽऽच्छादयेद् बुधः।
सुवर्णनाभं तत् कुर्यादलंकुर्याद् विशेषतः॥ ७

रत्नैर्गन्धैर्यथाशक्त्या तस्य दिक्षु च विन्यसेत्।
कांस्यपात्राणि चत्वारि तेषु दद्याद् यथाक्रमम्॥ ८

मृण्मयेषु च पात्रेषु पूर्वादिषु यथाक्रमम्।
घृतं क्षीरं दधि क्षौद्रमेवं दद्याद् यथाविधि॥ ९

चम्पकस्य तथा शाखामव्रणं कुम्भमेव च।
बाह्योपस्थानकं कृत्वा शुभचित्तो निवेशयेत्॥ १०

सूक्ष्मवस्त्रं शुभं पीतं मार्जनार्थं प्रयोजयेत्।
तथा धातुमयं पात्रं पादयोस्तस्य दापयेत्॥ ११

यानि कानि च पापानि मया लोभात् कृतानि वै।
लौहपात्रादिदानेन प्रणश्यन्तु ममाशु वै॥ १२

मनुजीने पूछा— निष्पाप परमात्मन्! कृष्ण मृगचर्म प्रदान करनेकी विधि, उसका समय तथा कैसे ब्राह्मणको दान देना चाहिये—इसका विधान मुझे बताइये। इस विषयमें मुझे महान् संदेह है॥ १॥

मत्स्यभगवान् बोले— राजन्! वैशाखकी पूर्णिमाको, चन्द्रमा एवं सूर्यके ग्रहणके अवसरपर, माघ, आषाढ़ तथा कार्तिककी पूर्णिमा तिथिमें, सूर्यके उत्तरायण रहनेपर तथा द्वादशी तिथिमें (कृष्णमृगचर्मके) दानका महाफल कहा गया है। जो ब्राह्मण नित्य अग्न्याधान करनेवाला हो उसीको वह दान देना चाहिये। अब जिस प्रकार और जिस विधानसे वह दान देना चाहिये, उसे मैं बतला रहा हूँ, सुनिये। नरेश्वर! पवित्र स्थानपर गोबरसे लिपी हुई पृथ्वीपर सर्वप्रथम सुन्दर ऊनी वस्त्र बिछाकर फिर खुर और सींगोंसे युक्त उस कृष्णमृगचर्मको बिछा दे। उस मृगचर्मके सींगोंको सुवर्णसे, दाँतोंको चाँदीसे, पूँछको मोतियोंसे अलङ्कृत कर उसे तिलोंसे आवृत कर दे। बुद्धिमान् पुरुष उस मृगचर्मको तिलोंसे पूरित कर वस्त्रसे ढक दे। उसकी सुवर्णमय नाभि बनाकर उसे अपनी शक्तिके अनुकूल रत्नों तथा सुगन्धित पदार्थोंसे विशेषरूपसे अलङ्कृत कर दे। फिर क्रमानुसार काँसेके बने हुए चार पात्रोंको उसकी चारों दिशाओंमें रखे। फिर पूर्व आदि दिशाओंमें क्रमशः चार मिट्टीके पात्रोंमें घृत, दुग्ध, दही तथा मधु विधिवत् भर दे। तदुपरान्त चम्पककी एक डाल तथा छिद्ररहित एक कलश बाहर पूर्वकी ओर मङ्गलमय भावनासे स्थापित करे॥ २—१०॥

मार्जनके लिये एक सुन्दर महीन पीले वस्त्रका प्रयोग करे तथा धातु-निर्मित पात्र उसके दोनों पैरोंके पास रख दे। तत्पश्चात् ऐसा कहे कि 'मैंने लोभमें पड़कर जिन-जिन पापोंको किया है, वे लौहमय पात्रादिका दान करनेसे शीघ्र ही नष्ट हो जायँ।'

तिलपूर्णं ततः कृत्वा वामपादे निवेशयेत्।
यानि कानि च पापानि कर्मोत्थानि कृतानि च॥ १३
कांस्यपात्रप्रदानेन तानि नश्यन्तु मे सदा।
मधुपूर्णं तु तत् कृत्वा पादे वै दक्षिणे न्यसेत्॥ १४
परापवादपैशुन्याद् वृथा मांसस्य भक्षणात्।
तत्रोत्थितं च मे पापं ताम्रपात्रात् प्रणश्यतु॥ १५
कन्यानृताद् गवां चैव परदाराभिमर्षणात्।
रौप्यपात्रप्रदानाद्धि क्षिप्रं नाशं प्रयातु मे॥ १६
ऊर्ध्वपादे त्विमे कार्ये ताम्रस्य रजतस्य च।
जन्मान्तरसहस्रेषु कृतं पापं कुबुद्धिना॥ १७
सुवर्णपात्रदानात् तु नाशयाशु जनार्दन।
हेममुक्ता विद्रुमं च दाडिमं बीजपूरकम्॥ १८
प्रशस्तपात्रे श्रवणे खुरे शृङ्गाटकानि च।
एवं कृत्वा यथोक्तेन सर्वशाकफलानि च॥ १९
तत्प्रतिग्रहविद् विद्वानाहिताग्निर्द्विजोत्तमः।
स्नातो वस्त्रयुगच्छन्नः स्वशक्त्या चाप्यलङ्कृतः॥ २०
प्रतिग्रहश्च तस्योक्तः पुच्छदेशे महीपते।
तत एवं समीपे तु मन्त्रमेनमुदीरयेत्॥ २१
कृष्णाजिनेति कृष्णान् हिरण्यं मधुसर्पिषी।
ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम्॥ २२
यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात् सखुरं शृङ्गसंयुतम्।
तिलैः प्रच्छाद्य वासोभिः सर्ववस्त्रैरलंकृतम्॥ २३
वैशाख्यां पौर्णमास्यां तु विशाखायां विशेषतः।
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना॥ २४
सप्तद्वीपान्विता दत्ता पृथिवी नात्र संशयः।
कृष्णकृष्णाङ्गलो देवः कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते॥ २५
सुवर्णदानात् त्वद्दानात् धूतपापस्य प्रीयताम्।
त्रयस्त्रिंशत्सुराणां त्वमाधारत्वे व्यवस्थितः॥ २६
कृष्णोऽसि मूर्तिमान् साक्षात् कृष्णाजिन नमोऽस्तु ते।
सुवर्णनाभिकं दद्यात् प्रीयतां वृषभध्वजः॥ २७

फिर काँसेके पात्रको तिलोंसे भरकर बायें पैरके पास रखे और कहे कि 'मैंने प्रसङ्गवश जिन-जिन पापोंका आचरण किया है, मेरे वे सभी पाप इस कांस्य-पात्रके दानसे सदाके लिये नष्ट हो जायँ।' फिर ताम्र-पात्रमें मधु भरकर दाहिने पैरके पास रखे और कहे कि 'दूसरेकी निन्दा या चुगुली करने अथवा किसी अवैध मांसका भक्षण करनेसे उत्पन्न हुआ मेरा पाप इस ताम्र-पात्रका दान करनेसे नष्ट हो जाय।' 'कन्या और गौके लिये मिथ्या कहनेसे तथा परकीय स्त्रीका स्पर्श करनेसे जो पाप उत्पन्न हुआ हो, मेरा वह पाप चाँदीके पात्रदानसे शीघ्र ही नष्ट हो जाय।' चाँदी तथा ताँबेके बने हुए पात्रोंको पैरके ऊपरी भागमें रखना चाहिये। 'जनार्दन! मैंने अपनी दुष्ट बुद्धिके द्वारा हजारों जन्मोंमें जो पाप किया है उसे आप सुवर्णपात्रके दानसे शीघ्र ही नष्ट कर दें।' यह मन्त्र सुवर्णपात्र दान करते समय कहे। उस समय सुवर्ण, मोती, मूँगा, अनार और बिजौरा नींबूको अच्छे पात्रमें रखकर उस मृगचर्मके कान, खुर और सींगपर स्थापित कर दे। यथोक्त विधिके अनुसार ऐसा करके सभी प्रकारके शाक-फलोंको भी रख दे। महीपते! तत्पश्चात् जो ब्राह्मणश्रेष्ठ प्रतिग्रहकी विधिका ज्ञाता, विद्वान् और अग्न्याधान करनेवाला हो तथा स्नानके पश्चात् दो सुन्दर वस्त्रको धारणकर अपनी शक्तिके अनुसार अलंकृत भी हो, ऐसे ब्राह्मणको उस मृगचर्मके पुच्छदेशमें दान देनेका विधान है। उस समय उसके समीप इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। जो '**कृष्णाजिनेति०**'—इस मन्त्रका उच्चारण कर, कृष्णमृगचर्म, सुवर्ण, मधु और घृत ब्राह्मणको दान करता है, वह सभी दुष्कर्मोंसे छूट जाता है॥ ११—२२॥

जो मनुष्य खुर तथा सींगसहित कृष्णमृगचर्मको तिलोंसे ढककर एवं सभी प्रकारके वस्त्रोंसे अलङ्कृत कर विशेषतया विशाखा नक्षत्रसे युक्त वैशाखमासकी पूर्णिमा तिथिको दान करता है, उसने निःसंदेह समुद्रों, गुफाओं, पर्वतों एवं जंगलोंसमेत सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका दान कर दिया। कृष्णाजिन! तुम कृष्णस्वरूपधारी देवता हो, तुम्हें नमस्कार है। सुवर्णदान तथा तुम्हारे दानसे जिसके समस्त पाप नष्ट हो गये हैं, ऐसे मुझपर तुम प्रसन्न हो जाओ। कृष्णाजिन! तुम तैंतीस देवताओंके आधार-स्वरूप निश्चित किये गये हो और साक्षात् मूर्तिमान् श्रीकृष्ण हो, तुम्हें प्रणाम है। पुनः वृषभध्वज शंकर मुझपर प्रसन्न हो जायँ—इस भावनासे सुवर्णयुक्त नाभिवाले मृगचर्मका दान

कृष्णः कृष्णगलो देवः कृष्णाजिनधरस्तथा।
तद्दानाद्धतपापस्य प्रीयतां वृषभध्वजः॥ २८

अनेन विधिना दत्त्वा यथावत् कृष्णमार्गकम्।
न स्पृश्योऽसौ द्विजो राजश्चितियूपसमो हि सः॥ २९

तं दाने श्राद्धकाले च दूरतः परिवर्जयेत्।
स्वगृहात् प्रेष्य तं विप्रं मङ्गलस्नानमाचरेत्॥ ३०

पूर्णकुम्भेन राजेन्द्र शाखया चम्पकस्य तु।
कृत्वाऽऽचार्यश्च कलशं मन्त्रेणानेन मूर्धनि॥ ३१

आप्यायस्व समुद्रज्येष्ठा ऋचा संस्नाप्य षोडश।
अहते वाससी वीत आचान्तः शुचितामियात्॥ ३२

तद्वासः कुम्भसहितं नीत्वा क्षेप्यं चतुष्पथे।
ततो मण्डलमाविशेत् कृत्वा देवान् प्रदक्षिणम्॥ ३३

पीते वृत्ते सपत्नीकं मार्जयेद् याज्यकं द्विजः।
मार्जयेन्मुक्तिकामं तु ब्राह्मणेन घटेन वै॥ ३४

श्रीकामं वैष्णवेनेह कलशेन तु पार्थिव।
राज्यकामं तथा मूर्ध्नि ऐन्द्रेण कलशेन तु॥ ३५

द्रव्यप्रतापकामं तु आग्नेयघटवारिणा।
मृत्युंजयविधानाय याम्येन कलशेन तु॥ ३६

ततस्तु तिलकं कार्यं ब्राह्मणेभ्यस्तु दक्षिणाम्।
दत्त्वा तत्कर्मसिद्ध्यर्थं ग्राह्याऽऽशीस्तु विशेषतः॥ ३७

कृतेनानेन या तुष्टिर्न सा शक्या सुरैरपि।
वक्तुं हि नृपतिश्रेष्ठ तथाप्युद्देशतः शृणु॥ ३८

समग्रभूमिदानस्य फलं प्राप्नोत्यसंशयम्।
सर्वाल्लोकांश्च जयति कामचारी विहङ्गवत्॥ ३९

आभूतसम्प्लवं तावत् स्वर्गमाप्नोत्यसंशयम्।
न पिता पुत्रमरणं वियोगं भार्यया सह॥ ४०

करना चाहिये। जो श्यामवर्ण, कृष्णकण्ठ तथा कृष्णचर्म धारण करनेवाले देवता हैं, आपके दानसे पापशून्य हुए मुझपर वे शंकर प्रसन्न हों। राजन्! उपर्युक्त विधिसे कृष्णमृगचर्मका दान देनेके पश्चात् उस प्रतिगृहीता ब्राह्मणका स्पर्श नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह (श्मशानस्था अस्पृश्या) चिताके खूँटेके समान हो जाता है। उसका श्राद्ध और दानके समय दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। उस ब्राह्मणको अपने घरसे विदाकर फिर मङ्गलस्नान करनेका विधान है॥ २३—३०॥

राजेन्द्र! तत्पश्चात् आचार्य चम्पककी शाखासे युक्त जलपूर्ण कलशके जलसे दाताके मस्तकपर '**आप्यायस्व समुद्रज्येष्ठा०**' आदि सोलह ऋचाओंसे अभिषेचन करे, तब वह दो बिना फटे वस्त्रोंको पहनकर आचमन करके पवित्र होता है। पुनः उस वस्त्रको कलशमें डालकर उसे चौराहेपर फेंक दे। इसके बाद देवताओंकी प्रदक्षिणा कर मण्डपमें प्रवेश करे। तदनन्तर ब्राह्मण उस पीत वस्त्रधारी सपत्नीक यजमानका मार्जन करे। यदि यजमान मुक्तिकी इच्छा रखता हो तो ब्राह्मणसम्बन्धी घटसे उसका मार्जन करे। राजन्! यदि यजमान लक्ष्मीका अभिलाषी हो तो विष्णुसम्बन्धी कलशके जलसे उसका मार्जन करे। यदि राज्यकी कामना हो तो इन्द्रसम्बन्धी कलशके जलसे यजमानके मस्तकपर अभिषेक करे। द्रव्य और प्रतापकी कामना करनेवाले यजमानका अग्निसम्बन्धी कलशके जलसे सिंचन करे। मृत्युपर विजय पानेके विधानके लिये यमसम्बन्धी कलशके जलसे अभिषेक करे। तत्पश्चात् यजमानको तिलक लगाये। दाता ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर कृष्णमृगचर्म-दानकी सिद्धिके लिये उनसे विशेष रूपसे आशीर्वाद ग्रहण करे॥ ३१—३७॥

नृपतिश्रेष्ठ! इसके करनेसे जो तुष्टि प्राप्त होती है, उसका वर्णन करनेकी शक्ति यद्यपि देवताओंमें भी नहीं है तथापि मैं संक्षेपमें बतला रहा हूँ, सुनिये। वह दाता निश्चय ही समग्र पृथ्वीके दानका फल प्राप्त करता है, सभी लोकोंको जीत लेता है, पक्षीके समान सर्वत्र स्वेच्छानुसार विचरण करता है, महाप्रलयकालपर्यन्त निःसंदेह स्वर्गलोकमें स्थित रहता है, पिता पुत्रकी मृत्यु और पत्नीके वियोगको नहीं देखता।

धनदेशपरित्यागं न चैवेहाप्नुयात् क्वचित्।
कृष्णोप्सितं कृष्णमृगस्य चर्म
दत्त्वा द्विजेन्द्राय समाहितात्मा।
यथोक्तमेतन्मरणं न शोचेत्
प्राप्नोत्यभीष्टं मनसः फलं तत्॥ ४१

उसे मर्त्यलोकमें कहीं भी धन और देशके परित्यागका अवसर नहीं प्राप्त होता। जो मनुष्य समाहितचित्त हो कुलीन ब्राह्मणको श्रीकृष्णकी प्रिय वस्तु कृष्ण-मृगचर्मका दान करता है वह कभी मृत्युकी चिन्तासे शोकग्रस्त नहीं होता और अपने मनके अनुकूल सभी फलोंको प्राप्त कर लेता है॥ ३८—४१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कृष्णाजिनप्रदानं नाम षडधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कृष्णमृगचर्मप्रदान नामक दो सौ छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०६॥

दो सौ सातवाँ अध्याय

उत्सर्ग किये जानेवाले वृषके लक्षण, वृषोत्सर्गका विधान और उसका महत्त्व

मनुरुवाच

भगवञ् श्रोतुमिच्छामि वृषभस्य च लक्षणम्।
वृषोत्सर्गविधिं चैव तथा पुण्यफलं महत्॥ १

मनुजीने कहा—भगवन्! अब मैं उत्सर्ग किये जानेवाले वृषभके लक्षणों, वृषोत्सर्गकी विधि और वृषोत्सर्गसे प्राप्त होनेवाले महान् पुण्यफलको सुनना चाहता हूँ॥ १॥

मत्स्य उवाच

धेनुमादौ परीक्षेत सुशीलां च गुणान्विताम्।
अव्यङ्गामपरिक्लिष्टां जीववत्सामरोगिणीम्॥ २
स्निग्धवर्णां स्निग्धखुरां स्निग्धशृङ्गीं तथैव च।
मनोहराकृतिं सौम्यां सुप्रमाणामनुद्धताम्॥ ३
आवर्तैर्दक्षिणावर्तैर्युक्तां दक्षिणतस्तथा।
वामावर्तैर्वामतश्च विस्तीर्णजघनां तथा॥ ४
मृदुसंहतताम्रोष्ठीं रक्तग्रीवासुशोभिताम्।
अश्यामदीर्घा स्फुटिता रक्तजिह्वा तथा च या॥ ५
निरस्रावामलनेत्रा च शफैरविरलैर्दृढैः।
वैदूर्यमधुवर्णैश्च जलबुद्बुदसंनिभैः॥ ६
रक्तस्निग्धैश्च नयनैस्तथा रक्तकनीनिकैः।
सप्तचतुर्दशदन्ता तथा वा श्यामतालुका॥ ७
षडुन्नता सुपार्श्वोरुः पृथुपञ्चसमायता।
अष्टायतशिरोग्रीवा या राजन् सा सुलक्षणा॥ ८

मत्स्यभगवान् बोले—राजन्! सर्वप्रथम धेनुकी परीक्षा करनी चाहिये। जो सुशीला, गुणवती, अविकृत अङ्गोंवाली, मोटी-ताजी, जिसके बछड़े जीते हों, रोगरहित, मनोहर रंगवाली, चिकने खुरवाली, चिकने सींगोंवाली, सुदृश्य, सीधी-सादी, न अधिक ऊँची, न अधिक नाटी अर्थात् मध्यम कदवाली, अचञ्चल, भँवरीवाली, विशेषतः दाहिनी ओरकी भँवरियाँ दाहिनी ओर और बायीं ओरकी बायीं ओर हों, विस्तृत जाँघोंवाली, मुलायम एवं सटे हुए लाल होठोंवाली, लाल गलेसे सुशोभित, काली एवं लम्बी न हो ऐसी स्फुटित लाल जिह्वावाली, अश्रुरहित निर्मल नेत्रोंवाली, सुदृढ़ एवं सटे हुए खुरोंवाली, वैदूर्य, मधु अथवा जलके बुद्बुदके समान रंगोंवाली, लाल चिकने नेत्र और लाल कनीनिकासे युक्त, इक्कीस दाँत और श्यामवर्णके तालुसे सम्पन्न हो, जिसके छः स्थान उच्च, पाँच स्थान समान, सिर, ग्रीवा और आठ स्थान विस्तृत तथा बगल और ऊरु देश सुन्दर हों, वह गौ शुभ लक्षणोंसे युक्त मानी गयी है॥ २—८॥

मनुरुवाच

षडुन्नताः के भगवन् के च पञ्च समायताः।
आयताश्च तथैवाष्टौ धेनूनां के शुभावहाः॥ ९

मनुने पूछा—भगवन्! आपने जो यह बतलाया कि गौओंके छः स्थान उन्नत, पाँच स्थान सम तथा आठ स्थान आयत होने चाहिये, वे शुभदायक स्थान कौन-कौन हैं?॥ ९॥

मत्स्य उवाच

उरः पृष्ठं शिरः कुक्षी श्रोणी च वसुधाधिप।
षडुन्नतानि धेनूनां पूजयन्ति विचक्षणाः॥ १०
कर्णौ नेत्रे ललाटं च पञ्च भास्करनन्दन।
समायतानि शस्यन्ते पुच्छं सास्ना च सक्थिनी॥ ११
चत्वारश्च स्तना राजन् ज्ञेया ह्यष्टौ मनीषिभिः।
शिरो ग्रीवायताश्चैते भूमिपाल दश स्मृताः॥ १२
तस्याः सुतं परीक्षेत वृषभं लक्षणान्वितम्।
उन्नतस्कन्धं ककुदमृजुलाङ्गूलकम्बलम्॥ १३
महाकटितटस्कन्धं वैदूर्यमणिलोचनम्।
प्रवालगर्भशृङ्गाग्रं सुदीर्घपृथुवालधिम्॥ १४
नवाष्टादशसंख्यैर्वा तीक्ष्णाग्रैर्दशनैः शुभैः।
मल्लिकाक्षश्च मोक्तव्यो गृहेऽपि धनधान्यदः॥ १५
वर्णतस्ताम्रकपिलो ब्राह्मणस्य प्रशस्यते।
श्वेतो रक्तश्च कृष्णश्च गौरः पाटल एव च॥ १६
मत्रिकस्ताम्रपृष्ठश्च शबलः पञ्चवालकैः।
पृथुकर्णो महास्कन्धः श्लक्ष्णरोमा च यो भवेत्।
रक्ताक्षः कपिलो यश्च रक्तशृङ्गतलो भवेत्॥ १७
श्वेतोदरः कृष्णपार्श्वो ब्राह्मणस्य तु शस्यते।
स्निग्धो रक्तेन वर्णेन क्षत्रियस्य प्रशस्यते॥ १८
काञ्चनाभेन वैश्यस्य कृष्णेनाप्यन्त्यजन्मनः।
यस्य प्रागायते शृङ्गे भ्रूमुखाभिमुखे सदा॥ १९
सर्वेषामेव वर्णानां सर्वः सर्वार्थसाधकः।
मार्जारपादः कपिलो धन्यः कपिलपिङ्गलः॥ २०
श्वेतो मार्जारपादस्तु धन्यो मणिनिभेक्षणः।
करटः पिङ्गलश्चैव श्वेतपादस्तथैव च॥ २१
सर्वपादसितो यश्च द्विपादश्वेत एव च।
कपिञ्जलनिभो धन्यस्तथा तित्तिरिसंनिभः॥ २२
आकर्णमूलं श्वेतं तु मुखं यस्य प्रकाशते।
नन्दीमुखः स विज्ञेयो रक्तवर्णो विशेषतः॥ २३

मत्स्यभगवान्ने कहा— पृथ्वीपते! छाती, पीठ, सिर, दोनों कोख तथा कमर— इन छः उन्नत स्थानोंवाली धेनुओंको विज्ञलोग श्रेष्ठ मानते हैं। सूर्यपुत्र! दोनों कान, दोनों नेत्र तथा ललाट—इन पाँच स्थानोंका सम-आयत होना प्रशंसित है। पूँछ, गलकम्बल, दोनों सक्थियाँ (घुटनोंसे नीचेके भाग) और चारों स्तन—ये आठ तथा सिर और गर्दन—ये दो मिलाकर दस स्थान आयत होनेपर श्रेष्ठ माने गये हैं। भूपते! ऐसी सर्वलक्षणसम्पन्न धेनुके शुभ लक्षणोंसे युक्त बछड़ेकी भी परीक्षा करनी चाहिये। जिसका कंधा और ककुद् ऊँचा हो, पूँछ और गलेका कम्बल (चमड़ा) कोमल हो, कटितट और स्कन्ध विशाल हो, वैदूर्य मणिके समान नेत्र हों, सींगोंका अग्रभाग प्रबाल (मूँगे)-के सदृश हो, पूँछ लम्बी तथा मोटी हो, तीखे अग्रभागवाले नौ या अठारह सुन्दर दाँत हों तथा मल्लिका-पुष्पोंकी तरह श्वेत आँखें हों, ऐसे वृषका उत्सर्ग करना चाहिये, उसके गृहमें रहनेसे भी धन-धान्यकी वृद्धि होती है॥ १०—१५॥

ब्राह्मणके लिये ताम्रके समान लाल अथवा कपिल वर्णका वृषभ उत्तम है। जो सफेद, लाल, काला, भूरा, पाटल, पूरा ऊँचा लाल पीठवाला, पाँच प्रकारके रोएँसे चितकबरा, स्थूल कानोंवाला विशाल कंधेसे युक्त, चिकने रोमोंवाला, लाल आँखोंवाला, कपिल, सींगका निचला भाग लाल रंगवाला, सफेद पेट और कृष्ण पार्श्वभागवाला हो, ऐसा वृषभ ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ कहा गया है। लाल रंगके चिकने रोमवाला वृषभ क्षत्रिय जातिके लिये, सुवर्णके समान वर्णवाला वृषभ वैश्यके लिये और काले रंगका वृष शूद्रके लिये उत्तम माना गया है। जिस वृषभके सींग आगेकी ओर विस्तृत तथा भौंहें मुखकी ओर झुकी हों, वह सभी वर्णोंके लिये सर्वार्थ-सिद्ध करनेवाला होता है। बिलावके समान पैरोंवाला, कपिल या पीले रंगका मिश्रित वृषभ धन्य होता है। श्वेत रंगका, बिल्लीके समान पैरवाला और मणिके समान आँखोंवाला वृषभ धन्य है। कौवेके समान काले और पीले रंगवाला तथा श्वेत पैरोंवाला वृष धन्य है। जिसके सभी पैर अथवा दो पैर श्वेतवर्णके हों और जिसका रंग कपिञ्जल अथवा तीतरके समान हो, वह भी धन्य है॥ १६—२२॥

जिस वृषभका मुख कानतक श्वेत दिखायी पड़ता हो तथा विशेषतया वह लाल वर्णका हो, उसे नन्दीमुख जानना चाहिये।

श्वेतं तु जठरं यस्य भवेत् पृष्ठं च गोपतेः।
वृषभः स समुद्राक्षः सततं कुलवर्धनः॥ २४
मल्लिकापुष्पचित्रश्च धन्यो भवति पुंगवः।
कमलैर्मण्डलैश्चापि चित्रो भवति भाग्यदः॥ २५
अतसीपुष्पवर्णश्च तथा धन्यतरः स्मृतः।
एते धन्यास्तथाधन्यान् कीर्तयिष्यामि ते नृप॥ २६
कृष्णतालवोष्ठवदना रूक्षशृङ्गशफाश्च ये।
अव्यक्तवर्णा ह्रस्वाश्च व्याघ्रसिंहनिभाश्च ये॥ २७
ध्वाङ्क्षगृध्रसवर्णाश्च तथा मूषकसंनिभाः।
कुण्ठाः काणास्तथा खञ्जाः केकराक्षास्तथैव च॥ २८
विषमश्वेतपादाश्च उद्भ्रान्तनयनास्तथा।
नैते वृषाः प्रमोक्तव्या न च धार्यास्तथा गृहे॥ २९
मोक्तव्यानां च धार्याणां भूयो वक्ष्यामि लक्षणम्।
स्वस्तिकाकारशृङ्गाश्च तथा मेघौघनिःस्वनाः॥ ३०
महाप्रमाणाश्च तथा मत्तमातङ्गगामिनः।
महोरस्का महोच्छ्राया महाबलपराक्रमाः।
शिरः कर्णौ ललाटं च वालधिश्चरणास्तथा॥ ३१
नेत्रे पार्श्वे च कृष्णानि शस्यन्ते चन्द्रभासिनाम्।
श्वेतान्येतानि शस्यन्ते कृष्णस्य तु विशेषतः॥ ३२
भूमौ कर्षति लाङ्गूलं प्रलम्बस्थूलवालधिः।
पुरस्तादुन्नतो नीलो वृषभश्च प्रशस्यते॥ ३३
शक्तिध्वजपताकाढ्या येषां राजी विराजते।
अनड्वाहस्तु ते धन्याश्चित्रसिद्धिजयावहाः॥ ३४
प्रदक्षिणं निवर्तन्ते स्वयं ये विनिवर्तिताः।
समुन्नतशिरोग्रीवा धन्यास्ते यूथवर्धनाः॥ ३५
रक्तशृङ्गाग्रनयनः श्वेतवर्णो भवेद् यदि।
शफैः प्रवालसदृशैर्नास्ति धन्यतरस्ततः॥ ३६
एते धार्याः प्रयत्नेन मोक्तव्या यदि वा वृषाः।
धारिताश्च तथा मुक्ता धनधान्यप्रवर्धनाः॥ ३७

जिस वृषभका पेट तथा पीठ श्वेतवर्ण हो, वह समुद्राक्ष नामक वृषभ कहा जाता है। वह सर्वदा कुलकी वृद्धि करनेवाला होता है। जो वृष मल्लिकाके फूलके समान चितकबरे रंगवाला होता है, वह धन्य है। जो कमल-मण्डलके समान चितकबरा होता है, वह सौभाग्यवर्द्धक होता है तथा अलसीके फूलके समान नीले रंगवाला बैल धन्यतर कहा गया है। राजन्! ये उत्तम लक्षणोंवाले वृष हैं। अब मैं आपसे अशुभ लक्षणसम्पन्न वृषभोंका वर्णन कर रहा हूँ। जो काले तालु, ओंठ और मुखवाले, रूखे सींगों एवं खुरोंवाले, अव्यक्त रंगवाले, नाटे, बाघ तथा सिंहके समान भयानक, कौवे और गृध्रके समान रंगवाले या मूषकके समान अल्पकाय, मन्द स्वभाववाले, काने, लँगड़े, नीची-ऊँची आँखोंवाले, विषम (तीन या एक) पैरोंमें श्वेत रंगवाले तथा चञ्चल नेत्रोंवाले हों, ऐसे वृषभोंका न तो उत्सर्ग करना चाहिये और न उन्हें अपने घरमें ही रखना ठीक है। मैं पुनः उत्सर्ग करने तथा पालने योग्य (श्रेष्ठ) वृषभोंका लक्षण बतला रहा हूँ। जिनके सींग स्वस्तिकके आकारके हों और स्वर बादलकी गर्जनाके सदृश हो, जो ऊँचे कदवाले, हाथीके समान चलनेवाले, विशाल छातीवाले, बहुत ऊँचे, महान् बल-पराक्रमसे युक्त हों तथा चन्द्रमाके समान श्वेत वर्णके जिन वृषभोंके सिर, दोनों कान, ललाट, पूँछ, चारों पैर, दोनों नेत्र, दोनों बगलें काले रंगके हों एवं काले रंगवाले वृषभोंके ये स्थान श्वेत हों तो वे उत्तम माने गये हैं। जिसकी लम्बी और मोटी पूँछ पृथ्वीपर रगड़ खाती हो और जिसका अगला भाग उठा हुआ हो, वह नील वृषभ प्रशंसनीय माना गया है॥ २३—३३॥

जिनके शरीरमें शक्ति, ध्वज और पताकाओंकी रेखा बनी हो, वे वृषभ धन्य हैं और विचित्र सिद्धि एवं विजय प्रदान करनेवाले हैं। जो घुमाये जानेपर या स्वयं घूमनेपर दाहिनी ओर घूमते हों तथा जिनके सिर एवं कंधे समुन्नत हों, वे धन्य तथा अपने समूहके वृद्धिकारक हैं। जिसके सींगोंके अग्रभाग तथा नेत्र लाल हों और वह यदि श्वेतवर्णका हो तथा उसके खुर प्रवालके समान लाल हों तो उससे श्रेष्ठ कोई वृषभ नहीं होता। ऐसे वृषभोंका प्रयत्नपूर्वक पालन अथवा उत्सर्ग करना चाहिये; क्योंकि ये रखने अथवा उत्सर्ग करने—दोनों दशाओंमें धन-धान्यको बढ़ाते हैं।

चरणानि मुखं पुच्छं यस्य श्वेतानि गोपतेः।
लाक्षारससवर्णश्च तं नीलमिति निर्दिशेत्॥ ३८

वृष एवं स मोक्तव्यो न सन्धार्यो गृहे भवेत्।
तदर्थमेषा चरति लोके गाथा पुरातनी॥ ३९

एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्।
गौरी चाप्युद्वहेत् कन्यां नीलं वा वृषमुत्सृजेत्॥ ४०

एवं वृषं लक्षणसम्प्रयुक्तं
गृहोद्भवं क्रीतमथापि राजन्।
मुक्त्वा न शोचेन्मरणं महात्मा
मोक्षं गतश्चाहमतोऽभिधास्ये॥ ४१

जिस वृषभके चारों चरण, मुख और पूँछ श्वेत हों तथा शेष शरीरका रंग लाह-रसके समान हो, उसे नील वृषभ कहते हैं। ऐसा वृषभ उत्सर्ग कर देना चाहिये, उसे घरमें पालना ठीक नहीं है; क्योंकि ऐसे वृषभके लिये लोकमें एक ऐसी पुरानी गाथा प्रचलित है कि बहुतेरे पुत्रोंकी कामना करनी चाहिये; क्योंकि उनमेंसे कोई भी तो गयाकी यात्रा करेगा या गौरी कन्याका दान करेगा या नीले वृषभका उत्सर्ग करेगा। राजन्! ऐसे लक्षणयुक्त वृषभका चाहे वह घरमें उत्पन्न हुआ हो या खरीदा गया हो, उत्सर्ग कर महात्मा पुरुष कभी मृत्युके भयसे शोकग्रस्त नहीं होता; उसे मोक्षकी प्राप्ति हो जाती है। इसीलिये मैं आपसे कह रहा हूँ॥ ३४—४१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वृषभलक्षणं नाम सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०७॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वृषभलक्षण नामक दो सौ सातवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०७॥

दो सौ आठवाँ अध्याय

सावित्री और सत्यवान्‌का चरित्र

सूत उवाच

ततः स राजा देवेशं पप्रच्छामितविक्रमः।
पतिव्रतानां माहात्म्यं तत्सम्बद्धां कथामपि॥ १

मनुरुवाच

पतिव्रतानां का श्रेष्ठा कया मृत्युः पराजितः।
नामसंकीर्तनं कस्याः कीर्तनीयं सदा नरैः।
सर्वपापक्षयकरमिदानीं कथयस्व मे॥ २

मत्स्य उवाच

त्रैलोक्यं धर्मराजोऽपि नाचरत्यथ योषिताम्।
पतिव्रतानां धर्मज्ञ पूज्यास्तस्यापि ताः सदा॥ ३

अत्र ते वर्णयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम्।
यथा विमोक्षितो भर्ता मृत्युपाशगतः स्त्रिया॥ ४

मद्रेषु शाकलो राजा बभूवाश्वपतिः पुरा।
अपुत्रस्तप्यमानोऽसौ पुत्रार्थी सर्वकामदाम्॥ ५

सूतजी कहते हैं— ऋषियो! तदनन्तर अपरिमित पराक्रमी राजा मनुने भगवान् मत्स्यसे पतिव्रता स्त्रियोंके माहात्म्य तथा तत्सम्बन्धी कथाके विषयमें प्रश्न किया॥ १॥

मनुजीने पूछा— (प्रभो!) पतिव्रता स्त्रियोंमें कौन श्रेष्ठ है? किस स्त्रीने मृत्युको पराजित किया है? तथा मनुष्योंको सदा किस (सती नारी)-का नामोच्चारण करना चाहिये? आप अब मुझसे सभी पापोंको नष्ट करनेवाली इस कथाका वर्णन कीजिये॥ २॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा— धर्मज्ञ! धर्मराज भी पतिव्रता स्त्रियोंके प्रतिकूल कोई व्यवहार नहीं कर सकते; क्योंकि वे उनके लिये भी सर्वदा सम्माननीय हैं। इस विषयमें मैं तुमसे पापोंको नष्ट करनेवाली वैसी कथाका वर्णन कर रहा हूँ कि किस प्रकार पतिव्रता स्त्रीने मृत्युके पाशमें पड़े हुए अपने पतिको बन्धनमुक्त कराया था। प्राचीन समयमें मद्रदेश (वर्तमान स्यालकोट जनपद)-में शाकलवंशी अश्वपति नामक एक राजा थे। उनके कोई पुत्र नहीं था।

आराधयति सावित्रीं लक्षितोऽसौ द्विजोत्तमैः।
सिद्धार्थकैर्हूयमानां सावित्रीं प्रत्यहं द्विजैः॥ ६

शतसंख्यैश्चतुर्थ्यां तु दशमासागते दिने।
काले तु दर्शयामास स्वां तनुं मनुजेश्वरम्॥ ७

सावित्र्युवाच

राजन् भक्तोऽसि मे नित्यं दास्यामि त्वां सुतां सदा।
तां दत्तां मत्प्रसादेन पुत्रीं प्राप्स्यसि शोभनाम्॥ ८

एतावदुक्त्वा सा राज्ञः प्रणतस्यैव पार्थिव।
जगामादर्शनं देवी खे तथा नृप चञ्चला॥ ९

मालती नाम तस्यासीद् राज्ञः पत्नी पतिव्रता।
सुषुवे तनयां काले सावित्रीमिव रूपतः॥ १०

सावित्र्याहृतया दत्ता तद्रूपसदृशी तथा।
सावित्री च भवत्वेषा जगाद नृपतिर्द्विजान्॥ ११

नामाकुर्वन् द्विजश्रेष्ठाः सावित्रीति नृपोत्तम।
कालेन यौवनं प्राप्तं ददौ सत्यवते पिता॥ १२

नारदस्तु ततः प्राह राजानं दीप्ततेजसम्।
संवत्सरेण क्षीणायुर्भविष्यति नृपात्मजः।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते चिन्तयित्वा नराधिपः॥ १३

तथापि प्रददौ कन्यां द्युमत्सेनात्मजे शुभे।
सावित्र्यपि च भर्तारमासाद्य नृपमन्दिरे॥ १४

नारदस्य तु वाक्येन दूयमानेन चेतसा।
शुश्रूषां परमां चक्रे भर्तृश्वशुरयोर्वने॥ १५

राज्याद् भ्रष्टः सभार्यस्तु नष्टचक्षुर्नराधिपः।
न तुतोष समासाद्य राजपुत्रीं तथा स्नुषाम्॥ १६

चतुर्थेऽहनि मर्तव्यं तथा सत्यवता द्विजाः।
श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता तदा राजसुतापि सा॥ १७

चक्रे त्रिरात्रं धर्मज्ञा व्रतं तस्मिंस्तदा दिने।
दारुपुष्पफलाहारी सत्यवांस्तु ययौ वनम्॥ १८

श्वशुरेणाभ्यनुज्ञाता याचनाभङ्गभीरुणा।
सावित्र्यपि जगामार्ता सह भर्त्रा महद्वनम्॥ १९

तब ब्राह्मणोंके निर्देशपर वे पुत्रकी कामनासे सभी कामनाओंको पूर्ण करनेवाली सावित्रीकी आराधना करने लगे। वे प्रतिदिन सैकड़ों ब्राह्मणोंके साथ सावित्रीदेवीकी प्रसन्नताके लिये सफेद सरसोंका हवन करते थे। दस महीना बीत जानेपर चतुर्थी तिथिको सावित्री (गायत्री) देवीने राजाको दर्शन दिया॥ ३—७॥

सावित्रीने कहा—राजन्! तुम मेरे नित्य भक्त हो, अतः मैं तुम्हें कन्या प्रदान करूँगी। मेरी कृपासे तुम्हें मेरी दी हुई सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या प्राप्त होगी। राजन्! चरणोंमें पड़े हुए राजासे इतना कहकर वह देवी आकाशमें बिजलीकी भाँति अदृश्य हो गयी। नरेश! उस राजाकी मालती नामकी पतिव्रता पत्नी थी। समय आनेपर उसने सावित्रीके समान रूपवाली एक कन्याको जन्म दिया। तब राजाने ब्राह्मणोंसे कहा—तपके द्वारा आवाहन किये जानेपर सावित्रीने इसे मुझे दिया है तथा यह सावित्रीके समान रूपवाली है, अतः इसका नाम सावित्री होगा। नृपश्रेष्ठ! तब उन ब्राह्मणोंने उस कन्याका सावित्री नाम रख दिया। समयानुसार सावित्री युवती हुई, तब पिताने उसका सत्यवान्‌के लिये वाग्दान कर दिया। इसी बीच नारदने उस उद्दीप्त तेजस्वी राजासे कहा कि 'उस राजकुमारकी आयु एक ही वर्षमें समाप्त हो जायगी।' (नारदजीकी वाणी सुनकर) यद्यपि राजाके मनमें चिन्ता तो हुई, पर यह विचारकर कि 'कन्यादान एक ही बार किया जाता है' उन्होंने अपनी कन्या सावित्रीको द्युमत्सेनके सुन्दर पुत्र सत्यवान्‌को प्रदान कर दिया। सावित्री भी पतिको पाकर अपने भवनमें नारदकी अशुभ वाणी सुनकर दुःखित मनसे काल व्यतीत करने लगी। वह वनमें सास-श्वसुर तथा पतिदेवकी बड़ी शुश्रूषा करती थी; किंतु राजा द्युमत्सेन अपने राज्यसे च्युत हो गये थे तथा पत्नीसहित अन्धा होनेके कारण वैसी गुणवती राजपुत्रीको पुत्रवधू-रूपमें प्राप्तकर संतुष्ट नहीं थे। 'आजसे चौथे दिन सत्यवान् मर जायगा' ऐसा ब्राह्मणोंके मुखसे सुनकर धर्मपरायणा राजपुत्री सावित्रीने श्वशुरसे आज्ञा लेकर त्रिरात्र-व्रतका अनुष्ठान किया। चौथा दिन आनेपर जब सत्यवान्‌ने लकड़ी, पुष्प एवं फलकी टोहमें जंगलकी ओर प्रस्थान किया, तब याचनाभङ्गसे डरती हुई सावित्री भी सास-श्वशुरकी आज्ञा लेकर दुःखित मनसे पतिके साथ उस भयंकर जंगलमें गयी। (नारदके वचनका ध्यान कर) चित्तमें अतिशय कष्ट रहनेपर भी

चेतसा दूयमानेन गूहमाना महद्भयम्।
वने पप्रच्छ भर्तारं द्रुमांश्चासदृशांस्तथा॥ २०
आश्वासयामास स राजपुत्रीं
क्लान्तां वने पद्मविशालनेत्राम्।
संदर्शनेनाथ द्रुमद्विजानां
तथा मृगाणां विपिने नृवीरः॥ २१

उसने अपने इस महान् भयको अपने पतिसे व्यक्त नहीं किया, किंतु मन-बहलावके लिये वनमें छोटे-बड़े वृक्षोंके बारेमें पतिसे झूठ-मूठ पूछ-ताछ करती रही। शूरवीर सत्यवान् उस भयंकर वनमें विशाल वृक्षों, पक्षियों एवं पशुओंके दलको दिखला-दिखलाकर थकी हुई एवं कमलके समान विशाल नेत्रोंवाली राजकुमारी सावित्रीको आश्वासन देता रहा॥ ८—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने सावित्रीवनप्रवेशो नामाष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें सावित्रीवनप्रवेश नामक दो सौ आठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०८॥

दो सौ नवाँ अध्याय

सत्यवान्‌का सावित्रीको वनकी शोभा दिखाना

सत्यवानुवाच

वनेऽस्मिञ् शाद्वलाकीर्णे सहकारं मनोहरम्।
नेत्रघ्राणसुखं पश्य वसन्ते रतिवर्धनम्॥ १
वनेऽप्यशोकं दृष्ट्वैनं रागवन्तं सुपुष्पितम्।
वसन्तो हसतीवायं मामेवायतलोचने॥ २
दक्षिणे दक्षिणेनैतां पश्य रम्यां वनस्थलीम्।
पुष्पितैः किंशुकैर्युक्तां ज्वलितानलसप्रभैः॥ ३
सुगन्धिकुसुमामोदो वनराजिविनिर्गतः।
करोति वायुर्दाक्षिण्यमावयोः क्लमनाशनम्॥ ४
पश्चिमेन विशालाक्षि कर्णिकारैः सुपुष्पितैः।
काञ्चनेन विभात्येषा वनराजी मनोरमा॥ ५
अतिमुक्तलताजालरुद्धमार्गा वनस्थली।
रम्या सा चारुसर्वाङ्गि कुसुमोत्करभूषणा॥ ६
मधुमत्तालिझंकारव्याजेन वरवर्णिनि।
चापाकृष्टिं करोतीव कामः पान्थजिघांसया॥ ७
फलास्वादलसद्वक्त्रपुंस्कोकिलविनादिता।
विभाति चारुतिलका त्वमिवैषा वनस्थली॥ ८
कोकिलश्चूतशिखरे मञ्जरीरेणुपिञ्जरः।
गदितैर्व्यक्ततां याति कुलीनश्चेष्टितैरिव॥ ९
पुष्परेणुविलिप्ताङ्गीं प्रियामनुसरन् वने।
कुसुमं कुसुमं याति कूजन् कामी शिलीमुखः॥ १०

सत्यवान्‌ने कहा— विशाल नेत्रोंवाली सावित्री! हरी-हरी घासोंसे भरे हुए इस वनमें वसन्तमें रतिकी वृद्धि करनेवाले एवं नेत्र तथा नासिकाको सुख प्रदान करनेवाले इस मनोहर आमके वृक्षको देखो। इस वनमें फूलोंसे लदे हुए इस लाल अशोक-वृक्षको भी देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो यह वसन्त मेरा ही परिहास कर रहा है। दाहिनी ओर दक्षिण दिशामें जलते हुए अंगारकी-सी कान्तिवाले फूलोंसे लदे हुए किंशुक-वृक्षोंसे युक्त इस रमणीय वनस्थलीको देखो। सुगन्धित पुष्पोंकी सुगन्धसे युक्त वन-पंक्तियोंसे निकली हुई वायु उदारतापूर्वक हमलोगोंकी थकावटका नाश कर रही है। विशाललोचने! इधर पश्चिममें फूले हुए कनेरके पुष्पोंसे युक्त स्वर्णिम शोभावाली वनपङ्क्ति शोभायमान हो रही है। सुन्दरि! तिनिसके लतासमूहोंसे वनस्थलीका मार्ग अवरुद्ध हो गया है। पुष्पोंके समूहोंसे विभूषित हुई वह पृथ्वी कितनी मनोहर लग रही है। मधुसे उन्मत्त हुए भ्रमर-समूहोंकी गुञ्जारके व्याजसे मालूम पड़ता है कि कामदेव (हम-जैसे) पथिकोंको मारनेके लिये धनुषकी प्रत्यञ्चा खींच रहा है। नाना प्रकारके फलोंके आस्वादनसे उल्लसित मुखवाले कोकिलोंके स्वरसे निनादित एवं सुन्दर तिलक-वृक्षोंसे सुशोभित यह वनस्थली तुम्हारे ही समान शोभा दे रही है। आमकी ऊँची डालीपर बैठी हुई कोकिला मञ्जरीकी धूलसे पीत वर्ण होकर अपने सुरीले शब्दोंसे चेष्टाओंद्वारा कुलीन पुरुषकी भाँति अपना परिचय दे रही है। कामी मधुकर वनमें गुनगुनाता हुआ प्रत्येक पुष्पपर पुष्पोंकी धूलिसे धूसरित प्रियतमाका अनुसरण करता हुआ उड़ रहा है॥ १—१०॥

मञ्जरीं सहकारस्य कान्ताचञ्च्वाग्रखण्डिताम्।
स्वदते बहुपुष्पेऽपि पुंस्कोकिलयुवा वने॥ ११
काकः प्रसूतां वृक्षाग्रे स्वामेकाग्रेण चञ्चुना।
काकीं सम्भावयत्येष पक्षाच्छादितपुत्रिकाम्॥ १२
भूभागं निम्नमासाद्य दयितासहितो युवा।
नाहारमपि चादत्ते कामाक्रान्तः कपिंजलः॥ १३
कलविंकस्तु रमयन् प्रियोत्सङ्गं समास्थितः।
मुहुर्मुहुर्विशालाक्षि उत्कण्ठयति कामिनः॥ १४
वृक्षशाखां समारूढः शुकोऽयं सह भार्यया।
भरेण लम्बयञ् शाखां करोति सफलामिव॥ १५
वनेऽत्र पिशितास्वादतृप्तो निद्रामुपागतः।
शेते सिंहयुवा कान्ता चरणान्तरगामिनी॥ १६
व्याघ्रयोर्मिथुनं पश्य शैलकन्दरसंस्थितम्।
ययोर्नेत्रप्रभालोके गुहा भिन्नेव लक्ष्यते॥ १७
अयं द्वीपी प्रियां लेढि जिह्वाग्रेण पुनः पुनः।
प्रीतिमायाति च तया लिह्यमानः स्वकान्तया॥ १८
उत्सङ्गकृतमूर्धानं निद्रापहृतचेतसम्।
जन्तूद्धरणतः कान्तं सुखयत्येव वानरी॥ १९
भूमौ निपतितां रामां मार्जारो दर्शितोदरीम्।
नखैर्दन्तैर्दशत्येष न च पीडयते तथा॥ २०
शशकः शशकी चोभौ संसुप्तौ पीडिते इमे।
संलीनगात्रचरणौ कर्णैर्व्यक्तिमुपागतौ॥ २१
स्नात्वा सरसि पद्माढ्ये नागस्तु मदनप्रियः।
सम्भावयति तन्वङ्गि मृणालकवलैः प्रियाम्॥ २२
कान्तप्रोथसमुत्थानैः कान्तमार्गानुगामिनी।
करोति कवलं मुस्तैर्वराही पोतकानुगा॥ २३
दृढाङ्गसंधिर्महिषः कर्दमाक्ततनुर्वने।
अनुव्रजति धावन्तीं प्रियामुद्धतमुत्सुकः॥ २४
पश्य चार्वङ्गि सारङ्गं त्वं कटाक्षविभावनैः।
सभार्यं मां हि पश्यन्तं कौतूहलसमन्वितम्॥ २५
पश्य पश्चिमपादेन रोही कण्डूयते मुखम्।
स्नेहार्द्रभावात् कर्षन्ती भर्तारं शृङ्गकोटिना॥ २६

वनमें तरुण पुंस्कोकिल अनेक पुष्पोंके रहते हुए भी अपनी प्रियतमाकी चोंचके अग्रभागसे खण्डित हुई आम्र-मञ्जरीका स्वाद ले रहा है। कौआ वृक्षके अग्रभागपर बैठकर पंखोंसे बच्चेको छिपाकर बैठी हुई अपनी प्रसूता पत्नीको चोंचके अग्रभागसे आनन्दित कर रहा है। अपनी पत्नीके साथ कामदेवसे अभिभूत हुआ तरुण कपिंजल (तीतर) निचले भूभागपर बैठा हुआ आहार भी नहीं ग्रहण कर रहा है। विशालनेत्रे! चटक (गौरैया) अपनी प्रियाकी गोदमें स्थित हो बारम्बार रमण करता हुआ कामीजनोंको उत्कण्ठित कर रहा है। अपनी प्रियाके साथ वृक्षकी डालीपर बैठा हुआ यह शुक पंजेसे शाखाको खींचता हुआ उसे फलयुक्त-सा कर रहा है। इस वनमें मांसाहारसे तृप्त युवा सिंह निद्रामें लीन हो सो रहा है और उसकी प्रियतमा उसके पैरोंके मध्यभागमें शयन कर रही है। पर्वतकी कन्दरामें बैठे हुए व्याघ्र-दम्पत्तिको देखो, जिनके नेत्रोंकी कान्तिसे गुफा भिन्न-सी दिखायी दे रही है। यह गैंडा अपनी प्रियाको जीभके अग्रभागसे बारम्बार चाट रहा है और अपनी उस प्रियाद्वारा चाटे जानेपर आनन्दका अनुभव कर रहा है। वह वानरी अपनी गोदमें सिर रखकर गाढ़ निद्रामें सोते हुए पतिको जूक आदि जन्तुओंको निकालकर सुख दे रही है। वह बिडाल पृथ्वीपर लेटकर पेटको दिखाती हुई अपनी प्रियतमाको नखों और दाँतोंसे काट रहा है, परंतु वास्तवमें वह पीड़ा नहीं दे रहा है॥ ११—२०॥

ये खरगोश-दम्पति पीड़ित होकर अपने पैरोंको शरीरमें छिपाकर सो रहे हैं। ये कानोंद्वारा ही जाने जा सकते हैं। सूक्ष्माङ्गि! कामार्त हाथी कमलयुक्त सरोवरमें स्नान कर कमल-डंठलोंके ग्रासोंसे प्रियाको संतुष्ट कर रहा है। पीछे-पीछे चलनेवाले अपने बच्चोंसे घिरी हुई शूकरी प्रियतमके मार्गपर चलती हुई प्रियतमके द्वारा उखाड़े गये मोथोंको खाती जा रही है। इस वनमें दृढ़ अङ्गोंवाला एवं शरीरमें कीचड़ पोते हुए कामार्त महिष भागती हुई प्रियाके पीछे दौड़ रहा है। सुन्दरि! अपनी प्रियाके सहित इस मृगको देखो, जो कुतूहलवश मुझे मनोहर कटाक्षोंसे देख रहा है। देखो, वह मृगी स्नेहयुक्त हो अपने सींगोंके अग्रभागसे प्रियतमको ढकेलती हुई पिछले पैरसे मुखको खुजला रही है। अरे, उस

द्रागिमां चमरीं पश्य सितवालानुगच्छतीम्।
अन्वास्ते चमरः कामी मां च पश्यति गर्वितः॥ २७

आतपे गवयं पश्य प्रकृष्टं भार्यया सह।
रोमन्थनं प्रकुर्वाणं काकं ककुदि वारयन्॥ २८

पश्याजं भार्यया सार्धं न्यस्ताग्रचरणद्वयम्।
विपुले बदरीस्कन्धे बदराशनकाम्यया॥ २९

हंसं सभार्यं सरसि विचरन्तं सुनिर्मलम्।
सुमुक्तस्येन्दुबिम्बस्य पश्य वै श्रियमुद्वहन्॥ ३०

सभार्यश्चक्रवाकोऽयं कमलाकरमध्यगः।
करोति पद्मिनीं कान्तां सुपुष्पामिव सुन्दरि॥ ३१

मया फलोच्चयः सुभ्रु त्वया पुष्पोच्चयः कृतः।
इन्धनं न कृतं सुभ्रु तत्करिष्यामि साम्प्रतम्॥ ३२

त्वमस्य सरसस्तीरे द्रुमच्छायां समाश्रिता।
क्षणमात्रं प्रतीक्षस्व विश्रमस्व च भामिनि॥ ३३

श्वेत चमरी गायको देखो, जो चमरके पीछे चली जा रही है। इधर कामार्त्त चमर खड़ा है और गर्वके साथ मेरी ओर देख रहा है। धूपमें बैठे हुए उस नीलगायको देखो, जो अपनी प्रियाके साथ आनन्दपूर्वक जुगाली कर रहा है और ककुद्पर बैठे हुए कौवेका निवारण कर रहा है। प्रियाके साथ उस बकरेको देखो, जो वेर वृक्षकी मोटी शाखापर फल खानेकी इच्छासे अगले दोनों पैरोंको रखे हुए है। सरोवरमें विचरण करते हुए हंसिनीसहित उस अत्यन्त निर्मल हंसको देखो, जो सुप्रकाशित चन्द्रबिम्बकी शोभा धारण कर रहा है। सुन्दरि! चक्रवाक अपनी प्रियाके साथ कमलोंसे सुशोभित सरोवरमें अपनी प्रियाको फूली हुई पद्मिनीके समान कर रहा है। (ऐसा कहकर सत्यवान्‌ने फिर कहा—) सुन्दर भौंहोंवाली! मैं फलोंको एकत्र कर चुका तथा तुम पुष्पोंको एकत्र कर चुकी, किंतु अभी ईंधनका कोई प्रबन्ध नहीं किया गया, अतः अब मैं उसे एकत्र करूँगा। भामिनि! तबतक तुम इस सरोवरके तटपर वृक्षकी छायामें बैठकर क्षणभर प्रतीक्षा करते हुए विश्राम करो॥ २१—३३॥

सावित्र्युवाच

एवमेतत् करिष्यामि मम दृष्टिपथस्त्वया।
दूरं कान्त न कर्तव्यो बिभेमि गहने वने॥ ३४

सावित्री बोली—कान्त! जैसा आप कहेंगे, मैं वैसा ही करूँगी, परंतु आप मेरे नेत्रोंके सामनेसे दूर न जायँ; क्योंकि मैं इस घने वनमें डर रही हूँ॥ ३४॥

मत्स्य उवाच

ततः स काष्ठानि चकार तस्मिन्
वने तदा राजसुतासमक्षम्।
तस्या ह्यदूरे सरसस्तदानीं
मेने च सा तं मृतमेव राजन्॥ ३५

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! सावित्रीके ऐसा कहनेपर सत्यवान् उस वनमें राजपुत्रीके सम्मुख ही उस सरोवरसे थोड़ी ही दूरपर काष्ठ एकत्र करने लगे, परंतु राजपुत्री उतनी दूर जानेपर भी उन्हें मरा हुआ-सा मानने लगी॥ ३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने वनदर्शनं नाम नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २०९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें वनदर्शन नामक दो सौ नवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २०९॥



दो सौ दसवाँ अध्याय

यमराजका सत्यवान्‌के प्राणको बाँधना तथा सावित्री और यमराजका वार्तालाप

मत्स्य उवाच

तस्य पाटयतः काष्ठं जज्ञे शिरसि वेदना।
स वेदनार्तः संगम्य भार्यां वचनमब्रवीत्॥ १
आयासेन ममानेन जाता शिरसि वेदना।
तमश्च प्रविशामीव न च जानामि किंचन॥ २
त्वदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा स्वप्तुमिच्छामि साम्प्रतम्।
राजपुत्रीमेवमुक्त्वा तदा सुष्वाप पार्थिव॥ ३
तदुत्सङ्गे शिरः कृत्वा निद्रयाऽऽविललोचनः।
पतिव्रता महाभागा ततः सा राजकन्यका॥ ४
ददर्श धर्मराजं तु स्वयं तं देशमागतम्।
नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं प्रभुम्॥ ५
विद्युल्लतानिबद्धाङ्गं सतोयमिव तोयदम्।
किरीटेनार्कवर्णेन कुण्डलाभ्यां विराजितम्॥ ६
हारभारार्पितोरस्कं तथाङ्गदविभूषितम्।
तथानुगम्यमानं च कालेन सह मृत्युना॥ ७
स तु सम्प्राप्य तं देशं देहात् सत्यवतस्तदा।
अङ्गुष्ठमात्रं पुरुषं पाशबद्धं वशं गतम्॥ ८
आकृष्य दक्षिणामाशां प्रययौ सत्वरं तदा।
सावित्र्यपि वरारोहा दृष्ट्वा तं गतजीवितम्॥ ९
अनुवव्राज गच्छन्तं धर्मराजमतन्द्रिता।
कृताञ्जलिरुवाचाथ हृदयेन प्रवेपता॥ १०
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमम्।
गुरुशुश्रूषया चैव ब्रह्मलोकं समश्नुते॥ ११
सर्वे तस्यादृता धर्मा यस्यैते त्रय आदृताः।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः॥ १२
यावत् त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत्।
तेषां च नित्यं शुश्रूषां कुर्यात् प्रियहिते रतः॥ १३
तेषामनुपरोधेन पारतन्त्र्यं यदा चरेत्।
तत्तन्निवेदयेत् तेभ्यो मनोवचनकर्मभिः।
त्रिष्वप्येतेषु कृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते॥ १४

मत्स्यभगवान्‌ने कहा— राजन्! लकड़ी काटते हुए सत्यवान्‌के सिरमें पीड़ा उत्पन्न हुई, तब वे पीड़ासे व्याकुल हो पत्नीके पास आकर इस प्रकार कहने लगे—'इस परिश्रमसे मेरे सिरमें बहुत पीड़ा हो रही है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मैं अन्धकारमें प्रविष्ट हो रहा हूँ। मुझे कुछ भी सूझ नहीं रहा है। इस समय मैं तुम्हारी गोदमें सिर रखकर सोना चाहता हूँ।' राजन्! राजपुत्रीसे ऐसा कहकर सत्यवान् उस समय उसकी गोदमें सो गये। जब सावित्रीकी गोदमें सिर रखकर सोते हुए सत्यवान्‌के नेत्र निद्रावश मुँद गये, तब उस पतिव्रता महाभागा राजपुत्री सावित्रीने उस स्थानपर आये हुए सामर्थ्यशाली स्वयं धर्मराजको देखा, जो नीले कमलके-से श्यामवर्णसे सुशोभित और पीताम्बर धारण किये हुए थे। वे चमकती हुई बिजलियोंसे युक्त जलपूर्ण मेघ-जैसे दीख रहे थे तथा सूर्यके समान तेजस्वी मुकुट और दो कुण्डलोंसे सुशोभित थे। उनके वक्षःस्थलपर हार लटक रहा था। वे बाजूबंदसे विभूषित थे तथा उनके पीछे मृत्युसहित महाकाल भी था। धर्मराजने उस स्थानपर पहुँचकर उस समय सत्यवान्‌के शरीरसे अंगूठेके परिमाणवाले पुरुषको पाशमें बाँधकर अपने अधीन किया और उसे खींचकर शीघ्रतापूर्वक दक्षिण दिशाकी ओर प्रस्थान किया। तब आलस्यरहित हो सुन्दरी सावित्री पतिको प्राणरहित देखकर जाते हुए धर्मराजके पीछे-पीछे चली और काँपते हुए हृदयसे अञ्जलि बाँधकर धर्मराजसे बोली—'माताकी भक्तिसे इस लोक, पिताकी भक्तिसे मध्यम लोक और गुरुकी शुश्रूषासे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। जो इन तीनोंका आदर करता है, उसने मानो सभी धर्मोंका पालन कर लिया तथा जिसने इन तीनोंका आदर नहीं किया, उसकी सारी सत्क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं। जबतक ये तीनों जीवित रहें, तबतक किसी अन्य धर्मके पालनकी आवश्यकता नहीं है। उनके प्रिय एवं सुखके कार्योंमें तत्पर रहकर नित्य उनकी शुश्रूषा करनी चाहिये। उनकी आज्ञासे यदि कभी परतन्त्रता भी स्वीकार करनी पड़े तो वह सब मन-वचन-कर्मद्वारा उन्हें निवेदित कर देना चाहिये। पुरुषके सारे कर्म माता, पिता और गुरु—इन्हीं तीनोंमें समाप्त हो जाते हैं॥ १—१४॥

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्तयाशु
धर्मो न तेभ्योऽपि हि उच्यते च।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्या-
त्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि॥ १५

गुरुपूजारतिर्भर्ता त्वं च साध्वी पतिव्रता।
विनिवर्तस्व धर्मज्ञे ग्लानिर्भवति तेऽधुना॥ १६

यमराजने कहा—तुम हमसे जिस कामनाको पूर्ण करानेके लिये आ रही हो उस कामनाको छोड़ दो और शीघ्र लौट जाओ। सचमुच संसारमें माता-पिता तथा गुरुकी सेवासे बढ़कर कोई अन्य धर्म नहीं है। तुम्हारे इस प्रकार पीछे-पीछे आनेसे मेरे काममें विघ्न पड़ रहा है और तुम भी थकावटसे चूर हो रही हो। इसलिये मैं इस समय तुमसे ऐसा कह रहा हूँ। धर्मज्ञे! तुम्हारा पति सचमुच गुरुजनोंकी पूजामें प्रेम करनेवाला है और तुम भी पतिव्रता साध्वी हो। इस समय तुम्हें कष्ट हो रहा है, अतः तुम लौट जाओ॥ १५-१६॥

सावित्र्युवाच

पतिर्हि दैवतं स्त्रीणां पतिरेव परायणम्।
अनुगम्यः स्त्रिया साध्व्या पतिः प्राणधनेश्वरः॥ १७
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य प्रदातारं भर्तारं का न पूजयेत्॥ १८
नीयते यत्र भर्ता मे स्वयं वा यत्र गच्छति।
मयापि तत्र गन्तव्यं यथाशक्ति सुरोत्तम॥ १९
पतिमादाय गच्छन्तमनुगन्तुमहं यदा।
त्वां देव न हि शक्ष्यामि तदा त्यक्ष्यामि जीवितम्॥ २०
मनस्विनी तु या काचिद्वैधव्याक्षरदूषिता।
मुहूर्तमपि जीवेत मण्डनार्हा ह्यमण्डिता॥ २१

सावित्री बोली—स्त्रियोंका पति ही देवता है, पति ही उसको शरण देनेवाला है, इसलिये साध्वी स्त्रियोंको प्राणपति प्रियतमका अनुगमन करना चाहिये। पिता, भाई तथा पुत्र परिमित सम्पत्ति देनेवाले हैं, किंतु पति अपरिमित सम्पत्तिका दाता है। भला, ऐसे पतिकी कौन स्त्री पूजा नहीं करेगी। सुरोत्तम! आप मेरे पतिको जहाँ ले जा रहे हैं अथवा स्वयं जहाँ जा रहे हैं, वहीं मुझे भी यथाशक्ति जाना चाहिये। देव! मेरे प्राणपतिको ले जाते हुए आपके पीछे चलनेमें यदि मैं समर्थ न हो सकूँगी तो प्राणोंको त्याग दूँगी। जो कोई मनस्विनी स्त्री वैधव्य-धर्मसे दूषित होकर मुहूर्तभर जीवित रहती है तो वह सभी आभूषणोंसे अलंकृत होते हुए भी भाग्यहीन है॥ १७—२१॥

यम उवाच

पतिव्रते महाभागे परितुष्टोऽस्मि ते शुभे।
विना सत्यवतः प्राणैर्वरं वरय मा चिरम्॥ २२

यमने कहा—महाभाग्यशालिनी पतिव्रते! मैं तुमपर प्रसन्न हूँ, अतः शुभे! सत्यवान्‌के प्राणोंको छोड़कर कोई भी वरदान माँग लो, देर मत करो॥ २२॥

सावित्र्युवाच

विनष्टचक्षुषो राज्यं चक्षुषा सह कारय।
च्युतराष्ट्रस्य धर्मज्ञ श्वशुरस्य महात्मनः॥ २३

सावित्री बोली—धर्मज्ञ! जो राज्यसे च्युत हो गये हैं तथा जिनकी आँखें नष्ट हो गयी हैं, ऐसे मेरे महात्मा श्वशुरको राज्य और नेत्रसे संयुक्त कर दीजिये॥ २३॥

यम उवाच

दूरं पथे गच्छ निवर्त भद्रे
भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्या-
त्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि॥ २४

यमराजने कहा—भद्रे! तुम बहुत दूरतक चली आयी हो, अतः अब लौट जाओ। तुम्हारी यह सब अभिलाषा पूर्ण होगी। तुम्हारे मेरे पीछे चलनेसे मेरे काममें विघ्न पड़ेगा और तुम्हें भी थकावट होगी, इसीलिये इस समय मैं तुमसे ऐसा कह रहा हूँ॥ २४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने प्रथमवरलाभो नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें प्रथम वरलाभ नामक दो सौ दसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१०॥

दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय

सावित्रीको यमराजसे द्वितीय वरदानकी प्राप्ति

सावित्र्युवाच

कुतः क्लमः कुतो दुःखं सद्भिः सह समागमे।
सतां तस्मान्न मे ग्लानिस्त्वत्समीपे सुरोत्तम॥ १

साधूनां वाप्यसाधूनां संत एव सदा गतिः।
नैवासतां नैव सतामसन्तो नैवमात्मनः॥ २

विषाग्निसर्पशस्त्रेभ्यो न तथा जायते भयम्।
अकारणजगद्वैरिखलेभ्यो जायते तथा॥ ३

संतः प्राणानपि त्यक्त्वा परार्थं कुर्वते यथा।
तथासंतोऽपि संत्यज्य परपीडासु तत्पराः॥ ४

त्यजत्यसूनयं लोकस्तृणवद् यस्य कारणात्।
परोपघातशक्तास्तं परलोकं तथासतः॥ ५

निकायेषु निकायेषु तथा ब्रह्मा जगद्गुरुः।
असतामुपघाताय राजानं ज्ञातवान् स्वयम्॥ ६

नरान् परीक्षयेद् राजा साधून् सम्मानयेत् सदा।
निग्रहं चासतां कुर्यात् स लोके लोकजित्तमः॥ ७

निग्रहेणासतां राजा सतां च परिपालनात्।
एतावदेव कर्तव्यं राज्ञा स्वर्गमभीप्सुना॥ ८

राजकृत्यं हि लोकेषु नास्त्यन्यज्जगतीपते।
असतां निग्रहादेव सतां च परिपालनात्॥ ९

राजभिश्चाप्यशास्तानामसतां शासिता भवान्।
तेन त्वमधिको देवो देवेभ्यः प्रतिभासि मे॥ १०

जगत्तु धार्यते सद्भिः सतामग्र्यस्तथा भवान्।
तेन त्वामनुयान्त्या मे क्लमो देव न विद्यते॥ ११

सावित्रीने कहा—देवश्रेष्ठ! सत्पुरुषोंके साथ समागम होनेपर कैसा परिश्रम? और कैसा दुःख? आप-जैसे महानुभावोंके समीपमें मुझे किसी प्रकारकी भी ग्लानि नहीं है। चाहे साधु प्रकृतिके हों या असाधु प्रकृतिके, सभीके निर्वाहक सदा सत्पुरुष ही होते हैं, किंतु असत्पुरुष न तो सज्जनोंके काम आ सकते हैं, न असत्पुरुषोंके ही और न स्वयं अपना ही कल्याण कर सकते हैं। विष, अग्नि, सर्प तथा शस्त्रसे लोगोंको उतना भय नहीं होता, जितना अकारण जगत्से वैर करनेवाले दुष्टोंसे होता है। जैसे सत्पुरुष अपने प्राणोंका विसर्जन करके भी परोपकार करते हैं, उसी प्रकार दुर्जन भी अपने प्राणोंका परित्याग कर दूसरेको कष्ट देनेमें तत्पर रहते हैं। जिस परलोककी प्राप्तिके लिये सत्पुरुष अपने प्राणोंको भी तृणके समान त्याग देते हैं, उसी परलोककी परायी हानिमें निरत रहनेवाले दुर्जन कुछ भी चिन्ता नहीं करते। स्वयं जगद्गुरु ब्रह्माने सभी प्राणि-समूहोंमें असत्प्राणियोंके निग्रहके लिये राजाको नियुक्त किया है। राजा सर्वदा पुरुषोंकी परीक्षा करे। जो सज्जन हों, उनका आदर करे और दुष्टोंको दण्ड दे। जो ऐसा करता है, वह सभी लोकविजेता राजाओंमें श्रेष्ठ है। सत्पुरुषोंको सम्मान देने तथा दुष्टोंका निग्रह करनेके कारण ही वह राजा है। स्वर्ग-प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले राजाको इन दोनों कार्योंका पालन करना चाहिये। जगतीपते! राजाओंके लिये सत्पुरुषोंके परिपालन तथा दुष्टोंके नियमनके अतिरिक्त दूसरा कोई राजधर्म संसारमें नहीं है। उन राजाओंद्वारा भी जो दुष्ट शासित नहीं किये जा सकते, ऐसे दुर्जनोंके शासक आप हैं, इसी कारण आप मुझे सभी देवताओंसे अधिक महत्त्वशाली देवता प्रतीत हो रहे हैं। यह जगत् सत्पुरुषोंद्वारा धारण किया जाता है तथा आप उन सत्पुरुषोंके अग्रणी हैं, इसलिये देव! आपके पीछे चलते हुए मुझे कुछ भी क्लेश नहीं है॥ १—११॥

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसङ्गतैः।
विना सत्यवतः प्राणाद् वरं वरय मा चिरम्॥ १२

सावित्र्युवाच

सहोदराणां भ्रातॄणां कामयामि शतं विभो।
अनपत्यः पिता प्रीतिं पुत्रलाभात् प्रयातु मे॥ १३

तामुवाच यमो गच्छ यथागतमनिन्दिते।
और्ध्वदेहिककार्येषु यत्नं भर्तुः समाचर॥ १४

नानुगन्तुमयं शक्यस्त्वया लोकान्तरं गतः।
पतिव्रतासि तेन त्वं मुहूर्तं मम यास्यसि॥ १५

गुरुशुश्रूषणाद् भद्रे तथा सत्यवता महत्।
पुण्यं समर्जितं येन नयाम्येनमहं स्वयम्॥ १६

एतावदेव कर्तव्यं पुरुषेण विजानता।
मातुः पितुश्च शुश्रूषा गुरोश्च वरवर्णिनि॥ १७

तोषितं त्रयमेतच्च सदा सत्यवता वने।
पूजितं विजितः स्वर्गस्त्वयानेन चिरं शुभे॥ १८

तपसा ब्रह्मचर्येण अग्निशुश्रूषया शुभे।
पुरुषाः स्वर्गमायान्ति गुरुशुश्रूषया तथा॥ १९

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः।
नार्चैतेऽप्यवमन्तव्या ब्राह्मणेन तु विशेषतः॥ २०

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता वै मूर्तिरात्मनः॥ २१

जन्मना पितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥ २२

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य तु सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते॥ २३

तेषां त्रयाणां शुश्रूषा परमं तप उच्यते।
न च तैरननुज्ञातो धर्ममन्यं समाचरेत्॥ २४

त एव हि त्रयो लोकास्त एव त्रय आश्रमाः।
त एव च त्रयो वेदास्तथैवोक्तास्त्रयोऽग्नयः॥ २५

पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माता दक्षिणतः स्मृतः।
गुरुराहवनीयश्च साग्नित्रेता गरीयसी॥ २६

यमराज बोले—विशालाक्षि! तुम्हारे इन धर्मयुक्त वचनोंसे मैं प्रसन्न हूँ, अतः सत्यवान‌्के प्राणोंके अतिरिक्त दूसरा वर माँग लो, देर न करो॥ १२॥

सावित्रीने कहा—विभो! मैं सौ सहोदर भाइयोंकी अभिलाषिणी हूँ। मेरे पिता पुत्रहीन हैं, अतः वे पुत्रलाभसे प्रसन्न हों। तब यमराजने सावित्रीसे कहा—'अनिन्दिते! तुम जैसे आयी हो, वैसे ही लौट जाओ तथा अपने पतिके और्ध्वदैहिक क्रियाओंके लिये यत्न करो। अब यह दूसरे लोकमें चला गया है, अतः तुम इसके पीछे नहीं चल सकती। चूँकि तुम पतिव्रता हो, अतः दो घड़ीतक और मेरे साथ चल सकती हो। भद्रे! सत्यवान‌्ने गुरुजनोंकी शुश्रूषा कर महान् पुण्य अर्जित किया है, अतः मैं स्वयं इसे ले जा रहा हूँ। सुन्दरि! विद्वान् पुरुषको माता, पिता तथा गुरुकी सेवामें सदा तत्पर रहना चाहिये। सत्यवान‌्ने वनमें इन तीनोंको अपनी शुश्रूषासे प्रसन्न किया है। शुभे! इसके साथ तुमने भी स्वर्गको जीत लिया है। शुभे! मनुष्य तपस्या, ब्रह्मचर्य तथा अग्नि और गुरुकी शुश्रूषासे स्वर्गको प्राप्त करते हैं, अतः विशेषरूपसे ब्राह्मणको आचार्य, पिता, माता तथा बड़े भाईका कभी अपमान नहीं करना चाहिये; क्योंकि आचार्य ब्रह्माका, पिता प्रजापतिका, माता पृथ्वीका और भाई अपना ही स्वरूप है। मनुष्यके जन्मके समय माता और पिता जो कष्ट सहन करते हैं, उसका बदला सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं चुकाया जा सकता। अतः मनुष्यको माता, पिता तथा आचार्यका सर्वदा प्रिय कार्य करना चाहिये; क्योंकि इन तीनोंके संतुष्ट होनेपर सभी तपस्याएँ सम्पन्न हो जाती हैं। इन तीनोंकी शुश्रूषा परम तपस्या कही गयी है, अतः उनकी आज्ञाके बिना किसी अन्य धर्मका आचरण नहीं करना चाहिये। वे ही तीनों लोक हैं, वे ही तीनों आश्रम हैं, वे ही तीनों वेद हैं तथा तीनों अग्नियाँ भी वे ही कहलाते हैं। पिता गार्हपत्याग्नि, माता दक्षिणाग्नि तथा गुरु आहवनीयाग्नि है। ये तीनों अग्नियाँ सर्वश्रेष्ठ हैं।

त्रिषु प्रमाद्यते नैषु त्रींल्लोकान् जयते गृही।
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद् दिवि मोदते॥ २७

जो गृहस्थ इन तीनों गुरुजनोंकी सेवामें कभी असावधानी नहीं करता, वह तीनों लोकोंको जीत लेता है और अपने शरीरसे देवताओंके समान देदीप्यमान होते हुए स्वर्गमें आनन्दका अनुभव करता है।

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे
भविष्यतीदं सकलं त्वयोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्या-
त्तथाधुना तेन तव ब्रवीमि॥ २८

भद्रे! तुम्हारा काम पूरा हो गया, अब तुम लौट जाओ। तुम्हारे द्वारा कही हुई वे सारी बातें पूर्ण होंगी। इस प्रकार हमारे पीछे आनेसे मेरे कार्यमें विघ्न पड़ता है और तुम्हें भी कष्ट हो रहा है, इसीलिये मैं इस समय तुमसे ऐसा कह रहा हूँ॥ २३—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने द्वितीयवरलाभो नामैकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २११॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें द्वितीय वरका लाभ नामक दो सौ ग्यारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २११॥

दो सौ बारहवाँ अध्याय

यमराज-सावित्री-संवाद तथा यमराजद्वारा सावित्रीको तृतीय वरदानकी प्राप्ति

सावित्र्युवाच

धर्मार्जने सुरश्रेष्ठ कुतो ग्लानिः क्लमस्तथा।
त्वत्पादमूलसेवा च परमं धर्मकारणम्॥ १
धर्मार्जनं तथा कार्यं पुरुषेण विजानता।
तल्लाभः सर्वलाभेभ्यो यदा देव विशिष्यते॥ २
धर्मश्चार्थश्च कामश्च त्रिवर्गो जन्मनः फलम्।
धर्महीनस्य कामार्थौ वन्ध्यासुतसमौ प्रभो॥ ३
धर्मादर्थस्तथा कामो धर्माल्लोकद्वयं तथा।
धर्म एकोऽनुयात्येनं यत्र क्वचनगामिनम्॥ ४
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति।
एको हि जायते जन्तुरेक एव विपद्यते॥ ५
धर्मस्तमनुयात्येको न सुहृन्न च बान्धवाः।
क्रिया सौभाग्यलावण्यं सर्वं धर्मेण लभ्यते॥ ६
ब्रह्मेन्द्रोपेन्द्रसर्वेन्दुयमार्काग्न्यनिलाम्भसाम्।
वस्वश्विधनदाद्यानां ये लोकाः सर्वकामदाः॥ ७
धर्मेण तानवाप्नोति पुरुषः पुरुषान्तक।
मनोहराणि द्वीपानि वर्षाणि सुसुखानि च॥ ८
प्रयान्ति धर्मेण नरास्तथैव नरगण्डिकाः।
नन्दनादीनि मुख्यानि देवोद्यानानि यानि च॥ ९
तानि पुण्येन लभ्यन्ते नाकपृष्ठं तथा नरैः।
विमानानि विचित्राणि तथैवाप्सरसः शुभाः॥ १०

सावित्रीने कहा—देवश्रेष्ठ! धर्मोपार्जनके कार्यमें कैसी ग्लानि और कैसा कष्ट? आपके चरणमूलकी सेवा ही परम धर्मका कारण है। देव! ज्ञानी पुरुषको सर्वदा धर्मोपार्जन करना चाहिये; क्योंकि उसका लाभ सभी लाभोंसे विशेष महत्त्वपूर्ण है। प्रभो! धर्म, अर्थ और काम—ये तीनों एक साथ संसारमें जन्म लेनेके फल हैं; क्योंकि धर्महीन पुरुषके अर्थ और काम वन्ध्याके पुत्रकी भाँति निष्फल हैं। धर्मसे अर्थ और कामकी प्राप्ति होती है तथा धर्मसे ही दोनों लोक सिद्ध होते हैं। जहाँ-कहीं भी जानेवाले प्राणीके पीछे अकेले धर्म ही जाता है। अन्य सभी वस्तुएँ शरीरके साथ ही नष्ट हो जाती हैं। प्राणी अकेला ही पैदा होता है और अकेला ही मरकर जाता है। एक धर्म ही उसके पीछे-पीछे जाता है, मित्र एवं भाई-बन्धु कोई भी साथ नहीं देता। कार्योंमें सफलता, सौभाग्य और सौन्दर्य आदि सब कुछ धर्मसे ही प्राप्त होते हैं। पुरुषान्तक! ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, शिव, चन्द्रमा, यम, सूर्य, अग्नि, वायु, वरुण, वसुगण, अश्विनीकुमार एवं कुबेर आदि देवताओंके जो सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले लोक हैं, उन सबको मनुष्य धर्मके द्वारा ही प्राप्त करता है। मनुष्य मनोहर द्वीपों एवं सुखदायी वर्षोंको धर्मके द्वारा ही प्राप्त करते हैं। देवताओंके जो नन्दनादि मुख्य उद्यान हैं, वे भी मनुष्योंको पुण्यसे ही प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार स्वर्ग, विचित्र विमान और सुन्दर अप्सराएँ पुण्यसे ही प्राप्त होती हैं॥ १—१०॥

तैजसानि शरीराणि सदा पुण्यवतां फलम्।
राज्यं नृपतिपूजा च कामसिद्धिस्तथेप्सिता॥ ११
संस्काराणि च मुख्यानि फलं पुण्यस्य दृश्यते।
रुक्मवैदूर्यदण्डानि चण्डांशुसदृशानि च॥ १२
चामराणि सुराध्यक्ष भवन्ति शुभकर्मणाम्।
पूर्णेन्दुमण्डलाभेन रत्नांशुकविकासिना॥ १३
धार्यतां याति च्छत्रेण नरः पुण्येन कर्मणा।
जयशङ्खस्वरौघेण सूतमागधनिःस्वनैः॥ १४
वरासनं सभृङ्गारं फलं पुण्यस्य कर्मणः।
वरान्नपानं गीतं च भृत्यमाल्यानुलेपनम्॥ १५
रत्नवस्त्राणि मुख्यानि फलं पुण्यस्य कर्मणः।
रूपौदार्यगुणोपेताः स्त्रियश्चातिमनोहराः॥ १६
वासाः प्रासादपृष्ठेषु भवन्ति शुभकर्मिणाम्।
सुवर्णकिङ्किणीमिश्रचामरापीडधारिणः॥ १७
वहन्ति तुरगा देव नरं पुण्येन कर्मणा।
हैमकक्षैश्च मातङ्गैश्चलत्पर्वतसंनिभैः॥ १८
खेलद्भिः पादविन्यासैर्यान्ति पुण्येन कर्मणा।
सर्वकामप्रदे देव सर्वाघदुरितापहे॥ १९
वहन्ति भक्तिं पुरुषः सदा पुण्येन कर्मणा।
तस्य द्वाराणि यजनं तपो दानं दमः क्षमा॥ २०
ब्रह्मचर्यं तथा सत्यं तीर्थानुसरणं शुभम्।
स्वाध्यायसेवा साधूनां सहवासः सुरार्चनम्॥ २१
गुरूणां चैव शुश्रूषा ब्राह्मणानां च पूजनम्।
इन्द्रियाणां जयश्चैव ब्रह्मचर्यममत्सरम्॥ २२
तस्माद् धर्मः सदा कार्यो नित्यमेव विजानता।
न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वाकृतम्॥ २३
बाल एव चरेद् धर्ममनित्यं देव जीवितम्।
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युरेवा पतिष्यति॥ २४
पश्यतोऽप्यस्य लोकस्य मरणं पुरतः स्थितम्।
अमरस्येव चरितमत्याश्चर्य सुरोत्तम॥ २५
युवत्वापेक्षया बालो वृद्धत्वापेक्षया युवा।
मृत्युरुत्सङ्गमारूढः स्थविरः किमपेक्षते॥ २६

पुण्यशाली मनुष्योंके तेजस्वी शरीर पुण्यके ही फल हैं। राज्यकी प्राप्ति, राजाओंद्वारा सम्मान, अभीष्ट मनोरथोंकी सिद्धि तथा मुख्य संस्कार—ये सभी पुण्यके ही फल देखे जाते हैं। देवाध्यक्ष! पुण्यवान् पुरुषोंके चँवर सुवर्ण तथा वैदूर्यके बने हुए डंडेवाले तथा सूर्यके समान तेजोमय होते हैं। पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलके समान कान्तिमान् एवं रत्नजटित वस्त्रसे सुशोभित छत्र मनुष्यको पुण्य कर्मसे ही प्राप्त होता है। विजयकी सूचना देनेवाले शङ्ख-स्वरों तथा मागध-बन्दियोंकी माङ्गलिक ध्वनियोंके साथ अभिषेक-पात्रसहित श्रेष्ठ सिंहासनका प्राप्त होना पुण्यकर्मका ही फल है। उत्तम अन्न, जल, गीत, अनुचर, मालाएँ, चन्दन, रत्न तथा बहुमूल्य वस्त्र—ये सब पुण्यकर्मोंके फल हैं। सुन्दरता और औदार्य गुणोंसे युक्त अतिशय मनोहर स्त्रियाँ और उच्च महलोंपर निवास शुभ कर्मियोंको प्राप्त होते हैं। देव! मस्तकपर स्वर्णकी घंटियोंसे युक्त चमर धारण करनेवाले घोड़े पुण्यकर्मसे ही मनुष्यको वहन करते हैं। चलते हुए पर्वतोंके समान, सुवर्णनिर्मित अम्बारीसे सुशोभित तथा चञ्चल पादविन्याससे युक्त हाथियोंकी सवारी पुण्यकर्मके प्रभावसे ही प्राप्त होती है। देव! सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले एवं सभी पापोंको दूर करनेवाले स्वर्गमें पुरुष सदा पुण्यकर्मोंके प्रभावसे ही भक्ति प्राप्त करते हैं। उसकी प्राप्तिके उपाय हैं—यज्ञ, तप, दान, इन्द्रियनिग्रह, क्षमाशीलता, ब्रह्मचर्य, सत्य, शुभदायक तीर्थोंकी यात्रा, स्वाध्याय, सेवा, सत्पुरुषोंकी संगति, देवार्चन, गुरुजनोंकी शुश्रूषा, ब्राह्मणोंकी पूजा, इन्द्रियोंको वशमें रखना तथा मत्सररहित ब्रह्मचर्य। इसलिये विद्वान् पुरुषको सर्वदा धर्माचरण करना चाहिये; क्योंकि मृत्यु इसकी प्रतीक्षा नहीं करती कि इसने अपना कार्य पूरा किया अथवा नहीं। देव! मनुष्यको बाल्यावस्थासे ही धर्माचरण करना चाहिये; क्योंकि यह जीवन नश्वर है। यह कौन जानता है कि आज किसकी मृत्यु हो जायगी। सुरोत्तम! इस जीवके देखते हुए भी मृत्यु सामने खड़ी रहती है, फिर भी वह मृत्युरहितकी भाँति आचरण करता है—यह महान् आश्चर्य है। युवककी अपेक्षा बालक और वृद्धकी अपेक्षा युवक अपनेको मृत्युसे दूर मानता है, किंतु मृत्युकी गोदमें बैठा हुआ वृद्ध किसकी अपेक्षा करता है।

तत्रापि विन्दतस्त्राणं मृत्युना तस्य का गतिः।
न भयं मरणं चैव प्राणिनामभयं क्वचित्।
तत्रापि निर्भयाः सन्तः सदा सुकृतकारिणः॥ २७

यम उवाच

तुष्टोऽस्मि ते विशालाक्षि वचनैर्धर्मसंगतैः।
विना सत्यवतः प्राणान् वरं वरय मा चिरम्॥ २८

सावित्र्युवाच

वरयामि त्वया दत्तं पुत्राणां शतमौरसम्।
अनपत्यस्य लोकेषु गतिः किल न विद्यते॥ २९

यम उवाच

कृतेन कामेन निवर्त भद्रे
भविष्यतीदं सफलं यथोक्तम्।
ममोपरोधस्तव च क्लमः स्यात्
तथाधुना तेन तव ब्रवीमि॥ ३०

इतनेपर भी जो मृत्युसे रक्षाके उपाय सोचते हैं, उनकी क्या गति होगी? प्राणधारियोंको इस जगत्‌में केवल मृत्युसे भय ही नहीं है, उनके लिये कहीं अभयस्थान भी नहीं है। तथापि पुण्यवान् सत्पुरुष सर्वदा निर्भय होकर संसारमें जीवित रहते हैं॥ ११—२७॥

यमराज बोले— विशालाक्षि! तुम्हारी इन धर्मयुक्त बातोंसे मैं विशेष संतुष्ट हूँ, अतः तुम सत्यवान्‌के प्राणोंके अतिरिक्त अन्य वर माँग लो, देर मत करो॥ २८॥

सावित्रीने कहा— देव! मैं आपसे अपनी कोखसे उत्पन्न होनेवाले सौ पुत्रोंका वरदान माँगती हूँ; क्योंकि लोकोंमें पुत्रहीनकी सद्गति नहीं होती॥ २९॥

यमराज बोले— भद्रे! अब तुम शेष अभीष्ट कामनाको छोड़कर लौट जाओ, तुम्हारी यह याचना भी सफल होगी। इस प्रकार तुम्हारे अनुगमनसे मेरे कार्योंमें विघ्न होगा और तुम्हें भी कष्ट होगा, इसीलिये मैं तुमसे इस समय ऐसा कह रहा हूँ॥ ३०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने तृतीयवरलाभो नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें तृतीय वर-लाभ नामक दो सौ बारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१२॥

दो सौ तेरहवाँ अध्याय

सावित्रीकी विजय और सत्यवान्‌की बन्धन-मुक्ति

सावित्र्युवाच

धर्माधर्मविधानज्ञ सर्वधर्मप्रवर्तक।
त्वमेव जगतो नाथः प्रजासंयमनो यमः॥ १
कर्मणामनुरूपेण यस्माद् यमयसे प्रजाः।
तस्माद् वै प्रोच्यसे देव यम इत्येव नामतः॥ २
धर्मेणेमाः प्रजाः सर्वा यस्माद् रञ्जयसे प्रभो।
तस्मात् ते धर्मराजेति नाम सद्भिर्निगद्यते॥ ३
सुकृतं दुष्कृतं चोभे पुरोधाय यदा जनाः।
त्वत्सकाशं मृता यान्ति तस्मात् त्वं मृत्युरुच्यते॥ ४
कालं कलार्धं कलयन् सर्वेषां त्वं हि तिष्ठसि।
तस्मात् कालेति ते नाम प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः॥ ५
सर्वेषामेव भूतानां यस्मादन्तकरो महान्।
तस्मात् त्वमन्तकः प्रोक्तः सर्वदेवैर्महाद्युते॥ ६

सावित्रीने कहा— धर्म-अधर्मके विधानको जाननेवाले एवं सभी धर्मोंके प्रवर्तक देव! आप ही जगत्‌के स्वामी तथा प्रजाओंका नियमन करनेवाले यम हैं। देव! चूँकि आप कर्मोंके अनुरूप प्रजाओंका नियमन करते हैं, इसलिये 'यम' नामसे पुकारे जाते हैं। प्रभो! चूँकि आप धर्मपूर्वक इस सारी प्रजाको आनन्दित करते हैं, इसीलिये सत्पुरुष आपको धर्मराज नामसे पुकारते हैं। लोग मरनेपर अपने सत्-असत्—दोनों प्रकारके कर्मोंको अपने आगे रखकर आपके समीप जाते हैं, इसलिये आप मृत्यु कहलाते हैं। आप सभी प्राणियोंके क्षण, कला आदिसे कालकी गणना करते रहते हैं, इसीलिये तत्त्वदर्शी लोग आपको 'काल' नामसे पुकारते हैं। महादीप्तिसम्पन्न! चूँकि आप संसारके सभी चराचर जीवोंके महान् अन्तकर्ता हैं, इसीलिये आप सभी देवताओंद्वारा 'अन्तक' कहे जाते हैं।

विवस्वतस्त्वं तनयः प्रथमं परिकीर्तितः।
तस्माद् वैवस्वतो नाम्ना सर्वलोकेषु कथ्यसे॥ ७
आयुष्ये कर्मणि क्षीणे गृह्णासि प्रसभं जनम्।
तदा त्वं कथ्यसे लोके सर्वप्राणहरेति वै॥ ८
तव प्रसादाद् देवेश त्रयीधर्मो न नश्यति।
तव प्रसादाद् देवेश धर्मे तिष्ठन्ति जन्तवः।
तव प्रसादाद् देवेश संकरो न प्रजायते॥ ९
सतां सदा गतिर्देव त्वमेव परिकीर्तितः।
जगतोऽस्य जगन्नाथ मर्यादापरिपालकः॥ १०
पाहि मां त्रिदशश्रेष्ठ दुःखितां शरणागताम्।
पितरौ च तथैवास्य राजपुत्रस्य दुःखितौ॥ ११

आप विवस्वान्‌के प्रथम पुत्र कहे गये हैं, अतः सम्पूर्ण विश्वमें वैवस्वत नामसे कहे जाते हैं। आयुकर्मके क्षीण हो जानेपर आप लोगोंको हठात् पकड़ लेते हैं, इसी कारण लोकमें सर्वप्राणहर नामसे कहे जाते हैं। देवेश! आपकी कृपासे ऋक्, साम और यजुः—इन तीनों वेदोंद्वारा प्रतिपादित धर्मका विनाश नहीं होता। देवेश! आपकी महिमासे सभी प्राणी अपने-अपने धर्मोंमें स्थित रहते हैं। देवेश! आपकी सत्कृपासे वर्णसंकर संततिकी उत्पत्ति नहीं होती। देव! आप ही सदा सत्पुरुषोंकी गति बतलाये गये हैं। जगन्नाथ! आप इस जगत्‌की मर्यादाका पालन करनेवाले हैं। देवताओंमें श्रेष्ठ! अपनी शरणमें आयी हुई मुझ दुखियाकी रक्षा कीजिये। इस राजपुत्रके माता-पिता भी दुःखी हैं॥१—११॥

यम उवाच

स्तवेन भक्त्या धर्मज्ञे मया तुष्टेन सत्यवान्।
तव भर्त्ता विमुक्तोऽयं लब्धकामा व्रजाबले॥ १२
राज्यं कृत्वा त्वया सार्धं वर्षाणां शतपञ्चकम्।
नाकपृष्ठमथारुह्य त्रिदशैः सह रंस्यते॥ १३
त्वयि पुत्रशतं चापि सत्यवान् जनयिष्यति।
ते चापि सर्वे राजानः क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः॥ १४
मुख्यास्त्वन्नाम पुत्रस्ते भविष्यन्ति हि शाश्वताः।
पितुश्च ते पुत्रशतं भविता तव मातरि॥ १५
मालव्यां मालवा नाम शाश्वताः पुत्रपौत्रिणः।
भ्रातरस्ते भविष्यन्ति क्षत्रियास्त्रिदशोपमाः॥ १६
स्तोत्रेणानेन धर्मज्ञे कल्यमुत्थाय यस्तु माम्।
कीर्तयिष्यति तस्यापि दीर्घमायुर्भविष्यति॥ १७

यमराज बोले— धर्मज्ञे! तुम्हारी स्तुति तथा भक्तिसे संतुष्ट होकर मैंने तुम्हारे पति इस सत्यवान्‌को विमुक्त कर दिया है। अबले! अब तुम सफलमनोरथ होकर लौट जाओ। यह सत्यवान् तुम्हारे साथ पाँच सौ वर्षोंतक राज्य-सुख भोगकर अन्तकालमें स्वर्गलोकमें जायगा और देवताओंके साथ विहार करेगा। सत्यवान् तुम्हारे गर्भसे सौ पुत्रोंको भी उत्पन्न करेगा, वे सब-के-सब देवताओंके समान तेजस्वी तथा क्षत्रिय राजा होंगे। वे चिरकालतक जीवित रहते हुए तुम्हारे ही नामसे प्रसिद्ध होंगे। तुम्हारे पिताको भी तुम्हारी माताके गर्भसे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे। वे तुम्हारे भाई मालवा (मध्यदेश)-में उत्पन्न होनेके कारण मालव नामसे विख्यात होंगे और चिरकालतक जीवित रहते हुए पुत्र-पौत्रादिसे युक्त होंगे तथा देवताओंके समान ऐश्वर्यसम्पन्न एवं क्षत्रियोचित गुणोंका पालन करेंगे। धर्मज्ञे! जो कोई पुरुष प्रातःकाल उठकर इस स्तोत्रद्वारा मेरा स्तवन करेगा, उसकी भी आयु दीर्घ होगी॥१२—१७॥

मत्स्य उवाच

एतावदुक्त्वा भगवान् यमस्तु
प्रमुच्य तं राजसुतं महात्मा।
अदर्शनं तत्र यमो जगाम
कालेन सार्धं सह मृत्युना च॥ १८

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! इतनी बातें कहकर ऐश्वर्यशाली महात्मा यमराज उस राजपुत्र सत्यवान्‌को छोड़कर काल तथा मृत्युके साथ वहीं अदृश्य हो गये॥१८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्याने यमस्तुतिसत्यवज्जीवितलाभो नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके सावित्री-उपाख्यानमें यमस्तुति और सत्यवान्‌का जीवन-लाभ नामक दो सौ तेरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१३॥

दो सौ चौदहवाँ अध्याय

सत्यवान्‌को जीवनलाभ तथा पत्नीसहित राजाको नेत्रज्योति एवं राज्यकी प्राप्ति

मत्स्य उवाच

सावित्री तु ततः साध्वी जगाम वरवर्णिनी।
पथा यथागतेनैव यत्रासीत् सत्यवान् मृतः॥ १
सा समासाद्य भर्तारं तस्योत्सङ्गगतं शिरः।
कृत्वा विवेश तन्वङ्गी लम्बमाने दिवाकरे॥ २
सत्यवानपि निर्मुक्तो धर्मराजाच्छनैः शनैः।
उन्मीलयत नेत्राभ्यां प्रास्फुरच्च नराधिप॥ ३
ततः प्रत्यागतप्राणः प्रियां वचनमब्रवीत्।
क्वासौ प्रयातः पुरुषो यो मामप्यपकर्षति॥ ४
न जानामि वरारोहे कश्चासौ पुरुषः शुभे।
वनेऽस्मिंश्चारुसर्वाङ्गि सुप्तस्य च दिनं गतम्॥ ५
उपवासपरिश्रान्ता दुःखिता भवती मया।
अस्मद्दुर्हृदयेनाद्य पितरौ दुःखितौ तथा।
द्रष्टुमिच्छाम्यहं सुभ्रु गमने त्वरिता भव॥ ६

सावित्र्युवाच

आदित्योऽस्तमनुप्राप्तो यदि ते रुचितं प्रभो।
आश्रमं तु प्रयास्यावः श्वशुरौ हीनचक्षुषौ॥ ७
यथावृत्तं च तत्रैव तव वक्ष्ये यथाश्रमे।
एतावदुक्त्वा भर्तारं सह भर्त्रा तदा ययौ॥ ८
आससादाश्रमं चैव सह भर्त्रा नृपात्मजा।
एतस्मिन्नेव काले तु लब्धचक्षुर्महीपतिः॥ ९
द्युमत्सेनः सभार्यस्तु पर्यतप्यत भार्गव।
प्रियं पुत्रमपश्यन् वै स्नुषां चैवाथ कर्शिताम्॥ १०
आश्वास्यमानस्तु तथा स तु राजा तपोधनैः।
ददर्श पुत्रमायान्तं स्नुषया सह काननात्॥ ११
सावित्री तु वरारोहा सह सत्यवता तदा।
ववन्दे तत्र राजानं सभार्यं क्षत्रपुंगवम्॥ १२
परिष्वक्तस्तदा पित्रा सत्यवान् राजनन्दनः।
अभिवाद्य ततः सर्वान् वने तस्मिंस्तपोधनान्॥ १३
उवास तत्र तां रात्रिमृषिभिः सर्वधर्मवित्।
सावित्र्यपि जगादाथ यथावृत्तमनिन्दिता॥ १४

मत्स्यभगवान्‌ने कहा— तदनन्तर पतिव्रता सुन्दरी सावित्री वहाँसे जिस मार्गसे गयी थी, उसी मार्गसे लौटकर उस स्थानपर आयी, जहाँ सत्यवान्‌का मृत शरीर पड़ा हुआ था। तब कृशाङ्गी सावित्री पतिके निकट जाकर उसके सिरको अपनी गोदमें रखकर पूर्ववत् बैठ गयी। उस समय भगवान् भास्कर अस्ताचलको जा रहे थे। नरेश्वर! धर्मराजसे मुक्त हुए सत्यवान्‌ने भी धीरे-धीरे आँखें खोली और अँगड़ाई ली। तत्पश्चात् प्राणोंके लौट आनेपर उसने अपनी स्त्री सावित्रीसे इस प्रकार कहा—'वह पुरुष कहाँ चला गया, जो मुझे खींचकर लिये जा रहा था। सुन्दरि! मैं नहीं जानता कि वह पुरुष कौन था! सर्वाङ्गसुन्दरि! इस वनमें सोते हुए मेरा पूरा दिन बीत गया और शुभे! तुम भी उपवाससे परिश्रान्त एवं दुःखी हुई तथा मुझ-जैसे दुष्टसे आज माता-पिताको भी दुःख भोगना पड़ा। सुन्दर भौंहोंवाली! मैं उन्हें देखना चाहता हूँ, चलो, जल्दी चलो'॥ १—६॥

सावित्री बोली— प्रभो! सूर्य तो अस्त हो गये। पर यदि आपको पसंद हो तो हमलोग आश्रमको लौट चलें; क्योंकि मेरे सास-श्वशुर अंधे हैं। मैं वहीं आश्रममें वह सब घटित हुआ वृत्तान्त आपको बतलाऊँगी। सावित्री उस समय पतिसे ऐसा कहकर पतिके साथ ही चल पड़ी और वह राजकुमारी पतिके साथ आश्रमपर आ पहुँची। भार्गव! इसी समय पत्नीसहित द्युमत्सेनको नेत्र-ज्योति प्राप्त हो गयी। वे अपने प्रिय पुत्र और दुबली-पतली पुत्रवधूको न देखकर दुःखी हो रहे थे। उस समय तपस्वी ऋषि राजाको सान्त्वना दे रहे थे। इतनेमें ही उन्होंने पुत्रवधूके साथ पुत्रको वनसे आते हुए देखा। उस समय सुन्दरी सावित्रीने सत्यवान्‌के साथ सपत्नीक क्षत्रियश्रेष्ठ राजा द्युमत्सेनको प्रणाम किया। पिताने राजकुमार सत्यवान्‌को गले लगाया। तब सभी धर्मोंको जाननेवाले सत्यवान्‌ने उस वनमें निवास करनेवाले तपस्वियोंको अभिवादनकर रातमें ऋषियोंके साथ वहीं निवास किया। उस समय अनिन्दितचरित्रा सावित्रीने जैसी घटना घटित हुई थी,

व्रतं समापयामास तस्यामेव तदा निशि।
ततस्तूर्यैस्त्रियामान्ते ससैन्यस्तस्य भूपतेः॥ १५
आजगाम जनः सर्वो राज्यार्थाय निमन्त्रणे।
विज्ञापयामास तदा तत्र प्रकृतिशासनम्॥ १६
विचक्षुषस्ते नृपते येन राज्यं पुरा हृतम्।
अमात्यैः स हतो राजा भवांस्तस्मिन् पुरे नृपः॥ १७
एतच्छ्रुत्वा ययौ राजा बलेन चतुरङ्गिणा।
लेभे च सकलं राज्यं धर्मराजान्महात्मनः॥ १८
भ्रातृणां तु शतं लेभे सावित्र्यपि वराङ्गना।
एवं पतिव्रता साध्वी पितृपक्षं नृपात्मजा॥ १९
उज्जहार वरारोहा भर्तृपक्षं तथैव च।
मोक्षयामास भर्तारं मृत्युपाशवशं गतम्॥ २०
तस्मात् साध्व्यः स्त्रियः पूज्याः सततं देववन्नरैः।
तासां राजन् प्रसादेन धार्यते वै जगत्त्रयम्॥ २१
तासां तु वाक्यं भवतीह मिथ्या
न जातु लोकेषु चराचरेषु।
तस्मात् सदा ताः परिपूजनीयाः
कामान् समग्रानभिकामयानैः॥ २२
यश्चेदं शृणुयान्नित्यं सावित्र्याख्यानमुत्तमम्।
स सुखी सर्वसिद्धार्थो न दुःखं प्राप्नुयान्नरः॥ २३

उसका वर्णन किया और उसी रातमें अपने व्रतको भी समाप्त किया। तदनन्तर तीन पहर बीत चुकनेपर राजाकी सारी प्रजा सेनासहित तुरुही आदि बाजोंको बजाते हुए राजाको पुनः राज्य करनेके लिये निमन्त्रण देने आयी और यह सूचना दी कि राज्यमें आपका शासन अब पूर्ववत् हो। राजन्! नेत्रहीन होनेके कारण जिस राजाने आपके राज्यको छीन लिया था, वह राजा मन्त्रियोंद्वारा मार डाला गया। अब उस नगरमें आप ही राजा हैं। यह सुनकर राजा चतुरंगिणी सेनाके साथ वहाँ गये और महात्मा धर्मराजकी कृपासे पुनः अपने सम्पूर्ण राज्यको प्राप्त किये। सुन्दरी सावित्रीने भी सौ भाइयोंको प्राप्त किया। इस प्रकार साध्वी पतिव्रता सुन्दरी राजकुमारी सावित्रीने अपने पितृपक्ष तथा पतिपक्ष—दोनोंका उद्धार किया और मृत्युके पाशमें बँधे हुए अपने पतिको मुक्त किया॥ ७—२०॥

राजन्! इसलिये मनुष्योंको सदा साध्वी स्त्रियोंकी देवताओंके समान पूजा करनी चाहिये; क्योंकि उनकी कृपासे ये तीनों लोक स्थित हैं। उन पतिव्रता स्त्रियोंके वाक्य इस चराचर जगत्में कभी भी मिथ्या नहीं होते, इसलिये सभी मनोरथोंकी कामना करनेवालोंको सर्वदा इनकी पूजा करनी चाहिये। जो मनुष्य सावित्रीके इस सर्वोत्तम आख्यानको नित्य सुनता है, वह सभी प्रयोजनोंमें सफलता प्राप्तकर सुखका अनुभव करता है और कभी भी दुःखका भागी नहीं होता॥ २१—२३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे सावित्र्युपाख्यानसमाप्तिर्नाम चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें सावित्री-उपाख्यान-समाप्ति नामक दो सौ चौदहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१४॥

दो सौ पंद्रहवाँ अध्याय*

राजाका कर्तव्य, राजकर्मचारियोंके लक्षण तथा राजधर्मका निरूपण

मनुरुवाच

राज्ञोऽभिषिक्तमात्रस्य किं नु कृत्यतमं भवेत्।
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व सम्यग्वेत्ति यतो भवान्॥ १

मत्स्य उवाच

अभिषेकार्द्रशिरसा राज्ञा राज्यावलोकिना।
सहायवरणं कार्यं तत्र राज्यं प्रतिष्ठितम्॥ २

मनुने पूछा—भगवन्! अभिषेक होनेके बाद राजाको तुरंत कौन-सा कर्म करना आवश्यक है? वह सब मुझे बतलाइये; क्योंकि आप इसे अच्छी तरह जानते हैं॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! राज्यकी रक्षा करनेवाले राजाको चाहिये कि वह अभिषेकके जलसे सिरके भीगते ही सहायकों (मन्त्रियों)-की नियुक्ति करे; क्योंकि राज्य उन्हींपर प्रतिष्ठित रहता है।

* माण्डेश्वरादिके 'राजनीतिरत्नाकर' आदि संग्रह बड़े श्रेष्ठ हैं। वे रामायण, महाभारत तथा पुराणादिसे ही संगृहीत हैं। उनमें भी मत्स्यपुराणोक्त इस राजनीतिप्रकरणका स्थान श्रेष्ठतर है, अतः यह अंश आजके राजनेताओंके लिये विशेष मननीय है।

यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्।
पुरुषेणासहायेन किमु राज्यं महोदयम्॥ ३
तस्मात् सहायान् वरयेत् कुलीनान् नृपतिः स्वयम्।
शूरान् कुलीनजातीयान् बलयुक्ताञ्छ्रियान्वितान्॥ ४
रूपसत्त्वगुणोपेतान् सज्जनान् क्षमयान्वितान्।
क्लेशक्षमान् महोत्साहान् धर्मज्ञांश्च प्रियंवदान्॥ ५
हितोपदेशकालज्ञान् स्वामिभक्तान् यशोऽर्थिनः।
एवंविधान् सहायांश्च शुभकर्मसु योजयेत्॥ ६
गुणहीनानपि तथा विज्ञाय नृपतिः स्वयम्।
कर्मस्वेव नियुञ्जीत यथायोग्येषु भागशः॥ ७
कुलीनः शीलसम्पन्नो धनुर्वेदविशारदः।
हस्तिशिक्षाश्वशिक्षासु कुशलः श्लक्ष्णभाषितः॥ ८
निमित्ते शकुनज्ञाने वेत्ता चैव चिकित्सिते।
कृतज्ञः कर्मणां शूरस्तथा क्लेशसहस्त्वृजुः॥ ९
व्यूहतत्त्वविधानज्ञः फल्गुसारविशेषवित्।
राज्ञा सेनापतिः कार्यो ब्राह्मणः क्षत्रियोऽथवा॥ १०

जो छोटे-से-छोटा भी कार्य होता है, वह भी सहायकरहित अकेले व्यक्तिके लिये दुष्कर होता है, फिर राज्य-जैसे महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्यके लिये तो कहना ही क्या है? इसलिये राजाको चाहिये कि जो उत्तम कुलमें उत्पन्न, शूर, उच्च जातिमें उत्पन्न, बलवान्, श्रीसम्पन्न, रूपवान्, सत्त्वगुणसे युक्त, सज्जन, क्षमाशील, कष्टसहिष्णु, महोत्साही, धर्मज्ञ, प्रियभाषी, हितोपदेशके कालका ज्ञाता, स्वामिभक्त तथा यशके अभिलाषी हों, ऐसे सहायकोंका स्वयं वरण करके उन्हें माङ्गलिक कर्मोंमें नियुक्त करे। उसी प्रकार स्वयं राजाको कुछ गुणहीन सहायकोंको भी जान-बूझकर उन्हें यथायोग्य कार्योंमें विभागपूर्वक नियुक्त करना चाहिये। राजाको उत्तम कुलोत्पन्न, शीलवान्, धनुर्वेदमें प्रवीण, हाथी और अश्वकी शिक्षामें कुशल, मृदुभाषी, शकुन और अन्यान्य शुभाशुभ कारणों तथा ओषधियोंको जाननेवाला, कृतज्ञ, शूरतामें प्रवीण, कष्टसहिष्णु, सरल, व्यूह-रचनाके विधानको जाननेवाला, निस्तत्त्व एवं सारतत्त्वका विशेषज्ञ, ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय पुरुषको सेनापति-पदपर नियुक्त करना चाहिये॥ ३—१०॥

प्रांशुः सुरूपो दक्षश्च प्रियवादी न चोद्धतः।
चित्तग्राहश्च सर्वेषां प्रतीहारो विधीयते॥ ११
यथोक्तवादी दूतः स्याद् देशभाषाविशारदः।
शक्तः क्लेशसहो वाग्मी देशकालविभागवित्॥ १२
विज्ञातदेशकालश्च दूतः स स्यान्महीक्षितः।
वक्ता नयस्य यः काले स दूतो नृपतेर्भवेत्॥ १३
प्रांशवो व्यायताः शूरा दृढभक्ता निराकुलाः।
राज्ञा तु रक्षिणः कार्याः सदा क्लेशसहा हिताः॥ १४
अनाहार्योऽनृशंसश्च दृढभक्तिश्च पार्थिवे।
ताम्बूलधारी भवति नारी वाप्यथ तद्गुणा॥ १५
षाड्गुण्यविधितत्त्वज्ञो देशभाषाविशारदः।
सांधिविग्रहिकः कार्यो राज्ञा नयविशारदः॥ १६
कृताकृतज्ञो भृत्यानां ज्ञेयः स्याद् देशरक्षिता।
आयव्ययज्ञो लोकज्ञो देशोत्पत्तिविशारदः॥ १७

ऊँचे कदवाला, सौन्दर्यशाली, कार्यकुशल, प्रियवक्ता, गम्भीर तथा सबके चित्तको आकर्षित करनेवालेको प्रतिहारी बनानेका विधान है। जो सत्यवादी, देशी भाषामें प्रवीण, सामर्थ्यशाली, सहिष्णु, वक्ता, देश-कालके विभागको जाननेवाला, देश-कालका जानकार तथा मौकेपर नीतिकी बातें कहनेवाला हो, वह राजाका दूत हो सकता है। जो लम्बे कदवाले, कम सोनेवाले, शूर, दृढ़ भक्ति रखनेवाले, धैर्यवान्, कष्टसहिष्णु और हितैषी हों, ऐसे पुरुषोंको राजाद्वारा अङ्गरक्षाके कार्यमें नियुक्त किया जाना चाहिये। जो दूसरोंद्वारा बहकाया न जा सके, दुष्ट स्वभावका न हो, राजामें अगाध भक्ति रखता हो—ऐसा पुरुष ताम्बूलधारी हो सकता है, अथवा ऐसे गुणवाली स्त्री भी नियुक्त की जा सकती है। राजाको नीति शास्त्रके छः गुणोंके तत्त्वोंको जाननेवाले, देशी भाषामें प्रवीण एवं नीतिनिपुणको सन्धि-विग्राहिक बनाना चाहिये। भृत्योंके कृत-अकृत कार्योंको जाननेवाले, आय-व्ययके ज्ञाता, लोकका जानकार और देशोत्पत्तिमें निपुण पुरुषको देशरक्षक बनाना चाहिये।

सुरूपस्तरुणः प्रांशुर्दृढभक्तिः कुलोचितः।
शूरः क्लेशसहश्चैव खड्गधारी प्रकीर्त्तितः॥ १८

शूरश्च बलयुक्तश्च गजाश्वरथकोविदः।
धनुर्धारी भवेद् राज्ञः सर्वक्लेशसहः शुचिः॥ १९

निमित्तशकुनज्ञानी हयशिक्षाविशारदः।
हयायुर्वेदतत्त्वज्ञो भुवो भागविचक्षणः॥ २०

बलाबलज्ञो रथिनः स्थिरदृष्टिः प्रियंवदः।
शूरश्च कृतविद्यश्च सारथिः परिकीर्त्तितः॥ २१

अनाहार्यः शुचिर्दक्षश्चिकित्सितविदां वरः।
सूपशास्त्रविशेषज्ञः सूदाध्यक्षः प्रशस्यते॥ २२

सूदशास्त्रविधानज्ञाः पराभेद्याः कुलोद्गताः।
सर्वे महानसे धार्याः कृत्तकेशनखा नराः॥ २३

समः शत्रौ च मित्रे च धर्मशास्त्रविशारदः।
विप्रमुख्यः कुलीनश्च धर्माधिकरणो भवेत्॥ २४

कार्यास्तथाविधास्तत्र द्विजमुख्याः सभासदः।
सर्वदेशाक्षराभिज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः॥ २५

लेखकः कथितो राज्ञः सर्वाधिकरणेषु वै।
शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान्॥ २६

अक्षरान् वै लिखेद् यस्तु लेखकः स वरः स्मृतः।
उपायवाक्यकुशलः सर्वशास्त्रविशारदः॥ २७

बह्वर्थवक्ता चाल्पेन लेखकः स्यान्नृपोत्तम।
वाक्याभिप्रायतत्त्वज्ञो देशकालविभागवित्॥ २८

अनाहार्यो भवेत्सक्तो लेखकः स्यान्नृपोत्तम।
पुरुषान्तरतत्त्वज्ञाः प्रांशवश्चाप्यलोलुपाः॥ २९

धर्माधिकारिणः कार्या जना दानकरा नराः।
एवंविधास्तथा कार्या राज्ञा दौवारिका जनाः॥ ३०

लोहवस्त्राजिनादीनां रत्नानां च विधानवित्।
विज्ञाता फल्गुसाराणामनाहार्यः शुचिः सदा॥ ३१

निपुणश्चाप्रमत्तश्च धनाध्यक्षः प्रकीर्त्तितः॥ ३२

आयद्वारेषु सर्वेषु धनाध्यक्षसमा नराः।
व्ययद्वारेषु च तथा कर्तव्याः पृथिवीक्षिता॥ ३३

सुन्दर आकृतिवाले, लम्बे कदवाले, राज्यभक्त, कुलीन, शूर-वीर तथा कष्टसहिष्णुको खड्गधारी बनाना चाहिये। शूर, बलवान्, हाथी, घोड़े और रथकी विशेषताको जाननेवाला, सभी प्रकारके क्लेशोंको सहन करनेमें समर्थ तथा पवित्र व्यक्ति राजाका धनुर्धारी हो सकता है। शुभाशुभ शकुनको जाननेवाला, अश्वशिक्षामें विशारद, अश्वोंके आयुर्वेदविज्ञानको जाननेवाला, पृथ्वीके समस्त भागोंका ज्ञाता, रथियोंके बलाबलका पारखी, स्थिरदृष्टि, प्रियभाषी, शूर-वीर तथा विद्वान् पुरुष सारथिके योग्य कहा गया है॥ ११—२१॥

दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाले, पवित्र, प्रवीण, ओषधियोंके गुण-दोषोंको जाननेवालोंमें श्रेष्ठ, भोजनकी विशेषताओंके जानकारको उत्तम भोजनाध्यक्ष कहा जाता है। जो भोजनशास्त्रके विधानोंमें कुशल, वंश-परम्परासे चले आनेवाले, दूसरोंद्वारा अभेद्य तथा कटे हुए नख-केशवाले हों, ऐसे सभी पुरुषोंको चौकेमें नियुक्त करना चाहिये। शत्रु और मित्रमें समताका व्यवहार करनेवाले, धर्मशास्त्रमें विशारद, कुलीन श्रेष्ठ ब्राह्मणको धर्माध्यक्षका पद सौंपना चाहिये। ऊपर कही हुई विशेषताओंसे युक्त ब्राह्मणोंको सभासद् नियुक्त करना चाहिये। जो सभी देशोंकी भाषाओंका ज्ञाता तथा सम्पूर्ण शास्त्रोंमें पटु हो, ऐसा व्यक्ति सभी विभागोंमें राजाका लेखक कहा गया है। जो ऊपरकी शिरोरेखासे पूर्ण, पूर्ण अवयववाले, समश्रेणीमें प्राप्त एवं समान आकृतिवाले अक्षरोंको लिखता है, वह अच्छा लेखक कहा जाता है। नृपश्रेष्ठ! जो उपाययुक्त वाक्योंमें प्रवीण, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विशारद तथा थोड़े शब्दोंमें अधिक प्रयोजनकी बात कहनेकी क्षमता रखता हो, उसे लेखक बनाना चाहिये। नृपोत्तम! जो वाक्योंके अभिप्रायको जाननेवाला, देश-कालके विभागका ज्ञाता तथा अभेदज्ञ यानी भेद न करनेवाला हो, उसे लेखक बनाना चाहिये। मनुष्योंके हृदयकी बातों तथा भावोंको परखनेवाले, दीर्घकाय, निर्लोभ एवं दानशील व्यक्तियोंको धर्माधिकारी बनाना चाहिये तथा राजाद्वारा इसी प्रकारके लोगोंको द्वारपालका पद भी सौंपा जाना चाहिये। लोह, वस्त्र, मृग-चर्मादि तथा रत्नोंकी परख करनेवाला, अच्छी-बुरी वस्तुओंका जानकार, दूसरोंके बहकावेमें न आनेवाला, पवित्र, निपुण एवं सावधान व्यक्तिको धनाध्यक्ष बनाना चाहिये॥ २२—३२॥

राजाद्वारा आय तथा व्ययके सभी स्थानोंपर धनाध्यक्षके समान गुणवाले पुरुषोंको नियुक्त करना चाहिये। जो

परम्परागतो यः स्यादष्टाङ्गे सुचिकित्सिते।
अनाहार्यः स वैद्यः स्याद् धर्मात्मा च कुलोद्गतः॥ ३४
प्राणाचार्यः स विज्ञेयो वचनं तस्य भूभुजा।
राजन् राज्ञा सदा कार्यं यथा कार्यं पृथग्जनैः॥ ३५
हस्तिशिक्षाविधानज्ञो वनजातिविशारदः।
क्लेशक्षमस्तथा राज्ञो गजाध्यक्षः प्रशस्यते॥ ३६
एतैरेव गुणैर्युक्तः स्थविरश्च विशेषतः।
गजारोही नरेन्द्रस्य सर्वकर्मसु शस्यते॥ ३७
हयशिक्षाविधानज्ञश्चिकित्सितविशारदः।
अश्वाध्यक्षो महीभर्तुः स्वासनश्च प्रशस्यते॥ ३८
अनाहार्यश्च शूरश्च तथा प्राज्ञः कुलोद्गतः।
दुर्गाध्यक्षः स्मृतो राज्ञ उद्युक्तः सर्वकर्मसु॥ ३९
वास्तुविद्याविधानज्ञो लघुहस्तो जितश्रमः।
दीर्घदर्शी च शूरश्च स्थपतिः परिकीर्तितः॥ ४०
यन्त्रमुक्ते पाणिमुक्ते विमुक्ते मुक्तधारिते।
अस्त्राचार्यो निरुद्वेगः कुशलश्च विशिष्यते॥ ४१
वृद्धः कुलोद्गतः सूक्तः पितृपैतामहः शुचिः।
राज्ञामन्तःपुराध्यक्षो विनीतश्च तथेष्यते॥ ४२
एवं सप्ताधिकारेषु पुरुषाः सप्त ते पुरे।
परीक्ष्य चाधिकार्याः स्यू राज्ञा सर्वेषु कर्मसु।
स्थापनाजातितत्त्वज्ञाः सततं प्रतिजागृताः॥ ४३
राज्ञः स्यादायुधागारे दक्षः कर्मसु चोद्यतः।
कर्माण्यपरिमेयानि राज्ञो नृपकुलोद्वह॥ ४४
उत्तमाधममध्यानि बुद्ध्वा कर्माणि पार्थिवः।
उत्तमाधममध्येषु पुरुषेषु नियोजयेत्॥ ४५
नरकर्मविपर्यासाद्राजा नाशमवाप्नुयात्।
नियोगं पौरुषं भक्तिं श्रुतं शौर्यं कुलं नयम्॥ ४६
ज्ञात्वा वृत्तिर्विधातव्या पुरुषाणां महीक्षिता।
पुरुषान्तरविज्ञानतत्त्वसारनिबन्धनात् ॥ ४७

वंशपरम्परासे आनेवाला, आठों अङ्गोंकी चिकित्साको अच्छी तरह जाननेवाला, स्वामिभक्त, धर्मात्मा एवं सत्कुलोत्पन्न हो, ऐसे व्यक्तिको वैद्य बनाना चाहिये। राजन्! उसे प्राणाचार्य जानना चाहिये और सर्वसाधारणकी भाँति उसके वचनोंका सदा पालन करना चाहिये। जो जंगली जातिवालोंके रीति-रस्मोंका ज्ञाता, हस्तिशिक्षाका विशेषज्ञ, सहिष्णुतामें समर्थ हो, ऐसा व्यक्ति राजाका श्रेष्ठ गजाध्यक्ष हो सकता है। उपर्युक्त गुणोंसे युक्त तथा अवस्थामें वृद्ध व्यक्ति राजाका गजारोही होकर सभी कार्योंमें श्रेष्ठ कहा गया है। अश्व-शिक्षाके विधानमें प्रवीण, उनकी चिकित्सामें विशारद तथा स्थिर आसनसे बैठनेवाला व्यक्ति राजाका श्रेष्ठ अश्वाध्यक्ष कहा गया है। जो स्वामि-भक्त, शूर-वीर, बुद्धिमान्, कुलीन, सभी कार्योंमें उद्यत हो, वह राजाका दुर्गाध्यक्ष कहा गया है। वास्तुविद्याके विधानमें प्रवीण, फुर्तीला, परिश्रमी, दीर्घदर्शी एवं शूर व्यक्तिको श्रेष्ठ कारीगर कहा गया है। यन्त्रमुक्त (तोप-बन्दूक) आदि, पाणिमुक्त (शक्ति आदि), विमुक्त, मुक्तधारित आदि अस्त्रोंके परिचालनकी विशेषताओंमें सुनिपुण, उद्वेगरहित व्यक्ति श्रेष्ठ अस्त्राचार्य कहा गया है। वृद्ध, सत्कुलोत्पन्न, मधुरभाषी, पिता-पितामहके समयसे उसी कार्यपर नियुक्त होनेवाले, पवित्र एवं विनीत व्यक्तिको राजाओंके अन्तःपुरके अध्यक्ष-पदपर नियुक्त करना उचित है॥ ३३—४२॥

इस प्रकार राजाको इन सात अधिकार-पदोंपर सभी कार्योंमें भलीभाँति परीक्षा कर सातों व्यक्तियोंको अधिकारी बनाना चाहिये। कार्योंमें नियुक्त किये गये व्यक्तियोंको उद्योगशील, जागरूक तथा पटु होना चाहिये। राजकुलोत्पन्न! राजाओंके अस्त्रागारमें दक्ष तथा उद्यमशील व्यक्ति होना चाहिये। राजाके कार्योंकी गणना नहीं की जा सकती, अतः राजाको उत्तम, मध्यम तथा अधम कार्योंको भलीभाँति समझ-बूझकर वैसे ही उत्तम, मध्यम एवं अधम पुरुषोंको सौंपना चाहिये। सौंपे गये कार्योंमें परिवर्तन अर्थात् अधमको उत्तम और उत्तमको अधम कार्य सौंप देनेसे राजाका विनाश हो जाता है। राजाको चाहिये कि अपने पुरुषोंके निश्चय, पौरुष, भक्ति, शास्त्रज्ञान, शूरता, कुल और नीतिको जानकर उनका वेतन निश्चित करे। कोई दूसरा व्यक्ति न जान सके— इस अभिप्रायसे राजा

बहुभिर्मन्त्रयेत् कामं राजा मन्त्रं पृथक्-पृथक्।
मन्त्रिणामपि नो कुर्यान्मन्त्रिमन्त्रप्रकाशनम्॥ ४८

क्वचिन्न कस्य विश्वासो भवतीह सदा नृणाम्।
निश्चयस्तु सदा मन्त्रे कार्यो नैकेन सूरिणा॥ ४९

भवेद् वा निश्चयावाप्तिः परबुद्ध्युपजीवनात्।
एकस्यैव महीभर्तुर्भूयः कार्यो विनिश्चयः॥ ५०

ब्राह्मणान् पर्युपासीत त्रयीशास्त्रसुनिश्चितान्।
नासच्छास्त्रवतो मूढांस्ते हि लोकस्य कण्टकाः॥ ५१

वृद्धान् हि नित्यं सेवेत विप्रान् वेदविदः शुचीन्।
तेभ्यः शिक्षेत विनयं विनीतात्मा च नित्यशः।
समग्रां वशगां कुर्यात् पृथिवीं नात्र संशयः॥ ५२

बहवोऽविनयाद् भ्रष्टा राजानः सपरिच्छदाः।
वनस्थाश्चैव राज्यानि विनयात् प्रतिपेदिरे॥ ५३

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं त्वात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः॥ ५४

इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद् दिवानिशम्।
जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः॥ ५५

यजेत राजा बहुभिः क्रतुभिश्च सदक्षिणैः।
धर्मार्थं चैव विप्रेभ्यो दद्याद् भोगान् धनानि च॥ ५६

अनेकों मन्त्रियोंके साथ अलग-अलग मन्त्रणा करे, परंतु एक मन्त्रीकी मन्त्रणाको दूसरे मन्त्रियोंपर प्रकट न होने दे। इस संसारमें मनुष्योंको सदा कहीं भी किसीका विश्वास नहीं होता, अतः राजाको एक ही विद्वान् मन्त्रीकी मन्त्रणाका निश्चय नहीं करना चाहिये। अन्यथा दूसरेकी बुद्धिके सहारे निश्चयकी प्राप्ति हो जाती है। उस अकेले किये गये निश्चयमें भी राजाको चाहिये कि फिरसे विचार कर ले। उसे त्रयीधर्ममें अटल निश्चय रखनेवाले ब्राह्मणोंकी सेवा करनी चाहिये। जो शास्त्रज्ञ नहीं हैं, उन मूर्खोंकी पूजा न करे; क्योंकि वे लोकके लिये कण्टकस्वरूप हैं। पवित्र आचरणवाले, वेदवेत्ता, वृद्ध ब्राह्मणोंकी नित्य सेवा करनी चाहिये और उन्हींसे सदा विनम्र होकर विनयकी शिक्षा लेनी चाहिये। ऐसा करनेसे वह (राजा) निःसंदेह सम्पूर्ण वसुन्धराको वशमें कर सकता है। बहुत-से राजा उद्दण्डताके कारण अपने परिजन एवं अनुचरोंके साथ नष्ट हो गये और अनेकों वनस्थ राजाओंने विनयसे पुनः राज्यश्रीको प्राप्त किया है। राजाओंको वेदवेत्ताओंसे तीनों वेद, शाश्वती दण्डनीति, आन्वीक्षिकी (तर्कशास्त्र) तथा आत्मविद्या ग्रहण करनी चाहिये और सर्वसाधारणसे लौकिक वार्ताओंकी सूचना प्राप्त करनी चाहिये। राजाको दिन-रात इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त करनेकी युक्ति करते रहना चाहिये; क्योंकि जितेन्द्रिय राजा ही प्रजाओंको वशमें रखनेमें समर्थ हो सकता है। राजाको दक्षिणायुक्त बहुत-से यज्ञोंका अनुष्ठान करना चाहिये तथा ब्राह्मणोंको धर्मकी प्राप्तिके लिये भोग्य सामग्रियाँ और धन देना चाहिये॥ ४३—५६॥

सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्।
स्यात् स्वाध्यायपरो लोके वर्तेत पितृबन्धुवत्॥ ५७

बुद्धिमान् कर्मचारियोंद्वारा राज्यसे वार्षिक कर वसूल कराये। उसे सर्वदा स्वाध्यायमें लीन तथा लोगोंके साथ पिता और भाईका-सा व्यवहार करना चाहिये।

आवृत्तानां गुरुकुलाद् द्विजानां पूजको भवेत्।
नृपाणामक्षयो ह्येष निधिर्ब्राह्मोऽभिधीयते॥ ५८

राजाको गुरुकुलसे लौटे हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। राजाओंके लिये यह अक्षय ब्राह्म-निधि (कोश-खजाना) कही गयी है। चोर अथवा शत्रुगण उसका

तं च स्तेना नवामित्रा हरन्ति न विनश्यति।
तस्माद् राज्ञा निधातव्यो ब्राह्मो वै ह्यक्षयो निधिः *॥ ५९

हरण नहीं कर सकते और न उसका विनाश ही होता है। इसलिये राजाको इस अक्षय ब्राह्म-निधि (खजाने)-का संचय अवश्य करना चाहिये। राजाको चाहिये कि

समोत्तमाधमै राजा ह्याहूय पालयेत् प्रजाः।
न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं व्रतमनुस्मरन्॥ ६०

वह अपने उत्तम, मध्यम तथा अधम अनुचरोंद्वारा प्रजाको बुलाकर उनका पालन करे और अपने क्षात्रधर्मका स्मरण कर संग्रामसे कभी विचलित न हो।

* ये सभी प्रायः २० श्लोक मनुयाज्ञवल्क्य-स्मृतिमें भी हैं। तदनुसार शुद्ध किये गये हैं।

संग्रामेष्वनिवर्त्तित्वं प्रजानां परिपालनम्।
शुश्रूषा ब्राह्मणानां च राज्ञां निःश्रेयस परम्॥ ६१
कृपणानाथवृद्धानां विधवानां च पालनम्।
योगक्षेमं च वृत्तिं च तथैव परिकल्पयेत्॥ ६२
वर्णाश्रमव्यवस्थानं तथा कार्यं विशेषतः।
स्वधर्मप्रच्युतान् राजा स्वधर्मे स्थापयेत् तथा॥ ६३
आश्रमेषु तथा कार्यमन्नं तैलं च भाजनम्।
स्वयमेवानयेद् राजा सत्कृतान् नावमानयेत्॥ ६४
तापसे सर्वकार्याणि राज्यमात्मानमेव च।
निवेदयेत् प्रयत्नेन देववच्चिरमर्चयेत्॥ ६५
द्वे प्रज्ञे वेदितव्ये च ऋज्वी वक्रा च मानवैः।
वक्रां ज्ञात्वा न सेवेत प्रतिबाधेत चागताम्॥ ६६
नास्य च्छिद्रं परो विन्द्याद् विन्द्याच्छिद्रं परस्य तु।
गूहेत् कूर्म इवाङ्गानि रक्षेद् विवरमात्मनः॥ ६७
न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति॥ ६८

युद्धविमुख न होना, प्रजाओंका परिपालन तथा ब्राह्मणोंकी शुश्रूषा—ये तीनों धर्म राजाओंके लिये परम कल्याणकारी हैं। उसी प्रकार दुर्दशाग्रस्त, असहाय और वृद्धोंके तथा विधवा स्त्रियोंके योगक्षेम एवं जीविकाका प्रबन्ध करना चाहिये। राजाको वर्णाश्रमकी व्यवस्था विशेषरूपसे करनी चाहिये तथा अपने धर्मसे भ्रष्ट हुए लोगोंको पुनः अपने-अपने धर्मोंमें स्थापित करना चाहिये। चारों आश्रमोंपर भी उसी प्रकारकी देख-रेख रखनी चाहिये। राजाके लिये उचित है कि वह अतिथिके लिये अन्न, तैल और पात्रोंकी व्यवस्था स्वयं करे एवं सम्माननीय व्यक्तियोंका अपमान न करे तथा तपस्वीके लिये अपने सभी कर्मोंको तथा राज्य एवं अपने-आपको समर्पित कर दे और देवताके समान चिरकालतक उनकी पूजा करे। मनुष्यके द्वारा सरल (सुमति) और कुटिल (कुमति) दो प्रकारकी बुद्धियोंको जानना चाहिये। उनमें कुटिल बुद्धिको जान लेनेपर उसका सेवन न करे, किंतु यदि आ गयी हो तो उसे दूर हटा दे। राजाके छिद्रको शत्रु न जान सके, किंतु वह शत्रुके छिद्रको जान ले। वह कछुएकी भाँति अपने अङ्गोंको छिपाये रखे और अपने छिद्रकी रक्षा करे। अविश्वसनीय व्यक्तिका विश्वास न करे और विश्वसनीयका भी बहुत विश्वास न करे; क्योंकि विश्वाससे उत्पन्न हुआ भय मूलको भी काट डालता है॥ ५७—६८॥

विश्वासयेच्चाप्यपरं तत्त्वभूतेन हेतुना।
बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्॥ ६९
वृकवच्चावलुम्पेत शशवच्च विनिक्षिपेत्।
दृढप्रहारी च भवेत् तथा शूकरवन्नृपः॥ ७०
चित्राकारश्च शिखिवद् दृढभक्तस्तथा श्ववत्।
तथा च मधुराभाषी भवेत् कोकिलवन्नृपः॥ ७१
काकशङ्की भवेन्नित्यमज्ञातवसतिं वसेत्।
नापरीक्षितपूर्वं च भोजनं शयनं व्रजेत्।
वस्त्रं पुष्पमलंकारं यच्चान्यन्मनुजोत्तम॥ ७२
न गाहेज्जनसम्बाधं न चाज्ञातजलाशयम्।
अपरीक्षितपूर्वं च पुरुषैराप्तकारिभिः॥ ७३
नारोहेत् कुञ्जरं व्यालं नादान्तं तुरगं तथा।
नाविज्ञातां स्त्रियं गच्छेन्नैव देवोत्सवे वसेत्॥ ७४
नरेन्द्रलक्ष्म्या धर्मज्ञ त्राता यत्तो भवेन्नृपः।
सद्भृत्याश्च तथा पुष्टाः सततं प्रतिमानिताः॥ ७५

राजाको चाहिये कि वह यथार्थ कारणको प्रकाशित करके दूसरोंको अपनेपर विश्वस्त करे। वह बगुलेकी भाँति अर्थका चिन्तन करे, सिंहकी तरह पराक्रम करे, भेड़ियेके समान लूट-पाट कर ले, खरगोशकी तरह छिपा रहे तथा शूकरके सदृश दृढ़ प्रहार करनेवाला हो। राजा मोरकी भाँति विचित्र आकारवाला, कुत्तेकी तरह अनन्यभक्त तथा कोकिलकी भाँति मृदुभाषी हो। नरश्रेष्ठ! राजाको चाहिये कि वह सर्वदा कौएकी भाँति सशङ्कित रहे। वह गुप्त स्थानपर निवास करे, पहले बिना परीक्षा किये भोजन, शय्या, वस्त्र, पुष्प, अलंकार एवं अन्यान्य सामग्रियोंको न ग्रहण करे। विश्वस्त पुरुषोंद्वारा पहले बिना परीक्षा किये हुए मनुष्योंकी भीड़ तथा अज्ञात जलाशयमें प्रवेश न करे। दुष्ट हाथी एवं बिना सिखाये घोड़ेपर न चढ़े, न बिना जानी हुई स्त्रीके साथ समागम करे और न देवोत्सवमें निवास करे। धर्मज्ञ! राजाको सर्वदा राजलक्ष्मी (चिह्न)-से सुसम्पन्न, दीनरक्षक और

राज्ञा सहायाः कर्तव्याः पृथिवीं जेतुमिच्छता।
यथार्हं चाप्यसुभृतो राजा कर्मसु योजयेत्॥ ७६
धर्मिष्ठान् धर्मकार्येषु शूरान् संग्रामकर्मसु।
निपुणानर्थकृत्येषु सर्वत्रैव तथा शुचीन्॥ ७७
स्त्रीषु षण्डं नियुञ्जीत तीक्ष्णं दारुणकर्मसु।
धर्मे चार्थे च कामे च नये च रविनन्दन॥ ७८
राजा यथार्हं कुर्याच्च उपधाभिः परीक्षणम्।
समतीतोपदान् भृत्यान् कुर्याच्छस्तवनेचरान्॥ ७९
तत्पादान्वेषिणो यत्तांस्तदध्यक्षांस्तु कारयेत्।
एवमादीनि कर्माणि नृपैः कार्याणि पार्थिव॥ ८०
सर्वथा नेष्यते राज्ञस्तीक्ष्णोपकरणक्रमः।
कर्माणि पापसाध्यानि यानि राज्ञो नराधिप॥ ८१
संतस्तानि न कुर्वन्ति तस्मात्तानि त्यजेन्नृपः।
नेष्यते पृथिवीशानां तीक्ष्णोपकरणक्रिया॥ ८२
यस्मिन् कर्मणि यस्य स्याद् विशेषेण च कौशलम्।
तस्मिन् कर्मणि तं राजा परीक्ष्य विनियोजयेत्।
पितृपैतामहान् भृत्यान् सर्वकर्मसु योजयेत्॥ ८३
विना दायादकृत्येषु तत्र ते हि समागताः।
राजा दायादकृत्येषु परीक्ष्य तु कृतान् नरान्।
नियुञ्जीत महाभाग तस्य ते हितकारिणः॥ ८४
परराजगृहात् प्राप्ताञ्जनसंग्रहकाम्यया।
दुष्टान् वाप्यथवादुष्टानाश्रयीत प्रयत्नतः॥ ८५
दुष्टं विज्ञाय विश्वासं न कुर्यात्तत्र भूमिपः।
वृत्तिं तस्यापि वर्तेत जनसंग्रहकाम्यया॥ ८६
राजा देशान्तरप्राप्तं पुरुषं पूजयेद् भृशम्।
ममायं देशसम्प्राप्तो बहुमानेन चिन्तयेत्॥ ८७
कामं भृत्यार्जनं राजा नैव कुर्यान्नराधिप।
न च वाऽसंविभक्तांस्तान् भृत्यान् कुर्यात् कथञ्चन॥ ८८
शत्रवोऽग्निर्विषं सर्पो निस्त्रिंश इति चैकतः।
भृत्या मनुजशार्दूल रुषिताश्च तथैकतः॥ ८९
तेषां चारेण चारित्रं राजा विज्ञाय नित्यशः।
गुणिनां पूजनं कुर्यान्निर्गुणानां च शासनम्।
कथिताः सततं राजन् राजानश्चारचक्षुषः॥ ९०

उद्यमी होना चाहिये। पृथ्वीको जीतनेकी इच्छा रखनेवाले राजाको सर्वदा सम्मानित एवं पालित उत्तम अनुचरोंको सहायक बनाना चाहिये। वह प्राणियोंको यथायोग्य कर्मोंमें नियुक्त करे। उसे धर्म-कार्योंमें धर्मात्माओंको, युद्धकर्मोंमें शूर-वीरोंको, अर्थ-कार्योंमें उसके विशेषज्ञोंको, सच्चरित्रोंको सर्वत्र, स्त्रियोंके मध्यमें नपुंसकको और भीषण कर्मोंमें निर्दयको नियुक्त करना चाहिये। रविनन्दन! राजाको धर्म, अर्थ, काम और नीतिके कार्योंमें गुप्त पारिश्रमिक देकर अनुचरोंकी परीक्षा करनी चाहिये। उत्तीर्ण होनेवालेको श्रेष्ठ गुप्तचर बनाये और उनके कार्योंकी देखरेख करनेवालोंको उनका अध्यक्ष बनाये। राजन्! इस प्रकार राजाको राज्यके कार्योंका संचालन करना चाहिये। राजाको सर्वथा उग्र कर्मोंवाला नहीं होना चाहिये। नरेश्वर! राजाके जो पापाचरणद्वारा सिद्ध होनेवाले कर्म हैं, उन्हें सत्पुरुष नहीं करते, अतः राजाको भी उनका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि राजाओंके लिये क्रूर कर्माचरण उचित नहीं हैं। राजाको चाहिये कि जिस कार्यमें जिसकी विशेष कुशलता है, उसे उसी कार्यमें परीक्षा लेकर नियुक्त करे; किंतु पिता-पितामहसे चले आते हुए नौकरोंको सभी कर्मोंमें नियुक्त करे, परंतु अपने जातीय कार्योंमें उन्हें न रखे॥ ६९—८३ १/२॥

महाभाग! राजाको पारिवारिक कार्योंमें परीक्षा करके मनुष्योंको नियुक्त करना चाहिये; क्योंकि वे उसके कल्याण करनेवाले होते हैं। अनुचरोंका संग्रह करनेकी भावनासे राजाको चाहिये कि जो अनुचर दूसरे राजाकी ओरसे उनके यहाँ आयें—चाहे वे दुष्ट हों अथवा सज्जन, उन्हें प्रयत्नपूर्वक अपने यहाँ आश्रय दे; किंतु दुष्टको समझकर राजा उसका विश्वास न करे, परंतु जनसंग्रहकी इच्छासे उसे भी जीविका देनी चाहिये। राजाको चाहिये कि दूसरे देशसे आये हुए व्यक्तिका विशेष स्वागत करे और 'यह मेरे देशमें आया है' ऐसा समझकर उसका अधिक सम्मान करे। नराधिप! राजाको अधिक नौकर नहीं रखना चाहिये। साथ ही जो पहले अपने पदसे पृथक् कर दिये गये हों, ऐसे नौकरोंको किसी प्रकार भी नियुक्त न करे। नरशार्दूल! शत्रु, अग्नि, विष, सर्प तथा नंगी तलवार—ये सब एक ओर हैं तथा क्रुद्ध अनुचर एक ओर हैं। (अर्थात् दोनों समान हैं।) राजाको चाहिये कि गुप्तचरद्वारा नित्य उन अनुचरोंके चरित्रकी जानकारी प्राप्त कर उनमें गुणवानोंका सत्कार और निर्गुणोंका अनुशासन करता रहे। राजन्! इसी कारण राजालोग सर्वदा चारचक्षु (अर्थात् गुप्तचर ही जिनकी आँखें हैं ऐसा)

स्वके देशे परे देशे ज्ञानशीलान् विचक्षणान्।
अनाहार्यान् क्लेशसहान् नियुञ्जीत तथा चरान्॥ ९१

जनस्याविदितान् सौम्यांस्तथाज्ञातान् परस्परम्।

वणिजो मन्त्रकुशलान् सांवत्सरचिकित्सकान्।
तथा प्रव्राजिताकारांश्चारान् राजा नियोजयेत्॥ ९२

नैकस्य राजा श्रद्दध्याच्चारस्यापि सुभाषितम्।
द्वयोः सम्बन्धमाज्ञाय श्रद्दध्यान्नृपतिस्तदा॥ ९३

परस्परस्याविदितौ यदि स्यातां च तावुभौ।
तस्माद् राजा प्रयत्नेन गूढांश्चारान् नियोजयेत्॥ ९४

राज्यस्य मूलमेतावद् या राज्ञश्चारदर्शिता।
चाराणामपि यत्नेन राज्ञा कार्यं परीक्षणम्॥ ९५

रागापरागौ भृत्यानां जनस्य च गुणागुणान्।
सर्वं राज्ञां चरायत्तं तेषु यत्नपरो भवेत्॥ ९६

कर्मणा केन मे लोके जनः सर्वोऽनुरज्यते।
विरज्यते केन तथा विज्ञेयं तन्महीक्षिता॥ ९७

अनुरागकरं लोके कर्म कार्यं महीक्षिता।
विरागजनकं लोके वर्जनीयं विशेषतः॥ ९८

जनानुरागप्रभवा हि लक्ष्मी
राज्ञां यतो भास्करवंशचन्द्र।
तस्मात् प्रयत्नेन नरेन्द्रमुख्यैः
कार्योऽतिरागो भुवि मानवेषु॥ ९९

कहलाते हैं। अपने देशमें या पराये देशमें ज्ञानी, निपुण, निर्लोभी और कष्टसहिष्णु गुप्तचरोंको नियुक्त करना चाहिये। जिन्हें साधारण जनता न पहचानती हो, जो सरल दिखायी पड़ते हों, जो एक-दूसरेसे परिचित न हों तथा वणिक्, मन्त्री, ज्योतिषी, वैद्य और संन्यासीके वेशमें भ्रमण करनेवाले हों, राजा ऐसे गुप्तचरोंको नियुक्त करे। राजा एक गुप्तचरकी बातपर, यदि वह अच्छी लगनेवाली भी हो तो भी विश्वास न करे। उस समय उसे दो गुप्तचरोंकी बातोंपर उनके आपसी सम्बन्धको जानकर ही विश्वास करना चाहिये। यदि वे दोनों आपसमें अपरिचित हों तो विश्वास करना चाहिये। इसीलिये राजाको गुप्त रहनेवाले चरोंको नियुक्त करना चाहिये॥ ८४—९४॥

राज्यके मूलाधार गुप्तचर ही हैं, क्योंकि गुप्तचर ही राजाके नेत्र हैं। अतः राजाको गुप्तचरोंकी भी यत्नपूर्वक परीक्षा करनी चाहिये। राज्यमें अनुचरोंका अनुराग एवं वैर तथा प्रजाके गुण और अवगुण—राजाओंके ये सभी कार्य गुप्तचरोंपर ही निर्भर हैं, अतः उनके प्रति यत्नशील रहना चाहिये। राजाको यह बात सर्वदा ध्यानमें रखनी चाहिये कि लोकमें मेरे किस कामसे सभी लोग अनुरक्त रहेंगे और किस कामसे विरक्त हो जायँगे। इसे समझकर राजाको लोकमें अनुरागजनक कार्यका सम्पादन और विरागोत्पादक कर्मका विशेषरूपसे त्याग करना चाहिये। सूर्यकुलचन्द्र! चूँकि राजाओंकी लक्ष्मी उनकी प्रजाओंके अनुरागसे उत्पन्न होनेवाली होती है, इसलिये श्रेष्ठ राजाओंको पृथ्वीपर मानवोंके प्रति प्रयत्नपूर्वक अत्यन्त अनुराग करना चाहिये॥ ९५—९९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राज्ञां सहायसम्पत्तिर्नाम पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजाकी सहायक सम्पत्ति नामक दो सौ पंद्रहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१५॥

दो सौ सोलहवाँ अध्याय

राजकर्मचारियोंके धर्मका वर्णन

मत्स्य उवाच

यथा च वर्तितव्यं स्यान्मनो राज्ञोऽनुजीविभिः।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम॥ १

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—मनु महाराज! अब मैं आपसे राजाके अनुचरोंको उनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, यह बतला रहा हूँ, आप इसे सुनिये।

ज्ञात्वा सर्वात्मना कार्यं स्वशक्त्या रविनन्दन।
राजा यत्तु वदेद् वाक्यं श्रोतव्यं तत् प्रयत्नतः।
आक्षिप्य वचनं तस्य न वक्तव्यं तथा वचः॥ २

अनुकूलं प्रियं तस्य वक्तव्यं जनसंसदि।
रहोगतस्य वक्तव्यमप्रियं यद्धितं भवेत्॥ ३

परार्थमस्य वक्तव्यं स्वस्थे चेतसि पार्थिव।
स्वार्थः सुहृद्भिर्वक्तव्यो न स्वयं तु कथञ्चन॥ ४

कार्यातिपातः सर्वेषु रक्षितव्यः प्रयत्नतः।
न च हिंस्यं धनं किञ्चिन्नियुक्तेन च कर्मणि॥ ५

नोपेक्ष्यस्तस्य मानश्च तथा राज्ञः प्रियो भवेत्।
राज्ञश्च न तथा कार्यं वेशभाषितचेष्टितम्॥ ६

राजलीला न कर्तव्या तद्विद्विष्टं च वर्जयेत्।
राज्ञः समोऽधिको वा न कार्यो वेशो विजानता॥ ७

द्यूतादिषु तथैवान्यत् कौशलं तु प्रदर्शयेत्।
प्रदर्श्य कौशलं चास्य राजानं तु विशेषयेत्॥ ८

अन्तःपुरजनाध्यक्षैर्वैरिदूतैर्निराकृतैः।
संसर्गं न व्रजेद् राजन् विना पार्थिवशासनात्॥ ९

निःस्नेहतां चावमानं प्रयत्नेन तु गोपयेत्।
यच्च गुह्यं भवेद् राज्ञो न तल्लोके प्रकाशयेत्॥ १०

नृपेण श्रावितं यत् स्याद् वाच्यावाच्यं नृपोत्तम।
न तत् संश्रावयेल्लोके तथा राज्ञोऽप्रियो भवेत्॥ ११

आज्ञाप्यमाने वान्यस्मिन् समुत्थाय त्वरान्वितः।
किमहं करवाणीति वाच्यो राजा विजानता॥ १२

कार्यावस्थां च विज्ञाय कार्यमेव यथा भवेत्।
सततं क्रियमाणेऽस्मिँल्लाघवं तु व्रजेद् ध्रुवम्॥ १३

राज्ञः प्रियाणि वाक्यानि न चात्यर्थं पुनः पुनः।
न हास्यशीलस्तु भवेन्न चापि भृकुटीमुखः॥ १४

नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा।
आत्मसम्भावितश्चैव न भवेत् तु कथञ्चन॥ १५

रविनन्दन! राजाद्वारा राजकार्यमें नियुक्त व्यक्तिको चाहिये कि वह कार्यको सब तरहसे जानकर यथाशक्ति उसका पालन करे। राजा जो बात कह रहे हों, उसे वह प्रयत्नपूर्वक सुने, बीचमें उनकी बात काटकर अपनी बात न कहे। जनसमाजमें राजाके अनुकूल एवं प्रिय बातें कहनी चाहिये, किंतु एकान्तमें बैठे हुए राजासे अप्रिय बात भी कही जा सकती है, यदि वह हितकारी हो। राजन्! जिस समय राजाका चित्त स्वस्थ हो, उस समय दूसरोंके हितकी बातें उससे कहनी चाहिये। अपने स्वार्थकी बात राजासे स्वयं कभी भी न कहे, अपने मित्रोंसे कहलाये। सभी कार्योंमें कार्यका दुष्प्रयोग न हो, इसकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये तथा नियुक्त होनेपर धनका थोड़ा भी अपव्यय न होने दे। राजाके सम्मानकी उपेक्षा न करे, सर्वदा राजाके प्रियकी चिन्ता करे, राजाकी वेश-भूषा, बात-चीत एवं आकार-प्रकारकी नकल न करे। राजाके लीला-कलापोंका भी अनुकरण न करे, वह राजाके अभीष्ट विषयोंको सर्वथा छोड़ दे। ज्ञानवान् पुरुषको राजाके समान अथवा उससे बढ़कर भी अपनी वेशभूषा नहीं बनानी चाहिये। द्यूतक्रीड़ा आदिमें तथा अन्यत्र भी राजाकी अपेक्षा अपने कौशलका प्रदर्शन करे और उसी प्रसङ्गमें अपनी कुशलता दिखाकर राजाकी विशेषता प्रकट करे। राजन्! राजाकी आज्ञाके बिना अन्तःपुरके अध्यक्षों, शत्रुओंके दूतों तथा निकाले हुए अनुचरोंके निकट न जाय। अपने प्रति राजाकी स्नेहहीनता तथा अपमानको प्रयत्नपूर्वक गुप्त रखे और राजाकी जो गोपनीय बात हो, उसे सर्वसाधारणके सम्मुख प्रकट न करे॥ १—१०॥

नृपोत्तम! राजपुरुष राजाद्वारा कही गयी गुप्त या प्रकट बातको सर्वसाधारणके समक्ष कभी न सुनाये। ऐसा करनेसे वह राजाका विरोधी हो जाता है। जिस समय राजा दूसरे व्यक्तिसे किसी कामके लिये कहें, उस समय बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि शीघ्रतापूर्वक स्वयं उठकर राजासे कहे कि 'मैं क्या करूँ?' कार्यकी अवस्थाको देखकर जैसा करना उपयुक्त हो, वैसा ही करना चाहिये; क्योंकि सदा एक-सा करते रहनेपर निश्चित ही वह राजाकी दृष्टिमें हेय हो जाता है। राजाको प्रिय लगनेवाली बातोंको भी उनके सामने बार-बार न कहे, न ठठाकर हँसे और न भृकुटी ही ताने। न बहुत बोले, न एकदम चुप ही रहे, न असावधानी प्रकट करे और न कभी आत्मसम्मानी होनेका भाव ही प्रदर्शित करे।

दुष्कृतानि नरेन्द्रस्य न तु सङ्कीर्तयेत् क्वचित्।
वस्त्रमस्त्रमलंकारं राज्ञा दत्तं तु धारयेत्॥ १६
औदार्येण न तद् देयमन्यस्मै भूतिमिच्छता।
न चैवात्यशनं कार्यं दिवा स्वप्नं न कारयेत्॥ १७
नानिर्दिष्टे तथा द्वारे प्रविशेत् तु कथञ्चन।
न च पश्येत् तु राजानमयोग्यासु च भूमिषु॥ १८
राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत् तदा।
पुरस्ताच्च तथा पश्चादासनं तु विगर्हितम्॥ १९
जृम्भां निष्ठीवनं कासं कोपं पर्यस्तिकाश्रयम्।
भृकुटिं वान्तमुद्गारं तत्समीपे विवर्जयेत्॥ २०
स्वयं तत्र न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं बुधः।
स्वगुणाख्यापने युक्त्या परमेव प्रयोजयेत्॥ २१
हृदयं निर्मलं कृत्वा परां भक्तिमुपाश्रितैः।
अनुजीविगणैर्भाव्यं नित्यं राज्ञामतन्द्रितैः॥ २२
शाठ्यं लौल्यं च पैशुन्यं नास्तिक्यं क्षुद्रता तथा।
चापल्यं च परित्याज्यं नित्यं राज्ञोऽनुजीविभिः॥ २३
श्रुतिविद्यासुशीलैश्च संयोज्यात्मानमात्मना।
राजसेवां ततः कुर्याद् भूतये भूतिवर्धनीम्॥ २४
नमस्कार्याः सदा चास्य पुत्रवल्लभमन्त्रिणः।
सचिवैश्चास्य विश्वासो न तु कार्यः कथञ्चन॥ २५

राजाके दुष्कर्मकी चर्चा कभी नहीं करनी चाहिये। राजाद्वारा दिये गये वस्त्र, अस्त्र और अलंकारको धारण करे। ऐश्वर्यकी कामना करनेवाले भृत्यको उन वस्त्रादि सामग्रियोंको उदारतावश दूसरेको नहीं देना चाहिये। (राजाके सम्मुख यदि कभी भोजन करनेका अवसर आये तो) न अधिक भोजन करे और न दिनमें शयन करे। जिससे प्रवेश करनेका निर्देश नहीं है, उस द्वारसे कभी प्रवेश न करे और अयोग्य स्थानपर स्थित राजाकी ओर न देखे। राजाके दाहिने या बायें पार्श्वमें बैठना चाहिये। सम्मुख या पीछेकी ओर बैठना निन्दित है। राजाके समीप जमुआई लेना, थूकना, खखारना, खाँसना, क्रोधित होना, आसनपर तकिया लगाकर बैठना, भृकुटी चढ़ाना, वमन करना या उद्गार निकालना—ये सभी कार्य नहीं करने चाहिये। बुद्धिमान् भृत्य राजाके सम्मुख अपने गुणोंकी श्लाघा न करे। अपने गुणको सूचित करनेके लिये युक्तिपूर्वक दूसरेको ही प्रयुक्त करना चाहिये। अनुचरोंको हृदय निर्मल करके परम भक्तिके साथ राजाओंके प्रति नित्य सावधान रहना चाहिये। राजाके अनुचरोंको शठता, लोभ, छल, नास्तिकता, क्षुद्रता, चञ्चलता आदिका नित्य परित्याग कर देना चाहिये। शास्त्रज्ञ एवं विद्याभ्यासियोंसे स्वयं अपना सम्पर्क स्थापित करके ऐश्वर्य बढ़ानेवाली राजसेवाको अपनी समृद्धिके लिये करनी चाहिये। राजाके पुत्र, प्रिय परिजन और मन्त्रियोंको नमस्कार करना चाहिये, किंतु उनके मन्त्रियोंका कभी विश्वास न करे॥ ११—२५॥

अपृष्टश्चास्य न ब्रूयात् कामं ब्रूयात्तथा यदि।
हितं तथ्यं च वचनं हितैः सह सुनिश्चितम्॥ २६
चित्तं चैवास्य विज्ञेयं नित्यमेवानुजीविभिः।
भर्तुराराधनं कुर्याच्चित्तज्ञो मानवः सुखम्॥ २७
रागापरागौ चैवास्य विज्ञेयौ भूतिमिच्छता।
त्यजेद् विरक्तं नृपतिं रक्ताद् वृत्तिं तु कारयेत्॥ २८
विरक्तः कारयेन्नाशं विपक्षाभ्युदयं तथा।
आशावर्धनकं कृत्वा फलनाशं करोति च॥ २९
अकोपोऽपि सकोपाभः प्रसन्नोऽपि च निष्फलः।
वाक्यं च समदं वक्ति वृत्तिच्छेदं करोति वै॥ ३०

बिना पूछे राजासे कुछ न कहे, यदि कहे भी तो जो राजाके हितके रूपमें सुनिश्चित हितकर और यथार्थ बात हो वह कहे। अनुचरोंको नित्य राजाकी मनोदशाका पता लगाते रहना चाहिये। मनोभावोंको समझनेवाला अनुचर ही अपने स्वामीकी सुखपूर्वक सेवा कर सकता है। अपने कल्याणकी कामना करनेवाले अनुचरको राजाके अनुराग और विरागका पता लगाते रहना चाहिये। विरक्त राजाको छोड़ दे और अनुरक्तकी सेवामें सदा तत्पर रहना चाहिये; क्योंकि विरक्त राजा उसका नाश कर विपक्षियोंको उन्नत बनाता है, आशाको बढ़ाकर उसके फलका नाश कर देता है, क्रोधका अवसर न रहनेपर भी वह क्रुद्ध ही दिखायी पड़ता है तथा प्रसन्न होकर भी कुछ फल नहीं देता, हर्षयुक्त बातें करता है और जीविकाका

प्रदेशवाक्यमुदितो न सम्भावयतेऽन्यथा।
आराधनासु सर्वासु सुप्तवच्च विचेष्टते॥ ३१
कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च।
लक्ष्यते विमुखश्चैव गुणसंकीर्तनेऽपि च॥ ३२
दृष्टिं क्षिपति चान्यत्र क्रियमाणे च कर्मणि।
विरक्तलक्षणं चैतच्छृणु रक्तस्य लक्षणम्॥ ३३

उच्छेद कर देता है। प्रसंगकी बातोंसे प्रसन्न होकर भी वह पूर्ववत् सम्मान नहीं करता, सभी सेवाओंमें उपेक्षा व्यक्त करता है। कोई बात छिड़नेपर बीचमें दोष प्रकट करता है और वहीं वाक्यको काट देता है। गुणोंका कीर्तन करनेपर भी विमुख ही लक्षित होता है। काम करते समय दृष्टि दूसरी ओर घुमा लेता है—ये सभी विरक्त राजाके लक्षण हैं। अब अनुरक्त राजाके लक्षण सुनिये॥ २६—३३॥

दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात्।
कुशलादिपरिप्रश्नं सम्प्रयच्छति चासनम्॥ ३४
विविक्तदर्शने चास्य रहस्येनं न शङ्कते।
जायते हृष्टवदनः श्रुत्वा तस्य तु तत्कथाम्॥ ३५
अप्रियाण्यपि वाक्यानि तदुक्तान्यभिनन्दते।
उपायनं च गृह्णाति स्तोकमप्यादरात्तथा॥ ३६
कथान्तरेषु स्मरति प्रहृष्टवदनस्तथा।
इति रक्तस्य कर्तव्या सेवा रविकुलोद्वह।
आपत्सु न त्यजेत् पूर्वं विरक्तमपि सेवितम्॥ ३७
मित्रं न चापत्सु तथा च भृत्यं
त्यजन्ति ये निर्गुणमप्रमेयम्।
विभुं विशेषेण च ते व्रजन्ति
सुरेन्द्रधामामरवृन्दजुष्टम्॥ ३८

अनुरक्त राजा भृत्योंको देखकर प्रसन्न होता है, उसकी बातको आदरपूर्वक ग्रहण करता है और कुशलमङ्गल पूछकर आसन देता है। एकान्तमें अथवा अन्तःपुरमें भी उसे देखकर कभी संशय नहीं करता और उसकी कही हुई बातें सुनकर प्रसन्न होता है। उसके द्वारा कही हुई अप्रिय बातोंका भी अभिनन्दन करता है और उसकी थोड़ी-सी भी भेंट आदरपूर्वक स्वीकार करता है। दूसरी कथाके प्रसङ्गपर उसका स्मरण करता है और सर्वदा उसे देखकर प्रसन्न रहता है। सूर्यकुलोत्पन्न! ऐसे अनुरक्त राजाकी सेवा करनी चाहिये। किंतु पूर्वकालमें सेवा किये गये विरक्त राजाका भी आपत्तिकालमें त्याग नहीं करना चाहिये। जो मनुष्य अपने निर्गुण एवं अनुपम मित्र, भृत्य तथा विशेषरूपसे स्वामीको आपत्तिके अवसपर नहीं छोड़ते, वे देवता-वृन्दोंके द्वारा सेवित देवराज इन्द्रके धामको जाते हैं॥ ३४—३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मेऽनुजीविवृत्तं नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रसंगमें भृत्य-व्यवहार नामक दो सौ सोलहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१६॥

दो सौ सतरहवाँ अध्याय

दुर्ग-निर्माणकी विधि तथा राजाद्वारा दुर्गमें संग्रहणीय उपकरणोंका विवरण

मत्स्य उवाच

राजा सहायसंयुक्तः प्रभूतयवसेन्धनम्।
रम्यमानतसामन्तं मध्यमं देशमावसेत्॥ १
वैश्यशूद्रजनप्रायमनाहार्यं तथा परैः।
किञ्चिद् ब्राह्मणसंयुक्तं बहुकर्मकरं तथा॥ २

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! जहाँ प्रचुर मात्रामें घास-भूसा और लकड़ी वर्तमान हो, स्थान रमणीय हो, पड़ोसी राजा विनम्र हो, वैश्य और शूद्रलोग अधिक मात्रामें रहते हों, जो शत्रुओंद्वारा हरण किये जाने योग्य न हो एवं कुछ विप्रों तथा अधिकांश कर्मकरोंसे संयुक्त हो,

अदेवमातृकं रम्यमनुरक्तजनान्वितम्।
करैरपीडितं चापि बहुपुष्पफलं तथा॥ ३

अगम्यं परचक्राणां तद्वासगृहमापदि।
समदुःखसुखं राज्ञः सततं प्रियमास्थितम्॥ ४

सरीसृपविहीनं च व्याघ्रतस्करवर्जितम्।
एवंविधं यथालाभं राजा विषयमावसेत्॥ ५

तत्र दुर्गं नृपः कुर्यात् षण्णामेकतमं बुधः।
धन्वदुर्गं महीदुर्गं नरदुर्गं तथैव च॥ ६

वार्क्ष चैवाम्बुदुर्गं च गिरिदुर्गं च पार्थिव।
सर्वेषामेव दुर्गाणां गिरिदुर्गं प्रशस्यते॥ ७

दुर्गं च परिखोपेतं वप्राट्टालकसंयुतम्।
शतघ्नीयन्त्रमुख्यैश्च शतशश्च समावृतम्॥ ८

गोपुरं सकपाटं च तत्र स्यात् सुमनोहरम्।
सपताकं गजारूढो येन राजा विशेत् पुरम्॥ ९

चतस्त्रश्च तथा तत्र कार्यास्त्वायतवीथयः।
एकस्मिंस्तत्र वीथ्यग्रे देववेश्म भवेद् दृढम्॥ १०

वीथ्यग्रे च द्वितीये च राजवेश्म विधीयते।
धर्माधिकरणं कार्यं वीथ्यग्रे च तृतीयके॥ ११

चतुर्थे त्वथ वीथ्यग्रे गोपुरं च विधीयते।
आयतं चतुरग्रं वा वृत्तं वा कारयेत् पुरम्॥ १२

मुक्तिहीनं त्रिकोणं च यवमध्यं तथैव च।
अर्धचन्द्रप्रकारं च वज्राकारं च कारयेत्॥ १३

अर्धचन्द्रं प्रशंसन्ति नदीतीरेषु तद्वसन्।
अन्यत्र तन्न कर्तव्यं प्रयत्नेन विजानता॥ १४

राज्ञा कोशगृहं कार्यं दक्षिणे राजवेश्मनः।
तस्यापि दक्षिणे भागे गजस्थानं विधीयते॥ १५

गजानां प्राङ्मुखी शाला कर्तव्या वाप्युदङ्मुखी।
आग्नेये च तथा भागे आयुधागारमिष्यते॥ १६

महानसं च धर्मज्ञ कर्मशालास्तथापराः।
गृहं पुरोधसः कार्यं वामतो राजवेश्मनः॥ १७

देवस्थान रहित सुन्दर हो, अनुरक्तजनोंसे समन्वित हो, जहाँके निवासी करके भारसे पीड़ित न हों, पुष्प और फलकी बहुतायत हो, आपत्तिके समय वह वासस्थान शत्रुओंके लिये अगम्य हो, जहाँ निरन्तर समानरूपसे राजाके सुख-दुःखके भागी एवं प्रेमीजन निवास करते हों, जो सर्प, बाघ और चोरसे रहित हो तथा सरलतासे उपलब्ध हो, इस प्रकारके देशमें राजाको अपने सहायकोंसहित निवास करना चाहिये। वहाँ बुद्धिमान् राजाको धन्व या धनुदुर्ग (जहाँ चारों ओरसे मरुभूमि हो), महीदुर्ग नरदुर्ग, वृक्षदुर्ग, जलदुर्ग तथा पर्वतदुर्ग—इन छः दुर्गोंमेंसे किसी एकको रचना करनी चाहिये। राजन्! इन सभी दुर्गोंमें गिरि (पर्वत) दुर्ग श्रेष्ठ माना गया है*। वह गिरिदुर्ग खाई, चहारदीवारी तथा ऊँची अट्टालिकाओंसे युक्त एवं तोप आदि सैकड़ों प्रधान यन्त्रोंसे घिरा होना चाहिये। उसमें किंवाड़सहित मनोहर फाटक लगा हो, जिससे हाथीपर बैठा हुआ पताकासमेत राजा नगरमें प्रविष्ट हो सके॥ १—९॥

वहाँ चार लम्बी-चौड़ी गलियाँ बनवानी चाहिये। जिनमें एक गलीके अग्रभागमें सुदृढ़ देव-मन्दिरका निर्माण कराये। दूसरी गलीके आगे राजमहल बनानेका विधान है। तीसरी गलीके अग्रभागमें धर्माधिकारीका आवासस्थान हो। चौथी गलीके अग्रभागमें दुर्गका मुख्य प्रवेशद्वार हो। उस दुर्गको चौकोना, आयताकार, गोलाकार, मुक्तिहीन, त्रिकोण, यवमध्य, अर्धचन्द्राकार अथवा वज्राकार बनवाना चाहिये। नदी-तटपर बनाये गये अर्धचन्द्राकार दुर्गको उत्तम माना जाता है। विद्वान् राजाको अन्य स्थानोंपर ऐसे दुर्गका निर्माण नहीं करना चाहिये। राजाको राजमहलके दाहिने भागमें कोशगृह बनवाना चाहिये। उसके भी दाहिने भागमें गजशाला बनवानेका विधान है। गजोंकी शाला पूर्व अथवा उत्तराभिमुखी होनी चाहिये। अग्निकोणमें आयुधागार बनवाना उचित है। धर्मज्ञ! उसी दिशामें रसोईघर तथा अन्यान्य कर्मशालाओंकी भी रचना करे। राजभवनकी बायीं ओर पुरोहितका भवन होना चाहिये

* गिरिदुर्ग चारों ओरसे पर्वतोंसे घिरे हुए पर्वतोंके मध्य किसी चौरस पर्वतपर ही स्थित होता है। इसके भी चारों ओर मरुभूमि, जलराशि, खाई, वृक्षादिके दुर्ग होते हैं। मनुनिर्मित रोहिताश्वदुर्ग तथा कलिंजर, चरणाद्रिके दुर्ग ऐसे ही हैं। मनु० ७। ७०—७७ आदिमें इनका विस्तृत उल्लेख है।

मन्त्रिवेदविदां चैव चिकित्साकर्तुरेव च।
तत्रैव च तथा भागे कोष्ठागारं विधीयते॥ १८
गवां स्थानं तथैवात्र तुरगाणां तथैव च।
उत्तराभिमुखा श्रेणी तुरगाणां विधीयते॥ १९
दक्षिणाभिमुखा वाथ परिशिष्टास्तु गर्हिताः।
तुरगास्ते तथा धार्याः प्रदीपैः सार्वरात्रिकैः॥ २०
कुक्कुटान् वानरांश्चैव मर्कटांश्च विशेषतः।
धारयेदश्वशालासु सवत्सां धेनुमेव च॥ २१
अजाश्च धार्या यत्नेन तुरगाणां हितैषिणा।
गोगजाश्वादिशालासु तत्पुरीषस्य निर्गमः॥ २२
अस्तं गते न कर्तव्यो देवदेवे दिवाकरे।
तत्र तत्र यथास्थानं राजा विज्ञाय सारथीन्॥ २३
दद्यादावसथस्थानं सर्वेषामनुपूर्वशः।
योधानां शिल्पिनां चैव सर्वेषामविशेषतः॥ २४
दद्यादावसथान् दुर्गे कालमन्त्रविदां शुभान्।
गोवैद्यानश्ववैद्यांश्च गजवैद्यांस्तथैव च॥ २५
आहरेत भृशं राजा दुर्गे हि प्रबला रुजः।
कुशीलवानां विप्राणां दुर्गे स्थानं विधीयते॥ २६

तथा उसी स्थलपर एवं उसी दिशामें मन्त्रियों और वैद्यका निवासस्थान एवं कोष्ठागार बनानेका विधान है। उसी स्थानके समीप गौओं तथा अश्वोंके निवासकी व्यवस्था करनी चाहिये। अश्वोंकी पंक्ति उत्तराभिमुखी अथवा दक्षिणाभिमुखी हो सकती है, अन्य दिशाभिमुखी निन्दित मानी गयी है। जहाँ अश्व रखे जायँ वहाँ रातभर दीपक जलते रहना चाहिये। अश्वशालामें मुर्गा, बंदर, मर्कट तथा बछड़ेसहित गौ भी रखनेका विधान है। अश्वोंका कल्याण चाहनेवाला अश्वशालामें बकरियोंको भी रखे। गौ, हाथी और अश्वादि शालाओंमें उनके गोबर निकालनेकी व्यवस्था सूर्य अस्त हो जानेपर नहीं करनी चाहिये। राजा उन-उन स्थानोंमें यथायोग्य समझकर क्रमशः सभी सारथियोंको आवासस्थान प्रदान करे। इसी प्रकार सबसे बढ़कर योद्धाओं, शिल्पियों और कालमन्त्रके वेत्ताओंको दुर्गमें उत्तम निवास-स्थान दे। इसी प्रकार राजाको गौ-वैद्य, अश्व-वैद्य तथा गज-वैद्यको भी रखना चाहिये; क्योंकि दुर्गमें कभी रोगोंकी प्रबलता हो सकती है। दुर्गमें चारणों, संगीतज्ञों और ब्राह्मणोंके स्थानका विधान है॥ १०—२६॥

न बहूनामतो दुर्गे विना कार्यं तथा भवेत्।
दुर्गे च तत्र कर्तव्या नानाप्रहरणान्विताः॥ २७
सहस्रघातिनो राजंस्तैस्तु रक्षा विधीयते।
दुर्गे द्वाराणि गुप्तानि कार्याण्यपि च भूभुजा॥ २८
संचयश्चात्र सर्वेषामायुधानां प्रशस्यते।
धनुषां क्षेपणीयानां तोमराणां च पार्थिव॥ २९
शराणामथ खड्गानां कवचानां तथैव च।
लगुडानां गुडानां च हुडानां परिघैः सह॥ ३०
अश्मनां च प्रभूतानां मुद्गराणां तथैव च।
त्रिशूलानां पट्टिशानां कुठाराणां च पार्थिव॥ ३१
प्रासानां च सशूलानां शक्तीनां च नरोत्तम।
परश्वधानां चक्राणां वर्मणां चर्मभिः सह॥ ३२
कुद्दालरज्जुवेत्राणां पीठकानां तथैव च।
तुषाणां चैव दात्राणामङ्गाराणां च संचयः॥ ३३
सर्वेषां शिल्पिभाण्डानां संचयश्चात्र चेष्यते।
वादित्राणां च सर्वेषामोषधीनां तथैव च॥ ३४

इनके अतिरिक्त दुर्गमें निरर्थक बहुत-से व्यक्तियोंको नहीं रखना चाहिये। राजन्! दुर्गमें विविध प्रकारके शस्त्रास्त्रसे युक्त एवं हजारोंको मारनेमें समर्थ योद्धाओंको रखना चाहिये; क्योंकि उन्हींसे रक्षा होती है। राजाको दुर्गमें गुप्तद्वार भी बनवाना चाहिये। राजन्! दुर्गमें सभी प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंके संग्रहकी विशेष प्रशंसा की गयी है। नृपश्रेष्ठ राजन्! राजाको दुर्गमें धनुष, ढेलवाँस, तोमर, बाण, तलवार, कवच, लाठी, गुड (हाथीको फँसानेका एक फंदा), हुड (चोरोंको फँसानेका खूँटा), परिघ, पत्थर, बहुसंख्यक मुद्गर, त्रिशूल, पट्टिश, कुठार, प्रास (भाला), शूल, शक्ति, फरसा, चक्र, चर्मके साथ ढाल, कुदाल, रस्सी, बेंत, पीठक, भूसी, हँसिया, कोयला—इन सबका संचय करना चाहिये। दुर्गमें सभी प्रकारके शिल्पीय पात्रोंका भी संचय रहना चाहिये। वह सभी प्रकारके वाद्यों तथा ओषधियोंका भी संचय करे।

यवसानां प्रभूतानामिन्धनस्य च संचयः।
गुडस्य सर्वतैलानां गोरसानां तथैव च॥ ३५
वसानामथ मज्जानां स्नायूनामस्थिभिः सह।
गोचर्मपटहानां च धान्यानां सर्वतस्तथा॥ ३६
तथैवाभ्रपटानां च यवगोधूमयोरपि।
रत्नानां सर्ववस्त्राणां लौहानामप्यशेषतः॥ ३७
कलायमुद्गमाषाणां चणकानां तिलैः सह।
तथा च सर्वसस्यानां पांसुगोमययोरपि॥ ३८
शणसर्जरसं भूर्जं जतु लाक्षा च टङ्कणम्।
राजा संचिनुयाद् दुर्गे यच्चान्यदपि किञ्चन॥ ३९
कुम्भाश्चाशीविषैः कार्या व्यालसिंहादयस्तथा।
मृगाश्च पक्षिणश्चैव रक्ष्यास्ते च परस्परम्॥ ४०
स्थानानि च विरुद्धानां सुगुप्तानि पृथक् पृथक्।
कर्तव्यानि महाभाग यत्नेन पृथिवीक्षिता॥ ४१
उक्तानि चाप्यनुक्तानि राजद्रव्याण्यशेषतः।
सुगुप्तानि पुरे कुर्याज्जनानां हितकाम्यया॥ ४२
जीवकर्षभकाकोलमामलक्याटरूषकान्।
शालपर्णी पृश्निपर्णी मुद्गपर्णी तथैव च॥ ४३
माषपर्णी च मेदे द्वे शारिवे द्वे बलात्रयम्।
वीरा श्वसन्ती वृष्या च बृहती कण्टकारिका॥ ४४
शृङ्गी शृङ्गाटकी द्रोणी वर्षाभूर्दर्भ रेणुका।
मधुपर्णी विदार्यौ द्वे महाक्षीरा महातपाः॥ ४५
धन्वनः सहदेवाह्वा कटुकैरण्डकं विषः।
पर्णी शताह्वा मृद्वीका फल्गुखर्जूरयष्टिकाः॥ ४६
शुक्रातिशुक्रकाश्मर्यश्छत्रातिच्छत्रवीरणाः।
इक्षुरिक्षुविकाराश्च फाणिताद्याश्च सत्तम॥ ४७
सिंही च सहदेवी च विश्वेदेवाश्वरोधकम्।
मधुकं पुष्पहंसाख्या शतपुष्पा मधूलिका॥ ४८
शतावरीमधूके च पिप्पलं तालमेव च।
आत्मगुप्ता कट्फलाख्या दार्विका राजशीर्षकी॥ ४९
राजसर्षपधान्याकमृष्यप्रोक्ता तथोत्कटा।
कालशाकं पद्मबीजं गोवल्ली मधुवल्लिका॥ ५०
शीतपाकी कुलिङ्गाक्षी काकजिह्वोरुपुष्पिका।
पर्वतत्रपुसौ चोभौ गुञ्जातकपुनर्नवे॥ ५१

वहाँ प्रचुरमात्रामें घास-भूसा, ईंधन, गुड, सभी प्रकारके तेल तथा गोरसका भी संचय हो। राजाको दुर्गमें बसा, मज्जा, हड्डियोंसहित स्नायु, गोचर्मसे बने नगाड़े, धान्य, तम्बू, जौ, गेहूँ, रत्न, सभी प्रकारके वस्त्र, लौह, कुरथी, मूँग, उड़द, चना, तिल, सभी प्रकारके अन्न, धूल, गोबर, सन, भोजपत्र, जस्ता, लाह, पत्थर तोड़नेकी छेनी तथा अन्य भी जो कुछ पदार्थ हों, उनका संचय करना चाहिये। सर्पोंके विषसे भरे घड़े, साँप, सिंह आदि हिंसक जन्तु, मृग तथा पक्षी रखे जाने चाहिये, किंतु वे एक-दूसरेसे सुरक्षित रहें। महाभाग! राजाको विरोधी जीवोंकी रक्षाके लिये यत्नपूर्वक पृथक्-पृथक् स्थान बनवाना चाहिये। राजाको प्रजाकी कल्याण-भावनासे कही गयी अथवा न कही गयी सम्पूर्ण राजवस्तुओंको दुर्गमें गुप्तरूपसे संग्रहीत करना चाहिये॥ ३७—४२॥

जीवक, ऋषभक, काकोल, इमली, आटरूष, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दोनों प्रकारकी मेदा, दोनों प्रकारकी शारिवा, तीनों बलाएँ (एक ओषधि), वीरा, श्वसन्ती, वृष्या, बृहती, कण्टकारिका, शृङ्गी, शृङ्गाटकी, द्रोणी, वर्षाभू, कुश, रेणुका, मधुपर्णी, दोनों विदारी, महाक्षीरा, महातपा, धन्वन, सहदेवी, कटुक, रेंड़, विष, शतपर्णी, मृद्वीका, फल्गु, खजूर, यष्टिका, शुक्र, अतिशुक्र, काश्मरी, छत्र, अतिछत्र, वीरण, ईख और ईखसे होनेवाली अन्य वस्तुएँ, फाणित आदि, सिंही, सहदेवी, विश्वदेव, अश्वरोधक, महुआ, पुष्पहंसा, शतपुष्पा, मधूलिका, शतावरी, महुआ, पिप्पल, ताल, आत्मगुप्ता, कटफल, दार्विका, राजशीर्षकी, श्वेत सरसों, धनिया, ऋष्यप्रोक्ता, उत्कटा, कालशाक, पद्मबीज, गोवल्ली, मधुवल्लिका, शीतपाकी, कुलिंगाक्षी, काकजिह्वा, उरुपुष्पका, दोनों पर्वत और त्रपुष, गुंजातक, पुनर्नवा,

कसेरुका तु काश्मीरी बिल्वशालूककेसरम्।
तुषधान्यानि सर्वाणि शमी धान्यानि चैव हि॥ ५२
क्षीरं क्षौद्रं तथा तक्रं तैलं मज्जा वसा घृतम्।
नीपश्चारिष्टकक्षोडवातामसोमबाणकम् ॥ ५३
एवमादीनि चान्यानि विज्ञेयो मधुरो गणः।
राजा संचिनुयात् सर्वं पुरे निरवशेषतः॥ ५४

कसेरुका, काश्मीरी, बिल्व, शालूक, केसर, सभी प्रकारकी भूसियाँ, शमी, अन्न, दुग्ध, शहद, मट्ठा, तेल, मज्जा, वसा, घी, कदम्ब, अरिष्टक, अक्षोट, बादाम, सोम और बाणक—इन सबको तथा इसी प्रकार अन्य पदार्थोंको मधुर जानना चाहिये। राजा इन सबका पूर्णरूपसे दुर्गमें संग्रह करे॥ ४३—५४॥

दाडिमाम्रातकौ चैव तिन्तिडीकाम्लवेतसम्।
भव्यकर्कन्धुलकुचकरमर्दकरूषकम् ॥ ५५
बीजपूरककण्डूरे मालती राजबन्धुकम्।
कोलकद्वयपर्णानि द्वयोराम्रातयोरपि॥ ५६
पारावतं नागरकं प्राचीनारुकमेव च।
कपित्थामलकं चुक्रफलं दन्तशठस्य च॥ ५७
जाम्बवं नवनीतं च सौवीरकरुषोदके।
सुरासवं च मद्यानि मण्डतक्रदधीनि च॥ ५८
शुक्लानि चैव सर्वाणि ज्ञेयमाम्लगणं द्विज।
एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात् पुरे॥ ५९
सैन्धवोद्भिदपाठेयपाक्यसामुद्रलोमकम् ।
कुप्यसौवर्चलाविल्वं बालकेयं यवाह्वकम्॥ ६०
औव क्षारं कालभस्म विज्ञेयो लवणो गणः।
एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात् पुरे॥ ६१
पिप्पली पिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम्।
कुबेरकं च मरिचं शिग्रुभल्लातसर्षपाः॥ ६२
कुष्ठाजमोदा किणिही हिङ्गुमूलकधान्यकम्।
कारवी कुञ्चिका याज्या सुमुखा कालमालिका॥ ६३
फणिज्झकोऽथ लशुनं भूस्तृणं सुरसं तथा।
कायस्था च वयःस्था च हरितालं मनःशिला॥ ६४
अमृता च रुदन्ती च रोहिषं कुङ्कुमं तथा।
जया एरण्डकाण्डीरं शल्लकी हञ्जिका तथा॥ ६५
सर्वपित्तानि मूत्राणि प्रायो हरितकानि च।
संगतानि च मूलानि यष्टिश्चातिविषाणि च।
फलानि चैव हि तथा सूक्ष्मैला हिङ्गुपत्रिका॥ ६६
एवमादीनि चान्यानि गणः कटुकसंज्ञितः।
राजा संचिनुयाद् दुर्गे प्रयत्नेन नृपोत्तम॥ ६७

अनार, आम्रातक, इमली, अम्लवेतस, सुन्दर बेर, बड़हर, करमर्द, करूषक, विजौरा, कण्डूर, मालती, राज-बन्धुक, दोनों कोलकों और अमड़ोंके पत्ते, पारावत, नागरक, प्राचीन अरुक, कैथ, आँवला, चुक्रफल, दन्तशठ, जामुन, मक्खन, सौवीरक, रुषोदक, सुरा, आसव आदि मद्य, माँड, मट्ठा, दही एवं ऐसे सभी प्रकारके श्वेत पदार्थोंको खट्टा समझना चाहिये। राजा इनका तथा ऐसे अन्यान्य पदार्थोंका अपने दुर्गमें संचय करे। सैन्धव, उद्भिद, पाठेय, पाक्य, सामुद्र (साँभर), लोमक, कुप्य, सौवर्चल, अविल्व, बालकेय, यव, भौम, क्षार, कालभस्म—ये सभी लवणके भेदोपभेद हैं। राजा इन सबका तथा अन्य लवणोंका दुर्गमें संग्रह करे। पीपर, पीपरका मूल, चव्य, शीता, सौंठ, कुबेरक, मिर्च, सहजना, भिलावा, सरसों, कुष्ठ, अजमोदा, ओंगा, हींग, मूली, धनियाँ, सौंफ, अजवाइन, मंजीठ, जवीर, कलमालिका, कणिज्झक, लहसुन, पालाके आकारवाला जलीय तृण, हरड़, कायस्था, वयःस्था, हरताल, मैनसिल, गिलोय, रुदंती, रोहिष, केशर, जया, रेड़ी, नरकट, शल्लकी, भारंगी, सभी प्रकारके पित्त और मूत्र, हरें, आवश्यक मूल, मुलहठी, अतिविष, छोटी इलायची, तेजपात आदि कटु ओषधियाँ हैं। राजश्रेष्ठ! राजा दुर्गमें प्रयत्नपूर्वक इनका संग्रह करे।

मुस्तं चन्दनह्रीबेरकृतमालकदारवः।
हरिद्रानलदोशीरनक्तमालकदम्बकम् ॥ ६८
दूर्वा पटोलकटुका दन्तीत्वक् पत्रकं वचा।
किराततिक्तभूतुम्बी विषा चातिविषा तथा॥ ६९
तालीसपत्रतगरं सप्तपर्णविकङ्कताः।
काकोदुम्बरिका दिव्यास्तथा चैव सुरोद्भवा॥ ७०
षड्ग्रन्था रोहिणी मांसी पर्पटश्चाथ दन्तिका।
रसाञ्जनं भृङ्गराजं पतङ्गी परिपेलवम्॥ ७१
दुःस्पर्शा गुरुणी कामा श्यामाकं गन्धनाकुली।
रूपपर्णी व्याघ्रनखं मञ्जिष्ठा चतुरङ्गुला॥ ७२
रम्भा चैवाङ्कुरास्फीता तालास्फीता हरेणुका।
वेत्राग्रवेतसस्तुम्बी विषाणी लोध्रपुष्पिणी॥ ७३
मालती करकृष्णाख्या वृश्चिका जीविता तथा।
पर्णिका च गुडूची च स गणस्तिक्तसंज्ञकः॥ ७४
एवमादीनि चान्यानि राजा संचिनुयात् पुरे।
अभयामलके चोभे तथैव च बिभीतकम्॥ ७५
प्रियङ्गुधातकीपुष्पं मोचाख्या चार्जुनासनाः।
अनन्ता स्त्री तुवरिका श्योणाकं कट्फलं तथा॥ ७६
भूर्जपत्रं शिलापत्रं पाटलापत्रलोमकम्।
समङ्गात्रिवृतामूलकार्पासगैरिकाञ्जनम् ॥ ७७
विद्रुमं समधूच्छिष्टं कुम्भिका कुमुदोत्पलम्।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकिंशुकाः शिंशपा शमी॥ ७८
प्रियालपीलुकासारिशिरीषाः पद्मकं तथा।
बिल्वोऽग्निमन्थः प्लक्षश्च श्यामाकं च बको धनम्॥ ७९
राजादनं करीरं च धान्यकं प्रियकस्तथा।
कङ्कोलाशोकबदराः कदम्बखदिरद्वयम्॥ ८०
एषां पत्राणि साराणि मूलानि कुसुमानि च।
एवमादीनि चान्यानि कषायाख्यो गणो मतः॥ ८१
प्रयत्नेन नृपश्रेष्ठ राजा संचिनुयात् पुरे।
कीटाश्च मारणे योग्या व्यङ्गतायां तथैव च॥ ८२
वातधूमाम्बुमार्गाणां दूषणानि तथैव च।
धार्याणि पार्थिवैर्दुर्गे तानि वक्ष्यामि पार्थिव॥ ८३

नागरमोथा, चन्दन, ह्रीबेर, कृतहारक, दारुहल्दी, हल्दी, नलद, खश, नक्तमाल, कदम्ब, दूर्वा, परवल, तेजपात, वच, चिरायता, भूतुम्बी, विषा, अतिविषा, तालीसपत्र, तगर, छितवन, खैर, काली गूलर, दिव्या, सुरोद्भवा, षड्ग्रन्थी, रोहिणी, जटामासी, पर्पट, दन्ती, रसांजन, भृंगराज, पतंगी, परिपेलव, दुःस्पर्शा, अगुरुद्वय, कामा, श्यामाक, गंधनाकुली, तुषपर्णी, व्याघ्रनख, मंजीठ, चतुरंगुला, केला, अंकुरास्फीता, तालास्फीता, रेणुकबीज, बेतका अग्रभाग, बेत, तुम्बी, कँकरासींगी, लोध्रपुष्पिणी, मालती, करकृष्णा, वृश्चिका, जीविता, पर्णिका तथा गुडुच—यह तिक्त ओषधियोंका समूह है। राजा इनका तथा इसी प्रकारके अन्य तिक्त पदार्थोंका दुर्गमें संग्रह रखे॥ ५५—७४½॥

हर्रे, बहेड़ा, आँवला, मालकागुन, धायके फूल, मोचरस, अर्जुन, असन, अनन्ता, कामिनी, तुबरिका, श्योणाक, जायफल, भोजपत्र, शिलाजीत, पाटलवृक्ष, लोहबान, समंगा, त्रिवृता, मूल, कपास, गेरु, अंजन, विद्रुम, शहद, जलकुम्भी, कुमुदिनी, कमल, बरगद, गूलर, पीपल, पालाश, शीशम, शमी, प्रियाल, पीलु, कासारि, शिरीष, पद्म, बेल, अरणी, पाकड़, श्यामाक, बक, धन, राजादन, करीर, धनिया, प्रियक, कंकोल, अशोक, बेर, कदंब, दोनों प्रकारके खैर—इन वृक्षोंके पत्ते, सारभाग (सत्त्व), मूल तथा पुष्प काषाय माने गये हैं। राजश्रेष्ठ! राजाको ये काषाय ओषधियाँ दुर्गमें रखनी चाहिये। राजन्! मारने एवं घायल करनेवाले कीट-पतंग तथा वायु, धूम, जल तथा मार्गको दूषित करनेवाली ओषधियोंको, जिन्हें मैं आगे बतलाऊँगा, राजाको दुर्गमें रखनी चाहिये।

विषाणां धारणं कार्यं प्रयत्नेन महीभुजा।
विचित्राश्चागदा धार्या विषस्य शमनास्तथा॥ ८४
रक्षोभूतपिशाचघ्नाः पापघ्नाः पुष्टिवर्धनाः।
कलाविदश्च पुरुषाः पुरे धार्याः प्रयत्नतः॥ ८५
भीतान् प्रमत्तान् कुपितांस्तथैव च विमानितान्।
कुभृत्यान् पापशीलांश्च न राजा वासयेत् पुरे॥ ८६
यन्त्रायुधाट्टालचयोपपन्नं
समग्रधान्यौषधिसम्प्रयुक्तम्।
वणिग्जनैश्चावृतमावसेत
दुर्गे सुगुप्तं नृपतिः सदैव॥ ८७

राजाको प्रयत्नपूर्वक सभी विषोंका संग्रह करना चाहिये तथा विष-प्रभावको शान्त करनेवाली विचित्र ओषधियोंको भी धारण करना उचित है। राक्षस, भूत तथा पिशाचोंके प्रभावको नष्ट करनेवाले, पापनाशक, पुष्टिकारक पदार्थों तथा कलाविज्ञ पुरुषोंको भी दुर्गमें प्रयत्नपूर्वक स्थापित करना चाहिये। राजाको चाहिये कि उस दुर्गमें डरकर भागे हुए, उन्मत्त, क्रुद्ध, अपमानित तथा पापी दुष्ट अनुचरोंको न ठहरने दे। सभी प्रकारके यन्त्र, अस्त्र तथा अट्टालिकाओंके समूहसे संयुक्त, सभी प्रकारके अन्न तथा ओषधियोंसे सुसम्पन्न और व्यवसायी जनोंसे परिपूर्ण दुर्गमें राजाको सदैव सुखपूर्वक निवास करना चाहिये॥ ७५—८७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दुर्गनिर्माणौषध्यादिसंचयकथनं नाम सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजाओंके लिये दुर्गनिर्माण और औषधि आदिके संचयका वर्णन नामक दो सौ सतरहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१७॥

दो सौ अठारहवाँ अध्याय

दुर्गमें संग्राह्य ओषधियोंका वर्णन

मनुरुवाच

रक्षोघ्नानि विषघ्नानि यानि धार्याणि भूभुजा।
अगदानि समाचक्ष्व तानि धर्मभृतां वर॥ १

मत्स्य उवाच

बिल्वाटकी यवक्षारं पाटला बाह्लिकोषणा।
श्रीपर्णी शल्लकीयुक्तो निक्काथः प्रोक्षणं परम्॥ २
सविषं प्रोक्षितं तेन सद्यो भवति निर्विषम्।
यवसैन्धवपानीयवस्त्रशय्यासनोदकम्॥ ३
कवचाभरणं क्षत्रं वालव्यजनवेश्मनाम्।
शेलुः पाटलातिविषा शिग्रु मूर्वा पुनर्नवा॥ ४
समङ्गा वृषमूलं च कपित्थवृषशोषितम्।
महादन्तशठं तद्वत् प्रोक्षणं विषनाशनम्॥ ५
लाक्षाप्रियङ्गुमञ्जिष्ठा सममेला हरेणुका।
यष्ठ्याह्वा मधुरा चैव बभ्रुपित्तेन कल्पिताः॥ ६
निखनेद् गोविषाणस्थं सप्तरात्रं महीतले।
ततः कृत्वा मणिं हेम्ना बद्धं हस्तेन धारयेत्॥ ७

मनुने पूछा— धार्मिकश्रेष्ठ! राजाको राक्षस, विष और रोगको दूरकर स्वस्थ करनेवाली जिन ओषधियोंका दुर्गमें संग्रह करना चाहिये, उनका वर्णन कीजिये॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा— बिल्वाटकी, जवाखार, पाटला, बाह्लिक, ऊषणा, श्रीपर्णी और शल्लकी—इन ओषधियोंका काढ़ा उत्तम प्रोक्षण है। विषग्रस्त प्राणीद्वारा उसका सेवन करनेसे वह तुरंत ही विषरहित हो जाता है। उसी प्रकार इनके द्वारा सेवन करनेसे यव, सैन्धव, पानीय, वस्त्र, शय्या, आसन, जल, कवच, आभरण, छत्र, चामर और गृह आदि विषरहित हो जाते हैं। शेलु, पाटली, अतिविषा, शिग्रु, मूर्वा, पुनर्नवा, समंगा, वृषमूल, कपित्थ, वृषशोषित तथा महादन्तशठ—इन ओषधियोंके काढ़ेका सेवन भी उसी प्रकार विषनाशक होता है। लाह, प्रियंगु, मंजीठ, समान भागमें इलायची, हर्रे, जेठीमधु और मधुरा—इन्हें नकुल-पित्तसे संयुक्त करके गायके सींगमें रखकर सात राततक पृथ्वीमें गाड़ दे। इसके बाद उसे सुवर्णजटित मणिकी अंगूठीमें रखकर हाथमें धारण कर

संसृष्टं सविषं तेन सद्यो भवति निर्विषम्।
मनोह्वया शमीपत्रं तुम्बिका श्वेतसर्षपा:॥ ८

कपित्थकुष्ठमञ्जिष्ठा: पित्तेन श्लक्ष्णकल्पिता:।
शुनो गो: कपिलायाश्च सौम्याक्षिप्तोऽपरो गद:॥ ९

विषजित्परमं कार्यं मणिरत्नं च पूर्ववत्।
मूषिका जतुका चापि हस्ते बध्वा विषापहा॥ १०

हरेणुमांसी मञ्जिष्ठा रजनी मधुका मधु।
अक्षत्वक् सुरसं लाक्षा श्वपितं पूर्ववद् भुवि॥ ११

वादित्राणि पताकाश्च पिष्टैरेतै: प्रलेपिता:।
श्रुत्वा दृष्ट्वा समाघ्राय सद्यो भवति निर्विष:॥ १२

त्र्यूषणं पञ्चलवणं मञ्जिष्ठा रजनीद्वयम्।
सूक्ष्मैला त्रिवृतापत्रं विडङ्गानीन्द्रवारुणी॥ १३

मधूकं वेतसं क्षौद्रं विषाणे च निधापयेत्।
तस्मादुष्णाम्बुना मात्रं प्रामुक्तं योजयेत् तत:॥ १४

विषभुक्तं ज्वरं याति निर्विषं पित्तदोषकृत्।
शुक्लंसर्जरसोपेतं सर्षपा एलवालुकै:॥ १५

सुवेगा तस्करसुरौ कुसुमैरर्जुनस्य तु।
धूपो वासगृहे हन्ति विषं स्थावरजङ्गमम्॥ १६

न तत्र कीटा न विषं दर्दुरा न सरीसृपा:।
न कृत्या कर्मणां चापि धूपोऽयं यत्र दह्यते॥ १७

कल्पितैश्चन्दनक्षीरपलाशद्रुमवल्कलै:।
मूर्वैलावालुसरसानाकुलीतण्डुलीयकै:॥ १८

क्राथ: सर्वोदकार्येषु काकमाचीयुतो हित:।
रोचनापत्रनेपालीकुङ्कुमैस्तिलकान् वहन्॥ १९
विषैर्न बाध्यतेऽस्माच्च नरनारीनृपप्रिय:।
चूर्णैर्हरिद्रामञ्जिष्ठाकिणिहीकणनिम्बजै:॥ २०
दिग्धं निर्विषतामेति गात्रं सर्वविषार्दितम्।
शिरीषस्य फलं पत्रं पुष्पं त्वङ्मूलमेव च॥ २१
गोमूत्रघृष्टो ह्यगद: सर्वकर्मकर: स्मृत:।
एकवीर महौषध्य: शृणु चात: परं नृप॥ २२
वन्ध्या कर्कोटकी राजन् विष्णुक्रान्ता तथोत्कटा।
शतमूली सितानन्दा बला मोचा पटोलिका॥ २३

ले। उसका स्पर्श करनेसे विषयुक्त प्राणी तुरंत ही निर्विष हो जाता है। जटामांसी, शमीके पत्ते, तुम्बी, श्वेत सरसों, कपित्थ, कुष्ठ और मंजीठ—इन ओषधियोंको कुत्ते अथवा कपिला गौके पित्तके साथ भावना दे। यह सौम्याक्षिप्त नामक दूसरी विषनाशक ओषधि है। इसे भी पूर्ववत् मणि एवं रत्ननिर्मित अंगूठीमें रखकर धारण करना चाहिये। इसी प्रकार मूषिका और लाहको भी हाथमें बाँधनेसे विषका शमन होता है॥१—१०॥

हर्रे, जटामांसी, मंजिष्ठा, हरिद्रा, महुआ, मधु, अक्षत्वक्, सुरसा और लाह—इन्हें भी पूर्ववत् कुत्तेके पित्तसे संयुक्त करके पृथ्वीमें गाड़ दे। फिर इनके लेपसे बाजों तथा पताकाओंपर लेप कर दे तो (विषाक्त प्राणी) उन्हें सुनकर, देखकर और सूँघकर तुरंत विषरहित हो जाता है। तीनों कटु (आँवला, हर्रे, बहेरा), पाँचों नमक, मंजीठ, दोनों रजनी, छोटी इलायची, त्रिवृताका पत्ता, बिडंग, इन्द्रवारुणि, मधूक, वेतस तथा मधु—इन सबको सींगमें स्थापित कर दे, फिर वहाँसे निकालकर गर्म जलमें मिला दे। इसके द्वारा विष-भक्षणसे उद्भूत पित्तदोष उत्पन्न करनेवाला ज्वर शान्त हो जाता है। श्वेत धूप, सरसों, एलबालुक, सुवेगा, तस्कर, सुर और अर्जुनके पुष्प—इन ओषधियोंका धूपवास करनेवाले घरमें स्थित स्थावर-जङ्गम सभी विषको नष्ट कर देता है। जहाँ वह धूप जलाया जाता है, वहाँ कीट, विष, मेढ़क, रेंगनेवाले सर्पादि जीव तथा कर्मोंकी कृत्या—ये कोई भी नहीं रह सकते। चन्दन, दुग्ध, पलाश-वृक्षकी छाल, मूर्वा, एलावालुक, सरसों, नाकुली, तण्डुलीयक एवं काकमाचीका काढ़ा सभी प्रकारके विषयुक्त जलमें कल्याणकारी होता है। रोचनापत्र, नेपाली, केसरतिलक—इन ओषधियोंको धारण करनेसे मनुष्यको विषका कष्ट नहीं होता, विषदोष नष्ट हो जाता है और वह इसके प्रभावसे स्त्री, पुरुष और राजाका प्रिय हो जाता है॥११—१९½॥

हल्दी, मंजीठ, किणिही, पिप्पली और नीमके चूर्णका लेप करनेसे सभी प्रकारके विषसे पीड़ित शरीर विषरहित हो जाता है। शिरीष-वृक्षका फल, पत्ता, पुष्प, छाल और जड़—इन सबको गो-मूत्रमें घिसकर तैयार की गयी ओषधि सभी प्रकारके विषकर्ममें हितकारी कही गयी है। सर्वोत्कृष्ट शूरवीर राजन्! इसके उपरान्त सर्वश्रेष्ठ ओषधियोंका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। राजन्! वन्ध्या, कर्कोटकी, विष्णुक्रान्ता, उत्कटा, शतमूली, सिता, आनन्दा,

सोमा पिण्डा निशा चैव तथा दग्धरुहा च या।
स्थले कमलिनी या च विशाली शङ्खमूलिका॥ २४
चाण्डाली हस्तिमगधा गोऽजापर्णी करम्भिका।
रक्ता चैव महारक्ता तथा बर्हिशिखा च या॥ २५
कौशातकी नक्तमालं प्रियालं च सुलोचनी।
वारुणी वसुगन्धा च तथा वै गन्धनाकुली॥ २६
ईश्वरी शिवगन्धा च श्यामला वंशनालिका।
जतुकाली महाश्वेता श्वेता च मधुयष्टिका॥ २७
वज्रकः पारिभद्रश्च तथा वै सिन्धवारकाः।
जीवानन्दा वसुच्छिद्रा नतनागरकण्टका॥ २८
नालं जाली च जाती च तथा च वटपत्रिका।
कार्तस्वरं महानीला कुन्दुरुर्हंसपादिका॥ २९
मण्डूकपर्णी वाराही द्वे तथा तण्डुलीयके।
सर्पाक्षी लवली ब्राह्मी विश्वरूपा सुखाकरा॥ ३०
रुजापहा वृद्धितरी तथा चैव तु शल्यदा।
पत्रिका रोहिणी चैव रक्तमाला महौषधी॥ ३१
तथामलकवृन्दाकं श्यामचित्रफला च या।
काकोली क्षीरकाकोली पीलुपर्णी तथैव च॥ ३२
केशिनी वृश्चिकाली च महानागा शतावरी।
गरुडी च तथा वेगा जले कुमुदिनी तथा॥ ३३
स्थले चोत्पलिनी या च महाभूमिलता च या।
उन्मादिनी सोमराजी सर्वरत्नानि पार्थिव॥ ३४
विशेषान्मरकतादीनि कीटपक्षं विशेषतः।
जीवजाताश्च मणयः सर्वे धार्याः प्रयत्नतः॥ ३५
रक्षोघ्नाश्च विषघ्नाश्च कृत्या वेतालनाशनाः।
विशेषान्नरनागाश्च गोखरोष्ट्रसमुद्भवाः॥ ३६
सर्पतित्तिरगोमायुबभ्रुमण्डुकजाश्च ये।
सिंहव्याघ्रर्क्षमार्जारद्वीपिवानरसम्भवाः।
कपिञ्जला गजा वाजिमहिषैणभवाश्च ये॥ ३७
इत्येवमेतैः सकलैरुपेतै-
द्रव्यैः परार्घ्यैः परिरक्षितः स्यात्।
राजा वसेत् तत्र गृहं सुशुभ्रं
गुणान्वितं लक्षणसम्प्रयुक्तम्॥ ३८

बला, मोचा, पटोलिका, सोमा, पिण्डा, निशा, दग्धरुहा, स्थलपद्म, विशाली, शंखमूलिका, चाण्डाली, हस्तिमगधा, गोपर्णी, अजापर्णी, करम्भिका, रक्ता, महारक्ता, बर्हिशिखा, कौशातकी, नक्तमाल, प्रियाल, सुलोचनी, वारुणी, वसुगन्धा, गन्धनाकुली, ईश्वरी, शिवगन्धा, श्यामला, वंशनालिका, जतुकाली, महाश्वेता, श्वेता, मधुयष्टिका, वज्रक, पारिभद्र, सिन्दुवारक, जीवानन्दा, वसुच्छिद्रा, नतनागर, कण्टकारि, नाल, जाली, जाती, वटपत्रिका, सुवर्ण, महानीला, कुन्दुरु, हंसपादिका, मण्डूकपर्णी, दोनों प्रकारकी वाराही, तण्डुलीयक, सर्पाक्षी (नकुलकंद), लवली, ब्राह्मी, विश्वरूपा, सुखाकरा, रुजापहा, वृद्धिकरी, शल्यदा, पत्रिका, रोहिणी, रक्तमाला, आमलक, वृन्दाक, श्यामा, चित्रफला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीलुपर्णी, केशिनी, वृश्चिकाली, महानागा, शतावरी, गरुड़ी, वेगा, जलकुमुदिनी, स्थलोत्पल, महाभूमिलता, उन्मादिनी, सोमराजी, सभी प्रकारके रत्न—विशेषकर मरकत आदि बहुमूल्य रत्न, अनेक प्रकारकी कीटज मणियाँ, जीवोंसे उत्पन्न होनेवाली मणियाँ—इन सभीको प्रयत्नपूर्वक दुर्गमें संचित करे। इसी प्रकार राक्षस, विष, कृत्या, वैताल आदिकी नाशक—विशेषकर मनुष्य, सर्प, गौ, गर्दभ, ऊँट, साँप, तीतर, शृगाल, नेवला, मेढक, सिंह, बाघ, रीछ, बिलाव, गैंड़ा, वानर, कपिंजल, हस्ती, अश्व, महिष और हरिण आदि जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली उपयोगी वस्तुओंका भी राजा संचय करे। इस प्रकार इन सभी बहुमूल्य पदार्थोंसे युक्त रहनेपर वह सुरक्षित रहता है। तब राजा उनमें बने हुए अत्यन्त निर्मल, उपर्युक्त लक्षणोंसे सम्पन्न तथा गुणयुक्त भवनमें निवास करे॥ २०—३८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽगदाध्यायो नामाष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अगदाध्याय नामक दो सौ अठारहवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१८॥

दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय

विषयुक्त पदार्थोंके लक्षण एवं उससे राजाके बचनेके उपाय

मनुरुवाच

राजरक्षारहस्यानि यानि दुर्गे निधापयेत्।
कारयेद् वा महीभर्ता ब्रूहि तत्त्वानि तानि मे॥ १

मत्स्य उवाच

शिरीषोदुम्बरशमीबीजपूरं घृतप्लुतम्।
क्षुद्योगः कथितो राजन् मासार्धस्य पुरातनैः॥ २

कशेरुफलमूलानि इक्षुमूलं तथा विषम्।
दूर्वाक्षीरघृतैर्मण्डः सिद्धोऽयं मासिकः परः॥ ३

नरं शस्त्रहतं प्राप्तो न तस्य मरणं भवेत्।
कल्माषवेणुना तत्र जनयेत्तु विभावसुम्॥ ४

गृहे त्रिरपसव्यं तु क्रियते यत्र पार्थिव।
नान्योऽग्निर्ज्वलते तत्र नात्र कार्या विचारणा॥ ५

कार्पासास्थ्ना भुजङ्गस्य तेन निर्मोचनं भवेत्।
सर्पनिर्वासने धूपः प्रशस्तः सततं गृहे॥ ६

सामुद्रसैन्धवयवा विद्युद्दग्धा च मृत्तिका।
तयानुलिप्तं यद्वेश्म नाग्निना दह्यते नृप॥ ७

दिवा च दुर्गे रक्ष्योऽग्निर्वाति वाते विशेषतः।
विषाच्च रक्ष्यो नृपतिस्तत्र युक्तिं निबोध मे॥ ८

क्रीडानिमित्तं नृपतिर्धारयेन्मृगपक्षिणः।
अन्नं वै प्राक् परीक्षेत वह्नौ चान्यतरेषु च॥ ९

वस्त्रं पुष्पमलङ्कारं भोजनाच्छादनं तथा।
नापरीक्षितपूर्वं तु स्पृशेदपि महीपतिः॥ १०

स्याच्छ्यासौ वक्त्रसंतप्तः सोद्वेगं च निरीक्षते।
विषदोऽथ विषं दत्तं यच्च तत्र परीक्षते॥ ११

स्रस्तोत्तरीयो विमनाः स्तम्भकुड्यादिभिस्तथा।
प्रच्छादयति चात्मानं लज्जते त्वरते तथा॥ १२

मनुने पूछा— भगवन्! राजाको राज्यकी रक्षाके लिये जिन रहस्यपूर्ण साधनोंको दुर्गमें संगृहीत या प्रस्तुत करना चाहिये, उन तत्त्वोंका मुझसे वर्णन कीजिये॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा— राजन्! शिरीष, गूलर, शमी और बिजौरा नीबू—इनको घृतमें परिप्लुतकर पंद्रह दिनों बाद सेवन करे, प्राचीन लोग इसे 'क्षुद्योग' कहते हैं। कशेरुके मूल भाग तथा फल, ईखके मूल भाग और विषको दूब, दूध और घीके साथ सिद्ध करनेसे बना हुआ पदार्थ मण्ड कहलाता है। एक मास बाद इसका सेवन करना चाहिये। इनके सेवनसे हथियारोंसे घायल हुआ मनुष्य मर नहीं सकता। वहाँ चितकबरे रंगवाले बाँसके टुकड़ेसे अग्नि उत्पन्न करे। राजन्! उस अग्निको जिस घरमें अपसव्य होकर तीन बार प्रदक्षिणा करे, वहाँ कोई अन्य अग्नि नहीं जल सकती—इसमें अन्यथा विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है। कपासके साथ सर्पकी हड्डी जलानेसे घरमेंसे सर्पोंका निष्कासन होता है। घरमें निरन्तर इस वस्तुकी धूप करना साँपको निकालनेके लिये विशेष प्रसिद्ध है। राजन्! सामुद्री नमक, सेन्धा नमक और यवा—ये तीन प्रकारके लवण तथा विद्युत्से जली हुई मिट्टी—इन वस्तुओंसे जिस भवनकी लिपाई होती है, उसे अग्नि नहीं जला सकती। दुर्गमें दिनके समय विशेषकर जब वायुका प्रकोप हो, अग्निकी रक्षा करनी चाहिये। विषसे राजाकी रक्षा करनी चाहिये। उस विषयमें मैं युक्ति बतलाता हूँ, सुनिये। राजाको चाहिये कि दुर्गमें क्रीड़ाके लिये कुछ पशु तथा पक्षियोंको रखे। सर्वप्रथम उसे अग्निमें डालकर अथवा अन्य किन्हीं उपायोंसे अन्नकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। वस्त्र, पुष्प, आभरण, भोजन तथा आच्छादन (वस्त्र)-को राजा पहले परीक्षा किये बिना स्पर्श भी न करे। विष देनेवाले मनुष्यने यदि विष दे दिया है तो उसकी परीक्षाके ये निम्नकथित लक्षण होते हैं—वह मलिनमुख, उद्वेगपूर्वक देखनेवाला, खिसकती हुई चादरवाला, उदास, खम्भे और भीतकी आड़में अपनेको छिपानेकी चेष्टा करनेवाला, लज्जित तथा शीघ्रता

भुवं विलिखति ग्रीवां तथा चालयते नृप।
कण्डूयति च मूर्धानं परिलोड्याननं तथा॥ १३
क्रियासु त्वरितो राजन् विपरीतास्वपि ध्रुवम्।
एवमादीनि चिह्नानि विषदस्य परीक्षयेत्॥ १४
समीपैर्विक्षिपेद् वह्नौ तदन्नं त्वरयान्वितः।
इन्द्रायुधसवर्णं तु रूक्षं स्फोटसमन्वितम्॥ १५
एकावर्तं तु दुर्गन्धि भृशं चटचटायते।
तद्धूमसेवनाज्जन्तोः शिरोरोगश्च जायते॥ १६
सविषेऽन्ने निलीयन्ते न च पार्थिव मक्षिकाः।
निलीनाश्च विपद्यन्ते संस्पृष्टे सविषे तथा॥ १७
विरज्यति चकोरस्य दृष्टिः पार्थिवसत्तम।
विकृतिं च स्वरो याति कोकिलस्य तथा नृप॥ १८
गतिः स्खलति हंसस्य भृङ्गराजश्च कूजति।
क्रौञ्चो मदमथाभ्येति कृकवाकुर्विरौति च॥ १९
विक्रोशति शुको राजन् सारिका वमते ततः।
चामीकरोऽन्यतो याति मृत्युं कारण्डवस्तथा॥ २०
मेहते वानरो राजन् ग्लायते जीवजीवकः।
हृष्टरोमा भवेद् बभ्रुः पृषतश्चैव रोदिति॥ २१
हर्षमायाति च शिखी विषसंदर्शनान्नृप।
अन्नं च सविषं राजंश्चिरेण च विपद्यते॥ २२
तदा भवति निःश्राव्यं पक्षपर्युषितोपमम्।
व्यापन्नरसगन्धं च चन्द्रिकाभिस्तथा युतम्॥ २३
व्यञ्जनानां तु शुष्कत्वं द्रवाणां बुद्बुदोद्भवः।
ससैन्धवानां द्रव्याणां जायते फेनमालिता॥ २४
शस्यराजिश्च ताम्रा स्यान्नीला च पयसस्तथा।
कोकिलाभा च मद्यस्य तोयस्य च नृपोत्तम॥ २५
धान्याम्लस्य तथा कृष्णा कपिला कोद्रवस्य च।
मधुश्यामा च तक्रस्य नीला पीता तथैव च॥ २६
घृतस्योदकसंकाशा कपोताभा च मस्तुनः।
हरिता माक्षिकस्यापि तैलस्य च तथारुणा॥ २७

करनेवाला होता है। राजन्! वह पृथ्वीपर रेखा खींचने लगता है, गर्दन हिलाने लगता है तथा मुखको मलकर सिर खुजलाने लगता है। राजन्! निश्चय ही वह विपरीत कार्योंमें भी शीघ्रता करनेकी चेष्टा करता है। विषदाताके ऐसे ही लक्षण होते हैं। राजाको उसकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। उसके द्वारा दिये गये अन्नको शीघ्रतापूर्वक समीपस्थ अग्निमें डाल देना चाहिये। विषैला अन्न अग्निमें पड़ते ही इन्द्रधनुष-जैसे रंगवाला हो जाता है तथा तुरंत ही सूख जाता है। उसमें स्फोट होने लगता है। वह एक ही ओरसे निकलता है, दुर्गन्धियुक्त होता है और अत्यन्त चटचटाने लगता है। उसके धुँएका सेवन करनेसे जीवके सिरमें रोग उत्पन्न हो जाता है॥२—१६॥

राजन्! विषयुक्त अन्नके ऊपर मक्खियाँ नहीं बैठतीं, यदि बैठ गयीं तो विषसंयुक्त अन्नका स्पर्श होनेके कारण तुरंत ही मर जाती हैं। पार्थिवश्रेष्ठ! विषयुक्त अन्नको देखते ही चकोरकी दृष्टि विरक्त हो जाती है अर्थात् वह अपनी आँखें फेर लेता है, कोकिलका स्वर विकृत हो जाता है, हंसकी गति लड़खड़ाने लगती है, भौंरे जोरसे गूँजने लगते हैं, क्रौंच (कुरर) मदमत्त हो जाता है और मुर्गा जोर-जोरसे बोलने लगता है। राजन्! शुक चें-चें करने लगता है, सारिका वमन करने लगती है, चामीकर भाग खड़ा होता है और कारण्डव मर जाता है। राजन्! वानर मूत्र-त्याग करने लगता है, जीवजीवक ग्लानियुक्त हो जाता है, नेवलेके रोएँ खड़े हो जाते हैं, पृषत् मृग रोने लगता है। राजन्! विषको देखते ही मयूर हर्षित हो जाता है; क्योंकि वह चिरकालसे विषयुक्त अन्नका भोजन करनेवाला है। राजन्! वह विषयुक्त अन्न कहने योग्य नहीं रह जाता, पंद्रह दिनके बासी अन्नकी तरह दीख पड़ता है। उसका रस तथा गन्ध नष्ट हो जाती है तथा ऊपरसे वह चन्द्रिकाओंसे युक्त रहता है। नृपोत्तम! विषके मिलनेसे बना हुआ व्यञ्जन सूख जाता है, द्रव वस्तुओंमें बुल्ले उठने लगते हैं, लवणसहित पदार्थोंमें फेन उठने लगते हैं। अन्नोंसे बना हुआ विषैला भोजन ताम्रवर्णका, दूधवाला नीले रंगका, मदिरा तथा जलयुक्त कोकिलके समान काला, अम्ल अन्नवाला काला, कोदोका कपिल तथा मट्ठायुक्त भोजन मधुके समान श्यामल, नीला और पीला हो जाता है॥१७—२६॥

विषयुक्तघृतका वर्ण जलकी भाँति, विषमिश्रित छाछका कबूतरकी तरह, मधुयुक्तका हरा और तेलमिश्रित विषका

फलानामप्यपक्वानां पाकः क्षिप्रं प्रजायते।
प्रकोपश्चैव पक्वानां माल्यानां म्लानता तथा॥ २८
मृदुता कठिनानां स्यान्मृदूनां च विपर्ययः।
सूक्ष्माणां रूपदलनं तथा चैवातिरङ्गता॥ २९
श्याममण्डलता चैव वस्त्राणां वै तथैव च।
लौहानां च मणीनां च मलपङ्कोपदिग्धता॥ ३०
अनुलेपनगन्धानां माल्यानां च नृपोत्तम।
विगन्धता च विज्ञेया वर्णानां म्लानता तथा।
पीतावभासता ज्ञेया तथा राजन् जलस्य तु॥ ३१
दन्ता ओष्ठौ त्वचः श्यामास्तनुसत्त्वास्तथैव च।
एवमादीनि चिह्नानि विज्ञेयानि नृपोत्तम॥ ३२
तस्माद् राजा सदा तिष्ठेन् मणिमन्त्रौषधागदैः।
उक्तैः संरक्षितो राजा प्रमादपरिवर्जकः॥ ३३
प्रजातरोर्मूलमिहावनीश-
स्तद्रक्षणाद् राष्ट्रमुपैति वृद्धिम्।
तस्मात् प्रयत्नेन नृपस्य रक्षा
सर्वेण कार्या रविवंशचन्द्र॥ ३४

लाल रंग हो जाता है। विषके संसर्गसे न पके हुए फल शीघ्र ही पक जाते हैं और पका हुआ फल विकृत हो जाता है। पुष्प-मालाएँ मलिन हो जाती हैं। कठोर वस्तु कोमल तथा कोमल वस्तु कठोर हो जाती है। सूक्ष्म वस्तुओंका रूप नष्ट हो जाता है और रंग बदल जाता है। वस्त्रोंमें विशेषकर काले धब्बे पड़ जाते हैं। लोहे और मणियोंपर मैल जम जाती है। नृपश्रेष्ठ! शरीरमें लेपन किये जानेवाले द्रव्यों एवं उपयोगमें आनेवाली पुष्प-मालाओंमें दुर्गन्धि तथा रंगकी मलिनता समझनी चाहिये। राजन्! उसी प्रकार जलमें भी पीलेपनका आभास आने लगता है। नृपोत्तम! विषके सेवनसे दाँत, होंठ और चमड़े श्यामल वर्णके हो जाते हैं और शरीरमें क्षीणताका अनुभव होने लगता है—इस प्रकार ये लक्षण जानने चाहिये। इसलिये राजाको सर्वदा मणि, मन्त्र और उपर्युक्त ओषधियोंसे सुरक्षित तथा सावधान रहना चाहिये। सूर्यवंशके चन्द्र! इस पृथ्वीपर प्रजारूपी वृक्षकी जड़ राजा है, अतः उसीकी रक्षासे राष्ट्रकी वृद्धि होती है। इसलिये सभीको प्रयत्नपूर्वक राजाकी रक्षा करनी चाहिये॥ २७—३४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राजरक्षा नामैकोनविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २१९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें राजरक्षा नामक दो सौ उन्नीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २१९॥

दो सौ बीसवाँ अध्याय

राजधर्म एवं सामान्य नीतिका वर्णन

मत्स्य उवाच

राजन् पुत्रस्य रक्षा च कर्तव्या पृथिवीक्षिता।
आचार्यश्चात्र कर्तव्यो नित्ययुक्तश्च रक्षिभिः॥ १
धर्मकामार्थशास्त्राणि धनुर्वेदं च शिक्षयेत्।
रथे च कुञ्जरे चैनं व्यायामं कारयेत् सदा॥ २
शिल्पानि शिक्षयेच्चैनं नाप्तैर्मिथ्याप्रियं वदेत्।
शरीररक्षाव्याजेन रक्षिणोऽस्य नियोजयेत्॥ ३
न चास्य सङ्गो दातव्यः क्रुद्धलुब्धावमानितैः।
तथा च विनयेदेनं यथा यौवनगोचरे॥ ४

मत्स्यभगवान्‌ने कहा— राजन्! राजाको अपने पुत्रकी रक्षा करनी चाहिये। उसकी शिक्षाके लिये पहरेदारोंकी देख-रेखमें एक ऐसे आचार्यकी नियुक्ति करनी चाहिये, जो उसे धर्म, काम एवं अर्थशास्त्र, धनुर्वेद तथा रथ एवं हाथीकी सवारीकी शिक्षा दे और सदा व्यायाम कराये। साथ ही उसे शिल्पकलाएँ भी सिखलाये। उसपर ऐसा प्रभाव पड़े कि वह गुरुजनोंके सम्मुख असत्य एवं अप्रिय बात न बोले। उसके शरीरकी रक्षाके व्याजसे रक्षक नियुक्त कर दे। इसे क्रोधी, लोभी और तिरस्कृत व्यक्तियोंकी संगतिमें नहीं जाने देना चाहिये। उसे इस प्रकार जितेन्द्रिय बनाना चाहिये कि जिससे वह युवावस्था आनेपर

इन्द्रियैर्नापकृष्येत सतां मार्गात् सुदुर्गमात्।
गुणाधानमशक्यं तु यस्य कर्तुं स्वभावतः॥ ५

बन्धनं तस्य कर्तव्यं गुप्तदेशे सुखान्वितम्।
अविनीतं कुमारं हि कुलमाशु विशीर्यते॥ ६

अधिकारेषु सर्वेषु विनीतं विनियोजयेत्।
आदौ स्वल्पे ततः पश्चात् क्रमेणाथ महत्स्वपि॥ ७

मृगयापानमक्षांश्च वर्जयेत् पृथिवीपतिः।
एतांस्तु सेवमानास्तु विनष्टाः पृथिवीक्षितः॥ ८

बहवो नृपशार्दूल तेषां संख्या न विद्यते।
वृथाटनं दिवास्वप्नं विशेषेण विवर्जयेत्॥ ९

वाक्पारुष्यं न कर्तव्यं दण्डपारुष्यमेव च।
परोक्षनिन्दा च तथा वर्जनीया महीक्षिता॥ १०

अर्थस्य दूषणं राजा द्विप्रकारं विवर्जयेत्।
अर्थानां दूषणं चैकं तथार्थेषु च दूषणम्॥ ११

प्राकाराणां समुच्छेदो दुर्गादीनामसत्क्रिया।
अर्थानां दूषणं प्रोक्तं विप्रकीर्णत्वमेव च॥ १२

अदेशकाले यद्दानमपात्रे दानमेव च।
अर्थेषु दूषणं प्रोक्तमसत्कर्मप्रवर्तनम्॥ १३

कामः क्रोधो मदो मानो लोभो हर्षस्तथैव च।
एते वर्ज्याः प्रयत्नेन सादरं पृथिवीक्षिता॥ १४

एतेषां विजयं कृत्वा कार्यो भृत्यजयस्ततः।
कृत्वा भृत्यजयं राजा पौरान् जानपदान् जयेत्॥ १५

कृत्वा च विजयं तेषां शत्रून् बाह्यांस्ततो जयेत्।
बाह्याश्च विविधा ज्ञेयास्तुल्याभ्यन्तरकृत्रिमाः॥ १६

गुरवस्ते यथापूर्वं तेषु यत्नपरो भवेत्।
पितृपैतामहं मित्रममित्रं च तथा रिपोः॥ १७

कृत्रिमं च महाभाग मित्रं त्रिविधमुच्यते।
तथापि च गुरुः पूर्वं भवेत् तत्रापि चादृतः॥ १८

स्वाम्यमात्यौ जनपदो दुर्गं दण्डस्तथैव च।
कोशो मित्रं च धर्मज्ञ सप्ताङ्गं राज्यमुच्यते॥ १९

सप्ताङ्गस्यापि राज्यस्य मूलं स्वामी प्रकीर्तितः।
तन्मूलत्वात् तथाङ्गानां स तु रक्ष्यः प्रयत्नतः॥ २०

इन्द्रियोंद्वारा अत्यन्त दुर्गम सत्पुरुषोंके मार्गसे अपकृष्ट न किया जा सके। जिस राजकुमारमें स्वभाववश गुणाधान करना अशक्य हो उसे गुप्तस्थानमें सुखपूर्वक अवरुद्ध कर देना चाहिये, क्योंकि उद्दण्ड राजकुमारसे युक्त कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। राजाको सभी अधिकारोंपर सुशिक्षित व्यक्तिको नियुक्त करना चाहिये। प्रथमतः उसे छोटे पदपर नियुक्त करे, तत्पश्चात् क्रमशः अधिक शिक्षितकर ऊँचे पदोंपर भी पहुँचा दे। राजसिंह! राजाको शिकार, मद्यपान तथा द्यूतक्रीड़ाका परित्याग कर देना चाहिये; क्योंकि पूर्वकालमें इनके सेवनसे बहुत-से राजा नष्ट हो चुके हैं, जिनकी गणना नहीं कही जा सकती। राजाके लिये व्यर्थ घूमना तथा विशेषकर दिनमें शयन करना वर्जित है। राजाको कटुवचन बोलना और कठोर दण्ड देना—ये दोनों कर्म नहीं करना चाहिये। राजाको परोक्षमें किसीकी निन्दा करना उचित नहीं है॥ १—१०॥

राजाको दो प्रकारके अर्थदोषोंसे बचना चाहिये—एक अर्थका दोष और दूसरा अर्थ-सम्बन्धी दोष। अपने दुर्गके परकोटोंका तथा मूलदुर्ग आदिकी उपेक्षा और अस्तव्यस्तता—ये अर्थके दोष कहे गये हैं। उसी प्रकार कुदेश और कुसमयमें दिया गया दान, कुपात्रको दिया गया दान और असत्कर्मका प्रचार—ये अर्थ-सम्बन्धी दोष कहे गये हैं। राजाको आदरसहित काम, क्रोध, मद, मान, लोभ तथा हर्षका प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। राजाको इनपर विजय प्राप्त करनेके पश्चात् अनुचरोंको जीतना चाहिये। इस प्रकार अनुचरोंको जीतनेके बाद पुरवासियों और देशवासियोंको अपने अधिकारमें करे। उनको जीतनेके पश्चात् बाहरी शत्रुओंको परास्त करे। तुल्य, आभ्यन्तर और कृत्रिम-भेदसे बाह्य शत्रुओंको अनेकों प्रकारका समझना चाहिये। उनमेंसे क्रमशः एक-एकको बढ़कर समझना चाहिये और उनको जीतनेमें यत्नशील रहे। महाभाग! मित्र तीन प्रकारके होते हैं—प्रथम वे हैं जो पिता-पितामह आदिके कालसे मित्रताका व्यवहार करते चले आ रहे हैं। दूसरे वे हैं, जो शत्रुके शत्रु हैं तथा तीसरे वे हैं, जो किन्हीं कारणोंसे पीछे मित्र बनते हैं। इन तीनों मित्रोंमें प्रथम मित्र उत्तम होता है, उसका आदर करना चाहिये। धर्मज्ञ! स्वामी, मन्त्री, राष्ट्र, दुर्ग, सेना, कोश तथा मित्र—ये राज्यके सात अङ्ग कहे गये हैं। इस सप्ताङ्गयुक्त राज्यका भी मूल स्वयं राजा कहा गया है। राज्यका तथा राज्याङ्गोंका मूल होनेके कारण वह प्रयत्नपूर्वक रक्षणीय है॥ ११—२०॥

षडङ्गरक्षा कर्तव्या तथा तेन प्रयत्नतः।
अङ्गेभ्यो यस्तथैकस्य द्रोहमाचरतेऽल्पधीः॥ २१
वधस्तस्य तु कर्तव्यः शीघ्रमेव महीक्षिता।
न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते॥ २२
न भाव्यं दारुणेनातितीक्ष्णादुद्विजते जनः।
काले मृदुर्यो भवति काले भवति दारुणः॥ २३
राजा लोकद्वयापेक्षी तस्य लोकद्वयं भवेत्।
भृत्यैः सह महीपालः परिहासं विवर्जयेत्॥ २४
भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षवशं गतम्।
व्यसनानि च सर्वाणि भूपतिः परिवर्जयेत्॥ २५
लोकसंग्रहणार्थाय कृतकव्यसनी भवेत्।
शौण्डीरस्य नरेन्द्रस्य नित्यमुद्रिक्तचेतसः॥ २६
जना विरागमायान्ति सदा दुःसेव्यभावतः।
स्मितपूर्वाभिभाषी स्यात् सर्वस्यैव महीपतिः॥ २७
वध्येष्वपि महाभाग भ्रुकुटिं न समाचरेत्।
भाव्यं धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थूललक्ष्येण भूभुजा॥ २८
स्थूललक्षस्य वशगा सर्वा भवति मेदिनी।
अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः॥ २९
दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्महानिर्ध्रुवं भवेत्।
रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च कर्मणि॥ ३०
अप्रिये चैव कर्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते।
राज्ञा संवृतमन्त्रेण सदा भाव्यं नृपोत्तम॥ ३१
तस्यासंवृतमन्त्रस्य राज्ञः सर्वापदो ध्रुवम्।
कृतान्येव तु कार्याणि ज्ञायन्ते यस्य भूपतेः॥ ३२
नारब्धानि महाभाग तस्य स्याद् वसुधा वशे।
मन्त्रमूलं सदा राज्यं तस्मान्मन्त्रः सुरक्षितः॥ ३३
कर्तव्यः पृथिवीपालैर्मन्त्रभेदभयात् सदा।
मन्त्रवित्साधितो मन्त्रः सम्पत्तीनां सुखावहः॥ ३४
मन्त्रच्छलेन बहवो विनष्टाः पृथिवीक्षितः।
आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन च॥ ३५
नेत्रवक्त्रविकारैश्च गृह्यतेऽन्तर्गतं मनः।
न यस्य कुशलैस्तस्य वशे सर्वा वसुंधरा॥ ३६
भवतीह महीभर्तुः सदा पार्थिवनन्दन।

फिर राजाके द्वारा राज्यके शेष छः अङ्गोंकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा की जानी चाहिये। जो मूर्ख इन छः अङ्गोंमेंसे किसी एकके साथ द्रोह करता है उसे राजाको शीघ्र ही मार डालना चाहिये। राजाको कोमल वृत्तिवाला नहीं होना चाहिये; क्योंकि कोमल वृत्तिवाला राजा पराजयका भागी होता है। साथ ही अधिक कठोर भी नहीं होना चाहिये; क्योंकि अधिक कठोर शासकसे लोग उद्विग्न हो जाते हैं। जो लोकद्वयापेक्षी राजा समयपर मृदु तथा समयपर कठोर हो जाता है, वह दोनों लोकोंपर विजयी हो जाता है। राजाको अपने अनुचरोंके साथ परिहास नहीं करना चाहिये; क्योंकि उस समय आनन्दमें निमग्न हुए राजाका अनुचरगण अपमान कर बैठते हैं। राजाको सभी प्रकारके व्यसनोंसे दूर रहना चाहिये, किंतु लोकसंग्रहके लिये उसे कुछ ऊपरसे अच्छी बातोंका व्यसन करना उचित है। गर्वीले एवं नित्य ही उद्धत स्वभाववाले राजासे लोग कठिनतासे अनुकूल होनेके कारण विरक्त हो जाते हैं, अतः राजाको सभीसे मुसकानपूर्वक बातें करनी चाहिये। महाभाग! यहाँतक कि प्राणदण्डके अपराधीको भी वह भ्रुकुटि न दिखलाये। धार्मिकश्रेष्ठ! राजाको महान् लक्ष्ययुक्त होना चाहिये; क्योंकि सारी पृथ्वी स्थूललक्ष्य रखनेवाले राजाके अधीन हो जाती है। राजाको सभी कार्योंके निर्वाहमें विलम्ब नहीं करना चाहिये; क्योंकि विलम्ब करनेवाले राजाके कार्य निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। केवल अनुराग, दर्प, आत्मसम्मान, द्रोह, पापकर्म तथा अप्रिय कार्योंमें दीर्घसूत्री प्रशंसित माना गया है॥ २१—३० $\frac{1}{2}$॥

नृपोत्तम! राजाको सदा अपनी मन्त्रणा गुप्त रखनी चाहिये; क्योंकि प्रकट मन्त्रणावाले राजाको निश्चय ही सभी आपत्तियाँ प्राप्त होती हैं। महाभाग! जिस राजाके कार्योंको आरम्भके समय नहीं, अपितु पूरा होनेपर ही लोग जान पाते हैं उसके वशमें वसुंधरा हो जाती है। मन्त्र ही सर्वदा राज्यका मूल है, अतः मन्त्रभेदके भयसे राजाओंको उसे सदा सुरक्षित रखना चाहिये। मन्त्रज्ञ मन्त्रीद्वारा दिया गया मन्त्र सभी सम्पत्तियों तथा सुखोंको देनेवाला होता है। मन्त्रके छलसे बहुत-से राजा विनष्ट हो चुके हैं। आकृति, संकेत, गति, चेष्टा, वचन, नेत्र तथा मुखके विकारोंसे अन्तःस्थित मनोभावोंका पता लगता है। राजपुत्र! जिस राजाके मनका इन उपर्युक्त उपायोंद्वारा कुशल लोग भी पता न लगा सकें, वसुंधरा उसके वशमें सदा बनी रहती है॥ ३१—३६ $\frac{1}{2}$॥

नैकस्तु मन्त्रयेन्मन्त्रं राजा न बहुभिः सह॥ ३७
नारोहेद् विषमां नावमपरीक्षितनाविकाम्।
ये चास्य भूमिजयिनो भवेयुः परिपन्थिनः॥ ३८
तानानयेद् वशे सर्वान् सामादिभिरुपक्रमैः।
यथा न स्यात् कृशीभावः प्रजानामनवेक्षया॥ ३९
तथा राज्ञा प्रकर्तव्यं स्वराष्ट्रं परिरक्षता।
मोहाद् राजा स्वराष्ट्रं यः कर्शयत्यनवेक्षया॥ ४०
सोऽचिराद् भ्रश्यते राज्याज्जीविताच्च सबान्धवः।
भृतो वत्सो जातबलः कर्मयोग्यो यथा भवेत्॥ ४१
तथा राष्ट्रं महाभाग भृतं कर्मसहं भवेत्।
यो राष्ट्रमनुगृह्णाति राज्यं स परिरक्षति॥ ४२
संजातमुपजीवेत् तु विन्दते स महत्फलम्।
राष्ट्राद्धिरण्यं धान्यं च महीं राजा सुरक्षिताम्॥ ४३
महता तु प्रयत्नेन स्वराष्ट्रस्य च रक्षिता।
नित्यं स्वेभ्यः परेभ्यश्च यथा माता यथा पिता॥ ४४
गोपितानि सदा कुर्यात् संयतानीन्द्रियाणि च।
अजस्त्रमुपयोक्तव्यं फलं तेभ्यस्तथैव च॥ ४५
सर्वं कर्मेदमायत्तं विधाने दैवमानुषे।
तयोर्दैवमचिन्त्यं च पौरुषे विद्यते क्रिया॥ ४६
एवं महीं पालयतोऽस्य भर्तु-
र्लोकानुरागः परमो भवेत्तु।
लोकानुरागप्रभवा च लक्ष्मी-
र्लक्ष्मीवतश्चापि परा च कीर्तिः॥ ४७

राजाको कभी केवल एक व्यक्तिके या एक ही साथ अनेक लोगोंके साथ मन्त्रणा नहीं करनी चाहिये। राजा जिसकी परीक्षा न की गयी हो ऐसी विषम नौकापर सवार न हो। राजाके जो भूमिविजेता शत्रु हों, उन सबको सामादि उपायोंद्वारा वशमें लाना चाहिये। अपने राष्ट्रकी रक्षामें तत्पर राजाका यह कर्तव्य है कि वह उपेक्षाके कारण प्रजाओंको दुर्बल न होने दे। जो अज्ञानवश असावधानीसे अपने राष्ट्रको दुर्बल कर देता है, वह शीघ्र ही भाई-बन्धुओंसहित राज्य एवं जीवनसे च्युत हो जाता है। महाभाग! जिस प्रकार पालतू बछड़ा बलवान् होनेपर कार्य करनेमें समर्थ होता है उसी तरह पालन-पोषणकर समृद्ध किया हुआ राष्ट्र भी भविष्यमें कार्यक्षम हो जाता है। जो अपने राष्ट्रके ऊपर अनुग्रहकी दृष्टि रखता है, वस्तुतः वही राज्यकी रक्षा कर सकता है। जो उत्पन्न हुई प्रजाओंकी रक्षा करता है, वह महान् फलका भागी होता है। राजा राष्ट्रसे सुवर्ण, अन्न और सुरक्षित पृथ्वी प्राप्त करता है। माता और पिताके समान अपने राष्ट्रकी रक्षामें तत्पर रहनेवाला नृपति विशेष प्रयत्नसे नित्यप्रति स्वकीय एवं परकीय दोनों ओरसे होनेवाली बाधाओंसे अपने राष्ट्रकी रक्षा करे। अपनी इन्द्रियोंको संयत तथा गुप्त रखे और सर्वदा उनका प्रयोग गोपनीय रूपसे करे, तभी उनसे उत्तम फल प्राप्त होता है। जीवनके सभी कार्य दैव और पौरुष—इन दोनोंके अधिकारमें रहते हैं। उन दोनोंमें दैव तो अचिन्त्य है, किंतु पौरुषमें क्रिया विद्यमान रहती है। इस प्रकार पृथ्वीका पालन करनेवाले राजाके प्रति प्रजाका परम अनुराग हो जाता है। प्रजाके अनुरागसे राजाको लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है तथा लक्ष्मीवान् राजाको ही परम यशकी प्राप्ति होती है॥ ३७—४७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मानुकीर्तने विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजधर्मकीर्तन नामक दो सौ बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२०॥



दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय

दैव और पुरुषार्थका वर्णन

मनुरुवाच

दैवे पुरुषकारे च किं ज्यायस्तद् ब्रवीहि मे।
अत्र मे संशयो देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः॥ १

मत्स्य उवाच

स्वमेव कर्म दैवाख्यं विद्धि देहान्तरार्जितम्।
तस्मात् पौरुषमेवेह श्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः॥ २
प्रतिकूलं तथा दैवं पौरुषेण विहन्यते।
मङ्गलाचारयुक्तानां नित्यमुत्थानशालिनाम्॥ ३
येषां पूर्वकृतं कर्म सात्त्विकं मनुजोत्तम।
पौरुषेण विना तेषां केषांचिद् दृश्यते फलम्॥ ४
कर्मणा प्राप्यते लोके राजसस्य तथा फलम्।
कृच्छ्रेण कर्मणा विद्धि तामसस्य तथा फलम्॥ ५
पौरुषेणाप्यते राजन् प्रार्थितव्यं फलं नरैः।
दैवमेव विजानन्ति नराः पौरुषवर्जिताः॥ ६
तस्मात् त्रिकालं संयुक्तं दैवं तु सफलं भवेत्।
पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति पार्थिव॥ ७
दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम।
त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम्॥ ८
कृषेर्वृष्टिसमायोगाद् दृश्यन्ते फलसिद्धयः।
तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन॥ ९
तस्मात् सदैव कर्तव्यं सधर्मं पौरुषं नरैः।
विपत्तावपि यस्येह परलोके ध्रुवं फलम्॥ १०
नालसाः प्राप्नुवन्त्यर्थान्न च दैवपरायणाः।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पौरुषे यत्नमाचरेत्॥ ११
त्यक्त्वाऽऽलसान् दैवपरान् मनुष्या-
नुत्थानयुक्तान् पुरुषान् हि लक्ष्मीः।
अन्विष्य यत्नाद्वृणुयान्नृपेन्द्र
तस्मात् सदोत्थानवता हि भाव्यम्॥ १२

मनुने पूछा—देव! भाग्य और पुरुषार्थ—इन दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है? यह मुझे बतलाइये। इस विषयमें मुझे संदेह है, अतः आप उसका सम्पूर्णरूपसे निवारण कीजिये॥ १॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! अन्य जन्ममें अपने द्वारा किया गया पुरुषार्थ (कर्म) ही दैव कहा जाता है, इसी कारण इन दोनोंमें मनीषियोंने पौरुषको ही श्रेष्ठ माना है; क्योंकि माङ्गलिक आचरण करनेवाले एवं नित्य-प्रति अभ्युदयशील पुरुषोंका प्रतिकूल दुर्दैव भी पुरुषार्थद्वारा नष्ट हो जाता है। मानवश्रेष्ठ! जिन्होंने पूर्वजन्ममें सात्त्विक कर्म किया है, उन्हींमें किन्हीं-किन्हींको पुरुषार्थके बिना भी अच्छे फलकी प्राप्ति देखी जाती है। लोकमें रजोगुणी पुरुषको कर्म करनेसे फलकी प्राप्ति होती है और तमोगुणी पुरुषको कठिन कर्म करनेसे फलकी प्राप्ति जाननी चाहिये॥ २—५॥

राजन्! मनुष्योंको पुरुषार्थद्वारा अभिलषित पदार्थकी प्राप्ति होती है, किंतु जो लोग पुरुषार्थसे हीन हैं, वे दैवको ही सब कुछ मानते हैं। अतः तीनों कालोंमें पुरुषार्थयुक्त दैव ही सफल होता है। राजन्! भाग्ययुक्त मनुष्यका पुरुषार्थ समयपर फल देता है। पुरुषोत्तम! दैव, पुरुषार्थ और काल—ये तीनों संयुक्त होकर मनुष्यको फल देनेवाले होते हैं। कृषि और वृष्टिका संयोग होनेसे फलकी सिद्धियाँ देखी जाती हैं, किंतु वे भी समय आनेपर ही दिखायी पड़ती हैं, बिना समयके किसी प्रकार भी नहीं। इसलिये मनुष्यको सर्वदा धर्मयुक्त पुरुषार्थ करना चाहिये। उसके इस लोकमें आपत्तियोंमें पड़ जानेपर भी परलोकमें उसे निश्चय ही फल प्राप्त होगा। आलसी और भाग्यपर निर्भर रहनेवाले पुरुषोंको अर्थोंकी प्राप्ति नहीं होती। इसलिये सभी प्रयत्नोंसे पुरुषार्थ करनेमें तत्पर रहना चाहिये। राजेन्द्र! लक्ष्मी भाग्यपर भरोसा रखनेवाले एवं आलसी पुरुषोंको छोड़कर पुरुषार्थ करनेवाले पुरुषोंको यत्नपूर्वक ढूँढ़कर वरण करती है, इसलिये सर्वदा पुरुषार्थशील होना चाहिये॥ ६—१२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे दैवपुरुषकारवर्णनं नामैकविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें दैव-पुरुषका वर्णन नामक दो सौ इक्कीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२१॥

दो सौ बाईसवाँ अध्याय

साम-नीतिका वर्णन

मनुरुवाच

उपायांस्त्वं समाचक्ष्व सामपूर्वान् महाद्युते।
लक्षणं च तथा तेषां प्रयोगं च सुरोत्तम॥ १

मत्स्य उवाच

साम भेदस्तथा दानं दण्डश्च मनुजेश्वर।
उपेक्षा च तथा माया इन्द्रजालं च पार्थिव॥ २
प्रयोगाः कथिताः सप्त तन्मे निगदतः शृणु।
द्विविधं कथितं साम तथ्यं चातथ्यमेव च॥ ३
तत्राप्यतथ्यं साधूनामाक्रोशायैव जायते।
तत्र साधुः प्रयत्नेन सामसाध्यो नरोत्तम॥ ४
महाकुलीना ऋजवो धर्मनित्या जितेन्द्रियाः।
सामसाध्या न चातथ्यं तेषु साम प्रयोजयेत्॥ ५
तथ्यं साम च कर्तव्यं कुलशीलादिवर्णनम्।
तथा तदुपचाराणां कृतानां चैव वर्णनम्॥ ६
अनयैव तथा युक्त्या कृतज्ञाख्यापनं स्वकम्।
एवं साम्ना च कर्तव्या वशगा धर्मतत्पराः॥ ७
साम्ना यद्यपि रक्षांसि गृह्णन्तीति परा श्रुतिः।
तथाप्येतदसाधूनां प्रयुक्तं नोपकारकम्॥ ८
अतिशङ्कितमित्येवं पुरुषं सामवादिनम्।
असाधवो विजानन्ति तस्मात् तेषु वर्जयेत्॥ ९
ये शुद्धवंशा ऋजवः प्रणीता
धर्मे स्थिताः सत्यपरा विनीताः।
ते सामसाध्याः पुरुषाः प्रदिष्टा
मानोन्नता ये सततं च राजन्॥ १०

मनुने पूछा— महान् द्युतिशील भगवन्! अब आप साम आदि उपायोंका वर्णन कीजिये। देवश्रेष्ठ! साथ ही उनका लक्षण और प्रयोग भी बतलाइये॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा— मनुजेश्वर! (राजनीतिमें) साम (स्तुति-प्रशंसा), भेद, दान, दण्ड, उपेक्षा, माया तथा इन्द्रजाल—ये सात प्रयोग बतलाये गये हैं। राजन्! उन्हें मैं बतला रहा हूँ, सुनिये! साम तथ्य और अतथ्यभेदसे दो प्रकारका कहा गया है। उनमें भी अतथ्य (झूठी प्रशंसा) साधु पुरुषोंकी अप्रसन्नताका ही कारण बन जाती है। नरोत्तम! इसलिये सज्जन व्यक्तिको प्रयत्नपूर्वक तथ्य साम (सच्ची प्रशंसा)-से वशमें करना चाहिये। जो उन्नत कुलमें उत्पन्न, सरलप्रकृति, धर्मपरायण और जितेन्द्रिय हैं, वे (तथ्य) सामसे ही साध्य होते हैं, अतः उनके प्रति अतथ्य सामका प्रयोग नहीं करना चाहिये। उनके प्रति तथ्य सामका प्रयोग, उनके कुल और शील-स्वभावका वर्णन, किये गये उपकारोंकी चर्चा तथा अपनी कृतज्ञताका कथन करना चाहिये। इसी युक्ति तथा इस प्रकारके सामसे धर्ममें तत्पर रहनेवालोंको अपने वशमें करना चाहिये। यद्यपि राक्षस भी साम-नीतिके द्वारा वशमें किये जाते हैं—ऐसी पराश्रुति है, तथापि असत्पुरुषोंके प्रति इसका प्रयोग उपकारी नहीं होता। दुर्जन पुरुष सामकी बातें करनेवालेको अतिशय डरा हुआ समझते हैं, इसलिये उनके प्रति इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। राजन्! जो पुरुष शुद्ध वंशमें उत्पन्न, सरलप्रकृतिवाले, विनम्र, धर्मिष्ठ, सत्यवादी, विनयी एवं सम्मानी हैं, वे ही निरन्तर सामद्वारा साध्य बतलाये गये हैं॥ २—१०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे सामबोधो नाम द्वाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें सामबोध नामक दो सौ बाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२२॥

दो सौ तेईसवाँ अध्याय

नीति चतुष्टयीके अन्तर्गत भेद-नीतिका वर्णन

मत्स्य उवाच

परस्परं तु ये दुष्टाः क्रुद्धा भीतावमानिताः।
तेषां भेदं प्रयुञ्जीत भेदसाध्या हि ते मताः॥ १

ये तु येनैव दोषेण परस्मान्नापि बिभ्यति।
ते तु तद्दोषपातेन भेदनीया भृशं ततः॥ २

आत्मीयां दर्शयेदाशां परस्माद् दर्शयेद् भयम्।
एवं हि भेदयेद् भिन्नान् यथावद् वशमानयेत्॥ ३

संहता हि विना भेदं शक्रेणापि सुदुःसहा।
भेदमेव प्रशंसन्ति तस्मान्नयविशारदाः॥ ४

स्वमुखेनाश्रयेद् भेदं भेदं परमुखेन च।
परीक्ष्य साधु मन्येत भेदं परमुखाच्छ्रुतम्॥ ५

सद्यः स्वकार्यमुद्दिश्य कुशलैर्ये हि भेदिताः।
भेदितास्ते विनिर्दिष्टा नैव राज्ञाऽर्थवादिभिः॥ ६

अन्तःकोपो बहिःकोपो यत्र स्यातां महीक्षिताम्।
अन्तःकोपो महांस्तत्र नाशकः पृथिवीक्षिताम्॥ ७

सामन्तकोपो बाह्यस्तु कोपः प्रोक्तो महीभृतः।
महिषीयुवराजाभ्यां तथा सेनापतेर्नृप॥ ८

अमात्यमन्त्रिणां चैव राजपुत्रे तथैव च।
अन्तःकोपो विनिर्दिष्टो दारुणः पृथिवीक्षिताम्॥ ९

बाह्यकोपे समुत्पन्ने सुमहत्यपि पार्थिवः।
शुद्धान्तस्तु महाभाग शीघ्रमेव जयी भवेत्॥ १०

अपि शक्रसमो राजा अन्तःकोपेन नश्यति।
सोऽन्तःकोपः प्रयत्नेन तस्माद् रक्ष्यो महीभृता॥ ११

परतः कोपमुत्पाद्य भेदेन विजिगीषुणा।
ज्ञातीनां भेदनं कार्यं परेषां विजिगीषुणा॥ १२

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! जो परस्पर वैर रखनेवाले, क्रोधी, भयभीत तथा अपमानित हैं, उनके प्रति भेद-नीतिका प्रयोग करना चाहिये; क्योंकि वे भेदद्वारा साध्य माने गये हैं। जो लोग जिस दोषके कारण दूसरेसे भयभीत नहीं होते उन्हें उसी दोषके द्वारा भेदन करना चाहिये। उनके प्रति अपनी ओरसे आशा प्रकट करे और दूसरेसे भयकी आशङ्का दिखलाये। इस प्रकार उन्हें फोड़ ले तथा फूट जानेपर उन्हें अपने वशमें कर ले। संगठित लोग भेद-नीतिके बिना इन्द्रद्वारा भी दुःसाध्य होते हैं। इसीलिये नीतिज्ञलोग भेद-नीतिकी ही प्रशंसा करते हैं। इस नीतिको अपने मुखसे तथा दूसरेके मुखसे भेद्य व्यक्तिसे कहे या कहलाये, परंतु अपने विषयमें दूसरेके मुखसे सुनी हुई भेद-नीतिको परीक्षा करके ठीक मानना चाहिये। अपने कार्यके उद्देश्यसे सुनिपुण नीतिज्ञोंद्वारा जो तुरंत भेदित किये जाते हैं, वे ही सच्चे अर्थमें भेदित कहे जाते हैं, अर्थवादियों एवं राजाद्वारा किये गये नहीं। जहाँ राजाओंके सम्मुख आन्तरिक (दुर्गके अन्तर्गतका) कोप और बाहरी कोप—दोनों उपस्थित हों, वहाँ आन्तरिक कोप ही महान् है; क्योंकि वह राजाओंके लिये विनाशकारी होता है॥ १—७॥

छोटे राजाओंका क्रोध राजाके लिये बाह्य क्रोध कहा गया है तथा रानी, युवराज, सेनापति, अमात्य, मन्त्री और राजकुमारके द्वारा किया गया क्रोध आन्तरिक कोप कहा गया है। इन सबोंका कोप राजाओंके लिये भयानक बतलाया गया है। महाभाग! अत्यन्त भीषण बाह्य कोपके उत्पन्न होनेपर भी यदि राजाका अन्तःपुर (दुर्गस्थ महारानी, युवराज, मन्त्री आदि प्रकृति) शुद्ध एवं अनुकूल है तो वह शीघ्र ही विजय-लाभ करता है। यदि राजा इन्द्रके समान हो तो भी वह अन्तः (दुर्गस्थ रानी, युवराज, मन्त्री आदिके)-कोपसे नष्ट हो जाता है। इसलिये राजाको प्रयत्नपूर्वक उस आन्तरिक कोपकी रक्षा करनी चाहिये। शत्रुओंको जीतनेकी इच्छावाले राजाको चाहिये कि दूसरेसे भेद-नीतिद्वारा क्रोध पैदा कराकर

रक्ष्यश्चैव प्रयत्नेन ज्ञातिभेदस्तथात्मनः।
ज्ञातयः परितप्यन्ते सततं परितापिताः॥ १३

तथापि तेषां कर्तव्यं सुगम्भीरेण चेतसा।
ग्रहणं दानमानाभ्यां भेदस्तेभ्यो भयंकरः॥ १४

न ज्ञातिमनुगृह्णन्ति न ज्ञातिं विश्वसन्ति च।
ज्ञातिभिर्भेदनीयास्तु रिपवस्तेन पार्थिवैः॥ १५

भिन्ना हि शक्या रिपवः प्रभूताः
स्वल्पेन सैन्येन निहन्तुमाजौ।
सुसंहतानां हि तदस्तु भेदः
कार्यो रिपूणां नयशास्त्रविद्भिः॥ १६

उसकी जातिमें भेद उत्पन्न कर दे और प्रयत्नपूर्वक अपने जाति-भेदकी रक्षा करे। यद्यपि संतप्त भाई-बन्धु राजाकी उन्नति देखकर जलते रहते हैं, तथापि राजाको दान और सम्मानद्वारा उनको मिलाये रखना चाहिये; क्योंकि जातिगत भेद बड़ा भयंकर होता है। जातिवालोंपर प्रायः लोग अनुग्रहका भाव नहीं रखते और न उनका विश्वास ही करते हैं, इसलिये राजाओंको चाहिये कि जातिमें फूट डालकर शत्रुको उनसे अलग कर दें। इस भेद-नीतिद्वारा भिन्न किये गये शत्रुओंके विशाल समूहको भी संग्रामभूमिमें थोड़ी-सी सुसंगठित सेनासे ही नष्ट किया जा सकता है, अतएव नीतिकुशल लोगोंको सुसंगठित शत्रुओंके प्रति भी भेदनीतिका ही प्रयोग करना चाहिये॥ ८—१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे भेदप्रशंसा नाम त्रयोविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें भेद-प्रशंसा नामक दो सौ तेईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२३॥

दो सौ चौबीसवाँ अध्याय

दान-नीतिकी प्रशंसा

मत्स्य उवाच

सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।
सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्॥ १

न सोऽस्ति राजन् दानेन वशगो यो न जायते।
दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्॥ २

दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम।
प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते॥ ३

दानवानचिरेणैव तथा राजा परान् जयेत्।
दानवानेव शक्नोति संहतान् भेदितुं परान्॥ ४

यद्यप्यलुब्धगम्भीराः पुरुषाः सागरोपमाः।
न गृह्णन्ति तथाप्येते जायन्ते पक्षपातिनः॥ ५

अन्यत्रापि कृतं दानं करोत्यन्यान् यथा वशे।
उपायेभ्यः प्रशंसन्ति दानं श्रेष्ठतमं जनाः॥ ६

मत्स्यभगवान्ने कहा— दान सभी उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है। प्रचुर दान देनेसे मनुष्य दोनों लोकोंको जीत लेता है। राजन्! ऐसा कोई नहीं है जो दानद्वारा वशमें न किया जा सके। दानसे देवतालोग भी सदाके लिये मनुष्योंके वशमें हो जाते हैं। नृपोत्तम! सारी प्रजाएँ दानके बलसे ही पालित होती हैं। दानी मनुष्य संसारमें सभीका प्रिय हो जाता है। दानशील राजा शीघ्र ही शत्रुओंको जीत लेता है। दानशील ही संगठित शत्रुओंका भेदन करनेमें समर्थ हो सकता है। यद्यपि निर्लोभ तथा समुद्रके समान गम्भीर स्वभाववाले मनुष्य स्वयं दानको अङ्गीकार नहीं करते, तथापि वे (भी दानी व्यक्तिके) पक्षपाती हो जाते हैं। अन्यत्र किया गया दान भी अन्य लोगोंको अपने वशमें कर लेता है, इसलिये लोग सभी उपायोंमें श्रेष्ठतम दानकी प्रशंसा करते हैं।

दानं श्रेयस्करं पुंसां दानं श्रेष्ठतमं परम्।
दानवानेव लोकेषु पुत्रत्वे ध्रियते सदा॥ ७
न केवलं दानपरा जयन्ति
भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः।
जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं
सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः॥ ८

दान पुरुषोंका कल्याण करनेवाला तथा परम श्रेष्ठ है। लोकमें दानशील व्यक्तिकी सर्वदा पुत्रकी भाँति प्रतिष्ठा होती है। दानपरायण पुरुषश्रेष्ठ केवल एक भूलोकको ही अपने वशमें नहीं करते, प्रत्युत वे अत्यन्त दुर्जय देवराज इन्द्रके लोकको भी, जो देवताओंका निवासस्थान है, जीत लेते हैं॥ १—८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मदानप्रशंसा नाम चतुर्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें दान-प्रशंसा नामक दो सौ चौबीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२४॥

दो सौ पचीसवाँ अध्याय

दण्डनीतिका वर्णन

मत्स्य उवाच

न शक्या ये वशे कर्तुमुपायत्रितयेन तु।
दण्डेन तान् वशीकुर्याद् दण्डो हि वशकृन्नृणाम्॥ १

सम्यक् प्रणयनं तस्य तथा कार्यं महीक्षिता।
धर्मशास्त्रानुसारेण सुसहायेन धीमता॥ २

तस्य सम्यक् प्रणयनं यथा कार्यं महीक्षिता।
वानप्रस्थांश्च धर्मज्ञान् निर्ममान् निष्परिग्रहान्॥ ३

स्वदेशे परदेशे वा धर्मशास्त्रविशारदान्।
समीक्ष्य प्रणयेद् दण्डं सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्॥ ४

आश्रमी यदि वा वर्णी पूज्यो वाथ गुरुर्महान्।
नादण्ड्यो नाम राज्ञोऽस्ति यःस्वधर्मेण तिष्ठति॥ ५

अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
इह राज्यात् परिभ्रष्टो नरकं च प्रपद्यते॥ ६

तस्माद् राज्ञा विनीतेन धर्मशास्त्रानुसारतः।
दण्डप्रणयनं कार्यं लोकानुग्रहकाम्यया॥ ७

यत्र श्यामो लोहिताक्षो दण्डश्चरति पापहा।
प्रजास्तत्र न मुह्यन्ति नेता चेत् साधु पश्यति॥ ८

बालवृद्धातुरयतिद्विजस्त्रीविधवा यतः।
मात्स्यन्यायेन भक्ष्येरन् यदि दण्डं न पातयेत्॥ ९

देवदैत्योरगगणाः सर्वे भूतपतत्रिणः।
उत्क्रामयेयुर्मर्यादां यदि दण्डं न पातयेत्॥ १०

मत्स्यभगवान्‌ने कहा— राजन्! जो (पूर्वोक्त सामादि) तीनों उपायोंके द्वारा वशमें नहीं किये जा सकते, उन्हें दण्डनीतिके द्वारा वशमें करे; क्योंकि दण्ड मनुष्योंको निश्चयरूपसे वशमें करनेवाला है। बुद्धिमान् राजाको सम्यक्-रूपसे उस दण्डनीतिका प्रयोग धर्मशास्त्रके अनुसार पुरोहित आदिकी सहायतासे करना चाहिये। उस दण्डनीतिका सम्यक् प्रयोग जिस प्रकार करना चाहिये, उसे सुनिये। राजाको अपने देशमें अथवा पराये देशमें वानप्रस्थाश्रमी, धर्मशील, ममतारहित, परिग्रहहीन और धर्मशास्त्रप्रवीण विद्वान् पुरुषोंकी परिषद्द्वारा भलीभाँति विचार कर दण्डनीतिका प्रयोग करना चाहिये; क्योंकि सब कुछ दण्डपर ही प्रतिष्ठित है। सभी आश्रमधर्मके व्यक्ति, ब्रह्मचारी, पूज्य, गुरु, महापुरुष तथा अपने धर्ममें स्थित रहनेवाला कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है, जो राजाके द्वारा दण्डनीय न हो; किंतु अदण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देने तथा दण्डनीय पुरुषोंको दण्ड न देनेसे राजा इस लोकमें राज्यसे च्युत हो जाता है और मरनेपर नरकमें पड़ता है। इसलिये विनयशील राजाको लोकानुग्रहकी कामनासे धर्मशास्त्रके अनुसार ही दण्डनीतिका प्रयोग करना चाहिये। जिस राज्यमें श्यामवर्ण, लाल नेत्रवाला और पापनाशक दण्ड विचरण करता है तथा राजा ठीक-ठीक निर्णय करनेवाला होता है वहाँ प्रजाएँ कष्ट नहीं झेलतीं। यदि राज्यमें दण्डनीतिकी व्यवस्था न रखी जाय तो बालक, वृद्ध, आतुर, संन्यासी, ब्राह्मण, स्त्री और विधवा—ये सभी मात्स्यन्यायके अनुसार आपसमें एक-दूसरेको खा जायँ। यदि राजा दण्डकी व्यवस्था न करे तो सभी देवता, दैत्य, सर्पगण, प्राणी तथा पक्षी मर्यादाका उल्लङ्घन कर जायँगे॥ १—१०॥

एष ब्रह्माभिशापेषु सर्वप्रहरणेषु च।
सर्वविक्रमकोपेषु व्यवसाये च तिष्ठति॥ ११

पूज्यन्ते दण्डिनो देवैर्न पूज्यन्ते त्वदण्डिनः।
न ब्रह्माणं विधातारं न पूषार्यमणावपि॥ १२

यजन्ते मानवाः केचित् प्रशान्ताः सर्वकर्मसु।
रुद्रमग्निं च शक्रं च सूर्याचन्द्रमसौ तथा॥ १३

विष्णुं देवगणांश्चान्यान् दण्डिनः पूजयन्ति च।
दण्डः शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति॥ १४

दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मं विदुर्बुधाः।
राजदण्डभयादेव पापाः पापं न कुर्वते॥ १५

यमदण्डभयादेके परस्परभयादपि।
एवं सांसिद्धिके लोके सर्वं दण्डे प्रतिष्ठितम्॥ १६

अन्धे तमसि मज्जेयुर्यदि दण्डं न पातयेत्।
यस्माद् दण्डो दमयति दुर्मदान् दण्डयत्यपि।
दमनाद् दण्डनाच्चैव तस्माद् दण्डं विदुर्बुधाः॥ १७

दण्डस्य भीतैस्त्रिदशैः समेतै-
भार्गो धृतः शूलधरस्य यज्ञे।
दत्तं कुमारे ध्वजिनीपतित्वं
वरं शिशूनां च भयाद् बलस्थम्॥ १८

यह दण्ड ब्राह्मणके शाप, सभीके अस्त्र-शस्त्र, सभी प्रकारके पराक्रमपूर्वक क्रोधसे किये गये क्रिया-कलाप और व्यवसायमें स्थित रहता है। दण्ड देनेवाले व्यक्ति देवताओंद्वारा पूज्य हैं, किंतु दण्ड न देनेवालोंकी पूजा कहीं भी नहीं होती। ब्रह्मा, पूषा और अर्यमा सभी कार्योंमें शान्त रहते हैं, इसलिये कोई भी मनुष्य उनकी पूजा नहीं करता। साथ ही दण्ड देनेवाले रुद्र, अग्नि, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु एवं अन्य देवगणोंकी सभी लोग पूजा करते हैं। दण्ड सभी प्रजाओंपर शासन करता है तथा दण्ड ही सबकी रक्षा करता है। दण्ड सभीके सो जानेपर भी जागता रहता है, अतएव बुद्धिमान् लोग दण्डको धर्म मानते हैं। कुछ पापी राजदण्डके भयसे, कुछ यमराजके दण्डके भयसे और कतिपय पारस्परिक भयसे भी पापकर्म नहीं करते। इस प्रकार इस प्राकृतिक जगत्में सभी कुछ दण्डपर ही प्रतिष्ठित है। यदि दण्ड न दिया जाय तो प्रजा घोर अंधकारमें डूब जाय। चूँकि दण्ड दमन करता है और दुर्मदोंको दण्ड भी देता है, इसलिये दमन करने तथा दण्ड देनेके कारण बुद्धिमान् लोग उसे दण्ड मानते हैं। दण्डके भयसे डरे हुए समस्त देवताओंने यज्ञमें शिवजीका भाग निश्चित किया है और भयके कारण ही स्वामी कार्तिकेयको शैशवावस्थामें ही सारी देवसेनाका सेनापतित्व और वरदान प्रदान किया गया है॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रशंसा नाम पञ्चविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें दण्डप्रशंसा नामक दो सौ पचीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२५॥

दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय

सामान्य राजनीतिका निरूपण

मत्स्य उवाच

दण्डप्रणयनार्थाय राजा सृष्टः स्वयम्भुवा।
देवभागानुपादाय सर्वभूतादिगुप्तये॥ १

तेजसा यदमुं कश्चिन्नैव शक्नोति वीक्षितुम्।
ततो भवति लोकेषु राजा भास्करवत्प्रभुः॥ २

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! ब्रह्माने समस्त प्राणियोंकी रक्षाके निमित्त दण्डका प्रयोग करनेके लिये देवताओंके अंशोंको लेकर राजाकी सृष्टि की है। चूँकि तेजसे देदीप्यमान होनेके कारण कोई भी उसकी ओर देख नहीं सकता, इसीलिये राजा लोकमें सूर्यके समान

यदास्य दर्शने लोकः प्रसादमुपगच्छति।
नयनानन्दकारित्वात् तदा भवति चन्द्रमाः॥ ३
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्ते काले प्रयच्छति।
तथा राज्ञा विधातव्याः प्रजास्तद्धि यमव्रतम्॥ ४
वरुणेन यथा पाशैर्बद्ध एव प्रदृश्यते।
तथा पापान् निगृह्णीयाद् व्रतमेतद्धि वारुणम्॥ ५
परिपूर्णं यथा चन्द्रं दृष्ट्वा हृष्यति मानवः।
तथा प्रकृतयो यस्मिन् स चन्द्रप्रतिमो नृपः॥ ६

प्रभावशाली होता है। जिस समय इसे देखनेसे लोग हर्षको प्राप्त होते हैं, उस समय वह नेत्रोंके लिये आनन्दकारी होनेके कारण चन्द्रमाके समान हो जाता है। जिस प्रकार यमराज समय आनेपर शत्रु-मित्र—सबको दण्ड देते हैं, उसी तरह राजाको प्रजाके साथ व्यवहार करना चाहिये, यह यम-व्रत है। जिस तरह वरुणद्वारा पाशसे बँधे हुए लोग दिखायी पड़ते हैं; उसी प्रकार पापाचरण करनेवालोंको पाशबद्ध करना चाहिये, यह वरुण-व्रत है। जैसे मनुष्य पूर्ण चन्द्रको देखकर प्रसन्न होता है, उसी प्रकार जिसे देखकर प्रजा प्रसन्न होती है वह राजा चन्द्रमाके समान है॥१—६॥

प्रतापयुक्तस्तेजस्वी नित्यं स्यात् पापकर्मसु।
दुष्टसामन्तहिंस्रेषु राजाग्नेयव्रते स्थितः॥ ७
यथा सर्वाणि भूतानि धरा धारयते स्वयम्।
तथा सर्वाणि भूतानि बिभ्रतः पार्थिवं व्रतम्॥ ८
इन्द्रस्यार्कस्य वातस्य यमस्य वरुणस्य च।
चन्द्रस्याग्नेः पृथिव्याश्च तेजोव्रतं नृपश्चरेत्॥ ९
वार्षिकांश्चतुरो मासान् यथेन्द्रोऽप्यभिवर्षति।
तथाभिवर्षेत् स्वं राज्यं काममिन्द्रव्रतं स्मृतम्॥ १०
अष्टौ मासान् यथाऽऽदित्यस्तोयं हरति रश्मिभिः।
तथा हरेत् करं राष्ट्रान्नित्यमर्कव्रतं हि तत्॥ ११
प्रविश्य सर्वभूतानि यथा चरति मारुतः।
तथा चारैः प्रवेष्टव्यं व्रतमेतद्धि मारुतम्॥ १२

अग्नि-व्रतमें स्थित राजाको पापियों, दुष्ट सामन्तों तथा हिंसकोंके प्रति नित्य प्रतापशाली एवं तेजस्वी होना चाहिये। जिस प्रकार स्वयं पृथ्वी समस्त जीवोंको धारण करती है, उसी प्रकार राजा भी सम्पूर्ण प्राणियोंका पालन-पोषण करता है। यह पार्थिव-व्रत है। राजाको इन्द्र, सूर्य, वायु, यम, वरुण, चन्द्रमा, अग्नि तथा पृथ्वीके तेजोव्रतका आचरण करना चाहिये। जिस प्रकार इन्द्र वर्षके चार महीनोंमें वृष्टि करते हैं, उसी प्रकार राजाको भी अपने राष्ट्रमें स्वेच्छापूर्वक दानवृष्टि करनी चाहिये, यह इन्द्र-व्रत है। जिस प्रकार सूर्य आठ महीनेतक अपनी किरणोंसे जलका अपहरण करते हैं, उसी प्रकार राजाको भी नित्य राज्यसे कर ग्रहण करना चाहिये। यह सूर्य-व्रत है। जिस प्रकार मारुत सभी प्राणियोंमें प्रवेश करके विचरण करता है, उसी प्रकार राजाको भी गुप्तचरोंद्वारा सभी प्राणियोंमें प्रविष्ट होनेका विधान है। यह मारुत-व्रत है॥७—१२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे राज्ञो लोकपालसाम्यनिर्देशो नाम षड्विंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-प्रकरणमें प्रजापालन नामक दो सौ छब्बीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२६॥

दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय

दण्डनीतिका निरूपण

मत्स्य उवाच

निक्षेपस्य समं मूल्यं दण्ड्यो निक्षेपभुक् तथा।
वस्त्रादिकसमस्तस्य तदा धर्मो न हीयते॥ १

यो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते।
तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा द्विगुणं धनम्॥ २

उपधाभिश्च यः कश्चित् परद्रव्यं हरेन्नरः।
ससहायः स हन्तव्यः प्रकामं विविधैर्वधैः॥ ३

यो याचितं समादाय न तद् दद्याद् यथाक्रमम्।
स निगृह्य बलाद् दाप्यो दण्ड्यो वा पूर्वसाहसम्॥ ४

अज्ञानाद् यदि वा कुर्यात् परद्रव्यस्य विक्रयम्।
निर्दोषो ज्ञानपूर्वं तु चोरवद् वधमर्हति॥ ५

मूल्यमादाय यो विद्यां शिल्पं वा न प्रयच्छति।
दण्ड्यः स मूल्यं सकलं धर्मज्ञेन महीक्षिता॥ ६

द्विजभोज्ये तु सम्प्राप्ते प्रतिवेश्यमभोजयन्।
हिरण्यमाषकं दण्ड्यः पापे नास्ति व्यतिक्रमः॥ ७

आमन्त्रितो द्विजो यस्तु वर्तमानश्च स्व गृहे।
निष्कारणं न गच्छेद् यः स दाप्योऽष्टशतं दमम्।
प्रतिश्रुत्याप्रदातारं सुवर्णं दण्डयेन्नृपः॥ ८

भृत्यश्चाज्ञां न कुर्याद् यो दर्पात् कर्म यथोदितम्।
स दण्ड्यः कृष्णलान्यष्टौ न देयं चास्य वेतनम्॥ ९

संगृहीतं न दद्याद् यः काले वेतनमेव च।
अकाले तु त्यजेद् भृत्यं दण्ड्यः स्याच्छतमेव च॥ १०

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! (रत्न-धन-) वस्त्रादि धरोहरको हड़प जानेवाले व्यक्तिको उसके मूल्यके अनुरूप दण्ड देनेपर राजाका धर्म नष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति रखी हुई धरोहरको वापस नहीं करता और जो बिना धरोहर रखे ही माँगता है, वे दोनों ही चोरके समान दण्डनीय हैं। उनसे मूल्यसे दुगुना धन दिलाना चाहिये। जो कोई उपधा[1]—डाँका डालकर या छल-कपटसे दूसरेके धनको चुरा लेता है, उसे अनेकों वधोपायोंद्वारा सहायकोंसहित प्राण-दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति दूसरेसे माँगकर ली गयी वस्तुको समयपर वापस नहीं करता तो उसे बलपूर्वक पकड़कर वह वस्तु दिला देने अथवा पूर्वसाहस[2] का दण्ड देनेका विधान है। जो कोई अनजानमें किसी दूसरेकी वस्तुको बेंच देता है, वह तो निर्दोष है, किंतु जो जानते हुए दूसरेकी वस्तुको बेचता है वह चोरके समान दण्डनीय है। जो मूल्य लेकर विद्या या शिल्पज्ञानको नहीं देता, उसे धर्मज्ञ राजाको रकमवापसीका दण्ड देना चाहिये। जो ब्रह्मभोजका अवसर प्राप्त होनेपर अपने पड़ोसियोंको भोजन नहीं कराता उसे एक माशा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये। अपराधियोंको दण्ड देनेमें व्यतिक्रमका विधान नहीं है। जो निमन्त्रित ब्राह्मण अपने घरपर रहते हुए भी बिना किसी कारणके भोजन करने नहीं जाता उसे एक सौ आठ माशा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये। जो किसी वस्तुको देनेकी प्रतिज्ञा कर उसे नहीं देता; उसे राजा एक सुवर्ण-मुद्राका दण्ड दे। जो नौकर अभिमानवश आज्ञापालन तथा कहा हुआ कर्म नहीं करता, उसे राजा आठ कृष्णलका[3] दण्ड दे और उसका वेतन भी रोक दे। जो स्वामी अपने नौकरको उसके संचित धन तथा वेतनको समयपर नहीं देता और कुसमयमें उसे छोड़ देता है, उसे सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये॥ १—१०॥

१. कामन्दक आदिने उपधाको छल, साहस (डाँका) आदि भेदसे चार प्रकारका बतलाया है।

२. दण्डनीति एवं मन्वादि धर्मशास्त्रोंके अनुसार वध (फाँसी), वनवास, अग्निचिह्नपूर्वक देशनिष्कासन अथवा सहस्रपणका दण्ड पूर्व या उत्तमसाहस दण्ड कहलाता है। ३. १ १/२ दाने जौकी स्वर्णमुद्रा (कौटलीय अर्थशास्त्र, लीलावती आदि)।

योे ग्रामदेशसस्यानां कृत्वा सत्येन संविदम्।
विसंवदेन्नरो लोभात् तं राष्ट्राद् विप्रवासयेत्॥ ११

क्रीत्वा विक्रीय वा किंचिद् यस्येहानुशयी भवेत्।
सोऽन्तर्दशाहात् तत्साम्यं दद्याच्चैवाददीत वा॥ १२

परेण तु दशाहस्य न दद्यान्नैव दापयेत्।
आददद्विददच्चैव राज्ञा दण्ड्यः शतानि षट्॥ १३

यस्तु दोषवतीं कन्यामनाख्याय प्रयच्छति।
तस्य कुर्यान्नृपो दण्डं स्वयं षण्णवतिं पणान्॥ १४

अकन्यैवेति यः कन्यां ब्रूयाद् दोषेण मानवः।
स शतं प्राप्नुयाद् दण्डं तस्या दोषमदर्शयन्॥ १५

यस्त्वन्यां दर्शयित्वान्यां वोढुः कन्यां प्रयच्छति।
उत्तमं तस्य कुर्वीत राजा दण्डं तु साहसम्॥ १६

वरो दोषाननाख्याय यः कन्यां वरयेदिह।
दत्ताप्यदत्ता सा तस्य राज्ञा दण्ड्यः शतद्वयम्॥ १७

प्रदाय कन्यां योऽन्यस्मै पुनस्तां सम्प्रयच्छति।
दण्डः कार्यो नरेन्द्रेण तस्याप्युत्तमसाहसः॥ १८

सत्यंकारेण वा वाचा युक्तं पण्यमसंशयम्।
लुब्धो ह्यन्यत्र विक्रेता षट्शतं दण्डमर्हति॥ १९

दुहितुः शुल्कविक्रेता सत्यंकारात् तु संत्यजेत्।
द्विगुणं दण्डयेदेनमिति धर्मो व्यवस्थितः॥ २०

मूल्यैकदेशं दत्त्वा तु यदि क्रेता धनं त्यजेत्।
स दण्ड्यो मध्यमं दण्डं तस्य पण्यस्य मोक्षणम्॥ २१

दुह्याद् धेनुं च यः पालो गृहीत्वा भुक्तवेतनम्।
स तु दण्ड्यः शतं राज्ञा सुवर्णं चाप्यरक्षिता॥ २२

दण्डं दत्त्वा तु विरमेत् स्वामितः कृतलक्षणः।
बद्धः कार्ष्णायसैः पाशैस्तस्य कर्मकरो भवेत्॥ २३

जो मनुष्य सत्यतापूर्वक किये गये देश, ग्राम और अन्नके बँटवारेको लोभके कारण पुनः असत्य बतलाता है, उसे देशसे निकाल देना चाहिये। किसी वस्तुको खरीदने या बेंचनेके बाद यदि कुछ मूल्य शेष रह जाता है तो उसे दस दिनके भीतर दे देना या ले लेना चाहिये। यदि दस दिन बीत जानेके बाद कोई शेष मूल्यको न देता है न दिलाता है तो राजा उन न देने और दिलानेवाले दोनोंको छः सौ मुद्राओंका दण्ड दे। जो व्यक्ति अपनी दोषसे युक्त कन्याको बिना दोष सूचित किये किसीको दान कर देता है तो स्वयं राजा उसे छियानबे पणोंका दण्ड दे। जो मनुष्य बिना दोषके ही किसी दूसरेकी कन्याको दोषयुक्त बतलाता है और उस कन्याके दोषको दिखानेमें असमर्थ हो जाता है तो राजा उसे सौ मुद्राका दण्ड दे। जो व्यक्ति अन्य कन्याको दिखलाकर वरको दूसरी कन्याका दान करता है तो राजाको उसे उत्तम साहसिक दण्ड देना चाहिये। जो वर अपने दोषको न बतलाकर किसी कन्याका पाणिग्रहण करता है तो वह कन्या देनेके बाद भी न दी हुईके समान है। राजाको उसपर दो सौ मुद्राओंका दण्ड लगाना चाहिये। जो एक ही कन्याको किसीको दान कर देनेके बाद फिर किसी दूसरेको दान करता है, उसे भी राजाको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो अपने मुखसे 'निश्चय ही मैं इतने मूल्यपर अमुक वस्तु आपको दे दूँगा' ऐसी प्रतिज्ञा कर फिर लोभके कारण उसे दूसरेके हाथ बेंच देता है, वह छः सौ मुद्राओंके दण्डका भागी होता है। जो व्यक्ति कन्याका मूल्य लेकर विक्रय नहीं करता या प्रतिज्ञासे हटता है तो उसे लिये हुए मूल्यसे दुगुने द्रव्यका दण्ड देना चाहिये, यह धर्मकी व्यवस्था है। मूल्यका कुछ भाग देनेके पश्चात् यदि लेनेवाला व्यक्ति उसे लेना नहीं चाहता तो उसे मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये और उसे दिये हुए द्रव्यको लौटा देना चाहिये। जो गोपाल वेतन लेकर गायको दुहता है और उसकी ठीकसे रक्षा नहीं करता उसे राजाको सौ सुवर्ण मुद्राओंका दण्ड देना चाहिये। राजा दण्ड देनेके बाद विराम ले ले। तदनन्तर राजाद्वारा चिह्नित अपराधीको काले लोहेकी जंजीरसे आबद्ध कर दिया जाय और पुनः किसी अपने ही कार्यपर नियुक्त कर लिया जाय॥ ११—२३॥

धनु:शतपरीणाहो ग्रामस्य तु समंततः।
द्विगुणं त्रिगुणं वापि नगरस्य तु कल्पयेत्॥ २४

वृत्तिं तत्र प्रकुर्वीत यामुष्ट्रो नावलोकयेत्।
छिद्रं वा वारयेत् सर्वं श्वशूकरमुखानुगम्॥ २५

यत्रापरिवृतं धान्यं विहिंस्युः पशवो यदि।
न तत्र कारयेद् दण्डं नृपतिः पशुरक्षिणे॥ २६

अनिर्दशाहां गां सूतां वृषं देवपशुं तथा।
छिद्रं वा वारयेत् सर्वं न दण्ड्यो मनुरब्रवीत्॥ २७

अथोऽन्यथा विनष्टस्य दशांशं दण्डमर्हति।
पाल्यस्य पालकस्वामी विनाशे क्षत्रियस्य तु॥ २८

भक्षयित्वोपविष्टस्तु द्विगुणं दण्डमर्हति।
विशं दण्ड्याद् दशगुणं विनाशे क्षत्रियस्य तु॥ २९

गृहं तडागमारामं क्षेत्रं वापि समाहरन्।
शतानि पञ्च दण्डः स्यादज्ञानाद् द्विशतो दमः॥ ३०

सीमाबन्धनकाले तु सीमान्तं यो हि कारयेत्।
तेषां संज्ञां ददानस्तु जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात्॥ ३१

अथैनामपि यो दद्यात् संविदं वाधिगच्छति।
उत्तमं साहसं दण्ड्य इति स्वायम्भुवोऽब्रवीत्॥ ३२

वर्णानामानुपूर्व्येण त्रयाणामविशेषतः।
अकार्यकारिणः सर्वान् प्रायश्चित्तानि कारयेत्॥ ३३

अमत्या च प्रमाप्य स्त्रीं शूद्रहत्याव्रतं चरेत्।
दानेन च धनेनैकं सर्पादीनामशक्नुवन्॥ ३४

एकैकं स चरेत् कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये।
फलदानां च वृक्षाणां छेदने जप्यमृक्शतम्॥ ३५

गुल्मवल्लीलतानां च पुष्पितानां च वीरुधाम्।
अस्थिमतां च सत्त्वानां सहस्रस्य प्रमापणे।
पूर्णे वानस्यवस्थातुं शूद्रहत्याव्रतं चरेत्॥ ३६

ग्रामके बाहर चारों ओरसे सौ धनुषके विस्तारकी और नगरके लिये उससे दुगुने या तिगुने विस्तारकी ऐसी प्राचीर बनाये जिसके भीतरकी वस्तुको ऊँट भी न देख सके। उसमें कुत्ते तथा सूअरके मुख घुसने योग्य सभी छिद्रोंको बंद करा देना चाहिये। यदि पशु बिना घेरेके खेतके अन्नको हानि पहुँचाते हैं तो राजाको पशुके चरवाहेको दण्ड नहीं देना चाहिये। दस दिनके भीतरकी ब्यायी गायद्वारा तथा देवताके उद्देश्यसे छोड़े गये वृषद्वारा घेरा रहनेपर भी यदि खेतके अन्नकी हानि होती है तो उसके लिये पशुपालक दण्डनीय नहीं है—ऐसा मनुने कहा है। इन उपर्युक्त कारणोंके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे नष्ट हुए द्रव्यके दशांशका दण्ड लगाना चाहिये। कोई पशु फसलको खाकर यदि वहीं बैठा हुआ मिलता है तो उसके स्वामीके ऊपर उक्त दण्डसे दुगुना दण्ड लगाना चाहिये। यदि खेतका स्वामी क्षत्रिय है और वैश्यका पशु हानि पहुँचाता है तो उसे हानिका दस गुना दण्ड देना चाहिये। यदि किसीके घर, तालाब, बगीचे या खेतको कोई दूसरा छीन लेता है तो उसे पाँच सौ मुद्राका तथा बिना जाने यदि इनको हानि पहुँचाता है तो दो सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये। किसी खेत आदिकी सीमा बाँधनेके समय यदि कोई सीमाका उल्लङ्घन करता है या सम्मति देता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये। जो सीमाका उल्लङ्घन करनेवाले व्यक्तिकी बातोंका शपथपूर्वक समर्थन करता है, उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये—ऐसा स्वायम्भुव मनुने कहा है॥ २४—३२॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णोंके लोग समाजमें अपनी स्थितिके बिना किसी विशेषताके क्रमसे यदि निषिद्ध कार्य करते हैं तो उन सबसे प्रायश्चित्त करवाना चाहिये। यदि कोई अनजानमें स्त्रीका वध कर देता है तो उसे शूद्र-हत्या-व्रतका पालन करना चाहिये। सर्पादिकी हत्या कर धन-दान करनेमें असमर्थ द्विजको पाप-शान्तिके लिये एक-एक कृच्छ्रव्रतका आचरण करना चाहिये। फल देनेवाले वृक्षों, फूली हुई लताओं, गुल्मों, वल्लियों तथा फूले हुए वृक्षोंको काटनेपर सौ ऋचाओंका जप करना चाहिये। एक सहस्र अथवा एक गाड़ीमें भर जानेके योग्य हड्डीवाले जीवोंकी हत्या करनेवालेको शूद्रहत्याका प्रायश्चित्त करना चाहिये।

किंचिद् देयं च विप्राय दद्यादस्थिमतां वधे।
अनस्थां चैव हिंसायां प्राणायामैर्विशुद्ध्यति॥ ३७

अन्नादिजानां सत्त्वानां रसजानां च सर्वशः।
फलपुष्पोद्गतानां च घृतप्राशो विशोधनम्॥ ३८

कृष्टानामोषधीनां च जातानां च स्वयं वने।
वृथाच्छेदेन गच्छेत दिनमेकं पयोव्रती॥ ३९

एतैर्व्रतैरपोह्यं स्यादेनो हिंसासमुद्भवम्।
स्तेयदोषापहर्तॄणां श्रूयतां व्रतमुत्तमम्॥ ४०

धान्यान्नधनचौर्याणि कृत्वा कामाद् द्विजोत्तमः।
सजातीयगृहादेव कृच्छ्रार्धेन विशुद्ध्यति॥ ४१

मनुष्याणां तु हरणे स्त्रीणां क्षेत्रगृहस्य तु।
कूपवापीजलानां तु शुद्धिश्चान्द्रायणं स्मृतम्॥ ४२

द्रव्याणामल्पसाराणां स्तेयं कृत्वान्यवेश्मतः।
चरेत् सान्तपनं कृच्छ्रं तन्निर्यात्यविशुद्धये॥ ४३

भक्ष्यभोज्यापहरणे यानशय्यासनस्य तु।
पुष्पमूलफलानां तु पञ्चगव्यं विशोधनम्॥ ४४

तृणकाष्ठद्रुमाणां तु शुष्कान्नस्य गुडस्य च।
चैलचर्मामिषाणां तु त्रिरात्रं स्यादभोजनम्॥ ४५

मणिमुक्ताप्रवालानां ताम्रस्य रजतस्य च।
अयस्कांस्योपलानां च द्वादशाहं कणान्नभुक्॥ ४६

कार्पासकीटजोर्णानां द्विशफैकशफस्य च।
पक्षिगन्धौषधीनां च रज्ज्वाश्चैव त्र्यहं पयः॥ ४७

एतैर्व्रतैर्व्यपोहेत पापं स्तेयकृतं द्विजः।
अगम्यागमनीयं तु व्रतैरेभिरपानुदेत्॥ ४८

गुरुतल्पव्रतं कुर्याद् रेतः सिक्त्वा स्वयोनिषु।
सख्युः पुत्रस्य च स्त्रीषु कुमारीष्वन्त्यजासु च॥ ४९

पैतृष्वस्रीयभगिनीं स्वस्रीयां मातुरेव च।
भ्रातुर्दुहितरं चैव गत्वा चान्द्रायणं चरेत्॥ ५०

हड्डीवाले जानवरोंकी हत्या करनेपर ब्राह्मणको कुछ दान देना चाहिये और जो बिना हड्डीके हैं उनकी हिंसा करनेपर प्राणायामसे शुद्धि हो जाती है। अन्नादिसे एवं रससे उत्पन्न होनेवाले तथा फलों और पुष्पोंमें पैदा होनेवाले जन्तुओंकी हिंसा करनेपर घृत-पान ही प्रायश्चित्त है। जुताईसे उत्पन्न हुई तथा वनमें स्वतः उगी हुई ओषधियोंको बिना आवश्यकताके काटनेपर एक दिनका दुग्धव्रत करना चाहिये। हिंसासे उत्पन्न हुआ पातक इन व्रतोंसे दूर किया जा सकता है। अब चोर-कर्मसे उत्पन्न हुए पापको दूर करनेके लिये उत्तम व्रत सुनिये॥ ३३—४०॥

यदि ब्राह्मण अपनी जातिवालोंके घरसे इच्छापूर्वक धान्य, अन्न और धनकी चोरी करता है तो वह अर्धकृच्छ्रव्रतसे शुद्ध होता है। मनुष्य, स्त्री, खेत, घर, कूप और बावलीके जलका हरण करनेपर शुद्धिके लिये चान्द्रायणव्रतका विधान है। दूसरेके घरसे थोड़ी मूल्यवाली वस्तुओंकी चोरी करनेपर उससे शुद्ध होनेके लिये कृच्छ्रसांतपन-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। भक्ष्य, भोज्य, वाहन, शय्या, आसन, पुष्प, मूल और फलकी चोरी करनेपर उसका प्रायश्चित्त पञ्चगव्य-पान है। तृण, काष्ठ, वृक्ष, सूखा अन्न, गुड, वस्त्र, चमड़ा तथा मांसकी चोरी करनेपर तीन राततक उपवास करना चाहिये। मणि, मोती, प्रवाल, ताँबा, चाँदी, लोहा, काँसा तथा पत्थरकी चोरी करनेपर बारह दिनोंतक अन्नके कणोंका भोजन करना चाहिये। सूती, रेशमी, ऊनी वस्त्र, दो तथा एक खुरवाले पशु, पक्षी, सुगन्धित द्रव्य, ओषधि तथा रस्सीकी चोरी करनेपर तीन दिनतक केवल जल पीकर रहना चाहिये। ब्राह्मणको इन व्रतोंद्वारा चोरीसे उत्पन्न हुए पापका निवारण करना चाहिये। अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेसे उत्पन्न हुए पापको इन व्रतोंद्वारा नष्ट करना चाहिये। अपनी जातिकी परायी स्त्रीके साथ समागम करके गुरुतल्प-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये अर्थात् गुरुकी स्त्रीके साथ समागम करनेपर जो प्रायश्चित्त कहा गया है, उसका अनुष्ठान करना चाहिये। मित्र तथा पुत्रकी स्त्री, कुमारी कन्या, नीच जातिकी स्त्री (चाण्डाली), फुफेरी तथा मौसेरी बहन और भाईकी कन्याके साथ समागम करनेपर चान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये॥ ४१—५०॥

एता: स्त्रियस्तु भार्यार्थे नोपगच्छेत्तु बुद्धिमान्।
ज्ञातीनां च स्त्रियो यास्तु पतितानुगताश्च या:॥ ५१

अमानुषीषु पुरुषो उदक्यायामयोनिषु।
रेत: सिक्त्वा जले चैव कृच्छ्रं सांतपनं चरेत्॥ ५२

मैथुनं च समालोक्य पुंसि योषिति वा द्विज:।
गोयानेऽप्सु दिवा चैव सवासा: स्नानमाचरेत्॥ ५३

चाण्डालान्त्यस्त्रियो गत्वा भुक्त्वा च प्रतिगृह्य च।
पतत्यज्ञानतो विप्रो ज्ञानात् साम्यं तु गच्छति॥ ५४

विप्रदुष्टां स्त्रियं भर्त्ता निरुन्ध्यादेकवेश्मनि।
यत् पुंस: परदारेषु तच्चैनां चारयेद् व्रतम्॥ ५५

सा चेत् पुन: प्रदुष्येत्तु सदृशेनोपमन्त्रिता।
कृच्छ्रं चान्द्रायणं चैव तत् तस्या: पावनं स्मृतम्॥ ५६

य: करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विज:।
तद्भक्ष्यभुग् जपेन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्व्यपोहति॥ ५७

एषा पापकृतामुक्ता चतुर्णामपि निष्कृति:।
पतितै: सम्प्रयुक्तानामिमां शृणुत निष्कृतिम्॥ ५८

संवत्सरेण पतति पतितेन सहाचरन्।
याजनाध्यापनाद् यौनादनुयानाशनासनात्॥ ५९

यो येन पतितेनैषां संसर्गं याति मानव:।
स तस्यैव व्रतं कुर्यात् तत्संसर्गविशुद्धये॥ ६०

पतितस्योदकं कार्यं सपिण्डैर्बान्धवै: सह।
निन्दितेऽहनि सायाह्ने ज्ञातिभिर्गुरुसंनिधौ॥ ६१

दासी घटमपां पूर्णं पर्यस्येत् प्रेतवत् सदा।
अहोरात्रमुपासीरन् नाशौचं बान्धवै: सह॥ ६२

निवर्तयेरंस्तस्मात्तु सम्भाषणसहासनम्।
दायादस्य प्रमाणं च यात्रामेव च लौकिकीम्॥ ६३

ज्येष्ठाभावान्निवर्तेत ज्येष्ठ्यावाप्तं च यत्पुन:।
ज्येष्ठांशं प्राप्नुयाच्चास्य यवीयान् गुणतोऽधिक:॥ ६४

बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जो स्त्रियाँ अपनी जातिकी हों तथा जो पतितोंकी अनुगामिनी हों, उनके साथ भार्याके समान समागम न करे। मनुष्यसे भिन्न योनि, ऋतुमती स्त्री तथा योनिद्वारसे अन्यत्र अथवा जलमें वीर्यपात करके पुरुषको कृच्छ्र-सान्तपन नामक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। बैलगाड़ीपर, जलमें तथा दिनमें स्त्री-पुरुषके मैथुनको देखकर ब्राह्मणको वस्त्रसहित स्नान करना चाहिये। ब्राह्मण यदि अज्ञानसे चाण्डाल और अन्त्यज स्त्रियोंके साथ सम्भोग, उनके यहाँ भोजन और उनका दिया हुआ दान ग्रहण करता है तो वह पतित हो जाता है और जान-बूझकर करता है तो वह उन्हींके समान हो जाता है। ब्राह्मणद्वारा दूषित स्त्रीको उसका पति एक घरमें बंद कर दे। इसी प्रकार दूसरेकी स्त्रियोंसे समागम करनेवाले पुरुषको भी यही व्रत करना चाहिये। यदि वह स्त्री पुन: किसी परकीय पुरुषसे दूषित होती है तो उसे शुद्ध करनेके लिये कृच्छ्रचान्द्रायण-व्रतका अनुष्ठान बताया गया है। जो द्विज एक रात भी शूद्र स्त्रीके साथ समागम करता है तथा उसका दिया हुआ अन्न भोजन करता है, वह तीन वर्षोंतक निरन्तर गायत्रीजप करनेसे शुद्ध होता है। चारों वर्णोंके पापियोंके लिये यह प्रायश्चित्त कहा गया है। अब पतितोंके संसर्गमें होनेवाले पापके लिये यह प्रायश्चित्त सुनिये॥ ५१—५८॥

पतितके साथ यज्ञानुष्ठान, अध्यापन, यौन-सम्बन्ध, भोजन, एक वाहनपर गमन तथा आसनपर उपवेशन करनेसे भला मनुष्य (भी) एक वर्षमें पतित हो जाता है। जो मनुष्य इन कर्मोंमें जिस पतितका संसर्ग प्राप्त करता है, उसे उस संसर्गदोषकी शुद्धिके लिये उसी पतितके व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। उसके सपिण्ड भाई-बन्धुओंको जातिवालोंके साथ किसी निन्दित दिनको सायंकालके समय गुरुके समीप उस पतितके लिये उदक-क्रिया करनी चाहिये। दासी उक्त व्यक्तिके लिये प्रेतकी तरह जलपूर्ण घट रखे, परिवारवालोंके साथ एक दिन-रातका उपवास करे और अशौचके समान व्यवहार करे। परिवारवालोंके लिये उसके साथ वार्तालाप करना और एक आसनपर बैठना निषिद्ध है। इस पाप-कर्मकी जातिको भी उन्हें नहीं प्रकट करना चाहिये—यह लोककी मर्यादा है। जिस प्रकार ज्येष्ठ भाईके न रहनेपर उसके हिस्सेकी प्राप्ति छोटे भाईको होती है, उसी प्रकार अधिक गुणवान् होनेपर भी छोटे भाईको उसका फल भोगना पड़ता है।

स्थापितां चापि मर्यादां ये भिन्द्युः पापकर्मिणः।
सर्वे पृथग्दण्डनीया राज्ञा प्रथमसाहसम्॥ ६५
शतं ब्राह्मणमाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति।
वैश्यस्तु द्विशतं राजञ् शूद्रस्तु वधमर्हति॥ ६६
पञ्चाशद् ब्राह्मणा दण्ड्यः क्षत्रियस्याभिशंसने।
वैश्यस्याप्यर्धपञ्चाशच्छूद्रे द्वादशको दमः॥ ६७
क्षत्रियस्याप्नुयाद्वैश्यः साहसं पुनरेव च।
शूद्रः क्षत्रियमाक्रुश्य जिह्वाच्छेदनमाप्नुयात्॥ ६८

जो पापाचारी प्राणी निश्चित की गयी मर्यादाको तोड़ देते हैं, उन्हें राजा पृथक्-पृथक् जाति-क्रमके अनुसार उत्तम साहसका दण्ड दे। राजन्! यदि क्षत्रिय होकर ब्राह्मणको कटु वचन कहता है तो उसे सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये। यदि वैश्य है तो उसे दो सौ मुद्राका और यदि शूद्र है तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये। यदि ब्राह्मण क्षत्रियको कटु बातें कहे तो उसे पचास पण, वैश्यको कहे तो पचीस पण तथा शूद्रको कहे तो बारह पणका दण्ड देना चाहिये। यदि वैश्य क्षत्रियको कटु वचन कहता है तो उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये और शूद्र क्षत्रियको कटूक्ति सुनाता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये॥ ५९—६८॥

पञ्चाशत्क्षत्रियो दण्ड्यस्तथा वैश्याभिशंसने।
शूद्रे चैवार्धपञ्चाशत्तथा धर्मो न हीयते॥ ६९
वैश्यस्याक्रोशने दण्ड्यः शूद्रश्चोत्तमसाहसम्।
शूद्राक्रोशे तथा वैश्यः शतार्धं दण्डमर्हति॥ ७०
सवर्णाक्रोशने दण्ड्यस्तथा द्वादशकं स्मृतम्।
वादेष्ववचनीयेषु तदेव द्विगुणं भवेत्॥ ७१
एकजातिर्द्विजातिं तु वाचा दारुणया क्षिपन्।
जिह्वायाः प्राप्नुयाच्छेदं जघन्यः प्रथमो हि सः॥ ७२
नामजातिगृहं तेषामभिद्रोहेण कुर्वतः।
निक्षेप्योऽयोमयः शङ्कुर्ज्वलन्नास्ये दशाङ्गुलः॥ ७३
धर्मोपदेशं शूद्रस्तु द्विजानामभिकुर्वतः।
तप्तमासेचयेत्तैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः॥ ७४
श्रुतिं देशं च जातिं च कर्म शारीरमेव च।
वितथं च ब्रुवन् दण्ड्यो राज्ञा द्विगुणसाहसम्॥ ७५
यस्तु पातकसंयुक्तः क्षिपेद् वर्णान्तरं नरः।
उत्तमं साहसं दण्डः पात्यस्तस्मिन् यथाक्रमम्॥ ७६
राज्ञो निवेशनियमं वितथं यान्ति वै मिथः।
सर्वे द्विगुणदण्ड्यास्ते विप्रलम्भान्नृपस्य तु॥ ७७
प्रीत्या मयास्याभिहितं प्रमादेनाथवा वदेत्।
भूयो न चैवं वक्ष्यामि स तु दण्डार्धभाग्भवेत्॥ ७८

क्षत्रिय यदि वैश्यको बुरा-भला कहता है तो उसे पचास और शूद्रको कहता है तो पचीस दमका दण्ड देना चाहिये। ऐसा करनेसे उसका धर्म क्षीण नहीं होता। शूद्र यदि वैश्यको कटु वचन कहे तो उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये और वैश्य होकर शूद्रको बुरा-भला कह रहा है तो वह पचास दमके दण्डका भागी होता है। यदि कोई अपने वर्णवालेको कटूक्ति सुनाता है तो उसे बारह दमका दण्ड देना चाहिये तथा अकथनीय बातें कहनेपर वह दण्ड दुगुना हो जाता है। यदि द्विजातिसे भिन्न जातिवाला किसी द्विजातिको कठोर वाणीसे बुरा-भला कहता है तो उसकी जीभ काट लेनी चाहिये और उसे परम नीच समझना चाहिये। अधिक द्रोहवश नाम, जाति तथा घरकी निन्दा करनेवालेके मुखमें लोहेकी बारह अंगुल लम्बी जलती हुई शलाका डाल देनी चाहिये। राजाको द्विजातिको धर्मोपदेश करनेवाले शूद्रके मुख और कानमें खौलता हुआ तेल डाल देना चाहिये। वेद, देश, जाति और शारीरिक कर्मको निष्फल बतलानेवाला राजाद्वारा दुगुने साहसके दण्डका भागी होता है। जो मनुष्य स्वयं पापाचारी होकर दूसरे वर्णकी निन्दा करता है, उसे राजा जातिके अनुरूप उत्तम साहसका दण्ड दे। जो राजाके बनाये हुए नियमकी अवहेलना करते हैं अथवा राजाकी निन्दा करते हैं, उन सबको दुगुने साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति 'मैंने प्रेमवश अथवा प्रमादसे ऐसा कहा है, अब पुनः ऐसा नहीं कहूँगा' ऐसा कहकर अपराध स्वीकार कर लेता है, वह आधे दण्डका पात्र है॥ ६९—७८॥

काणं वाप्यथवा खञ्जमन्धं चापि तथाविधम्।
तथ्येनापि ब्रुवन् दाप्यो दण्डं कार्षापणं धनम्॥ ७९
मातरं पितरं ज्येष्ठं भ्रातरं श्वशुरं गुरुम्।
आक्रोशयञ् शतं दण्ड्यः पन्थानं चार्दयन् गुरोः॥ ८०
गुरुवर्ज्यं तु मानार्हं यो हि मार्गं न यच्छति।
स दाप्यः कृष्णलं राज्ञस्तस्य पापस्य शान्तये॥ ८१
एकजातिर्द्विजातिं तु येनाङ्गेनापराध्नुयात्।
तदेव च्छेदयेत्तस्य क्षिप्रमेवाविचारयन्॥ ८२
अवनिष्ठीवतो दर्पाद् द्वावोष्ठौ च्छेदयेन्नृपः।
अवमूत्रयतो मेढ्रमपशब्दयतो गुदम्॥ ८३
सहासनमभिप्रेप्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।
कट्यां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वाप्यस्य कर्तयेत्॥ ८४
केशेषु गृह्णतो हस्तं छेदयेदविचारयन्।
पादयोर्नासिकायां च ग्रीवायां वृषणेषु च॥ ८५
त्वग्भेदकः शतं दण्ड्यो लोहितस्य च दर्शकः।
मांसभेत्ता च षण्निष्कान् निर्वास्यस्त्वस्थिभेदकः॥ ८६
अङ्गभङ्गकरस्याङ्गं तदेवापहरेन्नृपः।
दण्डपारुष्यकृद् दण्ड्यः समुत्थानव्ययं तथा॥ ८७
अर्धपादकरः कार्यो गोगजाश्वोष्ट्रघातकः।
पशुक्षुद्रमृगाणां च हिंसायां द्विगुणो दमः॥ ८८
पञ्चाशच्च भवेद् दण्ड्यस्तथैव मृगपक्षिषु।
कृमिकीटेषु दण्ड्यः स्याद् रजतस्य च माषकम्॥ ८९
तस्यानुरूपं मूल्यं च प्रदद्यात् स्वामिने तथा।
स्वस्वामिकानां सकलं शेषाणां दण्डमेव तु॥ ९०

कोई काना हो, लँगड़ा हो अथवा अन्धा हो, उसे सत्यतापूर्वक उसी प्रकारका कहनेपर भी उसे एक कार्षापणका * दण्ड देना चाहिये। माता, पिता, ज्येष्ठ भाई, श्वशुर तथा गुरु—इनकी निन्दा करनेवाले तथा गुरुजनोंके मार्गको नष्ट करनेवालेको सौ कार्षापणका दण्ड देना चाहिये। जो माननीय श्रेष्ठ लोगोंको मार्ग नहीं देता, उसे उस पापकी शान्तिके लिये राजा एक कृष्णलका दण्ड दे। द्विजातिसे भिन्न जातिवाला व्यक्ति किसी द्विजातिका जिस अङ्गसे अपकार करता है, उसके उसी अङ्गको शीघ्र ही बिना कुछ विचार किये कटवा देना चाहिये। राजा सामने गर्वपूर्वक थूकनेवाले, पेशाब करनेवाले तथा अपानवायु छोड़नेवाले व्यक्तिका क्रमशः दोनों होंठ, लिङ्ग और गुदाद्वार कटवा दे। यदि कोई नीच जातिवाला व्यक्ति उत्कृष्ट व्यक्तिके साथ आसनपर बैठना चाहता है तो राजा उसकी कमरमें एक चिह्न बनाकर अपने राज्यसे निर्वासित कर दे या उसके गुदाभागको कटवा दे। इसी प्रकार यदि कोई निम्न जातिवाला किसी उच्च जातीय व्यक्तिके केशोंको पकड़ता है तो उसके हाथको बिना विचार किये ही कटवा देना चाहिये। इसी प्रकारका दण्ड दोनों पैरों, नासिका, गला तथा अण्डकोशके पकड़नेपर भी देना चाहिये। यदि कोई किसीके चमड़ेको काट देता है और उससे रक्त निकलने लगता है तो उसे शतमुद्राका दण्ड देना चाहिये। मांस काट लेनेवालेको छः निष्कोंका दण्ड तथा हड्डी तोड़नेवालेको देशनिकालाका दण्ड देना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति किसीके अङ्गको तोड़-फोड़ देता है तो राजाको चाहिये कि उसके उसी अङ्गको कटवा दे तथा उसे उतने द्रव्यका भी दण्ड दे, जितना उस आहत व्यक्तिके उठने-बैठनेके व्ययके लिये अपेक्षित हो। गाय, हाथी, अश्व और ऊँटकी हत्या करनेवालेका आधा हाथ और आधा पैर काट लेना चाहिये। राजाको पशु तथा छोटे जानवरोंकी हत्या करनेपर अपराधीको उनके मूल्यके दुगुने पणका दण्ड देना चाहिये। मृग तथा पक्षियोंकी हत्या करनेपर पचास पणका दण्ड करनेका विधान है। कृमि तथा कीटोंके मारनेपर एक मासा चाँदीका दण्ड लगाना उचित है तथा उसके अनुकूल मूल्य भी उसके स्वामीको दिलाना चाहिये॥ ७९—८९ $\frac{1}{2}$॥

अब स्वतन्त्र पदार्थोंको नष्ट करनेपर लगनेवाले

* १६ माशेकी स्वर्णमुद्रा या १६ पणकी रजतमुद्रा। (दे० मनु० ८। १३६, ३३६ आदि)

कालमासाद्य कार्यं च राजा दण्डं प्रकल्पयेत्।
गोषु ब्राह्मणसंस्थासु महिषीषु तथैव च॥ १०४
अश्वापहारकश्चैव सद्यः कार्योऽर्धपादकः।
सूत्रकार्पासकिण्वानां गोमयस्य गुडस्य च॥ १०५
मत्स्यानां पक्षिणां चैव तैलस्य च घृतस्य च।
मांसस्य मधुनश्चैव यच्चान्यद्वस्तुसम्भवम्॥ १०६
अन्येषां लवणादीनां मद्यानामोदनस्य च।
पक्वान्नानां च सर्वेषां तन्मूल्याद् द्विगुणो दमः॥ १०७
पुष्पेषु हरिते धान्ये गुल्मवल्लीलतासु च।
अन्नेषु परिपूर्णेषु दण्डः स्यात् पञ्चमाषकम्।
परिपूर्णेषु धान्येषु शाकमूलफलेषु च॥ १०८
निरन्वये शतं दण्ड्यः सान्वये द्विशतं दमः।
येन येन यथाङ्गेन स्तेनोऽन्येषु विचेष्टते॥ १०९
तत्तदेव हरेत् तस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः।
द्विजोऽध्वगः क्षीणवृत्तिर्द्वाविक्षू द्वे च मूलके॥ ११०
त्रपुसोर्वारुकौ द्वौ च तावन्मात्रं फलेषु च।
तथा च सर्वधान्यानां मुष्टिग्राहेण पार्थिव॥ १११
शाके शाकप्रमाणेन गृह्यमाणे न दुष्यति।
वानस्पत्यं फलं मूलं दार्वग्न्यर्थं तथैव च॥ ११२
तृणं गोऽभ्यवहारार्थमस्तेयं मनुरब्रवीत्।
अदेववाटिजं पुष्पं देवतार्थं तथैव च॥ ११३
आददानः परक्षेत्रान्न दण्डं दातुमर्हति।
शृङ्गिणं नखिनं राजन् दंष्ट्रिणं च वधोद्यतम्॥ ११४
यो हन्यान्न स पापेन लिप्यते मनुजेश्वर।
गुरुं वा बालवृद्धं वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम्॥ ११५
आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्।
नाततायिवधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन॥ ११६
प्रकाशं वाप्रकाशं वा मन्युस्तं मन्युमृच्छति।
गृहक्षेत्राभिहर्तारस्तथागम्याभिगामितः ॥ ११७
अग्निदो गरदश्चैव तथा चाभ्युद्यतायुधः।
अभिचारं तु कुर्वाणो राजगामि च पैशुनम्॥ ११८

देश एवं कालके अनुसार दण्डकी व्यवस्था करे। ब्राह्मणके घरसे गाय, भैंस और घोड़ेकी चोरी करनेवालेको तुरंत ही आधे पैरवाला कर देना चाहिये। सूत, कपास, आसव, गोबर, गुड़, मछली, पक्षी, तेल, घी, मांस, मधु, नमक, मदिरा, भात एवं इनसे बनी हुई अन्यान्य वस्तुओं तथा सभी प्रकारके पकवानोंकी चोरी करनेवालेको उस वस्तुके मूल्यसे दुगुना दण्ड देना चाहिये। पुष्प, कच्चा अन्न, गुल्म, लता, वल्ली तथा अधिक अन्नकी चोरी करनेवालेको पाँच मासा सुवर्णका दण्ड देना उचित है। प्रचुरमात्रामें अन्न, शाक, मूल और फलकी चोरी करनेवाले संतानहीनको सौ मुद्राका तथा संतानवालेको दो सौ पणका दण्ड देना चाहिये। चोर जिस-जिस अङ्गोंकी सहायतासे चोरी करनेकी चेष्टा करता है, राजा उसके उस अङ्गको कटवा दे। यदि कोई अकिंचन ब्राह्मण मार्गमें चलते हुए दो ईख, दो कन्द (मूली), दो खीरे, दो तरबूजे, दो अन्य फल, दो मुट्ठी सभी प्रकारके अन्न अथवा साग ले लेता है तो वह चोरीके दोषसे दूषित नहीं होता। भोजनके लिये वृक्षसे उत्पन्न हुए फल, मूल और जलौनी लकड़ीको काट लेना अथवा गौको खिलानेके लिये घास उखाड़ लेना चोरी नहीं है—ऐसा मनुजीने कहा है। देवताकी वाटिकासे भिन्न दूसरेके खेतमें उत्पन्न हुए पुष्पको देवताकी पूजाके लिये तोड़नेवाला दण्डका पात्र नहीं होता, उसे दण्ड नहीं देना चाहिये॥ १०२—११३ $\frac{१}{२}$॥

राजन्! जो अपनेको मारनेके लिये उद्यत सींगवाले, नखवाले तथा दाढ़वाले पशुको मारता है, वह पापसे लिप्त नहीं होता। गुरु, बालक, वृद्ध अथवा शास्त्रज्ञ ब्राह्मण ही क्यों न हो, यदि वह अपनेको मारनेके लिये आ रहा हो तो उसे बिना विचार किये ही मार डालना चाहिये;* क्योंकि आततायीका वध करनेपर वधकर्ताको कोई पाप नहीं लगता। प्रकटरूपमें अथवा गुप्तरूपमें भी पाप करनेवाला पापका भागी होता है। दूसरोंके घर तथा खेतका अपहरण करनेवाले, अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले, आग लगानेवाले, विष देनेवाले, हथियार लेकर मारनेके लिये उद्यत, अभिचारपरायण, राजाके विरोधमें विद्रोह करनेवाले—

* मिताक्षरादिके मतसे यह अर्थवाद है।

एते हि कथिता लोके धर्मज्ञैराततायिनः।
भिक्षुकोऽप्यथवा नारी योऽपि वा स्यात् कुशीलवः॥ ११९

प्रविशेत् प्रतिषिद्धस्तु प्राप्नुयाद् द्विगुणं दमः।
परस्त्रीणां तु सम्भाषे तीर्थेऽरण्ये गृहेऽपि वा॥ १२०

नदीनां चैव सम्भेदे स संग्रहणमाप्नुयात्।
न सम्भाषेत् परस्त्रीभिः प्रतिषिद्धः समाचरेत्॥ १२१

प्रतिषिद्धे समाभाष्य सुवर्णं दण्डमर्हति।
नैव चारणदारेषु विधिरात्मोपजीविषु॥ १२२

सज्जयन्ति मनुष्यैस्ता निगूढं वा चरन्त्युत।
किंचिदेव तु दाप्यः स्यात् सम्भाषेणापचारयन्॥ १२३

प्रेष्यासु चैव सर्वासु गृहप्रव्रजितासु च।
योऽकामां दूषयेत् कन्यां स सद्यो वधमर्हति॥ १२४

सकामां दूषयाणस्तु प्राप्नुयाद् द्विशतं दमम्।
यश्च संरक्षकस्तत्र पुरुषः स तथा भवेत्॥ १२५

पारदारिकवद् दण्ड्यो योऽपि स्यादवकाशदः।
बलात् संदूषयेद् यस्तु परभार्यां नरः क्वचित्॥ १२६

वधो दण्डो भवेत्तस्य नापराधो भवेत् स्त्रियाः।
रजस्तृतीयं या कन्या स्वगृहे प्रतिपद्यते॥ १२७

अदण्ड्या सा भवेद् राज्ञा वरयन्ती पतिं स्वयम्।
स्वदेशे कन्यकां दत्त्वा तामादाय तथा व्रजेत्॥ १२८

परदेशे भवेद् वध्यः स्त्रीचौरः स यतो भवेत्।
अद्रव्यां मृतपत्नीं तु संगृह्णन्नापराध्यति॥ १२९

सद्रव्यां तां संग्रहीता दण्डं तु क्षिप्रमर्हति।
उत्कृष्टं या भजेत् कन्या देया तस्यैव सा भवेत्॥ १३०

यच्चान्यं सेवमानां च संयतां वासयेद् गृहे।

उत्तमां सेवमानस्तु जघन्यो वधमर्हति।
जघन्यमुत्तमा नारी सेवमाना तथैव च॥ १३१

इनको धर्मज्ञोंने लोकमें आततायी बतलाया है। यदि भिक्षुक, परायी स्त्री तथा चारण आदि निषेध करनेपर भी घरमें घुस जाते हैं तो उन्हें दुगुना दण्ड देना चाहिये। तीर्थ, जंगल या घरमें परायी स्त्रियोंके साथ वार्तालाप करनेवाले तथा नदीकी धाराका भेदन करनेवालेको पकड़कर बंद कर देना चाहिये। 'परायी स्त्रीके साथ सम्भाषण नहीं करना चाहिये'—ऐसी निषेधाज्ञा घोषित कर दे। निषेध होनेपर भी यदि कोई सम्भाषण करता है तो वह एक सुवर्ण-मुद्राके दण्डका भागी होता है। किंतु यह दण्ड चारणों, स्त्रियों तथा अन्तःपुरमें प्रवेश कर नृत्य-गीतादिद्वारा अपनी जीविका चलानेवालेको नहीं देना चाहिये। ऐसे लोग यदि अन्तःपुरके लोगोंके साथ सम्भाषण करते हैं या वहाँ घूमते-फिरते हैं तो उन्हें तथा घरसे निकालकर बाहर घूमती हुई सभी दासियोंको नाममात्रका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति किसी कुमारी कन्याके साथ बलात्कार करता है, वह तुरंत ही मार डालने योग्य है। यदि कोई किसी कामुकी कुमारी कन्याके साथ व्यभिचार करता है तो उसे दो सौ पणका दण्ड देना चाहिये और वहाँ जो संरक्षणकर्ता पुरुष है, उसे भी यही दण्ड देना चाहिये॥ ११४—१२५॥

जो ऐसे व्यभिचारोंको सम्भव बनानेमें अवकाश देता है, उसे परायी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवालेके समान ही दण्ड देना चाहिये। जो मनुष्य दूसरेकी स्त्रीके साथ बलात्कार करता है, उसे प्राणदण्ड देना चाहिये और इसमें उस स्त्रीका कोई भी अपराध नहीं मानना चाहिये। जो कन्या पिताके घरपर तीसरी बार रजस्वला होकर स्वयं पतिका वरण कर लेती है, वह राजाद्वारा दण्डनीय नहीं होती। जो अपने देशमें कन्यादान देकर पुनः उसे लेकर परदेशमें भाग जाता है, उसे प्राणदण्ड देना चाहिये; क्योंकि वह स्त्री-चोर है। द्रव्यहीना, विधवा स्त्रीको ग्रहण करनेवाला अपराधी नहीं माना जाता, किंतु सम्पत्तिसहित विधवाको स्वीकार करनेवाला शीघ्र ही दण्डका भागी होता है। जो कन्या अपनी जाति अथवा योग्यतासे उत्कृष्ट व्यक्तिसे प्रेम करती है तो उसे उसी व्यक्तिको दे देना चाहिये, किंतु जो कन्या किसी कम योग्यतावालेसे प्रेम करती है, उसे विशेष संयमके साथ घरमें ही रखे। यदि नीच जातिवाला जघन्य पुरुष उत्तम जातिकी कन्याके साथ प्रेम करता है तो उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार यदि उत्तम जातिकी स्त्री किसी नीच जातिके पुरुषके साथ प्रेम करती है तो वह भी प्राण-दण्डके योग्य है।

भर्तारं लङ्घयेद् या स्त्री ज्ञातिभिर्बलदर्पिता।
तां च निष्कासयेद् राजा संस्थाने बहुसंस्थिते॥ १३२

हृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपजीविनीम्।
वासयेत् स्वैरिणीं नित्यं सवर्णेनाभिदूषिताम्॥ १३३

ज्यायसा दूषिता नारी मुण्डनं समवाप्नुयात्।
वासश्च मलिनं नित्यं शिखां सम्प्राप्नुयाद् दश॥ १३४

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः क्षत्रविट्शूद्रयोषितः।
व्रजन् दाप्यो भवेद् राज्ञा दण्डमुत्तमसाहसम्॥ १३५

वैश्यागमे च विप्रस्य क्षत्रियस्यान्त्यजागमे।
मध्यमं प्रथमं वैश्यो दण्ड्यः शूद्रागमाद् भवेत्॥ १३६

शूद्रः सवर्णागमने शतं दण्ड्यो महीक्षिता।
वैश्यस्तु द्विगुणं राजन् क्षत्रस्तु त्रिगुणं तथा॥ १३७

ब्राह्मणश्च भवेद् दण्ड्यस्तथा राजंश्चतुर्गुणम्।
अगुप्तासु भवेद् दण्डः सुगुप्तास्वधिको भवेत्॥ १३८

जो स्त्री अपने जाति-भाइयोंके बलसे गर्वीली होकर अपने पतिको छोड़ देती है, उसे घरसे निकालकर अनेक व्यक्तियोंसे युक्त संस्थानमें रख दे। राजा सवर्ण पुरुषद्वारा दूषित कुलटा स्त्रीको सभी अधिकारोंसे वञ्चित कर मलिन बना दे और भोजनमात्रका प्रबन्ध कर घरमें पड़ा रहने दे। उत्तम कुल एवं जातिमें उत्पन्न हुई स्त्री यदि दूषित हुई हो तो उसकी दस चोटियाँ रखकर शेष बाल कटवा दे और नित्य मैला वस्त्र पहननेको दे। यदि ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य क्रमशः क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रकी स्त्रीके साथ दुराचार करते हैं तो वे राजाद्वारा उत्तमसाहस नामक दण्डके भागी होते हैं। यदि ब्राह्मण वैश्य-स्त्रीके साथ और क्षत्रिय अन्त्यज-स्त्रीके साथ पापाचरण करते हैं तो उन्हें मध्यमसाहसका दण्ड देना चाहिये और यदि वैश्य शूद्रा स्त्रीके साथ व्यभिचार करता है तो उसे भी पूर्वोक्त रीतिके अनुसार उत्तमसाहसका दण्ड मिलना चाहिये। राजन्! यदि शूद्र अपनी जातिकी स्त्रीके साथ समागम करता है तो उसे राजाद्वारा सौ मुद्राओंका दण्ड मिलना चाहिये। इसी प्रकार सवर्णा स्त्रीके साथ पापाचरण करनेसे वैश्यको दो सौ, क्षत्रियको तीन सौ तथा ब्राह्मणको चार सौ मुद्राओंका दण्ड देनेका विधान है। ये दण्ड अरक्षित स्त्रीके साथ पापाचरण करनेपर बताये गये हैं, किंतु सुरक्षित स्त्रियोंके साथ दुराचार करनेपर इससे अधिक दण्ड देना चाहिये॥ १२६—१३८॥

माता पितृष्वसा श्वश्रूर्मातुलानी पितृव्यजा।
पितृव्यसखिशिष्यस्त्री भगिनी तत्सखी तथा।
भ्रातृभार्यागमे पूर्वाद् दण्डस्तु द्विगुणो भवेत्॥ १३९
भागिनेयी तथा चैव राजपत्नी तथैव च।
तथा प्रव्रजिता नारी वर्णोत्कृष्टा तथैव च॥ १४०
इत्यगम्याश्च निर्दिष्टास्तासां तु गमने नरः।
शिश्नस्योत्कर्तनं कृत्वा ततस्तु वधमर्हति॥ १४१
चण्डालीं च श्वपाकीं च गच्छन् वधमवाप्नुयात्॥ १४२
तिर्यग्योनिं च गोवर्ज्यं मैथुनं यो निषेवते।
वपनं प्राप्नुयाद् दण्डं तस्याश्च यवसोदकम्॥ १४३

माता, फूफी, सास, मामी, चचेरी बहन, चाचीकी सखी, शिष्यकी स्त्री, बहिन, उसकी सखी तथा भाईकी स्त्री—इन सबके साथ समागम करनेपर पूर्वकथित दण्डसे दुगुना दण्ड देना चाहिये। भानजेकी स्त्री, राजाकी पत्नी, संन्यासिनी तथा उच्चवर्णकी स्त्री—ये सभी अगम्या मानी गयी हैं। इन सबके साथ समागम करनेवाले व्यक्तिके लिंगको कटवाकर तत्पश्चात् उसे प्राण-दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार चाण्डालकी स्त्री तथा कुत्तेको खानेवालोंकी स्त्रीके साथ व्यभिचार करनेवालेको प्राण-दण्ड देना चाहिये। गौको छोड़कर अन्य तिर्यग् योनियोंमें सम्भोग करनेवाले व्यक्तिको मुण्डनका दण्ड देकर उस पशुके लिये घास तथा जल देनेका दण्ड देना चाहिये।

सुवर्णं च भवेद् दण्ड्यो गां व्रजन् मनुजोत्तम।
वेश्यागामी द्विजो दण्ड्यो वेश्याशुल्कसमं पणम्॥ १४४

गृहीत्वा वेतनं वेश्या लोभादन्यत्र गच्छति।
वेतनं द्विगुणं दद्याद् दण्डं च द्विगुणं तथा॥ १४५

अन्यमुद्दिश्य यो वेश्यां नयेदन्यस्य कारणात्।
तस्य दण्डो भवेद् राजन् सुवर्णस्य च माषकम्॥ १४६

नीत्वा भोगान्न यो दद्याद् दाप्यो द्विगुणवेतनम्।
राज्ञश्च द्विगुणं दण्डं तथा धर्मो न हीयते॥ १४७

बहूनां व्रजतामेकां सर्वे ते द्विगुणं दमम्।
दद्युः पृथक् पृथक् सर्वे दण्डं च द्विगुणं परम्॥ १४८

न माता न पिता न स्त्री न ऋत्विग् याज्यमानवाः।
अन्योन्यं पतितास्त्याज्या योगे दण्ड्याः शतानि षट्॥ १४९

पतिता गुरवस्त्याज्या न तु माता कथंचन।
गर्भधारणपोषाभ्यां तेन माता गरीयसी॥ १५०

अधीयानोऽप्यनध्याये दण्ड्यः कार्षापणत्रयम्।
अध्यापकश्च द्विगुणं तथाऽऽचारस्य लङ्घने॥ १५१

अनुक्तस्य भवेद् दण्डः सुवर्णस्य च कृष्णलम्।
भार्या पुत्रश्च दासश्च शिष्यो भ्राता च सोदरः॥ १५२

कृतापराधास्ताड्याः स्यू रज्ज्वा वेणुदलेन वा।
पृष्ठतस्तु शरीरस्य नोत्तमाङ्गं कथंचन॥ १५३

अतोऽन्यथा प्रहरतः प्राप्तं स्याच्चोरकिल्बिषम्।
दूतीं समाह्वयंश्चैव यो निषिद्धं समाचरेत्॥ १५४

प्रच्छन्नं वा प्रकाशं वा स दण्ड्यः पार्थिवेच्छया।
वासांसि फलकैः श्लक्ष्णैर्निर्णिज्याद् रजकः शनैः॥ १५५

अतोऽन्यथा हि कुर्वंस्तु दण्ड्यःस्याद् रुक्मभाषकम्।
रक्षास्वधिकृतैश्चैव प्रदेयं यैर्विलुप्यते॥ १५६

मानवश्रेष्ठ! गौके साथ भोग करनेवाले व्यक्तिको सुवर्णका दण्ड लगाना चाहिये। वेश्याके साथ समागम करनेवाले ब्राह्मणको वेश्याको दिये गये शुल्कके बराबर अर्थ-दण्ड देना चाहिये। वेश्या यदि वेतन स्वीकार करनेके उपरान्त लोभवश अन्यत्र चली जाती है तो उसे दुगुना दण्ड देनेके उपरान्त लिये हुए शुल्कका दूना अर्थ-दण्ड भी देना चाहिये। राजन्! यदि कोई वेश्याको दूसरेके बहानेसे किसी दूसरेके पास लिवा जाता है तो उसे एक मासा सुवर्णका दण्ड देना चाहिये। जो वेश्याको लानेके बाद उसके साथ सम्भोगादि नहीं करता, उसे दूना दण्ड देकर उस वेश्याको दूना शुल्क दिलाना चाहिये। ऐसा करनेसे राजाका धर्म क्षीण नहीं होता। यदि अनेक व्यक्ति एक वेश्याके साथ समागम करनेको उपस्थित हों तो राजा उनको दूना दण्ड दे और वे सब पृथक्-पृथक् उस वेश्याको दूना द्रव्य दण्डरूपमें अधिक दें। माता, पिता, स्त्री, पुरोहित और यजमान—ये पतित होनेपर भी नहीं छोड़े जाते, पर यदि कोई मनुष्य इनमेंसे किसीको छोड़ता है तो वह छः सौ सुवर्ण-मुद्राओंका दण्डभागी होता है। पतित होनेपर गुरुजन भी त्याज्य हो सकते हैं, किंतु माता नहीं छोड़ी जा सकती। गर्भकालमें धारण-पोषण करनेके कारण माताका गौरव गुरुजनोंसे भी अधिक है॥ १३९—१५०॥

अनध्यायके दिन भी अध्ययन करनेवाले ब्राह्मणको तीन कार्षापणका दण्ड देना चाहिये और अध्यापकको दुगुना दण्ड देनेका विधान है। इसी प्रकार उन्हें अपने-अपने आचारोंका उल्लङ्घन करनेपर भी दण्ड देना चाहिये। जिन-जिन अपराधोंमें केवल दण्डकी चर्चा की गयी है और कोई परिमाण नहीं निश्चित किया गया है, वहाँ सुवर्णका एक कृष्णल दण्डरूपमें समझना चाहिये। स्त्री, पुत्र, सेवक, शिष्य तथा सगा भाई—ये यदि अपराध करते हैं तो इन्हें रस्सीसे बाँधकर बाँसकी छड़ीसे शरीरके पिछले भागपर दण्ड देना चाहिये; किंतु सिरपर किसी प्रकार भी चोट न लगने दे। इन कहे गये स्थानोंके अतिरिक्त अन्य स्थानोंपर प्रहार करनेवालेको चोरी करनेके समान पाप लगता है। जो दूतीको बुलाकर प्रकटरूपमें या गुप्तरूपमें निषिद्धाचरण करता है, उसके लिये राजा स्वेच्छानुसार दण्डकी व्यवस्था करे। धोबीको चाहिये कि वह कोमल काठके पीठकोंपर वस्त्रको धीरे-धीरे साफ करे। यदि वह ऐसा नहीं करता है तो उसे एक मासे सुवर्णका दण्ड देना चाहिये। राजाकी ओरसे रक्षा आदि स्थानोंपर नियुक्त किये गये लोग यदि देय भागको हड़प

कर्षकेभ्योऽर्थमादाय यः कुर्यात् करमन्यथा।
तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्॥ १५७

ये नियुक्ताः स्वकार्येषु हन्युः कार्याणि कार्यिणाम्।
निर्घृणाः क्रूरमनसः सर्वे कर्मापराधिनः॥ १५८

धनोष्मणा पच्यमानास्तान् निःस्वान् कारयेन्नृपः।
कूटशासनकर्तुंश्च प्रकृतीनां च दूषकान्॥ १५९

स्त्रीबालब्राह्मणघ्नांश्च वध्यात् तत्सेविनस्तथा।
अमात्यः प्राड् विवाको वा यः कुर्यात् कार्यमन्यथा॥ १६०

तस्य सर्वस्वमादाय तं राजा विप्रवासयेत्।
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च तस्करो गुरुतल्पगः॥ १६१

एतान् सर्वान् पृथग्विधस्यान्महापातकिनो नरान्।
महापातकिनो वध्या ब्राह्मणं तु विवासयेत्॥ १६२

कृतचिह्नं स्वदेशाच्च शृणु चिह्नाकृतिं ततः।
गुरुतल्पे भगः कार्यः सुरापाने सुराध्वजः॥ १६३

स्तेने तु श्वपदं तद्वद् ब्रह्महन्यशिराः पुमान्।
असम्भाष्या ह्यसम्भोज्या असंवाह्या विशेषतः॥ १६४

त्यक्तव्याश्च तथा राजज्ञातिसम्बन्धिबान्धवैः।
महापातकिनो वित्तमादाय नृपतिः स्वयम्॥ १६५

अप्सु प्रवेशयेद् दण्डं वरुणायोपपादयेत्।
सहोढं न विना चोरं घातयेद् धार्मिको नृपः॥ १६६

सहोढं सोपकरणं घातयेदविचारयन्।
ग्रामेष्वपि च ये केचिच्चोराणां भक्ष्यदायकाः॥ १६७

भाण्डावकाशदाश्चैव सर्वांस्तानपि घातयेत्।
राष्ट्रेषु राज्ञाधिकृताः सामन्ताश्चैव दूषकाः॥ १६८

अभ्याघातेषु मध्यस्थाः क्षिप्रं शास्यास्तु चोरवत्।
ग्रामघाते मठाभङ्गे पथि मोषाभिमर्दने॥ १६९

शक्तितो नाभिधावन्तो निर्वास्याः सपरिच्छदाः।
राज्ञः कोशापहर्तृंश्च प्रतिकूलेषु संस्थितान्॥ १७०

लेते हैं या किसानोंसे कर लेकर उसे दूसरे कार्योंमें लगा देते हैं तो राजा उनका सर्वस्व छीनकर उन्हें निर्वासनका दण्ड दे। जो लोग अपने पदपर नियुक्त होकर अन्य कर्मचारियोंके कार्योंको हानि पहुँचाते हैं, वे सभी निर्दय, क्रूरात्मा, कर्मके अपराधी और धनकी गर्मीसे उन्मत्त हो जाते हैं, राजाको चाहिये कि उन्हें निर्धन बना दे। यदि राजाके सेवकगण कूटनीतिसे शासन करनेवाले, प्रजावर्गको राजाके विरुद्ध भड़कानेवाले, स्त्री, बालक और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले हों तो राजा उन्हें प्राण-दण्ड दे। चाहे अमात्य हो या प्रधान न्यायकर्ता, यदि वह अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता तो राजा उसका सर्वस्व छीनकर उसे अपने देशसे बाहर निकाल दे। ब्रह्महत्यारा, मद्यपायी, चोर तथा गुरु-स्त्रीगामी—इन महापातकी पुरुषोंको राजा पृथक्-पृथक् प्राण-दण्डकी व्यवस्था करे। ऐसे महापापियोंको राजा प्राण-दण्ड दे, किंतु ब्राह्मणको चिह्नित करके अपने देशसे निकाल दे। उक्त चिह्नका आकार बताता हूँ, सुनिये। यदि ब्राह्मण गुरुपत्नीके साथ समागम करता है तो उसके शरीरमें भगका आकार, मदिरापायी हो तो सुराध्वजका चिह्न, चोरीके अपराधमें कुत्तेके पैरोंका चिह्न तथा ब्रह्मघातीके शरीरमें बिना सिरके पुरुषका चिह्न बनाना चाहिये। राजन्! ऐसे घोर पापियोंके साथ उनकी जातिवाले, सम्बन्धी तथा भाई-बन्धुओंको विशेषतया सम्भाषण, सहभोज तथा विवाहादि-सम्बन्ध त्याग देना चाहिये॥ १५१—१६४½॥

राजा महापापी पुरुषोंकी सम्पत्तिको अपने अधीन कर ले और उसमेंसे दण्डभागको वरुणके उद्देश्यसे जलमें छोड़ दे। धार्मिक राजाको सपत्नीक चोरको प्राण-दण्ड नहीं देना चाहिये, किंतु चुरायी हुई वस्तुके साथ ही यदि सपत्नीक चोर पकड़ा जाता है तो उसे भी राजा बिना किसी विचारके प्राण-दण्ड दे। ग्रामोंमें भी जो कोई चोरोंको भोजन, पात्र तथा रहनेका आश्रय देनेवाले हों तो इन सभीको प्राण-दण्ड देना चाहिये। राष्ट्रमें राजाके अधिकारी तथा अधीनस्थ सामन्तगण यदि दुष्ट हो गये हों या बुरे अवसरपर तटस्थ रहते हों तो वे भी चोरोंके समान दण्डके भागी होते हैं। ग्राममें किसी विनाशके उपस्थित होनेपर, किसी घर आदिके गिरनेके अवसरपर या मार्गमें किसी रमणीपर अत्याचार किये जानेपर राजाके जो अधिकारी या सामन्त अपनी शक्तिके अनुसार उसकी रक्षाके लिये नहीं दौड़ते, वे परिवार तथा साधनसहित निर्वासित कर देने योग्य हैं। राजाके कोशको अपहृत करनेवालों,

अरीणामुपकर्तृंश्च घातयेद् विविधैर्वधैः।
संधिं कृत्वा तु ये चौर्यं रात्रौ कुर्वन्ति तस्कराः॥ १७१

तेषां छित्त्वा नृपो हस्तौ तीक्ष्णशूले निवेशयेत्।
तडागभेदकं हन्यादप्सु शुद्धवधेन तु॥ १७२

यस्तु पूर्वं निविष्टं स्यात् तडागस्योदकं हरेत्।
आगमं चाप्यपां भिन्द्यात् स दाप्यः पूर्वसाहसम्॥ १७३

कोष्ठागारायुधागारदेवागारविभेदकान्।
पापान् पापसमाचारान् पातयेच्छीघ्रमेव च॥ १७४

शत्रु-पक्षसे मिले रहनेवालों तथा शत्रुओंका उपकार करनेवालोंको विविध वधोपायोंद्वारा मरवा डालना चाहिये। जो चोर रातमें सेंध लगाकर चोरी करते हैं, राजाको उनके हाथोंको काटकर तीखे शूलपर बैठा देना चाहिये। तड़ागका भेदन करनेवालेको राजा जलमें डुबोकर मृत्युदण्ड दे। जो व्यक्ति तालाबमें भरे हुए जलकी चोरी करता है या उसमें जलके आनेके मार्गोंको रोक देता है, उसे पूर्ववत् साहस-दण्ड देना चाहिये। कोष्ठागार, आयुधागार तथा देवागारोंको तोड़नेवाले पापाचारियों एवं पापयुक्त किंवदन्तीसे लिप्त पुरुषोंको राजा शीघ्र ही प्राण-दण्ड दे॥१६५—१७४॥

समुत्सृजेद् राजमार्गे यस्त्वमेध्यमनापदि।
स हि कार्षापणं दण्ड्यस्तत्त्वमेध्यं च शोधयेत्॥ १७५

आपद्गतोऽथवा वृद्धो गर्भिणी बाल एव च।
परिभाषणमर्हन्ति न च शोध्यमिति स्थितिः॥ १७६

प्रथमं साहसं दण्ड्यो यश्च मिथ्या चिकित्सते।
परुषे मध्यमं दण्डमुत्तमं च तथोत्तमे॥ १७७

छत्रस्य ध्वजयष्टीनां प्रतिमानां च भेदकाः।
प्रतिकुर्युस्ततः सर्वे पञ्च दण्ड्याः शतानि च॥ १७८

अदूषितानां द्रव्याणां दूषणे भेदने तथा।
मणीनामपि भेदेन दण्ड्यः प्रथमसाहसम्॥ १७९

समं च विषमं चैव कुरुते मूल्यतोऽपि वा।
समाप्नुयात् स वै पूर्वं दमं मध्यममेव च॥ १८०

बन्धनानि च सर्वाणि राजमार्गे निवेशयेत्।
कर्षन्तो यत्र दृश्यन्ते विकृताः पापकारिणः॥ १८१

प्राकारस्य च भेत्तारं परिखाणां च भेदकम्।
द्वाराणां चैव भेत्तारं क्षिप्रं निर्वासयेत् पुरात्॥ १८२

मूलकर्माभिचारेषु कर्तव्यो द्विशतो दमः।
अबीजविक्रयी यश्च बीजोत्कर्षक एव च॥ १८३

मर्यादाभेदकश्चापि विकृतं वधमाप्नुयात्।
सर्वसंकरपापिष्ठं हेमकारं नराधिप॥ १८४

जो किसी आपत्तिके न होनेपर भी सड़कपर मल आदि अपवित्र वस्तुओंको फेंकता है, उसे एक कार्षापणका दण्ड देना चाहिये और उसीसे उस गंदी वस्तुको हटवाना चाहिये। यदि आपत्तिग्रस्त, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री अथवा बालक ऐसा अपराध करते हैं तो उन्हें कहकर मना कर दे, उनसे सफाई न कराये, ऐसी मर्यादा है। जो वैद्य झूठी दवा करता है या वैद्य न होकर भी दवा देता है, उसे प्रथम साहसका दण्ड देना चाहिये। जिसकी दवा निकृष्ट है, उसे मध्यम साहसका दण्ड तथा जिसकी दवा अत्यन्त अवगुणकारी है, उसे उत्तमसाहसका दण्ड देना चाहिये। छत्र, ध्वजाके दण्डों तथा प्रतिमाओंको तोड़नेवालेको पाँच सौ मुद्राका दण्ड देना चाहिये और उन्हींसे इन सबका प्रतिशोध भी कराना चाहिये। अदूषित वस्तुओंको दूषित करने या तोड़नेवालेको तथा मणि आदि मूल्यवान् वस्तुओंको नष्ट करनेवालेको प्रथमसाहसका दण्ड देना चाहिये। किसी वस्तुके मूल्यमें जो कमी या वृद्धि करता है, उसे क्रमशः पूर्व और मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये। राजाको अपराधियोंके सभी प्रकारके दण्डोंकी व्यवस्था मुख्य सड़कपर करनी चाहिये जिससे उस दण्डको भुगतनेवाले पापात्माको सभी लोग देख सकें। दुर्गकी चहारदीवारी, खाइयों तथा दरवाजोंको तोड़नेवालेको राजा तुरंत अपने पुरसे बाहर निकाल दे। वशीकरण, अभिचार आदि करनेवालेको राजा दो सौ पणका दण्ड दे। घटिया बीज बेचनेवाले, बोये हुए खेतको जोतनेवाले तथा खेतोंकी मेड़को तोड़नेवालेको विकृत मृत्युका दण्ड देना चाहिये। नराधिप! अच्छी धातुमें नकली धातु

अन्याये वर्तमानं च छेदयेल्लवशः क्षुरैः।
द्रव्यमादाय वणिजामनर्घेणावरुन्धताम्॥ १८५

द्रव्याणां दूषको यस्तु प्रतिच्छन्नस्य विक्रयी।
मध्यमं प्राप्नुयाद् दण्डं कूटकर्त्ता तथोत्तमम्॥ १८६

राजा पृथक् पृथक् कुर्याद् दण्डं चोत्तमसाहसम्।
शास्त्राणां यज्ञतपसां देशानां क्षेपको नरः॥ १८७

देवतानां सतीनां च उत्तमं दण्डमर्हति।
एकस्य दण्डपारुष्ये बहूनां द्विगुणो दमः॥ १८८

कलहो यद्गतो दाप्यो दण्डश्च द्विगुणस्ततः।
मध्यमं ब्राह्मणं राजा विषयाद् विप्रवासयेत्॥ १८९

लशुनं च पलाण्डुं न शूकरं ग्रामकुक्कुटम्।
तथा पञ्चनखं सर्वं भक्ष्यादन्यत्तु भक्षयेत्॥ १९०

विवासयेत् क्षिप्रमेव ब्राह्मणं विषयात् स्वकात्।
अभक्ष्यभक्षणे दण्ड्यः शूद्रो भवति कृष्णलम्॥ १९१

ब्राह्मणक्षत्रियविशां चतुस्त्रिद्विगुणं स्मृतम्।
यः साहसं कारयति स दण्ड्यो द्विगुणं दमम्॥ १९२

यस्त्वेवमुक्त्वाहं दाता कारयेत् य चतुर्गुणम्।
संदिष्टस्याप्रदाता च समुद्रगृहभेदकः॥ १९३

पञ्चाशत्पणिको दण्डस्तत्र कार्यो महीक्षिता।
अस्पृश्यं च स्पृशन्नार्यो ह्ययोग्यो योग्यकर्मकृत्॥ १९४

पुंस्त्वहर्ता पशूनां च दासीगर्भविनाशकृत्।
शूद्रप्रव्रजितानां च दैवे पित्र्ये च भोजकः॥ १९५

अव्रजन् बाढमुक्त्वा तु तथैव च निमन्त्रणे।
एते कार्षापणशतं सर्वे दण्ड्या महीक्षिता॥ १९६

दुःखोत्पादि गृहे द्रव्यं क्षिपन् दण्ड्यस्तु कृष्णलम्।
पितापुत्रविरोधे च साक्षिणां द्विशतो दमः।
स्यान्नरश्च तथार्यः स्यात् तस्याप्यष्टशतो दमः॥ १९७

मिलानेवाले पापात्मा एवं अन्यायी सोनारको छुरेसे खण्ड-खण्ड काट डालना चाहिये। जो बनियेसे वस्तु लेकर उसका दाम नहीं चुकाता, अच्छी वस्तुको बुरी बतलाता है और वस्तुको बाजारमें छिपाकर बेंचता है, उसे मध्यम साहसका दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार कूटनीतिका प्रयोग करनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देनेका विधान है। इन सभी अपराधियोंको राजा अलग-अलगसे उत्तम साहसका दण्ड दे। शास्त्र, यज्ञ, तपस्या, देश, देवता तथा सतीकी निन्दा करनेवाला पुरुष उत्तम साहसके दण्डका पात्र है। अनेक व्यक्ति किसी एक व्यक्तिके प्रति कठोर दण्डनीय अपराध करते हैं तो उन सबको दुगुना दण्ड देना चाहिये॥१७५—१८८॥

जिस व्यक्तिपर कलहका आरोप हो, उसे दूना दण्ड देना चाहिये। जो ब्राह्मण अपने आचार-विचारसे अधम हो गया हो, उसे राजा अपने देशसे निकाल दे। भक्ष्य पदार्थोंको छोड़कर जो लहसुन, प्याज, सूअर, ग्रामीण मुरगे, पाँच नखवाले जीवों तथा अन्य अभक्ष्य पदार्थोंको खाता है, उस ब्राह्मणको शीघ्र ही अपने राष्ट्रसे निकाल देना चाहिये। अभक्ष्य पदार्थोंको खानेसे शूद्रको एक कृष्णलका दण्ड देना चाहिये तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यको क्रमशः चौगुना, तिगुना तथा दुगुना दण्ड देनेका विधान है। जो अभक्ष्य-भक्षणके लिये उत्साहित करता है, उसे दूना दण्ड देना चाहिये। जो मनुष्य 'मैं देता हूँ' ऐसा कहकर अभक्ष्य वस्तुओंके भक्षणमें दूसरेको प्रवृत्त करता है, उसे भी चौगुना दण्ड मिलना चाहिये। संदेशको न देनेवाला तथा समुद्रमें बने हुए अड्डेको नष्ट करनेवाले व्यक्तियोंको राजा पचास मुद्राका दण्ड दे। जो श्रेष्ठ होकर अस्पृश्यका स्पर्श करता है, अयोग्य होकर योग्य कार्यमें हाथ लगाता है, पशुओंके पुंस्त्वका अपहरण करता है, दासीके गर्भको नष्ट करता है, शूद्र और संन्यासियोंके घर देव-कार्य और पितृकार्यमें भोजन करता है तथा निमन्त्रण स्वीकार करनेपर भोजन करने नहीं जाता—ये सभी राजाद्वारा सौ पण कार्षापण-दण्डके भागी हैं। अपने घरमें पीडोत्पादक वस्तु रखनेवालेको एक कृष्णलका दण्ड देना चाहिये। पिता और पुत्रके पारस्परिक विरोधमें साक्षी देनेवालोंको दो सौ पणका दण्ड लगाना चाहिये। यदि कोई माननीय व्यक्ति यह अपराध करता है तो उसपर एक सौ आठ पणका दण्ड लगाना चाहिये॥१८९—१९७॥

तुलाशासनमानानां कूटकृन्मानकस्य च।
एभिश्च व्यवहर्ता च स दण्ड्यो दममुत्तमम्॥ १९८

विषाग्निदां पतिगुरुनिजापत्यप्रमापणीम्।
विकर्णनासिकां व्योष्ठीं कृत्वा गोभिः प्रमापयेत्॥ १९९

ग्रामस्य दाहका ये च ये च क्षेत्रस्य वेश्मनः।
राजपत्न्यभिगामी च दग्धव्यास्ते कटाग्निना॥ २००

ऊनं वाप्यधिकं चापि लिखेद् यो राजशासनम्।
पारदारिकचौरं वा मुञ्चतो दण्ड उत्तमः॥ २०१

अभक्ष्येण द्विजं दूष्य दण्ड्य उत्तमसाहसम्।
क्षत्रियं मध्यमं वैश्यं प्रथमं शूद्रमर्धकम्॥ २०२

मृताङ्गलग्नविक्रेतुर्गुरुं ताडयतस्तथा।
राजयानासनारोढुर्दण्ड उत्तमसाहसः॥ २०३

यो मन्येताजितोऽस्मीति न्यायेनापि पराजितः।
तमायान्तं पुनर्जित्वा दण्डयेद् द्विगुणं दमम्॥ २०४

आह्वानकारी मध्यः स्यादनाह्वाने तथाह्वयन्।
दण्डिकस्य च यो हस्तादभियुक्तः पलायते॥ २०५

हीनः पुरुषकारेण तं दण्ड्याद् दाण्डिको धनम्।
प्रेष्यापराधात् प्रेष्यस्तु स दण्ड्यश्चार्धमेव च॥ २०६

दण्डार्थं नियमार्थं च नीयमानेषु बन्धनम्।
यदि कश्चित् पलायेत दण्डश्चाष्टगुणो भवेत्॥ २०७

अनिन्दिते विवादे तु नखरोमावतारणम्।
कारयेद् यः स पुरुषो मध्यमं दण्डमर्हति॥ २०८

बन्धनं चाप्यवध्यस्य बलान्मोचयते तु यः।
वध्यं विमोचयेद् यस्तु दण्ड्यो द्विगुणभाग् भवेत्॥ २०९

दुर्दृष्टव्यवहाराणां सभ्यानां द्विगुणो दमः।
राज्ञा त्रिंशद्गुणो दण्डः प्रक्षेप्य उदके भवेत्॥ २१०

तराजू, शासन, मानदण्ड और धर्मकाँटेके प्रति कूटनीतिका प्रयोग करनेवाले तथा ऐसे व्यक्तिके साथ व्यवहार करनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। विष देनेवाली, आग लगानेवाली, पति, गुरुजन एवं अपने बच्चोंकी हत्या करनेवाली स्त्रीको कान, ओठ और नाकसे रहित करके पशुओंद्वारा मरवा डालना चाहिये। जो गाँव, खेत और घरमें आग लगानेवाले तथा राजपत्नीके साथ व्यभिचार करनेवाले हैं, उन्हें घास-फूसकी अग्निमें जला देना चाहिये। जो (राजाका अधिकारी) राजाज्ञाको घटा-बढ़ाकर लिखता है तथा दूसरेकी स्त्रीके साथ अपराध करनेवाले एवं चोरको छोड़ देता है, उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति अभक्ष्य वस्तु खिलाकर ब्राह्मणको दूषित करता है, उसे उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। इसी प्रकार क्षत्रियको विधर्मी करनेवालेको मध्यम, वैश्यको प्रथम तथा शूद्रको अर्धसाहसका दण्ड देना चाहिये। मृतकके शरीरपर लगे हुए आभूषण तथा वस्त्रादिको बेंचनेवाले, गुरुको पीटनेवाले, राजाके वाहन और आसनपर बैठनेवालेको उत्तम साहसका दण्ड देना चाहिये। जो व्यक्ति न्यायद्वारा या युद्धमें पराजित होनेपर भी अपनेको 'मैं पराजित नहीं हूँ'—ऐसा मानता है, उसे आता हुआ देखकर राजाको चाहिये कि उसे पुनः जीतकर दुगुने पणका दण्ड दे। जो व्यक्ति अपराध होनेपर सूचनाद्वारा बुलानेसे नहीं आता है और जो विना बुलाये ही आकर सम्मुख उपस्थित होता है तथा जो अपराधी दण्ड देनेवालेके हाथसे छुड़ाकर भाग जाता है—ऐसे हीन लोगोंको पौरुषपूर्वक दण्ड देनेवाला न्यायकर्ता आर्थिक दण्ड दे। जो व्यक्ति दूत होनेपर अपने कर्तव्यका पालन नहीं करता, उसे उपर्युक्त दण्डका आधा दण्ड देना चाहिये। दण्ड या नियमनके लिये बाँधकर ले जाते समय यदि कोई अपराधी भाग जाता है तो उसे आठगुना दण्ड देना चाहिये। जो पुरुष सामान्य वाद-विवादमें किसीके नख या बालको काट लेता है, वह मध्यम दण्डका भागी होता है॥ १९८—२०८॥

जो व्यक्ति बलपूर्वक अवध्य अपराधीके बन्धनोंको खोल देता है तथा जो मृत्यु-दण्डके अपराधीको छोड़ देता है, वह दुगुने दण्डका भागी होता है। राजाके जो सभासद उपस्थित विषयोंमें कुशलतासे मनोयोग नहीं देते, उन्हें दूना दण्ड देना चाहिये। राजा ऐसे अपराधियोंको तीसगुना अधिक दण्ड दे और जलमें फेंकवा दे।

अल्पदण्डेऽधिकं कुर्याद् विपुले चाल्पमेव च।
ऊनाधिकं तु तं दण्डं सभ्यो दद्यात् स्वकाद् गृहात्॥ २११
यावानवध्यस्य वधे तावान् वध्यस्य रक्षणे।
अधर्मो नृपतेर्दृष्ट एतयोरुभयोरपि॥ २१२
ब्राह्मणं नैव हन्यात्तु सर्वपापेष्ववस्थितम्।
प्रवासयेत् स्वकाद् राष्ट्रात् समग्रधनसंयुतम्॥ २१३
न जातु ब्राह्मणं वध्यात् पातकं त्वधिकं भवेत्।
यस्मात् तस्मात् प्रयत्नेन ब्रह्महत्यां विवर्जयेत्॥ २१४
अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्।
अयशो महदाप्नोति नरकं चाधिगच्छति॥ २१५
ज्ञात्वापराधं पुरुषस्य राजा
कालं तथा चानुमतं द्विजानाम्।
दण्ड्येषु दण्डं परिकल्पयेत्तु
यो यस्य युक्तः स समीक्ष्य कुर्यात्॥ २१६

थोड़ेसे अपराधमें अधिक दण्ड देनेवाले तथा भीषण अपराधमें अल्प दण्ड देनेवाले न्यायकर्ताको जितना कम या अधिक दण्ड हो, उसे अपने घरसे पूर्ण करना या अपराधीको लौटाना चाहिये। अवध्य अपराधीका वध करनेमें जितना पाप लगता है उतना ही पाप वध्यको छोड़ देनेमें लगता है। राजाको इन दोनों दशाओंमें समानरूपसे पापभागी होना पड़ता है। सभी प्रकारके पापोंमें अपराधी पाये गये ब्राह्मणको मृत्युदण्ड नहीं देना चाहिये, उसे सम्पूर्ण सम्पत्तिके साथ अपने राष्ट्रसे निर्वासित कर देना चाहिये। कभी भूलकर भी ब्राह्मणका वध नहीं करना चाहिये; क्योंकि इससे अधिक पाप होता है। इसलिये राजाको ब्रह्महत्यासे बचना चाहिये। अदण्डनीय पुरुषोंको दण्ड देने तथा दण्डनीयको दण्ड न देनेसे राजा महान् अयशका भागी बनता है और मरनेपर नरकगामी होता है। इसलिये राजा मनुष्यके अपराधको भलीभाँति जानकर तथा यथासमय ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर दण्डनीयोंके प्रति दण्डकी कल्पना करे और जो जिस प्रकारके दण्डका पात्र हो, उसकी भलीभाँति समीक्षा कर उसे उसी प्रकारका समुचित दण्ड दे॥ २०९—२१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजधर्मे दण्डप्रणयनं नाम सप्तविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके राजधर्म-कीर्तन-प्रसङ्गमें दण्डनीति नामक दो सौ सत्ताईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२७॥

दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय

अद्भुत शान्तिका* वर्णन

मनुरुवाच

दिव्यान्तरिक्षभौमेषु या शान्तिरभिधीयते।
तामहं श्रोतुमिच्छामि महोत्पातेषु केशव॥ १

मनुने पूछा—केशव! दिव्य, अन्तरिक्ष और पृथ्वीसम्बन्धी बड़े-बड़े अद्भुत उपद्रवोंके होनेपर जिस शान्तिका विधान किया जाता है, उसे मैं श्रवण करना चाहता हूँ॥ १॥

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि त्रिविधामद्भुतादिषु।
विशेषेण तु भौमेषु शान्तिः कार्या तथा भवेत्॥ २
अभया चान्तरिक्षेषु सौम्या दिव्येषु पार्थिव।
विजिगीषुः परं राजन् भूतिकामस्तु यो भवेत्॥ ३

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! अब मैं उत्पातोंके समय की जानेवाली तीनों प्रकारकी शान्तियाँ बतला रहा हूँ। उनमें विशेषरूपसे पृथ्वी-सम्बन्धी महोत्पातोंके अवसरपर शान्ति करनी चाहिये। राजन्! अन्तरिक्ष-सम्बन्धी उत्पातोंके लिये अभया तथा दिव्य उत्पातोंके लिये सौम्या शान्ति करनी चाहिये। राजन्! जो विजयाभिलाषी तथा ऐश्वर्यकामी

* इन अद्भुतोंका वर्णन तथा इनकी शान्तियोंका विस्तृत विधान पञ्चम आथर्वण शान्तिकल्प एवं अथर्वपरिशिष्टादिमें है।

विजिगीषुः परानेवमभियुक्तस्तथा परैः।
तथाभिचारशङ्कायां शत्रूणामभिनाशने॥ ४
भये महति सम्प्राप्ते अभया शान्तिरिष्यते।
राजयक्ष्माभिभूतस्य क्षतक्षीणस्य चाप्यथ॥ ५
सौम्या प्रशस्यते शान्तिर्यज्ञकामस्य चाप्यथ।
भूकम्पे च समुत्पन्ने प्राप्ते चान्नक्षये तथा॥ ६
अतिवृष्ट्यामनावृष्ट्यां शलभानां भयेषु च।
प्रमत्तेषु च चौरेषु वैष्णवी शान्तिरिष्यते॥ ७
पशूनां मारणे प्राप्ते नराणामपि दारुणे।
भूतेषु दृश्यमानेषु रौद्री शान्तिस्तथेष्यते॥ ८
वेदनाशे समुत्पन्ने जने जाते च नास्तिके।
अपूज्यपूजने जाते ब्राह्मी शान्तिस्तथेष्यते॥ ९
भविष्यत्यभिषेके च परचक्रभयेऽपि च।
स्वराष्ट्रभेदेऽरिवधे रौद्री शान्तिः प्रशस्यते॥ १०

हो, उस शत्रुओंपर विजय पानेके इच्छुक, शत्रुओंद्वारा आक्रान्त, आभिचारिक कर्मोंकी शङ्कासे युक्त, शत्रुओंको विनष्ट करनेके लिये उद्यत राजाके लिये महान् भय उपस्थित होनेपर अभया शान्ति कही गयी है। राजयक्ष्मा रोगसे ग्रस्त, घावसे दुर्बल तथा यज्ञकी कामनावालेके लिये सौम्या शान्तिकी प्रशंसा की गयी है। भूकम्प आनेपर, अकाल पड़नेपर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि एवं टिड्डियोंसे भय होनेपर, पागल और चोरसे भय उपस्थित होनेपर राजाको वैष्णवी शान्ति करानी चाहिये। पशुओं और मनुष्योंका भीषण संहार उपस्थित होनेपर तथा भूत-पिशाचादिके दिखायी देनेपर रौद्री शान्ति करानी चाहिये। वेदोंका विनाश उपस्थित होनेपर, लोगोंके नास्तिक हो जानेपर तथा अपूज्य लोगोंकी पूजा होनेपर, ब्राह्मी शान्ति करानी चाहिये। भावी अभिषेक, शत्रुसेनासे उत्पन्न भय, अपने राष्ट्रमें भेद तथा शत्रु-वधका अवसर प्राप्त होनेपर रौद्री शान्तिकी प्रशंसा की गयी है॥ २—१०॥

त्र्यहातिरिक्ते पवने भक्ष्ये सर्वविगर्हिते।
वैकृते वातजे व्याधौ वायवी शान्तिरिष्यते॥ ११
अनावृष्टिभये जाते प्राप्ते विकृतिवर्षणे।
जलाशयविकारेषु वारुणी शान्तिरिष्यते॥ १२
अभिशापभये प्राप्ते भार्गवी च तथैव च।
जाते प्रसववैकृत्ये प्राजापत्या महाभुज॥ १३
उपस्कराणां वैकृत्ये त्वाष्ट्री पार्थिवनन्दन।
बालानां शान्तिकामस्य कौमारी च तथा नृप॥ १४
कुर्याच्छान्तिमथाग्नेयीं सम्प्राप्ते वह्निवैकृते।
आज्ञाभङ्गे तु संजाते तथा भृत्यादिसंक्षये॥ १५
अश्वानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते।
अश्वानां कामयानस्य गान्धर्वी शान्तिरिष्यते॥ १६
गजानां शान्तिकामस्य तद्विकारे समुत्थिते।
गजानां कामयानस्य शान्तिराङ्गिरसी भवेत्॥ १७
पिशाचादिभये जाते शान्तिर्वै नैर्ऋती स्मृता।
अपमृत्युभये जाते दुःस्वप्ने च तथा स्थिते॥ १८

तीन दिनोंसे अधिक प्रबल वायुके चलनेपर, सभी भक्ष्य पदार्थोंके विकृत हो जानेपर तथा वातज व्याधिके बिगड़ जानेपर वायवी शान्ति करानी चाहिये। सूखा पड़ जानेका भय हो, वृष्टिसे अधिक हानि हो तथा जलाशयोंमें कोई विकार उत्पन्न हो गया हो तो ऐसे अवसरपर वारुणी शान्ति करानी चाहिये। महाबाहो! अभिशापका भय उपस्थित होनेपर, भार्गवी तथा स्त्रीके प्रसवमें विकार उत्पन्न होनेपर प्राजापत्या नामकी शान्ति करानी चाहिये। पार्थिवनन्दन! गृह-सामग्रियोंमें विकार उत्पन्न होनेपर त्वाष्ट्री (विश्वकर्मासम्बन्धी) शान्ति करानी चाहिये। राजन्! बालकोंकी बाधा दूर करनेके लिये कौमारी शान्ति होनी चाहिये। अग्नि-विकार उपस्थित होनेपर, आज्ञा-भङ्ग होनेपर तथा सेवकादिके विनाश होनेपर आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये। अश्वोंकी शान्ति-कामनासे उनमें रोग उत्पन्न होनेपर तथा अधिक संख्याकी अभिलाषासे गान्धर्वी शान्ति करानी चाहिये। हाथियोंकी शान्ति-कामनासे, उनमें रोग उपस्थित होनेपर तथा उनकी रक्षाकी भावनासे आङ्गिरसी शान्ति करानी चाहिये। पिशाचादिका तथा अकालमृत्युका भय उपस्थित होनेपर और दुःस्वप्न देखनेपर नैर्ऋती शान्ति कही गयी है।

याम्यां तु कारयेच्छान्तिं प्राप्ते तु नरके तथा।
धननाशे समुत्पन्ने कौबेरी शान्तिरिष्यते॥ १९
वृक्षाणां च तथार्थानां वैकृते समुपस्थिते।
भूतिकामस्तथा शान्तिं पार्थिवीं प्रतियोजयेत्॥ २०

मृत्युका भय होनेपर याम्या शान्ति कराये तथा धनका नाश उत्पन्न होनेपर कौबेरी शान्ति करानी चाहिये। ऐश्वर्यकामी मनुष्यको वृक्षों तथा सम्पत्तियोंका विनाश उपस्थित होनेपर पार्थिवी शान्तिका प्रयोग करना चाहिये॥ ११—२०॥

प्रथमे दिनयामे च रात्रौ वा मनुजोत्तम।
हस्ते स्वातौ च चित्रायामादित्ये चाश्विने तथा॥ २१
अर्यम्णि सौम्यजातेषु वायव्यां त्वद्भुतेषु च।
द्वितीये दिनयामे तु रात्रौ च रविनन्दन॥ २२
पुष्याग्नेयविशाखासु पित्र्यासु भरणीषु च।
उत्पातेषु तथा भाग आग्नेयीं तेषु कारयेत्॥ २३
तृतीये दिनयामे च रात्रौ च रविनन्दन।
रोहिण्यां वैष्णवे ब्राह्मे वासवे वैश्वदेवते॥ २४
ज्येष्ठायां च तथा मैत्रे ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित्।
ऐन्द्री तेषु प्रयोक्तव्या शान्ती रविकुलोद्वह॥ २५
चतुर्थे दिनयामे च रात्रौ वा रविनन्दन।
सार्पे पौष्णे तथार्द्रायामहिर्बुध्न्ये च दारुणे॥ २६
मूले वरुणदैवत्ये ये भवन्त्यद्भुतास्तथा।
वारुणी तेषु कर्तव्या महाशान्तिर्महीक्षिता॥ २७
मित्रमण्डलवेलासु ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित्।
तत्र शान्तिद्वयं कार्यं निमित्तेषु च नान्यथा।
निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तेनोपयुज्यते॥ २८
बाणप्रहारा न भवन्ति यद्वद्
राजन् नृणां सन्नहनैर्युतानाम्।
दैवोपघाता न भवन्ति तद्वद्
धर्मात्मनां शान्तिपरायणानाम्॥ २९

मानवश्रेष्ठ! दिनके या रात्रिके पहले पहरमें सूर्यके हस्त, स्वाती, चित्रा, पुनर्वसु या अश्विनी नक्षत्रमें जानेपर वायव्यकोणमें यदि अद्भुत उपद्रव दिखायी पड़े तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये। रविनन्दन! दिनके अथवा रात्रिके दूसरे पहरमें सूर्यके पुष्य, भरणी, कृत्तिका, मघा और विशाखा नक्षत्रमें जानेपर आग्नेयकोण या दक्षिण दिशामें यदि कोई उत्पात दिखायी दे तो आग्नेयी शान्ति करानी चाहिये। रविनन्दन! दिनके या रात्रिके तीसरे पहरमें रोहिणी, श्रवण, धनिष्ठा, उत्तराषाढ़, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रमें सूर्यके जानेपर यदि ईशान, पूर्व या अग्निकोणमें कोई उत्पात दिखायी दे तो ऐन्द्री शान्ति करानी चाहिये। रविनन्दन! दिन या रात्रिके चौथे पहरमें आश्लेषा, रेवती, आर्द्रा, उत्तराभाद्र, शतभिषा या मूल नक्षत्रमें सूर्यके जानेपर पश्चिम दिशामें उत्पात दिखायी देनेपर राजाको वारुणी शान्ति करानी चाहिये। यदि मध्याह्नके समय कहींपर अद्भुत उत्पात होते हैं तो उस समय दोनों प्रकारकी शान्ति करानी चाहिये। इन उपर्युक्त कारणोंके उपस्थित होनेपर ही शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा नहीं। बिना किसी कारणके की गयी शान्ति निष्फल हो जाती है। राजन्! जिस प्रकार कवचसे सुरक्षित शरीरवाले मनुष्योंको बाणोंका प्रहार किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचाता, उसी प्रकार धर्मात्मा एवं शान्तिपरायण मनुष्योंको दैव-प्रहार किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचा सकते॥ २१—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिर्नामाष्टाविंशत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अद्भुतशान्ति नामक दो सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२८॥

दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय

उत्पातोंके भेद तथा कतिपय ऋतुस्वभावजन्य शुभदायक अद्भुतोंका वर्णन

मनुरुवाच

अद्भुतानां फलं देव शमनं च तथा वद।
त्वं हि वेत्सि विशालाक्ष ज्ञेयं सर्वमशेषतः॥ १

मत्स्य उवाच

अत्र ते वर्णयिष्यामि यदुवाच महातपाः।
अत्रये वृद्धगर्गस्तु सर्वधर्मभृतां वरः॥ २
सरस्वत्याः सुखासीनं गर्गं स्रोतसि पार्थिव।
पप्रच्छासौ महातेजा अत्रिर्मुनिजनप्रियम्॥ ३

अत्रिरुवाच

नश्यतां पूर्वरूपाणि जनानां कथयस्व मे।
नगराणां तथा राज्ञां त्वं हि सर्वं वदस्व माम्॥ ४

गर्ग उवाच

पुरुषापचारान्नियतमपरज्यन्ति देवताः।
ततोऽपरागाद् देवानामुपसर्गः प्रवर्तते॥ ५
दिव्यान्तरिक्षभौमं च त्रिविधं सम्प्रकीर्तितम्।
ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरिक्षं निबोध मे॥ ६
उल्कापातो दिशां दाहः परिवेषस्तथैव च।
गन्धर्वनगरं चैव वृष्टिश्च विकृता तु या॥ ७
एवमादीनि लोकेऽस्मिन्नान्तरिक्षं विनिर्दिशेत्।
चरस्थिरभवो भौमो भूकम्पश्चापि भूमिजः॥ ८
जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्तितम्।
भौमे त्वल्पफलं ज्ञेयं चिरेण च विपच्यते॥ ९
अभ्रजं मध्यफलदं मध्यकालफलप्रदम्।
अद्भुते तु समुत्पन्ने यदि वृष्टिः शिवा भवेत्॥ १०
सप्ताहाभ्यन्तरे ज्ञेयमद्भुतं निष्फलं भवेत्।
अद्भुतस्य विपाकश्च विना शान्त्या न दृश्यते॥ ११

मनुने पूछा—विशाल नेत्रोंवाले देव! अब मुझे इन अद्भुतोंका फल तथा उनकी शान्तिका उपाय बतलाइये; क्योंकि आप सभी ज्ञेय विषयोंके पूर्ण ज्ञाता हैं॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! इस विषयमें सभी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ महातपस्वी वृद्ध गर्गने अत्रिसे जो कुछ कहा था, वह सब मैं तुम्हें बतला रहा हूँ। एक समय मुनिजनोंके प्रिय महर्षि गर्गाचार्य सरस्वती नदीके तटपर सुखपूर्वक बैठे हुए थे, उसी समय महातेजस्वी अत्रिने उनसे प्रश्न किया॥ २-३॥

अत्रि ऋषिने पूछा—महर्षे! आप मुझे विनाशोन्मुख मनुष्यों, राजाओं तथा नगरोंके सभी पूर्वलक्षण बतलाइये॥ ४॥

गर्गजी बोले—अत्रिजी! मनुष्योंके अत्याचारसे निश्चय ही देवता प्रतिकूल हो जाते हैं। तत्पश्चात् उन देवताओंके अप्रसन्न होनेसे उत्पात प्रारम्भ होता है। वह उत्पात दिव्य, आन्तरिक्ष और भौम—तीन प्रकारका कहा गया है। ग्रहों और नक्षत्रोंके विकारको दिव्य उत्पात जानना चाहिये। अब मुझसे आन्तरिक्ष उत्पातका वर्णन सुनिये। उल्कापात, दिशाओंका दाह, मण्डलोंका उदय, आकाशमें गन्धर्व-नगरका दिखायी देना, खण्डवृष्टि, अनावृष्टि या अतिवृष्टि—इस प्रकारके उत्पातोंको इस लोकमें आन्तरिक्ष उत्पात कहना चाहिये। स्थावर-जंगमसे उत्पन्न हुआ उत्पात तथा भूमिजन्य भूकम्प भौम उत्पात हैं। जलाशयोंका विकार भी भौम उत्पात कहलाता है। भौम उत्पात होनेपर उसका थोड़ा फल जानना चाहिये, किंतु वह बहुत देरमें शान्त होता है। आन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देनेवाला होता है और मध्यमकालमें परिणामदायी होता है। इस महोत्पातके उदय होनेपर यदि कल्याणकारिणी वृष्टि होती है तो यह समझ लेना चाहिये कि एक सप्ताहके भीतर यह उत्पात निष्फल हो जायगा, किंतु इस महान् उत्पातका अवसान शान्तिके बिना नहीं होता।

त्रिभिर्वर्षैस्तथा ज्ञेयं सुमहद्भयकारकम्।
राज्ञः शरीरे लोके च पुरद्वारे पुरोहिते॥ १२

पाकमायाति पुत्रेषु तथा वै कोशवाहने।
ऋतुस्वभावाद् राजेन्द्र भवन्त्यद्भुतसंज्ञिताः॥ १३

शुभावहास्ते विज्ञेयास्तांश्च मे गदतः शृणु।
वज्राशनिमहीकम्पसंध्यानिर्घातनिःस्वनाः॥ १४

परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः।
द्रुमोद्भेदकरस्नेहो बहुशः सफलद्रुमः॥ १५

गोपक्षिमधुवृद्धिश्च शुभानि मधुमाधवे।
ऋक्षोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम्॥ १६

कृष्णश्वेतं तथा पीतं धूसरध्वान्तलोहितम्।
रक्तपुष्पारुणं सांध्यं नभः क्षुब्धार्णवोपमम्॥ १७

सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत्।
शक्रायुधपरीवेषं विद्युदुल्काधिरोहणम्॥ १८

कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं ह्रसनं दारणं क्षितेः।
नद्युदपानसरसां विधूनतरणप्लवाः॥ १९

शृङ्गिणां च वराहाणां वर्षासु शुभमिष्यते।
शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम्॥ २०

रक्षोभूतपिशाचानां दर्शनं वागमानुषी।
दिशो धूमान्धकाराश्च सनभोवनपर्वताः॥ २१

उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः।
दिव्यस्त्रीरूपगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम्॥ २२

ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं वागमानुषी।
गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु॥ २३

सस्यवृद्धी रसोत्पत्तिः शरत्काले शुभाः स्मृताः।
हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम्॥ २४

कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्।
चित्रगर्भोद्भवः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु।
पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः॥ २५

इसे तीन वर्षोंतक महान् भयदायक मानना चाहिये। इसका परिणाम राजाके शरीर, राज्य, पुरद्वार, पुरोहित, पुत्र, कोश और वाहनोंपर प्रकट होता है। राजेन्द्र! जो अद्भुतसंज्ञक उत्पात ऋतुओंके स्वभावके अनुकूल होते हैं, उन्हें शुभदायक मानना चाहिये। मैं उनका वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये॥ ५—१३½॥

वज्र एवं बिजलीका गिरना, पृथ्वीका कम्पन, संध्याके समय वज्रका शब्द, सूर्य तथा चन्द्रमामें मण्डलोंका होना, धूलि और धूएँका उद्भव, उदय एवं अस्तके समय सूर्यकी अतिलालिमा, वृक्षोंके टूट जानेपर उनसे रसका गिरना, फलवाले वृक्षोंकी अधिकता, गौ, पक्षी और मधुकी वृद्धि—ये चैत्र और वैशाखमासमें शुभप्रद हैं। ग्रीष्म ऋतुमें कलुषित नक्षत्रों और ग्रहोंका पतन, सूर्य और चन्द्रके मण्डलोंका कपिल वर्ण होना, सायंकालीन नभके काले और सफेद मिश्रित, पीले, धूसरित, श्यामल, लाल, लाल पुष्पके समान अरुण और क्षुब्ध सागरकी तरह संक्षुब्ध होना तथा नदियोंका जल सूख जाना—इन उत्पातोंको देखकर इन्हें शुभ कहना चाहिये। इन्द्रधनुषका मण्डलाकार उदय, विद्युत् और उल्काका पतन, पृथ्वीका अकस्मात् कम्पन, उलट-पलट विकृति, ह्रास और फटना, नदियों एवं तालाबोंमें जलकी न्यूनता, नाव, जहाज और पुलका काँपना, सींगवाले जानवरों तथा शूकरोंकी वृद्धि—ये उत्पात वर्षा ऋतुमें मङ्गलकारी हैं। शीतल वायु, तुषार, पशु एवं पक्षियोंका चीत्कार, राक्षस, भूत और पिशाचोंका दर्शन, दैवी वाणी, सूर्यके उदय-अस्तके समय आकाश, वन और पर्वतोंसहित दिशाओंका गाढ़रूपमें धुएँसे अन्धकारित हो जाना—ये उत्पात हेमन्त-ऋतुमें उत्तम माने जाते हैं। दिव्य स्त्रीका रूप, गन्धर्व-विमान, ग्रह, नक्षत्र और ताराओंका दर्शन, दैवी वाणी, वनोंमें और पर्वतोंकी चोटियोंपर गाने-बजानेका शब्द सुनायी पड़ना, अन्नोंकी वृद्धि, रसकी विशेष उत्पत्ति—ये उत्पात शरत्कालमें माङ्गलिक कहे गये हैं। हिमपात, वातका बहना, विरूप एवं अद्भुत उत्पातोंका दर्शन, आकाशका काले कज्जलके समान दिखायी पड़ना तथा ताराओं एवं उल्काओंके गिरनेसे पीले रंगका दीख पड़ना, स्त्री, गाय, बकरी, घोड़ी, मृगी और पक्षियोंसे विचित्र प्रकारके बच्चोंका पैदा होना, पत्तों, अङ्कुरों और लताओंमें अनेकों प्रकारके

ऋतुस्वभावेन विनाद्भुतस्य
जातस्य दृष्टस्य तु शीघ्रमेव।
यथागमं शान्तिरनन्तरं तु
कार्या यथोक्ता वसुधाधिपेन॥ २६

विकारोंका हो जाना—ये उत्पात शिशिर-ऋतुमें शुभदायी माने गये हैं। इन ऋतु-स्वभावके अतिरिक्त अन्य उत्पन्न हुए अद्भुत उत्पातके देखे जानेके बाद राजाको शीघ्र ही शास्त्रानुकूल कही गयी शान्तिका विधान करना चाहिये॥ १४—२६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तिकोत्पत्तिर्नामैकोनत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २२९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अद्भुत उत्पातोंकी शान्ति नामक दो सौ उन्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २२९॥

दो सौ तीसवाँ अध्याय

अद्भुत उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति वेपन्ते प्रज्वलन्ति च।
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं तथा वसाम्॥ १
आरटन्ति रुदन्त्येताः प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च।
उत्तिष्ठन्ति निषीदन्ति प्रधावन्ति धमन्ति च॥ २
भुञ्जते विक्षिपन्ते वा कोशप्रहरणध्वजान्।
अवाङ्मुखा वा तिष्ठन्ति स्थानात् स्थानं भ्रमन्ति च॥ ३
एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः सहसोत्थिताः।
लिङ्गायतनविप्रेषु तत्र वासं न रोचयेत्॥ ४
राज्ञो वा व्यसनं तत्र स च देशो विनश्यति।
देवयात्रासु चोत्पातान् दृष्ट्वा देशभयं वदेत्॥ ५

गर्गजी बोले—जब देव-मूर्तियाँ नाचने लगती हैं, काँपती हैं, जल उठती हैं, अग्नि, धूआँ, तेल, रक्त और चर्बी उगलने लगती हैं, जोर-जोरसे चिल्लाती हैं, रोती हैं, पसीना बहाने लगती हैं, हँसती हैं, उठती हैं, बैठती हैं, दौड़ने लगती हैं, मुँह बजाने लगती हैं, खाती हैं, कोश, अस्त्र और ध्वजाओंको फेंकने लगती हैं, नीचे मुख किये बैठी रहती हैं अथवा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर भ्रमण करने लगती हैं—इस प्रकारके सहसा उत्पन्न हुए उत्पात यदि शिव-लिङ्ग, देवमन्दिर तथा ब्राह्मणोंके पुरमें दिखायी पड़ें तो उस स्थानपर निवास नहीं करना चाहिये। ऐसे उत्पातोंके होनेपर या तो राजापर कोई बड़ी आपत्ति आती है अथवा उस देशका विनाश होता है। देवताके दर्शनके लिये जाते समय यदि उपर्युक्त उत्पात दिखायी पड़ें तो उस देशको भय बतलाना चाहिये॥ १—५॥

पितामहस्य हर्म्येषु तत्र वासं न रोचयेत्।
पशूनां रुद्रजं ज्ञेयं नृपाणां लोकपालजम्॥ ६
ज्ञेयं सेनापतीनां तु यत् स्यात् स्कन्दविशाखजम्।
लोकानां विष्णुवस्विन्द्रविश्वकर्मसमुद्भवम्॥ ७
विनायकोद्भवं ज्ञेयं गणानां ये तु नायकाः।
देवप्रेष्यान् नृपप्रेष्या देवस्त्रीभिर्नृपस्त्रियः॥ ८
वासुदेवोद्भवं ज्ञेयं ग्रहाणामेव नान्यथा।
देवतानां विकारेषु श्रुतिवेत्ता पुरोहितः॥ ९

गृहसम्बन्धी उत्पातोंको ब्रह्मासे सम्बद्ध जानना चाहिये, अतः वहाँ निवास न करे। पशुओंके उत्पातोंको रुद्रसे उत्पन्न और राजाओंके उत्पातोंको लोकपालसे उत्पन्न जानना चाहिये। सेनापतियोंके उत्पातोंको स्कन्द तथा विशाखसे उत्पन्न तथा लोकोंके उत्पातोंको विष्णु, वसु, इन्द्र और विश्वकर्मासे उद्भूत समझना चाहिये। जो गणोंके नायक हैं, उनपर घटित होनेवाला उत्पात विनायकसे उद्भूत जानना चाहिये। देवदूतोंकी अप्रसन्नतासे राजदूतोंपर तथा देवाङ्गनाओंके द्वारा राजपत्नियोंपर उत्पात घटित होते हैं। ग्रहोंके उपद्रवको भगवान् वासुदेवसे उत्पन्न हुआ समझना चाहिये। महाभाग! देवताओंमें

देवतार्चां तु गत्वा वै स्नानमाच्छाद्य भूषयेत्।
पूजयेच्च महाभाग गन्धमाल्यान्नसम्पदा॥ १०
मधुपर्केण विधिवदुपतिष्ठेदनन्तरम्।
तल्लिङ्गेन च मन्त्रेण स्थालीपाकं यथाविधि।
पुरोधा जुहुयाद् वह्नौ सप्तरात्रमतन्द्रितः॥ ११
विप्राश्च पूज्या मधुरान्नपानैः
सदक्षिणं सप्तदिनं नरेन्द्र।
प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि क्षितिगोप्रदानैः
सकाञ्चनैः शान्तिमुपैति पापम्॥ १२

उपर्युक्त विकारोंके उत्पन्न होनेपर वेदज्ञ पुरोहित देवमूर्तिके पास जाकर उसे स्नान कराये, वस्त्रादिसे अलंकृत करे तथा चन्दन, पुष्पमाला और भक्ष्यपदार्थसे उसकी पूजा करे। तदनन्तर विधिपूर्वक मधुपर्क निवेदित करे। फिर वह पुरोहित ब्राह्मण सावधानीपूर्वक उक्त प्रतिमाके मन्त्रसे स्थालीपाकद्वारा सात दिनोंतक विधिपूर्वक अग्निमें आहुति डाले। नरेन्द्र! उक्त सातों दिनोंतक मधुर अन्न-पानादि सामग्रियोंद्वारा तथा उत्तम दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। आठवें दिन पृथ्वी, सुवर्ण तथा गौका दान करनेसे पाप शान्त हो जाता है॥ ६—१२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावर्चाधिकारो नाम त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुत-शान्तिके प्रसङ्गमें पूजाधिकार नामक दो सौ तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३०॥

दो सौ एकतीसवाँ अध्याय

अग्निसम्बन्धी उत्पातके लक्षण तथा उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

अनग्निर्दीप्यते यत्र राष्ट्रे यस्य निरिन्धनः।
न दीप्यते चेन्धनवांस्तद्राष्ट्रं पीड्यते नृपैः॥ १

प्रज्वलेदप्सु मांसं वा तदर्धं वापि किंचन।
प्राकारं तोरणं द्वारं नृपवेश्म सुरालयम्॥ २

एतानि यत्र दीप्यन्ते तत्र राज्ञो भयं भवेत्।
विद्युता वा प्रदह्यन्ते तदापि नृपतेर्भयम्॥ ३

अनैशानि तमांसि स्युर्विना पांसुरजांसि च।
धूमश्चानग्निजो यत्र तत्र विन्द्यान्महाभयम्॥ ४

तडित् त्वनभ्रे गगने भयं स्यादृक्षवर्जिते।
दिवा सतारे गगने तथैव भयमादिशेत्॥ ५

गर्गजीने कहा—जिस देशमें ईंधनके बिना ही अग्नि जल उठती है और ईंधन लगानेपर भी अग्नि प्रज्वलित नहीं होती, वह देश राजाओंसे पीड़ित होता है। जहाँ जलमें मांस जलने लगता है या उसका कोई भाग जल जाता है, किलेकी चहारदीवारी, प्रवेशद्वार, तोरण, राजभवन और देवालय—ये अकस्मात् जल उठते हैं वहाँ राजाको भय प्राप्त होता है। यदि ये उपर्युक्त वस्तुएँ बिजली गिरनेसे जल जाती हैं तब भी राजाको भय प्राप्त होता है। जहाँ रात्रि तथा धूलि एवं रजःकणोंके बिना ही अन्धकार छा जाय और अग्निके बिना धुआँ दिखायी पड़े, वहाँ महाभयकी प्राप्ति जाननी चाहिये। बादल और नक्षत्रोंसे रहित आकाशमें बिजली कौंधने लगे तो भय प्राप्त होता है। इसी प्रकार दिनमें गगनमण्डल तारायुक्त हो जाय तो भी उसी प्रकारका भय कहना चाहिये॥ १—५॥

ग्रहनक्षत्रवैकृत्ये ताराविषमदर्शने।
पुरवाहनयानेषु चतुष्पान्मृगपक्षिषु॥ ६
आयुधेषु च दीप्तेषु धूमायत्सु तथैव च।
निगमत्सु च कोशाच्च संग्रामस्तुमुलो भवेत्॥ ७
विनाग्निं विष्फुलिङ्गाश्च दृश्यन्ते यत्र कुत्रचित्।
स्वभावाच्चापि पूर्यन्ते धनूंषि विकृतानि च॥ ८
विकारश्चायुधानां स्यात् तत्र संग्राममादिशेत्।
त्रिरात्रोपोषितश्चात्र पुरोधाः सुसमाहितः॥ ९
समिद्भिः क्षीरवृक्षाणां सर्षपैश्च घृतेन च।
होमं कुर्यादग्निमन्त्रैर्ब्राह्मणांश्चैव भोजयेत्॥ १०
दद्यात् सुवर्णं च तथा द्विजेभ्यो
गाश्चैव वस्त्राणि तथा भुवं च।
एवं कृते पापमुपैति नाशं
यदग्निवैकृत्यभवं द्विजेन्द्र॥ ११

ग्रहों और नक्षत्रोंमें विकारका हो जाना, ताराओंमें विषमताका दिखायी पड़ना, ग्राम, वाहन, रथ, चौपाये, मृग, पक्षी तथा शस्त्रास्त्रोंका अपने-आप प्रज्वलित हो उठना अथवा धूमिल हो जाना और कोशसे अस्त्रादिका निकलना तुमुल संग्रामका सूचक है। जहाँ-कहीं भी अग्निके बिना चिनगारियाँ दिखायी पड़ने लगें, स्वाभाविक ढंगसे ही धनुषकी डोरियाँ चढ़ जायँ या विकृत हो जायँ तथा शस्त्रास्त्रोंमें विकार उत्पन्न हो जाय तो वहाँ संग्राम बतलाना चाहिये। ऐसी दशामें वहाँका पुरोहित तीन रात्रितक उपवासकर अत्यन्त समाहित-चित्तसे दूधवाले वृक्षोंकी लकड़ियों, सरसों तथा घीसे अग्नि-मन्त्रोंद्वारा हवन करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजन कराये तथा उन्हें सुवर्ण, गौएँ, वस्त्र और पृथ्वीका दान दे। द्विजेन्द्र! ऐसा करनेसे अग्नि-विकार-सम्बन्धी पाप नष्ट हो जाता है॥ ६—११॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावग्निवैकृत्यं नामैकत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुत-शान्तिके प्रसंगमें अग्निविकार नामक दो सौ एकतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३१॥

दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय

वृक्षजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

पुरेषु येषु दृश्यन्ते पादपा देवचोदिताः।
रुदन्तो वा हसन्तो वा स्रवन्तो वा रसान् बहून्॥ १
अरोगा वा विना वातं शाखां मुञ्चन्त्यथ द्रुमाः।
फलं पुष्पं तथाकाले दर्शयन्ति त्रिहायनाः॥ २
पूर्ववत् स्वं दर्शयन्ति फलं पुष्पं तथान्तरे।
क्षीरं स्नेहं तथा रक्तं मधु तोयं स्रवन्ति च॥ ३
शुष्यन्त्यरोगाः सहसा शुष्का रोहन्ति वा पुनः।
उत्तिष्ठन्तीह पतिताः पतन्ति च तथोत्थिताः॥ ४
तत्र वक्ष्यामि ते ब्रह्मन् विपाकं फलमेव च।

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जिन ग्रामोंमें दैव-प्रेरित वृक्ष अपने-आप रोते, हँसते, प्रचुर परिमाणमें रस बहाते हुए किसी रोग अथवा वायुके बिना डालियाँ गिराते हैं, तीन ही वर्षके वृक्ष असमयमें फलने-फूलने लगते हैं, अन्यत्र कोई-कोई वृक्ष ऋतुकालकी भाँति अपनेको फलों और पुष्पोंसे लदे हुए दिखलाते हैं तथा दुग्ध, तैल, रक्त, मधु और जल बहाते हैं, किसी रोगके बिना ही सहसा सूख जाते हैं अथवा सूखे हुए पुनः अङ्कुरित हो जाते हैं, गिरे हुए उठकर खड़े हो जाते हैं तथा खड़े हुए गिर पड़ते हैं, वहाँ होनेवाला परिणाम और फल मैं आपको बतला रहा हूँ, सुनिये॥ १—४½॥

रोदने व्याधिमभ्येति हसने देशविभ्रमम्॥ ५
शाखाप्रपतनं कुर्यात् संग्रामे योधपातनम्।
बालानां मरणं कुर्युरकाले पुष्पिता द्रुमाः॥ ६
स्वराष्ट्रभेदं कुरुते फलपुष्पमथान्तरे।
क्षयः सर्वत्र गोक्षीरे स्नेहे दुर्भिक्षलक्षणम्॥ ७
वाहनापचयं मद्ये रक्ते संग्राममादिशेत्।
मधुस्त्रावे भवेद् व्याधिर्जलस्त्रावे न वर्षति॥ ८
अरोगशोषणं ज्ञेयं ब्रह्मन् दुर्भिक्षलक्षणम्।
शुष्केषु सम्प्ररोहस्तु वीर्यमन्नं च हीयते॥ ९
उत्थाने पतितानां च भयं भेदकरं भवेत्।
स्थानात् स्थानं तु गमने देशभङ्गस्तथा भवेत्॥ १०
ज्वलत्स्वपि च वृक्षेषु रुदत्स्वपि धनक्षयम्।
एतत्पूजितवृक्षेषु सर्वं राज्ञो विपद्यते॥ ११
पुष्पे फले वा विकृते राज्ञो मृत्युं तथाऽऽदिशेत्।
अन्येषु चैव वृक्षेषु वृक्षोत्पातेष्वतन्द्रितः॥ १२
आच्छादयित्वा तं वृक्षं गन्धमाल्यैर्विभूषयेत्।
वृक्षोपरि तथा च्छत्रं कुर्यात् पापप्रशान्तये॥ १३
शिवमभ्यर्चयेद् देवं पशुं चास्मै निवेदयेत्।
रुद्रेभ्य इति वृक्षेषु हुत्वा रुद्रं जपेत् ततः॥ १४
मध्वाज्ययुक्तेन तु पायसेन
सम्पूज्य विप्रांश्च भुवं च दद्यात्।
गीतेन नृत्येन तथार्चयेत्तु
देवं हरं पापविनाशहेतोः॥ १५

ब्रह्मन्! वृक्षोंके रुदन करनेपर व्याधियाँ फैलती हैं, हँसनेपर देशमें संकटकी वृद्धि होती है, शाखाओंके गिरनेसे संग्राममें योद्धाओंका विनाश होता है, असमयमें फूले हुए वृक्ष बालकोंकी मृत्यु सूचित करते हैं, वृक्षसमूहोंमेंसे किसी-किसीके फलने-फूलनेपर अपने राष्ट्रमें भेद उत्पन्न होता है, गायके दूध गिरनेसे चारों ओर विनाश उपस्थित होता है, तेलका गिरना दुर्भिक्षका लक्षण है, मदिराके गिरनेसे वाहनोंका विनाश होता है, रक्त गिरनेपर संग्राम बतलाना चाहिये, मधु चूनेसे व्याधियाँ फैलती हैं, जल गिरनेसे वृष्टि नहीं होती। किसी रोगके बिना वृक्षोंका सूख जाना दुर्भिक्षका लक्षण जानना चाहिये। सूखे हुए वृक्षसे अंकुर फूटनेपर वीर्य (पराक्रम) और अन्नकी हानि होती है। गिरे हुए वृक्षोंके उठनेपर भेदकारी भय होता है तथा एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जानेसे देश-भङ्ग होता है, वृक्षोंके अकस्मात् जलने तथा रुदन करनेपर सम्पत्तिका विनाश होता है। ये उपद्रव यदि पूजित वृक्षोंमें होते हैं तो अवश्य ही राजापर विपत्तियाँ आती हैं। वृक्षोंके फलों तथा फूलोंमें विकार होनेपर राजाकी मृत्यु कहनी चाहिये। इसी प्रकार अन्यान्य वृक्षोंमें भी उपद्रवके लक्षणोंके दिखायी पड़नेपर उत्साही ब्राह्मण उस वृक्षको ऊपरसे ढककर चन्दन और पुष्पमालासे भूषित करे और पापकी शान्तिके लिये वृक्षके ऊपर छत्र लगाये। तदनन्तर शिवकी पूजा करे और पशुको 'रुद्रेभ्यः०' इस संकल्पसे निवेदित कर वृक्षोंके नीचे हवन करनेके पश्चात् शिवका जप करे। फिर मधु तथा घृतयुक्त खीरसे ब्राह्मणोंको संतुष्ट कर उन्हें पृथ्वीका दान दे और उस पापकी शान्तिके लिये गीत तथा नृत्यका आयोजन कराकर भगवान् शंकरकी अर्चना करे॥ ५—१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृक्षोत्पातप्रशमनं नाम द्वात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३२॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुत-शान्ति-प्रकरणमें वृक्षोत्पात-प्रशमन नामक
दो सौ बत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३२॥



दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय

वृष्टिजन्य उत्पातके लक्षण और उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादि भयं मतम्।
अनृतौ तु दिवानन्ता वृष्टिर्ज्ञेया भयानका॥ १
अनभ्रे वैकृता चैव विज्ञेया राजमृत्यवे।
शीतोष्णानां विपर्यासे नृपाणां रिपुजं भयम्॥ २
शोणितं वर्षते यत्र तत्र शस्त्रभयं भवेत्।
अङ्गारपांशुवर्षेषु नगरं तद् विनश्यति॥ ३
मज्जास्थिस्नेहमांसानां जनमारभयं भवेत्।
फलं पुष्पं तथा धान्यं परेणातिभयाय तु॥ ४
पांशुजन्तूपलानां च वर्षतो रोगजं भयम्।
छिद्रे वान्नप्रवर्षेण सस्यानां भीतिवर्धनम्॥ ५
विरजस्के रवौ व्यभ्रे यदा छाया न दृश्यते।
दृश्यते तु प्रतीपा वा तत्र देशभयं भवेत्॥ ६
निरभ्रे वाथ रात्रौ वा श्वेतं याम्योत्तरेण तु।
इन्द्रायुधं तथा दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च॥ ७
दिग्दाहपरिवेषौ च गन्धर्वनगरं तथा।
परचक्रभयं ब्रूयाद् देशोपद्रवमेव च॥ ८
सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां
यागस्तु कार्यो विधिवद् द्विजेन्द्र।
धनानि गौः काञ्चनदक्षिणा च
देया द्विजानामघनाशहेतोः॥ ९

गर्गजीने कहा—मुने! अतिवृष्टि और अनावृष्टि—ये दोनों दुर्भिक्षादिजन्य भयका कारण मानी गयी हैं। वर्षा-ऋतुके बिना दिनमें अनन्त वृष्टिका होना अत्यन्त भयानक है। बादलरहित आकाशमें विकृत हुई वृष्टिको राजाकी मृत्युका कारण जानना चाहिये। शीतकालमें गर्मी एवं ग्रीष्ममें सर्दी पड़नेसे राजाओंपर शत्रुपक्षसे भय होता है। जिस स्थानपर आकाशसे रक्तकी वर्षा होती है वहाँ शस्त्रभय प्राप्त होता है। अङ्गार और धूलिकी वृष्टि होनेपर वह नगर विनष्ट हो जाता है। मज्जा, हड्डी, तेल और मांसकी वृष्टि होनेपर प्रजावर्गमें मृत्युका भय उपस्थित होता है। आकाशसे फल, पुष्प तथा अन्नकी वृष्टि शत्रुपक्षसे अत्यन्त भयका द्योतन करती है। धूलि, जन्तु और उपलोंके गिरनेसे रोगजन्य भय प्राप्त होता है। रुक-रुककर अन्नकी वृष्टि होनेसे फसलके भयकी वृद्धि होती है। सूर्यके बादल एवं धूलिसे रहित रहनेपर जब परछाई नहीं दीखती अथवा विपरीत दिखायी पड़ती है, तब सारे देशको भय प्राप्त होता है। बादलरहित रात्रिमें दक्षिण अथवा उत्तर दिशामें श्वेत रंगका इन्द्रधनुष, उल्कापात, दिशाओंमें दाह, सूर्य तथा चन्द्रमामें मण्डल तथा गन्धर्वनगर दिखायी पड़े तो उस समय देशपर शत्रु-पक्षकी सेनाका आक्रमण और देशमें विविध उपद्रवोंके संघटित होनेकी सम्भावना कहनी चाहिये। द्विजेन्द्र! ऐसे अवसरपर सूर्य, चन्द्रमा, मेघ और वायुके उद्देश्यसे विधिपूर्वक यज्ञ करना चाहिये और इस पापके विनाशके लिये ब्राह्मणोंको धन, गौ तथा सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये॥ १—९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ वृष्टिवैकृतिप्रशमनं नाम त्रयस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रसंगमें वृष्टि-विकारशमन नामक दो सौ तैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३३॥

दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय

जलाशयजनित विकृतियाँ और उनकी शान्तिके उपाय

गर्ग उवाच

नगरादपसर्पन्ते समीपमुपयान्ति च।
नद्यो ह्रदप्रस्रवाणि विरसाश्च भवन्ति च॥ १
विवर्णं कलुषं तप्तं फेनवज्जन्तुसंकुलम्।
स्नेहं क्षीरं सुरां रक्तं वहन्ते वाकुलोदकाः॥ २
षण्मासाभ्यन्तरे तत्र परचक्रभयं भवेत्।
जलाशया नदन्ते वा प्रज्वलन्ति कथञ्चन॥ ३
विमुञ्चन्ति तथा ब्रह्मन् ज्वालाधूमरजांसि च।
अखाते वा जलोत्पत्तिः सुसत्त्वा वा जलाशयाः॥ ४
संगीतशब्दाः श्रूयन्ते जनमारभयं भवेत्।
दिव्यमम्भोमयं सर्पिर्मधुतैलावसेचनम्॥ ५
जप्तव्या वारुणा मन्त्रास्तैश्च होमो जले भवेत्॥ ६
मध्वाज्ययुक्तं परमान्नमत्र
देयं द्विजानां द्विजभोजनार्थम्।
गावश्च देयाः सितवस्त्रयुक्ता-
स्तथोदकुम्भाः सलिलाघशान्त्यै॥ ७

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जब नदियाँ, सरोवर या झरने नगरसे दूर हट जाते हैं या अत्यन्त समीप चले आते हैं, सूख जाते हैं, मलिन, कलुषित, संतप्त तथा फेनके समान जन्तुओंसे व्याप्त हो जाते हैं, तेल, दूध, मदिरा और रक्त बहाने लगते हैं अथवा उनका जल विक्षुब्ध हो उठता है, तब छः महीनेके भीतर उस देशपर शत्रुपक्षकी सेनासे भय प्राप्त होनेकी सम्भावना होती है। जब किसी प्रकारसे जलाशय शब्द करने लगते हैं या जलने लगते हैं तथा लपटें, धुआँ एवं धूलि फेंकने लगते हैं, बिना खोदे ही जल निकलने लगता है, जलाशय बड़े-बड़े जन्तुओंसे भर जाते हैं और उनमेंसे संगीतकी ध्वनियाँ सुनायी पड़ने लगती हैं, तब प्रजावर्गके मरणका भय उपस्थित होता है। ऐसे अवसरपर घी, मधु और तैलसे जलाशयोंका अभिषेक कर वरुणके मन्त्रोंका जप करना चाहिये और उन्हीं मन्त्रोंका उच्चारण कर जलमें हवन करना चाहिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंको भोजनार्थ मधु तथा घृत मिलाकर श्रेष्ठ अन्न देना चाहिये और जलके महापापकी शान्तिके लिये श्वेत वस्त्रोंसे युक्त गौएँ और जल रखनेके घड़े दान करने चाहिये॥ १—७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ सलिलाशयवैकृत्यं नाम चतुस्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अद्भुतशान्ति-प्रकरणमें जलाशय-विकार-शान्ति नामक दो सौ चौंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३४॥

दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय

प्रसवजनित विकारका वर्णन और उसकी शान्ति

गर्ग उवाच

अकालप्रसवा नार्यः कालातीतप्रजास्तथा।
विकृतप्रसवाश्चैव युग्मसम्प्रसवास्तथा॥ १
अमानुषा ह्यतुण्डाश्च संजातव्यसनास्तथा।
हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा स्त्रियः॥ २

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जब स्त्रियाँ बिना समय पूरा हुए अथवा पूरे समयके बहुत बाद प्रसव करती हैं, विकृत एवं जुड़वीं संतान पैदा करती हैं तथा मानवसे भिन्न, मुखहीन, जन्मते ही मर जानेवाले, अङ्गहीन और अधिक अङ्गवाले बच्चोंको जन्म देती हैं,

पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः।
विनाशं तस्य देशस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्॥ ३
विवासयेत् तान् नृपतिः स्वराष्ट्रात्
स्त्रियश्च पूज्याश्च ततो द्विजेन्द्राः।
किमिच्छकैर्ब्राह्मणतर्पणैश्च
लोके ततः शान्तिमुपैति पापम्॥ ४

उसी प्रकार वहाँकि पशु, पक्षी और रेंगनेवाले जन्तु भी बच्चे देने लगते हैं, तब उस देश और कुलका विनाश कहना चाहिये। ऐसे उपद्रवोंके घटित होनेपर राजा अपने राष्ट्रसे उन पैदा होनेवाली संतानों और स्त्रियोंको निर्वासित कर दे। तदनन्तर ब्राह्मणोंकी विधिवत् पूजा करे। इस प्रकार इच्छानुसार ब्राह्मणोंको संतुष्ट करनेसे लोकमें पाप शान्तिको प्राप्त होता है॥१—४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ प्रसववैकृत्यं नाम पञ्चत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्तिप्रसङ्गमें प्रसववैकृत्य नामक दो सौ पैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३५॥

दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय

उपस्कर-विकृतिके लक्षण और उनकी शान्ति

गर्ग उवाच

यान्ति यानान्ययुक्तानि युक्तान्यपि न यान्ति च।
चोद्यमानानि तत्र स्यान्महद्भयमुपस्थितम्॥ १
वाद्यमाना न वाद्यन्ते वाद्यन्ते चाप्यनाहताः।
अचलाश्च चलन्त्येव न चलन्ति चलानि च॥ २
आकाशे तूर्यनादाश्च गीतगन्धर्वनिःस्वनाः।
काष्ठदर्वीकुठारादि विकारं कुरुते यदि॥ ३
गावो लाङ्गूलसङ्गैश्च स्त्रियः स्त्री च विघातयेत्।
उपस्कारादिविकृतौ घोरं शस्त्रभयं भवेत्॥ ४
वायोस्तु पूजां द्विज सक्तुभिश्च
कृत्वा नियुक्तांश्च जपेच्च मन्त्रान्।
दद्यात् प्रभूतं परमान्नमत्र
सदक्षिणं तेन शमोऽस्य भूयात्॥ ५

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जिस देशमें रथादि घोड़ोंके बिना जोते ही चलने लगते हैं और घोड़ोंके जोतनेपर एवं उन्हें हाँकनेपर भी नहीं चलते, वहाँ महान् भय उपस्थित होनेवाला है। बिना बजाये ही बाजे बजने लगते हैं और बजानेपर नहीं बजते, अचल वस्तुएँ चलने लगती हैं और चल अचल हो जाती हैं, आकाशमें तुरुहीकी ध्वनि और गन्धर्वोंकी गीतोंका शब्द सुनायी पड़ने लगता है, काष्ठ, करछुल एवं फावड़े आदिमें विकार उत्पन्न हो जाते हैं, गौएँ पूँछसे एक-दूसरेको मारने लगती हैं, स्त्रियाँ एक-दूसरेकी हत्या करने लगती हैं और घरेलू वस्तुओंमें भी विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उस देशमें शस्त्रास्त्रोंसे घोर भय उत्पन्न होता है। ऐसे उत्पातोंके घटित होनेपर सत्तूसे वायुदेवकी पूजा करके उनके मन्त्रोंका जप करना चाहिये और प्रचुरपरिमाणमें दक्षिणासहित परमोत्तम अन्नका दान देना चाहिये। इसीसे उस उत्पातका शमन होता है॥१—५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुपस्करवैकृत्यं नाम षट्त्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३६॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रकरणमें उपस्करशान्ति नामक दो सौ छत्तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३६॥

दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय

पशु-पक्षीसम्बन्धी उत्पात और उनकी शान्ति

गर्ग उवाच

प्रविशन्ति यदा ग्राममारण्या मृगपक्षिणः।
अरण्यं यान्ति वा ग्राम्याः स्थलं यान्ति जलोद्भवाः॥ १

स्थलजाश्च जलं यान्ति घोरं वाशन्ति निर्भयाः।
राजद्वारे पुरद्वारे शिवाश्चाप्यशिवप्रदाः॥ २

दिवा रात्रिंचरा वापि रात्रावपि दिवाचराः।
ग्राम्यास्त्यजन्ति ग्रामं च शून्यतां तस्य निर्दिशेत्॥ ३

दीप्ता वाशन्ति संध्यासु मण्डलानि च कुर्वते।
वाशन्ति विस्वरं यत्र तदाप्येतत्फलं लभेत्॥ ४

प्रदोषे कुक्कुटो वाशेद्धेमन्ते वापि कोकिलः।
अर्कोदयेऽर्काभिमुखी शिवा रौति भयं वदेत्॥ ५

गृहं कपोतः प्रविशेत् क्रव्यादो मूर्ध्नि लीयते।
मधु वा मक्षिकाः कुर्युर्मृत्युर्गृहपतेर्भवेत्॥ ६

प्राकारद्वारगेहेषु तोरणापणवीथिषु।
केतुच्छत्रायुधाद्येषु क्रव्यादं प्रपतेद् यदि॥ ७

जायन्ते वाथ वल्मीका मधु वा स्यन्दते यदि।
स देशो नाशमायाति राजा वा म्रियते तथा॥ ८

मूषकाञ् शलभान् दृष्ट्वा प्रभूतं क्षुद्भयं भवेत्।
काष्ठोल्मुकास्थिशृङ्गाढ्याः श्वानो मर्कटवेदनाः॥ ९

दुर्भिक्षं वेदना ज्ञेया काका धान्यमुखा यदि।
जनानभिभवन्तीह निर्भया रणवेदिनः॥ १०

काको मैथुनसक्तश्च श्वेतस्तु यदि दृश्यते।
राजा वा म्रियते तत्र स च देशो विनश्यति॥ ११

उलूको वाशते यत्र नृपद्वारे तथा गृहे।
ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च॥ १२

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! जब जंगली पशु-पक्षी ग्रामोंमें प्रवेश करने लगें या ग्रामीण पशु-पक्षी जंगलोंमें चले जायँ, जलमें रहनेवाले जीव-जन्तु भूमिपर रेंगने लगें या भूमिके जीव जलमें चले जायँ, अमङ्गलदायक शृगाल राजद्वार या नगरद्वारपर निर्भय होकर बोलना आरम्भ कर दें, दिनमें घूमनेवाले रात्रिमें और रात्रिमें घूमनेवाले दिनमें घूमने लगें तथा ग्राममें रहनेवाले जीव ग्रामको छोड़ दें, तब उस ग्रामकी शून्यताका निर्देश करना चाहिये। जब ग्रामोंमें पशु आदि जीवगण क्रोधोन्मत्त हो मण्डल बनाकर क्रूर स्वरमें चिल्लाने लगें, तब भी यही फल प्राप्त होता है। सायंकालमें मुर्गा बाँग देने लगे, हेमन्त-ऋतुमें कोकिल बोले और सूर्योदयके समय सूर्याभिमुखी हो शृगाली चिल्लाये तो भयका आगमन कहना चाहिये। घरमें कबूतर घुस आये, मस्तकपर मांसभक्षी पक्षी बैठ जाय और घरके भीतर मधुमक्खियाँ छत्ते लगायें तो उस घरके स्वामीकी मृत्यु होती है। यदि दुर्गादिके परकोटे, प्रवेशद्वार, राजभवन, तोरण (सिंहद्वार), बाजार, गली, पताका, ध्वज और अस्त्र-शस्त्रादिपर मांसभक्षी पक्षी बैठ जाय अथवा घरमें बिमवट हो जाय या छत्तेसे मधु चूने लगे तो उस देशका विनाश हो जाता है तथा राजाकी मृत्यु हो जाती है॥ १—८॥

चूहे और शलभ अधिक परिमाणमें दिखायी पड़ें तो दुर्भिक्ष पड़ता है। लकड़ीके लुआठे, हड्डियाँ, सींगवाले जानवर, कुत्ते और बन्दरोंकी अधिकता होनेपर देशमें व्याधियाँ फैलनेका भय रहता है। यदि कौए चोंचमें अन्न लेकर निर्भयतापूर्वक लोगोंपर टूट पड़ते हों तो दुर्भिक्ष और रण छिड़नेकी सम्भावना समझनी चाहिये। यदि श्वेत कौआ मैथुन करते हुए दिखलायी पड़ जाय तो उस देशका राजा मर जाता है अथवा वह देश विनष्ट हो जाता है। जहाँ राजाके द्वार तथा घरपर उल्लू बोलता हो, वहाँ उस घरके स्वामीकी मृत्यु तथा सम्पत्तिका विनाश जानना चाहिये।

मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमं सदक्षिणम्।
देवाः कपोता इति वा जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः॥ १३
गावश्च देया विधिवद् द्विजानां
सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः।
एवं कृते शान्तिमुपैति पापं
मृगैर्द्विजैर्वा विनिवेदितं यत्॥ १४

इस प्रकार पशु-पक्षीसम्बन्धी उत्पातोंके होनेपर दक्षिणासहित हवन करना चाहिये या पाँच ब्राह्मणोंको '**देवाः कपोता**'— इस मन्त्रका जप करना चाहिये। ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक सुवर्ण तथा दुपट्टेसहित दो वस्त्रोंसे युक्त गौओंका दान करना चाहिये। ऐसा करनेसे पशुओं एवं पक्षियोंद्वारा सूचित किया गया पाप शान्त हो जाता है॥ ९—१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तौ मृगपक्षिवैकृत्यं नाम सप्तत्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रसंगमें पशु-पक्षी-विकार-शान्ति नामक दो सौ सैंतीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३७॥

दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय

राजाकी मृत्यु तथा देशके विनाशसूचक लक्षण और उनकी शान्ति

गर्ग उवाच

प्रासादतोरणाट्टालद्वारप्राकारवेश्मनाम्।
निर्निमित्तं तु पतनं दृढानां राजमृत्यवे॥ १
रजसा वाथ धूमेन दिशो यत्र समाकुलाः।
आदित्यचन्द्रताराश्च विवर्णा भयवृद्धये॥ २
राक्षसा यत्र दृश्यन्ते ब्राह्मणाश्च विधर्मिणः।
ऋतवश्च विपर्यस्ता अपूज्यः पूज्यते जनैः॥ ३
नक्षत्राणि वियोगीनि तन्महद्भयलक्षणम्।
केतूदयोपरागो च छिद्रं वा शशिसूर्ययोः॥ ४
ग्रहर्क्षविकृतिर्यत्र तत्रापि भयमादिशेत्।
स्त्रियश्च कलहायन्ते बाला निघ्नन्ति बालकान्॥ ५
क्रियाणामुचितानां च विच्छित्तिर्यत्र जायते।
हूयमानस्तु यत्राग्निर्दीप्यते न च शान्तिषु॥ ६
पिपीलिकाश्च क्रव्यादा यान्ति चोत्तरतस्तथा।
पूर्णकुम्भाः स्रवन्ते च हविर्वा विप्रलुप्यते॥ ७
मङ्गल्याश्च गिरो यत्र न श्रूयन्ते समंततः।
क्षवथुर्बाधते वाथ प्रहसन्ति नदन्ति च॥ ८
न च देवेषु वर्तन्ते यथावद् ब्राह्मणेषु च।
मन्दघोषाणि वाद्यानि वाद्यन्ते विस्वराणि च॥ ९
गुरुमित्रद्विषो यत्र शत्रुपूजारता नराः।
ब्राह्मणान् सुहृदो मान्यान् जनो यत्रावमन्यते॥ १०

गर्गजीने कहा—ब्रह्मन्! सुदृढ़ राजभवन, तोरण, अट्टालिका, प्रवेशद्वार, परकोटा और घरका अकारण गिरना राजाकी मृत्युका कारण होता है। जहाँ दिशाएँ धूलि अथवा धूएँसे व्याप्त दिखायी पड़ती हैं तथा सूर्य, चन्द्रमा और ताराओंका रंग बदल जाता है तो यह भी भय-वृद्धिका सूचक है। जहाँ राक्षस दिखायी पड़ते हों, ब्राह्मण विधर्मी हों, ऋतुओंका विपर्यय हो, लोग अपूज्यकी पूजा करते हों और नक्षत्रगण आकाशसे नीचे गिरने लगें तो यह महान् भयका लक्षण है। जहाँ केतुका उदय, ग्रहण, चन्द्र-सूर्यके बिम्बमें छिद्र तथा ग्रह और नक्षत्रोंमें विकार दिखायी दे, वहाँ भी भयकी सम्भावना कहनी चाहिये। जहाँ स्त्रियाँ आपसमें झगड़ने लगें, बालक बच्चोंको मारने लगें, उचित कार्योंका विनाश होने लगे, शान्तिकर्मोंमें आहुति देनेपर भी अग्नि उद्दीप्त न हो, पिपीलिका और मांसभक्षी पक्षी उत्तर दिशा होकर जायँ, भरे हुए घटोंमें रखी हुई वस्तुओंका चूना, हविका नष्ट हो जाना, चारों ओरसे माङ्गलिक वाणियोंका न सुना जाना, लोगोंमें कास-रोगकी पीड़ा, जनतामें अकारण हँसी और गानेकी अभिरुचि, देवता और ब्राह्मणोंके प्रति उचित बर्तावका अभाव, बाजोंका मन्द एवं विकृत स्वरमें बजना, लोगोंमें गुरु एवं मित्रोंसे द्वेष तथा शत्रुकी पूजामें अभिरुचि, ब्राह्मण, मित्र और माननीय लोगोंका अपमान तथा

शान्तिमङ्गलहोमेषु नास्तिक्यं यत्र जायते।
राजा वा म्रियते तत्र स देशो वा विनश्यति॥ ११

शान्तिपाठ, माङ्गलिक कार्य और हवनादिमें नास्तिकताका प्रभाव दिखायी पड़े, वहाँका राजा मर जाता है अथवा वह देश विनष्ट हो जाता है॥ १—११॥

राज्ञो विनाशे सम्प्राप्ते निमित्तानि निबोध मे।
ब्राह्मणान् प्रथमं द्वेष्टि ब्राह्मणैश्च विरुध्यते॥ १२
ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
न च स्मरति कृत्येषु याचितश्च प्रकुप्यति॥ १३
रमते निन्दया तेषां प्रशंसां नाभिनन्दति।
अपूर्वं तु करं लोभात् तथा पातयते जने॥ १४
एतेष्वभ्यर्चयेच्छक्रं सपत्नीकं द्विजोत्तम।
भोज्यानि चैव कार्याणि सुराणां बलयस्तथा।
सन्तो विप्राश्च पूज्याः स्युस्तेभ्यो दानं च दीयताम्॥ १५
गावश्च देया द्विजपुंगवेभ्यो
भुवस्तथा काञ्चनमम्बराणि।
होमश्च कार्योऽमरपूजनं च
एवं कृते पापमुपैति शान्तिम्॥ १६

द्विजोत्तम! अब मैं राजाका विनाश उपस्थित होनेपर उत्पन्न होनेवाले निमित्तोंको बतला रहा हूँ, सुनिये। वह राजा सर्वप्रथम ब्राह्मणोंसे द्वेष करने लगता है, ब्राह्मणोंसे विरोध करता है, ब्राह्मणोंकी सम्पत्तिको हड़प लेता है, ब्राह्मणोंके मारनेका उपक्रम करता है, उसे सत्कार्योंके सम्पादनका स्मरण नहीं होता, वह माँगनेपर क्रुद्ध होता है, ब्राह्मणोंकी निन्दामें विशेष रुचि रखता है और प्रशंसाका अभिनन्दन नहीं करता, लोभवश लोगोंपर नया-नया कर लगाता है—ऐसे अवसरपर शचीसहित इन्द्रकी पूजा करनी चाहिये तथा ब्राह्मणोंको भोजन और अन्य देवताओंके उद्देश्यसे बलि प्रदान करना चाहिये। सत्पुरुषों एवं ब्राह्मणोंकी पूजा कर उन्हें दान देना चाहिये। श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको गौएँ, पृथ्वी, सुवर्ण और वस्त्रादिका दान, देवताओंकी पूजा तथा हवन करना चाहिये। ऐसा करनेसे पाप शान्त हो जाता है॥ १२—१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽद्भुतशान्तावुत्पातप्रशमनं नामाष्टात्रिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अद्भुतशान्ति-प्रसङ्गमें उत्पात-प्रशमन नामक दो सौ अड़तीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३८॥

दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय

ग्रहयागका विधान

मनुरुवाच

ग्रहयज्ञः कथं कार्यो लक्षहोमः कथं नृपैः।
कोटिहोमोऽपि वा देव सर्वपापप्रणाशनः॥ १
क्रियते विधिना येन यद् दृष्टं शान्तिचिन्तकैः।
तत् सर्वं विस्तराद् देव कथयस्व जनार्दन॥ २

मनुजीने पूछा—देव! राजाओंको ग्रहयज्ञ किस प्रकार करना चाहिये? सभी पापोंको नष्ट करनेवाले लक्षहोम तथा कोटिहोम करनेकी क्या विधि है? जनार्दन! यह जिस विधिसे किया जाता है तथा शान्तिका चिन्तन करनेवाले जिस विधिसे सम्पन्न किये हों, वह सब विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ १-२॥

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि प्रसङ्गादेव ते नृप।
राज्ञा धर्मप्रसक्तेन प्रजानां च हितेप्सुना॥ ३
ग्रहयज्ञः सदा कार्यो लक्षहोमसमन्वितः।
नदीनां संगमे चैव सुराणामग्रतस्तथा॥ ४

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! इस समय प्रसंगवश मैं तुम्हें उसे बतला रहा हूँ। धर्मपरायण एवं प्रजाओंके हितेच्छु राजाको लक्षहोमसहित ग्रहयज्ञ सदा करना चाहिये। इस ग्रहयज्ञको नदियोंके संगम तथा देवताओंके समक्ष

सुसमे भूमिभागे च दैवज्ञाधिष्ठितो नृपः।
गुरुणा चैव ऋत्विग्भिः सार्धं भूमिं परीक्षयेत्॥ ५
खनेत् कुण्डं च तत्रैव सुसमं हस्तमात्रकम्।
द्विगुणं लक्षहोमे तु कोटिहोमे चतुर्गुणम्॥ ६
युग्मास्तु ऋत्विजः प्रोक्ता अष्टौ वै वेदपारगाः।
कन्दमूलफलाहारा दधिक्षीराशिनोऽपि वा॥ ७
वेद्यां निधापयेच्चैव रत्नानि विविधानि च।
सिकतापरिवेषाश्च ततोऽग्निं च समिन्धयेत्॥ ८
गायत्र्या दशसाहस्रं मानस्तोकेन षड्गुणः।
त्रिंशद् ग्रहाणां मन्त्रैश्च चत्वारो विष्णुदैवतैः॥ ९
कूष्माण्डैर्जुहुयात् पञ्च कुसुमाद्यैस्तु षोडश।
होतव्या दशसाहस्रं बादरैर्जातवेदसि॥ १०
श्रियो मन्त्रेण होतव्याः सहस्राणि चतुर्दश।
शेषाः पञ्चसहस्रास्तु होतव्यास्त्विन्द्रदैवतैः॥ ११
हुत्वा शतसहस्रं तु पुण्यस्नानं समाचरेत्।
कुम्भैः षोडशसंख्यैश्च सहिरण्यैः सुमङ्गलैः॥ १२
स्नापयेद् यजमानं तु ततः शान्तिर्भविष्यति।
एवं कृते तु यत्किंचिद् ग्रहपीडासमुद्भवम्॥ १३
तत् सर्वं नाशमायाति दत्त्वा वै दक्षिणां नृप।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रधाना दक्षिणा स्मृता॥ १४
हस्त्यश्वरथयानानि भूमिवस्त्रयुगानि च।
अनुडुद्गोशतं दद्याद् ऋत्विजां चैव दक्षिणाम्॥ १५
यथाविभवसारं तु वित्तशाठ्यं न कारयेत्।
मासे पूर्णे समाप्तस्तु लक्षहोमो नराधिप॥ १६
लक्षहोमस्य राजेन्द्र विधानं परिकीर्तितम्।
इदानीं कोटिहोमस्य शृणु त्वं कथयाम्यहम्॥ १७
गङ्गातटेऽथ यमुनासरस्वत्योर्नरेश्वर।
नर्मदादेविकायास्तु तटे होमो विधीयते॥ १८
तत्रापि ऋत्विजः कार्या रविनन्दन षोडश।
सर्वहोमे तु राजर्षे दद्याद् विप्रेऽथवा धनम्॥ १९
ऋत्विगाचार्यसहितो दीक्षां सांवत्सरीं स्थितः।
चैत्रे मासे तु सम्प्राप्ते कार्त्तिके वा विशेषतः॥ २०
प्रारम्भः करणीयो वा वत्सरं वत्सरं नृप।

समतल भूभागपर करना चाहिये। सर्वप्रथम राजा ज्योतिषीसे परामर्श कर गुरु और ऋत्विजोंके साथ भूमिकी परीक्षा करे। वहाँ एक हाथ गहरा चौकोर कुण्ड बनाये। लक्षहोममें यह कुण्ड दुगुना और कोटिहोममें चौगुना बड़ा बनाना चाहिये। इसके लिये सोलह ऋत्विज् बतलाये गये हैं, जो वेदोंके पारगामी विद्वान् कंद-मूल-फलका आहार करनेवाले अथवा दही-दूधका भोजन करनेवाले हों। यजमान राजा यज्ञवेदीपर विविध प्रकारके रत्न स्थापित करे। बालूद्वारा वेदीके चारों ओर मण्डल बनाकर अग्नि प्रज्वलित कराये। फिर गायत्रीमन्त्रद्वारा दस हजार, '**मानस्तोके**' (ऋ० ३।१३।६, वाजसनेयि १६।१६) आदि मन्त्रद्वारा छः हजार, ग्रहोंके मन्त्रोंसे तीस हजार, विष्णुसूक्तसे चार हजार, कोंहड़ेसे पाँच हजार, पुष्प-समूहसे सोलह हजार तथा बेरके फलोंसे दस हजार आहुतियाँ अग्निमें देनी चाहिये॥ ३—१०॥

इसी प्रकार श्रीसूक्तसे चौदह हजार आहुतियाँ देनी चाहिये और शेष पाँच हजार आहुतियाँ इन्द्र देवताके मन्त्रोंसे देनी चाहिये। फिर एक लाख आहुतियोंसे हवन कर पुण्यस्नान* सम्पन्न करे। तत्पश्चात् सुवर्णयुक्त सोलह मङ्गल-कलशोंसे यजमानको स्नान कराये, तब शान्तिकी प्राप्ति होती है। नृप! ऐसा करके दक्षिणा देनेपर ग्रहपीडासे उत्पन्न जो कुछ कष्ट होता है, वह सब नष्ट हो जाता है। इसीलिये सभी प्रकारसे दक्षिणाको ही प्रधान माना गया है। उस समय राजा अपनी सम्पत्तिके अनुकूल ऋत्विजोंको हाथी, घोड़े, रथ, वाहन, भूमि, जोड़े वस्त्र, बैल तथा सौ गौएँ दक्षिणारूपमें दे, कृपणता न करे। नराधिप! लक्षहोम एक मासमें समाप्त होता है। राजेन्द्र! इस प्रकार मैंने लक्षहोमका विधान आपको बतला दिया। अब मैं कोटिहोमका विधान बतला रहा हूँ, आप सुनिये। नरेश्वर! गङ्गा, यमुना और सरस्वतीके अथवा नर्मदा और देविका (सरयू)-के तटपर इस हवनके करनेका विधान है। रविनन्दन! इस कोटिहोममें भी सोलह ऋत्विजोंका वरण करना चाहिये। राजर्षे! सभी हवन-कार्योंमें ब्राह्मणोंको धन देना चाहिये। यजमान ऋत्विज् और आचार्यके साथ वर्षभरकी दीक्षा ग्रहण करे। राजन्! चैत्र अथवा विशेषतया कार्तिकका महीना आनेपर इस यज्ञका प्रारम्भ करना चाहिये। इसी प्रकार प्रतिवर्ष करनेका विधान है॥ ११—२०½॥

* पुण्यस्नानकी विस्तृत विधि बृहत्संहितामें दी गयी है।

यजमानः पयोभक्षी फलाशी च तथानघ॥ २१
यवादिव्रीहयो माषास्तिलाश्च सह सर्षपैः।
पालाशाः समिधः शस्ता वसोर्धारा तथोपरि॥ २२
मासेऽथ प्रथमे दद्याद् ऋग्भ्यः क्षीरभोजनम्।
द्वितीये कृसरां दद्याद् धर्मकामार्थसाधनीम्॥ २३
तृतीये मासि संयावो देयो वै रविनन्दन।
चतुर्थे मोदका देया विप्राणां प्रीतिमावहन्॥ २४
पञ्चमे दधिभक्तं तु षष्ठे वै सक्तुभोजनम्।
पूपाश्च सप्तमे देया ह्यष्टमे घृतपूपकाः॥ २५
षष्ट्योदनं च नवमे दशमे यवषष्टिका।
एकादशे समाषं तु भोजनं रविनन्दन॥ २६
द्वादशे त्वथ सम्प्राप्ते मासे रविकुलोद्वह।
षड्रसैः सह भक्ष्यैश्च भोजनं सार्वकामिकम्॥ २७
देया द्विजानां राजेन्द्र मासि मासि च दक्षिणाः।
अहतवासः संवीतो दिनार्धं होमयेच्छुचिः॥ २८
तस्मात् सदोत्थितैर्भाव्यं यजमानैः सह द्विजैः।
इन्द्राद्यादिसुराणां च प्रीणनं सार्वकामिकम्॥ २९
कृत्वा सुराणां राजेन्द्र पशुघातसमन्वितम्।
सर्वदानानि देवानामग्निष्टोमं च कारयेत्॥ ३०
एवं कृत्वा विधानेन पूर्णाहुतिः शते शते।
सहस्रे द्विगुणा देया यावच्छतसहस्रकम्॥ ३१
पुरोडाशस्ततः साध्यो देवतार्थे च ऋत्विजैः।
युक्तो वसन् मानवैश्च पुनः प्राप्तार्चनान् द्विजान्॥ ३२
प्रीणयित्वा सुरान् सर्वान् पितृनेव ततः क्रमात्।
कृत्वा शास्त्रविधानेन पिण्डानां च समर्पणम्॥ ३३
समाप्तौ तस्य होमस्य विप्राणामथ दक्षिणाम्।
समां चैव तुलां कृत्वा बध्वा शिक्यद्वयं पुनः॥ ३४
आत्मानं तोलयेत् तत्र पत्नीं चैव द्वितीयकाम्।
सुवर्णेन तथाऽऽत्मानं रजतेन तथा प्रियाम्॥ ३५
तोलयित्वा ददेत् राजा वित्तशाठ्यविवर्जितः।
ददेच्छतसहस्रं तु रूप्यस्य कनकस्य च॥ ३६

अनघ! (अनुष्ठानके समय) यजमानको दुग्ध अथवा फलका आहार करना चाहिये। जौ आदि अन्न, उड़द, तिल, सरसों और पलाशकी लकड़ी इस होममें प्रशंसित हैं। इसके ऊपर वसुधारा छोड़नी चाहिये। पहले महीनेमें ऋत्विजोंको दुग्धका भोजन देना चाहिये। दूसरे महीनेमें धर्म, अर्थ और कामकी साधिका खिचड़ी खिलानी चाहिये। रविनन्दन! तीसरे महीनेमें गोझिया देनी चाहिये। चौथे महीनेमें ब्राह्मणोंको प्रसन्न करते हुए लड्डू दे। पाँचवें महीनेमें दही और भात, छठे महीनेमें सत्तूका भोजन, सातवें महीनेमें मालपुआ और आठवें मासमें मालपुआ और घी दे। रविनन्दन! नवें महीनेमें साठीका भात, दसवेंमें जौ-मिश्रित साठीका भात तथा ग्यारहवें महीनेमें उड़दयुक्त भोजन देना चाहिये। सूर्यकुलोत्पन्न! बारहवें महीनेके आनेपर छहों रसोंसे युक्त सभी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाला भोजन दे। राजेन्द्र! उन ब्राह्मणोंको प्रतिमास दक्षिणा भी देनी चाहिये। मध्याह्नके समय पवित्र वस्त्र धारण कर हवन करनेका विधान है। इसलिये यजमानको ब्राह्मणोंके साथ सर्वदा यज्ञ करनेके लिये उत्साहयुक्त रहना चाहिये। इन्द्र आदि देवताओंको प्रसन्न करना चाहिये, यह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला है। राजेन्द्र! फिर देवताओंके उद्देश्यसे बलि देकर सभी प्रकारके दानकर्मोंको सम्पादित करे। साथ ही अग्निष्टोमका अनुष्ठान करे॥ २१—३०॥

इस प्रकार विधिपूर्वक ग्रहयाग सम्पन्न कर शत होममें सौ, हजार होममें हजारसे लेकर लक्ष होमतक दो सौ पूर्णाहुतियाँ देनी चाहिये। तत्पश्चात् ऋत्विजोंको देवताओंके लिये पुरोडाश देना चाहिये। उन्हें क्रमशः उन्हीं आगत मनुष्योंमें ही उपस्थित समझना चाहिये। फिर क्रमशः पूजित ब्राह्मणों और देवताओंको प्रसन्न करके सभी पितरोंको शास्त्रोक्त विधिके अनुसार पिण्ड समर्पित करे। इस होमके समाप्त होनेपर ब्राह्मणोंको दक्षिणा दे। तदुपरान्त राजाको चाहिये कि कृपणताको छोड़कर समान भागवाली तराजू बनवाकर उसमें दो पलड़े बाँध दे और उसपर पत्नीसहित अपनेको तौले। उस समय अपनेको सुवर्णसे तथा पत्नीको चाँदीसे तौलनेका विधान है। तौलनेके बाद उसे ब्राह्मणको दे देना चाहिये। पुनः चाँदी तथा सुवर्णकी बनी हुई एक लक्ष मुद्राका दान करे

सर्वस्वं वा ददेत् तत्र राजसूयफलं लभेत्।
एवं कृत्वा विधानेन विप्रांस्तांश्च विसर्जयेत्॥ ३७
प्रीयतां पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः।
तस्मिंस्तुष्टे जगत् तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं भवेत्॥ ३८
एवं सर्वोपघाते तु देवमानुषकारिते।
इयं शान्तिस्तवाख्याता यां कृत्वा सुकृती भवेत्॥ ३९
न शोचेज्जन्ममरणे कृताकृतविचारणे।
सर्वतीर्थेषु यत् स्नानं सर्वयज्ञेषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति कृत्वा यज्ञत्रयं नृप॥ ४०

अथवा सर्वस्व दान कर दे। ऐसा करनेसे उसे राजसूय-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इस प्रकार विधिपूर्वक यज्ञ करके उन ब्राह्मणोंको विदा करे और कहे—'सभी यज्ञोंके स्वामी कमलनेत्र भगवान् विष्णु प्रसन्न हों; क्योंकि उनके संतुष्ट होनेपर समस्त जगत् संतुष्ट और प्रसन्न होनेपर प्रसन्न होता है।' इस प्रकार देवताओं तथा मनुष्योंद्वारा की गयी सभी बाधाओंके लिये यह शान्ति कही गयी है, जिसे मैंने तुम्हें बताया है और जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य पुण्यवान् होता है और उसे जन्म-मृत्यु तथा उचित-अनुचितके विचारके समय चिन्ता नहीं करनी पड़ती। राजन्! सभी तीर्थोंमें स्नान करने और सभी यज्ञोंके अनुष्ठानसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल इन तीनों यज्ञोंको करनेवाला मनुष्य प्राप्त कर लेता है॥ ३१—४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे ग्रहयज्ञविधानं नामैकोनचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २३९॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें ग्रहयज्ञविधान नामक दो सौ उन्तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २३९॥

दो सौ चालीसवाँ अध्याय

राजाओंकी विजयार्थ यात्राका विधान

मनुरुवाच

इदानीं सर्वधर्मज्ञ सर्वशास्त्रविशारद।
यात्राकालविधानं मे कथयस्व महीक्षिताम्॥ १

मत्स्य उवाच

यदा मन्येत नृपतिराक्रन्देन बलीयसा।
पार्ष्णिग्राहाभिभूतोऽरिस्तदा यात्रां प्रयोजयेत्॥ २
योधान् मत्वा प्रभूतांश्च प्रभूतं च बलं मम।
मूलरक्षासमर्थोऽस्मि तदा यात्रां प्रयोजयेत्॥ ३
अशुद्धपार्ष्णिर्नृपतिर्न तु यात्रां प्रयोजयेत्।
पार्ष्णिग्राहाधिकं सैन्यं मूले निक्षिप्य च व्रजेत्॥ ४
चैत्र्यां वा मार्गशीर्ष्यां वा यात्रां यायान्नराधिपः।
चैत्र्यां पश्येच्च नैदाघं हन्ति पुष्टिं च शारदीम्॥ ५
एतदेव विपर्यस्तं मार्गशीर्ष्यां नराधिपः।
शत्रोर्वा व्यसने यायात् काल एव सुदुर्लभः॥ ६

मनुजीने कहा—सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता एवं सर्वशास्त्रविशारद भगवन्! अब आप मुझसे राजाओंके यात्राकालिक विधानका वर्णन कीजिये॥ १॥

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—जिस समय राजा अपनेको किसी भयंकर युद्धसे घिरा हुआ तथा सीमावर्ती शत्रुको पराजित समझ ले, उस समय उसे यात्रा कर देनी चाहिये। साथ ही जब वह यह समझ ले कि हमारे पास बहुसंख्यक योद्धा हैं, हमारी सेना बहुत बड़ी है और मैं अपने दुर्गकी रक्षा करनेमें समर्थ हूँ, उस समय उसके लिये यात्रा करना उचित है। सीमावर्ती राजाके शत्रु बन जानेपर राजाको यात्रा नहीं करनी चाहिये। उस समय वह पार्श्ववर्ती राजासे अधिक सेना प्राप्त कर यात्रा कर सकता है। राजाको चैत्र वा मार्गशीर्षकी पूर्णिमाको दिवि-जयार्थ यात्रा करनी चाहिये। चैत्र-पूर्णिमाको यात्रा करनेवाला ग्रीष्म ऋतुका दर्शन करेगा तथा शरत्कालीन शीत-भयसे रहित रहेगा। ठीक इसी प्रकारका परिवर्तन मार्गशीर्ष-पूर्णिमाको यात्रा करनेसे होता है। अथवा शत्रुके आपत्तिमें फँसनेपर यात्रा करे, पर ऐसा समय अत्यन्त दुर्लभ है।

दिव्यान्तरिक्षक्षितिजैरुत्पातैः पीडितं परम्।
षडक्षपीडासंतप्तं पीडितं च तथा ग्रहैः॥ ७

ज्वलन्ती च तथैवोल्का दिशं यां च प्रपद्यते।
भूकम्पोल्कादि संयाति यां च केतुः प्रसूयते॥ ८

निर्घातश्च पतेद् यत्र तां यायाद् वसुधाधिपः।
स्वबलव्यसनोपेतं तथा दुर्भिक्षपीडितम्॥ ९

सम्भूतान्तरकोपं च क्षिप्रं प्रायादरिं नृपः।
यूकामाक्षीकबहुलं बहुपङ्कं तथाविलम्॥ १०

नास्तिकं भिन्नमर्यादं तथामङ्गलवादिनम्।
अपेतप्रकृतिं चैव निःसारं च तथा जयेत्॥ ११

जो दिव्य, अन्तरिक्ष एवं पृथ्वीजन्य उत्पातोंसे पीड़ित, हाथ-पैर आदि छः इन्द्रियोंकी पीड़ासे संतप्त तथा ग्रहोंद्वारा पीड़ित हो, ऐसे शत्रु राजापर विजय-यात्रा करनी चाहिये। जिस दिशामें जलती हुई उल्का गिरती है, जिस दिशामें भूकम्पादि उत्पात अधिक होते हैं तथा पुच्छल तारा उदित होता है, उसी दिशामें राजाको विजयार्थ यात्रा करनी चाहिये। जो अपनी सेनाके विद्रोहसे युक्त, दुर्भिक्षसे पीड़ित तथा आन्तरिक विद्रोहसे प्रभावित हो, ऐसे शत्रुपर राजाको तुरंत आक्रमण कर देना चाहिये। जिसके देशमें ढील, मक्खी, कीचड़ और गंदगीकी बहुतायत हो, जो नास्तिक, मर्यादारहित, अमङ्गलवादी, दुश्चरित्र और पराक्रमहीन हो—ऐसे शत्रुको वशमें कर लेना उचित है॥ २—११॥

विद्विष्टनायकं सैन्यं तथा भिन्नं परस्परम्।
व्यसनासक्तनृपतिं बलं राजाभियोजयेत्॥ १२

सैनिकानां न शस्त्राणि स्फुरन्त्यङ्गानि यत्र च।
दुःस्वप्नानि च पश्यन्ति बलं तदभियोजयेत्॥ १३

उत्साहबलसम्पन्नः स्वानुरक्तबलस्तथा।
तुष्टपुष्टबलो राजा परानभिमुखो व्रजेत्॥ १४

शरीरस्फुरणे धन्ये तथा दुःस्वप्ननाशने।
निमित्ते शकुने धन्ये जाते शत्रुपुरं व्रजेत्॥ १५

ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुगुणेषु च।
प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः॥ १६

एवं तु दैवसम्पन्नस्तथा पौरुषसंयुतः।
देशकालोपपन्नां तु यात्रां कुर्यान्नराधिपः॥ १७

स्थले नक्रस्तु नागस्य तस्यापि सजले वशे।
उलूकस्य निशि ध्वाङ्क्षः स च तस्य दिवा वशे॥ १८

जिस राजाकी प्रजा या सेनानायक उसका शत्रु हो गया हो अथवा उसके मन्त्री-सेना आदिमें भी परस्पर विद्वेष हो, वह स्वयं किसी विपत्तिमें पड़ गया हो, ऐसे शत्रुपर अपनी सेनाको चढ़ाईका आदेश दे देना चाहिये। जिस राजाके सैनिकोंके अस्त्र एवं अङ्ग प्रस्फुरित न होते हों तथा उन्हें बुरे स्वप्न दीख पड़ते हों, उनपर धावा बोल देना चाहिये। उत्साह एवं पराक्रमसे संयुक्त तथा अपनेमें अनुराग करनेवाली, संतुष्ट एवं परिपुष्ट विशाल सेनासे सम्पन्न राजा शत्रुओंपर आक्रमण कर दे। जब शुभ अङ्ग फड़कते हों, दुःस्वप्न न दिखायी पड़ते हों तथा शुभ शकुन दिखायी पड़ रहे हों, उस समय शत्रुकी राजधानीपर चढ़ाई करनी चाहिये। जन्म-नक्षत्र आदि छः नक्षत्रोंके शुद्ध होनेपर, शुभ ग्रहोंकी स्थिति अनुकूल होनेपर तथा प्रश्न करनेपर शुभदायक उत्तर मिलनेपर राजाको शत्रुओंपर आक्रमण करना चाहिये। इस प्रकार दैवबल तथा पराक्रमसे संयुक्त राजा देश एवं कालके अनुसार शत्रुपर चढ़ाई करे। स्थलपर मगर हाथीके वशमें होता है, किंतु जलमें हाथी नाकके वशमें हो जाता है। इसी प्रकार रात्रिमें काक उल्लूके अधीन हो जाता है, किंतु दिनमें उल्लू काकके वशमें होता है। इसी प्रकार राजाको देश एवं कालका विचारकर शत्रुपर विजय-यात्रा करनी चाहिये॥ १२—१८½॥

एवं देशं च कालं च ज्ञात्वा यात्रां प्रयोजयेत्।
पदातिनागबहुलां सेनां प्रावृषि योजयेत्॥ १९

राजाको वर्षा-ऋतुमें पैदल और हाथियोंकी सेनाको,

हेमन्ते शिशिरे चैव रथवाजिसमाकुलाम्।
खरोष्ट्रबहुलां सेनां तथा ग्रीष्मे नराधिपः॥ २०

हेमन्त और शिशिर ऋतुमें अधिक रथ और घोड़ोंसे सम्पन्न सेनाको ग्रीष्म ऋतुमें गधे और ऊँटोंसे भरी हुई सेनाको तथा

चतुरङ्गबलोपेतां वसन्ते वा शरद्यथ।
सेना पदातिबहुला यस्य स्यात् पृथिवीपतेः॥ २१
अभियोज्यो भवेत् तेन शत्रुर्विषममाश्रितः।
गम्ये वृक्षावृते देशे स्थितं शत्रुं तथैव च॥ २२
किञ्चित्पङ्के तथा यायाद् बहुनागो नराधिपः।
रथाश्वबहुलो यायाच्छत्रुं समपथस्थितम्॥ २३
तमाश्रयन्तो बहुलास्तांस्तु राजा प्रपूजयेत्।
खरोष्ट्रबहुलो राजा शत्रुर्बन्धेन संस्थितः॥ २४
बन्धनस्थोऽभियोज्योऽरिस्तथा प्रावृषि भूभुजा।
हिमपातयुते देशे स्थितं ग्रीष्मेऽभियोजयेत्॥ २५
यवसेन्धनसंयुक्तः कालः पार्थिव हैमनः।
शरद्वसन्तौ धर्मज्ञ कालौ साधारणौ स्मृतौ॥ २६
विज्ञाय राजा हितदेशकालौ
दैवं त्रिकालं च तथैव बुद्ध्वा।
यायात् परं कालविदां मतेन
संचिन्त्य सार्धं द्विजमन्त्रविद्भिः॥ २७

वसन्त और शरद् ऋतुमें चतुरंगिणी सेनाको यात्रामें लगाना उचित है। जिस राजाके पास पैदल सेना अधिक हो, उसे विषम स्थानपर स्थित शत्रुपर आक्रमण करना चाहिये। राजाको चाहिये कि जो शत्रु अधिक वृक्षोंसे युक्त देशमें या कुछ कीचड़वाले स्थानपर स्थित हो, उसपर हाथियोंकी सेनाके साथ चढ़ाई करे। समतल भूमिमें स्थित शत्रुपर रथ और घोड़ोंकी सेना साथ लेकर चढ़ाई करनी चाहिये। जिस शत्रुओंके पास बहुत बड़ी सेना हो, राजाको चाहिये कि उनका आदर-सत्कार करे, अर्थात् उनके साथ संधि कर ले। वर्षा-ऋतुमें अधिक संख्यामें गधे और ऊँटोंकी सेना रखनेवाला राजा यदि शत्रुके बन्धनमें पड़ गया हो तो उस अवस्थामें भी उसे वर्षा-ऋतुमें चढ़ाई करनी चाहिये। जिस देशमें बरफ गिरती हो, वहाँ राजा ग्रीष्म ऋतुमें आक्रमण करे। पार्थिव! हेमन्त और शिशिर ऋतुओंका समय काष्ठ तथा घास आदि साधनोंसे युक्त होनेसे यात्राके लिये बहुत अनुकूल रहता है। धर्मज्ञ! इसी प्रकार शरद् और वसन्त ऋतुओंके काल भी अनुकूल माने गये हैं। राजाको देश-काल और त्रिकालज्ञ ज्योतिषीसे यात्राकी स्थितिको भलीभाँति समझकर उसी प्रकार पुरोहित और मन्त्रियोंके साथ परामर्श कर विजय-यात्रा करनी चाहिये॥ १९—२७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकालयोज्यचिन्ता नाम चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें यात्राकाल-विधान नामक दो सौ चालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४०॥

दो सौ एकतालीसवाँ अध्याय

अङ्गस्फुरणके शुभाशुभ फल

मनुरुवाच

ब्रूहि मे त्वं निमित्तानि अशुभानि शुभानि च।
सर्वधर्मभृतां श्रेष्ठ त्वं हि सर्वविदुच्यसे॥ १

मनुजीने पूछा—सम्पूर्ण धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ भगवन्! चूँकि आप सर्वज्ञ कहे जाते हैं, इसलिये अब आप मुझे शुभाशुभसूचक शकुनोंके लक्षण बतलाइये॥ १॥

मत्स्य उवाच

अङ्गदक्षिणभागे तु शस्तं प्रस्फुरणं भवेत्।
अप्रशस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च॥ २

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—राजन्! शरीरके दाहिने भागमें स्फुरण होना शुभ तथा पीठ, हृदय और बायें भागका स्फुरण अशुभ फलदायक होता है॥ २॥

मनुरुवाच

अङ्गानां स्पन्दनं चैव शुभाशुभविचेष्टितम्।
तन्मे विस्तरतो ब्रूहि येन स्यां तद्विदो भुवि॥ ३

मनुजीने पूछा—भगवन्! अङ्गोंका स्फुरण जिस शुभाशुभकी सूचना देनेवाला होता है, उसे मुझे विस्तारपूर्वक बतलाइये, जिससे मैं भूतलपर उसका ज्ञाता हो जाऊँ॥ ३॥

मत्स्य उवाच

पृथ्वीलाभो भवेन्मूर्ध्नि ललाटे रविनन्दन।
स्थानं विवृद्धिमायाति भ्रूनसोः प्रियसंगमः॥ ४

भृत्यलब्धिश्चाक्षिदेशे दृगुपान्ते धनागमः।
उत्कण्ठोपगमो मध्ये दृष्टं राजन् विचक्षणैः॥ ५

दृग्बन्धने सङ्गरे च जयं शीघ्रमवाप्नुयात्।
योषिद्भोगोऽपाङ्गदेशे श्रवणान्ते प्रियश्रुतिः॥ ६

नासिकायां प्रीतिसौख्यं प्रजाप्तिरधरोष्ठजे।
कण्ठे तु भोगलाभः स्याद् भोगवृद्धिरथांसयोः॥ ७

सुहृत्स्नेहश्च बाहुभ्यां हस्ते चैव धनागमः।
पृष्ठे पराजयः सद्यो जयो वक्षःस्थले भवेत्॥ ८

कुक्षिभ्यां प्रीतिरुद्दिष्टा स्त्रियाः प्रजननं स्तने।
स्थानभ्रंशो नाभिदेशे अन्त्रे चैव धनागमः॥ ९

जानुसंधौ परैः संधिर्बलवद्भिर्भवेन्नृप।
देशैकदेशनाशोऽथ जङ्घाभ्यां रविनन्दन॥ १०

उत्तमं स्थानमाप्नोति पद्भ्यां प्रस्फुरणान्नृप।
सलाभं चाध्वगमनं भवेत् पादतले नृप॥ ११

लाञ्छनं पिटकं चैव ज्ञेयं स्फुरणवत् तथा।
विपर्ययेण विहितः सर्वः स्त्रीणां फलागमः॥ १२

अप्रशस्ते तदा वामे त्वप्रशस्तं विशेषतः।
दक्षिणेऽपि प्रशस्तेऽङ्गे प्रशस्तं स्याद् विशेषतः॥ १३

अतोऽन्यथा सिद्धिप्रजल्पनात् तु
फलस्य शस्तस्य च निन्दितस्य।
अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां
कार्यं सुवर्णेन तु तर्पणं स्यात्॥ १४

मत्स्यभगवान् बोले—रविनन्दन! सिरके स्फुरणसे पृथ्वीका लाभ होता है, ललाटके स्फुरणसे स्थानकी वृद्धि होती है, भौंह और नासिकाके स्फुरणसे प्रियजनोंका समागम होता है। राजन्! नेत्रोंके फड़कनेसे सेवककी तथा नेत्रोंके समीप स्फुरण होनेसे धनकी प्राप्ति होती है। नेत्रोंके मध्य भागमें स्फुरण होनेसे उत्कण्ठा बढ़ती है, ऐसा विचक्षणोंने अनुभव किया है। नेत्र-पलकोंके फड़कनेसे संग्राममें शीघ्र ही विजय प्राप्त होती है। नेत्रापाङ्गोंके स्फुरणसे स्त्री-लाभ, कानके फड़कनेसे प्रियवार्ता-श्रवण, नासिका-स्फुरणसे प्रीति एवं सौख्य, निचले होंठके फड़कनेसे संतान-प्राप्ति, कण्ठ-स्फुरणसे भोग-लाभ तथा दोनों कंधोंके स्फुरणसे भोगकी वृद्धि होती है। बाहुओंके फड़कनेसे मित्र-स्नेहकी प्राप्ति, हाथके स्फुरणसे धनकी प्राप्ति, पीठके फड़कनेसे युद्धमें पराजय तथा छातीके स्फुरणसे विजय-प्राप्ति होती है॥ ४—८॥

दोनों कुक्षियोंके फड़कनेसे प्रेमकी वृद्धि कही गयी है, स्तनके स्फुरणसे स्त्रीसे संतानोत्पत्ति होती है। राजन्! नाभिके स्फुरणसे स्थानसे च्युत होना पड़ता है, आँतके फड़कनेसे धनकी प्राप्ति तथा जानुके संधिभागके स्फुरणसे बलवान् शत्रुओंके साथ संधि हो जाती है। रविनन्दन! फिल्लियोंके फड़कनेसे राजाके देशके किसी भागका नाश होता है। नृप! दोनों पैरोंके स्फुरणसे उत्तम स्थानकी प्राप्ति होती है। राजन्! पैरोंके तलुओंके फड़कनेसे लाभदायिनी यात्रा होती है। अङ्गस्फुरणके समान ही लक्षण (कालेदाग) एवं पिटकों (छोटे मांसपिण्ड, जो जन्मसे ही बालकोंके अङ्गोंमें उत्पन्न होते हैं)-के भी फलाफलको जानना चाहिये। स्त्रियोंके लिये ये सभी फलागम विपरीत होते हैं। बायें भागके अप्रशस्त अङ्गोंके स्फुरणसे विशेष अशुभ होता है। इसी प्रकार दाहिने भागमें भी शुभ अङ्गोंके स्फुरणसे विशेष शुभ होता है। इस शुभ एवं अशुभ फलके सिद्धि-कथनके अतिरिक्त अनिष्ट चिह्नके प्रकट होनेपर ब्राह्मणोंको सुवर्णदान देकर संतुष्ट करना चाहिये॥ ९—१४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्तकदेहस्पन्दनं नामैकचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अङ्गस्फुरण नामक दो सौ एकतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४१॥



दो सौ बयालीसवाँ अध्याय

शुभाशुभ स्वप्नोंके लक्षण

मनुरुवाच

स्वप्नाख्यानं कथं देव गमने प्रत्युपस्थिते।
दृश्यन्ते विविधाकारा: कथं तेषां फलं भवेत्॥ १

मत्स्य उवाच

इदानीं कथयिष्यामि निमित्तं स्वप्नदर्शने।
नाभिं विनान्यगात्रेषु तृणवृक्षसमुद्भवः॥ २
चूर्णनं मूर्ध्नि कांस्यानां मुण्डनं नग्नता तथा।
मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गः पङ्कदिग्धता॥ ३
उच्चात् प्रपतनं चैव दोलारोहणमेव च।
अर्जनं पङ्कलोहानां हयानामपि मारणम्॥ ४
रक्तपुष्पद्रुमाणां च मण्डलस्य तथैव च।
वराहर्क्षखरोष्ट्राणां तथा चारोहणक्रिया॥ ५
भक्षणं पक्षिमत्स्यानां तैलस्य कृसरस्य च।
नर्तनं हसनं चैव विवाहो गीतमेव च॥ ६
तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामभिवादनम्।
स्रोतोऽवगाहगमनं स्नानं गोमयवारिणा॥ ७
पङ्कोदकेन च तथा महीतोयेन चाप्यथ।
मातुः प्रवेशो जठरे चितारोहणमेव च॥ ८
शक्रध्वजाभिपतनं पतनं शशिसूर्ययोः।
दिव्यान्तरिक्षभौमानामुत्पातानां च दर्शनम्॥ ९
देवद्विजातिभूपालगुरूणां क्रोध एव च।
आलिङ्गनं कुमारीणां पुरुषाणां च मैथुनम्॥ १०
हानिश्चैव स्वगात्राणां विरेकवमनक्रिया।
दक्षिणाशाभिगमनं व्याधिनाभिभवस्तथा॥ ११
फलापहानिश्च तथा पुष्पहानिस्तथैव च।
गृहाणां चैव पातश्च गृहसम्मार्जनं तथा॥ १२
क्रीडा पिशाचक्रव्यादवानरर्क्षनरैरपि।
परादभिभवश्चैव तस्माच्च व्यसनोद्भवः॥ १३
काषायवस्त्रधारित्वं तद्वत् स्त्रीक्रीडनं तथा।
स्नेहपानावगाहौ च रक्तमाल्यानुलेपनम्॥ १४
एवमादीनि चान्यानि दुःस्वप्नानि विनिर्दिशेत्।
एषां संकथनं धन्यं भूयः प्रस्वापनं तथा॥ १५

मनुजीने पूछा—देव! यात्राके समयके स्वप्नका वृत्तान्त कैसा है? विविध प्रकारके वैसे यों भी स्वप्न अनेक दिखायी पड़ते हैं, उनका फल कैसा होता है (बतलायें)॥ १॥

मत्स्यभगवान्ने कहा—मनो! अब मैं स्वप्नोंके शुभाशुभ लक्षणोंको बतला रहा हूँ। नाभिके अतिरिक्त अन्य अङ्गोंमें तृण एवं वृक्षका उगना, मस्तकपर कांसेका कूटा जाना, मुण्डन, नग्नता, मलिन वस्त्रोंका धारण करना, तेल लगाना, कीचमें धँसना, लेप, ऊँचे स्थानसे गिरना, झूलेपर चढ़ना, कीचड़ और लोहेको इकट्ठा करना, घोड़ोंको मारना, लाल पुष्पवाले वृक्षों, मण्डल, शूकर, रीछ, गधे और ऊँटोंपर चढ़ना, पक्षी, मछली, तेल और खिचड़ीका भोजन, नाचना, हँसना, विवाह, गायन, वीणाको छोड़कर अन्य वाद्योंका स्वागत करना, जलके सोतेमें स्नान करनेके लिये जाना, गोबर लगाकर जलमें स्नान करना, इसी प्रकार कीचड़युक्त जलमें तथा पृथ्वीके थोड़े जलमें नहाना, माताके उदरमें प्रवेश करना, चितापर चढ़ना, इन्द्रध्वजका गिरना, चन्द्रमा और सूर्यका पतन, दिव्य, अन्तरिक्ष तथा भौम उत्पातोंका दर्शन, देवता, द्विजाति, राजा और गुरुका क्रोध, कुमारी कन्याओंका आलिङ्गन, पुरुषोंके साथ सम्भोग, अपने ही शरीरका नाश, विरेचन, वमन, दक्षिण दिशाकी यात्रा, किसी व्याधिसे पीड़ित होना, फलों तथा पुष्पोंकी हानि, घरोंका गिरना, घरोंकी सफाई होना, पिशाच, मांसभक्षी जीव, वानर, रीछ और मनुष्यके साथ क्रीडा करना, शत्रुसे पराजित होना या उसकी ओरसे किसी प्रकारकी आपत्तिका प्रकट होना, काषाय वस्त्रको धारण करना अथवा वैसे वस्त्रवाली स्त्रीके साथ क्रीडा करना, तेल-पान या उसीमें स्नान करना, लाल पुष्प और लाल चन्दनको धारण करना तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी बहुत-से दुःस्वप्न कहे गये हैं। इन्हें देखनेके बाद दूसरेसे कह देना तथा पुनः सो जाना कल्याणकारक है॥ २—१५॥

कल्कस्नानं तिलैर्होमो ब्राह्मणानां च पूजनम्।
स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्यैव पूजनम्॥ १६
नागेन्द्रमोक्षश्रवणं ज्ञेयं दुःस्वप्ननाशनम्।
स्वप्नास्तु प्रथमे यामे संवत्सरविपाकिनः॥ १७
षड्भिर्मासैर्द्वितीये तु त्रिभिर्मासैस्तृतीयके।
चतुर्थे मासमात्रेण पश्यतो नात्र संशयः॥ १८
अरुणोदयवेलायां दशाहेन फलं भवेत्।
एकस्यां यदि वा रात्रौ शुभं वा यदि वाशुभम्॥ १९
पश्चाद् दृष्टस्तु यस्तत्र तस्य पाकं विनिर्दिशेत्।
तस्माच्छोभनके स्वप्ने पश्चात् स्वप्नो न शस्यते॥ २०

(ऐसे स्वप्न देखनेपर) खली लगाकर स्नान, तिलसे हवन और ब्राह्मणोंका पूजन करे। भगवान् वासुदेवकी स्तुति उनकी पूजा और गजेन्द्रमोक्षकी कथाका श्रवण आदिका दुःस्वप्नका नाशक समझना चाहिये। रात्रिके पहले पहरमें देखे गये स्वप्न देखनेवालेको निःसंदेह एक वर्षमें, दूसरे पहरमें देखे गये छः महीनेमें, तीसरे पहरमें देखे गये तीन महीनेमें तथा चतुर्थ पहरमें देखे गये एक महीनेमें फल देते हैं। सूर्योदयके समय देखे जानेपर दस दिनमें ही फल प्राप्त होता है। यदि एक ही रातमें शुभ और अशुभ—दोनों प्रकारके स्वप्न दिखायी पड़ें तो उनमें जो पीछे दीख पड़ा हो, उसीका फल कहना चाहिये। इसलिये शुभ स्वप्नके देखनेपर मनुष्यको पुनः नहीं सोना चाहिये॥ १६—२०॥

शैलप्रासादनागाश्ववृषभारोहणं हितम्।
द्रुमाणां श्वेतपुष्पाणां गमने च तथा द्विज॥ २१
द्रुमतृणोद्भवो नाभौ तथैव बहुबाहुता।
तथैव बहुशीर्षत्वं फलितोद्भव एव च॥ २२
सुशुक्लमाल्यधारित्वं सुशुक्लाम्बरधारिता।
चन्द्रार्कताराग्रहणं परिमार्जनमेव च॥ २३
शक्रध्वजालिङ्गनं च तदुच्छ्रायक्रिया तथा।
भूम्यम्बुधीनां ग्रसनं शत्रूणां च वधक्रिया॥ २४
जयो विवादे द्यूते च संग्रामे च तथा द्विज।
भक्षणं चार्द्रमांसानां मत्स्यानां पायसस्य च॥ २५
दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च।
सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य चाथ वा॥ २६
अन्त्रैर्वा वेष्टनं भूमौ निर्मलं गगनं तथा।
मुखेन दोहनं शस्तं महिषीणां तथा गवाम्॥ २७
सिंहीनां हस्तिनीनां च वडवानां तथैव च।
प्रसादो देवविप्रेभ्यो गुरुभ्यश्च तथा शुभः॥ २८

द्विज! पर्वत, राजमहल, हाथी, घोड़ा, वृषभ—इनपर आरोहण करना हितकारक है तथा श्वेत पुष्पोंवाले वृक्षोंपर चढ़ना शुभप्रद है। नाभिमें वृक्ष और तृणका उत्पन्न होना, अनेक बाहुओंका होना, अनेक सिरोंका होना, फलदान, उद्भिज्जोंका दर्शन, सुन्दर श्वेत माला धारण करना, श्वेत वस्त्र पहनना, चन्द्रमा, सूर्य और ताराओंको हाथसे पकड़ना या उन्हें स्वच्छ करना, इन्द्रधनुषका आलिङ्गन करना या उसे ऊपर उठाना, पृथ्वी और समुद्रोंको निगलना, शत्रुओंका संहार करना, संग्राम, विवाद और जूएमें जीतना, कच्चा मांस, मछली और खीरका खाना, रक्तका दर्शन या रक्तसे स्नान, मदिरा, रक्त, मद्य अथवा दुग्धका पीना, अपनी आँतोंसे पृथ्वीको बाँधना, निर्मल आकाशको देखना, भैंस, गाय, सिंहिनी, हथिनी तथा घोड़ियोंको मुखसे दुहना, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी प्रसन्नता—ये स्वप्न शुभदायक होते हैं॥ २१—२८॥

अम्भसा त्वभिषेकस्तु गवां शृङ्गस्तुतेन वा।
चन्द्राद् भ्रष्टेन वा राजञ् ज्ञेयो राज्यप्रदोहि सः॥ २९

राजन्! गौओंके सींगसे चूनेवाले अथवा चन्द्रमासे गिरे हुए जलसे अभिषेक होना राज्यप्रद समझना चाहिये।

राज्याभिषेकश्च तथा छेदनं शिरसस्तथा।
मरणं वह्निदाहश्च वह्निदाहो गृहादिषु॥ ३०
लब्धिश्च राज्यलिङ्गानां तन्त्रीवाद्याभिवादनम्।
तथोदकानां तरणं तथा विषमलङ्घनम्॥ ३१

राज्याभिषेक, सिरका कटना, मृत्यु, अग्निका प्रज्वलित होना या घरमें आग लगना, राज्यचिह्नोंकी प्राप्ति, वीणाका स्वर सुनायी पड़ना, जलमें तैरना, दुर्गम स्थानोंको पार करना,

हस्तिनीवडवानां च गवां च प्रसवो गृहे।
आरोहणमथाश्वानां रोदनं च तथा शुभम्॥ ३२
वरस्त्रीणां तथा लाभस्तथालिङ्गनमेव च।
निगडैर्बन्धनं धन्यं तथा विष्ठानुलेपनम्॥ ३३
जीवतां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम्।
दर्शनं देवतानां च विमलानां तथाम्भसाम्॥ ३४
शुभान्यथैतानि नरस्तु दृष्ट्वा
प्राप्नोत्ययत्नाद् ध्रुवमर्थलाभम्।
स्वप्नानि वै धर्मभृतां वरिष्ठ
व्याधेर्विमोक्षं च तथातुरोऽपि॥ ३५

घरमें हथिनी, घोड़ी तथा गायोंका बच्चा देना, घोड़ेपर सवार होना तथा रोना—ये स्वप्न शुभदायक होते हैं। सुन्दरी स्त्रियोंकी प्राप्ति तथा उनका आलिङ्गन, जंजीरोंद्वारा बन्धन, मलका लेपन, जीवित राजाओं तथा मित्रोंका दर्शन, देवताओं तथा निर्मल जलका दर्शन—ये स्वप्न शुभ कहे गये हैं। धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ राजन्! मनुष्य इन शुभदायक स्वप्नोंको देखकर बिना प्रयासके ही निश्चितरूपमें धन प्राप्त कर लेता है तथा रोगग्रस्त व्यक्ति भी रोगसे मुक्त हो जाता है॥ २९—३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते स्वप्नाध्यायोनाम द्विचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४२॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें यात्राप्रसंगमें स्वप्नविवेक नामक दो सौ बयालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४२॥



दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय

शुभाशुभ शकुनोंका निरूपण

मनुरुवाच

गमनं प्रति राज्ञां तु सम्मुखादर्शने च किम्।
प्रशस्तांश्चैव सम्भाष्य सर्वानेतांश्च कीर्तय॥ १

मनुजीने पूछा—भगवन्! राजाओंके लिये यात्राके अवसरपर सम्मुख देखने या न देखने योग्य कौन-कौन-सी वस्तुएँ प्रशस्त मानी गयी हैं, उन सबका वर्णन कीजिये॥ १॥

मत्स्य उवाच

औषधानि त्वयुक्तानि धान्यं कृष्णं च यद् भवेत्।
कार्पासश्च तृणं राजन् शुष्कं गोमयमेव च॥ २
इन्धनं च तथाङ्गारं गुडं तैलं तथाशुभम्।
अभ्यक्तं मलिनं मुण्डं तथा नग्नं च मानवम्॥ ३
मुक्तकेशं रुजार्तं च काषायाम्बरधारिणम्।
उन्मत्तकं तथा सत्त्वं दीनं चाथ नपुंसकम्॥ ४
अयः पङ्कस्तथा चर्म केशबन्धनमेव च।
तथैवोद्धृतसाराणि पिण्याकादीनि यानि च॥ ५
चण्डालश्वपचाश्चैव राजबन्धनपालकाः।
वधकाः पापकर्माणो गर्भिणी स्त्री तथैव च॥ ६
तुषभस्मकपालास्थि भिन्नभाण्डानि यानि च।
रिक्तानि चैव भाण्डानि मृतं शार्ङ्गिकमेव च॥ ७

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! अनुपयुक्त ओषधियाँ, काला अन्न, कपास, तृण, सूखा गोबर, ईंधन, अङ्गार, गुड़, तेल—ये सब अशुभ वस्तुएँ हैं। तेल लगाया हुआ, मलिन, मुण्डन कराया हुआ, नंगा, खुले बालोंवाला, रोगपीड़ित, काषाय वस्त्रधारी, पागल, दीन तथा नपुंसक व्यक्ति, लोहा, कीचड़, चमड़ा, केशका बन्धन, खली आदि सभी सारहीन वस्तुएँ, चाण्डाल, श्वपच, बन्धनमें डालनेवाले राजाके कर्मचारी, जल्लाद, पापी, गर्भिणी स्त्री, भूसी, राख, खोपड़ी, हड्डी, टूटे हुए सभी पात्र, खाली पात्र, लाश, सींगोंवाले पशु—

एवमादीनि चान्यानि अशस्तान्यभिदर्शने।
अशस्तो वाद्यशब्दश्च भिन्नभैरवजर्जरः॥ ८
पुरतः शब्द एहीति शस्यते न तु पृष्ठतः।
गच्छेति पश्चाद् धर्मज्ञ पुरस्तात् तु विगर्हितः॥ ९
क्व यासि तिष्ठ मा गच्छ किं ते तत्र गतस्य तु।
अन्ये शब्दाश्च येऽनिष्टास्ते विपत्तिकरा अपि॥ १०
ध्वजादिषु तथा स्थानं क्रव्यादानां विगर्हितम्।
स्खलनं वाहनानां च वस्त्रसङ्गस्तथैव च॥ ११
निर्गतस्य तु द्वारादौ शिरसश्चाभिघातिता।
छत्रध्वजानां वस्त्राणां पतनं च तथाशुभम्॥ १२
दृष्टे निमित्ते प्रथमममङ्गल्यविनाशनम्।
केशवं पूजयेद् विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम्॥ १३
द्वितीये तु ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद् गृहम्।
अथेष्टानि प्रवक्ष्यामि मङ्गल्यानि तथानघ॥ १४
श्वेताः सुमनसः श्रेष्ठाः पूर्णकुम्भास्तथैव च।
जलजाः पक्षिणश्चैव मांसमत्स्याश्च पार्थिव॥ १५
गावस्तुरंगमा नागा बद्ध एकः पशुस्त्वजः।
त्रिदशाः सुहृदो विप्रा ज्वलितश्च हुताशनः॥ १६
गणिका च महाभाग दूर्वा चार्द्रं च गोमयम्।
रुक्मं रूप्यं तथा ताम्रं सर्वरत्नानि चाप्यथ॥ १७
औषधानि च धर्मज्ञ यवाः सिद्धार्थकास्तथा।
नृवाह्यमानं यानं च भद्रपीठं तथैव च॥ १८
खड्गं छत्रं पताका च मृदश्चायुधमेव च।
राजलिङ्गानि सर्वाणि शवं रुदितवर्जितम्॥ १९
घृतं दधि पयश्चैव फलानि विविधानि च।
स्वस्तिकं वर्धमानं च नन्द्यावर्तं सकौस्तुभम्॥ २०
वादित्राणां सुखः शब्दो गम्भीरः सुमनोहरः।
गान्धारषड्जऋषभा ये च शस्तास्तथा स्वराः॥ २१
वायुः सशर्करो रूक्षः सर्वत्र समुपस्थितः।
प्रतिलोमस्तथा नीचो विज्ञेयो भयकृद् द्विज॥ २२
अनुकूलो मृदुः स्निग्धः सुखस्पर्शः सुखावहः।
रूक्षा रूक्षस्वरा भद्राः क्रव्यादाः परिगच्छताम्॥ २३

ये तथा इनके अतिरिक्त और भी वस्तुएँ देखनेमें अशुभ मानी गयी हैं। वाद्योंके भयानक तथा बिना तालके रूखे स्वर भी अशुभ कहे गये हैं। धर्मज्ञ! सामनेसे 'आओ'—ऐसा शब्द कहना शुभ है, किंतु पीछेसे नहीं। इसी तरह पीछेसे 'जाओ' यह कहना शुभ है, किंतु वही आगेसे कहना अशुभ है। 'कहाँ जा रहे हो, रुको, मत जाओ; तुम्हारे वहाँ जानेसे क्या लाभ?'—इस प्रकारके जो दूसरे अनिष्ट शब्द हैं, वे सभी विपत्तिकारक हैं। ध्वजा, पताका आदिपर मांसभक्षी पक्षियोंका बैठना, वाहनोंका फिसलना तथा वस्त्रका अटक जाना निन्दित माना गया है। द्वारसे निकलते समय सिरमें चोट लगना तथा छत्र, ध्वजा और वस्त्रादिका गिरना अशुभकारक है। प्रथम बार अपशकुन दीखनेपर विद्वान् राजाको चाहिये कि वह अशुभविनाशक एवं मधुहन्ता भगवान् केशवकी स्तोत्रोंद्वारा पूजा[1] करे। दूसरी बार पुनः अपशकुन दिखायी पड़नेपर उसे घरमें लौट जाना चाहिये॥ २—१३½॥

अनघ! अब मैं शुभ-सूचक अभीष्ट शकुनोंका वर्णन कर रहा हूँ। राजन्! श्वेत फूल, भरा हुआ घट, जलजन्तु, पक्षी, मांस, मछलियाँ, गौएँ, घोड़े, हाथी, अकेला बँधा हुआ पशु, बकरा, देवता, मित्र, ब्राह्मण, जलती हुई अग्नि, वेश्या, दूर्वा, गीला गोबर, सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, सभी प्रकारके रत्न, ओषधियाँ, जौ, पीली सरसों, मनुष्योंको ढोता हुआ वाहन, सुन्दर सिंहासन, तलवार, छत्र, पताका, मिट्टी, हथियार, सभी प्रकारके राजचिह्न, रुदनरहित मुर्दा, घी, दही, दूध, विविध प्रकारके फल, स्वस्तिक[2], वर्धमान[3], नन्द्यावर्त[4], कौस्तुभमणि, वाद्योंके सुखदायक, मनोहर एवं गम्भीर शब्द, गान्धार, षड्ज तथा ऋषभ आदि स्वर शुभदायक माने गये हैं। द्विज! यदि बालूके कणोंसे युक्त रूखी वायु सर्वत्र प्रतिकूल दिशामें पृथ्वीका स्पर्श करके बह रही हो तो उसे भयकारी जानना चाहिये। अनुकूल दिशामें बहनेवाली मृदु, शीतल एवं सुखस्पर्शी वायु सुखदायिनी होती है। निष्ठुर एवं रूखे स्वरमें बोलनेवाले मांसभक्षी जीव यात्रियोंके लिये कल्याणकारक होते हैं।

१. ऐसे स्तोत्रोंमें विष्णुसहस्रनाम, गजेन्द्रमोक्ष, (महापुरुषविद्या) 'जितं ते पुण्डरीकाक्ष' आदि श्रेष्ठ हैं।
२. ऐसा प्रासाद जिसमें पूर्वकी ओर द्वार न हो। (बृहत्संहिता ५३। ३४)
३. वह प्रासाद जिसमें दक्षिणकी ओर दरवाजा न हो। (बृहत्संहिता ५३। ३३)
४. एक प्रकारका मकान, जिसमें पश्चिमकी ओर द्वार न हो। (बृहत्संहिता ५३। ३२)

मेघाः शस्ता घनाः स्निग्धा गजबृंहितनिःस्वनाः।
अनुलोमास्तडिच्छस्ताः शक्रचापं तथैव च॥ २४
अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेषप्रवर्षणे।
अनुलोमा ग्रहाः शस्ता वाक्पतिस्तु विशेषतः॥ २५
आस्तिक्यं श्रद्दधानत्वं तथा पूज्याभिपूजनम्।
शस्तान्येतानि धर्मज्ञ यच्च स्यान्मनसः प्रियम्॥ २६
मनसस्तुष्टिरेवात्र परमं जयलक्षणम्।
एकतः सर्वलिङ्गानि मनसस्तुष्टिरेकतः॥ २७
यानोत्सुकत्वं मनसः प्रहर्षः
शुभस्य लाभो विजयप्रवादः।
मङ्गल्यलब्धिः श्रवणं च राजन्
ज्ञेयानि नित्यं विजयावहानि॥ २८

हाथियोंकी चिग्घाड़के समान गम्भीर शब्द करनेवाले चिकने घने मेघ शुभदायी होते हैं। पीछेसे चमकनेवाली बिजलीका प्रकाश तथा इन्द्रधनुष प्रशंसनीय हैं। यात्रामें सूर्य एवं चन्द्रमाके मण्डल तथा घनघोर वृष्टिको अशुभ समझना चाहिये। अनुकूल दिशामें उदित हुए ग्रहोंको, विशेषकर बृहस्पतिको शुभसूचक कहा गया है। धर्मज्ञ! (यात्राकालमें) आस्तिकता, श्रद्धा, पूज्योंके प्रति पूज्यभाव और मनकी प्रसन्नता—ये सभी प्रशंसनीय हैं। यात्राकालमें मनका संतोष विजयका परम लक्षण है। तुलनामें एक ओर सभी शुभ शकुन और एक ओर अपने मनकी प्रसन्नताको मानना चाहिये। राजन्! वाहनोंकी उत्सुकता, मनका आनन्दातिरेक, शुभ शकुनोंकी प्राप्ति, विजयसूचक प्रवाद, माङ्गलिक वस्तुओंकी उपलब्धि तथा श्रवण—इन्हें नित्य विजयप्रद जानना चाहिये॥ १४—२८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे यात्रानिमित्ते मङ्गलाध्यायो नाम त्रिचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके यात्रा-प्रसंगमें मङ्गलाध्याय नामक दो सौ तैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४३॥

दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय

वामन-प्रादुर्भाव-प्रसङ्गमें श्रीभगवान्‌द्वारा अदितिको वरदान

ऋषय ऊचुः

राजधर्मस्त्वया सूत कथितो विस्तरेण तु।
तथैवाद्भुतमङ्गल्यं स्वप्नदर्शनमेव च॥ १
विष्णोरिदानीं माहात्म्यं पुनर्वक्तुमिहार्हसि।
कथं स वामनो भूत्वा बबन्ध बलिदानवम्।
क्रमतः कीदृशं रूपमासील्लोकत्रये हरेः॥ २

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आपने विस्तारपूर्वक राजधर्मका वर्णन तो कर दिया, उसी प्रकार अद्भुत शकुन एवं स्वप्नदर्शनका भी निरूपण कर दिया। अब आप पुनः भगवान् विष्णुके माहात्म्यका वर्णन कीजिये। किस प्रकार भगवान्‌ने वामनस्वरूप धारणकर दानवराज बलिको बाँधा था और नापते समय किस प्रकार भगवान्‌का वह शरीर बढ़कर तीनों लोकोंमें व्याप्त हो गया था?॥ १-२॥

सूत उवाच

एतदेव पुरा पृष्टः कुरुक्षेत्रे तपोधनः।
शौनकस्तीर्थयात्रायां वामनायतने पुरा॥ ३
यदा समयभेदित्वं द्रौपद्याः पार्थिवं प्रति।
अर्जुनेन कृतं तत्र तीर्थयात्रां तदा ययौ॥ ४
धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे वामनायतने स्थितः।
दृष्ट्वा स वामनं तत्र अर्जुनो वाक्यमब्रवीत्॥ ५

सूतजी कहते हैं—मुनिगण! इसी वृत्तान्तको प्राचीनकालमें तीर्थ-यात्राके समय कुरुक्षेत्रके वामनायतनमें अर्जुनने तपस्वी शौनकजीसे पूछा था। जिस समय उन्होंने द्रौपदीके साथ एकान्तमें बैठे हुए युधिष्ठिरके नियमोंका उल्लङ्घन किया था, उस समय वे उस पापकी शान्तिके लिये तीर्थयात्रामें गये हुए थे। उस समय धर्ममय कुरुक्षेत्रके वामनायतनमें पहुँचकर वामनभगवान्‌का दर्शन कर अर्जुनने इस प्रकार प्रश्न किया था॥ ३—५॥

अर्जुन उवाच

किं निमित्तमयं देवो वामनाकृतिरिज्यते।
वराहरूपी भगवान् कस्मात् पूज्योऽभवत् पुरा।
कस्माच्च वामनस्येदमिष्टं क्षेत्रमजायत॥ ६

अर्जुनने पूछा—महर्षे! किस फलकी प्राप्तिके लिये वामनभगवान्‌की पूजा की जाती है? प्राचीनकालमें वराहरूपधारी भगवान् किस कारण पूज्य माने गये और किस निमित्तसे यह क्षेत्र भगवान् वामनको प्रिय हुआ है?॥ ६॥

शौनक उवाच

वामनस्य च वक्ष्यामि वराहस्य च धीमतः।
त्यक्त्वातिविस्तरं भूयो माहात्म्यं कुरुनन्दन॥ ७
पुरा निर्वासिते शक्रे सुरेषु विजितेषु च।
चिन्तयामास देवानां जननी पुनरुद्भवम्॥ ८
अदितिर्देवमाता च परमं दुश्चरं तपः।
तीव्रं चचार वर्षाणां सहस्रं पृथिवीपते॥ ९
आराधनाय कृष्णस्य वाग्यता वायुभोजना।
दैत्यैर्निराकृतान् दृष्ट्वा तनयान् कुरुनन्दन॥ १०
वृथापुत्राहमस्मीति निर्वेदात् प्रणता हरिम्।
तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परमार्थावबोधिनी।
देवदेवं हृषीकेशं नत्वा सर्वगतं हरिम्॥ ११

शौनकजी बोले—कुरुनन्दन! मैं भगवान् वामन एवं ज्ञानस्वरूप वराहके माहात्म्यको संक्षेपमें पुनः तुम्हें बतला रहा हूँ। प्राचीनकालमें दानवोंद्वारा देवताओंके पराजित हो जानेपर तथा इन्द्रको निर्वासित कर दिये जानेपर देवमाता अपने पुत्रोंके पुनरुत्थानके लिये चिन्ता करने लगीं। राजन्! देवमाता अदितिने एक हजार वर्षोंतक परम दुष्कर तप किया। उस समय वे मौन होकर वायुका आहार करती हुई श्रीकृष्णकी आराधनामें तत्पर थीं। कुरुनन्दन! वे अपने पुत्रोंको दैत्योंद्वारा तिरस्कृत हुआ देखकर 'मैं निष्फल पुत्रवाली हूँ', इस दुःखसे दुःखी होकर श्रीहरिकी शरणागत हुई। तत्पश्चात् परमार्थको समझनेवाली अदिति देवाधिदेव, इन्द्रियोंके स्वामी, सर्वव्यापी श्रीहरिको नमस्कार कर अभीष्ट वाणीद्वारा उनकी स्तुति करने लगीं॥ ७—११॥

अदितिरुवाच

नमः सर्वार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने।
नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेधसे॥ १२
नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये।
श्रियः कान्ताय दान्ताय परमार्थाय चक्रिणे॥ १३
नमः पङ्कजसम्भूतिसम्भवायात्मयोनये।
नमः शङ्खासिहस्ताय नमः कनकरेतसे॥ १४
तथाऽऽत्मज्ञानविज्ञानयोगिचिन्त्यात्मयोगिने।
निर्गुणायाविशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे॥ १५
जगत्प्रतिष्ठितं यत्र जगतां यो न दृश्यते।
नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे॥ १६
यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः।
अपश्यद्भिर्जगत्यत्र स देवो हृदि संस्थितः॥ १७
यस्मिन्नेव विनश्येत यस्यैतदखिलं जगत्।
तस्मै समस्तजगतामाधाराय नमो नमः॥ १८
आद्यः प्रजापतिपतिर्यः प्रभूणां पतिः परः।
पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे॥ १९

अदिति बोलीं—सभीके दुःखोंका नाश करनेवाले आपको नमस्कार है। कमल-मालाधारीको प्रणाम है। परम कल्याणके भी कल्याणस्वरूप एवं आदिविधाताको अभिवादन है। आप कमलनेत्र, कमलनाभि, लक्ष्मीपति, दमनकर्ता, परमार्थस्वरूप और चक्रधारी हैं, आपको बारंबार नमस्कार है। ब्रह्माकी उत्पत्तिके स्थानस्वरूप एवं आत्मयोनिको प्रणाम है। आप हाथोंमें शङ्ख और खड्ग धारण करनेवाले एवं स्वर्णरेता हैं, आपको बारंबार अभिवादन है। आप आत्मज्ञान-विज्ञानके योगियोंद्वारा चिन्तनीय, आत्मयोगी, निर्गुण, अविशेष, ब्रह्मस्वरूप श्रीहरि हैं। आप समस्त जगत्‌में स्थित हैं, परंतु जगत्‌द्वारा देखे नहीं जाते, आप स्थूल और अति सूक्ष्मस्वरूप हैं आप शार्ङ्ग-धनुषधारी देवको नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्‌को देखते हुए भी मनुष्य जिसे देख नहीं पाते, वह देवता इस जगत्‌में उन्हींके हृदयमें स्थित हैं। यह सारा जगत् उन्हींमें लीन हो जाता है। जिसका यह समस्त जगत् है और जो समस्त जगत्‌के आधार हैं, उन्हें बारंबार प्रणाम है। जो आद्य प्रजापतियोंमें अग्रगण्य, प्रभुओंके भी प्रभु, परात्पर और देवताओंके स्वामी हैं, उन आदिकर्ता कृष्णको

यः प्रवृत्तौ निवृत्तौ च इज्यते कर्मभिः स्वकैः।
स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते॥ २०
यश्चिन्त्यमानो मनसा सद्यः पापं व्यपोहति।
नमस्तस्मै विशुद्धाय पराय हरिवेधसे॥ २१
यं बुद्ध्वा सर्वभूतानि देवदेवेशमव्ययम्।
न पुनर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति नमामि तम्॥ २२
यो यज्ञे यज्ञपरमैरीज्यते यज्ञसंज्ञितः।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम्॥ २३

अभिवादन है। जो प्रवृत्ति और निवृत्तिमें अपने कर्मोंद्वारा पूजित होते हैं तथा स्वर्ग और अपवर्गके फलदाता हैं, उन गदाधारीको नमस्कार है। जो मनसे चिन्तन किये जानेपर शीघ्र ही पापको नष्ट कर देते हैं, उन आदिकर्ता परात्पर विशुद्ध हरिको प्रणाम है। समस्त प्राणी जिन अविनाशी देवदेवेश्वरको जानकर पुनः जन्म-मरणको नहीं प्राप्त होते, उन्हें अभिवादन है। जो यज्ञपरायण लोगोंद्वारा यज्ञमें यज्ञनामसे पूजित होते हैं, उन सामर्थ्यशाली परमेश्वर यज्ञपुरुष विष्णुको मैं नमस्कार करती हूँ॥ १२—२३॥

गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्भिर्विदां पतिः।
यस्तस्मै वेदवेद्याय विष्णवे जिष्णवे नमः॥ २४
यतो विश्वं समुत्पन्नं यस्मिंश्च लयमेष्यति।
विश्वागमप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने॥ २५
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं येन विश्वमिदं ततम्।
मायाजालं समुत्तर्तुं तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ २६
यस्तु तोयस्वरूपस्थो बिभर्त्यखिलमीश्वरः।
विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम्॥ २७
यमाराध्य विशुद्धेन मनसा कर्मणा गिरा।
तरन्त्यविद्यामखिलां तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ २८
विषादतोषरोषाद्यैर्योऽजस्रं सुखदुःखजैः।
नृत्यत्यखिलभूतस्थस्तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ २९
मूर्तं तमोऽसुरमयं तद्वधाद् विनिहन्ति यः।
रात्रिजं सूर्यरूपीव तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३०
कपिलादिस्वरूपस्थो यश्चाज्ञानमयं तमः।
हन्ति ज्ञानप्रदानेन तमुपेन्द्रं नमाम्यहम्॥ ३१
यस्याक्षिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम्।
पश्यतः कर्म सततमुपेन्द्रं तं नमाम्यहम्॥ ३२
यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वं सत्यमेतन्मयोदितम्।
नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाप्ययम्॥ ३३
यच्च तत्सत्यमुक्तं मे भूयांश्चातो जनार्दनः।
सत्येन तेन सकलाः पूर्यन्तां मे मनोरथाः॥ ३४

विद्वानोंके स्वामी जो भगवान् वेदवेत्ताओंद्वारा सम्पूर्ण वेदोंमें गाये जाते हैं, उन वेदोंद्वारा जाननेयोग्य विजयशील विष्णुको प्रणाम है। जिससे विश्व उत्पन्न हुआ है और जिसमें वह लीन हो जायगा, उन वेद-मर्यादाके रक्षक महात्मा विष्णुको अभिवादन है। जिसके द्वारा ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त इस विश्वका विस्तार हुआ है, उन उपेन्द्रको मायाजालसे उद्धार पानेके लिये मैं नमस्कार करती हूँ। जो ईश्वर जलरूपसे स्थित होकर सम्पूर्ण विश्वका भरण-पोषण करते हैं, उन विश्वेश्वर प्रजापति विष्णुको मैं प्रणाम करती हूँ। विशुद्ध मन, वचन एवं कर्मद्वारा जिनकी आराधना कर मनुष्य सम्पूर्ण अविद्याको पार कर जाते हैं, उन उपेन्द्रको मैं अभिवादन करती हूँ। जो सभी चराचर जीवोंमें विद्यमान रहकर सुख-दुःखसे उत्पन्न हुए दुःख, संतोष और क्रोध आदिके वशीभूत हो निरन्तर नाचते रहते हैं, उन उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूँ। जो रात्रिजन्य अन्धकारको सूर्यकी तरह असुरमय मूर्तिमान् अन्धकारका विनाश करते हैं, उन उपेन्द्रको मैं प्रणाम करती हूँ। जो कपिल आदि महर्षियोंके रूपमें स्थित होकर ज्ञानदानद्वारा अज्ञानान्धकारको दूर करते हैं, उन उपेन्द्रको मैं अभिवादन करती हूँ। जिनके नेत्रस्वरूप चन्द्रमा और सूर्य समस्त संसारके शुभाशुभ कर्मोंको बराबर देखते रहते हैं, उन उपेन्द्रको मैं नमस्कार करती हूँ। जिन सर्वेश्वरके लिये मैंने इन सभी विशेषणोंको सत्यरूपसे वर्णन किया है, मिथ्या नहीं, उन अजन्मा एवं उत्पत्ति-विनाशके कारणभूत विष्णुको मैं प्रणाम करती हूँ। मैंने उनके विषयमें जितनी सत्य बातें कही हैं, जनार्दन उससे भी बढ़कर हैं। इस सत्यके फलस्वरूप मेरे सभी मनोरथ पूर्ण हो जायँ॥ २४—३४॥

शौनक उवाच

एवं स्तुतः स भगवान् वासुदेव उवाच ताम्।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः॥ ३५

श्रीभगवानुवाच

मनोरथांस्त्वमदिते यानिच्छस्यभिवाञ्छितान्।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः॥ ३६
शृणुष्व सुमहाभागे वरो यस्ते हृदि स्थितः।
तमाशु व्रियतां कामं श्रेयस्ते सम्भविष्यति।
मद्दर्शनं हि विफलं न कदाचिद् भविष्यति॥ ३७

अदितिरुवाच

यदि देव प्रसन्नस्त्वं मद्भक्त्या भक्तवत्सल।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासवः॥ ३८
हृतं राज्यं हृताश्चास्य यज्ञभागा महासुरैः।
त्वयि प्रसन्ने वरदे तान् प्राप्नोतु सुतो मम॥ ३९
हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव।
सापत्नाद् दायनिर्भ्रंशो बाधां नः कुरुते हृदि॥ ४०

श्रीभगवानुवाच

कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितः।
स्वांशेन चैव ते गर्भे सम्भविष्यामि कश्यपात्॥ ४१
तव गर्भसमुद्भूतस्ततस्ते ये सुरारयः।
तानहं निहनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि॥ ४२

अदितिरुवाच

प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभावन।
नाहं त्वामुदरे देव वोढुं शक्ष्यामि केशव॥ ४३
यस्मिन् प्रतिष्ठितं विश्वं यो विश्वं स्वयमीश्वरः।
तमहं नोदरेण त्वां वोढुं शक्ष्यामि दुर्धरम्॥ ४४

श्रीभगवानुवाच

सत्यमात्थ महाभागे मयि सर्वमिदं जगत्।
प्रतिष्ठितं न मां शक्ता वोढुं सेन्द्रा दिवौकसः॥ ४५
किंत्वहं सकलाँल्लोकान् सदेवासुरमानुषान्।
जङ्गमान् स्थावरान् सर्वांस्त्वां च देवि सकश्यपाम्।
धारयिष्यामि भद्रं ते तदलं सम्भ्रमेण ते॥ ४६

शौनकजीने कहा—इस प्रकार स्तुति किये जानेपर भगवान् वासुदेव, जो समस्त प्राणियोंके लिये अदर्शनीय हैं, अदितिके समक्ष उपस्थित होकर उनसे इस प्रकार बोले॥ ३५॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—धर्मज्ञा अदिते! तुम जिन अभीष्ट मनोरथोंको प्राप्त करना चाहती हो उन्हें तुम मेरी कृपासे प्राप्त करोगी, इसमें संदेह नहीं है। महाभाग्यशालिनि! सुनो, तुम्हारे हृदयमें जो वरदान स्थित है उसे शीघ्र ही इच्छानुसार माँग लो। तुम्हारा कल्याण होगा; क्योंकि मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होता॥ ३६-३७॥

अदिति बोलीं—भक्तवत्सल देव! यदि आप मेरी भक्तिसे प्रसन्न हैं तो मेरा पुत्र इन्द्र पुनः त्रिलोकीका स्वामी हो जाय। महान् असुरोंद्वारा मेरे पुत्रका राज्य छीन लिया गया है तथा उसके यज्ञभागोंपर भी अधिकार कर लिया गया है। अब आप-जैसे वरदानीके प्रसन्न हो जानेपर मेरा पुत्र पुनः उन्हें प्राप्त करे। केशव! मेरे पुत्रका छीना हुआ राज्य मुझे उतना कष्ट नहीं दे रहा है, जितना सौतेले पुत्रोंद्वारा मेरे पुत्रोंका अपने हिस्सेसे भ्रष्ट हो जाना मेरे हृदयमें चुभ रहा है॥ ३८—४०॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवि! मैंने तुम्हारे इच्छानुसार तुमपर कृपा की है। मैं अपने अंशसे युक्त कश्यपके सम्पर्कसे तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होऊँगा। इस प्रकार तुम्हारे गर्भसे उत्पन्न होकर मैं देवताओंके उन सभी शत्रुओंका वध करूँगा। नन्दिनि! अब तुम तपसे निवृत्त हो जाओ॥ ४१-४२॥

अदिति बोलीं—जगत्कर्ता देवेश्वर! आपको नमस्कार है। आप मुझपर कृपा कीजिये। केशव! मैं आपको गर्भमें धारण करनेमें समर्थ नहीं हो सकती। यह सारा विश्व जिसमें स्थित है तथा जो स्वयं इस विश्वके स्वामी हैं, उन दुर्धर्ष आपको मैं अपने गर्भमें धारण करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ॥ ४३-४४॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—महाभागे! तुम सच कह रही हो। यह सारा जगत् मुझमें स्थित है, अतः इन्द्रसहित समस्त देवता मेरा भार वहन करनेमें समर्थ नहीं हो सकते, किंतु देवि! मैं देवताओं, असुरों और मनुष्योंसहित सभी लोकोंको, सम्पूर्ण चराचरको तथा कश्यपसहित तुमको धारण करूँगा। तुम्हारा कल्याण हो,

न ते ग्लानिर्न ते खेदो गर्भस्थे भविता मयि।
दाक्षायणि प्रसादं ते करोम्यन्यैः सुदुर्लभम्॥ ४७

गर्भस्थे मयि पुत्राणां तव योऽरिर्भविष्यति।
तेजसस्तस्य हानिं च करिष्ये मा व्यथां कृथाः॥ ४८

अब तुम्हें विकल नहीं होना चाहिये। तुम्हारे गर्भमें मेरे स्थित होनेपर तुम्हें न तो ग्लानि होगी, न खेद होगा। दाक्षायणि! मैं तुमपर ऐसी कृपा करूँगा जो दूसरोंके लिये परम दुर्लभ है। मेरे गर्भमें स्थित रहनेपर तुम्हारे पुत्रोंका जो शत्रु होगा उसके तेजोबलको मैं विनष्ट कर दूँगा। तुम दुःख मत करो॥ ४५—४८॥

शौनक उवाच

एवमुक्त्वा ततः सद्यो यातोऽन्तर्धानमीश्वरः।
सापि कालेन तं गर्भमवाप कुरुसत्तम॥ ४९

गर्भस्थिते ततः कृष्णे चचाल सकला क्षितिः।
चकम्पिरे महाशैलाः क्षोभं जग्मुस्तथाब्धयः॥ ५०

यतो यतोऽदितिर्याति ददाति ललितं पदम्।
ततस्ततः क्षितिः खेदान्ननाम वसुधाधिप॥ ५१

दैत्यानामथ सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने।
बभूव तेजसां हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना॥ ५२

शौनकजी बोले—कुरुश्रेष्ठ! ऐसा कहकर भगवान् तुरंत अन्तर्हित हो गये। समयानुसार अदितिने भी उस गर्भको धारण किया। भगवान् विष्णुके गर्भस्थित होनेपर सारी पृथ्वी डगमगाने लगी, बड़े-बड़े पर्वत काँपने लगे तथा समुद्रमें ज्वार-भाटा उठने लगा। वसुधाधिप! अदिति जिधर-जिधर जाती थीं और अपना सुन्दर पद रखती थीं, वहाँ-वहाँ भारके कारण पृथ्वी विनम्र हो जाती थी। भगवान् विष्णुके गर्भस्थ होनेपर सभी दैत्योंके तेज बिलकुल मन्द हो गये, जैसा कि भगवान्ने अदितिसे पहले कहा था॥ ४९—५२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावेऽदितिवरप्रदानं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वामनप्रादुर्भाव-प्रसंगमें अदितिको वरदान नामक दो सौ चौवालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४४॥

दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय

बलिद्वारा विष्णुकी निन्दापर प्रह्लादका उन्हें शाप, बलिका अनुनय, ब्रह्माजीद्वारा वामनभगवान्‌का स्तवन, भगवान् वामनका देवताओंको आश्वासन तथा उनका बलिके यज्ञके लिये प्रस्थान

शौनक उवाच

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम्॥ १

शौनकजीने कहा—असुरराज बलिने समस्त दैत्योंको निस्तेज देखकर अपने पितामह प्रह्लादसे प्रश्न किया॥ १॥

बलिरुवाच

तात निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव वह्निना।
किमेते सहसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव॥ २

अरिष्टं किं नु दैत्यानां किं कृत्या वैरिनिर्मिता।
नाशायैषा समुद्भूता यया निस्तेजसोऽसुराः॥ ३

बलिने पूछा—तात! क्या बात है कि आज सहसा ये दैत्यगण अग्निसे जले हुएके समान निस्तेज और ब्रह्मदण्डसे मारे हुएकी भाँति निर्बल दिखायी पड़ने लगे हैं? क्या दैत्योंके ऊपर कोई अरिष्ट आ गया है? या वैरियोंद्वारा निर्मित कोई कृत्या इनका विनाश करनेके लिये प्रकट हुई है, जिससे ये असुर तेजोहीन हो गये हैं?॥ २-३॥

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिर्धीरः पृष्टः पौत्रेण पार्थिव।
चिरं ध्यात्वा जगादैनमसुरेन्द्रं बलिं तदा॥ ४

प्रह्लाद उवाच

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहजां धृतिम्।
सर्वे समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः॥ ५
सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः।
देवानां च परा लक्ष्मीः कारणैरनुमीयते॥ ६
महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर।
न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं सुरार्दन॥ ७

शौनक उवाच

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः।
अत्यन्तभक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम्॥ ८
स ध्यानयोगं कृत्वाथ प्रह्लादः सुमनोहरम्।
विचारयामास ततो यतो देवो जनार्दनः॥ ९
स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम्।
अन्तःस्थान् बिभ्रतं सप्त लोकानादिप्रजापतिम्॥ १०
तदन्तःस्थान् वसून् रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा।
साध्यान् विश्वांस्तथादित्यान् गन्धर्वोरगराक्षसान्॥ ११
विरोचनं स्वतनयं बलिं चासुरनायकम्।
जम्भं कुजम्भं नरकं बाणमन्यांस्तथासुरान्॥ १२
आत्मानमुर्वीं गगनं वायुमम्भो हुताशनम्।
समुद्रान् वै द्रुमसरित्सरांसि च पशून् मृगान्॥ १३
वयोमनुष्यानखिलांस्तथैव च सरीसृपान्।
समस्तलोकस्रष्टारं ब्रह्माणं भवमेव च।
ग्रहनक्षत्रनागांश्च दक्षाद्यांश्च प्रजापतीन्॥ १४
स पश्यन् विस्मयाविष्टः प्रकृतिस्थःक्षणात् पुनः।
प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनिं तदा॥ १५

प्रह्लाद उवाच

वत्स ज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामियम्।
तेजसो हानिरुत्पन्ना तच्छृणु त्वमशेषतः॥ १६
देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिकृत्।
अनादिरादिर्विश्वस्य वरेण्यो वरदो हरिः॥ १७

शौनकजीने कहा—राजन्! इस प्रकार अपने पौत्र बलिद्वारा पूछे जानेपर धैर्यशाली दैत्यपति प्रह्लादने बहुत देरतक ध्यानकर उस असुरनायक बलिसे कहा॥ ४॥

प्रह्लाद बोले—दानवराज बलि! इस समय पर्वत काँप उठे हैं, पृथ्वीने अपनी स्वाभाविक धीरता छोड़ दी है, सभी समुद्र विक्षुब्ध हो उठे हैं और दैत्यगण तेजोहीन कर दिये गये हैं। ग्रहगण सूर्योदय होनेपर जिस प्रकार पहले सूर्यका अनुगमन करते थे वैसा अब नहीं कर रहे हैं। कुछ कारणोंसे ऐसा अनुमान होता है कि देवताओंकी विशेष अभ्युन्नति होनेवाली है। महाबाहो! इसका कोई महान् कारण है। सुरार्दन! तुम्हें इस कार्यको तुच्छ नहीं मानना चाहिये॥ ५—७॥

शौनकजीने कहा—परम भक्त असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद दानवराज बलिसे ऐसा कहकर मन-ही-मन देवेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये। तत्पश्चात् प्रह्लाद परम मनोहर ध्यानयोगका आश्रय लेकर देवाधिदेव जनार्दनका ध्यान करने लगे। तब उन्होंने अदितिके उदरमें वामनरूपमें उन आदिप्रजापतिको देखा जिनके भीतर सातों लोक विराजमान थे। उस समय प्रह्लादने भगवान्‌के भीतर वसु, रुद्र, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, साध्यगण, विश्वेदेव, आदित्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस, अपना पुत्र विरोचन, असुरराज बलि, जम्भ, कुजम्भ, नरक, बाण तथा अन्य असुरगण, स्वयं अपने-आप, पृथ्वी, आकाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्र, वृक्ष, नदियाँ, सरोवर, पशु, मृग, पक्षी, मनुष्य, सर्पादि जीव, सभी लोकोंके सृष्टिकर्ता ब्रह्मा, शिव, ग्रह, नक्षत्र, नाग तथा दक्ष आदि प्रजापतियोंको भी देखा। यह देखकर प्रह्लाद आश्चर्यचकित हो गये। पुनः क्षणभर बाद स्वस्थ होनेपर उन्होंने विरोचन-पुत्र असुरराज बलिसे इस प्रकार कहा॥ ८—१५॥

प्रह्लाद बोले—वत्स! जिस कारण तुम राक्षसोंके तेजकी यह हानि उत्पन्न हुई है उस सारे रहस्यको मैं जान गया। उसे तुम पूर्णरूपसे सुनो। जो देवाधिदेव, जगत्‌के उत्पत्तिस्थान, अजन्मा, जगत्‌के आदिकर्ता, अनादि, विश्वके आदि, सर्वश्रेष्ठ, वरदायक,

परावराणां परमः परः परवतामपि।
प्रमाणं च प्रमाणानां सप्तलोकगुरोर्गुरुः॥ १८
प्रभुः प्रभूणां परमः पराणा-
मनादिमध्यो भगवाननन्तः।
त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेष
कर्तुं महात्मादितिजोऽवतीर्णः॥ १९
न यस्य रुद्रो न च पद्मयोनि-
र्नेन्द्रो न सूर्येन्दुमरीचिमुख्याः।
जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं
स वासुदेवः कलयावतीर्णः॥ २०
योऽसौ कलांशेन नृसिंहरूपी
जघान पूर्वं पितरं ममेशः।
यः सर्वयोगीशमनोनिवासः
स वासुदेवः कलयावतीर्णः॥ २१
यमक्षरं वेदविदो विदित्वा
विशन्ति यज्ज्ञानविधूतपापाः।
यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति
तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम्॥ २२
भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति
यथोर्मयस्तोयनिधेरजस्त्रम्।
लयं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति
तं वासुदेवं प्रणमाम्यचिन्त्यम्॥ २३
न यस्य रूपं न बलप्रभावौ
न यस्य भावः परमस्य पुंसः।
विज्ञायते शर्वपितामहाद्यै-
स्तं वासुदेवं प्रणमाम्यजस्त्रम्॥ २४
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगिष्टा
स्पर्शे ग्रहीत्री रसना रसस्य।
श्रोत्रं च शब्दग्रहणे नराणां
घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तम्॥ २५
येनैकदंष्ट्राग्रसमुद्धृतेयं
धराचलान् धारयतीह सर्वान्।
यस्मिंश्च शेते सकलं जगच्च
तमीशमाद्यं प्रणतोऽस्मि विष्णुम्॥ २६

पापनाशक, परावरोंमें उत्तम, परात्पर, प्रमाणोंके प्रमाण, सातों लोकोंके गुरुके गुरु, प्रभुके प्रभु, पर-से-परे, आदि-मध्य-अन्तसे रहित तथा महान् आत्मबलसे सम्पन्न हैं, वे भगवान् अपने अंशसे त्रिलोकीको सनाथ करनेके लिये अदितिके गर्भसे अवतीर्ण हो रहे हैं। दैत्यपते! जिनके स्वरूपको रुद्र, पद्मयोनि ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा, मरीचि प्रभृति महर्षिगण नहीं जानते, वे भगवान् वासुदेव अपनी कलासे उत्पन्न हो रहे हैं। जिन भगवान्ने पूर्वकालमें अपनी एक कलाद्वारा नृसिंहरूपमें अवतीर्ण होकर मेरे पिता (हिरण्यकशिपु)-का वध किया था तथा जो सभी योगिराजोंके मनमें निवास करनेवाले हैं, वे भगवान् वासुदेव अपनी कलासे अवतीर्ण हो रहे हैं। जिनके ज्ञानसे पापमुक्त हुए वेदवेत्ता जिन अव्यय भगवान्को जानकर उनमें प्रवेश करते हैं तथा जिनमें प्रवेश कर पुनः जन्म नहीं धारण करते, उन भगवान् वासुदेवको मैं नित्य प्रणाम करता हूँ॥ १६—२२॥

समस्त प्राणी समुद्रसे लहरोंकी भाँति जिनसे निरन्तर उत्पन्न होते हैं और प्रलयकालमें पुनः जिनमें लय हो जाते हैं, उन अचिन्त्य वासुदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। जिन परम पुरुषके स्वरूप, बल, प्रभाव और भावको शिव तथा ब्रह्मा आदि देवगण भी नहीं समझ पाते, उन भगवान् वासुदेवको मैं सर्वदा नमस्कार करता हूँ। जिन भगवान् वासुदेवने मनुष्योंको स्वरूप देखनेके लिये नेत्र, स्पर्शके लिये चमड़ा, रसास्वादनके लिये जिह्वा, शब्द सुननेके लिये कान तथा सुगन्ध ग्रहण करनेके लिये नासिका दी है, जिन्होंने अपने एक दाँतके अग्रभागपर इस पृथ्वीको, जो सभी पर्वतोंको धारण करती है, धारण किया है, तथा जिनमें यह समस्त जगत् शयन करता है, उन आदिभूत भगवान् विष्णुको मैं नमस्कार करता हूँ।

न घ्राणचक्षुःश्रवणादिभिर्यः
सर्वेश्वरो वेदितुमक्षयात्मा।
शक्यस्तमीड्यं मनसैव देवं
ग्राह्यं नतोऽहं हरिमीशितारम्॥ २७
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे
हतानि तेजांसि महासुराणाम्।
नमामि तं देवमनन्तमीश-
मशेषसंसारतरोः कुठारम्॥ २८
देवो जगद्योनिरयं महात्मा
स षोडशांशेन महासुरेन्द्र।
स देवमातुर्जठरं प्रविष्टो
हतानि वस्तेन बलाद् वपूंषि॥ २९

जो अक्षयात्मा सर्वेश्वर नासिका, नेत्र और कान आदि इन्द्रियोंद्वारा जाने नहीं जा सकते, जिन्हें केवल मनद्वारा ग्रहण किया जा सकता है उन पूज्य परमेश्वर भगवान् विष्णुको मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होंने गर्भमें अपने अंशमात्रसे अवतीर्ण होकर बड़े-बड़े दैत्योंके तेजोंका हरण कर लिया है, जो समस्त संसाररूपी वृक्षके लिये कुठारस्वरूप हैं उन अनन्त परमात्मदेवको मैं नमस्कार करता हूँ। महासुरेन्द्र! जो ये महान् आत्मबलसे सम्पन्न एवं जगत्के उत्पत्तिस्थान भगवान् विष्णु हैं, ये अपने सोलह अंशोंसे माता अदितिके उदरमें प्रविष्ट हुए हैं, उन्होंने ही बलपूर्वक तुमलोगोंके शरीरको निस्तेज कर दिया है॥ २३—२९॥

बलिरुवाच

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम्।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवबलाधिकाः॥ ३०
विप्रचित्तिः शिविः शङ्कुरयःशङ्कुस्तथैव च।
अयःशिराश्चाश्वशिरा भङ्गकारी महाहनुः॥ ३१
प्रतापः प्रघसः शुम्भः कुकुरश्च सुदुर्जयः।
एते चान्ये च मे सन्ति दैतेया दानवास्तथा॥ ३२
महाबला महावीर्या भूभारोद्धरणक्षमाः।
एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्यार्धेन सम्मितः॥ ३३

बलिने कहा—तात! यह हरि कौन है जिससे हम लोगोंको भय प्राप्त हो गया है? मेरे पास तो उस वासुदेवसे भी अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। विप्रचित्ति, शिवि, शङ्कु, अयःशङ्कु, अयःशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकारी, महाहनु, प्रताप, प्रघस, शुम्भ, अत्यन्त कठिनाईसे जीतने योग्य कुकुर—ये तथा इनके अतिरिक्त और भी दैत्य एवं दानव मेरे अधिकारमें हैं। ये सभी महाबली, महान् पराक्रमी तथा पृथ्वीके भारको उठानेमें समर्थ हैं। इनमेंसे एक-एकके आधे पराक्रमसे भी कृष्णकी कोई समानता नहीं है॥ ३०—३३॥

शौनक उवाच

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यपुंगवः।
धिग्धिगित्याह स बलिं वैकुण्ठाक्षेपवादिनम्॥ ३४

शौनकजी बोले—दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद अपने पौत्रकी यह बात सुनकर भगवान्‌की निन्दा करनेवाले उस बलिको धिक्कारते हुए बोले॥ ३४॥

प्रह्लाद उवाच

विनाशमुपयास्यन्ति मन्ये दैतेयदानवाः।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान्॥ ३५
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम्।
त्वामृते पापसंकल्पः कोऽन्य एवं वदिष्यति॥ ३६
य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः।
सब्रह्मकास्तथा देवाः स्थावरानन्तभूमयः॥ ३७
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीनदम्।
समुद्रद्वीपलोकाश्च न समं केशवस्य हि॥ ३८

प्रह्लादने कहा—मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जिनका तुम-जैसा अविवेकी एवं दुर्बुद्धि राजा है, उन दैत्यों और दानवोंका विनाश हो जायगा। तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कौन ऐसा पापी होगा जो देवाधिदेव, महाभाग, अजन्मा एवं सर्वव्यापी वासुदेवको ऐसा कहेगा? तुमने जिनका नाम गिनाया है ये सभी दैत्य-दानव, ब्रह्मासहित देवगण, चराचर जगत्, तुम, मैं, पर्वत, वृक्ष, नदी और नदोंसहित यह संसार, समुद्र, द्वीप और लोक—ये सभी भगवान् केशवकी समानता नहीं कर सकते।

यस्यातिवन्द्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः।
एकांशेन जगत् सर्वं कस्तमेवं प्रवक्ष्यति॥ ३९

ऋते विनाशाभिमुखं त्वामेकमविवेकिनम्।
कुबुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शासनातिगम्॥ ४०

शोच्योऽहं यस्य मे गेहे जातस्तव पिताधमः।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवस्य निन्दकः॥ ४१

तिष्ठत्वेषा हि संसारसम्भृताघविनाशिनी।
कृष्णे भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम्॥ ४२

न मे प्रियतमः कृष्णादपि देहो महात्मनः।
इति जानात्ययं लोको न भवान् दितिजाधम॥ ४३

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम।
निन्दां करोषि तस्य त्वमकुर्वन् गौरवं मम॥ ४४

विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले।
ममापि सर्वजगतां गुरोर्नारायणो गुरुः॥ ४५

निन्दां करोषि यस्तस्मिन् कृष्णे गुरुगुरोर्गुरौ।
यस्मात्तस्मादिहैश्वर्यादचिराद् भ्रंशमेष्यसि॥ ४६

मम देवो जगन्नाथो बले तावज्जनार्दनः।
भवत्वहमुपेक्ष्यस्ते प्रीतिमानस्तु मे गुरुः॥ ४७

एतावन्मात्रमप्येवं निन्दितस्त्रिजगद्गुरुः।
नावेक्षितं त्वया यस्मात् तस्माच्छापं ददामि ते॥ ४८

यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं वचः।
त्वयोक्तमच्युताक्षेपि राज्यभ्रष्टस्तथा पत॥ ४९

यथा च कृष्णान्न परं परित्राणं भवार्णवे।
तथाचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम्॥ ५०

शौनक उवाच

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा गुरोर्वचनमप्रियम्।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः॥ ५१

जिन सर्वव्यापी एवं वन्दनीयोंके भी वन्दनीय परमात्माके एक अंशसे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है, उन्हें अकेले तुम-जैसे अविवेकी, विनाशोन्मुख, कुबुद्धि, अजितात्मा, वृद्धोंकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवालेके सिवा दूसरा कौन ऐसा कहेगा? अब तो शोचनीय मैं हुआ, जिसके घरमें तुम्हारा नीच पिता उत्पन्न हुआ, जिसके तुम इस प्रकार देवाधिदेव विष्णुकी निन्दा करनेवाले पुत्र हुए। संसारमें जन्म लेकर उपार्जित किये गये पापोंको नष्ट करनेवाली भगवान् कृष्णके चरणोंमें हमारी भक्ति अक्षुण्ण बनी रहे, भले ही मैं तुम्हारे द्वारा अपमानित क्यों न होऊँ?॥ ३५—४२॥

दैत्याधम! भगवान् (विष्णु)-से बढ़कर मुझे अपना शरीर भी प्रिय नहीं है, इसे यह संसार जानता है, किंतु तुम्हें विदित नहीं है। मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय भगवान् विष्णुको जानते हुए भी तुम मेरे गौरवकी रक्षा न करते हुए उनकी निन्दा कर रहे हो। बलि! तुम्हारा गुरु विरोचन है और मैं उसका भी गुरु हूँ तथा मेरे एवं समस्त संसारके गुरुके भी गुरु नारायण हैं। चूँकि तुम उन गुरुओंके गुरु विष्णुकी निन्दा कर रहे हो, इसलिये इस लोकमें शीघ्र ही ऐश्वर्यसे भ्रष्ट हो जाओगे। बलि! जगदीश्वर जनार्दन मेरे देवता हैं। वे मेरे गुरु मुझपर प्रसन्न रहें, भले ही मैं तुम्हारे द्वारा उपेक्षित हो जाऊँ। (मुझे इसकी परवा नहीं है।) चूँकि तुमने बिना विचारे त्रिलोकीके गुरु भगवान्की जो इस प्रकार इतनी निन्दा की है, इसीलिये मैं तुम्हें शाप दे रहा हूँ। जिस प्रकार तुमने मेरा सिर काट लेनेसे भी बढ़कर यह भगवान् अच्युतकी निन्दा करनेवाला वचन कहा है, उसी प्रकार तुम राज्यसे भ्रष्ट होकर (अवनतिके गर्तमें) गिर जाओ। जिस प्रकार इस संसारसागरमें विष्णुसे बढ़कर अन्य कोई शरणदाता नहीं है, (मेरी यह बात सत्य है तो) मैं शीघ्र ही तुम्हें राज्यसे च्युत हुआ देखूँ॥ ४३—५०॥

शौनकजी बोले—दैत्यराज बलिने अपने पितामह प्रह्लादकी ऐसी अप्रिय बात सुनकर उन्हें बारम्बार प्रणाम कर सभी प्रकारसे प्रसन्न करते हुए इस प्रकार कहना आरम्भ किया॥ ५१॥

बलिरुवाच

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि।
बलावलेपमत्तेन मयैतद् वाक्यमीरितम्॥ ५२

मोहोपहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोत्तम।
यच्छप्तोऽस्मि दुराचारस्तत्साधु भवता कृतम्॥ ५३

राज्यभ्रंशं वसुभ्रंशं सम्प्राप्स्यामीति न त्वहम्।
विषण्णोऽस्मि यथा तात तवैवाविनये कृते॥ ५४

त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नाति दुर्लभम्।
संसारे दुर्लभास्ते तु गुरवो ये भवद्विधाः॥ ५५

तत् प्रसीद न मे कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप।
त्वत्कोपदृष्ट्या ताताहं परितप्ये न शापतः॥ ५६

बलिने कहा—तात! प्रसन्न हो जाइये। अज्ञानसे मारे हुए मुझपर क्रोध मत कीजिये। मैंने बलके गर्वसे उन्मत्त होकर ऐसी बात कह दी है। दैत्यश्रेष्ठ! मेरा सारा ज्ञान मोहसे नष्ट हो गया है, मैं पापी और दुराचारी हूँ। अतः आपने जो मुझे यह शाप दिया है, वह अच्छा ही किया है। तात! मैं राज्यसे च्युत और सम्पत्तिसे रहित हो जाऊँगा—इससे मैं उतना दुःखी नहीं हूँ जितना आपके साथ अविनयपूर्ण व्यवहार करनेसे मुझे कष्ट हो रहा है। त्रिलोकीका राज्य, ऐश्वर्य अथवा अन्य कोई भी वस्तु अत्यन्त दुर्लभ नहीं है, परंतु आपके समान जो गुरुजन हैं, वे विश्वमें अवश्य दुर्लभ हैं। इसलिये दैत्योंके पालक! आप प्रसन्न हो जाइये, मुझपर क्रोध न कीजिये। तात! मैं आपकी क्रोधपूर्ण दृष्टिसे दुःखी हो रहा हूँ, शापसे नहीं॥ ५२—५६॥

प्रह्लाद उवाच

वत्स कोपेन मोहो मे जनितस्तेन ते मया।
शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहृतो मम॥ ५७
यदि मोहेन मे ज्ञानं नाक्षिप्तं स्यान्महासुर।
तत्कथं सर्वगं जानन् हरिं कंचिच्छपाम्यहम्॥ ५८
योऽयं शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव।
भाव्यमेतेन नूनं ते तस्मान्मा त्वं विषीद वै॥ ५९
अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्यच्युते हरौ।
भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति॥ ६०
शापं प्राप्याथ मां वीर संस्मरेथाः स्मृतस्त्वया।
यथा तथा यतिष्येऽहं श्रेयसा योक्ष्यसे यथा॥ ६१
एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रं विरराम महामतिः।
अजायत स गोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः॥ ६२
अवतीर्णे जगन्नाथे तस्मिन् सर्वामरेश्वरे।
देवाश्च मुमुचुर्दुःखं देवमातादितिस्तथा॥ ६३
ववुर्वाताः सुखस्पर्शा विरजस्कमभून्नभः।
धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत॥ ६४
नोद्वेगश्चाप्यभूत् तत्र मनुजेन्द्रासुरेष्वपि।
तदादि सर्वभूतानां भूम्यम्बरदिवौकसाम्॥ ६५
तं जातमात्रं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः।
जातकर्मादिकं कृत्वा कृष्णं दृष्ट्वा च पार्थिव।
तुष्टाव देवदेवेशमृषीणां चैव शृण्वताम्॥ ६६

प्रह्लाद बोले—वत्स! कोपके कारण मुझे मोह उत्पन्न हो गया, जिससे अभिभूत होकर मैंने तुम्हें शाप दे दिया; क्योंकि मोहने मेरे विवेकको नष्ट कर दिया था। महासुर! यदि मोहके द्वारा मेरा ज्ञान नष्ट न हुआ होता तो भगवान् विष्णुको सर्वव्यापी जानता हुआ मैं शाप क्यों देता? असुरश्रेष्ठ! मैंने तुम्हें जो यह शाप दिया है, यह तुम्हारे लिये अवश्य घटित होगा, अतः तुम विषाद मत करो। आजसे जो देवेश्वर, कभी च्युत न होनेवाले और शास्ता हैं, उन भगवान् श्रीहरिके प्रति तुम भक्तिमान् हो जाओ। वे ही तुम्हारे रक्षक होंगे। वीर! इस शापके घटित होनेपर तुम मेरा स्मरण करना। तुम जैसे स्मरण करोगे वैसे ही मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा कि जिससे तुम कल्याणके भागी होओगे। दैत्यराज बलिसे ऐसा कहकर महामतिमान् प्रह्लाद चुप हो गये। उधर भगवान् गोविन्द वामनरूपमें प्रकट हुए। सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी उन जगन्नाथके अवतरित होनेपर देवगण तथा देवमाता अदिति दुःखसे विमुक्त हो गयीं। उस समय सुख-स्पर्शी वायु बहने लगी, आकाश निर्मल हो गया और सभी प्राणियोंकी बुद्धि धर्ममें संलग्न हो गयी। तभीसे राजाओं और राक्षसोंके तथा पृथ्वी, आकाश और स्वर्गमें निवास करनेवाले सभी जीवोंके मनोंमें उद्वेग नहीं हुआ। राजन्! भगवान्‌के उत्पन्न होते ही लोकपितामह भगवान् ब्रह्माने उनका जातकर्म आदि संस्कार किया। तत्पश्चात् उन देवदेवेश्वर श्रीविष्णुका दर्शन कर वे ऋषियोंके सुनते हुए उनकी स्तुति करने लगे॥ ५७—६६॥

ब्रह्मोवाच

जयाद्येश जयाजेय जय सर्वात्मकात्मक।
जय जन्मजरापेत जयानन्त जयाच्युत॥ ६७

जयाजित जयामेय जयाव्यक्तस्थिते जय।
परमार्थार्थ सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयात्मनिःसृत॥ ६८

जयाशेषजगत्साक्षिन् जगत्कर्तर्जगद्गुरो।
जगतोऽस्यन्तकृद् देव स्थिति पालयितुं जय॥ ६९

जय शेष जयाशेष जयाखिलहृदिस्थित।
जयादिमध्यान्त जय सर्वज्ञाननिधे जय॥ ७०

मुमुक्षुभिरनिर्देश्य स्वयंदृष्ट जयेश्वर।
योगिनां मुक्तिफलद दमादिगुणभूषण॥ ७१

जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय।
जय स्थूलातिसूक्ष्म त्वं जयातीन्द्रिय सेन्द्रिय॥ ७२

जय स्वमायायोगस्थ शेषभोगशयाक्षर।
जयैकदंष्ट्राप्रान्ताग्रसमुद्धृतवसुंधर ॥ ७३

नृकेसरिन् जयारातिवक्षःस्थलविदारण।
साम्प्रतं जय विश्वात्मन् जय वामन केशव॥ ७४

निजमायापटच्छन्न जगन्मूर्ते जनार्दन।
जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो॥ ७५

वर्धस्व वर्धिताशेषविकारप्रकृते हरे।
त्वय्येषा जगतामीशे संस्थिता धर्मपद्धतिः॥ ७६

न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राद्यास्त्रिदशा हरे।
न ज्ञातुमीशा मुनयः सनकाद्या न योगिनः॥ ७७

त्वन्मायापटसंवीतो जगत्यत्र जगत्पते।
कस्त्वां वेत्स्यति सर्वेश त्वत्प्रसादं विना नरः॥ ७८

त्वमेवाराधितो येन प्रसादसुमुख प्रभो।
स एव केवलो देव वेत्ति त्वां नेतरे जनाः॥ ७९

नन्दीश्वरेश्वरेशान प्रभो वर्धस्व वामन।
प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन् पृथुलोचन॥ ८०

ब्रह्मा बोले—आदि परमेश्वर! आपकी जय हो। अजेय! आपकी जय हो। सर्वात्मस्वरूप! आपकी जय हो। आप जन्म एवं वृद्धतासे विमुक्त, अन्तरहित तथा कभी च्युत होनेवाले नहीं हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आप अजित, अमेय और अव्यक्त स्थितिवाले हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आप परमार्थके प्रयोजनस्वरूप, सर्वज्ञ, ज्ञानद्वारा जानने योग्य और अपनी महिमासे प्रकट होनेवाले हैं, आपकी जय हो। आप सम्पूर्ण जगत्‌के साक्षी, जगत्‌के कर्ता और जगत्‌के गुरु हैं, आपकी जय हो। देव! आप जगत्‌की स्थिति, पालन और अन्त करनेवाले हैं, आपकी जय हो। आप शेषरूप, अशेषरूप तथा सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित रहनेवाले हैं, आपकी जय हो, जय हो, जय हो। आप जगत्‌के आदि, मध्य और अन्त हैं, आपकी जय हो। सर्वज्ञाननिधे! आपकी जय हो। आप मोक्षार्थीजनोंद्वारा अज्ञात, स्वयंदृष्ट, ईश्वर, योगियोंको मुक्तिरूप फल प्रदान करनेवाले और दम आदि गुणोंसे विभूषित हैं, आपकी जय हो। आप अत्यन्त सूक्ष्म, दुर्ज्ञेय, स्थूल, जगन्मय, इन्द्रियवान् और अतीन्द्रिय हैं, आपकी बारंबार जय हो। आप अपनी योगमायामें स्थित रहनेवाले, शेषनागके फणपर शयन करनेवाले और अव्यय हैं, आपकी जय हो। आप एक दाँतके अग्रभागपर वसुंधराको उठाकर रख लेनेवाले (आदिवराह) हैं, आपकी जय हो॥ ६७—७३॥

शत्रुके वक्षःस्थलको विदीर्ण करनेवाले नृसिंह! आपकी जय हो। विश्वात्मन्! इस समय आप वामन रूपमें प्रकट हैं, आपकी जय हो। केशव! आपकी जय हो। जगन्मूर्ति जनार्दन! आप अपनी मायाके आवरणसे छिपे रहते हैं, आपकी जय हो। प्रभो! आप अचिन्त्य, अनेक स्वरूप धारण करनेवाले और एकरूप हैं, आपकी जय हो। हरे! आप सम्पूर्ण प्रकृतिके विकारोंसे युक्त हैं, आपकी वृद्धि हो। आप परमेश्वरमें जगत्‌की यह धर्ममर्यादा स्थित है। हरे! न मैं, न शंकर, न इन्द्रादि देवगण, न सनकादि मुनिगण और न योगीजन ही आपको जाननेमें समर्थ हैं। जगदीश्वर सर्वेश! इस जगत्‌में आपकी मायारूपी वस्त्रसे लिपटा हुआ कौन मनुष्य आपकी कृपाके बिना आपको जान सकता है। प्रसन्नतासे सुन्दर मुखवाले देव! जिसने आपकी आराधना की है, केवल वही आपको जानता है, अन्य लोग नहीं। विश्वात्मन्! आप बड़े-बड़े नेत्रोंसे सुशोभित एवं नन्दीश्वरके स्वामी शंकररूप हैं। सामर्थ्यशाली वामन! आप इस विश्वकी उन्नतिके लिये वृद्धिको प्राप्त हों॥ ७४—८०॥

शौनक उवाच

एवं स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः।
प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचाब्जसमुद्भवम्॥ ८१
स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्राद्यैः कश्यपेन च।
मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम्॥ ८२
भूयश्चाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि प्रतिश्रुतम्।
यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्टकम्॥ ८३
सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः।
भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद् ब्रवीमि वः॥ ८४
ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान्।
यज्ञोपवीतं भगवान् ददौ तस्मै बृहस्पतिः॥ ८५
आषाढमददाद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः।
कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं वेदमथाङ्गिराः॥ ८६
अक्षसूत्रं च पुलहः पुलस्त्यः सितवाससी।
उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः॥ ८७
शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः।
स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः॥ ८८
सर्वदेवमयो भूप बलेरध्वरमभ्यगात्।
यत्र यत्र पदं भूयो भूभागे वामनो ददौ॥ ८९
ददाति भूमिर्विवरं तत्र तत्रातिपीडिता।
स वामनो जडगतिर्मृदु गच्छन् सपर्वताम्।
साब्धिद्वीपवतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम्॥ ९०

शौनकजी बोले—राजन्! ब्रह्माद्वारा इस प्रकार स्तुति किये जानेपर वामनस्वरूपधारी भगवान् हृषीकेशने उस समय हँसकर कमलजन्मा ब्रह्मासे भावोंसे युक्त गम्भीर वाणीमें कहा—'ब्रह्मन्! प्राचीनकालमें इन्द्रादि देवताओंके साथ कश्यपने तथा आपने मेरी स्तुति की थी, उस समय मैंने आपलोगोंसे इन्द्रको त्रिभुवन दिलानेकी प्रतिज्ञा की थी। पुनः अदितिने भी मेरी स्तुति की थी और मैंने उससे भी प्रतिज्ञा की थी कि इन्द्रको कण्टकरहित त्रिलोकीका राज्य समर्पित करूँगा। वही मैं ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे सहस्राक्ष इन्द्र पुनः जगत्के अधिपति होंगे, यह मैं आपलोगोंसे सत्य कह रहा हूँ।' तदनन्तर ब्रह्माने हृषीकेशको कृष्णमृगका चर्म दिया। भगवान् बृहस्पतिने उन्हें यज्ञोपवीत प्रदान किया। ब्रह्माके पुत्र महर्षि मरीचिने उन्हें पलाश-दण्ड, वसिष्ठने कमण्डलु, अङ्गिराने कुशासन और वेद, पुलहने अक्षसूत्र तथा पुलस्त्यने दो श्वेत वस्त्र समर्पित किये। फिर प्रणवके स्वरोंसे विभूषित वेद, सम्पूर्ण शास्त्र और सांख्ययोगकी उक्तियाँ उनके निकट उपस्थित हुईं। राजन्! तत्पश्चात् सर्वदेवमय भगवान् वामन जटा, दण्ड, छत्र और कमण्डलु धारण करके बलिके यज्ञकी ओर प्रस्थित हुए। उस समय भगवान् वामन पृथ्वीतलपर जहाँ-जहाँ अपने चरणोंको रखते थे वहाँ-वहाँ अत्यन्त पीड़ित होनेके कारण पृथ्वीमें दरारें पड़ जाती थीं। इस प्रकार धीरे-धीरे मंद गतिसे चलते हुए भगवान् वामनने पर्वतों, समुद्रों और द्वीपोंसहित समूची पृथ्वीको चलायमान कर दिया॥ ८१—९०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावे वामनोत्पत्तिर्नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वामन-प्रादुर्भाव-प्रसंगमें वामन-जन्म नामक दो सौ पैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४५॥



दो सौ छियालीसवाँ अध्याय

बलि-शुक्र-संवाद, वामनका बलिके यज्ञमें पदार्पण, बलिद्वारा उन्हें तीन डग पृथ्वीका दान, वामनद्वारा बलिका बन्धन और वर प्रदान

शौनक उवाच

सपर्वतवनामुर्वीं दृष्ट्वा संक्षोभितां बलिः।
पप्रच्छोशनसं शुद्धं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः॥ १

आचार्य क्षोभमायाता साब्धिभूमृद्वना मही।
कस्माच्चनासुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति वह्नयः॥ २

इति पृष्टोऽथ बलिना काव्यो वेदविदां वरः।
उवाच दैत्याधिपतिं चिरं ध्यात्वा महामतिः॥ ३

अवतीर्णो जगद्योनिः कश्यपस्य गृहे हरिः।
वामनेनेह रूपेण जगदात्मा सनातनः॥ ४

स एष यज्ञमायाति तव दानवपुंगव।
तत्पादन्यासविक्षोभादियं प्रचलिता मही।
कम्पन्ते गिरयश्चामी क्षुभितो मकरालयः॥ ५

नैनं भूतपतिं भूमिः समर्था वोढुमीश्वरम्।
सदेवासुरगन्धर्वयक्षराक्षसकिंनराः॥ ६

अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः।
धारयत्यखिलान् देवो मन्वादींश्च महासुर॥ ७

इयमेव जगद्धेतोर्माया कृष्णस्य गह्वरी।
धार्यधारकभावेन यया सम्पीडितं जगत्॥ ८

तत्संनिधानादसुरा भागार्हा नासुरोत्तम।
भुञ्जते नासुरान् भागानमी तेनैव चाग्नयः॥ ९

शौनकजीने कहा—पर्वतों और काननोंसहित पृथ्वीको क्षुब्ध हुई देख बलिने शुद्धाचारी शुक्राचार्यको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और उनसे पूछा—'आचार्य! किस कारण समुद्र, पर्वत और वनोंसहित पृथ्वी संक्षुब्ध हो उठी है और यज्ञोंमें अग्नियाँ आसुरी भागोंको नहीं ग्रहण कर रही हैं?' बलिद्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर वेदज्ञोंमें श्रेष्ठ महाबुद्धिमान् शुक्राचार्य कुछ देरतक ध्यान करके दैत्यराज बलिसे बोले—'दानवश्रेष्ठ! जगत्के उत्पत्तिस्थान विश्वात्मा अविनाशी श्रीहरि वामनरूपसे कश्यपके गृहमें अवतीर्ण हुए हैं। वही इस समय तुम्हारे यज्ञमें पधार रहे हैं। उन्हींके पैर रखनेसे संक्षुब्ध होकर यह पृथ्वी डगमगा रही है, ये पर्वत काँप रहे हैं और समुद्र क्षुब्ध हो उठा है। देवता, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरोंसे भरी हुई पृथ्वी समस्त जीवोंके स्वामी इन ईश्वरको वहन करनेमें समर्थ नहीं है। महासुर! इन्हीं परमात्माने पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन और आकाशको धारण कर रखा है तथा ये ही देवेश्वर सम्पूर्ण मनु आदिको धारण करते हैं। जगत्के लिये भगवान् विष्णुकी यही दुर्गम माया है, जिसके द्वारा धार्य-धारकभावसे सारा जगत् पीड़ित हो रहा है। असुरोत्तम! उन्हीं भगवान्के समीपस्थ होनेसे असुरगण यज्ञमें अपने भागोंके अधिकारी नहीं रह गये। यही कारण है कि ये अग्नियाँ असुरोंके भागोंको ग्रहण नहीं कर रही हैं'॥ १—९॥

बलिरुवाच

धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम्।
यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन्मत्तः कोऽन्योऽधिकः पुमान्॥ १०

यं योगिनः सदा युक्ताः परमात्मानमव्ययम्।
द्रष्टुमिच्छन्ति देवेशं स मेऽध्वरमुपैष्यति॥ ११

होता भागप्रदोऽयं च यमुद्गाता च गायति।
तमध्वरेश्वरं विष्णुं मत्तः कोऽन्य उपैष्यति॥ १२

सर्वेश्वरेश्वरे कृष्णे मदध्वरमुपागते।
यन्मया काव्य कर्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि॥ १३

बलिने कहा—ब्रह्मन्! मैं धन्य और पुण्यात्मा हूँ जो मेरे यज्ञमें साक्षात् भगवान् यज्ञपति उपस्थित हो रहे हैं। अब मुझसे बढ़कर दूसरा कौन पुरुष है? योगाभ्यासमें लगे हुए योगी जिन अविनाशी देवाधिदेव परमात्माको देखनेकी लालसा करते हैं, वे ही भगवान् मेरे यज्ञमें आ रहे हैं। होता जिन्हें यज्ञभाग प्रदान करते हैं और उद्गाता जिनका गान करते हैं, उन यज्ञपति विष्णुके निकट मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन जा सकता है। शुक्राचार्यजी! सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुके मेरे यज्ञमें पधारनेपर मेरा जो कर्तव्य हो, उसका मुझे आदेश दीजिये॥ १०—१३॥

शुक्र उवाच

यज्ञभागभुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर।
त्वया तु दानवा दैत्या मखभागभुजः कृताः॥ १४
अयं च देवः सत्त्वस्थः करोति स्थितिपालनम्।
विसृष्टेरनु चान्नेन स्वयमत्ति प्रजाः प्रभुः॥ १५
त्वत्कृते भविता नूनं देवो विष्णुः स्थितौ स्थितः।
विदित्वैतन्महाभाग कुरु यत्नमनागतम्॥ १६
त्वया हि दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि।
प्रतिज्ञा न हि वोढव्या वाच्यं साम वृथाफलम्॥ १७
नालं दातुमहं देव दैत्य वाच्यं त्वया वचः।
कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर॥ १८

शुक्रने कहा—असुर! वेदोंके प्रमाणानुसार देवगण ही यज्ञभागके अधिकारी हैं, किंतु तुमने तो दैत्यों और दानवोंको यज्ञभागका अधिकारी बना दिया है। ये सामर्थ्यशाली भगवान् सत्त्वगुणमें स्थित होकर सृष्टिकी उत्पत्ति और पालन करते हैं तथा प्रलयकालमें प्रजाओंको अपना ग्रास बना लेते हैं। महाभाग! वे भगवान् विष्णु तुम्हारे लिये ही भूतलपर अवतीर्ण हुए हैं, अतः इसे जानकर भविष्यके लिये उपाय करो। दैत्याधिपते! तुम उन्हें थोड़ी-सी भी वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा न करना, झूठ-मूठ ही नम्रतापूर्वक कुछ वचन कहना। महासुर! देवताओंकी उन्नतिके लिये प्रवृत्त हुए श्रीविष्णुसे तुम्हें ऐसा वचन कहना चाहिये कि 'देव! मैं आपको कुछ भी देनेमें समर्थ नहीं हूँ'॥ १४—१८॥

बलिरुवाच

ब्रह्मन् कथमहं ब्रूयामन्येनापि हि याचितः।
नास्तीति किमु देवेन संसाराघौघहारिणा॥ १९
व्रतोपवासैर्विविधैः प्रतिसंग्राह्यते हरिः।
स चेद् वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम्॥ २०
यदर्थमुपहाराढ्यास्तपःशौचगुणान्वितैः ।
यज्ञाः क्रियन्ते देवेशः स मां देहीति वक्ष्यति॥ २१
तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं मम।
यन्मया दत्तमीशेशः स्वयमादास्यते हरिः॥ २२
नास्ति नास्तीत्यहं वक्ष्ये तमप्यागतमीश्वरम्।
यदा वञ्चामि तं प्राप्तं वृथा तज्जन्मनः फलम्॥ २३
यज्ञेऽस्मिन् यदि यज्ञेशो याचते मां जनार्दनः।
निजमूर्धानमप्यत्र तद् दास्याम्यविचारितम्॥ २४
नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम्।
वक्ष्यामि कथमायाते तदनभ्यस्तमच्युते॥ २५
श्लाघ्य एव हि वीराणां दानादापत्समागमः।
नाबाधकारि यद् दानं तदमङ्गलवत् स्मृतम्॥ २६
मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न चातुरः।
नाभूषितो न चोद्विग्नो न स्रगादिविवर्जितः॥ २७
हृष्टस्तुष्टः सुगन्धिश्च तृप्तः सर्वसुखान्वितः।
जनः सर्वो महाभाग किमुताहं सदा सुखी॥ २८

बलिने कहा—ब्रह्मन्! साधारण याचकोंके याचना करनेपर मैंने उन्हें कभी नकारात्मक उत्तर नहीं दिया, फिर संसारके पापसमूहोंको दूर करनेवाले परमात्माद्वारा याचना किये जानेपर मैं कैसे कहूँगा कि मेरे पास नहीं है। भला, जो श्रीहरि विविध व्रतों और उपवासोंद्वारा प्राप्त किये जाते हैं, वे गोविन्द यदि ऐसा कहेंगे कि 'दो' तो इससे बढ़कर और क्या बात होगी? जिनकी प्राप्तिके लिये तप और शौच आदि गुणोंसे युक्त याज्ञिक लोग उपहार-सामग्रियोंसे परिपूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं, वे ही देवेश मुझसे 'दो' ऐसी याचना करेंगे। यदि देवाधिदेव श्रीहरि मेरे द्वारा दिये गये दानको स्वयं ग्रहण करेंगे, तब तो मेरे कर्म पुण्यमय हो गये और मेरी तपस्या सफल हो गयी। यदि मैं उन परमेश्वरके आनेपर भी 'नहीं है, नहीं है' ऐसा कहूँ और उन्हें ठगूँ, तब तो मेरे जन्म लेनेका फल ही व्यर्थ है। इसलिये इस यज्ञमें यदि यज्ञेश्वर जनार्दन मुझसे मेरा मस्तक भी माँगेंगे तो मैं उसे बिना हिचकिचाहटके दे डालूँगा। जब मैंने अन्य साधारण याचकोंको 'नहीं है' ऐसा कभी नहीं कहा, तब भला भगवान् अच्युतके आनेपर वह अनभ्यस्त शब्द कैसे कहूँगा? दान देनेसे आनेवाली विपत्तियाँ वीर पुरुषोंके लिये प्रशंसनीय हैं। जो दान देनेके बाद बाधा नहीं पहुँचाता, वह अमङ्गलके समान कहा गया है। महाभाग! मेरे राज्यमें कोई भी प्राणी दुःखी, दरिद्र, आतुर, भूषारहित, उद्विग्न और माला आदिसे रहित नहीं है, प्रत्युत सभी लोग हृष्ट, संतुष्ट, सुगन्धित द्रव्योंसे विभूषित, तृप्त और सभी सुखोंसे सम्पन्न हैं। फिर मैं सदा सुखी हूँ, इसके लिये तो कहना ही क्या है?॥ १९—२८॥

एतद्विशिष्टपात्रोऽयं दानबीजफलं मम।
विदितं भृगुशार्दूल मयैतत् त्वत्प्रसादतः॥ २९
एतद् विजानतो दानबीजं पतति चेद् गुरो।
जनार्दनमहापात्रे किं च प्राप्तं ततो मया॥ ३०
मत्तो दानमवाप्येशो यदि पुष्णाति देवताः।
उपभोगाद् दशगुणं दानं श्लाघ्यतमं मम॥ ३१
मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः।
तेनाभ्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकृत्॥ ३२
अथ कोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधिनम्।
मां निहन्तुमनाश्चैव वधः श्लाघ्यतरोऽच्युतात्॥ ३३
तन्मयं सर्वमेवेदं नाप्राप्यं यस्य विद्यते।
स मां याचितुमभ्येति नानुग्रहमृते हरिः॥ ३४
यः सृजत्यात्मभूः सर्वं चेतसैव च संहरेत्।
स मां हन्तुं हृषीकेशः कथं यत्नं करिष्यति॥ ३५
एतद् विदित्वा न गुरो दानविघ्नकरेण च।
त्वया भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते॥ ३६

शौनक उवाच

इत्येवं वदतस्तस्य सम्प्राप्तः स जगत्पतिः।
सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक्॥ ३७
तं दृष्ट्वा यज्ञवाटान्तःप्रविष्टमसुराः प्रभुम्।
जग्मुः सभासदः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः॥ ३८
जेपुश्च मुनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे।
बलिश्चैवाखिलं जन्म मेने सफलमात्मनः॥ ३९
ततः संक्षोभमापन्नो न कश्चित्किंचिदुक्तवान्।
प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास चेतसा॥ ४०
अथासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान्।
देवदेवपतिः साक्षी विष्णुर्वामनरूपधृक्॥ ४१
तुष्टाव यज्ञवह्निं च यजमानमथर्त्विजः।
यज्ञकर्माधिकारस्थान् सदस्यान् द्रव्यसम्पदः॥ ४२
ततः प्रसन्नमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणात्।
यज्ञवाटस्थितं वीरः साधु साध्वित्युदीरयन्॥ ४३

भृगुवंशसिंह! मेरे दानरूपी बीजका ही यह फल है, जो मुझे इस प्रकार दान देनेयोग्य विशिष्ट पात्र प्राप्त होगा। यह मुझे आपकी कृपासे ही ज्ञात हुआ है। अतः गुरो! यह सब जानते हुए यदि मेरा यह दानबीज जनार्दनरूपी महापात्रमें पड़ जाय तो फिर मुझे क्या नहीं मिला अर्थात् मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। यदि परमेश्वर मुझसे दान लेकर देवताओंका पालन-पोषण करते हैं तो उनके उपभोगसे मेरा दान दसगुना प्रशंसनीय हो जायगा। इसमें सन्देह नहीं कि यज्ञद्वारा आराधित श्रीहरि मुझपर प्रसन्न हो गये हैं, इसी कारण दर्शन देकर उपकार करनेके लिये यहाँ आ रहे हैं। यदि क्रुद्ध होकर देवभागको रोकनेवाले मुझको मार डालनेके विचारसे आ रहे हैं तो भगवान्‌के हाथोंसे मेरा वध भी प्रशंसनीय है! यह सब कुछ उन्हींका स्वरूप है। जिनके लिये कुछ भी अप्राप्य नहीं है, वे ही श्रीहरि यदि मुझसे माँगनेके लिये आ रहे हैं तो यह उनके अनुग्रहके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। जो स्वयम्भू परमात्मा सबकी सृष्टि करते हैं और मनकी कल्पनासे ही उसका विनाश कर देते हैं, वे हृषीकेश भला मुझे मारनेके लिये क्यों यत्न करेंगे? गुरो! ऐसा जानकर मेरे यज्ञमें जगन्नाथ गोविन्दके उपस्थित होनेपर आपको मेरे दानमें विघ्न नहीं करना चाहिये॥ २९—३६॥

शौनकजी बोले—बलि इस प्रकार कह ही रहे थे कि सर्वदेवमय, अचिन्त्य एवं मायासे वामनरूपधारी जगदीश्वर वहाँ आ पहुँचे। यज्ञशालाके भीतर प्रविष्ट हुए उन प्रभुको देखकर सभी सभासद असुरगण क्षुब्ध हो उठे; क्योंकि वामनके तेजसे वे तेजोहीन हो गये थे। उस महान् यज्ञमें आये हुए मुनिगण जप करने लगे। बलिने अपना समस्त जीवन सफल मान लिया। इसके बाद सभी संक्षुब्ध थे, अतः किसीने भी किसीसे कुछ भी नहीं कहा। सभीने हृदयसे देवदेवेशकी पूजा की। तत्पश्चात् देवाधिदेव वामनरूपधारी साक्षात् विष्णुने विनीत बलि और उन मुनिवरोंको देखकर यज्ञाग्नि, यज्ञकर्माधिकारी सदस्यों और यजमान, पुरोहित, कर्ममें प्रस्तुत द्रव्य-सम्पत्तियोंकी प्रशंसा की। तदनन्तर यज्ञशालामें स्थित वामनभगवान्‌को अत्यन्त प्रसन्न देखकर उसी समय सदस्यगण 'साधु-साधु' की ध्वनि करने लगे।

स चार्घमादाय बलिः प्रोद्भूतपुलकस्तदा।
पूजयामास गोविन्दं प्राह चेदं महासुरः॥ ४४

उसी समय रोमाञ्चित शरीरवाले महासुर बलिने अर्घ्य लेकर गोविन्दकी पूजा की और इस प्रकार कहा॥ ३७—४४॥

बलिरुवाच

सुवर्णरत्नसंघातं गजाश्वममितं तथा।
स्त्रियो वस्त्राण्यलङ्कारांस्तथा ग्रामांश्च पुष्कलान्॥ ४५
सर्वस्वं सकलामुर्वीं भवतो वा यदीप्सितम्।
तद् ददामि वृणुष्व त्वं येनार्थी वामनः प्रियः॥ ४६

बलिने कहा—सुवर्ण एवं रत्नोंके समूह, असंख्य हाथी-घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, आभूषण, प्रचुर गाँव, सर्वस्व सम्पत्ति तथा सम्पूर्ण पृथ्वी—इनमेंसे जो आपको अभीष्ट हो अथवा जिसके लिये आप वामनरूपसे आये हैं, उसे आप माँगिये। मैं आपको वह प्रदान करूँगा॥ ४५-४६॥

शौनक उवाच

इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः।
प्राह सस्मितगम्भीरं भगवान् वामनाकृतिः॥ ४७

शौनकजी बोले—दैत्यपति बलिके ऐसा कहनेपर गम्भीररूपसे मुसकराते हुए वामनरूपधारी भगवान् प्रेमभरी वाणीमें बोले॥ ४७॥

वामन उवाच

ममाग्निशरणार्थाय देहि राजन् पदत्रयम्।
सुवर्णग्रामरत्नानि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम्॥ ४८

वामनभगवान्ने कहा— राजन्! अग्निस्थापनके लिये मुझे तीन पग पृथ्वी दीजिये। सुवर्ण, ग्राम, रत्न आदि उनके याचकोंको प्रदान कीजिये॥ ४८॥

बलिरुवाच

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पादैः पदवतां वर।
शतं शतसहस्राणां पदानां मार्गतां भवान्॥ ४९

बलिने कहा—पदधारियोंमें श्रेष्ठ! तीन पग पृथ्वीसे आपका क्या काम चलेगा? आप सौ अथवा लाख पदोंके लिये याचना कीजिये॥ ४९॥

वामन उवाच

धर्मबुद्ध्या दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि तावता।
अन्येषामर्थिनां वित्तमीहितं दास्यते भवान्॥ ५०

वामनभगवान्ने कहा—दैत्यपते! मैं धर्मबुद्धिसे उतनेसे ही कृतार्थ हूँ। आप अन्य याचकोंको उनका अभीष्ट धन प्रदान कीजिये॥ ५०॥

शौनक उवाच

एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः।
ददौ तस्मै महाबाहुर्वामनाय पदत्रयम्॥ ५१
पाणौ तु पतिते तोये वामनोऽभूदवामनः।
सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणात्॥ ५२
चन्द्रसूर्यौ च नयने द्यौर्मूर्धा चरणौ क्षितिः।
पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः॥ ५३
विश्वेदेवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः।
यक्षा नखेषु सम्भूता रेखाश्चाप्सरसस्तथा॥ ५४
दृष्टौ ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः।
तारका रोमकूपाणि रोमाणि च महर्षयः॥ ५५
बाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः।
अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः॥ ५६
प्रसादश्चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः।
सत्यं तस्याभवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती॥ ५७
ग्रीवादितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा।
स्वर्गद्वारमभून्मैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ॥ ५८

शौनकजी बोले—महात्मा वामनकी ऐसी बातें सुनकर महाबाहु बलिने उन वामनको तीन पग भूमि देनेका संकल्प कर लिया। हाथमें संकल्पका जल गिरते ही वामन अवामन हो गये और उन्होंने उसी क्षण अपना सर्वदेवमय रूप प्रकट कर दिया। चन्द्र-सूर्य उनके नेत्र, आकाश मस्तक, पृथ्वी दोनों चरण, पिशाचगण पैरोंकी अंगुलियाँ, गुह्यक हाथोंकी अंगुलियाँ, विश्वेदेव घुटने, सुरश्रेष्ठ साध्यगण जंघे थे। नखोंमें यक्ष, रेखाओंमें अप्सराएँ, नेत्रज्योतिमें नक्षत्रगण थे। सूर्यकिरणें केश, ताराएँ रोमकूप, महर्षिगण रोमावलि थे। उन महात्माकी भुजाओंमें दिशाओंके कोण और श्रोत्रोंमें दिशाएँ थीं। श्रवणेन्द्रियमें अश्विनीकुमार और नासिकामें वायुका निवास था। प्रसन्नतामें चन्द्रदेव और मनमें धर्म स्थित थे। सत्य उनकी वाणी और सरस्वती देवी जिह्वा हुई। देवमाता अदिति ग्रीवा, विद्याएँ वलय, स्वर्गद्वार मैत्री, त्वष्टा और पूषा दोनों भौंह थे।

मुखं वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः।
हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कश्यपो मुनिः॥ ५९
पृष्ठेऽस्य वसवो देवा मरुतः सर्वसंधिषु।
सर्वसूक्तानि दशना ज्योतींषि विमलप्रभाः॥ ६०
वक्षःस्थले महादेवो धैर्ये चास्य महार्णवाः।
उदरे चास्य गन्धर्वाः सम्भूताश्च महाबलाः॥ ६१
लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः।
सर्वज्योतींषि जानीहि तस्य तत्परमं महः॥ ६२
तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतमुत्तमम्।
स्तनौ कुक्षी च वेदाश्च उदरं च महामखाः॥ ६३
इष्टयः पशुबन्धाश्च द्विजानां चेष्टितानि च।
तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महाबलाः॥ ६४
उपासर्पन्त दैत्येन्द्राः पतङ्गा इव पावकम्।
प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः॥ ६५
कृत्वा रूपं महाकायं जहाराशु स मेदिनीम्।
तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे॥ ६६
नाभौ विक्रममाणस्य सक्थिदेशस्थितावुभौ।
परं विक्रमतस्तस्य जानुमूले प्रभाकरौ॥ ६७
विष्णोरास्तां महीपाल देवपालनकर्मणि।
जित्वा लोकत्रयं कृत्स्नं हत्वा चासुरपुंगवान्॥ ६८
पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुरुक्रमः।
सुतलं नाम पातालमधस्ताद् वसुधातलात्॥ ६९
बलेर्दत्तं भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना।
अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः॥ ७०

श्रीभगवानुवाच

यत् त्वया सलिलं दत्तं गृहीतं पाणिना मया।
कल्पप्रमाणं तस्मात् ते भविष्यत्यायुरुत्तमम्॥ ७१
वैवस्वते तथातीते बले मन्वन्तरे ह्यथ।
सावर्णिके तु सम्प्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति॥ ७२
साम्प्रतं देवराजाय त्रैलोक्यं सकलं मया।
दत्तं चतुर्युगाणां च साधिका ह्येकसप्ततिः॥ ७३
नियन्तव्या मया सर्वे ये तस्य परिपन्थिनः।
तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले॥ ७४

वैश्वानर उनके मुख, प्रजापति अण्डकोष, परब्रह्म हृदय और कश्यप मुनि पुंस्त्व थे। उनके पीठ-भागमें वसुगण और संधिभागोंमें मरुद्गण थे। सभी सूक्त दाँत और निर्मल कान्ति ज्योतिर्गण थे॥ ५९—६०॥

उनके वक्षःस्थलमें महादेव और धैर्यमें महासागर थे। उनके उदरमें महाबली गन्धर्व उत्पन्न हुए थे। लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति और सभी विद्याएँ उनके कटिप्रदेशमें थीं। सभी ज्योतियोंको उनका परम तेज जानना चाहिये। वहाँ उन देवाधिदेवका अनुपम तेज भासमान हो रहा था। उनके स्तनों और कुक्षियोंमें वेदोंका निवास था तथा उदरमें महायज्ञ, इष्टियाँ, पशुओंके बलिदान और ब्राह्मणोंकी चेष्टाएँ थीं। उन विष्णुके देवमय स्वरूपको देखकर महाबली दैत्यगण अग्निमें पतंगोंकी भाँति उनपर टूट पड़े। तब सर्वव्यापी परमात्माने उन सभी असुरोंको पैरों तथा हाथोंके चपेटसे मसल डाला और शीघ्र ही विशालकाय स्वरूप धारणकर सारी पृथ्वीको अपने वशमें कर लिया। भूलोकको नापते समय चन्द्रमा और सूर्य भगवान्‌के स्तनोंके मध्यभागमें थे, अन्तरिक्षलोक नापते समय वे दोनों नाभिप्रदेशमें और उससे ऊपर जाते समय सक्थि भागमें आ गये। उससे भी ऊपर जाते समय वे दोनों प्रकाश फैलानेवाले चन्द्रमा और सूर्य भगवान् विष्णुके घुटनोंके मूलभागमें स्थित हो गये। महीपाल! इस प्रकार लम्बे डगवाले भगवान् विष्णुने देवहितके लिये समूची त्रिलोकीको जीतकर और असुरश्रेष्ठोंका संहार कर तीनों लोकोंका राज्य इन्द्रको सौंप दिया। साथ ही प्रभावशाली भगवान् विष्णुने भूमितलके नीचे सुतल नामक पाताललोकका राज्य बलिको दे दिया। उस समय सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णुने दैत्यराज बलिसे इस प्रकार कहा॥ ६१—७०॥

श्रीभगवान् बोले—दैत्यराज बले! जो तुमने मुझे जलका दान दिया है और मैंने उसे हाथमें ग्रहण कर लिया है, उसके फलस्वरूप तुम एक कल्पतक दीर्घजीवन प्राप्त करोगे और इस वैवस्वत मन्वन्तरके व्यतीत हो जानेपर सावर्णिक मन्वन्तरके आनेपर तुम इन्द्र होओगे। इस समय मैंने एकहत्तर चतुर्युगीतकके लिये त्रिलोकीका सम्पूर्ण राज्य देवराज इन्द्रको दे दिया है। साथ ही इन्द्रके जितने शत्रु होंगे, उन सबका भी मुझे नियन्त्रण करना है; क्योंकि इन्द्रने पूर्वकालमें परम भक्तिपूर्वक मेरी आराधना की है।

सुतलं नाम पातालं त्वमासाद्य मनोरमम्।
वसासुर ममादेशं यथावत् परिपालयन्॥ ७५
तत्र दिव्यवनोपेते प्रासादशतसंकुले।
प्रोत्फुल्लपद्मसरसि स्वच्छशुद्धसरिद्वरे॥ ७६
सुगन्धिधूपस्त्रग्वस्त्रवराभरणभूषितः।
स्त्रक्चन्दनादिमुदितो गेयनृत्यमनोरमे॥ ७७
पानान्नभोगान् विविधानुपभुङ्क्ष्व महासुर।
ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृतः॥ ७८
यावत् सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं करिष्यसि।
तावदेतान् महाभोगानवाप्स्यसि महासुर॥ ७९
यदा च देवविप्राणां विरोधं त्वं करिष्यसि।
बन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणास्त्वामसंशयम्॥ ८०
एतद् विदित्वा भवता मयाऽऽज्ञप्तमशेषतः।
न विरोधः सुरैः कार्यो विप्रैर्वा दैत्यसत्तम॥ ८१

शौनक उवाच

इत्येवमुक्तो देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना।
बलिः प्राह महाराज प्रणिपत्य मुदा युतः॥ ८२

बलिरुवाच

तत्रासतो मे पाताले भगवन् भवदाज्ञया।
किं भविष्यत्युपादानमुपभोगोपपादकम्॥ ८३

श्रीभगवानुवाच

दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च।
हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दास्यन्ति ते फलम्॥ ८४
अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः।
फलानि तव दास्यन्ति अधीतान्यव्रतानि च॥ ८५

शौनक उवाच

बलेर्वरमिमं दत्त्वा शक्राय त्रिदिवं तथा।
व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः॥ ८६
प्रशशास यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यपूजितः।
सिषेवे च परान् कामान् बलिः पातालसंस्थितः॥ ८७
इहैव देवदेवेन बद्धोऽसौ दानवोत्तमः।
देवानां कार्यकरणे भूयोऽपि जगति स्थितः॥ ८८
सम्बन्धी ते महाभाग द्वारकायां व्यवस्थितः।
दानवानां विनाशाय भारावतरणाय च॥ ८९

असुर! तुम सुतल नामक मनोहर पाताललोकमें जाकर मेरे आदेशका ठीक-ठीक पालन करते हुए निवास करो। महासुर! जो दिव्य वनोंसे युक्त एवं सैकड़ों महलोंसे समन्वित है, जिसके सरोवरोंमें कमल खिले हुए हैं, जहाँ शुद्ध एवं श्रेष्ठ नदियाँ बह रही हैं, जो नाच-गानसे मनको लुभानेवाला है, उस सुतललोकमें तुम सुगन्धित धूप, माला, वस्त्र और उत्तम आभूषणोंसे विभूषित तथा माला और चन्दनादिसे हर्षित होकर विविध प्रकारके अन्न-पान आदिका उपभोग करो और मेरी आज्ञासे सैकड़ों स्त्रियोंके साथ उतने समयतक निवास करो। महासुर! जबतक तुम देवताओं और ब्राह्मणोंसे विरोध नहीं करोगे, तबतक तुम इन सभी महाभोगोंको प्राप्त करते रहोगे। जब तुम देवताओं तथा ब्राह्मणोंका विरोध करोगे, तब तुम्हें वरुणके पाश बाँध लेंगे—इसमें संदेह नहीं है। दैत्यश्रेष्ठ! ऐसा जानकर तुम मेरी आज्ञाओंका पूर्णरूपसे पालन करो! तुम्हें देवताओं अथवा ब्राह्मणोंके साथ विरोध नहीं करना चाहिये॥ ७१—८१॥

शौनकजी बोले—महाराज! प्रभावशाली भगवान् विष्णुके द्वारा ऐसा कहे जानेपर बलि प्रमुदित हो प्रणाम करके बोला॥ ८२॥

बलिने पूछा—भगवन्! आपके आदेशसे उस पाताललोकमें निवास करते समय मेरे लिये सुखभोगोंको प्राप्त करानेवाले कौन-से उपादान कारण होंगे?॥ ८३॥

श्रीभगवान्ने कहा—जो विधानसे रहित किये गये दान, बिना श्रोत्रिय ब्राह्मणके किये गये श्राद्ध और श्रद्धारहित किये हुए हवन हैं, ये सब तुम्हें अपना फल प्रदान करेंगे। दक्षिणाहीन यज्ञ, बिना विधिके की हुई क्रियाएँ और ब्रह्मचर्य-व्रतसे रहित अध्ययन—ये सभी तुम्हें अपना फल देंगे॥ ८४-८५॥

शौनकजीने कहा—बलिको यह वरदान तथा इन्द्रको स्वर्गका राज्य देकर भगवान् विष्णु अपने उस सर्वव्यापक रूपके साथ अदृश्य हो गये। तत्पश्चात् इन्द्र तीनों लोकोंमें पूजित होकर पूर्ववत् शासन करने लगे तथा बलि पातालमें स्थित होकर उत्तम मनोरथोंका सेवन करने लगे। महाभाग! वह दानवराज बलि भगवान् विष्णुद्वारा यहीं बाँधा गया था। वे भगवान् देवताओंका कार्य करनेके लिये फिर इस पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं, जो दानवोंका विनाश तथा पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये

यतो यदुकुले कृष्णो भवतः शत्रुनिग्रहे।
सहायभूतः सारथ्यं करिष्यति बलानुजः॥ ९०
एतत् सर्वं समाख्यातं वामनस्य च धीमतः।
अवतारं महावीर श्रोतुमिच्छोस्तवार्जुन॥ ९१

कृष्णरूपसे यदुकुलमें उत्पन्न होकर विराजमान हैं। वे तुम्हारे सम्बन्धी हैं। बलरामके छोटे भाई वे श्रीकृष्ण तुम्हारे शत्रुओंके निग्रहके समय सारथिरूपसे तुम्हारी सहायता करेंगे। महावीर अर्जुन! बुद्धिमान् वामनके अवतारकी यह सारी कथा मैंने तुमसे वर्णन कर दी, जिसे तुम सुनना चाहते थे॥ ८६—९१॥

अर्जुन उवाच

श्रुतवानिह ते पृष्टं माहात्म्यं केशवस्य च।
गङ्गाद्वारमितो यास्याम्यानुज्ञां देहि मे विभो॥ ९२

अर्जुन बोले—विभो! भगवान् विष्णुके माहात्म्यको, जिसे मैंने पूछा था, उसे मैं आपके मुखसे सुन चुका। अब मैं यहाँसे गङ्गाद्वार (हरिद्वार) जाना चाहता हूँ, इसके लिये आप मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये॥ ९२॥

सूत उवाच

एवमुक्त्वा ययौ पार्थो नैमिषं शौनको गतः।
इत्येतद् देवदेवस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
वामनस्य पठेद् यस्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते॥ ९३
बलिप्रह्लादसंवादं मन्त्रितं बलिशुक्रयोः।
बलेर्विष्णोश्च कथितं यः स्मरिष्यति मानवः॥ ९४
नाधयो व्याधयस्तस्य न च मोहाकुलं मनः।
भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन॥ ९५
च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टाप्तिं च वियोगवान्।
अवाप्नोति महाभागो नरः श्रुत्वा कथामिमाम्॥ ९६

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसा कहकर अर्जुन गङ्गाद्वारको चले गये और महर्षि शौनक नैमिषारण्यकी ओर प्रस्थित हुए। इस प्रकार जो देवाधिदेव भगवान् वामनके इस उत्तम माहात्म्यका पाठ करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त हो जाता है। द्विजवरो! जो मनुष्य बलि और प्रह्लादके संवाद, बलि और शुक्रकी मन्त्रणा तथा बलि और विष्णुके कथनोपकथनका स्मरण करेगा, उस पुरुषको कभी भी न तो किसी प्रकारकी आधि-व्याधि प्राप्ति होगी और न उसका मन मोहसे व्याकुल होगा। जो महान् भाग्यशाली मनुष्य इस कथाको सुनता है, वह राज्यच्युत हो तो अपने राज्यको और वियोगी हो तो अपने इष्टको प्राप्त कर लेता है॥ ९३—९६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वामनप्रादुर्भावो नाम षट्चत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वामनप्रादुर्भाव नामक दो सौ छियालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४६॥

दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय

अर्जुनके वाराहावतारविषयक प्रश्न करनेपर शौनकजीद्वारा भगवत्स्वरूपका वर्णन

अर्जुन उवाच

प्रादुर्भावान् पुराणेषु विष्णोरमिततेजसः।
सतां कथयतां विप्र वाराह इति नः श्रुतम्॥ १
जाने न तस्य चरितं न विधिं न च विस्तरम्।
न कर्म गुणसंख्यानं न चाप्यन्तं मनीषिणः॥ २
किमात्मको वराहोऽसौ किं मूर्तिः कास्य देवता।
किं प्रमाणः किं प्रभावः किं वा तेन पुरा कृतम्॥ ३

अर्जुनने पूछा—विप्रवर! पुराणोंमें संतोंद्वारा अपरिमित तेजस्वी भगवान् विष्णुके अवतारोंके वर्णनमें हमने वाराह-अवतारकी बात सुनी है, किंतु मैं उन बुद्धिमान् भगवान्के चरित्र, विस्तार, कर्म, गुण और आराधनाविधिको नहीं जानता। वे वाराह भगवान् किस प्रकारके हैं? उनका स्वरूप कैसा है? उनकी देवशक्ति कैसी है? उनका क्या प्रमाण और कितना प्रभाव है? प्राचीनकालमें उन्होंने क्या कार्य किये हैं?

एतन्मे शंस तत्त्वेन वाराहं श्रुतिविस्तरम्।
यथार्हं च समेतानां द्विजातीनां विशेषत:॥ ४

इसलिये पुराणोंमें कही हुई वाराह-अवतारकी ये सारी बातें मुझे तथा विशेषकर यहाँ आये हुए इन ब्राह्मणोंको तत्त्वपूर्वक बतलाइये॥ १—४॥

शौनक उवाच

एतत् ते कथयिष्यामि पुराणं ब्रह्मसम्मितम्।
महावराहचरितं कृष्णस्याद्भुतकर्मण:॥ ५
यथा नारायणो राजन् वाराहं वपुरास्थित:।
दंष्ट्रया गां समुद्रस्थामुज्जहारारिमर्दन:॥ ६
छन्दोगीर्भिरुदाराभि: श्रुतिभि: समलङ्कृत:।
मन:प्रसन्नतां कृत्वा निबोध विजयाधुना॥ ७
इदं पुराणं परमं पुण्यं वेदैश्च सम्मितम्।
नानाश्रुतिसमायुक्तं नास्तिकाय न कीर्तयेत्॥ ८
पुराणं वेदमखिलं सांख्यं योगं च वेद य:।
कार्त्स्न्येन विधिना प्रोक्तं सौख्यार्थं वेदयिष्यति॥ ९
विश्वेदेवास्तथा साध्या रुद्रादित्यास्तथाश्विनौ।
प्रजानां पतयश्चैव सप्त चैव महर्षय:॥ १०
मन:संकल्पजाश्चैव पूर्वजा ऋषयस्तथा।
वसवो मरुतश्चैव गन्धर्वा यक्षराक्षसा:॥ ११
दैत्या: पिशाचा नागाश्च भूतानि विविधानि च।
ब्राह्मणा: क्षत्रिया वैश्या: शूद्रा म्लेच्छाश्च ये भुवि॥ १२
चतुष्पदानि सर्वाणि तिर्यग्योनिशतानि च।
जङ्गमानि च सत्त्वानि यच्चान्यज्जीवसंज्ञितम्॥ १३
पूर्णे युगसहस्रे तु ब्राह्मेऽहनि तथागते।
निर्वाणे सर्वभूतानां सर्वोत्पातसमुद्भवे॥ १४
हिरण्यरेतास्त्रिशिखस्ततो भूत्वा वृषाकपि:।
शिखाभिर्विधमँल्लोकानशोषयत वह्निना॥ १५

शौनकजी बोले—अर्जुन! मैं तुमसे अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीकृष्णके महावाराह-अवतारके चरित्रको, जो पुराणोंमें वर्णित तथा ब्रह्मसम्मित है, कह रहा हूँ। राजन्! जिस प्रकार शत्रुसंहारक भगवान् विष्णुने वराह-रूप धारणकर समुद्र-स्थित पृथ्वीका दाढ़ोंपर रखकर उद्धार किया था तथा जिस प्रकार उदार श्रुतियोंने वैदिक वाणीद्वारा उनका अभिनन्दन किया था, वह सब इस समय मनको प्रसन्न करके सुनो। अर्जुन! यह पुराण परम पुण्यमय, वेदोंद्वारा अनुमोदित तथा अनेकों श्रुतियोंसे सम्पन्न है, इसे नास्तिक व्यक्तिसे नहीं कहना चाहिये। जो सभी पुराणों, वेदों, सांख्य और योगको पूरी विधिके साथ जानता है, उसीसे इसकी कथा कहनी चाहिये; क्योंकि वही इसके अर्थको जान सकेगा। विश्वेदेवगण, साध्यगण, रुद्रगण, आदित्यगण, अश्विनीकुमार, प्रजापतिगण, सातों महर्षि, ब्रह्माके मानसिक संकल्पसे सर्वप्रथम उत्पन्न हुए सनकादि ब्रह्मर्षि, वसुगण, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, दैत्य, पिशाच, नाग, विविध प्रकारके जीव, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, म्लेच्छ आदि जितनी जातियाँ पृथ्वीपर हैं, सभी चौपाये, सैकड़ों तिर्यग्योनियाँ, जङ्गम प्राणी तथा अन्य जो जीव नामधारी हैं—इन सभीको एक हजार युग बीतनेके पश्चात् ब्रह्माका दिन आनेपर जब सभी प्रकारके उत्पात होने लगते हैं और सभी प्राणियोंका विनाश हो जाता है, तब हिरण्यरेता भगवान् जो वृषाकपि नामसे विख्यात हैं, तीन अग्निशिखाओंसे युक्त होकर अपनी उग्र ज्वालाओंद्वारा सभी लोकोंका विनाश करते हुए अग्निके प्रभावसे दग्ध कर देते हैं॥ ५—१५॥

दह्यमानास्ततस्तस्य तेजोराशिभिरुद्गतै:।
विवर्णवर्णा दग्धाङ्गा हतार्चिष्मद्भिराननै:॥ १६
साङ्गोपनिषदो वेदा इतिहासपुरोगमा:।
सर्वविद्या: क्रियाश्चैव सर्वधर्मपरायणा:॥ १७
ब्रह्माणमग्रत: कृत्वा प्रभवं विश्वतोमुखम्।
सर्वदेवगणाश्चैव त्रयस्त्रिंशत् तु कोटय:॥ १८

उस दिनके प्राप्त होनेपर निकलती हुई तेजोराशिसे जिनके शरीर जल गये थे तथा झुलसे हुए मुखोंसे जिनका रंग बदल गया था, वे छहों अङ्गोंसहित वेद, उपनिषद्, इतिहास, सभी विद्याएँ, सम्पूर्ण धार्मिक क्रियाएँ और तैंतीस करोड़ सभी देवगण सम्पूर्ण विश्वके उत्पत्तिस्थानरूप ब्रह्माको आगे करके

तस्मिन्नहनि सम्प्राप्ते तं हंसं महदक्षरम्।
प्रविशन्ति महात्मानं हरिं नारायणं प्रभुम्॥ १९
तेषां भूयः प्रवृत्तानां निधनोत्पतिरुच्यते।
यथा सूर्यस्य सततमुदयास्तमने इह॥ २०
पूर्णे युगसहस्रान्ते कल्पो निःशेष उच्यते।
यस्मिन् जीवकृतं सर्वं निःशेषं समतिष्ठत॥ २१
संहृत्य लोकानखिलान् सदेवासुरमानुषान्।
कृत्वा सुसंस्थां भगवानास्त एको जगद्गुरुः॥ २२
स स्रष्टा सर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः।
अव्ययः शाश्वतो देवो यस्य सर्वमिदं जगत्॥ २३
नष्टार्ककिरणे लोके चन्द्रग्रहविवर्जिते।
त्यक्तधूमाग्निपवने क्षीणयज्ञवषट्क्रिये॥ २४
अपक्षिगणसम्पाते सर्वप्राणिहरे पथि।
अमर्यादाऽऽकुले रौद्रे सर्वतस्तमसावृते॥ २५
अदृश्ये सर्वलोकेऽस्मिन्नभावे सर्वकर्मणाम्।
प्रशान्ते सर्वसम्पाते नष्टे वैरपरिग्रहे॥ २६
गते स्वभावसंस्थाने लोके नारायणात्मके।
परमेष्ठी हृषीकेशः शयनायोपचक्रमे॥ २७
पीतवासा लोहिताक्षः कृष्णो जीमूतसन्निभः।
शिखासहस्रविकचजटाभारं समुद्वहन्॥ २८
श्रीवत्सलक्षणधरं रक्तचन्दनभूषितम्।
वक्षो बिभ्रन्महाबाहुः सविद्युदिव तोयदः॥ २९
पुण्डरीकसहस्रेण स्रगस्य शुशुभे शुभा।
पत्नी चास्य स्वयं लक्ष्मीर्देहमावृत्य तिष्ठति॥ ३०
ततः स्वपिति शान्तात्मा सर्वलोकशुभावहः।
किमप्यमितयोगात्मा निद्रायोगमुपागतः॥ ३१
ततो युगसहस्रे तु पूर्णे स पुरुषोत्तमः।
स्वयमेव विभुर्भूत्वा बुध्यते विबुधाधिपः॥ ३२
ततश्चिन्तयते भूयः सृष्टिं लोकस्य लोककृत्।
नरान् देवगणांश्चैव पारमेष्ठ्येन कर्मणा॥ ३३

हंसस्वरूप उन भगवान् विष्णुमें, जो सर्वोत्कृष्ट, अविनाशी, महान् आत्मबलसे सम्पन्न और जलशायी हैं, प्रविष्ट हो जाते हैं। उनका पुनः प्रकट होना उसी प्रकार जन्म-मृत्यु कहा जाता है, जैसे इस लोकमें सूर्यका निरन्तर उदय और अस्त होता रहता है। एक हजार युग पूर्ण होनेपर कल्पकी समाप्ति कही जाती है, जिसमें सभी जीवोंके कार्य भी समाप्त हो जाते हैं। उस समय अकेले जगद्गुरु भगवान् विष्णु देवता, असुर और मानवसहित सभी लोकोंका संहारकर और उन्हें अपनेमें समाविष्ट कर विद्यमान रहते हैं। यह सारा जगत् जिनका अंशरूप है, वे सनातन अविनाशी भगवान् प्रत्येक कल्पकी समाप्तिपर बारंबार सभी जीवोंकी सृष्टि करते हैं। जब लोकमें सूर्यकी किरणें नष्ट हो जाती हैं, चन्द्रमा और ग्रह लुप्त हो जाते हैं, धूम, अग्नि और पवन दूर हो जाते हैं, यज्ञोंमें वषट्कारकी ध्वनि अस्त हो जाती है, पक्षिगणोंका उड़ना बंद हो जाता है, मार्गमें सभी प्राणियोंका अपहरण होने लगता है, भीषणता मर्यादाकी सीमाके बाहर पहुँच जाती है, चारों ओर निविड़ अन्धकार छा जाता है, सारा लोक अदृश्य हो जाता है, सभी कर्मोंका अभाव हो जाता है, सारी उत्पत्ति प्रशान्त हो जाती है, वैरभाव नष्ट हो जाता है और सब कुछ नारायणरूपी लोकमें विलीन हो जाता है, उस समय इन्द्रियोंके स्वामी परमेष्ठी शयनके लिये उद्यत होते हैं॥ १९—२७॥

उस समय महाबाहु भगवान् पीताम्बरधारी, लाल नेत्रोंसे युक्त, काले मेघकी-सी कान्तिसे सम्पन्न, हजारों शिखाओंसे युक्त जटाभारको वहन करनेवाले, श्रीवत्सके चिह्नसे सुशोभित एवं लाल चन्दनसे विभूषित वक्षःस्थलको धारण करते हुए बिजलीसहित मेघकी भाँति शोभायमान होते हैं। हजारों कमल-पुष्पोंकी बनी हुई सुन्दर माला उनकी शोभा बढ़ाती है। उनकी पत्नी स्वयं लक्ष्मी उनके शरीरको आच्छादित करके विद्यमान रहती हैं। तत्पश्चात् शान्तात्मा, सभी लोकोंके कल्याणकारी और परम योगी भगवान् कुछ योगनिद्राका आश्रय लेकर शयन करते हैं। फिर एक हजार युग व्यतीत होनेपर देवेश्वर भगवान् पुरुषोत्तम सर्वव्यापी होकर अपने-आप ही जागते हैं। तदनन्तर लोककर्ता भगवान् ब्रह्माके कर्मद्वारा मनुष्यों और देवताओंकी सृष्टिके विषयमें पुनः विचार करते हैं।

ततः संचिन्तयन् कार्यं देवेषु समितिंजयः।
सम्भवं सर्वलोकस्य विदधाति सतां गतिः॥ ३४

कर्ता चैव विकर्ता च संहर्ता वै प्रजापतिः।
नारायणः परं सत्यं नारायणः परं पदम्॥ ३५

नारायणः परो यज्ञो नारायणः परा गतिः।
स स्वयम्भूरिति ज्ञेयः स स्रष्टा भुवनाधिपः॥ ३६

स सर्वमिति विज्ञेयो ह्येष यज्ञः प्रजापतिः।
यद् वेदितव्यस्त्रिदशैस्तदेष परिकीर्त्यते॥ ३७

तत्पश्चात् सत्पुरुषोंके आश्रयरूप एवं रणविजयी भगवान् देवताओंके विषयमें कार्यकी चिन्तना करते हुए सारे लोककी सृष्टि करते हैं। वे ही परमात्मा इस समस्त सृष्टिके कर्ता, विकर्ता, संहर्ता और प्रजापति हैं। नारायण ही परम सत्य, नारायण ही परम पद, नारायण ही परम यज्ञ और नारायण ही परमगति हैं। उन्हें ही स्वयम्भू, सभी भुवनोंका अधीश्वर और स्रष्टा जानना चाहिये। उन्हींको सर्वरूप समझना चाहिये। ये यज्ञस्वरूप और प्रजापति हैं। देवताओंद्वारा जो जाननेयोग्य है, वह ये ही कहे जाते हैं॥ २८—३७॥

यत्तु वेद्यं भगवतो देवा अपि न तद् विदुः।
प्रजानां पतयः सर्वे ऋषयश्च सहामरैः॥ ३८

नास्यान्तमधिगच्छन्ति विचिन्वन्त इति श्रुतिः।
यदस्य परमं रूपं न तत् पश्यन्ति देवताः॥ ३९

प्रादुर्भावे तु यद् रूपं तदर्चन्ति दिवौकसः।
दर्शितं यदि तेनैव तदवेक्षन्ति देवताः॥ ४०

यन्न दर्शितवानेष कस्तदन्वेष्टुमीहते।
ग्रामणीः सर्वभूतानामग्निमारुतयोर्गतिः॥ ४१

तेजसस्तपसश्चैव निधानममृतस्य च।
चतुराश्रमधर्मेशश्चातुर्होत्रफलाशनः॥ ४२

चतुःसागरपर्यन्तश्चतुर्युगनिवर्तकः।
तदेष संहृत्य जगत् कृत्वा गर्भस्थमात्मनः।
मुमोचाण्डं महायोगी धृतं वर्षसहस्रकम्॥ ४३

सुरासुरद्विजभुजगाप्सरोगणै-
र्द्रुमौषधिक्षितिधरयक्षगुह्यकैः।
प्रजापतिः श्रुतिभिरसंकुलं किल
तदासृजज्जगदिदमात्मना प्रभुः॥ ४४

भगवान्‌का जो स्वरूप जाननेयोग्य है, उसे देवगण भी नहीं जानते। सभी प्रजापति, देवतागण और ऋषिगण खोजते रहते हैं, किंतु इनका अन्त नहीं पाते—ऐसी श्रुति है। इस परमात्माका जो परम स्वरूप है, उसे देवतालोग भी नहीं देख पाते। उनके प्रादुर्भावकालमें जिस स्वरूपके दर्शन होते हैं, देवगण उसीकी पूजा करते हैं। यदि उन्होंने स्वयं ही अपने रूपको दिखा दिया तो देवगण उसे देख पाते हैं। वे जिस रूपका दर्शन नहीं कराते, उसकी खोज करनेके लिये कौन तत्पर हो सकता है? जो सभी जीवोंके नायक, अग्नि और वायुकी गति, तेज, तपस्या और अमृतके निधान, चारों आश्रमधर्मोंके स्वामी, चातुर्होत्र यज्ञके फलका भक्षण करनेवाले, चारों समुद्रोंतक व्याप्त और चारों युगोंकी निवृत्ति करनेवाले हैं, वे ही महायोगी भगवान् इस जगत्‌का संहारकर अपने उदरमें रख लेते हैं और हजार वर्षोंतक धारण करनेके पश्चात् उस अण्डको उत्पन्न कर देते हैं। तत्पश्चात् प्रजापति भगवान् अपने शरीरसे सुर, असुर, द्विज, सर्प, अप्सराओंके समूह, समस्त वृक्ष, ओषधि, पर्वत, यक्ष, गुह्य और श्रुतियोंसे युक्त इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं॥ ३८—४४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वराहप्रादुर्भावे सप्तचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वराहप्रादुर्भाव नामक दो सौ सैंतालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४७॥

दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय

वराहभगवान्‌का प्रादुर्भाव, हिरण्याक्षद्वारा रसातलमें ले जायी गयी पृथ्वीदेवीद्वारा यज्ञवराहका स्तवन और भगवान्‌द्वारा उनका उद्धार

शौनक उवाच

जगदण्डमिदं पूर्वमासीद् दिव्यं हिरण्मयम्।
प्रजापतेरियं मूर्तिरितीयं वैदिकी श्रुतिः॥ १

तत्तु वर्षसहस्रान्ते बिभेदोर्ध्वमुखं विभुः।
लोकसर्जनहेतोस्तु बिभेदाधोमुखं पुनः॥ २

भूयोऽष्टधा बिभेदाण्डं विष्णुर्वै लोकजन्मकृत्।
चकार जगतश्चात्र विभागं स विभागकृत्॥ ३

यच्छिद्रमूर्ध्वमाकाशं विवराकृतितां गतम्।
विहितं विश्वयोगेन यदधस्तद्रसातलम्॥ ४

यदण्डमकरोत् पूर्वं देवो लोकचिकीर्षया।
तत्र यत् सलिलं स्कन्नं सोऽभवत् काञ्चनो गिरिः॥ ५
शैलैः सहस्रैर्महती मेदिनी विषमाभवत्॥ ६

तैश्च पर्वतजालौघैर्बहुयोजनविस्तृतैः।
पीडिता गुरुभिर्देवी व्यथिता मेदिनी तदा॥ ७

महामते भूरिबलं दिव्यं नारायणात्मकम्।
हिरण्मयं समुत्सृज्य तेजो वै जातरूपिणम्॥ ८

अशक्ता वै धारयितुमधस्तात् प्राविशत् तदा।
पीड्यमाना भगवतस्तेजसा तस्य सा क्षितिः॥ ९
पृथ्वीं विशन्तीं दृष्ट्वा तु तामधो मधुसूदनः।
उद्धारार्थं मनश्चक्रे तस्या वै हितकाम्यया॥ १०

श्रीभगवानुवाच

मत्तेज एषा वसुधा समासाद्य तपस्विनी।
रसातलं प्रविशति पङ्के गौरिव दुर्बला॥ ११

पृथिव्युवाच

त्रिविक्रमायामितविक्रमाय
महावराहाय सुरोत्तमाय।
श्रीशार्ङ्गचक्रासिगदाधराय
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद॥ १२

शौनकजीने कहा—अर्जुन! यह जगत् पहले दिव्य हिरण्मय अण्डके रूपमें था। यह प्रजापतिकी मूर्ति है—ऐसी वैदिकी श्रुति है। एक हजार वर्ष व्यतीत होनेपर सर्वव्यापी एवं लोकोंके जन्मदाता विष्णुने उस अण्डके ऊर्ध्व मुखका भेदन किया और पुनः लोकसृष्टिके लिये उसके अधोमुखको भी फोड़ दिया। फिर उस अण्डको आठ भागोंमें विभक्त कर दिया। तत्पश्चात् विभागकर्ता विष्णुने जगत्‌का भी विभाजन किया। विश्वस्रष्टा भगवान्‌द्वारा किया गया जो ऊपरका छिद्र था, वह विवरके आकारवाला आकाश और जो नीचेका छिद्र था, वह रसातल हुआ। भगवान्‌ने पूर्वकालमें लोकसृष्टिकी कामनासे जिस अण्डको उत्पन्न किया था, उससे जो जल टपका था, वह स्वर्णमय सुमेरु पर्वत हुआ और हजारों पर्वतोंके संयोगसे विशाल पृथ्वी विषमा अर्थात् ऊँची-नीची हो गयी। उस समय अनेकों योजन विस्तृत उन भारी पर्वतसमूहोंसे पीड़ित हुई पृथ्वी व्याकुल हो गयी। महामते! तब पृथ्वी जो स्वर्णमय तेजसे युक्त, महान् बलसे सम्पन्न और नारायणस्वरूप था, उस दिव्य हिरण्मय अण्डको धारण करनेमें असमर्थ होकर उसे त्यागकर नीचेकी ओर जाने लगीं; क्योंकि वह उन भगवान्‌के तेजसे पीड़ित हो रही थी। तब भगवान् मधुसूदनने पृथ्वीको नीचे प्रवेश करती हुई देखकर लोककल्याण-भावनासे उसके उद्धारका विचार किया॥ १—१०॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—यह तपस्विनी पृथ्वी मेरे तेजको प्राप्तकर (धारण करनेमें असमर्थ हो) कीचड़में फँसी हुई दुबली गौकी भाँति रसातलमें प्रवेश कर रही है॥ ११॥

पृथ्वीने कहा—जो तीन पगमें पृथ्वीको नाप लेनेवाले वामनरूप, अमित पराक्रमी महावराहरूप, सुरश्रेष्ठ तथा लक्ष्मी, धनुष, चक्र, खड्ग और गदा धारण करनेवाले हैं, ऐसे आपको नमस्कार है। देवश्रेष्ठ! आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये।

तव देहाज्जगज्जातं पुष्करद्वीपमुत्थितम्।
ब्रह्माणमिह लोकानां भूतानां शाश्वतं विदुः॥ १३
तव प्रसादाद् देवोऽयं दिवं भुङ्क्ते पुरन्दरः।
तव क्रोधाद्धि बलवान् जनार्दन जितो बलिः॥ १४
धाता विधाता संहर्ता त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम्।
मनुः कृतान्तोऽधिपतिर्ज्वलनः पवनो घनः॥ १५
वर्णाश्चाश्रमधर्माश्च सागरास्तरवोऽचलाः।
नद्यो धर्मश्च कामश्च यज्ञा यज्ञस्य च क्रियाः॥ १६
विद्या वेद्यं च सत्त्वं च ह्रीः श्रीः कीर्तिर्धृतिः क्षमा।
पुराणं वेदवेदाङ्गं सांख्ययोगौ भवाभवौ॥ १७
जङ्गमं स्थावरं चैव भविष्यं च भवच्च यत्।
सर्वं तच्च त्रिलोकेषु प्रभावोपहितं तव॥ १८
त्रिदशोदारफलदः स्वर्गस्त्रीचारुपल्लवः।
सर्वलोकमनःकान्तः सर्वसत्त्वमनोहरः॥ १९
विमानानेकविटपस्तोयदाम्बुमधुस्त्रवः ।
दिव्यलोकमहास्कन्धः सत्यलोकप्रशाखवान्॥ २०
सागराकारनिर्यासो रसातलजलाश्रयः।
नागेन्द्रपादपोपेतो जन्तुपक्षिनिषेवितः॥ २१
शीलाचारार्यगन्धस्त्वं सर्वलोकमयोद्रुमः।
द्वादशार्कमयद्वीपो रुद्रैकादशपत्तनः॥ २२
वस्वष्टाचलसंयुक्तस्त्रैलोक्याम्भोमहोदधिः ।
सिद्धसाध्योर्मिकलिलः सुपर्णानिलसेवितः॥ २३
दैत्यलोकमहाग्राहो रक्षोरगझषाकुलः।
पितामहमहाधैर्यः स्वर्गस्त्रीरत्नभूषितः॥ २४
धीश्रीह्रीकान्तिभिर्नित्यं नदीभिरुपशोभितः।
कालयोगमहापर्वप्रयागगतिवेगवान् ॥ २५
त्वं स्वयोगमहावीर्यो नारायण महार्णवः।
कालो भूत्वा प्रसन्नाभिरद्भिर्ह्लादयसे पुनः॥ २६
त्वया सृष्टास्त्रयो लोकास्त्वयैव प्रतिसंहृताः।
विशन्ति योगिनः सर्वे त्वामेव प्रतियोजिताः॥ २७
युगे युगे युगान्ताग्निः कालमेघो युगे युगे।
मम भारावताराय देव त्वं हि युगे युगे॥ २८

प्रभो! आपके शरीरसे जगत् उत्पन्न हुआ है, पुष्कर द्वीपकी उत्पत्ति हुई है और ब्रह्मा प्रकट हुए हैं, आप सभी लोकों और प्राणियोंके सनातन पुरुष माने जाते हैं। आपकी कृपासे ये देवराज इन्द्र स्वर्गका उपभोग कर रहे हैं। जनार्दन! आपके क्रोधसे बलवान् बलि जीता गया है। आप धाता, विधाता और संहर्ता हैं। आपमें समस्त जगत् प्रतिष्ठित है। मनु, प्रजापति, यम, अग्नि, पवन, मेघ, वर्णधर्म, आश्रमधर्म, समुद्र, वृक्ष, पर्वत, नदियाँ, धर्म, काम, यज्ञ; यज्ञकी क्रियाएँ, विद्या, जाननेयोग्य अन्य बातें, जीवगण, लज्जा, ह्री, श्री, कीर्ति, धैर्य, क्षमा, पुराण, वेद, वेदाङ्ग, सांख्य, योग, जन्म, मरण, जंगम, स्थावर, भूत और भविष्यत्—ये सभी तीनों लोकोंमें आपके प्रभावसे आच्छादित हैं। आप देवताओंको उत्तम फल देनेवाले, स्वर्गकी रमणियोंके लिये सुन्दर पल्लवरूप, सभी लोगोंके मनको प्रिय लगनेवाले, सभी जीवोंके मनके हरणकर्ता, विमानरूपी अनेक वृक्षोंसे युक्त, मेघोंके जलरूप मधु टपकानेवाले, दिव्य लोकरूप महान् स्कन्धवाले, सत्यलोकरूप शाखाओंसे युक्त, सागररूप रस, रसातलकी तरह जलके आश्रयस्थान, ऐरावतरूप वृक्षसे युक्त तथा जन्तुओं और पक्षियोंसे सुसेवित हैं॥ १३—२१॥

आप शील, सदाचार और श्रेष्ठ गन्धसे युक्त, सर्वलोकमय वृक्ष, बारह आदित्योंसे युक्त द्वीप, ग्यारह रुद्ररूप नगर, आठों वसुरूप पर्वत, त्रिलोकीरूप जलसे परिपूर्ण महासागर, सिद्ध और साध्यरूप लहरोंसे युक्त, गरुड़रूप वायुसे सेवित, दैत्यसमूहरूप महान् ग्राह, राक्षस और नागरूपी मछलियोंसे व्याप्त, ब्रह्मारूप महान् धैर्यसम्पन्न, स्वर्गकी अप्सरारूप रत्नसे विभूषित हैं। आप बुद्धि, लक्ष्मी, लज्जा और कान्तिरूपी नदियोंसे नित्य सुशोभित तथा कालके योगसे उत्पन्न होनेवाले महापर्वके समय वेगपूर्वक प्रयागमें गमन करनेवाले हैं। नारायण! आप अपने योगरूपी महापराक्रमसे सम्पन्न महासागर हैं और पुनः आप ही काल बनकर निर्मल जलसे जगत्को आह्लादित करते हैं। आपने तीनों लोकोंकी सृष्टि की है और आपसे ही उनका संहार होता है। आपके द्वारा नियुक्त किये गये सभी योगी आपमें ही प्रविष्ट होते हैं। देव! आप प्रत्येक युगमें प्रलयाग्नि और प्रत्येक युगमें प्रलयकालीन मेघ हैं तथा मेरा भार उतारनेके लिये आप प्रत्येक युगमें अवतीर्ण होते हैं।

त्वं हि शुक्लः कृतयुगे त्रेतायां चम्पकप्रभः।
द्वापरे रक्तसंकाशः कृष्णः कलियुगे भवान्॥ २९
वैवर्ण्यमभिधत्से त्वं प्राप्तेषु युगसंधिषु।
वैवर्ण्यं सर्वधर्माणामुत्पादयसि वेदवित्॥ ३०
भासि वासि प्रतपसि त्वं च पासि विचेष्टसे।
क्रुद्ध्यसि क्षान्तिमायासि त्वं दीपयसि वर्षसि॥ ३१
त्वं हास्यसि न निर्यासि निर्वापयसि जाग्रसि।
निःशेषयसि भूतानि कालो भूत्वा युगक्षये॥ ३२
शेषमात्मानमालोक्य विशेषयसि त्वं पुनः।
युगान्ताग्न्यवलीढेषु सर्वभूतेषु किञ्चन॥ ३३
यातेषु शेषो भवसि तस्माच्छेषोऽसि कीर्तितः।
च्यवनोत्पत्तियुक्तेषु ब्रह्मेन्द्रवरुणादिषु॥ ३४
यस्मान्न च्यवसे स्थानात् तस्मात् संकीर्त्यसेऽच्युतः।
ब्रह्माणमिन्द्रं च यमं रुद्रं वरुणमेव च॥ ३५
निगृह्य हरसे यस्माद् तस्माद्धरिरिहोच्यसे।
संतानयसि भूतानि वपुषा यशसा श्रिया॥ ३६
परेण वपुषा देव तस्माच्चासि सनातनः।
यस्माद् ब्रह्मादयो देवा मुनयश्चोग्रतेजसः॥ ३७
न तेऽन्तं त्वधिगच्छन्ति तेनानन्तस्त्वमुच्यसे।
न क्षीयसे न क्षरसे कल्पकोटिशतैरपि॥ ३८
तस्मात् त्वमक्षरत्वाच्च अक्षरश्च प्रकीर्तितः।
विष्टब्धं यत्त्वया सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्॥ ३९
जगद्विष्टम्भनाच्चैव विष्णुरेवेति कीर्त्यसे।
विष्टभ्य तिष्ठसे नित्यं त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४०
यक्षगन्धर्वनगरं सुमहद्भूतपन्नगम्।
व्याप्तं त्वयैव विशता त्रैलोक्यं सचराचरम्॥ ४१
तस्माद् विष्णुरिति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
नारा इत्युच्यते ह्यापो ह्यृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः॥ ४२
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः।
युगे युगे प्रनष्टां गां विष्णो विन्दसि तत्त्वतः॥ ४३
गोविन्देति ततो नाम्ना प्रोच्यसे ऋषिभिस्तथा।
हृषीकाणीन्द्रियाण्याहुस्तत्त्वज्ञानविशारदाः॥ ४४
ईशिता च त्वमेतेषां हृषीकेशस्तथोच्यसे।

आप कृतयुगमें श्वेतवर्ण, त्रेतामें चम्पक-पुष्प-सदृश पीतवर्ण, द्वापरमें रक्तवर्ण और कलियुगमें श्यामवर्ण हो जाते हैं। वेदज्ञ! युग-संधियोंके प्राप्त होनेपर आप विवर्णताको धारण करते हैं और सभी धर्मोंमें विपरीतता उत्पन्न कर देते हैं। आप प्रकाशित होते, प्रवाहित होते, तपते, रक्षा करते और चेष्टा करते हैं। आप क्रोध करते, शान्ति धारण करते, उद्दीप्त करते और वर्षा करते हैं। आप हँसते, स्थिर रहते, मारते और जागते रहते हैं तथा प्रलयकालमें काल बनकर सभी जीवोंको निःशेष कर देते हैं॥ २२—३२॥

फिर अपनेको शेष बचा हुआ देखकर पुनः आप उसकी वृद्धि करते हैं। युगान्तकी अग्निमें सभी भूतोंके दग्ध हो जानेपर एकमात्र आप शेष रहते हैं, इसलिये आप 'शेष' नामसे पुकारे जाते हैं। ब्रह्मा, इन्द्र, वरुण आदि देवता उत्पत्ति और पतनसे युक्त हैं, किंतु आप अपने स्थानसे च्युत नहीं होते, इसलिये 'अच्युत' कहलाते हैं। चूँकि आप ब्रह्मा, इन्द्र, यम, रुद्र और वरुणका निग्रहपूर्वक हरण करते हैं, इसलिये यहाँ 'हरि' कहे जाते हैं। देव! आप अपने शरीर, यश, श्री और विशद् शरीरद्वारा सभी जीवोंका विस्तार करते हैं, इसलिये 'सनातन' हैं। चूँकि ब्रह्मा आदि देवगण और उग्र तेजस्वी मुनिगण आपका अन्त नहीं जान पाते, इसीलिये आप 'अनन्त' कहे जाते हैं। सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी न तो आप क्षीण होते हैं और न नष्ट होते हैं, इसलिये विनाशरहित होनेके कारण आप 'अक्षर' कहे गये हैं। आप सम्पूर्ण चराचर जगत्को स्तम्भित किये रहते हैं, इसीलिये जगत्का विष्टम्भन करनेके कारण 'विष्णु' कहे जाते हैं। आप सचराचर त्रिलोकीको नित्य अवरुद्ध करके स्थित रहते हैं तथा आप ही यक्षों एवं गन्धर्वोंके नगरोंसे सम्पन्न और महान् नागोंसे युक्त चराचरसहित त्रिलोकीमें प्रवेश करके उसे व्याप्त किये रहते हैं, इसीलिये स्वयं ब्रह्माने आपको 'विष्णु' नामसे अभिहित किया है। तत्त्वदर्शी ऋषियोंने जलका नाम 'नारा' कहा है और वह पूर्वकालमें आपका निवासस्थान था, इसीसे आप 'नारायण' कहे जाते हैं। विष्णो! प्रत्येक युगमें नष्ट हुई गोरूपिणी पृथ्वीको तत्त्वतः आप ही प्राप्त करते हैं, इसीलिये ऋषिगण आपको 'गोविन्द' नामसे पुकारते हैं। तत्त्वज्ञानमें निपुणजन इन्द्रियोंको हृषीक कहते हैं और आप उन इन्द्रियोंके शासक हैं, अतः 'हृषीकेश' कहे जाते हैं॥ ३३—४४ १/२॥

वसन्ति त्वयि भूतानि ब्रह्मादीनि युगक्षये॥ ४५
त्वं वा वससि भूतेषु वासुदेवस्तथोच्यसे।
संकर्षयसि भूतानि कल्पे कल्पे पुनः पुनः॥ ४६
ततः संकर्षणः प्रोक्तस्तत्त्वज्ञानविशारदैः।
प्रतिव्यूहेन तिष्ठन्ति सदेवासुरराक्षसाः॥ ४७
प्रविद्युः सर्वधर्माणां प्रद्युम्नस्तेन चोच्यसे।
निरोद्धा विद्यते यस्मान्न ते भूतेषु कश्चन॥ ४८
अनिरुद्धस्ततः प्रोक्तः पूर्वमेव महर्षिभिः।
यत् त्वया धार्यते विश्वं त्वया संह्रियते जगत्॥ ४९
त्वं धारयसि भूतानि भुवनं त्वं बिभर्षि च।
यत् त्वया धार्यते किंचित् तेजसा च बलेन च॥ ५०
मया हि धार्यते पश्चान्नाधृतं धारये त्वया।
न हि तद् विद्यते भूतं त्वया यन्नात्र धार्यते॥ ५१
त्वमेव कुरुषे देव नारायण युगे युगे।
मम भारावतरणं जगतो हितकाम्यया॥ ५२
तवैव तेजसाऽऽक्रान्तां रसातलतलं गताम्।
त्रायस्व मां सुरश्रेष्ठ त्वामेव शरणं गताम्॥ ५३
दानवैः पीड्यमानाहं राक्षसैश्च दुरात्मभिः।
त्वामेव शरणं नित्यमुपयामि सनातनम्॥ ५४
तावन्मेऽस्ति भयं देव यावन्न त्वां ककुद्मिनम्।
शरणं यामि मनसा शतशोऽप्युपलक्षये॥ ५५
उपमानं न ते शक्ताः कर्तुं सेन्द्रा दिवौकसः।
तत्त्वं त्वमेव तद् वेत्सि निरुत्तरमतः परम्॥ ५६

युगान्तके समय ब्रह्मा आदि सभी प्राणी आपमें निवास करते हैं और आप प्राणियोंमें निवास करते हैं, इसीलिये आप 'वासुदेव' कहलाते हैं। प्रत्येक कल्पमें आप पुनः-पुनः प्राणियोंको आकर्षित करते हैं, इसीलिये तत्त्वज्ञानविशारदोंने आपको 'संकर्षण' कहा है। आपके प्रभावसे देवता, असुर और राक्षस अपने-अपने व्यूहोंमें स्थित रहते हैं तथा आप सभी धर्मोंके विशेषज्ञ हैं, अतः 'प्रद्युम्न' नामसे कहे जाते हैं। चूँकि सभी प्राणियोंमें कोई भी आपका निरोध करनेवाला नहीं है, इसीलिये महर्षियोंने पहलेसे ही आपका 'अनिरुद्ध' नाम रख दिया है। आप विश्वको धारण करते हैं, आप ही जगत्‌का संहार भी करते हैं, आप ही प्राणियोंको धारण करते हैं और आप ही भुवनका पालन-पोषण करते हैं। आप अपने तेज और बलसे जो कुछ धारण करते हैं, उसीको पीछे मैं भी धारण करती हूँ। आपके द्वारा धारण न की हुई वस्तुको मैं धारण नहीं करती। ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जिसे आपने इस जगत्‌में धारण न किया हो। नारायण देव! आप ही प्रत्येक युगमें संसारकी कल्याण-भावनासे मेरे ऊपर पड़नेवाले असहनीय भारको दूर करते हैं। मैं आपके ही तेजसे आक्रान्त हो रसातलमें पहुँच गयी हूँ। सुरश्रेष्ठ! मैं आपकी शरणागत हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिये। मैं दुरात्मा दानवों एवं राक्षसोंसे पीड़ित होकर नित्य आप सनातनकी ही शरणमें जाती हूँ। देव! मेरे लिये भय तभीतक रहता है, जबतक मैं मनसे आप ककुद्मीकी शरणमें नहीं आती हूँ। मैंने सैकड़ों बार ऐसा देखा है। इन्द्रसहित समस्त देवगण आपकी समानता करनेमें समर्थ नहीं हैं। आप ही उस परम तत्त्वके ज्ञाता हैं। इसके बाद अब मुझे कुछ नहीं कहना है॥ ४५—५६॥

शौनक उवाच

ततः प्रीतः स भगवान् पृथिव्यै शार्ङ्गचक्रधृक्।
काममस्या यथाकाममभिपूरितवान् हरिः॥ ५७
अब्रवीच्च महादेवि माधवीयं स्तवोत्तमम्।
धारयिष्यति यो मर्त्यो नास्ति तस्य पराभवः॥ ५८
लोकान् निष्कल्मषांश्चैव वैष्णवान् प्रतिपत्स्यते।
एतदाश्चर्यसर्वस्वं माधवीयं स्तवोत्तमम्॥ ५९
अधीतवेदः पुरुषो मुनिः प्रीतमना भवेत्॥ ६०
मा भैर्धरणि कल्याणि शान्तिं व्रज ममाग्रतः।
एष त्वामुचितं स्थानं प्रापयामि मनीषितम्॥ ६१

शौनकजीने कहा—तदनन्तर शार्ङ्गधनुष और चक्र धारण करनेवाले भगवान् विष्णुने पृथ्वीपर प्रसन्न होकर उसके यथेष्ट मनोरथको पूर्ण कर दिया। तत्पश्चात् उन्होंने कहा—'महादेवि! जो मनुष्य इस उत्तम माधवीय स्तोत्रको धारण करेगा, उसका कभी पराभव नहीं होगा। वह पापरहित वैष्णव-लोकोंको प्राप्त होगा। यह उत्तम माधवीय स्तोत्र सभी आश्चर्योंसे परिपूर्ण है। वेदाध्यायी पुरुष और मुनि इससे प्रसन्न हो जाते हैं। धरणि! तुम भय मत करो। कल्याणि! तुम मेरे सामने शान्ति धारण करो। मैं तुम्हें मनसेप्सित उचित स्थान प्राप्त कराऊँगा'॥ ५७—६१॥

शौनक उवाच

ततो महात्मा मनसा दिव्यं रूपमचिन्तयत्।
किं नु रूपमहं कृत्वा उद्धरेयं धरामिमाम्॥ ६२

जलक्रीडारुचिस्तस्माद्वाराहं वपुरास्थितः।
अधृष्यं सर्वभूतानां वाङ्मयं ब्रह्म संस्थितम्॥ ६३

शतयोजनविस्तीर्णमुच्छ्रितं द्विगुणं ततः।
नीलजीमूतसंकाशं मेघस्तनितनिःस्वनम्॥ ६४

गिरिसंहननं भीमं श्वेततीक्ष्णाग्रदंष्ट्रिणम्।

विद्युदग्निप्रतीकाशमादित्यसमतेजसम्।
पीनवृत्तायतस्कन्धं दृप्तशार्दूलगामिनम्॥ ६५

पीनोन्नतकटीदेशे वृषलक्षणपूजितम्।
रूपमास्थाय विपुलं वाराहमजितो हरिः॥ ६६

पृथिव्युद्धरणायैव प्रविवेश रसातलम्।
वेदपादो यूपदंष्ट्रः क्रतुदन्तश्चितीमुखः॥ ६७

अग्निजिह्वो दर्भलोमा ब्रह्मशीर्षो महातपाः।
अहोरात्रेक्षणधरो वेदाङ्गश्रुतिभूषणः॥ ६८

आज्यनासः स्रुवतुण्डः सामघोषस्वनो महान्।
सत्यधर्ममयः श्रीमान् कर्मविक्रमसत्कृतः॥ ६९

प्रायश्चित्तनखो घोरः पशुजानुर्मखाकृतिः।
उद्‌गीथहोमलिङ्गोऽथ बीजौषधिमहाफलः॥ ७०

वाय्वन्तरात्मा यज्ञास्थिविकृतिः सोमशोणितः।
वेदस्कन्धो हविर्गन्धो हव्यकव्यविभागवान्॥ ७१

प्राग्वंशकायो द्युतिमान् नानादीक्षाभिरन्वितः।
दक्षिणाहृदयो योगी महासत्रमयो महान्॥ ७२

उपाकर्मोष्ठरुचकः प्रवर्ग्यावर्तभूषणः।

नानाच्छन्दोगतिपथो गुह्योपनिषदासनः।
छायापत्नीसहायो वै मणिशृङ्ग इवोच्छ्रितः॥ ७३

रसातलतले मग्नां रसातलतलं गताम्।
प्रभुर्लोकहितार्थाय दंष्ट्राग्रेणोज्जहार ताम्॥ ७४

शौनकजीने कहा—तदनन्तर भगवान् विष्णुने मनमें दिव्य स्वरूपका चिन्तन किया और सोचने लगे कि मैं कौन-सा रूप धारणकर इस पृथ्वीका उद्धार करूँ। ऐसा सोचते हुए उन्हें जलक्रीडाकी रुचि उत्पन्न हो गयी, इसलिये उन्होंने शूकरका शरीर धारण किया। वह रूप सभी प्राणियोंके लिये अजेय, वाङ्मय, ब्रह्मस्वरूप, सौ योजनोंमें विस्तृत, उससे दुगुना ऊँचा, नील मेघके समान कान्तिमान्, मेघोंकी गड़गड़ाहटके सदृश शब्दसे युक्त, पर्वतके समान सुदृढ़, भयंकर, श्वेत एवं तीखे अग्रभागवाले दाढ़ोंसे युक्त, बिजली एवं अग्निकी भाँति कान्तिमान्, सूर्यके समान तेजस्वी, मोटे एवं चौड़े कंधेसे सुशोभित, गर्वीले सिंहकी-सी चालवाला, मोटे एवं ऊँचे कटिभागसे सम्पन्न और वृषभके लक्षणोंसे युक्त था। तब अजेय भगवान् विष्णुने ऐसा विशाल वाराह स्वरूप धारणकर पृथ्वीका उद्धार करनेके लिये रसातलमें प्रवेश किया। उन महातपस्वी भगवान् वराहके वेद चारों पैर थे, यज्ञ-स्तम्भ उनकी दाढ़ें थीं, यज्ञ उनके दाँत थे, यज्ञका कुण्ड उनका मुख था, अग्नि उनकी जीभ थी, कुश उनके रोएँ थे, ब्रह्म उनका मस्तक था, दिन और रात उनके नेत्र थे, वेदोंके छः अङ्ग कानके आभूषण थे, घृताहुति उनकी नासिका थी, स्रुवा उनका थूथुन था, सामवेदका उच्चस्वर शब्द था, वे सत्य और धर्मसे युक्त, श्रीसम्पन्न और कर्मरूप पराक्रमसे सत्कृत थे। प्रायश्चित्त उनके भीषण नख और पशुगण जानु भाग थे। यज्ञ उनकी आकृति थी। उद्‌गीथद्वारा किया गया हवन उनका लिङ्ग था, बीज और ओषधियाँ महान् फल थीं, वायु उनका अन्तरात्मा, यज्ञ अस्थिविकार, सोमरस रक्त, वेद कंधे और हवि गन्ध था। वे भगवान् हव्य तथा कव्यके विभाग करनेवाले थे। प्राग्वंश उनका शरीर था। वे कान्तिमान् और अनेकों दीक्षाओंसे दीक्षित थे। दक्षिणा उनका हृदय था, वे परम योगी और महान् यज्ञमय महापुरुष थे। उपाकर्म उनके होंठोंके फलक, प्रवर्ग्य सम्पूर्ण आभूषण, समस्त वेद गमन-मार्ग और गोपनीय उपनिषदें उनकी आसन थीं। छाया उनकी पत्नी थी, वे मणि-शृङ्गके समान ऊँचे थे। ऐसे वराह भगवान्‌ने रसातलमें जाकर डूबी हुई पृथ्वीका लोकहितकी कामनासे अपने दाढ़ोंके अग्रभागपर रखकर उद्धार किया॥ ६२—७४॥

ततः स्वस्थानमानीय वराहः पृथिवीधरः।
मुमोच पूर्वं मनसा धारितां च वसुंधराम्॥ ७५

ततो जगाम निर्वाणं मेदिनी तस्य धारणात्।
चकार च नमस्कारं तस्मै देवाय शम्भवे॥ ७६

एवं यज्ञवराहेण भूत्वा भूतहितार्थिना।
उद्धृता पृथिवी देवी सागराम्बुगता पुरा॥ ७७

अथोद्धृत्य क्षितिं देवो जगतः स्थापनेच्छया।
पृथिवीप्रविभागाय मनश्चक्रेऽम्बुजेक्षणः॥ ७८

रसां गतामेवमचिन्त्यविक्रमः
सुरोत्तमः प्रवरवराहरूपधृक्।
वृषाकपिः प्रसभमथैकदंष्ट्रया
समुद्धरद्धरणिमतुल्यपौरुषः॥ ७९

इसके बाद पृथ्वीको धारण करनेवाले वराहभगवान्ने पहले मनसे धारण की हुई वसुंधराको अपने स्थानपर लाकर छोड़ दिया। उनके धारण करनेसे पृथ्वीने भी शान्ति-लाभ किया और उन कल्याणकारी भगवान्को नमस्कार किया। इस प्रकार पूर्वकालमें भगवान्ने प्राणियोंके हित करनेकी इच्छासे यज्ञवराहरूप धारणकर सागरके जलमें निमग्न हुई पृथ्वीदेवीका उद्धार किया था। इस प्रकार पृथ्वीका उद्धार कर कमलनयन भगवान् विष्णुने जगत्की स्थापनाके लिये पृथ्वीको विभक्त करनेका विचार किया। इस प्रकार अचिन्त्य पराक्रमी, अनुपम पुरुषार्थी, सुरश्रेष्ठ, श्रेष्ठ वराहका रूप धारण करनेवाले भगवान् वृषाकपिने* रसातलमें गयी हुई पृथ्वीका बलपूर्वक अपनी एक दाढ़द्वारा उद्धार किया था॥ ७५—७९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वराहप्रादुर्भावो नामाष्टचत्वारिंशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वराहप्रादुर्भाव नामक दो सौ अड़तालीसवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४८॥

दो सौ उनचासवाँ अध्याय

अमृत-प्राप्तिके लिये समुद्र-मन्थनका उपक्रम और वारुणी (मदिरा)-का प्रादुर्भाव

ऋषय ऊचुः

नारायणस्य माहात्म्यं श्रुत्वा सूत यथाक्रमम्।
न तृप्तिर्जायतेऽस्माकमतः पुनरिहोच्यताम्॥ १

कथं देवा गताः पूर्वममरत्वं विचक्षणाः।
तपसा कर्मणा वापि प्रसादात् कस्य तेजसा॥ २

सूत उवाच

यत्र नारायणो देवो महादेवश्च शूलधृक्।
तत्रामरत्वे सर्वेषां सहायौ तत्र तौ स्मृतौ॥ ३

पुरा देवासुरे युद्धे हताश्च शतशः सुरैः।
पुनः संजीवनीं विद्यां प्रयोज्य भृगुनन्दनः॥ ४

जीवापयति दैत्येन्द्रान् यथा सुप्तोत्थितानिव।
तस्य तुष्टेन देवेन शंकरेण महात्मना॥ ५

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! भगवान् नारायणके माहात्म्यको क्रमशः सुनकर हमलोगोंकी तृप्ति नहीं हो रही है, अतः उसे पुनः बतलाइये। प्राचीनकालमें चतुर देवतालोग तपस्या या कर्मसे अथवा किस देवताकी कृपासे किस प्रकार अमरत्वको प्राप्त हुए थे?॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! जहाँ भगवान् विष्णु और शूलधारी शंकरजी वर्तमान हैं, वहाँ वे ही दोनों सभी देवताओंकी अमरत्व-प्राप्तिमें सहायक माने गये हैं। प्राचीनकालमें देवासुर-संग्राममें देवताओंद्वारा मारे गये सैकड़ों राक्षसोंको भृगुनन्दन शुक्राचार्य संजीवनी-विद्याका प्रयोग करके जीवित कर देते थे। तब वे दैत्येन्द्र फिर सोकर उठे हुएकी तरह उठकर लड़ने लगते थे। परम कान्तिमती मृत-संजीवनी विद्या शुक्राचार्यको उनपर प्रसन्न हुए भगवान् शंकरने दी थी।

* निरुक्तादिके अनुसार वृषाकपिका अर्थ महादेव, वाराहावतार विष्णु तथा (हनुमान्) आदि हैं। निरुक्त एवं अन्य वैदिक तथा व्याकरणादि ग्रन्थोंके अनुसार इनकी पत्नी 'वृषाकपायी' कही गयी हैं।

मृतसंजीवनी नाम विद्या दत्ता महाप्रभा।
तां तु माहेश्वरीं विद्यां महेश्वरमुखोद्गताम्॥ ६
भार्गवे संस्थितां दृष्ट्वा मुमुदुः सर्वदानवाः।
ततोऽमरत्वं दैत्यानां कृतं शुक्रेण धीमता॥ ७
या नास्ति सर्वलोकानां देवानां यक्षरक्षसाम्।
न नागानामृषीणां च न च ब्रह्मेन्द्रविष्णुषु॥ ८
तां लब्ध्वा शंकराच्छुक्रः परां निर्वृतिमागतः।
ततो देवासुरो घोरः समरः सुमहानभूत्॥ ९
तत्र देवैर्हतान् दैत्याञ् शुक्रो विद्याबलेन च।
उत्थापयति दैत्येन्द्राँल्लीलयैव विचक्षणः॥ १०
एवंविधेन शक्रस्तु बृहस्पतिरुदारधीः।
हन्यमानास्ततो देवाः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ११
विषण्णवदनाः सर्वे बभूवुर्विकलेन्द्रियाः।
ततस्तेषु विषण्णेषु भगवान् कमलोद्भवः।
मेरुपृष्ठे सुरेन्द्राणामिदमाह जगत्पतिः॥ १२

महेश्वरके मुखसे निकली हुई माहेश्वरी विद्याको शुक्राचार्यमें संस्थित देखकर दानवगण अतिशय प्रमुदित थे। इस विद्याके प्रभावसे बुद्धिमान् शुक्राचार्यने राक्षसोंको अमर कर दिया था। जो विद्या न तो सम्पूर्ण लोकों, देवों, यक्षों और राक्षसोंमें थी, न नागों और ऋषियोंमें तथा न ब्रह्मा, इन्द्र और विष्णुमें थी, उसे शंकरजीसे प्राप्तकर शुक्र परम संतुष्ट थे। इसके बाद देवताओं और राक्षसोंमें महान् भीषण युद्ध छिड़ गया। उसमें देवताओंद्वारा मारे गये दैत्येन्द्रोंको परम निपुण आचार्य शुक्र अपनी विद्याके बलसे देखते-ही-देखते तुरंत जीवित कर देते थे। इस प्रकार सैकड़ों-हजारों देवताओंको मारा जाता हुआ देखकर इन्द्र, उदारहृदय बृहस्पति तथा सभी देवताओंके मुख सूख गये और उनकी इन्द्रियाँ विकल हो गयीं। इस प्रकार उनके चिन्तित होनेपर कमलोद्भव जगत्पति भगवान् ब्रह्माने सुमेरु पर्वतपर अवस्थित देवताओंसे इस प्रकार कहा॥३—१२॥

ब्रह्मोवाच

देवाः शृणुत मद्वाक्यं तत्तथैव निरूप्यताम्।
क्रियतां दानवैः सार्धं सख्यमत्राभिधीयताम्॥ १३
क्रियताममृतोद्योगो मथ्यतां क्षीरवारिधिः।
सहायं वरुणं कृत्वा चक्रपाणिर्विबोध्यताम्॥ १४
मन्थानं मन्दरं कृत्वा शेषनेत्रेण वेष्टितम्।
दानवेन्द्रो बलिः स्वामी स्तोककालं निवेश्यताम्॥ १५
प्रार्थ्यतां कूर्मरूपश्च पाताले विष्णुरव्ययः।
प्रार्थ्यतां मन्दरः शैलो मन्थकार्यं प्रवर्त्यताम्॥ १६
तच्छ्रुत्वा वचनं देवा जग्मुर्दानवमन्दिरम्।
अलं विरोधेन वयं भृत्यास्तव बलेऽधुना॥ १७
क्रियताममृतोद्योगो व्रियतां शेषनेत्रकम्।
त्वया चोत्पादिते दैत्य अमृतेऽमृतमन्थने॥ १८
भविष्यामोऽमराः सर्वे त्वत्प्रसादान्न संशयः।
एवमुक्तस्तदा देवैः परितुष्टः स दानवः॥ १९
यथा वदत हे देवास्तथा कार्यं मयाधुना।
शक्तोऽहमेक एवात्र मथितुं क्षीरवारिधिम्॥ २०

ब्रह्माजी बोले—देवगण! आपलोग मेरी बात सुनिये और उसके अनुसार काम कीजिये। इस कार्यमें आप लोग दानवोंके साथ मित्रता कर लें और अमृत-प्राप्तिके लिये उपाय करें। इसके लिये चक्रपाणि भगवान् विष्णुको उद्बोधित कीजिये और वरुणको सहायक तथा शेषनागरूपी रस्सीसे परिवेष्टित मन्दराचलको मथानी बनाकर क्षीरसमुद्रका मन्थन कीजिये। थोड़े समयके लिये दानवेन्द्र बलिको अध्यक्षरूपमें नियुक्त कर दीजिये। पातालमें स्थित कूर्मरूप अव्यय भगवान् विष्णुकी और मन्दराचलकी प्रार्थना कीजिये। तत्पश्चात् समुद्र-मन्थनका कार्य प्रारम्भ कीजिये। इस कथनको सुनकर देवगण दानवराजके महलमें पहुँचे और कहने लगे—'बले! अब विरोध बंद कीजिये, हमलोग तो आपके भृत्य हैं। आप अमृत-प्राप्तिके लिये उद्योग करें और शेषनागको रस्सीके रूपमें वरण करें। दैत्य! अमृतमन्थनरूप कार्यमें आपके द्वारा अमृतके उत्पन्न हो जानेपर आपकी कृपासे हम सभी लोग निःसंदेह अमर हो जायँगे।' देवताओंद्वारा इस प्रकार कहे जानेपर दानवराज बलि उस समय प्रसन्न हो गया और कहने लगा—'देवगण! जैसा आपलोग कह रहे हैं, मुझे इस समय वैसा ही करना चाहिये। मैं तो अकेला ही क्षीरसागरका

आहरिष्येऽमृतं दिव्यममृतत्वाय वोऽधुना।
सुदूरादाश्रयं प्राप्तान् प्रणतानपि वैरिणः॥ २१

यो न पूजयते भक्त्या प्रेत्य चेह विनश्यति।
पालयिष्यामि वः सर्वानधुना स्नेहमास्थितः॥ २२

एवमुक्त्वा स दैत्येन्द्रो देवैः सह ययौ तदा।
मन्दरं प्रार्थयामास सहायत्वे धराधरम्॥ २३

मन्था भव त्वमस्माकमधुनामृतमन्थने।
सुरासुराणां सर्वेषां महत्कार्यमिदं यतः॥ २४

तथेति मन्दरः प्राह यद्याधारो भवेन्मम।
यत्र स्थित्वा भ्रमिष्यामि मथिष्ये वरुणालयम्॥ २५

कल्प्यतां नेत्रकार्ये यः शक्तः स्याद् भ्रमणे मम।
ततस्तु निर्गतौ देवौ कूर्मशेषौ महाबलौ॥ २६

विष्णोर्भागौ चतुर्थांशाद्धरण्या धारणे स्थितौ।
ऊचतुर्गर्वसंयुक्तं वचनं शेषकच्छपौ॥ २७

कूर्म उवाच

त्रैलोक्यधारणेनापि न ग्लानिर्मम जायते।
किमु मन्दरकात् क्षुद्राद् गुटिकासंनिभादिह॥ २८

शेष उवाच

ब्रह्माण्डवेष्टनेनापि ब्रह्माण्डमथनेन वा।
न मे ग्लानिर्भवेद् देहे किमु मन्दरवर्तने॥ २९

तत उत्पाट्य तं शैलं तत्क्षणात् क्षीरसागरे।
चिक्षेप लीलया नागः कूर्मश्चाधःस्थितस्तदा॥ ३०

निराधारं यदा शैलं न शेकुर्देवदानवाः।
मन्दरभ्रामणं कर्तुं क्षीरोदमथने तथा॥ ३१

नारायणनिवासं ते जग्मुर्बलिसमन्विताः।
यत्रास्ते देवदेवेशः स्वयमेव जनार्दनः॥ ३२

तत्रापश्यन्त तं देवं सितपद्मप्रभं शुभम्।
योगनिद्रासुनिरतं पीतवाससमच्युतम्॥ ३३

हारकेयूरनद्धाङ्गमहिपर्यङ्कसंस्थितम्।
पादपद्मेन पद्मायाः स्पृशन्तं नाभिमण्डलम्॥ ३४

मन्थन करनेमें समर्थ हूँ। इस समय मैं आपलोगोंकी अमरताके निमित्त दिव्य अमृत ले आऊँगा। जो सुदूरसे आश्रयके लिये आये हुए शरणागत वैरियोंको भक्तिपूर्वक सम्मानित नहीं करता, उसका यह लोक और परलोक—दोनों नष्ट हो जाते हैं। इस समय मैं आप सभी लोगोंकी स्नेहपूर्वक रक्षा करूँगा।' ऐसा कहकर दैत्येन्द्र बलि देवताओंके साथ तुरंत चल पड़ा और सहायताके लिये मन्दराचलसे प्रार्थना करते हुए बोला—'मन्दर! चूँकि इस समय हम सभी देवताओं और असुरोंका यह महान् कार्य उपस्थित हो गया है, अतः इस अमृत-मन्थनके कार्यमें तुम मथानी बन जाओ।' मन्दराचलने कहा—'यदि मुझे कोई आधार मिले तो मुझे स्वीकार है जिसपर स्थित होकर मैं भ्रमण करूँगा और वरुणालयको मथ डालूँगा। साथ ही मेरे भ्रमण करते समय जो समर्थ हो सके, ऐसा किसीको नेतीके कार्यके लिये चुनिये।' तदनन्तर महाबली कूर्म और शेषनाग—दोनों देवता पातालसे ऊपर आये। ये दोनों भगवान् विष्णुके चतुर्थांश भाग हैं और पृथ्वीको धारण करनेके लिये नियुक्त हैं। तब शेष और कच्छप गर्वपूर्ण वचन बोले॥ १३—२७॥

कूर्मने कहा—मुझे तो इस त्रिलोकीको धारण करनेपर भी थकावट नहीं होती तो भला इस कार्यमें गुटिकाके समान क्षुद्र मन्दरको धारण करनेकी क्या बात है?॥ २८॥

शेषनागने कहा—जब समस्त ब्रह्माण्डका वेष्टन बनने तथा उसका मन्थन करनेसे मेरे शरीरमें शिथिलता नहीं आती तो मन्दरके घुमानेसे कौन-सा कष्ट होगा? ऐसा कहकर नागने लीलापूर्वक उसी क्षण उस मन्दराचलको उखाड़कर क्षीरसागरमें डाल दिया। उस समय कूर्म उसके नीचे स्थित हुए। किंतु क्षीरसमुद्रका मन्थन आरम्भ होनेपर जब देवता और दानव उस आधारशून्य मन्दराचलको घुमानेमें समर्थ न हो सके, तब वे बलिको साथ लेकर भगवान् नारायणके निवासस्थानपर गये, जहाँ देवाधिदेव भगवान् जनार्दन विराजमान थे। वहाँ उन्होंने श्वेत कमलके समान कान्तियुक्त एवं कल्याणकारी भगवान् अच्युतको देखा, जिनके शरीरपर पीताम्बर झलक रहा था, जो योगनिद्रामें निमग्न थे, जिनका शरीर हार और केयूरसे विभूषित था, जो शेषनागकी शय्यापर शयन कर रहे थे और अपने चरणकमलसे लक्ष्मीके नाभिमण्डलका स्पर्श

स्वपक्षव्यजनेनाथ वीज्यमानं गरुत्मता।
स्तूयमानं समन्ताच्च सिद्धचारणकिंनरैः॥ ३५
आम्नायैर्मूर्तिमद्भिश्च स्तूयमानं समन्ततः।
सव्यबाहूपधानं तं तुष्टुवुर्देवदानवाः।
कृताञ्जलिपुटाः सर्वे प्रणताः सर्वतोदिशम्॥ ३६

देवदानवा ऊचुः

नमो लोकत्रयाध्यक्ष तेजसा जितभास्कर।
नमो विष्णो नमो जिष्णो नमस्ते कैटभार्दन॥ ३७
नमः सर्गक्रियाकर्त्रे जगत्पालयते नमः।
रुद्ररूपाय शर्वाय नमः संहारकारिणे॥ ३८
नमः शूलायुधाधृष्य नमो दानवघातिने।
नमः क्रमत्रयाक्रान्त त्रैलोक्यायाभवाय च॥ ३९
नमः प्रचण्डदैत्येन्द्रकुलकालमहानल।
नमो नाभिह्रदोद्भूतपद्मगर्भ महाबल॥ ४०
पद्मभूत महाभूत कर्त्रे हर्त्रे जगत्प्रिय।
जनिता सर्वलोकेश क्रियाकारणकारिणे॥ ४१
अमरारिविनाशाय महासमरशालिने।
लक्ष्मीमुखाब्जमधुप नमः कीर्तिनिवासिने॥ ४२
अस्माकममरत्वाय ध्रियतां ध्रियतामयम्।
मन्दरः सर्वशैलानामयुतायुतविस्तृतः॥ ४३
अनन्तबलबाहुभ्यामवष्टभ्यैकपाणिना।
मथ्यताममृतं देव स्वधास्वाहार्थकामिनाम्॥ ४४
ततः श्रुत्वा स भगवान् स्तोत्रपूर्वं वचस्तदा।
विहाय योगनिद्रां तामुवाच मधुसूदनः॥ ४५

श्रीभगवानुवाच

स्वागतं विबुधाः सर्वे किमागमनकारणम्।
यस्मात् कार्यादिह प्राप्तास्तद् ब्रूत विगतज्वराः॥ ४६
नारायणेनैवमुक्ताः प्रोचुस्तत्र दिवौकसः।
अमरत्वाय देवेश मथ्यमाने महोदधौ॥ ४७

कर रहे थे, गरुड़ अपने डैनेरूपी पंखसे जिनपर हवा कर रहे थे, चारों ओरसे सिद्ध, चारण और किन्नर जिनकी स्तुतिमें तन्मय थे, मूर्तिमान् वेद चारों ओरसे जिनकी स्तुति कर रहे थे तथा जो अपनी बायीं भुजाको तकिया बनाये हुए थे। तब वे सभी देव-दानव सब ओरसे हाथ जोड़कर प्रणाम करके उन भगवान्‌की स्तुति करने लगे॥ २९—३६॥

देवताओं और दैत्योंने कहा—त्रिलोकीनाथ! आप अपने तेजसे सूर्यको पराजित करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। विष्णुको प्रणाम है। जिष्णुको अभिवादन है। आप कैटभका वध करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। सृष्टि-कर्म करनेवालेको प्रणाम है। आप जगत्‌के पालनकर्ता हैं, आपको अभिवादन है। आप रुद्ररूपसे संहार करनेवाले हैं, आप शर्वको नमस्कार है। त्रिशूलरूप आयुधसे धर्षित न होनेवाले आपको प्रणाम है। दानवोंका वध करनेवाले आपको अभिवादन है। आप तीन पगसे त्रिलोकीको आक्रान्त कर लेनेवाले और अजन्मा हैं, आपको नमस्कार है। आप प्रचण्ड दैत्येन्द्रोंके कुलके लिये कालरूप महान् अग्नि हैं, आपको प्रणाम है। महाबल! आपके नाभि-कुण्डसे पद्मकी उत्पत्ति हुई है, आपको अभिवादन है। आप पद्मको उत्पन्न करनेवाले, महाभूत, जगत्‌के कर्ता, हर्ता और प्रिय, सभीके जनक, सभी लोकोंके स्वामी, कार्य और कारण—दोनोंका निर्माण करनेवाले, अमरोंके शत्रुओंका विनाश करनेके लिये महान् समर करनेवाले, लक्ष्मीके मुखकमलके मधुप और यशमें निवास करनेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप हमलोगोंकी अमरत्व-प्राप्तिके लिये सभी पर्वतोंमें विशाल मन्दराचलको, जो अयुतायुत योजन विस्तृत है, अवश्य धारण कीजिये। देव! आप अपनी अनन्त बलशालिनी भुजाओंद्वारा पर्वतको रोककर एक हाथसे स्वाहा-स्वधाके अभिलाषी देवताओंके उपकारार्थ अमृतका मन्थन कीजिये। तदनन्तर भगवान् मधुसूदन उस स्तुतिपूर्ण वचनको सुनकर उस योगनिद्राका परित्याग कर इस प्रकार बोले॥ ३७—४५॥

श्रीभगवान्‌ने कहा—देवगण! आप सब लोगोंका स्वागत है। आपलोगोंके यहाँ आगमनका क्या उद्देश्य है? आपलोग जिस कार्यके लिये यहाँ आये हैं। उसे निश्चिन्त होकर बतलाइये। नारायणके ऐसा कहनेपर देवताओंने कहा—'देवेश! हमलोग अमरत्व-प्राप्तिके लिये

यथामृतत्वं देवेश तथा नः कुरु माधव।
त्वया विना न तच्छक्यमस्माभिः कैटभार्दन॥ ४८
प्राप्तुं तदमृतं नाथ ततोऽग्रे भव नो विभो।
इत्युक्तश्च ततो विष्णुरप्रधृष्योऽरिमर्दनः॥ ४९
जगाम देवैः सहितो यत्रासौ मन्दराचलः।
वेष्टितो भोगिभोगेन धृतश्चामरदानवैः॥ ५०
विषभीतास्ततो देवा यतः पुच्छं ततः स्थिताः।
मुखतो दैत्यसंघास्तु सैंहिकेयपुरःसराः॥ ५१
सहस्रवदनं चास्य शिरः सव्येन पाणिना।
दक्षिणेन बलिर्देहं नागस्याकृष्टवांस्तथा॥ ५२
दधारामृतमन्थानं मन्दरं चारुकन्दरम्।
नारायणः स भगवान् भुजयुग्मद्वयेन तु॥ ५३
ततो देवासुरैः सर्वैर्जयशब्दपुरःसरम्।
दिव्यं वर्षशतं साग्रं मथितः क्षीरसागरः॥ ५४
ततः श्रान्तास्तु ते सर्वे देवा दैत्यपुरःसराः।
श्रान्तेषु तेषु देवेन्द्रो मेघो भूत्वाम्बुशीकरान्॥ ५५
ववर्षामृतकल्पांस्तान् ववौ वायुश्च शीतलः।
भग्नप्रायेषु देवेषु शान्तेषु कमलासनः॥ ५६
मथ्यतां मथ्यतां सिन्धुरित्युवाच पुनः पुनः।
अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत् सदा॥ ५७
ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम्।
भ्राम्यमाणे ततः शैले योजनायुतशेखरे॥ ५८
निपेतुर्हस्तियूथानि वराहशरभादयः।
श्वापदायुतलक्षाणि तथा पुष्पफलद्रुमाः॥ ५९
ततः फलानां वीर्येण पुष्पौषधिरसेन च।
क्षीरमम्बुधिजं सर्वं दधिरूपमजायत॥ ६०
ततस्तु सर्वजीवेषु चूर्णितेषु सहस्रशः।
तदम्बुमेदसोत्सर्गाद् वारुणी समपद्यत॥ ६१
वारुणीगन्धमाघ्राय मुमुदुर्देवदानवाः।
तदास्वादेन बलिनो देवदैत्यादयोऽभवन्॥ ६२

समुद्रका मन्थन करना चाहते हैं। भगवान् माधव! हमें जिस उपायसे अमरत्वकी प्राप्ति हो सके, आप वैसा करें। कैटभशत्रो! आपके बिना हमलोग उस अमृतको प्राप्त नहीं कर सकते, अतः सर्वव्यापी नाथ! आप हमलोगोंके अग्रणी बनें।' उनके ऐसा कहनेपर शत्रुनाशक अजेय भगवान् विष्णु देवताओंके साथ उस स्थानपर गये, जहाँ मन्दराचल था। उस समय वह मन्दराचल शेषनागके फणोंसे लिपटा हुआ था तथा देवता और दानवगण उसे पकड़े हुए थे। उस समय विषके भयसे डरकर देवगण तो नागकी पूँछकी ओर और राहुको अगुआ बनाकर दैत्यगण मुखकी ओर स्थित थे। बलि शेषनागके हजार मुखवाले सिरको बायें हाथसे तथा देहको दाहिने हाथसे पकड़कर खींच रहा था। भगवान् नारायणने सुन्दर कन्दराओंसे सुशोभित अमृतके मन्थन-दण्डस्वरूप मन्दराचलको अपनी दोनों भुजाओंसे पकड़ा। इस प्रकार सभी देवताओं तथा दैत्योंने मिलकर जय-जयकार करते हुए सौ दिव्य वर्षोंसे भी अधिक कालतक क्षीरसागरका मन्थन करते रहे, तब दैत्योंसहित वे सभी देवता थक गये। उन लोगोंके थक जानेपर देवराज इन्द्र मेघरूप धारणकर उनके ऊपर अमृतके समान जलकणोंकी वृष्टि करने लगे और शीतल वायु बहने लगी॥ ४८—५५ १/२॥

उस समय प्रायः सभी देवताओंके शिथिल एवं शान्त हो जानेपर ब्रह्मा पुनः-पुनः इस प्रकार कहने लगे— 'अरे! समुद्रका मन्थन करते चलो। उद्योगी पुरुषोंको सदा अपार लक्ष्मी अवश्य प्राप्त होती है।' ब्रह्माद्वारा इस प्रकार उत्साहित किये जानेपर देवासुरगण पुनः समुद्रका मन्थन करने लगे। इसके बाद दस हजार योजन विस्तृत शिखरवाले मन्दराचलके घुमाये जानेपर (उसके शिखरोंपरसे) हाथियोंके समूह, शूकर, अष्टापद शरभ करोड़ों हिंसक पशु आदि तथा पुष्पों और फलोंसे लदे हुए वृक्ष समुद्रमें गिरने लगे। उन गिरे हुए फलोंके सारभाग तथा पुष्पों और ओषधियोंके रससे क्षीरसागरका जल दहीके रूपमें परिवर्तित हो गया। तदनन्तर उन सभी जीवोंके हजारों प्रकारसे चूर्ण हो जानेपर उनकी मज्जा और जलके संयोगसे वारुणी उत्पन्न हुई। उस वारुणीकी गन्धको सूँघकर देवता और दानव परम प्रसन्न हुए और उसके आस्वादनसे वे बलवान् हो गये।

ततोऽतिवेगाज्जगृहुर्नगेन्द्रं सर्वतोऽसुराः।
मन्थानं मन्थयष्टिस्तु मेरुस्तत्राचलोऽभवत्॥ ६३
अभवच्चाग्रतो विष्णुर्भुजमन्दरबन्धनः।
सवासुकिफणालग्नपाणिः कृष्णो व्यराजत॥ ६४
यथा नीलोत्पलैर्युक्तो ब्रह्मदण्डोऽतिविस्तरः।
ध्वनिर्मेघसहस्रस्य जलधेरुत्थितस्तदा॥ ६५

तब असुरोंने अत्यन्त वेगपूर्वक मथानी और शेषनागको चारों ओरसे पुनः पकड़ा। उस समय सुमेरु पर्वत मथानीका डंडा बना। भगवान् विष्णुने अग्रसर होकर अपनी भुजासे मन्दराचलको बाँध लिया। उस समय वासुकिके फणोंपर रखा हुआ उनका साँवला हाथ ऐसा शोभायमान हो रहा था मानो नीले कमलोंसे युक्त अत्यन्त विशाल ब्रह्मदण्ड हो। तत्पश्चात् समुद्रसे हजारों मेघकी-सी गर्जना उद्भूत हुई॥ ५६—६५॥

भागे द्वितीये मघवानादित्यस्तु ततः परम्।
ततो रुद्रा महोत्साहा वसवो गुह्यकादयः॥ ६६
पुरतो विप्रचित्तिश्च नमुचिर्वृत्रशम्बरौ।
द्विमूर्धा वज्रदंष्ट्रश्च सैंहिकेयो बलिस्तथा॥ ६७
एते चान्ये च बहवो मुखभागमुपस्थिताः।
ममन्थुरम्बुधिं दृप्ता बलतेजोविभूषिताः॥ ६८
बभूवात्र महाघोषो महामेघरवोपमः।
उदधेर्मथ्यमानस्य मन्दरेण सुरासुरैः॥ ६९
तत्र नानाजलचरा विनिर्धूता महाद्रिणा।
विलयं समुपाजग्मुः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७०
वारुणानि च भूतानि विविधानि महीधरः।
पातालतलवासीनि विलयं समुपानयत्॥ ७१
तस्मिंश्च भ्राम्यमाणेऽद्रौ संघृष्टाश्च परस्परम्।
न्यपतन् पतगोपेताः पर्वताग्रान्महाद्रुमाः॥ ७२
तेषां संघर्षणाच्चाग्निरर्चिर्भिः प्रज्वलन् मुहुः।
विद्युद्भिरिव नीलाभ्रमवृणोन्मन्दरं गिरिम्॥ ७३
ददाह कुञ्जरांश्चैव सिंहांश्चैव विनिःसृतान्।
विगतासूनि सर्वाणि सत्त्वानि विविधानि च॥ ७४

शेषनागके दूसरे भागमें इन्द्र, उसके बाद आदित्य, उसके बाद महान् उत्साही रुद्रगण, वसुगण तथा गुह्यक आदि थे। आगेकी ओर विप्रचित्ति, नमुचि, वृत्र, शम्बर, द्विमूर्धा, वज्रदंष्ट्र, राहु तथा बलि थे। ये तथा इनके सिवा अन्य बहुत-से राक्षस मुखभागमें उपस्थित थे। बल और तेजसे विभूषित एवं गर्वसे भरे हुए वे सभी समुद्रका मन्थन कर रहे थे। देवताओं और दानवोंद्वारा मन्दराचलकी मथानीसे मन्थन किये जाते हुए समुद्रसे मेघगर्जनके समान भीषण ध्वनि निकलने लगी। वहाँ उस महान् मन्दराचलसे पिसे हुए नाना प्रकारके सैकड़ों-हजारों जलचर नष्ट हो गये। उस पर्वतने वरुणलोकके पाताललोकवासी अनेकों प्रकारके प्राणियोंको विनाशके पथपर पहुँचा दिया। उस पर्वतके घुमाये जाते समय उस मन्दराचलके ऊपर उगे हुए विशाल वृक्ष पक्षियोंसहित परस्परके संघर्षणसे टूट-टूटकर गिर रहे थे। उनके संघर्षणसे उत्पन्न हुई अग्निने बारंबार प्रज्वलित होकर अपनी लपटोंसे मन्दराचलको उसी प्रकार आच्छादित कर लिया, जैसे बिजलियाँ नीले मेघको ढक लेती हैं। उस अग्निने पर्वतसे निकले हुए सिंहों और हाथियोंको तथा अनेकों प्रकारके प्राणरहित सभी जीवोंको भस्म कर दिया॥ ६६—७४॥

तमग्निममरश्रेष्ठः प्रदहन्तमितस्ततः।
वारिणा मेघजेनेन्द्रः शमयामास सर्वतः॥ ७५
ततो नानारसास्तत्र सुस्रुवुः सागराम्भसि।
महाद्रुमाणां निर्यासा बहवश्चौषधीरसाः॥ ७६
तेषाममृतवीर्याणां रसानां पयसैव च।
अमरत्वं सुरा जग्मुः काञ्चनच्छविसंनिभाः॥ ७७
अथ तस्य समुद्रस्य तज्जातमुदकं पयः।
रसान्तरैर्विमिश्रश्च ततः क्षीरादभूद् घृतम्॥ ७८

तब देवश्रेष्ठ इन्द्रने इधर-उधर जलाती हुई उस अग्निको बादलके जलसे चारों ओरसे शान्त कर दिया। तदनन्तर उस समुद्रके जलमें नाना प्रकारके रस, विशाल वृक्षोंके रस और ओषधियोंके रस अधिक मात्रामें टपकने लगे। उन अमृतके समान गुणकारी रसोंसे युक्त जलसे सुवर्णकी भाँति देदीप्यमान देवगण अमरताको प्राप्त हो गये। समुद्रका जल दुग्धके रूपमें परिणत हो गया था, पुनः अनेक प्रकारके रसोंके मिश्रणसे वह दुग्धसे घृतके

ततो ब्रह्माणमासीनं देवा वचनमब्रुवन्।
श्रान्ताः स्म सुभृशं ब्रह्मन् नोद्भवत्यमृतं च यत्॥ ७९
ऋते नारायणात् सर्वे दैत्या देवोत्तमास्तथा।
चिरायितमिदं चापि सागरस्य तु मन्थनम्॥ ८०
ततो नारायणं देवं ब्रह्मा वचनमब्रवीत्।
विधत्स्वैषां बलं विष्णो भवानेव परायणम्॥ ८१

रूपमें परिवर्तित हो गया। तब वहाँ बैठे हुए ब्रह्मासे देवताओंने इस प्रकार कहा—'ब्रह्मन्! हमलोग बहुत थक गये हैं, किंतु जो अभीतक अमृत नहीं निकला, इसका कारण यह है कि भगवान् विष्णुको छोड़कर हम सभी देवगण तथा दैत्यगण समुद्रको मथनेमें देरी कर रहे हैं।' तब ब्रह्माने भगवान् विष्णुसे इस प्रकार कहा—'विष्णो! इन सबको बल प्रदान कीजिये; क्योंकि आप ही इनके शरणदाता हैं'॥ ७५—८१॥

विष्णुरुवाच

बलं ददामि सर्वेषां कर्मैतद् ये समास्थिताः।
क्षुभ्यतां क्रमशः सर्वैर्मन्दरः परिवर्त्यताम्॥ ८२

भगवान् विष्णु बोले—इस मन्थन-कार्यमें जितने लोग सम्मिलित हैं, उन सबको मैं बल प्रदान करता हूँ। अब सभी लोग मिलकर क्रमशः मन्दर पर्वतको घुमायें और सागरको क्षुब्ध करें॥ ८२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थने एकोनपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २४९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अमृत-मन्थन नामक दो सौ उनचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २४९॥

दो सौ पचासवाँ अध्याय

अमृतार्थ समुद्र-मन्थन करते समय चन्द्रमासे लेकर विषतकका प्रादुर्भाव

सूत उवाच

नारायणवचः श्रुत्वा बलिनस्ते महोदधौ।
तत्पयः सहिता भूत्वा चक्रिरे भृशमाकुलम्॥ १
ततः शतसहस्रांशुसमान इव सागरात्।
प्रसन्नाभः समुत्पन्नः सोमः शीतांशुरुज्ज्वलः॥ २
श्रीरनन्तरमुत्पन्ना घृतात् पाण्डुरवासिनी।
सुरादेवी समुत्पन्ना तुरगः पाण्डुरस्तथा॥ ३
कौस्तुभश्च मणिर्दिव्यश्चोत्पन्नोऽमृतसम्भवः।
मरीचिविकचः श्रीमान् नारायणउरोगतः॥ ४
पारिजातश्च विकचकुसुमस्तबकाञ्चितः।
अनन्तरमपश्यंस्ते धूममम्बरसंनिभम्॥ ५
आपूरितदिशाभागं दुःसहं सर्वदेहिनाम्।
तमाघ्राय सुराः सर्वे मूर्च्छिताः परिलम्बिताः॥ ६

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भगवान् विष्णुकी बात सुनकर वे बलवान् सम्मिलित होकर उस महासमुद्रमें उसकी जलराशिको अत्यन्त क्षुभित करने लगे। इसके बाद समुद्रसे सौ सूर्योंकी भाँति दीप्तिशाली शीतरश्मि उज्ज्वल चन्द्रमा उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् समुद्रके जलसे* पीले वस्त्रोंसे शोभित लक्ष्मी उत्पन्न हुई, फिर सुरादेवी तथा पीले रंगका घोड़ा उत्पन्न हुआ। तदनन्तर नारायणके वक्षःस्थलपर शोभित होनेवाली किरणोंसे व्याप्त, शोभा-सम्पन्न तथा अमृतसे उत्पन्न होनेवाली दिव्य कौस्तुभमणि उत्पन्न हुई। पुनः अनेक खिले हुए पुष्पोंके गुच्छोंसे व्याप्त पारिजात प्रकट हुआ। तदुपरान्त देवताओं और दैत्योंने आकाशके समान नीले रंगके धुएँको निकलते हुए देखा, जो सभी दिशाओंमें परिव्याप्त और सभी प्राणियोंके लिये दुःसह था। उसे सूँघकर देवगण मूर्च्छित

* निरुक्त ७। २४ और निघण्टु, १। १२ के अनुसार घृतका जल अर्थ वेदोंमें बहुधा युक्त हुआ है। लक्ष्मीके प्राकट्यके समय इसका प्रयोग आवश्यक था।

उपाविशन्नब्धितटे शिरः संगृह्य पाणिना।
ततः क्रमेण दुर्वारः सोऽनलः प्रत्यदृश्यत॥ ७
ज्वालामालाकुलाकारः समन्ताद् भीषणोऽर्चिषा।
तेनाग्निना परिक्षिप्ताः प्रायशस्तु सुरासुराः॥ ८
दग्धाश्चाप्यर्धदग्धाश्च बभ्रमुः सकला दिशः।
प्रधाना देवदैत्याश्च भीषितास्तेन वह्निना॥ ९
अनन्तरं समुद्भूतास्तस्माड्डुण्डुभजातयः।
कृष्णसर्पा महादंष्ट्रा रक्ताश्च पवनाशनाः॥ १०
श्वेतपीतास्तथा चान्ये तथा गोनसजातयः।
मशका भ्रमरा दंशा मक्षिकाः शलभास्तथा॥ ११
कर्णशल्याः कृकलासा अनेके चैव बभ्रमुः।
प्राणिनो दंष्ट्रिणो रौद्रास्तथा हि विषजातयः॥ १२
शार्ङ्गहालाहलामुस्तवत्सकागुरुभस्मगाः।
नीलपत्रादयश्चान्ये शतशो बहुभेदिनः।
येषां गन्धेन दह्यन्ते गिरिशृङ्गाण्यपि द्रुतम्॥ १३

होकर गिरने लगे और हाथसे सिरको पकड़कर समुद्र-तटपर बैठ गये। तदनन्तर क्रमशः वह दुःसह अग्नि दिखायी पड़ी। उसका आकार ज्वालाओंसे व्याप्त था तथा चारों ओर फैली हुई लपटोंसे वह भीषण लग रही थी। उस अग्निसे प्रायः सभी देवता और दानवगण विक्षिप्त हो उठे और कुछ जले तथा कुछ अधजले हुए सभी दिशाओंमें घूमने लगे। इस प्रकार सभी प्रधान देव तथा दैत्यगण उस अग्निसे भयभीत हो गये। कुछ देरके बाद उस अग्निसे डुण्डुभ जातिके सर्प उत्पन्न हुए। उसी प्रकार काले, विशाल दाढ़ोंवाले, लाल, वायु पीकर रहनेवाले, श्वेत, पीले तथा अन्य गोनस जातिवाले सर्प तथा मशक, भ्रमर, डँसा, मक्खियाँ, पतंगे, कर्णशल्य, गिरगिट आदि अनेकों जीव उत्पन्न होकर इधर-उधर घूमने लगे। इनके अतिरिक्त अति भीषण दाढ़ोंवाले बहुत-से जीव तथा विषकी अनेकों जातियाँ उत्पन्न हुईं—जैसे शार्ङ्ग, हालाहल, मुस्त, वत्स, अगुरु, भस्मग और नील-पत्र आदि। इसी प्रकार अन्य सैकड़ों भेदोपभेदवाले विष उत्पन्न हुए, जिनकी गन्धसे पर्वतोंके शिखर भी तुरंत ही जलने लगे॥ १—१३॥

अनन्तरं नीलरसौघभृङ्ग-
भिन्नाञ्जनाभं विषमं श्वसन्तम्।
कायेन लोकान्तरपूरकेण
केशैश्च वह्निप्रतिमैर्ज्वलद्भिः॥ १४
सुवर्णमुक्ताफलभूषिताङ्गं
किरीटिनं पीतदुकूलजुष्टम्।
नीलोत्पलाभं कुसुमैः कृतार्धं
गर्जन्तमम्भोधरभीमवेगम्॥ १५
अद्राक्षुरम्भोनिधिमध्यसंस्थं
सविग्रहं देहिभयाश्रयं तम्।
विलोक्य तं भीषणमुग्रनेत्रं
भूताश्च वित्रेसुरथापि सर्वे॥ १६
केचिद् विलोक्यैव गता ह्यभावं
निःसंज्ञतां चाप्यपरे प्रपन्नाः।
वेमुर्मुखेभ्योऽपि च फेनमन्ये
केचित् त्ववाप्ता विषमामवस्थाम्॥ १७
श्वासेन तस्य निर्दग्धास्ततो विष्ण्विन्द्रदानवाः।
दग्धाङ्गारनिभा जाता ये भूता दिव्यरूपिणः।
ततस्तु सम्भ्रमाद् विष्णुस्तमुवाच सुरात्मकम्॥ १८

तदनन्तर देवताओं और दानवोंने सागरके मध्यमें स्थित एक ऐसा स्वरूप देखा, जिसकी शरीर-कान्ति नीलरस, भ्रमर और घिसे हुए अञ्जनके समान काली थी, जो विषमरूपसे श्वास ले रहा था और शरीरसे लोकान्तरको व्याप्त कर लिया था, जिसके केश जलती हुई अग्निके समान दिखायी पड़ रहे थे, जिसका शरीर सुवर्ण और मोतियोंसे विभूषित था, जो किरीट धारण किये हुए था, जिसके शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था और देहकी कान्ति नीले कमलके समान थी, जो पुष्पोंद्वारा अलंकृत और मेघकी तरह अत्यन्त भयंकर रूपसे गर्जना कर रहा था तथा प्राणियोंके लिये शरीरधारी भयका आश्रयस्थान था। उस भीषण एवं उग्र नेत्रवाले स्वरूपको देखकर सभी प्राणी भयभीत हो उठे। कितने तो देखते ही चल बसे, कितने मूर्छित हो गये, कुछ मुखसे फेन उगलने लगे और कुछ लोग विषम अवस्थाको प्राप्त हो गये। उसकी श्वाससे विष्णु, इन्द्र और दानव—सभी जलने लगे। थोड़ी देर पहले जो दिव्य रूपवाले थे, वे जले हुए अंगारके समान हो गये। तब भगवान् विष्णुने भयभीत होकर उस सुरात्मकसे इस प्रकार प्रश्न किया॥ १४—१८॥

श्रीभगवानुवाच

को भवानन्तकप्रख्य: किमिच्छसि कुतोऽपि च।
किं कृत्वा ते प्रियं जायेदेवमाचक्ष्व मेऽखिलम्॥ १९

तच्च तस्य वच: श्रुत्वा विष्णो: कालाग्निसंनिभ:।
उवाच कालकूटस्तु भिन्नदुन्दुभिनि:स्वन:॥ २०

कालकूट उवाच

अहं हि कालकूटाख्यो विषोऽम्बुधिसमुद्भव:।
यदा तीव्रतरामर्षै: परस्परवधैषिभि:॥ २१

सुरासुरैर्विमथितो दुग्धाम्भोनिधिरद्भुत:।
सम्भूतोऽहं तदा सर्वान् हन्तुं देवान् सदानवान्॥ २२

सर्वानिह हनिष्यामि क्षणमात्रेण देहिन:।
मां वा ग्रसत वै सर्वे यात वा गिरिशान्तिकम्॥ २३

श्रुत्वैतद् वचनं तस्य ततो भीता: सुरासुरा:।
ब्रह्मविष्णू पुरस्कृत्य गतास्ते शङ्करान्तिकम्॥ २४

निवेदितास्ततो द्वा:स्थैस्ते गणेशै: सुरासुरा:।
अनुज्ञाता: शिवेनाथ विविशुर्गिरिशान्तिकम्॥ २५

मन्दरस्य गुहां हैमीं मुक्तामणिविभूषिताम्।
सुस्वच्छमणिसोपानां वैदूर्यस्तम्भमण्डिताम्॥ २६

तत्र देवासुरै: सर्वैर्जानुभिर्धरणिं गतै:।
ब्रह्माणमग्रत: कृत्वा इदं स्तोत्रमुदाहृतम्॥ २७

देवदानवा ऊचु:

नमस्तुभ्यं विरूपाक्ष नमस्ते दिव्यचक्षुषे।
नम: पिनाकहस्ताय वज्रहस्ताय धन्विने॥ २८

नमस्त्रिशूलहस्ताय दण्डहस्ताय धूर्जटे।
नमस्त्रैलोक्यनाथाय भूतग्रामशरीरिणे॥ २९

नम: सुरारिहन्त्रे च सोमाग्न्यर्काग्र्यचक्षुषे।
ब्रह्मणे चैव रुद्राय नमस्ते विष्णुरूपिणे॥ ३०

ब्रह्मणे वेदरूपाय नमस्ते देवरूपिणे।
सांख्ययोगाय भूतानां नमस्ते शम्भवाय ते॥ ३१

मन्मथाङ्गविनाशाय नम: कालक्षयंकर।
रंहसे देवदेवाय नमस्ते वसुरेतसे॥ ३२

श्रीभगवान्‌ने पूछा—यमराजके समान आप कौन हैं? क्या चाहते हैं? और कहाँसे आ रहे हैं? क्या करनेसे आपकी कामना पूर्ण होगी? ये सभी बातें मुझे बताइये। भगवान् विष्णुकी वह बात सुनकर कालाग्निके समान भयंकर एवं फटी हुई दुन्दुभिके समान बोलनेवाला कालकूट बोला॥ १९-२०॥

कालकूटने कहा—विष्णो! मैं समुद्रसे उत्पन्न हुआ कालकूट नामक विष हूँ। जब परस्पर एक-दूसरेके वधके अभिलाषी देवता तथा दैत्योंद्वारा उग्र वेगसे अद्भुत क्षीरसागर मथा गया, तब मैं उन सभी देवताओं और दानवोंका संहार करनेके लिये उत्पन्न हुआ हूँ। मैं क्षणभरमें ही सभी शरीरधारियोंका संहार कर सकता हूँ। अत: ये सभी लोग या तो मुझे निगल जायँ अथवा शंकरकी शरणमें जायँ। कालकूटकी वह बात सुनकर देवता और असुर भयभीत हो गये, तब वे ब्रह्मा और विष्णुको आगे करके शंकरजीके पास जानेके लिये प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचनेपर द्वारपाल गणेश्वरोंने जाकर शिवजीसे देवताओं और दैत्योंके आगमनकी सूचना दी। तब शंकरजीसे आज्ञा पाकर वे लोग शिवजीके निकट मन्दराचलकी उस सुवर्णमयी गुफामें गये, जो मुक्तामणियोंसे विभूषित थी, जिसमें स्वच्छ मणिजटित सीढ़ियाँ लगी थीं और जो वैदूर्य मणिके स्तम्भसे शोभायमान थी। वहाँ ब्रह्माजीको आगे कर सभी देवताओं और असुरोंने पृथिवीपर घुटने टेककर शिवजीको (पञ्चाङ्ग) नमस्कार किया और फिर वे इस स्तोत्रका पाठ करने लगे॥ २१—२७॥

देवताओं और दानवोंने कहा—विरूपाक्ष! आपको नमस्कार है। दिव्य नेत्रधारी आपको प्रणाम है। आप अपने हाथोंमें पिनाक, वज्र और धनुष धारण करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है। हाथमें त्रिशूल और दण्ड धारण करनेवाले जटाधारीको नमस्कार है। आप त्रिलोकीनाथ और प्राणिसमूहके शरीररूप हैं, आपको प्रणाम है। देव-शत्रुओंका संहार करनेवाले तथा चन्द्रमा, अग्नि और सूर्यरूप नेत्र धारण करनेवालेको अभिवादन है। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्ररूप आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मस्वरूप, वेदस्वरूप और देवरूप हैं, आपको प्रणाम है। आप सांख्ययोगस्वरूप और प्राणियोंका कल्याण करनेवाले हैं, आपको अभिवादन है। कामदेवके शरीरके विनाशक और कालके क्षयकर्ता आपको नमस्कार है। आप वेगशाली, देवाधिदेव और वसुरेता हैं, आपको प्रणाम है। सर्वश्रेष्ठ

एकवीराय सर्वाय नमः पिङ्गकपर्दिने।
उमाभर्त्रे नमस्तुभ्यं यज्ञत्रिपुरघातिने॥ ३३
शुद्धबोधप्रबुद्धाय मुक्तकैवल्यरूपिणे।
लोकत्रयविधात्रे च वरुणेन्द्राग्निरूपिणे॥ ३४
ऋग्यजुःसामरूपाय पुरुषायेश्वराय च।
अग्र्याय चैव चोग्राय विप्राय श्रुतिचक्षुषे॥ ३५
रजसे चैव सत्त्वाय तमसे तिमिरात्मने।
अनित्यनित्यभावाय नमो नित्यचरात्मने॥ ३६
व्यक्ताय चैवाव्यक्ताय व्यक्ताव्यक्ताय वै नमः।
भक्तानामार्तिनाशाय प्रियनारायणाय च॥ ३७
उमाप्रियाय शर्वाय नन्दिवक्त्राञ्चिताय च।
ऋतुमन्वन्तकल्पाय पक्षमासदिनात्मने॥ ३८
नानारूपाय मुण्डाय वरूथपृथुदण्डिने।
नमः कपालहस्ताय दिग्वासाय शिखण्डिने॥ ३९
धन्विने रथिने चैव यतये ब्रह्मचारिणे।
इत्येवमादिचरितैः स्तुतं तुभ्यं नमो नमः॥ ४०
एवं सुरासुरैः स्थाणुः स्तुतस्तोषमुपागतः।
उवाच वाक्यं भीतानां स्मितान्वितशुभाक्षरम्॥ ४१

वीर, सर्वस्वरूप और पीले रंगकी जटा धारण करनेवालेको अभिवादन है। उमाके पति तथा यज्ञ एवं त्रिपुरका विनाश करनेवाले आपको नमस्कार है। आप शुद्ध ज्ञानसे परिपूर्ण, मुक्त कैवल्यरूप, तीनों लोकोंके विधाता, वरुण, इन्द्र और अग्निके स्वरूप, ऋक्, यजुः और सामवेदरूप, पुरुषोत्तम, परमेश्वर, सर्वश्रेष्ठ, भयंकर, ब्राह्मणस्वरूप, श्रुतिरूप नेत्रवाले, सत्त्व, रजस्, तमस्—तीनों गुणोंसे युक्त अन्धकारस्वरूप, अनित्य और नित्य भावसे सम्पन्न तथा नित्यचरात्मा हैं। आपको प्रणाम है। आप व्यक्त, अव्यक्त और व्यक्ताव्यक्त हैं, आपको अभिवादन है। आप भक्तोंकी पीड़ाके विनाशक, नारायणके मित्र, उमाके प्रियतम, संहारकर्ता, नन्दीके मुखसे सुशोभित, मन्वन्तर-कल्प-ऋतु-मास-पक्ष-दिनरूप, अनेक रूपधारी, मुण्डित सिरवाले, स्थूल दण्ड और कवच धारण करनेवाले, खप्परधारी, दिगम्बर, चूडाधारी, धनुषधारी, महारथी, संन्यासी और ब्रह्मचारी हैं, आपको नमस्कार है। इस प्रकारके अनेकों चरित्रोंसे स्तुत होनेवाले आपको बारंबार प्रणाम है। इस प्रकार देवासुरोंद्वारा स्तवन किये जानेपर शंकरजी प्रसन्न हो गये। तब वे उन भयभीत देवासुरोंसे मुसकराते हुए सुन्दर अक्षरोंसे युक्त वचन बोले॥ २८—४१॥

श्रीशंकर उवाच

किमर्थमागता ब्रूत त्रासम्लानमुखाम्बुजाः।
किं वाभीष्टं ददाम्यद्य कामं प्रब्रूत मा चिरम्।
इत्युक्तास्ते तु देवेन प्रोचुस्तं ससुरासुराः॥ ४२

भगवान् श्रीशंकरने कहा—देवता एवं दानवो! तुम्हारे मुखकमल भयके कारण मलिन दीख रहे हैं, बतलाओ, तुमलोग यहाँ किसलिये आये हो? मैं आज तुमलोगोंको कौन-सी अभीष्ट वस्तु दूँ, वह निर्भय होकर बतलाओ, देर मत करो। भगवान् शंकरद्वारा ऐसा कहे जानेपर देवासुरोंने उनसे इस प्रकार कहा॥ ४२॥

सुरासुरा ऊचुः

अमृतार्थे महादेव मथ्यमाने महोदधौ।
विषमद्भुतमुद्भूतं लोकसंक्षयकारकम्॥ ४३
स उवाचाथ सर्वेषां देवानां भयकारकः।
सर्वान् वो भक्षयिष्यामि अथवा मां पिबन्त्वथ॥ ४४
तमशक्ता वयं ग्रस्तुं सोऽस्माञ्शक्तो बलोत्कटः।
एष निःश्वासमात्रेण शतपर्वसमद्युतिः॥ ४५
विष्णुः कृष्णः कृतस्तेन यमश्च विषमात्मवान्।
मूर्च्छिताः पतिताश्चान्ये विप्रणाशं गताः परे॥ ४६

देवासुर बोले—महादेव! अमृतके लिये महासागरको मथते समय अद्भुत विष उत्पन्न हुआ है, जो सभी लोकोंका विनाश करनेवाला है। सभी देवताओंको भयभीत करनेवाले उस विषने स्वयं कहा है कि 'मैं तुम सभीको खा जाऊँगा, अन्यथा तुमलोग मुझे पी जाओ।' ऐसी दशामें हमलोग उस विषको पान करनेमें सर्वथा असमर्थ हैं, किंतु वह महाबली विष हमलोगोंको खा सकता है। उसने अपने निःश्वासमात्रसे सैकड़ों चन्द्रमाके समान कान्तिमान् भगवान् विष्णुको कृष्णवर्ण तथा यमराजको विक्षिप्त कर दिया है। कुछ लोग मूर्च्छित हो गये हैं और कुछ नष्ट हो गये।

अर्थोऽनर्थक्रियां याति दुर्भगाणां यथा विभो।
दुर्बलानां च संकल्पो यथा भवति चापदि॥ ४७
विषमेतत् समुद्भूतं तस्माद् वामृतकाङ्क्षया।
अस्माद् भयान्मोचय त्वं गतिस्त्वं च परायणम्॥ ४८
भक्तानुकम्पी भावज्ञो भुवनादीश्वरो विभुः।
यज्ञाग्रभुक् सर्वहविः सौम्यः सोमः स्मरान्तकृत्॥ ४९
त्वमेको नो गतिर्देव गीर्वाणगणशर्मकृत्।
रक्षास्मान् भक्षसंकल्पाद् विरूपाक्ष विषज्वरात्॥ ५०
तच्छ्रुत्वा भगवानाह भगनेत्रान्तकृद् भवः॥ ५१

भगवन्! जिस प्रकार अभागोंके अर्थ भी अनर्थके कारण बन जाते हैं तथा आपत्तिकालमें दुर्बलोंके संकल्प विपरीत फल देनेवाले हो जाते हैं, उसी प्रकार अमृतकी अभिलाषासे युक्त हमलोगोंके लिये यह विष उत्पन्न हुआ है। अतः आप इस भयसे हमलोगोंको मुक्त कीजिये, आप ही एकमात्र हम सबके शरणदाता हैं। आप भक्तोंपर अनुकम्पा करनेवाले, मनके भावोंके ज्ञाता, सभी भुवनोंके ईश्वर, सर्वव्यापक, यज्ञोंमें सर्वप्रथम भाग ग्रहण करनेवाले, सकल हवनीय द्रव्यस्वरूप, सौम्य, उमाके साथ स्थित और कामदेवके विनाशक हैं। देवताओंका कल्याण करनेवाले देव! एकमात्र आप ही हमलोगोंके शरणदाता हैं। विरूपाक्ष! (सबको) खा लेनेके विचारवाले इस विषके कष्टसे हमलोगोंकी रक्षा कीजिये। यह सुनकर भगदेवताके नेत्रोंका विनाश करनेवाले भगवान् शंकरने कहा॥ ४३—५१॥

देवदेव उवाच

भक्षयिष्याम्यहं घोरं कालकूटं महाविषम्।
तथान्यदपि यत्कृत्यं कृच्छ्रसाध्यं सुरासुराः।
तच्चापि साधयिष्यामि तिष्ठध्वं विगतज्वराः॥ ५२
इत्युक्ता हृष्टरोमाणो वाष्पगद्गदकण्ठिनः।
आनन्दाश्रुपरीताक्षाः सनाथा इव मेनिरे।
सुरा ब्रह्मादयः सर्वे समाश्वस्ताः सुमानसाः॥ ५३
ततोऽव्रजद् द्रुतगतिना ककुद्मिना
हरोऽम्बरे पवनगतिर्जगत्पतिः।
प्रधावितैरसुरसुरेन्द्रनायकैः
स्ववाहनैर्विचलितशुभ्रचामरैः।
पुरःसरैः स तु शुशुभे शुभाश्रयैः
शिवो वशी शिखिकपिशोर्ध्वजूटकः॥ ५४
आसाद्य दुग्धसिन्धुं तं कालकूटं विषं यतः।
ततो देवो महादेवो विलोक्य विषमं विषम्॥ ५५
छायास्थानकमास्थाय सोऽपिबद् वामपाणिना।
पीयमाने विषे तस्मिंस्ततो देवा महासुराः॥ ५६
जगुश्च ननृतुश्चापि सिंहनादांश्च पुष्कलान्।
चक्रुः शक्रमुखाद्याश्च हिरण्याक्षादयस्तथा॥ ५७

देवाधिदेव बोले—देवासुरगण! मैं उस कालकूट नामक महान् भयंकर विषको तो पी ही जाऊँगा, इसके अतिरिक्त तुमलोगोंका जो कोई अन्य भी कष्टसाध्य कार्य होगा, उसे भी सिद्ध कर दूँगा, तुम लोग चिन्तारहित हो जाओ। इस प्रकार कहे जानेपर ब्रह्मा आदि सभी देवताओंका मन प्रसन्न हो गया, वे भलीभाँति आश्वस्त हो गये, उनके शरीर रोमाञ्चित हो उठे, कण्ठ आँसुओंसे गद्गद हो गये, नेत्रोंमें आनन्दाश्रु छलक आये और वे उस समय अपनेको सनाथ मानने लगे। तदनन्तर जगत्पति भगवान् शंकर वेगशाली नन्दिकेश्वरपर आरूढ़ होकर वायुके समान वेगसे आकाशमार्गसे उस ओर चले। उस समय असुरों तथा सुरोंके अधिपतिगण अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ हो चमर डुलाते हुए उनके आगे-आगे दौड़ रहे थे। इस प्रकार अग्निकी ज्वालासे भूरे रंगवाली जटासे युक्त इन्द्रियजयी भगवान् शिव मङ्गलके आधारस्वरूप उन देवताओंके साथ शोभायमान हो रहे थे। तदनन्तर वे जहाँसे कालकूट विष उत्पन्न हुआ था, उस क्षीरसागरपर पहुँचे। तत्पश्चात् भगवान् महादेवने उस विषम विषको देखकर एक छायायुक्त स्थानमें बैठकर अपने बायें हाथसे उसे पी लिया। उस विषके पी लिये जानेपर इन्द्रादि देव तथा हिरण्याक्ष प्रभृति असुर हर्षपूर्वक नाचने-गाने और भयंकर सिंहनाद

स्तुवन्तश्चैव देवेशं प्रसन्नाश्चाभवंस्तदा।
कण्ठदेशे ततः प्राप्ते विषे देवमथाब्रुवन्॥ ५८
विरिञ्चिप्रमुखा देवा बलिप्रमुखतोऽसुराः।
शोभते देव कण्ठस्ते गात्रे कुन्दनिभप्रभे॥ ५९
भृङ्गमालानिभं कण्ठेऽप्यत्रैवास्तु विषं तव।
इत्युक्तः शंकरो देवस्तथा प्राह पुरान्तकृत्॥ ६०
पीते विषे देवगणान् विमुच्य
गतो हरो मन्दरशैलमेव।
तस्मिन् गते देवगणाः पुनस्तं
ममन्थुरब्धिं विविधप्रकारैः॥ ६१

करने लगे तथा देवेशकी स्तुति करते हुए प्रसन्न हो गये। उस समय विषके भगवान् शंकरके गलेमें पहुँचनेपर ब्रह्मादि देवता और बलि आदि असुरोंने उनसे इस प्रकार कहा—'देव! कुन्दकी-सी उज्ज्वल कान्तिवाले आपके शरीरमें कण्ठकी विचित्र शोभा हो रही है। अब यह भृङ्गावलीकी भाँति काला विष यहीं आपके कण्ठमें स्थित रहे।' इस प्रकार कहे जानेपर त्रिपुरविनाशक भगवान् शंकरने 'तथास्तु—वैसा ही हो' यों कहकर उसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार विषपान कर लेनेके बाद शंकरजी देवताओंको वहीं छोड़ पुनः मन्दराचलको चले गये। उनके चले जानेपर देवगण पुनः उस समुद्रको विविध प्रकारसे मथने लगे॥ ५२—६१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थने कालकूटोत्पत्तिर्नाम पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके अमृतमन्थन-प्रसंगमें कालकूटोत्पत्ति नामक दो सौ पचासवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५०॥

दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय

अमृतका प्राकट्य, मोहिनीरूपधारी भगवान् विष्णुद्वारा देवताओंका अमृत-पान तथा देवासुरसंग्राम

सूत उवाच

मध्यमाने पुनस्तस्मिञ् जलधौ समदृश्यत।
धन्वन्तरिः स भगवानायुर्वेदप्रजापतिः॥ १
मदिरा चायताक्षी सा लोकचित्तप्रमाथिनी।
ततोऽमृतं च सुरभिः सर्वभूतभयापहा॥ २
जग्राह कमलां विष्णुः कौस्तुभं च महामणिम्।
गजेन्द्रं च सहस्राक्षो हयरत्नं च भास्करः॥ ३
धन्वन्तरिं च जग्राह लोकारोग्यप्रवर्तकम्।
छत्रं जग्राह वरुणः कुण्डले च शचीपतिः॥ ४
पारिजाततरुं वायुर्जग्राह मुदितस्तथा।
धन्वन्तरिस्ततो देवो वपुष्मानुदतिष्ठत॥ ५
श्वेतं कमण्डलुं बिभ्रदमृतं यत्र तिष्ठति।
एतदत्यद्भुतं दृष्ट्वा दानवानां समुत्थितः॥ ६
अमृतार्थे महानादो ममेदमिति जल्पताम्।
ततो नारायणो मायामास्थितो मोहिनीं प्रभुः॥ ७
स्त्रीरूपमतुलं कृत्वा दानवानभिसंसृतः।
ततस्तदमृतं तस्यै ददुस्ते मूढचेतनाः।
स्त्रियै दानवदैतेयाः सर्वे तद्गतमानसाः॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! पुनः उस समुद्रके मथे जानेपर आयुर्वेदके प्रजापति भगवान् धन्वन्तरि दीख पड़े। पुनः लोगोंके चित्तको उन्मत्त कर देनेवाली एवं बड़ी आँखोंवाली मदिरा उत्पन्न हुई। तदनन्तर अमृत प्रकट हुआ, फिर सभी प्राणियोंके भयको दूर करनेवाली कामधेनु उत्पन्न हुई। उस समय भगवान् विष्णुने लक्ष्मी और महामणि कौस्तुभको तथा हजार नेत्रोंवाले इन्द्रने गजराज ऐरावतको ग्रहण किया। सूर्यने अश्वरत्न उच्चैःश्रवा और लोकमें आरोग्यके प्रवर्तक धन्वन्तरिको स्वीकार किया। वरुणने छत्रको और शचीपति इन्द्रने दोनों कुण्डलोंको ग्रहण किया। वायुदेवने बड़ी प्रसन्नतासे पारिजात वृक्षको ग्रहण किया। इसके बाद शरीरधारी धन्वन्तरि उठकर खड़े हुए। वे एक श्वेतवर्णका कमण्डलु धारण किए हुए थे, जिसमें अमृत भरा था। उस अत्यन्त अद्भुत पात्रको देखकर अमृतके लिये 'यह मेरा है, यह मेरा है' ऐसा बकनेवाले दानवोंके दलमें महान् कोलाहल मच गया। तब भगवान् विष्णुने मोहिनी मायाका आश्रय लिया। वे स्त्रीका अनुपम रूप धारण कर दानवोंके समीप उपस्थित हुए। तब उन मुग्ध चित्तवाले दैत्योंने उस अमृतको उस स्त्रीके हाथोंमें समर्पित कर दिया; क्योंकि उन सभी

अथास्त्राणि च मुख्यानि महाप्रहरणानि च।
प्रगृह्याभ्यद्रवन् देवान् सहिता दैत्यदानवाः॥ ९

ततस्तदमृतं देवो विष्णुरादाय वीर्यवान्।
जहार दानवेन्द्रेभ्यो नरेण सहितः प्रभुः॥ १०

ततो देवगणाः सर्वे पपुस्तदमृतं तदा।
विष्णोः सकाशात् सम्प्राप्य संग्रामे तुमुले सति॥ ११

ततः पिबत्सु तत्कालं देवेष्वमृतमीप्सितम्।
राहुर्विबुधरूपेण दानवोऽप्यपिबत् तदा॥ १२

तस्य कण्ठमनुप्राप्ते दानवस्यामृते तदा।
आख्यातं चन्द्रसूर्याभ्यां सुराणां हितकाम्यया॥ १३

ततो भगवता तस्य शिरश्छिन्नमलंकृतम्।
चक्रायुधेन चक्रेण पिबतोऽमृतमोजसा॥ १४

तच्छैलशृङ्गप्रतिमं दानवस्य शिरो महत्।
चक्रेणोत्कृत्तमपतच्चालयद् वसुधातलम्॥ १५

ततो वैरविनिर्बन्धः कृतो राहुमुखेन वै।
शाश्वतश्चन्द्रसूर्याभ्यां प्रसह्याद्यापि बाधते॥ १६

विहाय भगवांश्चापि स्त्रीरूपमतुलं हरिः।
नानाप्रहरणैर्भीमैर्दानवान् समकम्पयत्।
प्रासाः सुविपुलास्तीक्ष्णाः पतन्तश्च सहस्रशः॥ १७

तेऽसुराश्चक्रनिर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु।
असिशक्तिगदाभिन्ना निपेतुर्धरणीतले॥ १८

भिन्नानि पट्टिशैश्चापि शिरांसि युधि दारुणैः।
तप्तकाञ्चनमाल्यानि निपेतुरनिशं तदा॥ १९

रुधिरेणावलिप्ताङ्गा निहताश्च महासुराः।
अद्रिणामिव कूटानि धातुरक्तानि शेरते॥ २०

ततो हलहलाशब्दः सम्बभूव समन्ततः।
अन्योन्यं छिन्दतां शस्त्रैरादित्ये लोहितायति॥ २१

परिघैश्चायसैः पातैः सन्निकर्षैश्च मुष्टिभिः।
निघ्नतां समरेऽन्योन्यं शब्दो दिवमिवास्पृशत्॥ २२

छिन्धि भिन्धि प्रधावेति पातयाभिसरेति वै।
विश्रूयन्ते महाघोराः शब्दास्तत्र समन्ततः॥ २३

दैत्यों और दानवोंका मन उसपर मोहित हो गया था। तदनन्तर वे सभी दैत्य-दानव संगठित होकर मुख्य-मुख्य महान् शस्त्रास्त्रोंको लेकर देवताओंपर टूट पड़े। इस समय नरके साथ-साथ पराक्रमी एवं सामर्थ्यशाली भगवान् विष्णुने उस अमृतको दानवेन्द्रोंसे छीन लिया॥ ९—१०॥

तदनन्तर सभी देवता उस तुमुल युद्धके बीच ही विष्णु भगवान्से उस अमृतको लेकर पान करने लगे। उस अभिलषित अमृतको पीते समय देवताओंके मध्यमें देवरूपधारी राहु नामक दानव भी अमृतका पान करने लगा। वह अमृत उसके कण्ठदेशतक ही पहुँच पाया था कि देवताओंकी कल्याण-भावनासे प्रेरित होकर चन्द्रमा और सूर्यने उसके भेदको प्रकट कर दिया। तब अमृत पीते हुए उस दानवके अलंकृत सिरको भगवान्ने अपने पराक्रमसे चक्रद्वारा काट दिया। फिर तो उस दानवका चक्रसे कटा हुआ पर्वतशिखरकी भाँति विशाल मस्तक वसुधातलको कँपाता हुआ भूतलपर गिर पड़ा। तभीसे राहुके उस मुखने चन्द्रमा और सूर्यके साथ अटूट वैर निश्चित कर दिया, जो आज भी उन्हें पीड़ा पहुँचाता है। तत्पश्चात् विष्णु भी उस अनुपम स्त्रीरूपको त्यागकर विविध प्रकारके भयंकर शस्त्रास्त्रोंद्वारा दानवोंको प्रकम्पित करने लगे। उस समय विशाल और तीखी धारवाले हजारों भाले दानवोंपर गिरने लगे। भगवान्के चक्रसे छिन्न-भिन्न अङ्गोंवाले राक्षसगण अत्यधिक रक्त वमन करते हुए तलवार और गदाके प्रहारसे घायल होकर पृथ्वीतलपर गिरने लगे। उस समय उस युद्धमें तपाये हुए स्वर्णकी मालाओंसे सुशोभित असुरोंके सिर भीषण पट्टिशोंके प्रहारसे विदीर्ण होकर निरन्तर गिर रहे थे। वहाँ रक्तसे लथपथ हुए अङ्गोंवाले मारे गये महान् असुर गेरूसे रँगे हुए पर्वतोंके शिखरोंकी भाँति सो रहे थे। तदनन्तर सूर्यके लाल हो जानेपर परस्पर एक-दूसरेको शस्त्रोंद्वारा काटनेवालोंका महान् कोलाहल चारों ओर गूँज उठा। उस समरमें लोहनिर्मित परिघों और मुष्टियोंके प्रहारसे एक-दूसरेको मारनेवालोंका शब्द आकाश-मण्डलका स्पर्श-सा कर रहा था। उस समय वहाँ चारों ओर 'काट डालो, विदीर्ण कर दो, दौड़ो, गिरा दो, आगे बढ़ो'— इस प्रकारके महान् भयंकर शब्द सुनायी पड़ रहे थे।

एवं सुतुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये।
नरनारायणौ देवौ समाजग्मतुराहवम्॥ २४
तत्र दिव्यं धनुर्दृष्ट्वा नरस्य भगवानपि।
चिन्तयामास वै चक्रं विष्णुर्दानवसूदनः॥ २५

इस प्रकार महान् भयकारक घमासान युद्धके चलते समय भगवान् नर-नारायण युद्धस्थलमें उपस्थित हुए। वहाँ नरके दिव्य धनुषको देखकर दैत्यसूदन भगवान् नारायणने भी अपने सुदर्शन चक्रका स्मरण किया॥ ११—२५॥

ततोऽम्बराच्चिन्तितमात्रमागतं
महाप्रभं चक्रममित्रनाशनम्।
विभावसोस्तुल्यमकुण्ठमण्डलं
सुदर्शनं भीममसह्यविक्रमम्॥ २६
तदागतं ज्वलितहुताशनप्रभं
भयंकरः करिकरबाहुरच्युतः।
महाप्रभं दनुकुलदैत्यदारणं
तथोज्ज्वलज्ज्वलनसमानविग्रहम्॥ २७
मुमोच वै तदतुलमुग्रवेगवान्
महाप्रभं रिपुनगरावदारणम्।
संवर्तकज्वलनसमानवर्चसं
पुनःपुनर्न्यपतत वेगवत् तदा॥ २८
व्यदारयद् दितितनयान् सहस्रशः
करेरितं पुरुषवरेण संयुगे।
दहत् क्वचिज्ज्वलन इवानिलेरितः
प्रसह्य तानसुरगणानकृन्तत॥ २९
तत्प्रेरितं वियति मुहुः क्षितौ तदा
पपौ रणे रुधिरमथो पिशाचवत्।
अथासुरा गिरिभिरदीनमानसा
मुहुर्मुहुः सुरगणमर्दयंस्तदा॥ ३०
महाबला विगलितमेघवर्चसः
सहस्रशो गगनमहाप्रपातिनः।
अथासुरा भयजनना: प्रपेदिरे
सपादपा बहुविधमेघरूपिणः॥ ३१
महाद्रयः प्रविगलिताग्रसानवः
परस्परं द्रुतमभिपत्य सस्वराः।
ततो मही प्रचलितसाद्रिकानना
तदाद्रिपाताभिहता समन्ततः॥ ३२
परस्परं समभिनिगर्जतां मुहू
रणाजिरे भृशमभिसम्प्रवर्तिते।
नरस्ततो वरकनकाग्रभूषणै-
र्महेषुभिः पवनपथं समावृणोत्॥ ३३

तदनन्तर स्मरण करते ही वह असह्य प्रभावशाली, अत्यन्त कान्तिमान्, शत्रुनाशक, सूर्यके समान तेजस्वी, विस्तृत मण्डलोंवाला भयंकर सुदर्शन चक्र आकाशमार्गसे नीचे उतरा। तब हाथीकी शुण्डके समान बाहुवाले उग्र वेगशाली भगवान् विष्णुने प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी दानवकुलसंहारक धधकती हुई अग्निके सदृश शरीरवाले परम कान्तिशाली भयंकर चक्रको आया हुआ देखकर उसे दैत्यसेनापर चला दिया। फिर तो रिपुके नगरोंका विध्वंस करनेवाला, संवर्तक नामक प्रलयाग्निके समान तेजस्वी, अनुपम कान्तिमान् वह सुदर्शन चक्र बारंबार वेगपूर्वक शत्रुओंपर प्रहार करने लगा। युद्धभूमिमें पुरुषोत्तमके हाथसे छोड़े गये उस चक्रने हजारों दैत्योंको विदीर्ण कर दिया। उसने वायुसे प्रेरित अग्निकी भाँति कहीं सेनाओंको भस्म कर दिया तो कहीं उन असुरोंको बलपूर्वक काट डाला। रणभूमिमें भगवान्‌के हाथसे प्रेरित वह सुदर्शन चक्र बारंबार आकाशमें तथा पृथ्वीतलपर पिशाचके समान रक्तपान करने लगा। इसके बाद निर्भय चित्तवाले असुर पर्वतोंद्वारा बारंबार देवताओंकी सेनाको नष्ट करने लगे। हजारों महाबलवान् असुर जलरहित मेघोंके समान आकाशमण्डलसे नीचे गिर रहे थे, जिससे वे अतिशय भयंकर हो गये थे। उनके द्वारा फेंके गये वृक्ष मेघोंके समान दिखायी पड़ते थे। विशाल पर्वत, जिनकी चोटियाँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं, शब्द करते हुए एक-दूसरेसे टकरा रहे थे। उन पर्वतोंके गिरनेसे अभिहत हुई पर्वत-वनोंसहित सारी पृथ्वी कम्पायमान हो गयी। इस प्रकार जब युद्धस्थलमें एक-दूसरेपर भीषण गर्जन करते हुए बारंबार घात-प्रतिघात होने लगा और दानवोंने देव-सेनाओंको आतंकित कर दिया, तब नरने सुन्दर सुवर्णजटित अग्रभागवाले अपने विशाल बाणोंसे वायुमार्गको अवरुद्ध

विदारयन् गिरिशिखराणि पत्त्रिभि-
महाभये सुरगणविग्रहे तदा।
ततो महीं लवणजलं च सागरं
महासुराः प्रविविशुरर्दिताः सुरैः॥ ३४
वियद्गतं ज्वलितहुताशनप्रभं
सुदर्शनं परिकुपितं निशम्य च।
ततः सुरैर्विजयमवाप्य मन्दरः
स्वमेव देशं गमितः सुपूजितः॥ ३५
वितत्य खं दिवमथ चैव सर्वश-
स्ततो गताः सलिलधरा यथागतम्।
ततोऽमृतं सुनिहितमेव चक्रिरे
सुराः परां मुदमभिगम्य पुष्कलाम्।
ददुश्च तं निधिममृतस्य रक्षितं
किरीटिने बलिभिरथामरैः सह॥ ३६

कर दिया और बाणोंके प्रहारसे पर्वत-शिखरोंको विदीर्ण कर दिया। इस प्रकार देवताओंद्वारा ताड़ित किये गये बड़े-बड़े असुर योद्धा पाताल एवं खारे समुद्रमें प्रविष्ट हो गये। जलती हुई अग्निके समान कान्तिमान् एवं अतिशय कोपमें भरे हुए सुदर्शन चक्रको आकाशमें गया हुआ सुनकर देवगण विजयी हुए। तदनन्तर मन्दराचलको आदरपूर्वक अपने स्थानपर स्थापित कर दिया गया और सभी दिशाओं तथा आकाशमें फैले हुए बादलसमूह भी जैसे आये थे वैसे ही चले गये। तत्पश्चात् देवगण परम हर्षपूर्वक अमृतको सुरक्षित कर लिये और उसकी संचित निधिको बलवान् देवताओंके साथ किरीटधारी भगवान्‌को सुरक्षाके लिये सौंप दिया गया॥ २६—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽमृतमन्थनं नामैकपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अमृतमन्थन नामक दो सौ इक्यावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५१॥

दो सौ बावनवाँ अध्याय

वास्तुके प्रादुर्भावकी कथा

ऋषय ऊचुः

प्रासादभवनादीनां निवेशं विस्तराद् वद।
कुर्यात् केन विधानेन कश्च वास्तुरुदाहृतः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप हमलोगोंको राजभवन आदिके संनिवेशको और उनके बनाये जानेकी विधि विस्तारपूर्वक बतलाइये। साथ ही वास्तु क्या कहलाता है, इसपर भी प्रकाश डालिये॥ १॥

सूत उवाच

भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरंदरः॥ २
ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती॥ ३
अष्टादशैते विख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः।
संक्षेपेणोपदिष्टं यन्मनवे मत्स्यरूपिणा॥ ४

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! भृगु, अत्रि, वसिष्ठ, विश्वकर्मा, मय, नारद, नग्नजित्, भगवान् शंकर, इन्द्र, ब्रह्मा, कुमार, नन्दीश्वर, शौनक, गर्ग, वासुदेव, अनिरुद्ध, शुक्र तथा बृहस्पति—ये अठारह वास्तुशास्त्रके* उपदेष्टा माने गये हैं। जिसे मत्स्यरूपधारी भगवान्‌ने संक्षेपमें मनुके प्रति उपदेश किया था,

*वास्तुके अर्थ बसनेकी जगह, घर, गाँव, नींव आदि हैं। इसपर समराङ्गणसूत्रधार, वास्तुराजवल्लभ, बृहत्संहिता, शिल्परत्न, गृहरत्नभूषण आदि ग्रन्थोंमें पूर्ण विचार है। पुराणोंमें अग्नि, विष्णुधर्म आदिमें ऐसी ही चर्चा है। इस विद्याका संक्षिप्त उल्लेख ऋग्वेद, शतपथ ब्राह्मण, श्रौतसूत्रों एवं मनु० ३। ८९ आदिमें भी है। इसके मुख्य प्रवर्तक एवं ज्ञाता-कर्ता विश्वकर्मा एवं मयदानव हैं।

तदिदानीं प्रवक्ष्यामि वास्तुशास्त्रमनुत्तमम्।
पुरान्धकवधे घोरे घोररूपस्य शूलिनः॥ ५
ललाटस्वेदसलिलमपतद् भुवि भीषणम्।
करालवदनं तस्माद् भूतमुद्भूतमुल्बणम्॥ ६
ग्रसमानमिवाकाशं सप्तद्वीपां वसुंधराम्।
ततोऽन्धकानां रुधिरमपिबत् पतितं क्षितौ॥ ७
तेन तत् समरे सर्वं पतितं यन्महीतले।
तथापि तृप्तिमगमन्न तद् भूतं यदा तदा॥ ८
सदाशिवस्य पुरतस्तपश्चक्रे सुदारुणम्।
क्षुधाविष्टं तु तद् भूतमाहर्तुं जगतीत्रयम्॥ ९
ततः कालेन संतुष्टो भैरवस्तस्य चाह वै।
वरं वृणीष्व भद्रं ते यदभीष्टं तवानघ॥ १०
तमुवाच ततो भूतं त्रैलोक्यग्रसनक्षमम्।
भवामि देवदेवेश तथेत्युक्तं च शूलिना॥ ११
ततस्तत् त्रिदिवं सर्वं भूमण्डलमशेषतः।
स्वदेहेनान्तरिक्षं च रुन्धानं प्रपतद् भुवि॥ १२
भीतभीतैस्ततो देवैर्ब्रह्मणा चाथ शूलिना।
दानवासुररक्षोभिरवष्टब्धं समन्ततः॥ १३
येन यत्रैव चाक्रान्तं स तत्रैवावसत् पुनः।
निवासात् सर्वदेवानां वास्तुरित्यभिधीयते॥ १४
अवष्टब्धेन तेनापि विज्ञप्ताः सर्वदेवताः।
प्रसीदध्वं सुराः सर्वे युष्माभिर्निश्चलीकृतः॥ १५
स्थास्याम्यहं किमाकारो ह्यवष्टब्धो ह्यधोमुखः।
ततो ब्रह्मादिभिः प्रोक्तं वास्तुमध्ये तु यो बलिः॥ १६
आहारो वैश्वदेवान्ते नूनमस्य भविष्यति।
वास्तूपशमनो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति॥ १७
यज्ञोत्सवादौ च बलिस्तवाहारो भविष्यति।
वास्तुपूजामकुर्वाणस्तवाहारो भविष्यति॥ १८

उसी श्रेष्ठ वास्तुशास्त्रको मैं आपलोगोंसे बतला रहा हूँ। प्राचीन कालमें भयंकर अन्धक-वधके समय विकराल रूपधारी भगवान् शंकरके ललाटसे पृथ्वीपर स्वेदबिन्दु गिरे थे। उससे एक भीषण एवं विकराल मुखवाला उत्कट प्राणी उत्पन्न हुआ। वह ऐसा प्रतीत होता था मानो सातों द्वीपोंसहित वसुंधरा तथा आकाशको निगल जायगा। तत्पश्चात् वह पृथ्वीपर गिरे हुए अन्धकोंके रक्तका पान करने लगा। इस प्रकार वह उस युद्धमें पृथ्वीपर गिरे हुए सारे रक्तको पान कर गया। किंतु इतनेपर भी जब वह तृप्त न हुआ, तब भगवान् सदाशिवके सम्मुख अत्यन्त घोर तपस्यामें संलग्न हो गया। भूखसे व्याकुल होनेपर जब वह पुनः त्रिलोकीको भक्षण करनेके लिये उद्यत हुआ, तब उसकी तपस्यासे संतुष्ट होकर भगवान् शंकर उससे बोले—'निष्पाप! तुम्हारा कल्याण हो, अब तुम्हारी जो अभिलाषा हो, वह वर माँग लो'॥ २—१०॥

तब उस प्राणीने शिवजीसे कहा—'देवदेवेश! मैं तीनों लोकोंको ग्रस लेनेके लिये समर्थ होना चाहता हूँ।' इसपर त्रिशूलधारी शिवजीने कहा—'ऐसा ही होगा'। फिर तो वह प्राणी अपने विशाल शरीरसे स्वर्ग, सम्पूर्ण भूमण्डल और आकाशको अवरुद्ध करता हुआ पृथ्वीपर आ गिरा। तब भयभीत हुए देवताओं तथा ब्रह्मा, शिव, दानव, दैत्य और राक्षसोंद्वारा वह स्तम्भित कर दिया गया। उस समय जिसने उसे जहाँपर आक्रान्त कर रखा था, वह वहीं निवास करने लगा। इस प्रकार सभी देवताओंके निवास करनेके कारण वह वास्तु नामसे विख्यात हुआ। तब उस दबे हुए प्राणीने भी सभी देवताओंसे निवेदन किया—'देवगण! आपलोग मुझपर प्रसन्न हों। आपलोगोंद्वारा मैं दबाकर निश्चल बना दिया गया हूँ। भला इस प्रकार अवरुद्ध कर दिये जानेपर नीचे मुख किये हुए मैं किस तरह कबतक स्थित रह सकूँगा।' उसके ऐसा निवेदन करनेपर ब्रह्मा आदि देवताओंने कहा—'वास्तुके प्रसङ्गमें तथा वैश्वदेवके अन्तमें जो बलि दी जायगी, वह निश्चय ही तुम्हारा आहार होगी। वास्तु-शान्तिके लिये जो यज्ञ होगा, वह भी तुम्हें आहारके रूपमें प्राप्त होगा। यज्ञोत्सवमें दी गयी बलि भी तुम्हें आहाररूपमें प्राप्त होगी। वास्तु-पूजा न करनेवाले भी तुम्हारे आहार होंगे।

अज्ञानात् तु कृतो यज्ञस्तवाहारो भविष्यति।
एवमुक्तस्ततो हृष्टः स वास्तुरभवत् तदा।
वास्तुयज्ञः स्मृतस्तस्मात् ततः प्रभृति शान्तये॥ १९

अज्ञानसे किया गया यज्ञ भी तुम्हें आहाररूपमें प्राप्त होगा।' ऐसा कहे जानेपर वह वास्तु नामक प्राणी प्रसन्न हो गया। इसी कारण तबसे शान्तिके लिये वास्तु-यज्ञका प्रवर्तन हुआ॥ ११—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुभूतोद्भवो नाम द्विपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तु-प्रादुर्भाव नामक दो सौ बावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५२॥

दो सौ तिरपनवाँ अध्याय

वास्तु-चक्रका वर्णन

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि गृहकालविनिर्णयम्।
यथा कालं शुभं ज्ञात्वा सदा भवनमारभेत्॥ १
चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः।
वैशाखे धेनुरत्नानि ज्येष्ठे मृत्युं तथैव च॥ २
आषाढे भृत्यरत्नानि पशुवर्गमवाप्नुयात्।
श्रावणे भृत्यलाभं तु हानिं भाद्रपदे तथा॥ ३
पत्नीनाशोऽश्विने विद्यात् कार्तिके धनधान्यकम्।
मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम्॥ ४
लाभं च बहुशो विन्द्यादग्निं माघे विनिर्दिशेत्।
फाल्गुने काञ्चनं पुत्रानिति कालबलं स्मृतम्॥ ५
अश्विनी रोहिणी मूलमुत्तरात्रयमैन्दवम्।
स्वाती हस्तोऽनुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते॥ ६
आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्वे वाराः शुभावहाः।
वर्ज्यं व्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः॥ ७
विष्कम्भगण्डपरिघवज्रयोगे न कारयेत्।
श्वेते मैत्रेऽथ माहेन्द्रे गान्धर्वाभिजिति रौहिणे॥ ८
तथा वैराजसावित्रे मुहूर्ते गृहमारभेत्।
चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा शुभलग्नं निरीक्षयेत्॥ ९
स्तम्भोच्छ्रायादि कर्तव्यमन्यत्तु परिवर्जयेत्।
प्रासादेष्वेवमेवं स्यात् कूपवापीषु चैव हि॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं गृहनिर्माणके उस समयका निर्णय बतला रहा हूँ, जिस शुभ समयको जानकर मनुष्यको सर्वदा भवनका आरम्भ करना चाहिये। जो मनुष्य चैत्रमासमें घर बनाता है, वह व्याधि, वैशाखमें घर बनानेवाला धेनु और रत्न तथा ज्येष्ठमें मृत्युको प्राप्त होता है। आषाढ़में नौकर, रत्न और पशु समूहकी और श्रावणमें नौकरोंकी प्राप्ति तथा भाद्रपदमें हानि होती है। आश्विनमें घर बनानेसे पत्नीका नाश होता है। कार्तिक-मासमें धन-धान्यादिकी तथा मार्गशीर्षमें श्रेष्ठ भोज्यपदार्थोंकी प्राप्ति होती है। पौषमें चोरोंका भय और माघमासमें अनेक प्रकारके लाभ होते हैं, किंतु अग्निका भी भय रहता है। फाल्गुनमें सुवर्ण तथा अनेक पुत्रोंकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार समयका फल एवं बल बतलाया जाता है। गृहारम्भमें अश्विनी, रोहिणी, मूल, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, स्वाती, हस्त और अनुराधा— ये नक्षत्र प्रशस्त कहे गये हैं। रविवार और मङ्गलवारको छोड़कर शेष सभी दिन शुभदायक हैं। व्याघात, शूल, व्यतीपात; अतिगण्ड, विष्कम्भ, गण्ड, परिघ और वज्र—इन योगोंमें गृहारम्भ नहीं करना चाहिये। श्वेत, मैत्र, माहेन्द्र, गान्धर्व, अभिजित, रौहिण, वैराज और सावित्र—इन मुहूर्तोंमें गृहारम्भ करना चाहिये। चन्द्रमा और सूर्यके बलके साथ-ही-साथ शुभ लग्नका भी निरीक्षण करना चाहिये। सर्वप्रथम अन्य कार्योंको छोड़कर स्तम्भारोपण करना चाहिये। यही विधि प्रासाद, कूप एवं बावलियोंके लिये भी मानी गयी है॥ १—१०॥

पूर्वं भूमिं परीक्षेत पश्चाद्वास्तुं प्रकल्पयेत्।
श्वेता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैवानुपूर्वशः॥ ११
विप्रादः शस्यते भूमिरतः कार्यं परीक्षणम्।
विप्राणां मधुरास्वादा कटुका क्षत्रियस्य तु॥ १२
तिक्ता कषाया च तथा वैश्यशूद्रेषु शस्यते।
अरत्निमात्रे वै गर्ते स्वनुलिप्ते च सर्वशः॥ १३
घृतमामशरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम्।
ज्वालयेद् भूपरीक्षार्थं तत्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम्॥ १४
दीप्तौ पूर्वादि गृह्णीयाद् वर्णानामनुपूर्वशः।
वास्तुः सामूहिको नाम दीप्यते सर्वतस्तु यः॥ १५
शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च।
रत्निमात्रमधोगर्त्ते परीक्ष्यं खातपूरणे॥ १६
अधिके श्रियमाप्नोति न्यूने हानिं समे समम्।
फालकृष्टेऽथवा देशे सर्वबीजानि वापयेत्॥ १७
त्रिपञ्चसप्तरात्रे च यत्रारोहन्ति तान्यपि।
ज्येष्ठोत्तमा कनिष्ठा भूर्वर्जनीयतरा सदा॥ १८
पञ्चगव्यौषधिजलैः परीक्षित्वा च सेचयेत्।
एकाशीतिपदं कृत्वा रेखाभिः कनकेन च॥ १९
पश्चात् पिष्टेन चालिप्य सूत्रेणालोड्य सर्वतः।
दश पूर्वायता लेखा दश चैवोत्तरायताः॥ २०
सर्ववास्तुविभागेषु विज्ञेया नवका नव।
एकाशीतिपदं कृत्वा वास्तुवित् सर्ववास्तुषु॥ २१
पदस्थान् पूजयेद् देवांस्त्रिंशत् पञ्चदशैव तु।
द्वात्रिंशद् बाह्यतः पूज्याः पूज्याश्चान्तस्त्रयोदश॥ २२

पहले भूमिकी परीक्षाकर फिर बादमें वहाँ गृहका निर्माण करना चाहिये। श्वेत, लाल, पीली और काली—इन चार वर्णोंवाली पृथिवी क्रमशः ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये प्रशंसित मानी गयी है। इसके बाद उसके स्वादकी परीक्षा करनी चाहिये। ब्राह्मणके लिये मधुर स्वादवाली, क्षत्रियके लिये कड़वी, वैश्यके लिये तिक्त तथा शूद्रके लिये कसैली स्वादवाली पृथ्वी उत्तम मानी गयी है। तत्पश्चात् भूमिकी पुनः परीक्षाके लिये एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे सब ओरसे भलीभाँति लीप-पोतकर स्वच्छ कर दे। फिर एक कच्चे पुरवेमें घी भरकर उसमें चार बत्तियाँ जला दे और उसे उसी गड्ढेमें रख दे। उन बत्तियोंकी लौ क्रमशः चारों दिशाओंकी ओर हों। यदि पूर्व दिशाकी बत्ती अधिक कालतक जलती रहे तो ब्राह्मणके लिये उसका फल शुभ होता है। इसी प्रकार क्रमशः उत्तर, पश्चिम और दक्षिणकी बत्तियोंको क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रोंके लिये कल्याणकारक समझना चाहिये। यदि वह वास्तुदीपक चारों दिशाओंमें जलता रहे तो प्रासाद एवं साधारण गृह-निर्माणके लिये वहाँकी भूमि सभी वर्णोंके लिये शुभदायिनी है। एक हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसे उसी मिट्टीसे पूर्ण करते समय इस प्रकार परीक्षा करे कि यदि मिट्टी शेष रह जाय तो श्रीकी प्राप्ति होती है, न्यून हो जाय तो हानि होती है तथा सम रहनेसे समभाव होता है। अथवा भूमिको हलद्वारा जुतवाकर उसमें सभी प्रकारके बीज बो दे। यदि वे बीज तीन, पाँच तथा सात रातोंमें अङ्कुरित हो जाते हैं तो उनके फल इस प्रकार जानने चाहिये। तीन रातवाली भूमि उत्तम, पाँच रातवाली भूमि मध्यम तथा सात रातवाली कनिष्ठ है। कनिष्ठ भूमिको सर्वथा त्याग देना चाहिये। इस प्रकार भूमि-परीक्षा कर पञ्चगव्य और ओषधियोंके जलसे भूमिको सींच दे और सुवर्णकी सलाईद्वारा रेखा खींचकर इक्यासी कोष्ठ बनावे। (कोष्ठ बनानेका ढंग इस प्रकार है—) पिष्टकसे चुपड़े हुए सूतसे दस रेखाएँ पूर्वसे पश्चिम तथा दस रेखाएँ उत्तरसे दक्षिणकी ओर खींचे। सभी प्रकारके वास्तु-विभागोंमें इस नव-नव (९×९) अर्थात् इक्यासी* कोष्ठका वास्तु जानना चाहिये। वास्तुशास्त्रको जाननेवाला सभी प्रकारके वास्तुसम्बन्धी कार्योंमें इसका उपयोग करे॥ ११—२१॥

फिर उन कोष्ठोंमें स्थित पैंतालीस देवताओंकी पूजा करे। उनमें बत्तीसकी बाहरसे तथा तेरहकी भीतरसे पूजा

* वास्तुचक्र तीन प्रकारके होते हैं—एक सौ पदका, दूसरा ८१ पदका और तीसरा ६४ पदका। यहाँ ८१ पदका ही वर्णन है।

नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्थानानि च निबोधत।
ईशानकोणादिषु तान् पूजयेद्धविषा नरः॥ २३
शिखी चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।
सूर्यसत्यौ भृशश्चैव आकाशो वायुरेव च॥ २४
पूषा च वितथश्चैव बृहत्क्षतयमावुभौ*।
गन्धर्वो भृङ्गराजश्च मृगः पितृगणस्तथा॥ २५
दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः।
असुरः शोषपापौ च रोगोऽहिमुख्य एव च॥ २६
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा।
बहिर्द्वात्रिंशदेते तु तदन्तस्तु ततः शृणु॥ २७
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान् पूजयेद् बुधः।
आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च॥ २८
मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान्।
साध्यानेकान्तरान् विद्यात् पूर्वाद्यान् नामतःशृणु॥ २९
अर्यमा सविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः स्मृतः॥ ३०
अष्टमश्चापवत्सस्तु परितो ब्रह्मणः स्मृताः।
आपश्चैवापवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा॥ ३१
पदिकानां तु वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः।
तन्मध्ये तु बहिर्विंशद् द्विपदास्ते तु सर्वशः॥ ३२
अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरस्तथा।
ब्रह्मणः परितो दिक्षु त्रिपदास्ते तु सर्वशः॥ ३३

करनी चाहिये। मैं उनके नाम और स्थान बतला रहा हूँ, आपलोग सुनिये। (इन्हें जानकर) मनुष्यको ईशान आदि कोणोंमें हविष्यद्वारा उन-उन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। शिखी, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश, अन्तरिक्ष, वायु, पूषा, वितथ, बृहत्क्षत, यम, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग, पितृगण, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदन्त, जलाधिप, असुर, शोष, पाप, रोग, अहि, मुख्य, भल्लाट, सोम, सर्प, अदिति और दिति—ये बत्तीस बाह्य देवता हैं। बुद्धिमान् पुरुषको ईशान आदि चारों कोणोंमें स्थित इन देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। अब वास्तु चक्रके भीतरी देवताओंके नाम सुनिये—आप, सावित्र, जय, रुद्र—ये चार चारों ओरसे तथा मध्यके नौ कोष्ठोंमें ब्रह्मा और उनके समीप अन्य आठ देवताओंकी भी पूजा करनी चाहिये। (ये सब मिलकर मध्यके तेरह देवता होते हैं।) ब्रह्माके चारों ओर स्थित ये आठ देवता, जो क्रमशः पूर्वादि दिशाओंमें दो-दोके क्रमसे स्थित रहते हैं, साध्यनामसे कहे जाते हैं। उनके नाम सुनिये—अर्यमा, सविता, विवस्वान्, विबुधाधिप, मित्र, राजयक्ष्मा, पृथ्वीधर तथा आठवें आपवत्स। आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि तथा दिति—ये पाँच देवताओंके वर्ग हैं। (इनकी पूजा अग्निकोणमें करनी चाहिये।) उनके बाहर बीस देवता हैं जो दो पदोंमें रहते हैं। अर्यमा, विवस्वान्, मित्र और पृथ्वीधर—ये चार ब्रह्माके चारों ओर तीन-तीन पदोंमें स्थित रहते हैं॥ २२—३३॥

वंशानिदानीं वक्ष्यामि ऋजूनपि पृथक् पृथक्।
वायुं यावत् तथा रोगात् पितृभ्यः शिखिनं पुनः॥ ३४
मुख्याद् भृशं तथा शोषाद् वितथं यावदेव तु।
सुग्रीवाददितिं यावन्मृगात् पर्जन्यमेव च॥ ३५
एते वंशाः समाख्याताः क्वचिच्च जयमेव तु।
एतेषां यस्तु सम्पातः पदं मध्यं समं तथा॥ ३६
मर्म चैतत् समाख्यातं त्रिशूलं कोणगं च यत्।
स्तम्भं न्यासेषु वर्ज्यानि तुलाविधिषु सर्वदा॥ ३७
कीलोच्छिष्टोपघातादि वर्जयेद् यत्नतो जनः।
सर्वत्र वास्तुनिर्दिष्टो पितृवैश्वानरायतः॥ ३८

अब मैं उनके वंशोंको पृथक्-पृथक् संक्षेपमें कह रहा हूँ। वायुसे लेकर रोगपर्यन्त, पितृगणसे शिखीपर्यन्त, मुख्यसे भृशपर्यन्त, शोषसे वितथपर्यन्त, सुग्रीवसे अदितिपर्यन्त तथा मृगसे पर्जन्यपर्यन्त—ये ही वंश कहे जाते हैं। कहीं-कहीं मृगसे लेकर जयपर्यन्त वंश कहा गया है। पदके मध्यमें इनका जो सम्पात है, वह पद, मध्य तथा सम नामसे प्रसिद्ध है। त्रिशूल और कोणगामी मर्मस्थल कहे जाते हैं, जो सर्वदा स्तम्भन्यास और तुलाकी विधिमें वर्जित माने गये हैं। मनुष्यके लिये यत्नपूर्वक देवताके पदोंपर कीलें गाड़ना, जूँठन फेंकना तथा चोटें पहुँचाना वर्जित है। यह वास्तु-चक्र, सर्वत्र पितृवर्गीय वैश्वानरके अधीन माना गया है।

* 'बृहत्क्षत' इति बृहत्संहितायां ५३। ५४ स्थः पाठः।

मूर्धन्यग्निः समादिष्टो मुखे चापः समाश्रितः।
पृथ्वीधरोऽर्यमा चैव स्कन्धयोस्तावधिष्ठितौ॥ ३९
वक्षःस्थले चापवत्सः पूजनीयः सदा बुधैः।
नेत्रयोर्दितिपर्जन्यौ श्रोत्रेऽदितिजयन्तकौ॥ ४०
सर्पेन्द्रावंससंस्थौ तु पूजनीयौ प्रयत्नतः।
सूर्यसोमादयस्तद्वद् बाह्वोः पञ्च च पञ्च च॥ ४१
रुद्रश्च राजयक्ष्मा च वामहस्ते समास्थितौ।
सावित्रः सविता तद्वद्धस्तं दक्षिणमास्थितौ॥ ४२
विवस्वानथ मित्रश्च जठरे संव्यवस्थितौ।
पूषा च पापयक्ष्मा च हस्तयोर्मणिबन्धने॥ ४३
तथैवासुरशोषौ च वामपार्श्वं समाश्रितौ।
पार्श्वे तु दक्षिणे तद्वद् वितथः सबृहत्क्षतः॥ ४४
ऊर्वोऽर्यमाम्बुपौ ज्ञेयौ जान्वोर्गन्धर्वपुष्पकौ।
जङ्घयोर्भृङ्गसुग्रीवौ स्फिक्स्थौ दौवारिको मृगः॥ ४५
जयशक्रौ तथा मेढ्रे पादयोः पितरस्तथा।
मध्ये नवपदे ब्रह्मा हृदये स तु पूज्यते॥ ४६

उसके मस्तकपर अग्नि और मुखमें जलका निवास है, दोनों स्कन्धोंपर पृथ्वीधर तथा अर्यमा अधिष्ठित हैं। बुद्धिमान्‌को वक्षःस्थलपर आपवत्सकी पूजा करनी चाहिये। नेत्रोंमें दिति और पर्जन्य तथा कानोंमें अदिति और जयन्त हैं। कंधोंपर सर्प और इन्द्रकी प्रयत्नपूर्वक पूजा करनी चाहिये। इसी प्रकार बाहुओंमें सूर्य और चन्द्रमासे लेकर पाँच-पाँच देवता स्थित हैं। रुद्र और राजयक्ष्मा— ये दोनों बायें हाथपर अवस्थित हैं। उसी प्रकार सावित्र और सविता दाहिने हाथपर स्थित हैं। विवस्वान् और मित्र— ये उदरमें तथा पूषा और पापयक्ष्मा— ये हाथोंके मणिबन्धोंमें स्थित हैं। उसी प्रकार असुर और शोष— ये बायें पार्श्वमें तथा दाहिने पार्श्वमें वितथ और बृहत्क्षत स्थित हैं। ऊरुभागोंपर यम और वरुण, घुटनोंपर गन्धर्व और पुष्पक, दोनों जंघोंपर क्रमशः भृङ्ग और सुग्रीव, दोनों नितम्बोंपर दौवारिक और मृग, लिङ्गस्थानपर जय और शक्र तथा पैरोंपर पितृगण स्थित हैं। मध्यके नौ पदोंमें, जो हृदय कहलाता है, ब्रह्माकी पूजा होती है॥ ३४—४६॥

चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादे ब्रह्मणा स्मृतः।
ब्रह्मा चतुष्पदस्तत्र कोणेष्वर्धपदस्तथा॥ ४७
बहिष्कोणेषु वास्तौ तु सार्धाश्चोभयसंस्थिताः।
विंशतिद्विपदाश्चैव चतुःषष्टिपदे स्मृताः॥ ४८
गृहारम्भेषु कण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यत्र जायते।
शल्यं त्वपनयेत् तत्र प्रासादे भवने तथा॥ ४९
सशल्यं भयदं यस्मादशल्यं शुभदायकम्।
हीनाधिकाङ्गतां वास्तोः सर्वथा तु विवर्जयेत्॥ ५०
नगरग्रामदेशेषु सर्वत्रैवं विवर्जयेत्।
चतुःशालं त्रिशालं च द्विशालं चैकशालकम्।
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि स्वरूपेण द्विजोत्तमाः॥ ५१

ब्रह्माने प्रासादके निर्माणमें चौंसठ पदोंवाले वास्तुको श्रेष्ठ बतलाया है। उसके चार पदोंमें ब्रह्मा तथा उनके कोणोंमें आपवत्स, सविता आदि आठ देवगण स्थित हैं। वास्तुके बाहरवाले कोणोंमें भी अग्नि आदि आठ देवताओंका निवास है तथा दो पदोंमें जयन्त आदि बीस देवता स्थित हैं। इस प्रकार चौंसठ पदवाले वास्तुचक्रमें देवताओंकी स्थिति बतलायी गयी है। गृहारम्भके समय गृहपतिके जिस अङ्गमें खुजली जान पड़े, महल तथा भवनमें वास्तुके उसी अङ्गपर गड़ी हुई शल्य या कीलको निकाल देना चाहिये; क्योंकि शल्यसहित गृह भयदायक और शल्यरहित कल्याणकारक होता है। वास्तुका अधिक एवं हीन अङ्गका होना सर्वथा त्याज्य है। इसी प्रकार नगर, ग्राम और देश— सभी जगहपर इन दोषोंका परित्याग करना चाहिये। द्विजवरो! अब मैं चतुःशाल, त्रिशाल, द्विशाल तथा एकशालवाले भवनोंके नाम और स्वरूपका वर्णन करूँगा॥ ४७—५१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे एकाशीतिपदवास्तुनिर्णयो नाम त्रिपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५३॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें इक्यासीपद-निर्णय नामक दो सौ तिरपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५३॥

दो सौ चौवनवाँ अध्याय

वास्तुशास्त्रके अन्तर्गत राजप्रासाद आदिकी निर्माण-विधि

सूत उवाच

चतुःशालं प्रवक्ष्यामि स्वरूपान्नामतस्तथा।
चतुःशालं चतुर्द्वारैरलिन्दैः सर्वतोमुखम्॥ १

नाम्ना तत् सर्वतोभद्रं शुभं देवनृपालये।
पश्चिमद्वारहीनं च नन्द्यावर्तं प्रचक्षते॥ २

दक्षिणद्वारहीनं तु वर्धमानमुदाहृतम्।
पूर्वद्वारविहीनं तत् स्वस्तिकं नाम विश्रुतम्॥ ३

रुचकं चोत्तरद्वारविहीनं तत् प्रचक्षते।
सौम्यशालाविहीनं यत् त्रिशालं धान्यकं च तत्॥ ४

क्षेमवृद्धिकरं नृणां बहुपुत्रफलप्रदम्।
शालया पूर्वया हीनं सुक्षेत्रमिति विश्रुतम्॥ ५

धन्यं यशस्यमायुष्यं शोकमोहविनाशनम्।
शालया याम्यया हीनं यद् विशालं तु शालया॥ ६

कुलक्षयकरं नृणां सर्वव्याधिभयावहम्।
हीनं पश्चिमया यत् तु पक्षघ्नं नाम तत् पुनः॥ ७

मित्रबन्धुसुतान् हन्ति तथा सर्वभयावहम्।
याम्यापराभ्यां शालाभ्यां धनधान्यफलप्रदम्॥ ८

क्षेमवृद्धिकरं नृणां तथा पुत्रफलप्रदम्।
यमसूर्यं च विज्ञेयं पश्चिमोत्तरशालकम्॥ ९

राजाग्निभयदं नृणां कुलक्षयकरं च यत्।
उदक्पूर्वे तु शाले दण्डाख्ये यत्र तद् भवेत्॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं चतुःशाल* (त्रिशाल, द्विशाल आदि) भवनोंके स्वरूप, उनके विशिष्ट नामोंके साथ बतला रहा हूँ। जो चतुःशाल चारों ओर भवन, द्वार तथा बरामदोंसे युक्त हो, उसे 'सर्वतोभद्र' कहा जाता है। वह देव-मन्दिर तथा राजभवनके लिये मङ्गलकारक होता है। वह चतुःशाल यदि पश्चिम द्वारसे हीन हो तो 'नन्द्यावर्त', दक्षिणद्वारसे हीन हो तो 'वर्धमान', पूर्वद्वारसे रहित हो तो 'स्वस्तिक', उत्तरद्वारसे विहीन हो तो 'रुचक' कहा जाता है। (अब त्रिशाल भवनोंके भेद बतलाते हैं।) उत्तर दिशाकी शालासे रहित जो त्रिशाल भवन होता है, उसे 'धान्यक' कहते हैं। वह मनुष्योंके लिये कल्याण एवं वृद्धि करनेवाला तथा अनेक पुत्ररूप फल देनेवाला होता है। पूर्वकी शालासे विहीन त्रिशाल भवनको 'सुक्षेत्र' कहते हैं। वह धन, यश और आयु प्रदान करनेवाला तथा शोक-मोहका विनाशक होता है। जो दक्षिणकी शालासे विहीन होता है, उसे 'विशाल' कहते हैं। वह मनुष्योंके कुलका क्षय करनेवाला तथा सब प्रकारकी व्याधि और भय देनेवाला होता है। जो पश्चिमशालासे हीन होता है, उसका नाम 'पक्षघ्न' है, वह मित्र, बन्धु और पुत्रोंका विनाशक तथा सब प्रकारका भय उत्पन्न करनेवाला होता है। (अब 'द्विशालों'के भेद कहते हैं—) दक्षिण एवं पश्चिम—दो शालाओंसे युक्त भवनको धनधान्यप्रद कहते हैं। वह मनुष्योंके लिये कल्याणका वर्धक तथा पुत्रप्रद कहा गया है। पश्चिम और उत्तरशालावाले भवनको 'यमसूर्य' नामक शाल जानना चाहिये। वह मनुष्योंके लिये राजा और अग्निसे भयदायक और कुलका विनाशक होता है। जिस भवनमें केवल पूर्व और उत्तरकी ही दो शालाएँ हों, उसे 'दण्ड' कहते हैं।

* रावणादिके ऐसे चतुःशाल, त्रिशाल आदि भवनोंका उल्लेख वाल्मीकीय रामायण, सुन्दरकाण्ड, राजतरङ्गिणी ३। १२, मृच्छकटिकनाटक ३। ७ तथा बृहत्संहिता अ० ५३ आदिमें आता है। शिल्परत्न, समराङ्गण, काश्यपशिल्पादिमें इनकी रचनाका विस्तृत विधान है।

अकालमृत्युभयदं परचक्रभयावहम्।
धनाख्यं पूर्वयाम्याभ्यां शालाभ्यां यद् शालकम्॥ ११

तच्छस्त्रभयदं नृणां पराभवभयावहम्।
चुल्ली पूर्वापराभ्यां तु सा भवेन्मृत्युसूचनी॥ १२

वैधव्यदायकं स्त्रीणामनेकभयकारकम्।
कार्यमुत्तरयाम्याभ्यां शालाभ्यां भयदं नृणाम्॥ १३

सिद्धार्थवज्रवर्ज्याणि द्विशालानि सदा बुधैः।
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भवनं पृथिवीपतेः॥ १४

पञ्चप्रकारं तत् प्रोक्तमुत्तमादिविभेदतः।
अष्टोत्तरं हस्तशतं विस्तरश्चोत्तमो मतः॥ १५

चतुर्ष्वन्येषु विस्तारो हीयते चाष्टभिः करैः।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते॥ १६

युवराजस्य वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्।
षड्भिः षड्भिस्तथाशीतिर्हीयते तत्र विस्तरात्॥ १७

त्र्यंशेन चाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते।
सेनापतेः प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्॥ १८

चतुःषष्टिस्तु विस्तारात् षड्भिः षड्भिस्तु हीयते।
पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत्॥ १९

मन्त्रिणामथ वक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्।
चतुश्चतुर्भिर्हीना स्यात् करषष्टिः प्रविस्तरे॥ २०

अष्टांशेनाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वपि निगद्यते।
सामन्तामात्यलोकानां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्॥ २१

चत्वारिंशत् तथाष्टौ च चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।
चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं पञ्चस्वेतेषु शस्यते॥ २२

वह अकालमृत्यु तथा शत्रुपक्षसे भय उत्पन्न करनेवाला होता है। जो पूर्व और दक्षिणकी शालाओंसे युक्त द्विशाल भवन हो, उसे 'धन' कहते हैं। वह मनुष्योंके लिये शस्त्र तथा पराजयका भय उत्पन्न करनेवाला होता है। इसी प्रकार केवल पूर्व तथा पश्चिमकी ओर बना हुआ 'चुल्ली' नामक द्विशालभवन मृत्युसूचक है। वह स्त्रियोंको विधवा करनेवाला तथा अनेकों प्रकारका भय उत्पन्न करनेवाला होता है। केवल उत्तर एवं दक्षिणकी शालाओंसे युक्त द्विशाल भवन मनुष्योंके लिये भयदायक होता है। अतः ऐसे भवनको नहीं बनवाना चाहिये। बुद्धिमानोंको सदा सिद्धार्थ[१] और वज्रसे[२] भिन्न द्विशालभवन बनवाना चाहिये॥ १—१३½॥

अब मैं राजभवनके विषयमें वर्णन कर रहा हूँ। वह उत्तम आदि भेदसे पाँच प्रकारका कहा गया है। एक सौ आठ हाथके विस्तारवाला राजभवन उत्तम माना गया है। अन्य चार प्रकारके भवनोंमें विस्तार क्रमशः आठ-आठ हाथ कम होता जाता है; किंतु पाँचों प्रकारके भवनोंमें लम्बाई विस्तारके चतुर्थांशसे अधिक होती है। अब मैं युवराजके पाँच प्रकारके भवनोंका वर्णन कर रहा हूँ। उसमें उत्तम भवनकी चौड़ाई अस्सी हाथकी होती है। अन्य चारकी चौड़ाई क्रमशः छः-छः हाथ कम होती जाती है। इन पाँचों भवनोंकी लम्बाई चौड़ाईसे एक तिहाई अधिक कही गयी है। इसी प्रकार अब मैं सेनापतिके पाँच प्रकारके भवनोंका वर्णन कर रहा हूँ। उसके उत्तम भवनकी चौड़ाई चौंसठ हाथकी मानी गयी है। अन्य चार भवनोंकी चौड़ाई क्रमशः छः-छः हाथ कम होती जाती है। इन पाँचोंकी लम्बाई चौड़ाईके षष्ठांशसे अधिक होनी चाहिये। अब मैं मन्त्रियोंके भी पाँच प्रकारके भवन बतला रहा हूँ। उनमें उत्तम भवनका विस्तार साठ हाथ होता है तथा अन्य चार क्रमशः चार-चार हाथ कम चौड़े होते हैं। इन पाँचोंकी लम्बाई चौड़ाईके अष्टांशसे अधिक कही गयी है। अब मैं सामन्त, छोटे राजा और अमात्य (छोटे मन्त्री) लोगोंके पाँच प्रकारके भवनोंको बतलाता हूँ। इनमें उत्तम भवनकी चौड़ाई अड़तालीस हाथकी होनी चाहिये तथा अन्य चारोंकी चौड़ाई क्रमशः चार-चार हाथ कम कही गयी है। इन पाँचों भवनोंकी लम्बाई चौड़ाईकी अपेक्षा सवाया अधिक कही गयी है।

१. एक प्रकारका स्तम्भ जिसमें ८ पहल या कोण होते हैं।
२. जिस द्विशालमें केवल दक्षिण और पश्चिमकी ओर भवन हों (बृहत्संहिता ५३। ३९)।

शिल्पिनां कञ्चुकीनां च वेश्यानां गृहपञ्चकम्।
अष्टाविंशत् कराणां तु विहीनं विस्तरे क्रमात्॥ २३

द्विगुणं दैर्घ्यमेवोक्तं मध्यमेष्वेवमेव तत्।
दूतीकर्मान्तिकादीनां वक्ष्ये भवनपञ्चकम्॥ २४

चतुर्थांशाधिकं दैर्घ्यं विस्तारो द्वादशैव तु।
अर्धार्धकरहानिः स्याद् विस्तारात् पञ्चशः क्रमात्॥ २५

दैवज्ञगुरुवैद्यानां सभास्तारपुरोधसाम्।
तेषामपि प्रवक्ष्यामि तथा भवनपञ्चकम्॥ २६

चत्वारिंशत् तु विस्ताराच्चतुर्भिर्हीयते क्रमात्।
पञ्चस्वेतेषु दैर्घ्यं च षड्भागेनाधिकं भवेत्॥ २७

चतुर्वर्णस्य वक्ष्यामि सामान्यं गृहपञ्चकम्।
द्वात्रिंशतः कराणां तु चतुर्भिर्हीयते क्रमात्॥ २८

आषोडशादिति परं नूनमन्त्यावसायिनाम्।
दशांशेनाष्टभागेन त्रिभागेनाथ पादिकम्॥ २९

अधिकं दैर्घ्यमित्याहुर्ब्राह्मणादेः प्रशस्यते।
सेनापतेर्नृपस्यापि गृहयोरन्तरेण तु॥ ३०

नृपवासगृहं कार्यं भाण्डागारं तथैव च।
सेनापतेर्गृहस्यापि चातुर्वर्ण्यस्य चान्तरे।
वासाय च गृहं कार्यं राजपूज्येषु सर्वदा॥ ३१

अन्तरप्रभवाणां च स्वपितुर्गृहमिष्यते।
तथा हस्तशतादर्धं गदितं वनवासिनाम्॥ ३२

सेनापतेर्नृपस्यापि सप्तत्या सहितेऽन्विते।
चतुर्दशहते व्यासे शालान्यासः प्रकीर्तितः॥ ३३

पञ्चत्रिंशान्विते तस्मिन्नलिन्दः समुदाहृतः।
तथा षट्विंशद्धस्ता तु सप्ताङ्गुलसमन्विता॥ ३४

विप्रस्य महती शाला न दैर्घ्यं परतो भवेत्।
दशाङ्गुलाधिका तद्वत् क्षत्रियस्य विधीयते॥ ३५

अब शिल्पकार, कंचुकी और वेश्याओंके पाँच प्रकारके भवनोंको सुनिये। इन सभी भवनोंकी चौड़ाई अट्ठाईस हाथ कही गयी है। अन्य चारों भवनोंकी चौड़ाईमें क्रमशः दो-दो हाथकी न्यूनता होती है। लम्बाई चौड़ाईसे दुगुनी कही गयी है॥ १४—२३ $\frac{1}{2}$॥

अब मैं दूती-कर्म करनेवालों तथा परिवारके अन्य लोगोंके पाँच प्रकारके भवनोंको बतला रहा हूँ। उनकी चौड़ाई बारह हाथकी तथा लम्बाई उससे सवाया अधिक होती है। शेष चार गृहोंकी चौड़ाई क्रमशः आधा-आधा हाथ न्यून होती है। अब मैं ज्योतिषी, गुरु, वैद्य, सभापति और पुरोहित—इन सभीके पाँच प्रकारके भवनोंका वर्णन कर रहा हूँ। उनके उत्तम भवनकी चौड़ाई चालीस हाथकी होती है। शेषकी क्रमसे चार-चार हाथकी कम होती है। इन पाँचों भवनोंकी लम्बाई चौड़ाईके षष्ठांशसे अधिक होती है। अब फिर साधारणतया चारों वर्णोंके लिये पाँच प्रकारके गृहोंका वर्णन करता हूँ। उनमें ब्राह्मणके घरकी चौड़ाई बत्तीस हाथकी होनी चाहिये। अन्य जातियोंके लिये क्रमशः चार-चार हाथकी कमी होनी चाहिये। (अर्थात् ब्राह्मणके उत्तम गृहकी चौड़ाई बत्तीस हाथ, क्षत्रियके घरकी अट्ठाईस हाथ, वैश्यके घरकी चौबीस हाथ तथा सत्-शूद्रके घरकी बीस हाथ और असत्-शूद्रके घरकी सोलह हाथ होनी चाहिये।) किंतु सोलह हाथसे कमकी चौड़ाई अन्त्यजोंके लिये है। ब्राह्मणके घरकी लम्बाई चौड़ाईसे दशांश, क्षत्रियके घरकी अष्टमांश, वैश्यके घरकी तिहाई और शूद्रके घरकी चौथाई भाग अधिक होनी चाहिये। यही विधि श्रेष्ठ मानी गयी है। सेनापति और राजाके गृहोंके बीचमें राजाके रहनेका गृह बनाना चाहिये। उसी स्थानपर भाण्डागार भी रहना चाहिये। सेनापतिके तथा चारों वर्णोंके गृहोंके मध्य भागमें सर्वदा राजाके पूज्य लोगोंके निवासार्थ गृह बनवाना चाहिये। इसके अतिरिक्त विभिन्न जातियोंके लिये एवं वनेचरोंके लिये शयन करनेका घर पचास हाथका बनवाना चाहिये। सेनापति और राजाके गृहके परिमाणमें सत्तरका योग करके चौदहका भाग देनेपर व्यासमें शालाका न्यास कहा गया है। उसमें पैंतीस हाथपर बरामदेका स्थान कहा गया है। छत्तीस हाथ सात अङ्गुल लम्बी ब्राह्मणकी बड़ी शाला होनी चाहिये। उसी प्रकार दस अङ्गुल अधिक क्षत्रियकी शाला होनी चाहिये॥ २४—३५॥

पञ्चत्रिंशत्करा वैश्ये ह्यङ्गुलानि त्रयोदश।
तावत्करैव शूद्रस्य युता पञ्चदशाङ्गुलैः॥ ३६

शालायास्तु त्रिभागेन यस्याग्रे वीथिका भवेत्।
सोष्णीषं नाम तद्वास्तु पश्चाच्छ्रेयोच्छ्रयं भवेत्॥ ३७

पार्श्वयोर्वीथिका यत्र सावष्टम्भं तदुच्यते।
समन्ताद्वीथिका यत्र सुस्थितं तदिहोच्यते॥ ३८

शुभदं सर्वमेतत् स्याच्चातुर्वर्ण्ये चतुर्विधम्।
विस्तरात् षोडशो भागस्तथा हस्तचतुष्टयम्॥ ३९

प्रथमो भूमिकोच्छ्राय उपरिष्टात् प्रहीयते।
द्वादशांशेन सर्वासु भूमिकासु तथोच्छ्रयः॥ ४०

पक्वेष्टका भवेद् भित्तिः षोडशांशेन विस्तरात्।
दारवैरपि कल्प्या स्यात् तथा मृन्मयभित्तिका॥ ४१

गर्भमानेन मानं तु सर्ववास्तुषु शस्यते।
गृहव्यासस्य पञ्चाशदष्टादशभिरङ्गुलैः॥ ४२

संयुतो द्वारविष्कम्भो द्विगुणश्चोच्छ्रयो भवेत्।
द्वारशाखासु बाहुल्यमुच्छ्रायकरसम्मितैः॥ ४३

अङ्गुलैः सर्ववास्तूनां शस्यते पृथुत्वं बुधैः।
उदुम्बरोत्तमाङ्गं च तदर्धार्धप्रविस्तरात्॥ ४४

वैश्यके लिये पैंतीस हाथ तेरह अङ्गुल लम्बी शाला होनी चाहिये। उतने ही हाथ तथा पंद्रह अङ्गुल शूद्रकी शालाका परिमाण है। शालाकी लम्बाईके तीन भागपर यदि सामनेकी ओर गली बनी हो तो वह 'सोष्णीष' नामक वास्तु है। पीछेकी ओर गली हो तो वह 'श्रेयोच्छ्रय' कहलाता है। यदि दोनों पार्श्वोंमें वीथिका हो तो वह 'सावष्टम्भ' तथा चारों ओर वीथिका हो तो 'सुस्थित' नामक वास्तु कहा जाता है। ये चारों प्रकारकी वीथियाँ चारों वर्णोंके लिये मङ्गलदायी हैं। शालाके विस्तारका सोलहवाँ भाग तथा चार हाथ—यह पहले खण्डकी ऊँचाईका मान है। अधिक ऊँचा करनेसे हानि होती है। उसके बाद अन्य सभी खण्डोंकी ऊँचाई बारहवें भागके बराबर रखनी चाहिये। यदि पक्की ईंटोंकी दीवाल बनायी जा रही हो तो गृहकी चौड़ाईके सोलहवें भागके परिमाणके बराबर मोटाई होनी चाहिये। वह दीवाल लकड़ी तथा मिट्टीसे भी बनायी जा सकती है। सभी वास्तुओंमें भीतरके मानके अनुसार लम्बाई-चौड़ाईका मान श्रेष्ठ माना गया है। गृहके व्याससे पचास अङ्गुल विस्तार तथा अठारह अङ्गुल वेधसे युक्त द्वारकी चौड़ाई रखनी चाहिये और उसकी ऊँचाई चौड़ाईसे दुगुनी होनी चाहिये। जितनी ऊँचाई द्वारकी हो उतनी ही दरवाजेमें लगी हुई शाखाओंकी भी होनी चाहिये। ऊँचाई जितने हाथोंकी हो उतने ही अङ्गुल उन शाखाओंकी मोटाई होनी चाहिये—यही सभी वास्तुविद्याके ज्ञाताओंने बताया है। द्वारके ऊपरका कलश (बुर्ज) तथा नीचेकी देहली (चौखट)—ये दोनों शाखाओंसे आधे अधिक मोटे हों, अर्थात् इन्हें शाखाओंसे ड्योढ़ा मोटा रखना चाहिये॥ ३६—४४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु गृहमाननिर्णयो नाम चतुःपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुप्रकरणमें गृह-मान-निर्णय नामक दो सौ चौवनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५४॥



दो सौ पचपनवाँ अध्याय

वास्तुविषयक वेधका विवरण

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि स्तम्भमानविनिर्णयम्।
कृत्वा स्वभवनोच्छ्रायं सदा सप्तगुणं बुधैः॥ १
अशीत्यंशः पृथुत्वे स्यादग्रे नवगुणे सति।
रुचकश्चतुरः स्यात् तु अष्टास्त्रो वज्र उच्यते॥ २
द्विवज्रः षोडशास्त्रस्तु द्वात्रिंशास्त्रः प्रलीनकः।
मध्यप्रदेशे यः स्तम्भो वृत्तो वृत्त इति स्मृतः॥ ३
एते पञ्च महास्तम्भाः प्रशस्ताः सर्ववास्तुषु।
पद्मवल्लीलताकुम्भपत्रदर्पणरूषिताः॥ ४
स्तम्भस्य नवमांशेन पद्मकुम्भान्तराणि तु।
स्तम्भतुल्या तुला प्रोक्ता हीना चोपतुला ततः॥ ५
त्रिभागेनेह सर्वत्र चतुर्भागेन वा पुनः।
हीनं हीनं चतुर्थांशात् तथा सर्वासु भूमिषु॥ ६
वासगेहानि सर्वेषां प्रविशेद् दक्षिणेन तु।
द्वाराणि तु प्रवक्ष्यामि प्रशस्तानीह यानि तु॥ ७
पूर्वेणेन्द्रं जयन्तं च द्वारं सर्वत्र शस्यते।
याम्यं च वितथं चैव दक्षिणेन विदुर्बुधाः॥ ८
पश्चिमे पुष्पदन्तं च वारुणं च प्रशस्यते।
उत्तरेण तु भल्लाटं सौम्यं तु शुभदं भवेत्॥ ९
तथा वास्तुषु सर्वत्र वेधं द्वारस्य वर्जयेत्।
द्वारे तु रथ्यया विद्धे भवेत् सर्वकुलक्षयः॥ १०
तरुणा द्वेषबाहुल्यं शोकः पङ्केन जायते।
अपस्मारो भवेन्नूनं कूपवेधेन सर्वदा॥ ११
व्यथा प्रस्त्रवणेन स्यात् कीलेनाग्निभयं भवेत्।
विनाशो देवताविद्धे स्तम्भेन स्त्रीकृतो भवेत्॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं स्तम्भके परिमाणके विषयमें बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि वे अपने गृहकी ऊँचाईके मानको सातसे गुणाकर उसके अस्सीवें भागके बराबर खम्भेकी मोटाई रखें। उसकी मोटाईमें नौसे गुणा कर अस्सीवें भागके बराबर खम्भेका मूलभाग रखना चाहिये। चार कोणवाला स्तम्भ 'रुचक', आठ कोणवाला 'वज्र', सोलह कोणवाला 'द्विवज्र' तथा बत्तीस कोणवाला 'प्रलीनक' कहा जाता है। मध्य प्रदेशमें जो खम्भा वृत्ताकार रहता है, उसे 'वृत्त' कहा गया है। ये पाँच प्रकारके स्तम्भ सभी प्रकारके वास्तु-कार्यमें प्रशंसनीय कहे गये हैं। ये सभी स्तम्भ पद्म, वल्ली, लता, कुम्भ, पत्र एवं दर्पणसे चित्रित रहने चाहिये। इन कमलों तथा कुम्भोंमें स्तम्भके नवें अंशके बराबर अन्तर रहना चाहिये। स्तम्भके बराबर ऊँचाईको 'तुला' तथा उससे न्यूनको 'उपतुला' कहते हैं। मानके तृतीय या चतुर्थ भागसे हीन जो तुला है, वही 'उपतुला' है। यह उपतुला सभी भूमियोंमें रहती है। सभी वास-गृहोंमें दाहिनी ओर प्रवेशद्वार रखना चाहिये। अब मैं गृहके जो प्रशस्तद्वार हैं, उन्हें बतला रहा हूँ। पूर्व दिशामें इन्द्र और जयन्तद्वार सभी गृहोंमें श्रेष्ठ माने गये हैं। बुद्धिमान् लोग दक्षिण द्वारोंमें याम्य और वितथको श्रेष्ठ मानते हैं। पश्चिम द्वारोंमें पुष्पदन्त और वरुण प्रशंसित हैं। उत्तर द्वारोंमें भल्लाट तथा सौम्य शुभदायक होते हैं। सभी वास्तुओंमें द्वारवेधको बचाना चाहिये। गली, सड़क या मार्गद्वारा द्वार-वेध होनेपर पूरे कुलका क्षय हो जाता है। वृक्षके द्वारा वेध होनेपर द्वेषकी अधिकता होती है। कीचड़से वेध होनेपर शोक होता है और कूपद्वारा वेध होनेपर अवश्य ही सदाके लिये मिरगीका रोग होता है। नाबदान या जलप्रवाहसे वेध होनेपर व्यथा होती है, कीलसे वेध होनेपर अग्निभय होता है, देवतासे विद्ध होनेपर विनाश तथा स्तम्भसे विद्ध होनेपर स्त्रीद्वारा क्लेशकी प्राप्ति होती है॥ १—१२॥

गृहभर्तुर्विनाशः स्याद् गृहेण च गृहे कृते।
अमेध्यावस्करैर्विद्धे गृहिणी बन्धकी भवेत्॥ १३
तथा शस्त्रभयं विन्द्यादन्त्यजस्य गृहेण तु।
उच्छ्रायाद् द्विगुणां भूमिं त्यक्त्वा वेधो न जायते॥ १४
स्वयमुद्घाटिते द्वारे उन्मादो गृहवासिनाम्।
स्वयं वा पिहिते विद्यात् कुलनाशं विचक्षणः॥ १५
मानाधिके राजभयं न्यूने तस्करतो भवेत्।
द्वारोपरि च यद् द्वारं तदन्तकमुखं स्मृतम्॥ १६
अध्वनो मध्यदेशे तु अधिको यस्य विस्तरः।
वज्रं तु संकटं मध्ये सद्यो भर्तुर्विनाशनम्॥ १७
तथान्यपीडितं द्वारं बहुदोषकरं भवेत्।
मूलद्वारात् तथान्यत् तु नाधिकं शोभनं भवेत्॥ १८
कुम्भश्रीपर्णिवल्लीभिर्मूलद्वारं तु शोभयेत्।
पूजयेच्चापि तन्नित्यं बलिना चाक्षतोदकैः॥ १९
भवनस्य वटः पूर्वे दिग्भागे सार्वकामिकः।
उदुम्बरस्तथा याम्ये वारुण्यां पिप्पलः शुभः॥ २०
प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतास्त्वसिद्धये।
कण्टकी क्षीरवृक्षश्च आसनः सफलो द्रुमः॥ २१
भार्याहानौ प्रजाहानौ भवेतां क्रमशस्तदा।
न च्छिन्द्याद् यदि तानन्यानन्तरे स्थापयेच्छुभान्॥ २२
पुन्नागाशोकबकुलशमीतिलकचम्पकान्।
दाडिमीपिप्पलीद्राक्षास्तथा कुसुममण्डपान्॥ २३
जम्बीरपूगपनसद्रुमकेतकीभि-
र्जातीसरोजशतपत्रिकमल्लिकाभिः।
यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभि-
र्युक्तं तदत्र भवनं श्रियमातनोति॥ २४

एक घरसे दूसरे घरमें वेध पड़नेपर गृहपतिका विनाश होता है तथा अपवित्र द्रव्यादिद्वारा वेध होनेपर घरकी स्वामिनी बन्ध्या हो जाती है। अन्त्यजके घरके द्वारा वेध होनेपर हथियारसे भय प्राप्त होता है। गृहकी ऊँचाईसे दुगुनी भूमिकी दूरीपर वेधका दोष नहीं होता। जिस घरके द्वार बिना हाथ लगाये स्वयं खुल जाते हैं, उस घरके निवासियोंको उन्मादका रोग होता है। इसी प्रकार स्वयं बंद हो जानेपर कुलका नाश हो जाता है—ऐसा विद्वान् लोग बतलाते हैं। गृहके द्वार यदि अपने मानसे अधिक ऊँचे हैं तो राजभय तथा यदि नीचे हैं तो चोरोंका भय होता है। द्वारके ऊपर जो द्वार बनता है, वह यमराजका मुख कहा जाता है। मार्गके बीचमें बने हुए जिस गृहकी चौड़ाई बहुत अधिक होती है, वह वज्रके समान शीघ्र ही गृहपतिके विनाशका कारण होता है। यदि मुख्यद्वार अन्य द्वारोंसे निकृष्ट हो तो वह बहुत बड़ा दोषकारक होता है। अतः मुख्यद्वारको अपेक्षा अन्य द्वारोंका बड़ा होना शुभकारक नहीं है। घट, श्रीपर्णी और लताओंसे मूलद्वारको सुशोभित रखना चाहिये और उसकी नित्य बलि, अक्षत और जलसे पूजा करनी चाहिये। घरकी पूर्व दिशामें बरगदका वृक्ष सभी प्रकारकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाला होता है। दक्षिणमें गूलर और पश्चिममें पीपलका पेड़ शुभकारक होता है। इसी तरह उत्तरमें पाकड़का पेड़ मङ्गलकारी है। इससे विपरीत दिशामें रहनेपर ये वृक्ष विपरीत फल देनेवाले होते हैं। घरके समीप यदि काँटे या दूधवाले वृक्ष, असनाका वृक्ष एवं फलदार वृक्ष हों तो उनसे क्रमशः स्त्री और संतानकी हानि होती है। यदि कोई उन्हें काट न सके तो उनके समीप अन्य शुभदायक वृक्षोंको लगा दे। पुंनाग, अशोक, मौलसिरी, शमी, तिलक, चम्पा, अनार, पीपली, दाख, अर्जुन, जंबीर, सुपारी, कटहल, केतकी, मालती, कमल, चमेली, मल्लिका, नारियल, केला एवं पाटल—इन वृक्षोंसे सुशोभित घर लक्ष्मीका विस्तार करता है॥ १३—२४॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यासु वेधपरिवर्जनं नाम पञ्चपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके वास्तु-विद्या-प्रसङ्गमें वेधविवरण नामक दो सौ पचपनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५५॥

दो सौ छप्पनवाँ अध्याय

वास्तुप्रकरणमें गृह-निर्माणविधि

सूत उवाच

उदगादिप्लवं वास्तु समानशिखरं तथा।
परीक्ष्य पूर्ववत् कुर्यात् स्तम्भोच्छ्रायं विचक्षणः॥ १

न देवधूर्तसचिवचत्वराणां समीपतः।
कारयेद् भवनं प्राज्ञो दुःखशोकमयं ततः॥ २

तस्य प्रदेशाश्चत्वारस्तथोत्सर्गोऽग्रतः शुभः।
पृष्ठतः पृष्ठभागस्तु सव्यावर्तः प्रशस्यते॥ ३

अपसव्यो विनाशाय दक्षिणे शीर्षकस्तथा।
सर्वकामफलो नृणां सम्पूर्णो नाम वामतः॥ ४

एवं प्रदेशमालोक्य यत्नेन गृहमारभेत्।
अथ सांवत्सरप्रोक्ते मुहूर्ते शुभलक्षणे॥ ५

रत्नोपरि शिलां कृत्वा सर्वबीजसमन्विताम्।
चतुर्भिर्ब्राह्मणैः स्तम्भं कारयित्वा सुपूजितम्॥ ६

शुक्लाम्बरधरः शिल्पिसहितो वेदपारगः।
स्नापितं विन्यसेत् तद्वत् सर्वौषधिसमन्वितम्॥ ७

नानाक्षतसमोपेतं वस्त्रालङ्कारसंयुतम्।
ब्रह्मघोषेण वाद्येन गीतमङ्गलनिःस्वनैः॥ ८

पायसं भोजयेद् विप्रान् होमं तु मधुसर्पिषा।
वास्तोष्पते प्रतिजानीहि मन्त्रेणानेन सर्वदा॥ ९

सूत्रपाते तथा कार्यमेवं स्तम्भोदये पुनः।
द्वारवंशोच्छ्रये तद्वत् प्रवेशसमये तथा॥ १०

वास्तूपशमने तद्वद् वास्तुयज्ञस्तु पञ्चधा।
ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेये स्तम्भरोपणम्॥ ११

प्रदक्षिणं च कुर्वीत वास्तोः पदविलेखनम्।
तर्जनी मध्यमा चैव तथाङ्गुष्ठस्तु दक्षिणे॥ १२

प्रवालरत्नकनकफलं पिष्ट्वा कृतोदकम्।
सर्ववास्तुविभागेषु शस्तं पदविलेखने॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! बुद्धिमान् पुरुष उत्तरकी ओर झुकी हुई या समान भागवाली भूमिकी परीक्षा कर पूर्व कही गयी रीतिसे स्तम्भकी ऊँचाई आदिका निर्माण कराये। बुद्धिमान् पुरुषको देवालय, धूर्त, सचिव या चौराहेके समीप अपना घर नहीं बनवाना चाहिये; क्योंकि इससे दुःख, शोक और भय बना रहता है। घरके चारों ओर तथा द्वारके सम्मुख और पीछे कुछ भूमिको छोड़ देना शुभकारक है। पिछला भाग दक्षिणावर्त रहना ठीक है; क्योंकि वामावर्त विनाशकारक होता है। दक्षिण भागमें ऊँचा रहनेवाला घर 'सम्पूर्ण' वास्तुके नामसे अभिहित किया जाता है। वह मनुष्योंकी सभी कामनाओंको पूर्ण करता है। इस प्रकारके प्रदेशको देखकर प्रयत्नपूर्वक गृह आरम्भ करना चाहिये। सर्वप्रथम वेदज्ञ पुरोहित श्वेत वस्त्र धारण कर कारीगरके साथ ज्योतिषीके कथनानुसार शुभ मुहूर्तमें सभी बीजोंसे युक्त आधार-शिलाको रत्नके ऊपर स्थापित करे। पुनः चार ब्राह्मणोंद्वारा उस स्तम्भकी भलीभाँति पूजा कराकर उसे धो-पोंछकर अक्षत, वस्त्र, अलंकार और सर्वौषधिसे पूजितकर पूर्ववत् मन्त्रोच्चारण, बाजा और माङ्गलिक गीत आदिके शब्दके साथ स्थापित कर दे। ब्राह्मणोंको खीरका भोजन कराये और '**वास्तोष्पते प्रतिजानीहि**'* (ऋक्संहिता ७।५४।१) इस मन्त्रके द्वारा मधु और घीसे हवन करे। वास्तुयज्ञ पाँच प्रकारके हैं—सूत्रपात, स्तम्भारोपण, द्वारवंशोच्छ्रय (चौखट-स्थापन), गृहप्रवेश और वास्तु-शान्ति। इन सभीमें पूर्ववत् कार्य करनेका विधान है। ईशानकोणमें सूत्रपात और अग्निकोणमें स्तम्भारोपण होता है। वास्तुके पदचिह्नोंको बनाकर उसकी प्रदक्षिणा करनी चाहिये। सभी वास्तु-विभागोंमें दाहिने हाथकी तर्जनी, मध्यमा और अङ्गूठेसे मूँगा, रत्न और सुवर्णके चूर्णसे मिश्रित जलद्वारा पद-चिह्न बनाना श्रेष्ठ माना गया है॥ १—१३॥

* यह पूरा मन्त्र इस प्रकार है— वास्तोष्पते प्रतिजानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः। यत् त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे॥ (ऋ० ७।५४।१, तैत्ति० सं० ३।४।१०।१)

न भस्माङ्गारकाष्ठेन नखशस्त्रेण चर्मभिः।
न शृङ्गास्थिकपालैश्च क्वचिद् वास्तु विलेखयेत्॥ १४
एभिर्विलिखितं कुर्याद् दुःखशोकभयादिकम्।
यदा गृहप्रवेशः स्याच्छिल्पी तत्रापि लक्षयेत्॥ १५
स्तम्भसूत्रादिकं तद्वच्छुभाशुभफलप्रदम्।
आदित्याभिमुखं रौति शकुनिः परुषं यदि॥ १६
तुल्यकालं स्पृशेदङ्गं गृहभर्तुर्यदात्मनः।
वास्त्वङ्गे तद् विजानीयान्नरशल्यं भयप्रदम्॥ १७
अङ्कनानन्तरं यत्र हस्त्यश्वश्वापदं भवेत्।
तदङ्गसम्भवं विन्द्यात् तत्र शल्यं विचक्षणः॥ १८
प्रसार्यमाणे सूत्रे तु श्वा गोमायुर्विलङ्घते।
तत्तु शल्यं विजानीयात् खरशब्देऽतिभैरवे॥ १९
यदीशाने तु दिग्भागे मधुरं रौति वायसः।
धनं तत्र विजानीयाद् भागे वा स्वाम्यधिष्ठिते॥ २०
सूत्रच्छेदे भवेन्मृत्युर्व्याधिः कीले त्वधोमुखे।
अङ्गारेषु तथोन्मादं कपालेषु च सम्भ्रमम्॥ २१
कम्बुशल्येषु जानीयात्पौंश्चल्यं स्त्रीषु वास्तुवित्।
गृहभर्तुर्गृहस्यापि विनाशः शिल्पिसम्भ्रमे॥ २२
स्तम्भे स्कन्धच्युते कुम्भे शिरोरोगं विनिर्दिशेत्।
कुम्भापहारे सर्वस्य कुलस्यापि क्षयो भवेत्॥ २३
मृत्युः स्थानच्युते कुम्भे भग्ने बन्धं विदुर्बुधाः।
करसंख्याविनाशे तु नाशं गृहपतेर्विदुः॥ २४
बीजौषधिविहीने तु भूतेभ्यो भयमादिशेत्।
ततः प्रदक्षिणेनान्यान्यसेत् स्तम्भान् विचक्षणः॥ २५
यस्माद् भयंकरा नृणां योजिता ह्यप्रदक्षिणम्।

राख, अंगार, काष्ठ, नख, शास्त्र, चर्म, सींग, हड्डी, कपाल—इन वस्तुओंद्वारा कहीं भी वास्तुके चिह्न नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि इनके द्वारा बनाया गया चिह्न दुःख, शोक और भय आदि उत्पन्न करता है। जिस समय गृहप्रवेश हो, उस समय कारीगरका भी रहना उचित है। स्तम्भारोपण और सूत्रपातके समय पूर्ववत् शुभ एवं अशुभ फल देनेवाले शुक होते हैं। यदि ऐसे अवसरोंपर कोई पक्षी सूर्यकी ओर मुख कर कठोर वाणी बोलता है या उस समय गृहपति अपने शरीरके किसी अङ्गपर हाथ रखता है तो समझ लेना चाहिये कि वास्तुके उसीपर भय प्रदान करनेवाली मनुष्यकी हड्डी पड़ी हुई है। सूत्र अङ्कित कर देनेके बाद यदि गृहपति अपने किसी अङ्गका स्पर्श करता है तो वास्तुके उसी अङ्गमें हाथी, अश्व तथा कुत्तेकी हड्डियाँ हैं, ऐसा बुद्धिमान् पुरुषको समझ लेना चाहिये। सूत्रको फैलाते समय उसे शृगाल या कुत्ता लाँघ जाता है और गदहा अत्यन्त भयंकर चीत्कार करता है तो ठीक उस स्थानपर हड्डी जाननी चाहिये। यदि सूत्रपातके समय ईशान कोणमें कौआ मीठे स्वरसे बोलता हो तो वास्तुके उस भागमें या जहाँ गृहपति खड़ा है, वहाँ धन है—ऐसा जानना चाहिये। सूत्रपातके समय यदि सूत्र टूट जाता है तो गृहपतिकी मृत्यु होती है। वास्तुवेत्ताको ऐसा समझना चाहिये कि कीलके नीचेकी ओर झुक जानेपर व्याधि, अंगार दिखायी पड़नेपर उन्माद, कपाल दीख पड़नेपर भय और शङ्ख या घोंघेकी हड्डी मिलनेपर कुलाङ्गनाओंमें व्यभिचारकी सम्भावना रहती है। भवन-निर्माणके समय कारीगरके पागल हो जानेपर गृहपति और घरका विनाश हो जाता है। स्थापित किये हुए स्तम्भ या कुम्भके कंधेपर गिर जानेसे गृहपतिके सिरमें रोग होता है तथा कलशकी चोरी हो जानेपर समूचे कुलका विनाश हो जाता है। कुम्भके अपने स्थानसे च्युत हो जानेपर गृहस्वामीकी मृत्यु होती है तथा फूट जानेपर वह बन्धनमें पड़ता है—ऐसा पण्डितोंने कहा है। गृहारम्भके समय हाथोंकी परिमाण-संख्या नष्ट हो जानेपर गृहपतिका नाश समझना चाहिये। बीज और ओषधियोंसे विहीन होनेपर भूतोंसे भय होता है। अतः विचारवान् पुरुष प्रदक्षिण-क्रमसे अन्य स्तम्भोंकी स्थापना करे; क्योंकि प्रदक्षिणक्रमके बिना स्थापित किये गये स्तम्भ मनुष्योंके लिये भयदायक होते हैं॥ १४—२५½॥

रक्षां कुर्वीत यत्नेन स्तम्भोपद्रवनाशिनीम्॥ २६
तथा फलवतीं शाखां स्तम्भोपरि निवेशयेत्।
प्रागुदकप्रवणं कुर्याद् दिङ्मूढं तु न कारयेत्॥ २७
स्तम्भं वा भवनं वापि द्वारं वासगृहं तथा।
दिङ्मूढे* कुलनाशः स्यान्न च संवर्धयेद् गृहम्॥ २८
यदि संवर्धयेद् गेहं सर्वदिक्षु विवर्धयेत्।
पूर्वेण वर्धितं वास्तु कुर्याद् वैराणि सर्वदा॥ २९
दक्षिणे वर्धितं वास्तु मृत्यवे स्यान्न संशयः।
पश्चाद् विवृद्धं यद् वास्तु तदर्थक्षयकारकम्॥ ३०
वर्धापितं तथा सौम्ये बहुसन्तापकारकम्।
आग्नेये यत्र वृद्धिः स्यात् तदग्निभयदं भवेत्॥ ३१
वर्धितं राक्षसे कोणे शिशुक्षयकरं भवेत्।
वर्धापितं तु वायव्ये वातव्याधिप्रकोपकृत्॥ ३२
ईशान्यामन्नहानिः स्याद् वास्तौ संवर्धिते सदा।
ईशाने देवतागारं तथा शान्तिगृहं भवेत्॥ ३३
महानसं तथाग्नेये तत्पार्श्वे चोत्तरे जलम्।
गृहस्योपस्करं सर्वं नैर्ऋत्ये स्थापयेद् बुधः॥ ३४
बन्धस्थानं बहिः कुर्यात् स्नानमण्डपमेव च।
धनधान्यं च वायव्ये कर्मशालां ततो बहिः।
एवं वास्तुविशेषः स्याद् गृहभर्तुः शुभावहः॥ ३५

स्तम्भके उपद्रवोंका विनाश करनेवाली रक्षा-विधि भी यत्नपूर्वक सम्पन्न करनी चाहिये। इसके लिये स्तम्भके ऊपर फलोंसे युक्त वृक्षकी शाखा डाल देनी चाहिये। स्तम्भ उत्तर या पूर्वकी ओर ढालू होना चाहिये, अस्पष्ट दिशामें नहीं कराना चाहिये। इस बातका ध्यान भवन, स्तम्भ, निवासगृह तथा द्वार निर्माणके समय भी स्थापन रखना चाहिये; क्योंकि दिशाकी अस्पतासे कुलका नाश हो जाता है। घरके किसी अंशको पिण्डसे आगे नहीं बढ़ाना चाहिये। यदि बढ़ाना ही हो तो सभी दिशामें बढ़ावे। पूर्व दिशामें बढ़ाया गया वास्तु सर्वदा वैर पैदा करता है, दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ाया हुआ वास्तु मृत्युकारी होता है, इसमें संदेह नहीं है। जो वास्तु पश्चिमकी ओर बढ़ाया जाता है, वह धनक्षयकारी होता है तथा उत्तरकी ओर बढ़ाया हुआ दुःख एवं सन्तापकी वृद्धि करता है। जहाँ अग्निकोणमें वृद्धि होती है, वहाँ वह अग्निका भय देनेवाला नैर्ऋत्यकोण बढ़ानेपर शिशुओंका विनाशक, वायव्य कोणमें बढ़ानेपर वात-व्याधि-उत्पादक, ईशान कोणमें बढ़ानेपर अन्नके लिये हानिकारक होता है। गृहके ईशान कोणमें देवताका स्थान और शान्तिगृह, अग्निकोणमें रसोई घर और उसके बगलमें उत्तर दिशामें जलस्थान होना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष सभी घरेलू सामग्रियोंको नैर्ऋत्य कोणमें करे। पशुओं आदिके बाँधनेका स्थान और स्नानागार गृहके बाहर बनाये। वायव्य कोणमें अन्नादिका स्थान बनाये। इसी प्रकार कार्यशाला भी निवास-स्थानसे बाहर बनानी चाहिये। इस ढंगसे बना हुआ भवन गृहपतिके लिये मङ्गलकारी होता है॥ २६—३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यायां गृहनिर्णयो नाम षट्पञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुविद्याके प्रसङ्गमें गृहनिर्णय कथन नामक दो सौ छप्पनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५६॥



* वाल्मी० ३। ६०। ६, बृहत्संहिता ५३। ११५ के अनुसार जहाँ कोई निशान प्रतीत हो, वे भवनादि विमूढ कहे गये हैं।

दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय

गृहनिर्माण (वास्तुकार्य)-में ग्राह्य काष्ठ

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि दार्वाहरणमुत्तमम्।
धनिष्ठापञ्चकं मुक्त्वा त्विष्ट्यादिकमतः परम्॥ १

ततः सांवत्सरादिष्टे दिने यायाद् वनं बुधः।
प्रथमं बलिपूजां च कुर्याद् वृक्षस्य सर्वदा॥ २

पूर्वोत्तरेण पतितं गृहदारु प्रशस्यते।
अन्यथा न शुभं विन्द्याद् याम्योपरि निपातनम्॥ ३

क्षीरवृक्षोद्भवं दारु न गृहे विनिवेशयेत्।
कृताधिवासं विहगैरनिलानलपीडितम्॥ ४

गजावरुग्णं च तथा विद्युन्निर्घातपीडितम्।
अर्धशुष्कं तथा दारु भग्नशुष्कं तथैव च॥ ५

चैत्यदेवालयोत्पन्नं नदीसङ्गमजं तथा।
श्मशानकूपनिलयं तडागादिसमुद्भवम्॥ ६

वर्जयेत् सर्वथा दारु यदीच्छेद् विपुलां श्रियम्।
तथा कण्टकिनो वृक्षान् नीपनिम्बविभीतकान्॥ ७

श्लेष्मातकानाम्रतरून्वर्जयेद्गृहकर्मणि।
आसनाशोकमधुकसर्जशालाः शुभावहाः॥ ८

चन्दनं पनसं धन्यं सुरदारु हरिद्रवः।
द्वाभ्यामेकेन वा कुर्यात् त्रिभिर्वा भवनं शुभम्॥ ९

बहुभिः कारितं यस्मादनेकभयदं भवेत्।
एकैकशिंशपा धन्या श्रीपर्णी तिन्दुकी तथा॥ १०

एता नान्यसमायुक्ताः कदाचिच्छुभकारकाः।
स्यन्दनः पनसस्तद्वत् सरलार्जुनपद्मकाः॥ ११

एते नान्यसमायुक्ता वास्तुकार्यफलप्रदाः।
तरुच्छेदे महापीते गोधा विन्द्याद्विचक्षणः॥ १२

माञ्जिष्ठवर्णे भेकः स्यान्नीले सर्पादि निर्दिशेत्।
अरुणे सरटं विद्यान्मुक्ताभे शुकमादिशेत्॥ १३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं उत्तम काष्ठ लानेकी विधि बतलाता हूँ। धनिष्ठा आदि पाँच नक्षत्रों और इसके बाद भद्रा आदिको छोड़कर ज्योतिषीद्वारा बताये गये शुभ दिनमें बुद्धिमान् पुरुष काष्ठ लानेके लिये वनको प्रस्थान करे। सर्वप्रथम ग्रहण किये जानेवाले वृक्षकी बलिपूजा करनी चाहिये। पूर्व तथा उत्तर दिशाकी ओर गिरनेवाले वृक्षका काष्ठ गृहनिर्माणमें मङ्गलकारी होता है तथा दक्षिणकी ओर गिरा हुआ अशुभ होता है। दूधवाले वृक्षोंका काष्ठ घरमें नहीं लगाना चाहिये। जो वृक्ष पक्षियोंद्वारा अधिष्ठित तथा वायु और अग्निसे पीड़ित हो, हाथीसे तोड़ा हुआ हो, बिजली गिरनेसे जल गया हो, जिसका आधा भाग सूख गया हो या कुछ अंश टूट-फूट गया हो, अश्वत्थवृक्ष समाधि या देवमन्दिरसे निकले वृक्ष, नदीके संगमपर स्थित वृक्षोंको अथवा जो श्मशानभूमि तालाब आदि जलाशयोंपर उगा हुआ हो, ऐसे वृक्षोंको विपुल लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाले व्यक्तिको छोड़ देना चाहिये। इसी प्रकार काँटेदार वृक्ष, कदम्ब, निम्ब, बहेड़ा, ढेरा और आमके वृक्षोंको भी गृहकर्ममें नहीं लेना चाहिये। असना, अशोक, महुआ, सर्ज और साखूके काष्ठ मङ्गलप्रद हैं। चन्दन, कटहल, देवदारु तथा दारुब्दीके काष्ठ धनप्रद कहे गये हैं। एक, दो या तीन प्रकारके काष्ठोंद्वारा बनाया गया भवन शुभ होता है; क्योंकि अनेक प्रकारके काष्ठोंसे बनाया हुआ भवन अनेकों भय देनेवाला होता है। धनदायक शीशम, श्रीपर्णी तथा तिन्दुकीके काष्ठको अकेले ही लगाना चाहिये; क्योंकि ये अन्य किसी काष्ठके साथ सम्मिलित कर देनेसे कभी मङ्गलकारी नहीं होते। इसी प्रकार धव, कटहल, चीड़, अर्जुन और पद्म वृक्ष भी अन्य काष्ठोंके साथ सम्मिलित होनेपर गृहकार्यके लिये शुभदायक नहीं होते॥ १—११½॥

वृक्ष काटते समय विचक्षण पुरुषको यदि पीले वर्णका चिह्न मिले तो भावी गृहमें गोहका, मंजीठ रंगका मिलनेपर मेढकका, नीला रंग मिलनेपर सर्पका, अरुण

कपिले मूषकान् विद्यात्खड्गभे जलमादिशेत्।
एवंविधं सगर्भं तु वर्जयेद् वास्तुकर्मणि॥ १४

पूर्वच्छिन्नं तु गृह्णीयान्निमित्तशकुनैः शुभैः।
व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये अष्टाभिर्वै हृते तथा॥ १५

यच्छेषमायतं विन्द्यादष्टभेदं वदामि वः।
ध्वजो धूमश्च सिंहश्च खरः श्वावृष एव च॥ १६

हस्ती ध्वाङ्क्षश्च पूर्वाद्याः करशेषा भवन्त्यमी।
ध्वजः सर्वमुखो धन्यः प्रत्यग्द्वारो विशेषतः॥ १७

उदङ्मुखो भवेत् सिंहः प्राङ्मुखो वृषभो भवेत्।
दक्षिणाभिमुखो हस्ती सप्तभिः समुदाहृतः॥ १८

एकेन ध्वज उद्दिष्टस्त्रिभिः सिंहः प्रकीर्त्तितः।
पञ्चभिर्वृषभः प्रोक्तो विकोणस्थांश्च वर्जयेत्॥ १९

तमेवाष्टगुणं कृत्वा करराशिं विचक्षणः।
सप्तविंशाहृते भागे ऋक्षं विद्याद् विचक्षणः॥ २०

अष्टभिर्भाजिते ऋक्षे यः शेषः स व्ययो मतः।
व्ययाधिकं न कुर्वीत यतो दोषकरं भवेत्।
आयाधिके भवेच्छान्तिरित्याह भगवान् हरिः॥ २१

कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं
दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम्।
दत्त्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो
माङ्गल्यशान्तिनिलयाय गृहं विशेत्तु॥ २२

गृह्योक्तहोमविधिना बलिकर्म कुर्यात्
प्रासादवास्तुशमने च विधिर्य उक्तः।
संतर्पयेद् विजवरानथ भक्ष्यभोज्यैः
शुक्लाम्बरः स्वभवनं प्रविशेत् सधूपम्॥ २३

रंगसे गिरगिटका, मोतीके समान श्वेत चिह्नसे शुकका, कपिल वर्णसे चूहेका और तलवारकी भाँति चिह्न मिलनेपर जलका भय जानना चाहिये। इस प्रकारके गर्भवाले वृक्षको वास्तुकर्ममें त्याग देना चाहिये। पहलेसे कटे हुए वृक्षको शुभदायी निमित्त शकुनोंके साथ ग्रहण किया जा सकता है। घरके व्याससे लम्बाईके मानमें गुणाकर आठका भाग दे, जो शेष बचे उसे आयत जानना चाहिये। अब मैं आपलोगोंको आठका भेद बतला रहा हूँ। उन करशेषोंकी क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, खर, श्वान, वृषभ, हस्ती और काक संज्ञा होती है। चारों ओर मुखवाला तथा विशेषतया पश्चिम द्वारवाला ध्वज शुभकारी होता है। सिंहका उत्तर, वृषभका पूर्व, हाथीका दक्षिण मुख दुःखदायी होता है। सात विभागोंद्वारा इसे कहा जा चुका है। एक हाथसे ध्वजको, तीन हाथसे सिंहको और पाँच हाथसे वृषभको तो कहा गया। इनके अतिरिक्त जो त्रिकोणस्थ हों उन्हें व्यवहारमें नहीं लाना चाहिये। विचक्षण पुरुष उक्त करराशिके अंकको आठसे गुणाकर सत्ताईसका भाग देनेपर शेषको नक्षत्र माने। पुनः उस नक्षत्रमें आठका भाग देनेसे जो शेष बचता है, वह व्यय माना गया है। जिसमें व्यय अधिक निकले, उसे नहीं करना चाहिये; क्योंकि वह दोषकारक होता है। आय अधिक होनेपर शान्ति होती है, ऐसा भगवान् हरिने कहा है। गृह पूर्ण हो जानेपर उसमें माङ्गलिक शान्तिकी स्थितिके लिये श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको आगे कर दही, अक्षत, आमके पल्लव, पुष्प तथा फलादिसे सुशोभित जलपूर्ण कलशको देकर तथा अन्य ब्राह्मणोंको सुवर्ण और वस्त्र देकर उस भवनमें गृहपतिको प्रवेश करना चाहिये। उस समय गृह्यसूत्रोंमें प्रासाद एवं वास्तुकी शान्तिके लिये जो विधि कही गयी है, उसके अनुसार हवन एवं बलि-कर्म करे। फिर भक्ष्य एवं भोज्य पदार्थोंद्वारा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट करे। तत्पश्चात् श्वेत वस्त्र धारणकर धूपादि द्रव्योंके साथ भवनमें प्रवेश करना चाहिये॥ १२—२३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुविद्यानुकीर्तनं नाम सप्तपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुविद्यानुकीर्तन नामक दो सौ सत्तावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५७॥



दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय

देव-प्रतिमाका प्रमाण-निरूपण

ऋषय ऊचुः

क्रियायोगः कथं सिध्येद् गृहस्थादिषु सर्वदा।
ज्ञानयोगसहस्राद्धि कर्मयोगो विशिष्यते॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! गृहस्थादि आश्रमोंमें सभी युगोंमें क्रियायोगकी* सिद्धि किस प्रकार सम्भव है, क्योंकि क्रिया (भक्ति)-योगको हजारों ज्ञान-योगकी अपेक्षा विशिष्ट माना गया है॥ १॥

सूत उवाच

क्रियायोगं प्रवक्ष्यामि देवतार्चानुकीर्तनम्।
भुक्तिमुक्तिप्रदं यस्मान्नान्यल्लोकेषु विद्यते॥ २
प्रतिष्ठायां सुराणां तु देवतार्चानुकीर्तनम्।
देवयज्ञोत्सवं चापि बन्धनाद् येन मुच्यते॥ ३
विष्णोस्तावत् प्रवक्ष्यामि यादृग्रूपं प्रशस्यते।
शङ्खचक्रधरं शान्तं पद्महस्तं गदाधरम्॥ ४
छत्राकारं शिरस्तस्य कम्बुग्रीवं शुभेक्षणम्।
तुङ्गनासं शुक्तिकर्णं प्रशान्तोरुभुजक्रमम्॥ ५
क्वचिदष्टभुजं विद्याच्चतुर्भुजमथापरम्।
द्विभुजश्चापि कर्तव्यो भवनेषु पुरोधसा॥ ६
देवस्याष्टभुजस्यास्य यथास्थानं निबोधत।
खड्गो गदा शरः पद्मं देयं दक्षिणतो हरेः॥ ७
धनुश्च खेटकं चैव शङ्खचक्रे च वामतः।
चतुर्भुजस्य वक्ष्यामि यथैवायुधसंस्थितिम्॥ ८
दक्षिणेन गदा पद्मं वासुदेवस्य कारयेत्।
वामतः शङ्खचक्रे च कर्तव्ये भूतिमिच्छता॥ ९
कृष्णावतारे तु गदा वामहस्ते प्रशस्यते।
यथेच्छया शङ्खचक्रे चोपरिष्टात् प्रकल्पयेत्॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं देवार्चनकथनरूप क्रियायोगका वर्णन कर रहा हूँ। यह भोग और मोक्ष—दोनोंको देनेवाला है तथा भूलोकके अतिरिक्त इसकी अन्य लोकोंमें सत्ता नहीं है। इन देवताओंकी प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्ग-क्रममें प्रतिमा-निर्माण और उनके अङ्गभूत यज्ञकी विधि भी निर्दिष्ट है, जिसके अनुष्ठानसे प्राणी बन्धनसे मुक्त हो जाता है। अब भगवान् विष्णुकी जैसी प्रतिमा श्रेष्ठ मानी जाती है उसका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी प्रतिमाका रूप शान्त हो, हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा तथा पद्म धारण किये हुए हो, उसका सिर छत्रके समान गोल, गला शङ्खके समान, आँखें सुन्दर, नासिका कुछ ऊँची, कान सीपी-सदृश, भुजाएँ विशाल और ऊरु प्रशान्त—चढ़ाव-उतारवाले होने चाहिये। विष्णु भगवान्‌की प्रतिमा कहीं तो आठ भुजाओंवाली होती है और कहीं चार भुजाओंवाली; किंतु गृहस्थको अपने भवनमें दो भुजाओंकी (विष्णु-) प्रतिमा पुरोहितद्वारा स्थापित करानी चाहिये। अष्टभुज मूर्तिमें आयुधोंके यथास्थान क्रमको सुनिये—भगवान् श्रीहरिके दाहिनी ओरके चार हाथोंमें क्रमशः (नीचेसे ऊपरकी ओर) खड्ग, गदा, बाण और कमल तथा बायें हाथमें क्रमशः (नीचेसे ऊपर) धनुष, ढाल, शङ्ख और चक्र स्थापित करना चाहिये। अब चतुर्भुजमूर्तिके हाथोंमें आयुधकी स्थिति बतला रहा हूँ। समृद्धिकी इच्छा रखनेवालेको भगवान् वासुदेवकी प्रतिमामें दाहिनी ओरके दोनों हाथोंमें क्रमशः नीचेसे ऊपर गदा और पद्म तथा बायीं ओर क्रमशः नीचेसे ऊपर शङ्ख और चक्र रखना चाहिये। कृष्णावतारकी प्रतिमामें बायें हाथमें गदा ठीक मानी गयी है। दाहिने हाथमें स्वेच्छानुसार शङ्ख और चक्रको ऊपर-नीचे रखना चाहिये॥ २—१०॥

* यह पाद्मीय क्रियायोग-खण्डका सारांश तथा भाग ११। २७ के क्रियायोगका कुछ विस्तृत रूप है। यहाँ क्रियायोगका तात्पर्य देवपरक भगवद्भक्ति एवं देवार्चनसे है। मन्दिर, प्रतिमा-निर्माण, प्रतिष्ठादिका यह प्रकरण भारतीय धर्म-संस्कृति एवं कला-कौशलका प्राण है। इसकी विस्तृत जानकारीके लिये 'विष्णुधर्मोत्तर' 'शिल्परत्न' 'वास्तुराजवल्लभ'—'प्रतिमा-प्रसादमण्डन' 'काश्यपशिल्प' 'अपराजित-पृच्छा' 'समराङ्गणसूत्रधार' 'प्रतिष्ठामहोदधि' आदि सहायक ग्रन्थ भी अनुसंधेय हैं।

अधस्तात् पृथिवी तस्य कर्तव्या पादमध्यतः।
दक्षिणे प्रणतं तद्वद् गरुत्मन्तं निवेशयेत्॥ ११

वामतस्तु भवेल्लक्ष्मीः पद्महस्ता शुभानना।
गरुत्मानग्रतो वापि संस्थाप्यो भूतिमिच्छता॥ १२

श्रीश्च पुष्टिश्च कर्तव्ये पार्श्वयोः पद्मसंयुते।
तोरणं चोपरिष्टात् तु विद्याधरसमन्वितम्॥ १३

देवदुन्दुभिसंयुक्तं गन्धर्वमिथुनान्वितम्।
पत्रवल्लीसमोपेतं सिंहव्याघ्रसमन्वितम्॥ १४

तथा कल्पलतोपेतं स्तुवद्भिरमरेश्वरैः।
एवंविधो भवेद्विष्णोस्त्रिभागेनास्य पीठिका॥ १५

नवतालप्रमाणास्तु देवदानवकिंनराः।
अतः परं प्रवक्ष्यामि मानोन्मानं विशेषतः॥ १६

जालान्तरप्रविष्टानां भानूनां यद्रजः स्फुटम्।
त्रसरेणुः स विज्ञेयो बालाग्रं तैरथाष्टभिः॥ १७

तदष्टकेन लिख्या तु यूका लिख्याष्टकैर्मता।
यवो यूकाष्टकं तद्वदष्टभिस्तैस्तदङ्गुलम्॥ १८

स्वकीयाङ्गुलिमानेन मुखं स्याद् द्वादशाङ्गुलम्।
मुखमानेन कर्तव्या सर्वावयवकल्पना॥ १९

सौवर्णी राजती वापि ताम्री रत्नमयी तथा।
शैली दारुमयी चापि लोहसीसमयी तथा॥ २०

रीतिकाधातुयुक्ता वा ताम्रकांस्यमयी तथा।
शुभदारुमयी वापि देवतार्चा प्रशस्यते॥ २१

अङ्गुष्ठपर्वादारभ्य वितस्तिर्यावदेव तु।
गृहेषु प्रतिमा कार्या नाधिका शस्यते बुधैः॥ २२

विष्णु भगवान्के दोनों चरणोंके मध्यमें नीचेकी ओर पृथ्वीकी मूर्ति और दाहिनी ओर प्रणाम करते हुए गरुड़की मूर्ति रखनी चाहिये। बायीं ओर हाथमें कमल लिये हुए सुन्दर मुखवाली लक्ष्मीकी स्थापना करनी चाहिये। कल्याणकामी पुरुष गरुड़को आगे भी स्थापित कर सकता है। प्रतिमाके दोनों ओर हाथमें कमल लिये श्री और पुष्टिकी मूर्ति भी बनानी चाहिये। प्रतिमाके ऊपर विद्याधरोंसे चित्रित गोलाकार तोरणका निर्माण करना चाहिये। देवताओंके नगाड़े बजाते हुए गन्धर्व-दम्पत्तिको भी वहाँ चित्रित करना चाहिये। साथमें वहीं यह लता और पत्तोंसे युक्त कल्पलतासे समन्वित हो और व्याघ्र-सिंहोंकी भी प्रतिमासे सम्पन्न। स्तुति करते हुए बड़े-बड़े देवगण सामने खड़े हों। इस प्रकार विष्णुकी प्रतिमा हो तथा प्रतिमाकी पीठिकाका विस्तार प्रतिमामानके तृतीयांशसे निर्मित हो। देवता, दानव तथा किन्नरोंकी प्रतिमा नौ ताल[1] परिमाणकी होनी चाहिये। अब मैं कौन-सी प्रतिमा कितनी ऊँची, नीची, मोटी और लम्बी हो, यह बतलानेके लिये मापविवरण बतला रहा हूँ। जालीके भीतरसे सूर्यकी किरणोंके प्रविष्ट होनेपर जो उड़ता धूलिकण स्पष्ट दिखायी पड़ता है, उसे 'त्रसरेणु' कहते हैं। इन आठ त्रसरेणुओंके बराबर एक बालाग्र होता है। उससे आठगुने बड़े आकारके पदार्थकी लिख्या और आठ लिख्याकी एक यूका होती है। आठ यूकाका एक यव और आठ यवोंके मापका एक अंगुल होता है। अपनी अँगुलीके परिमाणसे बारह अंगुलका मुख होता है और मुखके परिमाणानुसार ही देवताके सभी अवयवोंकी कल्पना करनी चाहिये॥ ११—१९॥

देव-प्रतिमा सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, रत्न, पत्थर, देवदारु, लोहा-सीसा, पीतल, ताँबा और काँसमिश्रित अथवा शुभ काष्ठोंकी बनी हुई प्रशस्त मानी गयी है।[2] गृहस्थोंके घरोंमें अँगूठेके एक पर्वसे लेकर एक बीते प्रमाणमात्र ही प्रतिमा स्थापित करनी चाहिये; क्योंकि विद्वानोंने इससे बड़ीको गृहस्थके लिये प्रशस्त नहीं माना है।

१. अंगूठेसे मध्यमा अंगुलीतक फैले करतलको ताल कहते हैं।

२. भागवतीय क्रियायोगोंमें भी कहा है—
'शैली दारुमयी लौही लेप्यालेख्या च सैकती। मनोमयी मणिमयी प्रतिमाष्टविधा स्मृता॥ (११। २७। १२)

आषोडशा तु प्रासादे कर्तव्या नाधिका ततः।
मध्योत्तमकनिष्ठा तु कार्या वित्तानुसारतः॥ २३

द्वारोच्छ्रायस्य यन्मानमष्टधा तत् तु कारयेत्।
भागमेकं ततस्त्यक्त्वा परिशिष्टं तु यद् भवेत्॥ २४

भागद्वयेन प्रतिमा त्रिभागीकृत्य तत्पुनः।
पीठिका भागतः कार्या नातिनीचा न चोच्छ्रिता॥ २५

प्रतिमामुखमानेन नव भागान् प्रकल्पयेत्।
चतुरङ्गुला भवेद् ग्रीवा भागेन हृदयं पुनः॥ २६

नाभिस्तस्मादधः कार्या भागेनैकेन शोभना।
निम्नत्वे विस्तरत्वे च अङ्गुलं परिकीर्तितम्॥ २७

नाभेरधस्तथा मेढ्रं भागेनैकेन कल्पयेत्।
द्विभागेनायतावूरू जानुनी चतुरङ्गुले॥ २८

जङ्घे द्विभागे विख्याते पादौ च चतुरङ्गुलौ।
चतुर्दशाङ्गुलस्तद्वन्मौलिरस्य प्रकीर्त्तितः॥ २९

ऊर्ध्वमानमिदं प्रोक्तं पृथुत्वं च निबोधत।
सर्वावयवमानेषु विस्तारं शृणुत द्विजाः॥ ३०

चतुरङ्गुलं ललाटं स्यादूर्ध्वं नासा तथैव च।
द्व्यङ्गुलस्तु हनुर्ज्ञेय ओष्ठौ द्व्यङ्गुलसम्मितौ॥ ३१

अष्टाङ्गुलं ललाटं च तावन्मात्रे भ्रुवौ मते।
अर्धाङ्गुला भ्रुवोर्लेखा मध्ये धनुरिवानता॥ ३२

उन्नताग्रा भवेत् पार्श्वे श्लक्ष्णतीक्ष्णा प्रशस्यते।
अक्षिणी द्व्यङ्गुलायामे तदर्धं चैव विस्तरे॥ ३३

उन्नतोदरमध्ये तु रक्तान्ते शुभलक्षणे।
तारकार्धविभागेन दृष्टिः स्यात् पञ्चभागिकी॥ ३४

द्व्यङ्गुलं तु भ्रुवोर्मध्ये नासामूलमथाङ्गुलम्।
नासाग्रविस्तरं तद्वत् पुटद्वयमथानतम्॥ ३५

नासापुटबिलं तद्वदर्धाङ्गुलमुदाहृतम्।
कपोले द्व्यङ्गुले तद्वत् कर्णमूलाद् विनिर्गते॥ ३६

किंतु देवमन्दिरोंमें सोलह बीतेतककी प्रतिमा प्रतिष्ठित की जा सकती है, पर उससे बड़ी वहाँ भी नहीं। इन प्रतिमाओंको अपनी आर्थिक स्थितिके अनुसार उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ कोटिकी बनानी चाहिये। मन्दिरके प्रवेशद्वारकी जो ऊँचाई हो उसे आठ भागोंमें विभक्त कर दे। उसमें एक भाग छोड़कर शेष दो भागोंसे प्रतिमा बनवाये। फिर उन दो भागोंकी संख्याको तीन भागोंमें विभक्त कर दे। उसके एक भागके बराबर पीठिका बनाये। वह न बहुत ऊँची हो, न बहुत नीची। फिर प्रतिमाके मुखमानको नौ भागोंमें विभक्त करे। उसमें चार अङ्गुलमें ग्रीवा तथा एक भागके द्वारा हृदय होना चाहिये। उसके नीचेके एक भागमें सुन्दर नाभि बनानी चाहिये। वह गहराई और विस्तारमें एक अंगुलकी कही गयी है। नाभिके नीचे एक भागमें लिंग, दो भागोंमें विस्तृत ऊरु, चार अंगुलमें घुटने, दो भागसे जंघे और चार अंगुलके पैर हों। उसी प्रकार मूर्तिका सिर चौदह अंगुलका बनाना चाहिये। यह तो मूर्तिकी ऊँचाई बतायी गयी, अब उसकी मोटाई सुनिये। ब्राह्मणगण! अब क्रमशः सभी अवयवोंका विस्तार सुनिये॥ २०—३०॥

प्रतिमाके ललाटकी मोटाई चार अंगुल, नासिकाकी चार अंगुल, दाढ़ीकी दो अंगुल और ओठकी भी दो अंगुल जाननी चाहिये। यदि ललाटका विस्तार आठ अंगुल हो तो उतनेमें ही दोनों भौंहोंको भी बनानी चाहिये। भौंहोंकी रेखा आधे अंगुलकी हो। वह बीचमें धनुषाकार हो। दोनों छोरोंपर उसके अग्रभाग उठे हुए हों, बनावट चिकनी तथा सुन्दर होनी चाहिये। आँखोंकी लम्बाई दो अंगुल, चौड़ाई एक अंगुल, उनके मध्य भागमें ऊँची रक्ताभ एवं शुभ लक्षणोंसे युक्त पुतलियाँ होनी चाहिये। तारकाके आधे भागसे पाँचगुनी दृष्टि बनानी चाहिये। दोनों भौंहोंके मध्यमें दो अंगुलका अन्तर रखना चाहिये, नासिकाका मूलभाग एक अंगुलमें रहे। इसी प्रकार नीचेकी ओर झुकी हुई नासिकाके अग्रभाग एवं दोनों पुटोंको बनाना चाहिये। नासिकाके पुटोंके छिद्र आधे अंगुलके बताये गये हैं। कपोल दो अंगुलके हों जो कानोंके मूल भागतक विस्तृत हों।

हन्वग्रमङ्गुलं तद्वद् विस्तारो द्व्यङ्गुलो भवेत्।
अर्धाङ्गुला भ्रुवो राजी प्रणालसदृशी समा॥ ३७
अर्धाङ्गुलसमस्तद्वदुत्तरोष्ठस्तु विस्तरे।
निष्पावसदृशं तद्वन्नासापुटदलं भवेत्॥ ३८
सृक्किणी ज्योतिस्तुल्ये तु कर्णमूलात् षडङ्गुले।
कर्णौ तु भ्रूसमौ ज्ञेयौ ऊर्ध्वं तु चतुरङ्गुलौ॥ ३९
द्व्यङ्गुलौ कर्णपार्श्वौ तु मात्रामेकां तु विस्तृतौ।
कर्णयोरुपरिष्टाच्च मस्तकं द्वादशाङ्गुलम्॥ ४०

ठुड्डीका अग्रभाग एक अंगुलमें तथा विस्तार दो अंगुलमें होना चाहिये। आधे अंगुलमें भौंहोंकी रेखा होनी चाहिये, जोप्रणालीके समान हो। नीचे तथा ऊपरके ओठ आधे-आधे अंगुलके हों। उसी प्रकार नासिकाके दोनों पुट निष्पाव (सेमके बीज)-के तुल्य मापके बनाये जायँ। ओठके बगलमें मुखका कोना और नेत्र ज्योति दोनों समान आकारका हों और कानके मूलसे छः अंगुल दूरपर बनावे। दोनों कानोंकी बनावट भौंहोंके समान हो और उनकी ऊँचाई चार अंगुलकी हो। कानोंके पार्श्वभाग दो अंगुलके हों और उनका विस्तार एक अंगुल मात्रका हो। दोनों कानोंके ऊपर मस्तकका विस्तार बारह अंगुलका होना चाहिये॥ ३१—४०॥

ललाटात् पृष्ठतोऽर्धेन प्रोक्तमष्टादशाङ्गुलम्।
षट्त्रिंशदङ्गुलश्चास्य परिणाहः शिरोगतः॥ ४१
सकेशनिचयो यस्य द्विचत्वारिंशदङ्गुलः।
केशान्ताद्धनुका तद्वदङ्गुलानि तु षोडश॥ ४२
ग्रीवामध्यपरीणाहश्चतुर्विंशतिकाङ्गुलः।
अष्टाङ्गुला भवेद् ग्रीवा पृथुत्वेन प्रशस्यते॥ ४३
स्तनग्रीवान्तरं प्रोक्तमेकतालं स्वयम्भुवा।
स्तनयोरन्तरं तद्वद् द्वादशाङ्गुलमिष्यते॥ ४४
स्तनयोर्मण्डलं तद्वद् द्व्यङ्गुलं परिकीर्तितम्।
चूचुकौ मण्डलस्यान्तर्यवमात्रावुभौ स्मृतौ॥ ४५
द्वितालं चापि विस्ताराद् वक्षःस्थलमुदाहृतम्।
कक्षे षडङ्गुले प्रोक्ते बाहुमूलस्तनान्तरे॥ ४६
चतुर्दशाङ्गुलौ पादावङ्गुष्ठौ तु त्रिरङ्गुलौ।
पञ्चाङ्गुलपरीणाहमङ्गुष्ठाग्रं तथोन्नतम्॥ ४७
अङ्गुष्ठकसमा तद्वदायामा स्यात् प्रदेशिनी।
तस्याः षोडशभागेन हीयते मध्यमाङ्गुली॥ ४८
अनामिकाष्टभागेन कनिष्ठा चापि हीयते।
पर्वत्रयेण चाङ्गुल्यौ गुल्फौ द्व्यङ्गुलकौ मतौ॥ ४९
पार्ष्णिद्व्यङ्गुलमात्रस्तु कलयोच्चैः प्रकीर्त्तितः।
द्विपर्वाङ्गुष्ठकः प्रोक्तः परीणाहश्च द्व्यङ्गुलः॥ ५०
प्रदेशिनीपरीणाहस्त्र्यङ्गुलः समुदाहृतः।
कनिष्ठिकाष्टभागेन हीयते क्रमशो द्विजाः॥ ५१

ललाटके पीछेका आधा भाग अठारह अंगुलका कहा गया है और इसके मस्तकतकका विस्तार छत्तीस अंगुल होता है। केश-समूहका विस्तार बयालीस अंगुलका होता है। केशोंके अन्तर्भागसे दाढ़ीतकका विस्तार सोलह अंगुलका होता है। दोनों कंधोंका विस्तार चौबीस अंगुलका हो। ग्रीवाकी मोटाई आठ अंगुलकी उत्तम मानी गयी है। ब्रह्माने स्तन और ग्रीवाका मध्यभाग एक तालके बराबर बताया है। दोनों स्तनोंमें बारह अंगुलका अन्तर माना जाता है। स्तनोंके मण्डल दो अंगुल कहे गये हैं। दोनों चूचुक उस मण्डलके भीतर यवके बराबर बताये जाते हैं। वक्षःस्थलकी चौड़ाई दो ताल कही गयी है। दोनों कक्ष बाहु (भुजा) और स्तनके मध्यमें छः अंगुलके होने चाहिये। दोनों पैर चौदह अंगुल तथा उनके अँगूठे तीन अँगुल हों। अँगूठेका अग्रभाग उन्नत होना चाहिये और उसका विस्तार पाँच अंगुलका हो। उसी प्रकार अँगूठेके समान ही प्रदेशिनी अंगुलीको भी लम्बी बनाना चाहिये। उससे सोलहवें अंशसे अधिक मध्यमा अंगुली हो, अनामिका मध्यमा अंगुलीकी अपेक्षा आठवाँ भाग न्यून हो और अनामिकासे आठवें भागमें न्यून कनिष्ठिका हो। इन दोनों अंगुलियोंमें तीन पर्व बनाने चाहिये। पैरोंकी गाँठ दो अंगुलकी मानी गयी है। दोनों एड़ियाँ दो-दो अंगुलमें रहनी चाहिये, किंतु गाँठकी अपेक्षा इसमें एक कला अधिक रहे। अँगूठेमें दो पोर बनने चाहिये, उसका विस्तार दो अंगुलका हो। प्रदेशिनीका विस्तार तीन अंगुलका बताया गया है। द्विजगण! कनिष्ठिका क्रमशः आठवें भागसे कम रहे।

अङ्गुलेनोच्छ्रयः कार्यो ह्यङ्गुष्ठस्य विशेषतः।
तदर्धेन तु शेषाणामङ्गुलीनां तथोच्छ्रयः॥ ५२

जङ्घाग्रे परिणाहस्तु अङ्गुलानि चतुर्दश।
जङ्घामध्ये परीणाहस्तथैवाष्टादशाङ्गुलः॥ ५३

जानुमध्ये परीणाह एकविंशतिरङ्गुलः।
जानूच्छ्रयोऽङ्गुलः प्रोक्तो मण्डलं तु त्रिरङ्गुलम्॥ ५४

ऊरुमध्ये परीणाहो ह्यष्टाविंशतिकाङ्गुलः।
एकत्रिंशोपरिष्टाच्च वृषणौ तु त्रिरङ्गुलौ॥ ५५

द्व्यङ्गुलं च तथा मेढ्रं परीणाहः षडङ्गुलः।
मणिबन्धादधो विद्यात् केशरेखास्तथैव च॥ ५६

मणिकोशपरीणाहश्चतुरङ्गुल इष्यते।
विस्तरेण भवेत् तद्वत् कटिरष्टादशाङ्गुला॥ ५७

द्वाविंशति तथा स्त्रीणां स्तनौ च द्वादशाङ्गुलौ।
नाभिमध्यपरीणाहो द्विचत्वारिंशदङ्गुलः॥ ५८

पुरुषे पञ्चपञ्चाशत् कट्यां चैव तु वेष्टनम्।
कक्षयोरुपरिष्टात् तु स्कन्धौ प्रोक्तौ षडङ्गुलौ॥ ५९

अष्टाङ्गुलां तु विस्तारे ग्रीवां चैव विनिर्दिशेत्।
परीणाहे तथा ग्रीवां कला द्वादश निर्दिशेत्॥ ६०

आयामो भुजयोस्तद्वद् द्विचत्वारिंशदङ्गुलः।
कार्यं तु बाहुशिखरं प्रमाणे षोडशाङ्गुलम्॥ ६१

ऊर्ध्वं यद्बाहुपर्यन्तं विद्यादष्टादशाङ्गुलम्।
तथैकाङ्गुलहीनं तु द्वितीयं पर्व उच्यते॥ ६२

बाहुमध्ये परीणाहो भवेदष्टादशाङ्गुलः।
षोडशोक्तः प्रबाहुस्तु षट्कलोऽग्रकरो मतः॥ ६३

सप्ताङ्गुलं करतलं पञ्च मध्याङ्गुली मता।
अनामिका मध्यमायाः सप्तभागेन हीयते॥ ६४

तस्यास्तु पञ्चभागेन कनिष्ठा परिहीयते।
मध्यमायास्तु हीना वै पञ्चभागेन तर्जनी॥ ६५

अङ्गुष्ठस्तर्जनीमूलादधः प्रोक्तस्तु तत्समः।
अङ्गुष्ठपरिणाहस्तु विज्ञेयश्चतुरङ्गुलः॥ ६६

शेषाणामङ्गुलीनां तु भागो भागेन हीयते।
मध्यमापर्वमध्यं तु अङ्गुलद्वयमायतम्॥ ६७

विशेषतया अँगूठेकी मोटाई एक अंगुलकी हो। शेष अंगुलियोंकी मोटाई उसके आधे भागके तुल्य रखनी चाहिये॥ ४१—५२॥

जाँघके आगेके भाग चौदह अंगुल और मध्यभाग अठारह अंगुल रहे। घुटनेका मध्यभाग इक्कीस अंगुलका हो। घुटनेकी ऊँचाई एक अंगुल तथा मण्डल तीन अंगुल विस्तृत हो। ऊरुओंका मध्यभाग अट्ठाईस अंगुल हो। इसके एकतीस अंगुल ऊपर अण्डकोश तीन अंगुल और लिंग दो अंगुल हो तथा उसका विस्तार छः अंगुल हो। मणिबन्धसे नीचे केशोंकी रेखा रखनी चाहिये। मणिकोशका विस्तार चार अंगुलका हो। कटिप्रदेशका विस्तार अठारह अंगुल हो। स्त्रियोंकी मूर्तिमें कटिका विस्तार बाईस अंगुलका तथा स्तनोंका बारह अंगुल होना चाहिये। नाभिका मध्यभाग बयालीस अंगुलका होना चाहिये। पुरुषके कटिप्रदेश पचपन अंगुल तथा दोनों कक्षोंके ऊपर छः अंगुलके स्कन्धोंके बनानेकी विधि है। आठ अंगुलके विस्तारमें ग्रीवाका निर्माण कहा गया है और इसकी लम्बाई बारह कलाकी होनी चाहिये॥ ५३—६०॥

दोनों भुजाओंकी लम्बाई बयालीस अंगुल हो। बाहुके मूलभाग सोलह अंगुलके होने चाहिये। बाहुके ऊपरी अंशतक अठारह अंगुल होना चाहिये। दूसरा पर्व (पोर) इसकी अपेक्षा एक अंगुल कम कहा गया है। बाहुके मध्यभागका विस्तार अठारह अंगुल तथा नीचेका हाथ (करतलके पूर्वतक) सोलह अंगुलका कहा गया है। हाथके अग्रभागका मान छः कलाका माना गया है। हथेलीका विस्तार सात अंगुल हो और उसमें पाँच अंगुलियाँ बनी हों। अनामिका अंगुली मध्यमाकी अपेक्षा सप्तमांश कम रहती है। कनिष्ठा उससे भी पञ्चमांश न्यून तथा मध्यमाके पाँचवें भागसे न्यून तर्जनी होनी चाहिये। अँगूठा तर्जनीके उद्गमसे नीचा होना चाहिये, किंतु लम्बाईमें उतना ही होना चाहिये। अँगूठेका विस्तार चार अंगुलका जानना चाहिये। शेष अंगुलियोंके विस्तार क्रमशः एक-एक भागसे न्यून होते हैं। मध्यमा अंगुलीके पोरोंके

यवो यवेन सर्वासां तस्यास्तस्याः प्रहीयते।
अङ्गुष्ठपर्वमध्यं तु तर्जन्याः सदृशं भवेत्॥ ६८
यवद्वयाधिकं तद्वदग्रपर्व उदाहृतम्।
पर्वार्धे तु नखान् विद्यादङ्गुलीषु समन्ततः॥ ६९
स्निग्धं श्लक्ष्णं प्रकुर्वीत ईषद्रक्तं तथाग्रतः।
निम्नपृष्ठं भवेन्मध्ये पार्श्वतः कलयोच्छ्रितम्॥ ७०
तथैव केशवल्लीयं स्कन्धोपरि दशाङ्गुला।
स्त्रियः कार्यास्तु तन्वङ्ग्यः स्तनोरुजघनाधिकाः॥ ७१
चतुर्दशाङ्गुलायाममुदरं तासु निर्दिशेत्।
नानाभरणसम्पन्नाः किञ्चिच्छ्लक्ष्णभुजास्ततः॥ ७२
किञ्चिद् दीर्घं भवेद् वक्त्रमलकावलिरुत्तमा।
नासा ग्रीवा ललाटं च सार्धमात्रं त्रिरङ्गुलम्॥ ७३
अध्यर्धाङ्गुलविस्तारः शस्यतेऽधरपल्लवः।
अधिकं नेत्रयुग्मं तु चतुर्भागेन निर्दिशेत्।
ग्रीवाबलिश्च कर्तव्या किञ्चिदर्धाङ्गुलोच्छ्रयः॥ ७४
एवं नारीषु सर्वासु देवानां प्रतिमासु च।
नवतालमिदं प्रोक्तं लक्षणं पापनाशनम्॥ ७५

मध्यभागमें दो अंगुलका अन्तर रहना चाहिये। इसी प्रकार अन्य अंगुलियोंके पोरोंमें एक-एक यवकी कमी होती जाती है। अंगूठेके पोरोंका मध्यभाग तर्जनीके समान ही रहना चाहिये। अगला पोर दो यवसे अधिक कहा गया है। अंगुलियोंके पर्वार्धमें नखोंको चिकना, सुन्दर तथा आगेकी ओर कुछ लालिमायुक्त बनाना चाहिये। मध्यभागमें पीछेकी ओर कुछ नीचा तथा बगलमें अंशमात्र ऊँचा बनावे। उसी प्रकार कंधोंके ऊपर दस अंगुलमें केशोंकी बल्लीका निर्माण करना चाहिये। स्त्री-प्रतिमाओंको कुछ पतली तथा उनके स्तन, ऊरु एवं जाँघोंको स्थूल बनाना चाहिये। उनके उदरप्रदेशकी लम्बाई चौदह अंगुल तथा वे अनेक आभूषणोंसे विभूषित हों और उनकी भुजाओंको कुछ मृदु एवं मनोहर आकृतियुक्त बनाना चाहिये। मुखाकृति अपेक्षाकृत लम्बी हो। अलकावलि उत्तम ढंगसे रचित हो। नासिका, ग्रीवा और ललाट साढ़े तीन अंगुल होने चाहिये। अधर-पल्लवोंका विस्तार आधे अंगुलका प्रशस्त माना गया है। दोनों नेत्र अधर-पल्लवोंसे चार गुने अधिक होने चाहिये। ग्रीवाकी वलि आधे अंगुलकी ऊँची बनानी चाहिये। इस प्रकार सभी देवताओंकी प्रतिमाओं एवं स्त्री-प्रतिमाओंके निर्माणमें नौ तालका परिमाण बतलाया गया है, जो समस्त पापोंको नष्ट करनेवाला कहा गया है॥ ६९—७५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवार्चानुकीर्तने प्रमाणानुकीर्तनं नामाष्टपञ्चाशदधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५८॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवपूजा-प्रसंगमें प्रतिमा-प्रमाण-कीर्तन नामक दो सौ अट्ठावनवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५८॥

दो सौ उनसठवाँ अध्याय

प्रतिमाओंके लक्षण, मान, आकार आदिका कथन

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि देवाकारान् विशेषतः।
दशतालः स्मृतो रामो बलिर्वैरोचनिस्तथा॥ १
वाराहो नारसिंहश्च सप्ततालस्तु वामनः।
मत्स्यकूर्मौ च निर्दिष्टौ यथाशोभं स्वयम्भुवा॥ २
अतः परं प्रवक्ष्यामि रुद्राद्याकारमुत्तमम्।
स पीनोरुभुजस्कन्धस्तप्तकाञ्चनसप्रभः॥ ३

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद मैं देवताओंकी मूर्तियोंके आकारके विषयमें विशेषरूपसे बतला रहा हूँ। इस विषयमें ब्रह्माने बताया है कि राम[1], विरोचनके पुत्र बलि, वाराह और नृसिंहकी मूर्तियोंकी ऊँचाई दस ताल[2] होनी चाहिये। वामनकी प्रतिमा सात तालकी हो तथा मत्स्य और कूर्मकी प्रतिमाएँ जितनेमें सुन्दर दीख सकें, उसी परिमाणकी बनानी चाहिये। अब मैं शिव आदिकी मूर्तियोंके आकारका वर्णन कर रहा हूँ।

१. राम शब्दसे यहाँ दशरथनन्दन राम, परशुराम तथा बलराम तीनों ही ग्राह्य हैं।
२. दस तालका तात्पर्य प्रायः पाँच हाथ या साढ़े सात फीटकी ऊँचाईसे है।

शुक्लोऽर्करश्मिसंघातश्चन्द्राङ्कितजटो विभुः।
जटामुकुटधारी च द्व्यष्टवर्षाकृतिश्च सः॥ ४

बाहू वारणहस्ताभौ वृत्तजङ्घोरुमण्डलः।
ऊर्ध्वकेशश्च कर्तव्यो दीर्घायतविलोचनः॥ ५

व्याघ्रचर्मपरीधानः कटिसूत्रत्रयान्वितः।
हारकेयूरसम्पन्नो भुजङ्गाभरणस्तथा॥ ६

बाहवश्चापि कर्तव्या नानाभरणभूषिताः।
पीनोरुगण्डफलकः कुण्डलाभ्यामलङ्कृतः॥ ७

आजानुलम्बबाहुश्च सौम्यमूर्तिः सुशोभनः।
खेटकं वामहस्ते तु खड्गं चैव तु दक्षिणे॥ ८

शक्तिं दण्डं त्रिशूलं च दक्षिणेषु निवेशयेत्।
कपालं वामपार्श्वे तु नागं खट्वाङ्गमेव च॥ ९

एकश्च वरदो हस्तस्तथाक्षवलयोऽपरः।
वैशाखस्थानकं कृत्वा नृत्याभिनयसंस्थितः॥ १०

नृत्यन् दशभुजः कार्यो गजचर्मधरस्तथा।
तथा त्रिपुरदाहे च बाहवः षोडशैव तु॥ ११

शङ्खं चक्रं गदा शार्ङ्गं घण्टा तत्राधिका भवेत्।
तथा धनुः पिनाकश्च शरो विष्णुमयस्तथा॥ १२

चतुर्भुजोऽष्टबाहुर्वा ज्ञानयोगेश्वरो मतः।
तीक्ष्णनासाग्रदशनः करालवदनो महान्॥ १३

भैरवः शस्यते लोके प्रत्यायतनसंस्थितः।
न मूलायतने कार्यो भैरवस्तु भयंकरः॥ १४

नारसिंहो वराहो वा तथान्येऽपि भयङ्कराः।
नाधिकाङ्गा न हीनाङ्गाः कर्तव्या देवताः क्वचित्॥ १५

स्वामिनं घातयेन्न्यूना करालवदना तथा।
अधिका शिल्पिनं हन्यात् कृशा चैवार्थनाशिनी॥ १६

रुद्रकी मूर्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति कान्तिमती तथा स्थूल ऊरुओं, भुजाओं और स्कन्धोंसे युक्त होनी चाहिये। उनका वर्ण सूर्यकी किरणोंके समान श्वेत और जटा चन्द्रमासे विभूषित हो। वे जटा-मुकुटधारी हों तथा उनकी अवस्था सोलह वर्षकी होनी चाहिये। उनकी दोनों भुजाएँ हाथीके शुण्डादण्डकी तरह तथा जंघा और ऊरुमण्डल गोलाकार हों। उनके केश ऊपरकी ओर उठे हुए तथा नेत्र दीर्घ एवं चौड़े बनाये जाने चाहिये। उनके वस्त्रके स्थानपर व्याघ्रचर्म तथा कमरमें तीन सूत्रोंकी मेखला बनायी जाय। उन्हें हार और केयूरसे सुशोभित तथा सर्पोंके आभूषणोंसे अलंकृत करना चाहिये। उनकी भुजाओंको विविध प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित तथा उभरे हुए कपोलोंको दो कुण्डलोंसे अलंकृत करना चाहिये। उनकी भुजाएँ घुटनेतक लम्बी, मूर्ति सौम्य, परम सुन्दर, बायें हाथमें ढाल, दाहिने हाथमें तलवार, दाहिनी ओर शक्ति, दण्ड और त्रिशूल तथा बायीं ओरके हाथोंमें कपाल, नाग और खट्वाङ्गको रखना चाहिये। एक हाथ वरदमुद्रासे सुशोभित और दूसरा हाथ रुद्राक्षकी माला धारण किये हुए हो॥ १—९½॥

दस भुजाओंवाली शिवकी नटराज-मूर्तिको विशाख* स्थानयुक्त बनायी जानी चाहिये। वह नाचती हुई तथा गजचर्म धारण किये हुए हो। त्रिपुरान्तक प्रतिमामें सोलह भुजाएँ बनायी जानी चाहिये। उस समय उनके हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा, सींग, घण्टा, पिनाक, धनुष, त्रिशूल और विष्णुमय शर—ये आठ वस्तुएँ अधिक रहेंगी। शिवकी ज्ञानयोगेश्वर प्रतिमामें चार या आठ भुजाएँ बनायी जाती हैं। भैरव-मूर्ति तीक्ष्ण दाँत तथा नुकीली नासिकासे युक्त होती है। उनका मुख महान् भयंकर होता है। ऐसी मूर्तिको प्रत्यायतन अर्थात् मुख्य मन्दिरके सामनेके मन्दिर या बरामदेमें स्थापित करना शुभदायक होता है। मुख्य मन्दिरमें भैरवकी स्थापना नहीं करनी चाहिये; क्योंकि ये भयकारी देवता हैं। इसी प्रकार नृसिंह, वराह तथा अन्य भयंकर देवताओंके लिये भी करना चाहिये। देव-प्रतिमाओंको कहीं भी हीन अङ्गोंवाली अथवा अधिक अङ्गोंवाली नहीं बनानी चाहिये। न्यून अङ्ग तथा भयानक मुखवाली प्रतिमा स्वामीका विनाश करती है, अधिक अङ्गोंवाली प्रतिमा शिल्पकारका हनन करती है और दुर्बल प्रतिमा धनका नाश करती है।

* विशाखस्थान नृत्य या युद्धमें खड़े होनेकी वह मुद्रा है, जिसमें दोनों पैरोंके बीचमें एक हाथ जगह खाली रहती है।

कृशोदरी तु दुर्भिक्षं निर्मांसा धननाशिनी।
वक्रनासा तु दुःखाय संक्षिप्ताङ्गी भयङ्करी॥ १७
चिपिटा दुःखशोकाय अनेत्रा नेत्रनाशिनी।
दुःखदा हीनवक्त्रा तु पाणिपादकृशा तथा॥ १८
हीनाङ्गा हीनजङ्घा च भ्रमोन्मादकरी नृणाम्।
शुष्कवक्त्रा तु राजानं कटिहीना च या भवेत्॥ १९
पाणिपादविहीना या जायते मारको महान्।
जङ्घाजानुविहीना च शत्रुकल्याणकारिणी॥ २०
पुत्रमित्रविनाशाय हीनवक्षःस्थला तु या।
सम्पूर्णावयवा या तु आयुर्लक्ष्मीप्रदा सदा॥ २१
एवं लक्षणमासाद्य कर्तव्यः परमेश्वरः।
स्तूयमानः सुरैः सर्वैः समन्ताद् दर्शयेद् भवम्॥ २२
शक्रेण नन्दिना चैव महाकालेन शंकरम्।
प्रणता लोकपालास्तु पार्श्वे तु गणनायकाः॥ २३
नृत्यद्भृङ्गिरिटिश्चैव भूतवेतालसंवृताः।
सर्वे हृष्टास्तु कर्तव्याः स्तुवन्तः परमेश्वरम्॥ २४
गन्धर्वविद्याधरकिन्नराणा-
मथाप्सरोगुह्यकनायकानाम्।
गणैरनेकैः शतशो महेन्द्रै-
र्मुनिप्रवीरैरपि नम्यमानम्॥ २५
धृताक्षसूत्रैः शतशः प्रवाल-
पुष्पोपहारप्रचयं ददद्भिः।
संस्तूयमानं भगवन्तमीड्यं
नेत्रत्रयेणामरमर्त्यपूज्यम्॥ २६

दुबले उदरवाली प्रतिमा दुर्भिक्षप्रदा, कंकाल-सरीखी धननाशिनी, टेढ़ी नासिकावाली दुःखदायिनी, सूक्ष्माङ्गी भय पहुँचानेवाली, चिपटी दुःख और शोक प्रदान करनेवाली, नेत्रहीना नेत्रकी विनाशिका, मुखविहीना दुःखदायिनी तथा दुर्बल हाथ-पैरवाली या अन्य किन्हीं अङ्गोंसे हीन अथवा विशेषकर जंघेसे हीन प्रतिमा मनुष्योंके लिये भ्रम और उन्माद उत्पन्न करनेवाली कही गयी है। सूखे मुखवाली तथा कटिभागसे हीन प्रतिमा राजाको कष्ट देनेवाली कही गयी है। हाथ-पाँवसे विहीन प्रतिमा महामारीका भय उत्पन्न करनेवाली तथा जंघा और घुटनेसे विहीन शत्रुका कल्याण करनेवाली कही गयी है॥ १०—२०॥

जो वक्षःस्थलसे विहीन होती है, वह पुत्रों और मित्रोंकी विनाशिका तथा सम्पूर्ण अङ्गोंसे परिपूर्ण प्रतिमा सर्वदा आयु और लक्ष्मी प्रदान करनेवाली कही गयी है। इस प्रकारके लक्षणोंसे युक्त भगवान् शंकरकी प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। उनकी प्रतिमाके चारों ओर सभी देवगणोंको स्तुति करते हुए प्रदर्शित करना चाहिये। शंकरकी मूर्तिको इन्द्र, नन्दीश्वर एवं महाकालसे युक्त बनाना चाहिये। उनके पार्श्वभागमें विनम्रभावसे स्थित लोकपालों और गणेश्वरोंको दिखलाना चाहिये। भृंगी और भूत-वेतालोंकी मूर्तियाँ उनके बगलमें नाचती-गाती हुई बनायी जानी चाहिये, जो सभी हर्षपूर्वक परमेश्वर शिवकी स्तुतिमें लीन रहें। रुद्राक्षकी माला धारण करनेवाले, प्रवाल (मूँगे) आदिकी माला तथा पुष्पादिरूप उपहारोंको समर्पित करनेवाले गन्धर्व, विद्याधर, किन्नर, अप्सरा और गुह्यकोंके अधीश्वरोंके अनेकों गणों तथा इन्द्र आदि सैकड़ों देवताओं और मुनिवरोंद्वारा नमस्कार एवं स्तुति किये जाते हुए तथा देवताओं और मनुष्योंके लिये पूजनीय त्रिनेत्रधारी स्तवनीय भगवान् शंकरकी प्रतिमा बनायी जानी चाहिये॥ २१—२६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे एकोनषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २५९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिमालक्षण नामक दो सौ उनसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २५९॥

सुप्रतिष्ठं सुवेषं च तथार्धेन्दुकृताननम्।
वामे तु संस्थिता देवी तस्योरौ बाहुगूहिता॥ १४

शिरोभूषणसंयुक्तैरलकैर्ललितानना।
सबालिका कर्णवती ललाटतिलकोज्ज्वला॥ १५

मणिकुण्डलसंयुक्ता कर्णिकाभरणा क्वचित्।
हारकेयूरबहुला हरवक्त्रावलोकिनी॥ १६

वामांसं देवदेवस्य स्पृशन्ती लीलया ततः।
दक्षिणं तु बहिः कृत्वा बाहुं दक्षिणतस्तथा॥ १७

स्कन्धे वा दक्षिणे कुक्षौ स्पृशन्त्यङ्गुलिजैः क्वचित्।
वामे तु दर्पणं दद्यादुत्पलं वा सुशोभनम्॥ १८

कटिसूत्रत्रयं चैव नितम्बे स्यात् प्रलम्बकम्।
जया च विजया चैव कार्तिकेयविनायकौ॥ १९

पार्श्वयोर्दर्शयेत् तत्र तोरणे गणगुह्यकान्।
माला विद्याधरांस्तद्वद्वीणावानप्सरोगणः॥ २०

एतद् रूपमुमेशस्य कर्तव्यं भूतिमिच्छता।
शिवनारायणं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम्॥ २१

वामार्धे माधवं विद्याद् दक्षिणे शूलपाणिनम्।
बाहुद्वयं च कृष्णस्य मणिकेयूरभूषितम्॥ २२

शङ्खचक्रधरं शान्तमारक्ताङ्गुलिविभ्रमम्।
चक्रस्थाने गदां वापि पाणौ दद्यादधस्तले॥ २३

शङ्खं चैवोत्तरे दद्यात् कट्यर्धं भूषणोज्ज्वलम्।
पीतवस्त्रपरीधानं चरणं मणिभूषणम्॥ २४

दक्षिणार्धं जटाभारमर्न्धेदुकृतभूषणम्।
भुजङ्गहारवलयं वरदं दक्षिणं करम्॥ २५

द्वितीयं चापि कुर्वीत त्रिशूलवरधारिणम्।
व्यालोपवीतसंयुक्तं कट्यर्धे कृत्तिवाससम्॥ २६

मणिरत्नैश्च संयुक्तं पादं नागविभूषितम्।
शिवनारायणस्यैवं कल्पयेद् रूपमुत्तमम्॥ २७

सुन्दर वेषोंसे सुसज्जित, मुखमण्डलको अर्धचन्द्रमासे विभूषित तथा उचित रूपसे प्रतिष्ठित करना चाहिये। उसके बायें भागमें देवीकी मूर्ति होगी, जिसके दोनों ऊरुभाग बाहुओंसे छिपे रहेंगे। सिरके आभूषणों तथा अलकावलियोंद्वारा मुखभाग ललित हो और बालियोंसे कान तथा तिलकसे ललाट शोभायमान हो रहा हो। कहीं-कहीं कानोंको अलंकृत करनेके लिये मणिनिर्मित कुण्डल पहनाये जाते हैं। उसे हार और केयूरसे सुसज्जित कर शिवजीके मुखका अवलोकन करनेवाली बनावे। वे लीलापूर्वक देवदेव शंकरके बायें कंधेका स्पर्श कर रही हों तथा उनका दाहिना हाथ दाहिने भागसे बाहरकी ओर बना हो। या किसी-किसी प्रतिमामें दाहिने कंधे अथवा कुक्षिभागमें नखोंसे स्पर्श कर रही हों, बायें हाथमें दर्पण अथवा सुन्दर कमल रहना चाहिये। नितम्बभागपर तीन लड़ियोंवाला कटिसूत्र लटकता रहना चाहिये। पार्वतीके दोनों ओर जया, विजया, स्वामिकार्तिकेय और गणेशको तथा तोरणद्वारपर गुह्यक गणोंको प्रदर्शित करना चाहिये। उसी प्रकार वहाँ माला, विद्याधर और वीणासे सुशोभित अप्सराओंको बनाना चाहिये। समृद्धिकामीको उमापति शिवकी प्रतिमा इस प्रकारकी बनवानी चाहिये॥ ११—२०½॥

अब मैं सभी पापोंके विनाशक शिवनारायणकी प्रतिमाकी विधि बता रहा हूँ। इस प्रतिमाकी बायीं ओर आधे भागमें भगवान् विष्णु तथा दाहिनी ओर आधे भागमें शूलपाणि शिवको बनाना चाहिये। कृष्णकी दोनों भुजाएँ मणिनिर्मित केयूरसे विभूषित होनी चाहिये। दोनों भुजाओंमें शङ्ख और चक्र धारण किये हों, शान्तरूप हों तथा मनोहर अंगुलियाँ लाल वर्णकी हों। हाथके निचले भागमें चक्रके स्थानमें गदा भी देनी चाहिये। ऊपरी भागमें शङ्ख, कटिभागमें उज्ज्वल आभूषण और पीताम्बर धारण किये हुए हों तथा चरण मणिनिर्मित नूपुरोंसे विभूषित हों। इसका दाहिना आधा भाग जटाभार तथा अर्धचन्द्रसे विभूषित होना चाहिये। दाहिने हाथको वरद-मुद्रासे युक्त तथा सर्पोंके हार और कङ्कणसे सुशोभित तथा दूसरे हाथको त्रिशूलसे विभूषित बनाना चाहिये। उसे सर्पके यज्ञोपवीतसे युक्त और उसके कटिप्रदेशको गजचर्मसे आच्छादित कर दे। चरण मणि और रत्नोंसे अलंकृत तथा नागसे विभूषित हों। इस प्रकार शिवनारायणके

महावराहं वक्ष्यामि पद्महस्तं गदाधरम्।
तीक्ष्णदंष्ट्राग्रघोणास्यं मेदिनी वामकूर्परम्॥ २८
दंष्ट्राग्रेणोद्धृतां दान्तां धरणीमुत्पलान्विताम्।
विस्मयोत्फुल्लवदनामुपरिष्टात् प्रकल्पयेत्॥ २९
दक्षिणं कटिसंस्थं तु करं तस्याः प्रकल्पयेत्।
कूर्मोपरि तथा पादमेकं नागेन्द्रमूर्धनि॥ ३०
संस्तूयमानं लोकेशैः समन्तात्परिकल्पयेत्।
नारसिंहं तु कर्तव्यं भुजाष्टकसमन्वितम्॥ ३१
रौद्रं सिंहासनं तद्वद् विदारितमुखेक्षणम्।
स्तब्धपीनसटाकर्णं दारयन्तं दितेः सुतम्॥ ३२
विनिर्गतान्त्रजालं च दानवं परिकल्पयेत्।
वमन्तं रुधिरं घोरं भ्रुकुटीवदनेक्षणम्॥ ३३
युध्यमानश्च कर्तव्यः क्वचित् करणबन्धनैः।
परिश्रान्तेन दैत्येन तर्ज्यमानो मुहुर्मुहुः॥ ३४
दैत्यं प्रदर्शयेत् तत्र खड्गखेटकधारिणम्।
स्तूयमानं तथा विष्णुं दर्शयेदमराधिपैः॥ ३५
तथा त्रिविक्रमं वक्ष्ये ब्रह्माण्डक्रमणोल्बणम्।
पादपार्श्वे तथा बाहुमुपरिष्टात् प्रकल्पयेत्॥ ३६
अधस्ताद् वामनं तद्वत् कल्पयेत् सकमण्डलुम्।
दक्षिणे छत्रिकां दद्यान्मुखं दीनं प्रकल्पयेत्॥ ३७
भृङ्गारधारिणं तद्वद् बलिं तस्य च पार्श्वतः।
बन्धनं चास्य कुर्वन्तं गरुडं तस्य दर्शयेत्॥ ३८
मत्स्यरूपं तथा मत्स्यं कूर्मं कूर्माकृतिं न्यसेत्।
एवंरूपस्तु भगवान् कार्यो नारायणो हरिः॥ ३९
ब्रह्मा कमण्डलुधरः कर्तव्यः स चतुर्मुखः।
हंसारूढः क्वचित् कार्यः क्वचिच्च कमलासनः॥ ४०

उत्तम स्वरूपकी कल्पना करनी चाहिये। अब मैं महावराहका वर्णन कर रहा हूँ। उनके हाथोंमें पद्म और गदा हों, उनके दाढ़ोंके अर्धभाग तीक्ष्ण हों, थूथुनवाला मुख हो, बायीं केहुनीपर पृथ्वी हो, वह पृथ्वी दाढ़के अग्रभागपर रखी हुई कमलयुक्त और शान्त हो तथा उसका मुख विस्मयसे उत्फुल्ल हो, ऐसी मूर्तिको ऊपरको ओर बनाना चाहिये। उस मूर्तिका दाहिना हाथ कटिप्रदेशपर हो। उनका एक पैर शेषनागके मस्तकपर और दूसरा कूर्मपर स्थित हो तथा लोकपालगण चारों ओरसे उनकी स्तुति कर रहे हों, ऐसी मूर्ति बनानी चाहिये॥ २१—३० $\frac{1}{2}$॥

भगवान् नृसिंहकी प्रतिमा आठ भुजाओंसे युक्त बनायी जानी चाहिये। उसी प्रकार उनका सिंहासन भी भयंकर हो, मुख और नेत्र फैले हुए हों, गरदनके लम्बे बाल कानोंतक बिखरे हों तथा वे नखसे दितिपुत्र हिरण्यकशिपुको फाड़ रहे हों। जिसकी आँतें बाहर निकल गयी हों, मुखसे रुधिर गिर रहा हो, भृकुटी, मुख और नेत्र विकराल हों, ऐसे दानवराज हिरण्यकशिपुकी मूर्ति बनानी चाहिये। कहीं नृसिंह-प्रतिमा युद्धके उपकरणोंसे युक्त दैत्योंसे युद्ध करती हुई बनायी जाती है और कहीं थके हुए दैत्यसे बारंबार धमकायी जाती हुई बनानी चाहिये। वहाँ दैत्यको तलवार और ढाल धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये तथा देवेश्वरोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए विष्णुको दिखाना चाहिये। अब मैं वामनका वर्णन कर रहा हूँ। वे ब्रह्माण्डको नापनेके लिये तत्पर दीखते हों। उनके चरणोंके समीपमें ऊपरकी ओर बाहुका निर्माण करे। उसके नीचेकी ओर बायें हाथमें कमण्डलु धारण किये हुए वामनकी रचना करे। दाहिने हाथमें एक छोटी-सी छतरी होनी चाहिये। उनका मुख दीनतासे युक्त हो। उन्हींकी बगलमें जलका गेडुआ लिये हुए बलिका निर्माण होना चाहिये। उसी स्थलपर बलिको बाँधते हुए गरुड़को भी दिखाना चाहिये। इसी प्रकार मत्स्यभगवान्की प्रतिमा मछलीके आकारकी तथा कूर्म भगवान्की प्रतिमा कछुएके समान बनानी चाहिये। इस प्रकार भगवान् विष्णु तथा उनके अवतारोंकी प्रतिमाओंका निर्माण होना चाहिये॥ ३१—३९॥

ब्रह्माको कमण्डलु लिये हुए चार मुखोंसे युक्त बनावे। उनकी प्रतिमा कहीं हंसपर बैठी हुई तथा कहीं कमलपर विराजमान रहती है।

वर्णतः पद्मगर्भाभश्चतुर्बाहुः शुभेक्षणः।
कमण्डलुं वामकरे स्रुवं हस्ते तु दक्षिणे॥ ४१
वामे दण्डधरं तद्वत् स्रुवञ् चापि प्रदर्शयेत्।
मुनिभिर्देवगन्धर्वैः स्तूयमानं समन्ततः॥ ४२
कुर्वाणमिव लोकांस्त्रीञ् शुक्लाम्बरधरं विभुम्।
मृगचर्मधरं चापि दिव्ययज्ञोपवीतिनम्॥ ४३
आज्यस्थालीं न्यसेत् पार्श्वे वेदांश्च चतुरः पुनः।
वामपार्श्वेऽस्य सावित्रीं दक्षिणे च सरस्वतीम्॥ ४४
अग्रे च ऋषयस्तद्वत् कार्याः पैतामहे पदे।
कार्तिकेयं प्रवक्ष्यामि तरुणादित्यसप्रभम्॥ ४५
कमलोदरवर्णाभं कुमारं सुकुमारकम्।
दण्डकैश्चीरकैर्युक्तं मयूरवरवाहनम्॥ ४६
स्थापयेत् स्वेष्टनगरे भुजान् द्वादश कारयेत्।
चतुर्भुजः खर्वटे स्याद् वने ग्रामे द्विबाहुकः॥ ४७
शक्तिः पाशस्तथा खड्गः शरः शूलं तथैव च।
वरदश्चैकहस्तः स्यादथ चाभयदो भवेत्॥ ४८
एते दक्षिणतो ज्ञेयाः केयूरकटकोज्ज्वलाः।
धनुः पताका मुष्टिश्च तर्जनी तु प्रसारिता॥ ४९
खेटकं ताम्रचूडं च वामहस्ते तु शस्यते।
द्विभुजस्य करे शक्तिर्वामे स्यात् कुक्कुटोपरि॥ ५०
चतुर्भुजे शक्तिपाशौ वामतो दक्षिणे त्वसिः।
वरदोऽभयदो वापि दक्षिणः स्यात् तुरीयकः॥ ५१
विनायकं प्रवक्ष्यामि गजवक्त्रं त्रिलोचनम्।
लम्बोदरं चतुर्बाहुं व्यालयज्ञोपवीतिनम्॥ ५२
ध्वस्तकर्णं बृहत्तुण्डमेकदंष्ट्रं पृथूदरम्।
स्वदन्तं दक्षिणकरे उत्पलं चापरे तथा॥ ५३

उनकी प्रतिमा कमलके भीतरी भागके समान अरुण, चार भुजाओंसे युक्त और सुन्दर नेत्रवाली हो। उनके नीचेके बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें स्रुवा हो। उनके ऊपरके बायें हाथमें दण्ड तथा दाहिने हाथमें भी स्रुवा* धारण किये हुए प्रदर्शित करना चाहिये। उनके चारों ओर देवता, गन्धर्व और मुनिगणोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए दिखाना चाहिये। ऐसी भूमिका भी दिखाये, मानो वे तीनों लोकोंकी रचनामें प्रवृत्त हैं। वे श्वेत वस्त्रधारी, ऐश्वर्यसम्पन्न, मृगचर्म तथा दिव्य यज्ञोपवीतसे युक्त हों। उनके बगलमें आज्यस्थाली रहे और सामने चारों वेदोंकी मूर्तियाँ हों। उनकी बायीं ओर सावित्री, दाहिनी ओर सरस्वती तथा उनके अग्रभागमें मुनियोंके समूह हों॥ ४०—४४ $\frac{1}{2}$॥

अब मैं कार्तिकेयकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी प्रतिमाको मध्यकालीन सूर्यकी भाँति परम तेजोमय, कमलके मध्यभागके समान अरुण, मयूरपर आरूढ़, दण्डों और चीरोंसे सुशोभित, सुकुमार शरीरसे युक्त और बारह भुजाओंवाली बनाना चाहिये। उसे अपने इष्ट नगरमें स्थापित करना चाहिये। खर्वट (पर्वतके समीपके ग्राम)-में इनकी चार भुजाओंवाली और वन अथवा ग्राममें दो बाहुवाली प्रतिमा स्थापित करानी चाहिये। (बारह भुजाओंवाली प्रतिमामें) उनकी दाहिनी ओरके छः हाथोंमें शक्ति, पाश, तलवार, बाण और शूल शोभायमान हों। एक हाथमें अभयमुद्रा अथवा वरदमुद्रा बनानी चाहिये। ये सभी केयूर तथा कटकसे विभूषित उज्ज्वल वर्णके होने चाहिये। बायीं ओरके छः हाथ क्रमशः धनुष, पताका, मुष्टि, फैली हुई तर्जनी, ढाल, मुर्गा—इन वस्तुओंसे युक्त और उसी वर्णके होने चाहिये। दो भुजाओंवाली प्रतिमाके बायें हाथमें शक्ति और दाहिना हाथ कुक्कुटपर न्यस्त रहना चाहिये। चतुर्भुज प्रतिमाकी बायीं ओरके दो हाथोंमें शक्ति और पाश तथा दाहिनी ओरके तीसरे हाथमें तलवार हो और चौथा हाथ अभय अथवा वरदमुद्रासे युक्त हो॥ ४५—५१॥

अब मैं गणेशजीकी प्रतिमाका विधान बता रहा हूँ। उनकी प्रतिमामें हाथी-सा मुख, तीन नेत्र, लम्बा उदर, चार भुजाएँ, सर्पका यज्ञोपवीत, सिमटा हुआ कान, विशाल शुण्ड, एक दाँत और तोंद स्थूल हो। उनके ऊपरके दाहिने हाथमें अपना दाँत और निचले हाथमें कमल होना चाहिये।

* कहीं-कहीं उनके ऊपरके दाहिने हाथमें वेदग्रन्थ या स्रुच् भी निर्दिष्ट है।

मोदकं परशुं चैव वामतः परिकल्पयेत्।
बृहत्वात्क्षिप्तवदनं पीनस्कन्धाङ्घ्रिपाणिकम्॥ ५४

युक्तं तु सिद्धिबुद्धिभ्यामधस्तान्मूषकान्वितम्।
कात्यायन्याः प्रवक्ष्यामि रूपं दशभुजं तथा॥ ५५

त्रयाणामपि देवानामनुकारानुकारिणीम्।
जटाजूटसमायुक्तामर्धेन्दुकृतशेखराम् ॥ ५६

लोचनत्रयसंयुक्तां पूर्णेन्दुसदृशाननाम्।
अतसीपुष्पवर्णाभां सुप्रतिष्ठां सुलोचनाम्॥ ५७

नवयौवनसम्पन्नां सर्वाभरणभूषिताम्।
सुचारुदशनां तद्वत् पीनोन्नतपयोधराम्॥ ५८

त्रिभङ्गस्थानसंस्थानां महिषासुरमर्दिनीम्।
त्रिशूलं दक्षिणे दद्यात् खड्गं चक्रं क्रमादधः॥ ५९

तीक्ष्णबाणं तथा शक्तिं वामतोऽपि निबोधत।
खेटकं पूर्णचापं च पाशमङ्कुशमेव च॥ ६०

घण्टां वा परशुं वापि वामतः संनिवेशयेत्।
अधस्तान्महिषं तद्वद् विशिरस्कं प्रदर्शयेत्॥ ६१

शिरश्छेदोद्भवं तद्वद् दानवं खड्गपाणिनम्।
हृदि शूलेन निर्भिन्नं निर्यदन्त्रविभूषितम्॥ ६२

रक्तरक्तीकृताङ्गं च रक्तविस्फुरितेक्षणम्।
वेष्टितं नागपाशेन भ्रुकुटीभीषणाननम्॥ ६३

सपाशवामहस्तेन धृतकेशं च दुर्गया।
वमद्रुधिरवक्त्रं च देव्याः सिंहं प्रदर्शयेत्॥ ६४

देव्यास्तु दक्षिणं पादं समं सिंहोपरि स्थितम्।
किंचिदूर्ध्वं तथा वाममङ्गुष्ठं महिषोपरि॥ ६५

स्तूयमानं च तद्रूपममरैः संनिवेशयेत्।
इदानीं सुरराजस्य रूपं वक्ष्ये विशेषतः॥ ६६

सहस्रनयनं देवं मत्तवारणसंस्थितम्।
पृथूरुवक्षोवदनं सिंहस्कन्धं महाभुजम्॥ ६७

बायीं ओरके ऊपरके हाथमें मोदक तथा निचले हाथमें परशु हों। बृहत् होनेके कारण मुख नीचेकी ओर विस्तृत तथा स्कन्ध, पाद और हाथ मोटे होने चाहिये। वह सिद्धि-बुद्धिसे युक्त हो, उसके नीचेकी ओर मूषक बना हो। अब मैं भगवती कात्यायनीकी मूर्तिका वर्णन कर रहा हूँ। वह दस भुजाओंसे युक्त, तीनों देवताओंकी आकृतियोंका अनुकरण करनेवाली, जटा-जूटसे विभूषित, सिरपर अर्धचन्द्रसे सुशोभित, तीन नेत्रोंसे युक्त, पूर्णचन्द्रके समान मुखवाली, अलसी-पुष्पके समान नीलवर्णा, तेजोमय, सुन्दर नेत्रोंसे विभूषित, नवयौवनसम्पन्ना, सभी आभूषणोंसे विभूषित, अत्यन्त सुन्दर दाँतोंसे युक्त, स्थूल एवं उन्नत स्तनोंवाली, त्रिभंगी रूपसे स्थित, महिषासुरनाशिनी आदि चिह्नोंसे युक्त हो। दाहिने हाथोंमें क्रमशः ऊपरसे नीचेकी ओर त्रिशूल, खड्ग, चक्र, तीक्ष्ण बाण और शक्ति तथा बायें हाथोंमें ढाल, धनुष, पाश, अङ्कुश, घण्टा अथवा परशु धारण कराना चाहिये। प्रतिमाके नीचे सिररहित महिषासुरको प्रदर्शित करना चाहिये। वह दानव सिर कटनेपर शरीरसे निकलता हुआ दीख पड़े तथा हाथमें खड्ग, हृदय शूलसे विदीर्ण और बाहर निकलती हुई अँतड़ियोंसे विभूषित हो। वह रक्तसे लथपथ शरीरवाला, विस्फारित लाल नेत्रोंसे युक्त, नागपाशसे परिवेष्टित, टेढ़ी भृकुटीके कारण भीषण मुखाकृति और दुर्गाद्वारा पाशयुक्त बायें हाथसे पकड़ा गया केशवाला हो॥ ५२—६३½॥

देवीके सिंहको मुखसे रक्त उगलते हुए प्रदर्शित करना चाहिये। देवीका दाहिना पैर सिंहके ऊपर समानरूपसे स्थित हो तथा बायाँ कुछ ऊपरको ओर उठा हो, उसका अंगूठा महिषासुरपर लगा हुआ हो। उनकी प्रतिमाको देवगणोंद्वारा स्तुति किये जाते हुए दिखाना चाहिये। (यहाँसे अष्टदिक्पाल या लोकपालोंकी प्रतिमाका वर्णन है) अब मैं देवराज इन्द्रके रूपको विशेष रूपसे कह रहा हूँ। हजार नेत्रोंवाले देवेन्द्रको मत्त गयन्दपर विराजमान बनाना चाहिये। उनके ऊरु, वक्षःस्थल और मुख विशाल हों,

किरीटकुण्डलधरं पीवरोरुभुजेक्षणम्।
वज्रोत्पलधरं तद्वन्नानाभरणभूषितम्॥ ६८
पूजितं देवगन्धर्वैरप्सरोगणसेवितम्।
छत्रचामरधारिण्यः स्त्रियः पार्श्वे प्रदर्शयेत्॥ ६९
सिंहासनगतं चापि गन्धर्वगणसंयुतम्।
इन्द्राणीं वामतश्चास्य कुर्यादुत्पलधारिणीम्॥ ७०

कंधे सिंहके समान हों, उनकी भुजाएँ विशाल हों, वे किरीट और कुण्डल धारण किये हों, उनके जघनस्थल, भुजाएँ तथा आँखें स्थूल हों, वे वज्र और कमल धारण किये हों तथा विविध आभूषणोंसे विभूषित हों, देवता और गन्धर्वोंद्वारा पूजित और अप्सराओंद्वारा सेवित हों। उनके पार्श्वमें छत्र और चामर धारण करनेवाली स्त्रियोंको प्रदर्शित करना चाहिये। वे सिंहासनपर विराजमान हों, उनकी बायीं ओर कमल धारण किये हुए इन्द्राणी स्थित हों, वे गन्धर्वोंसे घिरे हों॥ ६४—७०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिमालक्षणे षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६०॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिमा-लक्षण नामक दो सौ साठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६०॥

दो सौ एकसठवाँ अध्याय

सूर्यादि विभिन्न देवताओंकी प्रतिमाके स्वरूप, प्रतिष्ठा और पूजा आदिकी विधि

सूत उवाच

प्रभाकरस्य प्रतिमामिदानीं शृणुत द्विजाः।
रथस्थं कारयेद् देवं पद्महस्तं सुलोचनम्॥ १
सप्ताश्वं चैकचक्रं च रथं तस्य प्रकल्पयेत्।
मुकुटेन विचित्रेण पद्मगर्भसमप्रभम्॥ २
नानाभरणभूषाभ्यां भुजाभ्यां धृतपुष्करम्।
स्कन्धस्थे पुष्करे ते तु लीलयैव धृते सदा॥ ३
चोलकच्छन्नवपुषं क्वचिच्चित्रेषु दर्शयेत्।
वस्त्रयुग्मसमोपेतं चरणौ तेजसावृतौ॥ ४
प्रतीहारौ च कर्तव्यौ पार्श्वयोर्दण्डिपिङ्गलौ।
कर्तव्यौ खड्गहस्तौ तौ पार्श्वयोः पुरुषावुभौ॥ ५
लेखनीकृतहस्तं च पार्श्वे धातारमव्ययम्।
नानादेवगणैर्युक्तमेवं कुर्याद् दिवाकरम्॥ ६

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणगण! अब आपलोग भगवान् सूर्यकी* प्रतिमाके निर्माणकी विधि सुनिये। भगवान् सूर्यदेवको रथपर स्थित, सुन्दर नेत्रोंसे सुशोभित और दोनों हाथोंमें कमल धारण किये हुए बनाना चाहिये। उनके रथमें सात घोड़े और एक पहिया होनी चाहिये। उन्हें विचित्र मुकुटसे युक्त तथा कमलके मध्यवर्ती भागके समान लालवर्णका बनाना चाहिये। वे विविध आभूषणोंसे विभूषित दोनों भुजाओंमें कमल धारण किये हों, वे कमल सदा लीलापूर्वक ऊपर कंधोंतक उठे हुए हों। उनका स्वरूप विशेषकर पैर दो वस्त्रोंसे आवृत हो। प्रायः चित्रोंमें भी उनकी प्रतिमा दो वस्त्रोंसे ढकी हुई प्रदर्शित की जानी चाहिये। उनके दोनों चरण तेजसे आवृत हों। मूर्तिके दोनों ओर दण्डी और पिङ्गल नामक दो प्रतीहारोंको रखना चाहिये। उन दोनों पार्श्ववर्ती पुरुषोंके हाथोंमें तलवार बनायी जानी चाहिये। उनके पार्श्वमें एक हाथमें लेखनी लिये हुए अविनाशी धाताकी मूर्ति हो। भगवान् भास्कर अनेकों देवगणोंसे युक्त हों। इस प्रकार भगवान् सूर्यकी प्रतिमाका निर्माण करना चाहिये।

* सूर्यप्रतिमाकी विधि अग्निपुराण, अध्याय ५१, भविष्य, नारद, साम्बादिपुराणों, सुप्रभेदागम, शिल्परत्न, शारदा, विष्णुधर्म तथा टी० गोपीनाथ राव, स्टीलाक्रमरिश, बनर्जी आदिके ग्रंथोंमें सानुसंधान विस्तारपूर्वक निर्दिष्ट है। तुलनात्मक अध्ययन तथा जिज्ञासाशान्त्यर्थ ये सभी तथा पुराणागमोंके ध्यान-प्रकरण भी द्रष्टव्य हैं। मतान्तरसे सूर्य भी पूर्व दिशाके स्वामी हैं।

अरुणः सारथिश्चास्य पद्मिनीपत्रसंनिभः।
अश्वौ सुवलयग्रीवावन्तस्थौ तस्य पार्श्वयोः॥ ७
भुजङ्गरज्जुभिर्बद्धाः सप्ताश्वा रश्मिसंयुताः।
पद्मस्थं वाहनस्थं वा पद्महस्तं प्रकल्पयेत्॥ ८

सूर्यदेवके सारथि अरुण हैं जो कमलदलके सदृश लाल वर्णके हैं। उनके दोनों बगलमें चलते हुए लंबी गरदनवाले अश्व हों। उन सातों अश्वोंको सर्पकी रस्सीसे बाँधकर लगामयुक्त रखना चाहिये। सूर्य-मूर्तिको हाथोंमें कमल लिये हुए कमलपर या वाहनपर स्थित रखना चाहिये॥ १—८॥

वह्नेस्तु लक्षणं वक्ष्ये सर्वकामफलप्रदम्।
दीप्तं सुवर्णवपुषमर्धचन्द्रासने स्थितम्॥ ९
बालार्कसदृशं तस्य वदनं चापि दर्शयेत्।
यज्ञोपवीतिनं देवं लम्बकूर्चधरं तथा॥ १०
कमण्डलुं वामकरे दक्षिणे त्वक्षसूत्रकम्।
ज्वालावितानसंयुक्तमजवाहनमुज्ज्वलम्॥ ११
कुण्डस्थं वापि कुर्वीत मूर्ध्नि सप्तशिखान्वितम्।
तथा यमं प्रवक्ष्यामि दण्डपाशधरं विभुम्॥ १२
महामहिषमारूढं कृष्णाञ्जनचयोपमम्।
सिंहासनगतं चापि दीप्ताग्निसमलोचनम्॥ १३
महिषश्चित्रगुप्तश्च करालाः किंकरास्तथा।
समन्ताद् दर्शयेत् तस्य सौम्यासौम्यान् सुरासुरान्॥ १४
राक्षसेन्द्रं तथा वक्ष्ये लोकपालं च नैर्ऋतम्।
नरारूढं महाकायं रक्षोभिर्बहुभिर्वृतम्॥ १५
खड्गहस्तं महानीलं कज्जलाचलसंनिभम्।
नरयुक्तविमानस्थं पीताभरणभूषितम्॥ १६
वरुणं च प्रवक्ष्यामि पाशहस्तं महाबलम्।
शङ्खस्फटिकवर्णाभं सितहाराम्बरावृतम्॥ १७
झषासनगतं शान्तं किरीटाङ्गदधारिणम्।
वायुरूपं प्रवक्ष्यामि धूम्रं तु मृगवाहनम्॥ १८
चित्राम्बरधरं शान्तं युवानं कुञ्चितभ्रुवम्।
मृगाधिरूढं वरदं पताकाध्वजसंयुतम्॥ १९

अब मैं सभी प्रकारके अभीष्ट फलोंको देनेवाले अग्निकी प्रतिमाका स्वरूप बतला रहा हूँ। अग्निकी प्रतिमा कनकके समान उद्दीप्त कान्तिवाली बनानी चाहिये। वह अर्धचन्द्राकार आसनपर स्थित हो। उनका मुख उदयकालीन सूर्यकी भाँति दिखाना चाहिये। अग्निदेवको यज्ञोपवीत तथा लम्बी दाढ़ीसे युक्त बनाना चाहिये। उनके बायें हाथमें कमण्डलु और दाहिने हाथमें रुद्राक्षकी माला हो। उनका वाहन बकरा ज्वालामण्डलसे विभूषित और उज्ज्वल होना चाहिये। मस्तकपर (या मुखमें) सात जिह्वारूपिणी ज्वालाओंसे युक्त इस प्रतिमाको देवमन्दिर अथवा अग्निकुण्डके मध्यमें स्थापित करना चाहिये। अब मैं यमराजकी प्रतिमाके निर्माणकी विधि बतला रहा हूँ। उनके शरीरका रंग काले अंजनके समान हो। वे दण्ड और पाश धारण करनेवाले, ऐश्वर्ययुक्त और विशाल महिषपर आरूढ़ हों अथवा सिंहासनासीन हों। उनके नेत्र प्रदीप्त अग्निके समान हों। उनके चारों ओर महिष, चित्रगुप्त, विकराल अनुचरवर्ग, मनोहर आकृतिवाले देवताओं तथा विकृत असुरोंकी प्रतिमाओंको भी प्रदर्शित करना चाहिये। अब मैं लोकपाल राक्षसेन्द्र निर्ऋतिकी प्रतिमाकी निर्माण-विधि बतला रहा हूँ। वे मनुष्यपर आरूढ़, विशालकाय, राक्षससमूहोंसे घिरे हुए और हाथमें तलवार लिये हुए हों। उनका वर्ण अत्यन्त नील और कज्जलगिरिके समान दिखायी पड़ता हो। उन्हें पालकीपर सवार और पीले आभूषणोंसे विभूषित बनाना चाहिये। अब मैं महाबली वरुणकी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ। वे हाथमें पाश धारण किये हुए स्फटिकमणि और शङ्खके समान श्वेत कान्तिसे युक्त, उज्ज्वल हार और वस्त्रसे विभूषित, झष* (बड़ी मछली)-पर आसीन, शान्त मुद्रासे सम्पन्न तथा बाजूबन्द और किरीटसे सुशोभित हों। अब मैं वायुदेवकी प्रतिमाका स्वरूप बतला रहा हूँ। उन्हें धूम्र वर्णसे युक्त, मृगपर आसीन, चित्र-विचित्र वस्त्रधारी, शान्त, युवावस्थासे सम्पन्न, तिरछी भौंहोंसे युक्त, वरदमुद्रा और ध्वज-पताकासे विभूषित बनाना चाहिये॥ ९—१९॥

* शतपथ १। ८। ४ आदिके अनुसार बड़ी मछली ही झष है।

कुबेरं च प्रवक्ष्यामि कुण्डलाभ्यामलङ्कृतम्।
महोदरं महाकायं निध्यष्टकसमन्वितम्॥ २०
गुह्यकैर्बहुभिर्युक्तं धनव्ययकरैस्तथा।
हारकेयूररचितं सिताम्बरधरं सदा॥ २१
गदाधरं च कर्तव्यं वरदं मुकुटान्वितम्।
नरयुक्तविमानस्थमेवं रीत्या च कारयेत्॥ २२
तथैवेशं प्रवक्ष्यामि धवलं धवलेक्षणम्।
त्रिशूलपाणिनं देवं त्र्यक्षं वृषगतं प्रभुम्॥ २३
मातृणां लक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
ब्रह्माणी ब्रह्मसदृशी चतुर्वक्त्रा चतुर्भुजा॥ २४
हंसाधिरूढा कर्तव्या साक्षसूत्रकमण्डलुः।
महेश्वरस्य रूपेण तथा माहेश्वरी मता॥ २५
जटामुकुटसंयुक्ता वृषस्था चन्द्रशेखरा।
कपालशूलखट्वाङ्गवरदाढ्या चतुर्भुजा॥ २६
कुमाररूपा कौमारी मयूरवरवाहना।
रक्तवस्त्रधरा तद्वच्छूलशक्तिधरा मता॥ २७
हारकेयूरसम्पन्ना कृकवाकुधरा तथा।
वैष्णवी विष्णुसदृशी गरुडे समुपस्थिता॥ २८
चतुर्बाहुश्च वरदा शङ्खचक्रगदाधरा।
सिंहासनगता वापि बालकेन समन्विता॥ २९
वाराहीं च प्रवक्ष्यामि महिषोपरि संस्थिताम्।
वराहसदृशी देवी शिरश्चामरधारिणी॥ ३०
गदाचक्रधरा तद्वद् दानवेन्द्रविनाशिनी।
इन्द्राणीमिन्द्रसदृशीं वज्रशूलगदाधराम्॥ ३१
गजासनगतां देवीं लोचनैर्बहुभिर्वृताम्।
तप्तकाञ्चनवर्णाभां दिव्याभरणभूषिताम्॥ ३२
तीक्ष्णखड्गधरां तद्वद् वक्ष्ये योगेश्वरीमिमाम्।
दीर्घजिह्वामूर्ध्वकेशीमस्थिखण्डैश्च मण्डिताम्॥ ३३

अब मैं कुबेरकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। वे दो कुण्डलोंसे अलंकृत, तोंदयुक्त, विशालकाय, आठ निधियोंसे संयुक्त, बहुतेरे गुह्यकोंसे घिरे हुए, धन व्यय करनेके लिये उद्यत करोंसे युक्त, केयूर और हारसे विभूषित, श्वेत वस्त्रधारी, वरदमुद्रा, गदा और मुकुटसे विभूषित तथा पालकीपर सवार हों। इस प्रकार उनकी प्रतिमा निर्मित करानी चाहिये। अब मैं सामर्थ्यशाली ईशानदेवकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनके शरीरकी कान्ति तथा नेत्र श्वेत हों। वे सामर्थ्यशाली देव तीन नेत्रोंसे युक्त तथा हाथमें त्रिशूल लिये हुए वृषभपर आरूढ़ हों। अब मैं मातृकाओंकी प्रतिमाओंका लक्षण आनुपूर्वी यथार्थरूपसे बता रहा हूँ। ब्रह्माणीकी प्रतिमाको ब्रह्माजीके समान चार मुख, चार भुजाएँ, अक्षसूत्र और कमण्डलुसे विभूषित तथा हंसपर आसीन बनानी चाहिये। इसी प्रकार भगवान् महेश्वरके अनुरूप माहेश्वरीकी प्रतिमा मानी गयी है। वे जटा-मुकुटसे अलंकृत, वृषभासीन, मस्तकपर चन्द्रमासे विभूषित, क्रमशः कपाल, शूल, खट्वाङ्ग* और वरमुद्रासे सुशोभित चार भुजाओंसे सम्पन्न हों। कौमारीकी प्रतिमा स्वामिकार्तिकेयके समान निर्मित करानी चाहिये। वे श्रेष्ठ मयूरपर सवार, लाल वस्त्रसे सुशोभित, शूल और शक्ति धारण करनेवाली, हार और केयूरसे विभूषित तथा मुर्गा लिये हुए हों। वैष्णवीकी मूर्ति विष्णुभगवान्‌के समान हो। वे गरुड़पर आसीन हों, उनके चार भुजाएँ हों, जिनमें क्रमशः शङ्ख, चक्र, गदा और वरद-मुद्रा हो। अथवा वे एक बालकसे युक्त सिंहासनपर बैठी हुई हों। अब मैं वाराहीकी प्रतिमाका प्रकार बतलाता हूँ। वे देवी महिषपर बैठी हुई वराहके समान रहती हैं। उनके सिरपर चामर झलता रहना चाहिये। वे हाथोंमें गदा और चक्र लिये हुए बड़े-बड़े दानवोंके विनाशके लिये संनद्ध रहती हैं। इन्द्राणीको इन्द्रके समान वज्र, शूल, गदा धारण किये हुए हाथीपर विराजमान बनाना चाहिये। वे देवी बहुत-से नेत्रोंसे युक्त, तप्त सुवर्णके समान कान्तिमती और दिव्य आभरणोंसे भूषित रहती हैं॥ २०—३२॥

अब मैं भगवती योगेश्वरी चामुण्डाकी प्रतिमाका वर्णन करता हूँ। वे तीखी तलवार, लम्बी जिह्वा, ऊपर उठे केश तथा हड्डियोंके टुकड़ोंसे विभूषित रहती हैं।

* खट्वाङ्गका तात्पर्य उस गदासे है, जिसकी आकृति कुछ चारपाईके पायेसे मिलती-जुलती है। इसके सिरपर हड्डी जुड़ी रहती है। यह शिव-शक्तिके आयुधोंमें वर्णित है। (द्र०— वैशम्पायननीतिप्रकाशिका, विश्वामित्रधनुर्वेद आदि)

दंष्ट्राकरालवदनां कुर्याच्चैव कृशोदरीम्।
कपालमालिनीं देवीं मुण्डमालाविभूषिताम्॥ ३४
कपालं वामहस्ते तु मांसशोणितपूरितम्।
मस्तिष्काक्तं च बिभ्राणां शक्तिकां दक्षिणे करे॥ ३५
गृध्रस्था वायसस्था वा निर्मांसा विनतोदरी।
करालवदना तद्वत् कर्तव्या सा त्रिलोचना॥ ३६
चामुण्डा बद्धघण्टा वा द्वीपिचर्मधरा शुभा।
दिग्वासा: कालिका तद्वद् रासभस्था कपालिनी॥ ३७
सुरक्तपुष्पाभरणा वर्धनीध्वजसंयुता।
विनायकं च कुर्वीत मातृणामन्तिके सदा॥ ३८
वीरेश्वरश्च भगवान् वृषारूढो जटाधर:।
वीणाहस्तस्त्रिशूली च मातृणामग्रतो भवेत्॥ ३९

उन्हें विकराल दाढ़ोंसे युक्त मुखवाली, दुर्बल उदरसे युक्त, कपालोंकी माला धारण किये और मुण्ड-मालाओंसे विभूषित बनाना चाहिये। उनके बायें हाथमें खोपड़ीसे युक्त एवं रक्त और मांससे पूर्ण खप्पर और दाहिने हाथमें शक्ति हो। वे गृध्र या काकपर बैठी हों। उनका शरीर मांसरहित, उदर भीतर घुसा और मुख अत्यन्त भीषण हो। उन्हें तीन नेत्रोंसे सम्पन्न घण्टा लिये हुए व्याघ्र-चर्मसे सुशोभित या निर्वस्त्र बनाना चाहिये। उसी प्रकार कालिकाको कपाल धारण किये हुए गधेपर सवार बनाना चाहिये। वे लाल पुष्पोंके आभरणोंसे विभूषित तथा झाड़ूकी ध्वजासे युक्त हों। इन मातृकाओंके समीप सर्वदा गणेशकी प्रतिमा भी रखनी चाहिये तथा मातृकाओंके आगे जटाधारी, हाथोंमें वीणा और त्रिशूल लिये हुए वृषभारूढ़ भगवान् वीरेश्वरको स्थापित करना चाहिये॥ ३३—३९॥

श्रियं देवीं प्रवक्ष्यामि नवे वयसि संस्थिताम्।
सुयौवनां पीनगण्डां रक्तौष्ठीं कुञ्चितभ्रुवम्॥ ४०
पीनोन्नतस्तनतटां मणिकुण्डलधारिणीम्।
सुमण्डलं मुखं तस्या: शिर: सीमन्तभूषणम्॥ ४१
पद्मस्वस्तिकशङ्खैर्वा भूषितां कुन्तलालकै:।
कञ्चुकाबद्धगात्री च हारभूषौ पयोधरौ॥ ४२
नागहस्तोपमौ बाहू केयूरकटकोज्ज्वलौ।
पद्मं हस्ते प्रदातव्यं श्रीफलं दक्षिणे भुजे॥ ४३
मेखलाभरणां तद्वत् तप्तकाञ्चनसप्रभाम्।
नानाभरणसम्पन्नां शोभनाम्बरधारिणीम्॥ ४४
पार्श्वे तस्या: स्त्रिय: कार्याश्चामरव्यग्रपाणय:।
पद्मासनोपविष्टा तु पद्मसिंहासनस्थिता॥ ४५
करिभ्यां स्नाप्यमानासौ भृङ्गाराभ्यामनेकश:।
प्रक्षालयन्तौ करिणौ भृङ्गाराभ्यां तथापरौ॥ ४६
स्तूयमाना च लोकेशैस्तथा गन्धर्वगुह्यकै:।

अब मैं लक्ष्मीकी प्रतिमाका प्रकार बतला रहा हूँ। वे नवीन अवस्थामें स्थित, नवयौवनसम्पन्न, उन्नत कपोलसे युक्त, लाल ओष्ठोंवाली, तिरछी भौंहोंसे युक्त तथा मणिनिर्मित कुण्डलोंसे विभूषित हों। उनका मुखमण्डल सुन्दर और सिर सिंदूरभरे माँगसे विभूषित हो। वे पद्म, स्वस्तिक और शङ्खसे तथा घुँघराले बालोंसे सुशोभित हों। उनके शरीरमें चोली बँधी हो और दोनों भुजाएँ हाथीके शुण्डादण्डकी भाँति स्थूल तथा केयूर और कङ्कणसे विभूषित हों। उनके बायें हाथमें कमल और दाहिने हाथमें श्रीफल होना चाहिये। उनकी शरीरकान्ति तपाये हुए स्वर्णके समान गौर वर्णकी हो। वे करधनीसे विभूषित, विविध आभूषणोंसे सम्पन्न तथा सुन्दर साड़ीसे सुसज्जित हों। उनके पार्श्वमें चँवर धारण करनेवाली स्त्रियोंकी प्रतिमाएँ निर्मित करनी चाहिये। वे पद्मसिंहासनपर पद्मासनसे स्थित हों। उन्हें दो हाथी शुण्डमें गड़ुए लिये हुए लगातार स्नान करा रहे हों तथा दो अन्य हाथी भी उनपर घटद्वारा जल छोड़ रहे हों। उस समय लोकेश्वरों, गन्धर्वों और यक्षोंद्वारा उनकी स्तुति की जा रही हो॥ ४०—४६ $\frac{1}{2}$॥

तथैव यक्षिणी कार्या सिद्धासुरनिषेविता॥ ४७
पार्श्वयो: कलशौ तस्यास्तोरणे देवदानवा:।
नागाश्चैव तु कर्तव्या: खड्गखेटकधारिण:॥ ४८

इसी प्रकार यक्षिणीकी प्रतिमा सिद्धों तथा असुरोंद्वारा सेवित बनानी चाहिये। उसके दोनों ओर दो कलश और तोरणमें देवताओं, दानवों और नागोंकी प्रतिमा रखनी चाहिये, जो खड्ग और ढाल धारण किये हुए हों।

अधस्तात् प्रकृतिस्तेषां नाभेरूर्ध्वं तु पौरुषी।
फणाश्च मूर्ध्नि कर्तव्या द्विजिह्वा बहवः समाः॥ ४९
पिशाचा राक्षसाश्चैव भूतवेतालजातयः।
निर्मांसाश्चैव ते सर्वे रौद्रा विकृतरूपिणः॥ ५०
क्षेत्रपालश्च कर्तव्यो जटिलो विकृताननः।
दिग्वासा जटिलस्तद्वच्छ्वगोमायुनिषेवितः॥ ५१
कपालं वामहस्ते तु शिरः केशसमावृतम्।
दक्षिणे शक्तिकां दद्यादसुरक्षयकारिणीम्॥ ५२
अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विभुजं कुसुमायुधम्।
पार्श्वे चाश्वमुखं तस्य मकरध्वजसंयुतम्॥ ५३
दक्षिणे पुष्पबाणं च वामे पुष्पमयं धनुः।
प्रीतिः स्याद् दक्षिणे तस्य भोजनोपस्करान्विता॥ ५४
रतिश्च वामपार्श्वे तु शयनं सारसान्वितम्।
पटश्च पटहश्चैव खरः कामातुरस्तथा॥ ५५
पार्श्वतो जलवापी च वनं नन्दनमेव च।
सुशोभनश्च कर्तव्यो भगवान् कुसुमायुधः॥ ५६
संस्थानमीषद्वक्त्रं स्याद् विस्मयस्मितवक्त्रकम्।
एतदुद्देशतः प्रोक्तं प्रतिमालक्षणं मया।
विस्तरेण न शक्नोति बृहस्पतिरपि द्विजाः॥ ५७

नीचेकी ओर उन नागोंका प्राकृतिक शरीर और नाभिसे ऊपर मनुष्यकी आकृति रहनी चाहिये। सिरपर बराबरीसे दिखायी पड़नेवाले दो जिह्वाओंसे युक्त बहुत-से फण बनाने चाहिये। पिशाच, राक्षस, भूत और बेताल जातियोंके लोगोंको भी बनाना चाहिये, वे सभी मांसरहित, विकृत रूपवाले और भयंकर हों। क्षेत्रपालकी प्रतिमा जटाओंसे युक्त, विकृत मुखवाली, नग्न, शृगालों और कुत्तोंसे सेवित बनानी चाहिये। उसका सिर केशोंसे आच्छादित हो। उसके बायें हाथमें कपाल और दाहिने हाथमें असुर-विनाशिनी शक्ति होनी चाहिये। अब इसके बाद मैं दो भुजाओंवाले कामदेवकी प्रतिमाका वर्णन कर रहा हूँ। उनकी एक ओर अश्वमुख मकरध्वजकी रचना करनी चाहिये। उसके दाहिने हाथमें पुष्प-बाण और बायें हाथमें पुष्पमय धनुष होना चाहिये। उनकी दाहिनी ओर भोजनकी सामग्रियोंसे युक्त प्रीतिकी तथा बायीं ओर रतिकी प्रतिमा शय्यासन एवं सारस पक्षीसे युक्त होनी चाहिये। उनके बगलमें वस्त्र, नगाड़ा तथा कामलोलुप गधा होना चाहिये। प्रतिमाके एक बगलमें जलसे पूर्ण बावली तथा नन्दनवन हो। इस तरह ऐश्वर्यशाली कामदेवको परम सुन्दर बनाना चाहिये। प्रतिमाकी मुद्रा कुछ वक्र, कुछ विस्मययुक्त और कुछ मुस्कराती हुई हो। ब्राह्मणो! मैंने संक्षेपमें यह प्रतिमाओंका लक्षण बतलाया है। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन तो बृहस्पति भी नहीं कर सकते॥ ४७—५७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने प्रतिमालक्षणं नामैकषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन-प्रसङ्गमें प्रतिमा-लक्षण नामक दो सौ एकसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६१॥



दो सौ बासठवाँ अध्याय

पीठिकाओंके भेद, लक्षण और फल

सूत उवाच

पीठिकालक्षणं वक्ष्ये यथावदनुपूर्वशः।
पीठोच्छ्रायं यथावच्च भागान् षोडश कारयेत्॥ १
भूमावेकः प्रविष्टः स्याच्चतुर्भिर्जगती मता।
वृत्तो भागस्तथैकः स्याद् वृतः पटलमागतः॥ २

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं आपलोगोंको पीठिकाओंके लक्षणोंको आनुपूर्वी यथार्थरूपसे बतला रहा हूँ। पीठिकाकी ऊँचाईको सोलह भागोंमें विभक्त करे। उनमें बीचका एक भाग पृथ्वीमें प्रविष्ट रहेगा। ऊपरके शेष चार भाग 'जगती' माने जाते हैं। उनसे ऊपरका एक भाग पटल भागसे घिरा हुआ 'वृत्त' कहलाता है।

भागैस्त्रिभिस्तथा कण्ठः कण्ठपट्टस्तु भागतः।
भागाभ्यामूर्ध्वपट्टश्च शेषभागेन पट्टिका॥ ३
प्रविष्टं भागमेकैकं जगतीं यावदेव तु।
निर्गमस्तु पुनस्तस्य यावद् वै शेषपट्टिका॥ ४
वारिनिर्गमनार्थं तु तत्र कार्यः प्रणालकः।
पीठिकानां तु सर्वासामेतत्सामान्यलक्षणम्॥ ५
विशेषान् देवताभेदाञ्शृणुध्वं द्विजसत्तमाः।
स्थण्डिला वाथ वापी वा यक्षी वेदी च मण्डला॥ ६
पूर्णचन्द्रा च वज्रा च पद्मा वार्धशशी तथा।
त्रिकोणा दशमी तासां संस्थानं वा निबोधत॥ ७
स्थण्डिला चतुरस्रा तु वर्जिता मेखलादिभिः।
वापी द्विमेखला ज्ञेया यक्षी चैव त्रिमेखला॥ ८
चतुरस्रायता वेदी न तां लिङ्गेषु योजयेत्।
मण्डला वर्तुला या तु मेखलाभिर्गणप्रिया॥ ९
रक्ता द्विमेखला मध्ये पूर्णचन्द्रा तु सा भवेत्।
मेखलात्रयसंयुक्ता षडस्रा वज्रिका भवेत्॥ १०

उसके ऊपर तीन भागोंसे कण्ठ, एक भागसे कण्ठपट्ट, दो भागोंसे ऊर्ध्वपट्ट तथा शेष भागोंसे पट्टिका बनायी जाती है। एक-एक भाग जगतीपर्यन्त एक-दूसरेमें प्रविष्ट रहते हैं। फिर शेषपट्टिका-पर्यन्त सबका निर्गम होता है। पट्टिकामें जल निकलनेके लिये (सोमसूत्रसे मिली) नाली बनानी चाहिये। यह सभी पीठिकाओंका सामान्य लक्षण है। ऋषिगण! अब देवताओंके भेदसे पीठिकाओंके विशेष लक्षण सुनिये। स्थण्डिला, वापी, यक्षी, वेदी, मण्डला, पूर्णचन्द्रा, वज्रा, पद्मा, अर्धशशी तथा दसवीं त्रिकोणा—ये पीठिकाओंके भेद हैं। अब इनकी स्थिति सुनिये। स्थण्डिला-पीठिका चौकोर होती है, इसमें मेखला आदि कुछ नहीं होती। वापीको दो मेखलाओंसे तथा यक्षीको तीन मेखलाओंसे युक्त जानना चाहिये। चार पहलवाली आयताकार पीठिका वेदी कही जाती है, उसे लिङ्गकी स्थापनामें प्रयुक्त नहीं करना चाहिये। मण्डला मेखलाओंसे युक्त गोलाकार होती है, वह प्रमथगणोंको प्रिय होती है। जो पीठिका लाल वर्णवाली तथा मध्यमें दो मेखलाओंसे युक्त होती है, उसे पूर्णचन्द्रा कहते हैं। तीन मेखलाओंसे युक्त छः कोनेवाली पीठिकाको वज्रा कहते हैं॥ १—१०॥

षोडशास्रा भवेत् पद्मा किंचिद्ध्रस्वा तु मूलतः।
तथैव धनुषाकारा सार्धचन्द्रा प्रशस्यते॥ ११
त्रिशूलसदृशी तद्वत् त्रिकोणा ह्यूर्ध्वतो मता।
प्रागुदक्प्रवणा तद्वत् प्रशस्ता लक्षणान्विता॥ १२
परिवेषं त्रिभागेन निर्गमं तत्र कारयेत्।
विस्तारं तत्प्रमाणं च मूले चाग्रे तथोर्ध्वतः॥ १३
जलमार्गश्च कर्तव्यस्त्रिभागेन सुशोभनः।
लिङ्गस्यार्धविभागेन स्थौल्येन समधिष्ठिता॥ १४
मेखला तत्त्रिभागेन खातं चैव प्रमाणतः।
अथवा पादहीनं तु शोभनं कारयेत् सदा॥ १५
उत्तरस्थं प्रणालं च प्रमाणादधिकं भवेत्।
स्थण्डिलायामथारोग्यं धनं धान्यं च पुष्कलम्॥ १६
गोप्रदा च भवेद् यक्षी वेदी सम्पत्प्रदा भवेत्।
मण्डलायां भवेत् कीर्तिवरदा पूर्णचन्द्रिका॥ १७

मूल भागमें कुछ छोटी (पद्मपत्र-सी) सोलह पहलोंवाली पीठिका पद्मा कही जाती है। उसी प्रकार धनुषके आकारवाली पीठिकाको अर्धचन्द्रा कहते हैं। ऊपरसे त्रिशूलके समान दिखायी पड़नेवाली, पूर्व तथा उत्तरकी ओर कुछ ढालू एवं श्रेष्ठ लक्षणोंसे युक्त पीठिकाको त्रिकोणा कहते हैं। पीठिकाके तीन भाग परिधिके बाहर रहें और मूल, अग्रभाग तथा ऊपर—इन तीनों भागोंके विस्तार अधिक हों। त्रिभागमें जल निकलनेकी सुन्दर नाली (सोमसूत्र) होनी चाहिये। पीठिका लिङ्गके आधे भागकी मोटाईके परिमाणसे बनानी चाहिये। लिङ्गके तीन भागके बराबर मेखलाका खात बनाना चाहिये। अथवा वह चौथाई भागसे कम रहे, किंतु सर्वदा सुन्दर बनाना चाहिये। उत्तरकी ओर स्थित नाली प्रमाणसे कुछ अधिक ही बनानी चाहिये। स्थण्डिला-पीठिकाके स्थापित करनेसे आरोग्य तथा विपुल धन-धान्यादिकी प्राप्ति होती है। यक्षी गौ देनेवाली तथा वेदी सम्पत्तिदायिनी कही गयी है। मण्डलामें कीर्ति प्राप्त होती है और पूर्णचन्द्रिका वरदान देनेवाली कही गयी है।

आयुष्प्रदा भवेद् वज्रा पद्मा सौभाग्यदा भवेत्।
पुत्रप्रदार्धचन्द्रा स्यात् त्रिकोणा शत्रुनाशिनी॥ १८

देवस्य यजनार्थं तु पीठिका दश कीर्तिताः।
शैले शैलमयीं दद्यात् पार्थिवे पार्थिवीं तथा॥ १९

दारुजे दारुजां कुर्यान्मिश्रे मिश्रां तथैव च।
नान्ययोनिस्तु कर्तव्या सदा शुभफलेप्सुभिः॥ २०

अर्चायामासमं दैर्घ्यं लिङ्गायामसमं तथा।

यस्य देवस्य या पत्नी तां पीठे परिकल्पयेत्।
एतत् सर्वं समाख्यातं समासात् पीठलक्षणम्॥ २१

वज्रा दीर्घायु प्रदान करनेवाली तथा पद्मा सौभाग्यदायिनी कही गयी है। अर्धचन्द्रा पुत्र प्रदान करनेवाली तथा त्रिकोणा शत्रुनाशिनी होती है। इस प्रकार देवताकी पूजाके लिये ये दस पीठिकाएँ कही गयी हैं। पत्थरकी प्रतिमामें पत्थरकी तथा मिट्टीकी मूर्तिमें मिट्टीकी पीठिका देनी चाहिये। इसी प्रकार काष्ठकी मूर्तिमें काष्ठकी तथा मिश्रित धातुओंकी प्रतिमामें धातुमिश्रितकी पीठिका रखनी चाहिये। शुभ फलकी कामना करनेवालोंको दूसरे प्रकारकी पीठिका कभी नहीं देनी चाहिये। पीठिकाकी लम्बाई मूर्तिमें तथा लिङ्गमें बराबर नहीं रखी जाती। जिस देवताकी जो पत्नी हो, उसे उसी पीठपर स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार यह मैंने आपलोगोंको संक्षेपमें पीठिकाका लक्षण बतलाया है॥ ११—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तने पीठिकानुकीर्तनं नाम द्विषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६२॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन-प्रसङ्गमें पीठिका-वर्णन नामक दो सौ बासठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६२॥



दो सौ तिरसठवाँ अध्याय

शिवलिङ्गके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि लिङ्गलक्षणमुत्तमम्।
सुस्निग्धं च सुवर्णं च लिङ्गं कुर्याद् विचक्षणः॥ १

प्रासादस्य प्रमाणेन लिङ्गमानं विधीयते।
लिङ्गमानेन वा विद्यात् प्रासादं शुभलक्षणम्॥ २

चतुरस्त्रे समे गर्ते ब्रह्मसूत्रं निपातयेत्।
वामेन ब्रह्मसूत्रस्य अर्चा वा लिङ्गमेव च॥ ३

प्रागुत्तरेण लीनं तु दक्षिणापरमाश्रितम्।
पुरस्यापरदिग्भागे पूर्वद्वारं प्रकल्पयेत्॥ ४

पूर्वेण चापरं द्वारं माहेन्द्रं दक्षिणोत्तरम्।
द्वारं विभज्य पूर्वं तु एकविंशतिभागिकम्॥ ५

ततो मध्यगतं ज्ञात्वा ब्रह्मसूत्रं प्रकल्पयेत्।
तस्यार्धं तु त्रिधा कृत्वा भागं चोत्तरतस्त्यजेत्॥ ६

एवं दक्षिणतस्त्यक्त्वा ब्रह्मस्थानं प्रकल्पयेत्।
भागार्धेन तु यल्लिङ्गं कार्यं तदिह शस्यते॥ ७

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं लिङ्गके उत्तम लक्षणका वर्णन कर रहा हूँ। चतुर पुरुष अत्यन्त चिकने एवं श्रेष्ठ (श्वेत) रंगके शिवलिङ्गका निर्माण करे। मन्दिरके प्रमाणके अनुसार ही शिवलिङ्गका प्रमाण बतलाया गया है। अथवा शिवलिङ्गके प्रमाणानुसार शिव-मन्दिरका निर्माण शुभ जानना चाहिये। सर्वप्रथम चौकोर एवं समतल गर्तमें ब्रह्मसूत्र गिराना चाहिये। ब्रह्मसूत्रकी बायीं ओर अर्चा या लिङ्गकी स्थापना करनी चाहिये। वहाँ पूर्वोत्तर या दक्षिणपूर्वकी ओर पूर्वद्वार बनाना चाहिये। वह द्वार कुछ दक्षिणाश्रित या ईशानमें लीन रहना चाहिये। पूर्वका यह द्वार माहेन्द्रद्वार कहलाता है। प्रथमतः पूर्वद्वारको इक्कीस भागोंमें विभक्तकर मध्य भागमें ब्रह्मसूत्रकी कल्पना करनी चाहिये। इसके अर्धभागको तीन भागोंमें विभक्तकर उत्तरकी ओर तथा दक्षिणकी ओर एक-एक भाग छोड़कर ब्रह्मस्थानकी कल्पना करनी चाहिये। उस अर्धभागमें लिङ्गकी स्थापना प्रशस्त मानी गयी है।

पञ्चभागविभक्तेषु त्रिभागो ज्येष्ठ उच्यते।
भाजिते नवधा गर्भे मध्यमं पाञ्चभागिकम्॥ ८
एकस्मिन्नेव नवधा गर्भे लिङ्गानि कारयेत्।
समसूत्रं विभज्याथ नवधा गर्भभाजितम्॥ ९
ज्येष्ठमर्धं कनीयोऽर्धं तथा मध्यममध्यमम्।
एवं गर्भः समाख्यातस्त्रिभिर्मार्गैर्विभाजयेत्॥ १०
ज्येष्ठं तु त्रिविधं ज्ञेयं मध्यमं त्रिविधं तथा।
कनीयस्त्रिविधं तद्वल्लिङ्गभेदा नवैव तु॥ ११

उसे पाँच भागोंमें विभक्त कर उनमें तीन भागोंको ज्येष्ठ कहा जाता है। भीतरी मानको नौ भागोंमें विभक्त कर उसके पञ्चम भागको मध्यम कहते हैं। गर्भके एक ही भागको नौ भागमें विभक्तकर उनमें लिङ्गोंको स्थापित करे। इसी समसूत्रवाले गर्भ-भागको नौ भागमें विभक्त करे। उनमें आधा ज्येष्ठ, आधा कनिष्ठ और मध्यभाग मध्यम कहलाता है। इस प्रकार गर्भको तीन भागोंमें विभक्त करना चाहिये। फिर उनमें तीन ज्येष्ठ, तीन मध्यम और तीन कनिष्ठ भेद होते हैं, जिससे लिङ्गोंके कुल नौ भेद होते हैं*॥ १—११॥

नाभ्यर्धमष्टभागेन विभज्याथ समं बुधैः।
भागत्रयं परित्यज्य विष्कम्भं चतुरस्रकम्॥ १२
अष्टास्रं मध्यमं ज्ञेयं भागं लिङ्गस्य वै ध्रुवम्।
विकीर्णे चेत् ततो गृह्य कोणाभ्यां लाञ्छयेद् बुधः॥ १३
अष्टास्रं कारयेत् तद्वदूर्ध्वमप्येवमेव तु।
षोडशास्रीकृतं पश्चाद् वर्तुलं कारयेत् ततः॥ १४

बुद्धिमान् पुरुषोंको चाहिये कि नाभिके आधे भागके बराबर आठ भाग करे, फिर उनमें तीन भागोंको छोड़कर चौकोर विष्कम्भ बनाये। लिङ्गके मध्यभागमें आठ कोण रहना चाहिये। तदनन्तर बुद्धिमानोंको बचे हुए भागको दो कोणोंसे लाञ्छित करना चाहिये। उसी प्रकार ऊपरका भाग भी आठ कोणोंवाला बनाये। सोलह कोणोंवाले भागको गोलाकारमें परिणत कर दे।

---

* श्रीविद्यार्णवतन्त्रके ११वें श्वासमें लिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि इस प्रकार दी गयी है—

अपनी रुचिके अनुसार लिङ्ग कल्पित करके उसके मस्तकका विस्तार उतना ही रखे, जितनी पूजित लिङ्गभागकी ऊँचाई हो। शैवागमका भी वचन है—'लिङ्गमस्तकविस्तारो लिङ्गोच्छ्रायसमो भवेत्।' लिङ्गके मस्तकका विस्तार जितना हो, उससे तिगुने सूत्रसे वेष्टित होने योग्य लिङ्गकी स्थूलता (मोटाई) रखे। शिवलिङ्गकी जो स्थूलता या मोटाई है, उसके सूत्रके बराबर पीठका विस्तार रखे। तत्पश्चात् पूज्य लिङ्गका जो उच्च अंश है, उससे दुगुनी ऊँचाईसे युक्त वृत्ताकार या चतुरस्र पीठ बनावे। पीठके मध्यभागमें लिङ्गके स्थूलतामात्रसूचक नाहसूत्रसे द्विगुण सूत्रसे वेष्टित होने योग्य स्थूल कण्ठका निर्माण करे। कण्ठके ऊपर और नीचे समभागसे तीन या दो मेखलाओंकी रचना करे। तदनन्तर लिङ्गके मस्तकका जो विस्तार है, उसको छः भागोंमें विभक्त करे। उनमेंसे एक अंशके मानके अनुसार पीठके ऊपरी भागमें सबसे बाहरी अंशके द्वारा मेखला बनावे। उसके भीतर उसी मानके अनुसार उससे संलग्न अंशके द्वारा खात (गर्त)-की रचना करे। पीठसे बाह्यभागमें लिङ्गके समान ही बड़ी अथवा पीठमानके आधे मानके बराबर बड़ी, मूलदेशमें मानके समान विस्तारवाली और अग्रभागमें उसके आधे मानके तुल्य विस्तारवाली नाली बनावे। इसीको 'प्रणाल' कहते हैं। प्रणालके मध्यमें मूलसे अग्रभागपर्यन्त जलमार्ग बनावे। प्रणालका जो विस्तार है, उसके एक तिहाई विस्तारवाले खातरूप जलमार्गसे युक्त पीठसदृश मेखलायुक्त प्रणाल बनाना चाहिये। यह स्फटिक आदि रत्नविशेषों अथवा पाषाण आदिके द्वारा शिवलिङ्ग-निर्माणकी साधारण विधि है। तथा—

लिङ्गमस्तकविस्तारं पूज्यभागसमं नयेत्। ....लक्षणमाचरेत्॥ (१—८)

'समराङ्गणसूत्रधार'में कहा है कि दो-दो अंशकी वृद्धि करते हुए तीन हाथकी लंबाईतक पहुँचते-पहुँचते नौ लिङ्ग निर्मित हो सकते हैं—'द्व्यंशवृद्धा नवैवं स्युराहस्तत्रितयावधेः।' सूर्यप्रोक्त 'अंशुमद्भेदागम' तथा अग्निपुराण अध्याय ५४के २८वें श्लोकमें एवं विश्वकर्माके 'शिल्पप्रकाश' ग्रन्थमें लिङ्ग-भेदोंकी परिगणना की गयी है और सब मिलाकर चौदह हजार चौदह सौ भेद कहे गये हैं। विश्वकर्माके ही एक-दूसरे शास्त्र 'अपराजित-पृच्छा'के अवलोकनसे इन भेदोंपर विशेष प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार समस्त लिङ्गभेद १४४२० होते हैं। इसका प्रकार बताया जाता है—प्रस्तरमय लिङ्ग कम-से-कम एक हाथका होता है, उससे कम नहीं। उसका अन्तिम आयाम नौ हाथका बताया गया है। इस प्रकार एक हाथसे लेकर नौ हाथतकके बनाये जायँ तो उनकी संख्या नौ होती है। इनका प्रस्तार यों समझना चाहिये—

एक हाथसे तीन हाथतकके शिवलिङ्ग 'कनिष्ठ' कहे गये हैं। चारसे छः हाथतकके 'मध्यम' माने गये हैं और सातसे नौ हाथतकके 'उत्तम' या 'ज्येष्ठ' कहे गये हैं। इन तीनोंके प्रमाणमें पादवृद्धि करनेसे कुल ३३ शिवलिङ्ग होते हैं। यथा—

एक हाथ[१], सवा हाथ[२], डेढ़ हाथ[३], पौने दो हाथ[४], दो हाथ[५], सवा दो हाथ[६], ढाई हाथ[७], पौने तीन हाथ[८], तीन हाथ[९], सवा तीन

आयामं तस्य देवस्य नाभ्यां वै कुण्डलीकृतम्।
माहेश्वरं त्रिभागं तु ऊर्ध्ववृत्तं त्ववस्थितम्॥ १५
अधस्ताद् ब्रह्मभागस्तु चतुरस्रो विधीयते।
अष्टास्रो वैष्णवो भागो मध्यस्तस्य उदाहृतः॥ १६
एवं प्रमाणसंयुक्तं लिङ्गं वृद्धिप्रदं भवेत्।
तथान्यदपि वक्ष्यामि गर्भमानं प्रमाणतः॥ १७
गर्भमानप्रमाणेन यल्लिङ्गमुचितं भवेत्।
चतुर्धा तद् विभज्याथ विष्कम्भं तु प्रकल्पयेत्॥ १८
देवतायतनं सूत्रं भागत्रयविकल्पितम्।
अधस्ताच्चतुरस्रं तु अष्टास्रं मध्यभागतः॥ १९
पूज्यभागस्ततोऽर्धं तु नाभिभागस्तथोच्यते।
आयामे यद् भवेत् सूत्रं नाहस्य चतुरस्रके॥ २०
चतुरस्रं परित्यज्य अष्टास्रस्य तु यद् भवेत्।
तस्याप्यर्धं परित्यज्य ततो वृत्तं तु कारयेत्॥ २१
शिरः प्रदक्षिणं तस्य संक्षिप्तं मूलतो न्यसेत्।
भ्रष्टपूजं भवेल्लिङ्गमधस्ताद् विपुलं च यत्॥ २२

उस देवताकी नाभिमें लम्बाई कुण्डलीकृत माहेश्वर भागका होगी। लिङ्गमें भाग ऊर्ध्व-वृत्तरूपसे स्थित त्रिभाग होगा। उसके नीचे ब्रह्मभाग होगा, जो चौकोर बनाया जाता है। मध्यभाग, जो आठ कोणोंवाला होता है, वैष्णवभाग कहा जाता है। इन प्रमाणोंसे निर्मित लिङ्ग समृद्धि देनेवाला होता है। अब गर्भमानके प्रमाणसे बननेवाले लिङ्गका वर्णन कर रहा हूँ। जो लिङ्ग गर्भमानके प्रमाणसे निर्मित होता है, वह उचित होता है। उसे चार भागोंमें विभक्तकर विष्कम्भकी कल्पना करे। देवायतनको सूत्रद्वारा नापकर उसे तीन भागोंमें विभक्त करे। जिसमें नीचेका भाग चार कोणवाला और मध्यभाग आठ कोणवाला हो। इसके ऊपर पूज्यभाग और नाभिभाग कहा जाता है। लम्बाईका विस्तार चौकोर प्रमाणका होना चाहिये। उस चौकोर भागको छोड़कर आठ कोणवाला जो भाग हो, उसके आधे भागको छोड़कर वृत्ताकार बनाना चाहिये॥ १२—२१॥

उसके मङ्गलमय सिरको मूलदेशसे बिलकुल सीधे रूपमें स्थापित करे। जिस लिङ्गके नीचेका भाग बहुत

हाथ[१०], साढ़े तीन हाथ[११], पौने चार हाथ[१२], चार हाथ[१३], सवा चार हाथ[१४], साढ़े चार हाथ[१५], पौने पाँच हाथ[१६], पाँच हाथ[१७], सवा पाँच हाथ[१८], साढ़े पाँच हाथ[१९], पौने छः हाथ[२०], छः हाथ[२१], सवा छः हाथ[२२], साढ़े छः हाथ[२३], पौने सात हाथ[२४], सात हाथ[२५], सवा सात हाथ[२६], साढ़े सात हाथ[२७], पौने आठ हाथ[२८], आठ हाथ[२९], सवा आठ हाथ[३०], साढ़े आठ हाथ[३१], पौने नौ हाथ[३२], नौ हाथ[३३]।

इन तैंतीसोंके नाम विश्वकर्माने क्रमशः इस प्रकार बताये हैं—१. भव, २. भवोद्भव, ३. भाव, ४. संसारभयनाशन, ५. पाशयुक्त, ६. महातेज, ७. महादेव, ८. परात्पर, ९. ईश्वर, १०. शेखर, ११. शिव, १२. शान्त, १३. मनोह्लादक, १४. रुद्रतेज, १५. सदात्मक (सद्योजात), १६. वामदेव, १७. अघोर, १८. तत्पुरुष, १९. ईशान, २०. मृत्युंजय, २१. विजय, २२. किरणाक्ष, २३. अघोरास्त्र, २४. श्रीकण्ठ, २५. पुण्यवर्धन, २६. पुण्डरीक, २७. सुवक्त्र, २८. उमातेजः, २९. विश्वेश्वर, ३०. त्रिनेत्र, ३१. त्र्यम्बक, ३२. घोर, ३३. महाकाल।

पूर्वोक्त क्रमसे पादार्धवृद्धि करनेपर		६५	तक संख्या पहुँचेगी।
" "	दो अङ्गुल वृद्धि करनेपर	९७	" " "
" "	एक " " "	१९३	" " "
" "	अर्द्धाङ्गुल " "	३८५	" " "
" "	अङ्गुलका चतुर्थांश बढ़ानेपर	७६९	" " "
" "	एक-एक मूँगके मानकी वृद्धि करनेपर	१४४२	" " "
" "	मुद्ग-प्रमाण लिङ्गोंमें प्रत्येकके दस भेद करनेपर	१४४२०	पहुँचेगी।

'देवमूर्तिप्रकरणम्' नामक ग्रन्थके छठे अध्यायमें शिवजीकी चौबीस मूर्तियाँ बतायी गयी हैं। उनके लिङ्ग धातु, रत्न, काष्ठ और शिलाके बनाये जाते हैं। इनमें नागरलिङ्ग, द्राविणलिङ्ग, वेशरलिङ्ग, स्फाटिकलिङ्ग तथा बाणलिङ्गका विशेष महत्त्व है। वहाँ इन लिङ्गोंके पृथक्-पृथक् नाम और निर्माणकी विधि दी गयी है। साथ ही प्रासाद, पीठिका और प्रणाल आदिका विशेषरूपसे निरूपण किया गया है। इस विषयपर सर्वाधिक विस्तार 'अंशुमद्भेदागम' (काश्यपशिल्प) तथा 'वीरमित्रोदय लक्षणप्रकाश' में है। विशेष जानकारीके लिये उन्हीं प्रकरणोंको देखना चाहिये।

शिरसा च सदा निम्नं मनोज्ञं लक्षणान्वितम्।
सौम्यं तु दृश्यते यत्तु लिङ्गं तद् वृद्धिदं भवेत्॥ २३

अथ मूले च मध्ये तु प्रमाणे सर्वतः समम्।
एवंविधं तु यल्लिङ्गं भवेत् तत् सार्वकामिकम्॥ २४

अन्यथा यद् भवेल्लिङ्गं तदसत् सम्प्रचक्षते।
एवं रत्नमयं कुर्यात् स्फाटिकं पार्थिवं तथा।
शुभं दारुमयं चापि यद् वा मनसि रोचते॥ २५

चौड़ा होता है, वह पूजनीय नहीं रह जाता। जो लिङ्ग सिरकी ओरसे सदा निम्न, मनोहर, उत्तम लक्षणोंसे युक्त तथा सौम्य दिखायी पड़ता है, वह समृद्धिको देनेवाला होता है। जो लिङ्ग मूल तथा मध्यभागमें एक समान रहता है, वह सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है। जो लिङ्ग इन उपर्युक्त लक्षणोंसे भिन्न होते हैं, वे असत् कहे जाते हैं अर्थात् वे अपूजनीय लिङ्ग हैं। इस प्रकार ऊपर बताये गये प्रमाणोंके अनुसार रत्न, स्फटिक, मिट्टी अथवा शुभ काष्ठका लिङ्ग अपनी रुचिके अनुकूल स्थापित करना चाहिये॥ २२—२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतार्चानुकीर्तनं नाम त्रिषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवतार्चानुकीर्तन नामक दो सौ तिरसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६३॥



दो सौ चौंसठवाँ अध्याय

प्रतिमा-प्रतिष्ठाके प्रसङ्गमें यज्ञाङ्गरूप कुण्डादिके निर्माणकी विधि

ऋषय ऊचुः

देवतानामथैतासां प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्।
वद सूत यथान्यायं सर्वेषामप्यशेषतः॥ १

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! अब आप इन सभी देवताओंकी प्रतिमाके स्थापनकी उत्तम विधि यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ १॥

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रतिष्ठाविधिमुत्तमम्।
कुण्डमण्डपवेदीनां प्रमाणं च यथाक्रमम्॥ २
चैत्रे वा फाल्गुने वापि ज्येष्ठे वा माधवे तथा।
माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्॥ ३
प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते दक्षिणायने।
पञ्चमी च द्वितीया च तृतीया सप्तमी तथा॥ ४
दशमी पौर्णमासी च तथा श्रेष्ठा त्रयोदशी।
आसु प्रतिष्ठा विधिवत् कृता बहुफला भवेत्॥ ५
आषाढे द्वे तथा मूलमुत्तराद्वयमेव च।
ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वाभाद्रपदा तथा॥ ६
हस्ताश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरास्तथा।
अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते॥ ७
बुधो बृहस्पतिः शुक्रस्त्रयोऽप्येते शुभग्रहाः।
एभिर्निरीक्षितं लग्नं नक्षत्रं च प्रशस्यते॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं क्रमशः देवप्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी उत्तम विधि तथा मण्डप, कुण्ड और वेदीके प्रमाणको बतला रहा हूँ। फाल्गुन, चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ अथवा माघमासमें सभी देवताओंकी प्रतिष्ठा शुभदायिनी होती है। दक्षिणायन बीत जानेपर अर्थात् उत्तरायणमें शुभकारी शुक्लपक्षमें द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, त्रयोदशी, पूर्णमासी तिथियोंमें विधिपूर्वक की गयी प्रतिष्ठा बहुत फल देनेवाली होती है। पूर्वाषाढ़, उत्तराषाढ़, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराभाद्रपद, ज्येष्ठा, श्रवण, रोहिणी, पूर्वाभाद्रपद, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा तथा स्वाती—ये नक्षत्र प्रतिष्ठा आदिमें प्रशस्त माने गये हैं। बुध, बृहस्पति तथा शुक्र—ये तीनों ग्रह शुभकारक हैं। इन तीनों ग्रहोंसे दृष्ट (एवं युक्त) लग्न तथा नक्षत्र

ग्रहताराबलं लब्ध्वा ग्रहपूजां विधाय च।
निमित्तं शकुनं लब्ध्वा वर्जयित्वाद्भुतादिकम्॥ ९

शुभयोगे शुभस्थाने क्रूरग्रहविवर्जिते।
लग्ने ऋक्षे प्रकुर्वीत प्रतिष्ठादिकमुत्तमम्॥ १०

प्रशंसनीय हैं। ग्रह और ताराका बल प्राप्तकर तथा उनकी पूजाकर शुभ शकुनको देखकर, अद्भुत आदि बुरे योगोंको छोड़कर शुभयोगमें शुभस्थानपर क्रूर ग्रहोंसे रहित शुभ लग्न एवं शुभ नक्षत्रमें प्रतिष्ठा आदि उत्तम कार्योंको करना चाहिये॥ २—१०॥

अयने विषुवे तद्वत् षडशीतिमुखे तथा।
एतेषु स्थापनं कार्यं विधिदृष्टेन कर्मणा॥ ११

प्राजापत्ये तु शयनं श्वेते तूत्थापनं तथा।
मुहूर्त्ते स्थापनं कुर्यात् पुनर्ब्राह्मे विचक्षणः॥ १२

प्रासादस्योत्तरे वापि पूर्वे वा मण्डपो भवेत्।
हस्तान् षोडश कुर्वीत दश द्वादश वा पुनः॥ १३

मध्ये वेदिकया युक्तः परिक्षिप्तः समंततः।
पञ्च सप्तापि चतुरः करान् कुर्वीत वेदिकाम्॥ १४

चतुर्भिस्तोरणैर्युक्तो मण्डपः स्याच्चतुर्मुखः।
प्लक्षद्वारं भवेत् पूर्वं याम्ये चौदुम्बरं भवेत्॥ १५

पश्चादश्वत्थघटितं नैयग्रोधं तथोत्तरे।
भूमौ हस्तप्रविष्टानि चतुर्हस्तानि चोच्छ्रये॥ १६

सूपलिप्तं तथा श्लक्ष्णं भूतलं स्यात् सुशोभनम्।
वस्त्रैर्नानाविधैस्तद्वत् पुष्पपल्लवशोभितम्॥ १७

कृत्वैवं मण्डपं पूर्वं चतुर्द्वारेषु विन्यसेत्।
अव्रणान् कलशानष्टौ ज्वलत्काञ्चनगर्भितान्॥ १८

चूतपल्लवसंछन्नान् सितवस्त्रयुगान्वितान्।
सर्वौषधिफलोपेतांश्चन्दनोदकपूरितान्॥ १९

एवं निवेश्य तद्गर्भे गन्धधूपार्चनादिभिः।
ध्वजादिरोहणं कार्यं मण्डपस्य समन्ततः॥ २०

अयन (कर्क-मकर), विषुव (तुला-मेष) और षडशीतिमुख (कन्या, मिथुन, धनुर्मीन) संक्रान्तियोंमें विधिपूर्वक अनुष्ठानद्वारा देवस्थापन करना चाहिये। चतुर मनुष्यको चाहिये कि वह प्राजापत्य मुहूर्तमें शयन, श्वेतमें उत्थापन तथा ब्राह्ममें स्थापन करे। अपने महलकी पूर्व अथवा उत्तर दिशामें मण्डप बनवाना चाहिये। उसे सोलह, बारह अथवा दस हाथका बनाना चाहिये। उसके मध्यभागमें वेदी होनी चाहिये, जो चारों ओरसे समान तथा पाँच, सात या चार हाथ विस्तृत हो। चतुर्मुख मण्डपके चारों ओर चार तोरण बने हों। पूर्व दिशामें पाकड़का, दक्षिणमें गूलरका, पश्चिममें पीपलका तथा उत्तरमें बरगदका द्वार होना चाहिये, जो भूमिमें एक हाथ प्रविष्ट हों तथा भूमिसे ऊपर चार हाथ ऊँचे हों। उसका भूतल भलीभाँति लिपा हुआ, चिकना तथा सुन्दर होना चाहिये। इसी प्रकार विविध वस्त्र, पुष्प और पल्लवोंसे सुशोभित करना चाहिये। इस प्रकार मण्डपका निर्माण कर पहले चारों द्वारोंपर छिद्ररहित आठ कलशोंकी स्थापना करनी चाहिये, जो देदीप्यमान सुवर्णकी भाँति कान्तियुक्त, आमके पल्लवोंसे आच्छादित, दो श्वेत वस्त्रोंसे युक्त, सभी ओषधियों एवं फलोंसे सम्पन्न तथा चन्दनमिश्रित जलसे परिपूर्ण हों। इस प्रकार उन कलशोंको स्थापित कर गन्ध, धूप आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा उनके भीतर पूजन करे। फिर मण्डपके चारों ओर ध्वजा आदिकी स्थापना करनी चाहिये॥ ११—२०॥

ध्वजांश्च लोकपालानां सर्वदिक्षु निवेशयेत्।
पताका जलदाकारा मध्ये स्यान्मण्डपस्य तु॥ २१

गन्धधूपादिकं कुर्यात् स्वैः स्वैर्मन्त्रैरनुक्रमात्।
बलिं च लोकपालेभ्यः स्वमन्त्रेण निवेदयेत्॥ २२

ऊर्ध्वं तु ब्रह्मणे देयं त्वधस्ताच्छेषवासुकेः।
संहितायां तु ये मन्त्रास्तद्दैवत्याः शुभाः स्मृताः॥ २३

लोकपालोंकी पताका सभी दिशाओंमें स्थापित करे। मण्डपके मध्यभागमें बादलके रंगकी अथवा बहुत ऊँची पताका स्थापित करनी चाहिये। फिर क्रमशः लोकपालोंके पृथक्-पृथक् मन्त्रोंद्वारा गन्ध-धूपादिसे उनकी पूजा करे तथा उन्हींके मन्त्रोंद्वारा उन्हें बलि प्रदान करे। ब्रह्माजीके लिये ऊपर तथा शेष वासुकिके लिये नीचे पूजाका विधान कहा गया है। संहितामें जो मन्त्र जिस देवताके लिये आये हैं, उसीके लिये प्रयुक्त होनेपर मङ्गलकारी माने गये हैं।

तैः पूजा लोकपालानां कर्तव्या च समन्ततः।
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा॥ २४
अथवा सप्तरात्रं तु कार्यं स्यादधिवासनम्।
एवं सतोरणं कृत्वा अधिवासनमुत्तमम्॥ २५
तस्याप्युत्तरतः कुर्यात् स्नानमण्डपमुत्तमम्।
तदर्धेन त्रिभागेन चतुर्भागेन वा पुनः॥ २६
आनीय लिङ्गमर्चां वा शिल्पिनः पूजयेद् बुधः।
वस्त्राभरणरत्नैश्च येऽपि तत्परिचारकाः॥ २७
क्षमध्वमिति तान् ब्रूयाद् यजमानोऽप्यतः परम्।
देवं प्रस्तरणे कृत्वा नेत्रज्योतिः प्रकल्पयेत्॥ २८
अक्ष्णोरुद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्यापि समासतः।
सर्वतस्तु बलिं दद्यात् सिद्धार्थघृतपायसैः॥ २९
शुक्लपुष्पैरलङ्कृत्य घृतगुग्गुलधूपितम्।
विप्राणां चार्चनं कुर्याद् दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्॥ ३०
गां महीं कनकं चैव स्थापकाय निवेदयेत्।
लक्षणं कारयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन वै द्विजः॥ ३१
ओं नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः॥ ३२
मन्त्रोऽयं सर्वदेवानां नेत्रज्योतिष्वपि स्मृतः।
एवमामन्त्र्य देवेशं काञ्चनेन विलेखयेत्॥ ३३
मङ्गल्यानि च वाद्यानि ब्रह्मघोषं सगीतकम्।
वृद्ध्यर्थं कारयेद् विद्वानमङ्गल्यविनाशनम्॥ ३४
लक्षणोद्धरणं वक्ष्ये लिङ्गस्य सुसमाहितः।
त्रिधा विभज्य पूज्यायां लक्षणं स्याद् विभाजकम्॥ ३५
लेखात्रयं तु कर्तव्यं यवाष्टान्तरसंयुतम्।
न स्थूलं न कृशं तद्वन्न वक्रं छेदवर्जितम्॥ ३६
निम्नं यवप्रमाणेन ज्येष्ठलिङ्गस्य कारयेत्।
सूक्ष्मास्ततस्तु कर्तव्या यथा मध्यमके न्यसेत्॥ ३७

उन्हीं मन्त्रोंद्वारा चारों ओर लोकपालोंकी पूजा करनी चाहिये। तत्पश्चात् तीन रात, एक रात, पाँच रात अथवा सात राततक उनका अधिवासन करना चाहिये। इस प्रकार तोरण तथा उत्तम अधिवासन कर उक्त मण्डपकी उत्तर दिशामें उसके आधे, तिहाई अथवा चौथाई भागके परिमाणसे उत्तम स्नानमण्डपका निर्माण करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष लिङ्ग या मूर्तिको लाकर कारीगरों तथा उनके सभी अनुचरोंकी वस्त्र, आभूषण और रत्नद्वारा पूजा करे। तदनन्तर यजमान उनसे यह कहे कि 'मेरे अपराधोंको क्षमा कीजिये।' तत्पश्चात् देवताको बिछौनेपर लिटाकर उनकी नेत्रज्योति सम्पादित करे॥ २१—२८॥

अब मैं संक्षेपमें नेत्रों तथा अन्य चिह्नोंके उद्धारका प्रकार बता रहा हूँ। पहले देवताके चारों ओर पीली सरसों, घृत और खीरद्वारा बलि प्रदान करे। फिर श्वेत पुष्पोंसे अलंकृतकर घृत और गुग्गुलसे धूप करनेके बाद ब्राह्मणोंकी पूजा करे और उन्हें अपनी शक्तिके अनुकूल दक्षिणा दे। स्थापना करानेवाले ब्राह्मणको गौ, पृथ्वी तथा सुवर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये। फिर ब्राह्मण भक्तिपूर्वक इस मन्त्रद्वारा देवप्रतिमामें नेत्र (ज्योति)-की स्थापना करे अथवा करवाये। मन्त्र यों है—

'ॐ नमो भगवते तुभ्यं शिवाय परमात्मने।
हिरण्यरेतसे विष्णो विश्वरूपाय ते नमः।'

'विष्णो! आप शिव, परमात्मा, हिरण्यरेता, विश्वरूप और ऐश्वर्यशाली हैं, आपको बारंबार नमस्कार है।' यह मन्त्र सभी देवताओंकी प्रतिमाके नेत्रज्योतिसंस्कारमें उपयोगी माना गया है। इस प्रकार देवेशको आमन्त्रित कर सुवर्णकी शलाकाद्वारा उन्हें चिह्नित करे। तदुपरान्त विद्वान् पुरुष अपनी समृद्धि तथा अमङ्गलका विनाश करनेके लिये माङ्गलिक वाद्य, गीत और ब्राह्मणोंकी वेदध्वनियोंका समारोह करे। अब मैं स्वस्थचित्त होकर लिङ्गके लक्षणोद्धारणका प्रकार बता रहा हूँ। लिङ्गके तीन भाग करना चाहिये। उसमें विभाजक लक्षण होता है। आठ जौका अन्तर रखते हुए तीन रेखा चिह्नित करनी चाहिये, वे न तो मोटी हों, न सूक्ष्म हों, न टेढ़ी हों और न उनमें छिद्र हो। ज्येष्ठ लिङ्गमें जौके प्रमाणकी निम्न रेखा अंकित करनी चाहिये। उसके

अष्टभक्तं ततः कृत्वा त्यक्त्वा भागत्रयं बुधः।
लम्बयेत् सप्त रेखास्तु पार्श्वयोरुभयोः समाः॥ ३८

तावत् प्रलम्बयेद् विद्वान् यावद्भागचतुष्टयम्।
भ्राम्यते पञ्चभागोर्ध्वं कारयेत् संगमं ततः॥ ३९

रेखयोः संगमे तद्वत् पृष्ठे भागद्वयं भवेत्।
एवमेतत्समाख्यातं समासाल्लक्षणं मया॥ ४०

ऊपर उससे सूक्ष्म रेखा बनाये और मध्यम लिङ्गमें स्थापित करे। फिर बुद्धिमान् पुरुष आठ भाग करके तीन भागोंको छोड़ दे और दोनों पार्श्वोंमें समान अन्तर रखते हुए सात लम्बी रेखाएँ चिह्नित करे। विद्वान् पुरुष चार भागोंतक रेखाएँ चिह्नित करे, पाँचवें भागके ऊपर रेखा घुमानी चाहिये और तदनन्तर मिला देनी चाहिये। यहीं पृष्ठभागमें रेखाओंका संगम होगा। इन दो रेखाओंके संगमस्थलपर पृष्ठदेशमें दो भाग हो जायँगे। इस प्रकार मैंने संक्षेपमें यह लक्षणका वर्णन किया है॥ २९—४०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम चतुःषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रतिष्ठानुकीर्तन नामक दो सौ चौंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६४॥

दो सौ पैंसठवाँ अध्याय

प्रतिमाके अधिवासन आदिकी विधि

सूत उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि मूर्तिपानां तु लक्षणम्।
स्थापकस्य समासेन लक्षणं शृणुत द्विजाः॥ १

सर्वावयवसम्पूर्णो वेदमन्त्रविशारदः।
पुराणवेत्ता तत्त्वज्ञो दम्भलोभविवर्जितः॥ २

कृष्णसारमये देशे उत्पन्नश्च शुभाकृतिः।
शौचाचारपरो नित्यं पाषण्डकुलनिःस्पृहः॥ ३

समः शत्रौ च मित्रे च ब्रह्मोपेन्द्रहरप्रियः।
ऊहापोहार्थतत्त्वज्ञो वास्तुशास्त्रस्य पारगः॥ ४

आचार्यस्तु भवेन्नित्यं सर्वदोषविवर्जितः।
मूर्तिपास्तु द्विजाश्चैव कुलीना ऋजवस्तथा॥ ५

द्वात्रिंशत्षोडशाथापि अष्टौ वा श्रुतिपारगः।
ज्येष्ठमध्यकनिष्ठेषु मूर्तिपा वः प्रकीर्तिताः॥ ६

ततो लिङ्गमथार्चां वा नीत्वा स्नपनमण्डपम्।
गीतमङ्गलशब्देन स्नपनं तत्र कारयेत्॥ ७

पञ्चगव्यकषायेण मृद्भिर्भस्मोदकेन वा।
शौचं तत्र प्रकुर्वीत वेदमन्त्रचतुष्टयात्॥ ८

सूतजी कहते हैं—ब्राह्मणो! अब मैं संक्षेपमें मूर्तियोंकी रक्षा-पूजा करनेवाले पुजारी तथा प्रतिष्ठा करानेवाले ब्राह्मणोंका लक्षण बतला रहा हूँ, सुनिये। जो सम्पूर्ण शारीरिक अङ्ग-प्रत्यङ्गोंसे सम्पन्न, वेदमन्त्रविशारद, पुराणोंका मर्मज्ञ, तत्त्वदर्शी, दम्भ एवं लोभसे रहित, कृष्णसारमृगसे युक्त देशमें उत्पन्न, सुन्दर आकृतिवाला, नित्य शौच एवं आचारमें तत्पर, पाखण्डसमूहसे दूर, मित्र और शत्रुमें सम, ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरका प्रिय, ऊहापोहके अर्थका तत्त्वज्ञ, वास्तुशास्त्रका पारंगत विद्वान् तथा सभी दोषोंसे रहित हो, ऐसा व्यक्ति आचार्य होने योग्य है। इसी प्रकार मूर्तिकी रक्षा करनेवाले ब्राह्मणोंका भी सत्कुलोत्पन्न तथा मृदु स्वभावका होना चाहिये। ज्येष्ठ, मध्य और कनिष्ठमूर्तियोंकी प्रतिष्ठामें क्रमशः बत्तीस, सोलह और आठ वेदपारगामी ब्राह्मण मूर्तिरक्षक ऋत्विज् बतलाये गये हैं। तदनन्तर लिङ्ग अथवा मूर्तिको गीत तथा माङ्गलिक शब्दपूर्वक मण्डपके स्नानकक्षमें लाकर स्नान कराना चाहिये। (स्नानकी विधि यह है—) वहाँ पञ्चगव्य, कषाय, मृत्तिका, भस्म, जल—इन सामग्रियोंद्वारा चार वेद-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए प्रतिमाका मार्जन करना चाहिये।

समुद्रज्येष्ठमन्त्रेण आपोदिव्येति चापरः।
यासां राजेति मन्त्रस्तु आपोहिष्ठेति चापरः॥ ९
एवं स्नाप्य ततो देवं पूज्य गन्धानुलेपनैः।
प्रच्छाद्य वस्त्रयुग्मेन अभिवस्त्रेत्युदाहृतम्॥ १०
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते।
आमूरजेति च तथा रथे तिष्ठेति चापरः॥ ११
रथे ब्रह्मरथे वापि धृतां शिल्पिगणेन तु।
आरोप्य च ततो विद्वानाकृष्णेन प्रवेशयेत्॥ १२
ततः प्रास्तीर्य शय्यायां स्थापयेच्छनकैर्बुधः।
कुशानास्तीर्य पुष्पाणि स्थापयेत्प्राङ्मुखं ततः॥ १३
ततस्तु निद्राकलशं वस्त्रकाञ्चनसंयुतम्।
शिरोभागे तु देवस्य जपन्नेवं निधापयेत्॥ १४
आपोदेवीति मन्त्रेण आपोऽस्मान् मातरोऽपि च।
ततो दुकूलपट्टैश्चाच्छाद्य नेत्रोपधानकम्॥ १५
दद्याच्छिरसि देवस्य कौशेयं वा विचक्षणः।
मधुना सर्पिषाभ्यज्य पूज्य सिद्धार्थकैस्ततः॥ १६
आप्यायस्वेति मन्त्रेण या ते रुद्र शिवेति च।
उपविश्यार्चयेद् देवं गन्धपुष्पैः समन्ततः॥ १७
सितं प्रतिसरं दद्याद् बार्हस्पत्येति मन्त्रतः।
दुकूलपट्टैः कार्पासैर्नानाचित्रैरथापि वा॥ १८
आच्छाद्य देवं सर्वत्र छत्रचामरदर्पणम्।
पार्श्वतः स्थापयेत्तत्र वितानं पुष्पसंयुतम्॥ १९
रत्नान्योषधयस्तत्र गृहोपकरणानि च।
भाजनानि विचित्राणि शयनान्यासनानि च॥ २०
अभि त्वा शूरमन्त्रेण यथा विभवतो न्यसेत्।
क्षीरं क्षौद्रं घृतं तद्वद् भक्ष्यभोज्यान्नपायसैः॥ २१
षड्विधैश्च रसैस्तद्वत् समन्तात्परिपूजयेत्।
बलिं दद्यात् प्रयत्नेन मन्त्रेणानेन भूरिशः॥ २२
त्र्यम्बकं यजामह इति सर्वतः शनकैर्भुवि।

वे चारों मन्त्र इस प्रकार हैं— '**समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य०**', (ऋक्० सं० ७। ४९। १) '**आपो दिव्याः०**', (ऋक्० सं० ७। ४९। २) '**यासां राजा०**' (वही १। ३) तथा '**आपो हि ष्ठाः०**' (वाजस सं० ११। ५०)। इस प्रकार देवताकी प्रतिमाको स्नान कराकर '**गन्धद्वारा**' इस मन्त्रसे सुगन्धित द्रव्य-चन्दनादिसे पूजा करे और दो वस्त्रोंसे ढँककर शयन करावे। यह '**अभिवस्त्र**' की विधि है॥ १—१०॥

तदनन्तर विद्वान् पुरुष— '**उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०**' इस मन्त्रका उच्चारण कर प्रतिमाको उठाये और '**आमूरजा०**', (वाजस० सं०) '**रथे तिष्ठ०**'—इन दो मन्त्रोंसे रथपर या ब्रह्मरथपर शिल्पियोंद्वारा रखवाकर ले आवे और '**आकृष्णेन**' (वाजस० सं० ३३। ४५) मन्त्रद्वारा मूर्तिको मन्दिरमें प्रवेश कराये तथा शय्यापर कुश तथा पुष्पोंको बिछाकर बुद्धिमान् पुरुष उसे पूर्वाभिमुख कर धीरेसे स्थापित करे। तदनन्तर वस्त्र और सुवर्णसहित निद्राकलशको देवताके सिरहानेकी ओर— '**आपो देवी०**', (वही १२। ३५) '**आपोऽस्मान् मातरः०**'—(वाज० सं० ४। २) इन मन्त्रोंको जपते हुए स्थापित कराना चाहिये। तत्पश्चात् रेशमी वस्त्रद्वारा नेत्रोंको ढककर तकिया दे अथवा रेशमी वस्त्रको प्रतिमाके सिरके नीचे रख दे। फिर बैठकर मधु और घृतद्वारा स्नान कराकर तथा पीली सरसोंसे पूजाकर '**आप्यायस्व०**' (वाजस० १२। ११२) तथा '**या ते रुद्र शिवा तनू०**' (वाजस० सं० १६। २। ४९) इन मन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक चारों ओरसे चन्दन तथा पुष्पादिसे देवताकी पूजा करे। फिर '**बार्हस्पत्य०**' (वही १७। ३६) मन्त्रद्वारा श्वेत वर्णके सूतका बना हुआ कंगन अर्पित करे। तदनन्तर अनेक प्रकारके चित्र-विचित्र रेशमी अथवा सूती वस्त्रोंद्वारा प्रतिमाको भलीभाँति ढककर अगल-बगलमें छत्र, चामर, दर्पण, आदि सामग्रियाँ रखे और पुष्पयुक्त चँदोवा स्थापित करे। वहीं विविध प्रकारसे रत्न, औषध, अन्य घरेलू वस्तुएँ, विचित्र प्रकारके पात्र, शय्या, आसन आदि सामग्रियाँ अपनी आर्थिक शक्तिके अनुरूप '**अभि त्वा शूरं०**' इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए रखे। फिर दूध, मधु, घृत, छहों प्रकारके रसों (खट्टा, मीठा, तीता, कड़वा, नमकीन तथा कसैला)-से संयुक्त भक्ष्य एवं भोज्य अन्न और खीरको भी चारों ओर रखकर पूजा करनी चाहिये। फिर '**त्र्यम्बकं यजामहे०**' (वाजस० सं० ३। ६०)—इस मन्त्रसे प्रचुर परिमाणमें प्रयत्नपूर्वक भूतलपर सब ओरसे धीसे बलि देनी चाहिये॥ ११—२२½॥

मूर्त्तिपान् स्थापयेत् पश्चात् सर्वदिक्षु विचक्षणः ॥ २३
चतुरो द्वारपालांश्च द्वारेषु विनिवेशयेत्।
श्रीसूक्तं पावमानं च सोमसूक्तं सुमङ्गलम् ॥ २४
तथा च शान्तिकाध्यायमिन्द्रसूक्तं तथैव च।
रक्षोघ्नं च तथा सूक्तं पूर्वतो बह्वृचो जपेत् ॥ २५
रौद्रं पुरुषसूक्तं च श्लोकाध्यायं सशुक्रियम्।
तथैव मण्डलाध्यायमध्वर्युर्दक्षिणे जपेत् ॥ २६
वामदेव्यं बृहत्साम ज्येष्ठसाम रथन्तरम्।
तथा पुरुषसूक्तं च रुद्रसूक्तं सशान्तिकम् ॥ २७
भारुण्डानि च सामानि च्छन्दोगः पश्चिमे जपेत्।
अथर्वाङ्गिरसं तद्वन्नीलं रौद्रं तथैव च ॥ २८
तथापराजितादेवीसप्तसूक्तं सरौद्रकम्।
तथैव शान्तिकाध्यायमथर्वा चोत्तरे जपेत् ॥ २९
शिरःस्थाने तु देवस्य स्थापको होममाचरेत्।
शान्तिकैः पौष्टिकैस्तद्वन्मन्त्रैर्व्याहृतिपूर्वकैः ॥ ३०
पलाशोदुम्बराश्वत्था अपामार्गः शमी तथा।
हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं पादे तु संस्पृशेत् ॥ ३१
ततो होमसहस्रेण हुत्वा हुत्वा ततस्ततः।
नाभिमध्यं तथा वक्षः शिरश्चाप्यालभेत् पुनः ॥ ३२
हस्तमात्रेषु कुण्डेषु मूर्तिपाः सर्वतोदिशम्।
समेखलेषु ते कुर्युर्योनिवक्त्रेषु चादरात् ॥ ३३
वितस्तिमात्रा योनिः स्याद् गजोष्ठसदृशी तथा।
आयता छिद्रसंयुक्ता पार्श्वतः कलयोच्छ्रिता ॥ ३४
कुण्डात् कलानुसारेण सर्वतश्चतुरङ्गुला।
विस्तारेणोच्छ्रया तद्वच्चतुरस्रा समा भवेत् ॥ ३५
वेदीभित्तिं परित्यज्य त्रयोदशभिरङ्गुलैः।
एवं नवसु कुण्डेषु लक्षणं चैव दृश्यते ॥ ३६
आग्नेयशाक्रयाम्येषु होतव्यमुदगाननैः।
शान्तये लोकपालेभ्यो मूर्तिभ्यः क्रमशस्तथा ॥ ३७
तथा मूर्त्यधिदेवानां होमं कुर्यात् समाहितः।

तदनन्तर विद्वान् पुरुष सभी दिशाओंमें मूर्तिरक्षकोंको नियुक्त करे तथा चारों द्वारोंपर चार द्वारपालोंको बैठा दे। फिर पूर्व-दिशामें बैठकर बह्वृच् नामक ऋत्विज्‌को श्रीसूक्त पावमान, सुमङ्गलकारी सोमसूक्त, शान्तिकाध्याय, इन्द्रसूक्त तथा रक्षोघ्नसूक्त—इन ऋचाओंका जप करना चाहिये। इसी प्रकार दक्षिण दिशामें बैठकर अध्वर्यु नामक ऋत्विज्‌को रौद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, शुक्रियसहित श्लोकाध्याय तथा मण्डलाध्यायका जप करना चाहिये। सामग नामक उद्‌गाता ऋत्विज्‌को पश्चिम-दिशामें बैठकर वामदेव्य, बृहत्साम, ज्येष्ठसाम, रथन्तर, पुरुषसूक्त, शान्तिसहित रुद्रसूक्त तथा भारुण्ड सामका जप करना चाहिये। इसी प्रकार अथर्वा नामक ऋत्विज्‌को उत्तर दिशामें बैठकर अथर्वाङ्गिरस, नीलसूक्त, रौद्रसूक्तसहित अपराजिता तथा देवीसूक्तके सात मन्त्र और शान्तिकाध्याय (वा० ३७)-का जप करना चाहिये। देवप्रतिमाके सिरहानेकी ओर स्थापकको व्याहृतिपूर्वक शान्तिक तथा पौष्टिक मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए हवन करना चाहिये। उस समय पलाश, गूलर, पीपल, अपामार्ग (चिड़चिढ़ा), शमी—इन सबकी एक-एक हजार लकड़ियोंकी अग्निकुण्डमें मन्त्रद्वारा आहुति देते हुए देवताके पैरको स्पर्श किये रहना चाहिये। इसी प्रकार नाभि, वक्षःस्थल और शिरोभागको स्पर्श किये हुए प्रत्येक बार एक-एक सहस्र आहुति प्रदान करनी चाहिये ॥ २३—३२ ॥

इस प्रकार एक हाथके बने हुए मेखला एवं योनियुक्त कुण्डमें सभी दिशाओंमें बैठे हुए मूर्तिस्थापकगण आदरपूर्वक हवन करें। कुण्डकी योनि एक बित्ता लम्बी, हाथीके ओठ या पीपलके पत्तेके समान आकारवाली होनी चाहिये। वह आयताकार, छिद्रयुक्त, कुण्डकी कलाके अनुसार दोनों बगल ऊँची, चौकोर और समतल होनी चाहिये। वेदीकी दीवालसे तेरह अंगुल दूर हटकर दूसरे अन्य नौ कुण्डोंको बनाना चाहिये। उनका भी लक्षण पूर्वोक्त प्रकारका समझना चाहिये।* होताओंको अग्निकोण, पूर्व दिशा तथा दक्षिण दिशामें उत्तरकी ओर मुखकर हवन करना चाहिये। शान्तिके लिये होता सावधानचित्त हो लोकपालों, मूर्तियों तथा मूर्तियोंके अधिदेवताके लिये क्रमसे

* मण्डप, कुण्ड, मेखला, योनि, वेदी आदिके निर्माणकी विस्तृत विधि कुण्डोद्योत, कुण्डमण्डपसिद्धि, गायत्रीपुरश्चरण-पद्धतिमें विस्तारसे निर्दिष्ट है।

वसुधा वसुरेताश्च यजमानो दिवाकरः॥ ३८
जलं वायुस्तथा सोम आकाशश्चाष्टमः स्मृतः।
देवस्य मूर्तयस्त्वष्टावेताः कुण्डेषु संस्मरेत्॥ ३९
एतासामधिपान् वक्ष्ये पवित्रान् मूर्तिनामतः।
पृथ्वीं पाति च शर्वश्च पशुपश्चाग्निमेव च॥ ४०
यजमानं तथैवोग्रो रुद्रश्चादित्यमेव च।
भवो जलं सदा पाति वायुमीशान एव च॥ ४१
महादेवस्तथा चन्द्रं भीमश्चाकाशमेव च।
सर्वदेवप्रतिष्ठासु मूर्त्तिपा हूयेत एव च॥ ४२
एतेभ्यो वैदिकैर्मन्त्रैर्यथास्वं होममाचरेत्।
तथा शान्तिघटं कुर्यात् प्रतिकुण्डेषु सर्वदा॥ ४३
शतान्ते वा सहस्रान्ते सम्पूर्णाहुतिरिष्यते।
समपादः पृथिव्यां तु प्रशान्तात्मा विनिक्षिपेत्॥ ४४
आहुतीनां तु सम्पातं पूर्णकुम्भेषु वै न्यसेत्।
मूलमध्योत्तमाङ्गेषु देवं तेनावसेचयेत्॥ ४५
स्थितं च स्नापयेत् तेन सम्पाताहुतिवारिणा।
प्रतियामेषु धूपं तु नैवेद्यं चन्दनादिकम्॥ ४६
पुनः पुनः प्रकुर्वीत होमः कार्यः पुनः पुनः।
पुनः पुनश्च दातव्या यजमानेन दक्षिणा॥ ४७
सितवस्त्रैश्च वै सर्वे पूजनीयाः समन्ततः।
विचित्रैर्हेमकटकैर्हेमसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ ४८
वासोभिः शयनीयैश्च प्रतियामे च शक्तितः।
भोजनं चापि दातव्यं यावत् स्यादधिवासनम्॥ ४९
बलिस्त्रिसंध्यं दातव्यो भूतेभ्यः सर्वतोदिशम्।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पूर्वं शेषान् वर्णांस्तु कामतः॥ ५०
रात्रौ महोत्सवः कार्यो नृत्यगीतकमङ्गलैः।
सदा पूज्याः प्रयत्नेन चतुर्थीकर्म यावता॥ ५१
त्रिरात्रमेकरात्रं वा पञ्चरात्रमथापि वा।
सप्तरात्रमथो कुर्यात् क्वचित् सद्योऽधिवासनम्।
सर्वयज्ञफलो यस्मादधिवासोत्सवः सदा॥ ५२

हवन करे। भूमि, अग्नि, यजमान, दिवाकर (सूर्य), जल, वायु, सोम तथा आठवाँ आकाश—ये आठ भगवान् शंकर (महादेव)-की मूर्तियाँ हैं, हवनके समय इनका कुण्डमें स्मरण करना चाहिये। अब मैं मूर्तिके नामानुसार इनके रक्षक अधिपतियोंका वर्णन कर रहा हूँ। इनमें शर्व वसुधाकी, पशुपति वसुरेता (अग्नि)-की, उग्र यजमानकी, रुद्र दिवाकरकी, भव जलकी, ईशान वायुकी, महादेव सोमकी और भीम आकाशकी मूर्तिरूपमें उनकी रक्षा करते हैं। सभी देवताओंकी प्रतिष्ठामें ये ही मूर्तिप माने गये हैं। इनके लिये अपनी सम्पत्तिके अनुकूल वैदिक मन्त्रोंद्वारा हवन करना चाहिये॥ ३३—४२ १/२॥

प्रत्येक कुण्डपर सदा शान्तिघटकी स्थापना करनी चाहिये। सौ या सहस्र आहुतिके बाद सम्पूर्णाहुति मानी गयी है। उस समय पृथ्वीपर समानभावसे पैर रखे हुए होता शान्तचित्तसे सम्पूर्णाहुति छोड़ें। इन सभी आहुतियोंके सम्पातको पूर्ण कलशोंमें रखें। फिर उसीके जलसे प्रतिमाके पैर, मध्य एवं सिरका सेचन करे और उसी आहुतिके जलद्वारा वहाँके कल्पित देवतागणोंको स्नान कराये। प्रत्येक प्रहरमें पुनः-पुनः धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन आदि द्वारा पूजा करे तथा उसी प्रकार हवन भी बारंबार करना चाहिये। इसी प्रकार यजमानद्वारा पुनः-पुनः दक्षिणा भी प्रदान करनी चाहिये और उन सबको श्वेत वस्त्रद्वारा पूजा करनी चाहिये। प्रत्येक प्रहरमें यथाशक्ति अधिवासनपर्यन्त विचित्र प्रकारके बने हुए सुवर्णके कङ्कण, सुवर्णकी जंजीर, अंगूठी, वस्त्र, शय्या और भोजन भी देना चाहिये। सामान्य जीवोंके लिये भी सभी दिशाओंमें तीनों संध्याओंके समय बलि भी देनी चाहिये। पहले ब्राह्मणोंको भोजन कराये, फिर अन्य वर्णवालोंको स्वेच्छानुसार भोजन कराना चाहिये। रातमें नाच-गान आदि मङ्गल-कार्योंद्वारा महोत्सव मनाना चाहिये। इस प्रकार चतुर्थीकर्मपर्यन्त सदा प्रयत्नपूर्वक पूजा करते रहना चाहिये। यह अधिवासन तीन रात, एक रात, पाँच रात या सात रातोंतक होता है। पर जहाँ अत्यन्त शीघ्रता हो, वहाँ तुरंत भी कर दिया जाता है। यह अधिवासोत्सव सर्वदा सम्पूर्ण यज्ञोंके फलोंको प्रदान करनेवाला है॥ ४३—५२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽधिवासनविधिर्नाम पञ्चषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अधिवासनविधि नामक दो सौ पैंसठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६५॥



दो सौ छाछठवाँ अध्याय

प्रतिमा-प्रतिष्ठाकी विधि

सूत उवाच

कृत्वाधिवासं देवानां शुभं कुर्यात् समाहितः।
प्रासादस्यानुरूपेण मानं लिङ्गस्य वा पुनः॥ १

पुष्पोदकेन प्रासादं प्रोक्ष्य मन्त्रयुतेन तु।
पातयेत् पक्षसूत्रं तु द्वारसूत्रं तथैव च॥ २

आश्रयेत् किंचिदीशानीं मध्यं ज्ञात्वा दिशं बुधः।
ईशानीमाश्रितं देवं पूजयन्ति दिवौकसः॥ ३

आयुरारोग्यफलदमथोत्तरसमाश्रितम्।
शुभं स्यादशुभं प्रोक्तमन्यथा स्थापनं बुधैः॥ ४

अधः कूर्मशिला प्रोक्ता सदा ब्रह्मशिलाधिका।
उपर्यवस्थिता तस्या ब्रह्मभागाधिका शिला॥ ५

ततस्तु पिण्डिका कार्या पूर्वोक्तैर्मानलक्षणैः।
ततः प्रक्षालितां कृत्वा पञ्चगव्येन पिण्डिकाम्॥ ६

कषायतोयेन पुनर्मन्त्रयुक्तेन सर्वतः।
देवतार्चाश्रयं मन्त्रं पिण्डिकासु नियोजयेत्॥ ७

तत उत्थाप्य देवेशमुत्तिष्ठ ब्रह्मणेति च।
आनीय गर्भभवनं पीठान्ते स्थापयेत् पुनः॥ ८

अर्घ्यपाद्यादिकं तत्र मधुपर्कं प्रयोजयेत्।
ततो मुहूर्तं विश्रम्य रत्नन्यासं समाचरेत्॥ ९

वज्रमौक्तिकवैदूर्यशङ्खस्फटिकमेव च।
पुष्परागेन्द्रनीलं च नीलं पूर्वादिदिक्क्रमात्॥ १०

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इस प्रकार उपर्युक्त विधिसे देवताओंकी प्रतिमाका शुभ अधिवासन करना चाहिये। यजमानको एकाग्रचित्तसे प्रासादके अनुरूप लिङ्ग (प्रतिमा)-का या लिङ्गके अनुरूप प्रासादका मान रखना चाहिये। लिङ्गस्थापनके पूर्व पुष्पमिश्रित जलसे मन्दिरको धोकर मन्त्रोच्चारण करते हुए पक्षसूत्र तथा द्वारसूत्रको[1] गिराकर नापना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको देवमण्डपकी मध्यभूमिका निश्चय कर कुछ ईशानकोणकी ओर बढ़ना चाहिये; क्योंकि देवतागण ईशानकी दिशामें अवस्थित भगवान् शंकरकी पूजा करते हैं। उत्तर दिशामें अधिष्ठित देवता आयु तथा आरोग्यरूपी फल देनेवाले और कल्याणकारी कहे गये हैं। बुद्धिमानोंने इनके अतिरिक्त अन्य दिशाओंमें स्थापनाको अशुभकारी बताया है। लिङ्गके नीचे कूर्म-शिलाकी स्थापना करनी चाहिये। यह ब्रह्मशिलाकी अपेक्षा बड़ी तथा भारी होती है। उसके ऊपर ब्रह्मभागसे बड़ी ब्रह्मशिला स्थापित होती है। उसके ऊपर पूर्वोक्त परिमाणोंके अनुसार पिण्डिकाकी स्थापना करनी चाहिये। तत्पश्चात् पञ्चगव्यद्वारा पिण्डिकाको धोकर पुनः पञ्चकषायके[2] जलसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक प्रक्षालन करे। पिण्डिकाओंमें भी देव-प्रतिमा-सम्बन्धी मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये। तदुपरान्त **'उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते०'** (वाजसने० ३४।५६) इस मन्त्रसे देव-प्रतिमाको उठाकर मण्डपके मध्यमें लाकर पुनः पीठिकापर स्थापित करे। वहाँ अर्घ्य, पाद्य और मधुपर्क आदि समर्पित करे। फिर एक मुहूर्ततक विश्रामकर वहाँ रत्नोंकी स्थापना करनी चाहिये। हीरा, मोती, विल्लौर, शङ्ख, स्फटिक, पुखराज, नीलम और महानील—इन रत्नोंको पूर्व दिशाके क्रमसे स्थापित करना चाहिये॥ १—१०॥

---

१. कारीगरका सूत्र। २. जामुन, सेमल, बकुल, बेर और वटबीजके फलोंका क्वाथ पञ्चकषाय कहलाता है।
(सुश्रुतसंहि० न०, मो० वि०)

तालकं च शिलावज्रमञ्जनं श्याममेव च।
काञ्ची काशी समाक्षीकं गैरिकं चादितः क्रमात्॥ ११
गोधूमं च यवं तद्वत् तिलमुद्गं तथैव च।
नीवारमथ श्यामाकं सर्षपं व्रीहिमेव च॥ १२
न्यस्य क्रमेण पूर्वादि चन्दनं रक्तचन्दनम्।
अगरुं चाञ्जनं चापि उशीरं च ततः परम्॥ १३
वैष्णवीं सहदेवीं च लक्ष्मणां च ततः परम्।
स्वर्लोकपालनाम्ना तु न्यसेदोंकारपूर्वकम्॥ १४
सर्वबीजानि धातूंश्च रत्नान्योषधयस्तथा।
काञ्चनं पद्मरागं तु पारदं पद्ममेव च॥ १५
कूर्मं धरां वृषं तत्र न्यसेत् पूर्वादितः क्रमात्।
ब्रह्मस्थाने तु दातव्याः संहताः स्युः परस्परम्॥ १६
कनकं विद्रुमं ताम्रं कांस्यं चैवारकूटकम्।
रजतं विमलं पुष्पं लोहं चैव क्रमेण तु॥ १७
काञ्चनं हरितालं च सर्वाभावेऽपि निक्षिपेत्।
दद्याद् बीजौषधिस्थाने सहदेवीं यवानपि॥ १८
न्यासमन्त्रानतो वक्ष्ये लोकपालात्मकानिह।
इन्द्रस्तु सहसा दीप्तः सर्वदेवाधिपो महान्॥ १९
वज्रहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः।
आग्नेयः पुरुषो रक्तः सर्वदेवमयः शिखी॥ २०
धूमकेतुरनाधृष्यस्तस्मै नित्यं नमो नमः।
यमश्चोत्पलवर्णाभः किरीटी दण्डधृक् सदा॥ २१
धर्मसाक्षी विशुद्धात्मा तस्मै नित्यं नमो नमः।
निर्ऋतिस्तु पुमान् कृष्णः सर्वरक्षोऽधिपो महान्॥ २२
खड्गहस्तो महासत्त्वस्तस्मै नित्यं नमो नमः।
वरुणो धवलो जिष्णुः पुरुषो निम्नगाधिपः॥ २३
पाशहस्तो महाबाहुस्तस्मै नित्यं नमो नमः।
वायुश्च सर्ववर्णो वै सर्वगन्धवहः शुभः॥ २४
पुरुषो ध्वजहस्तश्च तस्मै नित्यं नमो नमः।
गौरो यश्च पुमान् सौम्यः सर्वौषधिसमन्वितः॥ २५
नक्षत्राधिपतिः सोमस्तस्मै नित्यं नमो नमः।
ईशानपुरुषः शुक्लः सर्वविद्याधिपो महान्॥ २६

फिर हरताल, शिलाजीत, अंजन, श्याम, कांजी, काशी, मधु और गेरू—इन सबको क्रमसे पूर्वादि दिशाओंमें रखना चाहिये। गेहूँ, जौ, तिल, मूँग, तीनी, साँवाँ, सरसों और चावल—इन सबको भी पूर्वादि दिशाके क्रमसे रखकर श्वेत चन्दन, लाल चन्दन, अगुरु, अंजन, उशीर (खश), विष्णुक्रान्ता, सहदेई तथा लक्ष्मणा (श्वेत कटहली)—इन्हें भी पूर्वादि दिशाओंमें क्रमशः उन-उन लोकपालोंके नामसे ओंकारपूर्वक स्थापित करना चाहिये। फिर सभी प्रकारके बीज, धातुएँ, रत्न, ओषधियाँ, सुवर्ण, पद्मराग, पारद, पद्म, कूर्म, पृथ्वी तथा वृषभ—इन्हें भी पूर्वादि दिशाओंके क्रमसे स्थापित करना चाहिये। ब्रह्माके स्थानपर सभी वस्तुओंको परस्पर एकत्र करके रखना चाहिये। सुवर्ण, मूँगा, ताँबा, काँसा, पीतल, चाँदी, निर्मल पुष्प और लौह—इन सबको भी क्रमसे रखना चाहिये। इन सभी वस्तुओंके अभावमें सुवर्ण और हरितालको भी रखा जा सकता है। बीज और ओषधिके स्थानपर सहदेवी और जौ रखा जा सकता है। अब मैं न्यास करनेके लिये प्रत्येक लोकपालके क्रमसे मन्त्रोंको बतला रहा हूँ। पूर्व दिशाके स्वामी महान् दीप्तिशाली, सभी देवताओंके अधिपति वज्रधारी महापराक्रमी इन्द्र हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है। अग्निकोणमें स्थित पुरुष अग्निदेव लाल वर्णवाले, सर्वदेवमय, धूमकेतु और दुर्जय हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है। दक्षिण दिशाके स्वामी यमराजका वर्ण कमलके समान है। वे सिरपर किरीट तथा हाथमें सदा दण्ड धारण करनेवाले, धर्मके साक्षी और विशुद्धात्मा हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है॥ ११—२१ १/२॥

नैर्ऋत्यकोणके स्वामी निर्ऋति (यातुधान) कृष्णवर्णवाले, महान् पुरुष, सम्पूर्ण राक्षसोंके अधिपति, खड्गधारी और महान् पराक्रमी हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है। पश्चिमके स्वामी वरुणदेव श्वेत वर्णवाले, विजेतास्वरूप, नदियोंके स्वामी, पाशधारी और महाबाहु हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है। वायव्यकोणके स्वामी वायुदेवता सब प्रकारके वर्णवाले, सभी प्रकारके गन्धको धारण करनेवाले और ध्वजाधारी हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है। उत्तरके स्वामी सोमदेव गौरवर्णवाले, सौम्य आकृतिसे युक्त, सभी ओषधियोंसे समन्वित तथा नक्षत्रोंके अधिपति हैं, उन्हें नित्य बारंबार नमस्कार है। ईशानकोणके स्वामी ईशान (महा)-देव शुक्ल वर्णवाले,

शूलहस्तो विरूपाक्षस्तस्मै नित्यं नमो नमः।
पद्मयोनिश्चतुर्मूर्तिर्वेदवासाः पितामहः॥ २७
यज्ञाध्यक्षश्चतुर्वक्त्रस्तस्मै नित्यं नमो नमः।
योऽसावनन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम्॥ २८
पुष्पवद् धारयेन्मूर्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः।
ओङ्कारपूर्वका ह्येते न्यासे बलिनिवेदने॥ २९
मन्त्राः स्युः सर्वकार्याणां वृद्धिपुत्रफलप्रदाः।
न्यासं कृत्वा तु मन्त्राणां पायसेनानुलेपितम्॥ ३०
पटेनाच्छादयेच्छ्वभ्रं शुक्लेनोपरि यत्नतः।
तत उत्थाप्य देवेशमिष्टदेशे तु शोभने॥ ३१
ध्रुवा द्यौरिति मन्त्रेण श्वभ्रोपरि निवेशयेत्।
ततः स्थिरीकृतस्यास्य हस्तं दत्त्वा तु मस्तके॥ ३२
ध्यात्वा परमसद्भावाद् देवदेवं च निष्कलम्।
देवव्रतं तथा सोमं रुद्रसूक्तं तथैव च॥ ३३
आत्मानमीश्वरं कृत्वा नानाभरणभूषितम्।
यस्य देवस्य यद्रूपं तद्ध्याने संस्मरेत् तथा॥ ३४

समस्त विद्याओंके अधिपति, महान् शूलधारी और विरूपाक्ष हैं, उन्हें नित्य बारंबार प्रणाम है। ऊर्ध्व (ऊपरकी) दिशाके स्वामी पद्मयोनि ब्रह्मा, वेदरूपी वस्त्रसे सुशोभित, यज्ञाध्यक्ष, चार मुखवाले पितामह हैं, उन्हें नित्य बारंबार अभिवादन है। ये जो अनन्तरूपसे निखिल चराचर ब्रह्माण्डको पुष्पकी भाँति अपने मस्तकपर धारण करते हैं, (नीचेकी दिशाके स्वामी) उन शेषको नित्य बारंबार नमस्कार है। इन मन्त्रोंको न्यास करते तथा बलि देते समय ॐकारपूर्वक उच्चारण करना चाहिये। ये सभी कार्योंमें समृद्धि तथा पुत्ररूपी फल देनेवाले हैं। इस प्रकार मन्त्रोंका न्यास कर घृतसे अनुलिप्त गर्तको श्वेत वस्त्रद्वारा यत्नपूर्वक ऊपरसे आच्छादित कर दे। तदनन्तर देवेशको उठाकर सुन्दर इष्ट देशमें '**ध्रुवा द्यौः०**'-(आथर्वण) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए गर्तपर स्थापित कर दे। फिर उसे स्थिर करके उसके मस्तकपर हाथ रखकर अपनेको नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित परब्रह्मका अंश मानकर परम सद्भावपूर्वक निष्कल देवदेवेश्वरका ध्यान करके सोमसूक्त तथा 'रुद्रसूक्त' का पाठ करे। ध्यानके समय जिस देवताका जैसा स्वरूप हो, वैसा ही उसका स्मरण करना चाहिये॥ २२—३४॥

अतसीपुष्पसंकाशं शङ्खचक्रगदाधरम्।
संस्थापयामि देवेशं देवो भूत्वा जनार्दनम्॥ ३५
अक्षरं च दशबाहुं च चन्द्रार्धकृतशेखरम्।
गणेशं वृषसंस्थं च स्थापयामि त्रिलोचनम्॥ ३६
ऋषिभिः संस्तुतं देवं चतुर्वक्त्रं जटाधरम्।
पितामहं महाबाहुं स्थापयाम्यम्बुजोद्भवम्॥ ३७
सहस्रकिरणं शान्तमप्सरोगणसंयुतम्।
पद्महस्तं महाबाहुं स्थापयामि दिवाकरम्॥ ३८
देवमन्त्रांस्तथा रौद्रान् रुद्रस्य स्थापने जपेत्।
विष्णोस्तु वैष्णवांस्तद्वद् ब्राह्मान् वै ब्रह्मणो बुधः॥ ३९
सौराः सूर्यस्य जप्तव्यास्तथान्येषु तदाश्रयाः।
वेदमन्त्रप्रतिष्ठा तु यस्मादानन्ददायिनी॥ ४०
स्थापयेद् यं तु देवेशं तं प्रधानं प्रकल्पयेत्।
तस्य पार्श्वस्थितानन्यान् संस्मरेत् परिवारितः॥ ४१

मैं देवरूप होकर अलसी-पुष्पके समान कान्तिवाले तथा शङ्ख, चक्र और गदाधारी देवेश जनार्दनको स्थापित कर रहा हूँ। इसी प्रकार मैं अविनाशी, दस बाहुओंसे सुशोभित, सिरपर अर्धचन्द्र धारण करनेवाले, गणोंके स्वामी, वृषभारूढ, त्रिनेत्रधारी शिवको स्थापित कर रहा हूँ। मैं ऋषियोंद्वारा संस्तुत, चार मुखवाले, जटाधारी, महाबाहु, कमलोद्भव ब्रह्मदेवकी स्थापना कर रहा हूँ। मैं सहस्र किरणोंसे सुशोभित, शान्त, अप्सरा-समूहसे संयुक्त, पद्महस्त, महाबाहु सूर्यकी स्थापना कर रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुषको रुद्रकी स्थापनामें रौद्र मन्त्रोंका, विष्णुकी स्थापनामें वैष्णव मन्त्रोंका, ब्रह्माकी स्थापनामें ब्राह्म मन्त्रोंका तथा सूर्यकी स्थापनामें सूर्यदेवताके मन्त्रोंका जप करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य देवताओंकी स्थापनामें उन्हींके मन्त्रोंका जप करना चाहिये; क्योंकि वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक की गयी प्रतिष्ठा आनन्ददायिनी होती है। जिन देवताकी प्रतिमा स्थापित की जाती है, उन्हींको प्रधान मानना चाहिये। उनके अगल-बगलमें स्थित अन्य देवताओंको उनके परिकररूपमें

गणं नन्दिमहाकालं वृषं भृङ्गिरिटिं गुहम्।
देवीं विनायकं चैव विष्णुं ब्रह्माणमेव च॥ ४२

रुद्रं शक्रं जयन्तं च लोकपालान् समंततः।
तथैवाप्सरसः सर्वा गन्धर्वगणगुह्यकान्॥ ४३

यो यत्र स्थाप्यते देवस्तस्य तान् परितः स्मरेत्।
आवाहयेत् तथा रुद्रं मन्त्रेणानेन यत्नतः॥ ४४

यस्य सिंहा रथे युक्ता व्याघ्रभूतास्तथोरगाः।
ऋषयो लोकपालाश्च देवः स्कन्दस्तथा वृषः॥ ४५

प्रियो गणो मातरश्च सोमो विष्णुः पितामहः।
नागा यक्षाः सगन्धर्वा ये च दिव्या नभश्चराः॥ ४६

तमहं त्र्यक्षमीशानं शिवं रुद्रमुमापतिम्।
आवाहयामि सगणं सपत्नीकं वृषध्वजम्॥ ४७

आगच्छ भगवन् रुद्रानुग्रहाय शिवो भव।
शाश्वतो भव पूजां मे गृहाण त्वं नमो नमः॥ ४८

ओं नमः स्वागतं भगवते नमः, ओं नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु भगवन्मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः स्वाहा॥ ४९

ततः पुण्याहघोषेण ब्रह्मघोषैश्च पुष्कलैः।
स्नापयेत् तु ततो देवं दधिक्षीरघृतेन च॥ ५०

मधुशर्करया तद्वत् पुष्पगन्धोदकेन च।
शिवध्यानैकचित्तस्तु मन्त्रानेतानुदीरयेत्॥ ५१

यज्जाग्रतो दूरमुदेति ततो विराडजायत इति च।
सहस्रशीर्षा पुरुष इति च।
अभि त्वा शूर नो नुम इति च।
पुरुष एवेदं सर्वत्रिपादूर्ध्वमिति च।
येनेदं भूतमिति नत्वा वाँ अन्य इति॥ ५२

सर्वांश्चैतान् प्रतिष्ठासु मन्त्रान् जप्त्वा पुनः पुनः।
चतुःकृत्वः स्पृशेदद्भिर्मूले मध्ये शिरस्यपि॥ ५३

समझना चाहिये। गण, नन्दिकेश्वर, महाकाल, वृषभ, भृङ्गिरिटि, स्वामिकार्तिक, देवी, विनायक, विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्र, जयन्त, लोकपाल, अप्सराओंके समूह, गन्धर्वोंके समूह और गुह्यकोंको शिवके अथवा जो देवता जिस स्थानपर स्थापित किया गया हो, उसके चारों ओर स्थापित करना चाहिये॥ ३५—४३½॥

फिर इस निम्नाङ्कित मन्त्रद्वारा यत्नपूर्वक रुद्रका आवाहन करना चाहिये—'जिनके रथमें सिंह, व्याघ्र, नाग, ऋषिगण, लोकपाल-वृन्द, देव, स्कन्द, वृष, प्रिय, प्रमथगण, मातृकाएँ, चन्द्रमा, विष्णु, ब्रह्मा, सर्प, यक्ष, गन्धर्व, दिव्य आकाशचारी जीव जुते हुए हैं, उन तीन नेत्रोंवाले, ईशान, वृषध्वज, रुद्र, उमापति शिवको मैं गणों तथा पत्नीसहित आवाहन कर रहा हूँ। भगवन् रुद्र! अनुग्रह करनेके लिये आइये, कल्याणकारी होइये, शाश्वतरूपसे स्थित होइये और मेरी पूजाको ग्रहण कीजिये, आपको बारंबार नमस्कार है।' मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ नमः **स्वागतं भगवते नमः, ॐ नमः सोमाय सगणाय सपरिवाराय प्रतिगृह्णातु भगवन् मन्त्रपूतमिदं सर्वमर्घ्यपाद्यमाचमनीयमासनं ब्रह्मणाभिहितं नमो नमः** स्वाहा।'' अर्थात्' 'ॐ भगवन्! आपका स्वागत है और आपको बारंबार नमस्कार है। ॐ गण और परिवारसहित सोमको प्रणाम है। भगवन्! आप मन्त्रद्वारा पवित्र किया हुआ तथा ब्रह्माद्वारा अभिनन्दित इस सकल अर्घ्य, पाद्य, आचमनीय और आसनको ग्रहण कीजिये। आपको बारंबार अभिवादन है। मेरे सभी पाप जल जायँ।' तदनन्तर पुण्याहवाचन एवं प्रचुर वेदध्वनिके साथ मूर्तिको दधि, क्षीर, घृत, मधु और शक्करसे स्नान कराकर पुनः पुष्प एवं सुगन्धमिश्रित जलसे स्नान कराये। उस समय एकाग्रचित्तसे भगवान् शिवका ध्यान करते हुए इन मन्त्रोंका उच्चारण करना चाहिये। वे मन्त्र इस प्रकार हैं—'यज्जाग्रतो दूरमुदेति॰'—, 'ततो विराडजायत॰-', 'सहस्रशीर्षा पुरुषः॰-', 'अभि त्वा शूर नो नुम', 'पुरुष एवेदं सर्वम्॰,-' 'त्रिपादूर्ध्वम्॰-', 'येनेदं भूतम्॰-', 'नत्वा वाँ अन्य॰-' इति। (वाजस॰ सं॰ ३१) प्रतिष्ठासम्बन्धी कार्योंमें इन उपर्युक्त सभी मन्त्रोंको बारंबार जप करके चार बार जलसे प्रतिमाके मूलभाग, मध्यभाग तथा शिरोभागमें स्पर्श करे।

स्थापिते तु ततो देवे यजमानोऽथ मूर्त्तिपम्।
आचार्यं पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः॥ ५४
दीनान्धकृपणांस्तद्वद् ये चान्ये समुपस्थिताः।
ततस्तु मधुना देवं प्रथमेऽहनि लेपयेत्॥ ५५
हरिद्रयाथ सिद्धार्थैर्द्वितीयेऽहनि तत्त्वतः।
चन्दनेन यवैस्तद्वत् तृतीयेऽहनि लेपयेत्॥ ५६
मनःशिलाप्रियङ्गुभ्यां चतुर्थेऽहनि लेपयेत्।
सौभाग्यशुभदं यस्माल्लेपनं व्याधिनाशनम्॥ ५७
परं प्रीतिकरं नृणामेतद् वेदविदो विदुः।

इस प्रकार देवके स्थापित हो जानेपर यजमान मूर्तिकी प्रतिष्ठा करानेवाले आचार्यकी वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंसे भक्तिपूर्वक पूजा करे। इसी प्रकार दीन, अन्धे, कृपण तथा अन्य जो कोई वहाँ उपस्थित हों, उन सबको भी संतुष्ट करना चाहिये। तदनन्तर प्रथम दिन मधुसे प्रतिमाका लेपन करना चाहिये। इसी तरह दूसरे दिन हल्दी तथा सरसोंसे, तीसरे दिन चन्दन और जौसे, चौथे दिन मैनसिल तथा प्रियङ्गु (मेंहदी)-से लेप करना चाहिये; क्योंकि यह लेप सौभाग्य और मङ्गलदायक, व्याधिनाशक तथा मनुष्योंके लिये परम प्रीतिकारक है, ऐसा वेदवेत्ताओंने कहा है॥ ५४—५७½॥

कृष्णाञ्जनं तिलं तद्वत् पञ्चमेऽपि निवेदयेत्॥ ५८
षष्ठे तु सघृतं दद्याच्चन्दनं पद्मकेसरम्।
रोचनागुरुपुष्पं तु सप्तमेऽहनि दापयेत्॥ ५९
यत्र सद्योऽधिवासः स्यात् तत्र सर्वं निवेदयेत्।
स्थितं न चालयेद् देवमन्यथा दोषभाग् भवेत्॥ ६०
पूरयेत् सिकताभिस्तु निश्छिद्रं सर्वतो भवेत्।
लोकपालस्य दिग्भागे यस्य संचलते विभुः॥ ६१
तस्य लोकपतेः शान्तिर्देयाश्चेमाश्च दक्षिणाः।
इन्द्राय वारणं दद्यात् काञ्चनं चाल्पवित्तवान्॥ ६२
अग्नेः सुवर्णमेव स्याद् यमस्य महिषं तथा।
अजं च काञ्चनं दद्यान्नैर्ऋतं राक्षसं प्रति॥ ६३
वरुणं प्रति मुक्तानि सशुक्तीनि प्रदापयेत्।
रीतिकं वायवे दद्याद् वस्त्रयुग्मेन साम्प्रतम्॥ ६४
सोमाय धेनुर्दातव्या राजतं वृषभं शिवे।
यस्यां यस्यां सञ्चलनं शान्तिः स्यात् तत्र तत्र तु॥ ६५
अन्यथा तु भवेद् घोरं भयं कुलविनाशनम्।
अचलं कारयेत् तस्मात् सिकताभिः सुरेश्वरम्॥ ६६
अन्नं वस्त्रं च दातव्यं पुण्याहजयमङ्गलम्।
त्रिपञ्च सप्तदश वा दिनानि स्यान्महोत्सवः॥ ६७
चतुर्थेऽह्नि महास्नानं चतुर्थीकर्म कारयेत्।
दक्षिणा च पुनस्तद्वद् देया तत्रातिभक्तितः॥ ६८

इसी प्रकार पाँचवें दिन काला अंजन और तिल, छठे दिन घृतसहित चन्दन एवं पद्मकेसर, सातवें दिन रोचना, अगुरु तथा पुष्प देना चाहिये। जिस मूर्तिकी स्थापनामें तुरंत ही अधिवासन हो जाय, वहाँ इन सबको एक साथ ही निवेदित कर देना चाहिये। अवस्थित हो जानेपर प्रतिमाको अपने स्थानसे विचलित नहीं करना चाहिये; अन्यथा दोषभागी होना पड़ता है। छिद्रोंको बालूसे भरकर सब ओर छिद्ररहित कर देना चाहिये। स्थापनाके बाद जिस लोकपालकी दिशाकी ओर प्रतिमा अपने-आप झुकती है, उस लोकपालके लिये शान्ति कराकर क्रमशः ये दक्षिणाएँ देनी चाहिये। इन्द्रके लिये हाथी देना चाहिये। यदि थोड़ी सम्पत्तिवाला हो तो सुवर्ण दे। अग्निके लिये सुवर्णकी, यमराजके लिये महिषकी, राक्षसराज निर्ऋतिके लिये बकरा तथा सुवर्णकी, वरुणके लिये सुतुहियोंसहित मोतियोंकी, वायुके लिये दो वस्त्रोंसहित पीतलकी, चन्द्रमाके लिये गौकी और शिवके लिये चाँदी-निर्मित वृषभकी दक्षिणा देनी चाहिये। जिस-जिस दिशामें संचलन हो, उस-उस दिशाकी शान्ति करानी चाहिये, अन्यथा कुलविनाशक भयंकर भय उत्पन्न होता है। अतः प्रतिमाको बालूसे भरकर अचल कर देना चाहिये। उक्त पुण्य दिनमें अन्न तथा वस्त्रका दान करना चाहिये। साथ ही पुण्याहवाचन, जय-जयकार एवं माङ्गलिक शब्दोंका उच्चारण करवाना चाहिये। यह महोत्सव तीन, पाँच, सात या दस दिनोंतक होना चाहिये। प्रतिष्ठाके चौथे दिन महास्नान तथा चतुर्थीकर्म कराना चाहिये। उस अवसरपर भी अत्यन्त भक्तिपूर्वक पर्याप्त दक्षिणा देनी चाहिये।

देवप्रतिष्ठाविधिरेष तुभ्यं
निवेदितः पापविनाशहेतोः।
यस्माद् बुधैः पूर्वमनन्तमुक्त
मनेकविद्याधरदेवपूज्यम् ॥ ६९

ऋषिवृन्द! मैंने पापोंके विनाशार्थ आपलोगोंसे देव-प्रतिमाकी प्रतिष्ठाकी यह विधि वर्णन की है; क्योंकि पण्डितोंने इस विषयको पूर्वकालमें अनेक विद्याधर तथा देवताओंद्वारा पूज्य और अनन्त बतलाया है॥ ५८—६९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रतिष्ठानुकीर्तनं नाम षट्षष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें मूर्तिप्रतिष्ठा नामक दो सौ छाछठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६६॥



दो सौ सड़सठवाँ अध्याय

देव (प्रतिमा)-प्रतिष्ठाके अङ्गभूत अभिषेक-स्नानका निरूपण

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवस्नपनमुत्तमम्।
अघस्यापि समासेन शृणु त्वं विधिमुत्तमम्॥ १

दध्यक्षतकुशाग्राणि क्षीरं दूर्वास्तथा मधु।
यवाः सिद्धार्थकास्तद्वदष्टाङ्गोऽर्घः फलैः सह॥ २

गजाश्वरथ्यावल्मीकवराहोत्खातमण्डलात्।
अग्न्यागारात् तथा तीर्थाद् व्रजाद् गोमण्डलादपि॥ ३

कुम्भे तु मृत्तिकां दद्यादुद्धृतासीति मन्त्रवित्।
शं नो देवीत्यपां मन्त्रमापो हिष्ठेति वै तथा॥ ४

सावित्र्याऽऽदाय गोमूत्रं गन्धद्वारेति गोमयम्।
आप्यायस्वेति च क्षीरं दधिक्राव्णेति वै दधि॥ ५

तेजोऽसीति घृतं तद्वद् देवस्य त्वेति चोदकम्।
कुशमिश्रं क्षिपेद् विद्वान् पञ्चगव्यं भवेत् ततः॥ ६

स्नाप्याथ पञ्चगव्येन दध्ना शुद्धेन वै ततः।
दधिक्राव्णेति मन्त्रेण कर्तव्यमभिमन्त्रणम्॥ ७

आप्यायस्वेति पयसा तेजोऽसीति घृतेन च।
मधुवातेति मधुना ततः पुष्पोदकेन च॥ ८

सरस्वत्यै भैषज्येन कार्यं तस्याभिमन्त्रणम्।
हिरण्याक्षेति मन्त्रेण स्नापयेद् रत्नवारिणा॥ ९

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब मैं देवप्रतिमाके अभिषेक तथा अर्घ्यकी उत्तम विधि संक्षेपमें बतला रहा हूँ, सुनिये। दधि, अक्षत, कुशका अग्रभाग, दुग्ध, दूर्वा, मधु, यव और सरसों—इन आठ वस्तुओं तथा फलोंके मिलानेसे अर्घ बनता है। हाथीशाला, अश्वशाला, चौराहा, विमौट, शूकरद्वारा खोदे गये गड्ढे, अग्निकुण्ड, तीर्थस्थान एवं गोशालाकी मिट्टीको मन्त्रवेत्ता ब्राह्मण **'उद्धृतासि वराहेण'** (तै० आर०) आदि मन्त्रको उच्चारण करते हुए कलशमें डाले। तत्पश्चात् **'शं नो देवी०'**, (वाजस० सं० ३६। १०) **'आपो हि ष्ठा०'** इन दो मन्त्रोंका उच्चारण कर जल छोड़े। तत्पश्चात् गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करते हुए उस घड़ेमें गोमूत्र, फिर **'गन्धद्वारां०'** (ऋक्परि० श्रीसू० ८) इस मन्त्रसे गोबर, **'आप्यायस्व०'** (वाजस० सं० १२। १४४) मन्त्रसे दुग्ध, **'दधिक्राव्णः०'** (वाजस० २३। ३२) मन्त्रसे दही और **'तेजोऽसि०'** (वाजस० २२। १) मन्त्रसे घृत, **'देवस्य त्वा सवितुः०'** (वाजस० सं०१। १९)-से जलको छोड़कर सबको मिश्रितकर कुशद्वारा चलावे तो वह पञ्चगव्य होता है। इस पञ्चगव्यद्वारा प्रतिमाको स्नान करानेके उपरान्त शुद्ध दहीद्वारा **'दधिक्राव्णः०'** (वाजस० सं०२३। ३२) इस मन्त्रसे अभिषेक-संस्कार करना चाहिये। फिर **'आप्यायस्व०'** (वाजस० सं० १२। ११४) इस मन्त्रका उच्चारण कर दूधसे, **'तेजोऽसि शुक्र०'** (वाजस० सं०२२। १) इस मन्त्रद्वारा घृतसे, **'मधुवाता०'** (वाजस० सं०) इस मन्त्रद्वारा मधुसे तथा पुष्पमिश्रित जलसे और **'सरस्वत्यै०'** (वाजस० सं०) इस मन्त्रका उच्चारण करते हुए ओषधियोंसे प्रतिमाका संस्कार करना चाहिये। फिर **'हिरण्याक्ष०'** इस मन्त्रसे रत्नमिश्रित

कुशाम्भसा ततः स्नानं देवस्यत्वेति कारयेत्।
फलोदकेन च स्नानमग्न आयाहि कारयेत्॥ १०

ततस्तु गन्धतोयेन सावित्र्या चाभिमन्त्रयेत्।
ततो घटसहस्रेण सहस्रार्धेन वा पुनः॥ ११
तस्याप्यर्धेन वा कुर्यात् सपादेन शतेन वा।
चतुःषष्ट्या ततोऽर्धेन तदर्धार्धेन वा पुनः॥ १२
चतुर्भिरथवा कुर्याद् घटानामल्पवित्तवान्।
सौवर्णै राजतैर्वापि ताम्रैर्वा रीतिकोद्भवैः॥ १३
कांस्यैर्वा पार्थिवैर्वापि स्नपनं शक्तितो भवेत्।
सहदेवी वचा व्याघ्री बला चातिबला तथा॥ १४
शङ्खपुष्पी तथा सिंही ह्यष्टमी च सुवर्चला।
महौषध्यष्टकं ह्येतन्महास्नानेषु योजयेत्॥ १५
यवगोधूमनीवारतिलश्यामाकशालयः।
प्रियङ्गवो व्रीहयश्च स्नानेषु परिकल्पिताः॥ १६
स्वस्तिकं पद्मकं शङ्खमुत्पलं कमलं तथा।
श्रीवत्सं दर्पणं तद्वन्नन्द्यावर्तमथाष्टकम्॥ १७
एतानि गोमयैः कुर्यान्मृदा च शुभया ततः।
पञ्चवर्णादिकं तद्वत् पञ्चवर्णं रजस्तथा॥ १८
दूर्वाः कृष्णतिलान् दद्यान्नीराजनविधिर्मतः।
एवं नीराजनं कृत्वा दद्यादाचमनं बुधः॥ १९
मन्दाकिन्यास्तु यद्वारि सर्वपापापहं शुभम्।
ततो वस्त्रयुगं दद्यान्मन्त्रेणानेन यत्नतः॥ २०
देवसूत्रसमायुक्ते यज्ञदानसमन्विते।
सर्ववर्णे शुभे देव वाससी ते विनिर्मिते॥ २१
ततस्तु चन्दनं दद्यात् समं कर्पूरकुङ्कुमैः।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं दीर्घपाणिः प्रयत्नतः॥ २२
शरीरं ते न जानामि चेष्टां नैव च नैव च।
मया निवेदितान् गन्धान् प्रतिगृह्य विलिप्यताम्॥ २३
चत्वारिंशत् ततो दीपान् दद्याच्चैव प्रदक्षिणान्।
त्वं सूर्यचन्द्रज्योतींषि विद्युदग्निस्तथैव च॥ २४

जलसे, '**देवस्य त्वा०**' (वाजस० सं० १।१०) इस मन्त्रका उच्चारण कर कुशोदकसे तथा '**अग्न आयाहि०**' (साम० सं० १।१) इस मन्त्रका उच्चारण कर प्रतिमाको स्नान करावे॥ १—१०॥

इसके बाद गायत्री-मन्त्रद्वारा सुगन्धित जलसे अभिमन्त्रित करे। फिर एक हजार या पाँच सौ या उसके आधे ढाई सौ या एक सौ पचीस या एक सौ या चौंसठ या उसके आधे बत्तीस या उसके आधे सोलह या आठ या अल्प वित्तवाला पुरुष चार कलशोंसे स्नान-क्रिया सम्पन्न करे। ये कलश यथाशक्ति सुवर्ण, चाँदी, ताँबा, पीतल, कांसा या मिट्टीके बने होने चाहिये। सहदेई, वच, व्याघ्री, बला, अतिबला, शङ्खपुष्पी, सिंही तथा आठवीं सुवर्चला—ये महौषधियाँ हैं, इनका महास्नानके समय प्रयोग करना चाहिये। जौ, गेहूँ, तिन्नी, तिल, साँवा, धान, प्रियङ्गु तथा चावल—ये अन्न भी स्नानकार्यमें उपयोगी कहे गये हैं। स्वस्तिक, पद्म, शङ्ख, उत्पल, कमल, श्रीवत्स, दर्पण और नन्द्यावर्त—इन आठ चित्रोंकी गोबर और शुद्ध मिट्टीसे कलापूर्ण रचना करें, फिर उन्हें पाँच प्रकारके रंग, पाँच प्रकारके चूर्ण, दूर्वा और काला तिलसे भर दे। तत्पश्चात् नीराजन—आरतीकी विधिसे नीराजन कर बुद्धिमान् पुरुष 'गङ्गाका जल सभी पापोंका विनाशक और शुभदायक होता है' इस भावके मन्त्रसे आचमन करावे। तदनन्तर—'देव! आपके लिये बने हुए ये युगल वस्त्र देवनिर्मित सूत्रद्वारा बने हुए, यज्ञ तथा दानसे समन्वित, विविध वर्णोंवाले एवं परम रमणीय हैं, इन्हें आप ग्रहण करें,' इस भावके मन्त्रका उच्चारण करते हुए यत्नपूर्वक दो वस्त्र समर्पित करे। इसके बाद हाथमें कुश लेकर प्रयत्नपूर्वक निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण करते हुए कपूर और केसरमिश्रित चन्दन लगाना चाहिये। मन्त्र इस प्रकार है—'देव! मैं आपके शरीर और चेष्टाको किसी प्रकार भी नहीं जानता, अतः मेरे द्वारा समर्पित किये गये गन्धोंको ग्रहणकर आप स्वयं ही अनुलेपन कर लें'॥ ११—२३॥

इसके बाद चालीस दीप प्रदान करना चाहिये और प्रदक्षिणा भी करनी चाहिये। उस समय निम्नाङ्कित मन्त्रका उच्चारण करे—'देव! आप ही सूर्य और

त्वमेव सर्वज्योतींषि दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।
ततस्त्वनेन मन्त्रेण धूपं दद्याद् विचक्षणः॥ २५
वनस्पतिरसो दिव्यो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥ २६
ततस्त्वाभरणं दद्यान्महाभूषाय ते नमः।
अनेन विधिना कृत्वा सप्तरात्रं महोत्सवम्॥ २७
देवकुम्भैस्ततः कुर्याद् यजमानोऽभिषेचनम्।
चतुर्भिरष्टभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः॥ २८
सपञ्चरत्नकलशैः सितवस्त्राभिवेष्टितैः।
देवस्य त्वेति मन्त्रेण साम्ना चाथर्वणेन च॥ २९
अभिषेके च ये मन्त्रा नवग्रहमखे स्मृताः।
सिताम्बरधरः स्नात्वा देवान् सम्पूज्य यत्नतः॥ ३०
स्थापकं पूजयेद् भक्त्या वस्त्रालङ्कारभूषणैः।
यज्ञभाण्डानि सर्वाणि मण्डपोपस्करादिकम्॥ ३१
यच्चान्यदपि तद्गेहे तदाचार्याय दापयेत्।
सुप्रसन्ने गुरौ यस्मात् तृप्यन्ति सर्वदेवताः॥ ३२
नैतद्विशीलेन च दाम्भिकेन
न लिङ्गिना स्थापनमत्र कार्यम्।
विप्रेण कार्यं श्रुतिपारगेण
गृहस्थधर्माभिरतेन नित्यम्॥ ३३
पाषण्डिनं यस्तु करोति भक्त्या
विहाय विप्राञ् श्रुतिधर्मयुक्तान्।
गुरुं प्रतिष्ठादिषु तत्र नूनं
कुलक्षयः स्यादचिरादपूज्यः॥ ३४
स्थानं पिशाचैः परिगृह्यते वा
अपूज्यतां यात्यचिरेण लोकैः।
विप्रैः कृतं यच्छुभदं कुले स्यात्
प्रपूज्यतां याति चिरं च कालम्॥ ३५

चन्द्रमाकी ज्योति, बिजली, अग्नि और सभी प्रकारकी ज्योति हैं, आप इस दीपको ग्रहण करें।' फिर 'देव! यह वनस्पतियोंका अति उत्तम रस, दिव्य गन्धयुक्त और उत्तम गन्ध है, मैंने इसे भक्तिपूर्वक अर्पित किया है। आप इस धूपको ग्रहण करें।' इस मन्त्रका उच्चारणकर विचक्षण पुरुष धूपदान करे। तत्पश्चात् 'बहुमूल्य आभूषणोंसे विभूषित देव! आपको नमस्कार है।' इस भावके मन्त्रद्वारा आभूषण अर्पित करना चाहिये। इस प्रकार सात राततक महोत्सव कर श्वेत वस्त्रधारी यजमान पञ्चरत्नयुक्त तथा श्वेत वस्त्रसे परिवेष्टित चार, आठ, दो अथवा एक देवकुम्भके जलसे—'**देवस्य त्वा०-**' (वाजस० सं० १।१०) इस मन्त्रसे या आथर्वण तथा साममन्त्रोंसे या नवग्रहयज्ञोंमें अभिषेकके समय प्रयुक्त होनेवाले मन्त्रोंसे अभिषेक करे। फिर स्नानकर देवताओंकी पूजा करनेके बाद स्थापना करानेवालेकी वस्त्र, अलंकार एवं आभूषणोंद्वारा पूजा करे। तत्पश्चात् सभी यज्ञपात्रों, मण्डपकी सामग्रियों तथा मण्डपमें अन्य जो कुछ भी दातव्य वस्तुएँ हों, उन्हें आचार्यको देना चाहिये; क्योंकि गुरुके प्रसन्न होनेपर सभी देवगण प्रसन्न हो जाते हैं। इस देवप्रतिमाके स्थापन-कार्यको शीलरहित, दम्भी और पाखंडीसे नहीं कराना चाहिये, प्रत्युत सदा श्रुतियोंके पारगामी एवं गृहस्थाश्रममें रहनेवाले ब्राह्मणद्वारा ही कराना उचित है। जो व्यक्ति केवल भक्तिके कारण वैदिक धर्ममें परायण विद्वान् पण्डितोंको छोड़कर अपने पाखण्डी गुरुको इस कार्यमें नियुक्त करता है, उसका कुल शीघ्र ही अपूज्य और नष्ट हो जाता है, उस स्थानपर पिशाचोंका आधिपत्य हो जाता है तथा लोग प्रतिमाको थोड़े ही दिनों बाद अपूज्य समझने लगते हैं। वैदिक ब्राह्मणोंद्वारा करायी गयी स्थापनासे देव-प्रतिमा कुलमें कल्याणकारिणी होती है और चिरकालतक लोग उसकी पूजा करते हैं॥ २४—३५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे देवतास्नानं नाम सप्तषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें देवप्रतिमा-स्नान नामक दो सौ सड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६७॥



दो सौ अड़सठवाँ अध्याय

वास्तु-शान्तिकी विधि

ऋषय ऊचुः

प्रासादाः कीदृशाः सूत कर्तव्या भूतिमिच्छता।
प्रमाणं लक्षणं तद्वद् वद विस्तरतोऽधुना॥ १

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि प्रासादविधिनिर्णयम्।
वास्तौ परीक्षिते सम्यग् वास्तुदेहविचक्षणः॥ २
वास्तूपशमनं कुर्यात् समिद्भिर्बलिकर्मणा।
जीर्णोद्धारे तथोद्याने तथा गृहनिवेशने॥ ३
नवप्रासादभवने प्रासादपरिवर्तने।
द्वाराभिवर्तने तद्वत् प्रासादेषु गृहेषु च॥ ४
वास्तूपशमनं कुर्यात् पूर्वमेव विचक्षणः।
एकाशीतिपदं लिख्य वास्तुमध्ये च पृष्ठतः॥ ५
होमस्त्रिमेखले कार्यः कुण्डे हस्तप्रमाणके।
यवैः कृष्णतिलैस्तद्वत् समिद्भिः क्षीरवृक्षजैः॥ ६
पालाशैः खादिरैश्चापि मधुसर्पिःसमन्वितैः।
कुशदूर्वामयैर्वापि मधुसर्पिःसमन्वितैः॥ ७
कायस्तु पञ्चभिर्बिल्वैर्बिल्वबीजैरथापि वा।
होमान्ते भक्ष्यभोज्यैस्तु वास्तुदेशे बलिं हरेत्॥ ८
तद्वद्विशेषनैवेद्यमेवं दद्यात् क्रमेण तु।
ईशकोणे घृताक्तं तु शिखिने विनिवेदयेत्॥ ९
ओदनं सफलं दद्यात् पर्जन्याय घृतान्वितम्।
जयाय च ध्वजान् पीतान् पैष्टं कूर्मं च संन्यसेत्॥ १०
इन्द्राय पञ्चरत्नानि पैष्टं च कुलिशं तथा।
वितानकं च सूर्याय धूम्रं सक्तुं तथैव च॥ ११
सत्याय घृतगोधूमं मत्स्यं दद्याद् भृशाय च।
शष्कुलीश्चान्तरिक्षाय दद्यात् सक्तूंश्च वायवे॥ १२
लाजाः पूष्णे तु दातव्या वितथे चणकौदनम्।
बृहत्क्षत्राय मध्वन्नं यमाय पिशितौदनम्॥ १३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! समृद्धिकी इच्छा करनेवालोंको प्रासादों (राजगृह, देवमन्दिर आदि)-की रचना किस प्रकार करानी चाहिये? अब उनके प्रमाण और लक्षणोंको विस्तारपूर्वक बतलाइये॥ १॥

सूतजी कहते हैं—ऋषिवृन्द! अब मैं प्रासादविधिका निर्णय बतला रहा हूँ। वास्तुके शरीरको जाननेवाला पुरुष वास्तुकी भलीभाँति परीक्षा कर लेनेके बाद (दोष दीखनेपर) बलिकर्म तथा समिधाओंद्वारा वास्तुकी शान्ति करे। जीर्ण प्रासादके उद्धार, वाटिकाके आरोपण, नूतन गृहमें प्रवेश, नवीन प्रासाद अथवा भवनके निर्माण, प्रासादपरिवर्तन, प्रासाद तथा गृहोंमें द्वारकी रचना—इन सभी अवसरोंपर विद्वान् पुरुषको पहले ही वास्तुकी शान्ति—पूजा करानी चाहिये। इसके लिये वास्तुके मध्यभागमें पृष्ठप्रदेशपर इक्यासी पदोंवाला चक्र बनाना चाहिये। फिर एक हाथ गहरे तथा चौड़े कुण्डमें, जो तीन मेखलाओंसे युक्त हो, जौ, काले तिल तथा दुग्धवाले (वट, पाकड़, पीपल, गूलर आदि) वृक्षोंकी समिधाओंद्वारा हवन करना चाहिये। हवनमें मधु और घृतसे संयुक्त पलाश या खदिरकी समिधाओंका या मधु-घृत-संयुक्त कुश और दूर्वाका अथवा पाँच बिल्व-फल या उसके बीजोंका उपयोग करना चाहिये। हवनके अन्तमें विविध भक्ष्य सामग्रियोंद्वारा वास्तुप्रदेशमें क्रमसे बलि तथा विशेष नैवेद्य भी देना चाहिये। ईशानकोणमें घृतसे संयुक्त नैवेद्य अग्निके लिये समर्पित करे। पर्जन्यके लिये फल-घृतसंयुक्त ओदन तथा जयके लिये पीली ध्वजा और आटेका बना हुआ कूर्म देना चाहिये। इन्द्रके लिये पञ्चरत्न तथा आटेका बना हुआ वज्र तथा सूर्यके लिये धूम्रवर्णका वितान और सत्तू देना चाहिये॥ २—११॥

इसी प्रकार सत्यके लिये घी और गेहूँ, भृशको अन्न, अन्तरिक्षको पूड़ी, वायुको सत्तू और पूषाको लावा देना चाहिये। वितथको चना और ओदन, बृहत्क्षत्रको मधु और अन्न, यमको फलका गूदा और ओदन,

गन्धौदनं च गन्धर्वे भृङ्गराजस्य भृङ्गिकाम्।
मृगाय यावकं दद्यात् पितृभ्यः कृसरा मता॥ १४
दौवारिके दन्तकाष्ठं पैष्टं कृष्णाबलिं तथा।
सुग्रीवेऽपूपकं दद्यात् पुष्पदन्ताय पायसम्॥ १५
कुशस्तम्बेन संयुक्तं तथा पद्मं च वारुणे।
विष्टं हिरण्मयं दद्यादसुराय सुरा मता॥ १६
घृतौदनं न शेषाय यवान्नं पापयक्ष्मणे।
घृतलड्डुकांस्तु रोगाय नागे पुष्पफलानि च॥ १७
सर्पिर्मुख्याय दातव्यं मुद्गौदनमतः परम्
भल्लाटस्थानके दद्यात् सोमाय घृतपायसम्॥ १८
भगाय शालिकं पिष्टमदित्यै पोलिकास्तथा।
दित्यै तु पूरिका दद्यादित्येवं बाह्यतो बलिः॥ १९
क्षीरं यमाय दातव्यमापवत्साय वै दधि।
सावित्रे लड्डुकान् दद्यात् समरीचं कुशौदनम्॥ २०
सवितुर्गुडपूपांश्च जयाय घृतचन्दनम्।
विवस्वते पुनर्दद्याद् रक्तचन्दनपायसम्॥ २१
हरितालौदनं दद्यादिन्द्राय घृतसंयुतम्।
घृतौदनं च मित्राय रुद्राय घृतपायसम्॥ २२

गन्धर्वको सुगन्ध और ओदन, भृङ्गराजको भृङ्गिका, मृगको जौका सत्तू और पितरोंको खिचड़ी देना चाहिये। दौवारिकको दन्तकाष्ठ तथा आटेकी कृष्ण बलि, सुग्रीवको पूआ तथा पुष्पदन्तको खीर प्रदान करे। वरुणको कुश-समूहसे संयुक्त पद्म और सुवर्णमय पिष्टक देना चाहिये। असुरके लिये मदिरा मानी गयी है। शेषको घृत-संयुक्त ओदन, पापयक्ष्माको जौका अन्न, रोगको घीका बना हुआ लड्डू, नागको पुष्प और फल, मुख्य (वासुकि)-को घी तथा भल्लाटके स्थानपर मूँग और ओदन तथा सोमके लिये घृत और खीर देना चाहिये। भगके लिये साठीके चावलका पिष्टक, अदितिके लिये पोलिक और दितिके लिये पूरीकी बलि देनी चाहिये। यह वास्तुके बाहरी भागकी बलि है। यमको दूध और आपवत्सको दही देनेका विधान है। सावित्रीको लड्डू तथा मरीचके साथ कुशमिश्रित ओदन प्रदान करे। सविताको गुड-मिश्रित पूआ, जयको घृत और चन्दन तथा विवस्वान्‌को लाल-चन्दन और खीर दे। इन्द्रको घृतसमेत हरितालयुक्त ओदन, मित्रको घृतमिश्रित ओदन तथा रुद्रको घृत और खीर दे॥ १३—२२॥

आमं पक्वं तथा मांसं देयं स्याद् राजयक्ष्मणे।
पृथ्वीधराय मांसानि कूष्माण्डानि च दापयेत्॥ २३
शर्करापायसं दद्यादर्यम्णे पुनरेव हि।
पञ्चगव्यं यवांश्चैव तिलाक्षतमयं चरुम्॥ २४
भक्ष्यं भोज्यं च विविधं ब्रह्मणे विनिवेदयेत्।
एवं सम्पूजिता देवाः शान्तिं कुर्वन्ति ते सदा॥ २५
सर्वेभ्यः काञ्चनं दद्याद् ब्रह्मणे गां पयस्विनीम्।
राक्षसीनां बलिर्देयो अपि यादृग् यथा शृणु॥ २६
मांसौदनं घृतं पद्मकेसरं रुधिरान्वितम्।
ईशानभागमाश्रित्य चरक्यै विनिवेदयेत्॥ २७
मांसौदनं च रुधिरं हरिद्रौदनमेव च।
आग्नेय्यां दिशमाश्रित्य विदार्यै विनिवेदयेत्॥ २८
दध्योदनं सरुधिरमस्थिखण्डैश्च संयुतम्।
पीतरक्तं बलिं दद्यात् पूतनायै सरक्षसे॥ २९

राजयक्ष्माको पके हुए तथा कच्चे फलका गूदा देना चाहिये। पृथ्वीधरको मांसखण्ड और कुम्हड़े दे। अर्यमाके लिये शक्कर और खीर, पञ्चगव्य, जौ, तिल, अक्षत तथा चरु दे। ब्रह्माके लिये विविध प्रकारके भक्ष्य और भोज्य पदार्थ देने चाहिये। इस प्रकार पूजित देवगण सर्वदा शान्ति प्रदान करते हैं। अन्य उपस्थित ब्राह्मणोंके लिये सुवर्णका तथा ब्रह्मस्थानीय ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौका दान करना चाहिये। अब राक्षसियोंके लिये जिस प्रकारकी बलि दी जानी चाहिये, उसे सुनिये। फलका गूदायुक्त ओदन, घृत, पद्मकेसर—इन्हें ईशानकोणकी ओर चरकी नामकी राक्षसीको निवेदित करना चाहिये। फलका गूदा-मिश्रित ओदन तथा हरिद्रायुक्त ओदन—इन्हें अग्निकोणकी ओर विदारी नाम्नी राक्षसीके लिये निवेदित करना चाहिये। दही, ओदन, हड्डियोंके टुकड़े तथा पीले और लाल रंगकी बलि राक्षससहित पूतना नामकी राक्षसीको नैर्ऋत्यकोणमें देनी चाहिये।

वायव्यां पापराक्षस्यै मत्स्यमांसं सुरासवम्।
पायसं चापि दातव्यं स्वनाम्ना सर्वतः क्रमात्॥ ३०

नमस्कारान्तयुक्तेन प्रणवाद्येन संयुतः।
ततः सर्वौषधीस्नानं यजमानस्य कारयेत्॥ ३१

द्विजान् सुपूजयेद् भक्त्या ये चान्ये गृहमागताः।
एतद्वास्तूपशमनं कृत्वा कर्म समारभेत्॥ ३२

प्रासादभवनोद्यानप्रारम्भे विनिवर्त्तने।
पुरवेश्मप्रवेशेषु सर्वदोषापनुत्तये॥ ३३

रक्षोघ्नपावमानेन सूक्तेन भवनादिकम्।
नृत्यमङ्गलवाद्येन कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम्॥ ३४

अनेन विधिना यस्तु प्रतिसंवत्सरं बुधः।
गृहे वायतने कुर्यान्न स दुःखमवाप्नुयात्॥ ३५

न च व्याधिभयं तस्य न च बन्धुधनक्षयः।
जीवेद् वर्षशतं स्वर्गे कल्पमेकं च तिष्ठति॥ ३६

वायव्यकोणमें पापा नामकी राक्षसीके लिये खीर देना चाहिये। बलि देते समय क्रमशः सभी जगह आदिमें प्रणव और अन्तमें नमस्कारसहित अपने नामका उच्चारण कर लेना चाहिये। तदनन्तर यजमानको सर्वौषधिसे युक्त जलसे स्नान कराना चाहिये॥ २३—३१॥

यजमानको भक्तिपूर्वक अपने गृहपर आये हुए ब्राह्मणोंकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार वास्तुकी शान्ति करनेके बाद गृहनिर्माण कार्य प्रारम्भ करना चाहिये। प्रासाद, भवन, उद्यानके प्रारम्भ करते समय अथवा उनके उद्यापनके समय तथा पुर या गृहमें प्रवेश करते समय सभी दोषोंके विनाशार्थ रक्षोघ्न और पावमान सूक्तोंके पाठ करानेके बाद नृत्य, माङ्गलिक गीत और वाद्योंके साथ ब्राह्मणोंद्वारा वेदपाठ कराना चाहिये। जो बुद्धिमान् पुरुष प्रतिवर्ष गृह अथवा मन्दिरके कार्यमें उपर्युक्त विधिका पालन करता है, वह दुःखका भागी नहीं होता। उसे न तो व्याधिका भय होता है, न उसके बन्धुजनों तथा सम्पत्तिका विनाश ही होता है, प्रत्युत वह इस लोकमें सौ वर्षतक जीवित रहता है और स्वर्गमें एक कल्पपर्यन्त निवास करता है॥ ३२—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे वास्तुदोषोपशमनं नामाष्टषष्ट्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें वास्तुदोष-शमन नामक दो सौ अड़सठवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६८॥



दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय

प्रासादोंके भेद और उनके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

एवं वास्तुबलिं कृत्वा भजेत् षोडशभागिकम्।
तस्य मध्ये चतुर्भिस्तु भागैर्गर्भं तु कारयेत्॥ १
भागद्वादशकं सार्द्धं ततस्तु परिकल्पयेत्।
चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयं निर्गमं तु ततो बुधैः॥ २
चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात् प्रमाणतः।
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायप्रमाणतः॥ ३
शिखरार्धस्य चार्धेन विधेया तु प्रदक्षिणा।
गर्भसूत्रद्वयं चाग्रे विस्तारो मण्डपस्य तु॥ ४
आयतः स्यात् त्रिभिर्भागैर्भद्रयुक्तः सुशोभनः।
पञ्चभागेन सम्भज्य गर्भमानं विचक्षणः॥ ५
भागमेकं गृहीत्वा तु प्राग्ग्रीवं कल्पयेद् बुधः।
गर्भसूत्रसमाद् भागादग्रतो मुखमण्डपः॥ ६
एतत् सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्येह लक्षणम्।
तथान्यं तु प्रवक्ष्यामि प्रासादं लिङ्गमानतः॥ ७
लिङ्गपूजाप्रमाणेन कर्तव्या पीठिका बुधैः।
पिण्डिकार्धेन भागः स्यात् तन्मानेन तु भित्तयः॥ ८
बाह्यभित्तिप्रमाणेन उत्सेधस्तु भवेत् पुनः।
भित्त्युच्छ्रायात् तु द्विगुणः शिखरस्य समुच्छ्रयः॥ ९
शिखरस्य चतुर्भागात् कर्तव्या च प्रदक्षिणा।
प्रदक्षिणायास्तु समस्त्वग्रतो मण्डपो भवेत्॥ १०
तस्य चार्धेन कर्तव्यस्त्वग्रतो मुखमण्डपः।
प्रासादान्निर्गतौ कार्यौ कपोलौ गर्भमानतः॥ ११
ऊर्ध्वं भित्त्युच्छ्रयात् तस्य मञ्जरीं तु प्रकल्पयेत्।
मञ्जर्याश्चार्धभागेन शुकनासां प्रकल्पयेत्॥ १२

सूतजी कहते हैं—ऋषिगणो! इस प्रकार उपर्युक्त बलि प्रदान करनेके उपरान्त वास्तु (मन्दिर)-को सोलह भागोंमें विभक्त करे। फिर उसके मध्य भागके चार भागोंको केन्द्र मानकर मध्यभागकी ओर शेष बारह भागोंमें प्रासादकी कल्पना करे। बुद्धिमान् व्यक्तिको चारों दिशाओंमें बाहर निकलनेका मार्ग भी जानना चाहिये। दीवालकी ऊँचाई वास्तुमानकी चौथाईके तुल्य होनी चाहिये और दीवालकी ऊँचाईके प्रमाणसे दूनी शिखरकी ऊँचाई होनी चाहिये। शिखरकी ऊँचाईके चौथाई मानसे प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। मण्डपके अग्रभागका विस्तार गर्भके मानसे दूना होना चाहिये। इसकी लम्बाई तीन भागोंसे युक्त होगी, जो भद्रयुक्त और सुन्दर रहेगी। विद्वान् पुरुषको गर्भमानको पाँच भागोंमें विभक्तकर एक भागमें प्राग्ग्रीवकी कल्पना करनी चाहिये। गर्भसूत्रके समान आगे मुखमण्डपकी रचना करनी चाहिये। यह सामान्यतया सभी प्रासादोंका लक्षण बतलाया गया है। अब अन्य प्रासाद (शिवमन्दिर)-की रचनाकी विधि बतला रहा हूँ, जो लिङ्गमानके आधारपर निर्मित होता है। बुद्धिमान् पुरुषोंको लिङ्ग-पूजाके लिये उपयोगी पीठिका तैयार करनी चाहिये। पिण्डिकाके अर्धभागको विभक्त कर उक्त अर्धांश-मानमें उसके दीवालकी रचना करनी चाहिये एवं बाहरी दीवालके प्रमाणके अनुसार उसकी ऊँचाई करनी चाहिये। दीवालकी ऊँचाईसे दूनी शिखरकी ऊँचाई होनी चाहिये। शिखरके चतुर्थ भागसे प्रदक्षिणा बनानी चाहिये। प्रदक्षिणाके बराबर मानका ही आगेका मण्डप निर्मित करना चाहिये॥ १—१०॥

उसके आधे भागमें आगेकी ओर मुखमण्डप बनाना चाहिये। गर्भमानके अनुसार प्रासादसे बाहर निकले दो कपोलोंकी रचना करनी चाहिये। उसकी दीवालकी ऊँचाईके ऊपर मञ्जरीकी कल्पना करनी चाहिये। मंजरीके अर्धभागमें शुकनासाकी और

ऊर्ध्वं तथार्धभागेन वेदीबन्धो भवेदिह।
वेद्याश्चोपरि यच्छेषं कण्ठश्चामलसारकः॥ १३
एवं विभज्य प्रासादं शोभनं कारयेद् बुधः।
अथान्यच्च प्रवक्ष्यामि प्रासादस्येह लक्षणम्॥ १४
गर्भमानप्रमाणेन प्रासादं शृणुत द्विजाः।
विभज्य नवधा गर्भं मध्ये स्याल्लिङ्गपीठिका॥ १५
पादाष्टकं तु रुचिरं पार्श्वतः परिकल्पयेत्।
मानेन तेन विस्तारो भित्तीनां तु विधीयते॥ १६
पादं पञ्चगुणं कृत्वा भित्तीनामुच्छ्रयो भवेत्।
स एव शिखरस्यापि द्विगुणः स्यात् समुच्छ्रयः॥ १७
चतुर्धा शिखरं भज्य अर्धभागद्वयस्य तु।
शुकनासं प्रकुर्वीत तृतीये वेदिका मता॥ १८
कण्ठमामलसारं तु चतुर्थे परिकल्पयेत्।
कपोलयोस्तु संहारो द्विगुणोऽत्र विधीयते॥ १९
शोभनैः पत्रवल्लीभिरण्डकैश्च विभूषितः।
प्रासादोऽयं तृतीयस्तु मया तुभ्यं निवेदितः॥ २०

ऊपरवाले आधे भागमें वेदीकी रचना करानी चाहिये। वेदीके ऊपर जो भाग शेष रह जाता है, वह कण्ठ और अमलसारक कहलाता है। इस प्रकार विभागकर बुद्धिमान्‌को मनोहर प्रासादकी रचना करनी चाहिये। द्विजवरो! अब अन्य प्रकारके प्रासादके लक्षणोंको बतला रहा हूँ, सुनिये। गर्भमानके अनुसार प्रासादको नौ भागोंमें विभक्तकर गर्भके मध्यमें लिङ्गपीठिका स्थापित करनी चाहिये और उसके अगल-बगलमें रुचिर पादाष्टककी रचना करनी चाहिये। उन्हींके मानके अनुसार दीवालका विस्तार करना चाहिये। उस पादको पाँचसे गुणा करनेपर जो गुणनफल हो, वही दीवालकी और उसकी दूनी शिखरकी ऊँचाई होती है। शिखरको चार भागोंमें विभक्तकर आधे दो भागोंमें शुकनासा बनानी चाहिये, तीसरे भागमें वेदिका मानी गयी है तथा चतुर्थभागमें कण्ठ और अमलसारकी रचना करनी चाहिये। इस प्रासादमें कपोलोंका मान दूना माना गया है। यह मनोहर पत्तियों, लताओं तथा अण्डकोंसे विभूषित तीसरे ढंगके प्रासादका वर्णन मैंने आपलोगोंको बतलाया है॥ ११—२०॥

सामान्यमपरं तद्वत् प्रासादं शृणुत द्विजाः।
त्रिभेदं कारयेत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः॥ २१
रथाङ्कस्तेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतः।
नेमी पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः॥ २२
गर्भं तु द्विगुणं कुर्यात् तस्य मानं भवेदिह।
स एव भित्तेरुत्सेधो द्विगुणः शिखरो मतः॥ २३
प्राग्ग्रीवः पञ्चभागेन निष्कासस्तस्य चोच्यते।
कारयेत् सुषिरं तद्वत् प्राकारस्य त्रिभागतः॥ २४
प्राग्ग्रीवं पञ्चभागेन निष्काषेण विशेषतः।
कुर्याद् वा पञ्चभागेन प्राग्ग्रीवे कर्णमूलतः॥ २५
स्थापयेत् कनकं तत्र गर्भान्ते द्वारमूलतः।
एवं तु त्रिविधं कुर्याज्ज्येष्ठमध्यकनीयसम्॥ २६
लिङ्गमानानुभेदेन रूपभेदेन वा पुनः।
एते समासतः प्रोक्ता नामतः शृणुताधुना॥ २७

द्विजश्रेष्ठो! अब अन्य साधारण प्रकारके प्रासाद (देवमन्दिरों)-का वर्णन सुनिये। जहाँ देवता स्थित होते हैं, उस क्षेत्रको तीन भागोंमें विभक्तकर उसी परिमाणमें बाहरकी ओर निकला हुआ रथाङ्क बनाना चाहिये। प्रासादके चारों ओर चतुर्थ भागमें विस्तृत नेमी बनानी चाहिये। मध्य भागको उससे दूना करना चाहिये, वही उसका मान है और वही दीवालकी ऊँचाई है। शिखरकी ऊँचाई उससे दूनी मानी गयी है। उस प्रासादका प्राग्ग्रीव पाँचवें भागमें होना चाहिये। यह उसका निष्कास कहा जाता है। उसे प्राकारके तीन भागमें छिद्रयुक्त बनाना चाहिये। प्राग्ग्रीवको पाँच भागोंमें विशेषतया निष्काससे बनाना चाहिये अथवा कर्णमूलसे पाँच भागोंमें प्राग्ग्रीवकी कल्पना करनी चाहिये। वहाँ द्वारमूलसे गर्भान्तमें कनककी स्थापना करनी चाहिये। इस प्रकार इसे ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ—इन तीन प्राकारोंवाला बनाना चाहिये। वे चाहे लिङ्गके परिमाण-भेदसे हों या रूप-भेदसे हों। इन प्रासादोंके निर्माणकी विधि मैंने संक्षेपमें बतला दी, अब उनके नाम सुनिये।

मेरुमन्दरकैलासकुम्भसिंहमृगास्तथा ।
विमानच्छन्दकस्तद्वच्चतुरस्रस्तथैव च॥ २८
अष्टास्रः षोडशास्रश्च वर्तुलः सर्वभद्रकः।
सिंहास्यो नन्दनश्चैव नन्दिवर्धनकस्तथा॥ २९
हंसो वृषः सुवर्णेशः पद्मकोऽथ समुद्गकः।
प्रासादा नामतः प्रोक्ता विभागं शृणुत द्विजाः॥ ३०

मेरु, मन्दर, कैलास, कुम्भ, सिंह, मृग, विमान, छन्दक, चतुरस्र, अष्टास्र, षोडशास्र, वर्तुल, सर्वभद्रक, सिंहास्य, नन्दन, नन्दिवर्धन, हंस, वृष, सुवर्णेश, पद्मक और समुद्गक—ये प्रासादोंके नाम हैं। द्विजो! अब इनके विभागोंको सुनिये॥ २१—३०॥

शतशृङ्गश्चतुर्द्वारो भूमिकाषोडशोच्छ्रितः।
नानाविचित्रशिखरो मेरुः प्रासाद उच्यते॥ ३१

मन्दरो द्वादशप्रोक्तः कैलासो नवभूमिकः।
विमानच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः॥ ३२

स चाष्टभूमिकस्तद्वत् सप्तभिर्नन्दिवर्धनः।
विषाणकसमायुक्तो नन्दनः स उदाहृतः॥ ३३

षोडशास्रसमायुक्तो नानारूपसमन्वितः।
अनेकशिखरस्तद्वत् सर्वतोभद्र उच्यते॥ ३४

चित्रशालासमोपेतो विज्ञेयः पञ्चभूमिकः।
वलभीच्छन्दकस्तद्वदनेकशिखराननः॥ ३५

वृषस्योच्छ्रायतस्तुल्यो मण्डलश्चास्रवर्जितः।
सिंहः सिंहाकृतिर्ज्ञेयो गजो गजसमस्तथा॥ ३६

कुम्भः कुम्भाकृतिस्तद्वद् भूमिकानवकोच्छ्रयः।
अङ्गुलीपुटसंस्थानः पञ्चाण्डकविभूषितः॥ ३७

षोडशास्रः समंताच्च विज्ञेयः स समुद्गकः।
पार्श्वयोश्चन्द्रशालेऽस्य उच्छ्रायो भूमिकाद्वयम्॥ ३८

तथैव पद्मकः प्रोक्त उच्छ्रायो भूमिकात्रयम्।
षोडशास्रः स विज्ञेयो विचित्रशिखरः शुभः॥ ३९

मृगराजस्तु विख्यातश्चन्द्रशालविभूषितः।
प्राग्ग्रीवेण विशालेन भूमिकासु षडुन्नतः॥ ४०

अनेकश्चन्द्रशालश्च गजः प्रासाद इष्यते।

सौ शृङ्ग तथा चार द्वारवाला, सोलह खण्डोंमें ऊँचा, अनेकों विचित्र शिखरोंसे युक्त प्रासाद 'मेरु' कहलाता है। इसी प्रकार 'बारह खण्डोंवाला' मन्दर तथा नव खण्डोंवाला 'कैलास' कहा गया है। 'विमान' और 'छन्दक' भी उन्हींकी भाँति अनेक शिखरों और मुखोंसे युक्त तथा आठ खण्डोंवाले होते हैं। सात खण्डोंवाला 'नन्दिवर्धन' होता है। जो विषाणकसे संयुक्त रहता है, उसे 'नन्दन' कहा जाता है। जो प्रासाद सोलह पहलोंवाला, विविध रूपोंसे सुशोभित और अनेक शिखरोंसे संवलित होता है, उसे 'सर्वतोभद्र' कहते हैं। इसे चित्रशालासे संयुक्त तथा पाँच खण्डोंवाला जानना चाहिये। प्रासादके बलभी (बुर्ज) तथा छन्दकको भी उसी प्रकार अनेक शिखरों और मुखोंसे युक्त बनाना चाहिये। ऊँचाईमें वृषभके समान तथा मण्डलमें बिना पहलके सिंहप्रासादको सिंहकी आकृतिका तथा गजको गजके समान ही जानना चाहिये। कुम्भ आकृतिमें कुम्भकी भाँति और ऊँचाईमें नौ खण्डका हो। जिसकी स्थिति अंगुलीपुटकी भाँति हो, जो पाँच अण्डोंसे विभूषित और चारों ओरसे सोलह पहलवाला हो, उसे 'समुद्गक' जानना चाहिये। इसके दोनों पार्श्वोंमें चन्द्रशालाएँ हों और ऊँचाई दो खण्डोंसे युक्त हो। उसी प्रकारकी बनावट 'पद्मक' की भी होनी चाहिये, केवल ऊँचाईमें यह तीन खण्डोंवाला हो। इसे विचित्र शिखरोंसे युक्त, शुभदायक और सोलह पहलोंवाला जानना चाहिये। 'मृगराज' प्रासाद वह है, जो चन्द्रशालासे विभूषित, प्राग्ग्रीवसे युक्त और छः खण्डों (मंजिलों)-तक ऊँचा हो। अनेक चन्द्रशालाओंसे युक्त प्रासाद 'गज' कहलाता है॥ ३१—४० १/२॥

पर्यस्तगृहराजो वै गरुडो नाम नामतः॥ ४१
सप्तभूम्युच्छ्रयस्तद्वच्चन्द्रशालात्रयान्वितः ।
भूमिकाषडशीतिस्तु बाह्यतः सर्वतो भवेत्॥ ४२
तथान्यो गरुडस्तद्वदुच्छ्रयाद् दशभूमिकः।
भूमिका षोडशास्त्रस्तु भूमिद्वयमथाधिकः॥ ४३
पद्मतुल्यप्रमाणेन श्रीवृक्षक इति स्मृतः।
पञ्चाण्डको द्विभूमिश्च गर्भे हस्तचतुष्टयम्॥ ४४
वृषो भवति नाम्नायं प्रासादः सार्वकामिकः।
सप्तकाः पञ्चकाश्चैव प्रासादा वै मयोदिताः॥ ४५
सिंहास्येन समा ज्ञेया ये चान्ये तत्प्रमाणकाः।
चन्द्रशालैः समोपेताः सर्वे प्राग्ग्रीवसंयुताः।
ऐष्टका दारवाश्चैव शैला वा स्युः सतोरणाः॥ ४६
मेरुः पञ्चाशद्धस्तः स्यान्मन्दरः पञ्चहीनकः।
चत्वारिंशत् तु कैलासश्चतुस्त्रिंशद् विमानकः॥ ४७
नन्दिवर्धनकस्तद्वद् द्वात्रिंशत् समुदाहृतः।
त्रिंशता नन्दनः प्रोक्तः सर्वतोभद्रकस्तथा॥ ४८
वर्तुलः पद्मकश्चैव विंशद्धस्त उदाहृतः।
गजः सिंहश्च कुम्भश्च वलभीच्छन्दकस्तथा॥ ४९
एते षोडशहस्ताः स्युश्चत्वारो देववल्लभाः।
कैलासो मृगराजश्च विमानच्छन्दको मतः॥ ५०
एते द्वादशहस्ताः स्युरेतेषामिह मन्मतम्।
गरुडोऽष्टकरो ज्ञेयो हंसो दश उदाहृतः॥ ५१
एवमेते प्रमाणेन कर्तव्याः शुभलक्षणाः।
यक्षराक्षसनागानां मातृहस्तात् प्रशस्यते॥ ५२
तथा मेर्वादयः सप्त ज्येष्ठलिङ्गे शुभावहाः।
श्रीवृक्षकादयश्चाष्टौ मध्यमस्य प्रकीर्तिताः॥ ५३
तथा हंसादयः पञ्च कनिष्ठे शुभदा मताः।
वलभ्यच्छन्दके गौरी जटामुकुटधारिणी॥ ५४
वरदाभयदा तद्वत् साक्षसूत्रकमण्डलुः।

'गरुड़' नामक प्रासाद पीछेकी ओर बहुत फैला हुआ, तीन चन्द्रशालाओंसे विभूषित और सात खण्ड ऊँचा होता है। उसके बाहर चारों ओर छियासी खण्ड होते हैं। एक अन्य प्रकारका भी गरुड़ प्रासाद होता है, जो ऊँचाईमें दस खण्ड ऊँचा होता है। 'पद्मक' सोलह पहलोंवाला तथा पूर्वकथित प्रासाद गरुड़से दो खण्ड अधिक ऊँचा होना चाहिये। पद्मके समान ही 'श्रीवृक्षक' प्रासादका परिमाण कहा जाता है। (प्रकोष्ठ) जिसमें पाँच अण्डक, दो खण्ड तथा मध्यभागमें चार हाथका विस्तार होता है, वह 'वृष' नामक प्रासाद सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला होता है। मैंने पाँच-सात प्रकारके प्रासादोंका वर्णन किया है। अतः अन्य प्रासादोंको, जिनका वर्णन नहीं किया गया, सिंहास्यके प्रमाणानुसार ही जान लेना चाहिये। वे सभी चन्द्रशालाओंसे संयुक्त तथा प्राग्ग्रीवसे संवलित रहेंगे। इन्हें ईंट, लकड़ी या पत्थरके तोरणसहित बनवाना चाहिये। 'मेरु' प्रासाद पचास हाथ, 'मन्दर' उससे पाँच हाथ न्यून अर्थात् पैंतालीस हाथ, 'कैलास' चालीस हाथ और विमान चौंतीस हाथका होता है। उसी प्रकार 'नन्दिवर्धन' बत्तीस हाथ तथा 'नन्दन' और 'सर्वतोभद्र' तीस हाथोंके कहे गये हैं। 'वर्तुल' और 'पद्मक' का परिमाण बीस हाथका कहा गया है। गज, सिंह, कुम्भ, वलभी तथा छन्दक—ये सोलह हाथके होते हैं। 'कैलास', 'मृगराज', 'विमान' और 'छन्दक'—ये बारह हाथके माने गये हैं। ये चारों देवताओंको अत्यन्त प्रिय हैं॥ ४१—५० $\frac{३}{२}$॥

'प्रासाद 'गरुड़' आठ हाथोंका तथा 'हंस' दस हाथोंका कहा गया है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणके अनुसार इन शुभ लक्षणसम्पन्न प्रासादोंकी रचना करनी चाहिये। यक्ष, राक्षस और नागोंके प्रासाद मातृहस्तके प्रमाणसे प्रशस्त माने गये हैं। मेरु आदि सात प्रासाद ज्येष्ठ लिङ्गके लिये शुभदायक हैं। 'श्रीवृक्षक' आदि आठ मध्यम लिङ्गके लिये शुभदायक कहे गये हैं। इसी प्रकार हंस आदि पाँच कनिष्ठ लिङ्गके लिये शुभदायक माने गये हैं। वलभी और छन्दक प्रासादमें गौरवर्णा, जटा-मुकुटधारिणी एवं क्रमशः चार हाथोंमें—वरमुद्रा, अभयमुद्रा, अक्षसूत्र और कमण्डलु धारण करनेवाली देवी शुभदायिनी

गृहे तु रक्तमुकुटा उत्पलाङ्कुशधारिणी।
वरदाभयदा चापि पूजनीया सभर्तृका॥ ५५
तपोवनस्थामितरां तां तु सम्पूजयेद् बुधः।
देव्या विनायकस्तद्वद् वलभीच्छन्दके शुभः॥ ५६

हैं। गृहमें लाल मुकुट धारण करनेवाली, चार हाथोंमें क्रमशः कमल, अङ्कुश, वरदमुद्रा एवं अभयमुद्रासे युक्त देवीका पतिसहित पूजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको दूसरी जो तपोवनमें स्थित रहनेवाली देवी हैं, उनकी भलीभाँति पूजा करनी चाहिये। देवीके साथ विनायक (गणेशजी) वलभी और छन्दक प्रासादमें शुभदायक होते हैं॥ ५१—५६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रासादानुकीर्तनं नामैकोनसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २६९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रासादानुकीर्तन नामक दो सौ उनहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २६९॥



दो सौ सत्तरवाँ अध्याय

प्रासाद-संलग्न मण्डपोंके नाम, स्वरूप, भेद और उनके निर्माणकी विधि

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मण्डपानां तु लक्षणम्।
मण्डपप्रवरान् वक्ष्ये प्रासादस्यानुरूपतः॥ १
विविधा मण्डपाः कार्या ज्येष्ठमध्यकनीयसः।
नामतस्तान् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमः॥ २
पुष्पकः पुष्पभद्रश्च सुव्रतोऽमृतनन्दनः।
कौसल्यो बुद्धिसंकीर्णो गजभद्रो जयावहः॥ ३
श्रीवत्सो विजयश्चैव वास्तुकीर्तिः श्रुतिंजयः।
यज्ञभद्रो विशालश्च सुश्लिष्टः शत्रुमर्दनः॥ ४
भागपञ्चो नन्दनश्च मानवो मानभद्रकः।
सुग्रीवो हरितश्चैव कर्णिकारः शतर्धिकः॥ ५
सिंहश्च श्यामभद्रश्च सुभद्रश्च तथैव च।
सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत द्विजाः॥ ६
स्तम्भा यत्र चतुःषष्टिः पुष्पकः समुदाहृतः।
द्विषष्टिः पुष्पभद्रस्तु षष्टिः सुव्रत उच्यते॥ ७
अष्टपञ्चाशकस्तम्भः कथ्यतेऽमृतनन्दनः।
कौसल्यः षट् च पञ्चाशच्चतुष्पञ्चाशता पुनः॥ ८
नाम्ना तु बुद्धिसंकीर्णो द्विहीनो गजभद्रकः।
जयावहस्तु पञ्चाशच्छ्रीवत्सस्तद् विहीनकः॥ ९
विजयस्तद्द्विहीनः स्याद् वास्तुकीर्तिस्तथैव च।
द्वाभ्यामेव प्रहीयेत ततः श्रुतिंजयोऽपरः॥ १०

सूतजी कहते हैं—श्रेष्ठ ऋषिगण! अब मैं प्रासादोंके अनुरूप मण्डपोंका लक्षण बतला रहा हूँ। इस प्रसङ्गमें श्रेष्ठ मण्डपोंका भी वर्णन करूँगा। ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ-भेदोंसे विविध मण्डपोंकी रचना करनी चाहिये। मैं उन सभीका आनुपूर्वी नाम-निर्देशपूर्वक वर्णन कर रहा हूँ, सुनिये। द्विजगण! पुष्पक, पुष्पभद्र, सुव्रत, अमृतनन्दन, कौसल्य, बुद्धिसंकीर्ण, गजभद्र, जयावह, श्रीवत्स, विजय, वास्तुकीर्ति, श्रुतिंजय, यज्ञभद्र, विशाल, सुश्लिष्ट, शत्रुमर्दन, भागपञ्च, नन्दन, मानव, मानभद्रक, सुग्रीव, हरित, कर्णिकार, शतर्धिक, सिंह, श्यामभद्र तथा सुभद्र—ये सत्ताईस प्रकारके मण्डप कहे गये हैं। अब आपलोग इनके लक्षणोंको सुनिये। जिस मण्डपमें चौंसठ स्तम्भ लगे हों, उस मण्डपको 'पुष्पक' कहते हैं। इसी प्रकार बासठ स्तम्भवालेको 'पुष्पभद्र' और साठ स्तम्भवालेको 'सुव्रत' कहा गया है। अट्ठावन स्तम्भवाला मण्डप 'अमृतनन्दन' कहा जाता है। छप्पन स्तम्भोंवाले मण्डपको 'कौसल्य', चौवन स्तम्भवालेको बुद्धिसंकीर्ण, उससे दो स्तम्भ कम अर्थात् बावन स्तम्भवालेको 'गजभद्रक', पचास स्तम्भवालेको 'जयावह', अड़तालीस स्तम्भोंवाले मण्डपको 'श्रीवत्स' तथा छियालीस स्तम्भोंवालेको 'विजय' कहते हैं। उसी प्रकार छियालीस स्तम्भोंवाला मण्डप 'वास्तुकीर्ति' कहलाता है। चौवालीस स्तम्भोंवाले मण्डपको 'श्रुतिंजय' कहते हैं॥ १—१०॥

चत्वारिंशद्यज्ञभद्रस्तद्द्विहीनो विशालकः।
षट्त्रिंशच्चैव सुश्लिष्टो द्विहीनः शत्रुमर्दनः॥ ११

द्वात्रिंशद्भागपञ्चस्तु त्रिंशद्भिर्नन्दनः स्मृतः।
अष्टाविंशन्मानवस्तु मानभद्रो द्विहीनकः॥ १२

चतुर्विंशस्तु सुग्रीवो द्वाविंशो हरितो मतः।
विंशतिः कर्णिकारः स्यादष्टादश शतर्धिकः॥ १३

सिंहो भवेद् द्विहीनश्च श्यामभद्रो द्विहीनकः।
सुभद्रस्तु तथा प्रोक्तो द्वादशस्तम्भसंयुतः॥ १४

मण्डपाः कथितास्तुभ्यं यथावल्लक्षणान्विताः।
त्रिकोणं वृत्तमर्धेन्दुमष्टकोणं द्विरष्टकम्॥ १५

चतुष्कोणं तु कर्तव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु।
राज्यं च विजयश्चैव आयुर्वर्धनमेव च॥ १६

पुत्रलाभः श्रियः पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद् भवेत्।
एवं तु शुभदाः प्रोक्ताश्चान्यथा त्वशुभावहाः॥ १७

चतुःषष्टिपदं कृत्वा मध्ये द्वारं प्रकल्पयेत्।
विस्ताराद् द्विगुणोच्छ्रायं तत्त्रिभागः कटिर्भवेत्॥ १८

विस्तारार्धो भवेद् गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः।
गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं त्रिगुणमायतम्॥ १९

तथा द्विगुणविस्तीर्णमुखस्तद्वदुदुम्बरः।
विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम्॥ २०

त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखाभिर्द्वारमिष्यते।
कनिष्ठमध्यमं ज्येष्ठं यथायोगं प्रकल्पयेत्॥ २१

अङ्गुलानां शतं सार्धं चत्वारिंशत्तथोन्नतम्।
त्रिंशद्विंशोत्तरं चान्यद्वान्यमुत्तममेव च॥ २२

शतं चाशीतिसहितं वातनिर्गमने भवेत्।
अधिकं दशभिस्तद्वत् तथा षोडशभिः शतम्॥ २३

शतमानं तृतीयं च नवत्याशीतिभिस्तथा।
दश द्वाराणि चैतानि क्रमेणोक्तानि सर्वदा॥ २४

अन्यानि वर्जनीयानि मानसोद्वेगदानि तु।
द्वारवेधं प्रयत्नेन सर्ववास्तुषु वर्जयेत्॥ २५

वृक्षकोणभ्रमिद्वारस्तम्भकूपध्वजादिभिः।
कुड्यश्वभ्रेण वा विद्धं द्वारं न शुभदं भवेत्॥ २६

'यज्ञभद्र'-मण्डपमें चालीस, विशालकमें उससे दो स्तम्भ न्यून अर्थात् अड़तीस, 'सुश्लिष्ट' में छत्तीस और 'शत्रुमर्दन' में उससे दो स्तम्भ न्यून अर्थात् चौंतीस, 'भागपञ्च' में बत्तीस और 'नन्दन' में तीस स्तम्भ माने गये हैं। अट्ठाईस स्तम्भोंका 'मानव', छब्बीसका 'मानभद्र', चौबीसका 'सुग्रीव', बाईसका 'हरित', बीसकी 'कर्णिका', अठारहका 'शतधिक', सोलहका 'सिंह', चौदहका 'श्यामभद्र' और बारहका 'सुभद्र' कहा गया है। इस प्रकार मैंने लक्षणोंसहित मण्डपोंके नाम तुम्हें बतला दिया। इन मण्डपोंकी स्थापना त्रिकोण, गोलाकार, अर्धचन्द्राकार, अष्टकोण, दशकोण अथवा चतुष्कोणरूपमें करनी चाहिये। इन त्रिकोणादिकोंकी स्थापनासे क्रमशः राज्य, विजय, आयुकी वृद्धि, पुत्र-लाभ, लक्ष्मी और पुष्टिकी प्राप्ति होती है। इस प्रकारके मण्डप मङ्गलदायक तथा इनसे विपरीत अमङ्गलकारक होते हैं। गृहके मध्यमें चौंसठ पदोंकी कल्पनाकर मध्यमें द्वार बनाना चाहिये। चौड़ाईसे ऊँचाई दुगुनी होनी चाहिये और उसके कटिभागको तृतीयांशके बराबर बनाना चाहिये। चौड़ाईका आधा मध्यभाग होना चाहिये। उसके चारों ओर दूसरी दीवालें रहेंगी। मध्यभागके चतुर्थांशसे तिगुना लम्बा और दूना विस्तृत द्वार होना चाहिये, जो गूलरका बना हुआ हो। दोनों शाखाओंका विस्तार द्वारके विस्तारका चतुर्थांश हो॥ ११—२०॥

मण्डप-द्वार, तीन, पाँच, सात अथवा नौ शाखाओंसे युक्त बनते हैं, जो क्रमशः कनिष्ठ, मध्यम और ज्येष्ठ कहलाते हैं। एक सौ साढ़े चालीस अंगुल ऊँचा द्वार धनप्रद एवं उत्तम होता है। अन्य दो एक सौ तीस तथा एक सौ बीस अंगुलके होते हैं। शुद्ध वायुके आने-जानेके लिये एक सौ अस्सी अंगुल ऊँचा द्वार होना चाहिये। उसी प्रकार एक सौ दस, एक सौ सोलह, एक सौ नब्बे तथा अस्सी अंगुलके द्वार होने चाहिये। सर्वदा क्रमशः ये दस प्रकारके द्वार कहे गये हैं। इनके अतिरिक्त अन्य प्रकारके द्वार वर्जित हैं; क्योंकि वे चित्तको उद्विग्न करनेवाले होते हैं। सभी वास्तुओंमें प्रयत्नपूर्वक द्वारवेधसे बचना चाहिये। सामनेकी ओर वृक्ष, कोण, भ्रमि, द्वार, स्तम्भ, कूप, ध्वज, दीवाल और गड्ढा— इन सबसे विद्ध किया हुआ द्वार मंगलकारी नहीं

क्षयश्च दुर्गतिश्चैव प्रवासः क्षुद्भयं तथा।
दौर्भाग्यं बन्धनं रोगो दारिद्र्यं कलहं तथा॥ २७
विरोधश्चार्थनाशश्च सर्वं वेधाद् भवेत् क्रमात्।
पूर्वेण फलिनो वृक्षाः क्षीरवृक्षास्तु दक्षिणे॥ २८
पश्चिमेन जलं श्रेष्ठं पद्मोत्पलविभूषितम्।
उत्तरे सरलैस्तालैः शुभा स्यात् पुष्पवाटिका॥ २९

होता। इन द्वारवेधसे क्रमशः क्षय, दुर्गति, प्रवास, क्षुधाका भय, दुर्भाग्य, बन्धन, रोग, दरिद्रता, कलह, विरोध, धनहानि—ये सब कुपरिणाम होते हैं। घरके पूर्व दिशामें फलदार वृक्ष, दक्षिण दिशामें दूधवाले वृक्ष, पश्चिम दिशामें विविध भाँतिके कमलोंसे सुशोभित जल तथा उत्तर दिशामें चीड़ और ताड़के वृक्षोंसे युक्त पुष्पवाटिका मङ्गलदायिनी होती है॥ २१—२९॥

सर्वतस्तु जलं श्रेष्ठं स्थिरमस्थिरमेव च।
पार्श्वतश्चापि कर्तव्यं परिवारादिकालयम्॥ ३०
याम्ये तपोवनस्थानमुत्तरे मातृकागृहम्।
महानसं तथाऽऽग्नेये नैर्ऋत्येऽथ विनायकम्॥ ३१
वारुणे श्रीनिवासस्तु वायव्ये गृहमालिका।
उत्तरे यज्ञशाला तु निर्माल्यस्थानमुत्तरे॥ ३२
वारुणे सोमदैवत्ये बलिनिर्वपणं स्मृतम्।
पुरतो वृषभस्थानं शेषे स्यात् कुसुमायुधः॥ ३३
जलवापी तथेशाने विष्णुस्तु जलशाय्यपि।
एवमायतनं कुर्यात् कुण्डमण्डपसंयुतम्॥ ३४
घण्टावितानकसतोरणचित्रयुक्तं
नित्योत्सवप्रमुदितेन जनेन सार्धम्।
यः कारयेत् सुरगृहं विविधं ध्वजाङ्कं
श्रीस्तं न मुञ्चति सदा दिवि पूज्यते च॥ ३५
एवं गृहार्चनविधावपि शक्तितः स्यात्
संस्थापनं सकलमन्त्रविधानयुक्तम्।
गोवस्त्रकाञ्चनहिरण्यधराप्रदानं
देयं गुरुद्विजवरेषु तथान्नदानम्॥ ३६

जल सभी दिशाओंमें श्रेष्ठ है, चाहे वह (नदी आदिका) बहता हुआ हो अथवा (कूप, सरोवर आदिका) अचल। मुख्य भवनके दोनों पार्श्वोंमें परिवार-वर्गका निवासस्थान बनाना चाहिये। दक्षिणकी ओर तपोवन अथवा तपस्याका स्थान, उत्तरमें मातृकाओंका भवन, अग्निकोणमें पाकशाला, नैर्ऋत्यकोणमें गणेशका निवास, पश्चिममें लक्ष्मीका निवास, वायव्यकोणमें गृहमालिका, उत्तरमें यज्ञशाला और निर्माल्यका स्थान होना चाहिये। पश्चिमकी ओर चन्द्रादि देवताओंके लिये बलिदान देनेका स्थान, सामनेकी ओर वृषभका स्थान और शेष भागमें कामदेवके स्थानका निर्माण करना चाहिये। ईशानकोणमें जलयुक्त बावली रहे तथा वहाँ जलशायी विष्णुभगवान्का भी स्थान रहे। इस प्रकार कुण्ड और मण्डपसे युक्त गृहका निर्माण करना चाहिये। जो मनुष्य घण्टा, वितान, तोरण तथा चित्रसे सुशोभित, नित्य महोत्सवसे प्रमुदित जनसमूहके साथ विविध ध्वजाओंसे विभूषित देव-मन्दिर बनवाता है, उसे लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती और स्वर्गमें उसकी पूजा होती है। इसी प्रकार गृहपूजनके अवसरपर भी अपनी शक्तिके अनुरूप सभी मन्त्रों और विधानोंसे युक्त स्थापना करनी चाहिये। उस समय गुरु तथा ब्राह्मणोंको गौ, वस्त्र, सुवर्णके आभूषण, सुवर्ण और पृथ्वीका दान देना चाहिये तथा अन्नदान भी करना चाहिये॥ ३०—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे प्रासादानुकीर्तनं नाम सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें प्रासाद-अनुकीर्तन नामक दो सौ सत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७०॥



दो सौ एकहत्तरवाँ अध्याय

राजवंशानुकीर्तन*

ऋषय ऊचुः

पूरोर्वंशस्त्वया सूत सभविष्यो निवेदितः।
सूर्यवंशे नृपा ये तु भविष्यन्ति हि तान् वद॥ १
तथैव यादवे वंशे राजानः कीर्त्तिवर्धनाः।
कलौ युगे भविष्यन्ति तानपीह वदस्व नः॥ २
वंशान्ते ज्ञातयो याश्च राज्यं प्राप्स्यन्ति सुव्रताः।
ब्रूहि संक्षेपतस्तासां यथाभव्यमनुक्रमात्॥ ३

सूत उवाच

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि हीक्ष्वाकूणां महात्मनाम्।
बृहद्बलस्य दायादो वीरो राजा बृहत्क्षयः।
उरुक्षयः सुतस्तस्य वत्सव्यूहो उरुक्षयात्॥ ४
वत्सव्यूहात् प्रतिव्योमस्तस्य पुत्रो दिवाकरः।
तस्यैव मध्यदेशे तु अयोध्या नगरी शुभा॥ ५
दिवाकरस्य भविता सहदेवो महायशाः।
सहदेवस्य दायादो बृहदश्वो महामनाः॥ ६
तस्य भानुरथो भाव्यः प्रतीपाश्वश्च तत्सुतः।
प्रतीपाश्वसुतश्चापि सुप्रतीको भविष्यति॥ ७
मरुदेवः सुतस्तस्य सुनक्षत्रस्ततोऽभवत्।
किंनराश्वः सुनक्षत्राद् भविष्यति परंतपः॥ ८
किंनराश्वादन्तरिक्षो भविष्यति महामनाः।
सुषेणश्चान्तरिक्षाच्च सुमित्रश्चाप्यमित्रजित्॥ ९
सुमित्रजो बृहद्राजो धर्मी तस्य सुतः स्मृतः।
पुत्रः कृतंजयो नाम धर्मिणः स भविष्यति॥ १०
कृतंजयसुतो विद्वान् भविष्यति रणंजयः।
भविता संजयश्चापि वीरो राजा रणंजयात्॥ ११
संजयस्य सुतः शाक्यः शाक्याच्छुद्धौदनोऽभवत्।
शुद्धौदनस्य भविता सिद्धार्थो राहुलः सुतः॥ १२

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! आप पिछली कथाके प्रसङ्गमें पूरुवंशी राजाओंके वंशका भविष्यसहित वर्णन हमलोगोंको सुना चुके हैं। अब आगे कलियुगमें जो सूर्यवंशी राजा होंगे, उनका वर्णन कीजिये। इसी प्रकार जो कीर्तिशाली यदुवंशी राजा होंगे, उन्हें भी बताइये तथा इन वंशोंके अन्त हो जानेपर जो अन्य शुभ व्रत-परायण जातियाँ राज्य करेंगी, उनका भी संक्षेपमें वर्णन कीजिये। इसीके साथ-साथ क्रमशः यह भी बताइये कि भविष्यमें कौन-सी विशेष घटनाएँ घटित होंगी?॥ १—३॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! इसके बाद मैं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा राजाओंका वर्णन कर रहा हूँ। सूर्यवंशी राजा बृहद्बलका पुत्र वीरवर राजा बृहत्क्षय होगा तथा बृहत्क्षयका पुत्र उरुक्षय और उरुक्षयका पुत्र वत्सव्यूह होगा। वत्सव्यूहका पुत्र प्रतिव्योम तथा उसका पुत्र दिवाकर होगा। उसीकी राजधानी मध्य देशमें अयोध्या नामक सुन्दर नगरी होगी। दिवाकरका पुत्र महायशस्वी सहदेव होगा तथा सहदेवका पुत्र महामना बृहदश्व होगा। उस बृहदश्वका पुत्र भानुरथ तथा भानुरथका पुत्र प्रतीपाश्व होगा। प्रतीपाश्वका पुत्र सुप्रतीक होगा और उसका पुत्र मरुदेव होगा। मरुदेवका पुत्र सुनक्षत्र उत्पन्न होगा। सुनक्षत्रका पुत्र शत्रुओंको संतप्त करनेवाला किंनराश्व होगा और किंनराश्वका पुत्र महामना अन्तरिक्ष होगा। अन्तरिक्षका पुत्र सुषेण तथा उसका पुत्र शत्रुओंको जीतनेवाला सुमित्र होगा। (प्रथम) सुमित्रका पुत्र बृहद्राज और बृहद्राजका पुत्र धर्मी तथा धर्मीका पुत्र कृतंजय होगा। कृतंजयका पुत्र विद्वान् रणंजय और रणंजयका पुत्र वीरराजा संजय उत्पन्न होगा। संजयका पुत्र शाक्य तथा शाक्यका पुत्र राजा शुद्धोदन होगा। शुद्धोदनका पुत्र सिद्धार्थ तथा सिद्धार्थका

* सभी पुराणोंकी अनेक छपी तथा हस्तलिखित प्रतियोंको एकत्र कर तथा पाठका संशोधनकर विल्सन्, स्मिथ, पार्जीटर आदिने इनका सुन्दर अनुवाद भी प्रस्तुत किया है और पीछे वही मिल, एलिफिंस्टन, स्मिथ, कैम्ब्रिज आदिके भारतके प्राचीन इतिहासोंका आधार बना।

प्रसेनजित् ततो भाव्यः क्षुद्रको भविता ततः।
क्षुद्रकात् कुलको भाव्यः कुलकात् सुरथः स्मृतः॥ १३
सुमित्रः सुरथाज्जातो ह्यन्त्यस्तु भविता नृपः।
एते चैक्ष्वाकवः प्रोक्ता भविष्या ये कलौ युगे॥ १४
बृहद्बलान्वये जाता भविष्याः कुलवर्धनाः।
अत्रानुवंशश्लोकोऽयं विप्रैर्गीतः पुरातनैः॥ १५
शूराश्च कृतविद्याश्च सत्यसंधा जितेन्द्रियाः।
निःशेषाः कथिताश्चैव नृपा ये वै पुरातनाः॥ १६
इक्ष्वाकूणामयं वंशः सुमित्रान्तो भविष्यति।
सुमित्रं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ॥ १७
इत्येवं भानवो वंशः प्रागेव समुदाहृतः।
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि मागधा ये बृहद्रथाः॥ १८
जरासंधस्य ये वंशे सहदेवान्वये नृपाः।
अतीता वर्तमानाश्च भविष्यांश्च तथा पुनः॥ १९
संग्रामे भारते वृत्ते सहदेवे निपातिते।
सोमाधिस्तस्य दायादो राजाभूच्च गिरिव्रजे॥ २०
पञ्चाशतं तथाष्टौ च समा राज्यमकारयत्।
श्रुतश्रवाश्चतुःषष्टिं समास्तस्यान्वयेऽभवत्॥ २१
अयुतायुस्तु षट्त्रिंशत् समा राज्यमकारयत्।
चत्वारिंशत् समास्तस्य निरमित्रो दिवं गतः॥ २२
पञ्चाशतं समाः षट् च सुक्षत्रः प्राप्तवान् महीम्।
बृहत्कर्मा त्रयोविंशदब्दं राज्यमकारयत्॥ २३
सेनाजित् सम्प्रयातश्च भुक्त्वा पञ्चाशतं महीम्।
श्रुतंजयस्तु वर्षाणि चत्वारिंशद् भविष्यति॥ २४
अष्टाविंशतिवर्षाणि महीं प्राप्स्यति वै विभुः।
अष्टपञ्चाशतं षट् च राज्ये स्थास्यति वै शुचिः॥ २५
अष्टाविंशत् समा राजा क्षेमो भोक्ष्यति वै महीम्।
सुव्रतस्तु चतुःषष्टिं राज्यं प्राप्स्यति वीर्यवान्॥ २६
पञ्चत्रिंशतिवर्षाणि सुनेत्रो भोक्ष्यते महीम्।
भोक्ष्यते निर्वृतिश्चेमामष्टपञ्चाशतं समाः॥ २७
अष्टाविंशत् समा राज्यं त्रिनेत्रो भोक्ष्यते ततः।
चत्वारिंशत् तथाष्टौ च द्युमत्सेनो भविष्यति॥ २८

पुत्र राहुल होगा। उससे प्रसेनजित उत्पन्न होगा और उससे क्षुद्रकको उत्पत्ति होगी। क्षुद्रकसे कुलक और कुलकसे सुरथ उत्पन्न होगा। सुरथसे सुमित्र (द्वितीय) पैदा होगा, जो इस वंशका अन्तिम राजा होगा। ये इक्ष्वाकुवंशी राजा हैं, जो कलियुगमें उत्पन्न होंगे। ये सभी राजा शूर, विद्वान्, जितेन्द्रिय एवं कुलकी वृद्धि करनेवाले राजा बृहद्बलके वंशमें उत्पन्न होंगे। प्राचीनकालिक ब्राह्मणोंने इस वंशपरम्पराको सूचित करनेवाला इस भावका एक श्लोक कहा है—'इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंका यह वंश राजा सुमित्रके राज्यकालतक होगा। कलियुगमें यह वंश राजा सुमित्रको प्राप्त कर विश्राम करेगा।' इस प्रकार यह सूर्यवंश पहले ही कहा जा चुका है॥ ४—१७ १/२॥

अब इसके बाद मैं बृहद्रथके वंशवाले मगधके राजाओंका, जो जरासंधके पुत्र सहदेवके वंशमें भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालमें उत्पन्न होंगे, वर्णन कर रहा हूँ। महाभारत-युद्धमें सहदेवके मारे जानेपर उनका पुत्र सोमाधि गिरिव्रजमें राजा हुआ। उसने अट्ठावन वर्षोंतक राज्य किया। उसीके वंशमें श्रुतश्रवा नामक राजा हुआ, जो चौंसठ वर्षोंतक राज्य करता रहा। उसके बाद उसका पुत्र अयुतायु राजा हुआ, जिसने छत्तीस वर्षोंतक राज्य किया। उसका पुत्र निरमित्र हुआ, जो चालीस वर्षोंतक राज्य कर स्वर्गवासी हो गया। उसके बाद राजा सुक्षत्र उत्पन्न हुआ, जिसने छप्पन वर्षोंतक राज्य किया। तदनन्तर बृहत्कर्माने तेईस वर्षोंतक राज्य किया। उसके बाद राजा सेनाजित्ने पचास वर्षोंतक पृथ्वीका पालनकर स्वर्गकी राह ली। तदनन्तर श्रुतंजय नामक राजा होगा, जो चालीस वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद विभु अट्ठाईस वर्षोंतक पृथ्वीपर शासक होगा। तत्पश्चात् राजा शुचि चौंसठ वर्षोंतक राज्यपर स्थित रहेगा। उसके बाद राजा क्षेम अट्ठाईस वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। तदुपरान्त पराक्रमी सुव्रत चौंसठ वर्षोंके लिये राज्य प्राप्त करेगा। उसके उपरान्त सुनेत्र पचीस वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। तदनन्तर निवृत्ति अट्ठावन वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। उसके बाद राजा त्रिनेत्र अट्ठाईस वर्षतक राज्यका भोग करेगा। तदनन्तर अड़तालीस वर्षतक द्युमत्सेन राजा

त्रयस्त्रिंशत्तु वर्षाणि महीनेत्रः प्रकाश्यते।
द्वात्रिंशत्तु समा राजा चञ्चलस्तु भविष्यति॥ २९

रिपुंजयस्तु वर्षाणि पञ्चाशत् प्राप्स्यते महीम्।
द्वात्रिंशति नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः।
पूर्णं वर्षसहस्रं तु तेषां राज्यं भविष्यति॥ ३०

होगा। उसके बाद तैंतीस वर्षोंतक महीनेत्रका राज्य होगा। तदुपरान्त बत्तीस वर्षतक चञ्चल राजा होगा। उसके बाद पचास वर्षोंतक पृथ्वी रिपुंजयके हाथमें रहेगी। इस प्रकार ये बत्तीस राजा बृहद्रथके वंशमें उत्पन्न होंगे। उनका राज्यकाल पूरा एक सहस्र वर्षका होगा॥ १८—३०॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तने एकसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राजवंशका कीर्तन नामक दो सौ एकहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७१॥



दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय

कलियुगके प्रद्योतवंशी आदि राजाओंका वर्णन

सूत उवाच

बृहद्रथेष्वतीतेषु वीतिहोत्रेष्ववन्तिषु।
पुलकः स्वामिनं हत्वा स्वपुत्रमभिषेक्ष्यति॥ १

मिषतां क्षत्रियाणां च बालकः पुलकोद्भवः।
स वै प्रणतसामन्तो भविष्यो नयवर्जितः॥ २

त्रयोविंशत् समा राजा भविता स नरोत्तमः।
अष्टाविंशतिवर्षाणि पालको भविता ततः॥ ३

विशाखयूपो भविता नृपः पञ्चाशतिं तथा समाः।
एकविंशत् समा राजा सूर्यकस्तु भविष्यति॥ ४

भविष्यति समा त्रिंशत् तत्सुतो नन्दिवर्धनः।

द्विपञ्चाशत्ततो भुक्त्वा प्रणष्टाः पञ्चते नृपाः।
हत्वा तेषां यशः कृत्स्नं शिशुनागो भविष्यति॥ ५

वाराणस्यां सुतं स्थाप्य श्रयिष्यति गिरिव्रजम्।
शिशुनागश्च वर्षाणि चत्वारिंशद् भविष्यति॥ ६

काकवर्णः सुतस्तस्य षट्त्रिंशत् प्राप्स्यते महीम्।
षड्विंशच्चैव वर्षाणि क्षेमधर्मा भविष्यति॥ ७

चतुर्विंशत् समाः सोऽपि क्षेमजित् प्राप्स्यते महीम्।
अष्टाविंशतिवर्षाणि विम्बसारो भविष्यति॥ ८

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (मगधमें) बृहद्रथवंशीय एवं अवन्तिदेशमें वीतिहोत्रवंशीय राजाओंके समाप्त हो जानेपर पुलक अपने स्वामी (रिपुंजय)-को मारकर उसके स्थानपर अपने पुत्रको अभिषिक्त करेगा। पुलकसे उत्पन्न हुआ वह बालक क्षत्रियोंके देखते-देखते केवल शक्तिके बलपर सामन्तोंद्वारा वन्दनीय हो जायगा, किंतु उसका शासन नीति-धर्म-पूर्ण न होगा। वह नरोत्तम तेईस वर्षोंतक राज्य करेगा। इसके बाद अट्ठाईस वर्षोंतक पालक राजा होगा। तत्पश्चात् विशाखयूप नामक राजा होगा, जो पचास वर्षोंतक राज्य करेगा। फिर सूर्यक इक्कीस वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र नन्दिवर्धन राजा होगा, जो तीस वर्षोंतक राज्य करेगा। इस प्रकार ये पाँच राजा बावन वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करके नष्ट हो जायँगे। तदनन्तर इन राजाओंके सम्पूर्ण यशका अपहरण करके शिशुनाग नामक राजा होगा, जो वाराणसी नगरीमें अपने पुत्रको स्थापित कर स्वयं गिरिव्रज (राजगृह या पाटलिपुत्र)-का आश्रय लेगा। वह शिशुनाग चालीस वर्षोंतक राजा होगा। उसका पुत्र काकवर्ण होगा, जो छब्बीस वर्षोंतक पृथ्वीका राज्य करेगा। उसके बाद छत्तीस वर्षोंतक क्षेमधर्मा नामक राजा होगा। तदनन्तर चौबीस वर्षोंतक क्षेमजित् नामक राजा राज्य करेगा। तत्पश्चात् अट्ठाईस वर्षोंतक

अजातशत्रुर्भविता पञ्चविंशत् समा नृपः।
पञ्चविंशत् समा राजा दर्शकस्तु भविष्यति॥ ९

उदासी* भविता तस्मात् त्रयस्त्रिंशत् समा नृपः।
स वै पूर्वपरं राजा दक्षिण्यां कुसुमाह्वयम्॥ १०

गङ्गाया दक्षिणे कूले चतुर्थे तु करिष्यति।
चत्वारिंशत् समा भाव्यो राजा वै नन्दिवर्धनः॥ ११
चत्वारिंशत् त्रयश्चैव महानन्दी भविष्यति।
इत्येते भवितारो वै शिशुनागाः नृपा दश॥ १२
शतानि त्रीणि पूर्णानि षष्टिवर्षाधिकानि तु।
शिशुनागा भविष्यन्ति राजानः क्षत्रबन्धवः॥ १३
एतैः सार्धं भविष्यन्ति यावत् कलिनृपाः परे।
तुल्यकालं भविष्यन्ति सर्वे ह्येते महीक्षितः॥ १४
चतुर्विंशत् तथैक्ष्वाकाः पाञ्चालाः सप्तविंशतिः।
काशेयास्तु चतुर्विंशदष्टाविंशत् तु हैहयाः॥ १५
कलिङ्गाश्चैव द्वात्रिंशदश्मकाः पञ्चविंशतिः।
कुरवश्चापि षड्विंशदष्टाविंशास्तु मैथिलाः॥ १६
शूरसेनास्त्रयोविंशद् वीतिहोत्राश्च विंशतिः।
एते सर्वे भविष्यन्ति एककालं महीक्षितः॥ १७
महानन्दिसुतश्चापि शूद्रायां कलिकांशजः।
उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्त्रान्तको नृपः॥ १८
ततः प्रभृति राजानो भविष्याः शूद्रयोनयः।
एकराट् स महापद्मो एकछत्रो भविष्यति॥ १९
अष्टाशीतिस्तु वर्षाणि पृथिव्यां च भविष्यति।
सर्वक्षत्रमथोत्साद्य भाविनार्थेन चोदितः॥ २०
सुकल्पादिसुता ह्यष्टौ समा द्वादश ते नृपाः।
महापद्मस्य पर्याये भविष्यन्ति नृपाः क्रमात्॥ २१

उद्धरिष्यति तान् सर्वान् कौटिल्यो: वैदिरष्टभिः।
भुक्त्वा महीं वर्षशतं ततो मौर्यान् गमिष्यति॥ २२

भविता शतधन्वा च तस्य पुत्रस्तु षट् समाः।
बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः॥ २३

विम्बसार राजा होगा। फिर पच्चीस वर्षोंतक अजातशत्रु नामक राजा होगा। तदनन्तर उसका पुत्र दशक राजा होगा, जो पैंतीस वर्षोंतक राज्य करेगा। फिर उदासी नामक राजा तैंतीस वर्षोंतक शासन करेगा। वह राज्यके चतुर्थ वर्षमें गङ्गाके दक्षिण तटपर कुसुमपुर या पाटलीपुत्र (पटना) नगर बसायेगा। उसके बाद चालीस वर्षोंतक नन्दिवर्धन राजा होगा॥ १—११॥

तदनन्तर तैंतालीस वर्षोंतक महानन्दी राजा होगा। ये दस राजा शिशुनागके बाद इस वंशमें उत्पन्न होंगे। इस प्रकार कुल मिलाकर तीन सौ साठ वर्षोंतक शिशुनागवंशीय राजा राज्य करेंगे, जो क्षत्रियोंमें निम्नकोटिके क्षत्रिय होंगे। इन्हीं राजाओंके साथ कलियुगमें अन्य राजा भी होंगे, जो सभी समसामयिक होंगे। उनमें चौबीस इक्ष्वाकुवंशीय, सत्ताईस पाञ्चालके, चौबीस काशीके, अट्ठाईस हैहयवंशीय, बत्तीस कलिंगदेशीय, पच्चीस अश्मक (महाराष्ट्री), छब्बीस कुरुदेशी, अट्ठाईस मैथिल, तेईस शूरसेन देश (माथुर मण्डल)-के तथा बीस वीतिहोत्रवंशीय—ये सभी राजा एक समयमें ही राज्य करेंगे। महानन्दिका पुत्र महापद्म कलियुगके अंशरूपसे शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होगा। यह राजा सम्पूर्ण क्षत्रियोंका विनाशक होगा। तभीसे शूद्राके गर्भसे उत्पन्न होनेवाले लोग राजा होंगे। वह महापद्म एकछत्र सम्राट् होगा, जो अट्ठासी वर्षोंतक पृथ्वीका उपभोग करेगा। वह भावीवश समस्त क्षत्रिय राजाओंका विनाश कर डालेगा॥ १२—२०॥

तदनन्तर उस महापद्मके वंशमें सुकल्प आदि आठ पुत्र राजा होंगे, जो क्रमशः केवल बारह वर्षोंतक राज्य करेंगे। बारह वर्षोंके बाद कौटिल्य महापद्मके पुत्रोंको उखाड़ देगा। फिर उसके सौ वर्षोंतक राज्य करनेके बाद यह राज्य मौर्यवंशके अधिकारमें चला जायगा। इसके पश्चात् उसका पुत्र शतधन्वा होगा, जो छः वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद उसका पुत्र बृहद्रथ सत्तर वर्षोंतक

* अन्यत्र सर्वत्र 'उदयी' पाठ है

षट्त्रिंशत् तु समा राजा भविता शक एव च।
सप्तानां दश वर्षाणि तस्य नप्ता भविष्यति॥ २४

राजा दशरथोऽष्टौ तु तस्य पुत्रो भविष्यति।
भविता नव वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सप्ततिः॥ २५

इत्येते दश मौर्यास्तु ये भोक्ष्यन्ति वसुंधराम्।
सप्तत्रिंशच्छतं पूर्णं तेभ्यः शुङ्गान् गमिष्यति॥ २६

पुष्यमित्रस्तु सेनानीरुद्धृत्य स बृहद्रथान्।
कारयिष्यति वै राज्यं षट्त्रिंशतिसमा नृपः॥ २७

राज्य करेगा। तदनन्तर छत्तीस वर्षोंतक शक राजा रहेगा। शकके बाद उसका नाती सत्तर वर्षोंतक राज्य करेगा। उसका पुत्र राजा दशरथ होगा, जो आठ वर्षोंतक राज्य करेगा। तदनन्तर उसका पुत्र उन्नासी वर्षोंतक राज्य करेगा। ये दस मौर्यवंशीय राजा एक सौ सैंतीस वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करेंगे। तदनन्तर यह राज्य शुंगवंशीयोंके हाथमें चला जायगा। उस समय शुंगवंशी सेनापति पुष्यमित्र बृहद्रथवंशज राजाओंका विनाश कर स्वयं राजा बन बैठेगा और छत्तीस वर्षोंतक राज्य करेगा॥ २१—२७॥

अग्निमित्रः सुतश्चाष्टौ भविष्यति समा नृपः।
भवितापि वसुज्येष्ठः सप्त वर्षाणि वै नृपः।
वसुमित्रः सुतो भाव्यो दश वर्षाणि वै ततः॥ २८

ततोऽन्धकः समे द्वे तु तस्य पुत्रो भविष्यति।
भविष्यति समास्तस्मात् त्रीण्येवं स पुलिन्दकः॥ २९

भविता वज्रमित्रस्तु समा राजा पुनर्भवः।
द्वात्रिंशत् तु समाभागः समाभागात् ततो नृपः॥ ३०

भविष्यति सुतस्तस्य देवभूमिः समा दश।
दशैते क्षुद्रराजानो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्॥ ३१

शतं पूर्णं शते द्वे च ततः शुङ्गान् गमिष्यति।
अमात्यो वसुदेवस्तु प्रसह्य ह्यवनीं नृपः॥ ३२

देवभूमिमथोत्साद्य शौङ्गस्तु भविता नृपः।
भविष्यति समा राजा नव काण्वायनो द्विजः॥ ३३

भूमिमित्रः सुतस्तस्य चतुर्दश भविष्यति।
नारायणः सुतस्तस्य भविता द्वादशैव तु॥ ३४

सुशर्मा तत्सुतश्चापि भविष्यति दशैव तु।
इत्येते शुङ्गभृत्यास्तु स्मृताः काण्वायना नृपाः॥ ३५

चत्वारिंशिद् द्विजा ह्येते काण्वा भोक्ष्यन्ति वै महीम्।
चत्वारिंशत् पञ्च चैव भोक्ष्यन्तीमां वसुंधराम्॥ ३६
एते प्रणतसामन्ता भविष्या धार्मिकाश्च ये।
येषां पर्यायकाले तु भूमिरान्ध्रान् गमिष्यति॥ ३७

तदनन्तर अग्निमित्र नामक राजा होगा, जो आठ वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद वसुज्येष्ठ सात वर्षोंतक राज्य करेगा। तत्पश्चात् वसुमित्र नामक राजा होगा, जो दस वर्षोंतक राज्य करेगा। तदनन्तर अन्धक नामक राजा दो वर्ष, फिर उसका पुत्र पुलिन्दक तीन वर्षतक राज्य करेगा। पुलिन्दकके बाद वज्रमित्र नामक राजा चौदह वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद बत्तीस वर्षोंतक समाभाग नामक राजा होगा। समाभागके बाद उसका पुत्र देवभूमि राजा होगा जो दस वर्षोंतक राज्य करेगा। ये दस छोटे-छोटे राजा इस वसुंधराका तीन सौ वर्षोंतक उपभोग करेंगे। इसके बाद राज्य शुंगवंशियोंके हाथमें चला जायगा। राजा देवभूमिका अमात्य शुंगवंशीय वसुदेव राजाको मारकर पृथ्वीका शासक होगा, जो काण्वायन नामसे नौ वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र भूमिमित्र होगा, जो चौदह वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र नारायण बारह वर्षोंतक राजा रहेगा। फिर उसका पुत्र सुशर्मा दस वर्षोंतक राज्य करेगा। ये शुङ्गभृत्य राजा काण्वायन नामसे कहे गये हैं। ये काण्व नामक चालीस द्विज पैंतालीस वर्षोंतक इस पृथ्वीका उपभोग करेंगे। सामन्तोंद्वारा प्रणाम किये जानेवाले ये राजा परमधार्मिक होंगे। इनके कार्यकालमें ही पृथ्वी आन्ध्रवंशीय राजाओंके हाथमें चली जायगी॥ २८—३७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे राजवंशानुकीर्तने द्विसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें राज्यवंशकीर्तन नामक दो सौ बहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७२॥



दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय

आन्ध्रवंशीय, शकवंशीय एवं यवनादि राजाओंका संक्षिप्त ऐतिहासिक विवरण

सूत उवाच

काण्वायनांस्ततो भृत्यान् सुशर्माणं प्रसह्य तम्।
शुङ्गानां चैव यच्छेषं क्षपित्वा तु बलीयसः॥ १

शिशुकोऽन्ध्रः सजातीयः प्राप्स्यतीमां वसुंधराम्।
त्रयोविंशत्समा राजा शिशुकस्तु भविष्यति॥ २

कृष्णो भ्राता यवीयस्तु ह्यष्टादश भविष्यति।
श्रीशातकर्णिर्भविता तस्य पुत्रस्तु वै दश॥ ३

पूर्णोत्सङ्गस्ततो राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु।
स्कन्धस्तम्भिस्तथा राजा वर्षाण्यष्टादशैव तु॥ ४

पञ्चाशतं समाः षट् च शान्तकर्णिर्भविष्यति।
दश चाष्टौ च वर्षाणि तस्य लम्बोदरः सुतः॥ ५

आपीतको दश द्वे च तस्य पुत्रो भविष्यति।
दश चाष्टौ च वर्षाणि मेघस्वातिर्भविष्यति॥ ६

स्वातिश्च भविता राजा समास्त्वष्टादशैव तु।
स्कन्दस्वातिस्तथा राजा सप्तैव तु भविष्यति॥ ७

मृगेन्द्रः स्वातिकर्णस्तु भविष्यति समास्त्रयः।
कुन्तलः स्वातिकर्णस्तु भविताष्टौ समा नृपः।
एकसंवत्सरं राजा स्वातिवर्णो भविष्यति॥ ८

भविता रिक्तवर्णस्तु वर्षाणि पञ्चविंशतिः।
ततः संवत्सरान् पञ्च हालो राजा भविष्यति॥ ९

पञ्च मन्तुलको राजा भविष्यति समा नृपः।
पुरीन्द्रसेनो भविता तस्मात् सौम्यो भविष्यति॥ १०

सुन्दरः शान्तिकर्णस्तु अब्दमेकं भविष्यति।
चकोरः स्वातिकर्णस्तु षण्मासान् वै भविष्यति॥ ११

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! (गत अध्यायमें कथित) काण्वायनवंशमें उत्पन्न होनेवाले क्षत्रियों तथा उनके स्वामी सुशर्मा नामक राजाको, जो शुङ्गभृत्योंका अन्तिम राजा होगा, बलपूर्वक पराजित कर उन्हींका सजातीय शिशुक नामक आन्ध्र राजा इस वसुन्धराको प्राप्त करेगा।* वह शिशुक तेईस वर्षोंतक पृथ्वीका शासन करेगा। उसके बाद उसका छोटा भाई कृष्ण अठारह वर्षतक शासन करेगा। उसका पुत्र श्रीशातकर्णि दस वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र पूर्णोत्सङ्ग नामक राजा होगा, जो अठारह वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद स्कन्धस्तम्भि नामक राजा अठारह वर्षतक राज्य करेगा। फिर शान्तकर्णि नामक राजा छप्पन वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र लम्बोदर अठारह वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र आपीतक बारह वर्षतक राज्य करेगा। तदनन्तर मेघस्वाति नामक राजा होगा, जो अठारह वर्षतक राज्य करेगा। इसके बाद स्वाति नामक राजा होगा, वह भी अठारह वर्षतक राज्य करेगा। फिर स्कन्धस्वाति नामक राजा सात वर्षतक राज्य करेगा। इसके बाद मृगेन्द्र स्वातिकर्ण नामक राजा तीन वर्षोंतक पृथ्वीपर शासन करेगा। तदनन्तर कुन्तल स्वातिकर्ण आठ वर्षोंतक राज्य करेगा। उसके बाद स्वातिवर्ण नामक राजा मात्र एक वर्ष राज्य करेगा। तदनन्तर रिक्तवर्ण पच्चीस वर्षतक राजा होगा। उसके बाद पाँच वर्षतक हाल राजा होगा। इसके बाद मन्तुलक नामक राजा होगा, जो पाँच वर्षतक राज्य करेगा। उसके बाद पुरीन्द्रसेन राजा होगा। फिर इसके बाद सौम्य एवं सुन्दर स्वभाववाला शान्तिकर्ण नामक राजा होगा, जो मात्र एक वर्षतक राज्य करेगा। फिर चकोरस्वातिकर्ण नामक राजा होगा, जो मात्र छः मास ही शासन करेगा।

* मत्स्यमहापुराणका यह तथा गत २७२ वाँ अध्याय सभी भारतीय इतिहासोंके लिये अत्यन्त प्रामाणिक माने गये हैं। केम्ब्रिज इतिहासके प्रथम भाग, 'स्मिथ'के भारतके प्राचीन इतिहासमें तथा भारतीय विद्याभवनके बृहद् इतिहासके दूसरे भागमें इसका विस्तृत विवरण इसी पुराणके आधारपर विवेचित है। पार्जीटर आदिने अनेक अभिलेखोंसे भी इसकी परीक्षा कर शुद्धता और परम प्रामाणिकता स्वीकार कर ली है।

अष्टाविंशतिवर्षाणि शिवस्वातिर्भविष्यति।
राजा च गौतमीपुत्रो ह्येकविंशत्यतो नृपः॥ १२
अष्टाविंशत्सुतस्तस्य पुलोमा वै भविष्यति।
शिवश्रीर्वै पुलोमा तु सप्तैव भविता नृपः॥ १३
शिवस्कन्धः शान्तिकर्णाद् भविता ह्यात्मजः समाः।
नवविंशतिवर्षाणि यज्ञश्रीः शान्तिकर्णिकः॥ १४
षडेव भविता तस्माद् विजयस्तु समास्ततः।
चण्डश्रीः शान्तिकर्णिस्तु तस्य पुत्रः समा दश॥ १५

उसके बाद शिवस्वातिनामक राजा होगा, जो अट्ठाईस वर्षतक राज्य करेगा। उसके बाद गौतमीपुत्र शातकर्णि राजा होगा, जो इक्कीस वर्षोंतक राज्य करेगा। उसका पुत्र पुलोमा अट्ठाईस वर्षतक राज्य करेगा। उसके बाद शिवश्री पुलोमा नामक राजा सात वर्षतक राज्य करेगा। इसके बाद शान्तिकर्णका पुत्र शिवस्कन्ध उन्तीस वर्षोंतक राज्य करेगा। फिर यज्ञश्री शान्तिकर्णिक नामक राजा उन्तीस वर्षतक राज्य करेगा। उसका पुत्र विजय छः वर्षतक राजा होगा। उसका पुत्र चण्डश्री शान्तिकर्ण दस वर्षतक राज्य करेगा॥ १—१५॥

पुलोमा सप्त वर्षाणि अन्यस्तेषां भविष्यति।
एकोनत्रिंशति ह्येते आन्ध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम्॥ १६
तेषां वर्षशतानि स्युश्चत्वारि षष्टिरेव च।
आन्ध्राणां संस्थिता राज्ये तेषां भृत्यान्वये नृपाः॥ १७
सप्तैवान्ध्रा भविष्यन्ति दशाभीरास्तथा नृपाः।
सप्त गर्दभिलाश्चापि शकाश्चाष्टादशैव तु॥ १८
यवनाष्टौ भविष्यन्ति तुषारास्तु चतुर्दश।
त्रयोदश गुरुण्डाश्च हूणा ह्येकोनविंशतिः॥ १९
सप्त गर्दभिला भूयो भोक्ष्यन्तीमां वसुन्धराम्।
यवनाष्टौ भविष्यन्ति सप्ताशीतिं महीमिमाम्॥ २०
सप्तवर्षसहस्राणि तुषाराणां मही स्मृता।
शतानि त्रीण्यशीतिं च शतान्यष्टादशैव तु॥ २१
शतान्यर्धं चतुष्काणि भवितव्यास्त्रयोदश।
गुरुण्डा वृषलैः सार्धं भोक्ष्यन्ते म्लेच्छसम्भवाः॥ २२
शतानि त्रीणि भोक्ष्यन्ते वर्षाण्येकादशैव तु।
आन्ध्राः श्रीपार्वतीयाश्च ते द्विपञ्चाशतं समाः॥ २३
सप्तषष्टिस्तु वर्षाणि दशाभीरास्तथैव च।
तेषूत्सन्नेषु कालेन ततः किलकिला नृपाः॥ २४
भविष्यन्तीह यवना धर्मतः कामतोऽर्थतः।
तैर्विमिश्रा जनपदा आर्या म्लेच्छाश्च सर्वशः॥ २५
विपर्ययेण वर्तन्ते क्षयमेष्यन्ति वै प्रजाः।
लुब्धानृताब्रुवाश्चैव भवितारो नृपास्तथा॥ २६

तदनन्तर उसके बाद दूसरा पुलोमा नामक राजा होगा, जो सात वर्षतक राज्य करेगा। इस प्रकार ये उन्तीस (मतान्तरसे ३० या ३१) आन्ध्रवंशी राजा पृथ्वीका उपभोग करेंगे, इनका राज्यकाल चार सौ आठ वर्षोंका होगा, भृत्योपनामधारी उन आन्ध्रवंशीय राजाओंके वंशज राज्यके अधिकारी होंगे। उनमें सात आन्ध्रवंशीय, दस आभीरवंशी, सात गर्दभिल,* अठारह शकवंशीय, आठ यवन, चौदह तुषार, तेरह गुरुण्ड तथा उन्नीस हूणवंशीय राजा होंगे। फिर सात गर्दभिलवंशीय राजा इस पृथ्वीका उपभोग करेंगे। आठ यवन राजा सत्तासी वर्षतक राज्य करेंगे। सात सहस्र वर्षोंतक यह पृथ्वी तुषारोंके अधीन रहेगी। फिर एक सौ तिरासी वर्ष, एक सौ अठारह वर्ष तथा चार सौ पचास वर्षतक अर्थात् सात सौ इक्यावन वर्षतक तेरह म्लेच्छवंशज गुरुण्ड राजा शूद्रोंके साथ पृथ्वीका उपभोग करेंगे। तीन सौ ग्यारह वर्षतक आन्ध्रवंशीय राजा राज्य करेंगे तथा श्रीपर्वतीयोंका राज्य बावन वर्षतक रहेगा। उसी प्रकार दस आभीर राजा सड़सठ वर्षतक राज्य करेंगे। कालवश उनके विनष्ट हो जानेपर किलकिला नामक राजा होंगे, जो यवन-जातिके होंगे। धर्म, काम, अर्थ—तीनों दृष्टियोंसे आर्य लोग उनकी संस्कृतिसे विमिश्रित हो म्लेच्छ हो जायँगे और आश्रमधर्मका विपर्यय करने लगेंगे। परिणामतः प्रजा नष्ट हो जायगी तथा राजालोग लोभी और असत्यवादी हो जायँगे।

* महाराज विक्रमादित्यको ऐतिहासिक विद्वान् गर्दभिलका ही पुत्र मानते हैं। उन्हींके बाद शकोंका राज्य हुआ था।

कल्किनानुहता: सर्वे आर्या म्लेच्छाश्च सर्वत:।
अधार्मिकाश्च येऽत्यर्थं पाषण्डाश्चैव सर्वश:॥ २७
प्रनष्टे नृपवंशे तु संध्याशिष्टे कलौ युगे।
किंचिच्छिष्टा: प्रजास्ता वै धर्मे नष्टे परिग्रहा:॥ २८

दम्भ-पाखण्डसे सभी आर्य तथा म्लेच्छ लोग प्रभावहत हो जायँगे। अधार्मिकोंकी वृद्धि होगी, पाखंड बढ़ जायगा। इस प्रकार सन्ध्यामात्र शेष रह जानेपर कलियुगमें जब सभी राजवंश नष्ट हो जायगा तब थोड़ी प्रजा शेष रह जायगी, जो धर्मके विनष्ट हो जानेसे विशृंखलित रहेगी॥ १६—२८॥

असाधवो ह्यसत्त्वाश्च व्याधिशोकेन पीडिता:।
अनावृष्टिहताश्चैव परस्परवधेप्सव:॥ २९
अशरण्या: परित्रस्ता: सङ्कटं घोरमाश्रिता:।
सरित्पर्वतवासिन्यो भविष्यन्त्यखिला: प्रजा:॥ ३०
नृपवंशेषु नष्टेषु प्रजा: सर्वगृहाणि च।
नष्टस्नेहा निरापत्रास्त्यक्तभ्रातृसुहृद्गणा:।
वर्णाश्रमपरिभ्रष्टा अधर्मनिरताश्च ता:॥ ३१
पत्रमूलफलाहाराश्चीरपत्राजिनाम्बरा:।
वृत्त्यर्थमभिलिप्सन्त्यश्चरिष्यन्ति वसुन्धराम्॥ ३२
एवं कष्टमनुप्राप्ता: प्रजा: काले युगान्तके।
नि:शेषास्तु भविष्यन्ति सार्धं कलियुगेन तु॥ ३३
क्षीणे कलियुगे तस्मिन् दिव्ये वर्षसहस्रके।
ससन्ध्यांशे सुनि:शेषे कृतं तु प्रतिपत्स्यते॥ ३४
एवं वंशक्रम: कृत्स्न: कीर्त्तितो यो मया क्रमात्।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च ये॥ ३५
महापद्माभिषेकात् तु यावज्जन्म परीक्षित:।
एवं वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पञ्चाशदुत्तरम्॥ ३६
पौलोमास्तु तथान्ध्रास्तु महापद्मान्तरे पुन:।
अनन्तरं शतान्यष्टौ षट्त्रिंशत् तु समास्तथा॥ ३७

उस समय सारी प्रजा असत्कर्मपरायण, निर्बल, व्याधि और शोकसे जर्जरित, अनावृष्टिसे पीड़ित, परस्पर एक-दूसरेके संहारके इच्छुक, आश्रयहीन, भयभीत, घोर संकटसे ग्रस्त होकर नदियोंके तटों तथा पर्वतोंपर निवास करेंगी। राजवंशोंके नष्ट हो जानेपर सारी प्रजा घर-द्वारसे विहीन, स्नेहरहित, निर्लज्ज, भाई-मित्र आदिका त्याग कर देनेवाली, वर्णाश्रमधर्मसे भ्रष्ट, अधर्ममें लीन, पत्ते, मूल और फलोंका आहार करनेवाली, पत्तों और मृगचर्मको वस्त्ररूपमें धारण करनेवाली तथा जीविकाके लोभमें सारी पृथ्वीका चक्कर लगाने लगेगी। इस प्रकार कलियुगके अवसानके समय प्रजाएँ कष्ट झेलेंगी। वे कलियुगके साथ ही समाप्त हो जायँगी। तब संध्यासहित कलियुगके एक हजार दिव्य वर्ष बीत जानेपर कृतयुगकी प्रवृत्ति होगी। इस प्रकार मैंने क्रमश: भूत, वर्तमान और भविष्य-कालीन राजवंशका पूर्णरूपसे वर्णन किया है। यह राज्यकाल परीक्षित्के जन्मसे लेकर महापद्मके राज्याभिषेकतक एक हजार पचास वर्ष* होता है। पुन: पौलोम आन्ध्रसे लेकर महापद्मके राजत्वकालतक आठ सौ छत्तीस वर्ष समझना चाहिये॥ २९—३७॥

तावत्कालान्तरं भाव्यमान्ध्रान्तादापरीक्षित:।
भविष्ये ते प्रसंख्याता: पुराणज्ञै: श्रुतर्षिभि:॥ ३८

परीक्षित्के समयसे लेकर आन्ध्रवंशीय राजाओंके अन्तकालतकका प्रमाण वेदों एवं पुराणोंके जाननेवाले ऋषियोंने भविष्यपुराणमें इस प्रकार परिगणित किया है।

सप्तर्षयस्तदा प्रांशुप्रदीप्तेनाग्निना समा:।
सप्तविंशतिभाव्यानामान्ध्राणां तु यदा पुन:॥ ३९
सप्तर्षयस्तु वर्तन्ते यत्र नक्षत्रमण्डले।
सप्तर्षयस्तु तिष्ठन्ति पर्यायेण शतं शतम्॥ ४०

जब पुन: सत्ताईस आन्ध्रवंशीय राजाओंका राज्य होगा, तब सप्तर्षिगण प्रज्वलित अग्निके समान उद्दीप्त रहेंगे। वे सप्तर्षिगण एक-एक सौ वर्षोंतक नक्षत्रमण्डलमें निवास करते हैं।

* विष्णुपुराणमें इसे १५०० वर्ष कहा है और भागवतमें १११५ वर्ष।

सप्तर्षीणामुपर्येतत् स्मृतं वै दिव्यसंज्ञया।
समा दिव्याः स्मृताः षष्टिर्दिव्याब्दानि तु सप्तभिः॥ ४१

एभिः प्रवर्तते कालो दिव्यः सप्तर्षिभिस्तु वै।
सप्तर्षीणां च यौ पूर्वौ दृश्येते ह्युदितौ निशि॥ ४२

तयोर्मध्ये तु नक्षत्रं दृश्यते यत्समं दिवि।
तेन सप्तर्षयो ज्ञेया युक्ता व्योम्नि शतं समाः॥ ४३

नक्षत्राणामृषीणां च योगस्यैतन्निदर्शनम्।
सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले पारिक्षिते सतम्॥ ४४

ब्राह्मणास्तु चतुर्विंशा भविष्यन्ति शतं समाः।
ततः प्रभृत्ययं सर्वो लोको व्यापत्स्यते भृशम्॥ ४५

अनृतोपहता लुब्धा धर्मतः कामतोऽर्थतः।
श्रौतस्मार्तेऽतिशिथिले नष्टवर्णाश्रमे तथा॥ ४६

संकरं दुर्बलात्मानः प्रतिपत्स्यन्ति मोहिताः।
ब्राह्मणाः शूद्रयोनिस्थाः शूद्रा वै मन्त्रयोनयः॥ ४७

उपस्थास्यन्ति तान् विप्रास्तदर्थमभिलिप्सवः।
क्रमेणैव च दृश्यन्ते स्ववर्णान्तरदायकम्॥ ४८

उन सप्तर्षियोंके ऊपर यह दिव्य नामसे कहा गया है। इसका परिमाण सड़सठ दिव्य वर्षोंका है। इस प्रकार इन सप्तर्षियोंका दिव्य काल प्रवृत्त होता है। रात्रिके समय सप्तर्षियोंके जो दो प्रारम्भिक पूर्व दिशामें जिस नक्षत्रके सामने उदित होते हैं, सभी सप्तर्षि उसी नक्षत्रमें स्थित माने जाते हैं। पुनः सौ वर्षोंके बाद आकाशमें उनका दूसरे नक्षत्रके साथ मिलन होता है। नक्षत्रों और उन सप्तर्षियोंके संयोगकी यही गति बतायी जाती है। ये सप्तर्षिगण राजा परीक्षित्के राज्यकालमें मघा नक्षत्रमें स्थित थे। उनके चौबीस सौ वर्ष बाद राज्य करनेवाले शुङ्गवंशीय ब्राह्मण राजा होंगे। उसके बाद यह सारा लोक अत्यन्त पतित हो जायगा। उस समय सारी प्रजाएँ मिथ्या व्यवहारमें लीन, लोभी, धर्म, अर्थ एवं कामसे हीन, वैदिक एवं स्मार्त नियमोंके पालनसे विमुख, वर्णाश्रम-धर्मकी मर्यादासे विहीन और दुर्बलात्मा हो जायँगी। वे मोहित होकर वर्णसंकर संतान उत्पन्न करेंगी। ब्राह्मण शूद्रयोनिमें स्थित हो जायँगे और शूद्र मन्त्रोंके ज्ञाता हो जायँगे। उन्हीं मन्त्रोंको जाननेकी अभिलाषासे ब्राह्मण उन मन्त्रज्ञ शूद्रोंकी उपासना करेंगे। क्रमशः सभी लोग अपने वर्ण-धर्मको छोड़कर अन्य वर्णमें सम्मिलित हो जायँगे॥ ३८—४८॥

क्षयमेव गमिष्यन्ति क्षीणशेषा युगक्षये।
यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदाहनि॥ ४९

प्रतिपन्नं कलियुगं प्रमाणं तस्य मे शृणु।
चतुःशतसहस्त्रं तु वर्षाणां वै स्मृतं बुधैः॥ ५०

चत्वार्यष्टसहस्राणि संख्यातं मानुषेण तु।
दिव्यं वर्षसहस्त्रं तु तदा संध्या प्रवर्तते॥ ५१

निःशेषे तु तदा तस्मिन् कृतं वै प्रतिपत्स्यते।
ऐलश्चेक्ष्वाकुवंशश्च सहदेवः प्रकीर्तितः॥ ५२

इक्ष्वाकोः संस्मृतं क्षत्रं सुमित्रान्तं भविष्यति।
ऐलं क्षत्रं समाक्रान्तं सोमवंशविदो विदुः॥ ५३

एते विवस्वतः पुत्राः कीर्तिताः कीर्तिवर्धनाः।
अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताश्च यैः॥ ५४

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च वै स्मृताः।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन्निति वंशः समाप्यते॥ ५५

फिर नष्ट होनेसे बची हुई प्रजाएँ युगान्तके समय विनष्ट हो जायँगी। जिस दिन श्रीकृष्ण स्वर्ग (गोलोक) गये, उसी दिन कलियुगका प्रारम्भ हुआ। इसका प्रमाण मुझसे सुनिये। बुद्धिमान् लोग उस कलियुगका प्रमाण मानववर्षके अनुसार चार लाख बत्तीस हजार और दिव्यमानके अनुसार एक हजार वर्ष मानते हैं। उसके बाद उसकी संध्या (तथा संध्यांश) प्रवृत्त होती है। उस कलियुगके समाप्त होनेपर कृतयुगका प्रारम्भ होता है। सहदेव ऐल और इक्ष्वाकुवंशीय—दोनों कहा जाता है। इक्ष्वाकुका वंश राजा सुमित्रतक बतलाया जाता है। सोमवंशके ज्ञाता लोग ऐलवंशको चन्द्रवंशमें संक्रान्त मानते हैं। ये ही विवस्वान्के भी कीर्तिशाली पुत्र कहे गये हैं, जो भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालमें होनेवाले हैं। उस वैवस्वत मन्वन्तरमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र—इन सभी वर्णोंके लोग होते हैं। इस प्रकार अब यहाँ यह वंश-वर्णन समाप्त हो जाता है॥ ४९—५५॥

देवापिः पौरवो राजा ऐक्ष्वाको यश्च ते मतः।
महायोगबलोपेतौ कलापग्राममाश्रितौ॥ ५६
एतौ क्षत्रप्रणेतारौ नवविंशे चतुर्युगे।
सुवर्चा मनुपुत्रस्तु ऐक्ष्वाकाद्यो भविष्यति॥ ५७
नवविंशे युगेऽसौ वै वंशस्यादिर्भविष्यति।
देवापिपुत्रः सत्यस्तु ऐलानां भविता नृपः॥ ५८
क्षत्रप्रवर्तकावेतौ भविष्ये तु चतुर्युगे।
एवं सर्वेषु विज्ञेयं संतानार्थं तु लक्षणम्॥ ५९
क्षीणे कलियुगे चैव तिष्ठन्तीति कृते युगे।
सप्तर्षयस्तु तैः सार्धं मध्ये त्रेतायुगे पुनः॥ ६०
बीजार्थं वै भविष्यन्ति ब्रह्मक्षत्रस्तु वै पुनः।
एवमेवं तु सर्वेषु तिष्यान्तेष्वन्तरेषु च॥ ६०
सप्तर्षयो नृपैः सार्धं सन्तानार्थं युगे युगे।
एवं क्षत्रस्य चोत्सेधः सम्बन्धो वै द्विजैः स्मृतः॥ ६१
मन्वन्तराणां संताने संतानाश्च श्रुतौ स्मृताः।
अतिक्रान्तयुगाश्चैव ब्रह्मक्षत्रस्य सम्भवाः॥ ६२
यथा प्रशान्तिस्तेषां वै प्रकृतीनां तथा क्षयः।
सप्तर्षयो विदुस्तेषां दीर्घायुष्ट्वं क्षयोदयौ॥ ६३

पुरुवंशीय राजा देवापि और इक्ष्वाकुवंशीय राजा (सहदेव), जिसे तुम मानते हो—ये दोनों महान् योगबलसे सम्पन्न होंगे, जो कलाप ग्राममें निवास करते हैं। उन्तीसवें चतुर्युगीमें ये दोनों राजा क्षत्रिय जातिके नेता होंगे। मनुका पुत्र सुवर्चा इक्ष्वाकुवंशीय राजाओंमें प्रथम होगा। वही उन्तीसवें युगमें अपने वंशका मूल पुरुष होगा तथा देवापिका पुत्र सत्य ऐलवंशीयोंका राजा होगा। भविष्यकालीन चतुर्युगमें ये दोनों क्षात्रधर्मके प्रवर्तक होंगे। इसी प्रकार सभी वंशोंमें सन्ततिके लक्षणोंको जानना चाहिये। कलियुगके क्षीण हो जानेपर कृतयुगमें सप्तर्षि उन राजाओंके साथ स्थित रहते हैं। पुनः त्रेताके मध्यमें वे ब्राह्मण और क्षत्रियके बीजके कारण होते हैं। इसी प्रकार सभी कलियुगों एवं अन्य युगोंमें होता है। प्रत्येक युगमें सप्तर्षि राजाओंके साथ प्रजाओंकी उत्पत्तिके लिये अवस्थित रहते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणोंद्वारा क्षत्रियोंकी उत्पत्तिका सम्बन्ध कहा जाता है। मन्वन्तरोंके विस्तारमें ब्राह्मण और क्षत्रियसे उत्पन्न हुई संतान युगको अतिक्रान्त कर जाती है, ऐसा श्रुतियोंमें कहा गया है। वे सप्तर्षि उन संततियोंकी जिस प्रकार प्रशान्ति होती है तथा जिस प्रकार क्षय-दीर्घायुकी प्राप्ति, उन्नति और अवनति होती है, वह सब जानते हैं॥ ५६—६३॥

एतेन क्रमयोगेन ऐला इक्ष्वाकवो नृपाः।
उत्पद्यमानास्त्रेतायां क्षीयमाणाः कलौ युगे॥ ६४
अनुयान्ति युगाख्यां तु यावन्मन्वन्तरक्षयम्।
जामदग्न्येन रामेण क्षत्रे निरवशेषिते॥ ६५
रिक्तेयं वसुधा सर्वा क्षत्रियैर्वसुधाधिपैः।
द्विवंशकरणं सर्वं कीर्त्तयिष्ये निबोध मे॥ ६६
ऐलं चैक्ष्वाकुवंशं च प्रकृतिं परिचक्षते।
राजानः श्रेणिबद्धाश्च तथान्ये क्षत्रिया भुवि॥ ६७
ऐलवंशास्तु भूयांसो न तथैक्ष्वाकवो नृपाः।
एषामेकशतं पूर्णं कुलानामभिरोचते॥ ६८
तावदेव तु भोजानां विस्ताराद् द्विगुणं स्मृतम्।
भोजानां द्विगुणं क्षत्रं चतुर्धा तद् यथातथम्॥ ६९
ते ह्यतीताः सनामानो ब्रुवतस्तान् निबोध मे।
शतं वै प्रतिविन्ध्यानां शतं नागाः शतं हयाः॥ ७०

इस प्रकारके क्रमयोगसे चन्द्रवंशी और इक्ष्वाकुवंशीय राजा त्रेतामें उत्पन्न होकर कलियुगमें विनष्ट हो जाते हैं। एक मन्वन्तरके विनाशतक युग संज्ञा कही जाती है। जमदग्निके पुत्र परशुरामद्वारा क्षत्रियोंका संहार हो जानेपर यह सारी पृथ्वी क्षत्रिय राजाओंसे शून्य हो गयी थी। अब मैं राजाओंके सूर्य-चन्द्र—इन दो वंशोंको उत्पत्ति बता रहा हूँ, उसे मुझसे सुनिये। ऐल और इक्ष्वाकुवंश—क्षत्रियोंकी मूल प्रकृति कहे गये हैं। इन राजाओंके वंशज तथा अन्य क्षत्रियगण पृथ्वीपर प्रचुर परिमाणमें अवस्थित हैं। इनमें ऐलवंशीय राजा तो बहुत हैं, किंतु इक्ष्वाकुवंशीय उतने नहीं हैं। इनके कुलोंकी संख्या पूरी एक सौ बतलायी जाती है। इसी प्रकार भोजवंशीय राजाओंका विस्तार इनसे दूना है। भोजवंशीय राजाओंसे दूने अन्य क्षत्रियगण हैं। वे चार प्रकारके हैं और बीत चुके हैं। मैं उनका नामसहित यथार्थ रूपसे वर्णन कर रहा हूँ, उसे मुझसे सुनिये। इनमें प्रतिविन्ध्योंकी संख्या सौ, नागोंकी संख्या सौ, हयोंकी संख्या सौ

शतमेकं धार्तराष्ट्रा ह्यशीतिर्जनमेजया:।
शतं वै ब्रह्मदत्तानां वीराणां कुरवः शतम्॥ ७१

ततः शतं च पाञ्चालाः शतं काशिकुशादयः।
तथापरे सहस्रे द्वे ये नीपाः शशबिन्दवः॥ ७२

इष्टवन्तश्च ते सर्वे सर्वे नियुतदक्षिणाः।
एवं राजर्षयोऽतीताः शतशोऽथ सहस्रशः॥ ७३

मनोर्वैवस्वतस्यासन् वर्तमानेऽन्तरे विभोः।
तेषां तु निधनोत्पत्तौ लोकसंस्थितयः स्थिताः॥ ७४

न शक्यो विस्तरस्तेषां सन्तानस्य परस्परम्।
तत्पूर्वापरयोगेन वक्तुं वर्षशतैरपि॥ ७५

अष्टाविंशसमाख्याता गता वैवस्वतेऽन्तरे।
एते देवगणैः सार्धं शिष्टा ये तान् निबोधत॥ ७६

चत्वारिंशत् त्रयश्चैव भविष्यास्ते महात्मनः।
अवशिष्टा युगाख्यास्ते ततो वैवस्वतो ह्ययम्॥ ७७

एतद् वः कीर्त्तितं सम्यक् समासव्यासयोगतः।
पुनर्वक्तुं बहुत्वात् तु न शक्यं विस्तरेण तु॥ ७८

उक्ता राजर्षयो ये तु अतीतास्ते युगैः सह।
ये ते ययातिवंश्यानां ये च वंशा विशाम्पते॥ ७९

कीर्तिता द्युतिमन्तस्ते य एतान् धारयेन्नरः।
लभते स वरान् पञ्च दुर्लभानिह लौकिकान्॥ ८०

आयुः कीर्तिं धनं स्वर्गं पुत्रवांश्चाभिजायते।
धारणाच्छ्रवणाच्चैव परं स्वर्गस्य धीमतः॥ ८१

और धार्तराष्ट्रोंकी संख्या सौ है। जनमेजयोंकी संख्या अस्सी है। वीरवर ब्रह्मदत्तोंकी संख्या सौ, कुरुओंकी संख्या सौ, पाञ्चालोंकी संख्या सौ और काशि-कुशादिकी संख्या सौ है। इनके अतिरिक्त जो नीप और शशबिन्दु हैं, उनकी संख्या दो हजार है॥ ६४—७२॥

वे सभी यज्ञ करनेवाले तथा अत्यधिक दक्षिणा प्रदान करनेवाले थे। इस प्रकार सैकड़ों-हजारों राजर्षिगण बीत चुके हैं, जो प्रभावशाली वैवस्वत मनुके वर्तमान अन्तरमें जन्म ग्रहण कर चुके हैं। उनके मरण और उत्पत्तिमें अब लोककी स्थिति ही प्रमाणभूत है। उनकी संतानका विस्तार तो परस्पर पूर्वापर-सम्बन्धसे सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं बताया जा सकता। इस वैवस्वत मन्वन्तरमें वे नृपतिगण अपने वंशदेवताओंके साथ अट्ठाईस पीढ़ीतक बीत चुके हैं। जो शेष हैं, उन्हें सुनिये। वे महात्मा राजा तैंतालीस होंगे। उन अवशिष्ट वैवस्वत महात्माओंकी संज्ञा उनके युगोंके साथ है। इस प्रकार मैंने इन वंशोंका विस्तार और संक्षेपसे वर्णन कर दिया। उनकी संख्या बहुत होनेके कारण मैं विस्तारपूर्वक बतलानेमें असमर्थ हूँ। राजन्! मैंने जिन ययातिवंशीय राजाओंके वंशधर राजर्षियोंकी चर्चा की है, वे सभी युगोंके साथ समाप्त हो चुके हैं। वे सभी कान्तिमान् एवं यशस्वी थे। जो मनुष्य उनके नामोंको स्मरण रखता है, वह इस लोकमें पाँच दुर्लभ लौकिक वरदानोंको प्राप्त कर लेता है, अर्थात् वह आयु, कीर्ति, धन, स्वर्ग और पुत्रसे सम्पन्न होकर उत्पन्न होता है तथा उस बुद्धिमान्‌को इनके स्मरण एवं श्रवण करनेसे परमस्वर्गकी प्राप्ति होती है॥ ७३—८१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे भविष्यराजानुकीर्तनं नाम त्रिसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें भविष्यकालिक राजाओंका वर्णन नामक दो सौ तिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७३॥



दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय

षोडश दानान्तर्गत तुलादानका वर्णन

ऋषय ऊचुः

न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम्।
सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥ १
कृतकृत्यो भवेत् केन मनस्वी धनवान् बुधः।
महादानेन दत्तेन तन्नो विस्तरतो वद॥ २

सूत उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानानुकीर्तनम्।
दानधर्मेऽपि यन्नोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना॥ ३
तदहं सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
सर्वपापक्षयकरं नृणां दुःस्वप्ननाशनम्॥ ४
यत्तत्षोडशधा प्रोक्तं वासुदेवेन भूतले।
पुण्यं पवित्रमायुष्यं सर्वपापहरं शुभम्॥ ५
पूजितं देवताभिश्च ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः।
आद्यं तु सर्वदानानां तुलापुरुषसंज्ञकम्॥ ६
हिरण्यगर्भदानं च ब्रह्माण्डं तदनन्तरम्।
कल्पपादपदानं च गोसहस्रं च पञ्चमम्॥ ७
हिरण्यकामधेनुश्च हिरण्याश्वस्तथैव च।
हिरण्याश्वरथस्तद्वद्धेमहस्तिरथस्तथा॥ ८
पञ्चलाङ्गलकं तद्वद् धरादानं तथैव च।
द्वादशं विश्वचक्रं तु ततः कल्पलतात्मकम्॥ ९
सप्तसागरदानं च रत्नधेनुस्तथैव च।
महाभूतघटस्तद्वत् षोडशं परिकीर्तितम्॥ १०
सर्वाण्येतानि कृतवान् पुरा शम्बरसूदनः।
वासुदेवस्तु भगवानम्बरीषोऽथ भार्गवः॥ ११
कार्तवीर्यार्जुनो नाम प्रह्लादः पृथुरेव च।
कुर्युरन्ये महीपालाः केचिच्च भरतादयः॥ १२
यस्माद् विघ्नसहस्रेण महादानानि सर्वदा।
रक्षन्ते देवताः सर्वा एकैकमपि भूतले॥ १३

ऋषियोंने पूछा—सूतजी! सभी शास्त्रोंमें न्यायपूर्वक धनार्जन, उसकी वृद्धि और रक्षा करना तथा उसे सत्पात्रको दान करना आदि बातें पढ़ी जाती हैं, किंतु मनस्वी बुद्धिमान् धनी पुरुष किस महादानके करनेसे कृतार्थ हो सकता है, आप मुझे इसे विस्तारपूर्वक बताइये॥ १-२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! अब इसके बाद मैं आपलोगोंको महादानकी विधि बतला रहा हूँ। जिसे महातेजस्वी विष्णुने भी (विष्णुधर्मोत्तरपुराणके) दान-धर्म-प्रकरणमें नहीं बतलाया है, उस सर्वश्रेष्ठ महादानका वर्णन मैं कर रहा हूँ। वह मनुष्योंके सभी पापोंको नष्ट करनेवाला तथा दुःस्वप्नोंका विनाशक है। उस दानको पृथ्वीतलपर भगवान् वासुदेवने सोलह प्रकारका बतलाया है। वे सभी पुण्यप्रद, पवित्र, दीर्घ आयु प्रदान करनेवाले, सभी पापोंके विनाशक, मङ्गलकारी तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवताओंद्वारा पूजित हैं। उन सभी दानोंमें सबसे प्रथम तुलापुरुषका दान है। तत्पश्चात् (दूसरा) हिरण्यगर्भदान, (तीसरा) ब्रह्माण्डदान, (चौथा) कल्पवृक्षदान, पाँचवाँ एक हजार गो-दान, फिर सुवर्ण-निर्मित कामधेनुका दान, स्वर्णमय अश्वका दान, हिरण्याश्वरथ-दान, हेम-हस्ति-रथ-दान, पञ्चलाङ्गलक-दान, धरादान, (बारहवाँ) विश्वचक्र-दान, कल्पलता-दान, सप्तसागर-दान, रत्नधेनु-दान तथा (सोलहवाँ) महाभूतघट-दान—ये सोलह दान कहे गये हैं॥ ३—१०॥

प्राचीनकालमें इन सभी दानोंको शम्बरासुरके शत्रु भगवान् वासुदेवने किया था। उसके बाद अम्बरीष, भार्गव (परशुराम), कार्तवीर्यार्जुन, प्रह्लाद, पृथु तथा भरत आदि अन्यान्य राजाओंने किया था। चूँकि इस पृथ्वीतलपर इन सब दानोंमें एक-एक दानकी सर्वदा सभी देवता हजारों विघ्नोंसे रक्षा करते हैं; इनमेंसे भूतलपर यदि एक

एषामन्यतमं कुर्याद् वासुदेवप्रसादतः।
न शक्यमन्यथा कर्तुमपि शक्रेण भूतले॥ १४

तस्मादाराध्य गोविन्दमुमापतिविनायकौ।
महादानमखं कुर्याद् विप्रैश्चैवानुमोदितः॥ १५

एतदेवाह मनवे परिपृष्टो जनार्दनः।
यथावदनुवक्ष्यामि शृणुध्वमृषिसत्तमाः॥ १६

दान भी वासुदेव भगवान्‌की कृपासे विघ्नरहित सम्पन्न हो जाय तो उसके सत्फलको देवराज इन्द्र भी अन्यथा करनेमें समर्थ नहीं हैं, इसलिये मनुष्यको भगवान् वासुदेव, शंकर और विनायककी आराधना कर तथा विप्रोंका अनुमोदन प्राप्तकर यह महादान-यज्ञ करना चाहिये। ऋषिवर्य! इसी विषयको मनुके पूछनेपर भगवान् जनार्दनने उन्हें बताया था, वह मैं आपलोगोंको यथार्थरूपमें बतला रहा हूँ, सुनिये॥ ११—१६॥

मनुरुवाच

महादानानि यानीह पवित्राणि शुभानि च।
रहस्यानि प्रदेयानि तानि मे कथयाच्युत॥ १७

मनुजीने पूछा—अच्युत! इस पृथ्वीतलपर जितने पुनीत मङ्गलदायी, गोपनीय और देनेयोग्य महादान हैं, उन्हें मुझे बतलाइये॥ १७॥

मत्स्य उवाच

यानि नोक्तानि गुह्यानि महादानानि षोडश।
तानि ते कथयिष्यामि यथावदनुपूर्वशः॥ १८

तुलापुरुषयोगोऽयं येषामादौ विधीयते।
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये॥ १९

युगादिषूपरागेषु तथा मन्वन्तरादिषु।
संक्रान्तौ वैधृतिदिने चतुर्दश्यष्टमीषु च॥ २०

सितपञ्चदशीपर्वद्वादशीष्वष्टकासु च।
यज्ञोत्सवविवाहेषु दुःस्वप्नाद्भुतदर्शने॥ २१

द्रव्यब्राह्मणलाभे वा श्रद्धा वा यत्र जायते।
तीर्थे वायतने गोष्ठे कूपारामसरित्सु वा॥ २२

गृहे वाथ वने वापि तडागे रुचिरे तथा।
महादानानि देयानि संसारभयभीरुणा॥ २३

मत्स्यभगवान्ने कहा—राजन्! जिन सोलह गुह्य महादानोंको आजतक मैंने किसीसे नहीं बतलाया था, उन्हींको यथार्थ रूपमें आनुपूर्वी तुम्हें बतला रहा हूँ। इनमें तुलापुरुषका दान सर्वप्रथम कहा गया है। संसार-भयसे भीत मनुष्यको अयन-परिवर्तनके समय, विषुवयोगमें, पुण्यदिनों, व्यतीपात, दिनक्षय तथा युगादि तिथियोंमें सूर्य-चन्द्रके ग्रहणके अवसरपर, मन्वन्तरके प्रारम्भमें, संक्रान्तिके दिन, वैधृतियोगमें, चतुर्दशी, अष्टमी, पूर्णिमा, पर्वके दिन, द्वादशी तथा अष्टका[1] तिथियोंमें, यज्ञ-उत्सव अथवा विवाहके अवसरपर, दुःस्वप्नके देखने या किसी अद्भुत उत्पातादिके होनेपर, यथेष्ट द्रव्य या ब्राह्मणके मिल जानेपर, या जब जहाँ श्रद्धा उत्पन्न हो जाय, किसी तीर्थ, मन्दिर या गोशालामें, कूप, बगीचा या नदीके तटपर, अपने घरपर या पवित्र वनमें अथवा पवित्र तालाबके किनारे इन महादानोंको देना चाहिये।

अनित्यं जीवितं यस्माद् वसु चातीव चञ्चलम्।
केशेष्वेव गृहीतः सन्मृत्युना धर्ममाचरेत्॥ २४

पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
षोडशारत्निमात्रं तु दश द्वादश वा करान्॥ २५

मण्डपं कारयेद् विद्वांश्चतुर्भद्राननं बुधः।
सप्तहस्ता भवेद् वेदी मध्ये पञ्चकराश्रया॥ २६

चूँकि यह जीवन अस्थिर है, सम्पत्ति अत्यन्त चञ्चल है, मृत्यु सर्वदा केश पकड़े खड़ी है, इसलिये धर्माचरण करना चाहिये। किसी पुण्यतिथिके आनेपर विद्वान् पुरुष ब्राह्मणोंद्वारा स्वस्तिवाचन कराकर सोलह हाथोंका या दस अथवा बारह हाथोंका[2] चौकोर मण्डप निर्मित करवाये, जिसमें चार सुन्दर प्रवेशद्वार बनवाये जायँ। उसके भीतर सात हाथकी वेदी बनाकर मध्यमें पाँच हाथकी एक दूसरी

१. हेमन्त-शिशिर ऋतुओंके कृष्णपक्षकी चारों अष्टमी तिथियाँ अष्टका कही गयी हैं।
२. ये मण्डप दस, बारह या सोलह हाथोंके वर्गाकार होंगे। ये जितने लम्बे होंगे, उतनी ही इनकी चौड़ाई होगी।

तन्मध्ये तोरणं कुर्यात् सारदारुमयं बुधः।
कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि चतुर्दिक्षु विचक्षणः॥ २७

समेखलायोनियुतानि कुर्यात्
सम्पूर्णकुम्भानि महासनानि।
सुताम्रपात्रद्वयसंयुतानि
सुयज्ञपात्राणि सुविष्टराणि॥ २८
हस्तप्रमाणानि तिलाज्यधूप-
पुष्पोपहाराणि सुशोभनानि।
पूर्वोत्तरे हस्तमिताथ वेदी
ग्रहादिदेवेश्वरपूजनाय ॥ २९
अत्रार्चनं ब्रह्मशिवाच्युतानां
तत्रैव कार्यं फलमाल्यवस्त्रैः।
लोकेशवर्णाः परितः पताका
मध्ये ध्वजः किङ्किणिकायुतः स्यात्॥ ३०
द्वारेषु कार्याणि च तोरणानि
चत्वार्यपि क्षीरवनस्पतीनाम्।
द्वारेषु कुम्भद्वयमत्र कार्यं
स्रग्गन्धधूपाम्बररत्नयुक्तम् ॥ ३१
शालेङ्गुदीचन्दनदेवदारु-
श्रीपर्णिबिल्वप्रियकाञ्चनोत्थम् ।
स्तम्भद्वयं हस्तयुगावखातं
कृत्वा दृढं पञ्चकरोच्छ्रितं च॥ ३२
तदन्तरं हस्तचतुष्टयं स्या-
दथोत्तराङ्गं च तदीयमेव।
समानजातिश्च तुलावलम्ब्या
हैमेन मध्ये पुरुषेण युक्ता॥ ३३
दैर्घ्येण सा हस्तचतुष्टयं स्यात्
पृथुत्वमस्यास्तु दशाङ्गुलानि।
सुवर्णपट्टाभरणा च कार्या
सलोहपाशद्वयशृङ्खलाभिः ॥ ३४
युता सुवर्णेन तु रत्नमाला
विभूषिता माल्यविलेपनाभ्याम् ।
चक्रं लिखेद् वारिजगर्भयुक्तं
नानारजोभिर्भुवि पुष्पकीर्णम्॥ ३५
वितानकं चोपरि पञ्चवर्णं
संस्थापयेत् पुष्पफलोपशोभम्।

वेदी बनाये। उसके मध्यभागमें बुद्धिमान् पुरुष साल काष्ठकी बनी हुई तोरण लगवाये। विचक्षण पुरुष चारों दिशाओंमें चार कुण्डोंकी रचना करे॥ १८—२७॥

उन कुण्डोंको मेखला और योनिसे युक्त बनाना चाहिये। उनके समीप जलसे भरे हुए कलश, बड़े-बड़े आसन, सुन्दर ताँबेके बने हुए दो पात्र, यज्ञके सुन्दर पात्र तथा सुन्दर विष्टर रखना चाहिये। कुण्ड एक हाथ लंबा-चौड़ा हो तथा तिल, घृत, धूप, पुष्प और अन्य उपहारोंसे सुशोभित हो। तदनन्तर पूर्व तथा उत्तर दिशाके कोणमें ग्रहादि तथा देवेश्वरोंके पूजनके लिये एक हाथ विस्तृत वेदी बनायी जाय। वहीं फलों, मालाओं तथा वस्त्रोंद्वारा ब्रह्मा, शिव और विष्णुकी पूजा करनी चाहिये। चारों ओर लोकपालोंके वर्णोंके अनुरूप पताकाएँ तथा मध्य भागमें घंटियोंसे युक्त ध्वज होना चाहिये। चारों द्वारोंपर भी दूधवाले वृक्षोंके बने हुए तोरण सुशोभित हों। प्रधान द्वारपर माला, गन्ध, धूप, वस्त्र एवं रत्नोंसे सुशोभित दो कलश रखे जायँ। तदनन्तर साल, इंगुदी, चन्दन, देवदारु, श्रीपर्णी (गम्भारी), बिल्व, बीजौरा अथवा चम्पक वृक्षके काष्ठके बने हुए दो स्तम्भोंको, जो पाँच हाथ ऊँचे हों, दो हाथ गहरा गड्ढा खोदकर उसमें सुदृढ़ कर दे। उन दोनों स्तम्भोंके बीच चार हाथका अन्तर रहे। फिर उन दोनोंसे मिला उत्तराङ्ग—खम्भेके ऊपरके दो सजातीय काष्ठ लगावे, उसीसे सजातीय काष्ठकी बनी सुवर्णनिर्मित पुरुषसे युक्त तुला मध्यभागमें लटकावे। वह तुला चार हाथ लंबी हो तथा उसकी मोटाई दस अंगुल होनी चाहिये, उसमें लोहेकी बनी हुई जंजीरोंको जोड़े तथा उसे सुवर्णजटित वस्त्र, सुवर्णखचित रत्नमाला तथा विविध प्रकारके पुष्प एवं चन्दनादिसे अलंकृत करना चाहिये। फिर पृथ्वीपर विविध रंगके रजोंसे कमलके मध्यके आकारका चक्र बनावे और उसपर पुष्प बिखेर दे। उसके ऊपर पुष्प और फलोंसे सुशोभित पँचरंगा वितान तनवाये॥ २८—३५ १/२॥

अथर्त्विजो वेदविदश्च कार्याः
सुरूपवेशान्वयशीलयुक्ताः ॥ ३६
विधानदक्षाः पटवोऽनुकूला
ये चार्यदेशप्रभवा द्विजेन्द्राः।
गुरुश्च वेदान्तविदार्यवंश-
समुद्भवः शीलकुलाभिरूपः ॥ ३७
पुराणशास्त्राभिरतोऽतिदक्षः
प्रसन्नगम्भीरसरस्वतीकः ।
सिताम्बरः कुण्डलहेमसूत्र-
केयूरकण्ठाभरणाभिरामः ॥ ३८
पूर्वेण ऋग्वेदविदौ भवेतां
यजुर्विदौ दक्षिणतश्च शस्तौ।
स्थाप्यौ द्विजौ सामविदौ तु पश्चा-
दाथर्वणावुत्तरतस्तु कार्यौ ॥ ३९
विनायकादिग्रहलोकपाल-
वस्वष्टकादित्यमरुद्‌गणानाम् ।
ब्रह्माच्युतेशार्कवनस्पतीनां
स्वमन्त्रतो होमचतुष्टयं स्यात् ॥ ४०
जप्यानि सूक्तानि तथैव चैषा-
मनुक्रमेणापि यथास्वरूपम्।
होमावसाने कृततूर्यनादो
गुरुर्गृहीत्वा बलिपुष्पधूपम्।
आवाहयेल्लोकपतीन् क्रमेण
मन्त्रैरमीभिर्यजमानयुक्तः ॥ ४१
एह्येहि सर्वामरसिद्धसाध्यै-
रभिष्टुतो वज्रधरोऽमरेशः।
संवीज्यमानोऽप्सरसां गणेन
रक्षाध्वरं नो भगवन् नमस्ते ॥ ४२
ॐ इन्द्राय नमः।
एह्येहि सर्वामरहव्यवाह
मुनिप्रवीरैरभितोऽभिजुष्टः ।
तेजस्विना लोकगणेन सार्धं
ममाध्वरं रक्ष कवे नमस्ते ॥ ४३

तदनन्तर वेदवेत्ता, सुन्दर रूप, वेश, वंश और शीलसे युक्त, विधिके ज्ञाता, पटु, अपने अनुकूल, आर्यदेशोत्पन्न द्विजवरोंको ऋत्विजके पदपर नियुक्त करे। गुरु (आचार्य), वेदान्तवेत्ता, आर्यवंशमें समुत्पन्न, शीलवान्, कुलीन, सुन्दर, पुराणों एवं शास्त्रोंमें निरत रहनेवाला, अत्यन्त पटु, सरल एवं गम्भीर वाणी बोलनेवाला, श्वेत वस्त्रधारी, कुण्डल, जंजीर, केयूर तथा कण्ठाभरणसे सुशोभित हो। मण्डपमें पूर्व दिशामें दो ऋग्वेदी ऋत्विजोंको, दक्षिण दिशामें दो यजुर्वेदी अध्वर्यु ब्राह्मणोंको, पश्चिम दिशामें दो सामवेदी उद्‌गाता ब्राह्मणोंको तथा उत्तर दिशामें दो अथर्ववेदी विद्वानोंको नियुक्त करना चाहिये। विनायक आदि ग्रह, लोकपाल, आठों वसुगण, आदित्यगण, मरुद्‌गण, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, सूर्य एवं वनस्पतियोंके लिये उनके मन्त्रोंद्वारा चार-चार आहुतियाँ देनी चाहिये तथा इनके सूक्तोंका क्रमानुरूप शुद्ध-शुद्ध जप करवाना चाहिये। हवनकी समाप्तिके बाद यजमानसहित आचार्य तुरहीका शब्द करते हुए बलि, पुष्प और धूप लेकर क्रमशः सभी लोकपालोंका उनके मन्त्रोंद्वारा इस प्रकार आवाहन करे। भगवन्! आप देवताओंके स्वामी और वज्र धारण करनेवाले हैं, सभी अमर, सिद्ध और साध्य आपकी स्तुति करते हैं तथा अप्सराओंके समूह आपपर पंखा झलते हैं, आपको नमस्कार है। आप यहाँ आइये, अवश्य आइये, हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। 'ॐ इन्द्रको नमस्कार है'—ऐसा कहकर इन्द्रका आवाहन करना चाहिये। अग्निदेव! आप सभी देवताओंके हव्यवाहक हैं, मुनिवरगण सब ओरसे आपकी सेवा करते हैं, आप अपने तेजस्वी लोकगणोंके साथ यहाँ आयें, अवश्य आयें और मेरे यज्ञकी रक्षा करें, आपको प्रणाम है।

ॐ अग्नये नमः।

एह्येहि वैवस्वत धर्मराज
सर्वामरैरर्चित दिव्यमूर्ते।
शुभाशुभानन्दशुचामधीश
शिवाय नः पाहि मखं नमस्ते॥ ४४

ॐ यमाय नमः।

एह्येहि रक्षोगणनायकस्त्वं
सर्वैस्तु वेतालपिशाचसंघैः।
ममाध्वरं पाहि शुभादिनाथ
लोकेश्वरस्त्वं भगवन् नमस्ते॥ ४५

ॐ निर्ऋतये नमः।

एह्येहि यादोगणवारिधीनां
गणेन पर्जन्यमहाप्सरोभिः।
विद्याधरेन्द्रामरगीयमान
पाहि त्वमस्मान् भगवन् नमस्ते॥ ४६

ॐ वरुणाय नमः।

एह्येहि यज्ञे मम रक्षणाय
मृगाधिरूढः सह सिद्धसंघैः।
प्राणाधिपः कालकवेः सहायो
गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते॥ ४७

ॐ वायवे नमः।

एह्येहि यज्ञेश्वर यज्ञरक्षां
विधत्स्व नक्षत्रगणेन सार्धम्।
सर्वौषधीभिः पितृभिः सहैव
गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते॥ ४८

ॐ सोमाय नमः।

एह्येहि विश्वेश्वर नस्त्रिशूल-
कपालखट्वाङ्गधरेण सार्धम्।
लोकेश यज्ञेश्वर यज्ञसिद्ध्यै
गृहाण पूजां भगवन् नमस्ते॥ ४९

ॐ ईशानाय नमः।

एह्येहि पातालधराधरेन्द्र
नागाङ्गनाकिन्नरगीयमान ।
यक्षोरगेन्द्रामरलोकसार्ध-
मनन्त रक्षाध्वरमस्मदीयम् ॥ ५०

'ॐ अग्निको नमस्कार है।'—ऐसा कहकर अग्निका आवाहन करना चाहिये। सूर्यपुत्र धर्मराज! आप सभी देवताओंद्वारा पूजित, दिव्य शरीरधारी और शुभ एवं अशुभ तथा आनन्द एवं शोकके अधीश्वर हैं, हमारे कल्याणके लिये हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। आपको अभिवादन है। 'ॐ यमराजको नमस्कार है।'—ऐसा कहकर यमका आवाहन करना चाहिये॥ ३६—४४॥

भगवन्! आप लोकोंके अधीश्वर तथा राक्षससमूहके नायक हैं। शुभादिनाथ! आप वेतालों और पिशाचोंके विशाल समूहके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये और मेरे यज्ञकी रक्षा कीजिये। आपको प्रणाम है। ॐ निर्ऋतिको नमस्कार है, ऐसा कहकर निर्ऋतिका आवाहन करना चाहिये। भगवन्! विद्याधर और इन्द्र आदि देवता आपका गुण-गान करते हैं, आप समस्त जलचरों, समुद्रों, बादलों और अप्सराओंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये और हमारी रक्षा कीजिये। आपको अभिवादन है। 'ॐ वरुणको नमस्कार है।' ऐसा कहकर वरुणका आवाहन करना चाहिये। भगवन्! आप कालाग्निके सहायक और प्राणोंके अधीश्वर हैं, आप मृग (हिरन)-पर आरूढ़ हो सिद्ध-समूहोंके साथ मेरी रक्षा करनेके लिये यज्ञमें पधारिये, अवश्य पधारिये और मेरी पूजा स्वीकार कीजिये। आपको नमस्कार है। 'ॐ वायुको नमस्कार है।'—ऐसा कहकर वायुका आवाहन करना चाहिये। यज्ञेश्वर! आप नक्षत्रगणों, सभी ओषधियों तथा पितरोंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये और मेरे यज्ञकी रक्षा कीजिये। भगवन्! आप मेरी पूजा स्वीकार कीजिये, आपको प्रणाम है। 'ॐ सोमको नमस्कार है'—ऐसा कहकर सोमका आवाहन करना चाहिये। यज्ञोंके स्वामी विश्वेश्वर! आप त्रिशूल, कपाल, खट्वाङ्ग धारण करनेवाले अपने गणोंके साथ हमारे यज्ञमें सिद्धि प्रदान करनेके लिये उपस्थित होइये, अवश्य आइये और लोकेश! मेरी पूजा ग्रहण कीजिये। भगवन्! आपको अभिवादन है। 'ॐ ईशानको नमस्कार है।'—ऐसा कहकर ईशानका आवाहन करना चाहिये। अनन्त! आप पाताल एवं पृथ्वीको धारण करनेवालोंमें श्रेष्ठ हैं तथा नागाङ्गनाएँ और किंनर आपका गुण-गान करते हैं, आप यक्षों, नागेन्द्रों और देवगणोंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये

ॐ अनन्ताय नमः।

एह्येहि विश्वाधिपते मुनीन्द्र
लोकेन सार्धं पितृदेवताभिः।
सर्वस्य धातास्यमितप्रभाव
विशाध्वरं नो भगवन् नमस्ते॥ ५१

ॐ ब्रह्मणे नमः।

त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च।
ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे॥ ५२
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।
ऋषयो मदनो गावो देवमातर एव च॥ ५३
सर्वे ममाध्वरे रक्षां प्रकुर्वन्तु मुदान्विताः।
इत्यावाह्य सुरान् दद्याद् ऋत्विग्भ्यो हेमभूषणम्॥ ५४
कुण्डलानि च हैमानि सूत्राणि कटकानि च।
अङ्गुलीयपवित्राणि वासांसि शयनानि च॥ ५५
द्विगुणं गुरवे दद्याद् भूषणाच्छादनानि च।
जपेयुः शान्तिकाध्यायं जापकाः सर्वतोदिशम्॥ ५६
तत्रोषितास्तु ते सर्वे कृत्वैवमधिवासनम्।
आदावन्ते च मध्ये च कुर्याद् ब्राह्मणवाचनम्॥ ५७
ततो मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः।
त्रिःप्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥ ५८
शुक्लमाल्याम्बरो भूत्वा तां तुलामभिमन्त्रयेत्।
नमस्ते सर्वदेवानां शक्तिस्त्वं सत्यमास्थिता॥ ५९
साक्षिभूता जगद्धात्री निर्मिता विश्वयोनिना।
एकतः सर्वसत्यानि तथानृतशतानि च॥ ६०
धर्माधर्मकृतां मध्ये स्थापितासि जगद्धिते।
त्वं तुले सर्वभूतानां प्रमाणमिह कीर्तिता॥ ६१
मां तोलयन्ती संसारादुद्धरस्व नमोऽस्तु ते।
योऽसौ तत्त्वाधिपो देवः पुरुषः पञ्चविंशकः॥ ६२
स एकोऽधिष्ठितो देवि त्वयि तस्मान्नमो नमः।
नमो नमस्ते गोविन्द तुलापुरुषसंज्ञक॥ ६३
त्वं हरे तारयस्वास्मानस्मात् संसारकर्दमात्।
पुण्यकालं समासाद्य कृत्वैवमधिवासनम्॥ ६४

और हमारे यज्ञकी रक्षा कीजिये। 'ॐ अनन्तको नमस्कार है'—ऐसा कहकर अनन्तका आवाहन करना चाहिये। विश्वाधिपते! आप समस्त जगत्के विधाता हैं। मुनीन्द्र! आप पितर, देवता एवं लोकपालोंके साथ यहाँ आइये, अवश्य आइये। अमित प्रभावशाली! आप हमारे यज्ञमें प्रविष्ट होइये। भगवन्! आपको प्रणाम है। 'ॐ ब्रह्माको नमस्कार है'—ऐसा कहकर ब्रह्माका आवाहन करना चाहिये। त्रिलोकीमें जितने स्थावर-जंगम प्राणी हैं, वे सभी ब्रह्मा, विष्णु और शिवके साथ मेरी रक्षा करें। देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, ऋषिगण, कामदेव, गौएँ, देव-माताएँ—ये सभी हर्षपूर्वक मेरे यज्ञकी रक्षा करें॥ ४५—५३ $\frac{1}{2}$॥

इस प्रकार देवताओंका आवाहन कर ऋत्विजोंको सुवर्णका आभूषण, कुण्डल, जंजीर, कङ्कण, पवित्र अँगूठी, वस्त्र तथा शय्याका दान करना चाहिये। ये भूषण और वस्त्र गुरुके लिये दूना देना चाहिये। उस समय सभी दिशाओंमें जापक शान्तिकाध्यायका जप करते रहें। उन सभी ब्राह्मणोंको वहाँ उपस्थित रहना चाहिये और इस प्रकार अधिवासन कर प्रत्येक कार्यके प्रारम्भ, मध्य तथा अन्तमें स्वस्तिवाचन करना चाहिये। तत्पश्चात् माङ्गलिक शब्दोंका उच्चारण करते हुए वेदज्ञोंद्वारा अभिषिक्त यजमान श्वेत वस्त्र धारणकर अञ्जलिमें पुष्प ले उस तुलाकी तीन बार प्रदक्षिणा कर उसे इस प्रकार अभिमन्त्रित करे। तुले! तुम सभी देवताओंकी शक्तिस्वरूपा हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम सत्यकी आश्रयभूता, साक्षिस्वरूपा, जगत्को धारण करनेवाली और विश्वयोनि ब्रह्माद्वारा निर्मित की गयी हो, जगत्की कल्याणकारिणी! तुम्हारी एक तुलापर सभी सत्य हैं, दूसरीपर सौ असत्य हैं। धर्मात्मा और पापियोंके बीच तुम्हारी स्थापना हुई है। तुम भूतलपर सभी जीवोंके लिये प्रमाणरूप बतलायी गयी हो। मुझे तोलती हुई तुम इस संसारसे मेरा उद्धार कर दो, तुम्हें नमस्कार है। देवि! जो ये तत्त्वोंके अधीश्वर पचीसवें पुरुष भगवान् हैं, वे एकमात्र तुम्हींमें अधिष्ठित हैं, इसलिये तुम्हें बारंबार प्रणाम है। तुला-पुरुष नामधारी गोविन्द! आपको बारंबार अभिवादन है। हरे! आप इस संसाररूपी पङ्कसे हमारा उद्धार कीजिये। इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुष पुण्यकालमें अधिवासन

पुनः प्रदक्षिणं कृत्वा तुलामारोहयेद् बुधः।
सखड्गचर्मकवचः सर्वाभरणभूषितः॥ ६५

धर्मराजमथादाय हैमं सूर्येण संयुतम्।
कराभ्यां बद्धमुष्टिभ्यामास्ते पश्यन् हरेर्मुखम्॥ ६६

ततोऽपरे तुलाभागे न्यसेयुर्द्विजपुङ्गवाः।
समादभ्यधिकं यावत् काञ्चनं चातिनिर्मलम्॥ ६७

पुष्टिकामस्तु कुर्वीत भूमिसंस्थं नरेश्वरः।
क्षणमात्रं ततः स्थित्वा पुनरेवमुदीरयेत्॥ ६८

नमस्ते सर्वभूतानां साक्षिभूते सनातनि।
पितामहेन देवि त्वं निर्मिता परमेष्ठिना॥ ६९

त्वया धृतं जगत् सर्वं सहस्थावरजङ्गमम्।
सर्वभूतात्मभूतस्थे नमस्ते विश्वधारिणि॥ ७०

ततोऽवतीर्य गुरवे पूर्वमर्धं निवेदयेत्।
ऋत्विग्भ्योऽपरमर्द्धं च दद्यादुदकपूर्वकम्॥ ७१

गुरवे ग्रामरत्नानि ऋत्विग्भ्यश्च निवेदयेत्।
प्राप्य तेषामनुज्ञां तु तथान्येभ्योऽपि दापयेत्॥ ७२

दीनानाथविशिष्टादीन् पूजयेद् ब्राह्मणैः सह।
न चिरं धारयेद् गेहे सुवर्णं प्रोक्षितं बुधः॥ ७३

तिष्ठेद् भयावहं यस्माच्छोकव्याधिकरं नृणाम्।
शीघ्रं परस्वीकरणाच्छ्रेयः प्राप्नोति मानवः॥ ७४

अनेन विधिना यस्तु तुलापुरुषमाचरेत्।
प्रतिलोकाधिपस्थाने प्रतिमन्वन्तरं वसेत्॥ ७५

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना।
पूज्यमानोऽप्सरोभिश्च ततो विष्णुपुरं व्रजेत्।
कल्पकोटिशतं यावत् तस्मिंल्लोके महीयते॥ ७६

कर्मक्षयादिह पुनर्भुवि राजराजो
भूपालमौलिमणिरञ्जितपादपीठः।
श्रद्धान्वितो भवति यज्ञसहस्रयाजी
दीप्तप्रतापजितसर्वमहीपलोकः॥ ७७

कर पुनः प्रदक्षिणा कर तुलापर आरोहण करे। उस समय वह खड्ग, ढाल, कवच एवं सभी आभरणोंसे अलंकृत रहे। वह सुवर्णनिर्मित सूर्यसहित धर्मराजको बँधी हुई मुट्ठीवाले दोनों हाथोंसे पकड़कर विष्णुके मुखकी ओर ताकता हुआ स्थित रहे॥ ५४—६६॥

तदनन्तर ब्राह्मणोंको चाहिये कि वे तुलाकी दूसरी ओर यजमानकी तोलसे कुछ अधिक अत्यन्त निर्मल स्वर्ण रखें। पुष्टिकामी श्रेष्ठ मनुष्य जबतक स्वर्णकी तुला भूमिपर स्पर्श न कर ले, तबतक स्वर्ण रखे। फिर क्षणमात्र चुप रहकर इस प्रकार निवेदन करे—'सभी जीवोंकी साक्षीभूता सनातनी देवि! तुम पितामह ब्रह्माद्वारा निर्मित हुई हो, तुम्हें नमस्कार है। तुले! तुम समस्त स्थावर-जंगमरूप जगत्को धारण करनेवाली हो, सभी जीवोंको आत्मभूत करनेवाली विश्वधारिणि! तुम्हें नमस्कार है।' तत्पश्चात् तुलासे उतरकर स्वर्णका आधा भाग पहले गुरुको देना चाहिये एवं बचे हुए आधे भागको हाथमें जल लेकर संकल्पपूर्वक ऋत्विजोंको दे देना चाहिये। फिर गुरुको तथा ऋत्विजोंको इसके अतिरिक्त ग्राम और रत्न भी प्रदान करना चाहिये। पुनः उनकी आज्ञा लेकर अन्य ब्राह्मणोंको भी दान करना चाहिये। विशेषतया दीनों एवं अनाथोंको भी ब्राह्मणोंके साथ दान देना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष उस तोले गये स्वर्णको अधिक देरतक अपने घरमें न रखे; क्योंकि यदि वह घरमें रह जाता है तो मनुष्योंको भय देनेवाला, शोक और व्याधिको बढ़ानेवाला होता है, उसे शीघ्र ही दूसरेको दे देनेसे मनुष्य श्रेयका भागी हो जाता है। इस प्रकारकी विधिसे जो मनुष्य तुलापुरुषका दान देता है, वह प्रत्येक मन्वन्तरमें प्रत्येक लोकके स्वामित्व पदपर निवास करता है। वह किङ्किणीसमूहोंसे युक्त एवं सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर चढ़कर अप्सराओंसे सुपूजित हो विष्णुपुरको जाता है और उस लोकमें सौ कोटि कल्पोंतक पूजित होता है। फिर पुण्यकर्मके क्षय होनेपर वह भूतलपर राजराजेश्वर होता है। अनेक राजाओंके मुकुटकी मणियोंसे उसका पदपीठ शोभायमान होता है, वह श्रद्धासहित सहस्रों यज्ञोंका अनुष्ठान करता है और प्रचण्ड प्रतापसे समस्त राजाओंको पराजित करता है।

यो दीयमानमपि पश्यति भक्तियुक्तः
कालान्तरे स्मरति वाचयतीह लोके।
यो वा शृणोति पठतीन्द्रसमानरूपः
प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टम्॥ ७८

जो मनुष्य इस तुलापुरुषके दानको दिये जाते हुए देखता है, दूसरे अवसरपर उसका स्मरण करता है, लोकमें पढ़कर उसकी विधिको सुनाता है अथवा जो इसकी विधिको सुनता या पढ़ता है, वह भी इन्द्रके समान स्वरूप धारणकर पुरंदर प्रभृति देवगणोंद्वारा सेवित स्वर्गलोकको प्राप्त करता है॥ ६७—७८॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने तुलापुरुषदानं नाम चतुःसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७४॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-अनुकीर्तन-प्रसङ्गमें तुलापुरुष-दान नामक दो सौ चौहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७४॥



दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय

हिरण्यगर्भदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
नाम्ना हिरण्यगर्भाख्यं महापातकनाशनम्॥ १
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥ २
कुर्यादुपोषितस्तद्वल्लोकेशावाहनं बुधः।
पुण्याहवाचनं कृत्वा तद्वत् कृत्वाधिवासनम्॥ ३
ब्राह्मणैरानयेत् कुम्भं तपनीयमयं शुभम्।
द्विसप्तत्यङ्गुलोच्छ्रायं हेमपङ्कजगर्भवत्॥ ४
त्रिभागहीनविस्तारमाज्यक्षीराभिपूरितम्।
दशास्त्राणि च रत्नानि दात्रीं सूचीं तथैव च॥ ५
हेमनालं सपिटकं बहिरादित्यसंयुतम्।
तथैवावरणं नाभेरुपवीतं च काञ्चनम्॥ ६
पार्श्वतः स्थापयेत् तद्वद्धैमदण्डकमण्डलू।
पद्माकारं पिधानं स्यात् समन्तादङ्गुलाधिकम्॥ ७
मुक्तावलीसमोपेतं पद्मरागसमन्वितम्।
तिलद्रोणोपरिगतं वेदिमध्ये व्यवस्थितम्॥ ८

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं हिरण्यगर्भ नामक सर्वश्रेष्ठ महादानकी विधि बतलाता हूँ, जो महापातकोंका विनाश करनेवाला है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि वह किसी पुण्य दिनके आनेपर तुलापुरुषदानकी भाँति इस दानमें भी ऋत्विज, मण्डप, पूजनसामग्री, भूषण, वस्त्र आच्छादन आदिका संग्रह करे। फिर उपवासपूर्वक लोकपालोंका आवाहन, पुण्याहवाचन और अधिवासन करके ब्राह्मणोंद्वारा स्वर्णमय माङ्गलिक कलशको मण्डपमें मँगवाये। वह कलश सुवर्ण-कमलके गर्भकी भाँति सुन्दर और बहत्तर अंगुल ऊँचा हो। उसकी चौड़ाई ऊँचाईकी अपेक्षा तिहाईकी होनी चाहिये। वह घृत और दुग्धसे भरा हुआ हो। उसके समीप दस अस्त्र, रत्न, छूरिका, सूई, सुवर्णका नाल, सूर्यमूर्तिसहित पिटारी, नाभिको ढकनेके लिये वस्त्र, स्वर्णका यज्ञोपवीत, स्वर्णका दण्ड तथा कमण्डलु स्थापित करे। इसके ऊपरसे चारों ओर एक अंगुलसे अधिक मोटा कमलके आकारका ढक्कन होना चाहिये। मोतियोंकी लड़ियोंसे सुशोभित तथा पद्मरागमणिसे युक्त वह कलश वेदिकाके मध्यभागमें द्रोण-परिमित तिलके ऊपर स्थापित होना चाहिये॥ १—८॥

ततो मङ्गलशब्देन ब्रह्मघोषरवेण च।
सर्वौषध्युदकस्नानं स्नापितो वेदपुंगवैः॥ ९

तत्पश्चात् यजमान माङ्गलिक शब्द एवं वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा वेदध्वनिके साथ सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान

शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥ १०
नमो हिरण्यगर्भाय हिरण्यकवचाय च।
सप्तलोकसुराध्यक्ष जगद्धात्रे नमो नमः॥ ११
भूर्लोकप्रमुखा लोकास्तव गर्भे व्यवस्थिताः।
ब्रह्मादयस्तथा देवा नमस्ते विश्वधारिणे॥ १२
नमस्ते भुवनाधार नमस्ते भुवनाश्रय।
नमो हिरण्यगर्भाय गर्भे यस्य पितामहः॥ १३
यतस्त्वमेव भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः।
तस्मान्मामुद्धराशेषदुःखसंसारसागरात् ॥ १४
एवमामन्त्र्य तन्मध्यमाविश्यास्त उदङ्मुखः।
मुष्टिभ्यां परिसंगृह्य धर्मराजचतुर्मुखौ॥ १५
जानुमध्ये शिरः कृत्वा तिष्ठेदुच्छ्वासपञ्चकम्।
गर्भाधानं पुंसवनं सीमन्तोन्नयनं तथा॥ १६
कुर्युर्हिरण्यगर्भस्य ततस्ते द्विजपुंगवाः।
गीतमङ्गलघोषेण गुरुरुत्थापयेत् ततः॥ १७
जातकर्मादिकाः कुर्युः क्रियाः षोडश चापराः।
सूच्यादिकं च गुरवे दद्यान्मन्त्रमिमं जपेत्॥ १८
नमो हिरण्यगर्भाय विश्वगर्भाय वै नमः।
चराचरस्य जगतो गृहभूताय वै नमः॥ १९
यथाहं जनितः पूर्वं मर्त्यधर्मा सुरोत्तम।
त्वद्गर्भसम्भवादेष दिव्यदेहो भवाम्यहम्॥ २०
चतुर्भिः कलशैर्भूयस्ततस्ते द्विजपुंगवाः।
स्नापयेयुः प्रसन्नाङ्गाः सर्वाभरणभूषिताः॥ २१
देवस्य त्वेति मन्त्रेण स्थितस्य कनकासने।
अद्य जातस्य तेऽङ्गानि अभिषेक्ष्यामहे वयम्॥ २२
दिव्येनानेन वपुषा चिरं जीव सुखी भव।
ततो हिरण्यगर्भं तं तेभ्यो दद्याद्विचक्षणः॥ २३
ते पूज्याः सर्वभावेन बहवो वा तदाज्ञया।
तत्रोपकरणं सर्वं गुरवे विनिवेदयेत्॥ २४
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनम् ।
ग्रामं वा विषयं वापि यदन्यदपि सम्भवेत्॥ २५

करे; फिर श्वेत वस्त्र और माला धारण कर सभी प्रकारके आभूषणोंसे अलंकृत हो अञ्जलिमें पुष्प लेकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'सातों लोकों तथा देवताओंके स्वामी! आप हिरण्यगर्भ, हिरण्यकवच और जगत्के विधाता हैं, आपको बार-बार नमस्कार है। भू-लोक आदि सभी लोक तथा ब्रह्मा आदि देवगण आपके गर्भमें स्थित हैं, अतः आप विश्वधारीको प्रणाम है। भुवनोंके आधार! आपको अभिवादन है। भुवनोंके आश्रय! आपको नमस्कार है। जिनके गर्भमें पितामह स्थित हैं, उन हिरण्यगर्भको प्रणाम है। देव! चूँकि आप ही भूतात्मा होकर प्रत्येक प्राणीमें स्थित हैं, इसलिये सम्पूर्ण दुःखोंसे परिपूर्ण इस संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये।' इस प्रकार आमन्त्रित कर मण्डपके मध्यभागमें प्रविष्ट हो उत्तराभिमुख बैठे; फिर अपनी मुट्ठियोंसे धर्मराज तथा चतुर्मुख ब्रह्माको पकड़कर अपने घुटनोंके बीचमें सिर कर पाँच बार श्वास लेता हुआ उसी प्रकार स्थित रहे, तबतक श्रेष्ठ ब्राह्मण उस हिरण्यगर्भका गर्भाधान, पुंसवन और सीमन्तोन्नयन संस्कार करायें। तब आचार्य गीत एवं माङ्गलिक शब्दोंके साथ यजमानको ऊपर उठाये॥ ९—१७॥

तत्पश्चात् जातकर्म आदि अन्य सोलहों क्रियाओंको करना चाहिये। फिर यजमान उन सूची आदि सामग्रियोंको गुरुको दान कर दे और इस मन्त्रका पाठ करे—'हिरण्यगर्भको नमस्कार है। विश्वगर्भको प्रणाम है। आप चराचर जगत्के गृहभूत हैं, आपको अभिवादन है। सुरोत्तम! जिस प्रकार मैं पहले जन्म-मरण-युक्त प्राणीके रूपमें जन्म ले चुका हूँ, वही मैं आपके गर्भसे उत्पन्न होनेके कारण दिव्य शरीरवाला हो जाऊँ।' इसके बाद सभी आभूषणोंसे विभूषित प्रसन्न शरीरवाले वे द्विजवर **'देवस्य त्वा०'** इस मन्त्रका पाठ करते हुए चार कलशोंद्वारा स्वर्णमय आसनपर आसीन यजमानको स्नान करवायें और कहें कि 'आज उत्पन्न हुए तुम्हारे इन अङ्गोंका हम लोग अभिषेक कर रहे हैं। अब तुम इस दिव्य शरीरसे चिरकालतक जीवित रहो और आनन्दका उपभोग करो।' तदनन्तर विचक्षण यजमान उस हिरण्यगर्भको उन ब्राह्मणोंको दान कर दे और उन ब्राह्मणोंकी सब तरहसे पूजा करे। फिर उनकी आज्ञासे अन्यान्य ब्राह्मणोंकी भी पूजा करनी चाहिये। वहाँकी सभी सामग्रियोंको—पादुका, जूता, छाता, चमर, आसन, पात्र, ग्राम, देश अथवा अन्य जो कुछ भी सम्भव

अनेन विधिना यस्तु पुण्येऽहनि निवेदयेत्।
हिरण्यगर्भदानं स ब्रह्मलोके महीयते॥ २६
पुरेषु लोकपालानां प्रतिमन्वन्तरं वसेत्।
कल्पकोटिशतं यावद् ब्रह्मलोके महीयते॥ २७
कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसाध्यै-
रमरचमरमालावीज्यमानोऽप्सरोभिः।
पितृशतमथ बन्धून् पुत्रपौत्रान् प्रपौत्रा-
नपि नरकनिमग्नांस्तारयेदेक एव॥ २८
इति पठति य इत्थं यः शृणोतीह सम्यङ्-
मधुरिपुरिव लोके पूज्यते सोऽपि सिद्धैः।
मतिमपि च जनानां यो ददाति प्रियार्थं
विबुधपतिजनानां नायकः स्यादमोघम्॥ २९

हो—गुरुको समर्पित कर देना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकारकी विधिसे पुण्यदिनको इस हिरण्यगर्भ नामक महादानको करता है, वह ब्रह्मलोकमें पूजित होता है, प्रत्येक मन्वन्तरमें लोकपालोंके पुरोंमें निवास करता है तथा सौ कोटि कल्पपर्यन्त ब्रह्मलोकमें पूजित होता है। कलियुगके पापोंसे मुक्त हुआ वह अकेले ही सिद्धों और साध्योंद्वारा पूजित तथा अप्सराओंद्वारा देवताओंके योग्य चमरोंसे वीजित होकर नरकमें पड़े हुए सैकड़ों पितरों, बन्धुओं, पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रोंतकको तार देता है। इस प्रकार मर्त्यलोकमें जो मनुष्य इसे पढ़ता है अथवा भलीभाँति सुनता है, वह भी विष्णुभगवान्‌की तरह सिद्धगणोंद्वारा पूजित होता है तथा जो हितैषिताकी दृष्टिसे लोगोंको दान करनेकी सूझ देता है, वह देवपतियोंका नायक होता है और उस पदसे कभी च्युत नहीं होता॥ १८—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यगर्भप्रदानविधिर्नाम पञ्चसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७५॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानानुकीर्तनमें हिरण्यगर्भदान-विधि नामक दो सौ पचहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७५॥



दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय

ब्रह्माण्डदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डविधिमुत्तमम्।
यच्छ्रेष्ठं सर्वदानानां महापातकनाशनम्॥ १
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥ २
लोकेशावाहनं कुर्यादधिवासनकं तथा।
कुर्याद् विंशपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः॥ ३
कलशद्वयसंयुक्तं ब्रह्माण्डं काञ्चनं बुधः।
दिग्गजाष्टकसंयुक्तं षड्वेदाङ्गसमन्वितम्॥ ४
लोकपालाष्टकोपेतं मध्यस्थितचतुर्मुखम्।
शिवाच्युतार्कशिखरमुमालक्ष्मीसमन्वितम्॥ ५

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब मैं सर्वश्रेष्ठ ब्रह्माण्डदानकी विधि बतला रहा हूँ, जो सभी दानोंमें श्रेष्ठ और महापापोंका विनाश करनेवाला है। पुण्यदिनके आनेपर तुलापुरुष-दानके समान इसमें भी ऋत्विज, मण्डप, पूजनकी सामग्री, भूषण तथा आच्छादन आदिको एकत्र करना चाहिये। इसी प्रकार लोकपालोंका आवाहन और अधिवासन भी करना चाहिये। इसके पहले बुद्धिमान् पुरुषको अपनी शक्तिके अनुसार बीस पलसे ऊपर एक हजार पलतक दो कलशोंसे संयुक्त सोनेके ब्रह्माण्डकी* रचना करवानी चाहिये। वह ब्रह्माण्ड आठों दिग्गजोंसे संयुक्त, छहों वेदाङ्गोंसे सम्पन्न तथा आठों लोकपालोंसे युक्त हो। उसके मध्यभागमें चतुर्मुख ब्रह्मा तथा शिखरपर शिव, विष्णु और सूर्य स्थित हों, वह उमा तथा लक्ष्मीसे

* ब्रह्माण्ड-निर्माण एवं दानकी ससंकल्प पूरी विधि दानसागर, दानमयूख-चन्द्रिका-कल्पतरु आदिमें है। अधिक जाननेकी इच्छा रखनेवाले सज्जनोंको इसे वहीं देखना चाहिये।

वस्वादित्यमरुद्गर्भं महारत्नसमन्वितम्।
वितस्तेरङ्गुलशतं यावदायामविस्तरम्॥ ६

कौशेयवस्त्रसंवीतं तिलद्रोणोपरि न्यसेत्।
तथाष्टादश धान्यानि समन्तात् परिकल्पयेत्॥ ७

पूर्वेणानन्तशयनं प्रद्युम्नं पूर्वदक्षिणे।
प्रकृतिं दक्षिणे देशे सङ्कर्षणमतः परम्॥ ८

पश्चिमे चतुरो वेदाननिरुद्धमतः परम्।
अग्निमुत्तरतो हैमं वासुदेवमतः परम्॥ ९

समन्ताद् गुडपीठस्थानर्चयेत् काञ्चनान् बुधः।
स्थापयेद् वस्त्रसंवीतान् पूर्णकुम्भान् दशैव तु॥ १०

युक्त हो। उसके गर्भमें वसुगण, आदित्यगण और मरुद्गण होने चाहिये तथा वह बहुमूल्य रत्नोंसे सुशोभित भी हो। उसकी लम्बाई-चौड़ाई एक बीतेसे लेकर सौ अंगुलतक होनी चाहिये। उसे रेशमी वस्त्रसे परिवेष्टित कर एक द्रोण तिलपर स्थापित करना चाहिये। उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नोंको रखना चाहिये। उसकी पूर्व दिशामें अनन्तशायीको, (दक्षिण-पूर्वके) अग्निकोणमें प्रद्युम्नको, दक्षिण दिशामें प्रकृतिको, (दक्षिण-पश्चिमके) नैर्ऋत्यकोणमें संकर्षणको, पश्चिम दिशामें चारों वेदोंको, (पश्चिम-उत्तर) वायव्यकोणमें अनिरुद्धको, उत्तर दिशामें अग्निको, (उत्तर-पूर्वके) ईशानकोणमें सुवर्ण-निर्मित वासुदेवको स्थापित करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष इन सभी देवताओंकी स्वर्णमयी प्रतिमा बनवाकर चारों ओर गुडके आसनपर स्थितकर उनकी पूजा करे। फिर जलसे भरे हुए दस कुम्भोंको वस्त्रसे परिवेष्टित कर स्थापित करे॥ १—१०॥

दशैव धेनवो देयाः सहेमाम्बरदोहनाः।
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनदर्पणैः।
भक्ष्यभोज्यान्नदीपेक्षुफलमाल्यानुलेपनैः॥ ११

होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वाथ प्रदक्षिणम्॥ १२

नमोऽस्तु विश्वेश्वर विश्वधाम
जगत्सवित्रे भगवन् नमस्ते।
सप्तर्षिलोकामरभूतलेश
गर्भेण सार्धं वितराभिरक्षाम्॥ १३

ये दुःखितास्ते सुखिनो भवन्तु
प्रयान्तु पापानि चराचराणाम्।
त्वद्दानशस्त्राहतपातकानां
ब्रह्माण्डदोषाः प्रलयं व्रजन्तु॥ १४

एवं प्रणम्यामरविश्वगर्भं
दद्याद् द्विजेभ्यो दशधा विभज्य।
भागद्वयं तत्र गुरोः प्रकल्प्य
समं भजेच्छेषमनुक्रमेण॥ १५

तदनन्तर पादुका, जूता, छत्र, चमर, आसन, दर्पण, भक्ष्य-भोज्य, अन्न, दीप, ईख, फल, माला और चन्दनसहित सुवर्ण, वस्त्र और कांसदोहनीके साथ दस गौएँ दान करनी चाहिये। हवन एवं अधिवासनके समाप्त होनेपर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा स्नान कराये जानेके बाद यजमान तीन बार प्रदक्षिणा कर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'विश्वेश्वर! आपको नमस्कार है। विश्वधाम! आप जगत्‌को उत्पन्न करनेवाले हैं, आपको प्रणाम है। भगवन्! आप सप्तर्षिलोक, देवता और भूतलके स्वामी हैं, आप गर्भके साथ चारों ओरसे हमारी रक्षा कीजिये। जो दुःखी हैं, वे सुखी हो जायँ, चराचर जीवोंके पापपुञ्ज नष्ट हो जायँ, आपके दानरूप शस्त्रसे नष्ट हुए पापोंवाले लोगोंके ब्रह्माण्ड-दोष नष्ट हो जायँ।' इस प्रकार अमरगणों एवं विश्वको गर्भमें धारण करनेवाले उस ब्रह्माण्डको प्रणाम करनेके बाद उसे दस भागोंमें विभक्त कर ब्राह्मणोंको दान कर दे। उनमेंसे दो भाग गुरुको दे और शेष भागोंको क्रमशः समानरूपसे ब्राह्मणोंको दे।

स्वल्पे च होमं गुरुरेक एव
कुर्यादथैकाग्निविधानयुक्त्या ।
स एव सम्पूज्यतमोऽल्पवित्ते
यथोक्तवस्त्राभरणादिकेन ॥ १६

इत्थं य एतदखिलं पुरुषोऽत्र कुर्याद्
ब्रह्माण्डदानमधिगम्य महद्विमानम्।
निर्धूतकल्मषविशुद्धतनुर्मुरारे-
रानन्दकृत्पदमुपैति सहाप्सरोभिः॥ १७

संतारयेत् पितृपितामहपुत्रपौत्र-
बन्धुप्रियातिथिकलत्रशताष्टकं सः।
ब्रह्माण्डदानशकलीकृतपातकौघ-
मानन्दयेच्च जननीकुलमप्यशेषम्॥ १८

इति पठति शृणोति वा य एतत्
सुरभवनेषु गृहेषु धार्मिकाणाम्।
मतिमपि च ददाति मोदतेऽसाव-
मरपतेर्भवने सहाप्सरोभिः॥ १९

स्वल्प हवनमें एक गुरुको ही एकाग्निकी विधिसे नियुक्त करना चाहिये और अल्प वित्त होनेपर यथोक्त वस्त्र-आभूषणादिसे उन्हींकी पूजा करनी चाहिये। इस प्रकार जो मनुष्य इस लोकमें इस ब्रह्माण्डदानकी क्रियाको सम्पन्न करता है, वह पापोंके नष्ट हो जानेसे शुद्ध-शरीर हो अप्सराओंके साथ महान् विमानपर आरूढ़ हो मुरारिके आनन्ददायक पदको प्राप्त करता है। इस प्रकार करनेसे वह अपने सैकड़ों पिता, पितामह, पुत्र, पौत्र, बन्धु, प्रियजन, अतिथि और स्त्रीको तार देता है। साथ ही जिसका पापसमूह ब्रह्माण्ड-दानसे चूर्ण हो गया है उस सम्पूर्ण मातृकुलको भी आनन्दित करता है। इसे जो मनुष्य देव-मन्दिरों अथवा धार्मिकोंके गृहोंमें पढ़ता अथवा सुनता या ऐसा करनेकी मति ही देता है, वह इन्द्रके भवनमें अप्सराओंके साथ आनन्दका अनुभव करता है॥ ११—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने ब्रह्माण्डप्रदानविधिर्नाम षट्सप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७६॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णनप्रसङ्गमें ब्रह्माण्ड-दान-विधि नामक दो सौ छिहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७६॥



दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय

कल्पपादप-दान-विधि

मत्स्य उवाच

कल्पपादपदानाख्यमतः परमनुत्तमम्।
महादानं प्रवक्ष्यामि सर्वपातकनाशनम्॥ १
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
पुण्याहवाचनं कृत्वा लोकेशावाहनं तथा॥ २
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
काञ्चनं कारयेद् वृक्षं नानाफलसमन्वितम्॥ ३
नानाविहगवस्त्राणि भूषणानि च कारयेत्।
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्त्रं प्रकल्पयेत्॥ ४

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—इसके बाद मैं सभी पातकोंको नष्ट करनेवाले अत्युत्तम कल्पपादप-दान नामक महादानका वर्णन कर रहा हूँ। पुण्य दिन प्राप्त होनेपर तुलापुरुष-दानके समान ही पुण्याहवाचन तथा लोकपालोंका आवाहन कर ऋत्विज मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदि सम्पन्न कर कल्पवृक्ष-दानका समारम्भ करे। इसके लिये विविध प्रकारके फलोंसे सुशोभित एक सुवर्णमय कल्पवृक्ष बनवाये। उसपर विविध प्रकारके पक्षी, वस्त्र तथा आभूषण भी बनवाये। इस वृक्षको यथाशक्ति तीन पलसे लेकर एक हजार पलतकका बनवाना चाहिये।

अर्धक्लृप्तसुवर्णस्य कारयेत् कल्पपादपम्।
गुडप्रस्थोपरिष्टाच्च सितवस्त्रयुगान्वितम्॥ ५
ब्रह्मविष्णुशिवोपेतं पञ्चशाखं सभास्करम्।
कामदेवमधस्ताच्च सकलत्रं प्रकल्पयेत्॥ ६
संतानं पूर्वतस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत्।
मन्दारं दक्षिणे पार्श्वे श्रिया सार्धं घृतोपरि॥ ७
पश्चिमे पारिजातं तु सावित्र्या सह जीरके।
सुरभीसंयुतं तद्वत् तिलेषु हरिचन्दनम्॥ ८
तुरीयांशेन कुर्वीत सौम्येन फलसंयुतम्।
कौशेयवस्त्रसंवीतानिक्षुमाल्यफलान्वितान् ॥ ९
तथाष्टौ पूर्णकलशान् पादुकाशनभाजनम्।
दीपिकोपानहच्छत्रचामरासनसंयुतम् ॥ १०
फलमाल्ययुतं तद्वदुपरिष्टाद्वितानकम्।
तथाष्टादश धान्यानि समंतात् परिकल्पयेत्॥ ११
होमाधिवासनान्ते च स्नापितो वेदपुङ्गवैः।
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥ १२

इसमेंसे आधे सोनेका कल्पपादप बनवाना चाहिये और उसे एक प्रस्थ गुड़के ऊपर दो श्वेत वस्त्रोंसे संयुत कर स्थापित करना चाहिये। वह कल्पवृक्ष ब्रह्मा, विष्णु, शिव और सूर्यके चित्रोंसे संयुक्त पाँच शाखाओंवाला हो। उसके निचले भागमें स्त्रीसहित कामदेवके चित्रकी रचना करनी चाहिये। उसकी पूर्व दिशामें चतुर्थांशसे संतान नामक देववृक्षकी, दक्षिण दिशामें घृतके ऊपर श्रीदेवीके साथ मन्दार नामक देववृक्षकी, पश्चिम दिशामें जीराके ऊपर सावित्रीके साथ पारिजात वृक्षकी तथा उत्तर दिशामें तिलोंके ऊपर गौके साथ फलसंयुक्त हरिचन्दन वृक्षकी स्थापना करनी चाहिये। पुनः रेशमी वस्त्रसे वेष्टित, ईख, पुष्पमाला और फलोंसे संयुक्त आठ पूर्ण कलशोंको स्थापित करे, उनके निकट पादुका, भोजन-पात्र, दीप, जूता, छत्र, चामर, आसन, फल और पुष्प भी रखना चाहिये। उनके ऊपर वितान भी लगाया जाय। उनके चारों ओर अठारह प्रकारके धान्य रखे जायँ। इस प्रकार हवन एवं अधिवासनकी समाप्ति होनेपर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा स्नान कराये जानेपर यजमान तीन प्रदक्षिणा करके इस मन्त्रका उच्चारण करे॥ १—१२॥

नमस्ते कल्पवृक्षाय चिन्तितार्थप्रदायिने।
विश्वम्भराय देवाय नमस्ते विश्वमूर्तये॥ १३
यस्मात् त्वमेव विश्वात्मा ब्रह्मा स्थाणुर्दिवाकरः।
मूर्तामूर्तपरं बीजमतः पाहि सनातन॥ १४
त्वमेवामृतसर्वस्वमनन्तः पुरुषोऽव्ययः।
संतानाद्यैरुपेतस्तत् पाहि संसारसागरात्॥ १५

'आप अभिलषित पदार्थको प्रदान करनेवाले कल्पवृक्ष हैं, आपको नमस्कार है। देव! आप विश्वका भरण-पोषण करनेवाले विश्वमूर्ति हैं, आपको प्रणाम है। सनातन! चूँकि आप विश्वात्मा, ब्रह्मा, शिव, दिवाकर, मूर्त-अमूर्त तथा इस चराचर विश्वके परम कारणरूप हैं, अतः मेरी रक्षा कीजिये। आप ही अमृतसर्वस्व, अनन्त, अव्यय, पुरुषोत्तम और संतान आदि दिव्य वृक्षोंसे युक्त हैं, अतः आप इस संसार-सागरसे मेरी रक्षा कीजिये।'

एवमामन्त्र्य तं दद्याद् गुरवे कल्पपादपम्।
चतुर्भ्यश्चाथ ऋत्विग्भ्यः संतानादीन् प्रकल्पयेत्॥ १६
स्वल्पे त्वेकाग्निवत् कुर्याद् गुरवे चाभिपूजनम्।
न वित्तशाठ्यं कुर्वीत न च विस्मयवान् भवेत्॥ १७
अनेन विधिना यस्तु प्रदद्यात् कल्पपादपम्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥ १८
अप्सरोभिः परिवृतः सिद्धचारणकिन्नरैः।
भूतान् भव्यांश्च मनुजांस्तारयेद् गोत्रसंयुतान्॥ १९

इस प्रकार आमन्त्रित कर उस कल्पवृक्षको गुरुको समर्पित कर दे और संतान आदि वृक्षोंको चार ऋत्विजोंको दे दे। स्वल्प सामग्रियोंके होनेपर एकाग्निपूजनकी भाँति एक गुरुकी ही पूजा करनी चाहिये। इस दानमें न तो कृपणता करनी चाहिये और न विस्मय ही करना चाहिये। जो मनुष्य इस विधिसे कल्पपादपका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त करता है। वह सिद्ध, चारण, किन्नर और अप्सराओंसे घिरा हुआ अपने सगोत्रीय भूत तथा भविष्यकालमें होनेवाले पुरुषोंको तार देता है।

स्तूयमानो दिवः पृष्ठे पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः।
विमानेनार्कवर्णेन विष्णुलोकं स गच्छति॥ २०
दिवि कल्पशतं तिष्ठेद् राजराजो भवेत् ततः।
नारायणबलोपेतो नारायणपरायणः।
नारायणकथासक्तो नारायणपुरं व्रजेत्॥ २१
यो वा पठेत् सकलकल्पतरुप्रदानं
यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद् वा।
सोऽपीन्द्रलोकमधिगम्य सहाप्सरोभि-
र्मन्वन्तरं वसति पापविमुक्तदेहः॥ २२

वह स्वर्गलोकमें पुत्र, पौत्र और प्रपौत्रोंद्वारा स्तुति किया जाता हुआ सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर चढ़कर विष्णुलोकको जाता है और वहाँ सौ कल्पोंतक निवास करता है। तदनन्तर वह पुनः मृत्युलोकमें राजाधिराज होता है। यहाँ वह नारायणके पराक्रमसे संयुक्त हो नारायणकी भक्तिमें निरत और उन्हींकी कथाओंमें आसक्त रहता है, जिससे पुनः वैकुण्ठलोकको प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस कल्पपादप-दानकी समग्र विधिको पढ़ता या सुनता है अथवा जो अल्पवित्तशाली पुरुष केवल स्मरण करता है, वह भी पापमुक्त होकर इन्द्रलोकमें जाकर अप्सराओंके साथ मन्वन्तरपर्यन्त निवास करता है॥ १३—२२॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कल्पपादपप्रदानविधिर्नाम सप्तसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-अनुकीर्तन-प्रसङ्गमें कल्पपादप-प्रदान-विधि नामक दो सौ सतहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७७॥



दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय

गोसहस्र-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
गोसहस्रप्रदानाख्यं सर्वपापहरं परम्॥ १
पुण्यां तिथिं समासाद्य युगमन्वन्तरादिकाम्।
पयोव्रतं त्रिरात्रं स्यादेकरात्रमथापि वा॥ २
लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत्।
पुण्याहवाचनं कुर्याद्धोमः कार्यस्तथैव च॥ ३
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
वृक्षं लक्षणसंयुक्तं वेदिमध्येऽधिवासयेत्॥ ४
गोसहस्रं बहिः कुर्याद् वस्त्रमाल्यविभूषणम्।
सुवर्णशृङ्गाभरणं रौप्यपादसमन्वितम्॥ ५
अन्तः प्रवेश्य दशकं वस्त्रमाल्यैश्च पूजयेत्।
सुवर्णघंटिकायुक्तं कांस्यदोहनकान्वितम्॥ ६
सुवर्णतिलकोपेतं हेमपट्टैरलङ्कृतम्।
कौशेयवस्त्रसंवीतं माल्यगन्धसमन्वितम्॥ ७

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—इसके बाद मैं सभी पापोंको दूर करनेवाले अत्युत्तम गोसहस्र-दान नामक महादानकी विधि बता रहा हूँ। किसी युगादि या मन्वादि पुण्य तिथिके आनेपर त्रिरात्र अथवा एकरात्र पयोव्रत करे। फिर तुलापुरुष-दानकी तरह लोकपालोंका आवाहन, पुण्याहवाचन तथा हवन करना चाहिये। पुनः उसी प्रकार ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदिको भी एकत्र करे। तत्पश्चात् पूर्वनिर्दिष्ट लक्षणोंसे संयुक्त नन्दिकेश्वर (एक वृषभ)-को वेदीके मध्यभागमें स्थापित करे। वेदीके बाहर चारों ओर एक हजार गौओंको, जिनके सींग सोनेसे और खुर चाँदीसे मढ़े गये हों तथा जो वस्त्र और पुष्पमालासे विभूषित हों, स्थापित करे। पुनः वेदीके भीतर ऐसी दस गौओंको प्रविष्ट करे, जिनके गलेमें सोनेकी घंटी पड़ी हो, जो कांसदोहनीसे युक्त, स्वर्णमय तिलकसे सुशोभित, स्वर्णपत्रोंसे अलंकृत, रेशमी वस्त्रसे आच्छादित, पुष्पमाला और चन्दनसे युक्त, स्वर्ण एवं

हेमरत्नमयैः शृङ्गैश्चामरैरुपशोभितम्।
पादुकोपानहच्छत्रभाजनासनसंयुतम् ॥ ८

गवां दशकमध्ये स्यात् काञ्चनो नन्दिकेश्वरः।
कौशेयवस्त्रसंवीतो नानाभरणभूषितः ॥ ९

लवणद्रोणशिखरे माल्येक्षुफलसंयुतः।
कुर्यात् पलशतादूर्ध्वं सर्वमेतदशेषतः॥ १०

शक्तितः पलसाहस्रत्रितयं यावदेव तु।
गोशतेऽपि दशांशेन सर्वमेतत् समाचरेत्॥ ११

पुण्यकालं समासाद्य गीतमङ्गलनिःस्वनैः।
सर्वौषध्युदकस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः॥ १२

इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
नमोऽस्तु विश्वमूर्तिभ्यो विश्वमातृभ्य एव च॥ १३

लोकाधिवासिनीभ्यश्च रोहिणीभ्यो नमो नमः।
गवामङ्गेषु तिष्ठन्ति भुवनान्येकविंशतिः॥ १४

ब्रह्मादयस्तथा देवा रोहिण्यः पान्तु मातरः।
गावो मे अग्रतः सन्तु गावः पृष्ठत एव च॥ १५

गावः शिरसि मे नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम्।
यस्मात् त्वं वृषरूपेण धर्म एव सनातनः॥ १६

अष्टमूर्तेरधिष्ठानमतः पाहि सनातन।
इत्यामन्त्र्य ततो दद्याद् गुरवे नन्दिकेश्वरम्॥ १७

सर्वोपकरणोपेतं गोयुतं च विचक्षणः।
ऋत्विग्भ्यो धेनुमेकैकां दशैकाद् विनिवेदयेत्॥ १८

गवां च शतमेकैकं तदर्धं वाथ विंशतिम्।
दश पञ्चाथ वा दद्यादन्येभ्यस्तदनुज्ञया॥ १९

नैका बहुभ्यो दातव्या यतो दोषकरी भवेत्।
बह्व्यश्चैकस्य दातव्या धीमताऽऽरोग्यवृद्धये॥ २०

पयोव्रतः पुनस्तिष्ठेदेकाहं गोसहस्रदः।
श्रावयेच्छृणुयाद् वापि महादानानुकीर्तनम्॥ २१

रत्नमय शिखरोंवाले चामरोंसे सुशोभित तथा पादुका, जूता, पात्र और आसनोंसे संयुक्त हों। प्रति दस गौओंके बीच रेशमी वस्त्रसे परिवेष्टित, विविध अलंकारोंसे विभूषित तथा पुष्पमाला, ईख और फलोंसे संयुक्त सुवर्णमय साँड़को नन्दीके रूपमें एक द्रोण लवणके ऊपर स्थापित करना चाहिये। इन सब सामग्रियोंका निर्माण सौ पल सुवर्णसे ऊपर तीन हजार पलतक अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार करना चाहिये। सौ गौओंके दानमें भी इन सबका दशांशरूपसे व्यय करना चाहिये॥ ८—११॥

तदनन्तर पुण्यकाल आनेपर गीत एवं माङ्गलिक शब्दोंके साथ वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान कराया हुआ यजमान अञ्जलिमें पुष्प लेकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'विश्वमूर्तिस्वरूपा विश्वमाताओंको नमस्कार है। लोकोंको धारण करनेवाली रोहिणीरूपा गौओंको बारम्बार प्रणाम है। गौओंके अङ्गोंमें इक्कीसों भुवन तथा ब्रह्मादि देवताओंका निवास है, वे रोहिणीस्वरूपा* माताएँ मेरी रक्षा करें। गौएँ मेरे अग्रभागमें रहें, गौएँ मेरे पृष्ठभागमें रहें, गौएँ नित्य मेरे सिरपर वर्तमान रहें और मैं गौओंके मध्यमें निवास करूँ। सनातन! चूँकि तुम्हीं वृषरूपसे सनातन धर्म और भगवान् शिवके वाहन हो, अतः मेरी रक्षा करो!' इस प्रकार आमन्त्रित कर बुद्धिमान् यजमान सभी सामग्रियोंके साथ एक गौ और नन्दिकेश्वरको गुरुको दान कर दे तथा उन दसों गायोंमेंसे एक-एक तथा हजार गौओंमेंसे एक-एक सौ, पचास-पचास अथवा बीस-बीस गायें प्रत्येक ऋत्विज्को समर्पित कर दे। तत्पश्चात् उनकी आज्ञासे अन्य ब्राह्मणोंको दस-दस या पाँच-पाँच गौएँ देनी चाहिये। एक ही गाय बहुतोंको नहीं देनी चाहिये; क्योंकि वह दोष-प्रदायिनी हो जाती है। बुद्धिमान् यजमानको आरोग्यवृद्धिके लिये एक-एकको अनेक गौएँ देनी चाहिये। इस प्रकार एक हजार गोदान करनेवाला यजमान एक दिनके लिये पुनः पयोव्रत करे और इस महादानका अनुकीर्तन स्वयं सुनाये अथवा सुने॥ १२—२१॥

* वाजसने० ८। ४१ आदिमें बार-बार रोहिणीरूपा गौओंको कामधेनु एवं सुरभिरूपा कहा गया है। रोहिणी गौ प्रायः लाल वर्णकी होती है।

तद्दिने ब्रह्मचारी स्याद् विदीच्छेद्विपुलां श्रियम्।
अनेन विधिना यस्तु गोसहस्रप्रदो भवेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सिद्धचारणसेवितः॥ २२

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना।
सर्वेषां लोकपालानां लोके सम्पूज्यतेऽमरैः॥ २३

प्रतिमन्वन्तरं तिष्ठेत् पुत्रपौत्रसमन्वितः।
सप्त लोकानतिक्रम्य ततः शिवपुरं व्रजेत्॥ २४

शतमेकोत्तरं तद्वत् पितॄणां तारयेद् बुधः।

मातामहानां तद्वच्च पुत्रपौत्रसमन्वितः।
यावत् कल्पशतं तिष्ठेद् राजराजो भवेत् पुनः॥ २५

अश्वमेधशतं कुर्याच्छिवध्यानपरायणः।
वैष्णवं योगमास्थाय ततो मुच्येत बन्धनात्॥ २६

पितरश्चाभिनन्दन्ति गोसहस्रप्रदं सुतम्।

अपि स्यात् स कुलेऽस्माकं पुत्रो दौहित्र एव वा।
गोसहस्रप्रदो भूत्वा नरकादुद्धरिष्यति॥ २७

तस्य कर्मकरो वा स्यादपि द्रष्टा तथैव च।
संसारसागरादस्माद् योऽस्मान् सन्तारयिष्यति॥ २८

इति पठति य एतद् गोसहस्रप्रदानं
सुरभुवनमुपेयात् संस्मरेद् वा च पश्येत्।
अनुभवति मुदं वा मुच्यमानो निकामं
प्रहतकलुषदेहः सोऽपि यातीन्द्रलोकम्॥ २९

यदि उसे विपुल समृद्धिकी इच्छा हो तो उस दिन ब्रह्मचर्य-व्रतका पालन करना चाहिये। इस विधिसे जो मनुष्य एक हजार गौओंका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर सिद्धों एवं चारणोंद्वारा सेवित होता है। वह क्षुद्र घंटियोंसे सुशोभित सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ होकर सभी लोकपालोंके लोकोंमें अमरोंद्वारा पूजित होता है एवं वहाँ प्रत्येक मन्वन्तरमें पुत्र-पौत्रसहित निवास करता है। पुनः सातों लोकोंका अतिक्रमण कर शिवपुरको चला जाता है। वह बुद्धिमान् दाता अपने पितृपक्ष तथा मातृपक्षके पितरोंके एक सौ एक पीढ़ियोंको तार देता है। वह वहाँ पुत्र-पौत्रसे युक्त होकर सौ कल्पोंतक निवास करता है तथा वहाँसे लौटनेपर भूतलपर राजाधिराज होता है। यहाँ वह शिवके ध्यानमें परायण हो सैकड़ों अश्वमेध-यज्ञोंका अनुष्ठान करता है। पुनः वैष्णवयोगको धारणकर बन्धनसे मुक्त हो जाता है। पितर भी हजार गोदान करनेवाले पुत्रका अभिनन्दन करते हैं। (वे अपने हृदयमें सर्वदा यह आकाङ्क्षा करते रहते हैं कि) क्या हमारे कुलमें कोई पुत्र अथवा दौहित्र (कन्याका पुत्र) ऐसा होगा जो हजार गौओंका दान कर हमलोगोंका नरकसे उद्धार करेगा अथवा इस महादानका कर्मचारी या इसका दर्शक होगा जिससे इस संसारसागरसे हमलोगोंको पार कर देगा। इस प्रकार इस गोसहस्रदानको जो पढ़ता, स्मरण करता अथवा देखता है, वह देवलोकको प्राप्त होता है अथवा जो दान देते समय अत्यन्त हर्षका अनुभव करता है उसका शरीर पापसे मुक्त हो जाता है और वह इन्द्रलोकको चला जाता है॥ २२—२९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने गोसहस्रप्रदानविधिर्नामाष्टसप्तत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन-प्रसंगमें गौ-सहस्र प्रदान-विधि नामक दो सौ अठहत्तरवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७८॥



दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय

कामधेनु-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि कामधेनुविधिं परम्।
सर्वकामप्रदं नृणां महापातकनाशनम्॥ १

लोकेशावाहनं तद्वद्धोमः कार्योऽधिवासनम्।
तुलापुरुषवत् कुर्यात् कुण्डमण्डपवेदिकम्॥ २

स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद् गुरुरेकः समाहितः।
काञ्चनस्यातिशुद्धस्य धेनुं वत्सं च कारयेत्॥ ३

उत्तमा पलसाहस्त्री तदर्धेन तु मध्यमा।
कनीयसी तदर्धेन कामधेनुः प्रकीर्तिता॥ ४

शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमशक्तोऽपीह कारयेत्।
वेद्यां कृष्णाजिनं न्यस्य गुडप्रस्थसमन्वितम्॥ ५

न्यसेदुपरि तां धेनुं महारत्नैरलङ्कृताम्।
कुम्भाष्टकसमोपेतां नानाफलसमन्विताम्॥ ६

तथाष्टादश धान्यानि समंतात् परिकल्पयेत्।
इक्षुदण्डाष्टकं तद्वन्नानाफलसमन्वितम्।
भाजनं चासनं तद्वत्ताम्रदोहनकं तथा॥ ७

कौशेयवस्त्रद्वयसंयुतां गां
दीपातपत्राभरणाभिरामाम्।
सचामरां कुण्डलिनीं सघण्टां
सुवर्णशृङ्गीं परिरूप्यपादाम्॥ ८

रसैश्च सर्वैः परितोऽभिजुष्टां
हरिद्रया पुष्पफलैरनेकैः।
अजाजिकुस्तुम्बुरुशर्करादिभि-
र्वितानकं चोपरि पञ्चवर्णम्॥ ९

स्नातस्ततो मङ्गलवेदघोषैः
प्रदक्षिणीकृत्य सपुष्पहस्तः।
आवाहयेत् तां गुरुणोक्तमन्त्रै-
र्द्विजाय दद्यादथ दर्भपाणिः॥ १०

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं मनुष्योंके महापातकोंको नाश करनेवाले तथा सभी मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले कामधेनुके दानकी विधि बतला रहा हूँ। इसमें भी तुलापुरुष-दानकी तरह लोकपालोंका आवाहन, हवन और स्थापन-कार्य करना चाहिये तथा उसी प्रकार कुण्ड, मण्डप और वेदीकी रचना करनी चाहिये। स्वल्प वित्तवाला व्यक्ति एककुण्डीयज्ञाग्निकी विधिसे ऋत्विजूरूपमें समाहित चित्तवाले एकमात्र अपने गुरुका ही वरण करे। इसके लिये वह अत्यन्त शुद्ध सोनेकी कामधेनु और वत्स बनवाये। वह कामधेनु एक हजार पलकी उत्तम, पाँच सौ पलकी मध्यम और ढाई सौ पलकी कनिष्ठ कही गयी है। असमर्थ व्यक्तिको भी अपनी शक्तिके अनुसार तीन पलसे ऊपरकी ही कामधेनु बनवानी चाहिये। उसके बाद वेदीपर काले मृगचर्मको फैलाकर उसपर एक प्रस्थ गुड़ रखे। उसीके ऊपर बहुमूल्य रत्नोंसे अलंकृत उस धेनुको स्थापित करे। उस गौके साथ आठ कुम्भ तथा विविध प्रकारके फल हों। फिर वेदीके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्न, ईखके आठ टुकड़े, विविध प्रकारके पात्र, आसन तथा ताँबेकी दोहनीको रखना चाहिये॥ १—७॥

उसके बाद दो रेशमी वस्त्रोंसे आच्छादित, दीप, छत्र और आभरणोंसे सुशोभित, चामरयुक्त, कुण्डलधारिणी, घण्टीसे युक्त, सुवर्णजटित सींगों और चाँदीजटित पैरोंवाली गौके सम्पूर्ण शरीरको सभी प्रकारके रस, हल्दी, जीरा, धनिया और शक्करसे लेपन करके उसके निकट अनेकों प्रकारके पुष्प और फल रखे। उसके ऊपर पँचरंगा चँदोवा ताने। तदनन्तर यजमान माङ्गलिक वेदध्वनिके साथ स्नान कर पुष्प और कुश हाथोंमें लेकर प्रदक्षिणा करके ब्राह्मणको दान दे, फिर गुरुद्वारा उच्चारित मन्त्रोंसे कामधेनुका आवाहन करे।

त्वं सर्वदेवगणमन्दिरमङ्गभूता
विश्वेश्वरि त्रिपथगोदधिपर्वतानाम्।
त्वद्दानशस्त्रशकलीकृतपातकौघः
प्राप्तोऽस्मि निर्वृतिमतीव परां नमामि॥ ११
लोके यथेप्सितफलार्थविधायिनीं त्वां
आसाद्य को हि भवदुःखमुपैति मर्त्यः।
संसारदुःखशमनाय यतस्व कामं
त्वां कामधेनुमिति वेदविदो वदन्ति॥ १२
आमन्त्र्य शीलकुलरूपगुणान्विताय
विप्राय यः कनकधेनुमिमां प्रदद्यात्।
प्राप्नोति धाम स पुरन्दरदेवजुष्टं
कन्यागणैः परिवृतः पदमिन्दुमौलेः॥ १३

तत्पश्चात् इस प्रकार प्रार्थना करे—'विश्वेश्वरि! तुम सभी देवताओंकी आश्रयस्वरूपा तथा गङ्गा, समुद्र और पर्वतोंकी अङ्गभूता हो। मेरे पापसमूह तुम्हारे दानरूप शस्त्रसे टुकड़े-टुकड़े हो गये हैं, इस कारण मैं परम संतुष्ट हो गया हूँ, अतः तुम्हें नमस्कार करता हूँ। संसारमें यथाभिलषित फल प्रदान करनेवाली तुम्हें प्राप्तकर भला कौन मनुष्य सांसारिक दुःखोंमें पड़ सकेगा। तुम सांसारिक दुःखोंको शान्त करनेके लिये पूर्णरूपसे यत्नशील होओ। इसीलिये वेदवेत्तागण तुम्हें कामधेनु कहते हैं।' इस प्रकार आमन्त्रित कर जो व्यक्ति उत्तम कुल, शील, रूप और गुणसे युक्त ब्राह्मणको इस सुवर्णनिर्मित कामधेनुको दान करता है, वह कन्यासमूहोंसे घिरा हुआ इन्द्रदेवसे सेवित स्वर्ग तथा शंकरके लोकको प्राप्त करता है॥ ८—१३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्यकामधेनुप्रदानविधिर्नामैकोनाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २७९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णन-प्रसङ्गमें हिरण्यकामधेनु-दान-विधि नामक दो सौ उन्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २७९॥



दो सौ असीवाँ अध्याय

हिरण्याश्व-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हिरण्याश्वविधिं परम्।
यस्य प्रदानाद् भुवने चानन्तं फलमश्नुते॥ १
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत्॥ २
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
स्वल्पे त्वेकाग्निवत्कुर्याद्धेमवाजिमखं बुधः॥ ३
स्थापयेद् वेदिमध्ये तु कृष्णाजिनतिलोपरि।
कौशेयवस्त्रसंवीतं कारयेद्धेमवाजिनम्॥ ४
शक्तितस्त्रिपलादूर्ध्वमासहस्रपलाद् बुधः।
पादुकोपानहच्छत्रचामरासनभाजनैः॥ ५
पूर्णकुम्भाष्टकोपेतं माल्येक्षुफलसंयुतम्।
शय्यां सोपस्करां तद्वद्धेममार्तण्डसंयुताम्॥ ६

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब मैं परम श्रेष्ठ सुवर्णमय अश्वके दानकी विधि बतला रहा हूँ, जिसके प्रदानसे मनुष्य भुवनमें अनन्त फलको प्राप्त करता है। किसी पुण्यतिथिके आनेपर तुलापुरुष-दानकी तरह पुण्याहवाचन कर लोकपालोंका आवाहन करे। फिर ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदिका संग्रह करे। बुद्धिमान् यजमान यदि स्वल्पवित्तवाला हो तो उसे यह हिरण्याश्व-यज्ञ एकाग्नि-विधिकी तरह करना चाहिये। उसे अपनी शक्तिके अनुरूप तीन पलसे ऊपर एक हजार पलतकके सोनेका अश्व बनवाना चाहिये और उसे रेशमी वस्त्रसे आच्छादितकर वेदीके ऊपर फैलाये गये काले मृगचर्मपर रखी हुई तिल-राशिपर स्थापित करना चाहिये। उसके निकट पादुका, जूता, छाता, चमर, आसन और पात्र तथा जलसे भरे हुए आठ कलश, पुष्प-माला, ईख और फल भी रखनेका विधान है। उसी प्रकार वहाँ स्वर्णनिर्मित सूर्य-प्रतिमासे युक्त सभी सामग्रियोंके सहित शय्या भी स्थापित करे।

ततः सर्वौषधिस्नानस्नापितो वेदपुङ्गवैः।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥ ७

नमस्ते सर्वदेवेश वेदाहरणलम्पट।
वाजिरूपेण मामस्मात् पाहि संसारसागरात्॥ ८

त्वमेव सप्तधा भूत्वा छन्दोरूपेण भास्कर।
यस्माद् भासयसे लोकानतः पाहि सनातन॥ ९

तदनन्तर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा सर्वौषधिमिश्रित जलसे स्नान कराये जानेके बाद यजमान अञ्जलिमें पुष्प लेकर इस मन्त्रका उच्चारण करे—'सभी देवोंके स्वामी! आपको नमस्कार है। वेदोंके लानेके लिये इच्छुक देव! आप अश्वरूपसे इस संसार-सागरसे मेरी रक्षा कीजिये। भास्कर! चूँकि आप ही छन्दोरूपसे सात भागोंमें विभक्त होकर सभी लोकोंको उद्भासित करते हैं, अतः सनातन! मेरी रक्षा कीजिये'॥ १—९॥

एवमुच्चार्य गुरवे तमश्वं विनिवेदयेत्।
दत्त्वा पापक्षयाद् भानोर्लोकमभ्येति शाश्वतम्॥ १०

गोभिर्विभवतः सर्वानृत्विजश्चापि पूजयेत्।
सर्वधान्योपकरणं गुरवे विनिवेदयेत्॥ ११

सर्वं शय्यादिकं दत्त्वा भुञ्जीतातैलमेव हि।
पुराणश्रवणं तद्वत् कारयेद् भोजनादनु॥ १२

इमं हिरण्याश्वविधिं करोति यः
पुण्यं समासाद्य दिनं नरेन्द्र।
विमुक्तपापः स पुरं मुरारेः
प्राप्नोति सिद्धैरभिपूजितः सन्॥ १३

इति पठति य एतद्धेमवाजिप्रदानं
सकलकलुषमुक्तः सोऽश्वमेधेन युक्तः।
कनकमयविमानेनार्कलोकं प्रयाति
त्रिदशपतिवधूभिः पूज्यते योऽभिपश्येत्॥ १४

यो वा शृणोति पुरुषोऽल्पधनः स्मरेद् वा
हेमाश्वदानमभिनन्दयतीह लोके।
सोऽपि प्रयाति हतकल्मषशुद्धदेहः
स्थानं पुरन्दरमहेश्वरदेवजुष्टम्॥ १५

इस प्रकार कहकर उस अश्वको गुरुको दान कर दे। इस दानको देनेसे पापके नष्ट हो जानेके कारण वह मनुष्य भगवान् सूर्यके अक्षयलोकको प्राप्त करता है। पुनः अपनी आर्थिक शक्तिके अनुकूल गौओंद्वारा सभी ऋत्विजोंकी भी पूजा करे। तत्पश्चात् धान्यसहित समस्त सामग्रियोंको तथा सम्पूर्ण सामग्रीसहित शय्याको गुरुको निवेदित कर दे। तदुपरान्त वह तैलरहित अन्नका भोजन करे और भोजनके बाद पुराणोंका श्रवण करे। नरेन्द्र! जो मनुष्य पुण्यदिन आनेपर इस हिरण्याश्व-विधिको सम्पन्न करता है वह पापोंसे मुक्त हो सिद्धोंद्वारा पूजित होता हुआ मुरारिके पुर—वैकुण्ठको प्राप्त करता है। जो मनुष्य इस सुवर्णाश्वके दानको विधिको पढ़ता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है और सुवर्णमय विमानद्वारा सूर्यके लोकको जाता है तथा जो इस दानको देखता है, वह देवाङ्गनाओंद्वारा पूजित होता है। जो अल्पवित्त पुरुष हिरण्याश्व-दानकी इस विधिको सुनता या स्मरण करता है अथवा लोकमें इसका अभिनन्दन करता है, वह भी पापोंके नष्ट हो जानेसे विशुद्ध शरीरवाला हो पुरन्दर एवं महेश्वरसेवित स्थानको जाता है॥ १०—१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वप्रदानविधिर्नामाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णनप्रसङ्गमें हिरण्याश्व-प्रदान-विधि नामक दो सौ अस्सीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८०॥



दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय

हिरण्याश्वरथ-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
पुण्यमश्वरथं नाम महापातकनाशनम्॥ १

पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
लोकेशावाहनं कुर्यात् तुलापुरुषदानवत्॥ २

ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
कृष्णाजिने तिलान् कृत्वा काञ्चनं स्थापयेद् रथम्॥ ३

सप्ताश्वं चतुरश्वं वा चतुश्चक्रं सकूबरम्।
ऐन्द्रनीलेन कुम्भेन ध्वजरूपेण संयुतम्॥ ४

लोकपालाष्टकोपेतं पद्मरागदलान्वितम्।
चतुरः पूर्णकलशान् धान्यान्यष्टादशैव तु॥ ५

कौशेयवस्त्रसंयुक्तमुपरिष्टाद् वितानकम्।
काल्येक्षुफलसंयुक्तं पुरुषेण समन्वितम्॥ ६

यो यद्भक्तः पुमान् कुर्यात् स तन्नाम्नाधिवासनम्।
छत्रचामरकौशेयवस्त्रोपानहपादुकम्॥ ७

गोभिर्विभवतः सार्धं दद्याच्च शयनादिकम्।
अभावात् त्रिपलादूर्ध्वं शक्तितः कारयेद् बुधः॥ ८

अश्वाष्टकेन संयुक्तं चतुर्भिरथ वाजिभिः।
द्वाभ्यामपि युतं दद्याद्धेमसिंहध्वजान्वितम्॥ ९

चक्ररक्षावुभौ तस्य तुरगस्थावथाश्विनौ।
पुण्यकालमथावाप्य पूर्ववत् स्नापितो द्विजैः॥ १०

त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
शुक्लमाल्याम्बरो दद्यादिमं मन्त्रमुदीरयेत्॥ ११

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं सर्वश्रेष्ठ पुण्यप्रद एवं महापातकोंके विनाशक अश्वरथ नामक महादानका वर्णन कर रहा हूँ। इस दानमें भी पुण्य पर्वदिन आनेपर तुलापुरुष-दानकी तरह यजमान पुण्याहवाचन कर लोकपालोंका आवाहन करे तथा ऋत्विज, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिको इकट्ठा करे। फिर (कम धन हो तो एककुण्डी होम आदिका विधान कर) वेदीपर कृष्णमृग-चर्मको फैलाकर उसके ऊपर रखी हुई तिलोंकी राशिपर स्वर्णमय रथकी स्थापना करे। वह रथ सात या चार घोड़ोंसे युक्त हो। उसमें चार चक्के होने चाहिये और उसे जुआसे सम्पन्न तथा इन्द्रनील मणिके कलश और ध्वजासे सुशोभित करना चाहिये। उसपर पद्मरागमणिके दलसे युक्त आठों लोकपालोंकी मूर्ति रेशमी वस्त्रसे सुशोभित, जलसे भरे हुए चार कलश तथा अठारह धान्य हों और उसके ऊपर चँदोवा तना हो। उसे पुष्प-माला, ईख और फलसे संयुक्त तथा पुरुषसे समन्वित होना चाहिये। जो पुरुष जिस देवताका भक्त हो, वह उसीके नामका उच्चारण कर अधिवासन करे। छत्र, चमर, रेशमी वस्त्र, जूते, पादुका तथा अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार गौओंके साथ शय्या आदिका दान करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको अर्थाभावमें तीन पल सोनेसे अधिक तौलका रथ बनवाना चाहिये॥ १—८॥

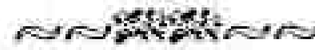
उसी प्रकार आठ, चार अथवा दो अश्वोंसे युक्त तथा स्वर्णमय सिंहध्वजसे समन्वित रथका दान करना चाहिये। घोड़ेपर सवार दोनों अश्विनीकुमारोंको उसके चक्ररक्षकके रूपमें स्थापित करना चाहिये। इस प्रकार पुण्यकाल आनेपर ब्राह्मणोंद्वारा पूर्ववत् स्नान कराया हुआ यजमान श्वेत वस्त्र और श्वेत पुष्पोंकी माला धारणकर अञ्जलिमें पुष्प लिये हुए (उस रथकी) तीन बार प्रदक्षिणाकर दान करे। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—

नमो नमः पापविनाशनाय
विश्वात्मने वेदतुरङ्गमाय।
धाम्नामधीशाय दिवाकराय
पापौघदावानल देहि शान्तिम्॥ १२
वस्वष्टकादित्यमरुद्‌गणानां
त्वमेव धाता परमं निधानम्।
यतस्ततो मे हृदयं प्रयातु
धर्मैकतानत्वमघौघनाशात् ॥ १३
इति तुरगरथप्रदानमेतद्
भवभयसूदनमत्र यः करोति।
स कलुषपटलैर्विमुक्तदेहः
परममुपैति पदं पिनाकपाणेः॥ १४
देदीप्यमानवपुषा विजितप्रभाव-
माक्रम्य मण्डलमखण्डितचण्डभानोः।
सिद्धाङ्गनानयनषट्पदपीयमान-
वक्त्राम्बुजोऽम्बुजभवेन चिरं सहास्ते॥ १५
इति पठति शृणोति वा य इत्थं
कनकतुरगरथप्रदानमस्मिन् ।
न स नरकपुरं व्रजेत् कदाचि-
न्नरकरिपोर्भवनं प्रयाति भूयः॥ १६

'पापसमूहके लिये दावाग्निस्वरूप देव! आप पापोंके विनाशक, विश्वात्मा, वेदरूपी घोड़ोंसे युक्त, तेजोंके अधीश्वर और सूर्यरूप हैं, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप मुझे शान्ति प्रदान कीजिये। चूँकि आप ही आठों वसुओं, आदित्यगण और मरुद्‌गणोंके भरण-पोषण करनेवाले और परम निधान हैं, अतः आपकी कृपासे पापसमूहके नष्ट हो जानेसे मेरा हृदय धर्मकी एकतानताको प्राप्त हो। इस प्रकार जो मनुष्य इस लोकमें भव-भय-नाशक इस तुरगरथ-प्रदान नामक महादानको करता है उसका शरीर पापसमूहसे मुक्त हो जाता है और वह पिनाकपाणिके परम पदको प्राप्त करता है तथा सिद्धाङ्गनाओंके नेत्ररूपी भ्रमरोंद्वारा पान किये जाते हुए मुखकमलवाला वह अपने देदीप्यमान शरीरद्वारा पूर्णरूपसे तपनेवाले सूर्यके विजितप्रभाववाले मण्डलको पारकर ब्रह्माके साथ चिरकालतक निवास करता है। जो प्राणी इस लोकमें सुवर्णतुरगरथ नामक महादानकी विधिको पढ़ता अथवा सुनता है, वह कभी भी नरक-लोकमें नहीं जाता, अपितु नरकासुरके शत्रु भगवान् विष्णुके लोकको जाता है'॥ ९—१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हिरण्याश्वरथप्रदानविधिर्नामैकाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८१॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णनप्रसङ्गमें हिरण्याश्वरथ-प्रदान-विधि नामक दो सौ इक्यासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८१॥



दो सौ बयासीवाँ अध्याय

हेमहस्तिरथ-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि हेमहस्तिरथं शुभम्।
यस्य प्रदानाद् भुवनं वैष्णवं याति मानवः॥ १
पुण्यां तिथिमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
विप्रवाचनकं कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ॥ २

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं मङ्गलमय सुवर्णनिर्मित हस्तिरथ नामक महादानका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे प्रदान करनेसे मनुष्य विष्णुलोकमें जाता है। पूर्वकथित तुलापुरुष-दानकी तरह किसी पुण्य तिथिके आनेपर बुद्धिमान् यजमानको ब्राह्मणोंद्वारा पुण्याहवाचन कराकर लोकपालोंका आवाहन करना चाहिये; फिर उसी प्रकार ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिको इकट्ठा

अत्राप्युपोषितस्तद्वद् ब्राह्मणैः सह भोजनम्।
कुर्यात् पुष्परथाकारं काञ्चनं मणिमण्डितम्॥ ३
वलभीभिर्विचित्राभिश्चतुश्चक्रसमन्वितम् ।
कृष्णाजिने तिलद्रोणं कृत्वा संस्थापयेद् रथम्॥ ४
लोकपालाष्टकोपेतं ब्रह्मार्कशिवसंयुतम्।
मध्ये नारायणोपेतं लक्ष्मीपुष्टिसमन्वितम्॥ ५
तथाष्टादश धान्यानि भाजनासनचन्दनैः।
दीपिकोपानहच्छत्रदर्पणं पादुकान्वितम्॥ ६
ध्वजे तु गरुडं कुर्यात् कूबराग्रे विनायकम्।
नानाफलसमायुक्तमुपरिष्टाद् वितानकम्॥ ७
कौशेयं पञ्चवर्णं तु अम्लानकुसुमान्वितम्।
चतुर्भिः कलशैः सार्धं गोभिरष्टाभिरन्वितम्॥ ८
चतुर्भिर्हैममातङ्गैर्मुक्तादामविभूषितैः ।
स्वरूपतः गजाभ्यां च युक्तं कृत्वा निवेदयेत्॥ ९

करे। इस महादानमें भी यजमानको उपवास रखकर ब्राह्मणोंके साथ भोजन करनेका विधान है। उसे मणियोंसे सुशोभित पुष्परथके आकारका सुवर्णमय रथ, जो विचित्र तोरणों और चार पहियोंसे युक्त हो, बनवाना चाहिये। उस रथको कृष्णमृगचर्मके ऊपर रखे गये एक द्रोण तिलपर स्थापित करना चाहिये। वह रथ आठों लोकपाल, ब्रह्मा, सूर्य और शिवकी प्रतिमाओंसे युक्त हो। उसके मध्य-भागमें लक्ष्मीसहित विष्णुभगवान्‌की भी मूर्ति होनी चाहिये। उसे अठारह प्रकारके अन्न, पात्र, आसन, चन्दन, दीपक, जूता, छत्र, दर्पण और पादुकासे भी युक्त होना चाहिये। उसके ध्वजपर गरुड तथा जुआके अग्रभागपर विनायकको स्थापित करना चाहिये। वह नाना प्रकारके फलोंसे युक्त हो और उसके ऊपर चँदोवा तना हो। वह पँचरंगे रेशमी वस्त्र, विकसित पुष्पों, चार माङ्गलिक कलशोंके साथ आठ गौओं तथा मोतियोंकी मालाओंसे विभूषित चार सुवर्णके हाथियोंसे सम्पन्न हो। पुनः दो जीवित हाथियोंको रथमें जोतकर दान करना चाहिये॥ १—९॥

कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमा भारादपि शक्तितः।
तथा मङ्गलशब्देन स्नापितो वेदपुङ्गवैः॥ १०
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्॥ ११
नमो नमः शङ्करपद्मजार्क-
लोकेशविद्याधरवासुदेवैः ।
त्वं सेव्यसे वेदपुराणयज्ञै-
स्तेजोमयस्यन्दन पाहि तस्मात्॥ १२
यत्तत्पदं परमगुह्यतमं मुरारे-
रानन्दहेतुगुणरूपविमुक्तमन्तः ।
योगैकमानसदृशो मुनयः समाधौ
पश्यन्ति तत्त्वमसि नाथ रथाधिरूढ॥ १३
यस्मात् त्वमेव भवसागरसम्प्लुताण्ड-
मानन्दभारमृतमध्वरपानपात्रम् ।
तस्मादघौघशमनेन कुरु प्रसादं
चामीकरेभरथ माधव सम्प्रदानात्॥ १४
इत्थं प्रणम्य कनकेभरथप्रदानं
यः कारयेत् सकलपापविमुक्तदेहः।
विद्याधरामरमुनीन्द्रगणाभिजुष्टं
प्राप्नोत्यसौ पदमतीन्द्रियमिन्दुमौलेः॥ १५

अपनी शक्तिके अनुसार उस रथको पाँच पलसे ऊपर एक भार सोनेतकका बनवाना चाहिये। इस प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा माङ्गलिक शब्दोंके उच्चारणके साथ स्नान कराया गया यजमान अञ्जलिमें फूल लेकर तीन बार प्रदक्षिणा करे तथा निम्नलिखित मन्त्रका उच्चारण कर ब्राह्मणोंको दान दे—'तेजोमय स्यन्दन! शङ्कर, ब्रह्मा, सूर्य, लोकपाल, विद्याधर, वासुदेव, वेद, पुराण और यज्ञ तुम्हारी सेवा करते हैं, अतः तुम मेरी रक्षा करो। तुम्हें बारम्बार नमस्कार है। रथाधिरूढ़ स्वामिन्! विष्णुभगवान्‌का जो पद परमगुह्यतम, आनन्दका हेतु और गुण एवं रूपसे परे है तथा एकमात्र योगरूप मानसिक दृष्टिवाले मुनिगण जिसका समाधिकालमें दर्शन करते हैं वह आप ही हैं। माधव! चूँकि आप ही भवसागरमें डूबनेवालोंके लिये आनन्दके पात्र, सत्यस्वरूप तथा यज्ञोंमें पानपात्र हैं, इसलिये आप इस सुवर्णमय हस्तिरथके दानसे मेरे पापपुञ्जोंको नष्टकर मुझपर कृपा कीजिये।' जो मनुष्य इस प्रकार प्रणाम करके स्वर्णमय हस्तिरथका दान करता है उसका शरीर समस्त पापोंसे मुक्त हो जाता है और वह शङ्करजीके विद्याधर, देवगण एवं मुनीन्द्रगणोंद्वारा सेवित इन्द्रियातीत लोकको प्राप्त करता है। वह पूर्व

कृतदुरितवितानप्रज्वलद्वह्निजाल-
व्यतिकरकृतदाहोद्वेगभाजोऽपि बन्धून्।
नयति स पितृपुत्रान् बान्धवानप्यशेषान्
कृतगजरथदानाच्छाश्वतं सद्म विष्णोः॥ १६

जन्मके किये गये दुष्कर्म-रूप वितानसे आच्छादित प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाओंके संयोगसे उत्पन्न हुए दाहके उद्वेगसे युक्त बन्धुओं, पितरों, पुत्रों तथा सम्पूर्ण बान्धवोंको इस हस्तिरथके दानसे विष्णुभगवान्‌के शाश्वत लोकमें ले जाता है॥ १०—१६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमहस्तिरथप्रदानविधिर्नाम द्व्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८२॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन-प्रसङ्गमें हेमहस्तिरथ-प्रदान-विधि नामक दो सौ बयासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८२॥



दो सौ तिरासीवाँ अध्याय

पञ्चलाङ्गल (हल) प्रदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
पञ्चलाङ्गलकं नाम महापातकनाशनम्॥ १
पुण्यां तिथिमथासाद्य युगादिग्रहणादिकाम्।
भूमिदानं नरो दद्यात् पञ्चलाङ्गलकान्वितम्॥ २
खर्वटं खेटकं वापि ग्रामं वा सस्यशालिनम्।
निवर्त्तनशतं वापि तदर्धं वापि शक्तितः॥ ३
सारदारुमयान् कृत्वा हलान् पञ्च विचक्षणः।
सर्वोपकरणैर्युक्तानन्यान् पञ्च च काञ्चनान्।
कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रपलावधि॥ ४
वृषाँल्लक्षणसंयुक्तान् दश चैव धुरन्धरान्।
सुवर्णशृङ्गाभरणान् मुक्तालाङ्गलभूषणान्॥ ५
रूप्यपादाग्रतिलकान् रक्तकौशेयभूषणान्।
स्रग्दामचन्दनयुताञ् शालायामधिवासयेत्॥ ६
पर्जन्यादित्यरुद्रेभ्यः पायसं निर्वपेच्चरुम्।
एकस्मिन्नेव कुण्डे तु गुरुस्तेभ्यो निवेदयेत्॥ ७
पलाशसमिधस्तद्वदाज्यं कृष्णतिलास्तथा।
तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः॥ ८
ततो मङ्गलशब्देन शुक्लमाल्याम्बरो बुधः।
आहूय द्विजदाम्पत्यं हेमसूत्राङ्गुलीयकैः॥ ९

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं महापातकनाशी अतिश्रेष्ठ पञ्चलाङ्गल नामक महादानका वर्णन कर रहा हूँ। युगादि तिथियों तथा सूर्यग्रहण आदिके अवसरपर मनुष्यको अपनी शक्तिके अनुसार पाँच हलोंसे युक्त, फसलसे सुशोभित ग्राम, खेट, खर्वट, एक सौ निवर्तन या उससे आधा पचास निवर्तन भूमिका दान करना चाहिये। विचक्षण पुरुष साखूकी लकड़ीके पाँच तथा सुवर्णके बने हुए अन्य पाँच हलोंको सभी सामग्रियोंसे युक्त करे। वे हल पाँच पल सोनेसे ऊपर एक हजार पलतकके बनवाने चाहिये। साथ ही दस वृषभोंको, जो उत्तम लक्षणोंसे युक्त तथा भार ढोनेमें समर्थ हों, जिनकी सींगें सुवर्णसे, पूँछ मोतीसे और खुर चाँदीसे विभूषित हों, जिनके सिरपर तिलक लगा हो, जो लाल रेशमी वस्त्रसे सुशोभित तथा पुष्पमाला और चन्दनसे युक्त हों, शालामें अधिवासित करावे। फिर पर्जन्य, आदित्य और रुद्रके लिये खीरकी चरु तैयार करे और गुरु उसे एक ही कुण्डमें उनके लिये निवेदित करे। उसी प्रकार पलाशकी समिधा, घृत तथा काले तिलका हवन करे। बुद्धिमान् यजमान तुलापुरुष-दानकी भाँति लोकपालोंका आवाहन करे। तदनन्तर शुक्ल वस्त्र एवं पुष्पमाला धारण कर बुद्धिमान् पुरुष माङ्गलिक शब्दोंके साथ द्विजदम्पतिको बुलाकर सोनेकी

कौशेयवस्त्रकटकैर्मणिभिश्चाभिपूजयेत्।
शय्यां सोपस्करां दद्याद् धेनुमेकां पयस्विनीम्॥ १०

जंजीर, अंगूठी, रेशमी वस्त्र, सुवर्णके कङ्कण एवं मणियोंद्वारा उनकी पूजा करे तथा सामग्रियोंसहित शय्या और एक दूध देनेवाली गायका भी दान करे॥ १—१०॥

तथाष्टादश धान्यानि समंतादधिवासयेत्।
ततः प्रदक्षिणीकृत्य गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥ ११
इममुच्चारयेन्मन्त्रमथ सर्वं निवेदयेत्।
यस्माद् देवगणाः सर्वे स्थावराणि चराणि च॥ १२
धुरंधराङ्गे तिष्ठन्ति तस्माद् भक्तिः शिवेऽस्तु मे।
यस्माच्च भूमिदानस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥ १३
दानान्यन्यानि मे भक्तिर्धर्मे एवं दृढा भवेत्।
दण्डेन सप्तहस्तेन त्रिंशद्दण्डं निवर्तनम्॥ १४
त्रिभागहीनं गोचर्ममानमाह प्रजापतिः।
मानेनानेन यो दद्यान्निवर्तनशतं बुधः।
विधिनानेन तस्याशु क्षीयते पापसंहतिः॥ १५
तदर्धमथवा दद्यादपि गोचर्ममात्रकम्।
भवनस्थानमात्रं वा सोऽपि पापैः प्रमुच्यते॥ १६
यावन्ति लाङ्गलकमार्गमुखानि भूमे-
र्भासां पतेर्दुहितुरङ्गजरोमकाणि।
तावन्ति शङ्करपुरे ससमा हि तिष्ठेद्
भूमिप्रदानमिह यः कुरुते मनुष्यः॥ १७
गन्धर्वकिन्नरसुरासुरसिद्धसङ्घै-
राधूतचामरमुपेत्य महद्विमानम्।
सम्पूज्यते पितृपितामहबन्धुयुक्तः
शम्भोः पदं व्रजति चामरनायकः सन्॥ १८
इन्द्रत्वमप्यधिगतं क्षयमभ्युपैति
गोभूमिलाङ्गलधुरन्धरसम्प्रदानात्।
तस्मादघौघपटलक्षयकारि भूमे-
र्दानं विधेयमिति भूतिभवोद्भवाय॥ १९

हलोंके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नोंको रखना चाहिये। फिर अञ्जलिमें फूल लेकर प्रदक्षिणा करनेके पश्चात् सबका दान कर देना चाहिये। उस समय इस मन्त्रका उच्चारण करे—'चूँकि सभी देवगण तथा चराचर जीव भारवाही वृषभोंके अङ्गोंमें निवास करते हैं, अतः मेरी शिवमें भक्ति हो। चूँकि अन्य सभी दान भूमिदानकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते, अतः धर्ममें मेरी सुदृढ़ भक्ति हो।' सात (मतान्तरसे दस) हाथोंके दण्डके मापसे तीस दण्ड मापका एक निवर्तन होता है और उसके तिहाई अंशसे न्यूनको गोचर्म* कहते हैं—ऐसा मान प्रजापतिने बतलाया है। जो बुद्धिमान् पुरुष इस मानके अनुसार एक सौ निवर्तन भूमिको इस विधिसे दान करता है, उसका पापपुञ्ज शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जो उसका आधा भाग या गोचर्ममात्र अथवा एक भवन बनने योग्य भूमिका दान करता है, वह भी पापोंसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य इस मर्त्यलोकमें भूमि-दान करता है, वह उस भूमिमें हलके मुखके जितने मार्ग बनते हैं तथा सूर्यपुत्रीके अङ्गमें जितने रोएँ हैं, उतने वर्षोंतक शंकरपुरीमें निवास करता है तथा गन्धर्व, किन्नर, सुर, असुर और सिद्धोंके समूहोंद्वारा चँवर डुलाये जाते हुए महान् विमानपर सवार हो पिता, पितामह और बन्धुगणोंके साथ देवनायक होकर शम्भुलोकमें जाता है और वहाँ पूजित होता है। मनुष्य इस गौ, भूमि, हल और वृषभोंका दान करनेसे नष्ट हुए इन्द्रत्वको भी प्राप्त कर लेता है, अतः ऐश्वर्य एवं समृद्धिके लिये पापपुञ्जके परदेको नष्ट करनेवाले भूमिदानको अवश्य करना चाहिये॥ ११—१९॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने पञ्चलाङ्गलप्रदानविधिर्नाम त्र्यशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८३॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानानुकीर्तन-प्रसंगमें पञ्चलाङ्गलप्रदान-विधि नामक दो सौ तिरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८३॥



* दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डान्निवर्तनम्। दश तान्येव गोचर्म दत्त्वा स्वर्गे महीयते॥

दो सौ चौरासीवाँ अध्याय

हेमधरा (सुवर्णमयी पृथ्वी)-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि धरादानमनुत्तमम्।
पापक्षयकरं नृणाममङ्गल्यविनाशनम्॥ १

कारयेत् पृथिवीं हैमीं जम्बूद्वीपानुकारिणीम्।
मर्यादापर्वतवतीं मध्ये मेरुसमन्विताम्॥ २

लोकपालाष्टकोपेतां नववर्षसमन्विताम्।
नदीनदसमोपेतां सप्तसागरवेष्टिताम्॥ ३

महारत्नसमाकीर्णां वसुरुद्रार्कसंयुताम्।
हेम्नः पलसहस्रेण तदर्धेनाथ शक्तितः॥ ४

शतत्रयेण वा कुर्याद् द्विशतेन शतेन वा।
कुर्यात् पञ्चपलादूर्ध्वमशक्तोऽपि विचक्षणः॥ ५

तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥ ६

वेद्यां कृष्णाजिनं कृत्वा तिलानामुपरि न्यसेत्।
तथाष्टादशधान्यानि रसांश्च लवणादिकान्॥ ७

तथाष्टौ पूर्णकलशान् समन्तात् परिकल्पयेत्।
वितानकं च कौशेयं फलानि विविधानि च॥ ८

तथांशुकानि रम्याणि श्रीखण्डशकलानि च।
इत्येवं कारयित्वा तामधिवासनपूर्वकम्॥ ९

शुक्लमाल्याम्बरधरः शुक्लाभरणभूषितः।
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥ १०

पुण्यं कालमथासाद्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्।
नमस्ते सर्वदेवानां त्वमेव भवनं यतः॥ ११

धात्री च सर्वभूतानामतः पाहि वसुंधरे।
वसु धारयसे यस्माद् वसु चातीव निर्मलम्॥ १२

वसुंधरा ततो जाता तस्मात् पाहि भयादलम्।
चतुर्मुखोऽपि नो गच्छेद् यस्मादन्तं तवाचले॥ १३

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—अब इसके बाद मैं मनुष्योंके अमङ्गल और पापको नष्ट करनेवाले सर्वश्रेष्ठ हेमधरादानका वर्णन कर रहा हूँ। दानी इस दानमें जम्बूद्वीपके आकारकी भाँति सुवर्णमयी पृथ्वीकी रचना करवाये, वह मध्यमें सुमेरुपर्वतसे युक्त, मर्यादापर्वतोंसे सम्पन्न तथा आठ लोकपालों, नौ वर्षों, नदियों और नदोंसे युक्त हो, सातों सागरोंसे घिरी हुई हो। उसे बहुमूल्य रत्नोंसे जटित तथा वसु, रुद्र और आदित्योंसे युक्त कर दे। इस पृथ्वीको अपनी शक्तिके अनुसार एक हजार, पाँच सौ, तीन सौ, दो सौ या एक सौ पल सोनेका बनवाना चाहिये। विचक्षण पुरुष अपनी असमर्थतामें इसे पाँच पलसे अधिक स्वर्णसे भी बनवा सकता है। बुद्धिमान् पुरुष तुलापुरुष-दानकी भाँति लोकपालोंका आवाहन तथा ऋत्विज्, मण्डप, पूजनसामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिका संकलन करे। फिर वेदीपर कृष्णमृगचर्म फैलाकर उसके ऊपर रखी हुई तिलराशिपर पृथ्वीकी प्रतिमा स्थापित कर दे। तत्पश्चात् उसके चारों ओर अठारह प्रकारके अन्नों, लवणादि रसों और जलसे भरे आठ माङ्गलिक कलशोंको स्थापित करना चाहिये। उसे रेशमी चँदोवा, विविध प्रकारके फल, मनोहर रेशमी वस्त्र और चन्दनोंके टुकड़ोंसे अलंकृत करना चाहिये। इस प्रकार अधिवासनपूर्वक पृथ्वीका सारा कार्य सम्पन्नकर स्वयं श्वेत वस्त्र और पुष्पमाला धारणकर, श्वेत वर्णके आभूषणोंसे विभूषित हो अञ्जलिमें पुष्प लेकर प्रदक्षिणा करे तथा पुण्यकाल आनेपर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे॥ १—१०$\frac{1}{2}$॥

'वसुंधरे! चूँकि तुम्हीं सभी देवताओं तथा सम्पूर्ण जीवनिकायकी भवनभूता तथा धात्री हो, अतः मेरी रक्षा करो। तुम्हें नमस्कार है। चूँकि तुम सभी प्रकारके भवनों, उनमें वास करनेवाले प्राणियों तथा अत्यन्त निर्मल रत्नोंको भी धारण करती हो, इसीसे तुम्हारा वसुंधरा नाम है, तुम संसार-भयसे मेरी रक्षा करो। अचले! चूँकि ब्रह्मा भी तुम्हारे अन्तको नहीं प्राप्त कर सकते,

अनन्तायै नमस्तस्मात् पाहि संसारकर्दमात्।
त्वमेव लक्ष्मी गोविन्दे शिवे गौरीति चास्थिता॥ १४

गायत्री ब्रह्मणः पार्श्वे ज्योत्स्ना चन्द्रे रवौ प्रभा।
बुद्धिर्बृहस्पतौ ख्याता मेधा मुनिषु संस्थिता॥ १५

विश्वं व्याप्य स्थिता यस्मात्ततो विश्वम्भरा स्मृता।
धृतिः स्थितिः क्षमा क्षोणी पृथ्वी वसुमती रसा॥ १६

एताभिर्मूर्तिभिः पाहि देवि संसारसागरात्।
एवमुच्चार्य तां देवीं ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत्॥ १७

धरार्धं वा चतुर्भागं गुरवे प्रतिपादयेत्।
शेषं चैवाथ ऋत्विग्भ्यः प्रणिपत्य विसर्जयेत्॥ १८

अनेन विधिना यस्तु दद्याद्धेमधरां शुभाम्।
पुण्यकाले तु सम्प्राप्ते स पदं याति वैष्णवम्॥ १९

विमानेनार्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना।
नारायणपुरं गत्वा कल्पत्रयमथावसेत्।
पितॄन् पुत्रांश्च पौत्रांश्च तारयेदेकविंशतिम्॥ २०

इति पठति य इत्थं यः शृणोति प्रसङ्गा-
दपि कलुषवितानैर्मुक्तदेहः समन्तात्।
दिवममरवधूभिर्याति सम्प्रार्थ्यमानो
पदममरसहस्रैः सेवितं चन्द्रमौलेः॥ २१

इसलिये तुम अनन्ता हो, तुम्हें प्रणाम है। तुम इस संसाररूप कीचड़से मेरी रक्षा करो। तुम्हीं विष्णुमें लक्ष्मी, शिवमें गौरी, ब्रह्माके समीप गायत्री, चन्द्रमामें ज्योत्स्ना, रविमें प्रभा, बृहस्पतिमें बुद्धि और मुनियोंमें मेधा नामसे ख्यात हो। चूँकि तुम समस्त विश्वमें व्याप्त हो, इसलिये विश्वम्भरा कही जाती हो। धृति, स्थिति, क्षमा, क्षोणी, पृथ्वी, वसुमती तथा रसा—ये तुम्हारी मूर्तियाँ हैं। देवि! तुम अपनी इन मूर्तियोंद्वारा इस संसारसागरसे मेरी रक्षा करो।' इस प्रकार उच्चारणकर पृथ्वीकी मूर्तिको ब्राह्मणोंको निवेदित कर दे। उस पृथ्वीका आधा अथवा चौथाई भाग गुरुको समर्पित करे। शेष भाग ऋत्विजोंको देकर उन्हें नमस्कार कर विसर्जन करे। जो मनुष्य पुण्यकाल आनेपर सुवर्णनिर्मित कल्याणमयी पृथ्वीका इस विधिके साथ दान करता है, वह वैष्णव पदको प्राप्त होता है तथा क्षुद्रघंटिकाओं (घुँघरू)-से सुशोभित एवं सूर्यके समान तेजस्वी विमानद्वारा वैकुण्ठमें जाकर तीन कल्पपर्यन्त निवास करता है और इक्कीस पीढ़ियोंके पितरों, पुत्रों तथा पौत्रोंका उद्धार कर देता है। इस प्रकार जो मनुष्य इस विधिको प्रसङ्गवश भी पढ़ता अथवा श्रवण करता है, उसका शरीर सर्वथा पापसमूहोंसे मुक्त हो जाता है और वह स्वर्गलोकमें देवाङ्गनाओंद्वारा प्रार्थित होता हुआ सहस्रों देवताओंद्वारा सेवित शंकरजीके लोकको प्राप्त होता है॥ ११—२१॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने हेमपृथिवीदानमाहात्म्यं नाम चतुरशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८४॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-प्रसङ्गमें हेम-पृथ्वीदान-माहात्म्य नामक दो सौ चौरासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८४॥



दो सौ पचासीवाँ अध्याय

विश्वचक्रदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
विश्वचक्रमिति ख्यातं महापातकनाशनम्॥ १

तपनीयस्य शुद्धस्य विश्वचक्रं तु कारयेत्।
श्रेष्ठं पलसहस्रेण तदर्धेन तु मध्यमम्॥ २

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं महापातकनाशी एवं अत्यन्त श्रेष्ठ विश्वचक्र नामक महादानकी विधि बतला रहा हूँ। यह विश्वचक्र तपाये हुए शुद्ध स्वर्णका बनवाना चाहिये। यह विश्वचक्र एक सहस्र पल सुवर्णका उत्तम, पाँच सौ पलका मध्यम और

तस्यार्धेन कनिष्ठं स्याद् विश्वचक्रमुदाहृतम्।
अन्यद् विंशत् पलादूर्ध्वमशक्तोऽपि निवेदयेत्॥ ३

षोडशारं ततश्चक्रं भ्रमन्नेम्यष्टकावृतम्।
नाभिपद्मे स्थितं विष्णुं योगारूढं चतुर्भुजम्॥ ४

शङ्खचक्रेऽस्य पार्श्वे तु देव्यष्टकसमावृतम्।
द्वितीयावरणे तद्वत् पूर्वतो जलशायिनम्॥ ५

अत्रिर्भृगुर्वसिष्ठश्च ब्रह्मा कश्यप एव च।
मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः॥ ६

रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्कीति वै क्रमात्।
तृतीयावरणे गौरी मातृभिर्वसुभिर्युता॥ ७

चतुर्थे द्वादशादित्या वेदाश्चत्वार एव च।
पञ्चमे पञ्च भूतानि रुद्राश्चैकादशैव तु॥ ८

लोकपालाष्टकं षष्ठे दिङ्मातङ्गास्तथैव च।
सप्तमेऽस्त्राणि सर्वाणि मङ्गलानि च कारयेत्॥ ९

अन्तरान्तरतो देवान् विन्यसेदष्टमे पुनः।
तुलापुरुषवच्छेषं समंतात् परिकल्पयेत्॥ १०

ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्।
विश्वचक्रं ततः कुर्यात् कृष्णाजिनतिलोपरि॥ ११

ढाई सौ पलका कनिष्ठ कहा गया है। अल्प वित्तवाला मनुष्य अन्य प्रकारसे बीस पलसे ऊपरका बना हुआ विश्वचक्र दान कर सकता है। यह चक्र सोलह अरों तथा आठ नेमियोंसे युक्त घूमता हुआ होना चाहिये। उसके नाभि-कमलपर योगारूढ चतुर्भुज विष्णुको स्थापित करना चाहिये। उनके बगलमें शङ्ख और चक्र हों तथा आठ देवियाँ उन्हें चारों ओरसे घेरे हुए हों। उसके दूसरे आवरणमें उसी प्रकार जलशायी, अत्रि, भृगु, वसिष्ठ, ब्रह्मा, कश्यप, मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, रामचन्द्र, परशुराम, कृष्ण, बुद्ध और कल्किको, तीसरे आवरणमें मातृकाओं तथा वसुओंसहित गौरीको, चतुर्थ आवरणमें बारहों आदित्यों तथा चारों वेदोंको, पाँचवें आवरणमें पाँचों महाभूतों तथा ग्यारहों रुद्रको, छठे आवरणमें आठों लोकपालों तथा दिग्गजोंको, सप्तम आवरणमें सभी प्रकारके माङ्गलिक अस्त्रोंको तथा अष्टम आवरणमें थोड़े-थोड़े अन्तरपर देवताओंको स्थापित करे। शेष कार्य तुला-पुरुष-दानकी तरह करना चाहिये। उसी तरह ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण और आच्छादन आदिको भी रखना चाहिये। फिर उक्त विश्वचक्रको कृष्णमृगचर्मपर रखे गये तिलके ऊपर स्थापित करना चाहिये॥ १—११॥

तथाष्टादश धान्यानि रसांश्च लवणादिकान्।
पूर्णकुम्भाष्टकं चैव वस्त्राणि विविधानि च॥ १२

माल्येक्षुफलरत्नानि वितानं चापि कारयेत्।
ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो गृही।
होमाधिवासनान्ते वै गृहीतकुसुमाञ्जलिः॥ १३

इममुच्चारयेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा तु प्रदक्षिणम्।
नमो विश्वमयायेति विश्वचक्रात्मने नमः॥ १४

परमानन्दरूपी त्वं पाहि नः पापकर्दमात्।
तेजोमयमिदं यस्मात् सदा पश्यन्ति योगिनः॥ १५

हृदि तत्त्वं गुणातीतं विश्वचक्रं नमाम्यहम्।
वासुदेवे स्थितं चक्रं चक्रमध्ये तु माधवः॥ १६

अन्योन्याधाररूपेण प्रणमामि स्थिताविह।
विश्वचक्रमिदं यस्मात् सर्वपापहरं परम्॥ १७

फिर अठारह प्रकारके अन्न, लवण आदि सभी रस, जलसे भरे हुए आठ माङ्गलिक कलश, विविध प्रकारके वस्त्र, पुष्पमाला, ईख, फल, रत्न, वितान—इन सबको भी यथास्थान रखना चाहिये। तदनन्तर माङ्गलिक शब्दोंके साथ गृहस्थ यजमान स्नान करके श्वेत वस्त्र धारणकर हवन एवं अधिवासनके उपरान्त अञ्जलिमें पुष्प ग्रहणकर तीन बार प्रदक्षिणा करे और इस मन्त्रका उच्चारण करे—'विश्वमयको नमस्कार है। विश्वचक्रात्माको प्रणाम है। तुम परमानन्दस्वरूप हो, अतः पापरूप कीचड़से हमारी रक्षा करो। चूँकि इस तत्त्वस्वरूप, गुणातीत, तेजोमय विश्वचक्रको योगीलोग सदा अपने हृदयमें देखते हैं, अतः मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ। यह विश्वचक्र वासुदेवमें स्थित है और माधव इस चक्रके मध्य भागमें स्थित हैं, इस प्रकार तुम दोनों अन्योन्याधाररूपसे स्थित हो, तुम्हें मैं प्रणाम करता हूँ। चूँकि यह विश्वचक्र सम्पूर्ण पातकोंका विनाश करनेवाला,

आयुधं चापि वासश्च भवादुद्धर मामतः।
इत्यामन्त्र्य च यो दद्याद् विश्वचक्रं विमत्सरः॥ १८
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते।
वैकुण्ठलोकमासाद्य चतुर्बाहुः सनातनः॥ १९
सेव्यतेऽप्सरसां सङ्घैस्तिष्ठेत् कल्पशतत्रयम्।
प्रणमेद् वाथ यः कृत्वा विश्वचक्रं दिने दिने।
तस्यायुर्वर्धते नित्यं लक्ष्मीश्च विपुला भवेत्॥ २०
इति सकलजगत्सुराधिवासं
वितरति यस्तपनीयषोडशारम्।
हरिभवनमुपागतः स सिद्ध-
श्चिरमभिगम्य नमस्यते शिरोभिः॥ २१
असुदर्शनतां प्रयाति शत्रो-
र्मदनसुदर्शनतां च कामिनीभ्यः।
स सुदर्शनकेशवानुरूपः
कनकसुदर्शनदानदग्धपापः॥ २२
कृतगुरुदुरितानि षोडशार-
प्रवितरणे प्रवराकृतिर्मुरारेः।
अभिभवति भवोद्भवन्ति भित्त्वा
भवमभितो भवने भयानि भूयः॥ २३

भगवान्‌का आयुध तथा उनका निवासस्वरूप भी है, अतः इस भवसे मेरा उद्धार करें।' इस प्रकार आमन्त्रित करके जो मनुष्य मत्सररहित हो इस विश्वचक्रका दान करता है, वह सभी पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें पूजित होता है तथा वैकुण्ठलोकको प्राप्तकर चार भुजाओंसे युक्त और अविनाशी हो जाता है तथा अप्सरासमूहोंद्वारा सेवित होकर तीन सौ कल्पोंतक वहाँ निवास करता है। अथवा जो व्यक्ति इस विश्वचक्रका निर्माण कर इसे प्रतिदिन प्रणाम करता है, उसकी आयु बढ़ती है और नित्य लक्ष्मीकी वृद्धि होती है। इस प्रकार जो व्यक्ति सुवर्णनिर्मित सोलह अरोंसे युक्त तथा समस्त जगत् एवं देवताओंके अधिष्ठानरूप इस चक्रको वितरित करता है, वह विष्णु-भवनको प्राप्त होता है तथा उसे सिद्धगण सिर झुकाकर नमस्कार करते हैं। वह पुरुष स्वर्णनिर्मित सुदर्शनके दानसे निष्पाप होकर शत्रुओंको विकराल रूपमें तथा कामिनियोंको मदनकी भाँति सुन्दर कमनीयरूपमें दिखायी पड़ता है और शुभदर्शन केशवकी भाँति मनोरम स्वरूप धारण करता है। इस सोलह अरोंवाले सुवर्णनिर्मित चक्रके दान करनेसे किये गये महापाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और कर्ता मुरारिकी श्रेष्ठ आकृति प्राप्त करता है तथा भव-भयका भेदन कर बार-बार जन्म-मरणके भयसे भी छूट जाता है॥ १२—२३॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने विश्वचक्रप्रदानविधिर्नाम पञ्चाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८५॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन-प्रसंगमें विश्वचक्रप्रदान-विधि नामक दो सौ पचासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८५॥



दो सौ छियासीवाँ अध्याय

कनककल्पलतादानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
महाकल्पलता नाम महापातकनाशनम्॥ १
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥ २
तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः।
चामीकरमयीः कुर्याद् दश कल्पलताः समाः॥ ३

मत्स्यभगवान्‌ने कहा—इसके बाद मैं महापापोंको नष्ट करनेवाले परमोत्तम महाकल्पलता नामक महादानकी विधि बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् यजमान किसी पुण्यतिथिके दिन पुण्याहवाचन करके पूर्वकथित तुलापुरुष-दानके समान ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिका प्रबन्ध करे तथा उसी प्रकार लोकपालोंका आवाहन करे। कल्पलता-दानके लिये सुवर्णनिर्मित समान परिमाणकी दस कल्पलताएँ बनवाये,

नानापुष्पफलोपेता नानांशुकविभूषिताः।
विद्याधरसुपर्णानां मिथुनैरुपशोभिताः॥ ४

पुष्पाण्यादित्सुभिः सिद्धैः फलानि च विहङ्गमैः।
लोकपालानुकारिण्यः कर्तव्यास्तासु देवताः॥ ५

ब्राह्मीमनन्तशक्तिं च लवणस्योपरि न्यसेत्।
अधस्ताल्लतयोर्मध्ये पद्मशङ्खकरे शुभे॥ ६

इमासनस्था तु गुडे पूर्वतः कुलिशायुधा।
रजन्यजस्थिताग्नायी स्रुवपाणिरथानले॥ ७
याम्ये च महिषारूढा गदिनी तण्डुलोपरि।
नैघृते नैर्ऋती स्थाप्या सखड्गा दक्षिणापरे॥ ८
वारुणे वारुणी क्षीरे झषस्था नागपाशिनी।
पताकिनी च वायव्ये मृगस्था शर्करोपरि॥ ९
सौम्या तिलेषु संस्थाप्या शङ्खिनी निधिसंस्थिता।
माहेश्वरी वृषारूढा नवनीते त्रिशूलिनी॥ १०
मौलिन्यो वरदास्तद्वत् कर्तव्या बालकान्विताः।
शक्त्या पञ्चपलादूर्ध्वमासहस्रात् प्रकल्पयेत्॥ ११
सर्वासामुपरि स्थाप्यं पञ्चवर्णं वितानकम्।
धेनवो दश कुम्भाश्च वस्त्रयुग्मानि चैव हि॥ १२
मध्यमे द्वे तु गुरवे ऋत्विग्भ्योऽन्यास्तथैव च।
ततो मङ्गलशब्देन स्नातः शुक्लाम्बरो बुधः।
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥ १३
नमो नमः पापविनाशिनीभ्यो
ब्रह्माण्डलोकेश्वरपालिनीभ्यः।
आशंसिताधिक्यफलप्रदाभ्यो
दिग्भ्यस्तथा कल्पलतावधूभ्यः॥ १४
इति सकलदिगङ्गनाप्रदानं
भवभयसूदनकारि यः करोति।
अभिमतफलदे स नागलोके
वसति पितामहवत्सराणि त्रिंशत्॥ १५
पितृशतमथ तारयेद् भवाब्धे-
र्भवदुरितौघविघातशुद्धदेहः।

जो विविध प्रकारके पुष्पों और फलोंसे युक्त तथा विविध रेशमी वस्त्रोंसे विभूषित तथा विद्याधरों एवं पक्षियोंके जोड़ोंसे सुशोभित हों। उन्हें पुष्प चुननेका प्रयत्न करते हुए सिद्धों, फल खानेके लिये उत्सुक पक्षियों तथा लोकपालोंके समान आकृतिवाली देवियोंसे युक्त बनाना चाहिये। फिर लवणराशिके ऊपर अनन्त एवं ब्राह्मी शक्तिको स्थापित करना चाहिये। दो लताओंके निम्नभागमें पद्म और शङ्खसे सुशोभित हाथोंवाली उन दोनों मङ्गलमयी देवियोंको चित्रित करे॥ १—६॥

पूर्व दिशामें गुड़के ऊपर कुलिशका अस्त्र धारण किये हुए हाथीपर विराजमान इन्द्राणीको, अग्निकोणमें हल्दी-चूर्णपर स्रुवा हाथमें लिये हुए बकरेपर सवार अग्नायीको, दक्षिण दिशामें तण्डुलपर महिषारूढ़ गदा धारण किये हुए यमीको, नैर्ऋत्यकोणमें घृतके ऊपर खड्गसहित नैर्ऋतीको, पश्चिम दिशामें दुग्धपर नागपाश धारण किये हुए मत्स्यपर आरूढ़ वारुणीको, वायव्यकोणमें शर्कराके ऊपर मृगारूढ़ पताका लिये हुए पताकिनी (वायवी)-को, उत्तर दिशामें तिलोंपर निधिसहित शङ्ख लिये हुए (कौबेरी)-को तथा ईशानकोणमें मक्खनकी राशिपर नन्दीपर आरूढ़ त्रिशूलधारण किये हुए माहेश्वरी शक्ति ऐशानीको स्थापित करना चाहिये। उसी प्रकार वहाँ केश-मुकुट धारण करनेवाली वरदायिनी देवियोंको भी बालकोंके साथ स्थापित करना चाहिये। उन्हें अपनी शक्तिके अनुसार पाँच पल सोनेसे ऊपर एक हजार पलतकका बनवाना चाहिये। इन सभीके ऊपर पँचरंगा वितान तानना चाहिये। फिर दस गौ, दस कलश तथा दो वस्त्रोंका दान देना चाहिये। इनमेंसे दो मध्यम लताओंको गुरुको तथा अन्य ऋत्विजोंको देना चाहिये। तत्पश्चात् बुद्धिमान् यजमानको माङ्गलिक शब्दोंके साथ स्नान करनेके बाद श्वेत वस्त्र धारणकर इन कल्पलताओंकी तीन प्रदक्षिणा कर इस भावके मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये—'जो पापविनाशिनी, ब्रह्माण्ड एवं लोकेश्वरोंका पालन करनेवाली तथा याचकोंको अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करनेवाली हैं, उन कल्पलता-वधुओं तथा दिग्वधुओंको बारम्बार नमस्कार है।' इस प्रकार जो पुरुष भवभयको हरण करनेवाले सम्पूर्ण दिगङ्गनाओंके दानको करता है, वह अभीष्ट फलदायी नागलोकमें ब्रह्माके तीस वर्षोंतक निवास करता है तथा सैकड़ों पितरोंको भवसागरसे तार देता है। वह सांसारिक पापसमूहके नष्ट हो जानेसे

सुरपतिवनितासहस्रसंख्यैः
परिवृतमम्बुजसंसदाभिवन्द्यः ॥ १६
इति विधानमिदं दिगङ्गनानां
कनककल्पलताविनिवेदकम् ।
पठति यः स्मरतीह तथेक्षते
स पदमेति पुरंदरसेवितम्॥ १७

विशुद्धशरीर होकर हजारों देवाङ्गनाओंसे सुशोभित ब्रह्माके लोकमें अभिवन्दनीय होता है। इस प्रकार दिगङ्गनाओंके तथा कनककल्पलताके दानकी विधिको जो पढ़ता, स्मरण करता या देखता है, वह इन्द्रद्वारा सेवित पदको प्राप्त करता है॥ ७—१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने कनककल्पलताप्रदानविधिर्नाम षडशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥ २८६ ॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णन-प्रसंगमें कनककल्पलताप्रदानविधि नामक दो सौ छियासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ ॥ २८६ ॥



दो सौ सतासीवाँ अध्याय

सप्तसागर-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
सप्तसागरकं नाम सर्वपापप्रणाशनम्॥ १
पुण्यं दिनमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनं बुधः॥ २
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम् ।
कारयेत् सप्त कुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः॥ ३
प्रादेशमात्राणि तथारत्निमात्राणि वै पुनः।
कुर्यात् सप्तपलादूर्ध्वमासहस्राच्च शक्तितः॥ ४
संस्थाप्यानि च सर्वाणि कृष्णाजिनतिलोपरि।
प्रथमं पूरयेत् कुण्डं लवणेन विचक्षणः॥ ५
द्वितीयं पयसा तद्वत् तृतीयं सर्पिषा पुनः।
चतुर्थं तु गुडेनैव दध्ना पञ्चममेव च॥ ६
षष्ठं शर्करया तद्वत् सप्तमं तीर्थवारिणा।
स्थापयेल्लवणस्थं तु ब्रह्माणं काञ्चनं शुभम्॥ ७
केशवं क्षीरमध्ये तु घृतमध्ये महेश्वरम्।
भास्करं गुडमध्ये तु दधिमध्ये निशाधिपम्॥ ८
शर्करायां न्यसेल्लक्ष्मीं जलमध्ये तु पार्वतीम्।
सर्वेषु सर्वरत्नानि धान्यानि च समन्ततः॥ ९

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब मैं सम्पूर्ण पापोंके विनाशक परमोत्तम सप्तसागर नामक महादानकी विधि बतला रहा हूँ। बुद्धिमान् पुरुष तुलापुरुष-दानकी तरह किसी पवित्र दिनके आनेपर पुण्याहवाचन करके लोकपालोंका आवाहन करे। तथा ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, भूषण, आच्छादन आदिका प्रबन्ध भी उसी तरह करे। विचक्षण पुरुष स्वर्णनिर्मित सात स्वतन्त्र कुण्डोंका निर्माण करे। ये कुण्ड एक बित्ता चौड़े तथा एक अरत्नि अर्थात् बँधी हुई मुट्ठीवाले हाथ-जितने लम्बे होने चाहिये। इन्हें अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार सात पल सोनेसे ऊपर एक हजार पलतकका बनवाना चाहिये। इन सभी कुण्डोंको कृष्णमृगके चर्मपर रखे गये तिलोंके ऊपर स्थापित करना चाहिये। विद्वान् पुरुषको प्रथम कुण्डको लवणसे, द्वितीय कुण्डको दुग्धसे, तृतीयको घृतसे, चतुर्थको गुड़से, पञ्चमको दहीसे, छठेको चीनीसे तथा सातवेंको तीर्थोंके पवित्र जलसे पूर्ण करना चाहिये। फिर लवण कुण्डमें सुवर्ण-निर्मित ब्रह्माकी, दुग्धकुण्डके मध्यमें भगवान् विष्णुकी, घृतकुण्डमें भगवान् शिवकी, गुड़कुण्डमें भगवान् भास्करकी, दधिकुण्डमें चन्द्रमाकी, शर्कराकुण्डमें लक्ष्मीकी और जलकुण्डमें पार्वतीकी स्थापना करनी चाहिये। सभी कुण्डोंको सभी ओरसे रत्नों तथा अन्नोंद्वारा अलंकृत करना चाहिये।

तुलापुरुषवच्छेषमत्रापि परिकल्पयेत्।
ततो वारुणहोमान्ते स्नापितो वेदपुङ्गवैः॥ १०
त्रिः प्रदक्षिणमावृत्य मन्त्रानेतानुदीरयेत्।
नमो वः सर्वसिन्धूनामाधारेभ्यः सनातनाः।
जन्तूनां प्राणदेभ्यश्च समुद्रेभ्यो नमो नमः॥ ११
क्षीरोदकाज्यदधिमाधुरलावणेक्षु-
सारामृतेन भुवनत्रयजीवसंघान्।
आनन्दयन्ति वसुभिश्च यतो भवन्त-
स्तस्मान्ममाप्यघविघातमलं विशन्तु॥ १२
यस्मात् समस्तभुवनेषु भवन्त एव
तीर्थामरासुरसुबद्धमणिप्रदानम्।
पापक्षयामृतविलेपनभूषणाय
लोकस्य बिभ्रति तदस्तु ममापि लक्ष्मीः॥ १३
इति ददाति रसामृतसंयुता-
ञ्छुचिरविस्मयवानिह सागरान्।
अमलकाञ्चनवर्णमयानसौ
पदमुपैति हरेरमरार्चितः॥ १४
सकलपापविधौतविराजितः
पितृपितामहपुत्रकलत्रकम्।
नरकलोकसमाकुलमप्ययं
झटिति सोऽपि नयेच्छिवमन्दिरम्॥ १५

शेष कार्य तुलापुरुषदानकी भाँति सम्पन्न करना चाहिये। तत्पश्चात् महावारुणी आहुतियाँ प्रदानकर वेदज्ञ ब्राह्मणोंद्वारा अभिषिक्त यजमान इन कुण्डोंकी तीन बार प्रदक्षिणा कर इन मन्त्रोंका उच्चारण करे॥ १—१० $\frac{1}{2}$॥

'सनातन सागरगण! आपलोग समस्त जीवोंके प्राणदाता तथा सम्पूर्ण नदियोंके आधार हो, आपको बारंबार नमस्कार है। चूँकि आपलोग दुग्ध, जल, घृत, दही, मधु, लवण, शक्कररूप अमृत तथा रत्नादि सम्पत्तियोंद्वारा त्रिभुवनके जीवसमूहोंको आनन्दित करते हैं, अतः मेरे भी पापपुञ्जोंका विनाश करें। चूँकि आपलोग ही समस्त भुवनोंमें लोकके पापक्षय, अमृतविलेपन और भूषणके निमित्त तीर्थों, देवताओं, असुरों और सुन्दर मणिके प्रदान-कार्यको धारणवाले हैं, अतः वह लक्ष्मी मुझे भी प्राप्त हो।' इस प्रकार जो मनुष्य पवित्र एवं विस्मयरहित होकर इस लोकमें रस एवं अमृतसे युक्त निर्मल सोनेके बने हुए सागरोंका दान करता है, वह देवताओंद्वारा पूजित होकर भगवान् विष्णुके पदको प्राप्त करता है। सम्पूर्ण पापोंके धुल जानेसे विशुद्ध हुआ यह पुरुष नरकलोकमें व्याकुल हुए पिता, पितामह, पुत्र और पत्नी आदिको भी शीघ्र ही शिवलोकमें ले जाता है॥ ११—१५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने सप्तसागरप्रदानविधिर्नाम सप्ताशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८७॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादानवर्णन-प्रसङ्गमें सप्तसागरदान-विधि नामक दो सौ सतासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८७॥



दो सौ अठासीवाँ अध्याय

रत्नधेनुदानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
रत्नधेन्विति विख्यातं गोलोकफलदं नृणाम्॥ १
पुण्यं दिनमथासाद्य तुलापुरुषदानवत्।
लोकेशावाहनं कृत्वा ततो धेनुं प्रकल्पयेत्॥ २

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब मैं मनुष्योंको गोलोक प्रदान करनेवाले अत्युत्तम 'रत्नधेनु' नामक महादानकी विधिका वर्णन कर रहा हूँ। किसी पुण्य दिनके आनेपर यजमान तुलापुरुषदानकी तरह लोकपालोंका आवाहन करनेके पश्चात् धेनुकी कल्पना करे।

भूमौ कृष्णाजिनं कृत्वा लवणद्रोणसंयुतम्।
धेनुं रत्नमयीं कुर्यात् सङ्कल्प्य विधिपूर्वकम्॥ ३

स्थापयेत् पद्मरागाणामेकाशीतिं मुखे बुधः।
पुष्परागशतं तद्वद् घोणायां परिकल्पयेत्॥ ४

ललाटे हेमतिलकं मुक्ताफलशतं दृशोः।
भ्रूयुगे विद्रुमशतं शुक्ती कर्णद्वये स्मृते॥ ५

काञ्चनानि च शृङ्गाणि शिरो वज्रशतात्मकम्।
ग्रीवायां नेत्रपटलं गोमेदकशतान्वितम्॥ ६

इन्द्रनीलशतं पृष्ठे वैदूर्यशतपार्श्वके।
स्फाटिकैरुदरं तद्वत् सौगन्धिकशतैः कटिम्॥ ७

खुरा हेममयाः कार्याः पुच्छं मुक्तावलीमयम्।
सूर्यकान्तेन्दुकान्तौ च घ्राणे कर्पूरचन्दने॥ ८

कुङ्कुमानि च रोमाणि रौप्यनाभिं च कारयेत्।
गारुत्मतशतं तद्वदपाने परिकल्पयेत्॥ ९

तथान्यानि च रत्नानि स्थापयेत् सर्वसन्धिषु।
कुर्याच्छर्करया जिह्वां गोमयं च गुडात्मकम्॥ १०

गोमूत्रमाज्येन तथा दधिदुग्धे स्वरूपतः।
पुच्छाग्रे चामरं दद्यात् समीपे ताम्रदोहनम्॥ ११

कुण्डलानि च हैमानि भूषणानि च शक्तितः।
कारयेदेवमेवं तु चतुर्थांशेन वत्सकम्॥ १२

तथा धान्यानि सर्वाणि पादाश्चेक्षुमयाः स्मृताः।
नानाफलानि सर्वाणि पञ्चवर्णं वितानकम्॥ १३

एवं विरचनं कृत्वा तद्वद्धौमाधिवासनम्।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद् धेनुमामन्त्रयेत् ततः।

गुडधेनुवदावाह्य इह चोदाहरेत् ततः॥ १४

त्वां सर्वदेवगणधाम यतः पठन्ति
रुद्रेन्द्रसूर्यकमलासनवासुदेवाः।
तस्मात् समस्तभुवनत्रयदेहयुक्ता
मां पाहि देवि भवसागरपीड्यमानम्॥ १५

पृथ्वीपर कृष्णमृगचर्म बिछाकर उसपर एक द्रोण लवण रखकर उसके ऊपर विधिपूर्वक संकल्पसहित रत्नमयी धेनुको स्थापित करे। बुद्धिमान् पुरुष उसके मुखमें इक्यासी पद्मराग मणि तथा थूथुनमें इक्यासी पुष्पराग (पुखराज) स्थापित करे। उस गौके ललाटपर सोनेका तिलक लगावे। उसकी दोनों आँखोंमें सौ मुक्ता (मोती), दोनों भौंहोंपर सौ प्रवाल (मूँगा) और दोनों कानोंकी जगह दो शुक्तियाँ (सीपें) लगानी चाहिये। उसके सींग सोनेके होने चाहिये। सिरकी जगह सौ हीरोंको स्थापित करना चाहिये। कण्ठ और नेत्र-पलकोंमें सौ गोमेदक, पृष्ठभागमें सौ इन्द्रनील (नीलम), दोनों पार्श्वस्थानोंमें सौ वैदू (डू)-र्य (बिलौर), उदरपर स्फटिक तथा कटिदेशपर सौ सौगन्धिक (माणिक-लाल) मणि रखना चाहिये। खुरोंको स्वर्णमय, पूँछको मुक्ता (मोतियों)-की लड़ियोंसे युक्त और दोनों नाकोंको सूर्यकान्त तथा चन्द्रकान्त मणियोंसे बनाकर कर्पूर और चन्दनसे अर्चित करना चाहिये। रोमोंको केसर और नाभिको चाँदीसे बनवाये। गुदामें सौ लाल मणियोंको लगाना चाहिये। अन्य रत्नोंको संधिभागोंपर लगाना चाहिये। जीभको शक्करसे, गोबरको गुड़से और गोमूत्रको घीसे बनवाना चाहिये। दही-दूध प्रत्यक्ष ही रखे। पूँछके अग्रभागपर चमर तथा समीपमें ताँबेकी दोहनी रखनी चाहिये॥ १—११॥

अपनी आर्थिक शक्तिके अनुसार उसे सोनेसे निर्मित आभूषण और कुण्डल पहनाने चाहिये, उसके ईखके पैर होने चाहिये। इसी प्रकार गौके चतुर्थांशसे बछड़ा बनवाना चाहिये। उस गौके समीप सभी प्रकारके अन्न, विविध फल, पँचरंगा वितान भी यथास्थान रखना चाहिये। इस प्रकार गौकी रचना, हवन और अधिवासन करनेके बाद ऋत्विजोंको दक्षिणा देनी चाहिये। इसके बाद धेनुको आमन्त्रित करे। उस समय गुड़धेनुकी तरह आवाहन कर यह कहना चाहिये—'देवि! चूँकि रुद्र, इन्द्र, सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु—ये सभी तुम्हें सम्पूर्ण देवताओंका निवासस्थान मानते हैं तथा समस्त त्रिभुवन तुम्हारे ही शरीरमें व्याप्त हैं, अतः तुम भवसागरसे पीड़ित मेरा उद्धार करो।'

आमन्त्र्य चेत्थमभितः परिवृत्य भक्त्या
दद्याद् द्विजाय गुरवे जलपूर्विकां ताम्।
यः पुण्यमाप्य दिनमत्र कृतोपवासः
पापैर्विमुक्ततनुरेति पदं मुरारेः॥ १६

इति सकलविधिज्ञो रत्नधेनुप्रदानं
वितरति स विमानं प्राप्य देदीप्यमानम्।
सकलकलुषमुक्तो बन्धुभिः पुत्रपौत्रैः
स हि मदनसरूपः स्थानमभ्येति शम्भोः॥ १७

इस प्रकार आमन्त्रित करनेके बाद गौकी परिक्रमा कर भक्तिपूर्वक हाथमें जल लेकर उस गौको ब्राह्मण गुरुको दान करना चाहिये। जो व्यक्ति इस प्रकार पुण्य दिन आनेपर उपवासकर यह दान करता है, उसका शरीर पापोंसे मुक्त हो जाता है और वह भगवान् मुरारिके परमपदको प्राप्त करता है। इस प्रकार सम्पूर्ण विधियोंको जाननेवाला जो पुरुष इस रत्नधेनुका दान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर कामदेव-सदृश सौन्दर्यशाली हो जाता है तथा अपने बन्धुओं, पुत्रों और पौत्रोंके साथ देदीप्यमान विमानपर सवार हो, शिवके लोक (कैलास या सुमेरुस्थित दिव्य शिवधाम)-को प्राप्त करता है॥ १२—१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तने रत्नधेनुप्रदानविधिर्नामाष्टाशीत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८८॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणके महादानवर्णन-प्रसङ्गमें रत्नधेनुदान नामक दो सौ अठासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८८॥



दो सौ नवासीवाँ अध्याय

महाभूतघट-दानकी विधि

मत्स्य उवाच

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि महादानमनुत्तमम्।
महाभूतघटं नाम महापातकनाशनम्॥ १
पुण्यां तिथिमथासाद्य कृत्वा ब्राह्मणवाचनम्।
ऋत्विङ्मण्डपसम्भारभूषणाच्छादनादिकम्॥ २
तुलापुरुषवत् कुर्याल्लोकेशावाहनादिकम्।
कारयेत् काञ्चनं कुम्भं महारत्नाचितं बुधः॥ ३
प्रादेशादङ्गुलशतं यावत् कुर्यात् प्रमाणतः।
क्षीराज्यपूरितं तद्वत् कल्पवृक्षसमन्वितम्॥ ४
पद्मासनगतांस्तत्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरान्।
लोकपालान् महेन्द्रांश्च स्वस्ववाहनमास्थितान्।
वराहेणोद्धृतां तद्वत् कुर्यात् पृथ्वीं सपङ्कजाम्॥ ५
वरुणं चासनगतं काञ्चनं मकरोपरि।
हुताशनं मेषगतं वायुं कृष्णमृगासनम्॥ ६
तथा कोशाधिपं कुर्यान्मूषकस्थं विनायकम्।
विन्यस्य घटमध्ये तान् वेदपञ्चकसंयुतान्॥ ७
ऋग्वेदस्याक्षसूत्रं स्याद् यजुर्वेदस्य पङ्कजम्।
सामवेदस्य वीणा स्याद् वेणुं दक्षिणतो न्यसेत्॥ ८

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब इसके बाद मैं महापातकोंको नष्ट करनेवाले अत्युत्तम 'महाभूतघट-दान' नामक महादानकी विधि बतला रहा हूँ। किसी पवित्र तिथिके आनेपर तुलापुरुष-दानकी तरह पुण्याहवाचन कर ऋत्विज्, मण्डप, पूजन-सामग्री, आभूषण और आच्छादन आदिके प्रबन्धके साथ लोकपालोंका आवाहन आदि कार्य सम्पन्न करे। फिर बुद्धिमान् पुरुष रत्नोंसे जटित सोनेका एक कलश बनवाये, जो एक बित्तेसे लेकर सौ अंगुलतकके विस्तारवाला हो। उसे दुग्ध और घृतसे पूर्ण करके उसके पास कल्पवृक्ष रख दे। वहीं पद्मासनपर स्थित ब्रह्मा तथा अपने-अपने वाहनोंपर आरूढ़ विष्णु, शिव, लोकपालगण, देवराज इन्द्रादि देवगणोंको भी बनाये। उसी प्रकार वराहद्वारा ऊपर उठायी गयी कमलसमेत पृथ्वीकी रचना करनी चाहिये। फिर मकरके वाहनपर आसन लगाये हुए स्वर्णनिर्मित वरुण, मेषवाहनपर आरूढ़ अग्नि, कृष्णमृगपर सवार वायु, पालकीपर बैठे हुए कुबेर तथा मूषकपर स्थित गणपति—इन सब देवताओंको पाँचों वेदोंके साथ उक्त घटमें स्थापित करना चाहिये। उनमें ऋग्वेदको रुद्राक्षमाला लिये, यजुर्वेदको कमल लिये, सामवेद-को बायें हाथमें वीणा और दाहिने हाथमें वेणु लिये

अथर्ववेदस्य पुनः स्त्रुक्स्त्रुवौ कमलं करे।
पुराणवेदो वरदः साक्षसूत्रकमण्डलुः॥ ९

तथा अथर्ववेदको हाथोंमें स्त्रुक्, स्त्रुवा और कमल लिये हुए बनाना चाहिये। पञ्चमवेद पुराणके आयुध अक्षसूत्र, कमण्डलु और अभय तथा वरद मुद्राएँ हैं॥ १—९॥

परितः सर्वधान्यानि चामरासनदर्पणम्।
पादुकोपानहच्छत्रं दीपिकाभूषणानि च॥ १०
शय्यां च जलकुम्भांश्च पञ्चवर्णं वितानकम्।
स्नात्वाधिवासनान्ते तु मन्त्रमेतमुदीरयेत्॥ ११
नमो वः सर्वदेवानामाधारेभ्यश्चराचरे।
महाभूताधिदेवेभ्यः शान्तिरस्तु शिवं मम॥ १२
यस्मान्न किंचिदप्यस्ति महाभूतैर्विना कृतम्।
ब्रह्माण्डे सर्वभूतेषु तस्माच्छ्रीरक्षयास्तु मे॥ १३
इत्युच्चार्य महाभूतघटं यो विनिवेदयेत्।
सर्वपापविनिर्मुक्तः स याति परमां गतिम्॥ १४
विमानेनार्कवर्णेन पितृबन्धुसमन्वितः।
स्तूयमानो वरस्त्रीभिः पदमभ्येति वैष्णवम्॥ १५
षोडशैतानि यः कुर्यान्महादानानि मानवः।
न तस्य पुनरावृत्तिरिह लोकेऽभिजायते॥ १६
इह पठति य इत्थं वासुदेवस्य पार्श्वे
ससुतपितृकलत्रः संशृणोतीह सम्यक्।
मुररिपुभवने वै मन्दिरे वार्कलक्ष्म्या
त्वमरपुरवधूभिर्मोदते सोऽपि कल्पम्॥ १७

उस कलशके चारों ओर सभी (अठारह) प्रकारके अन्न, चामर, आसन, दर्पण, पादुका, जूता, छत्र, दीपक, आभूषण, शय्या, जलपूर्ण कलश और पँचरंगा वितान रखना चाहिये। फिर यजमान अधिवासनके अन्तमें स्नान करके इस मन्त्रका उच्चारण करे—'इस चराचर जगत्में आपलोग सम्पूर्ण देवताओंके आधार तथा पञ्चमहाभूतोंके अधिदेवता हैं, आपलोगोंको प्रणाम है। आप मुझे शान्ति एवं कल्याण प्रदान कीजिये। चूँकि इस ब्रह्माण्डके सभी जीवोंमें इन पञ्च महाभूतोंके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है, अतः इनकी कृपासे मुझे अक्षय लक्ष्मी प्राप्त हो।' इस प्रकार उच्चारण करनेके बाद जो व्यक्ति महाभूतघटका दान करता है, वह सभी पापोंसे मुक्त होकर परम गतिको प्राप्त होता है तथा पितरों एवं बन्धुगणोंके साथ सूर्यके समान तेजस्वी विमानपर आरूढ़ हो अप्सराओंद्वारा प्रशंसित होता हुआ विष्णुके लोकको जाता है। जो मानव इन उपर्युक्त सोलहों महादानोंका अनुष्ठान करता है, उसे इस लोकमें पुनः नहीं आना पड़ता। इस पृथ्वीपर जो मनुष्य वासुदेवके समीप इसे इस विधिसे पढ़ता है तथा पुत्र, पिता एवं स्त्रीके साथ भलीभाँति श्रवण करता है, वह सूर्यके समान तेजस्वी होकर देवाङ्गनाओंके साथ विष्णुलोकमें कल्पपर्यन्त आनन्दका अनुभव करता है॥ १०—१७॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे महादानानुकीर्तनं नामैकोननवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २८९॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें महादान-वर्णन नामक दो सौ नवासीवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २८९॥



दो सौ नब्बेवाँ अध्याय

कल्पानुकीर्तन

मनुरुवाच

कल्पमानं त्वया प्रोक्तं मन्वन्तरयुगेषु च।
इदानीं कल्पनामानि समासात् कथयाच्युत॥ १

मनुने पूछा—अच्युत! मन्वन्तर एवं युगोंका वर्णन करते समय आपने कल्पका प्रमाण तो बता दिया है, अब मुझे (सभी तीस) कल्पोंके नाम संक्षेपसे बतलाइये॥ १॥

मत्स्य उवाच

कल्पानां कीर्तनं वक्ष्ये महापातकनाशनम्।
यस्यानुकीर्तनादेव वेदपुण्येन युज्यते॥ २
प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः।
वामदेवस्तृतीयस्तु ततो राथन्तरोऽपरः॥ ३
रौरवः पञ्चमः प्रोक्तः षष्ठो देव इति स्मृतः।
सप्तमोऽथ बृहत्कल्पः कन्दर्पोऽष्टम उच्यते॥ ४
सद्योऽथ नवमः प्रोक्त ईशानो दशमः स्मृतः।
तम एकादशः प्रोक्तस्तथा सारस्वतः परः॥ ५
त्रयोदश उदानस्तु गारुडोऽथ चतुर्दशः।
कौर्मः पञ्चदशः प्रोक्तः पौर्णमास्यामजायत॥ ६
षोडशो नारसिंहस्तु समानस्तु ततोऽपरः।
आग्नेयोऽष्टादशः प्रोक्तः सोमकल्पस्तथा परः॥ ७
मानवो विंशतिः प्रोक्तस्तत्पुमानिति चापरः।
वैकुण्ठश्चापरस्तद्वल्लक्ष्मीकल्पस्तथा परः॥ ८
चतुर्विंशतिमः प्रोक्तः सावित्रीकल्पसंज्ञकः।
पञ्चविंशस्ततो घोरो वाराहस्तु ततोऽपरः॥ ९
सप्तविंशोऽथ वैराजो गौरीकल्पस्तथापरः।
माहेश्वरस्तु स प्रोक्तस्त्रिपुरं यत्र घातितम्॥ १०
पितृकल्पस्तथान्ते तु या कुहूर्ब्रह्मणः पुरा।
इत्येवं ब्रह्मणो मासः सर्वपातकनाशनः॥ ११
आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन् यस्य विधीयते।
तस्य कल्पस्य तन्नाम विहितं ब्रह्मणा पुरा॥ १२
संकीर्णास्तामसाश्चैव राजसाः सात्त्विकास्तथा।
रजस्तमोमयास्तद्वदेते त्रिंशदुदाहृताः॥ १३
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां व्युष्टिरुच्यते।
अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं तामसेषु दिवाकरे।
राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणः स्मृतम्॥ १४
यस्मिन् कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा।
तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत्स्वरूपेण वर्ण्यते॥ १५
सात्त्विकेष्वधिकं तद्वद् विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्।
तथैव योगसंसिद्धा गमिष्यन्ति परां गतिम्॥ १६

मत्स्यभगवान्ने कहा—अब मैं कल्पोंका वर्णन कर रहा हूँ, जो महान् पातकोंको नष्ट करनेवाला है और जिसका अनुकीर्तन करनेसे वेदाध्ययनका पुण्य प्राप्त होता है। उनमें प्रथम श्वेतकल्प, दूसरा नीललोहित, तीसरा वामदेव, चौथा रथन्तरकल्प, पाँचवाँ रौरवकल्प, छठा देवकल्प, सातवाँ बृहत्कल्प, आठवाँ कंदर्पकल्प, नवाँ सद्यःकल्प, दसवाँ ईशानकल्प, ग्यारहवाँ तमःकल्प, बारहवाँ सारस्वतकल्प, तेरहवाँ उदानकल्प, चौदहवाँ गारुडकल्प तथा पंद्रहवाँ कौर्मकल्प कहा गया है। इस दिन ब्रह्माजीको पूर्णिमातिथि थी। सोलहवाँ नारसिंहकल्प, सत्रहवाँ समानकल्प, अठारहवाँ आग्नेयकल्प, उन्नीसवाँ सोमकल्प, बीसवाँ मानवकल्प, इक्कीसवाँ तत्पुमान्कल्प, बाईसवाँ वैकुण्ठकल्प, तेईसवाँ लक्ष्मीकल्प, चौबीसवाँ सावित्रीकल्प, पचीसवाँ घोरकल्प, छब्बीसवाँ वाराहकल्प, सत्ताईसवाँ वैराजकल्प, अट्ठाईसवाँ गौरीकल्प, उन्तीसवाँ माहेश्वरकल्प कहा गया है, जिसमें त्रिपुरका विनाश हुआ था। तीसवाँ पितृकल्प है, जो प्राचीन कालमें ब्रह्माकी अमावस्या थी। इस प्रकार ये सभी तीसों कल्प ब्रह्माके एक मास हैं, जो सभी पातकोंका नाश करनेवाले हैं॥ २—११॥

प्रारम्भमें ही जिस कल्पमें जिसका माहात्म्य वर्णन किया गया है, उसी आधारपर ब्रह्माने उस कल्पका वह नाम रखा है। ये तीसों कल्प संकीर्ण, तामस, राजस, सात्त्विक तथा रजस्तमोमय—इन भेदोंसे युक्त कहे गये हैं। संकीर्ण कल्पोंमें सरस्वती तथा पितरोंका, तामसमें अग्नि, सूर्य तथा शिवका और राजसमें ब्रह्माका अधिक माहात्म्य कहा गया है। प्राचीन कालमें ब्रह्माने जिस कल्पमें जिस पुराणको कहा है, उसी कल्पका माहात्म्य उस पुराणमें वर्णन किया गया है। सात्त्विक कल्पोंमें उत्तम रूपसे विष्णु भगवान्का माहात्म्य वर्णित है। योगसे सिद्धि प्राप्त करनेवाले लोग उनके पाठसे परमगतिको

ब्राह्मं पाद्ममिमं यस्तु पठेत् पर्वणि पर्वणि।
तस्य धर्मे मतिर्ब्रह्मा करोति विपुलां श्रियम्॥ १७

यस्तु दद्यादिमान् कृत्वा हैमान् पर्वणि पर्वणि।
ब्रह्मविष्णुपुरे वासं मुनिभिः पूज्यते दिवि॥ १८

सर्वपापक्षयकरं कल्पदानं यतो भवेत्।
मुनिरूपांस्ततः कृत्वा दद्यात् कल्पान् विचक्षणः॥ १९

पुराणसंहिता चेयं तव भूप मयोदिता।
सर्वपापहरा नित्यमारोग्यश्रीफलप्रदा॥ २०

ब्रह्मसंवत्सरशतादेकाहं शैवमुच्यते।
शिववर्षशतादेकं निमेषं वैष्णवं विदुः॥ २१

यदा स विष्णुर्जागर्ति तदेदं चेष्टते जगत्।
यदा स्वपिति शान्तात्मा तदा सर्वं निमीलति॥ २२

सूत उवाच

इत्युक्त्वा देवदेवेशो मत्स्यरूपी जनार्दनः।
पश्यतां सर्वभूतानां तत्रैवान्तरधीयत॥ २३

वैवस्वतो हि भगवान् विसृज्य विविधाः प्रजाः।
स्वान्तरं पालयामास मार्तण्डकुलवर्धनः॥ २४

यस्य मन्वन्तरं चैतदधुना चानुवर्तते।
पुण्यं पवित्रमेतद् वः कथितं मत्स्यभाषितम्।
पुराणं सर्वशास्त्राणां यदेतन्मूर्ध्नि संस्थितम्॥ २५

प्राप्त होते हैं। जो व्यक्ति प्रत्येक पर्वमें इन ब्रह्म तथा पद्म नामक पुराणोंका पाठ करता है, उसकी बुद्धिको ब्रह्मा धर्ममें लगाते हैं तथा उसे प्रचुर सम्पत्ति प्रदान करते हैं। जो व्यक्ति पर्व आनेपर इन्हें सोनेका बनवाकर दान करता है, वह ब्रह्मा तथा विष्णुके पुरमें निवास करते हुए स्वर्गमें मुनियोंद्वारा पूजित होता है; क्योंकि कल्पदान सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेवाला होता है। विचक्षण पुरुषको इन कल्पोंको मुनिके समान स्वरूपवाला बनाकर दान करना चाहिये। राजन्! यह पुराण-संहिता, जो मैंने तुम्हें बताया है, सभी पापोंको नष्ट करनेवाली तथा नित्य आरोग्य एवं श्रीरूप फल प्रदान करनेवाली है। ब्रह्माका सौ वर्ष शिवका एक दिन तथा शिवका सौ वर्ष विष्णुका एक निमेष कहा जाता है। जब वे विष्णु जागते रहते हैं, तब यह जगत् भी चेष्टावान् रहता है और जब वे शान्त होकर शयन करते हैं, तब सारा जगत् शान्त हो जाता है॥ १२—२२॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! ऐसा कहकर मत्स्यरूपी देवदेवेश्वर जनार्दन सभी प्राणियोंके सामने वहीं अन्तर्हित हो गये। विवस्वान्‌के पुत्र मार्तण्ड-कुलवर्धन भगवान् मनु विविध प्रजाओंकी सृष्टि कर अपनी अवधितक उनका पालन करते रहे। उन्हींका यह मन्वन्तर अभीतक चला आ रहा है। इस प्रकार मैंने आपलोगोंसे मत्स्यभगवान्‌द्वारा कहे गये पुण्यप्रद पवित्र पुराणका वर्णन कर दिया। यह मत्स्यपुराण सभी शास्त्रोंमें शिरोभूषण-रूपसे अवस्थित है॥ २३—२५॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणे कल्पानुकीर्त्तनं नाम नवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९०॥

इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें कल्पानुकीर्तन नामक दो सौ नब्बेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २९०॥



दो सौ इक्यानबेवाँ अध्याय

मत्स्यपुराणकी अनुक्रमणिका

सूत उवाच

एतद् वः कथितं सर्वं यदुक्तं विश्वरूपिणा।
मात्स्यं पुराणमखिलं धर्मकामार्थसाधनम्॥ १
यत्रादौ मनुसंवादो ब्रह्माण्डकथनं तथा।
सांख्यं शारीरकं प्रोक्तं चतुर्मुखमुखोद्भवम्॥ २
देवासुराणामुत्पत्तिर्मारुतोत्पत्तिरेव च।
मदनद्वादशी तद्वल्लोकपालाभिपूजनम्॥ ३
मन्वन्तराणामुद्देशो वैन्यराजाभिवर्णनम्।
सूर्यवैवस्वतोत्पत्तिर्बुधसङ्गमनं तथा॥ ४
पितृवंशानुकथनं श्राद्धकालस्तथैव च।
पितृतीर्थप्रवासश्च सोमोत्पत्तिस्तथैव च॥ ५
कीर्तनं सोमवंशस्य ययातिचरितं तथा।
कार्तवीर्यस्य माहात्म्यं वृष्णिवंशानुकीर्तनम्॥ ६
भृगुशापस्तथा विष्णोर्दैत्यशापस्तथैव च।
कीर्तनं पुरुवंशस्य वंशो हौताशनस्तथा॥ ७
पुराणकीर्तनं तद्वत् क्रियायोगस्तथैव च।
व्रतं नक्षत्रसंख्याकं मार्तण्डशयनं तथा॥ ८
कृष्णाष्टमीव्रतं तद्वद् रोहिणीचन्द्रसंज्ञितम्।
तडागविधिमाहात्म्यं पादपोत्सर्ग एव च॥ ९
सौभाग्यशयनं तद्वदगस्त्यव्रतमेव च।
तथानन्ततृतीया तु रसकल्याणिनी तथा॥ १०
आर्द्रानन्दकरी तद्वद् व्रतं सारस्वतं पुनः।
उपरागाभिषेकश्च सप्तमीस्नपनं पुनः॥ ११
भीमाख्या द्वादशी तद्वदनङ्गशयनं तथा।
अशून्यशयनं तद्वत् तथैवाङ्गारकव्रतम्॥ १२
सप्तमीसप्तकं तद्वद् विशोकद्वादशी तथा।
मेरुप्रदानं दशधा ग्रहशान्तिस्तथैव च॥ १३
ग्रहस्वरूपकथनं तथा शिवचतुर्दशी।
तथा सर्वफलत्यागः सूर्यवारव्रतं तथा॥ १४

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! विश्वस्वरूप मत्स्यभगवान्‌ने धर्म, अर्थ और कामके साधनभूत जिस सम्पूर्ण मत्स्यपुराणका वर्णन किया था, वह सब मैंने आपलोगोंको बतला दिया। उसमें आदिमें मनुका संवाद, ब्रह्माण्डका वर्णन तथा चतुर्मुख ब्रह्माके मुखसे उद्भूत शारीरिक सांख्यका वर्णन है। तत्पश्चात् देवताओं और असुरोंकी उत्पत्ति, मरुद्गणोंकी उत्पत्ति, मदनद्वादशी, लोकपालोंका पूजन, मन्वन्तरोंका उद्देश्य, राजा पृथुका वर्णन, सूर्य और वैवस्वत मनुकी उत्पत्ति, बुधका इलासे संयोग, पितृवंशका वर्णन, श्राद्धके कालका निर्णय, पितृतीर्थोंमें प्रवास, सोमकी उत्पत्ति, सोमवंशका वर्णन, ययातिका चरित्र, कार्तवीर्य अर्जुनका माहात्म्य, वृष्णिवंशका वर्णन, भृगुशाप, विष्णुका दैत्योंको शाप, पुरुवंशका कीर्तन, अग्नि-वंशका वर्णन, पुराणोंका वर्णन, क्रियायोगका विवेचन, नक्षत्रसंज्ञकव्रत, मार्तण्डशयन, कृष्णाष्टमीव्रत, रोहिणीचन्द्रव्रत, तडागविधिका माहात्म्य, पादपोत्सर्ग-विधि, सौभाग्यशयनव्रत, अगस्त्यव्रत, अनन्ततृतीयाव्रत, रसकल्याणिनीव्रत, आर्द्रानन्दकरीव्रत, सारस्वतव्रत, उपरागाभिषेकव्रत, सप्तमीस्नपनव्रत, भीमद्वादशीव्रत, अनङ्गशयनव्रत, अशून्यशयनव्रत, अङ्गारकव्रत, सप्तमीसप्तकव्रत, विशोकद्वादशीव्रत, दस प्रकारके मेरुओंके दानकी विधि, ग्रहशान्ति, ग्रहोंके स्वरूपका कथन, शिवचतुर्दशीव्रत, सर्वफलत्यागव्रत तथा सूर्यवार-व्रतका निरूपण हुआ है॥ १—१४॥

संक्रान्तिस्नपनं तद्वद् विभूतिद्वादशीव्रतम्।
षष्टिव्रताणां माहात्म्यं तथा स्नानविधिक्रमः॥ १५
प्रयागस्य तु माहात्म्यं सर्वतीर्थानुकीर्तनम्।
ऐलाश्रमव्रतं तद्वद् द्वीपलोकानुकीर्तनम्॥ १६
सूर्यचन्द्रगतिस्तद्वदादित्यरथवर्णनम्।
तथान्तरिक्षचारश्च ध्रुवमाहात्म्यमेव च॥ १७
भुवनानि सुरेन्द्राणां त्रिपुराघोषणं तथा।
पितृपिण्डदमाहात्म्यं मन्वन्तरविनिर्णयः॥ १८
वज्राङ्गस्य तु सम्भूतिस्तारकोत्पत्तिरेव च।
तारकासुरमाहात्म्यं ब्रह्मदेवानुमन्त्रणम्॥ १९
पार्वतीसम्भवस्तद्वत् तथा शिवतपोवनम्।
अनङ्गदेहदाहस्तु रतिशोकस्तथैव च॥ २०
गौरीतपोवनं तद्वद् विश्वनाथप्रसादनम्।
पार्वतीऋषिसंवादस्तथैवोद्वाहमङ्गलम्॥ २१
कुमारसम्भवस्तद्वत् कुमारविजयस्तथा।
तारकस्य वधो घोरो नरसिंहोपवर्णनम्॥ २२
पद्मोद्भवविसर्गस्तु तथैवान्धकघातनम्।
वाराणस्यास्तु माहात्म्यं नर्मदायास्तथैव च॥ २३
प्रवरानुक्रमस्तद्वत् पितृगाथानुकीर्तनम्।
तथोभयमुखीदानं दानं कृष्णाजिनस्य च॥ २४
तथा सावित्र्युपाख्यानं राजधर्मास्तथैव च।
यात्रानिमित्तकथनं स्वप्नमाङ्गल्यकीर्तनम्॥ २५
वामनस्य तु माहात्म्यं तथैवाथ वराहजम्।
क्षीरोदमथनं तद्वत् कालकूटाभिशासनम्॥ २६
देवासुरविमर्दश्च वास्तुविद्यास्तथैव च।
प्रतिमालक्षणं तद्वद् देवताराधनं ततः॥ २७
प्रासादलक्षणं तद्वन्मण्डपानां तु लक्षणम्।
भविष्यद्राजनिर्देशो महादानानुकीर्तनम्।
कल्पानुकीर्तनं तद्वद् ग्रन्थानुक्रमणी तथा॥ २८

उसी प्रकार संक्रान्तिस्नपनव्रत, विभूतिद्वादशीव्रत, साठ व्रतोंका माहात्म्य, स्नानविधिका क्रम, प्रयागका माहात्म्य, समस्त तीर्थोंका वर्णन, ऐलाश्रमव्रत, द्वीप और लोकोंका कथन, सूर्य और चन्द्रमाकी गतिका वर्णन, आदित्यके रथका वर्णन, उसका अन्तरिक्षमें गमन, ध्रुवका माहात्म्य, सुरेन्द्रोंके भुवन, त्रिपुरके प्रति घोषणा, पितरोंके पिण्डदानका माहात्म्य, मन्वन्तरोंका निर्णय, वज्राङ्गकी उत्पत्ति, तारककी उत्पत्ति, तारकासुरकी प्रशंसा, ब्रह्मा और देवताओंकी मन्त्रणा, पार्वतीकी उत्पत्ति, शिवका तपोवन-गमन, कामदेवके शरीरका दाह, रतिका शोक, पार्वतीका तपोवन-गमन, विश्वनाथकी प्रसन्नता, पार्वती और सप्तर्षियोंका संवाद, पार्वतीका विवाहोत्सव, कुमार स्कन्दकी उत्पत्ति, कुमारकी विजय, तारकासुरका भयंकर वध, नरसिंहावतारका वर्णन, पद्मोद्भवका विसर्ग, अन्धकासुरका वध, वाराणसीका माहात्म्य, नर्मदाका माहात्म्य, प्रवरोंका अनुक्रम, पितृगाथाका वर्णन, उभयमुखी दान तथा कृष्णमृगचर्मके दानका वर्णन, सावित्रीका उपाख्यान, राजधर्मका वर्णन, यात्राके निमित्तका कथन, शुभ-अशुभ स्वप्नों और शकुनोंका निरूपण, वामनका माहात्म्य, वराहका माहात्म्य, क्षीरसागरका मन्थन, कालकूटका दमन, देवों और असुरोंका संग्राम, वास्तुविद्याका कथन, प्रतिमाओंके लक्षण, देवताओंकी आराधना, प्रासादोंका लक्षण, मण्डपोंका लक्षण, भविष्यत्कालीन राजाओंका वर्णन, महादानोंका कथन, कल्पोंका वर्णन तथा ग्रन्थोंकी अनुक्रमणिकाका कथन हुआ है॥ १५—२८॥

एतत् पवित्रमायुष्यमेतत् कीर्तिविवर्धनम्।
एतत् पवित्रं कल्याणं महापापहरं शुभम्॥ २९

यह पुराण परम पवित्र, आयु प्रदान करनेवाला, कीर्तिवर्धक, परम पावन, कल्याणकारक, बड़े-बड़े पापोंको नष्ट करनेवाला और मङ्गलमय है।

अस्मात् पुराणात् सुकृतं नराणां
तीर्थावलीनामवगाहनानाम्।
समस्तधर्माचरणोद्भवानां
सदैव लाभश्च महाफलानाम्॥ ३०

इस पुराणसे मनुष्योंको सदैव पुण्य तथा समस्त तीर्थोंमें स्नान करने और सम्पूर्ण धर्माचरणसे उत्पन्न हुए महान् फलोंका लाभ प्राप्त होता है।

एतत् पुराणं परमं सर्वदोषविघातकम्।
मत्स्यरूपेण हरिणा कथितं मनवेऽर्णवे॥ ३१
अस्मात् पुराणादपि पादमेकं
पठेत् तु यः सोऽपि विमुक्तपापः।
नारायणस्यास्पदमेति नून-
मनङ्गवद् दिव्यवपुः सुखी स्यात्॥ ३२
पुराणमेतत् सकलं रहस्यं
श्रद्धान्वितः पुण्यमिदं शृणोति।
स चाश्वमेधावभृथप्रभावं
फलं समाप्नोति हरप्रसादात्॥ ३३
शिवं विष्णुं समभ्यर्च्य ब्रह्माणं सदिवाकरम्।
श्लोकं श्लोकार्धपादं वा श्रद्धया यः शृणोति वा।
श्रावयेद् वापि धर्मज्ञस्तत्फलं शृणुत द्विजाः॥ ३४
ब्राह्मणो लभते विद्यां क्षत्रियो लभते महीम्।
वैश्यो धनमवाप्नोति सुखं शूद्रस्तु विन्दति॥ ३५
आयुष्मान् पुत्रवांश्चैव लक्ष्मीवान् पापवर्जितः।
श्रुत्वा पुराणमखिलं शत्रुभिश्चापराजितः॥ ३६

यह परमोत्तम पुराण सम्पूर्ण दोषोंका नाशक है। इसे मत्स्यरूपधारी श्रीहरिने प्रलयकालमें एकार्णवके जलमें मनुके प्रति कहा था। जो मनुष्य इस पुराणके एक श्लोकके एक चरणका भी पाठ करता है, वह भी पापोंसे मुक्त होकर सुखी हो जाता है तथा कामदेवकी भाँति दिव्य शरीर धारणकर निश्चय ही नारायणके निवासस्थान वैकुण्ठमें चला जाता है। जो मनुष्य श्रद्धापूर्वक इस पुण्यप्रद एवं रहस्यमय सम्पूर्ण पुराणको सुनता है, वह शंकरजीकी कृपासे अश्वमेध-यज्ञके अन्तमें होनेवाले अवभृथ-स्नानके सदृश प्रभावशाली फलको प्राप्त करता है। द्विजवरो! जो धर्मज्ञ मनुष्य शिव, विष्णु, ब्रह्मा और सूर्यकी अर्चना करके श्रद्धापूर्वक इस पुराणके एक श्लोक, आधे श्लोक अथवा एक चरणको सुनता है अथवा दूसरेको सुनाता है, उसे जो फल प्राप्त होता है, उसे सुनिये। वह ब्राह्मण हो तो विद्या, क्षत्रिय हो तो पृथ्वी, वैश्य हो तो धन और शूद्र हो तो सुख प्राप्त करता है। सम्पूर्ण पुराण सुननेवाला पापरहित होकर आयुष्मान्, पुत्रवान् और लक्ष्मीवान् हो जाता है तथा उसे शत्रु पराजित नहीं कर सकते॥ २९—३६॥

इति श्रीमात्स्ये महापुराणेऽनुक्रमणिका नामैकनवत्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥ २९१॥
इस प्रकार श्रीमत्स्यमहापुराणमें अनुक्रमणिका नामक दो सौ इक्यानबेवाँ अध्याय सम्पूर्ण हुआ॥ २९१॥



पुराण-श्रवण-कालमें पालनीय धर्म

श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नान्यकार्येषु लालसाः।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः॥ १
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः।
तेषां पुण्यफलं नास्ति दुःखं स्याज्जन्मजन्मनि॥ २
पुराणं ये च सम्पूज्य ताम्बूलाद्यैरुपायनैः।
शृण्वन्ति च कथां भक्त्याऽदरिद्राः स्युर्न संशयः॥ ३
कथायां कीर्त्यमानायां ये गच्छन्त्यन्यतो नराः।
भोगान्तरे प्रणश्यन्ति तेषां दाराश्च सम्पदः॥ ४

जो लोग श्रद्धा और भक्तिसे सम्पन्न, अन्य कार्योंकी लालसासे रहित, मौन, पवित्र और शान्तचित्तसे (पुराणकी कथाको) श्रवण करते हैं, वे ही पुण्यके भागी होते हैं। जो अधम मनुष्य भक्तिरहित होकर पुण्यकथाको सुनते हैं, उन्हें पुण्यफल तो मिलता नहीं, उलटे प्रत्येक जन्ममें दुःख भोगना पड़ता है। जो लोग ताम्बूल, पुष्प, चन्दन आदि पूजन-सामग्रियोंद्वारा पुराणकी भलीभाँति पूजा करके भक्तिपूर्वक कथा सुनते हैं, वे निःसंदेह दरिद्रतारहित अर्थात् धनवान् होते हैं। जो मनुष्य कथा होते समय अन्य कार्यके लिये वहाँसे उठकर अन्यत्र चले जाते हैं, उनकी पत्नी और

सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम्।
ते बलाकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः॥ ५

ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथां शृण्वन्ति पावनीम्।
श्वविष्ठां खादयन्त्येतान्नयन्ति यमकिङ्कराः॥ ६

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः।
अक्षय्यनरकान् भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः॥ ७

ये वै वरासनारूढा ये च मध्यासनस्थिताः।
शृण्वन्ति सत्कथां ते वै भवन्त्यर्जुनपादपाः॥ ८

असम्प्रणम्य शृण्वन्ति विषभक्षा भवन्ति ते।
तथा शयानाः शृण्वन्ति भवन्त्यजगरा नराः॥ ९

यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः।
गुरुतल्पसमं पापं सम्प्राप्य नरकं व्रजेत्॥ १०

ये निन्दन्ति पुराणज्ञान् कथां वै पापहारिणीम्।
ते वै जन्मशतं मर्त्याः सूकराः सम्भवन्ति हि॥ ११

कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम्।
ते गर्दभाः प्रजायन्ते कृकलासास्तथैव च॥ १२

कदाचिदपि ये पुण्यां न शृण्वन्ति कथां नराः।
ते भुक्त्वा नरकान् घोरान् भवन्ति वनसूकराः॥ १३

ये कथामनुमोदन्ते कीर्त्यमानां नरोत्तमाः।
अशृण्वन्तोऽपि ते यान्ति शाश्वतं परमं पदम्॥ १४

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्नं कुर्वन्ति ये शठाः।
कोट्यब्दं नरकान् भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः॥ १५

ये श्रावयन्ति मनुजान् पुण्यां पौराणिकीं कथाम्।
कल्पकोटिशतं साग्रं तिष्ठन्ति ब्रह्मणः पदे॥ १६

आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः।
कम्बलाजिनवासांसि मञ्चं फलकमेव च॥ १७

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान् यथेप्सितान्।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम्॥ १८

पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये वरासनमुत्तमम्।
भोगिनो ज्ञानसम्पन्ना भवन्ति च भवे भवे॥ १९

सम्पत्ति नष्ट हो जाती है। जो पापी अधम मनुष्य मस्तकपर पगड़ी बाँधकर (या टोपी लगाकर) पवित्र कथाको सुनते हैं, वे (दूसरे जन्ममें) बगुला होकर उत्पन्न होते हैं। जो लोग पान चबाते हुए पवित्र कथाको सुनते हैं, उन्हें कुत्तेका मल खाना पड़ता है और यमदूत उन्हें यमपुरीमें ले जाते हैं। जो ढोंगी मनुष्य (व्यासासनसे) ऊँचे आसनपर बैठकर कथा सुनते हैं, वे ही अक्षय नरकोंका भोग करके कौआ होते हैं। जो लोग (व्यासासनसे) श्रेष्ठ आसनपर अथवा मध्यम आसनपर बैठकर उत्तम कथाको श्रवण करते हैं, वे अर्जुन नामक वृक्ष होते हैं। जो मनुष्य (पुराणको पुस्तक और व्यासको) बिना प्रणाम किये ही कथा सुनते हैं, वे विषभक्षी होते हैं तथा जो लोग सोते हुए कथा सुनते हैं, वे अजगर साँप होते हैं॥ १—९॥

इसी प्रकार जो वक्ताके समान आसनपर बैठकर कथा सुनता है, वह गुरु-शय्या-गमनके समान पापका भागी होकर नरकगामी होता है। जो मनुष्य पुराणोंके ज्ञाता (व्यास) और पापोंको हरण करनेवाली कथाकी निन्दा करते हैं, वे सौ जन्मोंतक सूकर-योनिमें उत्पन्न होते हैं। कथा होते समय जो लोग वक्ताको बुरा उत्तर देते हैं, वे गदहा तथा गिरगिटकी योनिमें पैदा होते हैं। जो मनुष्य इस पुण्य कथाको कभी भी नहीं सुनते, वे घोर नरकोंका भोग करके बनैले सूअर होते हैं। जो नरश्रेष्ठ कही जाती हुई कथाका अनुमोदन करते हैं, वे कथा न सुननेपर भी अविनाशी परम पदको प्राप्त होते हैं। जो दुष्ट कही जाती हुई कथामें विघ्न पैदा करते हैं, वे करोड़ों वर्षोंतक नरकोंका भोग करके अन्तमें ग्रामीण सूअर होते हैं। जो लोग साधारण मनुष्योंको पुराणसम्बन्धिनी पुण्य कथा सुनाते हैं, वे सौ करोड़ कल्पोंसे भी अधिक समयतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं। जो मनुष्य पुराणके ज्ञाता वक्ताको आसनके लिये कम्बल, मृगचर्म, वस्त्र, सिंहासन और चौकी प्रदान करते हैं, वे स्वर्गलोकमें जाकर अभीष्ट भोगोंका उपभोग करनेके बाद ब्रह्मा आदिके लोकोंमें निवास कर अन्तमें निरामय पदको प्राप्त होते हैं॥ १०—१८॥

इसी तरह जो लोग पुराणकी पुस्तकके लिये उत्तम श्रेष्ठ आसन प्रदान करते हैं, वे प्रत्येक जन्ममें भोगोंका उपभोग करनेवाले एवं ज्ञानी होते हैं।

ये महापातकैर्युक्ता उपपातकिनश्च ये।
पुराणश्रवणादेव ते प्रयान्ति परं पदम्॥ २०
एवंविधविधानेन पुराणं शृणुयान्नरः।
भुक्त्वा भोगान् यथाकामं विष्णुलोकं प्रयाति सः॥ २१
पुस्तकं पूजयेत् पश्चाद् वस्त्रालङ्करणादिभिः।
वाचकं विप्रसंयुक्तं पूजयीत प्रयत्नवान्॥ २२
गोभूमिहेमवस्त्राणि वाचकाय निवेदयेत्।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चान्मण्डलड्डुकपायसैः॥ २३
त्वं व्यासरूपी भगवन् बुद्ध्या चाङ्गिरसोपमः।
पुण्यवाञ्शीलसम्पन्नः सत्यवादी जितेन्द्रियः॥ २४
प्रसन्नमानसं कुर्याद् दानमानोपचारतः।
त्वत्प्रसादादिमान् धर्मान् सम्पूर्णाञ्श्रुतवानहम्॥ २५
एवं प्रार्थनकं कृत्वा व्यासस्य परमात्मनः।
यशस्वी च भवेन्नित्यं यः कुर्यादेवमादरात्॥ २६
नारदोक्तानिमान् धर्मान् यः कुर्यान्नियतेन्द्रियः।
कृत्स्नं फलमवाप्नोति पुराणश्रवणस्य वै॥ २७

सूत उवाच

मत्स्यरूपी स भगवान् मनवे बुद्धिशालिने।
अवापोद्घातसहितमुक्त्वा ह्यन्तर्दधौ तदा॥ २८॥

जो महापातकोंसे युक्त होते हैं अथवा जो उपपातकी होते हैं, वे सभी पुराणकी कथा सुननेसे ही परम पदको प्राप्त हो जाते हैं। जो मनुष्य इस प्रकारके नियम-विधानसे पुराणकी कथा सुनता है, वह स्वेच्छानुसार भोगोंको भोगकर विष्णुलोकको चला जाता है। कथा समाप्त होनेपर श्रोता पुरुष प्रयत्नपूर्वक वस्त्र और अलंकार आदिद्वारा पुस्तककी पूजा करे। तत्पश्चात् सहायक ब्राह्मणसहित वाचककी पूजा करे। उस समय वाचकको गौ, पृथ्वी, सोना और वस्त्र देना चाहिये। तदुपरान्त ब्राह्मणोंको मलाई, लड्डू और खीरका भोजन कराना चाहिये। तदनन्तर परमात्मा व्याससे प्रार्थना करे—'आप व्यासरूपी भगवान् बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, पुण्यवान्, शीलसम्पन्न, सत्यवादी और जितेन्द्रिय हैं, आपकी कृपासे मैंने इन सम्पूर्ण धर्मोंको सुना है।' इस प्रकार प्रार्थना कर दान, मान और सेवासे उनके मनको प्रसन्न करना चाहिये। जो मनुष्य इस प्रकार आदरपूर्वक करता है, वह सदा यशस्वी होता है। जो जितेन्द्रिय मनुष्य देवर्षि नारदद्वारा कहे गये इन धर्मोंका पालन करता है, वह पुराण-श्रवणका सम्पूर्ण फल पाता है॥ १९—२७॥

सूतजी कहते हैं—ऋषियो! उस समय मत्स्यरूपी भगवान् बुद्धिशाली मनुसे आदि-अन्त-सहित इस पुराणको कहकर अन्तर्हित हो गये॥ २८॥

इति पुराणश्रवणकालीनधर्माः।
इति श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीतं मत्स्यपुराणं समाप्तम्।
इस प्रकार श्रीमद्द्वैपायनमुनिप्रणीत मत्स्यपुराण समाप्त हुआ॥

